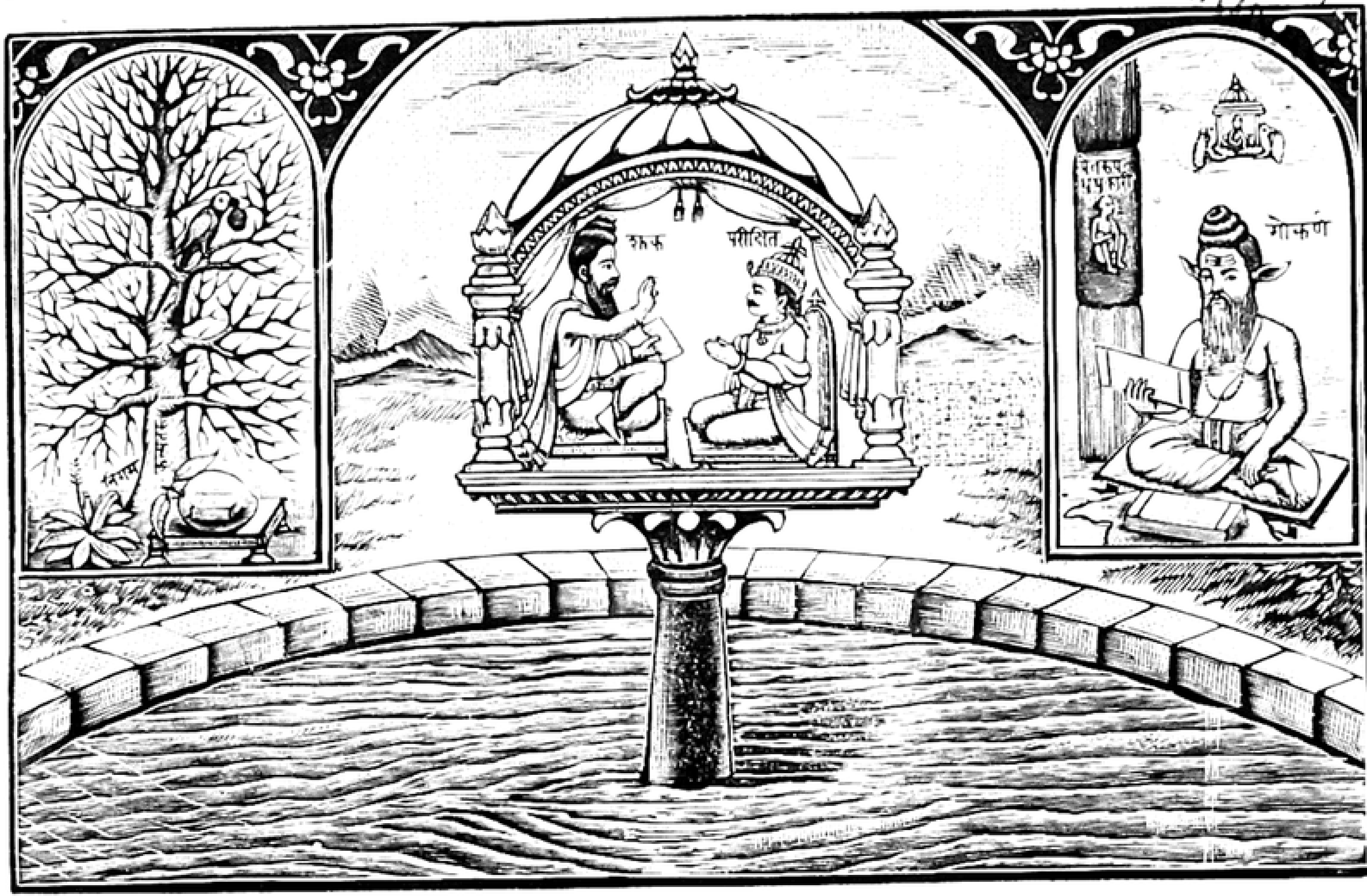


दुर्गम एकस्तंभ महलमें शुकयोगीन्द्रसे राजा परीक्षितिको भागवतकथन.

॥ श्रीः ॥

शुकोक्तिसुधासागरः।

अर्थात्

माहात्म्यसहित सचित्र द्वादश स्कन्ध

श्रीमद्भागवतभाषा।

लेखक—

'नागरीप्रचारक' व 'निगमागमचन्द्रिका' के भूतपूर्व सम्पादक

पण्डित रूपनारायण पाण्डेय.

प्रकाशक

तुकाराम जावजी,

अध्यक्ष निर्णयसागरयन्त्रालय,

बम्बई.

संवत् १९७०, कीमत ३ रुपिया. सन १९१३.

PUBLISHER:—Tukaram Javaji, } the "Nirnaya-sagar" Press,
PRINTER:—R. Y. Shedge, } 23, Kolbhat Lane, Bombay.



पण्डित रूपनारायण पाण्डेय.

भूमिका ।

प्रिय पाठकगण ! कहना न होगा कि यह श्रीमद्भागवत पुराण सम्पूर्ण वेद और उपनिषदोंका सारांश है; इसमें सांख्य, वेदान्त, आदि छहों दर्शनोंका तत्त्व-विचार कूट २ कर भरा हुआ है । यही देखकर किसीने कहा है कि "विद्यावतां भागवते परीक्षा" अर्थात् विद्वानोंकी परीक्षा भागवत पुराणमें होती है । वास्तवमें यह कथन ठीक है कि विना वेदवेदान्त और दर्शन आदि धर्मशास्त्रोंको भली भाँति पढ़े इस ब्रह्मरूप अचिन्त्य गंभीर भागवतसागरमें प्रवेश करनेका साहस केवल धृष्टतामात्र है ।

यह भागवत परमार्थका द्वार है । इसमें पद २ पर गूढ़ विषयोंका समावेश और गंभीर गवेषणा है । अधिकन्तु इसमें विशेषता यह है कि ज्ञान, वैराग्यके वर्णनमेंभी भगवद्भक्तिको मुख्य मान कर उसकी पुष्टि की है । इसमें कपटरहित परमहंसधर्मका वर्णन किया गया है । इसमें तीनो तापोंको जड़ मूलसे उखाड़ डालनेवाले, जानने योग्य, कल्याणकारी, सत् विषय परब्रह्मका सर्वत्र प्रतिपादन किया गया है । इसीसे इसका इतना माहात्म्य है कि इसके सुननेकी इच्छा करतेही दुर्लभ हरि हृदयमें प्रकट होकर अज्ञानरूप अंधकारको दूर कर देते हैं । अहा ! यह सज्जनोंके कण्ठका अमूल्य आभरण है ! इसमें स्पष्टही कहा है कि अच्युतभक्तिसे हीन निर्लिप्त निष्कर्म ज्ञान (वैराग्य) भी नहीं सोहता । वास्तवमें इस कलियुगमें यही भक्तिमय भागवतशास्त्र एकमात्र मुक्तिका द्वार है ।

ऐसे शास्त्रका जितना प्रचार हो उतनाही जगत्के लिये कल्याण है । इसको केवल सुनकर भी बड़े २ पातकी पापमुक्त होजाँय तो कौन आश्चर्य्यकी बात है? जिस नारायणके नामको मरतेसमय धोखेसे एक वार पुकारनेसे आजन्मपातकी अजामिल मुक्त होगया उसी नामका माहात्म्य इस शास्त्रमें सर्वत्र अधिकताके साथ कहागया है । कोई योग, यज्ञ, तप, व्रत, दान, यम, नियम, संयम आदि साधन इसके समान नहीं है । यह व्यासजीकी उज्वल बुद्धिका ज्वलन्त उदाहरण है । यह भगवद्वाक्य है, यह भगवान्का रूप है, इसके पढ़ने सुननेसे मायामोह कहीं रह सक्ता है?

आजकल इस भागवतका प्रचार नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सक्ता । प्रायः पण्डित लोग इस कथाको सुनाते देख पड़ते हैं । परन्तु सत्यके अनुरोधसे कहना पड़ता है कि इस पुराणका जो उद्देश्य है सो सफल होता नहीं देखा जाता । इसके कई कारण हैं, उनमें मुख्य कारण यही है कि वे पंडित, जो कथा सुनाते हैं, प्रायः सर्वशास्त्रज्ञ न होनेके कारण इसके भावको नहीं समझा सक्ते; अतएव सुननेवालोंको भी इसके यथार्थ फलसे वञ्चित रहना पड़ता है । यह अनुवाद इसी लिये कियागया है कि कि पण्डितजन इसके द्वारा भागवतके यथार्थ भावको समझकर उसका प्रचार करें । इसके अतिरिक्त जो लोग संस्कृतज्ञ नहीं हैं वेभी इसे पढ़कर भागवतके ठीक भावको हृदयंगम करसकें । यद्यपि इससमय भागवतके अनेक भाषानुवाद होगये हैं परन्तु यह कहना अनुचित न होगा कि उनमें प्रायः कठिन स्थल जैसे के तैसे छोड़ दिये गये हैं, उनकी सरल व्याख्या नहीं की गई है । हम यह नहीं कह सक्ते इस साधारण अनुवादसे यह कमी पूर्णतया पूरी होगई है, अथवा यह अनुवाद सर्वोत्तम है, परन्तु हाँ इतना अवश्य कहेंगे कि यथाशक्ति उक्त अभावको मिटानेके लिये ही यह अनुवाद किया गया है—तब इसमें हम कहाँतक कृतकार्य्य हो सके हैं, इसका निर्णय हमारे सहृदय पाठकोंपर ही निर्भर है । आकाश अनन्त है, उसमें पक्षीगण अपनी २ शक्तिके अनुसार उड़ते हैं, वैसेही इस भागवत शास्त्रमें प्रत्येक विद्वान्‌का प्रयास करना है । जिसके लिये श्रीभगवान्‌ने स्वयं कहा है कि 'मैं जानता हूँ, श्रीशुकदेव जानते हैं और संजय जानते हैं या नहीं—सो कुछ निश्चित नहीं है' उसके विषयमें यह कहना कि 'हमने पूर्णतया समझ कर इसका अनुवाद किया है, या यह अनुवाद सर्वांगपूर्ण और निर्दोष है'—बालसुलभ चपलतामात्र है । मनुष्यकी बुद्धि कभी भ्रमशून्य नहीं होसक्ती ! मनुष्यही क्यों? त्रिभुवनके कर्ता ब्रह्माकीभी बुद्धि तो हरिकी महिमामें मोहित हो गई थी, तब हम ऐसे तुच्छातितुच्छ मनुष्यकीटोंकी शक्ति क्या है और हम क्या हैं ?

किन्तु ऐसा होने परभी कृपानिधि ईश्वरकी लीला अपरम्पार है । उसकी कृपा होने पर एक कीटभी गरुड़से बढ़ कर काम कर सक्ता है । जब उस करुणानिधिकी कृपा होने पर गूँगे लोग बोलने लगते हैं, लँगड़े अपाहिज पहाड़ फाँद जाते हैं तब हम ऐसे तुच्छ मनुष्यके द्वारा इस सुमहत्कार्यको सम्पन्न करादेनाभी उस महानुभाव परमेश्वरके लिये कोई विचित्र बात नहीं है । विना ईश्वरकी इच्छा जब एक पत्ता तक नहीं हिलता तब कौन कह सक्ता है कि विना उसकी प्रेरणाके इस अनुवादमें हमारी प्रवृत्ति हुई है ? अतएव कहना पड़ता है और मानना भी पड़ेगा कि यह कार्य

उसी ईश्वरकी आज्ञासे हुआ है जिसकी आज्ञाका पालन प्रत्येक प्राणीका परम धर्म है, अस्तु ।

अब हम इस अनुवादके विषयमें कुछ और आवश्यक बातें कहना चाहते हैं । प्रथम तो इसमें अन्य भाषाके शब्दोंका प्रयोग यथाशक्ति नहीं किया गया है । इसका कारण यह नहीं है कि हम अन्य भाषाओंसे विरोध रखते हैं । आजकल हमारे बहुतसे भाइयोंका मत है कि हिन्दीही राष्ट्रभाषा होनेके योग्य है और यह विषय सर्वमान्य भी होगया है । किन्तु अभी इस विषयमें मतभेद है कि हिन्दीभाषामें जो शब्द नहीं हैं उनके स्थान पर किस भाषाकी सहायता लेनी चाहिये । कुछ लोग कहते हैं कि सर्वसाधारणकी समझमें आनेवाले प्रचलित अर्बी फार्सी आदिके शब्दोंका प्रयोग करना अनुचित नहीं है । और कुछ लोग कहते हैं कि नहीं, अन्य भाषाओंकी सहायता हम क्यों लें ? हमारी सब भाषाओंकी जननी संस्कृत (जिसकी देवनागरी लिपि हिन्दी-भाषाका सर्वांगपूर्ण सुन्दर कलेवर है) जब हमारे लिये कामधेनुरूपसे विद्यमान है तब हम अन्य भाषाओंका मुख क्यों ताकते फिरें ? हम ऋणी होंगे तो अपनीही प्राचीन भाषाके, अन्य भाषासे ऋण लेना सर्वथा अयोग्य है । यदि कोई आपत्ति करे कि संस्कृतके शब्द कठिन हैं उनका अर्थ समझना कठिन है, सर्वसाधारण उनके भावको नहीं समझ सके तो ऐसा कहना यदि अयोग्य नहीं तो कम-से-कम नासमझी तो अवश्य है । आप राजा शिवप्रसादके समयकी हिन्दी और आज कलके सामयिक पत्रोंकी हिंदी मिला कर देखेंगे तो सहजही सब समझ सकेंगे । अभ्याससे सब हो जाता है, जब हम संस्कृतमिश्रित, कठिन होने परभी विशुद्ध, भाषा लिखने लगेंगे तब उसके पढ़ने और समझनेवाले अनेकानेक उत्पन्न होजायँगे । वंगभाषाको देखिये, इस समय वह सर्व्वांशमें संस्कृतका रूपान्तर होरही है और उसके उन संस्कृतवाक्योंको, जिनको हमलोग कठिन बताते हैं, वंगदेशके छोटे २ बालक समझते हैं (स्मरण रहे यही वंगभाषा ४०।५० वर्ष पहले यवनसहवासके कारण अर्द्धयावनी होगई थी) ।

हमारा मत है कि विषयके अनुसार भाषाभी होती है । यह विषय धार्मिक है, इसकी भाषा भी संस्कृतमिश्रितही होनी चाहिये । इसी लिये हमने इस अनुवादमें अर्बी–फार्सी आदिके शब्दोंका यथासम्भव प्रयोग नहीं किया है । कुछ लोग इसे पण्डितोंकी भाषा कह कर दोषभी देंगे, परन्तु हम पहलेही कह चुके हैं कि यह अनुवाद पण्डितोंहीके लाभके लिये किया गया है; हाँ अन्य लोगभी इससे लाभ उठा सकें तो बड़ेही आनन्दकी बात है ।

इसके अतिरिक्त इस अनुवादमें अन्य अनुवादोंकी भाँति दृष्टान्तोंकी भरमार नहीं है और न क्षेपक कथाओंका समावेश किया गया है; यह देखकरभी कुछ लोग सम्भव है इसे अपूर्ण कहें—उनसे हमारा वक्तव्य यही है कि इसमें दृष्टान्त आदिका समावेश इसीसे नहीं किया गया कि यह विशुद्ध भावानुवाद है । इसमें मूलके अक्षर अक्षरका अनुवाद है । मूलसे भिन्न कुछ भी नहीं लिखा गया, क्योंकि इसका मुख्य उद्देश्य केवल यही है कि वेदव्यासके हृदयका भाव हर एक व्यक्ति पर व्यक्त हो । इसके सिवा दृष्टान्त आदिसे लोगोंको लुभानेवाले अनेक अनुवाद विद्यमान हैं । सारांश यह है कि जो लोग भागवतके यथार्थ भावको जानना चाहते हैं, जो लोग हरिभक्त हैं, जिनका अन्तःकरण शुद्ध है—यह अनुवाद उन्हीं लोगोंके आदरकी सामग्री है । जो लोग अनर्गल दृष्टान्तोंके रसिक हैं, जो लोग हरिभक्त न होकरभी भक्तिका स्वाँग रचे हुए हैं, जो लोग भागवत पढ़ने सुननेके समयभी इन्द्रियोंके दास वन कर बुरी वासनाओंको नहीं छोड़ सकते उनको यह अनुवाद न रुचे तो कोई विचित्र वात नहीं है । वस, अन्तमें हम माननीय वुधवरोंसे क्षमा चाहते हुए प्रार्थना करते हैं कि यदि कोई त्रुटि दृष्टिगोचर हो तो उसकी सूचना देकर अनुग्रहीत करें—दूसरे संस्करणमें उन त्रुटियोंपर विचार किया जायगा ।

रानीकटरा, लखनऊ.
१ जनवरी सन् १९०८
सम्वत् १९६६ वै०

वशम्वद
रूपनारायण पाण्डेय
(कमलाकर)

प्रकाशककी विज्ञप्ति ।

प्रिय वाचकवृंद ! हिन्दी भाषामें यह भागवतका भावानुवाद नया नहीं, तथापि 'नया' कहा जासक्ता है । क्योंकि आजतक जो भागवतके भाषानुवाद प्रकाशित हुए हैं वे प्रायः पूर्णतया अक्षरानुवाद नहीं हैं, किन्तु इसमें मूलकाही अनुसरण किया गया है । मूलका एक शब्दभी नहीं छोड़ा गया है और न एक शब्द ऊपरसे मिलाया गया है । इसको भागवतका प्रतिबिंब कहना भी अनुचित न होगा । हम आप लोगोंकी सेवामें इस सारतत्त्वको लेकर उपस्थित होते हैं और आशा करते हैं कि आप लोग इसे पढ़ सुन कर हमारे और अनुवादकके श्रमको सफल और अपनेको कृतार्थ करेंगे । यदि इसको देख सुन कर आप लोग कुछभी प्रसन्न होंगे और कुछभी लाभ उठावेंगे तो हम अपने अर्थव्ययको और अनुवादकके अध्यवसायको सफल मान कर अत्यन्त सन्तुष्ट होंगे ।

कृपाभिलाषी

तुकाराम जावजी

निर्णयसागर प्रेसके अध्यक्ष.

समर्प्पण।

जो अचिन्त्य, अतर्क्य, अविकार, अनीह, अखण्ड, अप्रमेय, अच्युत, अजन्मा, अनादि, अनन्त, अनाम, अरूप और अद्वितीय होकरभी सनातन धर्म, देवता, गऊ, ब्राह्मण, साधु आदिकी रक्षाके लिये समय २ पर अनेक अवतार लेता है और विश्वको उत्पन्न करके इच्छानुसार पालन और संहार करता रहता है उस निरञ्जन, जनरञ्जन, भवभयभञ्जन, दुष्टगर्वगञ्जन, मुनिमनमानसमराल, करुणावरुणालय, महानुभाव, मोदमङ्गलमय, श्रीधाम, अभिराम, कामनिकाम, लीलाललाम, घनश्याम **श्रीकृष्णचन्द्ररूप परब्रह्म** और उसकी चिरसंगिनी **महाशक्ति श्रीराधिका**के चरणकमलोंमें यह **भागवतभाषानुवाद** सादर समर्प्पित है।

समर्प्पणकारी तुच्छातितुच्छ—

अनुवादक।

श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः।

शुकोक्तिसुधासागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषाकी

अध्यायक्रमसे विषयानुक्रमणिका।

द्वितीयस्कन्धः ॥ २ ॥

चतुर्थस्कन्धः ॥ ४ ॥

पञ्चमस्कन्धः ॥ ५ ॥

षष्ठस्कन्धः ॥ ६ ॥

सप्तमस्कन्धः ॥ ७ ॥

अष्टमस्कन्धः ॥ ८ ॥

एकादशस्कन्धः ॥ ११ ॥

द्वादशस्कन्धः ॥ १२ ॥

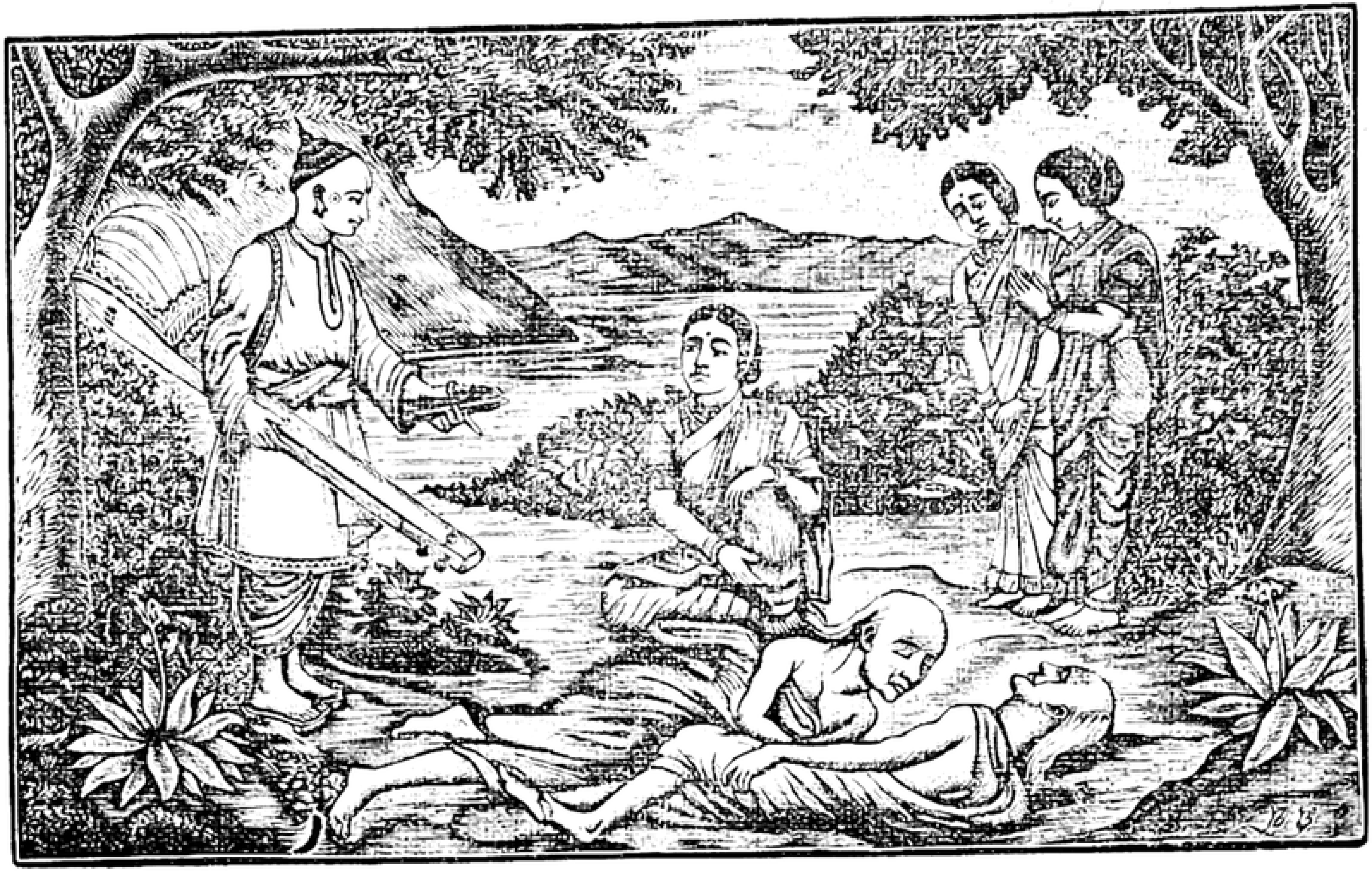
चित्रोंकी अनुक्रमणिका.



श्रीमद्-

भागवतमाहात्म्यभाषा.





भक्ति, ज्ञान और वैराग्य।

॥ श्रीः ॥

शुकोक्तिसुधासागरः।

श्रीमद्भागवतमाहात्म्यभाषा.



प्रथम अध्याय।

नारद और भक्तिकी भेंट।

यं प्रव्रजन्तमनपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ॥
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥

जिन्होने जन्मतेही संन्यासधारणपूर्वक सब कर्मोंका त्याग कर घरको छोड़, वनकी राह ली और तब पुत्रविरहसे कातर होकर पीछे २ "पुत्र! ठहरो, पुत्र! ठहरो" कहते जारहे वेदव्यासको जिनकी ओरसे तन्मय वृक्षोंसे उत्तर मिला उन सब प्राणियोंके हृदयमें अपनेको आत्मारूपसे विद्यमान माननेवाले ब्रह्ममय महामुनि श्रीशुकदेवजीको प्रणाम है ॥ १ ॥ नैमिषारण्यक्षेत्रमें व्यासासन पर बैठ कर हरिकी कथाओंका वर्णन कर रहे महामति सूतजीसे, प्रणाम करनेके उपरान्त, हरिकथारूप अमृतरसका स्वाद लेनेमें निपुण शौनक मुनिने कहा कि "हे सूत! अज्ञानरूप घोर अन्धकारको मिटानेमें आप कोटिसूर्यके समान सुविज्ञ हैं। कानोंको भला मालूम पड़नेवाला रसायनस्वरूप सब कथाओंका सारांश यह आप हमारे

आगे वर्णन करो कि भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे प्राप्त विवेककी वृद्धि कैसे-किस उपायसे होती है? और विष्णुभक्त लोग मायामोहको कैसे त्यागते हैं? ॥ २-४ ॥ इस घोर कलियुगके आनेसे रजोगुण व तमोगुणकी वृद्धि हुई है, अतएव आसुरी प्रकृतिमें पड़ कर यह जीव (आत्मा) अनेक क्लेश पाता है। आप कृपा करके यह भी बतलाइये कि इस(जीवात्मा)के शुद्ध करनेका उत्तम उपाय क्या है ॥ ५॥ सब श्रेयोंका श्रेय और सब पावनोंका पावन अर्थात् सर्वोपरि श्रेय और सर्वोपरि पावन-ऐसा कोई उपाय बताइये जिससे सदाके लिये कृष्णभगवान् मिल जायँ ॥ ६ ॥ चिन्तामणिसे सम्पूर्ण लौकिक सुखभोग मिलते हैं और इन्द्रकी प्रसन्नतासे स्वर्गीय सम्पत्ति मिलती है, किन्तु गुरुकी कृपा और प्रसन्नतासे, जो योगी जनोंके लिये भी दुर्लभ है, वही वैकुण्ठधाम सुलभ होजाता है" ॥ ७ ॥ सूतजीने कहा। हे शौनक! तुम्हारे चित्तमें प्रेम और श्रद्धा है, अतएव मैं विचारपूर्वक यह भवभयभञ्जन, भगवद्भक्तिको बढ़ानेवाला और कृष्ण भगवान्‌को सन्तुष्ट करनेवाला सब सिद्धान्तोंका सारतत्त्व तुम्हारे आगे कहता हूँ-सावधान होकर सुनो ॥ ८ ॥ ९ ॥ कराल कालरूप व्याल (अजगर) के गालमें जानेका भय मिटानेके लिये कलियुगमें श्रीशुकदेवने श्रीमद्भागवत शास्त्र कहा है ॥ १० ॥ मनको शुद्ध करनेवाला इससे बढ़ कर और कोई पुराण शास्त्र नहीं है। जब जन्मजन्मान्तरके पुण्योंका उदय होता है तब कहीं भागवत पुराण सुननेको मिलता है ॥ ११ ॥ जिस समय श्रीशुकदेवजी महासभामें राजा परीक्षित्‌को भागवत सुनाने लगे उस समय देवतालोग अमृतका कलश लेकर वहाँ पर उपस्थित हुए ॥ १२ ॥ स्वार्थ साधनेमें चतुर देवतोंने प्रणाम करके शुकदेवजीसे कहा कि "हे मुनिवर! यह अमृत लेकर कथारूपी अमृत हमको दीजिये । इस प्रकार बदला होजाने पर राजा परीक्षित् तो अमृत पीकर अमर हो जायँगे और हम सब श्रीमद्भागवतरूपी अमृतको पीकर कृतार्थ होंगे" ॥ १३ ॥ १४ ॥ परीक्षित्‌ने विचारा कि "कहाँ अमृत! और कहाँ हरिकथा! कहाँ काँच! और कहाँ महामूल्य मणि!"। यों विचारकर राजा परीक्षित् देवतोंकी कपटचातुरी पर हँसने लगे ॥ १५ ॥ देवतोंमें राजाकी ऐसी भक्ति और श्रद्धा न देख कर शुकदेवजीने उनको कथारूपी अमृत नहीं दिया। कहनेका तात्पर्य यह है कि श्रीमद्भागवतकी कथा देवतोंको भी दुर्लभ है ॥ १६ ॥ भागवत सुननेके उपरान्त राजा परीक्षित्‌की मुक्ति देख कर पहले ब्रह्माजीको भी विस्मय हुआ तब उन्होने सत्यलोकमें तुला बाँध कर एक ओर सम्पूर्ण तप, दान, व्रत आदि अन्यान्य साधनोंको रक्खा और एक ओर श्रीमद्भागवतको रक्खा। तौलने पर वे सब हलके निकले और यह उनसे भारी निकला। उस समय इसके महत्त्व और गौरवको देख कर सब ऋषियोंको बहुतही विस्मय हुआ; उन्होने समझा कि पृथ्वीतल पर यह भागवत शास्त्र साक्षात्

भगवान्‌का रूप है । इसके पढ़ने और सुननेसे वैकुण्ठलोक मिलता है ॥१७–१९॥ इसकी सप्ताहपारायण सुननेसे सर्वथा मुक्ति प्राप्त होती है । ब्रह्माके पुत्र सनकादिक ब्रह्मर्षियोंने पहले दया करके नारदजीको इसकी सप्ताह पारायण सुनाई थी ॥ २० ॥ यद्यपि उससे पहले भी ब्रह्माके मुखसे नारदने भागवत शास्त्रको सुना था, तथापि सात दिनमें भागवतपारायण सुननेकी विधि सनकादिकोंनेही उनसे कही ॥ २१ ॥ शौनकजीने कहा । हे सूत ! नारदजी तो प्रायः लोगोंमें लड़ाई झगड़ाही कराते फिरते हैं, दूसरे वह कहीं स्थिर होकर रहते नहीं, सर्वदा विचरते रहते हैं ? तब उन्होने विधिपूर्वक सप्ताहपारायण कैसे सुनी ? और उनका सनकादिकोंसे समागम कहाँ पर हुआ ? ॥ २२ ॥ सूतजीने कहा । मैं यहाँ पर आपसे इसी प्रसंगमें एक भक्तिपोषक इतिहास कहता हूँ । मुझको अपना अनन्य, प्रिय और प्रधान शिष्य समझ कर श्रीशुकदेवजीने यह गूढ़ इतिहास बतलाया है ॥ २३ ॥ एक समय बद्रीनारायण क्षेत्रमें सनकादिक चारो पवित्रहृदय महर्षि सत्संगके लिये आये, वहाँ उनको नारदजी देख पड़े ॥ २४ ॥ सनकादिकोंने नारदसे कहा कि "ब्रह्मन् ! तुम्हारा मुखमण्डल उदास क्यों है ? तुमको किस बातकी चिन्ता है ? शीघ्रताके साथ कहाँ जारहे हो ? और कहाँसे आरहे हो ? जिसका सर्वस्व लुट गया हो उस मनुष्यके समान तुम्हारा चित्त चंचल देख पड़ता है । तुम तो विरक्त हो, तब तुम्हारी इस अनुचित चिन्ताका कारण क्या है ? हमसे कहो" ॥ २५ ॥ २६ ॥ नारदने कहा– "मैं, 'पृथ्वीतल कर्मभूमि होनेके कारण अन्य सब लोकोंसे उत्तम है'–ऐसा जान कर इस मनुष्यलोकमें आया था । यहाँ आ कर मैं पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी, हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, श्रीरङ्ग, सेतुबन्ध आदिक अनेक तीर्थोंमें इधरउधर घूमता रहा–परन्तु कहीं पर भी मनको सन्तोष देनेवाला कल्याणकारी धर्म्म मुझे नहीं देख पड़ा; इस समय अधर्म्मके साथी या मित्र कलियुगने आ कर सब पृथ्वीमण्डलको दूषित कर डाला है ॥ २७–२९ ॥ सत्य नहीं रहा, तप शौच दया दान आदिका लेश नहीं है । सब जीव तुच्छ प्रकृतिके, किसी प्रकार अपना पेट पाललेनेवाले, झूठे, मंद, मंदबुद्धि, मंदभाग्य, अनेक कष्टोंसे पीड़ित और पाखंडी देख पड़ते हैं । जो साधुसन्त कहे जाते हैं वे वास्तवमें पाखंडी हैं– साधुवेषसे जगत्‌को ठगते हैं । जो वैरागी बने हैं वे वास्तवमें घरबारवाले कुटुम्बी हैं । घर २ स्त्रियोंकी प्रभुता फैली हुई है, सालेही सलाह देनेवाले हैं, लोग लोभसे लड़कियाँ बेचते हैं और प्रायः सर्वत्र सब स्त्री और स्वामियोंमें लड़ाई झगड़ा हुआ करता है ॥ ३०–३२ ॥ यवनतुल्य दुराचारी दुष्टोंने ठगनेके लिये वेष बना कर ब्रह्मचर्य्य आदि आश्रमोंको दूषित कर दिया है । तीर्थ, नदी और देवमंदिरोंमें प्रायः दुष्ट लोग ही देख पड़ते हैं, उनके कुकर्मोंको देख कर तीर्थ आदि पर लोगोंको अश्रद्धा होती

जाती है ॥ ३३ ॥ इस समय कोई यथार्थ योगी, सिद्ध, ज्ञानी अथवा सत्कर्म करनेवाला सदाचारी मनुष्य नहीं देख पड़ता; कलियुगरूप दावानलने योग, तप, व्रत आदि साधनोंको भस्म कर डाला है ॥ ३४ ॥ सब गाँव पुर और नगरोंमें अन्नका अकाल देख पड़ता है, ब्राह्मणलोग वेदोंको बेचनेके लिये पढ़ते हैं । स्त्रियाँ प्रायः कुलटा होगई हैं, जो कुकर्म्मको अपनी जीविका बनानेमें तनिक भी सङ्कोच नहीं करतीं–सर्वत्र इसी प्रकार घोर कलियुगका प्रभाव फैला हुआ है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार कलियुगके दोषोंको देखता हुआ मैं विचरते विचरते यमुना नदीके तट पर पहुँचा, जहाँ साक्षात् हरि कृष्णचन्द्रने बाललीलाएँ की हैं ॥ ३६ ॥ हे मुनीश्वरो! वहाँ पर मैंने जो बहुत ही विचित्र दृश्य देखा सो आपके आगे कहता हूँ । मैंने देखा कि वहाँ एक जवान स्त्री बैठी है, उसका मुखकमल किसी खेदसे मुरझाया हुआ है । उस स्त्रीके निकट अचेत पड़े हुए दो वृद्ध पुरुष साँसें ले रहे हैं । वह स्त्री उनकी सेवा करती हुई उनको वारम्वार जगाती है और रोती जाती है। वह स्त्री चारो ओर किसी अपने रक्षक और सहायकके मिलनेकी आशासे देखती है और फिर निराश हो कर अपने शरीरको तथा उन वृद्धोंको देखने लगती है । उसको घेरे हुए अन्यान्य सैकड़ों स्त्रियाँ खड़ी पंखा डुलाती और समझाती हुई धीरज धरा रही हैं ॥ ३७–३९ ॥ दूरसे यह दृश्य देख कर मैं कौतुकवश उस स्त्रीके निकट गया । मुझको देख कर वह युवती उठ खड़ी हुई और कातर स्वरसे कहने लगी कि "हे महात्मा! मैं समझती हूँ कि आप कोई परोपकारी सज्जन हैं, इससे प्रार्थना करती हूँ कि यहाँ क्षणभर ठहर कर मेरी चिन्ताको भी मिटाते जाइये। आप ऐसे साधुजनोंके दर्शनसे सर्वथा सबके सब पातक नष्ट हो जाते हैं, अतएव सब ताप भी अवश्यही शान्त हो जाते हैं। मुझको विश्वास है कि आपके वचनोंसे मेरा दुःख दूर हो जायगा; क्योंकि बड़े भाग्यसे आपसरीखे साधुओंके दर्शन मिलते हैं" ॥ ४०–४२ ॥ नारदजी कहते हैं कि हे ऋषियो! तब मैंने उस युवतीसे कहा कि "हे सुन्दरी! तुम कौन हो? ये दोनो वृद्ध कौन हैं? और ये कमलनयनी स्त्रियाँ कौन हैं? तुम विस्तारपूर्वक अपने दुःखका कारण मुझसे कहो" ॥ ४३ ॥ मेरे वचन सुन कर उस स्त्रीने कहा कि–"हे महात्मा! मेरा नाम भक्ति है, और ये दोनो ज्ञान और वैराग्य नाम मेरे ही पुत्र हैं, किन्तु इस समय कालवश जराजर्जर से देख पड़ते हैं ॥ ४४ ॥ ये स्त्रियाँ–गंगा आदिक नदियाँ हैं, जो मेरी सेवाके लिये यहाँ उपस्थित हुई हैं। इस प्रकार देवगणसे विता होने पर भी मुझे चैन नहीं है ॥ ४५ ॥ हे तपोधन! अब जिसके लिये आप चिन्तित हो रहे हैं वह मेरा वृत्तान्त भी सुनिये । ऋषिवर! आशा है आप मेरे विस्तृत वृत्तान्तको सुन कर अवश्य सुखी होंगे ॥ ४६ ॥ मैं द्रविड़ देशमें उत्पन्न और कर्णाटक देशमें वृद्धिको प्राप्त अर्थात् परिपुष्ट हुई । उसके उपरान्त महाराष्ट्र

प्रान्तके किसी २ स्थानमें क्षीण होती हुई गुर्जर देशमें जा कर अत्यन्त जीर्ण हो गई ॥ ४७ ॥ वहाँ घोर कलियुगके प्रभावसे पाखंडी हो रहे लोगोंने अंग-भंग करके मुझे खंडित कर डाला । इस प्रकार चिरकाल तक मैं अपने पुत्रोंसहित दुर्बल और क्षीण हो कर कालक्षेप करती रही ॥ ४८ ॥ हे महाशय ! वहाँसे मैं वृन्दावनमें आई । यहाँ आते ही मैं तो सुन्दरी युवती बन गई हूँ और ये मेरे पुत्र इस प्रकार वृद्ध और अचेत हो गये हैं, इसी दुःखसे व्याकुल हो कर मैं रो रही हूँ । मैं जवान क्यों हो गई और ये मेरे पुत्र वृद्ध कैसे हो गये ? हम तीनो सहचरोंमें यह विपरीत भाव किस कारणसे उपस्थित हुआ ? माताका वृद्ध होना और पुत्रोंका जवान होना तो सर्वत्र देखा जाता है, परन्तु माता जवान हो और पुत्र बूढ़े हो जायँ–यह कैसा अनुचित एवं अद्भुत व्यापार है ? यही देख कर मैं विस्मित और शोकसे व्याकुल हो रही हूँ । हे योगेश्वर ! आप बुद्धिमान् हैं, इस लिये इस विपरीत व्यापारका कारण विचार कर बताइये" ॥ ४९–५३ ॥ **नारदजी कहते हैं** कि तब मैंने कहा "हे सुन्दरी ! मैं अभी विचार करके इस अद्भुत घटनाका कारण तुमको बतलाता हूँ । तुम निर्दोष हो, इस लिये शोक न करो, हरिभगवान् तुम्हारा कल्याण करेंगे" ॥ ५४ ॥ **सूतजी कहते हैं** । हे शौनकजी ! क्षणभर विचार करनेके उपरान्त **नारदजीने कहा** कि "हे भद्रे ! सावधान हो कर सुनो, इस दारुण कलियुगने सबके आचार विचार भ्रष्ट कर दिये हैं योगमार्ग और तपका कहीं पता नहीं रहा । सब जीव पापपूर्ण, कुकर्म्म करनेवाले, छली हो कर असुर से बन गये हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ जो सज्जन हैं वेही कष्ट पाते हैं और जो दुष्ट हैं वे प्रसन्न रहते हैं । इस समय जिसका धैर्य्य न डिगे, उसको धीर-बुद्धिमान् अथवा पण्डित समझना चाहिये ॥ ५७ ॥ यह पृथ्वी क्रमशः ऐसी पापमयी हो गई है कि रहने की कौन कहे–देखने योग्य भी नहीं रही । इसका भार शेष भगवान्‌को भी असह्य हो रहा है । पृथ्वीमें कहीं उत्साह नहीं देख पड़ता । तुम्हारा और तुम्हारे पुत्रोंका भी आदर नहीं होता, सब तो विषयलिप्त हो रहे हैं, इस कारण तुम तीनोंकी उपेक्षा होती है । इसीसे तुम तीनो जर्जर भी हो गये थे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ किन्तु धन्य है यह वृन्दावनधाम, जिसमें तुम फिर नवयुवती हो गई, अहा ! यहाँ स्थान २ पर भक्ति नाचती फिरती है ॥ ६० ॥ किन्तु इन ज्ञान, वैराग्य नाम तुम्हारे दोनो पुत्रोंका यहाँ कोई ग्राहक नहीं है, इसी कारण इन दोनोंका बुढ़ापा (अर्थात् दुर्बलता) नहीं गया, और कुछ आत्मसुखसे सोये से जान पड़ते हैं" ॥ ६१ ॥ तब **श्रीभक्तिने कहा** कि "हे मुनिवर ! आपके वचनोंसे मुझे बहुत सुख मिला । कृपा करके मेरे इन संशयोंको भी दूर कीजिये कि परीक्षित् राजाने इस अपवित्र कलियुगको पकड़ कर भी क्यों छोड़ दिया–नष्ट क्यों न कर दिया ? और इस कलियुगके आनेपर सब बातोंका सारांश कैसे निकल गया ? हरि-

भगवान् तो करुणानिधि हैं, वह भी कैसे इस कलियुगके उपद्रवको देख रहे हैं? ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ **नारदजीने कहा कि** "हे सुन्दरी! जो तुमने पूछा है उसे प्रेमसे सुनो। मैं सब तुमसे कहूँगा। हे भद्रे! उसके सुननेसे तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा ॥ ६४ ॥ जब मुकुन्द भगवान् इस पृथ्वीको छोड़ कर परमधामको चले गये तब, उसी दिनसे इस पृथ्वी पर सब साधनोंमें बाधा डालनेवाले इस कलियुगका पूर्ण अधिकार हो गया ॥ ६५ ॥ दिग्विजय करते समय एक स्थान पर राजा परीक्षित्‌ने इस कलियुगको देखा और पकड़ा था, परन्तु यह जब दीनतासे शरणमें आ गया तब राजाने यह सोचा कि "एक तो यह शरणागत है, अतएव इसको मारना मेरे लिये अयोग्य है, दूसरे इसमें एक बहुत उत्तम गुण यह है कि जो फल तपसे, योगसे, समाधिसे भी अन्य युगोंमें नहीं मिलता सो फल इस कलियुगमें केवल हरिकीर्त्तनसे भली भाँति मिल जाता है"। भ्रमरके समान सारग्राही राजाने कलियुगी मनुष्योंकी भलाईके लिये इस असार संसारमें उक्त सारयुक्त कलियुगको मुक्त कर दिया ॥ ६६–६८ ॥ कुकर्म्म करनेके कारण पृथ्वी-तलके सभी पदार्थ ऐसे सारशून्य हो गये हैं जैसे बिना चावलके धान ॥ ६९ ॥ ब्राह्मण लोग एक २ सीधेके लोभसे घर २, मनुष्य २ को हरिकथा सुनाते फिरते हैं; इसीसे कथाका सारांश निकल गया ॥ ७० ॥ तीर्थोंके अधिकारी और निवासी लोग अत्यन्त उग्र, दुराचारी और अन्तको रौरव नरकमें जानेवाले नास्तिक (अर्थात् वास्तवमें ईश्वरसे भी न डरनेवाले) हो गये हैं, अथवा ऐसे ही लोग प्रायः अपने दोष छिपानेके लिये तीर्थोंमें जा कर रहते हैं; इसीसे तीर्थोंका भी माहात्म्य जाता रहा ॥ ७१ ॥ काम, क्रोध, महालोभ और तृष्णासे जिनके चित्त व्याकुल रहते हैं वे भी तपस्वीका वेष बनाये ठगते फिरते हैं, इसीसे तपका सारांश भी चला गया ॥ ७२ ॥ विषय–चिन्तासे मनकी चंचलता, लोभ, दम्भ पाखण्ड और शास्त्रोंका पठन पाठन उठ जानेसे ध्यानयोगका फल जाता रहा ॥ ७३ ॥ जो कि आजकल पण्डित कहाते हैं वे भैंसेके समान रति करनेमें चतुर, महालम्पट और वंश बढ़ानेमें सबसे चार हाथ आगे हैं–उनको मुक्तिके एक भी साधन (उपाय) नहीं विदित हैं ॥ ७४ ॥ वास्तवमें विष्णुभक्त वैष्णव बहुत ही विरले हैं, हाँ 'सम्प्रदाय' बढ़ा कर लड़ने झगड़नेवाले अनेकानेक हैं; इसीसे वैष्णव धर्म्मका भी सारांश नष्ट हो गया। इसी प्रकार कलियुगमें हरेक वस्तु सारांश-हीन हो गई है ॥ ७५ ॥ हे भक्ति! यह तो युगका ही धर्म्म है, इसमें कौन किसको दोष दे। इसीसे पुरुषोत्तम कमलनयन हरि भी पास ही रह कर सब सहते हैं" ॥ ७६ ॥ **श्रीसूतजी कहते हैं**। हे शौनक! नारदके इन वचनोंको सुन कर भक्तिको बड़ा ही विस्मय हुआ और उसने फिर जो नारदसे कहा सो सुनो ॥ ७७ ॥

जयति जगति मायां यस्य कायाधवस्ते
वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य ॥
ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं
सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतास्मि ॥ ७८ ॥

श्रीभक्तिने कहा। "हे देवर्षि नारदजी! आप मेरे भाग्यसे यहाँ आ गये—आप धन्य हैं। सच है कि साधुओंके दर्शनसे मनुष्योंकी सब इच्छाएँ परिपूर्ण हो जाती हैं। हे भगवन्! आपके मुखसे थोड़ी सी शिक्षा पा कर प्रल्हादजीने महा-बलवती मायाको जीत लिया और आप ही की कृपासे बालक ध्रुवको सर्व-लोकवन्दित ध्रुवपद प्राप्त हुआ। हे सर्वमङ्गलमय ब्रह्माके पुत्र! मैं आपको प्रणाम करती हूँ ॥ ७८ ॥

इति पद्मपुराणोत्तरखडान्तर्गतभागवतमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय।

सनत्कुमार और नारदका सम्वाद।

नारद उवाच—वृथा खेदयसे बाले अहो चिन्तातुरा कथम् ॥
श्रीकृष्णचरणाम्भोजं स्मर दुःखं गमिष्यति ॥ १ ॥

नारदने कहा। "हे वरवर्णिनी! वृथा खेद कर रही हो, क्यों चिन्तासे आतुर हो रही हो। श्रीकृष्णके चरण कमलोंका स्मरण करो, सब दुःख दूर होजायगा ॥ १ ॥ जिन्होने कौरवोंके कुकर्मसे द्रौपदीकी रक्षा की और गोपियोंको सनाथ किया, वह कृष्ण कहीं नहीं गये हैं। हे भक्ति! तुम तो उनको सदैव प्राणोंसे भी बढ़ कर प्यारी हो। तुम्हारे बुलानेसे भगवान् कृष्ण नीचके भी घर जाते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ सत्य, त्रेता और द्वापर—इन तीन युगोंमें तो ज्ञान और वैराग्य ही मुक्तिके साधन थे, परन्तु कलियुगमें केवल भक्तिसे सायुज्यमुक्ति मिलती है ॥ ४ ॥ यही निश्चय करके चित्‌रूप हरिने तुमको प्रकट किया है, तुम परमानन्दस्वरूप ब्रह्मकी चैतन्य मूर्त्ति हो। हे सुन्दरी! तुम कृष्णको परमप्यारी हो ॥ ५ ॥ एक समय हाथ जोड़ कर तुमने कृष्णसे पूछा कि 'मैं क्या करूँ?,' तब भगवान्‌ने आज्ञा दी कि 'मेरे भक्तोंको पुष्ट करो'। तुमने भी हरिकी आज्ञा सादर स्वीकृत कर ली, इस पर हरिने प्रसन्न होकर तुमको मुक्ति नाम दासी दी और ये ज्ञान और वैराग्य भी दोनो साथ कर दिये ॥ ६ ॥ ७ ॥ तुम अपने साक्षात्‌रूपसे वैकुण्ठमें भक्तपोषण करती हो, और पृथ्वीमें भी भक्तपोषणके लिये इस छायारूप (प्रतिबिंब) से अवस्थित

हो। तुम मुक्ति, ज्ञान और वैराग्यको साथ लेकर पृथ्वी पर आई हो। सत्ययुगसे लेकर द्वापरके अन्त तक तुम महाआनन्दसे रहीं ॥ ८ ॥ ९ ॥ कलियुगमें पाखण्ड-रूप रोग लग जानेसे मुक्ति जब प्रतिदिन क्षीण होने लगी तब तुम्हारी आज्ञासे फिर शीघ्रही वैकुंठ लोकको चली गई। किन्तु अब भी तुम्हारे स्मरण करनेसेही यहाँ मुक्ति आती जाती रहती है। तुमने इन ज्ञान वैराग्यको पुत्र बना कर अपने पास रक्खा था, परन्तु लोगोंकी उपेक्षासे कलियुगमें ये मंद पड़ गये हैं और बूढ़े होगये हैं। तथापि तुम कुछ चिन्ता न करो, मैं इसका कुछ उपाय सोचता हूँ ॥ १०–१२ ॥ हे सुमुखी! कलियुगके समान और कोई युग नहीं है। मैं इस कलियुगमें घर २ प्रत्येक मनुष्यमें तुमको स्थापित करूँगा ॥ १३ ॥ इस लोकमें महोत्सवसहित यदि अन्य धर्मोंके ऊपर तुम्हारी स्थापना और तुम्हारा प्रचार न करूँ तो मैं हरिका दास नहीं ॥ १४ ॥ इस कलियुगमें जो लोग तुम्हारा आदर करेंगे वे पापी होने परभी बेखटके कृष्णलोकको जायँगे ॥ १५ ॥ प्रेमरूपिणी भक्ति जिनके चित्तमें सर्वदा बसती है वे निर्मलमूर्त्ति लोग स्वप्नमें भी यमराजको नहीं देखते ॥ १६ ॥ प्रेत, पिशाच, राक्षस अथवा असुर–कोई भी कभी भक्तिमान् मनुष्यको छू तक नहीं सक्ते ॥ १७ ॥ तप, वेद, ज्ञान और उत्तम कर्मोंसे हरि सहजमें नहीं मिलते! हरिके मिलनेका सहज उपाय केवल भक्तिही है–इस बातका प्रमाण गोपियाँ हैं ॥ १८ ॥ हज़ार २ जन्मके उपरान्त कहीं मनुष्योंके हृदयमें भक्तिका अंकुर जमता है। कलियुगमें केवल भक्तिही श्रेष्ठ है, मैं पुकार कर कहता हूँ कि "भक्तिसे बढ़ कर कुछ नहीं है; भक्तिसे कृष्ण भगवान् सामनेही उपस्थित हैं ॥ १९ ॥ जो लोग भक्तद्रोही हैं वे सर्वत्र त्रिभुवनमें कष्टही पाते हैं। देखो पहले भक्त (अम्बरीष)की निन्दा करनेसे दुर्वासाको महादुःख उठाना पड़ा है ॥ २० ॥ व्रत, तीर्थयात्रा, योगाभ्यास, यज्ञ और ज्ञानचर्चा वृथा है; केवल भक्तिसेही मुक्ति मिलती है" ॥ २१ ॥ **सूतजी कहते हैं।** इस प्रकार निर्णय करके कहे गये अपने माहात्म्यको नारदके मुखसे सुन कर भक्तिके सब अंग पुष्ट होगये और उसने नारदसे कहा कि–"अहो, नारद! तुम धन्य हो, तुमको मुझ पर अचल प्रीति है। मैं कभी तुमको न छोड़ूँगी, सर्वदा तुम्हारे चित्तमें बनी रहूँगी। हे साधु! तुम बड़ेही कृपालु हो, तुमने क्षणभरमें मेरी सब चिन्ता दूर कर दी। अब इन मेरे अचेत पुत्रोंको भी किसी प्रकार सचेत करनेकी कृपा करिये" ॥ २२–२४ ॥ **सूतजी कहते हैं।** भक्तिके वाक्य सुन कर परम दयालु नारदजी ज्ञान और वैराग्यको पहले हाथोंसे हिला कर जगानेकी चेष्टा करने लगे ॥ २५ ॥ फिर उनके कानमें मुख लगाकर नारदने उच्च स्वरसे कहा कि–"हे ज्ञान! शीघ्र जागो, हे वैराग्य! शीघ्र जागो" ॥ २६ ॥ वेदपाठ, वेदान्तपाठ और गीतापाठ करते हुए नारदने जब इस प्रकार वारम्वार जगाया तब तनिक सचेत होकर वे

उठे। परन्तु उन्होने नेत्र नहीं खोले और आलसके मारे वारम्वार जमुहाई लेते हुए फिर वकतुल्य पृथ्वी पर गिर गये। सूखी लकड़ीके समान जिनके सब अंग सूखे हुए हैं उन भूख और प्यासके शिथिल ज्ञान और वैराग्यको फिर अचेत होगये देख कर नारद ऋषिको बड़ी चिन्ता हुई। वह सोचने लगे कि "अब मुझे क्या करना चाहिये? इनकी यह आलस्यनिद्रा और वृद्धावस्था कैसे दूर होगी?"। हे भार्गव! इस प्रकार चिन्तित होकर नारदजी परम गुरु गोविन्दका स्मरण करने लगे ॥ २७–३० ॥ उसी समय आकाशवाणी हुई कि हे "ऋषिवर! तुम कुछ खेद न करो, तुम्हारा उद्यम सफल होगा–इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ३१ ॥ हे देवऋषि! इसके लिये तुमको सत्कर्म करना होगा और वह सत्कर्म तुमको साधुशिरोमणि साधु बतावेंगे। उस सत्कर्मके करतेही ये सचेत होजायँगे और इनका बुढ़ापा दूर होजायगा और उसीक्षण भक्ति चारो ओर फैल जायगी"। इस आकाशवाणीको नारदने और जो लोग वहाँ उपस्थित थे उन्होने भी स्पष्ट रूपसे सुना। नारदको बड़ा विस्मय हुआ और वह कहने लगे कि यह तो कुछ मेरी समझमें नहीं आया ॥ ३२–३४ ॥ नारदने कहा कि "इस आकाशवाणी-नेभी गोल बात कही, कुछ साफ २ नहीं कहा। नहीं जान पड़ा कि वह कौन सत्कर्म है जिससे ज्ञान और वैराग्यकी मोहनिद्रा और बुढ़ापा चला जायगा। अथवा वे साधुजनही कहाँ होंगे जो उस साधनस्वरूप सत्कर्मको बतावेंगे। जो कुछ आकाशवाणीने बताया है, इसमें मुझे क्या करना चाहिये?" ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ श्रीसूतजी कहते हैं। भक्तिको ज्ञान वैराग्यके पास वहीं ठहरा कर नारदमुनि सत्कर्म बतानेवाले साधुओंकी खोज करते हुए प्रत्येक तीर्थमें जाकर मुनीश्वरोंसे मिलने लगे ॥ ३७ ॥ नारदके मुखसे पूर्वोक्त वृत्तान्तको सुन कर कुछ ऋषि तो कुछ भी न निश्चय कर सके कि कौनसा वह सत्कर्म है, अतएव चुप हो रहे। कुछने कहा 'यह असाध्य है' और कुछने कहा कि 'इसे जानना अत्यन्त कठिन है'। कुछ गूँगे से हो गये और कुछ टाल कर चल दिये। त्रैलोक्यमें विस्मयकारी महा हाहाकार मच गया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ कुछ ऋषिगण परस्पर कानाफूसी करने लगे कि "जब वेद, वेदान्त और गीता आदिके पाठद्वारा भी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य–तीनो नहीं जगाये जगे तब अब इसका और कोई उपाय नहीं है। योगी नारद स्वयं जिसको नहीं जान सके उसको अन्य मनुष्य क्या बता सके हैं?"। इस प्रकार पूछने पर जब ऋषियोंने कह दिया कि "यह विषय अत्यन्त कष्टसाध्य अथवा असाध्य है" तब नारदजी कार्यसिद्धि न होनेतक तप करनेका दृढ़ निश्चय करके बद्रिकाश्रमको गये। वहाँ पहुँचतेही मुनिसत्तम नारदजीने अपने आगे आरहे कोटि सूर्यके समान तेजस्वी सनकादिक मुनीश्वरोंको देखा ॥ ४०–४४ ॥ नारदजीने प्रणाम करनेके उपरान्त सनकादिकोंसे कहा कि "इस समय बड़े

भाग्यसे आपका समागम होगया । हे कुमारगण! आप मुझ पर कृपा करके शीघ्रही मेरा सब सन्देह दूर कीजिये । आप लोग योगी और बुद्धिमान् हैं। आप लोगोंने बहुत कुछ देखा और सुना है । यद्यपि आप देखनेमें पाँच वर्षके बालक ज्ञान पड़ते हैं तथापि पूर्वजोंके भी पूर्वज हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ आप सब समय हरिके ध्यानमें मग्न रह कर हरिकीर्तन किया करते हैं । आप हर घड़ी हरि-चर्चामें तत्पर रहते हैं, अतएव सर्वदा हरिलीलारूप अमृत–रसमें मग्न रहते हैं॥४७॥ आपके मुखमें सर्वदा 'हरिः शरणम्' (अर्थात् हरिही रक्षक हैं) यह वाणी विराजमान रहती है, अतएव कालकृत बुढ़ापेकी बाधा भी आपके निकट नहीं आती ॥ ४८ ॥ पूर्वसमयमें आप लोगोंके भ्रूभंगमात्रसे हरिके द्वारपाल जय और विजय, तत्क्षण पृथ्वी पर गिर पड़े और फिर आपहीकी कृपासे परम पदको प्राप्त हुए ॥ ४९ ॥ अहो भाग्ययोगसे यहाँ आपके दर्शन होगये । आप दयालु हैं, मुझ पर अनुग्रह करना आपका कर्तव्य है ॥ ५० ॥ महाशयो! आकाशवाणीने जो सत्कर्म करनेकी आज्ञा दी है वह साधन कौन है—सो आप स्पष्ट करके कहिये, और उस सत्कर्मके अनुष्ठानकी विधि भी विस्तारपूर्वक बताइये । जिस उपायसे भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको सुख हो और सम्पूर्ण वर्णोंमें इनका प्रचार व प्रेम हो सो कृपा करके कहिये" ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ **कुमारोंने कहा** "हे देवर्षि! कुछ चिन्ता न करो। तुमको प्रसन्न होना चाहिये । विचारने या सोचनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, इसका सुखसाध्य उपाय पहलेहीसे वर्त्तमान है ॥ ५३ ॥ अहो, हे नारद! तुम धन्य हो । हे विरक्तचूड़ामणि! तुम योगमार्गके सूर्य (प्रकाशक) और सदा श्रीकृष्णके दासोंमें मुख्य हो ॥५४॥ तुम जो इस प्रकार भक्तिके लिये प्रयास कर रहे हो सो कुछ विचित्र बात नहीं है; हरिके दास सदा भक्तिस्थापनकी चेष्टामें लगे रहते हैं ॥ ५५ ॥ ऋषियोंने यथामति बहुत से मार्ग प्रकट किये हैं परन्तु वे सब श्रमसाध्य और प्रायः स्वर्गफलकेही देनेवाले हैं ॥ ५६ ॥ किन्तु हरिके मिलनेका मार्ग अत्यन्त गूढ़ है, उसे बतानेवाला पुरुष बड़े सौभाग्यसे मिलता है ॥ ५७ ॥ तुमसे जिस सत्कर्मके करनेके लिये आकाशवाणीने कहा है वह सत्कर्म हम बताते हैं—एकाग्र और प्रसन्न होकर सुनो ॥५८॥ द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ और ज्ञानयज्ञ आदि सब यज्ञ केवल अस्थिर स्वर्गादि फलके देनेवाले कर्ममात्र हैं ॥ ५९ ॥ पण्डितोंने ज्ञानयज्ञकोही सत्कर्म कहा है । श्रीशुकदेवकथित श्रीमद्भागवतकथारूप ज्ञानयज्ञके करनेसे ज्ञान और वैराग्य दोनो हृष्ट पुष्ट और कष्टसे मुक्त होजायँगे एवं भक्तिको भी सुख प्राप्त होगा । श्रीमद्भागवतपाठके शब्दसे सब कलियुगके दोष इस प्रकार दूर हो जायँगे जैसे सिंहका शब्द सुन कर भेंड़िये भाग जाते हैं । तब प्रेमरससे पूर्ण भक्ति, ज्ञान और वैराग्यके साथ प्रत्येक घरमें और प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें क्रीड़ा करेगी" ॥ ६०–६२ ॥ **नारदजीने**

कहा "महानुभाव ऋषियो! वेद, वेदान्त और गीता आदि पढ़ कर जगानेसे भी जब भक्ति ज्ञान और वैराग्य नहीं जगे तब श्रीमद्भागवतकी कथासे कैसे जगेंगे? भागवतकी तो प्रत्येक कथामें वेदोंका सारांश भरा हुआ है। इस मेरे संशयको आप शीघ्र दूर करिये। क्योंकि आप शरणागतवत्सल हैं; आपका दर्शन निष्फल नहीं होता" ॥ ६४–६६ ॥ कुमारोंने कहा कि "हे नारद! यह भागवतकी कथा वेद और उपनिषदोंके सार अंशसे बनी है, अतएव अत्युत्तम जान पड़ती है; इसका फल अत्यन्त उन्नत है। जैसे किसी वस्तुमें तलेसे ऊपर तक रस भरा हो परन्तु वह उस दशामें उतना स्वादिष्ट नहीं जान पड़ता–किन्तु वही रस अलग निचोड़ लेने पर विश्वमात्रको परम मनोहर लगता है, जैसे दूधमें मिला हुआ घी वैसा स्वादिष्ट नहीं होता परन्तु अलग निकाल लेनेसे वही देवतोंको प्रसन्न करनेवाला दिव्य रस हो जाता है, अथवा जैसे ऊँखमें तलेसे ऊपर तक शक्कर व्याप्त रहती है तथापि ऊँखके रसको निचोड़ कर अलग बनाई गई सारस्वरूप शक्करकी और ही मिठाई होती है, वैसे ही यह श्रीमद्भागवतकी कथा है ॥ ६७–७० ॥ यह ब्रह्ममय श्रीमद्भागवतनाम पुराण, भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी स्थापनाके ही लिये प्रकाशित किया गया है ॥ ७१ ॥ वेदान्त और वेदके परिपूर्ण ज्ञाता, गीताके भी कर्त्ता वेदव्यासजी जिस समय पश्चात्तापपूर्वक खिन्न हो कर अज्ञानके चक्करमें पड़े हुए मोहको प्राप्त हो रहे थे उस समय तुमने ही तो जा कर उनको चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश किया था और उसे सुनते ही वेदव्यास भगवान्‌की सब चिन्ता मिट गई थी। तब तुम उसी भागवतके माहात्म्यके विषयमें ऐसा प्रश्न करते हुए क्यों विस्मय कर रहे हो? श्रीमद्भागवतके सुनने सुनानेसे सब शोक और दुःख दूर हो जाते हैं–इसमें कोई सन्देह नहीं है" ॥ ७२–७४ ॥ नारदजीने कहा कि "जिनके दर्शनसे सब अशुभ नष्ट हो जाते हैं और आवागमनरूप दुःख दावानलसे तपे हुए लोगोंको कल्याण (शान्ति) प्राप्त होता है उन आप महानुभाव मुनियोंकी चरणशरणमें मैं आया हूँ। शेष भगवान्‌के मुखसे जो सरस कथा आपने सुनी है वही प्रेमप्रकाशिनी अशेष कथा मुझको सुनाइये ॥ ७५ ॥

भाग्योदयेन बहुजन्मसमार्जितेन
सत्सङ्गमेन लभते पुरुषो यदा वै ॥
अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकार-
नाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ॥ ७६ ॥

बहुजन्मसंचित भाग्यका उदय होने पर पुरुषोंको कहीं सत्संग प्राप्त होता है।

उस सत्संगके प्रभावसे बहुत ही शीघ्र अज्ञानकृत मोह, मदके अन्धकारको मिटाते हुए विवेकका उदय होता है ॥ ७६ ॥

इति श्रीभागवतमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय ।

भक्तिकष्टनिवारण ।

नारद उवाच—ज्ञानयज्ञं करिष्यामि शुकशास्त्रकथोज्ज्वलम् ॥
भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनार्थं प्रयत्नतः ॥ १ ॥

नारदजीने कहा । मैं भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको स्थापित करनेके लिये यत्नपूर्वक भागवत शास्त्रकी कथासे उज्ज्वल ज्ञानयज्ञका अनुष्ठान करूँगा ॥ १ ॥ हे सज्जनो ! जहाँ मुझको यज्ञ करना होगा वह स्थान बताइये और भागवत शास्त्रकी महिमाभी कहिये । आप लोग वेदके पूर्ण ज्ञाता हैं, इस कारण आपसे कुछ छिपा नहीं है ॥ २ ॥ कृपा करके यहभी बताइये कि भागवत सुननेकी विधि क्या है ? और कै दिनमें कथा समाप्त होगी ? ॥ ३ ॥ **सनकादिकोंने कहा** कि "हे नारद ! तुम नम्र और विवेकी हो, अतएव हम तुमसे सब बताते हैं—सुनो । हरिद्वारके समीप गंगातट पर एक आनन्द नाम पवित्र स्थान है, वहाँ अनेकों-ऋषिगण बसते हैं और देवगण तथा सिद्धगण आया जाया करते हैं । वहाँ अनेकानेक वृक्ष और ललित लताएँ सुशोभित हैं । उस स्थान पर नवीन कोमल बालू बिछी हुई है और जलमें सुनहरे कमल फूल रहे हैं । उस एकान्त और रमणीय स्थानमें रहनेवाले गऊ, बाघ, हाथी, सिंह आदि जीव अपने स्वाभाविक वैरभावको छोड़ कर शान्तिपूर्वक आनन्दमें मग्न रहते हैं ॥ ४-६ ॥ वहीं पर तुम यत्नपूर्वक ज्ञानयज्ञ करो । वहाँ पर जब रसमयी अपूर्व कथा होगी तब पुरमें पड़े हुए, जराजीर्णशरीर उन महादुर्बल ज्ञान और वैराग्यको आगे करके भक्ति भी उपस्थित होगी ॥ ७ ॥ ८ ॥ जहाँ हरिकी चर्चा होती है वहाँ भक्ति आदि स्वयं जाकर उपस्थित होते हैं । कथाका शब्द सुनतेही भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—ये तीनो तरुण होजायँगे" ॥ ९ ॥ **सूतजी कहते हैं** यों कह कर चारो कुमार नारदको साथ लेकर कथारसपानकी लालसासे शीघ्रतापूर्वक उसी गंगातटको गये । इधर तो नारदसहित सकनादिक मुनि गंगाके किनारे पहुँचे और उधर यह सुसमाचार बहुतही शीघ्र तीनो लोकमें फैल गया । भूलोक, देवलोक और ब्रह्मलोकमें श्रीभागवतकथारूप अमृतके पीनेके लिये उत्कण्ठित होकर शीघ्रतापूर्वक दौड़ते हुए आरहे लोगोंका महाकोलाहल होने लगा । सबसे पहले तो सब वैष्णवलोग आये । फिर हरिके प्रेमी भृगु, वसिष्ठ, च्यवन, गौतम,

मेधातिथि, देवल, देवरात, परशुराम, विश्वामित्र, शाकल्य, मार्कण्डेय, दत्तात्रेय, दुर्वासा, पिप्पलाद, योगेश्वर वेदव्यास और उनके पिता पराशर, छायाशुक, जाजलि एवं जह्नु आदि ये सब हरिगुणश्रवणकी श्रद्धासे सम्पन्न मुनिलोग अपने २ पुत्र, शिष्य और स्त्रियोंको साथ लिये वहाँ पर आकर एकत्रित हुए ॥ १०–१४ ॥ सम्पूर्ण वेद, वेदान्त, मंत्र, तंत्र, छः शास्त्र, सत्रह पुराण, गंगादिक नदियाँ, पुष्कर आदिक सरोवर, सब क्षेत्र, सब दिशाएँ, दण्डक आदिक वन, सब पर्वत, देवता, गन्धर्व्व और किन्नर आदि सब साक्षात् शरीरधारी होकर वहाँ उपस्थित हुए। जो लोग अभिमानवश अपनेको सर्वश्रेष्ठ मान कर वहाँ नहीं आये थे उनकोभी समझा बुझा कर महर्षि भृगुजी ले आये ॥ १५–१७ ॥ हरिकथाश्रवणकी दीक्षा लेकर नारदजीने उत्तम ऊँचा आसन सनकादिकोंको बैठनेके लिये दिया और उस पर विश्ववन्दित कृष्णभक्त सनकादिक ऋषीश्वर विराजमान हुए ॥ १८ ॥ वैष्णवलोग, विरक्तलोग, संन्यासी लोग और ब्रह्मचारी लोग मुख्य भागमें अर्थात् आगे बैठे और उन सबके आगे स्वयं नारदजी विराजमान हुए ॥ १९ ॥ एक ओर सब ऋषिगण, एक ओर सब देवगण, एक ओर सम्पूर्ण वेद और उपनिषद् आदि धर्मशास्त्र एवं एक ओर सब स्त्रियाँ कथा सुननेके लिये बैठीं ॥ २० ॥ सब लोग जय जय, नमोनमः, साधु साधु कहते हुए फूल, अक्षत, खील आदकी वर्षा करने लगे और शंख, नगाड़े आदि बाजे बजने लगे ॥ २१ ॥ विमानों पर चढ़े हुए बहुतसे श्रेष्ठ २ देवतालोग आकाशसे कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २२ ॥ **सूतजी कहते हैं।** इस प्रकार पूजनोत्सवके उपरान्त जब सब लोग एकाग्र होकर कथा सुननेके लिये अपने २ स्थान पर बैठ गये तब सनकादिक ऋषिगण इस प्रकार स्पष्ट करके महात्मा नारदसे भागवतका माहात्म्य कहने लगे ॥ २३ ॥ सनकादिकोंने कहा कि "हे नारद ! अब हम पहले श्रीमद्भागवत शास्त्रके पढ़ने और सुननेका माहात्म्य तुमसे कहते हैं, जिसके श्रवण मात्रसे मुक्ति हाथमें आजाती है ॥ २४ ॥ श्रीमद्भागवतकी कथाका सदा सेवन करना चाहिये–सदा सेवन करना चाहिये, क्योंकि इसके श्रवणमात्रसे हरि भगवान् चित्तमें आजाते हैं ॥ २५ ॥ भागवत ग्रंथमें अठारह हजार श्लोक हैं और बारह स्कन्ध हैं, वही परीक्षित् और शुकके सम्वादसे युक्त भागवतशास्त्र हम तुमको सुनाते हैं ॥ २६ ॥ यह पुरुष तभीतक अज्ञानवश संसारचक्रमें पड़ कर घूमा करता है, जबतक कल्याणकारिणी भागवतकी कथा कानमें नहीं पड़ती ॥ २७ ॥ भ्रममें डालनेवाले अन्यान्य बहुतसे शास्त्र और पुराणोंके सुननेसे कोई लाभ नहीं है, मुक्ति देनेवाला एकमात्र सर्वोत्तम भागवतशास्त्र है–इसीको सुनना चाहिये ॥ २८ ॥ जिस घरमें नित्य श्रीभागवतकी कथा होती है वह घर परम पावन तीर्थके तुल्य है, जो लोग उसमें बसते हैं उनके सब पातक नष्ट होजाते हैं ॥ २९ ॥ सैकड़ों वाजपेय यज्ञ

और हजारों अश्वमेध यज्ञ इस भागवत कथाकी सोलहवीं कलाको नहीं पहुँचते, अर्थात् एक आना भर भी नहीं हैं ॥ ३० ॥ हे तपोधन मुनिगण! इस पंचतत्त्व-रचित शरीर और अन्तःकरणमें तभीतक पाप रहते हैं जब तक मनुष्य, शुद्धचित्तसे मन लगा कर श्रीमद्भागवतकी कथाको नहीं सुनते ॥ ३१ ॥ गंगा, गया, काशी, पुष्कर, प्रयागराज आदिमें स्नान दान करनेसे वह फल नहीं मिलता जो श्रीमद्भागवतकी कथाके सुनने और पढनेसे प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ यदि परमगति चाहते हो तो नित्य अपने मुखसे भागवतके एक श्लोक, आधे श्लोक या चौथाईही श्लोकको पढ़ते रहो ॥ ३३ ॥ प्राज्ञ लोग ओंकार, गायत्री, पुरुषसूक्त, वेदत्रय, भागवतशास्त्र, द्वादशाक्षरमंत्र, द्वादशमूर्त्ति, सूर्यनारायण, प्रयागराज, सम्वत्सरस्वरूप काल, ब्राह्मण, गऊ, अग्निहोत्र, एकादशी (व्रत), तुलसीतरु, वसन्तऋतु और पुरुषोत्तममें वस्तुतः भेदभाव नहीं रखते, अर्थात् इन सबको उसी एक ईश्वर हरिका रूप (अंश) समझते हैं॥ ३४–३६ ॥ जो कोई अर्थव्यय करके नित्य किसी विद्वान् पण्डितसे भागवतकी कथा कहलाता है उसके कोटि २ जन्मके पातक नष्ट होजाते हैं,–इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ३७ ॥ जो कोई भागवत शास्त्रका आधा श्लोक या चौथाई श्लोक भी नित्य पढ़ता है उसको राजसूय और अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ नित्य भागवत शास्त्रका पढ़ना, हरिचिन्तन करना, तुलसीके वृक्षकी सेवा और गऊको पालना ये सुकृत समानकल्याणकारी हैं॥३९॥ अन्त समय जो कोई भक्तिपूर्वक भागवत शास्त्रको सुनता है उस पर भगवान् गोविन्द प्रसन्न होते हैं और वह भगवान्‌की कृपासे वैकुण्ठ लोकको जाता है ॥ ४० ॥ जो कोई सुवर्णके सिंहासन पर रख कर यह भागवत शास्त्र (पुस्तक) किसी वैष्णव विद्वान्‌को देता है उसको निस्सन्देह हरिसायुज्य मुक्ति मिलती है ॥ ४१ ॥ जिस शठने चित्तको हरिमें लीन करके जन्मभरमें एक वार भी हरिकथारस नहीं पिया उसने चाण्डाल और गधेके समान अपने जन्मको व्यर्थही बिता दिया और व्यर्थही अपने जन्मसे जननीको कष्ट दिया ॥ ४२ ॥ स्वर्गवासी ब्रह्मा आदिक श्रेष्ठ देवगण कहते हैं कि वह पापी पुरुष जीतेही मरेके तुल्य कहा गया है जिसने कभी कुछ भी भागवत शास्त्र नहीं सुना। उस पृथ्वीके लिये भारस्वरूप पशुतुल्य मनुष्यको धिक्कार है–कोटि बार धिक्कार है ॥ ४३ ॥ वास्तवमें लोगोंको यह हरिकथा परम दुर्लभ है। करोड़ों जन्मके पुण्योंका उदय होने पर कहीं यह भागवत कथा सुननेको मिलती है ॥ ४४ ॥ इस लिये हे योगियोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् नारद! यत्नपूर्वक एकाग्र चित्तसे इसे सुनना चाहिये। इसके सुननेके लिये कोई विशेष दिन या समय नहीं नियत है, चाहे जब सुनै ॥ ४५ ॥ इस कथाको सुनते समय सत्य बोलना और ब्रह्मचर्यसे रहना चाहिये। किन्तु यह कलियुग है, इसमें बहुत समय तक उक्त नियमोंका सधना कठिन है। यह विचार कर शुकदेवजीने

इसके सुननेकी यह विशेष विधि कही है कि भागवत सुननेकी दीक्षा लेकर बहुत दिनतक मनकी प्रवृत्तियोंको रोकना और नियम पालन करना इस कलियुगमें एक प्रकारसे अत्यन्त कठिन है, अतएव सप्ताहपारायण सुनना उचित है ॥ ४६ ॥ ॥ ४७ ॥ माघ महीने भर नित्य श्रद्धापूर्वक भागवतकी कथा सुननेसे जो फल मिलता है वही फल श्रीशुकदेवजीकी कृपासे सप्ताह पारायण सुननेसे प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ कलियुगमें अनेकानेक दोष अर्थात् विघ्न-बाधाएँ हैं, जिनसे मनको दमनपूर्वक एकाग्र रखना सहज नहीं है, फिर पुरुषोंकी आयु प्रतिदिन क्षीण होती चली जाती है—जीवनका कुछ भरोसा नहीं है; इस लिये सप्ताह सुनना उचित है ॥ ४९ ॥ जो फल तप, योग और समाधिमें कठिन कष्ट सहने परभी नहीं मिलता वह सम्पूर्ण फल अनायासही सप्ताहके सुननेसे प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ सब यज्ञ, व्रत, तप, तीर्थयात्रा, योग, ध्यान, ज्ञान आदिसे बढ़ कर सप्ताहका सुनना है। और अधिक क्या कहें—सप्ताहका सुनना सर्वोपरि है—अन्यान्य सब सुकृत इसके नीचे हैं!!" ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ शौनकजीने कहा । हे सूत! यह तो आपने आश्चर्यमें डालनेवाली अद्भुत कथा सुनाई! सनकादिकोंके कथनसे जान पड़ता है कि भागवत पुराणही मुक्ति देनेवाला है, इसके आगे ज्ञान आदि धर्म-साधन कोई पदार्थ नहीं हैं। भागवतका ऐसा माहात्म्य किस प्रकार हुआ? सो कृपापूर्वक हमसे कहिये ॥ ५३ ॥ सूतजीने कहा कि हे शौनक! जब कृष्ण भगवान् पृथ्वीतल छोड़ कर अपने परम पदको जाने लगे तब उनके मुखसे एकादशस्कन्धमें वर्णित ज्ञान सुन कर भगवद्भक्त उद्धवने कहा कि "हे गोविन्द! आप तो भक्त जनोंका काम सिद्ध करके परमधामको जारहे हैं परन्तु मुझे एक बड़ी भारी चिन्ता है उसे दूर कीजिये और सुख दीजिये। यह घोर कलियुग आगया है, फिर दुष्ट जनोंका अभ्युदय होगा, उनके कुसंगमें पड़ कर जब साधु सन्तभी उग्रप्रकृतिके दुराचारी हो उठेंगे, तब उनके भारसे दुःखित यह पृथ्वी गोरूप रख कर किसकी शरणमें जायगी? हे कमललोचन! आपके सिवा दूसरा कोई इसकी रक्षा करनेवाला मुझे नहीं दिखाई पड़ता ॥ ५४–५७ ॥ इस लिये हे भक्त-वत्सल! सज्जनों पर दया करके परम धामको न पधारिये। हे भगवन्! आप चिन्मय और निराकार होकरभी भक्तोंहीके लिये सगुण रूपसे प्रकट हुए हैं ॥५८॥ आपके विना आपके भक्तजन कैसे पृथ्वी पर रहेंगे? आपके निर्गुणरूपकी उपासना कष्टसाध्यही नहीं वरन् एक प्रकारसे असम्भव है, इस लिये इस रूपको न छिपा-इये" ॥ ५९ ॥ प्रभास क्षेत्रमें अवस्थित कृष्णचन्द्र हरि भी उद्धवके कथनको सुन कर विचारने लगे कि भक्तोंके अवलम्बके लिये मुझको क्या छोड़ जाना चाहिये? ॥ ६० ॥ हे शौनक! तब भगवान्ने अपना सब तेज इस भागवतमेंही स्थापित कर दिया और इसी श्रीमद्भागवतसागरमें अन्तर्निहित रूपसे अवस्थित हुए

॥६१॥ यह भागवत पुराण साक्षात् हरिकी शब्दमयी मूर्त्ति है । इसके पठन पाठन श्रवण दर्शन और सेवनसे सब पातक नष्ट होजाते हैं ॥ ६२ ॥ इसी कारण विधिपूर्वक इसकी सप्ताहपारायणको भक्तिसहित सुनना, सब धर्मसाधनोंमें मुख्य माना गया है । कलियुगमें सब साधनोंको अकिञ्चित्कर कह कर इसीको परम कर्तव्य धर्म माना है ॥ ६३ ॥ दुःख, दारिद्र्य, दुर्भाग्य और पातकोंको दूर करने और काम, क्रोधको जीतनेके लिये कलियुगमें यही एक परम धर्म कहा गया है ॥६४॥ अन्यथा विष्णुमाया देवतोंके लिये भी दुस्त्यज है, तब साधारण मनुष्य कैसे उसको वशमें कर सक्ते हैं ? अतएव उस मायाको अनायास छुड़ा देनेवाली यह श्रीमद्भागवतकी सप्ताहपारायणही कलियुगमें सर्वोत्तम धर्म कर्म है ॥ ६५ ॥ हे शौनक! सनकादिक ऋषिगण पूर्वोक्त प्रकारसे सज्जन सभामें भागवतका माहात्म्य कह रहे थे, उस समय एक बहुतही विस्मय कर दृश्य उपस्थित हुआ; उसे हम कहते हैं—सुनो ॥ ६६ ॥ अपने तरुण और हृष्टपुष्ट दोनो (ज्ञान और वैराग्य) पुत्रोंको साथ लिये, मुखसे 'श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरि ! मुरारि ! हे नाथ !' आदि पवित्र नामोंको वारम्वार कहती हुई प्रेममयी भक्ति वहाँ पर सहसा प्रकट हुई ॥ ६७ ॥ भागवतभक्तोंके लिये एकमात्र उत्तम आभूषणस्वरूप उस सुन्दरवेषवाली भक्तिके आगमनको देख कर सब सभामें उपस्थित सज्जन लोग आपसमें विस्मयपूर्वक तर्कणा करने लगे कि– 'अहो ! यह यहाँ कैसे प्रकट हुई ? कैसे आई ?' ॥ ६८ ॥ तब सनकादिकोंने कहा कि 'आप लोग आश्चर्य न करें, ज्ञान वैराग्यको साथ लिये यह भक्ति इसी कथाके फलसे प्रकट हुई है' । पुत्रोंसहित भक्तिने उनके वचनोंको सुन कर नम्रताके साथ सनत्कुमारसे कहा कि "मैं कलियुगमें नष्ट होगई थी तथापि हे साधुशिरोमणि ! आपने कथाके अमृत रससे मुझे पुष्ट कर दिया । अब मैं कहाँ रहूँ ? सोभी आप कृपा करके बतावें" । यह सुन कर ब्रह्माके पुत्र सनकादिकोंने कहा कि "तुम भक्तोंके हृदयमें गोविन्दके रूपको स्थापित करनेवाली, प्रेमकी एक मात्र अधीश्वरी और भवरोगको हरनेवाली हो । सो तुम धैर्यसहित स्थिर भावसे निरन्तर वैष्णवलोगोंके चित्तमें चैनसे बसो । तब ये सब कलिकालके दोष तुमको देखभी न सकेंगे" । हे शौनक ! उसी समयसे सनकादिकोंकी आज्ञाके अनुसार हरिकी परम प्यारी भक्ति हरिभक्तोंमें चित्तमें बसी रहती है ॥ ६९–७२ ॥ हे मुनिवर ! तीन लोक चौदह भुवनमें वे मनुष्य निर्द्धन होने परभी धन्य हैं जिनके हृदयस्थलमें एकमात्र श्रीहरिकी भक्ति बसी हुई है । क्योंकि उस भक्तिसूत्रमें बँधे हुए हरिभी सर्वथा अपने लोकको छोड़ कर उनके हृदयमें आकर निवास करते हैं ॥ ७३ ॥

ब्रूमोऽद्य ते किमधिकं महिमानमेवं
ब्रह्मात्मकस्य भुवि भागवताभिधस्य ॥
यत्संश्रयान्निगदिते लभते सुवक्ता
श्रोतापि कृष्णसमतामलमन्यधर्मैः ॥ ७४ ॥

हम अब इस पृथ्वी पर अवस्थित ब्रह्ममय भागवत पुराणकी और अधिक महिमा क्या आपसे कहें। इसको सुनने सुनानेसे वक्ता और श्रोता—दोनोको कृष्णकी समता अर्थात् कृष्णका रूप मिलता है। इस लिये अन्य धर्मोंको छोड़ कर इसीको पढ़ना, सुनना उचित है ॥ ७४ ॥

इति श्रीभागवतमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय ।

धुन्धुकारी और गोकर्णकी कथा ।

सूत उवाच—अथ वैष्णवचित्तेषु दृष्ट्वा भक्तिमलौकिकीम् ॥
निजलोकं परित्यज्य भगवान्भक्तवत्सलः ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं। हे शौनक! वैष्णवोंके चित्तमें अलौकिक भक्तिको देख कर उस समय भगवान् भक्तवत्सल अपने लोकको छोड़ कर उस वैष्णव समाजमें प्रकट हुए अर्थात् अपने भक्तोंके निर्मल हृदयमें देख पड़े। वनमाला पहने, घनश्याम, पीतपटसे सुशोभित, काञ्चनकी काञ्चीके कलापों (सोनेकी करधनीकी लड़ियों)से रुचिर, मुकुट और कुण्डल धारण किये, त्रिभंगललित, सुन्दर कौस्तुभमणिके प्रकाशसे शोभायमान, कोटि कामदेवकोभी अपनी सुन्दर छविसे लज्जित करनेवाले, सब अंगोंमें हरिचन्दन लगाये, मुरलीधर, परमानन्दस्वरूप, चैतन्यमूर्त्ति, माधुरीमय हरिको अपने हृदयमें देख कर हरिकथा सुननेके लिये आये हुए वैकुण्ठवासी उद्धव आदि वैष्णव, जो गुप्तरूपसे उस समाजमें सम्मिलित थे—अत्यन्त आनन्दसे जयजयकार करने लगे। उस समय उस समाजमें अलौकिक भक्तिका भाव छागया। चारो ओरसे फूलोंकी और खीलोंकी वर्षा तथा शंखध्वनि होने लगी। उस सभामें अवस्थित सब लोग भक्तिमें मग्न होकर हरिमें ऐसे तन्मय होगये कि उनको गेह, देहकी कुछभी सुधि नहीं रही। यह अवस्था देख कर नारदजीने कहा कि—"हे मुनीश्वरो! मैंने आज सप्ताह यज्ञकी यह अलौकिक महिमा देखी कि महामूढ़, शठ—यहाँतक कि पशु पक्षी भी इस यज्ञमें पूर्ण रूपसे

निष्पाप और विशुद्ध होजाते हैं। मेरी समझमें इस कलिकालके बीच पृथ्वी पर इस कथासे बढ़ कर चित्तको शुद्ध तथा पापपुंजको नष्ट करनेवाला और कोई साधन नहीं है। आप कृपालु हैं, आपने कृपापूर्वक जगत्के हितके लिये विचार करके यह कोई नवीन मार्ग प्रकाशित किया है। हे मुनिवरो! मैं यह सुनना चाहता हूँ कि इस सप्ताह कथारूप यज्ञसे कौन २ लोग शुद्ध होते हैं?" ॥१-१०॥ सनकादिकोंने कहा कि—"हे नारद! जो लोग महापापी हैं, जो सर्वदा बुरे कर्म किया करते हैं, जो कुमार्गगामी हैं, जो क्रोधकी अग्निसे जला करते हैं, कुटिल हैं, कामी हैं—वे सब कलियुगमें इस सप्ताह यज्ञसे पवित्र हो जाते हैं॥११॥ जो लोग कभी सत्य नहीं बोलते, जो लोग माता पिता के कुलों को कलंकित करनेवाले अथवा माता पिताको कष्ट देनेवाले हैं, जो लोग अत्यन्त तृष्णासे व्याकुल और वर्णाश्रमके धर्मोंसे हीन अर्थात् पतित हैं, जो दंभ और मत्सर (डाह)से पूर्ण हैं, जो लोग हत्यारे हैं—वेभी कलियुगमें इस सप्ताह यज्ञसे पवित्र होजाते हैं ॥ १२ ॥ जो लोग पाँचो महाउग्रपाप (मदिरापान, ब्रह्महत्या, चोरी, गुरुकी स्त्रीसे भोग और विश्वासघात) करनेवाले, छली और छद्म (जाल) करनेवाले हैं, जो लोग क्रूर और पिशाचोंके समान दयासे हीन हैं, जो लोग सदा ब्राह्मणोंके धनको छीन कर या ठग कर खानेवाले और व्यभिचार करने व करानेवाले हैं—वे भी कलियुगमें इस सप्ताह यज्ञसे पवित्र होजाते हैं ॥ १३ ॥ जो लोग शठताके कारण जानबूझ करभी नित्य मन, वाणी और कायासे पातक करते हैं, जो लोग अन्यायपूर्वक पराये धनसेही अपना तथा अपने परिवारका पालन-पोषण करते हैं—ऐसे मलिन और दुष्ट विचारके लोगभी कलियुगमें इस सप्ताह यज्ञसे पवित्र होजाते हैं ॥ १४ ॥ हम इस विषयका एक पुरातन इतिहास तुमको सुनाते हैं, जिसके सुननेसेही पाप नष्ट होजाते हैं ॥ १५ ॥ पहले तुंगभद्रा नदीके तटपर एक उत्तम नगर बसा हुआ था, उसमें सब वर्णके लोग बसते थे। वे सब अपने २ धर्मका पालन और सत्कर्म करते थे, सदा सत्य बोलते थे ॥ १६ ॥ उस पुरमें सब वेदोंके जाननेवाले और श्रुति व स्मृतिके कहे कर्मोंके करनेवाले, दूसरे सूर्य ऐसे तेजस्वी एक आत्मदेव नाम ब्राह्मण रहते थे ॥ १७ ॥ वह ब्राह्मण भिक्षावृत्ति होने परभी निपट दरिद्र न थे। उनकी स्त्रीका नाम धुंधुली था। वह यद्यपि सुन्दरी और उच्च कुलकी कन्या थी, परन्तु उसका स्वभाव बड़ाही दुष्ट था; वह अपनीही टेक रखती थी। वह क्रूर स्वभावकी स्त्री सर्वदा औरोंके घरका परपंच किया करती थी। उसका मुख कभी बंद न होता था, सबही समय बक २ किया करती थी। बड़ीही कृपण और कर्कशा होने परभी वह घरका काम काज करनेमें बहुतही उत्साह रखती थी ॥१८॥१९॥ इतना होने परभी स्त्री-पुरुष दोनोमें परस्पर बड़ाही प्रेम था। इस प्रकार गृहस्थाश्रममें रम रहे

उन दोनोके कोई पुत्र या कन्या न थी, जिससे ब्राह्मणको धन, कामभोग और गृहस्थीमें कुछभी सुख न था ॥ २० ॥ आशामेंही उनकी अवस्था ढल गई तब पीछेसे वे सन्तानके लिये अनेक धर्मकर्म करने लगे । सदा गऊ, पृथ्वी, सुवर्ण, वस्त्र अन्न आदि दीनोंको देनेमें उन्होंने आधेके लगभग अपना धन खर्च करडाला पर तो भी उनके कोई पुत्र या पुत्री न हुई; जिससे उनको बड़ीही चिन्ता हुई ॥ २१ ॥ २२ ॥ दुःख और बेचैनीके कारण ऊब कर एक दिन विप्रवर आत्मदेव घरसे निकल वनकी ओर चल दिये । चलते चलते दो पहर बीत गये, तब ब्राह्मणदेवता प्यासे होकर एक सरोवरके पास गये । वहाँ पहुँच कर जल पीनेके उपरान्त सन्तानकी चिन्तासे दुःखित और व्याकुल वह ब्राह्मण किनारे बैठ कर शोच करने लगे । घड़ी भरमें एक संन्यासीभी वहाँ जल पीनेके लिये आया । जब वह संन्यासी जल पीचुका तब आत्मदेव ब्राह्मण उसके पास गये और चरणोंमें शिर नवाकर सामने खड़े हो गये । ब्राह्मणको उदास और बड़ी २ साँसें लेते देख कर संन्यासीने कहा कि "हे ब्राह्मण! तुम किस प्रबल चिन्तासे व्याकुल होकर रोरहे हो? तुम शीघ्र अपने दुःखका कारण मुझसे कहो" ॥ २३-२६ ॥ ब्राह्मणने कहा कि "हे ऋषिवर! मैं आपसे अपना दुःख क्या कहूँ? यह सब मेरे पूर्व-सञ्चित पापोंका फल है । मेरे पूर्वज भी इस चिन्तासे गर्म साँसें लेते रहते हैं कि 'इसके पीछे हमको कौन पानी देगा?' और इसीकारण जब मैं तर्पण करता हूँ तो वह जल पितरोंकी गर्म साँसोंसे गर्म हो जाता है ॥२७॥ मेरे दिये हुए अन्न या जलसे देवता और ब्राह्मणोंको प्रसन्नता नहीं होती। मुझको सन्तान न होनेसे बड़ाही दुःख है और उसी दुःखसे व्याकुल होकर मैं यहाँ मरनेके लिये आया हूँ ॥ २८ ॥ जिसके कोई सन्तान नहीं है उसके जीवनको धिक्कार है! जिस घरमें कोई लड़का या लड़की नहीं है उस घरको धिक्कार है! जिसके सन्तान नहीं है उसके धन और कुलको धिक्कार है! ॥ २९ ॥ महात्माजी! मैं अपने अभाग्यको कहाँतक कहूँ— जिस गऊको पालता हूँ वह बाँझ होजाती है, जिस वृक्षको लगाता हूँ वह भी नहीं फूलता फलता ॥ ३० ॥ जो फल मेरे घर आता है वह उसी समय सूख जाता है, अतएव मुझ ऐसे सन्तानहीन अभागे मनुष्यका जीवन व्यर्थ है" ॥३१॥ संन्यासीके पास खड़े हुए अत्यन्त दुःखित वह ब्राह्मणदेवता यों कह कर ऊँचे स्वरसे रोने लगे । यह देख कर उस संन्यासीके चित्तमें ब्राह्मणकी दशा पर बड़ीही करुणा उत्पन्न हुई ॥ ३२ ॥ तब उस महायोगी संन्यासीने ब्राह्मणके मस्तकमें ब्रह्माकी लिखी हुई कर्मरेखाको देखा और फिर सब वृत्तान्त जान कर विस्तार-पूर्वक इस प्रकार ब्राह्मणसे कहा ॥ ३३ ॥ संन्यासीने कहा । "यह अज्ञानसे उत्पन्न सन्तान न होनेका शोक छोड़दो । हे ब्राह्मण! कर्मगति बड़ी प्रबल है—टाले नहीं टलती । इस लिये विवेकपूर्वक संसारवासनाको त्यागो ॥ ३४ ॥ हे विप्र!

सुनो, मैंने तुम्हारे प्रारब्धको देख कर विचार किया, जिससे जान पड़ा कि सात जन्म तक तुमको पुत्र या कन्या नहीं बदे हैं ॥ ३५ ॥ देखो राजा सगरको और राजा अंगको सन्तानसे कैसे २ दुःख मिले हैं? इस लिये कुटुम्बकी आशाको छोड़ कर संन्यास लेलो, इसीमें सर्वथा सुख प्राप्त होगा'' ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणने कहा—''भगवन्! इस आपके सिखाये हुए ज्ञानसे मुझको बोध नहीं होता। यदि मेरे भाग्यमें सन्तान नहीं बदा है तो आप अपने तपोबलसे मुझको पुत्र दीजिये। यदि आप मुझे पुत्र न देंगे तो इस शोकसे व्याकुल होकर मैं आपके आगेही प्राण देदूँगा ॥ ३७ ॥ पुत्र आदिके सुख बिना यह संन्यास सूखा अर्थात् नीरसही है। पुत्र-पौत्रके मुख देखनेके सुखसे सम्पन्न गृहस्थाश्रमही वास्तवमें सरस है'' ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणको इस प्रकार पुत्रके लिये हठ करते देख कर वह तपोधन संन्यासी बोले कि—''हे विप्र! प्रारब्धके मेटनेके लिये हठ करनेसे चित्रकेतु राजाको कष्ट मिला, अतएव वैसेही तुमकोभी यदि मैं पुत्र दूँगा तो वह सुखदायक न होगा। जब भाग्यमें पुत्रसे सुख बदाही नहीं तो कैसे मिल सक्ता है? किन्तु तुम मानतेही नहीं—हठही किये जाते हो; तब मैं तुमसे और क्या कहूँ'' ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे नारद! यों कह कर उस संन्यासीने पुत्रके लिये हठ कर रहे ब्राह्मणको एक फल दिया और कहा कि ''यह फल लेजाकर अपनी स्त्रीको खिला दो तो उसके अवश्य पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ४१ ॥ तुम्हारी स्त्रीको एक वर्ष तक इन नियमोंका पालन करना होगा अर्थात् सत्य बोले, पवित्र रहे, दयापूर्वक दान करे और एकही बार भोजन करे; ऐसा करनेसे उसके अत्यन्त बुद्धिमान् और सच्चरित्र पुत्र उत्पन्न होगा'' ॥ ४२ ॥ इस प्रकार कह कर वह योगी चला गया और ब्राह्मणदेवताने घर पहुँच कर वह फल अपनी स्त्रीको दिया। फल देकर ब्राह्मणदेवता कहीं चले गये और उनकी कुटिल स्वभावकी ब्राह्मणी अपनी एक सखीसे इस प्रकार रो २ कर कहने लगी कि ''अहो, सखी! मुझको बड़ी चिन्ता है; मैं तो इस फलको न खाऊँगी। फल खानेसे मेरे गर्भ रहेगा, तब गर्भसे उदर (पेट) बढ़ जायगा। फिर थोड़ा भोजन किया जायगा, जिससे शक्ति घट जायगी; तब मैं घरका कामकाज कैसे करूँगी? दैवयोगसे यदि कोई संकट आपड़े तो गर्भिणी स्त्री भाग नहीं सक्ती और न लाजके मारे घरसे बाहर निकल सक्ती है। गर्भमें बालक पिंजड़ेमें तोतेके समान रहता है, जब वह संकुचित कोखसे बाहर निकलता है तब प्रसववेदना असह्य हो उठती है—उस समय बड़ाही कष्ट होता है। मैं अत्यन्त सुकुमारी हूँ—उस दारुण दुःखको कैसे सहूँगी? इसके सिवा प्रसवके समय यदि गर्भमें स्थित बालक तिर्छा होगया तो मैं मरही जाऊँगी। मैं जब प्रसवकाल निकट आजाने पर शिथिल हो जाऊँगी तब मेरी नन्द मेरा घर काट कर अपना घर बना लेगी। फिर सत्य

बोलना, पवित्रतासे रहना इत्यादि नियम मुझसे नहीं सधेंगे । और जो बालक कुशलपूर्वक उत्पन्न भी होगया तो उसके लालनपालनमें सदा दुःख उठाना पड़ता है । बहिन! मेरी समझमें तो बाँझ अथवा विधवा स्त्रियाँ बड़ेही सुखसे रहती हैं, क्योंकि उनको ये कष्ट नहीं सहने पड़ते" ॥ ४३–४९ ॥ हे नारद! इस प्रकारके कुतर्क करके ब्राह्मणीने वह फल नहीं खाया और पतिके पूछने पर कह दिया कि–"हाँ मैंने खालिया" ॥ ५० ॥ कुछ काल बीतने पर एक दिन उसकी छोटी बहिन आपहीसे उसके घर आई । ब्राह्मणीने सब वृत्तान्त सुना कर उससे कहा कि "बहिन! मुझको यही बड़ीभारी चिन्ता है, जिससे प्रतिदिन दुबली होती जाती हूँ; कहो, अब क्या करूँ?" बहिनने कहा कि–"तुम चिन्ता न करो, मेरे गर्भ है; लड़का होने पर तुमको देदूँगी ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तब तक तुम गर्भिणी सी बन कर अपनेको छिपाये हुए सुखसे घरमें रहो । मेरे पतिको तुम धन देदेना, वह तुमको अपना बालक प्रसन्नतापूर्वक देदेगा ॥ ५३ ॥ मैं अरोसपरोसके लोगोंमें प्रसिद्ध कर दूँगी कि मेरा लड़का छःमहीनेका होकर मर गया । मैं नित्य तुम्हारे घर आकर उस (अपने) बालकको दूध पिला कर पालूँगी–इसकीभी तुम चिन्ता न करो ॥ ५४ ॥ रहा यह फल–सो परीक्षाके लिये इस गऊको खिलादो" । नारदजी! जो बहिनने बताया वही धुंधुलीने स्त्रीस्वभाववश किया अर्थात् वह फल गऊको खिला दिया ॥ ५५ ॥ समयानुसार धुंधुलीकी बहिनके पुत्र उत्पन्न हुआ और वैसेही उसका पति सूनेमें छिपा कर वह पुत्र धुंधुलीको देगया ॥ ५६ ॥ धुंधुलीने अपने पतिसे कहा कि मेरे सुखपूर्वक एक बालक उत्पन्न हुआ है । आत्मदेवके पुत्र होनेका सुसमाचार सुन कर सब आस पासके लोग बहुतही प्रसन्न हुए और आत्मदेवने उसी समय अत्यन्त आनन्दसे अनेकों ब्राह्मणोंको अनेकों दान दिये एवं पुत्रका जातकर्म किया । आत्मदेवके द्वार पर गाने बजानेके साथ अनेक मंगल उत्सव होने लगे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ धुंधुलीने अपने पतिसे कहा कि "मेरे स्तनमें दूध नहीं है तब मैं अन्य जातिकी स्त्रीके दूधसे कैसे बालकको पालूँगी? ॥ ५९ ॥ हाँ, एक उपाय यह है कि मेरी छोटी बहिनके अभी बालक होकर मर गया है, उसको बुला कर घरमें रक्खो तो वह अपने दूधसे तुम्हारे बालकको पालेगी" ॥ ६० ॥ पुत्रकी रक्षाके लिये आत्मदेवने सब वैसाही किया । माताने पुत्रका नाम धुंधुकारी धरा ॥ ६१ ॥ इधर तो यह हुआ उधर तीन महीनेके उपरान्त उस गऊकेभी फलके प्रभावसे एक सर्वांगसुन्दर बालक उत्पन्न हुआ । दिव्य, निर्मल और सुवर्णके सदृश प्रभावाले बालकको देख कर ब्राह्मणने स्वयं अत्यन्त प्रसन्नतासे उसके जातकर्म आदि संस्कार किये । गऊके मनुष्य–बालकका उत्पन्न होना सुन कर सब लोगोंको बड़ाही विस्मय हुआ और वे उसको देखनेके लिये आने लगे ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ जो कोई उस बालकको देखता

वह कहता कि "अहो! आत्मदेवके भाग्यका उदय होना देखो कि गऊने भी देवरूपी बालक उत्पन्न किया। बड़ेही आश्चर्यकी बात है!" ॥ ६४ ॥ हे नारद। सबने जाना कि यह विचित्र बालक दैवसंयोगसे उत्पन्न हुआ है, किसीको उसका गुप्त रहस्य नहीं विदित हुआ। आत्मदेवने बालकके कान गऊके ऐसे देख कर उसका नाम गोकर्ण रक्खा ॥ ६५ ॥ कुछ समयमें वे दोनो लड़के जवान हुए। गोकर्ण तो ज्ञानी और पण्डित हुए परन्तु धुंधुकारी महादुष्ट निकला ॥ ६६ ॥ वह ब्राह्मणोंके कोई कर्म न करता था, न स्नान करता था, न शौच करता था और जिन वस्तुओंको खाना पीना न चाहिये उनको खाता पीता था। उसको अगम्या स्त्रीके गमनमें और मृतकके हाथका अन्न खानेमें कोई संकोच न था ॥ ६७ ॥ वह चोर था और सब लोगोंसे शत्रुता करता था। दुष्ट धुंधुकारी छिप कर पराये घरमें आग लगा देता था और खिलानेके लिये छोट लड़कोंको गोदमें लेकर कूपमें डाल देता था ॥ ६८ ॥ उसको हिंसा करनेमें आनन्द मिलता था। वह सदा शस्त्र बाँधे रहता था और दीन दुःखी व अंधोंको सताता था एवं चांडालोंकी संगतिमें पाश हाथमें लिये शिकारकी टोहमें घूमा करता था ॥ ६९ ॥ उसने वेश्याओंके कुसंगमें पड़कर सब पिताका धन नष्ट कर दिया और एक दिन धनके लिये पिता माताको पीट कर घरके सब बर्त्तन बीन लेगया ॥ ७० ॥ तब उसके पिता आत्मदेव धन न रहनेसे दीन दशाको प्राप्त होकर इस प्रकार ऊँचे स्वरसे रोने लगे कि "ऐसे दुःखदायक पुत्रके होनेसे पुत्रका न होनाही भला है। कहाँ रहूँ? कहाँ जाऊँ? कौन मेरे इस दुःखको मिटावेगा? हाय! मुझे बड़ाही कष्ट मिल रहा है; मैं दुःखके कारण अपने प्राण देदूँगा" ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ उस समय ज्ञानी गोकर्ण आकर इस प्रकार वैराग्यका उपदेश करते हुए पिताको समझाने लगे कि "यह दुःखरूपी मोहमय संसार निपट असार है। पुत्र किसका है और धन किसका है—यह सब भ्रमजाल है। जिनको यह बिवेक नहीं है वे पुत्र धन आदिके स्नेह (ममता) में दिन रात जला करते हैं ॥७३॥७४॥ जो सुख एकान्तमें रहनेवाले विरक्त मुनिको है वह सुख न चक्रवर्ती राजाको है और न इन्द्रको है ॥ ७५ ॥ मोह ममतासे मनुष्यको नरकमें जाना पड़ता है; इस कारण इस पुत्र-स्नेहरूप अज्ञानको छोड़ो। अन्तमें यह शरीर भी साथ छोड़ देगा। बस, सब छोड़ कर वनमें जा हरिको भजो" ॥ ७६ ॥ गोकर्णके वचन सुन कर आत्मदेवको वैराग्य हो गया और वह वन जानेके लिये उद्यत होकर गोकर्णसे बोले कि—"पुत्र! वनमें जाकर मुझे क्या करना चाहिये सो विस्तारपूर्वक बताओ। मैं शठ इस गृहरूप अंधकूपमें स्नेहके पाशसे बँधा हुआ पंगु (अपाहिज) की भाँति पड़ा हुआ हूँ। हे दयानिधान! तुम मुझे कर्मबंधनसे छुड़ा कर मेरा उद्धार करो" ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ गोकर्णने कहा "पिता! तुम हड्डी, मांस और रुधिरसे रचित

असार शरीरके अभिमानको छोड़ कर स्त्री, पुत्र आदिकी ममताको त्यागदो। दिनरात विचार करो कि यह जगत् क्षणभंगुर है और भगवद्भक्तिपूर्वक वैराग्य-रागके रसिक बनो ॥ ७९ ॥ इन सांसारिक धर्मोंको छोड़ कर भगवद्भजनरूप सत्य धर्मको भजो, साधुपुरुषोंका संग करो और विषय-तृष्णाको हृदयसे निकाल दो। इस प्रकार मनदमनपूर्वक दूसरोंके गुण-दोष देखना छोड़ कर सेवनयोग्य हरिकथारसको तुम भली भाँति सबही समय पीते रहो" ॥ ८० ॥

एवं सुतोक्तिवशतोऽपि गृहं विहाय
यातो वनं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः ॥
युक्तो हरेरनुदिनं परिचर्ययातः
श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात् ॥ ८१ ॥

हे नारद! साठ वर्षसे अधिक अवस्थावाले आत्मदेव इस प्रकार पुत्रके कहनेसे बुद्धिको विवेकसे स्थिर कर घरको छोड़ वनको गये और वहाँ हरिमें मन लगा कर नित्य दशमस्कन्धका पाठ और हरिकी आराधना करते हुए अन्त समय आने पर श्रीकृष्णके परम पदको प्राप्त हुए ॥ ८१ ॥

इति श्रीभागवतमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय।

धुंधुकारीकी प्रेतयोनिसे मोक्ष।

सूत उवाच—पितर्युपरते तेन जननी ताडिता भृशम् ॥
क्व वित्तं तिष्ठते ब्रूहि हनिष्ये लत्तया न चेत् ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं। हे शौनक! पिताके मरने पर धुंधुकारीने एक दिन अपनी माताको बहुत पीटा और कहा कि—"बता धन कहाँ धरा है, नहीं तो मारे लातोंके मार डालूँगा" ॥ १ ॥ पुत्रके इस कथनसे डर कर और उसकी नित्यकी दुष्टतासे दुःखित होकर धुंधुकारीकी माता रातको कुँएमें गिर कर मर गई ॥ २ ॥ गोकर्णभी तीर्थयात्राके लिये चलदिये; क्योंकि वह तो योगी थे, उनकी दृष्टिमें तो न कोई मित्र था और न कोई शत्रु था—न कुछ सुख था और न कुछ दुःख था ॥३॥ अब अकेला धुंधुकारी रह गया, उसने पाँच वेश्याओंको घरमें लाकर रक्खा। वेश्यासंगमें उसकी बुद्धि निपट भ्रष्ट होगई। यदि खुल गया तो क्या दशा होगी—इसका कुछभी विचार न कर वह उन स्त्रियोंके पालने और प्रसन्न रखनेके लिये अत्यन्त उग्र कर्म करता

था॥ ४ ॥ एक दिन उन कुलटा स्त्रियोंने आभूषण लानेके लिये कहा। धुंधुकारी तो कामसे अंधा हो रहा था, उसको अपनी होनेवाली मृत्यु नहीं देख पड़ी। बस, वह उसी समय आभूषणोंके लिये चोरी करने गया और इधर उधरसे धन चुरा कर फिर घरको लौट आया। घरमें आकर उसने उन स्त्रियोंको बहुत सा सोना और कुछ बहुमूल्य आभूषण भी दिये ॥ ५ ॥ ६ ॥ धुंधुकारीके लाये हुए उस अपरिमित धनका ढेर देख कर वे वेश्याएँ रातको परस्पर कहने लगीं कि–"यह नित्य चोरी करता है, इससे एक दिन अवश्य पकड़ा जायगा। राजा इसको पकड़ कर मरवा डालेगा और सब सम्पत्ति लेलेगा। इस लिये हमही क्यों न इसे गुप्त रीतिसे मार कर सब धन पचालें? इसको मारनेके उपरान्त धन लेकर जहाँ चाहे चली जायँगी"। इस प्रकार निश्चय करके उन वेश्याओंने पहले अचेत सोरहे धुंधुकारीके हाथ पाँव कस कर बाँध दिये और फिर गलेमें फाँसी लगा कर मारनेकी चेष्टा करने लगीं। परन्तु इस प्रकार धुंधुकारी शीघ्र नहीं मरा, जिससे अत्यन्त चिन्तित होकर उन नष्टा स्त्रियोंने जलते हुए आगके अंगारे उसके मुखमें ठूँस दिये। अग्निकी ज्वालासे अत्यन्त दुःखित और व्याकुल हो छटपटा कर चटपट धुंधुकारी मर गया ॥ ७–११ ॥ तब उन साहस करनेवाली वेश्याओंने धुंधुकारीके शरीरको एक गढ़ा खोद कर घरमेंही गाड़ दिया। इस रहस्यको किसीने भी नहीं जाना ॥ १२ ॥ यदि कोई उन स्त्रियोंसे पूछता था कि धुंधुकारी कहाँ गया? तो कह देती थीं कि "हमारा मालिक किसी दूर देशको धन कमाने गया है; इसी साल लौट आवेगा" ॥ १३ ॥ सच है, चाहे जैसी अनुगामिनी स्त्री हो परन्तु चतुर मनुष्यको उसका विश्वास न करना चाहिये। जो कोई मूर्ख विश्वास करता है उसे प्रति दिन भाँति २ के दुःख मिलते हैं ॥ १४ ॥ जिनके बोल अमृत ऐसे मीठे हैं–इसीसे कामी पुरुषोंके लिये रस बढ़ानेवाले हैं और हृदय छुरेकी धाराके समान तीक्ष्ण है उन स्त्रियोंके लिये प्रिय कोई नहीं है ॥ १५ ॥ अनेकानेक पुरुषोंके पास रहनेवाली वे वेश्याएँ धन लेकर कहीं चली गईं और धुंधुकारी अपने कुकर्मके कारण अकालमृत्यु होनेसे महा प्रेत हुआ ॥ १६ ॥ वायुरूप वह प्रेत दशो दिशाओंमें दौड़ा करता था एवं भूख, प्यास, और घाम व जाड़ेसे कष्ट पाकर बेचैनीसे वारम्वार 'हाय दैव!' कह कर रोता रहता था। कुछ कालमें लोगोंके मुखसे धुंधुकारीके मरनेका समाचार सुन कर गोकर्णने अनाथ समझ कर उसके उद्देशसे गयामें श्राद्ध करके पिण्ड दिया और जहाँ २ जिस तीर्थमें गये वहाँ उसका भी श्राद्ध किया ॥ १७–१९ ॥ इस प्रकार घूमते २ गोकर्णजी अपनी जन्मभूमिमें पहुँचे और घरमें गये। रातको घरके आँगनमें गोकर्ण सोरहे थे, आधीरातके समय अलक्ष्यरूप धुंधुकारीने घरमें आकर सोते हुए अपने भाई गोकर्णको कई एक महा घोर रूप दिखाये। कभी भेंड़ा, कभी हाथी, कभी भैंसा, कभी इन्द्र और कभी अग्नि

बननेके उपरान्त अन्तमें वह पुरुषरूपसे गोकर्णके आगे खड़ा होगया। इस प्रकारका विचित्र और भयानक दृश्य देख कर गोकर्णने हृदयको दृढ़ किया और धैर्यधारणपूर्वक विचारा कि 'अवश्यही यह कोई दुर्गतिको प्राप्त प्राणी है'। ऐसा निश्चय कर गोकर्णने उससे कहा कि—"अत्यन्त उग्ररूप तू कौन है जो रातको मुझे सतानेकी चेष्टा कर रहा है (तेरी यह दशा क्यों हुई है) तू प्रेत है—पिशाच है या राक्षस है? हमसे कह दे" ॥ २०–२४ ॥ **सूतजी कहते हैं**। इस प्रकार गोकर्णके पूछने पर वह वारंवार रोकर केवल संज्ञा (इशारा) मात्रसे अपना दुःख और कष्ट बताता रहा; क्योंकि कुछ बोलनेकी शक्ति उसमें न थी ॥ २५ ॥ तब गोकर्णने अंजलीमें जल लेकर उसके एक छींटा मारा। उस जलके पड़नेसे धुंधुकारीके पाप नष्ट होगये और उसमें बोलनेकी शक्ति आगई ॥ २६ ॥ **धुंधुकारीने कहा कि**—"मैं तुम्हारा भाई धुंधुकारी हूँ। मैंने अपनेही कर्मदोषसे अपना ब्रह्मतेज मिटा दिया ॥ २७ ॥ मैं महामूढ़ हो रहा था, मेरे कुकर्मोंकी कोई संख्या नहीं है। मैंने लोगोंको सताया और मारा एवं अन्तमें मुझको दुष्टा स्त्रियोंने धोखा देकर बड़ी दुर्दशासे मारडाला ॥ २८ ॥ उस कुमृत्युसे प्रेत होकर इस दुर्दशामें पड़ा हुआ दुःख भोग रहा हूँ। दैवाधीन फल भोगता हुआ केवल वायु खाकर जीवन धारण करता हूँ ॥ २९ ॥ अहो! हे कृपासिन्धु बन्धु! हे भाई! मुझको इस दुष्ट योनिकी दुर्दशासे शीघ्र छुड़ाओ"। उसके ये वचन सुन कर गोकर्णने कहा कि "तेरे लिये तो मैंने गयामें विधिपूर्वक पिण्ड दिया है, तब तेरी मुक्ति क्यों नहीं हुई? मुझको यह देख कर बड़ा आश्चर्य जान पड़ता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ यदि तेरी गया श्राद्धसेभी मुक्ति नहीं हुई तो फिर और कोई उपाय तो मुझे देख नहीं पड़ता। यदि कोई उपाय तू जानता हो तो हमसे विस्तारसहित वर्णन कर" ॥ ३२ ॥ **प्रेतने कहा**—"एक क्या, सौ गया श्राद्धसेभी मेरी मुक्ति नहीं होसक्ती, अतएव अब कोई और उपाय विचारिये" ॥ ३३ ॥ उसके ये वाक्य सुन कर गोकर्णको बड़ाही विस्मय हुआ और वह कहने लगे कि "जो सौ श्राद्धसे भी तेरी मुक्ति नहीं हुई तो फिर उसका होना असम्भव अर्थात् तेरा इस योनिसे छूटना असाध्यही है ॥ ३४ ॥ अच्छा हे प्रेत! इस समय तो तू अपने स्थान पर निर्भय भावसे जाकर बैठ। मैं फिर विचार करके तुझे मुक्त करनेवाला कोई उपाय करूँगा" ॥ ३५ ॥ गोकर्णके कहनेसे तब धुंधुकारी अपने स्थानको चला गया, और गोकर्णजी रात भर सोचते रहे, परन्तु कोई उपाय न सूझ पड़ा। इसीमें रात बीत गई, सवेरा हुआ, और सब पास परोसके और गाँववाले गोकर्णके आनेका समाचार पाकर प्रसन्नतापूर्वक उनसे मिलनेके लिये आने लगे। गोकर्णने रातको जो कुछ देखा सुना था सो सब विस्तारपूर्वक उनसे कहा। बड़े २ विद्वान्, योगी, ज्ञानी और ब्रह्मज्ञानी मुनीश्वरोंको सब शास्त्रोंमें खोज करने पर भी धुंधुकारीकी

मुक्तिका कोई उपाय नहीं देख पड़ा ॥ ३६–३८ ॥ तब सबने निश्चय किया कि इस विषयमें सूर्यनारायण जो कहें करना चाहिये । गोकर्णने उस समय अपने तपोबलसे सूर्यकी गति रोक दी ॥ ३९ ॥ और कहा कि हे जगत्के साक्षी! तुमको प्रणाम है, कृपा करके प्रेतकी मुक्तिका उपाय बताइये ॥ ४० ॥ तब सुदूर सूर्यमण्डलसे ये बचन स्पष्ट सुन पड़े कि "श्रीमद्भागवतकी सप्ताह बाँच कर सुनानेसे प्रेतकी मुक्ति अवश्य होगी" ॥ ४१ ॥ सूर्यनारायणकी इस धर्मरूप वाक्यको सुन कर सबने कहा कि "यत्नपूर्वक यही करना चाहिये, यह सहजमेंही होसक्ता है" ॥ ४२ ॥ गोकर्णभी यही निश्चय करके सप्ताह बाँचनेके लिये उद्यत हुए और उस समय यह सुन कर दूर २ देशों और गाँवोंसे लँगड़े, लूले, दीन, अंधे और वृद्धलोग कथा सुन कर अपने २ पाप दूर करनेके लिये वहाँ आने लगे। देवतोंकोभी विस्मित करनेवाला बड़ा भारी उत्सव समागम हुआ ॥४३॥ ॥४४॥ जैसे आसन पर बैठ कर गोकर्णजी कथा कहने लगे वैसेही वह प्रेतभी वहाँ आया और अपने बैठने योग्य स्थान इधर उधर देखने लगा। वहाँ पर एक सात गाँठका पोला बाँस लगा हुआ था उसीकी जड़के छेदमें घुस कर धुंधुकारी कथा सुनने लगा। वह वायुरूपी होनेके कारण और कहीं बैठ नहीं सका, इस कारण उसी बाँसमें बैठा। गोकर्णने एक वैष्णव ब्राह्मणको मुख्य श्रोता बना कर बैठा लिया और पहले दिन प्रथमस्कन्धसे आरंभ कर जहाँ पर विश्राम होना चाहिये वहाँतक स्पष्ट कथा कह कर सायंकालको विश्राम किया, उस समय एक बड़ेही आश्चर्यकी बात हुई—सब लोगोंके सामने उस बाँसकी, जिसमें प्रेत बैठा था, नीचेसे एक पोर फट गई और उसका शब्द सुन पड़ा। ऐसेही दूसरे दिन सायंकालको दूसरी और तीसरे दिन उसी समय तीसरी पोर फट गई। इसी प्रकार सातदिनमें बाँसके सातो पोर फट गये ॥ ४५–५० ॥ बारहो स्कन्ध पूर्ण भागवतकी कथा सुननेसे धुंधुकारीकी प्रेतयोनि छूट गई। वह तुलसीकी माला पहने, पीतपटधारी, घनश्याम, मुकुट व कुण्डलोंसे सुशोभित दिव्य रूप होगया। उसने शीघ्रही शिर नवा कर अपने भाई गोकर्णको प्रणाम किया और कहा कि—"हे भाई! तुमने कृपा करके मुझको इस प्रेतयोनिके कष्टसे छुड़ा दिया। अहो! भागवत कथा धन्य है जिससे प्रेतयोनिकीभी प्रबल पीड़ा मिट जाती है ॥ ५१–५३ ॥ यह सप्ताह पारायणभी धन्य है जिसके फलसे कृष्णलोक मिलता है। सप्ताह सुननेके विचारसेही सब पातक काँप उठते हैं कि यह कथा शीघ्रही हमारा संहार कर डालेगी। जैसे अग्नि सब लकड़ियोंको जला कर भस्म कर देता है वैसेही मन, वाणी और कायासे किये गये गीले, सूखे अथवा छोटे, बड़े-सब प्रकारके पातक सप्ताहके सुननेसे भस्म होजाते हैं। वेदके जाननेवाले विद्वानोंका कथन है कि इस भारत वर्षमें उत्पन्न होकर जिसने कथा नहीं सुनी उसका जन्म वृथा है। भागवत शास्त्रकी कथा नहीं

सुनी और मोहके कारण पालन पोषण करते हुए इस अनित्य शरीरकोही बलवान् बनाया तो उसने अपने जन्मको व्यर्थ बिता दिया ॥ ५४—५७ ॥ विद्वान् लोगोंका कथन है कि-"यह शरीर हड्डियोंके खंभोंके सहारे खड़ा हुआ और स्नायुके बंधनोंसें बँधा हुआ एवं मांस व रुधिरसे लिपा हुआ है। इसके ऊपर चमड़ा चढ़ा हुआ है। इसमें महा दुर्गंधि आती है क्योंकि यह मल मूत्रका कुण्ड है। यह रोगोंका मन्दिर है और अपने जरा (बुढ़ापा), शोक आदि परिणामोंसे पीड़ित रहता है। इसका अन्तकाल सबही समय समीप समझना चाहिये। इसकी आवश्यकताओंका पूर्ण होना महाकठिन है। यह दुर्धर, दुष्ट, दोषयुक्त और क्षणभंगुर है एवं अन्तमें (किसी स्थान पर गाड़ देनेसे) कृमि (किसी पशुके खालेने पर) विष्ठा और (जलादेने पर) भस्म—ये तीनही गति इसकी होती हैं। वह मनुष्य महामूर्ख है जो इस अनित्य शरीरसे नित्य कर्मको सिद्ध नहीं कर लेता। जो अन्न सवेरे बनाया जाता है वह सायंकालको बिगड़ जाता है तब उसी अन्नके रससे पुष्ट यह शरीर कैसे नित्य होसक्ता है? सप्ताहके सुननेसे लोगोंको हरि भगवान् निकटही (सहजमेंही) मिल जाते हैं ॥ ५८—६२ ॥ इस कारण सब दोषोंको मिटानेवाला यही एक उत्तम उपाय है । जो लोग सप्ताह कथा नहीं सुनते वे जलमें बुल्लोंके सदृश अथवा जीवोंमें मच्छड़ोंके समान केवल मरनेहीके लिये जन्म लेते हैं ॥ ६३ ॥ जिससे जड़ और सूखे बाँसकी गाँठ फूट गई उस कथाके सुननेसे यदि चित्तकी गाँठ छूट जाय तो कौन आश्चर्यकी बात है? ॥ ६४ ॥ सप्ताह सुननेसे मनुष्यके हृदयकी गाँठ खुल जाती है, सब संशय दूर होजाते हैं और सब कर्म क्षीण होजाते हैं ॥ ६५ ॥ पण्डितोंका कथन है कि चित्तमें संसारकी कीचड़के लेपको धो बहानेमें प्रवीण इस कथारूप तीर्थके स्थित होने पर अवश्यही मुक्ति मिल जाती है" ॥ ६६ ॥ दिव्यरूप धुंधुकारी यों कही रहा था, इतनेमें वैकुंठवासी विष्णुके पार्षदोंसे सुशोभित सूर्यमण्डलके समान प्रकाशमान एक विमान वहाँ पर आकाश मार्गसे आकर उपस्थित हुआ और सबके सामनेही धुंधुलीका पुत्र धुंधुकारी उस पर चढ़ गया। तब विमान पर विराजमान विष्णुके पार्षदोंसे गोकर्णने कहा कि "महाशयो! मेरी कथाको निर्मल चित्तसे सुननेवाले अनेकानेक श्रोता लोग उपस्थित हैं, उनके लियेभी इसी विमानके साथ और बहुतसे विमान आप लोग क्यों नहीं लाये? सबने समान भावसे कथा सुनी, फिर यह फल मिलनेमें भेद कैसे हुआ? हे हरिके प्रिय पार्षदो! इस मेरे संदेहको दूर करो" ॥ ६७—७० ॥ हरिके सेवकोंने कहा—"महाशय! सबने एकही भावसे कथा नहीं सुनी, इसीसे फलमेंभी भेद हुआ। सुना तो सबने, परन्तु इस (धुंधुकारी)के समान किसीने मनन नहीं किया। यही कारण है कि भजनमेंभी फलभेद उपस्थित हुआ। हे मानद! प्रेतने सात दिन तक निर्जल व्रत रख कर

कथाको सुना और स्थिरचित्तसे वारम्वार उसका मननभी किया । जो ज्ञान दृढ़ नहीं है वह निष्फल है और जो मन लगा कर नहीं सुना गया वह सुननाभी व्यर्थ है । ऐसेही संदेहसे मन्त्रका फल जाता रहता है और चित्त व्यग्र होनेसे जपका फल नहीं होता । जिस देशमें कोई विष्णुका भक्त जन नहीं है वह देश नष्ट है, और जिस श्राद्धमें कुपात्र कुलक्षण ब्राह्मणको निमन्त्रण दिया जाता है वह भी निष्फल है । जिसने धर्मशास्त्रोंको पढ़ा सुना नहीं उस अश्रोत्रिय ब्राह्मणको 'दान' देना व्यर्थ है और वैसेही सदाचार छोड़ देनेसे कुलीनका कुलभी व्यर्थ होजाता है । गुरुके वाक्यमें विश्वास करके अपनेमें दीन भावना करता हुआ मनोदमनपूर्वक एकाग्रबुद्धिसे कथा सुननेवालाही सुननेके सम्पूर्ण फलको प्राप्त होता है ॥७१-७६॥ ये श्रोतागण फिरसे पूर्वोक्त प्रकारसे मन लगाकर कथा सुनें तो कथा समाप्त होने पर अवश्यही वैकुण्ठवास पावेंगे । और हे गोकर्ण! तुमको गोविन्द भगवान् स्वयं आकर गोलोकमें लेजायँगे" ॥ ७७ ॥ यों कहकर हरिकीर्त्तन करते हुए वे पार्षद विमानसहित वैकुण्ठको चलेगये । गोकर्णनेभी फिर श्रावणके महीनेमें वैसेही उत्साह सहित सप्ताह बाँची और फिर उन सब श्रोतालोगोंने मन लगाकर कथा सुनी । हे नारद ! कथा समाप्त होनेपर जो अद्भुत घटना हुई सो मैं कहता हूँ, सुनो ॥ ७८ ॥ ॥ ७९ ॥ उस समय अपने परम भक्तोंको साथ लिये अनेकानेक विमानों सहित हरि भगवान् वहाँ पर प्रकट हुए । यह देखकर सब लोग परम आनन्दसे "जय २, नमोनमः" कहने लगे । हर्षित होकर स्वयं हरिने पांचजन्य शंख बजाया और गोकर्णको गले लगाकर अपनही सदृश चतुर्भुज रूप कर दिया ॥८०॥८१॥ औरभी सब श्रोता लोग उसीक्षण हरिकी कृपासे घनश्याम, पीतपटधारी और किरीट व कुंडलोंसे सुशोभित होकर हरिके सदृश होगये ॥ ८२ ॥ उस गाँवमें स्थित कुत्ते और चाण्डाल पर्य्यन्त सब जीव, ईश्वर प्रेरित गोकर्णकी कृपासे सारूप्य मोक्ष पाकर विमानों पर बैठ उस हरिधामको गये जहाँ योगीजन जाते हैं । कथा सुन-नेसे अत्यन्त प्रसन्न भक्तवत्सल श्रीगोविन्द भी प्रिय भक्त गोकर्णको लेकर गो-गोप-गोपीगणके परमप्यारे गोलोकको गये । जैसे श्रीरामचन्द्रजी परमधाम जाते समय सब अयोध्यावासियोंको अपने साथ लेगयेथे वैसेही श्रीकृष्णचन्द्रभी उन सब लोगोंको योगियोंको भी दुर्लभ गोलोकमें लेगये । जहाँ सूर्य्य, चन्द्रमा और सिद्धलोगोंकी भी पहुँच नहीं है उसी गोलोकको वे लोग श्रीमद्भागवत सुनकर सहजमेंही चलेगये ॥ ८३-८६ ॥ हम तुमसे सप्ताह यज्ञमें हरिकथाओंके सुन-नेका अत्यन्त पवित्र महाफल और कहाँतक कहें—जिन्होने कानोंके द्वारा गोकर्णके मुखसे हरिकथाका सुधासमान एक अक्षरभी पिया था वे फिर गर्भमें नहीं गये ॥ ८७ ॥ वायु, जल और सूखे पत्ते खाकर शरीर सुखाकर चिरकालतक कियेगये उग्र तप और योगाभ्याससे भी वह गति नहीं मिलती जो सप्ताहके सुननेसे सह-

जहीमें मिलजाती है ॥ ८८ ॥ हे नारद! इस पवित्र इतिहासको चित्रकूट पर्वत पर स्थित महामुनि शांडिल्यजी ब्रह्मानन्दमें मग्न होकर पढ़ा करते हैं ॥ ८९ ॥

आख्यानमेतत्परमं पवित्रं श्रुतं सकृद्वै विदहेदघौघम् ॥
श्राद्धे प्रयुक्तं पितृतृप्तिमावहेन्नित्यं सुपाठादपुनर्भवं च ॥९०॥

यह उपाख्यान परम पवित्र है, इसे एकबार सुननेसे भी पापपुंज नष्ट हो जाते हैं । श्राद्धमें इसे पढ़नेसे पितरोंको अक्षय तृप्ति होती है और नित्य पढ़नेसे आवागमनसे मुक्ति होजाती है ॥ ९० ॥

इति श्रीभागवतमाहात्म्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय ।

सप्ताहके सुननेकी विधि आदिका वर्णन ।

कुमारा उचुः—अथ ते संप्रवक्ष्यामः सप्ताहश्रवणे विधिम् ॥
सहायैर्वसुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिः स्मृतः ॥ १ ॥

सनकादिकोंने कहा । हे नारद! अब हम तुमसे सप्ताहके सुननेकी विधि कहते हैं । सज्जनोंकी सहायतासे और धनसे इस विधिका पूर्ण होना सहजसाध्य है ॥ १ ॥ पहले ज्योतिषीको बुलाकर उससे यत्नपूर्वक शुभ मुहूर्त्त पूछना चाहिये और फिर विवाहकी ऐसी धूमधाम करनी चाहिये । बिवाहमें जैसे धन खर्च किया जाता है वैसेही यथाशक्ति इसमेंभी धन खर्च करना चाहिये, क्योंकि यह सबसे बढ़कर उत्तम मङ्गलका काम है ॥२॥ भादों, कुँआर, कार्तिक, अगहन, आषाढ़ और श्रावण—इन महीनोंमें कथाका आरंभ होना चाहिये, क्योंकि ये शुभ मास हैं, इनमें कथा सुननेसे अवश्य मुक्ति मिलती है ॥३॥ जिन महीनोंमें महामारी आदि उपद्रव हों उन्हे सर्वथा त्याग देना चाहिये । जो लोग हरिभक्त उद्यमी और सज्जन हों उन्हे इस यज्ञमें सहायक बनाकर देश देशमें यत्नपूर्वक यह समाचार भेजे कि यहाँ कथा होगी, आपलोग सकुटुम्ब आवें । मूर्ख होनेके कारण हरिकी कथा और हरिकीर्त्तनसे दूर रहनेवाले व्यक्ति तथा स्त्री और शूद्र आदि अपढ़ोंको भी सप्ताह सुननेसे ज्ञान होता है ॥ ४-६ ॥ देश २ में जो हरिकीर्त्तनके प्रेमी विरक्त विष्णुभक्त हों उनको भी इसप्रकार पत्र लिखकर भेजना चाहिये कि यहाँ सात दिनके लिये अत्यन्त दुर्लभ सज्जनोंका समागम होगा और उसमें अपूर्व रसमयी भागवत कथा होगी । हे कथारसके रसिक और हरिके प्रेमीजन! आपलोग श्रीभागवतकथारूप अमृत पीनेके लिये शीघ्र आइये । यदि इतना अवकाश न हो तो एकही

दिनके लिये अवश्य आइयेगा, क्योंकि एक क्षणभरभी कथा सुननेको मिलना अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ७–१० ॥ इस प्रकार विनयपूर्वक सबलोगोंको बुलाना चाहिये और फिर आनेवालोंके टिकनेके लिये स्थानका प्रबन्ध करना चाहिये ॥ ११ ॥ किसी तीर्थपर या एकान्त वनमें अथवा अपने घरमें कथा सुनना उचित है। जहाँ बड़ा भारी मैदान हो और पृथ्वी बराबर हो वहाँ कथा बँचवाना चाहिये ॥ १२ ॥ पहले पृथ्वीको शोधकर बराबर करे, फिर छिड़ककर बहारकर लीपकर उसस्थानको अनेक धातुओं (गेरू आदि) से रँगना चाहिये। घरमें कथा हो तो घरकी सब सामग्री उठाकर एक कोनेमें धरदे ॥ १३ ॥ चारो ओर बैठनेके लिये आसन बिछावे। पाँच हाथ दीवालसे हटाहुआ और ऊँचा मण्डप बनावे। चारो कोनोंपर और सामने केले गाड़कर फल फूलोंके गुच्छे, मालाएँ और बन्दनवार आदिसे मण्डपको सुसज्जित करे एवं ऊपर वितान (चँदोआ) तानकर चारो दिशाओंमें ध्वजाएँ बाँधे। इस प्रकार अनेक सामानोंसे मण्डपको सजावे और उसके ऊपर विस्तारपूर्वक सात लोकोंकी रचना करे एवं उनमें विरक्त ब्राह्मणोंको यथाक्रम कल्पित आसनों पर प्रबोधित करके बैठावे। फिर कथा बाँचनेवालेके लिये दिव्य सिंहासन (व्यासगद्दी) पर उत्तम आसन बिछावे ॥ १४–१७ ॥ यदि वक्ताका उत्तरको मुख हो तो श्रोता पूर्वमुख बैठे और यदि वक्ता पूर्वमुख हो तो श्रोता उत्तर-मुख होकर बैठे ॥ १८ ॥ अथवा देशकालको भली भाँति जाननेवाले शास्त्रकार लोगोंकी सम्मतिके अनुसार पूज्य और पूजकके मध्यमें पूर्वदिशाही होनी चाहिये अर्थात् वक्ता और श्रोता दोनोही पूर्वमुख होकर बैठें ॥ १९ ॥ विरक्त, विष्णुभक्त ब्राह्मण, वेद और शास्त्रको स्पष्टरूपसे समझानेकी शक्ति रखनेवाला, दृष्टान्त देनेमें चतुर, धीर और अत्यन्त निस्पृह, ऐसा सुशील 'वक्ता' होना चाहिये ॥२०॥ जो अनेक सम्प्रदायों (अर्थात् मतमतान्तर) के झगडोंसे भ्रान्तिमें पड़े हुए हों, विषयी हों, पाखण्डी हों—वे चाहे कैसेही विद्वान् क्यों न हों किन्तु वक्ता बननेके योग्य नहीं हैं ॥ २१ ॥ वक्ताके पास सहायताके लिये एक वैसेही विद्वान् ब्राह्मणका उपस्थित रहना आवश्यक है। वह स्वयं पंडित अर्थात् सत् और असत्का बिवेक रखता हो और सुननेवालोंके सन्देहोंको निवृत्त करता हुआ उनको सब कठिन विषय समझाता रहे ॥ २२ ॥ वक्ताको चाहिये कि व्रतग्रहणके पहले क्षौरकर्म्म कराडाले और नित्य अरुणोदय होनेपर शौचके उपरान्त स्नान और संक्षेपसे संध्या-वन्दन आदि नित्य कर्म करे। श्रोता भी (पहले दिन) स्नान पूजनादि और पितृ तर्पणके उपरान्त सब कर्मोंके पहले, जिसमें कथामें किसीप्रकारका विघ्न न हो इस-लिये गणेशजीका पूजन करे। फिर नवग्रहादि देवपूजा करनेके उपरान्त शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करडाले। तदनन्तर शुद्ध होकर एक मण्डल बनावे और उस पर विष्णुकी प्रतिमा स्थापित करे ॥ २३–२५ ॥ फिर कृष्णके उद्देशसे उसी मूर्त्तिमें

क्रमशः विधिपूर्वक द्वादशाक्षर (ॐनमो भगवते वासुदेवाय–इस) मंत्रसे पूजा करे और पूजाकरनेके उपरान्त प्रदक्षिणा व प्रणाम करके इस प्रकार स्तुति करे कि–"हे करुणानिधि नाथ! मैं संसारसागरमें मग्न हो रहा हूँ, कर्ममोहके मगरने मुझे ग्रस लिया है। इस दुस्तर संसारसमुद्रसे मेरा उद्धार करिये" ॥ २६ ॥ २७ ॥ फिर विधिपूर्वक प्रसन्नतासहित सावधानीसे श्रीमद्भागवत (पुस्तक) की पूजा करे और धूप देकर आरती उतारे ॥ २८ ॥ एक नारियल भेंट देकर प्रणाम करे और फिर हाथ जोड़कर प्रसन्न चित्तसे इस प्रकार स्तुति करे कि–हे श्रीमद्भागवत शास्त्र! तुम साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्रकी मूर्त्ति हो। भवसागरमें पड़ेहुए मुझ अज्ञानीने मुक्तिके लिये आपको अपनाया है। हे नाथ! हे केशव! आप मेरे इस मनोरथको अवश्य सफल करियेगा, क्योंकि मैं आपका अनन्य दास हूँ ॥२९–३१॥ इस प्रकार दीन वचनोंसे प्रार्थना करके फिर वक्ताकी पूजा करे। चन्दन, माला आदिसे पूजा करनेके उपरान्त वस्त्र, आभूषण आदि चढ़ा कर अंतमें हाथ जोड़कर प्रार्थना करे कि 'हे शुकरूप! हे ज्ञानदानमें निपुण! हे सर्व शास्त्रविशारद! यह कथा सुना कर मेरे अज्ञानको दूर करिये' ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ फिर वक्ता और हरिमूर्त्तिके आगे अपने श्रेयके लिये नियम लेकर सात दिन तक आनन्दसे यथाशक्ति उसका प्रतिपालन करे ॥ ३४ ॥ कथाके आदिमें पाँच ब्राह्मणोंको द्वादशाक्षर मंत्र जपनेके लिये 'वरण' करना चाहिये, जिससे कथामें किसी प्रकारका विघ्न न उठ खड़ा हो ॥ ३५ ॥ फिर अन्यान्य ब्राह्मण, वैष्णवजन और हरिकीर्तनके प्रेमी लोगोंको पूजनपूर्वक प्रणाम करनेके उपरान्त उनसे आज्ञा लेकर अपने आसन पर बैठे ॥ ३६ ॥ संसार, सम्पत्ति, धन, भवन, पुत्र आदिकी चिन्ता छोड़ कर कथामें चित्त लगावे; इस प्रकार शुद्ध बुद्धिसे जो कथा सुनता है उसे उत्तम और पूर्ण फल मिलता है ॥ ३७ ॥ बुद्धिमान् वक्ता सूर्य्योदयसे लेकर साढ़े तीन पहर तक धीर कण्ठसे भली भाँति कथा बाँचे ॥ ३८ ॥ दो पहरके समय दो घड़ीके लिये कथाको बंद कर विश्राम करना चाहिये, उस समय विष्णुभक्त लोगोंको सुनीहुई कथाके अनुसार हरिकीर्तन करना उचित है ॥ ३९ ॥ वक्ताको और श्रोतागणकोभी केवल एक वार हविष्यान्न, सो भी थोड़ाही खाना चाहिये जिसमें सुखसे कथा कही सुनी जासके, कोई व्याधि न उठ खड़ी हो और वारम्वार मलमूत्र त्यागके लिये न उठना पड़े ॥ ४० ॥ शक्तिके अनुसार सात दिन उपवास रख कर या केवल घी खाकर अथवा केवल दूध पीकर–जिस प्रकार सुखसे रहे वैसे कथा सुने ॥ ४१ ॥ अथवा फलाहार करे या एक बार (रोटी दाल आदि साधारण) भोजन करे। कह तो दिया जैसे सुख मिले और कथामें मन लगे वही करना उचित है ॥ ४२ ॥ भोजन करना श्रेष्ठ है, यदि उससे सुखपूर्वक मन लगा कर कथा सुनी जासके और उपवास करना नहीं श्रेष्ठ है, यदि उससे कथाके सुननेमें विघ्न हो ॥ ४३ ॥

अब हे नारद! जो लोग सप्ताहको नियमसे सुना चाहें उन्हे किस २ नियमका पालन करना चाहिये, सोभी कहते हैं–सुनो। जिन्होने विष्णुमंत्र नहीं लिया (अर्थात् जो विष्णुसे विमुख हैं) उन्हे कथा सुननेका अधिकार नहीं है॥ ४४॥ नियमसे कथा सुननेवालेको चाहिये कि ब्रह्मचर्य्यसे रहे, पृथ्वी पर सोवे, नित्य कथाके समाप्त होने पर पत्तलमें भोजन करे॥ ४५॥ दो दलके अन्न (उड़द, चना आदि), मधु, तैल और जो अन्न गरिष्ठ हो, भावदूषित हो, बासीहो, वह न खाना चाहिये॥ ४६॥ काम, क्रोध, मद (घमंड), मान (तेहा), मत्सर (डाह), लोभ, दंभ (दग़ाबाज़ी) मोह और द्वेषको त्याग दे॥ ४७॥ वेद, विष्णुके भक्त, ब्राह्मण, गुरु, गऊ, अन्यान्य व्रती जन, स्त्री, राजा और महात्मा महान् लोगोंकी निन्दा न करे॥ ४८॥ रजस्वला स्त्री, अन्त्यज (चाण्डाल आदि), म्लेच्छ, पतित, व्रात्य (जिन द्विजोंका यथा समय यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ और गायत्रीसे रहित हैं), विप्रद्रोही और वेदनिन्दक लोगोंसे बात न करे॥४९॥ सत्य बोले, शौचसे रहे, वृथा बात न करे। इस प्रकार उदारमनसे दयापूर्वक सरलतासहित नम्र रह कर कथा सुने॥ ५०॥ जो पुरुष दरिद्र हो, क्षय (तपेदिक) रोगसे क्षीण हो, अभागा हो, पातकी हो, सन्तानहीन हो अथवा मोक्षकी अभिलाषा रखता हो–उसे नियमपूर्वक सप्ताहकी कथा सुननी चाहिये॥ ५१॥ जिस स्त्रीके मासिक धर्म न होता हो, जो स्त्री वज्रबंध्या या साधारण बंध्या हो, जिसके बालक होकर मर जाते हों अथवा गर्भ गिर जाता हो–वह नियमपूर्वक सप्ताहकी कथा सुने॥ ५२॥ विधिपूर्वक सुननेसे ये सब दोष दूर हो जाते हैं और अक्षय पुण्य प्राप्त होता है। यह कथा अत्यन्त उत्तम और दिव्य है। इसे मन लगा कर विधिपूर्वक सुननेसे कोटि यज्ञ करनेका फल मिलता है॥ ५३॥ पूर्वोक्त विधिसे व्रत पालन करके फिर उद्यापन करे। जो लोग किसी कामनासे कथा सुनें उन्हीके लिये उद्यापन करना आवश्यक है। उद्यापनके दिन जन्माष्टमी व्रतके समान व्रत रखना चाहिये॥ ५४॥ जो लोग अकिञ्चन भक्त हैं उनके लिये उद्यापन करनेका नियम नहीं है, चाहे करें चाहे न करें; क्योंकि वे निष्काम वैष्णव होनेके कारण केवल कथा सुननेहीसे पवित्र हो जाते हैं॥ ५५॥ हे नारद! इस प्रकार जब सप्ताह यज्ञ समाप्त होजाय तब श्रोतालोगोंको चाहिये कि अत्यन्त भक्तिभावसे वक्ताकी और पुस्तककी पूजा करें॥ ५६॥ वक्ताको चाहिये कि श्रोता लोगोंको प्रसाद और तुलसीदल व चढ़ीहुई मालाएँ देकर आशीर्व्वाद करे। फिर मृदंग, करताल इत्यादि बजा कर हरिकीर्तन करना चाहिये। जय जय, नमोनमः कहना चाहिये। शंख, घड़ियाल, घंटा आदि बजाना चाहिये और यथाशक्ति ब्राह्मणोंको और याचकोंको धन, अन्न आदि देकर सन्तुष्ट करना चाहिये॥ ५७॥ ५८॥ यदि श्रोता विरक्त भक्त अर्थात् निष्काम हो तो समाप्तिके दूसरे

दिन गीता बाँचना चाहिये, और यदि गृहस्थ श्रोता हो तो कर्मशान्ति (पूर्ति) के लिये होम करना चाहिये ॥ ५९ ॥ विधिपूर्वक दशमस्कन्धके एक २ श्लोकको पढ़ कर खीर, मिठाई, घी, और तिल, यव, चावल मिला कर आहुति देना चाहिये ॥ ६० ॥ अथवा एकाग्र होकर गायत्रीके मन्त्रसे होम करे क्योंकि गायत्री परम तत्त्व अर्थात् ईश्वरका रूप है और यह भागवत पुराण तन्मय है ॥ ६१ ॥ यदि पूर्ण होम करनेकी शक्ति न हो तो समझदार श्रोताको चाहिये कि (थोड़ा सा हवन करके) हवनफलकी सिद्धिके लिये कुछ धन दे देवे। अनेक त्रुटियोंकी और न्यूनाधिक दोषकी शान्तिके लिये विष्णुसहस्रनामका पाठ करना उचित है। सहस्रनामके पाठसे सब सफल और परिपूर्ण होजाता है; क्योंकि विष्णुसहस्रनाम सर्वोपरि है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ फिर पीछे बारह ब्राह्मणोंको शक्कर खीर आदि उत्तम भोजन कराकर व्रतकी पूर्तिके लिये बाँचनेवालेको सुवर्णकी गऊ देना चाहिये ॥ ६४ ॥ यदि शक्ति हो तो तीन तोले सुवर्णका सिंहासन बनवाकर, उसके ऊपर ललित अक्षरोंसे लिखी गई श्रीमद्भागवतकी पुस्तक रख कर, पहले आवाहन आदि क्रमसे उसकी पूजा करके और फिर वस्त्र, भूषण, चन्दन, माला आदिसे कथा सुनानेवाले आचार्यकी पूजा करके दक्षिणासहित वह पुस्तक उस (वक्ता आचार्य)को देनी चाहिये। जो कोई सुन्दर बुद्धिवाला पुरुष (या स्त्री) इस प्रकार श्रीमद्भागवतका दान करता है वह जन्ममरणके कारणरूप कर्मबन्धनोंसे मुक्त होकर वैकुण्ठ लोकको जाता है। हे नारद! इस प्रकार सर्वपापविनाशक उक्त विधिके अनुसार शुभ श्रीमद्भागवत पुराण सुननेसे पूर्ण फल मिलता है और निस्सन्देह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष–ये चारो फल प्राप्त होते हैं ॥ ६५–६८ ॥ इतना कह कर सनकादिकोंने कहा कि हे नारद! यह सब सुननेकी विधि हमने तुमसे कही, अब कहो, और क्या सुनना चाहते हो? इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रीमद्भागवतसे भोग और मोक्षका मिलना कुछ कठिन नहीं है ॥ ६९ ॥

सूतजी कहते हैं। हे शौनक! यों माहात्म्य कह कर उन महात्मा मुनिवरोंने विधिपूर्वक सात दिन एकाग्रचित्तसे सुननेवाले सब प्राणियोंके आगे भोग और मोक्ष देनेवाली एवं सर्वपापनाशिनी श्रीमद्भागवतकी कथा कही, तथा कथा समाप्त होनेके उपरान्त अन्तमें यथामति पुरुषोत्तम हरिकी स्तुति की ॥७०॥७१॥ कथा समाप्त होने पर ज्ञान, वैराग्य और भक्ति–तीनो परम पुष्ट और सब प्राणियोंके मनको हरनेवाले सुन्दर तरुण होगये ॥७२॥ मनोरथ सिद्ध होनेसे नारदजीभी अपनेको कृतार्थ मानकर परम प्रसन्न हुए, परमानन्द होनेसे उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया ॥ ७३ ॥ हे शौनक! भगवान्‌के प्यारे और अनन्य भक्त नारदजी इस प्रकार कथा सुनकर सनकादिकोंके आगे हाथ जोड़कर खड़े हो प्रेमपूर्ण गद्गदवाणीसे कहने लगे कि "मैं धन्य हुआ, अनुगृहीत हुआ, आप करुणानिधियोंने मुझे

कृतार्थ करदिया। आज आपकी कृपासे मुझे सब पापोंके हरनेवाले हरि भगवान् मिलगये। हे तपोधन मुनीश्वरो! मैं सब धर्म्मों या साधनोंसे श्रीमद्भागवतके सुनने कोही श्रेष्ठ समझताहूँ, जिससे वैकुण्ठवासी श्रीकृष्ण भगवान् साक्षात् प्राप्त होते हैं" ॥ ७४-७६ ॥ **सूतजी कहते हैं।** वैष्णवोंमें श्रेष्ठ नारदजी यों कह रहेथे, इतनेमें अपनी इच्छाके अनुसार घूमते हुए महायोगेश्वर श्रीशुकदेवजी उस स्थानमें आगये ॥ ७७ ॥ देखनेमें जिनकी अवस्था सोलह वर्षकी जान पड़ती है उन ज्ञानमहासागरके निर्म्मल चन्द्रमा, आत्मलाभसे परिपूर्ण, महामहातेजस्वी व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजीको धीरे २ प्रेमसे भागवतका पाठ करते हुए कथा समाप्त होनेपर वहाँ उपस्थित देखकर सभामें बैठे हुए सबलोग सादर उठ खड़े हुए। नारदजीने प्रसन्नतापूर्वक बैठनेके लिये आसन देकर उनकी पूजा की। सुखपूर्वक आसन पर बैठकर श्रीशुकदेवजीने निर्मल वाणीसे जो पवित्र उपदेश किया, सो सुनो ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा**—"हे भावमर्म्मज्ञ रसिकजन! वेदरूप कल्पवृक्षसे पृथ्वीतलमें गिरे हुए और शुकमुखके द्वारा प्रकट अमृतके प्रवाहसे पूर्ण इस भागवत रस (अर्थात् रसमयफल)को प्रलयपर्यन्त वारम्वार पीते रहो ॥ ८० ॥ इसमें मत्सररहित सज्जनोंका शुद्ध निष्कपट परम धर्म्म कहागया है और कल्याणकारी, तीनो तापोंकी जड़को उखाड़ डालनेवाला, जानने योग्य वास्तव अर्थात् सत् वस्तु (ब्रह्म) विद्यमान है। इस महामुनि वेदव्यासप्रणीत श्रीमद्भागवतके सिवा क्या किसी अन्य साधनसे भी इतना शीघ्र हरिभगवान् हृदयमें लाकर रक्खे जासक्ते हैं? कभी नहीं। इसके सुननेकी इच्छा करतेही तत्क्षण उन सुकृती जनोंके हृदयमें आकर भगवान् वास करते हैं ॥ ८१ ॥ यह श्रीमद्भागवत पुराण सब पुराणोंका तिलक अर्थात् सर्वोपरि श्रेष्ठ है और वैष्णव लोगोंका धन अर्थात् सर्वस्व है। इसमें परमहंसधर्मरूप परम निर्मल ज्ञान गाया गया है और ज्ञान-वैराग्य-भक्तिसहित निष्कर्म धर्म (निवृत्तिमार्ग) प्रकट किया गया है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसे पढ़ता है, सुनता है और मनन करता है वह संसारसे मुक्त हो जाता है ॥ ८२ ॥ यह रस स्वर्गमें, सत्यलोकमेंभी, कैलासमें और वैकुण्ठमें भी नहीं है, इस लिये हे उत्तम भाग्यशाली लोगो! इसे पियो, किसी प्रकार न छोड़ो, न छोड़ो!" ॥ ८३ ॥ **सूतजी कहते हैं।** हे शौनक! इस प्रकार श्रीशुकदेवजी कह रहे थे, इसी अवसरमें उस सभाके बीच प्रह्लाद, वलि, उद्धव, अर्जुन आदि श्रेष्ठ भक्तोंसहित हरि भगवान् प्रकट हुए। नारदजीने प्रह्लाद आदि भक्तोंसहित हरिकी प्रेमपूर्वक पूजा की ॥ ८४ ॥ श्रेष्ठ आसन पर बैठे हुए हरिको प्रसन्न देख कर उनके आगे वे सब भक्तजन कीर्तन करने लगे। उस महाकीर्तनको देखनेके लिये उस समय वहाँ पर भवानीसहित भगवान् शङ्कर और ब्रह्माजी आकर उपस्थित हुए ॥ ८५ ॥ प्रह्लादजी चञ्चल चालसे चल २

कर ताल देने लगे, उद्धवजी मँजीरे बजाने लगे, नारदजी वीणा लेकर बजाने लगे, स्वरकुशल अर्जुनजी अनुरागसे राग अलापने लगे, इन्द्रदेव मृदङ्ग बजाने लगे, सनकादिक ऋषि उस कीर्तनमें जयजयकार करने लगे और रसरचनामें प्रवीण व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी भाव बताने लगे ॥ ८६ ॥ इन सब तेजस्वी जनोंके बीचमें हृष्ट पुष्ट भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नटोंके समान नाचने लगे । इस अलौकिक कीर्तनको देख कर हरि भगवान् परम प्रसन्न हुए और कहने लगे कि "हे अनुरक्त भक्तगण ! तुम मुझसे इस समय वांच्छित वर माँगो, मैं कथासे और इस कीर्तनसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ" । प्रेमरसमें जिनके चित्त मग्न हो रहे हैं वे भक्तजन हरिके इन वचनोंको सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले कि "भगवन् ! सप्ताहकी कथाओंमें ये सब भक्त अतियत्नपूर्वक एकाग्र चित्तसे आपकी भावना (चिन्तन) करते रहें, यही हम सबका मनोरथ है । इसीको आप परिपूर्ण करें" । भगवान् अच्युत 'तथास्तु' (ऐसाही हो) कह कर सबके देखते अदृश्य हो गये ॥ ८७–८९ ॥ तब नारदने हरिचरणोंके उद्देशसे प्रणाम करनेके उपरान्त शुकदेव आदि तापसोंको प्रणाम किया । तदनन्तर कथारूप अमृतके पीनेसे जिनका मोह मिट गया है वे सब श्रोता लोग अत्यन्त हर्षित होकर अपने २ स्थानको प्रस्थान कर चले गये ॥ ९० ॥ श्रीशुकदेवजीने ज्ञान-वैराग्यसहित भक्तिको उस समय अपने श्रीमद्भागवत शास्त्रमें स्थापित कर दिया । इसी कारण श्रीमद्भागवतके सेवनसे वैष्णव भक्तोंके चित्तमें हरिभगवान् तत्क्षण आजाते हैं ॥ ९१ ॥ दारिद्य, दुःख आदिके ज्वरसे जल रहे एवं माया-पिशाची द्वारा परिमर्दित और संसारसागरमें गिराये गये लोगोंको क्षेमदानके लिये मुक्त-कण्ठसे यह श्रीमद्भागवतशास्त्र गर्ज रहा है ॥ ९२ ॥ शौनकजीने कहा । हे सूत ! शुकदेवजीने परीक्षित्को और गोकर्णने धुन्धुकारीको एवं सनकादिकोंने नारदको कब-किस महीनेमें यह भागवत शास्त्र सुनाया है ? यह बता कर हमारा संशय निवृत्त करिये ॥ ९३ ॥ सूतने कहा । कृष्णके परमधामगमनके उपरान्त कलियुगके और तीस वर्ष बीतने पर भाद्रपदकी शुक्ला नवमीके दिन श्रीशुक-देवजीने कथाका आरंभ किया था ॥ ९४ ॥ परीक्षित्के कथा सुननेके उपरान्त कलियुगके और दो सौ वर्ष बीतने पर आषाढ़के शुक्ल पक्षकी नवमीके दिन गोकर्णने कथाका आरम्भ किया था ॥ ९५ ॥ तदनन्तर कलियुगके और भी तीस वर्ष बीतने पर कार्तिकके शुक्ल पक्षकी नवमीके दिन सनकादिकोंने कथाका आरम्भ किया था ॥ ९६ ॥ हे पापरहित ! यह जो तुमने पूछा सो मैंने तुम्हारे आगे भलीभाँति कह दिया । कलियुगमें भगवान्की कथा संसाररोगको नष्ट करने-वाली एकमात्र औषध है ॥ ९७ ॥ हे सन्तजन ! अन्य लोकवाञ्छित अर्थोंके परिशीलनकी सेवासे क्या फल होगा ? उसे छोड़ कर इस कृष्णकी प्यारी,

कलिकलुषहारिणी, मुक्ति देनेवाली और भक्तिको प्रतिक्षण बढ़ानेवाली कथाको वारम्वार सादर सुनते रहो। हाथमें कालपाश लिये हुए अपने दूतको देख कर उसके कानमें समझा कर यमराज कहते हैं कि देखो, जो लोग हरिकथासुधारस पीकर उसीमें मस्त हो रहे हों उनके पास कभी भूल कर न जाना! मैं अन्य लोगोंका शासक हूँ, परन्तु वैष्णवलोग मेरे अधिकार या शासनसे परे हैं॥ ९८॥ ॥ ९९॥ हे मनुष्यो! इस असार संसारमें विषयरूप विषम विषके संगसे तुम्हारी बुद्धि व्याकुल होरही है। तुम क्षेमके लिये आधी घड़ी भी भागवतरूप अनुपम अमृतको पियो। किस लिये कुकथाओंके कुपथमें जा रहे हो? भागवतकी कथा सुननेसे मुक्ति होती है—इस युक्तियुक्त उक्तिकी सत्यताके साक्षी राजा परीक्षित् ही हैं॥ १००॥ अकेले एकान्तमें विचरनेवाले परमहंस श्रीशुकदेवजीकी कही हुई यह भागवत कथा एक अमूल्यमणि है; इसे जो कोई कंठमें धारण करता है वह साक्षात् वैकुण्ठपति होजाता है॥ १०१॥ यह परम गुह्य तत्त्व सब सिद्धान्तोंसे सिद्ध है और मैंने सब शास्त्रोंको मथ कर यह तत्त्व निकाला है एवं सोई तुमसे कहता हूँ कि जगत्‌में भागवतकी कथासे बढ़ कर पवित्र और उत्तम और कुछ नहीं है; परम सुखके लिये द्वादशस्कन्धविस्तृत इस सारमय रसको पियो॥ १०२॥

एतां यो नियततया शृणोति भक्त्या
यश्चैनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्रे॥
तौ सम्यग्विधिकरणात्फलं लभेते
याथार्थ्यान्नहि भुवने किमप्यसाध्यम्॥ १०३॥

इस भागवतको जो कोई नित्य नियमसे भक्तिपूर्वक सुनता है और जो कोई विष्णुभक्तके आगे कहता है, वे दोनो भली भाँति विधिसे सुनने सुनानेके कारण पूर्ण फलको पाते हैं; क्योंकि यथार्थरीतिसे चेष्टा करनेसे संसारमें कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जो असाध्य हो॥ १०३॥

इति श्रीभागवतमाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

इति

ग्रंथकर्ताका परिचय ।

छप्पै ।

[१]

गर्गाश्रम है एक ग्राम गंगातट ऊपर ।
जिसको कहते लोग दूसरी काशी भू पर ॥
बसे वहाँ पर पुञ्जराजजी पूरे 'पण्डित' ।
परम प्रतिष्ठित कान्यकुब्जकुलमें गुणमण्डित ॥
जगत्प्रशंसित वंशधर जिनके अबतक हैं सभी ।
लिया जिन्होंने है नहीं दान-दक्षिणा कुछ कभी ॥

[२]

इसी वंशमें हुए उपासक श्रीशिवजीके ।
पाँडे रामाधार हितैषी सुहृदसभीके ॥
भव्यभावके भक्त नव्य दलके भी नेता ।
ऐसाही था कौन उन्हें जो मान न देता ॥
जाना था सत्कर्मका मर्म, धर्मका भेद सब ।
'करामलकवत' थे उन्हें वेद शास्त्र उपवेद सब ॥

[३]

उनके सुत शिवराम पिता मेरे सुरगुरुसम ।
विद्वानोंके वन्दनीय बलशाली सत्तम ॥
जिनसे जय पासका न कोई पण्डित आकर ।
पर न निरादर किया उन्होंने आदर पाकर ॥

उनका ही हूँ मैं तनय, महानन्द, सच जानिये ।
उनके पुण्य–प्रतापहीकी कृति यह सब मानिये ॥

[४]

'निर्णयसागर प्रेस' बम्बईका है नामी ।
तुकाराम जावजी सेठ हैं जिसके स्वामी ॥
उनकी आज्ञा और ईशकी इच्छा द्वारा ।
इस रचनामें हुआ सफल श्रम आज हमारा ॥
त्रुटियाँ तो होंगी बहुत इस भाषा अनुवादमें ।
किन्तु समझ हरिकी कथा क्षमा करें हरिजन हमें ॥

घनाक्षरी ।

[५]

बिन्दु[०] हय[७] अंक[९] एक[१] वैक्रमीय सम्वतमैं
भादौं वदी पञ्चमी महातम महतकी ।
शुद्ध गुरुवार शुभ योगमैं सवेरे समै
क्रमैक्रम पाय शुद्ध शैली मुनिमतकी ॥
नाय निज माथ त्यों मनाय गुरुनाथ
ह्वै सनाथ गुणगाथा गाय ब्रह्मचितसतकी ।
नारायण–रूप ध्याय लखनऊवासी
रूपनारायण पूरी करी भाषा भागवतकी ॥

[६]

श्रीधरस्वामिसम्मत्या मया तदनुसारतः ।
भावार्थबोधिनी टीकाऽकारि श्रीपतिप्रीतये ॥

[७]

पठनाच्छ्रवणादस्या मुक्ता वै कलिकल्मषात् ।
कालोपरि पदं न्यस्य गमिष्यन्ति परंपदम् ॥



मङ्गलाचरण ।

गणेशवन्दना ।

किरीट, सवैया ।

सुन्दर सेंदुर-बिंदु लसै अरविन्दसे इन्दिरामन्दिर आनन ।
चारि भुजा बलयादिविभूषित, रत्नजड़े जुग कुण्डल कानन ॥
तोतरे बैन विनोद-भरे सुनि रीझि रह्यो शशिशेखरको मन ।
गौरि गरे दोउ बाँह करे जय मङ्गलमूरति बाल गजानन! ॥ १ ॥

ब्रह्मवन्दना ।

षट्पद छन्द ।

मङ्गलमय, मुदमूल, मोह-माया-मद-मर्दन ।
लीलाहित बहुरूप, हरत जनके दुख दर्दन ॥
मुनिमनमानसहंस प्रशंसित अन्तर्य्यामी ।
एकमात्र अनुरागपात्र सचराचरस्वामी ॥
सो अचिन्त्य, अवितर्क्य, अज, आदि, अकिञ्चन जन-अयन ।
जय जय अकुतोभय अवधि ब्रह्म सच्चिदानन्दघन ॥ २ ॥

सरस्वतीवन्दना ।

हरिगीतिका छन्द ।

शुचि शुक्ल पट भूषण सजे, जड़ता हरत जनकी सदा ।
विज्ञान-ज्ञान-विवेक-मूरति मतिमती श्रीशारदा ॥
हौ हंसबाहन पै विराजति हाथमैं वीणा लिये ।
अब अम्ब देहु करावलम्ब, बिलम्ब तजि, करुणा किये ॥ ३ ॥

राधाकृष्णवन्दना ।

कवित्त ।

कुंजन कदम्ब तरे गैयनको घेरे खड़े रसमय बरपासमैंमें गलबाहीं दिये ।
माथे पै मुकुट, कान कुण्डल, कपोल गोल, बोल अनमोल जिन मोहि मूनिहू लिये ॥
बाँसुरी बजावैं गावैं नागर अनेक राग और अनुरागसों कहत सुनिये प्रिये! ।
आठौयाम ऐसे अभिराम श्याम श्यामासंग धाम करैं मेरे हिये परम कृपा किये ॥४॥

शिवपार्वतीवन्दना ।

कवित्त ।

आधेमैं भसम, नैन असम त्यों चंदछटा, जटाजूट, कालकूट, हार हिये शेषको ।
आधे अंग अंगराग लोचन विशाल, वेणी, मणिआभरण करैं चकित धनेशको ॥
आधेमें दिगम्बर हैं, आधे दिव्य अम्बर हैं, 'वर' है 'अभय' आदि दुर्लभ सुरेशको ।
ऐसे वेष राजत विशेष अवशेषरूप, बन्दत हमेश हौं मैं गौरी गिरिजेशको ॥ ५ ॥

सर्वदेववन्दना ।

हरिगीतिका छन्द ।

ब्रह्मा, पुरन्दर, भानु, गंगा, गगन, जल, पृथ्वी, तथा ।
विधु, वरुण, पावक, पौन, वसु त्यों सिद्ध, किन्नर; सर्वथा ॥
जिय जानि इनको हरिकला, करि हरि मिलनकी कामना ।
शिर नाय और मनाय, मैं अब करौं सबकी बंदना ॥ ६ ॥

सर्वकविवन्दना ।

दोहा ।

वाल्मीकिमुनि आदि जे भये सुकवि मतिमान ।
हैं, अरु ह्वैहैं जे उन्हैं बन्दौं मैं धरि ध्यान ॥ ७ ॥

सर्वसज्जनवन्दना ।

कवित्त ।

सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद औ शौनकादि सकल विरक्त जे ।
कपिल, कणाद, अत्रि, अंगिरा, अगस्त्य मुनि और योगिराज बहु मायामोहत्यक्त जे ॥
उद्धव, विदुर, भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर त्यों गोपिका, यशोदा, नन्द कृष्ण-अनुरक्त जे ।
नावत हौं सीस, मोहिं दीजिये असीस अहो ध्रुव, प्रहलाद, बलि आदि हरिभक्त जे ॥८॥

श्रीवेदव्यासवन्दना ।

हरिगीतिका छन्द ।

श्रीवेदव्यास विशालबुद्धि स्वयं कृपानिधि अवतरे ।
अज्ञानतम संहार हित श्रीभागवत दीपक धरे ॥
हे भक्तवत्सल नाथ निरुपम पतितपावन श्रीहरे! ।
हौं दास शरणागत कृपाकरि राखिये चरणनतरे ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेववन्दना ।

मुक्तहरा छन्द ।

परीक्षितको तुम तत्त्व बताय, पठाय दियो सहजै हरिधाम ।
विवेकमैं एक अनेकनमैं कविकोविदवन्दित पूरनकाम ॥
सबै जग जानत आपनी मूरति ब्रह्मविचारसों आतमाराम ।
महामुनि श्रीशुकदेव दयालु! करौं करजोरिकै प्रेम-प्रणाम ॥ १० ॥

श्रीगुरुदेववन्दना ।

षट्पद छन्द ।

शुभ सुशील शुचि सुरुचि सदा हरिमैं मन लाये ।
पितासदृश सस्नेह सकल सन्देह मिटाये ॥
वेदशास्त्रधर धर्मतत्त्वके पूरन ज्ञाता ।
धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष चारिहु फल दाता ॥
जय जय श्री गुरुदेव जय! 'ज्ञानेश्वर' अज्ञानहर ।
मंगलमय प्रभु! हाथ निज धरिये मेरे सीस पर ॥ ११ ॥

संस्कृत मङ्गल ।

श्रीमत्कुञ्जविहारिणे नमः ।

ॐनमः परमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय
भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामाय ॥

वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि ॥
यस्यास्ते हृदये संवित्तं नृसिंहमहं भजे ॥ १ ॥
विश्वसर्गविसर्गादिनवलक्षणलक्षितम् ॥
श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमाम तत् ॥ २ ॥
माधवोमाधवावीशौ सर्वसिद्धिविधायिनौ ॥
वन्दे परस्परात्मानौ परस्परनुतिप्रियौ ॥ ३ ॥
मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ॥
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥ ४ ॥
श्रीमद्भागवताभिधः सुरतरुस्ताराङ्कुरः सज्जनिः
स्कन्धैर्द्वादशभिस्ततः प्रविलसद्भक्त्यालवालोदयः ॥
द्वात्रिंशत्त्रिशतं च यस्य विलसच्छाखाः सहस्राण्यलं
पर्णान्यष्टदशेष्टदोऽतिसुलभो वर्वर्ति सर्वोपरि ॥ ५ ॥

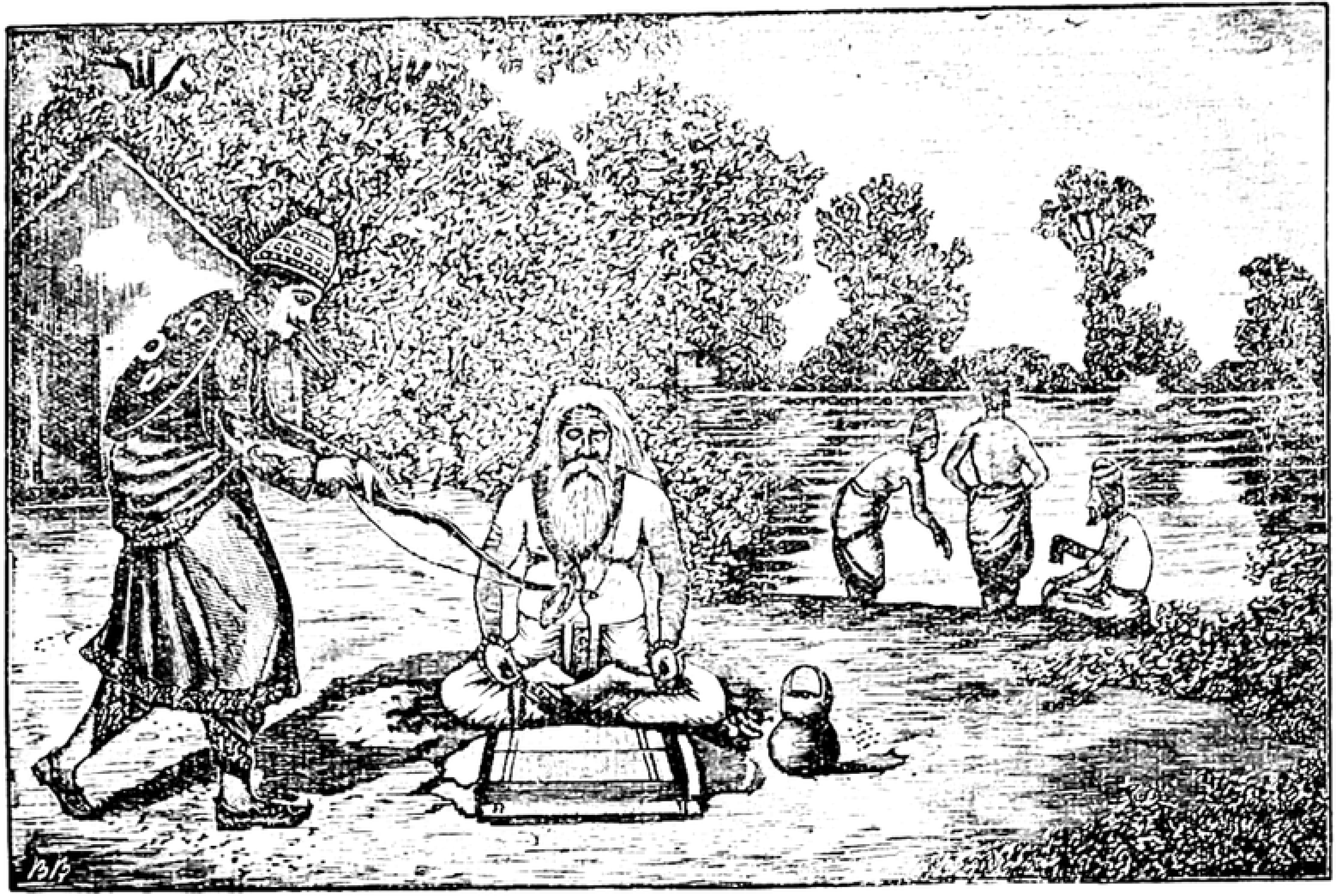


शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

प्रथमस्कन्धः ।



शमीकऋषिके गलेमें राजा परीक्षित सर्प डालते हैं.



॥ श्रीः ॥

शुकोक्तिसुधासागरः।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

प्रथमस्कन्धः ।



ब्रह्मनिष्ठ श्रीमत्परमहंस शुकाचार्यजी ग्रन्थके आरंभमें श्रीमद्भागवतका कल्पवृक्षके रूपकसे वर्णन करते हैं.

श्लोकः—श्रीमद्भागवताभिधः सुरतरुस्ताराङ्कुरः सज्जनिः
स्कन्धैर्द्वादशभिस्ततः प्रविलसद्भक्त्यालवालोदयः ।
द्वात्रिंशत्त्रिशतं च यस्य विलसच्छाखाः सहस्राण्यलं
पर्णान्यष्टदशेष्टदोऽतिसुलभो वर्वर्ति सर्वोपरि ॥ १ ॥

अहो! यह भागवतपुराण कल्पवृक्ष है। सत् ब्रह्मसे या सत्जनोंसे इसकी उत्पत्ति हुई है और तारनेवाला बृहत् (ब्रह्म) ज्ञान या तारक महामन्त्र प्रणव इसका अङ्कुर है। भक्तिके थाल्हेमें आरोपित होकर यह फैला है। इसके स्कन्ध (मोटे डाले) बारह हैं और छोटी डालियां (अध्याय) तीनसौ बत्तीस हैं एवं पत्ते (श्लोक) अठारहसहस्र हैं। ऐसा यह इष्टफलदायक एवं अत्यन्त सुलभ शास्त्र विशेषरूपसे सर्वोपरि विराजमान है।

मङ्गलाचरण और प्रस्तावना ।

अनेक शास्त्र और पुराणोंकी रचना करनेसेभी चित्तको शान्तिलाभ न होनेपर अर्थात् उनसे पूर्ण सन्तोष न होनेपर श्रीनारदमुनिके उपदेशके अनुसार चित्तकी शान्ति अर्थात् पूर्ण सन्तोषके लिये, जिसमें मुख्यरूपसे श्रीहरिके गुणोंका वर्णन कियागया है ऐसे भागवतशास्त्रका प्रारम्भ करते समय, महामुनि श्रीवेदव्यासजी प्रथम उसी वक्ष्यमाण पुराणके प्रतिपादनीय परमइष्टदेव परब्रह्मके स्मरणरूप मंगलका आचरण अथवा प्रारम्भ करते हैं।

मोक्षवाक्य अर्थात् वेदके अर्थज्ञानपर निर्भर है और वह वेदवाक्यके अर्थका ज्ञान, पद अर्थात् ब्रह्मपदके अर्थज्ञानपर निर्भर है । इसकारण इस मङ्गलाचरणमें पहले वाक्यार्थ और पदार्थका निरूपण करते हैं। पदार्थका लक्षण, तटस्थलक्षण और स्वरूपलक्षणके भेदसे दो प्रकारका है एवं पदार्थभी वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थके भेदसे दो प्रकारका है । मायायुक्तचैतन्य (सगुण) उस पदका वाच्यार्थ है और मायामुक्त चैतन्य (निर्गुण) लक्ष्यार्थ है ।

वेदव्यासजी कहते हैं कि हम परब्रह्मका ध्यान करते हैं । (वह परब्रह्म क्या है, सो पहले स्वरूपलक्षणसे बताकर फिर तटस्थलक्षणसे बतावेंगे) वह ब्रह्म सत्य है। (उसकी सत्यताको दृष्टान्तसे स्पष्ट करतेहैं) जैसे मृत्तिकाके रूपान्तर काँच आदिमें होनेवाला तेजका और मैदानमें चमकरही सूर्य्यके तेजकी आभामें होनेवाला जलका विनिमय (अन्यवस्तुमें अन्यवस्तु भासित होना), वस्तुतः असत्य होनेपरभी अधिष्ठानकी सत्यतासे सत्यसा प्रतीत होता है वैसेही उस (ब्रह्म)में अधिष्ठित,— मायाके तीनोगुणोंका सर्ग (इन्द्रियां, इन्द्रियोंके अधिष्ठातादेवता, पंचतन्मात्रा आदि), वस्तुतः असत्य होनेपरभी उसीकी सत्यतासे सत्यसा जानपड़ता है अर्थात् उसी चैतन्यरूपकी सत्तासे यह जड़सर्ग चेतनसा प्रतीत होता है । अथवा जैसे काँचमें तेजका और तेजमें जलका भ्रम वास्तवमें मिथ्या है वैसेही उसके सिवाय उक्त सब गुण-सर्ग असत् है, एक वही परमार्थ सत्य है । उपाधियोंके कारण वह अनेकरूप प्रतीत होता है और इसी कारणसे लोग उसके स्वरूपका निश्चय करनेमें भ्रमको प्राप्त होतेहैं। किन्तु वह स्वयं, सर्वत्र अपने स्वयंसिद्धतेज (ज्ञान) से उक्त-भ्रमको निकट नहीं आनेदेता ।

(अब तटस्थलक्षणसे निरूपण करते हैं) हम उस सत्य परम इष्टदेवका ध्यान करते हैं जिससे इस दिखाई देरहे जगतका जन्म, पालन और संहार होता है अर्थात् जो जगत्की सृष्टि आदिका आदिकारण है । सब कार्य्योंमें सत् रूपसे उसका अन्वय (सम्बन्ध) है और अकार्य्योंमें व्यतिरेक है, अर्थात् सब सृष्टिके पदार्थोंमें या कार्य्योंमें वह सत् रूपसे वर्त्तमान (व्याप्त) है इसीसे इनकी सत्ता स्वीकृत होतीहै और 'आकाशकुसुम', 'वन्ध्यापुत्र' आदि अकार्योंमें

उसका कुछभी सम्बन्ध नहीं है; इसीसे इनके अस्तित्वका स्वीकार नहीं किया जासक्ता। अथवा जैसे मृत्तिका, सुवर्ण आदि कारणोंका घट-कुण्डल आदि कार्य्योंसे सम्बन्ध है और व्यतिरेकभी है; अर्थात् मृत्तिकादि कारण सत् हैं, इसलिये घट आदि कार्य्य उनमें अधिष्ठित हैं परन्तु वे इनसे अलग हैं; क्योंकि घटकुण्डलादि कार्य्योंके न रहनेपरभी वे सत्कारण बनेही रहते हैं—वैसेही कारणरूप ब्रह्मका कार्यरूप विश्वके प्रपञ्चसे सम्बन्ध है और व्यतिरेकभी है; अर्थात् कारणरूप ब्रह्म सत् है, इसलिये कार्य्यरूप विश्वप्रपञ्च उसमें अधिष्ठित है परन्तु वह ब्रह्म इस प्रपञ्चसे अलग है; क्योंकि विश्वप्रपञ्चके न रहनेपरभी कारणरूप सत् ब्रह्म बनाही रहता है। (तो क्या, जगत्का कारण होनेसे 'प्रधान'—वह तुम्हारा चिन्तनीय देव है? कहते हैं नहीं, प्रधान परिपूर्णज्ञानयुक्त नहीं है) वह सर्वज्ञ है। (तो क्या, जीवात्मा वह तुह्मारा चिन्तनीय तत्त्वहै? कहते हैं नहीं, जीव स्वतः प्रकाशशाली नहीं है) वह स्वयंप्रकाशमान है अर्थात् उसका अखण्ड ज्ञान स्वयंसिद्ध है, उसे दूसरेकी अपेक्षा नहीं है। (तो क्या तुम स्वयम्भू ब्रह्माका ध्यान कररहेहो? कहते हैं नहीं) उसीने आदिकवि ब्रह्माके हृदयमें ब्रह्म अर्थात् वेदको प्रकाशित कियाहै। (कोई यदि शंका करै कि 'प्रलयकालमें निश्चेष्ट होनेसे लीन, ज्ञानमय वेदको ब्रह्माने स्वयं मनन करके हृदयमें पाया होगा'। सो इसी शंकाका समाधान करते हैं कि ब्रह्माकाभी ज्ञान स्वयंसिद्ध नहीं, पराधीन है; ज्ञानरूप वेदविद्याके आविष्कारका मूलकारण वही स्वतःसिद्धज्ञानसम्पन्न ब्रह्म है। क्योंकि—) उस वेदका तात्पर्य समझनेमें बड़े २ (ब्रह्मा-आदि) ज्ञानी विद्वान्भी मोहको प्राप्त होतेहैं अर्थात् उनकीभी बुद्धि चकराजाती है।

हम उसी बुद्धिवृत्तिके प्रवर्त्तक, सत्य एवं असत्कोभी अपनी सत्तासे सत्त्व देनेके कारण परमार्थ सत्य, इष्टदेव (ब्रह्म) का ध्यान करते हैं ॥ १ ॥

जिनके हृदयमें मत्सर (पराये उत्कर्षको न सह सकना) नहींहै उन शुद्ध सज्जनोंका, स्वर्गादि फलोंकी कामना ('प्र'से मोक्षकी कामनाभी) के कपटसे रहित ईश्वराराधनरूप परमधर्म, इस परमरम्य श्रीमद्भागवत पुराणमें कहागया है। इसके पढ़ने सुनने और मनन करनेसे सहजमें यथार्थ परमार्थ वस्तुका ज्ञान प्राप्त होता है, जिससे परमसुख मिलताहै; क्योंकि आधिदैविक, आधिभौतिक, और आध्यात्मिक—इन तीनों प्रकारके तापोंकी जड़ही उखड़ जाती है!

ऐसे उत्तम इस महामुनिकृत श्रीमद्भागवतके सिवाय क्या अन्य किसी शास्त्र या पुराणसेभी शीघ्रही—अनायासही श्रीहरि हृदयमें बसाये जासक्ते हैं? नहीं, कभी नहीं। किन्तु ज्ञानकाण्ड—कर्मकाण्ड—देवकाण्डविषयक सब शास्त्रोंसे श्रेष्ठ इस परमपवित्र शास्त्रके सुननेकी इच्छा करतेही उसी क्षण हरिभगवान् हृदयमें बस-जाते हैं। (प्रश्न होता है कि यदि ऐसाही है तो सभीलोग क्यों नहीं सुनते? कहते

हैं इसके सुननेकी इच्छा या रुचि होनाही दुर्लभ है) जिन्होंने बहुतसे पुण्य किये हैं उन्ही लोगोंके हृदयमें बड़े भाग्यसे इसके सुननेकी प्रवृत्ति होती है ॥ २ ॥

फिर कहते हैं कि यह शास्त्र केवल सब पुराणोंसे श्रेष्ठही नहीं है बरन् सब शास्त्रोंका फल (सारांश) है, इस कारण परम आदरसे इसका सेवन करना चाहिये । यह भागवत पुराण–सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाले कल्पवृक्षतुल्य वेदशास्त्रका फल (निचोड़) है । इस वैकुण्ठलोकमें स्थित फलको नारदने लाकर मुझेदिया, मैंने शुकदेवको दिया और शुकदेवके मुखसे निकलकर यह पृथ्वीतलमें फैल गया । कहनेका तात्पर्य्य यही है कि इस प्रकार शिष्यप्रशिष्यक्रमकी परम्पराद्वारा अखंड अविकलही पृथ्वीतलमें उतर आया है—इतने ऊँचेसे गिरनेके कारण फूट नहीं गया है । यह फल अमृत(परमानन्द)–रस–मय है । लोकमें यह बात प्रसिद्धभी है कि शुक (तोता, दूसरे पक्षमें मुनि) का मुख जिसमें लगजाताहै वह फल अमृत जैसा मीठा होता है । हे रसिक जन! एवं रसिकोंमेंभी भावुक (रसविशेषके समझनेमें निपुण) जन! यह तुम्हारे लिये अलभ्यलाभ है कि भागवतशास्त्र पृथ्वीतलमें आगया है । अतएव इस केवल रसमय (अर्थात् इसका कोईभी अंश, अन्य फलोंके छिलके और गुठली आदिकी भाँति छोड़नेयोग्य नहीं है) फलको प्रलयपर्य्यन्त वारम्वार पीते रहो । अर्थात् भागवत रसका पीना मोक्ष मिलनेपरभी नहीं छोड़नेयोग्य है । जीवन्मुक्त जनभी अन्य स्वर्गादि फलोंके समान इसकी उपेक्षा नहीं करते बरन् आग्रहसहित सादर सेवन करते रहते हैं ॥ ३ ॥

प्रथम अध्याय ।

कथाप्रारम्भ ।

सूतका नैमिषारण्यमें आना और शौनकादि ऋषियोंका उनसे प्रश्न करना ।

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ॥
सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥ १ ॥

अनिमिषक्षेत्र नैमिषारण्यमें अठासीहजार शौनकादिक ऋषि कलियुगके दोषोंसे बचनेके विचार और स्वर्गधामकी कामनासे सहस्रवर्षव्यापी ज्ञानयज्ञकी दीक्षा लेकर हरिकी आराधना करनेलगे ॥१॥ वे मुनि एकदिन सवेरेके समय हवनादिक नित्यकर्म्म समाप्त करके बैठेथे, इतनेमें वहांपर व्यासके शिष्य महानुभाव सूतजी आकर उपस्थित हुवे । यथोचित सत्कारके उपरान्त सुखपूर्वक उत्तम आसनपर बैठे हुवे सूतसे ऋषियोंने कहा कि—॥२॥

हे निष्पाप! अवश्यही तुमने पुराण और इतिहास एवं यावत् धर्म्मशास्त्र पढ़े और कहेभी हैं ॥३॥ हे सूत! ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवान् वेदव्यास और सगुण-निर्गुण ब्रह्मके जाननेवाले अन्य मुनि जो २ जानते हैं ॥४॥ हे सौम्य! सो सब तुम अपनेगुरु वेदव्यासकी कृपासे भलीभांति जानतेहो, क्योंकि सुशील शिष्यको गुरुलोग परमगुप्तविषयभी बतादेते हैं ॥५॥ हे चिरंजीविन्! तुमने उनसमस्त पढ़े हुवे ग्रंथोंमें परिश्रमपूर्वक जो कुछ पुरुषोंका परमकल्याण निश्चित कियाहो-वह हमसे कहो ॥६॥ हे सभ्य! प्रायः इसकलियुगमें समस्त प्राणी, थोड़ी आयुके, मन्द, मन्दबुद्धि, मंदभाग्य, और रोगी होते हैं ॥७॥ बड़े२ यज्ञ, तप, दान आदि विषय तो बहुतदिनमें सुनने करनेयोग्य और बहुतदिनमें फलदेनेवाले हैं (और इधर उक्तकारणोंसे मनुष्यजीवन चिरस्थायी नहीं है) अतः हे साधो! जो कुछ तुमने अपनी बुद्धिसे सारांश निकाला हो वह अपने जनोंके कल्याणके लिये कहो, जिसके श्रवणसे आत्मा सुप्रसन्न हो ॥८॥ हे सूत! तुम्हारा कल्याण हो। तुम जानतेहो (अतएव तुमसे कहते हैं कि) सज्जनपति भगवान्ने जिसकार्यके करनेकी इच्छासे देवकीके गर्भमें वसुदेवके वीर्य्यसे अवतार लिया ॥९॥ हे अंग! हम श्रोताओंसे वह भगवत्चरित्र कहो। उस परमेश्वरका अवतार प्राणियोंके पालन और उन्नतिके लिये हुवा करता है ॥ १० ॥ इस जगत्में घोर कष्ट पड़नेपर विवशअवस्थामेंभी उसके नामोच्चारणसे घोर संकटसे उसी क्षण मुक्ति हो जाती है। क्यों नहो? उसके नामसे तो स्वयं भयभी भयभीत होता है ॥११॥ उसके चरणोंकी शरणमें प्राप्त शान्तमन मुनिलोग दर्शन और स्पर्शसे उसीक्षण पवित्र करदेते हैं। और गंगाजल आदि, स्नानादि सेवासे देरमें पवित्र करते हैं किन्तु साधुगण दर्शनमात्रसे (यहांपर गंगाजलसे साधुओंका उत्कर्ष दिखाया है) ॥१२॥ पुण्यकीर्त्ति मनुष्योंके मुखसे कीर्त्तित है पूजनीयकीर्त्ति जिसकी ऐसे परमेश्वरके कलिकलुषकदन गुणगणोंको कौन ऐसा शुद्धिकाम मनुष्य होगा जो न सुने ॥१३॥ पण्डित बुद्धिमान् महाशयोंके गायेहुवे उस पेरमश्वरके उन उदार चरित्रोंको कहो, जो जो लीलावपु धारणकरके कला और अंशावतारद्वारा भगवान् करते हैं, हमलोगोंको ईशलीला सुननेकी परमश्रद्धा है ॥ १४ ॥ हे उत्तम बुद्धिवाले! अपनी मायासे स्वेच्छापूर्वक लीलाकरनेको हरिने यावत् अवतार लियेहैं उनकी सकल शुभकथा हमसे कहो ॥१५॥ हमलोग पवित्रकीर्त्ति भगवान्के चरित्र सुनकर तृप्त नहीं होते क्योंकि इनके सुननेमें रसिकपुरुषोंको अक्षर२ में नवीन स्वाद मिलता है ॥१६॥ जिन मनुष्यशक्तिसे अतीत लीलाओंको कपटमनुष्यरूप धारणकरके भगवान्ने बलभद्रके साथ किया है वे चरित्र हमसे कहो ॥१७॥ यदि कहो कि तुमतो यज्ञ कररहेहो कथा कैसे सुनोगे? तो हमलोग पृथ्वीमें कलिका आगमन देखकर इसविष्णुके पवित्रक्षेत्र में यज्ञके मिससे बहुत कालतक भगवत्चरित्र सुननेके लिये दीक्षा ले चुके हैं ॥ १८ ॥ इसी अवसरमें इस सत्वहर दुस्तर कलियुगके पार जानेकी इच्छावाले हमलोगोंको विधाताने तुम्हारा दर्शन दिया जैसे समुद्रपार जानेवालेको मल्लाह (कर्णधार) मिलजाय ॥१९॥

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि ॥
स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥ २० ॥

कहिये, धर्म्मरक्षक ब्रह्मण्य योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र जब प्रथमस्वरूपको प्राप्तहुवे तब धर्म्म किसकी शरणमें गया ? ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां प्रथमस्कन्धे नैमिषेयोपाख्याने ऋषिप्रश्नोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय ।

प्रथम अध्यायमें जो ऋषियोंने सूतजीसे छः प्रश्न किये हैं उनमेंसे चार प्रश्नों का उत्तर ।

व्यास उवाच—इति संप्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः ॥
प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

व्यासजी कहतेहैं। ऋषियोंका यह उत्तम प्रश्न सुनकर रोमहर्षण सूतके पुत्र उग्रश्रवानाम सूत बहुत प्रसन्न हुवे और ऋषिकृत प्रश्नोंकी प्रशंसा करके इसभाँति बोले ॥१॥ जो उत्पन्न होते ही बिना उपनयन (जनेऊ) कर्म हुवे आत्माभिमान त्यागकर अकेले संन्यास ग्रहण कर बनकी ओर चले तब पुत्रके बिरहसे व्याकुलहोकर वेदव्यासजीने "पुत्र !!!" ऐसे पुकारा—उससमय योगबलसे (सर्वव्यापी शुकदेवकी) सर्वव्यापक शक्तिके कारण वृक्षोंने उत्तर दिया अर्थात् पिताका पुत्रस्नेह मिटजाय इसलिये, जिसने वृक्षरूपसे उत्तर दिया, ऐसे श्रीपरमहंस शुकदेव मुनिको प्रणाम करता हूं ॥२॥ संसाररूप अन्धकारमय मार्गके पार जानेकी इच्छावाले लोगोंपर कृपाकर जिन्होंने स्वयंप्रकाशमान, सम्पूर्ण श्रुतियोंका सारांश, पुराणोंमें गुह्य, अध्यात्ममय दीपक (भागवतशास्त्र) प्रकट किया उन वेदव्यासजीके पुत्र महामुनि शुकदेवजीके शरणागत हूं ॥३॥ नर नरोत्तम नारायण और देवीसरस्वती एवं महर्षिवेदव्यासजीको प्रणाम कर शास्त्रका प्रारम्भ करे, (अर्थात् इसरीतिके अनुसार मैं करताहूं एवं औरोंकोभी करना चाहिये) ॥४॥ हे मुनियो ! तुमने बहुत ही उत्तम प्रश्न किया, जो सम्पूर्ण संसारको मंगल देनेवाला श्रीकृष्णचरित्र पूँछा, जिसके सुननेसे आत्मा सुप्रसन्न होता है ॥५॥ समस्त प्राणियोंका वही परमधर्म है जिससे नारायणमें निष्काम और अटल भक्ति हो, जिससे आत्मा सुप्रसन्न होताहै ॥ ६ ॥ वासुदेवभगवान्में भक्तिकरनेसे उसीसमय हृदयमें ब्रह्मज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होते हैं ॥ ७ ॥ महर्षियो ! अच्छीप्रकार कियागया धर्म यदि भगवत्चरित्रमें भक्ति न उत्पन्न करे तो वह निष्फल है ॥ ८ ॥ कोई कहते हैं, धर्मानुष्ठानका फल

धन है और धनका फल कामभोग है और कामभोगसे इन्द्रियोंको सुख-लाभ होता है किन्तु ज्ञानीके आगे यह प्रवृत्तिमार्ग तुच्छ एवं अनित्य है। ज्ञानीके विचारमें पूर्वोक्त धर्म, अर्थ, कामनामक फल जीवनकालभर सुखदेनेवाले हैं, मोक्ष नहीं दे सक्ते अतएव वह उन्हें तुच्छ समझकर निवृत्तिमार्गका स्वीकार करता है अर्थात् ज्ञानीके मतमें धर्म, अर्थ, काम इन तीनोंका फल केवल "ब्रह्मके जाननेकी इच्छा (ब्रह्मज्ञान)" है, यही मुक्तिका कारण है, इसकी अपेक्षा और कोई उत्तम फल नहीं है ॥९॥१०॥ इसी ज्ञानको ज्ञानीलोग "तत्त्व" कहतेहैं-कोई "अद्वैतज्ञान" कहते हैं-कोई कोई "ब्रह्म परमात्मा, भगवान्" कहते हैं ॥ ११ ॥ उसीतत्त्वके जाननेके लिये मुनिगण श्रद्धापूर्वक मोक्षशास्त्र सुनते हैं, शास्त्र सुननेसे ज्ञान होता है, ज्ञानकी सहायतासे संसारसे वैराग्य होजाता है, ज्ञान वैराग्य और भक्तिके मिलनेसे स्वयं हृदयमें आत्माका दर्शन होता है, और आत्माके अवलंबसे परमात्माका अनुभव होता है जैसे प्रतिबिम्बसे सूर्यबिंबका ॥१२॥ हे द्विजश्रेष्ठगण! चाहे कोई किसी वर्ण वा किसी आश्रमका हो सबका एकमात्रधर्म्म "भक्ति" है ॥ १३ ॥ इसकारण सबका यही नित्य धर्म है कि एकाग्रचित्त होकर भगवान्के गुण सुनें, नामकीर्तन करें, ध्यान करें, और पूजन करें ॥ १४ ॥ जिसके ध्यानका फल जो ज्ञान है उसीकी तर्वारसे कर्मोंकी गाँठको कोविदलोग काट डालते हैं ऐसे ईश्वरकी कथासुननेमें किसकी अरुचि होगी? अर्थात् सबको रुचि होगी ॥ १५ ॥

क्योंकि यह भगवत्चरित्र परमदुर्लभ पदार्थ है, हे ऋषियो! इसको श्रद्धापूर्वक सुननेकी रुचि पुण्यतीर्थोंमें यात्राकरने और सज्जनोंकी सेवासे होती है ॥ १६ ॥ देखो! यह भक्तिमार्ग बहुतही सुगम है—पुण्यरूप है श्रवण और कीर्तन जिनका ऐसे सज्जनबन्धु श्रीकृष्णचन्द्र, निजकथाके सुननेवालोंके हृदयमें प्रवेश करके अज्ञान कुतर्क मिटादेते हैं ॥ १७ ॥ जब नित्य भगवान्के भक्तोंका संग करनेसे हृदय शुद्ध होजाता है तब उत्तमश्लोक भगवान्में निष्कामभक्ति होती है ॥ १८ ॥ तब रजोगुण और तमोगुणके विकार जो काम लोभ आदि हैं वे चित्तसे दूर होजाते हैं और निर्मल शान्त चित्त, सतोगुणमें लीन होजाता है ॥१९॥ इसीप्रकार सबका संग त्यागकर एकान्तमें प्रसन्नचित्तसे भगवान्का ध्यान करनेसे "भगवान्" इस तत्वका ज्ञान होजाता है ॥ २० ॥ जब निजहृदयमें ईश्वरका दर्शन होता है उसीसमय सब हृदयकी गाँठें खुलजाती हैं, सब संशय दूर होजाते हैं एवं सब कर्म क्षीण होजाते हैं अर्थात् मुक्ति होजाती है ॥ २१ ॥ इसी कारण सुचतुर विद्वान् लोग परमानंदसे आत्माको प्रसन्न करनेवाली भगवद्भक्ति करते हैं ॥ २२ ॥ हे ऋषिगण! वही निर्गुण परब्रह्म इसविश्वकी उत्पत्ति, पालन, नाश आदि कार्य करनेके निमित्त अपनी मायाके तीनोंगुण धारण करके ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीन नाम धारण करते हैं। इन ईश्वरकी तीनों सगुणमूर्त्तियोंमें सतोगुणमय विष्णुमूर्ति परमसुख और कल्याण देनेवाली है ॥२३॥ जिसप्रकार लकड़ीसे प्रथम धूम और धूमसे कर्मकाण्डमय अग्नि प्रकट होता

है वैसे तमोगुणसे रजोगुण व रजोगुणसे सतोगुण—जिससे ब्रह्मदर्शन होता है ॥२४॥ प्रथम सम्पूर्ण मुनियोंने अपने क्षेमके लिये शुद्धसतोगुणमय विष्णुका भजन किया है और जो उनमुनियोंके अनुगत होंगे वे मुक्त होजावेंगे ॥२५॥ ईर्ष्यारहित मोक्ष-काम पुरुष, रजतममय घोररूप भूत, प्रेत, पिशाचोंको त्यागकर नारायणकी शान्तमूर्त्तियोंका भजन करते हैं ॥२६॥ राजस-तामस पुरुष पितर, भूत, प्रजापति आदि रजोगुणी, तमोगुणी देवोंको लक्ष्मी, ऐश्वर्य्य, पुत्र आदिकी कामनासे भजते हैं ॥२७॥ चारों वेद सम्पूर्ण यज्ञ, सम्पूर्ण योग, सम्पूर्ण कर्म विष्णुमय हैं ॥२८॥ ज्ञान, तप, धर्म्म, गति सब विष्णुमय हैं ॥ २९ ॥ इसलिये वासुदेव सबके आराधनीय और पूजनीय हैं। वह स्वयंनिर्गुण हैं किन्तु केवल इस जगत्की उत्पत्ति, पालन, नाशके लिये सगुणरूप धारण करते हैं और उन्हीने सृष्टिके आदिमें ब्रह्मरूपसे जगत्को उत्पन्न किया है ॥३०॥ अपनी मायाके गुणोंका धारणकरनेसे वह सगुण प्रतीत होते हैं किन्तु वास्तवमें स्वयंप्रकाशित एक हैं ॥ ३१ ॥ जैसे एक अग्नि अनेक प्रकारकी लकड़ियोंमें अनेक आकार होनेसे अनेक जान पड़ता है किन्तु है एक, वैसे अनेकाकार शरीरोंमें अनेक आत्मा प्रतीत होते हैं किन्तु हैं उसी एक परब्रह्मका प्रतिविम्ब ॥३२॥ वही हरिरूपी परमेश्वर निजनिर्मित भूतसूक्ष्म, इन्द्रिय आदि पदार्थोंद्वारा सब प्राणियोंमें अवस्थित होकर यथायोग्य निजनिर्मित मायाका भोग स्वयं करते हैं ॥ ३३ ॥

भावयत्येष सत्त्वेन लोकान्वै लोकभावनः ॥
लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु ॥ ३४ ॥

वही लोकभावन भगवान् सतोगुणसे लोकोंका पालन करते हैं एवं जगन्मङ्गलमूल लीलाके लिये देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि योनियोंमें अवतार लेते हैं ॥३४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां प्रथमस्कन्धे नैमिषेयोपाख्याने श्रीभगवद्गुणवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीय अध्याय।

अवतारवर्णन।

सूत उवाच—जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ॥
संभूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥ १ ॥

सूत बोले—प्रथम लोकसृष्टिकी इच्छासे भगवान्ने महत्तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा आदिसे संयुक्त होकर सोलहकला (१० इन्द्रिय १ मन ५ तत्त्व) जिसकी हैं ऐसे पुरुष (विराट्) रूपको धारण किया ॥१॥ प्रलयके अन्तमें योगनिद्रासे निद्रित और प्रल-

यसमुद्रमें सोयेहुवे जिस भगवान्‌की नाभिसे कमल उत्पन्न हुवा, जिस कमलसे प्रजापतियोंके पति ब्रह्मा उत्पन्न हुवे ॥ २ ॥ जिस विराट् पुरुषके अंगोंमें सम्पूर्ण चौदहलोक निर्मित हैं, उस भगवान्‌का यह पुरुषरूप शुद्ध सतोगुणी है ॥३॥ इसी सात्त्विक विराट्‌रूपको ज्ञाननेत्रसे योगी लोग देखतेहैं कि परमअद्भुत है, हजारों चरण, ऊरू, भुजा, मुख, शिर, कान, नेत्र, नासिका और मस्तक हैं, और प्रत्यंगमें यथायोग्य कुंडल, मुकुट, वस्त्र आदि सुशोभित हैं ॥४॥ यह आदि विराट्‌रूप अनेक अवतारोंका निधान (अर्थात् कार्यहोजानेके बाद लीन होनेका स्थान) एवं अविनाशी बीज (उत्पन्न होनेका स्थान) है, जिसके अंशके अंश जो ब्रह्मा, मरीचि आदि हैं वे देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य आदिकी सृष्टि करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ उसी देवने प्रथम सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार अवतार लेकर जिसे कोई नहीं करसक्ता ऐसा अखंडित ब्रह्मचर्यपालन किया ॥ ६ ॥ दूसरीबार इस जगत्‌के कल्याणार्थ पातालमें पड़ी हुई पृथ्वीका उद्धार करनेको उसी यज्ञेश्वरने वाराह अवतार लिया ॥ ७ ॥ तीसरीबार ऋषियोंकी सृष्टिमें देवर्षिहोकर नारद अवतार लिया और वैष्णवतंत्र अर्थात् नारदपंचरात्रका वर्णन किया, जिसके पढ़ने सुननेसे कर्मोंकी निवृत्ति होजातीहै ॥ ८ ॥ चौथीबार धर्मकी पत्नीसे नर नारायण, अवतार लेकर आत्माको शान्तिदेनेवाला घोर तप किया ॥९॥ पांचवींबार सिद्धेश्वर कपिलनाम अवतार लेकर आसुरिको कालक्रमसे लुप्तप्राय, तत्त्वोंका निर्णयकरनेवाले सांख्यशास्त्रका उपदेश दिया ॥ १० ॥ छठीवार अत्रि ऋषिकी प्रार्थनासे उनके पुत्र दत्तात्रेय हुवे, एवं अलर्क व प्रह्लाद आदिको आत्मविद्याका उपदेश दिया ॥११॥ सातवींबार रुचिप्रजापतिकी आकूति नाम स्त्रीमें यज्ञनामसे उत्पन्नहुवे और यामादि देवतोंसहित स्वायंभुव मन्वन्तरमें इन्द्रके पदमें स्थितहोकर जगत्‌की रक्षा की ॥१२॥ आठवींबार नाभिराजाकी मेरुदेवी नाम स्त्रीमें ऋषभ अवतार लिया और सब आश्रम जिसको नमस्कार करतेहैं ऐसे परमहंस धर्मका उपदेश किया ॥ १३ ॥ नवींबार ऋषियोंकी प्रार्थनासे राजा पृथुके रूपसे अवतार लिया और पृथ्वीको गऊ बनाकर औषधियोंको दुहा—इसकारण यह अवतार परमसुन्दर है ॥१४॥ दुसवींबार चाक्षुप मन्वन्तरके अन्तमें जब समुद्रने बढ़कर पृथ्वीको डुवा दिया तब मत्स्य अवतार लेकर पृथ्वीरूप नौकामें चढ़ाकर वैवस्वत मनुकी रक्षा की ॥१५॥ ग्यारहवींबार जब देवता दैत्य मिलकर अमृतके लिये समुद्र मथने लगे किन्तु मंदराचल बोझके मारे समुद्रमें समानेलगा और किसीके रोके न रुका तब कच्छपरूपसे उस पर्वतको अपनी पीठपर धारण किया ॥१६॥ बारहवां धन्वन्तरि अवतार लिया और अमृत दिया एवं जब देवता और दैत्योंमें अमृतके लिये झगड़ा होनेलगा तब तेरहवाँ मोहिनी नाम स्त्रीरूप धारण किया और दैत्योंको मोहित कर केवल देवतोंको अमृत पिलाया ॥ १७ ॥ चौदहवाँ नृसिंह अवतार लेकर बलवान् अभिमानी हिरण्यकशिपु दानवेंद्रको पकड़कर उसके हृदयको तीक्ष्ण नखोंसे यों फाड़ डाला जैसे नर्कुल (तृणविशेष) को चटाई बनानेवाला ॥१८॥ पन्द्रहवाँ वामन अवतार

लेकर राजाबलिके यज्ञमें गये, और बलिसे स्वर्गका राज्य छीनकर इन्द्रको देनेकी इच्छासे तीनपग पृथ्वी मांगी ॥१९॥ ब्रह्मद्रोही राजोंको देखकर सोलहवाँ परशुराम अवतार लिया एवं कोपकरके इक्कीसबार पृथ्वी क्षत्रियोंसे शून्य करदी ॥२०॥ सत्रहवाँ पराशरसे सत्यवतीमें व्यास अवतार लेकर प्राणियोंकी बुद्धि मन्द देखकर वेदरूप वृक्षकी अनेकशाखाएं करदीं ॥२१॥ देवकार्य करनेको रामअवतार लेकर 'समुद्रमें सेतुबांधना' आदि कर्म किये, तदनन्तर ॥ २२ ॥ भगवान्‌ने उन्नीसवाँ और बीसवां अवतार वृष्णि (यादव) वंशमें लेकर कृष्ण, बलदेव नामसे पृथ्वीका भार उतारा ॥ २३ ॥ फिर कलियुगके आरम्भमें ब्राह्मणदेवविरोधी दुष्टोंको मोहित करनेके लिये कीकट देश (गयाप्रदेश) में जिनसुत बुद्धनाम होंगे ॥ २४ ॥ पुनः कलियुगके अन्त और सत्ययुगके आदिमें, जब राजालोग चोरोंके समान कुकर्मी होजायँगे तब विष्णुशर्म्मा ब्राह्मणके घरमें जगत्पतिका कल्किअवतार होगा ॥ २५ ॥ हे ऋषियो! सत्त्वमूर्ति भगवान्‌के ऐसेही अनेक अवतार हैं जिनकी गिनती नहीं होसक्ती, जैसे अक्षय अथाह सरोवरसे सहस्रों छोटे २ सोते निकलते हैं ॥ २६ ॥ ऋषि, मनु, देवता, महापराक्रमी मनुओंके पुत्र एवं सम्पूर्ण प्रजापति–ये सब नारायणकी कला हैं ॥ २७ ॥ ये सब तो उसी परमेश्वरकी कला और अंशावतार हैं जो कि युग २ में दानवदलित जगत्‌को सुखी करते हैं एवं कृष्णचन्द्र स्वयं भगवान्‌का रूप अर्थात् पूर्णावतार हैं ॥२८॥ जो कोई मनुष्य सायंकाल और प्रातःकाल पवित्र और एकाग्रचित्त होकर इन गुप्त भगवान्‌के अवतारोंका कीर्तन करता है वह सम्पूर्ण दुःखोंसे छूट जाताहै ॥ २९ ॥ रूपरहित सच्चिदानन्द भगवान्‌का यह विराट्‌रूप मायाके गुण महत्तत्त्व आदिसे अपनेमें विरचित है अर्थात् निर्गुण ब्रह्मका यह सगुणरूप महत्तत्त्वादिकल्पित है ॥३०॥ भला निर्गुण कैसे सगुण होसक्ताहै? वही कहते हैं, जैसे शून्य आकाशमें मेघ और वायुमें धूलका होना मूर्खोंने कल्पितकर रक्खा है वैसेही साक्षी आत्मामें शरीरादिका सम्बन्ध आरोपित है वास्तवमें आत्मा साक्षी है उसका शरीरादिसे वायु और आकाशकी भाँति कुछ संबंध नहीं है ॥३१॥ इस स्थूलशरीरके अतिरिक्त परमसूक्ष्म, करचरणादिरहित होनेसे न देखनेयोग्य, न सुननेयोग्य अतएव अव्यक्त वासनामय लिंगशरीरभी कल्पितकर रक्खा है, जिसको जीवभी कहते हैं और उसी वासनामय लिंगशरीरसे फिर जन्म होताहै ॥३२॥ जब ये दोनों अविद्याकल्पित स्थूलसूक्ष्मरूप निजरूपके सम्पूर्ण ज्ञानसे नष्ट होजाते हैं तब वही जीव अपनारूप ब्रह्म होजाता है, इसीको ब्रह्मज्ञान व मुक्ति कहते हैं ॥३३॥ जब ये दोनों मायाके स्थूलसूक्ष्मरूप नष्ट होजाते हैं और जीव अपने स्वरूपमें लीन होजाता है तब यह माया स्वयं विना ईंधनकी अग्निके समान शान्त होजाती है–यही जीवन्मुक्त अवस्था है और इसीको तुरीय अवस्थाभी कहते हैं ॥३४॥ कविलोग इसी प्रकार जन्मकर्मरहित अन्तर्यामी ईश्वरके जन्मकर्म कहते हैं; जो कि वेदोंमेंभी गुप्त हैं ॥३५॥ यदि ऐसा है तो जीवसे परमात्मामें क्या विशेष है? वही कहते हैं

कि जीवात्मा पराधीन और परमात्मा स्वतन्त्र है—वह, अमोघ हैं लीला जिसकी ऐसा परमात्मा इस विश्वको उत्पन्न करता है, पालन और नाशभी करता है, एवं प्राणियोंके हृदयमें स्थित जीवात्मारूपसे इन्द्रियोंके विषय जो गंधआदिक हैं उनका भोगभी करताहै परन्तु स्वतन्त्र सबसे अलग रहता है, विश्वके गुणोंमें लिप्त नहीं होता ॥३६॥ तब निरीह ईश्वरको सृष्टिआदिकमें और विषयभोगसे क्या प्रयोजन? वही कहते हैं—कोई कुबुद्धि पुरुष जगत्के रचनेवाले ईश्वरकी लीलाओंको तर्कवितर्कसे नहीं जानसक्ता जैसे नटकी लीलाको मूर्ख! वह ईश्वर मन व वचनोंसे अनेक नामरूपोंका विस्तार करताहै ॥ ३७ ॥ अनन्तशक्ति चक्रपाणि परमेश्वरकी पदवीको वही जान सकता है जो निश्चलसरलभावसे निरन्तर भक्तिपूर्वक उसके चरणकमलोंका भजन करे अर्थात् भक्तिमार्गही प्रभुके मिलनेका मुख्य एवं सरलमार्ग है एवं भक्तही भगवत्तत्त्वको जान सक्ता हैं ॥ ३८ ॥ अतएव आपलोग धन्यहो! जो विश्वनाथ वासुदेवमें अपना मन लगायेहो, जिससे फिर घोर आवागमन नहीं होता ॥३९॥ यदि ऋषि कहें कि हे सूत! यह कौन अद्भुतशास्त्र कहरहेहो? वही कहते हैं—यह भागवत नाम पुराण वेदतुल्य है क्योंकि इसमें सम्पूर्ण ईश्वरकाही चरित्र वर्णित है, इसको महामुनि भगवान् वेदव्यासने बनाया है ॥४०॥ फिर लोगोंके कल्याणके लिये ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ अपने पुत्र श्रीशुकदेवजीको यह धन्य मंगलमय शास्त्र व्यासजीने पढ़ाया ॥४१॥ यह सम्पूर्ण वेद और इतिहासोंका निकालाहुवा सारांश है—ऋषिगणोंसहित गंगातटपर बैठेहुवे महाराज परीक्षित्को अन्तसमय श्रीशुकदेवजीने यह अपूर्व शास्त्र सुनाया ॥ ४२ ॥ धर्मज्ञान आदिको अपने साथ लेकर जब कृष्णचन्द्र परम धामको चलेगये तब लोग अज्ञानी होगये ॥ ४३ ॥ उन्हीं कलियुगके प्रभावसे ज्ञान–चक्षुहीन लोगोंके लिये (सुमार्ग दिखानेको) इस पुराणरूप सूर्यका अब उदय हुवा है—हे ब्राह्मणो! जब परमतेजस्वी ब्रह्मर्षि शुकदेवजी यह शास्त्र राजाको सुनारहेथे ॥ ४४ ॥

अहं चाध्यगमं तत्र निविष्टस्तदनुग्रहात् ॥
सोऽहं वः श्रावयिष्यामि यथाधीतं यथामति ॥ ४५ ॥

उससमय मैंभी वहाँ पहुंचगया और वहां बैठकर मुनिकी कृपासे भागवतशास्त्र मैंने सुना, सो वही शास्त्र अपनी बुद्धिके अनुसार आप लोगोंको सुनाऊंगा ॥४५॥

इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय ।

वेदव्यासकी असन्तुष्टि और उनके पास नारदका आना ॥

व्यास उवाच—इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् ॥
वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत् ॥ १ ॥

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार मुनियोंकी प्रशंसा करके "मैं भागवतशास्त्र सुनाऊँगा" ऐसा कहरहे सूतजीकी प्रशंसाकरके अट्ठासी हजार मुनियोंमें वृद्ध अतएव प्रधान एवं वेदज्ञ शौनकजी बोले ॥१॥ **शौनकजीने कहा**—हे सूत! हे महाभाग! तुम वक्ताजनोंमें श्रेष्ठ हो अतएव पवित्र भगवान्की कथा हमसे कहो, जिसे भगवान् शुकजीने परीक्षित् राजासे कहा॥ २ ॥ किस युगमें किस स्थानमें, किस कारणसे एवं किसकी प्रेरणासे वेदव्यासने यह संहिता बनाई? ॥ ३ ॥ उनके पुत्र महायोगी, समदर्शी अतएव भेदरहित, ब्रह्ममें लीन, बुद्ध (मायारूपनिद्रासे जागे) छिपेहुवे हैं एवं देखनेमें जड़ उन्मत्तसे प्रतीत होते हैं ॥ ४ ॥ जो उत्पन्न होते ही वनको चले, मार्गमें अप्सराएँ नंगे सरोवरमें स्नान करतीथीं उन्होंने शुकदेवजीको देखकर वस्त्र नहीं पहने, पीछे से व्यासजी पुत्रको पुकारते हुवे आये उन्हें देखकर सहसा लज्जित होकर वस्त्र पहन लिये यह देखकर आश्चर्यसे व्यासजीने स्त्रियोंसे इसका कारण पूछा, उन्होंने कहा—महाराज! आपको स्त्रीपुरुषका भेद है किन्तु आपके परमज्ञानी पुत्र समदर्शी हैं ॥ ५ ॥ ऐसे निस्पृह समदर्शी शुकदेवजी कुरुजांगल देशमें क्यों आये और पुरनिवासियोंने कैसे पहचाना कि यह शुकदेवजी हैं? वह तो हस्तिनापुरमें उन्मत्त, गूंगे, जड़के समान विचरते होंगे ॥६॥ तब राजऋषि परीक्षित्से और महामुनिसे कैसे संवाद हुआ? जिसमें मुनिने भागवतसंहिता सुनाई ॥७॥ क्योंकि वह तो गृहस्थोंके भवनोंको अपनी चरणरजसे पवित्र करते हुवे केवल जितने समयमें गऊ दुही जाती है उतनीही देर ठहरते हैं ॥ ८ ॥ हे सूत! अभिमन्युके पुत्र परीक्षित् को लोग परम भगवद्भक्त कहतेहैं अतएव उनके आश्चर्यरूप जन्म और कर्म हमसे कहो ॥९॥ वह तो सम्राट् थे तब पांडुवंशका मान बढ़ानेवाले राजा परीक्षित् किसलिये चक्रवर्तीराज्य और राज्यलक्ष्मीका अनादर कर गंगातटपर बैठे ॥ १० ॥ जिसके चरण रखनेकी चौकीपर अपने कल्याणके लिये शत्रुपक्षीय राजालोग मुकुट रखते और भेंट देतेथे—हे अंग! उस वीरने जिसका त्याग कोई नहीं करसक्ता ऐसी लक्ष्मीको युवावस्थामें प्राणोंसहित क्यों तृणवत् त्यागदिया? ॥११॥ यदि कहो विरक्त को धन आदिसे क्या प्रयोजन? तो जो भगवद्भक्त इस संसार से विरक्त जीवन्मुक्त मनुष्य हैं वेभी पराये हित एवं लोकके सुख, उन्नति और ऐश्वर्यके लिये (किन्तु अपने अर्थ नहीं) जीवित रहते हैं तब प्रजागणकी रक्षा एवं परोपकार करनेवाले शरीर को राजाने क्यों त्यागदिया? ॥ १२ ॥

हे सूतजी ! अतः जो कुछ हमने पूछा है और जो कुछ हमारे प्रश्न से रहगया है सो सब भलीभांति हमसे कहो, क्योंकि हमारे विचार में वेदके सिवाय आप सब विषयोंको अच्छीतरह जानते हो ॥ १३ ॥ सूत बोले—महर्षियो ! त्रेतायुगका जब अंत हुवा और द्वापरका आरम्भ हुवा तब उपरिचर वसुके वीर्यसे उत्पन्न पराशरसे सत्यवतीमें हरिके कलावतार योगी व्यासजीका जन्म हुवा ॥ १४ ॥ वह व्यासजी एक समय सरस्वतीके पवित्रजलमें सूर्यमंडलके उदय होनेपर स्नानादि करके एकान्तमें बैठे थे ॥ १५ ॥ दिव्यज्ञान दृष्टिसे, नहीं जानाजाता आनाजाना जिसका ऐसे कालके द्वारा युगोंके धर्मोंका विनाश अर्थात् उलटापलट देखकर एवं पृथ्वीपर युगयुगमें ॥१६॥ मनुष्योंकी शक्तिकी न्यूनता देखकर और श्रद्धाहीन तेजरहित थोड़ी आयुवाले मन्दबुद्धि ॥ १७ ॥ अभागे मनुष्योंका होना देखकर सब वर्ण आश्रमोंके कल्याणके लिये उन भूत भविष्यके जाननेवाले अमोघदृष्टि ऋषिने हृदयमें विचार किया ॥१८॥ और वेदविधिके अनुसार चातुर्होत्र यज्ञकर्मके विस्तारके लिये एकवेदके चार विभाग करदिये ॥ १९ ॥ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद ये चार वेद बनाए, एवं इतिहासपुराणरूप पांचवाँ वेद बनाया ॥ २० ॥ ऋग्वेद पैलऋषिको, सामवेद जैमिनिऋषिको और यजुर्वेद वैशम्पायनऋषिको पढ़ाया ॥ २१ ॥ अभिचारमूलक अथर्वणवेदके आंगिरसवंशज सुमंतुमुनि आचार्य हुवे एवं इतिहासपुराणोंके मेरे पिता रोमहर्षण हुवे ॥२२॥ उन्ही ऋषियोंने अपने२ वेदोंकी अनेक शाखा करके अपने २ शिष्योंको दीं, इसी प्रकार शिष्यपरम्परासे चारवेदोंकी अनेक शाखाएँ होगईं ॥२३॥ कृपणवत्सल व्यासने वेही कठिनवेद जिसप्रकार थोड़ी बुद्धिवाले मनुष्यभी जानसकें ऐसे सुगम करदिये ॥ २४ ॥ स्त्री शूद्र एवं महाशूद्र (अन्त्यज) वेदत्रयीके पढ़ने सुननेका अधिकार नहीं रखते उन मूढ़ोंका जिसमें कल्याण हो ॥ २५ ॥ इस विचारसे मुनिने कृपापूर्वक समस्त वेदोंका सारांश भारत उपाख्यान बनाया। हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार प्राणियोंके कल्याणमें सब त्यागकर प्रवृत्त होने परभी ॥२६॥ जब चित्त न प्रसन्न हुवा तब सरस्वतीके पवित्र तटपर एकान्तमें बैठकर चिन्ता करतेहुवे धर्मके जाननेवाले व्यासजी आपही आप यह कहने लगे ॥२७॥ "दृढ़व्रत होकर मैंने वेद, गुरु और अग्निकी उपासना की एवं निष्कपट होकर उनकी आज्ञाका पालन कियाहै ॥ २८ ॥ एवं महाभारतके बहानेसे मैंने सम्पूर्ण वेदोंका सारांश दिखा दिया जिसको पढ़कर वेदका अधिकार जिनको नहीं है ऐसे स्त्री शूद्र आदिभी अपने धर्मको जानसक्ते हैं ॥ २९ ॥ तथापि मेरा यह ब्रह्मका अंश जीवात्मा अपने रूपको अप्राप्तसा प्रतीत होताहै अर्थात् सुखी नहीं है ॥३०॥ क्या मैंने अधिकतर भागवत धर्मोंका निरूपण नहीं किया? क्योंकि भगवद्धर्मही परमहंसोंको प्यारे हैं एवं वेही परमहंस परमेश्वरको प्रिय हैं" ॥३१॥ इसप्रकार अपनेको आनन्दशून्य मानकर खेदकर रहे व्यासजीके पूर्वोक्त आश्रममें देवर्षि नारदजी आये ॥ ३२ ॥

तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः ॥
पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ॥ ३३ ॥

नारदजी को देखकर सहसा व्यासजी उठ खड़े हुवे और आदरपूर्वक विधिसहित देवपूजित नारदकी पूजा की ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवते प्रथमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचम अध्याय ।

नारदजीका व्यासजीको ज्ञानोपदेश और अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त कहना ।

सूत उवाच—अथ तं सुखमासीन उपासीनं बृहच्छ्रवाः ॥
देवर्षिः प्राह विप्रर्षिं वीणापाणिः स्मयन्निव ॥ १ ॥

सूतजी बोले। तदनन्तर सुखपूर्वक बैठेहुवे वीणा हाथमें लिये महायशस्वी देवर्षि नारदजी, पास बैठे हुवे ब्रह्मर्षि व्यासजीसे कुछ मुसकाते हुवे बोले[१] ॥१॥ **नारदजी बोले**—हे पराशरकेपुत्र महाभाग व्यासजी! आपका शरीराभिमानी जीवात्मा शरीर से और मनोमय परमात्मा मनसे प्रसन्न तो है? ॥ २ ॥ जो कुछ जानने योग्य धर्मादिक है उसका ज्ञान आपको अच्छी प्रकार है एवं धर्मादिक आपने सब कियेहैं क्योंकि आपने सम्पूर्ण धर्म और लोकव्यवहारका आदर्शरूप महाभारत शास्त्र बनाया है ॥ ३ ॥ एवं सनातनब्रह्मका विचार आपने किया है और ब्रह्मतत्त्वको जाना है तथापि हे प्रभो ! आप अकृतार्थकी भाँति शोचकर रहे हैं—ऐसा विदित होता है; सो किसलिये? ॥४॥ **व्यासजी बोले**—ब्रह्मन् ! जो आपने कहा वह सब सत्य है अर्थात् मैंने धर्मको जाना और कियाहै एवं ब्रह्मतत्त्वको विचारा और जानाहै, तथापि मेरा आत्मा नहीं प्रसन्न होता। इसका कारण क्या है? सो मैं नहीं जानता, अतएव आपसे पूछताहूँ, क्योंकि आप ब्रह्माके पुत्र हो अतएव आपका ज्ञान अनन्त है ॥५॥ आपको संपूर्ण गुप्तबातें विदित हैं, क्योंकि आपने माया और जगत्के स्वामी पुराण-पुरुष परमेश्वरकी उपासना की है जो परमेश्वर इस जगत्का संकल्पमात्रसे अपनी मायाके गुणोंद्वारा उत्पन्न पालन और नाश करताहै एवं उसके विषयोंमें लिप्त नहीं होता ॥ ६ ॥ आप त्रिलोकमें सूर्यके समान ज्ञानका प्रकाश करते विचरते हो एवं भीतर बाहर विचरनेवाले वायुके समान सबके हृदयका हाल जानतेहो; अत-एव, धर्म-व्रत-योगद्वारा सगुण निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करने परभी जो कुछ मनको

---

(१) नारदजी दुष्टोंकी भांति आक्षेपसे नहीं मुसकाये किन्तु यह सोचकर कि ऐसे २ महा-पुरुषोंकोभी मोह हो जाता है तो तुच्छ जीवोंकी कौन कहे !

प्रसन्न करनेवाला कार्य्य मुझे करना शेष है, सो आप विचारिये ॥ ७ ॥ नारद बोले । मेरी समझमें आपने अधिकतर परमेश्वरके निर्मल यशका वर्णन नहीं किया यही आत्माके असन्तोषका कारण है। यदि कहो कि हमने अनेक धर्म, तप, व्रत, योग किये हैं, केवल भगवान्का यश अधिक नहीं कहा न सही, तो वह कैसाही उत्तम कार्य क्यों न हो पर जिससे आत्मा सन्तुष्ट न हो उसे मैं निष्फल मानता हूँ ॥८॥ एवं आपने कहीं २ भगवान्की कीर्तिका कीर्तन भी किया है तो हे मुनिवर्य ! जिसप्रकार विशेष करके अन्य २ धर्म कहे हैं, उस प्रकार नहीं ॥९॥ मृदु मधुर एवं विचित्र होनेपरभी जो वाणी, जगत्को पवित्र करनेवाली हरिकीर्तिका कीर्तन नहीं करती उसे ज्ञानीलोग काकतीर्थ मानते हैं, अर्थात् विष्ठा खानेवाले काकोंके समान मलीन विषयभोगी कामियोंका मन उस वाणीमें रमता है; मानससरमें रहनेवाले हंसोंके समान उज्वल ब्रह्मज्ञानी परमहंस नहीं रमते! ॥ १० ॥ एवं सुननेमें कठोर और असम्बद्ध होनेपर भी वह वाणी परम रम्य और जगत्के पाप बहानेवाली है जिसमें ईश्वरका नाम और हरिचर्चा हो; जिन हरिनामोंको साधु महात्मालोग सुनते हैं, गाते हैं, और कीर्तन करते हैं ॥ ११ ॥ भक्तिहीन कर्म, बंधनरूप है–यही नारदजी कहते हैं कि–हे व्यासजी! उपाधिको निवृत्त करनेवाला ब्रह्मज्ञान भी बिना भक्तिके पूर्णतया नहीं शोभित होता, तब फिर साधनकाल और फलकाल में दुःखरूप अन्य यज्ञादि (चाहे निष्काम हों या सकाम) कर्म यदि ईश्वरके अर्पण नहीं किये गये तो कैसे शोभित हो सक्ते हैं? अर्थात् बिना भक्तिके सम्पूर्ण कर्म व्यर्थ हैं ॥ १२ ॥ हे महाभाग! आपकी दृष्टि अमोघ (अकुंठित) है, एवं आप पवित्र यशयुक्त, सत्यवादी, दृढव्रत हैं; अतएव संपूर्ण बन्धनोंसे मोक्ष पानेके लिये एकाग्रचित्तसे ईश्वरका ध्यान और कलिकलुपकदन हरिके यशका वर्णन करिये ॥१३॥ भगवत्चरित्रोंको छोड़कर जो कोई अन्य विषय वर्णन करनेको उद्यत होता है उस अन्यबुद्धि कविकी बुद्धि अन्य विषयके वक्तव्य रूपसे उपस्थित रूप और नाम आदिसे चञ्चल होकर किसी विषयमें–कहीं, वायुके थपेड़ोंसे चंचल नावके सदृश नहीं स्थान पाती ॥ १४ ॥ प्राणी तो स्वभावसेही प्रवृत्तिमार्गमें प्रवृत्त हैं आपने उनको औरभी उसी निंद्य प्रवृत्तिमार्गका (धर्मार्थ) उपदेश दिया

---

१ साधनकालमें यम, नियमका दुःख और फलकालमें स्वर्गसे पुण्य क्षीण होनेपर अधःपतन। २ जैसा भगवान्ने अर्जुनसे गीतामें कहा है कि "हे कुरुनन्दन! विषयमें आसक्त पुरुषोंकी बुद्धियोंकी बहुत शाखाएँ हैं और इसी कारण भिन्न २ रुचिसे एक बुद्धि अनेक प्रतीत होती है।" नारदजीके कहनेका तात्पर्य्य यह है कि हरियशहीन भारत आदि जो आपने कहे और उनमें विविधविषयक धर्म कहे उनसे आत्माको शान्ति नहीं होसक्ती। ३ यज्ञादि विविध कर्म प्रवृत्तिमार्ग हैं और जिससे मोक्ष हो वह निवृत्तिमार्ग है। ४ निंद्य इससे कहा कि इस मार्गमें सुख नहीं है क्योंकि यथार्थ सुख तो संसारसे मुक्त होनाही है।

यह बड़ाभारी व्यतिक्रम हुवा। क्योंकि ब्रह्मज्ञानी या अन्य कोई यदि प्रवृत्तिमार्ग से यह कह कर कि "प्रवृत्ति मार्गमें मुक्ति नहीं होसक्ती," प्राणियोंको निवृत्त करना चाहे तो साधारण मनुष्य नहीं मानते और कहते हैं "वाह! व्यासजीने महाभारत आदिमें प्रवृत्तिमार्गको ही प्रधान कहा है, वह एक महापुरुष हैं, उनका कथन कभी असंगत नहीं होसक्ता," इत्यादि ॥१५॥ विचक्षण अर्थात् निपुण पुरुषही निवृत्तिमार्ग (मोक्ष) के सुखको जान सक्ता है किन्तु अज्ञानी नहीं, इसकारण आप उन अज्ञानियोंके कल्याणके लिये अनन्तपार निर्गुण परमेश्वरके सगुणरूप-संबन्धी चरित्र कहिये ॥ १६ ॥ अपने वर्ण, आश्रमके धर्मोंको भी त्यागकर केवल भक्ति करनी चाहिये—सोई कहते हैं कि अपने नित्यनैमित्तिक धर्मको त्यागकर भगवान्की भक्ति करते २ अपरिपक्व अवस्थामें यदि कोई मर भी जाय तो भी उस पुरुषको धर्म त्यागनेसे अधर्म या किसीप्रकारका अमंगल नहीं होता अर्थात् वह कर्म्मबंधनमें नहीं फँसता एवं दूसरे जन्ममें फिर भक्तिमार्गमें प्रवृत्ति होती है जिसके द्वारा मोक्षपद प्राप्त होता है । किन्तु जो पुरुष, भक्तिहीन होनेसे निष्फल कर्म-बंधनमें फँसानेवाले धर्मोंको करते२ मरजाते हैं उनको क्या फल मिलता है? (सिवाय इसके कि उस धर्मके प्रतिफलमें कुछदिन स्वर्गादि सुख भोगकर फिर ८४ लाख योनियोंमें घूमना पड़ता है) ॥१७॥ चतुर पुरुषको चाहिये कि उसी मोक्षरूप परमसुखकी प्राप्तिके लिये उद्योग करे जो तीनो लोक चौदहो भुवनमें भ्रमण करने-से भी नहीं मिलता, क्योंकि अन्य सुख जो वास्तवमें दुःख हैं सर्वत्रही कालगतिसे अनायास जैसे दुःख मिलता है वैसे स्वयं प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ हे अंग! भगवद्भक्त पुरुष कभी औरोंकी भांति जन्ममरणके चक्रमें नहीं पड़ता क्योंकि कुयोनिमें भी जानेपर उसे पूर्वजन्मका स्मरण रहता है अतएव वह भगवान्के अमृतरसमय चरणोंको नहीं छोड़ता, कारण यह है कि पूर्वजन्ममें इस भगवद्भक्तिरूप अपूर्व रसका कुछ स्वाद ले चुका है ॥१९॥ यह विश्व ईश्वरमय है, किन्तु वह ईश्वर इस संसारसे अलग है, अर्थात् ईश्वरसे संसार नहीं अलग है किन्तु ईश्वर संसारमें प्रविष्ट होनेपर भी इससे अलग है क्योंकि उसी ईश्वरसे इसकी उत्पत्ति, पालन और नाश होता है; यह आप स्वयं जानते हैं, केवल आपको मैंने चेताय दिया है ॥ २० ॥ हे व्यासजी! तुम अपने हृदयमें ब्रह्मका विचार करो, तुम जगत्के कल्याणके लिये परमपुरुषके अंशसे उत्पन्न हुवे हो, इसीकारण संसारके मंगलके लिये हरिलीलाओंका वर्णन करो, क्योंकि

---

१ तात्पर्य्य यह है कि विना निर्गुणके ज्ञान सगुणका वर्णन नहीं होसक्ता और निर्गुणका ज्ञान सिवाय आप ऐसे निपुण पुरुषोंके औरोंको हो नहीं सक्ता अतएव अज्ञानियोंके मंगलके लिये आपका प्रधान कर्तव्य यह है कि सुगम भक्तिमार्गमें अज्ञानियोंको प्रवृत्त करनेके लिये सगुणरूप निर्गुण ब्रह्मके गुण कहिये । २ जैसे दर्पण प्रतिबिंबका कारण है एवं प्रतिबिंबसे अलग है परन्तु प्रतिबिंब विना दर्पण नहीं दिखाई देसक्ता एवं दर्पणसे प्रतिबिंबकी उत्पत्ति और नाश है।

तुम ईश्वरका अंशावतार हो इससे तुम्हारी ज्ञानदृष्टि अमोघ है (अतएव अपनेमें अपने रूपका विचार करो और हरियश कहो) ॥ २१ ॥ कविलोगोंने पुरुषके तप, पुराणश्रवण, नित्यधर्म, प्रखरबुद्धि आदिका परमफल केवल एकमात्र भक्तिपूर्वक हरिगुण-वर्णन करनाही कहा है ॥२२॥ हे महामुनि! मैं पूर्व्वजन्म (कल्पान्तर) में किसी एक दासीका पुत्र था; मेरे ग्राममें चौमासाभर व्यतीतकरनेके लिये वर्षाकालमें बहुतसे वेदान्ती योगी लोग आकर टिके। मैं बालकही था, मेरी माताने मुझे उन महात्मों की सेवा सुश्रूषामें नियुक्त कर दिया ॥ २३ ॥ मैं किसीप्रकारका लड़कपन या चञ्चलता नहीं करता था एवं शांतस्वभावसे सब खेल छोड़कर उन्हीके समीप रहता था और थोड़ा बोलता था। इन्ही कारणोंसे वे मुनिलोग यद्यपि समदर्शी थे तथापि मुझपर प्रसन्न होकर कृपा करने लगे ॥ २४ ॥ उन मुनियोंकी आज्ञासे मैं नित्य उनकी भोजनसे बचीहुई जूठन खा लेता था, इसीसे मेरे सम्पूर्ण पाप नष्ट होगये। ऐसा करते२ कुछ दिनमें मेरा चित्त शुद्ध होगया जिससे उन्ही साधुओंके धर्म्म (ईश्वर-भजन) में मेरी रुचि उत्पन्न हुई ॥ २५ ॥ वहाँपर वे लोग नित्य अनुग्रहपूर्वक कृष्णकी कथाएं गाते थे और मैं उन मनोहर कथाओंको प्रतिपद श्रद्धापूर्व्वक सुनने लगा, हे व्यासजी! उससे परमेश्वरमें मेरी अटल भक्ति उत्पन्न हुई ॥ २६॥ हे महा-मुनि! मेरी रुचि ईश्वरमें हुई जिससे ईश्वरमें मेरी भक्ति दृढ़ होगई, उससे मैं देखने लगा कि मुझ परब्रह्ममें यह सब सत्-असत्-प्रपंच मायासे कल्पित है ॥२७॥ इसप्रकार शरद् व वर्षा दोनों ऋतुओंभर उन ऋषियोंने नित्य त्रिकाल[१] भगवान्के यशका कीर्तन किया जिसके सुननेसे तमोगुण व रजोगुणको निवृत्त करनेवाली सात्विकी भक्ति मेरे हृदयमें उत्पन्न हुई ॥ २८ ॥ इसप्रकार दृढ़ अनुरक्त, विनीत, श्रद्धायुक्त, पापहीन, मुझ शान्त बालकरूप दाससे ॥२९॥ उन दीनोंपर दया करनेवाले महात्मोंने जाते समय परम कृपा करके वह परमगुप्त ज्ञान कहा जो साक्षात् भगवान्ने कहा है ॥ ३० ॥ जिस ज्ञानको पाकर भगवान् वासुदेवकी मायाके प्रभावका मुझे ज्ञान हुवा, जिस ज्ञानसे परमपद प्राप्त होता है ॥३१॥ हे ब्रह्मन्! यह हमने तीनों तापोंको मिटानेवाली परम औषध आपको बताई है कि जो कोई कर्म करै वह ईश्वरके अर्पण कर दे ॥३२॥ हे सुव्रत! जैसे प्राणियोंके जिस वस्तुके खानेसे जो रोग उत्पन्न होता है वह रोग उसी वस्तुके खानेसे सिवाय बढ़नेके कभी शान्त नहीं होता ॥३३॥ वैसेही ये जितने कर्म हैं सो जन्ममरणके जालमें फँसानेवाले हैं, यदि कोई चाहै कि कर्मद्वारा कर्मबन्धसे मुक्त हो तो असंभव है। हाँ! यदि वेही कर्म कृष्णार्पण कर दिये जायँ तो अवश्य मोक्षदायक होसक्ते हैं ॥ ३४ ॥ जो कर्म भगवान्के अर्पण करदिये जाते हैं वे भक्तियोगयुक्त ज्ञानको उत्पन्न करते हैं, इसलिये मोक्षदायक हैं ॥३५॥ उस भक्तिमार्गमें प्रवृत्त होकर भक्तलोग कर्म करते हैं सही, किन्तु भगवान्की

१ प्रातःकाल, मध्यान्ह, सायंकाल (भूत, भविष्य, वर्तमानको भी कहते हैं)।

शिक्षाके अनुकूल उन कर्मोंको कृष्णार्पण कर देते हैं एवं कृष्णके गुण और नामोंका कीर्तन व स्मरण करते हैं ॥३६॥ हे भगवन्! तुमको प्रणाम है, वासुदेवका हम ध्यान करते हैं, एवं प्रद्युम्न, अनिरुद्ध व संकर्षणरूपको प्रणाम है ॥३७॥ इसप्रकार चतुर्व्यूह अभिधानसे मूर्तिहीन मंत्रमूर्ति यज्ञपुरुषको जो पुरुष भजता है वही पूर्ण ज्ञानी है ॥३८॥ इसप्रकार भजन करनेसे केशवने ज्ञानरूप ऐश्वर्य्य व अपनी भक्ति मुझको दी । इस मेरे चरित्रको देखकर हे ब्रह्मन्! ॥ ३९ ॥

त्वमप्यदभ्रश्रुतविश्रुतं विभोः समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम् ॥
आख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां संक्लेशनिर्व्वाणमुशन्ति नान्यथा४०

हे महाज्ञानी व्यासजी! आपभी परमेश्वरके यशका वर्णन करो—जिससे बुद्धिमान् पुरुषोंकी जाननेकी इच्छा शान्त हो जाती है और जिसके सिवाय संसारचक्रके दुःखोंसे पीड़ित मनुष्योंके क्लेशको दूरकरनेवाला अन्य सुगम उपाय नहीं है ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते प्रथमस्कंधे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय ।

नारदके पूर्वजन्मवृत्तान्तका शेषभाग ।

सूत उवाच–एवं निशम्य भगवान् देवर्षेर्जन्म कर्म्म च ॥
भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन् व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥

सूतजी बोले । हे ब्रह्मन् शौनकजी! इसप्रकार नारदके जन्म और कर्म सुनकर फिर सत्यवतीके पुत्र भगवान् व्यासजी नारदसे यों पूँछनेलगे ॥१॥ **व्यासजी बोले** । हे नारदजी! ज्ञानका उपदेश देनेवाले भिक्षुक लोग जब आपके ग्रामसे चलेगये तब बाल्यावस्थामें आपने क्या किया? हे ब्रह्माके पुत्र! आपकी शेष आयु किसप्रकार बीती? और कालके आनेपर आपने वह दासीके गर्भसे उत्पन्न शरीर कैसे त्यागा? ॥२॥ हे सुसत्तम! इस कालगतिसे आप को पूर्वजन्मके वृत्तान्तका स्मरण कैसे रहा? क्योंकि यह काल तो ईश्वरके सिवाय सबका संहार करता है ॥३॥ **नारद बोले** । जब मुझे ज्ञानोपदेश देनेवाले भिक्षुकलोग स्थानान्तरको चलेगये तब बाल्यावस्थामें मैंने यह किया ॥४॥ मेरी माताके मैंही एक पुत्र था एवं वह स्त्री तिसपरभी नीच दासीजाति होनेसे मूर्ख थी—इन्हीकारणोंसे मुझ अनन्यगति पुत्रमें उसका सुदृढ़ प्रेम था ॥५॥ यद्यपि वह चाहती थी कि मेरे शुभके

---

१ यथा—"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥" भ. गी. अर्थात् हे अर्जुन! जो करते हो, जो खाते हो, जो होमकरते हो, जो देते हो, तप करते हो—सो सब मुझे अर्पण करो ।

लिये मुझे क्षणभरभी आंखोंकी ओट न करै तथापि पराधीन होनेके कारण इसमें असमर्थ थी । अवश्यही सब लोग ईश्वरके वशमें हैं जैसे कठपुतली ॥६॥ मैं उन्हीं ज्ञानी लोगोंके पास रहने लगा और यह प्रतीक्षा करने लगा कि कब यह माताका स्नेहरूप बंधन छूट जायगा? उससमय मैं पांच वर्षका बालक था; मुझे देश, दिशा और कालका कुछ भी ज्ञान न था ॥७॥ एकदिन मेरी माता गऊ दुहनेको घरसे निकली, मार्गमें एक सर्प पड़ा था, वह मेरी माताके पैरके तले पड़ गया और उस कालप्रेरित सर्पने मेरी स्नेहकृपणा माताको काट खाया और वह मर गई ॥ ८ ॥ तब 'भक्तोंका कल्याण चाहनेवाले हरिकी यह अनुग्रह हुई'—ऐसा मानकर मैं उत्तरदिशाको चलदिया ॥९॥ उस दिशामें समृद्ध जनपद, पुर, ग्राम, ब्रज, रत्नादिकी खानि, खेट[1], खर्वट[2] वन उपवन, वाटिका ॥ १० ॥ विचित्र धातुसहित पर्वत, हाथियोंके तोड़े हुवे वृक्ष, पवित्र जलवाले जलाशय, सुरसेवित सरसी ॥११॥ विचित्र मधुर शब्दसे जिनपर मञ्जुल भ्रमरपुंज गुंजार कर रहे हैं ऐसे कमलकुंज नाँघकर अकेलेही मैंने एक बाँस, सेंठा, नर्कुल, कुश, कीचक आदिसे युक्त गहन वनमें प्रवेश-किया, वहाँ घोर सर्प, उल्लू पक्षी और सियार शब्द कर रहे थे जिससे वह बड़ाही भयानक देख पड़ता था ॥१२॥१३॥ मैं चलनेके परिश्रमसे थककर शिथिल होगया और मुझे भूख और प्यास जान पड़ी। वहां मुझको एक नदी मिली, उसमें मैंने स्नान किया, जल पिया, मेरा श्रम दूर होगया ॥ १४ ॥ मैं उस निर्जन वनमें एक पीपलके वृक्षकी जड़पर बैठकर अपने हृदयमें स्थित आत्माको जैसा सुना था वैसेही अपनेमें उसका चिन्तन करने लगा ॥१५॥ मैं भक्तिभावसे चित्तको एकाग्र करके भगवान्के चरण-कमलोंका ध्यान करने लगा, उससमय प्रेमकी उमंगसे मेरे नेत्रोंमें आनंदके आंसू भर आये और धीरे २ हृदयमें हरि प्रकट हुवे ॥१६॥ प्रेमवेगसे मेरे रोम खड़े होगये और परम आनन्द प्राप्त हुवा, यहांतक कि आनंदसागरमें मैं डूब गया और मुझे अपनी या संसारकी कुछ भी सुधि नहीं रही ॥१७॥ सहसा वह भगवान्का मनमोहन शोकनाशक रमणीक रूप मेरे हृदयसे अन्तर्हित होगया और तब मैं उस रूपको न देखकर बहुतही खिन्न होकर कुछ उदास होगया ॥१८॥ उस रूपके देखनेकी इच्छासे फिर मनको एकाग्र कर ध्यान करने लगा परन्तु फिर दर्शन नहीं हुवे, तब मैं अतृप्त होनेके कारण अत्यन्त आतुर हुवा ॥१९॥ मैं इस प्रकार निर्जन वनमें दर्शनके लिये बार २ उद्योग करने लगा । तब मैंने गंभीर और मधुर मृदु स्वरसे शोकको शान्त करती हुई यह आकाशवाणी सुनी कि ॥२०॥ "हे बालक! इस जन्ममें तुमको मेरे दर्शन नहीं हो सक्ते क्योंकि जिनका अन्तःकरण भलीभांति काम क्रोध आदिसे हीन—निर्मल नहीं हुवा ऐसे कच्चे योगी मेरा दर्शन नहीं पाते ॥ २१ ॥ और यह

---

१ किसानोंके गाँव। २ नदी और पर्वतसहित जो एक ओर नगर व एक ओर गांवहो उस बस्तीको कहते हैं। भृगुसंहिता.

एक बार जो मेरा दर्शन हुवा सो केवल मुझमें प्रेम बढ़ानेके लिये, क्योंकि मेरा प्रेमी भक्त धीरे २ संपूर्ण काम क्रोध आदिसे शून्य होजाता है ॥२२॥ थोड़ेही-कालके सत्संगसे तुम्हारी मुझमें दृढ़भक्ति हुई है, तुम इस निन्दनीय शरीरको त्यागकर मेरे जन बनोगे ॥ २३ ॥ मुझमें तुम्हारी बुद्धि अचल रहेगी और मेरी कृपासे तुमको कल्पान्तमें भी इस जन्मका स्मरण रहेगा'' ॥ २४ ॥ इतनाही कहकर वह परमतत्त्व निराकार शून्यरूप वाणी बन्द होगई और मैंने भी अपनेको अनुग्रहीत देखकर उस देवदेवको शिर झुकाकर प्रणाम किया ॥२५॥ और लज्जा त्यागकर ईश्वरके परमगुप्त कल्याणरूप नाम और लीलाओंका कीर्तन व स्मरण करता हुवा, निरीह होकर सन्तोषके साथ, अहंकार व ईर्षा त्यागकर कालकी राह देखने लगा ॥ २६ ॥ इस प्रकार हे ब्रह्मन्! मैंने कृष्णमें मन लगाकर संसारका संग त्याग दिया और शुद्ध चित्तसे विचरने लगा । यथासमय सहसा काल प्रकट हुवा जैसे बिजली यकायक चमक जाती है ॥ २७ ॥ मेरा यह कर्मबंधनरूप पंचतत्त्वका शरीर गिरपड़ा और शुद्ध पार्षददेह प्राप्त हुवा ॥ २८ ॥ दिव्य शरीरकी प्राप्ति कैसे हुई—सो कहते हैं:—कल्पके अन्तमें इस संसारको अपनेमें लीन करके प्रलय समुद्रके जलमें शयन कर रहे जो विभु ब्रह्मा[1] हैं उनके हृदयमें श्वासके साथ मैंने प्रवेश किया ॥ २९ ॥ सहस्र युगके उपरान्त उठकर जब ब्रह्माजी इस जगत्को रचने लगे तब श्वाससे मैं एवं और २ अंगोंसे मरीचि आदि ऋषि उत्पन्न हुवे ॥ ३० ॥ तबसे अखंडित ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके मैं तीनों लोकमें भीतर बाहर विचरता हूं क्योंकि महाविष्णुकी कृपासे मेरी गति कहीं नहीं बंद है ॥ ३१ ॥ स्वरमय[2] ब्रह्मसे भूषित इस ईश्वरकी दी हुई वीणाको बजाकर हरिकथा—कीर्तन करता सर्वत्र विचरता हूं ॥ ३२ ॥ जब मैं प्रेमसे परमेश्वरकी लीला गाता हूं तब मंगल-कीर्ति पूज्यपाद परमेश्वर शीघ्र हृदयमें दर्शन देते हैं जैसे किसीके बुलानेसे कोई शीघ्र आजाय ॥ ३३ ॥ जो लोग विषयभोगकी इच्छासे बारबार व्यग्रचित्त हो कर इन्ही संसारी विषयों में आसक्त हैं उनके संसारसागरसे पार होनेके लिये केवल हरिचर्चा ही नौकारूप है—(अतएव लोकमंगलके लिये और निजचित्त-विनोदनके लिये मैं हरिगुणगान करता फिरता हूं.) ॥ ३४ ॥ क्योंकि जैसे हरि-सेवासे विषयलोभी पुरुषका आत्मा शान्त होता है वैसे यम, नियम, संयम-सम्पन्न योगमार्गसे नहीं होता ॥३५॥ हे पापरहित! जो कुछ आपने पूंछाथा वह सब मैंने

१ प्रलयकालमें विष्णु समुद्रशयन करते हैं ऐसी कथा प्रख्यात है किन्तु यहांपर ब्रह्माके लिये लिखा है सोभी असंगत नहीं है । एक तो ब्रह्मा नारायणकाही अंश हैं दूसरे कूर्मपुराणमें लिखा है—"ततोऽवतीर्य्य विश्वात्मा देहमाविश्य चक्रिणः । अवाप वैष्णवीं निद्रा-मेकीभूयाथ विष्णुना ॥" अर्थात् तब विश्वात्मा ब्रह्मा विष्णुसे उत्पन्न होकर पुनः विष्णुके देहमें प्रवेश करके विष्णुमें सम्मिलित होकर योगनिद्राको प्राप्त हुवे ॥ २ निषाद, ऋषभ, गांधार, षड्ज, मध्यम, धैवत, पंचम—ये सातौ स्वर ब्रह्मका रूप हैं। स्व. प्र.

अपना जन्मकर्मरूप वृत्तान्त और आपके आत्माके सन्तुष्ट होनेका उपाय आपसे कहदिया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर भगवान् नारदमुनि व्यासजीसे आज्ञा लेकर वीणा बजाते इच्छापूर्वक किसी ओर चलेगये ॥ ३७ ॥

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः ॥
गायन् माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥ ३८ ॥

अहो यह देवर्षि नारद धन्य हैं! जो वीणा बजाकर हरिगुण गाते आनन्द पाते इस आतुर जगत्के कल्याणार्थ विचरते हैं ॥ ३८ ॥

इति श्रीभागवते प्रथमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय।

अश्वत्थामाकृत पाँच पाण्डवपुत्रोंका वध और अर्जुनका अश्वत्थामाके शिरसे मणि लेकर उन्हे छोड़ देना।

शौनक उवाच—निर्गते नारदे सूत भगवान् बादरायणः ॥
श्रुतवांस्तदभिप्रेतं ततः किमकरोद्विभुः ॥ १ ॥

शौनकजी बोले। हे सूत! जब नारदजी चले गये तब भगवान् व्यासजीने नारदकी सम्मति सुनकर क्या किया? ॥ १ ॥ **सूतजी बोले।** ब्रह्मनदी सरस्वतीके पश्चिम तट पर शम्याप्रास नाम व्यासजीका आश्रम है, जिसमें ऋषिलोग अनेक यज्ञ किया करते हैं ॥२॥ बदरीवनसे घिरे हुवे उस अपने आश्रममें स्थित व्यासजी बैठ कर आचमन करके अपने मनमें आत्माका ध्यान करने लगे ॥ ३ ॥ भक्तियोगसे भलीभांति शुद्ध एवं निश्चल अन्तःकरणमें व्यासजीने प्रथम पूर्ण पुरुष परमेश्वरको और फिर ईश्वरकी ईश्वराधीन मायाको देखा ॥ ४ ॥ जिस मायासे मोहित होकर यह जीव यद्यपि परमेश्वरका अंश है तथापि अपनेको त्रिगुणात्मक शरीरधारी मानता है और गुणकृतकर्मद्वारा प्राप्त अनर्थमूल जो सुख, दुःख हैं उनको भोगता है ॥ ५ ॥ इस अनर्थमूल जन्ममरणको मिटानेवाला जो भक्तिमार्ग है उससे जो लोग अनभिज्ञ हैं उनके शुभके लिये विद्वान् व्यासजीने भागवत संहिता बनाई ॥ ६ ॥ जिसके सुननेसे परमेश्वर कृष्णमें शोक, मोह, भयको दूर करनेवाली भक्ति होती है ॥ ७ ॥ व्यासजीने वह भागवत संहिता बनाकर और शुद्ध करके निवृत्तिमार्गमें प्रवृत्त महामुनि शुकदेव नाम अपने पुत्रको पढ़ाई ॥ ८ ॥ **शौनकजी बोले।** वह मुनि शुकदेवजी तो निरीह एवं जीवन्मुक्त थे फिर उन्होंने किसलिये इस महती भागवत संहिताको पढ़ा, (क्योंकि इसके पढ़ने सुननेका फल मुक्ति है

और वह स्वयं जीवन्मुक्त थे) ॥ ९ ॥ **सूतजी बोले ।** आत्मामें रमनेवाले लोग जीवन्मुक्त होने परभी परमेश्वरमें निष्काम भक्ति करते हैं—हरिके गुण ऐसेही मनोमोहन हैं कि उनसे तृप्ति नहीं होती ॥ १० ॥ विष्णुभक्तोंके प्रिय भगवान् व्यासजी भगवान्के गुणोंमें मोहित होकर इस महासंहिताको नित्यप्रति गाते हैं ॥ ११ ॥ अब हे मुनियो ! परीक्षित् राजर्षिका जन्म, व उनके कर्म एवं मुक्ति और पाण्डवोंका परमधाम जाना—यह कथा मैं आपलोगोंसे कहता हूं जिसमें कृष्णकी अनेक कथाएँ हैं ॥ १२ ॥ जब भारत युद्धमें कौरव और सृंजय पक्षके वीर लोग वीरगतिको प्राप्त हुवे और भीमसेनकी गदाके लगनेसे धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनकी जंघा टूटगई ॥१३॥ तब अश्वत्थामा "स्वामी दुर्योधन इस कर्मसे प्रसन्न होंगे" यह विचारकर अपने डेरेमें सो रहे जो द्रौपदीके पांच पुत्र हैं उनके शिर काटकर दुर्य्योधनके पास लाये, किन्तु यह देखकर दुर्योधनभी असन्तुष्ट हुवा । क्यों नहीं, निन्दित कर्मकी मित्र शत्रु सभी निंदा करते हैं ॥ १४ ॥ माता द्रौपदी पुत्रोंकी अपमृत्यु देखकर बहुत दुःखित होकर विलाप करने लगीं, उनके नेत्रोंसे आंसू बहने लगे; तब द्रौपदीको शान्त करनेके लिये अर्जुन बोले ॥१५॥ "हे भद्रे ! मैं तुम्हारे शोकको तब शान्त करूंगा जब उस आततायी ब्राह्मणपुत्र अश्वत्थामाका शिर गाण्डीव धनुषसे छूटे हुवे घोर बाणोंसे काटकर तुमको दिखलाऊंगा जिसपर चढ़कर पुत्रदुःखसे पीड़ित तुम स्नान करोगी" ॥ १६ ॥ इसप्रकार रमणीक मधुर वचनोंसे समझाकर कवच धारणकर और धनुष लेकर एवं प्रिय सखा और सारथी जो श्रीकृष्णजी हैं उनके साथ रथपर सवार होकर वीर अर्जुन गुरुपुत्रके पीछे दौड़े ॥१७॥ बालकोंको मारनेवाले अश्वत्थामा, दूरसे अर्जुनको आते हुवे देख घबड़ाकर प्राण बचानेके लिये रथपर चढ़कर यथाशक्ति भागे जैसे रुद्रके भयसे एक समय सूर्य्य भागे थे ॥ १८ ॥ जब अश्वत्थामाने देखा कि रथके घोड़े भी थक गये अब कोई बचनेका उपाय नहीं है तब सोंचा कि बस अब केवल ब्रह्मास्त्रसेही रक्षा हो सक्ती है ॥ १९ ॥ यह सोंचकर अश्वत्थामाने आचमन किया और एकाग्रचित्त होकर प्राणपर संकट पड़नेसे यद्यपि (ब्रह्मास्त्रका) उपसंहार नहीं विदित था तथापि ब्रह्मास्त्रका संधान किया ॥ २० ॥ तब तो चारोंओर प्रचण्ड तेज प्रकट हुवा, प्राणोंपर आपत्ति देखकर अर्जुनजी

१ यथा:—"अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते आततायिनः॥" अर्थात् गांवमें आग लगानेवाला, किसीको विष खिलानेवाला, शस्त्र हाथमें लिये, चोर, पराया खेत एवं पराई स्त्री हरनेवाला, ये छः आततायी कहाते हैं । २ इसकी कथा यों है कि:—विद्युन्माली नाम एक राक्षसने शिवको प्रसन्न किया, शिवने उसको एक सुवर्णका सूर्यसम दीप्तिमान् विमान दिया, वह राक्षस उसीपर चढ़कर सूर्यके पीछे घूमने लगा जिससे रात्रिकोभी सूर्यवत् प्रकाशसे दिन होगया, तब कुपित सूर्यने अपने असीम असह्य तेजसे उस विमानको नष्ट कर दिया, तब परमकुपित होकर शिवजी सूर्यके पीछे दौडे और सूर्य भागते २ वाराणसीमें आकर गिर पडे और वहां लोलार्क इस नामसे विख्यात हुवे । (काशीखण्ड)

श्रीकृष्णजीसे बोले ॥२१॥ **अर्जुन बोले ।** हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाभाग! हे भक्तोंको अभय देनेवाले! आपही संसारतापमें जल रहे पुरुषोंको मोक्षरूप शान्ति देनेवाले हैं ॥ २२ ॥ आप आदिपुरुष, मायारहित, साक्षात् ईश्वर हैं; अपनी चित्‌शक्तिसे माया का निरादर करके अपने कैवल्यज्ञानमय स्वरूपमें स्थित हैं ॥ २३ ॥ और अपने पराक्रमसे इस मायासे मोहित जीवलोकका धर्मादिरूप कल्याण करते हैं ॥ २४ ॥ वैसेही यहभी आपका अवतार पृथ्वीका भार उतारनेके लिये एवं अपने अनन्य भक्तोंके नित्य ध्यान करनेके लिये हुवा है ॥२५॥ हे देवदेव! मैं नहीं जानता कि यह क्या है और किसका भेजा है? देखिये! चारों ओरसे दारुण तेज मेरी ओर आरहा है ॥ २६ ॥ **श्रीभगवान् बोले ।** जानते हो, यह द्रोणाचार्यके पुत्रका भेजा हुवा ब्रह्मास्त्र है, यद्यपि वह इसका संहार नहीं जानता तथापि प्राणोंपर संकट पड़नेसे उसने छोड़ दिया है ॥२७॥ दूसरा अस्त्र इसको शान्त नहीं कर सक्ता, इस कारण तुम ब्रह्मास्त्रसेही इसका संहार करो; क्योंकि तुम अस्त्रविद्यामें निपुण हो ॥२८॥ **सूतजी बोले ।** भगवान्‌का कथन सुनकर शत्रुदलदलन अर्जुनने आचमन और श्रीकृष्ण की परिक्रमा करके ब्रह्मास्त्र रोंकनेके लिये ब्रह्मास्त्र छोड़ा ॥ २९ ॥ ब्रह्मास्त्रयुक्त दोनों वाण आकाशमें एकत्र हुवे और दोनोंका दारुण तेज अन्तरिक्ष और आकाशमें अग्नि और सूर्यके समान छागया ॥३०॥ तीनो लोकोंको मानों जला देगा, ऐसा उन अस्त्रोंका सर्वत्र व्याप्त घोर तेज देखकर सबने जाना कि आज प्रलय होगा और यह शेषके मुखसे निकला हुवा प्रलयकारी घोर अग्नि आकाशमें बढ़ रहा है ॥३१॥ अर्जुनने देखा कि थोड़ी देरमें सब लोकोंका विनाश होजायगा एवं वासुदेवकी इच्छा भी यही है; तब दोनों अस्त्र अर्जुनने अपने पास खींच लिये ॥ ३२ ॥ तदनन्तर क्रोधसे लाल नेत्र हैं जिनके ऐसे अर्जुनने वेगसे दौड़कर दारुण कर्म करनेवाले अश्वत्थामाको पकड़ लिया और जैसे रस्सीसे बलिपशु बांधा जाता है वैसे रथमें बांध लिया ॥३३॥ अर्जुन जब बलपूर्वक रस्सीसे बांधकर अपने शत्रुको डेरे की ओर लेचले तब ब्राह्मणके अनादर से क्रोध करके भगवान् कमलनयन कृष्णजी अर्जुनसे ये व्यंग्य वचन बोले ॥३४॥ "हे अर्जुन! इसकी रक्षा न करो, इस ब्राह्मण को मार डालो; क्योंकि इसने रात्रिको निर्दोषी बालकोंको सोतेसमय मार डाला ॥३५॥ धर्मके जाननेवाले लोग मदमत्त, असावधान, सिड़ी, निद्रित, बालक, स्त्री, जड़, शरणागत, रथहीन, और डरकर भागे हुवे शत्रुकोभी नहीं मारते ॥३६॥ जो निर्दय दुष्ट पराये प्राणोंसे अपने प्राणोंका पोषण करता है उसका बधही उसको कल्याण देनेवाला है क्योंकि बिना बधरूप प्रायश्चित्तके वह पापी नरकको जाता है ॥३७॥ एवं तुमने मेरे सामनेही द्रौपदीसे प्रतिज्ञा भी की है कि 'हे मानिनि! मैं उसका शिर काटकर तुम्हारे आगे लाऊंगा जिसने तुम्हारे पुत्रोंको मारा है' ॥३८॥ अतः हे वीर! इसको मार डालो क्योंकि यह आततायी और अपने बंधुओंका

मारनेवाला है एवं इस कुलकलंकने यह कर्म करके अपने स्वामी दुर्योधनका भी प्रिय नहीं किया'' ॥३९॥ इस प्रकारके वचनोंसे अर्जुनकी धर्म-परीक्षा लेरहे जो श्रीकृष्ण हैं उनके कहने पर भी अर्जुनने अपने गुरुपुत्रको मारनेकी इच्छा नहीं की; यद्यपि उसने उनके पुत्रोंको मारा था ॥ ४० ॥ गोविंद हैं प्रियसखा और सारथी जिनके ऐसे अर्जुनने अपने डेरेमें आकर, मरे हुवे पुत्रोंका शोच कर रही प्रिया द्रौपदीके आगे अश्वत्थामाको खड़ा करदिया ॥४१॥ इस प्रकार निरादरके साथ पशुकी भांति पाशमें बाँधकर लायेगये और अपने निन्दनीय कर्मके कारण लज्जासे मुख नीचा किये खड़े जो गुरुपुत्र अश्वत्थामा हैं उन्हे सुशीला द्रौपदीने दयादृष्टिसे देखा और प्रणाम किया ॥४२॥ एवं सती द्रौपदी, इस प्रकार बांधकर गुरुपुत्रका लाना न सहसकनेके कारण यों बोलीं कि "छोड़दो २ !! यह ब्राह्मण हैं, ब्राह्मण जगत्का सहजही गुरु होता है किन्तु यह तो वास्तवमें तुम्हारे गुरुके पुत्र हैं ॥ ४३ ॥ जिनसे तुमने रहस्यसहित धनुर्वेदकी शिक्षा पाई है और प्रयोग, संहार सहित अस्त्र पाये हैं ॥ ४४ ॥ यह वही साक्षात् भगवान् द्रोणाचार्यजी खड़े हैं! एवं इसी द्रोणजीकी प्रतिमूर्तिको देखकर उनकी अर्द्धाङ्गिनी कृपी सती नहीं हुई हैं ! ॥४५॥ हे महाभाग ! आप धर्म जानते हो, अतः आपके द्वारा गुरुके कुलको दुःख न पहुंचना चाहिये क्योंकि गुरुकुल नित्य पूजन और प्रणाम करने योग्य है ॥४६॥ इनकी माता परम पतिव्रता गौतमी कहीं न रोवें ! जैसे मैं पुत्रोंकी मृत्युसे आर्त होकर बार २ रोरही हूँ ॥४७॥ जिन अजितेन्द्रिय राजोंने ब्रह्मवंशको कोपित किया, उनके कुलको वह शोक-जनित ब्रह्मकोप सपरिवार भस्म कर देता है!!" ॥४८॥ **सूत बोले** । धर्म, न्याय, दयासे युक्त सत्य और समतायुक्त इन उच्चश्रेणीके द्रौपदीकथित वचनोंकी धर्मपुत्र युधिष्ठिरने प्रशंसा की ॥४९॥ नकुल, सहदेव, सात्यकी, अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण एवं अन्य पुरुष व स्त्री सुनकर प्रसन्न हुवे ॥ ५० ॥ किन्तु उग्ररूप भीमसेन क्रोध करके बोले कि–"जिसने सोते हुवे बालकोंको, न अपने और न स्वामीके अर्थ, वृथा मारडाला! उसका मारनाही भला है" ॥ ५१ ॥ भीमसेन व द्रौपदीके वाक्य सुनकर चतुर्भुज भगवान् सखाका मुखदेखकर मुसकाते हुवे यह बोले ॥ ५२ ॥ **श्रीभगवान् बोले** । भाई! "ब्राह्मणका वध न करना चाहिये" और "आततायीको मारना योग्य है"–ये दोनोंही वाक्य मेरे हैं. इन दोनोंकी जिसमें रक्षा हो सो तुम करो ॥ ५३ ॥ एवं जो तुमने द्रौपदीको धीरज देते समय प्रतिज्ञा की थी, वह भी न मिथ्या हो, और भीमसेनकी हमारी व द्रौपदीकी इच्छा पूर्ण हो ॥५४॥ **सूत**

१ पराये दुःख–सुखको अपने दुःख–सुखके समान जानना । २ यथा—"आततायिनमायान्तञापि वै वेदपारगम् । जिघांसंतं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥" अर्थात् वेदपारगामी ब्राह्मणभी यदि आततायी हो एवं मारनेके लिये आता हो तो उसे मारना चाहिये–इसमे ब्रह्महत्या नहीं होती ।

बोले। सहसा हरिका अभिप्राय जानकर अर्जुनने अश्वत्थामाके शिरमें स्थित मणिको खड्गसे केश काटकर निकाल लिया ॥५५॥ एवं बालहत्या करनेसे तेजहीन अश्वत्थामाको बंधनमुक्त करके और मणि लेकर डेरेसे निकाल दिया ॥५६॥ क्योंकि—शिर मुण्डन, धन ले लेना, स्थानसे निकाल देना; येही तीन दण्ड ब्राह्मणोंके लिये हैं, अन्य ताड़ना, वध आदि दैहिक दंड नहीं हैं ॥ ५७ ॥

पुत्रशोकातुराः सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया ॥
स्वानां मृतानां यत्कृत्यं चक्रुर्निर्हरणादिकम् ॥ ५८ ॥

तदनन्तर पुत्रशोकसे आतुर, द्रौपदीसहित, सब पाण्डवोंने युद्धमें मरे हुवे बंधु बांधवोंके प्रेतकर्म (दशाह सपिंडनश्राद्धादि) किये ॥ ५८ ॥

इति श्रीभागवते प्रथमस्कंधे सप्तमोध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय ।

कुपित अश्वत्थामाका फिर ब्रह्मास्त्र छोड़ना और उससे गर्भमें परीक्षित् की कृष्णकृत रक्षा, कुन्तीकृत कृष्णस्तुति और राजा युधिष्ठिरका मृत बंधुओंके लिये शोक करना ।

सूत उवाच—अथ ते संपरेतानां स्वानामुदकमिच्छताम् ॥
दातुं सकृष्णा गङ्गायां पुरस्कृत्य ययुः स्त्रियः ॥ १ ॥

सूतजी बोले। वे पाण्डव युद्धमें मरे हुवे अपने बंधु बान्धवोंको तिलांजलि देनेके लिये कृष्णासहित स्त्रियोंको आगे करके गंगातट पर गये ॥ १ ॥ वहां सबने अंजलि देकर एवं वार२ विलाप करके हरिचरणकमलसे उत्पन्न पवित्र गंगाजलमें स्नान किया ॥ २ ॥ वहां बैठेहुवे विदुरसहित राजा धृतराष्ट्र, पुत्रशोकसे दुःखित गान्धारी, और कुन्ती व द्रौपदीको ॥ ३ ॥ मुनियोंसहित श्रीकृष्णजी समझाने लगे। बंधुशोकसे व्याकुल युधिष्ठिर आदिसे श्रीकृष्णजीने कहा कि "इस कराल कालकी गति अनिवार्य है अर्थात् कालको कोई नहीं रोंक सक्ता" ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णने, धूर्त दुर्योधन आदिकोंने छलसे जो राज्य लेलिया था वह फिर युधिष्ठिरको दिलाकर और द्रौपदीके केश पकड़नेसे क्षीण होगई है आयु जिनकी ऐसे दुष्ट दुर्योधनादि का पाण्डवोंद्वारा वध कराकर ॥ ५ ॥ एवं उत्तम रीतिसे युधिष्ठिरसे तीन अश्वमेध यज्ञ कराकर, इंद्रके समान युधिष्ठिरका यश विश्वविख्यात करदिया ॥ ६ ॥ फिर श्रीकृष्णचन्द्रजीने व्यासआदि ब्राह्मणोंकी पूजा करके और उनके द्वारा स्वयं पूजित होकर, एवं पाँचों पाण्डवोंकी अनुमति लेकर, सात्यकी व उद्धवके साथ ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! द्वारका जानेकी इच्छा की; उसी अवसरमें देखा कि भयसे विह्वल

अभिमन्युकी स्त्री उत्तरा सामनेसे चली आरही है ॥८॥ **उत्तरा बोली**। हे महायोगी! हे देवदेव! हे जगत्पति! रक्षा करो! रक्षा करो! आपके सिवाय मृत्युसे रक्षा करनेवाला और कोई नहीं है क्योंकि सभी मृत्युके वशवर्ती हैं ॥९॥ हे विभु! यह तपे हुवे लोहेका बाण मेरे सन्मुख चला आरहा है! हे नाथ! यह मुझको भलेही जलादे पर मेरा गर्भ न नष्ट हो ॥१०॥ **सूतजी बोले**। भक्तवत्सल भगवान् उत्तराके ये वचन सुनकर जान गये कि यह ब्रह्मास्त्र, पृथ्वीको पाण्डववंशसे हीन करनेके लिये, अश्वत्थामाने छोड़ा है ॥११॥ हे मुनियोंमे श्रेष्ट! वैसेही पंच पाण्डवोंने अपने सामने कालानलतुल्य कराल पाँच बाण आते देखकर रक्षाके लिये अपने २ अस्त्र उठा लिये ॥१२॥ अपने अनन्यभक्त पाण्डवोंपर यह दारुण विपत्ति देखकर श्रीकृष्ण चन्द्रने अपने अस्त्र सुदर्शन चक्रसे उनकी रक्षा की ॥१३॥ सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें आत्मारूपसे स्थित, योगेश्वर हरिने पांडव-कौरव-वंशके बीजरूप गर्भ की रक्षाके लिये उत्तराके गर्भमें अपनी मायासे प्रवेश किया ॥ १४ ॥ हे भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ! यद्यपि ब्रह्मास्त्र कहीं निष्फल नहीं होता और उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं है तथापि विष्णुके तेजसे वह शान्त होगया ॥ १५ ॥ उन आश्चर्यमय ईश्वर का गर्भमें प्रवेश करके ब्रह्मास्त्रसे गर्भ की रक्षा करना—कोई आश्चर्य नहीं है, जो अज अनादि होकरभी अपनी दिव्य मायासे इस जगत् की उत्पत्ति, पालन और नाश करते हैं ॥ १६ ॥ ब्रह्मास्त्रके तेजसे रक्षित पाण्डवोंसे और द्रौपदीसे बातें कर-रहे एवं जानेको उद्यत, श्रीकृष्णसे परम पतिव्रता कुन्तीजी यह बोलीं ॥ १७ ॥ **कुन्ती बोलीं**। मायारहित, सब प्राणियोंके भीतर और बाहर रहने परभी अलक्ष्य, परमपुरुष जो आप हैं उनको प्रणाम करती हूँ ॥१८॥ आप मायारूप यवनिका (पर्दे) में छिपे हुवे हैं, आप इन्द्रियोंके स्वामी सच्चिदानन्द ज्ञानरूप हैं, आपको इन्द्रियोंके विषयोंमें लिप्त मूर्ख लोग नहीं देख सक्ते, जैसे इन्द्रजाल करनेवालेको कोई इतर मनुष्य नहीं देख सक्ता ॥१९॥ आप निर्मलचित्त परमहंस मुनियोंके भक्तियोगके लिये पृथ्वीमें अवतीर्ण हुवे हैं, आपको हम मूर्ख स्त्री जाति कैसे जान सक्ती हैं ॥ २० ॥ कृष्ण, वासुदेव, देवकीके पुत्र, नंदनन्दन, गोविंदको वारम्वार प्रणाम है ॥ २१ ॥ जिनकी नाभिसे कमल उत्पन्न है उनको प्रणाम है, एवं कमल-माला-धारी, कमललोचन, कमलचरणको प्रणाम है ॥ २२ ॥ हे हृषीकेश! जैसे देवकीको दुष्ट कंसने बहुत कालतक बन्दी करके पीड़ित किया तब उनकी रक्षाकी और तुम्ही स्वामीने मेरी और मेरे पुत्रोंकी वारम्वार विपत्तियोंसे रक्षा की ॥२३॥ एवं जैसे विषसे, लाक्षाभवन की अग्निसे, हिडम्ब आदि राक्षसोंसे, दुर्योधन आदि दुष्टोंकी सभासे, वनवासके कष्टोंसे, और प्रत्येक युद्धमें अनेक महारथियोंके घोर अस्त्र शस्त्रोंसे बचाया वैसेही आजभी आपने अश्वत्थामाके दारुण अस्त्रसे हमारी रक्षा की ॥२४॥ हे जगत्के गुरु! हमारी कामना है कि हमको पद पद पर विपत्तियाँ हों जिनमें हमको संसारसे छुड़ाने-वाला अतएव दुर्लभ आपका दर्शन मिलता है ॥२५॥ क्योंकि जब पुरुषको सुख

होता है तब वह जन्म, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, कुटुम्ब आदिके अभिमानसे प्रमत्त होकर अंधा होजाता है अतएव आपको नहीं देख सक्ता! इसीसे आपका नाम अकिंचन-गोचर है ॥ २६ ॥ अकिंचनोंके धनरूप, निर्गुण, अपनेमेंही रमनेवाले, शान्तस्वरूप, कैवल्य मोक्षके देनेवाले आपको प्रणाम है ॥ २७ ॥ मैं आपको कालरूप सबका संहार करनेवाला आदिअन्तहीन सर्वव्यापी समदर्शी समझती हूँ—जिनके विषयमें सब लोग परस्पर मतमतान्तररूप विवाद करते हैं ॥ २८ ॥ हे भगवन्! मनुष्य-लीला कर रहे जो आप हैं उनके कर्तव्यको कोई नहीं जानता, आपका कोई न मित्र है और न शत्रु है, जिन मित्र और शत्रुओंमें मनुष्योंकी विषम बुद्धि होती है; अतएव आपका नाम पुरुषोत्तम व समदर्शी है ॥२९॥ हे विश्वरूप! अजन्मा निर्गुण जो आप हैं उनका पशु, पक्षी, मनुष्य, जलजन्तु आदि योनियोंमें जन्म लेना और लीला करना अत्यन्त लीलामात्र है ॥३०॥ जब आपने माठ फोड़कर दही ढरका दिया और इस अपराध करनेपर यशोदाजी रस्सी लेकर आपको बाँधने खड़ी हुई तब जि-नको भयभी भय करता है वह आप एक साधारण बालककी भाँति, भयकी भावनासे कज्जलकालिमासे मिले हुवे आँसुओंसे परिपूर्ण घबड़ाये हुवे नेत्रोंसे कनखियों देखरहे मुख लटकाये माताके सामने खड़े हुवे—वह छवि मुझको अबभी मोहित करती है॥३१॥ कोई कहते हैं आप अजन्मा ईश्वर हैं; आप अपने प्रिय, पवित्र यशवाले युधिष्टिर की कीर्ति फैलानेके लिये यदुके वंशमें उत्पन्न हुवे हैं, जैसे मलयाचलमें चंदन ॥३२॥ कोई कहते हैं कि देवकी वसुदेव जो पूर्वजन्ममें सुतपा और पृश्नि थे, उनकी प्रार्थनासे इस जन्ममें उनके कल्याण और दानवोंके प्राणहरणके लिये आप उनके पुत्र हुवे हैं ॥३३॥ कोई कहते हैं कि समुद्रमें नौकाके समान डूब रही पृथ्वीके भारी भारको उतारनेके लिये ब्रह्माकी प्रार्थनासे आपका अवतार हुवा है ॥३४॥ कोई कहते हैं कि इस संसारमें अज्ञान, कामना और कर्मबन्धनसे खेदको प्राप्त जो जीव हैं उनके स्मरण, श्रवण करने योग्य चरित्र करनेके लिये आपका अवतार हुवा है ॥३५॥ जो लोग तुम्हारी लीला सुनते हैं, गाते हैं, कीर्तन करते हैं, बारबार स्मरण करके प्रसन्न होते हैं, वेही संसारचक्रको निवृत्त करनेवाले आपके चरणोंको शीघ्र देख पाते हैं ॥३६॥ हे अपनी लीलाके स्वामी! इस समय आप हमको छोड़कर जाना चाहते हो। हम आपके सुहृद् और अनुजीवी हैं हमारा आपके चरणकमलोंके सिवाय कोई आश्रय नहीं है एवं इससमय हमने सम्पूर्ण राजोंको दुःखित करके सबसे वैर ठान लिया है, (अर्थात् इन कारणोंसे हमें छोड़कर इस समय द्वारका जाना आपको उचित नहीं है) ॥ ३७ ॥ यदि आप हमारे सहायक और पार्श्ववर्ती न हों तो हम पाण्डव, यादवोंके आगे विख्याति और ऐश्वर्य में क्या हैं? अर्थात् अति तुच्छ हैं। जैसे इन्द्रियाँ जीवात्माके वियोगमें शक्तिहीन होजाती हैं आपके वियोगमें हमारी वही दशा होगी ॥३८॥ हे गदाधर! यह पृथ्वी जैसे अब विलक्षण-लक्षणयुक्त भवदीय चरणोंसे शोभित होती है वैसे आपके द्वारका चले जानेपर

इसकी शोभा न होगी ॥ ३९ ॥ ये सुपक्क औषध लता वृक्ष आदिसे सुशोभित भरे पुरे नगर और वन, पर्वत, नदी, समुद्र आदि केवल आपकी कृपादृष्टि पड़नेसे उन्नति और ऐश्वर्य को प्राप्त हैं ॥४०॥ आपके जानेसे पाण्डवों को और न जानेसे यादवोंको दुःख होगा, इस कारण हे जगदीश! हे विश्वके आत्मा! हे विश्वरूप! स्वजन जो पाण्डव, यादव हैं उनमें मेरा सुदृढ़ जो स्नेहपाश है उसे काट दीजिये ॥४१॥ हे यादवपति! तुममें मेरी अनन्य (दृढ़) भक्ति हो, जैसे गंगाका प्रवाह समुद्रमें मिलता है वैसे मेरा मन आपमें लीन होजाय ॥४२॥ हे श्रीकृष्ण! हे अर्जुनके सखा! हे वृष्णियों (यादवों) में श्रेष्ठ! हे पृथ्वीके भाररूप राजवंशके जलानेवाले अग्नि! हे अक्षीणप्रभाव! हे गोविंद! हे गो ब्राह्मण और देवतोंके दुःख दूर करनेके लिये अवतार लेनेवाले! हे जगदीश्वर! हे जगत्के गुरु! हे ऐश्वर्ययुक्त! आपको प्रणाम है ॥ ४३ ॥ **सूतजी कहते हैं।** इस प्रकार मधुर शब्दोंसे कुन्तीने जब सम्पूर्ण महिमाका वर्णन किया तब श्रीकृष्णजी अपनी अनन्त माया से मानों मोहित करते हुवे मृदु मन्द मुसकादिये ॥ ४४ ॥ कुन्तीकी विनय स्वीकृत करके श्रीकृष्णजी फिर हस्तिनापुरको लौट आये; क्योंकि उत्तरा आदि स्त्रियोंकी अनुमति लेकर जब हरि द्वारका जाने लगे तब राजायुधिष्ठिरने प्रेमवश उनको नहीं जाने दिया ॥४५॥ ईश्वरकी दुरूह लीलाको न जाननेवाले व्यासादिकमुनि और अद्भुतकर्मवाले कृष्णने अनेक इतिहास उपाख्यान सुनाकर युधिष्ठिरको बहुत समझाया परन्तु युधिष्ठिर की चिन्ता और शोक शान्त नहीं हुवा ॥ ४६ ॥ अपने मित्रोंके मरणका स्मरण करके अविवेकवश स्नेह और मोहके वश होनेसे चिन्तित होकर राजायुधिष्ठिर कहने लगे कि ॥४७॥ "अहो देखो, मुझ दुरात्माके हृदयमें कैसा अज्ञान छागया! जो सियारोंके आहाररूप इस शरीरके लिये मैंने कई अक्षौहिणी[1] सेनाका विनाश कर डाला ॥ ४८ ॥ सैकड़ों हजारों वर्ष बीतने पर भी मेरा नरक से छुटकारा न होगा क्योंकि मैं बालक, ब्राह्मण, सुहृत्, इष्ट मित्र, पिता, माता और गुरु का विद्रोही हूं ॥४९॥ 'प्रजापालक राजा यदि धर्मयुद्धमें शत्रुओं को मारे तो उसको दोष नहीं है' इस शासनरूप वेदवाक्यसे मेरे हृदयको बोध नहीं होता

---

१ व्यासजीके मतमें अक्षौहिणीकी संख्या यह है—"अक्षौहिणी प्रसंख्याता रथानां द्विजसत्तम । संख्या गणनतत्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः ॥ शतान्युपरि चैवाष्टौ तथाभूयश्च सप्ततिः । गजानां च प्रसंख्यानमेतावद्धि प्रकीर्तितम् ॥ ज्ञेयं शतसहस्रं तु सहस्राणि नवैव तु । नराणामपि पंचाशच्छतानि त्रीणि चैव हि ॥ पंचषष्टिसहस्राणि तथाश्वानां शतानि च । तथोत्तराणि षट् प्राहुः संख्यां तत्वविदो जनाः ॥ एतामक्षौहिणीं प्राहुर्यथावदिह संख्यया ॥" अर्थात् २१८७० इक्कीस हजार आठसौ सत्तर रथ और इतनेही हाथी व १०९३५० एक लाख नौ हजार तीनसौ पचास पैदल एवं ६५६०० पैंसठ हजार छः सौ घोड़े—इतनी सेनाको एक अक्षौहिणी कहते हैं। (महाभारत.)

(अर्थात् जो राजा राज्य करता हो और उसपर कोई शत्रु चढ़ाई करे तब हिंसामें पाप नहीं है किन्तु मैंने तो राज्यलोभसे दुर्योधनकी और अपनी सेनाका विनाश कराया है इससे यह पापही हुवा) ॥५०॥ एवं मैंने जिनके बंधु बांधव और पतियोंको मारा है उन स्त्रियोंके दुःखित होनेसे जो मुझको कलंक हुवा है उसको मैं यज्ञादिक करके नहीं धो सक्ता ॥ ५१ ॥

यथा पङ्केन पङ्काम्भः सुरया वा सुराकृतम् ॥
भूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥ ५२ ॥

जैसे कीचड़में भर गया कपड़ा कीचड़सेही धोनेमें शुद्ध नहीं होता अथवा मदिराकी अशुद्धि मदिरासे दूर नहीं होती वैसे बलिदानआदि हिंसामय अश्वमेधादि यज्ञोंसे प्राणिहत्याका पाप नहीं नष्ट हो सक्ता!" ॥ ५२ ॥

इति श्रीभागवते प्रथमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय ।

भीष्मपितामहका युधिष्ठिर से सम्पूर्ण धर्म कहना, और भीष्मकृत कृष्णस्तुति व भीष्मकी मुक्ति ।

सूत उवाच—इति भीतः प्रजाद्रोहात्सर्वधर्मविवित्सया ॥
ततो विनशनं प्रागाद्यत्र देवव्रतोऽपतत् ॥ १ ॥

सूतजी बोले। इस प्रकार प्रजाके द्रोहसे भयभीत युधिष्ठिरजी सम्पूर्ण धर्मोंके जाननेकी इच्छासे समरभूमिको चले जहां भीष्मजी शरशय्यापर शयन कररहे थे ॥१॥ पांचों पाण्डव सुंदर घोड़े जिनमें जुते हैं ऐसे सुवर्णभूपित रथोंपर चढ़कर चले; और व्यास धौम्य आदि ब्राह्मणवृंद भी चले ॥ २ ॥ हे विप्रर्षि! भगवान् भी अर्जुनसहित रथपर बैठकर साथ हो लिये। सबके बीचमें युधिष्ठिरकी ऐसी शोभा हुई जैसे यक्षमण्डलीमें कुवेरकी ॥३॥ सबने जाकर देखा कि शरशय्यापर स्वर्गसे गिरे हुवे देवताके समान भीष्मजी शयन कररहे हैं। पाण्डवोंने कृष्ण और अन्य सम्पूर्ण साथियोंसहित भीष्मजीको प्रणाम किया ॥ ४ ॥ उससमय वहांपर भीष्मपितामह के दर्शनार्थ बड़े २ ब्रह्मऋषि, देवऋषि एवं राजऋषि आये ॥५॥ पर्वतमुनि, नारदजी, धौम्यऋषि, भगवान् वेदव्यास, बृहदश्व, भरद्वाज, शिष्ययुक्त परशुरामजी ॥६॥ वशिष्ट, इन्द्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, और सुदर्शन ॥ ७ ॥ एवं औरभी निर्मलचित्त कश्यप, अंगिरा, बृहस्पति, शुकदेव आदि मुनि शिष्योंसहित वहाँ आये ॥ ८ ॥ संपूर्ण महाभाग ऋषिसत्तम और अन्य राजादिकोंको देखकर, वसुओंमें उत्तम, और

देशकालके अनुरूप धर्मके जाननेवाले भीष्मजीने सबका आदर, सत्कार, कुशलप्रश्न आदिसे पूजन किया ॥ ९ ॥ और कृष्णकी अपार महिमाके जाननेवाले भीष्मजीने मायामनुष्यरूप से सन्मुख स्थित एवं आत्मारूपसे हृदयमें स्थित जगत् के स्वामी श्रीकृष्णकी पूजा की; ॥ १० ॥ विनय व प्रेमसे पास बैठे हुवे पाण्डवोंको देखकर भीष्मजीके नेत्रोंमें मायामोहजनित आंसू भर आये और वह पाण्डवोंसे बोले ॥ ११ ॥ "अहो बड़े कष्ट और अन्याय की बात है जो तुमको जीवनमें क्लेश मिले, क्योंकि तुम धर्मके पुत्र एवं विप्रभक्त और धर्ममें अनुरक्त व कृष्णके आश्रित हो ॥ १२ ॥ जब तुम्हारे पिता महारथी पाण्डुका परलोकवास हुवा तब तुम लोग बालकही थे, उससमयसे बधू-पुत्रयुक्ता कुन्तीने तुम्हारे कारण अनेक क्लेश सहे हैं ॥ १३ ॥ किन्तु तुम धर्मात्मोंको ऐसा क्लेश होना-यह सब मेरे अनुमानमें कालगति है, वह काल बड़ाही प्रबल है जिसके वशमें सम्पूर्ण विश्व है जैसे वायुके वशमें मेघमाला ॥ १४ ॥ नहीं तो जहाँ साक्षात् धर्मके पुत्र राजा हैं, गदापाणि भीमसेन सहायक हैं, भाई अर्जुन अस्त्रविद्यामें निपुण हैं, गाण्डीव धनुष है और कृष्णजी स्वजन हैं, वहाँभी किसी भाँति विपत्तिका होना संभव है! ॥ १५ ॥ हे राजन्! इन कालरूप श्रीकृष्णके कर्तव्यको कोई नहीं जानता, उसके जाननेकी कामनामें बड़े २ विद्वान् भी मोहित होते हैं ॥ १६ ॥ इससे हे भरतवंशमें श्रेष्ठ! यह सब ईश्वराधीन जानकर ईश्वरकी इच्छाके अनुवर्ती होकर इन अनाथ प्रजागणकी रक्षा करो क्योंकि अब तुम्ही इनके स्वामी और रक्षा करनेमें समर्थ हो ॥ १७ ॥ यह श्रीकृष्णजी साक्षात् भगवान् नारायण आदिपुरुष हैं, अपनी मायासे लोकको मोहित करते हुवे यादवोंमें गूढ़रूपसे स्थित हैं ॥ १८ ॥ हे राजन्! इनकी परम गुप्त महिमाको भगवान् शिव और देवर्षि नारद व साक्षात् भगवान्का अवतार कपिलमुनि आदि योगीजन जानते हैं ॥ १९ ॥ जिनको तुम अपने मामाका पुत्र और प्रिय मित्र व स्वजन जानते हो एवं जिनको तुमने सखाभावसे अपना भृत्य, दूत, और सारथी तक बनाया है ॥ २० ॥ किन्तु यह बुद्धिकी विषमता कि 'यह कर्म हमारे योग्य है या नहीं', मनुष्योंमें ही होती है; सर्वव्यापी, समदर्शी, अद्वितीय, अहंकारशून्य ईश्वरमें यह भाव नहीं हो सक्ता ॥ २१ ॥ हे राजन्! तथापि अपने एकान्त भक्तोंपर इनकी कृपा देखो कि मेरे अन्तसमयपर साक्षात् आकर मुझको अपना दर्शन दिया ॥ २२ ॥ जिनमें दृढ़ भक्तिसे मन लगाकर और जिनका नामकीर्तन करते २ शरीरको त्यागकर योगी लोग कर्मवासनासे छूटकर मुक्त हो जाते हैं ॥ २३ ॥ वह देवदेव भगवान् उतने समयतक, प्रसन्न हँसीयुक्त और कमलारुण नयनोंसे सुशोभित मुखकमलविशिष्ट चतुर्भुज रूपसे मेरे ध्यानमें स्थित रहें; जबतक मैं इस अधम शरीरका त्याग करूं" ॥ २४ ॥ सूतजी कहते हैं। तद-नन्तर शरशय्याशायी भीष्मजीसे राजा युधिष्ठिरने ऋषियोंके सामने अनेक धर्म पूँछे ॥ २५ ॥ पुरुष स्वभावके अनुकूल विहित जो मनुष्यमात्रके साधारण धर्म हैं

उनको, और संसारके अनुरागके अनुगत प्रवृत्तिमार्ग, व वैराग्यके अनुगत निवृत्तिमार्ग ॥२६॥ दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, स्त्रियोंके धर्म, भक्तोंके धर्म; सब अलग अलग संक्षेप व विस्तार रीतिसे ॥ २७ ॥ और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष व इनके उपाय एवं अनेक उपाख्यान इतिहास; धर्मज्ञ भीष्मने राजा युधिष्ठिरसे कहे ॥२८॥ इस भांति धर्मचर्चा होते २ उत्तरायण काल आगया; जो स्वच्छन्दमृत्यु योगीजनोंको वांछित है ॥ २९ ॥ युद्धमें सहस्र रथियोंकी रक्षा करनेवाले महारथी भीष्मजी उस समय मौन होगये, और अपने निश्चल मनको पीतपट धारण किये चतुर्भुजरूपसे सन्मुखस्थित जो आदिपुरुष श्रीकृष्ण हैं उनमें लगा दिया और नयन बन्द कर लिये ॥३०॥ विशुद्ध धारणासे सब अमंगलमल दूर होगये, और कृष्णके दर्शन करतेही शीघ्र शस्त्रोंकी पीड़ा जाती रही, तब भीष्मजी सम्पूर्ण इन्द्रियोंको विषयोंसे निवृत्त करके सावधान होकर शरीर त्यागते समय जनार्दनकी स्तुति करने लगे ॥३१॥ **भीष्मजी बोले ।** उन यादवपुंगव एवं सर्वश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णमें मैंने इस प्रकार कामनाशून्य बुद्धि अर्पित की है, जिन आनन्दमय ब्रह्मसे, मायाका स्वीकार करनेपर यह संसार अर्थात् सृष्टिपरम्परा होती है ॥ ३२ ॥ त्रिभुवनसुन्दर एवं तमालतरुसदृश श्यामशरीर व सूर्यकिरण ऐसे गौरवर्ण वर वस्त्रको धारण किये और अलकावलिसे आवृत सुशोभित मुखकमलवाले अर्जुनके मित्र श्रीकृष्णमें मेरी निष्काम भक्ति हो ॥ ३३ ॥ युद्धमें घोड़ोंकी रज पड़नेसे धूम्रवर्ण एवं चंचल अलकावली और श्रमजनित प्रस्वेदके बुन्दोंसे अलंकृत है मुख जिनका, और मेरे तीक्ष्ण बाणोंसे कवच कट जानेपर भिन्न हो रही है त्वचा जिनकी, ऐसे कृष्णमें मेरा मन रमै ॥ ३४ ॥ सखाके कहनेपर[1] शीघ्रही अपनी पराई दोनों सेनाओंके बीचमें रथ स्थापित करके, शत्रुपक्षकी सेनाके वीरोंकी आयु, उनकी ओर देखकर जिन्होंने हर ली उन अर्जुनके मित्र कृष्णमें मेरा मन रमै ॥ ३५ ॥ सन्मुखस्थित शत्रुसेनामें आगे स्वजनोंको मरने मारनेपर उद्यत देखकर, जब अर्जुन स्वजनवधको दोष समझकर धनुष बाण त्यागकर स्वजनवधसे निवृत्त[2] होगये तब जिसने आत्मज्ञानका उपदेश करके अर्जुनकी कुबुद्धिको हर लिया उस परमेश्वरके चरणकमलोंमें मेरी रति हो ॥३६॥ महाभारतमें "मैं शस्त्र ग्रहण नहीं करूंगा ।"–इस अपनी प्रतिज्ञाको

---

१ यथा–"सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत । यावदेतान्निरीक्ष्येऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ॥" अर्थ–हे अच्युत! दोनों सेनाओंके बीचमें मेरा रथ स्थापित करो, जिसमें युद्धकी इच्छासे सामने खड़े हुवे इन वीरोंको मैं देख लूं कि कौन२ हैं? (भ. गी.)

२ यथा–"एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् । विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥" अर्थ–शोकसे व्याकुल है मन जिनका ऐसे अर्जुन यों कहकर शरसहित शरासन फेंककर रथपर शोच करने लगे । (भ. गी.)

त्यागकर "मैं श्रीकृष्णको शस्त्रग्रहण करा दूँगा।"—इस मेरी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिये रथसे फाँदकर रथका चक्र (पहिया) हाथमें लेकर जो मेरे मारनेको इस भाँति वेगसे दौड़े कि पृथ्वी प्रतिपदमें काँपने लगी और कंधेसे दुपट्टा गिर गया, व जैसे हाथीके मारनेको सिंह दौड़ता है वैसी शोभाको प्राप्त हुवे उन श्रीकृष्णकी मैं शरण हूँ ॥ ३७ ॥ मेरे पैने बाणोंके प्रहारसे कवच टूट गया और श्यामसुंदर शरीर रुधिरसे लाल होगया, तब जो मुझ सशस्त्रके मारनेके लिये वेगसे दौड़े वह भक्तवत्सल भगवान् मेरी गति हों ॥ ३८ ॥ अर्जुनके रथपर स्थित होकर एक हाथसे चाबुक उठाये और एक हाथसे घोड़ोंकी रास पकड़े जो दर्शनीय शोभायुक्त श्रीकृष्ण भगवान् हैं उनमें मुझ मरनेवालेकी रति हो; जिस छविको देखकर महाभारतयुद्धमें मरे हुवे सब शूर वीर सारूप्य मुक्तिको प्राप्त हुवे ॥ ३९ ॥ अपनी ललित गति, विलास, मनोहर हास, प्रेममय निरीक्षण आदिसे गोपियोंके मान करनेपर जब श्रीकृष्णजी अन्तर्हित होगये तब विरहसे व्याकुल गोपियाँभी जिनकी लीलाका अनुकरण करके तन्मय होगईं ऐसे भक्तिसे सहजही मिलने योग्य कृष्णमें मेरी दृढ़ भक्ति हो ॥ ४० ॥ युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें अनेक ऋषि मुनि और महीपालोंसे सुशोभित मण्डित सभाभवनके बीच प्रथम जिनकी पूजा हुई वही सर्वश्रेष्ठ जगत्पूज्य परब्रह्म इससमय मेरे नेत्रोंके सामने हैं! अहो भाग्य! मैं कृतार्थ होगया ॥ ४१ ॥ सो अब जन्मकर्मरहित और अपनेही उत्पन्न किये प्राणियोंके हृदयमें, जो एक होकर भी, अनेकपात्रपतित प्रतिबिंबद्वारा अनेकधा प्रतीत सूर्य्यकी भाँति अनेकरूप प्रतीत होता है उस ईश्वरको, भेददृष्टि और मोहसे शून्य चित्तद्वारा मैं प्राप्त हुवा हूँ ॥ ४२ ॥ सूतजी बोले। इस प्रकार आत्मारूप कृष्ण भगवान्में मन, वाणी और दृष्टि लगाकर भीष्मजी चुप हो रहे ॥४३॥ भीष्मजीको पूर्ण ब्रह्ममें लीन जानकर सब लोग स्थिर होगये; जैसे सायंकालमें पक्षीवृंद ॥ ४४ ॥ उस समय पृथ्वीमें मनुष्योंने और आकाशमें देवतोंने नगाड़े बजाये, सब साधु लोग भीष्मजीकी प्रशंसा करने लगे और आकाशसे कल्पवृक्षके कुसुमोंकी वर्षा होने लगी ॥ ४५ ॥ तदनन्तर युधिष्ठिरजी भीष्मके मृत-देहका अन्त्येष्टि संस्कार करके एक मुहूर्तभर शोच करते रहे ॥४६॥ उस समय मुनि-योंने प्रसन्न होकर कृष्णके गुप्तनामोंसे कृष्णकी स्तुति की; तदनन्तर कृष्ण हैं प्राण जिनके ऐसे मुनिगण अपने २ आश्रमोंको गये ॥ ४७ ॥ फिर कृष्णसहित युधिष्ठिरजी लौटकर हस्तिनापुर आये और पुत्रशोकसे दुःखित चाचा चाची जो धृतराष्ट्र व तपस्विनी गांधारी हैं उनको मधुर विनयवचनोंसे शान्त किया ॥ ४८ ॥

---

१ तात्पर्य यह कि भगवान् ऐसे भक्तवत्सल हैं कि अपना मान नष्ट करके भक्तोंका मान रखते हैं। २ ईश्वरका ऐसा चतुर्भुज रूप हो जाना।

पित्रा चानुमतो राजा वासुदेवानुमोदितः ॥
चकार राज्यं धर्मेण पितृपैतामहं विभुः ॥ ४९ ॥

और फिर राज्यशासनसमर्थ धर्मपुत्र युधिष्ठिर चाचाकी आज्ञा और कृष्णकी अनुमतिसे धर्मपूर्वक बाप-दादेका राज्य करने लगे ॥४९॥

इति श्रीभागवते प्रथमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय ।

श्रीकृष्णका द्वारका जाना ।

शौनक उवाच—हत्वा स्वरिक्थस्पृध आततायिनो
युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ॥
सहानुजैः प्रत्यवरुद्धभोजनः
कथं प्रवृत्तः किमकारषीत्ततः ॥ १ ॥

शौनकजी बोले। अपना अंश छीननेकी स्पृहा रखनेवाले अतएव आततायी दुष्ट दुर्योधन आदिका संहार करके धर्मात्मा पुरुषोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरजी भाइयोंसहित राज्य शासनमें कैसे प्रवृत्त हुवे? और तदनन्तर क्या किया? ॥ १ ॥ **सूतजी बोले।** वंशके परस्पर संघर्षणसे उत्पन्न दावानलसे जले हुवे कुरुवंशको फिर परास्त करके और निजराज्यमें युधिष्ठिरको बिठलाकर भवभावनसमर्थ विष्णुरूप श्रीकृष्णजी प्रसन्न हुवे ॥२॥ भीष्मपितामह और श्रीकृष्णकी शिक्षा सुनकर उत्पन्न हुवा जो शुद्ध ज्ञान है उससे युधिष्ठिरकी भ्रान्ति शान्त होगई, तब श्रीकृष्णके आश्रित जो युधिष्ठिरजी हैं वह भांइयोंसहित इन्द्रके समान विभवयुक्त होकर समुद्रपर्य्यंत पृथ्वीका पालन करने लगे ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरके राज्यमें यथासमय मेघ वर्षा करते थे, पृथ्वीमें सम्पूर्ण वस्तुओंकी उपजाऊ शक्ति पूर्ण थी, और गउओंके दूध इतना होता था कि व्रजं[1] सींच जाते थे ॥४॥ नदी समुद्र पर्वत आदिमें सब वनस्पति और लता आदि ऋतुके अनुसार फूलते फलते थे ॥ ५ ॥ राजा युधिष्ठिरके राज्यमें दैवकृत क्लेश व प्राणिकृत पीड़ा व मानसी चिन्ता आदि तीनों ताप किसी प्राणीको नहीं होते थे ॥६॥ श्रीकृष्णचन्द्र मित्रोंका शोक दूर करनेको और अपनी बहन सुभद्राका प्रिय करनेकी कामनासे कुछ महीनोंतक और हस्तिनापुरमें रहे ॥ ७ ॥ फिर कुछ दिनके उपरान्त श्रीकृष्णजीने द्वारका जानेकी इच्छा की। कृष्णचन्द्र बड़ोंसे अनुमति लेकर और यु-

---

१ गउओंके रहनेका स्थान ।

धिष्ठिर आदिको प्रणाम करके, अर्जुन आदिसे आलिंगन कर रथपर चढे; तथा अर्जुन व नकुल आदिने उनको प्रणाम किया ॥८॥ सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, विराट्की कन्या, गान्धारी, धृतराष्ट्र, सात्यकी, नकुल, सहदेव और कृपाचार्य ॥ ९ ॥ भीमसेन, धौम्य एवं उत्तरा आदि अन्य स्त्रियाँ सब श्रीकृष्णके असह्य विरहसे मोहित होगये ॥ १० ॥ सत्संगसे छुट गया है दुष्टोंका संग जिसका ऐसा चतुर पुरुष जिनके यशको एकबार सुनकर उसे नहीं छोड़ सक्ता ॥११॥ उसी ईश्वररूप कृष्णमें है आत्मीयबुद्धि जिनकी ऐसे पाण्डवलोग कृष्णके विरहको कैसे सह सक्ते थे? वे तो उन विश्वबांधव कृष्णका नित्य दर्शन व स्पर्श करते थे और साथही बातचीत करने, सोने, बैठने व खाने पीनेसे ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णमें उनका परम स्नेह होगया था, एवं नित्य नन्दनन्दनका मुखारविन्द देखकर आनन्दसे विचरते थे; यदि उनको कृष्णविरह असह्य हो तो क्या आश्चर्य है! ॥ १३ ॥ जब श्रीकृष्णजी युधिष्ठिरके घरसे द्वारका जानेके लिये निकले तब बान्धवोंकी स्त्रियोंने, उत्सुकता व स्नेहसे निकले हुवे आँसुओंको जिसमें अमंगल न हो इसलिये आंखोंमेंही रोंक लिया ॥ १४ ॥ उस समय मृदंग, शंख, भेरी, वीणा, पणव, गोमुख, पटह, दुंदुभी, घंटा आदि अनेक बाजे बजने लगे ॥ १५ ॥ उस समय श्यामछवि देखनेकी इच्छासे कुरुवंशकी स्त्रियाँ अपने २ महलोंके ऊपर चढ़ीं और प्रेमलज्जायुक्त मुसकाती हुई श्रीकृष्णकी ओर निहारकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं ॥ १६ ॥ तब श्रीकृष्णके प्यारे अर्जुनने अपने प्रियतम मनमोहनका मुक्तादाममण्डित रत्नदण्डयुक्त श्वेतछत्र हाथमें लिया ॥ १७ ॥ और उद्धव व सात्यकी परम अद्भुत चँवर डुलाने लगे; इसप्रकार फूलोंकी वर्षा ग्रहण करते श्रीहरि हस्तिनापुरके मार्गमें शोभित हुवे ॥ १८ ॥ मार्गमें जहाँ तहाँ ब्राह्मणलोगोंके सत्य आशीर्वाद सुनाई देने लगे, जो निर्गुण ब्रह्मके अयोग्य और सगुणरूपके अनुरूप थे ॥ १९ ॥ परमेश्वर कृष्णमें जिनका परम प्रेम है ऐसी हस्तिनापुरकी स्त्रियाँ आपसमें यों, सुननेसे सबका मन मोहनेवाली बातें करने लगीं ॥ २० ॥ "हे सखियो! यह वही पुरातन पुरुष हैं जो प्रलयकालमें भी अपने रूपमें स्थित थे, जिस समय ईश्वरमें सम्पूर्ण जीवोपाधिमूल महत्तत्त्वादि शक्तियाँ लीन थीं और तीनोगुण भी न थे ॥ २१ ॥ फिर इन्हीने अपनी कालरूप शक्तिद्वारा प्रेरित हुई जो जीवोंको मोहित करनेवाली जगत्की उत्पत्तिका कारण माया है उसको नाम–रूप धारण करनेकी इच्छासे ग्रहण किया। और यही वेदादि शास्त्रोंके रचनेवाले हैं ॥ २२ ॥ यह वही हैं जिनके चरणोंको जितेन्द्रिय योगी लोग प्रथम भक्तिभावसे चित्त शुद्ध करके प्राणायाम, यम, नियम, समाधिद्वारा बहुत दिनोंमें देख पाते हैं; निश्चय करके जानो बुद्धिको भलीभांति यही शुद्ध करसक्ते हैं, इनके विना अन्य योग आदि उपाय नहीं करसक्ते ॥ २३ ॥ हे सखि! यह वही हैं जिनकी सत्य कथाएँ वेदवादी व्यासादिकोंने परमगूढ़ वेदोंमें गाई हैं, और जो इस जगत्को अपनी लीलासे उत्पन्न करके उसका पालन व संहार करते हैं

परन्तु सांसारिक प्रपंचमें लिप्त नहीं होते; यह वही एक ईश्वर हैं! ॥२४॥ जब तामसी प्रकृतिके राजा लोग अधर्म करने लगते हैं तब यही युगयुगमें जगत्की उन्नतिके लिये सात्त्विक अवतार लेकर ऐश्वर्य्य, सत्य, ऋत[1], दया और यशका विस्तार करते हैं ॥ २५ ॥ अहो यदुवंश परम प्रशंसनीय है जिसमें यह पुरुषोत्तम लक्ष्मीपति उत्पन्न हुवे हैं! और मधुवनभी परम श्लाघनीय है जिसमें यह जगदीश्वर विचरते हैं! ॥२६॥ अहो पृथ्वीका यश बढ़ानेवाली और स्वर्गका निरादर करनेवाली[2] द्वारकापुरी धन्य है, जहाँ रहनेवाले प्रजावृंद अनुग्रहभावसे मंद मुसका रहे जो (उनके) स्वामी (यह) श्रीकृष्ण हैं उनके मनोहर मुखको नित्य देखते हैं ॥ २७ ॥ निश्चयही उन स्त्रियोंने व्रत, स्नान, हवन आदि शुभ कर्मोंसे ईश्वरकी आराधना की है, जो इनकी रानी होकर हे सखी! इनके सुधामधुर अधररसको वारम्वार पीती हैं; जिस मनोहर रसमें व्रजललना मोहितचित्त होगईं ॥ २८ ॥ जिनको स्वयम्वरसे शिशुपाल आदि दुष्टदलका दमन करके बाहुबलरूप मूल्य देकर श्रीकृष्णजी हर लाये हैं वह रानी रुक्मिणी, और प्रद्युम्न, सांब, अंब आदि पुत्र जिनके हैं वे जाम्बवती सत्यभामा आदि पटरानियाँ, और भौमासुरको मारकर उसके भवनसे जिनको छुड़ाकर लाये हैं वे सोलह हजार एकसौ रानियाँ; ॥ २९ ॥ इन सब रानियोंने स्वतन्त्रता व भद्रता और शौचसे शून्य स्त्रीजातिको प्रशंसनीय बना दिया; जिनके घरोंसे उनके पति कमलनयन कृष्णचन्द्र किसी समय बाहर नहीं जाते और वांछित वस्तु देकर आनन्दित करते हैं" ॥३०॥ इस प्रकार बातें कर रही पुरनारियोंकी ओर कृपादृष्टिसे देखकर उनको प्रसन्न करते और मन्द २ हँसते श्रीकृष्णचन्द्र चले ॥३१॥ शत्रुओंके आक्रमणसे शंकित युधिष्ठिरने कृष्णकी रक्षाके लिये अपनी चतुरंगिणी सेना साथ कर दी ॥ ३२ ॥ तदनन्तर दृढ़ स्नेहके कारण भेजनेके लिये दूर तक साथ आये हुवे विरहसे व्याकुल पाण्डवोंको लौटाकर अपने प्रिय उद्धवादिकोंसहित श्रीकृष्णजी अपनी नगरीको चले ॥३३॥ कुरु, जांगल, पांचाल, शूरसेन, यमुनाप्रदेश, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, और मत्स्यदेश, सारस्वतदेश ॥ ३४ ॥ मरुदेश एवं सौवीर, आभीर देश नाँघकर आनर्त देशमें द्वारकाके समीप श्रीकृष्णजी पहुँच गये; उस समय रथके घोड़े कुछ थक गये थे ॥ ३५ ॥

तत्र तत्र ह तत्रत्यैर्हरिः प्रत्युद्यतार्हणः ॥
सायं भेजे दिशं पश्चाद्गविष्ठो गां गतस्तदा ॥ ३६ ॥

पूर्वोक्त देशोंमें जाकर और वहाँके राजोंकी भेंटें लेकर सायंकालको पश्चिम दिशामें मायामनुष्यरूप कृष्णचन्द्र पहुँचे ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते प्रथमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

१ यथार्थ उपदेश । २ द्वारकाको स्वर्गसुखका निरादर करनेवाली इससे कहा कि स्वर्गमें द्वारकापुरीके समान कृष्णरूपके देखनेका परमानन्द नहीं है ।

एकादश अध्याय ।

द्वारकामें कृष्णचन्द्रका प्रवेश करना और पुरवासियोंकी स्तुति और हरिके गृहकृत्यका वर्णन ।

सूत उवाच—आनर्तान्स उपव्रज्य स्वृद्धाञ्जनपदान्स्वकान् ॥
दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन्निव ॥ १ ॥

सूतजी बोले । अपने सुसमृद्ध आनर्त देशमें पहुँचकर, द्वारकावासियोंकी विरह-वेदना शान्त करते हुवे श्रीकृष्णचन्द्रने अपना श्रेष्ठ शंख बजाया ॥ १ ॥ वह पांच-जन्य नाम श्वेतवर्ण शंख श्रीकृष्णजीके करकमलसंपुटमें स्थित होकर व हरिके अरुण अधरके प्रतिबिम्बसे अरुणवर्ण होकर परम शोभायमान हुवा जैसे अरुण-कमलदलपर बैठा कलहंस शोभाको प्राप्त हो ॥ २ ॥ जगत् के भयको भय देनेवाला वह अधरसुधामय शंखका शब्द सुनकर स्वामीके दर्शनकी लालसासे सब प्रजागण हरिके पास आये ॥ ३ ॥ अपने रूपमें रमनेवाले और नित्यही निजरूपके लाभसे पूर्णमनोरथ कृष्णचन्द्रको सब प्रजाने आदरपूर्व्वक अनेक भेंटें दीं, जैसे जगत्प्रकाशक सूर्यको कोई दीपक दिखावे ॥ ४ ॥ और प्रेमसे प्रफुल्लित हैं मुखकमल जिनके ऐसे प्रजागण हर्षमयी गद्गद वाणीसे सर्व्वरक्षक एवं सबके सुहृद् कृष्णसे बोले जैसे बालक अपने पितासे ॥५॥ "हे नाथ! हम सदा आपके चरणकमलोंको प्रणाम करते हैं; जिनकी वन्दना ब्रह्मा और ब्रह्माके पुत्र सनकादिक करते हैं, और जो चरण इस संसारमें क्षेम चाहनेवाले पुरुषोंका एकमात्र आश्रय हैं; एवं जहाँ ब्रह्मादिकों-के प्रभु कालकाभी वश नहीं चलता ॥ ६ ॥ हे विश्वभावन! आप हमारा कल्याण करो, आपही हमारे पिता, माता, मित्र, स्वामी, सच्चेगुरु और परमपूज्य देवता हैं, आपकेही अनुगत होनेसे हम कृतार्थ हुवे हैं ॥७॥ अहो, हम आपसे सनाथ हैं; क्यों कि जिसका दर्शन देवतोंको भी दुर्लभ है वही प्रेममय मुसकान और स्नेहयुक्त दृष्टिसे सुशोभित एवं सर्वांगसुभग आपका श्यामशरीर हम नित्य देखते हैं ॥ ८ ॥ हे कमलनयन! जब आप सुहृद्गण और बन्धुओंके देखनेकी इच्छासे हस्तिनापुर या मथुरा जाते हैं तब हमको एक२ क्षण करोड़ बर्षके समान बीतता है, जैसे सूर्यदर्शनके बिना नेत्र व्याकुल होते हैं" ॥ ९ ॥ इस प्रकार प्रजाकी कही हुई वाणियाँ सुनते और उनको कृपादृष्टिसे देखते भगवान् भक्तवत्सल श्रीकृष्णजीने पुरीमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ जिसकी रक्षा, कृष्णचन्द्रके तुल्य बलशाली मधुवंशी, भोजवंशी एवं दाशार्ह, अर्ह, कुक्कुर, अंधक, वृष्णिवंशके यादव करते हैं; जैसे नागपुरी भोगवतीकी रक्षा नागगण ॥ ११ ॥ उस पुरीमें सब ऋतुके फूले फले पवित्र वृक्ष लताकुंज आदिसे सुशोभित अनेक उद्यान उपवन और आराम एवं स्वच्छसलिलशोभित

१ नारंगी, अनार, अमरूद आदि फलप्रधान वृक्ष जिसमें अधिक हों।

२ बेला, चमेली आदि पुष्पवृक्ष जिसमें अधिक हों। ३ क्रीडाभवनयुक्त वाटिका।

सरोजसुंदर सरोवर शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ १२ ॥ पुरद्वार, भवनद्वार और मार्गोंमें कृष्णागमनके उत्सवसे तोरण अर्थात् बंदनवार बँधे हैं, और विचित्र ध्वजा पताका फहरा रही हैं जिनसे पुरीके भीतर घाम नहीं घुस सक्ता ॥ १३ ॥ राजमार्ग, छोटी गली, बाज़ार, आँगन झारे बहारे हैं, और सुगंधित जलसे चारो ओर छिड़काव हुवा है, एवं फल, फूल, अक्षत, खील, अंकुर चारोंओर बरसायेहुवे बिथरे पड़े हैं ॥ १४ ॥ भवनोंके सब द्वार दही, अक्षत, फल, रस, जलपूर्ण कलश, अनेक भेंट, धूप, दीप आदिसे अलंकृत हैं ॥१५॥ अपने प्यारे कृष्णचन्द्रका आगमन सुनकर महामना वसुदेव, अक्रूर, उग्रसेन, और अद्भुत पराक्रमी बलदेवजी, प्रद्युम्न चारुदेष्ण, और जाम्बवतीके पुत्र साम्ब ॥ १६ ॥ ये सब आनन्दके कारण शयन आसन और भोजन त्यागकर, मंगलार्थ गजराज और मंगलमूल ब्राह्मणोंको आगे करके ॥१७॥ शंख, तूर्य, दुंदुभी और वेदपाठकी ध्वनि सहित श्रीकृष्णचन्द्रसे सादर मिलनेके लिये रथोंपर चढ़कर चले ॥ १८ ॥ हिलरहे कुण्डलोंकी कान्ति पड़नेसे शोभायमान हैं गुलाब ऐसे गोल कपोल जिनके ऐसी सैकड़ों बारांगना पालकियोंपर बैठकर कृष्णके दर्शनको उत्कण्ठित होकर चलीं ॥ १९ ॥ पवित्रकीर्ति कृष्णकी पवित्र कीर्तिका कीर्तन करते नट, नर्तक, गंधर्व, सूत, मागध, वन्दीजन चले ॥ २० ॥ भगवान्‌ने भी बंधुओं और अपने अनुगत पुरवासियोंसे मिलकर सबका यथायोग्य सम्मान किया ॥२१॥ किसीको शिर झुकाकर प्रणाम किया, किसीको वाणीसे प्रणाम किया, किसीको गले लगाया, किसीसे हाथ मिलाया, किसीको मन्द मुसकान और कृपादृष्टिसे कृतार्थ किया, किसीसे कुशलप्रश्न किया, किसीका अभीष्ट पूर्ण करके आदर किया ॥ २२ ॥ स्त्रीसहित वृद्धब्राह्मण और गुरुओंके सत्य आशीर्वाद और वन्दीजनोंकी जय-जय-कार ग्रहण कर श्रीकृष्णचन्द्रने पुरीमें प्रवेश किया ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णजी जब राजमार्गमें पहुंचे तब द्वारकापुरीकी स्त्रियाँ श्यामछवि देखनेके उत्सवसे अपने २ भवनोंपर चढ़ीं ॥ २४ ॥ यद्यपि द्वारकावासी लोग शोभासागर नटनागरके अंग नित्य देखते हैं तथापि उनके लालची लोचनोंकी लालसा नहीं घटती ॥ २५ ॥ सो ठीकही है; जिनके हृदयमें लक्ष्मीका निवास है; जिनका मुख सब प्राणियोंके नयनोंका, सौन्दर्यरूप अमृत पीनेका पात्र है; जिनकी बाहुओंमें लोकपाल रहते हैं; जिनके चरणोंमें सारंग नाम भक्तलोग निवास करते हैं; उनको देखकर किसके नयन तृप्त होसक्ते हैं? ॥ २६ ॥ इधर उधर श्वेत चँवर, शिरपर श्वेतछत्र, तिसपर फूलोंकी वर्षा, उसके बीचमें पीतांबर और वनमाला धारण किये हुवे कृष्णचन्द्र ऐसी अपूर्व शोभाको प्राप्त हुवे जैसे जलभरे नीले बादलपर सूर्य्यका बिंब हो और बादलके दोनोंओर चन्द्रबिंब हों, चारोंओर नक्षत्रमण्डली हो एवं बीचमें मिले हुवे दो इन्द्रधनुष हों और उस घनघटामें स्थिर सौदामिनी (बिजली)

१ सारं गायन्तीति सारंगाः। सारवस्तुके गानेवाले सारंग कहाते है।

चमक रही हो ॥२७॥ श्रीकृष्णचन्द्र प्रथम माता पिताके घरमें गये, माताओंने श्रीकृष्णचंद्रको हृदयसे लगा लिया और भगवान्‌ने आनन्दसे देवकी आदि सातो माताओंको प्रणाम किया ॥ २८ ॥ माताओंके स्तनोंसे स्नेहवश दुग्ध बहने लगा, और वे आनन्दसे विह्वल होकर श्रीकृष्णचन्द्रको गोदमें लेकर नेत्रके जलसे सींचने लगीं ॥२९॥ तदनन्तर संसारके सम्पूर्ण उत्तम पदार्थोंसे सज्जित परमोत्तम अपने अन्तःपुरमें श्रीकृष्णजी गये, जहाँ सोलह सहस्र एकसौ आठ रानियोंके महल हैं ॥३०॥ परदेशसे आये हुवे पतिको देखकर रानियोंके मनमें महाउत्सव हुवा और वे सहसा आसन और व्रत[1] त्यागकर उठ खड़ी हुई और लज्जायुक्त दृष्टिसे प्रियतमको देखने लगीं ॥ ३१ ॥ वे गंभीर अभिप्रायवाली रानियाँ दर्शनसे प्रथम मनोद्वारा श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलीं फिर दर्शन होनेपर इन्द्रियोंद्वारा मिलीं, फिर समीप आनेपर पुत्रोंद्वारा मिलीं और फिर स्वयं शरीरसे मिलीं, उस समय हे भृगुश्रेष्ठ शौनकजी! यद्यपि लज्जावश रानियोंने आनंदके आँसू रोंके तथापि गिरही पड़े ॥ ३२ ॥ यद्यपि श्रीकृष्णजी नित्य हरघड़ी रानियोंके पास रहते थे तथापि उनको हरिचरण नित्य नवीन जानपड़ते थे! सो उचितही है, कौन स्त्री श्रीहरिको त्याग सक्ती है? जिनको परमचंचल लक्ष्मीभी कभी नहीं छोड़ती ॥ ३३ ॥ इसप्रकार आप विना शस्त्रग्रहण किये पृथ्वीका भाररूप जिनका जन्म है ऐसे दुष्टराजोंको उनकी कई अक्षौहिणी सेना सहित परस्परके वैरसे नष्ट करके श्रीहरि निवृत्त हुवे जैसे वायु, वंशके परस्पर संघर्षणसे दावानल उत्पन्न करके बनको भस्म कर देता है ॥ ३४॥ यह उन्ही परब्रह्मने अपनीमायासे लीलाकरनेको मनुष्यलोकमें अवतार लेकर सोलहसहस्र एक सौ आठ स्त्रीरत्नोंके बीचमें प्राकृतमनुष्यकी भाँति रमण किया, ॥ ३५ ॥ जिनके गंभीर हाव-भावके जतानेवाले उज्वल मनोहर हास्य और सलज्जनिरीक्षणसे हारकर मोहितमन कामदेवने अपना विश्वविजयी धनुप त्यागदिया वे रमणीरत्न रानियाँ जिन श्रीकृष्णके मनको अपनी ललितलीलाओंसे वश न करसकीं ॥३६॥ उन मुक्तसंग परमेश्वरको मूर्खलोग अपने समान संसारमें आसक्त विपयी मानते हैं, इसका कारण यही है कि वे उनके तत्त्वको नहीं जानते ॥३७॥ यही ईश्वरकी ईश्वरता है कि मायामें स्थित होकर भी मायाके गुणोंमें लिप्त नहीं होते जैसे यह बुद्धि सदा ईश्वरके आश्रयमें रहकर भी ईश्वरको नहीं जानती ॥३८॥

तं मेनिरेऽबला मूढाः स्त्रैणं चानुव्रतं रहः ॥
अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरं मतयो यथा ॥ ३९ ॥

---

१ जिस स्त्रीका पति परदेशगया हो उसके व्रत ये है—"क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्। हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोपितभर्तृका ॥" अर्थात् क्रीडा, शरीरका संस्कार शृंगारादि, समाज उत्सवका देखना, हँसी, पराये घरजाना—ये छः कर्म जिस स्त्रीका पति परदेश गया हो उसके लिये वर्जित हैं। (याज्ञवल्क्यस्मृति)

मूर्ख स्त्रीजाति रानियोंने उन्हीं ईश्वरको अपने वशवर्ती विषयी पुरुष समझा जैसे मतमतान्तर ईश्वरको अपने वशमें जानते हैं, इसका कारण यही है कि वे रानियाँ और मतमतान्तर दोनोंही स्वामी कृष्णके तत्त्वको नहीं जानते ॥ ३९ ॥

इति श्रीभागवते प्रथमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय ।

परीक्षित्‌जीका जन्म ।

शौनक उवाच—अश्वत्थाम्नोपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा ॥
उत्तराया हतो गर्भ ईशेनाजीवितः पुनः ॥ १ ॥

शौनकजी बोले । अश्वत्थामाके छोड़े हुवे महातेजयुक्त ब्रह्मास्त्रसे उत्तराका गर्भ नष्टप्राय होगया था किन्तु ईश्वर श्रीकृष्णने फिर उसको सजीव करदिया ॥ १ ॥ उस गर्भसे उत्पन्न महाबुद्धि और महात्मा कुमारका जन्म और कर्म व मरण एवं परमधामगमन ॥ २ ॥ आदि सब सुननेकी हमारी बड़ी इच्छा है, यदि आप उचित समझो तो हम श्रद्धावान् श्रोताओंसे वर्णन करो । जिन परीक्षित्‌को शुकदेवने परम ज्ञान दिया उनका चरित्र कहो ॥३॥ **सूतजी बोले ।** श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंकी सेवासे पूर्णकाम राजा युधिष्ठिर निरीह होकर इसप्रकार प्रजापालन करने लगे जैसे पिता अपने पुत्रका मनोरंजन करता है ॥ ४ ॥ हे विप्र! राजा युधिष्ठिरके अद्भुत सम्पत्ति थी, उन्होंने अनेक यज्ञ किये, रानी परमसुन्दर सुशीला थीं, भाई परम पराक्रमी चार थे, सम्पूर्ण पृथ्वी वशमें थी, जंबूद्वीपमात्रमें राज्य था, स्वर्गतक यश फैला था ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मणो! किन्तु ये सब देवतोंके ऐसे विभव भगवद्भक्त राजाको क्या सुखी कर सक्ते थे? जैसे भूखे मनुष्यको सुगंध, वस्त्र, आभूषण, स्त्री आदि ॥६॥ हे भृगुनन्दन! अस्त्रतेजसे जलरहा जो बालक है उसने माताके (उत्तराके) गर्भमें एक पुरुषको देखा कि ॥ ७ ॥ उस पुरुषका शरीर अंगुष्ठमात्रका है, शिरपर सुवर्णका मुकुट शोभित है, वह सुन्दरदर्शन, श्यामवर्ण और दामिनीसम सुन्दर पीताम्बर धारण किये है ॥८॥ शोभायुक्त बड़ी २ चारभुजा हैं, कानोंमें तपे हुवे कांचनके कुण्डल हैं, नेत्र रक्तवर्ण हैं एवं अपने चारोंओर गदालिये घूम रहा है ॥९॥ उल्कासम प्रज्वलित गदाको चारों ओर घुमा रहा है एवं अस्त्रतेजको अपनी गदासे दूर कर रहा है जैसे कुहिरेको अपनी किरणोंसे सूर्यदेव दूर कर देते हैं; वह बालक हरिको देखकर मनमें तर्क करने लगा कि यह कौनहै? ॥ १० ॥ धर्मरक्षक सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् भगवान् हरि उस दश महीनेके बालकके देखते २ अंतर्धान होगये ॥ ११ ॥ तदनन्तर सम्पूर्ण गुणोंकी उत्तरोत्तर अधिकता जता रही जो अनुकूल ग्रहोंके उदयसे सुशोभन लग्न है उसमें

पांडुके वंशधर परीक्षित् उत्पन्न हुवे मानों फिर दुबारा पराक्रमी पाण्डुका जन्म हुवा ॥ १२ ॥ तब प्रसन्नचित्त राजा युधिष्ठिरने धौम्य, कृपाचार्य आदिक ब्राह्मणोंद्वारा मंगलपाठ कराकर उस बालकका जातकर्म संपन्न किया ॥ १३ ॥ और पुण्यकालके जाननेवाले युधिष्ठिरने प्रजातीर्थमें[1] सुवर्ण, गऊ, पृथ्वी, गाँव, हाथी, घोड़ा और उत्तम २ अन्न ब्राह्मणोंको दिये ॥ १४ ॥ विनयावनत राजासे ब्राह्मणगण प्रसन्न होकर बोले कि "हे कुरुश्रेष्ट! तुम्हारा वंश ॥१५॥ प्रबल कालगतिसे नष्टही होगया था किन्तु सर्व्वशक्तिमान् विष्णुने इसका प्रतिपालन किया और अनुग्रह करके तुमको दिया ॥१६॥ इससे यह बालक 'विष्णुरात' इस नामसे विख्यात होगा, इसका लोकमें बड़ा यश होगा और यह महाभगवद्भक्त होगा–इसमें संशय नहीं है ॥ १७॥ **युधिष्ठिर बोले।** भला यह यशमें अपने वंशके राजऋषियोंके समान होकर लोकमें बड़ाईको प्राप्त होगा? ॥१८॥ **ब्राह्मण बोले।** हे राजन्! यह मनुपुत्र इक्ष्वाकु राजाके समान नीतिसे प्रजाका पालन करेगा, और दशरथके पुत्र रामके समान ब्राह्मणभक्त एवं सत्यवादी होगा ॥१९॥ यह दान देनेमें और शरणागतकी रक्षा करनेमें उशीनरके पुत्र शिविके समान होगा और यज्ञ करके राजा दुष्यन्तके पुत्र राजा भरतके समान अपने पूर्वजोंका यश बढ़ावेगा ॥ २० ॥ यह धनुषधारियोंमें अग्रगण्य होगा एवं अस्त्रविद्यामें कार्तवीर्य अर्जुन व अर्जुनके तुल्य होगा, अग्निके समान दुर्धर्ष और समुद्रके समान दुस्तर होगा ॥२१॥ सिंहके समान पराक्रमी, हिमवान्‌के समान शीतलशील सेवाकरने योग्य, पृथ्वीके समान क्षमा करनेवाला और पिता-माताके समान सहनशील ॥२२॥ एवं ब्रह्माके समान समदर्शी और प्रसन्नतामें शिवके समान होगा; भगवान् विष्णुके समान सब देवतोंका आश्रय होगा ॥२३॥ यह सम्पूर्ण अच्छे गुण और प्रभावमें कृष्णके अनुगत होगा एवं रन्तिदेवके समान उदार व ययातिके समान धार्मिक होगा ॥ २४ ॥ धैर्य्यमें राजा बलिके सदृश, कृष्णकी अचलभक्तिमें प्रल्हादके तुल्य, एवं अश्वमेधयज्ञोंका करनेवाला और वृद्धोंका उपासक ॥२५॥ राज-ऋषियोंको उत्पन्न करनेवाला, कुमार्गियोंका शासक, एवं पृथ्वी और धर्मकी रक्षाके लिये कलियुगका दमन करनेवाला होगा ॥ २६ ॥ अन्तको मुनिपुत्रके शापसे तक्षक नागद्वारा अपनी मृत्यु जानकर सबका संग छोड़कर हरिके भजनमें प्रवृत्त होगा ॥२७॥ एवं व्यासपुत्र शुकदेव मुनिके उपदेशसे अपनेरूप (ब्रह्म) को जानकर हे राजन्! इस प्राकृत शरीरको गंगातटपर त्यागकर निर्भयपदको जायगा ॥ २८ ॥ इस प्रकार ज्योतिषपारगामी अतएव भूत-भविष्यके जाननेवाले विद्वान् ब्राह्मण

---

१ जबतक 'नार' नहीं काटी जाती तबतक प्रजातीर्थ है इस समयमें जो कुछदिया जाता है वह अक्षय होता है; यथा स्मृतिः—"पुण्यकाले पुत्रे जाते व्यतीपाते दत्तं चाक्षयमिति" अर्थात् पुत्रोत्पत्तिके पवित्र समयमें व व्यतीपातमें दान अक्षय होता है।

राजाको बालकका भविष्य सुनाकर, पूजाग्रहण करके अपने २ भवनोंको गये ॥ २९ ॥ राजा परीक्षित्का परीक्षित् यह नाम इसलिये विख्यात हुवा कि वह उत्पन्न होनेपर लोगोंकी परीक्षा करते थे कि वह पुरुष कौन है जिसने गर्भमें प्रवेश करके रक्षा की थी ॥ ३० ॥ वह राजपुत्र दिन २ पिता माताके लालन पालनसे यों बढ़ने लगा जैसे कलाओंसे पूर्णताको प्राप्त चन्द्रमा शुक्लपक्षमें शीघ्र बढ़ता है ॥ ३१ ॥ इस अवसरमें जातिद्रोहजनित पाप दूर करनेके लिये राजाने अश्वमेध यज्ञ करना चाहा किन्तु 'कर' और दण्डके सिवाय यज्ञयोग्य न्यायोपार्जित धन नहीं प्राप्त हुवा ॥ ३२ ॥ राजाका अभिप्राय जानकर कृष्णकी प्रेरणासे अर्जुनआदि ब्राह्मणत्यक्त[१] बहुतसा धन उत्तरदिशासे ले आये ॥ ३३ ॥ उस धनसे सब सामग्री एकत्र कर कामना पूर्ण होनेसे प्रसन्नमन राजा युधिष्ठिरने जातिद्रोहके पापसे डरकर तीन अश्वमेधसे हरिकी पूजा की ॥ ३४ ॥ निमन्त्रणमें श्रीकृष्णभी आये, और राजाके तीनों यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण कराकर सुहृद्गणकी प्रसन्नताके लिये कई महीनेतक हस्तिनापुरमें रहे ॥ ३५ ॥

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातः कृष्णया सह बन्धुभिः ॥
ययौ द्वारवतीं ब्रह्मन्सार्जुनो यदुभिर्वृतः ॥ ३६ ॥

फिर राजा युधिष्ठिर, द्रौपदी, और अन्य बंधु बांधवोंसे आज्ञा लेकर अर्जुन और उद्धवादिक भक्तोंसहित द्वारकाको गये ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते प्रथमस्कंधे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय।

विदुरके उपदेशसे धृतराष्ट्रका गांधारीसहित वनगमन, राजायुधिष्ठिरको इस संवादसे पश्चात्ताप और नारदका आकर युधिष्ठिरको समझाना।

सूत उवाच—विदुरस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिम् ॥
ज्ञात्वागाद्धास्तिनपुरं तथावाप्तविवित्सितः ॥ १ ॥

सूतजी बोले। इधर विदुरजी दुर्योधनके कठोर वचनोंसे विरक्त होकर तीर्थयात्रा करने चले गये थे, वहाँ इनको भगवान् मैत्रेयऋषिके दर्शन हुवे और इन्होंने महामुनि मैत्रेयसे आत्माकी गति जाननेकी इच्छा की। मैत्रेयजी सबको

---

१ यह कथा यों है कि, पूर्वकालमें राजा मरुत्तने ऐसा यज्ञ किया कि हवनसे अग्निको अजीर्ण होगया और ब्राह्मण लोग राजाका दिया हुवा अपरिमित धन अपने घर न ले जासके सो उत्तर दिशामें छोड़ दिया।

यही उपदेश देते थे कि कृष्णके सिवाय कोई गति नहीं है; इस उपदेशसे विदुरजीने आत्माकी गति जानी व अब कुछ इन्हे जानना नहीं रहा, तब हस्तिनापुरको लौटे ॥ १ ॥ जब विदुरकी गोविंदमें दृढ़ भक्ति और विश्वास होगया तब पहले जितने प्रश्न विदुरजीने मैत्रेयजीसे किये थे उनके उत्तर पानेकी कामना त्याग दी ॥ २ ॥ हस्तिनापुरमें परमबंधु एवं हितकारी विदुरको आये देखकर भाइयोंसहित धर्मके पुत्र राजा युधिष्ठिर, राजा धृतराष्ट्र, सात्यकी, संजय, कृपाचार्य, कुन्ती ॥ ३ ॥ गांधारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी आदि और अन्य पाण्डुवंशकी स्त्रियाँ अपने अपने पुत्रोंसहित आनन्दपूर्वक उनसे मिलनेको चलीं जैसे प्राणसे मिलनेको शरीर ॥ ४ ॥ यथायोग्य संबंधके अनुसार गले मिलकर एवं प्रणाम आदि करके सबने विदुरजीका सम्मान किया और विरहकी उत्कण्ठतासे कातर होकर सब लोग प्रेमके आँसू बहाने लगे ॥ ५ ॥ राजा युधिष्ठिरने भी बड़ा आदर किया और जब भोजन आदि करके स्वस्थचित्त होकर विदुरजी आसनपर सुखसे बैठे तब विनयपूर्वक नम्रभावसे सबके आगे राजा युधिष्ठिर बोले ॥ ६ ॥ **श्रीयुधिष्ठिर बोले।** हे धर्मात्मन्! हमारा और हमारी माताका आपने बड़ा उपकार किया है, जिस प्रकार पक्षी स्नेहके कारण अपने बालकको विपत्तिसे उबारनेके लिये अपने पक्ष फैलाकर उसकी रक्षा करता है वैसेही आपने भी दुर्योधन आदिके द्वारा प्राप्त विषदान और लाक्षाभवनकी अग्नि आदि आपत्तियोंसे मातासहित हमारी रक्षा की है। उनका कभी आप स्मरण करते हैं? ॥७॥ हे देव! आपने संसारसे विरक्त होकर कौन वृत्ति (धर्म)का अवलम्बन करके इस पृथ्वीमें घूमकर मुख्य २ क्षेत्र और तीर्थोंकी सेवा की है ॥८॥ भगवन्! भगवान्के भक्तजन स्वयं तीर्थस्वरूप हैं, इसकारण आप ऐसे पवित्रजन तीर्थोंमें तीर्थदर्शनका पुण्य लूटने या अपनेको पवित्र करने नहीं जाते किन्तु पापीजनद्वारा कलुषित तीर्थस्थानको अन्तःकरणमें स्थित ज्ञानरूप भगवान्के द्वारा पवित्र करने जाते हैं ॥ ९ ॥ हे तात! आप घूमते २ द्वारकापुरीको अवश्य गये होंगे, वहाँ हमारे बान्धव और सुहृद् जो कृष्णपरायण यादव हैं वे किस दशामें कैसे हैं? सो यदि आपने देखा हो या किसीसे सुना हो तो हमसे कृपा करके कहो ॥१०॥ इसप्रकार जब धर्मराजने पूँछा तब विदुरजीको जो कुछ यादवोंका वृत्तान्त विदित था सो सब कहदिया किन्तु यादवकुलका संहार नहीं कहा ॥ ११ ॥ इसका कारण यह है कि जो कोई अप्रिय और असह्य वृत्तान्त हो और स्वयं कुछ दिनमें विदित होजानेवाला हो उसे दयावान् पुरुषको उचित है कि आप न कहै क्योंकि वह दूसरेको दुःखित देखनेमें असमर्थ है ॥ १२ ॥ महात्मा विदुरका देवताके समान सबने सत्कार किया, एवं विदुरजी भी अपने बडे भाई धृतराष्ट्रके मंगलकी कामनासे और सबकी प्रसन्नताके लिये कुछदिन हस्तिनापुरमें रहे ॥ १३ ॥ तबतक अर्यमा यमपदपर स्थित होकर पापियोंको यथायोग्य दण्ड देते रहे. जबतक सौ वर्ष-

पर्यन्त माण्डव्य ऋषिके शापसे यमराजको शूद्रदेह धारण करना पड़ा ॥ १४ ॥ राज्य पाकर राजा युधिष्ठिर परमशोभासम्पन्न और विभवयुक्त होकर प्रसन्न हुवे; चारो भाई लोकपालोंके समान थे और पौत्र (पोता) परीक्षित् वंशधर थे, इससे बढ़कर और विभव क्या होगा? ॥ १५ ॥ गृहस्थीमें आसक्त इसीसे कालकी ओरसे असावधान पाण्डवोंकी आयु शेष होगई और परम प्रबल काल आगया जिसका कोई उपाय नहीं है ॥१६॥ यह जानकर विदुरजी धृतराष्ट्रके पास आये और बोले—"हे राजन्! शीघ्र घरसे निकल चलो, देखो यह दारुण भय निकट आगया है ॥१७॥ हे प्रभो! यह भय वह है जिसके रोकनेका उपाय कहीं नहीं है, देखिये वही हमलोगोंका काल (मृत्यु-समय) आगया है ॥१८॥ जिसके आनेसे मनुष्यके प्रियतम प्राणभी छूट जाते हैं अन्य धन आदिकी कौन बात कहै ॥१९॥ यदि कहो कि घर, राज्य एवं अन्य सुख तो छोड़े नहीं जाते तो भाई! देखो, पिता भाई सुहृद् पुत्र आदि सब तुम्हारे मारे गये, जवानी बीत गई, शरीरको बुढ़ापेने शिथिल कर दिया, पराये घरमें रहते हो ॥२०॥ आपके नेत्र पहलेसेही नहीं हैं, अब कानोंसे भी कम सुनाई देता है, इससमय बुद्धि विवेकभी मंद होगया है, दांत गिर पड़े, पेटकी पाचकअग्नि मंद पड़ गई, क्रोध और कफ बढ़ गया है, क्या अबभी आप संसारका त्याग नहीं कर सक्ते!॥२१॥ अहो! मनुष्यकी जीनेकी आशा बड़ी बलवान् है जिससे आप भीमसेनका दिया हुवा अन्न कुत्तेकी भाँति खाते हो ॥ २२ ॥ यदि कहो कि वे तो हमारेही भतीजे हैं तो जिनको आगमें जलानेका उद्योग किया, विष खिलाकर मारडालना चाहा, जिनकी स्त्रीको भरी सभामें वस्त्रहीन करना चाहा, छलसे राज्य छीन लिया उनके दिये हुवे अन्नको खाकर जीते रहनेमें क्या सुख है! ॥२३॥ यहभी जाने दो, यदि आप धनादि नहीं त्यागना चाहते और आपकी जीनेकी इच्छा है तथापि यह जराजीर्ण शरीर आपहीआप कालके आनेपर पुराने कपड़ेकी भाँति गिर पड़ेगा ॥२४॥ इसलिये आप प्रथमही इस संसारको त्यागकर ईश्वरका भजन करने वनको क्यों नहीं चलते? क्योंकि जो पुरुष विरक्त होकर और स्नेहबंधन काटकर इस संसारको त्याग दे और किसीसे बिना कुछ कहे स्वार्थसाधनके लिये वनको चला जाय वही धीर बुद्धिमान् और पुरुषोत्तम है ॥२५ ॥ जो अपने

---

१ एकसमय किसी राजाके सेवक चोरोंके पीछे उनको पकड़ने दौड़े चले आते थे सो उन्होंने माण्डव्य ऋषिके आश्रममें छिपे हुवे चोरोंको धनसहित पकड़ा एवं समाधिस्थित मुनिको भी पकडकर लेगये, राजाने सबको शूली देदी । अन्तको किसी कारणसे माण्डव्यको मुनि जाना तो शूलीसे उतारकर राजाने क्षमा माँगी । अस्तु वहांसे मुनि यमराजके पास आये और इस घोर दण्डका कारण पूँछा । यमने कहा आपने बाल्यकालमें एक टीडीको कुशसे छेदा था इसीका यह दण्ड है। मुनिने कहा तुम न्यायकर्ता होकर अन्याय करते हो मैंने बाल्यकालमें अज्ञानवश ऐसा किया होगा उसका यह कठोर दण्ड! अच्छा तुम सौवर्षतक शूद्रयोनिमें रहो । इसीकारण यमने दासीके गर्भसे विदुर अवतार लिया ।

हृदयमें आपही उत्पन्न ज्ञानसे अथवा किसीके उपदेशसे आत्मज्ञान पाकर संसारसे विरक्त होजाय और हृदयमें हरिका ध्यान करता हुवा घरसे चला जाय वही मनुष्योंमे उत्तम है ॥२६॥ इसकारण अब आप विलंब न कीजिये इसीसमय उत्तर दिशा (हिमालयप्रदेश) को जाइये क्योंकि आपने जो कुछ किया है उसका फलभी आपको विदित होगया है एवं यहभी जान लिया है कि और जितना समय वीतैगा उतनाही बुद्धि व धैर्य आदि गुणोंको काल नष्ट कर देगा–अब आपको कुछ जानना अवशिष्ट नहीं है" ॥२७॥ इसके उपरान्त अजमीढ़ राजाके वंशमें उत्पन्न राजा धृतराष्ट्र, अपने भाई विदुरके उपदेशसे ज्ञानरूप नेत्र पाकर बन्धु बान्धवोंके दृढ़ स्नेहपाशको काटकर उसीसमय विदुरके दिखलाये हुवे मोक्षमार्गमें चल दिये ॥२८॥ सुबलकी पुत्री पतिव्रता अति साध्वी गांधारी पतिको जाते देखकर आपभी उन्हके पीछे संन्यासग्रहण करके हिमाचलको चलीं जहाँ जानेमें संन्यासी लोग ऐसे प्रसन्न होते हैं जैसे युद्धभूमिमें जातेसमय शूर वीर पुरुष ॥२९॥ इधर प्रातःकाल उठकर राजा युधिष्ठिरने सन्ध्यावन्दन हवन आदि नित्य नैमित्तिक किया, ब्राह्मणोंको प्रणाम किया और उनको तिल, गऊ, भूमि, सुवर्ण आदिके दान दिये तदनन्तर चाचा चाचीके चरण छूनेके लिये उनके भवनमें आये किन्तु वहाँ धृतराष्ट्र और गांधारी न देख पड़े ॥३०॥ तब वहां बैठे हुवे संजयसे घबड़ाकर पूछने लगे कि "हे संजय! हमारे ज्येष्ठ तात (चाचा) कहाँहैं? जो वृद्ध एवं नेत्रहीन हैं और हमारी अम्बा (चाची) कहाँ हैं? जो पुत्रोंके मरनेसे परम व्याकुल हैं; और हमारे परम सुहृत् चाचा विदुर कहाँ गये? ॥३१॥ मुझ दुष्टवुद्धिने उनके पुत्रोंको मार डाला इसी कारणसे कहीं गांधारीसहित गंगामें तो नहीं गिर पड़े? हमारे पिता पाण्डुके मरनेके उपरान्त जिन्होने हम बालकोंकी परम स्नेहसे रक्षा की है वे दोनो चाचा यहाँसे कहाँ गये?" ॥३२॥ **श्रीसूतजी बोले**। संजय राजा धृतराष्ट्रकी अपने ऊपर परम कृपा और परम स्नेह होनेके कारण उनके विरहसे परम व्याकुल थे इसकारण युधिष्ठिरको कुछ उत्तर न देसके ॥ ३३ ॥ फिर हाथोंसे आँसू पोंछकर और धैर्य धरके प्रभु (धृतराष्ट्र) के चरणोंका स्मरण करते हुवे संजयजी राजा युधिष्ठिरसे बोले ॥३४॥ **संजय बोले**। हे कुलनन्दन! मैं नहीं जानता कि तुम्हारे चाचा चाची किस विचारसे कहाँ और कब चले गये एवं विदुरजी कहाँ चले गये? मुझको तो महाराज! इन महात्मोंने ठगलिया ॥३५॥ इसप्रकार संजय व युधिष्ठिर शोच करही रहे थे कि इसी अवसरमें वहाँपर भगवान् नारद तुम्बुरु नाम गंधर्व सहित आये, भाइयोंसहित राजाने उठकर नारदजीकी पूजा की और फिर बोले ॥३६॥ **युधिष्ठिर बोले**। भगवन्! मैं नहीं जानता कि मेरे दोनों चाचा कहाँ चले गये? एवं पुत्रोंकी मृत्युसे दुःखित हमारी परम पतिव्रता चाची कहाँ चली गईं? ॥ ३७ ॥ इस अपार सन्देहसागरके पार पहुँचानेवाले आपही एक कर्णधार (मल्लाह) हैं। यह सुनकर मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् नारद बोले ॥३८॥ **नारदजी बोले**। हे राजन्! तुम किसीका शोच न करो क्योंकि

यह सब जगत् उसी ईश्वरके वशमें है जिसकी आज्ञाका पालन ये सब लोक और लोकपाल करते हैं ॥ ३९ ॥ वही कालरूप भगवान् सब प्राणियोंका परस्पर संयोग और वियोग कराता है जैसे नाये हुवे बैल अपनी रस्सियोंमें बंधे रहते हैं और उसीके वशमें रहते हैं वैसेही वेदवाक्यमें बँधे हुवे विविध वर्णाश्रमधारी जीव उसी ईश्वरके वशमें हैं ॥४०॥ जैसे खेलनेवाले बालककी इच्छासे खिलौनोंका एकत्र संयोग और वियोग होता है वैसे ईश्वरकी इच्छासे मनुष्योंका संयोग और वियोग होता है ॥४१॥ यदि आप जीवरूपसे इस लोकको अविनाशी मानते हो या देहरूपसे नाशवान् मानते हो या शुद्धब्रह्मरूपसे नाशवान् या अविनाशी कुछ नहीं मानते हो तो सब प्रकारसे चाचा–चाचीका शोच करना उचित नहीं है, केवल अज्ञानकृत मोहसे उत्पन्न स्नेहके कारण तुम उनका शोच करते हो ॥४२॥ अतः इस आत्माको माया-मोहमें फँसानेवाले इस अज्ञानसे उत्पन्न भावको छोड़ो कि वे चाचा चाची अनाथ हैं हाय! मेरे विना कैसे जी सकेंगे! ॥४३॥ हे राजन्! यह पंचतत्त्वसे बना हुवा शरीर काल, कर्म और मायाके गुणोंके आधीन है, यह शरीर दूसरे शरीरकी कैसे रक्षा कर सक्ता है जैसे जिसको स्वयं सर्पने काट खाया है वह दूसरेकी कैसे सर्पसे रक्षा कर-सक्ता है ॥४४॥ देखो! जिनके हाथ नहीं हैं उनको हाथवाले, और जिनके पैर नहीं हैं उनको चार पैरवाले, एवं उनको दो पैरवाले, और छोटे जीवोंको बड़े जीव भक्षण करजातेहैं; इससे जीवही जीवके जीवनका उपाय है–ऐसा जानो अर्थात् सबकी वृत्ति ईश्वरने बनादी है उसका शोच वृथा है और सभी विनष्ट होनेवाले हैं इस कारण यहभी शोच वृथा है ॥ ४५ ॥ हे राजन्! आप मायावश जगत्को और जीवको ईश्वरसे अलग देखते हो इसीसे आपको शोक और मोह प्राप्त है; ईश्वर एक है, ये जो हस्तपदादियुक्त और हस्तपदादिशून्य जीव देखते हो सो सब ईश्वर हैं और इनके भीतर आत्मारूपसे जो विराजमान है वहभी ईश्वर है; यह विचार करके अपने परायेका भेद त्यागकर सर्वत्र ईश्वरको देखो ॥४६॥ किन्तु हे महाराज! ईश्वर-भिन्न सबको असत्य जानकर अभी आप विरक्त न होना क्योंकि वही भूतभावन भगवान् इससमय सुरद्वेषी भूपरूप दानवोंके संहारके लिये अवतार लेकर द्वारकामें स्थित हैं ॥४७॥ और सब देवतोंका कार्य कर चुके हैं अब केवल यादवकुलका संहार शेष है उसीकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, इसकारण तबतक तुमभी पृथ्वीपालन करो एवं उन्हीके साथ परमधामको जाना ॥ ४८ ॥ आपके चाचा धृतराष्ट्र अपनी स्त्री गान्धारी और छोटे भाई विदुरके साथ हिमवान्के दक्षिण ओर ऋषियोंके आश्रममें गये हैं ॥ ४९ ॥ वह जहाँपर तप करते हैं उस स्थानका नाम सप्तस्रोत है, क्योंकि गंगाजी सप्तऋषियोंकी प्रसन्नताके लिये वहाँ गिरकर सात धारा होकर वही हैं ॥५०॥ वह नित्य स्नान करके और विधिसहित हवन करके केवल जल पीकर शान्त-चित्त एवं सम्पूर्णकामनाशून्य होकर वहाँ रहते हैं ॥ ५१ ॥ उन्होंने योगासन जीत लिये हैं, प्राण (श्वास) को जीत लिया है, इन्द्रियोंको रूप रस आदि विषयोंसे हटा-

लियाहै एवं हृदयमें हरिका ध्यान करके तीनों गुणसे उत्पन्न काम, क्रोध आदि मलोंको त्यागकर अब पूर्णावस्थाको प्राप्त हैं॥ ५२॥ अन्तको उन्होंने "मैं हूँ, मेरा शरीर है" इस अहंभावको त्यागकर बुद्धिको विज्ञानमें प्रवृत्त करके और उस विज्ञानद्वारा आत्माको परमात्मामें संयोजित कर दिया है, जैसे घटाकाश घटका विनाश होनेपर आकाशमें मिलजाता है वैसे आत्माको परमात्मारूप देखते हैं[1] ॥५३॥ उन्होंने मायासे उत्पन्न गुणोंसे प्रकट जो कर्म हैं उनको त्याग दिया है, मायाके साथ उसकी वासना (लिंगशरीर) भी जाती रही है, और जब वासना नष्ट होगई तब मुक्ति अवश्यही होगी। उन्होंने संपूर्ण इन्द्रियोंको जीत लिया है। आहार आदि त्यागकर इससमय पत्थरकी भाँति अचल समाधिमें स्थित[2] हैं॥ ५४॥ हमारी इच्छा है कि सम्पूर्ण कर्मोंसे निवृत्त अतएव पूर्ण संन्यासी धृतराष्ट्रके पास जाकर तुम कुछ विक्षेप अर्थात् विघ्न[3] न करना। हे राजन्! वह आजके पाँचवें दिन इस कलेवरको त्याग देंगे और वह शरीर योगाग्निसे भस्म होजायगा ॥५५॥ बाहरसे पर्णकुटीसहित पतिके शरीरको योगाग्निसे भस्म होते देखकर पतिव्रता गांधारीभी उसी अग्निमें प्रवेश करके जल

---

१ यहांपर नारदजीने युधिष्ठिरसे धृतराष्ट्रकृत अष्टांगयोगका वर्णन किया है। १ यम २ नियम ३ आसन ४ प्राणायाम ५ प्रत्याहार ६ धारणा ७ ध्यान ८ समाधि; येही योगके आठ अंग हैं जिनके करनेसे मनुष्य पूर्ण योगी होता है। मायाके त्यागको यम कहते हैं, स्नान और हवनादि क्रियाको नियम कहते हैं, हठयोगमें हाथ पैर जोड़कर बैठनेकी विधिको आसन कहते हैं, श्वासको चढाने (पूरक) रोकने (कुंभक) और उतारने (रेचक) को प्राणायाम कहते हैं, इन्द्रियोंको मनके आधीन करके मनदमनको प्रत्याहार कहते हैं, ईश्वरभावनाको धारणा कहते हैं, धारणाको विषयरूपसे गुणातीत करनेको ध्यान कहते हैं, अर्थात् ध्यानमें अपनेको ईश्वरमय विचारना होता है और गुणोंके विषय त्यागने होते हैं, आत्माको परमात्मा जानकर देहको आधारस्वरूप जानना समाधि है। इस समाधिमें भूख प्यास आदि किसी भाँतिका बाह्य ज्ञान नहीं रहता। बुद्धि भीतरही आनन्दमें लीन होजाती है यही परमानन्द है। इसी अवस्थामें मुखसे वाक्य नहीं निकलता, नेत्र नहीं खुलते, केवल प्राणवायु शरीरमें रुका रहता है।

२ यही व्युत्थान अर्थात् समाधिकी अन्तिम अवस्थाका लक्षण है।

३ नारदने यहाँपर समाधिके अन्तिम दोषको कहाहै। योगी समाधिबलसे जब स्थित होता है तब उसके विपरीत यदि कुछ उपाय किया जाय तो बहुत दोष उपस्थित होते हैं उनमें ये नौ दोष प्रधान हैं १ व्याधि २ स्त्यान ३ संशय ४ प्रमाद ५ आलस्य ६ अविरति ७ भ्रान्तिदर्शन ८ अलब्धभूमिकता ९ चंचलता। (पातंजलने इसका विशेष विवरण किया है) अतएव नारदने धर्मराजसे कहा कि आप उनको समाधि अवस्थामें जाकर घरलानेकी चेष्टा न करना क्योंकि इस अवस्थामें एक क्षणभी अन्यमना होने या अन्यवार्तालापसे उसी क्षण पूर्वोक्त नवदोष उसके चित्तमें प्रवेश करते हैं और येही दोष भ्रष्ट होनेके कारण हैं।

जायँगी ॥५६॥ यह आश्चर्य देखकर विदुरजी हर्ष और शोके करके वहाँसे तीर्थयात्रा करने चले जायँगे ॥ ५७ ॥

इत्युक्त्वाथारुहत्स्वर्गं नारदः सहतुम्बुरुः ॥
युधिष्ठिरो वचस्तस्य हृदि कृत्वाजहाच्छुचः ॥ ५८ ॥

यह कहकर तुंबुरु गंधर्वसहित नारदजी स्वर्गको चले गये और राजा युधिष्ठिरने नारदका उपदेश हृदयमें धारण कर चाचा चाचीके शोकको त्याग दिया ॥ ५८ ॥

इति श्रीभागवते प्रथमस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दश अध्याय ।

युधिष्ठिरका अपनी पुरीमें असगुन देखना और अर्जुनका द्वारकासे
लौटकर युधिष्ठिरसे कृष्णका परमधामगमन सुनाना ।

सूत उवाच—संप्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ बन्धुदिदृक्षया ॥
ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥ १ ॥

श्रीसूतजी बोले । बन्धुबांधवोंको देखने और "पुण्यश्लोक कृष्णचन्द्रकी अब क्या करनेकी इच्छा है?" सो जाननेके लिये कृष्णके साथ द्वारकाको गये अर्जुनको ॥१॥ कई महीने बीत गये और अर्जुन नहीं आये। इसीसमय कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरने अपनी पुरीमें घोर असगुन देखे जिनका फल शास्त्रमें महाभयानक लिखा है ॥ २ ॥ देखा तो कालकी गति घोर है और जब जो ऋतु होना चाहिये वह नहीं है अर्थात् हेमन्तमें बसन्त, बसन्तमें शिशिर। मनुष्य क्रोध, लोभ और झूठसे भरे हैं और पापसे जीविका करते हैं ॥३॥ व्यवहारमें कपटकी अधिकता, मित्रतामें छल, पिता, माता, मित्र, भाई और स्त्री, पुरुषोंमें परस्पर लड़ाई ॥४॥ इसप्रकारके अति अरिष्टसूचक कारण और कलिकालके आगमनसे प्राणियोंकी प्रकृति लोभ आदि अधर्मसे युक्त देखकर राजा युधिष्ठिर अपने भाई भीमसेनसे बोले ॥ ५ ॥ "देखो भीम! हमने बंधुवर्ग (यादवों) के देखने और पुण्यश्लोक भगवान् कृष्ण क्या करना चाहते हैं?–सो जाननेके लिये कृष्णके साथ अर्जुनको द्वारकामें भेजा था ॥६॥ अब सात महीने बीत गये पर हे भीमसेन! तुम्हारे भाई अर्जुन क्यों नहीं लौटकर आये? इसका कारण कुछ मुझे विदित नहीं होता ॥ ७ ॥ मेरी समझमें तो नारदका कहा हुवा वह समय आगया जब श्रीकृष्णचन्द्र इस अपने क्रीडास्थल मनुष्यलोकको छोड़ेंगे ॥ ८ ॥ जिन श्रीकृष्णकी कृपा और सहायतासे हमारे ऐसी संपदा, राज्य, प्राण, स्त्री, कुल, प्रजा आदि

---

(१) मुक्तिलाभसे हर्ष और लौकिक रीतिसे भ्रातृमरणसे शोक ।

विभव हैं और शत्रुओंको हमने जीत लिया है एवं यज्ञ किये हैं जिनसे स्वर्गलाभ होगा ॥९॥ हे पुरुषसिंह! देखो पृथ्वीमें आकाशमें शरीरमें उत्पात प्रकट हैं जो बुद्धिको मोहनेवाले हैं और किसी घोर भयका सँदेसा दे रहे हैं ॥१०॥ मेरी बाईं जाँघ आँख और बाहु बार २ फड़कते हैं, हृदय काँप रहा है इन लक्षणोंसे प्रतीत होता है कि शीघ्रही मेरा कोई विप्रिय (अमंगल) होनेवाला है! ॥११॥ देखो! यह सियारी उदय हो रहे सूर्यकी ओर मुखकरके रो रही है, इसके मुखसे अग्निकी ज्वाला निकल रही हैं हे भाई! और यह कुत्ता निडरकी भाँति मेरी ओर मुख किये रो रहा है ॥१२॥ शुभ पशु गऊ आदि मेरी बाईं ओर हैं एवं अशुभ पशु गधे आदि दाहिनी ओर। और मैं देखता हूँ कि मेरे वाहन (घोड़े आदि) रो रहे हैं ॥ १३ ॥ ये मृत्युसूचक कबूतर और उल्लू एवं काकपक्षी दिन रात निन्दित कठोर शब्द करके मनको भयसे कंपित कर रहे हैं क्योंकि इस असगुनका फल ऐसाही भयंकर है कि जगत् शून्य होजाय ॥१४॥ सब दिशाएँ मैली हैं, सूर्यचन्द्रके बिम्बमें मण्डल पड़ते हैं, पर्वतसहित पृथ्वीमें हालाडोला आया करते हैं, बिजली गिरनेका घोर शब्द हुवा करता है और साथही बिजली गिरती हैं ॥१५॥ कठोर जिसका स्पर्श है ऐसी घोर आँधी चलती है जिसकी धूलसे दशदिशाओंमें अंधकार छाय जाता है ॥१६॥ बादलोंसे रुधिरकी वर्षा होती है, चारों ओर बीभत्सरसमय दृश्य है, सूर्यका तेज महामन्द पड़ गया है, देखो आकाशमें ग्रह परस्पर युद्ध करते हैं ॥१७॥ आकाश और अन्तरिक्ष भूत, यक्ष, राक्षसगणोंसे परिपूर्ण होकर मानों अग्निसे जल रहे हैं, नदी, नद, सरोवर और मनुष्योंके मन क्षोभको प्राप्त हैं ॥१८॥ घीकी आहुति पड़नेपर भी अग्नि नहीं प्रज्वलित होता, यह काल क्या करेगा? बछड़े दूध नहीं पीते, गउओंके थनोंमें दूध नहीं उतरता ॥ १९॥ गउओंकी आँखोंमें आँसू भरे हैं और वे रो रही हैं, व्रजमें बैल नहीं प्रसन्न हैं, देवतोंकी मूर्तियाँ मानों रो रही हैं, और उनमें पसीना छूट रहा है मानों सजीव होकर चलना चाहती हैं ॥२०॥ इन जनपद, गाँव, पुर, वाटिका, आश्रम आदिकी शोभा जाती रही, कहीं आनन्द नहीं देख पड़ता! ये घोर असगुन हमें किस आनेवाले घोर दुःखकी सूचना दे रहे हैं? ॥२१॥ इन उत्पातोंको देखकर मैं अनुमान करता हूँ कि निश्चय अद्वितीय वज्र अंकुश आदि रेखाओंसे सुशोभित भगवान् कृष्णके चरणकमल इस पृथ्वीमें नहीं हैं, इसका वह सौभाग्य जाता रहा" ॥२२॥ हे ब्रह्मन्! राजा युधिष्ठिर इसप्रकार घोर उत्पातोंको देखकर चिन्ता कर ही रहे थे कि द्वारकासे लौटकर अर्जुन आये ॥ २३ ॥ अर्जुन आकर आतुरोंकी भाँति राजाके पैरोंपर गिर पड़े और मुख लटकाकर नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे, ऐसी अपूर्व दशा ॥२४॥ देखकर राजाको नारदके वाक्यका स्मरण आया, तब घबड़ाकर तेजहीन भाई अर्जुनसे सुहृद्गणोंके बीचमें यों पूछने लगे ॥२५॥ "भाई अर्जुन! हमारे स्वजन मधु, भोज, दाशार्ह, अर्ह, सात्वत, अंधक, और वृष्णिवंशी यादव द्वारकापुरीमें सुखसे रहते हैं न? ॥२६॥ हमारे नाना शूरसेन और माननीय मामा वसुदेव तो भाइयोंसहित कुशलसे हैं? ॥ २७ ॥ वसुदेवकी स्त्री हमारी माईं देवकी

आदि सातो बहनें तो पुत्र और बहुओंसमेत क्षेमपूर्वक हैं? ॥२८॥ जिनका पुत्र दुष्ट कंस था वह उग्रसेन तो जीवित हैं? और उनके भाई देवक व वीर कृतवर्मा, जयन्त, गद, सारण ॥२९॥ और अक्रूर, शत्रुजित् आदि यादव तो सुखसे हैं? यादवोंके स्वामी भगवान् बलभद्र तो सुखसे हैं? ॥३०॥ सब यादवोंमें श्रेष्ठ महारथी प्रद्युम्न अच्छे हैं? गंभीर वेगवाले भगवान् अनिरुद्धजी कुशलसे हैं? ॥३१॥ सुषेण, चारुदेष्ण, जाम्बवतीके पुत्र साम्ब, और कृष्णके पुत्रोंमें श्रेष्ठ पुत्रसमेत ऋषभ आदि ॥३२॥ एवं कृष्णके परमभक्त श्रुतसेन उद्धव आदि और यादवोंमें मुख्य सुनन्द नन्द आदि ॥ ३३ ॥ कृष्ण बलदेवकी भुजाओंके आश्रित, हमारे सुहृद् यादव कुशलसे हैं? और कभी हमारा स्मरण करते हैं? ॥ ३४ ॥ एवं ब्रह्मण्य और भक्तवत्सल भगवान् महारथी श्रीकृष्णजी महाराज तो द्वारकापुरीमें सुधर्मा सभामें सुखसे विराजमान हैं? ॥३५॥ लोकोंके मंगलके लिये और कल्याण व उन्नतिके लिये जो आदिपुरुष अनन्त (बलदेव) के साथ यदुकुल-सागरमें विराजमान हैं ॥ ३६ ॥ जिनकी प्रबल भुजाओंसे सुरक्षित द्वारकापुरीमें यादव महापराक्रमी वीरपुरुषकी भांति परमानन्दसे स्वतन्त्रताके साथ विहार करते हैं, उनसे बढ़कर कौन पूजा और प्रशंसाके योग्य है?॥३७॥ जिन कृष्णके केवल चरणकमलकी सेवासे सत्यभामा आदि सोलहसहस्र रानियाँ इन्द्राणीसे अधिक सौभाग्यको प्राप्त हैं, क्योंकि वे कृष्णकी सहायतासे युद्धमें इन्द्रादिको हराकर कल्पवृक्ष आदिका अपहरण करती हैं ॥ ३८ ॥ जिन कृष्णके भुजदण्डसे रक्षित अतएव निर्भय यादवलोग इन्द्रकी सुधर्मा सभा पर पैर धरते हैं, जो सभा देवतोंके बैठने योग्य है ॥३९॥ भाई! तुम तो कुशलपूर्वक आरोग्य हो? तुम मुझको तेजहीन देखपड़ते हो! क्या तुम्हारा द्वारकामें आदर नहीं हुवा? या किसीने तिरस्कार किया? अथवा बहुत दिन विदेशमें रहनेसे तुम्हारी यह दशा हुई है? ॥४०॥ क्या तुमको किसीने कठोर गाली आदि दी हैं? या तुमने किसीको कुछ देनेको कहा और फिर प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं कर सके? ॥४१॥ तुमने ब्राह्मण, बालक, गऊ, बूढ़े, रोगी, स्त्री एवं किसी शरणागत प्राणीको तो नहीं विमुख लौटा दिया? क्योंकि शरणागतका पालन तुम्हारा धर्म है! ॥ ४२ ॥ भाई! तुमने क्या गम्या स्त्रीका निरादर किया है? या निरादरके योग्य अगम्या परस्त्रीके निकट गमन कियाहै? या अपनेसे नीच अथवा बराबरवालोंसे राहमें हार गये हो? ॥४३॥ अथवा पहले भोजन कराने योग्य बूढ़े, बालक और ब्राह्मणोंको विना भोजन कराये भोजन कर लिया है? अथवा तुमने कोई ऐसा निंद्य कर्म किया है जो तुम्हारे योग्य नहीं था और जिसका कलंक मिट नहीं सक्ता ॥ ४४ ॥

कच्चित्प्रेष्ठतमेनाथ हृदयेनात्मबन्धुना ॥
शून्योऽसि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रुक् ॥ ४५ ॥

अथवा परमप्रिय एकहृदय अर्थात् अन्तरंग अपने बंधु श्रीकृष्णका तुमको असह्य

वियोग हुवा है—मैं ऐसाही अनुमान करता हूँ । क्योंकि तुम ऐसे साहसी पुरुषको अन्यथा मानसी पीड़ा नहीं हो सक्ती ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते प्रथमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदश अध्याय ।

कलियुगकी अवाई देखकर परीक्षित्को राज्यासन देकर युधिष्ठिरका स्त्री व भाइयोंसहित परमधामगमन ।

सूत उवाच—एवं कृष्णसखः कृष्णो भ्रात्रा राज्ञा विकल्पितः ॥
नानाशङ्कास्पदं रूपं कृष्णविश्लेषकर्शितः ॥ १ ॥

सूतजी बोले । इधर कृष्णके सखा अर्जुन एक तो कृष्णके विरहमें व्याकुल थे दूसरे बड़े भाई धर्मराजने आकृति देखकर अनेक शंकाएँ कीं । इस शोकमय कारणसे उनका मुखकमल सूख गया और हृदयकमलके साथ मुख तेजहीन होगया । केवल सर्वव्यापी कृष्णचन्द्रके चरणोंका ध्यान करके रोने लगे और आँसुओंसे कण्ठ भर आने के कारण भाईको कुछ उत्तर न दे सके ॥ १ ॥ २ ॥ जितना अर्जुनके हृदयमें श्रीकृष्णके प्रेमका उदय होने लगा उतनाही नयनोंसे आँसुओंकी धाराएँ गिरने लगीं । अर्जुनने जिसमें धर्मराज देख न लें इसलिये मुख फेरकर बड़ेकष्टसे शोकका वेग रोंक कर दोनों हाथसे आँसू पोंछे ॥३॥ कृष्णकी वही मित्रता सुहृद्भाव और सारथी आदिका काम करनेमें सरलताका स्मरण करते हुवे वीर अर्जुन गद्गद वाणीसे बोले ॥४॥ अर्जुन बोले । महाराज! बंधुरूपी कृष्णने मुझको ठग लिया! जिस मेरे प्रचण्ड तेजको देखकर देवतालोग विस्मय करते थे वह तेज उन्हींके साथ चला गया ॥ ५ ॥ जिन आत्मारूप कृष्णका क्षणभर वियोग होनेसे उसी शरीरका देखना नहीं भाता जिस शरीरको स्त्री अपना प्यारा पति और पुत्र अपना पूज्य पिता मानता था। उसी शरीरको प्राण निकल जानेपर मुर्दा कहकर जला देते हैं ॥६॥ जिन कृष्णके आश्रयसे मैंने द्रौपदी-स्वयम्वरके समयमें द्रुपदराजाके स्वयम्वरसमाजमें जाकर धनुष चढ़ाकर मत्स्यभेद करके द्रौपदीको पाया; और कामपीड़ित राजोंको हराया ॥ ७ ॥ जिन कृष्णके प्रबल बाहुबलसे मैंने अग्निको खाण्डववन जलानेकी आज्ञा देदी और युद्ध करनेको आये हुवे देवगणसहित देवराज इन्द्रको जीत लिया एवं अद्भुत शिल्पचातुरी जिसमें है ऐसी सभा मयदानवने आपको बना दी । जिनके प्रतापसे समस्त पृथ्वीमण्डलके राजोंने आपके यज्ञमें परास्त होकर भेंटें दीं ॥ ८ ॥ हे राजन्! जिन कृष्णके तेजसे आपके भाई दशसहस्र हाथीके बलवाले आर्य भीमसेनने महाबलशाली जरासन्धको जिसके चरण रखनेकी चौकीपर बड़े २ राजा मुकुट रखते थे, मारा एवं

भैरवयज्ञमें बलिदेनेके लिये जरासंधने जिन राजोंको वंदी बना रक्खा था उनको छुड़ाया, और उन राजोंने यज्ञमें आपको उपहार दिया ॥ ९ ॥ आर्य! जिस समय आपने राजसूय यज्ञ किया, उससमय देवी द्रौपदी अपूर्व वेणी बाँधकर आपके वामभागमें सुशोभित हुई; उस वेणीकी शोभासे मोहित दुष्ट छली दुर्योधन आदिने ईर्षा द्वेषसे बीचसभामें वह वेणी खोल डाली । उससमय द्रौपदीकी आर्त पुकार सुनकर जो श्रीकृष्ण तत्क्षण सभामें आये और विपत्तिपतित द्रौपदीको रोदनपूर्वक पैरोंपर पतित देखकर जिन्होंने संकटसे उद्धार किया एवं इस दुष्टताके बदलेमें दुष्ट दुर्योधनादिकी स्त्रियोंको शीघ्रही विधवा करके विमुक्तकेश अथच क्लेशयुक्त कर दिया ॥१०॥ देखिये! दुष्ट दुर्योधनके भेजे हुवे दुर्वासा ऋषि जब दससहस्र शिष्योंसहित वनमें आपके पास आये तब बचे हुवे एक किनका सागको खाकर जिन विश्वरूप श्रीकृष्णने त्रिलोकीको तृप्त कर दिया और इस दुरन्त कष्टसे हमारी रक्षा की क्योंकि दुर्वासा स्नान करतेमेंही शिष्योंसहित तृप्त होकर सहजमें ही उधरसे ही चले गये ॥११॥ जिनके प्रतापसे मैंने युद्धमें शिवासहित किरातवेषधारी शिवको प्रसन्न करके उनसे पाशुपत अस्त्र पाया एवं अन्य २ लोकपालोंने भी प्रसन्न होकर अपने २ अस्त्र मुझको दिये । जिन कृष्णकी कृपासे इसी शरीरसे मैं इन्द्रलोकको चला गया और इन्द्रने अपने बराबर आधे सिंहासनमें मुझको बैठाया ॥१२॥ स्वर्गमें जब मैं कुछदिन क्रीड़ा (सैर) करता रहा तब जिनके प्रतापसे इन्द्रादिक देवतोंने भी निवातकवच आदि शत्रुओंके मारनेके लिये गाण्डीव धनुष धारण करनेवाली मेरी भुजाओंका आश्रय लिया!! राजन्! आज उन्हीं तेजस्वी कृष्णने मुझको ठग लिया! ॥१३॥ हे राजन्! जिससमय विराट् राजाके घरमें जाकर कौरवगणोंने गउओंका अपहरण किया तब जिनकी कृपाके आश्रयसे अकेले मैंने गउओंकी रक्षा की और शत्रुओंको परास्त किया एवं मूर्छित

---

१ यह कथा यों है कि एकसमय दुर्योधनने दुर्वासा ऋषिकी बड़ी सेवा की । मुनिने प्रसन्न होकर वरदान माँगनेको कहा । दुर्योधनने यह वर माँगा कि आप युधिष्ठिरके पास दससहस्र शिष्योंसहित अतिथिवेलामें जाइये परन्तु उससमय द्रौपदी भोजन करचुकी हों । विवश मुनि युधिष्ठिरके पास आये, राजाने प्रथाके अनुसार निमंत्रण दिया और दुर्वासाजी शिष्योंसहित स्नान संध्या करने गंगा गये । इधर यह संकट देखकर द्रौपदीने संकटमोचन कृष्णका स्मरण किया, उसी क्षण भगवान् आये और बोले—देवि! हम भूखे हैं कुछ खानेको देना । द्रौपदीने लज्जासे कहा, नाथ! सूर्यने जो पात्र दियाहै उसका प्रभाव है कि चाहे जितना जिस भाँतिका भोजन चाहो वह देगा पर मेरे भोजन करनेके उपरान्त उससे कुछ नहीं मिलता सो महाराज आज मैं भोजन कर चुकी हूँ, अब आपको क्या दूं? । बहुत कहनेपर द्रौपदी वह पात्र उठा लाई, उसमें एक किनका साग लगा था, भगवान्‌ने वही खाकर त्रिलोकीको तृप्त कर दिया। इधर संध्या करतेही करते शिष्योंसहित दुर्वासा तृप्त होगये और यह कहते हुवे उधरसे ही चले गये कि शीघ्र चलो! नहीं भीमसेन बुलाने आता ही होगा । महाभारत ।

शत्रुपक्षके वीरोंके शिरस्थित मणिमुक्ताजटित मुकुट छीन लिये! जिनकी सहायतासे अकेले मैं दुस्तर जलजन्तुरूप भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य-संकुल युद्धसागरके पार चला गया उन्हीं श्रीकृष्णने मुझको ठग लिया ॥१४॥ जिन्होंने महाभारत युद्धमें मेरे रथके आगे बैठकर भीष्म, शल्य, कर्ण, द्रोणाचार्य आदि महातेजस्वी वीरोंकी सेनाकी ओर देखकर निज कालदृष्टिसे उनके उत्साह, बल, अस्त्रकौशल, और आयुको हरलिया! विभो! आज मैं उन्हीं कृष्णके द्वारा ठगा गया ॥१५॥ महाराज! जिनकी कृपासे भीष्म, कर्ण, अश्वत्थामा, सुशर्मा, शल्य, सिंधुदेशनरेश जयद्रथ और बाल्हीक आदि वीरोंके अमोघ अस्त्र शस्त्र मेरा कुछ नहीं बना सके जैसे नृसिंहके भक्त प्रल्हादका दैत्यलोग कुछ अमंगल नहीं कर सके ॥१६॥ श्रेष्ठ पुरुष मोक्षकी कामनासे जिनके चरणकमलोंका भजन करते हैं उन्हीं ईश्वर श्रीकृष्णको मैंने अपना सारथी बनाया, मेरी कुबुद्धि तो देखो! एवं महाभारत युद्धमें थके हुवे रथके घोड़ोंका श्रम शान्त करनेके लिये जब मैं जयद्रथराजाके वधसमयमें रथसे पृथ्वीमें उतरा तब जिनके प्रभावसे सब शत्रुओंकी मति फिर गई अतएव उन्होंने मुझ पर अस्त्र शस्त्र नहीं चलाये, आज उन्हीं कृष्णने मुझको ठग लिया ॥ १७ ॥ हे नरदेव! वह श्रीकृष्ण सदा उदार रुचिर मंद मुसकानके साथ मुझसे परिहास करतेथे! और कभी २ हे पार्थ, हे अर्जुन, हे सखे, हे कुरुनन्दन आदिक मनोहर सम्बोधन करते थे, हाय! वेही सब मधुर वाक्य, स्मरण करनेसे मेरे हृदयको व्याकुल करते हैं ॥१८॥ मैं उनके साथ सोता, बैठता, घूमता व वार्तालाप और भोजन करताथा अतएव मेरा उनका ऐसा सहज व्यवहार होगया था कि मैं कभी२ "हे वयस्य! तुम बड़े सत्यवादी हो!" ऐसा कहकर आक्षेप भी करता था परन्तु मुझ कुबुद्धिके सब अपराधोंको महानुभाव प्रभु श्रीकृष्ण सहते रहे, जैसे मित्र मित्रके अपराधको या पिता अपने पुत्रके अपराधको क्षमा करता है ॥१९॥ आर्य! इससमय मैं पुरुषोत्तम परमसखा कृष्णसे रहित हो गया हूँ, मेरा हृदय शून्य हो गया है । मैं भगवान्की सोलहसहस्र रानियोंको साथ लिये आ रहा था सो मार्गमें तुच्छ गोपोंने मुझे स्त्रीकी भाँति जीत लिया! इसका कारण श्रीकृष्ण-वियोगके सिवाय और कुछ नहीं है ॥२०॥ वही गांडीव धनुष है, वेही बाण हैं, वही रथ है, वेही घोड़े हैं और वही मैं रथी हूँ जिसको बड़े२ राजालोग शिर झुकाते थे तथापि देखिये, उन्हीं ईश्वरका वियोग होनेसे सब प्रभावहीन हो गये! अस्त्रादिके प्रयोग मुझको मायाविद्याकी भाँति ज्ञात होते हैं। सब जान पड़ता है कि ऊसरमें बोये बीजकी भाँति निष्फल होगया ॥२१॥ राजन्! आपने अपने सुहृद् यादवोंकी कुशल पूँछी सो वे तो ब्राह्मणोंके शापसे मोहित होकर और वारुणी मदिरा पीकर ऐसे मतवाले होगये कि उनको अपने परायेका ज्ञान नहीं रहा, परस्पर प्रहार करके नष्ट होगये, उनमें चार पाँच बचे हैं ॥२२॥२३॥ राजन्! यह सब समर्थ भगवान्का अगम्य चरित्र है कि प्राणी परस्पर एक एकको मारते और एक एककी रक्षा करते हैं ॥२४॥ जैसे सागरमें मत्स्य आदि जलजन्तु छोटोंको बड़े और दुर्बलोंको बलवान् भक्षण करते हैं ॥२५॥ हे विभो! भगवान्

श्रीकृष्णने इसीप्रकार यादवोंको यादवोंके द्वारा नष्ट किया एवं बहुसंख्यक बलवान् वीरोंके द्वारा अन्य वीरोंका संहार करके पृथ्वीका भार उतारा ॥२६॥ देश-काल-अर्थयुक्त हितकारी एवं विपत्तिको शान्त करनेवाले शिक्षामय भगवान् श्रीकृष्णके मधुर वचन, स्मरण करनेसे मेरे चित्तको व्याकुल करते हैं ॥२७॥ सूतजी कहते हैं । अतिगाढ़ मित्रताके कारण इसप्रकार कृष्णके चरणकमलोंका स्मरण करते२ अर्जुनकी बुद्धि शान्त और निर्मल होगई ॥ २८ ॥ वासुदेवके चरणकमलोंके ध्यानसे हृदयमें शुद्ध भक्ति उत्पन्न हुई जिससे अर्जुनकी बुद्धि शुद्ध होगई और मलरूप शोक, मोह, अज्ञान दूर होगये ॥२९॥ भगवान्ने युद्धभूमिमें जो गीता-ज्ञान अर्जुनको सिखलाया था वह काल, कर्म और भोगा दिसे नष्ट हो गया था किन्तु इससमय भक्तिका उदय होनेसे वही ज्ञान फिर अर्जुनके हृदयमें उदित हुवा ॥३०॥ अपनेको ब्रह्म जाननेसे अर्जुनका भेद-भाव जाता रहा, संशय (शोक) नष्ट होगया, मायाका नाश होनेसे अर्जुनको ज्ञान हुवा कि मैं जन्ममरणरहित लिंगशरीरहीन निर्गुण ब्रह्मरूप हूँ ॥ ३१ ॥ भगवान्का परमधामगमन और यदुकुलका संहार सुनकर राजा युधिष्ठिरको नारदके कथनका स्मरण आया । उसीसमय मनको स्थिर करके राजा युधिष्ठिरने स्वर्ग जानेकी इच्छा की ॥३२॥ कुन्तीने भी अर्जुनके मुखसे यदुवंशविनाश और कृष्णका बैकुंठगमन सुन-कर भगवान् कृष्णमें मन लगाकर निश्चल भक्ति धारण की और संसारके कार्योंसे निवृत्त होगई ॥३३॥ जन्मरहित भगवान् श्रीकृष्णने जिस यादव शरीरसे, जैसे काँटेसे काँटा निकाला जाता है वैसे पृथ्वीके भारका संहार किया था उसको तज दिया किन्तु ईश्वर कृष्णको दोनों (यादवदेह और पृथ्वीका भाररूप राजोंके देह) देह समान हैं ॥३४॥ जैसे नट अनेक वेष धरकर अभिनय करताहै और फिर उनको त्याग देता है वैसेही भगवान् अनेक कार्योंके लिये मत्स्यादिरूप धारण करते और त्यागते हैं । जिस शरीरसे कृष्णजीने भूभार-संहार किया उसको त्याग दिया ॥ ३५ ॥ सुनने योग्य जिनकी उत्तम गुणगाथा हैं उन भगवान् श्रीकृष्णने जिसदिन इस पृथ्वीको त्याग दिया उसीदिन अविवेकियोंको मोहित करनेवाले कलियुगका अधिकार संसारमें फैल गया ॥३६॥ धर्मराजने देखा कि राज्यमें कलियुगका प्रवेश होगया। प्रत्येक गृह, राज्य और पुरमें लोभ, मिथ्याभाषण, कुटिलता, छल, हिंसा आदि अधर्म-चक्र फैल गया तब उन्होने स्वर्गजानेकी इच्छासे देहत्याग-समयके योग्य वेष धारण किया ॥३७॥ तदनन्तर धर्मराजने अपने समान गुणवान् अपने पौत्र राजा परीक्षितको समुद्रवेष्टित पृथ्वीके राज्यासनपर हस्तिनापुरमें बैठाया और राज्याभिषेक किया ॥३८॥ एवं अनिरुद्धके पुत्र वज्रको शूरसेन देशका स्वामी बनाकर मथुरामें उसका अभिषेक किया । फिर ईश्वरमें सम्मिलित होनेके लिये प्राजापत्य यज्ञ करके समर्थ राजा युधिष्ठिरने अग्नियोंको पान

१ ज्ञानपूर्वक ब्रह्ममें लीन होकर देहत्याग करनेकी इच्छा करना—यही प्राजापत्य यज्ञ है क्योंकि इससे अष्टांगयोगका साधन निर्विघ्न होसक्ता है ।

करलिया अर्थात् आत्मामें लीन करलिया ॥३९॥ सम्पूर्ण अमूल्य वस्त्र आभूषण तज दिये एवं ममता और अहंकार त्यागकर सम्पूर्ण विषयबंधनोंको काट डाला ॥४०॥ राजा युधिष्ठिरने वाणीको मनमें लीन कर दिया अर्थात् मौन होगये और मनको योगबलसे प्राण अर्थात् लिंगशरीरमें लीन कर दिया, प्राणको अपान अर्थात् आकर्षण वायुमें लीन कर दिया, अपानको उत्सर्ग जो अपानका व्यापार है उसके सहित मृत्युमें लीन करदिया, मृत्युको पंचभूतमय शरीरमें लीन किया अर्थात् इस शरीरको ही मृत्यु है आत्माको नहीं; यह भावना कर ली ॥ ४१ ॥ शरीरको तीनो मायाके गुणोंमे अर्पित किया, मायाके गुणोंको मायामें अर्पित किया, मायाको आत्मामें अर्पित करके मुनिभाव धारण किया, तदनन्तर अविनाशी आत्माको परमात्मामें लीन कर दिया अर्थात् अपनेको ब्रह्मरूप अनुभव करने लगे ॥ ४२ ॥ केवल एक चीर धारणकर, आहार त्यागकर केशत्यागकर, मौनावस्थामें स्थित हुवे, देखनेसे प्रतीत होता था कि यह कोई जड़ सिड़ी सौदाई हैं या इन्हे पिशाच लगा है ॥ ४३ ॥ सब राज्य संपदा भाई और स्त्री पुत्र आदिको तज कर जैसे कोई अंध वधिर हो वैसे न किसीकी ओर देखना और न किसीकी बात सुनना—इस प्रकार महानुभाव धर्मपुत्र उत्तर दिशाको गये जहाँ पहले महात्मा लोग जा चुके हैं ॥ ४४ ॥ धर्मराजका अपने रूप (ब्रह्म) में लीन होना देखकर और अधर्मके मित्र अर्थात् सहायक कलियुगने जगतमें आकर लोगोंके चित्तपर अपना अधिकार कर लिया, यह देखकर एवं सब विषयोंको असत्य तथा केवल ब्रह्मतत्त्वको अपना एकान्त कल्याणकारी जान कर अर्जुनआदि चारो भाई भी देहत्यागका निश्चय करके युधिष्ठिरके पीछे हृदयमें ब्रह्मका ध्यान करते वहाँको चले, जहाँ जाकर यह जीव फिर इस संसारमें नहीं आता ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ पाण्डवगण मनमें भगवान्के चरणकमलोंका ध्यान करने लगे, तब हृदयमें भक्तिका उदय हुवा जिससे उनकी बुद्धि शुद्ध होगई ॥ ४७ ॥ इस प्रकार नारायणके चरणोंमें निश्चल भक्ति करके पाण्डवगण उस गतिको प्राप्त हुवे जिसको असत् विषयी लोग नहीं पा सक्ते ॥४८॥ इधर महात्मा विदुरने तीर्थयात्रा करते २ यह संवाद सुना, उसीसमय देह-त्याग करना निश्चयकर प्रभासतीर्थको गये एवं वहाँ कृष्णमें मन लगाकर इस शरीरको त्याग दिया, और उससमय बुलानेके लिये आये जो पितृगण हैं उनके साथ अपने लोकको अर्थात् यमलोकको गये ॥ ४९॥ इधर द्रौपदीने देखा कि पाँचो पति मेरी अपेक्षा न करके स्वर्गको चले गये सो उसी समय वासुदेवके चरणोंमें चित्त लगाकर परमधामको सिधारीं ॥ ५० ॥

यः श्रद्धयैतद्भगवत्प्रियाणां पाण्डोः सुतानामिति संप्रयाणम् ॥
शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम् ५१

जो कोई कृष्णके प्यारे पाण्डवोंका यह स्वर्गगमन पढ़ता है या सुनता है उसे

हरिकी भक्ति और मुक्ति मिलती है क्योंकि यह कथा परम पवित्र एवं मंगलकारी है ॥ ५१ ॥

इति श्रीभागवते प्रथमस्कंधे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडश अध्याय ।

राजवेषधारी कलियुगका गऊ और वृषरूपधारी पृथ्वी और धर्मको मारना और राजा परीक्षितका वहाँ जाना और धर्म व पृथ्वीसे परीक्षितका सम्वाद।

सूत उवाच—ततः परीक्षिद्द्विजवर्यशिक्षया
महीं महाभागवतः शशास ह ॥
यथा हि सूत्यामभिजातकोविदाः
समादिशन्विप्रमहद्गुणस्तथा ॥ १ ॥

सूतजी बोले। युधिष्ठिर महाराजके परमधाम जानेके उपरान्त महाभागवत परीक्षितजी श्रेष्ठ विद्वान् पण्डितोंकी शिक्षाके अनुसार राज्यशासन करने लगे। जन्म समयमें निपुण ज्योतिषी जो २ गुण बतला गयेथे क्रमशः वे सब गुण परीक्षित्में प्रकट होने लगे ॥ १ ॥ राजा उत्तरकी परमसुन्दरी इरावती नाम कन्यासे परीक्षित्का विवाह हुवा एवं रानी इरावतीके गर्भसे जनमेजय आदि चार पुत्र भी उत्पन्न हुवे ॥ २ ॥ राजा परीक्षित्ने गंगाके किनारे तीन अश्वमेध यज्ञ किये और ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर अयाचक कर दिया। यज्ञोंमें शारद्वतऋषि (कृपाचार्य्य) आचार्य्य थे और देवतालोग साक्षात् अपना२ भाग लेने आये थे॥३॥ एकसमय राजा परीक्षित् दिग्विजय करने गये, राहमें राजाका वेष बनाये शूद्र कलियुगको देखा कि धर्मरूप बैल व गोरूप पृथ्वीको मार रहा है तब वीर राजाने बलपूर्वक कलिदमन किया॥४॥ शौनकजी बोले। दिग्विजयमें राजा परीक्षित्ने कलि युगको किसलिये पकड़ा? राजचिन्हधारी वह शूद्र कौन था जो गऊको पैरसे मार रहा था? ॥५॥ हे महाभाग! हमसे यह सब चरित्र विस्तारसे कहो, यदि इस कथामें कुछ विष्णु (कृष्ण) की कथा हो या उनके चरणकमलमकरन्दके प्रेमी भक्तोंकी कथाहो। अन्य वृथा बातोंके कहनेसे क्या प्रयोजन है क्योंकि उनमें व्यर्थ आयु नष्ट होती है ॥ ६ ॥ हे अंग! थोड़ी आयुवाले मोक्षाकांक्षी मनुष्यगणोंको अमर करनेके उपायस्वरूप इस यज्ञ का हमने आरंभ किया है इसमें मृत्युकी बलि (पशुबलि) दी गई है ॥७॥ अहो सूत! हरिलीलारूप अमृतयुक्त वाणी सबको पीना चाहिये, इसके बिना जीवन वृथा है। जो हरिके गुणानुवाद नहीं पढ़ता सुनता वह मंद, मंदमति एवं

मंदआयुवाला है उसकी आयु यों ही बीतती है, रात सोनेमें और दिन संसारके व्यर्थ कामोंमें ॥८॥ श्रीसूतजी बोले । राजा परीक्षित् कुरुजांगल राजधानीमें राज्य करने लगे, इन्होंने सुना कि राज्यमें कलियुगने प्रवेश कियाहै । यह अप्रिय और असह्य बात सुनकर समरसिंह महापराक्रमी राजा परीक्षित्ने उसीसमय कलिके दमन करनेको दिग्विजयके लिये धनुष धारण किया ॥९॥ सुंदर सजा हुवा, जिसमें श्यामवर्ण घोड़े जुते हुवे हैं और सिंहके चिन्हसे सुशोभित ध्वजा फहरा रही है ऐसे रथपर चढ़कर रथ, घोड़े, हाथी और पैदल, इन चार अंगोंसे युक्त चतुरंगिणी सेना साथ लेकर अपने पुरसे दिग्विजय करनेके लिये निकले ॥१०॥ भद्राश्व, केतुमाल, भारत उत्तरकुरु, और किंपुरुष आदि सब खंडोंको जीतकर राजोंसे भेंटें लीं ॥११॥ पूर्वोक्त खण्डोंमें वहाँके रहनेवाले लोगोंके मुखसे अपने पूर्वज महात्मा अर्जुनादि राजोंका यश सुनते चले, जिससे श्रीकृष्णजीका अपूर्व प्रताप सूचित होता था ॥ १२ ॥ जैसे, अश्वत्थामाके मारे हुवे ब्रह्मास्त्रसे माताके गर्भमें अपनी रक्षा एवं कौरव यादवोंका परस्पर परम स्नेह व कृष्णमें पांडवोंकी भक्ति इत्यादि ॥१३॥ जो लोग ये चरित्र गाते थे उनको प्रेमभरी दृष्टिसे देखकर राजा परीक्षित्ने बड़े मोलके वस्त्र और आभूषण दिये ॥ १४ ॥ राजा परीक्षित्ने जब सबका सन्मान किया तब वे कहने लगे कि "पाण्डवकुल धन्य है! जिसपर प्रसन्न होकर स्वयं भगवान् कृष्ण कभी सारथी, कभी सभासद्, कभी सेवक, कभी सुहृद्, कभी दूत और कभी रक्षक एवं अनुगामी बने और कभी स्वयं पाण्डवोंको प्रणाम करके संपूर्ण जगत् से पाण्डवोंको प्रणाम कराया, अतएव पाण्डव धन्य हैं!" यह सुन कर परीक्षित्का हृदय कृष्णप्रेमसे मुग्ध होगया ॥ १५ ॥ राजा परीक्षित् इसप्रकार सर्वत्र पूर्वजोंका सुयश सुनते और उनका सन्मान करते हुवे दिग्विजय करने लगे एक दिन इनके डेरेके पासही एक आश्चर्य घटना हुई सो हे महामुने! सुनो ॥ १६ ॥ धर्म वृषभका रूप धारण किये एक पैरसे विचर रहा था, उसने गोरूप पृथ्वीको मार्गमें देखा कि रो रही है जैसे पुत्रहीन माता दीन होती है; तब उससे धर्म्म पूँछने लगे कि ॥१७॥ "हे भद्रे! कुशल तो है? आरोग्य तो हो, तुम्हारी शोभा क्यों नष्ट होगई, और तुम्हारा मुख क्यों मलीन है, माता! मैं देखता हूँ कि प्रकटमें तो तुमको

---

१ जिस पृथ्वीखण्डको चारो ओरसे समुद्र घेरे है उसका नाम भद्राश्व है, इस खंडको आजकल आफ्रिका कहते हैं। जो पृथ्वीका भाग सुमेरु पर्वतके निकट है वह इलावृत है इसके दो भाग हैं उत्तर ओर रम्यक व हिरण्मय एवं दक्षिण ओर हरिवर्ष और किंपुरुषवर्ष। इसी इलावृतको केवल किंपुरुषवर्ष भी कहते हैं । आजकल इसका नाम अमेरिका है। पृथिवीके मध्यस्थलको मेरु कहते हैं, इसीके एक ओर किंपुरुषवर्ष है और दूसरी ओर भद्राश्व, केतुमाल (यूरोप) भारत व उत्तर कुरुप्रदेश हैं। पहले भारतको एकवर्ष व रूस, तातार आदिको उत्तरकुरु एवं ब्रह्मा, चीन आदिको किरात देश कहते थे।

कोई पीड़ा नहीं है परन्तु हृदयमें अवश्य कोई महाशोक है। अथवा किसी दूर देश गये हुवे अपने हितकारी बंधुके विरहसे दुःखी हो? ॥१८॥ या मेरे तीन चरणोंके नष्ट होनेका शोच कर रही हो अथवा शूद्रोंको राज्य करते देखकर अपने लिये शोच करती हो। या यज्ञभाग जिनको नहीं मिलता ऐसे देवतोंका शोच करती हो या अकाल पड़ने व इन्द्रके वर्षा न करनेसे पीड़ित प्रजाका शोच करती हो? ॥१९॥ हे पृथ्वी! या पति जिनकी रक्षा नहीं करते ऐसी स्त्रियों और पिता जिनकी रक्षा नहीं करते ऐसे बालकोंका शोच करती हो कि पिता और पति उलटे चाण्डालोंकी भाँति स्त्री-पुत्रोंको पीड़ित करते हैं। या पढ़े लिखे सुशिक्षित लोगोंको कुकर्म्म व दुराचार करते और पूज्य ब्राह्मणोंको चौकीदारी, सिपाहीगीरी करते देखकर शोच करती हो? ॥२०॥ या राजोंको कलियुगके धर्मोंमें लिप्त देखती हो कि अपने २ राज्यमें 'कर'के लोभसे प्रजाको पीसे डालते हैं, अपनी इच्छासे बस्ती उजाड़कर उजाड़ बसाते हैं एवं प्रजाकी न्यायसे रक्षा नहीं करते किन्तु दिनरात्रि अपनेही स्नान, भोजन, मैथुन, सँवारना-सिंगारना तथा मद्यपान, मांसभोजन, वेश्याप्रसंग जुवा आदि कुकर्मोंमें लगे रहते हैं-अतएव शोक कर रही हो वा उक्त कुकर्मयुक्त सब प्राणियोंका शोच कर रही हो? ॥२१॥ हे अम्ब! अथवा भूमिभार उतारनेके लिये अवतार लेकर और भूभार उतारकर परमधामको गये जो श्रीकृष्णजी हैं उनके मोक्षदायक कर्म्मोंका स्मरण करके यह शोच कर रही हो कि उन गुणवान् यदुनन्दनके अब दर्शन न होंगे॥ २२ ॥ हे वसुंधरे! तुम्हारे दुःखित होनेके कारण तो मुझे अनेक देख पड़ते हैं, इनमें कौन दुःख तुमको है जिससे तुम क्लेशित हो रही हो? अथवा परमबली कालने देवपूजित तुम्हारे सौभाग्यको नष्ट कर दिया; क्या इसीसे तुम शोच कर रही हो?" ॥ २३ ॥

पृथ्वी बोली। हे धर्म्म! मुझको जिस कारणसे शोक है वह सब तो आप जानते हो। आप जिन सम्पूर्ण गुणोंसे पूर्ण एवं चार चरणयुक्त रहकर जगत्का कल्याण करते हो वे समग्र सत्य, शौच, दया, क्षान्ति, त्याग, सन्तोष, आर्जव, शम, दम, तप, समदृष्टि, तितिक्षा, उपरति, श्रुत, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य्य, शूरता, तेज, बल, स्मृति, स्वतन्त्रता, कौशल, कान्ति, धैर्य्य, कोमलता, प्रगल्भता, आश्रयदान, शील, साहस, ओज, विक्रम, भग, गम्भीरता, स्थिरता, आस्तिकता, कीर्त्ति, मान, अहंकारका न होना इत्यादि महागुण, जिनकी महत्वकी इच्छावाले मनुष्य इच्छा करते हैं, जिनमें नित्य बनेरहते हैं, कभी नहीं नष्ट होते ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ ॥२७॥२८ ॥ उन महागुणवान् श्रीपति भगवान्से हीन एवं कलियुग-प्रपीड़ित इस मनुष्यलोकका शोच कर रही हूँ कि इसकी क्या दशा होगी! क्योंकि कल्याणदायक उक्त उत्तम गुण तो इसलोकसे श्रीकृष्णचन्द्रके साथही विनष्ट होगये ॥ २९ ॥ देवतोंमें उत्तम तुम और देवता, पितर, ऋषि, साधु एवं सब वर्ण व आश्रमोंकी दुरवस्था देखकर और अपनाभी होनहार घोर कष्ट देखकर मैं शोच कर रही हूँ ॥३०॥ ब्रह्मादिक देवतोंने जिस लक्ष्मीके कृपाकटाक्षकी इच्छासे तप किया वह दुष्प्राप्य

लक्ष्मी यद्यपि महान् (उत्तम) पुरुषोंके आश्रित है तथापि अपना निवासस्थान जो फूलेकमलोंका वन है उसे त्यागकर अति अनुरागसे जिनके चरणकमलोंका भजन करती है ॥ ३१ ॥ उन लक्ष्मीनिवास भगवान्के शोभायुक्त एवं ध्वजा, वज्र, कमल, अंकुश, यव आदि अद्भुत ऐश्वर्य्यसूचक चिन्होंसे शोभित चरणोंद्वारा विभूषित होकर मैं त्रिभुवनसे अधिक शोभाको प्राप्त हुई। हाय! मुझे गर्व्वित देख मदमोचन कृष्णने अन्तको मुझे त्यागकर सम्पूर्ण शोभा नष्ट कर दी ॥३२॥ हे धर्म्म! उन्ही परम प्रभुने मुझे अतीव भाराक्रान्त देखकर मेरा भार उतारनेके लिये भारस्वरूप असुरोंके ऐसे कर्म्म करनेवाले राजोंकी शत २ अक्षौहिणियोंका संहार कर दिया। और तुमको त्रिपादहीन एवं दुःखी देखकर स्वयं यदुवंशमें अवतार लेकर तुम्हारे चारो चरण पूर्ण करके यदुकुलमें विहार किया ॥३३॥ उन पुरुषोत्तमके विरहको कौन ऐसी स्त्री है जो सहन कर सके? जो, प्रेमपूर्णचितवन, रुचिर मुसकान, मधुर वाणी आदिसे सत्यभामाआदि मानिनी स्त्रियोंका मान हरकर उनको विस्मित एवं मोहित करते थे, एवं जिनके चरणकमलके स्पर्शको पाकर आनन्दसे मेरे रोमाञ्च होता था, हाय! आज उन्हींके विरहसे मैं व्याकुल हूँ ॥ ३४ ॥

तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा ॥
परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ॥ ३५ ॥

इसप्रकार पृथ्वी और धर्म्म परस्पर वार्त्तालाप कर ही रहेथे कि इसी अवसरमें परीक्षित् नाम राजऋषि पूर्व्ववाहिनी सरस्वती जहाँ है ऐसे कुरुक्षेत्रमें प्राप्त हुवे ॥३५॥

इति श्रीभागवते प्रथमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदश अध्याय ।

कलियुगका परीक्षितकर्तृक निग्रह ।

सूत उवाच–तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् ॥
दण्डहस्तं च वृषलं ददृशे नृपलाञ्छनम् ॥ १ ॥

सूतजी बोले। हे शौनक! वहाँ जाकर परीक्षित्‌ने देखा कि एक गऊ और बैल अनाथकी भाँति खड़े रो रहे हैं और उन्हें एक शूद्र राजोंके चिन्ह किरीट मुकुट इत्यादि धारण किये हाथमें एक डण्डा लिये मार रहा है ॥१॥ कमल-कन्दके समान श्वेतवर्ण एक बैल एकही पैरसे खड़ा है और भयसे मूत्रत्याग कर रहा है, वह शूद्र उसे

पैरसे मार रहा है[1] ॥ २ ॥ वह वत्सरहित कामधेनु दीन अवस्थासे खड़ी रो रही है दुर्बल होगई है, चारेकी इच्छा करती है और उसेभी वह शूद्र बारवार लात मार रहा है[2] ॥ ३ ॥ तब सुवर्णमण्डित रथपर स्थित एवं सुवर्णकवच धारण किये जो राजा परीक्षित् हैं वह धनुप पर बाण चढ़ाकर मेघके समान गंभीर वाणीसे उस शूद्रसे यों कहने लगे ॥४॥ "अरे! तू कौन है? नटोंके समान कल्पित राजवेष धारण कर मेरे राज्यमें दुर्बलोंको बलपूर्वक मारता है। तू द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,) तो नहीं है क्योंकि ये तेरे कर्म्म यह बता रहे हैं ॥५॥ तू कौन है? अर्ज्जुनसहित श्रीकृष्णके परमधाम जानेपर निरपराधियोंको निर्जनमें मार रहा है अतएव तू अपराधी है, प्राण वधही तेरे योग्य दण्ड है ॥६॥ और हे मृणालधवल वृप! तुम कौन हो जो त्रिपद-रहित हो एवं एकपदसे खड़े होकर हमें खेदित कर रहे हो, तुम क्या कोई वृपरूपधारी देवता हो? ॥ ७ ॥ कौरववंशी राजोंके प्रचण्ड बलशाली वाहुओंसे सुरक्षित इस पृथ्वीमण्डलमें सिवाय आपके अन्य किसीके शोकाश्रु नहीं गिरते ॥ ८ ॥ हे सुरभीके पुत्र! तुम शोच न करो तुमको अब इस शूद्रसे कुछ भी भय नहीं है। और हे गोमाता! आप भी न रोइये क्योंकि दुष्टोंका दमन करनेवाला मैं आगया हूँ, अब आपका कल्याण होगा ॥ ९ ॥ जिस मदोन्मत्त राजाके राज्यमें असाधु गण प्रजाको पीड़ित करते हैं हे साध्वि! उस राजाकी कीर्ति, आयु, ऐश्वर्य, एवं परलोक नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥ राजोंका यही मुख्य धर्म्म है कि वे दुःखित प्रजाका दुःख-निवारण करें अतएव इस प्राणियोंसे द्रोह करनेवाले दुष्टको मैं अवश्य मार डालूँगा ॥ ११ ॥ हे वृप! तुम चतुष्पद हो तुम्हारे तीन चरण किस दुष्टने काट डाले, कृष्णके अनुवर्त्ती राजोंके राज्यमें तुम ऐसों की यह दशा न होनी चाहिये ॥ १२ ॥ हे वृप! तुम्हारा कल्याण हो क्योंकि तुम निरपराध एवं साधु हो। तुम हमसे सत्य कहो किसने तुमको विरूप कर दिया? कौन पाण्डवोंके वंशकी कीर्तिको दूपित करनेवाला है! ॥ १२ ॥ निरपराधी मनुष्यको जो पीड़ित करनेवाला है उसको मुझसे सदा भय है क्योंकि दुष्ट-दमन करनेसे साधुओंका कल्याण ही होता है ॥ १४ ॥ और ऐसा न समझना कि मैं दुष्टदमन नहीं कर सक्ता, देखो जो निरंकुश मनुष्य निर्दोपको पीड़ित करै वह चाहै कोई देवताही क्यों न हो मैं उसकी अंगदसहित भुजा काट सक्ता हूँ ॥ १५ ॥ राजाका यही परम

---

१ यहांपर मूत्रत्यागका विशेप भाव है—"जैसे मनुष्य बहुमूत्र करै तो उसका शरीर क्षीण होताहै उसी भाँति कलिकृत ताडनासे एकचरणावशिष्ट धर्म्मभी क्षीण हो रहा है। और उसी अवशिष्टांश धर्म्मको कोई ग्रहण नहीं करता, इसी अपमान-भयसे वह काँप रहा है।" यह व्यासजीने सब रूपक बाँधा है। २ यहाँ भी अन्नादिप्रसवके क्षयसे विवत्सा, यज्ञके अभावसे दुर्बला, अतएव यज्ञभागकी इच्छा कर रही है। यह सूचित है।

धर्म्म है कि वह अपने धर्म्मका पालन करे एवं विना आपत्तिके उत्पथगामी दुष्टोंका दमन करे ॥१६॥ धर्म बोले । हे राजन्! तुम पाण्डुकुलमें उत्पन्न हो, अतएव ऐसे दुःखियोंको अभय देनेवाले वचन जो तुमने कहे वे उचित ही हैं; जिन पाण्डवोंके गुणोंके वश होकर साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण उनके दूत और सारथी बने उन्हींके आप पौत्र हैं॥१७॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ! जीवोंको कौन क्लेश देता है उसे हम नहीं जान सक्ते क्योंकि हम अनेक शास्त्रोंके अनेक मतोंमें मोहित हो रहे हैं ॥ १८ ॥ नास्तिकगण अपने आत्माको ही दुःख सुखका देनेवाला कहते हैं एवं दैवज्ञ लोग दैवको, मीमांसकगण कर्म्मको अथच प्रकृतिवादीजन प्रकृति वा स्वभावको ही कहते हैं ॥ १९ ॥ बड़े २ महात्मा ईश्वरोंका यह सिद्धान्त है कि दुःख सुखका देनेवाला अप्रतर्क्य है अर्थात् उसकी कोई तर्कणा नहीं कर सक्ता, अनिर्देश्य है अर्थात् उसको कोई वाणीसे वता नहीं सक्ता । अत एव हे राजर्षे! आपही अपनी बुद्धिसे जो उचित हो वह विचार कर लीजिये ॥ २० ॥ हे द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार धर्म्मने जब कहा तब सम्राट् राजा परीक्षित् एकाग्रमनसे विचार करके प्रीतिपूर्व्वक धर्म्मसे बोले ॥ २१ ॥ "हे धर्म्मके जाननेवाले! तुम धर्म्म कह रहे हो अत एव मैं निश्चय करताहूँ कि तुम वृषरूपधारी धर्म्म हो । तुम इस कारण दुःखदायी पुरुषको नहीं बतलाते कि अधर्म्म करनेवालेकी जो सूचना देता है उसको भी उसी अधर्म्मीके समान पाप होता है ॥ २२ ॥ अथवा परमेश्वरकी मायाको मनुष्य मनमें विचार नहीं सक्ते और न वाणीसे कह सक्ते हैं—यही स्थिर सिद्धान्त है ॥ २३ ॥ सत्ययुगमें तुम्हारे तप, शौच, दया, सत्य, ये चार चरण थे सो इससमय अधर्मके अंश स्मय, संग—दोष और मदने तीन चरण नष्ट कर दिये ॥ २४ ॥ अब तुम्हारा एक चरण 'सत्य' शेष है उसको भी यह कलियुग अधर्म्म और मिथ्याकी सहायतासे नष्ट करना चाहता है ॥ २५ ॥ और यह गोरूप पृथ्वी है, भगवान्ने अवतार लेकर इसका भार उतारा और अपने श्रीयुक्त चरणकमलोंसे अलंकृत किया ॥ २६ ॥ इससमय उन श्रीचरणोंसे हीन शोभारहित यह पृथ्वी विलाप करती और शोच कर रही है कि ब्राह्मणद्रोही शूद्र राजा मेरा भोग करेंगे!" ॥ २७ ॥ इस भाँति धर्म्म और पृथ्वीको समझा कर महारथी राजा परीक्षित्ने अधर्म्मके मित्र कलियुगके मारनेके लिये तीक्ष्ण खड्ग हाथमें लिया ॥ २८ ॥ जब कलियुगने परीक्षितको मारनेपर उद्यत देखा तो भयसे विह्वल होकर राजचिन्ह फेंक कर राजाके चरणोंपर गिर पड़ा ॥ २९ ॥ पैरोंपर पड़े हुवे कलियुगको वीर एवं दीनवत्सल राजाने नहीं मारा । परमयशस्वी परीक्षित् हँसते हुवे यों बोले ॥ ३० ॥ **राजाने कहा।** रे शूद्र! तू चरणोंपर गिर पड़ा एवं हाथ जोड़े खड़ा है, तुझे अर्जुन महाराजके वंशमें उत्पन्न राजोंसे कदापि भय नहीं है किन्तु अब तू मेरे राज्यसे बाहर निकल जा; क्योंकि तू अधर्म्मका बन्धु है ॥ ३१ ॥ तू जिस राजाके शरीरमें प्रवेश करता है उसको अधर्म्मके अनुचर लोभ, मिथ्या, चोरी, अनार्य्यता, पाप,

दरिद्र, माया (कपट), कलह, दंभ आदि घेर लेते हैं ॥३२॥ अतएव हे अधर्म्मके बन्धु! इस ब्रह्मावर्त्त क्षेत्रमें तू न रहना क्योंकि यहाँ यज्ञक्रियामें निपुण पुरुष यज्ञ-पुरुषकी यज्ञोंसे आराधना करते हैं अतएव इस स्थानपर सदा धर्म्म और सत्यको रहना चाहिये ॥ ३३ ॥ इस ब्रह्मावर्त्त क्षेत्रमें याज्ञिकगणोंके यज्ञोंकी रक्षाके लिये स्वयं हरि यज्ञमूर्त्तिसे प्रकाशित रहते हैं एवं सब कामनाओंको पूर्ण करते हैं और जिस भाँति चराचर जगत्के भीतर बाहर वायु व्याप्त है उसी भाँति यहाँ आत्मारूप हरि सर्व्वत्र स्थित हैं ॥ ३४ ॥ **सूतजी कहते हैं** । परीक्षित्ने जब इस प्रकार कहा तो कलियुगका हृदय काँपने लगा और वह तर्वार उठाये दंडपाणि कालके समान शिरपर स्थित राजासे यों बोला ॥३५॥ "हे सम्राट्! आपकी आज्ञासे जहाँ मैं रहनेका विचार करताहूँ वहाँ देखताहूँ कि आप धनुषपर बाण चढ़ाये मेरे पीछे चले आ रहे हैं ॥३६॥ इसकारण हे श्रेष्ठधर्म्मज्ञ! स्वयं आप मेरे रहनेका स्थान बता दीजिये, जहाँ रहकर मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँ" ॥३७॥ कलिकी यह प्रार्थना सुनकर राजाने उसके रहनेके लिये ये चार स्थान नियत करदिये, १ द्यूत २ पान ३ स्त्री ४ हिंसा । यह चार प्रकारका अधर्म्म है ।' (क) ॥ ३८ ॥ फिर कलियुगने प्रार्थना की, तब समर्थ परीक्षित्ने रहनेके लिये 'सुवर्ण' और दिया, जिसमें मिथ्या, काम, मद, वैर, और रजोगुणमें प्रवृत्ति ये पाँच अधर्म्म उपस्थित हैं ॥३९॥ कलियुग इन परीक्षित्के दिये हुवे अधर्म्मके मूल पाँच स्थानोंमें रहकर राजाकी आज्ञाका पालन करने लगा ॥ ४० ॥ अतएव जो पुरुष किसीप्रकारकी उन्नति करना चाहै वह इन अधर्ममय कलियुगके निवासस्थानोंका सेवन न करै । विशेषतः धर्म्मात्मा और लोकपति राजा और गुरु कदापि ये कर्म्म न करै ॥ ४१ ॥ धर्म्मके नष्ट हुवे तप, शौच और दया इन तीन चरणोंको पूर्ण करके आश्वास देकर राजा परीक्षित् पृथ्वीकी श्रीवृद्धिमें दत्तचित्त हुवे ॥ ४२ ॥ इससमय वही परीक्षित् भारतके सम्राट् हैं, वन जाते समय राजा युधिष्ठिर इनको राज्यशासनका अधिकार दे गये थे ॥ ४३ ॥ चक्रवर्त्ती महायशस्वी महाभाग राजऋषि परीक्षित् इससमय हस्तिनापुरमें कौरवेन्द्रसञ्चित राज्यलक्ष्मीका भोग कररहे हैं ॥ ४४ ॥

इत्थंभूतानुभावोऽयमभिमन्युसुतो नृपः ॥
यस्य पालयतः क्षोणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥ ४५ ॥

(क) जिन क्रियाओंमें छलव्यवहार होता है उन सबको द्यूत कहते हैं । जिसके पान करनेसे बुद्धि बिगडै उसको पान कहते हैं । स्त्रीसे स्त्रीसम्भोगमें लिप्त होनेकी दशाका ग्रहण है । प्राणिवधको हिंसा कहते हैं । येही चार मुख्य अधर्म्मके कारण हैं । द्यूतद्वारा सत्यका, पानसे ज्ञानका और कुलटा वा वेश्याओंके संगसे पवित्रताका नाश होता है अतएव ये कलिके स्थान हैं और त्याज्य हैं ।

यह अभिमन्युके पुत्र राजा परीक्षित् ऐसे महाप्रतापशाली हैं कि जिनके राज्य-कालमें आपलोग इस भाँति निष्कण्टक यज्ञ कर रहे हैं ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते प्रथमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादश अध्याय ।

राजा परीक्षित्को मुनिपुत्रका शाप ।

सूत उवाच–यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टो न मातुरुदरे मृतः ॥
अनुग्रहाद्भगवतः कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥ १ ॥

सूतजी बोले । हे ऋषियो! जो राजा परीक्षित् अद्भुत कर्म्म करनेवाले कृष्ण भगवान्के अनुग्रहसे अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे दग्ध होकर भी माताके उदरमें नहीं मरे ॥१॥ ब्राह्मणके शापवश आये हुवे तक्षकके द्वारा अपनी मृत्यु जानकर भी जो महा-महिम परीक्षित् मोहको नहीं प्राप्त हुवे, इसका कारण यह था कि उन्होंने अपना चित्त भगवान्के चरणोंमें लगा दिया था ॥२॥ उन्होंने सबका संग त्यागकर गंगातटमें उपस्थित होकर व्यासपुत्र शुकदेवसे धर्मोपदेश ग्रहण करके ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान पाकर गंगामें अपना यह अनित्य शरीर त्याग करदिया ॥३॥ भगवान्के गुणानुवाद गाने-वाले भक्तजन सदा भगवत्कथामृतका पान एवं भगवान्के चरणोंका ध्यान करते हैं, उन्हे अन्तकालमें भी मोह नहीं होता ॥४॥ यद्यपि कलियुग पृथ्वीमें प्रवेश कर चुका था तथापि जबतक अभिमन्युके पुत्र सम्राट परीक्षित्ने राज्य किया तबतक उसका पूर्ण अधिकार नहीं हुवा ॥ ५ ॥ जिसदिन भगवान्ने पृथ्वीको छोड़ा उसी-दिनसे यह अधर्म्मका बन्धु कलियुग भूमण्डलमें व्याप्त होगया ॥६॥ सम्राट् परीक्षित् भ्रमरके समान सारांश ग्रहण करनेवाले थे अतएव उन्होने कलियुगका संहार नहीं किया क्योंकि इसमें पुण्यकर्म्म तो शीघ्र सिद्ध हो जाते हैं और पापकर्म्मके करनेपरही मनुष्य पापमें लिप्त होता है ॥७॥ और दूसरा कारण कलियुगके न मारनेका यहभी था कि यह कलियुग मूर्खलोगोंके लिये बड़ा शूर और प्रबल है किन्तु धीर पुरुषोंके आगे भीरु है, उनका कुछ नहीं बना सक्ता, स्वयं सावधान है एवं असावधान प्राणियोंको भेड़ियेके समान ग्रस लेता है ॥ ८ ॥ तुमने जो पूँछाथा वह वासुदेवकी कथाओंसे अलंकृत पवित्र परीक्षित्का उपाख्यान मैंने तुमसे कहा ॥ ९ ॥ जिनके गुणकर्म्म कथनीय हैं उन भगवान्की गुणकर्म्मके आश्रयभूत जो जो कथाएँ हैं सो सब सत्प्रवृत्तिके चाहनेवाले मनुष्योंके लिये सेवनीय हैं ॥१०॥ **ऋषिगण बोले** । हे सूत! तुम बहुत वर्षोंतक जियो, तुमको निर्म्मल यश प्राप्त हो क्योंकि तुम हम मृत्युग्रस्त मनुष्योंको अमृतरूप कृष्णका चरित्र सुनाते हो ॥ ११ ॥ इस यज्ञमें हमको श्रद्धा नहीं है क्योंकि इससे मुक्ति नहीं हो सक्ती, हम लोग हवनके धूमसे

धूम्रवर्ण हो रहे हैं, हमको आप कृष्णके चरणकमलोंकी सुधाका पान कराते हैं इससे हम परमाप्यायित और कृतार्थ हैं ॥ १२ ॥ हम एक क्षणमात्रके साधु-संगकी तुलनामें स्वर्ग और मोक्षको भी तुच्छ समझते हैं! तब अन्य स्त्री पुत्र सम्पदा आदि सामान्य सुखोंकी क्या गणना है? ॥ १३ ॥ कौन ऐसा रसज्ञ रसिक है जो महात्मोंका एक मात्र अवलम्ब कृष्णकी कथाएँ सुनकर तृप्त हो जायगा? जिन निर्गुण हरिके गुणोंका अन्त बड़े २ योगेश्वर शिव और ब्रह्मा आदि भी नहीं पा सके ॥१४॥ हे विद्वन्! आप भगवान्के परम भक्त हैं अतएव सज्जनोंके एकमात्र आश्रय जो हरि हैं उनके उदार पवित्र विचित्र चरित्र हमको सुनाइये, क्योंकि हमें सुननेकी श्रद्धा है ॥ १५ ॥ वह महाभागवत विमलमति परीक्षित् जैसे शुक-देवके बताये हुवे ज्ञानसे मोक्षको प्राप्त होकर हरिके चरणोंमें लीन होगये ॥१६॥ वह परम पवित्र सहज एवं अद्भुतयोगयुक्त और हरिकथापूर्ण अतएव हरिजनमनोरंजन करनेवाला परीक्षित्का उपाख्यान हमसे कहिये ॥ १७ ॥ **सूतजी बोले ।** अहो! हम यद्यपि विलोम जातिके हैं तथापि धन्य हैं क्योंकि आप ऐसे वृद्ध ऋषि हमारी प्रशंसा एवं आदर करते हैं। सत्य है, सज्जनसंग दुष्कुल-जन्मजनित मानसिक व्यथाको शीघ्र नष्ट कर देता है क्योंकि उससे वह ज्ञान होता है जिससे उच्च नी-चका भेद मिट जाता है ॥ १८ ॥ एवं जो लोग सज्जनोंके एक मात्र आधार हरिके गुणानुवादोंका कीर्तन, श्रवण व स्मरण करते हैं उनका क्या कहना है; जो हरि अनंतशक्ति अनन्त भगवान् हैं जिनको महान् गुणवान् होनेसे सब शास्त्र 'अनन्त' कहते हैं ॥ १९ ॥ जिनके समान या अधिक कोई नहीं है उन हरिके गुणोंके विषयमें इतनाही कहना यथेष्ट है, क्योंकि अधिक विस्तारसे कोई नहीं कह सक्ता; अन्य प्रार्थना करनेवाले ब्रह्मादिको त्याग कर चञ्चला लक्ष्मी जिनके चरणोंकी सेवा करती है ॥ २० ॥ जिनके चरणनखसे निकली हुई एवं ब्रह्माकरके आदर-पूर्वक कमण्डलुमें धारण की गई गंगा, शिवसहित त्रिलोकीको पवित्र करती हैं उनके अतिरिक्त और क्या भगवत्तत्त्व है? ॥२१॥ जिनके भक्त धीर लोग सहसा देहादिके संगको त्याग कर परमहंस धर्म्मको ग्रहण करते हैं, जिसमें शान्तिमय अ-हिंसाही एक परम धर्म्म है ॥२२॥ हे ऋषियो! तुमने जो मुझसे पूँछा सो मैं जितना मुझको विदित है उतना यथामति आपसे कहता हूँ क्योंकि जैसे पक्षीगण अपनी शक्तिके अनुसार आकाशमें उड़ते हैं वैसे विद्वान् लोग बुद्धिके अनुसार विष्णुके गुणगणोंका वर्णन करते हैं ॥ २३ ॥ एक समय राजा परीक्षित् धनुष लेकर वनमें शिकार करने गये, यह मृगोंके पीछे दौड़ते २ श्रान्त हो गये और बहुत भूखे प्यासे हुवे ॥ २४ ॥ इनको कोई जलाशय नहीं मिला किन्तु एक ऋषिका आश्रम देख पड़ा, यह उसमें गये, वहाँ देखा शमीक ऋषि ध्यानावस्थामें नेत्र मूँदे शान्तरूपसे बैठे हैं ॥ २५ ॥ उनके इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि ब्रह्ममें लीन हो गये हैं, वह तीनों अवस्था उत्तीर्ण होकर तुरीय अवस्थामें उपस्थित होनेसे ब्रह्ममय हो गये हैं

अतएव क्रियारहित हैं ॥ २६ ॥ चारों ओर बिखरी हुई जटाओंसे मुनिका शरीर छिपा हुवा है, वह रौरवाजिन ओढ़े हुवे हैं । ऐसे बाह्यज्ञानशून्य मुनिसे जिनका तालू सूख रहा है ऐसे राजाने पीनेके लिये जल माँगा ॥ २७ ॥ मुनिने तृणका आसन या भूमि बैठनेके लिये नहीं दी और न मधुर वचनोंसे आदर किया, न पूजनही किया । इससे अपना निरादर जानकर परीक्षित् महाराज कुपित हो गये ॥ २८ ॥ यद्यपि ऐसा पहले कभी नहीं हुवा था तथापि भूख प्याससे व्याकुल होनेके कारण राजाके हृदयमें मुनिपर क्रोध व ईर्षा उत्पन्न हो आई ॥ २९ ॥ वहाँ एक मरा हुवा सर्प्प पड़ा था, राजाने क्रोधके मारे कुटीसे बाहर निकलते समय धनुषके किनारेसे उस सर्प्पको उठाकर मुनिके गलेमें डाल दिया और आप अपने पुरको लौट गये ॥ ३० ॥ राजाने मनमें विचारा कि यह मुनि सम्पूर्ण इन्द्रियोंको कर्म्मसे निवृत्त किये आँखें मूँदे मिथ्यासमाधि लगाये बैठा है, यह समझता है कि क्षत्रिय क्या करलेंगे ॥ ३१ ॥ उन मुनिके महातेजस्वी पुत्र शृंगी नाम ऋषि बालकोंके साथ खेल रहे थे, उन्होने सुना कि राजाने पिताको पीड़ित किया, यह सुनकर कुपित मुनि–बालकने कहा ॥ ३२ ॥ "अहो वायसके समान उच्छिष्टभोजी, ब्राह्मणोंके दास राजोंका अधर्म तो देखो जो कुत्तेके समान यज्ञशालाके द्वारपाल होकर भी स्वामीका निरादर करते हैं ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंको अपने यहाँका द्वारपाल नियत किया है, वह अधम द्वारपाल ब्राह्मणोंके वर्त्तन कैसे छू सक्ता है? ॥ ३४ ॥ दुष्टोंको दण्ड देनेवाले कृष्ण भगवान् परमधामको चले गये, अब मैं धर्म्मकी मर्यादाका उल्लंघन करनेवाले दुष्टोंका दमन करूंगा, मेरा बल देखो" ॥ ३५ ॥ क्रोधारुणलोचन ऋषिकुमारने वयस्य बालकोंसे यों कहकर कौशिकी नदीका पवित्र जल हाथमें लेकर राजाके लिये ये वज्रसम वचन कहे ॥ ३६ ॥ "द्विजद्रोही कुलांगार एवं धर्म्मकी मर्य्यादाका नाश करनेवाले राजापरीक्षित्को आजके सातवें दिन तक्षक नाग काटेगा" ॥ ३७ ॥ वहाँसे लौटकर वह बालक आश्रममें आया और पिताके कण्ठमें सर्प्प पड़ा देखकर उच्चस्वरसे रोने लगा ॥ ३८ ॥ पुत्रका विलाप सुनकर मुनिकी समाधि छूट गई, मुनिने धीरे २ नेत्र खोलकर देखा गलेमें सर्प्प पड़ा है ॥ ३९ ॥ सर्प्पको फेंककर पुत्रसे पूँछनेलगे कि हे वत्स! तुम क्यों रोते हो? तुमको किसने दुःखित किया है? यह सुनकर बालकने सब आद्योपान्त वृत्तान्त कहदिया ॥ ४० ॥ शाप देनेके अयोग्य राजाको पुत्रने शाप दिया–यह सुनकर मुनि पुत्रपर प्रसन्न नहीं हुवे और बोले, "रे अज्ञ बालक! तूने बड़ा अपराध किया जो थोड़ेसे अपराधका इतना कठोर दण्ड दिया ॥ ४१ ॥ हे कच्ची बुद्धिके बालक! राजा अन्य सामान्य मनुष्योंके समान नहीं है, जिसके असह्य तेजसे सुरक्षित प्रजागण निर्भय रहकर मंगलको प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥ नारायणरूप राजाके न होनेसे यह संसार रक्षकहीन होकर चोरोंके द्वारा क्षणमें नष्ट होजाता है ॥४३॥ सो इस समय

हमको यह बड़ा भारी पाप हुवा क्योंकि राजाके न होनेसे दण्डका भय जाता रहता है अतएव धन लूटनेवाले चोरोंकी वृद्धि होती है, तब सब लोग परस्पर एक एकको मारते हैं, गाली देते हैं, लूटते हैं, पशु और स्त्रियोंका अपहरण करते हैं ॥ ४४ ॥ तब वर्णाश्रमाचाररूप वेदनिरूपित आर्य्यधर्म्म नष्ट होजाता है, फिर कामप्रवृत्तिके अधिक होनेसे कुत्ते और वानरोंका ऐसा वर्ण-संकर होता है ॥ ४५ ॥ वह धर्म्मका पालन करनेवाले अश्वमेधकर्त्ता भगवद्भक्त महायशस्वी राजऋषि सम्राट् हैं, भूख प्याससे व्याकुल होकर इस स्वल्प अपराध करनेसे हमारे घोर अमोघ शापके योग्य कदापि नहीं हैं ॥ ४६ ॥ अपने निर्दोष दासका अपक्वबुद्धि बालकने जो अपराध किया है उसको सर्वव्यापक अन्तर्य्यामी भगवान् क्षमा करें" ॥ ४७ ॥ भगवद्भक्त बदला लेनेको समर्थ होकर भी तिरस्कार विडम्बना, आक्षेप, अभिशाप एवं मार गालीको सह लेते हैं ॥ ४८ ॥ इस प्रकार पुत्रके अपराध पर महामुनिने पश्चात्ताप किया और स्वयं राजाके द्वारा अपमानित होकर भी राजाके अपराधका विचार नहीं किया ॥ ४९ ॥

प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वन्द्वेषु योजिताः ॥
न व्यथन्ति न हृष्यन्ति यत आत्माऽगुणाश्रयः ॥ ५० ॥

प्रायः सज्जनजन दूसरेके द्वारा दुःख व सुख पाकर भी व्यथित या आनन्दित नहीं होते क्योंकि वे आत्माको निर्गुण होनेके कारण सुखदुःखका भोग करनेवाला नहीं मानते ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते प्रथमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशति अध्याय ।

गंगातटपर शरीरत्यागार्थ मुक्तसंग होकर मुनिमण्डलीमध्यमें बैठे-
हुवे राजा परीक्षित्को शुकदेवजीका दर्शन ।

सूत उवाच—**महीपतिस्त्वथ तत्कर्म गर्ह्यं**
विचिन्तयन्नात्मकृतं सुदुर्मनाः ॥
अहो मया नीचमनार्य्यवत्कृतं
निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि ॥ १ ॥

सूतजी बोले । राजा परीक्षित् जब वनसे घरमें आये तब इनका क्रोध शान्त हुवा और हृदयमें ज्ञान हुवा और यह अपने किये निन्दित कर्म्मपर पश्चात्ताप करने लगे

कि अहो! मैंने "अनार्य पुरुषोंकी भाँति यह नीचकर्म किया जो निर्दोष ब्राह्मणका अपराध किया। हाय! उनके छिपे हुवे तेजको मैं मतिमन्द नहीं जान सका ॥ १ ॥ निश्चयही मुझे बहुत शीघ्र इस देव-तिरस्कारका फल मिलेगा, अवश्यही कोई विपत्ति मुझपर आवेगी और मैंभी यही चाहता हूँ कि मेरे पापका प्रायश्चित्त होजाय जिसमें मैं फिर कभी ऐसा नीचकर्म्म न करूँ ॥ २ ॥ प्रज्वलित ब्रह्मकोपरूप पावक इसी समय मुझ पापीके समृद्ध राज्य, सेना, और कोपको जलाकर नष्ट कर दे, यह बड़ी अच्छी बात है, जिसमें फिर ब्राह्मण देवता और गउओंपर मेरी इसप्रकारकी नीचबुद्धि न हो" ॥ ३ ॥ महाराज परीक्षित् इसप्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि एक ऋषिशिष्यने आकर ऋषिपुत्रके दिये हुवे शापका वृत्तान्त कहा। परीक्षित्ने सुनकर अपने मनमें कहा कि बहुत अच्छा हुवा जो ऋषिशापप्रेरित तक्षक नाग मुझको डँसै गा। मैं संसारमें आसक्त था सो मुनिके पुत्रने शापके बहाने मुझपर बड़ीही कृपा की जो मेरे हृदयमें वैराग्यका प्रकाश कर दिया ॥ ४ ॥ राजा परीक्षित् प्रथमसेही राज्यभोग और स्वर्गभोग दोनोंको तुच्छ जानते थे अतएव तदनन्तर कृष्णके चरणकमलोंकी सेवाको सर्वोत्तम समझकर स्वजन, राज्य, पुत्र आदि सबको त्यागकर पतितपावनी गंगाके तटपर जाकर बैठे और भूख प्यासको जीतकर एकाग्रमनसे ईश्वरचिन्तामें तत्पर हुवे ॥ ५ ॥ जिस गंगाका प्रवाह, तुलसीमिश्रित कृष्णचरणोंकी रजके संसर्गसे पवित्र होकर सम्पूर्ण लोक, लोकपाल और ब्रह्मा शिव आदि ईश्वरोंको भी पवित्र करता है, कौन ऐसा मनुष्य है जो उस लोकपावनी गंगाका सेवन अन्तकालमें भी न करै? ॥६॥ इसप्रकार गंगातटपर प्राण त्यागनेका निश्चय करके पाण्डवकुलमणि परीक्षित्जी मुनिव्रत धारण करके और सबका संग त्याग कर निश्चल चित्तसे हरिचरणोंका ध्यान करने लगे ॥ ७ ॥ राजा परीक्षित्का शरीर त्यागनेके लिये गंगातटपर बैठना सुनकर शिष्योंसहित महानुभाव मुनि लोग वहाँपर आये। प्रायः स्वयंतीर्थरूप सज्जन जन तीर्थयात्राके बहानेसे तीर्थोंको पवित्र करते फिरते हैं ॥८॥ वहाँपर अत्रि, वसिष्ट, च्यवन, शरद्वान्, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, इन्द्रवाह, ॥ ९ ॥ मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भरद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कश्यप, अगस्त्य, भगवान् द्वैपायन, नारद ॥१०॥ एवं ऋषिश्रेष्ठ अरुणादि, देवर्षि, महर्षि, राजर्षि और अन्यान्य ऋषि-प्रवर आये, परीक्षित्ने सबको शिर झुकाकर प्रणाम और पूजन किया ॥ ११ ॥ जब सब मुनिगण सुखपूर्वक बैठे तब शुद्धचित्त राजा परीक्षित्ने फिर ऋषियोंको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनके आगे खड़े होकर अपनी जो करनेकी इच्छा है सो कहने लगे ॥ १२ ॥ **राजा बोले।** मुनीश्वरो! मैंने जो निन्दित कर्म्म किया है उससे मेरे सम्पूर्ण राजकुलकी कीर्त्ति और गौरव नष्ट होगया, यहाँतक कि हम ब्राह्मणोंके चरणोदकके समीप भी नहीं उपस्थित होसक्ते, तब ब्राह्मणोंके पास

बैठने और संभाषण करनेकी कौन कहै । परन्तु मेरी समझमें हमही समस्त राजोंमें धन्य हैं नहीं तो आप सब महानुभाव मुनिवर घोर पातकी पर यह अनुग्रह क्यों करते! मुझे तो मुनिके पुत्रका निग्रह अनुग्रह होगया ॥ १३ ॥ हाय! मैं बड़ा पापी हूँ, मैं संसारमें परम अनुरक्त था। संसारसे विरक्त करके अपने रूपमें अनुरक्त करनेके लिये मुझे चराचरके स्वामी परमेश्वरनेही स्वयं ब्राह्मणपुत्रद्वारा शाप दिलाया और मेरे हृदयमें वैराग्यका प्रकाश किया । संसारसागरसे भय करके अभय-स्वरूप वैराग्यकी प्राप्ति ही मुझे इस शापका मुख्य उद्देश्य विदित होता है ॥ १४ ॥ मुझ शरणागतपर गंगादेवी और आप सब ब्राह्मण कृपा करैं, मैंने ईश्वरके चरणोंमें मन लगा दिया है, अब ब्रह्मशाप भस्म करदे या तक्षक नाग आकर डँसै, मुझे किसीकी शंका नहीं है; बस अब आप लोग भगवान्‌की कथाएँ गाइये ॥ १५ ॥ मैं आप लोगोंको फिर प्रणाम करके यही प्रार्थना करता हूँ कि दूसरे जन्ममें भी मेरी भगवान्‌में दृढ भक्ति हो और जिस २ योनिमें जहां २ मेरा जन्म हो वहाँ २ भगव-द्भक्तोंका संग एवं सज्जनोंसे मित्रता हो ॥ १६ ॥ यों कहकर दृढ निश्चय करके धीर एवं ज्ञानी राजा परीक्षित् अपने पुत्र जनमेजयको राज्य सौंपकर गंगाके दक्षिण तटपर पूर्वाभिमुख कुशासनपर स्थित हुवे ॥ १७ ॥ इस प्रकार जब ईश्वरमें दृढ़ भक्ति करके राजा बैठे तब स्वर्गमें देवतालोग राजाकी प्रशंसा करके फूलोंकी वर्षा करने लगे और दुन्दुभी आदिक बाजे बजने लगे ॥ १८ ॥ जो महर्षिगण वहाँ आये थे वे यह देखकर 'साधु साधु' कहकर राजा परीक्षित्‌की प्रशंसा और राजाके कथनका अनुमोदन करने लगे । तदनन्तर संसारका उपकार करनेका स्वभाव जिनका है ऐसे मुनिगण भगवान्‌के सुननेयोग्य गुणोंका वर्णन करने लगे ॥ १९ ॥ ऋषिगणने राजासे कहा कि "हे राजऋषियोंमें श्रेष्ठ! भगवान् कृष्णके अनुगत आचरण करनेवाले पाण्डुराजाके वंशधर जो आप हैं उनके लिये ऐसी घटनाका होना कुछ आश्चर्य्य नहीं है, जिन्होने मुक्तिके लिये राजोंके मुकुटोंमें लगी हुई अमूल्य मणियोंकी प्रभासे प्रकाशित राज्यासनको एक क्षणमें तृणके समान तुच्छ जानकर त्याग दिया" ॥२०॥ फिर सब ऋषि परस्पर कहने लगे कि हम सबको तबतक यहाँ ठहरना उचित है जबतक यह भक्तश्रेष्ठ राजा इस अनित्य शरीरको त्यागकर शोकदोषरहित परमधामको गमन करें ॥ २१ ॥ ऋषि-योंके इन पक्षपातहीन और सुननेमें अमृतसे मधुर व गंभीरार्थ एवं सत्य वचनोंको सुनकर राजा बहुत सन्तुष्ट हुवे और फिर सादर प्रणाम करके हरिकी कथा सुन-नेकी इच्छासे यों कहने लगे ॥ २२ ॥ "आप सब लोग सब स्थानोंसे मूर्तिमान् वेद जैसे स्वर्गमें आवें वैसे यहाँ आये हैं, सत्य है, सज्जनोंका कहीं कोई स्वार्थ नहीं है, वे परायेही अर्थ घूमा करते हैं; परोपकार करना उनका स्वभाव ही है ॥२३॥ आप लोग ब्राह्मण हैं, जो आप कहें वही हमलोगोंका कर्त्तव्य है—यह विश्वास

करके यह पूँछनेयोग्य विषय मैं आपसे पूँछता हूँ कि अब मुझे क्या करना चाहिये? मेरा किस प्रकार कल्याण हो सक्ता है? और ऐसे (मरनेके) अवसरमें सब मनुष्योंको क्या करना चाहिये? आपलोग विचार एवं सम्मति करके इसका ठीक उत्तर दीजिये" ॥ २४ ॥ सब लोगोंने निज २ मतिके अनुसार योग, यज्ञ, तप, दान आदि अनेक उपाय बताये। इसी अवसरमें इच्छानुसार निष्काम विचरते हुवे, आश्रमवर्णादिचिन्हहीन, बालमण्डलीपरिवृत, अवधूतवेषधारी भगवान् व्यासकुमार ज्ञानी श्रीशुकदेवजी वहाँ पर आये ॥ २५ ॥ शुकदेवजी सोलह वर्षके बालक विदित होते थे; उनके चरण, कर, ऊरू, भुजा, सुकोमल कपोल एवं सब अंग परम मनोहर थे, आँखोंमें लाल डोरे पड़े हुवे थे, नासिका उन्नत थी, मुख शोभायुत उभय भ्रुकुटीयुक्त- मनोहर था, कण्ठ शंखके समानथा ॥२६॥ दोनों कन्धे भरे हुवे थे, वक्ष-स्थल उन्नत एवं विशाल, नाभि भँवर ऐसी गंभीर थी, उदर सुंदर त्रिवलीयुक्त ललित था, बाल बिखरे हुवे थे, दोनों भुजाएँ जानुतक लंबी थीं, वह दिगम्बर, एक देवताके समान तेजस्वी थे ॥२७॥ उनकी श्यामवर्ण अंगशोभासे सदैव सुन्दर तरुण अवस्थाकी मन्दमुसकान स्त्रियोंका मन हरनेवाली थी। ऐसे शुकदेवको देखकर सब लोग अपने२ आसनसे उठ खड़े हुवे, यद्यपि शुकदेवजीका तेज छिपा हुवा था तथापि इन लक्षणोंसे सबने पहचान लिया कि यह महानुभव शुकदेवजी हैं ॥२८॥ अतिथिस्वरूप आये हुवे श्रीशुकजीको राजाने शिर झुकाकर प्रणाम किया और पूजा की। यह देखकर जो मूर्ख बालक, स्त्री आदि इनको सिड़ी समझकर पीछे लगे थे वे लौट गये, उन्होंने इनका आदर देखकर जाना कि यह कोई महात्मा हैं। तब श्रीशुकजी राजाकी पूजा ग्रहण करके सिंहासनपर बैठे ॥२९॥ महातेजस्वी ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षि, महर्षि आदिके बीचमें महानुभाव शुकजी ऐसे शोभायमान हुवे जैसे आकाशमें ग्रह, नक्षत्र व तारागणोंके बीच पूर्ण चन्द्र सुशोभित होता है ॥३०॥ जिनकी बुद्धि किसी विषयमें कुंठित नहीं होती ऐसे सर्वज्ञ एवं शान्तरूपसे बैठे हुवे मुनिके पास आकर प्रणाम करके एकाग्रचित्तसे हाथ जोड़कर राजा यों पूछने लगे ॥ ३१ ॥ परीक्षित् बोले। ब्रह्मन्! हमारे अहो भाग्य हैं, हम आज सज्जनसमाजमें बैठने योग्य हुवे जो कृपा करके अतिथिरूपसे आप पधारे और निजचरणरजसे हमऐसे पापी क्षत्रियको पवित्र कर दिया ॥३२॥ जिनके केवल स्मरण करनेसे मनुष्योंके घर पवित्र हो जाते हैं उन महानुभाव महात्मोंका यदि दर्शन, स्पर्श हो और अपने हाथों उनके चरण धोनेको मिलें तो पवित्र होनेमें क्या सन्देह है? ॥३३॥ हे महायोगिन्! आपके पास जानेसे मनुष्योंके कैसेही घोर पाप क्यों न हों, शीघ्रही नष्ट होजाते हैं, जैसे विष्णुके द्वारा राक्षसोंका विनाश होता है ॥ ३४ ॥ मेरी जानमें पाण्डवोंके प्यारे एवं हितकारी कृष्णचन्द्र बुवाके लड़कों (पाण्डवों) की प्रसन्नताके लिये उनके गोत्रमें उत्पन्न जो मैं हूँ उसपर प्रसन्न हुवे हैं ॥ ३५ ॥ महाराज! आपको निश्चय करके भक्तोंका कल्याणेच्छु

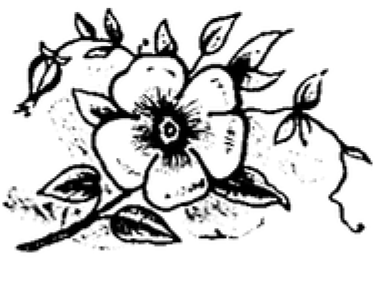
करुणानिधान ऐसे कृष्णचन्द्रजीनेही यहां भेज दिये हैं ऐसा मैं मानता हूं ॥ ३६ ॥ नहीं तो आप ऐसे अव्यक्तगति, अनपेक्ष एवं सिद्धाचारी महापुरुषका परमपवित्र दर्शन हम ऐसे सामान्य मनुष्योंको इस अन्त समयमें कैसे होता? अवश्यही यह सब सुयोग उन्ही कृष्णचन्द्रकीही कृपासे हुवा है ॥ ३७ ॥ मैं अब आपसे यह पूँछता हूँ कि जिस पुरुषका मरणकाल सन्निकट आगया है उसको अपने कल्याणके लिये क्या उपाय करना चाहिये? आप योगियोंके भी गुरुओंके गुरु हैं अतएव मैं आपसे यह दुर्बोध प्रश्न करता हूँ ॥ ३८ ॥ अन्तसमयमें क्या सुनना क्या जपना क्या करना क्या स्मरण करना एवं क्या भजना चाहिये? या कुछ न करना चाहिये? हे प्रभु! सो आप मुझसे कहो ॥३९॥ निश्चयही आप गृहस्थोंके यहाँ जितनी देरमें गऊ दुही जाती है उतनी देर भी नहीं ठहरते ॥ ४० ॥

सूत उवाच—एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा ॥
प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान्बादरायणिः ॥ ४१ ॥

इसप्रकार सुन्दर मधुर सुकोमल विनीत वाणीसे राजाने पूँछा, तब धर्म्मतत्त्वके जाननेवाले श्रीशुकजी राजासे बोले ॥ ४१ ॥

इति श्रीभागवते प्रथमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इति प्रथमस्कन्धः समाप्तः ।





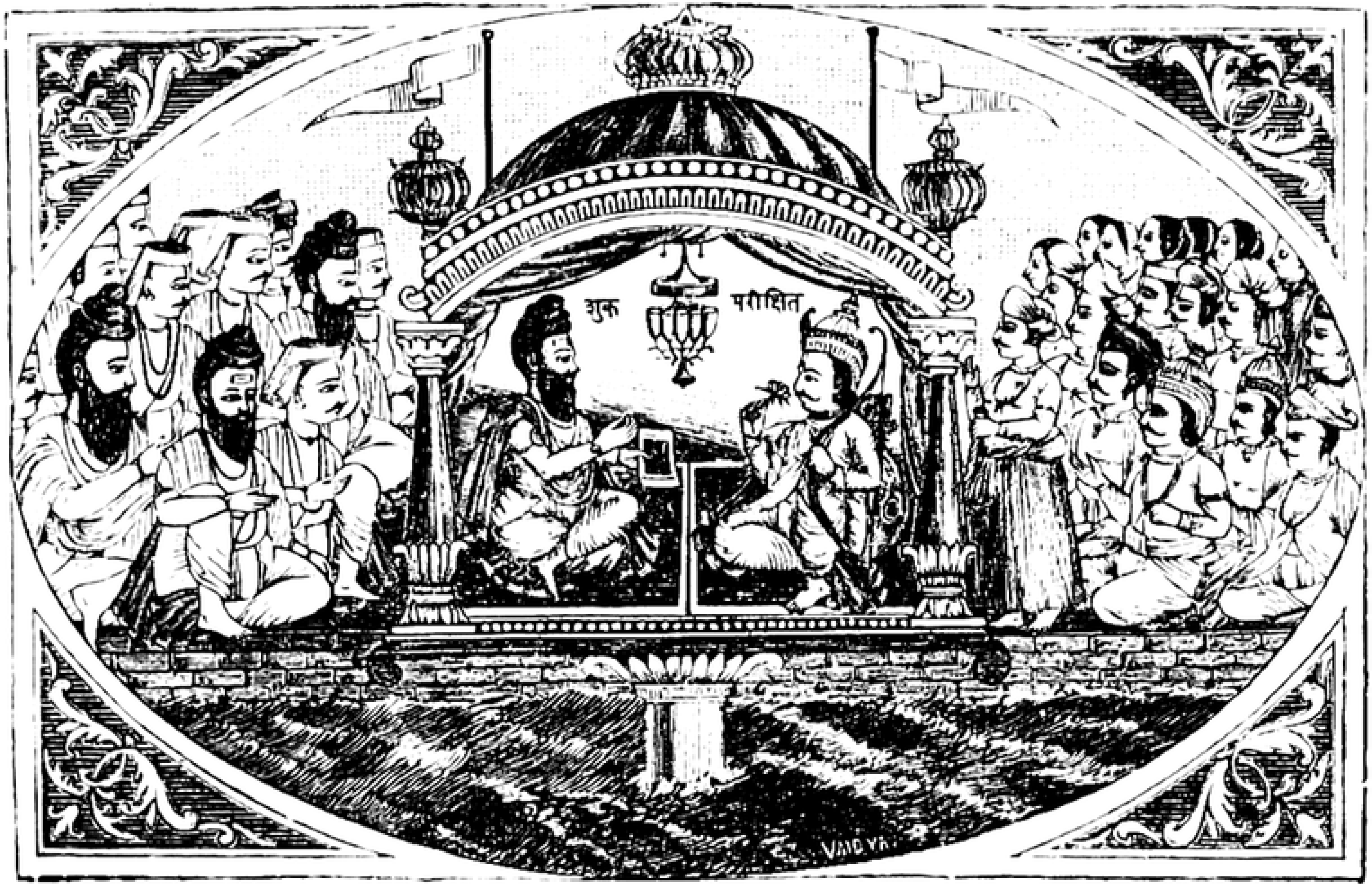


शुकोक्तिसुधासागरः।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

द्वितीयस्कन्धः।



जलमें एकस्तंभमंदिरमें शुकदेवनें परीक्षितको भागवत निरूपण.



॥ श्रीः ॥

शुकोक्तिसुधासागरः।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

द्वितीयस्कन्धः ।



कीर्तन श्रवण आदि उपायोंसे भगवान्के स्थूलरूपमें मनकी धारणाके प्रसंगका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच—वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितं नृप ॥
आत्मवित्संमतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ॥ १ ॥

राजाके प्रश्नोंको सुनकर श्रीशुकदेवजी परम प्रसन्न हुवे और फिर राजासे बोले। "हे राजन्! आपने हमसे जो प्रश्न किये सो बहुत ही श्रेष्ठ हैं, क्योंकि ये प्रश्न ऐसे हैं कि इनसे केवल तुम्हारा ही नहीं बरन् सब संसारका उपकार होगा, अतएव सुननेके योग्य विषयोंमें यह (तुम्हारा प्रश्न) सर्वोत्तम एवं ब्रह्मज्ञानियोंका सम्मत है ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र! जो लोग गृहस्थाश्रममें लिप्त और विषयासक्त हैं एवं आत्मतत्त्वको नहीं जानते उनके लिये सुनने योग्य और करने योग्य अनेक विषय व कर्म्म हैं ॥ २ ॥ ऐसे विषयी पुरुषोंकी आयु वृथा ही बीत जाती है।

रात्रिभर सोनेमें तथा तरुण अवस्था भोगविलासमें और दिन रुपया कमाने और कुटुम्बके भरणपोषणमें बीतता है ॥३॥ देह, पुत्र, स्त्री आदि नष्ट होनेवाले बान्धवोंका विनाश होना देख कर भी यह मतवाला प्राणी अपनी मृत्युको नहीं देखता ॥ ४॥ हे राजन्! इस कारण जो पुरुष निर्भय होना चाहै उसको उचित है कि सर्वव्यापक ईश्वर हरि भगवान्का स्मरण व कीर्तन करै और गुणोंको सुनै ॥ ५ ॥ सांख्यशास्त्र और अष्टाङ्गयोगद्वारा अपने धर्म्मकी निष्ठा और अन्त पर्यन्त नारायणकी स्मृति- यही मनुष्यजन्मका परम लाभ है, नहीं तो विषयासक्त मनुष्यजन्म और पशुयोनिमें क्या विशेष है ? ॥ ६ ॥ अतएव निर्गुण ब्रह्मके उपासक और विधि-निषेध अर्थात् पाप पुण्यसे निवृत्त मुनिजन प्रायः हरिके गुणानुवादोंको कहते सुनते हैं ॥ ७ ॥ मैं अब जो आपसे कह रहा हूँ सो भागवत नाम महापुराण है, यह वेदों के समान माननीय है। इस भागवत पुराणको मैंने द्वापरके आदिमें अपने पिता वेदव्यासजीसे पढ़ा था ॥ ८ ॥ यद्यपि व्यासजी निर्गुणके उपासक हैं तथापि हरिकी मनमोहिनी कथाओंने उनके मनको ऐसा मोह लिया कि उन्होने इस आख्यानको कहा ॥ ९ ॥ सो अब मैं यह पुराण आपसे कहता हूँ क्योंकि आप महापुरुष भगवद्भक्त और श्रद्धावान् हैं, अतएव इसके सुनने योग्य सुपात्र हैं। इस भागवतमें श्रद्धा करनेवाले मनुष्योंकी बुद्धि शीघ्र ही शुद्ध हो कर हरिके चरणोंमें लगती है ॥ १० ॥ हे राजन्! जिन लोगोंको संसारसे वैराग्य हो गया है और जो अकुतोभय होना चाहते हैं, उन योगी लोगोंके लिये हरिनामका कीर्तन करना ही मुख्य कर्तव्य है—यह सब शास्त्रोंका निर्णय है ॥ ११ ॥ विषयोंमें आसक्त एवं परलोकसे असावधान रहकर जो व्यर्थ बहुत दिन जिये तो उस चिरजीवनसे क्या उपकार हुवा? हमारी जान में तो वह दो घड़ीका जीना भला है जिसमें अपना कुछ पारलौकिक कल्याण हो ॥ १२ ॥ देखो राजर्षि खट्वाङ्गको! उन्होने जब जाना कि अपनी आयु केवल एक मुहूर्त (दो घड़ी) शेष है तब उतने ही समयमें सब संसारको त्याग करके निर्भय हरिकी शरणमें प्राप्त हो कर परमपदको गये ॥ १३ ॥ हे राजन्! तुम्हारे जीवनकी अवधि तो सात दिनकी है तबतक अपना परलोक बनाओ ॥ १४ ॥ सुनो, अन्तसमयमें मनुष्यको उचित है कि वह मृत्युके भयको त्याग कर देह और कुटुम्बके मायामोहको मनसे दूर करै और सबका संग त्याग दे ॥ १५ ॥ घरसे निकलकर किसी पवित्र और एकान्त स्थानमें जाय, पवित्र तीर्थजलसे स्नान करके विधिवत् आसन लगा कर बैठे ॥१६ फिर वह साधक मनको स्थिर करके शुद्ध अन्तःकरणमें श्रेयस्वरूप तीन अक्षर-वाले ब्रह्मबीज (ॐ) का अभ्यास करै, और श्वासाको जीत करके मनका दमन करै एवं प्रणवको सर्वदा स्मरण रक्खै ॥ १७ ॥ फिर मनको विषयव्यापारसे एवं इन्द्रियोंको विषयोंसे हटावै, बुद्धिद्वारा विषयवासनाओंकी ओर खिंचे हुवे

मनको उधरसे हटाकर श्रीहरिस्मरणरूप शुभ उद्देशमें स्थापित करै ॥ १८ ॥ फिर वही साधक विषयव्यापारसे चित्तको ग्रहण कर चित्तकीही सहायतासे सगुण हरिके एक २ अंगका ध्यान करना आरम्भ करै। मनको सब चिन्ताओंसे निर्मुक्त रखै, जिसमें किसी प्रकारकी अन्य चिन्ताका उदय न हो वही करै। इस प्रकार चेष्टा करके मनको हरिके रूपमें लीन करै। हे राजन्! यही धर्म श्रेष्ठ है, इसी पदका नाम परमपद है, इसी स्थानमें चित्तको शान्त रखना होता है ॥ १९ ॥ यह शारीरिकमनस्थ चित्त रजोगुण और तमोगुणद्वारा आक्षिप्त एवं विमूढ़ हो जाता है। यदि रजतमगुणद्वारा फिर मनको क्षोभ प्राप्त हो तो साधक पुरुष पूर्वोक्त प्रकारसे मनका दमन करै। इस भाँति बारम्बार चित्तको धारणामें नियुक्त करते२ विघ्नकारी तम व रज गुणकी मलिनता मनसे दूर हो जाती है, जिससे मन शुद्ध हो जाता है ॥ २० ॥ चित्तको यों धारणामें स्थिर करने पर भक्तगण योगीपदको प्राप्त होते हैं एवं उस समय योगीगणके आगे सिद्धिके लक्षण उपस्थित होते हैं। उसी भक्तियोगके सुसिद्ध होने पर वह साधक योगबलसे अपने हितको आपही देखने लगता है अर्थात् उसमें यह विवेचनाशक्ति आ जाती है कि इसमें मेरा कल्याण और इसमें मेरा अहित है ॥२१॥ **राजा परीक्षित् बोले।** ब्रह्मन्! यह जो उपाय आपने बताया सो बहुतही उत्तम है, अब अनुग्रह करके कहिये कि किस भाँतिकी धारणा सर्वसम्मत है एवं किस प्रकारकी धारणा (ध्यान) मनके मलको शीघ्र दूर करती है? ॥ २२ ॥ **श्रीशुकजी बोले।** राजन्! सबके प्रथम आसनको जीतै, फिर श्वासको जीतै, फिर संगको जीतै, फिर इन्द्रियोंको जीतै, तदनन्तर भगवान्‌के विराट्‌रूपमें वासना और मन दोनोंको लगावै ॥ २३ ॥ हे राजन्! यह जो सम्पूर्ण संसार एवं तीन लोक चौदह भुवन आप देख रहे हो यही विष्णु-का विराट्‌शरीर है। यह भगवान्‌का विशेष देह है, जितने स्थूल पदार्थ हैं सबमें स्थूल है, इसमें भूत भविष्य वर्तमान सकल जगत् देख पड़ता है ॥ २४ ॥ इस ब्रह्माण्डके जन-तप-सत्यलोकप्रभृति सात आवरण हैं, यही हरिका विराट्‌शरीर है, इसमें विराजमान जो पुराणपुरुष है वही प्रथम धारणाका आधार है ॥ २५ ॥ (अब विराट्‌शरीरके अंगोंका विभाग करके वर्णन करते हैं) वेदविद् कोविदवृन्द इस विराट्‌पुरुषके तलवोंको पाताल लोक, चरणके उपविभागको रसातल, दोनो चरणों-के गुल्फस्थलको महतल एवं दोनो जंघाओंको तलातल कहते हैं ॥ २६ ॥ उसी विश्वमूर्तिकी दोनो जानुओंको सुतल, दोनो ऊरुओंको वितल और अतल, जघन प्रदेशको, महीतल एवं नभस्थलको नाभि कहते हैं ॥ २७ ॥ स्वर्गलोक भगवान्‌का उरःस्थल है, महर्लोक ग्रीवा है, जनलोक मुख है, तपलोक ललाटपटल है एवं सहस्रशिरवाले ईश्वरके शिरमें सत्यलोक है ॥ २८ ॥ इन्द्रादिक देवता बाहु हैं, दशौ दिशा श्रवण हैं, और शब्दही श्रवणेन्द्रिय है। उनके नासिका—छिद्र—द्वय

अश्विनीकुमार हैं एवं गन्धही घ्राणेन्द्रिय है और मुखाभ्यन्तरको दीप्तिमय अग्नि कहते हैं ॥ २९ ॥ उस ईशके दोनो अक्षिगोलकोंको अन्तरिक्ष और चक्षु इन्द्रियको सूर्य, दोनो पलकोंको दिन रात्रि, भ्रूभंगको ब्रह्माका आसन, जलको तालु और रसको जिह्वा कहते हैं ॥ ३० ॥ वेदोंको ब्रह्मरन्ध्र, यमराजको दाढ़, सबप्रकारके स्नेहोंको दाँत, जनमनमोहिनी मायाको मुसकान, और इस अनन्तसृष्टिको कटाक्ष कहते हैं ॥ ३१ ॥ ऊपरके ओंठको लज्जा, और नीचेके अधरको लोभ कहते हैं। यह सम्पूर्ण पवित्र धर्म्म शरीरके आगेका भाग है एवं समस्त अपावन अधर्म पृष्ठभाग है, प्रजापति ईश्वरकी लिंगेन्द्रिय है और मित्रावरुण अण्डकोश हैं; सकलसमुद्र कुक्षि एवं पर्वतसमूह अस्थि हैं ॥ ३२ ॥ सब नदी नाडियाँ हैं और वृक्षवृंद रोम हैं। हे राजेन्द्र! वायु श्वासा है, यह परमप्रबल करालकाल भगवान्की गति है एवं गुण—कर्म्मप्रवाहरूप संसार ही कर्म्म है ॥ ३३ ॥ यह मेघमाला ईश्वरके केश है, हे कौरवोंमें श्रेष्ठ! विश्वव्यापी हरिके वस्त्र संध्यासमय है, अव्यक्तमूल वस्तु उनका हृदय एवं चन्द्रमा मन है, यह मनही सब विकारोंका आधार है ॥३४॥ हे राजन्! विज्ञानवृद्धिही उनका चित्त है, पण्डितगण महत्तत्व कहकर जिसका अनुमान करते हैं वही चित्तका गुण है। इस अहंकारात्मक अन्तःकरणको ही उस सर्वात्माका अभिमान कहते हैं । श्रीरुद्रदेव हरिका अन्तःकरण हैं। अश्व, अश्वतरी (खच्चर), ऊँट और हाथी नख हैं एवं सब मृग आदि पशु श्रोणिदेश हैं ॥३५॥ पक्षी उनका नामप्रकाशक वा शब्दप्रकाशक विचित्र व्याकरण हैं, स्वायंभुवमनु वुद्धि हैं, एवं सब प्राणी उनका निवासस्थान हैं। गंधर्व, विद्याधर, चारण और अप्सराएँ स्वर हैं और दैत्यश्रेष्ठ प्रल्हाद ही स्मृति (स्मरणशक्ति) हैं ॥३६॥ ब्राह्मणगण मुख हैं, क्षत्रिय राजा भुजा हैं, वैश्य ऊरुदेश हैं एवं शूद्रगण चरणमें हैं। हे नृप! जिन नानाप्रकारके यज्ञोंका नियम जगत्में है उन यज्ञोंमें अनेक भाँतिके देवतोंके नामोंका भी उल्लेख है एवं उन यज्ञोंमें नानाविधिका हवि श्रीहरिको अर्पण किया जाता है। इस भाँति जो देवसमष्टिभूत, विश्वद्रव्यात्मक और यज्ञप्रयोगीका कर्म्म है उसीको उस विश्वनियन्ताका अभिप्राय जानो ॥ ३७ ॥ हे राजन्! यह मैंने आपसे ईश्वरके विराट्स्वरूपका वर्णन किया। इसके द्वारा "ईश्वर किस प्रकार स्थित है" सो प्रकट हुवा, जिनको मुक्तिकी इच्छा है वे व्यक्ति इस भाँति हरिके स्थूल रूपको जानकर अपनी २ बुद्धिद्वारा इसी ईश्वरके सूक्ष्मरूपकी धारणा करते हैं क्योंकि इस रूपके सिवाय इस जगत्का अन्य आश्रय नहीं है ॥ ३८ ॥

स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व आत्मा यथा स्वप्नजनेक्षितैकः ॥
तं सत्यमानन्दनिधिं भजेत नान्यत्र सज्जेद्यत आत्मपातः ॥३९॥

हे राजन्! अधिक क्या कहैं, जीव जिस भाँति स्वप्नावस्थामें स्वप्नमें अपनेमें ही

देहकी कल्पना करके एवं उस देहके इन्द्रियादिको अपना ही अनुभव करके स्वप्नके उद्देश्यको सिद्ध करता है वैसे वह जगदीश्वर स्वयं आत्मारूपसे सब जीवोंमें अवस्थान करके विभिन्न नाम और रूपमें कल्पित हो कर, चैतन्यद्वारा सब अनुभव करता है। अतएव हृदयमें उसी सत्यरूप आनन्दनिधि ईश्वरकीही भावना करनी उचित है एवं अन्य भावनाओंका त्याग करना योग्य है। अन्य भावनाओंका त्याग किये विना अधःपतनके अतिरिक्त अन्य कुछ लाभ नहीं हो सक्ता इसीकारण अन्य विषयोंका ध्यान न करै ॥ ३९ ॥

इति श्रीभागवते द्वितीयस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय।

विष्णुके सूक्ष्मरूपकी धारणा और उसीके द्वारा मुक्तिका प्रकार।

श्रीशुक उवाच—एवं पुरा धारणयात्मयोनिर्नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य तुष्टात्॥ तथा ससर्जेदममोघदृष्टिर्यथाप्ययात्प्राग्व्यवसायबुद्धिः १

श्रीशुकजी बोले। हे महाराज! प्रलयके पश्चात् सृष्टिके आदिकालमें प्राचीन धारणाके ही बलसे उसी अनादि ईश्वरको सन्तुष्ट करके आत्मयोनि अमोघदृष्टि व्यवसायबुद्धि भगवान् ब्रह्माने विनष्ट होगई सृष्टि-स्मृतिको पुनर्वार प्राप्त करके पूर्वक्रमसे इस जगत्को उत्पन्न किया ॥ १ ॥ इस शब्दमय ब्रह्म (वेद)के अनुकूल यज्ञादि मार्गमें प्रवृत्त मनुष्य, नष्ट होनेवाले तुच्छ स्वर्गादिसुखके लिये यत्न करता है पर उसको यथार्थ सुख नहीं प्राप्त होता जैसे मायामय स्वप्नका सुख है वैसेही ये स्वर्गादि सुख हैं। यथार्थ सुख ब्रह्मानन्द है और वह इसी पूर्वोक्त मार्ग में मिल सक्ता है ॥ २ ॥ अतएव चतुर पुरुषको योग्य है कि वह भोग करने योग्य वस्तुओंसे उतना प्रयोजन रखै जितनेसे देहनिर्वाह हो, किन्तु उसमें भी आसक्त न होय एवं यह दृढ़ निश्चय रखै कि यह सुख नहीं है और यदि प्रयोजन स्वयं सिद्ध हो तो उस विषयभोगकी प्राप्तिके लिये यत्न न करै क्यों कि उसमें वृथा परिश्रम है, कर्मोंके अनुकूल सांसारिक सुख दुःख तो स्वयं ही प्राप्त होते हैं। केवल ब्रह्मानन्दकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये ॥ ३ ॥ देखो! यदि पृथ्वी का बिछौना है तो फिर अन्य बिछौनेकी क्या आवश्यकता है? स्वतःसिद्ध बाहुओंके तकियेके रहते और तकियोंकी क्या आवश्यकता है? अंजलि है तो पानी पीनेके लिये पात्रकी क्या आवश्यकता है? दिशाओंका वल्कल पहरनेको है अतएव वस्त्रोंकी आवश्यकता नहीं है ॥ ४ ॥ यदि कहो कि यह तो सब है पर अन्न जल तो विना माँगे नहीं मिल सक्ता, इसीका उत्तर देते हैं। क्या मार्गमें छिन्न भिन्न

वस्त्र या वृक्षोंमें बल्कल नहीं हैं वा वृक्षोंमें फल नहीं हैं और नदियाँभी क्या सूख गई एवं रहनेके लिये गुहाएँ नहीं हैं? और क्या वहाँ शरणागतरक्षक भगवान् रक्षक नहीं है? तब फिर परमहंस योगीगण धनमदमें अन्धे लोगोंका भजन क्यों करें, क्या उनको याच्ञा करनेकी आवश्यकता है? ॥ ५ ॥ राजन्! इसभाँति वैराग्य धारण करके अपनी शक्तिके अनुसार स्वतःसिद्ध अपने आत्माका भजन करना योग्य है। वही आत्मा प्रिय अर्थात् सेवा करनेके योग्य है? अर्थयुक्त अर्थात् सत्त्य है, वही आत्मा भगवान् है अर्थात् उसीके गुण भजने योग्य हैं, वही अनन्त अर्थात् नित्य है। साधक गणोंको उचित है कि उसी आत्माकेही अनुभवानन्दमें उन्मत्त होकर उसीका भजन करें, ऐसा होनेसे संसारका कारण जो अविद्या (माया) है वह शान्त हो जाती है ॥ ६ ॥ ऐसी भगवद्भक्तिको त्याग कर पशुभिन्न ऐसा कौन मनुष्य है जो विषयभोगका आदर करैगा? इस संसाररूप वैतरणीमें कर्म्मफलरूप दुःखभोग रहे प्राणियोंको देख कर भी जो सचेत नहीं होता वह अवश्य नरपशु है ॥७॥ कोई साधकजन इसप्रकार अपने हृदयमें भगवान्का ध्यान करते हैं कि श्रीहरि हृदयके सिंहासनपर बैठे हैं, उनका शरीर प्रादेशमात्र (बित्ता भर) है, चार भुजाओंमें, शंख, चक्र गदा और पद्म धारण किये हैं ॥८॥ मुखकमल सुप्रसन्न है, नील नलिन ऐसे विशाल नयन हैं, कदंबकुसुमके समान पीताम्बर पहने हैं, महारत्नजटित सोनेके अंगद भुजाओंमें शोभायमान हैं एवं मणिमय मनोहर मुकुट व कनककुण्डल मुखमण्डल व गण्डस्थलकी शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ ९ ॥ भक्तोंके प्रफुल्लित हृदयकमलकी कर्णिका पर चरणकमल स्थापित किये व लक्ष्मीके चिन्हसे चिन्हित हैं, कण्ठ देशमें कौस्तुभमणि और कभी न मुरझानेवाली वनमाला पड़ी है ॥ १० ॥ भगवान्के अंगोंमें कहीं मेखला (कर्धनी) कहीं अङ्गुरीयक (अँगूठी) कहीं ध्वनियुक्त नूपुर, कहीं कङ्कण शोभा बढ़ा रहे हैं। चिकने, निर्म्मल और कुंचित केशोंके गुंफमें उनका मुख सर्वदा सुन्दर हास्यमय देख पड़ता है ॥ ११ ॥ महाराज! भक्त जितने समय तक मनको धारणामें लगाये रहै उतने समय तक उसी चिन्तामय ईश्वरको सर्व्वदा सुहास्ययुक्त, प्रसन्नवदन और उदारस्वभावयुक्त एवं भक्तगणोंकी ओर अनुग्रहपूर्ण कटाक्ष करते हुये देख सक्ता है ॥ १२ ॥ ध्यान करनेवाला व्यक्ति प्रथम एक २ अंगका ध्यान करै, नखसे शिखा पर्यंत एक २ अंगका हृदयमें अनुभव करनेका यह क्रम है कि जो जो अंग ध्यानमें जम जाय उस २ को त्याग कर फिर दूसरे अंगका ध्यान करै। इसभाँति बुद्धि शुद्ध हो जाती है तब मनुष्य पूर्ण ध्यान कर सक्ता है ॥ १३ ॥ हे राजन्! जब तक साधक इस सूक्ष्मरूपका ध्यान करनेकी योग्यता न प्राप्त करै तब तक उसे उचित है कि वह नित्य नैमित्तिक कर्मोंसे छुट्टी पाकर सर्व्वव्यापी एवं इस संसार—दृश्यका देखनेवाले ईश्वरके पूर्वोक्त विराट् रूपका ध्यान करै क्यों कि वैराग्यकी उत्पत्ति एवं बुद्धिशुद्धिके लिये प्रथम विराट् रूपका ही ध्यान आवश्यक है ॥ १४ ॥ हे अंग! जब वह साधक

इस लोकको छोड़ना चाहै तब स्थिर एवं सुखदायी आसनसे किसी पवित्र स्थानमें बैठे, काल और देशका विचार न करके मनको इन्द्रियादिसे जीत कर प्राणायाममें प्रवृत्त हो ॥ १५ ॥ अपनी विवेकरूपिणी निर्म्मल बुद्धिसे मनको वशमें करै फिर उस शुद्ध बुद्धिको जीवात्मामें लगावै, तदनन्तर आत्माको परमात्मामें लीन कर कृत्योंसे निवृत्त हो, इस अवस्थामें धीर पुरुषोंको पूर्ण शांतिका लाभ होता है ॥ १६ ॥ इस अवस्थामें सब देवतोंमें परम बलवान् कालका भी भय नहीं रहता तब कालके वश और देवता आदिके भयकी कौन कहै, यह ऐसा अभय पद है। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण व समस्त विकार और महत्तत्त्व एवं अहंकार कुछ भी यहाँ नहीं है। यह ब्रह्मानन्द परमशान्त पद है ॥१७॥ हे महाराज! यह जो मैंने आपसे कहा है इससे जितनी शान्ति मिलती है उसको और अधिक क्या कहैं! देखो जो लोग तत्ववादी हैं वे जीवतत्त्वका निश्चय करनेमें—कोई आत्माको श्रेष्ठ कहते हैं, कोई आत्माके अतिरिक्त और कोई तत्व (परमात्मा) है—ऐसी विवेचना करते हैं किन्तु अन्तमें, वे सब इन संशयोंको दूर करके जीवात्माकी शान्तिके लिये सावधानमन होकर हृदयमें उसी पूज्यपाद परब्रह्मकी प्रतिक्षण चिन्ता करते हैं और उन्हीं विष्णुको ही "परमपद" कहकर स्वीकार करते हैं ॥ १८ ॥ उक्त प्रकारसे समाधिस्थ मुनि जीवन्मुक्त अवस्थाको प्राप्त हो जाता है। और यदि जीवन्मुक्त अवस्थामें न रह कर विज्ञानदृष्टिसे विषयवासनाका त्याग करके देहत्याग करनेकी इच्छा करै तौ इस रीतिसे देहत्याग करै। जिसने क्लेशको जीत लिया है वह योगी प्रथम बैठ कर गुदाके छिद्रको एँड़ीसे दवा कर वायुको ऊपर लावै ॥ १९ ॥ वायुको गुह्यस्थानसे लाकर नाभिमें रोंकै, फिर नाभिसे हृदयमें लावै, फिर उदान नाम प्राणकी गतिकी सहायतासे वायुको कण्ठके नीचे वक्षस्थलमें स्थापित करै। फिर सद्बुद्धिकी सहायतासे मनस्वी योगी वायुको बहुत शीघ्र कण्ठके नीचेसे तालुमूल में ले जाय ॥२०॥ फिर योगी तालुमूलसे उस वायुको अपनी भ्रुकुटियोंके मध्यमें ले जाय और मुखके सातौ छिद्रोंको रोंक कर किसी बातकी चाह न करै और अकुण्ठदृष्टि होकर स्थित हो। ऐसा होनेसे प्राणवायु स्वयं आधे मुहूर्तमें ब्रह्माण्ड फोड़ देहसे बाहर होकर ब्रह्ममें विलीन हो जायगा ॥ २१ ॥ महाराज! यदि कोई आकाशविहारी सिद्धगणोंके पारमेष्ठ्यपदमें विहार करना चाहै और इस त्रिगुणग्रथित ब्रह्माण्डमें अष्टाधिपत्य स्थापित करना चाहै अर्थात् अणिमादि आठ सिद्धियोंको प्राप्त कर ब्रह्माण्डमें परिभ्रमण करना चाहै तो देहत्याग करते समय मन और इन्द्रियोंको न छोड़ै अर्थात् लिंगशरीरका त्याग न करै ॥२२॥ हे राजन्! परमात्मामें लीन जो योगीगण हैं उनकी गति त्रिलोकीके भीतर बाहर सर्व्वत्र है, सब स्थानोंमें वे जा सक्ते हैं। यज्ञ आदि कर्म्म द्वारा, विद्या द्वारा, तप-योग द्वारा या समाधि द्वारा, किसी प्रकार यह अमोघगति नहीं मिल सक्ती ॥ २३ ॥ वे योगेश्वर गण किस

प्रकार परमात्मामें लीन होते हैं सो कहते हैं, सुनो। योगीजन वैश्वानर अग्निकी सहायतासे शून्यमार्गमें आरोहण कर ज्योतिर्म्मय ब्रह्ममार्गमें ब्रह्मवीथीस्वरूपा सुषुम्णा नाडीकी सहायतासे सब प्रकार निर्मल होकर श्रीभगवान्‌के उदय होनेका स्थान जो शिशुमार चक्र है वहाँ गमन करते हैं ॥ २४ ॥ वह शिशुमार चक्र इस विश्वकी नाभिके समान है। इस विष्णुचक्रको नाँघकर सब प्रकारके तत्त्वोंका विकार जो रजोगुण है उससे विशुद्ध होकर एकमात्र परम सूक्ष्म आत्मारूपी लिंगशरीर की सहायतासे, ब्रह्मज्ञानी लोग जिसको नमस्कार करते हैं एवं जहाँ कल्पके अन्त तक रहनेवाले देवतागण रमण करते हैं ऐसे स्थानमें योगीजन गमन करते हैं ॥ २५ ॥ पूर्वोक्त रीतिमें अवस्थित जीवन्मुक्त पुरुषका परिणाम क्या होगा, सो सुनो। जब शेषनागके मुखसे निकल कर प्रलयकारी अग्नि इस चराचर विश्वको भस्म करने लगता है, तब वे मुक्तजन यह देख कर अपरापर प्राणियोंके साथ दग्ध न होकर, विमानविहारी सिद्धेश्वर गणोंके दो परार्धपरिमित काल तक रहनेवाले पारमेष्ठ्यपद (सत्यलोक) को जाते हैं ॥२६॥ जिस सत्यलोकमें शोक, बुढ़ापा, मृत्यु, दुःख और उद्वेग नहीं है, यहाँ तक कि किसी प्रकारका सांसारिक अमंगल नहीं है। यह पद ज्ञानियोंके लिये परमानन्दमय है परन्तु जो इसको नहीं जानते उनके लिये परम दुःखदायी है ॥ २७ ॥ महाराज! इस देहके रहते भी योगीगण किस प्रकार भगवद्गतिको प्राप्त होते हैं सो वर्णन करते हैं, सुनो। योगी पहले अपनेको निर्भय विचार कर पृथ्वीमय भावना करै, फिर पृथ्वीत्वसे जलमय विचारै, फिर तेजमय विचारै, फिर वायुमय विचार करै, फिर आकाशमय अर्थात् शून्यमें मिलकर आत्मस्वरूपको प्राप्त होता है। ऐसा होनेसे स्वरूपगतिका लाभ होता है ॥ २८ ॥ राजन्! इन्द्रिय, मन और प्राणसे अतीत होनेके लिये साधकको पहले चाहिये कि वह घ्राण इन्द्रियके द्वारा गन्धमात्रका आघ्राण (सूँघना) करै, चक्षु द्वारा रूपमात्रका दर्शन करै, त्वचा द्वारा सब वस्तुओंका स्पर्श और रसना द्वारा सकल रसोंका आस्वादन एवं श्रोत्र द्वारा शब्दमात्रका श्रवण करै और प्राणादिकी सहायतासे इन इन्द्रियोंके व्यवहारयोग्य क्रियाओंको प्राप्त करै ॥ २९ ॥ महाराज! प्रथम मैंने जीवन्मुक्त और पूर्णलय अवस्था कही, अब क्रममुक्तिका उपाय सुनो। योगी पुरुष अहंकारको प्राप्त होकर उसीके साथ विज्ञान तत्त्वको (महत्तत्त्वको) प्राप्त होता है। अहंकार तीन प्रकारका है, राजस तामस और सात्त्विक। तामससे जड़ जो भूतसूक्ष्म हैं सो उत्पन्न होते हैं और राजससे इन्द्रिय व सात्त्विकसे मन व इन्द्रियोंके देवता। वही कहते हैं कि योगी क्रमशः इन तीनो अहंकारोंको प्राप्त होकर महत्तत्त्वकी प्राप्तिके अनन्तर उस प्रधान तत्त्व आत्माको प्राप्त होता है जिसमें सब गुण लीन हो जाते हैं ॥ ३० ॥ अन्तमें सब उपाधियोंके दूर होने पर वह योगी आत्मामें परमानन्दमय परमात्माको प्राप्त होता है। इस

भागवती गतिमें जो गया वह फिर इस संसारमें नहीं आता ॥ ३१ ॥ हे नृप! ये दोनो वेदके कहे हुए सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति नामक सनातन मुक्ति-मार्ग जो तुमने पूँछे थे सो हमने कहे। इन दोनो मार्गोंको प्रथम ब्रह्माकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् वासुदेवने उनसे कहा था ॥ ३२ ॥ इस संसार-कूपसे उद्धार चाहनेवाले संसारी पुरुषको उस मार्गसे बढ़कर अन्य श्रेयस्कर मार्ग नहीं है जिस मार्गमें श्रीवासुदेवकी भक्तिका चर्चा हो ॥ ३३ ॥ भगवान् ब्रह्माने एकाग्रचित्त होकर तीन बार वेदोंको देखकर विचार करके अपनी बुद्धिसे यही निश्चय किया कि आत्मारूप ईश्वरमें रति होनेसे बढ़ कर कोई भी कल्याणका उपाय नहीं है ॥ ३४ ॥ यदि कहो कि जिस वस्तुको देखो उसमें चित्त लगता है पर जिसको नहीं देखा उसमें कैसे रति हो सक्ती है? वही कहते हैं कि भगवान् हरि सब प्राणियोंके हृदयोंमें जीवरूपसे स्थित हैं। भक्त लोग अन्तर्य्यामित्व लक्षण द्वारा अपनी २ बुद्धि आदिको देखनेवाला समझकर उस ईश्वरको देख सक्ते हैं अर्थात् हृदयस्थित आत्मामें मनको लगाकर बुद्धि द्वारा अन्तर्य्यामित्व आदि लक्षणोंसे अनुमान करने पर उस परमात्माका परिचय सभी पा सक्ते हैं ॥ ३५ ॥ अतएव हे राजन्! सर्वत्र सर्वदा सबमें आत्माको देखनेवाले महाशय व्यक्तियोंको उचित है कि वे उसी हरिके गुणोंका श्रवण कीर्तन और स्मरण करैं ॥ ३६ ॥

पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु संभृतम् ॥
पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम् ३७

भगवान्‌की कथारूप अमृतको जो साधुजन कर्णरूप अंजलिके द्वारा अनन्यमन होकर पीते हैं वे अपने विषयविदूषित आशय (हृदय वा अन्तःकरण) को शुद्ध करके हरिके चरणोंकी शरणमें प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवते द्वितीयस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय ।

सब देवतोंकी उपासनाके भिन्न २ फलका वर्णन और
अन्तको भगवद्भक्तिकी सर्वश्रेष्ठताका निरूपण ।

श्रीशुक उवाच—एवमेतन्निगदितं पृष्टवान्यद्भवान्मम ॥
नृणां यन्म्रियमाणानां मनुष्येषु मनीषिणाम् ॥ १ ॥

श्रीशुकजी बोले। हे राजन्! जो तुमने हमसे प्रश्न किया था कि मनुष्योंमें जो बुद्धिमान् हैं उनको मरते समय क्या करना चाहिये? सो मैंने उसका विवरण आपसे कह दिया (अब इस तत्त्वका विशेष कुछ कहते हैं वह सुनो) ॥ १ ॥ जो

मनुष्य ब्रह्मतेजकी इच्छा करे वह ब्रह्माकी उपासना करे, इन्द्रियपटुताकी कामना हो तो इन्द्रकी पूजा करे, प्रजाकी इच्छा हो तो प्रजापतियोंका भजन करे॥ २॥ जो साधक लक्ष्मीकी कामना करे वह देवी माया श्रीदुर्गाकी सेवा करे, तेजकी इच्छा हो तो अग्निका पूजन करे, धनकी कामना हो तो वसु देवतोंको और वीर्य्यकी इच्छा हो तो रुद्रोंको भजे॥ ३॥ अन्नादिकी कामनासे देवमाता अदितिकी सेवा करे, स्वर्गकी इच्छा हो तो अदितिके पुत्र देवतोंको भजे, जो राज्यके इच्छुक हैं वे विश्वेदेवाको और जो देशस्थ प्रजा समूहको वश करना चाहै वह साध्य देवतों को प्रसन्न करे॥ ४॥ आयुकी कामनासे अश्विनीकुमारकी सेवा करे, पुष्टिकी कामना हो तो पृथ्वीको पूजे, प्रतिष्ठाकी इच्छा हो तो लोकमातारूप स्वर्ग और भूमिकी उपासना करे॥ ५॥ सुन्दररूपकी इच्छासे गंधर्वोंको सन्तुष्ट करे, सुन्दरी-स्त्रीकी इच्छा हो तो उर्वशी अप्सराकी आराधना करे और जो संसारमें आधिपत्य स्थापित करना चाहै तो परमेष्ठीको भजे॥ ६॥ यशकी इच्छा हो तो यज्ञरूप विष्णुकी उपासना करे, कोप (खजाने) की इच्छा हो तो प्रचेताकी सेवा करे, विद्याप्राप्तिकी इच्छासे शंकरको और दांपत्य अर्थात् स्त्री-पुरुषके परस्पर प्रेमको स्थिर रखना चाहै तो सती पार्वतीको भजे॥ ७॥ धर्म्मार्थ उत्तमश्लोक हरिको भजे, सन्तानवृद्धिके लिये पितरोंकी सेवा करे, अपनी रक्षाके लिये पुण्यजनों (यक्षों) को भजे, बलकी इच्छासे मरुत् देवतोंको भजै॥ ८॥ राज्यकी इच्छासे मनु देवतोंको भजे, यदि जादू टोना करना हो हो निर्ऋतिकी आराधना करे, काम-की कामनासे सोम (चन्द्रमा) को भजे, और यदि कुछ कामना न हो तो परम पुरुष परमेश्वरको अनन्य मनसे भजै॥ ९॥ अकाम हो या सकाम हो वा मोक्षकाम हो, चतुर पुरुषको योग्य है कि दृढ़ भक्तियोगसे उसी परम पुरुषका भजन करे, वही सब देवतोंमें विद्यमान है॥ १०॥ साधकोंके लिये यही परम कल्याणकी बात है कि भगवान्‌में उनकी दृढ़ भक्ति हो और भगवद्भक्तोंका संग हो॥ ११॥ राजन्! जिस भक्तियोगसे ज्ञानका प्रकाश हो और रजोगुण तमोगुण आदिके तरंगरूप काम क्रोधादिकी शान्ति हो व आत्माको प्रसन्नताका लाभ और तीनो गुणोंसे मुक्ति होती हो एवं जो स्वयं वैकुण्ठका प्रधान मार्ग है ऐसे भक्तियोगका आदर कौन न करैगा? कौन विरक्त पुरुष है जो ऐसी भक्तिके लिये हरिकी कथा-ओंमें रति न करे?॥१२॥ **शौनकजी बोले**। हे सूतजी! शुकजीका यह कथन सुन कर फिर राजा परीक्षितने महानुभाव शुकमुनिसे क्या प्रश्न किया?॥ १३॥ हमारी सुननेकी इच्छा है अतएव हे सूत! तुम हमसे यह सम्वाद कहो। हम जो शुक-परीक्षितका सम्वाद सुननेको लालायित हैं उसका कारण यही है कि हम जानते हैं सज्जनों की सभामें वे ही कथाएँ होती हैं जिनमें हरिका चरित्र होता है, अतएव हमारी अधिक श्रद्धा है॥ १४॥ धन्य हैं महाभागवत राजा परीक्षित!

उनकी भक्तिका और क्या वर्णन करैं, लड़कपनके खेलोंमें भी वह कृष्णलीला करते थे अर्थात् सब खेल छोड़कर कृष्णकी पूजा करते थे ॥ १५ ॥ सूत! भगवान् व्यास-कुमार शुकदेवजीकी भक्तिका वर्णन और क्या करैं, वह तो आजीवन वासुदेव-परायण एवं जीवन्मुक्त हैं। अतएव दो सज्जनोंके समागममें उस पतितपावनी हरिकथाका वर्णन वा आलोचना किस भाँति हुई सो सुननेकी हमारी बड़ी इच्छा है ॥ १६ ॥ यह सूर्यनारायण उदय और अस्त हो हो कर मनुष्योंकी आयुको वृथा नष्ट करते हैं। इसमें उतना ही समय सफल है जिसमें हरिचर्चा की गई हो ॥ १७ ॥ जैसे मनुष्य जीते हैं वैसे क्या वृक्ष नहीं जीवित रहते, लोहारकी धौंकनी क्या हमारे तुम्हारे समान श्वासा नहीं लेती, ऐसेही गाँवके पशु कुत्ता, शूकर आदि क्या भोजन और मलत्याग नहीं करते! यदि मनुष्यमें भक्ति नहीं है तो उनमें और मनुष्यमें कुछ अन्तर नहीं है ॥१८॥ कुत्ते जिस प्रकार द्वार २ फिरकर गृहपाल द्वारा ताड़ित होते हैं, ग्राम्य शूकरादि जैसे असार वस्तु ग्रहण करते हैं और ऊँट जैसे केवल कण्टक भोजन करता है एवं गधा जैसे केवल बोझ लादता है वैसे ही हरि-भक्तिहीन मनुष्य कुत्तेके समान सर्वत्र तिरस्कारको पाता है और शूकरके समान असार (विषय)—ग्राही है व ऊँटके समान दुःखादि कण्टकोंको भक्षण करता है एवं गधेके समान केवल संसारके भारमें क्लेशको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ मनुष्यके वे कान बिलके समान व्यर्थ हैं जिनमें कभी कृष्णचरित्र नहीं गया, वह जिह्वा दर्दुर(मेंढक)की जिह्वाके सदृश वृथा है जो हरिकथाओंका कीर्तन नहीं करती ॥२०॥ वह शिर पट्टे और किरीट मुकुटसे युक्त होने पर भी भाररूप है जो हरिके आगे न झुकै, वे हाथ मुर्देके हाथोंके समान हैं जो सोनेके कंकण धारण किये हैं परन्तु कभी हरिकी सेवा या टहल नहीं करते ॥ २१ ॥ मनुष्योंके वे नेत्र मोरके परमें जैसे केवल देखनेके नेत्र बने होते हैं वैसे ही हैं जो भगवान्‌की पवित्र मूर्तियोंका दर्शन नहीं करते, और वे पैर वृक्ष ऐसे वृथा हैं जो भगवान्‌के मंदिरमें या तीर्थस्थानमें नहीं जाते ॥ २२ ॥ वह मनुष्य जीते ही मरेके तुल्य है जो भगवान्‌के चरणोंकी रेणुको शिर पर नहीं धारण करता या विष्णुके चरणों पर चढ़ी हुई तुलसीके गन्धको नहीं सूँघता ॥ २३ ॥ वह हृदय बज्रका है जो हरि-नामोंको सुनकर उमँग न आवै, गद्गद न हो और रोमांच न हो आवै एवं नेत्रोंमें आनन्दके आँसू न भर आवैं ॥ २४ ॥

अथाभिधेह्यङ्ग मनोऽनुकूलं प्रभाषसे भागवतप्रधानः ॥
यदाह वैयासकिरात्मविद्याविशारदो नृपतिं साधुपृष्टः ॥ २५ ॥

हेसूत! इसके प्रथम जितनी कथा तुमने कही वह हमारे मनके अनुकूल ही थी। अब वह वर्णन करो जो राजा परीक्षित्‌के पूँछने पर ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ शुकजीने कहा ॥ २५ ॥

इति श्रीभागवते द्वितीयस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय ।

राजा परीक्षित्कर्तृक सृष्टिविषयक प्रश्न ।

सूत उवाच—वैयासकेरिति वचस्तत्त्वनिश्चयमात्मनः ॥
उपधार्य मतिं कृष्ण औत्तरेयः सतीं व्यधात् ॥ १ ॥

श्रीसूतजी बोले । इसप्रकार आत्म-तत्त्वके निर्णयस्वरूप शुकदेवके वचन सुननेसे राजा परीक्षित्के हृदयमें श्रीकृष्णकी अनन्य भक्तिका उदय हुआ ॥ १ ॥ राजा परीक्षित्ने देह, स्त्री, पुत्र, भवन, पशु, सम्पदा, बंधु और चक्रवर्ती राज्यकी सुदृढ़ ममताको त्याग दिया ॥ २ ॥ और हे ऋषियो ! महामनस्वी परीक्षित् ने कृष्णकथाओंके सुननेमें श्रद्धायुक्त होकर श्रीशुकदेवसे यही प्रश्न किया जो तुम लोग मुझसे पूँछ रहे हो ॥ ३ ॥ राजा परीक्षित् मृत्युको अनिवार्य जान धर्म, अर्थ, काम इन तीनोंको त्याग कर मोक्षका उपाय पूँछने लगे, कारण यही था कि उन्होने जान लिया सिवाय हरिभक्तिके किसीमें कल्याण नहीं है, उनको यह दृढ़ निष्ठा हो गई ॥४॥ राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजीसे बोले कि "हे ब्रह्मन् ! हे निष्पाप ! आपका कथन बहुत ही सत्य है क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं । मुझको इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही देख पड़ता है कि आपकी कही हुई हरिकी कथाओंके सुननेसे मेरा अज्ञान नष्ट होता जाता है ॥ ५ ॥ फिर मेरी यह जाननेकी इच्छा है कि जिसको बड़े २ ईश्वर ब्रह्मा, शिव आदि नहीं जान सक्ते वह भगवान् किस प्रकार इस जगत्को अपनी मायासे उत्पन्न करता हैं ? ॥ ६ ॥ जिस भाँति वह सर्व्वव्यापी ईश्वर इस जगत्का पालन और संहार करता है एवं जिस २ शक्तिका आश्रय लेकर वह परम शक्तिवाला परमेश्वर अपनी क्रीड़ाके लिये जिन २ कर्मोंको करता है सो सब हमसे कृपा करके कहिये ॥ ७ ॥ ब्रह्मन् ! उस अद्भुत कर्म्म करनेवाले ईश्वरके इन कर्मोंको निश्चयही बड़े२ बुद्धिमान् और चतुर नहीं जान सक्ते । मैं ऐसा अनुमान करता हूँ ॥ ८ ॥ हे देव ! वह भगवान् एक होकर भी ब्रह्मा शंकर आदि रूपसे प्रकट होकर एवं बहुजन्मग्रहण करके भी, माया जैसे अपने सत्त्व आदि भेदभावयुक्त गुणत्रयको अपने द्वारा रक्षित करती है, वैसे अधिकाधिक कर्म कैसे करते हैं ॥ ९ ॥ मैं इसकी विवेचना कर ब्रह्म वस्तुके जाननेमें नितान्त असमर्थ हूँ । आपने वेदमें या स्वकीय ज्ञानमें उस सर्वव्यापी भगवान्का जैसा अनुभव किया है वह कह कर मेरे सब सन्देहोंको दूर कीजिये" ॥१०॥ सूतजी बोले । इस प्रकार भगवान्के गुण वर्णन करनेके लिये जब राजाने प्रार्थना की तब भगवान्का ध्यान करके महामुनि शुकदेवजी इस प्रकार कहने लगे ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले । जो सर्वोत्तम परमपुरुष हैं, जिनकी महिमाका अन्त नहीं है, जो कारणमय होकर सृष्टि, स्थिति और संहाररूप लीलाके लिये सावित्री,

लक्ष्मी और उमा इन तीन शक्तियोंसहित ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीन मूर्ति धारण करते हैं, जो सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें अन्तर्यामी रूपसे अवस्थित हैं एवं सब लोग जिन्हे देख नहीं सक्ते उन विश्वेश्वरको वारम्वार प्रणाम है ॥ १२ ॥ जो साधुओंकी रक्षा और असाधुओंका अमंगल करते हैं एवं जो असाधुओंके पक्षमें असम्भव अर्थात् अप्रकट हैं, अनन्त देवता जिनकी मूर्ति हैं एवं जो परमहंस आश्रममें स्थित पुरुषोंके विचारने योग्य ब्रह्मज्ञानके देनेवाले ईश्वर हैं उन्हे बार २ प्रणाम है ॥ १३ ॥ हे भक्तजनोंके प्रतिपालक प्रभु! तुम्हें प्रणाम है, जो लोग भक्तिहीन योगी हैं वे तुम्हारी दिशा तकको नहीं जानते। जिससे न अधिक है और न समान है ऐसे तेजसे युक्त होकर अपने ब्रह्मरूप धाममें रमण करनेवाले ब्रह्मरूप जो आप हैं उन्हे प्रणाम है ॥१४॥ जिसका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, प्रणाम, गुणश्रवण, और पूजन तीनो लोकके कलुषको दूर कर देता है उस पवित्र यशवाले ईश्वरको प्रणाम है ॥ १५ ॥ चतुर पुरुष जिसके चरणकी शरणमें आकर इस लोक और परलोक, दोनोको मनसे दूर कर सकल कष्ट सह कर ब्रह्मगतिको प्राप्त होते हैं उस पवित्र यशवाले परम पवित्र प्रभुको प्रणाम है ॥ १६ ॥ तप करनेवाले तपस्वी व दान देनेवाले यशस्वी और सदाचारयुक्त मंत्रज्ञ मनस्वी (योगीजन) जिसे अपने कर्मोंको अर्पण किये विना कल्याणको नहीं प्राप्त होते उस पुण्यकीर्ति हरिको प्रणाम है ॥ १७ ॥ भक्तिकी क्या बात है! जिसके भक्तोंके भक्तोंकी भी शरणमें जानेसे किरात, हूण, अन्ध्र पुलिंद, पुष्कस, आभीर, कंक और खश आदि यवन एवं अन्य पापी व नीच शुद्ध हो जाते हैं उन प्रभविष्णु विष्णुको प्रणाम है ॥ १८ ॥ वह सम्पूर्ण आत्मज्ञानियोंके ईश्वर परमात्मा वेदत्रयीरूप, धर्मरूप, तपरूप हैं। उनके चिन्हको निष्कपट भक्त ब्रह्मा शङ्कर आदि भी नहीं जान सक्के। वह भगवान् हम पर प्रसन्न हों ॥१९॥ लक्ष्मीके पति, यज्ञके पति, पृथ्वीके पति, प्रजापति, बुद्धिके पति, लोकपति और अंधक वृष्णि आदि यादवोंके पति और गति ऐसे सज्जनोंके पति भगवान् हम पर प्रसन्न हों ॥ २०॥ जिनके चरणोंके ध्यानसे निर्मल हुई बुद्धिसे बुद्धिमान् लोग आत्माके तत्वको जानते हैं और रुचिके अनुसार उसका वर्णन करते हैं वह मुकुन्द हम पर प्रसन्न हों ॥२१॥ जो हर कल्पके अन्तमें पितामह ब्रह्माके हृदयमें सृष्टिविषयक स्मृति प्रकट करते हैं एवं जिन्होने उन्ही ब्रह्माके मुखसे वेदस्वरूपा सरस्वतीको छः अंगोंसे (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष आदिसे) युक्त कर प्रकट किया वही ऋषिश्रेष्ठ भगवान् हम पर प्रसन्न हों ॥ २२ ॥ जो पाँच महातत्वोंसे इस जगत्के यावत् जीवदेहोंका निर्माण कर उन सब देहरूप पुरोंमें आप ही रहकर पुरुष नाम धारण करते हैं, जो देह रूप पुरके सोलह गुणोंका उपभोग करके षोडशात्मक होकर अवस्थान करते हैं, वही सर्वज्ञ सर्वमय ईश्वर हमारे वाक्योंको अलंकृत करैं ॥ २३ ॥ साधुजन जिनके

मुखपद्मसे निकले हुए ज्ञानमय अमृतका पान करके अमरत्वको प्राप्त एवं आनन्दित होते हैं उन भगवान् वासुदेव या व्यासदेवको हम प्रणाम करते हैं ॥२४॥

एतदेवात्मभू राजन्नारदाय विपृच्छते ॥
वेदगर्भोऽभ्यधात्साक्षाद्यदाह हरिरात्मनः ॥ २५ ॥

हे राजन्! आपने जो हमसे प्रश्न किये, यही विषय प्रथम देवर्षि नारदने भगवान् ब्रह्मासे पूँछा था तब ब्रह्माने जो कुछ नारायणके मुखसे सुना था वह नारदसे कहा अतएव मैं आपसे नारद और ब्रह्माका संवाद कहता हूँ ॥ २५ ॥

इति श्रीभागवते द्वितीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचम अध्याय।

सृष्टिवर्णन ।

नारद उवाच—देवदेव नमस्तेऽस्तु भूतभावनपूर्वज ॥
तद्विजानीहि यज्ज्ञानमात्मतत्वनिदर्शनम् ॥ १ ॥

एक समय नारदजी ब्रह्मलोक गये । वहाँ जाकर अपने पिता ब्रह्मासे बोले । "हे देवदेव! हे भूतभावन, सबके प्रथम उत्पन्न! आपको मैं प्रणाम करता हूँ । जिस ज्ञानसे आत्मतत्वका निर्णय होता है वह आप मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये ॥१॥ हे ब्रह्मन्! यह विश्व जिसका स्वरूप है और जिसके आश्रयमें स्थित है एवं जिसके द्वारा उत्पन्न होता है और जिसमें लीन होता है एवं जिसके आधीन है और जिसके अधिकारमें है उस जनके तत्वको यथार्थरूपसे आप वर्णन करिये ॥२॥ आप यह सब जानते हैं, भूत, भविष्य और वर्तमान सब ही हाथमें धरे हुए आँवलेके न्याय आपके ज्ञानगोचर है क्योंकि आप प्रभु हैं ॥३॥ हे प्रभो! किसने आपको विज्ञानशक्ति दी? आप किसके आधारमें स्थित हैं? आप किसके आधीन एवं किसके स्वरूपसे प्रकाशित हैं? किसकी मायासे अकेले ही बिना किसीकी सहायता पंचतत्त्वोंके द्वारा इस जगत्को उत्पन्न करते हैं? ॥४॥ हे प्रभो! मकड़ा जिस भाँति श्रमको जीत कर अपनी शक्तिसे जालेको उत्पन्न करता है और उसमें विहार करता है उस प्रकार आप भी अपनी शक्तिकी सहायतासे अकेले इस विशाल जगत्को उत्पन्न करते हैं किन्तु उसमें स्वयं लिप्त नहीं होते ॥५॥ संसारमें यावत् वस्तु नाम-रूप-गुणयुक्त हैं उनको मैं आपसे भिन्न नहीं देखता । इस संसारमें न आपसे कोई श्रेष्ठ है न मध्यम है और न समान है ॥ ६ ॥ ऐसे सर्वोत्तम ईश्वर होकर भी आप जो एकाग्र मनसे घोर तप कर रहे हैं यह देख कर मेरे मनमें शंका होती है कि अवश्य कोई आपसे भी बड़ा है जिसकी आप उपासना करते हैं ॥ ७ ॥ हे जगदीश्वर! मैंने जो आपसे पूँछा है सो

सब आप जानते हैं क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं। अतएव मैं जिस प्रकार इस गूढ तत्त्वको समझ सकूँ उस भाँति आप वर्णन करिये" ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी बोले । हे पुत्र! तुमने जो प्रश्न किये ये परम श्रेष्ठ हैं । इनके द्वारा पतितपावनी परमेश्वरकी लीलाओंका प्रकाश होगा। मैं उस करुणामयकी करुणाका विस्तार करनेके ही लिये उत्पन्न हुआ हूँ, तुमने मेरे द्वारा भगवद्गुणोंका वर्णन कराकर इस संसारका बड़ा ही उपकार एवं करुणाका प्रकाश किया ॥९॥ नारद! तुमने प्रथम मुझको जो जगत्में श्रेष्ठ अनुमान किया सो सब सत्य है किन्तु मुझको ही सर्व श्रेष्ठ एवं स्वतन्त्र कहना या समझना तुम्हारी भ्रान्ति है। मेरा भी शासन करनेवाला एक पुराणपुरुष परमेश्वर है, जिसकी इच्छाके अनुकूल इस जगत्को मैं उत्पन्न करता हूँ, वही मेरा परमपूज्य पिता और इष्टदेव है॥१०॥ जैसे सूर्य्य, अग्नि, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, तारागण दूसरे (ईश्वर) के तेजसे प्रकाशित होने पर भी स्वयं प्रकाशित प्रतीत होते हैं वैसे जिसके चैतन्यमय-तेजसे प्रकाशित विश्वको उत्पन्न कर मैं सबका उत्पन्न करनेवाला कहलाता हूँ ॥ ११ ॥ उसी भगवान् वासुदेव ईश्वरको प्रणाम करता हूँ जिसकी दुर्जेय मायासे मोहित लोग मुझे जगत्का गुरु कहते हैं ॥१२॥ उस ईश्वरके आगे वही दुर्जेय माया लज्जाको प्राप्त होकर नहीं ठहर सक्ती जिस मायामें मोहित प्राणीलोग "मैं हूँ, मेरा है" ऐसी कुवुद्धिमें फँसे रहते हैं ॥ १३ ॥ वत्स! उन वासुदेवसे श्रेष्ठ वा भिन्न, अन्य वस्तु कोई नहीं है, क्योंकि सृष्टिके उपादानस्वरूप द्रव्य, कर्म्म, काल, स्वभाव और जीव सभी वासुदेवमय हैं ॥१४॥ सब वेद सब देवता सब लोक और सब यज्ञ नारायणसे ही उत्पन्न व उन्हीकी मूर्ति हैं ॥ १५ ॥ योग, तप, ज्ञान और गति सब ही नारायण हैं ॥१६॥ मैं उसी सर्वस्रष्टा जगदीश एवं कूटस्थ (छिपे हुए) ईश्वरके कटाक्षसे उत्पन्न होकर उसीकी शक्तिसे इस जगत्को प्रकट करता हूँ ॥ १७ ॥ वही निर्गुण निराकार ईश्वर अपने उत्पत्ति, पालन और संहार इन तीन कार्योंके लिये मायाके सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणोंको ग्रहण कर सगुण होता है ॥ १८ ॥ उसी नित्य स्वतन्त्र मायाधारी पुरुषको द्रव्य, ज्ञान और क्रिया (अर्थात् पंचतत्त्व, इन्द्रिय और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता) के कारण स्वरूप तीनो गुण कार्य्य कारण और कर्तारूपमें आवद्ध करते हैं ॥१९॥ वही इन्द्रियोंके ईश्वर भगवान् तीनो गुणोंसे युक्त होकर इन मायाजनित गुणोंके आवरणमें ऐसे छिपे हैं कि सिवाय उनके उनकी गतिको अन्य कोई नहीं देख सक्ता। वही सम्पूर्ण जगत्के और मेरे ईश्वर हैं ॥२०॥ हे नारद! उसी सर्वव्यापी ईश्वरने "मैं वहुरूप धारण करूं" इस कार्यके लिये इच्छाशक्तिरूपिणी माया द्वारा अपनेमें काल, कर्म और स्वभावको प्रकट किया ॥२१॥ वत्स! उसी परमपुरुषमें अधिष्ठित एवं काल द्वारा मायास्थित तीनोगुण क्षोभको प्राप्त होकर स्वभाव द्वारा परिणाममें आनीत होकर एवं कर्मद्वारा सम्मिलनभावमें

प्रकाशित होकर "महत्तत्त्व" नाम को प्राप्त हुए ॥ (१) ॥ २२ ॥ महत्तत्त्व जब विकारको प्राप्त हुआ तब उसके भीतर स्थित रजोगुण और सतोगुण मिश्रित होकर मायास्थित द्रव्य (पंचतत्त्व), ज्ञान (इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता) और क्रिया (इन्द्रिय) आदि एक तमोगुणप्रधान अवस्थामें रूपान्तरको प्राप्त हुए ॥ २३ ॥ उस तमोगुणप्रधान अवस्थाको अहंकार कहते हैं। वह अहंकार तीन प्रकारका है । ज्ञानशक्तिके सम्मिलन से अहंकारकी जो अवस्था है उसको वैकारिक अहंकार कहते हैं । क्रियाशक्तिके सम्मिलनसे अहंकारकी जो अवस्था है उसको राजस अहंकार कहते हैं। एवं द्रव्यशक्तिसम्मिलित अहंकारकी अवस्थाको तामस अहंकार कहते हैं ॥ २४ ॥ नारद! इन सब तत्वोंका आदि जो तामस अहंकार है वह रूपान्तरको प्राप्त होकर प्रथम आकाश (शून्य) को प्रकट करता है, इस आकाशकी मात्रा और गुणको ही शब्द कहते हैं । यह शब्द ही जगत्में द्रष्टा (देखनेवाले) और दृश्यका बोधक है ॥ २५ ॥ इस आकाशके रूपान्तर होने पर स्पर्शगुणयुक्त वायु उत्पन्न हुआ । इसमें आकाशकी कारणमात्रा शब्दगुण भी है । यह वायु ही विश्वको प्राण, ओज, बल और इन्द्रियस्फूर्त्ति देनेवाला है ॥ २६ ॥ काल, कर्म्म और स्वभाव द्वारा रूपान्तरको प्राप्त वायु तेजको प्रकट करता है, इस तेजका

---

(१) ब्रह्मा नारदसे जो सृष्टि कह रहे हैं इसको कारणसृष्टि कहते हैं। इन सम्पूर्ण कारणोंके प्रकाशित होनेके उपरान्त कार्य्यसृष्टि कही जायगी । इस कारणसृष्टिकी कथाका आरम्भ करके काल, कर्म, स्वभावादि नित्यवस्तुओंकी उत्पत्ति दिखाकर इस समय, ये सब किसभांति कार्यपर हुए, यही इस श्लोकमें ब्रह्माजी कहते हैं ।

इस स्थलमें ब्रह्माजी महत्तत्वकी उत्पत्ति दिखाते हैं। मायासे जिसप्रकार तीनो गुणोंका प्रकाश होता है सो पहले कहा जा चुका है, वे ही तीन गुण मायामें परिणत होते हैं तब काल उनकी साम्यावस्थाको क्षुभित करता है । कालके क्षोभ करनेसे ईश्वरीय स्वभावमें इन सब गुणोंका एक प्रकार परिणाम होता है । वही परिणत अवस्था ईश्वरकी इच्छाके अनुसार अदृष्टनामक कर्म्म द्वारा दूसरे एक रूप और अवस्थामें प्रकाश होती है । इसी प्रकाश्य अवस्थाको महत्तत्व कहते हैं । विज्ञानके जाननेवाले कहते हैं कि क्षुद्रवस्तुकी जैसे उत्पत्ति होती है वैसे ही महत् वस्तुकी भी उत्पत्ति होती है । इस वाक्यका गूढ भाव जाननेकी इच्छा हो तो आपलोग इस प्रकार विचार करें । कोई एक बीज लेकर विचार करो कि यही बीज ईश्वरकी इच्छारूप अदृष्ट वा कर्म्म है । उसी कर्म्मरूपी बीजको प्रकट करनेमें जैसे बीजके भीतर स्थित भूतादिरूपी द्रव्यशाखा और गुल्मादिरूपी इन्द्रिय वा क्रिया एवं इन्द्रिय और तत्वादिका संरक्षक शक्तिरूपी ज्ञान प्रकट करना होता है, उसीभाँति ईश्वरके कर्म्म वा अदृष्टको मायाके मध्य-स्थ रखकर उसके सम्मिलनमें तत्वका प्रकाश करनेमें काल द्वारा मायासे उत्पन्न तीन गुणोंका क्षोभ एवं स्वभाव द्वारा उनका परिणाम दिखाना है । इस प्रकार जिस अवस्थामें कारणसृष्टि रूपान्तरित होती है उस अवस्थाको "महत्तत्व" कहते हैं ।

गुण रूप है एवं इसमें आकाश व वायुका गुण शब्द और स्पर्श भी है ॥२७॥ फिर तेजस्तत्त्व जब रूपान्तरको प्राप्त हुआ तो उससे रसगुणयुक्त जलतत्त्व प्रकट हुआ। इसमें भी उक्त तीनों तत्त्वोंके शब्द स्पर्श और रूप ये गुण हैं ॥ २८ ॥ फिर वायु तत्वने रूपान्तरको प्राप्त होकर गंधगुणयुक्त पृथ्वीतत्त्व उत्पन्न किया। इसमें भी उक्त तत्त्वोंके शब्द, रस, रूप स्पर्श, ये चारो गुण हैं ॥२९॥ वैकारिक अहंकारसे मन और दश सात्त्विक देव उत्पन्न हुए, जिनके नाम ये हैं—१ दिशा २ वायु ३ सूर्य ४ प्रचेता ५ अश्विनीकुमार ६ अग्नि ७ इन्द्र ८ उपेन्द्र ९ मित्र और १० प्रजापति ॥३०॥ तैजस अहंकारसे बुद्धि, प्राण, और श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना, त्वचा ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय एवं वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रिय उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ नारद! असम्मिलित अवस्थामें स्थित ये तत्त्व इन्द्रिय मन गुण आदि भाव जब कोई आयतन अर्थात् निवासस्थान (शरीर) न बनासके ॥ ३२ ॥ तब भगवान्की शक्ति द्वारा प्रेरित होकर ये कारणसमूह एकत्रित हुए और अपने प्रधान गुणभावसे समष्टि (सूक्ष्म) व व्यष्टि (स्थूल) रूप उभयात्मक शरीरको उत्पन्न किया ॥ ३३ ॥ हे नारद! काल, कर्म और स्वभावस्थित जीव (ईश्वरकी सचेतनात्मकशक्ति) ने सहस्र (अनन्त) वर्षके अनन्तर जलस्थित उस तत्त्वमय निर्जीव अण्डको सजीव किया ॥ ३४ ॥ उस महान् अण्डको फोड़कर सहस्र ऊरू सहस्र पाद सहस्र बाहु सहस्र नेत्र एवं सहस्र शिरवाला वही (विराट्) पुरुष निर्गत हुआ ॥ ३५ ॥ बुद्धिमान् चतुर पुरुष उसी विराट् पुरुषके कटिदेशसे लेकर नीचेके सात अंगोंमें अतल आदि नीचेके सात लोकोंकी और जघनादि ऊपरके सात प्रदेशोंमें भू आदि सात लोकोंकी कल्पना करते हैं ॥ ३६ ॥ उसी पुरुषके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय, ऊरुओंसे वैश्य और चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुए ॥ ३७ ॥ विराट् पुरुषके पैरोंमें भूलोक, नाभिमें भुवर्लोक, हृदयमें स्वर्गलोक और वक्षस्थलमें महर्लोक है ॥ ३८ ॥ ग्रीवामें जनलोक, दोनो स्तनोंमें तपलोक, ललाटमें सत्यलोक एवं शिरमें सनातन वैकुण्ठलोक है ॥ ३९ ॥ कटिदेशमें अतललोक, ऊरुदेशमें वितललोक जानुओंमें सुतललोक और जंघाओंमें तलातल लोक कल्पित है ॥ ४० ॥ गुल्फदेशमें महातल और प्रपदमें रसातल एवं पादतलमें पाताल है; इसप्रकार पुरुषके अंगोंमें लोकोंकी कल्पना है ॥ ४१ ॥

भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ॥
स्वर्लोकः कल्पितो मूर्ध्ना इति वा लोककल्पना ॥ ४२ ॥

अथवा भूलोक चरणोंमें, भुवर्लोक नाभिमें और स्वर्गलोक शिरमें, यों त्रिलोकीकी कल्पना है ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते द्वितीयस्कंधे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय ।

विराट् पुरुषकी विभूतियोंका वर्णन ।

ब्रह्मोवाच—वाचां वह्नेर्मुखं क्षेत्रं छन्दसां सप्त धातवः ॥
हव्यकव्यामृतान्नानां जिह्वा सर्वरसस्य च ॥ १ ॥

ब्रह्मा बोले । हे नारद! हमलोगोंके वाक्यका अधिष्ठाता देवता जो अग्नि है वह उस विराट् पुरुषके मुखसे उत्पन्न हुआ, ऐसे ही गायत्री आदि सात छंद ईश्वरकी सात धातुओंसे उत्पन्न हुए। हव्य (देवतोंका अन्न), कव्य (पितरोंका अन्न), अमृत (मनुष्योंका अन्न) इन अन्नों और छहों रसोंकी उत्पत्ति ईश्वरकी जिह्वासे हुई ॥ १ ॥ पाँचो प्राण और शरीरस्थित वायु ईश्वरकी नासिकासे उत्पन्न हुए एवं अश्विनीकुमार और औषधियां व सामान्य एवं विशेष गन्ध भगवान्के घ्राण इन्द्रियसे प्रकट हुए ॥ २॥ रूप और रूपप्रकाशक तेज चक्षु इन्द्रियसे उत्पन्न हुआ और सूर्य्य एवं प्रभा भगवान्के नेत्रगोलकसे उत्पन्न हुए। दिशा और तीर्थ कानोंसे एवं आकाश और शब्द श्रोत्र इन्द्रियसे उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥ भगवान्के शरीरसे सब वस्तुओंका चैतन्य अंश और शोभा उत्पन्न हुई। स्पर्श और वायु एवं संपूर्ण यज्ञ श्रीविराट्की त्वचासे उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥ सब पृथ्वी फोड़कर निकलनेवाले वृक्ष आदि और कुश विराट्के रोमोंसे उत्पन्न हुए, एवं केशोंसे मेघ और श्मश्रु (मूछों)से विजली तथा चरण और हाथके नखोंसे शिला और अनेक धातुएँ उत्पन्न हुई ॥५॥ लोकोंका पालन करनेवाले लोकपाल बाहुओंसे उत्पन्न हुए ॥६॥ भूः भुवः स्वः ये तीनो लोक भगवान्के पदविन्याससे उत्पन्न हुए, क्षेम और शरण एवं सब वरदान ईश्वरके चरणोंसे उत्पन्न हुए। वीर्य, जल एवं समस्त उत्पन्न पदार्थ और पर्जन्य, प्रजापति विराट्प्रभुके लिंगसे प्रकट हुए, मैथुनजनित सन्तानार्थ आनन्दके भोगकरनेकी शक्ति उपस्थ इन्द्रियसे प्रकट हुई ॥७॥८॥ नारद! मित्र देवता, यम देवता और मलत्याग ईश्वरके पायु इन्द्रियसे प्रकट हुआ और हिंसा, निर्ऋति व मृत्यु एवं नरक गुह्यदेशसे (गुदासे) प्रकट हुए ॥ ९ ॥ पराभवकारी अधर्म्म और अज्ञान ईश्वरकी पीठसे उत्पन्न हुए। विराट पुरुषकी नाडियोंसे नदी नद एवं अस्थिसमूहसे पर्वत प्रकट हुए ॥ १० ॥ हे नारद! फल, पुष्प, अन्नका रस और वृष्टि, नदी, सरोवर एवं सागर आदिका रस और सब तत्त्वोंकी लय अवस्था ईश्वरके उदरसे प्रकट हुई । मन नामक जीवका लिंगशरीर उसी परम पुरुषके हृदयसे प्रकट हुआ ॥ ११॥ नारद! स्वयं धर्म्म, मैं, तुम, सनत्कुमारआदि चार कुमार, श्रीशिवजी, विज्ञान और चैतन्य ईश्वरके आत्मासे प्रकट हुए ॥ १२ ॥ मैं, तुम, शंकर, तुम्हारे अग्रज मुनिगण, देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, मृग, सर्प, ॥ १३ ॥ गंधर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, भूतगण, उरग, पशु, [illegible]र, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष ॥ १४ ॥ और भी विविध भाँतिके जल स्थल

और आकाशमें रहनेवाले जीव, ग्रह, नक्षत्र, केतु, तारागण, बिजली आदि ॥१५॥ सब वही विराट् पुरुष है । यावत् भूत, भविष्य, वर्तमान सब ईश्वरसे व्याप्त है ॥ १६ ॥ यह सूर्य जैसे अपने मण्डलको प्रकाशित करते हुए सब ब्रह्माण्डको प्रकाशित करते हैं वैसे ही भगवान् विराट्रूपसे सब जगत्के भीतर और बाहर प्रकाशित हैं ॥ १७ ॥ वह भगवान् केवल मरण-धर्मयुक्त अन्नरूपसे प्रकट हैं—ऐसा नहीं है, वह अमृत और अभय दोनोंके ईश्वर हैं अर्थात् केवल सर्वव्यापी ही नहीं, किन्तु अमृत-अभयमय ब्रह्मानन्दके भी स्वामी हैं – अतएव उस पुरुषकी महिमाका निश्चय करना दुष्कर है ॥ १८ ॥ उस अविनाशी ईश्वरके अंगोंमें सब प्राणी अवस्थित हैं और त्रिपाद् पुरुषके शिरोभागमें यथाक्रम ऊपर ऊपर अमृत क्षेम और अभय विराजमान हैं ॥ १९ ॥ इस त्रिलोकीके बाहर जो स्थान हैं वे ब्रह्मचर्य्य और वानप्रस्थ आश्रमके धारण करनेवाले ऋषियोंके लोक (तप, महः, जन आदि) हैं एवं त्रिलोकीके भीतर ब्रह्मचर्य्यरूप महाव्रतसे रहित गृहस्थोंके लोक हैं ॥२०॥ हे नारद! भोग और मोक्षके साधनस्वरूप जो दो प्रवृत्ति और निवृत्तिमार्ग सर्वत्र विस्तारको प्राप्त हैं, क्षेत्रज्ञपुरुष (जीव) इन दोनोंके आश्रित है। इन मार्गोंमें निवृत्तिमार्गको विद्या और प्रवृत्तिमार्गको अविद्या कहते हैं ॥ २१ ॥ नारद! जिससे यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ, एवं यह भूत(पंचतत्त्व)—इन्द्रिय—गुणमय विराट्रूप विश्व प्रकट हुआ, वही—परमेश्वर हैं। सूर्य्य जैसे सर्वत्र प्रकाश करता है पर अपनेही मण्डलमें स्थित है वैसे ईश्वर भी अपनी चैतन्यशक्तिसे सब जगत्को प्रकाशित किये हैं परन्तु अपनेही रूपमें स्थित हैं ॥२२॥ जब मैं उस महात्मा ईश्वरकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलसे प्रकट हुआ तब उसी पुरुषके अंगोंमें कई एक यज्ञसामग्रीस्वरूप वस्तुएँ देख पड़ीं—और मैं कुछ अनुभव न कर सका ॥ २३ ॥ उसी पुरुषके अंगोंसे यज्ञपशु, वनस्पति, कुश, यज्ञके योग्य स्थान और यज्ञके योग्य उत्तम समय, यज्ञके पात्र, अनेक औषधियां, अनेक रस, घृतादि, मृत्तिका, लौहादि धातु, जल एवं चातुर्होत्र, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, ज्योतिष्टोमादि यज्ञ, धर्म, व्रत, मन्त्र, दक्षिणा, देवता, कल्प (बोधायनादिकर्म्मकी पद्धति) संकल्प, तंत्र, गति, मति (ध्यान), प्रायश्चित्त और समर्पण आदि सब यज्ञोपयोगी सामग्री मैंने एकत्रित की ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ मैंने पुरुषके अंगोंसे यह सामग्री एकत्र करके इसी सामग्रीसे उस यज्ञपुरुष ईश्वरकी आराधना की ॥२८॥ तदनन्तर मरीचि कश्यप आदि नव प्रजापति जो तुम्हारे भाई हैं उन्होने भी एकान्त चित्तसे निर्गुण एवं सगुण ईश्वरकी आराधना की ॥२९॥ तदनन्तर कालके क्रमसे मनुगण, अपरापर ऋषिगण, पितृगण, देवता, दैत्य और मनुष्योंने इसी सामग्रीसे यज्ञ द्वारा यज्ञपुरुषकी आराधना की ॥ ३० ॥ नारद! यह विश्व भगवान् नारायणमें अवस्थित है, वही भगवान् सृष्टि आदि कार्य्योंके लिये मायाके गुणोंका ग्रहण करके सगुण होते हैं किन्तु वास्तव में निर्गुण परमानन्दमयस्वरूप हैं ॥३१॥ उन्हीकी आज्ञासे मैं जगत्को उत्पन्न

करता हूँ और महादेव संहार करते हैं और वही सर्वशक्तिमान् ईश्वर स्वयं विष्णुरूपसे जगत्का पालन करते हैं ॥ ३२ ॥ वत्स! जो तुमने मुझसे पूँछा वह मैंने ठीक २ तुमसे कहदिया। पुत्र! कार्य्य और कारण दोनो ही उस ईश्वरसे भिन्न नहीं हैं ॥ ३३ ॥ पुत्र! मेरी वाणी कहीं मिथ्या नहीं होती, मेरे मनकी गति मिथ्याकी ओर नहीं होती और मेरी इंद्रियाँ कुराहमें प्रवृत्त नहीं होतीं। इसका कारण यही है कि मेरे हृदयमें सर्वदा ईश्वरकी इच्छास्वरूप चैतन्यशक्ति प्रकाश किया करती है ॥ ३४ ॥ पुत्र! मैं वेदमय तपमय एवं प्रजापतियों द्वारा पूजित सर्व्वश्रेष्ठ हूँ तथापि उस अपने उत्पन्न करनेवाले ईश्वरको सर्वोत्तम योगसे भी भलीभाँति अबतक नहीं जान सका हूँ ॥३५॥ नारद! भगवान्के जो चरण शरणागत मनुष्योंको जन्ममरणके जंजालसे छुड़ाकर उनका मङ्गल करते हैं और जो सेवा करने योग्य वस्तुओंमें श्रेष्ठ हैं उन्ही चरणोंको मैं प्रणाम करता हूँ। जैसे आकाश आप ही अपने अन्तको नहीं जानता वैसे ही ईश्वर भी अपनी अनन्त मायाके विभवका अन्त नहीं पा सके तब और लोगोंकी कौन बात है? ॥३६॥ उस परमेश्वरकी निष्प्रपञ्च गतिको मैं, तुम और महादेव भी नहीं जानते तब और देवता क्या जान सक्ते हैं? उस ईश्वरकी मायासे मोहित हम लोग उसी ईश्वरकी मायासे उत्पन्न इस संसारको अपनी बुद्धिके अनुसार जानते हैं ॥३७॥ हम लोग जिस ईश्वरके केवल अवतार और लीलाओंको गाते हैं किन्तु यथार्थ तत्त्वको नहीं जान सक्ते उस भगवान्को प्रणाम है ॥ ३८ ॥ वही आदि-अन्तहीन पुराणपुरुष हरेक कल्पमें अपनेको अपनेमें अपने द्वारा आप उत्पन्न, पालन एवं नाश करता है ॥ ३९ ॥ वह भगवान् केवल विशुद्धज्ञानमय है वही सबमें बिराजमान है। वह सत्यस्वरूप, निर्गुण, पूर्ण, आदिअन्तरहित एवं नित्य और अद्वितीय है ॥४०॥ हे देवर्षि नारद! जिनका आत्मा, इन्द्रिय और विषयभोगकी वासना शान्त होगई है वे ही सब मुनिलोग उस ईश्वरको जान सक्ते हैं और जिनलोगोंका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है एवं युक्तियोंसे ईश्वरको जाना चाहते हैं वे ईश्वरको कैसे जान सक्ते हैं? ईश्वरके देखनेके लिये दिव्य दृष्टिकी आवश्यकता है! ॥ ४१ ॥ उसी पुराणपुरुष परमेश्वरका पहला पुरुष अवतार है। काल, स्वभाव, सत, असत, मन, पंचतत्त्व, अहंकार, तीनो गुण, इन्द्रियाँ, विराट्भाव, स्थावरभाव और जंगमभाव यह सब समष्टि और व्यष्टि सृष्टि ईश्वरका ही अवतार है ॥४२॥ मैं, शिव, विष्णु, ये दक्षादि प्रजाप्रति, तुम सब मुनिलोग, ऊपरके लोकोंके स्वामी, अन्तरिक्षके स्वामी, पृथ्वीके स्वामी व अतल आदि सात पातालोंके स्वामी, सभी उस ईश्वरके अवतार हैं ॥४३॥ गन्धर्व, विद्याधर, चारण, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, सर्प्प और नाग, ऋषिश्रेष्ट, पितरोंमें श्रेष्ट, दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर और दानवेन्द्र सब उसी ईश्वरके अवतार हैं ॥ ४४ ॥ और जो प्रेत, पिशाच, भूत, कूष्माण्ड, जलजन्तु, मृग, पशु और पक्षी हैं वे सभी उस ब्रह्मका अवतार हैं ॥ ४५ ॥ इस जगत्-

में जो कुछ ऐश्वर्य, तेज, ओज, उत्साह, बल, क्षमा, शोभा, निन्दनीय कर्ममें घृणा, विभूति, मूर्तियुक्त सृष्टि है उसमें रूपयुक्त वा रूपरहित सभी परमेश्वर है ॥ ४६ ॥

प्राधान्यतो यानृष आमनन्ति लीलावतारान्पुरुषस्य भूम्नः ॥
आपीयतां कर्णकषायशोषाननुक्रमिष्ये त इमान्सुपेशान् ॥ ४७ ॥

ये तो हुए सब साधारण अवतार; अब ऋषिलोग जिनको प्रधान बताते हैं उन ईश्वरके पतितपावन अवतारोंके मनोहर पवित्र चरित्रोंको मैं कहताहूँ—चित्त लगाकर सुनो ॥ ४७ ॥

इति श्रीभागवते द्वितीयस्कन्धे षष्ठोध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय।

भगवान्के लीलाहेतुकृत अवतारोंका वर्णन ।

ब्रह्मोवाच—यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्र-
त्क्रौडीं तनुं सकलयज्ञमयीमनन्तः ॥
अन्तर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं
तं दंष्ट्रयाद्रिमिव वज्रधरो ददार ॥ १ ॥

ब्रह्माजी बोले । वत्स ! उन्ही अनन्तपुरुषने पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये सर्वयज्ञमय वाराहशरीर धर कर महासागरके भीतर आदिदैत्य हिरण्याक्षका हृदय दाढ़से विदीर्ण कर दिया जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतको ॥ १ ॥ उन्ही विष्णुने प्रजापति रुचिके वीर्यसे आकूति नामवाली रुचिकी स्त्रीके गर्भमें सुयज्ञ नामसे प्रकट होकर दक्षिणा नाम अपनी स्त्रीमें सुयम नाम देवगणको उत्पन्न किया । त्रिलोककी पीड़ा हरनेके कारण स्वायंभुव मनुने उनका 'हरि' नाम धरा ॥ २ ॥ हेद्विज! वही देवहूतीके गर्भमें कर्दमके वीर्यसे सात बहनोंके साथ कपिलदेव नामसे उत्पन्न हुए और अपनी माताको ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया जिससे इसी जन्ममें मलिनतामय गुणसंगरूप पंक (कीचड़) धो गई और देवहूती मुक्तिको प्राप्त हुई ॥ ३ ॥ पुत्र! अत्रि ऋषिने भगवान्से प्रार्थना की कि आप हमारे पुत्र हों। भगवान्ने प्रसन्न होकर कहा अच्छा मैंने अपनेको तुम्हे दिया, इसीसे भगवान् अत्रिके यहाँ दत्त नामसे उत्पन्न हुए। राजा यदु और सहस्त्रबाहु अर्जुन आदि सब उनके चरणकमलके रजसे अपने२ देहको पवित्र करके भोग और मोक्ष दोनो प्रकारकी योगसिद्धिको प्राप्त हुए॥४॥ मैंने नाना प्रकारके लोकोंकी सृष्टि करनेके लिये प्रथम जो 'सन' अर्थात् अखण्डित तपस्या की, उससे भगवान् सनक, सनन्दन सनातन, सनत्कुमार-इन

चार 'सन' रूपोंसे उत्पन्न हुए एवं पूर्वकल्पके प्रलयकालमें जो आत्मतत्व नष्ट हो गयाथा उन्होने सम्पूर्ण ऋषियोंको उसीका उपदेश दिया, उनके निकट सुनते ही वह आत्मज्ञान ऋषियोंको हृदयमें देख पड़ा ॥५॥ तदनन्तर भगवान्ने दक्षप्रजापतिकी कन्या और धर्मकी स्त्री मूर्तिके गर्भसे असाधारणप्रभावपूर्ण नर व नारायण रूपसे अवतार लिया, तब कामदेवकी सेना जो अप्सरा हैं वे उनके तपमें विघ्न करनेके लिये आईं, किन्तु जब उन्होने देखा कि उनसे भी अधिक सुन्दरी उर्वशी- आदि उत्तम अप्सराएँ उनकी सेवा करनेमें नियुक्त हैं तब वे परम विस्मित होकर स्वर्गको लौट गईं और भगवान्को मोहित न कर सकीं ॥ ६ ॥ शिव आदि समर्थ लोग भले ही कामदेवको कोपकी दृष्टिसे भस्म कर दें पर वे भी क्रोधको नहीं जला सक्ते वरन् क्रोध ही उनको असह्य होकर जलाता है । किन्तु वही क्रोध हरिके निर्मल अन्तःकरणमें प्रवेश करते डरता है, तब कामदेव हरिके चित्तमें कैसे अपना अधि- कार कर सक्ता है ॥ ७ ॥ ध्रुव अवतार हरिने लिया, उसमें राजा उत्तानपादके आगे सौतेली माताके वचनरूपवाणोंसे बिद्ध होकर बाल्यअवस्थामें ही तप करनेके लिये वनको गये एवं पिताकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर उनको ध्रुवलोकमें स्थान दिया। जिस ध्रुवलोककी ऊपर भृगु आदि मुनि और नीचे सप्तऋषि स्तुति करते हैं॥ ८ ॥ राजा वेनके उत्पथ(कुराह)में चलनेसे ब्राह्मणोंके शापरूपी बज्रसे उसका पौरुष और ऐश्वर्य नष्ट हो गया और वह नरकको गया, ऋषियोंकी प्रार्थनासे भगवान् पृथु नाम उसके पुत्र हुए और उसका उद्धार करके पुत्र[1] इस शब्दको सार्थक किया एवं गोरूप पृथ्वीसे सम्पूर्ण वस्तुओं (रत्नों)को दुह लिया ॥९॥ भगवान्ने आग्नीध्र राजाके पुत्र नाभिके वीर्यसे सुदेवी नाम रानीमें ऋषभ अवतार लिया और ऋषिगण जिसको परमहंसपद कहते हैं, ऋषभजीने स्वस्थ, शान्तेन्द्रिय, विषयास- क्तिहीन समदर्शी एवं जड़के न्याय होकर उसीका चिन्तवन किया ॥१०॥ हयग्रीव अवतारमें उन्ही भगवान्ने घोड़ेका मुख धारण कर मेरे यज्ञमें सुवर्णवर्ण, वेदमय, यज्ञमय संपूर्ण देवमय अवतार लिया, जिनकी नासिकाकी श्वासासे सम्पूर्ण वेदके वाक्य उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥ कल्पान्तमें वैवस्वतमनुने मत्स्यस्वरूप भगवान्का दर्शन किया, सम्पूर्णजीवोंका आश्रयस्वरूप पृथ्वीमय मत्स्यावतार भगवान्ने मेरे मुखसे खोई हुई वेदवाणीको लेकर प्रलयकालके समुद्रमें विहार किया ॥ १२ ॥ देवता और दानव अमृतके लिये क्षीरसागरको मथने लगे उस समय आदिदेव विष्णुने महाकच्छपरूप धर कर मन्दराचलको पीठपर धारण किया और पर्वतके घूमनेसे पीठके खुजलानेके सुखको प्राप्त होकर किंचित् निद्राको प्राप्त हो गये ॥ १३ ॥ देव- तागणके भयभंजन भगवान्ने नृसिंहरूप धर कर गदा हाथमें लिये सामने आ रहे दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुको क्षणमात्रमें पकड़ कर नखोंसे उसका हृदय फाड़ डाला;

१ पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते इति पुत्रः-पुं नाम नरकसे जो रक्षा करै उसे पुत्र कहते हैं।

उस समय उनका मुख टेढ़ी २ भौंहें और निकली हुई बड़ी २ दाढ़ोंसे देखनेमें बड़ाही भयानक विदित होता था ॥१४॥ सरोवरके भीतर गजराजका पैर एक बड़े बली ग्राहने पकड़ लिया, जब गजराज अपनेको ग्राहसे न छुड़ा सका तो सूंढ़में कमलका फूल लेकर आर्तस्वरसे पुकारा कि "हे आदिपुरुष! हे सम्पूर्ण जगत्के स्वामी! हे पवित्र नामवाले! हे पवित्रकीर्तिवाले!" ॥१५॥ उस समय चक्र हाथमें लिये हरि भगवान् उसको अपनी शरणमें आया देख कृपापरवश होकर गरुड़पर सवार हो उसी स्थानपर आये एवं चक्रसे उस ग्राहको मार कर सूँढ़ पकड़ हाथीका उद्धार किया ॥ १६ ॥ वामन अवतारमें भगवान् यद्यपि अदितिके और और पुत्रों (देवतों) से छोटे भी थे परन्तु गुणोंमें सबसे बड़े हुए क्योंकि उन्होने अपने पैरसे तीनो लोकोंको नाप लिया। इसी अवतारमें हरिने राजा बलिके यज्ञमें जाकर तीन पग पृथ्वी माँगनेके छलसे सम्पूर्ण पृथ्वी बलिसे ले ली। भगवान् सबके प्रभु हैं सही, किन्तु धर्ममार्गमें चलनेवाले लोगोंको विना याचना किये ऐश्वर्यसे भ्रष्ट करना उचित एवं न्याय नहीं है, इसी कारण सर्वशक्तिमान् एवं सबके स्वामी होकर भी श्रीवामनजीने बलिसे याचना की ॥ १७ ॥ नारद! जिस बलिने महापुरुषके चरणोदकको शिर पर धारण किया एवं गुरु शुक्राचार्यके रोंकने पर भी अपनी प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ा और वामनजीका तीसरा चरण पूर्ण करनेके लिये मन ही मन अपना शरीर तक हरिको अर्पण कर दिया, उसकी दृष्टि में त्रैलोक्यका राज्य क्या कुछ पुरुषार्थ जँच सक्ता है? कभी नहीं, इसी कारण हरिने त्रिलोकीका राज्य हर लिया ॥१८॥ नारद! श्रीनारायणने अपने प्रति तुम्हारी अत्यन्त भक्तिसे सन्तुष्ट होकर हंसावतार लेकर तुमको योग और आत्मतत्वके प्रकाश करनेवाले उस ज्ञानका उपदेश दिया, जो ज्ञान विना वासुदेवकी शरणमें गये नहीं मिल सक्ता ॥१९॥ त्रिलोकीके ऊपर स्थित सत्यलोकमें अपनी जनमनमोहिनी कीर्तिका विस्तार करते हुए भगवान् मन्वन्तर रूपसे अवतार लेकर मनुवंशका पालन एवं अपने तेजस्वरूप सुदर्शन चक्रसे दुष्ट राजोंका दमन करते हैं ॥ २० ॥ कीर्तिस्वरूप भगवान्ने लोकमें धन्वन्तरि रूपसे अवतार लिया जो अपने नामसे ही विषयव्याधिसे पीडित लोगोंके रोगको शीघ्र नष्ट करते हैं। वही जीवनदाता ईश्वर इसी अवतारमें दैत्योंकरके हरे हुए यज्ञके भागको फिर प्राप्त होकर आयुर्वेदका प्रचार कर गये हैं ॥२१॥ क्षत्रियगण एक समय वेदके मार्गको छोड़कर ब्राह्मणोंकी हिंसा करने लगे, मानो वे लोग इच्छापूर्वक नरक जाना चाहते थे, विधाताने मानो जगत्के नष्ट होनेके ही लिये उन दुष्टोंकी इतनी बढ़ती की। उससमय भगवान्ने प्रचण्डपराक्रमशाली परशुराम अवतार लेकर तीक्ष्ण परशुद्वारा इकईस बार पृथ्वीके कण्टक दुष्ट क्षत्रियोंका संहार किया ॥ २२ ॥ वही मायाके ईश्वर हमलोगोंपर प्रसन्न होकर चार अंशसे इक्ष्वाकु वंशमें जन्म लेकर पिताकी आज्ञासे स्त्री और भाई सहित चौदह वर्षके लिये दण्डकारण्यको गये, वहाँ रावण उनके साथ अन्यायपूर्वक विरोध करके सपरिवार नष्ट होगया ॥ २३ ॥ प्रथम सदाशिव जैसे त्रिपुरको जलानेके लिये उद्यत

हुए थे उसी प्रकार रामचन्द्र शत्रुकी पुरी लंकाको जलानेके लिये जब उद्यत हुए तब सागर भयसे काँपता हुआ आया और रामको राह दे दी। दुष्टचरित्र रावणने उनकी प्रिया सीताका हरण किया इससे रामके दोनों नेत्र क्रोधके वेगसे रक्तवर्ण हो उठे, और उससे सागरमें रहनेवाले मगर, सर्प और ग्राह आदि जीव जलने लगे–यह देखकर भयसे कम्पमान समुद्रने शीघ्र ही उस पार जानेकी राह दे दी ॥२४॥ रावणके वक्षस्थलमें टक्कर खाकर इन्द्रके वाहन ऐरावतके दाँत चूर्ण होकर सम्पूर्ण दिशाओंमें विक्षिप्त होगये; उनके द्वारा सब दिशा श्वेतवर्ण होनेसे अपनेको दिग्विजय करनेवाला विचार रावण मारे अहंकारके हँसता था; रामने युद्धभूमिके बीच अपनी व पराई सेनाके मध्यमें विचरण करनेवाले नारी–चोर उसी रावणकी हँसीको धनुषकी डोरीके शब्दसे सहित प्राणोंके हर लिया ॥ २५ ॥ भगवान् नारायण, असुरावतार राजोंकी सेनासे विमर्दित पृथ्वीका क्लेश हरनेके लिये श्वेत और कृष्णवर्ण केश[1] से बलभद्र और श्रीकृष्णनाम कलावतार लेकर अपनी महिमाको प्रकट करनेवाले अनेक कर्म करेंगे, जिनके कर्तव्यको साधारण मनुष्य नहीं जान सक्ते ॥ २६ ॥ बाल्यावस्थामें ही पूतनाके प्राण हरना, तीन महीनेकी अवस्थामें शकटका भंजन, एवं जानुओंके बल चलते २ बीचमें प्रवेश करके आकाशको स्पर्श करनेवाले यमलार्जुनके वृक्षोंका उखाड़ना; ये सम्पूर्ण अद्भुत कर्म सिवाय ईश्वरके अन्य कौन कर सक्ता है?॥२७॥ ब्रजमें गऊ और गोपगण यमुनाका विषदूषित जल पीकर अकालमें कालकवल होंगे उस समय अमृतवर्षिणी कृपादृष्टिसे उनको कृष्णचन्द्र फिर जीवित करेंगे एवं यमुनाजलको शुद्ध करनेके लिये यमुनामें प्रवेशकरके विषम विषधर कालियनागका दमनकर उसे वहाँसे उसीक्षण निकाल देंगे। क्या ईश्वरके सिवाय और कोई यह कर्म कर सक्ता है? ॥ २८ ॥ उसी रात्रिको सब गोपगोपीगणोंके सो जाने पर घोर दावानल उस बनको जलाने लगैगा, इससे सबके प्राणोंपर संकट आ पड़ेगा तब अचिन्त्यवीर्य श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवसहित सबके नेत्र बन्द कराकर आप उस दावानलको पी लेंगे। यह भी अलौकिक कार्य है ॥२९॥ कृष्णकी माता यशोदा उनको बाँधनेके लिये जितनी रस्सियाँ लाईं वे सब ही छोटी पड़ गईं तदनन्तर गोपी यशोदा जमुहाई लेते हुए कृष्णके मुखमें चौदह भुवन देखकर भयभीत हुईं और उनको ज्ञान हुआ कि यह साधारण बालक नहीं है ॥ ३० ॥ कृष्णचन्द्र वरुणके पाशके भयसे नन्दको मुक्त करेंगे। मयासुरका पुत्र व्योमासुर ग्वालबालोंको हर कर एक बिलमें बन्द करेगा, हरि उनको वहाँसे छुड़ावेंगे एवं जो सब गोपगण केवल दिनको अपने २ कार्यमें प्रवृत्त रह कर रात्रिको

---

१ "उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महामुने ॥" विष्णुपु०। अर्थात् हरिने भूभारके उद्धारके लिये एक श्वेत और एक कृष्ण अपना केश उखाड़ा उसमें श्वेतसे बलभद्र व कृष्णसे कृष्णचन्द्र (देवकी व रोहिणीके गर्भसे) उत्पन्न हुए।

निद्राके वश रहते हैं उनको वैकुण्ठ लोकमें ले जायँगे ॥ ३१ ॥ कृष्णकी अवस्था जब सातवर्षकी होगी, उस समय गोपोंको अपनी पूजा उठाकर गोवर्धनकी पूजा करते देख क्रोध करके इन्द्र देव व्रजको विनष्ट करनेकी इच्छासे घोर वर्षा करेंगे, तब कृष्ण-चन्द्र कृपापूर्वक पशु और व्रजकी रक्षा करनेके लिये निरन्तर सात दिन तक बाएँ हाथ पर महापर्वत गोवर्धनको उठाकर लीलापूर्वक जैसे बालक धरतीके फूलको सहजमें उठा लेता है वैसे खड़े रहेंगे व व्रजकी रक्षा करेंगे ॥३२॥ भगवान् रासलीला करनेकी अभिलाषासे सुन्दर शरद ऋतुकी चाँदनी रातमें यमुनातीरके कुंजवनोंमें विचरते हुए मधुर मधुर मुरली बजाकर जब ललित गान गावेंगे उससमय मन्मथने मथ डाले हैं मन जिनके ऐसी गोपियाँ घरसे कृष्णके समीप आवेंगी; कुबेरका सेवक चन्द्रचूड यक्ष उनका हरण करेगा, तब भगवान् उस दुष्टको मारेंगे ॥३३ ॥ प्रलम्बासुर, बका-सुर, धेनुकासुर, केशी, अरिष्ट, मल्ल, कुवलयापीड़ हाथी, कंस, कालयवन, द्विविद वानर, पौण्ड्रक, शाल्व, नरकासुर, बल्वल, दन्तवक्र, सात बैल, शम्बर, विदूरथ और रुक्मीआदिक ॥३४॥ एवं काम्बोज, मत्स्य, कुरु, सृञ्जय व केकय आदि देशोंके अन्य २ जो कोई राजा धनुष बाण लेकर युद्धमें महा अहंकार करेंगे वे सभी बलभद्र भीम व अर्जुन-स्वरूप श्रीकृष्णके हाथोंसे प्राणत्याग करके वैकुण्ठमें जायँगे ॥३५॥ युग२में काल-वश मनुष्योंकी बुद्धि ओछी और आयु क्षीण होती देखकर "मेरे रचित वेदका जा-नना इनलोगोंके लिये दुष्कर होगया है" यह विचारकर भगवान् सत्यवतीके गर्भसे वेदव्यासरूपसे उत्पन्न होकर वेदवृक्षकी शाखाओंका विभाग करेंगे ॥३६॥ देवतोंसे शत्रुता रखनेवाले असुरगण उत्तमरूपसे वेदमार्गका अवलंबन करके मयदानवकी बनाई दुर्लक्ष्य वेगवाली पुरियोंसे लोगोंका विनाश करनेपर जब उद्यत होंगे तब वही भगवान् उन असुरोंकी बुद्धिको भ्रमित करने और लोभ उत्पन्न करनेको बुद्ध अव-तार लेकर पाखण्डवेषसे उन असुरोंको विविध उपधर्मों (पाखण्डधर्म) की शिक्षा देंगे ॥३७॥ कलियुगके अन्तसमय जब साधुओंके घरोंमें भी हरिकी कथा न होगी, जब ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य नास्तिक हो जायँगे, जब शूद्रलोग राज्यशासन करेंगे, एवं जब स्वाहा स्वधा और वषट्कारकी वाणी न सुनाई देगी, उसी समय भगवान् कल्कि अवतार लेकर कलिका शासन करेंगे ॥ ३८ ॥ वत्स! सृष्टिके समय मेरा किया हुआ तप, स्वयं मैं और नव प्रजापति तथा पालनके समय धर्म, विष्णु, मनु, देवेश और राजालोग एवं प्रलयकालमें अधर्म शिव व क्रोधवश सर्प आदि देवगण–सब ही उस सर्वशक्तिमान् भगवान्की मायामय विभूतियाँ हैं॥३९॥ नारद! कोई भी विष्णुकी अनन्त विभूतियोंकी गिनती नहीं कर सक्ता, जो पृथ्वीके परमाणुतक गिन सक्ते हैं वे चतुर पुरुष भी नहीं पार पा सक्ते। विष्णुने एक समय अपने प्रतिघातरहित चरणके वेगसे तीनों गुणोंके (ऐक्यरूप माया वा प्रकृति) अधिष्ठान-को कम्पितकरके विचरण किया जिससे सत्यलोक भी कम्पित हो उठा; इसीसे उन्होने सत्यलोकको धारण किया ॥ ४० ॥ तुम्हारे बड़े भाई ये सब मुनि एवं मैं

उस मायाबलसम्पन्न पुरुषका अन्त जाननेको नहीं समर्थ हुए, तब जो हमारे पीछे उत्पन्न हुए हैं वे कैसे जान सक्ते हैं; आदिदेव शेष भी हजार मुखोंसे नित्य-प्रति हरिके गुणोंका कीर्तन करके आजतक अन्त नहीं पाते हैं ॥४१॥ जिन सज्जनों-पर भगवान्‌की दया है वे कपट त्याग कर एकाग्र मनसे भगवान्‌के चरणकी शरण लेकर अतिदुस्तर देवमायाके पार पहुँच सक्ते हैं; मरनेके बाद कुत्ता और सियारोंका आहार जो यह शरीर है उसमें उनको "मैं हूँ" "मेरा है" यह अभिमान नहीं होता ॥ ४२ ॥ मैं, सनकादिक, तुमलोग, भगवान् शिव, दानवश्रेष्ठ प्रल्हाद, मनुकी स्त्री और मनु, मनुके पुत्र और कन्यागण, प्राचीनबर्हि, ऋभु, अंगिरा व ध्रुव उस ईश्व-रकी योगमायाको जानते हैं॥४३॥ इक्ष्वाकु, ऐल, मुचुकुन्द, जनक, गाधि, अंबरीप, सगर, गय, ययाति, मांधाता, अलर्क, शतधन्वा, अनु, रन्तिदेव, देवव्रत, बलि, अमूर्तिरय, दिलीप, सौभरि, उतंक, शिवि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर, भूरिसेन, एवं विभीषण, हनुमान्, शुक, अर्जुन, आर्ष्टिषेण, दत्ता-त्रेय, विदुर और श्रुतदेव आदि अन्य २ महात्मागण उस हरिकी योगमायाको जानते हैं ॥४४॥४५॥ अधिक क्या कहें—स्त्री, शूद्र, हूण, शबर आदि नीचजातिके लोग भी उसी अद्भुतपराक्रमवाले भगवान्‌के भक्त होनेपर एवं साधु चरित्रकी शिक्षा पानेपर देवमायाको जान सक्ते हैं एवं उससे मुक्ति पा सक्ते हैं; अतएव जो लोग अनन्यमन होकर भगवान्‌की भक्ति करते हैं वे नीचसे नीच होनेपर भी मायाका अन्त पा सक्ते हैं तब सज्जन महात्मोंका क्या कहना है? ॥ ४६ ॥ मुनिगण जिसको नित्यशान्त, नित्यसुखमय, शोकशून्य, भयरहित, ज्ञानस्वरूप, निर्मल, विषय व इन्द्रि-योंके संगसे हीन और परमार्थतत्व कहते हैं, जिसको उत्पत्ति आदि चार प्रकारका क्रियाओंका फल नहीं होता, जिसका ज्ञान शब्दद्वारा नहीं हो सक्ता एवं जिसके आगे खड़े होते मायाको लज्जित होना पड़ता है—वही भगवान्‌का स्वरूप है। जिस प्रकार कोई दरिद्र व्यक्ति धनलाभके लिये पृथ्वी खोद कर धन प्राप्त होनेके उपरान्त खनित्र (फडुहे आदि)का त्याग कर देता है अथवा जैसे जलके लिये कूप खोदनेवाला व्यक्ति खनित्रद्वारा खोदनेके पश्चात् जल पानेके उपरान्त जलपानेके साधन उस खनित्रको त्याग कर आपही जलका स्वामी हो जाता है अर्थात् उसे फिर खनित्रकी आवश्यकता नहीं रहती उसी प्रकार यत्नशील योगीगण भी उसी भगवान्‌के रूपमें मनको निश्चलरूपसे जब लगा पाते हैं तब भेदभ्रमका निवारण करनेवाले साधनस्वरूप ज्ञानका भी त्याग कर देते हैं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ वह भगवान् ही सम्पूर्ण फलोंके देनेवाले हैं क्योंकि ब्राह्मण आदि मनुष्य गण जिन समग्र शुभ कार्योंका अनुष्ठान करते हैं, प्रसिद्धि है कि वही उन सबके प्रवर्तक हैं। उपादानकारण स्थूल शरीरके विनष्ट होने पर भी जसे देहके भीतरका आकाश उसके संग ही संग वियोगको प्राप्त नहीं होता वसेही आत्मारूप वह ईश्वर भी इस देहके साथ ही साथ विनष्ट नहीं होता क्योंकि वह जन्मरहित है ॥ ४९ ॥ पुत्र!

मैंने संक्षेपसे तुम्हारे निकट उसी भगवान्का यह स्वरूप वर्णन किया है। कार्य व कारणरूप सम्पूर्ण वस्तु वें वही कारणरूप नारायण हैं ॥५०॥ मुझसे भगवान्ने जो यह सब कहा था—इसीका नाम "भागवत" है, यही भागवत भगवान्के ऐश्वर्यका संग्रह है, तुम विस्तारसे इसका वर्णन करो ॥५१॥ जैसे सर्वात्मा सर्वाधार भगवान् हरिमें मनुष्योंकी भक्ति हो, उसीप्रकार विचार करके तुम इस भागवतशास्त्रका वर्णन करो ॥ ५२ ॥

मायां वर्णयतोऽमुष्य ईश्वरस्यानुमोदतः ॥
शृण्वतः श्रद्धया नित्यं माययात्मा न मुह्यति ॥ ५३ ॥

जो व्यक्ति ईश्वरकी मायाका वर्णन करते हैं, एवं जो सुनकर आनन्दित होते हैं और जो श्रद्धासहित नित्य श्रवण करते हैं—उनका आत्मा मायामें मोहित नहीं होता ॥ ५३ ॥

इति श्रीभागवते द्वितीयस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय ।

भागवतके विषयमें शुकदेवसे राजा परीक्षित्का प्रश्न ।

राजोवाच—ब्रह्मणा चोदितो ब्रह्मन्गुणाख्यानेऽगुणस्य च ॥
यस्मै यस्मै यथा प्राह नारदो देवदर्शनः ॥ १ ॥

राजा बोले। हे ब्रह्मन्! हे तत्वके जाननेवालोंके शिरोमणि! देवदर्शन नारदने निर्गुण ईश्वरके गुणोंका वर्णन करनेके लिये ब्रह्माकी आज्ञा पाकर जिस जिससे जिस प्रकार अद्भुतवीर्य हरिकी लोकमङ्गलकारिणी कथाओंका वर्णन किया, सो सुननेकी हमारी बड़ी ही इच्छा है ॥ १ ॥ २ ॥ अतएव हे महाभाग! जैसे मैं संग-रहित अवस्थाको प्राप्त होकर उस सर्वात्मा हरिमें मन लगाकर इस कलेवरका त्याग कर सकूँ, वही उपाय मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक भगवान्के चरित्रोंको नित्य सुनता या कहता है उसके हृदयमें शीघ्रही भगवान् प्रवेश करते हैं ॥ ४ ॥ और जैसे शरद ऋतुके आनेपर जलका मैल दूर हो जाता है वैसे कानके छिद्रद्वारा साधुओंके हृदयकमलमें प्रवेश करके उसकी मलिनता(कामक्रोधादि)-को दूर कर देते हैं ॥ ५ ॥ पथिक जैसे अपने घरमें लौट आकर फिर उसके त्यागकी इच्छा नहीं करता वैसेही जब मनुष्यका आत्मा शुद्ध हो जाता है तो वह कृष्णके चरणोंको नहीं छोड़ता ॥ ६ ॥ ब्रह्मन्! पंचतत्वके साथ आत्माका कोई सं-बन्ध नहीं है, तथापि जो पंचतत्वके द्वारा विरचित शरीरसे इस आत्माका सम्बन्ध होता है वह आत्माकी इच्छासे होता है अथवा किसी कर्मके फलसे? आप यह

जानते हैं सो कृपा करके हमसे कहिये ॥ ७ ॥ उस महापुरुषकी नाभिसे लोकोंकी सृष्टिका कारणस्वरूप कमल उत्पन्न हुआ । आपने कहा कि लौकिक पुरुष जैसे अपने परिमाणके अनुरूप अंग प्रत्यंग धारण करते हैं वैसे ही वह महापुरुष भी अपने परिमाणके अनुरूप अंग धारण किये हुए है; तब साधारण पुरुषोंमें और उस महापुरुषमें क्या अन्तर है? सो कहिये ॥ ८ ॥ प्राणियोंके उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मा जिसकी कृपासे सकल प्राणियोंकी सृष्टि करते हैं एवं जिसकी नाभिसे उत्पन्न होकर जिसके अनुग्रहसे जिसका स्वरूप जाननेको समर्थ हुए ॥९॥ वही मायाके ईश्वर, विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले, सबके अन्तर्यामी पुरुष, अपनी मायाका त्याग कर निज सच्चिदानन्दस्वरूपका अवलम्बन करके जिस स्थानमें शयन किये हुए हैं वह भी हमसे कहिये ॥ १० ॥ आपने कहा कि इसी महापुरुषके अंगोंसे सकल लोक और लोकपालोंकी सृष्टि हुई है और फिर आपके ही मुखसे सुना कि लोक व लोकपालोंके द्वारा महापुरुषके अंगोंकी सृष्टि हुई है, इसका क्या तात्पर्य है?। महाकल्प और अवान्तरकल्पका परिमाण क्या है? भूत, भविष्य, वर्तमान कालका क्या परिमाण है? स्थूल शरीरके अभिमानी मनुष्य, देवगण और पितृगणकी आयुका क्या परिमाण है? ॥ ११ ॥ कालकी स्थूल और सूक्ष्म गति जो देख पड़ती है सो कहिये । हे द्विजश्रेष्ठ! जितनी और जैसी कर्मोंके अनुकूल मनुष्यादिकी गतियाँ होती हैं उन्हे भी कहिये ॥१२॥ सत्व- रज- तम, इन तीन गुणोंके फलस्वरूप देवादि योनियोंकी प्राप्तिकी इच्छावाले किस (पुण्य पाप) कर्मके किस प्रकार करनेसे किस योनिको प्राप्त होते हैं? ॥१३॥ पृथ्वी, पाताल, दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, नदी, समुद्र, पर्वत और द्वीपकी एवं इन सब स्थानोंमें रहनेवाले जीवोंकी जैसे सृष्टि हुई है, सो कहिये ॥ १४ ॥ भीतर और बाहर ब्रह्माण्डका परिमाण और महात्मा पुरुषोंका चरित्र एवं वर्ण व आश्रमोंका भेद हमसे वर्णन कीजिये ॥ १५ ॥ हरिके अवतारोंके आश्चर्यपूर्ण चरित्र, युग और युगोंका परिमाण एवं प्रत्येक युगका धर्म हमसे कहिये ॥ १६ ॥ मनुष्योंका साधारण धर्म और वर्ण आश्रमका विशेष धर्म, भिन्न२व्यवसायवाले प्राणी एवं राजऋषि और विपत्तिमें पड़े हुए मनुष्योंका क्या धर्म है? ॥१७॥ प्रकृति आदि तत्वोंकी संख्या और स्वरूप एवं लक्षण क्या हैं? अष्टांगयोगकी विधि एवं पुरुषकी आराधनाकी विधि क्या है? ॥१८॥ योगेश्वरोंके ऐश्वर्यकी गति एवं योगियोंका सूक्ष्म शरीर जैसे लय होता है सो कहिये । वेद, उपवेद, धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराणोंका स्वरूप क्या है? ॥१९॥ सब जीवोंका अवान्तर प्रलय कैसे होता है? और महाप्रलय कैसे होता है? एवं उत्पत्ति कैसे होती है? अग्निहोत्र आदि सकाम कर्म और धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्गकी क्या विधि है? ॥२०॥ जिनकी उपाधि लीन होगई है उन जीवोंकी किसप्रकार सृष्टि होती है? नास्तिक (पाखण्ड) मनुष्योंकी उत्पत्ति, एवं जीवका बन्धन व मोक्ष एवं अपने रूप(ब्रह्म)में अवस्थान (लीन होना) कहिये ॥ २१ ॥ स्वतन्त्र भगवान्

माया द्वारा किस प्रकार क्रीड़ा करते हैं एवं प्रलयकालमें मायाको त्यागकर साक्षीकी भाँति किस प्रकार अवस्थित होते हैं? ॥ २२ ॥ हे महामुनि! ये सब बातें मैं आपसे सुनना चाहता हूँ, आप मुझ शरणागतसे क्रमशः यथार्थ वर्णन कीजिये ॥२३॥ आत्मभू ब्रह्माके समान आप इन सब विषयोंमें प्रमाणस्वरूपहैं क्योंकि अन्य मुनिगण पूर्ववर्ती मुनियोंके कहे हुए विषयोंका ही वर्णन करते हैं॥२४॥ महाशय! उपवास और ब्रह्मशापके भयसे मेरा चित्त चञ्चल नहीं है, क्योंकि मैं आपके वचनरूप सागरसे निकले हुए हरिकथारूप अमृतका पान कर रहा हूँ ॥ २५ ॥ **सूतजी कहते हैं।** हे ऋषिगण! योगियोंमें श्रेष्ठ श्रीशुकदेवजी सभाके बीच भक्त-श्रेष्ठ परीक्षित्के किये हुए नित्य प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रविषयक प्रश्न सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और ब्रह्मासे श्रीविष्णुने ब्रह्मकल्पमें जो वेदतुल्य भागवत पुराण कहा था वही कहने लगे ॥ २६ ॥ २७ ॥

यद्यत्परीक्षिदृषभः पाण्डूनामनुपृच्छति ॥
आनुपूर्व्येण तत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ २८ ॥

पाण्डवश्रेष्ठ राजा परीक्षित्ने जो जो प्रश्न किये थे श्रीशुकजी उन२का क्रमसे उत्तर देनेलगे ॥ २८ ॥

इति श्रीभागवते द्वितीयस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय ।

शुकदेवकर्तृक भागवतका आरम्भ ।

श्रीशुक उवाच—आत्ममायामृते राजन्परस्यानुभवात्मनः ॥
न घटेतार्थसंबन्धः स्वप्नद्रष्टुरिवाञ्जसा ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले। राजन्! जैसे स्वप्नमें देख पड़ रहा देह आदिके साथ स्वप्न देखनेवालेका संबंध असंभव है वैसे परमपुरुष विष्णुकी मायाके सिवाय और किसीकारणसे देह आदिके साथ अनुभव-स्वरूप आत्माका यथार्थ सम्बन्ध नहीं होसक्ता ॥१॥ बहुरूपवाली मायाके साथ क्रीड़ा कर रहा आत्मा बहुरूप प्रतीत होता है एवं इस मायाके गुणोंमें रमण करता हुआ देह आदिमें "मैं हूँ" "मेरा है" इस प्रकार मानता है ॥२॥ किन्तु जब आत्मारूप परमात्मा प्रकृति और पुरुषसे परे जो अपनी महिमा है उसमें अवस्थित होकर विहार करता है तब "मैं हूँ" "मेरा" है—इस मायाजनित मोहको त्याग कर पूर्ण (सच्चिदानन्दमय) अवस्थाको प्राप्त होता है ॥३॥ भगवान्ने कपटरहित तप द्वारा सेवित होकर अपना ज्ञानमय रूप दिखाकर ब्रह्मासे जो कहा है, वह तत्वज्ञानके लाभके लिये जीवोंको जानना एकान्त आवश्यक है

॥४॥ सृष्टिके आदिकालमें जगत्के परम गुरु आदिदेव ब्रह्माजी अपने उत्पत्तिस्थान कमलपर बैठकर सृष्टि करनेकी चिन्ता करने लगे कि कैसे सृष्टि करूँ? किन्तु जिस ज्ञानसे निश्चय ही इस सृष्टिके प्रपंचको कर सकें एवं सृष्टिका प्रकार जाना जाय, ऐसा ज्ञान किसी प्रकार ब्रह्माजी न प्राप्त कर सके ॥५॥ इस प्रकार चिन्ता करते २ एक समय ब्रह्माजीने जलमें अपने ही निकट दो अक्षरका एक शब्द दो बार सुना। उस शब्दका प्रथम अक्षर स्पर्शसंज्ञक अक्षरोंमें सोलहवाँ अक्षर (त) और इक्कीसवाँ अक्षर (प) था, जो निष्किंचन योगियोंका धन है ॥ ६ ॥ विधाता ये वर्ण सुनकर इस शब्दके कहनेवालेको देखनेकी इच्छासे चारो ओर देखने लगे, पर किसीको न देखा, तब तपको ही अपने हितका साधन जानकर पद्मासनपर बैठ तपमें ही मन लगाया, उनको प्रतीत हुआ मानों किसीने साक्षात् होकर इस विषयमें उपदेश दिया है कि तुम तप करो ॥७॥ निष्फल नहीं है ज्ञान जिनका ऐसे तपस्वियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने वायु एवं ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियोंको वशमें करके एकाग्रमन होकर दिव्य हजार वर्ष तक संपूर्ण लोकोंका प्रकाश करनेवाली तपस्या की ॥८॥ उस तपसे प्रसन्न होकर भगवान्ने उनको परमश्रेष्ठ वैकुण्ठ नाम अपना धाम दिखाया, जहाँ क्लेश व भय नहीं है, जिसकी सुकृती लोग सदा प्रशंसा करते हैं ॥९॥ जहाँ शुद्ध सतोगुण है, रजोगुण तमोगुणका लेश नहीं है, जहाँ कालका पराक्रम अर्थात् जन्म-मृत्यु नहीं है, लोभ आदिकी कौन कहै वहाँ माया भी नहीं रह सक्ती, वहाँ सुरासुरपूजित भगवद्भक्त पार्षदगण निवास करते हैं ॥ १० ॥ उन पार्षदोंका वर्ण शुद्ध श्याम है, नेत्र कमलके तुल्य हैं, पीतांबर पहने हुए हैं, कान्ति अत्यन्त मनको हरनेवाली एवं अङ्ग परम कोमल हैं, सब चतुर्भुज हैं एवं उत्तम प्रभायुक्त मणिमय अनेक सुवर्णके अलंकारोंसे अलंकृत और अनन्ततेजयुक्त हैं; उनकी प्रभा-मूँगा, वैडूर्य्य, और कमलके समान है एवं वे लोग कानोंमें दीप्तिमान् कुण्डल और मस्तकमें माला धारण किये हैं ॥११॥१२॥ वह वैकुण्ठ महात्मालोगोंके सुन्दर विमानोंकी पंक्तियोंसे चारो ओर व्याप्त एवं श्रेष्ठ दिव्य अंगनाओंकी कान्तिसे इस प्रकार प्रकाशित है जैसे बिजली और मेघोंकी मालासे आकाश शोभा पाता है ॥ १३ ॥ वहाँ मूर्तिमती लक्ष्मीजी विविध विभूतियोंके साथ अनेक प्रकारसे विख्यातकीर्ति भगवान्के चरणोंकी सेवा करती हैं एवं वसन्तके अनुचर भ्रमरगणोंके संगीतको सुनती हुई स्वयं हरिके सुन्दर गुणोंका गान करती हैं ॥ १४ ॥ उस वैकुण्ठमें प्राप्त होकर ब्रह्माजीने देखा कि सब भक्तोंके स्वामी, लक्ष्मीके पति, यज्ञके पति और समग्र जगत्के पति ईश्वर हरि विराजमान हैं । सुनंद, नंद, प्रबल, अर्हण आदि पार्षद श्रेष्ठ चारों ओर खड़े हुए हरिकी सेवामें तत्पर हैं ॥ १५ ॥ भगवान्के देखते ही बोध होता है मानो वह भृत्यगणोंको प्रसाद देनेको प्रस्तुत हैं, उनके दोनों नेत्र मद्यकी भाँति मतवालापन बरस रहे हैं अथवा नेत्रोंकी अरुणतासे प्रतीत होता है मानों मतवाले हैं। सुप्रसन्न मुख, हास्य और अरुण लोचनोंसे सुशो-

भित है; शिरपर किरीट मुकुट, कानोंमें कुण्डल एवं पीताम्बर धारण किये हैं, विशाल चार भुजा हैं एवं वक्षस्थलमें लक्ष्मीजी वास कर रही हैं ॥१६॥ वह परम पुरुष ईश्वर (पुरुष, प्रकृति, महत्तत्व और अहंकार ये) चार शक्ति और (दश इन्द्रिय, ग्यारहवाँ मन व पाँच आकाशादि महत्तत्त्व ये) सोलह शक्ति एवं (शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श ये) पाँच शक्ति और अपने स्वाभाविक ऐश्वर्य एवं योगीलोगोंके आगन्तुक ऐश्वर्यसे परिवृत होकर एक परम उत्तम आसन पर विराजित हैं एवं अपने ही रूप (नित्यआनन्द) में रमण कर रहे हैं ॥ १७ ॥ भगवान्का ऐसा परमोत्तम रूप देख कर ब्रह्माका हृदय आनन्दसे पूर्ण हो गया, उनके अंगोंमें मारे आनन्दके रोमांच हो आया, नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आये, उस समय विश्वके विधाता ब्रह्माने भगवान्के उन चरणकमलोंमें नमस्कार किया, जो ज्ञानमार्गका अवलंब लेनेसे ही प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ प्रणयके पात्र, उपदेश देनेके सुयोग्य पात्र और प्रजाओंकी सृष्टि करनेके लिये उपस्थित, प्रसन्नचित्त एवं विनयसे अवनत ब्रह्माका हाथ पकड़कर प्रीतिपात्र श्रीविष्णुजी प्रसन्नमनसे हँसते २ बोले ॥ १९ ॥ "हे वेदगर्भ ! सृष्टि करनेकी इच्छासे बहुकाल तप करके तुमने मुझे भली भाँति संतुष्ट किया। मुझे कपटयोगी कदापि प्रसन्न नहीं कर सक्ते! ॥२०॥ तुम्हारा मंगल हो, तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर मुझ वरदानके स्वामीसे माँगो क्योंकि जबतक मेरा दर्शन नहीं होता तभीतक पुरुषको मंगलरूप फलके पानेके लिये परिश्रम करना पड़ता है ॥२१॥ तुमने जो मेरे इस वैकुण्ठलोकका दर्शन किया सो मेरी ही इच्छाके प्रभावसे, क्योंकि निर्जनमें "तप तप" यह वाणी सुनकर तुमने यह परम तप किया जिससे तुमको मेरे लोकका दर्शन हुआ ॥२२॥ सृष्टि करनेके लिये जब तुमको कोई कर्तव्य न जान पड़ा और तुम मोहको प्राप्त हुए तब मैंने ही "तप तप" यह उपदेश तुमको दिया ! हे पापरहित! तप साक्षात् मेरा हृदय है और तपका स्वरूप मैं हूँ ॥२३॥ मैं तपके ही बलसे विश्वकी उत्पत्ति, पालन और संहार करता हूँ । तपसे ही मैं संसारको धारण करता हूँ, दुष्कर तप ही मेरा वीर्य (पराक्रम) है" ॥२४॥ ब्रह्माजी बोले । हे प्रभु ! आप ऐश्वर्ययुक्त और सब तत्त्वोंके अधिष्ठाता हैं सुतरां सबकी ही बुद्धियोंके व्यापारका अवलम्बन किये हुए हैं अर्थात् सबकी बुद्धियोंमें स्थित हैं, अतएव अपनी अप्रतिहत प्रज्ञाके बलसे आप अपना उद्देश्य जाननेमें समर्थ हैं ॥ २५ ॥ किन्तु आपका उद्देश्य जाननेके लिये तपद्वारा प्रार्थना करता हूँ कि हे नाथ! रूपरहित जो आप हैं उनके स्थूल और सूक्ष्म दोनो भाँतिके रूप जैसे जान सकूँ वैसा उपदेश आप मुझको दीजिये ॥ २६ ॥ आपका संकल्प किसी प्रकार अन्यथा नहीं होता। जैसे मकड़ा जालेसे अपनेको ढँककर क्रीड़ा करता है वैसे आप स्वयं ब्रह्मादिरूप धारण करके इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं, मैं जिस बुद्धिसे वह सब जान सकूँ, हे लक्ष्मीपति! आप मुझको वही निर्मल बुद्धि दीजिये ॥२७॥२८॥ आपसे उपदेश पानेपर मैं आलस्य त्याग कर सृष्टि

करनेमें प्रवृत्त होऊँगा, आपका अनुग्रह होनेसे प्रजासृष्टिके समय अहंकार आदि मुझको न मोहित कर सकेंगे ॥२९॥ ईश्वर! सखा जैसे सखाके साथ व्यवहार करता है, आपने मेरा हाथ पकड़कर मुझसे वैसा ही व्यवहार किया है, अतएव जिस समय मैं स्थिरचित्त होकर प्रजासृष्टि करके आपकी सेवा करनेमें प्रवृत्त होऊँगा तव "मैं भी विधाता हूँ" ऐसा अहंकार मुझको न हो, ऐसी कृपा आप कीजिये, हे प्रभु! यह गर्व ही उत्कट मद है ॥३०॥ **श्रीभगवान् बोले** । ब्रह्माजी! मेरे तत्वका ज्ञान, विज्ञान और भक्ति परम गुप्त है, तथापि मैं वह सब साधनसहित तुमसे कहता हूँ, सावधान होकर सुनो ॥३१॥ मेरा जो स्वरूप है और सत्व, रूप, गुण एवं कर्म हैं सो सब तुम मेरे अनुग्रहसे ठीक २ जान सकोगे ॥ ३२ ॥ सृष्टिके प्रथम केवल एक मैं ही था, उससमय क्या सूक्ष्म पदार्थ, क्या स्थूल पदार्थ, क्या उनका कारण प्रधान तत्व कुछ भी न था । सृष्टिके अन्तमें भी मैं ही शेष रहता हूँ; यह सम्पूर्ण विश्वका प्रपञ्च जो देख पड़ता है सो भी मैं हूँ एवं इस सृष्टिके अन्तमें जो कुछ रह जाता है वह भी मैं हूँ। मैं अनादि, अनन्त, अद्वितीय अतएव पूर्णस्वरूप हूँ ॥३३॥ अर्थशून्य होनेपर भी "दो चन्द्रमा" आदिके सदृश जो प्रतीत होता है एवं यथार्थ पदार्थ होने पर भी राहुके सदृश जो नहीं प्रतीत होता, हे ब्रह्माजी! उसी वस्तुको मेरी माया जानो ॥३४॥ जैसे महाभूत (पंचतत्व) भौतिक पदार्थोंमें प्रविष्ट हैं भी और नहीं भी प्रविष्ट हैं वैसे ही मैं सम्पूर्ण जगत्में अवस्थित भी हूँ और नहीं भी अवस्थित हूँ ॥३५॥ अन्वय और व्यतिरेक अर्थात् कार्य और कारण रूपसे जो सर्वदा सब स्थानमें विराजमान है वही परमात्मा है । आत्माका तत्व जाननेकी इच्छावाले मनुष्यको इतना ही जानने योग्य है अर्थात् यही आत्माका तत्व है ॥३६॥ तुम एकाग्र मन होकर परम समाधिसे इस मेरे मतका सम्पूर्ण रूपसे अनुष्ठान करो तो कल्पकल्पान्तरमें कदापि तुमको "मैं कर्ता हूँ" इस प्रकारका मोह न होगा ॥३७॥ **शुकजी कहते हैं** । हे राजन्! इसप्रकार जन्मरहित ईश्वरने लोकाधिपति विधाताको उपदेश देकर उनके देखते ही देखते अपने उस रूपको छिपालिया ॥३८॥ तब सर्वप्राणिमय ब्रह्माने अन्तर्हितशरीर हरिको हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और फिर पहलेकी भाँति इस जगत्को उत्पन्न किया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर एक समय धर्मके पति प्रजापति ब्रह्माजीने "प्रजाओंका मंगल हो" इसी अपने उद्देश्यके सिद्ध करनेके लिये नियमपूर्वक तपका आरम्भ किया ॥ ४० ॥ उस समय ब्रह्माके प्रिय पुत्र नारदजी मायाके स्वामी विष्णुकी मायाके जाननेके लिये, शील विनय और इन्द्रियदमनपूर्वक ब्रह्माजीकी सेवा करने लगे एवं हे राजन्! भगवद्भक्त देवऋषि नारदने इसप्रकार सेवा करके पिताको सन्तुष्ट किया ॥४१॥४२॥ संपूर्ण लोगोंके प्रपितामह अपने पिता ब्रह्माको प्रसन्न देख कर देवऋषिने उनसे यही प्रश्न किया जो तुम इस समय मुझसे कर रहे हो ॥४३॥ तब विधाताने प्रसन्न होकर जो भगवान्से चार श्लोकोंमें संक्षेपसे द्वादशलक्षणयुक्त भागवतशास्त्र सुना था वही अपने पुत्र

नारदसे वर्णन किया ॥ ४४ ॥ राजन्! अनन्ततेजसंपन्न महर्षि व्यासदेव जिस समय सरस्वती महानदीके तटपर बैठे हुए परब्रह्मका ध्यान करते थे, उसी समय नारदने वहाँ जा कर इस भागवतका उपदेश उनको दिया ॥ ४५ ॥

यदुताहं त्वया पृष्टो वैराजात्पुरुषादिदम् ॥
यथासीत्तदुपाख्यास्ये प्रश्नानन्यांश्च कृत्स्नशः ॥ ४६ ॥

जो तुमने मुझसे पूँछा कि विराट् पुरुषसे यह विश्व किस प्रकार उत्पन्न हुआ है, एवं अन्य अन्य जो प्रश्न किये हैं मैं उन सब तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर यथाक्रम यथार्थ-रूपसे देता हूँ, सुनो ॥ ४६ ॥

इति श्रीभागवते द्वितीयस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय ।

भागवतके दशलक्षणोंका वर्णन।

श्रीशुक उवाच—अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ॥
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले । हे राजन्! इस भागवतमें सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण ऊती, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय ये ही दश विषय वर्णित हैं ॥१॥ इनमें दसवें (आश्रय) पदार्थका तत्व जाननेके लिये महात्मालोग कहीं श्रुति कहीं साक्षात् वा कहीं तात्पर्य द्वारा अन्य नव पदार्थोंके स्वरूपका वर्णन करते हैं ॥२॥ मायाके गुण ग्रहण किये हुए परमेश्वरमें जिस प्रकार पंच महाभूत, शब्दादि तन्मात्रा, इन्द्रिय व महत्तत्व उत्पन्न होकर उसी विराट्रूप परमेश्वरमें अवस्थित होते हैं, इसका नाम "सर्ग" है, ब्रह्माकी सृष्टिका नाम "विसर्ग" है ॥३॥ भगवान्की उत्पन्न की हुई सब वस्तुवें अपनी २ मर्यादाका पालन करके जो उत्कर्ष प्राप्त करती हैं उसका नाम "स्थिति" (स्थान) है। अपने भक्तोंके प्रति ईश्वरकी अनुग्रहका नाम "पोषण" और अनुग्रहीत साधुओंके धर्मका नाम "मन्वन्तर" है, एवं कर्मवासनाका नाम "ऊती" है ॥ ४ ॥ भगवान्के अवतारोंका कथन एवं ईश्वरकी आज्ञाके अनुवर्ती पुरुषोंकी पवित्र कथाका नाम "ईशानुकथा" है, जिनमें अनेक आख्यान हैं ॥ ५ ॥ शक्तियोंके साथ योगनि-द्राका अवलम्बन करके प्रलयकालमें हरिके शयन करनेपर हरिमें जीवके लय होनेका नाम "निरोध" है। मायाजनित अन्यथा रूपको त्याग कर आत्माका अपने रूपमें स्थित होना, इसीका नाम "मुक्ति" है ॥ ६ ॥ राजन्! जिससे इस चराचर जगत्की उत्पत्ति पालन व नाश होता है एवं जिसको परब्रह्म व परमात्मा कहते हैं

उसीका नाम "आश्रय" है ॥७॥ जो यह आध्यात्मिक पुरुष (चक्षुआदि इन्द्रियोंका अभिमानी द्रष्टा जीव) है वही आधिदैविक (चक्षुआदिका अधिष्ठाता सूर्य आदि) है। इन दोनोंके अतिरिक्त आधिभौतिक देह भी पुरुष नामसे कथित है ॥ ८ ॥ आध्यात्मिक आदि तीनोमें एकका अभाव होनेपर जब हम अन्य दोनोंको नहीं देख पाते तब जो आत्मा साक्षीरूपसे इन तीनोको देखता वा जानता है उसीका नाम आश्रय या ब्रह्म है, उसका आश्रय कोई नहीं है, वही सबका आश्रय है ॥९॥ विराट् पुरुप जब कारणाण्डको भेदकर निर्गत हुआ तब अपने अवलंबनस्वरूप स्थानकी चिन्ता करने लगा। तदनन्तर उस शुद्ध विराट्पुरुपने शुद्ध जलको उत्पन्न किया ॥ १० ॥ उस विराट् पुरुपका नाम नर है, जल उसी नरसे उत्पन्न हुआ इससे उसका नाम नार हुआ, पुरुपने उसी जलको अपना अयन नाम स्थान बनाया, इसीसे उस पुरुपका नाम नारायण हुआ। उसी जलमें वह विराट् पुरुप सहस्त्र वर्षतक रहा ॥ ११ ॥ पंचतत्व, काल, कर्म, प्रकृति और जीव उसीके अनुग्रहसे अपने २ कार्यका सम्पादन कर सक्ते हैं एवं उन्हीकी उपेक्षासे नष्ट हो जाते हैं ॥१२॥ वही विराट्रूप एक मात्र सर्वशक्तिमान् परमेश्वर जब "मैं एक हूँ अब बहुत रूप धारण करूँ" यह इच्छा करके योगशय्यासे उठे तब उन्होने अपने सुवर्णसम दीप्तिमान् वीर्यके मायाद्वारा तीन भाग किये ॥१३॥ उस वीर्यके अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैव ये तीन भाग किये; राजन्! इन तीन भावोंकी उत्पत्ति कैसे एक पुरुपके वीर्यसे हुई सो सुनो ॥१४॥ उस पुरुपके अन्तरमें जो आकाश था उसके साथ उस (पुरुप) के क्रियायुक्त होनेकी चेष्टा होनेसे ओज (इन्द्रियशक्ति), सह (मनकी शक्ति) और बल (देहशक्ति) इन तीन शक्तियोंका प्रकाश हुआ; तदनन्तर इन तीनों शक्तियोंका सूत्ररूप और मुख्यअंशरूप प्राण प्रकाशित हुआ ॥१५॥ प्रभुतुल्य प्राण जब चेष्टा करता है तब सेवकतुल्य इन्द्रियाँ उसके पीछे २ कार्यमें प्रवृत्त होती हैं एवं उसकी निवृत्ति होनेपर वे भी निवृत्त होती हैं ॥ १६ ॥ प्राणका संचार होनेपर विभु विराट् पुरुपके भूख और प्यास लगी; तब भोजन व पान करनेकी इच्छा करनेपर प्रथम उनके मुख उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥ फिर मुखसे तालु, जिह्वा और अनेक रस उत्पन्न हुए, जिह्वासे उन समग्र रसोंका स्वाद लिया जाता है ॥१८॥ फिर विराट् पुरुपने जब कुछ बोलना चाहा तो उस मुखसे वाक्य और उसके अधिष्ठाता देवता अग्नि उत्पन्न हुए। पुरुपके जलमें शयनके समय ये इन्द्रिय व इनके अधिष्ठाता देवता दोनो ही बहुत काल तक रुद्ध रहे ॥१९॥ जब प्राणवायु अत्यन्त विचलित हुआ तब पुरुपके दो नासिका-छिद्र उत्पन्न हुए, फिर जब गन्ध सूँघना चाहा तो नासिकासे गन्ध और उसके देवता वायुकी उत्पत्ति हुई ॥ २० ॥ यह प्रकाशहीन जगत् विराट् पुरुपमें प्रथम अवस्थित था, तदनन्तर विराट् पुरुपने अपनी मूर्ति एवं अन्य२

१ विषय रूप रस आदि। २ चक्षु आदि इन्द्रिय। ३ इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता सूर्य आदि।

वस्तुओंके देखनेकी इच्छा की तब उसके दो चक्षु और चक्षुके अधिष्ठाता देवता सूर्य और दर्शन इन्द्रिय उत्पन्न हुई, जिससे रूपका ग्रहण होता है ॥२१॥ ऋषिगण वेदवाक्यद्वारा उस विराट् पुरुषको जगाने लगे तब पुरुषने उसको सुननेकी इच्छा की उससमय दो कानोंके छिद्र, श्रवण इन्द्रिय और उसकी अधिष्ठात्री दिशाएँ उत्पन्न हुईं, श्रवण इन्द्रियका विषय शब्द सुनना है ॥ २२ ॥ अनन्तर पुरुषने समग्र वस्तुओंकी कोमलता, कठिनता, लघुता, भारीपन, गर्मी और ठण्ढापन ग्रहण करनेकी इच्छा की तब रोमयुक्त त्वचा (खाल) और त्वक् इन्द्रिय एवं उसका अधिष्ठाता देवता वायु उत्पन्न हुआ, जो उस(त्वचा)के भीतर बाहर स्थित होकर स्पर्शरूप विषयका ग्रहण करता है ॥ २३ ॥ जब पुरुषको विविधकर्म करनेकी इच्छा हुई तब दो हाथ निकले एवं हस्त इन्द्रिय और इन्द्रदेवता उत्पन्न हुए। उन हाथोंमें आदान और प्रदानादिके आश्रयीभूत बल नामक शक्ति अवस्थान करती है ॥ २४ ॥ ऐसे ही जब आदिपुरुषने गमन करनेकी इच्छा की तब उनके दो पैर उत्पन्न हुए। यज्ञरूपी विष्णु स्वयं उन दोनो पैरोंके अधिष्ठाता देवता हैं। मनुष्यगण उसी गति नामक कर्म—शक्तिद्वारा यज्ञ आदिका सम्पादन करते हैं ॥ २५ ॥ भगवान्ने जब पुत्र, स्त्रीसंभोग और स्वर्गादिकी इच्छा की तब उनके शिश्न उत्पन्न हुआ एवं उपस्थ इन्द्रिय और उसके देवता प्रजापतिकी उत्पत्ति हुई। स्त्रीसंभोगका सुख इस इन्द्रिय एवं इसके अधिष्ठाता देवताके आधीन है ॥२६॥ जब विराट् पुरुषने मलत्याग करना चाहा तब गुदाछिद्र एवं गुह्य इन्द्रिय और अधिष्ठाता देवता मित्र उत्पन्न हुए। मलका त्याग गुह्य इन्द्रिय व मित्रदेवता दोनोके आश्रित है ॥२७॥ भगवान्ने जब देहसे देहान्तरमें जानेकी इच्छा की तब उनके नाभिद्वारा मृत्युदेवतासहित अपान इंद्रिय उत्पन्न हुआ; नाभिदेशमें प्राणवायु और अपानवायुका विश्लेप होने पर मृत्यु होती है ॥ २८ ॥ जब पुरुषने रस, अन्न, और पान ग्रहण करनेकी इच्छा की तब उनके कुक्षि (कोख) अंत्र (आँत), व नाडियोंकी उत्पत्ति हुई। नदियाँ आँतोंका एवं समुद्र नाडियोंका अधिष्ठाता देवता है, तुष्टि व पुष्टि आँतों और नाडियोंके आधीन विषय हैं ॥२९॥ जब पुरुषने अपनी मायाका विचार करनेकी इच्छा की तब उनके हृदय व मन उत्पन्न हुए, संकल्प व अभिलाषा ये विषय एवं उनका अधिष्ठाता देवता चंद्रमा उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ फिर पुरुषके त्वक्, चर्म, मांस, रुधिर, मेदा, मज्जा, और अस्थि ये सात धातुएँ, पृथ्वी, जल, और तेजसे उत्पन्न हुईं। प्राणवायु आकाश, जल और वायुसे उत्पन्न हुआ ॥३१॥ सब इन्द्रियाँ स्वभावतः विषयों (शब्द, रूप, रस आदि) के अभिमुख हैं एवं वे विषय सकल भूतादि नाम अहंकारसे समुत्पन्न एवं उत्तम रूपसे प्रतीयमान हैं किन्तु वास्तवमें उत्तम नहीं हैं क्योंकि मन सब विकारोंका रूप है किन्तु बुद्धि विज्ञानरूपिणी अर्थात् परमार्थका ग्रहण करनेवाली है ॥ ३२ ॥ राजन्! मैंने भगवान्का यह स्थूलरूप तुमसे कहा है, यह विराट्रूप वहिर्भागमें प्रकृति सहित मही आदि आठ आवरणोंसे आवृत है ॥ ३३ ॥ इसके सिवाय हरिका एक

अति सूक्ष्म रूप भी है, वह अव्यक्त विशेषणशून्य, उत्पत्ति स्थिति और संहारसे रहित, नित्य एवं वाणी व मनसे न जानने योग्य है ॥ २४ ॥ राजन् मैंने ये दोनों हरिके रूप तुमसे वर्णन किये हैं, ये दोनो रूप मायाद्वारा कल्पित एवं मायाके योगसे प्रकाशित हैं, मायाके त्याग करनेपर निर्गुण निराकार ईश्वरका ज्ञान दुरूह है; इसीकारण विद्वान् पण्डितजन जगत्स्वरूप भगवान्के रूपको नित्य वा सत्य नहीं मानते ॥२५॥ (पण्डितगण ईश्वरकी सकर्म अवस्थामें ही प्रेम वा भक्ति करते हैं, श्रीशुकजी उसीका वर्णन करते हैं) ईश्वर ब्रह्मादि रूप धर कर प्राणियोंके रूप गुण व कर्मादिकी विवेचनामें वाचक या निर्देश भावसे नाम एवं वाच्य या बोधकभावसे रूपकर्मादिका सृजन करते हैं। वही मायाका ग्रहणकरके सकर्मक (जीव आदि) होते हैं वास्तवमें वह कर्महीन और निर्गुण ब्रह्म हैं ॥२६॥ वही ईश्वर—प्रजापति, मनु, देवगण, ऋषि, पितृगण, सिद्ध, चारण, गंधर्व, विद्याधर, असुर, यक्ष ॥२७॥ किन्नर, अप्सरा, नाग, सर्प, किम्पुरुष, उरग, मातृगण, राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूत, विनायक ॥२८॥ कूष्माण्ड, उन्माद, वेताल, यातुधान, ग्रह, मृग, पक्षी, पशु, वृक्ष, पर्वत और सरीसृप आदि भिन्न २ नाम, रूप, और कर्मादि सृजते हैं ॥२९॥ चर व अचर दो प्रकारके प्राणी; स्वेदज (जुवाँ चीलड़ आदि), अण्डज (कबूतर आदि) उद्भिज (वृक्ष आदि) जरायुज (मनुष्य आदि), चार प्रकारके प्राणी; एवं जलके पृथ्वीके और आकाशके सकल प्राणी; उसी भगवान्से प्रकट हुए हैं। उत्तम, मध्यम और अधम कर्मोंकी ये गतियाँ हैं॥४०॥ राजन्! सकल कर्मोंकी उत्तम, मध्यम व अधम इन तीन गतियोंके अनुसार सत्व, रज और तम इन तीन गुणोंसे क्रमशः देवता, मनुष्य और राक्षसोंकी उत्पत्ति होती है। इन तीनों गुणोंमें भी प्रत्येक गुण उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणीमें विभक्त है क्योंकि ये गुण परस्पर मिले हुए हैं ॥४१॥ वही भगवान् मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी आदि अनेक रूपसे अवतार लेकर धर्मरूपसे सम्पूर्ण विषयोंका भोग और विश्वका पालन करते हैं ॥ ४२ ॥ और संहारसमय उपस्थित होनेपर वही कालाग्निरुद्र रूपसे वायु जैसे मेघमालाका संहार करता है वैसे अपनी उत्पन्न की हुई इन सब वस्तुओंका संहार करते हैं ॥ ४३ ॥ महाराज! मैंने भगवत्श्रेष्ठ भगवान्का स्वरूप इस रीतिसे वर्णन किया है, किन्तु पण्डितोंके लिये इस रूपसे भगवान्का दर्शन करना उचित नहीं है ॥४४॥ क्योंकि इस विश्वकी सृष्टि आदि कार्य्यमें परमेश्वरके कर्तृत्वका प्रतिपादन– श्रुति (वेद)का भी तात्पर्य्य नहीं है। केवल कर्तृत्वके प्रतिषेधके निमित्त ही अर्थात् सगुणरूपद्वारा निर्गुण रूपका प्रतिपादन ही इस रूपकल्पनाका तात्पर्य है, क्योंकि निर्गुण रूप तो वाणी मनके अगोचर है! उसका प्रकाश मायासे ही होता है ॥ ४५ ॥[१] राजन्! मैंने उदाहरणस्वरूप ब्रह्माका

१ क्या अच्छी बात हो जो हमारे आर्यसमाजी व सनातनधर्मी भाई इस श्लोकको पढ़कर व समझकर अपनी भूल स्वीकार करके गले मिलकर यथार्थ धर्मका प्रचार करें। इस समय मेरा इस विषयमें हस्ताक्षेप अनावश्यक है किसी समय अवकाशके अनुसार इस विषयपर कुछ लिखूंगा पर यह दिग्दर्शनही विवेचकोंके लिये अलम् है। टीकाकार।

महाकल्प व अवान्तर कल्प संक्षेपसे वर्णन किया है। महाकल्पमें प्राकृत (महत्तत्वआदिकी कारण सृष्टि) एवं अवान्तर कल्पमें वैकृत (चराचर जगत्की) सृष्टि होती है। प्रत्येक महाकल्प व अवान्तर कल्पकी यही साधारण विधि है ॥ ४६ ॥ महाराज! कालका स्थूल, और सूक्ष्म परिमाण एवं कल्पका लक्षण व विभाग आगे कहूँगे, इस समय पाद्म कल्पका वर्णन सुनो ॥४७॥ शौनकजी बोले। सूत! तुमने कहा था कि भक्तश्रेष्ठ विदुरने दुस्त्यज बंधु बांधवोंको त्यागकर पृथ्वीके सम्पूर्ण तीर्थोंका पर्य्यटन किया एवं मैत्रेयजीके साथ अध्यात्म ज्ञानके विषयमें कथोपकथन किया। मैत्रेयसे जब विदुरने प्रश्न किये तो मैत्रेयजीने जो जो तत्व उत्तरमें वर्णन किये, आप वे सब हमको सुनाइये और विदुरने किस कारण प्रथम बांधवोंका त्याग कर दिया एवं फिर किस कारणसे घरमें लौटकर आये? सो भी कहिये ॥४८॥४९॥५०॥

सूत उवाच—राज्ञा परीक्षिता पृष्टो यदवोचन्महामुनिः ॥
तद्वोऽभिधास्ये शृणुत राज्ञः प्रश्नानुसारतः ॥ ५१ ॥

सूतजी बोले। ब्रह्मन्! राजा परीक्षित्के प्रश्न करने पर महामुनि शुकदेवजीने जो उत्तर दिया वह सब मैं राजाके प्रश्नके अनुसार आपसे कहता हूँ, आप लोग एकाग्र मनसे श्रवण कीजिये ॥ ५१ ॥

इति श्रीभागवते द्वितीयस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

समाप्तोऽयं द्वितीयस्कन्धः ।





शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

तृतीयस्कन्धः ।





· वराहरूप भगवानने हिरण्याक्षको मारा.



॥ श्रीः ॥

शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

तृतीयस्कन्धः ।



उद्धव और विदुरका सम्वाद ।

श्रीशुक उवाच—एवमेतत्पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान्किल ॥
क्षत्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत् ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले । महाराज ! आपने जो प्रश्न किये हैं, पूर्व समय महात्मा विदुर अपना समृद्धिपूर्ण राज्यभोग आदि त्याग कर जब बन गये थे उसी समयमें उन्होने मैत्रेय ऋषिसे किसी स्थानमें मिलकर उनसे ये ही प्रश्न किये थे ॥१॥ राजन् ! उन विदुरकी दयाको कहाँ तक कहें । जिन पाण्डवोंके यहाँ सबके ईश्वर भगवान्‌ने दूतका काम तक किया उनके घरमें न जाकर, परमात्मीय नीतिज्ञका आचरण दिखानेके लिये बनसे लौट कर फिर बिना बुलाये भी दुर्योधनके घरमें उसके कल्याणके लिये गये ॥२॥ राजा बोले । मैत्रेय भगवान्‌के साथ विदुरजीका समागम कहाँ हुआ था और कब सम्वाद हुआ ? हे प्रभु ! यह हमसे कहो ॥३॥ विदुरका प्रश्न तुच्छ आशय का न होगा क्योंकि उनका आत्मा शुद्ध है इससे उनका प्रश्न भगवद्विषयक होगा

अतएव अवश्य साधुसम्मत होगा और मैत्रेयजी भी ज्ञानमें श्रेष्ठ हैं इससे यह सम्वाद सुनने योग्य है, आप मुझसे कहिये ॥४॥ **सूतजी बोले** । इस प्रकार जब राजा परीक्षित्ने शुकजीसे पूँछा तब प्रसन्न होकर बहुज्ञ शुकजी बोले कि राजन्! सुनो ॥५॥ **शुकजी बोले** । जब विदुरजीने देखा कि अन्धे राजा धृतराष्ट्रने अधर्मसे अपने पुत्रोंका पक्ष लेकर लाक्षाभवनमें छोटे भाईके अनाथ पुत्रोंको कुन्तीसहित भीतर भेज कर (अपनी जानमें) आग लगाकर जला दिया ॥६॥ विदुरने जब देखा कि सभामें दुर्योधनने रानी द्रौपदीवधूको दुश्शासनके हाथों बलपूर्वक केश पकड़ खींचते हुए बुलवाकर अन्याय किया और द्रौपदीके कुचोंका कुंकुम आँसुओंकी धारासे धो गया पर धृतराष्ट्रने पुत्रोंको इस निन्द्यकर्मसे न रोंका ॥७॥ विदुरने देखा कि सत्यवादी शुद्धस्वभाव युधिष्ठिरको जुएमें अधर्मसे जीतकर वन भेज दिया जब वह लौटकर आये तो उनको उनका भाग माँगने पर भी पुत्रोंसे नहीं दिलाया, ऐसा मोह छागया ॥८॥ जब देखा कि पाण्डवोंके भेजे हुए जगत्के गुरुने जाकर जो अमृतमय शान्ति देनेवाले वचन कहे उनको और भीष्म आदिके समझानेको धृतराष्ट्र वा दुर्योधनने नहीं माना! और मानते कैसे? उनका तो जो कुछ पुण्यका लेश था भी वह नष्ट हो गया था अर्थात् उनके विगड़नेके दिन आ गये थे ॥९॥ जब एक दिन बड़े भाई धृतराष्ट्रने सलाह लेनेके लिये विदुरजीको बुलाया तो सभाभवनमें जाकर मंत्रियोंमें श्रेष्ठ विदुरजीने यह मंत्र दिया । विदुरके मंत्रका क्या कहना है, विदुरके नीतिविषयक वचन प्रसिद्ध हैं ॥१०॥ **विदुरने कहा** । युधिष्ठिरका भाग आप उन्हें दे दीजिये, यही कुशलकारी और न्याय है, उधर अर्जुनसहित भीमसेनरूप सर्प क्रोधसे फुंकार कर रहा है, जिसका भय तुम अधिक करते हो ॥११॥ ब्राह्मणोंके देव यादवोंके देव एवं सब नरदेव और देवगणोंके देव मुकुंद भगवान् उनका पक्ष लिये हैं जो इस समय अपनी पुरी द्वारकामें यादवोंसहित विराजमान हैं । इस कारण उनसे वैर करनेमें कुशल नहीं है ॥ १२ ॥ यदि कहो कि मैं क्या करूं, दुर्योधन नहीं मानता तो यह साक्षात् दोषका स्वरूप तुम्हारे घरमें है जिसको तुम अपत्य (पुत्र) मान कर पाल रहे हो वास्तवमें यह अपत्य नहीं है क्योंकि अपत्य उसको कहतेहैं जिसके आचरणसे मनुष्यका अधःपात नष्ट हो जाता है यह पुरुषद्वेषी और मंगलरूप कृष्णसे विमुख है अतएव इस एक अमंगल श्रीहतको कुलभरकी कुशलके लिये त्याग दो ॥१३॥ सज्जनप्रार्थित स्वभाववाले विदुरने जब देखा कि धृतराष्ट्रको इस प्रकार सलाह देने पर कर्ण दुःशासन और शकुनीसहित दुर्योधनके क्रोधके मारे अधर फरकने लगे और वह इस प्रकार विदुरका तिरस्कार करनेलगा कि ॥१४॥ "इस दुष्ट, कुटिल दासीपुत्रको यहाँ किसने बुलाया है? यह जिसके अन्नसे जीता है उसीके विरुद्ध आचरण करके शत्रुका भला चेतता है, यह श्मशानके समान अमंगल है, इसका धन सम्पत्ति छीन कर शीघ्र पुरसे निकाल दो"॥१५॥

---

१ न पतत्यस्मादित्यपत्यम् । २ "त्यजेदेकं कुलस्यार्थे" इति नीतिवचनम् ।

विदुरजी इस भाँति भाईके आगे दुष्ट दुर्योधनद्वारा वाण ऐसे कठोर कानोंको दुःख देनेवाले वाक्यों से ताडित होकर 'श्री भगवान्‌की माया (भवितव्यता) बड़ी प्रबल है' ऐसा विचार कर, व्यथित न होकर, द्वार पर अपना धनुष बाण धर दुर्योधनके निकाल देनेके प्रथम ही स्वयं घर त्याग कर चले गये॥१६॥ कौरवोंने बड़े पुण्य[२] (भाग्य)से जिनको पायाथा उन विदुरने हस्तिनापुरसे निकल कर पुण्य करनेकी इच्छासे हरिके क्षेत्रोंमें पर्य्यटन किया, जिन क्षेत्रोंमें भगवान् ब्रह्मा रुद्र आदि अनेक मूर्तियोंसे पृथ्वी पर स्थित हैं ॥१७॥ परम पवित्र पुर, उपवन, पर्वत और कुंजोंमें और निर्मल जलवाले स्वच्छ सरोवर और नदियोंमें एवं हरिकी मूर्तियोंसे सुशोभित तीर्थ और क्षेत्रोंमें विदुरजी अकेले विचरने लगे ॥१८॥ उस समय विदुरजीका व्रत 'केवल हरिको प्रसन्न करना' था। वह पवित्र व साधारण भोजन करते एवं प्रति तीर्थमें स्नान करते और पृथ्वी पर शयन करते थे, अवधूत वेषसे विचरते थे, उनको उस समय कोई आत्मीय भी नहीं पहचान सका था ॥१९॥ इस प्रकार भारतखण्डमें विचरते २ विदुरजी जितने समयमें प्रभास क्षेत्र पहुँचे तबतक युधिष्ठिरजीने कृष्णकी सहायतासे एकछत्र एवं एकचक्र पृथिवीका राज्य किया ॥ २० ॥ प्रभासमें जाकर विदुरने सुना कि जैसे बनमें बाँस परस्पर घर्षणसे उत्पन्न हुई अग्निसे भस्म हो जाते हैं वैसे परस्परकी ईर्षासे आपसमें लड़कर सब कौरव नष्ट होगये; यह सुन कर शोच करते हुए चुपके सरस्वतीके तीर पर आये ॥२१॥ वहाँ त्रित, उशना, मनु, पृथु, अग्नि, असित, वायु, सुदास, गो, गुह और श्राद्धदेव, इनके ग्यारह क्षेत्रोंमें जाकर स्नानदानादिसे हरिकी सेवा की ॥२२॥ एवं और २ जो पृथ्वी पर देवनिर्मित व ऋषिनिर्मित मन्दिर हैं जिनके शिखरों पर चक्र एवं सुवर्णकलश (कल्सी) सुशोभित हैं उनमें जाकर हरिके दर्शन किये ॥२३॥ वहाँसे चल कर समृद्धिशाली सौराष्ट्र, सौवीर, मत्स्य, कुरुजाङ्गल आदि देशोंमें होतेहुए समयानुसार यमुना तट पर आए, वहाँ भगवद्भक्त उद्धवसे भेंट हुई॥२४॥ विदुरजी हरिभक्त, शान्तस्वभाव, नीतिशास्त्रमें पूर्वजन्मके बृहस्पतिजीके शिष्य, विख्यात उद्धवजीसे प्रेमपूर्वक मिलकर कृष्णकी प्रजा एवं आत्मीय यादवोंकी और कौरवों पाण्डवोंकी इस प्रकार कुशल क्षेम पूँछने लगे॥२५॥ "ब्रह्माकी प्रार्थनासे पृथ्वीमें जिन्होने अवतार लिया है वे पुराणपुरुष श्रीकृष्ण व बलदेव पृथ्वीको दुष्टबधद्वारा शान्त करके शूरसेनके घरमें सबको आनन्द देते हुए कुशलसे हैं? ॥ २६ ॥ हमारे मित्र व बहनोई एवं कुरुवंशके हितचिन्तक सुहृद् और पूज्य बसुदेवजी सुखसे हैं? जो उदारचित्त बसुदेवजी भगिनीगणको पिताकी भाँति अभिलषित वस्तुएं देकर प्रसन्न रखते हैं॥२७॥ यादवोंके सेनापति वीर प्रद्युम्नजी सुखसे हैं? जो पूर्वजन्मके कामदेव हैं। जिनको देवी रुक्मिणीने ब्राह्मणोंकी आराधना करके भगवान्‌से पाया है॥२८॥ सात्वत, वृष्णि,

१ जिसमें दुर्योधनको यह संदेह न हो कि विदुर पाण्डवोंसे जाकर मिल गये हैं।
२ इससे यह सूचित हुआ कि विदुर नहीं गये कौरवोंका भाग्य वा पुण्य ही चला गया।

भोज, दाशार्हवंशी यादवोंके स्वामी उग्रसेनजी सुखपूर्वक हैं? कमललोचन कृष्णने राज्यासनकी कामनाको त्याग कर जिनको राज्यासनपर बिठला कर स्वयं अभिषेक किया है ॥२९॥ हे सौम्य ! हरिके पुत्र एवं रूप-गुणमें हरिके तुल्य रथियोंमें प्रधान साम्बजी क्षेमपूर्वक हैं ? अनेक व्रत करके जाम्ववतीने जिनको पाया है, जो पूर्वजन्ममें पार्वतीके पुत्र स्वामिकार्तिक थे ॥३०॥ जिन्होने अर्जुनसे धनुपविद्याकी शिक्षा प्राप्त की है एवं जिन्होने कृष्णकी सेवा करके सहजमें ही योगी यतियोंको दुष्प्राप कृष्णका रहस्य जाना है वह सात्यकी तो कुशलसे हैं? ॥३१॥ ज्ञानी, पापशून्य एवं हरिचरणकी शरणमें प्राप्त अक्रूरजी कुशलसे हैं? जो प्रेमसे अधीर होकर कृष्णचरणचिन्हयुक्त व्रजवीथियोंकी धूरमें लोटने लगे थे ॥३२॥ भोजवंशी देवक राजाकी पुत्री देवकीजी तो कुशलसे हैं, जो अदितिके समान विष्णुकी माता हैं, वेदत्रयी (ऋक्, यजुः, साम) जैसे यज्ञसामग्रीस्वरूप मंत्रोंको वा यज्ञके विषयोंको धारण किये है उसी भाँति जिन्होने यज्ञपुरुष कृष्णको अपने गर्भमें धारण किया है ॥३३॥ यादवोंकी व भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले अनिरुद्ध भगवान् सुखसे हैं? वेद जिनको शब्दब्रह्म (वेद)का कारण (ब्रह्मा) बतलाते हैं* । वह मनके प्रवर्तक, चतुर्विध अन्तःकरण (चित्त, अहंकार, बुद्धि, मन) में चतुर्थ तत्व हैं (क्योंकि क्रमशः चारो अन्तःकरणोंके वासुदेव, संकर्पण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध देवता हैं) ॥३४॥ और जो अपने देव कृष्णके अनन्यवृत्तिसे अनुगामी हृदीक, सत्यभामाके पुत्र, चारुदेष्ण, गद आदि यादव हैं हे सौम्य ! वे सब सुखसे हैं? ॥३५॥ अपनी बाहुओंके तुल्य कृष्ण और अर्जुनके द्वारा धर्मावतार युधिष्टिरजी धर्मसे धर्मकी मर्यादाका पालन करते हैं? जिनकी सभामें जिनकी साम्राज्य लक्ष्मी एवं अर्जुनकी सेवा अथवा विजयलक्ष्मीकी अनुकूलता देखकर दुर्योधनने बहुत सन्ताप किया ॥३६॥ सर्पके न्याय क्रोधी भीमसेनने अन्यायकारी अपकारी कौरवोंके पुरातन वैरको छोड़ दिया ? अब तो उनसे शेष कौरवोंसे वैरभाव नहीं है ? जिनके पादन्यासको विचित्र गदाके पैंतरे बदलते समय युद्धभूमि नहीं सहसकी ॥३७॥ रथी, महारथी और योद्धाओंमें कीर्तनीय कीर्तिशाली गाण्डीव धनुषके धारण करनेवाले अर्जुन शत्रुओंका संहार करके सुखसे हैं? जिनके बाणोंकी वर्षामें छिपगये मायाकिरातकायाधारी शिव अपूर्व युद्धविद्या देख कर अतिप्रसन्न हुए ॥ ३८ ॥ कुन्तीपुत्र अर्जुनादि द्वारा पलकोंसे जैसे नेत्र उस भाँति रक्षित,

---

*अथवा—"आत्माबुद्ध्यासमेत्यार्थान्मनोयुङ्क्ते विवक्षया । मनःकायाग्निमाहन्त्यसप्रेरयतिमारुतम्॥ मारुतस्तूरसिचरन्मन्द्रंजनयति स्वरम् ॥" (शिक्षा) । अर्थात् आत्मा बुद्धिके द्वारा अर्थोंको एकत्र करके बोलनेकी इच्छासे मनको प्रयुक्त करता है और मन, कायाग्निको आहत करके वायुको प्रेरित करता है, वायु हृदयमें विचरकर मन्द्र (अव्यक्त) शब्दको प्रकट करता है । अतएव अनिरुद्धको मनका अधिष्ठाता होनेके कारण शब्दकी उत्पत्तिका कारण कहा ।

माद्रीके यमजपुत्र नकुल सहदेव सुखसे हैं ? जिन्होने युद्ध करके शत्रुओंके हाथसे अपना भाग, जैसे इन्द्रके मुखसे गरुड़जीने अमृत छीन लिया था, वैसे ही छीन लिया ॥३९॥ कुन्तीकी कुशल क्या पूँछना है ? वह तो यद्यपि राजर्षि श्रेष्ठ पाण्डुके वियोग से प्राणहीन देहके तुल्य हो गई हैं किन्तु अवतक वालकोंके कारण जीवन धारण किये हैं। जिन महावीरने अकेले रथ पर बैठ कर धनुपरूप दूसरेकी सहायतासे चारो दिशाओंको जीत लिया उन यशस्वी पाण्डुका वियोग क्या कम कष्टकर हो सक्ता है ! ॥४०॥ सौम्य ! मैं, जिसका अधःपात अवश्य होगा उस धृतराष्ट्रका शोच करता हूँ जिसने मरे हुए भाई पाण्डुसे (उनके पुत्रोंको व स्त्रीको दुःख देकर) शत्रुताका आचरण किया। और अपने दुष्ट पुत्रोंका पक्ष लेकर अपने हितचिन्तक मुझको अपनी पुरीसे निकाल दिया ॥ ४१ ॥ मित्र ! मुझको इसका कुछ शोक या विस्मय नहीं है । जो श्रीकृष्ण भगवान् मनुष्यलीलाका अनुकरण करके अपने ऐश्वर्य और प्रभावको छिपाये हुए मनुष्योंके चित्तमें भ्रम एवं मोह उत्पन्न करते हैं, उनकी गतिको उन्हींकी कृपासे मैं जानताहूँ अतएव शोक-मोह-विस्मयसे रहित होकर तीर्थोंमें विचरता हूँ ॥४२॥ जिस समय कौरवोंने पाण्डवोंके साथ अनेक प्रकार अन्याय किया उससमय भगवान्‌ने कौरवोंका संहार, निश्चय इसीलिये नहीं किया कि *मदके कारण कुराहमें चलनेवाले एवं वारम्वार सेनासे पृथ्वीको पीडित करनेवाले राजोंका भी संहार इन्ही कौरवोंके द्वारा कराना था सो उस समय न होता । भगवान्‌के अवतारका मुख्य उद्देश्य ही 'पृथ्वीके भाररूप दुष्ट राजोंको सेनासहित मार कर शरणागत सज्जनोंकी आर्तिका हरना' था ॥४३॥ जन्मरहित भगवान्‌का जन्म उत्पथगामियोंके विनाशके लिये होता है और अकर्म्मा ईश्वरके कर्म, समग्र जीवोंको शुभ कर्मोंमें प्रवृत्त करनेके लिये ही होते हैं । जब भगवान्‌के मायारहित भक्त जन्म-कर्मका ग्रहण नहीं करते तव स्वयं भगवान् उक्त कारणके सिवाय जन्म-कर्मका स्वीकार कैसे करेंगे ? ॥४४॥

तस्य प्रपन्नाखिललोकपानामवस्थितानामनुशासने स्वे ॥
अर्थाय जातस्य यदुष्वजस्य वार्तां सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥ ४५ ॥

हे मित्र! शरणमें आये हुए लोकपाल और अपनी आज्ञामें अवस्थित भक्तपुरुषोंका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये यदुवंशमें उत्पन्न उन अजन्मा एवं कीर्तन करने योग्य कीर्तिवाले कृष्णकी कथाओंका कीर्तन करो ॥४५॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

* कई प्रकारके मदहोते हैं—यथा—"विद्यामदो धनमदस्तथैवाभिजनो मदः । एते मदा मदान्धानां त एव हि सतां दमः ॥"—(१) विद्याका मद (२) धनका मद (३) कुटुम्ब (वल) मद ।

द्वितीय अध्याय ।

उद्धवद्वारा हरिकी बाललीलाओंका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच—इति भागवतः पृष्टः क्षत्रा वार्तां प्रियाश्रयाम् ॥
प्रतिवक्तुं न चोत्सेह औत्कण्ठ्यात्स्मारितेश्वरः ॥ १ ॥

श्रीशुकजी कहते हैं । विदुरने भगवद्भक्त उद्धवसे इस प्रकार परमप्रिय कृष्णकी वार्ता जब पूँछी तो उद्धवजी प्रेमकी उत्कण्ठासे एवं हृदयमें ईश्वरका स्मरण करनेके कारण बाह्यज्ञान-शून्य होकर कुछ उत्तर न दे सके ॥१॥ जो उद्धव पाँच वर्षकी अवस्थामें खेलते समय कृष्णकी ही मूर्ति बनाकर कल्पित पूजा-सामग्रीसे कृष्णकी सेवा करते थे उससमय माता यदि भोजनके लिये बुलाती तो बिना पूजन समाप्त किये भोजन करने न जाते (अर्थात् बालक अवस्थासे ही कृष्णकी ऐसी स्वाभाविक भक्ति उद्धवको थी कि वह खेलमें भी कृष्णकी ही सेवा पूजा और ध्यान करते थे!) ॥२॥ वह परमभक्त उद्धव कृष्णकी सेवा करते २ वृद्धावस्थाको प्राप्त होगये सो कृष्णके चरणोंका स्मरण करते हुए कैसे विदुरके कृष्णविषयक प्रश्नका उत्तर शीघ्र दे सक्ते ॥३॥ कृष्णके चरणोंकी सुधामें निमग्न एवं तीव्र भक्तियोगसे परमानन्दको प्राप्त उद्धवजी क्षणमात्र कुछ उत्तर न देसके ॥ ४ ॥ सब अंगोंमें रोमाञ्च होआया, ध्याननिमीलित नेत्रोंसे आनन्द व शोकसे मिले हुए आँसू बहने लगे, एवं वह भगवत्प्रेमके प्रवाहमें मग्न होगये; विदुरने देखा कि उद्धवजी कृतार्थ एवं महाभाग्यवान् हैं जो इनकी कृष्णजीमें ऐसी दृढ़भक्ति है ॥५॥ भगवान्के ध्यानसे मनको मनुष्यलोकमें लाकर नेत्रोंको पोंछा और फिर (यदुकुलसंहार आदि कार्योंमें कृष्णकी चतुरताका स्मरण करके) किंचित् विस्मयको प्राप्त होकर उद्धवजी विदुरसे बोले॥६॥ "कृष्णरूप सूर्यके अस्त होनेपर कालरूप सर्पके ग्रसे हुए अतएव श्रीहत, अपने गृहों (यादवों)की कुशल मैं क्या बताऊँ ! ॥ ७ ॥ अहो ! ये मनुष्यलोग भाग्यहीन हैं, उनमें भी यादवगण अत्यन्त अभागे हैं ! जो पास रहकर भी कृष्णको न पहचान सके, जैसे समुद्रके जीव अमृतमय चन्द्रको ॥८॥ अभागे होनेसे ही यादवगण कृष्णको न जान सके, नहीं तो उनमें ज्ञानका अभाव न था,— वे लोगोंके चित्तका भाव जान सक्ते थे एवं अतिशय निपुण थे । कैसे आश्चर्यकी बात है ! यदुगण कृष्णके साथ एकत्र रहकर भी कृष्णको सब प्राणियोंके ईश्वर न जानकर यदुश्रेष्ट जानते एवं मान करतेथे ॥९॥ यादवगण मायामें मोहित होकर कृष्णको अपना बन्धु जानते थे एवं शत्रुभावको प्राप्त शिशुपाल आदि कृष्णकी निन्दा करते थे, पर इन वाक्योंसे हरिमें आसक्त हैं चित्त जिनके ऐसे मेरे सदृश लोगोंकी बुद्धि मोहित नहीं होती ॥ १० ॥ जिन्होने तप नहीं किया एवं कृष्णरूप देखकर जिनके नेत्र तृप्त नहीं हुए ऐसे लोगोंको लोकलोचनस्वरूप अपना ललितरूप दिखाकर श्रीकृष्णजीने पृथ्वीपरसे अपने कमनीय कलेवरको अन्तर्हित कर-

लिया ॥११॥ भगवान्‌की यह मूर्ति अतीव आश्चर्यजनक थी! भगवान्‌ने योगमायाका ग्रहण करके इस शरीरको धारण किया था; यह मूर्ति सौभाग्यातिशयकी पराकाष्ठा (अन्तिम सीमा) एवं मानवलीलाके उपयुक्त थी, स्वयं हरि अपनी मूर्ति देखकर विस्मयको प्राप्त थे तब औरोंको विस्मय होना कौन बड़ी बात है? श्यामशरीर प्रभुके अंग, भूषणोंको भी भूषित (शोभित) करनेवाले मनोहर थे ! ॥१२॥ युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें आये हुए तीनो भुवनके समग्र प्राणियोंने नेत्रानन्दकर श्रीकृष्णका सुन्दर देह देखकर यह विचार किया कि विधाताकी जितनी सृष्टिके बनानेमें चतुरता है सो सब इस मूर्तिके आगे तुच्छ है ! ॥१३॥ जिनके अनुरागयुक्त हास परिहास और लीलापूर्वक देखने आदिसे व्रजकी स्त्रियोंने जब मान किया तब कृष्णके अन्तर्धान होनेपर वे संपूर्ण घरके कार्य त्याग कर उन्हींकी ओर देखती खड़ी रह गईं और उनके मन भगवान्‌के ही पीछे चले गये ॥१४॥ अपने शान्त रूपों (सज्जनों)को जब अशान्त घोर रूप (दुष्टगण) पीड़ित करने लगे तब अनुग्रह करके चराचरके स्वामी परमेश्वर अपने पूर्ण अंशसे, यद्यपि जन्मरहित हैं तथापि शरीरधारण कर पृथ्वीमें प्रकट हुए। जैसे महातत्वरूपसे नित्यसिद्ध अग्नि काष्ठोंमें प्रकट होता है ॥१५॥ जन्महीन होकर भी वसुदेवके घरमें जन्म लेना, अनन्तपराक्रमी होकर भी कंसके भयसे भीतके न्याय व्रजमें छिप कर रहना, एवं कालयवन आदिके भयसे मथुरापुरी छोड़ कर भागना आदि इन सब कृष्णकी लीलाओंको विचारकर मुझे भी खेद होता है ॥१६॥ कृष्णने कंसको मार कर पिता माता (वसुदेव देवकी)के पास जाकर चरण छूकर जो कहा कि "हे तात! हे अम्ब! हम कंससे डर कर व्रजमें रहे और आपकी कुछ सेवा न करसके सो आप क्षमा कीजिये और प्रसन्न होइये।" यह स्मरण करके भी मेरा चित्त दुःखित होता है ॥१७॥ किन्तु इस प्रकारके चरित्र देखकर भी मैं श्रीकृष्णचन्द्रको अनीश्वर नहीं कहसक्ता। भ्रूभंगस्वरूप कालके द्वारा जिन्होने भूमि-भारका हरण किया उनके पादपद्मपरागका सेवन करके उनको कौन व्यक्ति भूल सक्ता है ? ॥ १८ ॥ आपने अपने ही नेत्रोंसे देखा है कि युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें कृष्णसे शत्रुता करनेवाले शिशुपालकी वह मुक्ति हुई जिसकी प्राप्तिके लिये योगीजन योग करके अनेक यत्न करते हैं ! ऐसे कृपालु कृष्णका विरह कौन मनुष्य सह सक्ता है ? ॥१९॥ इसी भाँति अन्य वीर पुरुष युद्धमें कृष्णके नयनाभिराम मुखारविन्दको नेत्रोंसे देखते अर्जुनके अस्त्रसे पवित्र होकर शरीर त्याग कर हरिधामको गये ॥२०॥ वह श्रीकृष्ण स्वयं त्रिलोकके ईश्वर एवं परमानन्दसम्पत्तिसे पूर्णकाम हैं, अतएव उनके समान एवं अधिक कोई नहीं है। लोकपालगण बलि (कर अथवा पूजा) अर्पण करके अपने २ किरीटमुकुटोंसे हरिके पादपीठको सुशोभित करते हैं ! ॥२१॥ उन जगदीश्वरका किंकरकृत्य देखकर हम किंकरोंको नितान्त खेद होता है। राज्यासनपर बैठे हुए उग्रसेनसे खड़े होकर वही कृष्ण भगवान् कहते थे कि "हे देव ! सुनिये" ॥२२॥ अहो ! पूतनाने स्तनमें कालकूट विष लगाकर मारनेकी इच्छासे पय पान कराया तथापि भगवा-

नूने उस दुष्टाको माताके योग्य उत्तमगति दी ! उनसे बढ़कर और कौन दयासागर है ? हम जिसकी शरण ग्रहण करें ॥ २३ ॥ मैं असुरोंको भी भगवद्भक्त मानता हूँ क्योंकि उनका मन सदैव वैरके कारण भगवान्में लगा रहता है और वे युद्धमें गरुड़पर चढ़े सुदर्शन चक्र हाथमें लिये, आ रहे त्रिलोकनाथ हरिको देखते हैं ॥२४॥ कंसके यहाँ कारागारमें पड़े जो वसुदेव देवकी हैं उनके यहाँ ब्रह्माकी प्रार्थनासे पृथ्वीका कल्याण करनेकी इच्छासे भगवान् कृष्णने जन्म लिया ॥२५॥ वहाँसे कंससे डरे हुए पिता वसुदेवके द्वारा भगवान् व्रजमें आये, वहाँ ग्यारह वर्ष तक अपने तेजको छिपाये बलदेवसहित रहे ॥ २६ ॥ ग्वालबाल और बलदेवसहित बछरोंको चराते हुए, जिनमें पक्षीगण बैठे बोल रहे हैं ऐसे वृक्षोंसे परिपूर्ण यमुनातटके कुंजोंमें विहार किया ॥ २७ ॥ व्रजवासियोंको दर्शनीय किशोरलीला दिखाते हुए, मुग्ध एवं बालसिंहके समान दृष्टिवाले कृष्णचन्द्रने रोते हुए, हँसते हुए व्रजमें बाललीलाएँ कीं ॥२८॥ उन्होने ही अधिकअवस्था होने पर शोभायुक्त श्वेतवर्ण वृषमण्डलीपूर्ण गोधनको चरावते हुए गोपगणसहित बेणु बजातेहुए रमण किया ॥२९॥ कंसने मारनेके लिये अनेक कामरूपी मायावी असुर भेजे, भगवान्ने उन सबको लीलापूर्वक मार डाला, जैसे बालक खेलौनोंको पटक कर तोड़ डालता है ॥३०॥ विष मिला हुआ जल पीकर मर गये गऊ और ग्वालोंको जीवित कर कालीनागको वशमें कर वहांसे निकाल दिया और यमुनाजलको पीने योग्य शुद्ध कर दिया ॥३१॥ नन्दने बहुत व्यय करके इन्द्रयज्ञ करनेका विचार किया तब इन्द्रका यज्ञ उठा कर नन्दद्वारा उसी सामग्रीसे गोवर्द्धनका पूजन कराया ॥३२॥ हे भद्र ! यज्ञ नष्ट होने पर व्रजका विनाश करनेके लिये कुपित उद्यत इंद्रने जब मुशलधार वर्षा की और सब व्रजवासी शरणमें आये तो लीलापूर्वक छत्र समान गोवर्धन पर्वतको बाएँ हाथसे उठा लिया और सबकी रक्षा कर इन्द्रका दर्प चूर्ण किया ॥ ३३ ॥

शरच्छशिकरैर्मृष्टं मानयन्रजनीमुखम् ॥
गायन्कलपदं रेमे स्त्रीणां मण्डलमण्डनः ॥ ३४ ॥

शरदृऋतुके चन्द्रमाकी अनुरंजित किरणोंसे स्वच्छ रात्रियोंमें रास रचकर व्रजवामाओंके मंडलको अलंकृत करके सुन्दर गान गाते हुए रमण किया ॥ ३४ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय ।

श्रीकृष्णद्वारा कंसवध और पिता-माताका उद्धार आदि लीलावर्णन ।

उद्धव उवाच-ततः स आगत्य पुरं स्वपित्रोश्चिकीर्षया शं बलदेवसंयुतः॥
निपात्य तुङ्गाद्रिपुयूथनाथं हतं व्यकर्षद्व्यसुमोजसोर्व्याम्॥१॥

उद्धवजी बोले । तदनन्तर पिता-माताका उद्धार करनेकी इच्छासे बलदेवसहित मथुरापुरीमें आकर रंगभूमिमें गये । वहां राजमंचसे कंसको गिराकर उसके मृत शरीरको (पिता-माताको सुखित करनेके लिये) बलपूर्वक क्रोधसे पृथ्वी पर घसीटा ॥१॥ सान्दीपिनि नामक गुरुसे एक ही बार सुन कर सांगोपांग चौदहो विद्या और वेदशास्त्र पढ़लिये तथा गुरुदक्षिणामें मरेहुए गुरुपुत्रको लाकर गुरुको दिया और पञ्चजन दैत्यको उसका पेट फाड़कर मार डाला ॥२॥ रुक्मिणीके रूपमें मोहित अनेक राजा विवाह करनेके लिये शिशुपालका पक्ष लेकर रुक्मीके बुलानेसे आये । उनके आगे ही गांधर्व रीतिसे अपने भाग (रुक्मिणी)को शत्रुओंके शिरपर पैर धर, जैसे गरुड़जी देवतोंको जीत कर अमृत ले आये उसी भाँति ले आये ॥३॥ स्वयम्वरमें दुर्दान्त सात बैलोंको नाथकर नाग्नजिती नाम राजकुमारीके साथ विवाह किया । राहमें जिन हतमान राजोंने मूर्खतावश शस्त्र धारण कर सामना किया उनको मारा और हरिके शरीरमें एक घाव तक न लगा! ॥४॥ प्रभु विषयी पुरुषकी भाँति सत्यभामाका प्रिय करनेके लिये स्वर्गलोकमें जाकर कल्पवृक्ष ले आये । तब स्त्रीवश इन्द्र इन्द्राणीके कहनेसे क्रोध करके युद्ध करने पर उद्यत हुए, प्रभुने उनको भी नीचा दिखाया ॥५॥ पृथ्वीके पुत्र भौमासुरको युद्धमें चक्रसे मारा, यह देखकर पृथ्वीने बहुत प्रार्थना की तब भौमासुरके पुत्र भगदत्तको उसके पिताका राज्य देकर भौमासुरके अन्तःपुरमें गये ॥६॥ वहाँ भौमासुर जिनको बलपूर्वक हर लाया था ऐसी अनेक राजकुमारियाँ थीं, उन सबने दीनबंधु हरिको देखकर हर्ष, लज्जा एवं प्रेमयुक्त दृष्टि द्वारा पतिस्वरूपसे ग्रहण किया ॥ ७ ॥ तब हरिने एक ही मुहूर्तमें सोलह हजार एक सौ (उन) राजकुमारियोंका अलग २ मंदिरोंमें अपनी मायासे उतने ही रूप धरकर विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया ॥८॥ माया द्वारा अनेकरूप होनेकी इच्छासे उन प्रत्येक स्त्रियोंमें अपने तुल्य रूप-गुणवाले दश २ पुत्र उत्पन्न किये ॥ ९ ॥ कालयवन, जरासंध, शाल्व आदि राजा, जो सेनालेकर पुरको घेरे हुए थे, उनको स्वयं एवं अपने जन भीम आदिको अपना दिव्य तेज देकर, उनके द्वारा नष्ट किया ॥१०॥ शंबर, द्विविद, बाणासुर, मुर, बल्वल, एवं अन्य दन्तवक्र आदिको स्वयं मारा और अन्य लोगोंके द्वारा नष्ट कराया ॥११॥ हे विदुर ! तुम्हारे भतीजे दुर्योधन आदिका पक्ष लेकर आये हुए राजोंको भी महा भारतमें नष्ट कराया; जिनकी सेनासे कुरुक्षेत्रकी पृथ्वी काँप उठी थी! ॥१२॥ कर्ण, दुःशासन और शकुनीके कुमंत्रके फलसे नष्ट हो गई है लक्ष्मी और आयु जिसकी और भीमकी

गदाके भीम प्रहारसे भग्न हो गई है जाँघ जिसकी ऐसे दुर्योधनको सचिवसहित समरभूमिमें पड़ेहुए देखकर भी भगवान् पूर्णतया प्रसन्न नहीं हुए ! ॥१३॥ हरिने विचारा कि "द्रोण, भीष्म, अर्जुन और भीमसेन द्वारा इस अट्ठारह अक्षौहिणी सेनाका नाश हुआ, इससे पृथ्वीका भार कितना कम हुआ ? क्योंकि अभी मेरे अंश प्रद्युम्न आदि सहित यादवोंका असह्य बल बना हुआ है ! बिना इसके नष्ट हुए पूर्णतया पृथ्वीका भार नहीं नष्ट होगा ॥ १४ ॥ मदिराके मदसे लाल २ लोचनवाले यादवोंका परस्पर बिवाद कराकर इनका संहार कराना चाहिये । इसके सिवाय अन्य उपाय नहीं है । यद्यपि इनमें परस्पर बड़ा ही मेल है तथापि जब मैं इनका संहार करना चाहता हूँ तब ये स्वयं लड़कर नष्ट हो जायँ गे" ॥१५॥ ऐसा विचार कर युधिष्ठिरको उनके राज्यासन पर बिठा कर साधुओंका मार्ग दिखाते हुए सुहृद यादवोंको आनन्दित किया ॥१६॥ उत्तराके कुरुवंशका अंकुररूप गर्भ था, उसके नाशके लिये अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्र छोड़ा किन्तु कृष्णचन्द्रने उसको नष्ट होनेसे बचा लिया ॥१७॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे भगवान्ने तीन अश्वमेध यज्ञ कराये और उन्होने भी कृष्णके अनुगत होकर भाइयोंसहित पृथ्वीका पालन किया ॥१८॥ विश्वात्मा भगवान्ने भी लोक और वेदके अनुकूल आचरण करते हुए द्वारकापुरीमें विषयभोग किया किन्तु सांख्ययोगके ज्ञानसे उन विषयोंमें किसी समय लिप्त नहीं हुए ॥१९॥ प्रेमयुक्त मुसकान व दृष्टि, अमृततुल्य मधुर वाणी, शुद्ध चरित्र एवं श्रीयुत शरीरसे ॥ २० ॥ मनुष्यलोक, देवलोक एवं यादवोंको भली भाँति रमावते हुए स्वयं क्षणस्थायी सौहृदभावसे युक्त होकर रात्रियोंको कामिनियोंको आनन्द देकर उनसे रमण किया ॥ २१ ॥ इस भाँति बहुत वर्षोंतक रमण करते २ गृहस्थाश्रम एवं विषयानुरागमें कृष्णचन्द्रको विराग उत्पन्न हुआ ॥ २२ ॥ निजाधीन कामादिके भोगमें जब स्वयं भगवान्को वैराग्य हो गया तब दैवाधीन अन्य पुरुषोंको दैवाधीन भोगोंमें आसक्त रहना कदापि नहीं उचित है ! अतएव सबको योगेश्वर कृष्णका अनुकरण करना योग्य है ॥ २३ ॥ एक समय द्वारकामें खेल रहे यादववंशी बालकोंने हँसी करके ऋषियोंको कोपित किया तब भगवान्की इच्छाके जाननेवाले मुनियोंने शाप दिया ॥२४॥ तदनन्तर कुछ महीनेके उपरान्त दैवमोहित वृष्णि-भोज-अन्धकवंशी यादव सूर्यग्रहणके पर्वमें रथोंपर चढ़कर प्रभास क्षेत्रको गये ॥ २५ ॥ वहाँ स्नान दान एवं पितर देवता ऋषियोंका तर्पण करके ब्राह्मणोंको बहुगुणयुक्त गउवें दीं ॥ २६ ॥ एवं सुवर्ण, चाँदी, शय्या, वस्त्र, अजिन, कम्बल, यान, रथ, हाथी, कन्या और जीविकारूप पृथ्वीका दान किया ॥ २७ ॥

अन्नं चोरुरसं तेभ्यो दत्त्वा भगवदर्पणम् ॥
गोविप्रार्थासवः शूराः प्रणेमुर्भुवि मूर्धभिः ॥ २८ ॥

अनेक रससम्पन्न अन्न ब्राह्मणोंको कृष्णार्पण करके दिये । फिर जिनके प्राण गऊ ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये हैं उन शूर यादवोंने उनको दण्डवत् प्रणाम किया ॥२८॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय ।

मैत्रेयके पास विदुरका जाना ।

उद्धव उवाच—अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीम् ॥
तया विभ्रंशितज्ञाना दुरुक्तैर्मर्म पस्पृशुः ॥ १ ॥

उद्धवजी बोले । तदनंतर वे यादव ब्राह्मणोंकी आज्ञा पाकर भोजन करके एवं वारुणी नाम तीव्र मदिरा पीकर ज्ञानरहित मतवाले हो गये, तब परस्पर गाली देते हुए मारपीट करने लगे ॥ १ ॥ मदिराके दोषसे मदोन्मत्त यादवोंमें सूर्यके अस्त होते समय जैसे परस्पर घर्षणसे बाँसोंमें आग निकलती है और वे नष्ट होजाते हैं वैसे घोर युद्ध हुआ और वे नष्ट हो गये ॥ २ ॥ अपनी मायाकी गति देख कर भगवान् कृष्णचन्द्र उस समय सरस्वतीके जलमें आचमन करके एक वृक्षके मूलमें बैठ गये ॥३॥ अपने कुलका संहार करनेकी इच्छावाले प्रपन्नार्तिहर भगवानूने प्रथम ही द्वारकामें मुझसे कहा था कि तुम वदरीवन को जाओ ॥ ४ ॥ किन्तु मैं भगवान्के अभिप्राय (परमधामगमन एवं यादवसंहार) को जानकर भगवद्वियोगके सहनमें अशक्त होकर स्वामीके पीछे प्रभास क्षेत्र गया ॥ ५ ॥ वहाँ जाकर खोजते २ मैंने अपने प्रिय स्वामीको देखा कि सरस्वतीतट पर अकेले शोभा एवं श्रीके निकेतन अकेतन (आश्रयशून्य) बैठे हैं ॥६॥ उज्वल श्यामशरीर शोभित है, दोनों लोचन प्रसन्न एवं अरुण वर्ण विशाल हैं, उनको चतुर्भुज एवं पीताम्बर पहने देख कर मैंने पहचान लिया ॥ ७ ॥ बाईं जाँघ पर दाहिने चरणकमलको धरे हुए कोमल पीपलके वृक्षका आश्रय लिये विषयसुखको त्यागकर पूर्णानन्द अवस्थामें स्थित कृष्णचन्द्रको मैंने देखा ॥८॥ वहाँ पर पराशरके शिष्य अतएव व्यासजीके सुहृद और सखा सिद्ध मैत्रेयजी इच्छानुसार घूमते हुए आगये ॥ ९ ॥ आनन्द और भक्तिसे शिर झुकाये हुए परम अनुरक्त मुझको प्रेमयुक्त मुसकान एवं दृष्टिसे श्रमरहित करते हुए मुकुन्द भगवान् मैत्रेय मुनिके सामने यों बोले ॥१०॥ "हे वसु! मैं सबके हृदयमें स्थित हूँ अतएव तुम्हारे मनकी कामना जानता हूँ। मैं तुमको मेरी प्राप्तिका एकमात्र उपाय वह ज्ञान देता हूँ जिसको मेरे भक्तोंके सिवाय अन्य जन नहीं पा सक्ते। तुमने पूर्वजन्ममें प्रजापति और वसुके यज्ञमें मेरी प्राप्तिकी कामनासे मेरी आराधना की थी॥ ११॥ हे साधुशील! यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है, इसके उपरान्त मेरे अनुग्रहसे तुम मुक्त हो जाओगे, बड़ी बात है, जो तुमने मनुष्यलोक त्याग कर मेरे परम धाम जाते समय एकान्तमें एकान्त भक्तिपूर्वक आकर मेरा दर्शन किया ॥१२॥ प्रथम सृष्टिके आदिमें मेरे नाभिकमलपर बैठे हुए ब्रह्माको मैंने मेरी महिमा प्रकट करनेवाले जिस परम ज्ञानका उपदेश दिया था और जिसको विद्वान् लोग 'भागवत' कहते हैं वही ज्ञान मैं तुमको देता हूँ" ॥१३॥ सब समय प्रतिक्षण उस परम पुरुष के अनुग्रहका पात्र मैं इस प्रकार

आदरसहित कहे हुए हरिके वचन सुन कर परम आनन्दको प्राप्त हुआ, स्नेहके मारे मेरे रोमांच हो आया, नेत्रोंसे आँसू बहने लगे और अंजली बाँधकर स्खलित (टूटे फूटे) अक्षरोंमें मैं यों कहने लगा ॥१४॥ "हे ईश! आपके चरणकमलोंको भजनेवाले भक्तोंको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-इन चारोंमें क्या दुर्लभ है? अर्थात् कुछ नहीं। तथापि मैं इनमेंसे कुछ भी नहीं चाहता, केवल आपके चरणकमलोंके सेवनकी मुझे उत्कण्ठा है ॥१५॥ प्रभु! आप निष्क्रिय होकर भी कर्म करते हैं, अजन्मा होकर भी जन्म लेते हैं, स्वयं कालरूप होकर भी शत्रुके भयसे भागते और दुर्गका आश्रय लेते हैं, स्वयं आत्माराम होकर भी बहुतसी स्त्रियोंके साथ रमण और गृहस्थाश्रमधर्मका आचरण करते हैं; यह देख कर बड़े २ विद्वानोंकी भी बुद्धि संशयको प्राप्त होती है ॥१६॥ अथवा स्वयं अकुंठित एवं अखण्ड आत्मज्ञानयुक्त, अप्रमत्त आप सलाहके समय मुझको बुलाकर भोले भाले अजानके समान जो पूँछते थे कि 'इसमें क्या करना उचित है?' सो हे देव! यह विचार कर मेरा मन मोहको प्राप्त होता है ॥१७॥ अपने आत्मतत्वके गूढ़ रहस्यको प्रकट करनेवाला जो परमज्ञान आपने ब्रह्माजीको बताया है वह यदि मेरे जानने योग्य हो तो हे स्वामी! मुझसे कहिये। जिसको पाकर मैं सहजमें संसारके पार हो जाऊँ" ॥ १८ ॥ इस भांति जब मैंने अपने हृदयका अभिप्राय कहा तब परब्रह्म कमललोचन कृष्ण भगवान्‌ने अपना परमतत्व मुझको बताया ॥१९॥ इस प्रकार तीर्थरूप भगवान्‌के चरणोंकी आराधना करके परम गुरु हरिसे आत्मज्ञानके तत्वका मार्ग जानकर देव कृष्णको प्रणाम व प्रदक्षिणा करके वियोगव्यथितचित्त मैं यहाँ आया हूँ ॥ २० ॥ हरिके दर्शनसे आनन्दित एवं वियोगसे व्यथित मैं प्रभुके प्रिय बदरिकाश्रमको जाऊँ गा ॥२१॥ जहाँ नर-नारायण भगवान् ऋषि लोकोंपर अनुग्रह करनेके लिये परोपद्रवशून्य दुश्चर तप करते हैं ॥२२॥ **शुकजी कहते हैं।** इस प्रकार उद्धवके मुखसे दुस्सह सुहृदवध सुन कर विद्वान् विदुरजीने शोकको ज्ञान द्वारा शान्त किया ॥२३॥ जब महाभागवत कृष्णके परम आत्मीय, उद्धवजी बदरिकाश्रम जाने लगे तब विदुरजी प्रेमपूर्वक यों बोले ॥ २४ ॥ "उद्धवजी! अपने रहस्यको प्रकट करनेवाला जो परमज्ञान योगेश्वर ईश्वर कृष्णने आपसे कहा है वह आप हमसे कहिये क्योंकि विष्णुके सेवक अपने सेवकोंका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये विचरते हैं अर्थात् वे तो कृतार्थ (पूर्णकाम) हैं उनको सिवाय इसके और दूसरा कार्य संसारमें नहीं है" ॥२५॥ **उद्धवजी बोले।** विदुरजी आप! तत्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये मुनिवर मैत्रेयजीसे मिलिये, क्योंकि परमधाम जाते समय कृष्णचन्द्रने आपको ज्ञानोपदेश देनेके लिये मैत्रेयजीसे कह दिया था, अतएव मुझसे ज्ञानोपदेश लेना उचित नहीं है ॥ २६ ॥ **शुकजी कहते हैं।** राजन्! इस प्रकार विदुरके साथ विश्वमूर्ति भगवान्‌के गुणकथनरूप अमृतसे उद्धवके मनका महासन्ताप शान्त होगया। वह रात्रि एक क्षणके तुल्य यमुनातटपर बिताकर उद्धवजी प्रातःकाल वहाँसे चले गये ॥२७॥ राजा यह सुन कर पूँछने लगे कि

"ब्रह्मन् ! ब्रह्मशाप सम्पूर्ण कुलमात्रको हुआ था, जिससे सब वृष्णि-भोजवंशीय रथी महारथी सेनापति आदि नष्ट हो गये यहाँतक कि त्रिलोकपति हरिको भी मायामय काया त्यागनी पड़ी; तब उद्धवजी कैसे बच रहे ?" ॥२८॥ शुकजी बोले ! ब्रह्मशापके बहानेसे कालरूप अमोघमनोरथ भगवान्‌ने अपने कुलका संहार करके देह त्यागते समय यह विचारा कि—॥२९॥ "जब मैं इस लोकसे चला जाऊँगा तब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ सिवाय उद्धवके मुझसे संबंध रखनेवाले ज्ञानके उपदेशको प्राप्त होने योग्य कोई नहीं है ॥ ३० ॥ उद्धव मुझसे रत्तीभर न्यून नहीं हैं क्योंकि विषय समूह इनके चित्तको चलायमान नहीं कर सक्ते; अतएव यह उद्धव ही मृत्युलोकमें रहकर लोगोंको मेरे ज्ञानका उपदेश दें" ॥ ३१ ॥ इस प्रकार जगदीश्वर ब्रह्मयोनि कृष्णकी आज्ञा पाकर उद्धवजी बदरिकाश्रममें गये और समाधि द्वारा हरिकी सेवामें तत्पर हुए ॥ ३२ ॥ उद्धवके मुखसे क्रीड़ाके लिये नरतनुधारी कृष्णचन्द्र परमात्माके प्रशंसितकर्म सुनकर एवं धीरजनोंको धैर्य्यवर्धक और अधीरचित्त पशुतुल्य व्यक्तियोंको अति कष्टकर कृष्णका देह त्याग सुनकर एवं 'कृष्णने परमधाम जाते समय अपना (विदुरका) भी स्मरण किया था' यह भी सुनकर उद्धवके जानेपर प्रेमसे विह्वल विदुरजी कृष्णचन्द्रका ध्यान करके रोने लगे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

कालिन्द्याः कतिभिः सिद्ध अहोभिर्भरतर्षभः ॥
प्रापद्यत स्वःसरितं यत्र मित्रासुतो मुनिः ॥ ३६ ॥

भरतश्रेष्ठ सिद्ध विदुरजी यमुनातटसे चल कर कुछ दिनोंमें गंगातट पर मैत्रेय मुनिके निकट उपस्थित हुए ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय ।

मैत्रेयकर्तृक भगवल्लीलावर्णन ।

श्रीशुक उवाच—द्वारि द्युनद्या ऋषभः कुरूणां मैत्रेयमासीनमगाधबोधम् ।
क्षत्तोपसृत्याच्युतभावशुद्धः पप्रच्छ सौशील्यगुणाभितृप्तः ॥ १ ॥

श्रीशुकजी बोले । भगवद्भावसे शुद्ध कुरुश्रेष्ठ विदुरजीने हरिद्वारक्षेत्रमें आसीन अगाधबोध मैत्रेय मुनिसे मिल कर उनके सुशीलतागुणसे सन्तुष्ट होकर विनयपूर्वक यह प्रश्न किया ॥१॥ विदुरजी बोले । भगवन् ! इस संसारमें प्राणीलोग प्रायः सुखलाभके लिये कर्म करते हैं किन्तु उनसे सुखकी प्राप्ति अथवा दुःखका नाश नहीं होता और उलटे दुःख ही होता है ! ऐसे संसारमें हमको जो करना चाहिये

सो आप हमको बताइये ॥ २ ॥ प्रभु ! पूर्वजन्मके कर्मोंके फलसे जो जन हरिसे विमुख एवं अधर्मशील हैं अतएव दुःखभोग करते हैं, आपके सदृश स्वभावसिद्ध परोपकारी भगवद्भक्त उन पर अनुग्रह करनेके ही लिये जगत्में विचरते हैं ॥ ३ ॥ अतएव हे साधुश्रेष्ठ ! जिस प्रकार आराधना करनेसे हरि भगवान् हमारे भक्तिसे पवित्र हृदयमें अवस्थित एवं स्वयं साक्षात् होकर अनादिवेदप्रमाणयुक्त ज्ञानका प्रदान करते हैं, आप हमको वही कल्याणकारी मार्ग बताइये ॥ ४ ॥ स्वतन्त्र और त्रिगुणमयी मायाके नियन्ता हरि पुरुषरूपसे अवतार लेकर जो सब कर्म करते हैं और क्रियारहित होकर भी जैसे कल्पादिमें इस जगत्को उत्पन्न एवं सुस्थिर कर जगत्की जीविकाका विधान अर्थात् पालन करते हैं सो वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥ और वह जिस भाँति इस जगत्को अपने हृदयाकाशमें रखकर निश्चेष्टभावसे योगमाया द्वारा शयन करते हैं एवं स्वयं योगेश्वरोंके ईश्वर होकर अकेले जैसे इस-संसारमें प्रवेश करके ब्रह्मादि बहु रूप धरते हैं सो सब आप हमसे कहिये ॥ ६ ॥ ब्राह्मण, गऊ और देवतोंके कल्याणके लिये अनेक अवतार लेकर क्रीड़ा करनेवाले भगवान्के कर्म आप हमसे कहिये । यशस्वियोंके चूड़ामणि हरिके कर्म सुननेमें हमारा मन तृप्त नहीं होता ॥ ७ ॥ लोकपालोंके स्वामी हरिने तत्वभेदसे लोकपाल-सहित लोक एवं अलोककी जो कल्पना की है सो हमसे कहिये । जिन लोक व अलोकमें सब प्राणी अपने २ जातिभेद और कर्मके अधिकारी होकर निवास करते हैं ॥ ८ ॥ हे विप्रवर्य ! विश्वके उत्पन्न करनेवाले स्वयंसिद्ध नारायणने जैसे जीवोंके स्वभाव, कर्म, रूप और नाम आदिका प्रभेद कल्पित किया है सो भी हमसे वर्णन कीजिये ॥९॥ भगवन् ! मैंने महर्षि वेदव्यासके मुखसे अनेक बार वर्ण और आश्रमोंके धर्मोंकी कथा सुनी है किन्तु वह तुच्छ सुख देनेवाली है अतएव उससे मेरा चित्त हटगया है, केवल कृष्णकथारूप अमृतप्रवाहके पीनेकी इच्छा है, इससे तृप्ति ही नहीं होती ॥१०॥ मुनिश्रेष्ठ ! सज्जन समाजमें नारदादि मुनियों द्वारा कीर्तित एवं प्रशंसित हरिके उस गुणानुवादसे कौन पुरुष तृप्त हो सक्ता है? जो हरिगुणकीर्तन मनुष्योंके कानोंमें प्रवेश कर जन्म-मरणके जालमें फँसानेवाली विषयवासना (गृह-स्थाश्रममें अनुराग)को नष्ट कर देता है ! ॥११॥ आपके सखा महामुनि वेदव्यासजीने भी भगवद्गुणवर्णनकी कामनासे महाभारत रचा है। उसमें यद्यपि सांसारिक विषयोंका वर्णन है तथापि उसके श्रवणसे विषयवशीभूत लोगोंकी बुद्धि क्रमशः भगवान्की कथाओंमें प्रवृत्त होती है ॥१२॥ वह कथा अथवा भक्ति क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होकर ऐसा कर देती है कि मनुष्यको सांसारिक अन्य विषयोंसे वैराग्य हो जाता है एवं हरि-चरणोंकी भक्तिसे आनन्दको प्राप्त मनुष्यके समग्र दुःखोंका नाश शीघ्र ही हो जाता है ॥ १३ ॥ हा ! उन शोचनीय जनोंके भी शोचनीय मूर्ख मनुष्योंके लिये मैं भी शोच करता हूँ जो हरिकी कथासे विमुख हैं ! वे वृथा मन, वाणी और कायाके व्यापारोंमें लगे रहते हैं और उनकी आयुको भगवान् काल प्रतिदिन नष्ट करते हैं ॥१४॥ हे मैत्रेयजी !

हे दीनबंधु! संसारके कल्याणकारी हरिकी कथाओंमें सारांशरूप कथाएँ हमसे हमारे कल्याणके लिये जैसे भ्रमर फूलोंका सारांश निकाल लेता है उसी भाँति कहिये, क्योंकि हरिकी कीर्ति तीर्थसदृश पवित्र करनेवाली है ॥ १५ ॥ विश्वकी उत्पत्ति, पालन और नाशके लिये मायाका ग्रहण करके अवतार लेकर उन हरिने जो२ असाधारण कर्म किये हैं वे सब आप मुझसे कहिये ॥१६॥ **शुकजी कहते हैं।** इस प्रकार विदुरजीके प्रश्न करने पर भगवान् मैत्रेय मुनि जगत्के कल्याणके लिये विदुरजीका बहुत आदर करके बोले ॥१७॥ **मैत्रेयजी बोले।** हे साधो! जगत्के ऊपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे तुमने यह बहुत ही उत्तम प्रश्न किया, तुम धन्य हो। इससे भगवद्भक्त जो आप हैं उनकी कीर्ति संसारमें फैलेगी ॥१८॥ आप व्यासजीके वीर्यसे उत्पन्न हैं, इससे यह कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है जो आपने अनन्यभावसे हरिका आश्रय लिया है ॥ १९ ॥ मांडव्य ऋषिके शापसे प्रजागणको दण्ड देनेवाले यमराज ही आप पृथ्वीपर व्यास द्वारा उनके भाई विचित्रवीर्यके क्षेत्र (स्त्री)स्वरूप दासीमें उत्पन्न हुए हैं ॥२०॥ आप भगवान्के प्रिय भक्त हैं, एवं भगवद्भक्तोंके भी प्यारे हैं, भगवान् वैकुण्ठ जाते समय मुझ को ज्ञानका उपदेश करनेके लिये कह गये हैं ॥२१॥ अब मैं योगमायाद्वारा विस्तारको प्राप्त एवं विश्वकी उत्पत्ति पालन और नाश ही है प्रयोजन जिनका, ऐसी भगवान्की ललित लीलाएँ आपसे क्रमशः कहता हूँ ॥२२॥ वह भगवान् सृष्टिके प्रथम केवल एकमात्र थे, तदनन्तर वही जीवगणके आत्मा (रूप) और स्वामी हुए हैं। वह जब एक थे तो तब अपनी इच्छाके अनुगत थे। सृष्टिके पश्चात् अनेक बुद्धियाँ अनेक भाँति जिसको ग्रहण करती हैं वह ब्रह्म अपर किसी विषय (दृश्य)में उपलक्षित न होता था अर्थात् सब निराकार परब्रह्ममय था ॥ २३ ॥ उससमय वह ब्रह्म एक प्रकाशित था, अतएव स्वयं द्रष्टा (देखनेवाला) होने पर भी अन्य दृश्य (देखनेकी वस्तु) कुछ न था, इसी कारण मायादि शक्तिके ब्रह्ममें लीन होनेसे, दृश्य एवं द्रष्टाके अभावसे† 'आप भी नहीं हैं' ऐसा चित्शक्तियुक्त परब्रह्मने माना ॥२४॥ किन्तु उस समय भी चित्शक्तिके प्रकाशित रहनेसे 'मैं भी नहीं हूँ' ऐसा विचार नहीं होसका। द्रष्टा परमेश्वरकी वही (द्रष्टा और दृश्यका अनुसंधान स्वरूप) चित्शक्ति (कार्य व कारणरूपसे) सत्य व असत्यरूपवाली है, उसीका नाम माया है, जिससे सर्वव्यापक ईश्वरने इस जगत्का निर्माण किया ॥ २५ ॥ काल शक्ति करके सत्व-रज-तम-गुणमयी मायामें अपने स्वरूप और प्रकृतिके अधिष्ठाता पुरुषके द्वारा चित्शक्तियुक्त ईश्वरने चित्शक्तिका आभास धारण किया ॥ २६ ॥ फिर काल-प्रेरित मायासे महत्तत्व उत्पन्न हुआ। अज्ञाननाशक और विज्ञानस्वरूप उस महत्तत्वने बीजगत अंकुर जैसे वृक्षका प्रकाश करता है वैसे ईश्वरस्थित अथवा अपनेमें स्थित विश्वका प्रकाश किया ॥२७॥ फिर उस महत्तत्वने गुण, चिदाभास और कालके अधीन होकर एवं सर्वाध्यक्ष

† वास्तवमें द्रष्टाके होने पर भी दृश्यके अभावसे द्रष्टाका अभाव स्वयंसिद्ध है।

भगवान्‌के दृष्टिगोचर होकर इस विश्वके उत्पन्न करनेकी कामनासे दूसरा रूप धारण किया ॥ २८ ॥ महत्तत्व जब विकारको प्राप्त हुआ तो अहंतत्व उत्पन्न हुआ । वह अहंकार, कार्य-कारण-कर्ता स्वरूप है एवं अतएव पंचतत्व-इन्द्रिय-मनोमय है अर्थात् ये अहंकारके ही विकार हैं ॥ २९ ॥ मायाके गुणोंके अनुसार अहंकारके सात्विक, राजस और तामस ये तीन भेद हुए। सात्विक अहंकार जब विकारको प्राप्त हुआ तो उससे मन प्रकट हुआ एवं जो संपूर्ण इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतोंसे शब्दादि विषय प्रकाशित होते हैं वे सब इसी सात्विक अहंकारसे प्रकट हुए ॥ ३० ॥ राजस अहंकार विकारको प्राप्त हुआ तो उससे ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय उत्पन्न हुए तथा पंचतत्वके कारणरूप तामस अहंकारके विकारको प्राप्त होनेपर शब्द आदि इन्द्रियोंके विषय उत्पन्न हुए। जिस शब्दसे आकाश (शून्य) उत्पन्न हुआ, जो आत्मा ईश्वरका चिन्ह है॥३१॥ तदनन्तर काल और मायाके अंशयोगसे ईश्वरने आकाशके प्रति दृष्टि की, तब उसी आकाशसे अनुसृत स्पर्शतन्मात्राने रूपान्तरको प्राप्त होकर वायुको उत्पन्न किया ॥३२॥ बहुबलयुक्त वायुने आकाशके साथ विकारको प्राप्त होकर रूपको उत्पन्न किया । उससे ज्योति (तेज) उत्पन्न हुआ, वही सम्पूर्ण लोकमें प्रकाश करनेवाला नेत्रस्वरूप है ॥ ३३ ॥ ईश्वर करके देखे गये तेजने वायुके साथ रूपान्तर ग्रहण करके काल और मायाके अंशयोगसे रसमय जलको उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥ ब्रह्म करके देखे गये जलने, तेजके साथ विकार (रूपान्तर)को प्राप्त होकर काल, और मायाके अंशयोगसे गंधगुणयुक्त पृथ्वीको उत्पन्न किया ॥ ३५ ॥ विदुरजी ! आकाश आदि पञ्चतत्वोंमें जो जो तत्व क्रमशः पीछे उत्पन्न हुए हैं उनके साथ अपने २ कारणतत्वका क्रमशः सम्बंध रहनेसे उत्तरोत्तर उनके गुण अधिक हैं (१) ॥३६॥ उक्त महत्तत्व आदिके अभिमानी सब देवता विष्णुकी कला हैं। ये काललिंग (रूपान्तर व विकार), मायालिंग (विक्षेप), अंशलिंग (चेतना) आदिके सकल गुण धारण किये थे, सुतरां परस्पर मिलित न होकर पृथक्२ रूपसे अपने २ कार्य्य अर्थात् ब्रह्माण्डरचनामें न समर्थ हुए तब अंजली बांधकर नम्रतापूर्वक यों स्वामी परमेश्वरकी स्तुति करनेलगे ॥३७॥ देवगण बोले । हे देव! शरणागत जनोंके तापको शान्त करनेके लिये छत्रसदृश उन आपके चरणकमलोंको हम प्रणाम करते हैं, जिन चरणोंका आश्रय लेकर योगी यती जन अनायास इस घोर संसारके दुःखसे मुक्त हो जाते हैं॥३८॥ हे विधाता! हे आत्मा! हे ईश! इस संसारमें सकल जीव त्रिविध तापोंसे पीड़ित होकर कल्याण अथवा सुखको नहीं पाते । अतएव

(१) अर्थात् केवल आकाशका गुण शब्द है । वायुमें आकाशका सम्बन्ध होनेसे वायुका गुण स्पर्श, आकाशका गुण शब्द दोनो हैं । ऐसे ही तेजमें उसका गुण रूप एवं पूर्वोक्त दोनो (शब्द, स्पर्श) गुण भी हैं । जलमें उसका गुण रस एवं शब्द, स्पर्श और रूप ये भी तीनो गुण हैं । पृथ्वीमें उसका गुण गन्ध एवं पूर्वोक्त रूप, रस, स्पर्श और शब्द ये भी चारो गुण हैं ।

हम ज्ञानको देनेवाली आपके चरणोंकी छायाका आश्रय ग्रहण करते हैं॥३९॥संगहीन मनमें वा एकांतमें स्थित ऋषिगण आपके ही मुखकमलमें है नीड़ (झोंझ)जिनका ऐसे वेदरूप पक्षियोंका आश्रय लेकर जिन चरणोंको ढूंढते हैं(१)और जिनचरणोंसे पतितपावनी नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजी निकली हैं ऐसे आपके तीर्थरूप चरणोंके हम शरणागत हैं ॥४०॥ विषयी पुरुष भी श्रद्धापूर्वक भली भाँति आपकी कथा सुननेसे उत्पन्न भक्ति द्वारा निर्मल हृदयमें वैराग्ययुक्त ज्ञान द्वारा जिन आपके चरणोंको धारण कर धीर हो जाते हैं, हम उन आपके पादपद्मोंका आश्रय ग्रहण करते हैं ॥४१॥ हे ईश! आप विश्वकी उत्पत्ति,पालन और नाशके लिये अवतार लेनेवाले हैं, हम आपके उन चरणकमलोंकी शरण हैं, जो चरण स्मरण करने या शरणमें आनेसे अपने जनोंको निर्भय कर देते हैं अर्थात् उनको संसारका भय नहीं रहता ॥४२॥ प्रभु! अज्ञजन, नाश होनेवाले अतएव असत् स्त्री, पुत्र, परिवार और शरीरमें 'मैंहूँ' 'मेरा है' ऐसा मान कर दुष्ट आग्रह करते हैं एवं अपने हृदयमें ही स्थित जो आप हैं उनके चरणोंको नहीं पाते! हम आपके उन्ही चरणोंकी शरण हैं ॥४३॥ ईश्वर! आप अन्तर्यामी हैं। सबके हृदयमें वास करते हैं तथापि आपके चरणन्यासके विलासकी शोभा बहुत लोग नहीं देख पाते, इसका कारण यही है कि असतवृत्ति (विषयवासना) के वशीभूत इन्द्रियाँ उनके अन्तःकरण और मनको अपनी ओर खींचे हुए रहती हैं ॥ ४४ ॥ देव! आपकी कथारूप अमृतके पानसे एवं बढ़ीहुई भक्तिसे निर्मल होगये हैं अन्तःकरण जिनके वे लोग वैराग्य ही जिसका सारांश है ऐसे ज्ञानको प्राप्त होकर अनायास ही आपके वैकुण्ठधामको जाते हैं ॥ ४५ ॥ तथा कोई धीर लोग समाधियोगके बलसे बड़ी प्रबल प्रकृति (माया) को जीतकर पुरुषस्वरूप जो आप हैं उनको प्राप्त होते हैं, परन्तु उनको इस मार्गमें अधिक श्रम पड़ता है, किन्तु आपकी भक्ति तथा सेवामें नहीं होता ॥ ४६ ॥ हे आदि! हम आपके ही अंश हैं, आपने ही ब्रह्माण्ड रचनेकी इच्छासे हमको अपने तीनो सत्वादि स्वभावोंके द्वारा उत्पन्न किया है। किन्तु हम परस्पर विरुद्ध स्वभाववाले होनेके कारण संयोगको नहीं प्राप्त हो सक्ते, अतएव आपकी क्रीड़ाकी सामग्रीस्वरूप ब्रह्माण्ड रचकर आपको समर्पण करनेमें हम अशक्त हैं ॥४७॥ हे अज! उस २ अवसरमें हम सब आपको जैसे सकल भोग्य पदार्थ समर्पण करसकें एवं जैसे हममें उनके भोग करनेकी शक्ति हो और जहाँ रहकर ये सब जीव विना किसी आपत्तिके आपकी और हमारी भोग्य वस्तुओंका आहरण करके स्वयं भी भोग कर सकें वैसा ही करनेके लिये आप हमको शक्तिसहित अपना ज्ञान दीजिये ॥४८॥ हे प्रभु! आप निर्विकार, अधिष्ठाता एवं पुराण पुरुष हैं। आप हमारे एवं हमारे सम्पूर्ण कार्योंके आदिकारण हैं। अत एव हमारी एवं कार्य्योपाधि जीवोंकी जीविकाकी

(१) जैसे पक्षी गण झोंझसे निकल कर घूम फिर उसीमें आश्रय लेते हैं वैसे ही वेद भी आपके ही मुखसे प्रकट होकर आपमें ही आश्रित हैं। झोंझकी उपमाका यही भाव है।

कल्पना कर देना आपका कर्तव्य है। देव! आपने ही अपने सत्वादि गुण एवं कर्मकी कारणरूपिणी मायामें ज्ञानात्मक महत्तत्वरूप वीर्यको स्थापित किया है ॥४९॥

ततो वयं सत्प्रमुखा यदर्थे बभूविमात्मन्करवाम किं ते ॥
त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या देवक्रियार्थे यदनुग्रहाणाम् ॥ ५० ॥

अतएव हे परमात्मा ! हम सब महत्तत्व आदि जिस लिये उत्पन्न हुए हैं, उसके लिये क्या करना होगा ? सो हमको आज्ञा दीजिये । आपके ज्ञान और शक्तिके ही द्वारा हम सृष्टि करनेमें समर्थ होंगे नहीं तो स्वतंत्रभावसे सृष्टि न कर सकेंगे । अतएव यदि सृष्टि ही करनी होगी, तो अनुग्रह करके हमको निजशक्ति और ज्ञान दीजिये ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय ।

विराट् मूर्तिकी सृष्टि ।

ऋषिउवाच—इति तासां स्वशक्तीनां सतीनामसमेत्य सः ॥
प्रसुप्तलोकतन्त्राणां निशाम्य गतिमीश्वरः ॥ १ ॥

मैत्रेयमुनि बोले । "ईश्वरकी शक्ति महत्तत्वादि, परस्पर मिलित न होनेसे विश्वकी सृष्टि करनेमें असमर्थ हैं" ऐसा उन्हींके मुखसे सुनकर उस समय उन ईश्वरने क्षोभ करनेवाली प्रकृति-सहित अन्तर्यामीरूपसे एक साथ ही उक्त तेईस तत्वोंमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ २ ॥ भगवान्ने चेष्टारूपसे उक्त तत्वोंमें प्रवेश कर उनकी क्रिया अथवा जीवका अदृष्ट जो अपनेमें लीन था उसको प्रबुद्ध करके उन भिन्न २ तत्वोंको एकत्र संयुक्त कर दिया ॥ ३ ॥ जब इन तत्वोंकी क्रियाशक्ति प्रबुद्ध हुई तब इन सबने ईश्वरकी ही प्रेरणासे अपने २ अंशद्वारा अधिपुरुष (विराट् पुरुषशरीर) को उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ अर्थात् वे विश्वकी उत्पत्तिके लिये सम्पूर्ण महत्तत्व आदि तत्व, अपनेमें प्रवेश करनेवाले चैतन्यरूप ईश्वरके सम्बन्धसे परस्पर मिलित होकर अपने २ अंशसे क्षोभको प्राप्त हुए तब उनके द्वारा सर्वतोभावसे विराट् शरीर परिणत हुआ । उसी विराट् शरीरमें चराचर जगत् अवस्थित है ॥५॥ अधिपुरुष नामक हिरण्मय पुरुषने सहस्रवर्ष पर्यन्त अपने साथ सोये हुए जीवसमूहसहित परिवर्धित होकर इस ब्रह्माण्डके अन्तर्गत जलमें निवास किया ॥ ६ ॥ विश्वके सृजनेवाले महत्तत्वादिके कार्यरूप गर्भ अर्थात् विराट् मूर्तिने देवशक्ति, क्रियाशक्ति और आत्मशक्तिसे युक्त होकर अपने ही द्वारा अपनेको एक, दश और तीन

प्रकारसे विभक्त किया अर्थात् अपने विभाग किये (१) ॥ ७ ॥ यह परमेश्वरका प्रथम अवतार है, इसीसे संपूर्ण तत्व प्रकाशित होते हैं। समग्र सृष्टि इसी विराट् पुरुषसे है, विराट् पुरुष ही सम्पूर्ण प्राणियोंका स्वरूप एवं परमात्माका अंश अर्थात् जीव है ॥ ८ ॥ यह विराट् पुरुष, अध्यात्म (इन्द्रिय), अधिदैव (इन्द्रियदेवता), अधिभूत (शब्दादि विषय) के साथ मिलित होनेसे तीन प्रकार और प्राणादिका स्वरूप होनेसे दश प्रकार एवं हृद्गत चैतन्यरूपसे एक प्रकार हुआ ॥ ९ ॥ फिर परमेश्वरने विश्वके सृजनेवाले कारणरूप महत्तत्वादि तत्वसमूहके विज्ञापित वाक्योंका स्मरण करके उनके विविध वृत्तियोंके पानेके पहले अपनी चित्शक्ति द्वारा विराट् शरीरमें "मैं ऐसा करूँगा" यह ज्ञान किया (२) ॥१०॥ विदुरजी! परमेश्वरने जब इस प्रकार ज्ञान किया तब देवतादिके कै प्रकार भिन्न २ स्थान निर्भिन्न हुए, सो मैं कहताहूँ, सुनो ॥ ११ ॥ विराट् शरीरके मुख प्रकट हुआ, उसमें अग्नि देवता वाक्रूप अपनी शक्तिसहित स्थित हुए। जीव वाक् इन्द्रियसे शब्दका उच्चारण करता है ॥१२॥ विराट् पुरुषके तालु निर्भिन्न हुआ, उसमें वरुण देवता रसना इन्द्रियसहित स्थित हुए। जीव रसनासे रसका ग्रहण करता है ॥ १३ ॥ नासाछिद्र निर्भिन्न हुए, उनमें अश्विनीकुमार देवता घ्राण इन्द्रियसहित स्थित हुए । जीव घ्राणसे गंधका ग्रहण करता है ॥१४॥ विभुके दोनों नेत्र निर्भिन्न हुए, उनमें सूर्य देव चक्षु इन्द्रियसहित अधिष्ठित हुए। चक्षुसे रूपका दर्शन होता है ॥१५॥ विराट् विभुके चर्म प्रकट हुआ, उसमें वायु देवता प्राणतुल्य सब अंगोंमें व्याप्त त्वक् इन्द्रियसहित स्थित हुए। जीव त्वक् इन्द्रियद्वारा स्पर्शज्ञानको प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ दोनो कान प्रकट हुए, उनमें दिशा देवता श्रोत्र इन्द्रियसहित स्थित हुईं। श्रोत्रके द्वारा शब्द सुना जाता है ॥१७॥ फिर विराट्के पृथक् रूपसे चर्म निर्भिन्न हुआ, सम्पूर्ण औषधियाँ अपने २ अंशसहित अधिदेवतास्वरूपसे रोमछिद्र द्वारा उसमें प्रविष्ट हुईं । उन्हीं सम्पूर्ण रोमोंद्वारा खुजली एवं स्पर्शके सुख आदिका अनुभव होता है ॥ १८ ॥ उनके मेढ़् (लिंग) उत्पन्न हुआ। उसमें प्रजापति देवताने वीर्य इन्द्रियसहित प्रवेश किया । उसके द्वारा रतिका आनन्द प्राप्त होता है ॥१९॥ गुदाछिद्र उत्पन्न हुआ, उसमें मित्र देवता पायु इन्द्रियसहित्त स्थित हुए। पायु इन्द्रियद्वारा मलका त्याग होता है ॥२०॥ हाथ निकले, उनमें स्वर्गके स्वामी इन्द्र क्रय-विक्रयादि कर्म (शक्ति) सहित अधिदेवतारूपसे स्थित हुए। इसी शक्तिसे जीव अपनी वृत्ति अर्थात् जीविकाको प्राप्त

(१) अर्थात् ज्ञानशक्ति द्वारा हृदयावच्छिन्न चैतन्यरूपसे एक प्रकार और क्रियाशक्तिद्वारा प्राणभेदसे दशप्रकार (पांच नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय संज्ञक प्राण और पांच इनकी वृत्तियाँ (व्यापार),), एवं आत्मशक्ति द्वारा अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत इन भेदोंसे तीन प्रकार उस विराट् पुरुषने अपना विभाग किया। यही आगे नवम श्लोकमें और खुलासा करके कहेंगे। (२) 'यस्य ज्ञानमयं तपः' इति श्रुतेः ।

होता है ॥ २१ ॥ विराट् पुरुषके दोनो चरण निर्भिन्न हुए, जिनमें अधिदेवरूप विष्णु गतिकर्मसहित स्थित हुए । यह जीव जिस गतिसे एक स्थानसे दूसरे स्थानको प्राप्त होता है ॥२२॥ विराट् पुरुषके बुद्धि प्रकट हुई, उसमें ब्रह्मा देवता ज्ञानशक्तिसहित प्रविष्ट हुए । जिस ज्ञानसे सब ज्ञातव्य विषयोंका बोध होता है ॥ २३॥ हृदय प्रकट हुआ, जिसमें चन्द्र देव मनःशक्तिसहित स्थित हुए । जिस मनसे जीव "ऐसा करूँ वा न करूँ" इसप्रकार संकल्प विकल्प कर्म करता है ॥ २४ ॥ अहंकार प्रकट हुआ, तब उसमें अहंवृत्तिसहित रुद्रने प्रवेश किया । जिस अहंकारसे कर्तव्यकर्मकी प्राप्ति होती है ॥२५॥ भगवान्‌के चित्त प्रकट हुआ, उसमें अधि देवरूप महत्तत्वने चेतनाशक्तिसहित प्रवेश किया । जीव उसी चेतनाद्वारा विज्ञानका अनुभव करता है ॥ २६ ॥ विराट् पुरुषके शिरसे स्वर्गलोक और पैरोंसे पृथ्वी एवं नाभिसे आकाश (अन्तरिक्ष वा भुवर्लोक) प्रकट हुआ । इन सब स्थानोंमें यथाक्रम तीनो गुणोंके परिणामरूप देवादि वास करते हैं ॥२७॥ स्वभावमें सतोगुण अधिक होनेके कारण देवगण स्वर्गको प्राप्त हुए और रजोगुणकी अधिकतासे यज्ञादि व्यवहार करनेवाले मनुष्य और तत्पश्चात् गो आदि जीव पृथ्वीको प्राप्त हुए ॥२८॥ एवं तामस स्वभावके कारण भगवान्‌की नाभि (अन्तरिक्ष) में रुद्रके पार्षद भूतप्रेतपिशाचादिने वास किया ॥ २९ ॥ तदनन्तर विराट् पुरुषके मुखसे वेद प्रकट हुआ एवं मुखसे उत्पन्न होनेके कारण ब्राह्मण चारोवर्णोंमें मुखसदृश मुख्य हुए ॥३०॥ बाहुओंसे क्षत्र (रक्षाधर्म)प्रवृत्त हुआ और क्षत्रधर्मधारी क्षत्रिय भी उत्पन्न हुए, जो तीनो वर्णोंकी सब प्रकार चौरादिके उपद्रव आदिसे रक्षा करते हैं॥३१॥ ऊरूसे विश अर्थात् कृषी आदिका व्यवसाय (लोकोंकी जीविका) और वैश्यवर्ण भी प्रकट हुआ । जो व्यवसायसे लोकोंकी जीविका चलाता है ॥ ३२ ॥ चरणोंसे, तीनो जाति अपना २ धर्मपालन कर सकें, इसलिये सेवाधर्म एवं शूद्र जाति उत्पन्न हुई । तीनो वर्णकी सेवासे शूद्र पर हरि प्रसन्न होते हैं ॥ ३३ ॥ ये चारो वर्ण अपने २ साथ उत्पन्न अपने २ धर्मसे अपने गुरु हरिकी श्रद्धापूर्वक अपनी शुद्धि वा कल्याणके लिये आराधना करते हैं (जिसने हमको उत्पन्न किया, जीविका नियत की, उसकी आज्ञाका पालन हमारा धर्म है और इसीमें हमारा कल्याण है, अन्यथा नहीं) ॥ ३४ ॥ हे विदुर ! काल, कर्म, स्वभाव शक्तिसे युक्त परमेश्वरके इस योगमायाबलसे कल्पित विराट्‌रूपके भलीभाँति निरूपण करनेकी कौन इच्छा कर सक्ता है? अर्थात् कोई मनसे इच्छा करनेको भी समर्थ नहीं है, वाणीसे वर्णन करनेकी कौन कहै ! ॥३५॥ तथापि जिस भाँति गुरुमुखसे सुना है और जितनी अपनी बुद्धि है उसीके अनुसार हे अंग ! अन्य वार्ताओंसे अपवित्र अपनी वाणीको पवित्र करनेके लिये हरिकी कीर्तिका कीर्तन करता हूँ ॥ ३६ ॥ उन पुण्यकीर्ति हरिके गुणोंका कीर्तन ही पुरुषवाणीका परम लाभ है । पण्डितगणको अतिशय प्रिय उस कथारूप अमृतसे जो कर्ण परिपूर्ण हों वे ही कर्ण सार्थक हैं । अवश्य ही भगवद्गुणकीर्तन करनेसे कैवल्य मोक्षका

लाभ होता है ॥ ३७ ॥ हे वत्स ! आदिकवि ब्रह्माने योगसे शुद्ध बुद्धिके बलसे सहस्त्र वर्षपर्यन्त ध्यान करके भी उस भगवान्‌की महिमा न जान पाई, अतः विना भक्तिके केवल ज्ञानसे कैवल्यमुक्तिका लाभ नहीं होता ॥ ३८ ॥ भगवान्‌की माया परम दुर्ज्ञेय है और बड़े २ मायावियोंको मोहित करनेवाली है । जब स्वयं भगवान् अपनी मायाकी गतिको (ब्रह्मादिरूपमें) नहीं जान सके तब औरोंकी क्या गणना है ॥ ३९ ॥

यतोऽप्राप्य न्यवर्तन्त वाचश्च मनसा सह ॥
अहं चान्य इमे देवास्तस्मै भगवते नमः ॥ ४० ॥

जहाँतक न पहुँचकर (उसकी मायामें ही टकराकर) मन, वाणी, मैं और अन्य शिवादि देवता निवृत्त हो जाते हैं उस अज्ञेय अवितर्क्य भगवान्‌को प्रणाम है ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय ।

विदुरजीका मैत्रेयजीसे प्रश्न करना ।

श्रीशुक उवाच–**एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं द्वैपायनसुतो बुधः ॥**
प्रीणयन्निव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत ॥ १ ॥

श्री शुकदेवजी बोले । यों कह रहे मैत्रेयजीसे वेदव्यासके पुत्र परम ज्ञानी विदुरजी अपनी वाणीसे प्रसन्न करते हुए बोले ॥ १ ॥ **विदुरजी बोले ।** ब्रह्मन् ! भगवान् सच्चिदानन्दस्वरूप, निर्विकार और निर्गुण हैं, वह कैसे सगुण होकर लीला आदि क्रिया करते हैं ? ॥ २ ॥ बालकादिक जो क्रीड़ा करते हैं तो वह अपनी अभिलाषासे अथवा किसी अन्य अपने साथी बालककी प्रेरणासे; किन्तु ईश्वर तो अपने ही बोधसे तृप्त, कामनाहीन, निस्संग एवं अद्वितीय हैं, उनको बालककी भाँति भी क्रीड़ाकी कामना असम्भव है ॥ ३ ॥ भगवान्‌ने अपनी गुणमयी मायाके द्वारा इस विश्वको उत्पन्न किया और पालन करते हैं एवं संहार करेंगे ॥ ४ ॥ किन्तु जीव ब्रह्मका रूप है, यदि यह अविद्यायुक्त हो, तब उल्लिखित विषय संभव है, परन्तु देश, काल, अवस्था से और अपनेसे वा अन्य किसीके द्वारा† जिस

---

† ईश्वर सर्वगत है इससे दीपककी प्रभाके न्याय किसी देशमें ब्रह्म अविद्यमान नहीं है । स्मरणशक्तिके तुल्य अविक्रिय है अतएव किसी अवस्थामें ब्रह्म अविद्यमान नहीं है । ब्रह्म नित्य है अतएव किसी कालमें विद्युत्सदृश अविद्यमान नहीं है । सत्य होनेके कारण स्वप्नवत् स्वतः ब्रह्म अवर्तमान नहीं है । एवं अद्वितीय होनेके कारण घटतुल्य अपरसे ब्रह्मका विनाश नहीं

ब्रह्मका बोध नष्ट नहीं होता वह अविद्या वा मोहमें कभी नहीं फँस सक्ता अतएव ब्रह्मांश जीवका भी अविद्यामें फँसना असम्भव है ॥ ५ ॥ हे मुनि! भगवान् ही जीवरूपसे सम्पूर्ण शरीरोंमें स्थित हैं, अतएव सब जीव उनका अंश हैं; तब अमर ब्रह्मके अंश जीव का संहार कैसे होसक्ता है ? ब्रह्म ही जीवरूपसे सुखदुःखका भोगनेवाला है, तब नित्यानन्दमय ब्रह्मके अंश जीवके आनन्दका नाश (दुर्भाग्य) वा कर्मद्वारा क्लेश कैसा ? ॥ ६ ॥ हे विभु ! हे विद्वन् ! इस अज्ञानस्वरूप संकटमें पड़कर हमारा मन इन सब संदेहोंसे क्षोभको प्राप्त होता है । अतएव आप हमारे मनके पूर्वोक्त महामोहरूप सन्देहोंको दूर कर दीजिये ॥७॥ शुकजी बोले । ऐसे तत्त्वके जाननेकी इच्छासे विदुरने जब पूँछा तब अहंकारहीन भगवद्भक्त मैत्रेयमुनि मुसकाते हुए बोले ॥८॥ "विदुरजी! विमुक्तस्वरूप परमेश्वरका अविद्या (मोह) बन्धन और दुर्भाग्य आदिसे संयोग आदि जो तर्कमें विरोध आता है यही भगवान्की माया है ॥ ९ ॥ जैसे स्वप्न देखनेवालेका वास्तवमें शिर आदिका कटना नहीं होता पर वह उस अज्ञानावस्थामें मिथ्याको भी सत्य मान कर सुख वा दुःखका अनुभव करता है वैसेही जीवका बन्धन व दुर्भाग्य अथवा क्लेश आदि मिथ्या होनेपर भी मायावश सत्य प्रतीत होते हैं ॥१०॥ जैसे चन्द्रमण्डल जलमें प्रतिबिंबित होनेपर, जलोपाधिकृत कम्पनादि धर्म जलमें ही देख पड़ता है, वस्तुतः चन्द्रमण्डल नहीं काँपता; वैसेही आत्मासे भिन्न देहादिका धर्म मिथ्या होने पर भी देहाभिमानी जीवमें प्रतीत होता है; देहाभिमानहीन ईश्वरमें वह नहीं देखा जाता ॥ ११ ॥ वासुदेवकी कृपा होनेपर निवृत्तिमार्गका आश्रय करनेसे और भगवद्भक्तिके बलसे जीवका वही अनर्थमूल देहाभिमान क्रमशः नष्ट हो जाता है ॥१२॥ जब सब इन्द्रियाँ द्रष्टा(देखनेवाले)—रूप आत्मामें लीन होकर निद्रित व्यक्तिकी इन्द्रियोंके तुल्य पूर्णतया निश्चल हो जाती हैं तब सब क्लेशोंका लय हो जाता है ॥ १३ ॥ केवल हरिके गुणकीर्तन और गुणानुवादके श्रवणसे सब क्लेशोंकी शान्ति हो जाती है । और यदि उनके चरणारविन्दके रजकी सेवामें रति और सप्रेम ध्यान करे तो क्या कहना है" ॥ १४ ॥ विदुरजी बोले । हे विभु ! आपकी सुन्दर युक्तियुक्त उक्त उक्तिरूप खड्गसे मेरा संशय (जो प्रथम था) कट गया । अब ईश्वरकी स्वतन्त्रता और जीवकी परतन्त्रता भलीभाँति मेरी समझमें आ गई ॥१५॥ हे विद्वन्! आपका यह कहना कि जीवका दुर्भगत्वादि माया(अविद्या)के द्वारा ही होता है और वह स्वप्नमें शिर कटनेके समान निर्मूल एवं मिथ्या है, सो ठीक है । संसारका मूल अज्ञान भी मायाके विना नहीं हो सक्ता अर्थात् मायाके अन्तर्गत है ॥ १६ ॥ मैं अल्पज्ञ हूँ, अतएव प्रथम मुझको यह संशय हुआ था। ब्रह्मन् ! संसारमें जो निपट

है। जब ऐसे ब्रह्मका अंश जीव है तो वह कैसे अज्ञानमें लिप्त हो सक्ता है क्योंकि उक्त कारणोंसे ब्रह्मके स्वानुभवरूप ज्ञानका लोप नहीं है ।

मूढ़ है और जो ब्रह्मज्ञानी पूर्ण विद्वान् है ये दोनो ही सुखी हैं। क्योंकि इनको संशय नहीं होता अतएव क्लेश भी नहीं होता। परन्तु जो बीचमें फँसा है उसीको क्लेश होता है (क्योंकि दुःखका अनुसंधान करनेसे वह संसारप्रपञ्च त्यागनेके लिये व्यग्र होता है, किन्तु कैसे यथार्थ आनन्द प्राप्त हो सो वह नहीं जान पाता, अतएव संसारका त्याग भी नहीं कर पाता) ॥ १७ ॥ मुनिवर ! आजसे आपकी चरण-सेवाके फलसे मुझको ऐसा ज्ञान हुआ है जिससे जन्म मृत्यु और भोक्तृत्वआदिको अर्थशून्य अर्थात् मिथ्या वा अयथार्थ जानने लगा हूँ। आपके चरणोंकी सेवासे मिथ्या प्रतीतिको भी दूर कर सकूँगा ॥१८॥ महात्मन् ! आप लोगोंकी चरणसेवासे सर्वकालव्यापी मधुसूदन भगवान्‌के चरणकमलोंमें प्रेमोत्सव जन्मता है और वह दृढ़ एवं स्वाभाविक प्रेम, संसारसंकटको मिटानेवाला है ॥१९॥ मैं जो आपकी सेवा कर सका यह मेरे बड़े भाग्यकी बात है क्योंकि हरिके मिलनेका मार्ग–स्वरूप सज्जनों-की सेवा थोड़े पुण्यवाले मनुष्यको दुर्लभ है ! जिस सज्जनोंके संगमें देवदेव जनार्दनकी नित्य चर्चा होती है वह सत्संग सबको नहीं प्राप्त होता ॥ २० ॥ आपने कहा कि प्रथम उस व्यापक ईश्वरने इन्द्रियादिसहित महत्तत्व आदि तत्वोंको क्रमशः उत्पन्न करके उनके द्वारा विराट् शरीर रचकर पश्चात् उसमें प्रवेश किया ॥ २१ ॥ जिस विराट्‌को आदिपुरुष कहते हैं। उस सहस्रऊरू, सहस्र-चरण और सहस्रबाहुयुक्त पुरुषमें ही सकल लोक (उसीसे) प्रकट होकर स्थित हैं ॥ २२ ॥ ब्रह्मन् ! आपने ही कहा है कि उस विराट्‌का शरीर इन्द्रिय और उनके शब्दादि विषय एवं दशविध प्राण हैं, और त्रिविध प्राण भी हैं। अतएव विराट् शरीरकी सब विभूतियोंका वर्णन आप हमसे कीजिये ॥ २३ ॥ इसीकी सकल विभूतियोंसे पुत्र, पौत्र, नाती, गोत्रज आदि भेदवाली विचित्र आकृतिकी प्रजाएँ उत्पन्न हुईं, जिनसे यह विश्व व्याप्त है ॥ २४ ॥ प्रजापतियोंके पति ब्रह्माने किन प्रजापतियोंको उत्पन्न किया ? नौ प्रकारकी सृष्टि और अनुसृष्टि कहिये। मनु और मन्वन्तरोंके स्वामी एवं इनका वंश व इनके वंशमें उत्पन्न राजोंके चरित्र वर्णन कीजिये ॥ २५ ॥ मैत्रेयजी ! पृथ्वीके ऊपर और नीचे जो लोक हैं उनकी व पृथ्वीकी उत्पत्ति व परिमाण वर्णन कीजिये ॥२६॥ देव, मनुष्य, सर्प, पशु, पक्षी एवं गर्भ, स्वेद (पसीना), अंडे आदिसे उत्पन्न, व उद्भिज्ज (पृथ्वी फोड़कर निकलने-वाले वृक्षोंकी) सृष्टिका वर्णन, सहित विभागके हमसे कीजिये ॥ २७ ॥ अपने सगुण अवतारोंसे विश्वकी उत्पत्ति, पालन व संहार करनेवाले ब्रह्माण्डके विधाता श्रीनिवास ईश्वरके उदार विक्रमको कहिये ॥ २८ ॥ रूप, शील और स्वभावद्वारा वर्ण-आश्रमोंका विभाग, ऋषियोंके जन्म कर्म, वेदोंका विभाग, ॥ २९ ॥ और यज्ञोंका विस्तार व योगका मार्ग, कर्महीन ज्ञान (निवृत्ति) मार्ग एवं ज्ञानसाधक भगवान्‌का कहा हुआ सांख्य शास्त्र, ॥३०॥ पाखण्डगणद्वारा प्रकाशित (वेदपथके) विपरीत मार्ग, प्रतिलोम अर्थात् सूत आदि संकरजाति, गुण और कर्मके कारण जो

और जितनी जीवकी गतियाँ हैं सो सब हे प्रभु! हमसे कहिये ॥३१॥ और विरोधरहित रीतिसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस चतुर्वर्गके मिलनेके उपाय एवं कृषि, वाणिज्य (वनिज), दण्डनीति और शास्त्र ॥३२॥ एवं हे ब्रह्मन् ! श्राद्धकी विधि, पितृगणकी सृष्टि, ग्रह, नक्षत्र और तारागणकी कालचक्रमें स्थिति भी वर्णन करिये ॥ ३३ ॥ दान, तप, इष्ट (अग्निष्टोमादि यज्ञ) पूर्त (वापी, कूप तड़ाग खुदवाना, बाग लगवाना) आदिका फल और वाणप्रस्थका एवं आपत्कालमें वर्ण व आश्रमोंका धर्म हमसे कहिये ॥ ३४ ॥ अथवा जिससे धर्मयोनि जनार्दन भगवान् प्रसन्न हों एवं जिनपर प्रसन्न होते हैं, हे निष्पाप ! सो सब मुझसे कहिये ॥ ३५ ॥ हे द्विजोत्तम ! अपने अनुगत पुत्र और शिष्योंसे न पूँछी हुई वा पूँछनेसे रह गई बात भी दीनवत्सल गुरुलोग कह देते हैं ॥ ३६ ॥ मुनिश्रेष्ठ ! आपने जो सकल तत्व कहे हैं उनका लय कै प्रकार होता है? परमेश्वर जब प्रलयसमय योगशय्यामें शयन करते हैं तब कौन २ पदार्थ पृथक् रहकर ईश्वरकी सेवा करते हैं और कौन २ ईश्वरमें लीन होकर शयन करते हैं? ॥ ३७ ॥ जीवका तत्त्व व परमेश्वरका रूप क्या है और कौन अंशमें इन दोनोंका ऐक्य है? और निगम अर्थात् उपनिषद्सम्बंधी ज्ञान एवं गुरुके निकट शिष्यको जो जो पूँछनेका प्रयोजन वास्तविक है अर्थात् गुरुसे शिष्यको जो २ प्रश्न (ईश्वर व विश्वसंबंधी) करने चाहिये उन प्रश्नोंका उत्तर कहिये । हे अनघ ! पुरुषगण स्वयं भक्ति, ज्ञान वा वैराग्य कुछ भी प्राप्त नहीं कर सक्के अत एव विद्वान्लोग उनके साधन बता गए हैं, वे साधन भी कहिये । भगवन् ! मैं हरिकी लीला जाननेकी इच्छासे ये प्रश्न करता हूँ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ मायासे मेरे ज्ञानरूप नेत्र नष्ट होगए हैं, मैं अज्ञ हूँ और आप परम सुहृद् हैं, अतएव कृपापूर्वक सब वर्णन करिये (मुझे उपदेश देनेसे केवल मेरा ही उद्धार न होगा वरन् आपको भी पुण्यलाभ होगा क्योंकि) मृत्युभयसे किसी मनुष्यको मुक्त कर देनेकी—यज्ञ, देवता, तप और दान एक अंशमें भी समता नहीं कर सक्के ॥ ४० ॥ ४१ ॥

श्रीशुक उवाच—स इत्थमापृष्टपुराणकल्पः कुरुप्रधानेन मुनिप्रधानः ॥
प्रवृद्धहर्षो भगवत्कथायां संचोदितस्तं प्रहसन्निवाह ॥४२॥

श्रीशुकजी बोले । महाराज! कुरुश्रेष्ठ विदुरके इस प्रकार पुराणविषयक प्रश्न करने पर मैत्रेयजी भगवत्कथा कहनेमें प्रेरित होने पर प्रसन्न चित्त हो कर हँसते २ इस प्रकार विदुरजीसे कहने लगे ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय ।

ब्रह्माजीको विष्णुका दर्शन ।

मैत्रेय उवाच—सत्सेवनीयो बत पूरुवंशो
यल्लोकपालो भगवत्प्रधानः ॥
बभूविथेहाजितकीर्तिमालां
पदे पदे नूतनयस्यभीक्ष्णम् ॥ १ ॥

मैत्रेयजी बोले । अहो पूरु नृपका वंश परम पवित्र है और सज्जनों करके सेवन करने योग्य है ! जिसमें भगवान्के अनन्य भक्त लोकपालोंमें प्रधान (साक्षात् यम) तुम उत्पन्न हुए हो। जो प्रतिक्षण श्रवण करके भी हरिकी कीर्तिको नित नई सी बनाते हो ॥१॥ मैं अल्प सुखकी प्राप्तिके लिये महा दुःखको प्राप्त मनुष्योंके दुःखका निवारण करनेके लिये भागवत महा पुराण तुमसे कहता हूँ, जिसको स्वयं-भगवान् शेषजीने ऋषियोंसे कहा है ॥ २ ॥ पृथ्वीपर बैठे हुए भगवान् आर्य, अप्रतिहत ज्ञान संकर्षण (शेष) देवसे, ईश्वरका तत्त्व जाननेकी इच्छावाले सनकादिक ऋषियोंने यों पूँछा ॥३॥ वासुदेव नामक अपने ही रूपका ध्यान कर रहे शेषजीने आगत सनकादि मुनियोंके अभ्युदयके लिये नेत्रोंको कुछ खोल कर उनकी ओर कृपादृष्टिसे देखा ॥ ४ ॥ गंगा जलसे भीगे हुए जटाकलापसे सनकादिक ऋषियोंने पैर रखनेवाले पद्मपीठका स्पर्श किया; जिस पद्मपीठकी पूजा प्रेमपूर्वक अनेक उपकरणोंसे नागराजोंकी कन्या वरदान वा वर (पति)की कामनासे करती हैं ॥५॥ सहस्र फणोंकी मणि व किरीट मुकुटोंमें जड़ी हुई मणियोंके प्रकाशसे प्रकाशित हो रहे हैं सहस्र फण जिनके उन शेष भगवान्के प्रतापको जाननेवाले सनकादिक प्रेमपूर्ण गद्गद वाणीसे वारम्वार उन्हींके चरित्रोंका कीर्तन करने लगे; एवं तदनंतर ये ही प्रश्न किये जो तुमने किये हैं ॥ ६ ॥ भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ शेषजीने निवृत्तिमार्गमें रत सनत्कुमारजीसे यह भागवत कही। सनत्कुमारजीने पूँछनेपर धृतव्रत सांख्यायन नाम ऋषिसे उसीको कहा ॥ ७ ॥ भगवद्विभूतियोंका वर्णन करनेकी इच्छासे परमहंस प्रधान सांख्यायनजीने अनुगत देखकर हमारे गुरु पराशरजी व बृहस्पतिजीसे इसका वर्णन किया ॥ ८ ॥ उन दयानिधि पराशर मुनिने पुलस्त्य मुनिकी प्रेरणासे[1] उसी आदि पुराणको मुझसे कहा। हे वत्स ! मैं तुमको अनुव्रत व श्रद्धायुक्त देखकर अब तुमसे वही पुराण कहता हूँ ॥ ९ ॥ जब योगनिद्रा

१ इसकी यह कथा है कि 'पिताको राक्षसने भक्षण कर लिया' यह सुनकर पराशरने राक्षसको मारना चाहा पर वसिष्ठके कहनेसे निवृत्त होगये । तब पुलस्त्य ऋषिने अपने सन्तानकी रक्षासे तुष्ट होकर वर दिया कि तुम पुराणके वक्ता होगे ।

ग्रहण करके, सब विश्वको अपनेमें लय करके, केवल नेत्र मूँद कर (अर्थात् चित्शक्ति वा ज्ञान नष्ट नहीं हुआ) अपने स्वरूपके अनुभवमें आनन्दयुक्त अतएव चेष्टाहीन होकर एकमात्र ईश्वर शेपशय्या पर सोये तब यह सब विश्व प्रलयसमुद्रके जलमें डूबा हुआ था ॥ १० ॥ अपने लोकमय शरीरमें पञ्चतत्त्वके सूक्ष्म अंश (मनुष्यादि शरीरोंको) रक्षित करके, कालस्वरूपिणी शक्तिको पुनः सृष्टि उत्पन्न करनेके लिये धारण किये हुए उस एकमात्र ईश्वरने जलमें बाह्यव्यापारहीन अवस्थामें शयन किया; जैसे काष्ठगत रुद्धवीर्य अग्नि ॥ ११ ॥ एक सहस्र चतुर्युगी तक निजज्ञानशक्तिसहित योगनिद्रामें शयन करके तदनन्तर प्रथम ही प्रबोधन करनेके लिये नियुक्त अपनी कालशक्तिद्वारा प्राप्त कर्मतन्त्रको स्वतंत्र ईश्वरने ग्रहण किया और तब सब लोकोंको अपने शरीरमें लीन देखा ॥१२॥ ईश्वरने जब सृष्टिके उपकरणस्वरूप सूक्ष्म पञ्चतत्त्वमय विपयको अपने शरीरसे भिन्न करके दृश्यरूपसे देखना चाहा, तब दृष्टिरूप कालशक्तिसे रजोगुणद्वारा क्षोभको प्राप्त होकर विश्व-कार्यके प्रकाशक उन्ही तत्वमय सूक्ष्म उपादानोंसे मण्डित एक पद्मकोप हरिके नाभिस्थानसे प्रकट हुआ ॥१३॥ वही रजोगुणयुक्त सूक्ष्म अर्थसमूह, कर्मप्रतिबोधक कालके द्वारा आकृष्ट होकर पद्मकोपरूपसे सहसा प्रकट हुआ। वह ईश्वरसे उत्पन्न कमल सूर्यके समान अपने तेजसे उस विशाल जलको प्रकाशित करने लगा ॥ १४ ॥ सम्पूर्ण गुणप्रकाशक उस लोकमय कमलमें वही विष्णु अंशद्वारा प्रवेश करके स्वयं वेदमय विधातारूपसे प्रकट हुए। जिन ब्रह्माको (उनके उत्पन्न करनेवालेको न देखनेके कारण) स्वयंभू अर्थात् 'आपही आप उत्पन्न' कहते हैं ॥ १५ ॥ प्रकट होकर उसी कमलकी कर्णिकामें स्थित ब्रह्माने आसपास किसीको न देखा । शून्यमें नेत्र फैलाकर चारो ओर देखनेसे ब्रह्माके चार मुख होगये ॥ १६ ॥ प्रलयकालके पवनकी थपेड़ोंसे टकरा रहे जलकी लहरोंसे वह कमल हिल रहा था, उस पर बैठे हुए आदिदेव ब्रह्मा भली भाँति उस कमलका व अपना रहस्य और लोकतत्व न जान सके ॥१७॥ मोहवश ब्रह्माजी मन ही मन विचारने लगे कि मैं कमलपीठ पर बैठा हूँ, पर मैं कौन हूँ? और जलमें केवल यह एक कमल कहाँसे प्रकट हुआ? इस पद्मके नीचे अवश्य कुछ है ॥ १८ ॥ ऐसे विचार कर ब्रह्माजी उस कमलनालके छिद्रोंके द्वारा भीतर जलमें गये, पर बहुत ढूँढने और परिश्रम करने पर भी पद्मनालका आधार विधाताको नहीं मिला ॥ १९ ॥ हे अंग! जो कालचक्र विष्णुका सुदर्शनचक्र है और मनुष्योंको भयभीत करता हुआ आयुको क्षीण करता है,—अपने आधाररूप पद्मका आधार ढूढ़ते २ ब्रह्माको वही काल आकर प्राप्त हुआ अर्थात् सौ वर्प यही करते २ बीते, पर ब्रह्मा पता न लगा सके ॥२०॥ कामना पूर्ण न होनेके कारण ब्रह्माजी अपने स्थान कमलके ऊपर आये और धीरे २ श्वासाको जीतकर चित्तको एकाग्र करके समाधि लगाकर बैठे ॥२१॥ सौ वर्पके कालमें सुसंपन्न योग द्वारा ज्ञानको प्राप्त होकर ब्रह्माजीने जो प्रथम बहुत श्रम करने पर भी न देख पाया था, वह अब अपने हृदयमें ही देखा ॥२२॥

कमलनालतुल्य श्वेत वर्ण एवं विशाल शेषनागके शरीररूप पलँग पर एक पुरुष सो रहा है और छत्रके समान ऊपर फैले हुए शेषजीके एकसहस्र फणोंके मुकुटोंकी मणियोंके प्रकाशसे अन्धकाररहित प्रलयसागरके जलपर शेषजी विराजमान हैं ॥ २३ ॥ वह पुरुष अपने श्यामशरीरकी शोभासे नीलमणिके पर्वतकी शोभाको लज्जित कर रहा है। संध्याकालका मेघ मरकतपर्वतकी शोभाको बढ़ाता है सही, पर उस पुरुषके कटि देशमें स्थित पीतपटकी शोभा संध्याकालके मेघकी शोभाको मलिन कर रही है। शिरमें शोभित सुवर्णमण्डित किरीटमुकुट उस मरकतगिरिके स्वर्णशिखरका मानमर्दन कर रहा है । शैलस्थित रत्न, जलधारा, औषधि और सुमनससमूहको वनमाला व रत्नमुक्तामण्डित भूषणोंसे विभूषित श्यामवर्ण कर–चरण–सुषमासे लज्जित कर रहा है ॥ २४ ॥ जिसकी चौड़ाई व लंबाईमें तीनो लोकोंकी कल्पना है ऐसे अद्वितीय अनुपम शरीरमें अनेक भूषण वस्त्र, विचित्र एवं दिव्य शोभा दिखा रहे हैं। किन्तु उस देहकी स्वाभाविक सुषमा ऐसी है कि मानो उसीसे सकल वस्त्र भूषण शोभायमान हो रहे हैं! (१) ॥ २५ ॥ अपनी कामना पूर्ण होनेके लिये (मुक्तिप्राप्ति एवं आत्मज्ञानके अर्थ) वेदोक्तशुद्धमार्गसे जो पूजन कर रहे हैं उन परमहंस योगी और भक्तोंको कृपापूर्वक नखचंद्रकी किरणोंसे पृथक् २ प्रदर्शित–अंगुलीरूप–पत्रयुक्त एवं समग्र वरदायक चरणारविन्द (आत्मतत्व) कुछ उठाकर दिखा रहे हैं अर्थात् अर्पण कर रहे हैं ॥ २६ ॥ लोकोंकी आर्तिको हरनेवाली मंद मनोहर मुसकानसे युक्त और चलायमान कुण्डलोंसे मण्डित एवं अरुणवर्ण अधरबिंबकी कान्ति, सुन्दर नासिका और भ्रुकुटीसे शोभायमान मुखारविंदसे मनको हर रहे एवं पास बैठे हुए लोगोंको सम्मानित कर रहे हैं (२) ॥२७॥ नितम्बदेश कदंबपुष्पसदृश पीतवर्ण वस्त्र और मेखलासे भलीभांति अलंकृत है, और हेवत्स! वक्षस्थलको प्रिय, अमूल्य हार हृदयमें विहार कर रहा है (३) ॥२८॥

---

(१) यह चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, वन, पर्वत, नदी, नद, सरोवर, वृक्ष, लता, पुष्प, फल, तृण, घास, पत्ते, सुवर्ण, हीरा, पशु, पक्षी और मनुष्यादिकी शोभा जिस शोभामय ईश्वरके तेजसे शोभित होती है, वही ईश्वर ऐसे विचित्र सुसज्जित ब्रह्माण्डमें व्याप्त होकर सकल शोभित वस्तुओंको शोभित करते हैं। अतः ईश्वरके सिवाय कोई वस्तु नहीं है जो ईश्वरको शोभित करसके। अलंकारके रूपकसे इसब्रह्माण्डमें जो कुछ है वह उसी ईशकी शोभासे सुशोभित है–ऐसा जानना चाहिये। इससे ईश्वरकी आनन्दमयमूर्तिकी केवल कल्पना रूपकमें की गई है। विशाल देहसे अपरिमेय व अनन्त ब्रह्माण्ड जानना योग्य है। (२) यह मुख केवल शान्तिकी कल्पना मात्र है। चरणके मिलनेपर आत्मतत्वका ज्ञान होनेसे तदनन्तर ओष्ठ, कुण्डल व हास्यकी शोभासे दुःख दूर होता है फिर भ्रुकुटी नासाआदिसे शान्तिलाभ होता है–यहां पर इस रूपकका यह तात्पर्य है। (३) यह ब्रह्माण्ड भगवान्का नितम्बदेश है। उस नितम्बको मेखलारूप माया घेरे हुए या जकड़े हुए है। और पीतपट महत्तत्व आ-

वह महापुरुष, जिसका मूल अप्रकट है ऐसे चन्दनवृक्षके समान शोभायमान है। श्रेष्ठ केयूर एवं अन्यान्य मणिजटित भूषणोंसे भूषित भुजाएँ फूली हुई शाखाओंके समान देख पड़ती हैं और जैसे चन्दनके वृक्षमें सर्प लिपटे होते हैं वैसे शेषनागके सहस्रफण श्यामशरीरमें संलग्न होकर शोभायमान हैं (४) ॥ २९ ॥ भगवान् समुद्रमें मग्न पर्वतके समान देख पड़ते हैं। पर्वत भी सर्पादिका आश्रय और चराचरका निवासस्थान है, नारायण भी सर्पके आश्रय एवं चराचर जगत्के निवासका स्थान हैं। सुवर्णमणिमण्डित सहस्रोंकिरीटमुकुट पर्वतके सुवर्णशिखरोंके सदृश देख पड़ते हैं, जैसे किसी २ पर्वतमें रत्न उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार कौस्तुभरत्न वक्षस्थलपर प्रकाशित है ॥ ३० ॥ वेदरूप भ्रमर जिसपर गुंजार कर रहे हैं ऐसी अपनी कीर्तिस्वरूप वनमाला, जो कण्ठसे लेकर चरणपर्य्यन्त लम्बायमान है उससे शोभित हैं। सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि आदि भी अपने अपने व्यापारोंसे देखकर भी जिस हरिका निश्चय नहीं कर सकते और तीनोलोकोंमें जानेकी शक्तिसे युक्त सुदर्शनादि प्रधान २ अस्त्र चारो ओर भगवान्की परिक्रमा कर रहे हैं अतएव दुष्प्राप हैं अथवा स्वयं सुदर्शनादि अस्त्रोंको ही दुष्प्राप्य हैं अर्थात् वे सब समय पास रहकर भी नारायणके तत्वको नहीं जान पाते ॥ ३१ ॥ फिर लोकसृष्टिके लिये ब्रह्माने जो देखा तो केवल हरिकी नाभिसे उत्पन्न कमल, जल, वायु, आकाश और स्वयं, ये ही पाँच पदार्थ देख पड़े, और कुछ नहीं ॥ ३२ ॥

स कर्मबीजं रजसोपरक्तः प्रजाः सिसृक्षन्नियदेव दृष्ट्वा ॥
अस्तौद्विसर्गाभिमुखस्तमीड्यमव्यक्तवर्त्मन्यभिवेशितात्मा ॥३३॥

विदुर! रजोगुणयुक्त विधाता, प्रजा सृजनेकी इच्छा होने पर दिव्यदृष्टिद्वारा पाँच ठौर विश्वके बीजस्वरूप उक्त पदार्थ* पा कर उसी अव्यक्तमार्गमें मन लगा कर

दि कारणसमूह हैं। एवं कर्ममय जीव जो शुद्धावस्थाको प्राप्त है वह और चैतन्य, ज्ञान, और तत्वही अमूल्य हार है, वे ही कर्तव्यकर्मके अनुभवका स्थल जो वक्षस्थल है उसमें स्थित हैं अर्थात् सदानन्दमें विहार करते हुए आनन्दमय होरहे हैं। यह भी रूपक है। (४) सर्पके रूपकसे तात्पर्य मायाका है अतएव कहा गया कि सर्पवेष्ठित चन्दनतरुकी भाँति संसार-विषपूर्ण मायामें जटित रहकर भी ईश्वर मायाके अनुगत नहीं है। चन्दनकी भाँति सुगंधसम ज्ञानमें विकार नहीं होता।

* ये ही पांच तत्व हैं जिनमें सब संसारकी सृष्टि है—यथा नाभिपद्म (आधार स्थितसूक्ष्म ब्रह्माण्ड) १—मृत्तिका वा पृथ्वी। और अहंभाव वा अहंज्ञान (मैं हूँ यह स्वभाव) २—तेज वा ज्योति। एवं जलका स्थूलरूप (तरलभावको प्राप्त भूतसमष्टि) ३—जल। वायु (पूर्वसृष्टिका बीज) ४—वायु। पंचम आकाश अर्थात् शून्य (ब्रह्मा नाम आत्माका है। रजोगुण अर्थात् ईश्वरके नियमाधीन होकर नियमित कर्म करनेकी इच्छा)।

पूजनीय (जिस पुरुषका दर्शन कर चुके हैं) पुराणपुरुषकी इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय ।

ब्रह्माकृत भगवान्‌की स्तुति ।

ब्रह्मोवाच—ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां
न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ॥
नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं
मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥ १ ॥

श्रीब्रह्माजी बोले । बहुत समयके बाद आज मैंने आपको जाना । अहो ! प्राणी कैसे अभागे हैं कि वे आपकी गति नहीं जान सक्ते ! आपसे भिन्न कुछ नहीं है, आप ही मायाके गुणोंको ग्रहण करके बहुरूप देख पड़ते हैं—अतएव जो कुछ (संसार) आपके भिन्न (मोहवश) प्रतीत होता भी है तो वह असत्य है ॥१॥ भगवन् ! आप ज्ञानमय हैं, अतएव तमोगुण और रजोगुणका लेश भी आपमें नहीं है । और यह रूप जो आपने मुझको अभी दिखाया है, सो केवल उपासक लोगों पर अनुग्रह करके आपने अपनेको प्रथम प्रकट किया है; यही शत २ अवतारोंका मूल है । इसी मूर्तिकी नाभिसे उत्पन्न कमलसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ ॥२॥ परमात्मा ! इस मूर्तिसे अधिक आपकी और कोई मूर्ति, जो आनन्दमय, भेदरहित हो और जिसका ज्ञानरूप प्रकाश कभी नष्ट न होता हो, ऐसी नहीं है । आपकी इसी मूर्तिसे विश्वकी उत्पत्ति है । किन्तु यह उस मायामय विश्वसे विभिन्न है एवं इसीकी विभूतिसे सम्पूर्ण इन्द्रियाँ और तत्त्व उत्पन्न हुए हैं; अतएव इसी मुख्य मूर्तिको उपासनीय जान कर मैं शरणमें आया हूँ ॥ ३ ॥ हे त्रिभुवनमंगल ! आपने यह रूप अपने उपासकों(हम)को मंगलके लिये ध्यानमें दिखाया, अतएव आप बड़े ही दयालु और भक्तवत्सल हैं, मैं आपको वारम्वार प्रणाम करता हूँ । वे बड़े ही अभागे और नारकी जीव हैं जो कुतर्क करके आपका ध्यान वा आदर नहीं करते ! ॥ ४ ॥ जो लोग श्रुतिरूपी वायुके द्वारा आनीत, आपके चरणारविन्दके सुगन्ध (सुयश वा कथा) को कानके छिद्रोंद्वारा ग्रहण करते हैं, हे नाथ! उन अपने भक्तोंके हृदय-कमलसे आप कहीं नहीं हटते; कारण उसका यह है कि उनकी दृढ़भक्ति आपके चरणोंको छोड़ती ही नहीं ॥५॥ तबतक धन, घर, सुहृद् स्त्री आदिके वियोगसे अथवा न होनेसे भय, शोक, ईर्ष्या, इच्छा, अपमान, अधिक तृष्णा आदि हैं और तभीतक

असत्य आग्रह (मैं हूँ, मेरी स्त्री है इत्यादि) है एवं इस आग्रहके कारण जन्म मरणका दुःख व क्लेश है, जबतक यह मनुष्य आपके अभयपदस्वरूप उभय पदकी शरणमें नहीं जाता ॥ ६ ॥ दैवने निश्चय उनकी मति मारी है जो लोग सम्पूर्ण अमंगलोंको दूर करनेवाले आपके प्रसंग (चर्चा)से विमुख होकर विषयवासनारूप सुखलेशके लिये लोभवश होकर निरन्तर अमंगल काम्यकर्म करते हैं ॥ ७ ॥ भूख, प्यास, कफ, पित्त, वात, शीत, ग्रीष्म, आँधी पानी और ऐसे ही अन्य २ विषय एवं कामाग्नि व अत्यन्त क्रोधसे वारम्वार परिपीड़ित इस संसारको देखकर हे अच्युत ! मेरा मन महा खिन्न होता है ! ॥ ८ ॥ यद्यपि मायाका प्रपंच मिथ्या है परन्तु जबतक इन्द्रिय शरीर और मायासे उत्पन्न भेदबुद्धिके भेदको मनुष्य नहीं जान लेता और देहाभिमानको नहीं त्यागता तबतक कर्मफलरूप यह अज्ञानतावश दुःखदायक माया व्यर्थ होनेपर भी नहीं छूटती ! ॥ ९ ॥ जिनकी इन्द्रियाँ दिनको कामकाजमें वा विषयभोगमें लिप्त रहती हैं और रात्रि केवल सोनेमें बीत जाती है, उसमें विषयसुखका भी लेश नहीं मिलता, स्वप्नसदृश मिथ्या मनोरथ करते हैं, उन्हें दैव नष्ट कर देता है, पूर्ण नहीं होने पाते, तव किसी २ क्षण (समय) निद्रा अर्थात् मोह नष्ट हो जाता है पर मोहसे मुक्ति नहीं होती, वारम्वार इसी गहरी नींद (मोह) में सोजाते हैं और अपनी सुधि नहीं रहती; ऐसे आपकी भक्तिसे विमुख बड़े २ ज्ञानी मुनि भी इस संसारसे मुक्त नहीं होते ! ॥ १० ॥ नाथ ! आप भावनास्वरूप योगसे कल्पित प्रत्येक पुरुषके हृदयकमलपर विराजमान हैं, आपका मार्ग आपके गुणानुवाद कहने, सुनने, पढ़ने और विचारनेसे देखपड़ता है। लोग जिस २ भावसे आपकी भावना करते हैं, आप उन सज्जनोंपर अनुग्रह करके वही २ रूप धारण करते हैं ॥ ११ ॥ प्रभु ! आप अनेक उपचार आदिसे कामनापूर्तिके लिये देवगणद्वारा पूजित व आराधित होकर उतना प्रसन्न नहीं होते जितना सब प्राणियोंपर दया एवं समदृष्टिसे प्रसन्न होते हैं । समदृष्टि और सब प्राणियोंपर दया-ये दोनो वातें असत् लोगोंको अलभ्य हैं। आप एक हैं, सब प्राणियोंमें स्थित एवं सुहृद् व अन्तःकरणरूप आत्मा हैं ॥ १२ ॥ अतः अनेक यज्ञ, दान, घोरतप, व्रतचर्या आदि कर्मोंके द्वारा आपकी आराधना करना एवं उन क्रियाओंका फल आपके ही अर्पण कर देना-यही मनुष्योंका परमधर्म है; क्योंकि यह धर्म कभी क्षीण नहीं होता और सकाम कर्मफल भोग चुकने पर क्षीण हो जाते हैं ॥ १३ ॥ नित्य चैतन्यस्वरूप होनेके कारण भेदभ्रमहीन और ज्ञानरूप वा ज्ञानका आधार एवं विश्वकी उत्पत्ति, पालन और प्रलयरूप लीलाके करनेवाले परमेश्वरको हम प्रणाम करते हैं ॥ १४ ॥ जिनके अवतारोंके गुणकर्मानुरूप नामोंको प्राण निकलते समय विवश होकर जो लोग ले लेते हैं वे सहसा अनेक जन्म जन्मान्तरके पापोंको त्यागकर मुक्तिको प्राप्त होते हैं, उन जन्मरहित ईश्वरके मैं शरणागत ॥ १५ ॥ आप त्रिभुवनमय वृद्धिशील-महावृक्ष हैं। आप स्वयं (इस मायामय

विश्ववृक्षका) मूल हैं। विश्वकी उत्पत्ति, पालन व नाशके कारणरूप-मैं, शिव और स्वयं विभु अर्थात् विष्णु, ये तीन आपकी मोटी शाखाएँ हैं और मरीचि, मनु आदि अनेक छोटी २ डालियाँ हैं। आपको प्रणाम है ॥ १६ ॥ आपके कहे हुए आपके ही पूजनरूप कुशलकारी सुकर्ममें असावधान एवं विरुद्धधर्ममें तत्पर मनुष्यकी बलवती जीवनकी आशाको जो यकायक प्रकट होकर जल्दीसे काट देता है उस महा प्रबल दुर्निवार कालस्वरूप ईश्वरको प्रणाम है ॥ १७ ॥ जिसको सब लोग नमस्कार करते हैं ऐसे दो परार्ध पर्य्यन्त रहनेवाले पदमें स्थित मैं भी जिस कालसे भय करता हूँ एवं कालभयके दूर करनेके लिये आपमें मिलनेकी इच्छा करके मैंने बहुत वर्ष तक तप किया, उन कालरूप एवं यज्ञपुरुषरूप आपको प्रणाम है ॥ १८ ॥ निजरचित सेतु अर्थात् धर्मकी मर्यादा पालनेके लिये अपनी इच्छाके अनुसार तिर्यक्, मनुष्य और देव आदि जीवयोनियोंमें, विषयवासनाहीन एवं पूर्णकाम होकर भी देह धारण करके जो रमण करता है उस भगवान् पुरुषोत्तमको नमस्कार है ॥ १९ ॥ पञ्चवृत्ति(राग, द्वेष, अभिनिवेश, मोह, महामोह)-युक्त होनेके कारण निद्राका कारण जो अविद्या अर्थात् अज्ञान वा आलस्य है उससे रहित होकर भी सम्पूर्ण लोकोंको अपने हृदयरूप पात्रमें स्थापित करके, सर्पकी शय्या पर घोर तरंगश्रेणीयुक्त जलके भीतर, पूर्व कल्पमें श्रान्त हो गये अपने जन देवादिको विश्रामसुख देनेकी इच्छासे योगनिद्राका आश्रय लेकर सुखपूर्वक आप शयन करते हैं ॥ २० ॥ हे पूज्य ! आपके ही अनुग्रहसे तीनो लोकोंकी उत्पत्तिकी सामग्रीस्वरूप अथवा सृष्टिआदि कार्यसे त्रिलोकीका उपकार करनेवाला मैं आपके नाभिकमलसे उत्पन्न हुआ हूँ। योगनिद्राके अन्तमें उदरस्थित ब्रह्माण्डकी सृष्टिके लिये किंचित् विकसित हैं नयननीरज जिनके उन जगत्पतिको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२१॥ यह सर्वव्यापक, अन्तर्यामी एवं प्रणतपाल और सब जगत्के सुहृद्

---

१ गीतामें हरिका वचन है—"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्वमदर्पणम् ॥" अर्थात् हे अर्जुन ! जो करते, भोजन करते, हवन करते, दान करते, और तप करते हो वह मेरे अर्पण करो।

२ एक सहस्र चतुर्युगी ब्रह्माका एक दिन है। इसी प्रकार ब्रह्माके पचास वर्षका पूर्वार्ध नाम है और तदनन्तर पचास वर्ष जो बीतते हैं उनका नाम परार्ध है। यहां पर दो परार्धसे पूर्वार्ध और परार्ध दोनो, अर्थात् ब्रह्माकी पूर्ण आयु जानना। तात्पर्य यह है, ब्रह्मा कहते हैं कि मेरी इतनी बड़ी परमायु है तथापि दो परार्धके उपरान्त मुझे भी कालका (अपने लोकसे भ्रष्ट होनेका) भय है।

३ गीतामें कृष्णचन्द्रने अर्जुनसे कहा है—"यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपिचोत्तमः । अतोस्मि लोके वेदेच प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥' अर्थात् मैं क्षर (नाश होनेवाले देह)से अतीत हूँ और अक्षर (आत्मा) से उत्तम हूँ अर्थात् परमात्मा हूँ। अतएव लोक व वेद मुझे पुरुषोत्तम कहते हैं।

ईश्वर, जिस ज्ञान व ऐश्वर्यसे जगत्को सुखित करते हैं, वही ज्ञान व ऐश्वर्य मुझको दें, जिससे मैं पहलेकी भाँति इस विश्वकी सृष्टि कर सकूँ ॥२२॥ यह ईश्वर शरणागत लोगोंको उनकी इच्छाके अनुसार वर देनेवाले हैं। इन्हीकी आज्ञाके अनुसार मैं इनके तेजसे व्याप्त इस विश्वकी सृष्टिमें प्रवर्तमान हूँ, तथापि यह निजअंशरूपिणी मायाके द्वारा अवतार लेकर जो २ कार्य करेंगे, उन सम्पूर्ण कर्म्मोंमें मेरा मन नियुक्त हो, एवं ये सब कर्म करने पर भी मुझे यह अभिमान न हो कि "मैं विश्वका रचनेवाला विधाता हूँ," अथवा मुझे कर्मका फलरूप माया-बंधन न हो ॥२३॥ जलमें शयन कर रहे इन अनन्त शक्तियुक्त पुरुपके नाभि सरोवरसे विज्ञानशक्ति (महत्तत्व) स्वरूप मैं उत्पन्न हुआ हूँ, एवं इनके इस विचित्ररूप (विश्वमय विराट्शरीर)का विस्तार अर्थात् लोकरचना मैं करता हूँ। अतः इन्हीके प्रसादसे मेरे वेदवाक्योंका उच्चारण नष्ट न हो अर्थात् सृष्टिमें लिप्त रहने पर मुझे, जिनसे इनकी महिमाका ज्ञान होता है वे वेद विस्मृत न हों ॥ २४ ॥ यह कृपासागर पुरातनपुरुप भगवान्, प्रेमपूर्ण हास्यसहित अपने नयननलिन खोल कर इसविश्वकी सृष्टिके लिये एवं मुझ दास पर अनुग्रह करनेके लिये शेपशय्या वा योगनिद्रासे उठ कर अर्थात् प्रबुद्ध हो कर अपनी मधुर वाणीसे मेरे इस विषादको कि "मैं सृष्टि कैसे करूँ गा?" दूर करें ॥ २५ ॥ **श्री मैत्रेयजी बोले**। हे विदुर! ऐसे तप, उपासना और समाधिके द्वारा अपनी उत्पत्तिके स्थान अर्थात् परमेश्वरको देख कर एवं जहांतक मन और वाणीकी गम्य थी वहां तक स्तुति करके थक कर विधाता चुप हो रहे ॥२६॥ भगवान् मधुसूदनने देखा कि ब्रह्माजी, अपने विश्वरचनाविपयक ज्ञानके लिये खिन्न हो रहे हैं एवं प्रलयसागरकी अनन्त जलराशि देख कर उनका चित्त घबड़ा रहा है। तब ब्रह्माका अभिप्राय जान कर गंभीर वाणीसे मोहको दूर करते हुए ऐसे बोले ॥ २७ ॥ २८ ॥ **श्री भगवान्ने कहा**। हे वेदगर्भ! खिन्न होकर आलस्य न करो, सृष्टिका उद्यम करो, और जो तुम मुझसे प्रार्थना कर रहे हो उसे मैंने प्रथम ही सम्पन्न कर दिया है—उसकी चिन्ता न करो ॥ २९ ॥ तुम फिर तप करके मेरी उपासनासम्बन्धी विद्याका अभ्यास करो अर्थात् तप द्वारा मेरा ज्ञान प्राप्त करो। तब तुम अपने हृदयके भीतर ही मुझमें लीन सब लोकोंको देख पाओगे ॥ ३० ॥ भक्तियुक्त एवं एकाग्र होने पर अपनेको और सब लोकोंको मुझमें व सब लोकोंमें और अपनेमें मुझको व्याप्त देखोगे ॥ ३१ ॥ जब जीव, जैसे लकड़ियोंमें अग्नि व्याप्त है, वैसे ही सब प्राणियोंमें मुझको व्याप्त देखता है तब उसका अज्ञान या मोह दूर हो जाता है ॥ ३२ ॥ जब जीव पंचतत्व, इन्द्रियगुण और उपाधिसे रहित, शुद्ध आत्माको अपने रूप अर्थात् मुझ परमात्मामें तन्मय देखता है तभी मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ मेरे अनुग्रहसे अनेक कर्म करने एवं अनेक प्रजाओंके उत्पन्न करने पर भी, हे सबमें श्रेष्ठ! तुम्हारा आत्मा कभी मोहको न प्राप्त होगा ॥ ३४ ॥ ब्रह्मन्! तुम आदि ऋषि हो, तुमने मुझमें मन लगाया है, इस कारण प्रजाओंकी सृष्टि करने पर भी कदापि पापमय

रजोगुण तुमको अपने वशमें न कर सकेगा ॥ ३५ ॥ मुझको देहधारी नहीं जान सक्ते, पर अब तुमने मुझको जान लिया। क्योंकि तुम मुझको तत्त्व, इन्द्रिय, अहंकार एवं मायाके गुणोंसे रहित मानते हो (वास्तवमें मेरा यही निर्गुण निराकार रूप है) ॥३६॥ जब तुम कमलके मूलका पता लगानेके लिये कमलनालके छिद्र द्वारा नीचे जा कर ढूँढते२ थक गये और लौट कर खिन्न हो कर कमल पर बैठ चिन्ता करने लगे तब मैंने अपना रूप तुम्हारे हृदयके भीतर तुमको दिखाया ॥ ३७ ॥ और जो मेरी कथाओंके अभ्युदयसे परिपूर्ण मेरा स्तोत्र तुमने कहा एवं तपमें जो तुम्हारी निष्ठा हुई सो सब मेरे ही अनुग्रह व इच्छासे हुआ ॥ ३८ ॥ लोकसृष्टिकी इच्छासे, मेरा सगुण रूप देख कर भी जो तुमने निर्गुण कहके वर्णन किया, अतः तुम पर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ—तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३९ ॥ जो कोई इस तुम्हारे कहे स्तोत्रसे स्तुति करके नित्य मेरा भजन करैगा उस पर संपूर्ण काम-वर का देनेवाला मैं ईश्वर शीघ्र प्रसन्न होऊँगा ॥ ४० ॥ तत्वके जाननेवाले विद्वानोंका यही मत है कि कूप, बावली खुदवाना, वृक्ष लगाना, तप, यज्ञ, दान, योग, समाधि आदि सबका फल मेरी प्रसन्नता है, विना मुझे प्रसन्न किये सब विफल है ॥४१॥ विधाता! मैं ही सत्य व आत्मा हूँ अर्थात् देहाभिमानी जीव मेरा ही स्वरूपान्तर वा अंश है, इसी कारण मैं सब प्यारी वस्तुओंमें अत्यन्त प्रिय हूँ, मेरे (आत्माके) ही संयोगसे अति प्रिय देह भी प्यारा है, विना मेरे वह भी अप्रिय हो जाता है, अतएव उचित है कि मुझमें ही भक्ति करै ॥४२॥ ब्रह्मन्! यद्यपि तुम कृतार्थ होगये हो, क्योंकि मेरा ज्ञान तुमको हो गया है, तथापि सर्ववेदमय एवं मुझसे उत्पन्न आत्मा (अपने) द्वारा तीन लोक एवं मुझमें लीन प्रजाओंको पूर्वकल्पोंके समान फिर उत्पन्न अर्थात् प्रकाशित करो ॥ ४३ ॥

मैत्रेय उवाच—तस्मा एवं जगत्स्रष्ट्रे प्रधानपुरुषेश्वरः ॥
व्यज्येदं स्वेन रूपेण कञ्जनाभस्तिरोदधे ॥ ४४ ॥

मैत्रेयजी कहते हैं। इस प्रकार सृष्टिकर्ता ब्रह्माको अपने रूपमें सकल विश्व दिखा कर कमलनाभ, प्रधानपुरुष परमेश्वरने अपना रूप छिपा लिया ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय।

दश प्रकारकी सृष्टि।

विदुर उवाच—अन्तर्हिते भगवति ब्रह्मा लोकपितामहः॥
प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीर्मानसीर्विभुः॥ १॥

विदुरजी बोले। भगवन्! जब भगवान् अन्तर्द्धान हो गये तब लोकपितामह ब्रह्माजीने देह और मनसे कै प्रकारकी प्रजा उत्पन्न कीं?॥ १॥ भगवन्! मैंने प्रथम जिन २ विषयोंके जो २ प्रश्न किये हैं उन्हें यथाक्रम कह कर हमारे सब संशयोंको निवृत्त करिये॥२॥ **श्रीसूतजी कहते हैं।** इस प्रकार विदुरकी प्रेरणा सुन कर प्रसन्न महामुनि मैत्रेयजी हृदयमें स्थित उन विदुरके प्रश्नोंका इस प्रकार उत्तर देने लगे॥ ३॥ **श्रीमैत्रेयजी बोले।** जैसे जन्मरहित हरि भगवान्ने कहा था वैसे ही आत्मारूप हरिमें मनको लगाकर दिव्य सौ वर्ष तक ब्रह्माजीने तप किया॥ ४॥ कमलयोनि ब्रह्माने अपने आधाररूप कमल व जलको प्रलयकालके प्रबल वायुसे काँपते हुए देखा॥ ५॥ तब वृद्धिको प्राप्त तप द्वारा एवं अपनेमें स्थित विद्याके द्वारा अतिशय विज्ञानबलको पा कर जलसहित वायुको पी गये॥ ६॥ शून्यमें व्याप्त, अपने आसनस्वरूप कमलको देखकर ब्रह्माने मनमें विचारा कि "नष्ट हुए तीनो लोकोंकी कल्पना इसी कमलसे करूँगा"॥७॥ फिर भगवान् ब्रह्माने स्वयं उस पद्मकोषमें प्रवेश कर उसी एक पद्मके तीन भाग करके उन्हीसे तीन लोकोंकी कल्पना की। वह कमलकोष इतना लम्बा चौड़ा था कि उससे चौदहो भुवनोंकी एवं इससे भी अधिक कल्पना हो सक्ती, तब उससे त्रिलोककी कल्पना कुछ आश्चर्य नहीं है॥ ८॥ विदुर! ये जो तीन लोक हैं सो नित्यप्रति सृज्यमान जीवगणके भोगस्थानकी रचनाके विशेष हैं। सत्य एवं महर्लोक आदि लोक निष्कामकर्मका फल हैं, अतएव अविनश्वर हैं, इनकी सृष्टि प्रतिदिन नहीं होती। त्रिलोकी सकाम कर्मका फल है, इसी लिये प्रति कल्पमें उसकी उत्पत्ति और विनाश होता है। यह त्रिलोकी ब्रह्मलोक आदिके तुल्य नहीं है, क्योंकि ब्रह्मलोक या सत्यलोक निष्काम धर्मका फल हैं; अतएव दो परार्ध पर्यन्त इनका विनाश भी नहीं होता। दो परार्धके बाद भी महर्लोक आदि लोकोंमें जो रहते हैं वे प्रायः मुक्ति पाते हैं, उनको फिर संसारमें जन्म नहीं लेना पड़ता॥ ९॥ **विदुरजी बोले।** अद्भुतकर्मवाले हरिका जो आपने कालनामक लक्षण कहा था, हे प्रभु! आप हमसे उसका वर्णन कीजिये; उस कालकी कल्पना कैसे होती है? एवं उसका स्थूल वा सूक्ष्मरूप क्या है?॥१०॥ **मैत्रेयजी बोले।** वत्स! सम्पूर्ण गुणोंके महत्तत्त्वादिरूप परिणामोंमें जो व्यक्त होता है वही "काल" है, उसका आदि या अन्त नहीं है। भगवान् परमपुरुष लीलाके लिये उसी कालको निमित्त करके ब्रह्माण्डकी सृष्टि करते हैं॥११॥ यह विश्व विष्णु भगवान्की मायासे संहारको प्राप्त होकर ब्रह्ममें लीन हो गया, तदनन्तर परमेश्वरने अव्यक्त-

रूपकालको निमित्त करके उसी विश्वको पुनः स्वतन्त्ररूपसे प्रकाशित किया ॥१२॥ यह विश्व जैसा अब है वैसा ही पहले भी था और आगे भी रहेगा, इस जगत्की सृष्टि नव प्रकारकी है एवं प्राकृत व वैकृत अर्थात् प्रकृति व विकृतिसे उत्पन्न सृष्टि दशम सृष्टि है ॥ १३ ॥ इस विश्वका तीन प्रकार प्रलय होता है, नित्य (काल-द्वारा नित्य प्रति) प्रलय, व नैमित्तिक (संकर्षणजीके मुखसे निकली हुई अग्नि द्वारा केवल स्वर्ग तकका) प्रलय, और प्राकृतिक (जिसमें ब्रह्मा तकका नाश हो जाता है वह महा प्रलय) प्रलय। अब नव प्रकारकी सृष्टि सुनो—महत्तत्त्वकी सृष्टि प्रथम है। आत्मस्वरूप हरिकी इच्छासे गुणोंकी विषमताको महत् कहते हैं ॥१४॥ दूसरी सृष्टि अहंकारकी है। जिस अवस्थामें द्रव्य (तत्त्वोपकरण), ज्ञान (मनोमय अंश) और क्रिया (इन्द्रियशक्ति) का उदय अर्थात् बोध हो उसका नाम अहंकार है। पञ्चतन्मात्रारूप भूतसूक्ष्मकी उत्पत्ति तृतीय सृष्टि है । यह द्रव्यशक्तियुक्त एवं महाभूतोंको उत्पन्न करनेवाला है ॥१५॥ ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियकी सृष्टि चतुर्थ है। मनोमय सात्त्विक देवगण (इन्द्रियोंके अधिष्ठाता) की पञ्चम सृष्टि है ॥ १६ ॥ पञ्चवृत्ति-स्वरूपा अविद्याकी छठी सृष्टि है। इसी अविद्यासे जीवोंको आवरण व विक्षेप आदि मोहके व्यापार होते हैं। ये छः प्राकृत सर्ग हमने तुमसे कहे, अब वैकृत सर्ग सुनो ॥१७॥ यह वैकृत सर्ग रजोगुणावलम्वी भगवद्बुद्धि एवं भगवत्स्वरूप ब्रह्माकी लीला (रचना) है ॥ १८ ॥ स्थावर सृष्टि (वृक्षोंकी सृष्टि) सप्तम है। यह अन्यान्य वैकृत सृष्टिके प्रथम हुई है, इससे मुख्य सृष्टि कही जाती है। स्थावर छः प्रकारके हैं। *वनस्पति, †औषध, ‡लता, ||त्वक्सार, §वीरुध, ¶द्रुम । इन सब स्थावरोंका लक्षण यही है कि इनके आहारका संचार ऊपर होता है, इनका चैतन्य प्रकट नहीं है, किन्तु चेतन हैं, इनको केवल स्पर्शका ज्ञान है सो भी भीतर ही; एवं इनके अनेकानेक भेद हैं ॥ १९ ॥ तिर्य्यक्योनि (पशु पक्षी) की सृष्टि अष्टम है। इनके अट्ठाईस प्रकार—भेद हैं। इनको आज, कल, परसों आदि कालका एवं अन्यान्य भविष्यत्का ज्ञान नहीं होता, इनमें तमोगुण अधिक होता है, केवल आहार व मैथुनमें तत्पर रहते हैं और सूँघनेसे ही इष्ट अर्थको जानते हैं एवं इनके हृदयमें बोध या विचार नहीं है§ ॥२०॥ इनके अट्ठाईस भेद ये हैं—गऊ, बकरी, भैंसा, कृष्णासार मृग, शूकर, गवय, रुरु (मृगविशेष), मेष, ऊँट; इन नव प्रकारके पशुओंके खुर बीचसे फटे होते हैं, इस कारण इनकी "द्विशफ" संज्ञा है ॥२१॥ गर्दभ, अश्व,

---

* जो विना फूले फलते हैं। † औषधभेद, जिनके अन्तमें फलपाक होता है। ‡ वृक्षोंपर चढ़कर फैलनेवाली । || जिनमें त्वचा ही सार है जैसे बाँस आदि। § लताभेद, जो कठिनताके कारण पृथ्वी ही पर फैलती हैं वृक्ष पर नहीं चढ़ सकतीं। ¶ जिनके फूलोंमें ही फल होते हैं। §तथाच श्रुतिः—"अथेतरेषां पशूनामशनपिपासे एवाभिज्ञानं न विज्ञातं वदन्ति न विज्ञानं पश्यन्ति न विदुः श्वस्तनं न लोकालोकाविति" ॥

अश्वतर (खच्चर), गौर, शरभ और चमरी गऊ; इनका खुर फटा नहीं होता, इस कारण इन्हे "एकशफ" कहते हैं। अब "पञ्चनख" पशुओंके नाम सुनो ॥ २२ ॥ कुत्ता, सियार, वृक (भेंड़िया), बाघ, बिल्ली, शश (चौगड़ा), शल्लक (स्याही), सिंह, वानर, हाथी, कछुआ, गोह और मगर आदि भूचर व जलचर एवं कंक, गिद्ध, बटेर, बाज, भास, भालू, मयूर, हंस, सारस, चक्रवाक, काक, उल्लूक आदिक खेचर जन्तु "पञ्चनख" हैं। ॥ २३ ॥ २४ ॥ नीचे आहारका सञ्चार जिनके है ऐसे मनुष्योंकी एक ही प्रकारकी सृष्टि नवम सर्ग है। ये लोग कर्म्मनिरत, अनन्त रजोगुणी एवं दुःखमें सुख माननेवाले होते हैं ॥ २५ ॥ हे सत्तम ! इस प्राकृत, वैकृत और देवसर्गमें देवसर्गको वैकृतसर्गके अन्तर्गत जानो । इसके सिवाय प्राकृत और वैकृत मिला हुआ कौमारसर्ग (देव-मनुष्यभावयुक्त सनत्कुमार आदि ऋषिगणकी सृष्टि) को और एक प्रकारका सर्ग जानना ॥ २६ ॥ देवसर्ग आठ प्रकारका है। १ देवगण, २ पितृगण, ३ असुर, ४ गन्धर्व, अप्सरा, ५ यक्ष, राक्षस, ६ सिद्ध, चारण, विद्याधर, ७ भूत, प्रेत, पिशाच, ८ किन्नर, किम्पुरुष (अश्वमुख) इत्यादि ॥ २७ ॥ विदुर ! विश्वस्रष्टा ब्रह्माकी यह दशविध सृष्टि हमने तुमसे कही ॥ २८ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि वंशान्मन्वन्तराणि च ॥
एवं रजःप्लुतः स्रष्टा कल्पादिष्वात्मभूर्हरिः ॥
सृजत्यमोघसंकल्प आत्मैवात्मानमात्मना ॥ २९ ॥

इसके अनन्तर वंश और मन्वन्तरका वर्णन करूँगा। स्वयंभू विधाता यों कल्पके आदिमें सृष्टिकर्ता होकर रजोगुणावलम्बनपूर्वक अपनेद्वारा अपनेको आप ही उत्पन्न करते हैं। उनका संकल्प अमोघ (सफल) है ॥ २९ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय ।

मन्वन्तरादिकालपरिमाण ।

मैत्रेय उवाच—चरमः सद्विशेषाणामनेकोसंयुतः सदा ॥
परमाणुः स विज्ञेयोनृणामैक्यभ्रमो यतः ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले। हे विदुर ! कार्यस्वरूप पृथिवी आदिके अंशका जो चरम भाग है अर्थात् जिसका फिर अंश नहीं हो सक्ता, जो कार्यावस्थाको भी नहीं प्राप्त होता एवं जो अन्यके साथ असंयुक्त अर्थात् समुदाय अवस्थाको अप्राप्त है, इसीकारण सर्वदा वर्तमान (अर्थात् कार्य और समुदाय अवस्थाके अपगत होने

पर भी जो विद्यमान) है, वह परमाणु है । उसी सूक्ष्म सद्भागका परस्पर संयोग होनेसे पदार्थका प्रकाश होता है और उसी पदार्थको देख कर एवं बहुसूक्ष्मका एकत्र मिलन होने पर, "यह पदार्थ वा अवयव है" ऐसा भ्रम मनुष्योंको होता है ॥१॥ जिस पदार्थका अन्त्यभाग परमाणु है उसके अवस्थान्तरको न प्राप्त होकर स्वरूपमें अवस्थित रहने पर उसका जो ऐक्य है उसीका नाम परममहत् है । यदि कहो कार्यमें अनेक विलक्षणता व परस्पर भेद है, उसका ऐक्य कैसे होगा? इसका उत्तर यही है कि परममहत्‌में विशेषविवक्षा और भेदविवक्षा नहीं है । इसी लिये यह समग्र प्रपञ्च ही परममहत्-पद-वाच्य है ॥ २ ॥ परमाणु आदिकी अवस्था-व्याप्ति द्वारा यह काल जैसे सूक्ष्म, स्थूल और मध्यावस्थाको प्राप्त होता है, उस-का भी अनुमान हो सक्ता है । यह काल भगवान्‌की शक्ति है एवं स्वयं अव्यक्त हो कर भी, व्यक्त पदार्थका भोग करता है और विभु अर्थात् उत्पत्ति आदि कार्यों में चतुर है ॥३॥ जो काल इस जगत्प्रपञ्चकी परमाणु अवस्थाका भोग करता है वही काल परमाणु (सूक्ष्म) है; और जो काल इसकी सम्पूर्ण अवस्थाका भोग करता है उसको परममहत् (स्थूल) कहते हैं (१) ॥ ४ ॥ स्थूल कालका भेद यह है— दो परमाणुका एक अणु होता है और तीन अणुका त्रसरेणु होता है । त्रसरेणु देख पड़ता है । झरोखेमें सूर्य्यकी किरणोंद्वारा शून्यमें उड़ता देखा जाता है ॥५॥ तीन त्रसरेणुके भोग करनेवाले कालका नाम त्रुटि है, शतत्रुटिपरिमित कालको वेध कहते हैं और तीन वेधकी लव संज्ञा है ॥ ६ ॥ तीन लवको एक निमेष (जितनी देरमें पलक लगती है) कहते हैं । तीन निमेपका एक क्षण होता है । पाँच क्षणमें एक काष्ठा और पन्द्रह काष्ठाका एक लघु होता है ॥७॥ पन्द्रह लघुकी एक नाड़ी (दण्ड) होती है, दो नाड़ीका एक मुहूर्त एवं छः या सात (दिन घटनेमें छः व बढ़नेमें सात) नाड़ीका एक प्रहर (पहर) होता है । यह पहर मनुष्योंके दिन व रात्रिका चतुर्थभाग है (अर्थात् दिन व रात्रिमें चार २ पहर होते हैं) ॥ ८ ॥ नाड़ीसंज्ञक कालका अनुमान कहते हैं—छः पल भर ताम्रसे एक ऐसा पात्र बनवावे जिसमें एक प्रस्थ जल जा सके, उस पात्रके बीचमें एक ऐसा छिद्र करै जिसमें चार अंगुली भर दीर्घ एक माशे सुवर्णकी बनी शलाका घुस सकै । उसी छिद्रसे जब एक प्रस्थ जल गिर जाय, उतने समयको नाड़ी कहते हैं ॥ ९ ॥ चार प्रहरका दिन व चार प्रहरकी रात्रि होती है । पन्द्रह २ दिन और रात्रिका एक २ पक्ष होता है। जिनको यथाक्रम कृष्ण और शुक्ल कहते हैं ॥ १० ॥ दो पक्षका एक मास होता है,

(१) श्रीधरस्वामीने इसका भावार्थ यों लिखा है कि सूर्य जो परमाणुस्थानका अतिक्रम करके गमन करते हैं उसीको परमाणु काल (सूक्ष्म काल) कहते हैं, और जो द्वादशराशिरूप सम्पूर्ण भुवनका अतिक्रमण करके गमन करते हैं, वही सम्वत्सर है । इसीका नाम स्थूल-काल है । इसके द्वारा युग—मन्वन्तरादिक्रमसे दो परार्ध (ब्रह्माकी आयु) पर्य्यन्त भेद होता है ।

वही पितरोंका दिन व रात्रि है दो महीनेकी एक ऋतु और छः महीनेका एक अयन होता है । अयन दो हैं—दक्षिणायन और उत्तरायण ॥ ११ ॥ ये दोनो अयन देवतोंके दिन-रात्रि हैं। बारह महीनेका एक वर्ष होता है। मनुष्योंकी सौ वर्षकी परमायु निरूपित की गई है ॥ १२ ॥ यह कालात्मक ईश्वर सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारागणके चक्र (ज्योतिश्चक्र)में स्थित होकर परमाणुसे लेकर संवत्सरपर्यन्त द्वादशराशिरूप भुवनकोषमें परिभ्रमण करते हैं ॥ १३ ॥ विदुरजी ! इस संवत्सरके पाँच भेद हैं:—संवत्सर, परिवत्सर, इड़ावत्सर, अनुवत्सर, वत्सर (१) ॥१४॥ हे विदुर ! जो महाभूतस्वरूप तेजोमण्डलमय सूर्य्य, पुरुषोंका मोह निवृत्त करने (आयु आदिके व्ययको बता कर विषयासक्तिको निवृत्त करने)के लिये अपनी शक्तिसे बहुप्रकार कर्मशक्तिमयी कालशक्तिको कार्योभिमुख करते हुए अन्तरिक्षमें भ्रमण करते हैं एवं जिनके द्वारा सकाम पुरुषोंके गुणमय यज्ञादि कर्मोंसे स्वर्गादिफलका विस्तार होता है, उन पञ्चसंवत्सरप्रवर्तक देवका पूजन करो ॥१५॥ **विदुरजी बोले**। हे ऋषिवर्य ! पितर, देवता, और मनुष्योंकी जैसे अपने २ 'मान'से शतवर्षकी परमायु होती है, उसका निरूपण आपने किया । अब जो पुण्यात्माजीव महर्लोक आदि कल्पान्तस्थायी लोकोंमें रहते हैं अर्थात् जो दैनन्दिनप्रलयमें नहीं नष्ट होते उनकी गति वर्णन कीजिये ॥१६॥ धीर जन योगसिद्ध नेत्रोंसे सम्पूर्ण विश्वको देख पाते हैं, अतएव हे भगवन्! आप निश्चय कालरूप भगवान्की गति जानते हैं ॥ १७ ॥ **मैत्रेयजी बोले**। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, ये चार युग हैं। युगसन्ध्या एवं सन्ध्यांशसहित ये चार युग दिव्य द्वादश सहस्र वर्षमें बीतते हैं ॥ १८ ॥ इनका विशेष विवरण सुनो । सत्ययुगका परिमाण दिव्य चार हजार वत्सर है एवं उसकी सन्ध्या व सन्ध्यांश प्रत्येक चार २ सौ वर्ष अर्थात् आठ सौ वर्ष है । ऐसे ही त्रेतायुग तीन सहस्र वत्सर और उसकी सन्ध्या व सन्ध्यांश प्रत्येक तीन २ वर्ष अर्थात् छः सौ वर्ष है । द्वापर दो सहस्र वर्ष एवं उसकी संध्या व संध्यांश प्रत्येक दो दो सौ वर्ष करके चार सौ वर्ष व कलियुग एक सहस्र

(१) इसका विवरण यह है—जितने समयमें सूर्य द्वादश राशि भोगते हैं उसको संवत्सर कहते हैं । बृहस्पति जितने कालमें द्वादश राशि भोगते हैं उसको परिवत्सर और तीस सौर दिनमें जो सावन मास होता है उसके बारह महीनेमें इडावत्सर व चन्द्र द्वादशराशिको जितने समयमें भोगते हैं उसको अनुवत्सर एवं नक्षत्र-संक्रान्त मासके द्वादश मासमें वत्सर होता है । कोई कहते है कि, जब शुक्ल पक्षकी प्रतिपदामें संक्रान्ति होती है तब सौर और चान्द्र दोनों मासोंका एक साथ उपक्रम होता है, वही संवत्सर है । तब सौरमानसे एक सालमें छः दिन बढते हैं और चान्द्रमानसे छः दिन घटते हैं। इस प्रकार द्वादश दिनके व्यवधानसे दोनो मास आगे पीछे हो जाते हैं । इस प्रकार व्यवधानके तारतम्यसे पांच वर्ष बीतने पर दो मलमास पड़ते हैं तब फिर संवत्सर होता है ।

वर्ष एवं उसकी संध्या व संध्यांश प्रत्येक एक २ सौ वर्ष करके दो सौ वर्ष जानना। (यह परिमाण दिव्य वर्ष अर्थात् देवतोंके वर्षसे है)॥ १९ ॥ युगके आदिमें संध्या और अन्तमें सन्ध्यांश होता है, जिनका क्रमशः ४,३,२,१ शत वर्षका मान है। युग-ज्ञ लोग इनके अन्तर्गत समयको युग कहते हैं। इसी कालमें युगविशेषके गोवधादि विशेष २ धर्म किये जाते हैं॥ २० ॥ हे विदुर! सत्ययुगमें मनुष्योंके आचरणसे धर्मके चारो चरण पूर्ण थे। वे ही अन्य युगोंमें क्रमशः बढ़ते हुए अधर्मके चरणों (भागों) से एक २ करके नष्ट होते हैं॥ २१ ॥ इस त्रिलोकीके वहिर्भाग अर्थात् महर्लोकसे लेकर ब्रह्मलोकपर्यन्त एक सहस्र चतुर्युगीका एक एक दिन (ब्रह्माके दिनमानसे) होता है और उतनी ही रात्रि होती है। उस रात्रिमें दैनन्दिन प्रलयके अनन्तर ब्रह्माजी शयन करते हैं अर्थात् सृष्टिकार्य नहीं होता ॥२२॥ रात्रिका अन्त होने पर सृष्टिकार्य्यका पुनः आरम्भ होता है। ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु भोग करते हैं॥ २३ ॥ एक २ मनु अपने २ कालमें कुछ अधिक इखत्तर (७१) चतुर्युगी भोगता है। मन्वन्तरोंमें मनुवंशीय नरपालगण क्रमशः उत्पन्न होते हैं; और सप्तर्षि, देवता, इन्द्र एवं इनके अनुवर्ती गन्धर्वादि प्रत्येक मन्वन्तरमें उनके साथ ही उत्पन्न होते हैं॥ २४ ॥ यह चतुर्दशमन्वन्तरात्मक समय ही ब्रह्माकी दैनन्दिन सृष्टि है; जिसमें त्रिलोकीकी उत्पत्ति होती है। इसीमें कर्म्मानुसार जीवगण तिर्यक् (पशु-पक्षी-कीटादि) मनुष्य, पितर, देव आदि योनियोंमें उत्पन्न होते हैं ॥ २५ ॥ प्रति मन्वन्तरमें भगवान् अपनी सत्त्वमूर्ति द्वारा मनुआदिके रूपमें प्रकट होकर, उनके द्वारा अपने पौरुषको प्रकाशित करते हुए विश्वकी रक्षा करते हैं॥ २६ ॥ जब ब्रह्माकी रात्रि आती है तब वह भगवान् तमोगुणके अंशका ग्रहण करके अपने विक्रमको अपनेमेंही रुद्ध कर तूष्णीं-भावको धारण करते हैं। उस समय अशेष जगत् भगवान्में काल द्वारा लीन हो जाता है॥ २७ ॥ चन्द्र, सूर्यके विना रात्रि और दिन जैसे घोर अन्धकारसे आवृत हो जायँ वैसे ही ब्रह्माकी रात्रिमें भू-आदि तीन लोक तमोमय (जड़) होकर उन्ही ईश्वरमें काल द्वारा लीन हो जाते हैं॥ २८ ॥ भगवान्की शक्ति संकर्षणके मुखसे निकली हुई अग्निसे उस समय त्रिलोकी जलने लगती है। तब उस अग्निकी गर्मीसे पीड़ित भृगु आदि ऋषि महर्लोकको छोड़ कर जन लोकको चले जाते हैं॥ २९ ॥ उसी समय कल्पान्तमें वृद्धिको प्राप्त होकर समुद्र, उत्कट क्षोभ और प्रचण्ड वायुसे उठी हुई तरंगोंसे युक्त होकर उस भस्म भये त्रिभुवनको वोर देते हैं॥ ३० ॥ उस जलके भीतर शेषनागकी शय्या पर योगनिद्रासे नेत्र मूँद कर हरि शयन करते हैं और जनलोकवासी जन भगवान्की स्तुति करते हैं॥३१॥ इसी प्रकार कालकी गतिसे उपलक्षित दिन-रात्रि द्वारा शतवर्षमें सबकी आयु क्षीण हो जाती है और ब्रह्माकी भी आयु गतप्राय हो जाती है॥ ३२ ॥ ब्रह्माकी आधी आयु (५० वर्ष) को परार्ध कहते हैं। अब पहला परार्ध बीत गया है और दूसरा

परार्ध प्रवर्तमान है ॥ ३३ ॥ ब्रह्माके प्रथम परार्धके पूर्व (महाप्रलयके अन्तमें) ब्राह्मनाम महाकल्प हुआ था । जिसमें ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे; जिन ब्रह्माको शब्द-ब्रह्म कहते हैं ॥ ३४ ॥ ब्राह्म कल्पके अन्तमें जो कल्प हुआ उसका नाम पाद्म-कल्प है, जिसमें हरिके नाभिसरोवरसे त्रिलोकीमय कमल उत्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥ ब्रह्माके द्वितीय परार्धके आदिमें वाराह कल्प हुआ, जिसमें हरि भगवान्‌ने वाराह रूप धारण किया ॥ ३६ ॥ यह द्विपरार्धसंज्ञक काल अर्थात् ब्रह्माकी पूर्ण आयु, विकाररहित, अनन्त, अनादि एवं जगत्‌के आत्मा हरिका एक निमेष (पलकका झपकना) मात्र है ॥ ३७ ॥ किन्तु यह निमेष भी भगवान्‌की सत्ताको किञ्चिन्मात्र क्षीण नहीं कर सक्ता; यही कहते हैं—परमाणुसे लेकर द्विपरार्धपर्य्यन्त यह प्रबल काल समर्थ हो कर भी परिपूर्ण परमेश्वर पर कुछ ईश्वरता नहीं कर सक्ता! यह तो देह और गेहके अभिमानी मायामोहित जीवों पर ईश्वरता कर सक्ता है, ज्ञानमय ईश्वर पर नहीं ॥ ३८ ॥ विदुर ! आठ प्रकृति और सोलह प्रकारके विकारोंसे आबद्ध इस ब्रह्माण्ड का अभ्यन्तर भाग पचास करोड़ योजन विस्तृत है एवं बाहर पृथ्वी आदि सात पदार्थोंसे आवृत है ॥ ३९ ॥

तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ॥
विष्णोर्धाम परं साक्षात्पुरुषस्य महात्मनः ॥ ४१ ॥

इन आवरणरूप पृथ्वी आदि पदार्थोंका भी परिमाण ब्रह्माण्डकी अपेक्षा उत्तरोत्तर दशगुण अधिक है । जिस ईश्वरमें प्रविष्ट ऐसे २ कोटि कोटि ब्रह्माण्ड परमाणु-तुल्य देख पड़ते हैं, विद्वान् और पण्डितजन उसी परमेश्वरको अक्षर-ब्रह्म और संपूर्ण कारणोंका कारण कहते हैं । वत्स विदुर ! वही परमपुरुष महात्मा विष्णुका परमश्रेष्ठ स्वरूप हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय ।

ब्रह्माकी सृष्टिका वर्णन ।

मैत्रेय उवाच—इति ते वर्णितः क्षत्तः कालाख्यः परमात्मनः ॥
महिमा वेदगर्भोऽथ यथास्राक्षीन्निबोध मे ॥ १ ॥

श्री मैत्रेयजी बोले । हे विदुर ! हमने परमात्माकी कालस्वरूप महिमाका यह वर्णन तुमसे किया । अब वेदगर्भ ब्रह्माने जैसे सृष्टि की, सो मुझसे सुनो ॥१॥

ब्रह्माने प्रथम अंधतामिस्र, तामिस्र, महामोह, मोह और तम* इन पाँच अज्ञानकी वृत्तियोंको उत्पन्न किया ॥२॥ किन्तु इस सृष्टिको पापीयसी देख कर ब्रह्माजी प्रसन्न न हुए। तब फिर भगवान्‌के ध्यानसे मनको पवित्र कर अन्य सृष्टि करने लगे ॥ ३ ॥ अबकी बार विधाताने सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार; इन चार क्रियाहीन, ऊर्ध्वरेता मुनियोंको मनसे उत्पन्न किया ॥४॥ और इन पुत्रोंसे बोले कि —"पुत्रगण! प्रजा उत्पन्न करो!" किन्तु वे जन्मसे ही मोक्षधर्मधारी एवं वासुदेव-परायण थे अतएव उन्होने प्रवृत्तिमार्गमें चलनेकी इच्छा नहीं की ॥ ५ ॥ इस प्रकार आज्ञाको टाल कर पुत्रोंने अनादर किया, तब ब्रह्माको पुत्रों पर घोर क्रोध आ गया, किन्तु ब्रह्माने उस क्रोधको रोका ॥६॥ बुद्धि द्वारा क्रोधका निग्रह भी किया पर वह दोनो भ्रुकुटीके मध्य होकर शीघ्र एक नीललोहित-वर्णवाले कुमारके रूपमें निकल पड़ा ॥ ७ ॥ वही संपूर्ण देवतोंके पूर्वज भगवान् भव (शिवजी) हैं। सो उत्पन्न होते ही वह कुमार रोकर कहने लगा कि "हे विधाता! हे जगत्‌के गुरु! मेरा नामकरण करो और मुझे रहनेको स्थान दो" ॥ ८ ॥ उसके ये वचन सुन उसका परिपालन करनेकी इच्छासे भगवान् ब्रह्मा, भद्रवाणीसे बोले कि—"तुम रोदन न करो, मैं तुम्हारा कहा पूर्ण करता हूँ ॥ ९ ॥ हे सुरश्रेष्ठ! उत्पन्न होते ही घबड़ाये हुए बालकके समान तुम रोने लगे, इस कारण प्रजागण तुमको रुद्र कहेंगे ॥ १० ॥ हृदय, इन्द्रिय, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, और तप; ये तुम्हारे स्थान हैं, जिनकी रचना तुमसे प्रथम ही मैंने कर दी है ॥११॥ मन्यु, मनु, महिनस, महान्, शिव, ऋतुध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव, धृतव्रत;— ये तुम्हारे नाम हैं ॥ १२ ॥ धी, धृति, उशना उमा, नियति, सर्पि इला, अम्बिका, इरावती, सुधा, दीक्षा और रुद्राणी; हे रुद्र! ये तुम्हारी स्त्रियाँ हैं ॥ १३ ॥ सहित स्त्रियोंके इन नाम और स्थानोंको ग्रहण करो और प्रजाओंको उत्पन्न करो, क्योंकि तुम प्रजापति हो" ॥१४॥ इस प्रकार जगद्गुरु ब्रह्माकी आज्ञा पा कर भगवान् नीललोहित अपने सत्त्व, आकृति और स्वभावके अनुरूप तीव्रतेजयुक्त अपने तुल्य (तामसी) प्रजा उत्पन्न करने लगे ॥१५॥ रुद्रके उत्पन्न किये हुए असंख्य रुद्र अपने तेज और तीव्रतासे चारो ओर जगत्‌के ग्रसनेके लिये उद्यत हुए। यह देख कर ब्रह्माजी शंकित हो रुद्रसे कहने लगे ॥ १६ ॥ "सुरश्रेष्ठ! बस अब ऐसी प्रजा न उत्पन्न

* तम नाम है अपने रूपके अप्रकाशका। मोह नाम है अहंबुद्धिका। महामोह नाम है भोगकी इच्छाका। तामिस्र नाम है भोगेच्छाके प्रतिघातसे उत्पन्न क्रोधका। अंधतामिस्र नाम है भोगेच्छानाश होने पर "मैं ही मर गया" इस बुद्धिका। यही कहा है—"तमोविवेको मोहः-स्यादन्तःकरणविभ्रमः। महामोहस्तु विज्ञेयो ग्राम्यभोगसुखेषणा॥ मरणं ह्यन्धतामिस्रं तामिस्रं क्रोध उच्यते। अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः॥ पातंजलि-योगशास्त्र भी कहता है—अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पंचक्लेशाः।

करो। ये सब अपने तीव्र नेत्रोंसे मेरे सहित मानों दशो दिशाओंको जलाये देते हैं॥ १७॥ तुम्हारा कल्याण हो, तुम प्रथम जाकर सब प्राणियोंको सुख देनेवाला तप करो। तपसे ही तुम इस जगत्को जैसा कि यह प्रथम था, उत्पन्न कर सकोगे॥ १८॥ तपके ही द्वारा इन्द्रियोंके स्वामी अन्तर्यामी और परम–ज्योतिःस्वरूप भगवान्को मनुष्य सहजमें प्राप्त होता है॥ १९॥ **श्री मैत्रेयजी बोले।** इस प्रकार ब्रह्माकी आज्ञा सुन कर भगवान् रुद्र, ब्रह्माजीकी प्रदक्षिणा करके और "बहुत अच्छा" कह कर तपके लिये वनको गये॥ २०॥ फिर भगवान् ब्रह्मा सृष्टिके लिये चिन्ता करने लगे, तब भगवान्की शक्तिसे युक्त ब्रह्माके शरीरसे निम्नलिखित दश पुत्र उत्पन्न हुए; जिनसे सृष्टिका विस्तार हुआ॥ २१॥ मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और दशम नारदजी॥ २२॥ ब्रह्माकी गोदसे नारदजी, अंगुष्ठसे दक्ष प्रजापति, प्राण (श्वासा) से वसिष्ठ, त्वचासे भृगु, करसे क्रतु॥ २३॥ नाभिसे पुलह, कानसे पुलस्त्य, मुखसे अंगिरा, नेत्रसे अत्रि और मनसे मरीचि ऋषि उत्पन्न हुए॥ २४॥ ब्रह्माके दक्षिणस्तनसे धर्म उत्पन्न हुआ, जिसमें स्वयं नारायण स्थित हैं। और अधर्म्म ब्रह्माकी पीठसे उत्पन्न हुआ, जिससे लोकोंकी भयङ्कर मृत्यु होती है॥ २५॥ फिर ब्रह्माके हृदयसे काम, भ्रुकुटीसे क्रोध, ओष्ठसे लोभ, मुखसे वाक्य, मेढ़ देशसे सिंधु, और पायुदेशसे पापका आश्रय निर्ऋति, ये सब उत्पन्न हुए॥ २६॥ देवहूतीके पति प्रभु कर्दम प्रजापति, प्रजापति ब्रह्माकी छायासे उत्पन्न हुए। इसी प्रकार यह विश्व ब्रह्माके मन और शरीरसे उत्पन्न हुआ॥ २७॥ ब्रह्माके एक वाक् नाम सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई, उस मनोहारिणी एवं अकामा कन्याकी कामना ब्रह्माने कामोन्मत्त हो कर की–ऐसा हमने सुना है॥ २८॥ पिताकी बुद्धि अधर्ममें लिप्त देख कर मरीचि आदिक पुत्रगण सविनय वचन कह कर उनको इस प्रकार समझाने लगे॥ २९॥ "भगवन्! आप जिस कार्यमें प्रवृत्त हैं उस कार्यको प्रथम किसीने न किया होगा और न आगे कोई करेगा। आप प्रभु होकर कामका दमन न कर दुहितागमन करना चाहते हैं!॥ ३०॥ हे जगद्गुरु! महातेजस्वियोंको भी यह कार्य्य कभी कीर्तिकारी नहीं हो सक्ता; क्योंकि उन्ही तेजस्वी महात्मागणके चरित्रोंका अनुकरण करके लोग कल्याणको प्राप्त होते हैं। अतः यदि अनुकरणीयचरित्रोंका चरित्र निकृष्ट होगा तो संसारमात्र कुमार्ग पर आरूढ़ होगा॥ ३१॥ उस महामहाशक्तिसम्पन्न ईश्वरको प्रणाम है, जिसने अपनेमें स्थित इस विश्वको अपने तेजसे प्रकट किया। वही इस समय धर्म्मकी रक्षा करे" * ॥ ३२॥

---

*–ब्रह्मा नाम आत्माका है। मरीचि आदि ज्ञानादिका नामान्तर है। वे ज्ञानादि आत्मासे उत्पन्न हैं, अतएव पुराणोंमें मरीचि आदि ब्रह्माके मानसिक पुत्र कथित हैं। ब्रह्मा अपनी कर्मशक्तिरूपिणी मायास्वभावरूप कन्यामें आकृष्ट एवं भोग करनेके लिये उन्मत्तप्राय हो-

इस प्रकार कह रहे अपने पुत्र प्रजापतियोंको आगे देख कर प्रजापतियोंके पति ब्रह्माने लज्जित हो उस शरीर(वासना)को त्याग दिया । उस घोर तनुको दिशाओंने ग्रहण कर लिया, वही नीहारमय-तमोरूपसे दिशाओंमें स्थित है ॥ ३३ ॥ एक समय ब्रह्माजी विचार रहे थे कि ये सब लोक जैसे प्रथम थे वैसे ही मैं कैसे उत्पन्न करूँगा? तब चारों मुखसे चार वेद उत्पन्न हुए ॥ ३४ ॥ एवं चार प्रकारके अग्निहोत्र, यज्ञविस्तार, चार उपवेद, न्यायशास्त्र, धर्मके आचरणमय चार चरण, चार आश्रम और उनकी वृत्तियाँ; यह सब ब्रह्माके चारो मुखोंसे उत्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥ **श्री विदुरजी बोले** । हे तपोधन! आपने कहा कि विधाताने वेदादिकको अपने मुखोंसे उत्पन्न किया । जिस २ वस्तुको जिस २ मुखसे ब्रह्माने उत्पन्न किया सो कृपा करके कहिये ॥ ३६ ॥ **श्री मैत्रेयजी बोले** । ब्रह्माके पूर्व मुखसे ऋग्वेद, आयुर्वेद (वैद्यकशास्त्र), शास्त्र (अप्रगीत मन्त्र स्तोत्र-होताका कर्म) और दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, धनुर्वेद (युद्धविद्या), इज्या (अध्वर्युका कर्म) तथा पश्चिम मुखसे सामवेद, गान्धर्ववेद (गानविद्या), स्तुति स्तोम (सङ्गीतरूप स्तोत्रार्थरचित ऋक्समुदाय-उद्गाताका कर्म्म) एवं उत्तर मुखसे अथर्ववेद, स्थापत्यवेद (अनेक प्रकारकी कारीगरी), प्रायश्चित्त (ब्रह्माका कर्म्म) आदि उत्पन्न हुए ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सर्वदर्शन ब्रह्माने चारो मुखोंसे इतिहास-पुराणस्वरूप पञ्चम वेद उत्पन्न किया ॥३९॥ ब्रह्माके पूर्व मुखसे षोडशी और उक्थ (यज्ञका अंगरूप प्रधान कर्मविशेष), दक्षिण मुखसे पुरीषी (अग्निचयन) और अग्निष्टोम व पश्चिम मुखसे आप्तोर्य्याम, अतिरात्र एवं उत्तर मुखसे वाजपेय और गोसव नाम यज्ञभेद उत्पन्न हुए ॥४०॥ ब्रह्माजीने विद्या, दान, तप और सत्य* इन चार धर्म्मके चरणों और वृत्तिसहित ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास-इन चार

कर स्वभावशक्तिमें मिलित होने लगे और सृष्टिचैतन्याभिमानी होनेपर ज्ञानादिक, आत्माको उसी कार्यसे निवृत्त करते हुए कहने लगे कि आत्माका यह पूर्वस्वभाव नहीं है । आत्मा किसीके संसर्गसे बलवान् एवं किसीमें मिलनेवाला नहीं है । आत्मा यदि मायामें मिल जाय तो वासना और मन आदि सभी शक्तियाँ मायामें लिप्त होंगी । ऐसा होने पर मुक्ति (आत्माके स्वभाव)का नाश स्वयंसिद्ध है । अतएव ऋषिरूपी ज्ञान आदि आत्माको मायामें लिप्त होने व भोग करनेसे निवृत्त करते हैं । ब्रह्माकी कन्याके साथ भोग करनेकी इच्छाका तात्पर्य यही है। और विष्णुस्मरणका तात्पर्य यह है कि ज्ञान आदि शक्तियाँ जीवात्माको परमात्माके चैतन्यसे चैतन्यमय रखनेके लिये आत्मामें मिली हुई हैं, वे हितकार्य्यमें निरत हुई । यहाँ पर व्यासजीने यह रूपक कल्पित किया है ।

* क्षेत्रज्ञकी ईश्वरक ज्ञानसे शुद्धिका नाम शौच या विद्या है । प्राणियोंको अभय देनेका नाम दान वा दया है । प्रथम स्कन्धमें तप, शौच, दया व सत्य ये चार चरण धर्मके कह आये हैं, उस स्थलसे और यहांसे विरोध न जानना । स्मृतिका इसमें प्रमाण है यथा-"क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धिः परमा मता ।" "भूताभयप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्" इति ।

आश्रमोंको पूर्वादि मुखसे यथाक्रम उत्पन्न किया ॥ ४१ ॥ सावित्र (ब्रह्मचर्य्यव्रत), प्राजापत्य (उपनयन संस्कारसे लेकर गायत्रीको पढ़ रहे द्विजका त्रिरात्रव्रत), ब्राह्म (व्रताचरण करनेवालेका एक संवत्सरमें वेदाध्ययन), बृहत् (नैष्ठिक ब्रह्मचर्य्य) ये चार व्रत और वार्ता (अनिषिद्ध कृषी आदिकी वृत्ति), संचय (याजनादि वृत्ति), शालीन (अयाचितवृत्ति), शिलोंछ (कटे हुए खेतमें गिरे अन्नको बीन कर लाना, यह वृत्ति), ये चार वृत्तियाँ भी ब्रह्माके पूर्वादि मुखोंसे यथाक्रम उत्पन्न हुईं ॥* ॥ ४२ ॥ अब चार प्रकारकी वानप्रस्थवृत्ति वर्णन करते हैं:—वैखानस, बालखिल्या, औदुम्बर, फेनप; ये चार वानप्रस्थ वृत्तियाँ और कुटीचर, बह्वोद, हंस, निष्क्रिय; ये संन्यासवृत्तियाँ ब्रह्माके मुखोंसे यथाक्रम उत्पन्न हुईं । इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं† ॥ ४३ ॥ एवं आन्वीक्षिकी (तर्कविद्या), त्रयीविद्या (धर्म-अर्थ-कामदायिनी वेदविद्या) और दण्डनीति, एवं व्याहृतियाँ (भूः, भुवः, स्वः) प्रणव (ओंकार); ये सब ब्रह्माके हृदयाकाशसे उत्पन्न हुए ॥ ४४ ॥ ब्रह्माके रोमसमूहसे उष्णिक् छन्द, त्वचासे गायत्री, मांसपिण्डसे त्रिष्टुप्, अस्थिचयसे जगती ॥ ४५ ॥ मज्जासे पंक्ति और, प्राणसे बृहती छन्द उत्पन्न हुआ। ऐसे ही ब्रह्माका जीव, स्पर्शसंज्ञक (कवर्गादि पञ्चवर्ग) वर्ण, एवं उनका शरीर स्वर (अकारादि) वर्ण विख्यात हुए ॥ ४६ ॥ ब्रह्माकी इन्द्रियाँ, ऊष्मा संज्ञक

---

* चारो व्रत ब्रह्मचर्य्यवृत्ति हैं और वार्ता आदि गृहस्थाश्रमकी वृत्तियाँ हैं—ऐसा जानना ।

† ब्रह्मदर्शनकी इच्छासे जो तप करनेके लिये वनमें जा कर ब्रह्मचर्य्या करते हैं उनकी वनचारी वा वानप्रस्थ संज्ञा है। इनकी चार श्रेणी हैं। १ वैखानस (ये गिरे हुए नष्ट अन्न, वा कदन्न खा कर उसीमें तुष्ट रह कर ब्रह्मानन्दका उपभोग करते हैं)। २ बालखिल्या (ये संचयकी चेष्टा नहीं करते, नित्य नवीन आहार पा कर पुरानेको त्याग देते हैं और ब्रह्मानन्दमें मग्न रहते हैं)। ३ औदुम्बर (ये प्रकृतिकी शोभामें मुग्ध हो कर, कुटीर वा आश्रम नहीं बनाते, जहाँ रात हो गई वहीं पड़ गये रात बिता दी, प्रातःकाल होने पर जिधर चाहा उधर जा कर फलाहार किया, इसी भांति शरीरपालनपूर्वक ब्रह्मानन्दका उपभोग करते हैं)। ४ फेनप (ये इतना हिंसावृत्तिहीन होते हैं कि अपने हाथसे वृक्षके फल फूल तक नहीं तोड़ते, स्वयं पतित फल आदिके आहारसे कालयापन करते ब्रह्मानन्द भोगते हैं)। ब्रह्मचर्य वा वानप्रस्थ साधक आश्रम है और संन्यास सिद्ध आश्रम है। इसमें भी चार संप्रदाय वा श्रेणी हैं। १ कुटीचर (ये आश्रममें कुटी बना कर आत्मधर्मका पालन करते हैं, कहीं जाते नहीं)। २—बह्वोद (ये कर्मव्रतादि त्याग कर केवल ज्ञाननिष्ठ होते हैं)। ३—हंस (ये परमहंस अर्थात् केवलमात्र ज्ञाननिष्ठ होते हैं, इनको देहाभिमान नहीं होता)। ४—निष्क्रिय (ये लोग परमात्माका आत्मामें दर्शन करके जीवन्मुक्त हो जाते हैं)।

(श, ष, स, ह) वर्ण, और बल, अन्तस्थ संज्ञक (य, र, ल, व) वर्ण हुए। एवं उनके विहारसे षड्ज आदि सात स्वर उत्पन्न हुए॥ ४७॥ यह ब्रह्माजी शब्दमूर्ति हैं एवं व्यक्त (वैखरीनाम वाक्यरूप भाषा) और अव्यक्त (प्रणव)- उभयात्मक हैं। अतएव इसी प्रणवसे ही परिपूर्णस्वरूप परमेश्वर नित्य आविर्भूत हैं; जो परमेश्वर सर्वत्र व्याप्त एवं अनेक इन्द्रादि शक्तियोंसे उपबृंहित हैं॥ ४८॥ तदनन्तर ब्रह्माजी उस पूर्वोक्त नीहारमय शरीरको त्यागकर अपर शरीर ग्रहण कर सृष्टि करनेमें तत्पर हुए॥ ४९॥ किन्तु हे विदुर! ब्रह्माजीने देखा कि महावीर्यशाली ऋषियोंकी भी सृष्टि वृद्धिको नहीं प्राप्त हुई। तब सृष्टिकी वृद्धिके लिये ब्रह्माजी फिर चिन्ता करने लगे कि अहो, यह बड़ा ही अद्भुत व्यापार है! मैं सर्वत्र व्याप्त हूँ तथापि प्रजाओंकी वृद्धि नहीं होती! निश्चय ही इस विषयमें दैव हमारे प्रतिकूल है॥ ५०॥ ५१॥ इस प्रकार दैवकी ओर दृष्टि करके यथोचित विचार कर रहे ब्रह्माका वह शरीर स्वयमेव दो खण्ड होगया। इसीसे लोकमें शरीरको काय कहते हैं॥ ५२॥ उन दोनो खण्डोंसे एक पुरुष और एक स्त्री उत्पन्न हुई। पुरुष तो स्वराट् स्वायंभुव मनु हुए॥ ५३॥ और स्त्री शतरूपा रानी हुई। शतरूपा, महात्मा स्वायंभुव मनुकी स्त्री हुई। तबसे प्रजा, मिथुनधर्म (मैथुन) के द्वारा वृद्धिको प्राप्त होने लगे॥ ५४॥ स्वायंभुव मनुके शतरूपा रानीमें पाँच सन्तान हुए। प्रियव्रत और उत्तानपाद; ये दो पुत्र और आकूति, देवहूति एवं प्रसूति; ये तीन कन्या॥ ५५॥

आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय तु मध्यमाम्॥
दक्षायादात्प्रसूतिं च यत आपूरितं जगत्॥ ५६॥

मनुने आकूतिका विवाह, रुचि प्रजापतिसे; और देवहूतिका विवाह, कर्दम प्रजापतिसे; एवं प्रसूतिका विवाह, दक्ष प्रजापतिसे कर दिया, इन तीनो कन्याओंके वंशसे जगत् परिपूर्ण हो गया॥ ५६॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

त्रयोदश अध्याय।

शूकर अवतार और पृथ्वीका रसातलसे उद्धार।

श्रीशुक उवाच—निशम्य वाचं वदतो मुनेः पुण्यतमां नृप॥
भूयः पप्रच्छ कौरव्यो वासुदेवकथादृतः॥ १॥

श्रीशुकदेवजी बोले। हे नृप! मैत्रेय मुनिकी उक्त पवित्र वाणी श्रवण करके वासुदेवकी कथाओंका आदर करनेवाले विदुरजीने फिर प्रश्न किया॥ १॥

श्रीविदुर मैत्रेयजीसे बोले। हे मुने! ब्रह्माके प्रिय पुत्र सम्राट् स्वायंभुव मनुने प्रियपत्नी शतरूपाको पा कर फिर क्या किया? ॥ २ ॥ हे सत्तम! आदिराजा राजर्षिका चरित्र मुझसे कहिये; क्योंकि वह राजा भगवद्भक्त हैं अतएव उनके चरित्रोंमें मुझे श्रद्धा है ॥ ३ ॥ मुनिवर्य! जिनके हृदयमें मुकुन्द भगवान्के पादारविन्द विराजमान हैं उन पुरुषोंके गुणोंका श्रवण ही पण्डितगणने सम्पूर्ण पुरुषोंके चिरकालके श्रम द्वारा उपार्जित श्रवणादिका मुख्य फल कहा है ॥ ४ ॥ श्रीशुकजी कहते हैं कि प्रायः श्रीकृष्णचन्द्र जिनके अंकमें अपने चरणारविन्द रखकर शयन करते थे उन विनययुक्त विदुरके वचन सुन कर एवं उन्हीके द्वारा भगवद्गुणवर्णनमें प्रेरित हो कर, रोमांचयुक्त है शरीर जिनका ऐसे मैत्रेय मुनि बोले ॥ ५ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले। तब अपनी भार्य्या सहित उत्पन्न स्वायंभुव मनु अंजलि बाँध कर प्रणतभावसे ब्रह्माजीसे बोले कि ॥६॥ "आप ही एक सम्पूर्ण प्राणियोंके उत्पन्न करने वाले, वृत्ति-विधाता (अतएव) पिता हैं। यद्यपि आपको हमसे कोई आकांक्षा नहीं है तथापि हमको आज्ञा दीजिये। हम क्या करें? जिससे आपकी सेवा वा शुश्रूषा हो ॥ ७ ॥ हमारी शक्तिसे होने योग्य सम्पूर्ण कर्मोंमें किस कर्म्मसे आपकी शुश्रूषा हो सक्ती है? सो कहिये। हे विभु! आपको नमस्कार है। भगवन्! आपकी सेवासे इस लोकमें यश और उस लोकमें सुगति हमको मिलेगी (क्योंकि पिताकी सेवा ही पुत्रका एक मात्र कर्तव्य है)" ॥८॥ श्री ब्रह्माजी बोले। हे तात! हे क्षितीश्वर! तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, क्योंकि तुमने निष्कपटहृदयसे स्वयं यह कहा कि—"आप हमको आज्ञा दीजिये," (इस लिये तुम सुपुत्र हो) ॥९॥ हे वीर! पुत्रोंको पिताके प्रति ऐसी ही भक्ति करना उचित है। अप्रमत्तभावसे अहङ्काररहित हो कर समादरपूर्वक पिताकी आज्ञाका पालन और पूजा करना विधेय है ॥१०॥ सो, तुम इस रानीमें गुणआदिमें अपने सदृश सन्तान उत्पन्न करके धर्मसे पृथ्वीका पालन और यज्ञ करके यज्ञपुरुषका भजन करो ॥ ११ ॥ हे नृप! इस प्रजापालनसे मेरी परम शुश्रूषा होगी और परमेश्वर भगवान् तुम्हारे प्रजापालनसे तुम पर प्रसन्न होंगे ॥ १२ ॥ पुत्र! हरि भगवान्को तुष्ट करना सबका ही कर्तव्य है, क्योंकि जिन पर यज्ञपुरुष जनार्दन भगवान् नहीं प्रसन्न हुए उनका सम्पूर्ण कर्म्मोंमें श्रम विफल है! क्योंकि उन्होने स्वयं अपने आत्माका अनादर किया (तो कहाँसे उनका कल्याण हो सकता है?) ॥१३॥ मनु बोले। हे पाप नाशन! मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँ गा किन्तु हे प्रभो! मेरे और मेरी प्रजाओंके रहनेका स्थान तो बताइये ॥ १४ ॥ क्योंकि जिस पर सब प्राणी रहते हैं वह पृथ्वी तो महाजलमें डूबी हुई है। हे देव! पृथ्वीदेवीके उद्धारका कोई प्रयत्न कीजिये ॥१५॥ श्रीमैत्रेयजी कहते हैं। इस प्रकार पृथ्वीको जलमें डूबीहुई देख कर ब्रह्माजी अपनी बुद्धिमें चिरकाल तक चिन्ता करते रहे कि "मैं पृथ्वीको जलके

ऊपर कैसे लाऊँ? ॥ १६ ॥ मैंने एकवार जलपान कर लिया था किन्तु फिर मेरे सृष्टि करते समय उत्पन्न हुए जलमें डूब कर पृथ्वी रसातलको चली गई, अब क्या करना चाहिये? क्योंकि जगदीश्वरने मुझको सृष्टि करनेकी आज्ञा दी है ॥ १७ ॥ किन्तु मुझे चिन्ता क्यों करना चाहिये? जिसके हृदयसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ वह ईश्वर मेरा कर्तव्य अपनी सहायतासे पूर्ण करेगा।'' हे अनघ! ऐसा विचार कर रहे ब्रह्माकी नासिका के छिद्रसे सहसा एक अंगुष्ठ भरका वाराहशावक निकल पड़ा* ॥१८॥ हे विदुरजी! ब्रह्माके देखते ही देखते वह वाराहशिशु आकाशमें ही हाथीके बराबर हो गया। यह एक महा अद्भुत व्यापार हुआ ॥ १९ ॥ तब मरीचि आदिक ऋषि और सनकादि कुमार एवं स्वायंभुवमनुसहित ब्रह्माजी उस शूकररूपको देख कर नाना प्रकारकी तर्कणा करने लगे ॥ २० ॥ कि यह शूकररूप जीव क्या है? यह कौन दिव्य जीव मेरे आगे अवस्थित है? अहो बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है कि यह मेरी ही नासिकासे उत्पन्न हुआ ॥ २१ ॥ और मैंने देखा कि यह अँगूठे भरका था परन्तु मेरे देखते २ क्षण भरमें भारी शिलाके इतना बड़ा हो गया! अवश्यमेव कदाचित् यह यज्ञपुरुष भगवान् हैं, मेरे मनको अपनी मायामें मोहित कर रहे हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजी अपने पुत्रोंसहित विचार कर रहे थे कि भगवान् यज्ञपुरुष एक बड़े पर्वतके सदृश हो कर गर्जे ॥२३॥ दशदिशाओंमें उस गर्जन शब्दकी प्रतिध्वनि होने लगी और ब्रह्मा एवं सब मरीचि प्रभृति द्विजोत्तम सुन कर हर्षित हुए (यह जान कर कि अब हमारी इच्छा पूर्ण हुई) ॥ २४ ॥ अपने खेदको नष्ट करनेवाले मायामयकायाधर वाराहरूप हरिका घुर्घुर शब्द सुन कर, जन, तप और सत्य–लोकके रहनेवाले मुनिगण तीनो वेदोंके पवित्र मंत्र पढ़ कर भगवान् यज्ञपुरुषकी स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ अपने गुणानुवादरूप वेदका मुनियों द्वारा पाठ सुन कर पुनः गजेन्द्रलीलाशील वाराहजीने गर्ज कर उस प्रलयके महाजलमें प्रवेश किया ॥ २६ ॥ फाँदते समय कठोर शरीर और कठोर रोम व त्वचावाले, आकाशचारी एवं पृथ्वीका उद्धार करनेवाले वाराहजी गर्दनके बाल फटकारते हुए, पूँछ उठा कर, अपने खुरोंसे मेघावलीको ताड़ित करते और अपनी कुछ निकली हुई दंष्ट्राके प्रकाशसे शून्यको प्रकाशित करते हुए

---

* यदि कोई शंका करे कि ईश्वर क्या ब्रह्माके द्वारा पृथ्वीका उद्धार नहीं कर सक्ते थे जो स्वयं शूकर अवतार लिया? उसका उत्तर यह है कि ब्रह्मा ईश्वरका रजोगुणी अंश हैं। इनका कार्य्य केवल सृष्टि है न कि सृष्टिकी रक्षा; इसी लिये ईश्वरने सत्त्वगुण (जिसका कार्य्य पालन करना है)—मय शूकर अवतार लेकर धरा का उद्धार किया।

भागवतके अनेकानेक स्थलोंमें पुष्ट किया गया है कि जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहारके लिये जो समय २ पर निर्गुण हो कर भी क्रमशः अपनी ही मायाके सत्त्व रज, तम- इन तीनो गुणोंका ग्रहण करके सगुण होते हैं वह हरि परमेश्वर भक्तवत्सल हैं।

देख पड़े ॥ २७ ॥ शूकररूपधारी यज्ञपुरुष सूँघ कर पृथ्वीको ढूँढ़ते २ (शूकर हरेक वस्तुको नाकसे ही सूँघ कर पहचानता है) करालदंष्ट्रायुक्त अकराल (प्रसन्न) नेत्रोंसे स्तुति कर रहे ब्राह्मणोंकी ओर कृपाकोर कर जलमें फाँद पड़े ॥ २८ ॥ भगवान्के अंग वज्रतुल्य कठोर थे, अतएव बड़े वेगसे फाँदे हुए यज्ञेश्वरके अंगोंके आघातसे जल जो फट गया और उछला सो मानो समुद्रकी कोख फट गई और शब्द जो हुआ सो मानो वह तरंगरूप बड़ी २ भुजाएँ उठा कर आर्त्त हो चिल्लाने लगा कि-" हे यज्ञपुरुष! मेरी रक्षा करो ।" ॥ २९ ॥ फिर यज्ञपुरुष क्षुरप्र (जिसका अग्रभाग आयत अर्थात् चौड़ा होता है) शरके न्याय खुरोंसे जल फाड़ते अपार समुद्रके भी पार (नीचेकी सीमा) पर पहुँच गये और वहाँ पृथ्वीको देखा । प्रथम योगनिद्रासे शयन करते समय जिस जीवोंके रहनेके स्थान अर्थात् भूमिको अपनेमें लीन कर लिया था उस पृथ्वीको अनायास यदि भगवान् उठा लावें तो कोई आश्चर्य नहीं है ॥ ३० ॥ तब डूबी हुई भूमिको अपनी दंष्ट्रा पर लिये हुए रसातलसे निकल कर भगवान् बहुत ही शोभाको प्राप्त हुए । इतनेमें जलके भीतर हिरण्याक्ष दैत्य गदा हाथमें उठाये सामनेसे आता हुआ देख पड़ा । उसने आकर वाराहजीकी राह रोकी तब भगवान्को बड़ा ही क्रोध आया और मुख कोपके आवेशसे सुदर्शनचक्रके समान लाल होगया । तब उसी जलमें असह्य-विक्रम दैत्यको लीलापूर्वक सिंहविक्रम भगवान् वाराहजीने मार डाला । उसके रक्तसे गण्डस्थल और तुण्ड रक्तवर्ण हो गये, जिनसे वह भगवान् जिसके गैरिक गिरिको लीलापूर्वक खोदनेसे दांत और शुंडादंड अरुण हो गये हों ऐसे गजराज जान पड़ने लगे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तमालतुल्य नीलवर्ण वाराहजी श्वेतवर्ण दंष्ट्राकी कोटि पर गजराजसदृश लीलापूर्वक पृथ्वी उठाये हुए देख पड़े । तब उनको पूर्णतया परमेश्वर जान कर ब्रह्मा आदि सब महर्षि व मनु वेदमय वाक्योंसे स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥ **ऋषि बोले** । हे अजित! हे यज्ञभावन! आपकी जयजयकार हो । वेदत्रयीमय अपने शरीरको हिला रहे वाराहजीको (यह भी शूकर, कुत्ता आदि जातिके पशुओंका नियम है कि वे भीग जाने पर देह फटकार कर पानी झाड़ डालते हैं) नमस्कार है । जिनके प्रत्येक रोमके छिद्रोंमें समग्र यज्ञ लीन हैं उन भूमिके उद्धाररूप कारणसे शूकररूपधारी हरिको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ हे देव! निश्चय आपके इस यज्ञमय पवित्र रूपको दुराचारी लोग नहीं देख सक्ते । आपके शरीरकी त्वचामें छन्द और रोमावलीमें कुश, नेत्रयुगलमें आज्य और चारो चरणोंमें चातुर्होत्रीय कर्म हैं ॥३५॥ हे ईश! तुम्हारा तुण्ड ही स्रुक् है, दोनो नासिकाछिद्र स्रुवा हैं, उदर ही इड़ा (यज्ञीय भक्षणपात्र) है । कानोंके छिद्र चमस (यज्ञपात्रभेद) हैं, मुख प्राशित्र (ब्रह्म-भागका पात्र) है । मुखाभ्यन्तरछिद्र ही सोमपात्र (यज्ञपात्रविशेष) है एवं आपका भोजन ही, हे भगवन्! अग्निहोत्र है ॥ ३६ ॥ प्रभु! आपका वारम्वार अभ्यु-

दय ही दीक्षा (दीक्षणीय इष्टि) है, ग्रीवादेश ही उपसद (तीन इष्टिविशेष) है, और प्रायणीया (दीक्षाके अनन्तरकी इष्टि) व उदयनीया (समाप्तिकी इष्टि) दोनो दंष्ट्रा हैं, प्रवर्ग्य (प्रत्येक उपसदके प्रथम कर्तव्य महावीर नामक यज्ञविशेष) जिह्वा है और सत्य (होमरहित अग्नि) एवं आवसत्थ्य (उपासनाग्नि) आपका शिर हैं। हे यज्ञपुरुष! तुम्हारे पञ्चप्राण ही चिति (यज्ञार्थ इष्टकाचयनकर्म) हैं॥३७॥ सोमयज्ञ वा सोमरस आपका वीर्य है, प्रातःसवन ही आपका आसन वा बाल्यावस्था है। आपकी त्वचा–मांसादि सात धातु ही अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्य्याम नाम सात यज्ञविशेष हैं। द्वादशाहादि अनेक छोटे बड़े यज्ञ आपके शरीरकी संधियाँ हैं। असोम यज्ञ एवं ससोम ऋतु, ये दोनो प्रकारके अनुष्ठान तुम्हारे शरीरके बन्धन हैं॥३८॥ आप ही सम्पूर्ण मंत्र, देवता, द्रव्य, ऋतु और सामान्य यज्ञ एवं क्रियामय हैं। वैराग्य (देखे और वे देखे कर्मफल की इच्छासे रहित होना) से उत्पन्न भक्तिके द्वारा प्राप्त मनकी निश्चलतासे जो ज्ञान मिलता है,– वही ज्ञान आपका स्वरूप है। आप ही सबको विद्या (आत्मज्ञान) देनेवाले हैं, अतएव समग्र विश्वके विद्याविषयक गुरु जो आप हैं उन्हे वारम्वार नमस्कार है ॥ ३९ ॥ आपकी दंष्ट्राके अग्रभागकी कोटि (किनारे) पर धरी हुई पर्वतादिसहित पृथ्वी ऐसे विराजमान है, जैसे वनसे निकल रहे गजराजके दन्त पर पत्रयुक्त पद्मिनी शोभायमान हो ॥४०॥ दशन पर धरे हुए भूमण्डलसे शोभित यह आपका त्रयीमय शूकररूप देखनेसे भ्रम होता है कि मानो शिखर पर बैठे हुए मेघमण्डलसे युक्त कुलाचल देख पड़ता है ॥ ४१ ॥ आप जगत्के पिता हैं, यह पृथ्वी आपकी स्त्री अतएव जगत्की माता है। इस पृथ्वीको चराचर जगत्के निवास करनेके लिये इस प्रकार स्थापित कीजिये कि उस पर रह कर (सब जीव) आपको और पृथ्वीको प्रणाम कर आपकी परिचर्य्या कर सकें। यज्ञ करनेवाले जैसे मन्त्र द्वारा अरणि (अग्निमंथनकाष्ठ) में अग्निको स्थापित करते हैं वैसे आपने इस धरामें अपना तेज (धारणशक्ति) स्थापित किया है ॥ ४२ ॥ हे प्रभु ! आपके सिवाय और कौन पातालसे पृथ्वीका उद्धार करनेकी इच्छा भी कर सक्ता है? किन्तु आपने जो यह कर्म्म किया सो कुछ विस्मय नहीं है, क्योंकि विश्वमें जितने विस्मयमय व्यापार हैं वे सब आपमें ही हैं। आपने ही इस विस्मयदायक विश्वको उत्पन्न किया है ॥ ४३ ॥ वेदमय अपने शरीरको आप हिलाते हैं, तब आपकी ग्रीवाके केशोंके अग्रभागसे उछलकर पवित्र जलके कण हमारे ऊपर गिरते हैं, उनसे जनलोक, तपलोक और सत्यलोकके रहनेवाले हम लोग परम पवित्र हो गये ॥ ४४ ॥ वह पुरुष अवश्यमेव भ्रष्टबुद्धि है जो आपके कर्मोंका पार देखना वा जानना चाहता है, क्योंकि आपके अपार कर्म्म हैं। आपकी ही योगमायाके सत्वादि गुणोंसे समस्त विश्व मोहित है; आप उसके कल्याणका विधान करैं [अर्थात् जैसे, अचिन्त्य एवं अनन्तशक्तियुक्त जो आप हैं उनको जान कर यह माया-

मोहित विश्व आपको भजै सोई अनुग्रह आप करैं] ॥ ४५ ॥ श्रीमैत्रेयजी कहते हैं। ब्रह्मवादी मुनियोंके मुखसे यह विचित्र स्तुति सुन कर अपने खुरोंसे आक्रान्त जलके ऊपर विश्वरक्षक वाराहजीने धराको धर दिया ॥ ४६ ॥ वह विष्वक्सेन, प्रजापति, भगवान् हरि रसातलसे लीलापूर्वक ऊपर लाई हुई पृथ्वीको जलके ऊपर रख कर अन्तर्द्धान हो गये ॥ ४७ ॥ जो व्यक्ति, प्रजाओंके उत्पन्न करनेवाले, संसारनाशक एवं कार्य्यवश मायागत श्रीहरिके चरित्रकी शुभ कथाको भक्ति-पूर्वक सुनता या सुनाता है उसके ऊपर भगवान् जनार्दन बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं ॥४८॥ सबके ईश्वर एवं सकल कामनाओंके देनेवाले हरिके प्रसन्न होने पर संसारमें क्या दुर्लभ है? किन्तु यद्यपि सब सांसारिक विषय सहजमें मिल सक्ते हैं तथापि हरिको तुष्ट करके यह तुच्छ सुख (स्वर्गादि विषयभोग) न माँगना चाहिये। अनन्यदृष्टिसे भजनेवालोंको वह अन्तर्यामी परमेश्वर स्वयं हृदयमें स्थित हो कर परमगति देते हैं, अर्थात् अपने पदका प्रदान करते हैं ॥ ४९ ॥

को नाम लोके पुरुषार्थसारवि-
त्पुराकथानां भगवत्कथासुधाम् ॥
आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहा-
महो विरज्येत विना नरेतरम् ॥ ५० ॥

अहो! इस लोकमें सिवाय पशुओंके, पुरुषार्थको जाननेवाला कौन पुरुष होगा जो सब कथाओंमें श्रेष्ठ भवभंजनी हरिकी कथारूपसुधाको कर्णरूप अंजलिसे पी कर फिर उससे विरत हो जाय? ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दश अध्याय।

दितिके गर्भकी उत्पत्ति।

श्रीशुक उवाच—निशम्य कौषारविणोपवर्णितां
हरेः कथां कारणशूकरात्मनः ॥
पुनः स पप्रच्छ तमुद्यताञ्जलि-
र्नचातितृप्तो विदुरो धृतव्रतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले। मैत्रेयजीके मुखसे कारणवश शूकररूपधारी हरिकी कथा सुन कर अति साधु, धृतव्रत विदुरजी भली भाँति तृप्त न हुए। अतएव हाथ जोड़ कर

फिर मैत्रेयजीसे पूँछने लगे ॥ १ ॥ **श्री विदुर बोले** । हे मुनिश्रेष्ठ! उन्ही यज्ञमूर्ति हरिने आदि दैत्य हिरण्याक्षका वध किया, यह हमने अभी आपके मुखसे सुना है ॥ २ ॥ लीलापूर्वक दंष्ट्राके अग्रभागसे पृथ्वीका उद्धार कर रहे वाराहजीसे और दैत्यराजसे किस लिये संग्राम हुआ? सो हमारी सुननेकी इच्छा है ॥ ३ ॥ **मैत्रेयजी बोले** । हे वीर! तुम साधु हो* । क्योंकि तुम मनुष्योंको जन्ममृत्युरूप बंधनसे मुक्त करनेवाली हरिकी कथा पूँछते हो ॥ ४ ॥ उत्तानपाद राजाके पुत्र ध्रुव बालक–अवस्थामें ही, नारद मुनिकी गाई हुई हरिकथाद्वारा मृत्युके मस्तक पर पैर रख विष्णुपद (ध्रुवलोक) को प्राप्त हुए हैं ॥ ५ ॥ विदुर! वाराहरूप हरिके साथ हिरण्याक्षके संग्रामका वृत्तान्त, देवगणने प्रथम ब्रह्माजीसे पूँछा था, तथा ब्रह्माने देवतोंसे यह चरित्र वर्णन किया था । मैंने भी उस समय ब्रह्माके मुखसे सुना था, वही इतिहास अब मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ६ ॥ हे विदुर! एक समय दक्षकी कन्या दितिने, मरीचिके पुत्र कश्यप नाम अपने पतिसे संध्याके समय कामदेव द्वारा पीड़ित होकर पुत्रकी इच्छासे रतिकी प्रार्थना की ॥ ७ ॥ उस समय महर्षि कश्यप, अग्नि ही है जिह्वा जिनकी ऐसे यज्ञपुरुषकी पूजा अर्थात् हवन कर्म करके सूर्यके अस्त होनेके समयमें समाधि लगाये एकाग्र मनसे ईश्वरका ध्यान कर रहे थे ॥ ८ ॥ **दिति बोलीं** । हे विद्वन्! आपके कारण, यह काम धनुष पर शर धर कर मुझको पीड़ित करता है और मुझ पीड़ित अबला पर विक्रम जनाता है जैसे गजराज केलेके वृक्ष पर ॥ ९ ॥ भगवन्! मेरी सौतोंके पुत्र हैं, सम्पूर्ण समृद्धियाँ हैं, उनका सुख मैं पुत्रहीन होनेके कारण नहीं सह सक्ती अतएव आपको मुझ पर पुत्रप्रदानरूप अनुग्रह करना योग्य है । आपका कल्याण हो ॥ १० ॥ जिन स्त्रियोंको पतिसे बहुत मान प्राप्त है उनका यश त्रिलोकीमें व्याप्त हो जाता है । आपके समान सुशील पुरुष प्रजनन करनेसे ही† जिनका पति (पदवाच्य) होता है ॥ ११ ॥ प्रथम कन्यावत्सल हमारे पिता भगवान् दक्षने हम लोगोंसे अलग अलग पूँछा कि पुत्रियो! तुम किसको अपना वर बनाया चाहती हो? ॥ १२ ॥ तब हम कन्याओंका भाव जानकर सन्तानप्रियकारी पिताने तेरहो कन्याओंका विवाह आपके साथ कर दिया; जिनका शील आपके अनुकूल था ॥ १३ ॥ अतएव हे कमलनयन! मेरी पुत्रप्राप्तिकामना पूर्ण करके मेरा कल्याण करो (अर्थात् हम तेरहो बहनें आपको समानभावसे ब्याही हैं हम पर पुत्रप्रदानकी विषमता वा कृपाकी विषमता उचित नहीं है) । हे प्रतापी! आप ऐसे तेजस्वीके पास मुझ ऐसे आर्त्तका आना निष्फल न जाना चाहिये ॥ १४ ॥ हे विदुर! बढ़े हुए कामदेवकी पीड़ासे

---

*साप्नोति परकार्य्यमिति साधुः । पराये कार्य्यको जो सिद्ध करै उसीका नाम साधु है ।

† तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः । वही जाया (स्त्री) जाया है जिसमें पतिने पुत्र उपजाया एवं पुनर्जन्म लिया है ।

मोहित होनेके कारण यों बहुत अनुनय कर रही दितिके वचन सुन कर, कश्यपजी मृदु मधुर वाणीसे बोले ॥ १५ ॥ "हे भीरु अर्थात् कामकी पीड़ासे डरी हुई! मैं तुम्हारी कामना पूर्ण करता हूँ। जिस स्त्रीसे धर्म्म, अर्थ, कामकी सिद्धि होती है उसका कहा कौन पुरुष न करेगा? ॥ १६ ॥ स्त्रीसहित पुरुष सम्पूर्ण आश्रमोंको अन्नादि दानसे आश्रय देता हुआ स्वयं गृहस्थाश्रमके सम्पूर्ण व्यसन–समुद्रोंको सहजमें तर जाता है, जैसे जलयान (जहाज) के आश्रयसे समुद्रके पार होते हैं ॥ १७ ॥ हे मानिनी! स्त्री, श्रेयकी कामनावाले पुरुषका आधा अंग है। स्त्रीके ही ऊपर पुरुष अपने गृहस्थाश्रमका भार निर्भर कर स्वयं सुखसे विचरता है ॥ १८ ॥ स्त्रीका ही आश्रय ग्रहण करके हम लोग, अन्य आश्रम जिनको नहीं जीत सक्ते उन इन्द्रियरूप शत्रुओंको सहजमें जीत लेते हैं, जैसे दस्युगणको दुर्गपति राजा जीत लेता है! ॥ १९ ॥ हे गृहेश्वरि! हमलोग ऐसी स्त्री जो तुम हो उससे एक जन्म वा जन्मजन्मान्तरमें भी उद्धार नहीं हो सक्ते एवं और जो गुणग्राहक पति हैं वे भी स्त्रीका अपमान कभी नहीं करेंगे ॥ २० ॥ यद्यपि मैं तुम्हारी पुत्रप्राप्तिकी इच्छा अभी पूर्ण कर सक्ता हूँ, किन्तु इस समय ऐसा करनेसे लोक मेरी निन्दा करेंगे, अतएव एक मुहूर्त्त भर तुम ठहर जाव ॥ २१ ॥ यह घोर जीव अर्थात् राक्षसोंकी घोरदर्शन महाघोर बेला अर्थात् सायंकाल है। इस समय रुद्रके अनुचर भूतादि विचरते हैं ॥ २२ ॥ हे साध्वि! इस संध्याके समय भूतभावन भगवान् भवानीनाथ शिवजी नन्दीपर आरूढ़ होकर भूतपार्षदगणसहित कैलास पर्वतसे निकल कर अन्तरिक्षमें विचरते हैं ॥ २३ ॥ यदि कहो कि जब वह सन्मुख हों तब ऐसा न करना चाहिये तो जिनके जटाकलाप, श्मशानकी बौंडरसे उठी हुई धूलिसे धूसर एवं बिखरे हुए हैं एवं जिनका श्वेत सुवर्णवर्ण शरीर श्मशानके भस्मसे शोभायमान है वह तुम्हारे देवर रुद्र अपने (चन्द्र, सूर्य्य, अग्नि) तीन नेत्रोंसे सर्वत्र देखते हैं ॥ २४ ॥ यदि कहो कि आप उनके बड़े भाई हैं, आप पर वह क्षमा करेंगे तो उनका न कोई अपना है और न पराया है, न कोई आदर करने योग्य है और न निरादर करने योग्य है। हम लोग अनेक प्रकारके व्रतोंसे आराधना करके, जिस विभूति (लक्ष्मी, सम्पदा, सुखभोग आदि माया) को उन्होंने लात मार दी है उसीको उनका महाप्रसाद मान कर शिरसे धारण करने और पानेकी आशा करते हैं ॥ २५ ॥ उनके अनवद्य अर्थात् विषयासक्तिरहित चरित्रको अविद्यापटलके भेद करनेकी इच्छावाले योगी पुरुष गाते हैं। उनके समान वा उनसे अधिक कोई नहीं है और वह सज्जनोंकी एकमात्र गति हैं। उन्होंने अपनी इच्छासे ही पिशाचोंके सदृश वेष बना रक्खा है ॥ २६ ॥ वह अपने आत्मा अर्थात् परमात्मामें निरत हैं। उनके चरित्रको और चेष्टाको अभागे मूर्ख पुरुष हँसते हैं। वे अजान वस्त्र, माला, आभूषण और अनुलेपन आदिसे कुत्तोंका भोजन जो शरीर है उसको अपना जान कर उसका लालन पालन करते हैं, अतएव मूर्ख हैं ॥ २७ ॥

ब्रह्मा आदिक उन्हीके बनाये हुए धर्म्मके सेतुके पालनेवाले हैं, और वही विश्वकारण हैं। माया जिनकी आज्ञाका पालन करनेवाली है उन ईश्वरका चरित्र देखनेमें पिशाचोंके सदृश है; अहो परमेश्वरका चरित्र सत्य सत्य ही अतर्क्य और अचिन्त्य है!" ॥ २८ ॥ **श्रीमैत्रेयजी कहते हैं।** इस प्रकार पतिके कहने पर मन्मथ द्वारा उन्मथित हैं इन्द्रियाँ जिनकी वह दिति वेश्याके समान लज्जा त्यागकर ब्रह्मर्षिका वस्त्र पकड़कर खड़ी हो गई ॥ २९ ॥ इस निषिद्ध कर्म्ममें इस प्रकार भार्य्याका आग्रह देखकर, दैवरूप ईश्वरको प्रणामकर कश्यपजी दितिके साथ एकान्तमें उपस्थित हुए ॥ ३० ॥ तदनन्तर स्नानके उपरान्त, मौनावस्थासे प्राणायाम करके निर्मल सनातन ज्योति ईश्वरका ध्यान करते हुए ब्रह्म (गायत्री अथवा ओंकार)का जप करने लगे ॥ ३१ ॥ हे विदुर! इधर जब दितिको चेत हुआ तब वह अपने निन्दित कर्मसे बहुत लज्जित हुई एवं विप्रर्षिके पास आकर लज्जासे शिर झुकाये हुए यों कहने लगीं ॥ ३२ ॥ "हे ब्रह्मन्! मेरे इस गर्भको सम्पूर्ण प्राणी एवं भूतगणनायकोंके स्वामी शिवजी जिनका मैंने अपराध किया है, न नष्ट करें ॥३३॥ रुद्र (दुःखनाशक), महान् (महत्तत्त्व वा बड़े), देव, उग्र (जिनका अनादर कोई नहीं कर सक्ता), मीढुष (सकाम भक्तोंको फल देनेवाले), शिव (कल्याणमय वा निष्काम भक्तोंके लिये कल्याणरूप), वास्तवमें न्यस्तदण्ड किन्तु दुष्टोंपर दण्ड धारण करनेवाले, मन्यु (प्रलय कालमें क्रोधरूप वा ब्रह्माका क्रोधस्वरूप) को प्रणाम है ॥ ३४ ॥ वह हमारे भगिनीपति हैं, सतीके पति, परम कृपालु हैं अतएव हमपर प्रसन्न हों, हम स्त्रियाँ हैं, हमपर हिंसक व्याघ्र गण भी दया करते हैं, तब वह तो भगवान् देवदेव हैं" ॥ ३५ ॥ **श्रीमैत्रेयजी कहते हैं।** अपने पुत्रके कल्याणार्थ ईश्वरकी स्तुति कर रही और भयसे काँप रही दितिसे संध्यानियमसे निवृत्त होने पर कश्यप प्रजापति बोले ॥ ३६ ॥ "हे चण्डि! तुम्हारा आत्मा अपवित्र था, और वह समय दुष्ट था एवं मुझ पतिकी आज्ञाको तुमने टाल दिया तथा देवतोंका अनादर किया; अतएव तुम्हारे उदरसे दो अधम पुत्र उत्पन्न होंगे क्योंकि इस समय सबही अभद्रमय संयोग था। तुम्हारे दोनो सन्तान सहित लोकपाल तीनो लोकोंको वारम्वार पीड़ित करेंगे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ निरपराधी प्राणियोंको जब वे सतावेंगे और दीन जनोंको मारेंगे, पराई स्त्रियोंको हर लावेंगे-और इन दुराचरणोंसे महात्मा जनोंको कोपित करेंगे ॥ ३९ ॥ तब लोकका पालन करनेवाले विश्वपति भगवान् क्रोध करके अवतार लेकर उन दोनो दुष्टोंको मारेंगे; जैसे इन्द्र अपने वज्रसे गिरिराजोंको ॥४०॥ **दिति बोलीं।** हे प्रभु! यह भी बड़ी अच्छी बात है जो विष्णु भगवान्के हाथोंसे मेरे पुत्रोंका वध होगा! किन्तु किसी कुपित ब्राह्मणके शापसे उनकी मृत्यु न हो ॥ ४१ ॥ क्योंकि जो ब्रह्मदण्डसे नष्ट हुआ है और जो सब प्राणियोंको भयंकर है उस पर नरकवाले जीव भी दया नहीं करते और जिस २ योनिमें वह जाता है वहां २ के लोग भी उसके अनुकूल नहीं होते! ॥४२॥ कश्य-

पजी बोले । तुमने बुरा किया किन्तु तुरन्त ही उस कुकर्म्मपर शोक व पश्चात्ताप किया, और शीघ्रही विचार किया कि-"अहो मैंने बड़ा कुकर्म्म किया," फिर भगवान्की समादर पूर्वक स्तुतिकी एवं शिवका व मेरा आदर किया ॥ ४३ ॥ इन कारणोंसे तुम्हारे पुत्रोंके पुत्रोंमें एक पुत्र अर्थात् तुम्हारा पौत्र सज्जन होगा। जिसके शुद्ध यशको हरि-गुणगानके साथ सब लोग गावेंगे ॥ ४४ ॥ जैसे दागी सुवर्णको वारम्वारके योग (ताव) से अग्निमें शुद्ध करते हैं वैसे ही योगीजन उसके स्वभाव (निर्वैरता आदि) का अनुकरण करके अपने आत्माको शुद्ध करेंगे ॥ ४५ ॥ जिस ईश्वरके प्रसन्न होनेसे यह ईश्वरमय जगत् प्रसन्न होता है वह सर्वसाक्षी भगवान् हरि उस वालक पर ऐसे सन्तुष्ट होंगे जैसा न किसी पर सन्तुष्ट हुए हैं और न होंगे ॥ ४६ ॥ वह परम भगवद्भक्त, महात्मा, महाप्रभावशाली और बड़ोंका बड़ा होगा। बढ़ी हुई भक्तिसे शुद्ध हृदयमें विष्णुको स्थापित करके इस संसार (देहाभिमान) को त्याग देगा ॥ ४७ ॥ वह विषयी न होगा। सुशील, गुणी, औरोंकी प्रसन्नता देख कर प्रसन्न एवं औरोंका दुःख देख कर दुःखी होगा। संसारमें उसका कोई शत्रु न होगा और वह चंद्रमाके समान जगत्का शोक हरनेवाला होगा; जैसे चन्द्रदेव सबके सूर्य-तापको नष्ट करते हैं ॥ ४८ ॥ अपने भक्तोंकी इच्छाके अनुसार रूपधारण करनेवाले, लक्ष्मीपतिको तुम्हारा पौत्र अपने हृदयमें और समग्र विश्वमें देखेगा कि वह कमललोचन, निर्मल स्वरूप विराजमान हैं और उनके गण्डस्थल काञ्चनमय कुण्डलोंसे मण्डित हैं, जिनसे मुखारविन्दकी शोभा अधिक होती है ॥ ४९ ॥

मैत्रय उवाच-**श्रुत्वा भागवतं पौत्रममोदत दितिर्भृशम् ॥**
पुत्रयोश्च वधं कृष्णाद्विदित्वासीन्महामनाः ॥ ५० ॥

श्रीमैत्रयजी बोले । पौत्र भगवद्भक्त होगा और पुत्रोंका वध भगवान्के हाथसे होगा (अतएव अवश्य उनकी भी सुगति होगी यह विचार कर) दिति बहुत प्रसन्न एवं उत्साहित हुई ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदश अध्याय ।

जय विजय दोनो विष्णुके पार्षदोंको सनकादिक ऋषियोंका शाप-प्रदान ।

मैत्रेय उवाच-**प्राजापत्यं तु तत्तेजः परतेजोहनं दितिः ॥**
दधार वर्षाणि शतं शङ्कमाना सुरार्दनात् ॥ १ ॥

श्रीमैत्रयजी कहते हैं । शत्रुओंके तेजका नाश करनेवाले उस कश्यपऋपिके तेज (वीर्य्य)को, "ये उत्पन्न हो कर देवतोंको पीड़ित करेंगे" इस शंकासे दितिजी

शतवर्ष पर्य्यन्त धारण किये रहीं ॥ १ ॥ दितिके गर्भके महा तेजसे सूर्य्य, चन्द्र आदिका प्रकाश फीका पड़ गया, त्रिभुवन प्रकाशहीन हो गया। यह विभीषिका देख कर सब लोकपाल हतप्रभाव हो गये एवं विधाताके निकट जाकर सकल दिशाओंके अन्धकारमय होनेका वृत्तान्त बता कर कहने लगे कि "हे विभु! हम जिस अंधकारको देखकर भयभीत एवं उद्विग्न हो रहे हैं, यह क्या है? इसको आप ही जानते हैं क्योंकि आपका ज्ञान किसी कालमें नष्ट नहीं होता। भगवन्! कोई ऐसा विषय नहीं है जिसे आप न जानते हों ॥२॥३॥ हे देवदेव! आप जगत्के धारण करनेवाले और लोकपालशिरोमणि हैं। जितने पर और अपर प्राणी हैं सबके भावको आप जानते हैं (अर्थात् किस अभिप्रायसे दितिका गर्भ बढ़ रहा है-यह आप जानते हैं) ॥४॥ विज्ञान ही आपका वीर्य्य (बल) है, आपने अपनी मायासे यह ब्रह्माका शरीर ग्रहण किया है, आप रजोगुणमय हैं, आपकी योनि (अर्थात् जिससे आप उत्पन्न हुए हो वह) अव्यक्त अर्थात् किसी प्रमाणसे नहीं जानी जाती। आपको हमारा नमस्कार है ॥ ५ ॥ प्रभु! आपने इस त्रिलोकीको अपनेमें (सूत्रमें मालाके न्याय) ओतओत कर रक्खा है एवं स्वयं इस चेतन और अचेतन प्रपञ्चका कारण होकर भी उससे भिन्न हैं। सम्पूर्ण जीव आपसे ही उत्पन्न हैं। जो लोग अनन्य एवं निष्काम भावसे आपका भजन करते हैं वे श्वासा, इन्द्रिय और आत्माको जीत लेनेके कारण परिपक्व योगी हैं एवं आपका प्रसाद पा चुके हैं अतएव उनका पराभव (हार) कहींसे नहीं होता ॥ ६ ॥ ७ ॥ आपकी आज्ञामय वेदवाणीके अधीन सकल प्राणी, रस्सीसे नथे हुए गऊ बैल आदि पशुओंके समान वशीभूत होकर बलि (पूजा-उपहार आदि भेंट) देते हैं, अत एव सबके शासक एवं श्रेष्ठ पुरुष आप हैं; आपको नमस्कार है। हे प्रभु! इस समय आप सम्पूर्ण लोकोंका कल्याण कीजिये। भयङ्कर अन्धकारसे दश दिशा व्याप्त हो रही हैं। दिन-रात्रिका ज्ञान न रहनेसे यज्ञादि कर्म्म विलुप्त होगए हैं। हमलोगोंको महा विपद् है। हम पर कृपादृष्टि कीजिये ॥८॥ ९ ॥ हे देव! यह कश्यप ऋषिके वीर्य्यसे जो दितिको गर्भ रहा है, सो सकल दिशाओंको अन्धकारमय करके अग्नि जैसे काष्ठमें प्रज्वलित होता है वैसे प्रज्वलित हो रहा है" ॥१०॥ मैत्रेयजी कहते हैं। हे महाबाहो! दितिकी दुरभिसन्धिको जानकर ब्रह्माजी हँसे, और तदनन्तर देवगण द्वारा प्रार्थित विधाता देवगणको अपनी सुन्दर वाणीसे प्रसन्न करते हुए बोले ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले। देवगण! तुम्हारे प्रथम उत्पन्न मेरे मानस पुत्र सनकादिक लोकोंमें स्पृहा (सांसारिकविषयभोग)को त्यागकर यदृच्छापूर्वक आकाशमार्ग हो कर अनेक लोकोंमें विचरने लगे ॥ १२ ॥ वे एक समय सब लोक जिसको प्रणाम करते हैं ऐसे शुद्धस्वरूप हरिके वैकुण्ठ धामको गये ॥ १३ ॥ उस वैकुण्ठ लोकमें जो रहते

हैं उन सबके स्वरूप विष्णु भगवान्‌के तुल्य हैं । उन लोगोंने प्रथम कामनाहीन धर्म्मसे हरिकी आराधना की है ॥ १४ ॥ उस स्थानमें वेदान्त व वेदादिके जानने योग्य आदिपुरुष, धर्म्मस्वरूप, भगवान्, अपने जन जो हम लोग हैं उनको प्रसन्न करते हुए, अपने सत्वगुणमय (विष्णु) रूपसे अवस्थित हैं ॥ १५ ॥ उस परम पवित्र वैकुण्ठ लोकमें एक निःश्रेयस नाम वन है, वह परम रमणीक है। वहाँके सकल वृक्ष वासनाके अनुरूप सुन्दर फलोंके देनेवाले हैं। वहाँके वृक्ष सब ऋतुओंके फल फूल आदिसे सुशोभित रहते हैं। उसको देखकर विदित होता है मानो यह साक्षात् कैवल्य मोक्ष वनके रूपसे स्थित है॥ १६ ॥ वहाँ विमानचारी गन्धर्व गण अपनी २ स्त्रियोंसहित, लोगोंके पातकोंको नष्ट करनेवाले अपने स्वामी(हरि)के गुणानुवादोंका गान करते हैं । उनको हरिगुणगानमें इतना अनुराग है कि जलमें फूली हुई एवं मकरन्दयुक्त वासन्ती लताके मधुमय सुगंधयुक्त वायुसे चित्त चंचल होने पर भी वे लोग हरिगुणगान नहीं छोड़ते और उस सुगन्ध वायुका तिरस्कार करते हैं॥ १७ ॥ जिस समय भ्रमरराज गुञ्जन करते हुए मानो हरिकथाका गान करने लगते हैं तब क्षणमात्र वहाँ पर कबूतर, कोकिल, सारस, चक्रवाक, चातक, हंस, शुक (तोता), तित्तिर (तीतुर), मयूर आदि पक्षी कोलाहल करना बन्द कर देते हैं; (अर्थात् वहांके पक्षियोंको भी हरिकी कथामें इतना बड़ा प्रेम है) ॥ १८ ॥ तुलसी-भूषण भगवान् तुलसीकी सुगन्धका आदर करते हैं; यह देख कर मन्दार (कल्पवृक्ष भेद), कुन्द, कुरबक, उत्पल (रात्रिमें फूलनेवाला कमल), चम्पा, पुन्नाग, नागकेसर, बकुल, अम्बुज (दिनको फूलनेवाला कमल), पारिजात (कल्पवृक्षभेद) आदिक सकल पुष्प यद्यपि स्वयं बहुत सुगन्धवाले हैं तथापि तुलसीकी तपस्याको बहुत मानते हैं ॥ १९ ॥ वहाँ भगवद्भक्तगणके अगणित वैडूर्य्य, मरकत और सुवर्ण आदिसे बने हुए विमान देख पडते हैं। वे सब विमान भगवद्भक्तोंको सुकृतके फल-स्वरूप नहीं मिले हैं । केवल हरिके चरणयुगलमें प्रणति करनेसेही उनको वे मनोहर विमान प्राप्त हुए हैं । उन लोगोंका मन हरिचरणमें इतना लिप्त है कि बड़े २ विशाल नितम्बवाली परम रमणीय रमणीगणकी मन्द मुसकान व परिहास आदिसे उन व्यक्तियोंके हृदय पर काम अपना अधिकार नहीं कर सक्ता ॥२०॥ जिस लक्ष्मीकी कृपादृष्टि प्राप्त करनेके लिये अन्य देवगण अनेक यत्न करते हैं वही लक्ष्मी अपनी मनोहर मूर्ति धारण करके उस परम धाममें इतस्ततः पदविक्षेपपूर्वक विचर रही है । लक्ष्मीके चरणस्थित नूपुरोंसे कानोंको मोहनेवाली ध्वनि होती है एवं वह लक्ष्मी बाहु पसार कर हाथमें लिये हुए ललित लीला-लोल (चंचल) कमलसे वैकुण्ठमें दोष(चञ्चलता)हीन हो कर श्रीहरिके मंदिरका स्वयं सम्मार्जन करती हैं-यह जैसे

स्पष्ट ही देख पड़ता है * ॥ २१ ॥ हे देवगण! वैकुण्ठ धामके सम्पूर्ण सरोवरोंका जल विमल और अमृततुल्य है एवं उन सरोवरोंके तट (किनारे) विद्रुमके बने हुए हैं। लक्ष्मीजी उसी तटके निकटवर्त्ती उपवनमें बैठ कर सखीगण सहित तुलसी पत्रसे हरिकी पूजा करते २ सरोवरके जलमें प्रतिबिम्बित अपना सुन्दर अलकावली एवं उत्तम-नासायुत मुखारविंद देख कर "मेरे मुखका मानो श्रीहरि स्वयं चुम्बन कर रहे हैं" ऐसे विचारसे अपनेको परम सौभाग्यशालिनी समझ आनन्दित होती हैं ॥ २२ ॥ हे देवगण! उस वैकुण्ठ धाममें वे लोग नहीं जा सक्ते जो लोग पातकहारिणी हरिकी गुणगाथाको त्याग कर मतिको भ्रष्ट करनेवाली अन्य विषयकी चर्चा किया करते हैं। उन विषय-वार्ताओंको अभागे लोग सुनते हैं, क्योंकि वे कथाएँ सुननेवालोंके पूर्वसञ्चित सुकृतको नष्ट करके उनको घोर निराश्रय नरकमें डालती हैं ॥२३॥ मनुष्यजन्ममें धर्म्म और तत्वज्ञान दोनो ही हो सक्ते हैं अतएव हमलोग भी चाहते हैं कि हमको मनुष्य जन्म मिले। हा! उसी नरजन्मको पाकर हतभाग्य मानवगण भगवान्की आराधना नहीं करते। ऐसे लोग अवश्यमेव हरिकी प्रबल मायामें मोहित हैं ॥ २४ ॥ जो लोग अहंकारहीन होनेके कारण हम लोगोंसे भी अधिक योगी हैं वेही उस परम पवित्र वैकुण्ठ धाममें गमन करनेको समर्थ होते हैं। वे लोग निरन्तर नित्यप्रति हरिगुणगान करनेसे ऐसे शुद्ध एवं सुप्रभासम्पन्न हैं कि यमराज भी उनके निकट जानेको समर्थ नहीं हैं। वे भक्तगण परस्पर बैठ कर हरियश-कीर्त्तनमें ऐसा अनुराग प्रकट करते हैं कि प्रेमविवश शिथिल-शरीर हो जाते हैं, नेत्रोंसे आँसू बहने लगते हैं और शरीरमें रोमाञ्च हो आता है; इसी लिये उनके कृपालुता आदि स्वभाव प्रार्थनीय हैं ॥ २५ ॥ हे अमरगण! तदनन्तर मुनिगण योगमायाके बलसे उसी अपूर्व वैकुण्ठ धाममें आकर अतिशय श्रेष्ठ आनन्दको प्राप्त हुए। श्रेष्ठ देवगणके विचित्र विमानोंसे शोभायमान वैकुण्ठ लोक हरिका निवासस्थान है अतएव त्रिभुवन उसकी वन्दना करते हैं ॥ २६ ॥ सनकादिक हरिके देखनेके लिये एकान्त उत्सुक थे, इसी लिये यह सब आश्चर्य्य व्यापार देखनेमें उनका मन नहीं आसक्त हुआ। वे क्रमशः छः कक्षा (ड्योढ़ी) नाँघ कर सातवीं कक्षामें पहुँचे, वहां पर उनको दो द्वारपाल देख पड़े। यह दोनो द्वारपाल समान अवस्थावाले हैं, दोनो गदा हाथमें लिये एवं अत्युत्कृष्ट के-

---

* अर्थात् भवनकी भित्तियाँ स्फटिकमय एवं मध्य २ में सुवर्णखचित हैं, सुतरां वहाँ पर धूलिका लवलेश नहीं है। स्वर्णपट्टिकामय भित्ति भागमें बहु प्रकारसे (लक्ष्मीजी) प्रतिबिम्बित हो कर लीलाकमलके घुमाने पर उनके विनय और भक्तिके भावसे बोध होता है मानो वह वास्तवमें ही हरिगृहका सम्मार्जन कर रही हैं।

यूर, कुण्डल, किरीट आदि आभूपणोंसे अलंकृत और अतिशय सुन्दर वेषसे विभूषित हैं ॥ २७ ॥ मत्त भ्रमर जिस पर गुञ्जन कर रहे हैं ऐसी वनमाला दोनोके कण्ठमें पड़ी है एवं वह वनमाला श्यामवर्ण चार भुजाओंके बीचमें शोभायमान है । किन्तु उत्फुल्ल नासिका व अरुणवर्ण नयन और कुटिल भ्रूयुगल द्वारा दोनोका ही आनन कुछ कोपसे क्षोभको प्राप्त दिखाई देता है ॥ २८ ॥ दोनो द्वारपाल खड़े हुए कुटिल कटाक्षसे देख रहे थे पर उन मुनियोंने उनसे कुछ जाननेकी इच्छा नहीं की; प्रथम जैसे छः कक्षाओंके सुवर्णालंकृत वज्रमय कपाट खोल कर प्रवेश किया था, वैसे ही सप्तमकक्षाके द्वारमें भी उन्होने प्रवेश किया। उनको द्वारपालोंसे कुछ पूँछनेकी अपेक्षा भी न थी क्योंकि उनकी दृष्टि सर्वत्र सम है, इसीसे वे सब ही स्थानोंको निर्भय समझ कर भ्रमण करते रहते हैं, उनकी कहीं रोक टोक नहीं है ॥ २९ ॥ वे आत्मतत्त्वके जाननेवाले मुनिगण बड़ोंके भी बड़े हैं पर देखनेमें पाँचवर्पके बालकके न्याय जान पड़ते हैं एवं वेत्रादि द्वारा निवारण करनेके पूर्णतया अयोग्य हैं। किन्तु दोनो द्वारपालोंकी प्रकृति भगवान् ब्रह्मण्यदेव हरिके स्वभावके प्रतिकूल थी अतएव उन्होने मुनियोंको नग्न देख कर हँसते हुए बेंत अड़ा कर जानेसे रोका ॥ ३० ॥ वैकुण्ठस्थित देवगणके देखते हुए उन दोनो हरिके द्वारपालोंने पूज्यतम मुनियोंको मन्दिरके भीतर प्रवेश करनेसे रोका। "सुहृत्तम हरिके दर्शनमें इससे विघ्न हुआ" ऐसा जान कर वे मुनिगण किञ्चित् कुपित होगये और उन के नेत्र लाल हो आये एवं वे द्वारपालोंसे बोले ॥ ३१ ॥ "श्रीहरिकी सुमहत् सेवा करके, उसके प्रभावसे वैकुण्ठ लोककी प्राप्तिपूर्वक जो लोग इस श्रेष्ट स्थानमें निवास करते हैं वे सभी भगवद्धर्म्मयुक्त व समदर्शी होते हैं; तुम भी उन्ही लोगोंमेंसे हो, किन्तु तुम्हारी यह विषम दृष्टि क्यों है? 'कोई प्रवेश करेगा और कोई न प्रवेश करने पावेगा' यह क्या बात है? यदि कहो कि स्वामीकी रक्षाके लिये द्वारपालोंका ऐसा स्वभाव दोप नहीं बरन् गुण है; किन्तु तथापि विचार कर देखो तुम्हारे स्वामी प्रशान्त पुरुष हैं, उनसे किसीका विरोध नहीं है अतएव उनकी रक्षाके लिये शङ्काकी सम्भावना क्यों है? अब हमको विदित हुआ कि तुम्ही स्वयं कपटी हो-इसीलिये अपने समान दूसरेको कपटी जान कर उस पर कपटकी आशंका करते हो ॥३२॥ हा! इस स्थानमें भगवद्भक्तके सिवाय क्या किसी अन्य धूर्तके आनेकी सामर्थ्य है? भेदज्ञान ही भयका कारण है किन्तु भगवान्में तो किसीकी भेदबुद्धि नहीं है। यह सम्पूर्ण विश्व जिनकी कोखमें अवस्थित है, उनमें और अपने आत्मामें पण्डितगण कदापि भेद नहीं देखते। किन्तु कैसे आश्चर्य्यकी बात है! तुम दोनोको हम देववेशधारी देखते हैं, पर जैसे अन्य साधारण भृत्य किसी कपटी शत्रुके द्वारा अपने साधारण स्वामीकी विपत्तिकी आशंका करके भयभीत होते हैं वैसे ही तुम्हारे चित्तमें खटका देख पड़ता

है; इसका क्या कारण है? कोई भी तो कारण नहीं देख पड़ता ॥३३॥ सो जो कुछ हो, तुम इन महापुरुष श्रीवैकुण्ठनाथके भृत्य हो, यद्यपि तुम मन्दबुद्धि हो तथापि तुम्हारा मन्द (बुराई) करना हमें उचित नहीं है। तुम्हारा अति कल्याण करनेके लिये, इस अपराधसे तुमको जो फल होना चाहिये सो हम सोचते हैं। अपनी भेद-दृष्टिके कारण तुम लोग इस परम पवित्र वैकुण्ठधामसे भ्रष्ट हो कर, जिस पापी योनिमें काम, क्रोध और लोभ ये तीन शत्रु हैं उस योनिमें जाकर जन्म लेव" ॥ ३४ ॥ उन दोनो द्वारपालोंने मुनिगणके ये वाक्य सुन कर विचारा कि—'यह घोर ब्रह्मशाप है; अस्त्रसमूहसे भी इसका निवारण नहीं हो सक्ता'। तब वे महा भयभीत हो कर मुनिगणके चरणों पर दण्डवत् गिर पड़े। दोनो द्वारपाल जिन हरिके अनुचर हैं वह भगवान् ही स्वयं द्वारपालोंकी भी अपेक्षा अधिक इन मुनियोंसे भयभावना करते हैं, तब ये द्वारपाल जो इतना मुनियोंसे डरे तो क्या आश्चर्य्य है? ॥ ३५ ॥ दोनो द्वारपाल मुनियोंके चरणों पर निपतित हो कर विनय-पूर्वक नम्र भावसे कहने लगे कि "हे मुनिगण! घोर पापीके लिये जो दण्ड योग्य है वही दण्ड आपने हमको दिया, इसमें आपका कोई दोष नहीं है; हमारे योग्य यही दण्ड है क्योंकि इस दण्डसे 'ईश्वरके निदेशकी अवज्ञा—रूप' अशेष पापोंका नाश हो जायगा तब हम निष्पाप एवं शुद्ध हो जायँगे। किन्तु केवल यह प्रार्थना है कि हम क्रमशः नीच, नीचातिनीच योनियोंमें परिभ्रमण करते रहें तथापि हम पर कृपा करनेकी इच्छासे जो आपको अनुताप हुआ उससे हमको उन योनियोंमें भी मोह न हो, जिस मोहसे हरिका स्मरण भूल जाता है" ॥ ३६ ॥ इसी समय भगवान् आर्य्यगणके उपासनीय, देव कमलनाभ 'अपने दोनो भृत्य साधुओंके निकट अपराधी हुए हैं' यह जान कर जहां पर रोकनेके कारण क्रुद्ध हुए मुनिगण थे वहां परमहंस महामुनि जिन चरणोंको ढूँढते हैं उनके द्वारा अर्थात् पाँव पैदल सहित लक्ष्मीके आये† ॥ ३७ ॥ भगवान्‌ने जब इस प्रकार वहां गमन किया तब समाधिमें प्राप्त होनेवाले फलस्वरूप ब्रह्मको प्रत्यक्ष पा कर मुनिगण भगवान्‌की ओर यकटक देखने लगे। पार्षदगणमेंसे कोई छत्र लगाये और कोई हंससम श्वेतवर्ण चामर डुलाय रहे हैं, छत्रके चारो ओर मोतियोंकी झालर शोभित है, अनुकूल वायुके चलनेसे वह मुक्तादाममण्डित छत्र चन्द्रसदृश सुशोभित हो कर चलायमान हो रहा है एवं उससे अमृततुल्य जलकण भगवान्‌के मुखमण्डल पर झर रहे हैं ॥ ३८ ॥ भगवान्‌का श्रीमुख देखनेसे बोध होता है मानो वह सब पर

† भगवान्‌के पैदल आनेका प्रयोजन यह है कि भगवान्‌ने जाना—'मेरे चरणोंके दर्शनमें व्याघात होनेके कारण ऋषिगण कुपित हुए हैं, पैदल जाकर दर्शन देनेसे अवश्य उनका कोप शान्त हो जायगा' एवं लक्ष्मीके साथ लानेका भी अभिप्राय यह है कि मैं निष्काम भक्तोंको भी ऐश्वर्य्यसे परिपूर्ण करता रहता हूँ।

प्रसन्न हैं अर्थात् ऋषिगण व द्वारपालद्वय, दोनो ही पर प्रसन्न हैं। सम्पूर्णगुणोंका आधार हैं और स्नेहमय दृष्टिसे सबके हृदयोंको सुखित कर रहे हैं। श्यामवर्ण विशाल वक्षस्थलमें स्थित लक्ष्मीसे सात स्वर्गोंके चूड़ामणिस्वरूप अपने धाम अर्थात् वैकुण्ठ लोकको जैसे सुशोभित कर रहे हैं ॥ ३९ ॥ विशाल नितम्बस्थल पर पीतपट शोभाको प्राप्त है एवं उसके ऊपर काञ्चन–काञ्ची शोभायमान है। हृदयमें, भँवर जिस पर गुञ्जन कर रहे हैं वह वनमाला विहार कर रही है। सुन्दर कलाइयोंमें मणिमय वलय धारण किये हुए एक हाथको गरुड़के कंधे पर धरे और दूसरेसे कमलका फूल नचा रहे हैं ॥ ४० ॥ कपोलस्थल पर बिजलीको लजानेवाले मकराकृति कुण्डल शोभायमान हैं, मुख उच्चनासिकायुक्त है एवं शिर पर मणिमय किरीट मुकुट शोभायमान है। चारो भुजाओंके मध्यमें उत्तम मनोहर हार एवं कण्ठदेशमें कौस्तुभमणि सुशोभित है ॥ ४१ ॥ भगवान्‌की परम सौन्दर्य्यसम्पन्न मूर्त्ति देख कर भगवद्भक्त सनकादि इस भाँति तर्कणा करने लगे कि 'मैं ही सौन्दर्य्यकी निधि हूँ' ऐसा लक्ष्मीका गर्व्व आज चूर्ण हो गया। हे देवगण! वही भगवान् हमारे, (ब्रह्माके) शङ्करके एवं तुम लोगोंके निमित्त भजने योग्य मूर्ति प्रकट करते रहते हैं, सुतरां उनका ऐसा सौन्दर्य्य कुछ विचित्र नहीं है। सो जो हो, मुनिगणने उन श्रीहरिको समागत देख कर प्रसन्न मनसे शिर झुका कर नमस्कार किया, किन्तु हरिकी सुन्दरता देखते २ उनके नयन किसी प्रकार तृप्त नहीं हुए ॥ ४२ ॥ यद्यपि वे मुनिगण ब्रह्मज्ञान द्वारा सदा ही ब्रह्मानन्दका अनुभव करते थे तथापि प्रणाम करते समय पङ्कजनयन श्रीहरिके पादपद्मपरागमिश्रित तुलसीमंजरीकी सुगंधसे सने वायुने नासाद्वार द्वारा मुनिगणके अन्तरमें जा कर हृदयको क्षोभित अर्थात् हर्षित कर दिया और उनके रोमाञ्च हो आया ॥ ४३ ॥ मुनिगणने ऊपर नेत्र उठा कर श्रीमुखको देखा कि नीलकमलकोषके समान शोभायमान है; उसमें अरुणवर्ण सुन्दरतर अधर और कुन्दकुसुमसम कमनीय हासविलास शोभित है–यह देखकर वे अत्यन्त सन्तुष्ट हुए, पर तुरन्त नीचे जो दृष्टि गई तो अरुणमणिसदृश सुन्दर नखावलीसंयुत चरण देख पड़े। इस प्रकार वे एकसाथ सकल अंगोंकी शोभाका अनुभव न कर सके अतएव नेत्र बंद करके हृदयमें ध्यान करने लगे ॥ ४४ ॥ हे देववृन्द! जो योग–मार्ग द्वारा ढूँढ़नेसे पाये जाते हैं, और जो ध्यान करनेका विषय व बहु आदरणीय एवं नयनाभिराम हैं उन्हीं पुरुषशरीरधारी एवं अनन्यसिद्ध, नित्य और स्वाभाविक, अष्टांग-योग-सिद्धि (अणिमा आदि) से युक्त ईश्वरको सामने देख कर सनकादिक उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥ सनकादिक बोले। हे अनन्त! यद्यपि आप सबके हृदयमें ही स्थित हैं तथापि दुरात्मा लोग आपको नहीं देख सक्ते। प्रभु! आपसे उत्पन्न हमारे पिता ब्रह्माने जब आपके समग्र रहस्यका उपदेश हमको दिया था तत्काल ही आप हमारे कर्णमार्गद्वारा बुद्धि(अन्तःकरण)में

प्रविष्ट हो गये थे किन्तु वही आप आज हमारे नेत्रोंके आगे खड़े हैं। हमारे अहो भाग्य हैं ॥४६॥ जो सब मुनि अभिमान एवं रागसे शून्य हैं वे दृढ़ भक्तियोग द्वारा अपने २ हृदयमें जिस गूढ़ तत्त्वका अनुभव करते रहते हैं, हमको भली भाँति विदित है कि आप ही वह आत्मतत्त्वरूप परम तत्त्व हैं। आप ही विशुद्ध सत्त्व श्री-मूर्त्ति हैं; इसी सत्त्वमय मूर्त्तिसे भक्तोंके हृदयमें प्रतिक्षण अपनी भक्ति उत्पन्न करते हैं ॥ ४७ ॥ आपका यश परम रमणीय, सुपवित्र, कीर्तनीय एवं तीर्थरूप है। जो सम्पूर्ण चतुर मनुष्य आपकी कथाके रसका स्वाद जाननेवाले हैं वे सबसे बढ़ कर मोक्षरूप फलका भी नहीं ग्रहण करते, तब अन्य इन्द्रादिपद क्या वस्तु हैं? इसका कारण यह है कि इन्द्रादिके पदमें आपके कुटिल-कटाक्षरूप कालका भय है किन्तु आपकी कथाके रसज्ञ भक्तोंको उस कालका प्रबल भय नहीं है; अतएव सबसे सुखी वे ही हैं ॥ ४८ ॥ हे हरि! यद्यपि हमने प्रथम कोई पाप नहीं किया तथापि इस समय आपके भक्तोंको शाप देनेसे अवश्य पापभागी हुए हैं; एवं इसके प्रति-फलमें हमको अवश्य निरययातना भोगनी पड़ेगी, सो भले ही हो; किन्तु वहाँ भी हमारा चित्त भ्रमर जैसे काँटा लगनेकी व्यथाको न गिन कर फूलोंमें रमता है वैसे आपके चरणोंसे सुशोभित हो एवं आपके गुणगणसे हमारे कानोंके छिद्र पूर्ण हों ॥ ४९ ॥

प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरुहूत रूपं
तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः ॥
तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम
योऽनात्मनां दुरुदयो भगवान्प्रतीतः ॥ ५० ॥

हे पवित्रकीर्त्तियुक्त! आपने जो यह सुन्दररूप हमारे आगे प्रकट किया इससे हमारे लोचन सफल एवं सुखित हुए। हे देवदेव! आप स्वयं भगवान् हैं; आप अजितेन्द्रिय पुरुषोंके निकट अप्रकट हैं किन्तु हम पर कृपा करके आपने अपने ज्ञानगोचर रूपको आज हमारे दृष्टिगोचर किया, अतएव भक्तवत्सल हरिको वारम्वार नमस्कार है ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडश अध्याय ।

जय-विजय-नामक दोनो द्वारपालोंका वैकुण्ठ धामसे अधःपतन ।

ब्रह्मोवाच—इति तद्गृणतां तेषां मुनीनां योगधर्मिणाम् ॥
प्रतिनन्द्य जगादेदं विकुण्ठनिलयो विभुः ॥ १ ॥

ब्रह्माजी बोले । हे देवगण ! वैकुण्ठवासी भगवान् उन योगी मुनिगणके वचन सुनकर प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे ॥ १ ॥ **श्रीभगवान् बोले ।** ये दोनो मेरे जय विजय नाम द्वारपाल वा पार्षद हैं। किन्तु आज इन्होंने मुझे तुच्छ करके आप लोगोंसे अत्यन्त अनुचित व्यवहार किया है ॥ २ ॥ तुम लोग मेरे प्रिय भक्त हो, तुमने इन दोनोको जो दण्ड दिया मैं वही दण्ड इनके लिये अंगीकार करता हूँ । क्योंकि इन्होने तुम्हारा नहीं, वरन् मेरा निरादर किया ॥ ३ ॥ ब्राह्मणगण ! मैं स्वयं ब्राह्मणको अपना इष्टदेव मानता हूँ। मैं आप लोगोंको प्रसन्न करता हूँ, इनके अपराधका ध्यान न रखना । यद्यपि इसमें साक्षात्सम्बन्धमें मेरा अपराध नहीं है तथापि मेरे भृत्योंने जो आपका अपराध किया है उसे मैं अपना ही अपराध मानता हूँ † ॥ ४ ॥ भृत्यगण कोई अपराध करते हैं तो लोग प्रथम यही पूँछते हैं कि यह किसका भृत्य है? उससे स्वामीका नाम धरा जाता है । श्वेतकुष्ट जैसे त्वचाको बिगाड़ देता है वैसे ही यह असाधुवाद स्वामीकी ही कीर्त्तिको कलंकित करता है ॥५॥ मेरा नाम विकुण्ठ है। मेरे अमृतसदृश निर्म्मल यशका श्रवण करनेसे चण्डाल-पर्य्यन्त पवित्र हो जाते हैं । किन्तु मेरा यह तीर्थस्वरूप सुशोभन यश मुझे आप ही लोगोंसे प्राप्त है अतएव जो व्यक्ति आप लोगोंके प्रतिकूल आचरण करे वह मेरी भुजा (लोकपाल)ही क्यों न हो, मैं उसको तुरन्त काट डालूँ ॥६॥ आप ही लोगोंकी सेवाका यह फल है कि मेरे चरणारविन्दकी केवल रज तीनो लोकोंको पवित्र करती है एवं मुझे ऐसा निर्म्मल शान्त स्वभाव मिला है कि जिस लक्ष्मीके किञ्चित् कृपाकटाक्षके लिये ब्रह्मा आदि देवगण अनेक प्रकारके यम, नियम और संयम करते हैं वही लक्ष्मी मेरे विरक्त (अनिच्छुक) रहने पर भी मुझे नहीं छोड़ती (ऐसे ब्राह्मणके प्रतिकूल [विरुद्ध] आचरण करनेवाले पर प्रसन्न होना तो दूर रहा मैं स्वयं उसको नष्ट कर देता हूँ ।) ॥७॥ विप्रवर्ग ! मैं यज्ञमें अग्निरूप मुखसे यजमानके हविको भोजन करके उतना तृप्त और सन्तुष्ट नहीं होता जैसा कि निज-कर्म्मनिष्ट एवं मदर्पित-कर्म्म ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणके घृताप्लुत पायसादि भोजन करके

---

† इसका आशय यह है, भगवान् कहते हैं कि यदि ये जय विजय मेरे पार्षद न होते एवं मैं यदि इन पर प्रसन्न न होता तो कदापि इस अपराधके होनेकी संभावना न थी अतएव मैं ही इस अपराधका मूल कारण हूं । यह अपराध मेरा ही हुआ ।

सन्तुष्ट होने पर उस ब्राह्मणमुखसे भोजन करके तृप्त एवं सन्तुष्ट होता हूँ ॥८॥ मेरी योगमाया-विभूति अखण्डित एवं अकुण्ठित है, मेरे चरणका जल (गंगा) सहित शिवजीके सकल लोकोंको पवित्र करता है, ऐसा परमपावन परमेश्वर हो कर भी मैं जिनके चरणकमलके रजको अपने शिर पर धारण करता हूँ उन परमपूज्य ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणोंके किये हुए अपकारको भी कौन ऐसा है जो न सहै? ॥ ९ ॥ ब्राह्मण और गऊ एवं अनाथ व्यक्ति; ये तीनो मेरा रूप वा शरीर हैं। भेदबुद्धिसे जो क्रूर पापीजन इनके विरुद्ध आचरण करते हैं वा दुःख देनेकी चेष्टा करते हैं उनके नेत्रोंको, मेरे दिये हुए अधिकारको प्राप्त एवं पापियोंको दण्ड देनेवाले यम-राजके गृध्ररूप दूत अत्यंत सर्पके सदृश क्रुद्ध हो कर अपनी वज्र ऐसी चोंचसे बाहर निकाल लेंगे—इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १० ॥ ब्राह्मण यदि कोई कड़ी या कठोर बात कहै तौ भी जो ज्ञानी व्यक्ति उनको मेरा ही स्वरूप जान कर आदर व पूजा करता है एवं सन्तुष्ट मनसे हँसते २ पुत्रके समान स्नेहसहित मधुर वाणीसे (जैसे मैं तुम लोगोंसे वार्तालाप कर रहा हूँ—वैसे) शान्त करता है वह मुझको अपने वश कर लेता है ॥ ११ ॥ इन्होने मुझ स्वामीके अभिप्रायको बिना जाने आप लोगोंका अपराध किया है। इनके योग्य आपने जो दण्ड दिया है उसके अनुसार गतिको प्राप्त हो कर फिर शीघ्र ही मेरे निकट चले आवें—ऐसा आप लोग करें। यह मुझ पर परम अनुग्रह होगा कि इनको बहुत समयके लिये मेरा वियोग न हो ॥ १२ ॥ **ब्रह्माजी कहते हैं।** यद्यपि वे ऋषिगण सर्पके समान क्रोधान्ध हो गये थे तथापि भगवान्की ऐसी मनोहर, मधुर, ऋषिकुलके योग्य वा मंत्र-रूपिणी वाणी सुन कर शान्त हो गये एवं उनका चित्त न तृप्त हुआ-मानो यह सुन्दर वाणी सुना ही करें ॥ १३ ॥ वे लोग मन लगा कर और कान पसार कर, थोड़े अक्षर एवं अधिक भाववाली सुमधुर हरिकी वाणी सुन कर मनमें विचारने लगे कि "भगवान् क्या हम पर आनन्द प्रकट कर रहे हैं? अथवा हमने जो भग-वद्भक्तोंको दण्ड दिया है उससे हमको ऐसा कह कर संकुचित कर रहे हैं? या हमको ही अपराधी ठहराते हैं?" भगवान्का क्या तात्पर्य्य है—सो वे कुछ भी न निर्णय कर सके ॥ १४ ॥ तदनन्तर "भगवान् हमारे दण्ड पर आनन्द प्रकाश कर रहे हैं"—यही निश्चय कर परमानन्दित हुए, उनके रोमाञ्च हो आया और वे हाथ जोड़ कर योगमाया द्वारा परम ऐश्वर्यके परम उत्कर्षको प्रकट करनेवाले भगवान्से यों कहने लगे ॥ १५ ॥ **ऋषिगण बोले।** हे देव! हे भगवन्! आप सबके ईश्वर होकर "आप लोगोंने हमपर अनुग्रह किया"—इत्यादि वाक्य कह रहे हैं, सो कुछ हमारी समझमें नहीं आता कि आपकी क्या करनेकी इच्छा है? ॥ १६ ॥ आप ब्रह्मण्य, ब्राह्मणहितकारी हैं और हे अनीश! ब्राह्मणगण आपके इष्टदेव हैं, एवं देवतोंके भी देवता जो ब्राह्मण हैं उनके आत्मा और देवता आप ही हैं ॥ १७ ॥ आप अपने अवतारोंसे सनातन धर्म्मकी सदा रक्षा करते हैं एवं

सनातन धर्म्म आपसे ही उत्पन्न है, परम गुप्त धर्म्मका परम फल आप ही हैं--इसमें कोई सन्देह नहीं है, अतएव आपका ऐसा कथन केवल लोकशिक्षाके लिये है ॥१८॥ जिन आपकी कृपासे संसारसे विरक्त योगीजन सहजमें मृत्युभयसे मुक्त हो जाते हैं उन आप पर अपर कौन अनुग्रह कर सक्ता है ? ॥ १९ ॥ भगवन्! अन्यान्य अर्थकी कामनावाले मनुष्य अपने २ मस्तकों पर जिसके चरणोंकी रेणु धारण करते हैं वही सम्पत्तिस्वरूपिणी लक्ष्मी आपकी नित्यप्रति सेवा करती रहती हैं; आपकी सेवामें लक्ष्मीका अत्यन्त आग्रह देख कर हमको बोध होता है कि पुण्यात्मा एवं धन्य पुरुप जिन आपके चरणोंमें नवीन तुलसीकी माला अर्पण करते हैं एवं गंध-लोलुप सारग्राही भ्रमर जिन पर गुंजन करते हैं उन चरणोंमें स्थान पानेकी (वक्षस्थलमें स्थान पाने पर भी) लक्ष्मी भी कामना करती है* । किन्तु नाथ! आपको भक्तजन इतने प्रिय हैं कि ऐसे विशुद्ध चरित्रवाली, सेवापरायणा लक्ष्मीका आदर न करके भक्तोंका आदर करते हैं, आप ऐसे भक्तवत्सल एवं भजनीय गुणोंके एकमात्र पात्र हैं। आपको क्या ब्राह्मणोंके पैरोंमें लगी हुई मार्गकी रज वा श्री-वत्सचिन्ह पवित्र कर सक्ता है? कदापि नहीं; "ब्राह्मणोंके ही प्रसादसे मुझको लक्ष्मी नहीं त्यागती"-इत्यादि कहना एवं विप्रके चरणचिन्हको हृदयमें धारण करना, केवल लोकशिक्षाके अर्थ है ॥२०॥२१॥ हे ईश्वर! आप द्विज और देवगणके सन्तुष्ट करनेके लिये रजोगुण व तमोगुणको अपनी भक्तवरदायिनी सत्त्वगुण-मय मूर्तिसे नष्ट करके तीनो युगोंमें अवतार लेते हैं, आप धर्म्मस्वरूप हैं, आपके तप, शौच और दया; ये तीन चरण हैं। आपने चराचर जगत्की रक्षाके लिये यह रूप धारण किया है ॥ २२ ॥ आप ही विप्रकुलके रक्षक हैं, यदि आप उत्तम ब्राह्मणकुलकी रक्षा एवं सम्मान व आदर न करें तो हे धर्म्ममूर्ति! हे देव! आपका बनाया हुआ कल्याणदायक वेदमार्ग नष्ट हो जाय; क्योंकि संसारके लोग श्रेष्ठ पुरुपोंके ही आचरणको प्रमाण मानते हैं व उसीके अनुकूल चलते हैं। यदि आप हमारा आदर इस प्रकार न करें तो और लोग कैसे हमारा आदर करें?॥२३॥

* अर्थात् भगवन्! लक्ष्मी आपके विरक्त रहने पर भी निरन्तर आपकी सेवा करती है, इसका तात्पर्य यही है कि भ्रमर अतिचञ्चल व सारग्राही होता है, वह भी चरणस्थित तुलसीमें स्थिर हो कर रमण करता है; जो आपके चरणोंपर प्रणत होता है उसका आप अधिक आदर करते हैं अतएव चरणस्थित तुलसीमें भ्रमर अधिक आसक्त रहता है। इससे लक्ष्मी सोचती हैं कि चरणस्थित तुलसीका हरि भगवान् बड़ा ही आदर करते हैं और तुलसीको भूषणस्वरूप सदा चरणोंमें धारण किये रहते हैं, मैं वक्षस्थलमें रहती हूं सही, पर चरणोंमें रहने से कैसा अलभ्य लाभ है! मैं भी चरणोंमें जाकर रहूँ और यद्यपि सौत है तथापि हरिके आदरका पात्र तुलसीके साथ हरिके चरणोंकी सेवा करूं।

जब दुष्टजन आपकी इच्छाके विरुद्ध धर्म्मके शत्रु बन कर बढ़ते हैं तब आप अपनी शक्ति (राजा आदि वा अवतार) से उन धर्मके वैरियोंका नाश करते हैं एवं सत्त्वगुणमय आप अपने जनोंका कल्याण करते हैं, (जब धर्म्म आपको इतना प्रिय है तब धर्म्मके सेवक ब्राह्मणगणके निकट आप हीनता स्वीकार कर सक्ते हैं) किन्तु हमारे निकट हीनता स्वीकार करनेसे आप हीन ही नहीं हो गये, आप जैसे त्रिलोकीके स्वामी एवं विश्वकर्ता थे, आपका तेज व प्रभाव वैसा ही रहा,–यह हमको प्रणाम आदि करना व क्षमाकी प्रार्थना तो केवल आपका विनोद(लीला)मात्र है! ॥ २४ ॥ इस समय हमारा निवेदन यही है कि आप इन दोनो भृत्योंके लिये यदि किसी अन्य दण्डको देना चाहें वा इन पर सन्तुष्ट हो कर इनकी कुछ वृत्ति (जीविका) को बढ़ाना चाहें तो हम सबमें सहमत हैं। और आप यदि ऐसा जानें कि ये दोनो आपके जन निरपराध हैं और हमने अन्याय करके वृथा शाप दिया है तो हमको अपनी रुचिके अनुकूल जो चाहिये वह दण्ड दीजिये, हमको अङ्गीकार है ॥ २५ ॥ **श्रीभगवान् बोले।** ये दोनो मेरे सेवक असुरयोनिको प्राप्त होंगे और क्रोधके आवेशसे एकाग्रतापूर्वक सदैव मेरा ध्यान करते रहेंगे, इस कारण शीघ्र ही असुरयोनिसे मुक्त हो कर मेरे पास आ जायँगे। यह शाप जो तुमने इनको दिया इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं है; यह तो मेरी ही इच्छासे हुआ है ॥ २६ ॥ **श्री ब्रह्माजी कहते हैं।** तदनन्तर उन मुनिगणने विकुण्ठ भगवान् और उनके स्वयं प्रकाशित वैकुण्ठ लोकको भली भांति देखा। वह वैकुण्ठ लोक और श्रीहरि दोनो ही नयनोंको आनन्द देनेवाले हैं ॥ २७ ॥ फिर भगवान्‌की परिक्रमा और प्रणाम करके एवं आज्ञा लेकर आनन्दपूर्वक भगवान्‌के ऐश्वर्य्यकी प्रशंसा करते हुए वैकुण्ठलोकसे चल दिये ॥ २८ ॥ मुनियोंके चले जाने पर भगवान् अपने पार्षदोंसे बोले कि "तुम वैकुण्ठ लोकसे भूमिको जाओ, डरो नहीं, तुम्हारा कल्याण हो। ब्राह्मणोंके शापको यद्यपि मैं मेट सक्ता हूँ पर मेरी यह इच्छा नहीं है, क्योंकि यह शाप मेरी ही इच्छासे तुमको हुआ है ॥ २९ ॥ मुझमें वैरभावसे मन लगा कर इस ब्राह्मणोंके निरादरसे प्राप्त ब्रह्मशापसे मुक्त हो कर थोड़े ही समयमें फिर मेरे लोकमें तुम आ जाओगे" ॥ ३० ॥ इस प्रकार अपने द्वारपालोंको आज्ञा देकर विमानावलियोंसे विभूषित एवं सम्पूर्ण लोकोंसे श्रेष्ठ शोभासे युक्त अपने भवनमें भगवान् चले गये ॥ ३१ ॥ वे दोनो देवश्रेष्ठ जय, विजय, दुस्तर ब्रह्मशापसे हतश्री एवं अभिमानहीन होकर वैकुण्ठ लोकसे गिरे ॥ ३२ ॥ वैकुण्ठ लोकसे जब जय, विजय गिरने लगे तब हे पुत्रगण! विमानोंके ऊपरसे देवगणने महा हाहाकार किया ॥ ३३ ॥ वे ही दोनो हरिके पार्षदप्रवर इस समय कश्यपके वीर्य्य द्वारा घोररूप दितिके गर्भमें प्राप्त हुए हैं ॥ ३४ ॥ उन्हीं दोनो असुरोंके तेजसे इस समय तुम्हारा तेज हत हो गया है। इसका प्रतीकार मैं नहीं कर सक्ता, क्योंकि भगवान् ही ऐसा करना चाहते हैं ॥ ३५ ॥

विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो
योगेश्वरैरपि दुरत्यययोगमायः ॥
क्षेमं विधास्यति स नो भगवाँस्त्र्यधीश-
स्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥ ३६ ॥

जो विश्वकी उत्पत्ति, पालन और संहारका कारण व आदि पुरुष हैं, जिनकी मायाका बड़े बड़े योगीश्वर नहीं पार पाते, वही तीनो गुण व त्रिलोकके ईश्वर हरि भगवान् क्षेम करेंगे। इस विषयके प्रतीकार करनेके लिये हम लोगोंका विचार करना व्यर्थ है ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदश अध्याय।

हिरण्याक्षका दिग्विजय करनेके लिये जाना।

मैत्रेय उवाच—**निशम्यात्मभुवा गीतं कारणं शङ्कयोज्झिताः ॥**
ततः सर्वे न्यवर्तन्त त्रिदिवाय दिवौकसः ॥ १ ॥

मैत्रेयजी बोले। दितिके अपूर्व्व एवं घोर गर्भस्थित तेजका कारण ब्रह्माजीके मुखसे सुनकर सब देवगण शंकाहीन हो गये एवं स्वर्ग लोकको लौट आये ॥ १ ॥ "पुत्र उत्पन्न हो कर सहित लोकपालोंके सकल लोकोंको पीड़ित करेंगे"—यह कश्यपजीके मुखसे सुन कर दितिको बड़ी शंका रही और सौ वर्ष तक वह गर्भ धारण किये रहीं। सौ वर्ष पूर्ण होने पर दितिने दो पुत्र उत्पन्न किये ॥२॥ उनके उत्पन्न होते समय सम्पूर्ण लोकोंको भय देनेवाले अनेक घोर उत्पात, पृथ्वी, आकाश और अन्तरिक्षमें होने लगे ॥ ३ ॥ सहित पर्व्वतोंके पृथ्वी काँपने लगी, सब दिशाओंमें दिग्दाह होने लगा। उल्कापात एवं वज्रपात होने लगा एवं आर्त्ति (क्लेश) के हेतु-स्वरूप केतु आकाशमें देख पड़ने लगे ॥ ४ ॥ बड़ी घोर आँधी चलने लगी और आँधीके झोंकोंसे कठिन शब्द वारम्वार होने लगा। बड़ी धूल उड़ने लगी, वृक्ष जड़से उखड़ २ कर गिरने लगे ॥ ५ ॥ बड़ी घोर घन–घटा घिर आई, सूर्य्यादि छिप गये और बिजली बार बार भयानक शब्द कर २ के चमकने लगी, आकाश अन्धकारमय हो गया, किसी स्थान पर कुछ नहीं सूझ पड़ता था ॥ ६ ॥ समुद्रके जलमें तरंगें ऊपरको उठने लगीं और उसके भीतरके जीव–जन्तु क्षुभित हो गये, मानो समुद्र विमना होकर चिल्लाने लगा। बावली, तलाव और नदी सब क्षोभको

प्राप्त हुई, सरोवरोंके तटके कमल आप ही सूख गये ॥ ७ ॥ चन्द्र और सूर्य्यमें ग्रहण लग गया, बार बार चन्द्र–सूर्य्यमें मण्डल पड़ने लगे । बिना बादलके आकाशमें घोर शब्द होने लगे एवं गिरिगुहाओंसे रथशब्दके तुल्य शब्द होने लगे ॥ ८ ॥ मुखसे घोर अग्निकी ज्वाला निकालती हुई अमंगलरूप सियारियाँ गाँवोंके भीतर घूमने लगीं और सियार व उल्लू पक्षी अपना घोर शब्द करने लगे ॥ ९ ॥ झुंडके झुंड कुत्ते गर्दन ऊपरको उठा कर स्थान २ पर कभी रोनेके ऐसे और कभी गानेके ऐसे अनेक प्रकारके शब्द करने लगे ॥ १० ॥ झुण्डके झुण्ड गर्दभ मत्त होकर अपने कठोर खुरोंसे पृथ्वीको खोदते हुए अपना शब्द करते हुए इधरसे उधर दौड़ने लगे ॥ ११ ॥ हे विदुर! गर्दभोंके शब्दसे डरे हुए पक्षी व्याकुल हो कर अनेक प्रकारके शब्द करते हुए अपने २ झोंझसे आकाशको उड़ने लगे और अपने २ स्थानमें बँधे हुए व वनमें स्थित पशुगण भयके मारे एक साथ मल, मूत्र करने लगे ॥ १२ ॥ गउएँ डर गईं, और उनके स्तनोंसे दुग्धकी जगह रुधिर निकलने लगा । मेघोंसे रक्त व पीवकी वर्षा होने लगी । देवतोंकी मूर्तियोंके नेत्रोंसे आँसू बहते देख पड़ने लगे और बिना वायुके वृक्ष उखड़ २ कर गिरने लगे ॥ १३ ॥ शनि, मङ्गल आदि क्रूर ग्रह, शुक्र, चन्द्र आदि शुभग्रहोंका अतिक्रमण करके चलने लगे और प्रज्वलित हो उठे, एवं वक्रगति हो कर परस्पर युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ इत्यादिक अनेक उत्पातोंको देख कर ब्रह्माके पुत्र सनकादिकके सिवाय तीनो लोकोंने भयभीत हो कर समझा कि आज विश्वका प्रलय होगा ॥ १५ ॥ इधर ये दोनो पाषाणसदृश कठोर शरीरवाले आदिदैत्य पर्वतके समान क्रमशः बढ़ने लगे । उनमें प्रथमका पौरुष प्रकट देख पड़ने लगा ॥ १६ ॥ वे ऊँचे इतने थे कि उनके शिर पर धरे हुए कनककलित किरीट मुकुटका अग्रभाग स्वर्गको छूने लगा । उनके विशाल शरीरसे सब दिशाएँ व्याप्त हो गईं । उनकी भुजाओंमें सुवर्णके अंगदादि आभूषण शोभायमान थे । उनके चलनेमें, प्रत्येक पैर रखनेमें पृथ्वी काँपने लगी । कटितटमें पड़ी हुई काञ्चनरचित काञ्चीकी प्रभासे वे सूर्य्यसे भी बढ़कर कान्तिशाली देख पड़ने लगे॥ १७ ॥ प्रजाप्रति कश्यपने उनका इस प्रकार नामकरण किया–वे दोनो दैत्य यमज (जोड़िहा) उत्पन्न हुए, अतएव उनमें जो प्रथम उत्पन्न हुआ उसका नाम हिरण्याक्ष रक्खा और जो शुक्रनिषेकके क्रमके अनुसार गर्भमें प्रथम प्रविष्ट एवं अन्तको गर्भसे उत्पन्न हुआ उसका नाम हिरण्यकशिपु धरा (१) ॥ १८ ॥ हिरण्यकशिपु

(१) हिरण्यकशिपुके पश्चात् उत्पन्न होने पर भी ज्येष्ठ होनेका कारण यही है कि जब यमज पुत्र होते हैं तो माताके योनिपुष्पमें पिताका वीर्य्य कुछ प्रथम व कुछ उसके बाद प्रविष्ट होता है पर उत्पत्तिसमयमें वीर्य्यका प्रथम भाग पीछे और पिछला भाग पहले उत्पन्न होता है । यथा—"यदा विशेत् द्विधाभूतं बीजं पुष्पं परिक्षरत् । द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिर्वेश-विपर्य्ययात् ॥"

(पिण्डसिद्धि)

ब्रह्माके वरदानसे अमर हो गया अतएव उद्धत हो कर अपनी भुजाओंके बलसे उसने तीनो लोकोंको सहित सकल लोकपालोंके अपने अधीन कर लिया ॥ १९ ॥ उसका छोटा भाई हिरण्याक्ष उसको बड़ा प्रिय था एवं नित्यप्रति उसको प्रसन्न रखता था । हिरण्याक्ष युद्ध करनेकी इच्छासे गदा हाथमें लिये अपने समान बलवाले योद्धाको खोजता स्वर्गको गया ॥ २० ॥ उसके दोनो चरणोंमें चलते समय स्वर्णमय नूपुर बजते जाते थे, कण्ठमें वैजयन्ती माला पड़ी हुई थी और कंधे पर महागदा धरी हुई थी, वह दुस्सह वेगसे दौड़ता हुआ चला ॥ २१ ॥ शूरता व बल एवं वरप्राप्तिसे गर्वित और निरंकुश व अकुतोभय उस दैत्यको आते देख कर सब देवगण भयके मारे लुक रहे, जैसे गरुड़को देख कर भयभीत सर्प्प इधर उधर लुक रहते हैं ॥ २२ ॥ अपने तेजसे डर कर छिपे हुए देवतोंको स्वर्गमें न देख कर दैत्यराजने इन्द्रसहित देवगणको पौरुषहीन जाना और वार-म्वार स्वर्गमें सिंहनाद करने लगा ॥ २३ ॥ वहांसे लौट कर जलक्रीड़ा करनेकी इच्छासे मदमत्त हाथीकी भाँति वह महाबली दैत्य, विकटशब्दयुक्त गम्भीर महासमुद्रमें घुस पड़ा ॥ २४ ॥ हिरण्याक्षने जब जलमें प्रवेश किया तब वरुणकी सेना जो जलचर जीव हैं वे भयसे अवसन्न हो गये एवं यद्यपि दैत्य उनको नहीं मारता था तथापि उसके दुस्सह तेजसे धर्षित हो कर वेगसे दूर २ भागने लगे ॥२५॥ वह महाबलशाली दैत्य बहुत वर्षों तक समुद्रमें विचरता रहा और वायुसे उठी हुई तरङ्गोंको अपनी गदासे तोड़ता रहा । हे तात! ऐसे ही विचरता हुआ एक समय वरुणजीकी विभावरी नाम पुरीमें पहुँचा ॥ २६ ॥ वहां जलचारी जीवोंके स्वामी पातालपति वरुणजीको देख कर वह नीच असुर मुसकाकर नीचकी भाँति वरुणजीकी हँसी करता हुआ प्रणाम करके बोला कि हे अधिराज! मुझको द्वन्द्व युद्ध दीजिये ॥ २७ ॥ तुम जलके स्वामी और लोकपालोंके अधिपति एवं महा-यशस्वी हो । तुमने, अपनेको वीर माननेवाले दुर्मद लोगोंके वीर्य्यको नष्ट किया है एवं त्रिलोकमें सम्पूर्ण दैत्य दानवोंको जीत कर एक समय राजसूय यज्ञसे विष्णुकी पूजा की थी ॥ २८ ॥ हिरण्याक्षने इस प्रकार व्यंग्य वचन कह कर वरुणकी हँसी की तब दैत्यके वाक्य सुन कर जलपति भगवान् वरुणको बड़ा क्रोध आया, पर अपनेको उस मदोन्मत्त दैत्यके सदृश बली न जान कर अपने क्रोधको रोका और कोमल स्वरसे सम्बोधन करके दैत्यपतिसे बोले कि-॥ २९ ॥ हे दानव-श्रेष्ठ! हमने तो अब युद्धादि करना त्याग दिया है । तुम रणनिपुण हो, तुमको रणमें सन्तुष्ट करनेवाला मुझे कोई नहीं देख पड़ता; हाँ, केवल पुराणपुरुष विष्णु ऐसे हैं जो तुमको युद्धमें छका देंगे । तुम्हारे सदृश वीरगण उनकी वीरतासे सन्तुष्ट हो कर उनका गुणगान करते हैं ॥ ३० ॥

तं वीरमारादभिपद्य विस्मयः
शयिष्यसे वीरशये श्वभिर्वृतः ॥
यस्त्वद्विधानामसतां प्रशान्तये
रूपाणि धत्ते सदनुग्रहेच्छया ॥ ३१ ॥

तुम उनके निकट जाओ; वह महावीर हैं। उनको पा कर तुम्हारा दर्प चूर्ण हो जायगा । शीघ्र ही तुम वीरशय्या(पृथ्वी)में शयन करोगे और कुत्ते तुमको चारो ओर घेरे खड़े होंगे। वह विष्णु भगवान् तुम्हारे सदृश असत् लोगोंको शान्त करने एवं सज्जनों पर अनुग्रह करनेकी इच्छासे समय २ पर अनेक रूप धारण करते हैं ॥ ३१ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादश अध्याय ।

हिरण्याक्षके साथ वाराहरूप हरिका युद्ध ।

मैत्रेय उवाच—तदेवमाकर्ण्य जलेशभाषितं
महामनास्तद्विगणय्य दुर्मदः ॥
हरेर्विदित्वा गतिमङ्ग नारदाद्रसातलं
निर्विविशे त्वरान्वितः ॥ १ ॥

मैत्रेयजी कहते हैं। वरुणका यह कथन सुन कर दुर्म्मद दैत्यका मन प्रसन्न हुआ । वरुणने जो "युद्धमें तू मारा जायगा" इस प्रकार कहा, उसका उस महामनस्वी असुरने कुछ ध्यान न किया और वहांसे चला, मार्गमें नारदके मुखसे "श्रीहरि इस समय रसातलमें हैं" ऐसा सुन कर बहुत शीघ्र रसातलको गया और वहां वाराहरूप हरिको देख कर उपहास करता हुआ बोला कि—"अहो! यह जलचारी मृग है।" उस दैत्यने देखा कि भगवान् अपनी आगेकी दाढ़ पर पृथ्वीको धरे हुए ऊपरको ला रहे हैं। अरुणवर्ण हरिके तेजसे असुरके नेत्र चकचौंध गये और तेज भी हत हो गया ॥ १ ॥ २ ॥ दैत्य बोला। रे मूर्ख! आ, पृथ्वीको छोड़ दे, ब्रह्माने हम पातालवासियोंको यह पृथ्वी दे डाली है, क्योंकि जो ऐसा न होता तो यह पातालमें कैसे चली आती? हे सुराधम! हे शूकराकृते! मेरे

देखते तू इस पृथ्वीको ले कर क्षेमकुशलसे न जा सकेगा * ॥ ३ ॥ हमारे परम-शत्रु देवगणने क्या हमारे विनाशके लिये तेरा आश्रय लिया है? इसका कारण क्या है? तुझमें सामर्थ्य ही क्या है? तू छिप कर दैत्योंको अपनी मायासे मारता है—शारीरिक बल तुझमें कुछ नहीं है। तेरा बल केवल योगमाया है और पौरुष तो बहुत थोड़ा है। हे मूढ़! आज तुझको मार कर अपने सुहृद्गणके आंसू पोंछूँगा † ॥ ४ ॥ मेरे हाथसे छूटी हुई गदाके वेगसे तेरा मस्तक चूर्ण हो जायगा और प्राण निकल जायँगे। तब तेरी पूजा करनेवाले ऋषि और देवगण स्वयं नष्ट हो जायँगे क्यों कि उनका मूल तो तू ही है ‡ ॥ ५ ॥ हिरण्याक्षके ऐसे कटु वचन-रूप तोमर(शस्त्रविशेष)से आहत व व्यथित § हो कर भी भगवान् वाराहने दन्ताग्र पर धरी हुई धराको भयभीत देख कर, उनका सहन किया एवं जैसे ग्राह द्वारा आहत हाथी हथिनीसहित जलसे बाहर निकलता है वैसे जलमध्यसे ऊपर

* दैत्य तो कठोर वाक्य कहता है पर सरस्वती उन्हीं शब्दोंसे स्तुति करती है, यथा-अहो योगिजन जिसको ढूंढते हैं यह वही जलशायी अर्थात् नारायण हैं। हे सुराधम अर्थात् सब सुर आपसे अधम हैं आप सर्वश्रेष्ठ हैं, हे अज्ञ अर्थात् आपसे अधिक कोई ज्ञाता नहीं है, आपने लीलाके लिये शूकरकी आकृति धारण की है, आप मेरे देखते इस पृथ्वीको कुशलसे ले जायँगे इसमें सन्देह नहीं है तथापि हम पर कृपा करके इसको छोड़ दीजिये, ब्रह्माजीने यह हमको जीविकाके लिये दी है।

† सरस्वतीकृत अर्थ—क्या हमारे शत्रु देवगणने अभव अर्थात् मोक्षके लिये आपका आश्रय लिया है? आप परोक्ष रह कर सब दुष्टोंको जीतते हैं और अपनी मायासे नष्ट करते हैं, आपकी प्रबल योगमाया आपका बल है, आपकी अपेक्षा सबका ही पौरुष थोड़ा है। हे मूढप्र, अर्थात् मूढलोगोंकी भी कामना पूर्ण करनेवाले, तुमको संस्थाप्य अर्थात् अपने हृदयमें स्थापित करके अपने हृदयके शोकको वा सुहृद्गणके शोकको दूर करूं गा। भगवद्भक्तके सुहृद् व इष्ट मित्र भी तर जाते हैं।

‡ सरस्वतीकृत अर्थ—मेरे हाथसे छूटी हुई गदासे आपका शिर न भग्न होगा और आप ऐसे ही स्थित रहोगे तब आपकी पूजा करनेवाले ऋषिगण और देवगण स्वयमेव अर्थात् विना किसी उद्यमके अमूल न होंगे अर्थात् दृढमूल होंगे।

§ हरिका व्यथित होना कैसे सम्भव है—यदि कोई यह शंका करे तो उसको इसका उत्तर यह जानना चाहिये कि ब्रह्मा आदि देवगण हरिकी निन्दा सुन कर व्यथित हुए तो ब्रह्मा आदिका व्यथित होना हरिका ही व्यथित होना है क्योंकि हरि सर्वात्मक हैं, वा ब्रह्मा हरिका ही अन्यतम रूप हैं अथवा भक्तकी व्यथा देख कर ईश्वरको अवश्य व्यथा होती है—ऐसा जानना।

निकले ॥ ६ ॥ मगर जैसे हाथीका अनुगमन करे वैसे भगवान्‌के पीछे २ वह दैत्य चला और तिरस्कारपूर्वक कहने लगा कि "आः! निर्लज्ज और असत्‌चरित्र लोगोंके लिये कोई भी कर्म्म निन्दित नहीं है, निन्दाका भय नहीं है, अतएव इस प्रकार भागना भी अनुचित नहीं है"। उस समय उस असुरने महाविकट रूप धारण किया, उसके कपिशवर्ण केश बिखरे हुए थे और कराल दंष्ट्राएँ बाहर निकली हुई थीं; वह वज्रपातके सदृश भयंकर नाद करने लगा ॥७॥ किन्तु श्रीहरि उस असुरके वाक्योंमें कान न दे कर जलके ऊपर आये और उस दैत्यके देखते ही देखते जलके ऊपर पृथ्वीको रख कर उसमें अपने सत्त्व अर्थात् आधारशक्तिको निहित कर दिया। यह देख कर ब्रह्माजी स्तुति करने लगे और देवगण पुष्पवर्षा करने लगे ॥ ८ ॥ इधर सुवर्णमय भूषणोंसे भूषित और शरीरमें काञ्चनमय सुदृढ़ विचित्र कवच धारण किये हुए, हाथमें महागदा लिये, वारम्वार मर्म्मभेदी दुरुक्ति कहता हुआ दैत्य पीछे २ आ रहा था। उसके वाक्य सुन कर भगवान्‌को अधिक क्रोध आ गया किन्तु हँसते हुए उस दैत्यसे बोले ॥९॥ श्री भगवान् बोले कि अरे! सत्य है कि हम जलचर वाराह हैं किन्तु तेरे ऐसे अधम कुत्तोंको सदा ढूंढा करते हैं। हे अभद्र! तुझे मृत्युने अपने बंधनसे जकड़ लिया है। तू जो अपनी बड़ाई कर रहा है, ऐसी वृथा बकवाद पर वीर लोग ध्यान नहीं देते वा तेरी प्रशंसा न करेंगे ॥ १० ॥ हम पातालवासी लोगोंका न्यास (धरोहरका धन) हरनेवाले हैं, निर्लज्ज हैं और तेरी गदासे डर कर भागे हैं। तथापि किसी प्रकार युद्धमें हमको ठहरना ही पड़ेगा—यह समझ कर हम ठहर गये हैं क्योंकि तुझ ऐसे बलवान्‌से वैर बढ़ा कर कहाँ भागकर जायँगे? ॥ ११ ॥ तू निश्चय पदातिगणके यूथपोंका भी अधिपति है, आ-आ; शीघ्र हमारे मारनेका उद्योग कर और हमको यमराजके यहां भेज कर अपने सुहृद्गणके आंसुओंको सत्वर पोंछ। क्यों कि जो अपनी प्रतिज्ञाको नहीं पालता या पूर्ण करता वह असभ्य अर्थात् जनसमाजमें मुख दिखाने योग्य नहीं रहता ॥१२॥ मैत्रेयजी कहते हैं। भगवान्‌ने इस प्रकार क्रोधपूर्व्वक व्यंग्य कह कर उस असुरका तिरस्कार व उपहास किया। जैसे सर्पको कोई खेलावे और वह क्रोधित हो वैसे ही वह दैत्य श्रीहरि पर बहुत कुपित हुआ ॥ १३ ॥ मारे क्रोधके बड़ी २ श्वासाएँ लेने लगा और उसकी इन्द्रियाँ मारे क्रोधके प्रचलित हो गईं। बड़े वेगसे हरिके पास आ कर उसने गदाका प्रहार किया ॥ १४ ॥ शत्रुद्वारा वक्षस्थल पर चलाई हुई गदाके वेगको तिरछे हो कर भगवान् बचा गये जैसे योगीजन मृत्युको ॥ १५ ॥ मारे क्रोधके अधरदंशनपूर्वक अपनी गदाको उठा कर वारम्वार घुमा रहे असुरके सामने भगवान् दौड़े ॥ १६ ॥ और अपनी गदासे प्रभुने शत्रुकी दक्षिण भुजामें प्रहार किया किन्तु हे सौम्य! वह दैत्य गदायुद्धमें चतुर था, उसने हरिकी गदाको अपने पास भी न आने दिया और अपनी गदाके प्रहारसे राहमें ही रोक दिया ॥ १७ ॥ इस प्रकार बड़ी २ भारी गदाओंसे श्रीहरि भगवान् और हिर-

ण्याक्ष, दोनो जयकी इच्छासे परस्पर क्रोधपूर्ण हो कर प्रहार करने लगे ॥१८॥ दोनोके शरीर गदाप्रहारसे आहत हैं, दोनोको जय की स्पर्धा है, दोनोके गदाकृत क्षतों (घावों)से रक्त बह रहा है, उस रक्तकी गन्धको सूंघ कर दोनोका हृदय क्रोधसे परिपूर्ण है, दोनो ही जयकी इच्छासे अनेक भाँतिके पैंतरे बदल रहे हैं। जैसे गऊके कारण दो सांड़ बैलोंका युद्ध हो, ऐसे ही पृथ्वीके कारण दोनो युद्ध करने लगे ॥ १९ ॥ माया द्वारा वाराहशरीरधारी यज्ञपुरुष और दैत्यके पृथ्वीनिमित्तक युद्धको देखनेके लिये हे विदुर! स्वयं ब्रह्माजी सहित ऋषियोंके आये ॥ २० ॥ ब्रह्माने देखा कि दैत्यपति शूरताके मदसे उन्मत्त एवं निर्भय हो कर भगवान्‌के प्रहार पर प्रहार कर रहा है, किसी प्रकार उसका विक्रम घटता नहीं। यह देख कर भगवान् ब्रह्माजी आदिशूकर श्रीहरिसे बोले ॥२१॥ "हे देव! यह आपके चरणोंकी शरणमें आये हुए देवगण, विप्रगण और गऊ आदि निरपराध प्राणियोंको भय देनेवाला है, उनको दुःख देता है, उनका अपराध करता है। यह मुझसे वर पाकर और भी उन्मद हो रहा है। इसका सामना करनेवाला कोई नहीं है। यह लोककण्टक अपने प्रतिद्वन्द्वी योद्धाको ढूंढ़ता हुआ लोकोंमें घूमता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ यह दुरात्मा, वृथा अहंकारी, निरंकुश एवं मायावी है। जैसे बालक कुपित सर्प्पके साथ, उसकी पूँछ आदि पकड़ कर क्रीड़ा करता है वैसे आप इसको खेलाइये नहीं ॥ २४ ॥ यह दुर्धर्ष दैत्य आसुरी वेलाको पा कर जबतक दारुणरूपसे वृद्धिको प्राप्त न हो तबतक हे देव! अपनी योगमायासे इस पापीको मारो ॥ २५ ॥ हे सर्व्वात्मन्! इस समय लोकसंहारकारिणी यह घोर संध्यावेला उपस्थित हो रही है; यही इसके मारनेका सुन्दर अवसर है, इसी समयमें इस दुष्ट दानवको मार कर देवपक्षकी जय करो ॥ २६ ॥ हे देव! इस समय अभिजित् नाम मंगलमय योग भी है, आपके भक्त जो हम लोग हैं उनके कल्याणके लिये इस दुस्तर दैत्यको मारो ॥ २७ ॥

दिष्ट्या त्वां विहितं मृत्युमयमासादितः स्वयम् ॥
विक्रम्यैनं मृधे हत्वा लोकानाधेहि शर्मणि ॥ २८ ॥

बड़ी बात है जो अपने विहित मृत्यु (तुम्हारे)के पास यह स्वयं आ पहुंचा है, संग्राममें विक्रम द्वारा इसको मार कर लोकोंका कल्याण कीजिये ॥ २८ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंश अध्याय ।

हिरण्याक्षवध ।

मैत्रेय उवाच–अवधार्य विरिञ्चस्य निर्व्यलीकामृतं वचः ॥
प्रहस्य प्रेमगर्भेण तदपाङ्गेन सोऽग्रहीत् ॥ १ ॥

मैत्रेयजी बोले। ब्रह्माके अकपट एवं अमृततुल्य वाक्य सुन कर भगवान् वाराहजी कुछ हँसे[१] और प्रेममिश्रित कृपाकटाक्षसे ब्रह्माके कथनको अंगीकार किया। फिर हिरण्याक्षको अपने सामने भ्रमण करते देख कर श्रीहरिने लपक कर निकट आ कर उस दैत्यके कपोलके नीचे गदाका प्रहार किया। दुरन्त दैत्यने भी अपनी गदासे हरिकी गदाके ऊपर आघात किया; दैत्यके प्रहारसे भगवान्‌की गदा हाथसे छूट कर घूमती हुई पृथ्वी पर गिर कर अत्यन्त शोभायमान हुई। भगवान्‌के हाथसे गदाका गिर जाना एक बड़ा ही अद्भुत व्यापार हुआ ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ उस समय यद्यपि दैत्यको प्रहार करनेका अवसर मिला किन्तु "शस्त्रहीन शत्रु पर प्रहार न करना चाहिये" इस युद्धके धर्म्मको मान कर एवं भगवान्‌को अधिक क्रुद्ध करते हुए उसने शस्त्रहीन हरि पर प्रहार नहीं किया ॥ ४ ॥ जब हरिके हाथसे गदा छूट कर गिर गई तब सब देखनेवाले देवगण हाहाकार करने लगे। भगवान्‌ने उस दैत्यके युद्धधर्मको माना और उस समय अपने सुदर्शनचक्रका स्मरण किया ॥५॥ दितिके पुत्र अधम दैत्यसे, जो प्रथम मुख्य पार्षद था, क्रीड़ा कर रहे एवं सुदर्शन चक्रको घुमा रहे भगवान्‌को देख कर, सनकादि कर्तृक हरिपार्षदोंके शापके वृत्तान्तको न जाननेके कारण केवल असुर जान कर डरे हुए देवगण चारो ओरसे यही विचित्र वाक्य उच्चारण करने लगे कि "भगवन्! आपका कल्याण हो, इस दुष्टको मारिये" ॥ ६ ॥ सुदर्शनचक्रको उठाये हुए सन्मुख खड़े कमललोचन हरिको देख कर वह दैत्य अत्यन्त कुपित हुआ, और मारे क्रोधके अपने ओठ चबाने लगा एवं सर्पके न्याय बड़ी २ श्वासाएँ छोड़ने लगा ॥ ७ ॥ बड़ी२ कराल दंष्ट्राएँ बाहर निकाल कर अग्नितुल्य प्रज्वलित नेत्रोंसे वह दैत्य देखने लगा, मानो भस्म कर देगा। फिर दौड़ कर "तू हत हुआ" ऐसा कह कर उसने हरिके गदा मारी ॥ ८ ॥ हे साधो! यज्ञमय शूकररूप भगवान्‌ने उस दारुण शत्रुके देखते ही लीलापूर्वक वामचरणसे उस वायुसदृश वेगवती गदाको रोक दिया ॥९॥ और बोले कि "रे दैत्य, तू मुझे यदि जीतना चाहता है तो फिर गदा उठा कर युद्ध करनेकी चेष्टा कर"। हरिके इतना कहने पर फिर उसने गदा उठा कर हरिके मारी और वारम्वार गर्जने लगा ॥ १० ॥ उस गदाको

---

१ भगवान्‌के हँसनेका तात्पर्य यह है कि मैं स्वयं कालस्वरूप हूं वा काल मेरी इच्छामात्र है और ब्रह्मा मुझे मुहूर्त्त वा समयका बल बताते हैं कि इस समय शुभ अभिजित् मुहूर्त है, इसे मारिये।

आते हुए देख कर भगवान् वैसे ही खड़े रहे । जब वह पास आई तो जैसे गरुड सर्पिणीको पकड़ ले वैसे ही लीलापूर्व्वक उस गदाको पकड़ लिया ॥ ११ ॥ अपने पौरुषके प्रतिहत होने पर उस दैत्यका गर्व चूर्ण हो गया । हरि भगवान् उसको फिर उसकी गदा देने लगे पर उस दैत्यने नहीं ली; उसका मुख विवर्ण होगया ॥ १२ ॥ फिर अग्नितुल्य एवं हास्यके समान चमकते हुए तीन शिखावाले शूलको ले कर उस दैत्यने यज्ञपुरुष वाराह पर चलाया जैसे कोई ब्राह्मण पर अभिचार (जादू) करै (किन्तु वह निष्फल होता है) ॥१३॥ महाभट दैत्यने वेगसे त्रिशूल फेंका, आकाशमें वह शूल प्रकाशमान हुआ । उस शूलको हरिने तीक्ष्ण धारावाले सुदर्शनचक्रसे काट डाला, जैसे इन्द्रने गरुड़के छोड़े हुए पक्षको[1] ॥ १४ ॥ अनेक धारावाले हरिके चक्रने जब शूलको काट डाला तब अत्यन्त कुपित दैत्यने पास आ कर अपनी कठोर मुष्टि (घूंसे)से हरिके लक्ष्मीयुक्त विशाल वक्षःस्थल पर प्रहार किया और गर्जता हुआ अंतर्द्धान हो गया ॥ १५ ॥ हे विदुर! उसके इस प्रहारसे भगवान् वाराहजी किंचित् भी चलायमान नहीं हुए, जैसे मालाके प्रहारसे गजराज ॥ १६ ॥ तब वह दैत्य योगमायाके ईश्वर हरिके मोहित करनेके लिये छिप कर अनेक प्रकारकी मायाएँ करने लगा । जिनको देख कर सकल प्रजागण महा भयभीत हुए और जाना कि आज जगत्का प्रलय है ॥ १७ ॥ बड़ा प्रचण्ड वायु धूर उड़ाता हुआ चलने लगा । दशो दिशाओंसे पत्थरोंकी वर्षा होने लगी, जैसे कोई क्षेपण नाम यन्त्रसे पाषाणवर्षा कर रहा हो ॥ १८ ॥ बादल घिर आये, बिजलियाँ चमक २ कर घोर शब्द करने लगीं, नक्षत्र छिप गये, मेघोंसे पीब, केश, रुधिर, विष्ठा, मूत्र और हड्डियोंकी निरन्तर वर्षा होने लगी ॥१९॥ हे अनघ! अनेक पर्वत देख पड़ने लगे, जिनसे अनेक अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा होने लगी । बाल खोले, शूल हाथमें लिये, नग्न राक्षसियाँ देख पड़ने लगीं ॥२०॥ अनेक यक्ष, राक्षस, पदाति, अश्व, रथ, कुंजरगण आततायीरूपसे समुपस्थित हो कर "मार मार, काट काट" इस प्रकार हिंस्र एवं अति उग्र वाक्य कहने लगे ॥ २१ ॥ असुरकी प्रकट की हुई मायाओंका विनाश करनेके लिये यज्ञपुरुष भगवान्ने अपने प्रिय सुदर्शन चक्रको चलाया ॥ २२ ॥ उस समय दितिको अपने स्वामीका कथन स्मरण आया कि 'तुम्हारे पुत्रोंको यज्ञपुरुष मारेंगे'। बस सहसा दितिका हृदय धड़कने और स्तनसे रुधिर बहने लगा ॥ २३ ॥ जब असुरकी सब मायाएँ नष्ट हो गईं तब फिर वह हरिके सामने आया और उसने हरिको दोनो बाहुओंसे पकड़ कर चाहा कि चूर्ण कर डाले, पर देखा तो भगवान् बाहुओंसे निकल कर अलग खड़े हैं ॥ २४ ॥ तब वह दैत्य क्रोधपूर्वक वज्र-

---

१ इसकी कथा यों है—गरुडजी जब माताका दासीभाव छुड़ानेके लिये इन्द्रलोकसे अमृत लेकर चले तो इन्द्रने युद्धमें वज्र मारा । वज्र कहीं निष्फल नहीं जाता । वज्रका मान रखनेके लिये गरुडने अपना एक पर वहां पर छोड़ दिया था ।

सदृश मुष्टिप्रहार बार बार करने लगा। तब हरिने कुपित हो कर कानकी जड़में असुरके एक तमाचा मारा जैसे इन्द्र वज्रसे वृत्रासुरको॥ २५ ॥ विश्वजित् भगवान्ने लीलापूर्वक मारा किन्तु उसी प्रहारसे उस दैत्यका प्राणान्त हो गया, उसका शरीर चक्कर खाकर गिर पड़ा, नेत्र बाहर निकल आये, और वह हाथ पैर फैला कर पृथ्वी पर गिर पड़ा, जैसे वायुके वेगसे उखड़ कर महावृक्ष गिर पड़ता है ॥ २६ ॥ समर देखनेके लिये आये हुए ब्रह्माआदि देवगणने देखा कि वह दैत्य पृथ्वी पर पड़ा हुआ है, मरने पर भी उसका तेज नहीं नष्ट हुआ, कराल दंष्ट्रा देख पड़ रही हैं, दांतोंसे ओंठ चबाये हुए है। उसको देख कर सब प्रशंसा करने लगे कि—"ऐसी मृत्यु किसको मिल सक्ती है? ॥२७॥ अहो, इसके कैसे उत्तम भाग्य हैं, देखो योगीजन योग द्वारा समाधि लगा कर शरीरसे मुक्त होनेकी इच्छासे एकान्तमें जिसका ध्यान करते हैं उन्ही पुरुषोत्तम विष्णुके पैरसे आहत हो कर उन्हीका मुख देखते २ इस दैत्यने शरीरत्याग कर दिया ॥ २८ ॥ ये हरि भगवान्के पार्षद हैं, ब्रह्मशापसे असद्गतिको प्राप्त हुए हैं, फिर कुछ दिनोंमें कई जन्म ग्रहण करके हरिलोकको चले जायँगे" ॥२९॥ सब देवगण वाराहजीकी स्तुति करने लगेः—हे भगवन्! आपको वारम्वार प्रणाम है। प्रभु! आपसे ही सम्पूर्ण यज्ञोंका प्रकाश है, आप सकल लोकोंकी रक्षाके लिये सत्त्वमय अवतार लिया करते हैं। बड़ी बात, जो आपने जगत् भरके दुःखदायक इस असुरको मारा। हम लोग आपकेही चरणोंकी भक्तिसे इस समय सुख और कल्याणको प्राप्त हुए ॥ ३० ॥ **मैत्रेयजी कहते हैं।** इस प्रकार आदिवाराह भगवान् असह्यविक्रम हिरण्याक्ष नामक दैत्यको मार कर एवं ब्रह्मादिकी स्तुति सुन कर अपने सुखपरिपूर्ण, आनन्दमय धामको गये ॥ ३१ ॥ हे विदुर! हरिने अवतार ले कर जो कार्य्य किया एवं जैसे समरमें उदारविक्रम वाराहजीने हिरण्याक्ष दैत्यको खेलौनेके समान लीलापूर्व्वक मारा, उसका सब विवरण जैसा अपने गुरुके मुखसे हमने सुना था वैसा ही तुमको सुना दिया ॥ ३२ ॥ **सूतजी कहते हैं।** इस प्रकार मैत्रेयजीके मुखसे हरिकी कथा सुन कर महाभगवद्भक्त विदुरजी परम आनन्दको प्राप्त हुए ॥ ३३ ॥ हे शौनकजी! श्रेष्ठयशवाले अन्यान्य सज्जनोंके चरित्रोंको सुन कर भगवद्भक्त प्रसन्न होते हैं तब स्वयं श्रीवत्सचिन्हधारी हरि भगवान्की कथा सुन कर विदुरके आनन्दित होनेमें क्या विचित्र है? ॥३४॥ ग्राहने गजको पकड़ लिया और हथिनियाँ चिल्लाने लगीं, तब गजने शरणागत होकर हरिके चरणकमलका ध्यान किया, उसी समय अतिशीघ्र आ कर जिन्होने अपने भक्त गजराजको संकटसे छुड़ाया ॥ ३५ ॥ उन अनन्यभक्त एवं सरल मनुष्यों करके सहजमें प्रसन्न करने योग्य एवं असाधुओं करके दुराराध्य हरिको, कौन ऐसा कृतज्ञ पुरुष है जो न भजे ॥ ३६ ॥ हे ब्राह्मणगण! जो कोई हिरण्याक्षबध—रूप श्रीवाराहजीके चरित्र सुनता वा गाता है या अनुमोदन करता है वह अनायास ही ब्रह्मबधके भी पातकसे छूट जाता है ॥ ३७ ॥

एतन्महापुण्यमलं पवित्रं
धन्यं यशस्यं पदमायुराशिषाम् ॥
प्राणेन्द्रियाणां युधि शौर्यवर्धनं
नारायणोऽन्ते गतिरङ्ग शृण्वताम् ॥ ३८ ॥

यह हरिका चरित्र परम पवित्र एवं स्वर्गप्रद है, धन्य है, यशदायक है, आयु बढ़ानेवाला एवं कामना पूर्ण करनेवाला है। यह युद्ध समय पढ़नेसे शूरता व उत्साह बढ़ानेवाला एवं प्राण व इन्द्रियोंको सबल करनेवाला है । इसको जो कोई सुनते हैं उनको अन्तकालमें नारायणकी गति मिलती है ॥ ३८ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंश अध्याय।

सृष्टिप्रकरण ।

शौनक उवाच—महीं प्रतिष्ठामध्यस्य सौते स्वायंभुवो मनुः ॥
कान्यन्वतिष्ठद्द्वाराणि मार्गायावरजन्मनाम् ॥ १ ॥

शौनक मुनि बोले। हे रोमहर्षण सूतके पुत्र! स्वायम्भुव मनुने पृथ्वीरूप स्थानको पाकर पश्चात् उत्पन्न प्राणियोंकी सृष्टिके लिये क्या २ उपाय किये? ॥ १ ॥ महाभागवत विदुरजी कृष्ण भगवान्के परम सुहृद् थे। क्यों कि उन्होने अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रको सहित उसके पुत्र दुर्य्योधनके, श्रीकृष्णकी मन्त्रणा (सलाह) का अनादर करनेसे, अपराधी समझ कर त्याग दिया ॥ २ ॥ वह महात्मा वेद व्यासके औरस (बीज)से उत्पन्न थे इसी कारण गुण व महिमामें उनसे न्यून न थे। विदुरजी तन-मनसे श्रीकृष्णकेही आश्रित थे एवं कृष्णके भक्तोंके अनुगामी थे ॥ ३ ॥ तीर्थपर्य्यटनसे निर्म्मल होगये थे। ऐसे विदुरजीने कुशावर्त्त (हरिद्वार)में प्राप्त हो कर तत्त्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ श्रीमैत्रेय मुनिसे फिर क्या प्रश्न किया? ॥ ४ ॥ क्यों कि हे तात! इन दोनोके सम्वादमें वहुत सी गंगाजलके समान पापहारिणी एवं हरिके चरणकमलोंसे सम्बन्ध रखनेवाली निर्म्मल कथाओंका कथनोपकथन हुआ होगा ॥ ५ ॥ अतएव कीर्तन करने योग्य हैं उदार कर्म्म जिनके ऐसे हरिकी वे कथाएं हमसे कहो। तुम्हारा कल्याण हो। कौन मनुष्य ऐसा है जो हरिकी कथा-रूप अमृतका एक वार पान करके फिर उसके पीनेकी लालसा न करै? ॥ ६ ॥ इस प्रकार नैमिष क्षेत्रमें रहनेवाले ऋषियोंका अध्यात्म(आत्मतत्त्व)विषयक प्रश्न सुन कर उग्रश्रवा नाम सूत उनसे बोले कि सुनो ॥७॥ **श्री सूत बोले।** "शूकर-रूप-धारण करके भगवान्ने अपनी मायासे पातालसे पृथ्वीका उद्धार किया

और लीलापूर्व्वक हिरण्याक्ष असुरका वध किया" श्री मैत्रेय मुनिके मुखसे यह विष्णुकी लीला सुन कर विदुरजी बहुत प्रसन्न हुए और फिर बोले ॥ ८ ॥ **श्री विदुर बोले ।** अप्रकट सृष्टिमार्गके वा ब्रह्ममार्गके जाननेवाले ब्रह्माजीने प्रजासृष्टिमें प्रजापतियोंको उत्पन्न करके फिर किस सृष्टिका आरम्भ किया? हे ब्रह्मन्! सो आप मुझसे कृपया कहिये ॥ ९ ॥ मरीचि आदि ब्रह्माके पुत्र और स्वायंभुव मनु ने ब्रह्माजीकी आज्ञासे किस प्रकार इस जगत्को उत्पन्न किया? ॥ १० ॥ इन लोगोंने अपनी २ स्त्रियोंके साथ मिल कर वा अकेले २ अथवा सबने मिल कर इस विश्वकी कल्पना की? ॥११॥ **मैत्रेयजी बोले ।** त्रिगुणरूपिणी निर्व्विकार प्रकृति प्रथम ईश्वरकी थी। जीवका अदृष्ट, प्रकृतिका अधिष्ठाता महापुरुष और काल—इन तीनो कारणोंसे माया वा त्रिगुणप्रधान प्रकृतिको क्षोभ हुआ तब उस त्रिगुणसे महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ † ॥ १२ ॥ रजोगुणप्रधान इस महत्तत्त्वसे ईश्वरकी इच्छावश अहंकार उत्पन्न हुआ। महत्तत्त्व स्वतः सत्त्वगुण प्रधान है परन्तु अहंकारकी उत्पत्तिके समय, कार्य्यके अनुरूप रजोगुणप्रधान हो जाता है वह अहंकार त्रिगुणात्मक हुआ। इस अहंकारसे पाँच २ करके आकाशादि तत्त्व उत्पन्न हुए, अर्थात् उससे पञ्चतन्मात्रा (रूपादि विषय), पञ्चमहातत्त्व (आकाशादि), इन्द्रिय एवं उनके अधिष्ठाता (सूर्य्यादि) देवता उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ ये सब अलग २ जब कुछ उत्पन्न करनेको समर्थ न हुए तो ईश्वरेच्छासे परस्पर मिल कर इन्होने एक भौतिक अंड उत्पन्न किया ॥ १४ ॥ वह जीवहीन अण्ड कुछ अधिक सहस्रवर्षपर्य्यन्त समुद्रके जलमें पड़ा रहा, तब ईश्वरने उस हिरण्यमय अण्डमें प्रवेश किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर उस अण्डकी नाभिसे एक कमल उत्पन्न हुआ जिसकी कान्ति सहस्रसूर्य्यके समान भासमान हुई, वही कमल सकल जीवोंका निवासस्थान, लोकस्वरूप है। उस कमलद्वारा स्वयं भगवान् ब्रह्मास्वरूपसे प्रकट हुए ॥ १६ ॥ ब्रह्मामें जलशायी हरिने शक्तिरूपसे प्रवेश किया, तब प्रथम जैसे रूप—नाम आदिका क्रम था उसी भाँति ब्रह्माने सकल लोकोंकी रचना की ॥ १७ ॥ ब्रह्माने प्रथम छाया (ज्ञानको छिपानेवाले) से मोह, महामोह, तम, तामिस्र और अन्धतामिस्र; यह पाँच प्रकारकी अविद्या उत्पन्न की ॥ १८ ॥ किन्तु इस तमोमय सृष्टिसे ब्रह्मा प्रसन्न न हुए तो उन्होने इस काय(वासना) को त्याग दिया, वही रात्रि होगई—उसका ग्रहण यक्ष और राक्षसोंने किया, इस रात्रिसे भूख और प्यास उत्पन्न हुई ॥१९॥ जब यक्ष और राक्षस

---

† जैसा तन्त्रमें कहा है:—"विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यथो विदुः । प्रथमं तु महत्सर्गं द्वितीयं त्वहमितिस्थितम् ॥ तृतीयं सर्व्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते" । महत्तत्व, अहंकार और सर्व्वभूतस्थ इन्द्रियादि; ये विष्णुके तीन रूप है । इनकी पुरुषसंज्ञा है । इनका ज्ञान होने पर मनुष्य मुक्त हो जाता है ।

भूखे और प्यासे हुए तब वे ब्रह्माको ही खानेकी इच्छासे दौड़े और मारे भूख व प्यासके कहने लगे कि इसकी रक्षा न करो, भक्षण कर लो ॥२०॥ तब घबड़ा कर ब्रह्माजीने उनसे कहा,-मुझको खाना नहीं, रक्षा करो, अहो, तुम मेरी यक्ष और राक्षस संज्ञक प्रजा हो; जिन्होने जक्षत (भक्षण कर लो) कहा वे यक्ष और मा रक्षत (न रक्षा करो) कहनेवाले राक्षस हुए ॥ २१ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजीने प्रभा अर्थात् ज्ञानरूप शरीर (वासना)से प्रकाशित हो कर सब सृष्टिमें प्रधान सात्त्विकी सृष्टि की, वे ही देवगण हुए। ब्रह्माने उस शरीर(वासना)को त्याग दिया वही दिन हो गया। उसको प्रसन्न होकर क्रीड़ा करते हुए देवगणने ग्रहण कर लिया ॥ २२ ॥ फिर ब्रह्माने अपने जघन देशसे अतीव कामी असुरगणको उत्पन्न किया, वे असुरगण कामवश हो कर ब्रह्माकी ओर मैथुनकी इच्छासे चले ॥ २३ ॥ प्रथम उनकी दुरभिसन्धि जान कर ब्रह्मा हँसे, पर जब वे निर्लज्ज हो कर ब्रह्माकी ओर बढ़े तो ब्रह्माको प्रथम क्रोध आया किन्तु फिर भयभीत होकर भागे ॥ २४ ॥ और भक्तवत्सल दीनदुःखहारी एवं भक्तोंकी इच्छाके अनुरूप रूप ग्रहण करनेवाले, सकल कामना पूर्ण करनेवाले हरिके शरणागत होकर कहने लगे ॥२५॥ "हे प्रभु! मैंने आपकी प्रेरणासे प्रजाओंको उत्पन्न किया, पर ये पापी मुझसे मैथुनका उपक्रम करते हैं; हे परमात्मन्! इनसे मेरी रक्षा करो ॥ २६ ॥ क्योंकि क्लेशमें पड़े हुए लोगोंके क्लेशका नाश करनेवाले, और जो आपको नहीं जानते उनको क्लेश देनेवाले आप ही एक हैं" ॥ २७ ॥ अन्तर्यामी भगवान् हरिने ब्रह्माका कष्ट देख कर उनके हृदयमें इस प्रकारकी बुद्धिका उदय किया कि,-इस अपने घोर शरीर (वासना)का त्याग कर दो। ऐसा विचार आते ही ब्रह्माने तुरन्त उस शरीर (वासना) को त्याग दिया ॥ २८ ॥ वह ब्रह्माका त्यागा हुआ शरीर (वासना), संध्या (दिन रात्रिकी संधि) हो गया। उसी संध्याको असुरोंने स्त्री मान लिया, (इसका कारण यही था कि संध्या कामोद्दीपिनी वेला है और असुर राजस होनेके कारण स्त्रीलम्पट थे अतएव मोहसे उन्होने संध्याको ही स्त्री माना); उस स्त्रीरूप संध्याके चलनेमें चरणके नूपुर कलनाद करते जाते थे, दोनो नेत्र मदसे विह्वल थे, कटितट पर पट पड़ा हुआ था, उस पर काञ्चनकी काञ्चीके कलाप (सोनेकी कर्धनीकी लड़ें) पड़ी हुई थीं ॥२९॥ उठे२ ऊँचे कुच एकसे एक भिड़े हुए थे, वीचमें थोड़ा भी अन्तर नहीं था, सुन्दर नासिका, सुन्दर दन्तपंक्ति थी, स्नेहयुक्त हँसती हुई, लीलापूर्वक असुरोंकी ओर कटाक्ष करती जाती थी। श्यामवर्ण अलकावली पीठ पर पड़ी थी एवं वह लज्जासे अपने वस्त्रके अञ्चलसे मुखको छिपाती जाती थी। हे विदुर! इस प्रकार नारीरूप संध्याको देख कर सकल असुर मोहित होगये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ और परस्पर कहने लगे कि अहो कैसा अनूप रूप है! कैसा अपूर्व्व धैर्य्य है! अहो कैसी नई युवा अवस्था है! हम सब इसकी ओर कामनासे देख रहे हैं पर यह मानो हमको चाहती ही नहीं, ऐसे इधर आरही है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार वे

कुबुद्धि असुर अनेक प्रकारके परस्पर तर्क वितर्क कर उस स्त्रीरूप सन्ध्यासे योग्य अभ्यर्थना करके प्रेमपूर्व्वक पूँछने लगे कि ॥ ३३ ॥ हे केलेके खंभेके समान सुन्दर गोल जंघावाली भामिनी! तुम कौन हो? किसकी स्त्री वा कन्या हो? तुम्हारा यहां क्या कार्य्य है? तुम्हारा रूप एक अमूल्य विक्रीकी वस्तु है इसको दिखा कर क्यों हम अभागियोंको सता रही हो? ॥ ३४ ॥ अस्तु, हे अबले! तुम चाहे जो कोई हो, हमको बड़े भाग्यसे तुम्हारा दर्शन हुआ! तुम गेंद उछाल रही हो, उसके साथ ही साथ हमारे मनको भी मथे डालती हो ॥३५॥ हे प्रशंसा करने योग्य रूपवाली! तुम्हारे पादपद्म एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते, कारण उसका यह है कि तुम कंदुक (गेंद) उछालती हो और जब वह भूमिमें गिरने लगता है तो फिर दौड़ कर थपकी मारती हो। तुम्हारी यह पतली कमर दौड़नेसे श्रमित हो गई है और तुम्हारी दृष्टिसे भी थकावट झलकती है एवं तुम्हारे सुन्दर केशजाल कैसे काले २ और कपोलों पर छिटके हुए हैं! ॥ ३६ ॥ उन मूढ़बुद्धि असुरगणने स्त्रीके सदृश चेष्टा कर रही उस सायंकालकी संध्याको स्त्री समझ कर ग्रहण कर लिया ॥ ३७ ॥ फिर ब्रह्माने हँस कर अपनी कान्तिसे गन्धर्व्व और अप्सरागणको उत्पन्न किया ॥ ३८ ॥ उस ज्योत्स्ना(चाँदनी)रूप कान्तियुक्त, प्रिय शरीर (वासना)को ब्रह्माजीने उसी समय त्याग दिया। उसको विश्वावसु आदि गंधर्व्व-गणने प्रसन्नतापूर्व्वक ग्रहण कर लिया ॥ ३९ ॥ तब फिर भगवान् ब्रह्माने अपने आलस्यसे भूत और पिशाचगणको उत्पन्न किया, किन्तु उनको बाल खोले हुए और नग्न देख कर अपने नेत्र मूँद लिये ॥ ४० ॥ तदनन्तर उस शरीर (वासना) को ब्रह्माजीने त्याग दिया और भूतगणने उसे तत्क्षण ग्रहण कर लिया। यह ब्रह्माका शरीर ही निद्रा है, जिसमें जमुहाई आती है; यदि कोई उच्छिष्ट वा अशुद्ध अवस्थासे निद्रावश हो जाता है तो उसपर भूत–प्रेत–पिशाचादि आक्रमण करते हैं, उसीको उन्माद (सिड़ी हो जाना) कहते हैं ॥४१॥ भगवान् ब्रह्माने फिर अपनेको बलवान् मान कर अदृश्यरूपसे साध्यगण और पितृगणको उत्पन्न किया ॥ ४२ ॥ ब्रह्माके उस त्यागे हुए शरीर (वासना)को पितृगण और साध्यगणने ग्रहण किया! कर्म्मकोविद पुरुष उसी काया(वासना)से पितृगण व साध्यगणको श्राद्धादि द्वारा हव्य (अन्न) और कव्य (अन्न) देते हैं ॥ ४३ ॥ फिर ब्रह्माजीने तिरोधान (देख पड़ते रहने पर भी अन्तर्द्धान हो जानेकी शक्ति)से सिद्ध और विद्याधरोंको उत्पन्न किया एवं उस ब्रह्माके त्यागे हुए अन्तर्द्धानरूप शरीर(वासना)-को उन्होंने ग्रहण कर लिया ॥ ४४ ॥ फिर ब्रह्माने अपने अनुभव करनेकी इच्छासे अपने प्रतिबिम्बको देख कर उसीसे किन्नर और किम्पुरुषोंको उत्पन्न किया ॥ ४५ ॥ ब्रह्माके त्यागे हुए उस शरीर (वासना वा भाव) को उन्होंने ग्रहण कर लिया। ये किन्नर किम्पुरुषगण परस्पर मिल कर प्रातःकाल भगवान् ब्रह्माकी लीला और

माहात्म्यका गान किया करते हैं ॥ ४६ ॥ जब इतने पर भी सृष्टिकी वृद्धि न हुई तब ब्रह्माजी पैर फैला कर शयन करके बहुत चिन्ता करने लगे और फिर मारे क्रोधके उस शरीर(भाव)को त्याग दिया ॥४७॥ उस शरीरसे जो केश गिर पड़े वे ही अहि+ हुए उन्हीको सर्प (१), नाग (२) और भोगी (३) कहते हैं। इनके कन्धे फणके कारण बड़े चौड़े होते हैं और ये बहुत ही क्रूर स्वभाववाले होते हैं ॥ ४८ ॥ तदनन्तर अपनेको कृतकृत्य सा जान कर ब्रह्माजीने अन्तमें लोकभावन मनुओंको मनसे उत्पन्न किया ॥ ४९ ॥ तब उस पुरुषाकार शरीर (वासना) को ब्रह्माने त्याग दिया और उसे मनुओंने ग्रहण किया। उन मनुओंको देख कर जो प्रथम ब्रह्माजीके शरीरसे उत्पन्न हुए थे वे प्रजापति ब्रह्माकी प्रशंसा करने लगे ॥५०॥ कि हे ब्रह्मन्! आप जगत्के रचनेवाले हैं अहो! आपने यह बहुत अच्छा किया जो मनुष्यसृष्टि की। क्यों कि ये अग्निहोत्रादि कर्म्मद्वारा हमको भी अन्न अर्थात् भोजन देंगे ॥ ५१ ॥ तदनन्तर तप, विद्या, योग और समाधिसे युक्त हो कर इन्द्रियोंके ईश्वर व परम ऋषि ब्रह्माने ऋषियोंको उत्पन्न किया ॥ ५२ ॥

तेभ्यश्चैकैकशः स्वस्य देहस्यांशमदादजः ॥
यत्तत्समाधियोगर्द्धितपोविद्याविरक्तिमत् ॥ ५३ ॥

और उनको एक २ करके अपने तप, विद्या, समाधि, योग सिद्धि और वैराग्यमय शरीर (वासना)का अंश दिया ॥ ५३ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

+ अहीयंत (गिर पड़े) इति (इससे) अहयः (अहि) कहाये।

(१) प्रसर्प्पंतः पादाद्याकुंचनैः प्रचलतः (पैर आदिकी भांति सिकुड़ कर व फैलकर चलते हैं) अमुष्मात् (इससे) सर्प्पाः (सर्प्पनाम है)।

(२) अगाः (न चलनेवाले) न भवन्ति (नहीं हैं अर्थात् बड़े वेगसे चलते हैं) अस्मात् (इससे) नागाः (नाग नाम है)।

(३) भोगः फणोस्यास्तीति (भोग नाम फण है इसके, इससे) भोगी (कहलाता है)।

एकविंश अध्याय ।

देवहूति और कर्दमप्रजापतिके विवाहका प्रसंग ।

विदुर उवाच—स्वायंभुवस्य च मनोर्वंशः परमसंमतः ॥
कथ्यतां भगवन्यत्र मैथुनेनैधिरे प्रजाः ॥ १ ॥

विदुर बोले। भगवन्! सज्जनों करके आदरणीय स्वायंभुव मनुके वंशका वर्णन कीजिये, जिसमें मैथुन धर्म्म(स्त्रीपुरुषसहवास)से प्रजाओंकी वृद्धि हुई ॥ १ ॥ हे अनघ! आपने कहा कि स्वायंभुव मनुके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र हुए, जिन्होने धर्म्मपूर्वक सातो द्वीप पृथ्वीका पालन किया, और स्वायंभुवमनुकी देवहूति नामक कन्या हुई जिसका विवाह कर्दम प्रजापतिके साथ हुआ ॥ २ ॥ ३ ॥ महायोगी कर्दम प्रजापतिने यमनियमादि गुणोंसे भूपिता अपनी भार्य्यामें कितने सन्तान उत्पन्न किये? यह सुननेकी मेरी बड़ी इच्छा है, आप मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ और महर्षि रुचि एवं ब्रह्माके पुत्र दक्ष प्रजापतिने मनुकी दोनो आकूति और प्रसूति नाम कन्याओंका पाणिग्रहण करके किस प्रकार कितने सन्तान उत्पन्न किये? सो भी मुझसे कहिये। मैत्रेयजी बोले। ब्रह्माजीने भगवान् कर्दमसे कहा कि प्रजा उत्पन्न करो। तब उन्होने सरस्वतीके तट पर जा कर दशसहस्रवर्षपर्य्यन्त तप किया ॥ ५ ॥ ६ ॥ वह इस तपस्यामें समाधियुक्त हो कर पूजाके उपकरणोंसे भक्तिपूर्व्वक शरणागत जनोंको इच्छानुसार वर देनेवाले भगवान् हरिकी आराधना करने लगे ॥ ७ ॥ हे विदुर! सत्ययुगमें कर्दम ऋपिकी ऐसी कठिन तपस्यासे प्रसन्न हो कर कमललोचन भगवान्ने अपनी शब्दैकवेद्य ब्रह्ममूर्त्तिसे दर्शन दिया ॥ ८ ॥ मुनिवरने तप करते २ ऊपर दृष्टि करके देखा कि वही भगवान् विष्णु शरीर धारण करके सूर्य्यके न्याय गगनमण्डलमें विराजमान एवं प्रकाशमान हैं। कण्ठमें श्वेतकमल और उत्पलकी माला शोभित है, मुखारविन्द सुस्निग्ध नीलवर्ण अलकावलीसे शोभायमान है, और कटितटमें विमलपट निपट मनोहर है ॥९॥ शिर पर किरीट, कानोंमें कुण्डल और भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा एवं श्वेतवर्ण लीलाकमल धारण किये हुए मन्द मुसकान और कृपाकटाक्षसे मनको हरे लेते हैं ॥ १० ॥ गरुड़के कंधेपर चरणारविन्द धरे हुए हैं। कौस्तुभ मणि और लक्ष्मी वक्षस्थलमें शोभाको प्राप्त हैं ॥ ११ ॥ पुलकितगात्र मुनिने इस प्रकार हरिके दर्शन करके जाना कि मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। तब पृथ्वीमें मस्तक रखके हरिको दण्डवत् प्रणाम किया एवं स्वतःसिद्ध प्रसन्न मनसे प्रसन्न हो कर अंजलि बाँध कर स्तुति करने लगे ॥१२॥ कर्दम ऋषि कहने लगे। हे स्तुति करने योग्य! आप सम्पूर्ण सत्त्वगुणके आधार हैं, आपका दर्शन करके आज हमने अपने नेत्रोंका फल पाया। योगीगण क्रमपूर्व्वक उन्नति पा कर अनेकजन्मपर्य्यन्त योगाभ्यास करते रहते हैं,

इस आशासे कि आपके दर्शन हों ॥१३॥ ईश! आपकी मायाने जिनकी बुद्धिको हर लिया है वे मूढ़योगी संसारसागरसे पार उतरनेके लिये नौकासदृश आपके चरणारविन्दोंकी सेवा करके तुच्छ विषय सुख माँगते हैं, किन्तु आप उनको वे ही सुख देते हैं जो निरयमें भी प्राप्त होते हैं ॥१४॥ किन्तु मैं भी वैसा ही हूँ; दुराशयवश अपने समान शीलवाली, धर्म्म–अर्थ–कामरूप दुग्धकी देनेवाली, गृहस्थाश्रमकी धेनु अर्थात् स्त्रीसे विवाह करनेकी इच्छा करके मैं भी आपके कल्पवृक्षतुल्य चरणोंकी शरणमें समुपस्थित हुआ हूँ ! प्रभु! यद्यपि मैं सकाम हूँ तथापि सकल पुरुषार्थके मूल जो आपके चरण हैं उनके सिवाय अपनी कामना पूर्ण होनेके लिये और किसकी उपासना करूं? ॥ १५ ॥ हे अधीश! आप ही प्रजापति ब्रह्मा हैं, आपके वाक्यरूप रस्सीसे कामहत सकल लोक पशुसदृश बँधे हुए हैं । हे शुभरूप! मैं भी इस लोकके अनुगत हूँ, अतएव आपकी सेवा करके मैं भी स्त्रीलाभकी कामना करता हूँ। हे कालरूप! विषयभोगकी इच्छासे नहीं, किन्तु देव, ऋषि और पितरोंके ऋणसे उद्धार होनेके लिये आपकी आज्ञानुसार मैं स्त्रीकी इच्छा करता हूँ ॥ १६ ॥ हे विभु! कालस्वरूप जो आप हैं उनके भयसे हम कर्म्म करते हैं। आपके भक्तोंको कोई भी भय नहीं है, क्योंकि कामकामुक सकल लोक एवं लोकानुगत (ज्ञान होने पर भी) कर्म्मजड़ हमारे ऐसे पशुसदृश व्यक्तियोंका अनुकरण न करके वे लोग आपके चरणरूप छत्रका आश्रय ग्रहण करते हैं एवं आपके गुणानुवादरूप अमृतका पान करते रहते हैं जिससे भूख, प्यास आदि सकल शरीरके धर्म्म उनको नहीं सताते ॥ १७ ॥ यह संवत्सरात्मक आपका कालचक्र अति अद्भुत है! यह अजर ब्रह्माण्डस्वरूप अक्ष(चक्रके बीचका कीला)के ऊपर निरन्तर घूमा करता है। इस चक्रके अर (चक्रके भीतरकी आड़ी लकड़ियाँ) तेरह (मलमास सहित तेरह महीने) हैं। इसमें तीन सौ साठ (३६० दिन) पर्व्व हैं, छः (६ ऋतु) नेमि इसकी हैं, अनन्त क्षण, लव, मुहूर्तादि कालभेद छद अर्थात् पत्राकार धारा इसमें हैं, तीन (चातुर्मास्य) नाभि अर्थात् इसके आधाररूप वलय हैं, इसका वेग बहुत ही कराल और दुरतिक्रम है । यह जगत्को आकर्षित करता हुआ चल रहा है; किन्तु यह कालचक्र आपके अनन्य भक्तोंकी आयुको बलपूर्व्वक हर नहीं कर सक्ता ॥१८॥ भगवन् ! आप स्वयं एक हैं, तथापि जगत्की सृष्टिकी इच्छासे, अपनी विशुद्ध योगमायाकी सहायतासे त्रिगुणस्वरूप तीन शक्तियोंका स्वीकार करके उन्ही शक्तियोंसे इस जगत्की उत्पत्ति, पालन और नाश करते हैं, जैसे मकरी अपनेसे जाला उत्पन्न करके उसमें विहार करती है और इच्छानुसार उसको लील लेती है ॥ १९ ॥ हे अधीश! हम आपके भक्त हैं; यद्यपि मायाद्वारा अकिञ्चित्कर विषयसुख हमको देनेकी आपकी इच्छा न होगी तथापि आप अनुग्रहपूर्व्वक हमारी अभिलाषा पूर्ण कीजिये । हम इसी मार्गसे देव, ऋषि और पितरोंके ऋणसे उद्धार पा कर मुक्तिलाभ कर सकेंगे। प्रभु ! हम आपको मायासे

आवृतकी भाँति विलासशालिनी तुलसीसे सुशोभित सगुणरूप देख रहे हैं; आपको इस प्रकार देखनेसे भोग और मोक्ष दोनोका लाभ होता है ॥ २० ॥ भगवन्! आपका ज्ञान होनेसे कर्मफलका भोग अर्थात् शरीर निवृत्त हो जाता है। आप अपनी माया द्वारा इस विश्वको प्रवृत्त करते हैं, अतएव सकाम एवं निष्काम, दोनो प्रकारके भक्त आपके चरणोंकी सेवा और प्रणाम करते हैं; आप सकाम पुरुषके थोड़ा भी भजन करनेसे उसकी कामना पूर्ण करते हैं, इसी कारण मैं आपको वारम्वार प्रणाम करता हूँ ॥२१॥ **मैत्रेयजी कहते हैं।** गरुड़के पक्षके ऊपर स्थित भगवान् कमलनाभ कर्द्दमके ये वचन सुनकर कुछ हँसे और फिर प्रणत मुनिकी ओर भ्रूभंगयुक्त प्रेमपूर्ण कृपाकटाक्ष करके ये अमृतमय वचन कहने लगे ॥ २२ ॥ **श्रीभगवान् बोले।** मुनिवर! तुम्हारे चित्तकी बात जान कर उसका संयोग मैंने प्रथम ही कर रक्खा है। तुमने जिस लिये आत्मनियम द्वारा मेरी आराधना की है वह मैं पहलेसे ही जानता हूँ ॥ २३ ॥ हे प्रजापति! मेरी उपासना अनन्य-मन हो कर कोई किसी कामनासे करे पर वह कदापि विफल नहीं होती न कि फिर तुम ऐसे मनुष्यकी। तुम्हारी इच्छा अवश्य पूर्ण होगी ॥ २४ ॥ प्रजापतिके पुत्र सम्राट् स्वायंभुव मनु जो सदाचार आदि गुणोंसे विख्यात हैं एवं ब्रह्मावर्त्त देशमें रह कर सप्तसमुद्रयुक्त भूमिमण्डलका शासन करते हैं ॥ २५ ॥ हे विप्र! वह धर्म्मकोविद राजर्षि शतरूपा रानीको साथ लेकर परसों तुम्हें देखने आवेंगे ॥ २६ ॥ उनके एक अपूर्व्वरूपलावण्यवती कन्या है, वह सुशीला एवं तरुण अवस्थाको प्राप्त व परमगुणवती है; वह वरको ढूँढती है, तुम्ही उसके योग्य वर हो, मनु उसका विवाह तुम्हारे ही साथ कर देंगे ॥२७॥ हे ब्रह्मन्! स्त्रीके लिये तुम्हारा चित्त बहुत वर्षोंसे समाहित है, वह राजकुमारी शीघ्र ही तुमको अपना पति बनावेगी ॥ २८ ॥ तुम्हारे वीर्य्यद्वारा उस राजकुमारीके गर्भसे नव सन्तान होंगे। तुम्हारी उस राजकन्यासे उत्पन्न कन्याएँ ऋषियोंको ब्याही जायंगी एवं वे ऋषिगण भी उन कन्याओंमें पुत्र उत्पन्न करेंगे ॥ २९ ॥ और तुम मेरी आज्ञाका पालन करके मुझमें सकल कर्म्म अर्पण करो, इसीसे तुम शुद्धान्तः-करण हो कर अन्तमें मुझको प्राप्त होगे ॥ ३० ॥ तुम गृहाश्रमी हो कर सकल जीवों पर दया करना, फिर संन्यस्त हो कर (ज्ञान शिक्षा द्वारा) सबको अभयदान करना, तब तुम मुझमें सहित जगत्के अपनेको देखोगे और अपने (आत्मा)में मुझ (परमात्मा)को देखोगे ॥ ३१ ॥ महामुने! तुम्हारे वीर्यसे तुम्हारी स्त्री देवहूतिके गर्भमें मैं अंशकलासे (कपिल देव) अवतार लेकर तत्त्व संहिता (सांख्यशास्त्र) का प्रणयन करूंगा ॥ ३२ ॥ **श्रीमैत्रेयजी कहते हैं।** इस प्रकार कर्द्दम प्रजापतिसे कह कर सर्व्वात्मा सर्व्वव्यापक भगवान् सरस्वती नदीसे घिरे हुए 'विन्दुसर' अर्थात् कर्दम ऋषिके आश्रमसे चले गये ॥ ३३ ॥ कर्दमऋषिके देखते २, तपोम-

आदिसिद्ध अन्यान्य प्रधान पुरुषगण जिनकी स्तुति करते हैं एवं सिद्धगण जिनके मार्गको खोजते हैं, वह भगवान् विष्णु, पक्षिराज गरुड़के पक्षोंसे उच्चारित सामवेदकी स्तुतिसम्बन्धी ऋचाएँ सुनते हुए अन्तर्द्धान होगये ॥ ३४ ॥ जब भगवान् चले गये तब ऋषिराज कर्दम भगवान् विंदुसर (अपने आश्रम) में श्रीभगवान्के कहे हुए समयकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ ३५ ॥ इधर इसी समयमें स्वायम्भुव मनु, सुवर्णभूषित रथ पर सहित रानी और राजकुमारीके पृथ्वी-पर्य्यटन करने चले ॥ ३६ ॥ हे विदुर! जिस दिनके लिये भगवान्ने कहा था उसी दिन व्रतसे निवृत्त कर्दम मुनिके आश्रममें मनु महाराज आये ॥ ३७ ॥ इस आश्रमका विंदुसर नाम इससे हुआ कि शरणागत भक्त कर्दम ऋषि पर परम कृपाके होनेसे ईश्वरके नेत्रसे आँसूके विंदु उस स्थान पर गिर पड़े; वही विंदुसर नाम महापवित्र तीर्थ सरस्वतीके तट पर हो गया। इसका जल बहुत ही स्वच्छ रोगनाशक और अमृततुल्य मीठा है एवं सदा महर्षिगण इसका पान-स्नानादि-कार्य्योंमें व्यवहार किया करते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ इस स्थानको चारो ओरसे पवित्र वृक्ष और ललित लताओंके जाल घेरे हुए हैं, वृक्षोंके ऊपर पक्षीगण और नीचे मृगादि पशुगण मनोहर कलरव करते हैं, वहां सब ऋतुके फल, फूल सर्व्वदा वनराजिकी शोभा बढ़ाया करते हैं ॥ ४० ॥ मत्त पक्षिगण शब्द कर रहे हैं एवं भ्रमरगण भ्रमते हुए गुञ्जार कर रहे हैं, मदमत्त मयूर नटके न्याय नृत्य कर रहे हैं, मत्त कोकिला मानो अपने मधुर शब्दसे लोगोंको बुला रही हैं ॥ ४१ ॥ कदम्ब, चम्पक, अशोक, करंज, बकुल, अशन, कुंद, मंदार, कुटज और आमके पौधे; ये वृक्ष वहांकी शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ ४२ ॥ एवं कारण्डव, प्लव, हंस, कुरर, जलकुक्कुट, सारस, चक्रवाक और चकोर आदि पक्षी सुन्दर शब्द कर रहे हैं ॥ ४३ ॥ हरिण, शूकर, स्याही, नीलगाय, हाथी, लंगूर वानर, सिंह, नकुल एवं नाभिक (कस्तूरी मृग) आदि पशु विचर रहे हैं ॥४४॥ ऐसे उस तीर्थश्रेष्ठमें प्रवेश करके सहित रानी व कन्याके आदिराज स्वायंभुव मनुने बैठे हुए कर्दम ऋषिके दर्शन किये, मनुने देखा कि मुनिवर अग्निहोत्र करके ईश्वरमें ध्यान लगाये हुए हैं, उग्र योग अर्थात् घोर तपके कारण उनका तेजस्वी शरीर अग्निके समान प्रकाशमान है, और यद्यपि तप करनेसे शरीर क्षीण हो गया है पर श्रीहरिकी कृपादृष्टि एवं अमृतमय वचनोंसे सब शिथिलता जाती रही है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ शिर पर जटाजूट और शरीरमें वल्कल धारण किये हैं, दोनो नेत्र कमलके पत्तेके समान विशाल हैं, दोनो कन्धे उन्नत हैं। मनुने पास जा कर देखा कि जैसे कोई महामूल्य मणि सान पर न चढ़ाई गई हो और वह मलीन २ देख पड़े ॥ ४७ ॥ पास जा कर मनुने प्रणाम किया, मुनिने देखा कि मनुजी आश्रममें आये हैं और सन्मुख खड़े हुए प्रणाम कर रहे हैं। तब मुनिने आशीर्व्वाद दिया एवं यथायोग्य पूजा आदिसे सत्कार किया ॥ ४८ ॥

जब मुनिका पूजन ग्रहण करके सुखपूर्व्वक मनुजी बैठे, तब श्रीहरिके वचनको स्मरण करके, मनुको सुन्दर मधुरवाणीसे प्रसन्न करते हुए मुनिवर यह कहने लगे ॥ ४९ ॥ "हे राजन्! आपका घूमना अवश्यमेव साधुओंकी रक्षा और असाधुगणके वधके लिये होता है; क्योंकि राजा हरिकी पालनरूप कार्य्य करनेवाली शक्ति है ॥ ५० ॥ आप विष्णु भगवान्‌का अंश हो अतएव आपको प्रणाम है। आप कार्य्यानुसार सूर्य्य, अग्नि, इन्द्र, वायु, यम, धर्म्म, वरुण आदिके रूपको धारण करते हो ॥५१॥ यदि तुम मणिगणमण्डित, जयदायक रथ पर चढ़ कर प्रचण्ड कोदण्ड भुजदण्डमें धारण करके प्रत्यंचाके कठोर शब्दसे दुष्टोंको भयभीत करते हुए एवं अपनी असंख्य चतुरंगिणी चमूके चरणाघातसे खुदे हुए पृथ्वी मण्डलको कंपायमान करते हुए महती सेनासहित सूर्य्यके समान भूमण्डलमें न विचरण करो ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ तो उसीक्षण वर्ण और आश्रमके बंधनसे बँधे हुए भगवान्‌के रचे धर्म्मसेतुओंको दस्युगण तोड़ डालें ॥ ५४ ॥ सब मनुष्य निरंकुश हो कर मनमाना अधर्म्म करने लगें। राजा यदि प्रजाकी ओरसे निश्चिन्त हो कर राज्यसुखभोगमें पड़े तो सब प्रजा दस्युगणके अत्याचार व उत्पातसे नष्ट हो जाती है ॥ ५५ ॥

अथापि पृच्छे त्वां वीर यदर्थं त्वमिहागतः ॥
तद्वयं निर्व्यलीकेन प्रतिपद्यामहे हृदा ॥ ५६ ॥

यद्यपि हमको यह सब विदित है तथापि हे वीर! हम आपसे पूंछते हैं कि क्या आप किसी विशेष कारणसे मेरे पास आये हैं? आपका हमारे करने योग्य जो कार्य्य हो, कहिये, हम उसे हर्षपूर्वक स्वीकार करेंगे ॥ ५६ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंश अध्याय।

कर्दम और देवहूतिका विवाह।

मैत्रेय उवाच—एवमाविष्कृताशेषगुणकर्मोदयो मुनिम् ॥
सव्रीड इव तं सम्राडुपारतमुवाचह ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेय ऋषि बोले। इस प्रकार महर्षि कर्दमने आदिराज मनुके असीम गुण और कर्म्मकी श्रेष्ठता दिखा कर प्रशंसा की; अपनी प्रशंसा सुनकर मनु कुछ लज्जित से हुए और फिर मुनिसे बोले ॥ १ ॥ ब्रह्मन्! वेदमय प्रजापति ब्रह्माने वेदका प्रचार करनेके लिये तप, विद्या और योगयुक्त एवं लम्पटतारहित जो

आप लोग ब्राह्मण हैं उनको अपने मुखसे उत्पन्न किया ॥ २ ॥ और आप लोगोंकी रक्षाके लिये सहस्र चरणवाले ईश्वरने अपनी सहस्र भुजाओंसे हम क्षत्रियोंको उत्पन्न किया; इस प्रकार ब्राह्मण अपने तपोबलसे और क्षत्रिय अपने बाहुबलसे परस्पर परस्परकी रक्षा करते हैं; एवं इस प्रकार सत्य (आत्मा) और असत्य (संसार) स्वरूप ईश्वर अविनाशी देव जगत्‌की रक्षा करते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ भगवन्! आपके दर्शनसे ही मेरे सब संशय निवृत्त हो गये। क्योंकि आपने स्वयं प्रीतिपूर्व्वक रक्षा करनेवाले राजाके धर्म्मकी शिक्षा, प्रशंसाके बहानेसे, मुझको दी ॥ ५ ॥ जिन्होने आत्माको नहीं जीता वे लोग आपका दर्शन नहीं कर सक्ते; मेरे अहो भाग्य हैं जो मुझको आपके शुभ दर्शन मिले, और अहो भाग्य जो आपके परम पवित्र चरणरजको मैंने शिर पर धारण किया ॥ ६ ॥ अहो भाग्य जो आपने शिक्षा देकर मुझ पर परम अनुग्रह किया। अहो भाग्य जो मैंने अनावृत कानके छिद्रों द्वारा आपकी अमृतमय पवित्र वाणीका पान किया ॥ ७ ॥ भगवन्! कन्याके स्नेहसे मेरा अन्तःकरण अत्यन्त क्लेशको प्राप्त है। आप मुझ दीनके कहे हुए विनीत वचनको सुनिये, आपकी अत्यन्त कृपा होगी ॥ ८ ॥ यह मेरी कन्या एवं मेरे पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपादकी वहन है। यह वय, शील, गुण आदिसे सम्पन्न वरको चाहती है ॥ ९ ॥ इसने नारद ऋषिके मुखसे आपके शील, वय, विद्या, रूप और गुणकी प्रशंसा सुन कर आपको ही पति बनानेका निश्चय कर रक्खा है ॥ १० ॥ अतएव हे मुनिवर! मैं श्रद्धापूर्वक उपहारस्वरूप यह कन्या आपको देता हूँ, आप इसको अंगीकार करो; यह सब प्रकार आपके योग्य है, गृहस्थाश्रमके सब कर्म्म इसके द्वारा सम्पन्न होंगे ॥ ११ ॥ देखिये, निःसङ्ग व्यक्तिके पास भी यदि कोई भोग्य वस्तु स्वयं आकर उपस्थित हो तो उसका त्याग करना अयोग्य है और सकाम व्यक्तिके लिये तो कुछ कहना ही नहीं है ॥ १२ ॥ उपस्थित विषयका निरादर करके फिर जो व्यक्ति उसी विषयको समय पड़ने पर वा आवश्यकतानुसार किसी कृपणसे माँगता है वह चाहे महायशस्वी ही क्यों न हो उसका यश नष्ट हो जाता है और मान भी अनादर होनेसे नष्ट हो जाता है * ॥ १३ ॥ हे विद्वन्! मैंने सुना है कि आप

---

* यहांपर एक दृष्टान्त है। एक थे महात्मा त्यागी बाबा, सब लोग उनको मानते और आदर करते थे। उनके बहुतसे चेले थे। एक दिन एक चेलेके घर गयाका ब्रह्मभोज हुआ। उसने बाबाको न्यौता भेजा पर बाबाने न्यौता लौटा दिया, चेलेने जाना बाबा कुछ खफ़ा हो गये सो उसने बहुतसी पचमेल मिठाई मन भरके लगभग थारमें रख कर साथ ली और बाबाजीके आगे लाकर रख दी, हाथ जोड़ खड़ा हो गया; बाबाने कहा अरे-लेजा लेजा यहांसे, हम फकीरोंको मिठाई क्या करना है। लाचार हो कर वह मिठाई लेकर

अपना विवाह करना चाहते हैं, इसी कारण इस कन्याका पाणिग्रहण करने लिये मैं आपसे अनुरोध करता हूँ । आपका ब्रह्मचर्य्यं सावधि (अवधियुक्त) है अतएव आप ब्रह्मचर्य्यंकी अवधिके अनन्तर मेरी दी हुई इस कन्याको ग्रहण करो ॥ १४ ॥ **कर्दमजी बोले** । अच्छा हुआ, मेरी विवाह करनेकी इच्छा है । तुमने भी इस कन्याको सिवाय मेरे और किसीको देनेके लिये कहा नहीं है, अतएव हम दोनोके अनुरूप यह आदिम वैवाहिक विधि है ॥ १५ ॥ हे नरदेव! तुम्हारी इस कन्याकी कामना वैवाहिक प्रसिद्ध *मन्त्रके अर्थके अनुसार पूर्ण हो । तुम्हारी यह कन्या अपनी स्वाभाविक शरीरकी शोभासे आभूषण आदिकी कान्तिका निरादर कर रही है; कौन होगा जो तुम्हारी इस कन्याका आदर-पूर्व्वक ग्रहण न करे? ॥ १६ ॥ महाराज! एक समय तुम्हारी यह सुन्दरी कन्या अपने महलके ऊपर कन्दुकक्रीड़ा कर रही थी, गेंदकी ही ओर इसके नेत्र लगे हुए थे एवं इधर उधर गेंदके पीछे दौड़नेसे चरणस्थित मणिनूपुरके शब्दसे अपूर्व्व शोभा हो रही थी । उधरसे विश्वावसु गन्धर्व विमान पर बैठा हुआ आकाशमें जा रहा था सो इसकी अपूर्व्व सुन्दरता और शोभा देख कर मोहित और मूर्च्छित हो कर अपने विमानसे नीचे गिर पड़ा ॥ १७ ॥ जिन लोगोंने लक्ष्मीके चरणोंकी सेवा नहीं की है वे इस स्त्रीरत्नरूप तुम्हारी कन्याको देख भी नहीं सक्ते । फिर यह आप ऐसे धर्म्मिष्ठ मनुकी कन्या और उत्तानपादकी बहन है; एवं स्वयं आकर आपके द्वारा प्रार्थना कर रही है; कौन चतुर पण्डित होगा जो इसको स्वीकार न करेगा ? ॥ १८ ॥ मैं इसे ग्रहण करूंगा पर एक प्रतिज्ञासे, और वह प्रतिज्ञा यह है कि जबतक इसमें पुत्र न उत्पन्न होगा तबतक मैं इसके साथ गृहस्थाश्रममें रहूंगा और पुत्रोत्पत्तिके पश्चात् शान्त पारमहंस्य धर्म्मे,

---

घर लौट आया । इधर दस पांच ब्राह्मण जो उसके ब्रह्मभोजसे खा २ आये थे वे लगे बाबाके आगे आकर मिठाईके स्वादकी तारीफ करने कि वाह कैसी अच्छी बर्फी थी और लड्डू तो निखालिस मलाईके थे। पहले तो बाबाने नाहीं कर दी, पर अब लगी जबान खजुआने, रह रहके मनमें सोंचने लगे कि यार बड़ी नादानी की न्यौता न लिया और मिठाई लाया सो भी लौटा दी! इसी तरह शाम हो गई अब बाबासे रहायस न हुई तो यह सोंचा कि अब रात हो गई है कौन देखेगा और कौन पहचानेगा आओ कमली ओढ़कर चलें और भोजन कर आवें । बस बाबाजीने कमली ओढ़ ली और उसीमें मुख छिपाकर जा पहुंचे। पर उसके मोहरे पर भीड़ बड़ी थी, धक्का चल रहा था, बीचमें बाबा पड़ गये । धक्का लगा धड़ामसे चित्त गिरपड़े, चोट लगी, लोग चारों ओर इकट्ठा हो गये, चेला भी आया और गुरुको पहचान कर कहा—महाराज वाह! मैं घर पर इतनी मिठाई लेकर गया सो न ली, आपको इस धक्के खानेमें कौनसी मिठाई धरी थी ? शर्माकर बाबा लौट गए ।

* "गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मयापत्ये" त्यादि वैवाहिक मन्त्र प्रसिद्ध है ।

जिसके करनेकी आज्ञा वेदरूप वचनसे स्वयं भगवान्‌ने दी है, उसको ग्रहण करूंगा अर्थात् वानप्रस्थ हो कर संन्यास धर्म्म ग्रहण करूँगा ॥ १९ ॥ जिससे विश्व उत्पन्न हुआ है और जो विश्वका पालन व संहार करते हैं वह प्रजापतियोंके पति भगवान् ब्रह्मा इस विषयमें प्रमाण हैं; अर्थात् हम लोगोंके लिये तीनो ऋणोंसे उद्धार होनेके बाद संन्यासका ग्रहण ही ईश्वरोक्त धर्म्म है ॥ २० ॥ हे विदुर! इस प्रकार राजासे कह कर ऋषिप्रवर चुप हो गये और मनमें कमलनाभ भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए मंद मुसकानसे युक्त शान्त मुखसे देवहूतिके चित्तको लुभाने लगे ॥ २१ ॥ तदनन्तर मनुने अपनी रानीके मुखसे कन्या और रानीकी कर्द्दमजीके कथनमें सम्मति जान कर प्रसन्न हो कर परम गुणी मुनिको अपनी सुयोग्य कन्याका दान दिया ॥२२॥ महारानी शतरूपाने भी प्रीतिपूर्व्वक अपनी कन्या और दमादको पारिवर्ह (जहेज) स्वरूप अमोल भूषण, वस्त्र और परिच्छद (गृहोपकरण) दान किये ॥ २३ ॥ योग्य पात्रको कन्या देकर मनु भी चिन्ताहीन हो गये; किन्तु कन्याका विरह विचार कर उनके मनमें स्नेहका सागर उमड़ आया; दोनो भुजाओंसे प्रियकन्याको हृदयसे लगा लिया और विरहवेदना न सह सकनेके कारण "अम्ब! वत्स!" इत्यादि शब्द कह कर आंसू बहाने लगे। इतना नेत्रोंसे जल गिरा कि देवहूतीके केशकलाप भीग गये ॥ २४ ॥ २५ ॥ तदनन्तर सादर संभाषणपूर्व्वक मुनिकर्दमसे बिदा होकर रानीसहित मनुजी अपने रथ पर सवार हुए और अपने भृत्यगण सहित अपने पुरकी ओर चले ॥ २६ ॥ हे विदुर! शोभासम्पन्न ऋषि नदी सरस्वतीके दोनो किनारों पर स्थित प्रशान्त ऋषिगणके आश्रमोंकी अपूर्व्व शोभा देखते २ मनु चले, जिससे कन्याके विरहका क्लेश कुछ कम हो गया॥२७॥ वह ऐसे ही समयानुसार अपने पुरके पास आ कर पहुँच गये, मनुकी प्रजाओंने जब जाना कि महाराज मनु राजधानीके निकट आ पहुँचे तब वे सब हर्षित हो गाते बजाते अनेक प्रकारकी भेंट ले कर अगवानीके लिये चले ॥ २८ ॥ जिस स्थान पर सकलसम्पत्तिसम्पन्ना वर्हिष्मती नाम पुरी है वही ब्रह्मावर्त्त प्रदेश है। जहां यज्ञांग यज्ञपुरुष वाराहके अंग कँपानेके कारण उनके शरीरसे बहुत से रोम झड़ पड़े वही वर्हिष्मती पुरी है और यज्ञपुरुषके गिरे हुए वे ही रोम हरे २ कुश और काश हो गये, जिन कुश और काशसे विघ्नस्वरूप राक्षसादिको नष्ट करके ऋषि लोग यज्ञद्वारा यज्ञपुरुषकी आराधना करते हैं ॥२९॥३०॥ मनुने यज्ञपुरुषकी कृपासे पृथ्वीरूप स्थान पा कर वहाँ (वर्हिष्मतीमें) कुश काश बिछा कर यज्ञपुरुषकी पूजा की। वही वर्हिष्मती पुरी मनुकी राजधानी है ॥ ३१ ॥ मनुने उसी पुरीमें लौट आ कर तीनो तापके मिटानेवाले अपने भवनमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर महाराज मनु स्त्री-पुत्र-सहित धर्म्मपूर्व्वक अनेक विषयभोग एवं प्रजापालन करने लगे। नित्यप्रति प्रातःकाल स्त्रीयुक्त सुरगणके गायकगण अर्थात् गन्धर्व्व उनकी सत्कीर्त्तिका गान करते थे। निद्राभंग होने पर श्रीमान् मनु एकाग्र एवं अनुरक्त चित्तसे

हरिकी कथा सुनते थे ॥३३॥ स्वायंभुव मनु भगवद्भक्त थे, सुतरां यद्यपि वह सांसारिक विषय भोग करते थे तथापि सकल विषय उनके चित्तपर अपना अधिकार न कर सके ॥ ३४ ॥ मनु सर्व्वदा हरिके गुणानुवाद सुनते, ध्यान करते एवं निज वाक्यमें रचते और कहते थे, इसीसे उनका कोई छोटा सा भी समय व्यर्थ नहीं जाता था ॥३५॥ इस प्रकार स्वायंभुव मनुने अपने अन्तर अर्थात् कुछ अधिक ७१ चतुर्युग परिमित समयको वासुदेवके प्रसंगसे तीनो (जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति) अवस्था त्याग कर एवं तुरीय अवस्थामें स्थित होकर बिताया ॥३६॥ हे विदुर! मनुको किसी-समय कोई भी क्लेश बाधा नहीं दे सका। क्योंकि शारीरिक, मानसिक, दैविक, शत्रु-संभूत वा शीत, उष्ण, वात आदिसे उत्पन्न अनेक प्रकारके क्लेश हरिचरण-शरणागत मनुष्यको दुःखित नहीं कर सक्ते ॥ ३७ ॥ मुनिगणने मनुसे धर्म्मकी जिज्ञासा (जाननेकी इच्छा) प्रकट की तब उन्होने सबके हितकी कामनासे अनेक प्रकारके कल्याणकारी धर्म्म व मनुष्योंके साधारण धर्म्म और वर्ण व आश्रमोंके विशेष धर्म्म कहे ॥ ॥ ३८ ॥

एतत्त आदिराजस्य मनोश्चरितमद्भुतम् ॥
वर्णितं वर्णनीयस्य तदपत्योदयं शृणु ॥ ३९ ॥

आदिराज मनुका यह अद्भुत, वर्णन करने योग्य चरित्र हमने तुमसे कहा, अब देवहूतिका चरित्र श्रवण करो ॥ ३९ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंश अध्याय।

योगबलसे विरचित विमानमें कर्दम-देवहूतिका विहार।

मैत्रेय उवाच–पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिमिङ्गितकोविदा ॥
नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या भवानीव भवं प्रभुम् ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजीबोले। जब पिता माता चले गये तब साध्वी देवहूति, पतिकी इच्छाके अनुसार प्रीतिपूर्व्वक नित्य उन (पति)की सेवा करने लगीं। भवानीने भगवान् भवकी जैसे सेवा शुश्रूषा की थी वैसे ही देवहूति भी विश्वास, शौच, गौरव, इन्द्रिय-दमन, सुहृद्भाव एवं मधुर वाणी आदिसे मान, कपट, द्वेष, लोभ, निषिद्ध आचरण और अहंकार त्याग कर सावधानतापूर्व्वक सब कार्य्योंमें सब समय उद्यत रह कर तेजस्वी पतिको प्रसन्न करने लगीं ॥१॥२॥३॥ मनुकी कन्या सब प्रकार अनुगत होकर दैवको भी अन्यथा करनेको समर्थ अपने पति (कर्दम)से पुत्रकी आशा करके

प्रेमपूर्व्वक उनकी सेवामें तत्पर हुई। देवर्षिवर्य्य कर्दमऋषिने देखा कि मनु-दुहिता देवहूति पति-सेवाव्रतको बहुत दिन करनेके कारण बहुत दुर्बल हो गई हैं। तब कृपापूर्व्वक प्रेमवश गद्गदवाणीसे यों कहने लगे ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे मनुकी कन्या! मैं तुम्हारी इस सेवा और भक्तिसे तुम पर इस समय परम प्रसन्न हुआ हूँ। यह देह सब प्राणियोंको सकल प्रिय वस्तुओंसे अधिक प्रिय है; तुमने इस देहको भी मेरे लिये क्षीण कर दिया। प्रिये! पतिव्रता स्त्रियोंको यही उचित है ॥ ६ ॥ प्रिये! मैंने अपने धर्म्ममें तत्पर हो कर तप, समाधि, उपासना आदिसे चित्तकी एकाग्रता पाकर भगवान्के प्रसादसे भय और शोकसे रहित जो २ दिव्य भोग प्राप्त किये हैं, वे सकल भोग मेरी सेवा करनेसे तुमको प्राप्त होंगे। मैं तुमको दिव्य दृष्टि देता हूं, तुम उस दृष्टिसे वे सब देख पाओगी ॥ ७ ॥ परमशक्तियुक्त भगवान्की भ्रुकुटीके भंगमात्रसे जो सम्पूर्ण अन्यान्य भोगोंकी वासनाएँ विनष्ट हो जाती हैं वे क्या हैं अर्थात् अति तुच्छ हैं। तुम मेरी सेवा करनेसे सिद्ध हो गई हो, तुम दिव्य योगसिद्ध भोगोंका भोग करो। ये दिव्य भोग साधारण मनुष्योंकी कौन कहे—बड़े २ राजा लोगोंको भी दुष्प्राप हैं! ॥ ८ ॥ सम्पूर्ण योगमाया एवं उपासनामें चतुर महर्षि कर्दमके ये वचन सुन कर देवहूतिकी पुत्रविषयक चिन्ता नष्ट हो गई। देवहूति किञ्चित् लज्जा एवं मन्द मुसकानयुक्त मुखसे पतिकी ओर देख कर विनयपूर्व्वक प्रेमपूर्ण गद्गद वचनोंसे यों कहने लगीं ॥ ९ ॥ **देवहूति बोलीं**। हे विप्रवर! हे स्वामी! आप अमोघ योग और मायासे युक्त हैं अतएव आप सब भोग देनेको समर्थ हैं—यह मैं जानती हूँ, किन्तु मैं केवल यही चाहती हूँ कि जो आपने मेरे पाणिग्रहणके समय अंगीकार किया था वह पूर्ण कीजिये। जिससे मेरे गर्भ रहे, ऐसा अंगसंग (सहवास) एक बार होना चाहिये। प्रभु! सती स्त्रीगण श्रेष्ठ पतिको पा कर पुत्र उत्पन्न करें यही उनको बड़ा भारी लाभ है ॥ १० ॥ यदि अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये अङ्गसङ्ग करनेकी इच्छा हो तो कामशास्त्रके अनुसार उस विषयके साधनके उपाय कल्पित कीजिये, अर्थात् भोजन पान आदिसे मेरे शरीरको सबल कीजिये जिससे यह रतिक्रीड़ा करनेको समर्थ हो। प्रभु यह मनोभव काम यद्यपि आपसे हारा हुआ है किन्तु मुझ अबला पर अपना बल जनाता है, अतएव मेरा चित्त रमणकी इच्छामें आकर्षित होनेके कारण मेरा शरीर शिथिल हो गया है। भगवन्! अतएव आप मेरे शरीरके सबल करनेका उपाय कर विहार करने योग्य भवनका भी निर्माण कीजिये ॥ ११ ॥ **मैत्रेयजी कहते हैं**। हे विदुर! प्रियाका प्रिय करनेकी इच्छासे कर्द्दम ऋषिने उसी समय अपने योगबलसे, जहाँ चाहो वहाँ चला जाय, ऐसा एक विमान प्रकट कर दिया ॥ १२ ॥ वह विमान बड़ा ही सुन्दर, सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाला था और उसमें अनेक प्रकारके अमूल्य रत्न जड़े हुए थे। अनेक सम्पदाओंसे पूर्ण उस विमानके सब खंभे मणियोंके बने हुए थे ॥ १३ ॥

उसमें दिव्य भोगकी सामग्री ठौर २ पर धरी हुई थीं, वह विमान सब समय सब ऋतुओंमें सुख देनेवाला था एवं उसमें चारो ओर छोटी २ रेशमी कपड़ेकी झंडी व बड़ी बड़ी पताका शोभा बढ़ा रही थीं ॥१४॥ धरी हुई माला और फूलोंके ढेरकी मनोहर सुगन्धसे मोहित भौंरे घूम घूम कर मनोहर गुंजन कर रहे थे । रेशमके, ऊनके और सूतके भांति २ के वस्त्र चारो ओर सुशोभित थे ॥ १५ ॥ एकके ऊपर एक बने हुए भवनखण्ड एवं कमरोंमें अलग २ सुन्दर पलँग बिछे हुए, उन पर सुकोमल बिछौने बिछे हुए और पंखे धरे हुए थे, इधर उधर सुन्धर आसन पड़े हुए थे ॥ १६ ॥ ठौर २ पर अनेक शिल्पकर्म्म (कारीगरी) बने हुए थे। कहींकी पृथ्वी निरी नीलमकी बनी हुई, कहीं पन्नेकी बनी हुई, कहीं विद्रुमकी वेदी बनी हुई थीं ॥ १७ ॥ द्वारोंमें मूंगेकी देहली लगी हुई थीं और उनके किंवाड़े सोनेके थे जिनमें हीरे जड़े हुए थे। घरोंके शिखर इन्द्रनील मणिके बने हुए थे, जिनमें सोनेकी कलसी शोभा बढ़ा रही थीं ॥ १८ ॥ उसकी दिवालें हीरेकी बनी हुई थीं जिनमें बडी २ श्रेष्ठ पद्मराग मणि जड़ी हुई थीं मानो दिवाल पद्मरागमणिरूप अनेक नेत्रोंसे अपनी शोभा देख रही है । ठौर २ पर विचित्र वितान तने हुए थे, सुवर्णमय बन्दनवार बँधे हुए थे, जिनमें फूलोंके हार लटक रहे थे ॥ १९ ॥ उस विमानमें कृत्रिम हंस और कबूतर आदि पक्षी ऐसे उत्तम बने हुए थे कि उनको सच्चे पक्षी मान कर उसी उसी जातिके पक्षी उन पर आकर बैठते एवं शब्द करते थे ॥ २० ॥ रतिभवन, शयनगृह, उपवेशन स्थान, प्रांगण (सहन वा आँगन) एवं घरके बाहर का अजिर आदिक स्थान सब यथायोग्य उसमें बने हुए थे, जिनको देख कर बड़े २ मायावी भी अवश्य विस्मित हो जायँ ॥ २१ ॥ ऐसे सुन्दर विमानको देखकर भी देवहूतिका चित्त कुछ भीतरसे प्रसन्न न हुआ, इसका कारण यह था कि उनका शरीर मलिन और दुर्बल था एवं दासियाँ भी न थीं । तब सब प्राणियोंके अभिप्रायको जाननेवाले कर्दम ऋषि स्वयं देवहूतिसे बोले कि हे प्रिये! तुम इस सरोवर (विन्दुसर) में प्रथम स्नान करके इस विमान पर चढ़ो, यह विन्दुसर स्वयं विष्णुकृत तीर्थ है, यह परम पवित्र एवं मनुष्योंकी सब कामना पूर्ण करनेवाला है ॥ २२ ॥ २३ ॥ देवहूतिने प्रसन्नतापूर्व्वक आदरसहित पतिके वचनको ग्रहण किया । उस समय कमलनयनी देवहूतिका वस्त्र बहुत ही मैला और धूरसे भरा हुआ था एवं बाल सब चिकट कर एकवेणी हो गई थी, देहमें सब धूर भरी हुई थी, स्तन विवर्ण हो गये थे । देवहूतिने पतिकी आज्ञाके अनुसार सरस्वतीके अन्तर्गत उस पवित्र जलवाले सरोवरमें इसी दशासे प्रवेश किया ॥ २४ ॥ २५ ॥ देवहूतिने सरोवरके भीतर जाते ही अपनेको एक अद्भुत भवनमें पाया; उस भवनमें दशशत किशोरी कन्या एँ उपस्थित देख पड़ीं, जिनके शरीरसे कमलके फूलकी मनोहर

सुगंध आ रही है ॥ २६ ॥ वे सब देवहूतिको देख सहसा उठ कर खड़ी हो गई और नम्रतापूर्वक अंजली बाँध कर कहने लगीं कि–देवी! हम आपकी दासी हैं, आज्ञा कीजिये, हम आपकी क्या सेवा करें? ॥ २७ ॥ तदनन्तर उन सबने देवहूतिके सुगंधित उबटना लगा कर तेल लगाया और फिर शरीर मल कर स्नान कराया । तदनन्तर नवीन व मलरहित वस्त्र पहनाये ॥ २८ ॥ बड़े मोलके कान्तिमान् श्रेष्ठ आभूषणोंसे भूषित किया और सम्पूर्ण गुणपूर्ण सुन्दर अन्न खिलाया एवं अमृत सम मधुर आसव पिलाया ॥ २९ ॥ तब शीशेमें देवहूतिने अपनेको देखा कि माला व सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए हैं। उन कन्याओंने शरीरकी सब धूर छुड़ा दी है और सब शृंगार कर दिये हैं एवं खड़ी हुई प्रशंसा कर रही हैं ॥ ३० ॥ उबटन आदि लगा कर शिरसे स्नान किया है। सब अंगोंमें सब आभूषण यथायोग्य शोभायमान हैं। कण्ठमें कण्ठी, हाथोंमें वलय एवं चरणोंमें शब्दायमान काञ्चनके नूपुर शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ ३१ ॥ नितम्बदेशमें बहुरत्नयुक्त काञ्चनकी काञ्ची शोभा बढ़ा रही है। वक्षस्थलमें हार एवं सब अंगोंमें कुंकुमका अंगराग सुशोभित है ॥ ३२ ॥ सुन्दर दन्त, सुन्दर भ्रुकुटी और मनोहर स्निग्ध कटाक्षयुक्त नेत्रोंसे सुशोभित एवं अलकावलीसे घिरा हुआ मुख भ्रमर-भूषित कमलकी समता कर रहा है ॥ ३३ ॥ तदनन्तर जैसे ऋषिश्रेष्ठ अपने प्यारे पति कर्दम ऋषिका स्मरण देवहूतिने किया वैसे ही अपनेको सहित उन दासियोंके अपने पति प्रजापति कर्दमके पास पाया ॥ ३४ ॥ सहस्र स्त्रियोंसहित अपनेको पतिके आगे खड़ा देख कर एवं यह कर्दमऋषिका योगबल देख कर देवहूतिको बड़ा ही विस्मय हुआ ॥ ३५ ॥ मुनिवरने देखा कि देवहूति स्नान और शृंगार करके बहुत ही शोभायमान हैं। मानो वह कभी दुर्बल ही न थीं और उनका कोई अंग मलीन ही न था। जैसा उनका रूप विवाहके प्रथम था वैसा ही रूप इस समय धारण किये हुए हैं, उनके दोनो रुचिर स्तन वस्त्रसे ढँके मनको हर रहे हैं ॥ ३६ ॥ सुन्दर वस्त्र पहने हुए हैं, सहस्र विद्याधरी उनकी सेवामें खड़ी हुई हैं। हे शत्रुनाशन विदुर! उस समय प्रेमसे कर्दम ऋषिने विमान पर देवहूतिको चढ़ा लिया ॥ ३७ ॥ स्वतन्त्र मुनि उस विमानमें प्रियासहित उपस्थित हुए, उन विद्याधरियोंने मुनिका भी शृंगार किया। उस समय मुनिकी ऐसी शोभा हुई जैसे आकाशमें स्थित अति सुन्दर चन्द्रमा तारागणोंसे आवृत होकर नलिनी-वनको विकसित करता हुआ रोहिणीके साथ शोभाको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ उस विमान पर बैठे हुए कर्दम ऋषिने आठो लोकपालोंकी विहारभूमि सुमेरु पर्वतकी कमनीय कन्दराओंमें चिरकाल तक रमण किया, जिन कन्दराओंमे कामदेवका सखा सुन्दर सुगंधित सुशीतल वायु चल रहा है एवं गंगाके गिरनेका पवित्र और मनोहर शब्द सुनाई देता है। जैसे सिद्धगणद्वारा स्तुत कुबेरजी

अनेक सुन्दरी स्त्रियोंके साथ शोभाको प्राप्त हों वैसे मुनिवर भी सुशोभित हुए ॥ ३९ ॥ उसी विमान पर बैठे हुए कर्दम ऋषि वैश्रंभक, सुरसन, नन्दन, पुष्पभद्रक व चैत्ररथ आदि लोकपालोंके बगीचोंमें एवं मानससरोवर आदि स्थानोंमें प्रियतमासहित प्रीतिपूर्व्वक विचरण एवं रमण करने लगे ॥ ४० ॥ प्रभायुक्त एवं इच्छागामी उस श्रेष्ठ विमान पर बैठ कर वायुके समान कर्दम ऋषि सब लोकोंमें विचरण करने लगे एवं सकल विमानगामी देवगणका अतिक्रमण कर गये ॥ ४१ ॥ यह क्या बडी बात है? जिन लोगोंने संसारकष्टमोचन हरिके तीर्थस्वरूप चरणोंका आश्रय ग्रहण किया है वे धीर मनुष्य, कौन ऐसा कठिन कार्य्य है जिसको नहीं कर सक्ते ॥ ४२ ॥ अनेक आश्चर्य्यमय नवद्वीपयुक्त सकल भूमण्डल अपनी स्त्री देवहूतिको दिखा कर महायोगी कर्दम मुनि अपने आश्रमको लौटे ॥ ४३ ॥ रतिकी इच्छावाली मनुकी कन्याको रमाते हुए कर्दम ऋषिने बहुत वर्षतक रमण किया और उतना समय इनको एक मुहूर्त्तके समान मालूम पड़ा। अन्तमें नव प्रकार गर्भ स्थापन किया ॥ ४४ ॥ उस विमानमें उत्तम रतिशय्यामें अति सुन्दर पतिके साथ रमण करती हुई देवहूतिको कुछ भी न विदित हुआ कि कितना काल रमण करते २ बीत गया ॥ ४५ ॥ कामनिरत एवं योगबलसे रमण कर रहे दोनो स्त्री-पुरुषोंको शतवर्ष व्यतीत होगये, पर इनको एक थोड़े से समयके समान यह महान् समय बोध हुआ ॥ ४६ ॥ ऋषि सबका अभिप्राय जाननेवाले थे सुतरां देवहूतिका जो बहुसन्तानलाभका अभिप्राय था वह ऋषिने जान लिया। एवं देवहूतिकी कामना पूर्ण करनेकी शक्ति अपनेमें है—यह भी विचार कर अत्यन्त प्रीतिपूर्व्वक अपना आधा शरीर जो देवहूति हैं उनमें अपने वीर्य्यके नव भाग करके गर्भाधान किया ॥ ४७ ॥ ऋषि आत्मतत्त्वके जाननेवाले थे, सुतरां उनका मन रतिमें आसक्त न था, अतएव यथेष्ट वीर्य्यपात न होनेके कारण *देवहूतिके इस गर्भमें सब कन्या ही उत्पन्न हुईं। वे सब कन्या सर्व्वांगसुन्दरी हुईं। सबके अंगकी गंध कमलकी सुगन्धके सदृश थी॥४८॥ तदनन्तर अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार कर्दमऋषि देवहूतिको छोड़ कर बन जानेको उद्यत हुए। यह देख कर देवहूतिजी हृदयमें व्याकुल एवं शोकाकुल हुईं। चिन्तासे व्याकुल देवहूति मुख नीचा करके नखरूप मणियुक्त चरणसे पृथ्वीको लिखती हुई धीरे २ आंसू रोंक कर ललित वाणीसे यों कहने लगीं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ भगवन्! आप अपने कथनके अनुसार अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर चुके। तथापि मैं आपकी शरणमें आई हुई हूँ। मुझको अभयदान देना आपका कर्तव्य है ॥ ५१ ॥ ब्रह्मन्! प्रथम तो आप अपनी कन्याओंके योग्य पति खोज कर इनका विवाह कर दीजिये।

* "पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः।"— अर्थात् पुरुषका शुक्र अधिक होनसे पुरुष व स्त्रीका शुक्र (रज) अधिक होनेसे स्त्री सन्तान होती है।

दूसरे भगवन्! जब आप वनको चले जायँगे तब मुझे कौन ज्ञानका उपदेश देकर मेरे शोकको हरेगा? कौन संसारके भयसे मुझे अभय करेगा? ॥ ५२ ॥ प्रभु! इतना समय मैंने विषयभोगमें व्यतीत करदिया, और परमात्मतत्त्वकी ओर मेरा ध्यान नहीं हुआ ॥ ५३ ॥ मैंने इन्द्रियवश हो कर विषयवासना पूर्ण करनेके लिये आपका संग किया, मैं आपके परम प्रभावको न जान सकी। अर्थात् आपको ब्रह्मज्ञानी जान कर आपसे ज्ञानशिक्षा मैंने नहीं ली तथापि आप मेरे संसारभयको कृपापूर्व्वक ज्ञानोपदेश दे कर दूर कीजिये ॥ ५४ ॥ लोग कहते हैं कि संग ही संसारका मूल है, यह सत्य है परन्तु जो संग अज्ञानवश असत् जनोंसे किया जाता है वह संग संसारका कारण है किन्तु वही संग यदि साधु जनसे किया जाय तो निस्संगका फल जो मुक्ति है उसको देता है अर्थात् कुसंगसे बंधन और सत्सङ्गसे मुक्ति मिलती है ॥ ५५ ॥ प्रभु! जिस मनुष्यके कर्ममें धर्म्म नहीं है और उस निष्काम धर्म्मकर्म्मसे जिसको वैराग्य नहीं होता एवं उस वैराग्यसे जिसका चित्त हरिकी चरणसेवा अर्थात् भक्तिमें तत्पर नहीं होता वह व्यक्ति जीते ही मुर्देके समान है ॥ ५६ ॥

साहं भगवतो नूनं वञ्चिता मायया दृढम् ॥
यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बन्धनात् ॥ ५७ ॥

सो मैं हरिकी माया करके निश्चय ठगी गई क्योंकि मैंने मुक्तिके देनेवाले तुम स्वामीको पा कर भी संसारबन्धनसे मुक्त होनेकी इच्छा नहीं की ॥ ५७ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंश अध्याय ।

कपिलदेवका जन्म ।

मैत्रेय उवाच—निर्वेदवादिनीमेवं मनोर्दुहितरं मुनिः ॥
दयालुः शालिनीमाह शुक्लाभिव्याहृतं स्मरन् ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले। मनुदुहिता देवहूतिके इस प्रकार वैराग्ययुक्त वचन सुन कर दयालु कर्दम मुनिको प्रशंसा करने योग्य अपनी स्त्री देवहूति पर दया आई, तब विष्णु भगवान्‌के कथनको स्मरण करते हुए बोले ॥ १ ॥ कर्दम ऋषि कहने लगे—हे राजपुत्रि! हे अनिन्दिते! तुम इस प्रकार अपनेको अभागिनी समझ कर खेद न करो, अविनाशी भगवान् शीघ्र ही तुम्हारे गर्भमें प्राप्त होंगे ॥ २ ॥ अब तुम इन्द्रियदमन, अपने धर्म्मके आचरण, तपस्याके अनुष्ठान और धनदान द्वारा श्रद्धापूर्व्वक ईश्वरका भजन करो ॥ ३ ॥ तुम्हारी आराधनासे प्रसन्न हो कर भग-

वान् विष्णु मेरे यशको फैलाते हुए तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न होंगे और ब्रह्मज्ञानका उपदेश दे कर तुम्हारे हृदयकी ग्रंथि अर्थात् देहाभिमानको दूर कर देंगे ॥ ४ ॥ **श्रीमैत्रेयजी कहते हैं।** देवहूतिने प्रजापति कर्दमके कथनको सादर श्रद्धापूर्व्वक ग्रहण किया और भलीभाँति विश्वासपूर्व्वक अज्ञानरूप पर्देमें छिपे हुए एवं संसारभरके गुरु हरिका भजन करने लगीं ॥ ५ ॥ इसी प्रकार बहुत समय आराधना करने पर भगवान् मधुसूदनने कर्दमके वीर्य्यसे देवहूतिके गर्भमें प्रवेश किया, जैसे काष्ठमें तेजस्वी अग्नि स्थित होता है ॥ ६ ॥ उस शुभ समयमें आकाशमें वर्षा करनेवाले मेघ बाजे बजाने लगे और गन्धर्वगण गाने लगे एवं सुंदरी अप्सराएँ आनन्दपूर्व्वक नृत्य करने लगीं ॥ ७ ॥ आकाशसे देवगण कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा करने लगे, सब दिशा और नदी आदि जलाशयोंके जल निर्म्मल हो गये एवं सबके मन प्रसन्न हो गये ॥ ८ ॥ उस समय सरस्वतीके किनारे कर्दम ऋषिके मनोहर आश्रममें मरीचि आदि मुनिगण सहित भगवान् ब्रह्माजी आये ॥ ९ ॥ स्वतःसिद्धज्ञान ब्रह्माजीने जान पाया कि विशेष रीतिसे सांख्य शास्त्रका उपदेश देनेके लिये भगवान् परब्रह्मने अपने सत्त्वमय अंशसे देवहूतिके गर्भमें प्रवेश किया है ॥ १० ॥ भगवान् ब्रह्माने प्रसन्न एवं पवित्र चित्तसे भगवान्के अभिप्रायकी प्रशंसा की एवं प्रसन्नेन्द्रिय होकर कर्दमसे यों कहने लगे ॥ ११ ॥ **ब्रह्माजी बोले।** हे तात! तुमने भली भाँति मेरा पूजन और सत्कार किया जो कपट त्याग कर श्रद्धासहित मेरी आज्ञाको ग्रहण किया ॥ १२ ॥ पुत्रको पिताकी इतनी ही शुश्रूषा करनी चाहिये कि गुरुजन जो आज्ञा दें उसको "बहुत अच्छा" कह कर गौरवसहित ग्रहण करे और उसका पालन करे ॥ १३ ॥ हे सभ्य! तुम्हारी यह सुन्दरी कन्याएँ अपने वंशसे अनेक प्रकार इस सृष्टिको बढ़ावेंगी ॥ १४ ॥ इस लिये इसी समय तुम शील, गुण एवं रुचिके अनुसार ऋषिमुख्य मरीचि आदि ऋषियोंके साथ इन कन्याओंका विवाह करके पृथ्वीमें अपने निर्म्मल यशका विस्तार करो ॥ १५ ॥ हे मुने! मैं जानता हूं कि तुम्हारे पुत्र साक्षात् ईश्वर ही होंगे। सब प्राणियोंकी कामना पूर्ण करनेके लिये अपनी मायासे यह आदिपुरुष तुम्हारे यहाँ अवतीर्ण हुए हैं। इनका नाम कपिलदेव होगा ॥ १६ ॥ फिर ब्रह्माजी देवहूतिसे कहने लगे कि हे मानवि! तुम्हारे इस गर्भसे उत्पन्न बालकके दोनो नेत्र कमलके तुल्य, और केश स्वर्णवर्ण एवं पादपद्म पद्ममुद्रायुक्त होंगे यह ज्ञान—(शास्त्रजन्य ज्ञान) एवं विज्ञान (परोक्ष ज्ञान) योगसे कर्म्मकी मूल जो वासनाएँ हैं उनको सहित उनकी जड़के उखाड़ डालेंगे ॥ १७ ॥ हे मानवि! यह तुम्हारे गर्भमें साक्षात् मधुसूदन प्रविष्ट हुए हैं। यह तुम्हारे अज्ञान एवं संशयमय ग्रंथिको काट कर पृथ्वीमण्डलमें विचरण करेंगे ॥ १८ ॥ यह सिद्धगणके ईश्वर होंगे, इनका आदर और पूजन बड़े २ सांख्याचार्य्य करेंगे। लोग इनको कपिलदेव कहेंगे। इनके द्वारा

जगत्में तुम्हारी भी कीर्ति होगी, (क्यों कि सब कहेंगे कि देवी देवहूतिके पुत्र कपिलदेवजी) ॥१९॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि इस प्रकार ब्रह्मस्वरूप ब्रह्माजी कर्दम और देवहूतिका आश्वास करके सनकादिक और नारदसहित महःआदि तीनो लोकोंसे ऊपर अपने सत्यलोक परम धामको गये ॥ २० ॥ जब ब्रह्माजी चले गये तब हे विदुर! उनकी प्रेरणाके अनुसार कर्दम ऋषिने यथायोग्य मरीचि आदि विश्वके उत्पन्न करनेवाले ऋषियोंके साथ सादर अपनी कन्याओंका विवाह कर दिया ॥ २१ ॥ मरीचि ऋषिको कला नाम कन्या, अत्रि ऋषिको अनसूया नाम कन्या, अङ्गिरा ऋषिको श्रद्धा नाम कन्या, पुलस्त्य ऋषिको हविर्भू नाम कन्या दी ॥२२॥ ऐसे ही पुलह ऋषिको उनके योग्य गति नाम कन्या, क्रतु ऋषिको परमसती क्रिया नाम कन्या, भृगु ऋषिको ख्याति नाम कन्या, वसिष्ठ ऋषिको अरुन्धती नाम कन्या दी ॥२३॥ अथर्वा ऋषिको शान्ति नाम कन्या दी, जिसके द्वारा यज्ञ—कर्म्मका विस्तार होता है । तदनन्तर विवाहित विप्रवर जामाताओंको कुछ काल प्रीतिपूर्व्वक अपने यहाँ रक्खा ॥२४॥ हे विदुर! कुछ कालके अनन्तर वे ऋषिगण प्रसन्नतापूर्व्वक अपनी २ स्त्रियोंसहित कर्दम ऋषिसे विदा हो कर अपने २ आश्रमको चले गये ॥ २५ ॥ जब कपिलदेवजी उत्पन्न हुए तब अपने घरमें देवश्रेष्ठ विष्णु भगवान्को अवतीर्ण जान कर कर्दम ऋषि एकान्तमें भगवान् कपिलदेवसे मिले और प्रणाम करके कहने लगे ॥ २६ ॥ अहो! निरयमय संसारमें अपने पाप कर्मोंसे पीड़ित हो रहे लोगों पर बहुत कालमें किसी समय देवगण प्रसन्न होते हैं ॥ २७ ॥ योगीजन निर्जन स्थानमें रह कर बहुत जन्मोंतक भलीभाँति भक्तिभावसे योगसमाधि लगा कर जिनके चरणकमलके देखनेका यत्न करते हैं ॥ २८ ॥ वही भक्तपक्षरक्षक भगवान् हम ग्राम्यसुखके फँदेमें फँसे हुए नीच नर गणके घरमें हमारे छोटेपनका विचार न करके उत्पन्न हुए। मेरे अहो भाग्य हैं! ॥ २९ ॥ अपने वाक्यके सत्य करनेको एवं भक्तगणको ज्ञानका उपदेश करनेके लिये भक्तोंका मान बढ़ानेवाले आप मेरे घरमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ ३० ॥ भगवन्! यद्यपि यथार्थमें आपका कोई रूप नहीं है तथापि अलौकिक चतुर्भुज रूप अथवा जैसी आपके भक्तगणोंकी रुचि होती है वैसे ही रूप आप धरते हैं और वे ही रूप आपके अनुरूप (योग्य) हैं ॥ ३१ ॥ पण्डितगण आत्मतत्त्वके जाननेकी इच्छासे आपके पादपीठका निरन्तर अभिवादन करते हैं। आप ऐश्वर्य्य, वीर्य्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य आदिसे परिपूर्ण हैं, मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ३२ ॥ आपकी शक्ति आपके अधीन है, अतएव आप परमात्मा हैं। आप ही प्रधान (माया) हैं, पुरुष (मायाके अधिष्ठाता) हैं। आप महत्तत्त्व हैं। आप ही काल (सबके प्रेरक) हैं। कवि (ब्रह्मा वा सूत्रतत्त्व रूप) हैं। त्रिविध अहंकाररूप और लोकपाल अर्थात् अहंभावके पालक हैं। आत्माके अनुभवसे यह विश्व-प्रपञ्च जिसमें लीन होता है आप वही सर्वज्ञ

(माया आदिकी उत्पत्ति और संहारके साक्षी) हैं । हे कपिलदेव ! मैं आपकी शरण हूं ॥ ३३ ॥ आपने पुत्ररूपसे मेरे घर जन्म लिया अतएव मैं तीनो ऋणोंसे मुक्त हो गया । अब मैं सिद्धकाम होगया हूँ । अब आपसे आज्ञा ले कर संन्यास मार्ग ग्रहण करके आपका ध्यान करता हुआ शोकरहित हो कर विचरण करूंगा ॥३४॥ श्री भगवान् बोले । मुनिवर! लौकिक और वैदिक सब कार्योंमें मेरा वचन ही लोकमें प्रमाण है । इसी कारण अपना वचन सत्य करनेके अर्थ ही मैंने तुम्हारे घरमें जन्म लिया है ॥ ३५ ॥ जो मुनिगण, दुराशय लिंगशरीरके छोड़नेकी इच्छा करके सदैव मेरा भजन करते हैं उनको आत्माका दर्शन देनेवाले तत्त्व-प्रसंख्या अर्थात् सांख्य ज्ञानके देनेके उद्देश्यसे मैंने यह अवतार लिया है ॥३६॥ मुनिवर! अनादिकालसे आत्मज्ञानका यह सूक्ष्म मार्ग स्वयंसिद्ध था किन्तु कालवश नष्ट हो गया था, उसीका लोकमें फिर प्रचार करनेके लिये मैंने आत्ममायासे यह कलेवर ग्रहण किया है ॥३७॥ तुम मुझसे आज्ञा माँगते हो? मैं तुमको आज्ञा देता हूँ इच्छा-पूर्व्वक जगत्में विचरण करो, यदि मुझमें सकल कर्म्म अर्पण करके दुर्जय मृत्युको जय करना चाहो तो मेरा भजन करो ॥ ३८ ॥ ऐसा करनेसे मुझको अपने आत्मामें मनद्वारा देख कर शोकरहित हो कर जीवन्मुक्त हो जाओगे ॥३९॥ मैं माता देवहूतिको भी सब कर्म्मोंको जड़से उखाड़नेवाली आत्मविद्याका उपदेश दूँगा । जिससे वह संसारके भयसे रहित होकर परमानन्दको प्राप्त होंगी ॥४०॥ मैत्रेयजी कहते हैं । इस प्रकार कपिलदेवके वचन सुन कर प्रजापति कर्दमने उनकी प्रद-क्षिणा करके वनको गमन किया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर मुनिवर कर्दम आत्माकी श-रण ग्रहण करके मुनियोंके अहिंसादि व्रत धारण करके पृथ्वीमें परिभ्रमण करने लगे । यहां तक कि उन्होने विषयासक्तिशून्य हो कर अग्नि और घर तक त्याग दिया ॥ ४२ ॥ फिर सत् (आत्मा) और असत्(शरीर)से भिन्न जो निर्गुण हो कर भी सगुणभावसे विराजमान ब्रह्म है उसमें उन्होने मन लगा दिया । उसी भाँति उन्होने अखण्डित भक्तिके बलसे थोड़े ही कालमें ब्रह्मको देख लिया ॥४३॥ उन्होने देहादिके अहंकारको त्याग दिया, सुतरां शीत, उष्ण आदि द्वन्द्वधर्म्मसे हीन हो गये, एवं भेदबुद्धिरहित हो कर केवल अपने(ईश्वर)को सर्व्वत्र देखने लगे । उनकी बुद्धि आत्मामें लीन हो कर शान्त हो गई । तब वह स्थिर गंभीर सा-गरके न्याय निश्चल और निःशब्द हो गये ॥ ४४ ॥ तदनन्तर उनका चित्त, मुक्त-बन्धन हो कर परम भक्तिभावसे जीवात्मास्वरूप भगवान् वासुदेवमें स्थिर हो गया ॥ ४५ ॥ उन्होने देखा कि स्वयं अपना आत्मा भगवत्स्वरूप हो कर सब प्राणियोंमें अवस्थित है और सकल प्राणी भगवत्स्वरूप हैं अतएव सब आप ही हैं ॥ ४६ ॥

इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्र समचेतसा ॥
भगवद्भक्तियुक्तेन प्राप्ता भागवती गतिः ॥ ४७ ॥

इसी प्रकार चित्तके रागद्वेषविहीन एवं सर्व्वत्र समदर्शी होने पर वह भगवद्भक्तिके योगसे भगवत्सम्बन्धी गतिको शीघ्र ही प्राप्त हो गये॥ ४७ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंश अध्याय।

कपिलदेवजीका मातासे श्रेष्ठभगवद्भक्तिका लक्षण कहना।

शौनक उवाच–कपिलस्तत्त्वसंख्याता भगवानात्ममायया ॥
जातः स्वयमजः साक्षादात्मप्रज्ञप्तये नृणाम् ॥ १ ॥

शौनकजी कहने लगे कि हे सूत! तत्त्वसमूहकी संख्या करनेवाले अर्थात् सांख्यशास्त्रप्रवर्त्तक कपिल भगवान् जन्मरहित हो कर भी मनुष्योंको आत्मज्ञानकी शिक्षा देनेके लिये अपनी मायासे स्वयं उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ इन पुरुषोत्तम एवं योगियोंमें श्रेष्ठ हरिके चरित्र मैं अनेक बार सुन चुका हूँ तथापि भगवत्कीर्त्तिके सुननेमें मेरी इन्द्रियाँ तृप्त नहीं होतीं अर्थात् जी नहीं भरता ॥२॥ वह भगवान् भक्तगणकी रुचिके अनुसार देह धारण करके अपनी मायासे जो २ कर्म्म करते हैं वे सब ही कीर्तन करने योग्य हैं। वही हरिके श्रवणीय चरित्र मुझसे कहिये, मैं श्रद्धापूर्व्वक सुनूँगा ॥ ३ ॥ **सूतजी कहते हैं।** जैसे आप मुझसे पूँछते हो इसी भाँति विदुरजीने वेदव्यासके सखा मुनिवर मैत्रेयसे आत्मविद्याविषयक प्रश्न किया, तब प्रीतिपूर्व्वक मैत्रेयजी यों कहने लगे ॥ ४ ॥ **मैत्रेयजी बोले।** जब पिता (कर्दम) वनको चले गये तब भगवान् कपिलजी माताका प्रिय करनेकी इच्छासे उसी विन्दुसरमें रहने लगे ॥ ५ ॥ कपिलजी तत्त्वमार्गके पारदर्शी होनेके कारण सदैव निष्क्रिय भावसे उपविष्ट रहते थे। एक समय ब्रह्माका वचन स्मरण करती हुई देवहूतिजी अपने पुत्र (कपिलमुनि) के पास बैठ कर कहने लगीं ॥ ६ ॥ हे देव! इन असत् इन्द्रियोंको तृप्त करते २ विषयकी वासनासे मुझे वैराग्य हो गया है। इसी विषयाभिलाषके पूर्ण करनेमें पड़ कर मैं अज्ञानरूप अन्धकारसे आवृत हो गई हूँ ॥ ७ ॥ किन्तु आपकी कृपासे उसी दुस्तर अन्धकारके पार पहुँचानेवाला सत् चक्षु, आप ही मुझको मिल गए हो एवं भविष्यत्में, जिस अज्ञानरूप अन्धकारमें पड़ कर जन्ममरणविषयक क्लेशसमूह भोगना पड़ता है वह भी नष्ट हो जायगा ॥ ८ ॥ आप आदिपुरुष भगवान् हो, सब पुरुषोंके ईश्वर हो अज्ञानमय अंधकारमें पड़े हुए लोगोंके ज्ञानरूप नेत्र खोलनेके लिये सूर्य्यके समान

आपका उदय हुआ है ॥ ९ ॥ हे देव! मनुष्यको इस देहमें "मैं हूँ–मेरा है" यह असत् अभिमान आपकी ही मायाके द्वारा होता है सो हे प्रभु! आप इस अहंभावरूप मोहको दूर कीजिये ॥ १० ॥ आप शरणागत व्यक्तिकी रक्षा करते हो एवं आप अपने भृत्योंके जन्ममरणरूप वृक्षके काटनेके लिये कुठारस्वरूप हो। मैं प्रकृति और पुरुषको जानना चाहती हूँ; अतएव आपकी शरणमें आई हूँ। मैं आपको प्रणाम करती हूँ, आप धर्म्मज्ञ जनोंमें श्रेष्ठ हो, इसीसे मेरी यह कामना पूर्ण करो ॥ ११ ॥ **मैत्रेयजी बोले**। भगवान् कपिलजीने अपनी माताके ऐसे निष्कपट एवं अदूषित वचन सुन कर मनमें विचारा कि–"यह माताका प्रश्न मुक्तिके विषयमें निरत करनेवाला है।" यह विचार कर उनके मनमें बड़ा ही आनन्द हुआ और आनन्दकी मन्द मुसकानसे मुखकमल कुछ विकसित हो गया। तदनन्तर आत्मज्ञानी सज्जनोंकी गति श्रीकपिलदेव मातासे बोले ॥ १२ ॥ **श्रीभगवान् कपिलजी बोले**। हे पापरहिते! आत्मनिष्ठ योगमें ही सुख और दुःख; दोनोकी भली भाँति निवृत्ति होती है, अतएव मेरे मतमें सब लोगोंकेलिये मोक्ष देनेवाला यही आत्मनिष्ठ योग ही है ॥ १३ ॥ यह योग मैं आपसे सांगोपांग वर्णन करता हूँ। प्रथम ऋषि गणने यही योग वा सांख्य शास्त्र सुननेकी इच्छा की थी तब उनसे मैंने कहा था ॥ १४ ॥ मातः! यह चित्त ही जीवके बन्धन और मोक्षका कारण है। चित्त यदि विषयमें आसक्त हो तो बन्धन होता है और यदि परमेश्वरमें एकाग्र हो कर यही चित्त लग जाता है तो संसारसे मुक्ति हो जाती है ॥ १५ ॥ यह चित्त जब "मैं हूँ, मेरा है" इस अहंभावके उत्पन्न करनेवाले काम, लोभ, मोह आदि मलसे हीन होकर पवित्र हो जाता है तब न दुःख होता है और न सुख होता है; सम अवस्था हो जाती है ॥ १६ ॥ तब यह पुरुष,–ज्ञान, वैराग्य और भक्तिसे युक्त चित्तके द्वारा आत्माको मायारहित, भेदशून्य, अद्वितीय, स्वयं प्रकाशमान, सूक्ष्म, अखण्ड और उदासीन (सुखदुःखरहित) देख पाता है एवं पराक्रमहीन मायाको भी देखता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ मातः! सर्व्वव्यापक भगवान्‌की भक्ति ही ब्रह्मज्ञानकी सिद्धिका सुगम मार्ग है; इसके सिवाय मंगलकारी अन्य मार्ग नहीं है ॥ १९ ॥ पण्डित गण कहते हैं कि–आसक्ति वा संग आत्माको फँसानेवाला अक्षय पाश है सही; पर वही आसक्ति वा संग यदि सज्जनोंमें किया जाय तो खुला हुआ मोक्षका द्वार है ॥ २० ॥ जो पुरुष सहनशील, दयावान्, सब प्राणियोंके सुहृत् वा शुभचिन्तक, शान्तप्रकृति हैं और जिनका कोई शत्रु नहीं है वे ही सज्जन वा साधु हैं। शास्त्रकथित सुशीलता ही उनका गहना है ॥ २१ ॥ वे साधु जन अनन्यभावसे मुझमें दृढ़ भक्ति करते हैं, मेरे लिये स्वजन और बान्धवोंको त्याग देते हैं, यहाँतक कि सकल कर्म्म और देहका अभिमान त्याग कर मुझमें लीन हो जाते हैं ॥ २२ ॥ वे मेरे ही चरित्रोंसे पवित्र कथाएँ सुनते और कहते हैं। उनका चित्त सब समय मुझमें लगा रहता है

इसी कारण उनको तीनो प्रकारके ताप सन्ताप नहीं दे सक्के ॥ २३ ॥ हे साध्वि! वे साधु निःसङ्ग होते हैं और इसी कारण सङ्गका दोष जो बंधन है उसके हरनेवाले होते हैं। आपको उचित है कि ऐसे पवित्र साधुजनका समागम और संग सदा कीजिये ॥ २४ ॥ क्योंकि जब ऐसे महात्माओंका समागम वा संग होता है तो उनकी सभामें हृदय और कर्णको सुख देनेवाली मेरी पवित्रचरित्रावलीरूप अमृतसे परिपूर्ण कथाएँ होती हैं । उन कथाओंके श्रवण करनेसे शीघ्र ही मोक्षमार्गमें श्रद्धा, रति और भक्ति क्रमशः होती है ॥ २५ ॥ तदनन्तर क्रमशः वह साधक मेरी सृष्टि आदि लीलाओंका चिन्तन करता है, इसी प्रकार क्रमशः भक्ति उत्पन्न होनेसे उस साधकके हृदयमें इस लोकके (स्त्री धन परिवार आदि) सुखसे और परलोकके (स्वर्गादि) सुखसे वैराग्य उत्पन्न होता है। तब वह सरल योगमार्गका अवलम्बन करके तत्पर हो कर चित्तके वश करनेके यत्न करता है ॥ २६ ॥ हे जननि! मायाके गुणोंके न सेवन करनेसे, वैराग्य द्वारा बढ़े हुए ज्ञानसे, योग एवं मेरी अनन्य दृढ़ भक्तिसे इस अपने शरीरमें ही मुझको वह साधक प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ यह सुन कर **देवहूतिजी बोलीं।** भगवन्! आपमें कैसी भक्ति करना उचित है? मैं स्त्री जाति हूँ, मुझको कैसी भक्ति करना योग्य है? जिस भक्तिके बलसे सहजमें ही आपका मोक्षस्वरूप पद भलीभाँति प्राप्त होता है, वही भक्तिका तत्त्व आप मुझसे कहो ॥ २८ ॥ जिस योगका एक मात्र लक्ष्य ईश्वर ही आपने कहा है, हे मोक्षस्वरूप! वह तत्त्वज्ञानका देनेवाला योग कैसा है और उसके अंग कितने हैं? ॥ २९ ॥ हे हरि! मैं अबला स्त्री जाति हूँ, मेरी बुद्धि मन्द है, मैं जिस प्रकार सहजमें इस दुर्बोध ज्ञान वा योगको समझ सकूँ उसी प्रकार अनुग्रह करके कहिये ॥ ३० ॥ **श्री मैत्रेयजी कहते हैं।** यद्यपि श्री कपिलजी हर्ष व शोकसे रहित अवस्थामें थे तथापि इस मायाशरीरसे जिसके गर्भमें उत्पन्न हुए हैं उस माताके ये वचन सुन कर स्नेह और करुणा दोनो ही कपिलजीके मनमें उत्पन्न हुए। तब वह मातासे सांख्ययोग कहने लगे; जिसको तत्त्व शास्त्र वा भक्तिको बढ़ानेवाला योग कहते हैं ॥ ३१ ॥ **श्री कपिलदेव बोले ।** माता! जिन इन्द्रियोंसे शब्द, रूप आदि विषयोंका अनुभव होता है उनकी सत्त्वमूर्ति भगवान् हरिमें स्वाभाविक प्रवृत्तिको निष्काम भगवान्की भक्ति कहते हैं, जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है उस साधकके लिये वह भक्ति मुक्तिसे भी श्रेष्ठ है क्योंकि वेदविहित कर्म्ममें प्रवृत्ति होनेके बाद सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी उक्त स्वाभाविक प्रवृत्ति वा निष्काम भक्तिका प्रकाश होता है। इस निष्काम भक्तिके प्रसङ्गसे मुक्ति स्वयं हो जाती है जैसे जाठरानल खाये हुए अन्नको जीर्ण कर देता है वैसे यह भक्ति भी शीघ्र ही लिंगशरीर(वासना)को भस्म कर देती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ किन्तु जो मेरे चरणोंकी सेवामें तत्पर हैं, जो सकल कर्म्म मुझे ही अर्पण करते हैं एवं

सब ही समय जो परस्पर एकत्र हो कर अनुरागपूर्व्वक मेरी कथाएँ कहनेमें आनन्द पाते हैं; ऐसे वे पूर्ण भगवद्भक्त इस प्रकारकी मुक्ति(मेरे साथ एकात्मभाव)-की भी इच्छा नहीं करते ॥ ३४ ॥ वे लोग प्रसन्नमुख एवं अरुणवर्ण नेत्र-युक्त मेरे सकलकामनादायक दिव्य रूपोंके दर्शनकी कामना करते हैं एवं औरों करके प्रार्थनीय सुन्दर वाणी अर्थात् गुणानुवादमयी स्तुति करते रहते हैं ॥ ३५ ॥ उस दर्शनीय अंगयुक्त मेरे रूपकी उदार हँसी और कृपादृष्टि एवं सुन्दर मनोहर मधुर वाणीसे उनकी इन्द्रियाँ और प्राण मुझमें आसक्त होते हैं। वे लोग यद्यपि मुक्तिकी इच्छा नहीं करते तथापि मेरी भक्ति उनको सूक्ष्मगति (मुक्ति)को पहुंचा देती है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार वे जीवन्मुक्त पुरुप अविद्याकी निवृत्तिके बाद मेरी मायासे रचे हुए सत्यलोकआदिकी सम्पत्ति एवं भक्तिके पश्चात् आप ही आप आई हुई अणिमा आदि आठो योगसिद्धियोंके ऐश्वर्य्य व वैकुण्ठकी भी, इन सम्पूर्ण भोगोंकी इच्छा नहीं करते तथापि वे वैकुण्ठलोकमें जा कर इन सब भोगोंका भोग करते हैं ॥ ३७ ॥ हे शान्तरूपिणि! वे मुक्त पुरुप अपनी इच्छा न होने पर भी मेंरी भक्तिके बलसे वैकुण्ठमें जा कर अनेक अप्राप्य भोग पाते हैं। मेरे वै-कुण्ठलोकमें कालका भय नहीं है अर्थात् स्वर्ग आदि लोकोंकी भाँति वैकुण्ठलोकके भोग व भोग करनेवाले किसी कालमें नष्ट नहीं होते। मातः! जिन लोगोंका गुरु (उपदेश देनेवाला), सुहृद् (हितकारी), इष्टदेव (पूज्य), प्रिय, आत्मा, पुत्र (स्नेहपात्र) और सखा मैं ही हूँ, उनको मेरे भयंकर कालचक्रसे कोई भय नहीं है ॥ ३८ ॥ इस, इस लोक और परलोकके जानेवाले वासनामय अर्थात् उपाधियुक्त आत्मा और आत्माके अनुगामी स्त्री आदि और अन्यान्य सकल धन, पशु, गृह आदि समग्र परिग्रहको त्यागकर जो लोग एकाग्र भक्ति द्वारा केवल मुझ विश्वव्यापी परमेश्वरकी आराधना करते हैं, मैं उनको अपार संसार-पारावारके पार लगाता हूँ ॥ ३९ ॥४० ॥ मातः! मैं ही भगवान् हूँ, मैं ही प्रकृति (माया) और पुरुप (आत्मा)का ईश्वर हूँ, मैं ही सब प्राणियोंका आत्मा हूँ; मेरे सिवाय अन्य कोई संसारके भयसे रक्षा नहीं कर सक्ता ॥ ४१ ॥ मेरे भयसे वायु चलता है, मेरे भयसे सूर्य्य तपते हैं, इन्द्र वर्षा करते हैं और अग्नि जलाते हैं एवं मेरे ही भयसे मृत्यु सब प्राणियोंके ऊपर प्रवृत्त होता है* ॥४२॥ योगीजन ज्ञान-वैराग्ययुक्त भ-क्तियोगद्वारा अपने कल्याणके लिये मेरे अकुतोभय चरणोंकी शरणमें आते हैं ॥४३॥

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां निःश्रेयसोदयः ॥
तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम् ॥ ४४ ॥

* "भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्य्यः । भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥" इति श्रुतिः । अर्थात् इसी ईश्वरके भयसे वायु चलता है, सूर्य्यका उदय होता है और इसीके भयसे अग्नि, इन्द्र व पञ्चम मृत्यु, धावमान होकर निज २ कार्य्य करते हैं ।

दृढ़ भक्तियोगके द्वारा मुझमें लग कर जो मन सुस्थिर होता है, वही इस लोकमें सम्पूर्ण पुरुषोंके परम मङ्गलका कारण है; अर्थात् मेरी निष्काम भक्ति ही मोक्षका शुद्ध मार्ग है! ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंश अध्याय ।

सांख्ययोगवर्णन ।

श्रीभगवानुवाच–अथ ते संप्रवक्ष्यामि तत्त्वानां लक्षणं पृथक् ॥
यद्विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥ १ ॥

भगवान् कपिल देव कहने लगे । मातः! जिनके जाननेसे पुरुष-प्रकृति-सम्बधी रज-तम आदिक गुण समूहसे मुक्ति होती है उन्ही सम्पूर्ण तत्त्वोंका लक्षण अलग२ करके इस समय मैं आपसे कहता हूँ ॥१॥ तत्त्वोंके जाननेसे उत्पन्न आत्माका दर्शन अहंभावको दूर करनेवाला है–ऐसा पण्डितजन कहते हैं। मैं उसको भी आपसे कहता हूँ, उससे आपका संशय वा मोह निवृत्त हो जायगा ॥ २ ॥ यह पुरुष (आत्मा) अनादि है, यह माया और मायाके गुणोंसे अलग है। इसकी स्फूर्ति हरेक रोममें है व स्वयं प्रकाशित है, यह विश्व इसीसे संयुक्त होकर प्रकाशित होता है ॥ ३ ॥ इसी आत्माके निकट विष्णुकी शक्ति अर्थात् अव्यक्त-गुणमयी माया वा प्रकृति लीलाके लिये प्राप्त होती है तब यह अपनी इच्छाके अनुसार उसे ग्रहण करता है ॥ ४ ॥ यह प्रकृति अपने सत्त्व आदि गुणोंसे अपने अनुरूप विचित्र प्रजा उत्पन्न करती रहती है । इस मायाको देख कर यह आत्मा ज्ञानका आवरण जो अविद्या (मायाके गुणोंमें अहंभाव) है उसमें मोहित हो कर अपने शुद्ध ज्ञानमय रूपको भूल जाता है (१) ॥ ५ ॥ तदनन्तर प्रकृतिके गुणोंसे जो सब कार्य्य होते हैं उन कार्य्योंका कर्त्ता अपनेको ही मानता है अर्थात् मायाके गुणोंमें "मैं हूं-मेरा है" यह अहंभाव करके सुख-दुःखका भोग करता है ॥ ६ ॥ पुरुष (आत्मा) केवल मायाके कर्म्मोंका साक्षी है, स्वयं कर्त्ता नहीं है। ऐसे आनन्दमय पुरुषको कर्त्ता होनेका अभिमान होते ही जन्म-मरणका प्रवाह अर्थात् संसार एवं कर्म्मबन्धन होता है और बंधन होने पर स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है व पराधीनता आजाती है ॥ ७ ॥ पण्डितगण कहते हैं कि कार्य्य (देह), कारण (इन्द्रिय), कर्तृत्व (इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता), इनके इन

---

(१) "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजा जनयन्तीं सरूपाः । अजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥" इति श्रुतेः ॥

इन भावोंकी प्राप्तिका कारण प्रकृति अर्थात् माया ही है; और कर्म्मफलरूप सुख-दुःख आदिके भोग करनेवाले विषयमें, प्रकृतिसे भिन्न पुरुष (आत्मा) ही कारण है ॥८॥ **श्री देवहूतिजी बोलीं** । हे पुरुषश्रेष्ठ! इस विश्वके स्थूल व सूक्ष्म यावत् कार्य्य मात्र उसी मायाका स्वरूप हैं, अतएव वह माया ही इस विश्वका कारण है, उस प्रकृतिका और उस प्रकृतिका अधिष्ठाता जो पुरुष (आत्मा) है उसका लक्षण क्या है? कृपापूर्व्वक मुझसे कहिये ॥ ९ ॥ **श्रीभगवान् कपिल देवजी कहने लगे** –स्वयं विशेषरहित एवं अन्य विशेषका आश्रय जो प्रधान है वही प्रकृति है । यह प्रधान त्रिगुणयुक्त है अतएव ब्रह्म नहीं है, क्योंकि ब्रह्म निर्गुण है । अव्यक्त है अतएव महत्तत्त्व नहीं है, क्योंकि महत्तत्त्व व्यक्त है । उस प्रधानका स्वरूप यह काल भी नहीं है, क्योंकि प्रधान सत् (कारण) और असत् (कार्य्य) रूप है । यह प्रधान नित्य है, इसीसे जीवकी प्रकृति भी नहीं है ॥ १० ॥ इस प्रधान वा मायाके कार्य्यस्वरूप चौबीस तत्त्वोंका गण है । पाँच, पाँच, चार और दस अर्थात् चौबीस तत्त्व ये हैंः–पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पाँच महातत्त्व; गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द ये पाँच महातत्त्वोंके गुण (तन्मात्रा); श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, व वाक्, पाणि, चरण, पायु, उपस्थ ये दश ज्ञानेन्द्रिय व कर्म्मेन्द्रिय; मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त ये अन्तःकी इन्द्रिय अर्थात् अन्तःकरण । यद्यपि अन्तःकरण एक ही है तथापि ये चार प्रकारकी अन्तःकरणकी लक्षण स्वरूप वृत्तियाँ हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ यह चौबीस तत्त्वोंकी संख्या मैंने तुमसे कह दी। यही चौबीस तत्त्वोंका गण ही "प्रधान" है, जिसको सगुण ब्रह्म अर्थात् आत्माके सन्निवेशका स्थान कहते हैं । इन चौबीस तत्त्वोंके अतिरिक्त अर्थात् प्रधानसे अलग पचीसवाँ तत्त्व काल है ॥ १५ ॥ किसी२ के मतमें काल ईश्वरका ही विक्रम है; इस कालसे, मायाद्वारा प्राप्त देहमें अहंभाव धारण करनेसे मोहित जो जीवात्मा है उसको भय प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ कोई कहते हैं कि जिससे तीनो गुणोंकी साम्य अवस्था ही जिसका रूप है उस प्रकृतिको क्षोभ होता है वही भगवान् 'काल' इस नामसे विख्यात है ॥ १७ ॥ जो अपनी माया द्वारा सम्पूर्ण तत्त्वोंके अन्तरमें 'नियन्ता' रूपसे एवं बाहर कालस्वरूपसे भली भाँति संयुक्त है, वही भगवान् काल है यही पचीसवाँ तत्त्व है (प्रकृति और पुरुषको एक माननेसे २५ और अलग २ माननेसे २६ तत्त्व हैं) ॥ १८ ॥ जीवके अदृष्टवश प्रकृतिके गुणोंको क्षोभ होने पर परम पुरुष (कालस्वरूप ईश्वर)ने उसी प्रकृतिकी योनिमें अपने वीर्य्यको स्थापित किया, तब उस प्रकृतिसे बहुप्रकाशयुक्त महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ यह तत्त्व, लय और विक्षेपसे रहित है एवं विश्वका अङ्कुर है । इस तत्त्वने अपनेमें सूक्ष्म रूपसे अवस्थित विश्वको प्रकट करके अपने तेज द्वारा प्रलयकालके, आत्माको प्रकृतिमें लीन अर्थात् निश्चेष्ट करनेवाले घोर तमका पान कर लिया ॥ २० ॥

सत्त्वगुणयुक्त, स्वच्छ, शान्त (रागादिरहित) भगवान्की प्राप्तिका स्थान जो चित्त है उसीका नाम वासुदेव है। वह चित्त ही महत्तत्त्वका स्वरूप वा नामान्तर (१) है ॥ २१ ॥ भिन्न २ वृत्तियों द्वारा, स्वच्छत्व (भगवत्-बिम्ब-ग्राहकत्व), अविकारित्व (लय और विक्षेपसे राहित्य), शान्तत्वरूप ही उस चित्तका स्वरूप है जैसे जलकी वास्तविक प्रकृति पृथ्वीके संसर्गभेदसे मधुर, स्वच्छ एवं शीतल होती है वैसे चित्तके भी वृत्तिभेदसे भिन्न २ लक्षण होते हैं ॥ २२ ॥ भगवान्के वीर्य्यसे उत्पन्न यह महत्तत्त्व विकारको (रूपान्तरको) प्राप्त हुआ, तव इससे क्रियाशक्ति-प्रधान अहंकार उत्पन्न हुआ, यह अहंकार तीन प्रकारका है ॥ २३ ॥ यथा—वैकारिक, तैजस और तामस। इस अहंकारसे मन, इन्द्रिय और सकल महातत्त्व (पृथ्वीआदि) उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥ भूत-इन्द्रिय-मनोमय इस अहङ्कारको ही पण्डितगण साक्षात् संकर्षणसंज्ञक सहस्र शिरवाले 'अनन्त' देव कहते हैं ॥२५॥ यह अहंकार ही (देवतारूपसे) कर्त्ता, और (इन्द्रिय रूपसे) कारण, (पञ्चतत्त्व स्वरूपसे) कार्य्य है। शान्तता, घोरता और मूढ़ता—ये तीनो कारण भी त्रिगुण रूपसे अहङ्कारमें विराजमान हैं ॥ २६ ॥ वैकारिक अहंकार विकारको प्राप्त हुआ, तव उससे 'मन' तत्त्व उत्पन्न हुआ; इस मनके सङ्कल्प व विकल्पसे 'कामना' की उत्पत्ति होती है ॥ २७ ॥ तत्त्वदर्शीगण इस 'मन' तत्त्वको ही इन्द्रियोंके स्वामी 'अनिरुद्ध' कह कर मानते हैं। मनस्तत्त्व वा अनिरुद्ध शरद् ऋतुके नील कमलकी भाँति श्याम वर्ण हैं। इस मनको योगीजन शनैः शनैः वशमें लाते हैं ॥ २८ ॥ हे सती! जव तैजस अहंकार विकारको प्राप्त हुआ तव उससे वुद्धितत्त्व उत्पन्न हुआ। यह वुद्धि द्रव्य-स्फुरण-रूप विज्ञानका स्वरूप है एवं सकल इन्द्रियोंकी ग्रहणरूप वृत्तियोंके भेदसे संशय, मिथ्याज्ञान, प्रमाणज्ञान, स्मृति, और निद्रा—ये वुद्धिके कार्य्य वा लक्षण हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ तैजस अहंकारसे ज्ञानेन्द्रिय और कर्म्मेन्द्रिय; दोनो इन्द्रियोंकी उत्पत्ति है, क्योंकि प्राणमें कर्म्मशक्ति और वुद्धिमें ज्ञानशक्ति है ॥ ३१ ॥ भगवान्के वीर्य्य अर्थात् महत्तत्त्वसे तामस अहंकारको क्षोभ हुआ तव उससे शब्द उत्पन्न हुआ, उस शब्दसे आकाश एवं शब्दको ग्रहण करनेवाला 'श्रोत्र' उत्पन्न हुआ ॥ ३२ ॥ तात्पर्यका वोध कराने और देखनेवाली और दृश्यके सम्वन्धका वोध करानेवाली अवस्थाको शब्दका लक्षण कहते हैं एवं शब्दतन्मा-

---

(१) अर्थात् अधिभूतरूपसे उसी चित्तकी महत् तत्त्व संज्ञा है और अध्यात्मरूपसे चित्त संज्ञा है। चित्तमें उपास्यरूपसे वासुदेव ही चित्त हैं और उसका अधिष्ठाता क्षेत्रज्ञ (आत्मा) है। ऐसे ही अहंकारमें संकर्षण उपास्य हैं व उसके अधिष्ठाता रुद्र हैं, मनमें उपास्य अनिरुद्ध हैं और उसके अधिष्ठाता चन्द्र हैं, वुद्धिमें प्रद्युम्न उपास्य हैं और उसके अधिष्ठाता ब्रह्मा हैं। यह जानना चाहिये।

त्रत्व+ आकाश (शून्य)का लक्षण है ॥ ३३ ॥ सब तत्त्वोंको आश्रय देना, उन उन तत्त्वोंके गठनके लिये उनके भीतर और बाहर वर्त्तमान रहना एवं प्राण, मन और इन्द्रिय आदि शक्तियोंको स्थान देना ही आकाशकी वृत्ति (शून्यका कार्य्य) है ॥ ३४ ॥ शब्दतन्मात्र आकाशको जब कालगतिसे विकार हुआ तो उससे स्पर्शतन्मात्रा उत्पन्न हुई, उससे वायुत्व और स्पर्शका ग्रहण करनेवाली 'त्वक्' उत्पन्न हुई ॥ ३५ ॥ कोमलता, कठिनता और शीतलता, उष्णता; यही स्पर्शका लक्षण वा स्पर्शत्व है और स्पर्शतन्मात्रत्व ही वायुका लक्षण है ॥३६॥ वृक्ष, शाखा आदिका संचालन, तृण आदिको एकत्र संयोजित करना, गन्ध आदिको घ्राणके प्रति और शीतलता आदि गुणयुक्त द्रव्यको स्पर्शके प्रति एवं शब्दको श्रोत्रके प्रति ले जाना व सब इन्द्रियोंका सञ्चालन भी वायुका कर्म्म है ॥ ३७ ॥ स्पर्शतन्मात्र वायुको जब दैवद्वारा विकार हुआ तब उससे रूपतन्मात्र उत्पन्न हुआ, और उससे तेज एवं रूपका ग्रहण करनेवाला 'चक्षु' उत्पन्न हुआ ॥ ३८ ॥ किसी द्रव्यकी आकृतिका गठन, वस्तुके भेदका बोध, किसी द्रव्यका निश्चयत्व आदि तेज तत्त्वके रूप गुणके लक्षण वा वृत्तियाँ हैं ॥ ३९ ॥ प्रकाश करना, पचाना, भूख और प्यास उत्पन्न करना, शीतलताको नष्ट करना और शोधन; ये तेज तत्त्वके कार्य्य हैं ॥ ४० ॥ रूपतन्मात्र तेजको जब कालकी प्रेरणासे विकार हुआ तब उससे रसतन्मात्र हुआ, जिससे जलतत्त्व और रसको ग्रहण करनेवाली जिह्वा उत्पन्न हुई ॥ ४१ ॥ कषाय (कसैला), मधुर, तिक्त (तीखा), कटु (कड़ु) अम्ल (खट्टा) आदि कई एक रसके लक्षण, भौतिक पदार्थोंके विकारसे हैं, किन्तु वास्तवमें शुद्ध रस एक है ॥ ४२ ॥ किसी वस्तुको गीला करना, मृत्तिका आदिका पिण्ड बनाना, तृप्ति करना, जीवित करना, प्यासकी व्याकुलताको निवृत्त करना, कोमल करना, तापका निवारण करना और नित्य प्रति निकलते रहने पर भी न घटना; ये सब जलकी वृत्ति वा कार्य्य हैं ॥ ४३ ॥ रसतन्मात्र जलको जब दैवकी प्रेरणासे विकार हुआ तब उससे गंधतन्मात्र पृथ्वी और गंधको ग्रहण करनेवाला घ्राण उत्पन्न हुआ ॥ ४४ ॥ गन्धतन्मात्रा (सूक्ष्म गंध) एक ही है तथापि सांसर्गिक-द्रव्योंके भेदसे मिश्रगन्ध, दुर्गन्ध, कर्पूरादिगन्ध, लशुनगंध एवं हींगकी गन्ध; इत्यादि गंधके भेद प्रतीत होते हैं ॥ ४५ ॥ ब्रह्मकी भावना अर्थात् प्रतिमा आदि बना कर निराकार ब्रह्मकी साकारताका सम्पादन, अन्य तत्त्वोंकी अपेक्षा न करके अवस्थिति, जल आदिका धारण, आकाशादिका अवच्छेदक होना एवं सब प्राणी और उनके गुणोंको प्रकट करना; ये पृथ्वीकी वृत्ति वा कार्य्य हैं ॥ ४६ ॥ श्रोत्र आदि इन्द्रियद्वारा पूर्व्वोक्त शब्दादिका ज्ञान ही श्रोत्र आदिका लक्षण है। क्योंकि

+ शब्दतन्मात्रत्व अर्थात् शब्दगुणका होना। ऐसे ही स्पर्शतन्मात्रत्व आदि जानना, तन्मात्रत्वका अर्थ यही है कि जहां उस तत्त्वका गुणहो वहीं उस तत्त्वको जानना।

आकाशका गुण शब्द जिस इन्द्रियका विषय है वह इन्द्रिय 'श्रोत्र' है। वायुका गुण स्पर्श जिसका विषय है उसका नाम 'त्वक्' है ॥ ४७ ॥ तेज तत्त्वका गुण रूप जिसका विषय है उसे 'चक्षु' कहते हैं। जलके गुण रसका ज्ञान जिससे होता है उसका नाम 'रसना' वा 'जिह्वा' है ॥ ४८ ॥ पृथ्वीका गुण गन्ध जिसका विषय है उसका नाम 'घ्राण' है। वायु इत्यादि अपर अपर तत्त्वोंमें पर पर आकाशादिके विशेष२ शब्दादि गुण कारण-सम्बन्ध होनेसे कार्य्यमें मिलित हैं। इसी कारण आकाशादि चार तत्त्वोंके शब्दादि चारो गुण पृथ्वीमें देख पड़ते हैं + ॥ ४९ ॥ उक्त महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्चमहाभूत (सूक्ष्म पृथ्वी आदि); ये सात तत्त्व जब परस्पर मिलित न हो सके अतएव इनके द्वारा सृष्टिकार्य्य न हुआ तब उन्ही जगदादि ईश्वरने काल, कर्म्म और गुणयुक्त हो कर इन तत्त्वोंमें प्रवेश किया ॥ ५० ॥ तब इन तत्त्वोंको क्षोभ हुआ और ये परस्पर मिलित हुए। तदनन्तर ये एक अचेतन अण्डरूप होगये। विशेष नामक उस अण्डसे विराट् पुरुष प्रकट हुए ॥ ५१ ॥ यह विशेष अण्ड बहिर्भागमें क्रमशः एकसे एक दशगुण बड़े हुए जलआदि प्रधान तत्त्वमय सात आवरणोंसे आवृत है ॥ ५२ ॥ इसी अण्ड में भगवान् हरिका विराट् रूप जो त्रिलोकी है उसका विस्तार वा कल्पना है। उन्हीं महान् देव ने प्रकट होनेके बाद इस जलशायी हिरण्मय (प्रकाशमय) अण्डसे उत्थित होकर उदासीनता (निश्चेष्टता)को त्याग दिया। उस ईश्वरने इस अण्डमें अधिष्ठित होकर इस अण्डमें कार्य्यक्रमसे अनेक छिद्र फोड़ दिये ॥ ५३ ॥ प्रथम इस अण्डमें मुख प्रकट हुआ, उससे वाक्य—कर्म्मसहित उसके अधिष्ठाता अग्नि उत्पन्न हुए। फिर दो नासिकाके छिद्र उत्पन्न हुए, उससे प्राणवायुयुक्त घ्राण इन्द्रिय प्रकट हुई ॥ ५४ ॥ प्राणके अनन्तर उससे प्राणयुक्त वायु प्रकट हुआ। फिर चक्षुगोलक प्रकट हुए, उनसे 'चक्षु'नामक दर्शनेन्द्रियका प्रकाश हुआ, एवं सूर्य्यनामक तेज उसमें अधिष्ठित हुआ। फिर कर्णछिद्र प्रकट हुए, उससे दिशाओंका निर्देश करनेवाली 'श्रोत्र' शक्तिका प्रकाश हुआ ॥ ५५ ॥ फिर विराट् शरीरमें 'त्वक्' का आविर्भाव हुआ, उसी त्वक्में, केश, श्मश्रु एवं रोम आदिका आविर्भाव हुआ, उसमें औषधि आदि अधिष्ठित हुई। फिर विराट्के शिश्न इन्द्रिय प्रकट हुई, उसमें रेतः (वीर्य्य) शक्तिका आवेश हुआ। फिर उस रेःतमें जल अधिष्ठित हुआ। फिर गुदाका छिद्र प्रकट हुआ उसमें 'अपान' नामक वायु एवं उस वायुमें लोकभयंकर मृत्यु अधिष्ठित हुआ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ फिर

+ अर्थात् आकाशका कारण कोई तत्त्व नहीं है इससे उसका गुण केवल शब्द है। वायु आकाशका कार्य्य है इससे वायुमें आकाशका गुण शब्द और स्वयं वायुका गुण स्पर्श है। ऐसे ही तेजमें शब्द, स्पर्श और तेजका गुण रूप तीनो हैं। जलमें शब्द, स्पर्श, रूप व जलका गुण रस चारो हैं एवं पृथ्वीमें अन्य चारों तत्त्व मिलित हैं, इस कारण शब्द, स्पर्श, रूप रस और स्वयं पृथ्वीका गुण गन्ध विद्यमान है।

उस विराट् शरीरमें हस्त इन्द्रियका आविर्भाव हुआ, उसमें 'बल'नामक शक्ति सहित 'इन्द्र'देव अधिष्ठित हुए। फिर चरणोंका आविर्भाव हुआ, उनमें 'गति' शक्ति सहित 'विष्णु' देव अधिष्ठित हुए ॥ ५८ ॥ फिर उस देहमें नाड़ियाँ प्रकट हुई, उनमें 'रक्त-स्रोत-प्रवाह' शक्ति और नदियाँ अधिष्ठित हुईं । फिर उस देहमें उदर प्रकट हुआ, उसमें क्षुधा–पिपासाशक्ति और समुद्र अधिष्ठित हुआ ॥ ५९ ॥ फिर विराट्के हृदयका प्रकाश हुआ, उसमें मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार संज्ञक चार अवस्थाओंका प्रकाश हुआ, और मनमें आनन्द शक्तिरूप वासुदेव, बुद्धिमें सङ्कल्प कर्त्ता ब्रह्मा, अहंकारमें तमोगुणी रुद्र एवं चित्तमें क्षेत्रज्ञ आत्मा; ये देव* अधिष्ठित हुए ॥ ६० ॥ ये सकल देवगण अपने आविर्भाव होनेके बाद भी विराट् पुरुषको न उठा सके। तब सब फिर इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवगण विराट् पुरुषको उठानेके लिये अपने २ छिद्रमें अपनी २ शक्ति सहित प्रविष्ट हुए ॥ ६१ ॥ अग्निने वाक् इन्द्रियद्वारा मुखमें प्रवेश किया, पर विराट् पुरुष न उठा। फिर वायुने घ्राण इन्द्रियद्वारा नासाछिद्रमें प्रवेश किया, पर विराट् पुरुष न उठा ॥ ६२ ॥ फिर सूर्य्यने चक्षु इन्द्रियद्वारा चक्षु गोलकमें प्रवेश किया, पर विराट् पुरुष नहीं उठा। दिशाओंने श्रोत्र इन्द्रियद्वारा कर्णछिद्रमें प्रवेश किया, पर विराट् न उठा ॥ ६३ ॥ औषधियोंने रोमद्वारा त्वक्में प्रवेश किया, पर विराट् न उठा। रेतः द्वारा जलने शिश्नमें प्रवेश किया, पर विराट् न उठा ॥ ६४ ॥ मृत्युने अपान द्वारा गुदछिद्रमें प्रवेश किया, पर विराट् न उठा। इन्द्रने बलद्वारा हस्तयुगमें प्रवेश किया, पर विराट् न उठा ॥ ६५ ॥ विष्णुने गति द्वारा चरणयुगमें प्रवेश किया, पर विराट् न उठा। नदियोंने रक्तप्रवाहद्वारा नाड़ियोंमें प्रवेश किया, पर विराट् न उठा ॥ ६६ ॥ समुद्रने क्षुधा और पिपासा द्वारा उदरमें प्रवेश किया, पर विराट् न उठा। चन्द्रने मन द्वारा हृदयमें प्रवेश किया, पर विराट् न उठा ॥ ६७ ॥ बुद्धिद्वारा ब्रह्माने भी हृदयमें प्रवेश किया, पर विराट् न उठा। रुद्रने भी अभिमानद्वारा हृदयमें प्रवेश किया, पर विराट् पुरुष नहीं उठा ॥ ६८ ॥ जब क्षेत्रज्ञ आत्मा चित्त द्वारा हृदयमें प्रविष्ट हुआ उसी समय उस जलसे विराट् पुरुष उठ खड़ा हुआ ॥ ६९ ॥

तमस्मिन्प्रत्यगात्मानं धिया योगप्रवृत्तया ॥
भक्त्या विरक्त्या ज्ञानेन विविच्यात्मनि चिन्तयेत् ॥ ७१ ॥

हे जननि! इस प्रकार प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि शक्ति समूहकी इतनी शक्ति नहीं है कि वे सोये पुरुषको जगा सकें। वही क्षेत्रज्ञ आत्मा चित्तका अधि-

* देव अर्थात् प्रकाशक। सब इन्द्रियोंमें देव एवं देवता शब्द एवं अधिष्ठाता शब्दका प्रकाशक वा उसमें रहनेवाला अर्थ जानना।

ष्ठाता, सर्व्वनियन्ता भगवान् है और स्वेच्छापूर्व्वक सर्व्वत्र व्याप्त है। हेमातः! उसी आत्मामें आप भक्ति करें, अन्य बाह्यभोगसे निवृत्त हों। अन्तमें ज्ञानकी सहायतासे योग-युक्त बुद्धिद्वारा अपने 'चित्त' अवस्थावाले हृदयमें उसका चिन्तन करो। ऐसा करनेसे अवश्य आपकी मुक्ति होगी ॥ ७० ॥ ७१ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंश अध्याय।

पुरुष और प्रकृतिके विवेकसे मोक्षप्राप्तिकी रीतिका वर्णन।

श्रीभगवानुवाच—**प्रकृतिस्थोऽपि पुरुषो नाज्यते प्राकृतैर्गुणैः ॥**
अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुणत्वाज्जलार्कवत् ॥ १ ॥

भगवान् कहने लगे। परम पुरुष परमात्मा निर्गुण है; सुतरां अकर्ता और अविकार है। सूर्य्य जलमें प्रतिबिम्बित होने पर भी वास्तवमें जलका धर्म्म जो चञ्चलता वा हिलना है उसमें लिप्त नहीं होता वैसे ही यह पुरुष देहमें स्थित होने पर भी प्रकृति (माया)के गुणोंसे उत्पन्न जो सुख, दुःख आदि हैं उनमें लिप्त नहीं होता ॥ १ ॥ हे मातः! वही एक निर्गुण आत्मा प्रकृतिके चौबीस गुणसमूह (सतोगुणयुक्त मन आदि, रजोगुणयुक्त इन्द्रियादि, तमोगुणयुक्त पञ्च भूतादि) द्वारा सज्जित होकर अहंकारमय होता है। उसी अहंकारमें मूढ़ हो कर अपनेको ही प्रकृतिके कार्य्योंका कर्त्ता मानता है ॥ २ ॥ अतएव अवश होकर प्रासङ्गिक कर्म्मके दोषसे सत् (देव), असत् (तिर्य्यक्), मिश्र (मनुष्य) योनियोंमें उत्पन्न होकर संसार पदवीको प्राप्त होता है, अर्थात् जन्म—मरणके दुःखसे पीड़ित होता है॥ ३ ॥ उस आत्माके उद्धारका कोई उपाय न किया जाय तो उसके संसारकी निवृत्ति नहीं होती। स्वप्नमें जैसे लोग अपने मस्तकको कटा हुआ देख कर उसे यथार्थ मान लेते हैं और उस अवस्थामें मिथ्या दुःखका अनुभव करते हैं वैसे आत्मा भी निरन्तर संसारभोगके मिथ्या होने पर भी आपाततः उसको सत्य मानकर उसके दुःखका भी अनुभव करता है* ॥४॥ अतएव असत् विषयमार्गमें आसक्त चित्तको दृढ़ भक्ति-

---

* स्वप्न एक ऐसी आच्छन्न अवस्था है कि उस अवस्थामें मिथ्या भी सत्य प्रतीत होता है। वैसे ही मायाकृत संसार भी ऐसी एक अवस्था है कि इसमें भोगादि मिथ्या होने पर भी आत्मा उनको सत्य मान कर भोग करता है। भोग कहते हैं रति और विषयसम्भोगको। रति कार्य्य केवल पुत्र उत्पन्न करनेके लिये है—इसको कर्तव्यभोग कहते हैं। यदि कर्तव्यभोग न करके उसमें उन्मत्त हो जाय तो मोहका उदय जानना—उसीका नाम मिथ्याभोग है। इस मिथ्याभोग द्वारा उस विषयसमूहमें मन आदिकी आसक्तिके कारण आत्मा भी आसक्त होता है। कर्तव्यका बोध होने पर कभी उसमें आसक्ति नहीं होती।

योग और वैराग्य द्वारा उधरसे हटा कर धीरे २ अपने वशमें करना चाहिये ॥ ५ ॥ यम आदि योगमार्गोंका अभ्यास करता हुआ श्रद्धापूर्वक मुझमें सत्य भक्तिभाव करै, मेरी कथाओंका श्रवण करै ॥ ६ ॥ सब प्राणियोंको एक दृष्टिसे देखे, किसीसे वैर न करै, असत्संग न करै । ब्रह्मचर्य्य और मौन (प्रयोजन भर बोलना) रहै, धर्म्म करै और उसे ईश्वरार्पण कर दे ॥ ७ ॥ जो मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट रहै, उतना भोजन करै जिसमें शरीर स्वस्थ रहै, मुनिव्रतका अवलम्बन करै, एकान्तमें रहै, शान्त स्वभाव धारण करै, सबसे मित्रभाव रक्खै, दया और धैर्य्य धारण किये रहै ॥ ८ ॥ प्रकृति और पुरुषका तत्त्व दिखानेवाले ज्ञानका ग्रहण कर इस देह अथवा इसके संगी स्त्री पुत्रादिमें "मैंहूँ-मेरा है" इस असत् आग्रहको त्याग दे ॥ ९ ॥ और बुद्धिकी जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन अवस्थाओंको निवृत्त करके तुरीय अवस्थामें स्थित हो, सबमें अपनेको और अपनेमें सबको देखै । तब वह आत्मदर्शी पुरुष आत्मासे परमात्माको प्राप्त होता है जैसे चक्षुस्थित (चक्षुके अधिष्ठाता) सूर्य्य (वा तेज) द्वारा सूर्यका दर्शन होता है (अर्थात् जैसे चक्षुस्थित सूर्य्यद्वारा आकाशस्थित सूर्यकी प्राप्ति होती है वैसे ही पूर्वोक्त नियमके पालनसे अहंकारयुक्त आत्मा द्वारा शुद्ध आत्मा अर्थात् परमात्माकी उपलब्धि होती है) ॥ १० ॥ इस अवस्थाको प्राप्त पुरुष ब्रह्मको प्राप्त होता है। वह ब्रह्म निरुपाधि अर्थात् चिन्हरहित है और असत् अहंकारमें सत्‌रूपसे भासमान है। वह ब्रह्म सत् अर्थात् प्रधानका अधिष्ठान है और असत् जो मायाका कार्य्य है उसका नेत्रके सदृश प्रकाशक है। कारण (प्रधान वा माया) और कार्य्य- दोनोमें आधाररूपसे अनुस्यूत है एवं अद्वय अर्थात् परिपूर्ण है ॥ ११ ॥ एक सूर्य्यका बिम्ब जलमें प्रतिबिम्बित हो कर निकटकी किसी दीवाल आदिमें जब प्रतिफलित होता है, तब उस भित्तिमध्यवर्त्ती जलमें प्रथम वह आभा देख कर लोग विचारते हैं कि यह आभा जलसे भित्तिमें प्रतिबिम्बित होती है तब भित्तिको त्याग कर जल पर लक्ष्य होता है, तब विदित होता है कि जलमें भी आकाशके सूर्यका प्रतिबिम्ब है; इसी प्रकार अहंकाररूपी देह-भित्तिके मध्यमें स्थित प्रकृति और चैतन्यसे मिश्रित जीव, प्रथम अपनेमें स्थित आत्माको देख कर फिर सर्व्वत्र व्याप्त आत्माको देखता है, ऐसा होने पर ब्रह्मको देखने लगता है। संसारी जीवके देहमें सर्व्वत्र ही ब्रह्म विराजमान है। उस ब्रह्मके तीन आवरण हैं। एक आवरण देह, इन्द्रिय और मन आदि है। दूसरा आवरण अहंकार है। इन्द्रियमय देहमें आत्माका तेज जितना है उसकी अपेक्षा अहंकार वा चैतन्यमय देहमें अधिक है। तृतीय आवरण प्रकृति है। आत्माकी प्रभा देखना हो तो वह आत्मा प्रकृतिमें जाज्वल्यमान रूपसे देख पड़ता है, अर्थात् प्रथम आत्मबिम्बको देहादिगत जानना होगा, फिर आत्मसत्ताको अहङ्कारगत बोध करना होगा,

फिर वह दर्शक स्वभावगत प्रकृतिसे व्याप्त आत्माका दर्शन कर सकने पर शुद्धब्रह्मके देखनेमें समर्थ होगा ॥१२॥ १३ ॥ इसी सुषुप्ति अवस्थामें सूक्ष्म पञ्चभूत, इन्द्रिय, मन, बुद्धि इत्यादि तन्द्रा वा निद्रा द्वारा असत्तुल्य अव्याकृत प्रकृतिमें लीन अर्थात् जड़ताको प्राप्त होने पर यह आत्मा विनिद्र अर्थात् अज्ञानरहित वा जड़तारहित एवं अहंकारहीन हो कर अपने स्वरूप अर्थात् सच्चिदानन्द ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥१४॥ उस समय यह आत्मा साक्षीरूपसे अवस्थित हो कर अपनी उपाधि (अहंकार)के नष्ट होने पर स्वयंनष्ट न होने पर भी अपनेको नष्ट जानता है। जैसे धनके नष्ट होने पर आपही मानो नष्ट हो गये, इस प्रकार आतुर होते प्रायः लोग देख पड़ते हैं ॥ १५ ॥ उल्लिखित ज्ञानसे आत्मा अहंकारविशिष्ट प्रतीयमान होता है अतएव इस अवस्थामें आत्माको निरहङ्कार नहीं विचार किया जा सक्ता। यह आत्मा ही साहङ्कार द्रव्य (कार्य्य और कारणके संघात) का प्रकाशक और आश्रय है। ऐसे ही "अहंकार केवल दृश्य है" ऐसा ज्ञान होने पर अहंकारसे अलग एवं अहंकारका साक्षी जो आत्मा है उसका ज्ञान हो सक्ता है ॥ १६ ॥ **श्रीदेवहूतिजी बोलीं**—पुत्र! प्रकृति और पुरुषका संयोग नित्य है—इसी लिये प्रकृति कदापि पुरुषको छोड़ती नहीं। यदि यह है तो मुक्ति कैसे हुई? ॥१७॥ जैसे भूमि और गन्धका कभी वियोग नहीं है अथवा जल और रस जैसे परस्पर आश्रय-सापेक्ष हैं ऐसे प्रकृति व पुरुषमें भी एकके न रहने पर दूसरेका रहना नहीं हो सक्ता ॥ १८ ॥ और यद्यपि पुरुष अकर्त्ता है तथापि जिन सम्पूर्ण प्रकृतिके गुणोंके आश्रयसे पुरुषको यह कर्म्मबन्धन है उन गुणोंके विद्यमान रहने पर पुरुषकी मुक्ति कैसे सम्भव है? ॥ १९ ॥ कभी २ तत्त्वके विचार करनेसे किसी २ पुरुषका संसार-भय निवृत्त हो जाता है सही; किन्तु उस संसारभयका कारण निर्मूल नहीं होता अतएव फिर भी वह घोर भय उपस्थित हो सक्ता है ॥ २० ॥ **कपिलजी बोले**। मातः! जैसे अग्नि काष्ठसे उत्पन्न हो कर उस काष्ठको भस्म कर देता है, वैसे निष्काम धर्म्म, निर्म्मल मन, मेरी कथा सुननेसे परम परिपुष्ट मेरी भक्तिका तीव्रयोग, तत्त्वज्ञान, बलवान् वैराग्य, तपोयुक्त योग एवं तीव्र आत्म-समाधि द्वारा दिन-रात्रि पुरुषकी प्रकृति पराजित वा अभिभवको प्राप्त हो कर धीरे२ तिरोहित हो जाती है ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ तब वह पुरुष "प्रकृतिका भोग भोग कर लिया गया" ऐसा विचार कर निरन्तर प्रकृतिके दोषों पर लक्ष्य रखता है, इसीसे वह परित्यक्त प्रकृति पुरुषका अकल्याण वा मोह करनेको समर्थ नहीं होती क्योंकि वह तो स्वतन्त्र एवं अपनी महिमा (ब्रह्मज्ञान) में स्थित है ॥ २४ ॥ जैसे जब पुरुष निद्रित होता है तो स्वप्नमें उसको अनेक अनर्थघटनाएँ होती देख पड़ती हैं किन्तु जागने पर संस्कारवश यह स्वप्न उसके मनमें उदित होने पर भी उसको मोह नहीं कर सक्ता ॥ २५ ॥ ऐसे ही जब पुरुष तत्त्वज्ञ हो कर मुझमें मन लगा कर अपनेमें ही रमण करता है तब प्रकृति किसी भाँति कुछ भी

उसका अपकार नहीं कर सक्ती ॥ २६ ॥ इसी प्रकार जब जन्मजन्मान्तरमें अध्यात्मनिरत हो कर ब्रह्मलोकपर्यन्त यावत् ऐश्वर्यमें वैराग्यको प्राप्त होता है एवं मुनि हो कर व मुझमें भक्ति करके मेरे प्रसादसे आत्मतत्त्वमें अभिज्ञ होता है तब वह मुझमें स्थित हो कर कैवल्यधाममें देहादिहीन स्वरूप (लिंग शरीरको भी त्याग कर) हो कर नित्यानन्दको प्राप्त होता है। उस समयमें उसका लिंग शरीर (वासनामय शरीर) छूट जाता है अतएव उसको इस आनन्दका लाभ होता है; उसको फिर जन्म नहीं लेना पड़ता एवं आत्माके ज्ञान द्वारा उसका सकल अज्ञान वा मोह भी नष्ट हो जाता है ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

यदा न योगोपचितासु चेतो
मायासु सिद्धस्य विषज्जतेऽङ्ग ॥
अनन्यहेतुष्वथ मे गतिः स्या-
दात्यन्तिकी यत्र न मृत्युहासः ॥ ३० ॥

तब वह सिद्ध अवस्थाको प्राप्त होता है; उस अवस्थामें अणिमा आदिक योगकी स्वयम्प्राप्त सिद्धियाँ तुच्छ जान पड़ती हैं क्योंकि अणिमा आदि सिद्धियाँ योगसे समृद्ध हैं एवं योगके सिवाय दूसरा कोई इनका कारण नहीं है अतएव इनमें उस सिद्धका चित्त नहीं आसक्त होता। केवल यही बोध होता है कि–"जिससे बढ़ कर और कोई गति नहीं है वह अन्तिम आत्मसम्बन्धिनी गति हमारी हो, क्योंकि इस गतिके प्राप्त होने पर मृत्युका उपहास न सहना होगा!" ॥ ३० ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंश अध्याय।

अष्टांगयोग द्वारा सकल उपाधियोंसे रहित स्वरूपके ज्ञानका कथन।

श्रीभगवानुवाच–योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मजे ॥
मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथम् ॥ १ ॥

श्रीकपिलदेवजी बोले। हे राजकुमारी! अब सबीज (सावलम्बन) योगका लक्षण मैं तुमसे कहता हूँ। इस योगका अभ्यास करनेसे मन प्रसन्न (निर्मल) हो कर सत् मार्गमें गमन करता है ॥ १ ॥ अपने धर्म्मका भक्तिपूर्व्वक यथाशक्ति आचरण, विरुद्ध वा निषिद्ध धर्म्म (अधर्म्म) से निवृत्त होना, जो प्रारब्ध वा दैववश प्राप्त हो उसमें सन्तोष, आत्मतत्त्वके जाननेवाले ज्ञानियोंके चरणोंकी

सेवा, पूजा ॥ २ ॥ ग्राम्य अर्थात् धर्म्म, अर्थ, काम–इस त्रैवर्गिक धर्म्मसे निवृत्ति, मोक्षदायक धर्म्ममें रति, शुद्ध एवं मित (जितनेमें योगाभ्यास करनेमें कोई विक्षेप न हो, उतना) भोजन करना (१), बाधारहित निर्जन स्थानमें रहना ॥ ३ ॥ हिंसा (शारीरिक, वाचिक और मानसिक हिंसा अर्थात् दूसरेको मन, वाणी और कायासे पीड़ित करना) न करना, सत्य बोलना, अन्यायपूर्वक परधन न ग्रहण करना जितनी वस्तुका प्रयोजन हो उतनी ही वस्तुका संग्रह करना, ब्रह्मचर्य्य रहना और तप, शौच (बाह्य व आन्तरिक), स्वाध्याय (वेदपाठ) परम पुरुषका पूजन करना ॥ ४ ॥ मौन (प्रयोजनके सिवाय अधिक न बोलना) रहना, आसन जीत कर स्थिर भावसे स्थित होना, फिर क्रम २ प्राणवायुको जीतना, इन्द्रियोंको मन द्वारा विषयोंसे हटा कर अन्तःकरणमें लीन करना ॥५॥ मूलाधार आदि प्राणके स्थानोंमें किसी एक स्थानमें मनसहित प्राणको स्थित करना, भगवान्‌की लीलाओंका मनमें ध्यान करना, एवं मनको समाधि (एकाग्रता) में लगाना ॥ ६ ॥ इन सम्पूर्ण एवं इनके अतिरिक्त अन्य व्रत आदि उपायोंसे असत् (विषय) मार्गमें लगे हुए दुष्ट मनको क्रमशः बुद्धि द्वारा योगसाधनमें लगाना चाहिये एवं आलस्य त्याग कर प्राणवायुको जीतना चाहिये ॥ ७ ॥ [यम, नियम और आसन इन तीन योगके अंगोंको क्रमशः कह कर अब प्राणायाम आदि अंग कहते हैं] तदनन्तर किसी पवित्र स्थलमें आसनजित् व्यक्ति आसन (प्रथम कुश फिर मृगाजिन फिर वस्त्र, इस क्रमसे) बिछावे। उस आसन पर स्वस्तिकासनसे(२) अथवा जिस आसनसे सुखपूर्वक बैठ सके उस आसनसे बैठ कर शरीरको सीधा करके प्राणायामका अभ्यास करे ॥८॥ पहले पूरक (बाहरके वायुको भीतर भरना) कुम्भक (उस वायुको भीतर रोंकना) रेचक (उस वायुको बाहर निकाल देना); इस तीन प्रकारके प्राणायामसे अनुलोम वा प्रतिलोम (३) क्रमसे चित्तको ऐसा शुद्ध करे जिससे वह अपने चञ्चलता दोषको त्याग कर एकदम शान्त हो जाय ॥९॥ जैसे वायु और अग्निके तावसे सोना अपने मलको त्याग देता है वैसे वारम्वार प्राणायाम द्वारा श्वासजय करनेसे योगी-का भी मन शीघ्र ही निर्म्मल हो जाता है ॥१०॥ इसके अनन्तर समाधिके द्वारस्वरूप

---

(१) मितभोजनका लक्षण—"द्वौ भागौ पूरयेदन्नैः तोयेनैकम्प्रपूरयेत्। मारुतस्य प्रचारार्थं शेषम्वै चावशेषयेत् ॥" अर्थात् आधा उदर अन्नसे भरे, एक भाग जलसे पूर्ण करे और शेष अर्थात् एक भागको वायुके आने जानेके लिये खाली रक्खे। इसको मितभोजन कहते हैं। (२) "ऊरू जंघान्तराधाय पादाग्रे जानुमध्यगे। योगिनो यदवस्थानं स्वस्तिकं तद्विदुर्बुधाः।" अर्थात् ऊरुको जंघाके भीतर और पैरके अग्रभागको जानुके भीतर रख कर योगीकी जो बैठक है वह स्वस्तिकासन है। (३) अनुकूल अर्थात् पूरक फिर कुंभक फिर रेचक, प्रतिकूल अर्थात् प्रथम रेचक फिर पूरक फिर कुंभक। अथवा इड़ा नाड़ीसे वायु पूर्ण करके पिंगला नाड़ीसे निकालना अनुकूल और पिंगलासे पूरण और इड़ासे रेचन प्रतिकूल जानना।

प्राणायामादि जो चार कार्य्य मनुष्यको करने चाहिये उन्हे कहते हैं—प्रथम प्राणायाम द्वारा कफ, पित्त आदि शरीरके दोषोंको दग्ध करै, फिर धारणा (वायुके साथ मनको स्थिर करना) से किल्बिष अर्थात् पातकको नष्ट करै, फिर प्रत्याहार (सबसे हटा कर चित्तको ईश्वरमें लगाना) से संसर्ग अर्थात् विषयवासनाको नष्ट करै एवं ध्यान (स्थिर मनके व्यापार)से राग, द्वेष आदिका त्याग करै । इन सातो अंगोंके पश्चात् अन्तिम आठवाँ अंग समाधि (स्थिर मनकी अपर ओर प्रवृत्ति होनेकी निवृत्ति) है ॥ ११ ॥ इस प्रकार जब मन भली भाँति निर्म्मल और योग द्वारा एकाग्र हो तब नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि स्थिर रख कर भगवान्‌की इस प्रकारकी सुन्दर मूर्त्तिका ध्यान करै ॥ १२ ॥ भगवान्‌का मुखकमल प्रसन्न है, दोनो नेत्र कमलकुसुमसम अरुणवर्ण हैं, नीलकमलके तुल्य श्याम शरीर है, भुजाओंमें शंख, चक्र और गदा धारण किये हुए हैं ॥ १३ ॥ उनका रेशमी पीत-पट कमल-किञ्जल्कके समान शोभायमान है, वक्षस्थलमें श्रीवत्स—चिन्ह विराज रहा है और कन्ध पर कौस्तुभमणि पड़ी हुई है ॥ १४ ॥ कण्ठस्थलमें वनमाला है, जिस पर भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं, अंगोंमें यथायोग्य अमूल्य हार, वलय, किरीट मुकुट, अंगद, नूपुर आदि आभूषण शोभित हैं ॥१५॥ कटितटमें काञ्चनकी काञ्चीके कलाप मनको मोह रहे हैं, भगवान्‌का आसन भक्तोंका हृदयकमल ही है । भगवान्‌का रूप शान्त एवं परम दर्शनीय है, उसके देखनेसे मन और नयन सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥ १६ ॥ भगवान्‌की सम्पूर्ण झांकी परम सुन्दर है, सब लोग हरिके इस सुन्दर रूपको प्रेम-पूर्वक प्रणाम करते हैं । भगवान्‌की किशोर अवस्था है । अपने जनों पर अनुग्रहके लिये उद्यत हैं । उनका यश कीर्त्तन करने योग्य एवं तीर्थके सदृश परम पवित्र है । पुण्यश्लोक महात्माजनोंका सुयश बढ़ानेवाले हरिके सम्पूर्ण अंगोंकी ऐसी ही मानसिक कल्पना करके साधक तबतक ध्यान करै जबतक मन चञ्चल न हो अर्थात् लगा रहै ॥१७॥१८॥ मातः ! ऐसे भाव-शुद्धचित्त द्वारा इस प्रकार सबके अन्तर्य्यामी भगवान्‌की मूर्त्तिको बैठी हुई, अथवा टहल रही या सोई हुई—जैसे चाहै वैसे ध्यान करै भगवान्‌की सब ही चेष्टाएँ मनोहर व दर्शनीय हैं ॥ १९ ॥ इस प्रकार जब देखै कि भगवान्‌के सब अंगोंमें मन भली भाँति अवस्थित हो गया है तब उसको क्रमशः एक २ अंगमें लगावै वा स्थिर करै ॥२०॥ सबके प्रथम भगवान्‌के चरणारविन्दोंका ध्यान करै कि उनमें ऐश्वर्य्यसूचक वज्र, अंकुश, ध्वजा, कमल आदि आकृतिकी रेखाओंके चिन्ह हैं । भगवान्‌के चरणस्थित उभरे हुए अरुणवर्ण शोभायमान दश नखरूप चन्द्रोंकी उज्ज्वल कान्तिसे भक्तोंके हृदयका अज्ञानरूप महा अन्धकार नष्ट हो रहा है ॥२१॥ जिनके धोवनके जलसे निकली हुई पतितपावनी नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाको शिर पर धर कर श्रीशिवजी यथार्थ शिव (पवित्र वा कल्याणरूप) हो गये, उन ध्यान करनेवालोंके पापशैलके विदारण करनेको वज्रतुल्य चरणोंका

चिरकाल तक ध्यान करे ॥ २२ ॥ फिर विभुकी दोनो जानुओंको संसृतिभय दूर करनेके लिये हृदयमें ध्यान करे कि विश्वजनक ब्रह्माकी माता, देव-वन्दिता, कमललोचना लक्ष्मीजी अपनी ऊरुओं पर धर कर अपने करपल्लवसे उनका लालन कर रही हैं ॥ २३ ॥ फिर गरुड़जीकी भुजाओं पर धरी हुई, बलनिलय ऊरू अर्थात् जंघाओंका ध्यान करे कि वे अतसी(अरसी)-कुसुमके समान सोहावनी श्यामवर्ण हैं एवं लटके हुए पीतपटके ऊपर स्थित काञ्चीकलापसे संयुक्त नितम्ब-देशका हृदयमें ध्यान करे ॥२४॥ फिर भगवान्‌की नाभिरूप सरोवरका ध्यान करे, जिस नाभिसे उत्पन्न लोकमय कमलकोपसे आत्मयोनि ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं एवं जो भुवनकोपके स्थानस्वरूप उदरमें स्थित है। फिर श्रेष्ठ मरकत मणिके सदृश श्यामवर्ण दोनो स्तनोंका ध्यान करे जो हृदयमें विहार कर रहे विशद हारकी कान्तिमय किरणोंसे प्रकाशित हैं ॥२५॥ फिर पुरुषोत्तमके वक्षःस्थलका ध्यान करे जिसमें महालक्ष्मी निवास करती हैं, जिसके देखनेवाले मनुष्योंका मन प्रसन्न होता है और नयन आनन्दित होते हैं। फिर सम्पूर्ण लोक जिनको नमस्कार करते हैं उन भगवान्‌के कण्ठका मनमें ध्यान करे, जो कण्ठ कौस्तुभमणिको अपनी शोभासे सुशोभित कर रहा है ॥ २६ ॥ फिर भगवान्‌की बाहुओंका ध्यान करे, जिनमें सम्पूर्ण लोकपालोंका निवास है। मन्दरगिरि द्वारा इन्हीं भुजाओंसे भगवान्‌ने समुद्र मथा है, अतएव मन्दराचलकी रगड़से भगवान्‌की बाहुओंके मणिमय वलय (कङ्कण) अत्यन्त उज्ज्वल हो गये हैं। फिर सहस्र आरा (धारा) युक्त एवं असह्यतेज सुदर्शन चक्र और भगवान्‌के करकमल पर स्थित राजहंसतुल्य श्वेत शंखका ध्यान करे ॥ २७ ॥ फिर शत्रुपक्षके वीरगणके रुधिरकी कीचड़का चन्दन जिसमें लगा हुआ है उस भगवान्‌की प्यारी कौमोदकी गदाका ध्यान करे। फिर हरिके कण्ठस्थलमें मधुकरनिकरको रमानेवाली रमणीक वनमाला और आत्मतत्त्वमय निर्मल कौस्तुभमणिका ध्यान करे ॥२८॥ फिर भक्तों पर अनुग्रह करनेकी इच्छासे अवतार लेनेवाले हरिके मुखारविन्दका ध्यान करे कि चलायमान मकराकृत मणिमय मञ्जुल कुण्डलमण्डलकी झलकसे गोल अमोल कपोल एवं सुन्दर नासा उसकी शोभा बढ़ा रही है ॥२९॥ उस शोभाधाम मुख पर भ्रमरगण उसे कमल जान कर रमण कर रहे हैं और कुटिल अलकावली उसकी शोभा बढ़ा रही हैं। दोनो कमलका निरादर करनेवाले चञ्चल लोचन मीनके समान सुशोभित हैं और भ्रुकुटी मनको हर रही हैं। इस प्रकार मनमें कल्पना करके आलस्यहीन हो कर हरिके मुखका ध्यान करे ॥ ३० ॥ फिर भगवान्‌की सुस्निग्धहास्ययुक्त चितवन, जो ध्यान करनेवालोंके अति घोर तीन प्रकारके ताप हरनेवाली और ईश्वरकी अपरिमित प्रसन्नताको जतानेवाली है, उसका चिरकाल तक विपुल भावनाद्वारा अपने हृदयमें ध्यान करे ॥ ३१ ॥ फिर भक्तिसे नम्र सम्पूर्ण लोगोंके

शोकजनित अश्रुसागरको सुखानेवाले अति उदार हरिके हास (मुसकान) का ध्यान करै । तदनन्तर मुनियोंके उपकारके लिये, तपमें विघ्न करनेवाले कामदेवको मोहनेके लिये स्वयं निजमायारचित हरिके भ्रूमण्डलका ध्यान करै ॥ ३२ ॥ फिर भगवान्‌के उच्च हास्यका ध्यान करै, यह अति सुन्दर होनेके कारण सहजमें ही ध्यान करने योग्य है । इस हास्यसे अधर और ओष्ठकी अधिकतर कान्ति द्वारा कुंदकलिकासदृश मुकुन्दकी सूक्ष्म दन्तपंक्ति अरुणवर्णको पा कर परम शोभायमान हो रही हैं । इस प्रकार अपने शरीरमें स्थित हरिका ध्यान करै और प्रेमयुक्त भक्तिसे मनको हरिमें लगा दे एवं हरिरूपके सिवाय और कुछ देखनेकी इच्छा न करै ॥ ३३ ॥ मातः! इस भाँति ध्यानकी आसक्तिसे योगीको हरिमें प्रेम होता है, भक्तिसे हृदय परिपूर्ण होकर द्रवित हो जाता है, आनन्दके मारे रोम खड़े हो जाते हैं, दर्शनकी उत्कण्ठाके कारण नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आते हैं । इस भाँति मन वाणीसे न ग्रहण करने योग्य निराकार हरिके ग्रहण करनेको वंशी (१) सदृश, उपायस्वरूप उस साधकका चित्त क्रमशः ध्येय पदार्थ (अर्थात् उस कल्पित हरिके रूप) से वियुक्त हो जाता है अर्थात् सम्पूर्ण विषयोंसे अतीत हो जाता है ॥ ३४ ॥ इस प्रकार चित्त विषयहीन और निराधार हो जाता है (क्योंकि ध्येय पदार्थके सम्बन्ध विना केवल चित्त ध्यान करनेवाला नहीं हो सक्ता) एवं परमानन्दका अनुभव होनेसे अन्य विषयोंसे विरक्त हो जाता है, सुतराम् जैसे दीप-शिखा तेल और बत्ती आदि उपाधिके न रहने पर निर्वाण हो जाती है अर्थात् बुझ जाती है वैसे ही उस योगीका चित्त सहसा ब्रह्ममें लय हो जाता है । इस अवस्थामें योगीजन शरीरादि उपाधिसे रहित हो कर ध्याता (ध्यान करनेवाला) और ध्येय (ध्यान करनेका विषय) के विभागसे शून्य, अखण्ड आत्माको ही अनुगत देख पाता है अर्थात् उसको आत्मा ही परमात्मा बोध होता है ॥ ३५ ॥ ये निरवलम्ब साधकगण योगाभ्याससे मनको एकदम प्रकृति (माया) के भोगसे निवृत्त करके एकदम अपनेको ब्रह्ममय कर देते हैं; इस कारण इनके सुख और दुःख दोनोकी निवृत्ति हो जाती है । अविद्याके संयोगसे इनको जो कर्तृत्व आदिका अभिमान प्रथम था वह भी अज्ञानके नाश (अर्थात् प्रकृति और पुरुषके विवेक) से नष्ट हो जाता है । अन्तमें ये एकदम आत्मतत्त्वके ज्ञाता हो कर ब्रह्ममें लीन अर्थात् जीवन्मुक्त हो जाते हैं, इनको फिर संसार नहीं होता (२) ॥ ३६ ॥ मदसे मतवाला नष्टचेतन व्यक्ति जैसे अपनी कमरमें वस्त्र बँधा

(१) वंशी नाम मछली पकड़नेवाले काँटेका है, वह जैसे मछलीको पकड़ता है वैसे ही हरिके रूप वा अनुभवको ग्रहण करनेवाला चित्त ।

(२) इसका तात्पर्य्य यही है कि योगाभ्यास द्वारा भूख, प्यास, पीड़ा, जाड़ा, गर्मी, सुख, दुःख आदिके जय करनेको मायाके भोगोंका जय करना कहते हैं । इन सबको

है या गिर गया इसका होश नहीं रखता, वैसे योगीका शरीर आसनसे उत्थित हो अथवा उठकर उस आसन ही पर स्थित रहै या उस स्थानसे अन्यत्र ही जाय वा दैववश फिर उसी स्थानमें प्राप्त हो, किन्तु वह अपने रूप अर्थात् ब्रह्मको प्राप्त होनेके कारण अपने देहका कुछ होश नहीं रखता, इस भाँति ब्रह्ममें लीन हो कर वाह्यज्ञानशून्य हो जाता है ॥ ३७ ॥ उस योगीका शरीर भी पूर्व्वसंस्कारके कारण अपने व्यापारका निर्वाह करके, जबतक अपना अवश्यभोक्तव्य आरम्भक अदृष्ट शेष नहीं होता तबतक इन्द्रियसहित जीवित रहता है। समाधिपर्यन्त योगमार्गमें आरोहण करके तब वह योगी देह, गेह और पुत्र, धन आदिके लोभ अथवा स्नेह आदिको स्वप्नतुल्य मिथ्या जान कर फिर नहीं भजता। इसका कारण यही है कि उसको आत्मतत्त्वका यथार्थ ज्ञान हो जाता है ॥ ३८ ॥ जननि! इस संसारमें प्राणी जैसे धन और पुत्रको अति स्नेहवश अपना मान कर भी अपनेसे विभिन्न जानता है वैसे आत्मज्ञानी जन शरीरादिको आत्मासे अलग देखते हैं ॥ ३९ ॥ जैसे काष्ठकी ज्वलन्त अवस्था, धूम, अग्निशिखा; ये तीनो ही अग्निसे उत्पन्न जान पड़ते हैं पर अग्नि काष्ठसे और इन अवस्थाओंसे भी अलग है, उसी प्रकार साक्षी आत्मा भी अग्निके सदृश पञ्चतत्त्व, इन्द्रिय, अन्तःकरण और जीवसे अलग हैं। जीवात्मासे ब्रह्मात्मा वा परमात्मा पृथक् हैं । इसी भाँति प्रधान (माया स्वरूप तत्त्वसमूह)से उनका प्रवर्त्तक साक्षी परमात्मा अलग है* ॥ ४० ॥ ॥ ४१ ॥ सब लोग जैसे चार प्रकारके (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज और जरायुज) प्राणियोंमें वायु आदि तत्त्वोंको व्याप्त देखते हैं वैसे ही इस अवस्थाको प्राप्त योगी सब प्राणियोंमें आत्माको और आत्मामें सब प्राणियोंको अनन्यभावसे देखते हैं ॥ ४२ ॥ जैसे अग्नि एक होने पर भी अपने उपाधि-स्वरूप प्रकट होनेके स्थान काष्ठ आदिकी छोटाई बड़ाई आदि भेदके कारण छोटा, बड़ा अनेक प्रकारका जान पड़ता

जीत कर ब्रह्मभावनापूर्व्वक प्रकृति और पुरुषका विषय विज्ञात होनेके कारण इस अवस्थाको प्राप्त योगी फिर मायामें मोहित नहीं होता। काल द्वारा देह छूटने पर वह एकदम ब्रह्ममें लीन हो जाता है।

*एक काष्ठ खण्डमें चारों तत्त्वोंका समावेश रहता है अतएव उसमें अग्निका संसर्ग होते ही उसका वायु व जलवाला अंश धूमरूपसे और तेजवाला भाग चिनगारी रूपसे एवं पृथिवीका अंश अंगार रूपसे प्रकाशित होता है। किन्तु इन तीनो अवस्थाओंका प्रकाश करनेवाला एक अग्नि ही है वैसे एक आत्मा ही भूत, इन्द्रिय, प्रकृति एवं जीवके चैतन्यका प्रकाशक है। इसी प्रकार इस अवस्थाको प्राप्त योगीजन, आत्माको प्रधानसंज्ञक तत्त्वोंसे अलग एवं उनका प्रवर्त्तक ब्रह्मस्वरूप जानते हैं। इसी अवस्थाका नामान्तर "जीवन्मुक्त" संज्ञा है।

है, वैसे ही देहमें आश्रित आत्मा भी देहकी गुणविषमताके निवन्धनसे अनेकरूप जान पड़ता है ॥ ४३ ॥

तस्मादिमां स्वां प्रकृतिं दैवीं सदसदात्मिकाम् ॥
दुर्विभाव्यां पराभाव्य स्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ४४ ॥

ऐसे योगी व्यक्ति आत्मा(परमात्मारूप हरि)के प्रसादसे जीवके बन्धनका कारण जो सत् व असत् स्वरूप, दुर्ज्ञेय, दुर्जय विष्णुकी शक्ति माया है उसको जीत कर अपने अर्थात् ब्रह्मके ज्ञानमय, आनन्दमय रूपमें लीन हो जाते हैं ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंश अध्याय ।

भक्तियोग, प्रवल कालका बल और घोर संसारका वर्णन ।

देवहूतिरुवाच–लक्षणं महदादीनां प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥
स्वरूपं लक्ष्यतेऽमीषां येन तत्पारमार्थिकम् ॥ १ ॥

श्री देवहूतिजी बोलीं । हे प्रभु ! आपने हमसे साङ्ख्ययोग शास्त्र कहा । इससे परमार्थबोधक प्रकृति और पुरुषका ज्ञान और महत्तत्त्व आदिका लक्षण भी आपने कहा । किन्तु इस ज्ञानके प्राप्त करनेका मूल भक्ति ही आपने कही है–अतएव इस भक्तियोगको हमसे विस्तारपूर्व्वक कहिये ॥ १ ॥ २ ॥ भगवन् ! जिस प्रकार इस संसारमें जीवगण उत्पन्न हो कर परस्पर मायाके बंधनमें आवद्ध होते हैं, उसका कारण भी हमसे कहो । क्योंकि इसके सुननेसे अन्तःकरणका अभिमान नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥ और जो ईश्वरके सदृश प्रभावशाली है एवं जिसके भयसे अज्ञानीजन पुण्यकर्म्मोंका अनुष्ठान करते हैं उस ईश्वररूप कालका स्वरूप कहिये ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! जो लोग अज्ञ हैं, जिनको देह आदि मिथ्या पदार्थोंमें अभिमान है, जो लोग कर्म्ममें तत्पर बुद्धिके द्वारा भ्रान्त हो कर इस अपार संसारमें चिरकालसे निद्राको प्राप्त हैं–उनको जगानेके लिये ही आप योगका प्रकाश करनेवाले सूर्य्य उदय हुए हो ॥ ५ ॥ श्री मैत्रेयजी बोले । हे विदुर ! महामुनि कपिल, माताके इन सुन्दर वचनोंको सुन कर परम प्रसन्न हुए एवं करुणायुक्त चित्तसे प्रीतिपूर्वक कहने लगे ॥ ६ ॥ श्री कपिलजी बोले । हे मातः ! भक्तियोग अनेक प्रकारका है और वह विशेष २ मार्गोंसे प्रकाशित होता है । स्वभावकी वृत्तियोंके भेदसे पुरुषकी भक्तियोंका भी विभेद होता है ॥ ७ ॥ हिंसा, दम्भ अथवा मात्सर्य, क्रोध वा अहंकारके वश अपनी २ इच्छा

पूर्ण करनेके लिये जो मेरी पूजा वा भक्ति की जाती है उसको तामसी भक्ति कहते हैं ॥ ८ ॥ विषय, यश अथवा ऐश्वर्य्यकी कामना करके भेददृष्टिपूर्व्वक प्रतिमा आदिमें पूजा करके जो मेरी भक्ति की जाती है वह राजसी भक्ति है ॥९॥ जो व्यक्ति अपना पाप नष्ट करनेकी इच्छासे अपने सम्पूर्ण कर्म्मोंका अर्पण कर देता है और सर्व्वदा यज्ञादि करता है किन्तु जीवको मुझसे अलग देखता है, वह व्यक्ति अपनी आशा पूर्ण करनेके लिये जिस आसक्तिसे मेरी पूजा करता है उसे सात्विकी भक्ति कहते हैं ॥ १० ॥ जो जन मेरे गुणोंका श्रवण करते ही, मुझको सबके भीतर वर्त्तमान जानते हैं और गंगाका जल जैसे सागरके जलमें अभिन्नभावसे मिलित हो जाता है वैसे ही जो अपनी कर्म्मगतिको अविच्छिन्न भावसे मुझमें समर्पण करते हैं-उस आसक्तिको निर्गुण वा निष्काम भक्तियोग कहते हैं। इस भावकी भक्तिका करना ही पुरुषोत्तम भगवान्‌की अहैतुकी भक्ति कहाती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ ऐसे निष्काम भक्तगण मेरी दी हुई सालोक्य (वैकुण्ठवास), सार्ष्टि (ईश्वरके समान ऐश्वर्य्य), सामीप्य (ईश्वरके समीप रहना), सारूप्य (ईश्वरके तुल्य पवित्र होना) व सायुज्य (ब्रह्ममें आत्माका मिलन)-इस पाँच प्रकारकी मुक्तिको भी सिवाय मेरी सेवाके नहीं ग्रहण करते ॥ १३ ॥ इस प्रकारके भक्तियोगको ही आत्यन्तिक भक्ति कहते हैं। इसी भक्तियोगसे तीनो मायाके गुणोंका अतिक्रमण करके ब्रह्मत्वकी प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥ मातः! ऐसे भक्तका हृदय साधनासे कैसा पवित्र होता है, सो सुनो-वे लोग श्रद्धायुक्त होकर, अनिमित्त मायाभोगको त्याग कर निष्काम धर्म्मकी सेवामें नियुक्त रहते हैं, एवं भक्त महर्षिगण जिन सब क्रियायोगोंका विधान कर गये हैं उस विधिके अनुसार हिंसा, द्वेष आदिसे रहित हो कर निष्काम कर्म्म करते हैं ॥ १५ ॥ वे मेरी कल्पित प्रतिमाओंका दर्शन, सेवा, पूजा, स्तुति और भजन करते रहते हैं। धैर्य्य और वैराग्य धारण करके सब प्राणियोंमें मेरी भावना करते हैं ॥ १६ ॥ महात्माजनोंका बहुमान करते हैं, दीन जनों पर दया करते हैं, अपने तुल्य लोगोंसे मित्रता करते हैं । यम, नियम आदि योगाचारसे शरीरको शुद्ध रखते हैं ॥ १७ ॥ वे लोग सर्व्वदा मेरी लीलायुक्त कथाओंका श्रवण करते हैं, मेरे नामका कीर्तन करते हैं एवं अहंकारहीन हो कर निष्कपट व विनीत भाव धारण करके आर्य्य (श्रेष्ठ) जनोंका संग करते हैं ॥ १८ ॥ उक्त सकल भाव मेरे धर्म्मके गुण हैं, इनके करनेसे जब पुरुषका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है तब वह मेरे गुणके श्रवणमात्रसे अनायास ही मुझको प्राप्त हो सक्ता है ॥ १९ ॥ जैसे गन्ध, वायुके योगसे अपने स्थानसे आकर घ्राणेन्द्रियके निकट उपस्थित होता है वैसे ही ऐसे भक्तियोगके अधिकारी प्राणीका विकारहीन विशुद्ध चित्त सहजमें परमात्माको प्राप्त होता है ॥ २० ॥ मैं सब प्राणियोंका

आत्मास्वरूप हो कर सब प्राणियोंमें निरन्तर विराजमान हूँ । कोई २ व्यक्ति इस अभेदभावको स्थिर न करके केवल भेदभावसहित प्रतिमा आदिका पूजन ही करते रहते हैं, वे मेरी अवज्ञा करते हैं, अतएव उनकी पूजा विफल है (१) ॥ २१ ॥ मैं सब प्राणियोंमें वर्तमान हूँ, और सबका आत्मा व ईश्वर हूँ । जो व्यक्ति मूढ़तावश मुझको त्याग कर प्रतिमाकी ही पूजामें तत्पर रहता है, उसका वह पूजन केवल राखमें होम करनेके समान निष्फल है ॥ २२ ॥ इस प्रकार भेदभाव धारण करके जो कोई दूसरे प्राणीके शरीरमें स्थित जो मैं हूँ उससे हिंसा व द्वेष करता है वह प्राणियोंसे द्रोह करनेवाला व्यक्ति प्रतिमा आदिमें मेरी पूजा करके भी शान्तिसुखको नहीं पाता ॥ २३ ॥ जो प्राणियोंका अनादर करनेवाला और प्राणियोंका वैरी है वह अनेक प्रकारकी सामग्री और अनेक प्रकारकी क्रियाओंसे मेरी कल्पित प्रतिमाओंमें लाख मेरा पूजन करै पर हे पापहीने ! मैं उस पर कदापि तुष्ट नहीं होता ॥ २४ ॥ प्रतिमा आदिमें अनेक प्रकारके कर्मोंसे तभी तक मेरा पूजन करना चाहिये जबतक यह बोध न हो कि ईश्वर मेरे ही हृदयमें व सम्पूर्ण प्राणियोंमें अवस्थित हैं । जब यह ज्ञान हो जाय तब प्रतिमा-पूजनकी आवश्यकता नहीं है ॥ २५ ॥ जो अपनेमें और अन्य प्राणियोंमें थोड़ा भी भेद देखता है उस असमदर्शी व्यक्तिको मैं मृत्युस्वरूपसे अति घोर भय देता हूँ ॥ २६ ॥ अतएव मुझको सब प्राणियोंमें स्थित एवं सब प्राणियोंका आत्मा जान कर सब प्राणियोंमें दान, मान, मित्रता और समदृष्टि द्वारा मेरा पूजन करना ही सब लोगोंका अवश्यकर्त्तव्य कर्म है ॥ २७ ॥ देखो, अचेतन पदार्थसे सचेतन पदार्थ श्रेष्ठ है, उससे जिनके प्राणश्वासका संचार होता है, वे श्रेष्ठ हैं । प्राणधारीकी अपेक्षा ज्ञान जिनको है वे जीव श्रेष्ठ हैं, उनसे स्पर्शेन्द्रियके ज्ञानवाले वृक्षादि श्रेष्ठ हैं ॥ २८ ॥ उनसे रसके ज्ञानवाले मत्स्य आदि श्रेष्ठ हैं, उनसे गन्धके ज्ञानी भ्रमर आदि श्रेष्ठ हैं, उनसे शब्दके जाननेवाले सर्पादिक श्रेष्ठ हैं ॥ २९ ॥ उनसे रूपभेदके जाननेवाले काक आदि श्रेष्ठ हैं, उनसे जिनके मुखमें नीचे ऊपर दोनो

---

(१) इस स्थलको देख कर यह विचार करना भूल है कि प्रतिमापूजन करना वृथा वा निष्प्रयोजन है । ध्यान देकर देखनेसे मालूम हो जायगा कि प्रतिमापूजन ईश्वरकी सेवाका प्रथम सोपान है, विना प्रतिमाकल्पना किये निराकार ईश्वरमें मन लगाना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है, अतएव प्रतिमापूजन साधक अवस्थामें अवश्य श्रद्धापूर्व्वक कर्त्तव्य है, परन्तु प्रतिमापूजनका यह अभिमत नहीं है कि हम जिस तिस प्रकार प्रतिमापूजनमें ही जन्म विता दें और सिद्ध अवस्थाके पानेका प्रयत्न न करें । यह बड़ी ही भूल व सनातन धर्म्म व आर्य्यसमाजके झगड़ेका मूल है । उचित है कि प्रथम प्रतिमा द्वारा ईश्वराराधनका साधन करके अनन्तर प्रतिमासे ईश्वरको पाकर उसे त्यागदें—यही तात्पर्य है । आगे २५ वें श्लोकमें कपिलजी यही कहेंगे ।

जगह दन्त हैं वे श्रेष्ठ हैं, उनसे बहुत पैरवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे चार पैरवाले जीव श्रेष्ठ हैं, उनसे दो पैरवाले मनुष्य श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥ उन वर्णसंकर मनुष्योंमें शुद्ध चार वर्ण श्रेष्ठ हैं, उनमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उनमें भी वेदका जाननेवाला ब्राह्मण श्रेष्ठ है, वेदज्ञसे वेदका अर्थ जाननेवाला ब्राह्मण श्रेष्ठ है ॥ ३१ ॥ उससे संशयको दूर करनेवाला अर्थात् मीमांसक ब्राह्मण श्रेष्ठ है। उससे जो अपने धर्म्मकर्म्मके आचरणमें निष्ठ है वह श्रेष्ठ है। उससे भी मुक्तसंग (जिसने संग त्याग दिया वा जीवन्मुक्त जनोंका संग करनेवाला) श्रेष्ठ है, क्योंकि वह निष्काम धर्म्मकरता है॥३२॥ उससे अधिक मैं किसीको नहीं देखता। क्योंकि वह निष्काम मुक्तसंग व्यक्ति अपने सम्पूर्ण कर्म्म और कर्म्मोंके फल एवं शरीरको मेरे अर्पण कर देता है; वह अपने आत्मा व कर्म्मफलोंका मुझमें न्यास (स्थापन) करके पूर्ण संन्यास ग्रहण करता है। वह सर्वत्र समदर्शी एवं कर्तृत्वके अभिमानसे शून्य हो जाता है ॥३३॥ "ईश्वर अन्तर्य्यामी आत्मारूपसे सब प्राणियोंमें स्थित है"-यह भावना मनमें करके उन प्राणियोंको ईश्वरतुल्य मान कर आदरसहित प्रणाम करना उचित है ॥ ३४ ॥ हे मानवि! मैंने भक्तियोग और योग; दोनोका वर्णन तुमसे किया, इन दोनोंमें एकका भी अवलम्बन करनेसे पुरुष महापुरुषको प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ सर्वनियन्ता परमात्मा परमब्रह्म भगवान् प्रधान-पुरुष-स्वरूप एवं प्रधान-पुरुषसे अलग हैं। जिस दैवसे अनेक संसाररूप कर्म्मकी विविध चेष्टाएँ होती हैं, यह वही दैव है, भगवान्के इसी रूपको ही सब वस्तुओंके रूपपरिवर्त्तनका स्थान और आश्रय एवं अद्भुत काल कहते हैं। इस कालसे ही महत्तत्त्व आदिके अभिमानी भिन्नदर्शी सब जीवोंको भय उत्पन्न होता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ सर्वाश्रय यह काल सबके भीतर प्रवेश कर उनके भौतिक देहका महाभूत-समूह द्वारा संहार करता है। यह काल ही विष्णुका नामान्तर एवं यज्ञफलका दाता है। जो लोग सबको वश करते हैं उनको भी वश करनेवाला है ॥ ३८ ॥ इसको कोई प्रिय नहीं है और न कोई अप्रिय है एवं न कोई इसका बान्धव है। यह स्वयं सावधान हो कर असावधान प्राणियोंका संहार करता है ॥ ३९ ॥ कालके ही भयसे वायु चलता है, सूर्य्य तपते हैं, इन्द्र वर्षा करते हैं और नक्षत्रगण प्रकाश करते हैं ॥४०॥ कालके ही भयसे वृक्ष, लता, औषधि आदि यथासमय फलते फूलते हैं ॥ ४१ ॥ कालके ही भयसे नदियाँ बहती हैं और समुद्र अपनी सीमाको नहीं छोड़ता। अग्नि भी कालके ही भयसे प्रज्वलित होता है एवं पृथ्वी सहित पर्वतोंके जल पर रह कर भी नहीं डूबती ॥ ४२ ॥ इसी कालकी आज्ञासे आकाश (शून्य), जीवित प्राणियोंको श्वास प्रश्वास लेनेका अवकाश देता है एवं यह महत्तत्त्व सात पदार्थोंसे आवृत हो कर अहङ्कारतत्त्वात्मक अपने शरीरको लोकरूपसे विस्तृत करता है ॥ ४३ ॥ कालके ही भयसे सत्त्वादि गुणके अभिमानी

ब्रह्मादिक देवगण चराचर जगत्के नियन्ता हो कर भी इस विश्वकी सृष्टि आदि अपने २ कार्योंमें वारम्वार प्रवर्त्तमान होते हैं ॥ ४४ ॥

सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ॥
जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम् ॥ ४५ ॥

वही काल पिताआदिके द्वारा पुत्र आदिको उत्पन्न करता है और मृत्युके द्वारा सर्वसंहारक यमको भी नष्ट करता है। यह सबको उत्पन्न और नष्ट करनेवाला है, किन्तु स्वयं अनादि अनन्त और अव्यय है ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंश अध्याय।

अधार्म्मिकोंकी तामसी गतिका वर्णन ।

कपिल उवाच—तस्यैतस्य जनो नूनं नायं वेदोरुविक्रमम् ॥
कालयमानोऽपि बलिनो वायोरिव घनावलिः ॥ १ ॥

श्री कपिलमुनि कहते हैं। मातः! मेघमण्डल वायु द्वारा विचलित होता है सही, किन्तु वह वायुके वेगको नहीं जानता; वैसे ही ये सब लोग मायामें मोहित हो कर काल द्वारा जन्म–मृत्युको प्राप्त होते हैं किन्तु उस कालके दुरतिक्रम विक्रमको जाननेमें नहीं समर्थ होते ॥ १ ॥ यह प्रमत्त पुरुप सुखके लिये बड़े कष्टसे जिस २ अर्थका साधन करता है, भगवान् काल उस २ को नष्ट कर देते हैं, जिसके लिये मनुष्य शोच करता है ॥ २ ॥ यह दुर्मति जीव मोहवश अपने अनित्य शरीरको तत्सम्बन्धी स्त्री, पुत्र, धन, रत्न, गृह और क्षेत्रादिसहित नित्य मानता है ॥ ३ ॥ यह जीव इस संसारके बीच जिस २ योनिमें जाता है, उसीमें अपनेको सुखी मानता है और उससे विरक्त नहीं होता, अतएव इसको यथार्थ शान्ति नहीं मिलती ॥४॥ यह जीव ऐसा ईश्वरकी मायामें मोहित है कि कर्मवश नारकी योनिको पा कर भी उसमें नारकी आहारादि द्वारा सुखका अनुभव करके उसको भी छोड़नेकी इच्छा नहीं करता! ॥५॥ यह मूर्ख जीव स्त्री, कन्या, पुत्र, गेह, देह, पशु, बन्धु और धन आदिको अपना मान कर उनमें अत्यन्त आसक्त रहता है और उक्त विषयोंके पानेसे अपनेको कृतार्थ वा भाग्यशाली मानता है ॥६॥ कुटुम्बके भरण–पोपणकी चिन्तारूप अग्नि इसके अंगोंको सदा जलाया करता है; विशेप करके यह मन्दमति प्रायः इन स्त्री–पुत्रादिके लिये ही दुष्ट आचरण करता है ॥ ७ ॥ असती कुलटा स्त्रियोंकी माया और हावभाव एवं एकान्तरचित संभोग आदिमें और छोटे लड़की लड़कोंके तोतले बचनोंमें इसका मन और

इन्द्रियाँ इस प्रकार आसक्त हो जाती हैं कि यह उनके आगे कालरूप ईश्वरको भी भूल जाता है ॥ ८ ॥ कपटधर्म्मयुक्त, दुःखदायी गृहके धर्म्मोंमें लिप्त हो कर यह गृही जीव प्राणपणसे आलस छोड़ कर दुःख दूर करनेकी चेष्टा किया करता है और अपनेको इसीमें सुखी मानता है ॥ ९ ॥ जिनके भरण–पोषणसे नरक जाना पड़ता है उन्हीका पोषण करनेके लिये यह मोहान्ध व्यक्ति सांसारिक क्लेशोंके दूर करनेकी इच्छासे हिंसा आदि कुकर्म्म द्वारा इधर उधरसे धन लाता है और उन्हीका पोषण करता है। जो कुछ कुटुम्बपोषणसे बचता है उसको आप भोग करता है ॥ १० ॥ संसारी जीव एकवार एक जीविका स्थिर करता है, जब काल द्वारा वह नष्ट हो जाती है तब फिर और जीविका स्थिर करनेकी चेष्टा करता है। इसी प्रकार लोभके वश हो कर कुटुम्बभरणमें रत रहता है और जब अशक्त हो जाता है तब पराया धन लेनेकी इच्छा करता है ॥ ११ ॥ इसी प्रकार जब वृद्धावस्थाके कारण कुटुम्बपालनमें असमर्थ हो जाता है और यह मन्दभाग्य कोई उद्यम नहीं कर सक्ता तब लक्ष्मीसे हीन मूढ़बुद्धि यह बड़ी २ साँसें लेकर चिन्ता करता है ॥ १२ ॥ इस प्रकार जब अपने कुटुम्बके पालन करनेमें असमर्थ हो जाता है तब "यह हमारे पिता हैं, पति हैं" इत्यादि कह कर पहले आदर करनेवाले उसके स्त्री-पुत्रादि, जैसे किसान लोग बूढ़े बैलका आदर नहीं करते वैसे ही उसका निरादर करते हैं ॥१३॥ किन्तु तब भी उस मूर्खको वैराग्य नहीं होता। जिनका पहले आप भरण पोषण करता था उन्हीके द्वारा निरादरपूर्वक प्रतिपालित हो कर भी घरमें ही रहता है, वृद्धावस्था उसके रूपको बिगाड़ देती है और मरणाभिमुख हो जाता है ॥ १४ ॥ घरके चौकीदार कुत्तेके समान निरादरपूर्व्वक जो कुछ खानेको जिस समय उसको घरवाले दे देते हैं वह उसीको खा लेता है। अग्नि मन्द पड़ जानेके कारण उससे थोड़ा खाया जाता है, और हाथ पैर डुलानेकी भी शक्ति बहुत थोड़ी रहजाती है एवं क्रमशः रोग आकर उसे घेर लेते हैं ॥ १५ ॥ ऐसे ही क्रमशः उसका मृत्युकाल आ कर उपस्थित होता है। ऊर्ध्वश्वासके वेगसे उसके नेत्र बाहर निकल आते हैं, पुतली ऊपर चढ़ जाती हैं एवं वायुके आने जानेका मार्ग जो नाड़ियाँ हैं सो कफसे रुँध जाती हैं तब उसको साँस लेते या खाँसतेमें भी कष्ट मालूम पड़ता है और गलेमें कफके कारण "घुर घुर" शब्द होने लगता है ॥ १६ ॥ ऐसे जब जीव मृत्युशय्यामें शयन करता है तब उसके शोकयुक्त बंधु चारो ओर उसकी शय्या घेर कर बैठते हैं और वार २ उसे बोलकारते हैं पर वह कालपाशके वशवर्त्ती होनेके कारण कुछ भी नहीं बोल सक्ता ॥ १७ ॥ इस प्रकार जन्म भर कुटुम्बके पोषणमें वितानेवाला वह मृतप्राय अजितेन्द्रिय व्यक्ति, रोते हुए स्वजनोंके आर्त्तनादसे बड़ी व्यथाको प्राप्त होता है। अन्तको ज्ञानशून्य हो कर प्राणत्याग करता है ॥ १८ ॥ तब क्रोधयुक्त लाल २ नेत्र निकाले भयंकर यमदूत आ कर उसके पास

उपस्थित होते हैं, जिनको देख कर मारे भयके एकसाथ मल और मूत्र उस प्राणीके निकल पड़ता है ॥ १९ ॥ इस स्थूल शरीरसे यातनाशरीरमें उस जीवको निरुद्ध करके बलपूर्वक वे दूत उसके गलेमें सुदृढ़ पाश डाल देते हैं और बड़ी दूर यमपुरीको घसीटते हुए ले जाते हैं, जैसे अपराधीको राजाके सेवक ले जाते हैं ॥२०॥ उन यमदूतोंके तर्जनसे उस पापीका हृदय विदीर्ण सा होने लगता है और शरीर मारे भयके काँपने लगता है, हृदय धड़कने लगता है । आगे बढ़ कर कुत्ते मिलते हैं, वे उसके शरीरको नोचते हैं, तब वह अपने पापोंका स्मरण करके अत्यन्त व्याकुल होता है ॥ २१ ॥ एक तो भूख-प्यासके मारे व्याकुल होता है; तिस पर यमदूत उसकी पीठ पर कोड़े मारते हैं! फिर चलनेकी राहमें बालू गरम, ऊपर सूर्यका कठोर घाम, चारो ओर दावानलकी जलती हुई चलती हुई वायु शरीरको जलाती है! राहमें न कहीं जल मिलता है और न कहीं कोई विश्राम करनेवाला स्थान मिलता है । इस प्रकारकी यातनाओंसे यद्यपि वह चलनेमें अशक्त होता है तथापि विवश जाना ही पड़ता है ॥ २२ ॥ राहमें जहां थक जाता है वहां मारे थकावटके गिर पड़ता है और मारे पीड़ाके मूर्च्छित हो जाता है, जब सचेत होता है तब फिर उठ कर चलने लगता है । इस प्रकार यमदूत उसे अन्धकारमय पापियोंके जानेयोग्य मार्गसे यमपुरीको ले जाते हैं ॥ २३ ॥ यमपुरीकी राह निन्नानबे (९९) हजार योजन है; इतनी दूर उस पापीको यमदूत दो या तीन मुहूर्त्तमें ले जाकर यातना भोग कराते हैं ॥२४॥ उस पापीको यमपुरीमें कहीं पर यमदूत जलती हुई लकड़ियोंके बीचमें डाल कर जलाते हैं, कहीं उसका मांस काट कर या उसीके मुखसे नोचवाकर उसे खिलाते हैं ॥ २५ ॥ यमपुरीमें कुत्ते और गिद्ध जीते ही उसकी आँतें निकाल लेते हैं । कहीं सर्प, बीछी, डाँस आदि निष्ठुरताके साथ उसको काटते हैं, जिससे उसे अत्यन्त पीड़ा होती है ॥२६॥ कहीं पर यमदूत उसके शरीरके अंग अलग २ काटते हैं, कहीं हाथीके पैरसे कुचलवाते हैं, कहीं बड़े ऊंचे पर्वतकी चोटी पर ले जा कर उसे नीचे डाल देते हैं, कहीं जलमें डुबा देते हैं और कहीं अंधे गढ़ेमें बन्द कर देते हैं ॥२७॥ जैसे सङ्गदोषसे और प्रकृतिके दोषसे जो पापका फल भोग करनेकी विधि हैं वैसे ही किये हुए पापके अनुसार तामिस्र, अन्धतामिस्र और रौरव आदि नरकोंमें, क्या नर और क्या नारी, सब पापीगण ही यातनाभोग करते हैं ॥ २८ ॥ हे मातः! पण्डितगण कहते हैं कि यहीं नरक और यहीं स्वर्ग है, क्योंकि नरककी सभी यातनाएँ यहाँ देख पड़ती हैं ॥ २९ ॥ कुटुम्बके भरणमें आसक्त रहै या अपने पेटके भरनेमें ही तत्पर रहै किन्तु कुटुम्ब व शरीर दोनोको यहीं छोड़ कर परलोकमें मरनेके उपरान्त कर्मका फल इसी प्रकार अवश्य भोगना पड़ता है ॥ ३० ॥ प्राणियोंसे द्रोह करके जो अपने कलेवरको पालता है वह अपने उस कलेवरको और पापकर्म्मसे

सञ्चित धनको यहीं छोड़ कर अकेले पापरूप पाथेय (राहमें खाने व भोग करनेका सामान) ले कर घोर अन्धकारमय नरकमें प्रवेश करता है ॥ ३१ ॥ उसका अन्यायपूर्वक कुटुम्बके पोषण करनेका पाप परकालमें ईश्वरकर्तृक उपस्थित होता है। वह व्यक्ति आतुरके समान अचेत हो कर भी नरकमें उस कर्म्मके फलको भोग करता है ॥ ३२ ॥ जो व्यक्ति केवल अधर्म्म द्वारा कुटुम्बके भरणमें उत्सुक होता है उसको महाघोर अन्तिमनरक अन्धतामिस्रमें जाना पड़ता है ॥३३॥

अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः ॥
क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः ॥ ३४ ॥

इस नरकभोगके उपरान्त कुत्ता, शूकर आदिकी निकृष्ट योनियोंमें जितने प्रकारकी यातना हो सक्ती हैं उनको क्रमशः वह पातकी भोगता है। फिर जब पाप-फल भोग कर शुद्ध होता है अर्थात् उसका पाप क्षीण हो जाता है तब वह फिर मनुष्य लोकमें आकर मनुष्य योनिको पाता है ॥ ३४ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंश अध्याय ।

मनुष्ययोनिप्राप्तिरूप राजसी गतिका वर्णन ।

श्रीभगवानुवाच—कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये ॥
स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः ॥ १ ॥

श्रीकपिलजी बोले। मातः! जीवके पूर्व्वकृत कर्म्मका प्रवर्त्तक ईश्वर ही है! अतएव जीव उसी पूर्व्वकृत कर्म्मके कारण शरीरधारणके लिये पुरुषके बीजका आश्रय करके स्त्रीके गर्भमें प्रवेश करता है ॥ १ ॥ वह पुरुषका बीज गर्भमें जा कर एक रात्रिमें स्त्री-रक्तमें मिलता है, पाँच रातमें पानीके बुलेके समान गोल होता है, दश दिनमें बेरके फल तुल्य बड़ा और कठिन होता है, फिर एक महीनेके भीतर अण्डेके सदृश मांसपिण्ड बन जाता है ॥ २ ॥ एक महीनेके उपरान्त उस पिंडमें शिर निकलता है, दो महीनेमें बाहु, चर्म्म और लिंग व उससे छिद्रका प्रकाश होता है ॥ ३ ॥ चार महीनेमें सात (चर्म, मांस, रक्त, नाड़ी, मज्जा, मेदा, अस्थि) धातुएँ प्रकट होती हैं। पाँच महीनेमें भूख और प्यासकी उत्पत्ति होती है, छः महीनेका जब होता है तब जरायु नाम चर्म्मावरण (झिल्ली)से आवृत हो कर माताकी कोखमें दाहिनी ओर घूमने लगता है ॥ ४ ॥ इसी समयसे माताके खाये हुए अन्नपानादिसे उसकी सम्पूर्ण धातुएँ क्रमशः बढ़ने लगती हैं। इस दशामें

इच्छा न होने पर भी उसको उस विष्ठा व मूत्रसे परिपूर्ण माताके गर्भरूप गढ़ेमें शयन करके रहना पड़ता है क्योंकि यह गर्भ ही सब जीवोंकी उत्पत्तिका स्थान है ॥ ५ ॥ गर्भमें गर्भस्थित क्षुधित कीड़े इसके कोमल अंगोंमें छिन २ काट कर घाव कर देते हैं उस क्लेशसे इसे बार बार मूर्च्छा आ जाती है ॥ ६ ॥ माताके खाये हुए कड़ू, तीखे, गर्म, नोन, खारी, खट्टे आदि भोजनके असह्य रसके स्पर्शसे इसके सब अंगोंमें व्यथा उठती है ॥ ७ ॥ यह जीव भीतर जरायु एवं बाहर आँतोंसे घिरा होता है, इसका शिर कोखमें स्थित रहता है एवं गर्दन व पीठ मुड़ी रहती है ॥ ८ ॥ जैसे पिंजड़ेमें पक्षी हो वैसे यह अपने अंगको हिला डुला नहीं सक्ता। गर्भमें इस जीवको अपने पूर्व्व कर्म्मोंकी याद आती है तब अनुच्छ्वास-प्राय हो कर अपने शत २ जन्मके दुरन्त पातकोंका स्मरण करके यह हतभाग्य जीव किसी भाँति चैन नहीं पाता ॥ ९ ॥ फिर ज्ञानोदय होने पर भी सातवे महीनेका आरम्भ होते ही प्रसूतिवायुके वेगसे, उदरसे ही इसीके समान जिसका जन्म होता है उस विष्ठाके कीड़ेके तुल्य यह जीव, एक स्थान पर स्थिर नहीं रहने पाता ॥ १० ॥ उस अवस्थामें पवित्र भावका उदय होनेसे गर्भयन्त्रणाका स्मरण कर यह देहात्मदर्शी जीव दीनभावसे व्याकुलतापूर्व्वक अञ्जलि बाँधके उस ईश्वरकी स्तुति करता है, जिसने इसको गर्भमें भेज कर सप्त-धातुमय शरीर दिया है ॥ ११ ॥ जीव कहता है कि जो जगत्‌की रक्षाके लिये इच्छापूर्व्वक अनेक मूर्त्तियाँ धारण कर इस संसारमें प्रकट होते हैं, एवं मेरे समान असाधु जनोंकी शुद्धिके लिये जिन्होंने इस गर्भवासका विधान किया है, मैं उन्ही कर्म्मफलके देनेवाले भगवान्‌के धरणीतलविहारी अकुतोभय चरणारविन्दोंकी शरणमें हूँ ॥ १२ ॥ जिसकी पञ्चभूत, इन्द्रिय और अन्तःकरणमयी माया (शरीर) का अवलम्बन कर मैं कर्म्मोंमें बँधा सा हूँ और मेरा रूप (ज्ञान) मायाके गुणोंसे आवृत सा हो गया है वह शुद्ध, विकाररहित, अखण्डबोध परमेश्वर मेरे इस सन्तप्त हृदयमें ही अधिष्ठित है। मैं उसको प्रणाम करता हूँ ॥ १३ ॥ वह परमेश्वर अविद्या द्वारा इस पञ्चभूतरचित शरीरमें लिप्त सा प्रतीत होता है, पर वास्तवमें ऐसा नहीं है; वह अविद्यासे ही इन्द्रिय, गुण, अर्थ और चैतन्य(जीवात्मा)स्वरूप प्रतीत होता है, वस्तुतः वह इनसे भिन्न और इनका प्रवर्त्तक है। वह देहरहित असंग है एवं देहका साक्षी सर्वज्ञ है, उसकी महिमा मायाके द्वारा कुण्ठित नहीं होती, क्योंकि वह प्रकृति और पुरुष दोनोसे परे है। अतएव यद्यपि मैं उसीका अंश हूँ, पर मैं अविद्याके कारण निजरूपको भूला हुआ हूँ और वह नित्य ज्ञानमय है। मैं उसी परमात्माको प्रणाम करता हूँ ॥ १४ ॥ उसी ईश्वरकी प्रबल माया-वश मैं इस संसारमार्गमें विचर रहा हूँ, इस संसारमार्गमें त्रिविध गुणोंके भेदसे त्रिविध (राजस, तामस, सात्त्विक) कर्म्म बन्धनस्वरूप हैं, अर्थात् इस मार्गसे

निकलने नहीं देते। इस मार्गमें कर्म्मानुसार अनेक योनियोंमें आवागमनके श्रमसे मेरी स्मृति अर्थात् अपने रूपका ज्ञान नष्ट हो गया है। सिवाय उसी परमेश्वरके अनुग्रहके और कोई उपाय नहीं है, जिसके द्वारा कर्म्मबन्धनसे मुक्त हो कर मैं अपने रूपको पा सकूं—अतएव मैं उसी परमेश्वरकी शरणमें हूँ॥ १५॥ हम सब जीव, 'जीव'संज्ञक कर्म्म पदवीको पा कर कर्म्म करनेके लिये इस संसारमें उपस्थित हुए हैं। इस कर्म्ममूढ़ अवस्थामें एकमात्र परब्रह्मके सिवाय त्रैकालिक (भूत, भविष्य, वर्त्तमान वा आदि, मध्य, अन्त इन तीनो कालोंके) ज्ञानको हमें कौन दे सक्ता है? (अर्थात् मुझसे उत्तम गतिको प्राप्त अन्य जीव भी नहीं दे सक्ते) अतएव तीनो प्रकारके तापोंको नष्ट करनेवाले ज्ञानकी प्राप्तिके लिये हम उसी ज्ञानमय, आनन्दमय परमेश्वरको भजते हैं॥ १६॥ भगवन्! मेरा यह कर्मानुगत शरीर माताके रुधिर, विष्ठा और मूत्रके कूपस्वरूप गर्भविवरमें पड़ा हुआ जठरानलसे अत्यन्त सन्तापको प्राप्त हो रहा है! मैं इस स्थानसे निकलनेकी इच्छासे अपने महीने गिन रहा हूँ, आप कब कृपा करके इस नरकसे मुझे निकालियेगा?॥१७॥ मेरे ऐसे दश महीनेके जीवके हृदयमें जिसने ऐसा ज्ञान दिया उस ईश्वरके समान करुणानिधि और कौन है? हे दीनानाथ! आप अपने ही कियेसे सन्तुष्ट वा प्रसन्न हों, मैं सिवाय हाथ जोड़नेके और कौन सा प्रत्युपकार करके आपको संतुष्ट कर सक्ता हूँ?॥१८॥ प्रभु! आपकी महिमा और क्या कहूँ, पशुयोनिमें उत्पन्न जीवगण उस शरीरमें केवल सुख और दुःखका ही अनुभव कर सक्ते हैं, और ज्ञान उनको नहीं होता; किन्तु मुझको आपने ऐसा शरीर दिया है कि मैं इसमें शम, दम आदि श्रेष्ठ गुणोंका सञ्चय भी कर सक्ता हूँ एवं आपकी दी हुई बुद्धि व विवेक द्वारा पुराणपुरुष जो आप हैं उनको अपने (जीवात्माके) समान इस शरीरके वा जगत्के भीतर बाहर व्याप्त जान सक्ता हूँ एवं विशेषतः अपने शरीराभिमानके अधिष्ठाता जीवात्माको (अर्थात् अपनेको) भी प्रतीत कर सक्ता हूँ। भगवन्! आपको बार २ नमस्कार है॥१९॥ हे विभो! यद्यपि यह गर्भ मेरे लिये बहु दुःखदायक रहनेका स्थान है तथापि मैं इससे बाहर निकल कर भयानक मोहमय अन्धकूपमें गिरनेकी इच्छा नहीं करता, क्योंकि संसारमें आपकी महामायासे आक्रान्त होनेके कारण मतिभ्रम होता है, जिस मिथ्यामतिसे यह जन्ममरणका चक्र चलता है॥ २०॥ हे ईश्वर! मैं अनेक योनियोंमें जन्म लेकर अनेक यातना भोग कर चुका हूँ। यद्यपि मुझे यहां अनेक कष्ट हैं, पर मैं संसारके कष्टसे यहाँ अपनेको सुखी मानता हूँ। अब मुझे भाग्यवश विष्णुके चरणकमल प्राप्त हुए हैं, इन्हींकी सहायतासे अपने सुहृद् आत्मा (मन) और बुद्धिरूप सारथी द्वारा शीघ्र ही संसारसे आत्माका उद्धार करूँगा, जिसमें फिर मुझे यह अनेकगर्भवासरूप घोर कष्ट न हो॥ २१॥ कपिलजी कहते हैं। वह दश महीनेका

जीव ज्ञानको पा कर गर्भमें ऐसे ईश्वरकी स्तुति करता है, इसी समयमें प्रसूति-वायु उसको मुख नीचे करके गर्भके बाहर फेंकता है ॥ २२ ॥ वायुके वेगसे आतुर वह जीव नीचे शिर करके बड़े कष्टसे बाहर निकलता है । उस समय उसकी साँस रुँध जाती है और वह स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती है ॥ २३ ॥ वह जीव रुधिरसे भरा हुआ विष्ठाके कीड़ेके समान पृथ्वीमें गिर कर अंगसञ्चालन करता है एवं ज्ञान नष्ट होनेके कारण अज्ञानावस्थामें बार २ रोता है ॥२४॥ उसके पालनेवाले लोग उसके अभिप्रायको जानते नहीं और न वही उनको कुछ अपना अभिप्राय बता सक्ता है, जैसे वे लोग उसे रखते हैं वैसा ही वह पराधीन रहता है ॥ २५ ॥ अपवित्र पलँग पर उसे लिटा देते हैं, उस पलँगमें चीलर, जुँवा, खटमल आदि जीव भरे रहते हैं, वे काटते हैं, खुजली उठती है, पर वह खुजलानेमें असमर्थ हो कर केवल रोता है; न उठ सक्ता है, न बैठ सक्ता है, न करँवट बदल सक्ता है ॥ २६ ॥ उसकी कोमल त्वचा (खाल) में डाँस, मच्छड़ आदि जीव काटते हैं, जैसे कीड़ेको कीड़े; पर वह ज्ञानहीन बालक क्या करे, केवल रोता है । ऐसे लड़कपनमें यह दुःख भोग कर पौगण्ड (पाँचवे वर्षसे जवानीके आरम्भ तक) अवस्थामें पढ़ने आदिका दुःख भोगता है । जवानीमें जब मनमानी वस्तु नहीं मिलती तब शोकसे व्याकुल होता है और अज्ञानवश क्रोधित होता है । शरीरके साथ शरीरमें अभिमान बढ़ता है एवं उसीसे क्रोधकी भी वृद्धि होती है, तब वह अपने ही तुल्य जो अन्य कामी जन हैं उनसे वैर आदि करता है, जिससे उसका सर्वनाश होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ यथार्थ ज्ञान न होनेके कारण वह कुमति वारम्वार इस पञ्चभूतरचित मिथ्या शरीरमें "मैं हूँ, मेरा है" इस प्रकार बुद्धि करके असत् आग्रह करता है ॥ ३० ॥ अविद्यामय कर्मबन्धनमें वह ऐसा जकड़ जाता है कि उसी देह व स्त्री-पुत्रादिके लिये सर्वदा वे ही कर्म करता है, जिनसे उसे फिर इस मायामय दुःखरूप संसारमें आना पड़ता है ॥ ३१ ॥ और यदि सांसारिक असत्मार्गमें स्थित हो कर शिश्नोदरपरायण असत् पुरुषोंका संसर्ग करता है और कुटुम्बपोषणमें तत्पर रहता है तौ भी पहलेकी भाँति नरक जाना पड़ता है ॥ ३२ ॥ असज्जन विषयी लोगोंके संग करनेसे सत्य, शौच, दया, मौन, बुद्धि, लज्जा, लक्ष्मी, यश, शम, दम, ऐश्वर्य और तेज आदि मनुष्यजन्मके स्वाभाविक सद्गुण नष्ट हो जाते हैं ॥ ३३ ॥ विषयी जनोंका आत्मा शान्त नहीं रहता क्योंकि उनको मिथ्या देहाभिमानके कारण सदा चिन्ता रहती है अतएव वे असाधु होते हैं अर्थात् उनसे परोपकार नहीं होता, वे स्त्रियोंका खेलौना होते हैं इसीसे शोचनीय हैं, उनका संग भूल कर न करे ॥ ३४ ॥ इस जीवको अन्य संगसे वैसा मोह व बन्धन नहीं होता जैसा स्त्री और उसके संग करनेवालोंके संगसे होता है ॥ ३५ ॥ देखो, साक्षात् ब्रह्माजी अपनी कन्याके

रूपमें मोहित हो गये और ऐसी लज्जा छोड़ दी कि मृगीरूपसे भागी हुई कन्याके पीछे मृगरूप रख कर दौड़े! ॥ ३६ ॥ मातः! जब साक्षात् ब्रह्माकी यह दशा हुई तब उनके पुत्रोंकी, पुत्रोंके पुत्रोंकी उत्पन्न की हुई सृष्टिमें सिवाय ऋषि नारायणके कौन ऐसा ज्ञानी पुरुष है जो स्त्रीरूप मायामें न फँसै? अतएव स्त्रीसे, मुक्तिकी इच्छावाले मनुष्यको सदा दूर रहना चाहिये ॥३७॥ मेरी स्त्रीरूप मायाका बल देखो कि वह बड़े२ दिग्विजय करनेवाले शूरवीरोंको केवल भौंहके संकेत (इशारे)से पैरके नीचे कर लेती है! ॥ ३८ ॥ अतएव जिसकी इच्छा हो कि मैं मुक्त हो जाऊँ और जिसको मेरी सेवासे आत्मज्ञानका लाभ हो चुका हो वह कदापि भूल कर भी स्त्रीसंग न करे, क्योंकि ज्ञानी लोगोंके मतमें यह स्त्री, साधक योगीके लिये खुला हुआ नरकका द्वार है ॥ ३९ ॥ स्त्रीरूपिणी ईश्वरकी माया सेवा आदिके मिससे धीरे २ निकट आती है, ज्ञानीको उचित है कि वह उसे हरी घाससे छिपे हुए कुँएके समान अधःपतनका कारण समझै ॥ ४० ॥ यह जीव स्त्रीसंग करनेसे स्त्रीयोनिको प्राप्त होता है। वह स्त्रीयोनिगत जीव मोहवश पुरुषरूपिणी मेरी मायाको धन, पुत्र और गृहादिका देनेवाला अपना पति मानता है ॥ ४१ ॥ स्त्रीयोनिको प्राप्त जीव यदि मुक्तिकी इच्छा करे तो वह पति, पुत्र, गृहस्वरूप ईश्वररचित मायाको उसी भाँति अपना मृत्यु जानै, जैसे व्याधका संगीत (गाना) मृगको फँसाने और मारनेवाला होता है ॥ ४२ ॥ मातः! जीवका एक योनिसे दूसरी योनिमें जाना असम्भव नहीं है। क्योंकि यद्यपि जीवका स्थूल शरीर छूट जाता है पर उसका उपाधिस्वरूप और एक वासनामय लिंगशरीर होता है, उसी शरीर सहित यह जीव एक लोकसे अन्य लोकमें अर्थात् एक योनिसे अन्य योनिमें गमन करता है एवं पूर्वकृत कर्मोंका फलभोग व अन्यकर्म निरन्तर करता है ॥ ४३ ॥ यह लिंगशरीर जीवकी उपाधि है एवं आत्माके अनुगत स्थूल पञ्चतत्त्वका विकार जो यह इन्द्रियमनोमय स्थूलशरीर है सो विषयभोग (रूप देखना आदि) करनेवाला है । इन दोनोंका अपने २ कार्य्यमें असमर्थ वा अयोग्य होना ही जीवका मरण है और इनका प्रकट होना ही जीवका जन्म है ॥ ४४ ॥ जैसे रूप आदि द्रव्योंकी उपलब्धिके स्थान जो नेत्रगोलक आदि हैं वे पुतलीके तिल आदिके दोषसे रूप आदिकी उपलब्धिमें असमर्थ होते हैं तब चक्षु आदि इन्द्रियोंकी भी अयोग्यता होती है और चक्षुइन्द्रिय आदि व अक्षिगोलक आदि दोनो की अयोग्यतासे देखनेवाले जीवकी भी देखनेमें अयोग्यता होती है[१] वैसे ही

(१) इसका और स्पष्ट आशय यह है—जैसे आँखकी पुतलीमें मोतियाबिन्दु आदि दोष होनेसे वह देख नहीं सक्ती उससे चक्षु इन्द्रिय भी बेकाम हो जाती है। तब आत्मा भी "मुझे नहीं देख पड़ता" यह विचार करता है तो वस्तुतः रूपका नाश न होने पर भी उस अंधेके लिये रूपका नाश हो गया, वैसे ही स्थूल शरीर जब चैतन्यहीनता दोषसे विषयोंका ग्रहण नहीं कर सक्ता तो "मैं देखता हूं," इत्यादि भाव भी नष्ट होगये यही जीवका मरण है। और आगे स्पष्ट है।

द्रव्योंकी उपलब्धिका स्थान जो स्थूलशरीर है उसकी जब विषयोंकी उपलब्धिमें अयोग्यता होती है तब लिंगशरीरकी भी अयोग्यता होती है, यही जीवका मरण है (जीवका नाश नहीं होता)। "यह मैं हूँ" इस अभिमानसे शरीरकी उत्पत्ति ही जीवका उत्पन्न होना है ॥४५॥ जीवकी वस्तुतः उत्पत्ति और नाश नहीं है, अतएव मृत्युसे भय करना वा जीवनमें दीनता एवं जीवनके लिये प्रयत्न करना उचित नहीं है। धीर हो कर इस प्रकार जीवकी गतिको जान कर असत्सङ्ग छोड़ कर पृथ्वीमें विचरण करना चाहिये ॥ ४६ ॥

सम्यग्दर्शनया बुद्ध्या योगवैराग्ययुक्तया ॥
मायाविरचिते लोके चरेन्न्यस्य कलेवरम् ॥ ४७ ॥

मातः! इस मायामय संसारमें जीवको अवश्य ही रहना होगा। किन्तु मुक्त होनेके लिये जीवको सर्वदा इस संसारमें योग व वैराग्यसे बुद्धि शुद्ध कर एवं सब अवस्थाओंमें हित-अहितकी विवेचना करके विचरण करना योग्य है, नहीं तो पग २ पर पतित होनेकी सम्भावना है ॥ ४७ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंश अध्याय।

सात्त्विक धर्म्म करनेसे सात्त्विकी ऊर्द्ध्वगति व अज्ञानसे पुनरागमनका वर्णन।

कपिल उवाच—अथ यो गृहमेधीयान्धर्मानेवावसन्गृहे ॥
काममर्थं च धर्मान्स्वान्दोग्धि भूयः पिपर्ति तान् ॥१॥

श्री कपिलजी बोले। मातः! जो जीव गृहस्थाश्रममें यज्ञ, दान, व्रत आदि धर्म्मोंको सकाम हो कर करता है एवं उनसे अर्थ, कामरूप फलकी कामना कर उन धर्म्मोंको दुह लेता है और इस प्रकार जीवन भर उन धर्म्मोंका कामनापूर्व्वक आचरण करता रहता है ॥ १ ॥ और अनेक प्रकारके यज्ञादिसे श्रद्धापूर्व्वक पितृगण और देवगणकी पूजा करता है एवं कामनामें मूढ़ हो कर ईश्वरके धर्म्म अर्थात् निष्काम धर्म्म नहीं करता ॥ २ ॥ वह पितृगण और देवगणकी पूजामें श्रद्धा करनेवाला मरनेके उपरान्त चन्द्रलोकमें जा कर सोमपान करता है किन्तु उसको मनुष्यलोकमें फिर लौट कर आना पड़ता है ॥ ३ ॥ जब शेषशायी विष्णु भगवान् योगनिद्राका आश्रयग्रहण कर शेषशय्या पर शयन करते हैं तब दैनन्दिन प्रलयमें इन गृहाश्रमी लोगोंके पुण्यसे प्राप्त लोक लय हो जाते हैं ॥ ४ ॥ परन्तु जो

धीर व्यक्ति अपने धर्म्मोंको अर्थ और काम पानेकी इच्छा न करके नहीं दुहते, अनासक्त हो कर अपने सम्पूर्ण कर्म्मोंको ईश्वरके अर्पण कर देते हैं, चित्तको शुद्ध रखते हैं, शान्त रहते हैं, निवृत्ति(मुक्ति)धर्म्ममें रत रहते हैं, ममता और अहंकारको त्याग देते हैं एवं सात्त्विक धर्म्मोंके आचरणसे अन्तःकरणको निर्म्मल कर लेते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ वे सूर्य्यमण्डल हो कर विश्वमें परिपूर्ण पुरुष (ब्रह्म) को प्राप्त होते हैं (१), जो परम पुरुष पर और अवर दोनोका ईश है और इस जगत्का उपादानकारण व निमित्तकारण है ॥ ७ ॥ और जो योगीजन परमेश्वरबुद्धिसे देव हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा)के उपासक हैं वे भी क्रमशः उसी लोक(सत्यलोक)को जाते हैं। वे लोग द्वि-परार्धपर्यन्त जब ब्रह्मलोकका नाश अर्थात् महाप्रलय होता है तबतक वहाँ रहते हैं ॥ ८ ॥ पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, मन, इन्द्रिय, रूपादि विषय, एवं अहंकारादिसे परिवृत इस मायामय विश्वके संहार करनेकी इच्छासे स्वयंभू भगवान् ब्रह्मा, द्वि-परार्द्ध-परिमित कालका भोग करके त्रिगुणरूप हो, विकाररहित परमेश्वरमें प्रवेश करते हैं ॥ ९ ॥ तब जो योगीजन वायु एवं मनको जीत कर, विरक्त हो कर शरीरत्यागपूर्व्वक प्रथम ब्रह्मामें लीन हुए थे वे ब्रह्माके साथ ही परमानन्द-रूप पुराणपुरुष ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं (२)। विगताभिमान न होनेके कारण ये योगी एकदम ब्रह्ममय नहीं होते, क्रमशः निरभिमान होकर ब्रह्ममें लीन होते हैं और जो शुद्ध भगवद्भक्त अर्थात् परब्रह्मके उपासक हैं वे एकदम ब्रह्मपदका लाभ करते हैं ॥ १० ॥ भामिनि! वह ब्रह्म सब प्राणियोंके हृदयकम-लोंमें वर्त्तमान हैं, सर्व्वत्र उनका प्रभाव सुन पड़ता है; तुम शुद्ध भक्तिभावसे उन्हींका भजन करो। उनकी शरण जानेसे तुम्हारी एकदम मुक्ति हो जायगी ॥ ११ ॥ चराचर जगत्के आदिम स्रष्टा, वेदगर्भ ब्रह्मा व मरीचि आदि ऋषिगण और सनकादिक योगीश्वर एवं सिद्धगण व योगप्रवर्त्तक अन्यान्य जन निष्काम कर्म्मद्वारा अपने २ कर्म्मका फल पारमेष्ठ्यपद एवं विविध ऐश्वर्य्य भोग कर, प्रलयकालमें मायाके गुणोंके अधिष्ठाता एवं प्रथमावतार पुरुषरूप ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। किन्तु भेददृष्टिके अभिमानपूर्व्वक अर्थात् "हम" इस भिन्नभावसहित उपासना करनेके कारण इन सबको भी ईश्वररूपी कालके प्रभावसे सत्त्वादि तीनो गुणोंकी सृष्टि होने पर पहलेकी भाँति फिर जन्म लेकर अपने २ अधिकारमें स्थित होना पड़ता है ॥१२॥१३॥१४॥१५॥ जब सात्त्विक भावसे उपासना करनेवाले

(१) "सूर्य्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः पुरुषो ह्यव्ययात्मा।" इति श्रुतिः।

(२) "ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे। परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परम्पदम् ॥" इति श्रुतिः। अर्थात् वे सब महाप्रलय प्राप्त होने पर ब्रह्मासहित परमपदमें प्रवेश करते हैं अतएव वे कृतात्मा अर्थात् कृतार्थ हैं।

ब्रह्मादिको भी केवल "हम" इस भावके न त्याग सकनेके कारण पुनर्जन्म लेना पड़ता है तब जो लोग कर्म्ममें आसक्तचित्त हो कर श्रद्धापूर्व्वक स्वर्गादिकी कामनासे यज्ञादि कर्म्म व अन्य नैमित्तिक कर्म्म करते हैं, उनके पुनर्जन्म लेनेमें क्या संशय है? ॥ १६ ॥ उन अजितेन्द्रिय, कामनायुक्त मनुष्योंका मन रजोगुणसे मलिन रहता है, उनका अन्तःकरण विषयसुखमें लिप्त रहता है अतएव वे नित्यप्रति पितर और देवगणकी उपासना किया करते हैं ॥ १७ ॥ वे धर्म्म, अर्थ व कामके लाभकी लालसा रखते हैं और जिनके चरित्र कहने योग्य हैं उन मधुसूदन हरिकी कथाओंके पढ़ने सुननेमें विमुख रहते हैं ॥१८॥ निश्चय, दैवने उनको नष्ट कर दिया जो लोग अच्युत भगवान्‌की कथारूप अमृतको त्याग कर असत् कथाओंको कहते और सुनते हैं; जैसे काक, शूकर आदि विष्ठा खानेवाले जीव अच्छे २ स्वादिष्ट पदार्थ छोड़ कर विष्ठा खाते हैं ॥१९॥ ऊपर जिनका वर्णन किया जा चुका है वे कामनायुक्त कर्म्म करनेवाले लोग मरणके उपरान्त सूर्य्यके दक्षिणमार्गसे अर्थात् प्रवृत्तिपथ हो कर पितृलोकको जाते हैं, और पुण्य क्षीण होने पर वहाँसे आ कर अपने २ वंशमें जन्मग्रहण करते हैं एवं फिर गर्भाधानसे ले कर श्मशानकी अन्त्येष्टि-क्रियापर्यन्त सब क्रियाओंको शास्त्रोक्त विधिसे करते हैं ॥ २० ॥ उनका सुकृतकाल पा कर जब क्षीण हो जाता है तब भोग-विभव नष्ट होनेके कारण वे दैववश विवश हो कर फिर इसी लोकमें आते हैं ॥ २१ ॥ अतएव हे जननि! आप मुक्तिके लिये अपने सम्पूर्ण भाव हरिमें लगाओ और भगवान्‌के चरित्रोंमें श्रवण-कीर्त्तन-रूप भक्ति करके हरिका भजन करो, क्योंकि उन्हीके चरणकमल भजने योग्य हैं ॥२२॥ मातः! वासुदेव भगवान्‌की विशुद्ध निष्काम भक्ति शीघ्र ही मनमें वैराग्य और ब्रह्मके दिखानेवाले ज्ञानको उत्पन्न कर देती है ॥ २३ ॥ जब भक्तका चित्त हरिके गुणोंके अनुरागद्वारा हरिमें स्थिर भावसे लग जाता है और वस्तुतः सम भावको प्राप्त जो इन्द्रियोंके विषय हैं उन में "प्रिय" और "अप्रिय" भावकी विषमताको नहीं ग्रहण करता अर्थात् सिवाय ईश्वरभावके अन्य सब वस्तुओंमें उदासीन भाव धारण करता है ॥२४॥ तब वह भक्तका शुद्ध चित्त, आत्मा (मन) द्वारा स्वयं प्रकाशमान आत्माको निःसङ्ग व हेय (त्यागनेयोग्य), उपादेय (ग्रहण करने-योग्य) विषयोंसे रहित और सर्व्वत्र समान मान कर "मैं ही परमानन्द हूँ" इस प्रकारके निश्चयको प्राप्त होता है॥ २५ ॥ केवल ज्ञानस्वरूप भगवान्‌को ही परब्रह्म परमात्मा, परमेश्वर, परमपुरुष इत्यादि कहते हैं। वह एक हो कर भी ज्ञानमात्रत्व स्वरूपसे दृश्य, द्रष्टा आदि भावोंसे पृथक् २ प्रतीयमान हैं ॥ २६ ॥ पूर्णतया संग-हीन आत्माकी प्राप्ति ही योगीके समग्र योगका अभिमत अर्थ है अर्थात् प्रपञ्चके संगकी निवृत्ति ही योगका फल है ॥२७॥ ऐसे भ्रान्त और शब्दादिधर्म्मयुक्त इन्द्रि-यादि भी इसी निःसङ्ग ज्ञान द्वारा सर्व्वत्र प्रकाशित निर्गुण ब्रह्मका अनुभव कर

सक्ते हैं अर्थात् इस असत्सङ्गहीन ज्ञान द्वारा इन्द्रियोंसे भी सब विषय ब्रह्ममय ज्ञात होते हैं ॥ २८ ॥ (इन्द्रियगण ब्रह्मका अनुभव इस प्रकार कर सक्ते हैं) उसी एक प्रकृति और पुरुषके संयोगसे प्रथम महत्तत्त्व और उससे अहंतत्त्वका प्रकाश होता है, अहंतत्त्वसे सात्त्विक, राजस व तामस त्रिविध गुणभेदसे पंचभूत, जीव और मन सहित ग्यारह इन्द्रियोंके सम्मिलन द्वारा ब्रह्माण्डका प्रकाश होता है । इन्द्रियादि इस ब्रह्माण्डका अनुभव कर सक्ते हैं । ब्रह्माण्ड और ब्रह्ममें कोई प्रभेद नहीं है, क्योंकि ब्रह्म कारणरूपसे कार्य्यरूप ब्रह्माण्डमें है। इस ब्रह्माण्डको ब्रह्ममय जानना ही इन्द्रियों द्वारा ब्रह्मका अनुभव है ॥ २९ ॥ जो श्रद्धापूर्वक भक्तिलाभ करके, भक्तिसहित योगाभ्यासमें सदा रत हो कर संसारकी आसक्तिको त्याग देता है और विरक्त हो कर आत्मामें संयुक्त हो रहता है वही ब्रह्माण्डमें व्याप्त ब्रह्मको योग द्वारा देख सक्ता है ॥ ३० ॥ मातः! तुमने जो ब्रह्मके दिखलानेवाले ज्ञानका वर्णन करनेके लिये कहा था सो मैंने तुमसे वर्णन किया; इस ज्ञानकी साधनामें सिद्ध होनेसे प्रकृति और पुरुषके तत्त्वका बोध होता है ॥३१॥ निर्गुण ज्ञानयोग एवं मेरी भक्तिका योग; इन दोनोका एक ही प्रयोजन है, इन दोनोसे भगवान् ब्रह्मकी प्राप्ति हो सक्ती है ॥ ३२ ॥ जैसे रूप रस आदि अनेक गुणवाला गुड़ दुग्ध आदि पदार्थ एक हो कर भी भिन्न २ मार्गमें प्रवृत्त इन्द्रियों द्वारा विभिन्न प्रतीत होता है अर्थात् चक्षुसे दुग्ध श्वेत जान पड़ता है, रसनासे मीठा और स्पर्शसे शीत इत्यादि, वैसे ही एक ईश्वर भिन्नमार्गावलम्बी शास्त्रोंसे अनेक प्रतीत होता है ॥३३॥ पूर्त्त (बावली, कूप, तालाव आदि खुदवाना) कर्म्म, यज्ञ, दान, तप, वेदाध्ययन, मीमांसा (विचार), आत्मा और इन्द्रियोंका जीतना, संन्यास, अष्टांग योग, भक्तियोग, प्रवृत्ति व निवृत्ति भेदसे सकाम और निष्काम धर्म्म ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ और आत्मतत्त्वका ज्ञान, दृढ़ वैराग्य इत्यादि मार्गोंसे स्वयं प्रकाशित सगुण (स्वर्गादिलोक) और निर्गुण (मुक्ति) ब्रह्म ही प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ जो सबको उत्पन्न और नष्ट करता है एवं जिसकी गति जानी नहीं जाती, उस कालका स्वरूप और चतुर्विध भक्तियोगका स्वरूप मैंने तुमसे कहा ॥ ३७ ॥ मातः! अविद्याकृत कर्मोंका फलस्वरूप जीवकी अनेक गतियाँ हैं, जिनमें जा कर यह जीव आत्माकी गति अर्थात् अपने रूपको नहीं जानता ॥ ३८ ॥ यह जो मैंने आपसे सांख्यशास्त्र कहा है, इसका उपदेश, प्राणियोंसे द्रोह करनेवाले दुष्ट, अविनीत, दुराचारी, स्तब्ध, पाखण्डी, लोभी, विषयी एवं मुझसे व मेरे भक्तोंसे द्वेष करनेवाले मनुष्यको कदापि देना नहीं योग्य है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ जो श्रद्धावान् भक्त, नम्र, ईर्षाहीन, सब प्राणियोंसे मित्रता करनेवाला, सेवा करनेवाला, विषयोंसे विरक्त, शान्तचित्त, मात्सर्य्यहीन, पवित्र एवं मुझको प्रियसे भी प्रिय जानता हो उसे इस शास्त्रका उपदेश देना कर्त्तव्य है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

य इदं शृणुयादम्ब श्रद्धया पुरुषः सकृत् ॥
यो वाऽभिधत्ते मच्चित्तः स ह्येति पदवीं च मे ॥४२॥

मातः! जो कोई इसको श्रद्धापूर्वक एक वार भी सुनता है वा जो कोई मुझमें चित्त लगा कर सांख्ययोगका अभ्यास करता है वह मेरी पदवीको अवश्य प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंश अध्याय ।

देवहूतिको ज्ञानलाभ व मुक्तपदकी प्राप्ति ।

मैत्रेय उवाच—एवं निशम्य कपिलस्य वचो जनित्री
सा कर्दमस्य दयिता किल देवहूतिः ॥
विस्रस्तमोहपटला तमभिप्रणम्य
तुष्टाव तत्त्वविषयाङ्कितसिद्धिभूमिम् ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले । कपिल मुनिके ये वचन सुन कर कर्दमकी स्त्री एवं उनकी माता देवहूतिका मोहरूप आवरण अन्तःकरणसे हट गया । तब वह सांख्य शास्त्रके प्रवर्त्तक कपिल मुनिको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगीं ॥ १ ॥ श्रीदेवहूतिजी बोलीं । हे भगवन्! आपका यह व्यक्त शरीर भूतइन्द्रिय आत्मामय एवं मनोमय है । यह सम्पूर्ण कार्य्योंका बीजस्वरूप है । इसमें सम्पूर्ण गुणोंका प्रवाह वर्त्तमान है । अज ब्रह्माने प्रलयकालके महासागरके बीच शयन कर रहे जो आप थे उनके नाभिकमलसे उत्पन्न हो कर आपके इसी शरीरका ध्यान किया था ॥ २ ॥ भगवन्! आप स्वयं क्रियारहित हैं किन्तु गुण-प्रवाहरूपसे अपनी शक्तिका विभाग करके इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और नाश करते हैं । आप सत्यसंकल्प और सब जीवोंके ईश्वर हैं । आपकी शक्तियाँ अनन्त व अतर्क्य हैं ॥ ३ ॥ नाथ! प्रलयकालमें आपने अपने उदरमें इस विश्वको धारण किया था, उन्हीं आपको मैंने अपने उदरमें धारण किया! आपकी इच्छारूप मायाके कैसे आश्चर्य्यमय व्यापार हैं । आप ही प्रलयमें माया-शिशु (बाल गोविन्द) हो कर चरणका अँगूठा पान करते हुए वटपत्रमें शयन करते हैं ॥ ४ ॥ आप अपनी इच्छासे देह धारण करते हैं । भगवन्! पापियोंका दमन करनेके लिये जैसे आपने वाराह आदि अवतार लिये हैं वैसे ही यह (कपिल) अवतार भी अज्ञानियोंको आत्माका मार्ग दिखानेके लिये लिया है

॥ ५ ॥ आपके नामके श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण करने पर या "हरे! नारायण!" आदि कह कर कभी धोखेसे पुकारने पर श्वानमांसभोजी चाण्डाल भी पवित्र हो कर यज्ञ करनेके अधिकारको तुरन्त प्राप्त होता है, तब भगवन्! आपका साक्षात् दर्शन पाकर पवित्र होनेमें क्या सन्देह है? ॥ ६ ॥ अतएव जिसकी जिह्वामें आपका पतितपावन पवित्र नाम वर्त्तमान है वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है। जो लोग आपका नाम लेते हैं उन आर्य्य (श्रेष्ठ) जनोंने प्रथम जन्ममें बड़ा तप किया है, हवन किया है, स्नान किया है और वेद पाठ किया है। (आपके नामका कीर्त्तन महाभाग्यके उदयसे होता है अतएव प्रतीत होता है कि आपका नाम लेनेवालोंने अवश्य उक्त सुकृत किये हैं) ॥ ७ ॥ आप ही परब्रह्म, परम-पुरुष हैं, आप ही विषयोंसे हटे हुए एकाग्र मनसे चिन्तनीय हैं, आपके ही प्रभावसे गुणोंका प्रवाह अर्थात् जन्म-मरण नष्ट होता है। प्रलयकालमें आपके ही गर्भमें वेद निहित थे, आप ही कपिलनामधारी विष्णु हैं, अतएव मैं आपको ही प्रणाम करती हूँ ॥ ८ ॥ **श्री मैत्रेयजी कहते हैं।** इस प्रकार स्तुति करने पर मातृवत्सल भगवान् कपिलदेव परमपुरुष गंभीर वाक्यसे मातासे बोले ॥ ९ ॥ **श्री कपिलमुनि बोले** । हे मातः! यह जो मैंने योगमार्गका उपदेश दिया है सो आप करके सुखपूर्व्वक सेवन करने योग्य है। आप इस योगका आचरण करो, इसके करनेसे शीघ्र ही परमपद अर्थात् जीवन्मुक्त पदवीको पाओगी ॥१०॥ मेरा यह मत ब्रह्मादि ब्रह्मवादी लोगों करके सेवित एवं पूजित है, आप भी इसमें श्रद्धा (विश्वास) करो, उसके आचरणसे आप मेरे अभयपद अर्थात् ब्रह्मपदको पाओगी; इस ब्रह्मपदका किसीकालमें क्षय नहीं है। इस योगके न जाननेवाले लोग मृत्युके भयसे नहीं छूटते॥११॥ **मैत्रेयजी कहते हैं।** भगवान् कपिल देव अपनी सती माताको आत्माकी गति दिखा कर, ब्रह्मज्ञानको प्राप्त ब्रह्मवादिनी अपनी माताकी अनुमति ले कर वहाँसे इच्छापूर्व्वक चले गये ॥ १२ ॥ देवहूति भी पुत्रके बताये हुए योगमार्गके अनुसार योगमें युक्त हुई, एवं सरस्वती नदीके पुष्पमुकुट सदृश सुशोभित उस आश्रममें समाधिस्थ हुई ॥ १३ ॥ तीनो काल स्नान करनेके कारण उनकी कुटिल अलकें जटा हो गई और तेल न लगानेसे एवं रज आदिके पड़नेसे वे जटाएँ भूरी २ हो गई। उनका बल्कलशोभित शरीर उग्रतपसे अति दुर्बल हो गया ॥ १४ ॥ देवहूतिने प्रजापति कर्दमके योगबलके फलस्वरूप गृहस्थाश्रमकी सम्पत्तिको सहज ही त्याग दिया, वह सम्पत्ति विमानवासी देवगणके भी मनको लुभानेवाली थी ॥ १५ ॥ उसके भोगोंका क्या कहना है–दुग्धके फेनतुल्य शय्या, जिनके पाये हाथीदाँतके और पाटी आदि सामान सोनेका था, उन पर कोमल बिछौने बिछे थे। ठौर २ सोनेकी चौकियां पड़ी थीं ॥ १६ ॥ दीवालें सब निर्म्मल स्फटिकमणि और मरकत मणिसे रचित थीं, वहाँ रत्नमय

दीपक जला करते थे और सुन्दर सुन्दरियाँ उसकी शोभाको बढ़ाती थीं ॥१७॥ वहाँके उपवनोंमें रमणीक फूल और फलोंसे युक्त अनेक कल्पवृक्ष सुशोभित थे, जहाँ पक्षीगण सहित अपनी २ स्त्रियोंके मधुर मनोहर शब्द करते थे और मत्त भ्रमरगण गान करते थे ॥ १८ ॥ जहाँ जाने पर सरोजगंधयुक्त सरोवरोंके तट पर बैठी हुई देवहूतिकी प्रशंसा देवानुचर गन्धर्व्वगण करते थे एवं कर्द्दमजी उनका रक्षणावेक्षण करते थे ॥ १९ ॥ इन्द्राणीकी भी प्रार्थनीय ऐसी सम्पत्तिको देवहूतिने अनायास ही त्याग दिया किन्तु पुत्रके विरहसे कातर होनेके कारण उनका मुख कुछ मलीन हो गया ॥ २० ॥ एक तो उनके पति कर्दम उनको छोड़ कर संन्यास ग्रहण करके वनको चले गये, दूसरे वैसे ही पुत्रका भी वियोग हुआ; सुतराम् तत्त्वज्ञान होने पर भी देवहूति आतुर हुईं, जैसे बछड़ेके खो जाने पर गऊ व्याकुल होती है ॥ २१ ॥ पुत्ररूप हरि कपिल देवका ध्यान करते २ क्रमशः शीघ्र ही देवहूतिजी ऐसे भोगयुक्त गृहमें निस्पृह हो गईं ॥ २२ ॥ प्रसन्नमुख कपिल देवने भगवान्के ध्यानगोचर रूपके विषयमें जो २ कहा था, देवहूतिजी उसी भाँति समस्त (पूर्णरूप) और व्यस्त (एक २ अंग) भावसे चिन्तन करके ध्यान करने लगीं ॥ २३ ॥ भगवान्के रूपमें दृढ़ भक्ति होनेके कारण प्रथम देवहूतिके हृदयमें (शीघ्र ही) दृढ़ वैराग्यका उदय हुआ, फिर उसी वैराग्यके अनुष्ठानपूर्व्वक योगसाधन करनेसे ब्रह्मज्ञापक ज्ञानका प्रकाश हुआ ॥ २४ ॥ उसी ज्ञान द्वारा उनका हृदय भली भाँति शुद्ध होनेके कारण उन्होने प्रथम ब्रह्माण्डमें व्याप्त आत्माका अनुभव किया, फिर आत्माकी उपाधि जो प्रकृतिके गुणमय कार्य्योंका प्रवाह है उसका अनुभव किया। फिर सब उपाधि त्याग कर अपने आत्माको भगवान् ब्रह्ममें अवस्थित विचार कर मायामय ऐश्वर्य्यसे अतीत हो गईं, अर्थात् अपनेको शुद्ध ब्रह्म जान कर इस मायाको अपनेसे विभिन्न किया, जीवन्मुक्त होगईं; हे विदुर! जन्म और मरणरूप प्राकृतिक क्लेशमय जीवभावसे वह निस्तार पा गईं। नित्य ईश्वरकी चिन्ता अर्थात् "मैं ब्रह्म हूँ" इस भावमें मग्न रहनेके कारण उनका मायाकृत अज्ञान और भ्रम दूर हो गया। जैसे स्वप्न देख कर उठे हुए पुरुषको स्वप्नके देखे हुए विषयका स्मरण नहीं होता वैसे ही उनको ज्ञान होनेके कारण स्वप्नतुल्य देहका होश नहीं रहा अर्थात् ब्रह्मानन्दमें लीन होगईं ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ उनके शरीरका पोषण कर्दमके योगबलसे उत्पन्न विद्याधरियाँ करती रहीं अतएव वह (देह) योगसाधनमें समर्थ रहा एवं मनमें ग्लानि न होनेसे अर्थात् केवल आनन्दमय होनेके कारण शरीर जर्जर भी नहीं हुआ। उनका शरीर मलसे आवृत होनेके कारण धूमसहित अग्निके समान देख पड़ने लगा ॥ २८ ॥ उनका तप और योगसे युक्त एवं दैव (पूर्व्वज कर्म्म) से रक्षित अंग कभी मुक्तकेश वा वस्त्रहीन होने पर

भी उनका मन वासुदेव भगवान्में मग्न रहनेके कारण वह अपनी बाह्य अवस्थाको न जानती भई अर्थात् उन्हे देहाध्यास नहीं रहा ॥ २९ ॥ इस प्रकार कपिलजीके कहे हुए मार्गसे वह देवहूति थोड़े ही समयमें परब्रह्म, परमात्मा, कैवल्यमय भगवान्को प्राप्त हुईं ॥ ३० ॥ हे वीर! जहां देवहूतिको सिद्धि (मोक्ष) प्राप्त हुई वह परमपवित्र क्षेत्र "सिद्धिपद" नामसे तीनो लोकमें प्रसिद्ध हुआ ॥ ३१ ॥ हे सौम्य! वह सिद्धिको प्राप्त देवहूति ब्रह्मलाभके समय जिस योगसे निर्म्मल शरीरको छोड़ गईं वह स्थूल शरीर सिद्धिदायिनी, सिद्धसेविता श्रेष्ठ नदी हो गया ॥३२॥ महायोगी भगवान् कपिल देव, मातासे आज्ञा लेकर पिताके आश्रमसे पूर्व उत्तरके कोनेमें चले गये ॥ ३३ ॥ सिद्ध, चारण, गन्धर्व्व, मुनि और अप्सरागणने उनकी स्तुति की एवं वह जब समुद्रतीर पर पहुँचे तब उसने भी पूजन व स्तुति कर उन्हे अपने तीर पर रहनेका स्थान दिया अर्थात् वह समुद्रतीर पर जा कर स्थित हुए ॥ ३४ ॥ वह सांख्याचार्य्योंमें श्रेष्ठ भगवान् कपिल देव तीनो लोकोंकी शान्तिकी कामनासे समाहित हो कर वहां योगानुष्ठान करनेमें तत्पर हैं ॥ ३५ ॥ हे निष्पाप! हे तात! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार यह देवहूति और कपिलका पवित्र सम्वाद मैंने तुमसे कहा ॥ ३६ ॥

य इदमनुशृणोति योऽभिधत्ते कपिलमुनेर्मतमात्मयोगगुह्यम् ॥
भगवति कृतधीः सुपर्णकेतावुपलभते भगवत्पदारविंदम् ॥ ३७॥

जो कोई इस आत्मयोगके रहस्यसे युक्त कपिल मुनिके मतको सुनता है वा इसका अनुष्ठान करता है उसका चित्त भगवान् गरुड़वाहन विष्णुमें लगता है और वह भगवान्के चरणारविन्दोंको पाता है ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

समाप्तोऽयं तृतीयस्कन्धः ॥



शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

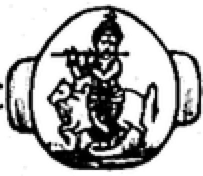
श्रीमद्भागवतभाषा.

चतुर्थस्कन्धः





वन जातेहुये ध्रुवजीको नारदजीका मिलाप.



॥ श्री ॥

शुकोक्तिसुधासागरः।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा

चतुर्थस्कन्धः



* प्रथम अध्याय *

स्वायम्भुव मनुकी अन्य दो कन्याओंके वंशका वर्णन।

मैत्रेय उवाच—मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे॥
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः॥ १॥

श्री मैत्रेयजी बोले। हे विदुर! स्वायम्भुव मनुके शतरूपा नाम रानीमें प्रियव्रत और उत्तानपाद, इन दो पुत्रोंके अतिरिक्त आकूति, देवहूति और प्रसूति ये तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं॥ १॥ मनुजीने अपनी आकूति नाम कन्याका बिवाह पुत्रिकाधर्म्म (१) का आश्रय करके रुचि प्रजापतिके साथ कर दिया। यद्यपि

(१) "अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम्। अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति॥" अर्थात् विना भाईकी यह भूषित तुम्हारे योग्य कन्या मैं तुमको इस प्रतिज्ञासे देता हूं कि इसके जो पहला लड़का होगा वह मेरा होगा। यों कह कर कन्या देनेको पुत्रिकाधर्म्म कहते हैं।

पुत्रिकाधर्म्म जिसके पुत्र नहीं होता उसीके लिये योग्य है और आकूतिके भाई थे अर्थात् मनुके पुत्र थे पर शतरूपाके अनुमोदनसे ऐसा किया ॥ २ ॥ ऐश्वर्ययुक्त ब्रह्मवर्चस्वी प्रजापति रुचिने ईश्वरध्यानपूर्वक आकूतिमें एक कन्या और एक पुत्र उत्पन्न किया ॥३॥ रुचिके पुत्र तो साक्षात् विष्णु 'यज्ञ'स्वरूपधारी हुए और कन्या परमपवित्र लक्ष्मीका अंश दक्षिणा नाम हुई ॥ ४ ॥ तव प्रसन्नतापूर्व्वक स्वायम्भुव मनु, परमतेजस्वी पुत्रीके पुत्रको अपने घर ले आये और दक्षिणा नाम कन्याको रुचिने ग्रहण किया ॥५॥ दक्षिणा लक्ष्मीका अंश थीं अतएव उन्होने विष्णुके अंश यज्ञ भगवान्को अपना पति करना चाहा तब यज्ञपुरुषने प्रसन्नतापूर्वक प्रसन्नतायुक्त दक्षिणासे विवाह किया। दक्षिणामें यज्ञ भगवान्के वीर्य्यसे तोष, प्रतोष, संतोष, भद्र, शांति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वन्ह, सुदेव और रोचन ये बारह पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ ७ ॥ स्वायंभुव मन्वन्तरमें ये ही यज्ञजीके पुत्र तुषित नाम देवगण हुए, मरीचि आदि सप्तऋषि हुए, यज्ञ भगवान् हरिका अवतार एवं इन्द्र हुए (१) ॥ ८ ॥ प्रियव्रत और उत्तानपाद; ये महाबली दोनो मनुके पुत्र पृथिवीका पालन करनेवाले राजा हुए। स्वायंभुवजी मनु हुए। मनुके पुत्र पौत्र और नातियोंसे स्वायंभुव मन्वन्तर व्याप्त हुआ ॥ ९ ॥ देवहूति नाम कन्याका विवाह मनुने कर्दमजीके साथ कर दिया। उनका सब वृत्तान्त लगभग सब आप मेरे मुखसे सुन चुके हैं ॥ १० ॥ भगवान् मनुने ब्रह्माके पुत्र दक्षको प्रसूति नाम कन्या दी, जिसकी महासृष्टिसे त्रिलोकी व्याप्त हो गई ॥ ११ ॥ कर्दमकी नव कन्याएँ ब्रह्मर्षियोंको व्याही गईं, ऐसा पहले कह चुके हैं, अब उनके वंशका वर्णन करते हैं-सुनो ॥ १२ ॥ कर्दमकी कन्या कला मरीचिऋषिको व्याही गई, इसके कश्यप और पूर्णिमान दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके वंशसे यह जगत् परिपूर्ण हो गया ॥ १३ ॥ पूर्णिमानके विरज और विश्वग नाम दो पुत्र और देवकुल्या नाम कन्या हुई; हे परन्तप! यही देवकुल्या अन्य जन्ममें हरिके पादप्रक्षालनसे उत्पन्न देवनदी (गंगा) हुई ॥ १४ ॥ कर्दमकी कन्या अनुसूया अत्रिको व्याही गई, उसके परमयशस्वी दत्त, दुर्वासा, सोम, ये तीन पुत्र विष्णु, शिव और ब्रह्माके अंशसे यथाक्रम उत्पन्न हुए॥१५॥ विदुरजी बोले। हे गुरो! सृष्टिके उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाले ब्रह्मा आदि देववर क्या करनेके लिये अपने२ अंशसे उत्पन्न हुए? सो आप मुझसे कहो ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी बोले। ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ अत्रिऋषिको ब्रह्माने सृष्टि करनेकी आज्ञा दी, तब अत्रिजी सहित अनसूया नाम स्त्रीके तप करनेकी इच्छासे ऋक्ष नाम पर्व्वत पर गये ॥ १७ ॥ वहाँ पलाश और अशोकके

---

(१) "मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः। ऋषयोंऽशावताराश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥" अर्थात् मनु, देवता, मनुके पुत्र, इन्द्र, सप्तऋषि एवं हरिके अंशावतार; ये छः प्रतिमन्वन्तरमें अलग २ होते हैं, इन्हींकी संज्ञा "मन्वन्तर" है।

वृक्षोंका वन फूलोंके गुच्छोंसे सुशोभित था एवं निर्विन्ध्या नदीमें झरनोंसे जल गिरनेका मनोहर शब्द सुन पड़ता था ॥ १८ ॥ अत्रि मुनिने प्राणायामसे मनको एकाग्र किया और शीत, गर्मी आदिका सहन करने लगे। इस प्रकार केवल वायु भोजन करके एक पैरसे खड़े हो कर सौ वर्ष तक घोर तप करते रहे ॥ १९ ॥ एवं मनमें यह विचार करते रहे कि "मैं जगत् भरका जो ईश्वर है उसकी शरण हूँ, वह मुझे अपने समान गुण व शीलवाला पुत्र दे।" ॥ २० ॥ मुनिके प्राणायामसे बढ़ा हुआ योगाग्नि ब्रह्माण्ड (खोपड़ी) से निकलने लगा, जिससे तीनो लोक जलने लगे। यह देख कर अप्सरा, मुनि, गंधर्व, सिद्ध, विद्याधर, नाग जिनके यशका गान करते हैं वे तीनो ब्रह्मा, विष्णु, महेश, मुनिके आश्रममें वर देनेके लिये आये ॥ २१ ॥ २२ ॥ तीनो देववरोंके प्रादुर्भावसे मुनिका मन प्रसन्न हुआ। एक पैरसे खड़े हुए मुनिने देखा कि हंस, गरुड़ और बैल पर सवार एवं अपने २ चिन्ह धारण किये हुए तीनो देव आगे उपस्थित हैं और उनके प्रसन्न मुख व कृपादृष्टिसे उनकी प्रसन्नता प्रकट हो रही है, उनके तेजसे मुनिके नेत्र चकचौंध गए। तब मुनिने दण्डवत् प्रणाम किया और पूजनकी सामग्री ले कर पूजन किया व अंजलि बाँध कर नेत्र मूंद कर एवं एकाग्रमनको उनके ध्यानमें स्थिर करके इस प्रकार मधुर व गंभीर अर्थयुक्त वाणीसे त्रिलोकवन्दनीय तीनो देवोंकी स्तुति करने लगे ॥ २३ ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे तीनो देवोत्तम! आप विश्वकी उत्पत्ति, पालन और नाश करनेवाले, मायाके सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणोंका ग्रहण करके प्रत्येक कल्पमें शरीर धारण करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। किन्तु मैंने तो एकके उद्देशसे तप किया था पर आप तीन जन हैं, अतएव कृपा करके कहिये कि मैं ने आपमेंसे किसको कामना पूर्ण करनेके लिये बुलाया है? ॥ २७ ॥ मैंने पुत्र उत्पन्न करनेके लिये देवश्रेष्ठ भगवान्की आराधना मनमें की थी किन्तु आप तीन जन कैसे आये; आपको तो मनुष्य मनमें भी नहीं देख सक्ता! आप लोग प्रसन्न हो कर इस मेरे विस्मयको दूर करो क्योंकि मुझ ऐसा साधारण जन आप ईश्वरोंकी इच्छाको नहीं जान सक्ता ॥ २८ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले। अत्रिके यह वचन सुन कर वे देवश्रेष्ठ हँसे और सुन्दर वाणीसे यों ऋषिसे बोले ॥ २९ ॥ तीनो देव बोले। "ब्रह्मन्! तुम्हारा संकल्प सत् है अतएव तुमने जैसा संकल्प किया है वैसा ही होगा, तुम्हारा संकल्प अन्यथा नहीं होगा। तुम जिस ईश्वरका ध्यान करते हो हम वही हैं अर्थात् हम तीनो उसी ईश्वरका रूप हैं, हम तीनोका तत्त्व एक है ॥ ३० ॥ हम तीनोके अंशसे तुम्हारे तीन पुत्र होंगे जिनका यश तीनो लोकमें विख्यात होगा, वे तुम्हारे यशको भी जगत्में फैलावेंगे। तुम्हारा कल्याण हो" ॥ ३१ ॥ अत्रि ऋषि करके पूजित वे तीनो सुरेश्वर इनके देखते २ कामनाके अनुसार वर देकर

लौट गये ॥ ३२ ॥ ब्रह्माके अंशसे सोम, विष्णुके अंशसे योगी दत्तात्रेय और शंकरके अंशसे दुर्वासा ऋषि; ये तीन पुत्र अत्रि ऋषिके हुए। अब अंगिरा ऋषिका वंश सुनो ॥ ३३ ॥ कर्दमकी कन्या श्रद्धा नाम अंगिरा ऋषिकी स्त्री थीं, उनके सिनीवाली, कुहू राका व अनुमति ये चार कन्याएँ उत्पन्न हुईं ॥ ३४ ॥ इनके साक्षात् भगवान्‌का अंश उतथ्यजी और ब्रह्मज्ञानी बृहस्पतिजी ये दो पुत्र भी हुए। ये दोनो स्वारोचिष मन्वन्तरमें विख्यात हुए ॥ ३५ ॥ कर्दमकी कन्या हविर्भू पुलस्त्य ऋषिको व्याही थीं उनके अगस्त्यजी एवं महातपस्वी विश्रवा उत्पन्न हुए। यह अगस्त्य ही अन्य जन्ममें जाठराग्नि हुए ॥ ३६ ॥ विश्रवाके इडविडा नाम स्त्रीमें यक्षोंके पति देव कुवेर उत्पन्न हुए और केशिनी नाम दूसरी स्त्रीमें रावण, कुंभकर्ण और विभीषण उत्पन्न हुए ॥ ३७ ॥ कर्दमकी कन्या गति पुलह ऋषिको व्याही थीं, हे महामति! उनके कर्मश्रेष्ठ, वरीयान् व सहिष्णु; ये तीन पुत्र हुए ॥ ३८ ॥ कर्दमकी कन्या क्रिया नाम ऋतुको व्याही थीं, उनके ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान बालखिल्या नाम साठ हजार पुत्र हुए ॥ ३९ ॥ हे परन्तप! कर्दमकी ऊर्जा नाम कन्यामें वसिष्ठके सात चित्रकेतु आदि शुद्ध ब्रह्मर्षि हुए ॥ ४० ॥ चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मित्र, उल्वण, वसुभृद्यान और द्युमान्। एवं अन्य स्त्रीमें अन्य शक्ति आदि पुत्र हुए ॥ ४१ ॥ कर्दमकी कन्या चित्ति अथर्वण ऋषिकी स्त्री थीं। उनके तपोनिष्ठ दधीचि नाम पुत्र हुए, इनको अश्वशिरस् भी कहते हैं। अव भृगुका वंश मुझसे सुनो ॥ ४२ ॥ भृगुकी स्त्री कर्दमकी कन्या ख्याति थीं। उनके धाता, विधाता नाम दो पुत्र और भगवत्परायणा 'श्री' नाम कन्या उत्पन्न हुई ॥४३॥ मेरुने आयति और नियति नाम अपनी दो कन्याएँ धाता और विधाताको व्याह दीं; उनमें उनके यथाक्रम मृकण्डु और प्राण, ये पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४४ ॥ मृकण्डुके मार्कण्डेय एवं प्राणके वेदशिरा मुनि हुए। भृगुके एक और कवि नामक पुत्र हुए जिनके पुत्र भगवान् उशना (शुक्राचार्य्य) हैं ॥४५॥ हे विदुर! इन सव मुनियोंने प्रजा उत्पन्न करके लोकोंको वसाया। यह कर्दमकी कन्याओंका वंश हमने तुमसे वर्णन किया, इसे जो श्रद्धापूर्व्वक सुनता है उसके सकल पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ४६ ॥ स्वायम्भुवमनुकी प्रसूति नाम कन्याका विवाह ब्रह्माके पुत्र प्रजापति दक्षके साथ हुआ। दक्षने प्रसूतिमें सोलह मृगनयनी सुन्दरी कन्याएँ उत्पन्न कीं ॥ ४७ ॥ उनमें तेरह कन्याएँ धर्म्मको और एक अग्निको एवं एक सुयोग्य पितृगणको व एक संसारनाशक शिवको व्याह दी ॥ ४८ ॥ धर्म्मकी श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री और मूर्त्ति ये तेरह स्त्री हैं ॥ ४९ ॥ श्रद्धाके शुभ, मैत्रीके प्रसाद, दयाके अभय, शांतिके सुख वा शम, तुष्टिके मुद (आनन्द), पुष्टिके स्मय (अहंकार), ॥ ५० ॥ क्रियाके योग, उन्नतिके दर्प, बुद्धिके अर्थ (कौशल), मेधाके स्मृति वा क्षमा, तितिक्षाके क्षेम

और ह्रीके प्रश्रय नाम पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५१ ॥ एवं सकल गुणोंको उत्पन्न करनेवाली मूर्तिके गर्भसे नर, नारायण नाम ऋषि उत्पन्न हुए। जिनके जन्म समयमें यह जगत् स्वस्थताको प्राप्त हो कर परम प्रसन्न हुआ ॥ ५२ ॥ सबके मन उस समय प्रसन्न हो गये, सब दिशाएँ निर्म्मल हो गईं, निर्म्मल शीतल वायु चलने लगी, नदियोंका जल स्वच्छ हो गया एवं पर्वतादि सकल प्रसन्नतापूर्ण हो गये। आकाशमें नगाड़े बजने लगे और कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ५३ ॥ प्रसन्न हो कर मुनिगण स्तुति करने लगे। किन्नर और गन्धर्वगण गाने लगे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। सर्वत्र परम मङ्गलमय समय हो गया। और ब्रह्मादिक देवता आकर इस प्रकार विष्णुका अवतार जो श्रीनरनारायण हैं उनकी स्तुति करने लगे ॥ ५४ ॥ "निज मायाद्वारा जिस आत्मामें, आकाशमें गन्धर्व नगरके समान यह विश्व विरचित है, उस आत्माका प्रकाश करनेके लिये जिसने इस ऋषिरूपसे धर्म्मके घरमें अपनेको प्रकट किया है उस परम पुरुषको नमस्कार है ॥ ५५ ॥ शास्त्रोंसे जिसके तत्त्वका अनुमान किया जाता है वह ईश्वर, संसारकी मर्य्यादाके नाश करनेवाले विघ्नोंको शान्त करनेके लिये अपने सत्त्व (वीर्य्य) से उत्पन्न किये गये एवं करुणायुक्त दृष्टिसे देखने योग्य जो हम देवगण हैं उनको शोभाधाम पद्मके भी मानका मर्दन करनेवाले ललित लोचनोंसे देखे" ॥५६॥ इस प्रकार देवगणकी स्तुतिको सुन कर और उनकी पूजा ग्रहण करके एवं अपनी कृपादृष्टिसे कृतार्थ करके भगवान् नर व नारायण गन्धमादन पर्व्वतको चले गये ॥ ५७ ॥ हे विदुर! वे ही हरिके अंशावतार नर नारायण पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये यादव और कौरवोंमें श्रेष्ठ कृष्ण व अर्जुन आकर हुए हैं ॥ ५८ ॥ अग्निके अभिमानी अग्निदेवके साथ दक्षकी स्वाहा नाम कन्याका विवाह हुआ। उसमें हवनका भोजन करनेवाले पावक, पवमान और शुचि; ये तीन अग्नि उत्पन्न हुए ॥ ५९ ॥ इन तीनो अग्नियोंके पैंतालीस (४५) पुत्र हुए। ये अग्नि एक बाबा और तीन बापको मिला कर उन्चास (४९) हुए ॥ ६० ॥ यागयज्ञादिमें ब्रह्मवादी ब्राह्मणगण इन सब अग्नियोंका नाम लेकर अग्निमें आहुति देते हैं। ये वे ही अग्निसंज्ञक देवता हैं ॥ ६१ ॥ विदुर! [1]अग्निष्वात्ता, [2]बर्हिषद, [3]सोमप, [4]आज्यपा आदि विभिन्नसंज्ञायुक्त पितृलोकवासी पितृगण साग्नि (जिनका "अग्नौकरण" कर्म्म है) और अनग्नि (जिनका "अग्नौकरण" कर्म्म नहीं है) दो श्रेणीके हैं; इनकी स्त्री दक्षकी

---

१ जो अग्निमें मन्त्रद्वारा यजनादि करते हैं। २ जो कुशादिसे केवल तर्पण आदिके द्वारा यजन करते हैं। ३ जो सोम नामक पवित्र मद्यसे यज्ञमें विष्णुका अर्चन करते हैं। ४ जो घृतादि आज्यसे यजन करते हैं। इस लोककी कर्म्मविभिन्नताके अनुसार पितृलोकमें प्रवृत्तिनिरत जीव भिन्न २ उक्त संज्ञाएँ पाते हैं।

कन्या स्वधा है ॥ ६२ ॥ इनके वीर्यसे स्वधाके वयुना और धारिणी नाम दो कन्याएँ हुई। किन्तु ये दोनो कन्या ज्ञान (साधारण ज्ञान) और विज्ञान (ईश्वर व मायाका ज्ञान) के पार जानेके कारण ब्रह्मज्ञानको प्राप्त हुईं । जीवन्मुक्त होनेसे इनके कोई सन्तान नहीं हुआ ॥ ६३ ॥

पितर्यप्रतिरूपे स्वे भवायानागसे रुषा ॥
अप्रौढैवात्मनात्मानमजहाद्योगसंयुता ॥ ६५ ॥

महादेवने दक्षकी सती नाम कन्यासे विवाह किया। यद्यपि देवीसती गुण और शीलमें अपने अनुरूप पति शिवको प्राप्त हुई और उनमें प्रेमरत हुई पर उनके कोई पुत्र न हुआ[1]; इसका कारण यही है कि उनके पिता दक्षने उनके स्वामी महादेवकी अकारण निन्दा व अपमान किया, यह देख कर मारे क्रोधके यौवनकालमें ही योगाग्निमें सतीजी सती हो गईं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय ।

शिव और दक्षका वैर ।

विदुर उवाच—भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षो दुहितृवत्सलः ॥
विद्वेषमकरोत्कस्मादनादृत्यात्मजां सतीम् ॥ १ ॥

विदुरजी बोले। ब्रह्मन्! दक्ष प्रजापतिकी सतीजी बहुत दुलारी थीं तब दक्षने क्यों अपनी कन्या सतीका निरादर करके सुशील लोगोंमें श्रेष्ठ जो भगवान् भवानीनाथ जामाता हैं उनसे वैर किया ? ॥ १ ॥ हे मुनि! महादेव तो किसीके वैर करने योग्य नहीं हैं। वह तो चराचर जगत्के गुरु और आत्मामें रमण करनेवाले एवं शान्तिमय हैं, उनकी किसीसे शत्रुता नहीं हैं। उनसे प्रजापति दक्षने क्यों वैर किया? ॥ २ ॥ यह दामाद और श्वशुरका द्रोह मुझसे कहिये। हे ब्रह्मन्! जिस वैरमें सतीने अपने परमप्रिय दुस्त्यज प्राण त्याग दिये ॥ ३ ॥ **श्रीमैत्रेयजी बोले** । विदुर! अति प्राचीन समयमें विश्वस्रष्टाओंने एक यज्ञ किया। उस यज्ञशालामें बड़े २ ऋषिगण व देवगण, मुनिजन व मुनियोंके शिष्य एवं सकल अग्नि बैठे हुए थे ॥ ४ ॥ उसी अवसरमें जैसे सूर्य्यदेव अपने प्रचण्ड

---

१ गणेश आदि पुत्र न सतीके गर्भसे उत्पन्न हैं और न पार्वतीके ही गर्भसे उत्पन्न हैं, ये सब मानसिक एवं कल्पित हैं । किन्तु ये भी पार्वतीके समयमें हुए हैं, सतीके समयमें नहीं । स्कन्दजी शिवके वीर्य्यसे उत्पन्न हैं पर सती या पार्वतीके गर्भसे नहीं ।

तेजसे आकाशका अन्धकार दूर करते हुए उदय होते हैं वैसे ही उस महासभाको प्रकाशित करते हुए महातेजस्वी दक्ष प्रजापति वहाँ पर आये ॥५॥ उनको देख कर उनके तेजसे धर्षित-चित्त हो कर सब ऋषि, सदस्य देवगण व अग्नि (यज्ञकर्त्ता देवगण) अपने २ आसनसे उनका सम्मान करनेके लिये उठ खड़े हुए। केवल ब्रह्मा और शिव नहीं उठे ॥६॥ भगवान् दक्ष, सब सभासदोंका सत्कार भलीभाँति ग्रहण कर अपने पिता जगद्गुरु ब्रह्माको प्रणाम करके उनकी आज्ञासे आसन पर बैठे ॥७॥ दक्षने देखा कि सब तो उनके बैठनेके बाद बैठे पर शिव पहलेहीसे सामने बैठे हुए हैं। यह शिवके किये हुए अपने अनादरको देखकर वह सह न सके तब टेढ़ी आँखोंसे मानो शिवको भस्म कर देंगे इस प्रकार देख कर कहने लगे ॥ ८ ॥ "हे ब्रह्मर्षिगण! हे देवगण! हे अग्निगण! मैं अज्ञानवश वा ईर्षावश कुछ नहीं कहता किन्तु साधुओंकी रीति नीतिके अनुसार कहता हूँ, आप लोग सुनो ॥ ९ ॥ यह शिव एक लोकपाल कहाता है किन्तु यह निर्लज्ज लोकपालोंके निर्म्मल यशको कलंकित करनेवाला है। इसने सज्जनोंके आचरित (चले हुए) मार्गको अनुचित कार्य करके दूषित कर दिया ॥ १० ॥ इसके नेत्र वानरके ऐसे हैं और मेरी कन्याके नेत्र मृगबालकके ऐसे हैं। यह मेरा एक प्रकारका शिष्य है क्योंकि ब्राह्मण और अग्निके सन्मुख इसने सावित्रीसदृश मेरी कन्याका पाणिग्रहण किया। यह साधुओंके समान बना है पर इसके आचरण साधुओंके ऐसे नहीं हैं। इसको चाहिये था कि यह मुझे देख कर उठता और प्रणाम करता पर इसने वाणीसे भी मेरा सत्कार नहीं किया ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसने सब क्रिया त्याग दी हैं, अशुचि रहता है, ईश्वर होनेका अभिमान रखता है किन्तु धर्म्मकी मर्यादा इसने नष्ट कर दी है। यद्यपि मेरी इच्छा न थी तथापि भावीवश जैसे कोई शूद्रको धनके लोभसे वेदविद्या दे उस प्रकार अपनी कन्या इसे दे दी ॥१३॥ यह, घोर श्मशान, जहाँ प्रेतगण रहते हैं वहाँ भूत-प्रेतोंके साथ घूमा करता है और उन्मत्तोंकी नाई बाल खोले नंगा रहता है और कभी हँसता है, कभी रोता है ॥ १४ ॥ चिताकी राख देह भरमें लगाये रहता है, प्रेतोंके पहनने योग्य हड्डियोंकी मुण्डमाला पहने रहता है, वही इसका भूषण है। नाम तो इसका शिव है पर रूप अशिव (अमङ्गल) है, यह मत्त है और मत्तजन इसे प्रिय हैं (वा मत्तजनोंको यह प्रिय है) ॥ १५ ॥ यह तामसी प्रकृतिवाले प्रमथ, पिशाच, भूत, प्रेत आदिका स्वामी है; मैंने इस उन्मादनाथ, दुष्टहृदय एवं शौचहीनको केवल ब्रह्माकी आज्ञासे अपनी सुन्दर साध्वी कन्या देदी! हा! कैसे खेदकी बात है!" ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं। दक्षके ऐसे दुर्वचन सुन कर भी शिवजी क्रुद्ध नहीं हुए और जैसेके तैसे बैठे रहे। किन्तु दक्ष यह कह कर ही नहीं रह गये, उन्होने मारे क्रोधके हाथमें जल ले कर यह शाप भी दिया कि—"यह देवगणमें

अधम शिव देवयज्ञमें इन्द्र, उपेन्द्र आदि देवगणके साथ यज्ञका भाग न पावै।" ॥ १७ ॥ १८ ॥ सब सभासद् रोंकते रहे पर दक्षने मारे क्रोधके शिवको यह शाप दे ही दिया, और हे विदुर! उस यज्ञशालासे उसी समय निकल कर अपने भवनको चले गये ॥१९॥ शिवके सेवकोंमें मुख्य नन्दीश्वर शिवके लिये यह शाप सुन कर बहुत ही कुपित हुए, उनके नेत्र मारे क्रोधके लाल हो गये और उन्होने भी दक्षको एवं जिन ब्राह्मणोंने दक्षके शापका अनुमोदन किया था उनको घोर प्रतिशाप दिया ॥ २० ॥ नन्दीजीने कहा कि, "भगवान् भव (शिव) किसीसे द्रोह वा अन्यायाचरण नहीं करते, उनसे जो कोई भेददृष्टिवाला जन मूर्खतावश इस साधारण दक्षका पक्ष लेकर द्रोह करता है वह मेरे शापके कारण परम तत्त्वके मार्गसे विमुख हो ॥ २१ ॥ वह विषयसुखके पानेकी इच्छासे कपटधर्म्मयुक्त गृहस्थाश्रममें आसक्त हो एवं 'चातुर्मास्य यज्ञ करनेवालेको अक्षयपुण्य व स्वर्गलाभ होता है' इत्यादि वेदके वचनोंमें उसकी बुद्धि मोहित होनेके कारण वह ज्ञानकाण्डहीन हो कर कर्म्मकाण्डमें तत्पर रहै ॥ २२ ॥ यह दक्ष देहको आत्मा मानता है अतएव आत्माकी गति को भूला हुआ है; यह लोकपाल दक्ष पशुओंके तुल्य स्त्रीकाम अर्थात् प्रवृत्तिमार्ग एवं सृष्टिकार्यमें लगा रहै और इसका बकरेका मुख हो ॥ २३ ॥ यह दक्ष अविद्या(कर्मकाण्ड)को विद्या (तत्त्वज्ञान) जानता है अतएव वास्तवमें जड़ पशु है। इस शिवके निरादर करनेवाले दक्षके अनुगामी ब्राह्मणगण इसीके साथ संसार अर्थात् वारम्वार जन्ममरणके कष्टको भोगें ॥ २४ ॥ वेदकी पुष्पित (स्वर्ग आदिके लाभको जतानेवाली) वाणीकी मनोहर मधुर गन्ध (स्वर्गादि लाभके विश्वास) से शिवके द्रोहियोंका मन उन्मथित हो और वे मोहको अर्थात् भ्रमको प्राप्त हों (अर्थात् ये शिवद्रोही ब्राह्मण तत्त्वज्ञानमें तत्पर न हो कर कर्मकाण्डमें तत्पर रहैं) ॥ २५ ॥ ये ब्राह्मण सर्व्वभक्षी हों अर्थात् इन्हे भक्ष्य, अभक्ष्यका विचार न रहै, केवल जीविकाके लिये विद्याध्ययन तप और व्रत करैं, इनकी रति अर्थात् श्रद्धा धनमें हो, ये इन्द्रियसुख व देहसुखमें लिप्त रहें अतएव याचक हो कर पृथ्वीमें विचरैं" ॥ २६ ॥ इस प्रकार जब नंदीश्वर ब्राह्मणवंशको शाप देनेलगे तब भगवान् भृगुसे न रहा गया और उन्होने अनिवार्य्य ब्रह्मशाप इस प्रकार दिया कि "जो लोग शिवके भक्त हैं एवं जो उनके भक्त हैं वे सत्शास्त्रके विरुद्ध आचरण करनेवाले (वामाचारी वा वाममार्गी) और पाषण्डी हों ॥ २७ ॥ २८ ॥ वे मूढ़, शौचको त्याग कर जटा, भस्म और हड्डी धारण करके शिवदीक्षामें (शिवपूजामें) दीक्षित हों; जिस शिवपूजामें सुरा व आसव ही पूज्य वा देवतुल्य आदरकी वस्तु है ॥ २९ ॥ वर्ण और आश्रमके आचारका निरूपक होनेके कारण धर्मकी मर्यादाका रक्षक वेद ही है, अतएव वेद ही ब्रह्म है, ब्राह्मण उस वेदब्रह्मके अनुगत हैं। उनकी तुम निन्दा

करते हो; अतएव तुम पाषण्डी हो ॥ ३० ॥ यह वेदमार्ग ही कल्याणकारक सनातन मार्ग है, सब लोग इसी मार्गका आश्रय करते आये हैं, इस वेदका प्रमाण अर्थात् प्रवर्त्तक साक्षात् सत्यस्वरूप भगवान् जनार्दन हैं ॥ ३१ ॥ तुमलोग परम शुद्ध (सत्य), सनातन एवं सज्जनोंका धर्म्म जो ब्रह्ममय वेद है उसकी निन्दा करते हो अतएव पाषण्ड मार्गमें जाओ जहाँ तुम्हारे इष्ट वा पूज्य देव भूतनाथ शिव हैं" ॥ ३२ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले । इस प्रकार जब भृगु शाप देने लगे तब भगवान् शिव कुछ उदास[1] हो कर पार्षदों सहित वहाँसे उठ कर चले गये ॥ ३३ ॥

आप्लुत्यावभृथं यत्र गङ्गा यमुनयान्विता ॥
विरजेनात्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ययुस्ततः ॥ ३५ ॥

तदनन्तर उन विश्वस्रष्टाओंने सर्वश्रेष्ठ देव हरिकी पूजापूर्वक सहस्रवर्षपर्यन्त उस महायज्ञका अनुष्ठान किया, एवं गंगा यमुनाका जहाँ संगम हुआ है ऐसे पवित्र तीर्थराज प्रयागमें यज्ञान्त (अवभृथ) स्नान करके शुद्धचित्त हो कर अपने अपने धामको (सब) गये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय ।

सतीजीकी पिताके यज्ञमें जानेकी प्रार्थना और शिवका न जानेके लिये समझाना ।

मैत्रेय उवाच—सदा विद्विषतोरेवं कालो वै म्रियमाणयोः ॥
जामातुः श्वशुरस्यापि सुमहानतिचक्रमे ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहनेलगे । इस प्रकार मनमें द्वेषभाव धारण कर रहे दक्ष और शिव दोनोको बहुत काल बीत गया; (न दक्ष ही अपनी भूल समझ कर शिवको मनाने गये और न शिव ही उनसे मिले क्योंकि इन्हे क्या आवश्यकता थी ॥ १ ॥ इसी अवसरमें पितामह ब्रह्माजीने दक्षको सब प्रजापतियोंका अधिपति कर दिया; यह श्रेष्ठ पद पाकर दक्षको और भी अभिमान होगया ॥ २ ॥ दक्षने अभिमानके कारण ब्रह्मज्ञानी शिव आदिका निरादर करके अर्थात् न बुला कर

---

१ श्रीधरस्वामीजीके मतमें शिवजीके उदास होनेका कारण यही हुआ कि उन्होंने विचारा परस्परके शापसे परस्परका विनाश (अपकार) हुआ । किन्तु शिवजीके उदास होनेका कारण यहभी हो सक्ता है कि महानुभाव महात्मा जनोंको किसीकी निन्दा भली नहीं मालूम होती । शिवजी कुछ अपनी निन्दा सुन कर वा अपना शाप सुन कर उदास नहीं हुए ।

प्रथम वाजपेय यज्ञ किया और फिर 'बृहस्पतिसव' नाम यज्ञका आरम्भ किया[1] ॥ ३ ॥ उस दक्षके यज्ञमें ब्रह्मऋषि, देवऋषि, पितृगण, देवगण सब निमन्त्रण पा कर अपनी २ स्त्रियों सहित गये, दक्षने उनका आदर सत्कार और पूजन किया ॥ ४ ॥ आकाशमें जा रहे देवगण दक्षके यज्ञकी चर्चा करते जा रहे थे, उनके मुखसे दक्षकी कन्या सतीको पिताके यहाँ यज्ञरूप महाउत्सवका वृत्तान्त विदित हुआ ॥ ५ ॥ सतीजीने अपने भवनसे देखा कि चारो ओरसे यक्ष आदि उप-देवगणकी स्त्रियाँ अपने २ विमानों पर बैठी हुई पतियोंके साथ दक्षयज्ञको जा रही हैं। वे स्त्रियाँ गलेमें मणिमाला और सोनेके हार धारण किये हैं, सुन्दर वस्त्र पहने हैं एवं उन चञ्चलनैनियोंके मुखमण्डलमें कुण्डल शोभा बढ़ा रहे हैं। यह देख कर सतीजीको भी पिताके यज्ञमें जानेकी बड़ी उत्कण्ठा हुई। तब वह अपने पति भगवान् भूतनाथ शंकरसे यों कहने लगीं ॥ ६ ॥ ७ ॥ **सतीजी बोलीं**। भगवन्! आपके श्वशुर दक्ष प्रजापतिने इस समय यज्ञरूप महा उत्सवका आरंभ किया है। देखिये, ये सब देवगण जा रहे हैं। यदि आपकी इच्छा हो तो हम भी पिताके यज्ञमें चलें ॥ ८ ॥ निश्चय अपने २ स्वजनोंके देखनेकी इच्छासे मेरी बहनें अपने २ पतियोंके साथ जायँगी। मेरी भी इच्छा है कि मैं वहाँ आपके साथ जाऊँ और पिता माताके किये हुए सत्कार पूजन व अलंकार आदिको ग्रहण करूँ ॥ ९ ॥ हे नाथ! वहाँ जा कर मैं अपनी बहनोंको उनके पतियोंसहित देखूँगी और चिरकालसे मेरे देखनेके लिये उत्कण्ठित अपनी स्नेहमयी मातासे मिलूँगी। बहुत कालसे इन सबके देखनेकी मुझे अभिलाषा है। वहाँ जानेसे महर्षिगणकृत श्रेष्ठ यज्ञ मुझे देखनेको मिलेगा ॥ १० ॥ भगवन्! आपको यदि यज्ञ देखनेका कौतुक न हो तो कोई आश्चर्य्य नहीं है क्योंकि नाना आश्चर्यमय यह त्रिगुणात्मक जगत् आपकी ही मायासे रचित हो कर आपमें प्रकाशमान है अतएव आपके लिये कोई वस्तु कौतूहलजनक नहीं है। किन्तु मैं स्त्री हूँ, आपके तत्त्वको नहीं जानती, अतएव अपनी जन्मभूमि देखनेके लिये आकुल हो रही हूँ ॥ ११ ॥ हे नीलकण्ठ! देखिये, ये अन्य (गैर) स्त्रियोंके झुंडके झुंड अपने २ पतियोंके साथ जा रहे हैं, जिनके जा रहे राजहंससदृश श्वेतवर्ण विमानोंसे आकाशमार्ग कैसा शोभायमान है?। आप जन्मरहित हैं, आपका कोई स्वजन या परजन नहीं है, पर मुझसे पिताके यहाँ विना गये नहीं रहा जाता। भगवन्! जब अन्य २ स्त्रियाँ जा रही हैं तब कन्यासे पिताके घरमें उत्सव सुन कर कैसे विना गये रहा जा सक्ता है?। यदि कहो कि ये तो निमन्त्रणमें जा रही हैं, तुमको तो न्यौता ही

---

१ ऐसा ही श्रुतिमें लिखा है—"वाजपेयेनेष्ट्वा बृहस्पतिसवेन यजेत।" अर्थात् प्रथम वाजपेय यज्ञ करके फिर बृहस्पतिसव नाम यज्ञ करे।

नहीं आया तो हे सुरश्रेष्ठ! लोग विनाबुलाये भी पिता, पति, गुरु और मित्रके घर (उत्सवादिमें) जाते हैं ॥१२॥१३॥ हे देव! आप दयालु हैं, आप मुझ पर प्रसन्न हो कर मेरी कामना पूर्ण करनेके योग्य हैं। आपकी मुझ पर इतनी कृपा है कि आप परमज्ञानी हो कर भी मुझे अपने आधे अंगमें स्थान दिये हुए हैं। मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, अतएव अनुग्रह करके जानेकी आज्ञा दीजिये ॥ १४ ॥ मैत्रेयजी बोले। इस प्रकार सतीके प्रार्थना करने पर शिवजीको, दक्षने विश्वस्त्रष्टाओंके आगे जो मर्म्मभेदी वाणतुल्य कुवाक्य कहे थे उनका स्मरण हो आया। तब सुहृत्प्रिय शिवजी हँस कर सतीजीसे कहने लगे ॥ १५ ॥ श्रीशिवजी बोले। सुन्दरी! "विना बुलाये भी बन्धुजनके घर जाना चाहिये" यह तुम्हारा कहना ठीक है। किन्तु वे बन्धुजन यदि प्रवल देहाभिमानसे उत्पन्न क्रोधके कारण दोष भरी दृष्टिसे न देखते हों ॥ १६ ॥ विद्या, तप, धन, शरीर, अवस्था और कुल—ये छः बातें सज्जनोंके लिये गुण हैं, किन्तु ये ही गुण यदि असज्जनमें हों तो वे दोष हो जाते हैं। क्योंकि इन गुणोंके पानेसे असाधुओंका बिवेक और ज्ञान नष्ट हो जाता है, इसी कारण अभिमानसे उनकी दृष्टि दूषित हो जाती है और वे नष्टबुद्धि, महात्मा साधुगणके गुण और तेजको नहीं देखते! ॥ १७ ॥ ऐसे अनवस्थितचित्त अभिमानी व्यक्तियोंको अपना बन्धु वा स्वजन जान कर उनके घर भूल कर भी न जाना चाहिये। ऐसे लोग अपने घर आये हुएको भौंह चढ़ा कर लाल २ नेत्र करके टेढ़ी दृष्टिसे देखते हैं ॥ १८ ॥ शत्रुओंके मारे हुए वाणोंकी चोटसे शयन करनेमें वैसी व्यथा नहीं होती जैसी कि कुटिलबुद्धि स्वजनोंके कुवाक्यवाणोंकी मर्म्मस्थलमें लगनेवाली चोटसे दिनरात्रि मनमें सन्ताप और हृदयमें व्यथा होती है ॥ १९ ॥ हे सुभ्रु! मैं मानता हूँ कि तुम मर्य्यादायुक्त दक्ष प्रजापतिकी दुलारी प्यारी कन्या हो, तथापि तुम मेरी स्त्री हो और दक्ष मुझसे द्वेषभाव रखता है अतएव वह तुम्हारा आदर न करेगा ॥२०॥ प्रिये! अहंकारहीन लोगोंकी समृद्धि देख कर दक्ष ऐसे देहाभिमानी लोगोंके अन्तःकरणमें जलन या दाह होता है एवं वे दुःखित होते हैं। वे लोग पुण्य कीर्ति प्राप्त कर उन अहंकारहीन व्यक्तियोंके तुल्य ऐश्वर्य्य वा समृद्धिको नहीं पा सक्ते तब उनसे शत्रुता करने लगते हैं, जैसे असुरगण विष्णुकी समता न कर सकनेके कारण उनसे वैरभाव रखते हैं। दक्षके मुझसे वैरभाव करनेका कारण यही है ॥ २१ ॥ हे सुमध्यमे! यदि कहो आपने उन्हे प्रणाम नहीं किया और न उन्हे देख कर उठे तो लोकमें बड़ेको देख कर उठना, कुशलप्रश्न, विनय और प्रणाम आदि जो किया जाता है उसे ज्ञानीजन भी करते हैं किन्तु वे ज्ञानीजन, सबके हृदयमें स्थित परमपुरुषको मनसे प्रणाम आदि करते हैं, देहाभिमानी पुरुषको शरीर द्वारा उठ कर नहीं करते (अतएव मैंने मनसे ईश्वरको प्रणाम किया था देहाभिमानी दक्षका शरीर द्वारा उठ कर

प्रणामादिसे आदर सत्कार नहीं किया) ॥ २२ ॥ वासुदेव[1] अधोक्षेज[2] भगवान्की बुद्धिसे मैं केवल अभ्यागत व्यक्तिको प्रणाम करता हूँ सो नहीं है; विशुद्ध सतोगण वा अन्तष्करणका नाम वसुदेव (वस्तुप्रकाशक) है, मैं उसमें स्थित वा प्रकाशमान परमपुरुष भगवान् वासुदेवकी सदा मनमें नमस्कार आदि द्वारा उपासना करता हूँ ॥२३॥ प्रिये! वह तुम्हारे शरीरको उत्पन्न करनेवाला पिता है सही; किन्तु तुम उसके देखनेके लिये न जाओ। क्योंकि वह मुझसे द्वेष करता है, उसने विश्वस्रष्टाओंके यज्ञमें दुर्वाक्य कह कर मुझ निरपराधका तिरस्कार किया है। अतएव पतिद्रोही दक्ष एवं उसके अनुगामी अन्य लोगोंका मुख देखना तुम्हारे लिये योग्य नहीं है ॥ २४ ॥

यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद्वचो भद्रं भवत्या न ततो भविष्यति ॥
संभावितस्य स्वजनात्पराभवो यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ॥२५॥

मैं कहे देता हूँ, यदि तुम मेरा वचन टाल कर वहाँ जाओगी तो तुम्हारा कल्याण न होगा। क्योंकि सुप्रतिष्ठित व्यक्तिका स्वजनके द्वारा निरादर, शीघ्र ही मरणका कारण हो जाता है ॥ २५ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

१ "वासयति देवमिति वासुदेवः"; अथवा "वसत्यस्मिन्निति वासुः", "दीव्यते द्योतते इति देवः"। अर्थात् शरीरके प्रकाशक आत्मामें जो वसता है वह परमात्मा वासुदेव नामक है। या शरीरमें जो वसता है वह जीव वासु है उसको प्रकाशित करनेवाला परमात्मा वासुदेव पदवाच्य है। अथवा "वसुभिः पुण्यैः दीव्यति प्रकाशते इति वासुदेवः।" सत्त्वगुण वा पुण्यकर्म्मरूप साधनासे जो प्रकाशित होता है उस परमेश्वरका नाम वासुदेव है।

२ "अधोभूतेषु प्रत्याहृतेषु अक्षेषु इन्द्रियेषु जायते प्रकाश्यते इति अधोक्षजः"। अर्थात् विषयव्यापारसे अधःपतित वा प्रत्याहृत इन्द्रियोंमें जो उत्पन्न वा प्रकाशित हो कर जीवको मुक्ति देता है उस ईश्वरका नाम अधोक्षज है।

चतुर्थ अध्याय ।

सतीका सती होना ।

मैत्रेय उवाच—एतावदुक्त्वा विरराम शङ्करः
पत्न्यङ्गनाशं ह्युभयत्र चिन्तयन् ॥
सुहृद्दिदृक्षुः परिशङ्किता भव-
न्निष्क्रामती निर्विशती द्विधास सा ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं। भगवान् शिव इतना कह कर चुप हो रहे। किन्तु वह मनमें यह चिन्ता करने लगे कि—"जानेकी अनुमति दें, या बलपूर्वक जानेसे रोकें? दोनो प्रकार सतीके देहत्यागकी संभावना है!" इधर सती भी बन्धुओंके दर्शनकी इच्छासे व्याकुल हो कर वाहर निकल कर जाती और फिर शिवके कोपसे शंकित हो कर लौट आती हैं। यों वारम्वार जाने आनेसे विदित होने लगा मानो सतीने दो रूप धर लिये ॥१॥ क्रमशः बन्धुजनके सहित साक्षात् करनेकी इच्छाको प्रतिहत होते देख कर सतीजी अत्यन्त उदास हो उठीं एवं स्नेहवश रोने लगीं। आँसुओंकी धारा नेत्रोंसे गिरने लगी। यों व्याकुल हो कर, जिनके समान वा जिनसे अधिक कोई पुरुष नहीं है उन शिवको इस प्रकार क्रोधकी दृष्टिसे देखने लगीं मानो भस्म कर देंगी, एवं उनके सब अंग कोपके कारण काँपने लगे ॥ २ ॥ सतीजीका हृदय शोक और क्रोधके वेगसे व्यथित हुआ एवं वह बड़ी २ सांसें लेने लगीं। अन्तको स्त्रीस्वभावसे उनकी बुद्धि मूढ़ हो गई और जिन्होने प्रेमवश अपना आधा अंग रहनेके लिये दे दिया उन सज्जन प्रिय शिवको त्याग कर विना उनकी आज्ञा पिताके घर चल दीं ॥३॥ सतीजीको अकेले जल्दी २ जाते देख कर शिवजीके मणिमान् आदि यक्ष व सहस्रशः गण नन्दीश्वरको सवारीके लिये आगे कर शीघ्रतापूर्वक निर्भयचित्तसे सतीजीके पीछे चले ॥४॥ तदनन्तर वे जब देवीके समीप पहुँचे तो सतीजीको नन्दी पर सवार किया एवं सारिका (मैना), कन्दुक, दर्पण, कमल आदि उनकी क्रीड़ाकी सामग्री और श्वेत छत्र, चँवर, माला आदि महाराजविभूति लेकर तथा शंख, वेणु और दुन्दुभी बजाते हुए चले ॥ ५ ॥ सतीजीने पिताके घरमें पहुँच कर यज्ञमण्डप में प्रवेश किया, जहाँ चारो ओर ब्राह्मणगण वेद पाठ कर रहे हैं और बलिपशुओंका बध हो रहा है। ब्राह्मण ऋषि, देवगण बैठे हुए हैं। सर्व्वत्र यज्ञकी सामग्री आदिसे परिपूर्ण मृत्तिका, काष्ठ, लोहे, सोने, कुश और चर्मके पात्र यथायोग्य धरे हुए हैं ॥ ६ ॥ सतीजीका दक्षने आदर नहीं किया और न मुखसे बोला अतएव केवल सतीजीकी माता और बहनोंके अतिरिक्त अन्य किसीने यजमान दक्षके भयसे

इनका आदरसत्कार नहीं किया। किन्तु (सतीजीकी) माता और बहनें "भला हुआ तुम आ गईं" यों कह कर आनन्दित मनसे आदरपूर्वक सतीजीसे मिलीं, उनके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू भर आये, जिनसे कण्ठ रुँध गया ॥७॥ बहनके स्नेहसे कुशलप्रश्नपूर्वक बहनोंने व माताने सतीको आदरपूर्व्वक पूजन, आसन व अलङ्कार आदि दिये किन्तु पिताने बात तक न पूँछी; अतएव सतीने माता और बहनोंके पूजनको नहीं ग्रहण किया ॥ ८ ॥ सतीने देखा कि यज्ञमें कहीं पर शिवका भाग ही नहीं रक्खा गया। इस प्रकार यज्ञसभाके बीचमें पिताके द्वारा विभु शंकरदेवका एवं अपना निरादर देख कर देवी सती बहुत ही कुपित हुईं, मानो त्रिलोकको अपने कोपकी अग्निसे भस्म कर देंगी ॥ ९ ॥ सतीके कुपित होते ही तत्क्षण दक्षका विनाश करनेके लिये उनके तेजसे बहुतसे भूतगण उत्पन्न हुए किन्तु उनको देवीने रोंका। शिवद्वेषी दक्ष यज्ञादिमें श्रम करके बड़ा ही गर्वित हो गया था; सतीजी सब लोगोंके सामने क्रोधवश अस्फुट वाणीसे यों कहने लगीं ॥ १० ॥ "पितः! इस लोकमें जिनकी अपेक्षा कोई बड़ा नहीं है एवं जिनका न कोई प्रिय है और न अप्रिय है, जो सब प्राणियोंके आत्मा हैं अतएव प्रियसे भी प्रिय हैं—उन वैररहित, सर्व्वात्मक भगवान् नीलकण्ठसे तेरे सिवाय और कौन मूढ़ होगा जो वैरभाव करेगा? ॥ ११ ॥ हे द्विज! तेरे ही ऐसे लोग परसन्तापी होते हैं, वे पराये गुण नहीं देख सक्ते। तेरे ऐसे लोग दूसरोंके बहुतसे गुण छोड़ कर उनके थोड़ेसे भी दोपको ही ग्रहण करते हैं। परन्तु जो लोग तेरे समान दुष्ट नहीं हैं वे दोप और गुणका यथार्थ ग्रहण करते हैं। और जो लोग साधु हैं वे दूसरोंके दोपोंको छोड़ कर गुण ही ग्रहण करते हैं। और जो लोग दूसरेके दोप ग्रहण करना तो दूर रहा, दूसरेके थोड़ेसे थोड़े भी गुणको बहुत मान कर ग्रहण करते हैं वे शिवजी ऐसे महत्तम हैं। शोकका विपय है कि तूने उनको दोप लगाया और वैर किया! ॥ १२ ॥ पर यह कोई आश्चर्य्य नहीं है। जो लोग तेरे समान इस जड़ देहको आत्मा मान कर देहाभिमानमें मूढ़ हो रहे हैं वे दुर्जन ईर्पावश शिव ऐसे शान्त जनोंकी निन्दा करते हैं। यद्यपि साधु ज्ञानीजन अपनी निंदा सह लेते हैं, क्योंकि उनको देहाभिमान न होनेके कारण स्तुति और निन्दा समान है; पर उन महाजनोंके चरणकी रज नहीं सहती, उन सज्जनोंकी चरणरेणुसे असज्जनोंका ऐश्वर्य्य व तेज नष्ट हो जाता है। अतएव असाधुओंके लिये साधुओंकी निन्दा ही भली है क्योंकि शीघ्र प्रतिफल मिलनेके कारण असाधुओंके परसन्तापरूप पापका प्रायश्चित्त हो जाता है ॥ १३ ॥ जिनका 'शिव' यह दो अक्षरका नाम एक बार भी प्रसंगवश पापीके मुखसे निकल जाय तो उसके सब पातकोंको नष्ट कर देता है एवं जिनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेकी किसीमें शक्ति नहीं है, उन पवित्र कीर्त्तिवाले शिवरूप शिवसे अहो! तू द्रोह करता है। अतएव तू अशिव अर्थात् अमङ्गलस्वरूप है ॥ १४ ॥ सज्जन लोगोंके मनरूप भ्रमर, ब्रह्मरसकी इच्छासे जिनके चरणकमलका सेवन

करते हैं और जो कामार्थी जनोंकी सकल कामना पूर्ण करते हैं उन विश्वंभरके बन्धु, भक्ति और मुक्ति दोनोके देनेवाले शिवसे तू द्रोह करता है ॥ १५ ॥ तूने जो निन्दा करतेमें कहा था कि "इसका नाम शिव है परन्तु रूप अशिव है क्योंकि यह मुण्डमाला, जटा, भस्म, हड्डी आदि धारण करके पिशाचोंके साथ मसानमें घूमता है—इत्यादि"—सो क्या तेरे सिवाय बड़े २ देवश्रेष्ठ ब्रह्मा आदिको इतना ज्ञान नहीं था जो यह बात समझते, क्योंकि वे तो जटा फैला कर भस्म लगा कर मुण्डमाला पहन कर, पिशाचोंके साथ श्मशानमें विचरनेवाले अशिवरूप शिवके चरणोंके त्यक्त निर्माल्यको अपने २ शिर पर धारण करते हैं! यदि तेरे समान वे भी समझते तो सेवकाई क्यों करते? ॥ १६ ॥ सो जो कुछ हो—दुर्दान्त अधम व्यक्ति, जहाँ पर धर्मकी रक्षा करने वाले स्वामीकी निन्दा करता हो वहाँ यदि पतिव्रतास्त्री वा भक्तजन उपस्थित हो तो यदि उसे उसके दमन (मार डालने)की सामर्थ्य न हो तो वह दोनो कान हाथसे बंद कर वहांसे उठ कर चला जाय और यदि शक्ति हो तो जो दुष्ट इस भांतिके दुर्वचन कहता हो उसकी जिह्वाको बलपूर्वक निकाल ले या काट डालै तदनन्तर आपभी प्राणत्याग कर दे—ऐसा करना ही उचित धर्म्म है ॥ १७ ॥ तू शिवका निन्दक है; तुझसे मेरा यह शरीर उत्पन्न हुआ है अतएव इस कलेवरको मैं त्याग कर दूंगी । क्योंकि यदि कोई भूलेसे मोहवश अशुद्ध अन्न खा ले तो वमन (कय) करके उसको निकाल डालनेसे ही शुद्धि होती है—ऐसी शास्त्रकी सम्मति है ॥ १८ ॥ तूने जो निन्दा करनेमें कहा था कि "यह क्रिया और शौचसे हीन अशुचि है, इत्यादि," सो जो पुरुष आत्मानन्दके भोगमें ही सन्तुष्ट है उसकी बुद्धि कभी विधि (ऐसा करना चाहिये) और निषेध (ऐसा न करना चाहिये) रूप वेद-वाक्यके अनुगत नहीं होती। जैसे मनुष्य व देवगणकी गति पृथिवी और आकाशमें यथाक्रम भिन्न २ है वैसे जिसका जो धर्म्म है उसको उसीमें अवस्थित रहना होता है; उसको अन्य धर्म वा अन्य व्यक्ति पर आक्षेप करना योग्य नहीं है ॥ १९ ॥ प्रवृत्ति, निवृत्तिरूप दोनो प्रकारके कर्म सत्य (ठीक) हैं, वेदमें इन दोनोका विधान है, ये दोनो कर्म्म विवेचनापूर्वक अपने २ उद्देश्यसे व्यवस्था करके विहित हुए हैं। एक मनुष्य एक कालमें एक ही धर्म्म इन दोनोमेंसे कर सक्ता है क्योंकि ये परस्पर विरुद्ध हैं । किन्तु ब्रह्मरूप शिवके लिये इनमेंसे किसी धर्म्मकी आवश्यकता नहीं है! ॥ २० ॥ तूने जो कहा था कि "यह चिताकी भस्म लगाये नंगा रहता है अतएव असभ्य ऐश्वर्यरहित है" सो हे पितः! हममें जो सकल अणिमा आदिक सिद्धियाँ इच्छा न होने पर भी अवस्थित हैं वे तेरे दृष्टि-गोचर भी नहीं हैं। तेरा ऐश्वर्य्य तो केवल यज्ञशालामें ही है। यज्ञके अन्नसे परितृप्त पितृगण ही इस ऐश्वर्य्यकी प्रशंसा करते हैं एवं कर्म्मकाण्डमार्गके अनुगत लोग ही इसका भोग करते हैं। हमारा ऐश्वर्य्य ऐसा नहीं है, वह इच्छानुसार

सर्वत्र प्रकट हो सक्ता है, उसका कारण अव्यक्त (ब्रह्म) है; ब्रह्मज्ञ व्यक्ति ही इस ऐश्वर्य्यका भोग करते हैं ॥ २१ ॥ बस, बहुत कहनेकी आवश्यकता नहीं है। तू शंकर भगवान्‌का अपराधी है। यह मेरा शरीर तुझसे उत्पन्न होनेके कारण निन्दित है अतएव धारण करने योग्य नहीं है। तू दुष्ट है, तेरे सम्बन्धसे मुझे लज्जा मालूम पड़ती है। जिस जन्मसे महत् लोगोंका अपराध हो उसे धिक्कार है! ॥ २२ ॥ जब भगवान् शिव मुझे हँसीमें दाक्षायणी (दक्षकी कन्या) कह कर पुकारते हैं तब हँसीको भूल कर मुझे बड़ी ही लज्जा और खेद होता है। अतएव तेरे शरीरसे उत्पन्न इस शवतुल्य व्यर्थ वा अमङ्गल शरीरको मैं अभी त्याग करती हूँ ॥ २३ ॥ **श्रीमैत्रेयजी कहते हैं।** हे विदुर! यज्ञ सभामें इस प्रकार दक्षसे कह कर सतीजी उत्तरकी ओर मुख करके मौन हो कर पृथ्वीमें बैठ गईं और पीताम्बर पहन आचमन कर नेत्र मूंद योगमार्गका अवलम्बन किया ॥ २४ ॥ सतीने उस समय आसनको जीत कर प्राण (ऊर्ध्ववायु) और अपान (अधोवायु) को रोंक कर नाभिदेशमें स्थिर करके समान किया फिर नाभिसे उदान (मिले हुए तीनो वायु)को धीरे २ ऊपर उठा कर सहित बुद्धिके हृदयमें स्थापित किया, तदनन्तर अनिन्दिता सती उसको कण्ठनालमें ले जा कर भौंहोंके बीचमें ले गईं ॥ २५ ॥ महत् लोगोंके पूजनीय भगवान् शिव जिस शरीरको आदरसहित गोदमें बिठाते थे, सतीजीने दक्ष पर कुपित हो कर उसी सुकोमल कलेवरको त्यागनेकी इच्छासे सब शरीरके वायुको रोंक कर योगाग्निका धारण किया ॥ २६ ॥ उस समय सतीजी सबसे चित्त हटा कर, मनमें अपने स्वामी जगद्गुरु शिवके चरणकमलके रसका पान करने लगीं, उस समय सर्वत्र उनको शिव ही देख पड़ने लगे। इधर शरीर शुद्ध हो कर समाधिसे उत्पन्न योगकी अग्निसे शीघ्र ही जल उठा ॥ २७ ॥ विदुर! यह अद्भुत चरित्र देख रहे आकाशचारी देवगणके किये हुए हाहाकारका महा कोलाहल उठा। सब कहने लगे—"खेदका विषय है, हा! पूज्यतम देव शिवकी प्रिया पत्नीने दक्षकृत अपमानसे कुपित होकर प्राण-त्याग कर दिया। अहो! दक्षकी दुर्जनता देखो! यह प्रजापति हैं, चराचर विश्व इनकी प्रजा है, सब पर इन्हे स्नेह करना उचित है, सो दूर रहा, स्वयं अपनी कन्याका आदर न किया, जिससे उन्होने प्राण त्याग दिये। मनस्विनी सती सबकी माननीया हैं, उनका स्वयं पिताने निरादर किया! कैसे आश्चर्य्य और खेदकी बात है! शिवद्वेषी, ब्रह्मद्रोही दक्षका हृदय बड़ा ही कठिन है! इनकी लोकमें बड़ी ही अकीर्त्ति होगी। क्योंकि अपने ही अपराधसे अपने ही आगे प्राणत्याग करने पर उद्यत जो अपनी कन्या है उसको इन्होने नहीं रोंका।" ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ सतीमरणरूप अद्भुत चरित्र देख कर सब लोग इस प्रकार कहने लगे। सो सुन कर सतीके पार्षद अपने २ शस्त्र उठा कर दक्षको मारनेके लिये यज्ञशालामें घुस पड़े ॥ ३१ ॥ उन गणोंके आक्रमणकारी वेगको देख कर आचार्य्य भगवान् भृगुने

"अपहतं रक्ष"—इत्यादि यज्ञके विघ्नोंको नष्ट करनेवाले मंत्रको पढ़ कर यज्ञ-कुण्डकी अग्निमें आहुति छोंड़ी ॥ ३२ ॥ अध्वर्य्यु भृगुके आहुति छोंड़ते ही सहस्र सहस्र 'ऋभु' नामक यज्ञरक्षक देवगण उस अग्निसे प्रकट हुए। ये ऋभु नामक देवगण तप द्वारा सोमको प्राप्त हुए यज्ञकी रक्षा करनेवाले देवयोनिविशेष तपस्वी हैं ॥ ३३ ॥

तैरलातायुधैः सर्वे प्रमथाः सहगुह्यकाः ॥
हन्यमाना दिशो भेजुरुशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ॥ ३४ ॥

ब्रह्मतेजके प्रतापसे प्रबल ये ऋभुगण जलती हुई लकड़ी ही शस्त्रस्वरूप लेकर शिवके प्रमथ, गुह्यक (जाति विशेष) आदि पार्षदोंको मारने लगे, वे सब पार्षद हार कर भाग गये ॥ ३४ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय ।

वीरभद्रका उत्पन्न हो कर दक्षके यज्ञका विध्वंस करना एवं दक्ष प्रजापतिका वध होना ।

मैत्रेय उवाच—भवो भवान्या निधनं प्रजापते-
रसत्कृताया अवगम्य नारदात् ॥
स्वपार्षदसैन्यं च तदध्वरर्भुभि-
र्विद्रावितं क्रोधमपारमादधे ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहनेलगे। विदुर! नारदके मुखसे भगवान् शिवने सुना कि दक्षकृत अपमानसे दक्ष पर कोप कर योगाग्नि प्रकट करके देवी सती सती हो गईं एवं भृगुके मंत्रसे उत्पन्न ऋभु नाम देवगणने पार्षदगणको मार भगाया। तब उनको बहुत ही क्रोध आया ॥ १ ॥ शिवने दारुण क्रोधसे अपने ओठोंको चबाते हुए उसी क्षण अपने शिरसे एक जटा उखाड़ ली, वह जटा बिजली और अग्नि-शिखाके समान प्रकाशमान होने लगी। फिर सहसा उठ कर गंभीर अट्टहास करके उस जटाको पृथ्वी पर पटक दिया ॥ २ ॥ उस जटासे वीरभद्र उत्पन्न हुए। उनका शरीर इतना लम्बा चौड़ा कि वह शरीरसे स्वर्ग लोकको छू रहे, कपालमाला पहने, शरीर मेघके समान श्याम, तीन नेत्र सूर्य्यके समान प्रज्वलित, दंष्ट्रा बड़ी ही कराल, शिरके केश जलते हुए अग्निके समान, हाथोंमें अनेक प्रकारके शस्त्र; ॥३॥ ऐसे घोररूप वीरभद्र अंजलि बाँध कर शिवसे सन्मुख खड़े हो कहने लगे कि भगवन्! क्या आज्ञा है? क्या करूँ?। तब भगवान् भूतनाथ उनसे कहने लगे कि

हेरुद्र! हेसुभट! तुम मेरा अंश हो, जाओ—दक्ष और दक्षके यज्ञका विध्वंस करो। तुम मेरे गणोंमें मुख्य हो ॥ ४ ॥ कुपित शंकरने जब इस प्रकार आज्ञा दी तब वीरभद्रने देवदेव विभुको प्रणाम व प्रदक्षिणा की। हेतात! उस समय वीरभद्रका वेग अनिवार्य्य हो गया और उन्होने अपनेको बड़े बलवान् व्यक्तिके भी बलके सहन करनेमें समर्थ माना ॥ ५ ॥ शिवकी आज्ञासे अन्य २ सकल पार्षदगण भी वारम्वार नाद करते हुए वीरभद्रके साथ हो लिये एवं वीरभद्र अपने शूलको तान कर गर्जने लगे, जो शूल जगत्के मारनेवाले यमराज या मृत्युको भी नष्ट करनेमें समर्थ है। वीरभद्रजी उस समय दक्षके यज्ञकी ओर दौड़े, चलनेसे उनके चरणके आभूषण बजने लगे ॥ ६ ॥ रुद्रगणोंके दौड़नेसे उतनी धूर उड़ी कि आकाशमण्डल उससे छिप गया। इधर दक्षकी यज्ञशालामें बैठे हुए ऋत्विज, यजमान, सदस्य, द्विज, द्विजपत्नी आदि सब उत्तर दिशामें भयानक धूरके उड़नेका अन्धकार देख कर सोचने लगे कि यह अंधकार कैसा है? या अंधकार नहीं धूर है? तो यह धूर कैसे उठी? ॥ ७ ॥ क्योंकि वायु तो चलती नहीं है। फिर क्या चोरलोग हैं? सो भी संभव नहीं है क्योंकि उग्र दण्ड देनेवाले राजा प्राचीनबर्हि अभी जीवित हैं! फिर क्या गौओंको कोई शीघ्र हांके हुए लिये आता है? किन्तु अभी गोधूलिवेला नहीं है। तब यह धूर कहांसे उठी है? क्या आज इस समय लोकोंका प्रलय होने वाला है? ॥ ८ ॥ दक्षकी स्त्री प्रसूति आदि सब स्त्रियाँ व्याकुल हो कर कहने लगीं कि अवश्य यह उसी पापका फल है, जो और २ कन्याओंके सामने प्रजापति दक्षने विना अपराधके अपनी कन्या सतीका अनादर किया है। इसमें सन्देह नहीं है कि उसी कारण यह भयानक उत्पात उपस्थित हुआ है ॥ ९ ॥ जो प्रलयकालमें अपनी जटाओंको फैला कर और त्रिशूलकी नोकों पर बड़े २ दिग्गजोंको उठा कर, अपने वज्रपातके तुल्य घोर अट्टहाससे दिशाओंको विदीर्ण करते हुए, सशस्त्र भुजारूप ध्वजाओंको फैलाकर ताण्डव नृत्य करते हैं ॥१०॥ जिनका तेज असह्य है, जिनका स्वभाव सहज ही क्रोधी है, जिनके कुपित अवस्थामें टेढ़ी हुई भ्रुकुटीसे भयानक मुखके सामने कोई नहीं जा सक्ता, जिनकी विकराल दाढ़ोंकी चमकके आगे नक्षत्रचक्रकी चमक फीकी है, उन महाकालरूप शिवका तिरस्कार कर वारम्वार क्रोध दिलानेसे ब्रह्माका भी कल्याण नहीं हो सक्ता! अन्य जनोंकी कौन कहै? ॥ ११ ॥ यज्ञशालामें स्थित सब लोग घवड़ा कर उस धूलकी ओर देख कर इसी भाँतिकी बहुत सी बातें कहने लगे। इतनेमें पृथ्वी, स्वर्ग और अन्तरिक्षमें चारो ओर महा घोर हजारों उत्पात होने लगे; जिन उत्पातोंको देख कर महात्मा दक्षके भी चित्तमें भय उत्पन्न हुआ ॥१२॥ हेविदुर! इतनेमें दौड़ते हुए रुद्रके गणोंने आ कर उस महायज्ञको चारो ओरसे घेर लिया। वे लोग कोई बौने थे, किसीका वर्ण पिंगल था, किसीका वर्ण पीला था, किसीका मुख और किसीका पेट मगरका ऐसा था। वे अनेक शस्त्र लिये हुए थे ॥ १३ ॥ किसी

गणने प्राग्वंश तोड़ डाला, किसीने पत्नीशाला नष्ट कर दी, किसीने यज्ञशालाके सन्मुख स्थित मण्डप और मण्डपके आगेका हविर्द्धान एवं उसके उत्तर दिशामें स्थित आग्नीध्रशाला, यजमानगृह, पाकशाला आदिको तोड़ फोड़ डाला ॥ १४ ॥ किसीने यज्ञके पात्रोंको तोड़ डाला, किसीने अग्निको बुझा दिया, कोई कुण्डोंमें मूत्र करने लगे, किसीने वेदीकी मेखला तोड़ डाली ॥ १५ ॥ कोई यज्ञ करानेवाले मुनियोंको सताने लगे, कोई स्त्रियोंको धमकाने डराने लगे । किसीने पास ही भाग रहे देवगणको दौड़ कर पकड़ लिया ॥१६॥ मणिमान् नामक रुद्रके गणने आचार्य्य भृगुको बाँध लिया, वीरभद्रने यजमान दक्ष प्रजापतिको बाँध लिया, चण्डीशने सूर्य्यदेवको और नन्दीशने भगदेवको पकड़ कर बाँध लिया ॥ १७ ॥ यज्ञसभामें आये हुए ऋत्विक् और सदस्यगण व देवगण यह भयानक व्यापार देख कर चारो ओर भागने लगे एवं रुद्रके गण उनको पीछेसे पत्थर फेंक कर पीड़ित करने लगे ॥ १८ ॥ भृगुजी स्रुवा हाथमें लिये हवन कर रहे थे, शंकरके किंकर भगवान् वीरभद्रने उनकी दाढ़ी पकड़ कर उखाड़ ली-क्योंकि जब दक्षने शिवकी निंदा की थी तब भृगुने दाढ़ीका इशारा करके शिवका उपहास किया था ॥१९॥ नन्दीश्वरने क्रोधपूर्व्वक भगदेवको पृथ्वीमें गिरा दिया व उनकी आंखें निकाल लीं, क्योंकि जब दक्षने शिवको शाप दिया था तब इन्होने आँखके इशारेसे दक्षको उत्साहित किया था ॥ २० ॥ वीरभद्रने पूषाके सब दाँत गिरा दिये जैसे बलभद्रने कलिंग देशके राजा दन्तवक्रके दाँत गिरा दिये थे । जब दक्ष शिवकी निंदा कर रहा था तब पूषा दाँत निकाल कर हँसे थे ॥२१॥ फिर वीरभद्रजी दक्षको गिरा कर उसकी छाती पर चढ़ बैठे और तीक्ष्ण तर्वारसे उसका शिर काटने लगे, परन्तु न काट सके ॥ २२ ॥ जब अस्त्र शस्त्रसे दक्षकी खाल तक न कटी तब वीरभद्रको बड़ा विस्मय हुआ और वह सोचने लगे ॥ २३ ॥ उसी समय एक उपाय उनके ध्यानमें आया । जैसे पशु आदिको गला घोट कर मारते हैं वैसे ही उन्होने दक्षका शिर उमेठ कर धड़से अलग कर दिया ॥ २४ ॥ तब शिवके अनुचर भूत, प्रेत, पिशाच आदि "वाह वाह" कह कर वीरभद्रके उस कर्मकी प्रशंसा करने लगे । परन्तु अन्य जन हाहाकार करने लगे ॥ २५ ॥

जुहावैतच्छिरस्तस्मिन्दक्षिणाग्नावमर्षितः ॥
तद्देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठद्गुह्यकालयम् ॥ २६ ॥

और क्रोधित वीरभद्रने यज्ञकुण्डकी दक्षिणाग्निमें पूर्णाहुतिस्वरूप वह दक्षका शिर डाल दिया एवं यज्ञशालाको जला कर पार्षदगणसहित कैलास पर्वतको लौट चले २६

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

१ यज्ञशालाके पूर्व और पश्चिम स्तम्भ(खंभे)के ऊपर स्थित पूर्व और पश्चिमको आयत काष्ठ । २ यज्ञशालाके पश्चिम ओर पत्नीशाला होती है ।

षष्ठ अध्याय ।

कैलासमें जाकर ब्रह्माजीका देवगणसहित प्रार्थना करके शिवको मनाना ।

मैत्रेय उवाच—अथ देवगणाः सर्वे रुद्रानीकैः पराजिताः ॥
शूलपट्टिशनिस्त्रिंशगदापरिघमुद्गरैः ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले । हे विदुर! शिवकी सेनाने शूल, पट्टिश, निस्त्रिंश, गदा, बेलन, मुद्गर आदि शस्त्रोंसे ऋत्विज, सदस्य और देवगणका अंगभंग कर दिया, वे सब घायल हो गये; तब रुद्रकी सेनासे पराजित और भयभीत होकर ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीके पास गये और प्रणाम करके यह सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥१॥२॥ जगत् भरके हृदयका हाल जाननेवाले अन्तर्य्यामी हरि और ब्रह्मा पहले ही से जानते थे कि शिवद्रोही दक्षके यज्ञकी कुशल नहीं है, अतएव वे दक्षके यज्ञमें नहीं आये थे ॥ ३ ॥ देवतोंसे यह हाल सुन कर ब्रह्माजी बोले कि हे देवगण! अति तेजस्वी पुरुषका अपराध करके यदि कोई अपनी कुशल चाहै तो कदापि संभव नहीं है । उस कुकर्म्मका फल अवश्य मिलता है ॥ ४ ॥ यद्यपि तुमने रुद्रको यज्ञमें भाग न देकर बड़ा भारी अपराध किया है तथापि शुद्ध चित्तसे चल कर चरणोंमें गिर कर उन्हे प्रसन्न करो—क्योंकि वह अपराध करने पर भी बहुत शीघ्र प्रसन्न होने वाले दयालु हैं ॥ ५ ॥ प्रथम दक्षके कटुवचनरूप वाण उनके हृदयमें बिंध गये, फिर प्रिया सतीका वियोग हो गया अतएव कुपित हो कर देव शंकरने यज्ञको नष्ट कर दिया। यह यज्ञ क्या है? उनके क्रोध करनेसे लोकपालोंसहित तीनो लोकका संहार हो जाता है! यदि तुम चाहते हो कि यज्ञ फिरसे आरम्भ होकर पूर्ण हो तो शीघ्र चल कर उनको प्रसन्न करो और अपना अपराध क्षमा कराओ ॥ ६ ॥ मैं, इन्द्र, तुम सब, मुनिगण और अन्य सब देहधारी उनके तत्त्व और बल-वीर्य्यके प्रमाणको नहीं जान सक्ते; वह स्वतंत्र, ईश्वर हैं—उनके सिवाय और कौन तुम्हारी रक्षा और यज्ञके पूर्ण होनेका उपाय कर सक्ता है? (उन्होने ही यज्ञका ध्वंस किया है, वही उसको वना सक्ते हैं-दूसरेमें सामर्थ्य नहीं है जो उनके कियेको टाल सकै) ॥ ७ ॥ इस प्रकार देवगणको उपदेश देकर पितृगण, प्रजापतिगण और देवगणसहित ब्रह्माजी अपने लोकसे शिवका प्रिय धाम जो कैलास पर्वत है, वहाँ गये ॥ ८ ॥ उस कैलास पर्वत पर जन्म, औषधि, तप, मंत्र, योग आदि उपायोंसे सिद्ध हो गये, यक्षादि योनिको प्राप्त जीव और किन्नर, गन्धर्व, अप्सरा आदि उपदेवगण सदा रहते हैं ॥ ९ ॥ उसके शिखर अनेकमणिमय और अनेक चित्र विचित्र धातुओंसे विचित्र शोभा धारण किये हुए हैं, अनेक प्रकारके वृक्ष, लता, घास आदि वहां सुशोभित हैं, अनेक प्रकारके मृगगण वहाँ विचरते हैं ॥१०॥ उस पर अनेक निर्मल झरने झरते हैं, उसमें अनेक कन्दरा और अनेक

शिखर हैं, उन कंदरा और शिखर तथा झरनोंमें रमणी रमणियों सहित सिद्ध पुरुष रमण करते हैं ॥११॥ मोर सुन्दर वाणी बोल रहे हैं, मदमत्त भँवर गुंजार कर रहे हैं, मधुर कण्ठवाली कोकिलाएँ मनोहर शब्द कर रही हैं, अनेक प्रकारके पक्षी बोल रहे हैं ॥१२॥ वह पर्व्वत, सब कामनाओंके देनेवाले वृक्षोंकी ऊंची २ शाखाओंसे मानो हाथ उठा कर पक्षियोंको अपने पास बुला रहा है। ऊंचे २ हाथियोंके चलनेसे जान पड़ता है कि मानो वह पर्वत चल रहा है। झरनोंके शब्दसे जान पड़ता है मानो वह पर्वत बोल रहा है ॥ १३ ॥ मंदार, पारिजात, सरल, तमाल, साल, ताल, कोविदार, असन, अर्जुन आदि वृक्ष उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं ॥१४॥ आम, कदम्ब, नीप, नाग, पुन्नाग, चम्पा, पाटल, अशोक, बकुल, कुंद, कुरबक, स्वर्णवर्ण शतपत्र कमल, इलायची, जायफल, कुब्जक, मल्लिका, माधवी आदि वृक्षोंसे वह पर्वत बहुत ही भला लगता है ॥१५॥१६॥ कटहर, उदुम्बर, पीपल, पकरिया, गूलर, हिंगु, भूर्ज (भोजपत्र जिन वृक्षोंसे निकलता है), अनेक औषधि, सुपारी, राजपूग, जामुन, खजूर, अमिल्तास, आम्र (आमका भेद), प्रियाल, महुआ, इंगुदी, वेणु (ठोंस बांस), कीचक (पोले बांस) इत्यादि अनेक प्रकारके वृक्ष वहां लगे हुए हैं ॥१७॥१८॥ वहाँके सुन्दर सरोवरोंमें कुमुद, उत्पल, कल्हार, शतपत्र आदि (कमलकी जातियां) उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं और उनके तीर पर अनेक हंस, सारस आदि पक्षी अपनी २ विचित्र बोली बोल रहे हैं ॥ १९ ॥ मृग, शाखामृग (वानर) शूकर, सिंह, भालू, स्याही, नीलगाय, कस्तूरीमृग, बाघ, भैंसे आदि पशुगण वहां विचर रहे हैं। सरोवरोंके तीरों पर केलेके वन लगे हुए हैं, जिनसे उनकी बड़ी ही शोभा हो रही है ॥ २० ॥ सतीके स्नान करनेसे परम पवित्र जलवाली पतितपावनी गंगासे चारों ओर घिरे हुए शिवके निवासस्थान कैलास पर्वतकी ऐसी अपूर्व शोभा देख कर सब देवगण परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥२१॥ वहां पर देवगणने कुवेरकी अलका नाम रमणीक पुरी और सौगंधिक नाम वनको देखा। जिस वनमें सौगंधिक नाम कमल है ॥२२॥ हरिके चरणकमलकी रजसे परमपवित्र नंदा और अलकनंदा नाम दोनो गंगाकी धाराएँ भी देवगणने देखीं ॥ २३ ॥ हे विदुर! जिनमें देवगणकी स्त्रियाँ अपने विमानोंसे उतर कर जलक्रीड़ा करती हैं और अपने २ पतियों पर पिचकारीसे जल छोड़ती हैं एवं रतिके श्रमको नष्ट करती हैं ॥ २४ ॥ उन देवियोंके नहानेके कारण कुचमण्डलसे छूटे हुए नव कुंकुमसे पीले २ सुगंधित जलको हथनियाँ विना प्यासके भी पीती हैं और हाथियोंको पिलाती हैं ॥ २५ ॥ उस पुरीमें बड़े ऊंचे महल चाँदी, सोने और रत्नोंसे सुशोभित हो रहे हैं, जिनमें यक्षोंकी स्त्रियाँ विचर रही हैं। उनसे उन विमानोंकी दामिनीसहित आकाशके समान शोभा हो रही है ॥ २६ ॥ कुवेरकी पुरी नाँघ कर देवगण सौगंधिक वनमें पहुंचे; जिसमें हृदयको आनंद देनेवाले व सम्पूर्ण

कामना पूर्ण करनेवाले वृक्ष, विचित्र फूल फल पत्ते आदिसे सजे हुए हैं ॥ २७ ॥ उन वृक्षों पर भँवर गुंजन कर रहे हैं और कोकिला आदि पक्षी कलोल करते हुए मीठी बोली बोल रहे हैं । जलाशयोंमें कमल खिले हुए हैं, जिन पर राजहंस सुखसे विहार कर रहे हैं ॥ २८ ॥ वनके हाथियोंने अपना अंग घिस कर हरि-चन्दनके वृक्षोंकी छाल उधेड़ डाली है—उन वृक्षोंकी सुगंधसे सुगंधित वायु चल कर वारम्वार यक्षोंकी स्त्रियोंके मनको मथ रहा है ॥ २९ ॥ वावलियाँ कमलकी माला पहने हुए हैं, जिनकी वैडूर्य्यकी बनी हुई सीढ़ियों पर बैठे हुए यक्ष, किम्पुरुषगण जी वहला रहे हैं। उस वनको नाँघकर देवगणने आगे एक बर्गदका वृक्ष देखा ॥३०॥ वह बर्गदका वृक्ष सौ योजन तक ऊँचा है और उसकी शाखाएँ पछत्तर योजन चारों ओर फैली हुई हैं; उसकी सघन शीतल छाँह चारो ओर सदा बनी रहती हैं; वहाँ तापका नाम नहीं है और उस वृक्षमें किसी पक्षीका कोई झोंझ नहीं है ॥ ३१ ॥ वह बर्गद महायोगमय है, उसके नीचे मुक्तिकी कामनावाले योगी जन ही जा सक्ते हैं। देवगणने जा कर उस बर्गदके नीचे देखा कि कालके तुल्य शिवजी क्रोधविहीन भावसे बैठे हुए हैं ॥ ३२ ॥ शान्तशरीर और शांत स्वभाव सनंदन आदि महासिद्ध और यक्षराक्षसोंके स्वामी तथा शिवके सखा कुवेरजी शिवकी उपासना कर रहे हैं अर्थात् शिवजीके पास बैठे हैं ॥ ३३ ॥ देवतोंने वहाँ देखा कि संसार भरके सुहृद् देवदेव ईश्वर शिवजी एकाग्रचित्तसे समाधि लगाये (यद्यपि उनको आनन्दमय होनेके कारण योगमार्गके अवलम्बनकी कोई आवश्यकता नहीं है तथापि लोगोंको उनके कल्याणके लिये अर्थात् योगमार्गमें आरूढ़ करनेके लिये) स्नेहसे लोकोंके मंगलकी कामनासे ईश्वरकी उपासना कर रहे हैं ॥ ३४ ॥ योगियों–तपस्वियोंके प्रिय चिन्ह भस्म, दण्ड, जटा, मृगछाला आदि धारण किये हुए हैं, उनके अंग संध्याकालके मेघके समान अरुणवर्ण हैं, शिर पर चंद्रमाकी कला धारण किये हैं ॥ ३५ ॥ ब्रह्मचारी जन जिस आसन पर बैठते हैं उस कुशासन पर बैठे हुए हैं; नारदजी ब्रह्मज्ञानविषयक प्रश्न कर रहे हैं और आप ब्रह्मज्ञानका उपदेश दे रहे हैं एवं अन्य अन्य सनकादि सज्जन महात्मा योगी चित्त लगा कर सुन रहे हैं ॥ ३६ ॥ दाहिनी ऊरू पर बाएँ चरणकमलको रख कर जानु पर वाम बाहुका सहारा दिये दक्षिण बाहुसे तर्कमुद्रा धारण किये

---

१ योजन चार कोसको कहते हैं। १०० योजनके ४०० कोस हुए।

"तर्जन्यंगुष्ठयोरग्रे मिथः संयोज्य चाङ्गुलीः। प्रसार्य्य बंधनं प्राहुस्तर्कमुद्रेति तान्त्रिकाः ॥ अर्थात् तर्जनी और अंगूठेको मिला कर शेष अंगुलियोंको जोड़कर आगे फैलाना; इस बन्धनको 'तर्कमुद्रा' कहते हैं। (यो. शा.)

[१]वीरासनसे बैठे हैं—कलाईमें रुद्राक्षकी माला पड़ी हुई है॥ ३७ ॥ भगवान् शंकर बाम भुजासे [२]योगपट्टका सहारा लिये हुए एकाग्रमनसे ब्रह्मानन्दका अनुभव कर रहे हैं। ऐसे मनन करनेवाले मनुओंमें श्रेष्ठ भगवान् शंकरको लोक-पालसहित मुनिगण और देवगणने चरणोंमें गिर कर दण्डवत् प्रणाम किया ॥३८॥ देवता, दैत्य एवं उनके ईश्वर जिनको प्रणाम करते हैं वह जगदीश्वर शंकर ब्रह्माजीको आये हुए जान कर लोकाचार[३] दिखानेके लिये उठ खड़े हुए और स्वयं जगत्पूज्य हो कर भी शिर झुका कर प्रणाम किया, जैसे कश्यपको वामनावतार हरिने प्रणाम किया था ॥ ३९ ॥ और जो सिद्धगण व महर्षिगण शिवजीके पास बैठे हुए थे उन सबने ब्रह्माजीको प्रणाम किया। तब सर्वदेवनमस्कृत ब्रह्माजी (शिवजीके उठ कर प्रणाम करने एवं पूज्य हो कर भी लोकाचार करने पर) कुछ हँसते हुए चन्द्रभालसे बोले ॥४०॥ "हे देवदेव महादेव! मैं आपको जानता हूँ कि आप जगत्की योनि जो शक्ति अर्थात् प्रकृति (माया) है और बीज शिवस्वरूप जो पुरुष (जीवात्मा) है उनका परम कारण हो कर भी उन दोनो से परे भेदहीन एवं विकाररहित ब्रह्म हैं! ॥४१॥ यदि कहो कि कारण कैसे कार्य्यसे विभिन्न हो सक्ता है? तो हे भगवन्! इन एकरूप (अविभिन्न) पुरुष-प्रकृतिको अपनेसे प्रकट करके इनके द्वारा क्रीड़ा करते हुए आप ही इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और नाश करते हैं; जैसे मकड़ा अपने जालेको अपनी ही इच्छासे प्रकट करता है और कुछ काल उसमें क्रीड़ा करके फिर अपनी इच्छा होने पर उसे लील लेता है ॥४२॥ आपने ही धर्म्म, अर्थ, कामको देनेवाली वेदत्रयीकी रक्षाके लिये दक्षके द्वारा इस यज्ञकी सृष्टि की थी। भगवन्! आपने ही वेदरूप अपनी आज्ञासे वर्ण और आश्रमोंके आचाररूप धर्म्मकी मर्य्यादाएँ स्थापित की हैं; आचारनिष्ठ ब्राह्मणगण श्रद्धापूर्वक जिनका पालन (रक्षा) करते हैं ॥ ४३ ॥ हे मंगलमय महेश! आप ही मंगलमय शुभ कर्म्म करनेवालोंको स्वर्ग और मोक्षरूप

---

१ "एकपादमथैकस्मिन् विन्यसेदूरुसंस्थितम् । इतरस्मिंस्तथा बाहुं वीरासनमिदं स्मृतम् ॥" अर्थात् एक (दक्षिण) ऊरूमें एक (वाम) पैर रखकर दूसरे पैरमें बाहु रखना इसको 'वीरासन' कहते हैं। (यो. शा.) २ योगपट्ट उस काष्ठका नाम है जो प्राय: फकीरोंके पास टेकनी सी होती है, जिसके सहारे बैठ कर वे समाधि लगाते हैं।

(३) लोकाचार यहां पर यह दिखाया कि यद्यपि आप त्रिलोकीके पूज्य हैं तथापि ब्रह्माको पिताके नातेसे बड़ा समझ कर उठ खड़े हुए, यही तात्पर्य्य विष्णु और कश्यपकी उपमासे पुष्ट होता है । इसका तात्पर्य्य यह है कि जो बड़े करते हैं, साधारण जन उसका अनुकरण करते हैं । खुलासा यह प्रयोजन है कि लड़का यदि बहुत ही उन्नत पदवीको प्राप्त हो गया हो पर उसे अपने बड़ोंका सन्मान अवश्य करना चाहिये ।

फल देते हैं और अमंगल अशुभ कर्म्म करनेवालोंको घोर नरककी गति देते हैं। तब कहीं कहीं पर इस नियमके विपरीत भी क्यों देखा जाता है? ॥ ४४ ॥ जिन सज्जनोंका चित्त आपके चरणोंमें लगा हुआ है, जो सज्जन सब प्राणियोंमें आपको देखते हैं एवं अपनेमें सब प्राणियोंको ब्रह्ममय जान कर अपनेसे अलग नहीं देखते उन पर प्रायः क्रोध अपना अधिकार नहीं जमा सक्ता—क्योंकि क्रोध तो भेदबुद्धिवाले नरपशुओंका धर्म्म है! ॥ ४५ ॥ (जब आपके भक्तोंको क्रोध नहीं होता तब आपको क्रोध कहाँ? अतएव यह भी कहना असंगत है कि आपके कोपसे कहीं २ कर्म्मका उल्टा फल मिलता है। अतएव उन कर्म्म करनेवालोंके उल्टे भाव ही उल्टा फल मिलनेका कारण हैं—यही कहते हैं:—) अतएव जो भेद-दृष्टिवाले होनेके कारण स्वर्गादिलाभकी इच्छासे कर्म्ममें ही लिप्त हैं, जिनका अन्तःकरण मिथ्या देहाभिमानसे दूषित है, अतएव दिन-रात दूसरेका उदय देख कर जिनका जी जला करता है वे मर्म में चोट मारनेवाले अज्ञानी दूसरोंके हृदयमें कटुवचन (निन्दा) से पीड़ा पहुँचाते हैं। उनके कर्म्म ही उनको नष्ट करते हैं; अतएव उन मरे हुओंको आपके समान महत्जन नहीं मारते! ॥ ४६ ॥ हे ईश! जो लोग भगवान् हरिकी प्रबल मायामें मोहित हो कर भेददृष्टिवाले हैं उनका कोई दोष देख कर भी आपके समान साधुजन उन पर कृपा करते हैं क्योंकि उन सज्जनोंका स्वाभाविक गुण यही है कि शोचनीय मूर्ख लोगों पर दया करना! साधुजन मिथ्यादेहाभिमानियोंके अपराधके बदले उन पर दया करनेके सिवाय अपना बलविक्रम नहीं जनाते—क्योंकि वे भी उन मूढ़ोंकी भाँति ना समझ नहीं होते ॥ ४७ ॥ प्रभु! आपकी मति ईश्वरकी प्रबल मायासे मोहित नहीं है; आप सर्वज्ञ अन्तर्यामी हैं। अतएव उस मायासे मोहित कर्मलिप्त लोगों पर (उनके अपराधों पर दृष्टि न करके) अनुग्रह करने योग्य हैं, आपको उन मूढ़ोंके अपराध क्षमा करने चाहिये ॥ ४८ ॥ आप ही यज्ञफलके देनेवाले और यज्ञके भागका भोग करनेवाले हैं। इन कुबुद्धि यज्ञ करनेवालोंने आपको यज्ञका भाग नहीं दिया, अतएव आपके द्वारा दक्षप्रजापतिका यज्ञ नष्ट होगया—पूर्ण नहीं हुआ। अनुग्रह करके अब उस यज्ञका उद्धार कीजिये ॥ ४९ ॥ यह यजमान दक्षजी उठे, भगदेवको फिर अपनी दोनो आंखें मिलें, भृगुकी दाढ़ी और पूषाके दाँत फिर जैसेके तैसे हो जायँ ॥ ५० ॥ और जिन २ देवता और ऋत्विक् आदिके अंग, गणोंके शिला आदिके प्रहारसे टूट गये हैं वे सब आपके अनुग्रहसे पहलेकी भाँति हो जाँय ॥ ५१ ॥

एष ते रुद्र भागोऽस्तु यदुच्छिष्टोऽध्वरस्य वै ॥
यज्ञस्ते रुद्रभागेन कल्पतामद्य यज्ञहन् ॥ ५२ ॥

हे यज्ञके नाश करनेवाले भगवन् रुद्र! जो कुछ यज्ञमें बचा है सो आपका भाग है—इसको आप ग्रहण कीजिये। आजसे यज्ञकी बची हुई सब सामग्री आपका भाग होगी। आप यह अपना भाग ग्रहण कर यज्ञका उद्धार कीजिये ॥ ५२ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय।

दक्षके यज्ञका विष्णुके प्रकट होने पर पूर्ण होना।

मैत्रेय उवाच—इत्यजेनानुनीतेन भवेन परितुष्यता ॥
अभ्यधायि महाबाहो प्रहस्य श्रूयतामिति ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले। हे महाबाहो विदुर! इस प्रकार ब्रह्माके प्रार्थना और विनय करने पर शिवजी प्रसन्न हुए और हँस कर कहने लगे कि सुनो ॥ १ ॥ **शिवजी बोले।** ब्रह्माजी! दक्ष ऐसे बालबुद्धि लोगोंके अपराधको न मैं कहता हूँ और न स्मरण ही करता हूँ, क्योंकि ये ईश्वरकी अपार मायामें मोहित हैं! किन्तु केवल इनके चेतनेके लिये मैंने यह थोड़ा सा दण्ड दे दिया है ॥ २ ॥ प्रजापति दक्षका शिर जल गया है, उनके धड़में बकरेका शिर जोड़ दिया जाय। भगदेव मित्र नाम देवके नेत्रोंसे अपने यज्ञके भागको देखैं ॥ ३ ॥ पूषा देव पिसे हुए अन्नको यजमानके दाँतोंसे भोजन करैं। एवं जिन २ देवोंके अंग-भंग हो गये हैं उनके सब अंग जैसेके तैसे हो जायँ, क्योंकि उन्होने अपना अपराध क्षमा कराकर यज्ञका बचा हुआ सब मेरा भाग कल्पित किया है ॥ ४ ॥ जिन देवगणके अंग पूरे नष्ट हो गये हैं उनके अंग अश्विनीकुमारके हाथोंसे पूर्ण हों एवं जिनके बाहु टूट गये हैं वे पूषादेवके बाहुओंसे अपना कार्य्य करें, ऐसेही अन्य २ अध्वर्य्यु आदि सांगोपांग हो जायँ, भृगुऋषिके बकरेकी दाढ़ी लगाई जाय ॥ ५ ॥ **श्रीमैत्रेयजी कहते हैं।** तब इस भाँति शिवजीके वचन सुन कर सब लोग प्रसन्नमन हो कर "वाह वाह" करनेलगे ॥ ६ ॥ फिर सब इन्द्रादि देवगण और महर्षिगण ब्रह्माजी और शिवजीको प्रार्थनापूर्वक आगे कर उस यज्ञमें गये ॥ ७ ॥ जैसे भगवान् शिवने कहा था उसके अनुसार दक्षके धड़में बलिके पशु (बकरे) का शिर जोड़ा ॥ ८ ॥ शिरके जोड़ते ही और कृपादृष्टिसे शिवजीके देखते ही दक्षप्रजापति तुरन्त जी उठे, जैसे कोई सोया हुआ पुरुष उठ बैठता है; दक्षने उठ कर अपने आगे शिवजीको देखा ॥ ९ ॥ पहले शिवके द्रोहसे दक्षका मन मलीन हो गया था किन्तु इस समय शंकरके देखते ही शरद ऋतुके निर्मल सरोवरके समान शुद्ध हो गया ॥ १० ॥ श्रद्धापूर्वक दक्षने शिवजीकी स्तुति

करनेकी इच्छा की, परन्तु अपनी सती हो गई सती कन्याकी याद आगई। कन्याके स्नेह और उत्कण्ठासे आंसू भर आये और उनसे कण्ठ रुंध गया; इसी कारण वह स्तुति न कर सके। प्रेमके मारे दक्षका चित्त विह्वल हो गया। कुछ देरमें बड़े कष्टसे मनको सावधान कर शुद्ध भावसे दक्षप्रजापति शंकरकी स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ दक्ष बोले। भगवन्! मैंने आपका अनादर किया, किन्तु आपने यह दण्ड दे कर मुझ पर बड़ा भारी अनुग्रह किया; क्योंकि त्याग न कर यह दण्ड नहीं दिया वरन् शिक्षा दी। आप और भगवान् हरि यज्ञ आदि कर्ममें लिप्त अधम ब्राह्मणों पर भी अनुग्रह ही करते हैं; उनके अपराध पर ध्यान न करके उनको त्यागते नहीं ॥ १३ ॥ प्रभु! आपने ही पहले ब्रह्मारूपसे आत्मतत्त्व (वेद) की रक्षा करनेके लिये विद्या, तप और व्रतके धारण करनेवाले ब्राह्मणोंको मुखसे उत्पन्न किया है। हे सबमें श्रेष्ठ! अतएव सम्पूर्ण विपत्तियोंमें आप ब्राह्मणोंकी रक्षा करते हैं जैसे पशु चरानेवाला दण्ड हाथमें लिये पशुओंकी रक्षा करता है ॥ १४ ॥ मुझे तत्त्वका ज्ञान नहीं था, इसी कारण यज्ञसभामें मैंने आप पर दुर्वचनरूप वाणोंकी वर्षा की थी, किन्तु आपने मेरे उस अपराध पर ध्यान नहीं किया और परमपूज्य जो आप हैं उनकी निन्दा करनेके कारण नरकमें गिर रहा जो मैं हूं उसका उद्धार, दण्ड दे कर किया, एवं कृपादृष्टिसे देखा। आपका स्वभाव ही परोपकार है, मैं बदला चुका कर आपको प्रसन्न नहीं कर सक्ता—इस लिये आप अपने ही किये हुए कर्म्मसे प्रसन्न हों ॥ १५ ॥ श्रीमैत्रेयजी कहते हैं। दक्षप्रजापतिने इस भाँति शिवसे अपना अपराध क्षमा कराकर और ब्रह्मासे आज्ञा लेकर उपाध्याय, ऋत्विक्, अग्नि आदिके द्वारा फिर यज्ञकर्म्मका आरम्भ किया ॥ १६ ॥ तब ब्राह्मणोंने यज्ञकर्म्मके विस्तारके लिये विष्णुसम्बन्धी त्रिकपाल हविका हवन किया; एवं रुद्रके पार्षद भूत प्रेत पिशाच आदिके संसर्गसे दूषित यज्ञकी शुद्धिके लिये पुरोडाशका हवन किया ॥१७॥ हे विदुर! यजमान दक्ष विशुद्ध चित्तसे हरिका ध्यान करने लगे और अध्वर्य्यु (यजुर्वेदके आचार्य) हवि लेकर हवन करनेको खड़े हुए—वैसेही हरि भगवान् वहाँ पर प्रकट हुए ॥ १८ ॥ भगवान्

---

१ ब्राह्मणका अर्थ ब्रह्मज्ञानी (ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः) है जो ब्रह्मज्ञानको छोड़ कर स्वर्गादिकी इच्छासे यज्ञ आदि कर्मोंमें लिप्त रहते हैं वे अधम ब्राह्मण हैं। यहां पर दक्षने अपने लिये अधम ब्राह्मण कहा है।

२ पापका प्रायश्चित्त पापी कर डालता है तो उसको नरक नहीं जाना पड़ता, शिवने दक्षको उनके पापका दण्ड देकर इसी जन्ममें एक प्रकार प्रायश्चित्त करा दिया। दक्ष वही कहते हैं कि दण्ड देकर आपने मेरे पापको क्षीण कर दिया और मुझे नरक जानेसे बचा लिया, नहीं तो मुझे अवश्य ही नरककी घोर यातना भोगना पड़ती। क्योंकि पाप बिना फल भोग नहीं मिटता।

हरि गरुड़ पर सवार हैं, गरुड़के दोनो परोंसे ऋचाओंका पाठ हो रहा है। हरिका तेज दशदिशाओंमें व्याप्त है, जिससे यज्ञमें बैठे हुए लोगोंके नेत्र चकचौंध गये ॥१९॥ भगवान्‌के श्यामशरीरमें सोनेकी कर्धनी पड़ी हुई है, शिर पर किरीट मुकुट सूर्य्यके समान प्रकाशमान है, मुखमण्डलमें कुण्डलोंकी अपूर्व्व शोभा है, मुखकमल पर नीली अलकावली भौंरोंके झुण्डकी भाँति सुशोभित है। भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, धनुष, बाण, ढाल, तर्वार आदि सुशोभित हैं। उन सोनेके आभूषणोंसे भूपित भुजाओंसे भगवान् फूली हुई शाखाओंसे सुशोभित कनेरके वृक्षके तुल्य देख पड़ रहेथे ॥२०॥ हृदयमें लक्ष्मीजी और वनमालाको धारण कियेहुए हरि, अपनी उदार मंद मुसकान मिली मनोहर दृष्टिसे मानो विश्वको आनन्द देरहे हैं। आसपास पार्षदगण राजहंसके तुल्य श्वेत चँवर डुला रहे हैं और ऊपर चन्द्रमण्डलके समान छत्र शोभाको प्राप्त है ॥ २१ ॥ इस रूपसे यज्ञमण्डपमें आये हुए हरिको देखते ही ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि सब देवतोंने सहसा उठ कर प्रणाम किया ॥ २२ ॥ हरिके तेजके आगे सबके तेज फीके पड़ गये, और हरिको देख कर सबकी वाणी गद्गद हो गई। हरिकी महिमासे सबके चित्त क्षोभको प्राप्त हुए। तब सब लोगोंने हाथ जोड़ कर हरिकी स्तुति की ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण ब्रह्माआदि देवोंकी बुद्धि और वाणी भी यद्यपि ईश्वरकी महिमा तक नहीं पहुँचती तथापि भक्तों पर अनुग्रह करनेके लिये शरीर धारण किये हुए उन्ही ईश्वरकी स्तुति सब लोग अपनी बुद्धिके अनुसार करते हैं ॥ २४ ॥ सबके पहले दक्षप्रजापति उत्तम पूजाकी सामग्री हाथमें लेकर विश्वके उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माआदिके भी परमगुरु विष्णुके निकट गये एवं सुनन्द, नन्द आदि पार्षदोंसे युक्त भगवान्‌की, अंजलि बांध कर शुद्धचित्तसे स्तुति करने लगे ॥२५॥ **दक्ष बोले**। प्रभु! आप अपने रूपमें ही स्थित हैं। शुद्ध चैतन्य आपका रूप है। बुद्धिकी सब अवस्थाएँ आपमें नित्य निवृत्त हैं, अतएव आप एक (भेदशून्य) हैं, अद्वितीय हैं, भयहीन हैं। किन्तु ऐसा होने पर भी आप जीवस्वरूप नहीं हैं क्योंकि आप मायाको दूर कर स्वतन्त्र भावसे अवस्थित (ब्रह्म) हैं। तथापि अपनी ही इच्छासे मायाको अंगीकार कर एवं पुरुषलीलाको स्वीकार कर उसी मायामें आप अशुद्ध (अज्ञानी) की भाँति (जीवात्मारूपसे) प्रतीत होते हैं ॥ २६ ॥ **फिर ऋत्विक् बोले**। हे निरंजन! हमको नन्दीश्वरका शाप है अतएव हमारी बुद्धि कर्म्ममार्गमें लगी हुई है और हम आपके तत्त्वको नहीं जानते। किन्तु धर्म्मको लक्षित करानेवाली इस आपकी वेदोंद्वारा प्रतिपादित यज्ञनामक मूर्तिको हम भलीभाँति जानते हैं; जिस यज्ञके अधिष्ठाता इन्द्रादि देवगण आपके ही रूप हैं ॥ २७ ॥ **सदस्यगण बोले**। हे आश्रयके देनेवाले। यह संसारमार्ग बड़ा ही दुर्गम है। इस मार्गमें विश्रामका नाममात्र नहीं है, इसमें सर्वत्र घोर क्लेशरूप स्थान हैं, इसमें चलनेवालेको कालरूप काले सांपसे सदा भय है, विषयरूप मृगतृष्णा (घाममें पानीकी बुद्धि) पग २ पर देख पड़ती हैं, इसमें

सुख दुःख आदि अनेक गढ़े हैं, इसमें सब ठौर सब समय खलरूप बाघोंका भय है, इसमें शोकरूप दावानल लगी रहती है। ऐसे संसारमार्गमें वर्तमान अज्ञ जीव कब आपके चरणरूप निर्भय स्थानको पावैगा? हे प्रभु! यह अभिमानका घर शरीर और ममताका स्थान गृह ही जीवके लिये बड़ा भारी बोझ है एवं यह जीव कामके वश हो कर पीड़ित रहता है ॥ २८ ॥ **श्रीरुद्र भगवान् बोले**। हे वर देनेवाले! आपके श्रेष्ठ चरण (ही) पुरुषोंकी सकल कामना पूर्ण करनेवाले हैं तथापि कामनारहित मुनिलोग आदरपूर्वक इनका भजन करते हैं; मैं इन्हीं भोग और मोक्षके देनेवाले आपके चरणारविन्दोंका ध्यान करता हूँ। अज्ञानीजन आचारभ्रष्ट कह कर मेरी निंदा किया करें पर मैं कुछ उसका ध्यान नहीं करता; क्योंकि मुझे आपका परम अनुग्रह प्राप्त है, जिससे मैं सदा सन्तुष्ट रहता हूँ ॥२९॥ **भृगुऋषि बोले**। ईश्वर! ब्रह्माआदि देहधारी आपकी अगम्य मायामें मोहित हो कर आत्माके तत्त्वको नहीं जानते एवं अज्ञानरूप अन्धकारमें पड़े भटक रहे हैं; यद्यपि आपका तत्त्व उन्हींके आत्मामें वर्त्तमान है तथापि आजतक वे उसे नहीं जान सके, आपकी माया ऐसी प्रबल है! आप प्रणत और शरणागत लोगोंके आत्मा एवं बन्धु हैं, हम आपको प्रणाम करते हैं, आप हम शरणागतों पर प्रसन्न हों ॥ ३० ॥ **ब्रह्माजी बोले**। यह पुरुष इन्द्रियोंके द्वारा जिन पदार्थोंका ग्रहण करता है वे कोई भी आपका रूप नहीं हैं (यह सब ही माया है)। यह बात सत्य है कि आप ज्ञानका विषय और इन्द्रियोंका आश्रय (प्रवर्तक) है किन्तु मायामय पदार्थसे बिल्कुल अलग है ॥ ३१ ॥ **इन्द्र बोले**। हे अच्युत! यद्यपि आप निराकार हैं; किन्तु आपका साकार होना भी असिद्ध नहीं है। अहो! देवद्रोही असुरगणको नाश करनेवाले शस्त्रोंसे शोभित आठभुजाओंको धारण करनेवाला यह आपका शरीर कैसा मन और नेत्रोंको आनन्द दे रहा है! यही आपका शरीर जगत्को पालनेवाला है ॥ ३२ ॥ **ऋत्विजगणकी स्त्रियाँ बोलीं**। हे यज्ञरूप! दक्ष प्रजापतिने आपकी ही पूजाके लिये इस यज्ञका आरम्भ किया था, वही यज्ञ दक्ष पर कुपित शिवजीके कोपसे नष्टभ्रष्ट हो गया था, अब आप कमलरूप लोचनोंसे देख कर इस श्मशानतुल्य, उत्सवरहित यज्ञको पवित्र करिये ॥ ३३ ॥ **ऋषि बोले**। भगवन्! आपका चरित्र बड़ा ही विचित्र है, कुछ समझमें ही नहीं आता। आप स्वयं कर्म्म करके भी उसमें लिप्त नहीं होते। देखिये और २ ब्रह्मा आदि लोग अपनी बढ़तीके लिये जिस लक्ष्मीकी प्रार्थना करते हैं वही लक्ष्मी उनको छोड़ कर स्वयं आपको भजती है, पर आप तब भी उसका आदर (चाह) नहीं करते हैं ॥ ३४ ॥ **सिद्धगण बोले**। भगवन्! यह हमारा मनरूप हाथी क्लेशरूप दावानलमें तप कर प्यासके मारे आपकी कथारूप मधुर अमृतकी नदीमें घुस गया अब उसे उस दावानलकी याद भी नहीं आती और यह मानो ब्रह्मानन्दमें लीन हो गया है, इसी कारण इस शीतल नदीसे बाहर नहीं

निकलता ॥ ३५ ॥ **दक्षकी स्त्री बोली** । हे ईश! आइये, भले ही आये; हम पर प्रसन्न होइये–आपको प्रणाम है। हे श्रीनिवास! अपनी प्यारी लक्ष्मीसे हमारी रक्षा करिये अर्थात् हम श्रीहीन हो गये हैं, हमें श्री (शोभा) दे कर सनाथ करिये । हे यज्ञेश! आपके विना और २ अंगोंसे युक्त होने पर भी यज्ञकी शोभा नहीं है, जैसे हाथ पैर आदि अंग होने पर भी शिरके विना कबन्ध (धड़) शरीरकी शोभा नहीं होती ॥ ३६ ॥ **लोकपाल बोले** । हे श्रेष्ठ! आप विश्वसंसारको देखते हैं एवं शब्दादि सब पदार्थोंको ग्रहण करनेवाली सब इन्द्रियोंके द्वारा आप ही देख पड़ते हैं। आप हरएक जीवके साक्षी हैं। किन्तु हम लोग असत् जो माया है उसको प्रकाश करनेवाली इन्द्रियोंसे आपको कैसे देख सक्ते हैं? क्योंकि हम आपकी मायामें मोहित हो रहे हैं। आप हमें पाँच तत्त्वोंका प्रकाशक छठा तत्त्व जीवात्मा देख पड़ते हैं–इसीसे हम आपके शुद्ध ब्रह्मरूपको इन मायामोहित इन्द्रियोंसे नहीं देख पाते ॥ ३७ ॥ **योगेश्वर लोग बोले** । आप विश्वके आत्मा हैं, परब्रह्म हैं, जो व्यक्ति अपनेको आपसे अलग नहीं देखता आपको उससे बढ़ कर और कोई प्यारा नहीं है। हम आपसे यही प्रार्थना करते हैं कि जो लोग ऐसी अनन्य भक्तिसे आपको भजते हैं उन पर आप अनुग्रह बनाये रहें क्योंकि आपका नाम भक्तवत्सल है ॥ ३८ ॥ आपकी मायाके गुण जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण हैं; वे गुण जीवोंके पूर्व्वकर्म्मोंके अनुसार कई प्रकार विभिन्न हैं। उन्ही मायाके विभिन्न गुणोंको ग्रहण करके आप ब्रह्मादि विभिन्न नाम धारण करते हैं और भिन्न २ प्रतीत होते हैं किन्तु वास्तवमें आप अपने ही रूपमें स्थित हैं; आप एक हैं, आपमें मायाके गुण नहीं हैं, अतएव भेदभाव भी नहीं है। हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ ३९ ॥ **शब्दब्रह्म (वेद)** स्तुति करने लगे। भगवन्! आप सत्त्वगुणको ग्रहण किये हुए हैं–इसी कारण धर्म्मकी उत्पत्ति व पालन करते रहते हैं; आपको प्रणाम है। आप निर्गुण भी हैं। यद्यपि एकमें ही निर्गुणधर्म्म और सगुणधर्म्म असंभव जान पड़ता है तथापि आपमें कुछ भी असम्भव नहीं है, क्योंकि आपके तत्त्वको हम नहीं जानते एवं और ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जानते ॥ ४० ॥ **अग्नि बोले** । जिसके तेजसे मैं तेजयुक्त हो कर सुन्दर यज्ञोंमें घीसे मिली हुई आहुति देवगणको पहुँचाता हूँ, आप वही यज्ञमूर्ति और यज्ञरक्षक हैं। अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्म्मास्य, पशुसोम; ये पाँच प्रकारके यज्ञ आपका ही रूप हैं एवं पाँच प्रकार(१) के यज्ञमंत्रोंसे

---

(१) ये पांच प्रकारके मंत्र हैः–१ "ओश्रावय" यह चार अक्षरका। २ "यज" यह दो अक्षरका। ३ "ये यजामहे" यह पांच अक्षरका। ४ "वषट्कार" यह चार अक्षरका ५ "स्वाहा" यह दो अक्षरका। स्मृतिमें यही लिखा है कि—"चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च। हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥"।

आपकी ही भलीभाँति पूजा होती है। आपको हमारा प्रणाम है॥ ४१॥ **सब देवगण बोले**। हे नाथ! आप ही आदिपुरुष हैं; प्रलयकालमें आप ही इस सम्पूर्ण अपने रचे हुए मायाके प्रपञ्च (संसार) को अपने उदरमें लीन करके जलके ऊपर शेषजीकी शय्यामें शयन करते हैं और जनआदि लोकोंके रहनेवाले सिद्धगण अपने २ हृदयोंमें आपकी अध्यात्मपदवी (ज्ञानमार्ग) का विचार करते हैं। उन्ही आपको आज हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। आप हम सेवकोंकी इसी भाँति सदा रक्षा करते हैं॥ ४२॥ **गंधर्व गण बोले**। हे देव! ये मरीचि आदिक ऋषि और ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र आदि देवगण सब आपके अंश, अंशका भी अंश और कला हैं। हे नाथ! यह ब्रह्माण्ड आपकी क्रीड़ाकी सामग्री है। हे नाथ! हम आपको नित्य निरन्तर प्रणाम करते हैं॥ ४३॥ **विद्याधर बोले**। हे देव! यह मनुष्य शरीर सब प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाला है, इसको पाकर आपकी मायासे मोहित यह कुमति जीव इस शरीर एवं इसके सम्बन्धी स्त्री पुत्रादिमें "मैं हूं, मेरा है" ऐसा मिथ्या अभिमान करता है और कुमार्गगामी पुत्रादि इसका निरादर भी करते हैं तथापि यह मिथ्या विषयोंकी लालसा छोड़ वैराग्यको नहीं प्राप्त होता। भगवन्! ऐसे जीव कदापि मोहसे मुक्ति नहीं पा सक्ते; किन्तु जो आपकी कथारूप अमृतका पान करता है वह शीघ्र ही आपकी भक्तिद्वारा इस मायामोहको त्याग कर संसारसे मुक्त हो जाता है॥ ४४॥ **ब्राह्मणगण बोले**। भगवन्! यज्ञ, हवि, अग्नि, मंत्र, कुश, यज्ञपात्र, सदस्य, ऋत्विज, यजमान, यजमानकी स्त्री, देवता, यज्ञकी समिधा (लकड़ी), अग्निहोत्र, स्वधा, सोम, आज्य (घी), बलिपशु आदि सब ही स्वयं आप हैं॥ ४५॥ हे यज्ञपुरुष! जैसे गजराज कमलिनीको जलसे उखाड़ कर उठा लेता है वैसे आपने ही पहले शूकररूप धर कर लीलापूर्वक रसातलमें पड़ी हुई इस पृथ्वीका उद्धार किया था। उस समय आप गरज रहे थे और आपकी दाढ़ पर इस पृथ्वीकी बड़ी ही शोभा हो रही थी। उस समय आपके इस अद्भुत कर्म्मको देख कर सब योगीजन आपकी स्तुति कर रहे थे॥ ४६॥ इस समय आप हम पर प्रसन्न हों। हमारा यज्ञकर्म्म भ्रष्ट हो गया है, इस कारण हम आपके दर्शन पानेकी इच्छा कर रहे हैं; आप अपनी कृपादृष्टिसे हमारे नष्टभ्रष्ट यज्ञका उद्धार कर दीजिये। हे यज्ञेश्वर! केवल आपका नाम लेलेनेसे सम्पूर्ण यज्ञोंके विघ्न नष्ट हो जाते हैं तब साक्षात् आपके दर्शन होने पर क्यों न इस यज्ञका उद्धार होगा? भगवन्! आपको हमारा वारंवार प्रणाम है॥ ४७॥ **मैत्रेयजी बोले**। हे विदुर! इस प्रकार सब लोगोंने यज्ञपालक विष्णुकी स्तुति की। फिर दक्षने वीरभद्र द्वारा नष्टभ्रष्ट हो गये उस यज्ञका आरंभ किया॥ ४८॥ विष्णु भगवान् सबके आत्मा हैं, सबकी पूजा उन्हीकी पूजा है एवं वह अपने ही आनन्दमें तृप्त हैं; उनको कोई चाह नहीं है, तथापि भक्तवत्सल भाव दिखाते हुए अपना भाग

ग्रहण करके प्रसन्नता प्रकट करते हुए दक्षसे यों बोले ॥ ४९ ॥ **श्रीभगवान् बोले।** दक्ष! मैं ही जगत्का कारण आत्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयंप्रकाशित एवं उपाधि-(माया) से रहित परब्रह्म हूँ। ये ब्रह्मा और शिव मेरा ही रूप हैं ॥ ५० ॥ हे द्विज! अपनी गुणमयी मायाको ग्रहण कर मैं ही इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और संहार, इन भिन्न २ कार्य्योंके करनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव, इन भिन्न २ नामोंको यथाक्रम धारण करता हूँ ॥ ५१ ॥ मैं एक, अद्वितीय, परब्रह्म हूँ; मुझसे ब्रह्मा और रुद्रको जो अलग जानता है वह भेदबुद्धिवाला मनुष्य मूर्ख है ॥ ५२ ॥ जो मेरे भक्त ज्ञानीजन हैं वे केवल ब्रह्मा आदिमें नहीं वरन् सब प्राणियोंमें और मुझमें भेद नहीं देखते—जैसे लोग अपने शिर, पैर, हाथ आदि अंगोंको अपने शरीरसे अलग नहीं मानते ॥ ५३ ॥ हम तीनोका रूप एक ही (ब्रह्म) है; हम ही सब प्राणियोंके आत्मा हैं। इस भांति जो लोग हमें तीनोमें और हमें ब्रह्म जा-कर सब प्राणियोंमें और हममें व अपनेमें भेदभाव नहीं रखता उसीको पूर्ण रूपसे शान्तिका लाभ होता है ॥ ५४ ॥ **श्री मैत्रेयजी कहते हैं।** इस प्रकार भगवान् की आज्ञा शिर पर ग्रहण करके प्रजापतियोंके पति दक्षने श्रद्धासे विधिपूर्व्वक यज्ञ द्वारा भगवान् हरि एवं अंशदेवता व प्रधानदेवताका पूजन किया। एकाग्रचित्त होकर रुद्रके भागसे रुद्रका पूजन किया। यज्ञको समाप्त करनेवाले "उद्वसान" कर्म्मसे सोमपान करनेवाले देवगण और ऋत्विक्, आचार्य्य, सदस्य आदि अन्य लोगोंका भी पूजन किया। फिर यज्ञको समाप्त करके ऋत्विक् आदिके साथ अवभृथस्नान[1] किया ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ विदुर! यद्यपि दक्षप्रजापति अपने ही प्रभावसे सिद्ध अर्थात् ब्रह्मज्ञानी, धर्म्मात्मा हो गये तथापि सब देवगण उन्हे धर्म्मका ही उपदेश देकर स्वर्गको गये ॥ ५७ ॥ इस प्रकार दक्षकी कन्या सतीजी अपने पहले शरीरको त्याग कर हिमवान्की स्त्री मेनाके गर्भसे उत्पन्न हुई—ऐसा प्रसिद्ध है ॥ ५८ ॥ जैसे प्रलय कालमें सोई हुई शक्ति (प्रकृति) पुरुषको ही भजती है उसी प्रकार वह अम्बिका फिर भी उन्ही अपने प्यारे पति शिवको ही अपना पति बनाना चाहती हैं, क्योंकि अनन्यभावसे ही वह मिल सक्ते हैं ॥ ५९ ॥ दक्षके यज्ञका ध्वंस करनेवाले शंभुका यह चरित्र मैंने बृहस्पतिके शिष्य परम भगवद्भक्त उद्धवसे सुना था ॥ ६० ॥

इदं पवित्रं परमीशचेष्टितं यशस्यमायुष्यमघौघमर्षणम् ॥
यो नित्यदाकर्ण्य नरोऽनुकीर्तयेद्धुनोत्यघं कौरव भक्तिभावतः ॥६१॥

---

१ यज्ञ पूरा होनेपर यजमान स्नान करता है उसे अवभृथस्नान कहते हैं।

हे विदुर! यह ईश्वरका पवित्र चरित्र यश देनेवाला, आयु बढ़ानेवाला और पापोंको दूर करनेवाला है; जो कोई भक्तिभावसे इसे सुनता है और नित्य पढ़ता है उसको संसार (जन्ममरण)का दुःख फिर नहीं होता ॥ ६१ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय ।

ध्रुवचरित्रका आरम्भ ।

मैत्रेय उवाच—सनकाद्या नारदश्च ऋभुर्हंसोऽरुणिर्यतिः ॥
नैते गृहान्ब्रह्मसुता ह्यावसन्नूर्ध्वरेतसः ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले । वत्स विदुर! सनकादिक चार ऋषि, तथा नारद, ऋभु, हंस, अरुण और यति; ये नव ब्रह्माके पुत्र बाल-ब्रह्मचारी हुए, इन्होने विवाह नहीं किया; अतएव इनके वंश नहीं हुआ ॥ १ ॥ ब्रह्माका पुत्र अधर्म भी है, इसकी स्त्री मृषा(१) हुई—उसमें अधर्मके दम्भ(२) नाम पुत्र और माया(३) नाम कन्या उत्पन्न हुई । इन दोनोको निर्ऋतिने ले लिया, क्योंकि उनके कोई सन्तान न था ॥ २ ॥ माया और दंभ यद्यपि भाई बहन थे पर अधर्मके अंशसे उत्पन्न होनेके कारण इन्होने परस्पर विवाह किया । दंभके माया नाम स्त्रीमें लोभ नाम पुत्र और निःकृति(४) नाम कन्या उत्पन्न हुई । हे महाबुद्धे! इन्होने भी परस्पर विवाह किया, इनके क्रोध नाम पुत्र और हिंसा नाम कन्या उत्पन्न हुई । उनके दुरुक्ति(५) नाम कन्या और कलि(६) नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥ दुरुक्तिके गर्भमें कलिके भीति नाम कन्या और मृत्यु नाम पुत्र उत्पन्न हुआ । मृत्युके भीति नाम स्त्रीमें यातना(७) नाम कन्या और निरय(८) नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥ हे विदुर! मैंने संक्षेपसे यह प्रतिसर्ग(९) तुमसे कहा है; यह अधर्म्मका वंश है । यह पवित्र है क्योंकि इस अधर्म वंशके त्याग करनेसे ही पुण्य होता है । जो कोई तीन बार इस अधर्मके वंशको सुनता है उसके चित्तका मल दूर हो जाता है ॥ ५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! अब मैं स्वायंभुव मनुके पुत्रोंके वंशका वर्णन करता हूँ । स्वायंभुव मनुकी कीर्ति परम पवित्र है, क्योंकि इन मनुके पिता ब्रह्मा हरिका अंश हैं ॥ ६ ॥ शतरूपा रानीमें स्वायंभुव मनुके वीर्यसे जगत्की रक्षा करनेके लिये भगवान्की कलारूप प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥ उत्तानपाद राजाके सुनीति और सुरुचि

---

(१) झूठ । (२) बनावट या पाषण्ड । (३) जाल । (४) शठता । (५) दुर्वचन । (६) लड़ाई-झगड़ा । (७) तीव्र पीड़ा । (८) नरक । (९) प्रलयका कारण ।

नाम दो रानियाँ थीं । सुनीतिके पुत्रका नाम ध्रुव हुआ और सुरुचिके पुत्रका नाम उत्तम । उत्तानपादको सुरुचि बहुत प्यारी थी और सुनीति नहीं । एक दिन राजा सुरुचिके पुत्र उत्तमको गोदमें लिये खेलाय रहे थे, इतनेमें ध्रुव भी आ गये और पिताकी गोदमें चढ़ने लगे; परन्तु राजा सुरुचिके भयसे ध्रुवको गोदमें न ले सके ॥ ८ ॥ ९ ॥ गर्बसे भरी रानी सुरुचि राजाके सामने ही अपने पुत्रकी बराबरी कर रहे सौतके पुत्र ध्रुवसे इस प्रकार ईर्षासे भरे वचन कहने लगी ॥ १० ॥ "ध्रुव! तुम राजाके लड़के हो सही, किन्तु राजाकी गोद वा राज्यासनके योग्य नहीं हो; क्योंकि तुम्हारा जन्म मेरे गर्भसे नहीं है! ॥११॥ तुम बालक हो, तुम नहीं जानते कि मैं और स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ हूँ, इसी कारण तुम ऐसा दुर्लभ मनोरथ कर रहे हो! ॥ १२ ॥ यदि राजाके आसन में बैठनेकी इच्छा है तो तप करके ईश्वरकी आराधना करो और उन्हीं ईश्वरके अनुग्रहसे मेरे गर्भमें जन्म ग्रहण करो" ॥ १३ ॥ श्रीमैत्रेयजी कहते हैं। हे विदुर! माताकी सौतके कहे हुए ये कटुवचन बालक ध्रुवके हृदयमें बाण ऐसे बिंध गये और जैसे सांपके लाठी मारो और वह साँसें ले उस भाँति बड़ी २ सांसें लेकर रोने लगे । स्त्रीके वश पिताने भी चुपके खड़े २ सब सुना और कुछ भी न कहा, जैसे ध्रुव उनके लड़के ही नहीं थे । यह देख कर ध्रुवजी वहाँसे रोते हुए अपनी माता सुनीतिके पास आये ॥१४॥ सुनीतिने बड़ी २ सांसें ले रहे ध्रुवको देखा कि आंसू आंखोंसे बह रहे हैं और ओंठ फरक रहे हैं। सुनीतिने ध्रुवको गोदमें उठा लिया । इतनेमें अन्तःपुरकी दासियोंने आकर सब वृत्तान्त कहा । तब सौतके वाक्य सुन कर सुनीतिको बड़ीही व्यथा हुई ॥ १५ ॥ सुनीति शोकरूप दावानलसे लताके समान मुरझा गई एवं धीरज छोड़ कर विलाप करने लगी । सौतके वचन स्मरण कर कमल ऐसे नेत्रोंसे निरन्तर आंसुओंकी वर्षा करने लगी ॥ १६ ॥ सुनीतिको इस दुःखसागरका पार न देख पड़ा, तब वह बड़ी बड़ी साँसें लेकर ध्रुवसे कहने लगी—"बेटा! इसमें दूसरेको दोष देना योग्य नहीं है, क्योंकि जो व्यक्ति पहले किसीको दुःख देता है वह भी फिर उसी दुःखको भोगता है—यह सब अपने ही कर्मका दोष है! ॥ १७ ॥ सुरुचिने सत्य ही कहा है कि मुझ अभागिनके गर्भसे तुम्हारा जन्म हुआ है और मेरे ही दूधसे तुम पले हो । मैं अभागिनी ही हूँ क्योंकि मुझे स्त्री या दासी कहकर अंगीकार करनेमें भी राजाको लज्जा लगती है! ॥ १८ ॥ तुम्हारी सौतेली मा सुरुचिने बहुतही ठीक कहा है कि "तुम्हे यदि उत्तमके समान राज्यासन पानेकी इच्छा है तो हरि भगवान्‌के चरणकमलोंकी आराधना करो" । मै भी कहती हूँ कि तुम ईर्षा छोड़ कर शुद्ध चित्तसे सौतेली माताका कहा करो ॥ १९ ॥ वह भगवान् विष्णु, विश्वका पालन करनेके लिये शुद्ध सतोगुणको ग्रहण किये हुए हैं । उनके भुक्ति व मुक्तिके देनेवाले चरणोंको मन और प्राणके दमन करनेवाले योगीजन प्रणाम करते हैं । उन्हीं श्रीचरणोंकी सेवा करके ब्रह्माने

ब्रह्मपदको पाया है ॥ २० ॥ तुम्हारे बाबा भगवान् मंनुने बड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे उन्हीं सर्वत्र व्याप्त अन्तर्य्यामी विष्णुकी एकबुद्धिसे पूजन व उपासना कर राज्यसुख और देवतोंको दुर्लभ दिव्य सुख भोग किये हैं एवं अन्तमें मोक्ष पाई है। बेटा! ये सब सुख सिवाय हरिके अन्य किसीसे नहीं मिल सक्ता ॥ २१ ॥ पुत्र! तुम उन्हीं भक्तवत्सल हरिके चरणोंकी शरण ग्रहण करो, क्योंकि मुक्तिकी इच्छावाले योगीजन भी उन्हींके चरणोंकी राहको खोजते हैं। तुम एकाग्रभाव धारण करके अपने धर्मसे चित्त (हृदय)को शुद्ध करो-फिर शुद्ध हृदयमें ध्यानपूर्वक परमपुरुष हरिका भजन करो ॥ २२ ॥ बेटा! मुझे उन कमलनयन भगवान्के सिवाय तुम्हारे दुःखको दूर करनेवाला और कोई नहीं देख पड़ता। और लोग बड़ी चाहसे जिस लक्ष्मीकी खोज करते हैं वह लक्ष्मी दीपकतुल्य कमल हाथमें लिये उन हरिको खोजती हैं" ॥२३॥ श्रीमैत्रेयजी कहते हैं। कामनाको पूर्ण करनेवाले इस प्रकारके माताके विलाप-वाक्य सुनकर ध्रुवने अपनी बुद्धिसे अपने मनको धीरज दिया और उसी समय माताका कहा पूरा करनेके लिये पिताके पुरसे निकल चले ॥ २४ ॥ नारदजी अपने योगबलसे यह सब वृत्तान्त जान गए और "ध्रुव क्या करनेकी इच्छासे जा रहे हैं?" सो भी उनको विदित हो गया। तब नारदजी राहमें आकर ध्रुवसे मिले और पापोंको नाश करनेवाला मंगलमय हाथ ध्रुवके शिर पर फेर कर मन ही मन विस्मित हो कर कहने लगे कि ॥ २५ ॥ अहो! क्षत्रियोंका तेज देखो कि वे थोड़ा सा भी अनादर नहीं सह सक्ते! यह पाँच वर्षका बालक है, पर इसको भी सौतेली माताके कटुवचन नहीं भूलते ॥ २६ ॥ यों मनमें कह कर ध्रुवजीसे बोले कि हे बालक! तुम अभी लड़के हो, अभी खेल आदिमें तत्पर रहना तुम्हारी अवस्थाका धर्म्म है। तुम्हारा मान या अपमान क्या है? ॥ २७ ॥ और यदि तुम्हे मान और अपमानका विवेक ही है तो भी सिवाय अपने कर्म्मके और कोई भी असन्तोपका कारण नहीं है; "इसने हमारा अपमान करके हमें व्यथित किया" यह बुद्धि केवल मोह है। मनुष्य अपने कर्मके ही अनुसार सुख, दुःख और आदर व अनादर पाता है ॥ २८ ॥ देखो विना ईश्वरके अनुकूल हुए कोई उद्यम नहीं सफल होता। इस लिये समझदार पुरुषको उचित है कि वह जो कुछ सुख, दुःख वा आदर, निरादर प्राप्त हो उसे दैवका दिया हुआ जान कर ग्रहण करे। दैवको उद्यमसे टालनेकी इच्छा करना मूर्खता है ॥ २९ ॥ दूसरे माताके बताये हुए योगसे जिस ईश्वरको प्रसन्न करना चाहते हो उसकी आराधना मेरी समझमें अजितेन्द्रिय जनोंके लिये बड़ी ही कठिन है ॥ ३० ॥ केवल अजितेन्द्रिय ही क्यों? बड़े २ मुनिजन-जिन्होंने सबका संग छोड़ कर इन्द्रियगण और मनका दमन कर लिया है, वे भी दृढ़ योग करके समाधि लगा कर जन्मजन्मान्तर तक ढूंढते २ हार जाते हैं, पर उस ईश्वरकी

पदवीको नहीं जान पाते ॥ ३१ ॥ इस लिये यह विचार छोड़ दो, तुम्हारा यह उद्योग निष्फल है; जब ईश्वरकी आराधना और तपका समय (वृद्धावस्था) आवैगा तब यत्न करलेना ॥ ३२ ॥ प्राणीको उचित है कि सुखके पाने पर पूर्वकृत पुण्यका क्षय और दुःखके पाने पर पूर्वकृत पापका क्षय जान कर आत्माको सन्तुष्ट रक्खे। ऐसा करनेसे मोक्ष होती है ॥ ३३ ॥ गुणआदिमें अपनेसे अधिक पुरुषको देख कर आनन्दित होना चाहिये और अधमको देख कर उस पर दया करना चाहिये एवं समान पुरुषसे मित्रता रखना चाहिये। इस भांति रहनेसे मनुष्यको पीड़ा और ताप नहीं होता ॥ ३४ ॥ ध्रुवजी बोले । भगवन्! सुख, दुःखके अधीन पुरुषोंके लिये यह जो आपने कृपा करके शान्तिका मार्ग दिखाया—इसको मेरे ऐसे अज्ञानी जन नहीं देख पाते ॥ ३५ ॥ किन्तु मैं घोर क्षत्रियस्वभावके वश हूँ अतएव नम्रता वा शान्ति मुझमें नहीं है; मेरा हृदय सुरुचिके दुर्वचनरूप बाणोंसे विदीर्ण होगया है, इसी कारण उसमें ये शान्तवचन नहीं ठहरते! ॥ ३६ ॥ ब्रह्मन्! मैं उस पदको लेना चाहता हूँ जिसमें मेरे बाप दादे नहीं पहुँचे हैं और न अन्य भी कोई प्राप्त हुआ है। ऐसे त्रिभुवनमें श्रेष्ठ पदके पहुँचनेकी सहज राह मुझको आप कृपा कर बताइये ॥३७॥ आप ब्रह्माजीके पुत्र हैं, निश्चय ही आप वीणा बजाते हरिगुण गाते जगत्के हितके ही लिये त्रिलोकीमें सूर्य्यके समान (अज्ञान व अमंगलरूप अन्धकारको दूर करते हुए) विचरते है ॥ ३८ ॥ भगवान् नारद ध्रुवके ऐसे वचन सुन कर व उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा देख कर प्रसन्न हुए। फिर दयापूर्वक बालक ध्रुवसे इस प्रकार सत् वचन बोले ॥ ३९ ॥ नारदजी बोले । पुत्र! तुम्हारी माताने जो उपदेश दिया है वही तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध होनेकी मंगलमय सहज राह है। इसी राहसे तुम हरिभगवान्को भजो, अपने मनको भक्तिसे शुद्ध करके हरिमें लगाओ ॥ ४० ॥ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष; इन चारो कल्याणोंके मिलनेका कारण एक हरिके चरणकी सेवा ही है ॥ ४१ ॥ हे पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो; तुम यमुनाके पवित्र तट पर स्थित पवित्र मधुवन (मथुरा) में जाओ; जहाँ हरिभगवान् सर्वदा वर्त्तमान हैं ॥ ४२ ॥ वहां यमुनाके पवित्र जलमें त्रिकाल स्नान कर अपने कर्त्तव्य (देवतावंदन आदि) कार्य करके कुश आदिके आसन पर स्वस्तिकासन आदि आसनसे बैठना ॥ ४३ ॥ फिर पूरक, कुंभक, रेचक, इस तीन प्रकारके प्राणायामसे प्राण, इन्द्रिय और मनको जीतकर अर्थात् इनकी चञ्चलता दूर करके स्थिर मनसे इस प्रकार जगत्के गुरु हरिका ध्यान करना कि ॥४४॥ भगवान् संपूर्ण देवतोंमें सुन्दर हैं, उनका मुख और नेत्र प्रसन्न हैं, उनकी नासिका और भौंहैं एवं गोल कपोल परम सुन्दर मनोहर हैं; देखनेसे जान पड़ता है मानो वर देनेके लिये उद्यत हैं ॥ ४५ ॥ तरुण अवस्था है, अंग सब रमणीय हैं, ओंठ, अधर और लोचन अरुणवर्ण हैं। वह प्रणत लोगोंको आश्रय देनेवाले, सबको सुखदाता, शरणागतके प्रतिपालक एवं दयाके सागर हैं ॥ ४६ ॥ उनके हृदयमें भृगुमुनिके

चरणका चिन्ह है; शरीर पानीभरे मेघके समान सुंदर श्यामवर्ण है, वनमाला पहने हैं, चारो भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म लिये हैं ॥ ४७ ॥ किरीट मुकुट, मकराकृत कुण्डल, केयूर, कंकण आदि अमूल्य आभूषण धारण किये हैं, कण्ठमें कौस्तुभमणि है, रेशमी पीताम्बर पहने हैं ॥ ४८ ॥ काञ्चनकी कर्धनीकी लड़ें पीतपट पर पड़ी हैं, चरणोंमें सोनेके नूपुर पहने हैं, सम्पूर्ण दर्शनीय वस्तुओंसे बढ़ कर दर्शनीय हैं, शान्तमूर्त्ति हैं, जिनके देखनेसे मन और नयन सुखी होते हैं ॥ ४९ ॥ ध्यान करनेवालोंके हृदयकमलरूप आसन पर बीचमें, नखरूप मणियोंकी पाँतिसे भलीभाँति कान्ति-युक्त चरण धरे हुए बैठे हैं ॥ ५० ॥ इस भाँति वश किये हुए एकाग्रमनसे वरदानियोंमें श्रेष्ठ हरिका ध्यान करे कि ऊपर लिखे हुए अनूप रूपसे बैठे हुए मुसका रहे हैं और प्रेमभरी चितवनसे देख रहे हैं ॥ ५१ ॥ इस प्रकार कल्याणरूप भगवान्के रूपका ध्यान करते रहने पर मनको अनूठा परमानन्द मिलता है, मन उस आनन्दको छोड़ कहीं नहीं हट कर जाता—तन्मय हो जाता है ॥ ५२ ॥ हे राजकुमार! मैं तुमको परमगुप्त मंत्र बताता हूँ, इसका जप करना योग्य है । सात रात इस मंत्रके जपनेसे पुरुपको देवगणका दर्शन होता है ॥५३॥ वह "ओं नमो भगवते वासुदेवाय" यह बारह अक्षरका मंत्र है । देश, कालके विभागका जाननेवाला चतुर पुरुप इस मंत्रको पढ़ कर इन वस्तुओंसे हरिका पूजन करे ॥ ५४ ॥ पवित्र जल, माला, वनके फल, फूल, मूल, सुन्दर दूबके अंकुर, वल्कल भगवान्को प्रिय तुलसीके दल आदिसे हरिकी पूजा करनी चाहिये ॥५५॥ यदि शिला अथवा किसी धातुसे बनी हुई हरिकी मूर्ति हो तो उसमें, नहीं तो मिट्टीकी बना कर या जलमें पूजा करे । पूजा करनेवाले साधकको चाहिये कि चित्तको वशमें रक्खे, मनमें हरिका मनन करे, शान्तस्वभाव रहै, थोड़ा बोलै या मौन रहै, वनके फल, मूल, कंद आदिका थोड़ा आहार करै ॥ ५६ ॥ पवित्र कीर्त्तिवाले भगवान्ने अपनी इच्छासे अपनी मायाको ग्रहण कर (अवतार लेकर) जो २ कर्म्म किये हैं उनका हृदयमें ध्यान करता रहै ॥ ५७ ॥ मंत्रमूर्त्ति भगवान्की सब पूजा द्वादशाक्षर मंत्रसे करे ॥ ५८ ॥ ऊपर कही हुई रीतिसे सकाम होकर मन, वाणी और कायासे भक्तिभावपूर्वक सेवा व उपासना करने पर निष्कपट उपासकके भावको बढ़ानेवाले हरि भगवान्, भक्तकी इच्छाके अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप कल्याण देते हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥ जो व्यक्ति धर्म, अर्थ, कामको त्याग कर मोक्षलाभकी इच्छा रखता हो उसे उचित है कि इन्द्रियोंको उनके शब्दादि विषयभोगसे निवृत्त कर अनन्यभाव धारण करके दृढ़भक्तियोगसे भगवान्का भजन करे ॥६१॥ देवऋषि नारदका यह उपदेश सुन कर राजकुमार ध्रुवने नारदकी प्रदक्षिणा और प्रणाम किया । फिर ध्रुवजी उनसे बिदा हो कर हरिके चरण-चिन्हसे पवित्र मधुवनको गये ॥ ६२ ॥ जब ध्रुवजी तप करनेके लिये मधुवन गये तब नारदजी वहांसे राजा उत्तानपादके अन्तःपुरमें गये । राजाने यथायोग्य पूजन

किया; नारदजी सुखपूर्वक आसन पर बैठ कर राजासे बोले ॥ ६३ ॥ **नारदजी बोले ।** राजन्! तुम्हारा मुखकमल सूख रहा है; तुम क्या सोच रहे हो? क्या तुम्हारी कोई कामना पूर्ण नहीं है? अथवा धर्म्म या अर्थ तो नहीं नष्ट हो गया? ॥ ६४ ॥ **राजा बोले ।** महाराज! क्या कहूँ–मैं बड़ा ही निर्दयी और स्त्रीके वश हूँ, मेरे ही कारण मेरा बड़ा ही चतुर पाँच वर्षका बालक घर छोड़ कर कहीं चला गया, हा! मैंने उसका और उसकी माताका निरादर किया ॥६५॥ उस अनाथ बालकको कहीं भेंड़िये, सिंह आदि वनके जीव तो न खा जायँगे? राहके चलनेसे वह थक जायगा, मारे भूखके उसका मुखकमल सूख जायगा, कहीं पड़ रहेगा–वहां उसकी कौन रक्षा करेगा? ॥ ६६ ॥ ब्रह्मन्! मुझ स्त्रीजितकी दुष्टता तो देखिये! वह बालक प्रेमसे मेरी गोदमें चढ़ने लगा परन्तु मुझ पातकीने गोदमें लेना दूर रहा वाणीसे भी उसका आश्वास न किया! ॥ ६७ ॥ **नारदजी बोले ।** राजन्! तुम अपने पुत्रका शोच न करो, उसकी रक्षा करनेवाला सदैव दैव है; उस बालकके प्रभावको तुम नहीं जानते, उसका यश जगत् भरमें व्याप्त होगा ॥ ६८ ॥ जिसे बड़े २ लोकपाल नहीं करसक्के उस महा दुष्कर कार्य्यको करके वह शीघ्र ही आकर तुमसे मिलेगा; उसके द्वारा तुम्हारा यश भी पृथ्वीमें फैलेगा ॥ ६९ ॥ **श्री मैत्रेयजी कहते हैं ।** राजा उत्तानपाद, देवऋषिके ये वचन सुन कर राजलक्ष्मी और राजभोगको त्याग कर हर घड़ी पुत्रकी ही चिन्ता करने लगे ॥७०॥ इधर ध्रुवजीने मधुपुरीमें पहुँच कर स्नान किया और उस रातको व्रत किया । उसके बाद एकाग्र हो कर देवऋषिके उपदेशके अनुसार भगवान्‌की आराधना करने लगे ॥ ७१ ॥ ध्रुवने तीन २ दिनके बाद केवल कैथा और बेरके फल खाकर शरीरका पालन करते हुए हरिकी सेवामें पहला महीना बिताया ॥ ७२॥ दूसरा महीना छठे २ दिन वृक्षोंसे गिरे हुए सूखे पत्ते और तृण आदि खा कर हरिकी सेवामें बिताया ॥ ७३ ॥ ऐसे ही तीसरा महीना नवें २ दिन केवल जल पी कर हरिके ध्यानमें व्यतीत किया ॥ ७४ ॥ चौथा महीना बारहवें २ दिन केवल वायुभक्षण करके प्राणायाम द्वारा हरिकी आराधनामें बिताया ॥ ७५ ॥ पाँचवें महीनेमें राजकुमार ध्रुव, श्वासाको रोक कर एक पैरसे खंभेके समान निश्चल खड़े हो हृदयमें ब्रह्मका ध्यान करने लगे ॥ ७६ ॥ शब्दआदि विषय एवं चक्षुआदि इन्द्रियोंका आश्रय जो मन है उसे बाह्य पदार्थोंसे खींच कर हृदयमें स्थित हरिभगवान्‌के ध्यानमें लगाया । ध्रुवको उस समय सिवाय भगवान्‌के रूपके और कुछ भी न देख पड़ने लगा ॥ ७७ ॥ जब महत्‌आदि तत्त्वोंका आधार एवं प्रकृति- पुरुषका ईश्वर जो परब्रह्म है उसे ध्रुवने हृदयमें धारण कर लिया तब तीनो लोक काँप उठे ॥ ७८ ॥ वह राजकुमार एक पैरसे खड़े थे, उनके अँगूठेसे दबी हुई पृथ्वी हिलने लगी; जैसे हाथीके चढ़नेसे नाव इधर उधर डगमगाती है ॥ ७९ ॥ ध्रुवजी, प्राण और प्राणके द्वारोंको रुद्ध करके ईश्वरमें और अपनेमें तथा अपनेमें व सब जगत्‌में भेदभाव

त्याग कर विश्वमूर्त्ति भगवान्‌का ध्यान करने लगे। उस समय सम्पूर्ण लोकोंकी अर्थात् सब जीवोंकी साँस रुक गई (१), सब जीव व सब लोकपाल साँस रुकनेसे बहुत ही पीड़ित हुए। अन्तको सब मिल कर अपना कष्ट दूर करनेकी प्रार्थना करनेके लिये भक्तभयभंजन हरिकी शरणमें गये ॥ ८० ॥ हरिसे जा कर देवगण बोले। भगवन्! चराचर सम्पूर्ण प्राणियोंकी साँस क्यों रुक गई? सो हमें कुछ नहीं जान पड़ता; ऐसा तो कभी नहीं हुआ। इस क्लेशसे शीघ्र हमें छुड़ाइये। आप शरणमें आये हुए लोगोंके प्रतिपालक हैं, अतएव हम आपकी शरणमें आये हैं ॥ ८१ ॥

मा भैष्ट बालं तपसो दुरत्ययान्निवर्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम।
यतो हि वः प्राणनिरोध आसीदौत्तानपादिर्मयि सङ्गतात्मा ॥८२॥

श्रीभगवान् बोले। देवगण! तुम डरो नहीं। जिस बालकसे तुम्हारी श्वासाका अवरोध हुआ है उसको उसकी दुष्कर तपस्यासे मैं अभी जाकर निवृत्त करता हूँ। वह बालक राजा उत्तानपादका पुत्र ध्रुव है। वह इस समय मुझमें मिल गया है, अतएव एक उसके साँस रोकनेसे सम्पूर्ण विश्वकी साँस रुकी है ॥ ८२ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय।

ध्रुवको वरलाभ और घर लौट कर जाना।

मैत्रेय उवाच—त एवमुत्सन्नभया उरुक्रमे
कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपम्।
सहस्रशीर्षाऽपि ततो गरुत्मता
मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले। हे विदुर! भगवान्‌के वाक्य सुन कर देवगणका भय दूर हो गया, तब वे सब भगवान्‌को प्रणाम कर स्वर्गको चले गये। सहस्रशिरवाले

---

(१) ध्रुवने अपने आत्माको परमात्मामें तन्मय कर दिया, वह परमात्मा विश्व भरमें है, विश्वव्यापक परमात्माको हृदयमें स्थापित करके ध्रुवने सांस रोकी, इसीसे विश्व भरकी सांस रुक गई। यह कुछ आश्चर्य नहीं है, देखो कृष्णचन्द्रने एक शाकका कण खाकर त्रिलोकीको तृप्त कर दिया था! जब ध्रुव ध्यानावस्थामें उन्हींका रूप हो गये तो ऐसा होना कुछ विस्मय नहीं है।

भगवान् भी भक्त ध्रुवके देखनेकी इच्छासे मधुवनको गये ॥ १ ॥ ध्रुवकी बुद्धि दृढ योगसे निश्चल थी; वह अपने हृदयकमलमें बिजलीके समान प्रभावाली भगवान्‌की मूर्त्तिका ध्यान कर रहेथे । सहसा भगवान्‌की मूर्त्ति हृदयसे अन्तर्द्धान होगई, घबड़ा कर ध्रुवने नेत्र खोले तो देखा कि सामने वैसे ही रूपसे श्रीहरि खड़े हुए हैं ॥२॥ उस समय ध्रुवने मारे आनन्दके संभ्रमयुक्त हो पृथ्वीमें गिर कर भगवान्‌को साष्टांग प्रणाम किया । मानो नेत्रोंसे पी लेंगे, मुखसे चूम लेंगे और भुजाओंसे लिपटा लेंगे—इस भाँति प्रेमसे बालक ध्रुव हरिको देखने लगे ॥ ३ ॥ ध्रुवजी अंजलि बाँधकर खड़े हुए और हरिकी स्तुति करनी चाही, पर कुछ पढ़े लिखे न होनेके कारण स्तुति न कर सके । भगवान् तो सबके हृदयमें स्थित हैं अतएव वह जान गये, तब कृपापूर्वक अपना वेदतत्त्वस्वरूप शंख बालक ध्रुवके कपोलमें छुआ दिया ॥ ४ ॥ उस समय ध्रुवको जीव और ब्रह्मका विवेक प्राप्त हुआ । तब ध्रुवजी ईश्वरकी कृपासे उसी समय प्राप्त वेदमय वाक्योंसे धीरे धीरे भक्तिभावपूर्वक, त्रिभुवनमें जिनकी पवित्र कीर्त्ति प्रसिद्ध है उन हरिकी स्तुति करने लगे । ब्रह्मज्ञान होनेसे ध्रुवजीको अभयपद प्राप्त हो गया ॥ ५ ॥ ध्रुवजी बोले । प्रभु! जो अपनी चैतन्यशक्तिसे सम्पूर्ण इन्द्रियोंको जीवित करता है और जिसके होने पर हाथ, पैर, कान, त्वचा, प्राण आदि अपना २ कर्म करनेको समर्थ होते हैं वह जीवात्मास्वरूप परमपुरुष आप ही हैं; आप ही अन्तःकरणमें प्रवेश कर मेरी इस वाक्‌शक्तिको अपनी ज्ञानशक्तिसे जीवित कर रहे हैं । भगवन्! आपको प्रणाम है ॥ ६ ॥ भगवन्! अग्निआदि देवगण, वाक्‌आदि इन्द्रियोंके अधिष्ठाता और प्रकाशक हैं-ऐसा प्रसिद्ध है; किन्तु वे सब देवगण आप ही हैं । आप अपनी शक्ति त्रिगुणमयी मायाके द्वारा सम्पूर्ण महत्तत्त्व आदि पदार्थोंकी सृष्टि करते हैं एवं आप ही मायाके मिथ्या गुण जो इन्द्रियादिक हैं उनमें अग्निआदि अधिष्ठाता देवगणके रूपसे अधिष्ठित होकर उनकी शक्तियोंको प्रकाशित करते हैं । जैसे एक अग्नि अनेक लकड़ियोंमें अनेक जान पड़ता है वैसे ही एक आप अनेक पदार्थोंमें अनेक जान पड़ते हैं । आपके अतिरिक्त चैतन्यशक्तियुक्त और कोई नहीं है ॥ ७ ॥ हे नाथ! सबमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी भी सृष्टिके आदिकालमें सो कर उठे हुए पुरुषकी भाँति आपके ही शरणागत होते हैं एवं आपके ही दिये हुए ज्ञानसे इस जगत्‌को अपनेमें देख कर सृष्टि करते हैं । मुक्तिकी इच्छावाले योगी आपके चरणोंकी ही शरण ग्रहण करते हैं । हे दीनबन्धु! आपके उन चरणोंको कृतघ्नके सिवाय और कौन भूल सक्ता है? ॥८॥ निश्चय ही उन लोगोंकी बुद्धि आपकी मायासे ठगी गई है जो लोग संसारसे मुक्ति देनेवाले जो आप हैं उनकी अन्य तुच्छ कामनाओंके लिये सेवा करते हैं! आप कल्पवृक्ष हैं, आपको प्रसन्न कर जो लोग इस मुर्देके तुल्य शरीरसे जिसका भोग किया जाता है वह विषयसुख माँगते हैं वे बड़े ही मूर्ख हैं, क्योंकि यह इन्द्रि-

योंके भोगोंका सुख तो जीवोंको नरकमें भी मिलता है ॥ ९ ॥ देव! आपके चरण-कमलोंके ध्यानसे और आपके भक्तोंकी बातें सुननेसे जो आनन्द मिलता है वह आनन्द मुक्ति या ब्रह्मज्ञानमें भी नहीं है; तब स्वर्गआदिके सुख उस आनन्दकी बराबरी क्या कर सक्ते हैं? क्योंकि वे स्वर्गादिलोक कालकी कराल चोटसे नष्ट हो जाते हैं, तब वहांके रहनेवाले भी स्वर्गके विमानोंसे गिर कर फिर संसारमें आते हैं! ॥ १० ॥ अनन्त! आपकी भक्तिमें दृढ़ जो शुद्ध अन्तःकरणवाले भक्तजन हैं, मैं उनका ही संग चाहता हूँ। मैं आपके गुणोंकी कथारूप अमृतके पीनेसे मतवाला होकर सत्संगकी सहायतासे अनेककष्टयुक्त घोर संसारसागरको सहजमें तर जाऊँगा ॥ ११ ॥ हे कमलनाभ! जो लोग आपके चरणकमलके सुगंधमें मोहित मनवाले सज्जनोंका संग करके मतवाले हो जाते हैं, हे ईश! उनको अतीव प्रिय शरीर और इस शरीरके सम्बधी पुत्र, मित्र, स्त्री, धन और घर आदिकी सुध ही नहीं रहती ॥ १२ ॥ हे आदिपुरुष! हे अज! मैं केवल आपका यह विराट्रूप (सगुणरूप) जानता हूँ; पशु, पक्षी, वृक्ष, पर्वत, देवता, दैत्य, मनुष्य आदि एवं सत् और असत् पदार्थ, सब इसीके अन्तर्गत हैं; यह आपका शरीर महत् आदि तत्त्वोंसे रचित है। इसके सिवाय वाणी और मनसे जो नहीं जाना जाता उस आपके निराकार परम रूपको मैं नहीं जानता ॥ १३ ॥ कल्पके अन्तमें जो पुरुष इस संपूर्ण जगत्को अपने हृदयमें धारण कर योगनिद्रायुक्त हो शेषशय्या पर शयन करता है और जिसके नाभिसागरसे सुवर्णवर्ण लोकमय कमल उत्पन्न होता है—वह नारायण भगवान् आप ही हैं, अतएव मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ १४ ॥ (ध्रुवको उस समय भगवान्की कृपासे निर्गुण ब्रह्मरूपका भी ज्ञान हो गया, तब वह कहने लगे कि:-) प्रभु! आप जीवात्मासे विभिन्न हैं, क्योंकि आप नित्य मुक्त हैं (और जीव संसारके बन्धनमें है), आप ज्ञानमय होनेके कारण शुद्ध हैं (जीव अज्ञानमय होनेके कारण मलीन है) आप सर्वज्ञ हैं (जीव अज्ञ है), आप चैतन्य हैं (जीव जड़ है स्वयं प्रकाश नहीं है), आप निर्विकार हैं (जीव विकारयुक्त है) आप अनादि आदि पुरुष हैं (जीवका आदि है), आप छः ऐश्वर्योंसे युक्त हैं (जीव उन ऐश्वर्योंसे रहित है), आप तीनो गुणोंके ईश्वर हैं (जीव तीनो गुणोंके अधीन है)। आप बुद्धिकी अवस्थाओंके साक्षी हैं, आपकी दृष्टि अखण्डित है, आप विश्वपालनके लिये सात्त्विक, यज्ञपुरुष, विष्णुरूपसे स्थित हैं ॥ १५ ॥ जिससे समयानुसार परस्पर विरुद्ध गतिवाली, विविधशक्तिशालिनी विद्या व अविद्या उत्पन्न होती हैं और जिसमें लय होती हैं वह विश्वको उत्पन्न करनेवाला अनादि, आदि, अद्वितीय, अनन्त, अविकार, आनन्दमय ब्रह्म आप ही हैं, मैं आपकी शरण हूँ ॥ १६ ॥ भगवन्! जो निष्काम भक्त, परमानन्दरूप आपके कोमल कमल ऐसे चरणोंको भजते हैं वे यथार्थ परमार्थ (मुक्ति)

फलको पाते हैं। किन्तु हे आर्य्य ! आप अनुग्रहसे कातर हो कर हम ऐसे दीन जो सकामभक्त हैं उनकी भी रक्षा करते हैं, जैसे गऊ अपने अज्ञान बछड़ोंकी व्याघ्र आदिसे रक्षा करती है और दूध आदि पिला कर पालन करती है। आप सर्वदा जगत्का कल्याण करनेमें तत्पर हैं ॥ १७ ॥ उत्तम संकल्पवाले बुद्धिमान् ध्रुवने इस भाँति स्तुति की तब भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्न हो कर बोले ॥ १८ ॥ **श्रीभगवान् कहनेलगे**। राजकुमार! तुम्हारा मनोरथ मैं जानता हूँ। हे सुव्रत! तुम्हारा कल्याण हो, यद्यपि तुम्हारा मनोरथ दुर्लभ है तथापि वही देता हूँ ॥१९॥ मेरी कृपासे तुमको ध्रुवपद मिलेगा, जिसे आजतक किसीने नहीं पाया है। वह लोक परमप्रकाशयुक्त है। उसी ध्रुवलोकके आश्रयसे ग्रह, नक्षत्र, तारागण एवं ज्योतिश्चक्र सब अवस्थित हैं ॥२०॥ कल्पान्तपर्यन्त रहनेवाले लोकोंका नाश होने पर भी उस लोकका नाश नहीं होता। जैसे मड़नीमें बैल बीचकी लकड़ीके चारो ओर घूमते हैं वैसे ही तारागण नक्षत्ररूप धर्म, अग्नि, इन्द्र एवं कश्यपआदि सप्तऋषि उस लोकके चारो ओर घूमते हैं ॥२१॥ इस लोकमें भी तुमको राज्य देकर तुम्हारे पिता वनको चले जायँगे, तुम छत्तीस हजार वर्ष पृथ्वीमण्डलकी रक्षा करोगे, किन्तु तुम्हारा अन्तःकरण मेरी कृपासे विषयभोगमें लिप्त न होगा ॥ २२ ॥ तुम्हारा भाई उत्तम वनमें शिकार खेलने जायगा, वहां एक यक्षके हाथसे उसकी मृत्यु होगी; उत्तमकी माता सुरुचि पुत्रकी खोजमें वनको जायगी, वहां वनमें लगी हुई दावानलमें पड़ कर वह भी जल जायगी ॥२३॥ तुम मुझ यज्ञपुरुषकी प्रसन्नताके लिये बड़ी २ दक्षिणावाले यज्ञ करोगे, एवं इस लोकके सब सुख भोग करोगे। अन्तमें वृद्धावस्था आने पर मेरा स्मरण करके ध्रुवलोकको जाओगे। ध्रुवलोक सप्त ऋषियोंके ऊपर है, उसको सब लोग नमस्कार करते हैं, योगीजन वहां जाकर फिर इस संसारमें लौट कर नहीं आते ॥२४॥२५॥ **मैत्रेयजी कहते हैं**। इस प्रकार ध्रुवद्वारा पूजित गरुडध्वज भगवान् ध्रुवको ध्रुवलोक देकर उनके देखते ही अपने लोकको चले गये ॥२६॥ ध्रुवजी हरिके चरणोंकी सेवासे अपनी कामना पा कर अपने पुरको लौटे, पर उनका चित्त कुछ बहुत प्रसन्न नहीं हुआ ॥२७॥ **विदुरजी बोले**। प्रबल मायावाले हरिके दुर्लभ परमपदको उन्हींके चरणोंकी सेवासे सहज ही एकजन्ममें पा कर भी ज्ञानी ध्रुवने अपनेको अकृतार्थ क्यों माना? ॥ २८ ॥ **श्रीमैत्रेयजी बोले**। ध्रुवने सौतेली माताके वाक्यरूप बाण हृदयमें विंध जानेके कारण मुक्तिके देनेवाले हरिसे मुक्ति न माँग कर भोग माँगा, इस लिये उनको पीछेसे सन्ताप हुआ ॥ २९ ॥ श्रीहरिके चले जाने पर ध्रुवजी इस प्रकार पछताने लगे कि बालब्रह्मचारी सनंदनआदि मुनिगणने अनेक जन्म पर्यन्त समाधि लगा कर जिनके पदको जाना है उन हरिके चरणोंकी छायाको केवल छः महीनेकी उपासनासे पा कर फिर मैंने छोड़ दिया? मेरी बुद्धि भो-

---

१ हितकी चिन्ता। २ अर्थात् संसारके कष्टोंसे रक्षा।

गमें फँस गई! हा! कैसे कष्टकी बात है! ॥ ३० ॥ अहो! मुझ अभागेकी मूर्खता देखो कि संसारके दुःखोंसे छुड़ानेवाले हरिके चरणोंकी शरणमें पहुँच कर वह माँगा जो एक दिन अवश्य नष्ट हो जायगा ॥ ३१ ॥ अवश्य ही दूसरेकी बढ़तीको न सह सकनेवाले देवतोंने मुझे अपनेसे श्रेष्ठ पदमें पहुँचते देख कर मेरी बुद्धिको बिगाड़ दिया; इसीसे "अभी तुम बालक हो, तुम्हारा मान या अपमान कुछ भी नहीं है" इत्यादि नारदके सत्य उपदेशको मैंने नहीं माना, मैं बड़ा ही असत् हूँ! ॥३२॥ जैसे सोया हुआ मनुष्य (वास्तवमें) दूसरेके न होने पर भी स्वप्नमें दूसरेके द्वारा मिले हुए सुख और दुःखसे सुखी व दुःखी होता है वैसे ही यद्यपि एक ब्रह्म सबमें है दूसरा कोई नहीं है, तथापि ईश्वरकी मायामें मोहित मैं अपने भाईको अपनेसे भिन्न मान कर एवं उसके कारण अपनी सौतेली माताके कहे हुए कटु वचनोंको स्मरण कर व्यथित हुआ! ॥३३॥ जिसकी मृत्यु आ गई है उसको औषध देना जैसे व्यर्थ होता है वैसे ही मेरा मनोरथ भी व्यर्थ है, जो मैंने ईश्वरसे माँगा है। जिनका प्रसन्न होना बड़ा ही कठिन है उन मुक्तिके देनेवाले, अन्तर्य्यामी हरिको तपसे प्रसन्न कर फिर जन्ममरणका भय जिसमें है वही पद मैंने माँगा! अवश्य ही मैं अभागा हूँ ॥३४॥ ईश्वर तो मुझे ब्रह्मानन्द देनेवाले थे, परन्तु मैंने मूर्खताके कारण अभिमान-वश संसारमें सम्मान अर्थात् ऊँचा पद उनसे माँगा। मुझ पुण्यहीनका माँगना वैसा ही हुआ जैसे कोई अभागा दरिद्र पुरुष चक्रवर्त्ती राजाको दैवसंयोगसे प्रसन्न कर पावे तो उससे खोखले मोटे धान माँगे ॥ ३५ ॥ श्रीमैत्रेयजी कहते हैं। हे विदुर! तुम ऐसे हरिके चरणकमलरजका सेवन करनेवाले भक्तजन हरिके दास्यभावके सिवाय हरिसे और कोई वस्तु नहीं माँगते, क्योंकि जो कुछ आप ही (सुख या दुःख) मिलता है उसीमें उनका मन सन्तुष्ट रहता है ॥ ३६ ॥ इधर जब राजा उत्तानपादको समाचार मिला कि ध्रुवजी लौट कर आये हैं तो जैसे मरे हुए मनुष्यके जीवित होने पर कोई विश्वास न करे वैसे ही राजाको इस बात पर विश्वास न आया; उन्होंने मनमें कहा कि मुझ अभागेके ऐसे भाग्य कहाँ हैं? ॥ ३७ ॥ परन्तु जब देवऋषि नारदके वाक्यका स्मरण आया तब उनको ध्रुवके आनेका विश्वास हुआ। राजाको यह शुभ समाचार सुन कर बड़ा ही आनन्द हुआ। जिसने आ कर यह समाचार सुनाया था उसको राजाने प्रसन्न हो बड़े मोलका हार गलेसे उतार कर दे दिया ॥ ३८ ॥ जिसमें सुन्दर घोड़े जुते हुए हैं और सुवर्णकी सब सामग्री सुसज्जित है उस रथ पर उसी समय राजा सवार हुए। राजाके साथ ब्राह्मण, कुलके बूढ़े लोग, अमात्य (मंत्री) और सब बन्धु-बान्धव चले। राजाके आगे २ शंख, दुंदुभि, वेणु आदि मंगलके बाजे बजते हुए और विप्रगण वेदपाठ करते हुए चले। पुत्रको देखनेके लिये उत्कण्ठित राजा बहुत

शीघ्र पुरसे निकले ॥ ३९ ॥ ४० ॥ सोनेके गहने पहने हुए सुनीति और सुरुचि दोनो रानी पालकी पर बैठीं औरबीच में राजकुमार उत्तमको बैठाया। ये भी ध्रुवजीसे मिलनेके लिये चलीं ॥ ४१ ॥ उपवनके पास पहुँच कर राजाने ध्रुवको आते हुए देखा, वैसे ही रथसे उतर कर पैदल ही मिलनेके लिये दौड़े। प्रेमसे विह्वल राजाने पास पहुँचते ही दोनो हाथ पसार कर, हरि भगवान्के चरणकमलके स्पर्शद्वारा संसारके पापरूप दृढ़बंधनसे छूट गए पुत्र ध्रुवको गलेसे लगा लिया। मन बहुत ही उत्कण्ठित होनेसे बारंबार साँस आने लगी ॥४२॥४३॥ राजा प्रेमवश होकर वारम्वार ध्रुवका माथा सूँघने लगे। राजाका यह बड़ा भारी मनोरथ पूरा हुआ। राजाने ध्रुवको गोदमें लेलिया; उनके नेत्रोंसे इतने आनन्दके आँसू बहे कि ध्रुवका माथा भीग गया ॥ ४४ ॥ सज्जनोंमें श्रेष्ठ ध्रुवने पहले पिताके पैर छुये और पिताने उनको आशीर्वाद दिये; फिर ध्रुवने अपनी दोनो मांताओंको प्रणाम किया, उन्होने भी आदरसत्कारपूर्वक अनेक मंगल आशीर्वाद दिये ॥ ४५ ॥ सुरुचिने पैरों पर पड़े हुए बालक ध्रुवको उठा कर छातीसे लगा लिया और नेत्रोंमें आनन्दके आंसू भर कर कहा कि- "पुत्र! चिरञ्जीव" ॥४६॥ सुरुचिका ध्रुवके साथ ऐसा व्यवहार कोई विस्मयकी बात नहीं है क्योंकि विश्वमूर्ति भगवान् विष्णु 'सब प्राणियोंसे मित्रता' आदि गुणोंसे जिस पर प्रसन्न होते हैं उससे शत्रु और मित्र सभी, जैसे जल नीचेको झुकता है वैसे अनुकूल होकर आपसे मिलते हैं! ॥ ४७ ॥ उत्तम और ध्रुव, दोनो भाई प्रेमपूर्वक परस्पर मिले, दोनोके रोमाञ्च होआया और आंखोंमें आँसू भर आये ॥ ४८ ॥ ध्रुवकी माता सुनीति अपने प्राणोंसे भी प्यारे पुत्रको गलेसे लगा कर बहुत ही प्रसन्न हुईं; पुत्रके स्पर्शसे उनका सारा दुःख दूर होगया ॥ ४९ ॥ हे वीर! वीरपुत्रकी माता सुनीतिके दोनो स्तन आंसुओंसे भीग गये और पुत्रके स्नेहकी उमंगके कारण स्तनोंसे दूधकी धाराएँ निकलने लगीं ॥ ५० ॥ **पुरनिवासी** कहनेलगे कि हे रानी! आपके भाग्यसे बहुत दिनके बिछड़े हुए कुँवरने आ कर आपका दुःख दूर किया। यह प्रतापी राजकुमार पृथ्वीमण्डलकी रक्षा करेंगे ॥५१॥ अवश्य ही पूर्वजन्ममें आपने भक्तभयभंजन, जनरंजन हरिकी पूजा की है, उसीका यह प्रताप है! उस ईश्वरका ध्यान करनेवाले धीर योगी दुर्जय मृत्युको भी जीत लेते हैं! ॥ ५२ ॥ नगरवासी यों बधाई देनेलगे। तदनन्तर राजाने हथिनी पर ध्रुव और उत्तम, दोनो कुमारोंको बिठा कर पुरमें प्रवेश किया। राहमें पुरवासी जन राजाको स्तुतिपूर्वक बधाई देनेलगे, जिसे सुन कर राजा हर्षित हुए ॥ ५३ ॥ उस समय पुर बहुत ही सजाया गया था। प्रत्येक घरके द्वारमें बँदनवार बंधे थे, उन पर चित्र विचित्र फूल मालाओंकी अपूर्व शोभा थी। नगरके आकारवाले बड़े २ फाटकोंके आसपास मंगलके लिये फल-फूल-मञ्जुलमञ्जरी-

सहित केलेके वृक्ष और सुपारीके पौधे धरे हुए थे ॥ ५४ ॥ आमके नवपल्लव, रंग बिरंगे कपड़ोंकी झंडियाँ, फूलोंके गजरे व मोतियोंकी मालाआदिसे सुशोभित जलके भरे कलश द्वारों पर धरे हुए थे, उन पर दीपक जल रहे थे ॥ ५५ ॥ उस पुरीमें सुवर्णसे भूषित दीवारें, गोपुर (अंटिया), महल ऐसे शोभित थे जैसे स्वर्गलोकमें ऊंचे २ शिखरोंसे युक्त विमान सुशोभित हों ॥ ५६ ॥ उस पुरके आँगन, चौतरे, सड़कें, राजपथ महलोंकी अँटारियाँ सब साफ थीं, उनमें चन्दन छिड़का हुआ था। पुरमें चारो ओर खील, अक्षत, फूल, फल, तंडुल आदि पूजाकी सामग्रियाँ सुसज्जित थीं ॥ ५७ ॥ पुरकी नारियाँ राहमें जा रहे ध्रुव पर सरसों, अक्षत, दही, जल, दूब, फूल, फल आदि बरसा कर प्रेमसे आशीर्वाद दे रही थीं। उनके सुन्दर वचनोंको सुनते हुए ध्रुवजीने अपने पिताके भवनमें प्रवेश किया ॥५८॥५९ ॥ महामूल्य मणियोंसे विभूषित उस उत्तम राजभवनमें प्रेमपूर्वक पिताके द्वारा लालनपालनका सुख भोग करते हुए ध्रुवजी, स्वर्गलोक में जैसे इन्द्रके पुत्र जयन्त रहते हैं वैसे रहने लगे ॥ ६० ॥ उस भवनमें हाथीदाँतके पलँग पड़े हुए थे, जिनकी पाटी और पाए मणि व सुवर्णसे विभूषित थे, उन पर दूध ऐसे श्वेत और कोमल बिछौने बिछे थे। बड़े २ मोलके सोनेकी चौकियाँ पड़ी हुई थीं ॥ ६१ ॥ उस भवनकी भित्तियाँ मरकत मणिकी थीं और पृथ्वी (फर्श) स्फटिक मणिकी थी, रत्नदीप जल रहे थे, उनके एवं रत्नस्वरूप स्त्रियोंके प्रकाशसे वह भवन और भी प्रकाशित होता था ॥ ६२ ॥ उस भवनके पास ही अनेक रमणीय बाग थे, जिनमें विचित्र कल्पवृक्ष लगे हुए थे। उनमें पक्षी अपनी २ विचित्र बोलियाँ बोलते थे, मदमत्त भौंरे गुंजन करते थे ॥ ६३ ॥ बावलियाँ बनी थीं, जिनकी सीढ़ियाँ वैडूर्य्य मणिकी थीं। उनमें पद्म, उत्पल, कमल, कुमुद फूल रहे थे और हंस, कारण्डव, चक्रवाक, सारसआदि पक्षी कलोल कर रहे थे ॥ ६४ ॥ उत्तानपाद राजऋषि, पुत्रके हरिदर्शन आदि अद्भुत प्रभावको सुन कर एवं विना पढ़े ही इतने ज्ञान और विद्यासे सम्पन्न देख कर बहुत ही विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ६५ ॥ राजा उत्तानपादने जब देखा कि ध्रुवजी तरुण हुए और उनसे सब प्रजा भी सन्तुष्ट है एवं सब चाहते हैं कि ध्रुव राजा हों तब सबकी इच्छाके अनुसार ध्रुवको पृथ्वीमण्डलका साम्राज्य देदिया ॥ ६६ ॥

आत्मानं च प्रवयसमाकलय्य विशांपतिः ।
वनं विरक्तः प्रातिष्ठद्विमृशन्नात्मनो गतिम् ॥ ६७ ॥

एवं अपनेको वृद्ध देख कर विषयसुखसे निवृत्त हो गये और आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये तप करनेकी इच्छासे वनको चले गये ॥ ६७ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय ।

ध्रुवका यक्षोंके साथ युद्ध और विजय ।

मैत्रेय उवाच–प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः ।
उपयेमे भ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले । वत्स विदुर! ध्रुवने राजा होनेके कुछ समय उपरान्त प्रजापति शिशुमारकी भ्रमि नाम कन्यासे विवाह किया । उसके गर्भसे कल्प और वत्सर नाम दो पुत्र हुए ॥ १ ॥ ध्रुवके दूसरी स्त्री वायुकी कन्या इला भी थी, उसके गर्भसे महावली ध्रुवके उत्कल नाम एक पुत्र और स्त्रियोंमें रत्न ऐसी श्रेष्ठ एक कन्या भी उत्पन्न हुई ॥ २ ॥ उत्तमका विवाह नहीं हुआ था, उसी दशामें वह शिकार करनेके लिये वनको गया, वहां एक बलवान् यक्षने हिमाचल पर उसे मार डाला, उसकी माता उसे ढूँढनेके लिये गई, वह भी दावानलमें जल कर मर गई ॥३॥ ध्रुवने जब यक्षके हाथसे अपने भाईके मारे जानेका वृत्तान्त सुना तब क्रोध, शोक और बदला लेनेकी इच्छासे उनका हृदय अस्थिर हो उठा । उसी समय वह अपने विजयदायक रथ पर चढ़ कर अकेले ही बदला लेनेके लिये कुबेरकी अलकापुरीको गये ॥४॥ उन्होने उत्तरदिशामें जा कर हिमवान् पर्वतके निकट रुद्रके अनुचर यक्षोंकी पुरी देखी ॥ ५ ॥ ध्रुवने वहां पहुँच कर अपना शंख बजाया, जिसका शब्द आकाशमें और दिशाओंमें भर गया । हे विदुर! उस घोर शब्दको सुन कर यक्षोंकी स्त्रियां डर गईं और घबड़ा कर इधर उधर देखने लगीं ॥६॥ उस शब्दको वे महाभट, बली यक्षगण न सह सके और शस्त्र ले २ कर पुरीसे निकल आये ॥ ७ ॥ उग्र धनुषवाले महारथी वीर ध्रुवने यक्षोंको आते हुए देख धनुष चढ़ा कर एकसाथ तीन २ वाण सबके मारे ॥ ८ ॥ मस्तकमें आ कर लगे हुए ध्रुवके बाणोंसे सब यक्षोंने अपनी पराजय मानी एवं ध्रुवके इस कर्म्मकी (यद्यपि वह शत्रु थे तथापि) प्रशंसा करने लगे ॥ ९ ॥ किन्तु जैसे सर्प लातके प्रहारको नहीं सह सक्ता वैसे ही वीरमानी यक्षगण भी ध्रुवके इस कर्म्मसे अपनी हार न सह सके एवं क्रोधित हो उठे । सब यक्षोंने दूना काम करके ध्रुवको हरानेकी इच्छासे एकसाथ छः छः बाण ध्रुव पर चलाये ॥ १० ॥ वे तेरह अयुत[1] यक्ष कुपित हो ध्रुवके कामका बदला चुकानेकी इच्छासे रथ और सारथी सहित महारथी ध्रुव पर परिघ, निस्त्रिंश, प्रास, शूल, परस्वध, शक्ति, ऋष्टि, भुशुण्डी एवं विचित्र पक्षवाले बाण आदि अस्त्र शस्त्र निरन्तर बरसाने लगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ ध्रुवजी उस शस्त्रोंकी महावर्षासे ऐसे छिप गये जैसे जलकी धाराओंके बरसते समय उनमें पर्वत

१ दश हजारको एक अयुत कहते हैं ।

छिप जाता है और नहीं देख पड़ता ॥ १३ ॥ अन्तरिक्षमें खड़े हुए सिद्धगण इस युद्धको देख रहेथे, जब उन्हे ध्रुवजी न देख पड़े तब वे हाहाकार करते हुए कहने लगे-"हा! यह मनुवंशका सूर्य्य यक्षसेनारूप सागरमें डूब कर नष्ट हो गया" ॥ १४ ॥ यक्षगण अपनी जय जान कर आनन्दसे गरजने लगे। इतनेहीमें जैसे कुहरेको नष्ट कर उसके बीचसे सूर्य्यनारायण प्रकट होते हैं वैसे ही उस शस्त्र-समूहका विनाश करता हुआ ध्रुवसहित ध्रुवका रथ देख पड़ा ॥ १५ ॥ उग्र धनुषके शब्दसे अपने शत्रुओंको खिन्न करते हुए ध्रुवजी देख पड़े। जैसे वायु मेघमालाको टुकड़े २ कर नष्ट कर देता है उसी भाँति ध्रुवने घड़ीभरमें शत्रुओंके शस्त्रोंको बाणोंसे छिन्नभिन्न कर डाला ॥ १६ ॥ उसके उपरान्त ध्रुवने यक्षों पर बहुतसे बाण चलाये; ध्रुवके धनुषसे छूटे हुए पैने बाण, जैसे बज्र (बिजली) पहाड़ोंमें घुस जाते हैं वैसे दृढ़ कवचोंको तोड़ कर यक्षोंके शरीरोंको भेदने लगे ॥ १७ ॥ यक्षोंके कुण्डल-मण्डित मुख और मनोहर वलय-भूषित भुजाएँ एवं सुवर्णवर्ण व ताल-तरुके तुल्य मोटी २ जंघाआदि अंग ध्रुवके भल्लनामक पैने बाणोंसे कट कर संग्रामभूमिमें बिछ गये। वीरजनोंके मनको उत्साह देनेवाली युद्धभूमि, उन कटे हुए अंगोंसे गिरी हुई हार, केयूर, मुकुट, पगड़ीआदि अमूल्य वस्तुओंसे बहुत ही शोभित हुई ॥ १८ ॥ १९ ॥ अधिकांश यक्ष तो इस भांति क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ ध्रुवके अमोघ बाणोंकी वर्षासे नष्ट होगये, और जो कुछ थोड़ेसे बचे उनके भी अंग छिन्नभिन्न होगये। सिंहके आक्रमणसे घायल गजराज जैसे भागते हैं वैसे ही वे बचे हुए यक्ष भयभीत होकर भाग गये ॥ २० ॥ शस्त्र हाथमें लिये एक भी शत्रुको आगे न देख कर ध्रुवने विचारा कि कार्य्य तो होगया अब आओ अलकापुरी देख लें। किन्तु उनके जीमें खटका हुआ कि मायावी यक्षगण अपनी पुरीमें पा कर न जानें क्या उपद्रव करें। ध्रुवजी "मायावियोंके मनका हाल कोई नहीं जानता-" इस प्रकार अपने सारथीसे कह कर सावधान होकर बैठे, क्योंकि उन्होने सोचा, कदाचित् ये लोग फिर कुछ लड़नेका उद्योग करें। ध्रुवजी यह सोचते ही थे कि उन्हे सहसा सागरके गरजनेके समान गंभीर शब्द सुन पड़ा, ध्रुवने चौंक कर देखा कि सब दिशाएँ सहसा आंधीके आनेके कारण अन्धकारसे व्याप्त हो गई ॥ २१ ॥ २२ ॥ क्षणभरमें देखते ही देखते आकाशमें घोर घटा घिर गई, उस घटामें भयानक बिजली कड़क कर चारो ओर चमकने लगी ॥२३॥ हे निष्पाप विदुर! उन मेघोंसे रुधिर, कफ, पीव, विष्ठा, मूत्र और वीर्य आदि अपवित्र वस्तुओंकी वर्षा होने लगी एवं आकाशसे ध्रुवके आगे कबन्ध गिरने लगे ॥२४॥ इसके उपरान्त आकाशमें एक बड़ा भारी पर्वत देख पड़ा; उससे ध्रुव पर पत्थर, गदा, परिघ, निस्त्रिंश, मूशल आदिकी वर्षा होने लगी ॥ २५ ॥ फिर ध्रुवको वज्रतुल्य भयंकर फुफकार छोड़ते क्रोधभरे नेत्रोंसे अग्नि वमन करते घोर सर्प अपनी ओर आते देख पड़े।

फिर मत्त हाथी, सिंह और बाघ झुंड बाँध कर दौड़ते हुए देख पड़े ॥ २६ ॥ फिर प्रलयकालके समान भयंकर रूप धारण किये महासागर भयानक तरंगोंसे चारो ओर पृथ्वीको बोरता हुआ देख पड़ा; उस उमड़ते हुए समुद्रमें वारम्वार महाघोर शब्द होने लगा ॥ २७ ॥ ध्रुवको भयभीत करनेके लिये क्रूर स्वभाववाले यक्षगण इस प्रकार कायर पुरुषोंको घबड़ा देनेवाली अनेक प्रकारकी भयानक आसुरी मायाएँ प्रकट करने लगे ॥ २८ ॥ युद्ध देखनेको आये हुए मुनिगण यक्षोंको इस प्रकार अतिदुस्तर मायाओंका प्रयोग करते देख कर ध्रुवका मङ्गल मनाने लगे ॥ २९ ॥

मुनय ऊचुः—औत्तानपादे भगवाँस्तव शार्ङ्गधन्वा
देवः क्षिणोत्ववनतार्तिहरो विपक्षान्।
यन्नामधेयमभिधाय निशम्य चाद्धा
लोकोऽञ्जसा तरति दुस्तरमङ्ग मृत्युम् ॥ ३० ॥

मुनिजन कहनेलगे। हे उत्तानपादके पुत्र ! शरणागतकी रक्षा करनेवाले शार्ङ्गधनुषधारी देव हरि भगवान् तुम्हारे शत्रुओंको नष्ट करें; संसारी लोग जिन हरिके नामको सुन कर वा अपने मुखसे कह कर अनायास अतिदुस्तर मृत्युके भयसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ३० ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय।

स्वायंभुव मनुके उपदेशसे ध्रुवका युद्धत्याग।

मैत्रेय उवाच—निशम्य गदतामेवमृषीणां धनुषि ध्रुवः ।
संदधेऽस्त्रमुपस्पृश्य यन्नारायणनिर्मितम् ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं। ध्रुवने इस प्रकार कह रहे ऋषियोंके वचन सुन आचमन कर शुद्ध हो धनुष पर नारायणास्त्रका संधान किया ॥ १ ॥ नारायणास्त्रका संधान करते ही सब यक्षोंकी मायाएँ शीघ्र ही नष्ट हो गईं, जैसे ज्ञानके उदय होने पर सब प्रकारके क्लेश निवृत्त हो जाते हैं ॥ २ ॥ ध्रुवने धनुष पर नारायणास्त्रका संधान कर सुवर्णके पुंख[१] एवं कलहंसके पंखसे युक्त वाण छोड़ना आरम्भ किया, वे वाण शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश करने लगे, जैसे भीम शब्द करते हुए मयूर वनमें प्रवेश करते हैं ॥ ३ ॥ युद्धभूमिमें उन पैनी धारावाले

---

१ वाणके अग्रभागको पुंख कहते हैं।

शिलीमुख वाणोंके लगनेसे यक्षगण अत्यन्त पीड़ित हुए। जैसे चोट खाये हुए सर्पगण फण उठा कर गरुड़ पर चोट करनेके लिये दौड़ते हैं वैसे ही कुपित यक्षगण शस्त्र उठा कर ध्रुवके ऊपर आक्रमण करनेके लिये दौड़े ॥ ४ ॥ यक्षोंको आक्रमण करने पर उद्यत देख कर ध्रुवने ऐसे वाण मारे कि उन लोगोंके बाहु, ऊरु, कन्धे एवं उदर आदि अंग छिन्नभिन्न होने लगे। वे सब युद्धमें शरीर त्याग कर सूर्य्यलोकको भेद कर उस लोकको जाने लगे जहां बालब्रह्मचारी महर्षिगण जाते हैं ॥ ५ ॥ इस भांति वहुत से निरपराध यक्षोंको ध्रुवजीके हाथोंसे मरते देख कर महानुभाव स्वायंभुव मनुको दया आई, तब वह महर्षियोंके साथ युद्धभूमिमें आकर अपने पौत्र ध्रुवसे यों कहनेलगे ॥ ६ ॥ **मनु बोले** । पुत्र! क्रोध बड़ा भारी पाप है, यह क्रोध ही नरकका द्वार है; इस कारण क्रोधको त्यागो। इस क्रोधके ही वश हो कर तुमने इतने निरपराध यक्षोंका वध किया है ॥ ७ ॥ तात! तुम थोड़ेसे अपराध पर यक्षोंके वधमें प्रवृत्त हुए हो, यह कर्म्म हमारे कुलके योग्य नहीं है; सज्जन लोग ऐसे कुकर्म्मकी निन्दा करते हैं ॥ ८ ॥ तुम्हारा भाई तुमको अवश्य प्रिय था, उसीके वधसे व्यथित और कुपित हो कर तुम इस कर्म्ममें प्रवृत्त हुए हो। पर तुम्हारे भाईको तो एक यक्षने मारा था, उसके साथ तुमने अनेक यक्षोंका वध किया ॥९॥ देहाभिमानी हो कर पशुओंकी भांति प्राणियोंकी हिंसा करना, भगवान्‌के भक्त साधुजनोंका मार्ग नहीं है (क्योंकि वे सब प्राणियोंमें ईश्वरको देखते हैं) ॥ १० ॥ वत्स! 'सब प्राणी मुझसे भिन्न नहीं हैं' इस प्रकारकी समबुद्धिसे सब प्राणियोंमें स्थित दुराराध्य हरिकी आराधना करके उन विष्णुका परमपद ध्रुवलोक तुमने पाया है ॥ ११ ॥ तुम हरिके हृदयमें अवस्थित हो एवं हरिके भक्त भी साधु कह कर तुम्हारी प्रशंसा करते हैं। तुम ऐसे हो कर एवं साधुजनोंके व्रत(समदृष्टि)की शिक्षा पा कर ऐसे निन्दित कर्म्ममें कैसे प्रवृत्त हुए? ॥ १२ ॥ अपनेसे उत्तम लोगोंके साथ सहनशीलताका और अपनेसे नीच पर दयाका व समान व्यक्तिसे मित्रताका व्यवहार करनेसे एवं सब प्राणियों पर समदृष्टि रखनेसे सब प्राणियोंके आत्मा भगवान् हरि प्रसन्न होते हैं! ॥ १३ ॥ जब इन कर्मोंसे सर्वव्यापक भगवान् प्रसन्न होते हैं तब यह पुरुष मायाके गुणोंसे एवं लिंगशरीरसे मुक्त हो कर सुख-स्वरूप ब्रह्मको प्राप्त एवं कृतार्थ होता है ॥ १४ ॥ (तुम यदि आत्माके तत्त्वका विचार करो तो जान सकोगे कि तुम्हारा भाई भी कोई नहीं था एवं उसको किसीने मारा भी नहीं क्योंकि) पाँच तत्त्वोंसे स्त्री और पुरुषका शरीर बनता है; स्त्री-पुरुषके परस्पर संयोगसे अन्य स्त्री और पुरुषकी उत्पत्ति होती है ॥ १५ ॥ इसी प्रकार परमात्माकी मायाके द्वारा सत्त्वादि गुणोंके व्यवहारसे देहादिकी उत्पत्ति (सृष्टि), पंचतत्त्वोंकी देहादिरूपमें अवस्थिति (पालन) और देहनाशादि

(संहार) कार्य्य होते रहते हैं ॥१६॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! निर्गुण परमेश्वर इन कार्योंका कारणमात्र है, उसका इन कार्योंसे और किसी भांतिका सम्बन्ध नहीं है; कार्य-(शरीर)-कारण(जीव)स्वरूप विश्वचक्र उसीकी शक्तिसे घूमता है; जैसे चुम्बककी आकर्षणीशक्तिद्वारा लोहा घूमता है ॥ १७ ॥ हे कुमार! (सृष्टिआदि कार्योंको देख कर ईश्वरको मायाके गुणोंमें लिप्त मानना भ्रममात्र है क्योंकि) वही ईश्वर अपनी कालशक्तिद्वारा इन सृष्टिआदि कार्योंके कारणों(सत्वादि गुणों)को सृष्टिआदि कार्योंमें परिणत करके आप (सृष्टिसमयमें) सृष्टिकर्त्ता, (पालन-समयमें) पालनकर्त्ता और (संहारसमयमें) संहारकर्त्ताके रूपमें कल्पितमात्र होते हैं; वास्तवमें वह अकर्त्ता हैं। पुत्र! उन भगवान्‌की शक्ति जो 'काल' है उसकी चेष्टा अचिन्त्य, अतर्क्य है ॥ १८ ॥ वह ईश्वर ही पिता आदिके द्वारा पुत्रादिको उत्पन्न कराते हैं एवं प्राणियोंके द्वारा प्राणियोंकी मृत्यु कराते हैं, प्राणियोंकी सृष्टि और संहारका वही कारण हैं। वही सबके नियन्ता हैं, वह स्वयं अनन्त और अनादि हैं, उनकी कालरूप शक्ति कभी क्षीण नहीं होती ॥१९॥ ईश्वरके लिये न कोई अपना है और न कोई पराया है। न शत्रु है, न मित्र है। वह मृत्युरूप हैं। ईश्वर समदर्शी हैं, सम्पूर्ण जीव अपने २ कर्मोंके द्वारा अनुकूल और प्रतिकूल फल पाते हैं। धूलिसमूह जैसे वायुके पीछे २ उसीके अधीन होकर गमन करते हैं वैसे ही ये सब जीव ईश्वरके अधीन होकर ईश्वरकी कालरूप गतिका अनुसरण करते हैं। परन्तु जैसे अन्धकार वा प्रकाशमें अथवा अग्नि या जलमें धूलिके जानेका कारण वायुकी विषमता नहीं है वैसे जीवोंको दुःख सुख उनके कर्मके अनुसार मिलते हैं; इसका कारण ईश्वरका विषमभाव नहीं है ॥ २० ॥ ईश्वर वृद्धि और क्षयसे रहित, स्वस्थ हैं। जीवोंकी कालमृत्युसे रक्षा वा अकाल-मृत्यु उनके कर्मानुसार होती है ॥ २१ ॥ ईश्वरका उल्लिखितरूप सब ही मानते हैं, ईश्वरके विषयमें केवल नाममात्रका विवाद पाया जाता है। कोई उन्हींको 'कर्म्म' कह कर मानते हैं, कोई 'स्वभाव' कहते हैं, कोई 'काल' कहते हैं, कोई 'दैव' कहते हैं और कोई 'मनुष्यकी इच्छा' कहते हैं ॥ २२ ॥ ईश्वर अव्यक्त है, अतएव अप्रमेय है; उसीसे महत्तत्व आदि अनेक शक्तियोंका प्रकाश होता है। ईश्वरके विषयमें "ईश्वर है" बस इतना ही कहा जा सक्ता है क्योंकि जब उनकी शक्ति (काल)-की चेष्टाको कोई नहीं जान सक्ता तब स्वयं ईश्वरको कौन जान सक्ता है? ॥ २३ ॥ हे पुत्र! ये कुबेरके किंकर यक्ष तुम्हारे भाईके मारनेवाले नहीं हैं, क्योंकि प्राणीकी (कर्म्मानुसार) सृष्टि और संहारके विषयमें एक ईश्वर ही कारण है; ईश्वरके अतिरिक्त अन्य कोई किसीको न उत्पन्न कर सक्ता है और न मार सक्ता है ॥ २४ ॥ वही ईश्वर विश्वको उत्पन्न करते हैं और उसका पालन व नाश करते हैं, परन्तु अहंकार न होनेके कारण गुणोंके कर्म्मोंमें लिप्त नहीं होते ॥ २५ ॥ वह अपनी

शक्ति मायासे युक्त होकर प्राणियोंकी उत्पत्ति, पालन और नाश करते हैं। ईश्वर ही प्राणियोंके प्रकाशक, प्रभु और आत्मा हैं ॥ २६ ॥ वही इस जगत्का परम-आश्रय-स्थान हैं, वही भक्तजनोंके लिये अमृतरूप एवं अभक्तजनोंके लिये मृत्यु-स्वरूप हैं। नासिकामें रस्सीसे नथे हुए पराधीन बैलोंकी भाँति विश्वके उत्पन्न करने-वाले ब्रह्माआदि भी उस ईश्वरकी आज्ञाका पालन करते हैं; उसी ईश्वरको सर्वव्यापक जान कर अनन्यभावसे भजो ॥ २७ ॥ तुम पाँच वर्षकी अवस्थामें सौतेली माताके वचनरूप वाणोंसे भिन्नहृदय होकर वनमें गये और तपसे जिनकी आराधना कर त्रिलोकके ऊपर ध्रुवपदको पाया उन निर्गुण, अविनाशी, अद्वितीय परमात्माको भेदभावरहित एवं आत्मदर्शी होकर अपने आत्मा (मन)में देखो। पुत्र ! वह सबके हृदयमें स्थित हैं एवं सर्वदा विमुक्तस्वरूप हैं; उनमें यह भेदभाव-मय विश्व असत् प्रतीत होता है ॥२८॥२९॥ सबके अन्तरात्मा, ऐश्वर्य्ययुक्त, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, आनन्दमय उन्ही परमेश्वरमें इस भाँति दृढ़ भक्ति कर 'मैं हूँ, मेरा है' इत्यादि सुदृढ़ अज्ञानकी गाँठको धीरे २ छिन्न कर सकोगे ॥ ३० ॥ पुत्र ! सम्पूर्ण मङ्गलोंके विघ्न इस क्रोधको शास्त्रके श्रवणसे प्राप्त आत्मज्ञानद्वारा शान्त करो, जैसे औषधसे अमंगलकारी रोग नष्ट किया जाता है। तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य क्रोधके अधीन होते हैं उनसे लोग भयभीत होकर घबड़ाते हैं, अतएव जिसको निर्भय होनेकी एवं अपने मंगलकी इच्छा हो उसे उचित है कि ज्ञान प्राप्त कर क्रोधके अधीन न हो ॥ ३२ ॥ शिवजीके साथ कुबेरजीका भाईचारा है। अपने भाईके मारनेवाले मान कर और इसीसे कुपित होकर तुमने उनके अनुचर यक्षोंको मारा है, इससे तुमने भगवान् कुबेरका भी एक प्रकारसे निरादर किया है ॥ ३३ ॥ महत् लोगोंका कुपित होना अच्छा नहीं है, कुबेरजीके कोपसे हमारे कुलका अनिष्ट न हो इसलिये शीघ्र जाकर उन महानुभाव महात्माको प्रणाम और विनीत वचनोंसे प्रसन्न करो एवं अपना अपराध क्षमा कराओ ॥ ३४ ॥

एवं स्वायंभुवः पौत्रमनुशास्य मनुर्ध्रुवम्।
तेनाभिवन्दितः साकमृषिभिः स्वपुरं ययौ ॥ ३५ ॥

स्वायंभुव मनु इस प्रकार अपने पौत्र ध्रुवको उपदेश देकर एवं ध्रुवके द्वारा अभिवन्दित हो कर महर्षियों सहित अपने धामको चले गये ॥ ३५ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय ।

ध्रुवका ध्रुवलोक-गमन ।

मैत्रेय उवाच—ध्रुवं निवृत्तं प्रतिबुद्ध्य वैशसा-
दपेतमन्युं भगवान्धनेश्वरः ।
तत्रागतश्चारणयक्षकिन्नरैः
संस्तूयमानोऽभ्यवदत्कृताञ्जलिम् ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं । जब भगवान् कुवेरजीने सुना कि मनुके कहनेसे क्रोध त्याग कर ध्रुवजी यक्षोंके वधसे निवृत्त होगये तब चारण-यक्ष-किन्नर-गणकृत अपनी स्तुति सुनते हुए युद्धभूमिमें आये एवं अंजलि बांध कर नम्र-भावसे खड़े हुए ध्रुवसे कहने लगे ॥१॥ कुवेरजी बोले । हे निष्पाप, राजकुमार! तुमने अपने बाबाके कहनेसे दुस्त्यज वैरको तज दिया, मैं तुम पर प्रसन्न हूं ॥ २ ॥ देखो, न तुमने यक्षोंको मारा और न यक्षोंने तुम्हारे भाईको मारा, क्योंकि काल ही जीवोंके जन्म और मरणका कारण है ॥ ३ ॥ 'मैं हूं' 'तुम हो' ऐसी भेदबुद्धि अज्ञानके कारण होती है । ऐसी बुद्धिके होनेका कारण केवल देहाभिमान है; यह बुद्धि स्वप्नमें देखे हुए सुख-दुःखके समान मिथ्या है । इसी बुद्धिसे वन्धन व अनेक क्लेश मिलते हैं ॥ ४ ॥ अब तुम अपने पुरको जाओ, तुम्हारा कल्याण हो । जा कर जन्ममरणसे मुक्त होनेके लिये जन्ममरणसे छुड़ाने-वाले हरिको भजो एवं सब प्राणियोंमें उन्हीको स्थित देखो, क्योंकि ये सब प्राणी उन्हीका रूप हैं । वह गुणमयी मायाशक्तिसे युक्त भी हैं एवं रहित भी हैं । उन्हीके चरणकमल भजने योग्य हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे उत्तानपादके पुत्र राजा ध्रुव! यदि तुम्हारी कोई कामना हो तो संकोच त्याग कर वह वर मुझसे मांगो, तुम वर देनेके योग्य पात्र हो; हम सुनते हैं कि तुम भगवान्के चरणारविन्दोंके अनन्यभक्त हो ॥ ७ ॥ श्रीमैत्रेयजी कहते हैं । जब कुवेरजीने इस भांति वर मांगनेके लिये कहा तब महाबुद्धिमान् भगवद्भक्त ध्रुवने उनसे हरि भगवान्में वही दृढ़भक्ति माँगी, जिस भक्तिकी सहायतासे लोग दुरत्यय संसारको सहजमें तर जाते हैं ॥ ८ ॥ कुवेरजी प्रसन्नतापूर्वक ध्रुवको मनमानी हरिकी अचल भक्ति देकर देखते ही देखते अन्तर्द्धान होगये। ध्रुवजी भी अपने पुरको लौट आये ॥ ९ ॥ द्रव्य (यज्ञकी सामग्री), क्रिया (यज्ञके कर्म्म), देवता; ये ईश्वरसे ही मिला देते हैं, ध्रुवजी उन्ही यज्ञके ईश्वर परमेश्वरकी बहुत दक्षिणावाले यज्ञोंसे आराधना करने लगे । वह ईश्वर ही अनेक देवगणके स्वरूपसे संपूर्ण कर्मोंके फलोंको यजमानकी इच्छाके अनुसार देते हैं ॥ १० ॥ ध्रुवजी, सम्पूर्ण उपाधियोंसे रहित सर्व्वव्यापक अच्युत

भगवान्‌में दृढ़ भक्ति करते २ उन्ही ईश्वरको सब प्राणियोंमें तथा अपनेमें स्थित देखने लगे ॥११॥ सब प्रजागण इस प्रकारके उत्तम स्वभाववाले, ब्राह्मणोंके भक्त, दीनों पर दया करनेवाले एवं धर्म्मकी मर्य्यादाओंके रक्षक व प्रजाका प्रतिपाल करनेवाले ध्रुव पर अपने पिताके समान सम्मान व भक्ति करने लगे ॥ १२ ॥ इस प्रकार भोगसे पुण्योंका एवं यज्ञादिसे पापोंका क्षय करते हुए ध्रुवने छत्तीस हजार वर्ष तक पृथ्वीमण्डलका शासन किया ॥ १३ ॥ महात्मा ध्रुवने इस प्रकार इन्द्रियोंको अपने अधीन रख कर धर्म, अर्थ और कामको सिद्ध करते हुए बहु-वर्षपरिमित कालको बिताया, तदनन्तर अपने पुत्रको राज्यासन दे दिया ॥ १४ ॥ उस समय ध्रुवको पूर्णज्ञान एवं संसारसे वैराग्य होगया था। ध्रुवजीने अपने मनमें इस विश्वको अज्ञानवश स्वप्नमें देखे हुए गन्धर्वनगरके समान मिथ्या एवं मायामय मान कर और "शरीर, स्त्री, पुत्र, सुहृद्, सेना, भरा हुआ खजाना, अन्तःपुर, रमणीय-विहारभूमि, सागरवेष्ठित पृथ्वीमण्डल सब काल पा कर नाश हो जानेवाला अनित्य है" ऐसा विचार कर सबको छोड़ दिया और अकेले तप करनेके लिये बद्रिकाश्रमको चल दिये ॥ १५ ॥ १६ ॥ ध्रुवजीने बद्रिकाश्रममें जा कर अष्टाङ्ग योगका आरंभ किया:—प्रथम जलमें स्नान करके शरीरकी बाहरी शुद्धि की, फिर कामक्रोधादि एवं विषयवासनाएं त्याग कर अन्तःकरणको शुद्ध किया, फिर आसन बाँध कर प्राणायामके द्वारा वायुको जीता और मनको एकाग्र कर उसके द्वारा इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे निवृत्त किया। फिर उस मनको भगवान्‌के विश्वमय विराट्‌रूपमें लगाया, विराट्‌रूपका ध्यान करते २ जब 'मैं "ध्यान करनेवाला हूँ और भगवान् ध्यान करने योग्य वस्तु हैं" इस प्रकारका भेदभाव जाता रहा तब तन्मय होकर समाधिमें स्थित हुए अर्थात् समाधि अवस्थामें 'मैं ही ब्रह्म हूं' ऐसी भावना करने लगे ॥ १७ ॥ निरन्तर, हरि भगवान्‌में पूर्ण भक्ति होनेसे उनको ब्रह्मानन्द प्राप्त हुआ, वारम्वार उनके नेत्रोंसे आनन्दकी उमंगसे आँसू बहने लगे, देह भरमें रोमाञ्च हो आया, भक्तिभाव व आनन्द-रससे हृदय विगलित होगया। उनका देहाभिमान नष्ट होगया अतएव "मैं राजा ध्रुव हूँ" ऐसी भावना मिट गई ॥ १८ ॥ इस अवस्थाके प्राप्त होने पर ध्रुवने देखा कि अपने प्रकाशसे दशदिशाओंको प्रकाशित कर रहा एक श्रेष्ठ विमान आकाशसे पृथ्वी पर उतर रहा है, जिसे देखनेसे जान पड़ता है मानो आकाशमें चन्द्रमाका उदय हुआ है ॥ १९ ॥ ध्रुवने देखा कि उस विमान पर दो देव-श्रेष्ठ गदाका सहारा लिये हुए खड़े हैं। उनका शरीर श्याम है और भुजाएँ चार हैं। शिर पर किरीट मुकुट, हृदयमें हार, भुजाओंमें अंगद कानोंमें कुण्डल धारण किये हुए हैं, सुन्दर पीताम्बर पहने हैं, लोचन अरुणवर्ण कमलके समान विशाल हैं और अवस्था किशोर है ॥ २० ॥ ध्रुवजी, उनको हरिके किंकर जान कर अभ्यर्थनाके लिये उठ खड़े हुए, जल्दी और संभ्रमके कारण यथाक्रम

पूजा करनेका ध्यान भी नहीं रहा; केवल 'ये हरिके प्रधान पार्षद हैं' इस बुद्धिसे हरिके पवित्र नामोंका उच्चारण करते हुए अंजलि बाँध कर प्रणाम किया ॥ २१ ॥ उन दोनो पार्षदोंका नाम सुनन्द और नन्द था। वे दोनो भगवान्‌के प्रिय पार्षद ध्रुवके पास आये, देखा कि ध्रुवजी बड़ी ही नम्रताके साथ शिर झुकाये हुए हाथ जोड़े खड़े हैं, उनका चित्त कृष्ण भगवान्‌के चरणकमलोंमें तन्मय हो रहा है। तब बहुत प्रसन्न हो कर मुसकाते हुए नन्द और सुनन्द कहने लगे ॥ २२ ॥ "हे राजन्! तुम्हारे कल्याणकी सीमा नहीं है, हमारी वाणीको सावधान होकर सुनो। तुमने पाँच वर्षकी अवस्थामें तप कर जिन हरि देवको सन्तुष्ट किया था ॥ २३ ॥ उन्हीं शार्ङ्गपाणि विश्वनाथके पार्षद हम तुमको इसी देहसे हरिधाम (ध्रुवलोक) में ले जानेके लिये आये हैं ॥ २४ ॥ जो बड़े २ लोगोंको दुर्लभ है उस विष्णुपदको तुमने जीत लिया; महातपस्वी सप्तर्षि भी उस पदको नहीं पा सके! वे उस परमपदके नीचे रह कर केवल दर्शन करते हैं। चन्द्र, सूर्य्य, आदि ग्रह, नक्षत्र और तारागण सब उस धामकी प्रदक्षिणा किया करते हैं; परन्तु आप ईश्वरकी कृपासे वहीं चलिये ॥ २५ ॥ हे राजन्! आपके पूर्वजगण एवं अन्यान्य पुण्यात्मालोग भी कभी जिस पदको नहीं पहुँचे हैं उसी त्रिभुवनवन्दित विष्णुके परमपदमें चल कर निवास कीजिये ॥ २६ ॥ हे आयुष्मन्! भगवान् हरिके भेजे हुए इस श्रेष्ठ विमान पर आप सदेह चढ़िये ॥ २७ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं। भगवान्‌के प्रधान पार्षदोंके मुखकमलसे ये अमृतसम मधुर वचन सुन कर भगवत्प्रिय ध्रुवने स्नान किया, नित्यकर्म्म किया एवं अलंकृत हो कर ऋषियोंसे स्वस्तिवाचन करा कर उनको प्रणाम किया ॥ २८ ॥ फिर उस श्रेष्ठ विमानकी प्रदक्षिणा और प्रणाम किया एवं सुवर्णवर्ण रूप धारण करके उन पार्षदोंको प्रणाम कर विमान पर चढ़नेके लिये उद्यत हुए ॥ २९ ॥ उस समय स्वर्गमें देवगणने मृदंग, पणव, दुन्दुभी आदि बाजे बजाये, श्रेष्ठ गन्धर्व्वगण गुण गाने लगे और आकाशसे कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ३० ॥ विमान पर चढ़ते समय ध्रुवको अपनी माता सुनीतिका स्मरण हो आया। ध्रुवजी मनमें विचारने लगे कि "मेरे वियोगसे मेरी माताकी दीन दशा होगी; मै उन्हे यहीं छोड़ कर, अगम्य विष्णुपदको जा रहा हूँ!" ॥ ३१ ॥ ध्रुवकी इस चिन्ताको हरिके पार्षद जान गये; तब उन्होने विमान पर बैठी हुई स्वर्गको जा रही सुनीतिको दिखा कर कहा कि देखो वह तुम्हारी माता तुमसे पहले ही स्वर्गको जा रही हैं! ॥ ३२ ॥ तब ध्रुवजी प्रसन्न हो कर ध्रुवलोकको चले, राहमें विमानवासी देवगण प्रशंसा करते हुए फूलोंकी वर्षा करते थे। ध्रुवजीने क्रमशः मंगलआदि ग्रहोंके लोक देखे ॥ ३३ ॥ विमानस्थित ध्रुवजी त्रिलोकीको नाँघ कर सप्तर्षिमण्डलमें होते हुए ऋषियोंके ऊपर ध्रुवलोकमें पहुंचे, जहाँसे फिर लौटना नहीं

होता। वही विष्णुका पद है ॥ ३४ ॥ वह विष्णुपद चारो ओर अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है, उसीके तेजसे ये तीनो लोक प्रकाशित हैं; वहाँ प्राणियोंसे द्रोह करनेवाले लोग नहीं जाते, किन्तु वे ही जाते हैं जो दिन रात दया आदि शुभ कर्मोंमें तत्पर रहते हैं ॥ ३५ ॥ उस विष्णुपदमें वे लोग अनायास जाते हैं जो शान्तस्वभाव, समदर्शी, शुद्ध (पवित्र) सब प्राणियोंका मनोरंजन करनेवाले व अच्युत भगवान्को ही अपना प्रिय बान्धव जानते हैं ॥ ३६ ॥ उत्तानपादके पुत्र, भगवद्भक्त, शुद्धचित्त ध्रुवजी इस भाँति विष्णुपदमें उपस्थित हो कर त्रिलोकीके मस्तक पर चूड़ामणिके समान सुशोभित हुए ॥ ३७ ॥ बैल आदि जैसे मड़नीके समय एक काष्ठके आश्रयसे उसीके चारो ओर घूमते हैं वैसे ही ज्योतिश्चक्र (चन्द्र, सूर्य, नक्षत्रआदि) गंभीर वेगसे निरन्तर उसी ध्रुवलोकके आश्रयसे (उसके) चारो ओर घूमते हैं ॥ ३८ ॥ नारदजी ध्रुवकी ऐसी अद्भुत महिमा देख कर अत्यन्त आनन्दित हुए और जहाँ तीनो लोकोंके लोगोंका समागम था उस प्रचेताओंके यज्ञमें जा कर विष्णुके माहात्म्यके प्रसंगसे इस प्रकार वीणा बजा कर ध्रुवकी महिमाका गान किया॥३९॥ **नादजी कहने लगे।** पतिव्रता सुनीतिने पूर्वजन्ममें बड़ा तप किया था जो ध्रुव ऐसा यशस्वी पुत्र पाया। आहा! वेदका अध्ययन करनेवाले ब्रह्मर्षिगण भगवान्के धर्म्मोंको देख कर भी ध्रुवकी अपूर्व्व गतिको नहीं पा सक्ते, अन्यान्य राजा लोगोंकी कौन कहै? ॥ ४० ॥ उन ध्रुवने पाँचवर्षकी अवस्थामें सौतेली माताके वचनरूप वाणोंकी चोटसे विभिन्न हुए हृदयमें व्यथित हो कर मेरे उपदेशके अनुसार वनमें गमन किया और मनका दमन कर तपसे हरि भगवान्को प्रसन्न किया! ध्रुवजी भगवान्के अन्यान्य भक्तोंसे अवश्य ही श्रेष्ठ हैं ॥ ४१ ॥ अन्य क्षत्रिय हजारों वर्ष तप करके भी, ध्रुव जिस लोकको प्राप्त हुए हैं, वहाँ नहीं जा सक्ते; जाना दूर रहा, जानेकी इच्छा भी नहीं कर सक्ते। परन्तु धन्य हैं ध्रुव, जिन्होने ऐसे अप्राप्य विष्णुलोकको पाँच छः वर्षकी अवस्थामें थोड़े ही दिनके तपसे हरिको प्रसन्न कर जीत लिया ॥ ४२ ॥ **श्रीमैत्रेयजी कहते हैं।** हे विदुर! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार अति यशस्वी ध्रुवका यह चरित्र मैंने तुमसे वर्णन किया। यह ध्रुवचरित्र साधुजनोंको प्रिय है ॥४३॥ यह ध्रुवचरित्र यश और आयुको बढ़ानेवाला, पवित्र, पुण्यरूप, मंगलमय, मनको प्रसन्न करनेवाला, पापनाशक और प्रशंसनीय है; इससे धन, स्वर्ग एवं ध्रुवलोक प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ यह अच्युतके प्रिय ध्रुवका चरित्र श्रद्धापूर्वक नित्य सुननेसे भगवान्में दृढ़ भक्ति उत्पन्न होती है, जिस भक्तिके होनेसे संसारके क्लेशोंका क्षय होता है ॥ ४५ ॥ श्रोताको यदि महत्त्व लाभ करनेकी इच्छा हो या मनस्वी अथवा तेजस्वी होनेकी इच्छा हो तो उसे ध्रुव-

चरित्र सुनना उचित है, इसीसे उसकी कामना पूर्ण होगी । यह चरित्र तीर्थके समान पवित्र है, इसके सुननेवालेको सुशीलता आदि सद्गुण शीघ्र ही मिलते हैं ॥ ४६ ॥ पवित्र हो कर प्रातःकाल और सायंकालको ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातिकी सभामें यह महायशस्वी ध्रुवका उत्तम चरित्र कीर्त्तन करना चाहिये ॥४७॥ पूर्णिमा, अमावास्या, द्वादशी इन तिथियोंमें, श्रवण नक्षत्र, व्यतीपातयोग, संक्रान्तिका दिन, रविवार, दिनक्षय इन पर्व्वोंमें अवश्य इसका पाठ करना चाहिये एवं स्वयं निष्काम होकर श्रद्धालु लोगोंको सुनाना भी चाहिये। इस प्रकार हरिकी चरण-शरण ग्रहण करके यह चरित्र पढ़ने व सुनानेसे, मनुष्य आप ही आप अपने आत्मा (मन) में सन्तुष्टि पा कर सिद्ध अर्थात् सांसारिक क्लेशोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ हे विदुर! जो कोई, ईश्वरका तत्त्व न जाननेवाले अज्ञानी लोगोंको अमृतरूप ज्ञानका प्रकाश दिखा कर सुमार्गमें ले आता है उस दीनबन्धु, दयालु व्यक्ति पर सब देवगण अनुग्रह करते हैं ॥ ५० ॥

इदं मया तेऽभिहितं कुरूद्वह
ध्रुवस्य विख्यातविशुद्धकर्मणः।
हित्वार्भकः क्रीडनकानि मातु-
र्गृहं च विष्णुं शरणं यो जगाम ॥ ५१ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ! प्रसिद्ध और शुद्ध कर्म्म करने वाले ध्रुवका यह चरित्र मैंने तुमसे वर्णन किया । धन्य हैं ध्रुव महाराज! जो बालकपनमें ही सब खेल व माता-पिताका घर छोड़ कर विष्णुकी शरणमें प्राप्त हुए ॥ ५१ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय ।

वेनके पिता अंगके वृत्तान्तका वर्णन ।

सूत उवाच—निशम्य कौषारविणोपवर्णितं
ध्रुवस्य वैकुण्ठपदाधिरोहणम् ।
प्ररूढभावो भगवत्यधोक्षजे
प्रष्टुं पुनस्तं विदुरः प्रचक्रमे ॥ १ ॥

सूतजी बोले । हे ऋषियो! मैत्रेयमुनिके मुखसे ध्रुवजीके ध्रुवलोकगमनका वृत्तान्त सुन कर विदुरजीको भगवान् विष्णु पर और भी दृढ़ भक्ति हुई, तब वह

फिर इस प्रकार मैत्रेयजीसे हरिके चरित्र पूछने लगे ॥ १ ॥ **विदुरजी बोले।** आपने कहा कि प्रचेताओंके यज्ञमें जा कर नारदजीने ध्रुवकी महिमाका गान किया सो हे सुव्रत! वे प्रचेता कौन हैं? किसके वंशमें उत्पन्न हैं और किसके पुत्र हैं? किस स्थान पर उनका यज्ञ हो रहा था? ॥ २ ॥ मैं जानता हूँ कि नारदजी भगवान्के परमभक्त हैं, उनको हरिका दर्शन प्राप्त है। उन्होने हरिकी पूजाकी विधि अर्थात् पञ्चरात्रनामक शास्त्र वर्णन किया है ॥ ३ ॥ अपने धर्ममें तत्पर प्रचेतागण यज्ञोंसे भगवान् यज्ञपुरुषकी पूजा करते थे, वहां नारद भगवान्ने हरिके गुणोंका गान किया ॥ ४ ॥ ब्रह्मन्! उनके यज्ञमें नारदजीने जिन हरिकी कथाओंका वर्णन किया सो सब कहिये, मुझको उनके सुननेकी बड़ी इच्छा है ॥ ५ ॥ **श्रीमैत्रेयजी बोले।** ध्रुवके बड़े पुत्र का नाम उत्कल था, जब ध्रुवजी वनको चले गये तब चक्रवर्तीराज्यकी लक्ष्मी और पिताका राजसिंहासन मिलने पर भी उन्होने नहीं ग्रहण किया ॥ ६ ॥ क्योंकि जन्मसे ही उनका मन शान्त था; वह समदर्शी और विषयी जनोंके संगसे निवृत्त थे। सम्पूर्ण विश्वमें अपनेको और अपनेमें सब विश्वको व्याप्त देखते थे ॥ ७ ॥ उनका आत्मा (मन) शान्त हो कर ज्ञानरूपरस (परमात्माके आनंद)में मिल कर तन्मय होगया था। अखण्डित योगरूप अग्निसे उनका वासनामय लिंगशरीर दग्ध होगया था । उनको देहाभिमान न था। उन्होने अपने आत्माको अपना रूप जो आनन्दमय सर्वव्यापी ब्रह्म है उसमें लीन कर दिया था, इस कारण उनकी दृष्टिमें अपनेसे अलग कुछ भी न था ॥ ८ ॥ ९ ॥ उनको राहमें बालक (मूर्ख) लोग जड़, अन्धा, बधिर, उन्मत्त अथवा गूँगा समझते थे; वास्तवमें वह सर्वज्ञ थे, उनकी बुद्धि उन बालकोंकी ऐसी न थी। लोग जैसे लपटोंके शान्त होने पर अग्निको अकर्म्मण्य मानते हैं वैसे ही वह अकर्मण्य प्रतीत होते थे ॥ १० ॥ कुलके बूढ़े और मंत्रियोंने उत्कलको उन्मत्त, जड़ जान कर उनके छोटे भाई वत्सर नाम राजकुमारको राजा बनाया । यह रानी भ्रमिके गर्भसे उत्पन्न थे ॥११॥ वत्सरकी स्त्रीका नाम सुवीथि था, उसके गर्भसे वत्सरके पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, ऊर्ज्ज, वसु और जय, ये छः कुमार उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ पुष्पार्णके प्रभा और दोषा नाम दो रानियाँ थीं; उनके प्रभामें प्रातः, मध्यंदिन और सायं ये तीन पुत्र हुए ॥ १३ ॥ और दोषामें भी प्रदोष निशीथ और व्युष्ट ये तीन पुत्र हुए। इनमें व्युष्टने पुष्करिणी नाम रानीमें सर्व्वतेजा नाम पुत्र उत्पन्न किया ॥ १४ ॥ सर्व्वतेजाका नाम चक्षु भी है । चक्षुने आकूति नाम रानीमें मनु नाम पुत्र उत्पन्न किया। मनुके नड्वला नाम रानीमें कुरु, कुत्स, त्रित, द्युम्न, सत्यवान, ऋत, व्रत, अग्निष्टोम, अतिरात्र, प्रद्युम्न, शिवि और उल्मुक ये बारह निष्कलङ्क कुमार उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥ १६ ॥ उन बारह कुमारोंमेंसे उल्मुक नाम कुमारने पुष्करिणी नाम अपनी रानीमें अंग, सुमना,

ख्याति, क्रतु, अंगिरा और गय ये छः उत्तम पुत्र उत्पन्न किए ॥ १७ ॥ इनमें अंगके सुनीथा नाम रानीके गर्भसे वेन नाम घोर कुमार उत्पन्न हुआ। वेनके दुष्ट स्वभावसे विरक्त हो कर राजा अंग पुर छोड़ वनको चले गये ॥१८॥ हे विदुर! जिनकी वाणी वज्रसे बढ़ कर है उन मुनियोंने दुराचारसे कुपित हो कर वेनको शाप देदिया। मुनियोंके शापसे वेनके मर जाने पर कोई राजा न रहा, चोर आदि प्रजाको सताने लगे। प्रजाको पीड़ित देख कर मुनियोंने वेनके मरे हुए शरीरकी दाहिनी भुजाको मथा, तब वेनकी भुजासे नारायणका अंश राजा पृथु उत्पन्न हुए। यह आदिराजा हुए (क्योंकि इन्होने ही पुर, ग्राम आदिकी रचना की है, पहले जो जहां पाता था वहीं ऊंची नीची पृथ्वीमें बसता था) ॥ १९ ॥ २० ॥ **विदुरजी बोले।** महाराज अंग तो बड़े ही सुशील, साधु (परोपकारी), ब्राह्मणोंके भक्त और महात्मा थे, उनके ऐसी दुष्ट सन्तान किस कारणसे हुई? जिस सन्तानके पीछे अंगको घर छोड़ देना पड़ा ॥ २१ ॥ राजा सबको दण्ड देनेवाला शासक होता है, तब राजा वेनने ऐसा कौन अपराध किया था जिससे धर्म्मके जाननेवाले मुनियोंने कुपित हो कर उस पर ब्रह्मदण्ड अर्थात् ब्रह्मशाप छोड़ा ॥ २२ ॥ राजामें सब लोकपालोंका अंश और तेज होता है, इस लिये यदि राजा कोई अपराध भी करे तो प्रजाको उसका अनादर न करना चाहिये ॥ २३ ॥ आप भूत-भविष्य-वर्त्तमानके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हैं, आपको सब विदित है, इससे कृपा करके सुनीथाके पुत्र वेनका चरित्र मुझ भक्तसे कहिये, मुझे इसके श्रवण करनेकी बड़ी श्रद्धा है ॥२४॥ **श्रीमैत्रेयजी बोले।** एक समय राजा अंगने अश्वमेध नाम श्रेष्ठ यज्ञका आरंभ किया, ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंने उस यज्ञमें आहुति छोड़ कर और मंत्र पढ़ कर इन्द्रादि देवोंको बुलाया, पर वे नहीं आये ॥२५॥ तब ऋत्विज गण विस्मयको प्राप्त हो कर यजमानसे बोले कि राजन्! आपके दिये हुए हविको देवगण नहीं ग्रहण करते! ॥ २६ ॥ राजन्। यह हवि शुद्ध है और आप भी श्रद्धापूर्वक कर्म्म कर रहे हैं, हमारे मंत्रभी अमोघ हैं क्योंकि हम उनका स्वाध्याय-पाठ आठ पहर करते हैं और हम भी व्रत धारण किये हैं (अर्थात् हमारा ब्रह्मचर्य्य व्रत भी कभी भ्रष्ट नहीं हुआ) ॥२७॥ हमको देवगणके न आनेका कोई कारण नहीं देख पड़ता। देवगण कर्म्मके साक्षी हैं, उनके विना आये और विना भाग ग्रहण किये सब कर्म्म निष्फल हैं, परन्तु नहीं जान पड़ता वे क्यों नहीं आते? ॥ २८ ॥ **श्रीमैत्रेयजी कहते हैं।** हे विदुर! ब्राह्मणोंके ये वचन सुन कर राजा अंग बहुत ही उदास और दुःखित हुए। यद्यपि राजा यज्ञदीक्षा लेनेके कारण मौन थे तथापि सदस्यगणसे इसका कारण जाननेके लिये बोले ॥ २९ ॥ **राजा बोले** कि हे सदस्यगण (यज्ञकर्म्मके साक्षी)! इस यज्ञमें बुलाने पर भी देवगण आ कर अपने २ सोमपात्रको नहीं ग्रहण करते, इसका क्या कारण है? मैंने कौन पाप

किया है ? ॥ ३० ॥ **सदस्यगण बोले**। हे नरदेव ! इस जन्ममें तो आपका कुछ भी पाप नहीं है, जो कुछ था भी सो यज्ञके पहले प्रायश्चित्त करनेसे नष्ट हो गया। किन्तु पूर्वजन्मका तुम्हारा पाप है, जिससे इस जन्ममें तुम्हारे सन्तान नहीं है ॥ ३१ ॥ राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। तुम सन्तानयुक्त होनेका उपाय करो। पुत्रेष्टियज्ञसे हरि भगवान्की आराधना करो, वह तुमको अवश्य पुत्र देंगे ॥ ३२ ॥ जब पुत्रकी इच्छासे साक्षात् हरिकी आराधना करोगे तो और २ देवता भी (हरिके साथ) आ कर अपने २ भागको ग्रहण करेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥ राजन्! मनुष्य हरिसे जो २ कामना करता है वह उसको वही २ कामना देते हैं। जिस भावसे आराधना करो, हरि भगवान् उसी भावके अनुकूल फलका उदय करते हैं ॥ ३४ ॥ इस भांति निश्चय करके ब्राह्मणोंने पुत्रकी कामनासे पुत्रेष्टि यज्ञका आरम्भ कर शिपिविष्ट अर्थात् बलिपशुके अभ्यन्तरमें यज्ञरूपसे प्रविष्ट हरिके हेतु 'पुरोडाश'का हवन किया ॥ ३५ ॥ वैसे ही यज्ञके अग्निकुण्डसे सुवर्णमाला पहने, निर्मल वस्त्र धारण किये, हाथमें सिद्ध पायस (खीर) का सुवर्णमय पात्र लिये एक पुरुष निकला ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणोंकी आज्ञा पा कर उदारबुद्धि राजाने हाथ जोड़ उस पुरुषके हाथसे खीरका पात्र ले लिया और उस खीरको प्रसन्नतापूर्वक स्वयं सूँघ कर अपनी रानीको भोजन करनेके लिये देदिया ॥ ३७ ॥ पुत्रहीन रानीने पुत्रदायक खीर भोजन करके राजासे सहवास किया, उससे गर्भ रह गया। यथासमय रानीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३८ ॥ अंगकी स्त्री सुनीथा 'मृत्यु'की कन्या थी, उसके गर्भसे उत्पन्न वह बालक अपने नाना(मृत्यु)के स्वभावको पड़ा। 'मृत्यु' अधर्म्मके अंशसे उत्पन्न है; वह बालक भी इसी कारण दुष्ट-प्रकृति, अधार्मिक हुआ ॥ ३९ ॥ उसका नाम वेन हुआ। दुष्ट वेन लड़कपनमें नित्य धनुष बाण ले कर वनमें शिकार करनेको जाता और व्याधोंकी भाँति निठुरपनसे वनमें रहनेवाले निराश्रय मृग आदि जीवोंको मारता था। लोगउसकी निठुराईसे इतना डरते थे कि दूरसे ही देख कर "वह वेन आता है!" कहते थे ॥ ४० ॥ वेन ऐसा निठुर था कि साथमें खेल रहे बालकोंको बलपूर्वक पकड़ कर पशुओंकी ऐसी कठोर मार मारता था ॥ ४१ ॥ लोग नित्य राजाको उराहना देने लगे। राजाने पुत्रकी दुष्टता सुन कर और देख कर कई बार समझाया पर उसने एक न मानी। जब राजा साम, दान, भेद, दण्ड ये चारो उपाय करके हार गये और वेन नहीं सुधरा, तब अपने मनमें बहुत ही उदास और दुखी हुए ॥ ४२ ॥ वह दुःखित हो कर कहने लगे कि "जिन लोगोंको कुपुत्रका कष्ट नहीं प्राप्त है वे अपुत्र लोग बहुत ही अच्छे हैं, उन्होने ईश्वरकी बड़ी ही सेवा की है। कुपुत्रके द्वारा मिला हुआ अयश और कष्ट अपुत्र होनेकी अपेक्षा अधिक

असह्य है! ॥ ४३ ॥ जिस सन्तानसे मनुष्यकी पापीयसी अकीर्ति और अधर्म्म हो, जिस सन्तानके कारण सबसे विरोध उत्पन्न हो एवं अनेक प्रकारकी मानसी व्यथाएँ हों ॥ ४४ ॥ वह (कुपुत्र) नाममात्रको पुत्र है, वास्तवमें मोहस्वरूप आत्माका बन्धन है! कौन चतुर, बुद्धिमान् पुरुष ऐसे पुत्रको पुत्र मान कर पालै पोषै और प्रेम करैगा? ऐसे कुपुत्रकी संगतिसे घरमें क्लेशके सिवाय सुखका लेश भी नहीं मिलता? ॥ ४५ ॥ परंतु मैं अच्छे पुत्रसे कुपुत्रको ही श्रेष्ठ मानता हूँ क्योंकि सुपुत्रसे संसारमें अनुराग होता है और उससे मायाके जालमें बंधन होता है, और कुपुत्र होनेसे क्लेश मिलता है, उसी कारण संसारसे वैराग्य होता है। जिससे मुक्ति होती है" ॥ ४६ ॥ इस भाँति राजा अंगको घरसे वैराग्य होगया, रातको नींद नहीं आई, आधी रात्रिके समय रानीको सोते ही छोड़ कर सम्पूर्ण सम्पदाओंसे भरेपुरे राजभवनसे उठ कर वनको चले गये, किसीने भी राजाको जाते नहीं जाना ॥ ४७ ॥ सवेरे प्रजा, पुरोहित, मंत्री, इष्ट मित्र, नौकर-चाकर आदि सबको विदित हुआ कि राजा अंग विरक्त हो रातको कहीं उठ कर चले गये। जैसे मायामें छिपे हुए पुरुष (परमात्मा) को कुयोगी ढूंढते हैं पर नहीं पाते वैसे ही सब लोगोंने शोकसे व्याकुल हो कर पृथ्वीमें चारो ओर राजाको ढूँढा, पर न पाया ॥ ४८ ॥

अलक्षयन्तः पदवीं प्रजापते-
र्हतोद्यमाः प्रत्युपसृत्य ते पुरीम् ।
ऋषीन्समेतानभिवन्द्य साश्रवो
न्यवेदयन्पौरव भर्तृविप्लवम् ॥ ४९ ॥

हे विदुर! जब सब ढूँढ कर थक गये और राजाका पता न लगा तब हताश हो कर नगरमें लौट आये और ऋषिगणको एकत्र कर प्रणामपूर्वक रोते हुए उनसे राजाके चले जानेका और ढूंढने पर भी पता न लगनेका सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

---

१ पुन्नाम्नो नरकात्त्रायते इति पुत्रः। 'पु' नाम है नरकका, उससे जो बचावै, उसको पुत्र कहते हैं।

चतुर्दश अध्याय।

वेनका राज्याभिषेक और ब्राह्मणोंके शापसे प्राणनाश।

मैत्रेय उवाच—भृग्वादयस्ते मुनयो लोकानां क्षेमदर्शिनः।
गोप्तर्यसति वै नृणां पश्यन्तः पशुसाम्यताम्॥ १॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं। लोगोंके कल्याणकी कामना करनेवाले उन भृगु आदि मुनियोंने देखा कि किसी राजाके न होनेसे सब प्रजा परस्पर पशुओंके समान निरंकुश होकर स्वेच्छाचार कर रही है॥ १॥ (उन मुनियोंने विवेचना करके देखा कि जैसे रक्षकके न होने पर भेंड़िया, सियार आदिके द्वारा बकरी, भेंड़ आदि पशुओंका विनाश होनेकी संभावना होती है वैसे ही राजाके न होने पर चोर लुटेरे लोगोंके द्वारा प्रजागणके विनाशकी संभावना है।) तब उन ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंने वीरजननी रानी सुनीथाको बुला कर प्रजाओंके आगे वेनको राज्य देनेका प्रस्ताव किया। यद्यपि कुचाली वेनको राज्य देनेमें लोगोंकी आन्तरिक इच्छा न थी तथापि मुनियोंने वेनको समस्त पृथ्वीमण्डलका साम्राज्य दिया, क्यों कि वेनके अतिरिक्त कोई राज्यका अधिकारी नहीं था और कोई राजा अवश्य ही बनाना था॥ २॥ अति उग्र शासन करनेवाले वेनको राजाके आसन पर बैठे हुए सुन कर चोर, ठग आदि जैसे सर्पके भयसे मूषक लुक जाते हैं वैसे छिप गये॥ ३॥ राजा वेन राज्यासन पर बैठ कर आठों लोकपालोंके ऐश्वर्य्यको प्राप्त हुआ। तब स्वभावसे ही घमंडी वेन अत्यन्त अभिमानसे उन्मत्त हो बड़े लोगोंका निरादर करने लगा॥ ४॥ इस भाँति ऐश्वर्य्यके मदसे अंध और गर्वित वह दुर्द्धर्ष राजा वेन निरंकुश गजराजके समान रथ पर चढ़ कर स्वर्ग और मनुष्यलोकको कम्पित करता हुआ पृथ्वी पर विचरने लगा॥ ५॥ उसने अपने राज्यमें ढिंढोरा पिटवाया कि "हे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यगण! यज्ञ, दान और हवन आदि कोई धर्म्म न करो"। इस भांति वेनने अपने राज्यमें एकदम सब धर्म-कर्म बंद करवा दिये॥ ६॥ दुष्टचरित्र वेनके ऐसे असत् आचरण देख कर मुनिगणने सोचा कि "सब लोगोंको महा संकट है!"। तब लोगों पर कृपा करके सब एकत्र हो कर यों सलाह करने लगे॥ ७॥ "अहो! जैसे लकड़ीकी जड़ और अग्रभागमें आग लगनेसे उसके बीचके चींटी आदि जीवोंको दोनो ओरसे विपत्ति होती है वैसे ही इस समय सब प्रजाको राजा और चोर, दोनोसे कष्ट मिल रहा है॥ ८॥ हमने चोरोंके दिये भय और कष्टको देख कर उसका निवारण करनेके लिये, अयोग्य होने पर भी वेनको राजा बनाया, वह भी दुःख देता है,—अब कैसे प्राणियोंका कल्याण

हो ? ॥ ९ ॥ जैसे साँपको दूध पिलाना उस पिलानेवालेके ही लिये अनर्थकारी होता है वैसे वेनको राज्य देना हमारे ही लिये अनिष्टकारी हुआ। मृत्युकी कन्या सुनीथाके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण वह वेन स्वभावसे ही दुष्ट था; उस पर फिर उसके हाथमें राज्यशासन देदिया। अब वह प्रजाओंको नष्ट करना चाहता है ॥ १० ॥ अब उचित है कि हम लोग उसके पास चल कर समझावें और इस कुकर्म्मसे निवृत्त करनेका प्रयत्न करें, जिसमें उसका पातक हमको स्पर्श न करे; क्योंकि उसको दुष्ट जान कर भी हमने राजा बनाया है ॥ ११ ॥ यदि वह अधर्म्ममूर्त्ति समझाने पर भी हमारा कहा न मानेगा तो लोकके धिक्कारसे प्रथम ही जले हुए वेनको अपने तेजसे भस्म कर देंगे" ॥ १२ ॥ ऐसा निश्चय कर वे मुनि वेनके पास गये और अपने क्रोधको छिपा कर पहले यों कोमल वाक्योंसे समझाने लगे ॥ १३ ॥ **मुनिलोग बोले,** "नृपश्रेष्ठ! हम जो आपसे निवेदन करते हैं उसको मन लगा कर सुनो। हे श्रेष्ठ! हमारे ये वचन तुम्हारी आयु, श्री, बल और कीर्त्तिको बढ़ानेवाले हैं! मन, वाणी, शरीर और बुद्धिसे किया गया धर्म्म, सकाम प्राणियोंको वह लोक देता है जहाँ शोक नहीं है; और जो कामनारहित हैं उनको मोक्ष देता है (अर्थात् भोग, मोक्ष-दोनो पदार्थ धर्म्मसे ही मिलते हैं) ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे वीर! वह प्रजागणका कल्याणस्वरूप परम-पदार्थ धर्म्म आपके द्वारा न नष्ट हो! क्योंकि धर्म्मका नाश होने पर राजा शीघ्र ही राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो जाता है!! ॥ १६ ॥ हे राजन्! जो राजा दुष्ट मंत्रीकी सलाहसे और चोर आदिके उपद्रवसे प्रजाकी रक्षा कर उचित 'कर' (प्रजाकी आमदनीका छठा हिस्सा) लेता है वह इस लोक और परलोकमें सुखी रहता है ॥ १७ ॥ जिस राजाके राज्यमें और पुरमें प्रजागण अपने२ वर्ण और आश्रमके धर्म्मसे भगवान् यज्ञपुरुषकी पूजा आराधना करते हैं उस अपने शासनमें स्थित राजा पर सर्व्वव्यापक व संसारका पालन करनेवाले भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ जगत्के ईश्वरों (ब्रह्मादिकों)के ईश्वर उन हरिके प्रसन्न होने पर क्या दुर्लभ है? लोकपालोंसहित ये सम्पूर्ण लोक सादर उसी ईश्वरकी पूजा करते हैं और आज्ञा मानते हैं ॥ २० ॥ वह भगवान् सम्पूर्ण लोक, लोकपाल और यज्ञोंको नियम-बद्ध करनेवाले और वेदमय, सम्पूर्णपदार्थमय एवं तपोमय हैं। तुम्हारे देशमें रहनेवाली प्रजा तुम्हारे ही अभ्युदयके लिये अनेक यज्ञोंसे उन भगवान्‌की पूजा और आराधना करती है; तुम्हें योग्य है कि तुम उत्साह देकर उसे इस कार्य्यमें प्रवृत्त करो ॥ २१ ॥ हे वीर! ब्राह्मणगण तुम्हारे देशमें यज्ञादि कर्म्मोंसे हरिकी कला देवतोंकी पूजा करते हैं; वे भली भांति पूजित देवगण प्रसन्न हो कर सब कामना पूरी करते हैं। अतएव उन देवगण और ब्राह्मणोंका निरादर वा

उन पर अश्रद्धा करना तुमको उचित नहीं है! (क्योंकि उससे तुम्हारे राज्यका और तुम्हारा अमंगल होगा!)" ॥ २२ ॥ यह सुन कर दुर्बुद्धि वेन बोला कि तुम लोग मूर्ख हो, खेद है कि तुम अधर्म्मको धर्म्म मानते हो। मैं सबका अन्नदाता पति हूँ, मुझको छोड़कर जार (यार)के समान औरों की उपासना करते हो ॥२३॥ तुम मूर्ख लोग मुझ राजारूप ईश्वर का निरादर करते हो, तुम्हारा इस लोकमें और परलोकमें, कहीं मंगल न होगा! ॥ २४ ॥ जैसे कुलटा स्त्रियाँ अपने स्वामी पर स्नेह न करके यारकी सेवा करती हैं वैसे ही मुझ अपने सच्चे स्वामीको छोड़ कर जिस पर तुम्हारी ऐसी भक्ति है वह यज्ञपुरुष कौन है? ॥ २५ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, चन्द्र, वायु, वरुण, कुबेर, यमराज, सूर्य्य, मेघ, पृथ्वी, जल, अग्नि, ये एवं वरदान और शाप देनेमें समर्थ अनन्य देवगण, सब राजाके शरीरमें रहते हैं। इस लिये सब देवतोंका स्वरूप राजा ही ईश्वर है ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ हे ब्राह्मणो! इस लिये ईर्षा द्वेष छोड़ कर यज्ञादि कर्मोंसे मेरी ही पूजा करो; मुझसे श्रेष्ठ और कौन पूजनीय पुरुष (यज्ञपुरुष) है ॥ २८ ॥ **मैत्रेयजी कहते।** हैं उल्टी समझवाले, पापी, कुमार्ग पर चलनेवाले वेनने मुनियों की विनयपूर्वक की हुई प्रार्थनाको न मान कर इस भांति कहा। वह मानता कैसे? उसका मंगल नष्ट हो गया था और बुराई शिर पर सवार थी! ॥ २९ ॥ हे विदुर! इस प्रकार अपनेको पण्डित माननेवाले वेनने जब तिरस्कार करके मंगलदायिनी प्रार्थनाको न माना तब वे मुनि उस पर अत्यन्त क्रोध करके कहने लगे कि ॥ ३० ॥ "यह पापी अत्यन्त घोर प्रकृतिवाला है, यह जीवित रहने पर शीघ्र ही जगत्को भस्म कर देगा, इस में कोई सन्देह नहीं है,- अतएव इसे मारो मारो! ॥ ३१ ॥ यह कुकर्मी राजाके श्रेष्ठ आसन पर बैठनेके योग्य नहीं है। यह ऐसा निर्लज्ज है कि यज्ञपुरुष विष्णु भगवान्की निंदा करता है ॥ ३२ ॥ जिस ईश्वरके अनुग्रहसे इसे राज्यलक्ष्मी और ऐश्वर्य्य मिला है उसकी निन्दा, सिवाय इस कृतघ्न-पापी वेनके और कौन करेगा" ॥३३॥ मुनिगण तो पहलेसे ही उस पर कुपित थे पर क्रोध छिपाये थे, अब उन्होने अच्युत भगवान्की निंदा सुन कर वह क्रोध प्रकट कर उसे मारनेका निश्चय कर लिया एवं 'हुंकार' करके मार डाला; वेन तो अच्युतकी निंदा करनेसे एक प्रकार पहले ही मर चुका था ॥ ३४ ॥ जब सब ऋषि वेनको मार कर अपने २ आश्रमको चले गये तब रानी सुनीथाने बड़ा ही शोक किया एवं विद्याके बल (मंत्रसहित युक्ति) से मृत पुत्रके शरीरकी रक्षा करने लगीं ॥ ३५ ॥ वे मुनिगण एक समय सरस्वती नदीमें स्नान कर अग्निहोत्र करनेके उपरान्त तट पर बैठ कर ईश्वरके विषयकी उत्तम२ बातें कर रहे थे ॥ ३६ ॥ इतनेमें यकायक लोकभयंकर उत्पात होते देख पड़े। "क्या राजासे रहित पृथ्वीका कोई अमंगल (अनिष्ट) तो चोरलोगोंके द्वारा नहीं होनेवाला

है?" इस भांति मुनिगण विचार करते ही थे कि धन लूटनेवाले चोरोंके चारो ओर दौड़नेसे बहुत धूल उड़ी ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ "चोरलोग राजाके न होनेसे निर्भय हो कर लोगोंके धनको दिनदुपहर लूटते और परस्पर मारकाट करते हुए यह उपद्रव मचा रहे हैं। 'स्वामीहीन नगर निर्बल हो रहे हैं क्योंकि सब धन चोरलोग लूटे लेते हैं और लगभग सभी लोग चोर, बेईमान, अत्याचारी और लुटेरे हो रहे हैं'—यह देख कर भी जो लोग (क्षत्रियआदि) इस उपद्रवको शान्त कर सक्ते हैं और शक्ति होने पर भी ऐसे उपद्रवोंको न रोकनेके दोषको जानते हैं वे चुपचाप तमाशा देखते हैं कुछ यत्न नहीं करते" ॥ ३९ ॥ ४० ॥ यह जान कर मुनियोंने सोचा कि क्षत्रियोंको तो इस उपद्रवके न शान्त करनेसे दोष है ही परन्तु जो समदर्शी शान्त ब्राह्मण, अनाथ और दीनजनोंके दुःखको नहीं दूर करता उसके लिये भी दोष है! क्योंकि जैसे फूटे वर्तनसे जल बह जाता है वैसे ही उसका तप नष्ट हो जाता है ॥४१॥ यह सोच कर मुनिगण आपसमें कहने लगे कि "यह राजर्षि अंगका वंश समूल विनष्ट हो जानेके योग्य नहीं है; इस वंशमें बहुत राजा अमोघ (सफल) वीर्य्यवाले, और भगवान्के भक्त हुए हैं" ॥ ४२ ॥ इस प्रकार सलाह करके (और किसीको इस उपद्रवके शान्त करनेके लिये राजा न बना कर) वेनके उसी मरे हुए शरीरकी ऊरू (जाँघ) को मथा; उससे एक बौना पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ ४३ ॥ उसका रंग कागके समान काला था, सब अंग और हाथ बहुत छोटे थे, ठोढ़ी बड़ी, पैर छोटे, नाक चिपटी और नीची, आंखें लाल और केश तांबेके ऐसे थे ॥ ४४ ॥ वह हाथ जोड़ कर नम्रतासे कहने लगा कि "मैं क्या करूँ?" मुनियोंने कहा—'निषीद' अर्थात् 'बैठजा'; इसीसे वह 'निषाद' हुआ ॥ ४५ ॥

तस्य वंश्यास्तु नैषादा गिरिकाननगोचराः ।
येनाहरज्जायमानो वेनकल्मषमुल्बणम् ॥ ४६ ॥

उसीके वंश वाले 'नैषाद' हुए, ये लोग पहाड़ों और जंगलोंमें रहते हैं। जो पातक (वेनके) शरीरमें थे वेही निषादके रूपसे उत्पन्न हुए (अतएव पापरूप निषादके वंशवाले क्रूर व पापकर्म्ममें निरत हैं एवं पुरआदिमें प्रवेश करनेयोग्य न होनेके कारण पहाड़ोंमें जंगलोंमें रहते हैं!) ॥ ४६ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदश अध्याय।

राजा पृथुकी उत्पत्ति और राज्याभिषेक।

मैत्रेय उवाच–अथ तस्य पुनर्विप्रैरपुत्रस्य महीपतेः।
बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं। फिर ब्राह्मणोंने उस पुत्रहीन राजा वेनके बाहुओंको मथा, तब उनसे एक पुरुष और एक स्त्री–दो सन्तान उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ उन स्त्री और पुरुष दोनोको विष्णु और लक्ष्मीकी कला जान कर मुनिगण प्रसन्न हुए और उन्हे देख कर आपसमें यों कहने लगे ॥ २ ॥ **ऋषिगण बोले।** यह पुरुष तो संसारका पालन करनेवाले साक्षात् भगवान् हरिकी कला हैं और यह स्त्री लक्ष्मीजीकी परम पवित्र कला हैं ॥ ३ ॥ यह पुरुष आदिराजा पृथु नाम महाराज (चक्रवर्ती) होंगे, अपने यशको पृथ्वीमण्डलमें फैलावेंगे ॥ ४ ॥ और यह सुन्दर दाँतोंवाली जो सम्पूर्ण आभूषणोंको अपनी कान्तिसे भूषित कर रही देवी उत्पन्न हुई हैं, इनका नाम अर्चि होगा; यह लक्ष्मीका अंश होनेके कारण महाराज पृथुसे ही विवाह करेंगी ॥५॥ यह साक्षात् हरिका अंश पृथुजी लोककी रक्षाके लिये उत्पन्न हुए हैं। यह अर्चि स्वयं पवित्रमूर्त्ति लक्ष्मीजी हैं; यह भगवान्के सिवाय अन्य किसीके निकट अवस्थिति नहीं करतीं—इसी लिये हरिके साथ ही उत्पन्न हुई हैं ॥ ६ ॥ **श्रीमैत्रेयजी कहते हैं।** विदुर! पृथुके उत्पन्न होने पर ब्राह्मणगण उनकी स्तुति करके प्रशंसा करने लगे, श्रेष्ठ गन्धर्व्वगण गाने लगे, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं और सिद्धगण फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७ ॥ स्वर्गमें शंख, तुरी, मृदंग, दुन्दुभी आदि बाजे बजने लगे एवं देव, ऋषि और पितरोंके झुण्ड स्वर्गसे पृथ्वी पर आये ॥८॥ सम्पूर्ण जगत्के गुरु ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवगण और उन देवतोंके ईश्वर इन्द्रादिके साथ वहां पर आये। पृथुके दाहिने हाथमें चक्रका चिन्ह और पादपद्ममें पद्मकी रेखा देख कर ब्रह्माने अनुमान किया कि यह निश्चय भगवान्की कला हैं; क्योंकि जिस व्यक्तिके हाथ या पैर की पद्मरेखा (यदि हो) अन्य रेखासे कट न गई हो तो वह अवश्य ईश्वरका अंश है ॥ ९ ॥ १० ॥ ब्रह्मज्ञ ब्राह्मणोंने राजा पृथुके राज्याभिषेकका उद्योग किया। तब सब लोग यथायोग्य अभिषेककी सामग्री देने लगे॥११॥ नदी, सागर, पहाड़, भूमि, आकाश, सर्प, गरुड, पक्षी, मृग आदि सम्पूर्ण स्थान और पदार्थ व प्राणियोंने अभिषेककी सामग्रियाँ और उपहार दिये ॥१२॥ महाराज पृथु सुन्दर वस्त्र और सुन्दर आभूषण धारण कर सिंहासन पर बैठे। पृथुजीकी पत्नी अर्चि भी पास ही आधे सिंहासन पर बैठीं। राज्याभिषेक हुआ। उस समय अर्चि रानीके साथ पृथुजी वैसे विराजमान हुए जैसे अर्चि (अग्निकी शिखा अर्थात् लपट)

के साथ अग्नि सुशोभित होते हैं ॥१३॥ हे विदुर! उनको सबने यों उपहार दिये—कुबेरने सुवर्णका श्रेष्ठ सिंहासन दिया, वरुणने चन्द्रमाके समान सुन्दर छत्र दिया—जिससे सदा पानीकी फुहारें पड़ा करती हैं॥१४॥ वायुने मनोहर चामर दिये, धर्म्मने कीर्त्तिकी माला दी, इन्द्रने अति उत्तम किरीट मुकुट दिया, यमने दमन करनेवाला दण्ड दिया॥ १५॥ ब्रह्माने वेद-मय कवच दिया, सरस्वतीने उत्तम हार दिया, विष्णुने सुदर्शन चक्र और विष्णुकी स्त्री लक्ष्मीने स्थिर सम्पदा दी ॥१६॥ दस चंद्र जिसमें बने हैं ऐसा खड्ग शिवजीने दिया और सौ चंद्र जिसमें बने हैं ऐसी ढाल अम्बिकाजीने दी। चन्द्रदेवने अमृत-मय घोड़े और त्वष्टा या विश्वकर्म्माने अति सुन्दर रथ दिया ॥ १७॥ अग्निने आजगव (बकरे और बैलके सींगका बना हुआ) धनुष, सूर्य्यने किरणमय बाण, पृथ्वीने योगमयी (अर्थात् पैर रखते ही अभीष्ट स्थानको पहुंचा देनेवाली) पादुकाएँ और आकाशने सदाके लिये पुष्पोंकी वर्षाका उपहार दिया॥ १८॥ आकाशमें चलनेवाले सिद्ध, विद्याधर, गंधर्व्वआदिने अन्तर्द्धानविद्या व नाट्य, गीत, वाद्यकी विद्या दी। समुद्रने अपनेसे उत्पन्न शंख दिया, ऋषियोंने सत्य-सफल आशीर्वाद दिये॥ १९॥ सिंधु पर्वत और नदियोंने महात्मा पृथुको रथका मार्ग दिया एवं सूत, मागध, वन्दी-जन उनकी स्तुति करने लगे॥ २०॥ उनके स्तुति करनेका अभिप्राय जान कर वेनके पुत्र प्रतापी महाराज पृथुजी मेघके समान गंभीर वाणीसे हँसते हुए यों बोले॥ २१॥ पृथुजी बोले! हे सूतगण! हे मागधगण! हे सौम्य वन्दीगण! लोगोंमें मेरे गुण प्रकट होने पर स्तुति करना भी योग्य है, इस समय तुम मेरे किस गुणका उल्लेख कर स्तुति करोगे? अभी मुझे छोड़ कर अन्य किसीकी स्तुति करो। यदि तुम बिना किसी गुणके, झूठे (अप्रकट) गुणोंका आरोप कर स्तुति करोगे, तो वह मैं नहीं चाहता!॥ २२॥ तुम सबके वचन अतीव मधुर मनोहर हैं। इस समय स्तुति न करो। जब संसारमें मेरे गुण प्रकट होंगे तब भली भांति स्तुति कर लेना। यदि कहो कि सभ्यलोगोंकी प्रेरणासे हम आपकी स्तुति करने आये हैं तो उत्तमयशवाले भगवान्‌के गुण-गण-वर्णनको त्याग कर हम ऐसे छोटे साधारण लोगोंकी स्तुति करनेकी प्रेरणा सभ्य लोग कदापि नहीं करेंगे॥ २३॥ यदि कहो कि आगे आपमें उत्तम गुण होंगे- इस लिये हम लोग अभीसे उनका वर्णन करके स्तुति करेंगे, तो, उत्तम गुणोंके ग्रहण करनेमें समर्थ हो कर भी "महत् लोगोंके उत्तम गुणोंको मैं धारण करूँगा" केवल इस संभावनासे (गुणग्रहणके प्रथम) कौन अपनी स्तुति करावेगा? (या गुण हैं भी पर प्रकाशित नहीं हुए हैं, ऐसी अवस्थामें भी दूसरोंसे अपनी स्तुति कराना बुद्धिमानी नहीं है)। जो व्यक्ति मिथ्या (भविष्यत्में जिनके होनेकी संभावना है उन) गुणोंकी स्तुति सुन कर मोहित

अर्थात् प्रसन्न होता है वह निपट मन्दमति है ! वह "यदि तुम शास्त्रका अभ्यास करते तो पण्डित होते" इत्यादि लोगोंके कहे हुए वचनोंको अपनी प्रशंसा मानता है; वह मूर्ख यह भी नहीं जानता कि लोग हँसते हैं या प्रशंसा करते हैं ॥ २४ ॥ इसी लिये समर्थ विख्यात व्यक्ति भी अपनी स्तुति करनेवालेकी निंदा करते हैं। यदि स्तुति करते २ कोई यथार्थ पौरुषका कीर्त्तन भी करता है तो उदार व्यक्तिको लज्जा लगती है। (अर्थात् गुणी और महात्माजन अपनी यथार्थ प्रशंसा भी नहीं सुनना चाहते और यदि कोई अयथार्थ प्रशंसा [जैसे कोई कहै आप धर्म्मावतार हैं, दान करनेमें कर्णसे बढ़ कर हैं इत्यादि] करता है तो वे लज्जित होते हैं) ॥ २५॥

वयं त्वविदिता लोके सूताद्यापि वरीमभिः ।
कर्मभिः कथमात्मानं गापयिष्याम बालवत् ॥ २६ ॥

हे सूतगण! हम तो अबतक इस संसारमें कोई श्रेष्ठ कार्य्य करके विख्यात नहीं हुए हैं, तब बालकोंकी भाँति कैसे अपनी स्तुति करावें ? ॥ २६ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोड़श अध्याय।

सूतगणद्वारा पृथुकी स्तुति ।

मैत्रेय उवाच—इति ब्रुवाणं नृपतिं गायका मुनिचोदिताः ।
तुष्टुवुस्तुष्टमनसस्तद्वागमृतसेवया ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले । हे विदुर ! पृथुराजाने यों कह कर निषेध भी किया किन्तु उनके वाक्यरूप अमृतके पान करनेसे प्रसन्नमन वे बंदीजन मुनियोंकी प्रेरणासे इस भाँति स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ **वंदीजन बोले।** महाराज ! हम आपकी महिमाका वर्णन करनेको समर्थ नहीं हैं। आप देवदेव ईश्वर माया-मानवशरीर ग्रहण कर राजा वेनके अंगसे प्रकट हुए हैं। जब आपके अचिन्त्य पौरुषमें ब्रह्माआदिकी बुद्धि चकराती है, तब हम क्या हैं जो उसका वर्णन कर सकें ॥ २ ॥ महात्मा पृथु उदार कीर्तिवाले एवं हरिके अंशावतार हैं; यद्यपि इनके अगणित गुणोंके वर्णन करनेमें हम असमर्थ हैं तथापि इनकी अमृतमय कथाओंमें हमको बड़ी ही श्रद्धा है और ये सब महात्मामुनि इस विषयमें हमें उत्साह दे रहे हैं। अतएव इन मुनियोंने अपने योगबलसे हमारे हृदयमें महाराज पृथुके प्रशंसनीय गुणोंको जिस प्रकार प्रकाशित किया है वैसे ही उनको हम कहते हैं ॥ ३ ॥ यह महाराज पृथु, धर्म्मज्ञ-धर्म्मात्मा लोगोंमें श्रेष्ठ हो कर लोगोंको धर्म्ममार्गमें प्रवृत्त करेंगे, धर्म्ममर्यादाकी रक्षा करेंगे और धर्म्मद्रोही,

कुमार्गगामी लोगोंको दण्ड देंगे ॥ ४ ॥ (लोकपालगण भिन्न २ शरीर धारण कर जैसे संसारका हित करते हैं वैसे यह महाराज एक ही देहमें समयानुसार सम्पूर्ण लोकपालोंके स्वभाव धारण कर सम्पूर्ण विश्वके इस लोक और परलोकका हित सिद्ध करेंगे ॥ ५ ॥ (वे ही लोकपालोंके कर्म दिखाते हैं–) यह संपूर्ण प्राणियों पर समभावसे सूर्य्यके समान समान-प्रताप फैलावेंगे। सूर्य्य जैसे आठ महीने पृथ्वीका रस खींच कर फिर वर्षाऋतुमें उसीको बरसाते हैं वैसे ही यह भी प्रजासे 'कर' लेकर, दुर्भिक्ष आदिके समयमें आवश्यक होने पर मुक्तहस्त हो वही धन बाँटेंगे ॥ ६ ॥ अपने मस्तक पर आर्त्त व्यक्ति यदि पैर भी रख देगा तो यह उस अतिक्रमणको सहज ही सह लेंगे। पृथ्वीके समान क्षमाशील और करुणानिधि होंगे ॥ ७ ॥ यह मनुष्यशरीरधारी साक्षात् हरि हैं। जब इन्द्र वर्षा न करेंगे, प्राणों पर संकट होगा, तब अनायास इन्द्रके तुल्य वर्षा कर प्रजाके प्राणोंकी रक्षा करेंगे ॥ ८ ॥ चन्द्रमा जैसे अपने अमृतमय रूपसे सब लोगोंको आनन्दित करता है वैसे यह राजा अपने मुखचन्द्रकी मृदुहास्ययुक्त कृपादृष्टिसे सब प्रजाको सन्तुष्ट करेंगे ॥ ९ ॥ समुद्र (के अधिष्ठाता वरुण) की जैसे सीमा नहीं है एवं भीतरमें गुप्तभावसे अनेक रत्न रक्षित हैं, अतिगंभीर देख पड़ता है, किस समय कौन अवस्था है, सो नहीं जाना जाता एवं संपूर्ण ब्रह्माण्डको घेरे हुए है वैसे ही यह राजा पृथु अपना कौशल किसीको जानने न देंगे, अपने सब कार्य्य गुप्तरीतिसे सम्पन्न करेंगे। अतिगंभीर बुद्धिमान् होंगे । गुप्तभावसे कोप-सञ्चय कर अनन्तमहिमा और गुणोंका आधार बन जगत्में सर्व्वत्र अपना शासन स्थापित करेंगे ॥ १० ॥ वेनरूप अरणि (यज्ञीयकाष्ठ) से उत्पन्न यह तेजस्वी पृथुजी अग्निके तुल्य होंगे, शत्रुगण इनकी आँच न सह सकेंगे, यह निकट रह कर भी दूरवर्त्ती से रहेंगे क्योंकि शत्रुगण इनको मनद्वारा भी न पा सकेंगे, आक्रमण की कौन कहै। पौरुषद्वारा इन्हे कोई वश न कर सकेगा ॥ ११ ॥ यह गुप्तचरोंके द्वारा प्राणियोंके आन्तरिक और वाह्य कर्म्म देखते हुए, देहधारीके अधिकारी अविकारी वायुके तुल्य, अपनी स्तुति और निन्दा, दोनोमें समान रहेंगे ॥ १२ ॥ यह न्याय करनेमें साक्षात् धर्म्मराज होंगे, शत्रु भी यदि दण्डके योग्य न होगा तो उसे दण्ड न देंगे और यदि अपना सगा पुत्र भी दण्ड देनेयोग्य कार्य करेगा तो उसे दण्ड देंगे ॥ १३ ॥ इन महाराज पृथुकी (आज्ञा, सेना, वा रथका) चक्र मानसाचल पर्य्यन्त अर्थात् जहाँ तक सूर्यकी किरणें जाकर जगत्को प्रकाशित करती हैं वहाँ तक अप्रतिहत होगा अर्थात् न रुकेगा ॥ १४ ॥ यह अपने भले कर्मोंसे प्रजागणको आनन्दित रखेंगे, इस लिये मनोरंजनके कारण सब इनको राजा कहेंगे (क्योंकि 'राजा'का अर्थ ही "मनोरञ्जन करनेवाला" है) ॥ १५ ॥ यह महाराज दृढ़-व्रत, सत्यसन्ध, ब्राह्मणोंके भक्त, वृद्धोंकी सेवा करनेवाले, सब प्राणियोंके

रक्षक, सबका मान करनेवाले और दीन जनों पर दया करनेवाले होंगे ॥१६॥ पराई स्त्रीको भक्तिपूर्वक माताके समान देखेंगे, अपनी पत्नीको अपना आधा शरीर मानेंगे और प्रीति करेंगे। प्रजा पर पिताके समान स्नेह करेंगे, ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणोंके आज्ञाकारी होंगे ॥ १७ ॥ यह सब प्राणियोंको आत्माके समान प्रिय होंगे; बन्धुगणको दिन २ आनन्दित करेंगे। यह मुक्तसंग सज्जनोंका संग करेंगे और असत् लोगोंके लिये सर्वदा दण्ड लिये यमराजके तुल्य रहेंगे ॥ १८ ॥ यह तीनो गुणोंके अधीश्वर, निर्विकार, आत्मस्वरूप साक्षात् भगवान् एक कलासे अवतीर्ण हुए हैं। इनमें मायाद्वारा रचित अनेकत्व प्रतीत होता है सही, परन्तु पण्डितगण उस मायारचित अनेकत्वको अर्थशून्य (असत्) और अवस्तु देखते हैं ॥ १९ ॥ यह अद्वितीय वीर राजराज पृथुजी उदयाचलपर्य्यन्त अखण्ड भूमण्डलका शासन करेंगे एवं जयदायक रथ पर चढ़ कर धनुपवाण ग्रहण कर सूर्य्यके समान सदा सब स्थानोंमें घूमते रहेंगे ॥ २० ॥ सम्पूर्ण प्रदेशोंमें वहांके राजा लोग लोकपालों सहित उपस्थित हो कर इनको उपहार देंगे। उन राजाओंकी रानियां इनके हाथमें चक्रका चिन्ह देख कर इनको आदिराज मानेंगी और इनके यशका वर्णन करेंगी ॥ २१ ॥ यह प्रजापतिके समान प्रजागणकी वृत्तिका विधान करेंगे अर्थात् गोरूपधारिणी पृथ्वीसे औषध, अन्न आदि दुह लेंगे और इन्द्रकी भाँति लीलापूर्वक धनुषके अग्रभागसे सम्पूर्ण पर्व्वतोंको तोड़ फोड़ कर पृथ्वीको समतल कर देंगे ॥ २२ ॥ सिंह जैसे लांगूल उठा कर विचरता है वैसे यह आजगव (बकरे और बैलके सींगसे बना हुआ) धनुष चढ़ा कर जब पृथ्वीमण्डलमें विचरेंगे तब असत् लोग इनको युद्धमें असह्य वा अजेय जान कर इधर उधर लुक रहेंगे ॥ २३ ॥ जहाँसे सरस्वती नदी निकली है उस पुण्यस्थान पर यह सौ अश्वमेध यज्ञ करेंगे। निन्नानवे यज्ञके उपरान्त अन्तिम यज्ञमें "सौ यज्ञ करने पर यह भी मेरे समान इन्द्रपदके अधिकारी हो जायँगे" इस डाहसे सौ यज्ञ करनेवाले पुरन्दर (इन्द्र) इनके यज्ञके घोड़ेको हर ले जायँगे ॥ २४ ॥ तदनन्तर यह अपनी राजधानीमें लौट आ कर परम भक्तिभावसे भगवान् सनत्कुमारकी आराधना कर उनसे निर्मल ज्ञान पावेंगे; जिससे ब्रह्मका लाभ होता है ॥ २५ ॥ इन महाराज पृथुका पराक्रम महान् होगा। यह घर लौटते समय मार्गमें अपने विश्वविदित विक्रमकी कथा और प्रशंसा सुनेंगे ॥ २६ ॥

दिशो विजित्याप्रतिरुद्धचक्रः स्वतेजसोत्पाटितलोकशल्यः ।
सुरासुरेन्द्रैरुपगीयमानमहानुभावो भविता पतिर्भुवः ॥ २७ ॥

यह सब दिशाओंको जीत कर चक्रवर्त्ती होंगे, पृथ्वीमें कोई इनकी आज्ञाको

न टाल सकेगा। अपने तेजसे सब लोगोंके कण्टक दुष्टोंको समूल नष्ट कर देंगे। इनके महाप्रभावको बड़े २ देवता और दैत्य गावेंगे। इस प्रकार यह महानुभाव पृथ्वीमण्डलका पालन करेंगे ॥ २७ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदश अध्याय।

पृथ्वीको मारनेके लिये पृथुका उद्योग।

मैत्रेय उवाच—एवं स भगवान्वैन्यः ख्यापितो गुणकर्मभिः।
छन्दयामास तान्कामैः प्रतिपूज्याभिनन्द्य च ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले। हे विदुर! जब बन्दीजनोंने इस प्रकार गुण और कर्म्मोंका कीर्त्तन कर स्तुति की तब वेनके पुत्र महाराज पृथुने उनको पूजा, अभिनन्दन और धनआदिसे सन्तुष्ट किया ॥१॥ तदनन्तर ब्राह्मणआदि चारों वर्ण, भृत्य, अमात्य, पुरोहित, पुरवासी, जनपदवासी और तेली तँबोली आदि प्रजाओंको और गुप्तचरआदिको यथायोग्य पूजासे सन्तुष्ट किया ॥ २ ॥ विदुरजी बोले। भगवन्! बहुरूपधारिणी भूमिने गऊका रूप क्यों धारण किया, जिसको पृथुने दुहा। भूमिके दुहते समय बछड़ा कौन हुआ और दोहनी (पात्र) किस वस्तुकी बनाई गई? ॥ ३ ॥ यह भूमि स्वभावतः ऊंची नीची है, इसको पृथुने बराबर कैसे किया? इन्द्रने पृथुके अश्वमेध यज्ञके घोड़ेका हरण क्यों किया? ॥ ४ ॥ और राजर्षि पृथुजी, ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवान् सनत्कुमारसे आत्मतत्त्वसम्बन्धीय ज्ञान-सहित मायासम्बन्धीय ज्ञान पा कर किस गतिको प्राप्त हुए? ॥ ५ ॥ सुन्दर कीर्त्तिवाले भगवान् हरिके पृथु अवतारकी और भी जो २ पवित्र कथाएँ हों उनको आप मुझ अनुरक्त भक्तसे कहिये। मुझे भी भगवान्‌की कथाओंमें श्रद्धा व प्रेम है और आप भी भगवान्‌के परमभक्त हैं अतएव आप कृपा करके वेनके पुत्र हो कर पृथ्वीको दुहनेवाले हरिकी कथाएँ कहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥ सूतजी बोले। हे शौनकजी! इस भांति वासुदेवकी कथा कहनेके लिये विदुरकी प्रेरणा होनेसे मैत्रेयजी बहुत प्रसन्न हुए एवं विदुरकी बड़ाई करके यों बोले ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले। विदुर! ब्राह्मणोंने "आप प्रजाके पालन करनेवाले राजा हुए" ऐसा कह कर पृथुका राज्याभिषेक किया। उस समय पृथ्वीमें जो बीज बोया जाता था उसे पृथ्वी लील लेती थी और अन्न न होनेके कारण पृथ्वीमण्डलमें महा अकाल था। भूखसे मर रहे दुर्बल प्रजागण उस समय अपने स्वामी पृथुके पास आ कर यों कहने लगे ॥ ९ ॥ "महाराज! जैसे वृक्ष अपने खोलके भीतरकी अग्निसे जलते हैं वैसे ही

हम लोग अन्न न मिलनेके कारण पेटकी ज्वालासे जल रहे हैं। आप शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले हमारे स्वामी और अन्नदाता हुए हैं, इस लिये हम आपकी शरणमें आये हैं ॥ १० ॥ हे नरदेव देव! जबतक हमलोग अन्न न पा कर भूखोंके मारे मर न जायँ उसके पहले हमको अन्न देनेका यत्न कीजिये। आप प्रजाकी वृत्तिका विधान करनेवाले लोक-पालक हैं ॥ ११ ॥ **मैत्रेयजी बोले**। हे कुरु-वंशमें श्रेष्ठ! यों प्रजागणका करुणाजनक दीन विलाप सुन कर पृथुजीने बहुत देर तक विचार किया। तब प्रजाके दुःखका कारण पृथुजीको विदित होगया ॥ १२ ॥ "पृथ्वीने औषध और अन्नादिके बीजोंको लील लिया है, इसीसे प्रजा पीड़ित है" ऐसा निश्चय कर, जैसे त्रिपुरको जलानेके लिये कुपित शिवजीने धनुष-बाण ग्रहण किया था वैसे ही पृथुजी भूमि पर कुपित हुए और उसको मारनेके लिये धनुष पर वाण चढ़ाया ॥ १३ ॥ पृथ्वी, अपने मारनेके लिये धनुष चढ़ाते हुए पृथुको देख कर मारे भयके काँप उठी और अपने बचानेके लिये गऊका रूप धर कर भागी, जैसे व्याध(शिकारी)के खरेदने पर मृगी भागती है ॥ १४ ॥ क्रोधके मारे जिनके लोचन लाल २ होगये हैं वह पृथु महाराज धनुष पर वाण चढ़ा कर उसके पीछे दौड़े। जहाँ २ पृथ्वी भाग कर जाती थी वहाँ २ पीछे २ पृथु महाराज जाते थे ॥१५॥ देवी भूमि दिशा, विदिशा, स्वर्ग, मनुष्यलोक, अन्तरिक्ष आदि स्थानोंमें जहाँ २ गई वहां २ अपने पीछे धनुष-वाण लिये पृथुको देखा ॥ १६ ॥ जैसे प्राणी मृत्युसे बच कर कहीं नहीं जा सक्ता वैसे पृथुसे अपना बचाव न देख कर डरती हुई पृथ्वी ठहर गई। उसका हृदय धड़कने लगा ॥ १७ ॥ ठहर कर **भूमि बोली** कि हे महाभाग, राजराजेश्वर! हे धर्म्मज्ञ! हे भक्तवत्सल! मेरी भी रक्षा करो, रक्षा करो। क्योंकि आपका कार्य्य शरणागत प्राणियोंका पालन करना है। मैंने कोई अपराध नहीं किया है और अपराध करनेकी सामर्थ्य भी मुझमें नहीं है। मैं दीन हूँ, आप क्यों मुझे मारनेके लिये उद्यत हैं? आप धर्म्मके जाननेवाले हो कर मुझ स्त्रीको कैसे मारेंगे? (क्योंकि स्त्रीको मार डालना शास्त्रमें अधर्म्म लिखा है) ॥१८॥१९॥ साधारणलोग अपराध करने पर भी स्त्री पर प्रहार नहीं करते, तब आप ऐसे दयालु दीनबन्धु महानुभाव कैसे ऐसा निन्दित कार्य्य करेंगे ॥ २० ॥ राजन्! मैं सुदृढ़ नावके समान जल पर स्थित हूँ और मुझ पर सब चराचर जगत् स्थित है। मुझे यदि मार डालियेगा तो अपनेको और इन सब प्रजाओंको जल पर कैसे बसाइयेगा? ॥ २१ ॥ **पृथुजी बोले**। भूमि! मैं अवश्य तेरा नाश करूंगा, क्यों कि तू मेरी आज्ञाको न माननेवाली है। यज्ञमें अपना भाग लेती है पर अन्न नहीं देती ॥ २२ ॥ तू गोरूपसे नित्य बीजरूप घास चरती है पर अन्नरूप दूध नहीं देती, तू बड़ी दुष्टा है। तेरा यही (पूर्वोक्त) अपराध है। अतएव अपराधीको

दण्ड देनेमें हमारी निन्दा न होगी। राजाका यही कर्त्तव्य है! ॥ २३ ॥ तेरी बुद्धि बड़ी ही मन्द है। ब्रह्माजीने जिन औषध और अन्नादिके बीजोंको सिरजा था उन सबको तूने अपने पेटमें रख छोड़ा है, अन्न आदि नहीं उत्पन्न करती है ॥ २४ ॥ मेरी ये प्रजा भूखके मारे पीड़ित हो कर विलाप कर रही है; मैं अपने तीक्ष्ण वाणोंसे तेरा शरीर फाड़ कर तेरे मांससे इनकी भूखकी ज्वाला शान्त करूँगा ॥२५॥ पुरुष हो, स्त्री हो या नपुंसक हो। कोई भी हो; जो अधम केवल अपने पेटको पाले और प्राणियों पर दया न करे- उनका गला काटे, उसे मारनेमें राजाको हत्याका दोष नहीं होता; ऐसे अधमको मारना पुण्य है ॥ २६ ॥ तुझको बड़ा घमंड है, अपने दुष्टकर्म्म पर अभिमान करती है। मैं मायासे गोरूप धारण किये तुझको इन वाणोंसे तिल २ काट डालूँगा और अपने योगबलसे सब प्रजाको जल पर बसाऊँगा ॥ २७ ॥ हे विदुर! पृथ्वी इस प्रकार कराल कालकी ऐसी भयंकर क्रोधमयी मूर्त्ति धारण किये हुए पृथुको देख कर काँपने लगी और नम्रभावसे अंजलि बाँध कर यों कहने लगी ॥ २८ ॥ **पृथ्वी बोली**। मायाद्वारा अनेक शरीर धर कर सगुण स्वरूपसे देख पड़ रहे परमपुरुष आपको प्रणाम है। वास्तवमें आप निर्गुण (आनन्दमय ब्रह्म)के अनुभवद्वारा द्रव्य (पञ्चतत्त्व), क्रिया (इन्द्रिय), कारक (अधिष्ठाता देवता) के अहंकारसे रहित हैं, अतएव अहंकारके तरंग काम, क्रोधादि भी आपमें नहीं हैं ॥ २९ ॥ जिन जगत्के रचनेवालेने मुझको सब जीवोंके रहनेका स्थान बनाया है एवं जिनकी आज्ञासे मैं जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्जसंज्ञक चार प्रकारके जीवोंको अपने ऊपर धारण किये हुए हूँ वही स्वतन्त्र ईश्वर आज शस्त्र उठाये हुए मेरे मारनेको उद्यत हैं-तब मैं और किसकी शरण जाऊं ॥ ३० ॥ जिन धर्म्मपरायण परमेश्वरने पहले अपनी जीवव्यापिनी, अगम्य मायासे इस चराचर विश्वको उत्पन्न किया एवं उसी मायासे इस विश्वका पालन करते हैं, वह ईश्वर इस समय मुझे मारनेके लिये क्यों उद्यत हैं? ॥ ३१ ॥ सच है, ईश्वरकी इच्छाको (भगवान्‌की) दुर्जय मायामें मोहित जीव नहीं जान सक्ते! ईश्वर स्वयं एक हैं किन्तु मायाके संयोगसे अनेक (प्रतीत होते) हैं। वह स्वयं ब्रह्माको उत्पन्न करके उनके द्वारा यह चराचरसृष्टि करते हैं ॥ ३२ ॥ पञ्चतत्त्व, इन्द्रिय, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता और बुद्धि व अहंकार आदि अपनी अनेक शक्तियोंसे जो इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और नाश करते हैं उन परम उत्कट एवं परस्परविरुद्धशक्तिवाले विधाता परमपुरुषको मैं प्रणाम करती हूँ ॥ ३३ ॥ हे अज! अपने रचे हुए इस पञ्चतत्त्व, इन्द्रिय और अन्तःकरणस्वरूप विश्वको स्थिरभावसे स्थापित करनेके लिये आदिवाराह अवतार लेकर रसातलके जलसे मेरा उद्धार आपने ही किया था ॥ ३४ ॥ वही धरा-धारी आप पृथुरूप वीरमूर्त्तिसे आज, जलके ऊपर नावके

समान स्थित मुझ पृथ्वीमें वसे हुए प्रजागणकी रक्षाके अर्थ, अन्नरूप दुग्धके हेतु तीक्ष्ण वाणसे मेरा विनाश करने पर उद्यत हैं ॥ ३५ ॥

नूनं जनैरीहितमीश्वराणा-
मस्मद्विधैस्तद्गुणसर्गमायया ।
न ज्ञायते मोहितचित्तवर्त्मभि-
स्तेभ्यो नमो वीरयशस्करेभ्यः ॥ ३६ ॥

ईश्वरकी गुणमयी मायासे जिनका चित्त मोहित है वे मेरे समान लोग, ईश्वरके कार्य्यकी कौन कहै, ईश्वरके भक्तोंकी भी इच्छा वा महिमाका अनुमान नहीं कर सक्ते! अतएव उन जितेन्द्रिय साधुजनोंका यश बढ़ानेवाले भगवद्भक्तोंको भी ईश्वरके तुल्य पूजनीय जान कर मैं प्रणाम करती हूँ ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादश अध्याय।

गोरूप पृथ्वीको दुहना।

मैत्रेय उवाच—इत्थं पृथुमभिष्टूय रुषा प्रस्फुरिताधरम् ।
पुनराहावनिर्भीता संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले। विदुर! भयभीत पृथ्वी क्रोधके कारण जिनके ओंठ फरक रहे हैं उन पृथुकी इस प्रकार स्तुति कर अपने मनमें धीरज धर फिर यों कहनेलगी ॥ १ ॥ पृथ्वी बोली। प्रभु! क्रोधको शान्त कीजिये और जो मैं निवेदन करती हूँ उसे सुनिये। चतुर पण्डितजन भ्रमरकी भाँति सर्वत्रसे सारांश ले लेते हैं ॥ २ ॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने इस लोक वा उस लोकमें मनुष्योंकी भलाईके लिये (खेती और अग्निहोत्रादि) अनेक उपाय प्रकट किये हैं एवं स्वयं भी उन उपायोंका अनुष्ठान किया है ॥ ३ ॥ परकालमें उत्पन्न जो पुरुष उन पूर्वज ऋषियोंके निकाले हुए उपायोंको श्रद्धासे भलीभाँति ग्रहण करता है वह सहजमें अपने अभीष्ट फलको पाता है ॥ ४ ॥ और जो कोई उन उपायोंका अवलम्बन नहीं करता बरन् उनका निरादर करके कार्य्यका आरम्भ करता है वह स्वयं चाहे महापण्डित भी हो पर उसका कार्य्य सिद्ध नहीं होता एवं जितनी बार कार्य्यका आरम्भ करता है उतनी बार सफलता नहीं होती ॥ ५ ॥ राजन्! मैंने देखा कि सृष्टिके प्रथम भगवान् ब्रह्माने जिन औषधियोंको उत्पन्न किया था उनको अब व्रतविहीन असाधु लोग खाते हैं ॥ ६ ॥ राजालोग, जिनका धर्म्म लोकोंका पालन करना है,

वे मेरा पालन नहीं करते एवं निरादर करते हैं, सब प्रजा चोरोंके समान हो रही है। यह देख कर मैंने भविष्यत्में होनेवाले यज्ञोंके लिये पवित्र औषधियोंको ग्रस लिया (अर्थात् इसमें मेरा दोष नहीं है) ॥ ७ ॥ निश्चय वे औषधियाँ बहुत काल तक मेरी उदरदरीमें रहनेके कारण क्षीण अर्थात् जीर्ण होगई होंगी। इस लिये मेरे उदरसे उनके निकालनेका उपाय सोच कर आप अपना कार्य्य सिद्ध कीजिये (मेरे मारनेसे क्या होगा?) ॥ ८ ॥ हे वीर! मैं आपसे सन्तुष्ट हूँ। हे प्रजापालक महाबाहो! यदि आपकी इच्छा हो तो ऐसा बछड़ा, दोहनपात्र और दुहनेवाला ठीक कीजिये जिससे मैं प्राणियोंको अभीष्ट बलकारी अन्नरूप दुग्ध दे सकूँ ॥ ९ ॥ १० ॥ और मुझको इस भाँति समतल कर दीजिये जिसमें वर्षाका जल, वर्षाऋतु बीत जाने पर भी, मेरे सब स्थानोंमें बराबर भरा रहे। हे प्रभु! आपका कल्याण हो ॥ ११ ॥ राजा पृथुने इस प्रकारके प्रिय और हितकारी पृथ्वीके वचन मान कर मनुको बछड़ा बनाया और स्वयं पाणि(हाथ)रूप पात्रमें सम्पूर्ण औषधियोंको (पृथ्वीसे) दुह लिया। चतुर लोग सर्व्वत्र इसी भाँति सारांश (बातको) ग्रहण कर लेते हैं। पीछे पृथुकी दुही हुई पृथ्वीको और सबने इच्छानुसार दुहा ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे विदुर! फिर ऋषियोंने बृहस्पतिजीको बछड़ा बना कर इंद्रियरूप पात्रमें वेदरूप पवित्र दूध (पृथ्वीसे) दुहा ॥ १४ ॥ फिर देवगणने इन्द्रको बछड़ा बना कर सुवर्णके पात्रमें अमृत, वीर्य्य (मानसिक शक्ति), ओज (इन्द्रिय शक्ति) और बल (शारीरिक शक्ति) को दुह लिया ॥ १५ ॥ दैत्य और दानवोंने असुरोंमें श्रेष्ठ प्रल्हादजीको बछड़ा बना कर लोहेके पात्रमें सुरा और आसव(ताड़ी आदि) रूप दूध दुह लिया ॥ १६ ॥ गन्धर्व और अप्सराओंने विश्वावसुको बछड़ा बना कर पद्ममय पात्रमें गंधर्व्वोंकी विद्या, वाणीकी मधुरता और सुन्दरतारूप दूध दुह लिया ॥ १७ ॥ हे महाभाग! श्राद्धके देवता पितरोंने श्रद्धापूर्वक अर्य्यमाको बछड़ा बना कर कच्चे मृत्तिकाके पात्रमें कव्य (पितरोंका अन्न) रूप दूध दुह लिया ॥ १८ ॥ सिद्धगणने और विद्याधरआदिने कपिलदेवजीको बछड़ा बना कर आकाशरूप पात्रमें संकल्पसिद्ध जो अणिमा आदि योगकी सिद्धियाँ हैं उनको और अन्तर्द्धान आदि खेचरी विद्याओंको दुह लिया ॥ १९ ॥ किम्पुरुष आदि और २ मायावियोंने भी मयासुरको बछड़ा बना कर आकाशरूप पात्रमें अनेक मायाओंको दुह लिया। मायाएँ संकल्प करते ही प्रकट होती हैं एवं जो प्राणी अलक्षित भावसे विचर सक्ते हैं, अतएव अद्भुतस्वरूप हैं, माया उन्हीकी सम्पत्ति है ॥ २० ॥ यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच आदि मांसाहारियोंने रुद्रको बछड़ा बना कर नरकपालरूप पात्रमें रुधिररूप आसव दुह लिया ॥ २१ ॥ अहि (बे फनके सांप), दंदशूक (बिच्छू आदि बिषैले जीव), सर्प (फणवाले),

नाग (अजगर) आदिने तक्षक नागको बछड़ा बना कर बिलरूप पात्रमें अर्थात् मुखमें विषरूप दूध दुह लिया ॥ २२ ॥ सब पशुओंने शिवके बाहन बैल (नन्दीश्वर) को बछड़ा बना कर वनरूप पात्रमें घासरूप दुग्ध दुह लिया एवं बड़ी२ दाढ़वाले मांसाहारी पशुओंने सिंहको बछड़ा बना कर अपने शरीररूप पात्रमें मांसरूप दुग्ध दुह लिया । सब पक्षियोंने गरुड़को बछड़ा बना कर वनरूप पात्रमें कीड़े, पतंगे और फलरूप दूध दुह लिया ॥ २३ ॥ २४ ॥ सकल वृक्षोंने बट (बर्गद)को बछड़ा बना कर (वनरूप पात्रमें) भिन्न २ रसमय दूध दुह लिया और सब पर्वतोंने हिमवान् को बछड़ा बना कर अपने शिखररूप पात्रमें अनेक धातुओं (गेरू, हरताल आदि) को दुह लिया ॥ २५ ॥ हे विदुर! अपने २ समूहमें जो मुख्य था उसे बछड़ा बना कर सबने अपने अपने पात्रमें अलग २ पृथुकी दुही हुई कामधेनुरूप पृथ्वीसे भिन्न २ प्रकारका दूध दुह लिया ॥ २६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! इसी भाँति अन्न खानेवाले पृथुआदिने विभिन्न २ प्रकारके पात्र और बछड़ोंके द्वारा पृथ्वीसे भिन्न २ प्रकारका दूध (अर्थात् भोजन) दुह लिया ॥ २७ ॥ तब महाराज पृथु सब कामनाओंको देनेवाली पृथ्वी पर परम प्रसन्न हुए । प्रेमके मारे (दुहनकर्म्मके अनुसार) कन्यावत्सल पृथुने भूमिको अपनी दुहिता (कन्या) बना लिया; (तभीसे इसका नाम 'पृथ्वी' पड़ा) ॥ २८ ॥ समर्थ राजराजेश्वर पृथुने अपने धनुषके किनारेसे पर्वतोंके शिखरों व टीलोंको चूर कर प्रायः सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलको समतल कर दिया ॥ २९ ॥ प्रजाओंके अन्नदाता पितातुल्य भगवान् पृथुने स्थान २ पर यथायोग्य प्रजागणके रहनेके निम्नलिखित स्थान बना दिये ॥ ३० ॥ गाव, पुर, पत्तन (कस्बा), अनेक प्रकारके दुर्ग (किले), घोप (अहीरोंके गाँव), व्रज (गउओंके रहनेका स्थान), शिविर (सेनाके डेरे, छावनी), आकर (सोने आदिकी खानि), खेट (किसानोंके गाँव), खर्वट (पहाड़ोंके प्रान्तमें बसे हुए गाँव) इत्यादि ॥ ३१ ॥

प्राक्पृथोरिह नैवैषा पुरग्रामादिकल्पना ॥
यथासुखं वसन्ति स्म तत्रतत्राकुतोभयाः ॥ ३२ ॥

महाराज पृथुके पहले ये पुर गाँव आदि कुछ नहीं थे । सबलोग जहाँ चाहते थे वहाँ सुखपूर्व्वक निर्भय हो कर बसते थे ॥ ३२ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंश अध्याय ।

इन्द्रको मारनेके लिये पृथुका उद्यत होना और ब्रह्माजीका आकर रोकना ।

मैत्रेय उवाच—अथादीक्षत राजा तु हयमेधशतेन सः ।
ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले । विदुर! जिस ब्रह्मावर्त्त नाम स्थानमें पूर्ववाहिनी सरस्वती बहती हैं एवं जहाँ मनुका राज्य था उसी स्थानमें राजर्षि पृथुने एक सौ अश्वमेध यज्ञ करनेकी दीक्षा ली अर्थात् निश्चय किया ॥ १ ॥ सौ अश्वमेध करनेवाले इन्द्र भगवान् पृथुके यज्ञरूप महा उत्सवको अपने यज्ञोंसे बढ़ा हुआ देख कर न सह सके ॥ २ ॥ यथार्थ ही पृथुका यज्ञ इन्द्रके यज्ञोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ हुआ था क्योंकि पृथुके यज्ञमें सर्वव्यापी, सब लोकोंके गुरु और प्रभु, यज्ञपुरुष, ईश्वर भगवान् हरिने साक्षात् प्रकट हो कर दर्शन दिये ॥ ३ ॥ हरिके साथ भगवान् ब्रह्मा और सदाशिव भी आये। गंधर्व, मुनिगण, अप्सरा एवं अनुचरयुक्त लोकपालगण हरिके साथ उनकी स्तुति करते हुए आये ॥ ४ ॥ सिद्ध, विद्याधर, दैत्य, दानव, यक्ष एवं सुनन्द नन्द आदि हरिके श्रेष्ठ पार्षद ॥ ५ ॥ और कपिल देव, नारद, दत्तात्रेय, सनत्कुमार आदि योगेश्वर और अन्यान्य हरिके सेवक भी हरिके साथ आये ॥ ६ ॥ हे भारत! पृथ्वीने सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली कामधेनु हो कर यजमान पृथुको आवश्यक वस्तुएं दीं ॥ ७ ॥ सब नदियोंमें जलके स्थान पर ऊँख, दाख आदिका रस बहने लगा। बड़े २ वृक्षोंने दूध, दही, अन्न, गोरस (मक्खन, घी आदि) एवं मधु दिया ॥ ८ ॥ समुद्रोंने अनेक रत्न, पर्वतोंने चार प्रकारका (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य) अन्न एवं सब लोक और लोकपालोंने अनेक प्रकारकी भेंटस्वरूप सामग्रियाँ दीं ॥ ९ ॥ भगवान् इन्द्र विष्णुभक्त पृथुके ऐसे असाधारण ऐश्वर्य्यसम्पन्न यज्ञका अभ्युदय न सह सके। तब डाहके मारे यज्ञमें विघ्न डाल दिया ॥ १० ॥ वेनके पुत्र पृथु निन्नानवे यज्ञ पूर्ण कर अन्तिम यज्ञका आरंभ करके यज्ञपुरुषकी पूजा कर रहे थे, इसी अवसरमें इन्द्रदेव डाहके मारे यज्ञका घोड़ा छिप कर हर ले गये ॥ ११ ॥ भगवान् अत्रिऋषि (आचार्य्य) ने देखा कि इन्द्र पाखण्डवेश धारण किये जल्दी २ आकाशमार्गमें घोड़ा लिये जा रहे हैं। अधर्म्ममें धर्म्मके भ्रमको पाखण्ड (पाषण्ड) कहते हैं ॥ १२ ॥ उसी समय महर्षि अत्रिने इन्द्रको मार कर घोड़ा

---

१ सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् । तं देवनिर्म्मितं क्षेत्रं ब्रह्मावर्त प्रचक्षते ॥ अर्थात् सरस्वती और दृषद्वती नाम दोनो देवनिर्मित नदियोंके बीचमें जितनी भूमि है उसका नाम ब्रह्मावर्त्त क्षेत्र है। यह क्षेत्र देवनिर्मित होनेसे बड़ा ही पवित्र है।

लानेके लिये महारथी पृथुके पुत्रको आज्ञा दी। राजकुमार क्रुद्ध हो कर इन्द्रके पीछे दौड़े और 'तिष्ठतिष्ठ' (ठहर ठहर!) कहने लगे ॥ १३ ॥ राजकुमारने देखा कि इन्द्र जटा धारण किये और भस्म सब शरीरमें लगाये धर्म्मात्मा मुनियोंका ऐसा वेष बनाये जा रहे हैं अतएव उन पर वाण नहीं चलाया ॥१४॥ राजकुमारको इन्द्रके मारनेसे निवृत्त देख कर अत्रिने फिर मारनेके लिये प्रेरणा की कि हे तात! यज्ञका नाश करनेवाले देवतोंमें अधम इन्द्रको मारो ॥ १५ ॥ इस भाँति अत्रिके कहने पर राजकुमार फिर कुपित हो कर, आकाश मार्गमें जल्दी २ भागे जा रहे इन्द्रके पीछे दौड़े, जैसे गिद्धोंके राजा जटायु रावणके पीछे दौड़े थे ॥ १६ ॥ तब तेजस्वी इन्द्र पहलेके पाखण्डमयरूपको और घोड़ेको वहीं पर छोड़ कर अन्तर्द्धान हो गये अर्थात् छिप गये। तब वीर राजकुमार अपने यज्ञपशुको लेकर पिताके यज्ञमें आये ॥ १७ ॥ हे विदुर! राजकुमारके इस अद्भुत कर्म्मको देख कर ऋषियोंने उनका 'विजिताश्व' नाम रक्खा ॥ १८ ॥ फिर इन्द्र अपनी मायासे घोर अन्धकार करके छिप कर यज्ञयूप (खंभे) में सोनेकी जंजीरसे बँधे हुए घोड़ेको खोल कर ले चले ॥ १९ ॥ अत्रिऋषिने फिर विजिताश्वको दिखाया कि इन्द्र घोड़ा लिये हुए जल्दी जल्दी आकाशमार्गसे जा रहे हैं। किन्तु कपाल और खट्वाङ्ग लिये हुए इन्द्रको देख कर उन्होने वाण नहीं चलाया ॥ २० ॥ फिर विजिताश्वने अत्रिके कहने पर कुपित हो कर इन्द्रके मारनेको धनुष पर वाण चढ़ाया, उसी समय उस रूप और घोड़ेको छोड़ कर इन्द्र अन्तर्द्धान होगये ॥ २१ ॥ वीर विजिताश्व घोड़ेको ले कर पिताके यज्ञमें आये। ज्ञानहीन मन्दमति लोगोंने इन्द्रके उन निन्दित पाखण्डरूपोंको ग्रहण किया ॥ २२ ॥ हयहरणकी इच्छासे इन्द्रने जो २ रूप धारण किये वे सब पापका खण्ड हैं; खण्ड नाम चिन्हका है (इसीसे इनको पाखण्ड कहते हैं) ॥२३॥ इस प्रकार जबसे पृथुके यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये घोड़ा चुरानेमें इन्द्रने जो २ पाखण्डरूप ग्रहण करके छोड़ दिये तबसे उन्ही २ रूपोंमें मनुष्योंकी प्रवृत्ति होने लगी (अर्थात् पाखण्डकी सृष्टि हुई) ॥ २४ ॥ नग्न (जैन) और रक्तपटधारी (बौद्ध), कापालिक पंथ आदि यथार्थमें धर्म्म नहीं हैं, ये उपधर्म्म (पाखण्ड) हैं। किन्तु ये देखनेमें भले एवं युक्तियोंमें चतुर होते हैं अतएव लोगोंकी मति प्रायः भ्रान्त हो जाती है और इन मतोंमें रुचि होती है ॥ २५ ॥ परम पराक्रमी पृथुमहाराजको यह जान कर इन्द्र पर बड़ा ही क्रोध आया और उन्होने धनुष उठा कर उस पर वाण चढ़ाया ॥ २६ ॥ ऋत्विजोंने देखा कि वह इन्द्रको मारनेके लिये उद्यत हैं, क्रोधसे ऐसा घोर रूप धारण किये हैं कि कोई उनकी ओर दृष्टि नहीं कर सक्ता एवं उनका वेग असह्य है। तब वे उनको इस कर्म्मसे निवृत्त करते हुए बोले कि महाराज! आप बड़े बुद्धिमान् हैं। यज्ञकी दीक्षा जिसने ली हो उसके लिये यज्ञपशुकी हिंसाके सिवाय और किसी जीवकी हिंसा

करना शास्त्रमें निषिद्ध है ॥ २७ ॥ जिस इन्द्रने आपके यज्ञमें विघ्न डाला है उसका तेज तो आपकी कीर्त्तिसे ही फीका हो गया है, तथापि हम लोग आपके अहितचिन्तक उस इन्द्रको अपने सर्वशक्तियुक्त मंत्रोंसे बलपूर्वक इन्द्रासनसे ला कर अग्निकुण्डमें डाल देंगे। आप निवृत्त होइये ॥ २८ ॥ विदुर! पृथुके ऋत्विज ऋषि ऐसा विचार कर क्रोधपूर्वक स्रुवा हाथमें ले इन्द्रको होम करनेके लिये उद्यत हुए। उसी समय ब्रह्माजीने आकर उनको रोका ॥ २९ ॥ ब्रह्माजी बोले। कि हे ब्राह्मणगण! यह यज्ञनामक इन्द्र हरिका अवतार है, जिनको तुम यज्ञकी पूर्त्तिके लिये मारनेके लिये उद्यत हो। यज्ञ करके जिन सब देवगणकी पूजा करते हो वे इन्हीके अंश हैं। अतएव यह तुम्हारे मारनेके योग्य नहीं हैं ॥ ३० ॥ ब्राह्मणो! देखो, राजा पृथुके यज्ञमें विघ्न डालनेकी अभिलाषासे इन्द्रने जिन २ अधर्ममय पाखण्डोंकी सृष्टि की है उनसे कैसी धर्मकी हानि हुई है! ॥ ३१ ॥ इस लिये अब यज्ञ न करो। इन निन्नानबे यज्ञोंसे ही महाराज पृथुकी कीर्त्ति इन्द्रसे अधिक होगी। ब्राह्मणोंसे यों कहकर पृथुसे ब्रह्माजी बोले। "राजन्! तुम मोक्ष-धर्मके जाननेवाले हो, मुक्तिकी कामना करो; भली भाँति (भोगदायक) यज्ञोंके करनेकी तुमको क्या आवश्यकता है? ॥ ३२ ॥ राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। तुम और इन्द्र दोनो ही पवित्रकीर्त्तिवाले हरिका अंश हो, तुम और इन्द्र अलग २ नहीं किन्तु एक हो; अतएव अपनेही रूप (इन्द्र) पर क्रोध करना तुम्हे उचित नहीं है ॥ ३३ ॥ महाराज! 'यज्ञमें विघ्न होगया' यह विचार कर आप चिन्ता न करो; श्रद्धासे मेरे वचन सुनो। जो कोई दैवद्वारा किसी कार्यके नष्ट होने पर फिर उस कार्यके पूर्ण करनेकी चेष्टा करता है उसका मन अवश्य खीझ कर मोहको प्राप्त होता है एवं उसको शान्ति नहीं मिलती ॥ ३४ ॥ इन्द्रको इस कार्यसे निवृत्त करना दुःसाध्य है और यदि आप ऐसा कर भी सके तो पूजनीय देवगणका निरादर होगा। देखो इसी यज्ञके कारण इन्द्रके द्वारा पाखण्डोंकी सृष्टि हुई है, जिनसे धर्मकी बड़ी हानि हुई है, इस लिये इस यज्ञको रोक दो ॥ ३५ ॥ तुम्हारे यज्ञमें विघ्न करनेवाले और घोड़ेको हरनेवाले इन्द्रके उत्पन्न किये हुए पाखण्ड, मनुष्योंके मनको अपनी ओर खींच कर उन पर अपना अधिकार जमा रहे हैं, अतएव तुम इस ओर दृष्टि करो ॥ ३६ ॥ वेनके दुराचारसे सांख्ययोगादि अनेकसिद्धान्तसम्मत सत्य सनातनधर्म लुप्तप्राय हो गया था, उसीकी रक्षाके लिये विष्णुके अंशसे वेनकी देहके द्वारा आप उत्पन्न हुए हो ॥ ३७ ॥ अतएव हे प्रजापालक! इस विश्वका कल्याण विचार कर विश्वके उत्पन्न

(१) यथा-"ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत । सयामाद्यैः सुरगणैरपात् स्वायम्भुवोऽन्तरम् ॥" आकूतिमें रुचि प्रजापतिसे यज्ञ नाम सातवां हरिका अवतार हुआ जो स्वायंभुव मनुके अन्तरमें सयाम नाम देवगणके राजा इन्द्र हुए।

करनेवाले जो कश्यपादि हैं उनके संकल्पको पूरा करो। यह इन्द्रकी माया, जो उपधर्मों (पाखण्डों) की माता है सोई प्रचण्ड पाखण्ड मार्ग है; हे प्रभु! इसका नाश करो" ॥ ३८ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं। लोकोंके गुरु ब्रह्माकी इस प्रकार आज्ञा पा कर राजा पृथुने यज्ञ बंद कर दिया एवं प्रीतिके साथ इन्द्रसे मित्रता कर ली ॥ ३९ ॥ फिर अवभृथस्नानके बाद बड़े २ कर्म करनेवाले महाराज पृथुको, वर देनेवाले देवगणने अपनी पूजासे सन्तुष्ट हो कर अनेक वर दिये ॥ ४० ॥ हे विदुर! आदिराजा पृथुने जिन सब सत्यवादी और सफल वाक्यवाले ब्राह्मणोंकी श्रद्धापूर्वक पूजा करके दक्षिणा दी उन्होने सन्तुष्ट हो कर पृथुको आशीर्वाद दिये ॥ ४१ ॥

त्वयाहूता महाबाहो सर्व एव समागताः।
पूजिता दानमानाभ्यां पितृदेवर्षिमानवाः ॥ ४२ ॥

वे बोले-हे महाबाहो! आपने अपने यज्ञमें आये हुए सब देव, ऋषि, पितर और मनुष्योंकी आदरसहित दान और मान करके पूजा की ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंश अध्याय।

विष्णुका प्रकट होकर पृथुको उपदेश देना।

मैत्रेय उवाच–भगवानपि वैकुण्ठः साकं मघवता विभुः।
यज्ञैर्यज्ञपतिस्तुष्टो यज्ञभुक् तमभाषत ॥ १ ॥

मैत्रेयजी बोले। हे विदुर! भगवान् यज्ञपति विष्णु भी पृथुके यज्ञमें इन्द्र-सहित उपस्थित हुए, एवं यज्ञमें पृथुकी की हुई पूजा ग्रहण कर प्रसन्न हुए। फिर पृथुसे बोले ॥ १ ॥ राजन्! इन इन्द्रने तुम्हारे सौ अश्वमेधोंको नहीं पूर्ण होने दिया, किन्तु इस समय तुमसे अपना अपराध क्षमा करनेकी प्रार्थना करते हैं, अतएव तुमको योग्य है कि क्षमा करो ॥ २ ॥ हे नरदेव! मनुष्योंमें उत्तम जो बुद्धिमान् साधुजन हैं वे प्राणियोंसे द्रोह नहीं करते, क्योंकि यह शरीर आत्मा नहीं है (अर्थात् मिथ्या है) ॥ ३ ॥ यदि तुम्हारे ऐसे ज्ञानी पुरुष देवमायामें मोहित हों तो 'बहुत दिनों तक की गई वृद्ध (विद्यावृद्ध) लोगोंकी सेवा'को निष्फल 'श्रम' कहना उचित है ॥ ४ ॥ जो पुरुष जानता है कि अविद्या (अपने आनन्द-मय रूपको न जानने) के कारण कामनाके वश हो कर कर्म्म करनेसे शरीरकी प्राप्ति होती है (अर्थात् बन्धन होता है), वह आत्मज्ञानी है; उसे देहाभिमान नहीं रहता ॥ ५ ॥ जो ऐसा आत्मज्ञानी अथवा देहाभिमानरहित पण्डित है वह इसी

देहसे उत्पन्न जो घर, पुत्र, धन आदि हैं उनमें किस लिये ममता और अभिमान करेगा ? ॥ ६ ॥ आत्मा देहसे अलग है क्योंकि वह एक, स्वयंप्रकाशमान (चैतन्य), शुद्ध, निर्गुण, गुणोंका आधार, सर्वव्यापी, अनावृत एवं साक्षी है (और देह बाल-युवा-वृद्ध आदि भेदोंसे अनेक, मलिन, जड़, सगुण, अपने कारणरूप जो तत्त्व हैं उनके आश्रित, एकदेशस्थित, गृहआदिसे आवृत एवं दृश्य वस्तु है) ॥ ७ ॥ जिस पुरुषको ऊपर लिखी हुई रीतिसे देहमें स्थित आत्माका ज्ञान है वह देहधारी हो कर भी देहके गुणोंसे नहीं बँधता, क्योंकि मुझ ब्रह्ममें तन्मय हो जाता है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! जो व्यक्ति निष्काम होकर श्रद्धापूर्वक नित्य अपने धर्म्ममें स्थित रह कर मुझे भजता है उसका मन क्रमशः प्रसन्न (शुद्ध वा शान्त) होता है ॥ ९ ॥ उस समय मायाके गुणोंसे मुक्त होने पर अन्तःकरण निर्मल हो जाता है और तत्त्वका ज्ञान होता है । तब वह शान्तिका आनन्द भोग करता है, इस शान्तिको ही ब्रह्म, कैवल्यमोक्ष एवं मेरा धाम (ब्रह्मपद) कहते हैं ॥ १० ॥ सुखदुःखादिहीन, उदासीन अवस्था ही यथार्थ शान्ति है । यह आत्मा इसी उदासीन अवस्थामें साक्षीस्वरूपसे अवस्थित है एवं देह, ज्ञान, कर्म्म, इन्द्रिय और मनका नायक है,—इस प्रकारका ज्ञान जिसको है वही कल्याणरूप मोक्षको पाता है ॥ ११ ॥ ऐसे ज्ञानी पण्डितोंको यह ज्ञान हो जाता है कि यह देह, पंचतत्त्व, इन्द्रिय, अधिष्ठाता देवता और चैतन्यका संग्रह है, इसी कारण आत्मासे भिन्न है देह ही उत्पन्न और नष्ट होता है-आत्मा नहीं । वे मेरे प्रेमी ज्ञानी लोग संपत्ति या विपत्तिमें विकारको नहीं प्राप्त होते अर्थात् आनन्द या शोक नहीं करते ॥ १२ ॥ हे वीर ! तुम भी पण्डित हो; अतएव सुख और दुःखको समान मान कर 'यह हमसे उत्तम, मध्यम या अधम है' इस भेदबुद्धिको त्यागो, इन्द्रिय और अन्तःकरणको वशमें करो एवं मेरे दिये हुए मंत्रीआदि सहायकोंसहित पृथ्वीमण्डलकी रक्षा करो ॥ १३ ॥ प्रजाका पालन करना ही राजाका कल्याणकारी प्रधान धर्म्म है; क्योंकि वह परलोकमें अपनी प्रजाके किये हुए पुण्यका छठा अंश भोग करता है । और इसके विपरीत जो राजा, प्रजासे 'कर' ले कर उसकी रक्षा नहीं करता उसके पुण्यको प्रजागण उस दिये हुए करके बदले पाते हैं एवं वह अन्यायी राजा प्रजाके पापोंका भोग करता है ॥ १४ ॥ यही धर्म्म तुम्हारे पुरखोंसे चला आया है और श्रेष्ठ ऋषिलोग इसीका अनुमोदन करते हैं, तुम इसी 'धर्म्म'को प्रधान मान कर साथही साथ'अर्थ' और 'काम'का उपार्जन करो, तुम पर सब प्रजा प्रेम और श्रद्धा करेगी । यों धर्म्म, अर्थ और कामका संचय करते हुए पृथ्वीका पालन करते २ थोड़े ही दिनोंमें अपने घर आये हुए सनकादिक सिद्धोंके दर्शन पाओगे ॥ १५ ॥ हे नरेन्द्र ! मुझसे कोई वर माँगो, क्योंकि मैं तुम्हारे गुण और स्वभावसे परम सन्तुष्ट हूँ । मुझे योग, यज्ञ एवं तप आदि उपायोंसे सहजमें कोई नहीं पा सक्ता—मैं केवल समदर्शीभावके वश हूँ ॥ १६ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले ।

विश्वविजयी पृथुने जगद्गुरु सर्वज्ञ हरिके उपदेशको मन लगा कर सुना एवं उस आज्ञाको सादर शिर- आंखोंसे स्वीकार किया ॥१७॥ उस समय इन्द्र अपने कर्म्मसे लज्जित होकर पृथुके पैरों पर गिर पड़े, तब राजाने प्रेमयुक्त हो कर उनको गलेसे लगा लिया एवं वैरभाव त्याग दिया ॥ १८ ॥ फिर पृथुने विश्वस्वरूप भगवान्‌की पूजा की और भक्तिकी उमंगसे चरणारविन्दोंमें प्रणाम किया ॥१९॥ सज्जनोंके हितकारी हरि भगवान् यद्यपि जानेके लिये उद्यत थे परन्तु अनुग्रहवश न जा सके एवं कमल ऐसे नयनोंसे पृथुकी ओर कृपादृष्टिसे देखने लगे ॥ २० ॥ उस समय आदिराज पृथुने अंजलि बाँध कर हरिकी स्तुति करनी चाही परन्तु आंखोंमें आनन्दके आँसू भर आये, जिस कारण वह हरिको भलीभाँति देख न सके एवं कण्ठावरोध हो जानेके कारण कुछ कह भी न सके, केवल हृदयमें ध्यान करने लगे ॥ २१ ॥ थोड़ी देर तक भक्तिकी उमंगसे यह दशा रही, फिर पृथुने आँखोंके आँसू पोंछ कर देखा कि भगवान् पृथ्वी पर पैर धरे हुए एवं गरुड़के कंधे पर हाथका सहारा दिये खड़े हैं। तब महाराज पृथु एकटक नयनोंसे हरिको देखते हुए यों स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥ पृथुजी बोले । हे विभु ! जिन ब्रह्मा आदिको वर देनेकी सामर्थ्य है आप उनके भी पूजनीय हैं, परन्तु पण्डितजन आपसे तुच्छ विषयसुखरूप वर नहीं माँगते। इन वरदानोंकी इच्छा देहाभिमानी लोग ही करते हैं, ज्ञानीजन नहीं करते। क्योंकि ये विषयभोग (वर) नरकमें भी देहधारियोंको मिलते हैं। अतएव हे परमेश्वर ! मैं आपसे तुच्छ वर नहीं माँगता; क्योंकि आप मोक्ष देनेवाले हैं ॥२३॥ किन्तु हे नाथ ! यदि मोक्षमें साधुजनोंके हृदयके भीतरसे मुखद्वारा निकल रहे आपके चरणारविंदका रस पीनेको नहीं मिलता तो मैं उसे भी नहीं चाहता। आप मुझे यही वर दीजिये कि आपके गुणगानको सुननेके लिये मेरे दस हजार कान हों ॥ २४ ॥ हे पवित्र कीर्तिवाले ! जो कुयोगी गण तत्त्वमार्गको भूले हुए हैं उनको भी, महत् लोगोंके मुखसे निकला और आपके चरणकमलकी मकरन्दके कणसे मिला हुआ वायु फिरसे तत्त्वज्ञानदान कर सक्ता है। इसी कारण मैं आपसे उसके सिवाय और कोई वर नहीं चाहता ॥ २५ ॥ हे मंगलमय कीर्तिवाले ईश्वर ! जो कोई साधुओंके संगमें आपके मंगलमय यशको कहीं एक बार भी सुन ले तो यदि वह गुणग्राही है—पशु नहीं है तो कदापि उसका जी उससे न हटेगा; क्योंकि ऐसी चञ्चल लक्ष्मी एकही जगह सब गुणोंके पानेकी कामनासे आपके यशमें रमती है ॥ २६ ॥ इसी कारण लक्ष्मीकी भाँति उत्सुक हो कर मैं भी आपके गुणोंको भजूंगा। आप सम्पूर्ण गुणोंकी खनि एवं पुरुषोत्तम हैं। नाथ ! लक्ष्मी और मैं,

१ शंका—देवता लोगोंके पैर पृथ्वीमें नहीं छू जाते तब यहां क्यों कहा कि पृथ्वी पर पैर धरे हुए हरि खड़े थे? । इसका उत्तर यही है कि उस समय भगवान् इतना कृपापरवश हो गये कि उन्हें अपनी सुधि बुधि नहीं रही, इसी कारण गरुड़के कंधेका सहारा ले लिया।

दोनो एक ही स्वामीकी कामना करनेवाले एवं उसके चरणोंको भजनेवाले हैं, संभव है कि इस कारण हम दोनोमें डाह हो ॥२७॥ अवश्य ही मुझसे और जगत्की जननी लक्ष्मीसे विरोध होगा। किन्तु हे जगदीश ! मैं इससे भटकता नहीं हूँ, क्योंकि आप दीनवत्सल हैं, इसलिये थोड़ी सेवाको भी बहुत मानेंगे एवं आप अपने ही आनन्दमय रूपमें रमनेवाले हैं, इससे आपको लक्ष्मीकी चाह नहीं है। आपको दीनवत्सल जान-कर ही, ज्ञान पानेके बाद भी साधुलोग आपका भजन नहीं छोड़ते। आप मायाके गुणोंके कार्यौंसे रहित हैं। भगवन्! जो पूर्वोक्त निष्काम साधु ज्ञानी आपको भजते हैं, हमारी समझमें उनका उद्देश्य केवल आपके चरणकमलोंका स्मरण करना ही है, और कुछ नहीं ॥ २८ ॥ २९ ॥ आप अपने सेवकोंसे जो "वर माँगो" यह वाणी कहते हैं सो मेरी समझमें जगत्को मोहित करनेवाली है। नाथ! मनुष्य यदि आपकी वाक्यरूप रस्सीसे बँधा नहीं है अर्थात् आपकी मायामें मोहित नहीं है तो वारम्वार स्वर्गादि फलोंको पा कर एवं उनको भोगनेके बाद फिर जन्म ले कर उन्हींकी प्राप्तिके लिये क्यों कर्म्म करता है ? ॥ ३० ॥ अज्ञानी मनुष्य आपकी मायाके वश होकर अपनेको सत्यस्वरूप आत्मासे भिन्न मानता है एवं आपसे पुत्रादिकी प्रार्थना करता है। किन्तु जैसे पिता स्वयं अज्ञानी बालकके हितकी चेष्टा करता है वैसे ही आपको उचित है कि जिसमें हम लोगोंका कल्याण हो वही करिये ॥ ३१ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं। हे विदुर! विश्वको उत्पन्न करनेवाले भगवान् आदिराज पृथुके ऐसे नम्र वाक्य सुन कर बोले कि हे राजन्! (तुम्हारी इच्छाके अनुसार) मुझमें तुम्हारी भक्ति हो। तुम बड़े भाग्यशाली हो जो तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई अर्थात् मुझमें दृढ़ श्रद्धा हुई; पण्डितजन इसी बुद्धिकी सहायतासे मेरी अतिप्रबल दुस्तर मायाके पार पहुंच जाते हैं ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! मैंने जैसा उपदेश दिया है उसीके अनुसार सावधान हो कर राजकाज करो। मेरी आज्ञाका पालन करनेवाला सर्वदा सब जगह सुख पाता है ॥ ३३ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं। हे विदुर! इस प्रकार वेननन्दन पृथुके सार्थक वचनोंकी प्रशंसा कर एवं उनकी पूजा ग्रहण कर भगवान् जानेके लिये उद्यत हुए ॥ ३४ ॥ उस समय श्रीकृष्ण विष्णुमें जिनका मन लगा हुआ है उन महाराज पृथुने भक्तिपूर्वक मन, वाणी और कायासे देव, ऋषि, पितर, गंधर्व, चारण, सिद्ध, नाग, सर्प, किन्नर, अप्सरा, मनुष्य, पशु, पक्षी और अन्यान्य अनेक प्राणियोंकी एवं विष्णुके पार्षदगणकी पूजा की। इस प्रकार पूजित हो कर सब लोग अपने २ स्थानोंको गये ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ अन्तमें भगवान् हरि भी राजा पृथु एवं उनके ऋत्विज ऋषियोंका मन हरते हुए अपने वैकुण्ठ लोकको गये ॥ ३७ ॥

अदृष्टाय नमस्कृत्य नृपः संदर्शितात्मने ।
अव्यक्ताय च देवानां देवाय स्वपुरं ययौ ॥ ३८ ॥

देवदेव वासुदेव दृष्टिमार्गसे परे हैं अर्थात् निराकार हैं किन्तु इस समय पृथु पर प्रसन्न हो कर साकाररूपसे प्रकट हुए थे। वेनके पुत्र पृथु उनको प्रणाम कर अपने पुरकी ओर चले ॥ ३८ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंश अध्याय।

पृथुका प्रजागणको शिक्षा देना।

मैत्रेय उवाच–मौक्तिकैः कुसुमस्रग्भिर्दुकूलैः स्वर्णतोरणैः।
महासुरभिभिर्धूपैर्मण्डितं तत्र तत्र वै ॥ १ ॥

मैत्रेयजी बोले। इधर प्रजागणने महाराज पृथु विश्वविजय कर लौटे हुए आते हैं– यह सुन कर राजपुरीको खूब सजाया। पुरमें मोतियोंकी और फूलोंकी माला, वस्त्र, सुवर्णके तोरण शोभायमान हुए, जहां तहां सुगंधित धूप जलाई गई ॥ १ ॥ राजमार्ग, चौक और छोटी गलियोंमें चन्दन और अगुरुके जलका छिड़काव किया गया। जगह २ पर फूल, फल, अक्षत, जवकी हरी २ बाली या अंकुर एवं दीपक धरे गये ॥ २ ॥ फले हुए केलेके वृक्ष और सुपारीके छोटे पौधे, नव पल्लवोंके वंदनवार द्वारोंकी शोभा बढ़ाने लगे ॥ ३ ॥ सब पुरवासी लोग, महाराज पृथुको पुरके भीतर लानेके लिये, अनेक मांगलिक वस्तु एवं आरती उतारनेके लिये दीपकोंकी पंक्तियाँ हाथोंमें लिये हुए चले। उनके साथ ही कुण्डलमण्डित मुखमण्डलवाली सुन्दरी कन्याएं चलीं ॥ ४ ॥ आगे २ शंख, नगाड़ा बज रहे हैं, ब्राह्मणलोग वेदपाठ कर रहे हैं, बंदीजन स्तुति कर रहे हैं। इस प्रकार अभिमानहीन महाराज पृथुने पुरीमें पहुंच कर अपने भवनमें प्रवेश किया ॥ ५ ॥ मार्गमें प्रत्त्येक स्थान पर पुरवासी और जनपदवासियोंने महायशस्वी पृथुकी पूजा की और प्रिय वरके दाता पृथुने भी प्रसन्नतापूर्वक सबका यथायोग्य सत्कार किया ॥ ६ ॥ हे विदुर! प्रशंसित कर्मवाले बड़ोंके बड़े पृथुने इस भाँति बहुतसे उत्तम कार्य करके पृथ्वीमण्डलका पालन किया एवं यथासमय अपने समुज्वल यशको इस लोकमें छोड़ कर परमधामको गये ॥ ७ ॥ **सूतजी बोले।** हे सभापते शौनक! मैत्रेयजीके मुखसे सम्पूर्णगुणयुक्त एवं गुणी लोगोंके आदरको प्राप्त महाराज पृथुकी पवित्र कीर्ति सुन कर विदुरजी बहुत प्रसन्न हुए और उन (मैत्रेय) की प्रशंसा करके बोले ॥ ८ ॥ **विदुरजी बोले।** ब्रह्मन्! ब्राह्मणोंने जब पृथुका राज्याभिषेक किया और सब देवतोंने भेंट दी और पूजा की तब गोरूप पृथ्वीको दुहनेवाली भुजाओंमें विष्णुका तेज धारण किये हुए पृथुने कौन २ शुद्ध कर्म

किये? सो हमसे कहिये । जिन पृथुके पराक्रमकी जूठन (अर्थात् गोरूप पृथ्वीसे दुहे हुए सब पदार्थों) से आजतक सब राजा, लोकपाल एवं तीनो लोक जीवित हैं उनके चरित्रको कौन बुद्धिमान् विद्वान् न सुनेगा? ॥ ९ ॥ १० ॥ मैत्रेयजी बोले । विदुरजी! गंगा और यमुनाके मध्यप्रदेशमें पृथुजीके रहनेका स्थान अर्थात् राजधानी थी, पृथुजी वहाँ रह कर पूर्वजन्मके किये हुए पुण्यकर्मोंको क्षीण करनेके लिये ही विषयभोग करने लगे अर्थात् दूसरे जन्ममें भोग करनेकी इच्छासे कर्म नहीं किये ॥ ११ ॥ उनकी आज्ञा पृथ्वीके किसी स्थानमें नहीं टली, सातो द्वीप पृथ्वीमें वही एक दण्डधारी थे । किन्तु ब्राह्मण और हरिके भक्तोंको कभी दण्ड नहीं दिया (इसका कारण यह भी था कि ब्राह्मण और हरिभक्तजन दण्ड देनेयोग्य कार्य ही न करते थे) ॥ १२ ॥ हे सज्जनश्रेष्ठ! इसी भाँति कुछ काल बीतने पर एक समय महाराज पृथुने एक महायज्ञका अनुष्ठान (आरंभ) किया । उस यज्ञमें देवगण, ब्रह्मऋषि और राजऋषियोंका समाज एकत्र हुआ ॥ १३ ॥ पूजनीय सभ्यलोगोंकी यथायोग्य पूजा होनेके पीछे महाराज पृथु, तारागणोंके बीचमें जैसे चन्द्रदेवका उदय हो उसी भाँति सभामें खड़े हुए ॥ १४ ॥ महाराज पृथुमें सब चमत्कारमय चक्रवर्त्ती राजाके चिन्ह थे, उनका शरीर (कंधे) ऊँचा था, दोनो भुजाएँ मोटी और विशाल थीं, वर्ण गोरा था, नेत्र लाल कमल ऐसे सुन्दर थे, नासिका और मुख सुन्दर था, मूर्त्ति सौम्य (प्रसन्न)थी, कंधे उभरे और भरे हुए एवं दन्त व मुसकान मनको हरनेवाली थी ॥ १५ ॥ उनका वक्षस्थल (छाती) चौड़ा था, श्रोणी (कटि और नितम्बका बीच) विशाल था, उदर (पेट) त्रिवलीकी रेखाओंसे अधिक शोभायमान एवं ऊपर पीपलके पत्तेकी भाँति चौड़ा व नीचे संकुचित था । नाभि आवर्त (पानीके भँवर) के समान घूमी हुई एवं गंभीर थी । वह बड़े ही तेजस्वी थे, ऊरू सुवर्णके रंगवाली और दोनो चरण आगेसे कुछ ऊंचे थे ॥१६॥ उनके केश महीन, घूमे हुए, काले और चिकने थे एवं गर्दन शंख ऐसी थी । बड़े मोलकी श्रेष्ठ रेशमी धोती पहने और उत्तरीय (डुपट्टा) ओढ़े हुए ॥ १७ ॥ उस वस्त्रके भीतरसे सम्पूर्ण अंगोंकी शोभा झलक रही थी। यद्यपि यज्ञकी दीक्षा लेनेके कारण सम्पूर्ण आभूषण उतार डाले थे तथापि उनके शरीरकी सुन्दरता कुछ कम नहीं हुई थी । कृष्णाजिन (काली मृगछाला) धारण किये हुए, और हाथमें कुशोंकी पवित्री पहने हुए थे, जिन्हे यज्ञके उचित कर्म करनेमें धारण किया था । इस प्रकारके परम सुन्दर महाराज पृथुने शान्त एवं स्नेहयुक्त सुन्दर शोभित विशाल नेत्रोंसे सभाको चारो ओर देखा ॥ १८ ॥ उसके उपरान्त पृथुजी सभाको प्रसन्न करते हुए सुननेमें सोहावने, शुद्ध, प्रशंसित, विचित्रपदभूषित, गंभीर अर्थसे परिपूर्ण मनोहर वचन बोले ॥ १९ ॥ राजा पृथुजी बोले । हे सभ्य गण! हे आये हुए महात्मा साधुगण! आप लोगोंका कल्याण हो, आप

लोग मैं जो कहता हूँ उसे सुनिये। मैं आप लोगोंके आगे ज्ञानादिमें छोटा हो कर भी कुछ कहता हूँ; इसका कारण यही है कि जिसे धर्मके जाननेकी इच्छा हो उसे उचित है कि वह साधु महात्माओंके आगे अपने हृदयका भाव (विचार) प्रकट करे ॥ २० ॥ प्रजाओंको उत्पन्न करनेवाले विधाताने मुझे प्रजाओंका शासक बनाया है। मेरा धर्म है कि मैं सब प्रजाकी रक्षा करूँ, उसे जीविका दूँ एवं चारो वर्ण व चारो आश्रमोंको वेदविहित मार्ग पर अर्थात् वेदके कहे हुए वर्णाश्रमधर्म पर चलाऊं ॥ २१ ॥ क्योंकि ऐसा करनेसे सनातनधर्मके रक्षक पूर्वकर्मोंके साक्षी हरि प्रसन्न होंगे। तब ब्रह्मवादी लोगोंके बताये हुए वे लोक मुझे मिलेंगे जो हरिके प्रसन्न होने पर पुण्यात्मा लोगोंको मिलते हैं। उन लोकोंमें मनुष्यकी सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं! ॥ २२ ॥ मैं जानता हूँ कि जो राजा, प्रजासे 'कर' लेता है किन्तु प्रजाको धर्मकी शिक्षा नहीं देता वह प्रजाओंके पापका भागी होता है एवं उसका ऐश्वर्य शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ २३ ॥ इसी लिये हे प्रिय प्रजागण! तुम अधोक्षज विष्णुमें चित्त लगा कर परस्पर ईर्षा-द्वेष छोड़ कर अपना २ धर्म पालन करो, मानो तुम्हारे ही कारण मुझे उत्तम लोक मिलेंगे। ऐसा करोगे तो मुझ पर तुम्हारी बड़ी कृपा होगी ॥ २४ ॥ हे पूज्यतम विशुद्ध पितर और देव-ऋषिगण! कर्म करनेवालेको, 'ऐसा कर्म करो' इस प्रकारकी शिक्षा देनेवालेको एवं 'हाँ बहुत ठीक है' यह कह कर अनुमोदन करनेवालेको परलोकमें जैसा फल मिलता है वैसा फल मुझे मिलनेके लिये आप लोगोंकी अनुमति हो। (यदि कहो कि 'उत्तम कर्म करना चाहिये' इसका अनुमोदन तो हम करते हैं पर 'कोई यज्ञका अधिष्ठाता वासुदेव है' इस बातका अनुमोदन नहीं करते। उसीका उत्तर देते हैं कि) किसी २ के मतमें यज्ञका अधिष्ठाता वासुदेव नामक देव है क्योंकि यदि यह न होता हो तो इस लोक और परलोकमें समुज्ज्वल भोगकी भूमि एवं भोग करनेके साधनस्वरूप शरीर कैसे देख पड़ते ? ॥ २५ ॥ २६ ॥ (यदि कहो कि यह कर्मकी विचित्रतासे होता है, ईश्वरके किये नहीं होता, तो विद्वान् लोगोंके अनुभवसे ईश्वरको सिद्ध करते हैं) मनु, उत्तानपाद, राजर्षि प्रियव्रत, महाराज ध्रुव, हमारे बाबा अंग और ऐसे ही और २ अनेकों राजा एवं ब्रह्मा, शिव, प्रल्हाद और बलि आदि; सबके मतमें अवश्यमेव कर्मका फल देनेवाला कोई ईश्वर है ॥ २७ ॥ २८ ॥ मृत्युके नाती वेन आदि कुछ अधार्मिक लोग इस बात (ईश्वरके होने) को नहीं स्वीकार करते, किन्तु वे शोचनीय हैं! यदि कहो ईश्वर है भी तो फल हमें कर्मके अनुसार ही मिलेगा, तब ईश्वरसे क्या है? वही कहते हैं कि देखो यदि कर्म ही फल दे सक्ता तो त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम), स्वर्ग और मोक्ष कर्म्मके ही अनुगत होते, तब प्रत्येक कर्मसे ही त्रिवर्ग, स्वर्ग और मोक्ष मिल सक्ती, किन्तु वास्तवमें हर एक

कर्मसे ये तीनो फल नहीं मिलते! देखा जाता है कि दो व्यक्ति एक ही प्रकारके कर्म करते हैं किन्तु उनको फल भिन्न २ मिलता है, और कहीं एकका वही कार्य सिद्ध हो जाता है और दूसरेका नहीं। इसी कारण एक कोई सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है, ऐसा अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा ॥ २९ ॥ उस ईश्वरके चरणकमलोंके सेवनकी इच्छा, नित्यप्रति बढ़ कर, हरिके चरणोंसे निकली हुई देवनदी गंगाके समान तपस्वियोंके अनेक जन्मोंके इकट्ठे हुए हृदयके विकारको शीघ्र ही दूर कर देती है ॥ ३० ॥ उस हरिकी भक्तिसे पुरुषके मनका मैल धो जाता है, तब वह वैराग्यके द्वारा विज्ञानसाक्षात्काररूप वीर्यको पा कर उसी जगत्पिता परमेश्वरके चरणकमलोंमें स्थान पाता है, तब उसे फिर संसारमें आ कर यहांकी यन्त्रणा नहीं भोगनी पड़ती अर्थात् मुक्त हो जाता है (तत्त्व यह है कि बिना ईश्वरके केवल कर्म या कर्मोंसे जिन देवतोंका पूजन किया जाता है वे मोक्षके देनेका अधिकार नहीं रखते। इस लिये मानना पड़ा कि यज्ञों [सत्कार्यों] का स्वामी एवं मोक्षको देनेवाला एक सर्वशक्तिमान् ईश्वर अवश्य है!) ॥ ३१ ॥ प्रिय प्रजागण! तुम लोग चित्तसे कपटको हटा कर अध्यापन (पढ़ाना) आदि अपनी २ वृत्ति ग्रहण कर एवं ध्यान, स्तुति, सेवा आदिसे उसी पूज्य परमेश्वरको भजो। तुममें जिसको जितना अधिकार है वह उसीके अनुसार ईश्वरकी आराधना करो, ऐसा करनेसे तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध होगा अर्थात् कामनाएँ पूर्ण होंगी ॥ ३२ ॥ वह निर्गुण भगवान् यद्यपि विज्ञानराशिस्वरूप और एक हैं तथापि भिन्न भिन्न द्रव्य (धान्य आदि), गुण (सत्त्व आदि) क्रिया (अवघात आदि) उक्ति (मंत्र), अर्थ (यज्ञकी सामग्री), आशय (भाव या संकल्प), लिंग (पदार्थोंकी शक्ति), नाम (ज्योतिष्टोम आदि) के भेदसे अनेक विशेषण-विशिष्ट हो कर कर्ममार्गमें यज्ञरूपसे प्रकाशित होते हैं ॥ ३३ ॥ यज्ञोंके समान यज्ञोंके फल भी भगवान्का रूप हैं, क्योंकि वह ईश्वर परमानन्दरूप हो कर भी शरीरके भीतर विषयाकार बुद्धिको प्राप्त होते हैं एवं अग्नि जैसे लकड़ीके भीतर रह कर लकड़ीका धर्म जो छुटाई, बड़ाई, लंबाई और चौड़ाई आदि हैं उनसे युक्त सा प्रकट होता है वैसे ही भगवान् भी उपाधिरहित हो कर भी देहके संयोगसे उसके धर्मोंसे युक्त प्रतीत होते हैं। यह देह प्रधान (प्रकृति), काल, आशय (वासना) और धर्म (शोक मोहादि) का संग्रह है, इसमें विषयाकार बुद्धिका उत्पन्न होना विचित्र नहीं है ॥ ३४ ॥ अहो! ये लोग मुझ पर बड़ा ही अनुग्रह करते हैं जो पृथ्वीमें दृढ़ नियमके साथ निरन्तर यज्ञके स्वामियोंके ईश्वर, सब जगत्के गुरु हरिको अपने २ धर्मसे भजते हैं ॥ ३५ ॥ हे सभ्यगण! यद्यपि ब्राह्मण और वैष्णवगण राजसी सम्पदासे युक्त नहीं हैं तथापि तितिक्षा, तप और विद्यारूप समृद्धियोंसे पूर्ण हैं। मेरी आज्ञा है कि राजकुलका शासन ब्राह्मण और वैष्णवोंके कुल पर कदापि अपना तेज न प्रकाशित करे ॥ ३६ ॥ देखो बड़ोंके

बड़े ब्रह्मण्यदेव, पुरातनपुरुष श्रीहरि नित्य ब्राह्मणोंके चरणोंकी वन्दना करके ही स्थिर लक्ष्मी और जगत्को पवित्र करनेवाले यशको प्राप्त हुए हैं ॥ ३७ ॥ और सबके हृदयमें स्थित, ब्राह्मण-प्रिय एवं स्वयं प्रकाशमान ईश्वर हरि ब्राह्मणोंकी ही सेवा करनेसे यथेष्ट सन्तोपको प्राप्त होते हैं; इसी कारण तुम सब लोग उन हरिके धर्ममें तत्पर हो कर विनीत भावसे सब प्रकार ब्राह्मणकुलकी ही सेवा करो ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणकुलके साथ नित्य सेवारूप सम्बन्ध होनेसे शीघ्र ही मनुष्यका चित्त शुद्ध हो जाता है। तब स्वयं अर्थात् ज्ञानादिके अभ्यासके बिना (भी) परम शान्ति अर्थात् मोक्ष मिलती है। हविके भोजन करनेवाले देवगणका ब्राह्मण-मुखसे बढ़ कर और (अग्नि आदि) मुख नहीं है ॥ ३९ ॥ ज्ञानरूप, सबके अन्तर्यामी अनन्त हरिकी भी तृप्ति ब्राह्मणमुखमें ही होती है। तत्त्वज्ञानी पण्डितगण, पूजनीय इन्द्रादि देवोंका नाम ले कर श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणमुखमें जो हवन करते हैं उससे हरिको जैसी तृप्ति होती है वैसी अचेतन अग्निमुखमें हवन करनेसे नहीं होती ॥४०॥ जिसमें यह सम्पूर्ण विश्व आदर्शकी भाँति भासित होता है उसी नित्य शुद्ध सनातन वेदको ये ब्राह्मणगण श्रद्धा, तपस्या, मंगल (अच्छे कर्मका करना और बुरे कर्मका त्याग[1]), मौन (अध्ययन-विरोधी वार्ताका त्याग), संयम (इन्द्रियोंका दमन) एवं समाधि (चित्तकी स्थिरता)-पूर्वक यथार्थ अर्थके देखनेके लिये नित्यप्रति धारण करते हैं अर्थात् विचारते रहते हैं॥ ४१ ॥ हे आर्यगण! मेरी यही कामना है कि उन पवित्र ब्राह्मणोंके चरणोंकी रजको जीवन भर मैं अपने किरीट मुकुट पर धारण करूं! जो लोग ब्राह्मणोंके चरणोंकी रजको शिर पर धरते हैं उनके सम्पूर्ण पातक शीघ्र नष्ट हो जाते हैं एवं सब गुण आप आ कर उनको भजते हैं ॥ ४२ ॥ इस भाँति जिसे ब्राह्मणकी सेवासे गुण प्राप्त होते हैं उस सच्चरित्र, सुशील, कृतज्ञ एवं वृद्धसम्मत मनुष्यको सम्पूर्ण सम्पदाएँ आप ही अनायास आ कर मिलती हैं। हे प्रजागण! वही सर्वोत्तम ब्राह्मण वंश, धेनुवें एवं अपने अनुचरों सहित भगवान् विष्णु मुझ पर प्रसन्न हों, मेरी यही इच्छा है ॥ ४३ ॥ **मैत्रेयजी बोले**। हे विदुर! इस प्रकार राजाके कहने पर पितृगण, देवगण और ब्राह्मणगण प्रसन्न हो कर वाह २ करने एवं सब साधु महात्माजन राजाकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४४ ॥ सब लोग कहने लगे कि "पुत्रके अच्छे होनेसे मनुष्य उत्तम गतिको पाता है" यह कहावत सत्य है, क्योंकि ब्रह्मशापके द्वारा नष्ट होने पर भी पापी राजा वेन पृथु ऐसे सुपुत्रके होनेसे नरक जानेसे बच गया ॥ ४५ ॥ ऐसे ही हिरण्यकशिपु भी हरिकी निन्दा करनेके कारण नरकमें जानेवाला था पर सुपुत्र प्रल्हादके प्रभावसे तर गया ॥ ४६ ॥ हे वीरश्रेष्ठ, पृथ्वीके पिता महाराज पृथु! आप हजारों वर्ष जियें, अहो! सम्पूर्ण

---

१ प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तस्य वर्जनम्। एतद्धि मङ्गलं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

लोकोंके एक स्वामी हरिमें तुम्हारी ऐसी सच्ची और दृढ़ भक्ति है! आप धन्य हैं ॥ ४७ ॥ हे पवित्र कीर्त्तिवाले महाराज! तुमको स्वामी पा कर हम अपनेको श्रीहरिकी ही प्रजा समझते हैं अर्थात् हम जानते हैं कि आपके रूपसे साक्षात् श्रीहरि ही हमारे स्वामी हैं क्योंकि आप पवित्र यशवाले महात्मा लोग जिनको प्रणाम करते हैं उन ब्रह्मण्यदेव हरिकी कथाओंका वर्णन करके (विष्णुकी भाँति) धर्मका उपदेश करते हैं ॥ ४८ ॥४९॥ हे नाथ! आप जो अपनी प्रजाको ऐसा उत्तम उपदेश देते हैं सो कुछ विचित्र नहीं है क्योंकि दयावान् महात्मा और बड़े लोगोंकी प्रकृति ही यह होती है कि वे प्रजा पर अनुराग (स्नेह) करते हैं और उनको हितका उपदेश करते हैं ॥ ५० ॥ हे प्रभो! हम लोग 'दैव'नामक कर्मद्वारा अंध हो कर इतने दिन अंधकारमें भटकते थे, हमारी ज्ञानरूप दृष्टि नष्ट थी, सो आज आपने हमें उस अंधकारके पार लगा दिया ॥ ५१ ॥

नमो विवृद्धसत्त्वाय पुरुषाय महीयसे ।
यो ब्रह्मक्षत्रमाविश्य बिभर्तीदं स्वतेजसा ॥ ५२ ॥

हे राजन्! जो शुद्ध, सबमें श्रेष्ठ पुरुष, ब्राह्मणोंमें स्थित हो कर क्षत्रियोंका और क्षत्रियोंमें स्थित हो कर ब्राह्मणोंका एवं ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें प्रवेश करके इस विश्वका अपने तेजसे पालन करता है उस परम पूज्य हरिको नमस्कार है ॥ ५२ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंश अध्याय ।

पृथुको महर्षि सनत्कुमारका ज्ञानोपदेश करना ।

मैत्रेय उवाच—जनेषु प्रगृणत्स्वेवं पृथुं पृथुलविक्रमम् ।
तत्रोपजग्मुर्मुनयश्चत्वारः सूर्यवर्चसः ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले । हे विदुर! सभासद लोग महापराक्रमी पृथुकी इस प्रकार प्रशंसा कर रहे थे, इसी समय सूर्यके समान तेजस्वी चार मुनि वहां पर आये ॥ १ ॥ लोकोंको अपने दर्शनसे पवित्र करते हुए आकाशसे उतर रहे उन सिद्धेश्वरोंके तेजसे ही प्रतीत होता था कि ये ब्रह्माके पुत्र सनकादिक ऋषि हैं। सभासदोंसहित राजाने उन महर्षियोंको देखा ॥ २ ॥ सनकादिकोंसे मिलनेके लिये पृथुके प्राण प्रथम ही उनके पास पहुंच गये थे, मानो उन्हीं प्राणोंको फिर पानेके लिये सभासद और अनुचरगणयुक्त राजापृथु, संभ्रमसहित उठे, जैसे जीव गंधादिक गुणोंके प्रति गमन करता है ॥ ३ ॥ महाराज पृथुने उन ऋषियोंके

बड़प्पनके अनुसार उन्हे अर्घ्य और आसन दिया एवं विनयपूर्वक शिर झुका कर विधिवत् पूजन किया ॥ ४ ॥ साधुगण जिन व्यवहारोंको दृष्टान्तस्वरूप स्वयं आचरण करके संसारमें प्रचलित कर गये हैं उन्ही साधु-व्यवहारोंके मानकी रक्षा करनेके लिये महाराज पृथुने उन योगियोंके चरण धो कर उस जलको शिर पर धारण किया ॥ ५ ॥ इसके बाद वे ऋषि जब अपने २ स्थानमें स्थित अग्नियोंके समान सुवर्णके सिंहासनों पर बैठे तब श्रद्धायुक्त और जितेन्द्रिय राजा प्रसन्न हो कर शिवजीके बड़े भाइयों (सनकादिकों) से यों बोले ॥ ६ ॥ "अहो! आप लोगोंका दर्शन योगियोंको भी दुर्लभ है तब मैंने कौन ऐसा उत्तम कर्म किया था जो मंगलरूप आप लोगोंका दर्शन मुझे मिला ॥ ७ ॥ अथवा जिस पर ब्राह्मण, शिव, विष्णु एवं विष्णुके भक्त प्रसन्न हों उसको इस लोक और पर-लोकमें क्या दुर्लभ है? ॥ ८ ॥ यद्यपि आप सब लोकोंमें घूमा करते हैं पर जैसे सब विषयों एवं पदार्थोंके देखनेवाले आत्माको दृश्य पदार्थ नहीं देख पाते वैसे ही आपको लोग नहीं देख पाते ॥ ९ ॥ वे गृहस्थाश्रममें स्थित साधुजन धनहीन होने पर भी धन्य हैं जिनके यहां साधु महात्माजन फल, मूल, जल, तृण, भूमि, घरके स्वामी और सेवकोंके द्वारा सत्कार पाते हैं एवं पूजित होते हैं ॥ १० ॥ और जिन घरोंमें कभी वैष्णवोंके पवित्र चरण नहीं आये वे घर सब प्रकारकी संपदाओंसे भरे होने पर भी, सर्प जिसमें रहता हो उस फले फूले वृक्षके समान व्यर्थ हैं ॥ ११ ॥ हे विप्रवरो! आप भले आये। आप मोक्षके लिये यत्न करनेवाले हैं एवं बाल्यावस्थासे ही श्रद्धापूर्वक धैर्य धारण करके बड़े २ व्रतोंका अनुष्ठान करते हैं, अतएव 'मार्गमें आप लोगोंको कोई कष्ट तो नहीं हुआ?' यह पूछना बिल्कुल व्यर्थ है ॥ १२ ॥ हे नाथगण! अपने कर्मोंके दोषसे संपूर्ण कष्टोंके क्षेत्र (खेत) इस संसारमें पतित हो कर हम लोग इन्द्रियोंके भोगको ही परम पुरुषार्थ जानते हैं अतएव हमारे मंगलकी कौन संभावना (आशा) है? ॥ १३ ॥ आप लोगोंसे कुशलप्रश्न करना उचित नहीं है, क्योंकि आप लोग आत्माके आनन्दमें ही सन्तुष्ट हैं एवं 'यह इष्ट है और यह अनिष्ट है' इस प्रकारकी भेदबुद्धि आप लोगोंमें नहीं है ॥ १४ ॥ जिन लोगोंका हृदय संसारके क्लेशोंसे तपा हुआ है उनके आप परम मित्र हैं, इस विषयमें मुझे आप लोगों पर पूर्ण विश्वास है। मैं आपसे यही पूछता हूं कि इस संसारमें कौन ऐसा उपाय है जिससे मनुष्यका मंगल अर्थात् मुक्ति अवश्य हो सक्ती है? ॥ १५ ॥ स्पष्ट ही यह प्रतीत होता है कि धीर व्यक्तियोंके आत्मा, स्वयं प्रकाशमान, जन्मरहित भगवान् ही भक्तों पर अनुग्रह करनेके लिये ये सिद्ध-रूप धारण कर पृथ्वीमें भ्रमण करते हैं, अर्थात् आप साक्षात् भगवान्का अवतार हैं" ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं। हे विदुर! पृथु राजाके ये सुन्दर, न्याय-

संगत गंभीर अर्थसे भरे, थोड़े अक्षरवाले एवं सुननेमें मधुर वाक्य सुन कर श्रीसनत्कुमारजी प्रीतिपूर्वक मंद मुसकाते हुए बोले ॥ १७ ॥ श्रीसनत्कुमारजी बोले । हे महाराज! आप सब प्राणियोंके हितचिन्तक एवं पण्डित हैं, आपने यह बहुत ही उत्तम प्रश्न किया । इसमें कोई विचित्र बात नहीं है क्योंकि साधु लोगोंकी ऐसी ही बुद्धि होती है ॥ १८ ॥ साधु लोगोंका समागम दोनो (श्रोता और वक्ता) के लिये कल्याणकारी होता है क्योंकि प्रश्न और उत्तरोंसे दोनोका मंगल होता है ॥ १९ ॥ राजन्! मधुसूदन हरिके चरणारविंदोंके गुणोंमें आपकी दृढ़ भक्ति है । यह भक्ति अवश्य ही मनके वासनारूपी मैल और कामको दूर करके अन्तःकरणकी शुद्धि कर देती है । किन्तु यह भक्ति दुर्लभ है ॥ २० ॥ संपूर्ण शास्त्रोंमें भली भाँति विचार करके पुरुषके कल्याणके दो ही कारण निश्चित हुए हैं, एक तो आत्मासे भिन्न जो मिथ्या शरीरादि हैं उनमें वैराग्य और दूसरा निर्गुण ब्रह्म जो परमात्मा है उसमें दृढ़ भक्ति ॥ २१ ॥ श्रद्धा, भगवान्‌के धर्मोंका आचरण, तत्त्वके जाननेकी इच्छा, आध्यात्मिक योगमें निष्ठा, योगियोंकी उपासना, नित्य पवित्र यशवाले हरिकी पुनीत कथाओंका पढ़ना सुनना, तमोगुणी और रजोगुणी (क्रोधी व कामी) जनोंके संगसे अनिच्छा, अर्थ और कामका त्याग एवं आत्मामें सन्तोष अर्थात् हरिकथाके सुननेसे शान्तिके होने पर निर्जन स्थानमें रहनेकी रुचिसे अनायास ही उक्त वैराग्य (आत्माके सिवा अन्य शरीर आदि मिथ्या पदार्थोंमें आसक्तिका न होना) और आत्मामें दृढ़ भक्ति मिलती है ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ और अहिंसा (किसीको मन वाणी व कायासे दुःख न देना), परमहंसोंकी वृत्ति (शान्तिप्रधान स्वभाव), स्मृति (आत्माके हितको न भूलना), भगवान्‌के गुणानुवादरूप अमृतका पीना, (अथवा अमृत ऐसे मधुर हरिके चरित्रोंका स्मरण) इन्द्रियोंको अपने वशमें करना, कामनाओंका त्याग, व्रत आदिक नियम, किसी धर्म (या मत) की निन्दा न करना, मंगल होनेके उद्देश्यसे कोई कर्म न करना (अर्थात् मंगल और अमंगलको एक सा जानना), सर्दी गर्मी आदिक द्वंद्वधर्मों (परस्पर विरोधी प्रकृतिके नियमों) का सहन करना, हरिभक्तोंके कानका गहना जो हरिके गुण हैं उनको वारम्वार कहने सुननेसे बढ़ रही जो ईश्वरमें भक्ति है उसके द्वारा कार्य (सुनना, बोलना, देखना आदि) और कारण (चक्षु आदिक इन्द्रियों) का संग (अहंभाव) छोड़ना आदि बातोंके (भी) करनेसे निर्गुण ब्रह्ममें अनायास ही रुचि होती है ॥ २४ ॥ २५ ॥ ऊपर कहे हुए उपायोंके करनेसे जब निर्गुण ब्रह्ममें निष्ठा (स्थिति) हो जाती है तब गुरुकी सेवा करना उचित है । ऐसा करने पर जैसे जलता हुआ अग्नि अपनी उत्पत्तिका स्थान जो लकड़ी है उसे जला देता है अर्थात् उससे रहित हो जाता है वैसे ही उस पुरुषका वासनारहित जो अभिमानमय लिंग शरीर (मैं करता हूँ, देखता हूँ, सुनता हूँ

इत्यादि भाव) है वह (भी) ज्ञान-वैराग्यके द्वारा नष्ट हो जाता है ॥ २६ ॥ (अहंकारस्वरूप लिंगशरीर ही जीवका आवरण-बंधन है एवं पंचभूतके जो सूक्ष्म अंश इन्द्रिय आदि हैं वे ही लिंगशरीरका प्रधान अंश हैं) इस भाँति हृदय (चित्त, मन, बुद्धि, अहंकार) या लिंगशरीररूप उपाधिके दूर होने पर 'मैं करता हूँ इत्यादि' भाव नहीं रहते एवं 'अपने भीतर और बाहर एक ब्रह्मरूप मैं ही हूँ' यह भाव हो जाता है, अर्थात् वह पुरुष बाहर 'घट पट' आदि पदार्थोंको और अन्तरमें 'सुख दुःख' आदिको नहीं देखता वा अनुभव करता; क्योंकि दृश्य (संसार) और द्रष्टा (आत्मा) में जो व्यवधान अर्थात् भेदबुद्धि थी वह उस समय जाती रहती है, इसी कारण नींदसे जागने पर जैसे स्वप्नके दृश्य और द्रष्टा (देखनेवाले) नहीं देख पड़ते वैसे ही मोहरूप नींदके टूटने पर यह संसार स्वप्नके विषयोंके समान मिथ्या जान पड़ता है ॥ २७ ॥ महाराज ! उपाधिस्वरूप अन्तःकरण अर्थात् लिंगशरीरके रहने पर पुरुष द्रष्टा (आत्मा), दृश्य (इन्द्रियोंके) विषय और अहंकार— इन तीनोको भेदबुद्धिसे देखता है, परन्तु लिंगशरीरके नष्ट होने पर फिर जीवको वह भ्रम नहीं रहता। लोकमें भी इसका प्रमाण मिलता है-देखो भेदबुद्धिको उत्पन्न करानेवाले जल या दर्पण आदि पदार्थके पास रहने पर अपने ही मुखके प्रतिबिंबमें और अपने मुखमें अथवा सूर्य आदि दूसरी वस्तुके बिंबमें और प्रतिबिंबमें भेद जान पड़ता है एवं जल वा दर्पणके न होने पर यह भ्रम नहीं हो सक्ता ॥ २८ ॥ २९ ॥ राजन्! जो व्यक्ति विषयोंकी चिन्ता किया करता है उसकी इन्द्रियाँ विषयोंकी ओर खिंचके जाती हैं और पीछेसे वे इन्द्रियाँ मनको अपनी ओर खींचती हैं। अन्तमें जैसे किनारे लगे हुए सिर्कीके वृक्ष जलाशय (तालाब आदि) के जलको खींचते हैं वैसे मन भी चेतना (बुद्धिकी विचारशक्ति) को हरता है ॥ ३० ॥ चेतनाके नष्ट होने पर स्मृति (पूर्वापरकी समझ) भ्रष्ट हो जाती है, इसके उपरान्त आत्माको (भले बुरेका) ज्ञान नहीं रहता। इसीको विद्वान् लोग 'आत्माके द्वारा आत्माका विनाश' कहते हैं ॥ ३१ ॥ आत्माकी उन्नति ही मनुष्यका स्वार्थ है; आत्माद्वारा आत्माके नाशसे बढ़ कर और कोई 'हानि' नहीं है। क्योंकि इस आत्मासे ही सब वस्तुएँ प्रिय होती हैं अर्थात् आत्माको ही (किसी प्रकारका) सुख पहुँचानेके लिये मनुष्य सब काम करता है ॥ ३२ ॥ विषय और कामनाओंका ध्यान ही मनुष्योंके स्वार्थनाशका कारण हैं, क्योंकि इन्हींके कारण यह जीव ज्ञान व विज्ञान दोनोसे भ्रष्ट हो कर जड़ताको प्राप्त हो जाता है ॥ ३३ ॥ राजन्! जो व्यक्ति घोर संसारके पार होनेकी इच्छा रखता हो उसे उचित है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें विघ्न डालनेवाली वस्तुओंका संग कभी न करे ॥ ३४ ॥ ऊपर कहे हुए चारो पदार्थोंमें मोक्ष ही श्रेष्ठ है क्योंकि धर्म, अर्थ और काममें सदैव कालका भय है इस लिये

मोक्षके ही लिये यत्न करना योग्य है ॥ ३५ ॥ ब्रह्मासे लेकर 'हम' आदि सब प्राणी कालके द्वारा गुणोंको क्षोभ होनेके पीछे उत्पन्न हुए हैं, इस कारण सभी शरीरधारी कालके अधीन हैं। कालरूप ईश्वरका भय सबको है, इसीसे उनका कल्याण (मोक्षके सिवा) नहीं है ॥ ३६ ॥ अतएव हे राजन्! जो भगवान् इन्द्रिय, प्राण, बुद्धि और अहंकारसे ढँके हुए चर और अचर पदार्थोंके हृदयमें जीवके नियन्तारूपसे प्रकाशमान है-तुम जानो कि "मैं वही परमात्मा हूँ" अथवा पहले उस ब्रह्मको पहचानो। महाराज! एक वही नित्य है और सब अनित्य है। वह भगवान् प्रत्यक्ष हैं क्योंकि हरेक रोममें उनका प्रकाश है। वह सर्वव्यापी एवं अन्तर्यामी हैं ॥ ३७ ॥ हे राजन्! वह ईश्वर चराचर जगत्के अन्तरमें अवस्थित हैं किन्तु मायासे मुक्त हैं। जैसे मालामें सर्पका भ्रम होता है किन्तु विवेकका उदय होने पर फिर सर्पका भ्रम मिट जाता है और वह यथार्थ माला प्रतीत होती है वैसे ही कार्य-कारण-मयी माया आत्मामें भ्रमवश अर्थात् अज्ञानके कारण प्रतीत होती है, किन्तु वास्तवमें आत्मा लिप्त नहीं है। क्योंकि वह आत्मा नित्य (सत्य) शुद्ध एवं बोधरूप (सदैव मुक्त) है; इसी कारण गुणमय कर्मोंसे मलिन मायासे अलग है। हम उसी निर्गुण, निराकार ईश्वरकी शरण हैं ॥ ३८ ॥ साधुजन जैसे उस परम पुरुषके चरणकमलकी अँगुलियोंकी कान्तिका ध्यान करके कर्म-ग्रथित अहंकाररूप गाँठको काट सक्ते हैं वैसे जो संपूर्ण योगी सब विषयोंसे बुद्धिको हटा चुके हैं एवं इन्द्रियोंके वेगको रोक चुके हैं वे भी नहीं समर्थ होते (अर्थात् ज्ञानमार्गकी अपेक्षा भक्तिमार्गमें ईश्वरकी प्राप्ति सहज ही होती है)। अतएव तुम शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले उन्हीं वासुदेवका भजन करो ॥ ३९ ॥ इस घोर संसारसागरमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि छः ग्राह हैं। इस सागरको जो लोग बिना ईश्वरका आश्रय लिये पार होना चाहते हैं वे कोरे ज्ञानी इसमें पड़ कर अनेक कष्ट उठाते हैं एवं इससे उबरनेके लिये भी उनको बहुत क्लेश भोगने पड़ते हैं। इस कारण आप भगवान् हरिके भजनयोग्य चरणकमलोंको नाव बना कर क्लेशमय और दुस्तर इस संसारसागरके पार होइये ॥ ४० ॥ **मैत्रेयजी बोले**। हे विदुर! ब्रह्मज्ञानी एवं ब्रह्माके पुत्र सनत्कुमारने जब इस भाँति आत्माकी गति दिखलाई तब महाराज पृथु भली भाँति उनकी बड़ाई करके यों कहने लगे ॥४१॥ **राजा पृथु बोले**। दीनबंधु हरिने यज्ञमें प्रकट हो कर प्रथम जो मुझ पर अनुग्रह किया था (अर्थात् कहा था कि सनत्कुमारजी तुमको ज्ञानका उपदेश देने आवेंगे) उसीको पूर्ण करनेके लिये आप लोगोंका यहाँ शुभ आगमन हुआ है ॥ ४२ ॥ कृपा करना ही आप लोगोंका स्वभाव है; आप लोग जिस कार्यके लिये आये थे उसे भलीभाँति पूर्ण किया। किन्तु अब मैं गुरु-दक्षिणामें आपको क्या दूँ? क्योंकि मैंने शरीरसहित सर्वस्व साधुओंको समर्पण कर दिया है; उन्होंने उसे ग्रहण कर फिर प्रसादकी भाँति मुझे लौटा दिया है,

मैं उनकी जूठन भोग करता हूँ ॥ ४३ ॥ अथवा नौकर जैसे मालिकको उसीकी वस्तु (पान, इलायची, खानेके पदार्थ आदि) देता है वैसे मैं भी आप लोगोंको प्राण (शरीर), स्त्री, पुत्र, घर, घरकी सामग्री (गिरिस्ती), राज्य, पृथ्वी, सेना, खजाना आदि समर्पण करता हूँ, आप स्वीकार करें ॥ ४४ ॥ (यदि कहो कि राज्य आदिके अधिकारी आप ही हैं हम तो ब्राह्मण हैं-सो ऐसा नहीं है) वेद शास्त्रको भलीभाँति जाननेवाला ब्राह्मण सेनापति, राजा, दण्डदेनेवाला (हाकिम) और सब लोगोंका अधिपति भी हो सक्ता है ॥ ४५ ॥ सब पदार्थ ब्राह्मणोंके ही हैं। ब्राह्मणलोग अपना ही पहनते हैं, अपना ही खाते हैं, अपना ही देते हैं। ब्राह्मणोंकी ही कृपासे क्षत्रिय आदि तीन वर्ण खाते पीते और भोग करते हैं ॥ ४६ ॥ जिन वेदका अर्थ और तत्त्व जाननेवाले ब्राह्मणों (सनकादिकों) ने आत्मतत्त्वके विचार द्वारा आत्माका तत्त्व मुझे दिखा दिया वे करुणासिन्धु योगीश्वर अपने २ कर्मोंसे ही सदा सन्तुष्ट रहें, क्योंकि मैं सिवा हाथ जोड़नेके कोई और किसी प्रकारका प्रत्युपकार (उपकारका बदला) उनके साथ नहीं कर सक्ता, जिससे वे प्रसन्न हों ॥ ४७ ॥ श्रीमैत्रेयजी कहते हैं। हे विदुर! आदिराज पृथुने यों कह कर उन ऋषियोंकी पूजा की, उसके उपरान्त राजाके स्वभावकी प्रशंसा करते हुए वे ऋषि सबके देखते ही देखते आकाशमार्गसें चले गये ॥ ४८ ॥ हे कौरव! अध्यात्मज्ञानकी शिक्षासे महत्तम पृथुजीके हृदयमें जो एकाग्रता जन्मी थी उसीसे वे अपनेको कृतार्थ मान कर आत्मानन्दके भोगमें सन्तुष्ट हुए ॥ ४९ ॥ महाराज पृथुजी देश, समय, सामर्थ्य, योग्यता और धनके अनुसार शुभ कर्म करके उन कर्मोंका फल कृष्णार्पण करने लगे (अर्थात् कामनारहित हो कर "ईश्वरपूजा" आदि शुभ कर्म करने लगे) ॥ ५० ॥ कर्मोंका फल ब्रह्मको अर्पण करके कर्मोंमें अनासक्त एवं ईश्वरमें एकाग्र हो कर अवस्थित हुए एवं मायासे भिन्न जो आत्मा है उसको कर्मोंका साक्षी मानते भये ॥ ५१ ॥ जैसे अहंकारहीन सूर्य संपूर्ण पदार्थोंके भीतर रह कर शुद्ध रहते हैं वैसे महाराज पृथु गृहस्थाश्रममें साम्राज्यलक्ष्मीसे युक्त हो कर भी इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त नहीं हुए क्योंकि उन्होंने अहंकार ("मैं हूं, मैं करता हूँ, मेरा है" इत्यादिभावों) को त्याग दिया ॥ ५२ ॥ इस भाँति इस अध्यात्मयोगका अभ्यास करते हुए निष्काम एवं निरभिमान राजा पृथु संपूर्ण सांसारिक कर्म करने लगे। इस प्रकार राज्यशासन करते हुए पृथुने अपनी अर्चि नाम रानीमें अपने ही समान गुणवान् पाँच पुत्र उत्पन्न किये ॥ ५३ ॥ उन पाँचोंके विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण और वृक ये नाम हुए। भगवान्के भक्त राजा पृथु जगत्की रक्षाके लिये समय २ पर एक ही शरीरसे सब लोकपालोंके कार्य करने लगे। अपनी सौम्यमूर्ति (शान्त आकार) और मन व वाणी एवं सुन्दर गुणोंसे प्रजाओंके चित्तको प्रसन्न करनेके कारण दूसरे 'राजा सोम

(चन्द्रमा)' के[1] समान 'राजा' इस नामको प्राप्त हुए। राजा पृथुजी जैसे सूर्य अपनी किरणोंके द्वारा पृथ्वीका जल सोख कर फिर (वर्षा) समय पर उसे बरसाते हैं और विश्वभरमें तपते हैं वैसे ही प्रजासे 'कर' द्वारा धन ले कर समय २ पर उसे प्रजाकी भलाईमें खर्च करते थे एवं पृथ्वीभरमें प्रचण्ड तेजसे तपते थे (अर्थात् सभी राजा उनके तेजसे भीत हो कर अधीन थे) ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ॥ ५६ ॥ जैसे अग्निको कोई पकड़ नहीं सक्ता वैसे ही प्रचण्ड तेजके कारण दुर्धर्ष थे और महेन्द्रके समान दुर्जय एवं पृथ्वीकी भाँति क्षमा करनेवाले थे। स्वर्गके समान सब मनुष्योंको चित-चाही वस्तु देनेवाले थे ॥ ५७ ॥ मेघके समान प्रजाओंको कामनाके अनुसार धन और सुख आदि देते थे। समुद्रके समान गंभीर थे, उनके हृदयकी थाह कोई नहीं ले सक्ता था। सत्यमें अर्थात् दृढ़तामें सुमेरु पर्वतके समान थे, धर्मकी शिक्षा देनेमें धर्मराजके तुल्य थे। आश्चर्य देनेवाली वस्तुओं (विषयों) से हिमवान्‌के समान पूर्ण थे। वह कुबेरके समान धनी और वरुणके समान गुप्तधनसे युक्त थे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ वायुके समान सब जगह जा सक्ते थे एवं उनका बल, साहस, पराक्रम और वेग भी वायुके तुल्य था। भगवान् रुद्रके समान उनका भी तेज असह्य था ॥ ६० ॥ सुन्दरतामें साक्षात् कामदेव थे एवं सिंहके समान मनस्वी (साहसी) थे। मनुकी नाईं प्रजा-वत्सल और ब्रह्माके समान सब प्रजाओंके प्रभु थे। ब्रह्मज्ञानमें बृहस्पतिजीके समान थे एवं विष्णु भगवान्‌की भाँति जितेन्द्रिय थे। गऊ, ब्राह्मण, गुरु और भगवद्भक्तजन, इन पर भक्ति करना एवं लज्जा, सत्चरित्र और पराये कार्यके सिद्ध करनेका उद्योग अर्थात् परोपकार- इन सब बातोंमें वह अपने ही समान थे, अर्थात् अद्वितीय थे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

कीर्त्योर्ध्वगीतया पुम्भिस्त्रैलोक्ये तत्र तत्र ह ।
प्रविष्टः कर्णरंध्रेषु स्त्रीणां रामः सतामिव ॥ ६३ ॥

त्रिलोकीके सब लोग महाराज पृथुकी शुद्ध कीर्तिका कीर्त्तन करते थे, इस कारण श्रीरामचन्द्रजी जैसे सज्जनोंके हृदयमें कानकी राहसे पैठे हुए हैं वैसे पृथुजी भी कुलकामिनियोंके हृदयमें कानकी राहसे पैठे थे (अर्थात् उनकी कीर्ति और वह त्रिलोकीमें विख्यात थे) ॥ ६३ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

---

१ सम्पूर्ण जगतके राजा (रंजन करनेवाले अर्थात् प्रसन्न करनेवाले) चन्द्रदेव ही हैं, वेदमें भी लिखा है कि चन्द्रदेव ही सब औषध, ब्राह्मण और विश्वमात्रके राजा हैं।

त्रयोविंश अध्याय।

महाराज पृथुका वैकुण्ठवास।

मैत्रेय उवाच—दृष्ट्वाऽऽत्मानं प्रवयसमेकदा वैन्य आत्मवान्।
आत्मना वर्धिताशेषस्वानुसर्गः प्रजापतिः ॥१॥

श्रीमैत्रेयजी बोले। आत्मज्ञानी एवं प्रजाका पालन करनेवाले पृथुजीने अन्न आदिकी सृष्टि और पुर, गांव, शहर आदिकी रचनामें अपनी जवानी बिता कर बुढ़ापा आया देख कर यों विचार किया कि अब मैं बूढ़ा हुआ हूँ, पृथ्वीके रहनेवाले चर और अचर प्राणियोंकी वृत्ति (जीविका) मैंने कल्पित कर दी और साधुजनोंके धर्म्मका पालन किया है एवं जिस लिये मेरा जन्म हुआ है उसे भली भाँति पूरा करके ईश्वरकी आज्ञा(कर्तव्य)को भी पूरा कर चुका हूँ ॥ १ ॥ २ ॥ हे विदुर ! यों विचार कर राजा पृथु कन्यातुल्य जो पृथ्वी है उसे पुत्रके हाथमें सौंप कर केवल रानीको साथ ले तपोवनको तप करनेके लिये गये। राजाके विरहसे पृथ्वी मानों रोने लगी और सब प्रजाका चित्त उदास होगया ॥ ३ ॥ राजा पृथुने प्रथम अवस्थामें जैसे पृथ्वीके जीतनेमें यत्न किया था वैसे ही वनमें जाकर वानप्रस्थ मुनि जिस उग्र तपको करते हैं उसमें तत्पर हुए, उस समय कोई भी विघ्न उनको डिगा न सका ॥ ४ ॥ कुछ दिन कंदमूलफलका आहार करके, फिर कुछ दिन सूखे पत्ते खा कर, फिर कुछदिन केवल जल पी कर और फिर कुछ दिन केवल वायुको खा कर पृथुजीने घोर तप किया ॥५॥ वीर पृथु, गर्मियोंमें, पंचाग्नि (चारो ओर जलती हुई अग्निमें ऊपर सूर्य्य) ताप कर और वर्षामें खुले स्थानमें रह कर एवं शिशिर ऋतुमें गले गले भर पानीमें रह कर तपमें तत्पर हुए। मुनि-अवस्थाको प्राप्त पृथुजी सर्वदा पृथ्वी पर सोने लगे ॥ ६ ॥ क्षमाको धारण करके शान्त स्वभाव ग्रहण किया, वाणी और सब इन्द्रिय एवं मनका दमन किया; वीर्य्य (धातु)को ब्रह्माण्डमें चढ़ा लिया (जिसमें वीर्य्य स्खलित न हो जाय और मन चलायमान न हो) और प्राणवायुको प्राणायामद्वारा अपने वशमें किया। राजाने इस भाँति कृष्णकी आराधनाके पहले उत्तम तप करके अन्तःकरणको शुद्ध किया ॥ ७ ॥ इस प्रकार क्रमशः सिद्ध तपसे राजाके सब कर्म्म छूट गये एवं अन्तःकरण शुद्ध हो गया, प्राणायाम करनेसे काम, क्रोध आदि शत्रुओंका मार्ग रुक गया और वासनारूप बंधन छूट गया अर्थात् वह निराकार ब्रह्मकी आराधना करनेकी योग्यता पा गये ॥ ८ ॥ उस समय पुरुषोंमें श्रेष्ठ राजा पृथु, जो सनत्कुमार भगवान् परम उत्तम ब्रह्मज्ञानयोग बता गये थे, उसीसे परमपुरुषका भजन करने लगे ॥ ९ ॥ इस प्रकार परम भागवत एवं साधु राजापृथु श्रद्धापूर्वक नित्य यत्न करने लगे, जिससे परब्रह्ममें उनको शीघ्र ही एकान्त (दृढ़ वा अनन्य) भक्ति हुई ॥ १० ॥ और भगवान्की सेवासे

चित्त शुद्ध हो गया, तब उस शुद्ध चित्तमें वैराग्ययुक्त ज्ञान उत्पन्न हुआ। उस ज्ञानरूप अस्त्रमें, हरिके ध्यानसे पुष्ट जो भक्ति है उसकी धार धर कर, उसी (ज्ञानरूप अस्त्र) के द्वारा राजा पृथुने संसार(जन्ममरण)का मूल जो अहंकार है उसे नष्ट कर दिया ॥११॥ देहमें जो आत्मबुद्धि थी वह भी दूर हो गई, क्योंकि उन्होने उस समय आत्माके तत्त्वको भलीभाँति जान लिया; अतएव वह चेष्टारहित हो गये (अर्थात् योगद्वारा प्राप्त जो अणिमा आदि सिद्धियाँ हैं उन्हेभी नहीं ग्रहण किया)। उसके उपरान्त जिस ज्ञानसे हृदयकी गाँठ जो देहाभिमान है उसे छिन्न किया था उस ज्ञानको भी त्याग दिया अर्थात् उसके लिये भी यत्न करना छोड़ दिया। सिद्धियोंमें जो राजाका मन नहीं डिगा सो कुछ आश्चर्य्य नहीं है क्योंकि उनको हरिमें दृढ़ भक्ति हो गई थी। योगियोंको जब तक हरिकी कथाओंमें भक्ति नहीं होती तब तक योगमार्गके पारदर्शी होने पर भी वे अज्ञानसे मुक्ति नहीं पाते अर्थात् सिद्धि आदि तुच्छ पदार्थोंमें उनका मन चलायमान हो जाता है और वे मोक्ष नहीं पाते ॥१२॥ वह वीरश्रेष्ठ राजा पृथु इस भाँति आत्माको परमात्मामें लगा कर ब्रह्मरूप हो गये एवं कालके आने पर अपने स्थूल शरीरको त्याग दिया ॥१३॥ शरीर छोड़नेके समय दोनो एड़ियोंसे वायु(गुदाछिद्र)को बंद करके अपानवायुको क्रमशः मूलाधारसे ऊपर उठाया, फिर अपानको नाभिदेशमें ला कर समानवायुमें मिला कर क्रमशः हृदयमें, फिर वक्षःस्थलमें, फिर कण्ठमें, फिर भौंहोंके बीचमें ले जा कर स्थापित किया॥ १४ ॥ उसके उपरांत उस प्राणवायुको ब्रह्माण्डमें ले जा कर रोका। तदनन्तर महात्मा पृथुने शरीरस्थित वायुको वायुमें, देहके कठिन भागको पृथ्वीमें, देहके तेजको तेजमें, देहकी इन्द्रियोंके छिद्रोंको आकाशमें एवं देहके रस अर्थात् रुधिरको जलमें लीन कर दिया। इस प्रकार शरीरस्थित पंचतत्त्वको पंचतत्त्वमें मिला कर अद्वितीय आत्माके पानेके लिये पञ्चमहाभूतोंको भी लीन कर दिया। अर्थात् पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें और वायुको आकाशमें मिला दिया ॥ १५ ॥ १६ ॥ फिर मनको इन्द्रियोंमें और इन्द्रियोंको पंचतन्मात्रमें लय-कर दिया। अन्तमें अवशिष्ट आकाश और पंचतन्मात्रको अहंकार (इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतों)के सहित महत्तत्त्वमें लीन कर दिया एवं संपूर्ण गुणोंका स्थान जो महत्तत्त्व है उसे मायामय उपाधि जो जीव है उसमें लीन कर दिया। राजा, इसके पहले मायाके गुणोंसे युक्त जो 'जीव'अवस्था है उसे प्राप्त थे, किन्तु अब वह ज्ञान और वैराग्यके बलसे उस 'जीव'अवस्थाको त्याग कर अपने ब्रह्मरूपमें स्थित हो जीवन्मुक्त हो गये ॥ १७ ॥ १८ ॥ पृथुकी स्त्री महारानी अर्चि भी उनके साथ वनको आई थीं। किन्तु उनके अंग बहुत ही कोमल थे, इस कारण वह वनकी कठोर पृथ्वीमें पैदल चलने योग्य न थीं ॥ १९ ॥ अपने पतिकी नाईं नित्य व्रत करनेसे और 'भूमिमें शयन करना' आदि नियमोंका पालन करनेसे एवं ऋषियोंकी भाँति केवल कंदमूलफलका आहार करनेसे वह बहुत ही दुर्बल होगई थीं, किन्तु इसमें उन्हे

कुछ कष्ट नहीं जान पड़ता था, क्योंकि प्रिय पतिके हाथ फेरनेसे और आदर करनेसे उनका सब कष्ट दूर हो जाता था ॥२०॥ इस समय अपने और पृथ्वीके प्यारे पति पृथुके शरीरको चेतनाहीन देख कर पतिव्रता अर्चि रानीने कुछ विलाप किया एवं फिर सती होनेके विचारसे पर्वतके शिखर पर अपने हाथ चिता लगाई ॥२१॥ फिर समयोचित कर्त्तव्यकर्म करके नदीके जलमें स्नान किया और उदारचरित्र जो पृथु हैं उन्हे तिलांजलि दी। फिर स्वर्गमें विमानों पर स्थित देवगणको प्रणाम किया और चिता पर पतिके शरीरको धर कर आग लगा दी एवं तीन बार उसकी प्रदक्षिणा करके हृदयमें पतिके चरणोंका ध्यान करते हुए आप भी चितामें बैठ गईं ॥ २२ ॥ सती रानीको अपने वीरश्रेष्ठ पतिके साथ सती होते देख कर आकाशमें स्थित देवगणसहित अगणित देववधू उनकी प्रशंसा कर अनेक आशीर्वाद देने लगीं ॥ २३ ॥ एवं उस मंदरपर्वतके शिखर पर, जहाँ रानी सती हुईं, फूलोंकी वर्षा करने लगीं। स्वर्गमें नगाड़े बजने लगे और देवियाँ आपसमें यह कहने लगीं ॥ २४ ॥ **देवियाँ बोलीं** । लक्ष्मीजी जैसे यज्ञपुरुष नारायणका अनुगमन करती हैं वैसे ही इन महारानीने तनमनसे राजराजेश्वर पृथुका साथ दिया; अहो ! यह धन्य हैं ॥ २५ ॥ देखो यह पतिव्रता, जिस कर्मको कोई मनसे भी नहीं कर सक्ता वह दुष्कर कर्म्म करनेके कारण हम लोगोंसे भी ऊपर अपने पति पृथुके साथ जा रही हैं ॥ २६ ॥ मनुष्यका जीवन बहुत ही चंचल है, किन्तु इस मनुष्यजीवनमें जो व्यक्ति भगवान् तक पहुँचानेवाले कर्म्मरहित ज्ञानकी शिक्षा प्राप्त करते हैं, उन्हे कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है ॥ २७ ॥ किन्तु अनेक कष्ट भोगनेके उपरान्त मुक्तिसाधक मनुष्यजन्मको पृथ्वीमण्डलमें पा कर जो व्यक्ति विषयभोगमें लिप्त रहता है वह निश्चय इन्द्रियोंके द्वारा ठगा गया! हाय! उसने अपने हाथ अपना अनिष्ट किया! ॥ २८ ॥ **मैत्रेयजी कहते हैं** । हे विदुर! इस भाँति देवगणकी स्त्रियाँ अर्चिकी बड़ाई करने लगीं और इधर अर्चि पतिके लोकमें पहुँचीं अर्थात् आत्मज्ञानी जनोंके शिरोमणि और श्रीकृष्णके चरणोंकी शरणमें प्राप्त महाराज पृथु जिस लोकको प्राप्त हुए उसी लोकमें वह भी प्राप्त हुईं ॥ २९ ॥ भगवद्भक्त राजा पृथुका यह उदार एवं सुन्दर चरित्र हमने आपसे वर्णन किया है ॥ ३० ॥ इस परम पवित्र चरित्रको जो कोई एकाग्रमन होकर श्रद्धासहित पढ़ता है और सुनता है अथवा सुनाता है वह राजा पृथुकी गतिको प्राप्त होता है ॥३१॥ इस चरित्रके पढ़ने सुननेसे ब्राह्मणका ब्रह्मतेज बढ़ता है, राजाको चक्रवर्त्ती राज्य मिलता है, वैश्य धन-अन्नसे युक्त होता है एवं शूद्रका सम्पूर्ण पातक नष्ट हो जाता है ॥ ३२ ॥ स्त्री अथवा पुरुष इस चरित्रको आदरसहित तीन बार सुने तो यदि उसके सन्तान न हो तो सुंदर संतान पाता है और जो दरिद्री है तो बड़ा भारी धनी हो जाता है ॥ ३३ ॥ जिसके कीर्त्ति नहीं है वह विश्वविख्यात होता है और मूर्ख मनुष्य पण्डित होता है। यह

चरित्र परममंगलमय है, इसके पढ़ने सुननेसे सब अमंगल नष्ट हो जाते हैं॥३४॥ इससे धन और यश मिलता है, आयु बढ़ती है, स्वर्ग मिलता है एवं कलियुगके मल हृदयसे दूर हो जाते हैं। जिन लोगोंकी धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्षमें भली भांति सिद्धि पानेकी इच्छा हो उन्हे उचित है कि वे श्रद्धापूर्वक उक्त चतुर्वर्गके देनेवाले इस चरित्रका श्रवण करें॥ ३५॥ जो राजा युद्धमें जाते समय इस चरित्रको सुन कर जिन शत्रुओं पर चढ़ाई करता है वे स्वयं उसके अधीन हो कर भेंट देते हैं, जैसे कि राजा पृथुको सब राजा भेंट देते थे॥ ३६॥ जो पुरुष संसारके संगको त्याग कर भगवान्में निष्काम भक्ति करके व्यासजीके कहे हुए इस महात्मा पृथुके माहात्म्यकी सूचना देनेवाले चरित्रको मन लगा कर पढ़ता है उसे भी अवश्य पृथुजीकी गति मिलती है॥३७॥३८॥

अनुदिनमिदमादरेण शृण्वन्पृथुचरितं प्रथयन्विमुक्तसङ्गः॥
भगवति भवसिन्धुपोतपादे स च निपुणां लभते रतिं मनुष्यः॥३९॥

जो मनुष्य नित्यप्रति श्रद्धापूर्वक इस परमपवित्र पृथुके चरित्रको पढ़ता या सुनता है उसकी भगवान्में दृढ़ भक्ति होती है। इस भक्तिके होने पर फिर उसे जन्ममरणका बंधन नहीं होता क्योंकि हरिके चरण ही इस संसारसागरसे पार उतरनेकी नौका हैं और वह उन्हे पा जाता है॥ ३९॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

चतुर्विंश अध्याय।

रुद्रगीत-वर्णन।

मैत्रेय उवाच—विजिताश्वोऽधिराजासीत्पृथुपुत्रः पृथुश्रवाः॥
यवीयोभ्योऽददात्काष्ठां भ्रातृभ्यो भ्रातृवत्सलः॥१॥

श्रीमैत्रेयजी बोले! हे विदुर! राजा पृथुके परमधाम जाने पर उनके पुत्र महायशस्वी विजिताश्व पृथ्वीमण्डलके महाराज हुए। जैसे सब राजा लोग पृथुके अधीन रह कर भेंट देते थे वैसे ही विजिताश्वको भी देने लगे। विजिताश्वने अपने प्रिय भाइयोंको चारो दिशाओंका राज्य दिया अर्थात् हर्य्यक्षको पूर्व्व दिशा, धूम्रकेशको दक्षिण दिशा, वृकको पश्चिम दिशा और द्रविणको उत्तर दिशाका स्वामी बनाया॥१॥२॥ विजिताश्वने इन्द्रसे अन्तर्द्धानविद्या (अदृश्य हो जाना) पाई इस लिये उनका 'अन्तर्द्धान' नाम भी हुआ। इन्होने अपनी शिखण्डिनी नाम रानीमें अपने ही समान गुण, रूप और बलवाले पावक, पवमान और शुचि नाम तीन पुत्र उत्पन्न किये। ये तीनो अग्नि थे सो वसिष्ठऋषिके शापसे मनुष्ययोनिमें

उत्पन्न हुए और शाप छूट जाने पर फिर 'अग्नि' हो गये ॥ ३ ॥ ४ ॥ अन्तर्द्धानने अपने पिता पृथुके अश्वमेध यज्ञमें इन्द्रको, घोड़ेका चुरानेवाला जान कर भी नहीं मारा। उनके नभस्वती नाम एक दूसरी रानी भी थी; उसके गर्भसे 'हविर्द्धान' नाम और एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ 'कर' 'दण्ड (जुर्माना)' 'शुल्क (चुंगी)'–इन तीन प्रकारसे राजाके कोषमें रुपया आता है। अन्तर्द्धानने इस राजवृत्तिको एक प्रकार प्रजाको पीड़ा पहुँचाना मान कर अपना जीवन यज्ञआदि कामोंमें विता दिया एवं नाममात्रको राजा रह कर सब राजकाज भाइयों पर छोड़ दिया ॥ ६ ॥ आत्मज्ञानी अन्तर्द्धानने उन यज्ञोंमें निष्काम हो कर भक्तभयहारी, पूर्ण, परमात्माका पूजन किया एवं उन्हीं परब्रह्ममें मन लगा कर ब्रह्मस्वरूप हो गये ॥ ७ ॥ हे विदुर! हविर्द्धानने अपनी स्त्री हविर्द्धानीमें बर्हिषद्, गय, शुक्र, कृष्ण, सत्य व जितव्रत ये छः पुत्र उत्पन्न किये ॥ ८ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! हविर्द्धानके पुत्र अतिभाग्यशाली राजा बर्हिषद् बड़े भारी योगी और कर्म्मकाण्ड (यज्ञादि) के करनेवाले हुए ॥ ९ ॥ वह ऐसे कर्म्मकाण्डमें तत्पर थे कि जहाँ एक यज्ञ करते थे उसीके पास फिर दूसरे यज्ञका आरंभ कर देते थे। इसी भाँति यज्ञके समय वेदी पर बिछाये हुए पूर्वमूल कुशोंसे उन्होने पृथ्वीमण्डल व्याप्त कर दिया अर्थात् ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ यज्ञ न किया हो,—इसी लिये उनका दूसरा नाम 'प्राचीनबर्हि' भी पड़ा ॥ १० ॥ राजा प्राचीनबर्हिने ब्रह्माजीकी आज्ञासे शतद्रुति नाम समुद्रकी कन्यासे व्याह किया। शतद्रुति अपूर्व सुन्दरी थीं, वह सर्व्वांगसुन्दरी नवयौवना शतद्रुति परम रमणीक गहने पहने व्याहमें जिस समय भाँवर फिरने लगीं उस समय उनका रूप देख कर अग्निका चित्त चलायमान हो गया जैसे पहले शुकी (१) पर हो गया था ॥ ११ ॥ उस नई व्याही हुई शतद्रुतिने अपने चरणोंके नूपुरोंके शब्दसे ही देवता, दानव, गंधर्व, मुनि, सिद्ध, मनुष्य और सर्प आदि सबके मन मोह लिये ॥१२॥ प्राचीनबर्हिके शतद्रुति रानीमें दस पुत्र हुए। उनका नाम 'प्रचेता' हुआ। उन धर्मकी मूर्त्ति प्रचेताओंका एक सा नाम, एक सा स्वभाव और आचरण था ॥ १३ ॥ प्रचेतागण पिताकी आज्ञाके अनुसार प्रजा उत्पन्न करनेकी कामनासे तप करनेके लिये समुद्रके भीतर गये और वहाँ पर दश हजार वर्ष तक तप करके हरिकी आराधना की ॥ १४ ॥ जब वे तप करनेकी इच्छासे जा रहे थे तब उनको राहमें महादेवजी मिले और प्रसन्न हो कर परमेश्वरकी आराधना करनेकी आज्ञा दी। वे लोग, शिवने जिस भाँति बताया था उसी भाँति इन्द्रियोंको जीत

(१) सप्तऋषियोंके यज्ञमें ऋषियोंकी स्त्रीको देख कर अग्निदेव मोहित हो गये। तब अग्निकी स्त्री स्वाहाने सप्तर्षियोंकी स्त्रीका रूप धर कर अग्निसे रमण किया और शुकी (तोतेकी स्त्री) का रूप धरके सेंठके वनमें वीर्यको छोड़ दिया। वही कहते हैं कि जैसे पहले सप्तर्षियोंकी स्त्रीके धोखेसे शुकीरूप स्वाहा पर अग्निका जी चल गया था।

कर नियमपूर्वक हरिका ध्यान, जप और पूजन करने लगे ॥ १५ ॥ विदुरजी बोले। हे ब्रह्मन्! जैसे प्रचेताओंसे राहमें शिवजीकी भेंट हुई और जो शिवने प्रसन्न हो कर उनको उपदेश दिया सो सब हमसे कहिये ॥ १६ ॥ हे ब्रह्मर्षे! जिन शिवको इष्टदेव मान कर मुनिजन केवल ध्यान करते हैं, दर्शन नहीं पाते, उन शिवके साथ मनुष्योंकी भेंट होना बहुत ही दुर्लभ है! ॥ १७ ॥ भगवान् शिवजी लोकोंका पालन करनेके लिये ही घोर वेष व शक्ति धारण किये हैं, वास्तवमें वह आत्मानन्दके भोगमें ही तृप्त हैं ॥ १८ ॥ मैत्रेयजी बोले। जब साधु-स्वभाव प्रचेताओंको प्राचीनबर्हिने सृष्टि करनेकी आज्ञा दी तब वे पिताके वचनको आदरपूर्वक शिर पर धारण कर तप करनेकी इच्छासे पश्चिम दिशाको चले ॥१९॥ पश्चिम दिशामें उन्होने एक बड़ा भारी तालाब देखा जो एक छोटा सा सागर जान पड़ता था। वह सरोवर महात्माओंके मनके समान स्वच्छ और गंभीर था, उसमें रहनेवाले मछली आदि सब जलके जीव प्रसन्न थे ॥ २० ॥ उसमें फूले हुए हजारों नीले और लाल कमल, अंभोज, कल्हार, इन्दीवर आदि भाँति २ के कमल शोभा बढ़ा रहे थे। किनारे पर हंस, कारण्डव, सारस, चकई चकवा आदि पक्षी बोल २ कर कलोल कर रहे थे ॥२१॥ जान पड़ता था कि मस्त भँवरोंके सुंदर स्वरको सुन कर किनारेके वृक्ष और लता फूले नहीं हैं मानो उनके रोम आनंदसे खड़े हो आये हैं। पद्मके पराग(धूल) को लेकर चल रहा वायु चारो ओर मानो आनंद फैला रहा है ॥ २२ ॥ वहाँ पर उन राजकुमारोंको पहले मृदंग, तबला आदि बाजोंका शब्द सुनाई दिया और उसके साथ ही दिव्य गाना एवं उसकी मनोहर तानें सुनाई पड़ीं। यह देख कर वे बहुत विस्मित हुये ॥ २३ ॥ वैसे ही उन्होने देखा कि तपे हुए सोनेके समान जिनके शरीरकी झलक है वह तीन नेत्रोंसे सुशोभित नीलकण्ठ महादेव सेवकगणसहित उस सरोवरसे निकले। उन प्रचेताओंने देखा कि शिवजीके पीछे २ देवगण स्तुति कर रहे हैं और उनका मनोहर मुख देखनेसे प्रकट होता है कि वह (शिवजी) प्रसन्न हो कर वरदानके लिये उद्यत हैं। यकायक वहाँ पर महादेवजीको देख कर प्रचेताओंको बड़ा विस्मय हुआ एवं उन्होने शिवजीको दण्डवत् प्रणाम किया ॥ २४ ॥ २५ ॥ शरणागतोंके संकटको काटनेवाले, धर्मके पालनेवाले भगवान् शिव उन धर्मके जाननेवाले एवं प्रसन्नचित्त व सुशील प्रचेताओंसे प्रसन्न हो कर यों बोले ॥ २६ ॥ शिवजी बोले। तुम राजा प्राचीनबर्हिके लड़के हो, यह मुझे विदित है और तुम जो करनेके लिये यहां आये हो-वह भी मुझसे छिपा नहीं है। तुम्हारा कल्याण हो, तुम पर अनुग्रह करनेके लिये ही मैंने दर्शन दिया है ॥ २७ ॥ तुम सच जानो कि जो कोई पुरुष, उस प्रकृति और पुरुषके स्वामी साक्षात् विष्णुके शरणागत है वह मुझे प्रिय है ॥ २८॥ अपने धर्ममें सैकड़ों जन्म तक दृढ़ रहने पर

पुरुषको ब्रह्माका पद मिलता है और उससे अधिक पुण्य करनेसे मेरा पद अर्थात् शिवलोक मिलता है । किन्तु वह व्यक्ति जो भगवान् विष्णुका भक्त है, शरीर छूटने पर सीधा विष्णुलोकको चला जाता है, जिसमें समयके आने पर हम सब देवगण लीन हो जाते हैं ॥ २९ ॥ जिसको अपने धर्ममें श्रद्धा है वह पुरुष अनेक जन्म बीतने पर ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है और उसके पीछे अधिक पुण्य करनेसे मुझको प्राप्त होता है । किन्तु जो भगवान्का भक्त है वह इस शरीरके छूटते ही मायाके प्रपंचसे रहित विष्णुपदको प्राप्त होता है जैसे कि मैं और अन्य सब देवता अपने अधिकारके अन्तमें लिंगशरीरके नष्ट होने पर विष्णुमें लीन हो जाते हैं ॥ ३० ॥ हे राजपुत्रगण! तुम परम भागवत हो, इसी कारण जैसे भगवान्को प्रिय हो वैसे ही मुझे भी प्यारे हो, भगवान्के भक्तोंको मेरे सिवा और कोई प्यारा नहीं है ॥ ३१ ॥ इसी लिये पवित्र और मंगलको सिद्ध करनेवाला, मोक्ष देनेवाला श्रेष्ठ जप तुमसे कहता हूँ; तुम सुनो ॥ ३२ ॥ **श्रीमैत्रेयजी कहते हैं** । इस भाँति दयायुक्त हो कर शिवजीने, अंजलि बांधे खड़े हुए उन राजपुत्रोंसे नारायणसम्बंधी वाक्य कहे ॥ ३३ ॥ **श्रीरुद्र बोले** । हे भगवन्! आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ लोगोंके कल्याण (ब्रह्मानंद-प्राप्ति) के लिये आपका उत्कर्ष (उन्नति) है । इसीसे मुझको भी कल्याण (ब्रह्मानन्द) का लाभ हो । आप सबके आत्मा हैं, आप सर्वत्र परमानंदरूपसे स्थित हैं, हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ ३४ ॥ हे भगवन्! लोकमय कमल आपकी नाभिसे उत्पन्न है, आप ही सबका कारण हैं । आप ही पंचतत्व, पंचतन्मात्रा और इन्द्रियोंके नियन्ता हैं । आप चित्तके अधिष्ठाता, शान्त, विकारहीन (एकरूप) और स्वयं प्रकाशमान हैं ॥ ३५ ॥ आप ही अहंकारके अधिष्ठाता एवं अव्यक्त अनन्त हैं, आप ही अपने मुखकी अग्निसे त्रिलोकीको भस्म करनेवाले मृत्युरूप संकर्षण हैं । आपके ही द्वारा इस विश्वका बोध होता है, आप ही बुद्धिके अधिष्ठाता प्रद्युम्न हैं ॥ ३६ ॥ संपूर्ण इन्द्रियोंमें प्रधान जो मन है वह आपका ही स्वरूप है, आप ही मनके अधिष्ठाता अनिरुद्ध हैं, आपको वारंवार नमस्कार है । आप ही विश्वमें तेजसे पूर्ण सूर्यरूप हैं, आपको नमस्कार है। आपका क्षय और वृद्धि नहीं है, आप ही स्वर्ग और मोक्षका द्वार हैं और सबके अन्तर्यामी हैं, आपको नमस्कार है ॥ ३७ ॥ आप अग्निरूप हैं, आपको नमस्कार है । आप चातुर्होत्र कर्मका साधन हैं, क्योंकि आपके ही द्वारा चातुर्होत्र कर्म सिद्ध होता है । और आप ही पितरोंका अन्न हैं, आप ही देवगणका अन्न हैं, आप ही भगवान् चन्द्र हैं । ॥ ३८ ॥ आप ही सब लोगोंको तृप्ति देनेवाले जलरूप हैं, आपको नमस्कार है । आप ही पृथ्वीस्वरूप एवं प्राणियोंके शरीररूप और विराट् मूर्त्ति हैं, आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ आप ही त्रिलोकीके पालक वायुरूप और

शारीरिकबल मानसिकबलरूप हैं । आप ही आकाशरूप हैं, और शब्द-गुणयुक्त होनेके कारण संपूर्ण अर्थोंके प्रकाशक हैं, आपके ही आधार पर आन्तरिक और बाह्य व्यवहार होते हैं ॥ ४० ॥ आप पुण्यलोकरूप और अमिततेजयुक्त एवं स्वर्गस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है । जिन प्रवृत्ति और निवृत्तिके द्वारा यथाक्रम पितृलोक और देवलोक मिलता है वे प्रवृत्ति और निवृत्तिमार्गके कर्म आपका ही रूप हैं ॥ ४१ ॥ अधर्मके दुःखरूप फलके देनेवाले मृत्यु आप ही हैं, आपको नमस्कार है । हे ईश्वर! आप ही सब कर्मोंके फल देनेवाले और सर्वज्ञ हैं, आपको नमस्कार है ॥ ४२ ॥ आप ही सबमें श्रेष्ठ धर्मरूप हैं, धर्मात्मा कृष्ण-रूप हैं, आपकी बुद्धि कहीं कुंठित नहीं होती, आप पुराणपुरुष एवं सांख्ययोगके ईश्वर अर्थात् आचार्य हैं । आपको नमस्कार है ॥ ४३ ॥ आप ही अहंकाररूप रुद्र हैं, आप कर्ताशक्ति, कर्मशक्ति और कारणशक्तिसे युक्त हैं । आप ही ब्रह्मा हैं, आपसे ही अनेक प्रकारकी वाणियोंकी सृष्टि हुई है, आप ही ज्ञान-स्वरूप और क्रियास्वरूप हैं ॥४४॥ जो रूप आपके भक्तोंको प्यारा है और जिसकी सब भगवद्भक्त पूजा करते हैं एवं जो संपूर्ण इन्द्रियोंके गुणोंको प्रकाशित करनेवाला है वह अपना रूप हमको दिखाइये; हमें देखनेकी इच्छा है ॥ ४५ ॥ हे ईश ! आप की वह मूर्ति वर्षाकालके मेघके समान श्यामवर्ण और सब प्रकारकी सुन्दर-तासे पूर्ण है, जानुपर्यंत लंबी चारु चार भुजाओंसे शोभित है । आपका मुख परम सुन्दर और सब अंग यथायोग्य एवं सुडौल हैं । दोनो नेत्र कमलके पत्तेके समान विशाल और मनोहर हैं । नासिका और भौहैं बहुतही सुंदर हैं ॥ ४६ ॥ दन्तपंक्ति और अनमोल गोल कपोलोंसे युक्त मुखकमल देखने योग्य है । दोनो कान बराबर एवं आभूषणोंसे भूषित हैं । दोनो नयनोंकी कोरोंसे प्रेम व हँसी प्रकट है, काली २ घुंघरारी अलकोंकी अपूर्व शोभा है ॥ ४७ ॥ कमरमें कमलपुष्पके परागके समान पीतवर्ण वस्त्र शोभाको बढ़ा रहा है, मनोहर मकराकृति कुण्डल मुखमण्डलमें शोभायमान हैं । शिर पर किरीट मुकुट, भुजाओंमें बाजूबंद, नौरतन और हृदयमें हार, चरणोंमें नूपुर, कमरमें कर्धनी आदि भूषण सुशोभित हैं ॥४८॥ आप भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, माला और मणि आदि उत्तम ऋद्धियुक्त पदा-र्थोंको धारण किये हैं । सिंहके कंधे पर जैसे केसर (जटा) होती हैं वैसे ही गर्दनमें कौस्तुभमणि शोभाको प्राप्त है ॥ ४९ ॥ श्याम वक्षःस्थलमें स्थित लक्ष्मीकी का-न्तिके आगे सुवर्णकी रेखासे युक्त कसौटी (जिस पत्थर पर घिस कर सोनेकी प-रीक्षा होती है)की भी शोभा तुच्छ जँचती है । जैसे वायुके चलने पर पीपलका पत्ता हिलता है और उसकी शोभा होती है वैसे श्वासाके लेने और छोड़नेसे कम्पित त्रिवलीयुक्त हृदय, जोकि पीपलके पत्तेके समान चिकना और श्यामवर्ण है, उसकी शोभा होती है ॥ ५० ॥ गंभीर घुमावसे युक्त नाभि जब श्वासाके चढ़ने उतरनेमें

फड़कती है तब विदित होता है कि मानो यह विश्व जिस (नाभि)स्थानसे निकला है उसीमें समा रहा है। श्यामवर्ण नितम्ब पर प्रकाशमान पीताम्बर पड़ा है, उस-पर सोनेकी करधनीकी अपूर्व शोभा है ॥ ५१ ॥ चरण सम और मनोहर हैं। ऊरू और जंघा देखनेयोग्य हैं। दोनो जानु बहुत ऊंचे नहीं हैं ॥ ५२ ॥ भगवन्! आप ही तमोगुणी प्रवृत्तिवाले लोगोंके सुराह दिखानेवाले गुरु हैं। इसी कारण शरदऋतुके खिले हुए कमलके पत्तेके तुल्य प्रकाशमान और अरुणवर्ण चरणकम-लोंके नखोंकी कान्ति, जो हमारे हृदयके अंधकारको दूर करती है, उससे युक्त अभय चरणोंका हमको दर्शन दीजिये ॥५३॥ यह आपका भुवन-भय-भंजन रूप परम दुर्लभ है, जिन लोगोंकी इच्छा हो कि हमारा आत्मा शुद्ध हो उन्हे उचित है कि इस रूपका ध्यान करें। ऐसे आत्म-शुद्धिकी कामनावाले लोग भी इस रूपका केवल ध्यान ही कर सक्ते हैं—प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कर पाते। जो अपने धर्ममें स्थित हो कर आपकी भक्ति करते हैं उनको यह रूप अभय-दायक है ॥ ५४ ॥ आपको भक्तलोग पा सक्ते हैं, किन्तु और सब प्राणियोंके लिये आप दुर्लभ हैं, आप आत्मज्ञानी लोगोंकी गति हैं, जिनलोगोंका स्वर्गमें राज्य है वे भी आपके दर्शनकी कामना करते हैं ॥५५॥ मैं आपके चरणोंकी सेवा ही मांगता हूँ। क्योंकि आपको साधुजन भी बड़े परिश्रमसे प्रसन्न कर सक्ते हैं; ऐसे दुराराध्य जो आप हैं उन्हे भक्तिद्वारा प्रसन्न करके कौन ऐसा मूढ़ है जो आपके चरणोंकी सेवाको छोड़ स्वर्गादि सुखकी कामना करेगा? ॥ ५६ ॥ जो मृत्यु, प्रभाव और उत्साहपूर्वक अपने भौंहके इशारेसे विश्वका विनाश करता है वह भी आपके चरणोंकी शरणमें आये हुए पुरुष पर अपने अधि-कारका अभिमान नहीं कर सक्ता कि मैं इस पर अपनी प्रभुता कर सक्ता हूँ ॥५७॥ जिसमें भगवान्के भक्तोंका समागम हो उस आधे क्षणके बराबर स्वर्ग और मोक्षको भी मैं नहीं मानता, तब और राज्यआदि कामनाओंकी क्या गिनती है? ॥५८॥ भग-वन्! आपके चरण सब प्रकारके पापोंको नष्ट करनेवाले हैं। आपकी कीर्तिसे जि-नका हृदय शुद्ध हो गया है और आपके चरणोंसे निकले हुए तीर्थ (गंगा) में स्नान करनेसे जिनका शरीर शुद्ध हो गया है उन कपटरहित, सब प्राणियों पर दया करनेवाले, सरलप्रकृति साधुओंका संग आपके अनुग्रहसे हमें प्राप्त हो—यही हमारी प्रार्थना है ॥ ५९ ॥ जब साधुओंकी भक्ति और संग करनेसे मनुष्यका चित्त चंचलता-रहित और शुद्ध हो कर इन्द्रियोंके विषयोंकी ओर चलायमान नहीं होता एवं अज्ञानकी अंधकारमय कंदरामें पड़ कर नहीं भटकता तब वह आपके तत्त्वको देख या जान सक्ता है ॥ ६० ॥ आपका तत्त्व कैसा विचित्र है! आपके तत्त्वमें यह देख पड़ रहा विश्व प्रकाशित होता है एवं इस विश्वमें आपका तत्त्व प्रकाशित है। उसीको पर-ब्रह्म कहते हैं, वह परम ज्योतिःस्वरूप है और आकाशकी भाँति सर्वव्यापी है ६१ हे ईश! जो अपनी बहुरूपिणी मायाके द्वारा इस संसारको उत्पन्न करता है फिर

पालन करता है एवं संहार करता है किन्तु स्वयं विकारको नहीं प्राप्त होता अर्थात् अपने रूपमें स्थित रहता है और जिसकी माया औरोंकी बुद्धिमें भेदभाव या भ्रम उत्पन्न कर देती है किन्तु उस (ईश्वर)पर कुछ अपना प्रभाव नहीं दिखा सक्ती, आप वही स्वतंत्र परमात्मा हैं—ऐसा हमको प्रतीत होता है ॥ ६२ ॥ जो योगीजन सिद्धि पानेके लिये आपके पूर्वोक्त साकार रूपको कर्मोंके द्वारा श्रद्धापूर्वक भजते हैं वे ही वेद और तंत्रमें पण्डित हैं। किन्तु जो लोग आपके इस साकार रूपको न ग्रहण कर केवल ज्ञानमें प्रवृत्त होते हैं वे विद्वान् नहीं हैं; क्योंकि पंचतत्त्व इन्द्रिय और चार प्रकारके अन्तःकरणके नियंता आप ही हैं ॥ ६३ ॥ हे प्रभु! आप ही एक आदिपुरुष हैं, जिस समय आपकी माया-शक्ति आपमें लीन हो जाती है तब आप ही एक रह जाते हैं। तदनन्तर उस मायाशक्तिके प्रकट होने पर उसके द्वारा रज, तम और सत्त्व ये तीन गुण उत्पन्न होते हैं। उनसे महत्तत्त्व, अहंकार तत्त्व, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, देव, ऋषि, भूतगण एवं यह सब जगत् प्रकाशित होता है ॥ ६४ ॥ आप ही अपनी शक्ति मायासे अण्डज (पक्षी), स्वेदज (चिलुए आदि) उद्भिज्ज (वृक्ष), जरायुज (मनुष्य), इन चार प्रकारके जीवोंकी सृष्टि करके उनके शरीरोंमें अपने आत्मारूप चैतन्य अंशसे प्रवेश किये हुए हैं। पुर (शरीर)में ज्ञानभासरूपसे शयन (वास) करनेके कारण पण्डितजन आपको पुरुष कहते हैं। किन्तु आप अविद्यामोहित संसारी (जन्ममरणधर्मयुक्त) जीव (आत्मा) नहीं हैं, बरन् परमात्मा हैं। जैसे मधुमाखी किसी स्थानमें छत्ता लगा कर उसमें मधु (शहद) संचय करती हैं और उसे खाती है वैसे ही जो अविद्यामें मोहित हो कर्मोंके द्वारा क्षुद्र २ विषयसुखोंका संचय व भोग करता है वही जीवात्मा है; आप तो उसके साक्षी परमात्मा हैं ॥ ६५ ॥ प्रभु! आपका वेग अति प्रचण्ड है, 'काल' आपका यान (रथ) है। जैसे वायु मेघमण्डलीको अपनी अधीनतामें चलाता है वैसे ही आप पंचभूतोंके द्वारा प्राणियोंको अपनी अधीनतामें चलाते हैं। आपका तत्त्व अर्थात् रूप अलक्ष्य है ॥ ६६ ॥ मनुष्यकी विषयभोगकी लालसा कम नहीं होती बरन् "मैं ऐसा करूंगा, वैसा करूंगा" इस प्रकारकी नित्य नई चिन्तामें वह मतवाला रहता है; जो कोई लालसा पूरी हो जाती है तो उसमें भी तृप्ति नहीं होती, किन्तु लोभकी वृद्धि होती है। जैसे भूखा सर्प व्यग्र मूसेको सहसा झपट कर खा जाता है वैसे ही उस विषय-लालसामें व्यग्र पुरुषको कालरूप आप अचानक नष्ट कर देते हैं। आप सदा सावधान हैं ॥ ६७ ॥ आपसे विमुख होनेके कारण जिसका शरीर वृथा क्षीण हो रहा है ऐसा कौन पण्डित (समझदार) पुरुष है जो आपके चरणकमलोंको छोड़ अन्य विषयोंमें लिप्त होगा। विनाश होनेकी शंकासे दृढ़ विश्वास करके हमारे गुरु ब्रह्मा और चौदह मनु आपके चरणकमलोंकी पूजा करते हैं ॥ ६८ ॥ हे ब्रह्मन्! यह

विश्व रुद्र (संहारकारी काल) के भयसे नष्ट हो रहा है, अतएव आप हमारी गति अर्थात् रक्षक होइये। आपके मार्गमें गमन करनेसे मनुष्यको फिर कोई भय नहीं रहता॥ ६९॥ इस भाँति 'रुद्रगीत' सुना कर शिवजी बोले कि "हे राजपुत्रो! शुद्ध हो कर, अपने धर्मका आचरण करते हुए, अन्तःकरणको भगवान्में अर्पण करके अर्थात् हरिमें मन लगा कर इस रुद्रगीतका पाठ करो अर्थात् हृदयमें विचार करो; तुम्हारा कल्याण हो॥ ७०॥ वह हरि परमात्मा जो सब प्राणियोंमें आत्मा-रूपसे स्थित हैं उनको अपने आत्मामें स्थित जान कर नित्य उनका पूजन, ध्यान और स्तुति करो॥ ७१॥ हमसे तुमने यह श्रेष्ठ स्तोत्र पाया, अब मुनियोंके समान चित्तको वशमें करके इसे मनमें आदर और श्रद्धापूर्वक धारण करो और जपद्वारा इसका अभ्यास करो॥ ७२॥ प्रजापतियोंके पति ब्रह्माजीने जब सृष्टि करनेकी इच्छासे हम भृगुआदि पुत्रोंको उत्पन्न किया और उनकी आज्ञासे हम सृष्टि करनेको उद्यत हुए तब उन्होने यह पवित्र स्तोत्र हमको बताया था॥ ७३॥ इस स्तोत्रके अभ्याससे हमलोगोंका अज्ञान नष्ट हो गया और इसीके प्रभावसे हम प्रजापतियोंने प्रजापतिकी 'प्रजा उत्पन्न करो' इस आज्ञाके अनुसार अनेक प्रकारकी प्रजाओंको उत्पन्न किया॥ ७४॥ जो मनुष्य वासुदेवमें दृढ़ भक्ति स्थापित कर एकाग्र चित्तसे इस स्तोत्रको नित्य पढ़ता है उसे शीघ्र ही मंगलका लाभ होता है॥ ७५॥ जितने कल्याण-कारी विषय हैं उन सबमें ज्ञान ही प्रधान है, जिस व्यक्तिके पास परम कल्याणदायिनी ज्ञानरूप नौका है वह सहज ही दुष्पार दुःखसागरके पार हो सक्ता है॥ ७६॥ मैंने जो यह हरिका स्तोत्र तुमसे कहा है इसको जो कोई श्रद्धासहित पढ़ता है वह दुराराध्य हरि भगवान्की आराधना करता है॥ ७७॥ इस स्तोत्रके पाठसे जो कोई हरि भगवान्को प्रसन्न करता है वह जो जो कामना करता है सो सब श्रीहरिसे पाता है। एक हरि भगवान् ही सब कामनाओंके पूर्ण करनेवाले और मंगलमय हैं॥ ७८॥ जो कोई प्रातःकाल उठ कर हाथ जोड़ श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्रको सुनता या सुनाता है वह कर्मोंके बंधनसे छूट जाता है॥ ७९॥

गीतं मयेदं नरदेवनन्दनाः परस्य पुंसः परमात्मनः स्तवम्।
जपन्त एकाग्रधियस्तपो महच्चरध्वमन्ते तत आप्स्यथेप्सितम्॥८०॥

हे राजपुत्रो! परमपुरुष परमात्माका यह स्तोत्र हमने तुमसे कहा है। इसको एकाग्र मनसे जपते हुए तप करो, अन्तमें तुम्हारा जो मनोरथ है वह पाओगे॥८०॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

पञ्चविंश अध्याय।

पुरंजनोपाख्यानका आरम्भ और उसमें आत्माका बुद्धिके संयोगसे संसारमें भ्रमणक।

मैत्रेय उवाच—इति संदिश्य भगवान्बार्हिषदैरभिपूजितः।
पश्यतां राजपुत्राणां तत्रैवान्तर्दधे हरः॥ १॥

मैत्रेयजी बोले। प्रचेताओंने रुद्रदेवका पूजन किया। तब उनको इस भांति रुद्रगीतका उपदेश दे कर उन राजकुमारोंके देखते २ शंकर भगवान् अन्तर्द्धान हो गये॥ १॥ प्रचेतागणने शिवजीके बताये हुए रुद्रगीतका जप करते हुए जलके भीतर दश सहस्र वर्ष तक घोर तप किया॥ २॥ इधर राजा प्राचीनबर्हि, जो प्रचेताओंके पिता थे, कर्मकाण्डमें तत्पर हो कर यज्ञ करते थे। तब उन पर नारद-जीको दया आई, अतएव आत्मज्ञानी नारदजीने उनके पास आ कर ज्ञानका उपदेश किया॥ ३॥ **नारदजी बोले।** हे राजन्! तुम इस कर्मकाण्डसे अपने किस कल्याणकी आशा करते हो? दुःखका नाश और सुखका लाभ, येही दोनों बातें कल्याण हैं, सो इन कर्मोंसे न दुःखका नाश हो सक्ता है और न सुख मिल सक्ता है॥४॥ **राजा बोले।** हे महाभाग! मेरी बुद्धि कर्मोंमें लिप्त हो रही है। परम कल्याण जो मुक्ति है उसका ज्ञान मुझे नहीं है। भगवन्! कृपा करके आप मुझको निर्मल ज्ञानका उपदेश दीजिये, जिससे कर्मोंके पाशसे मेरी मुक्ति हो॥५॥ जो मनुष्य घरमें आसक्त हैं वे पुत्र, स्त्री, धन आदिको ही पुरुपार्थ मान कर संसारके अनेक मार्गोंमें (योनियोंमें) भटकते हैं; कभी परमार्थ(मोक्ष)के पानेमें समर्थ नहीं होते॥ ६॥ **श्रीनारदजी बोले।** हे प्रजाओंका पालन करनेवाले भूपति! देखो तुमने निर्दय हो कर यज्ञोंमें हजारों पशुओंकी हत्या की है; ये सब तुम्हारे मरनेकी राह देख रहे हैं॥७॥ तुम जब मरोगे तब ये सब तुम्हारी दी हुई पीड़ा-का स्मरण करके उसका बदला लेंगे। ये सब कुपित होकर यमराजके यहां वज्रके तुल्य पैने अपने सींगोंसे तुम्हारे शरीरको छिन्नभिन्न करेंगे॥ ८॥ तुमको बड़ा भारी संकट उपस्थित है, उस संकटसे जिसमें तुह्मारा निस्तार हो इसलिये मैं एक पुरातन इतिहास, जिसमें पुरंजनका चरित्र है, तुमसे कहता हूँ—तुम एकाग्र होकर सुनो। इसके सुननेसे तुमको ज्ञान होगा, जिससे मुक्ति मिलेगी॥९॥ हे राजन्! एक बड़ा यशस्वी पुरञ्जन नाम राजा था, उसका एक मित्र था, जिसका नाम और कर्म किसीको विदित न थे॥ १०॥ वह पुरञ्जन राजा अपने भोग करनेका स्थान खोजता हुआ पृथ्वीमें विचरने लगा, किन्तु उसको अपने भोग करने योग्य मन-माना स्थान कहीं न मिला, तब वह कुछ उदास सा होगया॥ ११॥ उसे जिन २

भोगोंकी कामना थी उनको पूर्ण करनेवाला कोई भी स्थान न मिला। उसने जो २ पुर पृथ्वीमें देखे वे उसे भले न लगे ॥ १२ ॥ इस प्रकार पृथ्वीमण्डलमें विचरते २ एक समय उसने हिमवान् पर्वतके दक्षिण शिखरों पर भारतवर्ष (कर्मक्षेत्र)में एक पुर देखा। वह पुर ऐसा था कि पुरंजनकी जो २ कामनाएँ थीं सब उसमें पूर्ण हो सक्ती थीं। उस पुरमें नव द्वार थे ॥ १३ ॥ देखा कि चारो ओर ऊंची दीवार, उपवन, अंटारी, खाई, झरोखे, फाटक आदि उस पुरीकी शोभाको बढ़ा रहे हैं। बहुतसे भवन बने हैं, जिनके शिखर सोने, चांदी, लोहे आदिके हैं ॥ १४ ॥ नीलम, बिल्लौर, वैडूर्य, मुक्ता, पन्ना, माणिक आदि रत्नोंसे सब महल जगमगा रहे हैं, प्रकाशयुक्त मणियोंको शिर पर धारण किये हुए नागोंसे सुशोभित नागोंकी पुरी भोगवतीके समान उसकी शोभा है ॥१५॥ वह पुर सभाभवन, चौक, राजमार्ग, क्रीड़ा करनेके घर, बाजारें, देवालय, धर्मशाला और ध्वजा-पताकाओंसे शोभित है। स्थान २ पर विद्रुम (मूंगे)की वेदियां बनी हैं ॥ १६ ॥ पुरीके बाहर एक उपवन (बाग) है, जो अनेक वृक्ष और लताओंसे परिपूर्ण है, उसमें सुंदर सरोवर बने हैं, जिनके किनारे बैठे हुए पक्षीगण अपनी अनेक भाँतिकी मधुर बोलियोंका कोलाहल कर रहे हैं ॥ १७ ॥ सब सरोवरोंके किनारेके वृक्षोंके कोमल पल्लव—झरनोंके ठंढे जलकी कणिकाओंसे युक्त वसन्तके शीतल वायुकी लहरोंसे हिल रहे हैं; जिनसे सरोवरोंकी अत्यन्त शोभा हो रही है ॥ १८ ॥ वहाँ अनेक प्रकारके वनके जीव परस्पर वैर विरोध त्याग कर मुनियोंके समान शान्त भावसे रहते हैं और मृगगण सिंह आदि घोर जीवोंके भयको त्याग कर इच्छापूर्वक विचरते हैं। कोकिलाएँ मधुर शब्द कर रही हैं, जिसको सुन कर पथिकको विदित होता है मानो कोकिलाएं उसे उस वनमें बुला रही हैं ॥ १९ ॥ उस उपवनमें पुरञ्जनने देखा कि एक श्रेष्ठ स्त्री अपनी इच्छासे उधर आ रही है, उस सुन्दरीके साथ उसके दस सेवक हैं, जो एक २ सौ स्त्रियोंके नायक हैं ॥ २० ॥ उस पुरीका द्वारपाल एक पांच शिरका सर्प उसकी रक्षा किया करता है, वह भी उसके साथ है। वह स्त्री अभी प्रौढ़ अवस्थाको नहीं पहुँची है अर्थात् अभी उसकी जवानीका आरंभ हुआ है। उसका रूप ऐसा सुन्दर है कि जो कोई देखे वही मोहित हो जाय। मुख प्रसन्न है। देखनेसे जान पड़ता है कि वह अपने समान पतिको खोज रही है ॥ २१ ॥ उसकी अवस्था १५।१६ वर्षकी है, नासिका परम सुन्दर है और दांत निर्मल और बराबर हैं, मुख कमलके समान प्रफुल्लित है और कपोल गोल २ अमोल हैं। समान कानोंमें कुण्डलोंकी अपूर्व शोभा है ॥२२॥ पीले रंगकी धोती पहने है, रंग सांवला है, नितंब विशाल हैं, सोनेकी कर्धनी पहने है। उसके इधर उधर मंद २ जाने पर नूपुरोंकी ध्वनि होती है। देखनेसे जान पड़ता है कि कोई देवलोककी अप्सरा आ रही है ॥ २३ ॥ दोनो स्तन समान

और गोल हैं, जिनके बीचमें सन्धि नहीं है। उन स्तनोंके देखनेसे जवानीकी अ-वाई प्रकट है। क्रीड़ापूर्वक गजराजके समान मस्त चालसे चल रही है, चलनेमें स्तन खुल जाते हैं तो उन्हे लज्जित भावसे अंचलसे ढँक लेती है ॥ २४ ॥ लज्जासे भरी मन्द मुसकानसे मनको हरनेवाली उस सुन्दरीके कटाक्ष सान धरे हुए वाणके समान पैने हैं और नयनोंकी कोरें उन वाणोंके पुंखके तुल्य हैं एवं प्रेमभावसे भरीहुई चंचल भौंहें ही धनुषके समान हैं। उस सुंदरीके कटाक्षरूप वाणोंसे पुरंजनका हृदय घायल होगया। तब पुरञ्जनने सुंदर और ललित वचनोंसे इस प्रकार पूछा ॥ २५ ॥ "हे कमलनयनी! तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? तुम कहांसे इस पुरीमें आई हो? हे सुन्दरी! तुम्हारी क्या इच्छा है? हमसे कहो ॥ २६ ॥ ये तुम्हारे साथी दस सेवक कौन हैं? और यह महा बलवान् ग्यारहवां योद्धा कौन है? ये तुम्हारे साथकी स्त्रियां कौन हैं? और यह तुम्हारे आगे चलनेवाला पाँच शिरका सर्प कौन है? ॥ २७ ॥ हे साध्वी! क्या तुम लज्जा हो? अपने पति धर्मको ढूंढ रही हो। या भवानी हो? अपने पति शिवको ढूँढ रही हो। या सरस्वती हो? अपने पति ब्रह्माजीको खोज रही हो। अथवा तुम लक्ष्मी हो? मुनियोंकी भांति एकाग्र हो कर इस निर्जन वनमें अपने मनभाये पति विष्णुको खोज रही हो। तुम उनके चरणोंकी सेवा चाहती हो, इसीसे तुम्हारे पति विष्णुकी सब कामनाएँ पूरी हो गई हैं। हमको जान पड़ता है कि अवश्य तुम लक्ष्मी देवी ही हो; परन्तु यह तो बताओ कि तुम्हारे कर-कमलसे कमलका फूल कहाँ गिर गया है? ॥ २८ ॥ किन्तु तुम उक्त देवियोंमें कोई नहीं हो, क्योंकि पृथ्वी पर खड़ी हो (देवतोंके चरण पृथ्वीमें नहीं लगते!)। हे सुन्दरी! मैं उत्तम कर्म करनेवाला और वीर पुरुषोंमें श्रेष्ठ हूँ। तुमको उचित है कि मुझे अपना पति बना कर मेरे साथ इस पुरीकी शोभा बढ़ाओ, जैसे लक्ष्मी देवी विष्णुदेवके साथ वैकुण्ठलोकको सुशोभित करती हैं ॥ २९ ॥ हे सुंदरी! तुम्हारे कुटिल कटाक्षोंसे मेरा मन विह्वल हो रहा है, उस पर तुम्हारी लजीली मुसकानके साथ चंचल भ्रुकुटियोंका इशारा पा कर यह भगवान् कामदेव मुझे पीड़ित कर रहे हैं। इस लिये अब मुझ पर अनुग्रह करो अर्थात् पति बनाओ ॥ ३० ॥ तुम्हारा मुखमण्डल सुन्दर भ्रुकुटियोंसे शोभित है, नेत्रोंके तारे चित्तको चुराये लेते हैं, मुखकमल नीली २ लंबी अलकावलियोंसे घिरा हुआ है, तुम्हारी वाणी बहुत ही मीठी है! हे मनोहर मुसकानवाली! तुम लज्जाके कारण अपना मुख मेरे आगे नहीं उठाती हो, तनिक यह अपना मनोहर मुख ऊपर उठा कर मेरी ओर देखो" ॥ ३१ ॥ हे वीर! जब पुरञ्जन किसी अधीर पुरुषकी भांति यों प्रार्थना करने लगा तब वह स्त्री भी वीर पुरुष पुरंजन पर मोहित हो कर हँसती हुई आदरपूर्वक यों कहने लगी ॥ ३२ ॥ "हे पुरुषश्रेष्ठ! मैं नहीं जानती कि मुझे या किसी

औरको उत्पन्न करनेवाला कौन है? और न मुझे अपना या किसी दूसरेका नाम और गोत्र ही मालूम है ॥ ३३ ॥ हे वीर! इस पुरीमें मैं रहती हूँ, इतना तो अवश्य विदित है पर इसके आगे कुछ नहीं जानती कि यह मेरे रहनेका स्थान जो पुरी है उसको किसने बनाया है? ॥ ३४ ॥ हे पुरुषसिंह! ये सब पुरुष मेरे सखा हैं और ये स्त्रियां मेरी सखी हैं। यह नाग मेरी पुरीका रक्षक है। जब मैं सोती हूँ तब यह सावधानतासहित पुरीकी रक्षा करता है और जागता रहता है ॥ ३५ ॥ हे शत्रुदमन! बड़ी बात जो तुम यहाँ आ गये, तुम्हारा कल्याण हो। जान पड़ता है कि आपको विषयभोगकी अभिलाषा है, मैं उस तुम्हारी इच्छाको अपने साथियों सहित अर्थात् इनकी सहायतासे पूर्ण करूँगी ॥ ३६ ॥ हे स्वामी! इस नव द्वारकी पुरीमें रह कर सौ वर्ष तक मेरे साथ विषयभोग करो ॥ ३७ ॥ आपके सिवा मैं और किसके साथ रमण करूँगी? अन्य पुरुष, जो कि निष्ठावाले हैं, जिन्होंने मनका दमन किया है, वे रतिके तत्त्वको क्या जानें वे निरे गँवार हैं! क्योंकि जिस सुखका शास्त्रमें निषेध नहीं किया गया उसको भी वे त्यागे हुए हैं, उनको परलोककी चिन्ता नहीं है; उनको 'कल क्या करना होगा?' इस प्रकारकी इस लोककी चिन्ता भी नहीं होती–अतएव वे पशुओंके समान हैं ॥ ३८ ॥ किसी आश्रममें गृहस्थाश्रमके समान सुख नहीं है। इस आश्रममें धर्म, अर्थ, काम, पुत्रसुख, मोक्ष, यश और शोकरहित पवित्रलोक आदि सब पदार्थ मिलते हैं। संन्यस्त लोग इनका नाम तक नहीं जानते! ॥ ३९ ॥ पण्डितोंका मत है कि पितृ, देव, ऋषि, मनुष्य एवं भूतगण (सब प्राणी)का और अपना (आत्माका) इस गृहस्थाश्रमसे कल्याण होता है ॥ ४० ॥ हे महाबाहो! मुझ सी कौन स्त्री होगी जिसका मन आप सरीखे उदार, सुन्दर, और स्वयं आये हुए वीर पुरुषको अपना पति न बनावे? आपकी जानु तक लंबी और सर्पदेहके समान मोटी एवं गोल भुजाओंमें जिसका चित्त आसक्त न हो, ऐसी कौन स्त्री है? आप क्या साधारण पुरुष हैं! आप कृपापूर्ण मनोहर मुसकानसे युक्त दृष्टिद्वारा दीनजनोंके मनकी व्यथा दूर करनेके लिये सर्वत्र विचरते हैं" ॥ ४१ ॥ **श्री नारदजी कहते हैं।** हे राजन्! इस भाँति पुरंजन और पुरंजनी, परस्पर प्रतिज्ञा कर उस पुरीके भीतर गये और आनंदपूर्वक सौ वर्ष बिताने लगे ॥ ४२ ॥ स्थान २ पर गवैये लोग ललित स्वरसे पुरंजनका यश गाने लगे। पुरंजन स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करने लगा। वह ग्रीष्म ऋतुके समय स्वच्छ सरोवरमें प्रवेश कर उन स्त्रियोंके साथ जलविहार करता था ॥ ४३ ॥ पुरंजन जिस पुरीमें उस स्त्रीके साथ रहने लगा उसके ऊपरवाले हिस्सेमें सात द्वार थे और नीचेके खण्डमें दो द्वार थे। उस पुरीका जो कोई स्वामी हो उसके भिन्न २ विषयोंमें जानेके लिये ये द्वार थे ॥ ४४ ॥ पांच द्वार तो पूर्व ओर थे, और एक दक्षिणमें व एक उत्तरमें था एवं दो द्वार पश्चिममें थे। राजन्! इन द्वारोंके नाम मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ४५ ॥ पूर्व ओर खद्योत और आविर्मुखी नाम दो द्वार एकत्र बने

हुए थे। पुरंजन द्युमान् नाम सखाके साथ इन दोनो द्वारोंसे विभ्राजित नाम जनपदको गमन करता था ॥ ४६ ॥ पूर्वमें नलिनी और नालिनी नाम और भी दो द्वार एकत्र बने हुए थे। पुरंजन इनसे अवधूतनाम सखाके साथ सौरभनाम विषयको जाता था ॥४७॥ पूर्वमें मुख्यानाम एक और द्वार था। पुरंजन उससे रसज्ञ और विपण नाम सखाओंके साथ आपण और बहूदन नाम देशोंको जाता था ॥ ४८ ॥ राजन्! दक्षिणद्वारका नाम पितृहू था। पुरंजन उससे श्रुतिधरनाम सखाके साथ दक्षिणपांचाल देशको जाता था ॥४९॥ ऐसे ही उत्तरद्वारका नाम देवहू था। पुरंजन उससे श्रुतिधर सखा साथ उत्तरपांचाल देशको जाता था॥ ५० ॥ पश्चिमद्वारका नाम आसुरी था। पुरंजन उससे दुर्मद सखाके साथ ग्रामक नाम विषय (देश)को जाता था॥ ५१ ॥ दूसरे पश्चिमद्वारका नाम निर्ऋति था। पुरंजन उससे लुब्धकनाम सखाके साथ ग्रामक देशको जाता था॥ ५२ ॥ इस पुरीमें और भी दो अंध द्वार थे, जिनका नाम निर्वाक और पेशस्कृत था। इन्द्रियधारियोंका स्वामी पुरंजन उनसे गमन और कार्य करता था॥ ५३ ॥ पुरंजन जिस समय अन्तःपुरमें जाता था तब विषूचीन नाम सखाके साथ स्त्री और पुत्रादिके कारण कभी मोह, कभी प्रसाद और कभी हर्षको प्राप्त होता था ॥ ५४ ॥ इस प्रकार कामी पुरंजन मूर्खोंकी भाँति कर्मोंमें आसक्त हो कर विषयोंसे ठगा गया। उसकी रानी जो करती थी, वह भी उसके साथ वही करता था ॥ ५५ ॥ यदि वह कभी मदिरा पान करे तो आप भी मदिरा पीता और मदमत्त होता था। वह भोजन करे तो आप भी भोजन करता था ॥५६॥ वह कभी गाती तो आप भी गाता, वह रोती तो आप भी रोता, वह हँसती तो आप भी हँसता, वह बोलती तो आप भी बोलता था ॥५७॥ वह कभी दौड़ती तो आप भी दौड़ता, वह बैठती तो आप भी बैठता, वह सोती तो आप भी सोता, वह उठ कर बैठती तो आप भी उठ कर बैठता था ॥ ५८ ॥ वह कुछ सुनने लगती तो आप भी सुनने लगता, वह कुछ देखने लगती तो आप भी देखता, वह कुछ सूंघने लगती तो आपभी सूंघता, वह कोई वस्तु छूती तो आप भी छूता था ॥५९॥ यदि वह स्त्री कुछ शोच करती तो आप भी दीनभाव धारण कर शोच करता, यदि वह प्रसन्न होती तो आप भी प्रसन्न होता और वह सन्तुष्ट होती तो आप भी सन्तुष्ट होता था ॥ ६० ॥

विप्रलब्धो महिष्यैवं सर्वप्रकृतिवञ्चितः ॥
नेच्छन्ननुकरोत्यज्ञः क्लैब्यात्क्रीडामृगो यथा ॥ ६१ ॥

इस भाँति रानीने उसे अपने वशमें कर लिया कि उसने अपने स्वभावको त्याग दिया। अपनी इच्छासे कुछ भी न करता था, जैसे कठपुतली दूसरेके अधीन हो कर नाचती है वैसे ही जो स्त्री करती थी वही आप भी करता था ॥ ६१ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंश अध्याय ।

पुरंजनका शिकार खेलने जाना ।

नारद उवाच—स एकदा महेष्वासो रथं पञ्चाश्वमाशुगम् ॥
द्वीषं द्विचक्रमेकाक्षं त्रिवेणुं पञ्चबन्धुरम् ॥ १ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं । हे राजन्! राजा पुरंजन एक समय बड़ा भारी धनुष ले कर, एक शीघ्रगामी रथ पर चढ़ कर शिकार खेलने चला । उस रथमें पांच घोड़े लगे थे, दो डंडियां थीं, दो पहिये थे, एक जुआं था, तीन ध्वजा थीं, पांच बंधन थे ॥ १ ॥ एक बागडोर थी । एक सारथी और एक रथीके बैठनेका स्थान था । दो युगके बांधनेके स्थान थे । पांच प्रहरण थे और सात चर्मादिकके आवरण थे एवं पांच प्रकारकी गति थी ॥ २ ॥ उस रथका सब सामान सोनेका था । ऐसे दिव्य रथ पर पुरंजन बैठा । पुरंजनने सोनेका कवच पहना, अक्षय तर्कस बांध लिये । एकादशम (ग्यारहवां मन) सेनापतिसहित पंचप्रस्थ नाम वनको शिकार खेलने चला ॥ ३ ॥ अहंकारी पुरंजन वनमें पहुँच धनुष पर बाण चढ़ा कर शिकारको खोजने लगा । उसका मन शिकारमें इतना आसक्त हो गया कि त्यागनेके अयोग्य अपनी स्त्रीको भी अकेले छोड़ दिया ॥ ४ ॥ पुरंजन, घोर रूप धारण कर राक्षसी प्रवृत्तिके वश हो निर्दयतापूर्वक वनमें रहनेवाले जीवोंको वनके बीच पैने २ बाणोंसे मारने लगा ॥ ५ ॥ हे राजन्! शिकार खेलनेका भी शास्त्रमें नियम है कि पवित्र तीर्थ पर अर्थात् प्रधान २ श्राद्धादिके अवसरमें राजाको आज्ञा है कि आवश्यकताके अनुसार वनमें जा कर पवित्र पशुओंका बध करे । मांसभोजनकी लालसासे पशुओंको मारनेका निषेध है ॥ ६ ॥ हे राजेन्द्र! जो कोई इस पशुबधकी व्यवस्थाको जान कर इसीके अनुसार पशुबध करता है उसे हिंसा करनेका पातक नहीं होता ॥ ७ ॥ और जो कोई अहंकारके मारे इस व्यवस्थाका उल्लंघन कर पशुओंकी हिंसा करता है वह बंधनको प्राप्त होता है । गुणोंके प्रवाहमें पड़कर बुद्धि भ्रष्ट होनेके कारण क्रमशः अधोगतिको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ पुरंजनके विचित्रपक्षयुक्त शिलीमुखनाम बाणोंसे अनेकों मृग घायल हुए और मरे । उन कातर मृगोंका विनाश हुआ, जिसे दयालु महात्मालोग नहीं देख सक्ते ॥ ९ ॥ चौगड़ा, वराह, भैंसे, गवय, रुरु, शल्लक आदि अनेक पवित्र और अपवित्र पशुओंका शिकार करते २ राजा पुरंजन थक गया ॥ १० ॥ कुछ थकावट जान पड़ी और उस पर भूख व प्यासने सताया । तब पुरंजन घरको लौटा । घरमें आ कर स्नान किया, भोजन किया, तब थकावट उतरी । उसके बाद बैठ कर चन्दन, धूप, माला आदिसे वह अपना शृङ्गार करने लगा । जब भलीभाँति सब अंगोंको भूषित कर चुका तब रानीके निकट जानेकी इच्छा की ॥ ११ ॥ १२ ॥

खा पी कर तृप्त हुआ, चित्त भी प्रसन्न हुआ, तब कामदेवने सताया। किन्तु उसने गृहकी लक्ष्मी अपनी स्त्रीको कहीं न देख पाया ॥१३॥ हे राजन्! स्त्रीको न देखनेसे-उसका चित्त कुछ उदास होगया। तब अन्तःपुरमें रहनेवाली और स्त्रियोंसे पूछने लगा कि स्त्रियो! तुम और तुम्हारी मालकिन पहलेकी भाँति कुशलसे तो हैं? जैसे पहले ये गृहस्थीकी सब संपदाएं मुझको रुचती थीं वैसे इस समय प्राण-प्रियाके विना नहीं भली लगतीं ॥ १४ ॥ यदि घरमें माता न हो अथवा पतिव्रता स्त्री न हो तो वह घर विना पहियेवाले रथके समान है! कौन बुद्धिमान् उसमें रह कर दुःख भोगेगा? ॥१५॥ वह मेरी स्त्री कहाँ है? जो संकटके समय मुझे सहायता करती है। जिस समय मैं विपत्तिरूप सागरमें डूबने लगता हूँ तब उचित सम्मति दे कर अपने वाक्योंसे मेरी बुद्धिको सचेत करती है और मुझे उबार लेती है ॥१६॥ सब सखियां बोलीं कि हे महाराज! आपकी प्यारी रानी क्यों ऐसा करती हैं— सो तो हमको कुछ विदित नहीं है, किन्तु हे शत्रुनाशन! देखो वह पृथ्वी पर विना विछौने पड़ी हुई हैं ॥ १७ ॥ अपनी स्त्रीको इस भाँति पृथ्वी पर पड़े हुए देख कर पुरंजन बहुत ही व्याकुल हुआ। रानीको कुपित देख कर उसका ज्ञान नष्ट होगया और वह घबड़ाया हुआ उसके पास जा कर ॥ १८ ॥ मीठे वचन कह कर मनाने लगा। किन्तु स्त्रीके मुख पर मानके चिन्ह (कुटिल दृष्टि आदि) न देख कर उसका हृदय और भी धड़कने लगा ॥ १९ ॥ वीर एवं मनानेमें बहुत ही चतुर राजा पुरं-जन धीरे २ मनाने लगा। पैरों पर गिरा और फिर उसे गोदमें उठा कर दुलराता हुआ यों कहने लगा ॥ २० ॥ हे प्रिये! अपराध करने पर भी जिन सेवकोंको स्वामीलोग अपना मान कर शिक्षाके लिये दण्ड नहीं देते, वे सेवक बड़े ही मंद-भाग्य हैं, अवश्य ही उन्होने पूर्वजन्ममें कोई पुण्यकर्म नहीं किया ॥ २१ ॥ सु-न्दरी! स्वामीका दिया हुआ दंड सेवकके लिये दंड नहीं वरन् अनुग्रह है, किन्तु जो सेवक स्वामीकी इस हितचिन्तकताको नहीं जानते और स्वामी पर क्रोध करते हैं वे बालक (मूर्ख) हैं ॥ २२ ॥ तुम मेरी स्वामिनी हो, मैं तुम्हारा आत्मीय दास हूँ, मुझ पर कृपा कर एक बार यह परम मनोहर मुख मेरी ओर करो। अहा! तुम्हारा मुखकमल कैसा सुन्दर है! इस प्रेमयुक्त लज्जासे भरी नीची दृष्टि और कटाक्ष एवं मन्द मुसकानसे हमारा मन विह्वल हो रहा है। तुम्हारे कमल ऐसे मुख पर नीली अलकें भ्रमरोंके समान शोभा पा रही हैं। तुम्हारी उन्नत नासिका और मीठी वाणी एवं कोमल वचन कैसे मनोहर हैं ॥ २३ ॥ हे वीर पुरुषकी स्त्री! हे प्राणप्यारी! बताओ किसने तुम्हारा निरादर किया है? ब्राह्मण और भगवान्के भक्तको छोड़ कर वह कोई भी होगा-मैं उसे दण्ड दूंगा। मुझको तो त्रिलोकीमें अथवा त्रिलोकीके बाहर ऐसा कोई नहीं देख पड़ता जो तुम्हारा अपराध करके निर्भय हो कर सुखसे रहै ॥ २४ ॥ इस समय तुम्हारी कैसी अपूर्व दशा है? मैंने तो कभी

तुम्हारा मुख तिलकरहित, हर्षहीन और मलीन नहीं देखा! इस समय तुम्हारा मुख कुपित होनेके कारण भयानक, उदास और रूखा क्यों हो रहा है? मैं देखता हूं कि तुम्हारे सुंदर, सुडौल दोनो स्तनों पर आंसू गिर कर सूख गये हैं और कुंकुमका अंगराग छूट गया है। दोनो अरुण अधर सूखे हुए हैं ॥ २५ ॥

तन्मे प्रसीद सुहृदः कृतकिल्बिषस्य
स्वैरं गतस्य मृगयां व्यसनातुरस्य ॥
का देवरं वशगतं कुसुमास्त्रवेग-
विस्रस्तपौंस्त्वमुशती न भजेत कृत्ये ॥ २६ ॥

प्रिये! मैं तुमसे विना कहे अपने मनसे शिकार खेलने चला गया था, अवश्य ही मुझसे यह घोर अपराध हुआ। किन्तु अब क्षमा कर दो, मुझ पर प्रसन्न हो जाओ। प्राणप्यारी! मैं तुम्हारा सुहृद हूँ। जो आप ही अधीन है एवं जिसका धैर्य कामदेवके वाण लगनेसे जाता रहा है ऐसे पतिको रतिकर्ममें रत व रतिकी सी रूपवती कौन कामिनी है जो न भजैगी? ॥ २६ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंश अध्याय।

पुरंजन पर कालकन्याआदिका आक्रमण।

नारद उवाच—इत्थं पुरंजनं सध्र्यग्वशमानीय विभ्रमैः ॥
पुरंजनी महाराज रेमे रमयती पतिम् ॥ १ ॥

नारदजी बोले। हे राजन्! वह पुरंजनी इस प्रकार अपने हावभावसे पुरंजनको भली भाँति अपने वशमें कर उसीके साथ रमण करने लगी और पुरंजनको रमाने लगी ॥ १ ॥ भलीभांति स्नान कर, सुंदर वस्त्र धारण कर और कुंकुम सिंदूर आदि सोहागकी वस्तुओंसे सुशोभित हो कर वह सुन्दर मुखवाली सुन्दरी स्त्री प्रसन्न मनसे पुरंजनके पास आई। वह भी उसके मिलनेसे प्रसन्न हुआ ॥ २ ॥ पुरंजनीने पुरंजनको हृदयसे लगा लिया, दोनोने परस्पर गलेमें बांहैं डाल दीं और दोनो एकान्तमें प्रेमकी बातैं करने लगे। पुरंजन ऐसा मोहित हो गया कि उसे कुछ ज्ञान नहीं रहा। इस प्रकार स्त्रीके साथ विषयभोग करनेमें, जो दिन और रात्रिरूप कालचक्रका वेग है उसकी पुरंजनको कुछ सुध न रही कि कितने दिन बीते ॥ ३ ॥ बड़े मोलके पलँग पर पड़ा हुआ और पुरंजनीकी कोमल भुजा पर शिर धरे हुए महामनस्वी पुरंजन इतना मदांध हो कर मोहित होगया कि उसी

स्त्रीको परम पुरुषार्थ मानने लगा । उसका उन्नत चित्त ऐसा अज्ञानमें लिप्त हो गया कि उसे अपने श्रेष्ठ रूपका ज्ञान नहीं रहा ॥ ४ ॥ हे राजेन्द्र! इस प्रकार विषयभोगमें जिसका चित्त फँसा हुआ है उस पुरञ्जनकी जवानी रमण करनेमें आधे क्षणके समान बीत गई और उसको विदित न हुआ ॥ ५ ॥ पुरंजनने उस पुरंजनीसे ग्यारह सौ पुत्र उत्पन्न किये। इतने समयमें उसकी आधी आयु बीत गई ॥ ६ ॥ हे प्रजापते! पुरंजनके एक सौ दस कन्याएँ भी उत्पन्न हुईं, जो कि सुन्दर शील और उदारता आदि गुणोंसे सुशोभित एवं पिता और माताकी कीर्त्तिको बढ़ानेवाली हुईं ॥ ७ ॥ पांचाल देशके राजा पुरंजनने पिताका वंश बढ़ानेवाले पुत्रोंका योग्य कन्याओंके साथ और कन्याओंका उनके समान वरोंके साथ विवाह कर दिया ॥ ८ ॥ पुरंजनके ग्यारह सौ पुत्र थे, उन एक एकके सौ सौ पुत्र उत्पन्न हुए; जिनसे पांचाल देश भरमें पुरंजनका वंश व्याप्त हो गया ॥ ९ ॥ तब पुत्र, पोते, घर, कोष आदि पर पुरंजनकी ममता बढ़ने लगी, जिससे वह विषम-विषय-पाशमें बँध गया ॥ १० ॥ अन्तमें आपकी भांति, जिनमें पशुओंकी हिंसा होती है उन घोर यज्ञोंकी दीक्षा ले कर, अनेक तुच्छ कामनाएँ पूर्ण होनेके लिये देवता, पितर और भूतपतियोंकी आराधना करने लगा ॥ ११ ॥ इस प्रकार कुटुम्बके पालनपोषणमें जिसका चित्त लगा हुआ है वह पुरंजन कर्मोंमें व्यग्र था, उसको कुछ अपने हितकी बातका चेत न था। इतनेमें वह कराल काल आ गया जो कि विषयी पुरुषोंको बड़ा ही अप्रिय है ॥ १२ ॥ एक चण्डवेग नाम गन्धर्व-राज था, उसके साथ बड़े बलवान् तीन सौ साठ गंधर्व थे ॥ १३ ॥ और वैसी ही श्वेत और श्याम वर्णकी तीन सौ साठ गंधर्वोंकी स्त्रियाँ थीं, जो लौट पौट कर उस कामनामयी पुरंजनकी पुरीको नष्ट भ्रष्ट करने लगीं ॥ १४ ॥ वे चंडवेगके अनुचर गंधर्व जब पुरंजनकी पुरीको नष्ट करने लगे तब वह पुरीकी रक्षा करनेवाला पांच शिरका सर्प उन्हे रोकने लगा ॥ १५ ॥ वह पुरंजनकी पुरीका रक्षक बलवान् सर्प अकेले सात सौ बीस गंधर्व और गंधर्वोंकी स्त्रियोंसे सौ वर्ष तक लड़ा ॥१६॥ बहुत जनोंके साथ एककी जय कभी नहीं होती । जब लड़ते २ उस सर्पका पराक्रम क्षीण होने लगा और वह शिथिल हो गया तब पुरके रक्षक सर्पको शिथिल होते देख कर पुरमें और राज्यमें रहनेवाली प्रजा और बांधवगणसहित पीड़ित पुरंजन बहुत ही चिन्तित हुआ ॥ १७ ॥ वह पुरंजन पहले स्त्रीके वश होकर तुच्छ विषयभोगमें लिप्त रहता था और अपनी पुरीमें अपने अनुचरोंकी लाई हुई भोगकी सामग्रीका भोग करता था, उसे किसी प्रकारके भयकी शंका नहीं थी, किन्तु इस समय बड़ा भारी भय आकर प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥ हे राजन्! एक कालकी कन्या थी वह तीनों लोकमें वर ढूंढती फिरती थी, पर उसे किसीने नहीं ग्रहण किया ॥१९॥ वह बड़ी अभागिनी होनेके कारण दुर्भगा कह कर प्रसिद्ध थी। उसीने प्रसन्न हो कर राजऋषि पुरुको

वर दिया था ॥ २० ॥ वह एक समय ब्रह्मलोकसे घूमती २ पृथ्वीको आ रही थी, मार्गमें मैं मिला । वह कामसे मोहित तो थी ही, मुझको बालब्रह्मचारी जान कर प्रार्थना करने लगी कि आप मुझे ग्रहण करो ॥२१॥ राजन् ! जब मैंने उसे नहीं ग्रहण किया और स्पष्ट उत्तर दे दिया, तब उसने क्रोध करके बड़ा ही कठोर शाप दिया कि हे नारद ! तुमने मेरी प्रार्थनाको नहीं ग्रहण किया इस लिये शाप देती हूँ कि तुम एक स्थान पर नहीं ठहरोगे—इधर उधर मारे २ फिरा करोगे ॥२२॥ मुझसे जब उसकी कामना नहीं पूर्ण हुई तब वह कालकन्या मेरे बताये हुए अभय नाम यवनराजके पास गई और उससे पति होनेकी प्रार्थना की ॥२३॥ कालकन्या उससे कहने लगी कि तुम यवनोंमें श्रेष्ठ यवननाथ हो, अतएव मेरे मनमाने पति हो; मैंने तुमको वरण किया । तुम मेरे स्वामी बनो, जो प्राणी तुमसे कोई कामना करेंगे वह कभी विफल न होगी ॥ २४ ॥ लोक और शास्त्रमें जो वस्तु लेने या देने योग्य मानी गई है उस वस्तुको प्रार्थनापूर्वक किसीके देने पर जो नहीं लेता या किसीके माँगने पर नहीं देता वे दोनो मूर्ख पीछे पछताते हैं ॥२५॥ हे भद्र ! मैं तुमको भजती हूँ, इस लिये तुम भी मुझे ग्रहण करो और मुझ पर दया करो। आर्त प्राणियोंके प्रति दया करना ही पुरुषोंका मुख्य धर्म है ॥ २६ ॥ कालकन्याके वचन सुन कर यवनराज मुसकाया और ईश्वरकी इच्छाके रहस्यको पूर्ण करनेकी इच्छासे बोला ॥२७॥ कि तुम अयोग्य और अभागिनी हो, इस लिये तुमको कोई प्रसन्नतापूर्वक नहीं ग्रहण करता; अस्तु—मैंने ध्यान करके तुम्हारा पति ठीक किया है ॥ २८ ॥ तुमको कोई न देख पावेगा, तुम अलक्षितभावसे विचर कर कर्मनिर्मित जो प्राणी हैं उनसे भोग करो । सभी तुम्हारे स्वामी होंगे । मेरी सेना साथ ले कर जाओ और तीनो लोकोंमें विचर कर प्रजाका क्षय करो ॥ २९ ॥

प्रज्वारोऽयं मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव ॥
चराम्युभाभ्यां लोकेऽस्मिन्नव्यक्तो भीमसैनिकः ॥ ३० ॥

यह प्रज्वार नाम मेरा भाई है और तू आजसे मेरी बहन हुई । तुम दोनो मेरी सेनाके नायक हुए । मैं तुम दोनोके साथ भीम-सेनासहित सबको भयभीत करता हुआ अलक्ष्यरूपसे पृथ्वीमण्डलमें विचरूंगा ॥ ३० ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंश अध्याय ।

अन्तसमय स्त्रीमें मन लगा रहनेके कारण पुरंजनको स्त्रीका शरीर मिलना और भाग्यवश ज्ञान होने पर मुक्ति ।

नारद उवाच—सैनिका भयनाम्नो ये बर्हिष्मन् दिष्टकारिणः ॥
प्रज्वारकालकन्याभ्यां विचेरुरवनीमिमाम् ॥ १ ॥

नारदजी बोले । हे राजन्! भय नाम यवनराजकी आज्ञाका पालन करनेवाले सैनिक लोग प्रज्वार और कालकन्याके साथ इस पृथ्वी पर विचरने लगे ॥ १ ॥ एक दिन वे सब पुरंजनकी पुरी, जो मनुष्यलोकके सब भोगोंसे भरी हुई है और पांच शिरका एक बूढ़ा सर्प जिसकी रक्षा करता है उसको चारो ओरसे घेर कर भीतर घुसने लगे ॥ २ ॥ कालकन्या भी बलपूर्वक पुरंजनको भोगने लगी, जिसके भोग करनेसे पुरुष शीघ्र ही सारहीन हो जाता है ॥ ३ ॥ कालकन्या जब पुरञ्जनको भोगने लगी तब यवनराजकी सेनाके यवन चारो ओरके द्वारोंसे भीतर घुस कर सब पुरीको तोड़ने फोड़ने लगे ॥ ४ ॥ जब शत्रुओंने पुरीको नष्ट करना आरंभ किया तब कुटुंबयुक्त, ममतासे आकुल, अभिमानी पुरंजनको अनेक प्रकारके सन्ताप मिलने लगे ॥ ५ ॥ कालकन्याने भोग कर दुर्बल और निर्बल कर दिया, श्री नष्ट हो गई, बुद्धि भी भ्रष्ट हो गई, गंधर्व और यवनोंने बलपूर्वक ऐश्वर्यको हर लिया, तब विषयी और दीन पुरंजनने ॥६॥ देखा कि पुरी टूट फूट गई है, स्वाधीनता नष्ट होनेके कारण पुत्र, पौत्र, अनुचर, मंत्री आदिने आदर करना त्याग दिया है, स्त्री भी स्नेह नहीं करती ॥ ७ ॥ अपने शरीरको कालकन्याने ग्रस लिया है, पांचाल देश पर शत्रुओंने अधिकार कर लिया है । यह देख कर पुरंजन अपार चिन्ताको प्राप्त हुआ और विचार करने पर भी उसे इन संकटोंसे छुटकारा पानेका कोई उपाय नहीं सूझा ॥ ८ ॥ पुरंजनको कालकन्याने घेर लिया, इस कारण यद्यपि सब विषयभोगका स्वाद जाता रहा और परलोक भी बिगड़ गया एवं पुत्रादिने स्नेह भी छोड़ दिया तथापि उस दीन पुरंजनके मनसे विषयभोगकी लालसा दूर नहीं हुई । जब पुरंजनने देखा कि गंधर्व और यवन पुरी पर आक्रमण कर रहे हैं और कालकन्या उस पुरीको नष्ट भ्रष्ट कर रही है तब इच्छा न होने पर भी वह पुरीको छोड़नेके लिये विवश हुआ ॥ ९ ॥ १० ॥ भयनाम यवनराजका बड़ा भाई प्रज्वार अपने भाई (भय) की प्रसन्नताके लिये संपूर्ण पुरीको जलाने लगा ॥ ११ ॥ जब पुरी जलने लगी तब कुटुंबी पुरंजन पुरवासी सेवकगण और पुत्र आदि सहित अपनी कुटुम्बवाली स्त्रीके साथ सन्ताप करने लगा ॥ १२ ॥ सब स्थानोंको यवनोंने घेर लिया और

पुरीको कालकन्याने ग्रस लिया, यह देख कर प्रज्वार द्वारा पीड़ित वह पुरकी रक्षा करनेवाला सर्प चिन्ता करने लगा ॥ १३ ॥ इस महासंकटसे उसका हृदय धड़कने लगा और वह पुरकी रक्षा करनेवाला सर्प कुछ न कर सका एवं जैसे सर्प जिस वृक्षके खोलमें आग लग गई है उससे बाहर जाना नहीं चाहता वैसे ही उस पुरसे बाहर निकलनेकी उसकी इच्छा नहीं हुई ॥ १४ ॥ इस प्रकार जब गंधर्वोंने सब पौरुष नष्ट कर दिया और गंधर्वोंका सामना करते २ सब अंग शिथिल हो गये एवं शत्रु यवनोंने चारो ओरसे घेर लिया तब राजा पुरंजन रोने लगा ॥ १५ ॥ कन्या, पुत्र, पौत्र, बहू, दामाद, भृत्य, घर, खजाना, गृहस्थीका सामान आदि जिन्हे वह "अपना" माने हुए था उन वस्तुओं पर उस समय उसको ममता उत्पन्न हुई कि हाय! यह सब मेरा मुझसे छूटा जाता है! और अपनी प्राणप्यारी स्त्रीके वियोगको देख कर पुरंजन शोच करने लगा ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ पुरंजन सोचने लगा कि जब मैं दूसरे लोकको चला जाऊंगा तब यह अनाथ कुटुंबवाली मेरी स्त्री कैसे रहेगी? इसको अपने बालकोंके शोचसे चैन नहीं आवेगी! ॥ १८ ॥ बिना मेरे भोजन किये यह भोजन नहीं करती, मुझको ही चित्तसे चाहती है, इस लिये बिना मेरे स्नान किये यह भी नहीं स्नान करती। मेरे क्रोध करने पर डर जाती है और मेरे डाँटने पर चुप हो रहती है! ॥ १९ ॥ जब मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है तब मुझे समझाती है। जब मैं परलोकको चला जाऊंगा तब वीर पुत्रोंकी माता यह मेरी स्त्री इस गृहस्थाश्रमके धर्मका निर्वाह करेगी या मेरे वियोगमें अपने प्राण त्याग देगी ॥२०॥ जैसे समुद्रमें नाव टूट जाने पर उस पर जो लोग चढ़े हुए होते हैं वे संकटमें पड़ते हैं वैसे मेरे मरने पर ये मेरे पुत्र और कन्या दूसरोंका मुख देख कर कैसे जीवन-धारण करेंगे? ॥ २१ ॥ पुरंजन इस प्रकार दीन बुद्धिसे शोच करने लगा, किन्तु वह इस प्रकार मोहाभिभूत होनेके योग्य नहीं था। इसी अवसरमें पुरंजनको पकड़नेके लिये भयनाम यवनराजने अपनी सेनासहित आक्रमण किया ॥ २२ ॥ जब यवनसेना पशुओंके समान पुरंजनको बाँध कर अपने स्थानको ले चली तब पुरंजनके अनुचरगण अत्यन्त कातर हो शोक करते २ पुरंजनके पीछे चले ॥ २३ ॥ उस पुरीकी रक्षा करनेवाले सर्पने भी अपनेको शत्रुओंसे घिरा देख विवश हो पुरीको छोड़ दिया। वैसे ही पुरी नष्ट हो कर अपने पहले रूपको प्राप्त हुई ॥ २४ ॥ बली यवन पुरंजनको बलपूर्वक घोर अंधकारमें वसीट ले गये। उस समय भी पुरंजनको अपने अविज्ञात नाम सखाका स्मरण नहीं आया, जिसे छोड़ कर पुरंजन पुरंजनीकी पुरीमें बसा था ॥ २५ ॥ निर्दय पुरंजनने पहले जिन पशुओंकी यज्ञमें बलि दी थी वे उसकी क्रूरताको स्मरण कर कुल्हाड़ियोंसे उसके शरीरके खंड २ करनेलगे ॥ २६ ॥ जिसका पार नहीं है ऐसे

अनन्त घोर अंधकारमें डूब कर, स्त्रीके संगसे दूषित हो कर एवं अपने पूर्व स्वरूपको भूल कर पुरंजनने बहुत वर्षों तक बराबर क्लेश उठाये ॥ २७ ॥ फिर जब उस स्त्रीका वियोग हुआ उस समय भी पुरंजनके मनमें उसीका ध्यान रहा । इस कारण इस शरीरके छूटने पर विदर्भदेशके राजाके घरमें पुरंजनका जन्म हुआ । पुरंजनको परम सुन्दर कन्याका शरीर प्राप्त हुआ ॥ २८ ॥ शत्रुओंकी सेना जीतनेवाले पाण्ड्यदेशके राजा मलयध्वजने जो और २ राजालोग बिवाहकी इच्छासे आये थे उन्हे युद्धमें जीत कर विदर्भनरेशकी कन्यासे विवाह किया ॥ २९ ॥ और उस स्त्रीमें एक कमलनयनी कन्या एवं उससे छोटे सात पुत्र उत्पन्न किये । वे सातो पुत्र द्रविड़देशके राजा हुए ॥ ३० ॥ हे राजन्! उन सातोमें एक २ के एक २ अर्बुद (दश कोटि) पुत्र उत्पन्न हुए । उन सातो द्रविड़राजोंके वंशधर लोग ही पृथ्वीका भोग करते आये हैं और भोग करते रहेंगे ॥३१॥ मलयध्वजकी जो एक कन्या थी उससे अगस्त्यने विवाह किया । अगस्त्यने उसमें दृढच्युतको उत्पन्न किया, जिनके पुत्रका नाम इध्मबाहु हुआ ॥ ३२ ॥ राजर्षि मलयध्वज अपने पुत्रोंको पृथ्वी बांट कर कृष्ण भगवान्की आराधना करनेके लिये कुलाचल पर्वतको गये ॥ ३३ ॥ चांदनी जैसे चन्द्रमाके पीछे जाती है वैसे ही मदिराके समान लाल नेत्रोंवाली विदर्भराजकी कन्या भी घर, पुत्र और अनेक प्रकारके भोग त्याग कर पांड्यदेशके राजा मलयध्वजके पीछे चली ॥ ३४ ॥ राजा मलयध्वज वहांकी चन्द्रवशा, ताम्रपर्णी, वटोदका आदि नदियोंके पवित्र जलोंमें नित्य स्नान कर भीतर और बाहरके मलको नष्ट करते हुए तप करने लगे ॥ ३५ ॥ वह कन्द, मूल, फल, बीज, फूल, पत्ते, तृण एवं जलमात्र भोजन कर तप करने लगे, जिससे धीरे २ शरीर दुर्बल होने लगा ॥ ३६ ॥ जाड़ा, गर्मी, आंधी, वर्षा, भूख, प्यास आदिको सह कर सुख, दुःख आदि परस्परविरुद्ध विषयोंको, जिन्हे द्वंद्व कहते हैं, जीत लिया और सबको समानदृष्टिसे देखने लगे ॥ ३७ ॥ तप और उपासनाके द्वारा क्रमशः उनके चित्तसे काम, क्रोध आदि वासनाएं दूर हो गईं । तब उन्होने यम–नियम आदिसे मनको, इन्द्रियोंको, प्राणको और अन्तःकरणको वश कर अपने एकाग्र मनको परब्रह्ममें लगा दिया ॥ ३८ ॥ ऐसी दृढ़ समाधि लगाई कि दिव्य सौ वर्ष तक पत्थरके खंभेकी भांति एक ही स्थानमें स्थित रहे, न हिले–न डुले एवं भगवान् हरिमें ऐसे निरत हुए कि तन्मय हो गये ॥ ३९ ॥ मलयध्वजने परमात्माको अपने आत्मामें व्याप्त और देहादिसे अलग देखा । तब जैसे स्वप्नकी देखी हुई घटना जागने पर मिथ्या जान पड़ती है वैसे सुखदुःखादिकल्पित संसारकी घटनाएं उन्हे मिथ्या विदित हुईं और वह मायासे मुक्त हो गये ॥ ४० ॥ इस अवस्थामें साक्षात् हरिने हृदयमें दर्शन दे कर ज्ञानरूप दीपक प्रकाशित कर दिया । सब प्रकारके घोर अंधकारोंके दूर करनेवाले और कभी न बुझनेवाले उस

ज्ञानदीपकके विशुद्ध प्रकाशमें मलयध्वजको सब पदार्थ यथार्थरूपसे देख पड़ने लगे ॥४१॥ राजा मलयध्वज उस ज्ञानके प्रकाशमें परब्रह्मको आत्मामें और आत्माको परब्रह्ममें देखने लगे एवं अन्तमें "मैं ब्रह्म हूं" इस भावको प्राप्त हो कर संसारसे निवृत्त हो गये। पतिव्रता विदर्भराजकी कन्या अनेक प्रकारके भोग त्याग कर, मन लगा कर ॥ ४२ ॥ परमहंसोंका परम धर्म जाननेवाले अपने स्वामी मलयध्वजकी सेवा करने लगी ॥ ४३ ॥ व्रत आदि करनेसे उसका शरीर दुर्बल होगया, उसने वस्त्र त्याग कर बल्कल धारण किये। केशोंकी जटाएं होगई। विदर्भराजकी कन्या अपने पतिके पास ऐसी जान पड़ती थी जैसे शान्त अग्निके निकट शान्त शिखा (अग्निकी ज्वाला) शोभित हो ॥ ४४ ॥ मलयध्वजके प्राण निकल गये, पर शरीर जिस आसनसे स्थित था वैसे ही रहा, गिरा नहीं। इसी कारण विदर्भराजकुमारीको अपने पतिके वैकुंठवासकी कुछ भी खबर न हुई। जैसे नित्य अपने पतिकी सेवा करती थी वैसे ही उस दिन भी करने लगी ॥ ४५ ॥ जब पैर दबानेके समय विदर्भराजकुमारीको पतिका शरीर बिल्कुल ठंढा मिला तो उसने जाना कि पतिका परलोकवास होगया। तब इस दुःखसे राजकुमारी ऐसी घबड़ाई जैसे अपने झुंडसे बिछड़ी हुई मृगी व्याकुल हो ॥ ४६ ॥ वह अपनी अनाथ और दीन अवस्थाका शोच करती हुई ऊंचे स्वरसे विलाप करने लगी; दुःखके आंसुओंसे उसके स्तन भीग गये ॥ ४७ ॥ विदर्भकुमारी कहने लगी हे राजर्षे! उठो, उठो। इस समुद्रपर्यन्त पृथ्वीकी, जो क्षत्रियनामधारी लुटेरोंसे डर रही है, रक्षा करो ॥ ४८ ॥ इस भांति वह बाला वनमें विलाप करती हुई अपने पतिके पैरों पर गिर पड़ी। उसके उपरान्त पतिको प्राणके समान प्रिय माननेवाली वह स्त्री उठी और उसने आँसू पोंछे ॥ ४९ ॥ एवं लकड़ियां इकट्ठी कर एक चिता बनाई। उस चिता पर अपने पतिका शरीर रख कर आग लगाई और आप भी विलाप करती हुई पतिके साथ सती होनेके लिये उद्यत हुई ॥ ५० ॥ इसी अवसर पर उस स्त्रीरूपको प्राप्त पुरंजनका आत्मज्ञानी अविज्ञात नाम ब्राह्मण मित्र (जिसका उल्लेख पुरंजनोपाख्यानके पहले अध्यायमें हो चुका है) अपनी इच्छासे घूमता हुआ वहां आया और स्त्रीके रूपमें रो रहे पुरंजनको यों मधुर वचनोंसे समझाने लगा ॥५१॥ "अजी तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? यह चिता पर पड़ा हुआ पुरुष तुम्हारा कौन है? जिसके लिये शोच कर रहे हो। क्या तुम मुझ मित्रको जानते हो? जिसके साथ पहले (पुरुषरूपमें) विचरते थे ॥ ५२ ॥ अथवा हे मित्र! यह कभी स्मरण करते हो कि अविज्ञात नाम एक मेरा मित्र था। हम और तुम दोनो मनोहर स्थानमें विहार करते थे। तुम्हारी विषयभोग करनेकी इच्छा हुई, इस कारण मुझको छोड़ कर चले आये ॥ ५३ ॥ हे आर्य! हम और तुम दोनो हंस हैं, हजारों वर्ष तक मानसरोवरके बीच एक ही स्थानमें रहे हैं ॥ ५४ ॥

हे बंधुवर! तुम ग्राम्य विषय भोगनेके लिये मुझे छोड़ कर भूमि पर चले आये। पृथ्वी पर विचरते २ तुमने एक पुर देखा, जो किसी स्त्रीका बनाया हुआ था ॥ ५५ ॥ उस पुर (शरीर) में पाँच उपवन, नव द्वार, एक रक्षक, तीन कोष्ठ, छः वणिक्कुल, पाँच बाजार थे। उसकी पाँच प्रकृति (उपादान कारण) और स्वामिनी एक स्त्री थी ॥ ५६ ॥ अर्थात् वह पुरी और कुछ नहीं मनुष्यका शरीर है। पाँचो ज्ञानेन्द्रियोंके रूप, रस, गंध आदि विषय ही उसमें पाँच उपवन हैं। नासिका आदिके नव छिद्र, जिनसे प्राणरूप वायु आता जाता रहता है, वे ही नव द्वार हैं। पृथिवी, जल और तेज ये ही तीन कोष्ठ हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिय और छठा मन ये छः बनियोंके कुल हैं। पाँच कर्मेन्द्रिय ही पाँच बाजार हैं। पंचतत्त्व ही पाँच प्रकृति हैं, स्त्री अर्थात् माया उसकी स्वामिनी है। पुरुष (पुरंजन या आत्मा) उसमें उस मायाशक्तिके अधीन रहता है और इस प्रकार उसके वशमें हो जाता है कि उसे अपनी दशाका और अपना ज्ञान नहीं रहता ॥ ५७ ॥ ॥ ५८ ॥ उस मायारूप स्त्रीके स्पर्श करने व उसके साथ रमण करनेके कारण तुमको ब्रह्मका स्मरण नहीं रहा। हे सर्वत्र व्यास! उस मायाके ही संगसे तुम इस नीच दशाको प्राप्त हुए हो ॥ ५९ ॥ न तुम विदर्भदेशके राजाकी कन्या हो और न यह वीर राजकुमार तुम्हारा प्यारा पति है। न तुम पुरंजनीके पति हो जिसने नव द्वारवाले पुरमें तुमको फँसा रक्खा था ॥ ६० ॥ यह मेरी उत्पन्न की हुई माया है जो तुम पूर्वजन्ममें अपनेको पुरुष मानते थे और अब सती स्त्री मानते हो। किन्तु ये दोनो बातें कुछ नहीं हैं। हम तुम दोनो शुद्ध हंस हैं। हमारी जो गति है, उसे कहता हूं, सुनो ॥ ६१ ॥ मैं और तुम अलग २ नहीं बरन् एक ही हैं, ऐसा देखो कि 'मैं ही तुम हो और तुम ही मैं हूं'। जो चतुर विद्वान् हैं वे हम (परमात्मा) में और तुम (आत्मा) में कुछ भी अन्तर नहीं देखते ॥ ६२ ॥ जैसे मूर्ख पुरुष अपने मुखको शीशेमें देख कर शीशेमें पड़े हुए मुखके प्रतिबिंबको अलग समझे वैसे ही अज्ञानी पुरुष हममें तुममें भले ही अन्तर देखें पर तुम हमारा प्रतिबिंब ही हो, अतएव हमारा ही रूप हो। हममें और तुममें, बिंब व प्रतिबिंबमें जो अन्तर होता है वही अन्तर है ॥ ६३ ॥ इस प्रकार मानसरोवरवासी हंस (आत्मा) को हंस (परमात्मा) ने जब उपदेश दिया तब उस भ्रमित हंस (जीवात्मा) को परमात्माके वियोगसे जो स्मृति (ज्ञान) नष्ट हो गई थी सो फिर प्राप्त हो गई अर्थात् उसे अपने यथार्थ रूपका ज्ञान हो गया और अज्ञान जाता रहा ॥ ६४ ॥

बर्हिष्मन्नेतदध्यात्मं पारोक्ष्येण प्रदर्शितम् ॥
यत्परोक्षप्रियो देवो भगवान्विश्वभावनः ॥ ६५ ॥

हे महाराज प्राचीनबर्हि! हमने इस आत्मज्ञानकी कथाको पुरंजनके रूपकमें कहा है, क्योंकि कथारूपसे तत्त्वज्ञानका उपदेश करना योग्य है। ऐसे मन भी लगता है और भगवान् विश्वकी पालना करनेवाले हरिमें प्रीति होती है ॥ ६५ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

ऊनत्रिंश अध्याय।

पुरंजनोपाख्यानका खुलासा।

प्राचीनबर्हिरुवाच–भगवंस्ते वचोऽस्माभिर्न सम्यगवगम्यते ॥
कवयस्तद्विजानन्ति न वयं कर्ममोहिताः ॥ १ ॥

राजा प्राचीनबर्हि नारदजीसे कहने लगे कि हे भगवन्! आपके इन गूढ़ वचनोंके यथार्थ तात्पर्य्यको हम नहीं समझे, इनको ज्ञानी लोग समझ सक्ते हैं, हम सरीखे लोग, जो इन्द्रियोंके सुखके लिये यज्ञआदि कर्मोंमें लिप्त हैं, वे नहीं समझ सक्ते ॥ १ ॥ **नारदजी बोले**। अच्छा हम पुरंजनोपाख्यानका खुलासा अर्थ कहते हैं, सुनो। हे राजन्! जो अपने कर्मद्वारा पुरुषरूपसे अपने एक, दो, तीन, चार और बहुत पैर अथवा चरणरहित पुर (शरीर) अर्थात् भोग करनेके भवनको उत्पन्न करता है उसीका नाम पुरंजन अर्थात् जीवात्मा है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २ ॥ एवं जिसको यह पुरवासी पुरुष (जीव) नाम, कर्म और गुणद्वारा नहीं पहचान सक्ता उसी परमात्माका नाम अविज्ञात है–जिसे पुरंजनका सखा कहा है ॥ ३ ॥ हे साधु! जिस समय इस जीवने भली भांति मायाके गुणोंका भोग करनेकी इच्छा की तब नव द्वार और दो हाथ पैरवाले मनुष्य देहको ही भोग करनेके उपयुक्त विचारा ॥ ४ ॥ जिस तामसी बुद्धिसे "मैंहूं, मेरा है" इस प्रकारका अहंकार उपजता है एवं जिसके द्वारा इस नवद्वारयुक्त पुरी (शरीर) में यह जीव सम्पूर्ण इन्द्रियोंके द्वारा मायासंबंधी विषयोंको भोगता है उसीको पुरंजनी स्त्री (विषयात्मिका बुद्धि) जानना ॥ ५ ॥ पाँच ज्ञानेंद्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय ये ही दस उस स्त्रीके सखा हैं। इन्द्रियोंकी अगणित प्रवृत्तियाँ (व्यापार) ही उसकी सखी हैं। प्राण, अपान आदि पाँच वृत्तियोंवाला प्राण ही पुरीकी रक्षा करनेवाला पाँच शिर का सर्प है ॥ ६ ॥ इन सखाओंमें बड़ा बली मन ही बृहद्बल है। रूप, रस आदि पाँच विषय ही पांचाल देश हैं, जिनके बीचमें यह नव द्वारका पुर अर्थात् मनुष्यशरीर है ॥ ७ ॥ दो नेत्र, दो नासिकाके छिद्र, दो कानके छिद्र, मुख, लिंगेन्द्रिय और गुदाका छिद्र ये नव द्वार हैं। यह जीव प्रत्येक इन्द्रियरूप सखाके साथ इन्हीं द्वारोंसे प्रत्येक इन्द्रियके विषयोंका भोग करता है ॥ ८ ॥ नेत्र, नासिका और मुख ये पाँच पूर्वमुख द्वार हैं। दक्षिण

कान दक्षिणमुख और उत्तर कान उत्तरमुख द्वार है। गुदा और लिंगेन्द्रिय, ये दोनो पश्चिममुख द्वार हैं ॥९॥ दोनो नेत्र ही एकत्र बने हुए 'खद्योत' 'आविर्मुखी' नाम दो द्वार हैं। जिनसे जीवात्मा चक्षु इन्द्रियकी सहायतासे 'विभ्राजित' देश अर्थात् रूपको देखता है ॥ १० ॥ 'नलिनी' और 'नालिनी' दोनो नासिकाके छिद्र हैं। 'सौरभ' देश सुगंध हैं। घ्राण इन्द्रिय ही 'अवधूत' नाम सखा है। जीव उसकी सहायतासे इन दोनो छिद्रों द्वारा सुगंधको ग्रहण करता है। मुखही 'मुख्या' नाम द्वार है। वाक्शक्ति ही 'विपण' सखा है। रसोंका स्वाद लेनेवाली रसना (जिह्वा) ही 'रसज्ञ' नाम सखा है ॥ ११ ॥ बोलना ही 'आपण' देश है, अनेक प्रकारका अन्न 'बहूदन' देश है। दाहिने कानका नाम 'पितृहू' और बाएँ कानका नाम 'देवहू' है ॥ १२ ॥ रूप-रस आदि पाँच विषयोंमें प्रवृत्ति और निवृत्ति ही 'पांचाल' देश हैं। श्रोत्र इन्द्रिय ही 'श्रुतिधर' नाम सखा है, उसीकी सहायतासे दाहिने व बाएँ कानों द्वारा कर्मकांड और निवृत्तिविषयक शास्त्रोंका श्रवण कर यह जीवात्मा पितृयान और देवयान (अर्थात् पितृलोक व देवलोक) को जाता है ॥ १३ ॥ लिंगेन्द्रिय ही पश्चिम मुख 'आसुरी' नाम द्वार है। मैथुनको 'ग्रामक देश' कहा है। क्योंकि ग्रामीण (विषयी) जनों की इसीमें अधिक रति होती है। उपस्थ इन्द्रिय ही 'दुर्मद' नाम सखा है। गुदा ही 'निर्ऋति' नाम पश्चिम द्वार है ॥ १४ ॥ मलका त्याग 'वैशस' नाम देश है और पायु इन्द्रिय ही 'लुब्धक' नाम सखा है। अब अंधद्वार कहता हूं, सुनो। 'निर्वाक' और 'पेशस्कृत' नामक जो अंधद्वार कहे गये हैं वे हाथ और पैर हैं। यह जीव उनसे कर्म करता और चलता है ॥१५॥ हृदय ही 'अन्तःपुर' है, मनही विषूचीन नामक सखा है। यह जीव मनकी सहायतासे हृदयमें मनके गुणों(सत्त्व, रज, तम)के द्वारा मोह, प्रसन्नता और आनंदको पाता है ॥१६॥ जैसे २ पुरंजनी अर्थात् बुद्धि विकारको प्राप्त होती है वैसे २ बुद्धिके गुणोंमें लिप्त यह जीवात्मा, वास्तवमें केवल साक्षी होने पर भी, बुद्धिकी वृत्तियों (दर्शन, स्पर्श आदि) का अनुकरण करता है ॥ १७ ॥ यह देह ही रथ है और घोड़े इन्द्रियां हैं। वर्षोंका आना जाना उस रथकी गति है, पुण्यकर्म और पापकर्म दोनो चक्र हैं, तीन गुण ही तीन बाँसकी ध्वजा हैं, पाँच प्राण (अपान, समान आदि) बंधन हैं ॥ १८॥ मन ही बागडोर या लगाम है, बुद्धि ही सारथी है, हृदय ही रथीके बैठनेका स्थान है, शोकमोहादिक द्वंद्वधर्म 'कूबर', हैं। इन्द्रियों-के पांच (शब्दादि) विषय ही शस्त्र हैं, मेदा मज्जा हड्डी आदि सात धातुएं, रथकी रक्षाके लिये जो चमड़े आदिका आवरण होता है, वह हैं ॥ १९ ॥ बाह्यविक्रमस्वरूप जीवका

---

१ जिन दो लकड़ियोंमें बंधनसे वाहन (घोड़े आदि) को बांध देते हैं।

रजोगुणमय रूप ही कवच आदि हैं। मृगतृष्णा अर्थात् फलशून्य विषयभोग ही शिकार है, जिसके लिये यह जीव इस रथ पर जाता है। पाँच विषय (शब्दादि) ही पंचप्रस्थ वन है, अन्याय और असत् आचारसे शब्दादि विषयोंका भोग ही सूनाविनोद (शिकार) है, जिसे यह जीव करता है। दश इन्द्रियाँ सेना हैं और ग्यारहवाँ मन सेनापति है ॥ २० ॥ संवत्सररूप काल ही चंडवेग-नामक गंधर्व है। सालके तीन सौ साठ दिन ही गंधर्व हैं और तीन सौ साठ रात्रियाँ गंधर्वोंकी स्त्रियाँ हैं ॥ २१ ॥ ये तीन सौ साठ दिन और रात्रियाँ अपने हेरफेरसे आयुको हरते हैं। साक्षात् वृद्धावस्थाका नाम कालकन्या है, जिसे कोई नहीं ग्रहण करता ॥ २२ ॥ मृत्यु ही यवनोंका स्वामी है, उसने लोकोंका क्षय करनेके लिये वृद्धावस्थाको अपनी बहन बनाया है। आधि (मानसी चिंता) और व्याधि ही यवनेश्वरके साथी यवन हैं और प्राणियोंको पीड़ा पहुंचानेमें और मारनेमें बड़ा वेगशाली दो प्रकारका ज्वर ही प्रज्वार नाम मृत्युका भाई है ॥ २३॥ हे राजन्! जो जीवात्मा निर्गुण ईश्वरका स्वरूप है वह तमोगुणसे आवृत देहको ग्रहण कर उसमें आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक क्लेशोंको पाता हुआ सौ वर्षतक अपनेमें व्याधि, शोक आदि मानसिक धर्मरूप आधि-दैविक और अंध होना, पंगुल होना आदि इन्द्रियधर्मरूप आधिभौतिक एवं भूख प्यास आदि प्राणधर्मरूप आध्यात्मिक दुःखोंकी कल्पना करके रहता है और साधारण विषयसुखोंकी इच्छासे "मैं हूं, मेरा है" ऐसे अज्ञानमें मोहित हो कर कर्म करता है ॥ २४ ॥ २५ ॥ हे राजन्! यह जीव वास्तवमें स्वयं प्रकाशमान है, किन्तु जब अपने रूपको अर्थात् परमगुरु भगवान् ईश्वरको भूल कर मायाके गुणोंमें लिप्त होता है एवं मायाके गुणोंका अभिमान करता है तब अहंकारसे अवश हो सात्त्विक (शुक्ल), राजस (लोहित) और तामस (कृष्ण) कर्मोंको करता है और कर्मानुसार उत्तम, मध्यम, निकृष्ट योनियोंमें जाता है ॥ २६ ॥ २७ ॥ सात्त्विक कर्म करनेसे बहुचमत्कारयुक्त सुखमय लोकोंको जाता है, बहुश्रमयुक्त राजस कर्म करनेसे ऐसे लोकोंको जाता है जो मोहमय हैं और जिनका परिणाम दुःखदायी है एवं तामस कर्म करनेसे शोकपूर्ण लोकोंको जाता है ॥ २८ ॥ सात्त्विक आदि कर्मोंके अनुसार कभी स्त्री होता है, कभी पुरुष होता है, कभी मंदबुद्धि नपुंसक होता है और कभी देवता, मनुष्य, पशु पक्षी आदि योनियोंमें जाता है ॥ २९ ॥ भूख और प्यासासे दीन कुत्ता जैसे आश्रयके लिये घर २ घूमता है, कहीं भाग्यानुसार केवल दंड पाता है और कहीं एक टुकड़ा रोटी भी पाजाता है वैसे यह जीव सुखकी इच्छासे पूर्वकर्मके अनुसार अनेक योनियोंमें जा कर सुख और दुःख पाता है, अर्थात् वैसे ही विषयकामनामें

आसक्त यह जीव ऊंची और नीची राहोंमें घूमता हुआ उत्तम, मध्यम और अधम योनियाँ पा कर प्रिय और अप्रिय (सुख और दुःख) को प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे राजन्! क्षणभंगुर विषयसुखके मिलनेसे जीवके आध्यात्मिक आदि तीन प्रकारके दुःखोंकी शान्ति नहीं होती । विशेष कर (सकाम) कर्मसे कर्मजनित दुःखकी शान्ति कभी नहीं होती ॥ ३२ ॥ जैसे कोई शिर पर बोझा लादे हो, वह शिरमें पीड़ा होने पर उस बोझेको कंधे पर धर ले तो इससे बोझेकी व्यथा नहीं मिटी केवल थोड़ी देरके लिये विश्राम हो गया, ऐसे ही कर्मद्वारा कर्मका प्रतीकार नहीं होता, केवल थोड़े समयके लिये विश्राम हो जाता है ॥ ३३ ॥ केवल कर्मसे भलीभांति कर्मका प्रतीकार नहीं होता, क्योंकि किया हुआ कर्म और उसके प्रतीकारके लिये किया हुआ कर्म-दोनो ही अविद्या-जनित हैं, जैसे स्वप्नमें भी स्वप्न देखना, दोनो ही समान हैं, स्वप्नद्वारा स्वप्नकी अवस्था दूर नहीं हो सक्ती ॥ ३४ ॥ हे राजन्! स्थूलशरीरका नाश होने पर भी (विना वासनामय लिंगशरीरका नाश हुए) संसार अर्थात् जन्म और मरणका होना नहीं निवृत्त होता । जैसे यह मन स्वप्नावस्थामें संपूर्ण शरीरका अभिमानी हो कर अनेक प्रकारके कर्म करता है और उन कर्मोंके द्वारा प्राप्त सुख और दुःखका अनुभव करता है वैसे ही शरीर छोड़ देने पर भी यह शरीराभिमानी मन विषय-वासनाओंमें लिप्त रहता है, जिससे जन्म और मरणका जाल नहीं छूटता ॥ ३५ ॥ राजन्! केवल आत्मज्ञान पानेसे और भक्तिपूर्वक परमपुरुष, परमगुरु ईश्वरका सच्चे भावसे भजन करनेसे संपूर्ण सांसारिक विषयोंसे मन हट जाता है । विषय-वासना नष्ट होने पर कर्मबंधन छूट जाता है, जिस कारण बड़े २ अनर्थोंका मूल संसार (जन्म मरण) भी छूट जाता है ॥ ३६ ॥ हे प्रजापते! सब प्राणियोंके अन्तर्यामी भगवान्में भली भांति एकाग्रमन हो कर भक्तिभाव दृढ़ करनेसे शीघ्र ही जीवको मायारचित विषयोंके भोगसे वैराग्य हो जाता है । इसी प्रकार उस ईश्वरकी दृढ़ भक्तिसे तत्त्वका ज्ञान भी होता है ॥ ३७ ॥ हे राजर्षि! अच्युत भगवान्की कथाओंको श्रद्धापूर्वक नित्य पढ़ने और सुननेसे संसारसे छुड़ानेवाली परमेश्वरकी भक्ति शीघ्र ही हृदयमें दृढ़ होती है ॥ ३८ ॥ भगवान्के गुणोंके कहने और सुननेकी लालसा जिनके चित्तमें बनी रहती है वे निर्मल और शान्तहृदय भगवान्के भक्त साधुजन होते हैं ॥३९॥ वहाँ पर उन महात्माजनोंके मुखसे निकली हुई हरिचरित्ररूप शुद्ध अमृतकी नदियाँ बहती हैं। उनको जो लोग एकाग्र हो कान लगाकर सुनते हैं और सुन कर तृप्त नहीं होते उन्हे भूख, प्यास, भय, शोक, मोह आदि तीनो प्रकारके ताप नहीं सताते ॥ ४० ॥ ऊपर लिखे हुए ताप मनुष्यके लिये स्वाभाविक हैं, इन तापोंसे पीड़ित मनुष्यका मन अमृतके समान मधुर हरि भगवान्की कथाओंमें नहीं लगता । अतएव इन

तापोंसे छूटनेके लिये सत्संग करना चाहिये ॥ ४१ ॥ हे राजन्! बिना ईश्वरकी कृपा हुए कोई भी उसे नहीं जान सक्ता। यहां तक कि प्रजापतियोंके पति साक्षात् ब्रह्माजी, भगवान् शङ्कर, मनु, दक्षआदि प्रजापति, सनकादिक नैष्ठिक(बाल)ब्रह्मचारी ॥४२॥ और मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ और मैं (नारद) इत्यादि ब्रह्मज्ञानी ऋषिलोग ॥४३॥ एवं अब भी जो सब विद्वान् लोग तप कर रहे हैं तथा समाधि लगा कर ध्यान कर रहे हैं वे उक्त तप, विद्या, समाधि आदि उपायोंसे सबको देख रहे सर्वव्यापक उस ईश्वरको खोजते हैं परन्तु देख नहीं पाते! ॥४४॥ विशेषकर जो लोग बहुविस्तृत अपार वेदसागरमें विचर रहे हैं वे स्वर्गादि सुखकी कामनासे मन्त्रमूर्त्ति इन्द्रादि देवतोंकी आराधना करनेके कारण उस ईश्वरको नहीं पाते (यद्यपि इन्द्रादि देवता उस ईश्वरका ही रूप हैं तथापि उन्हे सकाम होकर भजनेवालोंको स्वर्गादि लोकोंके सिवा मुक्ति नहीं मिलती! गीतामें कृष्णचन्द्रने स्पष्ट स्पष्ट कहा है कि जो लोग मेरी जिस मूर्ति की जिस कामनासे पूजा करते हैं उनकी वह कामना मैं पूर्ण करता हूँ) ॥ ४५ ॥ जो लोग केवल ईश्वरसे मिलनेकी कामनासे ईश्वरको भजते हैं उन पर जब ईश्वरकी कृपा होती है तब वे लौकिक सुखोंकी कामनाओंको और वैदिक कर्मकाण्ड (प्रवृत्ति-मार्ग) को असार जान कर त्याग देते हैं ॥ ४६ ॥ इससे हेप्राचीनबर्हि! वेदमें जितने सकाम कर्मोंकी विधि है वे केवल कानोंको भले जान पड़नेवाले मीठे वाक्य हैं। अज्ञानी लोग उन्हीं (स्वर्गादि फल देनेवाले यज्ञादि कर्मों) को ही परमार्थ मान बैठते हैं, किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है, क्योंकि स्वर्गादि लोक पुण्य क्षीण होने पर दुःखदायी हैं। तुम इन यज्ञादि कर्मोंको ही जीवनका सारांश या पुरुषार्थ न मानो ॥ ४७ ॥ राजन्! जो लोग वेदको केवल यज्ञादि कर्मोंकी पद्धति बताते हैं अर्थात् कहते हैं कि वेदमें कामनापूर्वक यज्ञादि करना ही लिखा है उनकी बुद्धि यज्ञके धुएँसे मैली हो गई है, वे लोग कर्म या वेदके तात्पर्यसे निपट अजान हैं; जिसमें भगवान् जनार्दन वास करते हैं उस आत्मतत्त्वसे पूर्ण वेदके तात्पर्य को कुछ भी नहीं जानते ॥ ४८ ॥ तुम भी उन्हींमें हो। तुम अपनेको कर्मज्ञानी मान कर बड़ा गर्व करते हो। केवल कुशासनोंसे सब पृथ्वीको पूर्ण कर अनेक पशुओंकी हत्या करके "मैं बड़ा ही यज्ञ करनेवाला हूँ" ऐसा घमंड करते हो। किन्तु वास्तवमें तुम कर्मका यथार्थ तत्त्व नहीं जानते ॥४९॥ देखो भगवान् जिसमें प्रसन्न हों वही कर्म है और जिससे हरिमें भक्तिभाव हो वही विद्या है। भगवान् हरि ही देहधारियोंके आत्मा और ईश्वर हैं एवं स्वतन्त्रतापूर्वक इस जगत्-का कारण (प्रकृति) हैं। उन हरिके चरणोंकी शरणमें आनेसे ही जीवोंको शान्ति मिलती है ॥ ५० ॥ वही हरि सबके परम प्रिय आत्मा हैं। उनका आश्रय ग्रहण करनेसे मनुष्यको किसीका भय नहीं रहता। इस तत्त्वको जो जानता है वही विद्वान् है। इस प्रकारके विद्वान् ही सबके गुरु और साक्षात् हरिका रूप हैं

॥ ५१ ॥ **श्री नारदजी कहते हैं।** हे राजन्! आपका जो प्रश्न था उसका उत्तर मैने पूर्वोक्त अध्यात्मवादद्वारा दिया, जिससे आपको ज्ञान प्राप्त हुआ; किन्तु "मेरे पुत्र कहां हैं? और कब राजधानीमें लौट कर आवेंगे?" इस प्रकारकी भावना अभी आपके हृदयमें बनी है। अतएव जिसके सुननेसे आपको दृढ़ वैराग्य हो जाय गा ऐसी एक गुप्त तत्त्वकी कथा कहता हूँ, उसको सुनिये ॥ ५२ ॥ यह देखो, फूलोंके निकुंजमें, जहाँ अनेक प्रकारके फूल फूल रहे हैं वहाँ मधुके लोभसे आसक्त भ्रमरगण मधुर २ गुंजन कर रहे हैं, मृगीसहित यह मृग उनके मधुर संगीतको मन लगाये हुए सुन रहा है और मंद २ विचर रहा है। यह ऐसा मस्त हो रहा है कि इसे कुछ भी चेत नहीं है। किन्तु इसके सामने ही, दूसरेके प्राणोंको नष्ट करके अपने शरीरको पालनेवाला बाघ खड़ा है और पीछे धनुष-वाण लिये हुए शिकारी व्याध है। पर इस मृगको इस बातकी कुछ भी खबर नहीं है। यह देखो व्याधने वाणसे इस मृगको मार डाला ॥ ५३ ॥ इस रूपकका यथार्थ भाव यह है—फूलोंके समान कुछ ही समयमें शोभाहीन होनेवाली स्त्रियोंसे युक्त गृह ही फूलोंका निकुंज है। फूलोंके मधुकी गंधके तुल्य क्षुद्र जो सकाम कर्मोंके फलरूप भोजन और मैथुन आदि विषयभोग हैं उनमें स्त्री-सहित मन लगाये हुए मृग तुम हो। भ्रमरोंके मधुर संगीतके समान अति मनोहर स्त्री-पुत्र आदिकी बातचीत है, जिसमें तुम ऐसे आसक्त हो रहे हो कि दिनरात्रिरूपी काल (जो व्याघ्रोंके समान दूसरोंके आयुको नष्ट करके प्राण हर लेता है) तुम्हारे सामने तुम्हारे आयुको क्षीण कर रहा है, किन्तु तुमको उसका कुछ ध्यान भी नहीं है, गृहस्थाश्रमके सुखोंमें मस्त हो रहे हो। पीछे अलक्ष्य भावसे शिर पर व्याधके समान यह मृत्यु है, जो तुम्हे अपना लक्ष्य बनानेके ताकमें है। राजन्! समझो और देखो, बहुत शीघ्र तुम मृत्युका शिकार बनने-वाले हो ॥ ५४ ॥ तुम मृगके तुल्य अपना चरित्र समझ कर विचारपूर्वक चित्तको विषयभोगसे हटाओ। चित्तको हृदयमें एकाग्र करो और इन्द्रियों-की बाह्यप्रवृत्तियों (विषयवासनाओं) को चित्तके द्वारा रोको। राजन्! मूर्ख विषयी जनोंकी विषयवासनाओंसे दूषित इस गृहाश्रम अर्थात् स्त्रीसंगको त्यागो। सब जीवोंके स्वामी परमेश्वरकी शरणमें जाओ और इस प्रकार मनको क्रमशः सब विषयोंसे हटा कर मंगलमय भगवान्में लगाओ, तभी शान्ति मिलेगी ॥ ५५ ॥ **राजा प्राचीनबर्हि बोले** कि हे ब्रह्मन्। आपने जो कुछ मुझको सुनाया उसे मैंने मन लगा कर सुना और भली भाँति उस पर विचार भी किया। मेरे उपाध्याय (आचार्य) लोग इस आत्मज्ञानको कदाचित् नहीं जानते, क्योंकि यदि जानते तो मुझको क्यों न बताते? ॥ ५६ ॥ हे देवर्षि! आपने मेरे संदेहको निवृत्त कर दिया, किन्तु अब भी मुझको कुछ संदेह है। यह संदेह भी

साधारण नहीं हैं, इसमें बड़े २ ऋषियोंको मोह होता है; क्योंकि जिस विषयमें मुझको संदेह है उसमें इन्द्रियोंकी वृत्तियोंकी प्रवृत्ति नहीं होती ॥ ५७ ॥ मुझको यह संदेह है कि जीव इस पृथ्वीमें जिस शरीरसे कर्म करता है उसको इसी लोकमें छोड़ जाता है और उसको इस लोकमें किये हुए कर्मोंके द्वारा परलोकमें दूसरा शरीर मिलता है एवं वह उसी शरीरसे अपने किये हुए कर्मोंके फलको वारम्वार भोगता रहता है। वेदके तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानी जनोंके समाजमें ऐसा ही सुना जाता है। किन्तु यह मेरी समझमें नहीं आता, क्योंकि कर्म करनेवाला शरीर और हुआ एवं भोग करनेवाला शरीर और हुआ। इस अवस्थामें किये हुएका नाश और नहीं किये हुएका प्रकाश होनेके कारण ऊपर कहा हुआ मत असंगत जान पड़ता है। दूसरा संशय यह है कि लोग जिन वेदविहित कर्मोंको करते हैं, वे थोड़े ही समयमें परोक्ष अर्थात् अदृश्य हो जाते हैं, फिर उनका प्रकाश नहीं होता। इससे जान पड़ता है कि वे कर्म नष्ट हो जाते हैं। यदि कर्म नष्ट हो गये तो उनके फलका भोगना कैसा? ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ **श्रीनारदजी बोले।** राजन्! यह जीव जिस देहसे इस लोकमें कर्मोंको करता है उसी देहसे परलोकमें कर्मोंके फलको भोगता है। कर्म करनेवाले शरीरका त्याग और फल भोगनेवाले शरीरका ग्रहण नहीं करना पड़ता। क्योंकि यद्यपि प्रकटमें स्थूल शरीरका नाश हो जाता है तथापि स्थूल देहके अभिमानी (मनस्वरूप) लिंगशरीरका नाश नहीं होता। जीव उसी मनोमय लिंगशरीरसे कर्मफल भोगता है। इसमें संशयकी बात क्या है? ॥ ६० ॥ जैसे जाग्रत् अवस्थामें स्थित स्थूल शरीरका अभिमानी जीव स्वप्नावस्थामें स्थूल शरीरके अभिमानको त्याग कर अनेक योनियोंका अभिमानी बन कर मन द्वारा अनेक कर्म करके उनके सुखदुःखमय फलोंका अनुभव करता है वैसे ही मरने पर स्थूल शरीरको त्याग कर कर्मानुसार पशु-आदि योनियोंमें लिंगशरीरद्वारा कर्मफल भोगता है। इसमें विस्मय या संदेह किस बातका है? ॥ ६१ ॥ यह जीव "यह मेरा है" "यह मैं हूं" यों कह कर मन द्वारा अभिमानपूर्वक जिस २ देहका ग्रहण करता है उसी २ देहसे सिद्ध कर्म फिर प्राप्त होते हैं, अहंकार द्वारा उन सब कर्मोंका स्वीकार करनेके कारण उन्ही कर्मोंके द्वारा पुनर्जन्म होता है। इस कारण अभिमान करने वाला मन ही कर्मोंका कर्ता है; अभिमानका विषय जो देह है वह कर्म करने और कर्मफल भोगनेका द्वारमात्र है ॥ ६२ ॥ राजन्! 'संपूर्ण कर्म कुछ समयमें नष्ट हो जाते हैं, इस लिये परलोकमें उन सबके फलका भोग कैसे संभव हैं?' यह तुम्हारा दूसरा संदेह है। इसका उत्तर यही है कि जैसे इन्द्रियोंकी ज्ञान और कर्म-संज्ञक दो प्रकारकी प्रवृत्तियोंसे चित्तका अनुमान किया जाता है वैसे ही चित्तकी वृत्तियोंद्वारा पूर्व-जन्मके कर्मोंका अनुमान होता है ॥ ६३ ॥ और जो वस्तु जिस प्रकारकी एवं

जिस स्वरूपकी है वह वस्तु यदि उसी प्रकार उसी रूपमें इस वर्तमानशरीरसे नहीं देखी सुनी गई, उसका अनुभव नहीं किया गया तो स्वप्न अथवा मनोरथ द्वारा उस वस्तुकी उपलब्धि कभी नहीं हो सकी ॥ ६४ ॥ इस कारण वासनाके आश्रय जीवका उसी २ प्रकारके अनुभवादिसे युक्त पूर्वशरीर हो सक्ति है-इस पर विश्वास करो; क्योंकि मनने जिस विषयका अनुभव नहीं किया उसका उदय मनमें नहीं हो सक्ता ॥ ६५ ॥ हे राजन्! यह मन ही मनुष्यके पूर्वरूपको प्रकट कर देता है एवं आगे उन्नति अथवा अवनति (नीचत्वकी प्राप्ति) होने पर मनुष्यके जैसे २ रूप होंगे उनको उदारता और कृपणता आदि प्रवृत्तियोंके द्वारा मन ही बता देता है; इसी कारण किसीकी उदारता या कृपणता देख कर लोग कहते हैं कि-"यह व्यक्ति पूर्वजन्ममें भी ऐसा था और फिर भी ऐसा ही होगा" ॥ ६६ ॥ और देखो, जैसे जिनको न देखा है और न सुना है उन विषयोंका भी कभी २ मनमें उदय होता है वैसे ही पर्वतके ऊपर समुद्र, दिनमें नक्षत्रोंको देखना, अपने शिरका कटना आदि असंभव बातोंकी भी देश, काल और क्रियाके आश्रय पर निद्राके दोषसे स्वप्नावस्थामें प्रतीति होती है-ऐसा अनुमान करना चाहिये ॥ ६७ ॥ मनशक्ति सब लोगोंमें होती है एवं इन्द्रियोंके सभी विषय क्रमशः भोग्य पदार्थके रूपसे मनमें आया करते हैं और भोगके उपरान्त तिरोहित हो जाते हैं। इस कारण ऐसा कोई भी विषय नहीं है जिसका अनुभव मनने न किया हो; क्योंकि सभी विषय क्रमशः मनमें आया जाया करते हैं ॥ ६८ ॥ हे राजन्! जैसे चन्द्रके साथ संयुक्त होने पर राहु प्रकाशित होता है वैसे ही प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा यह विश्व भी 'सत्त्व'में लगे हुए और भगवान्के ध्यानमें परायण मनसे संयुक्त सा हो कर प्रकाशित होता है ॥ ६९ ॥ और बुद्धि, मन, इंद्रिय, इन्द्रियोंके विषय व गुण-इन सबका जब तक स्वाभाविक परिणाम (चिन्ह) रहता है तब तक "मैं हूं, मेरा है" यह भाव अर्थात् स्थूल शरीरका सम्बन्ध नहीं विच्छिन्न होता ॥ ७० ॥ और भी विचार करके देखो,-निद्रा, मूर्च्छा, उपताप (इष्ट-वियोगादि दुःख) मृत्यु और वृद्धावस्था-इन सब अवस्थाओंमें, जब इन्द्रियोंके द्वारा अहंकारका आधार जो वस्तु है उसका ग्रहण होता है तभी अहंकार (मैंहूं-इस भाव) की स्फूर्ति होती है, अन्यथा नहीं होती; किन्तु 'निद्रा आदि अवस्थाओंमें अहंकार एकदम रहता ही नहीं' ऐसा नहीं कहा जा सक्ता ॥ ७१ ॥ राजन्! युवा अवस्थामें जैसे अहंकार पुरुषकी ग्यारहो इन्द्रियोंके द्वारा स्पष्ट रूपसे देख पड़ता है वैसे बाल्यावस्थामें और गर्भमें नहीं देख पड़ता। इसका कारण यही है कि जवानीमें सब इन्द्रियाँ पूर्ण होती हैं और बाल्यकाल वा गर्भावस्थामें इन्द्रियाँ अमावास्याकी चन्द्र-कलाके समान अत्यन्त क्षीण होती जाती हैं ॥७२॥ अतएव अहंकारका आधार जो स्थूल शरीर है उसका वियोग होने पर यद्यपि सब इन्द्रियोंके विषय वास्तवमें विद्यमान नहीं रहते तथापि संसार

(जन्ममरण) की निवृत्ति नहीं होती । विषयोंका ध्यान करनेवाले पुरुषको जैसे स्वप्नमें शरीरकी प्राप्ति होती है वैसे ही प्रकारान्तरसे संसार विद्यमान रहता है ॥७३॥ राजन् ! पञ्चतन्मात्रस्वरूप एवं तीन गुण व सोलह विकारोंमें विस्तृत लिंगशरीर इस प्रकार चेतनासे संयुक्त होने पर जीव कहलाता है ॥ ७४ ॥ यह पुरुष इसी लिंग-शरीर द्वारा स्थूल शरीरोंको ग्रहण करता और त्यागता है एवं इसी लिंगशरीरके द्वारा शोक, हर्ष, सुख, दुःख और भयको प्राप्त होता है ॥ ७५ ॥ जैसे तृणजलौका नाम कीड़ा बिना दूसरा तृण पैरोंसे पकड़े पहले तृणको एकदम नहीं छोड़ता वैसे ही यह पुरुष पूर्वशरीरके आरंभ किये हुए कर्मोंको समाप्त कर जब तक अन्य देहका अवलम्बन नहीं कर लेता तब तक स्थूलशरीर छोड़ने पर भी उसके अभिमानको नहीं त्यागता । हे राजेन्द्र ! वास्तवमें यह मन ही मनुष्योंके जन्ममरणका कारण है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ यह पुरुष, इन्द्रियोंके द्वारा जो सब विषय भोगे जाते हैं उनका ध्यान करके ही वारंवार कर्मोंका आरंभ करता है । क्योंकि कर्म होनेसे ही अविद्या होती है और अविद्याके होनेसे ही देहादिको कर्मपाशका बंधन होता है ॥ ७८ ॥ अतएव संसारका कारण जो अविद्या है उसका विनाश करनेके लिये तन-मन-धनसे भगवान् हरिका भजन करो एवं इस विश्वको ईश्वरमय देखो । वही जगत्की सृष्टि, पालन और संहारका कारण हैं ॥ ७९ ॥ **मैत्रेयजी बोले ।** वत्स विदुर ! हरिभक्तशिरोमणि भगवान् नारद इस प्रकार जीव और ईश्वरकी गति दिखाकर व प्राचीनबर्हिराजासे बिदा हो कर सिद्धलोकको चले गये ॥ ८० ॥ राजऋषि प्राचीनबर्हिने राजकाज अपने पुत्रोंको सौंप दिया अर्थात् मंत्रियोंसे कह दिया कि "हम जाते हैं, हमारे पुत्र जब आवें तो उनसे कहना कि राज्यशासन करें" । इसके उपरान्त आप तप करनेके लिये कपिलदेवके आश्रमको गये ॥ ८१ ॥ राजाने उस आश्रममें निःसङ्ग और एकाग्रमन होकर भगवान् गोविंदके चरणकमलोंमें मन लगा दिया । दृढ भक्तिके प्रभावसे शीघ्र ही तन्मय (भगवान्में लीन) हो गये ॥ ८२ ॥ वत्स विदुर ! देवर्षि नारदने पुरञ्जनके रूपकमें यह अध्यात्मतत्त्वका वर्णन किया है । इसको जो कोई सुनता या सुनाता है वह लिंगशरीरसे छूट कर मुक्त हो जाता है ॥ ८३ ॥ हे वत्स ! देवर्षि-श्रेष्ठ नारदके मुखसे निकला हुआ यह पुरंजनोपाख्यान आत्माको निर्मल करने-वाला है । इसमें मुकुंदभगवान्के यशका संसर्ग है, इस लिये त्रिभुवनको पवित्र करनेवाला है । इसको जो कोई सुनता है वह संसारके बंधनोंसे मुक्त हो कर ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है, फिर उसे संसारमें नहीं भ्रमना पड़ता है ॥ ८४ ॥

अध्यात्मपारोक्ष्यमिदं मयाऽधिगतमद्भुतम् ॥
एवं स्त्रियाऽऽश्रमः पुंसश्छिन्नोऽमुत्र च संशयः ॥८५॥

यह पुरंजनके रूपकमें कहा गया अद्भुत अध्यात्मतत्त्व मुझको मिला था सो मैंने तुमको सुनाया । इसके सुनने और जाननेसे देहाभिमान दूर हो जाता है और "मरनेके उपरान्त कैसे कर्मभोग करना पड़ता है ?" इस प्रकारका संदेह नहीं रहता ॥ ८५ ॥

*इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे एकोनत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंश अध्याय ।

प्राचीनबर्हिके पुत्रोंको विष्णुका वरदान ।

विदुर उवाच–ये त्वयाऽभिहिता ब्रह्मन्सुताः प्राचीनबर्हिषः ॥
ते रुद्रगीतेन हरिं सिद्धिमापुः प्रतोष्य काम् ॥ १ ॥

विदुरजी बोले । ब्रह्मन् ! आपने प्राचीनबर्हिराजाके जिन सब पुत्रोंकी कथा कही उन्होने रुद्रगीतके जपसे भगवान्‌को प्रसन्न करके कौन सी सिद्धि पाई ? ॥ १ ॥ हे बृहस्पतिजीके शिष्य मैत्रेयजी ! राजकुमारोंने तपके प्रभावसे इच्छानुसार विचर रहे भगवान् शंकरको पा कर उनके अनुग्रहसे अवश्य मोक्ष पाई होगी । किन्तु मोक्षके पहले इस लोक और परलोकमें क्या पाया ? ॥ २ ॥ मैत्रेयजी कहते हैं । हे विदुर ! प्रचेतागणने अपने पिताकी आज्ञाके अनुसार समुद्रके भीतर रुद्रगीतका जप, यज्ञ और तपस्या कर हरिको सन्तुष्ट किया ॥ ३ ॥ दश हजार वर्षके उपरान्त सनातन विष्णुने प्रकट होकर अपने शांत प्रकाशसे उनके तपजनित क्लेशको दूर किया ॥ ४ ॥ गरुड़के कंधे पर बैठे हुए हरिके श्याम शरीरकी शोभा सुमेरुके शिखर पर स्थित श्याम मेघके समान देख पड़ती थी । वह कंठमें कौस्तुभमणि धारण किये और पीतांबर पहने थे । भगवान्‌के तेजसे सब दिशाओंका अंधकार दूर हो गया ॥ ५ ॥ चमकीले सोनेके आभूषणोंसे कपोल और मुखकी अपूर्व शोभा थी । शिर पर किरीटमुकुट धारण किये थे । आठ भुजाओंमें सब अस्त्र शस्त्र लिये थे । अनुचर, सुरश्रेष्ठ और मुनिगण सेवामें उपस्थित थे एवं गरुड़जी स्वयं किन्नरस्वरूप होकर उनकी पवित्र कीर्तिको (अपने पक्षोंसे) गाते थे ॥ ६ ॥ भगवान्‌के गलेमें पड़ी हुई वनमाला की शोभा, उनकी विशाल आठ भुजाओंके बीचमें अवस्थित लक्ष्मीकी कान्तिकी समता करती थी । हे विदुर ! वह आदिपुरुष इस प्रकार प्रकट हो कर दयादृष्टिसे देखते हुए मेघ–शब्दके सदृश गंभीरस्वरसे प्राचीनबर्हिके पुत्रोंसे बोले ॥ ७ ॥ श्रीभगवान् बोले । हे राजकुमारो ! तुम्हारा कल्याण हो । मुझसे इच्छानुसार वर मांगो । तुममें परस्पर बड़ी ही मित्रता है, यहां तक कि तुम्हारा स्वभाव भी एक ही प्रकार-

का है । इससे मैं तुम पर बहुत ही प्रसन्न हूँ ॥ ८ ॥ मैं प्रसन्न हो कर तुमको यह वर देता हूँ कि जो कोई संध्यासमय नित्य तुम्हारा स्मरण करेगा वह बड़ा ही भ्रातृवत्सल होगा और सम्पूर्ण प्राणियोंसे उसे सहानुभूति होगी ॥ ९ ॥ जो लोग सायंकाल और प्रातःकाल एकाग्रमन होकर रुद्रगीतसे मेरी स्तुति करेंगे उन्हे मैं निर्मल बुद्धि और उनकी इच्छाके अनुसार वर दूँगा ॥ १० ॥ तुमने अपने पिताकी आज्ञाको प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किया इस कारण तुम्हारी कीर्ति तीनो लोकोंमें फैलेगी ॥ ११ ॥ तुम्हारे एक बहुत ही प्रसिद्ध पुत्र होगा । वह तुम्हारा पुत्र गुणोंमें ब्रह्माके तुल्य होगा एवं उसके वंशसे तीनो लोक भर जायँगे ॥ १२ ॥ देवपति इन्द्रने कण्डुऋषिकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये प्रम्लोचा नाम अप्सरा भेजी थी । उस अप्सरामें कंडुके वीर्यसे एक कमलनयनी कन्या उत्पन्न हुई । वह अप्सरा कन्याको छोड़ कर स्वर्ग चली गई । हे राजकुमारो ! उस कन्याको वृक्षोंने पाया ॥ १३ ॥ वह कन्या बहुत भूखी हुई और रोने लगी, तब औषधियों-के राजा चंद्रमाने दया कर अपनी अमृतमय अंगूठेके पासकी अँगुली उसके मुखमें दे दी ॥१४॥ तुम्हारे पिताने तुमको आज्ञा दी थी कि तुम लोग मुझ (विष्णु)-को प्रसन्न करके प्रजा उत्पन्न करो । अतएव उसी सुंदरी कन्यासे तुम लोग विवाह करो, देर न करो और पिताकी आज्ञा पालो ॥१५॥ तुम दसोका एक सा शील, एक सा रूप और एक ही धर्म व नाम है, अतएव यह कन्या तुम दसोंकी स्त्री होगी । इस कन्याका स्वभाव और धर्म तुम्हारे योग्य है और इसने अपना हृदय तुमको अर्पण कर दिया है ॥ १६ ॥ मेरी कृपासे तुम्हारा प्रभाव नष्ट न होगा और तुम लोग दिव्य बहुसहस्रवर्षपर्यन्त पृथ्वीके दिव्य भोगोंको भोगोगे ॥ १७ ॥ इसके बाद जब तुमको मेरी भक्ति होगी तब कामक्रोधादिसे रहित हो जाओगे और तुम्हारी सब कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी । उस समय इस नरकतुल्य संसारसे विरक्त हो कर मेरे परमधामको जाओगे ॥ १८ ॥ राजकुमारो ! जो लोग गृहस्थाश्रममें रह कर सत्कर्म करते हैं एवं मेरी ही चर्चामें दिनरात बिताते हैं उनके लिये यह संसार बन्धनका कारण नहीं हो सक्ता ॥ १९ ॥ मेरी कथाओंके सुननेसे, स्वयं मैं, कथाका कीर्तन करनेवाले ब्रह्मज्ञानी लोगोंके द्वारा कथा सुननेवालोंके हृदयमें प्रकट होता हूं, तब मेरी कथाएँ नित्य नई जान पड़ती हैं । मैं ही ब्रह्म हूँ, मुझको प्राप्त होने पर पुरुषोंको शोक, मोह अथवा हर्षके वश नहीं होना पड़ता ॥ २० ॥ मैत्रेयजी कहते हैं कि हे विदुर ! पुरुषार्थके देनेवाले भगवान् जनार्दनने जब इस प्रकार कहा तब प्रचेतागण अंजली बाँध कर गद्गदस्वरसे सच्चे सुहृद भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ प्रचेतागण बोले । हे हरि ! आप क्लेशोंका नाश करनेवाले हैं, आपको हम प्रणाम करते हैं । सब वेदोंने आपके उदार गुण और महत् नामोंको सब विषयों(फलों)का साधन बताया है । हे देव ! आप वाणी और

मनसे परे हैं अतएव इन्द्रियोंके द्वारा आपके मार्गमें गमन करना असंभव है ॥ २२ ॥ नाथ! आप सर्वदा अपने आनन्दमय रूपमें स्थित रहनेके कारण शुद्ध और शान्त हैं। मनके मोहसे वृथा ही आपमें द्वैतभाव प्रतीत होता है, वास्तवमें आप ही जगत्की उत्पत्ति, पालन और नाशके लिये मायाके गुणों द्वारा ब्रह्मादि मूर्तियोंको धारण करते हैं। आपको नमस्कार है ॥ २३ ॥ प्रभो! आप शुद्ध-सत्त्वस्वरूप अर्थात् शक्तिमय हैं। आपको जान लेनेसे सुदृढ़ संसार-बन्धन छिन्न हो जाता है, आपको प्रणाम है। आप हरि हैं, वासुदेव हैं, श्रीकृष्ण और सब भक्तजनोंके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है ॥ २४ ॥ आपकी नाभिसे विश्वरूप कमल उत्पन्न हुआ है, आपके चरण कमलसमान अरुण और कोमल हैं; आप कमलोंकी माला पहने हैं। हे कमललोचन! आपको प्रणाम है ॥ २५ ॥ आपका पीतांवर पद्मपरागके समान पीतवर्ण है। आप सब जीवोंके रहनेकी भूमि हैं। आप सब कर्मोंके साक्षी हैं, आपको प्रणाम है ॥ २६ ॥ आपका मंगलमय रूप देखनेसे सब क्लेशोंका नाश होता है। हमारे क्लेशोंका नाश करनेके लिये ही आपने इस मनोहररूपके दर्शन दिये हैं। इससे बढ़ कर और कृपा क्या होगी? ॥ २७ ॥ हे अमंगलका नाश करनेवाले नाथ! 'यह हमारा है' इस प्रकार विचारनेसे ही दीनजन अपने स्वामीकी परमकृपा मानते हैं, क्योंकि ऐसा विचार करनेसे ही सेवकोंको सन्तोष हो जाता है ॥ २८ ॥ हे प्रभो! आप सबके अन्तर्यामी हैं, हम आपके उपासक हैं। हमारी क्या इच्छा है—हम क्या मांगना चाहते हैं; सो क्या आप नहीं जानते। हम लोग आपकी प्रसन्नता ही चाहते हैं ॥ २९ ॥ हे विश्वनाथ! साक्षात् मोक्षके देनेवाले एवं पुरुषार्थस्वरूप आप हम पर प्रसन्न हैं, अब हमको क्या चाहिये? हम केवल आपकी प्रसन्नता ही चाहते हैं ॥ ३० ॥ प्रभो! आप परमपरमेश्वर और सब अभीष्टोंके देनेवाले हैं। आपकी विभूतियोंका अन्त नहीं है, इसीसे आपका नाम अनन्त है। आपके कहनेसे हम एक वर और माँगते हैं ॥ ३१ ॥ जैसे भ्रमर जब अनायास ही कल्प-वृक्षको पा जाता है तब और वृक्षोंकी चाह नहीं करता वैसे ही साक्षात् आपके चरणकमलोंको (जो कि सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं) पा कर अब हम कौन पदार्थ मांगें? ॥ ३२ ॥ तथापि हम यह मांगते हैं कि जब तक कर्मवश इस संसारमें आपकी मायामें बँधे हुए विचरें तब तक हरएक जन्ममें आपके अनुचर भक्तोंका समागम हो ॥ ३३ ॥ भगवन्! आपके भक्त सज्जनोंके संगकी बराबरी तो दूर रही, स्वर्ग और मोक्षके सुखको हम उसके एक कण भर भी नहीं समझते! तब और विभवोंकी क्या गिनती है! ॥ ३४ ॥ आपके भक्तोंके संगमें विषयवासनाओंको नष्ट करनेवाली आपकी चर्चा होती है, कोई किसीसे वैर नहीं करता और वहां किसी प्रकारकी चिन्ता या घबड़ाहट नहीं होती

॥ ३५ ॥ वे संगरहित सज्जन संसारसे विरक्त हो जानेवालेकी एकमात्र गति साक्षात् भगवान् नारायणके यश और महिमाका वारंवार वर्णन करते हैं ॥ ३६ ॥ संसारके दुःखसे डरा हुआ कौन ऐसा होगा जिसे सत्संगकी अभिलाषा न हो? प्रभो! आपके भक्त सज्जन लोग अपने चरणोंकी रजसे पृथ्वीको पवित्र करनेके लिये विचरते रहते हैं। वे साक्षात् तीर्थस्वरूप होते हैं ॥ ३७ ॥ हे भगवन्! हमने सत्संगके फलका अनुभव कर लिया है। आपके प्रिय सुहृद भगवान् शंकरका एक क्षण भर संग होनेसे ही हमने आपको पाया। जिसकी चिकित्सा बड़ी ही कठिन है उस जन्ममरणरूप रोगके आप ही चतुर चिकित्सक और अगतियोंकी गति हैं ॥ ३८ ॥ प्रभो! हमने जो मन लगा कर वेद पढ़े हैं, सेवा करके गो ब्राह्मण और गुरुओंको प्रसन्न किया है, मान्य लोगोंको मित्र और भाइयोंको प्रणाम किया है, ईर्ष्याहीन हो कर सब प्राणियोंको संतुष्ट किया है एवं विना कुछ खाये पिये बहुत काल तक जलमें घोर तप किया है-सो सब हम आपकी प्रसन्नताके लिये आपको अर्पण करते हैं। प्रभो! आप परमपुरुष हैं, आपकी प्रसन्नता ही हमारा अभीष्ट है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे हरि! यद्यपि हम अज्ञानी हैं तथापि आपकी स्तुति करना हमारे लिये अयोग्य नहीं है। क्योंकि मनु, ब्रह्मा और भगवान् शंकर एवं तप और ज्ञानद्वारा जिनके चित्त शुद्ध हो गये हैं वे योगीजन—सब आपकी महिमाका पार न पा कर भी अपनी २ शक्तिके अनुसार स्तुति करते रहते हैं। इसीसे हमने भी अपनी बुद्धिके अनुसार आपकी स्तुति की ॥ ४१ ॥ प्रभो! आप सर्वत्र समान हैं, विशुद्ध और परमपुरुष हैं, सत्त्वमूर्ति वासुदेव हैं। हे भगवन्! आपको प्रणाम है ॥ ४२ ॥ श्रीमैत्रेयजी कहते हैं। हे विदुर! प्राचीनबर्हिके पुत्रोंने जब इस प्रकार स्तुति की तब भक्तवत्सल भगवान्ने प्रसन्न हो कर कहा कि "हे पुत्रो! तुमने जो प्रार्थना की वह पूर्ण हो"। मोक्षके देनेवाले परमेश्वर अपने धामको गये। प्रचेतागण वारम्वार हरिको देख कर भी तृप्त नहीं हुए, उनकी यह इच्छा न थी कि हरि भगवान् आंखोंकी ओट हों ॥ ४३ ॥ भगवान्के चले जाने पर प्रचेतागणने समुद्रके जलसे वाहर निकल कर देखा कि सब पृथ्वीको वृक्षोंने छिपा रक्खा है। वृक्ष इतने ऊंचे हैं कि मानो आकाशको रूंध लेंगे। यह देख कर प्रचेतागणको क्रोध आ गया ॥ ४४ ॥ हे राजन्! कुपित प्रचेतागणने पृथ्वीको वृक्ष और लताओंसे शून्य करनेके अभिप्रायसे प्रलयकालके अग्नि-सदृश भयानक अग्नि और वायु अपने मुखसे प्रकट किया ॥ ४५ ॥ उस अग्निसे पृथ्वीके सब वृक्षोंको भस्म होते देख कर वहां पर ब्रह्माजी आये और युक्तियुक्त वचनोंसे राजकुमारोंका क्रोध शान्त किया ॥ ४६ ॥ जो वृक्ष जलनेसे बचे थे उन्होने भयभीत हो कर ब्रह्माजीके कहनेसे वही (अप्सराके गर्भमें कंडु ऋषिके वीर्यसे उत्पन्न) कन्या प्रचेतागणको दे दी ॥ ४७ ॥

उस कन्याका नाम मारिपा था। प्रचेतागणने भगवान् ब्रह्माकी आज्ञासे उस कन्याको ग्रहण किया। उस कन्याके गर्भमें प्रचेतागणके 'दक्ष' नाम पुत्र उत्पन्न हुआ। यह वही ब्रह्माके पुत्र दक्ष हैं जिन्होने देवदेव महादेवका निरादर किया था; इसी अपराधसे क्षत्रियवंशमें जन्म लेना पड़ा ॥ ४८ ॥ यह वही दक्ष हैं जिन्होने चाक्षुष मन्वन्तर उपस्थित होने पर कालवश पूर्वदेह नष्ट होनेसे ईश्वरकी आज्ञाके अनुसार प्रजाकी सृष्टि की ॥ ४९ ॥ इन्होने जन्मसमयमें ही अपने तेजसे सब तेजस्वियोंके तेजको फीका कर दिया। सभी कर्मोंमें दक्ष (चतुर) होनेके कारण इनका नाम 'दक्ष' पड़ा ॥५०॥

तं प्रजासर्गरक्षायामनादिरभिषिच्य च ॥
युयोज युयुजेऽन्यांश्च स वै सर्वप्रजापतीन् ॥ ५१ ॥

भगवान् ब्रह्माने प्रजासृष्टिका पालन करनेके लिये प्रजापतिके पद पर दक्षका अभिषेक किया। दक्षने अन्य २ मरीचि आदि प्रजापतियोंको प्रजापालनके कार्यमें नियुक्त किया ॥ ५१ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंश अध्याय ।

प्रचेतागणका वन जाना व मुक्ति पाना ।

मैत्रेय उवाच—तत उत्पन्नविज्ञाना आश्वधोक्षजभाषितम् ॥
स्मरन्त आत्मजे भार्यां विसृज्य प्राव्रजन्गृहात् ॥१॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं। हे विदुर! तदनन्तर दिव्य हजार वर्ष बीतने पर प्रचेतागणको राज्य करते २ दिव्य ज्ञान उत्पन्न हुआ। तब "दश हजार वर्षके बाद तुम हमारे धामको जाओगे" यह विष्णु भगवान्का कथन स्मरण कर उन्होने अपनी स्त्री पुत्रोंको सौंप दी और स्वयं संन्यास लेकर घर छोड़ दिया ॥१॥ एवं पश्चिम दिशामें समुद्रके तट पर गये, जहाँ पहले जाजलि नाम ऋषि तप करके सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हुए हैं। प्रचेतागणने वहाँ ब्रह्मयज्ञ (आत्मतत्त्वके विचार) का अनुष्ठान किया जिसके करनेसे सब प्राणी ब्रह्म-मय देख पड़ते हैं ॥ २ ॥ प्रचेतागणने समुद्रतट पर जा कर प्राण, मन, वाक्य और बाह्यविषयोंमें आसक्त दृष्टिको अपने वशमें करके आसनको स्थिर किया। फिर विषयोंसे निवृत्त निर्मल चित्तको निर्गुण निराकार ब्रह्ममें लगाया और शरीर सीधा करके बैठे। इसी अवसरमें वहाँ सुरासुरपूजित देवर्षि नारद अकस्मात् विचरते हुए आ गये ॥ ३ ॥ नारदजीको आते देख प्रचेतागण उठ खड़े हुए, प्रणाम किया एवं अभिनन्दनपूर्वक यथायोग्य

विधिसे पूजा की । जब नारदजी सुखपूर्वक आसन पर बैठे तब प्रचेतागण बोले। ब्रह्मन् ! आप सुखपूर्वक तो आये ? हमारे बड़े भाग्य हैं जो आपके दर्शन हुए। सूर्यके समान सब जनोंको ज्ञानके प्रकाश द्वारा अभय देनेके लिये ही आप पृथ्वीमण्डलमें विचरते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ भगवन् ! भगवान् शिव और देवदेव विष्णुने जो २ उपदेश दिये थे वे हमें गृहस्थाश्रममें आसक्त रहनेके कारण विस्मृत होगये हैं ॥ ६ ॥ अब आप, जिससे हम लोगोंको तत्त्वका ज्ञान हो एवं जिसके द्वारा हम सहजमें ही दुस्तर संसारसागरके पार हों, उस ब्रह्मज्ञानका उपदेश कीजिये ॥ ७ ॥ **श्रीमैत्रेयजी कहते हैं** कि हे विदुर ! प्रचेतागणने जब इस प्रकार कहा तब भगवान् नारद मुनि उत्तमश्लोक भगवान् विष्णुमें मन लगा कर बोले ॥ ८ ॥ **श्रीनारदजी ने कहा** कि हेनरपतिगण ! मनुष्योंके वे ही जन्म, कर्म, आयु, मन और वचन सफल व सार्थक हैं जिनसे विश्वरूप परमेश्वर हरिकी सेवा की जाय ॥ ९ ॥ मनुष्योंके तीनो जन्म [(१) गर्भमें शुक्रशोणितका मेल होनेसे, (२) गायत्री पढ़नेसे, (३) यज्ञकी दीक्षा लेनेसे] बिना हरि-सेवाके विफल हैं। संपूर्ण वेदोक्त कर्म करनेसे वा देवतोंके समान बहुत आयु होनेसे कोई फल नहीं है-यदि वे हरिकी चर्चासे रहित हैं ॥ १० ॥ ऐसे ही शुद्ध ईश्वर हरिकी चर्चाके विना वेद पढ़ना, तप करना, बहुत वोलनेकी शक्ति (वाक्चातुरी) होना, बहुत सूझबूझ होना, चतुरता और सूक्ष्म बुद्धि होना, बहुत बल होना, अधिक इन्द्रिय-शक्ति होना आदि सब निष्फल है ॥ ११ ॥ जहाँ आत्माको शान्ति देनेवाले हरि नहीं हैं वहाँ योग और सांख्यके अभ्याससे या स्वाध्याय (वेदाध्ययन) और संन्याससे क्या लाभ है? एवं अन्यान्य कल्याणकर्मोंसे ही क्या फल है? ॥ १२ ॥ जितनी प्रिय वस्तुएं हैं उनमें आत्मा ही प्रधान है, और भगवान् हरि ही सबमें आत्मारूपसे स्थित हैं; इसी कारण उनसे बढ़ कर प्रिय वस्तु और कौन हो सक्ती है? ॥ १३ ॥ जैसे वृक्षकी जड़में जल सींचनेसे उसकी मोटी शाखाएं, डाले और डालियां सब पुष्ट होते हैं एवं जैसे भोजन करनेसे सब इन्द्रियोंकी तृप्ति होती है वैसे ही हरिकी पूजा करनेसे सब देवतोंकी उपासना होती है ॥ १४ ॥ जैसे जल सूर्यसे निकल कर समयानुसार फिर उसमें लीन हो जाते हैं और जैसे स्थावर एवं जंगम-सब प्राणी पृथ्वीसे उत्पन्न हो कर फिर समयानुसार उसीमें लीन हो जाते हैं वैसे ही चेतनाचेतनरूप यह विश्वका प्रपञ्च समयानुसार (ईश्वरकी इच्छा ही समय है, उसीके अनुसार) उत्पन्न हो कर उसीमें लीन हो जाता है ॥१५॥१६॥ यह उस विश्वात्माका परम पद है जो सूर्य्यकी प्रभाके समान प्रकाशमान है । जैसे इन्द्रियोंके सचेत न रहने पर भी प्राण जाग्रत रहते हैं वैसे ही यह भी विश्वरूप प्रपञ्चके न रहने पर भी प्रकाशित रहता है । द्रव्य, क्रियाका ज्ञान होनेसे और माया व ब्रह्मका भेद जान पड़ने पर

भ्रम दूर हो जाता है ॥ १७ ॥ हे नृपगण! जैसे आकाशमें मेघ, अन्धकार और प्रकाश क्रमशः प्रकट और लीन होते हैं वैसेही सत्त्व–रज–तम–रूपिणी शक्ति अर्थात् मायाका प्रवाह यह संसार भगवान्‌में प्रकट होता है और लीन हो जाता है ॥ १८ ॥ अतएव तुम सब अनन्यभावसे उन्हीको भजो । वह सब देहधारियोंके आत्मा एवं इस जगत्‌का निमित्तकारण (काल) हैं। वही उपादानकारण (प्रकृति) और परमपुरुष हैं। वह अपने तेज द्वारा सत्त्वादि गुणोंके प्रवाहको नष्ट करते हैं, अतएव वही परमेश्वर हैं ॥ १९ ॥ सब प्राणियों पर दया करनेसे और जो कुछ मिल जाय उसमें सन्तुष्ट रहनेसे एवं सब इन्द्रियोंको शान्त कर लेनेसे शीघ्र ही जनार्दन भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ २० ॥ साधुजनोंके कामनारहित–निर्मल हृदयाकाशमें, उनकी निरन्तर वृद्धिको प्राप्त भक्तिभावनासे खींचकर लाये गये हरि भगवान् बंदीकी भाँति विवश होकर रहते हैं; कभी नहीं हटते ॥ २१ ॥ किन्तु जो मतिमंद मनुष्य–धन, विद्या, कुल और कर्मके अहंकारमें मत्त हो कर अकिञ्चन साधुओंका अपमान करते हैं, भगवान् उनकी पूजाको भी नहीं ग्रहण करते। क्योंकि भक्तिरसके रसिक भगवान् ही जिनका धन हैं ऐसे निर्धन साधुजन भगवान्‌को बहुत ही प्रिय हैं ॥ २२ ॥ वह भगवान् स्वयंपरिपूर्ण हैं एवं अपने भक्तजनों पर अनुरक्त हैं । देखो जो भगवान् अनुगामिनी लक्ष्मी और सकाम नरपतिगण एवं देवगणको नहीं भजते किन्तु अपने भक्तोंके वशमें हैं उनको कोई भी कृतज्ञ पुरुष एक पलके लिये भी नहीं भूल सक्ता ॥ २३ ॥ **मैत्रेयजी कहते हैं।** हे विदुर! ब्रह्माके पुत्र नारदजी यह सब एवं और २ भगवत्तत्त्वकी कथाएँ सुना कर ब्रह्मलोकको गये ॥ २४ ॥ प्रचेतागण भी नारदजीके मुखारविंदसे निकली हुई लोगोंके मनको निर्मल करनेवाली भगवान्‌की कीर्तिको सुन कर उन्हीके चरणोंमें चित्त लगाकर ब्रह्मगतिको प्राप्त हुए ॥ २५ ॥ वत्स विदुर! तुमने जो मुझसे पूछा था यह वही नारद और प्रचेतागणका हरिकीर्तनसंबंधी संवाद मैंने वर्णन किया ॥ २६ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! मनुके पुत्र उत्तानपादके वंशका वर्णन तो हो चुका, अब उनके भाई प्रियव्रतका वंश सुनो ॥ २७ ॥ राजा प्रियव्रतने भी नारदजीसे अध्यात्मविद्या पा कर फिर पृथ्वीका पालन किया। तदनन्तर अपने पुत्रोंको राज्य बाँट कर परमेश्वरके परमपदको प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ मुनिवर मैत्रेयके मुखसे भगवान्‌की कथाएँ सुन कर विदुरका हृदय भक्तिभावसे भर गया, नेत्रोंमें प्रेमके आँसू भर आये। विदुरजीने हृदयमें हरिके चरणोंको रख कर अपना मस्तक मैत्रेयमुनिके चरणों पर धर दिया ॥ २९ ॥ **श्रीविदुरजी बोले।** हे तात! हे महायोगिन्! हे करुणामय! आपने कृपा करके मुझे अज्ञानरूप अंधकारके पार पहुँचा दिया, जहाँ अकिंचन साधुओंको सुलभ हरि भगवान् मुझे

प्राप्त हुए ॥ ३० ॥ विदुरजी इस प्रकार मैत्रेयजीसे कह कर और प्रणाम कर अपने इष्ट मित्र व बंधुओंको देखनेकी लालसासे हस्तिनापुरको गये ॥ ३१ ॥

एतद्यः शृणुयाद्राजन्राज्ञां हर्यर्पितात्मनाम् ॥
आयुर्धनं यशः स्वस्तिगतिमैश्वर्यमाप्नुयात् ॥ ३२ ॥

हे राजन् ! हरिपरायण प्रचेतागणकी इस पवित्र कथाको जो लोग सुनते हैं उनको धन, ऐश्वर्य्य, आयुर्बल, यश, मंगल और सद्गति मिलती है ॥ ३२ ॥

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

समाप्तोऽयं चतुर्थस्कन्धः ।



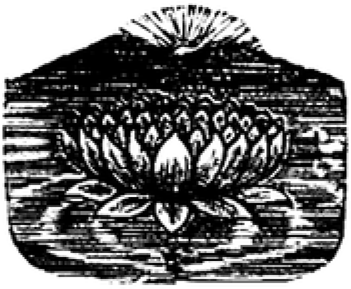


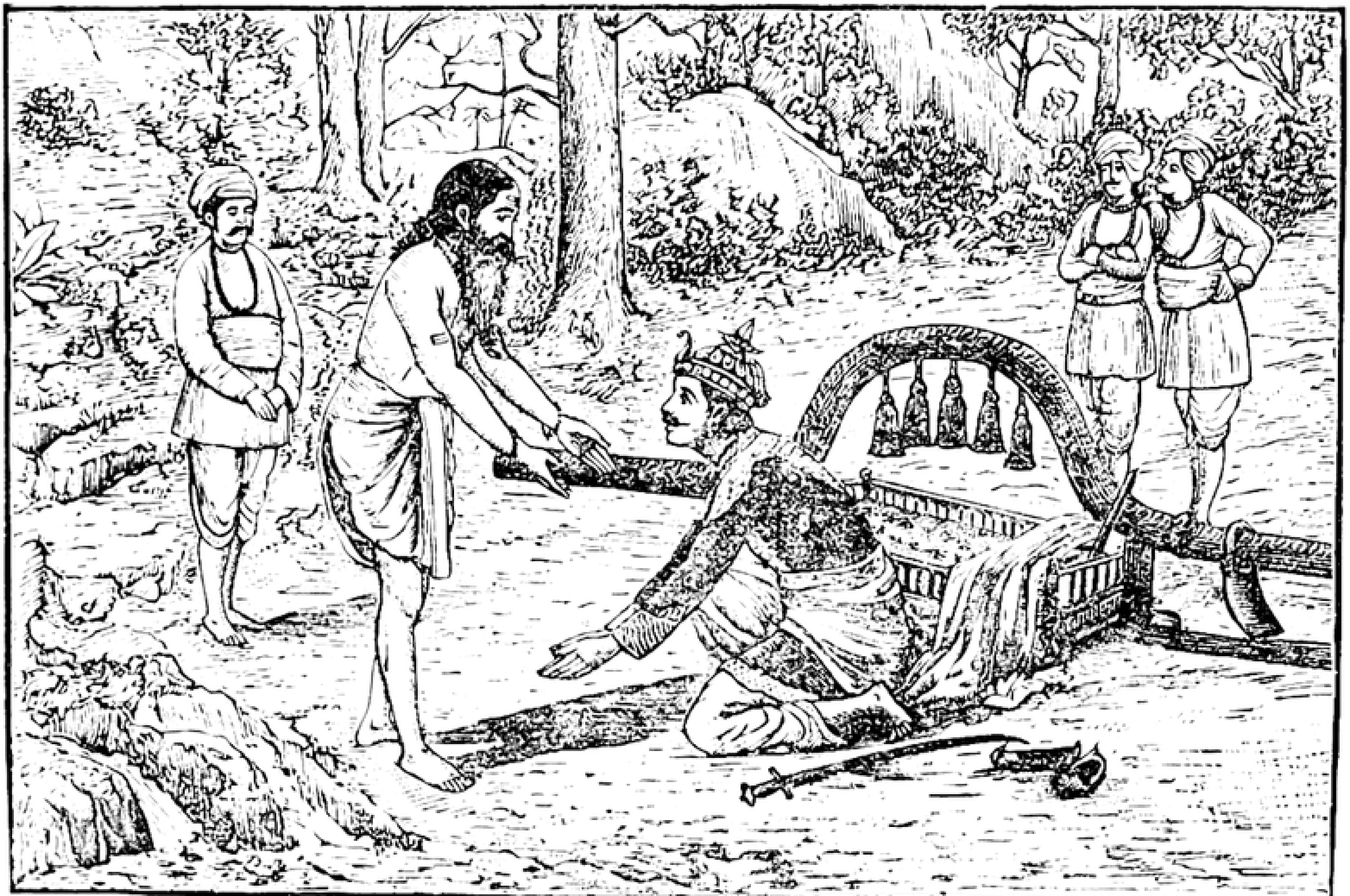
शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

पञ्चमस्कन्धः ।





जड़भरत और राजा रहूगण ।



॥ श्रीः ॥

शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

पञ्चमस्कन्धः ।



प्रथम अध्याय ।

प्रियव्रतका राज्यभोग और फिर ज्ञानमार्गमें निष्ठा ।

राजोवाच—प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने ॥
गृहेऽरमत यन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः ॥ १ ॥

परीक्षितजी बोले हे मुनिवर! गृहस्थाश्रममें कर्मबंधन होता है, जिससे जीव अपने शुद्ध आनन्दमय रूपको भूल जाता है। यह जान कर भी आत्मज्ञानी भगवद्भक्त राजा प्रियव्रतने क्यों गृहस्थाश्रम ग्रहण किया? ॥ १ ॥ प्रियव्रतके समान विरक्त हरिभक्त पुरुषोंकी कभी गृहस्थाश्रममें रति न होनी चाहिये ॥ २ ॥ हे विप्रर्षि! हरिके चरणारविन्दोंकी शीतल छायामें ही महात्माओंके चित्त सुखी रहते हैं। उनको संसारी जनोंके समान कुटुंबकी ममता नहीं होती ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन्! राजा प्रियव्रत स्त्री, पुत्र, गृह आदिमें आसक्त रह कर कैसे सिद्धिको प्राप्त हुए और श्रीकृष्णचन्द्रमें उनकी अटल भक्ति कैसे हुई? हमको यह

बड़ा भारी संदेह है ॥ ४ ॥ **श्रीशुकदेवजी बोले**। राजन्! आपने ठीक कहा। जिनका चित्त हरिभगवान्के चरणारविंदोंकी मकरंदके रसमें मग्न रहता है वे लोग परमहंसोंकी प्यारी जो भगवान्की कथाएं हैं उन्हीको परम-मंगल-मय पदवी जानते हैं। किसी प्रकारकी विघ्नबाधा उपस्थित होने पर भी वे लोग उसे नहीं त्यागते ॥५॥ हे राजन्! राजा प्रियव्रत बड़े ही भगवान्के भक्त थे। नारदजीके चरणोंकी सेवाके प्रभावसे उनको सहजमें ही परमार्थतत्त्वका ज्ञान हो गया। उन्होने निश्चय किया कि मैं एकान्तमें शान्त भावसे आत्मामें परमात्माका ध्यान करूं। प्रियव्रतने पहले ही एकाग्रभावसे वासुदेव भगवान्में मन लगा कर अपनी इन्द्रियोंके सब कर्मोंका अभिमान त्याग दिया था, सब कर्म ईश्वरको अर्पण कर दिये थे। इसी कारण, यद्यपि इनके पिता मनुने इनको राजनीतिमें चतुर एवं अनेक गुणोंसे परिपूर्ण देख कर राज्य करनेकी आज्ञा दी किंतु इन्होने राजकाज करना नहीं स्वीकार किया। यद्यपि पिताकी आज्ञा टालना अनुचित है तथापि प्रियव्रतने "इस असत् राज्याधिकार एवं राज्यप्रपञ्चसे आत्माको मोह होगा" यह विचार कर राज्यासनको स्वीकार नहीं किया ॥ ६ ॥ भगवान् आदिदेव ब्रह्माजी यह बात (प्रियव्रतका राज्य न ग्रहण करना) जान कर मूर्तिमान् चारो वेद और मरीचि आदि पुत्रगण सहित अपने भवन (सत्यलोक) से पृथ्वी पर उतरे। राजन्! राजा जैसे चर(गुप्त दूत)द्वारा मंडलेश्वरों(सामन्तों)के अभिप्रायोंको जानते रहते हैं वैसे ही आत्मयोनि ब्रह्माजी सृष्टिसमृद्धिकी चिन्ता द्वारा संपूर्ण जगत्के अभिप्रायको जानते हैं॥७॥ब्रह्माजीको विदित था कि प्रियव्रतको नारदजी गंधमादन पर्वत पर उपदेश कर रहे हैं और मनुजी प्रियव्रतको लेने आये हैं। अतएव नारदजीके पास जानेके लिये अपने लोकसे चले एवं क्रमशः पृथ्वी पर उतरने लगे। राहमें हरएक लोकोंमें विमानों पर विचरनेवाले देवगणकी पूजा ग्रहण करते एवं सिद्ध, साध्य, गंधर्व, चारण और झुंडके झुंड मुनियोंके मुखसे अपना यश सुनते हुए ब्रह्माजी आकाशमें चन्द्रमाके समान शोभायमान हुए। जब ब्रह्माजी गंधमादन पर्वत पर पहुंचे तब उनके तेजसे पर्वतकी कंदराओंका अंधकार दूर हो गया ॥ ८ ॥ हंसयुक्त विमान देख कर देवर्षि नारदने जान लिया कि हमारे पिता हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा आ रहे हैं। उसी समय पिता (मनु) और पुत्र (प्रियव्रत) सहित नारदजी उठ खड़े हुए और हाथ जोड़ कर ब्रह्माजीको प्रणाम किया ॥९॥ हे भारत! देवर्षि नारदने षोड़शोपचारसे ब्रह्माजीका पूजन किया और मधुर वचनोंसे उनके गुण, यश और प्रभावका वर्णन करते हुए स्तुति की। तब आदिपुरुष ब्रह्माजी हँसते हुए कृपापूर्ण दृष्टिसे प्रियव्रतकी ओर देख कर यों कहने लगे ॥ १० ॥ **ब्रह्माजी बोले** कि बेटा प्रियव्रत! जो कुछ मैं कहता हूँ उसे सावधान हो कर सुनो, क्योंकि मेरे द्वारा साक्षात् हरि ही तुमको प्रवृत्तिमार्गमें प्रवृत्त कर

रहे हैं । इसीसे कहता हूँ कि प्रवृत्तिमार्गमें चलानेवाले मेरे द्वारा कहे गये हरिके वचन (जो अब कहूंगा) सुनो । सत्य, अप्रमेय, परमेश्वर पर दोषारोपण करना तुमको उचित नहीं है । देखो हम, शिवजी, तुम्हारे पिता मनु और गुरु नारद आदि सभी लोग ईश्वरकी आज्ञाका पालन करते हैं, क्योंकि उसे कोई टाल नहीं सक्ता ॥ ११ ॥ तपसे, विद्यासे, बुद्धिसे, बल व योगबलसे या अपनेसे अथवा किसीकी सहायतासे ईश्वरकी आज्ञाको कोई भी शरीरधारी अन्यथा नहीं कर सक्ता । अर्थ और धर्मकी सहायतासे भी ईश्वरकी इच्छा नहीं टल सक्ती ॥ १२ ॥ हे प्रियव्रत ! सब जीव, जन्म, मरण, शोक, मोह, भय, सुख, दुःख आदिके वश हो कर कर्म करनेके लिये ही ईश्वरके दिये हुए शरीर-संयोगको पाते हैं ॥ १३ ॥ कोई भी स्वतंत्रताके साथ कोई कर्म नहीं कर सक्ता । परमेश्वरके वाक्य (वेद) की रस्सीमें सत्त्वादिगुण और त्रिविधकर्मों द्वारा "ब्राह्मण" आदि शब्दोंके सुदृढ़ बंधनोंसे बँधे हुए हम सब उसी ईश्वरकी इच्छाके अनुसार कर्म करते हैं, जैसे रस्सीमें नथे हुए बैलआदि पशु मनुष्योंकी इच्छाके अनुसार परवश हो कर चलते हैं; अपनी इच्छासे कुछ नहीं कर सक्ते ॥ १४ ॥ हे प्रियव्रत ! जैसे नेत्रयुक्त मनुष्य अपनी इच्छाके अनुसार अंधोंको धूपमें या छांहमें ले जाता है वैसे ही हमारे प्रभु परमेश्वर अपनी इच्छाके अनुसार हमसे कर्म करा कर, हमको पशु पक्षीआदि चाहे जिस योनिमें पहुँचाते हैं, उसीको स्वीकार करके हम सुख या दुःख भोगते रहते हैं ॥ १५ ॥ हे पुत्र! जैसे सो कर जगा हुआ मनुष्य जाग्रत् अवस्थामें भी स्वप्नकी देखी हुई बातोंका अनुभव करता है वैसे जो लोग देहाभिमान-हीन होनेके कारण जीवन्मुक्त अवस्थाको प्राप्त हो चुके हैं उन्हे भी जब तक पहले जन्मके कर्म निःशेष नहीं होते तब तक उनका फल भोगनेके लिये शरीर धारण करना पड़ता है । किन्तु वे जिनसे शरीरबंधन होता है उन कर्म और वासनाओंका त्याग कर देते हैं, इस कारण दूसरा शरीर नहीं पाते, वर्तमान शरीर त्यागने पर भगवान्में लीन हो जाते हैं ॥ १६ ॥ देखो, जिसने पहले अपनी इन्द्रियोंको वशमें नहीं किया और संगके भयसे बस्ती छोड़ कर वन २ में फिरता है उसे वनमें भी भ्रष्ट होनेका भय है, क्योंकि(मन और पांच ज्ञानेंद्रिय ये) छः शत्रु उसके साथ ही हैं । जो आत्मामें रत और जितेन्द्रिय एवं सत् असत्को जानता है उसका गृहाश्रममें रहनेसे भी कुछ अनिष्ट नहीं हो सक्ता ॥ १७ ॥ जो उक्त छः शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा रखता हो उसे उचित है कि पहले गृहस्थाश्रममें रह कर संयमपूर्वक उक्त शत्रुओंको जीतनेका यत्न करै । जब शत्रु निर्बल हो जायँ तब वह विद्वान् अपनी इच्छाके अनुसार चाहे जहाँ विचरै । देखो, जो दुर्ग (किले) का आश्रय लिये हुए है वह बड़े २ शत्रुओंको जीत कर इच्छानुसार विचरता है ॥ १८ ॥ तुम पद्मनाभ भगवान्के पादपद्मरूप दुर्गका आश्रय लिये

हुए हो और इसी कारण पूर्वोक्त छः शत्रुओंको जीत चुके हो। इस लोकमें जब तक रहो, ईश्वरके दिये हुए ऐश्वर्यका भोग करो । फिर समयानुसार संगत्याग कर अपने रूप (परब्रह्म) को भजना ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाभक्त प्रियव्रतने त्रिभुवन-गुरु ब्रह्मासे यह उपदेश पा कर अपने छोटे होनेके अनुसार शिर झुका कर "ऐसा ही करूँ गा" कह कर उनकी आज्ञाको सादर स्वीकार किया ॥ २० ॥ मनुने आनन्दपूर्वक यथाविधि ब्रह्माजीकी पूजा की। ब्रह्माजी भी वह पूजा ग्रहण कर, जहाँ कोई मायाका प्रपंच नहीं है उस अपने रूप(ब्रह्म)का ध्यान करते हुए, जहाँ वाणी और मनकी गम्य नहीं है उस अपने धामको गये। नारद और प्रियव्रत शुद्ध और सरल दृष्टिसे ब्रह्माजीकी ओर देखते रहे (अर्थात् योगभ्रष्ट होनेसे प्रियव्रत और अपना शिष्य हाथसे निकल जानेके कारण नारदजी ब्रह्माजीसे कुछ असन्तुष्ट नहीं हुए) ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी इस प्रकार मनुका मनोरथ सिद्ध करके चले गये तब उन्हो (मनु) ने नारदकी आज्ञाके अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलकी रक्षाका भार अपने पुत्र(प्रियव्रत)-को सौंप दिया और आप अतिविषम विषमय विषयोंके भोगकी इच्छा त्याग कर ईश्वरके भजनमें तत्पर हुए ॥ २२ ॥ जिनके अनुभवसे सब जगत्के कर्मबन्धन छूट जाते हैं उन आदिपुरुष भगवान्के चरणारविंदोंका निरन्तर ध्यान करनेसे प्रियव्रतका अन्तःकरण शुद्ध हो गया—काम क्रोध आदिक मल नष्ट हो गये। किन्तु ब्रह्मा आदि बड़ोंकी आज्ञा मान कर उनका मान बढ़ानेके लिये वह महीमंडलका शासन करने लगे। उनको ईश्वरकी इच्छासे निवृत्तिमार्ग छोड़ कर फिर प्रवृत्ति-मार्गमें प्रवृत्त होना पड़ा। प्रियव्रतजीने विश्वकर्मा प्रजापतिकी बर्हिष्मती नाम कन्यासे विवाह भी किया ॥ २३ ॥ प्रियव्रतजीने बर्हिष्मतीके गर्भसे अपने ही समान शील, गुण, कर्म, रूप, वीर्यवाले सरलस्वभावयुक्त दश पुत्र और सबसे छोटी ऊर्जस्वती नाम कन्या उत्पन्न की ॥ २४ ॥ प्रियव्रतके दसो पुत्रोंके नाम ये हैं। आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि। इन दसोके नाम अग्निके नामों पर हैं ॥ २५ ॥ इनमें कवि, महावीर और सवन बाल-ब्रह्मचारी हो गये। इन्होने बाल्यावस्थासे ही अध्यात्मविद्याका अभ्यास कर परमहंसधर्म ग्रहण किया ॥२६॥ तीनो राजकुमार परमहंस आश्रममें प्रवेश करके शान्तस्वभाव और महामुनि हो गये। इस अवस्थामें उन्होने सब जीवोंके निवासका स्थान एवं भव-भय-भंजन भगवान् वासुदेवके चरणकमलोंका निरन्तर स्मरण कर अखंडित भक्तियोगके बलसे अपने २ अन्तःकरणोंको निर्मल कर लिया और शुद्ध अन्तःकरणमें प्राप्त जो सब देहधारियोंके आत्मा भगवान् परमात्मा हैं उनमें देहाभिमान-शून्य मन लगा कर तन्मय हो गये ॥ २७ ॥ प्रियव्रतके दूसरी

स्त्रीके गर्भसे उत्तम, तामस और रैवत नाम तीन पुत्र हुए। ये तीनो मन्वन्तरोंके अधिपति हुए। कविआदि तीनो पुत्र जब परमहंस हो गये तब महाबुद्धिमान् राजा प्रियव्रतने ग्यारह अर्बुद (दस करोरका एक अर्बुद होता है) वर्ष तक पृथ्वीका पालन किया। सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाले एवं अखंडनीय बलसे परिपूर्ण दोनो विशाल बाहुओंसे जब राजा प्रियव्रत धनुष चढ़ाते थे तब उसका शब्द सुन कर बिना युद्ध किये ही अधर्मी लोग दब जातेथे। वह अपनी परमप्यारी रानी बर्हिष्मतीके साथ नित्यप्रति आमोद-प्रमोद करते थे। देखनेसे जान पड़ता था कि स्त्रियोंके आमोद-प्रमोद, विहार, लज्जायुक्त भाव और हँसी दिल्लगी आदिके आगे उनका आत्मज्ञान और विवेक मंद पड़ गया, किन्तु वास्तवमें ऐसा न था। वह जैसे कोई अपनेको भूला हुआ हो ऐसी अवस्था दिखाते हुए विषयोंका भोग करते थे ॥ २८ ॥ भगवान् सूर्य सुमेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करते हुए लोकालोक पर्वत तक प्रकाश करते हैं तब पृथ्वीमंडलका आधा भाग (जिसके सामने सूर्य रहते हैं) प्रकाशित होता है और आधे भागमें अंधकार रहता है। प्रियव्रतको यह अच्छा न लगा। उन्होने प्रतिज्ञा की कि मैं अपने तेजसे रातको भी दिन बनाऊँगा। तब भगवान्‌की उपासना करनेसे बढ़ गया है अलौकिक पराक्रम जिनका ऐसे राजा प्रियव्रतने सूर्यके समान वेगवाले ज्योतिर्मय रथ पर चढ़ कर दूसरे सूर्यके सामन सूर्यभगवान्‌के साथ ही साथ सात बार पृथ्वीकी परिक्रमा की ॥२९॥ प्रियव्रत आठवां चक्कर लगानेवाले ही थे इसी समय चतुरानन ब्रह्माने आकर कहा कि "पुत्र! यह तुम्हारा कार्य नहीं है और न इस कार्यके करनेका तुमको अधिकार है"। यों ब्रह्माके रोकने पर प्रियव्रतजीने अपना विचार छोड़ दिया। प्रियव्रतका रथ सात बार पृथ्वी पर घूमा, उससे पहियेकी सात लीकें बन गईं। वेही सातो सागर होगये। उन्ही सातो सागरों द्वारा बीचकी पृथ्वीसे जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर ये सात द्वीप बन गये। इन द्वीपोंका विस्तार उत्तरोत्तर दूना है। ये द्वीप समुद्रोंके बहिर्भागमें चारोओर फैले हुए हैं। जैसे समुद्रके बाद एक द्वीप है वैसे ही उस द्वीपके बाद एक समुद्र है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ खारी जलका, ऊँखके रसका, मदिराका, घृतका, दूधका, दहीका और शुद्धजलका; ये सात समुद्र पूर्वोक्त सातो द्वीपोंको खाईके समान चारो ओरसे घेरे हुये हैं। जिस द्वीपको जो समुद्र घेरे हुए है वह समुद्र विस्तारमें उसी द्वीपके बराबर है ॥ ३२ ॥ ये सातो समुद्र ऊपरी द्वीपोंसे अलग ही अलग हैं और भीतरी द्वीपोंको चारो ओरसे घेरे हुए हैं। बर्हिष्मतीके पति प्रियव्रतने उक्त जम्बूआदि द्वीपोंमें अपने ही समान शुद्ध चरित्रवाले आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ट, मेधातिथि और वीतिहोत्रनाम सात पुत्रोंको क्रमशः (एक २ में एक २ को) राजा बनाया ॥३३॥ और ऊर्जस्वती नाम कन्या शुक्राचार्यको ब्याह दी; उसमें शुक्राचार्यके देवयानी नाम कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३४ ॥

अन्त्यज भी जिनका नाम एक बार लेने पर संसारके बंधनसे छूट जाता है उन भगवान् हरिके चरणकमलकी रजको पा कर जिन्होने इन्द्रियोंको जीत लिया है उन भगवद्भक्त पुरुषोंमें ऐसा असाधारण पौरुष होना कुछ आश्चर्य्य नहीं है ॥ ३५ ॥ देवर्षि नारदके चरणोंकी सेवाके बाद फिर विवश हो कर अमित बल और पराक्रमवाले राजा प्रियव्रतको राज्यभार ग्रहण करना पड़ा । राज्य करते २ एक समय राजाके मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ और वह "अहो ! राज्यभोगमें पड़ कर मैं मंगलके मार्गसे भ्रष्ट हो गया" ऐसा विचार कर यों पश्चात्ताप करने लगे ॥ ३६ ॥ "अहो ! मैंने बहुत ही बुरा किया ! इन्द्रियोंने मुझको अविद्या-रचित विषम विषयोंके गढ़ेमें गिरा दिया । मेरा जन्म ही वृथा बीता जाता है । बस २, अब विषय-भोग त्यागना चाहिये । हा ! मैं इस स्त्रीका क्रीड़ा-मर्कट (खेलनेका बंदर) हो रहा हूँ, मुझे धिक्कार है ! धिक्कार है !" प्रियव्रतजी इस प्रकार अपने कर्मकी और अपनी निंदा करने लगे ॥ ३७ ॥ उनको परमदेवता हरिकी कृपासे ज्ञान हुआ तब अपनी आज्ञाका पालन करनेवाले पुत्रोंको यथायोग्य इस पृथ्वीका राज्य बाँट दिया एवं भोगी हुई साम्राज्य-संपदा व बर्हिष्मती रानीको मरे हुए शरीरके समान त्याग कर नारदके बताये हुए ज्ञानमार्गको फिर ग्रहण किया। उनके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हुआ एवं हृदयमें हरिकी भक्तिका संचार हुआ अतएव वह इतनी जल्दी ममता–मोहके बंधनसे निर्मुक्त हो सके ॥ ३८ ॥ सिवा ईश्वरके और कौन ऐसा है जो प्रियव्रतके कर्मोंकी बराबरी कर सके ? उन्होने रात्रिका अंधकार दूर करनेके लिये सूर्यके पीछे घूम कर अपने रथके पहियेकी लीकोंसे सात समुद्र बना दिये ॥ ३९ ॥ और द्वीपोंकी रचना करके पृथ्वीका विभाग कर दिया एवं जिसमें कोई लड़ें झगड़ें नहीं-सुखसे रहें इस लिये नदी पर्वत और वनआदिसे द्वीपोंकी व खंडोंकी सीमा (हद) बना दी ॥ ४० ॥

भौमं दिव्यं मानुषं च महित्वं कर्मयोगजम् ॥
यश्चक्रे निरयौपम्यं पुरुषानुजनप्रियः ॥ ४१ ॥

उन्होने पृथ्वी, स्वर्ग और मनुष्यलोकके एवं योग व कर्मोंसे जो प्राप्त होते हैं उन सब विभवोंको नरकके समान मान कर तृणतुल्य त्याग दिया । क्यों न हो, वह भगवद्भक्त थे, उनको हरिभक्त ही प्रिय थे ॥ ४१ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय ।

आग्नीध्रके चरित्रका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच—एवं पितरि संप्रवृत्ते तदनुशासने वर्तमान आग्नीध्रो जम्बूद्वीपौकसः प्रजा औरसवद्धर्मावेक्षमाणः पर्यगोपायत् ॥ १ ॥

श्री शुकदेवजी कहते हैं । प्रियव्रतजी जब इस प्रकार परमार्थ सिद्ध करनेके लिये चले गये तब उनके पुत्र आग्नीध्रजी उन्हींकी आज्ञाके अनुसार धर्म पर दृष्टि रख जम्बूद्वीपमें रहनेवाली प्रजाको पुत्रके समान पालने लगे ॥ १ ॥ राजा आग्नीध्र एक समय पुत्रकी कामनासे जहाँ पर अप्सराएँ सब समय विहार किया करती हैं उस मंदराचलकी कंदरामें गये और वहाँ पूजाकी सामग्री एकत्र कर एकाग्रचित्त हो कर प्रजापतियोंके पति भगवान्की घोर तपसे आराधना करने लगे ॥ २ ॥ भगवान् ब्रह्माजीने आग्नीध्रकी अभिलाषा जान कर, उस समय देवसभामें पूर्वचित्ति अप्सरा गार ही थी उसको उनके पास भेजा ॥ ३ ॥ पूर्वचित्ति अप्सरा ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार, आग्नीध्र जहाँ तप कर रहे थे उस स्थान पर आई और आग्नीध्रके तपोवनके पासवाले बागमें इधर उधर टहलने लगी । वह उपवन बहुत ही रमणीय था । अनेक प्रकारके घने २ वृक्षोंकी शाखाओंसे सुवर्णवर्ण ललित लताएँ लिपटी हुई थीं । उनपर मोर आदि स्थलचर पक्षियोंके जोड़े बैठे हुए षड्जआदि मधुर स्वरोंसे मनोहर गान कर रहे थे । मोर आदि पक्षियोंके कंठकी ध्वनि सुन कर निर्मल सरोवरोंमें कुक्कुट, हंस, कारंडव आदि जलचर जीव भी मधुर शब्द करते थे, जिससे जान पड़ता था कि अमल कमलसंयुत सरोवर ही आनन्दके मारे कोलाहल कर रहे हैं ॥ ४ ॥ वह अप्सरा आश्रमके निकट इधर उधर विलक्षण—विलासयुक्त गतिसे टहलने लगी । वारंवार पैर रखने पर उसके पैरोंके नूपुर आदि आभूषणोंका मनोहर "खन २" शब्द होने लगा । उस मधुर शब्दको सुन कर नरदेवकुमार आग्नीध्रने समाधियोगमें मूंदे हुए अपने नेत्रकमलोंको तनिक खोल कर उसकी ओर निहारा ॥ ५ ॥ अप्सराको देखते ही राजा आग्नीध्र कामके वश हो गये । जब वह भौंरीके समान फूलोंके पास जाकर उनको सूंघती थी तब उसकी सुंदर गति, विहार, क्रीड़ा, विनयपूर्ण दृष्टि और परम मनोहर हाव-भाव एवं सुन्दर नेत्र आदि अंग व मधुर अक्षर और स्वर देख सुनकर क्या देवता और क्या मनुष्य—सभी कामदेवके बाणोंसे घायल हो जाते थे । उसके मुखकमलसे अमृततुल्य स्वादिष्ट और मदिराके समान मादक-हास्य-युक्त वाक्य निकलते थे । उन वाक्योंके साथ सुगंधित श्वासा निकलती थी—जिसके सुगंधसे अंध हो रहे भौंरे उसके मुखकमलको चारो ओरसे घेरे हुए

थे। भौंरोंके घेर लेने पर वह भयभीत हो कर शीघ्र २ चलती थी। शीघ्र चलनेके कारण उसके स्तन, वेणी और चन्द्रहार हिलते थे; जिनसे उसकी अपूर्व शोभा होती थी। राजा आग्नीध्र उसे देख कर मोहित हो गये और कामदेवके वश होनेके कारण वह जड़वत् आत्मज्ञानहीन होकर इस प्रकार स्त्री-पुरुष-ज्ञानसे शून्य वाक्य उच्चारण करने लगे ॥ ६ ॥ **आग्नीध्रजी बोले** कि "हे मुनिश्रेष्ठ! तुम कौन हो? इस पर्वत पर क्या करने आये हो? तुम क्या देवदेव भगवान्की माया हो?"। फिर दोनो भौहें देख कर कहने लगे कि "हे मित्र! ये प्रत्यंचारहित दोनो धनुष क्या अपने लिये धारण किये हुए हो? अथवा हम ऐसे मृगतुल्य अजितेन्द्रिय पुरुषोंको इन धनुषोंसे घायल करनेके लिये खोज रहे हो?" ॥७॥ "हे सुंदरी! तुम्हारे ये कटाक्ष वाण-तुल्य हैं। तुम्हारे दोनो नेत्रकमल मानो इनके पत्र हैं। हाव भाव विभ्रमसे ये दोनो वाण शान्त देख पड़ते हैं एवं पुंख-हीन होने पर भी परम रमणीय हैं। इनके अग्रभाग बहुत ही तीक्ष्ण हैं। इस वनमें विचर कर किस पर ये वाण चलाना चाहती हो—सो हम नहीं जानते। किन्तु हमारी यही प्रार्थना है कि आपको देख कर भयसे जड़ हो रहे जो हम लोग हैं उनके लिये तुम्हारा विक्रम मंगल-कारी हो" ॥ ८ ॥ उस अप्संरा शरीरकी सुवाससे मोहित भ्रमरोंको उसके आसपास गुंजन करते देख कर कहने लगे कि "हे ईश! तुम्हारे ये शिष्य तुम्हारे आगे पाठ पढ़ रहे हैं और रहस्ययुक्त सामवेदकी ऋचाओंका गान कर रहे हैं। ऋषिगण जैसे वेदकी शाखाओंका सेवन करते हैं वैसे ही ये सब तुम्हारी वेणीसे हो रही फूलोंकी वर्षाका सेवन कर रहे हैं" ॥ ९ ॥ उसके नूपुरोंका शब्द सुन कर कहने लगे कि "हे ब्रह्मन्! तुम्हारे चरणरूप पिंजड़ोंमें बंद पक्षियोंका शब्द ही केवल हमको सुन पड़ता है; हम उनको देख नहीं पाते"। फिर पीतांबरको नितंबोंकी ही कान्ति जान कर कहने लगे कि "अजी! तुमने अपने सुंदर नितंबस्थलमें यह कदंबके फूलोंकी सी मनोहर कान्ति कहाँसे पाई?"। फिर रत्न-मेखलाको देख कर बोले कि "यह जलते हुए अंगारोंका मंडल सा क्या देख पड़ता है? हे मुनिवर! तुम्हारा बल्कल कहाँ है?" ॥१०॥ स्तनोंको देख कर कहने लगे कि "हे द्विज! इन तुम्हारे दोनो मनोहर सींगोंमें क्या भरा हुआ है? तुम्हारा मध्यभाग बहुत ही क्षीण है, बड़े कष्टसे तुम इन सींगोंको धारण किये हो। इन दोनो तुम्हारे सींगोंमें मेरी दृष्टि लगी हुई है"। फिर स्तनोंमें लगे हुए अंगरागको देख कर बोले कि "ब्रह्मन्! आपके सींगोंमें यह लाल २ अपूर्व लेप काहेका है? हे सुभग! इस लेपके सुगंधसे मेरा आश्रम भर सुगंधित हो रहा है" ॥ ११ ॥ "हे मित्रवर! आप अपने रहनेका वह स्थान हमको दिखा दो, जहाँके रहनेवाले लोग हम ऐसोंके मनको लुभानेवाले इन वक्षस्थलके अद्भुत अंगोंको धारण करते हैं और उनके मुखमें मधुरालापरूप सरस सुधा रहती है" ॥ १२ ॥ "मित्र! तुम्हारे लोकमें तुमलोग

क्या आहार करके देह धारण करते हो? हमारे विचारमें तुम विष्णु भगवान्‌की कला हो, क्यों कि विष्णु भी कुछ भोजन नहीं करते। अथवा विष्णुके समान तुम भी दिव्य हव्य अन्न भोजन करते हो, क्यों कि तुम्हारे मुखसे सुंदर सुगंधित वायु निकल रहा है। जैसे विष्णुके कानोंमें मकराकृत कुण्डल हैं वैसेही तुम्हारे कानोंमें भी मकराकृत कुंडल शोभायमान हैं। ये मकराकृत कुण्डल पलक नहीं लगाते (कुंडलोंमें जड़े हुए रत्नोंको नेत्र जान कर कहा)। तुम्हारा मुख सरोवर सा देख पड़ता है, क्योंकि दोनो नेत्र मछलीके समान चंचल हो कर क्रीड़ा कर रहे हैं और दाँतोंकी पाँति हंसोंकी भाँति शोभायमान है एवं यह अलकावली कमलकुसुमोंकी सुवाससे लोभे हुए भौंरोंके समान जान पड़ती है" ॥ १३ ॥ "तुम अपने हाथसे इस कंदुक (गेंद) को थपकी देकर उछाल रहे हो, जहां२ यह जाता है वहां २ मेरी दृष्टि भी जाती है, जिससे मेरे नेत्र चंचल हो रहे हैं। हे मित्र! तुम्हारी ये कुटिल जटाएँ बिखर गई हैं, पर तुम्हे इसकी कुछ खबर नहीं है। अहो! यह धूर्त वायु तुम्हारे वस्त्रको अंगसे हटाता है किन्तु तुमको इसका कुछ ध्यान नहीं है ॥१४॥ हे तपोधन मुनिवर! तप करनेवाले तपस्वियोंके तपको नष्ट करनेवाला यह अनूप रूप तुमने कौन तप करके पाया है?। हे मित्र! तुम मेरे साथ यहाँ रह कर तप करो। अथवा सृष्टिका विस्तार करनेवाले भगवान् ब्रह्मा प्रसन्न हो कर तुमको मेरी स्त्री बना दें" ॥ १५ ॥ "हे द्विज! जान पड़ता है ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर तुमको मेरे पास भेज दिया है, मैं तुमको नहीं छोड़ूंगा। तुममें मेरा मन और मेरे नेत्र ऐसे आसक्त हो गये हैं कि कहीं और जगह हट कर नहीं जाते। हे सुंदर शृंगवाली सुंदरी! मैं तुम्हारे अनुगत हूँ, जहाँ जी चाहे ले चलो; मेरा चित्त तुममें लगा हुआ है। तुम्हारी ये सखियां भी हमारे साथ चलें" ॥ १६ ॥ **श्री शुकदेवजी कहते हैं।** इस प्रकार देवसदृश बुद्धिमान् राजा आग्नीध्रने विषयी जनोंके समान मनोहर और चतुर वार्तालापसे उस अप्सराको सन्तुष्ट किया, क्योंकि वह स्त्रियोंको प्रसन्न करनेमें बड़े ही निपुण थे ॥ १७ ॥ पूर्वचित्ति अप्सरा भी वीरश्रेष्ठ जंबूद्वीपके स्वामी आग्नीध्रके शील, रूप, बुद्धि, अवस्था, लक्ष्मी, उदारता आदि गुणों पर मोहित हो गई और उनके साथ हजारों वर्षों तक पृथ्वीके व स्वर्गके भोगविलास करती रही ॥ १८ ॥ राजश्रेष्ठ आग्नीध्रने उस अप्सरामें नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल–इन नव पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ १९ ॥ पूर्वचित्तिने प्रत्येक वर्षमें एक २ पुत्रके हिसाबसे ये नव पुत्र उत्पन्न किये और फिर इन पुत्रोंको राजाके पास छोड़ कर ब्रह्माजीकी सेवामें चली गई ॥ २० ॥ आग्नीध्रके नवो पुत्र माताके प्रभावसे उत्पत्तिसे ही दृढ़ अंगवाले और बलशाली हुए। आग्नीध्रने जंबूद्वीपके नव खंड किये और उनके नाम अपने पुत्रोंके नामों पर धरे एवं जिस पुत्रके नामका जो

खंड था उसको उस खंडका राज्य दिया ॥ २१॥ राजा आग्नीध्र अप्सरासे भोग करके तृप्त नहीं हुए थे, नित्य उसी अप्सराका ध्यान करते २ यज्ञादिके द्वारा अन्तको पितृलोकमें जाकर उस अप्सरासे मिले, जहां पितृगण अपने २ सुकृतके अनुसार भोगविलास करते हैं ॥ २२ ॥

संपरेते पितरि नव भ्रातरो
मेरुदुहितुर्मेरुदेवीं प्रतिरूपामुग्रदंष्ट्रां ॥
लतां रम्यां श्यामां नारीं भद्रां
देववीतिमिति संज्ञा नवोदवहन् ॥ २३ ॥

आग्नीध्र राजा जब परलोकको गये तब उनके पूर्वोक्त नव पुत्रोंने मेरुकी मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्रा, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा और देववीति नाम नव कन्याओंसे क्रमशः बिवाह कर लिया ॥ २३ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय ।

आग्नीध्रके पुत्र नाभिके चरित्रका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच—नाभिरपत्यकामोऽप्रजया मेरुदेव्या
भगवन्तं यज्ञपुरुषमवहितात्माऽयजत ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं । हे राजन्! आग्नीध्रके पुत्र नाभिने सन्तानकी कामनासे मेरुदेवीनाम अपनी पुत्रहीन रानी सहित एकाग्रचित्तसे यज्ञके अनुष्ठान द्वारा भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना की ॥ १ ॥ द्रव्य, देश, काल, मंत्र, ऋत्विज, दक्षिणा, विधि—इन सुसम्पन्न सात उपयोंके द्वारा भी भगवान् विष्णुको कोई सहजमें नहीं पा सक्ता । किन्तु भगवान् तो भक्तवत्सल हैं, अतएव जब नाभिके यज्ञमें 'प्रवर्ग्य' नाम कर्मोंका अनुष्ठान होने लगा तब अपने भक्त नाभिकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये भक्तपरवश एवं स्वतंत्र भगवान् विष्णुजी मन और नयनोंको आनंद देनेवाले अंगोंसे सुशोभित एवं सुखदायक रूपसे प्रकट हुए ॥ २ ॥ उस समय वह भगवान्की मूर्ति तेजोमयी, चतुर्भुज पुरुषके आकारकी थी । हरि पीतांवर धारण किये थे, वक्षस्थलमें श्रीवत्सका चिन्ह शोभायमान था । चारो भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये थे । हृदयमें वनमाला और कौस्तुभ मणिकी अपूर्व छवि थी ॥ ३ ॥ चमकीले श्रेष्ठ मणियोंके मुकुट, कुंडल,

कटक, कटिसूत्र, हार, केयूर, नूपुर आदि आभूषणोंकी प्रभासे सब अंग बहुत ही मनोहर देख पड़ते थे । ऋत्विज, सदस्य और यजमान-सभी उस मूर्त्तिको देख कर बड़े ही आनंदसे उठ खड़े हुए, जैसे निर्धन पुरुष अमूल्य मणिको पाकर परम आनंदित हो कर उसके पास जाते हैं । बहुसम्मानपूर्वक शिर झुका कर अनेक उपहारकी सामग्रियोंसे पूजन करके वे लोग यों कहने लगे ॥ ४ ॥ "हे पूज्य! हम आपके दास हैं। आप यद्यपि पूर्ण हैं, आपको पूजा आदिकी चाह नहीं है, तथापि आपको हम दासोंका पूजन स्वीकार करना योग्य है । महात्मा लोगोंके उपदेशके अनुसार हम आपको केवल वारंवार प्रणाम करते हैं, क्योंकि हम मंदमति आपकी स्तुति कैसे कर सक्ते हैं? आप प्रकृति और पुरुषसे परे निराकार परमेश्वर हैं। लोग अपनी बुद्धिके अनुसार आपके जिन नाम, रूप और आकारोंकी कल्पना करते हैं वे नामरूपादि वास्तवमें आपसे कोई सम्बंध नहीं रखते; क्योंकि आप अनाम, अरूप और निराकार हैं। उन कल्पित नाम, रूप और आकारोंके द्वारा कभी कोई भी आपका निरूपण नहीं कर सक्ता, इसका कारण यही है कि सब देहधारियोंकी बुद्धि और मनकी गति प्रकृति और पुरुषके साकार प्रपञ्च तक है और आप प्रकृति व पुरुष दोनोसे परे निराकार हैं ॥ ५ ॥ महामंगलमय और सर्वश्रेष्ठ एवं सब लोगोंके पापोंका संहार करनेवाले तुम्हारे अपार गुणोंके एक अंशका वर्णन करनेके सिवा तुम्हारी संपूर्ण महिमा और प्रतापका वर्णन या तुम्हारे रूप, नाम व आकारका निरूपण कोई नहीं कर सक्ता ॥ ६ ॥ हे परम! आप दीनबंधु एवं भक्तवत्सल हैं। आपके भक्तगण भक्तिपूर्वक श्रद्धासे गद्गद वाक्योंद्वारा जो आपकी स्तुति करते हैं एवं जल, पवित्र पल्लव, तुलसीदल, दूब अंकुर आदिसे पूजा करते हैं उसीसे आप परम सन्तुष्ट होते हैं—यह हमको विश्वास है ॥ ७ ॥ नहीं तो हम इस परमसमृद्धिसम्पन्न और अनेक सामग्रियोंसे परिपूर्ण यज्ञको भी आपकी प्रसन्नताका कारण नहीं समझते । (अर्थात् आपको अधिक विभवयुक्त पूजाकी कांक्षा नहीं है; आप भक्तोंकी भक्तिसे की हुई केवल साधारण पूजासे ही सन्तुष्ट होते हैं) ॥ ८ ॥ स्वयमेव सर्वदा जो अनेक पुरुषार्थ मनुष्योंके मनमें उत्पन्न होते हैं और मनुष्य जिनकी कामना करते हैं वे पुरुषार्थ आपका रूप हैं। अर्थात् आप जितने मनोरथ हैं उनके ईश्वर हैं, आपको किसी वस्तुकी भी कमी नहीं है। हे नाथ! हम जो इस बड़ी धूमधामके यज्ञसे आपकी पूजा कर रहे हैं सो इसकी आपको कोई चाह नहीं है । किन्तु हम फलकी कामनासे इस यज्ञका अनुष्ठान कर रहे हैं, इस कारण अपने ही लिये यह हमारी धूमधाम है, क्योंकि कामनाके अनुसार ही उसका साधन और सामग्री होती है ॥ ९ ॥ जो मूर्ख अपने कल्याण(मोक्ष)को नहीं जानते और सकाम हो कर आपको भजते हैं—उन पर कृपा करके, उन्हे अपना तत्त्व (मोक्ष) और

महिमा दिखानेके लिये तथा उनकी कामना पूर्ण करनेके लिये–मानो आप पूजाके भूखे हैं–ऐसे भावसे पूजा लेनेके अर्थ आप दिखाई देते हैं ॥ १० ॥ हे पूज्यतम! इस पूजासे आपका कोई प्रयोजन नहीं है, यह हमारे ही लिये कल्याणकारी हो। भगवन्! आप वर देनेके लिये प्रकट हुए हैं, क्योंकि आप ही वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं। किन्तु जब हमारे राजर्षिके यज्ञमें आपने हम भक्तोंको दर्शन दिया तब इससे बढ़ कर और कौन दुर्लभ वर है, जो हम मांगें? इतनेसे ही हमारी सब कामनाएं पूर्ण हो गईं ॥ ११ ॥ प्रभो! आपका दर्शन बहुत ही दुर्लभ है। जो आत्मज्ञानी मुनिगण वैराग्यके बलसे बल रही ज्ञानकी अग्निमें अपने अन्तःकरणके विषय-वासनारूप मलको जला चुके हैं वे भी आपका साक्षात् दर्शन नहीं पाते, केवल सब समय परममंगलमय आपके गुणोंका गान किया करते हैं और इसीमें अपना परम मंगल समझते हैं ॥१२॥ भगवन्! हम आपके दर्शन पा कर ही कृतार्थ हो गये, किन्तु एक यह वर और मांगते हैं कि भूखप्यासके समय, गिरते समय, जम्हाते समय एवं अनेक कुअवसरोंमें, जब कि हम आपका स्मरण करनेमें असमर्थ हों और ज्वर व मरणके समयमें एवं जब हमारी इंद्रियां शिथिल और बे-काम हो जायँ, इन अवसरोंमें सब संकट काटनेवाले आपके गुणोंके अनुसार कल्पित नाम हमारे मुखसे निकलें ॥१३॥ हे नाथ! और भी एक प्रार्थना है। आप स्वर्ग और मोक्षके ईश्वर हैं, जैसे कोई राजराजेश्वरको प्रसन्न कर उससे वे धान मांगे जिनके भीतर अन्न नहीं होता पर देखनेमें बहुत मोटे होते हैं वैसे ही यह राजऋषि नाभि पुत्रको ही परमार्थ मान कर आपसे आपके ही समान गुण, शीलवाला पुत्र माँगते हैं ॥ १४ ॥ भगवन्! आपकी माया किसीसे नहीं हारी और कोई भी देहधारी ऐसा नहीं है जो उससे न हारा हो। आपकी मायाका मार्ग अलक्ष्य है, उसे कोई नहीं देख सक्ता। आपकी मायाके आवरणसे सबकी बुद्धि ढकी हुई है। जिसने महात्माजनोंके चरणोंकी सेवा नहीं की उसकी प्रकृति विषम विषमय विषयोंके वेगको नहीं रोक सक्ती। हमारे राजाने भी आपकी मायामें मोहित हो कर आपसे ऐसा तुच्छ वर माँगा है ॥ १५ ॥ हे अनेक कार्योंके करनेवाले जगदीश्वर! हमने बहुत ही साधारण कार्यके लिये आपको बुलाया है। हम बड़े ही मंदमति हैं, नहीं तो पुत्रको ही क्यों मुख्य पुरुषार्थ समझते? हे देव! हमने यह आपका अपराध किया है, अपनी उदारतासे इसे क्षमा कीजिये" ॥१६॥ हे राजन्! भरतखंडके स्वामी राजा नाभि जिनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं उन ऋत्विजऋषियोंने इस प्रकार स्तुति करके भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया तब भगवान् हरि कृपा करके यों कहने लगे ॥ १७ ॥ **श्रीभगवान् बोले।** "हे ऋषिगण! तुम्हारे वाक्य कभी निष्फल नहीं हो सक्ते, किन्तु तुमने हमसे जो वर माँगा है वह बड़ा ही दुर्लभ है। राजा नाभिके मेरे ही समान स्वभाव और गुणवाला पुत्र उत्पन्न हो-यही तो तुम्हारी प्रार्थना है? यह तो बहुत ही दुर्लभ है।

मेरे समान तो कोई नहीं है, मैं अद्वितीय हूँ; मैं ही अपने सदृश हूँ । अस्तु, कुछ भी हो, ब्राह्मणोंका वाक्य मिथ्या नहीं हो सक्ता, क्योंकि द्विजोंमें देव-तुल्य पूजनीय विद्वान् ब्राह्मण मेरा ही मुख हैं ॥१८॥ अच्छा, मैं ही अपनी अंश-कलासे नाभिके यहाँ जन्म लूँगा, क्योंकि मुझको मेरे समान कोई दूसरा नहीं देख पड़ता" । मेरुदेवीके सुनते हुए राजा नाभिके आगे यों कह कर भगवान् अन्तर्द्धान हो गये ॥ १९ ॥

बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त भगवान्परमर्षिभिः
प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने
मेरुदेव्यां धर्मान्दर्शयितुकामो वातरशनानां
श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तनुवावततार ॥२०॥

हे परीक्षित्! ऋषियोंने इस प्रकार यज्ञमें हरिको प्रसन्न किया । तब नाभिराजाका प्रिय करनेके लिये एवं परमहंस, तपस्वी, ज्ञानी और नैष्ठिक ब्रह्मचारी लोगोंका धर्म दिखानेके लिये नाभिराजाके अन्तःपुरमें उनकी रानी मेरुदेवीके गर्भसे भगवान्‌ने सत्त्वमूर्ति ऋषभदेवजीके रूपसे जन्म लिया ॥ २० ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय ।

ऋषभदेवजीके राज्यशासनका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच—अथ ह तमुत्पत्त्यैवाभिव्यज्यमानभगवल्लक्षणं
साम्योपशमवैराग्यैश्वर्यमहाविभूतिभिरनुदिनमे-
धमानानुभावं प्रकृतयः प्रजा ब्राह्मणा देवता-
श्चावनितलसमवनायातितरां जगृधुः ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले । हे राजन्! उत्पन्न होते ही ऋषभदेवजीके अंगोंमें विष्णु भगवान्‌के चिन्ह (हाथ पैर आदिमें वज्र अंकुश आदिके चिन्ह) स्पष्ट रूपसे देख पड़ने लगे । समदृष्टि, शांति, वैराग्य ऐश्वर्य और संपूर्णता आदि ऐश्वर्यकी महाविभूतियों सहित ऋषभदेवजीका प्रभाव दिनदिन बढ़ने लगा । यह देख कर मंत्रीगण, ब्राह्मण देवता और प्रजागणके मनमें यह अभिलाषा दृढ़ होने लगी कि यही हमारे राजा होकर पृथ्वीमण्डलका पालन करें ॥१॥ ऋषभजीका शरीर कवियोंके वर्णन करने योग्य अत्यन्त श्रेष्ठ हुआ । नाभिने उनको प्रभाव, शक्ति, उत्साह, कान्ति और यश, पराक्रम व वीरतामें सर्वश्रेष्ठ देख कर उनका नाम 'ऋषभ' धरा ॥२॥ एक समय देवपति इन्द्रने

डाहके मारे ऋषभके राज्यमें जल नहीं बरसाया। इन्द्रकी ईर्ष्या जान कर योगेश्वर भगवान् ऋषभदेवने इन्द्रकी मूर्खता पर हँस कर योगबलके प्रभावसे अजनाभ नाम अपने खंडमें अखण्ड जलकी वर्षा की ॥ ३ ॥ नाभिराजा अपनी अभिलाषाके अनुसार प्रतापी पुत्र पा कर बहुत प्रसन्न हुए। जो भगवान् पुराणपुरुष अपनी इच्छासे मनुष्यरूप धर कर पृथ्वी पर प्रकट हुए उनको मायामें मोहित हो कर पुत्रप्रेमसे विह्वल राजा नाभि गद्गद वाणीसे "वत्स! पुत्र!" कह कर दुलराते हुए अत्यन्त सन्तोषको प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ कुछ दिन बाद राजा नाभिने देखा कि पुत्र राज्य करनेके योग्य हो गया है एवं पुरवासी व मंत्रीलोग भी उस पर श्रद्धा व प्रेम करते हैं। तब उन्होने अपने पुत्र ऋषभदेवजीको धर्ममर्यादाकी रक्षाके लिये राज्यासन दे कर विद्वान् ब्राह्मणोंको उनकी देखरेखका काम सौंप दिया और आप अपनी रानी मेरुदेवी सहित बद्रिकाश्रमको तप करने चले गये। वहां प्रसन्नतापूर्वक एकाग्र चित्तसे तीव्र तप और समाधि द्वारा नर-नारायण नाम भगवान् वासुदेवकी उपासना करके अन्तसमय जीवन्मुक्त हो गये ॥ ५ ॥ हे पाण्डुनन्दन! पण्डित लोगोंने नाभि राजाकी यों प्रशंसा की है कि—"राजर्षि नाभिने जो प्रसिद्ध कर्म किये उन्हे कौन पुरुष कर सक्ता है? उनके पवित्र कर्मोंसे सन्तुष्ट हो कर साक्षात् विष्णु भगवान् उनके पुत्र हुए ॥ ६ ॥ उन नाभिसे बढ़ कर ब्राह्मण-भक्त भी और कौन हो सक्ता है? देखो, राजाकी भक्तिसे और सादर की हुई पूजासे सन्तुष्ट ब्राह्मणोंने यज्ञमें अपने मंत्रबल व तपोबलके प्रतापसे साक्षात् भगवान् विष्णुके दर्शन करा दिये" ॥ ७ ॥ भगवान् ऋषभजी अपने भरतखण्डको कर्म-क्षेत्र मान कर अन्य लोगोंको शिक्षा देनेके लिये कुछ काल तक गुरुकुलमें रहे और शिक्षा पानेके उपरान्त गुरुकी आज्ञा ले कर घरको लौटे। फिर लोगोंको धर्म-शिक्षा देनेके अभिप्रायसे गृहस्थाश्रम ग्रहण किया। इन्द्रने ऋषभजीके साथ अपनी जयन्ती नाम कन्याका बिवाह कर दिया। श्रुति और स्मृतिमें कहे हुए धर्मोंका पालन करते हुए ऋषभदेवजीने इन्द्रकी कन्यामें अपने समान तेजस्वी सौ पुत्र उत्पन्न किये ॥८॥ उन सौ पुत्रोंमें भरतजी सबसे बड़े हुए। भरतजी महायोगी और महा गुणी हुए। उन्हीके नामसे इस खण्डका नाम भारतवर्ष पड़ा ॥ ९ ॥ भरतके सिवा कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ और कीकट नाम नव पुत्र भरतके अनुगामी एवं निन्नानवे राजकुमारोंमें प्रधान हुए ॥ १० ॥ शेष नव्वेमेंसे कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रविड, चमस और करभाजन नाम नव पुत्र भगवद्धर्मसम्बन्धी धर्मके चलानेवाले हरिभक्त विरक्त और ज्ञानी हुए। भगवान्की महिमासे युक्त उनका चरित्र, वसुदेव और नारदके संवादमें आगे (एकादशस्कंधमें) कहेंगे ॥११।१२॥ इनसे छोटे जो इक्यासी कुमार बचे वे पिताकी आज्ञा पालने-

वाले, वेदज्ञ, विनीत और यज्ञ करनेवाले हुए। वे सब शुद्ध कर्म करनेके कारण ब्राह्मण होगये ॥ १३ ॥ भगवान् ऋषभजीने स्वतंत्र होनेके कारण अनर्थरूप मायाके प्रपञ्चसे निवृत्त एवं विशुद्ध आनन्दमय, ज्ञानस्वरूप, ईश्वर होकर भी साधारण मनुष्यके समान कर्म किये। यद्यपि उनको धर्म-कर्म करनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी परन्तु अपने आचरणोंसे अज्ञानी लोगोंको समयानुसार नष्ट होगये सनातन धर्मकी शिक्षा देनेके लिये ऐसा किया, क्योंकि उनका अवतार ही धर्म स्थापित करनेके लिये होता है। वह स्वयं संपूर्ण सद्गुणोंसे युक्त थे तो भी संसारी जनों पर कृपा करके अपने आचरणोंद्वारा उन्हे 'गृहस्थाश्रमें धर्म, अर्थ, यश, पुत्रोत्पत्ति, भोग और मोक्ष प्राप्त करनेकी आवश्यकता' भली भांति दिखाई, क्योंकि जो कुछ बड़े लोग करते हैं उसीको छोटे जन अपना आदर्श मानते हैं ॥ १४ ॥ जो वेदका रहस्य सब धर्मोंका मूल है उसे भगवान् स्वयं जानते थे, क्योंकि वेद तो उन्हीके वचन हैं, तथापि ब्राह्मणोंसे पूछ २ कर साम-दान आदि नीतिकी रीतियोंसे प्रजापालन करने लगे; जिसमें और लोग ब्राह्मणोंका आदर करें और उनसे कार्यमें सलाह लें ॥ १५ ॥ ऋषभजीने अनेक देवतोंके उद्देशसे यथोचित विधिपूर्वक उचित देशमें उचित समयमें और उचित अवस्थामें श्रद्धापूर्वक उचित सामग्री और श्रेष्ठ-ऋत्विक्गणद्वारा सौ यज्ञ किये ॥ १६ ॥ जब भगवान् ऋषभदेवका शासनकाल था तब इस भारतवर्षमें कोई भी ऐसा पुरुष न था जिसे किसी वस्तुकी कमी हो या कोई वस्तु दुर्लभ हो—सब भरे पुरे थे—कोई किसीसे कुछ न मांगता था। सिवा अपने राजा (ऋषभजी) पर उमँगते हुए असीम स्नेहके कोई किसी पदार्थकी प्रार्थना न करता था ॥ १७ ॥

स कदाचिदटमानो भगवानृषभो ब्रह्मावर्तगतो ब्रह्मर्षिप्रवरसभायां प्रजानां निशामयन्तीनामात्मजानवहितात्मनः प्रश्रयप्रणयभरसुयन्त्रितानप्युपशिक्षयन्निति होवाच ॥ १८ ॥

भगवान् ऋषभदेव एक समय घूमते हुए ब्रह्मावर्तमें पहुंचे। वहाँ प्रधान २ ब्रह्मर्षियोंकी सभामें जा कर ऋषभजीने विनय और प्रजा प्रेम व सौजन्यसे परिपूर्ण एवं शान्तस्वभाव अपने पुत्रोंको देखा। तब उसी अवसरमें उनको प्रजागणके सामने ही, इस प्रकार प्रजापालनसंबन्धी एवं उदारतासे परिपूर्ण शिक्षा देने लगे ॥ १८ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय ।

पुत्रोंके प्रति ऋषभदेवजीका उपदेश ।

ऋषभ उवाच–नायं देहो देहभाजां नृलोके
कष्टान्कामानर्हते विड्भुजां ये ॥
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं
शुद्ध्यत्यस्माद्ब्रह्म सौख्यं त्वनन्तम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि ऋषभदेवजी बोले "हे पुत्रो! जो लोग नरलोकमें जन्म ले कर मनुष्य हुए हैं उनका यह कर्तव्य नहीं है कि वे इस मनुष्य-शरीरसे विष्ठा भोजन करनेवाले शूकर भी जिन दुःखदायक विषयोंका भोग करते हैं उनके भोगमें लिप्त रहें। तप करना ही सार पदार्थ है। तप करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है। शुद्ध अन्तःकरण होने पर अनन्त ब्रह्मानन्द मिलता है॥ १ ॥ जिनका अन्तःकरण शुद्ध है उन महात्मा जनोंकी सेवा ही मुक्तिका द्वार और स्त्री-सेवक कामी जनोंका संग ही संसार (जन्म-मरण) का कारण कहा गया है। जो लोग सभीके शुभचिन्तक हैं, क्रोधरहित हैं, शान्तस्वभाव हैं, सदाचार पर चलनेवाले हैं और समदर्शी हैं वे ही महात्मा हैं। (जिसमें ये महात्माओंके लक्षण नहीं हैं वह धूर्त है–ठग है)॥ २ ॥ जो यथार्थ में महात्मा हैं वे मुझ ईश्वरसे मित्रता रखना ही परम पुरुषार्थ समझते हैं, वे लोग विरक्त होते हैं-विषयी मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र, घरबार आदिकी ममता और माया–मोह छोड़ देते हैं, उनको उनके डीलके निर्बाह भरकी सामग्रीसे अधिक धनकी या किसी (भोजनादि) वस्तुकी चाह नहीं होती (वे कभी चेले मूड़ कर इलाकेदार बनने का प्रयत्न नहीं करते, उनके आगे संसार भर की संपदा तुच्छ है)॥ ३ ॥ मनुष्य इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिये प्रायः प्रमत्त हो कर विरुद्ध कर्म अर्थात् पापकर्म करता है। एक वार जिन विरुद्ध कर्मोंके करनेसे आत्माको, असत्य होने परभी क्लेश देनेवाला यह शरीर प्राप्त हुआ है उन कर्मोंको फिर इस शरीरसे करना–मेरी समझमें अच्छा नहीं है॥ ४ ॥ पुरुष, जबतक आत्म तत्त्वको जाननेकी इच्छा नहीं करता तभी तक अज्ञानद्वारा उसको अपने रूप (शुद्ध अवस्था) की विस्मृति रहती है। जब तक क्रियाकी निवृत्ति नहीं होती तब तक यह मन कर्म-मय रहता है, जिसके कारण देहबन्धन होता है॥ ५ ॥ अतएव पूर्वजन्मके किये कर्म ही मनको फिर इस जन्ममें कर्म करनेके लिये प्रेरणा करते हैं एवं आत्मा जितने समय तक अविद्यारूप उपाधिसे युक्त रहता है तब तक यह मन पुरुषको कर्मके वश कर रखता है। जब तक पुरुष मुझ वासु-

देवमें प्रीति नहीं करता तबतक देहका सम्बन्ध नहीं छूटता ॥ ६ ॥ जब तक पुरुष विवेकी नहीं होता और इन्द्रियोंकी चेष्टा (देखना सुनना आदि विषयों) को मिथ्या नहीं मानता तब तक उसे अपने रूपका स्मरण नहीं होता और वह मूढ़ मैथुनसुख पानेके लिये गृहाश्रममें रम कर त्रिविध तापोंसे पीड़ित रहता है ॥ ७ ॥ हरएक नरनारीके जन्म समयसे ही एक प्रकारकी हृदयसे संबंध रखनेवाली ग्रंथि (ममतारूप आकर्षणी शक्ति) होती है। पुरुष और स्त्रीका सम्बंध होने पर वह गाँठ और भी दृढ़ हो जाती है। इसी हृदय-ग्रंथिके कारण पुत्र, मित्र, क्षेत्र, धन आदिमें पुरुषको "मै हूँ, मेरा है" इस प्रकारका मोह होता है। इस लिये संसारमें स्त्रीसे मिलना सुखका कारण नहीं है, वरन् महामोह उत्पन्न करके आत्यन्तिक कष्टका कारण हो जाता है ॥ ८ ॥ जब कर्मके जालमें जकड़ी हुई मनस्वरूप हृदयकी सुदृढ़ गाँठ कुछ शिथिल हो जाती है अर्थात् मन विषयोंसे हट कर मेरी ओर होता है तब यह पुरुष संसारका मूल-कारण जो अहंकार है उसे त्याग कर मुक्ति और परमपदको प्राप्त हो सक्ता है ॥ ९ ॥ वास्तवमें मैं ही सबका विशुद्ध गुरु हूँ। मुझमें अनन्यभक्ति करना, सुख-दुःखादि परस्परविरुद्ध धर्मोंका सहना, इस जीवके ऐहिक और पारलौकिक दुःखोंको खोज कर उन्हे यथाशक्ति दूर करनेका प्रयत्न करना, तत्त्व जाननेकी अभिलाषा, तप, सकाम कर्मोंका त्याग, मेरे ही लिये संपूर्ण कर्म करना, मेरी कथा कहना, जो लोग मुझे ही परमदेवता जानते हैं उन्हींकी संगति, मेरे गुणोंका कीर्तन, किसीसे वैर न रखना, समदृष्टि, इन्द्रियोंको शान्त रखना, देह गेह आदि में "मैं हूँ-मेरा है" इस भावके त्यागनेकी इच्छा, अध्यात्मशास्त्रका अभ्यास, निर्जन स्थानमें रहना, प्राण इन्द्रिय और मनको भलीभांति जीतना, सत्कर्मोंमें श्रद्धा, ब्रह्मचर्य, अपने कर्तव्यमें सदा सावधान रहना, वाणीका संयम, सर्वत्र मेरी भावना और अनुभवयुक्त ज्ञान, समाधियोग, इन उपायोंसे पुरुषको योग्य है कि धैर्य, प्रयत्न और विवेकसे युक्त हो कर 'अहंकार'संज्ञक उपाधिको दूर करै ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ तदनन्तर सब कर्मोंका आधार जो अविद्या-मूलक हृदय-ग्रंथिका बंधन है उसको सावधानतापूर्वक पूर्वोक्त उपायोंद्वारा मेरे दिये हुए उपदेश-के अनुसार त्याग करै एवं अन्तमें पूर्वोक्त योग (उपायों)को भी त्याग दे ॥ १४ ॥ मेरे लोककी कामना करके मेरी प्रसन्नताके लिये पिता अपने पुत्रोंको और गुरु अपने शिष्योंको एवं राजा अपनी प्रजाको इस प्रकारकी शिक्षा देवे। यदि कोई उपदेश पा कर भी शिक्षित विषयका अनुष्ठान न करे तो उस पर क्रोध न करना चाहिये। जो लोग तत्त्वको नहीं जानते, केवल कर्मको ही मंगलमय जान कर मोहित हैं, उनको सकाम कर्ममें नियुक्त करना उचित नहीं है। क्योंकि मूढ़ व्यक्तिको काम्यकर्ममें नियुक्त करके संसाररूप गढ़ेमें डालनेसे कौन अर्थ सिद्ध होगा? ॥ १५ ॥

जो अत्यन्त कामके वश हो कर अपने मंगलके मार्गको नहीं देखता, सब समय केवल कामना पूरी करनेकी चेष्टामें लगा रहता है एवं बहुत ही तुच्छ सांसारिक सुख पानेकी आशा कर परस्पर जीवोंसे शत्रुता ठाना करता है वह अपने ऊपर आनेवाले अनन्त दुःखको नहीं जानता ॥ १६ ॥ अंधा आदमी जो कुराहमें जाता हो तो कोई विज्ञ पुरुष उसको उस राहमें जानेके लिये उपदेश न देगा, जहाँ तक होगा उसे उस राहसे लौटा कर सुमार्गमें लगा देगा, वैसे ही अविद्यामें मोहित मनुष्यको देख कर स्वयं सुमार्गको जाननेवाला दयावान् विद्वान् अवश्य उस कुबुद्धि जीवको कुमार्ग (विषयों)से हटा कर सुमार्ग (भगवान्की भक्ति) में लगावे ॥ १७ ॥ जो प्राणी-को भक्तिमार्गद्वारा हरिसे मिला कर मृत्युके भयसे न छुड़ावे तो वह उसका गुरु नहीं है, मित्र-स्वजन नहीं है, पिता और माता नहीं है, देवता (पूजनीय) नहीं है, पति नहीं है । अर्थात् वे ही सच्चे गुरु, स्वजन, पिता, माता, देवता और पति हैं जो जीवको जन्म मरणके कष्टसे छुड़ा कर मुक्ति दिला सकें और यदि वे वैसा नहीं कर सक्के तो ठग हैं ॥ १८ ॥ मेरा यह मनुष्याकार शरीर अतर्क्य है, क्योंकि मेरी इच्छासे प्रकट है । धर्ममय शुद्ध सतोगुण मेरा हृदय है । मैंने अधर्मको पीठमें जगह दी है अर्थात् दूर त्याग दिया है । इससे आर्यगण मुझे ऋषभ (श्रेष्ठ) कहते हैं ॥ १९ ॥ तुम सबने मेरे शुद्ध सत्त्वमय हृदयसे जन्म लिया है । अतएव ईर्षा द्वेष त्याग कर स्थिर चित्तसे अपने सहोदर बड़े भाई महात्मा भरतकी आज्ञाका पालन करो । भरतकी सेवा करनेसे ही तुम्हारे प्रजापालन आदि सब कर्तव्य पूर्ण हो जायँगे ॥ २० ॥ देखो, चेतनाहीन और सचेतन पदार्थोंमें स्थावर (वृक्ष) श्रेष्ठ हैं । उनसे सर्प आदि कीड़े श्रेष्ठ हैं । उनसे बोध-युक्त पशुआदि प्राणी श्रेष्ठ हैं । उनसे मनुष्य और मनुष्योंसे भूत प्रेत आदि प्रमथगण श्रेष्ठ हैं । भूतप्रेतादिसे गंधर्व और गंधर्वोंसे सिद्धगण, सिद्धगणसे देवतोंके भृत्य किन्नर आदि श्रेष्ठ हैं ॥ २१ ॥ किन्नरोंकी अपेक्षा असुरगण और असुरोंकी अपेक्षा देवगण श्रेष्ठ हैं । देवतोंमें इन्द्र श्रेष्ठ हैं । इन्द्रसे दक्षआदिक ब्रह्माके पुत्र श्रेष्ठ हैं । दक्षआदिकी अपेक्षा भगवान् शंकर श्रेष्ठ हैं और शंकरभगवान् ब्रह्माका अंश हैं, इस लिये शंकरसे ब्रह्मा श्रेष्ठ हैं । ब्रह्मामें मेरी शक्ति कार्य करती है, इस लिये ब्रह्मासे मैं श्रेष्ठ हूँ और मैं द्विजदेव ब्राह्मणोंको अपना देवता वा पूजनीय मानता हूँ, इसलिये ब्राह्मण मुझसे भी श्रेष्ठ हैं । इस कारण ब्राह्मण सर्वपूज्य हैं; तुम सर्वदा ब्राह्मणों-की सेवा करना" ॥ २२ ॥ इसके बाद श्रीमान् ऋषभदेवजी वहाँ बैठे हुए विद्वान् ब्राह्मणोंसे बोले "हे ब्राह्मणो ! मैं इस जगत्में किसीको भी ब्राह्मणोंके समान नहीं देखता। विद्वान् ब्राह्मणसे बढ़ कर कोई भी नहीं है । ब्राह्मण क्यों श्रेष्ठ हैं? इसका उत्तर यही है कि मेरे ब्राह्मणरूप मुखमें जो श्रद्धा-पूर्वक अर्पण किया जाता है उससे मुझे परम तृप्ति होती है; यहाँतक कि मेरे

अग्निरूप मुखमें हवन करनेसे भी मुझे वैसी तृप्ति नहीं होती! ॥२३॥ इस लोकमें मेरी सनातन साक्षात् मूर्ति ब्राह्मण ही हैं, क्यों कि उन्हींमें परम पवित्र सत्वगुण, शम, दम, सत्य, अनुग्रह, तप, सहनशीलता और प्रताप आदि मेरे गुण विराजमान हैं ॥ २४ ॥ वे ब्राह्मण द्वार २ पर भिक्षा माँगने वाले नहीं होते, साधारण मनुष्यसे कुछ माँगना तो दूर रहा, देखो, मैं अनन्त हूँ और सर्वोत्तम परमेश्वर हूँ एवं स्वर्ग व मोक्षका स्वामी हूँ, किन्तु मुझसे भी कुछ नहीं चाहते; उनके आगे राज्य आदि एक तुच्छातितुच्छ पदार्थ ही नहीं बरन् विषतुल्य हैं। वे अकिञ्चन महात्मा विप्रगण मेरी ही भक्तिमें सन्तुष्ट रहते हैं ॥ २५ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणोंको सर्वपूज्य जान कर उनका सम्मान तो करना ही किन्तु स्थावर और जंगम—दोनो प्रकारके प्राणियोंको मेरे रहनेका स्थान जान कर किसीसे वैर न करना, किसीका जी न दुखाना, हरएक समय उनका आदर करना और शुभचिन्तक रहना । यही मेरी सबसे बढ़ कर पूजा है ॥ २६ ॥ मेरी पूजा ही मन, वाणी, नेत्र और अन्यान्य इन्द्रियोंका सर्वोत्तम फल और सारांश है । विना इस पूजासे मुझे प्रसन्न किये कोई भी मनुष्य महामोहमय यमपाशसे 'मुक्ति' नहीं पा सक्ता" ॥ २७ ॥ श्रीशुकजी कहते हैं। राजन्! महानुभाव भगवान् ऋषभदेवके सब पुत्र सुशिक्षित थे, तथापि और लोगोंको शिक्षा देनेके लिये उन्होने उनको इस प्रकार शिक्षा दी । तदनन्तर ऋषभजीने स्वयं शान्तस्वभाव, कर्मोंसे निवृत्त महामुनियोंको भक्ति-ज्ञान-वैराग्यमय परमहंस-धर्मकी शिक्षा देनेके लिये परमभगवद्भक्त एवं भगवद्भक्तोंके भक्त अपने सबसे बड़े पुत्र भरतको पृथ्वीपालन करनेके लिये राज्यासन पर बिठा दिया । फिर सिवा शरीरके और सब त्याग कर, नंगे, बाल खुले हुए, ऐसे उन्मत्तोंका ऐसा वेष धारण कर आहवनीय अग्निको अपनेमें ही लय करके ब्रह्मावर्त्तसे चल दिये ॥ २८ ॥ राहमें यदि कोई उनको टोंकता भी था तो वह मौन रहते थे और यों ही जड़, अंधे गूँगे बधिर, पिशाचग्रस्त, सिड़ीके तुल्य अवधूतोंके वेषसे इच्छानुसार विचरने लगे ॥ २९ ॥ वह पुर गाँव, आकर (खानि), खेट (खेतिहरोंके गाँव), वाटिका, शिविर (छावनी), ब्रज, घोष (अहीरों और घोसियोंके गाँव,) सार्थ (यात्रियोंका झुंड), पर्वत, वन, आश्रम आदि जिन २ स्थानोंमें जाते थे वहाँ वहाँ राहमें जैसे मक्खियां जंगली हाथीको घेर कर दुखी करती हैं वैसे दुरात्मा लोग उनको डराकर, मार कर उनके शरीर पर मूत कर, थूक कर पत्थल और धूल फेंक कर, उनके ऊपर दुर्गंधित पायु-वायु छोड़ कर, कटुवाक्य कह कर सताते थे। किन्तु वह इन दुराचरणोंसे कुछ भी विचलित न होते थे। यह मिथ्या संसार नाममात्रको सत् है। इसमें "सत् व असत्का अनुभव" रूप अपनी महिमामें अवस्थित होनेके कारण ऋषभदेवजीने "मै हूँ-मेरा है" इस प्रकारके अभिमानको

त्याग दिया था; इसी कारण दुष्टोंके दुराचरणसे अपने अपमानका बोध न करते थे। ऋषभदेवजी इसी प्रकार अकेले अपनी इच्छाके अनुसार पृथ्वी पर विचरने लगे ॥ ३० ॥ उनके हाथ, पैर, वक्षःस्थल, विशाल बाहुएँ, कन्धे एवं मुखआदि सब अंग परम सुकुमार थे। वह स्वाभाविक सुकुमार थे। स्वाभाविक मुसकानसे उनका मुखमंडल सदा शोभायमान देख पड़ता था। उनके दोनो नेत्र कमलदलके समान अमल-अरुण और विशाल थे-दोनो नेत्रोंके श्याम तारे महामनोहर और शान्त थे। उनके कपोल, कान, कंठ और नासिका आदि अंग, न छोटे-न बड़े, समान और सुडौल थे। उनके अस्फुट हास्ययुक्त मुखकमलके विभ्रमसे पुरनारियोंके मन कामातुर हो उठते थे। ऐसे परमरूपवान् हो कर भी एक अवधूतके समान जैसे कोई सिड़ी हो वैसे ऋषभदेवजी देख पड़ते थे। देह भरमें धूल भरी हुईथी, बाल धूलसें भूरे पड़ गये थे। न ईंछने और न मलनेके कारण बाल उलझ गये, जटा बन गये ॥ ३१ ॥ जब लोग ऋषभदेवजीके योगानुष्ठानमें विघ्न डालने लगे तब उन्होने उसका प्रतीकार करना निपट निंदनीय समझ कर अजगर-व्रत ग्रहण कर लिया। अर्थात् पड़े २ खाने पीने और मल-मूत्र त्यागने लगे। कभी २ अपने मल-मूत्र पर लोटने लगते थे, देहभरमें विष्ठा भर जाती थी ॥३२॥ किन्तु उनकी विष्ठामें दुर्गंधका लेशभी न था। वरन् उसकी सुगंधसे उस स्थानके आसपास चारो ओर दश २ योजन तक सुगंधित हो जाता था ॥ ३३ ॥ भगवान् ऋषभदेवजी इस प्रकार योगके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होकर गो, मृग और काकके सदृश आचरण करने लगे अर्थात् कभी चलते २ कभी खड़े २, कभी बैठे २-लेटे २-खाने, पीने और मलमूत्र त्याग करने लगे ॥३४॥

इति नानायोगचर्याचरणो भगवान्कैवल्यपतिर्ऋषभोऽविरतपरममहानन्दानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनोऽव्यवधानानन्तरोदरभावेन सिद्धसमस्तार्थपरिपूर्णो योगैश्वर्याणि वैहायसमनोजवान्तर्द्धानपरकायप्रवेशदूरदर्शनादीनि यदृच्छयोपगतानि नाञ्जसा नृप हृदयेनाभ्यनन्दत् ॥ ३५ ॥

इस प्रकार भगवान् ऋषभजीने योगियोंके करने योग्य आचरण दिखानेके लिये ही अनेक योगचर्याओंका आचरण किया, क्योंकि वह स्वयं भगवान्, मोक्षके स्वामी एवं परममहत् थे; ब्रह्मानंदके अनुभवस्वरूप भूतात्मा भगवान् वासुदेवके साथ अभिन्नभाव प्राप्त होनेके कारण नित्य, मायासे परे एवं स्वतःसिद्ध सब प्रकारके फलोंसे पूर्ण थे अर्थात् उन्हे किसी विषयकी आकांक्षा न थी। उनको बिना चाहे "आकाशमें उड़ना" "मनके समान गति, अर्थात् जहाँ जानेका विचार किया

वैसे ही वहाँ पहुँच गये," "अन्तर्द्धान (गायब हो जाना, अदृश्य हो जाना) शक्ति," "दूसरेके शरीरमें प्रवेश कर जाना," "दूरदर्शन, अर्थात् एक स्थान पर बैठे २ बड़ी २ दूरकी घटना देख सकना" आदि सिद्धियाँ प्राप्त हुईं, किन्तु उनको उन (योगके ऐश्वर्यों) की कुछ भी चाह नहीं रही ॥ ३५ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय ।

ऋषभदेवजीका देहत्याग ।

राजोवाच—न नूनं भगवत आत्मारामाणां योगसमीरितज्ञानावभर्जितकर्मबीजानामैश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितुमर्हन्ति यदृच्छयोपगतानि ॥ १ ॥

राजा परीक्षित् बोले । हे भगवन् ! जो महात्मा आत्माराम (अपनेमें ही अर्थात् ईश्वरमें रमनेवाले) हैं उनके कर्मोंके बीज जो काम, लोभ, मोहादिक हैं वे योगरूप वायुसे सुलगे हुए ज्ञानरूप पावकमें भस्म हो जाते हैं। अतएव आपसे आये हुए पूर्वोक्त योगके ऐश्वर्य उन परमहंसोंके लिये क्लेशका कारण नहीं हो सक्ते—तो फिर ऋषभजीने उनका आदर क्यों नहीं किया ? ॥ १ ॥ **शुकदेवजी बोले** । राजन् ! यह आपने सच कहा, किन्तु कोई २ बुद्धिमान् लोग चंचल मनको वशमें कर लेने पर भी उसका विश्वास नहीं करते । जैसे व्याधका मृग, या पकड़े हुए (भी) मृगका व्याध अथवा ठग और बनियेका व्यवहार करनेवाले विश्वास नहीं करते ॥ २ ॥ ऐसा ही बड़ोंने कहा भी है कि "जब तक मनकी चञ्चलता बिल्कुल ही न मिट जाय तब तक उसका विश्वास भूल कर भी न करे । इस मनका विश्वास करनेसे ही मोहिनीरूपदर्शनके अवसर पर मदनकदन शंकरका बहुत कालका संचित तप (वीर्य) भ्रष्ट हो गया ॥ ३ ॥ जैसे कोई स्त्री व्यभिचार करती हो और उसका पति असावधानता या अनभिज्ञताके कारण उस पर विश्वास रखता हो तो वह स्त्री अवश्य ही जारोंको अवकाश देकर अपने पतिका संहार करादेगी वैसे ही योगीजन यदि इस चंचल मन पर विश्वास कर लेते हैं तो मन भी काम और कामकिंकर लोभादि शत्रुओंको अवकाश दे कर उनको भ्रष्ट कर देता है ॥ ४ ॥ काम, क्रोध, मद, लोभ, शोक, मोह, भय और कर्मबन्धनका कारण मन ही है; उस पर पण्डितजन कभी विश्वास नहीं करते" ॥ ५ ॥ भगवान् ऋषभदेव लोकपाल-शिरोमणि हो कर भी सब ऐश्वर्योंको तृणतुल्य त्याग कर अकेले अवधूतोंकी भाँति विविध वेष भाषा और आचरण धारण कर

विचरने लगे, देखनेसे वह एक सिड़ी जान पड़ते थे, सिवा ज्ञानियोंके मूढ़जन उनके प्रभाव और ऐश्वर्यका अनुभव नहीं कर सक्ते थे। यद्यपि वह जीवन्मुक्त थे अर्थात् अपने आत्मामें ही साक्षात् अवस्थित परमात्माका अपने साथ अभेदभाव मान कर देहाभिमानसे मुक्त हो गये थे तौ भी "योगियोंको किस प्रकार शरीर त्यागना चाहिये" इसकी शिक्षा देनेके लिये उन्होने अपना स्थूल शरीर त्यागने की इच्छा की ॥ ६ ॥ जैसे कुंभकारका चाक घुमा कर छोड़ देने पर भी थोड़ी देर तक आप ही आप घूमा करता है वैसे ही लिंगशरीर(अहंभाव) त्याग करने पर भी योगमायाकी वासना द्वारा भगवान् ऋषभका स्थूल शरीर संस्कार-वश भ्रमण करता हुआ कोंक, वेंक, कुटक और दक्षिण कर्नाटक देशोंमें यदृच्छा-पूर्वक प्राप्त हुआ। वहाँ कुटकाचलके उपवनमें, मुखमें पत्थर दबाये सिड़ियोंकी भाँति बड़ी २ जटा छिटकाये, नंगे धड़ंगे ऋषभदेवजी विचरने लगे ॥ ७ ॥ ८ ॥ सब वनमें अकस्मात् वायुके वेगसे बाँस हिलने लगे, परस्पर बाँसोंके रगड़नेसे दावानल प्रकट हुआ, देखते देखते क्षणभरमें वह दावानल सब वनमें फैल गया। उसी अग्निमें ऋषभजीका स्थूल शरीर भस्म हो गया ॥९॥ भगवान् ऋषभके आचरणोंका वृत्तान्त सुन कर कोंक-वेंक-कुटक देशोंका अर्हत् नाम राजा भी वैसे ही आचरण करने लगेगा और वह मतिमंद भवितव्यतासे मोहित हो कर कलियुगमें जब अधर्मकी उन्नति होगी उस समय निर्भय सनातन धर्मके मार्गको त्याग कर अपनी बुद्धिसे पाखण्डमय कुमार्ग चलावेगा ॥ १० ॥ इस अधर्म-प्रवर्तक राजाके पीछे कलियुगके मंदबुद्धि मनुष्यगण ईश्वरकी मायामें मोहित हो कर अपने २ शौच, आचारको त्याग कर देवतोंका तिरस्कार करेंगे एवं स्नान न करना, जलपान न करना, अशौच रहना, बालोंका उखाड़ना आदि विपरीत व्रतोंको अपनी २ इच्छाके अनुसार ग्रहण करेंगे। जिसमें अधर्म बहुत होता है उस कलियुगमें इस प्रकारके लोग विनष्टबुद्धि हो कर प्रायः सर्वदा ब्रह्म (वेद), ब्राह्मण, यज्ञपुरुष भगवान् और हरिभक्तोंको दूषित कह कर हँसेंगे ॥ ११ ॥ वे लोग अन्धपरम्परा-सदृश वेदविधिवहिष्कृत उक्त प्रकारकी मनमानी प्रवृत्ति पर विश्वास करके आप ही आप अपने कर्मोंसे घोर नरकमें गिरेंगे ॥१२॥ हे राजन्! भगवान्का यह ऋषभावतार एक प्रकार उक्त अनर्थका कारण होने पर भी रजोगुण(विषयवासना) में आसक्त व्यक्तियोंको मोक्षमार्ग सिखलानेके लिये परम आवश्यक था। लोग ऋषभजीके गुणोंका वर्णन यों करते हैं कि ॥ १३ ॥ "अहो! सात सागरोंसे युक्त संपूर्ण पृथ्वीके द्वीपों और खंडोंमें यह भरतखंड परमपवित्र है; जहांके लोग हरिके अवतारोंके मंगलमय पवित्र कर्मोंका गान करते हैं ॥ १४ ॥ अहो! उसमें भी महाराज प्रियव्रतका वंश बड़ा ही यशस्वी है, जिसमें पुराणपुरुष परमेश्वरने जन्म लेकर योगियोंको मोक्ष देनेवाले परमहंसधर्मकी शिक्षा दी ॥ १५ ॥ जन्महीन

ऋषभजीका अनुकरण करना तो दूर रहा, अनुकरण करनेका मनोरथ भी कोई अन्य योगी नहीं कर सक्ता । क्योंकि जिस योगबल(सिद्धियों) को ऋषभजीने असार समझ कर नहीं ग्रहण किया, और २ योगी लोग उसीके पानेकी अनेक चेष्टाएँ करते हैं" ॥१६॥ हे राजन्! ऋभषदेवजी लोक, वेद, देवता, ब्राह्मण, गऊ आदि सब पूजनीयोंके पूजनीय परम गुरु हैं । यह ऋषभजीका पवित्र चरित्र सब कु-चरित्रोंको छुड़ानेवाला एवं महामंगलमय है । जो लोग एकाग्रचित्तसे श्रद्धापूर्वक इसको सुनते या सुनाते हैं वे दोनो भगवान्में सुदृढ़ भक्ति पाते हैं; जो बड़े २ योगियोंको भी दुर्लभ है ॥ १७ ॥ परम पुरुषार्थके ज्ञाता पण्डितगण उसी परमपवित्र भक्ति-रसमें मग्न हो कर संसारके तापोंसे तपे हुए आत्माको शान्त कर परमशान्तिको प्राप्त होते हैं। मुक्ति ही परमपुरुपार्थ माना गया है, वह मुक्ति भी उनको आप ही आप प्राप्त होती है, परन्तु वे उसका भी आदर नहीं करते। वे भगवान्के सेवक हैं, इस लिये उनको किसी पुरुपार्थकी अभिलाषा या कमी नहीं रहती ॥ १८ ॥ राजन्! मुकुंद भगवान् तुम्हारे और यदुवंशके रक्षक, गुरु, उपास्यदेव, सुहृद्, कुलपालक एवं कभी दूत आदिके कार्यमें किंकर भी बने। भगवान्ने तुम पर प्रसन्न हो कर ये कार्य तक किये और भजनेवालोंको मुक्ति भी दे देते हैं किन्तु भक्तियोग किसी विरलेको ही देते हैं ॥ १९ ॥

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः
श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः ॥
लोकस्य यः करुणयाऽभयमात्मलोक-
माख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ॥ २० ॥

शरीरसंबंधी सुख पानेकी चेष्टामें जिनकी बुद्धि चिरकालसे सोई हुई थी उन पर दया करके उनको अभयदायक अपना आत्मोक-लोक दिखानेवाले एवं नित्य-अनुभवसे अपने सच्चिदानंद रूपको पानेके कारण सब तृष्णाओंसे हीन, परिपूर्णकाम ऋषभदेवजीको हमारा प्रणाम है ॥ २० ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥



सप्तम अध्याय।

राजा भरतका चरित्र ।

श्रीशुक उवाच—भरतस्तु महाभागवतो यदा भगवताऽवनितलपरिपालनाय संचिन्तितस्तदनुशासनपरः पञ्चजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं। महाभगवद्भक्त भरतजी भगवान् ऋषभजीकी अभिलाषाके अनुसार पृथ्वीमंडलका पालन करने लगे । भरतजीने ऋषभजीकी ही आज्ञासे विश्वरूपकी कन्या पञ्चजनीसे व्याह किया ॥ १ ॥ जैसे अहंकारसे शब्द स्पर्श आदि सूक्ष्म तत्त्व उत्पन्न होते हैं वैसे ही भरतजीने पञ्चजनीके गर्भसे पूर्णरूपसे अपने अनुरूप पाँच पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ सुमति, राष्ट्रभृत्, सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु, ये उनके नाम हुए । इस खंडको पहले 'अजनाभ' कहते थे, राजा भरतके होने पर इसका नाम भारतवर्ष पड़ा ॥ ३ ॥ बहुज्ञ राजा भरत धर्मके अनुसार, अपने बाप-दादेके ढंगसे, अपने २ धर्ममें लगी हुई प्रजाका पालन करने लगे ॥ ४ ॥ उन्होने यथार्थ रीतिसे श्रद्धापूर्वक बहुतसे छोटे छोटे और अनेक बड़े बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करके उनके द्वारा यज्ञ-क्रतुस्वरूप यज्ञपुरुषकी आराधना की । भरतजी जिन २ अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, पशुयाग एवं सोमयागादि कर्मोंके अधिकारी थे उनके द्वारा उन्होने प्रत्येक पर्व पर सांगोपांग और विकलांग, दोनो रीतियोंसे भगवान्का पूजन किया । राजा भरत नित्यप्रति चातुर्होत्र विधिसे यज्ञपुरुषका पूजन करते थे ॥ ५ ॥ यज्ञोंकी अंगक्रियाके अनुष्टानके उपरान्त अनेक यज्ञकर्मोंका आरंभ होने पर जब ऋत्विक्गण हवि हाथमें लेकर आहुति देते थे तब यजमान राजा भरत यह भावना करके कर्म करते थे कि "सम्पूर्ण अपूर्व फल और धर्मकर्म वासुदेव भगवान्में ही वर्तमान हैं"। इसी लिये वह यज्ञमें भाग लेनेवाले सूर्यादि देवगणको विष्णुके नेत्र आदि अंग मान कर भजते और पूजते थे। हे महाराज! राजर्षि भरत जानते थे कि "देवतोंके प्रकाशक जितने मंत्र हैं उनका अर्थ इन्द्रआदि देवता हैं; किन्तु इन सबके नियामक वासुदेव भगवान् हैं, अतएव वही परमदेवता हैं"। इस प्रकारके विचार-रूप आत्मकौशलसे एवं विशुद्ध (निष्काम) कर्मोंके करनेसे भरतजीका अन्तःकरण शुद्ध होने लगा ॥ ६ ॥ इस भाँति कर्मशुद्धिसे अन्तःकरण शुद्ध होने पर, हृदयाकाश ही जिनका शरीर अर्थात् प्रकट होनेका स्थान है उन महापुरुषरूप और श्रीवत्स, कौस्तुभमणि, वनमाला, शंख चक्र गदा आदि चिन्होंसे सुशोभित एवं अपने भक्त नारदादिके हृदयमें विराजमान व पुरुषरूपसे मनमें स्थित परब्रह्म भगवान् वासुदेवमें राजा भरतकी भक्तिभावना

नित्यप्रति बढ़ कर सुदृढ़ होने लगी ॥७॥ हे राजन्! राजा भरतको ज्ञात था कि सहस्र अयुत वर्षके बाद उनके राज्यभोगका समय पूरा होगा। उतने समय तक राज्य करनेके उपरान्त उन्होने भोग की हुई बाप-दादेकी राज्यसम्पदा शास्त्रानुसार अपने पुत्रोंको बाँट दी और आप संपूर्ण सम्पदाओंसे पूर्ण राजभवनको त्याग कर पुलहाश्रमको गये और वहां संन्यास लेलिया ॥ ८ ॥ भगवान् हरि अब भी उस क्षेत्रमें अपने भक्तजनोंकी इच्छाके अनुसार भक्तवत्सलतापूर्वक सर्वदा वास करते हैं अर्थात् वहाँ भक्तजनोंको बहुत शीघ्र मिल जाते हैं ॥९॥ वहाँ परमपवित्र गण्डकी नदी है। गंडकीमें जो शिलाएं हैं उन पर चक्रका चिन्ह है; इन चक्रोंके ऊपर व नीचेके भागमें नाभि (आवर्त) हैं। गंडकी नदी वहाँके सब आश्रमोंको अपने शुद्ध जलसे पवित्र करती रहती है ॥ १० ॥ महात्मा भरतजी अकेले इस पुलहाश्रमके उपवनमें एकान्तमें रह कर अनेक प्रकारके फूल, किसलय, तुलसी, जल और फल मूल आदि सामग्रियोंसे भगवान्की आराधना करने लगे। भरतकी विषयाभिलाषा क्रमशः दूर हो गई और प्रतिदिन उपशम (निष्काम-भाव)-की वृद्धि होने लगी। वह इस प्रकार परमानन्द (शान्ति) को प्राप्त हुए। वह सब समय शुद्ध रहते थे ॥ ११ ॥ भरतजी यों निरन्तर परमपुरुषकी पूजामें तत्पर हुए, इसीसे भगवान् पर उनका प्रेम दिनदिन बढ़ने लगा। उस प्रेमकी अधिकतासे उनका हृदय विगलित हो गया। सिवा भगवत्पूजाके उन्हे किसी बातकी सुधिबुधि नहीं रही। यहाँ तक कि पूजन करते समय मारे आनंदके उनके शरीरभरमें रोमांच हो आता था, उत्कंठाके मारे आनंदके आँसू उमड़ आने पर नेत्र और दृष्टि निरुद्ध हो जाती थी। इस प्रकारकी श्रेष्ठ अवस्थामें वह अपने प्रेमपात्र हरिके अरुणवर्ण चरणारविंदोंका ध्यान करने लगते थे, उस समय उनका भक्तियोग और भी प्रगाढ़ हो उठता था एवं हृदयसरोवर प्रेमरससे भर जाता था; उसी प्रेममय परमानन्दमें मन मग्न हो जानेके कारण उनको भगवान्की पूजा भी भूल जाती थी। ऐसे तन्मय हो जाते थे ॥ १२ ॥ वह जब मृगचर्म धारण करके तीनो कालकी संध्याओं (प्रातः, मध्यान्ह, सायम्) में स्नान करते थे, उस समय उनकी कुटिल और कपिश (भूरे) रंगकी जटाएँ भीग जानेसे बड़ी ही शोभा होती थी। भरतजी इस प्रकार भगवान्को प्रसन्न करनेवाले अनेक व्रतोंको धारण कर उदयशाली सूर्यमण्डलमें सूर्यप्रकाशक ऋचा (मंत्रविशेष) से भगवान् तेजोमय पुरुषकी आराधना करते हुए यह कहते थे कि- ॥ १३ ॥

परोरजः सवितुर्जातवेदो
देवस्य भर्गो मनसेदं जजान ॥

सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे
हंसं गृध्राणं नृषद्रिंगिरामिमः ॥ १४ ॥

"प्रकृतिसे परे और शुद्ध सत्त्वस्वरूप सूर्यदेवका वही आत्मस्वरूप तेज हम लोगोंको कर्मोंके फल दिया करता है, क्योंकि उसीसे मनके द्वारा इस विश्वकी सृष्टि हुई है। वह अपने उत्पन्न किये हुए विश्वमें सब जगह अन्तर्यामीरूपसे प्रवेश करके अपनी चित्‌शक्तिद्वारा पालनाकाङ्क्षी जीवोंका रक्षणावेक्षण करता है। हम उसी बुद्धिप्रवर्तक तेजकी शरणमें हैं" ॥ १४ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय ।

भरतको मृगशरीर मिलना ।

श्रीशुक उवाच—एकदा तु महानद्यां कृताभिषेकनैयमिकावश्यको
ब्रह्माक्षरमभिगृणानो मुहूर्तत्रयमुदकान्त उपविवेश ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। एक समय राजा भरत महानदी गंडकीमें स्नान और नित्य-नैमित्तिक एवं अन्य सब आवश्यक कर्म उचित समय पर करके नदी-किनारे बैठे हुए तीन मुहूर्त तक "ओंकार"का जप करते रहे। इसी अवसर में एक अकेली हरिणी जल पीनेके लिये नदी तटपर आई। वह जल पी रही थी, इतनेमें पास ही लोगोंको भयभीत करनेवाला सिंहका शब्द सुन पड़ा ॥ १ ॥ एक तो हरिणीकी जाति स्वभावसे ही डरपोंक होती है, उस पर भयानक सिंहनादसे महाविपत्तिकी आशंका उपस्थित होनेके कारण उस मृगीका हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठा। वह मारे डरके इधर उधर देख कर बिना प्यास बुझे ही सहसा नदीको फाँदी ॥ २ ॥ मृगी गर्भिणी थी, जब वह नदीके पार फाँद जानेकी चेष्टामें थी उसी समय भयके मारे उसका गर्भ अपने स्थानसे भ्रष्ट हो कर योनिद्वारसे नदीके भीतर गिर पड़ा। हरिणी एक तो बहुत ही डर गई, दूसरे गर्भपात हो गया, तीसरे नदी-पार पहुँच जानेका प्रयत्न करनेसे शिथिल हो गई, अतएव अपने दलसे छूट कर एक पर्वतकी गुफामें गिरी और गिरते ही मर गई ॥ ३ ॥ राजर्षि भरतने नदी किनारे बैठे २ यह सब घटना देखी। उन्होंने देखा कि हरिणी मर गई, उसके गर्भसे गिरा हुआ हरिणका बच्चा अपने बंधुओंसे बिछड़ कर नदीकी धारामें डूब रहा है। यह देख कर भरतजीका हृदय दयासे व्याकुल हो उठा। वह उस जननीविहीन मृगशावकको प्रवाहसे निकाल कर अपने आश्रममें ले गये ॥ ४ ॥ भरतजीको

उस हरिणबालकमें धीरे २ "यह मेरा है" इस भाँतिका अभिमान हुआ। वह नित्यप्रति उसे हरी २ घास चराने लगे। वह भेंडिये आदिसे रक्षा कर, शरीर खुजलाने आदिसे सुखित कर, चुंबनआदिके द्वारा उसका लालनपालन करने लगे। इस प्रकार मृगवालककी सेवामें तत्पर रहनेके कारण उनके नियम, यम, हरिका भजन और पूजा आदि संपूर्ण आवश्यक कर्म एक एक करके कुछ दिनमें छूट गये ॥ ५ ॥ भरतजी उस मृगकी सेवा करते हुए सोचा करते थे कि "अहो! यह मृगका बालक बहुत ही दीन है, कालवश अपने झुंडवाले बंधु-बांधवोंसे बिछड़ कर मेरी शरणमें आया है। यह मुझको ही माता, पिता, भाई, जातिवाला और झुंडवाला सब कुछ जानता है, मेरे सिवा और किसीको नहीं जानता। मुझ पर इसको बड़ा विश्वास है। अतः 'इसके लिये मेरे स्वार्थकी हानि होती है' ऐसी दोष-दृष्टि न करके मेरा यही कर्तव्य है कि मैं इस शरणागत हरिणपुत्रको हरी २ कोमल घास चरा कर पुष्ट करूँ, भेंड़िये आदि भयंकर जीवोंसे रक्षा करूँ, अंग खुजला कर इसे प्रसन्न करूँ और मुख-चुंबन कर लालन (दुलार) करूँ। क्योंकि शरणागतकी रक्षा न करनेवालेको जो महादोष होता है सो मुझे विदित है ॥ ६ ॥ शान्त-शील मान्य साधुगण ही ऐसे २ दीनजनोंके सहायक और बंधु हैं। वे ऐसे २ विषयोंमें अपने बड़े २ स्वार्थोंको भी त्याग देते हैं" ॥७॥ भरतजी इस प्रकार निश्चय कर उसी हरिणके स्नेहमें आसक्त-हृदय हो गये। उसी हरिणबालकके साथ बैठने, सोने, घूमने, नहाने और भोजन करने लगे। किसी समय उसको अलग नहीं करते थे ॥ ८ ॥ जब वह कुश, पुष्प, यज्ञ-काष्ठ, पत्र, फल, मूल और जल आदि लानेके लिये वनको जाते थे तब पीछेसे भेंड़िया, कुत्ता आदि आ कर मृगवालकको मार न डालें-इस डरसे उसको साथ ही ले जाते थे ॥ ९ ॥ भरतजी राहमें मोहके मारे कभी २ प्रेम-पूर्वक स्नेहसे उस मृगको कंधे पर चढ़ा कर चलते थे। ऐसे ही कभी गोदमें लेकर, कभी छातीसे लगा कर दुलराते हुए परम आनंदित होते थे ॥ १० ॥ नित्यकर्म करनेके समय कर्म पूर्ण न होने पर, बीचमें ही उठ २ कर उस मृगको देखते थे और इस प्रकार स्वस्थ-चित्त हो कर उस मृगके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करते थे और कहते थे कि "पुत्र! तेरा सर्वत्र कल्याण हो" ॥ ११ ॥ जब २ मृगवालक आँखोंकी ओट हो जाता तब २ भरतजी जैसे कृपण व्यक्ति धन खो जाने पर व्याकुल होता है वैसे ही अत्यन्त उत्कण्ठित होते थे और अधिक उत्सुकताके कारण मृग-वियोगसे उनका हृदय आतुर और सन्तप्त होता था। एकदिन वह मृगबालक मृगोंके झुंडमें मिल कर दूर चला गया। उसे न देख कर भरतजी महामोहको प्राप्त हुए और दीन स्वरसे शोक करते हुए यों कहने लगे ॥ १२ ॥ "अहो! वह मृगका बालक मरी हुई माताका पुत्र है, अतएव अत्यन्त दीन है। मैं अनार्य और भाग्यहीन एवं शठ-किरातसदृश अविश्वासका पात्र हूँ। मैं वंचक (ठग) और क्रूर बुद्धिवाला हूँ। वह मृग मुझ पर विश्वास करता है। सुजनके समान अपने निर्मल

हृदयमें मेरे अपराधको स्थान न देकर क्या वह फिर मेरे पास आवेगा? ॥ १३ ॥ मेरी समझमें, मैं उसको आश्रमके समीप ही निर्विघ्न दशामें कोमल तृण चरते हुए देखूँगा, देवगण उसकी रक्षा करते होंगे ॥ १४ ॥ आशा करता हूँ कि कोई भेड़िया अथवा कुत्ता या शूकरोंके झुंड उसे मार नहीं सकेंगे ॥ १५ ॥ जिनका उदय सब लोगोंके लिये कल्याणकारी है वह वेदमूर्ति भगवान् सूर्य भी अस्त हो चले, किन्तु वह मृगीकी धरोहर मृगबालक न जाने अबतक क्यों नहीं आया? ॥ १६ ॥ वह हरिण-कुमार क्या अपने बालसुलभ मनोहर विलास (कूद फाँद) दिखा कर फिर मुझ स्वजनके शोकको दूर करेगा? क्या आकर मुझ अभागीको सुखित करेगा? ॥ १७ ॥ आहा! जब वह खेलता था और लड़कपनके कारण कुछ चंचलता करता था एवं मैं प्रेममय बनावटी कोपसे डाँट कर झूठमूठ आंखें मूँद कर समाधिका बहाना करके बैठ जाता था तब वह मेरे चारो ओर घूम कर चकित भावसे अपने कोमल २ छोटे २ सींगोंसे मेरे शरीरको खुजाता था, और मैं उससे परम आनंद पाता था ॥ १८ ॥ कुशासन पर हवनकी सामग्री रक्खी देख कर वह मृगबालक खेलते २ चंचलपनेके कारण यदि दाँतोंसे कुश खींच कर उसे दूपित करता था और मैं कुछ कुपित हो कर उसे डाँट देता था तो वह अत्यन्त भयभीत हो उसी समय चंचलता त्याग कर ऋपिकुमारकी भाँति शान्त भावसे बैठ जाता था" ॥ १९ ॥ हे राजन्! राजर्षि भरत यों नानाविध विलाप करके उठ कर कुटीके बाहर आये। पृथ्वी पर उस मृगशिशुके चरणोंके चिन्ह देख कर फिर आप ही आप यों कहने लगे कि "अहो! यह भूमि बड़ी ही बड़भागिनी है! इसने कौन सा तप किया था जो उस विनय-नम्र हरिण-शिशुके पैरोंके चिन्होंसे स्थान २ पर अंकित हो कर सर्व-स्वरूप मृगके वियोगसे आतुर जो मैं हूँ उसे मृगके जानेका मार्ग दिखा रही है एवं अपनेको भी मृगके चरण-चिन्होंसे विभूपित कर स्वर्ग और मोक्षकी इच्छावाले लोगोंके लिये यज्ञ करनेके योग्य (भूमि) बना रही है[1]" ॥ २० ॥ फिर ऊपर उदय होते हुए चन्द्रमामें मृगका चिन्ह देख उसे अपना ही मृग जान कर कहने लगे कि "अहो! मेरा मातारहित मृगका बालक आश्रमसे बाहर निकल कर कहीं अन्यत्र चला जायगा, यह विचार कर जान पड़ता है भगवान् चन्द्रदेवने दयावश सिंहआदि हिंसक जीवोंके भयसे उसे अपनी गोदमें स्थान दिया है और उसकी रक्षा कर रहे हैं" ॥२१॥ तदनन्तर चन्द्रमाकी शीतल किरणों-के स्पर्शसे सुखित हो कर कहने लगे कि "अहा! हरिणकुमारमें मुझे बड़ा ही प्रेम है, अतएव उसके वियोगकी अग्निके तापसे मेरा हृदयकमल जल रहा था, जान पड़ता है कि चन्द्रदेव यह जान कर दयापूर्वक अपनी सुशीतल, शान्त, वदन-

---

१ यस्मिन्देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन्धर्मो विवर्द्धते । इति स्मृतिवचनात् ।

सलिलरूप, अमृत-मय किरणोंसे मुझे शान्त कर रहे हैं" ॥ २२ ॥ हे राजन्! वह योग-तापस राजर्षि भरत मृगबालकके रूपसे प्रकट हुए अपने प्रारब्ध (पूर्वजन्मके कर्म) द्वारा योगानुष्ठान और हरि-आराधनारूप कर्तव्यकर्मसे भ्रष्ट हो गये। राजन्! अपने पूर्वकर्मोंसे ही वह योग और ईश्वरकी आराधनासे भ्रष्ट हो गये। नहीं तो जिसने पहले अपने दुस्त्यज पुत्रादिको भी 'मुक्तिका विघ्न' जान कर त्याग दिया था उसको अन्यजातीय हरिणीके बालक पर अकस्मात् अपने पुत्रकी सी ममता (आसक्ति) कैसे होती?। इस प्रकारके विघ्नसे भरतका योग भ्रष्ट हो गया। तब भरतजी अपने परलोककी चिन्ता त्याग कर उसी मृगबालकके ही लालन, पालन, पोषण, प्रसन्नता आदि करनेमें लिप्त हो गये। इसीं अवसरमें जैसे सर्प मूसेके बिलमें अचानक घुस कर उसे खा जाता है वैसे ही अलंघनीय कराल कालने आक्रमण किया ॥२३॥ उस समय भी भरतजी इसी ध्यानमें थे कि वही मृगबालक सन्तानकी नाईं पास बैठा हुआ शोक कर रहा है। सुतराम् भरतजीने मृगमें ही मन लगा रहनेके कारण मृगवासनासहित मनुष्यशरीर त्याग कर साधारण जीवोंके समान दूसरे जन्ममें मृगका ही शरीर पाया। किन्तु मृगयोनिमें भी उनको पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा ॥ २४ ॥ भरतजीको हरिकी आराधनाके प्रभाव द्वारा मृगशरीरके पानेका कारण याद रहनेसे मृगकी योनिमें अपने किये पर बड़ा ही सन्ताप हुआ और वह आप ही आप यों कहने लगे ॥ २५ ॥ "अहो! कैसे कष्टकी बात है! मैं धीर योगीजनोंके मार्गसे भ्रष्ट हो गया। विरक्त हो कर निर्जनवनकी पवित्र भूमिमें रह कर, धीरभावसे ईश्वरके श्रवण, मनन, संकीर्त्तन, आराधन, स्मरण आदिमें तत्पर हो कर सब जीवोंके स्वामी हरिमें मैंने मन लगाया था। एक क्षण भी मेरा व्यर्थ न जाता था। हरिमें दृढ़भावसे लगा हुआ मेरा मन यकायक उधरसे फिर कर मृगके बालकमें लग गया। अहो! मैं बड़ा ही मूढ़ हूँ!" ॥ २६ ॥ इस प्रकार गुप्तरूपसे मृगशरीरधारी भरतजीके मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसी समय वह अपनी माता मृगीको वहीं छोड़ कर कालंजर पर्वतसे फिर उसी शान्त स्वभाववाले मुनियोंको प्रिय और पवित्र शालग्रामनामक हरिक्षेत्रके अन्तर्गत पुलस्त्य-पुलहके आश्रममें चले आये ॥ २७ ॥

तस्मिन्नपि कालं प्रतीक्षमाणः सङ्गाच्च भृशमुद्विग्न आत्मसहचरः शुष्कपर्णतृणवीरुधा वर्तमानो मृगत्वनिमित्तावसानमेव गणयन्मृगशरीरं तीर्थोदकक्लिन्नमुत्ससर्ज ॥ २८ ॥

मृगरूप भरतजी वहाँ भी अकेले ही रहने लगे। किसी जीवका संग न कर, सूखे पत्ते, तृण, लताआदि खा कर निर्वाह करते हुए मृगशरीर छूटनेके समयकी

प्रतीक्षा करने लगे और जब मृत्युकाल आया तब गंडकी नदीके जलमें पड़े हुए मृगशरीरको त्याग दिया ॥ २८ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय ।

भरतका ब्राह्मणके यहाँ तीसरा जन्म होना ।

श्रीशुक उवाच–अथ कस्यचिद्द्विजवरस्याङ्गिरःप्रवरस्य शमदमतपःस्वाध्यायाध्ययनत्यागसंतोषतितिक्षाप्रश्रयविद्याऽनसूयात्मज्ञानानन्दयुक्तस्यात्मसदृशश्रुतशीलाचाररूपौदार्यगुणा नव सोदर्या अङ्गजा बभूवुर्मिथुनं च यवीयस्यां भार्यायाम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन्! किसी एक अंगिरा ऋषिके वंशमें उत्पन्न श्रेष्ठ ब्राह्मणके यहाँ भरतजीका तीसरा जन्म हुआ । वह विप्रवर शम, दम, तप, वेदाध्ययन, दान, सन्तोष, सहनशीलता, विनय, विद्या, सरलता, आत्मज्ञान और आनंद (प्रसन्नता) आदि आवश्यक और उत्तम बातोंसे युक्त थे । उन ब्राह्मणके पहली स्त्रीमें उन्हीके समान विद्या, शील, आचार, रूप और उदारता आदि श्रेष्ठ गुणोंसे विभूषित नव पुत्र उत्पन्न हुए तथा दूसरी स्त्रीमें एक कन्या और एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ बड़े लोग कहते हैं कि भरतजी ही मृगशरीर त्याग कर उक्त ब्राह्मणकी छोटी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुए । यही ब्राह्मणशरीर भरतजीका अन्तिम शरीर हुआ, इसके छोड़ने पर वह मुक्त (ईश्वरमें लीन) हो गये ॥ २ ॥ "फिर संग करनेसे अधःपतन अर्थात् भक्तियोगके साधनमें विघ्न न हो जाय" इस आशंकासे भरतजी ब्राह्मणके वंशमें जन्म ले कर भी स्वजनोंसे अलग ऐसी दशामें रहने लगे कि देखनेवाले इनको उन्मत, जड़ (बावला), अंधा और बधिर समझ कर आप ही पास न रखते थे । भरतजीको ईश्वरकी कृपासे अपने पहले जन्मोंका वृत्तान्त भूला न था, इस कारण वह सबसे अलग रह कर सब समय हरिचरणोंके ध्यानमें मग्न रहते थे । हरिके कीर्तन, स्मरण और गुणगानसे ही कठिन कर्मबंधन छूटता है ॥ ३ ॥ यद्यपि यह पुत्र (जड़भरत) जड़ था तथापि ब्राह्मणने पुत्र-स्नेहके कारण उसके समावर्तन आदि सब संस्कार विधिपूर्वक किये एवं यज्ञोपवीतके बाद यज्ञोपवीतके शौच-आचमन आदि नियमोंकी शिक्षा दी । यद्यपि जड़भरतको ये शौच आदि कर्म अभिमत (पसंद) न थे तथापि ब्राह्मणने यह

सोच कर कि "पुत्रको शिक्षा देना पिताका कर्तव्य है" शिक्षा दी ॥ ४ ॥ जड़-भरतजी भी पिताके आगे ही बे-मन उन शिक्षाओंका व्यवहार करते थे, जिसमें शिक्षा देनेके लिये पिताका आग्रह जाता रहे । उनके पिताने वेद्-व्रत आदिके बाद श्रावणादि महीनोंमें वेदाध्ययन करानेकी कामनासे वसंत और ग्रीष्मके चार महीनोंमें ओंकार और व्याहृतियोंसहित गायत्रीकी शिक्षा देनेकी बहुत कुछ चेष्टा की, परन्तु उसका मनोरथ सफल नहीं हुआ ॥ ५ ॥ वह भरतको प्राणसे अधिक प्रिय मानता था अतएव उसका चित्त भरत पर बहुत ही स्नेह करता था। सावधि-ब्रह्मचारीके कर्तव्य जो शौच, वेदाध्ययन, नियम, गुरुसेवा, हवन आदि हैं उनमें यद्यपि भरतजीका मन नहीं लगता था तथापि वह ब्राह्मण स्नेहवश सर्वदा इनको ऊपर लिखे हुए कर्तव्योंका उपदेश देता था; क्योंकि उसको पूर्वोक्त आग्रह था कि पुत्रको उपदेश देना पिताका आवश्यक कर्तव्य और धर्म है । पुत्र किसी भाँति पण्डित हो, यही उसकी अभिलाषा थी, किन्तु वह किसी प्रकार सिद्ध नहीं हुई । केवल आशामें ही समय बीतने लगा । भरतजीके पिता वृथा आशामें मोहित थे-इसी अवसरमें सावधान कालने आकर उनको धर दबाया ॥ ६ ॥ ब्राह्मणके मरनेके बाद उसकी छोटी स्त्री अपने गर्भसे उत्पन्न पुत्र (भरतजी) और कन्याको सौतके हाथमें सौंप कर पतिके साथ सती हो पतिलोकको चली गई । पिताके मरने पर भरतके भाइयोंने 'यह जड़ है' यही ठीक करके इनको उपदेश वा शिक्षा देनेकी चेष्टा छोड़ दी। राजन्! भरतके भाइयोंकी बुद्धि वेदविद्या (कर्मकाण्ड)में ही लगी हुई थी, इस लिये उन्होने आत्मविद्यामें कुछ भी परिश्रम नहीं किया और इसी कारण वे भरतजीके प्रभावको भी नहीं जान सके ॥ ७ ॥ साधारण मनुष्य-पशु भरतको जड़, गूँगा या बधिर जान कर उनसे जैसी बातचीत करते थे वह भी उनसे वैसी ही बातचीत और व्यवहार करते थे । इनसे जो कोई जो काम कराता, यह उसकी इच्छाके अनुसार वह काम करते थे। यदि कोई इन्हे पकड़ कर इनसे बेगार कराता तो यह बेगार भी करते थे; वह बेगार करानेवाला जो कुछ थोड़ा-बहुत रूखा सूखा, मीठा या खराब अन्न इनको देता था, यह उसेही खा कर पेट भर लेते थे। क्योंकि इन्हे इन्द्रियोंकी प्रसन्नता तो करनी ही न थी। यदि कोई इनको कुछ मजदूरी दे देता तो ले लेते थे और न देता था तो केवल पेटभर भोजन माँग कर खा लेते थे और काम किया करते थे ॥ ८ ॥ इनको मान अपमान या सुख दुःख-का विचार न था क्योंकि यह उत्पादकशून्य और अभिव्यञ्जकरहित, विशुद्ध अनुभवस्वरूप, आनन्दमय आत्मामें ही सन्तुष्ट रहते थे अर्थात् इनको इस प्रकारका ज्ञान हो गया था कि आत्मा उक्त प्रकारका है; अतएव सुख दुःख आदिकी जड़ जो देहाभिमान है वह इनको नहीं रहा ॥९॥ यह जाड़ेमें, गर्मीमें और वर्षा व आँधीमें

नंगे घूमा करते थे । इनका शरीर साँड़की नाईं मोटा और परिपुष्ट था और सब अंग सुदृढ़ थे । यह जहाँ तहाँ पृथ्वी पर पड़े रहते थे, कभी तेल नहीं लगाते थे और न कभी स्नान ही करते थे, इस कारण इनके शरीरमें धूल भरी रहती थी । जैसे मट्टीमें पड़े रहनेके कारण अमूल्य मणिका तेज नहीं प्रकट होता वैसे ही इस अवस्थामें इनका ब्रह्मतेज भी छिपा हुआ था । भरतजी कमरमें एक मैला चीथड़ा लेपेटे रहते थे और उनके कंधे पर मैला जनेऊ पड़ा रहता था; जिसे देख कर उनकी महिमा न जाननेवाले मूढ़लोग "यह निंदित ब्राह्मण है" "जड़ ब्राह्मण है" यों कह कर उनका तिरस्कार किया करते थे और वह इच्छानुसार जहाँ तहाँ विचरा करते थे ॥ १० ॥ जब भाइयोंने देखा कि भरतजी दूसरोंसे भोजन पा कर उनके काम किया करते हैं तब उन्होने अपने खेतोंमें काम करनेके लिये इनको नियुक्त किया । भरतजी वह भी बिना कुछ कहे सुने करने लगे । किन्तु वह इस बातका कुछ भी विचार न करते थे कि यहाँ खेत ऊँचा है-खोदना चाहिये, या यहाँ पृथ्वी नीची है इसको बराबर करना चाहिये । कहीं पर खोदते ही चले जाते और कहीं पाटते ही चले जाते थे । सायंकालको और सबेरे जो कुछ कन, पीना, चूनी, घुना अन्न या जला हुआ अन्न भाई दे देते उसीको अमृतके समान मान कर खा लेते थे ॥ ११ ॥ एक समय किसी चोरोंके सरदारने पुत्रकी कामनासे भद्रकालीको प्रसन्न करनेके लिये नर-पशुकी बलि देनी चाही ॥ १२ ॥ दैववश वह पुरुष, जिसको बलि देनेके लिये चोरराजने मँगाया था, बंधन छूट जानेसे प्राण ले कर भाग गया । आधी रातके समय चोरराजके सेवक उस पशु (मनुष्य) को पकड़नेके लिये चारो ओर चले । एक तो रात अँधेरी थी और उस पर आधी रातका समय था, अतएव वह पुरुष उन लोगोंके हाथ नहीं लगा । अकस्मात् उन्होने देखा कि अंगिराके गोत्रमें श्रेष्ट ब्राह्मणके पुत्र जड़भरतजी खेतके भीतर वीर-आसनसे बैठे हुए मृग वराह आदि जीवोंसे खेतकी रखवाली कर रहे हैं ॥ १३ ॥ वे लोग भरतजीको सुलक्षण पशु विचार कर कहने लगे कि "भाई ! इस पुरुषपशुसे हमारे स्वामीका कार्य सिद्ध हो जायगा" । वे लोग यह कह प्रसन्नतापूर्वक भरतजीको रस्सीमें बाँध कर चण्डिकाके मण्डपमें अपने स्वामीके पास ले चले ॥ १४ ॥ तदनन्तर उस चोर-राजने अपनी रीतिके अनुसार भरतजीको स्नान कराया, फिर नये कपड़े पहनाये और गहनोंसे विभूषित किया, उनके शरीरमें चंदनआदि सुगंधित वस्तुएं लगाईं, तिलक लगाया, माला पहनाई, भोजन कराया और फिर धूप, दीप, माला, खील, बतासे, नवदल, अंकुर और फल आदि सामग्रीसे पूजा करके पुरुषपशु जड़भरतको भद्रकालीकी मूर्तिके आगे बिठलाया । उस समय वे सब लोग ऊँचे स्वरसे गीत गाने और स्तुति करने लगे एवं मृदंग, पणव आदि

बाजे बजाने लगे ॥ १५ ॥ उसके बाद जो चोर चोरराजकी पुरोहितीके काममें नियुक्त हुआ था उसने पुरुषपशु (जड़भरत) के रुधिरासवसे भद्रकालीकी पूजा करनेके लिये देवी भद्रकालीके मंत्रसे अभिमंत्रित कर भयानक तीक्ष्ण खड्ग हाथमें लिया ॥ १६ ॥ उन सब चोरोंका स्वभाव रजोगुण व तमोगुणसे परिपूर्ण था, अतएव हिंसा करना उनके लिये एक प्रकारका खेल था और धनके मदसे उन्होने मर्यादाको छोड़ दिया था । वे लोग जब भगवान्‌की कला जो ब्राह्मणकुल है उसका अनादर करके अपनी इच्छाके अनुसार उत्पथगामी हो कर यह भयानक कर्म करने पर उद्यत हुए तब देवी भद्रकाली इस कुकर्मको अनर्थ समझ कर पहले ही प्रतिमाको त्याग कर बाहर निकल आई । जो ब्रह्मर्षिके सन्तान एवं स्वयं भी ब्रह्मस्वरूप हैं, जिनकी किसीसे शत्रुता नहीं है, जो सब जीवोंके शुभचिन्तक हैं और आपत्ति समयकी लौकिकी हिंसामें भी जिनके बधका अनुमोदन नहीं हो सक्ता उनका शिर काटनेकी कामनासे देवीके आगे बलिदानका उद्योग हो रहा है, इस कारण देवीकी प्रतिमा असह्य ब्रह्मतेजसे जलने लगी ॥ १७ ॥ शरीर जल उठनेसे देवीको क्रोध और अमर्ष (अपराधको न सह सकना) का वेग असह्य हो उठा । क्रोधके आवेशसे भौंहैं टेढ़ी होगई और भयानक दाढ़ोंकी चमक व लाल २ नेत्रोंसे मुखमण्डल भी अधिक भयंकर हो गया । वह मानो विश्वका संहार कर डालेंगी, इस प्रकार ऊँचे स्वरसे भयानक अट्टहास करने लगीं । तदनन्तर वह भगवती भद्रकाली उन पापात्मा दुष्ट चोरोंके ऊपर फाँद कर गिरीं और उन्हींके खड्गसे उनके शिर काटने लगीं एवं उनके कटे हुए कंठोंसे निकल रहे त ज गर्म २ रुधिरको योगिनी आदि अपने सेवकोंसहित पान किया । फिर रुधिर-पान करनेके कारण मदसे विह्वल हो कर अपने पार्षदोंसहित ऊँचे स्वरसे गाने लगीं और उन दुष्टोंके कटे हुए शिरोंको गेंदके समान उछाल कर नृत्य करना आरम्भ किया ॥ १८ ॥ राजन्! महात्मा लोगों पर अत्याचार करनेसे उसका फल ऐसे ही संपूर्णरूपसे अपने ही ऊपर पड़ता है अर्थात् उनका कुछ बुरा नहीं होता बरन् अत्याचार करनेवालेका ही उस दोषसे सर्वसंहार हो जाता है ॥ १९ ॥

न वा एतद्विष्णुदत्त महदद्भुतं यदसंभ्रमः स्वशिरश्छेदन आपतितेऽपि विमुक्तदेहाद्यात्मभावसुदृढहृदयग्रन्थीनां सर्वसत्त्वसुहृदात्मनां सर्वनिर्वैराणां साक्षाद्भगवतानिमिषारिवरायुधेनाप्रमत्तेन तैस्तैर्भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत्पादमूलमकुतश्चिद्भयमुपसृतानां भागवतपरमहंसानाम् ॥ २० ॥

हे विष्णुदत्त परीक्षित्! जो लोग भगवान्‌की उपासना करते हैं और परमहंस

है एवं भगवान्‌के भयशून्य चरणारविंदोंकी शरणमें प्राप्त हैं उन लोगोंका इस प्रकार शिर कटनेके समय भी बेभरम बैठे रहना और अपने मारनेवालों पर क्रोध न करना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि देहादिमें "मै हूं मेरा है" यह भाव उनको नहीं रहता। वे सबमें अपनेको देखते हैं अतएव सब जीवोंके मित्र और आत्मा हैं, उनका कोई भी शत्रु नहीं है। स्वयं भगवान् कालचक्ररूप प्रधान अस्त्रसे इसी प्रकार अर्थात् भद्रकाली आदि रूपोंके द्वारा सर्वदा उनकी रक्षा किया करते हैं ॥ २० ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय ।

जड़भरत और राजारहूगणका सम्वाद ।

श्रीशुक उवाच—अथ सिन्धुसौवीरपते रहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्यास्तटे तत्कुलपतिना शिबिकावाहपुरुषान्वेषणसमये दैवेनोपसादितः स द्विजवर उपलब्ध एष पीवा युवा संहननाङ्गो गोखरवद्धुरं वोढुमलमिति पूर्वविष्टिगृहीतैः सह गृहीतः प्रसभमतदर्ह उवाह शिबिकां स महानुभावः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! एक समय सिंधु-सौवीर देशोंका राजा रहूगण पालकी पर चढ़ा हुआ चला जाता था। इक्षुमती नदीके किनारे एक कहार कम पड़ा, तब कहारोंका मुखिया वहाँ पर पालकी ले चलनेके योग्य मनुष्य ढूंढने लगा। अकस्मात् उसको वहाँ जड़भरतजी देख पड़े। भरतजीको देख कर उसने मनमें विचारा कि "इस व्यक्तिका शरीर खूब मोटा है और अंग भी दृढ़ हैं। जान पड़ता है यह बैल वा खच्चरके बराबर बोझा ढो सक्ता है," ऐसा निश्चय करके और लोग जो बेगारमें पालकी लिये जा रहे थे उन्हीके साथ भरतजीको भी पकड़ कर उसी काममें लगा दिया। इस कामके योग्य न होने पर भी महानुभाव भरतजी बिना कुछ कहे पालकी ले चले ॥ १ ॥ पैरके तले पड़ कर कोई जीव न मर जाय, इस विचारसे भरतजी चार हाथ पृथ्वी देख कर चलते थे। इससे सब कहारोंकी चाल बराबर नहीं हुई और पालकी खाले ऊँचेमें पड़नेसे रहूगण राजाके धक्का लगा। तब वह कुछ क्रोधित हो कर पालकीके कहारोंसे बोला कि "अरे कहारो! अच्छी तरह पालकी ले चलो, यों ऊँची नीची चालसे

क्यों जा रहे हो" ॥२॥ वे कहार लोग राजाकी क्रोधभरी वातचीत सुन कर दण्डके भयसे विनयपूर्वक कहने लगे ॥ ३ ॥ "हे नरदेव! हम लोग ठीक चाल चल रहे हैं, हम प्रमत्त (असावधान) नहीं हैं, आपकी आज्ञाके अनुसार अच्छी तरह पालकी लिये जाते हैं। यह जो कहार अभी पालकीमें लगाया गया है सो हमारे साथ जल्दी नहीं चलता । हम इसके साथ पालकी नहीं ले चल सक्ते" ॥ ४ ॥ यह सुन कर राजाने विचारा कि एक मनुष्यके दोपसे सव उसके संगियोंको सांसर्गिक दोप लगता है। कहारोंके दीन वचन सुन कर राजाने इस प्रकार निश्चय किया और यद्यपि उसने बड़े बूढ़ोंकी उपासना भी की थी तथापि राज-स्वभावके कारण उसे कुछ क्रोध आगया। तव भस्ममें छिपे हुए अग्निके समान जिनका ब्रह्मतेज छिपा हुआ है उन महात्मा भरतसे लक्ष्मीमदसे भ्रष्ट हो गई है वुद्धि जिसकी ऐसा राजा रहूगण डाँट कर इस प्रकार व्यंग्य वचन बोला ॥ ५ ॥ "अहो! बड़े कष्टकी बात है, भाई! निश्चय तुम वहुत थक गये हो! तुम अकेले ही बड़ी देरसे इतनी दूर तक पालकी लाये हो! फिर न बहुत मोटे हो, न तुम्हारे अंग ही बलिष्ठ और दृढ़ हैं, उस पर वृद्धावस्थाने तुमको और भी शिथिल कर दिया है। इसी कारण तुम अपने इन साथियोंकी बराबरी नहीं कर सक्ते"। यद्यपि राजा रहूगण इस प्रकार व्यंग्य कह कर उपहास करने लगा तथापि भरतजीने कुछ उत्तर नहीं दिया और चुपचाप पहलेकी भाँति पालकी लिये हुए चलने लगे। हे राजन्! अपना अन्तिम शरीर, जो कि पञ्चभूत, इन्द्रिय, कर्म, अन्तःकरण और अविद्याद्वारा रचित हुआ है, उसमें ब्रह्मस्वरूप हो जानेके कारण "मैं हूं मेरा है" इस मिथ्या ज्ञानको भरतजीने त्याग दिया था। अतएव राजाके इस प्रकार कहने पर भी वह चुपचाप रहे ॥ ६ ॥ फिर जव पालकी टेढ़ी हुई तब बहुत ही कुपित हो कर राजा रहूगण बोला ॥ ७ ॥ "अरे! यह क्या है। तू क्या जीते ही अपने आप अपनी मौत चाहता है जो मेरा निरादर करता है! मैं तेरा स्वामी हूँ, तू मेरी आज्ञा नहीं मानता! तू वड़ा ही उन्मत्त है। अच्छा ठहर जा! जैसे दण्ड हाथमे लिये हुए यमराज सब दुष्टोंका शासन करते हैं वैसे ही मैं भी तुझे सुधारूँगा। दवा हो जानेसे तू ठीक हो कर अपने होशमें आ जायगा और तेरा सव मद उतर जायगा" ॥ ८ ॥ हे राजन्! सिंधु-सौवीर देशोंका स्वामी राजा रहूगण अपनेको नरदेव (राजा) और पंडित माननेके कारण वड़ा ही अभिमानी हो रहा था, इसी कारण रजोगुण (संपदा) और तमोगुणसे बढ़े हुए मदसे उन्मत्त उसने इस प्रकार अनेक असंगत वाक्य कह कर भगवान्के प्यारे भक्त भरतका तिरस्कार किया; तब वह सब जीवोंके परम वन्धु और परब्रह्मस्वरूप परम परमहंस ब्राह्मण (भरत) अहंकारशून्यभावसे कुछ मुसकाकर यों कहने लगे ॥ ९ ॥ ब्राह्मण (भरतजी) बोले। हे वीर! तुमने जो जो व्यंग्यसे

कहा वह मिथ्या नहीं है । देखो, "भार" नामक यदि कोई पदार्थ है और वह यदि उस भारके धारण करनेवाले शरीर पर है और उसकी प्रसक्ति यदि असत्पदवाच्य आत्मामें है तो तुम्हारा कहना परस्पर विरुद्ध हो सक्ता है। एवं चलनेवालेके लिये यदि कोई प्राप्त होनेवाला मार्ग है और उसमें यदि असत्पदवाच्य आत्माकी प्रसक्ति हो तो भी तुम्हारे ये वाक्य मिथ्या हो सक्ते हैं। किन्तु मेरे वह कुछ भी नहीं है अतएव जो २ तुमने कहा सो असार या असंगत अथवा व्यंग्य नहीं है। और तुमने जो "मोटे नहीं हो" कह कर व्यंग्य किया सो विद्वान् लोग चेतन पदार्थ (आत्मा) के लिये कभी ऐसे वाक्य नहीं कहते, यों मूर्ख लोग ही कहते हैं। क्योंकि ऐसे प्रवादका देह पर ही प्रयोग किया जा सक्ता है, आत्माके प्रति नहीं हो सक्ता। अतएव यह उपाधिरूप देह ही स्थूल है, मैं (आत्मा) स्थूल अर्थात् मोटा नहीं हूँ ॥१०॥ महाराज! जो व्यक्ति देहके साथ उसी देहके अभिमानसे जन्म लेता है उसीको मोटापन, दुबलापन, आधि (मानसी चिन्ता), व्याधि, भूख, प्यास, भय, कलह, तृष्णा, इच्छा, निद्रा, रति (आसक्ति), क्रोध, अहंकार, मद और शोक होता है; मुझको देहाभिमान नहीं है अतएव मुझमें मोटापन दुबलापन आदि कुछ भी नहीं है ॥ ११ ॥ और जो तुमने मुझे "जीवन्मृत" कहा, उसके लिये भी मैं यही कहता हूँ कि केवल मैं ही जीवन्मृत नहीं हूँ। विकारयुक्त अर्थात् रूपान्तरको प्राप्त होनेवाले जितने पदार्थ हैं सभी जीवन्मृत दशामें देखे जाते हैं एवं ऐसे सब ही पदार्थ आदि और अन्तसे युक्त हैं। तुमने मुझसे जो कहा कि "तू अपने स्वामीका कहा नहीं मानता" उसके लिये मैं यह कहता हूँ कि हे पूजनीय! जिस जगह स्वत्व और स्वामीभाव नियमतः व्यवस्थित—निश्चित है, वहां ही आज्ञा और कर्म-ये दोनो उचित हो सक्ते हैं; नहीं तो यदि तुम राज्यसे भ्रष्ट हो जाओ और मैं राजा हो जाऊँ तो इसके विपरीत (अर्थात् मैं आज्ञाकारी और तुम आज्ञापालक) हो सक्ता है ॥ १२ ॥ यदि तुम कहो कि "जब तक मैं राजा हूँ तब तक तो तुम्हारा स्वामी हूँ" तो भी हमें व्यवहारके सिवा इस विशेष-बुद्धिका कुछ भी अवकाश नहीं देख पड़ता। क्योंकि प्रभु कौन है? और प्रभुता क्या है? तथापि यदि तुमको प्रभुताका अभिमान है तो बताओ हम तुम्हारा क्या कहना करें? ॥ १३ ॥ हे राजन्! तुमने जो कहा कि "तू बहुत ही उन्मत्त है, ठहर जा-मैं तेरी दवा किये देता हूँ" ऐसा कह कर जो मुझको भय दिखाया उसके विषयमें भी मैं यही कहता हूँ कि "मैं उन्मत्त अथवा मत्त या जड़ ऐसा हूँ—यह बात सत्य है किन्तु वास्तवमें मैं ब्रह्मरूप हो गया हूँ। तुम मेरी चिकित्सा (दवा) ही करो या दंड दो अथवा शिक्षा दो, इसमें कुछ मेरा अनिष्ट नहीं है। और यदि तुमको ऐसा जान पड़ता है कि मैं मुक्त नहीं हूँ अथवा तुम मुझे जड़ (उजड्ड) समझते

हो तो भी मुझको दंड या शिक्षा देना पिष्टपेषण (पीसेको फिर पीसने) के समान व्यर्थ है। क्योंकि जो स्वाभाविक जड़ है वह कभी दंड या शिक्षा देनेसे चतुर नहीं हो सक्ता" ॥ १४ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । हे राजन्! शान्तस्वभाव भरतजी इस प्रकार राजा रहूगणके व्यंग्य वाक्योंका उत्तर दे कर अपने पूर्वसंचित कर्मोंको फलभोगद्वारा क्षीण करते हुए फिर पहलेकी भाँति राजाकी पालकी ले चले। जो अविद्या देहाभिमानका कारण है वह दूर हो जानेके कारण भरतजीको राजाकी पालकी ले चलनेमें कुछ भी कष्ट या अपमान नहीं जान पड़ता था ॥१५॥ हे पाण्डु-नन्दन! सिन्धुसौवीरदेशका राजा रहूगण सात्त्विकी श्रद्धासे तत्त्वजिज्ञासा-का अधिकारी था और वह आत्मज्ञानकी शिक्षाके लिये किसी सुयोग्य परमहंसकी खोजमें था, सो उस समय जड़भरतजीके मुखसे हृदयकी ग्रंथि जो देहाभिमान है उसको छुड़ानेवाले एवं अनेक योगग्रंथोंके मतानुकूल वाक्य सुन कर तुरन्त पालकीसे उतर पड़ा और राजा होनेके गर्वको त्याग कर पैरोंमें गिर कर अपना अपराध क्षमा कराते हुए यों बोला ॥ १६ ॥ "हे स्वामी! आपके कंधेमें यज्ञोपवीत पड़ा हुआ है, क्या आप ब्राह्मण हैं, आप दत्तात्रेय आदि अवधूतोंमेंसे तो कोई नहीं हैं? आप अवश्य ही इस वेषमें छिपे हुए कोई योगीश्वर महात्मा हैं! आप किसके पुत्र हैं और कहाँके रहनेवाले हैं? यहाँ किस लिये विचर रहे हैं? यदि हम ऐसे मूढ़ोंको कल्याणरूप ज्ञान दान करनेको यहाँ विचर रहे हैं तो क्या भगवान् कपिलमुनि तो नहीं हैं? ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन्! मैं इन्द्रके वज्रसे और शंकरके भयंकर त्रिशूलसे एवं यमराजके प्रचंड दंडसे नहीं डरता। मैं अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु और कुबेर आदिके अस्त्रोंसे भी नहीं भय करता, किन्तु ब्राह्मणवंशके निरादरसे अत्यन्त भय करता हूँ ॥ १८ ॥ सो आप कृपा कर बताइये कि कौन हैं?। आप यद्यपि आत्मज्ञानरूप अपने प्रभावको छिपाये हुए संग-हीन हो कर जड़ों (बावलों) की भाँति विचर रहे हैं तो भी आपके योगसम्बन्धी गूढ़ वचन सुन कर हमें आपकी अपार महिमा का पता लग गया है, आपके इन गूढ़ वचनोंमें हमारे मनकी गम्य नहीं है ॥१९॥ मैं इस समय आत्मज्ञानी मुनियोंके परम गुरु एवं ज्ञानकलासे पृथ्वीतलमें प्रकट जो साक्षात् हरि योगीश्वर कपिलदेवजी हैं उनसे इस संसारसे निस्तार पानेका उपाय पूछने जा रहा था ॥ २० ॥ सो क्या आप ही कपिलदेव हैं। क्या आप लोकोंको देखनेके लिये अपना प्रताप छिपाये हुए इस वेषसे घूम रहे हैं?। मेरे समान गृहाश्रममें स्थित अंधबुद्धि मनुष्य आप ऐसे योगीश्वरोंकी गतिको कैसे देखसक्ता है? ॥ २१ ॥ ब्रह्मन्! आपने कहा कि "मुझको श्रम नहीं है"? किन्तु यह बात कैसे संगत हो सक्ती है? जो व्यक्ति किसी कर्म को करता है उसे कर्म और श्रम अवश्य ही है। जब मैं देखता हूँ कि मुझे स्वयं अपने प्रभुता और युद्धादि कर्मोंके करनेके समय कर्म और श्रम होता है तब यह सहजमें अनुमान किया

जाता है कि आपको भी बोझा ले चलनेमें अवश्य श्रम होता होगा। फिर आपने कहा कि "सिवा व्यवहारके और किसी बातमें मैं अपनेमें और तुममें विशेषता नहीं देखता" सो आपका यह कहना भी असंगत सा जान पड़ता है, क्योंकि व्यवहारमार्ग मिथ्या नहीं प्रतीत होता वरन् सत्य प्रमाणित हो सक्ता है। देखिये, यदि घट मिथ्या हो तो क्या उसके द्वारा 'जल लाना' कर्म सिद्ध हो सक्ता है? ॥ २२ ॥ आपने जो कहा कि "मोटापन आदि देहके धर्म हैं, आत्मा के नहीं" सो इसमें भी मुझको संशय है। देखिये जैसे कढ़ाई आग पर रखने से तपती है, उसकी गर्मीसे उसमें भरा हुआ दूध गर्म होता है; दूधके गर्म होनेसे उसमें पड़े हुए चावलोंका बाहरी भाग तपता है और ऐसे ही चावल पक जाता है, इसमें कुछ मिथ्या नहीं है; वैसे ही कढ़ाई दूध और चावल के समान देह, इन्द्रिय, प्राण और मनका परस्पर संयोग है, अतएव इन सब उपाधि-धर्मोंकी अनुवृत्तिके कारण जीवको संसार होना ही संभव है। जब गर्मीके कारण शरीरको सन्ताप होता है तब शरीरके तापसे इन्द्रियोंको और उसके बाद प्राणको और उसके बाद मनको ताप होता है—ऐसे ही देह स्थूल होने पर उसके सम्बन्धसे आत्माका भी स्थूल होना सिद्ध होता है ॥ २३॥ आपने कहा "प्रभुता नित्य नहीं है" सो ठीक है, किन्तु नित्य न होने पर भी जिस समय जो व्यक्ति राजा होता है उस समय तो वह प्रजाओंका शासन और रक्षणावेक्षण करता है। फिर आपने कहा कि "स्तब्ध अर्थात् स्वाभाविक जड़को शिक्षा देना पिष्टपेषणके तुल्य व्यर्थ है" सो यह भी मुझे संगत नहीं जान पड़ता; क्योंकि जो व्यक्ति भगवान्‌के दास और आज्ञा-पालक हैं वे कभी निष्फल कर्म नहीं करते। देखिये, यद्यपि शिक्षाके द्वारा वे जड़ पुरुषकी जड़ता नहीं दूर कर सक्ते तथापि विश्वनियन्ता जगदीश्वरकी इच्छारूप आज्ञाके अनुसार लोक-शासन उनका धर्म है, उसका पालन करना ही उनके लिये श्रेय है—उसीसे उनके सब पातक दूर हो जाते हैं ॥ २४ ॥ ब्रह्मन्! आपने जो २ कहा वह सब मेरी मोटी बुद्धिमें उलटा जान पड़ता है। आप अनुग्रह करके मुझ दीन पर स्नेहकी दृष्टि डालिये, क्योंकि आप ऐसे महात्माजन दीन जनोंके बन्धु (शुभचिन्तक) होते हैं। मैंने राजा होनेके अभिमानसे आप ऐसे साधु पुरुषका अपमान किया है सो हे नाथ! जिसमें साधु जनका अपराध करनेके महापापसे मेरा उद्धार हो—ऐसा अनुग्रह मुझ पर करिये ॥ २५ ॥

न विक्रिया विश्वसुहृत्सखस्य साम्येन वीताभिमतेस्तवापि ॥
महद्विमानात्स्वकृताद्धि मादृङ्नङ्‌क्ष्यत्यदूरादपि शूलपाणिः॥२६॥

भगवन्! आप संसारभरके सुहृद् और सखा हैं, समदर्शी होनेके

कारण आपको अपने शरीरमें भी अभिमान नहीं है; इस कारण यद्यपि मेरे किये हुए अपराधसे आपके मनको विकार नहीं होसक्ता तथापि मुझ सरीखे साधारण जीव, शंकर भगवान्के तुल्य समर्थ होने पर भी महात्माओंका अपराध करनेसे शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं! इसमें कोई सन्देह नहीं है" ॥ २६ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय ।

राजाको भरतजीका उपदेश ।

ब्राह्मण उवाच—अकोविदः कोविदवादवादा-
न्वदस्यथो नातिविदां वरिष्ठः ॥
न सूरयो हि व्यवहारमेनं
तत्त्वावमर्शेन सहामनन्ति ॥ १ ॥

राजा रहूगणके वाक्य सुनकर जड़भरतजी कहने लगे। महाराज! तुम अविद्वान् होकर भी विद्वानोंकी सी बातें कहते हो। किन्तु तुम श्रेष्ठ विद्वान् नहीं कहे जा सक्ते, क्योंकि तुम स्वामी-सेवक आदि लौकिक व्यवहारोंको सत्य कहते हो। तत्त्वका विचार विना किये ही स्वामी-सेवकादि व्यवहार प्रकाश पाताहै; तत्त्व-विचार करने पर नहीं। अतएव वह असत्य है ॥ १ ॥ लौकिक स्वामीसेवकादि व्यवहारों-की भाँति वैदिक धर्मके फलों(स्वर्गादि)का व्यवहार भी सत्य नहीं है। गृहसम्बन्धी यज्ञोंके विस्तारकी विद्या(कर्मकाण्ड)के अधिकतर वर्णनसे युक्त वेदवाद (वैदिक वाक्यों) में हिंसा, राग आदिसे शून्य तत्त्ववाद (आत्मज्ञान) भली भाँति नहीं प्रकाशित होता (अर्थात् वैदिक कर्मकाण्डमें आसक्त लोग निष्काम परमहंसोंके निवृत्तिरूप सिद्धान्तको भली भांति नहीं समझ पाते) ॥ २ ॥ यद्यपि वेदान्तविज्ञ मनुष्य भी कभी २ कर्ममें प्रवृत्त देख पड़ते हैं, किन्तु यह वैदिक कर्मकाण्डकी सत्यता वा श्रेष्ठताका प्रमाण नहीं कहा जा सक्ता। जो लोग गृहस्थाश्रमसंबन्धी यज्ञोंके करनेसे उनका फलस्वरूप जो स्वर्गादिसुख मिलते हैं उनको स्वप्नके समान थोड़े ही समयमें मिटनेवाला दृश्य जान कर तुच्छ नहीं समझते उनको प्रधान २ वेद-वाक्यभी यथार्थ तत्त्व(मुक्ति)का ज्ञान नहीं करा सक्ते ॥ ३ ॥ राजन्! जब तक पुरुषका चञ्चल मन रजोगुण, सतोगुण या तमोगुणके वशमें रहता है तबतक निरंकुश रह कर ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंके द्वारा धर्म अथवा अधर्म कराता है ॥ ४ ॥ यह मन धर्म-अधर्मकी कामनाओंसे पूर्ण है और आत्माकी उपाधि है, इसीलिये आत्म-स्वरूप है। मन कामनामय होनेसे ही सब विषयोंमें

विंधा रहता है; विषयोंको पा कर चलायमान और विकारयुक्त हो पड़ता है । यह मन भूत और इन्द्रियरूप सोलह कलाओंमें मुख्य है, इसीसे भिन्न २ नाम धारण करके पशु पक्षी आदि विशेष २ देह धारण करता है एवं उन्ही २ देहोंके कारण आत्माकी उत्तमता अथवा अधमता प्रकट होती है ॥ ५ ॥ यह मन संसारचक्रके छलसे माया द्वारा जीवकी उपाधि रच कर और अपने आत्मामें सम्मिलित रह कर, अपने कर्मोंका समयानुसार प्राप्त अतएव अनिवार्य्य फल जो सुख दुःख अथवा मोह है उसको पूर्णतया प्रकाशित करता रहता है ॥ ६ ॥ जब तक 'मन' रहता है तभी तक क्षेत्रज्ञ जीवके आगे जाग्रत् और स्वप्नरूप व्यवहार प्रकाशित होते हैं और क्षेत्रज्ञ जीव उनका अनुभव करता है । इसी लिये पण्डित विद्वान् लोग इस मनको गुणाभिमानीरूपसे अवनति और गुणाभिमानरहितरूपसे उन्नतिका कारण कहते हैं ॥ ७ ॥ राजन् ! यह मन मायाके गुणोंमें लिप्त होने पर जीवके लिये विपत्तिका कारण है और यदि यही मन मायाके प्रपञ्चसे अलग हो निष्काम होकर निर्गुण ईश्वरमें लग जाय तो मङ्गलका कारण हो जाता है । देखो, जब तक दीपकमें घी और बत्ती रहती है तब तक उसकी ज्योतिमें धूमकी कालिमा रहती है किन्तु जब सब चुक जाता है तब वह अपने पद अर्थात् शुद्धताको प्राप्त हो जाता है ॥ ८ ॥ वैसे ही मन भी जब गुणमय कर्मोंमें आसक्त होता है तभी अनेक प्रकारकी प्रवृत्तियोंको ग्रहण करता है, किन्तु जब गुण-कर्मोंको त्याग देता है तब अपने तत्त्व अर्थात् ब्रह्मको भजता है । हे वीर ! मनकी वृत्तियाँ वास्तवमें ग्यारह हैं, पाँच कर्माकार (५ कर्मइन्द्रिय) और पाँच ज्ञानाकार (५ ज्ञानइन्द्रिय) एवं एक अभिमान । पण्डित जन रूप, रस और गुह्यादि कर्मोंको और शरीरको इन ग्यारह वृत्तियोंका विषय कहते हैं । शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध—ये पाँच ज्ञानाकार वृत्तियोंके विषय हैं । ग्रहण, गमन और रति आदि पाँच कर्मेन्द्रियोंके विषय हैं । और शरीर ग्यारहवाँ अभिमानका विषय है । यह शरीर 'मेरा है' इस भावनाके कारण भोगस्थानरूपसे अभिमानका विषय है । कोई २ कहते हैं कि—"इनके सिवा मूढ़ व्यक्तियोंके बारहवीं और एक वृत्ति है, उसका नाम है अहंकार । यह शरीर ही शय्याके समान उसके रहनेका स्थान है । शरीरका नाम है पुर । इसमें जीव अहंकारसहित शयन करता है, इसीसे जीवात्माका एक नाम "पुरुष" है ॥ ९ ॥ १० ॥ राजन् ! ये सब वृत्तियाँ स्वभाव, संस्कार, अदृष्ट (भाग्य) और काल आदि कारणोंसे पहले सौ प्रकारकी, फिर हजार प्रकारकी और उसके बाद करोड़ों प्रकारकी हो जाती हैं । किन्तु वृत्तियाँ न तो क्षेत्रज्ञ जीवसे होती हैं, क्योंकि वह विकारहीन है, और न परस्पर मिल कर होती हैं क्योंकि कोई किसीका आश्रय नहीं हो सक्तीं । इसी प्रकार आपसे भी नहीं

होतीं, क्योंकि सब आत्माके आश्रित हैं, अतएव मिथ्या हैं* ॥ ११ ॥ यह मन मायारचित अविशुद्ध कर्ता और जीवकी उपाधि है। ये सब वृत्तियाँ इसीकी विभूतियाँ हैं, ये वृत्तियाँ धारा-प्रवाहके समान कभी रुकती नहीं हैं, इनका प्रवाह निरन्तर बहा करता है। यह बात अवश्य है कि पूर्वोक्त असंख्य प्रवृत्तियाँ जाग्रत् और स्वप्न अवस्थामें प्रकाशित रहती हैं और सुषुप्ति अवस्थामें छिप जाती हैं। क्षेत्रज्ञ आत्मा इन सबका साक्षी है, इस लिये वह इनको देख पाता है ॥ १२ ॥ महाराज! क्षेत्रज्ञ आत्मा दो प्रकारका है, जीव और ईश्वर। जीवके रूपका निरूपण कर चुके, अब दूसरेका (ईश्वरका) निरूपण करते हैं। ईश्वर सर्वव्यापी, पूर्ण-स्वरूप, जीवका कारण (मूल) और जीवके लिये प्रत्यक्ष है। स्वयं प्रकाशमान है। उसका जन्म नहीं है। वह ब्रह्माआदिका भी ईश्वर है। वही नारायण है, अर्थात् जीव-समूह उसके रहनेका स्थान है। वह भगवान् है, अर्थात् ऐश्वर्य्य आदि छः अपूर्व गुणोंसे पूर्ण है। वह वासुदेव अर्थात् सब तत्त्वोंका आश्रय अर्थात् प्रकाशक है। वह अपने अधीन जो माया है उसके द्वारा आत्मामें अर्थात् जीवमें नियन्ता (शासक) रूपसे वर्तमान है ॥ १३ ॥ जैसे वायु प्राणरूपसे शरीरमें प्रवेश करके स्थावर (वृक्षादि) और जंगम (मनुष्यआदि चलनेवाले) प्राणियों पर प्रभुता करता है वैसे ही क्षेत्रज्ञ आत्मा परमपुरुष भगवान् वासुदेव जगत्में प्रवेश करके उस पर प्रभुता करते हैं ॥ १४ ॥ हे नरेन्द्र! यह देही जीव, ज्ञानकी उत्पत्ति द्वारा मायाको नहीं छोड़ता एवं जब तक संगहीन व जितेन्द्रिय हो कर आत्मतत्त्वको नहीं प्राप्त होता तब तक इस संसारकी अनेक योनियोंमें मारा मारा फिरता है ॥ १५ ॥ जब तक जीवको यह निश्चय नहीं हो जाता कि "यह मन आत्माकी उपाधि (आवरण) व संसार-सन्तापका क्षेत्र है" तब तक संसारसे निस्तार नहीं होता। रोग, शोक, मोह, लोभ, राग और वैर–इन सबके संयोगसे मनको ममता ('मेरा है'-यह भाव) उपजती है; उसीसे संसार (जन्ममरण) का ताप होता है; अतएव सिद्ध हुआ कि यह मन ही संसारके सम्पूर्ण सन्तापोंका क्षेत्र है ॥ १६ ॥

भ्रातृव्यमेनं तददभ्रवीर्यमुपेक्षयाध्येधितमप्रमत्तः ॥
गुरोर्हरेश्चरणोपासनास्त्रो जहि व्यलीकं स्वयमात्ममोषम् ॥ १७ ॥

अतएव तुम अपने गुरुरूप हरिके चरणोंकी उपासनाके अस्त्रसे सावधानतापूर्वक

* श्रीधरस्वामीने ऐसा भी अर्थ किया है कि "इन सब वृत्तियोंकी सत्ता उसी जीवात्माकी सत्तासे ही ज्ञात होती है अतएव ये सब वृत्तियाँ उसी क्षेत्रज्ञके द्वारा प्रकाशित होती हैं; परस्पर मिल कर या आपसे नहीं"।

इस मनरूप शत्रुका विनाश करो। महाराज! यह मन भयानक शत्रु है, तनिक भी उपेक्षा (लापर्वाही) करनेसे यह अत्यन्त बलवान् हो उठता है। यद्यपि मन स्वयं मिथ्यास्वरूप है तथापि आत्माको ठग सक्ता है" ॥ १७ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय।

राजा रहूगणका संदेह दूर होना।

रहूगण उवाच–**नमो नमः कारणविग्रहाय**
स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय ॥
नमोऽवधूतद्विजबन्धुलिङ्ग-
निगूढनित्यानुभवाय तुभ्यम् ॥ १ ॥

रहूगणने कहा। हे योगीश्वर! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपका यह शरीर ईश्वरतुल्य है, आप इसको लोगोंकी रक्षाके लिये धारण किये हैं। आप परमानन्दमय हो कर शरीरको तुच्छ समझे हुए हैं। आप इस कुत्सित ब्राह्मणके वेपसे अपने नित्यानुभव(ब्रह्मज्ञान)को छिपाये हुए हैं ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन्! जैसे ज्वररोगमें पीड़ित पुरुषको सुस्वादु औषध और घाममें तपे हुए-को शीतल जल सुखकारी होता है वैसे ही मेरे लिये आपके ये वचन मंगलकारी हैं। देहाभिमानरूप सर्पके विषसे मेरी ज्ञानरूप दृष्टि नष्ट होगई है; आपके वाक्योंने इस समय अमृतमय औषधका काम किया ॥ २ ॥ मुझको जिन २ विषयोंमें संदेह है उनको फिर पूछूँगा, इस समय, आपने अध्यात्मयोगसे पूर्ण जो गूढ़ वचन कहे हैं वे बड़े ही कठिन हैं—उनकी सरल व्याख्या करके कहिये जिससे मैं सहजमें समझ सकूँ। मुझे उनके जाननेकी बड़ी ही लालसा है ॥ ३ ॥ हे योगीश्वर! आपने जो पहले कहा कि "बोझा ले चलना आदि कर्म और उनके श्रम (थकावट) आदि फल प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे देखे जानेके कारण अबाधित होने पर भी केवल व्यवहार-मूलक हैं। जो हो, वे वास्तवमें तत्त्वविधान करनेको नहीं समर्थ हैं"—यह बात मेरे मनमें नहीं जमती ॥ ४ ॥ यह सुन कर ब्राह्मणरूप **भरतजी बोले** कि राजन्! जो पार्थिव विकार (पृथ्वीका रूपान्तर) है वही किसी कारणसे पृथ्वी पर चलनेमें भार-वाहकादि नामोंसे प्रसिद्ध होता है और जो नहीं चल सक्ता वह पत्थर आदि कहाता है। दोनो पार्थिव विकारोंमें अर्थात् पृथ्वीके रूपोंमें इतना ही भेद है। तब श्रम आदि किसको हो? वह पार्थिव विकार भी तो कोई अवयवधारी नहीं है। पार्थिव

विकार जो दोनो चरण हैं उन पर क्रमशः गुल्फ, जंघा, जानु, ऊरू, मध्यदेश, वक्षःस्थल, कण्ठ, कंधा आदि अंग हैं ॥ ५ ॥ इसी प्रकार कंधे पर लकड़ीकी पालकी धरी है– इसमें भी कोई अवयव(अंग)धारी नहीं है । उस पालकी पर भी 'सौवीरराज' नामसे प्रसिद्ध एक पृथ्वीका विकारमात्र है । इस पृथ्वीके विकारमें ही तुमने "मेरा है" ऐसा सुदृढ़ अभिमान कर रक्खा है, इसी कारण तुम "मैं सिंधुदेशका राजा हूँ" इस दुर्मदसे अंधे हो रहे हो ॥ ६ ॥ इस दुरभिमानसे भी तुम अपनेको उत्तम नहीं सिद्ध कर सक्ते । देखो, ये भार-वाहक (कहार) लोग अत्यन्त कष्ट पा कर दीन हो रहे हैं, इन लोगोंकी अवस्था शोचनीय हो रही है; इनको तुम बेगारमें बलपूर्वक रखकर सता रहे हो। तुम बड़े निष्ठुर हो। अतएव "मैं सबका रक्षक हूँ" यह तुम्हारा कथन मिथ्या है। अपनी मिथ्या प्रशंसा करनेके कारण तुम धृष्ट (निर्लज्ज) हो । महात्माओंके समाजमें तुम्हारी शोभा नहीं हो सक्ती ॥ ७ ॥ राजन्! जब नित्य देखा जाता है कि इस पृथ्वीसे ही सम्पूर्ण चराचर पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है और इसीमें वे लीन हो जाते हैं तब सिद्ध हुआ कि पृथ्वी ही सब विकारोंका मूल है । तब नाममात्रके सिवा और कोई व्यवहारका मूलकारण तुम्ही बताओ; अर्थ और क्रियाके द्वारा जिसके सत् होनेका अनुमान किया जा सके॥८॥ ऐसे ही जिसको पृथ्वी कहते हो वह भी मिथ्या है। क्योंकि वह भी अपने कारण जो सूक्ष्म परमाणु हैं उनमें लय हो जाती है । राजन्! इससे यह न जानना कि सब परमाणु नित्य हैं। हे वीर! केवल मनके द्वारा कार्यकी उपपत्ति (सिद्धि) न होनेके कारण वाद करनेवालोंने सब परमाणुओंकी कल्पना की है । इन्हीं परमाणुओंका समूह ही यह पृथ्वी है; इत्यादि विचार बुद्धिका अवलंबमात्र हैं। महाराज! यह प्रपंच भगवान्‌की मायाका विलास है, इस कारण सब परमाणु भी अविद्या(अज्ञान)से कल्पित हैं । किन्तु जिस प्रकार हो, किसी भाँति परमाणु सत्य नहीं हैं ॥ ९ ॥ हे राजन्! इसी प्रकार आत्मामें कभी दुर्बलता, कभी मोटापन, कभी सूक्ष्मता, कभी विस्तार, कभी कारण, कभी कार्य, कभी चेतन और कभी जड़ के धर्म देख कर जो द्वैतभाव प्रतीत होता है वह भी मिथ्या है। क्योंकि द्रव्य, स्वभाव, आशय, काल, कर्म इत्यादि नामवाली अविद्या(माया) के कारण द्वैत-भावना होती है ॥ १० ॥ अतएव विशुद्ध, बाह्याभ्यन्तरशून्य, परिपूर्ण, अपरिच्छिन्न एवं निर्विकार ज्ञान ही परमार्थस्वरूप सत्य है। इसी ज्ञानका नाम "भगवत्" है; पण्डित लोग इसीको "वासुदेव" कहते हैं ॥ ११ ॥ हे रहूगण! किन्तु इस प्रकारका परम ज्ञान केवल महापुरुषों-के चरणोंकी रज शिर पर धारण करनेसे ही अर्थात् उनकी सेवा करनेसे मिलता है। तप या वैदिक कर्मोंके करनेसे, अन्नादिके दानसे, अथवा गृहस्थधर्म

पालनेके लिये परोपकार करनेसे, वेदोंके अभ्याससे अथवा जल, अग्नि और सूर्यकी उपासना आदि कर्मोंसे किसी प्रकार नहीं मिलता ॥ १२ ॥ महात्मा लोगोंमें सर्वदा उत्तमश्लोक भगवान्के गुणोंका वर्णन हुआ करता है; इसी लिये वे लोग विषयोंकी बातोंसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखते। उस भगवान्के गुणगानका निरन्तर सेवन करनेसे मोक्षकी इच्छावाले व्यक्तिकी भगवान् वासुदेवमें सत्-बुद्धि होती है ॥ १३ ॥ मैं पूर्वजन्ममें भरत नाम राजा था। संसारको देख और सुन कर विषय-संगके बंधन-से मुक्त हो भगवान्की आराधना करता था। कुछ कालके बाद दैववश एक मृगके संगसे मुझे भी मृगशरीर मिला, जिससे मेरा उद्देश्य विफल हो गया ॥ १४ ॥ किन्तु हे वीर! मैंने पूर्वजन्ममें कृष्ण भगवान्का पूजन किया था; इस कारण मृगशरीरमें भी मुझको पूर्वजन्मकी घटना नहीं भूली। तबसे ही मैं लोगोंके संगको अपने उद्देश्यका विघ्न जान कर उससे शंकित रहता हूँ और इस प्रकार अपनेको छिपाये हुए सबसे अलग २ विचरता हूँ ॥ १५ ॥

तस्मान्नरोऽसङ्गसुसङ्गजातज्ञानासिनेहैव विवृक्णमोहः ॥
हरिं तदीहाकथनस्मृतिभ्यां लब्धस्मृतिर्यात्यतिपारमध्वनः ॥ १६ ॥

मनुष्य जब सब कुसंग त्याग कर केवल सज्जनोंका संग करता है और उस सुसंगके द्वारा ज्ञानकी तीखी तर्वार पाता है तब उससे मोहरूप पाशको काट सक्ता है। ऐसा होने पर यह पुरुष इस दुरत्यय संसारमार्गको नाँघ कर भगवान् हरिको प्राप्त होता है। सत्संगमें सदा हरिके गुणोंका कीर्तन और श्रवण करनेसे पुरुषको पूर्वजन्मका स्मरण रहता है, इस लिये एक जन्ममें सिद्धि न होने पर भी वह दूसरे जन्ममें फिर योगमार्गका ही अवलम्बन करता है ॥ १६ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय।

भवाटवीका वर्णन।

ब्राह्मण उवाच—**दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशितो रजस्तमःसत्त्वविभक्तकर्मदृक् ॥ स एष सार्थोऽर्थपरः परिभ्रमन्भवाटवीं याति न शर्म विन्दति ॥ १ ॥**

ब्राह्मण भरतजी बोले। हे राजन्! यह भवाटवी अर्थात् संसाररूप राह अति दुस्तर है। इसमें मायाद्वारा आये हुए सम्पूर्ण जीव वनिज करनेवालोंके

झुंडके समान सुखकी इच्छासे चारो ओर भटकते फिरते हैं और राजस, तामस व सात्विक कर्मोंको ही अपना कर्तव्य समझते हैं; किन्तु उनको शान्ति नहीं मिलती ॥ १ ॥ हे नरदेव! इस भवाटवीमें छः बड़े भयंकर और प्रबल दस्यु (ठग) हैं, वे बलपूर्वक इस निन्दित नेतावाले झुण्डको लूटते हैं। इस राहमें बहुतसे बड़े२ सियार हैं; जैसे भेंड़िये असावधान भेंड़े (बकरी) को उठा ले जाते हैं वैसे ही ये सियार बनियोंके झुण्डमें घुस कर उनको अपनी २ ओर घसीटते हैं ॥ २ ॥ इस राहके वनमें बहुतसे तृण, लता और झाड़ियोंसे ढके हुए अति दुर्गम स्थान हैं; वहाँ ठहरने पर कठोर डाँस और मच्छड़ वणिक्-दलको सताते हैं । वह झुण्ड कभी गंधर्वपुरको देखता है और कहीं पर अगियावैतालको देख उसकी चमक पर मोहित हो कर उसे सोना समझता है ॥ ३ ॥ इस झुंडके वणिक्जन रहनेके स्थान तथा जल और धन आदि-को अपना मान कर उनके लिये भवाटवीमें इधर उधर दौड़ते हैं। कहीं पर बड़ी आँधी चलती है और धूल उड़ती है, वह धूल उनकी आँखोंमें भर जाती है, उस समय उनको अँधेरेके कारण दिशाओंका ज्ञान नहीं रहता, इधर उधर भटकते फिरते हैं ॥ ४ ॥ कहीं पर असंख्य अदृश्य झिल्लियों (झींगुरों) के कठोर शब्द उनके कानोंमें शूलसे लगते हैं और कहीं पर उल्लू पक्षियोंकी कठोर वाणीसे उनके मनको व्यथा होती है । ये सब बनिये जब इस प्रकार भूखे और पीड़ित होते हैं तब जिनकी छाँह छूनेमें पाप होता है उन अपुण्य वृक्षोंका आश्रय लेते हैं। कभी जलकी इच्छासे घामकी झलकको पानी जान कर उसके निकट जाते हैं, किन्तु वहाँ उनकी प्यास नहीं बुझती ॥ ५ ॥ कभी २ वे लोग जलशून्य नदीकी ओर जाते हैं। उसमें गिरते ही अंगभंग हो जाता है, अतएव वहाँ पर सिवा दुःखके जल मिलनेकी कुछ भी संभावना नहीं है। वे लोग अन्न न मिलनेसे आपसमें अन्नादि माँगते हैं। कभी दावानलके निकट जानेसे मुरझा जाते हैं और उनको सन्ताप होता है । कभी २ जब यक्षगण उनके प्राणसे प्यारे धनको हरते हैं तब उन्हे दारुण शोक होता है ॥ ६ ॥ कहीं२ और बलवान् लोग उनके सर्वस्वको हर लेते हैं तब वे अत्यन्त शोक करनेके कारण अचेत हो जाते हैं और उनके दुःखकी सीमा नहीं रहती । कभी गंधर्वपुरमें प्रवेश कर मुहूर्तभरके लिये अपनेको सुखी मान कर आमोद प्रमोद करते हैं ॥ ७ ॥ कहीं उनमेंसे कोई पर्वत पर चढ़नेकी कामनासे चलता है परन्तु पैरमें काँटा या कंकड़ गड़ जानेसे उस पर नहीं चढ़ सक्ता, तब उदास हो जाता है। क्षण २ भर पर पेटकी ज्वालाकी जलनसे पीड़ित होनेके कारण वह कुटुम्बी जीव औरों पर क्रोध करता है ॥ ८ ॥ हे राजन्! इस भवाटवीमें किसी २ स्थान पर किसी २ व्यक्तिको अजगर सर्प

लील लेता है और उसे कुछ भी सुधिबुधि नहीं रहती। कहीं पर कोई वनमें फेंक दिये गये शव (मुर्दे) के समान पड़ा रहता है, हिंसक (खूनी) जीव उसको बराबर काटते हैं। कहीं पर कोई अंधा अंधकूपमें गिरा हुआ अंधकारमें पड़ा है ॥ ९ ॥ कहीं पर कोई क्षुद्र रसोंकी खोज करते हुए मधुमक्खियोंके छत्तेको लेना चाहता है, परन्तु मधुमक्खियाँ उसको वहाँसे मार भगाती हैं और मान-मर्दन कर देती हैं। यदि कभी बड़े कष्टसे क्षुद्र रस हाथ भी लग गया तो वह उसको भोगने नहीं पाता; जो उससे बली हैं वे बलपूर्वक छीन लेते हैं ॥ १० ॥ कोई २ जीव शीत, गर्मी, वायु, वर्षा आदिका प्रतीकार करनेमें असमर्थ होनेके कारण शिथिल व विवश हो रहता है। कहीं पर कोई जीव क्रय (खरीदना) और विक्रय (बिक्री) के व्यवहारसे द्रव्यकी अदलाबदली (व्यापार) करते हैं, उसमें भी ठगाही करनेके कारण उनसे एवं औरोंसे शत्रुता हो जाती है ॥ ११ ॥ किसी २ स्थानमें कोई जीव धनके अभावसे शय्या, आसन, रहनेका स्थान और विहार करनेकी सामग्री नहीं मोल ले सक्ते तब औरोंसे माँगते हैं। किन्तु जब और लोगोंसे उनकी कामना नहीं पूरी होती तब वे पराये द्रव्य पर दृष्टि डालते हैं, अतएव उनको अपमान सहना पड़ता है ॥ १२ ॥ कहीं २ पर कोई २ जीव आपसमें द्रव्यका लेन-देन (व्यवहार) करके शत्रुता बढ़ा लेते हैं। कोई२ परस्पर सम्बन्धके बंधनमें बँध जाते हैं। इस प्रकार कोई २ जीव इस मार्गमें अत्यन्त कष्ट और विघ्न-बाधा व ईर्षा-द्वेषके कारण प्राण त्याग देते हैं ॥ १३ ॥ यह जीवोंका झुण्ड उन मरे हुओंको वहीं छोड़ कर नये २ लोगोंको साथ लेता हुआ इसी मार्गमें जाता है। जहाँसे यह जीवोंका समूह चला है वहाँ कोई भी अभी तक लौट कर नहीं गया। हे वीर! इस जीवोंके झुंडमें कोई भी इस मार्गका पार जो 'योग' अर्थात् ईश्वरसे संयोग है उसको नहीं प्राप्त हुआ ॥१४॥ राजन्! जिन मनस्वी शूरोंने अपने पराक्रमसे दिग्गजोंको जीत लिया है वे भी इस भवाटवीके बीच "मेरी यह भूमि है, मेरी यह भूमि है" ऐसा कह कर भूमिके लिये परस्पर वैर बाँध कर युद्धभूमिमें शयन करते हैं। वे लोग उस पदको नहीं पाते, जहां संन्यासी और परमहंस लोग जाते हैं ॥१५॥ कहीं २ कोई २ जीव पक्षियोंके मधुर कलरव सुननेकी कामनासे लताओंकी शाखाओंका आश्रय लेते हैं और उसमें आसक्त हो पड़ते हैं। कभी२ सिंहसमूहके भयसे कंक, गिद्ध, बटेर आदिसे मित्रता करते हैं ॥ १६ ॥ किन्तु जब उनसे कोई मतलब नहीं निकलता तो आपसे जा कर हंसोंके झुंडमें प्रवेश करते हैं, किन्तु उनके आचार विचार और व्यवहार व स्वभाव भले न मालूम पड़ने पर वानरोंके दलमें मिलते हैं और उनकी जातिकी क्रीड़ा (स्त्रीसंभोग) द्वारा

अपनी इन्द्रियोंको सन्तुष्ट करते हैं । परस्पर मुखकी देखादेखीमें ऐसा मोहित हो पड़ते हैं कि अपने जीवनकी अवधि अर्थात् मृत्युको भी भूल जाते हैं ॥ १७ ॥ कोई २ जीव पुत्र और स्त्रियोंके प्रेमसे उनके लिये वृक्षों (ऐहिक विषयों) में रमते २ संभोगकी कामनामें अति दीन हो कर ममता मायाके बंधनमें जकड़ जानेके कारण विवश हो पड़ते हैं । कोई २ अपनी असावधानीके कारण पर्वतकी कंदरामें गिरने लगते हैं और सामने मतवाले गजराजको आते देखते हैं तो भयभीत होकर अपने बचावके लिये लताओं-का सहारा ग्रहण करते हैं ॥ १८ ॥ हे वीर! इस विपत्तिसे किसी भाँति छुटकारा पाने पर फिर अपने साथियोंके झुंडमें पहलेकी भाँतिप्रवेश करते हैं । किन्तु ये सब जीव मायाके द्वारा इस अपार संसार-मार्गमें घूमते हुए आज तक इसके यथार्थ तत्त्वको नहीं जान सके ॥ १९ ॥ हे रहूगण! तुम भी मायावश इस भवाटवीमें घूम रहे हो । तुम राज्य त्याग कर सब प्राणियोंसे मित्रताका भाव रक्खो । विषयोंमें आसक्त न हो कर हरिकी सेवा करो एवं उसके द्वारा ज्ञानरूप खड्गको तीक्ष्ण करके हाथमें लो और इस अपार संसारमार्गके पार चले जाओ ॥ २० ॥ राजा रहूगण बोले । ब्रह्मन्! सब योनियोंमें मनुष्य-योनि ही श्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें आप ऐसे परमहंसोंका समागम होता है । और २ देवआदि योनियाँ किस कामकी, जिनमें हरियशके गानसे शुद्ध हृदयवाले आप ऐसे महात्माओंका पवित्र समागम नहीं है ॥ २१ ॥ आपके चरणकमलरजकी नित्य उपासना करनेसे जिनके पाप दूर हो गये हैं उनकी यदि भगवान्में विशुद्ध भक्ति हो तो कोई अद्भुत बात नहीं है । क्योंकि देखिये, दो घड़ी आपका संग करनेसे, कुतर्कद्वारा जिसकी जड़ जम गई थी वह मेरा संपूर्ण अविवेक (भ्रम) जाता रहा ॥ २२ ॥ मैं महात्माजनों-को प्रणाम करता हूँ । जितने ब्राह्मणबालक हैं, जवान हैं और बिल्कुल क्रीड़ासक्त बच्चे हैं, सबको मेरा नमस्कार है । जो ब्राह्मण अवधूतवेषसे पृथ्वी पर विचरते हैं उनको भी मेरा प्रणाम है । क्योंकि ब्रह्मज्ञानी महात्मा ब्राह्मण न जाने किस रूपसे अपनेको छिपाये हुए विचरते हैं, अतएव सबको ही मेरा प्रणाम है; और उन्ही ब्राह्मणोंकी कृपासे राजाओंका कल्याण हो ॥ २३ ॥ शुकदेवजी कहते हैं कि हे उत्तराके पुत्र परीक्षित्! सिंधुदेशके राजा रहूगण द्वारा अपमानित होने पर भी ब्रह्मर्षिके पुत्र महात्मा भरतने करुणापूर्ण हृदयसे करुणा करके उसको आत्मतत्त्वका उपदेश दिया । उसके बाद रहूगणने भरतजीके चरणोंमें प्रणाम किया । भरतजी भी वहाँसे चल दिये और जैसे पूर्ण समुद्र गंभीर होता है उस प्रकार अचंचल अन्तःकरणसे इस पृथ्वी पर विचरने लगे ॥२४॥ इधर राजा रहूगणने भी भरतजीसे तत्त्वसहित आत्मज्ञान पा कर उसी क्षण अविद्यारचित देहाभिमानको त्याग दिया । राजन्! भगवान्के भक्तोंका ऐसा ही प्रभाव है ॥२५॥

राजोवाच—यो ह वा इह बहुविदा महाभागवत त्वयाभिहितः परोक्षेण वचसा जीवलोकभवाध्वा स ह्यार्यमनीषया कल्पितविषयो नाञ्जसाऽव्युत्पन्नलोकसमधिगमः ॥ अथ तदेवैतदुरवगमं समवेतानुकल्पेन निर्दिश्यतामिति ॥ २६ ॥

राजा परीक्षित् बोले। भगवन्! आप सर्वज्ञ हैं। आपने वनियोंके झुंडके रूपकसे भवाटवीका परम उत्तम वर्णन किया—पर इस रूपकको बिवेकी आर्य (श्रेष्ठ) पुरुष ही भलीभाँति समझ सक्ते हैं। थोड़ी बुद्धिके लोग इसके भावको सहजमें नहीं समझ सक्ते। अतएव अब कृपा करके इस दुर्बोध रूपककी सरल व्याख्या करके कहिये, जिससे सब लोग सहजमें समझ सकें ॥ २६ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दश अध्याय।

भवाटवीके रूपककी खुलासा व्याख्या।

स होवाच—य एष देहात्ममानिनां सत्त्वादिगुणविशेषविकल्पितकुशलाकुशलसमवहारविनिर्मितविविधदेहावलिभिर्वियोगसंयोगाद्यनादिसंसारानुभवस्य द्वारभूतेन षडिन्द्रियवर्गेण तस्मिन्दुर्गाध्ववदसुगमेऽध्वन्यापतित ईश्वरस्य भगवतो विष्णोर्वशवर्तिन्या मायया जीवलोकोऽयं यथा वणिक्सार्थोऽर्थपरः स्वदेहनिष्पादितकर्मानुभवः श्मशानवदशिवतमायां संसाराटव्यां गतो नाद्यापि विफलबहुप्रतियोगेहस्तत्तापोपशमनीं हरिगुरुचरणारविन्दमधुकरानुपदवीमवरुन्धे यस्यामु ह वा एते षडिन्द्रियनामानः कर्मणा दस्यव एव ते ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं। इस भवाटवीमें जीवगण धन कमानेमें लगे हुए वनियों (वनिज करनेवालों) के समान हैं। वे भगवान्‌की मायाके वश हो कर संसारके दुस्तर मार्गमें पड़े हुए हैं, इसी लिये गुरुरूप भगवान् हरिके चरणकमल-सेवक महात्माओंकी पदवीको अब तक नहीं पाते। राजन्! जिनको देहमें

अभिमान है उनके सात्त्विक, राजस और तामस कर्मोंमें मंगल व अमंगल दोनो मिले हैं, इन्ही कर्मोंके द्वारा अनेक प्रकारके उत्तम, मध्यम और अधम शरीरोंकी रचना होती है । उन शरीरोंसे संयोग-वियोगादिरूप अनादि संसारकी रचना होती रहती है । उस संसारके अनुभवका द्वार छः प्रकारकी (पाँच ज्ञानेन्द्रिय और छठा मन) इन्द्रियाँ हैं। यह संसारका मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। सभी भगवान् विष्णुकी मायामें मोहित हो कर इस दुर्गम मार्ग (संसार) में आते हैं और अपने २ शरीरसे किये हुए कर्मोंका फल भोगते रहते हैं । उन लोगोंके कर्म कभी सफल होते हैं और कभी अनेकानेक विघ्नोंके द्वारा विफल हो जाते हैं। इस श्मशानतुल्य अमंगलरूप भवाटवीमें जो अनेक प्रकारके ताप हैं उनका नाश करनेको भगवत्पदसेवक महात्माओंकी पदवी ही समर्थ है। किन्तु भगवान्के मायाजालमें फँसे रहनेके कारण यह जीव सहजमें उन सब तापोंसे मुक्ति नहीं पा सक्ता ॥ १ ॥ इस भवाटवीमें जो छः दस्यु (ठग) कहे वे छः इन्द्रियाँ हैं, जो ठगोंके समान जीवको बहँका कर कुमार्गमें ले जाती व नष्ट कर देती हैं ॥२॥ मनुष्यगण इस संसारमें बहुत कष्टसे जो धर्मोपयोगी पारलौकिक धन (जिसको भगवान्के भक्त पण्डितजन भगवान्की आराधनास्वरूप धर्म कहते हैं) एकत्र करते हैं उसको ये इन्द्रियाँ, उन मनुष्योंके तनिक भी असावधान होने पर, ठगलोग जैसे मुसाफिरोंके धनको लूटते हैं उस प्रकार दर्शन, स्पर्श, सुनना, स्वाद लेना, सूँघना और संकल्प आदि कर्मोंके द्वारा नष्ट कर देती हैं और वे अजितेन्द्रिय कुबुद्धि जीव घरमें ही सांसारिक विषयभोग किया करते हैं अतएव तत्त्वकी बात कुछ भी नहीं जानते ॥३॥ इस संसारमें स्त्री और पुत्र आदिक ही सियार और भेड़िये हैं। अतिलोभी कुटुम्बी पुरुष भेड़के बच्चेके समान जिस संपत्तिकी रक्षा किया करता है उसको ये स्त्री पुत्र आदिक, उस जीवकी इच्छा न होने पर भी, अनेक बहानोंसे उसके सामने ही लेते हैं ॥ ४ ॥ जैसे हर साल खेत सफा करने पर भी उस खेतमें पड़े हुए बीजोंके नष्ट न होनेके कारण फिर बोनेके समय उसमें घास, फूस जम आता है और वह दुर्गम हो जाता है वैसे ही यह गृहस्थ-आश्रम भी कर्मोंका क्षेत्र है, इसमें भी सम्पूर्ण कर्म-बीज नहीं नष्ट होते, क्योंकि यह आश्रम सकाम कर्मोंका आधार है । जैसे कपूरकी डिबियामें कपूर न रहने पर भी कपूरकी गंध बनी रहती है वैसे ही कर्मोंके नष्ट होने पर भी कर्मोंकी कामना नहीं जाती, अतएव एकदम कर्मोंका नाश नहीं होता ॥ ५ ॥ इस गृहस्थाश्रममें जाने पर उसके बाहरी प्राण अर्थात् धनसम्पत्तिको डाँस और मच्छड़ोंके तुल्य जो नीच व्यक्ति हैं वे और शलभ, शकुन्त, मूसा आदिके तुल्य जो चोर लोग हैं वे कष्ट दे कर हर लेते हैं; तब भी वह मनुष्य गृहस्थाश्रमकी राहको नहीं छोड़ता। वह मिथ्या पदार्थोंको सत्य देखता है।

अविद्या, कामना और कर्मोंमें मन आसक्त होनेके कारण वह इस विनाशशील मनुष्यलोकको मायामय गंधर्वनगरके समान सत्य (अजर अमर) मानता है ॥६॥ किसी स्थानमें पान, भोजन, ग्राम्यधर्म (स्त्रीसंग) इत्यादि विषयोंके लिये लालायित हो कर मृगतृष्णाके समान भ्रमपूर्ण विषयोंकी ओर दौड़ता रहता है ॥ ७ ॥ और पहले जो कह आये हैं कि "किसी स्थान पर अगियाबैतालको देख कर, सोनेके भ्रमसे लेनेकी इच्छा करके उसे टकटकी लगा कर देखता है" इसका खुलासा यह है कि जैसे शीतपीड़ित व्यक्ति आगकी चाहसे वनमें अग्निके समान प्रज्वलित अगियाबैतालको देख कर उसके पीछे दौड़ता है वैसे ही यह मनुष्य सुवर्ण पानेकी लालसासे इधर उधर वृथाके लिये दौड़ा२ फिरता है। यह सुवर्ण सब दोषोंका घर और एक प्रकारका मल है। अग्निके मलसे सुवर्ण उत्पन्न होता है; किन्तु सुवर्णके समान चमकीले सु-वर्ण रजोगुणमें पुरुषका मन आसक्त होनेके कारण उसको सुवर्णके लाभका लोभ होता है ॥ ८ ॥ निवासस्थान, जल, धन इत्यादि पदार्थ जीवके जीवनकी सामग्री हैं; इनके लिये तन मनसे प्रयत्न करता हुआ यह जीव इस भवाटवीमें चारो ओर दौड़ता रहता है ॥ ९ ॥ राजन्! इस संसारमें स्त्रियाँ आँधीके समान हैं, जिस समय पुरुष उनकी गोदमें बैठता है तो उसके नेत्र बंद हो जाते हैं, अर्थात् उसकी ज्ञानशक्ति रजोगुणमें छिप जाती है। इस अवस्थामें वह पुरुष साधुओंकी मर्यादाको नाँघ कर अपनेको भूल जाता है—"रातको जल वायुके समान व्याप्त दिग्देवता (सूर्य चन्द्र आदि) इस मर्यादा तोड़नेके साक्षी हैं"—उसको इस बातका विचार बिल्कुल नहीं रहता ॥ १० ॥ "यह संसार कुछ नहीं है" इस बातको कभी २ आप ही आप विचारता है, किन्तु देहाभिमानके कारण कुछ घड़ियोंमें ही यह विचार जाता रहता है और फिर वह मृगतृष्णाके सदृश मिथ्या विषयोंके लिये इधर उधर भटकता है ॥ ११ ॥ और कभी २ कुकर्ममें आसक्त रहनेके कारण शत्रुओंसे वा राजद्वारसे डाँट और कठोर रूखे वाक्य सुनने पड़ते हैं, यही अदृश्य झींगुरोंकी झनकार है, जो कानोंमें शूल सी लगती है, जिससे हृदयमें व्यथा होती है ॥१२॥ जब संसारमें पुरुषके पहले जन्मके पुण्य क्षीण हो जाते हैं तब विषतिन्दुक आदि विषके वृक्ष और लता व विषकूपके समान जो दृष्टादृष्ट प्रयोजनसे शून्य धन हैं उनको अपनी जीविका बना कर वह स्वयं म्रियमाण हो पड़ता है और तब जीते ही मरेके तुल्य जो असाधुरूप अपवित्र वृक्ष हैं उनका आश्रय लेता है ॥ १३ ॥ संसारमें कभी २ असत् लोगोंकी संगतिसे पुरुषकी बुद्धि वंचित होती है। जलशून्य नदीके भीतर गिरनेसे जैसे उसी समय शिर फूट जाता है और फिर भी क्लेश होता है वैसे ही असत् लोगोंकी संगतिसे पुरुषकी बुद्धि वंचित होती है। तब वह पाखण्डपूर्ण धर्मरूप अधर्मका अवलम्बन करता है, जिससे इस लोक और परलोक दोनोंमें दुःख मिलता है ॥ १४ ॥ और पहले जो

कह आये हैं कि "अन्न न मिलनेके कारण परस्पर अन्न माँगते हैं" इसका भाव यह है कि संसार में पुरुष जब भूख और प्याससे पीड़ित होता है एवं परपीड़ाके कारण उसको अन्न नहीं मिलता तब जिन सब व्यक्तियोंके पास पिता–पुत्रके कुशादि तृण भी देख पाता है उनको और कभी पिता–पुत्र को बाधा पहुँचाता है ॥ १५ ॥ और जो कह चुके हैं कि "दावानलके निकट जा कर अग्निके तापसे मुरझा जाता है और विषाद करता है" उसका भाव यह है कि यह घर दावानलके तुल्य है, इसमें रहनेसे प्रिय वस्तुके लिये सन्ताप होता है; अतएव गृहस्थाश्रममें सुखका लेश भी नहीं है । इस आश्रममें फँसनेसे मनुष्य शोककी आगमें हरघड़ी जला करता है एवं अत्यन्त सन्तप्त होता है ॥ १६ ॥ राजन्! और जो पहले कह चुके हैं कि "कभी २ यक्षगण प्राणतुल्य धनको हर लेते हैं तो अत्यन्त निर्वेद होता है" इसका भाव यह है कि संसारमें कभी राजालोग कालवश प्रतिकूल हो कर राक्षसोंका ऐसा निष्ठुर व्यवहार करके प्राण ऐसे प्रिय धनको हर लेते हैं तब पुरुष मृतकके समान अकर्मण्य होकर दिन काटता है ॥ १७ ॥ "कहीं गन्धर्वपुरमें प्रवेश कर अपनेको सुखी मान कर दो चार घड़ी आमोद प्रमोद करता है" इसका तात्पर्य यह है कि यह जीव वासना या मनोरथके अनुसार पिता-पुत्र आदिके नश्वर समागमको सत्य मान कर कुछ दिनतक अपनेको सुखी समझता हुआ आमोद प्रमोद करता है ॥ १८ ॥ गृहस्थ-आश्रमके कर्मोंकी विधिका अन्त नहीं है और उन विधियोंका पालना पहाड़के समान दुर्गम है । यह पुरुष उनका अन्त जाननेके लिये उत्सुक होकर किसी२ समय उन्ही (कर्म-विधियों)की ओर जब झुकता है तब जैसे कोई पुरुष काँटोंसे परिपूर्ण खेतके भीतर पहुँच कर संकटमें पड़ जाय उस प्रकार वह भी काँटेके समान कष्ट पहुँचानेवाली अनेक सांसारिक विपत्तियोंमें पड़ कर पीड़ित होता है और उसका मनोरथ व्यर्थ हो जाता है ॥ १९ ॥ जिस पुरुष-के कुटुम्ब बड़ा है वह जब सुखपूर्वक पूर्ण भोजन न मिलनेके कारण शरीरके अन्तर्वर्ती असह्य अग्निकी ज्वालाओंसे जलता है तब उसका धैर्य्य छूट जाता है और वह कभी२ अपने कुटुम्ब पर भी क्रोध किया करता है ॥ २० ॥ उसीको फिर जब निद्रारूप अजगर दबा लेता है तब वह निद्राकी अवस्थामें घोर अंधकारके बीच पड़ा रहता है; जैसे शून्य जंगलमें कोई मृतकशरीर पड़ा हो उस प्रकार संज्ञाहीन पड़ा रहता है ॥ २१ ॥ इस संसारमें कभी२ मनुष्यका मान(घमंड)रूप दाँत टूट जाता है और दुर्जनरूप सर्प क्षण भर भी चैनसे नहीं सोने देते, ऐसा होने पर हृदय व्यथित होता है और ज्ञानशक्ति दिन २ क्षीण होती जाती है एवं अन्तको वह अज्ञानांध हो कर मोहमय अन्धकूपमें गिर पड़ता है; जिससे निकलना बहुत ही कठिन है ॥ २२ ॥ संसारमें यह जीव

जब कामवश हो कर मधुकणके तुल्य तुच्छ विषयोंकी खोजमें तत्पर हो पराये द्रव्य और पराई स्त्री पर दृष्टि डालता है और उन्हे लेना चाहता है तब उन (धन या स्त्री)के स्वामी अथवा राजाके द्वारा निहत हो कर नरकमें गिरता है ॥ २३ ॥ "प्रवृत्तिमार्गमें अपना कर्म ही इस लोक या उस लोकमें संसार (जन्म व मरण)-की जन्मभूमि है"–पण्डित और आत्मज्ञानी लोग ऐसा ही कहते हैं॥२४॥ यदि वह कामवश जीव उस बंधनसे छूट गया अर्थात् पराया धन वा स्त्री उसके हाथ लग गई, तो भी वह उनका भोग नहीं कर सक्ता, क्योंकि जो अधिक बलवान् हैं वे उससे बलपूर्वक छीन लेते हैं और जो उनसे भी बली हैं वे उनसे छीन लेते हैं ॥ २५ ॥ पुरुष कभी संसारमें शीत-ग्रीष्म आदि अनेकानेक आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुर्दशाओं(तापों)का कोई प्रतीकार न कर सकनेके कारण दुरन्त चिन्तामें विपण्ण हो पड़ता है ॥ २६ ॥ कभी परस्पर व्यवहारमें दूसरेकी दमड़ी या उससे भी कम धन ठगनेके कारण वैरभाव ठानता है और उनका शत्रु बनता है ॥ २७ ॥ महाराज ! इस संसारमें धनकष्ट आदिक अनेक बाधाएँ हैं । इसके सिवा सुख, दुःख, राग, द्वेप, अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह, लोभ, मात्सर्य्य, ईर्षा, अपमान, भूख, प्यास, आधि, व्याधि, जन्म, जरा, मृत्यु आदि बड़े २ कष्ट हैं ॥ २८ ॥ संसारमें यह पुरुष कहीं ईश्वरकी माया जो स्त्री है उसकी बाहुलताओंमें लिपटता है तो इसका विवेक और ज्ञान धीरे २ क्षीण हो जाता है और तब यह उस स्त्रीसे विहार करनेको क्रीडागृहका निर्माण करनेके लिये व्याकुल होता है अर्थात् स्त्रीप्रसंगमें आसक्त होता है । यह जीव उस स्त्रीसे उत्पन्न लड़के और लड़कियोंके तोतले बचन, भोली दृष्टि और खेलकूद देख २ कर अत्यन्त मोहित होता है और इसी प्रकार अजितेन्द्रिय होनेके कारण अपनेको अपार घोर अंधकारमें डालता है ॥ २९ ॥ कभी सिंहसमूहके तुल्य प्राण हरनेवाला जो भगवान् विष्णुका कालचक्र है उससे भयभीत होकर उन चक्रायुध भगवान् साक्षात् यज्ञपुरुपका अनादर कर कंक, गिद्ध, बगला, बया आदिके तुल्य जो आर्य-शास्त्र-परित्यक्त, आचारभ्रष्ट, पाखण्डशास्त्रानुयायी पाखण्डदेवता हैं उनका आश्रय लेता है । परमाणुसे ले कर द्विपरार्धपर्यन्त विस्तारवाला भगवान्का कालरूप चक्र निरन्तर घूमता है और बाल्य, युवा आदि अवस्थाएँ ही उसका वेग (गति) हैं । कालचक्रके इस वेगमें ब्रह्मासे लेकर तृणतककी उत्पत्ति और नाश होता है, किसी प्रकार कोई भी उसका प्रतीकार नहीं कर सक्ता । यह चक्र प्रत्येक समय अपने कार्यमें सतर्क रहता है ॥ ३० ॥ स्वयं स्वार्थसे वंचित पाखंडी लोगोंके द्वारा जब यह जीव निपट ठगा जाता है तब हंसतुल्य विवेकी ब्राह्मणोंके बीचमें जा कर वास करता है । ब्राह्मणोंके बीचमें जा कर वास तो करता है किन्तु ब्राह्मणगण जो आचार, व्यवहार एवं श्रुति, स्मृतिके कहे कर्मोंसे भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना करते हैं उसमें इसको रुचि नहीं होती । तब वानरोंके

समान भ्रष्टाचार शूद्रोंका संग करता है और स्वयं अशुद्ध होनेके कारण वेदोक्त आचारमें इसको (शूद्रोंके समान) अधिकार नहीं रहता एवं शूद्रतुल्य हो जाता है। शूद्रोंको वेदोक्त कर्म करनेका अधिकार नहीं है–वानरोंके समान स्त्रीसंग और कुटुंबका पालन ही उनके कर्म हैं ॥ ३१ ॥ जब शूद्रतुल्य हो जाता है तब इसे आचार-विचारकी कोई रोक-टोक नहीं रहती, अतएव अपनी इच्छाके अनुसार मनमाने कर्म करता है। यह अत्यन्त मंदबुद्धि जीव "परस्पर एक दूसरेका मुख देखना" आदि ग्राम्य कर्मोंमें इतना आसक्त हो जाता है कि अपनी मृत्युकी अवधिको भी भूल जाता है ॥ ३२ ॥ जैसे वानर वृक्षों पर विहार करते हैं वैसे ही यह भी गृहआदि ऐहिक विषयोंके भोगविलासमें अनुरक्त होता है। स्त्री, पुत्र आदिमें रमण करता है और स्त्री-भोगको ही परम सुख मानता है ॥ ३३ ॥ पुरुष जब इस प्रकार भवाटवीमें भटकता है तब मृत्युरूप मस्त हाथीके भयसे भीत होकर कभी२ गिरिकंदराके तुल्य मोहरूप अंधकारसे पूर्ण जो रोग आदिकी आपत्तियाँ हैं उनमें गिरता है॥३४॥ कभी २ शीत, वात आदि अनेक आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःखोंका कुछ प्रतीकार नहीं कर सक्ता और क्लेश सहता है, तब अनन्त विषयोंकी कामनासे विषण्ण (उदास) हो पड़ता है ॥ ३५॥ कभी परस्पर व्यवहारमें बेईमानी करके कुछ धन जोड़ता है, किन्तु उस धनसे सुख नहीं पाता ॥ ३६ ॥ कभी२ वह धन नष्ट हो जाता है तब शय्या, आसन इत्यादि भोगकी सामग्रियाँ नहीं प्राप्त होतीं। जब सत् उपायसे उक्त सामग्रियोंको नहीं पाता तब असत् उपायसे भोगसामग्री पानेकी मनमें ठानता है और वैसा करनेसे संसारमें लोग इसका अपमान करते हैं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार भोगकी और धनकी आसक्तिमें परस्पर (और लोगोंसे और इससे) वैर बढ़नेकी संभावना होनेपर भी यह पुरुष पूर्वजन्मके संस्कारसे बेईमानी करके औरोंका धन हरता है ॥ ३८ ॥ राजन्! इस भाँति इस संसारमार्गमें अनेक क्लेश और बाधाओंसे पीड़ित होकर जो व्यक्ति आपदामें पड़ता है वा नष्ट हो जाता है उसको उसी स्थानपर छोड़ कर नवजात व्यक्तियोंको साथ लेता हुआ यह जीवोंका समूह कभी शोक करता है, कभी मोह और भयको प्राप्त होता है, कभी परस्पर विवाद करता हैं, कभी चीत्कार करता है और कभी प्रसन्न होकर गान करता है,—इसी प्रकार संसारके बन्धनमें क्रमशः जकड़ जाता है। साधु पुरुषोंकी कृपा बिना कोई अद्यापि इस दुर्गम भवाटवी के पार नहीं जा सका। इस मार्गमें सब जीव भटक रहे हैं; पण्डित अर्थात् आत्मज्ञानी लोग इससे पार होनेके लिये सदैव सदुपदेश देते रहते हैं। राजन्, यह मार्ग योगानुष्ठानसे भी नहीं छूटता। उपशमशील एवं शान्त मन-वाले मुनिजन, जिन्होने देहाभिमान त्यागकर ब्रह्मको पा लिया है वे ही इसको भली भाँति जानते हैं और भटकते नहीं हैं॥ ३९॥ ४०॥ बड़े २ राजर्षिगण–जिन्होंने दिग्ग-जोंको जीत लिया वे भी इस मार्गके पार नहीं जा सके; इसी संसारमें "यह मेरा है" इस

असत् आग्रहसे परस्पर वैर ठानकर लड़ मरे । इस संसारको, जिसे वे अपना कहते थे, छोड़ कर आप ही कालका ग्रास बन गये ॥ ४१ ॥ कोई २ जीव अपने कर्मसूत्रका अवलम्बन करके नरकरूप आपदासे किसी भाँति कुछ दिनके लिये छुटकारा पा जाते हैं, किन्तु फिर संसारमार्गमें आकर जीवसमूहमें मिल जाते हैं । हे राजन्, स्वर्गमें जो लोग जाते हैं उनकी भी यही गति होती है ॥ ४२ ॥ इतना कह कर योगिवर शुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि महाराज ! राजर्षि भरतके पवित्र चरित्रकी पण्डितलोग यों प्रशंसा करते हैं कि जैसे मक्खियाँ गरुड़की चालको नहीं पा सक्तीं वैसे ही और कोई राजा ऋषभनन्दन भरतके मार्गका अनुसरण नहीं कर सक्ता । महानुभाव भरतने युवा अवस्थामें ही दुस्त्यज पुत्र, स्त्री, सुहृद्, राज्य इत्यादि हृदय हरनेवाली वस्तुओंको मलके तुल्य त्याग कर हरिमें मन लगाया—भला और कौन मनुष्य उनकी बराबरी करेगा? ॥४३॥४४॥ देवता लोग भी जिसकी प्रार्थना करते हैं वह लक्ष्मी चाहती थी कि मुझ पर महात्मा भरतकी दयादृष्टि हो किन्तु उन्होने उस लक्ष्मी और दुस्त्यज राज्य, पुत्र, स्त्री, धन, जन इत्यादिके लिये इच्छा नहीं की । राजन्, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है । क्योंकि जिन महापुरुषोंका मन भगवान् मधुसूदनकी सेवामें अनुरक्त है उनकी दृष्टिमें परमपुरुषार्थ जो कहलाती है वह मुक्ति भी तुच्छ है ॥ ४५ ॥ अहा ! भरतजीने मरते समय "जो भगवान् यज्ञरूप और यज्ञादि कर्मोंका फल देनेवाले हैं, जो हरि धर्मानुष्ठानके करनेवाले और अष्टाङ्गयोगस्वरूप हैं, जो ईश सांख्ययोग मूर्ति और मायाके नियन्ता एवं सब जीवोंके शासक हैं उनको मेरा प्रणाम है," ऐसे उदार वचन कहते हुए हँसते २ मृगशरीरको त्याग दिया ! ऐसा कौन होगा जो उनकी चाल पर चल सके ? ॥ ४६ ॥

य इदं भागवत सभाजितावदातगुणकर्मणो राजर्षेर्भरतस्यानुचरितं स्वस्त्ययनमायुष्यं धन्यं यशस्यं स्वर्ग्यापवर्ग्यं वानुश्रृणोत्याख्यास्यत्यभिनन्दति च सर्वा एवाशिष आत्मन आशास्ते न कांचन परत इति ॥ ४७ ॥

हे परीक्षित् ! हमने यह भरतका चरित्र तुमसे कहा, जिसमें भरतजीके पवित्र गुण और कर्मोंका वर्णन किया गया । इस भरतचरित्रको भगवद्भक्त साधुजन बड़ी श्रद्धा और आदरसे पढ़ते और सुनते हैं । यह चरित्र मंगलमय, परमायु बढ़ानेवाला, धन और यश देनेवाला एवं स्वर्ग और मोक्षके मिलनेका उपाय है । जो व्यक्ति भक्तिसहित इसको सुनते या पढ़ते हैं और पढ़ कर अथवा सुन कर सन्तुष्ट होते हैं उनको स्वयमेव सब प्रकारके मंगल मिलते हैं; उनको औरोंसे कल्याणकी कामना नहीं करनी पड़ती ! ॥ ४७ ॥

इति श्रीभागवते पंचमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदश अध्याय ।

भरत-वंशीय राजोंका वृत्तान्त ।

श्रीशुक उवाच-भरतस्यात्मजः सुमतिर्नामाभिहितो यमु ह वाव केचित्पाखण्डिन ऋषभपदवीमनुवर्तमानं चानार्या अवेदसमाम्नातां देवतां स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यन्ति १

श्रीशुकदेवजी बोले । राजन्! भरतके पुत्र सुमति हुए, इन्होने ऋषभजीकी पदवी अर्थात् जीवन्मुक्त मार्गमें गमन किया । यह देखकर कलियुगमें कुछ एक पाखण्डी लोग अपनी पापपूर्ण बुद्धिसे इनको वेदमें अस्वीकृत देवता मानने लगेंगे अर्थात् बुद्धदेवका अवतार मानेंगे ॥ १ ॥ सुमतिके वृद्धसेना रानीमें देवताजित् नाम पुत्र हुआ ॥२॥ देवताजित्के आसुरी नाम स्त्रीमें देवद्युम्न नाम एक पुत्र हुआ । देवद्युम्नके धेनुमती नाम स्त्रीमें परमेष्ठी नाम पुत्र हुआ । परमेष्ठीके सुवर्चला नाम स्त्रीमें प्रतीह नाम पुत्र हुआ ॥ ३ ॥ महात्मा प्रतीहने अनेकानेक लोगोंके आगे आत्मविद्याकी व्याख्या करके, उसके द्वारा स्वयं पवित्र होकर भगवान् विष्णुका साक्षात् दर्शन पाया ॥४॥ प्रतीहके सुवर्चसा नाम स्त्रीमें प्रतिहर्त्ता, प्रस्तोता, उद्गाता नाम तीन पुत्र हुए । ये तीनो यज्ञके अनुष्ठानके विषयमें अत्यन्त निपुण थे । प्रतिहर्ताके स्तुति नाम स्त्रीमें अज और भूमा नाम दो पुत्र उत्पन्न हुए । भूमाके ऋषिकुल्याके गर्भसे उद्गीथ और उद्गीथके देवकुल्याके गर्भसे प्रस्ताव नाम पुत्र हुआ, प्रस्तावके नियुत्सा नाम स्त्रीमें विभु और विभुके रति नाम स्त्रीमें पृथुसेन नाम पुत्र हुआ । पृथुसेनके आकूति नाम स्त्रीमें नक्त नाम पुत्र हुआ, नक्तके द्रुति नाम स्त्रीमें महाराज गय उत्पन्न हुए, यह महायशस्वी हुए । यह जगत्की रक्षाके लिये सत्त्वगुण ग्रहण करनेवाले विष्णु भगवान्के अंशावतार माने गये और आत्मवेत्ता आदि लक्षणोंसे युक्त होनेके कारण महापुरुषोंकी पदवीको प्राप्त हुए ॥ ५ ॥ ६ ॥ महाराज गय राज्याभिषेक होनेके बाद "प्रजाका लालन, पालन, पोषण, प्रीणन और शासनआदि" रूपवाले अपने धर्मका पालन करनेमें प्रवृत्त हुए एवं गृहस्थआश्रममें रह कर याग यज्ञ आदि गृहस्थधर्मका भी पालन किया । वह इन दोनो प्रकारके धर्मोंका अनुष्ठान कर मन वाणी और कायासे ईश्वरके अर्पण कर देते थे; इस कारण उनके लिये ये प्रवृत्तिमार्गके कर्म भी परमार्थ अर्थात् निवृत्तिमार्गके सम्पादक थे । इन दोनो प्रकारके धर्मोंका पालन करनेसे एवं ब्रह्मज्ञानी लोगोंकी चरण-सेवासे उत्पन्न भक्तियोगके द्वारा संस्कृत होनेके कारण महाराज गयकी बुद्धि अत्यन्त शुद्ध हो गई, उनके चित्तसे देहादिका अभिमान दूर हो गया, वह सर्वदा स्वयं प्रकाशमान ब्रह्मानंदका अनुभव करने लगे । इस प्रकारके महात्मा होने पर भी उन्होने अभिमानरहित भावसे पृथ्वीमण्डलका पालन किया ॥ ७ ॥

महाराज! प्राचीन इतिहास जाननेवाले लोग इस प्रकार महाराज गयकी कीर्तिका कीर्तन करते हैं ॥ ८ ॥ "महात्मा गय राजा यज्ञ करने वाले, मनस्वी, बड़े ज्ञाता, धर्मके पालक, श्रीमान्, सज्जनोंकी सभाके सभापति और सज्जनोंके उत्तम सेवक थे। भगवान्के अंशके सिवा और कौन व्यक्ति कर्मोंमें राजा गयकी बराबरी कर सक्ता है? ॥९॥ श्रद्धा, मैत्री, दया इत्यादि साध्वी दक्ष कन्याओंके आशीर्वाद निष्फल नहीं होते। उन्होने ही नदियोंके संग जिनका अभिषेक किया, जिनके गुणरूप बछड़ेके प्रेमसे कामधेनुरूप पृथ्वीके स्तन भर आये और उसने उनकी प्रजाकी कामनाएँ पूर्ण कीं; उनकी बराबरी कौन कर सक्ता है? ॥ १० ॥ जिनको कल्याणकी कामना न होने पर भी वेद और वेदविहित कर्म आप ही आप सब कामफल देते थे, युद्धमें बाणोंद्वारा पूजित राजा लोग कर देते थे और ब्राह्मणगण प्रतिपालन और दक्षिणाद्वारा पूजित हो कर अपने २ धर्मके फलका छठा हिस्सा अर्पण करते थे, उन गय राजाकी बराबरी कौन कर सक्ता है? ॥ ११ ॥ जिनके यज्ञमें बहुत सा सोमरस पी कर इन्द्रदेव मदमत्त हो गये और यज्ञमूर्ति भगवान् हरिने प्रत्यक्ष प्रकट हो कर जिनके श्रद्धासे विशुद्ध दृढ़ भक्तियोगको और समर्पण किये हुए यज्ञ-फलको पूजाकी सामग्रीके समान स्वीकार किया उनका अनुकरण और कौन कर सक्ता है? ॥ १२ ॥ जिन भगवान्की प्रीति और प्रसन्नतासे देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, तृण आदि ब्रह्मसे ले कर जड़ पर्यन्त चराचर ब्रह्माण्ड प्रसन्न होता है उन्ही सबके अन्तर्यामी साक्षात् प्रेमस्वरूप भगवान् विष्णुने जिनके यज्ञमें 'मैं तृप्त हुआ' कह कर प्रसन्नता प्रकट की उन महायशस्वी गय राजाकी बराबरी कौन कर सक्ता है?" ॥ १३ ॥ हे राजन्! उक्त गय राजाके गायंती नाम रानीके गर्भसे चित्ररथ, सुगति और अविरोधन नाम तीन पुत्र उत्पन्न हुए। चित्ररथके ऊर्णा नाम स्त्रीमें सम्राट् नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ सम्राट्के उत्कला नाम रानीके गर्भसे मरीचि नाम पुत्र हुआ। मरीचिके बिंदुमती रानीमें बिंदुमान् नाम पुत्र हुआ। बिंदुमान्के सरघा नाम स्त्रीमें मधु नाम राजर्षिने जन्म लिया। मधुके सुमना नाम स्त्रीमें वीरव्रत नाम पुत्र हुआ। वीरव्रतके भोजा नाम रानीमें मंथु और प्रमंथु नाम दो पुत्र हुए। मंथुके सत्या नाम रानीमें भौवन नाम राजकुमारका जन्म हुआ। भौवनके दूषणा नाम स्त्रीमें त्वष्टा नाम पुत्र हुआ। त्वष्टाके विरोचना नाम रानीमें विरज नाम पुत्र उत्पन्न हुआ। राजर्षि विरजजी बड़े ही महात्मा थे, इनकी स्त्रीका नाम विपूची था। विरजके सौ पुत्र और एक कन्या हुई। विरजके सौ पुत्रोंमें कुमार शतजित् ज्येष्ठ थे ॥ १५ ॥

प्रैयव्रतं वंशमिमं विरजश्चरमोद्भवः ॥
अकरोदत्यलं कीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥ १६ ॥

उनके गुणोंके कीर्तनमें यह एक श्लोक है कि—"प्रियव्रत महाराजके वंशमें जन्म ले कर राजर्षि विरजने अपने विमल यशसे निजकुलको यों विभूषित किया जैसे विष्णुने वामन अवतार लेकर देवकुलको पवित्र और विभूषित किया" ॥ १६ ॥

इति श्रीभागवते पंचमस्कन्धे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडश अध्याय ।

भुवनकोषवर्णन ।

राजोवाच—उक्तस्त्वया भूमण्डलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणैश्चन्द्रमा वा सह दृश्यते ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा कि ब्रह्मन्! भगवान् सूर्य अपनी किरणोंसे जहाँ तक प्रकाश करते हैं और जिस स्थान तक शुक्ल व कृष्ण पक्षमें तारागण-सहित चन्द्रमा देख पड़ते हैं उतना आपने पृथ्वीमण्डलका विस्तार बताया है ॥ १ ॥ इतने परिमाणवाले पृथ्वीमण्डलमें ही प्रियव्रत राजाके रथके पहियेकी लीकसे सात सागरोंकी रचना हुई है। आपने इन सात सागरोंसे ही इस पृथ्वी-मण्डलके सात द्वीप (विभाग) सूचित किये हैं। इस समय इन सब द्वीपोंका परिमाण, लक्षण और विशेष विवरण जाननेकी हमारी इच्छा है ॥२॥ भगवान्के सगुण स्थूलरूपमें लगा हुआ मन कदाचित् निर्गुण, सूक्ष्मतम, ज्योतिर्मय, परब्रह्मस्वरूप, परमपुरुष वासुदेवमें लगाया जा सक्ता है। अतएव हे गुरो! इस सब विषयका विस्तारपूर्वक वर्णन करिये ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले। महाराज! मनुष्य यदि देवतोंकी इतनी परमायु पावे तो भी समस्त ब्रह्माण्डके स्थानोंका वर्णन नहीं कर सक्ता। मनुष्य भगवान्की माया-नाम विभूतिके अन्तको वाक्य और मनके द्वारा भी नहीं पा सक्ता। अतएव संपूर्ण प्रधान २ द्वीपोंके नाम, रूप, परिमाण और चिन्होंका वर्णन करके तुमको भूगोलका विवरण सुनाता हूँ ॥४॥ हे राजन्! यह पृथ्वीमण्डल एक विशाल कमल-कुसुमके समान है। सातो द्वीप इसके कोष (पर्त) हैं। इन कोषस्वरूप सातो द्वीपोंमें यह जम्बूद्वीप अभ्यन्तरकोष है। यही द्वीप प्रथम कोष है, इसका विस्तार एक लाख योजन है और यह कमलके पत्रकी भाँति सम-गोलाकार है ॥ ५ ॥ इस जंबूद्वीपमें नव खंड हैं। उनमें भद्राश्व और केतुमाल नामक दो खंडोंको छोड़ कर हर एक खंडका विस्तार नव २ हजार योजन है। इन नव खंडोंके सीमाप्रान्त पर आठ पर्वत हैं जो हर एक खंडको अलग २ किये हुए हैं ॥ ६ ॥ इन नव खंडोंमें इलावृत नाम खंड अभ्यन्तरखंड है। इलावृतखंडके बीचोबीचमें सब कुलाचलोंका राजा सुवर्णमय सुमेरु पर्वत है। यह सुमेरु पर्वत जम्बूद्वीपका जितना विस्तार है उतना अर्थात् एक लाख योजन ऊँचा है। सुमेरु

पर्वत मस्तकमें बत्तीस हजार योजन और मूलमें सोलह हजार योजन चौड़ा है। एवं इतना ही अर्थात् सोलह हजार योजन पृथ्वीके भीतर धसा हुआ है। इस प्रकार भूमण्डलरूप कमलकी कर्णिकाके समान सुमेरु पर्वत देख पड़ता है ॥ ७ ॥ इलावृतखंडके उत्तरभागमें उत्तरोत्तर क्रमसे नील, श्वेत और शृंगवान् नाम पर्वत क्रमशः रम्यक, हिरण्मय और कुरु नाम तीनो खंडोंकी सीमा (हद) का विभाग करते हैं। ये तीनो पर्वत पूर्व ओर लंबे हैं, इनकी चौड़ाई दो हजार योजन है और इनके दोनो छोर खारी समुद्रमें मिले हुए हैं। इनमें अग्रस्थित पर्वतसे परवर्ती पर्वत केवल लंबाईमें ग्यारहवें हिस्से छोटा है, ऊँचाई या चौड़ाईमें नहीं ॥ ८ ॥ ऐसे ही इलावृतखंडके दक्षिण भागमें निषध, हेमकूट और हिमालय नाम तीन पर्वत हैं, ये तीनो पर्वत क्रमशः हरिवर्ष, किम्पुरुषवर्ष और भारतवर्षकी सीमाका विभाग करते हैं; ये भी पूर्वोक्त नीलादि पर्वतोंके समान पूर्व ओर लंबे और ऊँचाईमें दश हजार योजन हैं ॥ ९ ॥ इसी प्रकार उक्त इलावृत खंडके पूर्व और पश्चिम ओर यथाक्रम माल्यवान् और गंधमादन पर्वत अवस्थित हैं। ये दोनो पर्वत उत्तरमें नील पर्वत और दक्षिणमें निषध पर्वत तक लंबे और दो हजार योजन चौड़े हैं। ये दोनो पर्वत केतुमाल और भद्राश्व खंडकी सीमाका विभाग करते हैं ॥१०॥ सुमेरुके चारो ओर मंदर, मेरुमंदर, सुपार्श्व, एवं कुमुद नाम चार पर्वत अवष्टंभ (थूनी) के समान स्थित हैं। इन पर्वतोंमें हर एकका विस्तार और ऊँचाई दस हजार योजन है। इन चारो पर्वतोंमें पूर्व और पश्चिम ओरके पर्वत दक्षिणसे उत्तर तक चौड़े हैं एवं दक्षिण और उत्तर दिशाके पर्वत पूर्वसे पश्चिम तक चौड़े हैं ॥ ११ ॥ इन चारो पर्वतों पर क्रमशः आम, जामुन, कदम्ब और बरगदके वृक्ष हैं। इन वृक्षोंका विस्तार सौ २ योजन है। ये वृक्ष पहाड़ों पर पताकाके समान देख पड़ते हैं। इनकी ऊँचाई ग्यारह २ हजार योजन है और शाखाओंका मण्डल (घेर) सौ २ योजन है ॥ १२ ॥ हे भरतश्रेष्ठ परीक्षित! इन चारो वृक्षोंके निकट ही चार ह्रद (तालाव) हैं। एकमें दूध, दूसरेमें मधु, तीसरेमें ऊँखका रस और चौथेमें शुद्ध जल भरा हुआ है। इन चारो सरोवरोंके परम मनोहर रस व जलका सेवन करनेवाले यक्षादि उपदेवगण स्वाभाविक योगसिद्धियोंसे सम्पन्न होते हैं क्योंकि ये ह्रद दिव्य हैं ॥ १३ ॥ इन पर्वतों पर नंदन, चैत्ररथ, वैभ्राजक, और सर्वतोभद्र नाम चार लोकपालोंके बाग भी हैं ॥ १४ ॥ इन सब बागोंमें प्रधान २ देवगण, स्त्रियोंमें रत्न जो सुरललनाएँ हैं, उनके साथ विहार करते हैं और गंधर्वादिक उपदेवगण उनकी महिमाका गान करते हैं ॥ १५ ॥ मंदर पर्वतकी गोदमें ग्यारह सौ योजन ऊँचा देवचूत (आम)-का वृक्ष है, उसकी चोटीसे पर्वतके शिखरके समान स्थूल और अमृतके तुल्य स्वादिष्ट व मधुर फल नीचे गिरते हैं ॥ १६ ॥ वे फल राहमें ही फट जाते हैं और

उनसे बहुत मधुर सुवास निकलती है। उन फलोंसे स्वयं सुगंधित अरुण रस निकल कर बहता है। उसी जलस्वरूप रसके द्वारा अरुणोदा नाम एक नदी बहती है। वह नदी मंदर पर्वतके शिखरोंसे निकल कर इलावृत खंडके पूर्व ओर बहती है ॥ १७ ॥ भवानीकी सखी यक्षोंकी ललनाएँ इस रसका सेवन करती हैं अतएव उनके अंगमें अपूर्व सुगंध आती है। उनके अंगोंका स्पर्श करके चलनेवाले वायुसे चारो ओर दश २ योजन तक सुगंधित हो जाता है ॥ १८ ॥ ऐसे ही मेरुमंदर पर्वत पर जामुनके वृक्षसे हाथीके शरीरके तुल्य स्थूल फल गिरते हैं, उनमें बहुत छोटी गुठली होनेके कारण रस ही रस होता है। वे जामुनके फल भी उतने ऊँचेसे गिरनेके कारण राहमें ही टूट जाते हैं। उनके रससे जंबू नाम नदी निकली है, जो कुछ अधिक अयुत योजन ऊँचे मेरुमंदरके शिखरसे पृथ्वी पर गिरती हुई इलावृतखंडके दक्षिण ओर बहती है ॥१९॥ इस नदीके दोनो किनारोंकी मिट्टी इसके जंबूरसमय जलमें भीगती है और सूर्यकी किरणोंका संयोग होने पर वायुके लगनेसे परिपक्व हो कर जांबूनद नाम उत्तम सुवर्ण बन जाती है; वही सुवर्ण देवगणका आभूषण है ॥२०॥ सब देवादिक उस सुवर्णके मुकुट, कटक, करधनी, कुण्डल आदि आभूषण स्त्रियों सहित पहनते हैं ॥ २१ ॥ सुपार्श्व पर्वत पर जो महाकदम्बका वृक्ष है उसमें पाँच कोटर (छिद्र) हैं। इनसे पाँच मधुकी धाराएँ गिरती हैं। उन धाराओंकी मुटाई पाँच व्याम है। दोनो हाथ फैलाने पर जितना बीच होता है उतने परिमाणको व्याम कहते हैं। ये पाँचो मधुकी धाराएँ सुपार्श्व पर्वतके शिखरोंसे नीचे गिर कर पश्चिमस्थित इलावृतखंडको अपनी सुगंधसे सुगंधित करती हैं ॥ २२ ॥ जो इन मधुकी धाराओंका सेवन करते हैं उनके मुखके वायुसे चारो ओर सौ २ योजन तक पृथ्वी सुगंधित होती रहती है ॥२३॥ हे राजन्! ऐसे ही कुमुद पर्वत पर शतवल्श नाम बरगद है; उसकी मोटी शाखाओंसे नीचेकी ओर दही, दूध, घी, मधु, गुड़, अन्न भोजन एवं वस्त्र, आभूषण, शय्या, आसन आदि सम्पूर्ण अभिलषित वस्तुओंके देनेवाले नद निकले हैं। वे नद कुमुद पर्वतके शिखरसे नीचे गिरते हुए इलावृत खंडके उत्तरभागमें रहनेवाले लोगोंका बड़ा ही उपकार करते हैं ॥ २४ ॥ इन सम्पूर्ण सामग्रियोंका सेवन करनेसे वहाँके रहनेवालोंको कभी शरीरमें झुर्री पड़ना, बाल श्वेत होना, थकावट, अंगोंमें पसीना आना, बुढ़ापा, अकालमृत्यु, दुर्गन्ध, गर्मी सर्दीके कारण वर्ण बदलना इत्यादि कष्ट नहीं होते; जीवन भर सुखमें ही बीतता है ॥ २५ ॥ हे राजन्! इन पर्वतोंके सिवा कुरङ्ग, कुरर, कुसुंभ, वैकंक, त्रिकूट, शिशिर, पतंग, रुचक, निषध, शितिवास, कपिल, शंख, वैडूर्य्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कपिश, कालंजर एवं नारद; ये बीस-पर्वत कर्णिकारूप मेरुके मूलमें चारो ओर केशरस्वरूप हैं ॥ २६ ॥ मेरुके पूर्व ओर जठर और देवकूट पर्वत हैं। इन दोनो पर्वतोंमें हरएक उत्तर ओर अष्टादश सहस्र योजन लंबा और दो हजार योजन चौड़ा है। ऐसे ही पश्चिम ओर पवन और

पारियात्र नाम दो पर्वत हैं, दक्षिण ओर कैलास और करवीरनाम दो पर्वत हैं और उत्तर ओर त्रिशृंग और मकर नाम दो पर्वत हैं। इस प्रकार ये आठ पर्वत सुमेरुके मूलसे सहस्र योजनके अन्तर पर चारो ओर अग्निकी परिधिके समान उसको घेरे हुए हैं, बीचमें सुवर्णका सुमेरु प्रकाशमान है ॥ २७ ॥ इतिहास जाननेवाले पण्डितगण कहते हैं कि इस सुमेरुके मस्तक पर बीचोबीचमें भगवान् ब्रह्माकी पुरी है, जिसका विस्तार सहस्र-अयुत योजन है। यह पुरी सुवर्णनिर्मित एवं चारो ओर सम-चतुष्कोण है ॥ २८ ॥

तामनु परितो लोकपालानामष्टानां यथादिशं ॥
यथारूपं तुरीयमानेन पुरोऽष्टावुपक्लृप्ताः ॥ २९ ॥

ब्रह्माकी पुरीके ऊपरी भागमें पूर्व आदि आठ दिशा व उपदिशाओंमें क्रमशः इन्द्र आदि आठ लोकपालोंकी आठ पुरी बनी हुई हैं। उन पुरियोंके वर्ण उनके स्वामी लोकपालोंके वर्णोंके अनुरूप हैं और प्रत्येक पुरीका परिमाण ब्रह्मपुरीके परिमाणका चतुर्थांश है ॥ २९ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदश अध्याय ।

भगवान् रुद्रकृत संकर्षणदेवकी स्तुति ।

श्रीशुक उवाच—तत्र भगवतः साक्षाद्यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहविवरेणान्तः प्रविष्टा या बाह्यजलधारा तच्चरणपङ्कजावनेजनारुणकिञ्जल्कोपरञ्जिताखिलजगदघमलापहोपस्पर्शनामला साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोऽभिधीयमानाऽतिमहता कालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्द्धन्यवततार यत्तद्विष्णुपदमाहुः ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले। हे राजन्! विष्णु भगवान्ने राजा बलिके यज्ञमें जाकर त्रिविक्रममूर्ति धारण करके जब ऊपरको चरण फैलाया—दक्षिण चरणसे पृथ्वी नाप कर बाएँ चरणको ऊपर फैलाया तब उनके बाएँ चरणके अँगूठेके नखसे ब्रह्माण्डका ऊपरी भाग फट गया और उसमें छिद्र हो गया। उस छिद्रसे बाहरको जलकी एक धारा निकली। वह जलकी धारा वहाँसे एक हजार युगमें स्वर्गके ऊपर गिरी। हे राजन्! धुलनेके कारण भगवान्के चरणका जो अरुणवर्ण कुंकुम उसमें

मिल गया वही किञ्जल्कस्वरूप हो कर उस जलकी धाराको सुशोभित करने लगा। वह गङ्गाजलकी धारा स्पर्श करते ही विश्वके सब पापोंको दूर करनेमें समर्थ है एवं स्वयं परमपवित्र है। स्वर्गमें वह जलधारा विष्णुके चरणसे उत्पन्न होनेके कारण "भगवत्पदी" इस नामसे अभिहित हुई, तदनन्तर भागीरथी, जाह्नवी आदि अनेक नाम धारण करती हुई पृथ्वी पर आई ॥ १ ॥ विष्णुपद ही स्वर्गका मस्तक है। उत्तानपाद राजाके पुत्र परमभागवत ध्रुवजी इस विष्णुपदमें अवस्थित हो कर "यह हमारे कुलदेवता भगवान् हरिका चरणोदक है" ऐसा विचार कर प्रतिज्ञा-पूर्वक अब भी नित्यप्रति इस जलधाराको परम आदरसे मस्तक पर धारण करते हैं। उस समय महात्मा ध्रुवके हृदयमें भक्तिरस उमड़नेके कारण उसके द्वारा उनका हृदय निपट आर्द्र हो जाता है और वह उत्कण्ठाके मारे विवश हो जाते हैं। कुछ मुँदे हुए नयन-कमलकी कलिकासे प्रेमके आँसू बहने लगते हैं, सब शरीरमें रोमांच हो आता है ॥२॥ हे राजन्! उसके बाद सप्तऋपिगण "यही तपस्याकी परम सिद्धि है, इससे बढ़ कर और कोई फल नहीं है" इस प्रकार निश्चय करके अपने २ जटाजूटमें उस गंगाकी धाराको धारण करते हैं। सप्तऋपियोंका इस प्रकार निश्चय और धारणा होनेका कारण यही है कि सबके आत्मस्वरूप भगवान् वासुदेवमें अनन्य भक्तियोग पानेसे अन्य पुरुपार्थ एवं आत्मज्ञानमें उनको आस्था नहीं रही वरन् उपेक्षा हो गई है; अतएव अन्यत्र निःस्पृह और मोक्षकी कामनावाले लोग जैसे मुक्तिको ग्रहण करते हैं वैसे ही वे लोग परमयत्नपूर्वक आदरसे गंगाको शिर पर धारण किये हुए हैं ॥ ३ ॥ विष्णुके चरणसे उत्पन्न गंगा यहाँसे अनेक सहस्र-कोटि विमानोंसे पूर्ण आकाशमार्गसे नीचे होती हुई चन्द्रमण्डलको प्लावित करके पहले सुमेरु पर्वतके मस्तक पर स्थित ब्रह्माके भवन पर गिरती है ॥ ४ ॥ वहाँ भिन्न २ नाम-की चार धारा हो कर चार दिशाओंमें जा कर चारो दिशाओंके समुद्रोंमें मिलती है; उन चारो धाराओंके नाम सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा हैं ॥ ५ ॥ उनमें सीता नाम धारा ब्रह्मसदनसे चल कर केशराचल आदि पर्वतोंके शिखरोंसे नीचे उतरती हुई गंधमादन पर्वतके ऊपर गिर कर भद्राश्वखंडके भीतर हो कर पूर्व दिशाके खारी समुद्रमें मिल गई है ॥ ६ ॥ चक्षु नाम धारा माल्यवान् पर्वतके शिखरोंसे नीचे उतरती हुई बिना किसी प्रकारकी रुकावटके केतुमाल खंडके भीतर हो कर पश्चिम दिशाके समुद्रमें मिल गई है ॥ ७ ॥ भद्रा नाम धारा उत्तर दिशामें सुमेरुके शिखरसे गिर कर कुमुदपर्वतके शिखरसे नील, श्वेत और शृंग-वान् पर्वतोंके शिखरोंसे नीचे उतरती हुई उत्तरकुरु नाम खंडके भीतर हो कर उत्तर दिशाके समुद्रमें मिल गई है ॥ ८ ॥ वैसे ही अलकनंदा नाम धारा ब्रह्मसदनके दक्षिण ओर अनेकानेक पर्वतोंके शिखरोंको नाँघती हुई अदम्य तीव्र वेगसे हेमकूट और हिमकूट पर्वतोंके शिखरोंसे पृथ्वी पर उतर कर भरतखंडके भीतर होती

हुई दक्षिण दिशाके समुद्रमें मिल गई है ॥ ९ ॥ जिसमें स्नान करनेके लिये आनेवाले पुरुषोंको पग २ पर अश्वमेध और राजसूय आदि यज्ञोंका फल दुर्लभ नहीं है । अन्यान्य नद और नदियाँ सुमेरु आदि पर्वतोंसे उत्पन्न हो कर सम्पूर्ण खंडोंमें बहती हैं ॥ १० ॥ किन्तु सब खंडोंमें भरतखंड ही कर्मक्षेत्र है, शेष आठ खंड स्वर्गीय लोगोंके शेष पुण्यके भोग करनेका स्थान हैं । स्वर्ग तीन प्रकारके हैं, दिव्यस्वर्ग, भौमस्वर्ग और बिलस्वर्ग । उनमें ये आठो खंड भौम स्वर्ग हैं ॥ ११ ॥ उक्त आठ खंडोंमें जो लोग रहते हैं उनकी पुरुष-परिमाणसे दश हजार वर्षकी परमायु है, दश हजार हाथीका बल है और शरीर बहुत ही दृढ़ वज्रतुल्य है । वे देवतोंके तुल्य हैं, उनके शरीरोंमें ऐसा बल, यौवन एवं हर्ष है कि उसके द्वारा महा-सुरतिके व्यापारमें स्त्री और पुरुष अत्यन्त प्रसन्न होते हैं एवं संभोगके अन्तमें एक वर्ष आयु शेष रहने पर उनकी स्त्रियाँ एक वार गर्भ धारण करती हैं । इस प्रकार विषयसुखकी श्रेष्ठताके कारण उन खंडोंके निवासी पुरुषगण त्रेतायुगके तुल्य परम सुखसे काल व्यतीत करते रहते हैं ॥ १२ ॥ इन सब खंडोंमें श्रेष्ठ २ देवगण अपनी इच्छाके अनुसार सम्पूर्ण आश्रमोंमें, आयतनोंमें, पर्वतोंकी कंदराओंमें एवं निर्मल जलाशयोंमें परमसुखपूर्वक क्रीड़ा करते हुए विचरते हैं और उनके सेवकगण अनेक प्रकारकी पूजाकी सामग्रियोंसे उनका पूजन करते हैं । वहाँ देव-कामिनियोंकी जलक्रीड़ा और अन्यान्य विचित्र व्यापारोंमें एवं उन सब कामोन्मत्त सुंदरियोंके सविलास हास एवं लीलापूर्ण दृष्टिमें वहाँके पुरुषोंके मन और नयन अत्यन्त मोहित रहते हैं । जिन आश्रमों और आयतनों (मैदानों) में वहाँके पुरुष विहार किया करते हैं उनकी शोभाको क्या कहना है? वहाँके वृक्षोंकी शाखाएँ—सब ऋतुओंके फूल, गुच्छे, फल और नवीन कोपलोंकी समृद्धिसे झुक २ पड़ती हैं, उन शाखाओंमें लिपटी हुई अनेक प्रकारकी ललित लताएँ मनको मोहती हैं । इन सब वृक्षोंसे उक्त आश्रमोंकी अपूर्व शोभा देख पड़ती है । और उन सब जलाशयोंकी ही शोभाको क्या कहना है? खिले हुए नवीन कमलोंकी सुवाससे और राजहंस, कलहंस, जलकुक्कुट, कारण्डव, सारस, चक्रवाक आदिके कलरवसे एवं भ्रमरसमूहके मधुर गुंजनसे उन सब सरोवरोंकी अतुलनीय शोभा होती है ॥ १३ ॥ उल्लिखित नव खंडोंमें भगवान् नारायण महापुरुष वहाँके रहनेवाले पुरुषों पर अनुग्रह करनेके लिये अपनी मूर्तियों द्वारा अद्यापि स्थित हैं ॥ १४ ॥ इलावृतखंडमें भगवान् शिव ही एक पुरुष हैं, और कोई पुरुष, जो भवानीके शापका कारण जानता है, वहाँ नहीं प्रवेश करता । वहाँ जानेसे पुरुषको स्त्रीके चिन्ह धारण करने पड़ते हैं । इस भवानीके शापके कथाप्रसंगको आगे नवमस्कंधमें कहेंगे ॥ १५ ॥ इस खंडमें भवानीजी अपनी सहचरी सहस्र अर्बुद स्त्रियोंसहित भगवान् शंकरकी सेवा करती हैं । भगवान् नारायणकी चार प्रकारकी मूर्तियोंमें चौथी तामसी मूर्तिका नाम संकर्षण है और वही शिवजीकी प्रकृति है । भगवान् रुद्रजी उसी

मूर्तिको अपनी समाधिमें धारण करके यह कहते हुए भजते हैं ॥ १६ ॥ यथा श्रीरुद्रजी कहते हैं । "जिससे सम्पूर्ण गुणोंका प्रकाश होता है, किन्तु जो स्वयं अव्यक्त और अप्रमेय हैं, हम उसी महापुरुष भगवान्‌को नमस्कार करते हैं ॥१७॥ हे भजनीय ! आप परम ईश्वर हैं, अतएव हम आपको ही भजते हैं। हे प्रभो ! आपके चरणकमल सब प्राणियोंके रक्षक हैं एवं आप ऐश्वर्यादि सम्पूर्ण छः प्रकारके गुणोंका परम आधार हैं, आप भक्तजनोंके हितके लिये अपने रूपको प्रकट करते हैं एवं आपसे ही आपके भक्तोंका संसारचक्र मिट जाता है; किन्तु जो लोग आपके भक्त नहीं हैं उनको आप संसारचक्रमें डाल देते हैं ॥१८॥ क्रोधके वेगको जीतनेमें असमर्थ होनेके कारण जैसे हम लोगोंकी दृष्टि भगवान् ईश्वरमें नहीं लिप्त होती वैसे ही निरीक्षण करने पर भी आपकी दृष्टि मायाके गुणोंमें और अन्तःकरणमें तनिक भी नहीं लिप्त होती । इन्द्रिय-जय करनेकी और मुक्ति पानेकी इच्छावाला कौन पुरुष ऐसे परमेश्वरका समादर नहीं करेगा? ॥ १९ ॥ असत्-दृष्टिवालोंको जो अपनी माया-द्वारा मतवालोंके ऐसे भयंकर रूपसे देख पड़ते हैं और जिनके नयन मधु व आसवका सेवन करनेसे अरुणवर्ण देख पड़ते हैं उनको हमारा प्रणाम है। नागवधूगण जिनके चरणोंकी पूजा करनेके समय चरणोंका स्पर्श करके मोहित हो पड़ती हैं, इस लिये लज्जासे भुजाआदि अंगोंका पूजन नहीं कर सक्तीं, उन अनन्तको हमारा प्रणाम है ॥ २० ॥ ऋषिगण जिन्हे इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और नाशका कारण बताते हैं और जो स्वयं उत्पत्ति, स्थिति और नाश इन तीनो बातोंसे शून्य हैं, जिनके सहस्र शिरों पर सरसोंके समान पृथ्वीमंडल धरा हुआ है और जान भी नहीं पड़ता कि कहाँ पर है, उन अनन्तको हमारा प्रणाम है ॥२१॥ जिनसे उत्पन्न हो कर मैं अपने त्रिगुणात्मक तेज द्वारा देवगण, भूतगण और इन्द्रियगणकी सृष्टि करता हूँ वही सत्वगुणाश्रय भगवान् ब्रह्मा जिनका गुणनिमित्तक 'महत्' नामक प्रथम शरीर हैं और जिनके वशमें रह कर महत्तत्व, अहंकार, देव, इन्द्रियगण, सूत्रमें बँधे हुए पक्षीके समान क्रियाशक्ति द्वारा नियन्त्रित हो रहे हैं तथा जिनकी कृपासे इस ब्रह्माण्डको रचते हैं, उन अनन्तको प्रणाम है ॥ २२ ॥

यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः ॥
न वेद निस्तारणयोगमञ्जसा तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने २३

जिनकी निर्मित मायाको मेरे समान व्यक्ति केवल जान सक्ता है, किन्तु उस मायासे निस्तार पानेके उपायको सहजमें नहीं जान सक्ता और जिनकी मायाकी कर्मरूप गाँठ दुर्भेद्य है, उन भगवान्‌को मेरा प्रणाम है। भगवन्, आपके ही स्वरूपसे यह विश्व प्रकाशमान हो कर आपके ही रूपमें लय हो जाता है" ॥ २३ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादश अध्याय।

वर्ष-वर्णन।

श्रीशुक उवाच—तथा च भद्रश्रवा नाम धर्मसुतस्तत्कुलपतयः पुरुषा भद्राश्ववर्षे साक्षाद्भगवतो वासुदेवस्य दिव्यां तनुं धर्ममयीं हयशीर्षाभिधानां परमेण समाधिना संनिधाप्येदमभिगृणन्त उपधावन्ति॥ १॥

शुकदेवजी कहते हैं-महाराज! भद्राश्व खंडमें धर्मके पुत्र भद्रश्रवा नाम उस खंडके स्वामी एवं उनके प्रधान २ अनुचरगण रहते हैं। वे लोग साक्षात् भगवान् वासुदेवकी प्रियतम धर्ममयी हयग्रीव नाम मूर्तिको समाधि द्वारा हृदयमें स्थापित करके निम्नलिखित वाक्य कह कर भजते हैं॥ १॥ भद्रश्रवागण कहते हैं "जिनसे आत्माकी शुद्धि होती है, हम उन्ही भगवान् धर्मकी वंदना करते हैं॥ २॥ अहो कैसा अचरज है? भगवान्की माया कैसी विचित्र है? लोग साक्षात् देख कर भी प्राणनाशक मृत्युसे असावधान रहते हैं! सन्तान या वृद्ध पिताकी मृत्यु होने पर उनका दाहकर्म करके यह मूढ़ मनुष्य उन्हीके धनसे स्वयं जीवन धारण करने या ऐश करनेकी इच्छा करता है। हाय! उससे धर्मसंचय तो दूर रहा, केवल तुच्छ विषय-सुखके भोगकी आशामें मनुष्य पापकर्मकी ही चिन्ता करता है॥ ३॥ क्योंकि, पण्डित ज्ञानीलोग इस विश्वको नश्वर बताते हैं एवं आत्मतत्त्वज्ञ व्यक्तिगण समाधिके समय इस जगत्के 'नश्वर'-धर्मका प्रत्यक्ष अनुभव भी करते हैं; तथापि जो लोग आपकी मायामें मोहित होते हैं सो हे जन्मरहित! आपका ही विस्मयकारी कृत्य है। हम आपको प्रणाम करते हैं॥ ४॥ आप आवरणशून्य और कर्मरहित हैं तथापि वेदमें इस विश्वकी सृष्टि स्थिति और प्रलय ये तीनो कार्य आपके ही कहे गये हैं। सो ठीक ही है, वास्तवमें कोई भी बात ऐसी नहीं है जो आपमें असंभव हो। आप मायाद्वारा कार्यके कारण और सबके आत्मा हैं, इससे आपका ही कर्तृत्व प्रकाशित होता है, तथापि आप सबसे भिन्न हैं; इस लिये आपका कर्तृत्व भी न्यायसंगत है॥ ५॥ प्रभो! दैत्यगणने प्रलयके समय वेदोंको हर कर जल-मग्न कर दिया था। तब प्रलयके अन्तमें आपने हयग्रीव मूर्ति धारण करके रसातलसे वेदोंका उद्धार किया और प्रार्थना करने पर सब वेद ब्रह्माको दे दिये; आप वही सत्यसङ्कल्प हैं, आपको हमारा प्रणाम है" ॥६॥ राजन्! हरिखंडमें भगवान् नृसिंहरूपसे स्थित हैं। भगवान्ने नृसिंह अवतार क्यों लिया सो सप्तमस्कंधमें कहेंगे। महापुरुष लोगोंके सम्पूर्ण गुणोंका एकमात्र आधाररूप परम भगवद्भक्त प्रह्लादजी उस खंडमें रहनेवाली प्रजा सहित सुदृढ भक्तियोग द्वारा भगवान्की इस प्रियमूर्तिका पूजन करके यह कहते हैं—"प्रभो!

आप नृसिंहरूपी भगवान् हैं, आपको नमस्कार है। आप सब तेजोंका तेज हैं। हे वज्रनख! हे वज्रदंष्ट्र! हमारी कर्मवासना भस्म करो, अज्ञानरूप अंधकारको मिटाओ, अभयदान करो, आपको नमस्कार है। हे नाथ! विश्वभरका कल्याण हो, दुष्ट लोग सुधरें, सब प्राणी अपने २ मनमें परस्पर सबके मंगलकी कामना करें, और उनके मन अपने मंगलके मार्गमें प्रवृत्त हों एवं हम सबकी बुद्धि विषयवासनासे हट कर निष्कामभावसे ईश्वरमें लगे ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे प्रभो! हमारी किसी विषयमें आसक्ति न हो, यदि हो तो पुत्र स्त्री, मित्र, घरबार एवं धनसंपदामें न हो कर भगवान्‌के प्यारे भक्तोंके ही संगमें हो। क्यों कि संगहीन आत्मज्ञानी पुरुष भिक्षामें मिले हुए रूखेसूखे अन्नसे ही जैसे तृप्त व सन्तुष्ट रहते हैं वैसे गृहमें आसक्त व्यक्ति इन्द्रियोंके द्वारा विषयभोग करने पर भी सन्तुष्ट नहीं हो सक्ते ॥ १० ॥ भगवान्‌के प्रिय व्यक्तियोंके संगमें श्रीहरिकी महिमा ज्ञात होती है, उस महिमाकी सामर्थ्य असाधारण है! जो पुरुष उस महिमाको सुनते हैं उनके अन्तःकरणमें प्रवेश करके श्रीभगवान् हरि मनको निर्मल कर देते हैं। तीर्थआदिके स्नानसे मलका नाश अवश्य होता है किन्तु उससे केवल शारीरिक मल नष्ट हो जाता है–हृदय नहीं शुद्ध होता। तब कौन ऐसा व्यक्ति है जो हृदय शुद्ध करनेवाले मुकुन्द भगवान्‌के यशको न सुनेगा? ॥ ११ ॥ जिसको हरिमें निष्काम भक्ति होती है उसके शरीरमें सम्पूर्ण सद्गुणोंसहित सब देवता निवास करते हैं, किन्तु जिस व्यक्तिको हरिकी भक्ति नहीं है और मनोरथ द्वारा असत् विषयभोगमें आसक्त हो कर इधर उधर भटक रहा है उसके शरीरमें महात्माओंके गुण कैसे रह सक्ते हैं? ॥ १२ ॥ जल जैसे मछलियोंका जीवन प्राण है वैसेही भगवान् सब प्राणियोंके प्रिय आत्मा हैं, अतएव जो लोग बड़े बड़े महात्मा कहे जाते हैं वे यदि हरिको त्याग कर गृहमें आसक्त हों तो स्त्री-पुरुषोंमें जो बड़प्पन या महत्त्व प्रचलित है वे उसी महत्त्व(अवस्थाके बड़प्पन)को धारण करते हैं; ज्ञान आदि सद्गुणोंका यथार्थ महत्त्व (बड़प्पन) उनमें कुछ भी नहीं है ॥ १३ ॥ अतएव हे असुरगण! गृहमें आसक्ति त्याग कर नृसिंह भगवान्‌के ही चरणकमलोंको भजो, क्योंकि यह गृह तृष्णा, राग, विषाद, क्रोध, अभिमान, स्पृहा, भय, दीनता, मनकी पीड़ा इत्यादि दुर्गुण और कष्टोंका निदान कारण और जन्ममरणरूप संसारके पौधेके उगनेका आलबाल अर्थात् घेरा है" ॥ १४ ॥ राजन्! केतुमाल खंडमें लक्ष्मीजी, उस वर्षमें रहनेवाली प्रजापतिकी कन्या रात्रिकी अधिष्ठात्री देवता और प्रजापतिके पुत्र दिनके अभिमानी देवगणका प्रिय करनेके लिये भगवान् कामदेवरूपसे रहते हैं। उन सब रात्रिके अभिमानी व दिनाभिमानी देवगणकी संख्या छत्तीस २ हजार है और वे ही केतुमाल खंडके स्वामी हैं। महापुरुषके सुदर्शन चक्रके तेजसे उन सब प्रजापतिकी कन्याओंका मन उद्विग्न

हो जाता है और इससे उनके गर्भ नष्ट हो कर संवत्सरके बाद गिर जाते हैं ॥ १५ ॥ कामदेव भगवान् वहाँ अति मनोहर मंदगमन द्वारा लीलापूर्ण हास्य-युक्त चितवनसे भ्रुकुटियोंको कुछ उन्नत करते २ मुखकमलकी अद्भुत शोभा द्वारा लक्ष्मीजीको रमाते हुए स्वयं रमण करते हैं ॥१६॥ देवी लक्ष्मी संवत्सरमें रात्रियोंको रात्रिकी अधिष्ठात्री देवियोंके साथ और दिनोंको दिनके अधिष्ठाता देवगण सहित भगवान्के उस मायामयरूपकी उपासना करती हैं एवं सर्वदा यह कह कर स्तुति करती हैं-"भगवान् हृषीकेश अर्थात् इन्द्रियोंके स्वामीको प्रणाम है। आपका रूप, संसारमें जितनी श्रेष्ठ वस्तुएँ हैं उनके द्वारा लक्षित होता है। आप क्रिया, ज्ञान और ज्ञानके संपूर्ण विषयोंके अधिपति हैं । ग्यारह इन्द्रिय और पाँच उनके विषय ये आपकी सोलह कला हैं। आप वेदमय, अन्नमय, अमृतमय और सर्वमय हैं । आप साहस, सामर्थ्य और बलका कारण हैं । आपकी काममयी एकान्त कान्त अर्थात् निपट रमणीय मूर्ति है। आप हम पर दोनो लोकोंमें प्रसन्न रहें ॥ १७ ॥ १८ ॥ आप स्वयं इन्द्रियोंके स्वामी हैं। जो स्त्रियाँ आपकी आराधना करके आपसे किसी दूसरे पतिकी आशा करती हैं उनके चाहे हुए वे स्वामी उनके प्रिय पुत्र, धन और परमायुकी रक्षा नहीं कर सक्ते क्योंकि वे स्वयं पराधीन हैं ॥ १९ ॥ जो व्यक्ति स्वयं निर्भय है और भयसे आतुर लोगोंकी रक्षा कर सक्ता है वही यथार्थ पति है। प्रभो! इसी लिये एक आप ही सबके पति हैं, और कोई व्यक्ति पति नहीं कहा जा सक्ता। आप आत्मलाभकी अपेक्षा अन्य किसी भी वस्तुको श्रेष्ठ नहीं जानते, अतएव आपका सुख किसीके अधीन नहीं है। आप यदि यथार्थ पति न होते तो अन्य किसीसे आपको भी भयकी संभावना होती ॥ २० ॥ जो स्त्री आपके चरणकमलकी सेवाकी ही प्रार्थना करती है, जिसकी अन्य फलमें अभिलाषा नहीं है उसीकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं। और जो स्त्री अन्यफलकी कामनासे आपका पूजन करती है उसको आप उसकी माँगी हुई वस्तु ही केवल देते हैं। पीछे भोग करनेके बाद उस वस्तुका वियोग या नाश होने पर उसे अपनी भूल पर पश्चात्ताप करना पड़ता है ॥ २१ ॥ हे अजित! कभी २ ब्रह्मा, महेश एवं अन्य २ देवगण और दैत्यगण सुखकी अभिलाषासे मुझे पानेके लिये कठोर तप करते हैं, किन्तु मेरा चित्त स्वयं आप पर आसक्त है; अतएव जो लोग आपके चरणकमलोंको ही परमपद जानते हैं उनके सिवा और कोई मुझको नहीं पाता ॥ २२ ॥ हे अच्युत! आपके करकमलोंसे सम्पूर्ण अभीष्टोंकी वर्षा होती है, इसी कारण साधुव्यक्ति सर्वदा उनकी स्तुति किया करते हैं। आप कृपा करके उन्ही करकमलोंको भक्तोंके मस्तकों पर धरते हैं। अनुग्रह करके हमारे मस्तक पर भी उन्ही कामनाकल्पवृक्षरूप करकमलोंको एक वार धरिये । मुझ पर आपका आदर नहीं है, ऐसा मैं नहीं कह सक्ती; क्योंकि देखती हूँ कि

आप श्रीवत्स-चिन्हके रूपसे अपने हृदयमें मुझे स्थान दिये हुए हैं; किन्तु मुझ पर आपका केवल आदरमात्र है और भक्तजनों पर आपका परम अनुग्रह है। यह अत्यन्त आश्चर्यका विषय है! अथवा आप ईश्वर हैं, आपकी मायाके कार्योंको समझनेकी किसमें सामर्थ्य है?" ॥२३॥ रम्यक खंडमें भी भगवान् उस खंडके स्वामी अपने परम प्रियभक्त मनुका प्रिय करनेके लिये अपनी प्रियतम मत्स्यमूर्तिसे स्थित हैं। भगवान्ने प्रलयकालमें मनुको इस मूर्तिके दर्शन दिये थे। मनुजी आज तक अनन्यभक्तिपूर्वक उसी मत्स्यमूर्तिकी उपासना करते हैं और यह कहते हैं ॥२४॥ "भगवान् मुख्यतम, दैहिक और मानसिक बलस्वरूप महामीनको प्रणाम है ॥ २५ ॥ हे भगवन्! आप सब प्राणियोंके भीतर और बाहर विचरते हैं किन्तु बड़े २ लोकपाल भी आपके स्वरूपको नहीं देख पाते । आपका वेदमय शब्द अतिबृहत् है। प्रभो! मनुष्य जैसे कठपुतलीको अपने वशमें करके नचाते हैं वैसे ही आप भी ब्राह्मणादि नामोंके द्वारा विधिनिषेध आदि सूत्ररूप नियमोंके अधीन करके कर्म कराते हैं ॥ २६ ॥ हे ईश! इन्द्र आदि लोकपालगण मत्सररूप ज्वरसे ग्रसे हुए हैं। वे लोग आपको त्याग कर स्वयं एक २ करके अथवा सब मिल कर यत्न करनेसे भी द्विपद, चतुष्पद अथवा स्थावर, जंगम आदि देख पड़ रही किसी भी वस्तुका पालन नहीं कर सक्के। आप वही प्राणरूप, सबके पालक परमेश्वर हैं ॥ २७ ॥ हे प्रभो! यह पृथ्वी सब औषधियों और लताओंका आधार है, इसी कारण आपने प्रलयकालकी प्रबल तरंगमालाओंमें डूबी हुई इस पृथ्वीकी रक्षाके लिये इसे धारण करके अनिर्वचनीय उत्साह दिखाया। आपको नमस्कार है। प्रभो! आप भुवनवासी प्राणियोंके नियन्ता हैं, आपको हमारा बार २ प्रणाम है" ॥ २८ ॥ हिरण्मय खंडमें भगवान् हरि कूर्मशरीरसे स्थित हैं । पितृगणके अधिपति अर्यमा उस खंडमें रहनेवालों-के साथ निरन्तर उनकी उपासना करते रहते हैं एवं यह मंत्र पाठ करते हैं ॥ २९ ॥ "हम भगवान् कच्छपरूपको प्रणाम करते हैं। हे प्रभो! सत्त्वगुण के सब अंश आपके विशेषण हैं। कोई भी आपके स्थानका निरूपण नहीं कर सक्ता, आपको हमारा नमस्कार है। हे देव! काल के द्वारा आपका अवच्छेद नहीं होता। आप सर्वव्यापी और सबका आधार हैं; आपको नमस्कार है ॥ ३० ॥ आपके ये देख पड़ रहे जो मायाकल्पित पृथ्वी आदि अनेक प्रकारके रूप प्रकाशमान हैं सो सब मिथ्या हैं; इसी कारण इनकी गिनती नहीं की जा सक्ती। आप कितने असंख्य रूप धारण करते हैं, इसका कुछ भी निर्णय नहीं हो सक्ता—आपको नमस्कार है ॥३१॥ हे देव! जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज, स्थावर, जंगम, देवता, ऋषि, पितर, भूत, इन्द्रिय, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, ग्रह एवं नक्षत्र, ये सब एक आपके ही नाम हैं ॥ ३२ ॥ आपके विशेष २ नाम, रूप

और आकारोंकी संख्या नहीं की जा सक्ती तथापि कपिल आदि कवियोंने इस संख्याकी कल्पना की है । यह संख्या जिस एक तत्त्वके ज्ञानसे दूर होती है, आप वही परमार्थ ज्ञान हैं; आपको नमस्कार है" ॥३३॥ राजन् ! उत्तरकुरुखंडमें भगवान् यज्ञपुरुष वराहमूर्तिसे स्थित हैं । यह पृथ्वी देवी कुरुखंडवासियों सहित दृढ़भक्ति-पूर्वक उनका पूजन करती हैं एवं इस श्रेष्ठ उपनिषद्का पाठ करती हैं—"हम भगवान्को नमस्कार करते हैं । प्रभो ! आप मन्त्रद्वारा प्रकाशित होते हैं । यज्ञ एवं क्रतु इत्यादि सब आपके रूप हैं । अतएव सम्पूर्ण महायज्ञ आपके ही अंग हैं । आप महा-पुरुष हैं, आपको प्रणाम है । प्रभो ! आप यज्ञके अधिष्ठाता एवं त्रियुगस्वरूप हैं । आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ भगवन् ! जैसे अग्नि काष्ठमें अप्रकटरूपसे वास करता है वैसे ही आपका स्वरूप देह, इन्द्रियादिकमें अवस्थित है। निपुण पण्डितगण, विवेकका साधन जो मन है उससे एवं कर्म और फलद्वारा आपके दर्शन करनेकी इच्छा करके निरन्तर आपकी खोजमें रहते हैं एवं इस प्रकार खोज कर आपके रूपको देख भी पाते हैं । आपको प्रणाम है ॥ ३६ ॥ विषय, इन्द्रियोंके व्यापार, देवता, शरीर, काल एवं अहंकार आदि मायाके कार्यों द्वारा जो ज्ञानियोंको वस्तुस्व-रूप सत् देख पड़ता है, आप वही आत्मा हैं। चित्त-संयम समाधि आदिके द्वारा जो व्यक्ति आपको निश्चय-रूपसे जान सक्ते हैं वे फिर आपकी मायाकल्पित मूर्तियोंका भजन नहीं करते । आपको प्रणाम है ॥ ३७ ॥ जैसे अयस्कान्त (चुंबक) मणि द्वारा खिंचा हुआ लोहा इधर उधर उसीकी गतिके अनुसार भ्रमण करता है वैसे ही यह माया आपके ही वशमें रह कर अपने गुणोंसे इस विश्वकी सृष्टि, रक्षा और संहार करती है । आप गुण और कर्मके साक्षी हैं, अतएव विश्वकी उत्पत्ति आदि त्रिविध कार्यावली आपकी चाही भी है और आप उन कर्मोंमें लिप्त नहीं हैं, इस कारण स्वार्थके अभा-वसे अनचाही भी है । आपको नमस्कार है ॥ ३८ ॥

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगदादिसूकरः ॥
कृत्वाग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुमिति ३९

जिन्होने जगत्-कारणरूप वराहमूर्ति धारण की और मुझको दाँतके ऊपर धारण कर मदमत्त मातंगकी नाईं रसातलपर्यन्त गम्भीर प्रलयसमुद्रसे ऊपर निकले और तदनन्तर अपने प्रतिद्वन्द्वी गजराजतुल्य हिरण्याक्ष दैत्यको युद्धमें क्रीड़ापूर्वक मारा उन भगवान् विभुको मैं प्रणाम करती हूँ" ॥ ३९ ॥

इति श्रीभागवते पंचमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंश अध्याय ।

भरतखंडकी श्रेष्ठताका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच-किंपुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं
लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं
तच्चरणसंनिकर्षाभिरतः परमभागवतो
हनुमान्सह किंपुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे महाराज! भगवान् आदिपुरुष, मर्यादा-पुरुषोत्तम, लक्ष्मणजीके बड़े भाई, सीताके पति श्रीरामचंद्रजीके चरणोंके निकट बैठ कर तन्मय चित्तसे परम भागवत हनुमान्जी सुदृढभक्तियोगप्रकाशपूर्वक किम्पुरुपखंडनिवासी लोगोंके साथ उनकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥ गन्धर्वगण श्रीरामचन्द्रके परमकल्याणकारी चरित्रका गान करते हैं, उसको 'आर्ष्टिषेण'सहित हनुमान्जी सुनते हैं और स्वयं भी अपने स्वामी भगवान् रामचंद्रकी महिमाको गाते हैं ॥ २ ॥ वह स्तुति-गान यह है-"हम उत्तमश्लोक (पवित्रकीर्ति) भगवान्को नमस्कार करते हैं । जितने अत्यन्त श्रेष्ठ चिन्ह, शील और व्रत हैं वे सब आपमें सर्वदा विराजमान हैं । आपका चित्त सदा ही संयत है । सम्पूर्ण विश्वके सब विषय आपके जाने हैं । आप साधुवादके ज्ञानकी कसौटी हैं । आप ब्रह्मण्यदेव, महापुरुष एवं महाराज हैं, आपको प्रणाम है ॥ ३ ॥ हम परमात्मारूप श्रीराम-चन्द्रके चरणोंकी शरण ग्रहण करते हैं । वेदान्तके वाक्योंमें जो "एक" कह कर प्रसिद्ध है, आप वही पदार्थ हैं । विशुद्ध अनुभव आपका स्वरूप है, आप शान्त हैं, स्वरूपका प्रकाश होनेसे सम्पूर्ण गुणोंकी जो जाग्रत् आदि विविध अवस्थाएँ हैं वे आपमें नहीं हैं । आप इस दृश्य संसारसे बिल्कुल अलग हैं, इस लिये आप नाम रूप और अभिमानसे शून्य हैं, आप केवल शुद्ध चित्त द्वारा ब्रह्मरूपसे पाये जा सक्ते हैं ॥ ४ ॥ राक्षसराज दुष्ट रावण वरदानके प्रभावसे मनुष्यके सिवा किसीके हाथसे नहीं मर सक्ता था । उसको मारनेके लिये आपने राजा दशरथके पुत्ररूपसे पृथ्वी पर अवतार लिया । किन्तु आपने केवल इसी उद्देश्यसे मनुष्य अवतार नहीं लिया । "स्त्रीसंग आदिसे होनेवाला दुःख दुर्निवार है" मनुष्योंको यह शिक्षा देना भी एक उद्देश्य था । यदि ऐसा न होता तो जो जगत्के आत्मा और ईश्वर हैं एवं जो अपने ही रूपमें आनन्द भोग करते हैं उनको सीताके वियोग आदिका दुःख कैसे संभव हो सक्ता है? ॥ ५ ॥ आप तीनो लोककी किसी वस्तुमें आसक्त नहीं हैं, आप धीर आत्मज्ञानी लोगोंके आत्मा और परम मित्र हैं, सुतराम् स्त्रीके वियोगसे दुःख पाना और वशिष्ठजीकी सम्मतिसे प्रिय

भाई लक्ष्मणको त्यागना कभी आपके योग्य नहीं हो सक्ता। ये सब चरित्र केवल मनुष्योंको शिक्षा देनेके ही उद्देश्यसे आपने किये हैं। हे भगवन् वासुदेव! आपको प्रणाम है ॥ ६ ॥ बड़े कुलमें जन्म, सुन्दरता, वाक्य अथवा सुंदर बुद्धि या जाति–कुछ भी, एक भक्तिके विना आपको नहीं सन्तुष्ट कर सक्ता। देखो हम वनचर वानर हैं, हममें उक्त बातोंमेंसे कोई बात नहीं है, तथापि भक्तवत्सल भगवन्! आपने भक्तिके वश हो कर हमको मित्र बनाया ॥ ७ ॥ अतएव सुर, असुर और नर या वानर कोई भी हो, सभीका एक मात्र कर्तव्य यही है कि तन मन धनसे श्रीरामचन्द्र जो साक्षात् मनुष्यशरीरधारी हरि हैं उनका भजन करे। क्योंकि बहुत थोड़े भजनको भी आप यथेष्ट समझते हैं। आपके भजनकी महिमा और क्या कहें? आप वैकुण्ठधाम जाते समय अयोध्यावासी सब प्रजाको अपने साथ स्वर्गको ले गये, आपसे बढ़ कर और कौन दीनदयालु होगा?" ॥ ८ ॥ ऐसे ही भरतखंडमें भगवान् नर नारायण आत्मज्ञानी लोगों पर अनुग्रह करनेके लिये वृद्धिशील धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, इन्द्रियजय और अहंकारशून्यता आदि व्रतोंका पालन करते हुए आत्मज्ञानकी प्राप्तिका निदान कारण जो कठिन तप है उसका अनुष्ठान करते हैं। सो जो हो, जिस 'पञ्चरात्र'में भगवान्का प्रभाव वर्णित है, सावर्णि मनुको भगवत्कथित सांख्ययोगसहित उसी पञ्चरात्रका उपदेश देनेके लिये देवर्षि नारदजी भारतवासी अनेक वर्ण और अनेक आश्रमके लोगों सहित परम भक्तिभावसे भगवान्का भजन करते हैं और इस मंत्रको जपते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ "हमलोग ऋषियोंमें श्रेष्ठ भगवान् नर–नारायणको प्रणाम करते हैं। वह जितेन्द्रिय, अहंकारहीन और अकिंचन हैं, वह निर्धन परमहंसोंके परम धन और परम गुरु हैं एवं अपने आत्मामें रमनेवाले साधुओंके स्वामी हैं, उनको हमारा नमस्कार है ॥ ११ ॥ जो जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहारके कर्ता हो कर भी 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा अभिमान नहीं करते, जो शरीरमें स्थित हो कर भी भूख प्यास आदि शारीरिक धर्मोंसे कातर नहीं होते, द्रष्टा (देखनेवाला) होने पर भी जिनकी दृष्टि दृश्य विषयों द्वारा दूषित नहीं होती, उन्हीं भगवान्को हमारा नमस्कार है। वह निर्लिप्त व सबसे विभिन्न एवं सर्वदर्शी हैं ॥ १२ ॥ हे योगेश्वर! योगीजन जन्मभर भक्तियोग करके उसके द्वारा अंतकालमें अहम्बुद्धि त्याग कर आपमें मन लगाते हैं–यही योगकौशल वा योगसिद्धि है। हिरण्यगर्भ भगवान्ने इसीको 'पुरुषयोग' कहा है ॥ १३ ॥ परन्तु इस लोक और परलोकके सुखका लोभी पुरुष जैसे स्त्री, पुत्र और धन आदिकी चिन्ता करता हुआ मृत्युसे डरता है वैसे ही जो व्यक्ति विद्वान् कहलाते हैं वे भी यदि मृत्युसे डरें तो जानना चाहिये कि उनका शास्त्रमें अभ्यास करना वृथा श्रममात्र हुआ–उन्होने उसका कुछ फल नहीं पाया ॥ १४ ॥ हे नाथ! आपकी मायासे हमारे शरीरादिमें हमारी

"मैं हूँ, मेरा है" इस प्रकारकी जो ममता है वह सहजमें नहीं छोड़ी जा सक्ती; अतएव आप अनुग्रह करके ऐसे योगकी शिक्षा दीजिये, जिसके द्वारा हम इस दुस्तर मायासे निस्तार पा सकें" ॥ १५ ॥ हे राजन्! भारतवर्षमें बहुत नदी और पर्वत हैं। यथा–मलय, मङ्गलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कोल्लक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेङ्कट, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, शुक्तिमान्, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्द्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गोमुख, इन्द्रकील, कामगिरि एवं और २ सैकड़ों हजारों पर्वत हैं। इन सब पर्वतोंसे निकली हुई नदियाँ और नद भी असंख्य हैं ॥ १६ ॥ उनमेंसे चंद्रवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावर्ता, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिन्धुनद, अन्धनद (ब्रह्मपुत्र), शोणनद, महानदी, वेदस्मृति, त्रिसामा, ऋषिकुल्या, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, ससवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी एवं विश्वा–ये महानदियाँ हैं। इन सब नदियोंका केवल नाम लेनेसे ही मनुष्य पवित्र हो जाता है, किन्तु भारतवासी लोग इनके जलोंमें स्नान करते हैं अतएव उनके भाग्यका क्या कहना है? ॥ १७ ॥ १८ ॥ पुरुषगण इस भरतखंडमें जन्मलाभ करके अपने २ सात्विक, राजस और तामस इन त्रिविध कर्मोंके द्वारा अपने लिये दिव्य, मानुषी और नारकी इन तीन गतियोंकी यथाक्रम कर्मानुसार सृष्टि करते हैं; क्योंकि लोगोंकी उत्तम, मध्यम और नीच गतियाँ उनके कर्मोंके ही अनुसार हुआ करती हैं। शास्त्रमें जिस वर्णके मोक्षका प्रकार जिस रीतिसे बताया गया है उस प्रकार चलनेसे मनुष्यमात्रकी मुक्ति भी इसी खंडमें होती है ॥ १९ ॥ जब विष्णुके भक्त महात्माओंके साथ उत्तम रीतिसे मिलन होता है तब परमात्मा भगवान् वासुदेवमें जो निष्काम भक्ति उपजती है वही मोक्षका यथार्थ स्वरूप है। उसीके द्वारा अनेक प्रकारकी गतियोंका मुख्य कारण जो अविद्याकी गाँठ है वह छिन्न हो जाती है ॥ २० ॥ अतएव "भारतवर्षमें जन्म होनेसे सभी पुरुषार्थ मिल सक्ते हैं" यह जान कर ही देवगण भी इस प्रकार कहते हैं–"अहो! इन सब मनुष्योंने कौन सुकृत किया है जो स्वयं भगवान् हरि बिना किसी साधन (उपाय) के इन पर प्रसन्न हुए। क्योंकि इन सब व्यक्तियोंने भारतभूमिके बीच मनुष्ययोनिमें मुकुन्दसेवाके योग्य एवं उपयोगी जन्म पाया है–हम ऐसा ही जन्म पानेकी ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं ॥ २१ ॥ हाय! हमने दुष्कर यज्ञ, तप, दान आदि कर के यह तुच्छ स्वर्ग पाया है, यहाँ कुछ भी सुख नहीं है–हमारा श्रम ही वृथा गया। क्योंकि यहाँ भगवान् नारायणके चरणकमलोंका स्मरण नहीं होता वरन् आत्यन्तिक इन्द्रियोंकी सेवा करनेसे ज्ञानशक्ति आच्छन्न हो जाती है ॥ २२ ॥ यहाँ आनेसे हमको एक कल्पकी परमायु मिली है, किंतु कल्प भरके बाद भ्रष्ट

हो कर हमें फिर जन्म लेना होगा, तो हमारे इस स्वर्गलोकके जीतनेकी अपेक्षा मनुष्यगण जो अल्प आयुवाले हो कर भारतभूमिमें उत्पन्न होते हैं, वही अच्छा है। क्योंकि वे लोग मनुष्य देह द्वारा थोड़े ही समयमें अपने २ कर्मोंका संन्यास (त्याग) करके भगवान् हरिके निर्भय परमपदको भली भाँति प्राप्त हो सक्ते हैं ॥ २३ ॥ जिस स्थानमें अमृतमयी हरि-कथारूप नदी नहीं बहती, नृत्यआदि महोत्सवसंयुक्त यज्ञेश्वर हरिकी पूजा नहीं होती एवं जहाँ हरि भगवान्के आश्रयमें रहनेवाले हरिभक्त साधु नहीं हैं वह स्थान इन्द्रलोक होने पर भी रहने योग्य नहीं है ॥ २४ ॥ किन्तु जो सब प्राणी इस भारतभूमिमें जन्म पा कर भी ज्ञान, क्रिया और मुक्तिके लिये यत्न नहीं करते वे बहेलियेके जालमें फँसे हुए पक्षियोंकी भाँति एक बार किसी तरह बंधनसे छूट कर भी असावधानीके दोपसे फिर बंधनको प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥ अहो! भारतवासियोंका कैसा सौभाग्य है! ये लोग श्रद्धापूर्वक भिन्न २ भाग करके विधि एवं मंत्र द्वारा जो पुरोडाशादि हवन करते हैं उसे सब कामनाएँ देनेवाले स्वयंपूर्ण एक भगवान् हरि इन्द्रादि भिन्न २ नामोंसे बुलाये जा कर महाआनन्दसे ग्रहण करते हैं ॥ २६ ॥ यह बात सत्य है कि भगवान् सब कामनाएँ पूर्ण करते हैं, परन्तु प्रार्थना करनेसे हरि भगवान् अभीष्ट वस्तु ही देते हैं परमार्थ नहीं देते; क्यों कि अभीष्ट मिलनेके बाद भी अर्थीको प्रार्थना करते देखा जाता है। किन्तु जो लोग निष्काम हो कर भजते हैं उनको सब अभिलाषाएँ पूर्ण करनेवाले अपने चरणकमल ही दे देते हैं, जिससे कोई कामना नहीं रहती ॥ २७ ॥ अतएव हम जिस याग–यज्ञका फलस्वरूप यह स्वर्गसुख भोग रहे हैं उसमें यदि कुछ भी सुकृत बचा हो तो उससे भरतखंडमें हमारा जन्म हो। क्योंकि ऐसा होनेसे हमको यह स्मरण रहेगा कि भगवान् हरि ही एक सेवनीय हैं। जो लोग हरिको भजते हैं, भक्तवत्सल हरि उनका मंगल करते हैं ॥ २८ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! कोई २ पण्डित कहते हैं कि जंबूद्वीपके आठ उपद्वीप भी हैं। सगर राजाके पुत्रोंने अपने पिताके यज्ञका घोड़ा खोजते समय इस पृथ्वीके चारो ओर खोद कर उनकी रचना की थी ॥ २९ ॥ उन उपद्वीपोंके नाम ये हैं—स्वर्णप्रस्थ, चंद्रशुक्र, आवर्तन, रमणक, मंदरहरिण, पाञ्चजन्य, सिंहल और लंका ॥ ३० ॥

एवं तव भारतोत्तम जम्बूद्वीपवर्षविभागो यथोपदेशमुपवर्णित इति ॥ ३१ ॥

हे भारतश्रेष्ठ! जंबूद्वीपके खंड-विभागके सम्बन्धमें मैंने अपने गुरु व्यासदेवसे जैसा सुना था वैसा ही तुमको सुना दिया ॥ ३१ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंश अध्याय ।

लोकालोक पर्वतकी स्थितिका वर्णन ॥

श्रीशुक उवाच—अतः परं प्लक्षादीनां प्रमाणलक्षणसंस्थानतो वर्षविभाग उपवर्ण्यते ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं । इसके उपरान्त प्लक्ष आदि छः द्वीपोंके प्रमाण और लक्षण द्वारा उनके विभागका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥ सुमेरु पर्वत जैसे जम्बूद्वीपसे घिरा हुआ है वैसे ही जम्बूद्वीप भी लक्षयोजन विस्तीर्ण खारी सागरसे घिरा हुआ है । प्लक्षद्वीपका विस्तार जम्बूद्वीपके विस्तारसे दूना है । जैसे बाहरी भागमें स्थित उपवनसे खाई घिरी हो वैसे ही खारी समुद्र भी प्लक्षद्वीपसे घिरा हुआ है। प्लक्षद्वीपमें एक बड़ा भारी प्लक्ष (पकरिया) का वृक्ष है, उसकी ऊँचाई जम्बूवृक्षके तुल्य है । इस सुवर्णमय प्लक्ष वृक्षके होनेसे ही उक्त द्वीपका नाम "प्लक्ष" हुआ है, वहाँ सप्तजिह्व अग्नि अवस्थित हैं । इसद्वीपके स्वामी राजा प्रियव्रतके पुत्र इध्मजिह्व थे । उन्होने उक्त द्वीपके सात खंड करके अपने सात पुत्रोंको एक २ खंडका राज्य दे कर समाधियोगसे ईश्वरमें मन लगा कर संसारको त्याग दिया ॥ २ ॥ इध्मजिह्वके बनाये प्लक्षद्वीपके सात खंडोंके नाम शिव, यवयस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत और अभय हैं । जो खंडोंके नाम हैं वे ही उनके राजोंके नाम हैं । इन सातो खंडोंमें यों तो हजारों पर्वत और नदियाँ हैं किन्तु प्रसिद्ध २ सात ही नदी और सात पर्वत हैं ॥ ३ ॥ वहाँ के सात सीमापर्वत ये हैं—मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव एवं मेघमाल । और अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा और सत्यम्भरा ये महानदियाँ हैं । जैसे भारतवर्षमें ब्राह्मणादि चार वर्ण हैं वैसे वहाँ हंस, पतङ्ग, ऊर्ध्वायन और सत्याङ्ग नाम चार वर्ण हैं । उक्त नदियोंमें स्नान करनेसे उनकी रजोगुण और तमोगुणकी प्रवृत्तियाँ नष्ट हो गई हैं । उनकी परमायु एक हजार वर्षकी है । वे देखनेमें देवतुल्य हैं और उनके पुत्रोंकी उत्पत्ति भी देवतुल्य है । वे लोग वेद-विद्याकेद्वारा आत्मस्वरूप त्रिवेदमय स्वर्गके द्वार भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं ॥ ४ ॥ उपासनाका मंत्र यह है—"विष्णुकी मूर्ति जो सूर्यदेव हैं उनके हम शरणागत हैं, वह अनुष्ठीयमान और प्रतीयमान धर्म एवं वेद व शुभाशुभ फलके अधिष्ठाता हैं" ॥ ५ ॥ प्लक्ष आदि पाँच द्वीपोंमें पुरुषोंकी आयु, इन्द्रिय, सामर्थ्य, साहस, बल, विक्रम, बुद्धि आदि सिद्धियाँ स्वभावसिद्ध एवं समान हैं ॥ ६ ॥ प्लक्षद्वीप जैसे अपने समान परिमाणवाले ऊँखके रसके सागरसे घिरा हुआ है वैसे ही शाल्मलद्वीप अपने समान परिमाणवाले मद्यजलके समुद्रसे घिरा हुआ है। शाल्मलद्वीपका विस्तार प्लक्षद्वीपके विस्तारसे दूना है ॥ ७ ॥ शाल्मलद्वीपमें

शाल्मली (सेमर) का वृक्ष है, वह प्लक्षवृक्षके समान विस्तृत और विशाल है। उस शाल्मलीके वृक्ष पर ही पक्षिराज गरुड़के रहनेका स्थान है–ऐसा पण्डित लोगोंका मत है । गरुड़जी जिस समय भगवान्‌को ले कर चलते हैं तब उनके पक्षोंसे ईश्वरकी स्तुतिके मंत्रोंका उच्चारण होता है, इसी कारण गरुड़जीका नाम "छन्दःस्तोता" है । शाल्मलीका वृक्ष होनेसे ही उस द्वीपका नाम शाल्मलद्वीप पड़ा है ॥८॥ इस द्वीपके स्वामी प्रियव्रत राजाके पुत्र यज्ञवाह थे। उन्होने भी अपने द्वीपके सात खंड करके सात पुत्रोंको उनका राज्य दे दिया। उन सात खंडोंके नाम सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन और अविज्ञात। ये ही नाम वहाँके राजोंके भी हैं ॥ ९ ॥ इन खंडोंमें भी सात ही सात प्रसिद्ध पर्वत और नदियाँ हैं। स्वरस, शतशृंग, वामदेव, कुंद, कुमुद, पुष्पवर्ष एवं सहस्रश्रुति, ये सात सीमापर्वत और अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नंदा एवं राका ये सात महानदियाँ हैं॥ १०॥ वहाँके श्रुतधर, वीर्यधर, वसुंधर एवं इषंधर नामक चारो वर्ण वेदमय आत्मस्वरूप भगवान् सोमकी वेदविहित विधिसे सदैव उपासना करते हैं और यों स्तुति करते हैं ॥ ११ ॥ "भगवान् सोमदेव अपनी किरणोंसे कृष्ण और शुक्लपक्षमें क्रमशः पितृगण और देवगणको अन्न पहुँचाते हुए हम सब प्रजाओंके राजा हों" ॥ १२ ॥ सुरोद समुद्रके बहिर्भागमें कुशद्वीप है, वह परिमाणमें पूर्वोक्त प्लक्षद्वीपकी अपेक्षा दूना है। उल्लिखित द्वीपकी नाई यह भी अपने समान परिमाणवाले घृतसागरसे घिरा हुआ है। इस द्वीपमें देव-निर्मित एक कुशवृक्ष है, उसीके कारण इसे कुशद्वीप कहते हैं। वह कुशवृक्ष दूसरे अग्निके तुल्य प्रकाशमान हो कर अपनी कोमल शिखाओंकी कान्तिसे सब दिशा-ओंको प्रकाशित करता है ॥ १३ ॥ प्रियव्रतके पुत्र हिरण्यरेता उस द्वीपके स्वामी थे। उन्होने भी कुशद्वीपके सात खंड कर डाले और उन खंडोंमें उन्ही नामवाले अपने सात पुत्रोंको राजा कर दिया, तदनन्तर आप तप करने चले गये ॥ १४ ॥ वसु, वसुदान, दृढ़रुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और वामदेव ये ही सात खंडोंके और उनके स्वामी राजकुमारोंके नाम हैं। इन सातो खंडोंमें सात ही प्रसिद्ध पर्वत और सात ही महानदियाँ हैं। बभ्रु, चतुःशृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा एवं द्रविण ये सात सीमापर्वत और रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविंदा, श्रुतविंदा, देवगर्भा, घृतच्युता एवं मंत्रमाला ये सात महानदियाँ हैं। इन नदियोंमें स्नान करनेसे पवित्र कुशद्वीपनिवासी कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक संज्ञक चारो वर्ण कर्मकौशलद्वारा भगवान् अग्निकी उपासना करते हैं और यह कहते हैं॥ १५ ॥ १६ ॥ "हे जातवेदस अग्नि! तुम परब्रह्मका हव्यान्न वहन करनेवाले हो । अतएव ईश्वरके अंग देवतोंके यज्ञद्वारा परमपुरुष भगवान्‌की पूजा कर जो इन्द्रादिनामका उच्चारण करके हव्य हवन किया जाता है उसको तुम ईश्वरके उन्ही २ अंगों तक पहुँचाते हो" ॥ १७ ॥

ऊपर कहे हुए कुशद्वीपके बाहर क्रौञ्चद्वीप है। यह कुशद्वीपसे दूना बड़ा है। कुशद्वीप जैसे घृतोद सागरसे घिरा हुआ है वैसे ही यह द्वीप अपने समान परिमाणवाले क्षीरसागरसे घिरा हुआ है। इस द्वीपमें क्रौञ्चनाम महान् पर्वत है; इसी लिये इस द्वीपका नाम क्रौञ्चद्वीप पड़ा है ॥ १८ ॥ हे राजन्! यद्यपि कार्तिकेयजीकी शक्तिके प्रहारसे इस पर्वतके नितंबस्थल और निकुंज उन्मथित हो गये तथापि उक्त पर्वत चारो ओरसे क्षीरसागर द्वारा घिरे रहने कारण एवं वरुणजीकी कृपादृष्टिसे निर्भय हो गया ॥ १९ ॥ इसमें भी प्रियव्रतके पुत्र घृतपृष्ठनाम महाराज थे। उन्होने भी अपने द्वीपके सात खंड करके अपने सात पुत्रोंको बाँट दिये और आप ज्ञानी होकर परमकल्याणमय यशवाले जगन्मय हरिके चरणारविन्दोंका आश्रय ग्रहण किया ॥२०॥ घृतपृष्ठके सात पुत्रोंके और सात खंडोंके भी नाम ये हैं— आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति। इन सात खंडोंमें सात ही प्रसिद्ध पर्वत और सात ही महानदियाँ हैं। शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपवर्हण, नन्द, नन्दन, एवं सर्वतोभद्र ये सात पर्वत हैं ॥ २१ ॥ और अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, रूपवती, पवित्रवती एवं शुक्ला ये सात नदियाँ हैं। इन नदियोंका जल परमपवित्र और निर्मल है। वहाँके पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवकसंज्ञक चारो वर्ण इन नदियोंका जल पीते हैं एवं जलपूर्ण अंजलिसे जलमय भगवान्‌की पूजा करते हैं और यह कहते हैं ॥ २२ ॥ "हे सम्पूर्ण जल! तुमको ईश्वरसे सामर्थ्य प्राप्त हुई अतएव भूः, भुवः, स्वः इन तीनो लोकोंको पवित्र करते हो। हम तुम्हारा स्पर्श करते हैं, तुम हमारे शरीरको पवित्र करो। तुम्हारा स्वभाव ही पापनाशक है, इस कारण अनायास ही हमारे पातक नाश कर सक्ते हो" ॥ २३ ॥ इस द्वीपके बाद शाकद्वीप है, उसका विस्तार क्रौंचद्वीपसे दूना अर्थात् बत्तीस लाख योजन है और अपने समान परिमाणवाले दहीके समुद्रसे घिरा हुआ है। इस द्वीपमें शाक नाम एक विशाल वृक्ष है, उसी वृक्षसे इस द्वीपका नाम शाकद्वीप पड़ा है। इस वृक्षकी सुगंध बहुत ही उत्तम है, जिससे द्वीप भर सुवासित है ॥२४॥ प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि इस द्वीपके स्वामी थे, उन्होने भी इस द्वीपके सात खंड करके अपने पुत्रोंको बाँट दिये और स्वयं भगवान् अनन्तमें मन लगा कर तप करनेके लिये वनको चले गये। उन सात खंडोंके एवं उनके स्वामी सातो राजकुमारोंके नाम एक ही हैं; यथा पुरोजव, मनोजव, पवमान धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप एवं विश्वाधार। इन सात खंडोंमें भी सात ही मुख्य सीमापर्वत व सात महानदियाँ हैं। ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल और महासन ये पर्वत और अनघा, आयुर्दा, उभयसृष्टि, अपराजिता, पंचपदी, सहस्रस्रुति एवं निजधृति ये नदियाँ हैं ॥२५॥२६॥२७॥ उस द्वीपके ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत और अनुव्रत नामक चार वर्ण प्राणायाम द्वारा रजोगुण और तमोगुणको नष्ट करके परमसमाधियोगसे वायुरूपी भगवान्‌की उपासना करते एवं यह कहते हैं

॥ २८ ॥ "जो प्राणआदि व्यवहार द्वारा सब प्राणियोंके भीतर प्रवेश करके उनका पालन करते हैं, जो सबके अन्तर्यामी साक्षात् ईश्वर हैं, जिनके अन्तरमें सम्पूर्ण जगत् वर्तमान है वह हमारी रक्षा करें" ॥ २९ ॥ ऐसे ही दधिमंडोद समुद्रके बाद पुष्करद्वीप है, इसका परिमाण शाकद्वीपसे दूना है। इस द्वीपमें एक बड़ा भारी पुष्कर (पद्म) है, उसमें अग्निशिखरके समान एक लाख निर्मल सुवर्णमय कमल-पत्र सर्वदा प्रकाशित होते रहते हैं। उसी कमलमें भगवान् कमलासन ब्रह्माके बैठनेका स्थान बना है। इस शाकद्वीपको इसके समान परिमाणवाला मीठे जलका सागर घेरे हुए है। पुष्करद्वीपमें मानसोत्तर नाम एक पर्वत है। वही पूर्व और पश्चिम खंडकी सीमाका विभाग करता है, उसका विस्तार और ऊँचाई दस हजार योजन है। इस द्वीपकी चारो दिशाओंमें इन्द्र आदि मुख्य २ चारो लोक-पालोंकी पुरियाँ बनी हुई हैं। उन्ही पुरियोंके ऊपर सुमेरुकी प्रदक्षिणा कर रहे सूर्यके रथका संवत्सरस्वरूप चक्र, देवतोंके दिन-रात्रि अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायनके समयमें घूमा करता है। इस द्वीपके स्वामी राजा प्रियव्रतके पुत्र वीतिहोत्र नाम थे, उनके दो पुत्र रमणक और धातक नाम थे, उन्होने अपने द्वीपके दो खंड करके अपने पुत्रोंको बाँट दिये एवं आप अपने पूर्वजोंकी भाँति भगवान्की आराधनमें प्रवृत्त हुए। दोनो खंडोंके भी रमणक और धातक ये ही नाम हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ वहाँके रहनेवाले पुरुष ब्रह्मसालोक्यादि साधन द्वारा कमलासनमूर्ति भगवान्की आराधना करते हैं और यह कहते हैं ॥ ३२ ॥ "जो उस प्रसिद्ध कर्मफलका चिन्ह हैं जिससे ब्रह्मका प्रकाश होता है, जिनकी एक पर-मेश्वरमें ही निष्ठा है, जो अद्वितीय हैं, लोग भक्तिपूर्वक जिनका पूजन करते हैं–उन्ही भगवान्को हम भी प्रणाम करते हैं" ॥ ३३ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं** । उक्त शुद्धजलके सागरके बाद सूर्यादिके प्रकाशसे युक्त और प्रकाशहीन देश है। इन दोनो प्रकारके देशोंका विभाग करनेके लिये (इन दोनो देशोंके बीचमें) लोकालोक नाम पर्वत अवस्थित है ॥ ३४ ॥ मानसोत्तर और सुमेरु पर्वतके बीचमें जितनी भूमि है उतनी ही भूमि मीठे जलवाले सागरके बाद भी है; वहाँ प्राणी भी रहते हैं। उसके बाद शीशेके समान स्वच्छ सुवर्णमय भूमि है, उसमें कोई वस्तु गिरने पर फिर नहीं मिलती। इस लिये उस भूमिमें केवल देवतालोग विहार करते हैं; अन्य कोई प्राणी नहीं रहते* ॥ ३५ ॥ उक्त दोनो खंडोंके बीचमें स्थित पर्वतका नाम लोकालोक

*मानसोत्तर और सुमेरु पर्वतके बीचमें साढ़े सात लाख अधिक डेढ़ करोड़ योजन पृथ्वी है, इतनी ही भूमि मीठे जलवाले समुद्रके बाद भी है। फिर सोनेकी भूमि है उसका परिमाण आठ करोड़ उन्तालीस लाख योजन है और आधे पुष्करद्वीपसे लेकर शुद्धोद समुद्र तक ९६ लाख योजन हुए। ऐसा होने पर सुमेरु और लोकालोकमें साढ़े बारह करोड़ योजनका अंतर हुआ; जिसका वर्णन आगे करेंगे। ऐसाही शैवतन्त्रमें कहाहै यथा—

"कोटिद्वयं त्रिपञ्चाशल्लक्षाणि च ततः परम्। पञ्चाशच्च सहस्राणि सप्त द्वीपाःससागराः॥ ततो हेममयी भूमिर्दशकोटिर्वरानने। देवानां क्रीडनार्थाय"—इति।

इस लिये है कि वह लोक (सूर्यादिके प्रकाशसे युक्त स्थान) और अलोक (उनके प्रकाशसे रहित स्थान) को अलग २ करता है ॥ ३६ ॥ परमेश्वरने उक्त पर्वतको तीनो लोकके प्रान्तभागमें सीमारूप स्थापित किया है। यह पर्वत सूर्यसे ले कर ध्रुवलोक पर्यन्तके ज्योतिर्गणकी किरणोंको अपने दूसरी ओर नहीं जाने देता; इतना चौड़ा, लंवा और ऊँचा है। सब ज्योतिर्गण इसी ओर त्रिलोकीको प्रकाशित करते रहते हैं। लोकालोक पर्वत ध्रुवलोकसे भी ऊँचा होनेके कारण त्रिलोकीकी सीमाके समान है ॥ ३७ ॥ राजन्! भूगोलके जाननेवाले पण्डितोंने इस प्रकार नाम और आकार द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलके लोकोंकी रचनाका वर्णन किया है। उक्त लोकालोक पर्वतका परिमाण साढ़े बारह करोड़ योजन अर्थात् पचास करोड़ योजन-परिमित भूगोलका चतुर्थ अंश है ॥ ३८ ॥ जगद्गुरु ब्रह्माने लोकालोक पर्वतके ऊपर चारो दिशाओंमें चारो दिग्गजोंको स्थापित किया है। उन दिग्गजोंके नाम ये हैं—ऋषभ, पुष्करचूड, वामन और अपराजित; ये दिग्गज ही सब लोकोंकी स्थितिका कारण हैं ॥ ३९ ॥ जो भगवान् महापुरुष महाविभूतिके पति एवं सब प्राणियोंके अन्तर्यामी हैं वह इन दिग्गजोंके एवं अपनी विभूति जो महेन्द्रादि लोकपाल हैं उनके विविध वीर्योंको बढ़ानेके लिये एवं सब लोकोंका मंगल करनेके लिये इस लोकालोक पर्वतपर विराजमान हैं। वह वहाँ निष्कर्मा हो कर नहीं अवस्थित हैं, ज्ञान, वैराग्य, अष्ट ऐश्वर्य और अष्ट सिद्धि आदि उपलक्षणयुक्त जो अपना विशुद्ध सत्त्व (प्रभाव) है उसे धारण किये हुए प्रकट करते हैं एवं विष्वक्सेन आदि प्रधान २ पार्षदोंके साथ, अपने विशाल बाहुओंमें श्रेष्ठ शस्त्र धारण किये हुए, लोकालोक पर्वत पर त्रिलोकीके चारो ओर विचरते रहते हैं ॥४०॥ भगवान् कल्पपर्यन्त इसी प्रकार लोकमंगलके लिये अपनी योगमाया द्वारा धारण किये हुए उल्लिखित वेषसे सर्वदा वहाँ विचरते हैं ॥ ४१ ॥ हे राजन्! पहले लोक और अलोक नाम दो विभागोंके प्रसंगमें अलोक-विभागको जितना मध्यमें विस्तृत बता चुके हैं उसीसे उसका परिमाण समझ लो। क्योंकि यह अलोक-विभाग लोकालोकाचलके बहिर्भागमें अवस्थित है; अतएव इसका परिमाण सुमेरुके एक ओर साढ़े बारह करोड़ योजन है। कविगणका कथन है कि इस अलोक-विभागके बाद केवल योगेश्वर ही जा सक्ते हैं। मरे हुए द्विजपुत्रको लानेके समय भगवान् श्रीकृष्णने यह स्थान अर्जुनको दिखाया था। यह स्थान परमपवित्र है ॥ ४२ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! सूर्यनारायण ब्रह्माण्डके मध्यस्थलमें हैं; स्वर्ग और भूमिमें जो अन्तर है वही ब्रह्माण्डका मध्यस्थान है। सूर्य और अण्डगोलक—इन दोनोके मध्यस्थानका परिमाण सर्वतोभावसे पचीस करोड़ योजन है ॥ ४३ ॥ सूर्यका एक नाम मार्तण्ड भी है। इसका कारण यही है कि मृत अर्थात् अचेतन अंड (ब्रह्मांड) में वह वैराज (चेतन) रूपसे प्रवेश करते हैं। सूर्यदेव

हिरण्मय अंडसे प्रकट हुए हैं, इस कारण उनको हिरण्यगर्भ भी कहते हैं ॥ ४४ ॥ हे राजन्! सूर्यके ही द्वारा दिशा, आकाश, पृथ्वी एवं अन्यान्य भागोंका विभाग होता है। भोगस्थान और मोक्षस्थान, नरक एवं अतलादि सब प्रकारके लोकोंका पृथक् पृथक् विभाग भी सूर्य ही करते हैं। अतएव सूर्यकी उपासना करना कर्तव्य है ॥ ४५ ॥

देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम् ॥
सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥ ४६ ॥

सूर्य ही—देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, सरीसृप, लता और सब बीजोंके आत्मा एवं नेत्र (के अधिष्ठाता देवता) व ईश्वर (का स्वरूप) हैं ॥ ४६ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंश अध्याय।

राशिसंचार और उसके द्वारा लोकयात्राका निरूपण।

श्रीशुक उवाच—एतावानेव भूवलयस्य संनिवेशः
प्रमाणलक्षणतो व्याख्यातः ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले। हे राजन्! भूमण्डलका संस्थान विस्तारमें पचास करोड़ योजन और ऊँचाईमें पचीस करोड़ योजन है; मैंने तुमसे प्रमाण और लक्षणसहित इसका वर्णन किया। स्वर्गमण्डलका परिमाण जाननेवाले पण्डित लोग इसी भूमण्डलके परिमाणसे ही स्वर्गमण्डलके परिमाणका निर्देश करते हैं ॥ १ ॥ जैसे चना, उर्द आदि दो दलवाले अन्नोंमें एक दलका जो परिमाण होता है वही दूसरे दलका भी होता है, वैसे ही भूमण्डल और स्वर्गमण्डल समपरिमाणमें विभक्त हैं। इन दोनोमें जो आकाश है वह दोनो खंडोंकी संधियोंको जोड़ता है, उसीका नाम अन्तरिक्ष है। जैसे चना और उर्द आदिमें अँखुवा होता है ॥ २ ॥ भगवान् सूर्य इसी अन्तरिक्षके मध्यस्थलमें स्थित हो कर त्रिलोकीको ताप पहुँचाते हैं एवं अपनी किरणोंसे त्रिलोकीको प्रकाशित करते हैं। सूर्य ही अपनी उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवसंज्ञक मंद, शीघ्र और समान गतियोंसे यथासमय आरोहण, अवरोहण और समान स्थानमें स्थितिको प्राप्त हो कर मकर आदि बारह राशियोंमें दिन और रात्रियोंको बडा, छोटा और समान करते हैं ॥ ३ ॥ अर्थात् जब सूर्यदेव मेष और तुला राशिमें गमन करते हैं तब दिन और रात्रि बराबर होते हैं, जब वृष आदि पाँच राशियोंमें भ्रमण करते हैं तब दिन बड़े होने लगते हैं

और हर महीने एक २ घड़ी रात छोटी होती है ॥ ४ ॥ और जब वृश्चिक आदि पाँच राशियोंमें भ्रमण करते हैं तब रातें बड़ी होती हैं और हर महीने एक २ घड़ी दिन छोटे होते जाते हैं ॥ ५ ॥ वस्तुतः दक्षिणायनके आरंभ तक दिन बढ़ते हैं एवं उत्तरायणके आरंभ तक रातें बढ़ती हैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार सूर्यकी मंद, शीघ्र और समान गति द्वारा मानसोत्तर पर्वतकी प्रदक्षिणाका परिमाण नव करोड़ इक्यावन लाख योजन है—ऐसा पण्डितजन कहते हैं । उल्लिखित मानसोत्तर गिरि पर सुमेरुके पूर्व इन्द्रकी देवधानी पुरी है, दक्षिण ओर यमराजकी संयमनी पुरी है, पश्चिम ओर वरुणकी निम्लोचनी पुरी है एवं उत्तर ओर चन्द्रकी विभावरी पुरी है । इन सब पुरियोंमें सुमेरुके चारो ओर विशेप २ समयमें उदय, मध्यान्ह, अस्त और अर्धरात्रि होती है । ये सब उदय आदि ही प्राणियोंकी कर्मोंमें प्रवृत्ति और निवृत्तिका कारण हैं ॥ ७ ॥ जो सब प्राणी सुमेरुमें रहते हैं उनको सूर्य नारायण सदैव दिवसमध्यगत हो कर उत्ताप देते रहते हैं । वह नक्षत्रोंके अभिमुख हो कर भ्रमण करते हैं, इससे यद्यपि सुमेरुको बाईं ओर छोड़ कर जाते हैं तथापि दक्षिणावर्तप्रवर्तक प्रवहनाम वायु ज्योतिश्चक्रको घुमाता रहता है—इस कारण सूर्यदेव प्रतिदिन सुमेरुको दक्षिण ओर करके जाते हैं । अतएव चक्रगतिके कारण, बहुत दूरसे जब सूर्य पृथ्वीसे मिले हुए देखे जाते हैं वही उदय है और उनका आकाश पर चढ़े हुए देखा जाना ही मध्यान्ह है एवं भूमिमें प्रविष्टकी नाईं देखा जाना ही अस्त है और ऐसे ही अधिकदूरगमन अर्धरात्रि है । वेदमें भी समुद्रतीरस्थ दृष्टिके क्रमसे कथित है कि सूर्यदेव प्रातःकाल जलसे उदित होते हैं और सायंकाल जलमें प्रवेश करते हैं । वस्तुतः यह 'श्रुति'का व्यवहारमात्र है—सत्य नहीं है । सूर्य जहाँ उदित होते हैं उसके समानसूत्रपातके स्थानमें ही अस्त होते हैं । मध्यान्हके समय वह जहाँके प्राणियोंको शरीरमें पसीना निकालते हुए उत्ताप (गर्मी) पहुँचाते हैं उसीके समानसूत्रपातके स्थानमें ही अर्धरात्रि करते हुए उन्हे निद्राके वश करते हैं । अतएव लोग जो उनका अस्त होना देख पाते हैं उसका प्रयोजन यही है कि उनको फिर वहाँसे सूर्य नहीं देख पड़ते । वास्तवमें सूर्यका उदय अस्त कुछ भी नहीं है, उनका देख पड़ना और न देख पडना ही उदय अस्त है*

*यथा—"उदयास्तमये चैव सर्वकालं तु सम्मुखे । दिशास्वशेषासु तथा मैत्रेय विदिशासु च ॥ यैर्यत्र दृश्यते भास्वान् स तेषामुदयः स्मृतः । तिरोभावश्च यत्रैव तत्रैवास्तमनं रवेः ॥ नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सतः । उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं रवेः ॥ शक्रादीनां पुरे तिष्ठन्स्पृशत्येप पुरत्रयम् । विकर्णौ द्वौ विकर्णस्थस्त्रीन्कोणान्द्वे पुरे तथा ॥" ... विष्णुपुराणे ।

अतएव तत्रैवोक्तम्—"सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरुरुत्तरतः स्थितः"—अर्थात् यतो यत्र यः पश्यति सैव तस्य प्राची तस्य च वामतो मेरुस्तिष्ठति ।

॥८॥९॥१०॥ इसी प्रकार जब सूर्यदेव इन्द्रकी पुरीसे चलते हैं तब पन्द्रह घड़ीमें यमपुरी तक पहुँचते हैं, अर्थात् सवा दो करोड़ और पचीस सहस्र अधिक साढ़े बारह लाख योजन भ्रमण कर डालते हैं ॥११॥ सूर्यदेव यों ही वहाँसे वरुण और चन्द्रमाकी पुरीमें जा कर फिर इन्द्रपुरीमें प्रवेश करते हैं। ऐसे ही अन्य २ चन्द्र आदि सब ग्रह भी नक्षत्रगणसहित ज्योतिश्चक्रमें उदित और अस्त होते हैं। इसी प्रकार सूर्यका वेदमय रथ एक मुहूर्तमें इन्द्र आदिकी चारो पुरियोंके चारो ओर चौंतीस लाख आठ सौ योजनके हिसाबसे भ्रमण करता हुआ घूमता है, ॥ १२ ॥ इस रथका एक ही चक्र है, जिसका नाम 'सम्वत्सर' है। शास्त्रोंमें कहा है कि बारह महीने ही उसके बारह आरे (अग्रभाग) हैं एवं तीन चौमासे ही उसकी नाभि (चक्रका मध्यभाग) हैं। उसके जुएका एक सिरा सुमेरुके मस्तक पर है और दूसरा सिरा मानसोत्तर पर्वत पर धरा हुआ है। उस मानसोत्तर पर्वत पर स्थापित सूर्यरथ तैलयन्त्रचक्र (कोल्हू) के समान नित्यप्रति परिभ्रमण करता रहता है ॥ १३ ॥ सूर्यरथके दो अक्ष हैं। उनमें प्रथम अक्ष (जुआ) सुमेरुसे मानसोत्तर तक विस्तृत है। उसका परिमाण साढ़े सात लाख अधिक डेढ़ करोड़ योजन है। और दूसरे अक्षका परिमाण, उसका चतुर्थांश अर्थात् साढ़े सैंतीस हजार अधिक तैंतालीस लाख योजन है। प्रथम अक्षमें दूसरे अक्षका पूर्वभाग बँधा हुआ है। वायुपाशके द्वारा उसका ऊपरी भाग तैलयन्त्रके समान ध्रुवलोकमें लगा हुआ है ॥ १४ ॥ इस रथका नीड़ अर्थात् रथीके बैठनेका स्थान छत्तीस लाख योजन लंबा और नव लाख योजन चौड़ा है। इस रथके 'युग'का परिमाण भी उतने ही योजन है। इस रथमें गायत्री आदि सात छन्दस्वरूप घोड़े अरुण सारथीके द्वारा नियुक्त हो कर आदित्यदेवको वहन करके आकाशमार्गमें भ्रमण करते हैं ॥ १५ ॥ इस रथ पर अरुणजी सारथीका काम करते हैं, उनका मुख सूर्यदेवकी ओर रहता है और पीठ घोड़ोंकी ओर रहती है ॥ १६ ॥ अँगूठेकी पोर बराबर डीलवाले साठ हजार बालखिल्या ऋषिगण सूर्यकी ओर मुख किये रथके आगे २ स्तुति करते हुए पिछले पैरों चलते हैं ॥ १७ ॥ तथा भिन्न २ ऋषि, गंधर्व, अप्सरा, सर्प, यक्ष, दैत्य और देवगण भी प्रत्येक महीनेमें भिन्न २ कर्मोंसे परमात्मारूप भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं; ये सब देवता आदि संख्यामें चौदह २ हैं। किन्तु युग्म २ करके सात गण हो रहते हैं ॥ १८ ॥

लक्षोत्तरं सार्धनवकोटियोजनपरिमण्डलं भूवलयस्य
क्षणेन सगव्यूत्युत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुङ्क्ते ॥ १९ ॥

राजन् ! आदित्य देव, इस प्रकार ऋषि आदिके गणसे परिवृत होकर साढ़े नव

करोड़ एक लाख दो योजन परिमित भूमण्डलके दो कोस अधिक दो हजार योजनको एक क्षणमें नाँघ जाते हैं ॥ १९ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंश अध्याय ।

ज्योतिश्चक्रमें उत्तरोत्तर सोम, शुक्र आदिके स्थानोंका एवं उनकी गतिके अनुसार मनुष्योंके इष्ट और अनिष्टका वर्णन ।

राजोवाच—यदेतद्भगवत आदित्यस्य मेरुं ध्रुवं च प्रदक्षिणेन परिक्रामतो राशीनामभिमुखं प्रचलितं चाप्रदक्षिणं भगवतोपवर्णितममुष्य वयं कथमनुमिमीमहीति ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने शुकदेवजीसे पूछा कि हे ब्रह्मन्! आपने यह जो वर्णन किया कि "भगवान् आदित्य, सुमेरु और ध्रुवकी प्रदक्षिणा करके भ्रमण करते २ सब राशियोंके सामने अथच प्रदक्षिण नहीं—इस भाँति भ्रमण करते हैं।" यह आपका कथन हमारी विवेचनामें परस्पर विरुद्ध जान पड़ता है। इस विषयका हम कैसे अनुमान करें? ॥१॥ योगिवर शुकदेव राजाका संशय दूर करनेके लिये बोले—महाराज! जैसे कुँभारका चाक जब एक ओर मुख करके भ्रमण करता रहता है तब उस चाकके आश्रय पर स्थित चींटी आदि जीव, जो अन्य ओर मुख करके भ्रमण करते हैं, उनकी उसी चाक पर भिन्न २ स्थलमें भिन्न २ प्रकारकी गति देख पड़ती है वैसे ही कालचक्रमें घूमरहे भिन्न २ राशि और नक्षत्रोंमें स्थित और कालचक्रके आश्रित सूर्यादि ग्रहोंकी गति भिन्न २ है ॥ २ ॥ राजन्! वही प्रसिद्ध कालस्वरूप साक्षात् भगवान् आदिपुरुष ही सब लोकोंके मंगलके लिये, कर्म-शुद्धिका कारण जो अपना वेदमय शरीर है उसके बारह विभाग करके सूर्यरूपी हो कर छः ऋतुओंमें सम्पूर्ण कर्मोंके भोगानुसार उन २ ऋतुओंके गुण अर्थात् जाड़ा, गर्मी, वर्षा आदिका विधान करते रहते हैं। परमपुरुष भगवान्‌के इस व्यापारमें पण्डितोंको भी वेदशास्त्रकी पर्यालोचनाके साथ तर्कणा करते देखा जाता है ॥ ३ ॥ जो पुरुष वर्ण और आश्रमोंके आचारके अनुगामी हैं वे वेदोक्त कर्म द्वारा इन्द्रादिरूप एवं अष्टाङ्गयोगके विस्तार द्वारा अन्तर्यामीरूप उसी भगवान्‌की उपासना करके अनायास ही मङ्गलको प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ सूर्यनारायण सब लोकोंके आत्मा हैं। स्वर्ग और पृथ्वीमण्डलके बीचमें जो आकाश व्याप्त है उसके मध्यमें स्थित काल-

चक्रमें अवस्थित हो कर वह बारह राशियोंका भोग करते हैं । ये बारह महीने ही मेष आदि राशियाँ हैं । ये महीने ही संवत्सरके अंग हैं। ये सब महीने भिन्न २ प्रकारसे होते हैं। चान्द्रमानसे दो पक्षका एक महीना होता है । सौरमानसे सूर्य जितने कालमें सवा दो नक्षत्रों (एक राशि) का भोग करते हैं उसको एक महीना कहते हैं । यह एक महीना पितरोंके महीनेका एक दिन-रात्रि है अर्थात् पितृलोकके परिमाणसे कृष्णपक्ष उनका दिन और शुक्लपक्ष रात्रि है । हे राजन् ! भगवान् आदित्य जितने समयमें सम्वत्सरके छठे भाग अर्थात् दो राशियोंको भोगते हैं उसको ऋतु कहते हैं; अतएव यह ऋतु भी संवत्सरका एक अंग है ॥ ५ ॥ इसी प्रकार सूर्यनारायण जितने समयमें आकाशमण्डलके आधे भागमें घूमते हैं अर्थात् छः राशियोंका भोग करते हैं उसको अयन कहते हैं ॥ ६ ॥ इसी प्रकार सूर्य जितने समयमें स्वर्गमण्डल एवं पृथ्वीमण्डलसहित आकाशमण्डलकी सम्पूर्ण प्रदक्षिणा करते हैं उसीका नाम सम्वत्सर (वर्ष) है । सूर्यकी मंद, शीघ्र और समान गतियोंके भेदसे इस सम्वत्सरके संवत्सर, परिवत्सर, इड़ावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर ये पाँच विभाग हैं* ॥ ७ ॥ सूर्यमण्डलके ऊपर लक्ष योजन पर अर्थात् भूतलसे दो लाख योजन ऊपर चन्द्रदेव देख पड़ते हैं । यह एक महीनेमें सूर्यकी एक वर्षकी गति और सवा दो दिनमें सूर्यकी एक महीनेकी गति एवं प्रत्येक दिनमें सूर्यकी प्रायः एक पक्षकी गति पूरी कर डालते हैं। कभी २ चन्द्रमाकी गति बहुत ही शीघ्र हो जाती है ॥ ८ ॥ चन्द्रमण्डलकी सब कलाएँ जब आपूर्यमाण अर्थात् वृद्धिशील होती हैं तब देवगणका दिन एवं जब क्रमशः क्षीण होती हैं तब पितृगणका दिन होता है । सोमग्रह इस प्रकार शुक्ल और कृष्ण दोनो पक्षोंसे देवगण और पितृगणके दिन और रातका विभाग करता हुआ तीस मुहूर्तमें एक नक्षत्रका भोग करता है। यह ग्रह अन्नमय और अमृतमय है, अतएव सब जीवोंका प्राण है । चन्द्र सबका जीवन है, इस लिये उसे जीव भी कहते हैं ॥ ९ ॥ अतएव षोडशकलाविशिष्ट चन्द्ररूपी भगवान् परमपुरुष मनोमय, अन्नमय और अमृतमय हैं । वह देव, पितर, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सरीसृप, लता, गुल्म इन सबके प्राणको आप्यायित करते रहते हैं; इस कारण ऋषिगण उनको सर्वमय भी कहते हैं ॥ १० ॥ चन्द्रमण्डलके दो लाख योजन ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्र सुमेरुके दक्षिण ओर ईश्वरके द्वारा कालचक्रमें योजित हो कर भ्रमण करते हैं;

---

* जब शुक्लप्रतिपदामें संक्रान्ति होती है तब सौर और चांद्र दोनो मास एक साथ ही पूर्ण होते हैं उसका नाम सम्वत्सर है, तब सौरमानसे सालमें छः दिन बढ़ते हैं और ऐसे ही चान्द्रमानसे सालमें छः दिन घटते हैं, तब बारह दिनका अन्तर पड़नेसे दोनो आगे पीछे हो जाते हैं। यों ही जब पाँच वर्ष बीतते हैं तब उस बीचमें दो मलमास पड़ जाते हैं, फिर छठा वर्ष लगता है । इस प्रकार अवान्तरभेदसे संवत्सर आदिक पाँच वत्सर माने गये हैं ।

ये नक्षत्र अभिजित्को मिला कर अट्ठाईस हैं ॥११॥ नक्षत्रमण्डलके दो लाख योजन ऊपर शुक्र ग्रह अवस्थित है। सम्मुखमें सूर्य यदि किसी नक्षत्रमें रहते हैं तो यह ग्रह उसके पीछेकी दिशामें रहता है; एकसंग ही भोग करनेका अवसर पड़ने पर अतिचारी हो कर अर्थात् क्रमस्थ नक्षत्रादिका अति क्रमणकर भोग करता है। इस शुक्र ग्रहकी भी सूर्यके समान शीघ्र, मन्द और समान गति होती रहती है। यह सर्वदा लोगोंके अनुकूल ही रहता है एवं इसके सञ्चारमें प्रायः वर्षा अच्छी होती है। फलतः जो ग्रह वर्षामें विघ्न करनेवाले हैं उनका कुफल शुक्रके द्वारा शान्त हो जाता है ॥ १२ ॥ जैसी स्थिति और गति शुक्रग्रहकी है वैसी स्थिति और गति बुधग्रहकी भी है अर्थात् बुध भी कभी सूर्यके आगे और कभी पीछे और कभी साथ ही रहते हैं। शुक्रग्रहसे दो लाख योजन ऊपर बुधग्रह अवस्थित है। यह चन्द्रतनय बुध लोगोंके लिये प्रायः शुभकारी हैं, किन्तु जब सूर्यसे अतिचारी हो जाते हैं तब प्रायः प्रबल वायु, निर्जल मेघाडम्बर एवं अनावृष्टि आदिके भयका कारण होते हैं ॥ १३ ॥ बुधके ऊपर दो लाख योजन पर मंगलग्रह है, मंगल जब वक्रगामी नहीं होते हैं तब तीन पक्षमें एक राशिका भोग करते हैं; किन्तु अमंगलसूचक अशुभ ग्रह हैं ॥ १४ ॥ मंगलसे दो लाख योजन ऊपर बृहस्पतिजी हैं। यह यदि वक्री नहीं होते तो एक २ राशिमें एक २ परिवत्सर अर्थात् तेरह तेरह महीने रहते हैं। बृहस्पतिजी सबके ही लिये शुभ हैं किन्तु अधिकतर ब्राह्मणवंशके लिये मंगलकारी ही रहते हैं ॥ १५ ॥ बृहस्पतिके ऊपर दो लाख योजन पर शनैश्चर हैं। वह एक २ राशिमें तीस २ महीने रहते हैं एवं उतने ही अनुवत्सरमें वारहो राशियोंको भोगते हैं। यह प्रायः सब ही लोगोंके लिये अशान्तिकारी ग्रह है। ॥ १६ ॥

तत उत्तरस्मादृषय एकादशलक्षयोजनान्तर उपलभ्यन्ते य एव लोकानां शमनुभावयन्तो भगवतो विष्णोर्यत्परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति ॥ १७ ॥

शनैश्चरके ऊपर ग्यारह लाख योजन पर सप्तर्षिगण हैं। वे सब लोगोंकी शान्तिकी कामना करते हुए भगवान् विष्णुका परमपद जो ध्रुवलोक है उसकी प्रदक्षिणा करते रहते हैं ॥ १७ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंश अध्याय।

ज्योतिश्चक्रके आश्रयस्वरूप ध्रुवस्थानकी एवं शिशुमाररूपसे भगवान् हरिकी अवस्थितिका वर्णन।

श्रीशुक उवाच—अथ तस्मात्परतस्त्रयोदशलक्षयोजनान्तरतो यत्तद्विष्णोः परमं पदमभिवदन्ति यत्र ह महाभागवतो ध्रुव औत्तानपादिरग्निनेन्द्रेण प्रजापतिना कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानीमपि कल्पजीविनामाजीव्य उपास्ते तस्येहानुभाव उपवर्णितः ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले। हे राजन्! हमने जिस ऋषियोंके लोकका वर्णन किया उससे तेरह लाख योजनके अन्तर पर विष्णुका वही परम प्रसिद्ध स्थान ध्रुवलोक है—ऐसा पण्डितगण कहते हैं। नक्षत्ररूपी अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, कश्यप एवं धर्म आदिक सब बहुमानपूर्वक परम भागवत ध्रुवकी प्रदक्षिणा करते हैं एवं ध्रुवजी इस समय भी कल्पजीवी जनोंके उपजीव्य होकर इस परम स्थानमें स्थित हैं। ध्रुवजीकी महिमा सर्वत्र प्रसिद्ध है ॥ १ ॥ अनिमिष एवं अव्यक्त वेगवाले कालकी गतिके क्रमसे जो सब ग्रह-नक्षत्रादि ज्योतिर्गण निरन्तर आकाशमण्डलमें परिभ्रमण करते हैं उनके आधारके लिये परमेश्वरने उक्त ध्रुवको स्तम्भस्वरूप स्थापित किया है; अतएव उनका प्रकाश निरन्तर ही होता रहता है। जैसे अन्नकी मड़नीके समय मेढीस्तम्भमें बँधे हुए बैल आदि पशु—निकट, मध्य और दूरके क्रमसे अपने२ स्थानका अतिक्रमण करते हुए मण्डल बाँध कर चक्कर लगाते हैं वैसे ही ग्रह और नक्षत्रगण इसी कालचक्रके भीतर और बाहर आबद्ध रह कर इन ध्रुवके ही अवलम्ब पर स्थित हैं एवं वायु द्वारा परिचालित हो कर कल्पान्तपर्यन्त चारो ओर मण्डलाकार गतिसे घूमते रहते हैं। जैसे मेघ और श्येन (बाज) पक्षीगण कर्मकी सहायतासे वायुके वश होकर वायुमण्डलमें घूमते रह कर भी नहीं गिरते वैसे ही ज्योतिर्गण पुरुषाधिष्ठित मायाके वशीभूत हो कर आकाशमें परिभ्रमण करते हैं—कभी पृथ्वी पर नहीं पतित होते ॥२॥३॥ कोई २ कहते हैं कि यह ज्योतिश्चक्र शिशुमाररूपी भगवान् वासुदेवकी योगधारणामें अवस्थित है, अतएव इसका पतन असम्भव है ॥ ४ ॥ शिशुमारका शिर नीचे है और शरीर मण्डलाकार कुण्डलीभूत है। शिशुमारकी पूँछके अग्रभागमें ध्रुव हैं और उसके अधोभागमें प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म्म हैं; पूँछके मूलमें धाता और विधाता हैं एवं कटिदेशमें सप्तर्षिगण अवस्थित हैं। इस शिशुमारके दक्षिणावर्त कुण्डलीभूत शरीरके दक्षिण पार्श्वमें अभि-

जित्से पुनर्वसु-पर्यंत चौदह नक्षत्र एवं वामपार्श्वमें पुष्यसे उत्तराषाढ़-पर्यन्त चौदह नक्षत्र विराजमान हैं। कुण्डलके विस्तारके अनुसार उसका सन्निवेश होनेसे दोनो पार्श्वोंकी अवयव-संख्या समान है । इस शिशुमारकी पीठमें अजवीथी एवं उदरमें आकाशगंगा हैं ॥ ५ ॥ पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र यथाक्रम शिशुमारके दक्षिण और वाम नितम्बमें, आर्द्रा और श्लेषा दक्षिण व वाम चरणमें, अभिजित् एवं उत्तराषाढ़ दक्षिण और वाम नासिकामें, श्रवण और पूर्वाषाढ़ दक्षिण व वाम नेत्रमें, धनिष्ठा और मूल दक्षिण और वामकर्णमें एवं मघासे ले कर अनुराधा तक दक्षिणायनसम्बन्धी आठ नक्षत्र शिशुमारकी बाईं पसलियोंमें सन्निवेशित हैं। इसी प्रकार विलोमक्रमसे मृगशिरासे ले कर पूर्वभाद्रपद तक उत्तरायणसंबन्धी आठ नक्षत्र शिशुमारकी दाहिनी पसलियोंमें हैं एवं शतभिषा और ज्येष्ठा यथाक्रम दक्षिण और वाम स्कन्धोंमें स्थापित हैं ॥ ६ ॥ इस शिशुमारकी उत्तर हनुमें अगस्त्य (नक्षत्ररूपसे), अधर हनुमें यम (नक्षत्ररूपसे), मुखमें मङ्गल, उपस्थमें शनि, गल-पृष्ठ शृङ्गमें बृहस्पति, वक्षःस्थलमें सूर्य, हृदयमें नारायण, मनमें चन्द्रमा नाभिमें शुक्र, स्तनमें अश्विनीकुमार, प्राण और अपानमें बुध, गलेमें राहु, सब अंगोंमें केतु एवं रोमकूपोंमें तारागण अवस्थित हैं ॥ ७ ॥ यह शिशुमारका आकार कहा गया, यही भगवान् विष्णुका सर्ववेदमय रूप है । नित्यप्रति सन्ध्याके समय पवित्र हो कर वाणीको साध कर इसको देखना सभीका कर्तव्य है ।"ज्योतिर्गणका आश्रय एवं कालचक्ररूपी देवाधिपति उन्हीं महापुरुष शिशुमाररूप हरिको नमस्कार है। हम सदैव उन्हींका ध्यान करते हैं" ॥ ८ ॥

ग्रहर्क्षताराममयमाधिदैविकं पापापहं मन्त्रकृतां त्रिकालम् ॥
नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं नश्येत तत्कालजमाशु पापम् ॥९॥

यह श्रीभगवान् ग्रह-नक्षत्र-तारागणमय सम्पूर्ण देवतोंका अधिष्ठान हैं एवं जो लोग सवेरे, दोपहर और सायंकालमें पूर्वोक्त मंत्रका जप करते हैं उनके पापोंको नष्ट करने वाले हैं। जो व्यक्ति त्रिकाल शिशुमाररूप हरिका स्मरण व प्रणाम करते हैं उनके उसी समयके पाप तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं ॥ ९ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंश अध्याय ।

अतलादि सात बिलोंका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच—अधस्तात्सवितुर्योजनायुते स्वर्भानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके योऽसावमरत्वं ग्रहत्वं चालभत भगवदनुकम्पया स्वयमसुरापसदः सैंहिकेयो ह्यतदर्हस्तस्य तात जन्मकर्माणि चोपरिष्टाद्वक्ष्यामः ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले । हे राजन् ! कोई २ कहते हैं कि सूर्यके नीचे दश हजार योजनके अन्तर पर राहु ग्रह नक्षत्रकी भाँति भ्रमण करता है । यह राहु सिंहिका राक्षसीका पुत्र है । स्वयं असुराधम होनेके कारण देवत्वकी प्राप्तिके योग्य नहीं है तथापि भगवान्के अनुग्रहसे ग्रह होकर देवत्वको प्राप्त हुआ है अर्थात् अमर हो गया है । इसके जन्म और कर्मोंका वर्णन आगे किया जायगा ॥१॥ यह सूर्यमण्डल दश सहस्र योजन विस्तीर्ण है एवं चन्द्रमण्डलका विस्तार बारह सहस्र योजन है । किन्तु राहुका मण्डल दोनो की अपेक्षा बड़ा है, उसका विस्तार तेरह हजार योजन है । इस राहुने अमृत पीनेके समय सूर्य-चन्द्रके बीचमें घुस कर अमृत पीनेकी चेष्टा की, किन्तु इस छलकी सूचना सूर्य-चन्द्रने मोहिनीरूप हरिको दे दी और भगवान्ने उसका शिर काट डाला । राहु प्रत्येक पर्वमें सूर्य और चन्द्रकी ओर बदला लेनेके लिये चलता है ॥ २ ॥ भगवान्ने यह जान कर सूर्य व चंद्रकी रक्षाके लिये अपने प्रिय अस्त्र सुदर्शन चक्रको नियुक्त कर दिया है । उस चक्रका तेज अत्यन्त दुस्सह है और वह सदा घूमा करता है । यह राहु उस सुदर्शन चक्रको देख कर पहले तो मुहूर्त्त भर राहमें ही ठहर कर ग्रसनेका उपक्रम करता है किन्तु वैसे ही भयभीत हो कर अपने स्थानको लौटता है; लोग उसीको 'ग्रहण' कहते हैं । राहुकी सरल और वक्र अवस्थितिसे ही सर्वग्रास और अर्धग्रास होता है । किन्तु यह वास्तवमें ग्रास नहीं है, लोकप्रतीतिमात्र है, क्योंकि सूर्य-चन्द्रसे राहुकी स्थिति बहुत दूर पर है ॥ ३ ॥ राहुके बारह सहस्र योजन नीचे सिद्ध, चारण एवं विद्याधर लोगोंके रहनेका स्थान है ॥ ४ ॥ उसके नीचे यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत और पिशाचोंके विहारका स्थल है, जिसको अन्तरिक्ष कहते हैं । वह स्थान केवल शून्य ही शून्य है, वहाँ ग्रह-नक्षत्रादि नहीं हैं । जितनी दूर तक वायुका सञ्चार है—जितनी दूर तक मेघ हैं वहाँ तक अन्तरिक्षका विस्तार है ॥ ५ ॥ यक्षादिकोंके लोकोंसे नीचे सौ योजनकी दूरी पर यह पृथ्वी है । जहाँ तक हंस, भास, श्येन, सुपर्ण आदि प्रधान २ पक्षीगण उड़ते हैं वही भूलोककी सीमा है ॥६॥ भूमिका जो २ स्थान जिस प्रकार अवस्थित है सो सब हम तुमसे

वर्णन कर चुके, अब पृथ्वीके नीचेका वर्णन सुनो । पृथ्वीके नीचे सात विवर हैं। उनमें एकसे दूसरा दश हजार योजनकी दूरी पर अवस्थित है और उतना ही हर एकका विस्तार है। उन सात विवरोंके नाम ये हैं—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल ॥ ७ ॥ इन सातो पातालोंके भवन, उद्यान (बाग), क्रीड़ा-स्थान, विहारभूमि आदि स्वर्गकी अपेक्षा भी अधिक मनोहर और रमणीक हैं। कामभोग, ऐश्वर्य, आनन्द, सन्तति और सम्पत्तिसे ये विवर अत्यन्त समृद्धिशाली हैं। इन सब विवरोंमें दैत्य, दानव एवं नागगण गृहपति हो कर परमसुखसे वास करते हैं। उनके पुत्र, पत्नी, बन्धु एवं अनुचरगण नित्य अनुरक्त एवं निरन्तर प्रसन्न रहते हैं। अधिकन्तु इन्द्र भी इनके सुखभोगको नष्ट नहीं कर सक्के और ये सर्वदा मायाओंके द्वारा आमोदप्रमोद करते रहते हैं ॥८॥ हे महाराज! इन विवरोंमें मायावी मय दानवकी रची हुई अगणित पुरी प्रकाशमान हैं। वहाँके भवन, चहारदीवारी, गोपुर, सभा, चैत्य, चत्वर एवं आयतनस्थान श्रेष्ठ २ मणियोंके बने हुए हैं । विवरोंके स्वामियोंके सब उत्तम भवन नाग और असुर एवं कबूतर, शुक, सारिकाओंसे सुशोभित हैं। वहाँ मणि और सुवर्णकी बनी हुई कृत्रिम भूमियाँ (फर्श) प्रकाशमान रहती हैं। सब विवर इस प्रकार उल्लिखित संपदाओंसे भली भाँति विभूषित हैं ॥ ९ ॥ वहाँके उद्यान (बाग) अमरलोककी कान्तिसे बढ़ कर शोभा धारण किये हुए हैं। बागोंमें ललित लताओंसे लिपटे हुए वृक्षोंकी शाखाएँ फूल और फलोंके गुच्छे एवं कोमल किसलयोंके बोझसे झुकी रहती हैं। उस शोभाको निहारते ही चित्त और इन्द्रियाँ आनन्दसे पुलकित हो उठती हैं। वहाँके सब जलाशयोंमें निर्मल जल भरा रहता है। उनमें मछली आदि जलके जीव उछलते कूदते हैं, अतएव जल चञ्चल हुआ करता है। जलके ऊपर कमल, कुमुद, कुवलय, कल्हार, नीलकमल और लाल कमल आदि भाँति २ के कमल शोभा बढाते हैं। उक्त कमलोंके वनोंमें अनेक पक्षियोंके जोड़े वास करते हैं। उनके कलोल करते समय ऐसा मनोहर शब्द सुन पड़ता है कि सुननेवालेका मन प्रसन्न हो जाता है ॥ १० ॥ इन सब पातालोंमें सूर्यादिका प्रकाश नहीं है, सुतराम् वहाँ दिन और रातके समयका विभाग नहीं है। अतएव कालसे जो भयकी संभावना होती है वह भी वहाँके लोगोंको नहीं है। महानाग अनन्त (शेषनाग)के शिरोंके प्रधान २ रत्नों (मणियों)की किरणोंके प्रकाशसे उन सब स्थानोंका अन्धकार दूर होता रहता है ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे राजन्! इन स्थानोंमें रहनेवाले लोग निरन्तर दिव्य औषधियोंके रसोंका पान करते रहते हैं अतएव आधि अथवा व्याधिके द्वारा पीड़ित नहीं होते। कभी उनके शरीरका मांस लटकता नहीं एवं उनको बुढ़ापा नहीं सताता, सुतराम् उनका शरीर विवर्ण होनेकी कोई सम्भावना नहीं है। उनके दुर्गन्ध, पसीना थकावट और सुस्ती कभी नहीं होती।

वयसके कारण अवस्थाभेद होनेकी भी सम्भावना नहीं है ॥ १३ ॥ वहाँके रहनेवाले परममङ्गलायन हैं; भगवान् सुदर्शन चक्रके सिवा मृत्यु भी उन पर अपनी प्रभुता नहीं जता सक्ता ॥१४॥ सुदर्शन चक्र जब उन विलोंमें प्रवेश करता है तब दैत्योंकी स्त्रियोंके गर्भ भयके मारे गिर पड़ते हैं। अतल नामक प्रथम विवरमें मयनामक मायावी दानवका पुत्र बल नाम असुर निवास करता है। इसी दानवने छियानबे प्रकारकी मायाओंकी सृष्टि की है; कोई २ मायावी जन आज भी उनमेंसे कुछएक माया धारण करते हैं। उक्त असुरके मुखसे जम्हाई लेते समय तीन प्रकारकी स्त्रियाँ उत्पन्न हुईं; स्वैरिणी, कामिनी और पुंश्चली। जो स्त्रियाँ सवर्ण पुरुषसे रति करनेवाली हैं उनकी संज्ञा स्वैरिणी है, जो स्त्रियाँ सवर्ण और असवर्ण दोनो प्रकारके पुरुषोंसे रति करनेवाली हैं उनकी संज्ञा कामिनी है और जो स्त्रियाँ कामिनी अथच अत्यन्त चंचल हैं उनकी संज्ञा पुंश्चली है। ये स्त्रियाँ विवर–भवनमें गये हुए पुरुषको धत्तूररससे सम्भोगसमर्थ करके अपने असाधारण विलासपूर्ण अवलोकन, सानुराग हास्य, सानुराग सम्भाषण एवं आलिङ्गन आदिके द्वारा अपनी इच्छाके अनुसार रति क्रीड़ामें प्रवृत्त कर लेती हैं। धत्तूररसका कैसा अद्भुत गुण है कि उसका सेवन करनेसे पुरुष अपनेको 'मैं ईश्वर हूँ' 'मैं सिद्ध हूँ' ऐसा मान बैठता है एवं दश हजार मत्त हाथियोंके समान बलवाला होकर सबको तुच्छ समझता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ अतलके नीचे वितल नाम विल है। वहां भगवान् शिव अपने पार्षद्गण सहित स्थित हैं एवं प्रजापतिकी सृष्टि बढ़ानेके लिये भवानीके साथ मैथुनधर्म अङ्गीकार किये हुए हैं। वितल लोकमें भव एवं भवानीके वीर्य द्वारा हाटकी नाम नदी बही है। वहाँ अग्निदेव और वायुके संयोगसे वही 'शुक्र' हाटक नाम सुवर्ण हो जाता है। दैत्येन्द्रगणके अन्तःपुरमें स्त्रियों सहित पुरुषगण उस सुवर्णके आभूषण धारण करते हैं ॥ १७ ॥ वितलके नीचे सुतल लोक है। वहाँ महायशस्वी पुण्यश्लोक विरोचनके पुत्र राजा बलि वास करते हैं। भगवान् उपेन्द्र(वामनजी)ने महेन्द्रका प्रिय करनेके लिये अदितिके गर्भसे वामनरूप धारण कर पहले राजा बलिके त्रिलोकीके राज्यको हर लिया और फिर आप ही दया करके सुतल लोकका राजा बना दिया। सुतल लोकमें जो विभव और सम्पदा राजा बलिको प्राप्त है वह इन्द्रके यहाँ भी नहीं है। राजा बलि उन्हीं अपने आराधनीय हरि भगवान्‌की निरन्तर आराधना करते हुए निर्भयभावसे सुतल लोकमें वास करते हैं ॥ १८ ॥ राजा बलिको सुतल लोकमें जो ऐसा अलभ्य ऐश्वर्य प्राप्त है सो अवश्य ही उनके पृथ्वीदानका फल नहीं है। सम्पूर्ण जीवोंके नियन्ता आत्माराम एवं परमात्मारूप भगवान् वासुदेवको तीर्थतम सत्पात्र पा कर दैत्येन्द्र बलिने श्रद्धापूर्वक एकाग्रमन हो कर परम आदरसे जो भूमिका दान किया वह साक्षात् मोक्षका द्वार है, परम पुरुषार्थ मुक्ति पदार्थ ही उसका

फल हो सक्ता है; अनित्य ऐश्वर्य कभी उसका फल नहीं हो सक्ता ॥ १९ ॥ कर्मका बन्धन सामान्य बन्धन नहीं है; संसारसे छूटनेकी इच्छा रखनेवाले लोग इस कर्म-बन्धनकी निवृत्तिके लिये योगानुष्ठानादि अनेक क्लेश सहते हैं। क्षुधा-पतन-स्खलन आदिके समय पुरुष विवश हो कर एक वार जिनके नामका उच्चारण करता है तो कर्मके बन्धनसे मुक्त हो जाता है उन्हीं भगवान्को अर्पण किये हुए भूमिदान-का फल केवल नश्वर ऐश्वर्य हो—यह कभी सम्भव नहीं हो सक्ता। भगवान् हरि, भक्तों और आत्मतत्त्वके ज्ञाता ज्ञानियोंके आत्मा हैं, उनको अर्पण किये हुए भूमिदानका क्या यही तुच्छ ऐश्वर्यरूप फल हो सक्ता है? कभी नहीं ॥ २० ॥ २१ ॥ सुतलमें राजा बलिका जो अतुल ऐश्वर्य है सो भगवान्के अनुग्रहका चिन्ह नहीं है, क्योंकि भोगविलासका ऐश्वर्य केवल मायामय है, उससे भगवान्की स्मृति और भी नष्ट हो जाती है। अतएव विभव-विलास अकिञ्चित्कर है ॥ २२ ॥ भगवान्ने अन्य उपाय न देख कर याचनाके छलसे त्रिभुवनका राज्य हर लिया, केवल राजा बलिका शरीर अवशिष्ट रह गया। ऐसा करके भी भगवान् क्षान्त नहीं हुए, बलिको वरुण-पाशसे भली भाँति बाँध कर पर्वतकी कन्दरामें डाल दिया। किन्तु बलिने आक्षेपके साथ इस प्रकार कहा ॥२३॥ "हाय! कैसे दुःखकी बात है! यह देवतोंके राजा इन्द्र हैं! बृहस्पतिजी इनके पूर्ण सहायक और मन्त्री हैं! किन्तु मुझे जान पड़ता है कि इन इन्द्रको परमार्थका कुछ भी ज्ञान नहीं है; क्योंकि इन्द्रने महाप्रभु उपेन्द्रको छोड़ कर उनके द्वारा मुझसे त्रिभुवनके तुच्छ राज्यकी याचना की; स्वयं उनका दास्यभाव नहीं माँगा! जब भगवान् प्रसन्न हों तो उनसे उनका दास्यभाव ही माँगना योग्य है। यह त्रिभुवन गंभीर वेगवाले परिवर्तनशील कालके द्वारा एक मन्वन्तरमें नष्ट होनेके कारण अतीव तुच्छ पदार्थ है। इसी कारण हमारे परदादा प्रह्लादने भगवान् हरिसे दास्यभावकी ही प्रार्थना की। प्रह्लादके पिता हिरण्यकशिपुको मारनेके उपरान्त भगवान् नृसिंहजी प्रह्लादको उनके पिताका पद देनेको उद्यत हुए, किन्तु उन्होने उसे नहीं ग्रहण किया। वह पद अकुतो-भय था तथापि भगवान्के अनन्यभक्त प्रह्लादको तो यह ज्ञान था कि भगवान्के अतिरिक्त सम्पूर्ण संसार असार है ॥ २४ ॥ २५ ॥ किन्तु महात्मा प्रह्लादके मार्ग पर मेरे समान अजितेन्द्रिय एवं भगवान्की कृपासे शून्य पुरुष कैसे चल सक्ता है?" ॥ २६ ॥ योगियोंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी इस प्रकार बलिके प्रभावका कुछ वर्णन करके बोले कि हे राजेन्द्र! इन दानवेन्द्र बलिके चरित्रको आगे विस्तारसे कहेंगे। भगवान् हरि वामनरूपसे हाथमें गदा लिये बलिके द्वार पर अब भी द्वारपालका काम करते हैं। एक समय दानवेन्द्र रावण दिग्विजय करने निकला, सो बलिके द्वार पर भी पहँचा एवं वामनजीसे, उनको एक बालक समझ, मदान्धोंकी सी बातें करने लगा। तब भगवान्ने बाएँ पैरके अँगूठेकी एक ऐसी

ठोकर मारी कि अपनेको वीर माननेवाला महाभिमानी रावण दश हजार योजन पर जा कर गिरा और उसका सारा अभिमान मिट गया ॥ २७ ॥ उसके नीचे तलातल लोक है । जैसे भगवद्भक्त बलि हरिकी कृपासे सुतल लोकमें वास करते हैं उसी भाँति मायावियोंका गुरु एवं त्रिपुराधिपति मय नाम दानवराज भगवान् त्रिपुरारि शंकर द्वारा रक्षित हो कर तलातल लोकमें सुखसे वास करता है; शंकरने त्रिलोकीके मङ्गलकी कामनासे पहले मयके मायारचित तीनो पुर भस्म कर दिये थे, किन्तु पीछेसे उस पर प्रसन्न हो गये । मयासुर अन्तमें शंकरके चरणोंकी शरण पा कर भगवान् विष्णुके सुदर्शन चक्रसे निर्भय और पूज्य हो गया ॥२८॥ ऐसे ही तलातलके नीचे महातल है । वहाँ अनेक फणवाले, बड़े ही क्रोधी कद्रुके पुत्र काद्रवेय नाम सर्प वास करते हैं । उक्त सर्पोंमें कुहक, तक्षक, कालिय, सुषेण आदिक महासर्प प्रधान हैं। उनके शरीर बहुत ही स्थूल हैं, किन्तु वे गरुड़के भयसे सदा उद्विग्न (घबड़ाये) रहते हैं । तथापि वे सदैव मदमत्त अवस्थामें पुत्र, स्त्री, मित्र और और २ कुटुम्बियोंके संग विहार किया करते हैं ॥ २९ ॥ महातलके तले रसातल है । वहाँ दैत्य, दानव और निवातकवच, कालकेय आदि असुरगण सर्पोंके ही समान निवास करते हैं। ये सब असुर यद्यपि जन्मसे ही महाबली और महापराक्रमशाली हैं तथापि जिन भगवान्के प्रतापसे सब लोक प्रकाशमान हैं उन्हीके तेज अर्थात् सुदर्शन चक्रसे उनका बलगर्व नष्ट हो गया है । उक्त दैत्यगण अब तक इन्द्रदूती सरमाके उच्चारण किये हुए मंत्ररूप वाक्य द्वारा देवराज इन्द्रसे भय करते हैं ३०

ततोऽधस्तात्पाताले नागलोकपतयो वासुकिप्रमुखाः शङ्खकुलिकमहाशङ्खश्वेतधनंजयधृतराष्ट्रशङ्खचूडकम्बलाश्वतरदेवदत्तादयो महाभोगिनो महामर्षा निवसन्ति येषामु ह वै पञ्चसप्तदशशतसहस्रशीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयो रोचिष्णवः पातालविवरतिमिरनिकरं स्वरोचिषा विधमन्ति ॥३१॥

हे राजन्! रसातलके नीचे पाताल है । वहाँ वासुकि, शंख, कुलिक, महाशंख, श्वेत, धनञ्जय, धृतराष्ट्र, शंखचूड, कम्बल, अश्वतर एवं देवदत्त आदि नागलोकाधिप बड़े २ फणवाले सर्प निवास करते हैं । इन सब नागोंमें किसीके पाँच किसीके सात किसीके दस किसीके सौ और किसीके हजार शिर हैं । उनके फणोंकी दीप्तिशाली महामणियोंसे पातालविवरका सारा अंधकार दूर होता रहता है ॥ ३१ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंश अध्याय ।

विष्णुके अंश संकर्षणदेवका विवरण ।

श्रीशुक उवाच—तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योजनसहस्रान्तर आस्ते या वै कला भगवतस्तामसी समाख्याताऽनन्त इति सात्वती या द्रष्टृदृश्ययोः संकर्षणमहमित्यभिमानलक्षणं यं संकर्षणमित्याचक्षते ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले। हे राजन्! पातालके मूलदेशमें तीस सहस्र योजनके अन्तर पर भगवान्की सुप्रसिद्ध तामसी कला विराजमान है, उसका नाम 'अनन्त' है। जड़ एवं चेतनके अभेद-ज्ञानके साधन (संकर्षणकारक) अभिमानका अधिष्ठान मान कर भक्तगण उन्हे संकर्षण कहते हैं ॥ १ ॥ राजन्! सहस्र शिरवाले भगवान् अनन्तमूर्तिके एक ही मस्तक पर यह पृथ्वीमण्डल धरा हुआ है, उस शिर पर यह पृथ्वी एक सरसोंके समान धरी हुई देख पड़ती है ॥ २ ॥ वह जब प्रलयकालमें इस विश्वका संहार करना चाहते हैं तब क्रोधके कारण घूम रही उनकी दोनो भ्रुकुटियों बीचसे सांकर्षण नाम एकादशव्यूहवाले रुद्र प्रकट होते हैं। उनके नेत्र तीन होते हैं और हाथमें तीन शिखाका त्रिशूल लिये रहते हैं ॥ ३ ॥ संकर्षणदेवके अरुणवर्ण नखरूप मणिमण्डल दर्पणस्वरूप हैं, उनमें नागपतिगण प्रधान २ भक्तों सहित एकान्त भक्तियोगसे नमस्कार करते २ प्रसन्नचित्त हो अपना २ मुख देखते हैं। नागपतियोंके मुखोंके प्रतिविंब परम दर्शनीय हैं—उनके कानोंमें अति-उज्वल कुण्डल प्रकाशमान हैं; उन्हीं कुण्डलोंकी झलकके मण्डलसे उनके गण्डस्थल बहुत ही मनोहर देख पड़ते हैं ॥ ४ ॥ नागराजकुमारियाँ अपने २ कल्याणकी कामनासे आनन्दाश्रुपूर्ण नयनकमलोंसे अनन्तदेवके वदनारविन्दके दर्शन किया करती हैं और भगवान्के रजतस्तम्भ स्वरूप दोनो बाहुओंमें सदा अगुरु, चन्दन और कुंकुमपङ्क लेपन करती हैं। किन्तु अनन्तदेवकी भुजाओंको छूते समय उन कुमारियोंके हृदय उन्मथित हो उठते हैं एवं उनके मनमें मदनका आविर्भाव होता है। उस समय उन कुमारियोंकी हँसी अत्यन्त सुन्दर और ललित होती है। नागराजकुमारियाँ संकर्षणदेवके जिस मुखका दर्शन करती हैं वह अनुराग और मदसे सदैव हर्षयुक्त देख पड़ता है एवं करुणावलोकनयुक्त दोनो नेत्र सर्वदा मदविघूर्णित एवं किञ्चित् अरुणवर्ण रहते हैं ॥ ५ ॥ इस अनन्तधाममें अनन्त-गुणसागर भगवान् आदिदेव अनन्तजी अपने क्रोधवेगका संहार किये हुए सब लोगोंके मङ्गलके लिये अवस्थिति करते हैं ॥ ६ ॥ इस स्थानमें सुर, असुर, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, नाग और मुनिगण निरन्तर उनका ध्यान करते हैं। उनके दोनो

नयन मदसे सदा मुँदे हुए और विकृत व विह्वल रहते हैं। वह अपने सुललित वचनरूप अमृतके द्वारा अपने पार्षद जो देवगण हैं उनको सदा आप्यायित करते रहते हैं। उनका वस्त्र नीलवर्ण है, कानमें एक कुण्डल है, पीठमें हल हैं एवं दोनो भुजाएँ विशाल हैं। देवराज इन्द्रका हाथी जैसे सुवर्णकी शृंखला धारण किये हो वैसे ही शेषजीके गलेमें वैजयन्ती माला पड़ी हुई है। मालामें लगी हुई अम्लान नवीन तुलसीकी सुवासके मधुरससे मत्त मधुकरगण गान करते रहते हैं ॥७॥ भगवान् संकर्षणजी ध्यान एवं स्मरण करनेसे मोक्षकी इच्छावाले योगियोंके त्रिगुणमय हृदयमें स्वयं प्रवेश कर उनकी अनादिकालकी कर्मवासनामें गुँथी हुई अविद्यामय हृदयकी गाँठको शीघ्र ही छिन्न कर देते हैं। हे राजन्! देवर्षि नारदने ब्रह्माकी सभामें तुम्बुरु गन्धर्वके साथ उन्ही भगवान् अनन्तदेवकी महिमाका यों वर्णन किया है ॥ ८ ॥ "इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारका कारण जो मायाके सत्त्व आदि गुण हैं वे जिनकी कृपाके कटाक्षमात्रसे अपना २ कार्य करनेमें समर्थ हुए हैं, जिनका स्वरूप अनादि और अनन्त है, जो एकमात्र वस्तुस्वरूप हो कर अपनेमें अनेक कार्योंके प्रपञ्चका विधान करते हैं उन ब्रह्मस्वरूप भगवान्के तत्त्वको कोई कैसे जान सक्ता है? ॥ ९ ॥ जिनमें सत् और असत् वस्तु प्रकाशित होती हैं, जो भक्तजनों पर अत्यन्त कृपा प्रकट कर शुद्ध सत्त्वमूर्तिको धारण किये हुए हैं, अपने भक्तगणके चित्तको वश करनेके लिये की हुई जिनकी लीलाओंसे महाबली सिंहोंने शिक्षा ग्रहण की है, जिनका नाम औरोंके मुखसे सुन कर पीड़ित व्यक्ति पीड़ासे मुक्त हो जाते हैं अथवा पतित जन भी यदि अकस्मात् किम्वा हँसीसे जिनका पतितपावन नाम लेता है तो वह तो शुद्ध हो ही जाता है किन्तु उससे अन्य मनुष्योंके भी सब पातक नष्ट हो जाते हैं, उन भगवान्के सिवा, वे व्यक्ति, जिनको मोक्ष पानेकी इच्छा है, और किसका आश्रय लेंगे ॥ १० ॥ ११ ॥ अहो! जिनके सहस्र मस्तकोंमेंसे एक मस्तक पर नदी, सागर, पर्वत और प्राणिसमूहसहित यह सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल धरा हुआ है, जिनका पराक्रम अपरिमित है उन महाकाय, बहुरूप, महावीर्य परमेश्वरके महासामर्थ्यका अनुमान हजार जिह्वा पा कर भी कौन व्यक्ति कर सक्ता है ॥ १२ ॥ भगवान् अनन्तके बल और प्रभावका अन्त नहीं है, किन्तु वह ऐसे हो कर भी इस पृथ्वीके नीचे रह कर लोकस्थितिके लिये अपने मस्तक पर पृथ्वीमण्डलको धारण किये हुए हैं; उनका आधार कोई नहीं है, वह स्वयं अपना आधार हैं" ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। मैंने जिस प्रकार अपने गुरुके मुखसे सुना था उसीके अनुसार यह सब तुमको सुना दिया। लोगोंके कर्मोंके अनुसार ये ही सब गतियाँ होती हैं, सकाम पुरुषगण इन सब गतियोंको प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

एतावतीर्हि राजन्पुंसः प्रवृत्तिलक्षणस्य धर्मस्य विपाकगतय उच्चावचा विसदृशा यथाप्रश्नं व्याचख्ये किमन्यत्कथयाम इति ॥ १५ ॥

मनुष्यगण प्रवृत्तिलक्षण धर्मका अनुष्ठान करने पर उसका फलस्वरूप पूर्वोक्त ऊँची एवं नीची गतियोंको प्राप्त होते रहते हैं। हे राजन्! अब और क्या कहें? सो बताओ ॥ १५ ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंश अध्याय ।

नरकोंका वर्णन ।

राजोवाच–महर्ष एतद्वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति ॥ १ ॥

राजा परीक्षित् बोले। हे महर्षे! पुरुषकी इस प्रकारकी भिन्न २ गतियाँ क्यों होती हैं? ॥१॥ **श्रीशुकदेवजी बोले**। हे राजन्! सत्त्व, रज, तम; इन तीनो-गुणोंके तारतम्यवश अर्थात् उच्च नीच होनेके कारण कर्म करनेवाले तीन प्रकारके होते हैं। अतएव श्रद्धाकी विभिन्नतासे सब कर्मोंके फल भी भिन्न २ होते हैं ॥२॥ यदि श्रद्धाका तारतम्य होता है तो सभी प्रकारकी गतियाँ इतर-विशेष-भावसे होती हैं। अधर्म करनेवालेके तमोगुणके तारतम्यसे श्रद्धाके विपरीत होनेके कारण कर्मका विपरीत फल होता है। अनादि अविद्याके कारण सब कामनाओंका परिणामस्वरूप जिन सहस्र २ नारकी गतियोंकी सृष्टि होती है, हम इस समय उन सबका विस्तारसे वर्णन करते हैं, सुनो ॥ ३ ॥ **राजा बोले**। भगवन्! सम्पूर्ण नरक पृथ्वीके कौन देशमें है अथवा वे सब त्रिलोकीके भीतर हैं या बाहर? ॥ ४ ॥ **श्रीशुकदेवजी बोले**! त्रिलोकीके बीच ही दक्षिण दिशामें पृथ्वीके नीचे एवं जलके ऊपर–जहाँ अग्निष्वात्ता आदि पितृगण वास करके परमसमाधियोगसे अपने २ गोत्रमें उत्पन्न व्यक्तियोंके मङ्गलकी कामना किया करते हैं एवं जहाँ सूर्यके पुत्र भगवान् पितृराज अपने गणों सहित बैठ कर दूतोंके द्वारा लाये हुए मृत प्राणियोंके कर्मानुसार दोषादोषके विचारके साथ दण्डकी व्यवस्था करते हैं–उसी लोकके एक देशमें सब नरक अवस्थित हैं ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ कोई २ नरकोंकी संख्या इक्कीस बताते हैं। हे राजन्! हम तुमसे इन नरकोंके नाम, रूप और लक्षणोंका निरूपण करते हैं। उक्त इक्कीस नरकोंके नाम ये हैं तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, शूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, संदंश, तप्तसूर्मि, वज्रकण्टकशाल्मली, वैतरणी

पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि और अयःपान। इनके सिवा क्षारकर्दम, रक्षोगणभोजन, शूलप्रोत, दन्दशूक, अवटनिरोधन, पर्यावर्तन एवं सूचीमुख-ये सात नरक और भी हैं; अतएव नरकोंकी संख्या अट्ठाईस है, इनमें पापियोंको अनेक प्रकारकी यातनाएँ मिलती हैं ॥ ७ ॥ हे राजन् ! जो पुरुष पराये धन, पराई स्त्री और पराये पुत्रको हर लेता है उसको भयंकर यमदूतगण घोरतर कालपाशमें बाँध कर बलपूर्वक तामिस्रनरकमें डालते हैं। यह नरक अन्धकारमय है। पापी इसमें गिर कर खाने पीनेको नहीं पाता एवं दण्ड, ताड़न और तर्जनकी अनेक पीड़ा सहता हैं। वह कातर होकर एकदम मूर्च्छित हो जाता है ॥ ८ ॥ जो व्यक्ति अपने स्वामीसे छल कर उसकी पत्नीसे भोग करता है वह दुरात्मा अन्धतामिस्र नरकमें डाला जाता है। इस नरकमें गिरे हुए व्यक्तिकी, जैसे जड़से कटा वृक्ष सूख जाता है उस प्रकार, स्मरणशक्ति भ्रष्ट एवं बुद्धि विनष्ट हो जाती है, इसी कारण इसका नाम अंधतामिस्र नरक है ॥९॥ जो व्यक्ति इस लोकमें "यह शरीर ही मैं हूँ" "यह धनादि मेरा है"–इस प्रकारके अभिमानवश प्राणियोंसे द्रोह करके केवल अपने ही देह और पुत्र स्त्री आदि कुटुम्बका भरण पोषण करता है वह व्यक्ति उक्त नरकमें गिरता है ॥ १० ॥ इस लोकमें जो निठुर मनुष्य निरपराध प्राणियोंकी हिंसा करता है वह अपने किये कर्मके दोषसे परलोकमें जब यमकी यातना पाता है तब वे ही सब उसके हाथों मारे गये प्राणी रुरु नाम कीड़े हो कर उससे बदला लेते हैं। इस नरकका नाम रौरव है। रुरु जीव महाक्रूर सर्पसे भी अधिक क्रूर होता है ॥ ११ ॥ जो व्यक्ति इस लोकमें प्राणियोंको पीड़ा पहुँचा कर केवल अपने ही शरीरका भरण पोषण करता है वह महारौरव नाम नरकमें गिरता है। वहाँ मांस नोच २ कर खानेवाले रुरुगण उसके शरीरको नोच २ खाते हैं ॥ १२ ॥ जो उग्र पुरुष यहाँ अपना शरीर पालनेके लिये सजीव पशु या पक्षीको मार कर उसका मांस राँधता है वह व्यक्ति नराधम और निर्दय है; राक्षस भी उसकी निन्दा करते हैं। इस कर्मके दोषसे परलोकमें यमदूतगण उसे कुम्भीपाक नरकमें डाल कर तपते हुए तेलमें पकाते हैं ॥ १३ ॥ जो पुरुष पितर ब्राह्मण और वेदोंसे द्रोह करता है वह कालसूत्र नरकमें डाला जाता है। इस नरकका घेरा दश हजार योजन है और इसकी ताँबेकी समतल भूमि जला करती है। इसमें विप्रद्रोही पुरुष गिरता है, वह नीचे अग्निके तापसे जलता है और ऊपर सूर्यकी घोर किरणें जलाती हैं। भूख और प्याससे उसका शरीर भीतर और बाहर भी जला करता है। वह पापी मारे व्यथाके बेचैन हो कर कभी लेट जाता है, कभी बैठ जाता है, कभी खड़ा हो जाता है और कभी चारो ओर दौड़ता फिरता है। मारे हुए पशुओंके शरीरमें जितने रोम होते हैं उतने ही हजार वर्ष उसे ऐसी ही यातना भोगनी पड़ती है ॥ १४ ॥ हे

महाराज! जो पुरुष आपत्काल न होने पर भी इच्छापूर्वक वेदमार्गका उल्लंघन कर पाखंडधर्मको ग्रहण करता है, उसे अति भयानक यमदूतगण असिपत्रवन नाम नरकमें डाल कर चलाते हैं और कोड़े मारते हैं। उन दारुण प्रहारोंकी यातनासे पापी इधर उधर दौड़ता है। असिपत्रोंमें दोनो ओर धारा है, उसमें उसका शरीर छिन्नभिन्न होता है। तब वह दुरात्मा "हाय! मरा" कह कर यंत्रणा प्रकाशित करता हुआ पग पग पर तीव्र वेदनासे मूर्च्छित हो गिर २ पड़ता है और अपने पाखंडधर्मका फल भोगता है॥ १५॥ जो राजा अथवा राजपुरुष अदण्ड्य व्यक्तिको अन्यायसे दण्ड देता है अथवा ब्राह्मणको शरीर-दंड देता है वह पापी मर कर शूकरमुख नाम नरकमें गिरता है। जैसे कोल्हूमें डाल कर ऊँखका रस निकाला जाता है वैसे ही बड़े बली यमदूत उसको दबाते हैं, उसके सब अंग टूटने लगते हैं और वह बड़े ही आर्तस्वरसे चिल्लाता है तथा व्यथासे मूर्च्छित हो जाता है। उसने यहाँ निर्दोषियोंको जेलमें बंद करके दुःख दिया था, उसीका प्रतिफल वहाँ पाता है॥१६॥ परमेश्वरने स्वभावानुसार सब जीवोंकी वृत्ति नियत करदी है-यह जान कर और परमेश्वरदत्त विवेकके बलसे अन्यकी वेदना जाननेकी क्षमता रख कर भी जो व्यक्ति मच्छड़ आदि जीवोंको, जिन्हे कुछ ज्ञान नहीं है और जिनकी ईश्वरने यही वृत्ति बनादी है, (उनके काटनेके बदलमें) मार डालता है वह अन्धकूप नरकमें गिरता है। पशु, पक्षी, सर्प, मच्छड़, जुआँ खटमल एवं मक्खी आदि जो कोई प्राणी उस व्यक्तिके द्वारा मारे जाते हैं वे चारो ओरसे उसे काटते व बदला लेते हैं। घोर अन्धकारमें उसकी निद्रारूप शान्ति नष्ट हो जाती है; वह कहीं चैनसे ठहरनेकी जगह नहीं पाता। जीव जैसे कुयोनिमें घूम कर दुःखभोग करता है वैसे ही वह व्यक्ति भी घोर अंधकारमें सदा घूम कर निरन्तर महा क्लेश पाता है॥ १७॥ जो व्यक्ति खानेकी चीज सबको न देकर आप ही खा जाता है एवं जो मनुष्य पञ्चमहायज्ञ नहीं करता उसे ऋषिगणने कौवेके तुल्य विष्ठाभोजी कहा है; वह मर कर कृमिभोजन नाम नरकमें गिरता है। इस नरकमें लाख योजन चौड़ा एक कृमिमय कुण्ड है। वह व्यक्ति इसी कुण्डमें गिर कर स्वयं कीड़ेके समान हो कर उन्ही कीड़ोंको खाता है एवं वे कीड़े उसे खाते हैं। इसी प्रकार जब तक उसका पाप क्षीण नहीं होता तब तक वह अकृतप्रायश्चित्त व्यक्ति अनेक यातनाएँ भोगा करता है॥ १८॥ महाराज! इस लोकमें जो कोई चोरी करता है अथवा बलपूर्वक ब्राह्मणके सुवर्ण रत्न आदिको हर लेता है या आपत्तिकाल उपस्थित न होने पर भी अपनी इच्छासे ब्राह्मणातिरिक्त अन्य किसी व्यक्तिके उक्त पदार्थोंका अपहरण करता है-भयंकर यमदूतगण परलोकमें लोहेके अग्निपिण्ड और सन्दंश द्वारा उसके शरीरको छिन्न भिन्न करते हैं॥ १९॥ जो पुरुष अगम्या (स्त्री) गमन करता है, या जो स्त्री

अगम्य पुरुषसे रति करती है, उन दोनो स्त्रीपुरुषोंको निर्दय यमदूत कोड़ोंसे मारते हैं एवं पुरुषको तप रही लोहेकी स्त्री-प्रतिमासे और स्त्रीको तप रही पुरुष-प्रतिमासे लिपटाते हैं ॥ २० ॥ इस पृथ्वीमें जो व्यक्ति पशुआदिसे सहवास करता है उसको यमदूतगण नरकमें डाल कर वज्रतुल्य काँटेवाली शाल्मली पर चढ़ाकर नीचे घसीटते हैं ॥ २१ ॥ जो राजा अथवा राजपुरुष अच्छे कुलमें उत्पन्न हो कर भी धर्मको दूषित करता है वह मर कर वैतरणीमें गिरता है। यह नदी सब नरकोंको खाईके समान घेरे हुए है; वहाँ मगर आदि हिंस्र जलजन्तुगण इधर उधर भ्रमण करते हैं एवं उसको भक्षण करते हैं, तो भी उसके प्राण नहीं निकलते और आत्मासे वियोग नहीं होता। वह अपने अधर्मकर्मके फलका स्मरण करता हुआ विष्ठा, मूत्र, पीव, रुधिर, केश, नख, हड्डी, मेदा, मांस और वसा जिसमें बहती है उसी वैतरणी नदीमें गिर कर बहुत ही व्यथित होता है ॥ २२ ॥ जो लोग इस लोकमें शूद्राके पति होकर अपने २ शौच, आचार और नियमको नष्ट कर देते हैं, लज्जा त्याग कर पशुओंकी भाँति स्वेच्छाचार करते घूमते हैं वे परलोकमें पीव, विष्ठा, श्लेष्मा और लारसे भरे हुए समुद्रमें गिरते हैं और इन्ही अत्यन्त वीभत्स घृणित पदार्थोंको खाते हैं ॥ २३ ॥ इस लोकमें जो ब्राह्मण कुत्ते और गधे पालते व शिकार करते हैं एवं विहित समयके सिवा मृगवध करते हैं वे मरने पर जब यमलोकको जाते हैं तब वहाँ यमदूतगण उनके शरीरको लक्ष्य बना कर बाण मारते हैं ॥ २४ ॥ जो दम्भी व्यक्ति केवल दम्भ दिखानेके लिये यज्ञमें पशुओंको मारते हैं वे मर कर वैशसनाम नरकमें गिरते हैं। यमदूतगण इस नरकमें उनको अनेक यातनाएँ देकर उनके अंग चूर २ कर देते हैं ॥ २५ ॥ जो द्विजकुलमें उत्पन्न व्यक्ति काममोहित हो कर सवर्णा (सगोत्रा) स्त्रीको शुक्रपान कराता है, यमदूतगण उस पापात्मा पामरको शुक्रकी नदीमें डाल कर शुक्रपान कराते हैं ॥ २६ ॥ जो व्यक्ति यहाँ दस्युवृत्ति ग्रहण करके लोगोंके घरोंमें आग लगा देते हैं, विष खिला देते हैं एवं जो राजा वा राजसैनिक गाँवोंको या काफिलोंको लूट लेते हैं वे मरने पर यमपुर जाते हैं, वहाँ सात सौ बीस कुत्ते वज्रतुल्य कराल दाढ़ोंसे उन्हे काटते हैं ॥ २७ ॥ जो व्यक्ति यहाँ साक्षी देनेमें झूठ बोलता है, बेंचते खरीदतेमें कम तौलता है अथवा दानके समय किसी प्रकार मिथ्या बोलता है, परलोकमें यमदूतगण उसको नीचे शिर करके सौ योजन ऊँचे पर्वतके शिखरसे निरालम्ब अवीचि नाम नरकमें डाल देते हैं। जहाँ स्थल भी पाषाणपृष्ठस्थ तरङ्गशून्य जलके समान जान पड़ता है वही अवीचि नाम नरक है। पर्वतसे नीचे गिरनेमें प्राणीका शरीर तिल २ चूर्ण हो जाता है, किन्तु प्राण नहीं निकलते; यमदूत यों ही बार २ ऊपर ले जाते और नीचे छोड़ देते हैं ॥ २८ ॥ जो ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य अथवा इन तीन वर्णोंकी स्त्री एवं व्रती पुरुष अज्ञतावश मद्यपान करता है उसे मरने पर यमदूत पटक देते हैं और छाती पर पैर धर कर बलपूर्वक आगमें गला हुआ शीशा पिलाते हैं ॥ २९ ॥

जो इस लोकमें स्वयं अधम हो कर भी, अपनेको बड़ा मान कर घमंड करता हुआ, जन्म, तप, विद्या, सदाचार, वर्ण और आश्रम में अपनेसे श्रेष्ठ व्यक्तियोंका निरादर करता है वह जीते ही मरेके तुल्य है। वह पापी मरनेके बाद यमलोकमें जा कर "क्षार-कर्दममय" नरकमें गिरता है उसका शिर नीचे हो जाता और वह अनेक यातनाएँ भोग करता रहता है ॥ ३० ॥ महाराज! इस संसारमें जो पुरुष अन्य पुरुषोंके प्राण ले कर भैरव आदिकी बलि देते हैं एवं जो स्त्रियाँ मनुष्य-पशुओंका मांस खाती हैं वे सब स्त्री पुरुष मरने पर यमलोक जाते हैं और वहाँ वे ही मारे हुए पुरुषपशु राक्षस रूप हो पैनी तर्वारसे उनको काटते हैं और रक्त पीकर नाचते हैं, गाते हैं, प्रसन्न होते हैं; जैसे कि वे पुरुषभोजी इस लोकमें उनका मांस खा कर आनन्दसे नाचते गाते थे ॥ ३१ ॥ वनके वा ग्रामके पशु पक्षी सभीको जीनेकी प्रबल इच्छा होती है। जो व्यक्ति अनेक उपायोंसे विश्वास उत्पन्न कराकर शूल वा सूत्रमें निरपराध पक्षी आदिके अंग छेद कर उड़ाते व यंत्रणा देते हैं उनको यमदूत शूली पर चढ़ाते हैं एवं वे भूख व प्यासके मारे तड़पते हैं। चारो ओरसे कंक, बट आदि तीक्ष्ण धारकी चोंचवाले पक्षी उनके शरीरमें प्रहार करते हैं; तब वे अपने पापोंका स्मरण कर पश्चात्ताप करते हैं ॥ ३२ ॥ जो व्यक्ति उग्र स्वभाव धारण कर प्राणियोंको भयभीत करता है वह मरने पर दंदशूक नरकमें गिरता है। वहाँ पर पाँच मुखके सात मुखके विषधर सर्प आ कर उन्हे मूसेके समान निगल जाते हैं ॥ ३३ ॥ जो व्यक्ति अंधे गढ़े, अंधे कुँए या अंधकारमय गुफाओंमें प्राणियोंको बंद कर देते हैं वे मरने पर यमलोकमें उसी प्रकार अंधे गढ़े आदिमें बंद किये जाते हैं और वहाँके जहरीले धुँएमें उनका दम घुटा करता है ॥ ३४ ॥ जो गृहस्थ मनुष्य अपने यहां अतिथि अभ्यागतको आया देख कर क्रोध करता है एवं क्रोधके कारण लाल २ आँखें निकाल कर जैसे जला देगा यों देखता है वह दुष्ट व्यक्ति नरकमें जाता है, वहाँ उस पापदृष्टिके नेत्रोंको वज्रकी चोंचवाले कङ्कआदि पक्षी बलपूर्वक उखाड़ लेते हैं ॥ ३५ ॥ राजन्! जो व्यक्ति इस लोकमें धनके गर्वसे 'मैं श्रेष्ठ हूँ' ऐसा अभिमान करके लोगोंकी ओर टेढ़ी दृष्टिसे देखता है और गुरुजनोंसे भी 'मेरा धन हर लेंगे' ऐसी आशङ्का करता है एवं जिसका हृदय धनव्ययकी चिन्तासे सदा सूखा करता है सुतरां जो किसी प्रकार स्वस्थ नहीं रहता, यक्षकी नाईं केवल धनकी रक्षा किया करता है, उसका सदुपयोग या भोग नहीं करता वह मरने पर सूचीमुख नरकमें गिरता है। वहाँ उस धनरक्षक पापी पुरुषको यमराजके दूत दर्जीकी भाँति सुइयोंसे छेदते हैं अर्थात् उसके सब अंगोंमें सिलाई करते हैं ॥ ३६ ॥ हे राजन्! इस प्रकार यमलोकमें सैकड़ों हजारों साधारण नरक हैं (ये मुख्य २ कहे गये हैं), पापीगण उनमें अपने पापके अनुसार जाते हैं। जैसे पाप करनेवाले लोग अपने २ पापके अनुसार उल्लिखित प्रकारसे नरकगामी होते हैं वैसे ही धर्मानुष्ठान

करनेवाले लोग अपने २ कर्मके अनुसार स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त होते हैं। किन्तु जो लोग परलोकमें धर्म और अधर्मका फल भोग करते हैं उनका फलभोग वहाँ निश्शेष नहीं हो जाता–कुछ बच रहता है, इस कारण उन सब व्यक्तियोंको इस मर्त्यलोकमें फिर जन्म लेनेके लिये आना पड़ता है। निवृत्तिमार्गकी व्याख्या पहले ही करचुके हैं और यह प्रवृत्तिमार्गका वर्णन किया ॥ ३७ ॥ पुराणोंमें चौदह भुवनमय ब्रह्माण्डका वर्णन ऐसे ही किया गया है। यही साक्षात् भगवान्‌का मायागुणमय स्थूलरूप है। जो व्यक्ति इसके विवरणको आदरसे पढ़ता, सुनता और सुनाता है उसकी बुद्धि श्रद्धा और भक्तिसे निर्मल होती है एवं वह भगवान् परमात्माके उपनिषद्‌में कहे हुए दुर्ज्ञेयस्वरूपके तत्त्वको जान सक्ता है ॥ ३८ ॥ यति लोग भी भगवान्‌के स्थूल और सूक्ष्म रूपोंको यथावत् सुन कर पहले स्थूलविषयमें चिन्तनादि द्वारा आत्म-जय करके पीछे बुद्धिके द्वारा क्रमशः सूक्ष्म तत्त्वमें मनको स्थापित करें ॥ ३९ ॥

भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभःसमुद्र-
पातालदिङ्नरकभागणलोकसंस्था ॥
गीता मया तव नृपाद्भुतमीश्वरस्य
स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम ॥ ४० ॥

राजन्! इस पृथ्वीमें द्वीप, खण्ड, पर्वत, नदी, सागर, आकाश, नक्षत्र, पाताल, नरक इत्यादि जो सम्पूर्ण लोकोंकी रचना हमने तुमसे वर्णन की यही उस ईश्वरका स्थूलशरीर है। सम्पूर्ण जीव इसीके आश्रयमें हैं ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते पञ्चमस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

समाप्तोऽयं पञ्चमस्कन्धः ।



शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

षष्ठस्कन्धः ।



इन्द्र और वृत्रासुरका समर ।



॥ श्रीः ॥

शुकोक्तिसुधासागरः।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

षष्ठस्कन्धः ।



प्रथम अध्याय ।

अजामिलोपाख्यानके अन्तर्गत विष्णु और यमराजके दूतोंकी वातचीत।

राजोवाच—निवृत्तिमार्गः कथित आदौ भगवता यथा ॥
क्रमयोगोपलब्धेन ब्रह्मणा यदसंसृतिः ॥ १ ॥

राजापरीक्षित् बोले । जिससे अर्चिःआदिलोकोंकी प्राप्ति हो कर फिर ब्रह्माका साक्षात्कार और उनके साथ मुक्ति होती है उस निवृत्तिमार्गको आप पहले वर्णन कर चुके ॥ १ ॥ हे मुनिवर! सुख ही जिसका प्राप्य विषय है एवं प्रकृतिका विलय न होनेसे जो पुरुषके लिये वारम्वार भोगार्थ देहधारणका कारणस्वरूप है वह प्रवृत्तिमार्ग भी, उसके उपरान्त आपने वर्णन किया ॥ २ ॥ अधर्मस्वरूप जो अनेक प्रकारके नरक हैं उनका भी वर्णन किया। जिसमें प्रथम स्वायम्भुव मनु उत्पन्न हुए उस मन्वन्तरकी भी आपने व्याख्या की ॥ ३ ॥ मनुके दोनो

पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपादका वंश और उनके चरित्र भी कहे एवं द्वीप, वर्ष, समुद्र, पर्वत, उद्यान, वृक्ष और विभाग-लक्षण व परिमाणके अनुसार पृथ्वीमण्डल, सूर्यादि ज्योतिर्गण एवं अतलादि अधोलोककी स्थिति कही। जिसप्रकार भगवान् हरिने सृष्टि की उसके अनुसार आपने सबका वर्णन किया ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे महाभाग! मनुष्यगण जिस उपायसे अनेक प्रकारकी उग्र यातनाओंसे पूर्ण नरकोंमें न गिरें वही इस समय अनुग्रह करके वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** मनुष्य, शरीर या मन अथवा वचनसे पापका आचरण करके यदि इस लोकमें ही उसी मन-वाणी-काया द्वारा यथाविधि उसका प्रायश्चित्त नहीं कर डालता तो जिन सम्पूर्ण तीव्रयातनामय नरकोंका नाम पहले कह आये हैं उनमें मरनेके बाद निश्चय ही गिरता है ॥ ७ ॥ अतएव मरनेके पहले ही देहको शिथिल न होने दे और मनको संयत कर, सब रोगोंका निदान जाननेवाला वैद्य जैसे रोगका भारीपन या हल्कापन देख कर चिकित्सा करता है वैसे दोपका भारीपन या हल्कापन विचार कर शीघ्र ही प्रायश्चित्तके लिये यत्न करे ॥ ८ ॥ **राजा बोले।** पापसे अहित होता है—यह देख सुन कर और जान कर भी मूढ़ पुरुप प्रायः प्रायश्चित्त करके भी फिर उसी पापमें लिप्त होते हैं, अतएव द्वादशवार्षिक व्रतादिको किस प्रकार प्रायश्चित्त मान सक्ते हैं? ॥ ९ ॥ लोग कभी प्रायश्चित्त करके पापसे निवृत्त होते हैं और कभी फिर पापाचरण करने लगते हैं। अतएव हाथीके नहानेके समान प्रायश्चित्त करना व्यर्थ हैं ॥ १० ॥ **श्रीशुकदेवजी बोले।** पाप करना भी कर्म है और चान्द्रायणआदि प्रायश्चित्त भी कर्म हैं। कर्मसे कर्म निर्मूल नहीं हो सक्ता, क्योंकि कर्मके अधिकारी अविद्यासे कलुपित होते हैं। तात्पर्य यह है कि ज्ञान ही एक यथार्थ प्रायश्चित्त है ॥ ११ ॥ जो व्यक्ति केवल पथ्य आहार करता है उसको रोग नहीं दबा सक्ते अर्थात् वह आरोग्यताका अधिकारी है। ऐसे ही हे राजन्! सर्वदा नियमका पालन करनेवाला व्यक्ति धीरे २ परममङ्गल अर्थात् तत्त्वज्ञानका अधिकारी हो जाता है ॥ १२ ॥ अग्नि जैसे बाँसके वनको भस्म कर देता है वैसे ही धर्मज्ञ धीर पुरुप श्रद्धान्वित हो कर तपस्या, ब्रह्मचर्य, शम, दान, सत्य, शौच, यम अथवा नियमके द्वारा कायिक वाचिक और मानसिक सुमहत् पापको भी दूर कर सक्ता है ॥ १३ ॥ १४ ॥ सूर्य जैसे ढेरके ढेर कुहरेको अनायास नष्ट कर देते हैं वैसे ही वासुदेवपरायण साधुजन केवल भक्तिके द्वारा सम्पूर्ण पापोंको निर्मूल कर देते हैं ॥ १५ ॥ हे राजन्! पापी मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णमें मन लगा कर भगवद्भक्त पुरुषोंकी सेवाके द्वारा जितना शीघ्र पवित्र हो सक्ता है उतना शीघ्र तपस्या आदिसे उसकी शुद्धि नहीं हो सक्ती ॥ १६ ॥ भक्तिमार्ग बहुत ही सीधा, मंगलदायक एवं अकुतोभय है। इसमें सुशील एवं नारायणपरायण साधुगण विचरण करते हैं ॥ १७ ॥ हे राजन्! जैसे सब नदियाँ

सुराके पात्रको नहीं शुद्ध कर सक्तीं वैसे ही सुमहत् प्रायश्चित्त करने पर भी नारायणसे विमुख हरिभक्तिहीन पुरुष पवित्र नहीं हो सक्ता ॥ १८ ॥ जो पुरुष केवल एक वार अपने कृष्णगुणानुरक्त चित्तको श्रीकृष्णजीके चरणारविंदोंमें लगाते हैं वे पापसे निस्तार पाये हुए लोग स्वप्नमें भी पाश हाथमें लिये हुए घोररूप यमके दूतोंको नहीं देख पाते ॥ १९ ॥ पण्डितगण उदाहरणस्वरूप इसी विषयका एक पुरातन इतिहास वर्णन करते हैं जिसमें विष्णु और यमके दूतोंका परस्पर संवाद है। वह इतिहास तुमसे कहते हैं सुनो ॥ २० ॥ कान्यकुब्ज देशमें अजामिल नाम एक दासीपति ब्राह्मण था। सर्वदा दासीके संसर्गसे दूषित होनेके कारण उसका सदाचार नष्ट हो गया था ॥ २१ ॥ वह निरंतर अशुद्ध अवस्थामें जुआ, पाँसा खेल कर ठगाही और चोरी करके निंदित जीविकासे जीवननिर्वाह करता था एवं प्राणियोंको पीड़ा पहुँचा कर कुटुम्बका भरण पोषण करता था ॥ २२ ॥ हे राजन्! इस प्रकार निन्दित कर्मोंके द्वारा दासीके पुत्रोंका भरण पोषण करते २ उसकी परमायुका बड़ा भारी हिस्सा निकल गया, अट्ठासी वर्ष वीत गये ॥ २३ ॥ उस वृद्धके दश पुत्र थे, उनमें जो सबसे छोटा था उसका नाम नारायण था। वह पिता माताको बहुत ही प्यारा था ॥ २४ ॥ अजामिल उसी अस्फुट–मधुरभाषी बालक नारायणमें ही आसक्त हो कर सर्वदा उसीकी क्रीड़ाओंका कौतुक देखता हुआ अत्यन्त आनन्दित होता था ॥ २५ ॥ बालकके स्नेहपाशमें जकड़ा हुआ अजामिल अपने साथ ही उसे खिलाता पिलाता था। इसी प्रकार असावधान अजामिलको शिर पर आये हुए कालका हाल नहीं मालूम हुआ ॥ २६ ॥ इस प्रकार भूले हुए मूढ़ अजामिलका मृत्युकाल आगया। तब उसका चित्त उसी बालक नारायणमें लग गया ॥ २७ ॥ उसी समय उसने देखा कि हाथमें पाश लिये हुए बड़े ही दारुण पुरुष उसे लेने आये हैं, उनके मुख टेढ़े हैं और केश ऊपर उठे हुए हैं ॥ २८ ॥ अजामिलने उनको देखते ही घबड़ा कर दूर पर खेल रहे अपने पुत्रको ऊँचे स्वरसे "नारायण! नारायण!!" कह कर पुकारा ॥ २९ ॥ मरते हुए अजामिलके मुखसे अपने स्वामीका नाम सुनते ही विष्णुके पार्षद सहसा वहाँ आ कर उपस्थित हुए ॥ ३० ॥ यमके दूत दासीपति अजामिलके हृदयसे जीवात्माको निकाल रहे थे, उसी समय आये हुए विष्णुके दूतोंने बलपूर्वक उन्हे रोका ॥ ३१ ॥ रोकने पर वैवस्वतके दूत विष्णुके पार्षदोंसे कहने लगे–धर्मराजकी आज्ञाको टालनेवाले तुम कौन हो? ॥ ३२ ॥ तुम किसके सेवक वा आज्ञाकारी हो? कहाँसे आये हो? क्यों हमें ऐसा करनेसे रोकते हो? तुम देवता, उपदेवता या कोई सिद्धश्रेष्ठ हो? ॥ ३३ ॥ तुम सब कमलनयन हो; पीताम्बर पहने, किरीट मुकुट, मकराकृत कुण्डल और कमलकी माला धारण किये हुए हो ॥ ३४ ॥ सबकी नई किशोर अवस्था है, सबके चारु चार भुजाएँ हैं, हाथोंमें धनुष, तर्कस, खड्ग, गदा, शंख, चक्र और कमल शोभायमान हैं ॥ ३५॥

अपने तेजसे सब दिशाओंका अन्धकार एवं अन्यान्य तेजस्वी पदार्थोंकी कान्ति नष्ट कर रहे हो । सो भाई किस लिये हम धर्मपालके दूतोंको यह कार्य करनेसे रोकते हो? ॥ ३६ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । यमके दूतोंने जब यों कहा तब वासुदेवके आज्ञाकारी वे महापुरुष हँस कर मेघकेतुल्य गंभीर स्वरसे बोले ॥ ३७ ॥ **विष्णुके दूत बोले** । यदि तुम धर्मराजकी आज्ञाके पालक हो तो पहले हमसे धर्मका तत्त्व और अधर्मका लक्षण कहो ॥ ३८ ॥ किस प्रकार दण्ड-धारण किया जाता है? दण्डका यथार्थ पात्र कौन है? कर्म करनेवाले सब ही दंड-नीय हैं या मनुष्योंमें कुछएक कर्मकर्ता ही दण्डनीय हैं? ॥ ३९ ॥ **यमराजके दूत बोले** । वेदमें जो कर्तव्य कहा गया है वही धर्म है और उसके विपरीत आचरण ही अधर्म है । हमने सुना है कि वेद साक्षात् नारायणका स्वरूप एवं स्वयं उत्पन्न है ॥ ४० ॥ जो अपने स्वरूपोंसे सत्त्व रज-तम-मय प्राणियोंको शान्त भाव आदि गुण, ब्राह्मणादि नाम, अध्ययनादि क्रिया एवं वर्णाश्रमादि रूपोंके द्वारा यथावत् व्यक्त करते हैं वही नारायण हैं ॥ ४१ ॥ सूर्य, चन्द्र, अग्नि, आकाश, पवन, सन्ध्या, दिन, रात्रि, दिशा, पृथ्वी, जल और धर्म–ये ही सब जीवके किये कर्मोंके साक्षी हैं ॥ ४२ ॥ इन्हीं साक्षियोंसे विज्ञात अधर्म ही दण्डका पात्र है । उस अधर्मके करनेवाले ही क्रमानुसार दण्डभागी होते हैं ॥ ४३ ॥ हे निष्पाप पुरुषगण! कर्म करनेवाले पुरुषोंसे भद्र और अभद्र दोनो ही कर्म होते हैं, क्योंकि यदि कोई अकर्ता हो तो उस के लिये अभद्र न हों; किन्तु देहधारी तो सभी कर्म करनेवाले हैं ॥ ४४ ॥ इस लोकमें जो व्यक्ति जितना धर्म या अधर्मका आचरण करता है वह परलोकमें उसका उतना फल अवश्य ही भोग करता है ॥ ४५ ॥ हे देवप्रवरो! जैसे गुणोंके त्रिविध होनेके कारण यहाँ तीन प्रकारके प्राणी देख पड़ते हैं, वैसे ही परकालमें भी वे तीन प्रकारके होते हैं–यह बात अनुमानसिद्ध है ॥ ४६ ॥ वर्तमान वसन्तादिकाल जैसे अतीत और अनागत वसन्तादि कालोंके गुणनिचयोंका ज्ञापक होता है वैसे ही उपस्थित जन्म भी अतीत और अनागत जन्मके धर्माधर्मका निदर्शक होता है ॥ ४७ ॥ हमारे देव अनादि भगवान् यम, अपनी पुरीमें अवस्थित रह कर ही, मनुष्योंके पूर्वकृत आचरणोंको देख पाते हैं, पीछेसे उसीके अनुरूप भविष्य आचरण विचार रखते हैं ॥ ४८ ॥ जैसे निद्रित व्यक्ति स्वप्न-सृष्ट शरीरकी उपासना अर्थात् उसमें आत्मबुद्धि करता है वैसेही अज्ञ जीव इस व्यक्त देहकी ही उपासना करता है, पूर्वापर कुछ भी नहीं जान पाता; क्यों कि उसको दूसरे जन्मकी स्मृति नहीं रहती ॥ ४९ ॥ यह जीव पाँच कर्मेन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण-गमनादि कार्य सम्पादन करता है और पाँच इन्द्रि-योंसे विषयभोग करता है एवं सोलहवें मनके साथ स्वयं सत्रहवाँ जीव कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और मनके सब विषयोंका भोग करता है ॥ ५० ॥ यह जीवका षोडश-

कलाविशिष्ट लिंगशरीर, सत्त्वादि तीनो गुणोंका कार्य जो तीन शक्तियाँ हैं उनसे युक्त है। उक्त तीनो शक्तियाँ जीवके लिये जो संसार उत्पन्न करती हैं उससे जीवको हर्ष, शोक, भय एवं पीड़ा उपस्थित होती है ॥ ५१ ॥ हे अमरगण! काम आदि छः शत्रुओं द्वारा अभिभूत अज्ञ जीव, इच्छा न रहने पर भी, कर्म करनेके लिये बाध्य होता है एवं कोपकार कृमिकी भाँति अपनेको कर्मके जालमें फँसा कर उससे निकलनेका उपाय नहीं ठीक कर सक्ता ॥ ५२ ॥ कोई व्यक्ति क्षण भर भी विना कर्म किये नहीं रह सक्ता । पूर्वसंस्कारजन्य रागादिक, उसको बलपूर्वक अधीन करके कार्य करनेके लिये बाध्य करते हैं ॥ ५३ ॥ उन्ही सब कर्मोंसे उत्पन्न जो अदृष्ट है वही जीवके स्थूल अथवा सूक्ष्म शरीरका कारण है । वह वासना अत्यन्त बलवती है, उसके द्वारा जीवको पितृसदृश अथवा मातृसदृश देहकी प्राप्ति होती है ॥ ५४ ॥ प्रकृतिके संगवश पुरुषको इसी प्रकारका "विपर्यय" होता है । किन्तु पुरुष यदि स्वयं परमेश्वरकी उपासनामें तत्पर होता है तो शीघ्र ही वह विपर्यय अर्थात् संसारचक्र लीन हो जाता है ॥ ५५ ॥ यह अजामिल पहले श्रुतसम्पन्न, सुस्वभाव, सदाचारशील एवं क्षमा आदि अनेक सद्गुणोंसे विभूपित था । व्रतोंका पालन करता था, कोमलहृदय, जितेन्द्रिय सत्यवादी, मंत्रज्ञ और शुद्ध था ॥ ५६ ॥ यह अहङ्कारशून्य हो कर गुरु, अग्नि और वृद्धोंकी सेवा करता था । सब प्राणियोंसे मित्रभाव रखता था साधु अर्थात् परोपकारी, थोड़ा बोलनेवाला, ईर्षा और डाहसे शून्य था ॥ ५७॥ एक दिन यह अजामिल पिताकी आज्ञासे वनको गया और वहाँसे फल, फूल, लकड़ी और कुश ले कर लौटा ॥५८॥ लौटते समय इसने एक कामी शूद्रको देखा कि वह मदिरा पिये हुए एक वेश्यासे रमण कर रहा है। उस वेश्याके नेत्र मदसे विह्वल हो रहे हैं ॥ ५९ ॥ वह मत्त हो रही है और उस दशामें उसका वस्त्र खुल कर गिरा जा रहा है। वह कामी पुरुष निर्लज्जभावसे उस स्त्रीके गलेमें बाहें डाले हँसता और गाता है ॥ ६० ॥ यह अजामिल सुगन्धित अंगरागसे लिप्त बाहु गलेमें डाले हुए उस दासीको देख कर सहसा कामदेवके वश हो गया ॥ ६१ ॥ इसमें जितना धैर्य-जितना ज्ञान था उतना इसने मनको रोका; किन्तु कामके बाणोंकी अमोघ चोट खाये हुए चंचल मनको नहीं रोक सका ॥ ६२ ॥ दुष्ट ग्रहने दासीस्वरूप कामदेवके छलसे इसको ग्रस लिया, यह अपनेको भूल गया। यह अपने मनमें उसी दासीका ध्यान करने लगा । यहाँ तक कि इस हतभाग्यने अपना धर्म त्याग दिया ॥ ६३ ॥ यह, जिस प्रकार वह दासी अनुरक्त होसके सो सिद्ध करनेके लिये, जो कुछ पिताकी सम्पदा थी सब व्यय करके, मनोहर ग्राम्यभोग्य वस्तुओंसे उस दासीको सन्तुष्ट करने लगा ॥ ६४ ॥ इस पापीने उस कुलटाके कटाक्षोंसे घायल हो कर सत्कुलमें उत्पन्न अपनी युवती ब्राह्मणीको शीघ्र ही छोड़ दिया ॥ ६५ ॥

यह मन्दबुद्धि न्यायसे अन्यायसे किसी प्रकार जहाँ तहाँसे जो धन लाता था उससे उसी दासीके परिवारका भरण पोषण करता था ॥ ६६ ॥ इसने शास्त्रकी विधिका उल्लङ्घन करके यथेच्छाचरण किया—अतिनिन्दित दासीके हाथके मलरूप अन्नका भोजन करते हुए अपवित्र दशासे बहुत काल बिताया एवं इसकी सारी आयु पापपूर्ण हो गई ॥ ६७ ॥

तत एनं दण्डपाणेः सकाशं कृतकिल्बिषम् ॥
नेष्यामोऽकृतनिर्वेशं यत्र दण्डेन शुध्यति ॥ ६८ ॥

अतएव इस अकृत-प्रायश्चित्त पापीको हम लोग दण्डधर यमराजके पास ले जायँ गे। वहाँ यह अपने पापका समुचित दण्ड पा कर शुद्ध हो जायगा ॥ ६८ ॥

इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे प्रथमोध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय।

विष्णुदूतोंका अजामिलको विष्णुलोक ले जाना।

श्रीशुक उवाच—एवं ते भगवद्दूता यमदूताभिभाषितम् ॥
उपधार्याथ तान्राजन्प्रत्याहुर्नयकोविदाः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले। राजन्! यमदूतोंके वचन सुन कर वे न्यायपरायण विष्णुदूत विस्मय प्रकट करते हुए बोले ॥ १ ॥ **विष्णुदूत बोले।** आः! कैसे कष्टकी बात है! धर्मदर्शी साधुओंके समाजको अधर्म स्पर्श करता है; क्योंकि आज निष्पाप अदण्डनीयों पर उनके द्वारा वृथा दण्ड देनेका विधान किया जाता है ॥२॥ जो साधु समदर्शी और प्रजाओंके पिता माताके तुल्य पालक हैं उन्हीमें यदि अदण्ड्य-दण्डनादि विषमभाव देख पड़ेगा तो प्रजा किसकी शरणमें जायगी? ॥३॥ श्रेष्ठ व्यक्ति जिन कार्योंको करते हैं, इतर लोगभी उन्ही कार्योंके करनेकी चेष्टा करते हैं एवं बड़े लोग जिसको प्रमाण मानते हैं, साधारण जन भी उसीके अनुगामी होते हैं ॥ ४ ॥ जो स्वयं धर्म या अधर्म नहीं जानते वे पशुतुल्य लोग जिसकी गोदमें शिर रख निश्चिन्त हो कर सोवें, वही सब प्राणियोंके विश्वासका पात्र दयालु पुरुष, जिसने मित्रभावसे विश्वास करके आत्मसमर्पण किया है उसका यदि अनिष्ट करे तो क्या कहा जाय? ॥ ५ ॥ ६ ॥ इस ब्राह्मणने एक जन्म क्या, कोटि जन्मके पापोंका प्रायश्चित्त कर डाला, क्योंकि इसने विवश होकर मोक्ष देनेवाले हरिनामका उच्चारण किया ॥ ७ ॥ इस पापिष्टने जो "नारायण" ये अक्षर उच्चारण किये इसीके द्वारा यह पाप-मुक्त हो गया ॥ ८ ॥ सोना

चुरानेवाला, मित्रसे द्रोह करनेवाला, ब्राह्मण, स्त्री, राजा, पिता माता और गऊका वध करनेवाला, गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाला, मदिरा पीनेवाला एवं और भी जो बड़े २ पातक करनेवाले हैं ॥ ९ ॥ उन सबके लिये विष्णुके नामका उच्चारण ही उत्तम प्रायश्चित्त है। क्योंकि नामोच्चारण करनेवालेको विष्णु भगवान् अपना जन मानते हैं एवं उस जनकी विष्णुमें भक्ति होती है ॥ १० ॥ पापी पुरुष हरिनामके कीर्तनसे जैसी शुद्धि प्राप्त करता है वैसी ब्रह्मवादी मुनियोंके कहे हुए अन्यान्य शास्त्रविहित व्रतादि प्रायश्चित्तोंसे नहीं होती। हरिनामका उच्चारण पवित्रकीर्ति हरिके गुणगणका ज्ञापक है ॥११॥ चान्द्रायणव्रतादि प्रायश्चित्तोंसे पापका समूल-संहार नहीं होता, क्योंकि प्रायश्चित्त करने पर भी तो मन कुमार्गमें जाता है। अतएव जो लोग एकदम पापकी जड़ उखाड़ना चाहते हैं उनके लिये भगवान् हरिके गुणोंका कीर्तन ही उत्तम प्रायश्चित्त है; उसीसे चित्तकी शुद्धि होती है ॥१२॥ इस लिये तुम इस ब्राह्मणको न ले जाओ, इसने मरते समय भगवान्‌का नाम लेकर अपने सब पापोंका प्रायश्चित्त कर डाला है ॥ १३ ॥ पुत्रादिके सङ्केतसे ही हो, हँसीसे ही हो, गीतालापपूरणार्थ ही हो अथवा अवज्ञाक्रमसे ही हो-भगवान् हरिका नाम सब पापोंको नष्ट कर देता है-यह सभी विद्वान् जानते हैं ॥ १४ ॥ जो व्यक्ति ऊँचे घर आदिसे नीचे गिरते समय, चलते २ पैर फिसल जानेके समय, अंगभंग हो जानेके समय, सर्पादिसे डँसे जाने, ज्वरादिके आने एवं युद्धादिमें चोट खानेके समय अवश हो कर "हरि" इतना कहता है वह यातना नहीं भोगता ॥१५॥ महर्षिगणने विशेष विचार करके बड़े पापोंके बड़े और छोटे पापोंके छोटे प्रायश्चित्त कहे हैं ॥ १६ ॥ इन सब तप, दान एवं व्रतादि प्रायश्चित्तोंसे उन पापोंकी शान्ति अवश्य हो जाती है किन्तु पापीके पापाचरणवश मलिन हृदयकी शुद्धि नहीं होती; परन्तु हरिचरणोंकी सेवासे हृदय भी शुद्ध हो जाता है ॥ १७ ॥ जैसे अग्नि जाने या बे-जाने लकड़ीको जला देता है वैसे ही ज्ञानसे अथवा अज्ञानसे कीर्तन किया गया हरिनाम मनुष्यके पापको हर लेता है ॥ १८ ॥ कोई व्यक्ति विना जाने भी यदृच्छाक्रमसे अत्यन्त वीर्यवान् औषधको खा ले तो वह औषध अवश्य ही अपना गुण दिखावेगी; हरिनामरूप मन्त्रका उच्चारण भी वैसा ही है ॥ १९ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! उन विष्णुदूतोंने इस प्रकार भागवत धर्मका विशेषरूपसे निर्देश किया और उस ब्राह्मण अजामिलको यमपाशसे छुड़ा कर बचा लिया ॥ २० ॥ हे अरिन्दम! यमदूतगणने यों निरस्त होने पर अपने स्वामी धर्मराजके निकट जा कर आदिसे अन्त तक सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥२१॥ इधर अजा-मिल यमपाशसे मुक्त हो कर निर्भय और प्रकृतिस्थ हुआ। उस समय उसने पृथ्वीमें शिर झुका कर विष्णुके दूतोंको प्रणाम किया । उनके दर्शनसे उसको बड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ हे निष्पाप! महापुरुष विष्णुके अनुचरोंने उसकी भावभंगी देख कर जाना कि यह कुछ कहना चाहता है सो सहसा उसके देखते ही

देखते अन्तर्द्धान हो गये ॥ २३ ॥ तदनन्तर अजामिल यमदूतोंके मुखसे वेदत्रय-प्रतिपाद्य सगुण धर्म एवं विष्णुदूतोंके मुखसे भगवत्प्रणीत विशुद्ध निर्गुण धर्म सुन कर भगवान्‌में अत्यन्त भक्तियुक्त हुआ और अपने पूर्वकृत सम्पूर्ण अशुभ कर्मोंका स्मरण करके बहुत ही पश्चात्ताप करने लगा ॥ २४ ॥ २५ ॥ अजामिल मनमें कहनेलगा–"अहो! मैं इन्द्रियोंको न जीत सका, कैसे कष्टकी बात है! कैसी घृणाका विषय है! मैंने शूद्राके गर्भमें सन्तान उत्पन्न करके अपने ब्रह्मतेजको नष्ट भ्रष्ट कर दिया! ॥ २६ ॥ मैं अपनी युवती सती भार्याको त्याग कर मदिरा पीने-वाली व्यभिचारिणीमें आसक्त हो गया! मैं दुष्कर्म करनेवाला, सज्जन समाजमें निन्दनीय एवं कुलकलंक हूँ; मुझे धिक्कार है! ॥ २७ ॥ मेरे माता पिता वृद्ध व अनाथ हैं, उनका मेरे सिवा और कोई पुत्र या बन्धु बान्धव नहीं है और वे त-पस्वी व निर्दोष हैं। हाय! मुझ कृतघ्नने नीचोंकी भाँति उन्हे त्याग दिया! ॥ २८ ॥ मैं स्पष्ट जानता हूँ कि धर्मका उल्लंघन करनेवाले कामीगण जिन नरकोंमें यमकी यंत्रणा भोगते हैं उन अति भयानक नरकोंमें मैं भी गिरूँगा ॥ २९ ॥ यह अद्भुत व्यापार क्या स्वप्न है? नहीं, मैंने साक्षात् अपनी आँखोंसे देखा था। जो लोग पाश हाथमें लिये हुए पृथ्वीके नीचेसे आये थे और मेरे आत्माको शरीरसे खींच रहे थे वे कहाँ चले गये? ॥ ३० ॥ और वे सिद्धगण कहाँ गये, जो चारु रूपवाले चार चतुर्भुज थे और जिन्होने पाशबन्धनसे मुझको छुड़ाया था ॥ ३१ ॥ जो कुछ हो, इस जन्ममें मैं अभागा पापी अवश्य हूँ। किन्तु मुझे उन देववरोंके दर्शन हुए एवं आत्मा भी उन्हे देख कर प्रसन्नताको प्राप्त हुआ, इससे जान पड़ता है कि कुछ न कुछ मेरा मङ्गल अवश्य होनेवाला है ॥ ३२ ॥ नहीं तो मुझ अपवित्र शूद्राके पतिकी जिह्वा मरते समय पतितपावन परमेश्वरके नामको न लेती ॥ ३३ ॥ कहाँ मैं छली, निर्लज्ज, पापी, ब्रह्मतेजको नष्ट करनेवाला! और कहाँ मंगलमय भग-वान्‌का 'नारायण' यह नाम! ॥३४॥ जो हो, मैं अब यह यत्न करूँगा, चित्त और इन्द्रिय व प्राणोंको जीतूँगा, जिसमें फिर मेरा आत्मा अविद्याके अन्धकारमें मग्न होकर भ्रष्ट न हो ॥३५॥ इस अविद्या और कामकर्मद्वार उत्पन्न बन्धनसे मुक्त होकर सब प्राणियोंका सुहृद्, शान्त, दयावान्, आत्मवान् हो कर स्त्रीरूप अपनी मायामें फँसे हुए अपने आत्माको बन्धनसे मुक्त करूँगा। इसी मायाने अधम क्रीड़ामृगकी भाँति मुझे अनेक नाच नचाये हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ देहादिमें 'मैं हूँ, मेरा है' इस असद्बुद्धिको त्याग कर भगवान्‌के कीर्तनआदिसे शुद्ध मनको भगवान्‌में लगाऊँगा" ॥ ३८ ॥ हे राजन्! उसको साधुओंके क्षणमात्रके संगसे ऐसा वैराग्य हो गया। तदनन्तर वह पुत्रादिस्नेहरूप सब बन्धनोंसे मुक्त हो कर हरिद्वारको चला गया ॥ ३९ ॥ अजामिल उसी देवगणके रहनेके स्थानमें आसन-कल्पनापूर्वक योगसाधनमें प्रवृत्त हुआ। उसने इन्द्रियोंको विषयोंसे हटा कर मनको आत्मामें लगा दिया ॥ ४० ॥ फिर आत्माको चित्तकी एकाग्रता द्वारा देह इन्द्रिय

इत्यादिसे वियुक्त कर ज्ञानमय परब्रह्मस्वरूप भगवान्‌से मिला दिया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर परब्रह्ममें ही उसका मन निश्चल हो गया । उसी समय अजामिलने उन्ही महापुरुषोंको अपने आगे देखा जिन्हे कुछ दिन पहले मृत्युके समय देखा था; देखते ही उनको दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ भगवान्‌के पार्षदोंका दर्शन करते ही हरिद्वार तीर्थमें अपना पूर्वशरीर त्याग कर अजामिलने भी उनका ऐसा मनोहर पवित्र स्वरूप पाया ॥ ४३ ॥ एवं उन्ही महापुरुषोंके साथ सुवर्णमय विमानमें चढ़ कर, जहाँ श्रीपति भगवान् नित्य स्थित रहते हैं उसी पुनीत स्थानको आकाशमार्ग हो कर गया ॥ ४४ ॥ सब धर्मोंसे भ्रष्ट, दासीपति, निन्दित कर्मोंके आचरणसे पतित एवं व्रतहीन वह अजामिल नरकमें गिरने जाता था, उसी समय भगवान्‌का नाम लेनेसे तत्क्षण मुक्त हो गया ॥४५॥ अतएव तीर्थपद भगवान्‌के कीर्तनकी अपेक्षा, मोक्षकी इच्छावालोंके कर्मबन्धनको काटनेका और उत्तम उपाय नहीं है, क्योंकि हरिनामकीर्तनसे मन फिर कर्मोंमें नहीं लिप्त होता; इसके सिवा अन्यान्य प्रायश्चित्त करनेसे मन पहलेकी ही भाँति रजोगुण और तमोगुणसे मलिन रहता है ॥ ४६ ॥ यह परमगुह्य एवं पापनाशक इतिहास है, इसको जो श्रद्धासे सुनते हैं, भक्तिसहित पढ़ते हैं, वे कभी नरकमें नहीं गिरते एवं यमदूतगण उन्हे देख भी नहीं पाते । वे व्यक्ति यद्यपि अत्यन्त अमङ्गलमय हों तथापि विष्णुलोकमें पूजित हो कर वास करते हैं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितम् ॥
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥ ४९ ॥

मृत्युसमय पुत्रका नाम लेतेमें भगवान्‌के नामका उच्चारण कर महापापी अजामिल भी भगवान्‌के धामको गया । तब जो व्यक्ति श्रद्धासे भगवान्‌का नाम लेगा उसके मुक्त होनेमें क्या संशय है ? ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय ।

यम और यमदूतोंका सम्वाद ।

राजोवाच—निशम्य देवः स्वभटोपवर्णितं
प्रत्याह किं तान्प्रति धर्मराजः ॥
एवं हताज्ञो विहतान्मुरारे-
र्नैदेशिकैर्यस्य वशे जनोऽयम् ॥ १ ॥

राजा परीक्षित् बोले । सब लोग जिनकी आज्ञाके वशवर्ती हैं उन यमराजने

अपने दूतोंके मुखसे पूर्वोक्त वृत्तान्त सुन कर विष्णुदूतों द्वारा निरस्त उन दूतोंसे इस प्रकार आज्ञा विफल होने पर क्या कहा ॥ १ ॥ हे ऋषे! हमने इससे पहले कभी कहीं यमराजका दण्ड व्यर्थ होते नहीं सुना; इस विषयमें सब ही लोगोंको बड़ा भारी संशय होगा। आपके सिवा इस सन्देहको कोई नहीं दूर कर सक्ता—यह हमको निश्चय है ॥ २ ॥ **श्रीशुकदेवजी बोले**। विष्णुदूतोंके प्रभावसे इस प्रकार अपना उद्यम विफल होने पर यमदूतगण अपने प्रभु संयमनी पुरीके अधिपतिसे जा कर सम्पूर्ण वृत्तान्त जता कर यों बोले ॥ ३ ॥ **यमदूत बोले**। प्रभो! त्रिविध कर्म करनेवाले जीवोंको फल देनेवाले शासक इस ब्रह्माण्डमें कितने हैं? ॥ ४ ॥ यदि जीवलोकमें दण्डधारी बहुत से शासनकर्ता हैं तो किसीको सुख दुःख कुछ भी न होगा, या किसीको निरन्तर सुख और किसीको निरन्तर दुःख ही होगा ॥ ५ ॥ कर्म करनेवाले जीव बहुत से हैं, उनके कर्मफलकी व्यवस्थाके लिये शासक भी बहुत हो सक्ते हैं सही, किन्तु जैसे मण्डलेश्वरगण भी शासक कहे जा सक्ते हैं वैसे ही यह शासकत्व उपचारमात्र है ॥ ६ ॥ वास्तवमें एक आप ही बहुशासकपरिवृत प्राणियोंके अधीश्वर, शासनकर्ता दण्डधर एवं मनुष्योंके शुभाशुभका विचार करनेवाले हैं ॥७॥ किन्तु आपका विहित दण्ड इस समय लोगोंके शासनमें असमर्थ देख पड़ता है। आज चार अद्भुत सिद्धोंने आपकी आज्ञाको अन्यथा कर डाला ॥ ८ ॥ हम आपकी आज्ञासे एक पापीको यातनागृह(नरक)में लिये आते थे, इसी समय अकस्मात् वे चार पुरुष आ पहुँचे एवं पाश काट कर उस पापीको मुक्त कर दिया ॥ ९ ॥ प्रभो ! यदि हमारे हितकी इच्छा करो और हमारे बताने योग्य समझो तो बताओ वे कौन थे! जो "नारायण" इतना कहने पर "मत डरो मत डरो" कह कर जल्दीसे आगये ॥१०॥ **श्री शुकदेवजी कहते हैं**। प्रजासंयमनकारी यमराज अपने दूतोंके इस प्रश्नसे आनन्दित हुए एवं भगवान् हरिके चरणारविन्दोंका स्मरण करते हुए प्रीतिपूर्वक उनसे बोले ॥ ११ ॥ **यमराज बोले**। मेरे सिवा और एक चराचर जगत्के सर्वप्रधान अधीश्वर हैं। कपड़ेमें सूतकी नाईं उनमें यह सारा विश्व ओतप्रोत है, उनके अंशसे विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार होता है एवं सब लोग नथे हुए बैलोंकी भाँति उनके वशमें हैं ॥ १२ ॥ वह रस्सीमें बैलोंकी भाँति ब्राह्मणादि नाम द्वारा वेदवाक्यस्वरूप रस्सीमें सब लोगोंको बाँधे हुए हैं; नाम और कर्मरूप बन्धनसे बँधे हुए ये सब जीव समानभावसे उनके लिये बलि वहन करते हैं अर्थात् अधीन हैं ॥ १३ ॥ औरोंकी कौन चलावे? मैं, महेन्द्र, निर्ऋति, वरुण, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य, ब्रह्मा, महेश्वर, विश्वेदेवा, साध्यगण, मरुद्गण, रुद्रगण, सिद्धगण, विश्वस्रष्टा और अन्यान्य सब प्रधान २ देवता एवं रजोगुण व तमोगुणके सम्बन्धसे रहित भृगु आदि महर्षिगण सत्वप्रधान हो कर भी मायास्पर्शके प्रभावसे उनकी चेष्टाको नहीं जान पाते ॥ १४ ॥ १५ ॥ जैसे चक्षु शरीरके सब अंगोंको देखता है किन्तु नेत्रोंको नहीं देख पाता वैसे प्राणीगण

इन्द्रिय, मन, प्राण, हृदय या वाक्य द्वारा सबके हृदयमें ही आत्मास्वरूपसे अवस्थित उनका निर्देश नहीं कर सक्ते ॥ १६ ॥ उन आत्मवश, सबके प्रभु, सबसे श्रेष्ठ, मायाधिपति एवं महात्मा हरिके मनोहरस्वरूप दूतगण उन्हींके समान रूप, गुण और स्वभावसे सुशोभित हैं; वे प्रायः पृथ्वीमण्डल भरमें भ्रमण किया करते हैं ॥१७॥ भगवान् विष्णुके भृत्यगण देवपूजित हैं, उनका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है, अतएव वे अतीव आश्चर्यमय हैं। वे विष्णुभक्त मनुष्योंको उनके शत्रु दुष्टोंके हाथसे और मुझसे एवं अन्यान्य सकल विपत्तियोंसे सब प्रकार बचाते रहते हैं ॥ १८ ॥ साक्षात् भगवत्प्रणीत जो धर्म है उसको, क्या भृगु आदि ऋषि और क्या देवगण, सिद्धसमूह, कोई भी नहीं जान सक्ते। तब असुरनिकर, मनुष्यकुल, विद्याधर और चारणगण ही किस प्रकार जान सक्ते हैं? ॥१९॥ हे दूतगण ! केवल स्वयम्भू ब्रह्मा, शम्भु भगवान्, नारद, सनत्कुमार, कपिलदेव, मनुदेव, प्रह्लादजी, राजा जनक, भीष्म पितामह, राजा बलि, शुकदेवजी और मैं, ये बारह जन ही उस विशुद्ध, दुर्ज्ञेय, गुह्य भागवत धर्मको जानते हैं; जिसे जाननेसे मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है ॥२०॥२१॥ हे दूतगण! नामकीर्तनादिके द्वारा भगवान् वासुदेवमें लगाया गया जो भक्तियोग है वही इस लोकमें पुरुषोंका परम धर्म है ॥२२॥ हे पुत्रगण! हरिनामके उच्चारणका माहात्म्य तुमने देखा ! कि पापी अजामिल धोखेसे नाम ले कर मृत्युके पाशसे मुक्त हो गया ॥ २३ ॥ अतएव ऐसा नहीं कहा जा सक्ता भगवान्के गुण, कर्म और नामका भली भाँति कीर्तन केवल पुरुषोंके पापक्षयमात्रके लिये उपयोगी है; क्योंकि महापापी अजामिल अशुचि एवं मरणावस्थामें असुस्थचित्त होनेपर भी "नारायण" कह कर पुत्रको बुलानेसे ही मुक्ति पा गया ॥ २४ ॥ धर्मशास्त्रप्रणेता महाजनोंकी बुद्धि अवश्य ही मायामें मोहित थी, सुतराम् अर्थवादरूपपुष्पभूषित वेदविधिमें बुद्धि विजड़ित होनेके कारण वे लोग वैतानिक महत्कर्म(अग्निष्टोमादियज्ञ)में लग कर उस नामके अतिगुह्य माहात्म्यको भली भाँति नहीं समझ सके (इसी लिये द्वादशवार्षिकादि प्रायश्चित्तोंका विधान किया) ॥ २५ ॥ हे दूतगण! जो सब सुमति मनुष्य यह सब सोच विचार कर शुद्ध अन्तःकरणसे भगवान् अनन्तमें अनन्य भक्ति स्थापित करते हैं वे कभी मेरे दण्डके योग्य नहीं हैं। उनको पाप हो ही नहीं सक्ता, और यदि होता भी है तो भगवान्के नामका कीर्तन करनेसे तत्क्षण नष्ट हो जाता है ॥ २६ ॥ जो साधु पुरुष भगवान्के शरणागत और सर्वत्र समदर्शी हैं, देवगण और सिद्धगण जिनकी पवित्र कथाका कीर्तन किया करते हैं—उन सब साधुओंके निकट तुम लोग कभी न जाना। भगवान्की गदा सदा सर्वतोभावसे उनकी रक्षा किया करती है, अतएव उनको दण्ड देनेके लिये हम भी नहीं समर्थ हैं और काल भी नहीं समर्थ है ॥ २७ ॥ अकिञ्चन परमहंस लोग सबका संग त्याग कर निरन्तर जिनकी सेवा करते हैं उन्ही मुकुन्दके पदारविन्दमकरन्दरसके आस्वादनसे विमुख हो कर नरक-

मार्गस्वरूप गृहमें तृष्णायुक्त जो असाधु हैं उनको हमारे समीप लाओ ॥ २८ ॥ जिनकी जिह्वा भगवान्के गुणोंका वर्णन या नामका उच्चारण नहीं करती, जिनका चित्त भगवान्के चरणकमलके स्मरणसे विमुख है, जिनका मस्तक कभी श्रीकृष्णजीके चरणारविन्दोंमें प्रणत नहीं होता अथवा जिन्होने एक बार भी विष्णुकी सेवाका व्रत नहीं लिया उन सब असत् लोगोंको हमारे निकट लाओ ॥ २९ ॥ यमदेव इस प्रकार दूतोंसे कह कर विष्णुदेवसे अपने दूतोंके अपराधकी यों क्षमा माँगने लगे कि मेरे भृत्योंने जो अन्याय किया है, उसे पुराणपुरुष भगवान् नारायण आप ही क्षमा करें। हम उन्हींके जन हैं, हमसे विना जाने अपराध बन पड़ा है। हम अञ्जलि बाँध कर अपना अपराध क्षमा कराते हैं। अहो! वह भगवान् सबकी अपेक्षा महत् हैं, उनमें क्षमागुण अवश्य ही है। हम लोग उन्ही परमपुरुषके चरणोंमें प्रणाम करते हैं ॥ ३० ॥ शुकदेवजी कहते हैं। हे कौरव्य! तुम निश्चय समझो कि भगवान् विष्णुके नामका कीर्तन बड़े२ पातकोंका एकमात्र प्रायश्चित्त है एवं जगत् भरके लिये मङ्गलदायक है ॥ ३१ ॥ राजन्! भगवान् हरिके सुन्दर पराक्रम और गुण वारम्वार सुनने और कहनेसे उत्पन्न भक्तिके द्वारा जैसे आत्माकी शुद्धि होती है वैसी शुद्धि व्रत नियम आदिसे नहीं होती ॥ ३२ ॥ सारांश यह है कि जो व्यक्ति श्रीकृष्णके चरणकमल-मधुका आस्वादन कर चुकता है उसे फिर दुर्गतिप्रद मायामय विषयोंमें रुचि नहीं होती। किन्तु वह रागान्ध व्यक्ति, जो पापनाशके लिये वही कर्म करनेकी चेष्टा करता है– जिसके द्वारा फिर पापमें लिप्त होता है–महा मूढ़ है ॥ ३३ ॥ हे राजन्! यमकिंकरोंने अपने प्रभुके मुखसे भगवान्का माहात्म्य सुन कर उस पर विश्वास किया एवं तबसे कृष्णभक्त व्यक्तियोंसे सशंकित रह कर उनकी ओर दृष्टि डालते भी भय करते हैं ॥ ३४ ॥

इतिहासमिमं गुह्यं भगवान्कुम्भसम्भवः ॥
कथयामास मलय आसीनो हरिमर्चयन् ॥ ३५ ॥

एक समय मलयाचल पर बैठे हुए महर्षि अगस्त्यने हरिचरणारविन्दकी पूजा करते हुए इस गुप्त इतिहासका वर्णन किया था ॥ ३५ ॥

इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय।

हंसगुह्य स्तोत्र।

राजोवाच–देवासुरनृणां सर्गो नागानां मृगपक्षिणाम् ॥
सामासिकस्त्वया प्रोक्तो यस्तु स्वायंभुवेऽन्तरे ॥ १ ॥

राजा बोले। हे भगवन्! इसके पहले जो आप संक्षेपसे स्वायम्भुव मन्वन्तरमें देव, दैत्य, मनुष्य, मृग, नाग एवं पक्षी इत्यादिकी सृष्टिका वर्णन कर चुके

है उसीका विवरण विस्तारसे सुननेकी हमारी इच्छा है। परम पुरुष भगवान् ब्रह्माने प्रत्येक सर्गमें जिस शक्तिसे जो सृष्टि की है वह शक्ति और सृष्टि-प्रकार जाननेकी हमको बड़ी इच्छा है ॥ १ ॥ २ ॥ पुराणवक्ता सूत शौनकादिक मुनिगणसे बोले। हे मुनिवरो! योगियोंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी राजा परीक्षित्का उक्त प्रश्न सुन कर उनकी प्रशंसा करके कहने लगे ॥ ३ ॥ श्री शुकदेवजी बोले। राजन्! प्राचीनवर्हिके पुत्र दश प्रचेताने समुद्रके भीतरसे निकल कर देखा कि पृथ्वी अनेक वृक्ष-लताओंसे छाई हुई है ॥ ४ ॥ तपोबलसे अत्यन्त क्रोधित उन प्रचेताओंने वृक्षों पर बड़ा ही कोप किया एवं उनको जलानेकी इच्छासे मुख द्वारा वायु और अग्निको उत्पन्न किया ॥ ५ ॥ हे कुरुकुलश्रेष्ठ! उसी वायु और अग्निके द्वारा सब वृक्ष जलने लगे; तब सब वनस्पतियोंके राजा चन्द्रदेव प्रचेतागणका कोप शान्त करते हुए मधुर स्वरसे यों कहने लगे ॥ ६ ॥ कि हे "महाभागगण! ये सब वृक्ष अत्यन्त निरीह जीव हैं, तुमको इनसे द्रोह करना उचित नहीं है। प्रजाओंको विशेषरूपसे वढ़ानेके कारण ही तुम प्रजापति कहलाते हो ॥ ७ ॥ प्रजापतियोंके पति भगवान् हरिने पृथ्वीमें स्थित सम्पूर्ण वृक्ष और औषधियोंको प्रजाओंके भक्ष्य-भोजनार्थ उत्पन्न किया है ॥ ८ ॥ स्थावर जीव जंगम जीवोंके भक्ष्य हैं; जिनके पैर नहीं हैं वे पैरवालोंके भक्ष्य हैं, जिनके हाथ नहीं वे हाथवालोंके भक्ष्य हैं; और चार पैरवाले दो पैरवालोंके भक्ष्य हैं ॥ ९ ॥ हे निष्पापगण! तुम्हारे पिता एवं देवदेव नारायणने तुमको प्रजा उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी है, तब तुमलोग उसके विपरीत प्रजाओंके उपजीव्य वृक्षोंको जलानेके लिये कैसे उद्यत हो? ॥ १० ॥ इस समय अपने पिता-पितामह आदिके चले हुए सुमार्गको ग्रहण करो एवं उद्दीपित क्रोधको रोको ॥ ११ ॥ विवेचना करके देखो—जैसे बालकोंके बन्धु पिता माता हैं, नेत्रके बन्धु पलकें हैं, स्त्रियोंके बन्धु उनके पति हैं, भिक्षुकोंके बन्धु गृहस्थ एवं अज्ञ व्यक्तियोंके बन्धु ज्ञान देनेवाले पण्डितजन हैं वैसे ही प्रजाके बन्धु प्रजापति हैं ॥ १२ ॥ विचार कर देखो—सभी प्राणियोंके शरीरके भीतर भगवान् हरि आत्मारूपसे अवस्थित हैं, अतएव सब प्राणियोंको ही भगवान् हरिका स्थान समझ कर किसीसे द्रोह न करना चाहिये। ऐसा करनेसे ही तुम पर भगवान् प्रसन्न होंगे ॥ १३ ॥ जो व्यक्ति आकस्मिक तीव्र कोपको आत्मविचारके द्वारा शान्त करते हैं वेही तीनो दुस्तर गुणोंका पार पा सक्ते हैं ॥ १४ ॥ अतएव तुम इन बचे हुए दीन वृक्षोंको अब न जलाओ, तुम्हारा कल्याण हो। इन सब वृक्षोंने एक सुन्दरी कन्याका पालन किया है, वह अत्यन्त सुरूपा और गुणवती है, उसके साथ तुम विवाह कर लो" ॥ १५ ॥ हे नृप! राजा चन्द्र इस प्रकार समझा बुझा कर अप्सराके गर्भसे उत्पन्न वह वृक्ष-प्रतिपालिता कन्या प्रचेतागणको देकर स्वयं चले गये। प्रचेतागणने धर्मानुसार उस

कन्यासे विवाह किया ॥ १६ ॥ उस कन्याके गर्भमें प्रचेतागणके वीर्यसे दक्षका जन्म हुआ। दक्षके उत्पन्न किये असंख्य प्रजासमूहसे त्रिलोकी परिपूर्ण हो गई ॥ १७ ॥ कन्यावत्सल प्रजापति दक्षने जिस भाँति वीर्य और मनके द्वारा सब प्राणियोंकी सृष्टि की सो एकाग्र हो कर हमसे सुनो ॥ १८ ॥ दक्ष प्रजापतिने पहले देवता, दैत्य, मनुष्य, आदि खेचर, भूचर, और जलचर प्रजाको मनसे ही उत्पन्न किया ॥१९॥ किन्तु इस मानसी सृष्टिकी बढ़ती न देख कर प्रजापति दक्ष विन्ध्याचलके निकटवर्ती एक छोटेसे पर्वत पर जा कर दुष्कर तप करने लगे ॥ २० ॥ वहाँ पर एक पतितपावन अघमर्षण नाम तीर्थ था, उसीमें नित्यप्रति स्नान करते हुए तपके द्वारा हरिको प्रसन्न करने लगे ॥ २१ ॥ दक्षप्रजापतिने हंसगुह्य नामक जिस प्रसिद्ध स्तोत्रसे भगवान् हरिकी स्तुति की एवं हरिदेव जैसे दक्ष पर प्रसन्न हुए सो सब हम तुमसे कहते हैं, श्रवण करो ॥ २२ ॥ **दक्ष प्रजापति बोले ।** हम उसी सर्वश्रेष्ठ परमात्माको नमस्कार करते हैं । उसकी चित् शक्ति अमोघ अवितथ है; अतएव वह जीव और माया दोनोका नियामक है । परन्तु ऐसा होने पर भी जो सब जीव गुणोंको ही तत्त्व समझते हैं वे उसके स्वरूपको नहीं देख पाते क्योंकि उसका परिमाण और सीमा नहीं है, वह स्वयंप्रकाशित है, अतएव सिद्ध वस्तु है ॥ २३ ॥ शब्दस्पर्शादि विषय जैसे श्रोत्रादि इन्द्रियोंके सख्य(प्रकाशशक्ति)को नहीं जानते वैसे ही सखा जीव भी इस देहरूप पुरमें वास करके इसी स्थानमें स्थित जिस सखा (प्रकाशक परब्रह्म)के इन्द्रियचालनादि सख्यको नहीं जानता उसी महेशको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २४ ॥ अहो ! देह, प्राण, इन्द्रिय, अन्तःकरण, पञ्चभूत, पंचतन्मात्र ये अपने २ स्वरूप को और अन्य अधिष्ठाता देवतोंको नहीं जान पाते। जीव इनको और सब गुणोंको जानता है; किन्तु वह भी जिस सर्वज्ञको नहीं जान पाता, मैं उसी भगवान् अनन्तदेवकी स्तुति करता हूँ ॥ २५ ॥ नाम और रूपके निरूपक मनकी दर्शनशक्ति और स्मरणशक्ति नष्ट होनेसे समाधिअवस्था प्राप्त होनेपर केवल स्वरूप ज्ञान द्वारा जो प्रतीत होता है उसी निर्मल चित्तसे पाने योग्य शुद्ध हंसको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २६ ॥ जिसने अपनी शक्तिस्वरूप सत्ताईस उपाधियोंसे अपनेको प्रच्छन्न कर रखा है, पण्डितगण लकड़ीमें मंत्रविशेषसे प्रकाश्य अलौकिक अग्निके समान गूढ़भावसे स्थित जिस ईश्वरको बुद्धिके द्वारा हृदयमें स्थिर करके उस मायाके आवरणसे अलग कर लेते हैं वही ईश्वर हम पर प्रसन्न हों ॥ २७ ॥ वह अशेषभेदशालिनी मायाको निरस्त करके निर्वाण सुखका अनुभव करते हैं, वह वस्तुमात्रके नामधारी हैं, वह विश्वरूप हैं, उनकी शक्ति अनिर्वचनीय है । वाक्यसे जो कहा जाता है, बुद्धिसे जो उद्भावित होता है, इन्द्रियोंसे जिसका ग्रहण होता है और मनमें जिसका संकल्प होता है—सो सभी उस स्वयं प्रकाशमान भगवान्‌का स्वरूप नहीं है; क्यों

कि उक्त सब पदार्थ गुणवर्द्धित हैं एवं परमात्मा सब गुणोंके प्रलय और उत्पत्तिके द्वारा अनुमेय है ॥ २८॥२९ ॥ जिसमें, जहाँसे, जिससे, जिसका, जिसके अर्थ, जो कार्य, जिस प्रकार, जो करता है और जिसके द्वारा कराया जाता है सो सब ब्रह्म ही है । मुख्य और गौण जो कारण हैं सो सभी परम निरपेक्ष कारणब्रह्म है; क्योंकि वह सबसे पहले स्वयं सिद्ध एवं सजातीय-विजातीय भाव शून्य है ॥३०॥ जिसकी अविद्या आदि सब शक्तियाँ भिन्न भिन्न मतवादियोंके अनेक मत सम्पन्न करके उनके आत्माओंमें वारम्वार मोह उपस्थित करती हैं उसी अनन्तगुणसम्पन्न महापुरुषको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३१ ॥ योगशास्त्र कहता है कि उसके चरणादि अंग हैं और सांख्यशास्त्र कहता है कि उसके चरणादि अंग नहीं हैं । सुतराम् इन दोनो शास्त्रोंके धर्म परस्पर विरुद्ध एवं भिन्न २ होने पर भी (उसीके हस्त चरण आदिके होने न होनेके विषयमें तर्क करनेसे) दोनोका ही विषय एक है। इन दोनो शास्त्रोंमें उक्त तर्कके अनुकूल वही श्रेष्ठ वस्तु है; उसे हम नमस्कार करते हैं ॥ ३२ ॥ जो कर्म स्वीकार करते हुए, अनुग्रहार्थ चरणकमलकी सेवा करनेवाले जनों पर कृपा करनेके लिये जन्म ग्रहण करके नाम-रूप धारण करता है वही अनन्त भगवान् हम पर प्रसन्न हो ॥ ३३ ॥ वायु जैसे पृथ्वीके गुणोंके आश्रयसे गन्ध और रूपसे युक्त प्रतीत होता है वैसे ही जो अर्वाचीन उपासनामार्गके द्वारा मनुष्योंकी वासनाके अनुसार देहगत हो कर उस उस देवताके रूपसे विराजमान होता है वही परमेश्वर हमारे मनोरथको सफल करे ॥ ३४ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** कि हे कुरुश्रेष्ठ ! इस प्रकार स्तुति करने पर दोनो चरणोंको गरुड़के कंधे पर धरे हुए, आजानुलम्बित आठ विशाल बाहुओंमें शङ्ख, चक्र, तर्वार, ढाल, धनुष, बाण पाश एवं गदा धारण किये हुए, पीताम्बरधारी, नवघनश्याम, प्रसन्नमुख, प्रसन्नलोचन, त्रिभुबनेश्वर, भक्तवत्सल, भगवान्—काञ्ची, अङ्गुरीय, वलय, नूपुर और अङ्गदादि आभूषणोंसे भूषित हो कर व त्रैलोक्यमोहन स्वरूप धारण किये हुए उसी अघमर्षण तीर्थमें स्तुति करनेवाले दक्षके सम्मुख प्रकट हुए। उनके हृदयमें वनमाला, कौस्तुभमणि और श्रीवत्स-चिन्ह शोभायमान था, वह मस्तकमें बड़े मोलका किरीट, हाथोंमें कङ्कण, कानोंमें मकराकृत कुण्डल धारण किये हुए थे । नारद, नन्द आदि पार्षदगण एवं सम्पूर्ण लोकपाल चारो ओर खड़े थे । सिद्ध, चारण एवं गन्धर्वगण स्तुति कर रहे थे। हे राजन् ! इस भाँति आश्चर्यमय रूपके दर्शन कर प्रजापति दक्षका हृदय कुछ सहम गया । तदनन्तर उन्होने प्रसन्न हो कर दण्डवत् प्रणाम किया । मारे आनन्दके कण्ठावरोध हो गया, वह कुछ बोल न सके । जैसे झरनेके जलसे नदियाँ परिपूर्ण हो जाती हैं वैसे ही परम हर्षसे उनका अन्तःकरण गद्गद हो जानेसे वह कुछ देर तक कुछ भी न बोल सके ॥३५॥३६॥३७॥३८॥ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ सब प्राणियोंके अन्तर्यामी भगवान् इस प्रकार प्रणत

परम भक्त प्रजाकी कामनावाले प्रजापति दक्षसे यों बोले ॥ ४२ ॥ श्रीभगवान् बोले। हे दक्ष! श्रद्धापूर्वक मेरी भक्ति करनेसे ही तुम्हारी तपस्या सिद्ध हो गई। तुम्हारा तप करना इस विश्वकी वृद्धिका कारण है; इस कारण मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, क्यों कि सब प्राणियोंकी वृद्धि ही मेरी इच्छा है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ब्रह्मा, शिव, तुम (प्रजापति) लोग, मनुगण एवं देवेश्वरगण मेरी विभूति एवं सब प्राणियोंकी उत्पत्तिका कारण हैं ॥ ४५ ॥ हे ब्रह्मन्! तप मेरा हृदय है, विद्या (मन्त्रजाल) मेरा शरीर है, क्रिया मेरी आकृति है, यज्ञ मेरे अङ्ग हैं, धर्म मेरा मन है, यज्ञभोक्ता देवगण मेरे प्राण हैं ॥ ४६ ॥ पहले केवल मैं ही था। मेरे सिवा ग्राहक अथवा ग्राह्य वस्तु न थी। केवल चैतन्यमात्र था, किन्तु वह इन्द्रियोंकी वृत्तियोंके द्वारा व्यक्त नहीं होता था—सर्वत्र प्रसुप्तके न्याय चेष्टाशून्य था ॥ ४७ ॥ मैं अनन्त हूँ, मेरे गुण भी अनन्त हैं। गुणोंकी सहायतासे जब मेरा गुणमय शरीर अर्थात् ब्रह्माण्ड हुआ तब उससे मैं ही अयोनिज स्वयम्भू ब्रह्माके रूपमें प्रकट हुआ ॥ ४८ ॥ मेरे वीर्यसे प्रकट वही देवदेव ब्रह्मा सृष्टिकार्यमें उद्यत हो कर जब अपनेको सृष्टिकार्यमें असमर्थके समान मानने लगे ॥ ४९ ॥ तब मेरी आज्ञासे दारुण तप करनेमें प्रवृत्त हुए। विभु ब्रह्माने उसी तपके प्रभावसे तुम्हारे पूर्वज नव प्रजापतियोंको उत्पन्न किया ॥ ५० ॥ अतएव हे दक्ष! यह प्रजापति पञ्चजनकी कन्या यहाँ पर है, इसका नाम असिक्नी है। हे प्रजानाथ! तुम इसे अपनी स्त्री बनाओ। तब तुम स्त्री व पुरुषके मैथुनधर्मको ग्रहण करके मैथुनधर्मशालिनी इस स्त्रीमें बहुतसे सन्तान उत्पन्न कर सकोगे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तुम्हारे परवर्ती सब प्रजागण मेरी मायाके वश होकर स्त्रीके सहित मैथुनधर्म करते हुए पुत्रादिरूपसे उत्पन्न होंगे और मेरा पूजन करेंगे ॥ ५३ ॥

श्रीशुक उवाच—इत्युक्त्वा मिषतस्तस्य भगवान्विश्वभावनः ॥
स्वप्नोपलब्धार्थ इव तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥ ५४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। विश्वभावन भगवान् यह कह कर दक्षके आगे ही स्वप्नलब्ध पदार्थके समान वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ५४ ॥

इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय।

नारदको दक्षका अभिशाप।

श्रीशुक उवाच—तस्यां स पाञ्चजन्यां वै विष्णुमायोपबृंहितः ॥
हर्यश्वसंज्ञानयुतं पुत्रानजनयद्विभुः ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले। विभु दक्षने विष्णुमायाद्वारा वर्द्धित हो कर उसी पञ्चजन-

तनयाके गर्भमें हर्यश्वनामक दश हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥ हे नृप! ये सब दक्षके पुत्रगण एक आचार एवं एक प्रकारके स्वभाववाले हुए। पिता दक्षने उनसे प्रजा उत्पन्न करनेके लिये कहा, तब वे पश्चिम दिशाको तप करने गये ॥ २ ॥ जहाँ सिन्धुनद समुद्रमें मिला है उसी स्थानमें मुनिसिद्धसेवित नारायणसर नाम एक प्रधान तीर्थ है ॥ ३ ॥ उसका जल स्पर्श करनेसे ही उनके अन्तःकरणसे रागादि सब मल दूर हो गये एवं पारमहंस्य धर्ममें बुद्धि लग गई ॥ ४ ॥ किन्तु वे लोग पिताकी आज्ञासे विवश हो कर प्रजा उत्पन्न करनेकी कामनासे उग्र तपमें प्रवृत्त हुए। देवर्षि नारदने उनको प्रजा बढ़ानेके यत्नमें तत्पर देखा ॥५॥ तब नारदजी उनसे यों बोले—हे हर्यश्वगण! भूमिका अन्त बिना देखे कैसे सृष्टि करोगे? यह जो वृथा तप कर रहे हो सो अत्यन्त खेदका विषय है! तुम प्रजापति हो कर भी अज्ञ हो ॥६॥ एक राज्य है, जिसमें केवल एक पुरुष है; एक विल है, जिससे निकलते किसीको नहीं देखा; एक स्त्री है, जिसके अनेक प्रकारके रूप हैं; एक पुरुष हैं, जो पुंश्चलीका पति है ॥ ७॥ एक नदी है, जिसकी धारा उलटी और सीधी भी बहती है; एक अद्भुत घर है जो पचीस पदार्थोंसे गठित है; किसी जगह पर विचित्र बोली बोलनेवाला एक हंस है; क्षुर और वज्रद्वारा रचित स्वयं भ्रमणशील एक वस्तु है; इन सब बातोंको एवं अपने सर्वज्ञ पिताके उपयुक्त आदेशको विना जाने कैसे सृष्टि करोगे? ॥ ८ ॥ ९ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** देवर्षिके इन कूट-वाक्योंको सुन कर हर्यश्वगणने आप ही आप स्वभावतः विचारशक्तिसम्पन्न बुद्धिके द्वारा उक्त कूट-वाक्योंका भाव इस प्रकार सोचा कि ॥१०॥ "यह जो भूमि अर्थात् क्षेत्र है वही जीवसंज्ञक है। यह लिंगशरीर जो आत्माके बन्धनका अनादि कारण है उसका अन्त अर्थात् विनाश विना देखे मोक्षके अनुपयोगी असत् कर्मोंके करनेसे क्या फल हो सक्ता है? ॥ ११ ॥ ईश्वर एक है और वह सबका साक्षी, सबसे श्रेष्ठ, सर्वैश्वर्यसम्पन्न एवं आप ही अपना आधार है। उस नित्यमुक्त ईश्वरको विना जाने एवं उसमें चित्त-समर्पण बिना किये वृथा कर्म करनेसे क्या फल होगा? ॥ १२ ॥ परमज्योतिःस्वरूप ब्रह्ममें लीन होने पर पातालगत व्यक्तिके समान फिर कोई नहीं लौटता। उस ब्रह्मको बिना जाने वृथा कर्मोंके करनेसे क्या फल होगा? ॥ १३ ॥ अपनी २ बुद्धि स्वैरिणी स्त्रीकी भाँति मोहित करनेवाली है एवं रजःप्रभृति नाना गुणोंसे समन्वित है। इस बुद्धिका अन्त बिना जाने अशान्त कर्मोंके करनेसे क्या फल होगा? ॥ १४ ॥ जैसे दुष्ट पत्नीके संगसे पुरुषकी स्वाधीनता जाती रहती है एवं वह पुरुष उस भार्याके सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी होता है वैसे ही जो मायाके संगवश ऐश्वर्यभ्रष्ट हो गया है एवं जो उसी मायाकी सुखदुःखरूपगतिका अनुगमन करता रहता है उस जीवको जो पुरुष नहीं जानता उसके अविवेककृत असत् कर्मोंसे क्या फल है? ॥ १५ ॥ उत्पत्ति और

संहार करनेवाली माया ही नदी है। इसके प्रवाहका वेग अधिक है। मनुष्य इस नदीमें मग्न है, बस वह इसको विना समझे विवश हो कर जो असत् कर्म करता है, उनसे क्या फल है! ॥ १६ ॥ अन्तर्यामी पुरुष पचीस तत्त्वोंका आश्चर्यमय आश्रय है, वह कार्य-कारणके संघातका अधिष्ठाता है; उसको जो पुरुष नहीं जानता उसके वृथा स्वातंत्र्याभिमान-कृत कर्मोंसे क्या फल है? ॥१७॥ ईश्वरप्रतिपादक शास्त्रमें चित् और जड़ रूप वस्तुविशेषरूपसे विवेचित हैं, अतएव वह हंसस्वरूप है। उक्त शास्त्रमें किस २ कर्मसे बन्धन किस २ कर्मसे मोक्ष होता है सो दिखाया गया है; सुतराम् उसकी बातें विचित्र हैं। इस शास्त्रको बिना जाने बाह्यिक कर्ममात्रसे क्या फल होगा? ॥ १८ ॥ स्वयं भ्रमणशील सुतीक्ष्ण वस्तु कालचक्र है, वही समस्त जगत्को घुमाता रहता है; अतएव स्वतंत्र है। उसको बिना जाने असत् काम्य कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे क्या फल होगा? ॥ १९ ॥ शास्त्र ही हमारा पिता है, क्योंकि वही द्वितीय जन्मका देनेवाला है। निवृत्ति ही उसकी उपयुक्त आज्ञा है। जो व्यक्ति उसको नहीं जानता वह गुणमय प्रवृत्तिमार्गमें विश्वास करनेके कारण शास्त्रकी आज्ञाके अनुकूल कर्म करनेमें कैसे समर्थ हो सक्ता है?" ॥ २० ॥ **शुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! हर्यश्वगण इस प्रकार निश्चय कर एकमत हो देवर्षि नारदको प्रदक्षिणा करके, जहाँसे कोई नहीं लौटा उस मार्गको चले गये ॥ २१ ॥ नारदजी भी कृष्णपदारविन्दोंको प्रकट करनेवाले स्वरब्रह्म(संगीत)में सम्पूर्णरूपसे अपना मन लगा कर भुवनमण्डलमें भ्रमण करने लगे ॥ २२ ॥ इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर नारदके द्वारा अपने सच्चरित्र पुत्रोंका नाश सुन कर प्रजापति दक्ष पुत्रशोकसे बहुत ही व्याकुल हुए। महाराज! सच है कि अच्छे पुत्रका होना शोकका घर है ॥ २३ ॥ प्रजापति दक्षने फिर ब्रह्माजीके समझानेसे पञ्चजन प्रजापतिकी कन्याके गर्भसे सबलाश्वनामक एक हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥ २४ ॥ वे भी प्रजा उत्पन्न करनेके लिये पिताकी आज्ञा पा कर व्रतधारणपूर्वक उसी नारायणसरोवरको गये; जहाँ उनके बड़े भाई नारदके उपदेशसे तप करके सिद्ध हो गये थे ॥ २५ ॥ नारायणसरोवरके पवित्र जलका स्पर्श करते ही सबलाश्वगणका पातक नष्ट एवं चित्त शुद्ध हो गया। वे लोग परम ब्रह्मका जप करते हुए घोर तप करने लगे ॥ २६ ॥ कुछ महीने केवल जल पी कर और कुछ महीने केवल वायुभक्षण करके निम्नलिखित महामंत्रको जपते हुए मंत्रपति भगवान् विष्णुकी आराधना करने लगे ॥ २७ ॥ वह मंत्र यही है—"जो परम पुरुष महात्मा नारायण हैं, जो विशुद्ध सत्त्वगुणके आश्रय एवं परमहंसस्वरूप हैं, हम उनका ध्यान करते हैं" ॥ २८ ॥ हे राजेन्द्र! एक दिन देवर्षि नारदने आ कर प्रजासृष्टिकी अभिलाषावाले उन दक्षके पुत्रोंसे भी पहलेकी भाँति कूट-वाक्य कह कर

कहा ॥ २९ ॥ कि "हे दक्षके पुत्रो! हे भ्रातृवत्सलो! मैं उपदेशके वाक्य कहता हूँ, सुनो; अपने अग्रजोंकी पदवीको देखो ॥ ३० ॥ जो धर्मज्ञ भ्राता अपने भाइयोंकी उत्तम गतिका अनुगमन करता है उसका पुण्य ही बन्धु है; वह भ्रातृभक्त मरुद्गणोंके साथ स्वर्गलोकमें आनन्दभोग करता है" ॥ ३१ ॥ हे आर्य! अमोघदर्शन देवर्षि इतना कह कर स्वस्थानको प्रस्थान कर गये । सबलाश्वगणभी अपने बड़े भाई हर्यश्वगणकी गतिको गये ॥ ३२ ॥ वे प्रत्यग्वृत्तिलभ्य समीचीन और अनुकूल निवृत्ति मार्गमें गये, अतएव बीती हुई रात्रिके समान आज तक नहीं लौटे ॥ ३३ ॥ इसी समय प्रजापति दक्ष बहुतसे अमङ्गलसूचक कारणों(उत्पातों)को देखने लगे एवं यह भी समाचार सुना कि नारदने पहलेकी भाँति इन पुत्रोंको भी प्रवृत्तिमार्गसे बहँका कर निवृत्तिमार्गमें भेज दिया ॥ ३४ ॥ पुत्रशोकसे अचेत दक्षने नारद पर बड़ा ही कोप किया और उसी समय नारदको अपने पास आया देख कर क्रोधके मारे उनके ओठ फड़कने लगे ॥ ३५ ॥ दक्षप्रजापतिने नारदसे कहा कि अहो! तूने अच्छा नहीं किया! तेरा वेष तो साधुओंका सा देख पड़ता है किन्तु तू वास्तवमें साधु नहीं है । क्योंकि मेरे पुत्रगण अपने धर्ममें प्रवृत्त थे, तूने उनको उपदेश दे कर भिक्षुकोंके मार्गमें भेज दिया! यही क्या साधुओंके कर्म हैं? ॥ ३६ ॥ अरे पापिष्ठ! जन्म लेते ही द्विजों पर तीन ऋण होते हैं । देवऋण, पितृऋण, ऋपिऋण[1] । मेरे पुत्र इनमेंसे किसी ऋणसे भी मुक्त नहीं हुए थे । उन्होंने कर्तव्याकर्तव्यका कुछ विचार भी नहीं किया था । तूने मेरे पुत्रोंके इस लोक और परलोक दोनो लोकोंके मङ्गलमें विघ्न डाल दिया! ॥ ३७ ॥ तू अति निर्दय है, तूने बालकोंको बहँका दिया । अतएव तू हरिके यशका नाशक है । तू लज्जाको जलाञ्जलि देकर हरिपार्षदोंके बीच कैसे भ्रमण करता है? ॥ ३८ ॥ मैं देखता हूँ कि तेरे सिवा सब भगवद्भक्त पुरुप प्राणियों पर अनुग्रह करते हैं । किन्तु तू उसके विरुद्ध लोगोंके स्नेहपाशका विनाश करनेवाला एवं निर्वैर लोगोंसे वैर बुराई करनेवाला है ॥ ३९ ॥ तू जानता है कि विपयसे निवृत्ति ही स्नेहपाशको काटनेवाली है (किन्तु देख, विपयसे निवृत्ति तो बिना वैराग्य उत्पन्न हुए हो नहीं सक्ती!) किन्तु तेरा यह वेप देख कर ही तो लोगोंके हृदयमें वैराग्यका उदय हो नहीं सक्ता! बिना अनुभव किये विपयोंको दुःखका कारण जानना पुरुपके लिये असम्भव है । अनुभवके द्वारा विषयोंको दुःखमय जानने पर स्वयं ही जैसे वैराग्य होता है वैसे दूसरेके उपदेशसे कभी नहीं होता ॥ ४० ॥ ॥ ४१ ॥ जो हो हम साधु हैं, गृहस्थाश्रमी हैं, कभी किसीका अपकार करना नहीं जानते; तूने जो हमारा दुःसह अपकार किया है उसको हमने सह लिया

---

१ ब्रह्मचर्यसे ऋषियोंका ऋण, यज्ञसे देवतोंका ऋण और पुत्र उत्पन्न करनेसे पितृऋण मिटता है ।

॥ ४२ ॥ किन्तु तूने सन्तानोच्छेद करके हमारा जो अमङ्गल किया है उसके बदलेमें मैं शाप देता हूँ कि तुझे तीनो लोकमें घूमते ही बीतेगा, कहीं पैर न ठहरेगा। रे मूढ़ ! यही तेरी उचित शास्ति है ॥ ४३ ॥

श्रीशुक उवाच—प्रतिजग्राह तद्बाढं नारदः साधुसंमतः ॥
एतावान्साधुवादो हि तितिक्षेतेश्वरः स्वयम् ॥ ४४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि साधुगण जिनकी प्रशंसा करते हैं वह नारद "बहुत अच्छा" कह कर प्रजापति दक्षके शापको अङ्गीकार करके चले गये। क्षमाशीलव्यक्ति सामर्थ्य होने पर भी क्षमा कर लेते हैं, यही उनका बड़प्पन और बड़ाई है ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय ।

दक्षकी साठ कन्याओंके अलग २ वंशका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच—ततः प्राचेतसोऽसिक्न्यामनुनीतः स्वयम्भुवा ॥
षष्टिं स जनयामास दुहितृः पितृवत्सलाः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले। हे राजन् ! तदनन्तर प्रचेतातनय दक्षने ब्रह्माके अनुनय विनय करने पर फिर उसी अपनी असिक्नी नाम भार्य्यामें पितृभक्त साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं ॥१॥ उनमें दश धर्मदेवको, तेरह कश्यप प्रजापतिको, सत्ताईस चन्द्रदेवको, दो दो भूत, अङ्गिरा और कृशाश्वको एवं शेष चार कन्याएँ तार्क्ष्यको ब्याह दीं ॥२॥ पूर्वोक्त दक्षकी कन्याओंके एवं उनके सन्तानोंके नाम तुम हमसे सुनो; जिनके पुत्र और पौत्रोंके वंशसे तीनो लोक परिपूर्ण हो गये ॥ ३ ॥ भानु, लम्बा, ककुप्, जामि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्ता, संकल्पा; ये दश धर्मकी स्त्रियोंके नाम हैं, अब इनके पुत्रोंके नाम सुनो ॥ ४ ॥ हे नृप ! भानुके देवर्षभ और उनके देवसेन नाम पुत्र हुआ । लम्बाके विद्योत नाम पुत्र हुआ; सब मेघ उससे उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ ककुप्के संकट नाम पुत्र हुआ, जिससे सब भूविवरोंके अधिष्ठाता देवता उत्पन्न हुए। जामिके स्वर्ग नाम पुत्र हुआ, उससे नन्दिकी उत्पत्ति हुई ॥ ६ ॥ विश्वाके विश्वेदेवा नाम पुत्रगण हुए; कहा जाता है कि वे निःसन्तान हैं। साध्याके सन्तान साध्यगण हैं; उनके पुत्रका नाम अर्थसिद्धि है ॥ ७ ॥ मरुत्वतीके मरुत्वान् और जयन्त ये दो पुत्र हुए। जयन्त वासुदेवका अंशावतार हुए; इसीसे लोकमें वह उपेन्द्र कह कर भी प्रसिद्ध हैं ॥ ८ ॥ मुहूर्ताके मौहूर्तिक नाम देवगण उत्पन्न हुए, जो प्राणियोंको अपने अपने समयमें (किये कर्मोंका

शुभाशुभ) फल देते रहते हैं ॥ ९ ॥ संकल्पाके संकल्प नाम पुत्र हुआ; उससे काम(मनोरथ)की उत्पत्ति हुई । वसुके आठ वसुनामक देवता उत्पन्न हुए। उन वसुओंके और उनके पुत्रोंके नाम हमसे सुनो ॥ १० ॥ द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु; ये आठ वसुओंके नाम हैं। द्रोणके अभिमति नाम स्त्रीमें हर्ष, शोक, भय आदि पुत्र हुए ॥ ११ ॥ प्राणके ऊर्जस्वती नाम भार्यामें सह, आयु और पुरोजव नाम तीन पुत्र उत्पन्न हुए। ध्रुवकी धरणी नाम स्त्रीने विविध पुरोंकी सृष्टि की ॥ १२ ॥ अर्ककी वासना नाम भार्याने तर्प आदि अनेक पुत्र उत्पन्न किये। अग्नि नाम वसुकी धारा नाम स्त्रीके स्कन्द एवं द्रविणक आदि कई पुत्र उत्पन्न हुए । स्कन्दको कृत्तिकापुत्र भी कहते हैं। स्कन्दके विशाखा आदिक पुत्र हुए । दोप नाम वसुकी शर्वरी नाम स्त्रीमें हरिकी कला शिशुमारका जन्म हुआ ॥ १३ ॥ १४ ॥ वसुकी आङ्गिरसी नाम स्त्रीमें शिल्पाचार्य विश्वकर्मा हुए। विश्वकर्माके चाक्षुप मनु हुए, मनुके विश्वेदेव और साध्य देवता हुए ॥ १५ ॥ विभावसुकी उषा नाम स्त्रीने व्युष्ट, रोचिप और आतप नाम तीन पुत्र उत्पन्न किये। आतपसे पञ्चयाम(दिवस)की उत्पत्ति हुई; जिसके प्रभावसे सब प्राणी अपने २ कर्ममें तत्पर होते हैं ॥ १६ ॥ भूतकी भार्या सरूपाके रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृपाकपि, अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप, महान् ये ग्यारह रुद्र उत्पन्न हुए एवं दूसरी स्त्रीमें घोर भूत विनायक आदि पूर्वोक्त एकादशरूप रुद्रके पार्षद उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥ १८ ॥ अङ्गिरा प्रजापतिकी स्वधा नाम पत्नीने पितृगणको एवं सती नाम स्त्रीने अथर्वाङ्गिरस नामक एक वेदको उत्पन्न किया ॥ १९ ॥ वेदशिरा कृशाश्वने अर्चि नाम भार्याके गर्भसे धूम्रकेशको एवं धिषणा नाम गर्भसे देवल, वयुन और मनु इन तीन पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ २० ॥ तार्क्ष्यके विनता, कद्रू, पतङ्गी और यामिनी नाम चार स्त्री थीं। उनमें पतङ्गीसे पक्षी और यामिनीसे शलभ (टीड़ियाँ) उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ सुपर्णा अर्थात् विनताने साक्षात् यज्ञेश भगवान्‌के वाहन गरुड़जीको और सूर्यके सारथी अरुणको एवं कद्रूने अनेकों विषधर नागोंको उत्पन्न किया ॥ २२ ॥ हे भारत! कृत्तिका आदि सत्ताईस नक्षत्र चन्द्रदेवकी पत्नी हैं। दक्षके शापसे चन्द्रको क्षयरोग हो गया, इस लिये उक्त नक्षत्रोंसे चन्द्रके कोई सन्तान नहीं हुई; हाँ चन्द्रने दक्षको प्रसन्न करके पन्द्रह दिन क्षय होनेके बाद पन्द्रह-दिन वृद्धि होनेका वर अवश्य प्राप्त कर लिया ॥ २३ ॥ २४ ॥ यह जगत् जिनसे उत्पन्न है उन विश्वजननी कश्यपकी स्त्रियोंके मङ्गलकारी नामोंको अब सुनो ॥ २५ ॥ अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभी, सरमा और तिमि ॥ २६ ॥ तिमिके सब जलजन्तु हुए। सरमाके सन्तान सब श्वापद अर्थात् पञ्चनख पशु हैं। भैंस, गऊ एवं फटे खुरवाले सब पशु सुरभीके पुत्र हैं ॥ २७ ॥ श्येन (बाज) और गिद्ध आदि सब पक्षी ताम्राकी

सन्तान हैं। सब अप्सराएँ मुनि नाम कश्यपपत्नीकी सन्तति हैं। दन्दशूक आदि अनेक जातिवाले सर्प क्रोधवशाके पुत्र हैं ॥ २८ ॥ पृथ्वी फोड़ कर निकलनेवाली सब वृक्षजातियाँ इलाकी सन्तान हैं। यातुधान अर्थात् राक्षसगण सुरसाके गर्भसे उत्पन्न हैं। गन्धर्वमात्र अरिष्टाके गर्भसे उत्पन्न हैं। एक खुरवाले पशु काष्ठाकी सन्तान हैं ॥ २९ ॥ दनुके पुत्र इकसठ हैं, उनमें प्रधान २ दानवोंके नाम सुनो। द्विमूर्द्धा, शम्बर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु ॥ ३० ॥ अयोमुख, शङ्कुशिरा, स्वर्भानु, कपिल, अरुण, पुलोमा, वृषपर्वा, एकचक्र, अनुतापन ॥ ३१ ॥ धूम्रकेश, विरूपाक्ष, विप्रचित्ति व दुर्जय। प्रसिद्ध है कि स्वर्भानुकी सुप्रभा नाम कन्यासे नमुचि असुरने विवाह किया ॥ ३२ ॥ वृषपर्वा असुरकी कन्या शर्मिष्ठासे नहुषके पुत्र बलशाली राजा ययातिने विवाह किया। वैश्वानर दानवकी चार सुन्दरी कन्या थीं; उपदानवी, हयशिरा, पुलोमा और कालका। उपदानवीसे हिरण्याक्षने एवं हयशिरासे क्रतुने विवाह किया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ पुलोमा और कालका नाम दो वैश्वानरकी कन्याओंको ब्रह्माजीके कहनेसे कश्यप प्रजापतिने ग्रहण किया ॥३५॥ उन दोनोके पौलोम और कालकेय नाम युद्धकुशल साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। वे यज्ञमें विघ्न करते थे, अतएव इन्द्रका प्रिय करनेके लिये जब तुम्हारे बाबा अर्जुन स्वर्गको गये तब उन्होने उन दानवोंको अकेले ही मारा। विप्रचित्ति राक्षसने सिंहिकामें एक सौ एक पुत्र उत्पन्न किये। उनमें बड़ा राहु है एवं छोटे एक सौ केतु हैं; वे सब ग्रह हो गये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अब क्रमसे अदितिका वंश सुनो, उन्हीके वंशमें नारायण विभुने अपने अंशसे अवतार लिया है ॥ ३८ ॥ अदितिके विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र और उरुक्रम; ये बारह आदित्य उत्पन्न हुए ॥ ३९ ॥ हे महाभाग! भाग्यशालिनी संज्ञाने विवस्वान्के वीर्यसे श्राद्धदेव मनुको उत्पन्न किया एवं यमुना व यमराज भी उसीके गर्भसे उत्पन्न हुए। संज्ञाने ही विशेषकारणवश घोड़ीका रूप धारण कर विवस्वान्से अश्विनीकुमारको उत्पन्न किया ॥ ४० ॥ विवस्वान्की दूसरी स्त्री छायासे शनैश्चर, सावर्णिमनु और तपती कन्या उत्पन्न हुई। तपती कन्याका विवाह सम्वरण राजासे हुआ ॥ ४१ ॥ अर्यमाके मातृका नाम स्त्रीमें कृताकृतज्ञानयुक्त मनुष्य उत्पन्न हुए ॥ ४२ ॥ पूषाके कोई सन्तान नहीं हुआ। वह पिसा हुआ अन्न भोजन करते हैं। वह पहले दक्ष पर कुपित महादेवको लक्ष्य करके दाँत निकाल कर हँसे थे, इसी कारण उनके दाँत तोड़े गये थे ॥ ४३ ॥ त्वष्टाकी स्त्री रोचना दैत्योंकी कन्या थी। उसके गर्भसे पराक्रमशाली विश्वरूप नाम पुत्र हुआ ॥ ४४ ॥

तं वव्रिरे सुरगणा दौहित्रं द्विषतामपि ॥
विमतेन परित्यक्ता गुरुणाङ्गिरसेन यत् ॥ ४५ ॥

विश्वरूप यद्यपि शत्रुपक्षके नाती थे, तथापि देवगणने उनको अपना पुरोहित बनाया। इसका कारण यही था कि श्रीमदान्ध इन्द्रके द्वारा अनादृत देवगुरुने कुपित हो कर इन्द्रादि देवगणको त्याग दिया था ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय।

विश्वरूपसे पुरोहित बननेके लिये देवगणकी प्रार्थना।

राजोवाच—कस्य हेतोः परित्यक्ता आचार्येणात्मनः सुराः ॥
एतदाचक्ष्व भगवन् शिष्याणामक्रमं गुरौ ॥ १ ॥

राजाने कहा। भगवन्! देवगण तो बृहस्पतिजीके प्रिय शिष्य हैं। देवगणने अपने गुरुका निरादर क्यों किया एवं आचार्यने अपने शिष्योंको क्यों त्याग दिया? यह वृत्तान्त मुझसे कृपा करके कहिये ॥ १ ॥ **श्रीशुकदेवजी बोले।** त्रिलोकीके राज्य व ऐश्वर्यसे इन्द्रको ऐसा मद हो गया कि उन्होने सज्जनोंका मार्ग उल्लङ्घन करनेमें भी कोई सङ्कोच न किया। एक समय मरुद्गण, वसुगण, रुद्रगण, आदित्यगण, ऋभुदेवता, विश्वेदेवा, साध्यगण, अश्विनीकुमार, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, ब्रह्मवादी मुनिगण, विद्याधर, अप्सरागण, किम्पुरुष, पन्नग, उरग आदि सब देवजातियोंके लोग स्वर्गसभामें भगवान् इन्द्रके समीप सेवामें उपस्थित थे। इनमेंसे विद्याधर आदि स्तुति कर रहे थे। महाराज इन्द्र महा-सिंहासन पर बैठे थे। गन्धर्वगण और अप्सराएँ ललित स्वरसे गा बजा रहे थे। चन्द्रमण्डलके समान सुन्दर श्वेतवर्ण अमोल दिव्य छत्र शिर पर विराजमान था ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ और भी महाराजोंके चिन्ह चँवर आदि शोभायमान थे। सिंहासन पर बाईं ओर आधे आसन पर परमसौभाग्यवती महारानी इन्द्राणीजी बैठी थीं ॥ ६ ॥ उस समय देवतोंके और इन्द्रके परम पूज्य आचार्य्य बृहस्पतिजी आये। इन्द्र आगेसे जा कर उनको नहीं लिवा लाये और न "आइये बैठिये" कह कर आदर किया, न आसन देकर बैठनेको ही कहा; यहाँ तक कि देवता दैत्य सब जिनको नमस्कार करते हैं उन मुनिश्रेष्ठको सभामें आये देख कर भी अपने आसनसे नहीं उठे ॥ ७ ॥ ८ ॥ तब वैसे ही अङ्गिरावंशज, निग्रहानुग्रहसमर्थ चतुर बृहस्पति जी यह समझ कर कि "लक्ष्मीके मदसे इन्द्रको विकार हो गया है" अपने आश्रमको लौट गये ॥ ९ ॥ उसी समय इन्द्रका मद उतर गया और उनको चेत हुआ कि शोक! मैंने आज अपने गुरुका अनादर कर डाला। तब वह भरी सभामें अपने ही मुखसे अपनी निन्दा करने लगे ॥ १० ॥ कि "मैंने जो कर्म किया वह बहुत ही बुरा है, कैसे खेदकी बात है! मैं कैसा मन्दबुद्धि हूँ! मैंने ऐश्वर्यके

मदमें मत्त हो कर भरी सभामें गुरुका निरादर किया ॥ ११ ॥ मेरे ऐश्वर्य और सम्पत्तिको धिक्कार है! कौन बुद्धिमान् पुरुष इस इन्द्र-लक्ष्मीकी (भी) चाह करेगा? मैं देवगणका ईश्वर हो कर भी इस राज्यलक्ष्मीके कारण आसुरी भावको पहुँच गया ॥ १२ ॥ जिन लोगोंका मत है कि सिंहासन पर बैठा हुआ राजा किसीके भी आने पर न उठ खड़ा हो, वे भूलते हैं। मैं निःसन्देह कह सक्ता हूँ कि वे उत्तम धर्मके मर्मको नहीं जानते ॥ १३ ॥ वे सब निकृष्ट मार्गके उपदेशक हैं। वे लोग स्वयं अधःपातको प्राप्त होते हैं और जो कोई उनके कहे पर श्रद्धा करते हैं वे भी पत्थरकी नावके समान डूब जाते हैं ॥ १४ ॥ जो हो, इस समय शठता त्याग कर गुरुको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करूँगा। वह देवतोंके आचार्य एवं अगाधबुद्धि ब्राह्मण हैं; मैं उनके चरणों पर जा कर गिर पड़ूँगा'' ॥ १५ ॥ राजन्! इधर इन्द्र यों पश्चात्ताप कर रहे थे उधर बृहस्पतिजी अपने घरसे ही प्रबल योगमायाके बलसे अदृश्य हो गये ॥ १६ ॥ देवराज इन्द्रने सर्वत्र खोज करके भी गुरुका पता न पाया, तब देवगण सहित चिन्ता करने लगे, उनके चित्तको चैन नहीं रहा ॥ १७ ॥ यह बृत्तान्त सुनते ही सब असुर अपने गुरु शुक्राचार्य्यकी सम्मतिसे अस्त्र शस्त्र धारण करके देवतोंसे युद्धका उद्योग करने लगे ॥ १८ ॥ युद्धमें दैत्योंके तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षासे देवतोंके मस्तक, बाहु, ऊरू आदि अङ्ग कट गये। तब देवगण सहित इन्द्रदेव शिर झुकाये ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ १९ ॥ परमदेव भगवान् ब्रह्माजी देवगणको इस प्रकार पीड़ित देख कर अत्यन्त दयायुक्त हो धीरज देते हुए यों कहने लगे ॥ २० ॥ **ब्रह्माजी बोले**। अहो बड़े खेदकी बात है! हे देवश्रेष्ठगण! तुमने ऐश्वर्यके मदमें मत्त हो कर दान्त, ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणका सम्मान नहीं किया, यह बहुत ही निन्दित कार्य हुआ ॥ २१ ॥ तुम लोग समृद्धिशाली थे, तुम्हारे शत्रुगण आपसमें ही लड़ भिड़ कर क्षीण हो रहे थे; ऐसी अवस्थामें उन शत्रुओंके हाथसे तुम्हारी हार होना केवल उसी अन्याय आचरणका फल है ॥ २२ ॥ हे इन्द्र! अपने शत्रुओंको देखो—वे अपने गुरुका निरादर करके पहले एक बार क्षीण हो गये थे, अब वे ही भक्तिपूर्वक अपने आचार्य शुक्रकी सेवा करके कैसी वृद्धिको प्राप्त हैं। शुक्राचार्य पर अत्यन्त गुरुभक्ति करनेके कारण इस समय वे मेरे लोकको भी ले सक्ते हैं ॥ २३ ॥ हे देवेन्द्र! शुक्रके शिष्य असुरगण इस समय स्वर्गको क्या समझते हैं। अनुशिक्षित अर्थवाले भृगुके अभेद्य मंत्र उनके सहायक हैं! जिन नरपतियों पर गऊ, ब्राह्मण एवं गोविन्द भगवान्की कृपा है उनका अमङ्गल कभी नहीं होता ॥ २४ ॥ सो जो हो, तुम लोग इस समय एक काम करो। त्वष्टाके पुत्र विश्वरूप ब्राह्मणके पास जा कर उनकी उपासनामें प्रवृत्त होओ। वह जितेन्द्रिय व तपस्वी हैं; यदि तुम लोग उनके असुर-पक्षपातको क्षमा कर सकोगे तो अवश्य उनके द्वारा तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध हो जायगा ॥ २५ ॥ **श्रीशुकजी**

कहते हैं। हे राजन्! ब्रह्माजीने जब इस प्रकार उपदेश किया तब देवगणके मनकी व्यथा दूर हो गई। वे लोग त्वष्टाके तनय विप्रवर विश्वरूप ऋषिके पास जा कर उनको हृदयसे लगा कर यों कहने लगे ॥२६॥ देवगण बोले। हम तुम्हारे आश्रममें अतिथि हो कर आये हैं, तुम्हारा कल्याण हो। हे तात! पितृगणकी समयोचित कामना पूर्ण करो ॥ २७ ॥ हे वत्स! पिताकी सेवा ही सज्जन पुत्रोंका परमधर्म है, जो पुत्र स्वयं पुत्र-पोतेवाले हैं उनको भी जब पिताकी सेवा अवश्य करनी चाहिये तब जो कि ब्रह्मचर्य-आश्रममें स्थित हैं उनके लिये क्या कहना है? ॥ २८ ॥ आचार्य्य (मंत्र देनेवाले) वेदकी, पिता प्रजापति की, भाई मरुत्पति इन्द्रकी एवं माता साक्षात् पृथ्वीकी मूर्ति है ॥ २९ ॥ बहन दयाकी मूर्ति है, अतिथि स्वयं धर्मकी मूर्ति है, अभ्यागत व्यक्ति अग्निकी मूर्त्ति है एवं प्राणिमात्र परमेश्वर या अपने आत्माका रूप हैं ॥ ३० ॥ हे तात! हम तुम्हारे पितृगण हैं, शत्रुओंके उत्पातसे अत्यन्त आर्त्त हो रहे हैं, तुम वैरियोंसे पराभवरूप हमारी पीड़ा अपने तपके प्रभावसे दूर कर हमारी आज्ञाका पालन करो ॥ ३१ ॥ तुम ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण हो, अतएव गुरु हो, हम तुमको अपना उपाध्याय बनाते हैं। हम तुम्हारे तेजके प्रतापसे सहजमें ही शत्रुओंको जीत सकेंगे ॥ ३२ ॥ लोकमें काम पड़ने पर छोटेके चरणोंकी वन्दना निन्दित नहीं मानी जाती; दूसरे वेदज्ञान ही बड़ाई और छोटाईका यथार्थ कारण है, अधिक अवस्थासे कुछ नहीं होता ॥ ३३ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** महातपस्वी विश्वरूप इस प्रकार देवगण द्वारा पुरोहितीके लिये प्रार्थित होने पर प्रसन्न हो कर मनोहर वाक्योंसे यों कहने लगे ॥ ३४ ॥ **विश्वरूप बोले।** हे देवगण! यद्यपि धर्मशील व्यक्तिगण "पुरोहिती कर्म ब्रह्मतेजको क्षीण करनेवाला एवं अधर्मका मूल है" ऐसा कह कर पुरोहिती कर्मकी निन्दा करते हैं तथापि हे स्वामियो! आप लोग जब प्रार्थना करते हैं तब मुझ सा व्यक्ति उसका अस्वीकार कैसे कर सक्ता है? आप लोग जगत्के अधिपति हो, मैं आपका शिक्षणीय शिष्य हूँ। शिष्यका यही परम स्वार्थ है कि वह गुरुओंके कहेको न टाले ॥ ३५ ॥ हे अधीश्वरगण! जो व्यक्ति अकिञ्चन हैं, खेतमें उसके स्वामीके त्यागे हुए अन्नके कण अथवा हाटोंमें गिरा हुआ अन्न ही जिनका धन है, मैं उन्हींकी पूर्वोक्त वृत्तिसे गृहाश्रममें साधुओंकी कर्तव्य सत्क्रियाओंका निर्वाह करता रहता हूँ। तब पुरोहिती ऐसे निन्दित कर्मको क्यों करूँ? जिससे मनुष्यकी बुद्धि दुष्ट हो जाती है ॥ ३६ ॥ किन्तु आप लोग मेरे गुरु हो; मैं आपकी इस सामान्य प्रार्थनाको अस्वीकार नहीं कर सक्ता। आप इससे भी अधिक जो चाहें उसे मैं अपने प्राण और धन दे कर भी सिद्ध करूँ गा ॥ ३७ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** महाराज! महातपस्वी विश्वरूप देवगणसे यों प्रतिज्ञा करके उनके पुरोहित हो गये एवं परम उद्यमके साथ उसका सम्पादन

करने लगे ॥ ३८ ॥ यद्यपि दैत्यगुरु शुक्रकी विद्यासे देवद्वेषी असुरोंकी राज्यलक्ष्मी रक्षित थी तथापि विश्वरूपने नारायणकवचरूप वैष्णवी विद्याके बलसे उनसे राजलक्ष्मी छीन कर इन्द्रको दिला दी ॥ ३९ ॥

यया गुप्तः सहस्राक्षो जिग्येऽसुरचमूर्विभुः ॥
तां प्राह स महेन्द्राय विश्वरूप उदारधीः ॥ ४० ॥

हे राजन्! देवराज इन्द्रने जिस विद्याके बलसे असुरोंकी सेनाको हराया वह विद्या विश्वरूपने इन्द्रको बताई ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय।

नारायणकवच ।

राजोवाच—यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान्रिपुसैनिकान् ॥
क्रीडन्निव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥ १ ॥

राजा परीक्षित् बोले। भगवन्! जिस कवचके द्वारा रक्षित हो कर इन्द्रने वाहनसहित शत्रुसेनाको लीलापूर्वक जीत लिया और फिर त्रिलोकीकी राज्यलक्ष्मीका भोग करने लगे ॥ १ ॥ वही नारायण कवच मुझसे कहिये और उस वर्म द्वारा रक्षित इन्द्रने जैसे आततायी शत्रुओंको जीता सो भी वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। जब विश्वरूप देवतोंके पुरोहित हुए तब उन्होने इन्द्रके पूछने पर जो नारायणकवच इन्द्रको बताया वह मैं तुमसे कहता हूँ, एकाग्रमन हो कर सुनो ॥ ३ ॥ **विश्वरूप** इन्द्रसे बोले। किसी प्रकारका भय उपस्थित होने पर हाथ पैर धो कर आचमन कर कुशोंकी पवित्री हाथमें पहने और उत्तरमुख बैठ कर अष्टाक्षर और द्वादशाक्षर मंत्रोंसे मौन हो कर पवित्रताके साथ अङ्गन्यास व करन्यास करके नारायणकवचको धारण करे। 'ओं नमो नारायणाय" इस अष्टाक्षर मंत्रके ओंकारादि प्रत्येक अक्षरको दोनो पैर, दोनो जङ्घा, दोनो ऊरू, उदर, हृदय, वक्षःस्थल, मुख एवं मस्तकमें यथाक्रम धारण करे। चाहे पदद्वयसे आरम्भ करे और चाहे मस्तकसे आरम्भ करे (यह अंगन्यास है) ॥४॥५॥६॥ फिर "ओं नमो भगवते वासुदेवाय" इस द्वादशाक्षर मंत्रके ओंकारसे ले कर मकार तक हरएक अक्षरको यथाक्रम दोनो हाथोंकी तर्जनी पर्यन्त चार २ अंगुलियोंमें एवं दोनो अँगूठोंकी दोनो पोरोंमें धारण करे (यह करन्यास है) ॥ ७ ॥ 'ओं विष्णवे नमः' इस मंत्रके प्रणवको हृदयमें, 'वि' को मस्तकमें, 'ष' को भौंहोंके

बीचमें, 'ण' को शिखामें, 'वे' को नेत्रोंमें, 'न' को सब सन्धियोंमें स्थापित करके 'म'को अस्त्ररूपसे ध्यान करता हुआ स्वयं मंत्रमूर्ति हो जाय। "मः अस्त्राय फट्" कह कर दिग्बन्ध कर दे ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ तदनन्तर ऐश्वर्यादिषट्शक्तिसम्पन्न, ध्यान करने योग्य ईश्वरस्वरूप आत्माका ध्यान करे और फिर विद्या, तेज और तपकी मूर्ति इस नारायणकवचका पाठ करे ॥ ११ ॥ जिनके चरणकमल गरुड़की पीठ पर धरे हुए हैं, जो अणिमा आदि आठ गुणोंसे युक्त हैं वह शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग, धनुष, बाण, चर्म और पाशको आठ भुजाओंमें धारण किये हुए हरि सर्वत्र सब प्रकारसे हमारी रक्षा करें ॥ १२ ॥ मत्स्यमूर्ति भगवान् जलमें जलजन्तुसमूहरूप वरुणपाशसे हमारी रक्षा करें। मायासे बटुवामनरूप विष्णु स्थलमें रक्षा करें। विश्वरूप त्रिविक्रममूर्ति आकाशमें रक्षा करें ॥ १३ ॥ जिनके भीषण अट्टहास करने पर सब दिशाओंमें प्रतिध्वनि होने लगी एवं गर्भवती स्त्रियोंके गर्भ गिर गये वही असुरकरिवरवैरी प्रभु नृसिंहजी वनमें एवं युद्धारम्भ आदि सङ्कटके स्थानमें हमारी रक्षा करें ॥ १४ ॥ जिन्होने अपनी दंष्ट्रा पर धराका उद्धार किया वही यज्ञस्वरूप वराह मार्गमें हमारी रक्षा करें। भगवान् परशुराम पर्वतोंके शिखरों पर एवं लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजी विदेशमें रक्षा करें ॥ १५ ॥ अभिचारादि उग्र धर्म और असावधानतासे भगवान् नारायण ऋषि, गर्वसे नर ऋषि, योगभ्रंशसे योगेश्वर दत्तात्रेय और कर्मबन्धनसे गुणविजेता कपिलदेव रक्षा करें ॥ १६ ॥ कामके वेगसे सनत्कुमारजी, राहमें चलते समय देवहेलनके अपराधसे हयग्रीवजी, देवपूजाके छिद्रसे देवर्षिश्रेष्ठ एवं सम्पूर्ण नरकोंसे कच्छपरूप हरि रक्षा करें ॥ १७ ॥ भगवान् धन्वन्तरि कुपथ्यसे एवं जितेन्द्रिय ऋषभदेव सुखदुःखादि द्वन्द्वभयसे रक्षा करें। यज्ञ भगवान् लोकापवादसे, बलभद्रजी मनुष्यकृत कष्टसे एवं अनन्त भगवान् अत्यन्त क्रोधी सर्पगणसे रक्षा करें ॥ १८ ॥ कुज्ञानसे भगवान् द्वैपायन, पाखंडियोंके बुद्धिप्रमादसे बुद्धदेव एवं धर्मरक्षार्थ अवतीर्ण कल्कि भगवान् कलिकलुषसे रक्षा करें ॥ १९ ॥ सूर्योदयके पीछे तीन मुहूर्त तक गदा लिये केशवदेव, उसके परवर्ती तीन मुहूर्तोंमें वेणुधारण किये हुए गोविंददेव, सम्पूर्ण पूर्वाह्णकालमें शक्ति धारण किये नारायण भगवान् एवं मध्याह्न समयमें चक्रपाणि विष्णु हमारी रक्षा करें ॥ २० ॥ उग्रधनुर्धारी मधुसूदन देव तीसरे पहर, ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वररूपी भगवान् सायंकालको, प्रदोष समयमें माधव, विषय और इन्द्रियगणके एक ईश्वर पद्मनाभ देव अर्धरात्रपर्यन्त एवं अर्धरात्रमें रक्षा करें ॥ २१ ॥ श्रीवत्सधारी ईश्वर शेष रात्रिको, खड्ग धारण किये जनार्दन ईश प्रत्यूषसमयमें, दामोदर प्रभातसमयमें एवं कालमूर्ति भगवान् विश्वेश्वर प्रत्येक संध्यामें रक्षा करें ॥ २२ ॥ प्रलयकालीन अग्निके तुल्य अत्यन्त प्रचण्ड धारावाले हे भगवान्के सुदर्शन चक्र! जैसे अग्नि वायुकी सहायतासे सूखे

तृणोंको जलाता है वैसे ही तुम भी भगवान्‌के द्वारा प्रयुक्त हो कर भ्रमण करते हुए हमारी शत्रुसेनाको अत्यन्त भस्म करो–अत्यन्त भस्म करो ॥ २३॥ हे भगवान्‌की गदा ! तुम्हारी चिनगारियोंका स्पर्श वज्रतुल्य है एवं तुम अजित भगवान्‌को अत्यन्त प्यारी हो, मैं भी उन्हीं भगवान्‌का दास हूँ; अतएव कूष्माण्ड, वैनायक, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत आदि ग्रहगणको पीस डालो–पीसडालो एवं शत्रुदलको चूर्ण करो–चूर्ण करो ॥ २४ ॥ हे पाञ्चजन्य शंख ! तुम भगवान् श्रीकृष्णके मुखमारुतसे परिपूर्ण हो कर भयंकर शब्द करते हुए राक्षस, प्रमथ, भूत, प्रेत, पिशाच आदिको एवं ब्रह्मराक्षस और अन्यान्य घोरदर्शन दुरात्मा जीवोंको भगाओ–भगाओ और तुम्हारे शब्दसे वैरियोंका हृदय कम्पायमान हो ॥ २५ ॥ हे खड्गश्रेष्ठ ! तुम्हारी धारा बहुत ही तीक्ष्ण है, तुम ईशके द्वारा प्रेरित हो कर शत्रुसेनाको काटो–काटो। हे शतचन्द्र ढाल ! तुममें मण्डलाकार शत चन्द्र देदीप्यमान हैं; तुम पापिष्ठ विद्वेषियोंके नेत्रोंको बंद करो एवं उनकी दृष्टिको नष्ट करो–नष्ट करो ॥ २६ ॥ जो सब ग्रह, केतु, नर, सरीसृप, दंष्ट्रावाले एवं पापजीव हैं और जो हमको भयदायक एवं हमारे कल्याणके प्रतिबन्धक हैं वे भगवान्‌के नाम, रूप और अस्त्रके कीर्तनसे शीघ्र ही क्षयको प्राप्त हों ॥ २७ ॥ २८ ॥ जो भगवान् गरुड़, बृहद्रथन्तरादि सामरूप स्तोत्रोंके द्वारा स्तुत होते रहते हैं, सब वेद जिनकी मूर्ति हैं, जो विष्वक्सेन भी कहे जाते हैं वह अपने सब नामोंके द्वारा अशेष क्लेशोंसे हमारी रक्षा करें ॥ २९ ॥ भगवान्‌के नाम, रूप, यान, आयुध एवं प्रधान २ पार्षदगण बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण एवं मनकी अशेष आपत्तियोंसे हमारी रक्षा करें ॥ ३० ॥ हम निश्चय जानते हैं कि यह मूर्त और अमूर्त सम्पूर्ण जगत् वास्तवमें भगवान्‌का ही स्वरूप है; इसी सत्यसे हमारे सकल उपद्रव विनाशको प्राप्त हों ॥ ३१ ॥ जो सब व्यक्ति ऐकात्म्य ध्यान करते हैं उनसे अभिन्न हो कर भी जो भगवान् अपनी मायाके मिससे भूषण, आयुध एवं लिंगादि विविध शक्तियोंको धारण किये हुए हैं एवं वही जिनकी सत्यताका प्रमाण है–सोई स्व-स्वरूप प्रमाणका कारण सर्वज्ञ भगवान् हरि अपने सम्पूर्ण रूपोंसे सर्वदा, सर्वत्र हमारी रक्षा करें ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ जिनके शब्दसे सब जगत्‌का भय दूर हो जाता है एवं जिनके तेजके आगे और सब तेज मन्द पड़ जाते हैं वही भगवान् नृसिंह दिशा व विदिशाओंमें, ऊपर नीचे, भीतर बाहर एवं सब स्थानोंमें हमारी रक्षा करें ॥३४॥ **विश्वरूप** कहते हैं हे इन्द्र ! हमने यह नारायणवर्म तुमसे कहा। तुम इस कवचको धारण करके अवश्य ही असुरयूथपतियोंको जीत सकोगे ॥ ३५ ॥ यह कवच धारण करके मनुष्य जिसे देख दे अथवा पैरसे स्पर्श कर दे वह व्यक्ति भी शीघ्र ही संकट और भयसे मुक्त हो जाता है ॥ ३६ ॥ जो व्यक्ति इस विद्याको धारण करता है उसको राजा, दस्यु, ग्रहादि अथवा व्याघ्र, व्याधि इत्यादिसे कभी

भय नहीं होता ॥ ३७ ॥ हे देवराज ! पहले कुशिकवंशसम्भूत किसी ब्राह्मणने इसी विद्याको धारण करके योगधारणासे मरुभूमिमें अपना शरीर त्याग दिया ॥ ३८ ॥ जहाँ उस ब्राह्मणने शरीरत्याग किया उसी स्थानके ऊपर हो कर एक समय गन्धर्वपति चित्ररथ स्त्रीगणसहित जा रहा था ॥ ३९ ॥ वह गंधर्व सहसा विमानसहित अधोमुख हो कर आकाशसे नीचे गिर पड़ा। तदनन्तर बालखिल्य ऋषियोंके उपदेशानुसार उस ब्राह्मणकी हड्डियाँ बटोर कर पूर्वसरस्वतीमें बहाईं और विस्मित हो कर अपने धाम को चला गया ॥ ४० ॥ जो व्यक्ति इस नारायणकवचको समय पर आदरसहित धारण करता है उसको सब प्राणी नमस्कार करते हैं एवं वह स्वयं सब भयोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ४१ ॥

एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपाच्छतक्रतुः ॥
त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान् ॥ ४२ ॥

इन्द्र विश्वरूपके निकट यह विद्या प्राप्त कर, युद्धमें असुरगणको हरा कर फिर त्रैलोक्यलक्ष्मीका उपभोग करने लगे ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते पष्ठस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय ।

वृत्रासुरकी उत्पत्ति ।

श्रीशुक उवाच—तस्यासन्विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत ॥
सोमपीथं सुरापीथमन्नादमिति शुश्रुम ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले । हे राजन्! सुना है कि देवपुरोहित विश्वरूपके तीन शिर थे । वह एकसे सोमपान, दूसरेसे सुरापान एवं तीसरेसे अन्न भोजन करते थे ॥ १ ॥ विश्वरूप यज्ञके समय विनीत हो प्रकटरूपसे देवगणको हविका भाग देते थे, क्यों कि देवता उनके पितृपक्षीय थे ॥ २ ॥ किन्तु वह मातृस्नेहके वशवर्ती हो कर यज्ञ करते २ छिपा कर असुरोंको भी हविका भाग दे देते थे ॥३॥ एक समय देवराज इन्द्र उनका यह देवहेलनरूप अन्याय आचरण देख कर अत्यन्त भयभीत हुए एवं उन्होंने कुपित हो कर उनके तीनो शिरोंको काट डाला ॥ ४ ॥ विश्वरूपका सोमपान करनेवाला मुख चातक और सुरापान करनेवाला मुख चटक एवं अन्नभोजन करनेवाला मुख तीतर हो गया ॥ ५ ॥ यद्यपि इन्द्रदेव ब्रह्महत्या-पापके निवारणमें समर्थ थे तथापि उन्होने उसे अञ्जलि द्वारा ग्रहण

किया। इन्द्रने एक वर्षके बाद जनापवादनिवारणके लिये उक्त पापको चार भागमें विभक्त कर पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्रीजातिमें बाँट दिया। "खोदे हुए गढ़े स्वयं पूर जायँगे"—यह वरदान पा कर पृथ्वीने इन्द्रकृत ब्रह्महत्याका चतुर्थांश ग्रहण किया। वह पाप पृथ्वीमें "ऊसर"के रूपसे देख पड़ता है॥ ६ ॥७॥ "कटने पर फिर पनप आवें गे"—यह वर पा कर वृक्षोंने पापका चतुर्थांश ग्रहण किया। उनमें जो निर्यास (गोंद) निकलता है वही ब्रह्महत्याका अंश है॥ ८ ॥ "सर्वदा सम्भोग करनेकी शक्ति रहे"—यह वर पा कर स्त्रीजातिने पापका चतुर्थांश ग्रहण किया। महीने २ रजोधर्म्मके रूपसे उनमें ब्रह्महत्या देख पड़ती है॥ ९ ॥ "दुग्धादि अन्य पदार्थमें मिल सकने"का वर पा कर जलने पापका चतुर्थांश ग्रहण कर लिया। उसमें भी बुल्ले और फेनके रूपसे वह पाप देख पड़ता है॥ १० ॥ विश्वरूपके निहत होने पर उसके पिता त्वष्टाने अत्यन्त कुपित हो इन्द्रको मारनेकी कामनासे आभिचारिक यज्ञ रचा और उसमें "हे इन्द्रशत्रो!* तुम वृद्धिको प्राप्त हो एवं शीघ्र ही शत्रुका विनाश करो" यह कह कर आहुति दी॥ ११ ॥ थोड़ी देर बाद ही उस दक्षिणाग्निसे युगान्त-समयके लोक-कृतान्ततुल्य एक भीषण आकारका असुर प्रकट हुआ ॥ १२.॥ वह असुर प्रतिदिन बाण बराबर (चार हाथ) सर्वतोभावसे बढ़ने लगा। उसका वर्ण जले हुए पर्वतके समान काला और कान्ति संध्याकालीन मेघके सदृश लाल थी॥ १३ ॥ तपे हुए ताँबेके रंगके शिर व दाढ़ी मूछके केश थे, दोनो नेत्र दोपहरके सूर्यके समान प्रचण्ड होनेके कारण दुष्प्रेक्ष्य थे एवं वह जैसे देदीप्यमान तीन शिखाके शूल पर स्वर्ग और भुवर्लोकको आरोपित कर पैरके भारसे पृथ्वीमण्डलको कम्पित करता हुआ नाचने व भयंकर शब्द करने लगा। कन्दराके समान गम्भीर मुखसे मानो आकाशमण्डलको पी जाय गा– ऐसा जान पड़ने लगा। जिह्वासे मानो नक्षत्रोंको चाट जायगा ॥ १४ ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ रौद्र दाढ़ोंवाले मुखको फैला कर यों वारम्वार जम्हाई लेता था मानो तीनो लोकोंको ग्रस लेगा। सब लोग उसे देख कर ही डरके मारे इधर उधर दशो दिशाओंमें भागने लगे॥ १७ ॥ त्वष्टासे उत्पन्न असुरमूर्तिधारी तपने इन सब लोकोंको आवृत कर लिया, इसी लिये उसका नाम 'वृत्र' हुआ॥ १८ ॥ वृत्र पापाचारी एवं अति दारुण प्रकृतिका हुआ। देवगण उस दानवको देखते ही दलबलसहित दौड़ कर अपने २ दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, किन्तु उसने उन सब अस्त्र शस्त्रोंको लील लिया ॥ १९ ॥ तब सब देवगण विस्मित, विषण्ण एवं प्रभाहीन होकर एकाग्र

---

* उस समय उच्चारणका भेद होनेसे 'इन्द्रशत्रु' पदका 'इन्द्रका शत्रु' ऐसा अर्थ न होकर समासके बलसे 'इन्द्र जिसका शत्रु' ऐसा अर्थ हो गया।

चित्तसे अन्तर्यामी आदिपुरुषकी उपासना करने लगे ॥ २० ॥ **देवगण बोले।** पवन, आकाश, जल, अग्नि और पृथ्वी ये पञ्चमहाभूत, तीनो लोक व ब्रह्मा आदि देवगण एवं हमलोग–सब ही भयभीत हो कर जिस कालको पूजोपहार प्रदान करते हैं वह काल भी जिन्हे डरता है वही परमेश्वर हमारे रक्षक हैं ॥ २१ ॥ वह निरहंकार, रागादिशून्य, आत्मलाभमें ही पूर्णकाम एवं उपाधिकृत परिच्छेदसे शून्य हैं। जो व्यक्ति उनको छोड़ कर अन्यकी शरण जाता है वह महामूर्ख है; वह कुत्तेकी पूँछ पकड़ कर समुद्रके पार जाया चाहता है ॥ २२ ॥ मनुने महाप्रलयके समय जिनके विशाल सींगमें इस पृथ्वीरूपिणी अपनी नौकाको बाँध दिया एवं तात्कालिक विपत्तिसे छुटकारा पा गये, वह मत्स्यमूर्ति भगवान् निश्चय ही दुरन्त वृत्रासुरके भयसे हम आश्रितोंकी रक्षा करेंगे ॥ २३ ॥ पूर्व समय ब्रह्माजी निस्सहाय अवस्थामें, प्रचण्ड पवनकी थपेडोंसे चंचल तरङ्गवाले घोरगर्जनयुक्त भयानक प्रलयकालके समुद्रमें गिर कर जिनकी कृपासे उस सङ्कटसे मुक्त हुए वही भयभंजन भगवान् इस विपत्तिसे हमारा उद्धार करें ॥२४॥ जिन एक ईश्वरने अपनी मायासे हमारी सृष्टि की है और जिनकी कृपाके बलसे हम भी विश्वकी सृष्टि करते हैं, जो हमारे पहलेसे ही चेष्टायुक्त हैं तथापि हम लोग अपने २ को पृथक् ईश्वर समझ-नेके कारण उनके रूपको नहीं देख पाते ॥ २५ ॥ जो हमको विशेषरूपसे शत्रुओं द्वारा पीड़ित देख कर अपनी मायाके बलसे देवता, ऋषि, तिर्य्यंक् और मनुष्यों-में विविध आकारोंसे प्रत्येक युगमें अवतार ले कर हमारी रक्षा करते हैं और हमें अपनाते हैं ॥ २६ ॥ हम उन्ही शरणागतपालक भगवान्की शरण हैं। वह आत्मदैवत, विश्वस्वरूप अथच विश्वसे भिन्न हैं; वह विश्वका कारण एवं प्रकृति और पुरुष हैं। हम लोग उन्हीके जन हैं। वही महात्मा हमारा मङ्गल करेंगे ॥ २७ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** महाराज! देवगण यों स्तुति कर रहे थे, इसी अवसरमें शंख चक्र गदा धारण किये हुए भगवान् पहले उनके हृदयाकाश-में प्रकट हुए। वैसे ही देवगणको भगवान्का साक्षात् दर्शन भी हुआ ॥ २८ ॥ देख कर आनन्दमें मग्न हुए देवगणने पृथ्वीमें गिर कर दण्डवत् प्रणाम किया एवं धीरे २ उठ कर अञ्जलि बाँध कर फिर स्तुति करना आरम्भ किया। हे राजन्! उस समय श्रीवत्स और कौस्तुभ मणिसे सुशोभित हरिके आत्मतुल्य सुनन्दादिक सोलह पार्षद चारो ओर खड़े सेवा कर रहे थे। भगवान्के दोनो नयन फूले हुए शरद ऋतुके कमलके समान शोभायमान थे ॥ २९ ॥ ३० ॥ **देवगण बोले।** हे भगवन्! यज्ञ ही तुम्हारी शक्ति सामर्थ्य है, तुमको हमारा नमस्कार है। तुम कालरूपी हो, तुम को नमस्कार है। तुम यज्ञविघातक दैत्यों पर अपना अमोघ चक्र चला कर उनका विनाश करते हो, तुमको प्रणाम है। इस महिमाके कारण तुम्हारे अनेक सुशोभन नाम पड़े हैं, तुमको नमस्कार है ॥ ३१ ॥ हे धातः! तुम तीनो गुणोंके

नियामक हो, तुम्हारे निर्गुण स्वरूपको अर्वाचीन व्यक्ति नहीं जान सक्ते, तुम को प्रणाम है ॥ ३२ ॥ हे भगवन्! हे नारायण! हे वासुदेव! हे आदिपुरुष! हे महानुभाव! हे परममङ्गल! हे परमकल्याण! हे परमकारुणिक! हे केवल! हे जगदाधार! हे लोकैकनाथ! हे सर्व्वेश्वर! हे लक्ष्मीनाथ! परमहंस परिव्राजक गण अष्टाङ्ग समन्वित परम-आत्मयोगसमाधिका अनुष्ठान करते हुए जिस परिस्फुट पारमहंस्य धर्मका अनुशीलन करते हैं, उसमें जब उनके चित्तके तमोरूप कपाट उघरते हैं एवं प्रत्यक्स्वरूप आत्मलोक प्रकाशमान होता है और तब जो निज-सुख स्वयं परिस्फुट होता है, तुम उसके अनुभवस्वरूप हो ॥ ३३ ॥ किन्तु हे भगवन्! तुम्हारा यह विहारयोग हम लोगोंके लिये दुर्बोध सा है, क्यों कि तुम निराकार, निराश्रय एवं निर्गुण हो तथापि हम लोगोंकी सहायताकी अपेक्षा न कर अपने ही द्वारा इस सगुण विश्वकी सृष्टि, पालन और प्रलय करते हो; परन्तु किसी प्रकार तुमको विकार नहीं होता ॥ ३४ ॥ तुम देवदत्त (किसी संसारी व्यक्ति) की भाँति इस संसारमें पतित और परवश हो कर निजकृत शुभाशुभका फल भोग करते हो या स्वयं आत्माराम और उपशम-शील रह कर अस्खलित चैतन्यशक्तिके प्रभाव द्वारा साक्षीस्वरूपसे वर्तमान हो—इसका मर्म हम लोग नहीं जान पाते ॥ ३५ ॥ तुममें पूर्वोक्त दोनो बातें ही सम्भव हैं, क्यों कि तुम भगवान् हो । तुम्हारे गुणगण अपरिमित हैं और माहात्म्य दुर्बोध है एवं तुम स्वयं स्वाधीन हो। जिन सब शास्त्रोंमें सारशून्य वितर्क, युक्ति, अनुसन्धान, विचार एवं उन २ विषयोंके अयथार्थ प्रमाण और अनुकूल कुतर्क हैं उन्हीके द्वारा जिनके अन्तःकरण व्याकुल और दुष्ट आग्रहसे पूर्ण हैं उन सब वादियोंके विवाद तुमको गोचर नहीं कर सक्ते। तुम समस्त मायामय संसारसे वर्जित एवं केवल स्वस्वरूप हो। मायाको बीचमें रख कर तुममें कर्तृत्वादि कोई विषय दुर्घट नहीं है (वस्तुतः तुममें कर्तृत्वादि रहने पर विरोध होता किन्तु सो नहीं है) क्यों कि तुममें दोनो ही स्वरूपोंका अभाव है। जैसे सर्प-भ्रमकी सामग्री रहने पर एक रस्सीका टुकड़ा सर्प सा एवं न रहने पर यथार्थ रस्सी सा प्रतीयमान होता है वैसे ही समबुद्धि एवं विषमबुद्धि मनुष्योंके अभिप्रायानुसार तुम विविधरूप प्रतिभात होते हो ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ जो सब वस्तु-ओंमें अनेकरूप प्रतीयमान होते हैं वही सत्स्वरूप, सबके ईश्वर, सम्पूर्ण जगत्के कारण एवं सबके अन्तर्यामी होनेके कारण सबके प्रकाशक और एकमात्र निश्चित हैं। हे मधुसूदन! जिन चरणकमलोंकी सेवाके फलसे फिर संसारमें नहीं आना होता उन्ही पादपद्मोंकी सेवाको परम भगवद्भक्त पुरुष कैसे त्याग सक्ते हैं? उक्त भगवद्भक्त पुरुष पुरुषार्थके ज्ञानमें परम चतुर हैं, इस कारण तुम जो आत्मा हो उन्हीको अपना प्रिय सुहृद् जानते हैं अतएव वे साधु हैं। तुम्हारी महिमा अमृतरसका सागर है। उस सागरके एक बूँद रसका स्वाद एक बार

मिल जाने पर उसके द्वारा मनमें जो सुख निरन्तर उत्पन्न होता रहता है उससे वे सब भगवद्भक्त महापुरुषगण श्रवणनयनप्राप्य तुच्छ इन्द्रियसुखोंको भूल जाते हैं, अतएव उनका मन तुममें ही नितान्त निरत रह कर निर्वृत्तिको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे भगवन्! तुम त्रिभुवनके आत्मा और भवन हो, तुम्हारे तीन पद हैं, तुमने ही इन तीनो लोकोंका प्रणयन किया है, तुम्हारा प्रभाव त्रिलोकमनोहर है। दैत्य दानव आदि सब तुम्हारी विभूति हैं। हे दण्डधर! दैत्यदानवगणके अत्याचारका समय उपस्थित होने पर जैसे तुमने मायाबलसे देव, नर, पशु, पशुमिश्रित नर एवं जलचर शरीर धारण कर उन सब दुष्टोंको अपराधके अनुसार दण्ड दिया है वैसे ही यदि इच्छा हो तो इस त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरका भी संहार करो॥ ४० ॥ हे पितामह! हे हरे! हम तुम्हारे ही जन हैं, तुम्हारे चरणोंमें प्रणत होते हैं एवं निरन्तर तुम्हारे ही चरणकमलोंका ध्यान करते हैं, उससे हमारा हृदय शृंखलाबद्ध होगया है एवं तुमने भी अपनी मूर्ति प्रकट करके हम लोगोंको अपनाया है । अतएव हे अनघ! अनुग्रह प्रकाश करके सानुराग विशद सुस्निग्ध मंद मुसकानसे युक्त चितवन एवं मुखारविंदविगलित मधुर मनोहर वाक्यरूप अमृतकलाके द्वारा हमारे अन्तःकरणके तापको शान्त करो ॥ ४१ ॥ हे भगवन्! जो दिव्य माया सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारका कारण प्रसिद्ध है उसीके साथ तुम क्रीड़ा करते हो। तुम सब जीवोंके हृदयके भीतर अन्तर्यामी ब्रह्मस्वरूपसे और बहिर्भागमें प्रधानस्वरूपसे स्थित रह कर देश-काल और देहावस्थाविशेषके अनुसार उपादान और उपलम्भक रूपसे सबका अनुभव करते रहते हो, सुतराम् तुम स्वयं बुद्धि आदिके साक्षी, अपने स्वरूप आकाशकी भाँति निर्लिप्त हो। तुम साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हो। हम तुमको कौन बात ज्ञात करावें? क्या अग्निकी चिनगारी अग्निको प्रकाश दिखा सक्ती है? तुम भगवान् परमगुरु हो। हम जो कुछ मनमें विचार कर, विविध पापोंका परिणाम जो संसारकी यंत्रणा है उसको शान्त करनेवाली आपके चरणकमलोंकी छायामें आये हैं, उस हमारे मनोरथको तुम स्वयं पूर्ण करो ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ हे ईश! हे कृष्ण! त्रिभुवनको ग्रसनेके लिये उद्यत त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरका शीघ्र ही संहार करो। उसने हमारे तेज और अस्त्र-शस्त्रोंको भी ग्रस लिया है॥४४॥ शुद्ध और आर्तिहारी हरिको हम नमस्कार करते हैं। हृदयाकाशमें जिनका निवास है, जो बुद्धि आदिके साक्षी, सर्वदा आनन्दमय अतएव शुद्ध हैं, जिनका यश मधुर मनोहर है, जिनका आदि नहीं है, साधुजन जिनका संग्रह करते हैं उनको हमारा प्रणाम है। संसारपथका पथिक यदि उनकी शरण ग्रहण करे तो संसारके अन्तमें वह उसको उत्तम गति देते हैं। वही ईश हम पर कृपा करें ॥ ४५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्। देवगणकी यह आदरपूर्ण स्तुति सुन

कर भगवान् हरि अत्यन्त सन्तोष प्रकाशित करते हुए यों बोले ॥ ४६ ॥ **श्रीभगवान् बोले।** हे देवगण ! इस स्तोत्रसे और तुम्हारे ज्ञानसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ । इस ज्ञानसे लोगोंको आत्माके ऐश्वर्यकी स्मृति और मेरी भक्ति प्राप्त होती है ॥ ४७ ॥ मेरे प्रसन्न होने पर लोगोंको कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं रहता। अतएव तत्त्वज्ञानी लोग मुझमें ही अनन्यभावसे चित्त समर्पण कर तृप्त रहते हैं, और किसी बातकी चाह नहीं करते ॥ ४८ ॥ जो व्यक्ति तुच्छ विषयोंको इष्टका साधन समझता है वह अत्यन्त मूर्ख है, वह अपने कल्याणको नहीं समझ सक्ता। और उक्त प्रकारके मूढ़ व्यक्तियोंको जो उनके अभीष्ट विषयोंका दान करे वह भी मूर्ख है ॥ ४९ ॥ स्वयं मुक्तिमार्गको जानता हो तो अज्ञ व्यक्तिको कर्म अर्थात् प्रवृत्ति मार्गका उपदेश न करे । रोगीके चाहने पर भी अच्छा वैद्य उसे कभी कुपथ्य नहीं देता ॥ ५० ॥ हे देवेन्द्र ! तुम्हारा मङ्गल हो, अब तुम ऋषिश्रेष्ठ दधीचिके पास जाओ; विद्या, व्रत एवं तपके प्रभावसे अत्यन्त दृढ़ उनका शरीर उनसे माँगो; विलम्ब न करो ॥ ५१ ॥ हे देवराज ! वह मुनि अध्यात्मविद्यामें अत्यन्त विद्वान् हैं; वह शुद्ध ज्ञानकाण्डको जानते हैं एवं उसे अश्विनीकुमारको बतलाया है। वह विद्या अश्वमस्तक द्वारा कथित होनेके कारण अश्वशिर नामसे प्रसिद्ध हुई है* उसी विद्याके बलसे अश्विनीकुमारको अमरभाव प्राप्त हुआ है ॥ ५२ ॥ आथर्वण दध्यञ्च मुनिने त्वष्टाको अभेद्य नारायणकवच बताया, त्वष्टाने विश्वरूपको बताया और विश्वरूपसे तुमने पाया ॥ ५३ ॥ तुम लोगोंके और विशेष कर अश्विनीकुमारके प्रार्थना करनेपर वह अतिथिधर्मज्ञ ऋषि तुमको अपना शरीर दे देंगे। दधीचिकी हड्डियोंसे विश्वकर्मा जो अस्त्र बना देंगे उसके द्वारा मेरे तेजसे युक्त तुम वृत्रासुरका शिर काटोगे ॥ ५४ ॥

तस्मिन्विनिहते यूयं तेजोऽस्त्रायुधसम्पदः ॥
भूयः प्राप्स्यथ भद्रं वो न हिंसन्ति च मत्परान् ॥ ५५ ॥

---

* इसकी कथा यों है कि दध्यंच ऋषिको ब्रह्मविद्यामें निपुण जानकर उनके पास अश्विनीकुमार आये और कहा हमको ब्रह्मविद्या बताइये । ऋषिने कहा इस समय तो मैं कर्ममें लगा हूं फिर आना। अश्विनीकुमार चले गये वैसे ही इन्द्र आये और कहा कि हे ऋषि ! तुम अश्विनीकुमारको विद्या न बताना नहीं हम तुम्हारा शिर काट लेंगे । यह कह कर इन्द्रगये, फिर अश्विनीकुमार आये । ऋषिने इन्द्रका सब वृत्तान्त कहा । अश्विनीकुमारने कहा अच्छा हम पहले आपका शिर काट कर घोड़ेका शिर लगाये देते हैं, आप हमको ब्रह्मविद्याका उपदेश कीजिये । इन्द्र आकर आपका घोड़ेका शिर काट डालेंगे तब हम असली शिर जोड़देंगे । मुनिने वैसाही किया और इन्द्रके मुनिका शिर काट डालने पर अश्विनीकुमारने फिर उनका असली शिर जोड़ दिया।

वृत्रासुरके मरनेपर तुम सब फिर अपने तेज अस्त्र और सम्पदाको प्राप्त होओगे। जो मेरे भक्त हैं उनकी हिंसा कोई नहीं कर सक्ता; अत एव तुम्हारा कल्याण अवश्यम्भावी है ॥ ५५ ॥

इति श्रीभागवते पष्ठस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय ।

वृत्रासुरके साथ इन्द्रका युद्ध ।

श्रीशुक उवाच—इन्द्रमेवं समादिश्य भगवान्विश्वभावनः ॥
पश्यतामनिमेषाणां तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले । हे राजन्! विश्वभावन भगवान् हरि इन्द्रको इस प्रकार आज्ञा दे कर देवगणके सामने ही उसी स्थान पर अन्तर्द्धान हो गये ॥ १ ॥ तदनन्तर देवगण महात्मा आथर्वण दध्यञ्च ऋषिके निकट गये और उनसे उनका शरीर माँगा । हे भारत! ऋषि उसमें अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए हँस कर यों कहने लगे ॥ २ ॥ "हे देवगण! शरीरधारियोंको शरीर त्यागनेमें जो अचेत करनेवाला घोर दुःख होता है उसको कदाचित् तुम नहीं जानते । मृत्युकी यातना अत्यन्त दुस्सह है ॥ ३ ॥ जिन सब जीवोंको जीवित रहनेकी प्रवल इच्छा है उनको शरीर ही अत्यन्त प्रिय और वांच्छित वस्तु है । साक्षात् विष्णु भी आ कर वह शरीर माँगें तो भला वताओ उसे कौन देहधारी दे सक्ता है?" ॥ ४ ॥ देवगणने प्रत्युत्तर दिया कि—"ब्रह्मन्! जो महापुरुष आपके समान प्राणिमात्र पर दया करनेवाले हैं एवं पुण्यकीर्तिवाले सज्जन जिनके शुभ कर्मोंकी प्रशंसा किया करते हैं वे पुरुष परोपकारके लिये क्या नहीं कर सक्ते? ॥ ५ ॥ हे महर्षे! सत्य बात यह है कि स्वार्थपर साधारण लोग दूसरेके क्लेशको नहीं समझ सक्ते । यदि समझें तो याचक पुरुष तो माँगे नहीं और देनेवाला नाहीं न करे" ॥ ६ ॥ दध्यञ्चऋषि बोले । आप लोगोंके मुखसे धर्म सुननेकी इच्छा करके ही मैंने इस प्रकार रूखा उत्तर दे दिया था । मेरा यह शरीर अत्यन्त प्रीतिपात्र होने पर भी एक दिन अवश्य मुझे त्याग देगा । अतः आप लोगोंके लिये मैं इसको अभी त्याग देता हूँ ॥ ७ ॥ हे स्वामियो! यह शरीर अनित्य है, जो पुरुष सब प्राणियों पर दया प्रकाश करते हुए इससे धर्म और धनके उपार्जनकी चेष्टा नहीं करता उसके लिये अचेतन जड़ जीव भी शोच करते हैं ॥ ८ ॥ जो व्यक्ति अन्य प्राणियोंके शोकमें शोकाकुल एवं हर्षमें हर्षित होते हैं उनका उक्त धर्म अव्यय है । पुण्यश्लोक मनुष्य उक्त धर्मका आदर करते हैं ॥ ९ ॥ धन, स्वजन एवं शरीर—कुछ भी अपना प्रयोजनीय नहीं है; ये सभी क्षणभंगुर एवं दूसरोंके भोग्य भक्ष्य

हैं। अहो कैसे कष्टकी बात है! अहो कैसी कृपणता है! मनुष्य इनसे भी उपकार नहीं कर सक्ता ॥ १० ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । आथर्वण दध्यङ्ङ ऋषिने इस प्रकार निश्चय करके परब्रह्मके साथ क्षेत्रज्ञ आत्माका ऐक्य सम्पन्न कर अपने शरीरको त्याग दिया ॥ ११ ॥ ऋषिके इन्द्रिय, मन, प्राण एवं बुद्धि संयत थे, स्वयं उनकी दृष्टि तत्त्वमें थी, सुतरां उनके समस्त बन्धन विध्वस्त हो गये थे। परम योगका अवलम्बन करनेके कारण उनको देहका नाश होते जान भी नहीं पड़ा ॥ १२ ॥ तदनन्तर विश्वकर्माने मुनिकी हड्डियोंसे वज्र बनाया । भगवान्‌के तेजसे संयुक्त बलशाली इन्द्र उसी वज्रको लेकर गजराज ऐरावतके मस्तक पर शोभायमान होने लगे। सब देवगण इन्द्रको चारोओरसे घेर कर खड़े हुए एवं मुनिगण स्तुति करने लगे और उस समय तीनो लोकोंको प्रसन्नता हुई ॥ १३ ॥ १४ ॥ जैसे रुद्रने कुप्ति हो कर अन्धकासुर पर आक्रमण किया था वैसे ही इन्द्रने असुरसेनापतिपरिवृत वृत्रासुर पर बलपूर्वक आक्रमण किया ॥ १५ ॥ तब देवता और दैत्योंमें भयंकर संग्राम होने लगा । हे महाराज! वैवस्वतमन्वन्तरके प्रथम चतुर्युगके त्रेताके आरम्भमें नर्मदा नदीके तट पर यह युद्ध हुआ ॥ १६ ॥ इस युद्धमें रुद्रगण, वसुगण, आदित्यगण, अश्विनीकुमार, पितृगण, अग्निगण, मरुद्गण, ऋभुगण, साध्यगण एवं विश्वेदेवगणसे परिवृत देवराज इन्द्र वज्र धारण किये हुए अपनी कान्तिसे परमशोभायमान हुए। शत्रु वृत्र आदि असुरगण यह नहीं सह सके ॥ १७ ॥ १८ ॥ अतएव नमुचि, शम्बर, अनर्वा, द्विमूर्द्धा, ऋषभ, हयग्रीव, शंकुशिरा, विप्रचित्ति, अयोमुख, पुलोमा, वृषपर्वा, प्रहेति, हेति और उत्कल आदिक दैत्य, दानव, यक्ष और हजारों सुमाली, माली आदि राक्षस सुवर्णमय परिच्छद धारण कर सिंहनाद करते हुए, मृत्युके लिये भी दुर्द्धर्ष इन्द्रसेनाके अग्रभागको रोक कर उसे नष्ट करने लगे। वे बड़े ही दुर्मद होनेके कारण कुछ भी नहीं घबड़ाये एवं चारो ओरसे देवगण पर असंख्य गदा, परिघ (बेलन), बाण, प्रास, मुद्गर, तोमर, शूल, परश्वध, खड्ग, शतघ्नी, भुशुंडी आदि अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ १९ ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ पुंखानुपुंखभावसे पतित बाणोंके जालमें देवगण छिप गये एवं जैसे आकाश पर मेघके कारण तारागण अदृश्य हो जाते हैं वैसे अदृश्य हो गये ॥ २४ ॥ किन्तु असुरोंकी की हुई अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा देवसेना पर गिरने भी नहीं पाई, बीचमें ही फुर्तीले देवगणने उसके खंड २ कर डाले; जिससे आकाशमें ही वह बाणजाल छिन्नभिन्न हो गया ॥ २५ ॥ तदनन्तर असुरोंके अस्त्र शस्त्र क्षीण हो चले, तब वे पर्वतोंके शिखर, पत्थरोंके टुकड़े एवं वृक्ष लेकर देवतों पर बरसाने लगे; किन्तु उनको भी पहलेकी भाँति देवतोंने काट डाला ॥ २६ ॥ इस प्रकार देवसैन्यगणको अनेकानेक अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहार सह कर भी अक्षत एवं

सुखसे खड़े हुए देख कर और अपने पर्वतशिखर, वृक्ष व शिलाखंडोंके प्रहारोंको भी विफल देख कर असुरोंको वहुत ही भय हुआ ॥ २७ ॥ जैसे क्षुद्रव्यक्तियोंके अमंगल रूखे वचन महत् व्यक्तियोंके हृदयमें क्षोभ नहीं उत्पन्न कर सक्ते वैसे ही कृष्णके अनुगृहीत देवगणको मारनेके लिये दैत्यगणके बार २ किये हुए सब प्रयास निष्फल हुए ॥ २८ ॥ अपने प्रयासोंको विफल देख कर हरिभक्तिविहीन दानवगणका युद्धदर्प नष्ट हो गया । वे लोग अत्यन्त नामी योद्धा होने पर भी युद्धके आरंभमें ही अधीर हो अपने नायक वृत्रासुरको छोड़ कर भागनेके लिये उद्यत हुए ॥ २९ ॥ अनुगामी असुरसेनापतियोंको भागते और सेनाको तीव्र भयसे छिन्नभिन्न होते देख कर महामनस्वी वीर वृत्रासुर हँसते २ यों कहने लगा (उस समय मनस्वी व्यक्तियोंको जैसे मनोहर वाक्य कहना उचित थे, वीर वृत्रासुर भी वैसे ही वाक्य बोला)—हे विप्रचित्ति, नमुचि, पुलोमा, मय, अनर्वा और शम्बर इत्यादि दैत्यगण! ठहरो, और मेरे वचन सुनो ॥३०॥ ३१ ॥ यह तो तुम जानते ही हो कि जिसका जन्म हुआ है उसकी अवश्य ही मृत्यु होगी, संसारमें इसकी कोई दवा नहीं है। तब उस मृत्युसे यदि इस लोकमें यश और उस लोकमें उत्तम गति मिले तो ऐसी उत्तम मृत्युको कौन मनस्वी और समझदार पुरुष न अंगीकार करेगा? ॥ ३२ ॥

द्वौ संमताविह मृत्यू दुरापौ यद्ब्रह्मसंधारणया जितासुः ॥
कलेवरं योगरतो विजह्याद्यदग्रणीर्वीरशयेऽनिवृत्तः ॥ ३३ ॥

संसारमें दो प्रकारकी मृत्यु शास्त्रसम्मत एवं दुष्प्राप्य है । एक तो योगधारणापूर्वक प्राणजय कर शरीरका त्याग और दूसरे सेनाके आगे हो कर सम्मुख युद्धमें प्राण त्यागना ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय ।

वृत्रासुरका विचित्र चरित्र ।

श्रीशुक उवाच—त एवं शंसतो धर्मं वचः पत्युरचेतसः ॥
नैवागृह्णन्भयत्रस्ताः पलायनपरा नृप ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । भयभीत हो कर भाग रहे असुरोंने इस प्रकार धर्मयुक्त वाक्य कह रहे स्वामी वृत्रासुरके उपदेशको नहीं ग्रहण किया ॥ १ ॥ सुयोग समझ कर देवगण उन भाग रहे दैत्योंकी सेनाको चारो ओरसे छिन्न भिन्न करने लगे, उससे आसुरी सेना भी अनाथवत् विशीर्ण हो पड़ी ॥ २ ॥ अपने

पक्षका यह शोचनीय दृश्य देख कर इन्द्रके शत्रु वृत्रासुरके हृदयको अत्यन्त सन्ताप हुआ। यह दारुण व्यापार उसको असह्य हो गया। वह प्रचण्ड क्रोधसे अधीर हो बलपूर्वक देवसेनाको रोक कर डाँटता हुआ यों कहने लगा ॥ ३ ॥ "हे देवगण! तुम माताकी विष्ठाके तुल्य हो। भाग रहे दैत्योंको पछिया कर मारनेसे क्या होगा? जो लोग अपनेको वीर मान कर अभिमान करते हैं उनके लिये भयभीत व्यक्तिको मारना प्रशंसनीय अथवा स्वर्गदायक नहीं है ॥ ४ ॥ हे क्षुद्रो! यदि तुमको युद्ध करनेकी श्रद्धा और हृदयमें धैर्य्य है तथा विषयभोगकी लालसा नहीं है तो मेरे आगे कुछ देर ठहरो" ॥५॥ हे राजन्! वृत्रासुर इस प्रकार कुपित हो कर अपने विशालशरीरसे विपक्ष देवगणको भयभीत करता हुआ ऐसा गर्जा कि उससे त्रिभुवन अचेत सा हो गया ॥ ६ ॥ वृत्रासुरके उस प्रचण्ड सिंहनादसे सभी देवता वज्राहतकी भाँति मूर्च्छित हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥७॥ जैसे मदमत्त यूथपति गजराज पैरसे नकुलके वनको रौंदता है वैसे ही रणरंगदुर्मद वृत्रासुर शूलको तान कर भीषण तेजसे पृथ्वीको कम्पित करता हुआ, आतुर एवं भयसे आँख बंद किये हुए देवसेनाको दोनो पैरोंसे कुचलने लगा ॥ ८ ॥ उसके इस कर्मको देख कर वज्रधारी इन्द्रका क्रोध और भी दूना हो गया। अपने शत्रु वृत्रासुरको अपनी ओर दौड़ कर आते देख कर उन्होने उसके एक बड़ी भारी गदा मारी। असुरने उस सुदुस्सह गदाको राहमें ही लीलापूर्वक बाएँ हाथसे पकड़ लिया। महाबली पराक्रमी इन्द्रके शत्रुने अति कुपित हो कर घोर भावसे गर्जन करते२ उसी गदासे इन्द्रके वाहन ऐरावत हाथीके मस्तक पर प्रहार किया। सभी जन उसके इस कर्मकी प्रशंसा करने लगे ॥ ९ ॥ १० ॥ वृत्रासुरकी गदासे आहत ऐरावत हाथी बज्राहत पर्वतकी भाँति अतीव कातर होकर चक्कर खाता हुआ इन्द्रसहित अट्ठाईस हाथ पीछे हट गया और मुखसे रुधिर उगलने लगा ॥ ११ ॥ वृत्रासुर अत्यन्त महात्मा और रणधर्ममें निपुण था अतएव जिस समय इन्द्रका वाहन अवसन्न (बेकाम) हो गया था और इन्द्रका चित्त भी विपण्ण व दुचित्ता हो गया था उस समय अवसर पा कर भी उसने फिर गदा नहीं चलाई। इधर इन्द्रदेव अपना अमृतमय हाथ फेर कर ऐरावतको व्यथारहित करके विश्रामके लिये थोड़ी देर ठहर गये ॥ १२ ॥ हे राजेन्द्र! वृत्रासुर अपने भाईके मारनेवाले वज्रधर इन्द्रको युद्धके लिये अवस्थित देख कर इन्द्रके उस निष्ठुर पापकर्मका स्मरण कर शोक और मोहसे हँसता हुआ यों कहने लगा ॥ १३ ॥ **वृत्र बोला।** अहो! ब्रह्मघातक विशेषतः अपने गुरु एवं मेरे भाईको मारनेवाला शत्रु तू मेरे आगे खड़ा है यह बड़े सौभाग्यकी बात है। हे असत्तम! मैं तेरे पाषाणतुल्य हृदयको त्रिशूलसे विभिन्न कर अभी शीघ्र ही अपने भाईके ऋणको चुका दूँगा—यह भी कम सौभाग्यकी बात नहीं है ॥ १४ ॥ आत्मज्ञ, ब्राह्मण, निष्पाप, यज्ञदीक्षायुक्त एवं अपने गुरु हमारे अग्रजको विश्वास दिला कर, निर्दय व्यक्ति जैसे स्वर्गकी कामनासे बलिपशुके

शिरको काट डालता है वैसे ही तूने उनके तीनो शिर काट डाले ॥ १५ ॥ निश्चय मैं जान गया–दया, लज्जा, श्री और कीर्तिने तुझको त्याग दिया । अपने कर्मके दोषसे राक्षसोंके निकट भी तू निन्दनीय है, अतएव मैं कष्टके साथ इस शूलके द्वारा तेरे शरीरको विभिन्न करूँगा और उसे गिद्ध खायँगे । अग्नि इस पापशरीरका स्पर्श नहीं करेंगे ॥१६॥ हे इन्द्र! तू नृशंस है, इस युद्धमें जो अन्यान्य अज्ञ देवता तेरे अनुगामी हो कर अस्त्र लिये हुए मुझ शत्रुके मारनेको उद्यत हैं, इस तीक्ष्ण त्रिशूलसे उनके भी गले काट कर गरम २ रुधिरसे भूतपति और भूतगणका पूजन करूँगा ॥१७॥ हे वीर इन्द्र! यदि तुम इस युद्धमें मुझे हरा कर वज्रसे मेरा शिर काटोगे तो भी मैं कर्मबन्धनसे मुक्त हो, अपने शरीरसे सब भूतगणको बलि देकर धीर जनोंकी गतिको प्राप्त होऊँ गा ॥ १८ ॥ हे सुरेश! मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूँ, मुझ पर अपना अमोघ वज्र क्यों नहीं चलाते ? तुम ऐसा न संशय करना कि कृपणसे की गई याचना जैसे निष्फल होती है वैसे वज्र भी गदाकी भाँति निष्फल हो जायगा । तुम्हारा यह वज्र भगवान् हरिके तेजसे एवं दध्यञ्च ऋषिकी तपस्यासे तीक्ष्ण हो रहा है । तुम इस वज्रसे शत्रुवध करो । तुम विष्णुद्वारा प्रेरित हो, जिस स्थानमें हरि हैं वहीं विजय, श्री एवं सब गुण रहते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ हे इन्द्र! प्रभु संकर्षणने मुझको जैसा उपदेश दिया है वैसे ही मैं उनके चरणारविन्दमें चित्त लगा कर देह त्याग कर योगियोंकी गतिको प्राप्त होऊँ गा, तुम्हारे वज्रके वेगसे मेरा विषयभोगरूप ग्राम्यपाश छिन्न हो जायगा ॥ २१ ॥ जो पुरुष एकान्त भावसे भगवान्में चित्त लगाते हैं एवं जो हरिके जन माने जाते हैं उन अपने जनोंको हरि भगवान् स्वर्ग, पृथ्वी और पातालकी सम्पदाएँ नहीं देते; क्यों कि उन सम्पत्तियोंसे द्वेष, उद्वेग, मानसी पीड़ा, उन्मत्तता, विवाद एवं क्लेश होता रहता है ॥ २२ ॥ हे इन्द्र! हमारे प्रभु अपने भक्तोंको धर्म, अर्थ, कामके लिये चेष्टा नहीं करने देते । जो लोग उक्त तीनो पदार्थोंके लिये चेष्टा नहीं करते वे भगवान्की प्रसन्नताके पात्र हो गये हैं–ऐसा अनुमान करना चाहिये । अकिञ्चन भक्तगण ऐसे भगवत्प्रसादको प्राप्त हो सक्ते हैं । किन्तु उनके सिवा और लोगोंके लिये यह अत्यन्त दुर्लभ है ॥ २३ ॥ हे हरे! हे भगवन्! मैं फिर मर कर भी आपके दोनो चरण ही जिनका आश्रय हैं, उनका दासानुदास होऊँ। हे प्राणाधिपते! मेरा मन आपके गुणोंका स्मरण और वाक्य आपके गुणोंका कीर्तन करें एवं शरीर आपकी ही सेवामें लगा रहे ॥ २४ ॥ हे सर्वसौभाग्यनिधे! आपको त्याग कर स्वर्गपृष्ठ, ध्रुवलोक, ब्रह्मपद, सब पृथ्वीका कर्तृत्त्व, रसातलका आधिपत्य, योगसिद्धि–अधिक क्या, मुक्ति भी मैं नहीं चाहता ॥२५॥ जिनके पक्ष नहीं निकले वे पक्षियोंके बच्चे जैसे क्षुधा आदिसे पीड़ित हो कर माताके आनेकी प्रतीक्षा करते हैं, जैसे रस्सी में बँधे हुए भूखे बछड़े दूध पीनेके लिये उत्सुक होते हैं एवं जैसे कामदेवके बाणसे पीड़ित स्त्री दूरदेशगत अपने प्रियको देखनेके लिये व्यग्र होती है–हे कमललोचन! वैसे ही मेरा मन आपके दर्शनकी अभिलाषा करता है ॥२६॥

ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ॥
त्वन्माययात्मात्मजदारगेहेष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥२७॥

मैं अपने कर्मोंके द्वारा संसारचक्रमें भ्रमण कर रहा हूँ; आप पवित्रकीर्ति हैं। आपके भक्तोंके साथ मेरी मित्रता हो। आपकी मायाके वश मेरा चित्त इस समय पुत्र, स्त्री एवं देह-गेहादिमें आसक्त हो रहा है। हे नाथ! ऐसा करो कि मेरा चित्त पुत्रादिमें न आसक्त हो ॥ २७ ॥

इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय।

इन्द्रद्वारा वृत्रवध।

ऋषिरुवाच—एवं जिहासुर्नृप देहमाजौ मृत्युं वरं विजयान्मन्यमानः॥
शूलं प्रगृह्याभ्यपतत्सुरेन्द्रं यथा महापुरुषं कैटभोऽप्सु ॥ १ ॥

महर्षि शुकदेवजी बोले। हे राजन्! जयसे मृत्युको ही श्रेष्ठ समझ कर वृत्रासुरने युद्धमें शरीर त्यागनेकी इच्छा की एवं जैसे कैटभ नाम दानव प्रलयसमुद्रमें नारायण पर झपटा था वैसे ही त्रिशूल हाथमें ले कर देवराज पर आक्रमण किया ॥१॥ तदनन्तर वीर असुरराजने प्रलयानलतुल्य भीषणशिखायुक्त शूलको बलपूर्वक घुमा कर महेन्द्र पर फेंका और सिंहनाद करते हुए "अरे पापिष्ठ! तू मरा" इस प्रकार क्रोधपूर्ण स्वरसे कहा ॥ २ ॥ घूम रहे ग्रह एवं उल्काकी भाँति दुष्प्रेक्ष्य उस शूलको आते देख कर, वज्रधारी इन्द्रने अकातरभावसे शतपर्वा वज्रके द्वारा उस शूलको एवं वासुकी नागराजके शरीर सदृश वृत्रासुरके विशाल बाहुको काट डाला ॥३॥ एक बाहु कटने पर क्रोधसे काँपता हुआ वृत्रासुर परिघ (बेलन) हाथमें ले कर पुरन्दरकी ओर दौड़ा और इन्द्रकी ठोढ़ीमें एवं ऐरावतके मस्तक पर प्रहार किया, जिससे कि इन्द्रके हाथसे वज्र गिर पड़ा ॥ ४ ॥ वृत्रासुरके इस महा अद्भुत कर्म्मको देख कर देवता, दैत्य और सिद्ध चारणगण उसकी प्रशंसा करने लगे, किन्तु इन्द्र पर सङ्कट देख कर देवपक्षके लोग उच्चैःस्वरसे हाहाकार करने लगे ॥ ५ ॥ इन्द्रने लज्जित हो कर हाथसे गिरे हुए वज्रको फिर नहीं उठाया। तब वृत्रासुर इन्द्रसे कहने लगा कि "देवराज! वज्र उठाओ और अपने शत्रुको मारो, यह विषादका समय नहीं है ॥ ६ ॥ सृष्टि स्थिति संहार करनेमें समर्थ एक सर्वज्ञ सनातन आदिपुरुषके सिवा आततायी युद्धमें तत्पर पराधीन पुरुषोंकी जय सर्वत्र कभी नहीं होती ॥ ७ ॥ लोकपालसहित ये सब लोक जालमें फँसे हुए पक्षियोंकी भाँति विवश हो कर जिसके अधीन रह

अपने २ कार्यमें लगे हुए हैं वह काल ही जयआदिका कारण है ॥ ८ ॥ वह काल ही सामर्थ्य, साहस, बल, प्राण, अमृत एवं मृत्युका हेतु है, किन्तु आश्चर्यकी बात है कि लोग उसको जयआदिका कारण न जान कर जड़शरीरको कारण मानते हैं ॥९॥ हे इन्द्र! कठपुतली एवं यन्त्रमय मृगकी भाँति सब प्राणी कालरूप ईश्वरके वशमें हैं। यहाँ तक कि उस ईश्वरकी कृपाके विना प्रकृति, महत्तत्त्व, पञ्चतत्त्व, इन्द्रिय, मन—ये सब विश्व ब्रह्माण्डकी सृष्टि आदि करनेमें असमर्थ हैं ॥१०॥११॥ जो लोग यह नहीं जानते वे पराधीन शरीरको स्वाधीन मानते हैं। भगवान् ही वास्तवमें प्राणियोंके द्वारा प्राणियोंकी सृष्टि एवं प्राणियोंके द्वारा प्राणियोंका विनाश करते हैं ॥१२॥ जैसे इच्छा न रहते भी कालक्रमसे लोगोंकी निन्दा आदि होती है वैसे ही भाग्यवश काल पा कर पुरुषोंको आयु, शोभा, कीर्ति एवं ऐश्वर्य स्वयं मिलते हैं ॥१३॥ जब सभी ईश्वराधीन है तव कीर्ति, अकीर्ति, जीत, हार, सुख, दुःख, एवं जीवन, मरणके लिये हर्ष या विषाद करना अनुचित है ॥१४॥ सत्त्व, रज और तम-ये तीन गुण प्रकृतिके हैं, आत्माके नहीं हैं। जो व्यक्ति आत्माको इन तीनो गुणोंका साक्षीमात्र जानता है वह हर्षादिमें नहीं लिप्त होता ॥१५॥ हे इन्द्र! मुझको देखो, मैं तुमसे युद्धमें हार गया हूँ, मेरा अस्त्र और हाथ कट गया है, तो भी तुम्हारे प्राण लेनेकी इच्छासे यथाशक्ति यत्न कर रहा हूँ ॥ १६ ॥ हम लोगोंका यह संग्राम जुआ खेलनेके समान है; इसमें अपने अपने प्राणही पण (बाजी) हैं, बाण पाँसे हैं, वाहन ही फलक (चौसर) हैं। इस जुएमें किसकी जीत और किसकी हार होगी?–सो नहीं जाना जाता" ॥ १७ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! वृत्रासुरके पूर्वोक्त वाक्य सुन कर इन्द्रदेव उसके निष्कपट भावकी प्रशंसा करने लगे एवं विस्मय त्याग वज्र हाथमें ले कर हँसते २ बोले ॥ १८ ॥ **इन्द्र बोले।** हे दानवेन्द्र! तुम्हारी इस प्रकारकी बुद्धि देख कर मैं कहता हूँ कि तुम सिद्ध हो। तुम सर्वान्तःकरणसे सबके आत्मा और सुहृद् जगदीश्वरके सेवक हो ॥ १९ ॥ तुम लोगोंको मोहित करनेवाली विष्णुकी मायाके पार पहुँच चुके, क्यों कि आसुरी प्रकृति त्याग कर महापुरुषभावको प्राप्त हो गये हो ॥ २० ॥ निश्चय ही यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि तुम स्वाभाविक रजोगुणपूर्ण जातिमें उत्पन्न हो कर भी सत्त्वगुणमय भगवान् वासुदेवमें दृढ़ बुद्धि लगाये हुए हो ॥ २१ ॥ जो हो, मुक्तिके ईश्वर भगवान् हरिमें जिसको भक्ति है वह अमृतसागरमें विहार करता है; गढ़ैयामें भरे हुए स्वल्प जलके समान स्वर्गादि भोगोंमें उसका मन चलायमान नहीं होता ॥२२॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! युद्धके अधिनायक महापराक्रमी वृत्रासुर और इन्द्र, धर्म जाननेकी इच्छासे परस्पर यों कहते २ युद्धमें प्रवृत्त हुए ॥ २३ ॥ हे आर्य्य! अरिन्दम वृत्रासुरने कृष्णवर्ण लौहमय घोर परिघ बाएँ हाथमें ले कर घुमाया और इन्द्र पर चलाया ॥२४॥ किन्तु देवराजने उसके प-

रिघको और परिघतुल्य बाहुको शतपर्वा वज्रसे एकसाथ काट डाला ॥ २५ ॥ दोनो भुजाएँ जड़से कट गई और उनसे रुधिर बहने लगा। उस समय इन्द्रके वज्राघातसे जिसके पक्ष कट गये हों उस आकाशसे गिरे हुए पर्वतकी भाँति वृत्रासुरकी शोभा हुई ॥ २६ ॥ तब वृत्रासुर अपनी ठोड़ीको पृथ्वी पर धर कर एवं ऊपरके ओठको स्वर्गमें फैला कर आकाशकी भाँति गंभीर मुख, सर्पतुल्य लपलपाती हुई जिह्वा एवं मृत्युसदृश कराल दंष्ट्राके द्वारा तीनो लोकोंको मानो ग्रसनेके लिये उद्यत हुआ। वह अपने विशाल शरीरको उन्नत करके एवं वेगसे पर्वतोंको हिलाता हुआ पादचारी पर्वतराजके तुल्य दोनो पैरोंके आस्फालनसे पृथ्वीको जर्जरित करता २ वज्रधारी पुरन्दरके निकट आया । महा अजगर जैसे हाथीको लील लेता है वैसे महाबली, महाप्रभावशाली दानवने वाहनसहित इन्द्रको लील लिया ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ प्रजापतिगण, महर्षिगण एवं देवगण देवराजको वृत्रासुरके मुखविवरमें लीन देख कर उदासी और दुःखके साथ "हाय कष्ट!" कह कर आर्तनाद करने लगे ॥ ३० ॥ असुरेन्द्रके निगल लेने पर भी नारायणकवच, योगबल एवं मायाबलसे रक्षित होनेके कारण पुरन्दर उसके पेटमें नहीं मरे ॥ ३१ ॥ विभु इन्द्र अपने वज्रसे असुरकी कोख फाड़ कर बाहर निकल आये एवं शत्रुके गिरि-शिखरसदृश मस्तकको बलपूर्वक काट डाला ॥ ३२ ॥ अति वेगशाली वज्र वृत्रासुरके वधके लिये सर्वतोभावसे परिचालित हो कर भी तीन सौ साठ दिनमें उसके शिरको काट कर अलग कर सका ॥ ३३ ॥ उस समय आकाशमें नगाड़े बजने लगे एवं गन्धर्व, सिद्ध और महर्षिगण वृत्रहन्ता इन्द्रके पराक्रमप्रकाशक मंत्रोंको पढ़कर स्तुति करते हुए आनन्दसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३४ ॥

वृत्रस्य देहान्निष्क्रान्तमात्मज्योतिररिंदम ॥
पश्यतां सर्वलोकानामलोकं समपद्यत ॥ ३५ ॥

हे अरिन्दम! उसी समय वृत्रके शरीरसे उसकी आत्मज्योति निकल कर देवगणके सामने ही भगवान् सङ्कर्षणदेवमें जा कर लीन हो गई ॥ ३५ ॥

इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय ।

वृत्रासुरके वधसे लगी हुई ब्रह्महत्याके भयसे इन्द्रका भागना ।

श्रीशुक उवाच—वृत्रे हते त्रयो लोका विना शक्रेण भूरिद ॥
सपाला ह्यभवन्सद्यो विज्वरा निर्वृतेन्द्रियाः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे बहुप्रद! वृत्रासुरके मरने पर इन्द्रको छोड़ कर

सब लोकपाल और तीनो लोक पीड़ारहित एवं प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ देव, ऋषि, पितर, भूत, दैत्य और देवानुचर एवं ब्रह्मा व महेश्वर आदि इन्द्रके असन्तोषका कारण विना पूछे ही अपने २ लोकोंको चले गये। इन्द्र भी जब क्लेशशून्य हुए तो अपने लोकको गये ॥ २ ॥ **राजा परीक्षित् बोले** । हे मुनिवर! इन्द्र क्यों असुखी हुए?—सो हमारी सुननेकी इच्छा है। देवतोंको सुख हुआ तो इन्द्रको क्यों असुख हुआ? ॥ ३ ॥ **श्रीशुकदेवजी बोले**। ऋषिगण और देवगणने वृत्रासुरके विक्रमसे अत्यन्त घवड़ा कर उसे मारनेके लिये इन्द्रसे प्रार्थना की, किन्तु ब्रह्महत्याके भयसे इन्द्रने यह स्वीकार करनेमें अनिच्छा प्रकट की ॥४॥ **इन्द्र बोले**। विश्वरूपको मार कर एक वार जो ब्रह्महत्या लगी उसे स्त्री, पृथ्वी, जल व वृक्षोंने अनुग्रहपूर्वक बाँट लिया, उससे मैं निष्पाप हुआ; अब वृत्रासुरको मारनेसे जो ब्रह्महत्या लगेगी उसको कहाँ मिटाऊँगा? ॥ ५ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। यह सुन कर ऋषिगणने कहा कि हे देवराज! तुम्हारा मङ्गल हो, तुम इसके लिये न डरो, हम अश्वमेध यज्ञ करा कर तुमको ब्रह्महत्यासे मुक्त कर देंगे ॥६॥ अश्वमेध यज्ञसे परमात्मा ईश्वरकी आराधना और पूजा करके एक वृत्रासुर क्या, जगत्भरकी हत्याके पापसे छूट जाओगे ॥ ७ ॥ ब्राह्मण, पिता, गऊ, माता और आचार्यको मारनेवाला पापी एवं कुत्ता खानेवाला चाण्डाल भी हरिनामके कीर्तनसे शुद्ध हो जाता है ॥ ८ ॥ हम उसी महायज्ञ अश्वमेधका अनुष्ठान करेंगे, तुम उसमें श्रद्धायुक्त हो कर हमारे साथ उन्ही भगवान् नारायणका पूजन करना। उसके द्वारा तुम ब्रह्मासहित चराचर जगत्की हत्याके पापसे भी मुक्त हो सक्ते हो, फिर यह तो तुम दुष्टका दमन करोगे ॥९॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। राजन्! इस प्रकार सब ऋषियोंकी प्रेरणासे महेन्द्रने महाशत्रु वृत्रासुरको मारा। वृत्रासुरके मरने पर ब्रह्महत्याने इन्द्र पर आक्रमण किया एवं उससे इन्द्रको महासन्ताप हुआ; उनके चित्तको घड़ी भर चैन नहीं। जो व्यक्ति निन्दनीय कर्म करके लज्जित होता है उसको धैर्यआदि सम्पूर्ण गुण भी नहीं सुखी कर सक्ते ॥ १० ॥ ११ ॥ इन्द्रने देखा कि ब्रह्महत्या भीषण मूर्ति धारण किये हुए चाण्डालीकी भाँति उनके पीछे २ दौड़ रही है। वृद्धावस्थाके कारण उसके सब अंग काँप रहे हैं एवं वह क्षय रोगके कारण अत्यन्त शिथिल है, उसके कपड़ेमें रुधिर भरा हुआ है ॥ १२ ॥ वह अपने पके हुए श्वेत केशोंको फैला कर "ठहर जा, ठहर जा" कहती हुई आ रही है। उसकी साँससे मछलीकी सी दुर्गंधि आ रही है, जिससे जिधर वह जाती है उधरका मार्ग दूषित हो जाता है ॥ १३ ॥ हे नरनाथ! देवराज उसको देखते ही भयभीत हो कर उससे रक्षा पानेके लिये पहले आकाशमें और फिर दशो दिशाओंमें भागे २ फिरे; किन्तु कहीं भी अपनी रक्षाका स्थान न पा कर अन्तको पूर्वोत्तरके कोनेमें जा कर मानस सरोवरमें घुस गये ॥ १४ ॥ वहाँ एक पद्म था, इन्द्र उसीकी डंडीमें प्रवेश

कर रहने लगे । अग्नि ही जिनके दूत अर्थात् यज्ञभाग पहुँचानेवाले हैं वह देवराज (अग्निदेव जलमें प्रवेश नहीं कर सके इस कारण) यज्ञके भागसे वञ्चित रहे और उस स्थानमें एक सहस्र वर्ष तक इसी दशामें अलक्षित भावसे समय बिताते रहे। इन्द्रको दिन रात यही चिन्ता रहती थी कि ब्रह्महत्याका पातक कैसे छूटे? ॥ १५ ॥ इन्द्र जबतक इस दशामें रहे तबतक विद्या, तप और योगबलके प्रभावसे सम्पन्न राजा नहुषने स्वर्गका शासन किया। किन्तु राजा नहुष इस प्रकारकी अतुल सम्पदा एवं ऐश्वर्यके मदसे हतबुद्धि होनेके कारण इन्द्राणीके द्वारा सर्पयोनिको प्राप्त हुए * ॥ १६ ॥ तदनन्तर ब्राह्मणोंके वाक्यसे बुलाये जाने पर देवराज फिर स्वर्गको प्राप्त हुए। सत्यपालक हरिकी आराधना करनेसे उनकी ब्रह्महत्या छूट गई । पहले भी ब्रह्महत्या इन्द्रको स्पर्श नहीं कर सकी थी, क्योंकि दिग्देवता(रुद्र)के प्रभावसे पापका तेज नष्ट हो गया था एवं लक्ष्मी उनकी रक्षा करती थीं ॥ १७ ॥ हे भारत! भगवान्‌के ध्यानसे इन्द्रका पाप छूट गया, तथापि स्वर्गमें फिर आने पर ब्रह्मर्षिगणने उनके पास जा कर उनको नारायणकी आराधना ही जिसका प्रधान उद्देश्य है उस अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा दी ॥ १८ ॥ हे राजन्! महेन्द्रने ब्रह्मवादी मुनिगणके द्वारा अनुष्ठित अश्वमेध यज्ञमें उन सर्वदेवमय आत्मा परमपुरुषका जब पूजन किया तब वृत्रवधजनित गुरुतर पाप सूर्यकी किरणोंसे कुहरेके समान नष्ट हो गया ॥ १९ ॥ २० ॥ इस प्रकार मरीचिआदिक महर्षिगणके द्वारा अनुष्ठित यथोक्त अश्वमेध यज्ञसे यज्ञपति पुराणपुरुष हरिकी आराधना कर पापक्षय होने पर देवराज इन्द्र पूर्ववत् महत् हो गये ॥ २१ ॥

पठेयुराख्यानमिदं सदा बुधाः शृण्वन्त्वथो पर्वणि पर्वणीन्द्रियम् ॥
धन्यं यशस्यं निखिलाघमोचनं रिपुञ्जयं स्वस्त्ययनं तथायुषम् ॥२३॥

हे महाराज! यह उपाख्यान अत्यन्त महत् है, क्योंकि इसमें तीर्थपाद भगवान्‌का कीर्तन एवं भक्तजनोंका वर्णन है। विशेषतः इसमें महेन्द्रकी पापसे मुक्ति और

---

* इसकी कथा यों है कि नहुषको इन्द्रपद मिला तो उन्होंने इन्द्राणीके पानेकी इच्छा प्रकट की । यह सुन कर इन्द्राणीने बृहस्पतिसे सलाह करके कहला भेजा कि जिस सवारी पर कभी कोई न चढ़ा हो उसपर चढ़कर मेरे पास आओ। नहुषने सोचा कि ब्राह्मणोंके कंधे पर धरी हुई पालकी पर कोई न चढ़ा होगा, उसपर चढ़ कर चलना चाहिये। तब अगस्त्यादि ऋषियोंके कंधे पर धरी पालकी पर चढ़कर इन्द्राणीके पास चले । राहमें जल्दीके कारण "सर सर" अर्थात् जल्द चलो कहनेकी जगह भावीवश नहुषके मुखसे "सर्प सर्प" निकल गया । अगस्त्य ऋषिने कुपित हो शाप दिया कि तू सर्प ही हो जा। बस नहुष सर्प हो कर स्वर्गसे गिर पड़े और इन्द्राणीकी बात रह गई ।

विजयका वर्णन है, अतएव इसके पढ़ने सुननेसे सब पाप मिट जाते हैं एवं ईश्वरमें भक्ति उत्पन्न होती है। यह आख्यान सर्वदा पढ़ने योग्य है। इसके पढ़ने सुननेसे इन्द्रियोंकी शक्ति, धन और यशकी वृद्धि होती है तथा सब पापोंका क्षय, शत्रुजय एवं आयुकी वृद्धि होती है। पण्डित ज्ञानी इसे हर एक पर्व पर सुनते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

इति श्रीभागवते पष्ठस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दश अध्याय।

वृत्रासुरके पूर्वजन्मका वृत्तान्त।

परीक्षिदुवाच—**रजस्तमःस्वभावस्य ब्रह्मन्वृत्रस्य पाप्मनः ॥**
नारायणे भगवति कथमासीद्दृढा मतिः ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने कहा। रजोगुण-तमोगुणमय स्वभाववाले पापी वृत्रासुरकी भगवान् नारायणमें किस प्रकार दृढ़बुद्धि हुई ॥ १ ॥ शुद्धसत्त्वमय देवगण और निर्मल आत्मावाले ऋषिगण भी प्रायः मुकुंद भगवान्‌के चरणोंकी भक्ति नहीं पाते ॥ २ ॥ पृथ्वी पर पृथ्वीके रजकणोंके बराबर असंख्य प्राणी हैं, किन्तु उनमें कुछ ही मनुष्य अपने धर्मका आचरण करते हैं ॥३॥ हे द्विजोत्तम! उनमें कुछ ही लोग मोक्षकी कामना करते हैं और हजारों मोक्षकी इच्छावाले व्यक्तियोंमें कोई विरले ही जीवन्मुक्त और सिद्ध होते हैं ॥ ४ ॥ हे महामुने! कोटि २ जीवन्मुक्त सिद्धोंमें भी नारायणपरायण और प्रशान्तचित्त व्यक्ति अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ५ ॥ किन्तु पापाचारी सर्वलोकपीड़क वृत्रको घोरतर संग्रामके बीच कैसे कृष्णमें ऐसी दृढ़ भक्ति हुई? ॥ ६ ॥ प्रभो! इस विषयमें हमको बड़ा भारी संशय है एवं विस्तारसहित सुननेके लिये परम कौतूहल है। जिसने पौरुषसे समरमें इन्द्रको सन्तुष्ट कर दिया उस वृत्रके पूर्वजन्मका चरित्र अनुग्रह करके विस्तारपूर्वक वर्णन करिये ॥७॥ सूतजी अट्ठासी हजार शौनकादि ऋषियोंसे कहते हैं कि हे मुनिगण! श्रद्धायुक्त महाराज परीक्षित्‌के इन सब प्रश्नोंको सुन कर श्रीशुकदेवजी आनन्द प्रकट करते हुए यों बोले ॥ ८ ॥ **श्रीशुकदेवजी बोले।** राजन्! इस विषयमें द्वैपायन, नारद और देवलके मुखसे जो इतिहास मैंने सुना है सो तुमको सुनाता हूँ, सावधान हो कर श्रवण करो ॥ ९ ॥ हे नृप! प्राचीन समयमें शूरसेन देशमें एक चित्रकेतु नाम परमप्रसिद्ध सार्वभौम राजा थे। पृथ्वी स्वयं उनकी सब अभिलाषाएँ पूर्ण कर देती थी ॥ १० ॥ उनके एक कोटि स्त्रियाँ थीं एवं वह स्वयं भी पुत्र उत्पन्न करनेमें असमर्थ न थे। तथापि भाग्यवश इतनी स्त्रियोंमें राजाके पुत्र या कन्या कुछ भी नहीं हुआ ॥ ११ ॥ स्वयं रूप, लावण्य, अवस्था, विद्या, कुलीनता, ऐश्वर्य, उदारता और सम्पत्ति इत्यादिसे सम्पन्न एवं

सब गुणोंसे अलंकृत हो कर भी बन्ध्या (बाँझ) स्त्रियोंके स्वामी होनेके कारण चित्रकेतुका अन्तःकरण चिन्तासे व्याकुल रहता था ॥ १२ ॥ इसीसे समस्त सम्पदा, सब कमलनयनी स्त्री एवं पृथ्वीमण्डलका राज्य भी सम्राट् चित्रकेतुको प्रसन्न न कर सका ॥ १३ ॥ एक समय भगवान् अंगिरा ऋषि इच्छापूर्वक सब लोकोंमें विचरते २ चित्रकेतु नरपतिके भवनमें उपस्थित हुए ॥ १४ ॥ राजाने प्रत्युत्थान, पाद्य–अर्घ्य आदिके द्वारा उनकी पूजा की, एवं जब मुनिवर सुखसे बैठे तब अतिथि-सत्कार करके संयतभावसे नरपति भी उनके पास बैठे ॥ १५ ॥ हे महाराज! पास बैठे हुए, विनयावनत एवं पृथ्वीमें प्रणत राजाको प्रतिपूजा, अभ्यर्थना एवं सादर संभाषणसे तुष्ट करके मुनिवर बोले ॥ १६ ॥ "कि राजन्! तुम कुशलसे हो? सब प्रजाका और आपका मंगल अखंडित है? जैसे महत् आदि सात प्रकृतियोंसे जीव नित्य रक्षित रहता है वैसे ही राजा भी सात प्रकृतियों (स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र) के द्वारा सदा रक्षित रहता है ॥ १७ ॥ राजा अपनेको उक्त प्रकृतियोंके अनुवर्ती कर सकनेसे ही राज्यसुख भोग सक्ता है। हे नरदेव! राजाके सुखी होने पर उसके द्वारा प्रजागण धनी और समृद्ध होते हैं ॥ १८ ॥ हे महाराज! तुम्हारे पुत्र, स्त्री, मंत्री, अमात्य आदि तो सब वशवर्ती हैं? वणिक्, पुरवासी, देशाधिकारी सामन्तगण एवं सब प्रजा तो तुम्हारे अधीन है? ॥ १९ ॥ हे राजन्! जिसका मन वशमें है, ये सब उसके वशमें रहते हैं। सब लोक और लोकपाल उसे भक्तिपूर्वक पूजोपहार देते हैं ॥ २० ॥ तुम्हारा आत्मा जैसे कुछ असन्तुष्ट देख पड़ता है, अतएव जान पड़ता है कि तुमको आपसे या परसे कोई इष्ट वस्तु नहीं प्राप्त हुई है, अर्थात् तुम्हारी इच्छा अपूर्ण है। तुम्हारा मुखमण्डल चिन्तासे विवर्ण हो रहा है" ॥२१॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! सर्वज्ञ मुनिवर अंगिराके इस प्रकार संशय प्रकाश करके पूछने पर प्रजाकाम चित्रकेतु राजाने विनयावनत हो कर यों निवेदन किया ॥ २२ ॥ **चित्रकेतुने कहा** भगवन्! शरीरधारियोंके भीतर और बाहरका सब वृत्तान्त निष्पाप योगियोंको तप, ज्ञान और समाधिके बलसे अविदित नहीं है ॥ २३ ॥ हे ब्रह्मन्! तथापि जब आप मेरे मनकी चिन्ताका हाल जानना चाहते हैं एवं कहनेकी आज्ञा देते हैं तब आपके सर्वज्ञ होने पर भी मैं कहता हूँ ॥ २४ ॥ लोकपाल भी जिसकी प्रार्थना करते हैं वह साम्राज्य, ऐश्वर्य और सम्पदा मेरे यहाँ हैं, किन्तु माला चन्दन आदि भोग जैसे भूखे प्यासे पुरुषको सुखी नहीं कर सक्ते वैसे ही मुझ पुत्रहीनको उक्त सब विषय सुखित नहीं करते ॥ २५ ॥ अतएव हे महाभाग! मेरी रक्षा करो। पूर्व पुरुषगणसहित मैं जिससे पुत्र पा कर दुष्पार नरकको उत्तीर्ण हो सकूँ वह उपाय करिये ॥ २६ ॥ **श्री शुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! समर्थ, ब्रह्मपुत्र, परमदयालु अंगिरा ऋषिने चित्रकेतुकी यह प्रार्थना सुन कर चरुपाक करके त्वष्टा

देवताका यज्ञ किया ॥ २७ ॥ हे भारत! विप्रवरने यज्ञसमाप्तिके पीछे राजाकी कृतद्युति नाम श्रेष्ठ और ज्येष्ठ रानीको यज्ञका बचा हुआ अन्न दिया ॥ २८ ॥ एवं राजासे बोले कि हे राजन्! तुम्हारे जो एक पुत्र उत्पन्न होगा उससे तुमको हर्ष भी होगा और शोक भी होगा। यह कह कर अंगिराजी चले गये ॥ २९ ॥ जिस प्रकार कृत्तिकाने अग्निपुत्रको धारण किया वैसे ही यज्ञशेष भोजन करके राजरानी कृतद्युतिने भी चित्रकेतुके सहवाससे गर्भ धारण किया ॥ ३० ॥ उसका गर्भ नित्य प्रति शुक्लपक्षमें चंद्रमाकी कलाओंके समान शूरसेननरेशके तेजसे बढ़ने लगा ॥ ३१ ॥ तदनन्तर समय पूर्ण होने पर एक बालक उत्पन्न हुआ। राजकुमारके जन्मका समाचार सुन कर सब शूरसेनदेशवासी लोग परम आनन्दित हुए ॥ ३२ ॥ तदनन्तर राजा चित्रकेतुने कुमारके जन्मकी खबर पा कर परम आनन्दित हो स्नान किया, फिर पवित्र एवं अलंकारोंसे अलंकृत होकर ब्राह्मणोंके अमोघ आशीर्व्वाद ग्रहण करते हुए यथाविधि जातकर्म्म किया ॥ ३३ ॥ फिर उन ब्राह्मणोंको सोना, चाँदी, वस्त्र, गहना, हाथी, घोड़ा, गाँव एवं साठ करोड बछड़ेवाली गउएँ दीं ॥ ३४ ॥ महामनस्वी उदार राजाने मेघमालाके समान अभिलषित वस्तुओंकी वर्षा करके अन्यजीवोंकी कामनाओंको पूर्ण किया; जिसमें कुमारका धन-सौभाग्य और परमायु वृद्धिको प्राप्त हो ॥ ३५॥ जैसे कष्टसे पाये हुए धनमें दरिद्र व्यक्तिका स्नेह हो वैसे ही उस पुत्र पर राजर्षि चित्रकेतुका स्नेह दिन दिन बढ़ने लगा ॥ ३६ ॥ रानी कृतद्युतिको भी पुत्र पर अपार स्नेह था। यह देख कर उसकी सौतोंको पुत्रकामनासे परसन्ताप उत्पन्न हुआ ॥ ३७ ॥ चित्रकेतु राजा नित्यप्रति पुत्रका लालन करनेके कारण पुत्रवती रानी पर अधिक स्नेह करने लगे, अन्य स्त्रियोंपर उनका वैसा आदर नहीं रहा ॥ ३८ ॥ इससे और रानियोंको डाह हुआ और वे आप ही आप अपनी निन्दा करने लगीं एवं अपने पुत्ररहित होने व राजाके द्वारा निरादृत होनेके कारण दुःखित हो कर घोर सन्ताप करने लगीं ॥ ३९ ॥ वे आप ही परस्पर कहने लगीं कि जिस स्त्रीके पुत्र नहीं है वह अत्यन्त पापिनी है, उसे धिक्कार है। वह स्वामीके निकट भार्य्या कहलाने योग्य नहीं है। पुत्रवाली अन्य सौतें दासीकी नाईं उसका तिरस्कार करती हैं ॥ ४० ॥ किन्तु दासियोंको क्या सन्ताप है? स्वामीकी सेवा तो उनका कर्म ही है, उनको स्वामीकी सेवासे निरन्तर मान मिलता है। किन्तु हम मन्दभागिनी तो दासीकी दासीके समान भी नहीं हैं! ॥ ४१ ॥ हे राजन्! कृतद्युतिकी पुत्रसम्पत्ति देख कर उसकी सौतोंको दारुण ईर्षाकी आग जलाती थी, अपनेको पुत्रहीन देख कर जीवनमें आस्था न रहनेके कारण उनके हृदयमें घोर विद्वेषका अंकुर उत्पन्न हुआ ॥ ४२ ॥ उसी विद्वेषसे उन सबकी बुद्धि नष्ट हो गई और उन निर्दय चित्तवाली स्त्रियोंने सौतका सौभाग्य न सह सकनेके कारण राजकुमारको विष दे दिया ॥ ४३ ॥ सौतोंकी इस महानृशंसताका हाल कृतद्युति कुछ भी न जान-

तीथी । वह पुत्रको सोया देख कर "यह अभीतक सोया हुआ है" ऐसा समझ घरके अन्य कामोंमें लग गई ॥ ४४ ॥ कुछ देर बाद रानीको ध्यान आया कि कुमार आज बड़ी देरसे सोया हुआ है; रानीने धायको बुला कर कहा कि "हमारे कुमारको यहाँ ले आ" ॥ ४५ ॥ धायने राजकुमारके शयन गृहमें प्रवेश करके सोते हुए बालकके पास जा कर देखा कि उसके दोनो नेत्रोंकी पुतली ऊपर चढ़ गई हैं और प्राण, इन्द्रिय व जीव कुछ भी नहीं है । यह देखते ही वह धाय "हाय मैं मर गई" कह पछाड़ खा कर पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥४६॥ उस धायके इस प्रकार आर्तनाद एवं जोर २ दोनो हाथोंसे छाती पीटनेका शब्द सुन कर रानीने शीघ्रतासे उस घरमें पुत्रके पास जा कर देखा कि अकस्मात् पुत्रकी मृत्यु हो गई है ॥४७॥ हे राजन्! देखते ही रानी पृथ्वीमें गिर पड़ी एवं असह्य पुत्रशोकसे मूर्च्छित हो गई; उसके केश और वस्त्र बिखर गये ॥४८॥ तब राजाके अन्तःपुरवाले स्त्री-पुरुषोंने इस दुर्घटनाका समाचार सुना एवं वे भी सब शीघ्रतासे एकत्र हो कर अत्यन्त दुःखित हो रानीके साथ समान व्यथा प्रकाश करके विलाप करने लगे। कृतद्युतिकी जिन सौतोंने बालकको विष दिया था वे भी आकर बनावटी विलाप करने लगीं ॥४९॥ राजा चित्रकेतुने सुना कि अकस्मात् पुत्रकी मृत्यु हो गई, किन्तु मरनेका कोई कारण नहीं प्रकट होता । सुनते ही राजाकी आँखोंके आगे अँधेरा छा गया । शोकके आवेगसे राहमें गिरते पड़ते मृत पुत्रके पास चले । स्नेहकी अधिकतासे उनका शोक उत्तरोत्तर बढ़ने लगा और वह बारम्बार मूर्च्छित होने लगे । मंत्री आदि राजपुरुषगण संग २ चले एवं ब्राह्मणगण भी राजाके साथ ही साथ राजभवनमें आये ॥ ५० ॥ भवनमें प्रवेश करते ही राजा मरे हुए बालकके पैरों पर गिर पड़े, उनके केश और वस्त्र बिखर गये, आँसुओंसे कण्ठावरोध होगया, जिससे वह सिवा लंबी २ सांसें लेनेके मुखसे कुछ न बोल सके ॥ ५१ ॥ इस प्रकार पतिको शोकाकुल एवं वंशके एकमात्र अंकुर बालकको मरा हुआ देख कर साध्वी राजरानी प्रजापुंजके मनमें सन्ताप उत्पन्न करती हुई विविध भाँतिसे विलाप करने लगी ॥ ५२ ॥ कुंकुमपंकभूषित दोनो स्तनोंको काजल मिले हुए आंसुओंके बूँदोंसे सींचती हुई एवं जिससे फूलमाला गिर रही हैं उस केशपाशको खोल कर पुत्रके लिये कुररीकी भाँति उच्चस्वरसे विलाप करने लगी कि ॥ ५३ ॥ "अहो विधाता! तू बड़ा ही मूर्ख है, क्योंकि तू अपनी सृष्टिके विपरीत चेष्टा करता है । कैसे आश्चर्यकी बात है! बूढ़े जीते रहें और बालक मर जायँ!! यदि तू ऐसाही विपरीत है तो अवश्य प्राणियोंका शत्रु है ॥ ५४ ॥ यदि इस लोकमें शरीरधारियोंके जन्म-मरणका कोई क्रम नहीं है तो लोगोंके जन्मादिक उन्हीके कर्मोंसे हों, तेरा क्या काम है? तूने अपनी सृष्टिकी वृद्धिके लिये जो यह सुदृढ स्नेहपाश बना रक्खा है उसको स्वयं तू ही छिन्न करता है! ॥ ५५ ॥ हे पुत्र! मैं अत्यन्त दीन और अनाथ हूँ, मुझे त्याग कर जाना तुमको उचित नहीं है । वत्स!

तुम अपने पिताको एक वार देखो, यह तुम्हारे शोकमें अत्यन्त सन्तप्त हो रहे हैं। हमको यही आशा थी कि तुम्हारे द्वारा दुस्तर 'पुं' नाम नरकसे अनायास ही उत्तीर्ण हो सकेंगे। हमको छोड़ कर निठुर यमराजके साथ तुम दूर न जाओ ॥५६॥ वत्स! उठो, ये तुम्हारे साथी वयस्य बालकगण खेलनेके लिये बुलाने आये हैं। हे राजकुमार! बड़ी देरसे सो रहे हो, तुमको भूख लगी होगी, कुछ खाओ, दूध पियो और हमारे शोकको दूर करो ॥ ५७ ॥ हे पुत्र! मैं बड़ी ही मंदभागिनी हूँ, आज पहले आकर तुम्हारे मुँदे हुए नयनोंसे सुशोभित मुखकमलकी मनोहर हँसी नहीं देख सकी! तुम्हारे मधुर वचन नहीं सुनती; नृशंस मृत्यु क्या तुमको दूसरे लोकमें ले गया है?" ॥ ५८ ॥ **श्री शुकदेवजी कहते हैं।** राजरानी पुत्रके लिये यों शोकसे विलाप कर रही थी, उसके विचित्र विलापसे राजा चित्रकेतु भी अत्यन्त सन्तप्त होकर उँचे स्वरसे रोने लगे। दोनो स्त्री-पुरुषोंके विलाप करनेसे उनके अनुवर्त्ती सब स्त्री पुरुषभी दुःखित हो कर रोने लगे। फिर महा शोकके कारण मोहवश हो सभी मूर्च्छित हो गये ॥ ५९ ॥ ६० ॥

एवं कश्मलमापन्नं नष्टसंज्ञमनायकम् ॥
ज्ञात्वाङ्गिरा नाम मुनिराजगाम सनारदः ॥ ६१ ॥

राजा चित्रकेतु ऐसी विपन्न दशामें अचेतन पड़ा हुआ है एवं उसको समझानेवाला कोई नहीं है, यह जान कर वही महर्षि अंगिरा देवऋषि नारदके साथ वहाँ पर आये ॥ ६१ ॥

इति श्रीभागवते पष्ठस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदश अध्याय ।

नारद और अंगिराके समझानेसे चित्रकेतुका शोक दूर होना ।

श्रीशुक उवाच—**ऊचतुर्मृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम् ॥**
शोकाभिभूतं राजानं बोधयन्तौ सदुक्तिभिः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी बोले। हे महाराज! महर्षि अंगिरा और नारदजी शूरसेनाधिपति राजा चित्रकेतुको मुर्देकी भाँति मरे हुए बालकके पास पड़े हुए एवं शोकाकुल देख कर विविध सदुक्तियोंसे समझाने लगे ॥ १ ॥ कि हे राजेन्द्र! तुम जिसके लिये शोक कर रहे हो यह तुम्हारा कौन है? और सृष्टिमें पहले तुम इसके कौन थे और अब कौन होओगे? ॥ २ ॥ हे राजन्! जैसे प्रवाहके वेगसे एक स्थानकी बालू अलग२ बह जाती है और दूर२से आ कर इकट्ठी हो जाती है वैसे ही कालके द्वारा सब देहधारियोंका कभी संयोग व कभी वियोग होता है ॥ ३ ॥ जैसे बीजमें

बीजान्तर होता है और कभी नहीं भी होता, वैसे ही परमेश्वरकी मायासे पुत्रादि प्राणी पिता आदि प्राणियोंके साथ कभी संयोगको और कभी वियोगको प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ अतएव पिता-पुत्रका सम्बन्ध कल्पनामात्र है-वृथा शोक करनेकी क्या आवश्यकता है? हे राजन्! तुम और वर्तमान कालके जो सब चराचर प्राणी हैं वे एवं हम-जैसे जन्मके पहले न थे और मृत्युके बाद नहीं रहेंगे वैसे ही इस समय भी नहीं हैं, अर्थात् आदि अन्तमें असत् होनेके कारण स्वप्नके समान मिथ्या हैं ॥ ५ ॥ आवश्यकता न होने पर भी वह लोकनाथ बालकोंकी भाँति लीलापूर्वक अपने उत्पन्न किये पराधीन प्राणियोंके द्वारा प्राणियोंकी उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं ॥ ६ ॥ राजन्! जैसे बीजसे बीज उत्पन्न होता है वैसे ही देही (पिता) के देहद्वारा देही (माता) के देहसे देही (पुत्र) का देह उत्पन्न होता है। देही जीव भूमि आदिके समान नित्य है ॥ ७ ॥ वस्तुगत सामान्य-विशेषकी कल्पनाके समान यह अनादि देह एवं देहीका विभाग भी अज्ञानमूलक है ॥ ८ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! उन दोनो ब्राह्मणोंके वचनोंसे शूरसेन देशके राजा चित्रकेतुको ज्ञान हुआ। राजा चित्रकेतु मुनियोंके वचनोंसे इस प्रकार आश्वास पा कर मनकी व्यथासे मलीन मुखके आँसुओंको हाथोंसे पोंछ कर यों बोले ॥९॥ **राजा चित्रकेतुने** कहा कि "आप दोनो कौन हैं? आप अवधूतवेपसे अपना रूप छिपा कर यहाँ आये हैं। आप बड़े ही ज्ञानी एवं श्रेष्ठोंसे भी श्रेष्ठ हैं ॥ १० ॥ क्योंकि भगवत्प्रिय ब्राह्मणगण पागलोंके ऐसे चिन्ह धारण किये हुए मुझ सरीखे ग्राम्य बुद्धिवाले लोगोंको बोध देनेके लिये पृथ्वीमण्डलमें भ्रमण करते हैं ॥ ११ ॥ सनत्कुमार, नारद, ऋभु, अंगिरा, देवल, असित, मानसतमोवर्जित वेदव्यास, मार्कण्डेय, गौतम ॥ १२ ॥ वशिष्ट, भगवान् परशुराम, कपिलदेव, शुकदेव, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातूकर्ण्य, आरुणि ॥ १३ ॥ लोमश, च्यवन, दत्तात्रेय, आसुरि, पतञ्जलि, वेदशिरा, धौम्य, पञ्चशिखमुनि, ॥ १४ ॥ हिरण्यनाभ, कौशल्य, श्रुतदेव एवं ऋतध्वज-ये लोग एवं अन्यान्य श्रेष्ठ सिद्धगण ज्ञानदान करनेके लिये विचरते रहते हैं ॥ १५ ॥ मैं ग्राम्यपशुके तुल्य मूढ़बुद्धि हूँ, आप दोनो जन मेरी रक्षा करिये; मैं घोर अन्धकारमें मग्न हो रहा हूँ, अनुग्रह करके मेरे आगे ज्ञानके दीपकका प्रकाश करिये ॥१६॥ **अंगिराजी बोले।** राजन्! जब तुम्हारी पुत्र पानेकी इच्छा थी तब मैंने ही आ कर तुमको पुत्र दिया था, मैं वही अंगिरा मुनि हूँ एवं यह मेरे साथ साक्षात् भगवान् ब्रह्माके पुत्र नारद ऋषि हैं ॥ १७ ॥ हमको स्मरण हुआ कि तुम पुत्रशोकसे इस प्रकार दुस्तर अन्धकारमें मग्न हो रहे हो। तुम भगवान्के भक्त एवं ब्रह्मण्य हो; तुमको इस भाँति मोहमें मग्न होना योग्य नहीं है। अतएव तुम पर अनुग्रह करनेके लिये हम दोनो जन यहाँ आये हैं ॥१८॥१९॥ हे महाराज! मैं पहले जब आया था तब ही तुमको परम ज्ञान देता,

किन्तु उस समय तुमको अन्य विषयमें मग्न देख कर मैंने पुत्र ही दिया ॥ २० ॥ पुत्रवाले गृहस्थोंको किस प्रकारका सन्ताप होता है, इसका अनुभव इस समय तुम आप ही कर रहे हो । निश्चय जानो कि स्त्री, गृह, धन एवं विविध ऐश्वर्य्य सम्पत्तियाँ भी योंही सन्तापदायक हैं ॥२१॥ और शब्दादि विषय व राज्य—ऐश्वर्य्य सभी अनित्य है । हे शूरसेनेश! पृथ्वी, राज्य कोष, भृत्य, अमात्य, सुहृज्जन इत्यादि सभी शोक, मोह, भय और पीड़ा देनेवाले एवं गन्धर्वनगरकी भाँति क्षण २ में दिखाई देने व नष्ट होनेवाले हैं। सब ही स्वप्न, माया व मनोरथके तुल्य मिथ्या हैं ॥२२॥२३॥ हे राजन्! ये सब पदार्थ मनका विकारमात्र हैं, यथार्थ नहीं हैं, क्योंकि एक क्षणमें देख पड़ते हैं और दूसरे ही क्षणमें नष्ट हो जाते हैं। कर्मवासनाके साथ कर्मकी चिन्ता करते करते ही मनसे विविध कर्मोंकी उत्पत्ति होती है ॥ २४ ॥ द्रव्य, ज्ञान और क्रियात्मक यह देह ही देहाभिमानी जीवको विविध सन्ताप देनेवाला है ॥ २५ ॥ अतएव एकाग्र मनसे तत्त्वविचारपूर्वक द्वैत-वस्तुमें "यह वस्तु सत् है" इस अपने विश्वासको त्याग कर शान्ति धारण करो ॥२६

यत्पादमूलमुपसृत्य नरेन्द्र पूर्वे शर्वादयो भ्रममिमं द्वितयं विसृज्य ॥
सद्यस्तदीयमतुलानधिकं महित्वं प्रापुर्भवानपि परं न चिरादुपैति ॥२८

नारदजी बोले । संयत हो कर मुझसे परममंगलविधायक यह मंत्र ग्रहण करो । इसे धारण करनेसे सात दिनमें प्रभु सङ्कर्षण देवके दर्शन पाओगे । हे नरेन्द्र ! शंकर आदि प्रधान देवगण जिनके चरणकमलोंकी शरण ग्रहण करके द्वैतभ्रमको त्याग कर शीघ्रही अतुलनीय एवं सर्वातिशायिनी महिमाको प्राप्त हुए हैं उनको शीघ्र ही तुम पाओगे ॥ २७ ॥ २८ ॥

इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडश अध्याय ।

चित्रकेतुसे नारदका महोपनिषद् कहना ।

श्रीशुक उवाच—**अथ देवऋषी राजन्संपरेतं नृपात्मजम् ॥**
दर्शयित्वेति होवाच ज्ञातीनामनुशोचताम् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! उसके बाद देवर्षि नारद शोकसे व्याकुल बंधुओंके सामने मरे हुए राजकुमारको प्रत्यक्ष कराकर यों बोले ॥१॥ नारदजीने जीवात्मासे कहा कि हे जीवात्मा ! तुम्हारा मङ्गल हो, अपने पिता माताको देखो। ये सब सुहृद् और बंधु बांधव तुम्हारे शोकसे अत्यन्त सन्तप्त हो रहे हैं ॥ २ ॥ तुम अपने शरीरमें प्रवेश करके शेष आयुमें सुहृद्गणसहित पिताके संचित

भोगोंका भोग करो और राज्यसिंहासन पर बैठो ॥ ३ ॥ यह सुन कर जीव बोला कि ये किस जन्ममें मेरे पिता माता हुए थे? मैं तो अपने कर्मोंसे देव, पशु और मनुष्य योनियोंमें भ्रम रहा हूँ ॥ ४ ॥ क्रमशः सब ही सबके परस्पर बन्धु, जाति, नाशक, रक्षक, विद्वेष करनेवाले, अशत्रु, अमित्र और उदासीन होते रहते हैं। अतएव ये लोग पुत्र कह कर शोकाकुल होनेके बदले शत्रु समझ कर आनन्दित क्यों नहीं हुए! ॥ ५ ॥ जैसे बेंचने खरीदनेकी वस्तुएँ सोना चाँदी आदि बेंचने खरीदनेवालोंके पास आती जाती रहती हैं वैसे ही जीव भी अनेक योनियोंमें भ्रमण करता रहता है ॥६॥ देखा जाता है कि गृह-स्त्री-पुत्रादिके साथ मनुष्यका सम्बन्ध चिरस्थायी नहीं है; जितने दिन जिसके साथ जिसका सम्बन्ध रहता है उतने दिन उस पर उसकी ममता रहती है ॥ ७ ॥ वास्तविक अभिमानशून्य नित्य जीव शरीरस्थ हो कर जितने दिन जिसके निकट रहता है उतने दिन उस जीव पर उसका स्वत्व रहता है ॥ ८ ॥ आत्मा नित्य, अव्यय और सूक्ष्म है; यह सर्वाधार और स्वयं प्रकाशित है; यह प्रभु अपनी मायाके गुणों द्वारा अपनेको विश्वरूपसे प्रकट करता है ॥९॥ जीवके लिये प्रिय या अप्रिय, अपना या पराया कोई नहीं है । यह एक है, एवं हिताहितके करनेवाले मित्रादिकी विचित्र बुद्धिका साक्षीमात्र है ॥ १० ॥ कार्य-कारणका साक्षी प्राधीनताशून्य आत्मा—गुण, दोष और कर्मके फल—कुछ भी नहीं ग्रहण करता; उदासीनकी भाँति अवस्थित रहता है ॥ ११ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । हे राजन्। वह जीव यों कह कर वहाँसे चला गया । उसके ज्ञातिगण विस्मित हो स्नेहकी सुदृढ़ शृंखलाको तोड़ कर शोकसे मुक्त हो गये ॥ १२ ॥ ज्ञातिगणने उस ज्ञातिके मृतदेहका सत्कार एवं यथोचित क्रियाकलापका निर्वाह करके शोक, मोह, भय और क्लेश देनेवाले दुस्त्यज स्नेहको त्याग दिया ॥१३॥ हे महाराज! तब बालघातिनी रानियोंने लज्जित और बालहत्याके पापसे विवर्ण हो कर अङ्गिराजीके वचनोंको स्मरण करते हुए यमुनाके किनारे ब्राह्मणोंके बताये बालहत्याके प्रायश्चित्तको किया ॥ १४ ॥ हे राजन्! चित्रकेतु राजा भी इन ब्राह्मणोंके वचनोंसे उक्त प्रकारका बोध पा कर, हाथी जैसे सरोवरकी कीचड़से निकलता है वैसे गृहरूप अन्धकूपसे बाहर हुए ॥१५॥ फिर यमुनातट पर जा कर स्नानके अनन्तर तर्पणादि कृत्य समाप्त किये एवं मौनी और जितेन्द्रिय होकर ब्रह्माके पुत्र अंगिरा व नारदके चरणोंमें प्रणाम किया ॥१६॥ भक्त, जितेन्द्रिय और शरणागत राजा चित्रकेतुको भगवान् नारदने प्रसन्न हो कर यह स्तुतिमयी विद्या बताई कि ॥१७॥ "आप भगवान् वासुदेव हैं, आपको मैं शुद्ध हृदयसे नमस्कार करता हूँ । आप प्रद्युम्न, अनिरुद्ध एवं संकर्षण देव हैं, आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥ आप भगवान् विज्ञानमात्र हैं, परम आनन्द ही आपकी मूर्ति है, आप आत्माराम एवं शान्त हैं, आपसे

द्वैतदृष्टि निवृत्त होती है, आपको नमस्कार है ॥१९॥ प्रभो! आप आत्मानन्दके अनुभव द्वारा मायासे उत्पन्न रागद्वेषादिको निरस्त करते हैं आप इन्द्रियोंके ईश्वर एवं अति महत् हैं। सब विश्व आपकी ही मूर्ति है, आपको नमस्कार है ॥२०॥ अहो! जहाँ मन और सब इन्द्रियाँ न पहुँच कर निवृत्त हो जाती हैं वहाँ आप ही अकेले स्वयं प्रकाशको प्राप्त होते हैं। आप नाम-रूप-रहित, चिन्मात्रस्वरूप एवं कार्य और कारणके कारण हैं, आप हमारी रक्षा करिये ॥ २१ ॥ जिसमें यह जगत् अवस्थित है और उत्पन्न हो कर लयको प्राप्त होता है, जो मिट्टीकी वस्तुमें मिट्टीके समान सर्वत्र संश्लिष्ट ब्रह्म है उसको हमारा नमस्कार है ॥ २२ ॥ आकाशकी भाँति भीतर और बाहर व्याप्त रहने पर भी जिसको मन, बुद्धि, इन्द्रिय और प्राण न स्पर्श कर सक्ते हैं और न जान सक्ते हैं उसको नमस्कार है ॥ २३ ॥ फलतः उसके चैतन्यांशके सम्बन्धके बलसे ये देह, इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि अपने अपने विषयोंमें प्रवृत्त होनेके लिये समर्थ होते हैं। बिना तपा हुआ लोहा जैसे जलाता नहीं, वैसे ही अन्य समयमें (जब ब्रह्म व चैतन्यांशका सम्बन्ध नहीं रहता) यह जीव देह आदि विषयोंमें नहीं प्रवृत्त हो सक्ता; उस साक्षीस्वरूपको जान कर यह जीव कल्याणको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ महापुरुष महानुभाव महाविभूतिपति भगवान्को नमस्कार है। हे श्रेष्ठ! प्रधान २ भक्तगण निरन्तर अपने कर-कमल-मुकुलोंसे आपके दोनो चरणारविन्दोंका लालन करते हैं। हे सर्वेश्वर! आपको नमस्कार है" ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं राजन्! भक्त, शरणागत राजाको इस विद्याका उपदेश करके नारदजी अंगिराके साथ ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २६ ॥ भगवान् नारद जैसे बता गये उसीके अनुसार राजा चित्रकेतुने सात दिन तक केवल जलपान करते हुए एकाग्रभावसे उक्त विद्याका जप किया ॥ २७ ॥ हे राजन्! सात रातके बाद इस विद्याके धारण करनेके प्रभावसे राजा चित्रकेतुने विद्याधरोंका अप्रतिहत आधिपत्य प्राप्त किया ॥ २८ ॥ फिर कुछ दिनमें उक्त विद्यासे ही उनकी मनोगति और भी उन्नतिको प्राप्त हुई एवं वह देवदेव शेषजीके चरणोंके निकट प्राप्त हुए ॥ २९ ॥ वहाँ जा कर देखा कि भगवान् संकर्षण प्रभु और उनके चारो ओर सिद्धेश्वरगण बैठे हुए हैं। उनका वर्ण मृणाल (कमलनाल) के तुल्य गौर है, वह नीलांबर पहने हैं, अंगोंमें किरीट, केयूर, कटिसूत्र और कंकण शोभित हैं एवं उनका मुख प्रसन्न और लोचन अरुणवर्ण हैं ॥ ३० ॥ शेषजीका दर्शन करते ही राजर्षिके सब पाप नष्ट हो गये एवं अन्तःकरण निर्मल व स्वस्थ हुआ। भक्तिकी अधिकताके कारण उनके दोनो नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहने लगे, सब शरीरमें रोमाञ्च हो आया एवं उन्होने भक्तिपूर्वक आदिपुरुषको प्रणाम किया ॥ ३१ ॥ किन्तु बहुत देर तक स्तुति नहीं कर सके। पवित्र कीर्तिवाले भगवान्के पादपीठको उन्होने अपने प्रेमके आँसुओंकी बूँदोंसे

भिगो दिया। प्रेमके मारे कण्ठावरोध हो आया ॥ ३२ ॥ फिर कुछ देरके बाद उनमें बोलनेकी शक्ति हुई। राजाने इन्द्रियोंकी बहिर्मुखी वृत्तियोंको रोक कर बुद्धिसे मनको संयत किया एवं भक्तिशास्त्रमें जिनके शरीरका वर्णन है उन जगद्गुरु भगवान्की यों स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥ **चित्रकेतु बोले।** भगवन्! यद्यपि आप अजित हैं तथापि समदर्शी जितात्मा भक्तगण आपको जीत कर अपने वशमें कर लेते हैं, क्योंकि आप अत्यन्त दयालु हैं। परन्तु यद्यपि वे सब साधुपुरुष निष्काम होते हैं तथापि वे भी आपके निकट पराजित हैं; क्यों कि आप अपने अकाम भक्तोंको आत्मदान तक कर देते हैं ॥ ३४ ॥ भगवन्! भक्तोंके सिवा अन्य किसीके भी निकट आपके पराजयकी संभावना नहीं है, क्यों कि जगत्के सृष्टि-स्थिति-संहार आदि आपका ही विभव हैं। ब्रह्मादि देवगण विश्वके स्रष्टा होने पर भी ईश्वर नहीं हैं, केवल आपके अंशके अंशमात्र हैं। वे अपने २ को स्वतन्त्र ईश्वर मान कर वृथा स्पर्धा करते हैं ॥ ३५ ॥ भगवन्! परमाणु मूलकारण है और परम महत् अन्तिम कार्य है; इन दोनोके आदि, अन्त और मध्यमें आप वर्तमान हैं; आप आदि, अन्त व मध्यसे रहित हैं। जो इन प्रतीयमान वस्तुओंके आदि, अन्त और मध्यमें अवस्थित है वह चिरस्थायी (अविनाशी) है; आप वही हैं ॥ ३६ ॥ पृथ्वी आदि सात पदार्थोंके आवरण उत्तरोत्तर दशगुने बड़े हैं; उनसे यह ब्रह्माण्ड आवृत है। इस प्रकारके कोटि २ ब्रह्माण्ड आपमें परमाणुके समान भ्रमण करते हैं, अतएव आप अनन्त हैं ॥३७॥ विषयकामुक मनुष्यदेहधारी पशु आपकी विभूति इन्द्रादिकी उपासनामें लिप्त रह कर परम पुरुष जो आप हैं उनकी आराधना नहीं करते। हे ईश! जैसे राजकुलके विनष्ट होने पर सेवकोंका भी सुख नष्ट होता है वैसे ही इन्द्रादिका लय होने पर उनके उपासकोंके भी सुखभोग नहीं रहते ॥ ३८ ॥ जैसे भुने हुए वीजमें अंकुर नहीं जमता वैसे ही हे परम! आपके निकट विषयकामना करने पर भी वे विषयभोग दूसरे जन्मकी सृष्टि नहीं कर सक्ते; क्योंकि आप ज्ञानमय एवं निर्गुण हैं और जीवके सुखदुःखादिक गुणोंसे ही उत्पन्न होते हैं ॥ ३९ ॥ हे अजित! अकिञ्चन एवं आत्मामें रमनेवाले मुनिगण मुक्तिके लिये जिसकी उपासना करते हैं उस विशुद्ध भागवत धर्मका जब आपने वर्णन किया तभी आपकी सर्वश्रेष्ठता प्रतिपन्न हो गई ॥ ४० ॥ हे प्रभो! अन्य सकाम धर्मोंमें "तुम, मैं, तुम्हारा, मेरा" इस प्रकारका भेदज्ञान है, किन्तु भागवत धर्ममें वैसा नहीं है। भेदज्ञानके कारण जो धर्म (अभिचार मारणादि) किया जाता है वह अविशुद्ध, नाशवान् एवं अधर्म है ॥ ४१ ॥ अपने या दूसरेका अपकार करनेवाले उक्त प्रकारके धर्मोंमें अपना या दूसरेका क्या मंगल अथवा प्रयोजन सिद्ध होता है? कुछ भी नहीं। वरन् आत्माको क्लेश देनेके कारण आप कोप करते हैं एवं दूसरेको पीड़ा प-

हुँचानेके कारण अधर्म भी होता है ॥ ४२ ॥ आपकी दृष्टि कभी परमार्थसे नहीं हटती, उसी दृष्टिसे आपने भागवत (निष्काम) धर्मको प्रकट किया है । अतएव स्थावर जंगम प्राणियोंमें समदृष्टि रखनेवाले श्रेष्ठ व्यक्तिगण उक्त धर्मकी ही सेवा करते हैं ॥ ४३ ॥ हे भगवन् ! आपके दर्शनसे मनुष्योंके पापोंका क्षय होना असम्भव नहीं है, क्योंकि आपका नाम एक बार सुननेसे चाण्डाल भी संसारके बन्धनसे छूट जाता है ॥ ४४ ॥ हे भगवन्! इस समय केवल आपके दर्शनसे ही मेरे मनकी मलिनता दूर हो गई । आपके जन नारदका वाक्य क्या अन्यथा हो सक्ता है ! हे अनन्त! आप सबके अन्तर्यामी हैं, लोगोंके सब आचरण आपको विदित हैं। अतएव जैसे जुगनू सूर्यके निकट कोई पदार्थ प्रकाशित नहीं कर सक्ता वैसे ही परम गुरु आपको मैं अधिक क्या विदित करा सक्ता हूँ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ आप सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेमें समर्थ हैं। कुयोगी भेददृष्टिके कारण आपके तत्त्वको नहीं जान सक्ते। आप भगवान् परमात्मा हैं, आपको प्रणाम है ॥४७॥ आपके चेष्टायुक्त होने पर विश्वस्रष्टा ब्रह्मादि चेष्टायुक्त होते हैं, आप जब चेतते हैं तब सब ज्ञानेन्द्रियाँ चेत कर अपना २ विषय ग्रहण करनेमें समर्थ होती हैं। आपके मस्तकमें यह विशाल ब्रह्माण्ड सरसोंके समान धरा हुआ है। सहस्र शिरवाले अनन्त भगवान्को नमस्कार है ॥४८॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! इस प्रकार स्तुति करनेसे भगवान् अनन्त प्रसन्न हो कर विद्याधरपति चित्रकेतुसे बोले ॥ ४९ ॥ **भगवान्ने कहा** हे राजन्! नारद और अंगिराने जो मेरे सम्बन्धमें तुमको उपदेश दिया है उसी उपदेश व उसी विद्याके प्रभावसे मेरा दर्शन पा कर तुम सम्पूर्ण सिद्ध हो गये ॥ ५० ॥ सब प्राणी मेरा स्वरूप हैं, मैं सब प्राणियोंका आत्मा और उत्पन्न करनेवाला हूँ, शब्दब्रह्म और परब्रह्म ये दोनो मेरे अविनाशी रूप हैं ॥ ५१ ॥ देखो, लोकमें आत्मा एवं आत्मामें लोक ओतप्रोत है, और मैं दोनोमें व्याप्त हूँ एवं ये दोनो मुझमें रचित हैं ॥ ५२ ॥ जैसे पुरुष सोतेमें सुषुप्त अवस्थाको प्राप्त हो कर स्वप्न देखता है एवं स्वप्नमें विश्वका दर्शन करता है और स्वप्नमें ही जाग कर अपनेको विश्वके एकदेशमें स्थित जानता है वैसे ही बुद्धिके अवस्थाविशेष जो यथार्थ जागरणादिक हैं वे भी आत्माकी केवल माया हैं—यह जान कर आत्माको उस २ अवस्थाका साक्षी अथच उस २ अवस्थासे अलग जानो ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ जीव निद्राकी अवस्थामें जिससे अपनी निद्रा एवं अतीन्द्रिय सुखको जानता है, मैं वही आत्मारूप निर्गुण ब्रह्म हूँ ॥ ५५ ॥ निद्रा और जागरण इन दोनो अवस्थाओंमें अनुसंधान करनेसे जो निद्रा और जागरण (प्रकाशरूप) से अन्वित है एवं दोनोसे व्यतिरिक्त अर्थात् विभिन्न है वही परम ज्ञान है और वही ब्रह्म है ॥ ५६ ॥ जीव 'मैं ब्रह्म हूँ,' यह भूल कर आत्मासे भिन्न

होता है, उसीसे उसको संसार होता है; उसीके कारण उसको एक देह त्याग कर दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है एवं एक बार मर कर फिर मरना पड़ता है ॥ ५७ ॥ राजन्! मनुष्यजन्म ज्ञान और विज्ञानका कारण है, इस जन्मको पा कर जो व्यक्ति आत्मज्ञानको नहीं प्राप्त करता उसे कहीं भी कल्याण नहीं मिल सक्ता ॥ ५८ ॥ प्रवृत्तिमार्गमें क्लेश है एवं उससे विपरीत फल भी होता है और निवृत्ति मार्गमें कोई भय नहीं है। यह जान कर पण्डितोंको चाहिये कि प्रवृत्ति-मार्गसे निवृत्त हों ॥ ५९ ॥ महाराज! सुखके मिलने अथवा दुःखके छूटनेके लिये सब नर नारी विविध कर्म किया करते हैं, किन्तु उन कर्मोंसे दुःखकी निवृत्ति या सुखकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ६० ॥ अपनेको विज्ञ मान कर अभिमान करनेवाले पुरुषोंको इस प्रकार उल्टा फल मिलता है एवं सूक्ष्म आत्माकी गति बुद्धिकी तीनो अवस्थाओंसे परे है—ऐसा समझ कर अपने विवेकके बलसे ऐहिक व पारलौकिक विषयोंसे मुक्त और ज्ञानविज्ञानसे परितृप्त हो कर पुरुषको भक्ति करनी चाहिये ॥ ६१ ॥ ॥ ६२ ॥ राजन्! परमात्मा और आत्मामें भेदबुद्धि न रखना अत्यन्त आवश्यक है—यह बात योगनिपुण-बुद्धिवाले मनुष्योंको सम्पूर्ण रूपसे जानना योग्य है ॥ ६३ ॥ तुम यदि सावधान हो कर श्रद्धापूर्वक मेरे इस वाक्यको ग्रहण करोगे तो शीघ्र ही ज्ञान और विज्ञानसे सम्पन्न हो कर सिद्ध हो जाओगे ॥ ६४ ॥

श्रीशुक उवाच—आश्वास्य भगवानित्थं चित्रकेतुं जगद्गुरुः ॥
पश्यतस्तस्य विश्वात्मा ततश्चान्तर्दधे हरिः ॥ ६५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। जगद्गुरु, विश्वात्मा, भगवान् हरि इस प्रकार चित्रकेतुको आश्वास देकर उनके सामने ही वहाँसे अन्तर्द्धान हो गये ॥ ६५ ॥

इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदश अध्याय।

पार्वतीके शापसे चित्रकेतुको असुरयोनि मिलना।

श्रीशुक उवाच—यतश्चान्तर्हितोऽनन्तस्तस्यै कृत्वा दिशे नमः ॥
विद्याधरश्चित्रकेतुश्चचार गगनेचरः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। भगवान् अनन्त जिस दिशामें अन्तर्हित हुए थे, उस दिशाको प्रणाम करके आकाशचारी विद्याधर चित्रकेतु इच्छानुसार विचरने लगे ॥ १ ॥ चित्रकेतुका बल और इन्द्रियोंकी स्थिति अव्याहत थी; इससे वह अगणित वर्षों तक अनायास अपनी इच्छाके अनुसार तीन लोक चौदहो भुवनमें

विचरते रहे । वह महायोगी थे, इस लिये मुनि और सिद्धचारणगण उनकी स्तुति
करते थे ॥ २ ॥ कुलाचलोंकी कंदराओंमें, जहाँ इच्छामात्रसे ही नानाप्रकारकी
सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, वहाँ विद्याधरियोंसे हरिके गुणोंका गान सुनते हुए चित्र-
केतु विहार करते थे ॥ ३ ॥ एक दिन वह विष्णु भगवान्के दिये हुए तेजोमय
विमान पर चढ़े जा रहे थे, मार्गमें उन्होने देखा कि भगवान् शंकरजी सिद्ध-
चारणोंके बीच मुनिगणकी सभामें भगवती भवानीको गोदमें बिठाये लिपटाये
बैठे हैं। यह देख कर देवीके सामने शिवके पास ही उपहास करते हुए
चित्रकेतुने यों कहा ॥ ४ ॥ ५ ॥ चित्रकेतुने ऊँचे स्वरसे हँस कर कहा कि "यह
लोगोंके गुरु, साक्षात् धर्मके उपदेशक एवं जीवोंमें श्रेष्ट हैं। वही यह स्त्रीको
इस भाँति गोदमें बिठाये हुए सभामें बैठे हैं ॥ ६ ॥ यह जटाधारी, कठोर
तपस्वी, ब्रह्मवादी एवं सभाके सभापति हैं! वाह! साधारण नीच व्यक्तियोंके
समान निर्लज्जभावसे स्त्रीको गोदमें लिये बैठे हैं! ॥ ७ ॥ साधारण लोग भी
प्रायः एकान्तमें ही इस भाँति स्त्रियोंसे मिल कर बैठते हैं, किन्तु यह महाव्रतधारी
हो कर भी भरी सभामें स्त्रीको लिये बैठे हैं" ॥ ८ ॥ राजन्! गम्भीरबुद्धि
महादेव भगवान् यह सुन कर हँस दिये और कुछ नहीं बोले। उस सभामें
जो लोग बैठे थे वे भी शंकरजीको मौन देख कर कुछ नहीं बोले ॥ ९ ॥ चित्र-
केतुको इस प्रकारकी समृद्धि पानेसे अत्यन्त गर्व हो गया था। "मैं जितेन्द्रिय हूँ"
इस प्रकारके अभिमानसे प्रगल्भ (ढीठ) चित्रकेतुने शिवजीके प्रभावको न
जान कर उक्त प्रकारसे बहुतसे अशोभन वचन कहे, तब भगवती पार्वतीको
क्रोध आ गया और वह यों बोलीं ॥ १० ॥ **पार्वतीजी बोलीं**—यह क्या इस
समय सब लोकोंका शासक एवं हम ऐसे दुष्ट निर्लज्जोंको शास्ति देने वाला
दण्डधर प्रभु है? जान पड़ता है कि पद्मयोनि ब्रह्माजी धर्मको नहीं जानते!
ब्रह्माके पुत्र भृगु, नारद आदि भी धर्मको नहीं जानते! सनत्कुमार एवं कपिल
मुनि भी धर्मज्ञ नहीं हैं! क्योंकि शास्त्रविधिका उल्लंघन करनेवाले भगवान्
महादेवको वे लोग नहीं बरजते ॥ ११ ॥ १२ ॥ अहो! यह क्षत्रियाधम सब पण्डि-
तोंकी पाण्डित्यख्याति लुप्त करके, जिनके चरणकमलोंका ध्यान ब्रह्माआदि
देवगण करते हैं एवं जो परम धर्ममूर्त्ति हैं उन जगद्गुरुका शासन करने चला
है; अतएव इस धृष्टको दण्ड देना योग्य है ॥ १३ ॥ यह "मैं बड़ा हूँ" ऐसा विचार
कर अविनीत हो उठा है, अतएव नारायणके चरणकमलोंके समीप रहनेके योग्य नहीं
है, क्योंकि साधुजनोंकोही वहाँ रहनेका अधिकार है ॥ १४ ॥ हे दुर्मते! पापकु-
लके बीच असुरयोनिमें जा कर जन्म ग्रहण कर। हे पुत्र! ऐसा होनेसे फिर कभी
तू महत् जनोंका अपराध न करेगा ॥ १५ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। हे भारत!
यों शाप देने पर चित्रकेतु विमानसे उतर पड़े और सतीके पैरों पर गिर कर उन्हे

यों प्रसन्न करने लगे ॥१६॥ **चित्रकेतुने कहा** । माता ! आपने जो शाप दिया उसको मैं सादर स्वीकार करता हूँ, क्योंकि देवगण जो कुछ मनुष्यके लिये कहते हैं वह उस मनुष्यके पूर्वकृत कर्मोंका पूर्वसिद्ध फल है ॥१७॥ जीव अज्ञानसे मोहित हो कर इस संसारचक्रमें भ्रमण करता हुआ सर्वदा सर्वत्र सुख और दुःखको भोगता रहता है; आप या कोई दूसरा उस सुख दुःखका कर्ता नहीं है। जो व्यक्ति अज्ञ हैं वे ही इस विषयमें अपनेको अथवा अन्यको कर्ता मानते हैं। यह संसार गुणोंका प्रवाह है, इसमें शाप या अनुग्रह, स्वर्ग या नरक, सुख या दुःख क्या है ? कुछ नहीं है ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ एक परमेश्वर ही मायाके द्वारा सब प्राणियोंकी और उनके सुख, दुःख एवं बन्धन, मोक्षकी सृष्टि करते रहते हैं; किन्तु वह स्वयं बन्धनादिसे रहित हैं ॥ २१ ॥ उनका न कोई प्रिय है, न अप्रिय है, न कोई जातिवाला है, न बंधु है, न अपना है और न पराया है; वह सर्वत्र समान एवं निःसंग हैं। जब सुखमें उनको अनुराग नहीं है तब क्रोध ही कहाँसे होगा ! ॥ २२ ॥ तथापि उनकी मायाके प्रभावसे जीव जिन सब शुभाशुभ कर्मोंको करता है वे ही उसके सुख, दुःख, हित, अहित, बंधन, मोक्ष, जन्म, मृत्यु एवं संसारका कारण होते हैं ॥ २३ ॥ हे भामिनि ! मैं शापमोचनके लिये आपको नहीं प्रसन्न करता किन्तु हे सती! आप जिन मेरे वाक्योंको बुरा मानती हैं उनको क्षमा करो ॥२४॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। इस प्रकार शिव-पार्वतीको प्रसन्न करनेके बाद चित्रकेतु विमान पर चढ़ कर आकाशमार्गसे चले गये। यह देख कर वहाँ बैठे हुए लोगोंको और रुद्र रुद्राणीको भी विस्मय हुआ ॥ २५ ॥ उसके बाद भगवान् रुद्रने देव, ऋषि, दैत्य, सिद्ध और पार्षदोंके सामने रुद्राणीसे कहा कि हे सुश्रोणि ! तुमने अद्भुत कर्मवाले भगवान् हरिके दासानुदास निःस्पृह महात्मोंका माहात्म्य देखा ! नारायणपरायण व्यक्तिगण किसीसे नहीं डरते एवं स्वर्ग, नरक व मुक्तिमें समान दृष्टि रखते हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ परमेश्वरकी लीलासे ही देहधारियोंको देहकी प्राप्ति एवं उसके लिये ही सुख, दुःख, जन्म, मरण और शाप, अनुग्रह हुआ करते हैं ॥२९॥ स्वप्नमें सुख, दुःखके ज्ञानके समान एवं रस्सीमें सर्पके भ्रमकी भाँति (उक्त सम्पूर्ण सुख दुःखादिमें) इष्ट और अनिष्टका बोध भी पुरुषके अविवेकसे होता है ॥ ३० ॥ भगवान् वासुदेवमें भक्ति करनेवाले, ज्ञान-वैराग्यबलधारी पुरुषगण उत्कृष्ट जान कर किसी अर्थका आश्रय नहीं ग्रहण करते ॥ ३१ ॥ मैं, ब्रह्मा, सनत्कुमार, नारद, ब्रह्माके पुत्र मरीचिआदि ऋषि, प्रधान २ देवगण—सब उस ईश्वरकी लीला या स्वरूपको नहीं जान पाते। तब जो लोग उसके अंशका अंश हो कर भी अपने २ को अलग २ ईश्वर मान कर अभिमान करते हैं वे उसके रूपको कैसे जान सक्ते हैं ? ॥ ३२ ॥ उन हरिको कोई भी अत्यन्त प्रिय नहीं है और न कोई अप्रिय ही है, अपना भी कोई नहीं है और पराया भी कोई नहीं है। वह सब प्राणियोंके आत्मा होनेके कारण सब प्राणियोंको प्रिय हैं ॥ ३३ ॥ यह महाभाग चित्र-

केतु उन्हीका प्रिय अनुचर एवं शान्त और सर्वत्र समदर्शी है। मैं भी उन्ही अच्युतका प्रिय हूँ ॥ ३४ ॥ इस कारण चित्रकेतु पर मुझको कोप नहीं हुआ। अतएव जो पुरुष महात्मा, नारायणके भक्त, शान्त एवं समदर्शी हैं उनके कार्योंमें विस्मय न करना चाहिये ॥३५॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! भगवान् शिवके ये वाक्य सुन कर देवी उमाने विस्मय त्याग दिया एवं उनका चित्त स्वस्थ हुआ। जो हो, प्रतिशाप देनेमें समर्थ हो कर भी भगवद्भक्त चित्रकेतुने भगवतीके शापको इस प्रकार विनीत भावसे स्वीकार कर लिया—यही उनकी साधुताका लक्षण है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उसके बाद चित्रकेतु दानवी योनिको प्राप्त होकर त्वष्टाके यज्ञमें दक्षिणाग्निसे उत्पन्न हुए एवं ज्ञानविज्ञानसम्पन्न हो कर वृत्रनामसे विख्यात हुए ॥ ३८ ॥ तुमने जो पूछा था कि "वृत्रासुरको असुर होने पर भी भगवान्में ऐसी दृढ़ भक्ति कैसे हुई?" उसका कारण हमने तुमसे कह सुनाया ॥ ३९ ॥ भगवद्भक्त जनोंके माहात्म्यसे परिपूर्ण महात्मा चित्रकेतुका यह पवित्र इतिहास सुननेसे मनुष्य संसारके बन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ ४० ॥

य एतत्प्रातरुत्थाय श्रद्धया वाग्यतः पठेत् ॥
इतिहासं हरिं स्मृत्वा स याति परमां गतिम् ॥ ४१ ॥

जो व्यक्ति प्रातःकाल उठ कर भगवान् हरिका स्मरण करके मौन हो कर श्रद्धापूर्वक इस इतिहासको पढ़ते हैं वे परम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥

इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादश अध्याय।

सविताआदि देवगणके वंशका वर्णन।

श्रीशुक उवाच—पृश्निस्तु पत्नी सवितुः सावित्रीं व्याहृतिं त्रयीम् ॥
अग्निहोत्रं पशुं सोमं चातुर्मास्यं महामखान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! सविताकी पृश्निनाम पत्नीने सावित्री, व्याहृति और त्रयीको एवं अग्निहोत्र, पशुयाग, सोमयाग, चातुर्मास्ययाग व पञ्च महायज्ञोंको उत्पन्न किया ॥ १ ॥ हे सुव्रत! भगकी सिद्धिनाम स्त्रीने महिमान, विभु, प्रभु इन तीन पुत्रोंको एवं आशीः नाम एक सुरूपा कन्याको उत्पन्न किया ॥ २ ॥ धाताकी कुहू, सिनीवाली, राका एवं अनुमति नाम स्त्रियोंने क्रमसे सायं, दर्श, प्रातः और पूर्णमासको उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ विधाताने अपनी स्त्री क्रियाके गर्भसे पुरीष्यनाम पाँच अग्नि उत्पन्न किये। वरुणकी स्त्रीका नाम चर्षणी था, उसके गर्भसे भृगुने पुनः जन्म ग्रहण किया (पहले भृगुका जन्म ब्रह्मासे हुआ था)

॥ ४ ॥ प्रसिद्ध है कि वल्मीकसे उत्पन्न महायोगी वाल्मीकि भी वरुणके पुत्र हैं। वरुण और मित्र दोनो का ही वीर्य उर्वशीको देख कर स्खलित हो गया, उसको उन्होने कुंभमें स्थापित कर दिया, उसीसे अगस्त्य व वशिष्ठ मुनि उत्पन्न हुए। राजन्! मित्रने रेवतीनाम स्त्रीके गर्भसे उत्सर्ग, अरिष्ट और पिप्पलको उत्पन्न किया ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ हे राजन्! इंद्रने पौलोमी (इंद्राणी) के गर्भसे जयन्त, ऋषभ और मीढुष नाम तीन पुत्र उत्पन्न किये। मायावामनरूपसे अवतीर्ण उरुक्रम देवके कीर्तिनाम स्त्रीमें बृहच्छ्लोक उत्पन्न हुए और उनके सौभग आदि कई पुत्र हुए ॥ ७ ॥ ८ ॥ कश्यपके पुत्र महात्मा वामनजीके गुण और कर्म आगे कहेंगे एवं वह जिस प्रकार अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए, वह भी कहेंगे। अब तुमसे दितिके गर्भसे उत्पन्न कश्यपके वंश वर्णन करता हूँ; जिनमें परम भगवद्भक्त श्रीमान् प्रह्लादजी और राजा बलिका जन्म हुआ है ॥ ९ ॥ १० ॥ दितिके हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नाम दो ही पुत्र थे, जिनको दैत्य और दानव सब मानते थे ॥ ११ ॥ जंभासुरकी कन्या कयाधू नाम दानवी हिरण्यकशिपुकी स्त्री थी, उसने चार पुत्र उत्पन्न किये ॥ १२ ॥ संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद और प्रह्लाद। इनके सिंहिका नाम एक बहन भी हुई, उससे विप्रचित्ति दानवने विवाह किया। उसके गर्भसे राहुका जन्म हुआ ॥ १३ ॥ मोहिनीरूप हरिने अमृत पीते हुए राहुके शिरको चक्रसे काट डाला। राजन्! संह्लादकी कृति नाम स्त्रीने पञ्चजन नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १४ ॥ ह्लादकी धमनि नाम भार्याने वातापि और इल्वलको उत्पन्न किया। अगस्त्यमुनि एक समय उनके यहाँ अतिथि बन कर गये, तब इल्वलने अपने छागरूपधारी भाईको पका कर अगस्त्य मुनिको खिलाया और सदाकी भाँति भाईको पुकारा कि मुनिका पेट फाड़ कर निकल आ, किन्तु वह अगस्त्यजीके पेटमें पच चुका था ॥ १५ ॥ अनुह्लादके सूर्म्या नाम स्त्रीमें बाष्कल व महिषासुरका जन्म हुआ। प्रह्लादके दर्वी नाम स्त्रीमें विरोचनका जन्म हुआ; विरोचनके पुत्र बलि हुए ॥ १६ ॥ राजा बलिने अशनाके गर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न किये, उन सबमें बड़ा बाणासुर था। बलिकी प्रशंसनीय कीर्तिका वर्णन आगे किया जायगा ॥ १७ ॥ बलिपुत्र बाणासुर शिवकी उपासना करके उनके गणोंमें मुख्य हो गया। भगवान् शिव पुरपालक हो कर अब तक उसके पास वर्तमान हैं ॥ १८ ॥ उनूचास (४९) मरुद्गण भी इन दितिके ही पुत्र हैं। वे सब पुत्रविहीन हैं, उन सबको इन्द्रने असुरसे देवता बना लिया ॥ १९ ॥ **राजा परीक्षित् बोले।** गुरुजी! मरुद्गण अपने स्वाभाविक असुर भावको छोड़ कर किस प्रकार इन्द्रके द्वारा देवत्वको प्राप्त हुए? उन्होने ऐसा कौन सत्कार्य किया था? ॥ २० ॥ हे ब्रह्मन्! ये सब ऋषि और मैं—यह जाननेकी बड़ी लालसा रखते हैं; अतएव मुझसे विस्तारपूर्वक इसका वर्णन कीजिये ॥ २१ ॥

सूतजी कहते हैं । हे सत्रायण शौनक ! सर्वदर्शी व्यासपुत्र विष्णुभक्त राजाके ये थोड़े अक्षर और बहुत अर्थसे युक्त वाक्य सादर सुन कर एकाग्रमनसे उनकी प्रशंसा करनेके उपरान्त यों कहने लगे ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले । राजन् ! इन्द्रने विष्णुकी सहायतासे दितिके पुत्रोंको मार डाला, तब उनके मनमें बहुत ही शोक होनेके कारण क्रोध उत्पन्न हुआ एवं वह यों चिन्ता करने लगीं ॥ २३ ॥ कि "दुरात्मा इन्द्र केवल इन्द्रियोंके सुखमें आसक्त है, उसका हृदय अत्यन्त कठिन है, उसमें दयाका लेश नहीं है । आः ! कब उस भाइयोंके मारनेवाले क्रूर पापिष्ट इन्द्रका वध कराकर मैं सुखसे सोऊँगी ? ॥ २४ ॥ प्रभु कह कर विख्यात कितने शरीरोंकी तीन ही गतियाँ हुईं; पशु पक्षियोंके खानेसे विष्टा, गाड़नेसे कृमि एवं जलानेसे भस्म । जो व्यक्ति उस शरीरके लिये प्राणियोंसे द्रोह और जीवहिंसा करता है वह कुछ भी स्वार्थको नहीं जानता; क्योंकि जीवहिंसा करनेसे नरक होता है ॥ २५ ॥ इन्द्र देहादिको नित्य समझ कर अत्यन्त उद्धत हो गया है; ऐसा उपाय करना चाहिये जिसमें मेरे इन्द्रके अहंकारको चूर्ण करनेवाला पुत्र उत्पन्न हो" ॥ २६ ॥ दिति देवी यह विचार कर शुश्रूषा, अनुराग, विनय एवं इन्द्रियसंयम आदिके द्वारा निरन्तर पतिको प्रसन्न करने लगीं ॥ २७ ॥ राजन् ! भावको जाननेवाली दितिने परम भक्ति, मनोज्ञ प्रिय भाषण, और मंदमुसकानयुक्त कटाक्षोंसे शीघ्र ही स्वामीके मनको हर लिया ॥ २८ ॥ यद्यपि कश्यपजी ज्ञानी व विद्वान् थे, किन्तु मनको जाननेवाली स्त्रीने उनका मन हर लिया और उन्होने स्त्रीके वश होकर "तुम्हारी कामनाएँ पूर्ण करूँगा" ऐसा कह दिया । स्त्रियोंके लिये ऐसी बात कोई विचित्र नहीं है ॥ २९ ॥ प्रजापति ब्रह्माने पहले सब प्राणियोंको संगहीन देख कर अपने आधे शरीरसे स्त्रियोंको उत्पन्न किया; वे स्त्रियाँ पुरुषोंकी बुद्धिको सहजमें हरलेती हैं ॥ ३० ॥ हे तात ! जब दिति यों पतिकी सेवामें प्रवृत्त हुई तब भगवान् कश्यप परम प्रसन्न हुए एवं एक दिन आनंद प्रकट करते हुए मुसकाकर कहने लगे ॥ ३१ ॥ कश्यपजीने कहा । हे वामोरु ! हे अनिन्दिते ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, जो इच्छा हो वही वर माँगो । पतिके प्रसन्न होनेपर स्त्रीकी इस लोक या परलोकसे सम्बन्ध रखनेवाली कोई भी कामना अपूर्ण नहीं रहती ॥ ३२ ॥ शास्त्रमें पति ही स्त्रियोंका परम देवता माना गया है । सब प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाले वह श्रीपति भगवान् वासुदेव ही नाम-रूपकी विभिन्नतासे विभिन्नदेवमूर्ति धारण कर पुरुषोंके द्वारा एवं पतिरूपधारी हो कर स्त्रियोंके द्वारा पूजित होते हैं ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ अतएव हे सुमध्यमे ! मङ्गल चाहनेवाली पतिव्रता स्त्रियाँ पतिको आत्मास्वरूप ईश्वर मान कर अनन्य भावसे भजती हैं ॥ ३५ ॥ हे भद्रे ! मैं तुम्हारा पति हूँ; तुमने ऐसे ही भाव(ईश्वर ज्ञान)से भक्तिपूर्वक मेरा पूजन किया है । जो असती स्त्रियोंको दुर्लभ है वह तुम्हारी अभिलाषा मैं पूर्ण करूँगा ॥ ३६ ॥ दितिने

कहा कि ब्रह्मन् ! यदि आप प्रसन्न होकर मुझको वर देते हैं तो मैं ऐसा अमर पुत्र चाहती हूँ जो इंद्रका वध करे। इंद्रने मेरे दो पुत्रोंको मारा है, जिससे मुझे बड़ा ही शोक है ! ॥ ३७ ॥ दितिके ये वचन सुन कर कश्यपजी बहुत घबड़ाये और उदास हो कर मन ही मन यों पछताने लगे कि अहो ! इस समय मुझको बड़ा भारी अधर्म आ कर उपस्थित हुआ है ॥ ३८ ॥ हा ! कैसे कष्टकी बात है ! विषयभोग और इंद्रियसुखमें निरत होनेके कारग स्त्रीरूप मायाने मेरे चित्तको वशमें कर लिया। मुझे निरुपाय होकर निश्चयही नरकमें गिरना पड़ेगा ॥ ३९ ॥ इस अबलाका अपराध क्या है ? इसने तो अपने स्वभावका ही अनुसरण किया है। मैं स्वार्थसे अनभिज्ञ हूँ, मुझे ही धिक्कार है ! मैं इंद्रियोंको वशमें नहीं कर सका ॥ ४० ॥ स्त्रियोंका मुख शरद ऋतुके कमलके तुल्य मनोहर होता है एवं वाक्य कानोंमें अमृतकी वर्षा करते हैं, किन्तु हृदय छुरेकी धाराके समान तीक्ष्ण होता है। स्त्रियोंकी चेष्टाको कौन जान सक्ता है ? स्त्रियाँ स्वार्थ सिद्ध करनेकी अभिलाषासे अपनेको आत्मीय-(सगे)की भाँति दिखलाती हैं, परन्तु वास्तवमें उनको कोई भी प्रिय नहीं है। वे स्वार्थके लिये पति, पुत्र या भाईको भी स्वयं मार डालती हैं या दूसरेके द्वारा मरवा डालती है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ जो कह चुका हूँ उस प्रतिश्रुत वाक्यको मैं मिथ्या नहीं कर सक्ता एवं इंद्रका वध भी अनुचित है। अतएव इस समय यह उपाय (वैष्णवव्रतका उपदेश) करता हूँ ॥ ४३ ॥ हे कुरुनन्दन ! भगवान् मरीचिके पुत्र कश्यपजीने ऐसा विचार करके कुछ कुपित हो कर अपनी निन्दा करते हुए यों कहा ॥ ४४ ॥ हे भद्रे ! यदि तुम वर्ष भर यथाविधि इस व्रतको धारण करोगी तो तुम्हारे इन्द्रको मारनेवाला पुत्र होगा। किन्तु विधिमें कुछ भी अंतर पड़नेसे वह पुत्र इंद्रको मारनेवाला न होकर देवतोंका बांधव (भाई) होगा ॥ ४५ ॥ **दिति बोलीं**। स्वामिन् ! मैं उस व्रतको धारण करूँगी, उसमें जो जो करना चाहिये और जो २ न करना चाहिये एवं जो करनेसे व्रतको हानि पहुँचती है सो सब मुझको बताइये ॥४६॥ **कश्यपजीने कहा**। व्रत करनेवाला किसी प्राणीकी हिंसा न करे, किसी पर कुपित हो कर शाप न दे और न किसीको कुपित करे, मिथ्या न बोले, नख और रोम न काटे एवं अमङ्गल द्रव्यको न छुए ॥४७॥ जलमें घुस कर स्नान न करे, क्रोध न करे, दुर्जनसे बात न करे, अशुद्ध अधौत कपड़ेको न पहने, पहनी हुई मालाको न पहने ॥४८॥ जूठा अन्न, भद्रकालीको अर्पण किया हुआ अन्न, चींटी आदिके द्वारा दूपित अन्न, मांसयुक्त अन्न, शूद्रका लाया हुआ अन्न, रजस्वलाका देखा हुआ अन्न न भोजन करे, अंजलीसे जलपान न करे ॥४९॥ उच्छिष्ट अवस्थामें, विना आचमन किये, संध्याकालमें बालोंको खोल कर, विना शृंगार किये, आभूपण विना धारण किये, नग्न देहसे कभी बाहर न घूमे। बाहर जा कर वाणीका संयम किये रहे ॥ ५० ॥ विना पैर धोये, अपवित्र अवस्थामें, दोनो पैर गीले रहते,

उत्तरको शिर और पश्चिमको शिर करके, दूसरेके साथ, नग्न हो कर अथवा प्रातःकाल और सायंकालको न सोवे ॥ ५१ ॥ धोये हुए वस्त्र धारण करे; पवित्र और सकल-मङ्गल-संयुक्त हो कर प्रथम भोजनके पहले गऊ, ब्राह्मण एवं लक्ष्मी-नारायणकी पूजा करे ॥ ५२ ॥ चन्दन, माला, वस्त्र और आभूषण आदिसे सौभाग्यवती स्त्रियोंकी पूजा करके पतिकी सेवा करे और उसीके तेजको अपने गर्भमें स्थित समझे ॥ ५३ ॥ यदि वर्ष भर निर्विघ्नरूपसे इस पुंसवन व्रतका पालन कर सकोगी तो तुम्हारे इन्द्रको मारनेवाला पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ५४ ॥ हे राजन्! उत्साहित दितिने "ऐसाही करूँगी" कह स्वीकार करके कश्यपके सहवाससे गर्भ धारण किया और उक्त व्रतकी दीक्षा ली ॥ ५५ ॥ हे मानद! इन्द्रजी किसी तरह मौसीके इस अभिप्रायको जान गये; तब स्वार्थदर्शी इन्द्र आश्रममें स्थित दितिके पास जा कर उनकी सेवा करने लगे ॥ ५६ ॥ दितिके लिये वनसे नित्य फल, मूल, यज्ञकाष्ठ, कुश, पत्र, पुष्प, अंकुर, मृत्तिका एवं जल ठीक समय पर लाने लगे ॥ ५७ ॥ राजन्! व्याध जैसे मृगोंको छलनेके लिये मृगका वेष धारण करता है वैसे ही इन्द्र दितिके व्रतको नष्ट करनेका अवसर पानेकी कामनासे कपट-साधु-वेष धारण करके व्रतमें स्थित दितिकी सेवा शुश्रूषा करने लगे ॥ ५८ ॥ हे महीनाथ! देवराज इन्द्र इसमें लगे रहे कि कोई अवसर पावें तो व्रतमें विघ्न डालें, किन्तु उनको ऐसा करनेके लिये कोई भी अवसर नहीं मिला। तब इन्द्रको यह बड़ी भारी चिन्ता हुई कि "कौन उपाय करूँ, जिससे मेरा कल्याण हो?" ॥५९॥ विधिकी विडम्बनासे दितिको मोह उपस्थित हुआ। व्रत करते २ श्रान्त क्लान्त होनेके कारण एक दिन सन्ध्याके समय उच्छिष्ट अवस्थामें विना आचमन किये और हाथ धोये दिति सो गईं ॥ ६० ॥ उसी समय योगेश्वर इन्द्रने अवसर पा कर योग-मायाके बलसे सो रही अचेत दितिके उदरमें प्रवेश किया ॥ ६१ ॥ और प्रवेश करके वज्रसे दितिके गर्भमें स्थित सुवर्णवर्ण सन्तानके सात खण्ड कर डाले। वालक रोने लगा तब इन्द्रने "मा रोदीः (मत रो)" कहा और हरएक खंडके सात सात टुकड़े कर डाले ॥ ६२ ॥ तब उन उञ्चास मरुद्गणने अञ्जलि बाँध कर इंद्रसे कहा कि हे इंद्र! हमको क्यों मारते हो; हम मरुद्गण तुम्हारे भाई हैं ॥६३॥ इंद्रने कहा डरो नहीं, तुम मेरे भाई हो, तुम्हारे साथ मेरा अन्य भाव नहीं है— सात दलमें विभक्त मरुद्गणको मैं अपना पार्षद बनाऊँगा ॥ ६४ ॥ हे राजन्! श्री-निवास हरिकी कृपासे खण्ड खण्ड होने पर भी दितिका गर्भ नष्ट नहीं हुआ। राजन्! जैसे तुम अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे आहत हो कर भी नहीं मरे वैसे ही दितिके गर्भका भी नाश नहीं हुआ ॥ ६५ ॥ प्राणी एक बार भी आदिपुरुषकी पूजा करके सारूप्य मोक्षको प्राप्त होते हैं, फिर दितिने तो कुछ कम एक वर्ष तक हरिकी आराधना और पूजा की थी ॥६६॥ वे मरुद्गण मातृदोष (आसुरीभाव) को त्याग

कर इंद्र सहित पचास हो गये। भगवान् इंद्रने उनको सोमपान करनेवाले देवतोंमें मिला लिया॥६७॥ दितिने जागने पर उठ कर देखा कि इन्द्रके साथ अग्निके समान प्रभा युक्त उञ्चास बालक बैठे हुए हैं; यह देख कर वह सन्तुष्ट हुई ॥ ६८ ॥ फिर इंद्रसे बोलीं कि पुत्र! मैंने अदितिसन्तानके लिये भयानक पुत्रकी इच्छासे यह दुस्तर व्रत किया था। "एक पुत्र हो"—यही मेरा संकल्प था; किन्तु ये उञ्चास पुत्र कैसे हुए? यदि तुमको इसका कुछ वृत्तान्त विदित हो तो सत्य सत्य कहो—झूठ न बोलना ॥ ६९ ॥ ७० ॥ इंद्रने कहा। माता ! आपका अभिप्राय जान कर मैं आपके निकट आया। मेरी बुद्धि अपने स्वार्थ पर थी, मुझे धर्मका कुछ भी ध्यान न था; इसीसे मैंने आज अवकाश पा कर आपके गर्भके टुकड़े कर डाले ॥ ७१ ॥ मैंने पहले गर्भके सात खण्ड किये, किन्तु वे सात खण्ड सात बालक हो गये। तब फिर एक एकके सात खण्ड किये, तब भी वे न मरे और उञ्चास बालक हो गये ॥ ७२ ॥ उस समय यह आश्चर्य देख कर मैंने निश्चय कर लिया कि आप महापुरुष भगवान्‌की आराधना करके किसी अमोघ सिद्धिको प्राप्त हुई हैं ॥ ७३ ॥ जो व्यक्ति निष्काम भावसे भगवान्‌की आराधना करनेका प्रयत्न करते हैं—मोक्षकी भी कामना नहीं करते वे अत्यन्त स्वार्थ-निपुण हैं ॥ ७४ ॥ अध्यात्म ज्ञान देनेवाले आत्मस्वरूप देव जगदीश्वरकी आराधना करके कौन विज्ञ व्यक्ति विषयभोगकी प्रार्थना करेगा? विषयभोग तो नरकमें भी प्राप्त होते हैं ॥ ७५ ॥ हे माता! आप बड़ी हैं और मैं अज्ञ हूँ, मेरी दुष्टताको क्षमा करो। बड़े भाग्यकी बात है कि आपका गर्भ मर कर फिर जी गया! ॥ ७६ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! तदनन्तर दितिने इंद्रकी सरलता पर सन्तुष्ट हो कर उनका अपराध क्षमा किया; इंद्र उनको प्रणाम करके मरुद्गण सहित स्वर्गको चले गये ॥ ७७ ॥

एवं ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥
मङ्गलं मरुतां जन्म किं भूयः कथयामि ते ॥ ७८ ॥

यह मरुद्गणके मंगलमय जन्मका विवरण हमने तुम्हारे आगे वर्णन किया, अब और क्या वर्णन करें? ॥ ७८ ॥

इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंश अध्याय ।

दितिके किये हुए व्रतका विस्तृत वर्णन ।

राजोवाच—व्रतं पुंसवनं ब्रह्मन्भवता यदुदीरितम् ॥
तस्य वेदितुमिच्छामि येन विष्णुः प्रसीदति ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने कहा कि ब्रह्मन्! आपने जिस पुंसवन व्रतका वर्णन किया उससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। आप उसकी विधि विस्तारसे कहिये; मेरी सुननेकी इच्छा है ॥ १ ॥ **श्रीशुकदेवजीने** कहा कि अगहन महीनेके शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको स्त्री अपने स्वामीकी आज्ञासे सब कामनाओंके देनेवाले पुंसवन व्रतकी दीक्षा ग्रहण करे ॥२॥ मरुद्गणके जन्मकी कथा सुन कर, ब्राह्मणोंकी अनुमति ग्रहण कर दन्तधावन और स्नान करे, शुक्ल अलंकार और वस्त्र धारण करे। प्रथम भोजनके पहले लक्ष्मी-नारायणकी पूजा करे ॥ ३ ॥ और यों कहे कि हे पूर्णकाम! एक आप ही सब विषयोंमें समर्थ सर्वशक्तिमान् हैं, क्योंकि आप निरपेक्ष हैं, आपको प्रणाम है। आप महाविभूतिपति हैं॥ ४ ॥ हे ईश! आपमें दया, धैर्य, तेज, सामर्थ्य, महिमा और अन्यान्य सब गुण यथोचित रूपसे वर्तमान हैं; इसी कारण आप भगवान् एवं प्रभु हैं ॥ ५ ॥ हे विष्णुकी पत्नी महामाया! महापुरुष नारायणके सब ही लक्षण आपमें हैं। हे महाभागे! मुझ पर प्रसन्न होइये। हे जगदम्ब! आपको प्रणाम है ॥ ६ ॥ तदनन्तर एकाग्र हो कर "महानुभाव महाविभूतिपति भगवान् महापुरुषको और महाविभूतियोंको प्रणाम करता हूँ और उनके लिये पूजोपहार अर्पण करता हूँ" इस मन्त्रसे प्रतिदिन आवाहन, पाद्य, आचमनका जल, अर्घ्य, स्नानका जल, वस्त्र, यज्ञोपवीत आभूषण, गंध, पुष्प, धूप और दीप, नैवेद्य आदि षोड़शोपचार द्वारा विष्णुका पूजन करे। तदनन्तर अग्निस्थापन कर भगवान् महापुरुष महाविभूतिपतिके उद्देशसे "ओं नमः" इस मंत्रके द्वारा पूजाके बचे हुए सामानसे उस अग्निमें बारह आहुतियाँ देवे ॥ ७ ॥ लक्ष्मी और विष्णु दोनो ही वरदायक एवं मङ्गलकारी हैं। यदि सम्पूर्ण सम्पत्तियोंकी कामना हो तो नित्य भक्तिपूर्वक इनकी पूजा करे और भक्ति द्वारा नम्रचित्त हो पृथ्वी पर दण्डवत् प्रणाम करे। दश बार उक्त मन्त्रका जप करके इस मन्त्रका पाठ करे कि "आप दोनो ही विश्वके प्रभु हैं एवं जगत्‌के परम कारण हैं। यह लक्ष्मीजी सूक्ष्मप्रकृति एवं दुर्निवार मायाशक्ति हैं और आप इनके अधीश्वर साक्षात् परमपुरुष हैं। आप सम्पूर्ण यज्ञ और यह इज्या (यज्ञको निष्पन्न करनेवाला कार्यविशेष) हैं; यह क्रिया हैं और आप फल भोगनेवाले हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ यह देवी गुणोंका प्रकाश हैं और आप गुणोंके प्रकाशक एवं भोक्ता हैं; आप सब देहधारियोंके आत्मा हैं, और लक्ष्मीदेवी शरीर,

इन्द्रिय एवं प्राण हैं; भगवती नाम और रूप हैं एवं आप उनके प्रकाशक एवं आश्रय हें ॥ १३ ॥ हे पवित्रकीर्ते! आप त्रिलोकको वर देनेवाले एवं परमेश्वर हैं यह जैसे सत्य है वैसे ही मेरी महामङ्गलमय कामनाएँ सत्य हों" ॥ १४ ॥ इस प्रकार वर देनेवाले लक्ष्मीयुक्त लक्ष्मीपतिकी स्तुति करके अर्पण किये हुए उपहारोंको वहाँसे हटावे; फिर आचमन कराकर पूजन करे ॥ १५ ॥ भक्तिपूर्ण चित्तसे स्तोत्र पढ़ कर स्तुति करे और यज्ञोच्छिष्टको सूँघ कर हरिकी पूजा करे ॥ १६ ॥ एवं परम भक्तिपूर्वक ईश्वरभावसे प्रियवस्तु और प्रियकर्मोंसे अपने स्वामीकी सेवा करे। पति भी प्रेमपूर्वक स्वयं पत्नीके छोटे और बड़े कामोंमें अनुकूल आचरण करे। स्त्रीपुरुष दोनोमें कोई कर्म एकके करनेसे दोनो उसके फलभागी होते हैं ॥ १७ ॥ अतएव पत्नी यदि किसी समय यह व्रत करनेके (रजोधर्म आदिके कारण) अयोग्य हो तो पति ही एकाग्रचित्त हो कर व्रतका पालन करे। राजन्! भगवान्के इस व्रतकी दीक्षा लेकर ऐसा करे जिसमें समाप्त होनेके पहले किसी प्रकारकी बाधा न हो ॥ १८ ॥ स्त्री नियमसे प्रतिदिन भक्तिपूर्वक माला, चन्दन, पूजोपहार और अलङ्कारोंसे ब्राह्मण एवं सधवा स्त्रियोंकी पूजा एवं भगवान्की आराधना करे ॥ १९ ॥ फिर आराध्यदेव लक्ष्मीनारायणका विसर्जन करके पहले उनको जो २ वस्तुएँ अर्पण की थीं उन्हे आत्माकी शुद्धि एवं सब कामनाओंकी समृद्धिकी वृद्धिके लिये कुछ खा ले ॥ २० ॥ वह साध्वी स्त्री इस भाँति पूजाका अनुष्ठान करते हुए बारह महीने बिता कर कार्तिक मासके अन्तिम दिनमें उपवास करे ॥ २१ ॥ प्रातःकाल होने पर दूसरे दिन आचमन करके श्रीकृष्णकी पूजा करे। फिर उस स्त्रीका पति पाकयज्ञ-विधिके अनुसार दूधमें पके हुए घृत मिले चरु (खीर) से बारह आहुतियाँ देवे ॥ २२ ॥ फिर ब्राह्मणोंके दिये हुए आशीर्वादोंको शिर झुका कर ग्रहण करे एवं भक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम करे तथा ब्राह्मणोंकी अनुमतिसे उस चरुको भोजन करे ॥ २३ ॥ फिर आचार्यको आगे करके वाक्यसंयमपूर्वक बन्धु-बान्धव-सहित पत्नीके निकट जा कर सत्पुत्र और सौभाग्य देनेवाला उस चरुका शेषभाग भोजन करनेके लिये देवे ॥ २४ ॥ राजन्! इस विष्णुके व्रतको विधिपूर्वक करनेसे पुरुषको मनचाही वस्तु मिलती है, तथा स्त्रियोंको यह व्रत करनेसे सौभाग्य, सम्पत्ति, सन्तान, अवैधव्य, यश और भवन इत्यादि इच्छानुसार मिलते हैं ॥ २५ ॥ कुमारी कन्याको सब सुलक्षणोंसे पूर्ण पति प्राप्त होता है; विधवा स्त्री निष्पाप गति पाती है। जिस स्त्रीके पुत्र हो कर मर जाते हैं उसके पुत्र हो कर जीवित रहते हैं। दुर्भागिनी स्त्री, धनेश्वरी और सौभाग्यशालिनी होती है एवं कुरूपा स्त्री सुन्दर रूप पाती है। रोगी पुरुष असाध्य रोगोंसे मुक्त हो कर इन्द्रिय-पाटवयुक्त सुस्थ शरीरवाला

(चंगा) हो जाता है । जो व्यक्ति आभ्युदयिक श्राद्धादिके समयमें इस उपाख्यानको पढ़ते हैं उनके पितरोंको एवं देवगणको अनन्त तृप्ति होती है ॥ २६ ॥ २७ ॥

तुष्टाः प्रयच्छन्ति समस्तकामान्होमावसाने हुतभुक् श्रीर्हरिश्च ॥
राजन्महन्मरुतां जन्म पुण्यं दितेर्व्रतं चाभिहितं महत्ते ॥ २८ ॥

होमके अन्तमें हुतभुक् अग्नि, हरिकी प्रिया लक्ष्मीजी एवं हरि भगवान् ये सन्तुष्ट हो कर सब कामनाएँ पूर्ण करते हैं। हे राजन्! मरुद्गणका यह पुण्यप्रद और महत् जन्मचरित्र एवं दितिके महाव्रतका विवरण हमने तुमसे वर्णन किया ॥ २८ ॥

इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

समाप्तोयं षष्ठस्कन्धः ।





शुकोक्तिसुधासागरः।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

सप्तमस्कन्धः।



नृसिंह अवतार ।

॥ श्रीः ॥

शुकोक्तिसुधासागरः।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

सप्तमस्कन्धः ।



प्रथम अध्याय ।

युधिष्ठिर और नारदका सम्वाद ।

राजोवाच–समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन्भूतानां भगवान्स्वयम् ॥
इन्द्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधीद्विषमो यथा ॥ १ ॥

राजापरीक्षित् बोले । भगवन् ! भगवान् सर्वत्र समदर्शी, सब प्राणियोंके प्रिय और सुहृत् हैं । उन्होने भेदबुद्धिवाले सामान्य मनुष्यकी भाँति इंद्रका पक्ष लेकर दैत्योंको क्यों मारा ? ॥१॥ वह साक्षात् परमानंदस्वरूप हैं, इस कारण सुरगणसे उनको कोई प्रयोजन न था । वह निर्गुण हैं, इस लिये असुरगणसे उनको कोई भय नहीं है, अतएव विद्वेष होना असम्भव है ॥ २ ॥ हे महाभाग ! नारायणके गुणों पर हमको पूर्वोक्त प्रकारका सन्देह हुआ है । आप इसको निवृत्त करिये ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले । महाराज ! आपने उत्तम प्रश्न किया । हरिके चरित्र अद्भुत हैं । हरिके भक्त प्रह्लादका माहात्म्य विष्णुभक्तिको बढ़ानेवाला है ॥ ४ ॥ उस परम पवित्र प्रह्लादके माहात्म्यको नारद आदि

ऋषिगण सदा सादर गाते हैं। अब मैं व्यासदेवजीको प्रणाम करके वही हरिकथा कहता हूँ॥ ५॥ भगवान् प्रकृतिसे विभिन्न और निर्गुण हैं, अतएव उनमें रागद्वेषादिके होनेका कोई कारण नहीं है। यद्यपि वह अजन्मा और अव्यक्त अर्थात् शरीरादिरहित हैं तथापि अपनी मायाके गुणोंका आश्रय ले कर आप ही बाध्य और आप ही बाधक भावको प्राप्त होते हैं॥ ६॥ सत्त्व, रज एवं तम–ये तीनो मायाके गुण हैं, आत्माके नहीं। राजन्! एक समय ही उक्त तीनो गुणोंकी हीनावस्था या वृद्धि नहीं होती॥ ७॥ सत्वगुण कालके अनुकूल अपनी वृद्धिके समय देवता व ऋषियोंके शरीरोंमें प्रवेश कर उनकी वृद्धि करता है। वैसे ही रजोगुण अपनी वृद्धिके समय असुरोंकी एवं तमोगुण अपनी वृद्धिके समय राक्षसोंकी वृद्धि करता है॥ ८॥ जैसे तेज आदि तत्त्व काष्ठ आदि पदार्थोंमें अनेक रूपसे प्रकाशित होते हैं वैसे ही परमात्मा भी अनेक शरीरोंमें अनेक रूपोंसे प्रकाशित होते हैं, देहसे विभिन्न नहीं जान पड़ते। पण्डितगण (कार्य दर्शन करते हुए स्वभावकर्मादि-वाद-निषेधपूर्वक) विचार करके अपनेमें स्थित आत्माको अन्तःकरणमें खोजनेसे जान पाते हैं॥ ९॥ परमेश्वर जब नाना प्रकारके शरीरोंकी सृष्टि करना चाहते हैं तब अपनी मायाके द्वारा रजोगुणको अलग उत्पन्न करते हैं और जब वह इन सब शरीरोंमें क्रीड़ा करनेकी अभिलाषा करते हैं तब सत्त्वगुणकी अलग सृष्टि करते हैं एवं जब इन शरीरोंके संहारकी इच्छा करते हैं तब तमोगुणकी सृष्टि करते हैं॥ १०॥ हे नरेन्द्र! भगवान् प्रकृति-पुरुषको निमित्त करके जो करते हैं वह अमोघ है। प्रकृति-पुरुषके सहायक कालकी सृष्टि ईश्वर ही करते हैं। राजन्! यह काल सत्त्वगुणको ही बढ़ाता है –इसी कारण महायशस्वी सुरप्रिय ईश्वर भी सत्वगुणप्रधान देवगणकी वृद्धि एवं रजोगुण व तमोगुणके आगार और वेदोंके प्रतिद्वंद्वी असुरोंका संहार करते हैं॥ ११॥ १२॥ हे राजन्! अजातशत्रु युधिष्ठिरने अपने महाराजसूय यज्ञमें नारदसे यही प्रश्न किया था; तब देवर्षिने सन्तुष्ट हो कर इसी विषयका एक प्राचीन इतिहास उनसे कहा था॥ १३॥ राजन्! चेदिराज शिशुपालको वासुदेव भगवान्के द्वारा सायुज्य मुक्ति प्राप्त हुई। राजसूययज्ञमण्डपमें यह अद्भुत व्यापार निहार कर पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिरने विस्मित हो सभामें बैठे हुए नारदसे मुनियोंके आगे यह प्रश्न किया॥ १४॥ **युधिष्ठिरने कहा।** अहो! यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि हरिके एकान्त भक्तोंके लिये भी परमतत्त्व वासुदेवमें सायुज्य पाना दुर्घट है, किन्तु चेदिराज शिशुपालने शत्रु हो कर भी सहजमें ही उसे पा लिया। हे मुनिवर! ब्राह्मणोंने भगवान्की निंदा करनेसे वेन राजाको नरकमें डाल दिया, किन्तु पापी शिशुपाल एवं दुर्मति दन्तवक्त्र जबसे तुतलाके बोलने लगे थे तबसे आज तक भगवान्से द्वेष ही करते आये। उन्होने अविनाशी परब्रह्म विष्णुको

बार २ अनेक कटु वचन कहे तो भी उनकी जिह्वामें कुष्ट न हो गया एवं वे घोर नरकमें नहीं गिरे; हम इसका कारण जानना चाहते हैं॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ सब लोगोंके सामने वे कैसे दुर्लभस्वरूप भगवान्‌में सहज ही लीन हो गये? ॥१९॥ जैसे वायुके झकोरोंसे दीपशिखा चंचल होती है वैसे ही इस घटनासे मेरी बुद्धि अस्थिर हो रही है। इसमें अवश्य ही कोई आश्चर्यमय कारण है; आप सर्वज्ञ हैं, अतएव कृपा करके हमारा संशय दूर करिये ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि भगवान् नारद ऋषि राजा युधिष्ठिरके पूर्वोक्त वाक्य सुन कर सन्तुष्ट हुए एवं सब सभासदोंके आगे यों कहनेलगे ॥ २१ ॥ नारदजी बोले । राजन्! निंदा, स्तुति एवं सत्कार व तिरस्कारका अनुभव करनेके लिये प्रकृति और पुरुषके अविवेकसे इस शरीरकी कल्पना हुई है ॥ २२ ॥ हे महीनाथ! इस देहमें अभिमान होनेके कारण प्राणियोंमें "मैं हूँ" "मेरा है" इस भाँतिका विषमभाव देखा जाता है। संसारमें इसी विषमभावके कारण पीड़न, ताड़न एवं निन्दा होती है ॥ २३ ॥ जिस देहमें अभिमान है उसीके विनाशसे प्राणियोंका भी नाश होता है; किन्तु ईश्वर अद्वितीय और सबके आत्मा हैं, उनको उक्त प्रकारका अभिमान नहीं है, अतएव उनको पीड़ा कैसे हो सक्ती है? परन्तु वह ईश्वर हितके लिये दूसरोंको दण्ड अवश्य देते हैं॥ २४ ॥ अतएव अत्यन्त शत्रुता, भक्ति, भय, स्नेह वा अभिलाषासे, जिस किसी उपायसे हो, उस ईश्वरमें मन लगावे । इन उक्त उपायोंके सिवा ईश्वरके साक्षात्कारका और कोई उपाय नहीं है ॥ २५ ॥ शत्रुताके द्वारा मनुष्य जैसे तन्मय हो सक्ता है, वैसे भक्तियोगसे नहीं हो सक्ता, ऐसा मुझको निश्चय है ॥ २६ ॥ एक कीड़ा होता है, उसको भ्रमर अपने स्थानमें ला कर वंदी करता है, तब वह द्वेष और भयके मारे भ्रमरका ध्यान करते २ भ्रमर ही हो जाता है ॥ २७ ॥ इसी प्रकार शिशुपाल और दन्तवक्र माया-मनुष्य साक्षात् ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णसे वैर कर सर्वदा उनका ध्यान करनेसे निष्पाप हो कर उन्हींमें लीन हो गये। इसमें आश्चर्य ही क्या है? ॥ २८ ॥ अनेक लोग काम, द्वेष, भय, स्नेह अथवा उपयुक्त भक्तिसे ईश्वरमें मन लगा कर कामादिकृत पापसे मुक्ति पानेके बाद भगवान्‌को प्राप्त हुए हैं॥ २९ ॥ राजन्! कामसे गोपियाँ, भयसे कंस, द्वेषसे शिशुपाल आदि नरपति, सम्बन्धसे वृष्णिवंशी यादवगण, स्नेहसे तुम लोग एवं भक्तिसे हम लोग उन हरिको प्राप्त हुए हैं ॥३०॥ किन्तु वेनने उक्त पाँच उपायोंमेंसे किसी उपायको ग्रहण कर कृष्णका ध्यान नहीं किया, और इसीसे उनको नहीं प्राप्त हुआ। अतएव जिस किसी उपायसे हो कृष्णमें मन लगाना चाहिये ॥ ३१ ॥ हे पाण्डवेय! तुम्हारे मौसीके लड़के शिशुपाल और दन्त-वक्र दोनो ही विष्णुके पार्षद थे। वे ब्राह्मणशापसे पदच्युत हो गये थे ॥ ३२ ॥ युधिष्ठिरजीने पूछा कि जिस शापने विष्णुके भक्तों पर आक्रमण किया वह कैसा और

किसका था? हरिके अनन्य भक्तोंका फिर जन्म होनेकी बात विश्वासके योग्य नहीं जान पड़ती ॥ २३ ॥ शुद्ध सत्त्वमय शरीरवाले वैकुण्ठवासियोंका प्राकृत देह और इंद्रिय व प्राणोंसे सम्बन्ध नहीं है। फिर उनको प्राकृत देहका बन्धन कैसे हुआ? सो आप हमसे कहिये ॥२४॥ **नारदजीने कहा**। एक समय ब्रह्माके पुत्र सनन्दन आदि ऋषिगण त्रिभुवनमें घूमते २ इच्छानुसार विष्णुलोकमें उपस्थित हुए ॥ २५ ॥ वे सबसे प्रथम उत्पन्न मरीचि आदि ऋषियोंके भी अग्रज हैं, किन्तु देखनेमें पाँच छः वर्षके बालकोंके समान और दिगम्बर हैं। दोनो द्वारपालोंने उनको बालक जान कर भीतर प्रवेश करनेसे रोका ॥ ३६ ॥ तब उन्होने कुपित होकर यह शाप दिया कि तुम दोनो रजोगुण एवं तमोगुणसे रहित मधुसूदन भगवान्के चरण-कमलोंके निकट वास करनेके योग्य नहीं हो ॥ ३७ ॥ इस कारण निर्बोध, पापिष्ट तुम दोनो—इस स्थानसे भ्रष्ट हो कर शीघ्र ही दुष्ट असुर योनिमें जन्म लेओ। इस प्रकार शाप देनेपर जब वे दोनो द्वारपाल अपने स्थानसे नीचे गिरने लगे तब दयालु ऋषियोंने दया करके फिर कहा कि तुम तीन जन्मके बाद फिर अपने स्थानको प्राप्त होओगे ॥ ३८ ॥ वे ही दोनो आ कर दैत्यदानव-वन्दित दितिके पुत्र हुए। उनमें हिरण्यकशिपु बड़ा था और हिरण्याक्ष छोटा ॥ ३९ ॥ हरिने नृसिंह अवतार ले कर हिरण्य कशिपुका वध किया और हिरण्याक्षको पृथ्वीका उद्धार करते समय वाराह अवतारमें मारा ॥ ४० ॥ हिरण्यकशिपुने अपने हरिभक्त पुत्र प्रह्लादको मारनेके लिये अनेक उपाय किये और घोर दुस्सह यन्त्रणाएँ दीं ॥ ४१ ॥ किन्तु हरिके ध्यानसे सब प्राणियोंके आत्मस्वरूप, शान्त और समदर्शी प्रह्लादकी रक्षा तो भगवान्का तेज कर रहा था, इस लिये अनेक उपाय करके भी हिरण्य-कशिपु उनको नहीं मार सका ॥ ४२ ॥ तदनन्तर उन दोनो पार्षदोंने विश्रवा मुनिके वीर्य द्वारा केशिनीके गर्भसे जन्म लिया। उस जन्ममें वे दोनो रावण और कुम्भकर्ण नामसे प्रसिद्ध हुए और सब लोकोंको पीड़ित करने लगे ॥ ४३ ॥ तब भगवान्ने रामावतार ले कर शापसे मुक्त करनेके लिये उनको मारा। राजन्! तुम मार्कण्डेय ऋषिके मुखसे रामचंद्रके चरित्रको सुनोगे ॥ ४४ ॥ फिर वे ही दोनो हरिपार्षद इस समय क्षत्रिय वंशमें तुम्हारी मौसीके पुत्र हो कर उत्पन्न हुए। इस समय कृष्ण भगवान्के चक्रप्रहारसे निष्पाप हो कर शापसे मुक्त हो गये ॥४५॥ उन दोनो विष्णुके पार्षदोंने बहुत दिनों तक वैरभावसे एकाग्रचित्त हो कर विष्णुका ध्यान किया, उसीका फल यह हुआ कि अच्युतमें लीन हो कर हरिधामको गये ॥४६॥

युधिष्ठिर उवाच—विद्वेषो दयिते पुत्रे कथमासीन्महात्मनि ॥
ब्रूहि मे भगवन्येन प्रह्लादस्याच्युतात्मता ॥४७॥

युधिष्ठिरजीने कहा कि भगवन्! हिरण्यकशिपुने अपने महात्मा एवं प्रिय

पुत्रसे क्यों विद्वेष किया एवं प्रह्लादकी ही असुरस्वभावके विपरीत श्रीकृष्णमें एकाग्र भक्ति क्यों हुई ? सो हमसे कहिये ॥ ४७ ॥

इति श्रीभागवते सप्तमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय ।

हिरण्यकशिपुका भ्रातृजगणके शोकको दूर करना व समझाना ।

नारद उवाच—भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना ॥
हिरण्यकशिपू राजन्पर्यतप्यद्रुषा शुचा ॥ १ ॥

नारदजी बोले । हे राजन्! भगवान्ने देवगणका मंगल करनेके लिये वाराह अवतार ले कर हिरण्यकशिपुके भाई हिरण्याक्षको मार डाला, तब हिरण्यकशिपु क्रोध और शोकसे परम सन्तप्त हुआ ॥ १ ॥ एवं क्रोधके कारण अपने ओठोंको चबाते हुए कोपोद्दीप्त दोनो नेत्रोंसे क्रोधाग्निके धूमसे धूसरित आकाशकी ओर देखने लगा ॥ २ ॥ कराल दंष्ट्रा और उग्र दृष्टि एवं वक्र भ्रुकुटियोंसे उसका मुखमण्डल दुष्प्रेक्ष्य हो गया । दानव हिरण्यकशिपु सभाके बीच शूल उठा कर दानवोंसे यों कहने लगा ॥ ३ ॥ "हे दानव दैत्यगण! द्विमूर्द्धा, त्र्यक्ष, शम्बर, शतबाहु, हयग्रीव, नमुचि, पाक, इल्वल, ॥४॥ विप्रचित्ति, पुलोमा, शकुन आदिक! पहले मेरे वचनोंको सुनो, तदनन्तर उसीके अनुसार शीघ्र कार्य करो, विलम्ब न करना ॥ ५ ॥ क्षुद्र शत्रुओंने मेरे प्रिय और परम सुहृद् सहोदर भाईको मार डाला है । भगवान् हरि सर्वत्र समदर्शी कहलाते हैं, किन्तु उन्होने उपासना करनेके कारण हमारे शत्रु देवगणकी सहायता की है; अतएव हरिका अब वह स्वभाव नहीं है ॥ ६ ॥ यद्यपि वह तेजोमय और शुद्ध हैं, तथापि मायावश वाराह-रूप धारण करनेसे इस समय बालकोंके समान अव्यवस्थितचित्त हो गये हैं, जो उपासना करता है उसीकी ओर हो जाते हैं ॥ ७ ॥ मैं अपने इसी त्रिशूलसे उनका कण्ठ काट कर उनके गर्म रुधिरसे अपने रुधिर-प्रिय भाईका तर्पण करूँगा, ऐसा होनेसे मेरे मनकी व्यथा दूर हो जायगी ॥ ८ ॥ मैं जानता हूँ कि वृक्षकी जड़ कटने पर जैसे सब शाखाएँ सूख जाती हैं वैसे ही उन कपटशत्रु हरिके नष्ट होने पर देवगण भी आप ही आप नष्ट हो जायँगे; क्योंकि विष्णु ही उनका प्राण हैं ॥ ९ ॥ पृथ्वीमण्डल ब्राह्मण और क्षत्रियोंसे परिपूर्ण है; वहाँ जा कर तप, यज्ञ, वेदाध्ययन, व्रत और दान आदि सत्कार्य करनेवाले मनुष्योंका संहार करनेमें प्रवृत्त होओ ॥ १० ॥ ब्राह्मणोंको विष्णुके मिलनेका मूल यज्ञ ही है, क्योंकि विष्णु ही यज्ञरूपी धर्ममय हैं-वह देवता, ऋषि, पितर और प्राणिगण एवं धर्मका परम

आश्रय हैं ॥ ११ ॥ जहाँ २ गो, ब्राह्मण, वेद और वेदविहित आश्रमोचित कर्म होते देखो उसी २ नगर और जनपदमें जा कर उसको जला दो एवं नष्टप्राय कर दो" ॥ १२ ॥ हिरण्यकशिपुके आदर-पात्र एवं संहारप्रिय दानवगण अपने स्वामीकी इस आज्ञाको सादर ग्रहण करके उसीके अनुसार प्रजाके संहारमें प्रवृत्त हुए ॥१३॥ उनके अत्याचारसे पुर, ग्राम, व्रज, उद्यान, अन्नके खेत, आराम, आश्रम, खनियाँ, खेट, खर्वट, आभीरपल्ली एवं पत्तन सब दग्ध एवं शून्य होने लगे ॥१४॥ कोई २ दानव खनित्र (खोदनेके शस्त्रों)के द्वारा सेतु, प्राचीर आदिको खोद कर गिराने लगे। किसीने कुल्हाड़ियोंसे फूले फले वृक्षोंको काट डाला। किसीने जलती हुई लकड़ियोंसे प्रजागणके घर जलाना आरम्भ किया ॥ १५ ॥ राजन्! दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुके अनुचरगण इस प्रकार वारम्वार लोकका अपकार करने लगे, तब देवगण यज्ञभागके न मिलनेसे स्वर्गको त्याग कर अलक्षितभावसे पृथ्वी पर विचरने लगे ॥ १६ ॥ इधर अवसर जाननेवाले दुःखित हिरण्यकशिपुने अपने मरे हुए भाईका श्राद्ध और तर्पण किया और फिर शकुनि, शम्बर, धृष्टि, भूतसन्तापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु और उत्कच आदि भाईके पुत्रोंको और उनकी माता एवं अपनी अनुजवधू भानुको व माता दितिको इस प्रकार मधुर वचनोंसे समझाने लगा ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ **हिरण्यकशिपु कहने लगा** कि हे माता! हे वधू! हे पुत्रगण! मेरे वीर भाईके लिये तुम लोगोंका यों शोकाकुल होना उचित नहीं है। वीर पुरुषोंके लिये शत्रुके सामने शरीर त्यागना ही प्रशंसनीय और प्रार्थनीय है ॥ २० ॥ हे सुव्रते! जैसे प्रपा (पौंसाले) पर अनेक मनुष्य कुछ कालके लिये आ कर मिल जाते हैं वैसे ही संसारमें प्राणियोंका सम्बन्ध है। वे अपने पूर्वकृत कर्मोंके फलसे कभी एकत्र हो जाते हैं और कभी अलग २ चले जाते हैं ॥ २१ ॥ वास्तवमें आत्मा अमर अर्थात् नित्य, अव्यय, निर्मल, सर्वगत एवं सर्वज्ञ है, क्योंकि वह देहादि असत् पदार्थोंसे भिन्न है। आत्मा अपनी अविद्याके द्वारा सुख, दुःखादि स्वीकार करते हुए लिंगशरीरको ग्रहण करता है ॥ २२ ॥ जैसे जलके हिलने पर उसमें प्रतिबिम्बित वृक्ष भी हिलते हुए जान पड़ते हैं और जैसे दृष्टिके घूमते रहनेमें पृथ्वी भी घूमती जान पड़ती है ॥ २३ ॥ हे भद्रे! वैसे ही मायिक गुणोंके द्वारा मनके भ्रान्त होनेसे परिपूर्ण पुरुष आत्मा, लिंगशरीरसे हीन होने पर भी, उस मनके समान प्रतीत होता है ॥ २४ ॥ यह आत्मामें शरीर बुद्धि ही आत्मविपर्यास कहाता है। इस आत्मविपर्यासके होनेसे ही प्रियसे वियोग और अप्रियसे संयोग एवं कर्म और संसार (जन्म-मरण) की उत्पत्ति होती है ॥ २५ ॥ इसी आत्मविपर्यासके कारण जन्म, मृत्यु, विविध शोक, अविवेक, चिन्ता एवं विवेक-(आत्मज्ञान) की विस्मृति होती है ॥ २६ ॥ किसी व्यक्तिसे वियोग होने पर

मनुष्यगण वृथा ही शोक करते हैं। पण्डितगणने इसका उदाहरणस्वरूप एक इतिहास वर्णन किया है, जिसमें किसी मृत व्यक्तिके बान्धवोंसे यमराजका सम्वाद है। वह हमसे सुनो ॥ २७ ॥ उशीनर देशमें सुयज्ञ नाम एक विख्यात राजा था, वह शत्रुओंके हाथों युद्धमें मारा गया, जातिवाले उसके मृत शरीरको घेरकर शोच करने लगे ॥ २८ ॥ उसका रत्नजटित कवच छिन्न भिन्न हो गया था, माला और आभूषण आदि इधर उधर बिखरे पड़े थे; हृदय तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे फट कर रुधिरसे भीग गया था ॥ २९ ॥ बाल खुले हुए थे, नेत्रोंकी प्रभा हीन हो गई थी एवं क्रोधके कारण जैसे जीवित अवस्थामें ओठसे ओठ दबाया था वैसे ही वह दबा हुआ था, उसका मुखकमल युद्धभूमिकी धूरसे भरा हुआ एवं भुजा व आयुध छिन्न भिन्न पड़ेथे ॥ ३० ॥ उशीनरनाथको इस दशासे युद्धभूमिमें विधि-विपाक-वश पड़े हुए देख कर उसकी रानियाँ बहुत ही दुःखित हुईं और दोनो हाथोंसे छाती पीटती हुई और "हाय ! हम मर गईं" कहती हुई पतिके पैरोंपर गिर पड़ीं॥३१॥ कुच-कुंकुम-राग-रंजित आँसुओंके जलसे प्रिय पतिके चरणकमलोंको भिगोती हुई रानियाँ ऊँचे स्वरसे रोने लगीं। उनके केश खुल कर बिखर गये और आभूषण खुल २ कर गिर पड़े। फिर वे रानियाँ करुणापूर्ण स्वरसे सुननेवालोंके हृदयोंको शोकाकुल करती हुई यों विलाप करने लगीं ॥ ३२ ॥ "अहो अहो, हे नाथ! निर्दय विधाताने जो तुम्हारी दशा की है सो हमसे देखी नहीं जाती ! पहले तुम उशीनरदेशवासियोंके अन्नदाता और प्रतिपालक थे, किन्तु अब विधाताने तुमको शोचनीय बना दिया ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! तुम कृतज्ञ एवं हमारे परम सुहृद् थे; हम तुम्हारे बिना कैसे जीवित रह सक्ती हैं? अतएव हे वीर ! तुम जहाँ जाते हो, वहीं हमको भी अपने पीछे चलनेकी अनुमति देओ; हम वहाँ भी तुम्हारे चरणोंकी सेवा करेंगी" ॥३४॥ यों मरे हुए पतिके शवको गोदमें लिये विलाप कर रही रानियोंको दिन भर बीत गया, सूर्य अस्त हो गये; पर उन्होने पतिके शरीरको जलानेके लिये नहीं दिया ॥ ३५ ॥ उस समय यमराजजी मृत-राजाके बन्धुओंके रोनेकी ध्वनि सुन बालकका रूप धर कर स्वयं वहाँ आये और उनसे यों कहने लगे ॥ ३६ ॥ "अहो, ये सब लोग मुझसे अधिक अवस्थाके हैं, और लोगोंके नित्य उत्पन्न होने व मरनेका चरित्र देखते भी हैं तथापि इनको कैसा मोह है ! मनुष्य जहाँसे आया वहीं गया, उसके लिये शोच करना वृथा है। इनको भी एकदिन मरना होगा ॥ ३७ ॥ अहो ! हम ही धन्य हैं, क्योंकि पिता माताके छोड़ देने पर भी कुछ चिन्ता नहीं करते; हम दुर्बल हैं तो भी भेंड़िये आदि हिंस्र जीव हमको नहीं खा जाते; जिसने गर्भमें रक्षा की है वही अब भी रक्षा करनेवाला है ॥ ३८ ॥ हे अबलागण! पण्डित लोग कहते हैं कि यह चराचर जगत् उसी अव्यय परमेश्वरकी क्रीड़ाकी सामग्री है जो अपनी इच्छाके अनुसार विश्वको उत्पन्न करके उसका

पालन और संहार करनेमें समर्थ हैं ॥ ३९ ॥ ईश्वर जिसकी रक्षा करता है वह राहमें पड़ा रहे तो भी नष्ट नहीं हो सक्ता और घरमें भली भाँति रक्षित वस्तु भी ईश्वरके नष्ट करनेसे नष्ट हो जाती है। अनाथ भी ईश्वरके रक्षक होनेसे वनमें रह कर जी जाता है और ईश्वरके मारने पर घरमें भली भाँति रक्षित मनुष्य भी नहीं बच सक्ता ॥ ४० ॥ ये सब शरीर अपने कारण स्वरूप लिंगशरीरके द्वारा कृत कर्मोंके अधीन हो कर यथासमय उत्पन्न और नष्ट होते हैं। परन्तु इन शरीरोंमें अवस्थित हो कर भी इनके धर्म जो जन्मादि हैं उनसे आत्मा सम्पूर्ण विभिन्न है, क्योंकि वह देहादिसे पृथक् है ॥ ४१ ॥ "मैं दुवला हूँ, मैं मोटा हूँ" इत्यादि प्रयोगोंके स्थल पर जो पृथक्बोध नहीं होता उसका कारण यही है कि यह शरीर पञ्चभूतरचित एवं दृश्य है, अतएव आत्मासे विभिन्न है; किन्तु मोहके कारण पुरुषको यह शरीर आत्मा प्रतीत होता है । अत्यन्त अविवेकी जन भौतिक गृहको भी आत्मा जानते व मानते हैं। जल, पृथ्वी एवं तेजके परमाणुओंसे घठित अन्यान्य पदार्थोंकी भाँति यह शरीर भी यथासमय विकृत होकर नष्ट हो जाता है ॥ ४२ ॥ वायु जैसे देहके भीतर रह कर भी उससे पृथक् है, अग्नि जैसे लकड़ीके भीतर रह कर भी भिन्न है, आकाश जैसे सर्वव्यापी होकर भी संगशून्य है, वैसे ही आत्मा सब देह और इन्द्रियोंका आश्रय हो कर भी उनसे अलग है ॥४३॥ हे मूढ व्यक्तियो! तुम जिसके लिये शोक करते हो वह तुम्हारा स्वामी सुयज्ञ (अर्थात् उसका शरीर) तो यह पड़ा है! किन्तु मैं देखता हूँ कि यह न तुम्हारी सुनता है और न कुछ उत्तर देता है ॥ ४४ ॥ इन्द्रियप्रधान प्राण (वायु) देखने, सुनने और बोलनेवाला नहीं है; इसी देहमें रहनेवाला और इंद्रियोंके कार्योंका साक्षी आत्मा ही सुनने और बोलनेवाला है; वह प्राण और देहसे विभिन्न है ॥ ४५ ॥ उत्तम और अधम सब देह, पञ्चभूत, इंद्रिय एवं मनके द्वारा निर्मित होते हैं। इस देहसे भिन्न एवं विभु आत्मा ही अभिमानके द्वारा इस देहको ग्रहण करता है और बिवेकके बलसे फिर त्याग देता है ॥४६॥ हे मूढ़ो! आत्मा जब तक लिंगशरीरयुक्त रहता है तबतक उसके सब कर्म बन्धनका कारण होते हैं। उसके बाद विपर्यय (मोह) और फिर क्लेश उपस्थित होता है। परन्तु ये विपर्ययादि केवल मायामय हैं। गुण और गुणके कार्य सुखदुःखादिको परमार्थदृष्टिसे देखना और मानना मिथ्या अभिनिवेशमात्र है। स्वप्न और मनोरथके समान इन्द्रियसम्बन्धी सब प्रपञ्च अलीक है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ इस कारण ज्ञानी जन नित्य (आत्मा) अथवा अनित्य(शरीर)का शोच नहीं करते। स्वभावको अन्यथा करना असाध्य है, अतएव ज्ञान दृढ़ न होनेके कारण कोई २ प्रधान व्यक्ति भी शोकसे कातर होते हैं ॥ ४९ ॥ परमेश्वरके द्वारा निर्मित पक्षियोंका अन्तक एक व्याध, जहाँ २ पक्षी रहते थे उन्ही २

स्थानों पर दानेका ललच दे कर जाल फैला कर पक्षियोंको पकड़ा करता था ॥ ५० ॥ उस शिकारीने एक दिन कुलिंग पक्षीके जोड़ेको इधर उधर बिचरते हुए देखा। हे रानियो! उनमें उस पक्षीकी स्त्री दानेके लोभसे विधिवश व्याधके जालमें जा कर फँस गई। स्त्रीको इस प्रकार आपदामें पड़ते देख कर कुलिङ्गका अन्तःकरण बहुत ही दुःखित हुआ ॥५१॥५२॥ वह स्नेहवश कातर हो कर वनिताके लिये यों विलाप करने लगा—अहो! विधाता कैसा निठुर है! मेरी यह स्त्री दीन हो कर मुझ अभागेके लिये बार बार करुणा प्रकट करती हुई शोक कर रही है। विधाता, इसे लेकर क्या करेगा? ॥ ५३ ॥ यह स्त्री मेरा आधा शरीर है, इसका वियोग होनेसे मेरा आधा शरीर इस समय जीवित रह कर अत्यन्त दुःख पावेगा। इस दुःख मय जीवनसे व्यथित आधे शरीरसे मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है—दैव मुझे भी ग्रहण करे ॥५४॥ आहा! मेरे बच्चोंके अभी पर नहीं निकले, वे विना माताके हो गये, मैं उनका प्रतिपालन कैसे करूँगा? बच्चे अभी तक घोसलेमें माताके आनेकी राह देख रहे होंगे! ॥ ५५ ॥ कुलिंगपक्षी प्यारी स्त्रीके वियोगमें यों व्याकुल हो कर आँसू बहाता हुआ उसके पास विलाप कर ही रहा था कि उस पक्षियोंके कालने जैसे कालके द्वारा प्रेरित हो छिप कर वाण मारा, जिससे वह पक्षी भी मर गया ॥५६॥ उसी पक्षीकी भाँति तुम भी निर्बोध हो। अपनी अवश्य होनेवाली मृत्युकी ओर नहीं निहारते। एक सौ वर्ष तक यों ही शोक करने पर भी तुम अपने स्वामी सुयज्ञको नहीं पाओगे" ॥ ५७ ॥ हिरण्यकशिपु अपनी माता आदिसे कहता है कि बालकरूप यमके यों कहने पर उन सबको बड़ा विस्मय हुआ और उन्होने जान लिया कि सब ही वस्तुएँ अनित्य एवं मिथ्या हैं ॥ ५८ ॥ यम इतना उपाख्यान कह कर वहाँसे चले गये। तदनन्तर सुयज्ञ राजाके बन्धुओंने शोक त्याग कर उसका और्ध्वदेहिक कर्म किया ॥ ५९ ॥ अतएव तुमको भी दूसरेके लिये अथवा अपने लिये शोक करना उचित नहीं है। इस जगत्में अपना या पराया कौन वस्तु है? "यह अपना है, यह पराया है" ऐसा अभिनिवेश ही अज्ञान है। इसके सिवा प्राणियोंके अपने या परायेकी गणना नहीं हो सक्ती ॥ ६० ॥

नारद उवाच—इति दैत्यपतेर्वाक्यं दितिराकर्ण्य सस्नुषा ॥
पुत्रशोकं क्षणात्त्यक्त्वा तत्त्वे चित्तमधारयत् ॥ ६१ ॥

श्री नारदजी युधिष्ठिरसे कहते हैं कि अपनी वधूसहित दितिने दैत्यपतिके ये वाक्य सुन कर उसी समय पुत्रशोकको त्याग कर आत्मतत्त्वमें मन लगाया ॥ ६१ ॥

इति श्रीभागवते सप्तमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय ।

हिरण्यकशिपुका तप करके ब्रह्माजीसे वर पाना ।

नारद उवाच–हिरण्यकशिपू राजन्नजेयमजरामरम् ॥
आत्मानमप्रतिद्वन्द्वमेकराजं व्यधित्सत ॥ १ ॥

नारदजीने कहा । हे राजन्! हिरण्यकशिपुने संकल्प किया कि मैं अपनेको अजेय, अजर, अमर एवं शत्रुहीन अद्वितीय राजा बनाऊँगा ॥१॥ वह इस विचारसे मन्दराचलकी कन्दरामें ऊर्ध्वबाहु हो कर आकाशकी ओर दृष्टि किये केवल पैरके अँगूठेके सहारे खड़े रह कर घोर तप करने लगा ॥ २ ॥ प्रलयकालका सूर्य जैसे किरणजालसे विराजित हो वैसे ही इधर उधर बिखरी जटाओंकी कान्तिसे उस दैत्यकी शोभा हुई । जब हिरण्यकशिपु इस प्रकार तपमें तत्पर हुआ तब देवतागण फिर अपने २ लोकोंमें गये ॥ ३ ॥ कुछ काल पर तपोमय सधूम अग्नि उसके मस्तकसे निकल कर चारो ओर फैल गया एवं आसपास, ऊपर और नीचेके लोकोंको सन्तप्त करने लगा ॥ ४ ॥ उसकी तीव्र तपस्याके प्रभावसे नद, नदी और सागर क्षोभको प्राप्त हुए एवं पर्वत, द्वीपसहित पृथ्वी विचलित हो उठी तथा ग्रह, तारागण टूट २ कर गिरने लगे और दिशाओंमें दिग्दाह होने लगा ॥५॥ यह देख कर सन्तप्त देवगण घबड़ा कर स्वर्गलोकको छोड़ ब्रह्मलोकको चले गये और विधातासे कहनेलगे कि हे देवदेव! हे जगत्के स्वामी! दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुके तपके तेजसे तापको प्राप्त हो कर हम स्वर्गमें नहीं ठहर सक्ते । हे भूमन्! यदि उचित समझिये तो आपके भक्त हम लोगोंके नष्ट होनेसे पहले ही शान्तिका उपाय करिये ॥ ६ ॥ ७ ॥ यद्यपि आपको सब विदित है तो भी किस अभिप्रायसे वह इस प्रकारकी दुष्कर तपस्या कर रहा है सो हम निवेदन करते हैं-सुनिये ॥ ८ ॥ "जैसे परमेष्ठी ब्रह्मा चराचर जगत्को उत्पन्न करके तप और योगकी निष्ठा द्वारा सर्वश्रेष्ठ अपने आसन पर अवस्थित हैं ॥ ९ ॥ काल एवं आत्मा नित्य है, अतएव (एक जन्ममें न होगा तो अनेक जन्मोंमें सही) बड़े भारी तपो-योगकी निष्ठा द्वारा मैं भी वैसे ही श्रेष्ठ आसनका अधिकार प्राप्त करूँगा ॥ १० ॥ नहीं तो तपके प्रभावसे इस जगत्के सब नियमोंको लौटपौट कर दूँगा । इसके सिवा कल्पके अन्तमें नष्ट होनेवाले वैष्णवादि पदोंसे मुझको कोई प्रयोजन नहीं है" ॥ ११ ॥ हमने उस दैत्यकी ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा सुनी है । इसी लिये वह कठोर तप करनेमें प्रवृत्त हुआ है । इस विषयमें जो योग्य हो, वह शीघ्र ही करिये; क्योंकि आप स्वयं त्रिभुवनके ईश्वर हैं ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मन्! आपका स्थान उस दैत्यके हाथमें जानेसे साधुओंका घोरतर अनिष्ट होगा; क्योंकि आपका

यह सर्वश्रेष्ठ आसन गो ब्राह्मणोंके उद्भव, ऐश्वर्य, श्रेय, क्षेम और उत्कर्षके लिये है ॥ १३ ॥ राजन्! देवगणके इस प्रकार निवेदन करने पर भगवान् ब्रह्माजी भृगु, दक्ष आदि मुनिवृंदसहित दैत्येश्वरके आश्रममें गये ॥ १४ ॥ ब्रह्माजीने वहाँ जा कर पहले हिरण्यकशिपुको नहीं देख पाया, क्योंकि वह बल्मीक (बाँबी), तृण व कीचक बाँसोंके वृक्षोंमें छिपा हुआ था एवं असंख्य चींटियाँ उसकी त्वचा, मांस, मेदा और रक्तको खा रही थीं ॥१५॥ ब्रह्माजीने, विशेषरूपसे लक्ष्य करने पर, तपके प्रभावसे त्रिलोकको सन्ताप देनेवाले मेघमालामें छिपे हुए सूर्यके समान तेजस्वी उस दैत्यको देख पाया; तब विस्मित हो कर हँसते हुए यों बोले ॥ १६ ॥ ब्रह्माजीने कहा । हे कश्यपनन्दन! उठो उठो । तुम तपस्यामें सिद्ध हो गये हो, मैं वर देनेके लिये आया हूँ; जो इच्छा हो वह वर माँगो ॥ १७ ॥ तुम्हारे अति अचरज भरे धैर्यको मैंने देखा । दंशआदिक तुम्हारे शरीरके मांसको खा गये हैं, प्राण अस्थिगत हो रहे हैं ॥ १८ ॥ वत्स! न पहलेके ऋषियोंने ऐसा घोर तप किया है और न कोई आगे कर सकेगा । बिना जल तक पिये कौन दिव्य सौ वर्ष तक प्राणधारण कर सक्ता है? ॥ १९ ॥ हे दितिनन्दन! मनस्वी लोगोंके लिये भी दुष्कर तुम्हारे इस कार्यसे एवं तुम्हारी इस तपोनिष्ठासे मैं प्रसन्न हूँ, तुमने मुझको वश कर लिया ॥ २० ॥ हे असुरश्रेष्ठ! यद्यपि तुम असुर हो, तथापि मैं तुम्हारी सब कामनाएँ पूर्ण करूँगा । वत्स! मैं देवता हूँ, मेरा दर्शन विफल नहीं हो सक्ता ॥ २१ ॥ नारदजी कहते हैं । भगवान् ब्रह्माने इतना कह कर चींटियाँ जिसके अंगोंको खा गई हैं उस हिरण्यकशिपुके शरीर पर अमोघ शक्तिवाले दिव्य कमंडलुका जल छिड़क दिया ॥ २२ ॥ जलका स्पर्श होते ही दैत्यपति हिरण्यकशिपु सर्वांगसम्पन्न, वज्रतुल्य दृढ़ अंगवाला एवं सामर्थ्य, बल और तेजसे परिपूर्ण युवा हो कर उन बल्मीक और कीचकादिके भीतरसे, काष्ठमें स्थित अग्निके समान उठ खड़ा हुआ ॥ २३ ॥ तपाये हुए सोनेकी सी कान्तिसे युक्त शरीरवाले दैत्यपतिने उठ कर हंसवाहन देव ब्रह्माको आकाशमें उपस्थित देख कर पृथ्वी पर दण्डवत् प्रणाम किया । दैत्यपति परमानन्दित हो उठ कर अंजली बांध विनीत भावसे ब्रह्माजीकी ओर एकटक निहारता रहा, उसके नेत्रोंसे आनंदके आँसू बहने लगे और शरीरमें रोमांच हो आया । तब वह गद्गदवाणीसे यों स्तुति करने लगा ॥ २४ ॥ २५ ॥ हिरण्यकशिपु बोला । जो स्वयं ज्योतिःस्वरूप हैं, जिन्होने कल्पके अन्तमें मायाके गुणरूप प्रगाढ़ तमसे आवृत इस जगत्को अपने प्रभावसे प्रकाशित किया है एवं जो त्रिगुणात्मक हो कर जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं उन्ही रजोगुण, तमोगुण और सतोगुणके आश्रयस्वरूप अपरिमेय परमेश्वरको हमारा प्रणाम है ॥ २६ ॥ २७ ॥ वह आद्य पुरुष जगत्का बीज (कारण) हैं, ज्ञान और विज्ञान उनकी मूर्ति है ।

जो प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि इत्यादि समस्त विकारोंके द्वारा कार्यस्वरूपसे प्रकट हैं उनको नमस्कार है ॥ २८ ॥ प्रभो! आप मुख्यप्राणस्वरूपसे इस सम्पूर्ण स्थावर जंगम जगत्के नियन्ता हो रहे हैं, अतएव आप प्रजागणके पति एवं उनके चित्त, चेतना, मन और सब इन्द्रियोंके पति हैं, और इसीसे महत्तत्त्व एवं आकाशादि पञ्चभूत और शब्दादि विषय व उनकी सब वासनाओंके ईश्वर हैं ॥२९॥ भगवन्! आप चार होताओंके द्वारा साध्य विद्या हैं, वेदत्रयीमय रूपके द्वारा अग्निष्टोमादि विविध याग यज्ञोंका विस्तार करते हैं। आप ही प्राणियोंके आत्मा हैं और आप ही उनके अन्तर्यामी हैं; क्योंकि आप सर्वज्ञ, अखण्ड एवं अनादि हैं । आपका कालद्वारा अन्त वा देशद्वारा परिच्छेद नहीं है ॥३०॥ भगवन्! आप ही कालस्वरूप हैं, अतएव आप ही निमेषशून्य हो कर क्षण-लव आदि अंगोंके द्वारा सब लोगोंकी आयुका क्षय करते रहते हैं। आप ज्ञानरूप, परमेश्वर, जन्मशून्य एवं महत् हैं। आप ही जीवोंका जीवन एवं उनके नियन्ता हैं ॥ ३१ ॥ कार्य्य व कारण एवं स्थावर व जंगम— कुछ भी आपसे भिन्न नहीं है; विद्या एवं कला आपका शरीर हैं। आप ब्रह्म हैं, आप हिरण्यगर्भ एवं प्रकृतिसे परे अवस्थित हैं ॥ ३२ ॥ विभो! यह सत्य है कि ब्रह्माण्ड आपका स्थूल शरीर है, आप सर्वदा परमैश्वर्य्यमय अपने रूपमें ही अवस्थित हो कर इस शरीरके द्वारा इन्द्रिय, प्राण और मनके सब विषयोंका भोग करते रहते हैं; अतएव आप निरुपाधि ब्रह्म एवं पुराणपुरुष हैं ॥ ३३ ॥ हे अनन्त! आप अव्यक्तरूपसे इस सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त हैं। आपका ऐश्वर्य अचिन्त्य है; क्योंकि वह विद्या और मायासे युक्त है; आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ हे वरदानियोंमें उत्तम! आप यदि मेरी इच्छाके अनुसार वर देनेके लिये उद्यत हैं तो यह वर दीजिये कि आपकी सृष्टिमें उत्पन्न प्राणियोंसे मेरी मृत्यु न हो ॥ ३५ ॥

सर्वेषां लोकपालानां महिमानं यथात्मनः ॥
तपोयोगप्रभावाणां यन्न रिष्यति कर्हिचित् ॥ ३८ ॥

भीतर, बाहर, दिनको, रातको, शस्त्रोंसे, आपके उपजाये हुओंके अतिरिक्त व्यक्तिसे, पृथ्वी पर, आकाश पर, मृगसे या मनुष्यसे, मरे हुएसे या जीवितसे मेरी मृत्यु न हो। देवता, दैत्य, महा सर्प इत्यादिसे भी मेरी मृत्यु न हो। आप जैसे सब शरीरधारी और लोकपालोंके स्वामी एवं महिमावाले हैं, जैसे युद्धमें आपका सामना करनेवाला कोई भी नहीं है वैसा ही मुझको भी कर दीजिये। तप और योगके प्रभावसे सम्पन्न व्यक्तियोंको जो प्राप्त हैं वे कभी नष्ट न होनेवाले अणिमादिक ऐश्वर्य (सिद्धियाँ) भी मुझको दीजिये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

इति श्रीभागवते सप्तमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय ।

लोकपालों पर हिरण्यकशिपुका अत्याचार ।

नारद उवाच–एवं वृतः शतधृतिर्हिरण्यकशिपोरथ ॥
प्रादात्तत्तपसा प्रीतो वरांस्तस्य सुदुर्लभान् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं । हिरण्यकशिपुकी तपस्यासे भगवान् ब्रह्मा बहुत ही प्रसन्न हो गयेथे, इस लिये उन्होने उक्त माँगे हुए वरोंको, उसकी प्रार्थनाके अनुसार दुर्लभ होने पर भी, दे दिया ॥ १॥ ब्रह्माजी बोले। वत्स ! तुमने मुझसे जो वर माँगे वे मनुष्योंको अत्यन्त दुर्लभ हैं; तथापि मैं तुमको देता हूँ ॥ २ ॥ जिनकी प्रसन्नता निष्फल नहीं जाती वह ब्रह्माजी इतना कह असुरकी पूजा ग्रहण करके प्रजापतियोंकी स्तुति सुनते हुए अपने लोकको गये ॥३॥ सुवर्णसदृश कान्तिमय शरीरसे सुशोभित हिरण्यकशिपु इस प्रकार दुर्लभ वर पा कर घर आया और उसी घड़ीसे भगवान् विष्णुको भाईका मारनेवाला मान कर उनसे द्वेष करने लगा ॥४॥ उस महा असुरने सम्पूर्ण दिशा तीन लोक एवं देवता, दैत्य, नरपति, गंधर्व, गरुड़, सर्प, सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषि, पितृपति, मनु, यक्ष, राक्षस, पिशाचपति, प्रेतपति, भूतपति और अन्यान्य सब प्राणियोंके अधिपतियोंको जीत कर अपने वशमें कर लिया । विश्वविजयी असुरने सब लोकपालोंके लोकों और तेजोंको छीन लिया ॥५॥६॥७॥ फिर वह दैत्येन्द्र देवोद्यान (नन्दनवन) की शोभासे सम्पन्न स्वर्गमें वास करने लगा; साक्षात् विश्वकर्माके बनाये हुए, त्रैलोक्यके वैभवसे एवं सम्पूर्ण समृद्धियोंसे पूर्ण महेन्द्रके भवनमें रहनेलगा । वहाँ सीढियाँ विद्रुमकी, पृथ्वी (फर्श) मरकतमणिकी, दीवारें स्फटिक (बिल्लौर पत्थर) की और खंभोंकी श्रेणी वैडूर्यमणिकी बनी हुई हैं । वहाँ चित्र विचित्र वितान (चँदोवे) शोभित हैं, इधर उधर पद्मरागमणिके आसन (कुर्सी आदि) धरे हुए हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ वहाँकी शय्याएँ दूधके फेनेके समान उज्ज्वल और मुक्तादामसे सजी हुई हैं । वहाँ सुन्दर रदनवाली कामिनियाँ नूपुर बजाती हुई इधर उधर चल कर मंदिरकी रत्नस्थलियोंमें अपने सुन्दर मुखारविन्दोंको सानन्द देखती हैं ॥११॥ उस महेन्द्रके भवनमें महामनस्वी और अतिकठोर शासन करनेवाला महाबली असुर त्रिलोकीको जीत कर त्रैलोक्याधिपति हो विहार करने लगा । देवता आदि सब उसके प्रतापसे हार मान कर उसकी वंदना करते थे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! वह दैत्यराज बहुत ही उग्र गंधवाली मदिरा पी कर सदैव मत्त रहता था, उसके नेत्र लाल २ भयानक देख पड़ते थे । वह तपस्या और योगबलसे प्राप्त तेजसे परिपूर्ण था; अतएव केवल ब्रह्मा, विष्णु और शिवके सिवा सब लोकपाल देवता अपने हाथसे भेंट ले जा कर उसकी उपासना करते थे ॥ १३ ॥ हे पाण्डव ! हिरण्य-

कशिपु अपने पराक्रमसे महेन्द्रके आसन पर बैठा, तब विश्वावसु, तुम्बुरु और मैं एवं महर्षिगण, गन्धर्वगण, सिद्धगण, विद्याधरगण, अप्सराओंके वृन्द उसकी स्तुति गाते थे ॥ १४ ॥ ब्राह्मण आदि सब वर्ण और गृहस्थ आदि सब आश्रम यज्ञोंमें अधिकाधिक दक्षिणाएँ दे कर उसीकी पूजा करते थे ॥ १५ ॥ उसका ऐसा प्रभाव था कि सातो द्वीप पृथ्वी बिना जोते बोए कामधेनुके समान अनेक अन्न उत्पन्न करती थी एवं आकाशमण्डल अनेक आश्चर्योंसे परिपूर्ण था ॥ १६ ॥ १ खारी, २ ऊँखोंके रसका, ३ सुराका, ४ घीका, ५ दूधका, ६ मीठे जलका, ७ मट्ठेका; ये सातो समुद्र एवं इनकी स्त्री नदियाँ तरंगोंसे ढेरके ढेर रत्न ला कर देती थीं ॥ १७ ॥ कन्दराओंके सहित सब पर्वत उसकी क्रीड़ाका स्थान हुए। सब वृक्ष बिना ऋतु सदा फल, फूल देते थे एवं उसने अकेले ही सब लोकपालोंके गुण धारण किये ॥१८॥ वह दिग्विजयी दैत्यराज अजितेन्द्रिय होनेके कारण इस प्रकार सब प्रिय विषयोंका भोग करने पर भी तृप्त न हुआ ॥ १९ ॥ वह इस प्रकार ऐश्वर्यके मदमें मत्त और गर्वित हो कर जब शास्त्रकी मर्यादाका लंघन करने लगा तब उसे ब्राह्मणोंने शाप दिया। इस प्रकार बहुत सा समय बीत गया ॥२०॥ लोकपाल और अन्य सब लोग उसके उग्र दंडसे घबड़ा कर और कहीं अपनी रक्षा करनेवाला कोई न देख भगवान्‌की शरणमें गये और कहने लगे ॥२१॥ "उस दिशाको शत २ नमस्कार हैं जहाँ स्वयं आत्मा हरि ईश्वर वर्तमान हैं एवं निर्मल शान्त संन्यासिगण जिसको पा कर फिर नहीं लौटते" ॥२२॥ इस प्रकार वे मलरहित लोकपाल एकाग्रमनसे आत्मसंयमपूर्वक खाना, सोना त्याग कर उन्हीं हृषीकेश भगवान्‌की उपासना करने लगे ॥२३॥ देवगणको एक दिन आकाशमण्डलको प्रतिध्वनित करती हुई मेघशब्द सी गंभीर और साधुओंको अभय देनेवाली देववाणी सुनाई पड़ी ॥ २४ ॥ वह देववाणी यही थी कि "हे देवश्रेष्ठगण! डरो नहीं, तुम्हारा मङ्गल होगा, क्योंकि मेरा दर्शन सर्वथा कल्याणकारी है ॥ २५ ॥ उस दैत्यकी दुष्टता मुझे विदित है, मैं उसकी शान्तिका उपाय करूँगा; किन्तु तुम समयकी प्रतीक्षा करो ॥ २६ ॥ जब कोई देवता, वेद, गो, ब्राह्मण, साधु एवं धर्मसे या मुझसे विद्वेप करता है तब वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ २७ ॥ यद्यपि ब्रह्मासे दुर्लभ वर पा कर हिरण्यकशिपु अपनेको अजर, अमर और अजेय माने हुए है तथापि जब वह अपने प्रिय पुत्र वैरविहीन शान्त महात्मा प्रह्लादसे द्रोह करेगा तब मैं उसे अवश्य ही मारूँगा" ॥ २८ ॥ **नारदजी कहते हैं ।** राजन्! लोकगुरु भगवान् विष्णुके इस प्रकार कहने पर स्वर्गवासी देवगण स्वस्थ हो कर अपने २ स्थानको गये और सबने निश्चय किया कि यह असुर अब मारा ही गया ॥ २९ ॥ पहले कह आये हैं कि हिरण्यकशिपुके चार पुत्र थे । उनमें प्रह्लादजी गुणोंमें सबसे ज्येष्ठ श्रेष्ठ थे। क्योंकि वह महत् जनोंके उपासक, जितेन्द्रिय, सुशील,

ब्रह्मण्य और सत्यप्रतिज्ञावाले थे, वह आत्माके समान सब प्राणियोंके अद्वितीय प्रिय और सुहृत्तम थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ वह बड़ोंके आगे दासकी भाँति विनीत भावसे प्रणत रहते थे, दीन जनों पर पिताकी भाँति दया रखते थे, बराबरवालोंसे भाईके समान स्नेह करते एवं गुरुजनको ईश्वर मानते थे। विद्या, धन, रूप और कुलीनता सभी उनमें था, पर वह उसके लिये अहंकार अथवा अभिमान नहीं करते थे ॥३२॥ वह विपत्ति आ पड़ने पर घबड़ाते न थे। वह देखे सुने सब पदार्थोंको मिथ्या मानते थे, इस कारण उन सबमें उनको स्पृहा (चाह) न थी। वह शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण और बुद्धिको सर्वदा वशमें रखते थे एवं उनको कोई कामना न थी। यद्यपि उन्होने असुरकुलमें जन्म लिया तथापि उनकी प्रकृति बिल्कुल असुरोंकी ऐसी न थी ॥ ३३ ॥ राजन्! बड़े २ पण्डितगण प्रह्लादके गुणोंका अनुकरण करते हैं एवं भगवान् ईश्वरकी भाँति अब भी प्रह्लादमें वे गुण वर्तमान हैं ॥३४॥ देवगण, शत्रु होने पर भी, अपनी सभाओंमें, साधुओंके कथा प्रसंगमें, आदरके साथ प्रह्लादजीका नाम लेते हैं; तब आप ऐसे समदर्शी लोग सादर उनकी प्रशंसा करें तो कोई आश्चर्य्य नहीं है ॥ ३५ ॥ भगवान् वासुदेवमें जिनकी स्वाभाविक श्रद्धा, भक्ति है उनके गुणोंकी गणना करनेकी सामर्थ्य किसमें है? मैंने इतने वचनोंसे केवल उनके माहात्म्यकी सूचनामात्र की है ॥ ३६ ॥ वह लड़कपनमें ही खेल त्याग कर भगवान्में चित्त तन्मय हो जानेसे जड़सदृश तन–मनकी सुधि बुधिसे शून्य हो जाते थे। उनके मन पर कृष्णरूप ग्रहका आवेश होनेके कारण उनको संसारकी बातोंका ध्यान भी नहीं रहता था ॥ ३७ ॥ गोविंद भगवान्में लिप्त प्रह्लाद बैठते, घूमते, भोजन-पान करते, सोते एवं बातचीत करते समय भगवान्में ही तन्मय रहनेके कारण उक्त कर्मोंका ध्यान न रखते थे ॥ ३८ ॥ प्रह्लादजी वैकुंठ भगवान्के ध्यानसे चित्तके आन्दोलित होने पर कभी विरहके कारण रोने लगते थे, कभी आनन्दित हो कर गाते थे और हँसते थे ॥ ३९ ॥ कभी उत्कंठित हो ऊँचे स्वरसे मुक्तकंठ हो कर हरिको पुकारते थे, कभी लज्जा त्याग कर भक्तिके कारण नाचने लगते थे, कभी भगवान्की भावनासे तन्मय हो कर हरिलीलाओंका अनुकरण करने लगते थे, उस समय शरीरमें रोमाञ्च हो आता था और वह निश्चेष्ट हो कर ईश्वरके ध्यानमें लीन हो जाते थे एवं कभी हरिके सुदृढ़ स्थिर प्रेमके कारण निकले हुए आनन्दके आँसुओंके जलसे उनके नेत्र परिपूर्ण हो कर, ध्यानावस्थामें, कुछ बंद हो जाते थे ॥४०॥४१॥ हे राजन्! महात्मा प्रह्लाद अकिञ्चन भगवद्भक्त साधुओंके संगसे पुण्यश्लोक भगवान्के चरणारविन्दोंकी सेवा करके बार २ आनन्दित हो कर दुष्टसंगमें लिप्त एवं दुर्गतिको प्राप्त लोगोंके भी मनको शान्ति देते थे ॥ ४२ ॥ ऐसे महाभाग्यशाली, महात्मा, महा भागवत पुत्रसे भी हिरण्यकशिपु द्रोह करने लगा ॥ ४३ ॥ युधिष्ठिरजीने

कहा। हे देवर्षे! हे सुव्रत! हिरण्यकशिपुने पिता हो कर भी शुद्धचित्त साधु पुत्रसे द्रोह किया—यह विषय मैं विस्तारपूर्वक आपसे सुनना चाहता हूँ ॥ ४४ ॥ पुत्रवत्सल पिता अपने प्रतिकूल पुत्रोंको भी शिक्षाके लिये केवल तिरस्कार करते हैं, किन्तु शत्रुके समान कभी उनके अनिष्टकी चेष्टा नहीं करते ॥ ४५ ॥

किमुतानुवशान्साधूँस्तादृशान्गुरुदैवतान् ॥
एतत्कौतूहलं ब्रह्मन्नस्माकं विधम प्रभो ॥
पितुः पुत्राय यद्द्वेषो मरणाय प्रयोजितः ॥ ४६ ॥

तब वैसे अनुकूल, साधु एवं पितृभक्त पुत्रोंके मारनेकी बात तो बड़ी ही विलक्षण है! हे ब्रह्मन्! पुत्रके वधकी इच्छासे पिताका यों पुत्रसे द्रोह करना—और कभी नहीं सुना; अतएव इसे सुननेके लिये हमको बड़ा ही कौतूहल है। प्रभो! कृपा कर हमारा विस्मय दूर करिये ॥ ४६ ॥

इति श्रीभागवते सप्तमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय।

प्रह्लादके प्राण लेनेके लिये हिरण्यकशिपुका उद्योग करना।

नारद उवाच—पौरोहित्याय भगवान्वृतः काव्यः किलासुरैः ॥
शण्डामर्कौ सुतौ तस्य दैत्यराजगृहान्तिके ॥ १ ॥

नारदजी बोले। राजन्! प्रसिद्ध है कि सब असुरोंने शुक्राचार्य्यजीको अपना पुरोहित बनाया, इस लिये शुक्रजीके शंडामर्क नाम दोनो पुत्र दैत्यपति हिरण्यकशिपुके भवनके पास ही निवास करतेथे ॥ १ ॥ दैत्यपतिने अपने न्यायनिपुण बालक प्रह्लादको उनके पास भेज दिया और वे ब्राह्मण अन्यान्य असुरबालकोंकी भाँति प्रह्लादजीको भी पढ़ाने लगे ॥ २ ॥ गुरु जो कहते थे, उसको प्रह्लाद सुन लेते एवं सुन कर वैसे ही पढ़ कर गुरुको सुना देते थे। किन्तु "यह अपना है, यह पराया है" इस असत् आग्रहसे युक्त वह पाठ उनको अच्छा न लगता था ॥ ३ ॥ हे पाण्डव! एक दिन दैत्यराज हिरण्यकशिपु अपने पुत्र प्रह्लादको गोदमें ले कर पूछने लगा कि वत्स! भला तुमने किस वस्तुको उत्तम समझा हैं—हमको बताओ ॥ ४ ॥ प्रह्लादजीने कहा कि हे असुरश्रेष्ठ! लोगोंकी बुद्धि सर्वदा "मैं हूँ, मेरा है" इस असत् अभिनिवेशसे उद्विग्न रहती है, अतएव आत्माके अधःपतनका कारण जो अन्धकूपके सदृश गृह है उसे त्याग कर वनगमनपूर्वक भगवान् हरिका आश्रय ग्रहण करना ही मैं उत्तम समझता हूँ ॥ ५ ॥ नारदजी कहते हैं।

हिरण्यकशिपु पुत्रके मुखसे अपने परम वैरी विष्णु पर उसकी श्रद्धाका वृत्तान्त सुन कर हँसा और कहने लगा कि बालकोंकी बुद्धि इसी भाँति औरोंके बहकानेसे भ्रष्ट हो जाती है ! ॥६॥ इस समय इस बालकको फिर गुरुके यहाँ ले जाओ, पुरोहित ब्राह्मण यत्नपूर्वक इसकी देखरेख करें; कपटवेषधारी वैष्णवगण जिसमें फिर इसको न बहका सकें ॥ ७ ॥ प्रह्लादजी फिर गुरुभवनमें लाये गये, तब दैत्ययाजक ब्राह्मण पहले प्रह्लादकी प्रशंसा करके सान्त्वनापूर्ण कोमल वचन कह कर यों पूछने लगे कि ॥ ८ ॥ हे वत्स प्रह्लाद ! तुम्हारा कल्याण हो, हम जो पूछें वह सत्य ही कहना, झूठ न बोलना । सब बालकोंको छोड़ कर तुम्हारी ऐसी उलटी बुद्धि कैसे हुई ? ॥ ९ ॥ हे कुलनन्दन ! तुमको किसीने बहकाया है अथवा आपहीसे तुम्हारी ऐसी बुद्धि है ? हम तुम्हारे गुरु हैं, हम यह सुनना चाहते हैं, हमसे ठीक २ कहो ॥ १० ॥ प्रह्लादजीने कहा । पुरुषोंको "अपना है पराया है" यह असत् ज्ञान मायाके कारण है एवं मायामें जिनकी बुद्धि मोहित है वे ही इस असत् ज्ञानसे दूषित हैं । वही भगवान् परमपुरुष जब पुरुषों पर अनुकूल होते हैं तब उनकी पशुबुद्धि अर्थात् यह व्यक्ति अन्य है एवं मैं अन्य हूँ—इस प्रकारका भेद नष्ट हो जाता है अर्थात् एकदृष्टि होती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ यह भेदबुद्धि मिथ्या है । अविवेकी व्यक्ति अपना या पराया कह कर उस परमात्माका ही निरूपण करते हैं । उनका ऐसा करना असंगत भी नहीं है, क्योंकि आत्मज्ञानमें ब्रह्माआदि वेदवादी गण भी मोहित होते हैं; कारण यही है कि उसका वर्णन करना असम्भव है । वही आत्मास्वरूप ईश्वर मेरी बुद्धिमें यह भेद डाल रहे हैं ॥१३॥ हे ब्रह्मन् ! यद्यपि वह निर्विकार हैं, किसीकी बुद्धिमें भेद नहीं डालते, तथापि लोहा जैसे चुम्बक पत्थरके पास स्वयं खिंच जाता है वैसे ही चक्रपाणि भगवान्की इच्छाके अनुसार मुझमें ऐसा बुद्धिभेद दिखाई दे रहा है" ॥ १४ ॥ महामति प्रह्लाद गुरुपुत्र शंडामर्कसे इतना कह कर चुप हो रहे । यह सुन कर सुदीन राजसेवक (प्रह्लादका शिक्षक) कुपित हो बहुत डाँट कर यों कहने लगा ॥ १५ ॥ "अरे ! कोई लड़का है ? बेंत तो उठा लाओ । हमें अपयश दिलानेवाले इस दुर्बुद्धि कुलांगारको मारना ही शास्त्रविहित दण्ड है ॥ १६ ॥ दैत्योंका वंश चन्दनका वन है, उसमें यह काँटेका वृक्ष उपजा है । विष्णु इस वनकी जड़ काटनेका कुल्हाड़ा है और यह उसके आश्रयका दण्ड (डंडा) बना है" ॥ १७ ॥ इस प्रकार तर्जन आदि अनेक उपायोंसे भय दिखा कर आचार्य फिर प्रह्लादको धर्म-अर्थ-काम-दायक शास्त्र पढ़ाने लगे ॥ १८ ॥ तदनन्तर गुरुने जब जाना कि यह बालक जानने योग्य साम-दान आदि राजनीतिके चारो उपायोंको जान गया है तब उन(प्रह्लाद)को राजभवनमें ले गये । वहाँ माताने उबटना लगा कर प्रह्लादको स्नान कराया और गहने पहराये । तब आचार्य फिर कुमार प्रह्लादको राजसभाके बीच

दैत्यपतिके निकट ले गये ॥ १९ ॥ प्रह्लादने चरणोंमें गिर कर पिताको प्रणाम किया। दैत्यपतिने उठा कर आशीर्वाद दिये और बहुत देर तक हृदयमें लगाये रह कर आनन्दित हुआ ॥ २० ॥ हे युधिष्ठिर! फिर गोदमें बिठला कर माथा सूँघ कर आनंदके आँसुओंसे प्रह्लादका शीश भिगोते हुए प्रफुल्ल मुखसे ये वचन कहे ॥ २१ ॥ **हिरण्यकशिपुने कहा**-चिरजीवन् प्रह्लाद! इतने दिनों तक गुरुके यहाँ तुमने शिक्षा पाई, उसमें जो उत्तम विषय सीखा हो सो हमसे कहो ॥ २२ ॥ **प्रह्लादजी बोले**। पितः! श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरणसेवा, पूजा, वन्दना, दास्यभाव व सखाभाव एवं आत्मसमर्पण-यह भगवान् विष्णुकी नवधा भक्ति है। पढ़ा लिखा व्यक्ति यदि इसे करे और निष्काम हो कर कृष्णार्पण कर दे तो मेरी समझमें यही सर्वोत्तम शिक्षा है ॥ २३ ॥ २४ ॥ पुत्रके ये वचन सुनते ही हिरण्यकशिपु क्रोधसे आग हो गया, उसके दोनो ओंठ फड़कने लगे और वह गुरुपुत्रसे यों कहने लगा ॥ २५ ॥ "रे दुर्मति ब्रह्मबन्धु! यह क्या है! मेरा निरादर करके, मेरे विपक्ष (विष्णु) का पक्ष ले कर तूने इस बालकको इस प्रकार असार विषयकी शिक्षा दी है? ॥ २६ ॥ संसारमें अनेक असाधुलोग कपटवेषसे मित्र बन कर रहते हैं, किन्तु पातकी लोगोंके रोगके समान उनका असली रूप समय पा कर प्रकट ही हो जाता है ॥२७॥ **गुरुपुत्र शंडामर्क बोले**। हे इन्द्रके शत्रु! आपका पुत्र जो कुछ कहता है वह न मेरा सिखाया है और न किसी दूसरेका सिखाया है। राजन्! इसकी यह बुद्धि स्वभावसिद्ध है। अतएव क्रोधको शान्त करिये और हमको व्यर्थ दोष न लगाइये ॥ २८ ॥ **नारदजी कहते हैं**। गुरुपुत्रके इस प्रकार उत्तर देने पर असुरने फिर अपने पुत्रसे पूछा कि रे दुर्विनीत! यदि गुरुके उपदेशसे यह तेरी असत् बुद्धि नहीं हुई तो कैसे हुई? ॥ २९ ॥ **प्रह्लादजी बोले**। गृहस्थाश्रममें आसक्त व्यक्तियोंकी बुद्धि आपसे या किसीके सिखलानेसे अथवा परस्परके सत्संगसे, किसी प्रकार कृष्णमें नहीं लगती। उनकी इन्द्रियाँ शान्त नहीं हैं, इस लिये वारम्वार संसारमें आ कर वे लोग चर्वितचर्वण न्यायसे भोगे हुए भोगोंको फिर भोगते हैं; वे मोहित हैं ॥ ३० ॥ जिनका अन्तःकरण विषयोंमें आसक्त है वे भगवान् विष्णुको नहीं जान सक्ते, (जिनकी अपने आत्मामें ही पुरुषार्थबुद्धि है वे भी गुरुके उपदेशसे भगवान् विष्णु तक पहुँचते हैं, किन्तु) विषयासक्त जीव अंधेके पीछे चलनेवाले अंधे मनुष्योंके समान गुरुके उपदेशसे भी विष्णुको नहीं पाते। विपुलसूत्ररचित ईश्वरकी वेदरूप बड़ी रस्सी उनको कर्मजालमें जकड़े हुए है ॥ ३१ ॥ वे जब तक विषयाभिमानसे शून्य परम प्रधान पुरुषोंकी पदधूलिको अपने शिर पर नहीं चढ़ाते तब तक भगवान्के पवित्र चरणोंका स्पर्श उनके लिये असम्भव है। भगवान्के चरणस्पर्शसे मनुष्यका जन्म व मरण निवृत्त हो जाता है ॥ ३२ ॥ प्रह्लादजी इतना कह कर चुप हो रहे।

हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको पृथ्वी पर पटक दिया ॥ ३३ ॥ और क्रोधसे अधीर होकर नेत्र लाल २ करके यों कहने लगा कि "हे असुर गण! यह दुष्ट मारने योग्य है। इसको शीघ्र ही मार डालो। इस समय इसको मेरे आगेसे दूर करो ॥ ३४ ॥ यह अधम मेरे भाईको मारनेवालेके समान मेरा वैरी है। क्योंकि यह अपने सुहृद् गणको त्याग कर दासकी भाँति चाचाको मारनेवाले विष्णुके चरणोंकी उपासना करता है ॥ ३५ ॥ जब इसने पाँच वर्षकी अवस्थामें पिता व माताके दुस्त्यज स्नेहको त्याग दिया तब यह दुरात्मा विष्णुका ही क्या उपकार करेगा? ॥ ३६ ॥ औषधकी भाँति पर(गैर)भी यदि हितकारी हो तो उसको अपना पुत्र जानना चाहिये और अपने देहसे उत्पन्न व्याधिके समान अपना पुत्र भी यदि अहितकारी हो तो वह त्याग करने योग्य है। अपना ही अंग यदि शरीरके लिये अनिष्ट करता हो तो उसे काट डालना चाहिये, क्योंकि उस अंगके काट डालनेसे शेष शरीर सुखसे जीवित रह सक्ता है ॥ ३७ ॥ भोजन करते, शयन करते और बैठते—सब समय, मारनेके उपायोंसे, मुनिके दुष्ट इन्द्रियके समान इस मित्रवेषधारी शत्रुको मारना ही योग्य है" ॥ ३८ ॥ असुरगणने स्वामीकी ऐसी आज्ञा पाते ही शूल ले कर भयानक शब्द करते हुए "मारो मारो" कह कर बैठे हुए प्रह्लादके सब मर्मस्थानोंमें प्रहार किये। उन दैत्योंकी दाढ़ें बहुत ही तीक्ष्ण, मुख कराल और दाढ़ी मूछ व शिरके केश ताम्रवर्ण थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ किन्तु प्रह्लादका चित्त ईश्वरमें लगा हुआ था, इस कारण उनके सब प्रहार, ईश्वरके विश्वाससे शून्य पापी व्यक्तिके सत्कर्ममें उद्यमके समान व्यर्थ हो गये; क्योंकि ईश्वर—विकारशून्य शब्दादिके द्वारा अनिर्देश्य, सर्वश्रेष्ठ एवं सबके आत्मा अर्थात् शब्दादिके भी नियन्ता हैं ॥ ४१ ॥ जब यह उद्यम निष्फल हो गया तब हिरण्यकशिपुको और भी शंका हुई और हे युधिष्ठिर! वह हठके साथ निरन्तर प्रह्लादको मारनेके लिये अनेकानेक उपाय करने लगा ॥ ४२ ॥ गजराजोंको प्रह्लाद पर छोड़ दिया, बड़े २ विषधर सर्पोंसे कटवानेका प्रयत्न किया, जादू टोने कराये, पर्वतके ऊँचे शिखरोंसे नीचे गिरा दिया, मायाओंसे मारनेका उद्योग किया, अँधेरी कोठरीमें बंद करके उसके भीतर जहरीला धुआँ भराया, खानेको नहीं दिया ॥ ४३ ॥ हिम, वायु, अग्नि और जलसे तथा पर्वतोंके नीचे दबा कर मारना चाहा। परन्तु असुर हिरण्यकशिपु निरपराध पुत्रको नहीं मार सका ॥ ४४ ॥ तब वह हतोद्यम होनेके कारण बहुत ही चिन्तित हुआ कि मैंने इसको बहुत कुछ भला बुरा कहा और इसे मार डालनेके उपाय भी किये, किन्तु यह मेरे उन द्रोहोंसे और अभिचारादि उपायोंसे अपने अद्भुत तेजके कारण बच गया! ॥ ४५ ॥ मेरे पास ही, बालक होने पर भी, निर्भय भावसे बैठा है। अवश्य ही यह सामर्थ्य रखता है और मेरे इस नीच व्यवहारको *शुनःशेफके समान

* अजीगर्तके मँझले पुत्रका नाम शुनःशेफ था। उसको पिताने वरुणके यज्ञमें बलि देनेके लिये हरिश्चन्द्र राजाके पुत्र रोहितके हाथ वेंच डाला। वह जैसे अजीगर्तके अपकारको

न भूलेगा ॥ ४६ ॥ इसका प्रभाव अप्रमेय है, यह अकुतोभय और अमर देख पड़ता है, निश्चय ही इसके वैरसे मेरी मृत्यु होगी। अथवा मैं अमर हूँ, इस कारण मेरी मृत्यु नहीं हो सक्ती ॥ ४७ ॥ इस प्रकारकी चिन्तासे हिरण्यकशिपुके मुखकी कान्ति कुछ फीकी पड़ गई। नीचे मुख किये चिन्ता कर रहे दैत्यपतिको शुक्राचार्यके पुत्र शंडामर्क एकान्तमें ले गये और कहने लगे कि ॥४८॥ "हे नाथ! आपने अकेले तीनो लोक जीत लिये हैं, आपके तनिक भ्रुकुटी टेढ़ी कर देनेसे सब लोकपाल डर जाते हैं। हमको इस साधारण विषयमें आपके चिन्तित होनेका कोई कारण नहीं देख पड़ता! वास्तवमें इतने छोटे बालकोंके गुण और दोष नहीं गिने जाते; क्योंकि वे काल पा कर छूट सक्ते हैं ॥ ४९ ॥ जब तक गुरु भार्गव (शुक्राचार्य) घरमें आवें तब तक इसे वरुणके पाशोंसे बाँध कर रखिये जिसमें कहीं भाग न जाय। तब तक इसकी अवस्था भी अधिक हो जायगी; मनुष्यकी बुद्धि अवस्था पा कर बड़ोंकी सेवा करनेसे बदल जाती है" ॥ ५० ॥ गुरुपुत्रके वचनको मान कर दैत्यपतिने कहा कि "इसको जो गृहस्थों और राजोंके धर्म हैं उनका उपदेश करना" ॥ ५१ ॥ गुरुपुत्र, फिर क्रमशः प्रश्रित और नम्रस्वभाव-संपन्न प्रह्लादको धर्म, अर्थ और कामकी शिक्षा देने लगे ॥ ५२ ॥ गुरुपुत्र यद्यपि प्रह्लादको त्रिवर्गकी शिक्षा देते थे पर प्रह्लादजीको वह शिक्षा भली न जान पड़ती थी, क्योंकि रागद्वेषादि-स्वीकारपूर्वक विषयोंमें रमनेवाले लोग ही उक्त विषयोंको कहते और पढ़ते हैं; किन्तु प्रह्लादजी रागद्वेषादिसे शून्य थे ॥ ५३ ॥ एक दिन आचार्य अपने घरका कुछ काम करने गये, लड़कोंको खेलनेकी छुट्टी मिली। उस समय और समवयस्क साथी लड़कोंने प्रह्लादजीको अपने पास खेलनेके लिये बुलाया ॥ ५४ ॥ महामति प्रह्लादजीको उसी अवस्थामें इतना ज्ञान था कि ये बालक यदि कुछ परमार्थकी शिक्षा न पावेंगे तो इनको सदा जन्ममरणके चक्रसे छुटकारा न मिलेगा। प्रह्लादजीने बालकोंके निकट जा कर उन पर कृपा कर मुसकाते हुए सुमधुर ललित वाणी द्वारा यों शिक्षा भरे वाक्य कहे ॥ ५५ ॥

पर्युपासत राजेन्द्र तन्न्यस्तहृदयेक्षणाः ॥
तानाह करुणो मैत्रो महाभागवतोसुरः ॥ ५७ ॥

प्रह्लादजी राजकुमार थे, सब बालक उनको दबते थे। इसीसे वे सब खेल छोड़ कर प्रह्लादजीको चारो ओरसे घेर कर बैठ गये। प्रह्लादमें ही सबके मन और नेत्र लग गये। वह बालक थे, किन्तु उनकी बुद्धि विषयभोग और रागद्वेषादिसे

न भूला और उनके विपक्ष विश्वामित्रका आश्रय ले कर विश्वामित्रके गोत्रमें हो गया। क्योंकि प्राणदान देनेके कारण विश्वामित्र शुनःशेफके पिताके तुल्य हो गये।

दूषित नहीं थी। तब करुणा करके मित्रभावसे महाभागवत असुरवंशोद्भव प्रह्लादजी उनसे यों कहने लगे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

इति श्रीभागवते सप्तमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय।

प्रह्लादका असुरबालकोंको ब्रह्मज्ञानका उपदेश करना।

प्रह्लाद उवाच–कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान्भागवतानिह ॥
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥ १ ॥

प्रह्लादजीने कहा हे दैत्यबालको! यह मनुष्यजन्म पुरुषार्थ-साधक है। मनुष्य-जन्म पा कर कुमार अवस्थामें ही प्राज्ञ पुरुषको भागवत धर्मोंका आचरण करना चाहिये। क्योंकि यह नरशरीर अति दुर्लभ अथच अनित्य है ॥ १ ॥ अतएव इस जन्ममें महापुरुष भगवान् विष्णुके चरणोंकी आराधना करना ही उचित है; क्योंकि वह संपूर्ण प्राणियोंके प्रिय आत्मा, ईश्वर एवं सुहृद् हैं ॥२॥ हे दैत्यगण! इन्द्रियोंके द्वारा उत्पन्न सांसारिक सुख तो सब ही शरीरोंमें भाग्यवश दुःखकी भाँति अनायास ही प्राप्त होते हैं ॥३॥ उनके लिये प्रयास करना योग्य नहीं है, क्योंकि उनमें वृथा ही आयु गँवाना है। भगवान्के चरणकमलोंकी सेवासे मंगल प्राप्त होता है; इन तुच्छ सुखोंसे नहीं होता ॥ ४ ॥ अतएव संसारी हो कर जब तक शरीर सबल और स्वस्थ रहे तब तक अपने कल्याणके लिये शीघ्र ही प्रयत्न करना चाहिये ॥ ५ ॥ पुरुषकी परमायु शतवर्षमात्र है। अजितेन्द्रिय व्यक्तिकी आयु उसकी आधी ही है, क्योंकि वह रात्रिको घोर तममें (अचेत अवस्थामें) मग्न हो कर व्यर्थ ही सोया करता है ॥ ६ ॥ उसमें भी बाल्यकालमें मुग्ध (अज्ञान) भावसे और कौमार वयमें खेलते २ बीस वर्ष बीत जाते हैं और इधर शरीर जराजर्जर होने पर अशक्त अवस्थामें बीस वर्ष वृथा बीत जाते हैं ॥ ७ ॥ रही शेष आयु, सो दुःखपूर्ण काम और प्रबल मोहके कारण प्रमत्त अवस्थामें बीत जाती है ॥ ८ ॥ कौन अजितेन्द्रिय पुरुष, गृहमें आसक्त और सुदृढ़ स्नेहपाशमें बँधे हुए अपनेको मुक्त कर सक्ता है? ॥ ९ ॥ प्राणोंसे भी अधिक प्रिय धनकी लालसाको त्याग सक्ता है? देखो चोर सेवक और वणिक्गण प्राणहानिको स्वीकार करके भी धनका उपार्जन करते हैं! ॥ १० ॥ प्रेमपूर्णा प्रियतमाके एकान्तसंगमें, मनोहर वार्तालापमें, बन्धुवर्गके स्नेहबंधनमें एवं तोतले वचन बोलनेवाले बालकोंके संगमें जिसका चित्त अनुरक्त हो रहा है वह व्यक्ति, उनका स्मरण करते हुए, उनको कैसे छोड़ सक्ता है? पुत्र, श्वशुरालयवासिनी कन्या, भाई, भगिनी, दीन पिता माता, प्रधान एवं मनोहर परिच्छदयुक्त गृह, वंशपरम्परासे चली आ रही जीविका एवं

पशु और भृत्यगण आदिका स्मरण करते हुए कौन व्यक्ति इन सबका त्याग कर सक्ता है? ॥ ११ ॥ १२ ॥ जैसे कोशस्कृत् कीड़ा अपने रहनेका स्थान बनाता है, पर अपने बाहर निकलनेके लिये द्वार नहीं रखता, उसी प्रकार इन सब धन जनमें जिनका मन आसक्त है वे व्यक्ति अपूर्ण-काम रहनेके कारण लोभवश निरन्तर कर्मोंमें ही तत्पर रहते हैं, उपस्थके सुख(मैथुन)को और जिह्वाके सुखको ही वे बड़ा भारी सुख मान लेते हैं; ऐसे दुरन्त मोहमें दबे हुए लोग कैसे संसारसे विरक्त हो सक्ते हैं ॥ १३ ॥ गृहाश्रममें आसक्त व्यक्ति ऐसा प्रमत्त हो जाता है कि कुटुंबके भरण पोषणमें ही अपनी सब आयु गँवाता है और अपने पुरुषार्थोंका नाश होते भी नहीं जानता, त्रिविधतापोंसे दुःख पा कर भी कष्टका अनुभव कर निर्वेदको नहीं प्राप्त होता; केवल कुटुंबमें ही आसक्त रहता है ॥ १४ ॥ अजितेन्द्रिय और कुटुंबी मनुष्यका मन धन पर इतना आसक्त होता है कि पराये धनके हरनेमें परकालमें नरक और यहाँ राजदंड आदि प्रधान दोषोंको जान कर भी लोभको नहीं रोक सक्ता और पराये धनको हरता है ॥ १५ ॥ हे असुर-बालको! इस प्रकार विद्वान् व्यक्ति भी गृहादिकमें अभिनिविष्ट हो कर कुटुम्बके पालनमें निरत रहनेके कारण अपने रूप(अनुभवस्वरूप आत्मा)के दर्शनमें नहीं समर्थ होते; बरन् मूढ़ पुरुषोंकी भाँति "यह मेरा है, यह दूसरेका है" ऐसी विभिन्न भावनाके कारण तमोभावमें आबद्ध होते हैं ॥ १६ ॥ इस प्रकारके गृहासक्त व्यक्ति कभी–कहीं पर अपने आत्माको मुक्त नहीं कर सक्ते, क्योंकि वे कामिनियोंकी क्रीड़ाके मृगके समान हैं, उनकी सन्तान उनके लिये शृंखलाके समान हो जाती है ॥ १७ ॥ अतएव हे दैत्यगण! विषयरूप सब दैत्योंका संसर्ग त्याग कर आदिदेव नारायणके शरणागत होओ; वही निस्सङ्गके वाञ्छनीय मोक्ष-स्वरूप हैं ॥ १८ ॥ हे असुरतनयगण! भगवान् अच्युतको प्रसन्न करना बहुत प्रयासका कार्य नहीं है, क्योंकि वह सब प्राणियोंके आत्मा और सर्वव्यापी हैं ॥ १९ ॥ स्थावरसे ब्रह्मा पर्यन्त छोटे और बड़े सब प्राणी, भौतिक विकार आकाश आदि पंचतत्त्व, सत्वआदिक गुण और इन सब गुणोंकी साम्यावस्था (प्रकृति) एवं महत्तत्व आदिमें ब्रह्मस्वरूप अविनाशी भगवान् ईश्वर एक आत्माके रूपसे अवस्थित हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ तथापि गुणोंकी सृष्टि करनेवाली मायाके द्वारा आवृत रहनेसे, वह स्वयं अनिर्देश्य और अविकल्पित हो कर भी, द्रष्टा और भोक्ताके रूपसे व्यापक एवं भोग्य दृश्यदेहादिके रूपसे व्याप्य कह कर निर्देश्य और विकल्पित हैं; केवल अनुभवस्वरूप आनन्द ही उनका स्वरूप है। तुम असुर-भावको तज कर सब प्राणियोंसे दया और मित्रताका बर्ताव करो; इसीसे भगवान् अधोक्षज सन्तुष्ट होते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ उन आदिपुरुष अनन्तके सन्तुष्ट होने पर कौन पदार्थ अलभ्य है? गुण-परिणामवश भाग्यक्रमसे

स्वयंसिद्ध सब धर्मोंसे क्या फल है? मोक्षकी वासना ही किस लिये है? हम निरन्तर उनके नामके कीर्तन एवं उनके श्रीचरणारविंदके अमृतका पान करते हैं ॥ २५ ॥ त्रिवर्ग नामसे कहे गये धर्म, अर्थ, काम एवं आत्मविद्या, कर्मविद्या, तर्कशास्त्र, दण्डनीति व विविध जीविका इत्यादि वेदके प्रतिपादित विषय यदि अन्तर्यामी परमपुरुषको स्वात्मार्पण करनेके साधक हैं तो मेरी समझमें सत् हैं, अन्यथा सब असत् हैं ॥ २६ ॥ मैं तुमसे कोई नया विषय कह रहा हूँ, ऐसा न समझना। पहले नर-सहचारी नारायण भगवान्ने नारदजीको इसी दुष्प्राप्य निर्मल ज्ञानका उपदेश किया था। भगवान्के अनन्यभक्त अकिञ्चन साधु पुरुषोंके चरणकी धूल जिनके मस्तक पर चढ़ी है उन्ही लोगोंको ऐसा ज्ञान हो सक्ता है ॥ २७ ॥ पहले मैंने उन्ही देवदर्शन नारदजीके निकट यह विज्ञान-संयुत ज्ञान एवं शुद्ध भागवत धर्म सुना था ॥ २८ ॥ यह सुन कर दैत्योंके बालक बोले। हे प्रह्लाद! इन दोनो गुरुपुत्रोंके सिवा और गुरुको तो न तुम जानते हो और न हम जानते हैं। जब हम और तुम बहुत छोटे थे तभीसे ये हमारे शासक हैं ॥ २९ ॥

बालस्यान्तःपुरस्थस्य महत्सङ्गो दुरन्वयः ॥
छिन्धि नः संशयं सौम्य स्याच्चेद्विश्रम्भकारणम् ॥ ३० ॥

अन्तःपुरमें स्थित बालकोंको सत्संग होना ही दुर्घट है। हे सौम्य! यदि विश्वास दिलानेवाला कोई कारण हो तो उसे बता कर हमारे संशयको दूर करो ॥ ३० ॥

इति श्रीभागवते सप्तमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय।

प्रह्लादके माताके गर्भमें रहनेके समय नारदके उपदेश देनेका वृत्तान्त।

नारद उवाच—एवं दैत्यसुतैः पृष्टो महाभागवतोऽसुरः ॥
उवाच स्मयमानांस्तान्स्मरन्मदनुभाषितम् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं। दैत्यबालकोंके यों पूछने पर महाभागवत प्रह्लादने कुछ मुसका कर मेरे कहे हुए वाक्योंका स्मरण करके उनसे कहा ॥ १ ॥ प्रह्लादजी कहने लगे कि हे वयस्यगण! मेरे पिता हिरण्यकशिपु जब तप करनेके लिये मंदराचलको चले गये तब इन्द्रादि देवगण परस्पर प्रसन्न हो कर कहने लगे कि "आः! चींटियाँ जैसे सर्पको खा जाती हैं उसी प्रकार सब लोकोंको सन्ताप देनेवाले पापी हिरण्यकशिपुको भी उसके किये पापोंने नष्ट कर दिया"। यह कह

कर वे दानवों पर चढ़ाई करनेकी इच्छासे बड़े भारी युद्धका उद्योग करने लगे ॥ २ ॥ ३ ॥ देवतोंके इस विराट् युद्धके आयोजनका समाचार पा कर असुर-यूथके अधिपति (मुखिया) लोग देवगण द्वारा निहत हो भयभीत भावसे दशो दिशाओंको इधर उधर भाग गये ॥ ४ ॥ सब अपने २ प्राण बचानेके लिये स्त्री, पुत्र, धन, स्वजन, भवन, पशु और गृहस्थीका सामान छोड़ २ कर भागे ॥ ५ ॥ जयकी कामनावाले देवगणने दैत्यराज हिरण्यकशिपुके भवनको धूलमें मिला दिया । इन्द्रने मेरी माता राजरानीको पकड़ लिया ॥ ६ ॥ और भयभीत हो कर कुररीकी भाँति रो रही मेरी माताको लेकर स्वर्गको चले । राहमें इच्छा-पूर्वक घूमते हुए नारदजी मिल गये और उन्होने देखा ॥ ७ ॥ तब इन्द्रसे कहा कि हे इन्द्र! इस निरपराध स्त्रीको ले जाना तुमको योग्य नहीं है । हे महाभाग! इस सती और परनारीको छोड़ दो, छोड़ दो ॥ ८ ॥ इन्द्रने कहा-भगवन्! इसके गर्भमें दैत्यराजका दुःसह वीर्य है, अतएव जितने दिन प्रसव न होगा तब तक इसे अपने यहाँ रक्खूँगा । पुत्र होने पर उसे मार कर अपना प्रयोजन सिद्ध करके इसको छोड़ दूँगा ॥ ९ ॥ तब नारदजीने कहा हे देवराज! यह गर्भस्थित बालक निष्पाप, महाभागवत, अपने गुणोंसे महान्, विष्णु भगवान्का अनुचर अतएव पराक्रमी है; इस कारण तुम इसको नहीं मार सक्के ॥ १० ॥ इन्द्रने देवर्षिके वचन मान कर मेरी माताको वहीं छोड़ दिया । मैं अनन्तका प्रिय भक्त हूँ, यह जान कर इन्द्रको भी मुझपर भक्ति हुई और मेरी माताकी प्रदक्षिणा करके अपने लोकको चले गये ॥ ११ ॥ उसके बाद देवर्षि नारदजी मेरी माताको अपने आश्रममें ले गये और आश्वास दे कर कहा कि पुत्री! जब तक तुम्हारा स्वामी न आवे तब तक तुम यहीं रहो ॥ १२ ॥ मेरी माताने यह स्वीकार कर लिया और जब तक दैत्यपति तप करके नहीं लौटे तब तक वहीं रहने लगीं । देवर्षिके समीप उनको किसीका भय न था ॥ १३ ॥ वह गर्भवती सती मेरी माता अपने गर्भके मङ्गलकी कामनासे परम भक्तिपूर्वक नित्य देवऋषिकी सेवा करती थीं ॥ १४ ॥ समर्थ और दयालु ऋषिने उसी अवसरमें मेरे उद्देशसे मेरी माताको धर्मके तत्त्वका और विशुद्ध ज्ञानका उपदेश दिया ॥ १५ ॥ किन्तु बहुत अधिक समय बीत जानेसे, दूसरे स्त्री जाति होनेके कारण मेरी माता उस नारदजीके उपदेशको भूल गई; परन्तु ऋषिके अनुग्रहसे मैं अभी तक नहीं भूला ॥ १६ ॥ बंधुगण! तुम लोग यदि मेरे वाक्योंपर श्रद्धा करो तो उसी श्रद्धाके कारण मेरे समान तुमको भी ज्ञान हो सक्ता है । श्रद्धाके बलसे, मेरे (व मेरी माताके) समान अन्य स्त्री व बालकोंकी बुद्धि भी विशुद्ध हो सक्ती है ॥ १७ ॥ विकारका कारण जो ईश्वरकी मूर्ति काल है उसे पा कर जैसे वृक्षके रहते ही फलके जन्म आदि छः भाव देखे जाते हैं वैसे ही देहकी भी छः अवस्थाएँ

होती हैं, किन्तु इन अवस्थाओंसे आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है ॥ १८ ॥ क्योंकि आत्मा–नित्य, अव्यय, शुद्ध, एक, क्षेत्रज्ञ, सर्वाश्रय, विकारशून्य, आत्मदर्शी, सबका कारण, व्यापक, संगहीन एवं अनावृत अर्थात् पूर्ण है ॥ १९ ॥ इन बारह लक्षणोंसे आत्माको जान कर मोहसे उत्पन्न जो देह आदिमें "मैं हूँ, मेरा है" यह असत्य भाव है उसको विद्वान् पुरुष छोड़ दे ॥ २० ॥ जैसे सुवर्णकी खानोंमें सुवर्ण-कण-युक्त-पत्थरोंमें अग्निसंयोगादि उपायोंसे उक्त उपाय जाननेवाले स्वर्णकार लोग स्वर्ण प्राप्त कर लेते हैं वैसे आत्माका ज्ञान रखनेवाले लोग इसी देहमें आत्मयोगके द्वारा ब्रह्मत्व प्राप्त कर सक्ते हैं ॥ २१ ॥ मूल प्रकृति (महत्तत्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा) और उसीके सत्त्वादिक तीनगुण एवं ग्यारह इन्द्रिय व पंच महाभूत आदि सोलह विकार–ये सब उसी मूल प्रकृतिके भेद हैं; आत्मा इनसे भिन्न अपिच इनका साक्षी एक ही है। कपिल आदि आचार्योंने ऐसा ही कहा है ॥ २२ ॥ मूल प्रकृतिके उक्त सब रूपान्तरोंकी समष्टि यह देह दो प्रकारका है, स्थावर और जंगम। इसी देहमें ही उक्त लक्षणोंके द्वारा असत्को त्याग कर उस आत्माको भली भाँति खोजना चाहिये ॥ २३ ॥ देहके साथ आत्माके सम्बन्ध और विभिन्नताके विचार-बलसे विशुद्ध हो गये अन्तःकरणमें सावधान भावसे सृष्टि-स्थिति-संहारके कारणकी आलोचना करते हुए ईश्वरका अनुसंधान करना ही पुरुषका कर्तव्य है ॥ २४ ॥ जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति-इन तीनो बुद्धिकी वृत्तियोंका अनुभव करनेवाला तुरीय अवस्थामें स्थित, साक्षी वही परम पुरुष है ॥ २५ ॥ बुद्धिकी उक्त तीनो दशाएँ आत्माका धर्म नहीं हैं, क्योंकि ये त्रिगुणात्मक एवं कर्मजन्य हैं। गंधके द्वारा कुसुमसे संबंध रखनेवाले वायुकी भाँति इन तीनो बुद्धिकी दशाओंके द्वारा बुद्धिसे सम्बन्ध रखनेवाले आत्माके स्वरूपको जानना चाहिये ॥ २६ ॥ ये ही संसारका द्वार हैं, क्योंकि गुण और कर्मही संसारका बन्धन हैं एवं उनका मूल अज्ञान ही है। अतएव इनका स्वरूप मिथ्या होने पर भी ये स्वप्नके समान प्रतीत होती हैं ॥ २७ ॥ अतएव तुम लोग त्रिगुणात्मक कर्मोंके बीजोंको (कामनाओंको) पहले भस्म कर दो। बुद्धिकी इन तीनो अवस्थाओंकी निवृत्ति ही यथार्थ बीजोंका भस्म होना है ॥ २८ ॥ यथाविधि आचरित जिन सब धर्मोंके द्वारा भगवान् ईश्वरमें अविचलित भक्ति होती है उन हजारों उपायोंमें आत्मज्ञान ही भगवान्का कहा हुआ श्रेष्ठ उपाय है ॥ २९ ॥ गुरुजनकी सेवा, भक्ति, सब मिली हुई वस्तुओंका समर्पण, साधु भक्तोंका संग, ईश्वरकी आराधना, भगवान्की यथार्थ कथामें श्रद्धा, भगवान्के गुणों और कर्मोंका कीर्तन, उनके चरणकमलका ध्यान, भगवान्की सब मूर्त्तियोंके दर्शन व पूजन करना और "भगवान् हरि ईश्वर सब प्राणियोंमें स्थित हैं" यह जान कर सब प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखना–इन सब कर्मोंके द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या आदिको वशमें करके ईश्वरकी

भक्ति करनी चाहिये; इससे ईश्वरमें रति होती है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ भगवान्के माया-शरीरोंके किये कर्म, अनुपम गुण और पराक्रमोंको सुन कर जब मनुष्यके रोम खड़े हो आते हैं और आनन्दके आँसू गिरने लगते हैं एवं वह गद्गद स्वरसे गला खोल कर नाचते गाते हुए आनन्दकी ध्वनि करता है-जब पागलोंकी भाँति कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी ध्यान करता है और सब छोटे बड़ोंकी वन्दना करता है-जब वारंवार श्वास लेते हुए लज्जाको त्याग कर "हे हरे! हे जगन्नाथ! हे नारायण!" कहता है तब सब बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है एवं भगवद्भावभावनासे उसका अन्तःकरण भगवान्के रहने योग्य विशुद्ध हो जाता है और प्रबल भक्तिके कारण उसका अज्ञान तथा सब वासनाएँ विनष्ट हो जाती हैं; वह संपूर्ण रूपसे अधोक्षज भगवान्को प्राप्त हो जाता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ अधोक्षज भगवान् विष्णुका आश्रय ही इस संसारमें मलिन हृदयवा शरीर धारियोंके संसार चक्रको उच्छिन्न करनेवाला है। पंडितगण उसीको मोक्षका सुख बतलाते हैं। अतएव तुम अपने २ हृदयमें अन्तर्यामी ईश्वरका भजन करो ॥ ३७ ॥ हे असुरबालकगण! अपने २ हृदयमें आकाशके समान अवस्थित अपने आत्माके सुहृद् हरिकी उपासनामें विशेष प्रयास क्या है? अथवा सब साधारण विषयोंके उपार्जनसे ही क्या फल है? धन, स्त्री, पशु, पुत्रादि, भवन, भूमि, हाथी, खजाना, ऐश्वर्य, अर्थ और काम; ये सभी नाश होनेवाले हैं। मनुष्यको इनके द्वारा चंचल जीवनमें कितनी प्रसन्नता प्राप्त हो सक्ती है? ॥ ३८ ॥ ॥ ३९ ॥ इसी प्रकार यज्ञादि कर्मोंसे प्राप्त, अस्थायी एवं परस्पर तारतम्यसम्पन्न ये सब स्वर्गादि लोक भी निर्मल नहीं हैं। अतएव जिसमें न कोई दोष सुना जाता है और न देखा जाता है उस परमेश्वरको आत्मज्ञानके लिये यथोक्त भक्तिसे भजो ॥ ४० ॥ हे मित्रो! पण्डिताभिमानी व्यक्ति इस संसारमें सुखआदिके लिये वारम्वार कर्म करता है, किन्तु उससे उसको अवश्य उलटा ही फल मिलता है ॥४१॥ इस संसारमें कर्म करनेवाले सब लोगोंका यही संकल्प होता है कि सुख मिले अथवा दुःख छूट जाय। किन्तु वे जब कर्म नहीं करते थे तभी कर्म करनेकी अपेक्षा सुखी थे-कर्म करनेमें सर्वदा दुःख ही प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ इस संसारमें पुरुष जिसके लिये सकाम कर्मोंके द्वारा भोगकी कामना करता है वह देह भी तो कुत्ते व सियारोंका भोजन एवं क्षणभंगुर है; कभी प्राप्त होता है और कभी छूट जाता है ॥४३॥ तब देहसे दूरसम्बन्धके कारण ममताके आस्पद जो पुत्र, कन्या, स्त्री, गृह, धन, राज्य, खजाना, हाथी, मंत्री, भृत्य, विश्वस्त व्यक्ति इत्यादि हैं उनके लिये क्या कहना है! ॥ ४४ ॥ ये सब सहित देहके नाश होने वाले हैं-और यद्यपि अज्ञानवश अर्थवत् प्रतीत होते हैं किन्तु वास्तवमें अनर्थ (मिथ्या) और इसीसे अति तुच्छ हैं। इन सबसे नित्यानन्दका सागर जो आत्मा है उसको क्या प्रयोजन है? ॥४५॥ हे असुरगण! गर्भवासादि अवस्थाओंमें पूर्वोपार्जित कर्मोंके द्वारा क्लेशको प्राप्त

प्राणियोंको कर्मोंसे क्या लाभ है, सो बताओ ॥ ४६ ॥ देह धारी जीवगण आत्माके अनुवर्त्ती देह (लिंगशरीर) से कर्मोंका आरंभ करते हैं और उन्हीं कर्मोंके द्वारा अपने लिये स्थूल देहोंका निर्माण करते हैं; किन्तु इन दोनो (कर्म और देह) की ही उत्पत्ति अविवेकसे है ॥ ४७ ॥ अतएव तुम लोग निष्काम हो कर अर्थ, काम और धर्म जिनके अधीन है उन्हीं निरीह आत्मा ईश्वर हरिका भजन करो ॥ ४८ ॥ हरि भगवान् सब ही प्राणियोंके आत्मा, प्रिय एवं स्व-कृत महाभूतोंके द्वारा उत्पन्न किये हुए प्राणियोंके अन्तर्यामी हैं ॥ ४९ ॥ सुर, असुर, मनुष्य, यक्ष अथवा गन्धर्व-कोई भी हो, मुकुंदके चरणोंका भजन करनेसे सब ही मेरे समान मंगल पा सक्ते हैं ॥ ५० ॥ हे असुरबालको ! ब्राह्मण होना, देवयोनि होना, ऋषि होना, बहुज्ञ होना अथवा दान, तप, यज्ञ, शौच एवं व्रत इत्यादि उपाय-कोई भी मुकुंद भगवान्को नहीं प्रसन्न कर सक्ते; भगवान् तो केवल विशुद्ध भक्तिसे ही सन्तुष्ट होते हैं। भक्तिके सिवा और सब विडम्बनामात्र है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे दानवगण ! इस लिये सब प्राणियोंको अपने समान जान कर सब प्राणियोंके आत्मा, ईश्वर भगवान् हरिकी ही भक्ति करो ॥ ५३ ॥ हे दैत्यगण ! यक्ष, राक्षस, स्त्री, शूद्र, व्रजवासी नीच जाति एवं पशु पक्षी इत्यादि पापजीव भी अच्युत भगवान्के स्वरूप हैं ॥ ५४ ॥

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः ॥
एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत्सर्वत्र परीक्षणम् ॥ ५५ ॥

गोविंद भगवान्में एकान्त भक्ति एवं उनको सर्वत्र देखना ही इस लोकमें पुरुषोंका परम स्वार्थ कहा गया है ॥ ५५ ॥

इति श्रीभागवते सप्तमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय ।

नृसिंहजीके हाथसे हिरण्यकशिपु दानवका वध ।

नारद उवाच-अथ दैत्यसुताः सर्वे श्रुत्वा तदनुवर्णितम् ॥
जगृहुर्निरवद्यत्वान्नैव गुर्वनुशिक्षितम् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं । दैत्यबालकोंने प्रह्लादके वाक्य सुन कर, निर्दोष समझकर उन्हीको ग्रहण किया, गुरुके सिखलाये विषयको छोड़ दिया ॥ १ ॥ गुरुपुत्रोंने आ कर देखा कि सभी बालकोंकी बुद्धि पलट गई-सभीको विष्णुकी भक्तिमें निष्ठा हो गई । यह चरित्र देख कर वे बहुत डरे और शीघ्र ही

हिरण्यकशिपुके निकट जा कर सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २ ॥ पुत्रके इस दुस्सह अन्याय कार्यको सुन कर क्रोधके मारे हिरण्यकशिपुके अंग काँपने लगे और उसने उसी समय प्रह्लादको मार डालनेका विचार किया ॥ ३ ॥ तब तिरस्कारके अयोग्य और विनयपूर्वक नम्रताके साथ शान्तभावसे हाथ जोड़े खड़े प्रह्लादको तिरस्कार करके क्रोधपूर्वक तिरछी दृष्टिसे देखते हुए वह स्वभावसे ही निठुर दैत्य, लात खाये हुए सर्पके समान श्वास लेता हुआ यों कहने लगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ "अरे दुर्विनीत! तू मंदबुद्धि और अधम है, क्योंकि कुलवालोंको बहकाकर अपने ही समान कुमार्ग पर चलानेकी चेष्टा करता है। मैं तुझको अभी यमलोक भेजता हूँ, क्योंकि तू मेरी आज्ञाको न माननेवाला है ॥६॥ मूढ़! मेरे कुपित होने पर सहित लोकपालोंके तीनो लोक काँपते हैं। तू किसके बलसे निडर हो कर मेरी आज्ञाको नहीं मानता?" ॥७॥ यह सुन कर प्रह्लादजी बोले। राजन्! जो परमेश्वर हैं, जिन्होने ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त इस चराचर जगत्को अपने वशमें कर रक्खा है, वह भगवान् ही मेरा बल हैं; केवल मेरा ही नहीं बरन् आपका और अन्यान्य बलवानोंका भी वही बल हैं ॥८॥ वह ईश्वर हैं, काल हैं, उनका पराक्रम महान् है। वही सामर्थ्य, साहस, बुद्धि, बल इन्द्रिय और आत्मा हैं। वह त्रिगुणपति परम पुरुष ही अपनी शक्तिसे सृष्टि, पालन और प्रलय करते हैं ॥ ९ ॥ आप अपने इस असुरभावको छोड़ दीजिये एवं मनको समदर्शी बनाइये; कहीं कोई भी शत्रु नहीं है। उत्पथवर्त्ती मन ही एक परम शत्रु है, इस लिये मनको वशमें करिये। समदृष्टि ही अनन्त भगवान्की प्रधान आराधना है ॥ १० ॥ कुछ अज्ञ व्यक्ति पहले सर्वस्व हरनेवाले छः दस्युओं (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या)को न जीत कर विचारते हैं कि हमने दशो दिशाओंको जीत लिया। किन्तु जिन्होने आत्माको वशमें कर लिया है उन विज्ञ लोगोंके, अर्थात् सब प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखनेवाले साधुओंके उक्त अज्ञानकल्पित शत्रु न होनेसे कोई भी शत्रु नहीं है ॥ ११ ॥ यह सुन कर हिरण्यकशिपु बोला—"अरे मंदबुद्धि! निश्चय ही तेरी मरनेकी इच्छा है, क्योंकि तू मेरे आगे बहुत बढ़ २ कर बातें कर रहा है। जिनके मरनेका समय निकट आ जाता है वे ही ऐसी अंटसंट असंगत बातें बकते हैं ॥ १२ ॥ रे मंदभाग्य! तूने जो मेरे सिवा दूसरा जगदीश्वर बताया, वह कहाँ है? यदि तू कहे कि वह सर्वत्र है, तो खंभेमें क्यों नहीं देख पड़ता?" ॥ १३ ॥ प्रह्लादने ईश्वरको प्रणाम करके कहा कि वह खंभेमें भी देख पड़ते हैं। यह सुन कर हिरण्यकशिपुने कहा कि "तू बहुत बढ़ बढ़ कर बातें कर रहा है, अब मैं तेरा शिर धड़से अलग करता हूँ, तेरा इष्टदेव और रक्षक हरि आ कर तेरी रक्षा करे" ॥१४॥ इस प्रकार वारम्वार दुर्वचन कह कर महाभागवत पुत्रको पीड़ा पहुँचाते हुए उस महादैत्यने खड्ग हाथमें ले लिया और श्रेष्ठ सिंहासनसे उठ कर बड़े वेगसे बलपूर्वक उसी प्रह्लादके बताये सभाके खंभेमें

घूँसा मारा ॥ १५ ॥ राजन्! उसी क्षण उस खंभेमें बड़ा भयानक शब्द हुआ; जान पड़ा जैसे ब्रह्माण्ड फट गया! ब्रह्मा आदि देवगणने अपने अपने धाममें वह घोर शब्द सुन कर जाना कि आज हमारे लोकोंका प्रलय होगा ॥ १६ ॥ हिरण्यकशिपुने पुत्रको मारनेकी इच्छासे तेजपूर्वक विक्रम करते हुए असुर-सेनापतियोंको भयभीत करनेवाले उस अपूर्व अद्भुत शब्दको सुना, किन्तु सभामें उस शब्दका कारण कुछ न देख पाया ॥ १७ ॥ तदनन्तर भक्तवत्सल भगवान् अपने भृत्य प्रह्लादके वाक्यको एवं अपनी सर्वव्यापकताको सत्य प्रमाणित करनेके लिये सभाके भीतर उसी खंभेमें अपूर्व रूपसे प्रकट हुए। भगवान्का शरीर न मृग ही था और न मनुष्य ही था, अर्थात् आधा मनुष्य और आधा सिंह—इस प्रकार अद्भुत नृसिंह अवतार लिया ॥ १८ ॥ हिरण्यकशिपु उस खंभेसे अद्भुत नृसिंह मूर्तिको प्रकट होते देख विस्मित हो घबड़ा कर कहने लगा—"अहो! यह क्या आश्चर्य है! यह न मृग है और न मनुष्य है—कौन अद्भुत जीव है? यह कैसा विचित्र नृसिंह रूप है?" ॥ १९ ॥ हिरण्यकशिपु इस प्रकार उस भीषण नृसिंहरूपके विषयमें विचार कर ही रहा था कि उसी समय सम्पूर्ण रूपसे प्रकट हो कर नृसिंहरूप हरि उसके सम्मुख आ गये। उनके नेत्र तपे हुए सोनेके समान लाल लाल बड़े ही भयानक थे, केशर सटा अर्थात् गर्दनके बाल जम्हाई लेनेसे इधर उधर हिल रहे थे ॥ २० ॥ कराल दंष्ट्राएँ खड्गके समान चंचल और जिह्वा छुरेकी धाराके समान तीक्ष्ण थी और टेढ़ी २ भ्रुकुटियोंसे युक्त घोर मुख मनमें भय उत्पन्न करनेवाला था। उनके दोनो कान निश्चल और ऊपरको उठे व सिकुड़े हुए थे। फैला हुआ मुख और नासिका पर्वतकी कंदराके समान जान पड़ते थे। मुख, दोनो कपोलप्रान्तोंके विस्तीर्ण होनेसे बहुत ही भयानक देख पड़ता था ॥ २१ ॥ उनका विशाल शरीर स्वर्गको छू रहा था, गर्दन नाटी और मोटी थी, वक्षःस्थल विशाल और उदर अत्यन्त कृश था। शरीरके सब भागोंमें चन्द्र-किरण-तुल्य रोम व्याप्त थे, बहुतसी भुजाएँ चारो ओरसे उठी हुई थीं एवं नख ही उनके शस्त्र थे ॥ २२ ॥ भगवान् नृसिंहजीने अपने चक्रादि अस्त्र एवं वज्रादि शस्त्रोंसे दानवसेनाको भगा दिया। भगवान्का रूप अत्यन्त दुर्धर्ष था, कोई पास जानेका साहस न कर सका। दैत्यराज हिरण्यकशिपु उक्त भयानक अद्भुत रूपको देख कर उसके प्रकट होनेके प्रयोजनको विचारता हुआ आप ही आप कहने लगा—"यद्यपि स्पष्ट ही प्रकट है कि महामायावी हरिने इस रूपसे मुझे मारना विचारा है, किन्तु इस उद्यमसे मेरा क्या अनिष्ट हो सक्ता है?" ॥ २३ ॥ दैत्यपति इतना कह कर गदा हाथमें ले, सिंहनाद करता हुआ उन्ही नृसिंहजीको लक्ष्य करके लपका। किन्तु वह असुर वैसे ही नृसिंहजीके असीम तेजमें पड़ कर अलक्ष्य हो गया जैसे अग्निमें गिर कर पतङ्ग अदृश्य हो जाता है ॥ २४ ॥ जिन्होने पहले सृष्टिके आर-

म्भमें अपने तेजके द्वारा प्रलयकालीन तमको पी लिया था उन्ही सत्व-प्रकाशक हरिके तेजमें पड़ कर उस तमोमय असुरका अदृश्य होना कोई विचित्र बात नहीं है। तदनन्तर वह दैत्य अत्यन्त कुपित हो नृसिंहजी पर गदाके प्रहार करने लगा ॥ २५ ॥ गरुड़ जैसे महासर्पको पकड़ लें वैसे ही भगवान् गदाधरने महावेगसे गदासहित प्रहार कर रहे उस दानवको पकड़ लिया। हे भारत! दानव हिरण्यकशिपु किसी प्रकार उसके साथ क्रीड़ा कर रहे हरिके हाथसे निकल कर, गरुड़के हाथसे छूटे हुए सर्पकी भाँति फिर विक्रम करने लगा। तव अपने २ स्थानोंसे भ्रष्ट देवता और लोकपालगण, जो बादलोंके ओटमें छिपे हुए यह चरित्र देख रहे थे और हिरण्यकशिपुके वधकी प्रतीक्षा कर रहे थे, उन्होने भगवान्के हाथमें आ कर दैत्यके छूट जानेको अच्छा न माना ॥ २६ ॥ २७ ॥ भगवान्के हाथसे छूटे हुए दैत्यने समझा कि हरिने मेरे पराक्रमसे शंकित हो कर मुझको छोड़ दिया। उसने ऐसा समझ कर युद्धक्षेत्रमें क्षण भर विश्राम करनेके उपरान्त ढाल तर्वार ले फिर वेगसे भगवान् पर आक्रमण किया ॥ २८ ॥ वह दैत्य बाजके समान झपट कर वेगसे पैंतरेके साथ यों ढाल तर्वारके हाथ फेंक रहाथा कि शत्रुको प्रहार करनेका कोई अवसर न मिले। तव नृसिंहरूप हरिने विकट महा शब्दसे भीषण अट्टहास किया, जिससे डर कर दैत्यने नेत्र बंद कर लिये; उसी अवसरमें भगवान्ने उसको पकड़ लिया। वज्रके प्रहारसे भी उस दैत्यकी तनिक खाल नहीं कटी थी; किन्तु हरिके पकड़ते ही सर्पके पकड़े हुए मूसेके समान पीड़ित हो वह छूटनेके लिये छटपटाने लगा। भगवान्ने सभाके द्वारमें देहली पर अपनी जाँघके ऊपर गिरा कर, गरुड़ जैसे बड़े विषधर सर्पको फाड़ डालें वैसे ही लीलापूर्वक अपने तीक्ष्ण नखोंसे उसका हृदय फाड़ डाला ॥ २९ ॥ ३० ॥ नृसिंहजीके कराल नेत्र क्रोधके कारण दुष्प्रेक्ष्य हो गये और वह लंबी जिह्वासे अपने फैले हुए मुखकी चोंहें चाटने लगे। जैसे हाथीको मार कर सिंह सुशोभित हो वैसे ही दैत्यराजकी आँतोंकी माला गलेमें पहरे नृसिंहजीकी शोभा हुई। नृसिंहजीका मुखमण्डल और गर्दनके बाल रुधिर-कण पड़नेसे अरुण हो गये ॥ ३१ ॥ भगवान्ने नखोंकी नोकोंसे उस दैत्यके हृदयकमलको निकाल लिया और उसे छोड़ दिया। फिर नरहरिने अस्त्र हाथमें लिये प्रहार करनेको उद्यत उसके सहस्रों अनुचरोंको मारा। भगवान्के नखरूप शस्त्र धारण किये बाहु ही सैनिक थे ॥ ३२ ॥ राजन्! भगवान्की गर्दनके बालोंकी चोटसे मेघसमूह इधर उधर अस्तव्यस्त हो गये, भगवान्के नेत्रोंकी चमकसे ग्रहोंकी प्रभा फीकी पड़ गई, भगवान्के वारम्वार साँस लेनेके वायुसे समुद्रोंको क्षोभ हुआ और सिंहनादसे डर कर दिग्गज चिल्ला उठे ॥ ३३ ॥ भगवान्की जटाओंके आघातसे इधर उधर हट गये विमानोंसे पूर्ण स्वर्ग मानो और ऊपरको हट गया एवं चरण

धरनेके भारसे मानो पृथ्वी नीचे धँस गई । भगवान्‌के वेगसे पर्वतगण मानो उखड़ कर गिरने लगे एवं उनके तेजसे आकाशमण्डलका और दिशाओंका प्रकाश नष्ट हो गया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर सभामें उत्तम राजसिंहासन पर बैठे हुए प्रचंड मुखवाले अत्यंत तेजस्वी प्रभुके पास जानेका साहस कोई न कर सका । यद्यपि दैत्य मर गया था और युद्ध करनेवाला योद्धा कोई न था, तथापि उस समय भी नृसिंहजीका क्रोध शान्त नहीं हुआ था ॥ ३५ ॥ राजन्! तीनो लोकोंको पीड़ित करनेवाला दैत्य हिरण्यकशिपु समरमें नृसिंहजीके हाथों मारा गया—यह सुन कर आनन्दसे जिनके मुखकमल खिल गये हैं उन देवांगनाओंने वारंवार भगवान्‌के ऊपर फूलोंकी वर्षा की ॥ ३६ ॥ इस अवसरमें दर्शनाभिलाषी स्वर्गवासी देवगणके विमानोंसे आकाशमण्डल भर गया । देवगण दुन्दुभि पटह आदि बाजे बजाने लगे । मुख्य मुख्य गंधर्व गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥ ३७ ॥ हे युधिष्ठिर ! ब्रह्मा, इन्द्र व शिव आदि देवगण, ऋषिगण, पितृगण, सिद्धगण, विद्याधरगण, महोरगगण, प्रजापतिगण, मनुष्यगण, गंधर्व, अप्सरा, चारण, यक्ष, किम्पुरुष, बेताल, किन्नर एवं सुनन्द, कुमुद आदि सब विष्णु भगवान्‌के पार्षद उस सभामें आ कर हाथ जोड़ कर सिंहासन पर बैठे हुए तीव्र तेजसे युक्त नृसिंहजीके थोड़े ही अन्तर पर खड़े हो इस प्रकार अलग २ उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ **ब्रह्माजी बोले** । दुरन्तशक्ति, विचित्रवीर्य, पवित्र कर्मोंसे युक्त, अपनी लीलाके द्वारा जगत्‌की उत्पत्ति पालन और संहार करनेवाले, अव्ययात्मा, अनन्तको प्रणाम है ॥ ४१ ॥ **रुद्रने कहा** । हे भगवन् ! सहस्र युगोंके अन्तमें प्रलयका समय आपके कोपका काल है; यह समय नहीं है । यह क्षुद्र असुर मारा गया, अब कोपको शान्त करिये और हे भक्तवत्सल! शरणागत एवं अपने भक्त इस दैत्यके पुत्रकी रक्षा करिये ॥ ४२ ॥ **इंद्र बोले** । हे परम ! आपके स्वीय भाग(यज्ञभाग)को दैत्यगण हर लेते थे, आपने हमारी रक्षा करके उन्हे लौटा लिया । आपके निवासका क्षेत्र जो हमारा हृदयकमल है उस पर दैत्यने अधिकार कर लिया था, किन्तु आज आपने दैत्यको मार कर फिर उसे प्रफुल्लित किया । हे नाथ ! बहुत दिन न रहनेवाला यह त्रैलोक्यका राज्य आपके सेवकोंकी दृष्टिमें अतीव तुच्छ है । हे नरसिंह ! मुक्ति भी उनके आदरकी वस्तु नहीं हैं, तब और विषयभोग तो अत्यन्त साधारण हैं ! ॥ ४३ ॥ **ऋषिगणने कहा** । हे आदिपुरुष !आपने हमारे तपको अपना परम तेज कहा है । जिसके द्वारा ब्रह्मारूप आपने अपनेमें लीन इस जगत्‌की सृष्टि की उसी तपको इस मृत दैत्यने लुप्तप्राय कर दिया था । हे शरणागतपालक! आपने विश्वका पालन करनेके लिये धारण किये हुए इस शरीरसे हमको उसी तपके करनेकी अनुमति दी । आपको प्रणाम है ॥ ४४ ॥ **पितृगणने कहा** । भगवन्! हमारे वंशजगण हमारा श्राद्ध करते थे,

किन्तु यह दुरात्मा दैत्य बलपूर्वक आप ही हमारा प्राप्य अन्न खा जाता था एवं तीर्थस्नानके समय उनके दिये तिलोदकको आप ही पी जाता था। आपने अपने तीक्ष्ण नखोंसे इसका पेट फाड़ कर हमारे भाग हमको लौटा दिये। हे सम्पूर्ण धर्मोंके रक्षक नरसिंहजी! आपको हमारा प्रणाम है ॥ ४५ ॥ **सिद्धगणने कहा।** हे नृसिंह! इस दुरात्माने अपने योग और तपके बलसे हमारी योगसिद्ध अणिमादि सिद्धियोंको हर लिया था। नखोंसे इस महा अहंकारी दुरात्माका पेट फाड़ कर आपने बड़ा ही अनुग्रह किया; आपको हमारा प्रणाम है ॥ ४६ ॥ **विद्याधरोंने कहा।** हमारी पृथक् २ धारणाके द्वारा प्राप्त विद्याओंको जिस बल और वीर्यके घमंडी अज्ञ दानवने रोक दिया था उसको जिन्होने युद्धमें पशुकी भाँति मारा उन मायाके द्वारा नृसिंहरूपधारी हरिको हमारा प्रणाम है ॥ ४७ ॥ **नागगणने कहा।** जिस पापीने हमारे फणोंकी मणियाँ और हमारी रत्नसमान श्रेष्ठ स्त्रियाँ बलपूर्वक छीन ली थीं उसका हृदय फाड़ कर हमको और हमारी स्त्रियोंको आनन्द देनेवाले हरिको हमारा प्रणाम है ॥ ४८ ॥ **मनुगणने कहा।** देव! हम आपकी आज्ञाका पालन करनेवाले मनुगण हैं, दुरात्मा दैत्यने हमारी रची हुई वर्ण व आश्रमोंके धर्मकी मर्यादा नष्ट कर दी थी। आपने उस दुष्टका संहार किया। प्रभो! हम आपके किंकर क्या करें सो आज्ञा करिये ॥ ४९ ॥ **प्रजापति गण बोले।** हे परेश! हम आपके उत्पन्न किये हुए प्रजापति हैं! इस दुरात्मा दैत्यकी बाधासे इतने दिनों तक हम प्रजाओंकी सृष्टि नहीं कर सके। वही दुष्ट मरा हुआ पड़ा है, यह बड़े आनन्दकी बात है। हे सत्वमूर्ति! आपका अवतार जगत्के मंगलके लिये ही होता है ॥ ५० ॥ **गंधर्वगणने कहा।** हे विभो! हम आपके आगे नृत्य और आपके गुणोंका गान करनेवाले हैं। इस दुरात्माने शौर्य, वीर्य और शक्तिके द्वारा प्रभावशाली हो कर हमको वशमें कर लिया था और हम इसीका गुणगान करनेके लिये बाध्य थे। किन्तु आज आपने उसकी यह दशा कर दी। सच है, राह छोड़ कर कुराह चलनेवालेका कभी कल्याण नहीं होता ॥ ५१ ॥ **चारणोंने कहा।** हे हरि! आपके ये चरणकमल संसारसे मुक्ति देनेवाले हैं, हमने इनका आश्रय लिया है; क्योंकि आपने साधुओंके हृदयको दुखानेवाले इस असुरको मारा ॥ ५२ ॥ **यक्षगणने कहा।** प्रभो! हम मनोहर कर्मोंके द्वारा आपके अनुचरोंमें श्रेष्ठ हैं, इस दैत्यने हमको अपना बाहक बनाया था। हे चौबीस तत्त्वोंके नियन्ता पञ्चविंश! हे नृसिंह! इस दुरात्मासे लोकोंको सन्ताप मिलता जान कर आपने इसको मार डाला ॥ ५३ ॥ **किम्पुरुषगणने कहा।** भगवन्! हम किम्पुरुष—एक तुच्छ प्राणी हैं, और आप महापुरुष ईश्वर हैं; यह साधुविरोधी दुष्ट पुरुष साधुओंके धिक्कारसे नष्ट होगया—सो यह बात आपके लिये बहुत ही साधारण है ॥ ५४ ॥ **वेतालगणने कहा।** सभाओंमें और यज्ञ-स्थलोंमें आपके निर्मल यशको गा कर हम लोग

बहुत सी पूजा पाते थे, किन्तु इस दुष्ट दैत्यने सब हर लिया था। भगवन्! भाग्यकी बात है कि रोगकी भाँति दुःखदायी यह दानव आपके हाथों मारा गया ॥ ५५ ॥ किन्नरगणने कहा। हे ईश! हम आपके अनुगत किन्नर हैं, यह दैत्य हमसे बेगारमें काम कराता था। हे हरि! आपने इस पापीको मारा। हे नरसिंह! हे नाथ! आप हमारा कल्याण करिये ॥ ५६ ॥

विष्णुपार्षदा ऊचुः—अद्यैतद्धरिनररूपमद्भुतं ते
दृष्टं नः शरणद सर्वलोकशर्म ॥
सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्त-
स्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः ॥ ५७ ॥

विष्णुके पार्षदगण बोले। हे शरणद! आज हमने यह सब लोगोंको सुख देनेवाला नरसिंह रूप देखा। हे ईश! यह दैत्य और कोई नहीं—वही ब्रह्मशापग्रस्त आपका पार्षद है। आपके हाथसे इसका मरना हमारी समझमें आपके अनुग्रहका फल है ॥ ५७ ॥

इति श्रीभागवते सप्तमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय।

प्रह्लादकृत नृसिंह-स्तुति।

नारद उवाच—एवं सुरादयः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरःसराः ॥
नोपैतुमशकन्मन्युसंरम्भं सुदुरासदम् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं। ब्रह्मा, रुद्र आदि सब देवगण यों दूरसे ही स्तुति करते रहे; बड़े ही कुपित, इसीसे दुरासद भगवान्के पास न जा सके ॥ १ ॥ देवगणने पहले साक्षात् लक्ष्मीजीसे भगवान्के पास जानेके लिये कहा, पर उन्होने कभी न ऐसा रूप देखा था और न सुना था, अतएव शंकाके कारण हरिके पास नहीं गईं ॥ २ ॥ तब ब्रह्माजीने पास ही खड़े हुए प्रह्लादको भगवान्के पास भेजा और कहा कि वत्स! यह भगवान् नृसिंह तुम्हारे ही पिता पर कुपित हैं, तुम पास जा कर इनका कोप शान्त करो ॥ ३ ॥ हे राजन्! महाभागवत बालक प्रह्लादने "बहुत अच्छा" कह भगवान्के निकट जा हाथ जोड़ पृथ्वी पर गिर कर दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ४ ॥ बालक प्रह्लादको चरणों पर पड़ा हुआ देख कर नृसिंहजीका कोप शान्त हो गया और उनको दया आ गई। जिन लोगोंका चित्त-

काल-सर्पके भयसे भीत है उनको अभय देनेवाला अपना करकमल नृसिंहजीने प्रह्लादके शिर पर धर दिया ॥ ५ ॥ नृसिंहजीके हाथका स्पर्श पाते ही प्रह्लादके सब अशुभ दूर हो गये और उसी क्षण उनके हृदयमें ब्रह्मज्ञानका उदय हुआ। अतएव वह परमानन्दको प्राप्त हो कर हृदयमें भगवान्‌के चरणारविंदोंका ध्यान करने लगे। प्रह्लादके शरीरमें रोमांच हो आया, नेत्रोंमें आँसू भर आये एवं हृदय प्रेमरससे आर्द्र हो गया ॥ ६ ॥ फिर प्रह्लादजी एकाग्र मनसे सुसमाहित हो भगवान्‌में ही चित्त और नेत्र लगा कर प्रेमके कारण गद्गद स्वरसे श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥ **प्रह्लादजी बोले।** जिनकी बुद्धि सत्वमयी है वे ब्रह्मादि देवगण, मुनि, और ज्ञानी अपने अनन्त वचनोंके प्रवाह द्वारा जिनके असीम गुणोंका कीर्तन करते हुए अब तक जिनकी आराधना नहीं कर सके वह हरि मुझ उग्रजाति असुरकी स्तुतिसे कैसे सन्तुष्ट होंगे? ॥ ८ ॥ किन्तु मैं जानता हूँ कि धन, अच्छे वंशमें जन्म, रूप, तप, पाण्डित्य, इन्द्रियोंकी निपुणता, तेजका प्रभाव, शारीरिक बल, पौरुष, प्रज्ञा और अष्टाङ्ग-योग इत्यादि सब गुण उस परमपुरुषके आराधनकी उपयुक्त सामग्री नहीं हैं; क्योंकि देखो भगवान् गोविन्द गजराज पर, यद्यपि उसमें उक्त बारह गुणोंमेंसे एक भी गुण न था, केवल भक्तिसे ही प्रसन्न हो गये ॥ ९ ॥ उल्लिखित बारह गुणोंसे विभूषित ब्राह्मण भी यदि भगवान् पद्मनाभके पादपद्मसे विमुख हो तो जिस चांडालका मन, धन, वचन, कर्म एवं प्राण भगवान्‌को समर्पित हैं उसे उस ब्राह्मणकी अपेक्षा मैं श्रेष्ठ समझता हूँ; क्यों कि हरिभक्त चांडाल कुल भरको पवित्र कर सक्ता है और वह बहुमानशाली ब्राह्मण नहीं पवित्र कर सक्ता। यह प्रभु भगवान् अपने ही लाभसे पूर्ण एवं अत्यन्त दयानिधान हैं; अतएव अज्ञ पुरुषोंसे अपनी पूजाकी कामना नहीं रखते। तथापि मनुष्य, जो कुछ भगवान्‌का मान और पूजन करते हैं, उससे उन्हीका कल्याण होता है; जैसे मुखमें तिलक आदि श्रृंगार करनेसे उनके द्वारा मुखके प्रतिबिंबकीही शोभा होती है ॥ १० ॥ ११ ॥ अतएव मैं नीच होने पर भी विक्लवताशून्य हो कर सब प्रकारसे अपनी बुद्धिके अनुसार भगवान् ईश्वरकी महिमाका वर्णन करूँगा; क्योंकि हरिकी महिमा वर्णन करनेसे अविद्यावश संसारचक्रमें पड़ा हुआ जीव भी पवित्र हो जाता है ॥ १२ ॥ ईश! ये सब ब्रह्मा आदि देवगण भयभीत हो रहे हैं। ये सब आपकी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं, अतएव आपके श्रद्धावान् भक्त हैं; हमारी असुरजातिके समान वैरभावसे विरक्त भक्त नहीं हैं। आपके मनोहर अवतारों द्वारा इस प्रकारकी विविध लीलाएँ केवल इस जगत्के मंगलके लिये अथवा आत्मसुखके लिये होती हैं ॥ १३ ॥ अतएव इस समय आप क्रोधको शान्त करिये, क्योंकि असुरका संहार हो गया। वृश्चिक, सर्प आदि हिंस्र, दुःखदायक

जीवोंकी हत्यासे तो साधुजन भी प्रसन्न होते हैं। असुरके वधसे प्रसन्न सब लोग आपका कोप शान्त होनेकी राह देख रहे हैं। हे नृसिंह! लोग भयभीत अवस्थामें निर्भय होनेके लिये आपके रूपका स्मरण करते हैं॥ १४ ॥ हे अजित! आपके इस भयानक-जिह्वायुक्त मुख, सूर्यसदृश चमकीले नेत्र, भ्रुकुटिभंगि और उग्र दंष्ट्रा, आँतोंकी माला, रुधिरसे भीगे और ऊपर उठे कान व जटाओंसे मैं नहीं डरता। जिसको सुन कर बड़े २ दिग्गज डर गये उस आपके गर्जनसे और शत्रु-हृदय-विदारक नखोंसे मुझको कुछ भी डर नहीं लगता ॥ १५ ॥ किन्तु हे दीनवत्सल! दुःसह उग्र संसारचक्रके पेषणसे बहुत ही डरता हूँ। क्यों कि मैं इस संसारचक्रके बीच हिंस्र जन्तुओं (असुरों) में अपने कर्मोंके द्वारा जकड़ा पड़ा हूँ । हे श्रेष्ठतम! आप प्रसन्न हो कर कब मुझे अपने मोक्षदायक चरणोंकी शरणमें बुला लें गे? ॥१६॥ हे देव! क्योंकि मैं सब ही योनियोंमें प्रियके वियोग और अप्रियके संयोगसे उत्पन्न शोककी आगमें जलता रहा हूँ। दुःखकी जो दवा (कर्म) है वह भी दुःख है। मैं देहादिमें अभिमान करके इस संसार-चक्रमें निरन्तर भ्रमण कर रहा हूँ। हे भगवन्! मुझको अपने दासभावका योग बताइये ॥ १७ ॥ आप प्रिय सुहृद् एवं परम देवता हैं। ब्रह्मा आदि जिनका कीर्तन करते हैं उन आपकी लीलासंबंधी कथाओंका कीर्तन करते हुए, आपके चरणारविन्दोंके आश्रित परमहंसोंके संगलाभसे मायाशून्य हो कर, सहजमें सम्पूर्ण कष्टदायक संसारादि संकटोंके पार हो जाऊँगा ॥ १८ ॥ हे नृसिंह! दुःखसन्तप्त व्यक्तिके दुःखको दूर करनेके लिये जिन उपाय लोकमें प्रसिद्ध हैं वे आपके उपेक्षित प्राणियोंके लिये अत्यन्त उपकारी नहीं हैं, अर्थात् कुछ ही समयके लिये कल्याणकारी (देख पड़ते) हैं। बालकके लिये पिता, माता और रोगीके लिये औषध एवं सागरमें डूबनेके लिये नौका आदि पूर्णरूपसे रक्षक नहीं होते; क्योंकि पिता माताके रहते भी बालकको दुःख मिलता है और औषधके होते भी रोगीकी मृत्यु होती है एवं नौका पा कर भी लोग नौकासहित डूब जाते हैं। इस लिये केवल आप ही सबके दुःख दूर करनेवाले हैं ॥ १९ ॥ विविधस्वभावसम्पन्न अपर कर्ता (पिता आदि) हो या पर कर्ता (विधाता आदि) हो—जिसमें, जिस लिये, जब, जिसके द्वारा, जिसको, जिसके द्वारा प्रेरित हो कर, जिसके लिये, जो कार्य जिस प्रकार प्रस्तुत या रूपान्तरको प्राप्त होता है सो सब आपका ही स्वरूप है ॥ २० ॥ काल पा कर मायाके गुणोंमें क्षोभ होनेसे, उस मायाने आपका अंश जो पुरुष (आत्मा) है उसके अनुमोदित अनुग्रहसे, मन जिसमें प्रधान अंग है उस लिंगशरीरकी सृष्टि की। वह मन दुर्जय, कर्ममय और छंदोमय अर्थात् वेदोक्तकर्मप्रधान है । जीवकी अविद्याने संसारभोगके लिये उसमें सोलह विकार युक्त कर दिये हैं। हे अज! ऐसे संसारचक्रमय मनको आपके

विना कौन उत्तीर्ण हो सक्ता है? ॥ २१ ॥ हे ईश्वर! जिन्होने अपनी चित् शक्तिके द्वारा बुद्धिके संपूर्ण गुणोंको जीत लिया है, आप वही महापुरुष एवं कालस्वरूप हैं। अतएव कार्य-कारण-शक्ति सब आपके अधीन हैं। मैं उक्त षोडशविकाररूप आरोंसे युक्त घोर संसार-चक्रमें मायावश पड़ा हुआ ईखके समान पिस रहा हूँ; हे विभो! आप मुझ शरणागतको अपने समीप निर्भय स्थानमें स्थान दीजिये ॥ २२ ॥ भगवन्! सब लोग जिनकी चाह करते हैं उन लोकपालोंके वैभव, संपदा, आयु और ऐश्वर्यको मैंने देख लिया! मेरे पिताकी कोपपूर्ण दृष्टि और भ्रूभंगयुक्त हास्यमात्रसे उनका नाश हो गया और आपने उसी मेरे दुर्दान्त पिताको मार डाला। बस, देहधारियोंके विषयभोगका परिणाम मुझे भली भाँति विदित हो गया ॥ २३ ॥ नाथ! मुझे ब्रह्माके पदसे ले कर साधारण भोग तककी एवं आयु, लक्ष्मी और वैभव इत्यादि किसी विषयकी अभिलाषा नहीं है; क्योंकि महाविक्रमशाली कालस्वरूप आप उक्त सब विषयोंको नष्ट कर देते हैं। मुझको आप अपने भृत्योंके समीप स्थान दीजिये ॥ २४ ॥ कहाँ सुननेमें सुखदायक और मृगतृष्णाके समान मिथ्या सब मङ्गलकामनाएँ! और कहाँ सम्पूर्ण रोगोंकी उत्पत्तिका स्थान यह शरीर! यह जान कर भी लोग मधु (शहद) के तुल्य दुर्लभ सुख-लेशोंके द्वारा कामाग्निको शान्त करनेमें व्यग्र रहनेके कारण दुःखके ज्ञानका अवसर ही नहीं पाते, अतएव उनको संसारसे निर्वेद नहीं होता। हे ईश! कहाँ रजोगुणसे उत्पन्न तामसस्वभावसम्पन्न असुर कुलमें उत्पन्न मैं! और कहाँ आपका अनुग्रह! शिव और लक्ष्मीके शिर पर भी अपनी प्रसन्नताका निदर्शन जो कर-कमल आपने नहीं धरा वही करकमल कृपालु हो कर मेरे शिर पर धरा-यह क्या कम गौरवकी बात है! आप जगत्के आत्मा और सुहृद् हैं, अतएव जैसे सामान्य लोगोंकी "यह उत्तम है, यह नीच है" ऐसी परावरज्ञानयुक्त भेदबुद्धि होती हैं, आपकी बुद्धि वैसी नहीं है। जैसे कल्पवृक्ष सेवा करनेसे समानभावसे सबकी कामनाएँ पूर्ण करता है वैसे ही आप भी, ऊँच या नीच, कैसा ही भक्त हो, उसको अपना कर उसकी कामना पूर्ण करते हो। हे भगवन्! विषयकी अभिलाषा करनेवाले सब मूढ़ लोग कालसर्पयुक्त संसार-कूपमें पड़े हुए हैं। मैं भी उन्हींके संगसे उसी अंधकूपमें गिर रहा था, ऐसे समयमें भगवान् नारदने मुझ पर अनुग्रह कर उस अंधकूपसे उबार लिया। अतएव मैं आपके भक्त साधुओंकी सेवाको कैसे छोड़ सक्ता हूँ? ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे अनन्त! मेरे पिताने अन्यायकार्य करने पर उद्यत हो खड्ग हाथमें ले कर जब कहा था कि "मैं तेरा शिर काटता हूँ, मेरे सिवा कोई ईश्वर हो तो आ कर तेरी रक्षा करे" तभी आपने प्रकट हो कर उसको मारा और मेरी रक्षा की। उक्त दोनो ही कार्य आपने अपने भृत्य ऋषिका वाक्य सत्य करनेके लिये किये-यह मैं मानता हूँ ॥ २९ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् एक आपका ही स्वरूप

है, इसके आदि अन्त और मध्यमें आप ही विराजमान हैं। आप अपनी मायासे उत्पन्न गुण-परिणाम-रूप इस जगत्में अनुप्रविष्ट हो कर उन सब गुणोंका अवलम्ब लेनेके कारण अनेक-रूप प्रतीत होते हैं ॥ ३० ॥ हे ईश! आप ही यह कार्य—कारणरूप जगत् हैं, एवं यह आपसे पृथक् नहीं है किन्तु आप इससे पृथक् हैं। अतएव अपने परायेका भेद मिथ्या मायामय भ्रममात्र है। जिससे जिसकी सृष्टि, स्थिति और प्रकाश व संहार होता है, वह कारण और वह कार्य अभिन्न होते हैं। वृक्ष जैसे पार्थिवबीजमय है एवं पृथ्वी जैसे भूतसूक्ष्ममय है वैसे यह सम्पूर्ण विश्व आपका ही रूप है ॥३१॥ आप स्वयं इस जगत्को अपनेमें लीन कर अपने परमानन्दरूपका अनुभव करते हुए निरीहभावसे प्रलयसमुद्रमें शयन करते हैं। आप योगमायाके द्वारा नेत्र बंद किये अपने प्रकाश(ज्ञान)में निद्राको लीन कर तीनो अवस्थाओंसे अतीत अपने रूपमें अवस्थित रहते हैं; तमोयुक्त अथवा विषयभोक्ता नहीं होते ॥३२॥ यह जगत् उन्ही आपका स्वरूप है। निजकालशक्तिके द्वारा मायाके धर्म जो तीनो गुण हैं उनको आप प्रेरणा करते हैं। अनन्त-शयनसे समाधिका विराम होनेके समय आपकी नाभिसे एकार्णव-जलके भीतर एक महापद्म प्रकट हुआ। वह प्रलयके समय आपमें ही निगूढ़ (छिपा हुआ या लीन) रहता है। सूक्ष्म वटके बीजसे जैसे महावृक्ष उत्पन्न होता है, उसी प्रकार उक्त पद्मसे ये लोक उत्पन्न हुए ॥ ३३ ॥ उस पद्मसे उत्पन्न ब्रह्माने सिवा पद्मके और कोई वस्तु नहीं देख पाई। ब्रह्माने पद्मकी उत्पत्तिके कारणको उसके बाहर समझ सौ वर्ष तक जलके भीतर रह कर अनुसन्धान किया। उस पद्मके उपादानकारणस्वरूप आप यद्यपि उनके शरीरमें ही व्याप्त थे तथापि वह आपको न जान सके। अंकुर उत्पन्न हो जाने पर बीज क्या उससे अलग देख पड़ता है? उन ब्रह्माने विस्मित-भावसे उसी पद्म पर बैठ कर बहुत काल तक तीव्र तप किया, तब चित्तके शुद्ध होने पर भूमिमें व्याप्त सूक्ष्म गंधकी भाँति पंचभूत-इन्द्रिय-अन्तःकरणादिमय अपने देहमें 'सत्'मात्ररूपसे अवस्थित जो आप हैं उनको देख पाया ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ सहस्र मुख, सहस्र चरण, सहस्र मस्तक, सहस्र हाथ, सहस्र उरू, सहस्र नासिका, सहस्र कान, सहस्र नेत्र, सहस्र सहस्र आभरण एवं सहस्र सहस्र अस्त्रोंसे युक्त, मायामय-पातालादि अंगोंसे शोभित विराट्शरीर महापुरुष जो आप हैं उनके दर्शन कर ब्रह्माजी बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ ३६ ॥ तब आपने हयग्रीव अवतार ले कर देवतोंसे द्रोह करनेवाले महाबली मधु कैटभ नाम रजोगुण व तमोगुणकी मूर्ति दोनो असुरोंका वध किया और ब्रह्माजीको वेद लौटा कर दिये। भगवन्! वेदमें कहा है कि सत्त्वगुण आपकी प्रिय मूर्ति है ॥ ३७ ॥ आप इसी प्रकार मनुष्य, पशु-पक्षी, ऋषि, देवता, मत्स्य आदि अवतारोंके द्वारा सब लोकोंका पालन और जगत्के प्रतिकूल जो व्यक्ति हैं उनका विनाश एवं युगपरम्परासे

आये हुए धर्मकी रक्षा करते हैं; किन्तु कलियुगमें आपके दर्शन नहीं होते, क्योंकि आप "त्रियुग" नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ३८ ॥ हे वैकुण्ठनाथ! मेरा यह मन कलुषित, दूषित, बहिर्मुख, दुर्द्धर्ष और कामातुर है, सुतराम् हर्ष, शोक, भय और त्रिविध तापोंके द्वारा पीड़ित होनेसे आपकी कथामें प्रीति नहीं होती । मैं दीन इस प्रकारके मनसे कैसे आपका तत्त्व विचारनेमें समर्थ हो सक्ता हूँ? ॥ ३९ ॥ हे अच्युत! जैसे बहुत सौतें मिल कर अपने पतिको अपनी २ ओर खींचती हैं वैसे ही जिह्वा एक ओर, शिश्न एक ओर, त्वचा व उदर और कान एक ओर, नासिका और चंचल नेत्र एक ओर एवं सब कर्मेन्द्रियाँ अन्य ओर खींचती हैं ॥ ४० ॥ हे पार-स्थित! भगवन्! इस प्रकार संसाररूप वैतरणी नदीमें अपने २ कर्मके कारण पड़े हुए और परस्पर-सम्भूत जन्म मरण और खानपानके द्वारा अतीव भीत, भेद-बुद्धिशाली इस मूढ़ जनकी रक्षा करो, मुझ कृपादृष्टिके प्रार्थी पर अनुग्रह करो ॥ ४१ ॥ हे भगवन्! हे सबके गुरु! आप इस जगत्की सृष्टि, रक्षा और संहार करनेवाले हैं, अतएव सब लोगोंको संसारके पार कर देना आपके लिये कोई प्रयासकी बात नहीं है । हे दीनबन्धु! आप महात्मा हैं, आप मूढ़ जन पर भी अनुग्रह करते हैं । हम आपके भक्तोंकी सेवा करते हैं; हमको संसारके पार जानेकी कुछ चिन्ता नहीं है ॥४२॥ हे सर्वोत्तम! आपके चरित्र-गान-रूप सुधाके सागरमें हमारा चित्त मग्न है, अतएव हम दुस्तर संसाररूप वैतरणीको भी नहीं डरते । किन्तु उस लीलामृतसे विमुख हो कर इन्द्रियभोग्य माया-सुखके लिये भार वहन करनेवाले मूढ़ लोगोंको देख कर हमको अत्यन्त शोक होता है ॥ ४३ ॥ हे देव! मुनिगण प्रायः अपने २ मोक्षकी अभिलाषासे निर्जनमें मौनावलम्बन कर रहते हैं, पराये उद्धारकी चेष्टा नहीं करते । किन्तु मैं इन दीन अज्ञ लोगोंको छोड़ कर अकेले नहीं मुक्त होना चाहता । मुझको, कर्मवश अनेक योनियोंमें भ्रमण कर रहे इन लोगोंका आपके सिवा दूसरा रक्षक नहीं देख पड़ता ॥ ४४ ॥ स्त्रीसंग आदि गृहस्थाश्रमके सुख 'खाज' रोगके समान हैं । जैसे खाजमें खुजलाते समय बड़ा सुख जान पड़ता है, किन्तु उससे सिवा खाज बढ़नेके शान्ति नहीं होती–दुःख ही होता है, वैसे ही स्त्रीसंग आदिका सुख भी अति तुच्छ है । दीन अज्ञ लोग उसमें सदैव दुःख पा कर भी तृप्त नहीं होते । आपके प्रसादसे ऐसा ही कोई धीर पुरुष खाजके समान कामको सह सक्ता है ॥ ४५ ॥ मौन, व्रत श्रुत, तप, स्वाध्याय, स्वधर्म, वेदव्याख्या, निर्जनमें वास, जप एवं समाधि; मोक्षके ये दश साधन प्रसिद्ध हैं । किन्तु हे पुरुष! ये साधन प्रायः अजितेन्द्रिय पुरुषोंके जीवनका उपाय होते हैं और दांभिक (पाखंडी) पुरुषोंकी भी, सर्वदा नहीं तो कभी २, इनके द्वारा जीविका चलती है (क्योंकि पाखंडका भंडा फूट जाता है)। तात्पर्य यह है कि वास्तवमें मोक्षका साधन आपकी अनन्य भक्ति ही है ॥४६॥

वेदमें बीज और अंकुरके समान कार्य और कारण दोनो आपके रूप कहे गये हैं, किन्तु आप रूपआदिसे रहित हैं। जैसे मथनेसे काष्ठमें अग्निका अनुभव होता है उसी प्रकार जितेन्द्रिय योगीजन भक्तियोगके द्वारा, कार्य और कारण दोनोको ही आपके अनुगत देखते हैं; अन्य प्रकारसे उक्त प्रकारका ज्ञान नहीं होता ॥ ४७ ॥ वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, पंचतन्मात्रा, प्राण, इन्द्रिय, मन, चित्त व इन सबके अधिष्ठाता देवता तथा अहंकार; ये सब आप ही हैं। स्थूल (सगुण) और सूक्ष्म (निर्गुण) आप ही हैं। मन और वाणीके गोचर जितनी वस्तुएँ हैं वे सब आपसे भिन्न नहीं हैं ॥ ४८ ॥ गुणोंके अधिष्ठाता देवगण, गुणीगण, महत् आदि, मनप्रभृति, देव-मनुष्यगण–सभी जड़ उपाधि एवं आदि अन्तवाले हैं। हे उरुगाय! इसी लिये बुद्धिमान् लोग विचारपूर्वक अध्ययन आदिसे निवृत्त हो समाधि-योगके द्वारा आपकी उपासना करते हैं ॥ ४९ ॥ हे पूज्यतम ! केवल परमहंस जन ही आपको पा सक्ते हैं। नमस्कार, स्तुति, सब कर्मोंका समर्पण, पूजन, चरणोंका स्मरण और कथाका श्रवण–इस षडङ्गसेवाके सिवा लोगोंको आपकी भक्ति नहीं प्राप्त होती ॥ ५० ॥ **नारदजी कहते हैं।** भक्तने भक्तिपूर्वक इस भाँति गुणोंका वर्णन किया, तब वह निर्गुण नृसिंहजी कोपको शान्त कर प्रसन्न हो प्रणत प्रह्लादसे यों बोले ॥ ५१ ॥ **श्रीभगवान् बोले।** हे भद्र प्रह्लाद ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, जो चाहो वर माँगो। मैं ही मनुष्योंकी सब कामनाएँ पूर्ण करनेवाला हूँ ॥ ५२ ॥ हे चिरजीविन् ! जो व्यक्ति मुझे प्रसन्न नहीं कर सक्ता उसको मेरा दर्शन दुर्लभ है। मेरे दर्शन होने पर किसीकी कामना अपूर्ण नहीं रहती; जिसके लिये उसको पश्चात्ताप करना पड़े ॥५३॥ हे महाभाग ! मैं सब कल्याणोंका अधीश्वर हूँ; धीर साधुगण कल्याणकी कामना कर अनन्य-भावसे मुझको ही सन्तुष्ट करनेकी चेष्टामें तत्पर रहते हैं ॥ ५४ ॥

एवं प्रलोभ्यमानोपि वरैर्लोकप्रलोभनैः ॥
ऐकान्तित्वाद्भगवति नैच्छत्तानसुरोत्तमः ॥ ५५ ॥

नारदजी कहते हैं कि असुरश्रेष्ठ प्रह्लाद तो निष्काम भक्त थे, इसी कारण अन्य लोगोंके चित्तको लुभानेवाले वरदानका लोभ दिखाने पर भी उन्होने नृसिंहजीसे किसी भी वर की इच्छा नहीं प्रकट की ॥ ५५ ॥

इति श्रीभागवते सप्तमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय ।

भगवान् नृसिंहका अन्तर्द्धान होना ।

नारद उवाच—भक्तियोगस्य तत्सर्वमन्तरायतयाऽर्भकः ॥
मन्यमानो हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं। हे राजन्! उन सब वरोंको भक्तियोगका विघ्न जान बालक प्रह्लाद कुछ हँस कर हृषीकेश भगवान्से बोले ॥ १ ॥ **प्रह्लादजीने** कहा कि भगवन्! मेरी जाति स्वभावतः कामासक्त है; ये सब वर दिखा कर मुझको प्रलोभित न कीजिये। मैं कामसंगसे डर कर निर्विघ्न चित्तसे मोक्ष पानेकी कामना करके आपकी शरणमें आया हूँ ॥२॥ प्रभो! मुझे जान पड़ता है कि आपने भृत्यके लक्षणकी जिज्ञासासे अर्थात् परीक्षा करनेके लिये, संसारके बीज और हृदयकी ग्रन्थि जो कामनाएँ हैं उनकी ओर भक्तको इस प्रकार प्रेरणा की। नहीं तो हे सब जगत्के गुरु! आप करुणामय हैं, आपका यों भक्तोंको अनर्थरूप विषयोंकी ओर प्रवृत्त करना असम्भव है। प्रभो! जो व्यक्ति आपके दुर्लभ दर्शन पा कर आपसे सांसारिक सुख माँगता है वह भृत्य नहीं, व्यापारी है। स्वामीके निकट जो व्यक्ति कल्याणकी आशा करता है वह सेवक नहीं है एवं जो अपने प्रभुत्वकी इच्छासे भृत्यका भला करता है वह भी प्रभु नहीं है। मैं आपका निष्काम भक्त हूँ, आप भी मेरे अभिसन्धि-शून्य स्वामी हैं। अतएव अन्य स्वामी और सेवकोंकी भाँति मुझको और आपको अभिसन्धिका प्रयोजन नहीं है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे ईश! हे वरदानियोंमें श्रेष्ठ! आप यदि मुझको मन-चाहा वर देते ही हैं तो यही वर दें कि मेरे हृदयमें अभिलाषाओंका अंकुर न जमे। मैं आपके निकट यही वर माँगता हूँ ॥ ७ ॥ हे भगवन्! वासना (कामना)से बहुत ही अनिष्ट होते हैं; कामना उपजनेसे इन्द्रिय, मन, प्राण, देह, धर्म, धैर्य्य, बुद्धि, लज्जा, सम्पत्ति, तेज, स्मृति एवं सत्यका विनाश होता है! ॥ ८ ॥ हे कमललोचन! जब मनुष्य हृदय-स्थित सब कामनाओंको छोड़ देता है तभी आपके समान ऐश्वर्य पानेके योग्य होता है। आप भगवान् परमपुरुष, महात्मा हरि, विचित्र सिंह, परब्रह्म, परमात्मा हैं; आपको मैं प्रणाम करताहूँ ॥ ९ ॥१०॥ **श्रीनृसिंहजी** बोले। वत्स! यह सत्य है कि तुम्हारे ऐसे भक्तजन इस लोक और परलोकके कल्याणकी कामना नहीं करते। तथापि तुम इस मन्वन्तर भर इसी स्थानमें दैत्येश्वरोंके भोग करने योग्य सम्पूर्ण भोगोंका भोग करो ॥ ११ ॥ मेरी सब प्रिय कथाएँ सदा सुनो और पढ़ो। सब प्राणियोंमें वर्तमान एकमात्र यज्ञाधिष्ठाता जो मैं हूँ उसको अपने हृदयमें स्थापित करो, सब कर्म मुझे अर्पण करते हुए कर्म-फल त्याग कर यज्ञादिसे मेरा पूजन करो ॥ १२ ॥ वत्स! भोगके द्वारा पुण्यको और पुण्यके द्वारा पापको एवं यथासमय कलेवरको त्याग कर जब तुम बन्धनमुक्त हो

जाओगे तब देवगणकीर्तित अपनी विशुद्ध कीर्ति जगत्में छोड़ कर मुझको प्राप्त होओगे ॥ १३ ॥ जो मनुष्य समय २ पर तुम्हारे कीर्तन किये हुए मेरे स्तोत्रका और तुम्हारा व हमारा स्मरण करेगा वह कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा ॥ १४ ॥ **प्रह्लादजी बोले** । आप वरदानी, महान् ईश्वर हैं; आपसे मैं यह वर माँगता हूँ कि मेरे पिताने आपके ऐश्वर्य व तेजको न जान कर जो आपकी निन्दा की है एवं क्रुद्ध हो कर साक्षात् सब लोकोंके गुरु जो आप हैं उन्हे "भाईका मारनेवाला है" इस मिथ्याज्ञानके वशीभूत हो कर कटु वचन कहे हैं और आपका भक्त जो मैं हूँ उस पर अत्याचार किये हैं उनको क्षमा करिये । हे दीन-वत्सल! मेरा पिता यद्यपि आपका कृपाकटाक्ष पा कर पवित्र हो गया है तथापि मेरी यही प्रार्थना है कि वह सम्पूर्ण दुस्तर दुरन्त पापराशिसे छूट जाय ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ १७ ॥ **श्रीभगवान् बोले** । हे निष्पाप! जब तुम ऐसे कुलपावन पुत्रने घरमें जन्म लिया तभी तुम्हारा पिता पूर्वतन इक्कीस पीढ़ियों सहित पवित्र हो गया ॥ १८ ॥ जहाँ समदर्शी, प्रशान्त, साधु, सदाचारसम्पन्न मेरे भक्तगण रहते हैं वहाँके नीचगण भी पवित्र हो जाते हैं ॥ १९ ॥ हे दैत्येन्द्र! जो महत्पुरुष हैं, जो बिविध प्राणियोंमेंसे यथाशक्ति किसी प्रकार किसीकी हिंसा नहीं करते, किसीका हृदय नहीं दुखाते, जिन्होने मेरे भावसे पूर्ण हो कर सब कामनाएँ छोड़ दी हैं, जो तुम्हारे अनुगत हैं वे ही मेरे भक्त हैं अतएव तुम मेरे भक्तोंमें श्रेष्ठ और आदर्श हो ॥२०॥२१॥ तुम्हारा पिता सब प्रकारसे पवित्र हो गया है, तथापि इस समय तुम पुत्रका कर्तव्य पालनेके लिये उसका प्रेतकर्म समाप्त करो । प्रह्लाद, तुम्हारा पिता तुम ऐसे सुपुत्रसे और मेरे अंगका स्पर्श प्राप्त होनेसे अवश्य ही सद्गतिको प्राप्त होगा ॥ २२ ॥ हे तात! इस समय तुम पिताके पद पर अधिष्ठित हो कर, वेदवादी मुनियोंकी आज्ञाका उल्लंघन न कर, मुझमें मन लगा कर अनन्यभावसे सत्कर्म करो ॥ २३ ॥ **नारदजीने कहा** । हे राजन्! प्रह्लादने भगवान्की आज्ञाके अनुसार पिताका और्ध्वदैहिक कर्म समाप्त किया एवं तदनन्तर पूज्य ब्राह्मणोंने उनका राज्याभिषेक किया ॥ २४ ॥ फिर देवसमूहसहित ब्रह्माजी नरसिंहरूपधारी हरिको प्रसन्न और सुमुख देख कर पवित्र वाक्योंसे यों स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ **ब्रह्माजीने कहा** । हे देवदेव! हे सबके स्वामी! हे भूतभावन! हे पूर्वज! पापी असुरने प्रसन्न करके मुझसे यह वर माँग लिया था कि "आपकी सृष्टिमें जितने प्राणी हैं वे मुझको न मार

---

१ यहाँ शंका होती है कि हिरण्यकशिपुके इक्कीस पीढ़ी कहाँसे आई? कश्यपके पिता मरीचि और उनके पिता ब्रह्मा; इस हिसाबसे तीन ही पीढ़ी हुई । किन्तु यहाँ इक्कीस पीढ़ियाँ पूर्व कल्पकी ली गई हैं ।

सकें"। फिर तप-योगकी शक्तिसे उद्धत हो कर वह दैत्य सब धर्मोंका उच्छेद करनेमें प्रवृत्त हुआ था। किन्तु हमारे भाग्यसे उस लोकपीड़क असुरको आपने मार डाला॥ २६॥ २७॥ उस दैत्यके पुत्र महाभागवत बालक प्रह्लादकी आपने रक्षा की-यह भी बड़े सौभाग्यकी बात है एवं यह प्रह्लाद इस समय भली भाँति आपको प्राप्त हुआ-यह भी साधारण सौभाग्यकी बात नहीं है॥ २८॥ हे भगवन्, आप परमात्मा हैं, जो कोई आपका ध्यान करता है उसको आपकी यह नृसिंह मूर्ति सब प्रकारके भय और मृत्युसे बचाती है॥ २९॥ **श्रीभगवान्** ब्रह्माजीसे बोले कि हे विभो! हे पद्मसम्भव! असुरगण स्वाभाविक दुष्ट होते हैं, उनको वर देना और सर्पको दूध पिला कर पालना समान है। अतएव असुरोंको ऐसे अलभ्य वर देना उचित नहीं है॥३०॥ **श्रीनारदजी कहते हैं।** भगवान् नृसिंहजी इतना कह ब्रह्माजीकी पूजा ग्रहण कर सबके देखते वहीं पर अदृश्य हो गये॥ ३१॥ तदनन्तर प्रह्लादजीने भगवान्के अंश जो ब्रह्मा, महेश, प्रजापति आदि देवगण हैं उनका पूजन किया और पृथ्वी पर शिर झुका कर उनको दण्डवत् प्रणाम किया॥३२॥ तब शुक्रआदि-मुनिगण-सहित पद्मयोनि ब्रह्माने प्रह्लादको दैत्य और दानवमात्रका स्वामी कर दिया और सब देवता प्रह्लाद पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए आशीर्वाद दे कर व पूजा ले कर अपने २ स्थानको गये॥ ३३॥ ३४॥ राजन्! विष्णुके वे दोनो पार्षद इस भाँति विप्रशापसे दितिके पुत्र हो कर उत्पन्न हुए और शत्रुभावसे चिन्तित हरिने उनको मारा॥ ३५॥ फिर वेही दूसरे जन्ममें कुम्भकर्ण और रावण नाम राक्षस हुए, और रामचन्द्रजीके हाथों मारे गये॥ ३६॥ उनका हृदय रामचन्द्रजीके बाणोंसे विदीर्ण हो गया, एवं उन्होने रणभूमिमें शयन करके पूर्वजन्मके समान हरिका ध्यान करते हुए शरीर त्याग किया॥ ३७॥ हे युधिष्ठिर! वे ही फिर इस संसारके बीच तीसरे जन्ममें शिशुपाल और दन्तवक्र हुए, जिनको तुम्हारे देखते ही, वैरभावसे सर्वदा हरिका ध्यान करनेसे, सायुज्य मुक्ति मिली॥ ३८॥ इसी प्रकार कृष्णसे द्वेष करनेवाले सब राजा लोग अन्तको भगवान्के ध्यानके प्रभावसे पूर्वसञ्चित पापराशिको नष्ट कर-पेशस्कृत्के ध्यानसे कीटकी तन्मयत्व-प्राप्तिकी भाँति हरिमें तन्मय हो गये॥ ३९॥ हे युधिष्ठिर! तुमने प्रश्न किया था कि "शिशुपाल आदिने शत्रु हो कर भी कैसे सायुज्य मुक्ति पाई?"। उसके उत्तरमें, भगवान्की भेददृष्टिशून्य परमा भक्तिके द्वारा शिशुपाल आदि नरपतिगणने जैसे सायुज्य मुक्ति पाई सो सब हमने तुमसे कहा। ब्रह्मण्यदेव महात्मा श्रीकृष्णके अवतारकी यह पवित्र कथा हमने तुमको सुनाई और इसके अन्तर्गत दोनो आदिदैत्योंके वधका-वृत्तांत भी वर्णन किया॥ ४०॥ ४१॥ ४२॥ महाभागवत प्रह्लादका चरित्र; उनकी भक्ति, ज्ञान, वैराग्य; सृष्टि-स्थिति-प्रलयके ईश्वर भगवान् हरिका

तत्त्व; प्रह्लादकृत हरिका गुणानुवाद; हरिके गुणोंका वर्णन और उत्तम-अधम सब स्थानोंका कालकृत महान्यत्यय एवं जिसके द्वारा भगवान् जाने जा सक्ते हैं वह भागवतधर्म—ये सब विषय और आत्मानात्मबिवेक आदि संपूर्ण आध्यात्मिक रहस्य इस उपाख्यानमें कहे गये हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ इस पवित्र आख्यानमें विशुद्ध विष्णुकी कथा है, जो व्यक्ति इसको सुन कर श्रद्धापूर्वक इसका कीर्तन करता है वह कर्मके पाशसे मुक्त हो जाता है। राजन्! जो व्यक्ति पवित्र हो कर आदिपुरुषकी यह नृसिंहलीला और दैत्यपति व दैत्ययूथपोंके वधका विवरण पढ़ता है एवं साधुओंमें श्रेष्ठ दैत्यपुत्र प्रह्लादके पवित्र प्रभावको सुनता है वह निर्भय हो कर अन्त-समय वैकुण्ठ धामको जाता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ राजन्! "प्रह्लाद भाग्यवान् हैं और हम अभागे हैं"—ऐसा विचार कर विषाद न करना। मनुष्यलोकमें तुम भी बड़े भाग्यशाली हो, क्योंकि भुवनपावन मुनिगण तुम्हारे भवनमें चारो ओरसे आते हैं! तुम्हारे भवनोंमें मनुष्यरूपमें छिपे हुए साक्षात् परब्रह्म निवास करते हैं ॥ ४८ ॥ यह श्रीकृष्णचन्द्र ही वह परब्रह्म हैं। यही महाजनोंके खोजनेकी वस्तु, कैवल्य-निर्वाण-सुखानुभव-स्वरूप हैं, जिन्हे तुम प्रिय, सुहृद्, मामाके पुत्र, आत्मा, पूजनीय, आज्ञाकारी एवं गुरु मानते हो ॥४९॥ शिव, ब्रह्माआदि देवगण अपनी बुद्धिके बलसे जिनके रूपका ठीक २ वर्णन नहीं कर सक्ते वही भक्तवत्सल भगवान् मौनव्रत, उपशम और भक्तियोगके द्वारा पूजित हो कर हम पर प्रसन्न हों ॥ ५० ॥ हे राजन्! पहले महा मायावी मय-दानवने रुद्रदेवके विशाल यशको नष्ट करनेकी चेष्टा की थी, किन्तु इन्हीं भगवान्ने रुद्रके यशको फिर विख्यात कर दिया ॥ ५१ ॥ **राजा युधिष्ठिर बोले**। प्रभो! मय दानवने कौन सा कार्य कर जगदीश्वर रुद्रके यशको नष्ट करना चाहा था एवं भगवान् विष्णुने किस प्रकार शिवजीकी जाती हुई कीर्ति बचा ली? यह सब वृत्तान्त हमसे कहिये ॥ ५२ ॥ **नारदजीने कहा**। विष्णुके तेजसे वृद्धिको प्राप्त देवगणने युद्धमें असुरगणको मार भगाया, तब वे मायावियोंके प्रधानगुरु मय दानवकी शरणमें गये ॥ ५३ ॥ उस समर्थ दानवने उनको सोने, चाँदी और लोहेके तीन पुर बना दिये। उन पुरोंका गमनागमन दुर्लक्ष्य था और उनके भीतरका सामान इतना था कि जिसका अनुमान करना कठिन है ॥ ५४ ॥ हे नृप! असुरोंके सेनापतिगण उन पुरोंमें अलक्षित भावसे अवस्थित हो पहलेका वैर स्मरण करते हुए लोकपाल-सहित सब लोकोंका विनाश करने लगे ॥ ५५ ॥ तब लोकपालों सहित सब प्रजागण शिवजीके पास गये और दंडवत् प्रणाम करके कातर स्वरसे यों कहने लगे कि हे विभो! हे देवदेव! हम आपके ही दास हैं, त्रिपुरनिवासी असुरगण हमें नष्ट कर रहे हैं, आप रक्षा करिये ॥ ५६ ॥ तब भगवान् शिव देवगण पर अनुग्रह करके कहने लगे कि "हे देवगण! तुम भयभीत न होओ"। इसके बाद समर्थ शिव भगवान्ने त्रिपुरको लक्ष्य करके अपने धनुष पर वाण चढ़ा कर मारा ॥ ५७ ॥

राजन्! जिस भाँति सूर्यमण्डलसे असंख्य किरणें निकलती हैं वैसे ही उस बाणसे अग्निमय अनेक बाण उत्पन्न हुए, जिनसे दैत्योंकी तीनो पुरियाँ आवृत हो गईं ॥५८॥ उन बाणोंके लगते ही त्रिपुरनिवासी दानवगण मर २ कर नीचे गिरने लगे। यह देख मायावी मय दानवने उन सब मरे हुए दैत्योंके शरीर अपने बनाये हुए अमृतके कूपमें डाल दिये। सिद्ध अमृत रसका स्पर्श होते ही वे सब मरे हुए दानव फिर जी उठे और उनमें फिरसे महाबल आ गया एवं उनके सब अंग वज्रके समान सुदृढ़ हो गये। इस प्रकार मेघको फाड़ कर बिजलीके समान वे दैत्य फिर विमानों सहित प्रकट हुए। उस समय शिवका संकल्प भग्न होते देख भगवान् विष्णुने एक उपाय निकाला ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ विष्णुजीने ब्रह्माको वत्स बनाया और आप गऊ बने तथा मध्याह्नके समय त्रिपुरके भीतर प्रवेश किया और अमृतकूपके निकट जा कर सब अमृतरस पी गये। वहाँके रखवाले असुरगण देखते रहे, भगवान्की मायामें मोहित होनेके कारण रोक न सके। महायोगी शोकशून्य हरि इस बातको जान कर दैवगतिका स्मरण करते हँसते हुए उन शोकाकुल रखवालोंसे यों कहने लगे कि "अपने लिये या दूसरेके लिये अथवा अपने और दूसरे दोनोके लिये जो कुछ दैवकल्पित है उसे अन्यथा करनेकी शक्ति, क्या देवता-क्या मनुष्य और क्या अन्य कोई व्यक्ति,किसीमें नहीं है"। तदनन्तर भगवान् हरिने धर्म, ज्ञान, वैराग्य, अणिमादिक ऐश्वर्य, सम्पत्ति, तप, विद्या और क्रियादिके द्वारा अपनी ही शक्ति जो शंभु हैं उनके संग्रामकी सामग्री रथ, सारथी, अश्व, ध्वजा, धनुष, बाण, कवच आदिकी रचना कर ली। महेश्वर शंभुने कवच धारण कर धनुष व बाण हाथमें लिया। राजन्! भगवान् शंकरने शरासन पर बाण चढ़ा कर मध्याह्नके समय अभिजित् मुहूर्तमें उस दुर्भेद्य त्रिपुरको अनायास ही भस्म कर डाला। तब आकाशमें नगाड़े बजने लगे। विमान पर चढ़े हुए देव, ऋषि, पितर, और सिद्ध श्रेष्ठगण-"जययुक्त होइये" कह कर रुद्र भगवान् पर फूलोंकी वर्षा करने लगे, गंधर्वगण प्रसन्न हो कर गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥ ६२ ॥ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ भगवान् त्रिपुरारि इस प्रकार त्रिपुरको भस्म कर ब्रह्मा आदि देवगणकी स्तुति और पूजा स्वीकृत करके अपने धामको गये ॥ ६९ ॥

एवंविधान्यस्य हरेः स्वमायया
विडम्बमानस्य नृलोकमात्मनः ॥
वीर्याणि गीतान्यृषिभिर्जगद्गुरो-
र्लोकान्पुनानान्यपरं वदामि किम् ॥ ७० ॥

भगवान् हरिके ऐसेही अनेकों चरित्र हैं। वह अपनी माया द्वारा स्वावलम्बित मनुष्यरूपके अनुरूप चेष्टा करते हैं। उन जगद्गुरुके त्रिभुवनपावन चरित्र, जिन्हे ऋषिगण गाते हैं-हमने आपसे वर्णन किये; अब और क्या कहें? ॥ ७० ॥

इति श्रीभागवते सप्तमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय ।

मनुष्यधर्म, वर्णधर्म और स्त्रीधर्मका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच—श्रुत्वेहितं साधु सभासभाजितं
महत्तमाग्रण्य उरुक्रमात्मनः ॥
युधिष्ठिरो दैत्यपतेर्मुदा युतः
पप्रच्छ भूयस्तनयं स्वयंभुवः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले। महात्माओंमें श्रेष्ठ विष्णुके भक्त प्रह्लादका साधुओंके द्वारा सम्मानको प्राप्त चरित्र सुन कर युधिष्ठिरजी आनन्दको प्राप्त हुए और फिर ब्रह्माके पुत्र नारदजीसे यों पूछने लगे ॥ १ ॥ युधिष्ठिरजीने कहा। भगवन्! मैं मनुष्योंका सनातनधर्म्म एवं वर्ण व आश्रमोंके आचार सुनना चाहता हूँ, क्योंकि उनसे पुरुषको ज्ञान और भक्तिकी प्राप्ति होती है ॥२॥ भगवन्! आप परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजीके साक्षात् पुत्र हैं एवं तप, योग और समाधिके द्वारा आप ही उनको सब पुत्रोंमें प्रिय हैं ॥ ३ ॥ नारायणके भक्त विप्रगण गुह्य परम धर्मको जानते हैं। आप ऐसे दयानिधान, परोपकारी, शान्त साधुजन ही उस धर्मको जान सक्ते हैं, औरलोग नहीं ॥ ४ ॥ नारदजी बोले। जो सब लोगोंके मङ्गलके लिये धर्म्मके वीर्यसे दाक्षायणीके गर्भमें अपने अंशसे अवतार ले कर बदरिकाश्रममें तप कर रहे हैं उन नारायणको प्रणाम करके तुम्हारे निकट उनके मुखसे सुने हुए धर्मका वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥ ६ ॥ राजन्! भगवान्का रूप वेद, वेदके जाननेवालोंकी कही हुई स्मृतियाँ और शास्त्रोक्त धर्ममें जहाँ परस्पर अन्तर है वहाँ जिस धर्मसे मनकी प्रसन्नता हो वह धर्म्म; ये सब सनातन धर्मका मूल हैं* ॥ ७ ॥ सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा, सत् असत्का विचार, शम, दम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य्य, दान, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदृष्टि, साधुओंकी सेवा, प्रवृत्तिविषयक कर्मसे निवृत्ति, मनुष्यकृत सब कर्मोंकी निष्फलताका ज्ञान, वृथा वार्ता-

---

* यथाह याज्ञवल्क्यः। श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्यच प्रियमात्मनः। सम्यक् संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम् ॥

लापका त्याग, आत्मविचार, यथोचितरूपसे प्राणियोंको अन्नादि बाँट कर खाना, सब प्राणियोंमें इष्टदेव परमात्माको देखना, श्रीकृष्ण भगवान्के नाम और गुण सुनना-कीर्तन करना व स्मरण करना, हरिकी सेवा-पूजा और प्रणाम करना, अपनेको हरिका दास जानना और हरिको अपना सखा मानना एवं हरिको आत्मसमर्पण कर देना; इन तीस लक्षणोंसे युक्त सनातनधर्म सब ही मनुष्योंका साधारणधर्म्म है। इसके पालनसे सर्वात्मा हरि प्रसन्न होते हैं॥८॥९॥१०॥११॥१२॥ जिनके वेदमन्त्रयुक्त संस्कार होते हैं एवं जिनको भगवान् ब्रह्माने वेदमंत्र-युक्त उपनयनादि संस्कारके योग्य कहा है वे ही द्विज हैं। जिनका कुल और आचार शुद्ध है उन द्विजोंके लिये यज्ञ कराना, पढ़ना, दान करना और ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंकी कही हुई सब क्रियाएँ करना वेदविहित है। पढ़ना, पढ़ाना, दान देना, दान लेना, यज्ञ करना और यज्ञ कराना ये छः कर्म ब्राह्मणके हैं एवं दान लेनेके सिवा उक्त पाँच कर्म्म क्षत्रियके हैं (क्योंकि आपत्कालमें क्षत्रिय भी यज्ञ करा सक्ते हैं और पढ़ा सक्ते हैं; किन्तु आपत्काल न होने पर पढ़ना, यज्ञ करना, और दान देना ये तीन ही कर्म्म हैं)॥१३॥१४॥ यज्ञ कराना, पढ़ाना और विशुद्ध दान लेना ब्राह्मणकी जीविका हैं। ब्राह्मणके सिवा अन्य प्रजासे यथोचित कर-शुल्क-दंड लेना प्रजारक्षक राजा(क्षत्रिय)की जीविका हैं। कृषि, वाणिज्य आदि वैश्य जातिकी जीविका हैं; सदा ब्राह्मणकुलके अनुगत रहना ही वैश्यका धर्म है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करना ही शूद्रका धर्म और जीविका है। अपने हाथसे न किये गये खेती आदि अनिषिद्ध कार्य्य, विना माँगे मिले द्रव्यका ग्रहण और नित्य-प्रति निर्वाह भरके लिये अन्न माँग लेना एवं खेतमें कटने पर खेतके स्वामीके त्यागे हुए अन्नको लेना अथवा बाजारमें बिथरे हुए अन्नको बटोर लाना ये चार वृत्तियाँ ब्राह्मणोंकी हैं, इनमें उत्तरोत्तर वृत्ति श्रेष्ठ है। नीच जाति आपत्ति कालके बिना उत्तम वृत्तिका अवलम्बन न करे, किन्तु आपत्कालमें सभी वृत्तियोंका अवलम्बन निषिद्ध नहीं है। क्षत्रियको आपत्तिकालमें भी दान न लेना चाहिये। ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत या सत्यानृत द्वारा ब्राह्मण और क्षत्रिय गण जीविकानिर्वाह कर सक्ते हैं, किन्तु श्व-वृत्तिसे कभी जीविका-निर्वाह करना उचित नहीं है। ऋत, अर्थात् खेतमें खेतके स्वामीके छोड़े अन्नको और बाजारमें बिथरे अन्नको बटोर लाना। अमृत, अर्थात् विना माँगे मिले द्रव्यका ग्रहण। मृत, अर्थात् नित्य माँगना। प्रमृत, अर्थात् खेती। सत्यानृत, अर्थात् वाणिज्य एवं श्व-वृत्ति, अर्थात् नीचकी सेवा॥१५॥१६॥ ॥१७॥१८॥१९॥ श्ववृत्ति अत्यन्त निन्दित है अतएव ब्राह्मण, क्षत्रियको उसे कभी न स्वीकार करना चाहिये; क्योंकि ब्राह्मण सब वेदोंका आधार है और क्षत्रिय सब देवतोंका॥२०॥ शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, दया, विष्णुकी भक्ति और सत्य; ये ब्राह्मणके लक्षण या धर्म्म हैं॥२१॥ शूर वीर होना,

वीर्य, धैर्य, तेज, दान, आत्माको जीतना अर्थात् मनका दमन, क्षमा, ब्राह्मणकी भक्ति, प्रसन्नता, रक्षा करना और सत्य; ये क्षत्रियके लक्षण या धर्म्म हैं ॥२२॥ देवता, गुरु और विष्णुमें भक्ति, धर्म अर्थ और कामका पालन, आस्तिक-भाव, नित्य उद्योग एवं चतुराई; ये वैश्यके लक्षण या धर्म्म हैं ॥ २३ ॥ नम्रता, शौच, निष्कपट-भावसे स्वामीकी सेवा, बिना वेदमंत्रके यज्ञ करना, चोरी न करना, सत्य बोलना और गऊ ब्राह्मणकी रक्षा करना; ये शूद्रके लक्षण या धर्म्म हैं ॥ २४ ॥ पतिकी सेवा, पतिके अनुकूल रहना, पतिके बंधुओंकी अनुवृत्ति और सर्वदा पतिके नियमोंका पालन; ये पतिव्रता स्त्रियोंके लक्षण और धर्म हैं ॥ २५ ॥ सती साध्वी स्त्रियोंका कर्तव्य है कि वे घरको बहारें, झाड़ें, लीपें, सँवारें, सिंगारें और नित्य घरकी सामग्रीको साफ करके यथोचित स्थानों पर रक्खें और स्वयं आभूषण व वस्त्रोंसे भूषित हो अनेक भोगकी वस्तुएँ दे कर विनयसे, इन्द्रियदमनसे, मधुर वाणीसे और प्रेमसे पतिको सन्तुष्ट रक्खें व सेवा करें ॥२६॥२७॥ स्त्रीको चाहिये कि जो प्राप्त हो उसीमें सन्तुष्ट रहे, भोगकी वस्तुओंके लिये लाव २ न करे, कार्यमें आलस्य न करे, धर्मको जाने, मधुर वचन बोले, सावधान और शुद्ध रहे एवं स्नेहसहित अ-पतित पतिकी सदा सेवा करे ॥ २८ ॥ राजन्! जो स्त्री लक्ष्मीके समान पतिपरायणा हो कर अनन्य भावसे हरिकी भावना करके पतिकी सेवा करती है वह वैकुण्ठधाममें हरि-स्वरूप पतिके साथ लक्ष्मीके समान आनन्दको प्राप्त होती है ॥२९ ॥ अन्त्यज और अन्तेवसायी संकर जातिके लोगोंका धर्म है कि चोरी वा अन्य किसी पापकार्य्यमें निरत न हो कर अपनी कुलपरम्परासे चली आई वृत्तिसे निर्वाह करें । रजक, चमार, कैवर्त्त आदिको अन्त्यज और चाण्डाल, पुष्कस आदिको अन्तेवसायी कहते हैं ॥ ३० ॥ वेदज्ञ पण्डितोंका कथन है कि मनुष्योंके स्वभावके अनुसार युग-युगमें जो धर्म विहित्त हुआ है वही धर्म उनके लिये इस लोक और परलोकमें सुखदायक है ॥ ३१ ॥ जीव स्वभावविहित वृत्तिसे जीवनधारण कर अपने कर्तव्य कर्म करता हुआ क्रमशः स्वभावकृत कर्मोंको त्याग कर निर्गुण भावको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ जिस खेतमें बार २ बीज बोया जाता है वह आप ही निस्तेज हो पड़ता है अर्थात् उसकी उपजाऊ शक्ति घट जाती है, उसमें बोया हुआ बीज नष्ट हो जाता है, वैसे ही कामवासनामय चित्त अत्यन्त विषयसेवन करने पर संसारसे विरक्त हो जाता है। राजन्! जैसे अग्नि घीकी बूँदें डालनेसे बुझनेके बदले और भी प्रज्वलित हो उठता है वैसे ही स्वल्प कामके सेवनसे चित्त शान्त नहीं होता बरन् और भी विषय वासनाएँ बढ़ती हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ॥
यद्यन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥ ३५ ॥

जिस पुरुषके वर्णका जो लक्षण कहा गया है वह यदि दूसरे वर्णमें पाया जाय तो उसे भी वही वर्ण मानना चाहिये ॥ ३५ ॥

इति श्रीभागवते सप्तमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय ।

आश्रमोंके धर्मोंका वर्णन ।

नारद उवाच—ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्दान्तो गुरोर्हितम् ॥
आचरन्दासवन्नीचो गुरौ सुदृढसौहृदः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं । ब्रह्मचारीको उचित है कि इन्द्रियोंको वशमें रख कर गुरुकुलमें वास करे और गुरु पर सुदृढ़ स्नेह स्थापित करके दासके तुल्य नम्रभावसे, जिसमें गुरुका हित हो, वही कर्म करे ॥ १ ॥ सायंकाल और प्रातःकाल गुरु, अग्नि, सूर्य और अन्य देवतोंकी उपासना करे एवं गायत्रीजप और त्रिकाल सन्ध्या करे । सन्ध्या करते समय मौन रहे अर्थात् मंत्रोच्चारणके सिवा कोई बात न करे ॥ २ ॥ गुरु जब बुलावे तब मन और देहको अच्छी तरह स्थिर करके वेदाध्ययन करे और पढ़नेके पहले व अन्तमें गुरुके चरणोंमें मस्तक रख कर प्रणाम करे ॥ ३ ॥ शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार मेखला, कृष्णाजिन, वल्कल वसन, जटा, दण्ड, कमण्डलु और यज्ञोपवीत धारण करे एवं हाथमें कुशकी पवित्री धारण किये रहे ॥४॥ सायंकाल और प्रातःकाल भिक्षा माँग लावे और भिक्षामें मिला हुआ अन्न गुरुको अर्पण कर दे, फिर गुरुकी आज्ञा पावे तो आप भी उसमेंसे भोजन करे नहीं तो उपवास कर जाय ॥५॥ ब्रह्मचारीको सुशील, मितभोजी, कार्यचतुर और श्रद्धावान् व जितेन्द्रिय होना चाहिये और स्त्री व स्त्री-वशीभूत मनुष्योंसे प्रयोजन भरकी बातचीत करनी चाहिये ॥ ६ ॥ गृहस्थके सिवा ब्रह्मचारीमात्रको स्त्रीसम्बन्धी वार्तालाप न करना चाहिये । क्योंकि प्रबल इन्द्रियाँ बड़े २ यतियोंके मनको चलायमान कर देती हैं ॥७॥ युवक शिष्यके लिये जवान गुरुपत्नीसे अपने केश सुलझवाना, अंग मलवाना, स्नान और उबटन लगवाना मना है ॥८॥ क्योंकि स्त्री अग्निके तुल्य है और पुरुष घीके घड़ेके समान है । निर्जनमें अपनी कन्याके भी पास रहना पुरुषके लिये अनिष्टकर है । अन्य समयमें ब्रह्मचारी प्रयोजनके अनुसार गुरुपत्नीकी आज्ञासे गुरुगृहका काम कर दे ॥ ९ ॥ जीव जब तक आत्मज्ञानके द्वारा देहादिको आभासमात्र मिथ्या जान कर समदर्शी और स्वतन्त्र नहीं होता तब तक उसे "मैं पुरुष हूँ, यह स्त्री है" इस प्रकारका भेदभाव रहता है और उसीसे बुद्धिका विपर्यय होता है । भोग करनेवाले और भोगकी वस्तुका भेद जब तक नष्ट न हो तबतक स्त्रीसंगसे बचना चाहिये ॥ १० ॥

गृहस्थ और यतियोंके लिये भी ये सब धर्म हैं। गृहस्थको ऋतुकालमें ही स्त्रीसंग करना चाहिये, इस कारण उसके लिये गुरुवृत्ति विकल्पसे कही गई है ॥११॥ ब्रह्मचारीके लिये अंजन व उबटन लगाना, हाथ पैर और शरीर दबवाना, स्त्रीसंग व चित्रकर्म करना, मांस मधुका सेवन, माला पहरना, चंदन एवं सुगंधित वस्तुओंको लगाना और अलंकार पहरना वर्जित है ॥१२॥ द्विजगणको चाहिये कि इस प्रकार गुरुकुलमें वास करके वेदांग, उपनिषद् और तीन वेद पढ़ कर अपने अधिकार और शक्तिके अनुसार वेदके अर्थको विचारें ॥१३॥ यदि शक्ति हो तो गुरुको उसकी इच्छाके अनुसार दक्षिणा दे कर और आज्ञा ले कर गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यस्त हों अथवा आजन्म ब्रह्मचारी रह कर वहीं वास करें ॥ १४ ॥ यद्यपि ईश्वर वासुदेव सब असत् पदार्थोंसे अलग हैं तथापि सब आश्रमवालोंको उचित है कि वे भगवान् वासुदेवको निज-आश्रय जीवके साथ अग्निमें, गुरुमें अपनेमें और सब प्राणियोंमें नियन्तारूपसे अवस्थित देखें ॥ १५ ॥ राजन्! ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, यति अथवा गृहस्थ इस प्रकार अपने कर्तव्यका अनुष्ठान करनेसे विज्ञेय-वस्तु जो आत्मा है उसके ज्ञानको पा कर परब्रह्मको प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ अब हम मुनियोंके द्वारा अनुमोदित वानप्रस्थ आश्रमके नियम कहते हैं, जिनका पालन करनेसे वानप्रस्थ मुनिगण अनायास ही ऋषिलोक (महर्लोक) को प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥ वानप्रस्थको खेतीसे उत्पन्न फलादिक न खाना चाहिये। जो फल सूर्यके या अग्निके तापसे पके हों अथवा कच्चे हों और खेतीसे न उत्पन्न हों केवल उन्हीको खाना चाहिये ॥ १८ ॥ वनके नीवार (तिन्नीके चाँवल) इत्यादि अन्नसे चरु पुरोडाशआदि नित्य कर्मोंका निर्वाह करे। नवीन २ अन्न प्राप्त होने पर पूर्व-सञ्चित पुराने अन्नको निकाल डाले ॥ १९ ॥ अग्निहोत्र-स्थापनके लिये ही पर्णकुटी अथवा पर्वतकी कंदराका आश्रय ग्रहण करे । किन्तु आप सर्वदा खुलेमें रह कर हिम, वायु, अग्नि, वर्षा और घामको सहे ॥ २० ॥ जटा धारण करे, केश, रोम, नख और दाढ़ी मूछको न कटवावे, शरीरके मलको भी न साफ करे एवं कमण्डलु, मृगचर्म्म, दण्ड, वल्कल और अग्निपरिच्छद (अग्निका सामान) धारण करे ॥२१॥ तपके क्लेशसे बुद्धि भ्रष्ट न हो-इस लिये यथाशक्ति उक्त रीतिसे बारह वर्ष, आठ वर्ष, चार वर्ष, दो वर्ष या एक वर्ष वनमें विचरण करे ॥२२॥ किसी व्याधि अथवा बुढ़ापेके कारण जब अपने धर्मके पालनेकी शक्ति न रहे अथवा ज्ञानके अभ्यासमें असमर्थ हो जाय तब अनशनादिक करे ॥ २३ ॥ अनशनादि करनेके प्रथम आत्मामें अग्निको आरोपित करके "मै हूँ, मेरा है" इस प्रकारके अभिमानको छोड़ दे और जिस प्रकार पंचतत्त्वोंसे शरीरकी उत्पत्ति हुई है उसी क्रमसे शारीरिक तत्त्वोंको पंचतत्त्वोंमें लीन कर दे। अर्थात् शरीरके छिद्रोंको आकाशमें, श्वासाको वायुमें, उष्णता (गर्मी) को तेजमें, शुक्र शोणित और श्लेष्माको जलमें एवं अव-

शिष्ट कठिन अंशको पृथ्वीमें; इस भाँति समष्टिस्वरूप देहको निज २ कारणमें यथाविधि लीन कर दे। फिर वाक्यसहित वाक् इन्द्रियको अग्निमें, शिल्पसहित दोनो हाथोंको इन्द्रमें, गतिसहित दोनो पैरोंको विष्णुमें, रतिसहित उपस्थको प्रजापतिमें और विसर्ग (मलमूत्रत्याग) सहित पायुको मृत्युमें लीन करे। राजन्! शब्दसहित श्रोत्रको दिशाओंके मंडलमें, स्पर्शसहित त्वक् इन्द्रियको वायुमें, रूपसहित चक्षुको तेजमें, वरुणसहित जिह्वाको जलमें एवं अश्विनीकुमारसहित घ्राणको गन्धवती पृथ्वीमें लीन करे। मनोरथसहित मनको चन्द्रमें, बोध्य पदार्थसहित बुद्धिको ब्रह्मामें एवं अहंकारसहित सब कर्मोंको रुद्रमें लीन कर दे। तदनन्तर चेतनासहित चित्तको क्षेत्रज्ञ आत्मामें एवं गुण-संगमें विकृति अर्थात् रूपान्तरको प्राप्त क्षेत्रज्ञको निर्विकार ब्रह्ममें लीन करे। अन्तमें पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें, वायुको आकाशमें, आकाशको अहंकार तत्त्वमें, अहंकार तत्वको महत्तत्वमें, महत्तत्वको प्रकृति अर्थात् मायामें और प्रकृतिको परमात्मामें लीन कर दे।

इत्यक्षरतयात्मानं चिन्मात्रमवशेषितम् ॥
ज्ञात्वाऽद्वयोऽथ विरमेद्दग्धयोनिरिवानलः ॥ ३१ ॥

भेदभावरहित मुनि, इस प्रकार उपाधियोंके लीन होने पर जो ज्ञानस्वरूप आत्मा शेष रहता है उसको अविनाशी जान कर, काष्ठ जल जाने पर जैसे अग्नि शान्त होता है—वैसेही निर्वाणको प्राप्त हो ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

इति श्रीभागवते सप्तमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय।

सिद्ध अवस्थाका वर्णन।

नारद उवाच—कल्पस्त्वेवं परिव्रज्य देहमात्रावशेषितः ॥
ग्रामैकरात्रविधिना निरपेक्षश्चरेन्महीम् ॥ १ ॥

श्रीनारदजी बोले। हे राजन्! ज्ञानके अभ्यासमें समर्थ देहमात्रावशिष्ट व्यक्ति इस प्रकार अपनेको ब्रह्ममय समझ कर संन्यास ग्रहण करे और एक गाँवमें एक रात रहनेका नियम ले कर निरपेक्षभावसे पृथ्वीपर्यटन करे ॥ १ ॥ संन्यासी यदि वस्त्र धारण करना चाहे तो केवल कोपीन धारण करे। दण्डआदिके सिवा और किसी प्रकारका चिन्ह आपत्कालके बिना न धारण करे, क्योंकि सभी प्रकारके

चिन्ह उसके त्यागे हुए हैं। भिक्षाजीवी हो कर अकेले ही भ्रमण करे, किसी एक स्थानमें आश्रम बना कर न वास करे। आत्माके अनुभवानन्दमें तृप्त रहे, सब प्राणियोंसे मित्रताका व्यवहार करे, शान्त और नारायण-परायण हो ॥ २ ॥ ३ ॥ इस विश्वको कार्य और कारणसे परे अव्यक्त आत्मामें अवस्थित देखे एवं परब्रह्म आत्माको भी कार्य-कारणमय और सर्वत्र वर्तमान देखे ॥ ४ ॥ सुषुप्ति और जागरण, इन दोनो दशाओंके संधिस्थलमें आत्मलक्ष्यसे अवस्थित हो आत्मतत्त्वको देखे; सुतराम् बन्धन और मोक्ष दोनोको ही मायामात्र जाने ॥ ५ ॥ निश्चित वा अनिश्चित देहके निश्चित मृत्यु वा अनिश्चित जीवनका अभिनन्दन न करे। केवल प्राणियोंकी उत्पत्ति व विनाशका कारण जो काल है उसीकी प्रतीक्षा करे ॥ ६ ॥ असत् शास्त्रोंमें न आसक्त हो, किसी जीविकाका अवलम्बन न करे, वितण्डावाद-युक्त तर्कको त्याग करे एवं किसी पक्षको ग्रहण न करे ॥ ७ ॥ प्रलोभन आदि उपायोंसे शिष्योंका संग्रह, बहुत ग्रंथोंका अभ्यास, शास्त्रकी व्याख्या एवं कहीं मठ आदिका स्थापन न करे ॥ ८ ॥ जो व्यक्ति शान्त और समदर्शी है उस महात्मा यतिके लिये आश्रम-चिन्ह धारण करनेका नियम नहीं है; अतएव वह इच्छाके अनुसार चाहे आश्रमके चिन्ह धारण करे और चाहे उनको त्याग कर दे ॥ ९ ॥ उसका कोई चिन्ह स्पष्ट न रहना चाहिये, केवल आत्मानुसंधान ही स्पष्ट रहे। वह मनीषी (बुद्धिमान्) हो कर भी अपनेको उन्मत्त और बालकोंकी भाँति एवं कवि हो कर भी गूँगे बावलोंकी भाँति दिखलावे ॥ १० ॥ यहाँ पर पण्डितजन एक पुरातन इतिहासका वर्णन करते हैं, जिसमें प्रह्लाद और अजगरकी वृत्ति धारण करनेवाले मुनिका सम्वाद है ॥ ११ ॥ एक अजगरव्रत धारण करनेवाले परमहंस मुनि कावेरी नदीके निकट सह्य पर्वतके शिखरमें पृथ्वी पर लेटे हुए थे। उनके सब अंग धूल से भरे थे, जिसके कारण उनका निर्मल तेज छिपा हुआ था ॥ १२ ॥ उसी समय भगवान्के प्रिय भक्त प्रह्लादजी कुछ अनुचर मंत्रियोंके साथ लोक-तत्त्व जाननेकी इच्छासे तीनो लोकोंमें पर्यटन करते हुए वहाँ पहुँचे और उन मुनिको देखा ॥ १३ ॥ कर्म, आकृति, वाक्य एवं वर्ण, आश्रमादिके चिन्होंसे यह जानना कठिन था कि यह आत्मज्ञानी मुनि हैं या पागल ॥ १४ ॥ महाभागवत प्रह्लादने चरणों पर शिर रख कर प्रणाम किया और यथाविधि पूजन किया। फिर वह जाननेकी इच्छासे यों प्रश्न करने लगे ॥ १५ ॥ प्रह्लादने कहा । प्रभो! मैं देखता हूँ कि आप उद्यम करनेवाले और भोग करनेवाले लोगोंके समान मोटा ताजा शरीर धारण किये हुए हैं। उद्योगी लोगोंके पास धन और धनी लोगोंका ही शरीर भोग एवं भोग करनेवालोंका ऐसा मोटा ताजा होता है ॥ १६ ॥ ब्रह्मन्! आप सदा यों ही पड़े रहते हैं, अतएव निरुद्यम हैं, आपका धनोपार्जन करना

असंभव है। धनसे ही भोग होते हैं। हे विप्र! भोग विना किये भी जिस कारण आपका शरीर मोटा ताजा बना हुआ है-यदि हो सके तो वह कारण हमारे आगे प्रकट कीजिये॥ १७॥ आप विद्वान्, कर्मसमर्थ, चतुर हैं। आप अनेक प्रकारके मधुर वचनोंसे लोगोंका मन हरनेकी शक्ति रखते हैं, आपकी प्रकृति भी मधुर है, किन्तु 'सभी लोग कर्मोंमें लगे हुए हैं'–यह देख कर भी आप लेटे हुए हैं, किसी प्रकारकी चेष्टा नहीं करते ॥ १८ ॥ नारदजी कहते हैं। वह महामुनि, दैत्यपतिके इस प्रश्नको सुन कर एवं उनके मधुर वचनोंसे प्रसन्न हो कर मंद मुसकाते हुए यों बोले ॥ १९ ॥ "हे असुरश्रेष्ठ! तुम ज्ञानी और श्रेष्ठ लोगोंके द्वारा सम्मानको प्राप्त हो: अतएव अन्तर्दृष्टिके द्वारा मनुष्योंकी प्रवृत्ति और निवृत्तिके सभी फल तुमको विदित हैं ॥२०॥ भगवान् नारायण देवने केवल भक्तिके द्वारा तुम्हारे हृदयमें प्रवेश करके, भगवान् सूर्य जैसे अंधकारको दूर करते हैं उस प्रकार अज्ञानको दूर कर दिया है ॥२१॥ तथापि मैंने जैसा सुना है उसीके अनुसार तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर देता हूँ, क्योंकि जिसको अपना अन्तःकरण शुद्ध करनेकी कामना हो उसे अवश्य तुम्हारे साथ संभाषण करना चाहिये ॥ २२ ॥ राजन्! संसारचक्र चलानेवाली तृष्णाको यथोचित विषयभोगके द्वारा भी शान्त करना कठिन है। उसी तृष्णाके द्वारा कर्मोंमें प्रवृत्त हो कर मैंने पहले अनेक योनियोंमें प्रवेश किया ॥ २३ ॥ मैंने कर्मवश योनियोंमें भ्रमण करते २ उसी तृष्णाके द्वारा यह मनुष्य शरीर पाया । राजन्! यह नरदेह स्वर्ग और मोक्षके एवं कुत्ता, शूकर आदि तिर्य्यक् योनियोंके और मनुष्ययोनिके पानेका द्वार है ॥ २४ ॥ किन्तु इस मनुष्ययोनिमें भी सब नर नारी सुख-लाभ और दुःखकी निवृत्तिके लिये कर्म करते हैं, तथापि उनको उसका फल उलटा मिलता है । यह देख कर मैंने निवृत्तिमार्ग ग्रहण किया है ॥ २५ ॥ सुख ही इस आत्माका स्वरूप है, जब सब कर्मोंकी निवृत्ति हो जाती है तब यह आत्माका रूप स्वयं प्रकट होता है । मैं सब भोगोंको अनित्य समझ चेष्टारहित हो कर योंही पड़ा रहता हूँ; केवल प्रारब्ध-भोग कर रहा हूँ; ॥ २६ ॥ इस प्रकारसे सुखस्वरूप आत्मा अपनेमें ही वर्तमान है, किन्तु पुरुषार्थको भूल जानेके कारण, जीव, वास्तवमें पुरुष(आत्मा)से भिन्न द्वितीय वस्तु न होने पर भी, घोरतर विचित्र संसारको प्राप्त होता रहता है ॥२७॥ जैसे अज्ञ व्यक्ति, तृण-सेवार आदिसे ढके हुए जलको छोड़ कर जलकी कामनासे मृगतृष्णाकी ओर दौड़ते हैं, उसी भाँति आत्माके स्वरूपसे भिन्न अन्य पदार्थोंमें स्वार्थ देखनेवाले पुरुष निरन्तर संसारको प्राप्त होते हैं ॥२८॥ राजन्! जो व्यक्ति, दैवाधीन देहआदिके द्वारा सुखलाभ और दुःखकी निवृत्ति चाहता है, उस बुद्धिहीन व्यक्तिके वार २ किये हुए सब कर्म विफल हो जाते हैं ॥ २९ ॥ एक प्रकार उन कर्मोंका फल मिलने पर भी उससे कोई उपकार नहीं होता; क्योंकि वह व्यक्ति, आध्यात्मिक आदि त्रिविध दुःखोंसे

किसी प्रकार मुक्ति नहीं पाता ! जिस मनुष्यके शिर पर मृत्यु खड़ा हुआ है, उसे दुःखोपार्जित धनके लाभ अथवा भोगसे क्या सुख हो सक्ता है ? ॥३०॥ हे राजन् ! बिना क्लेशके जो धन मिल जाता है उसमें भी दुःख है, क्योंकि जिनका मन वशमें नहीं है उन लोभी धनी लोगोंको स्पष्टरूपसे इस विषयमें कष्ट पाते देखा जाता है । वे भयवश भली भाँति सुखसे सो नहीं सक्ते और सर्वदा सभी आदमियोंसे सशंक रहते हैं ॥ ३१ ॥ धनी और अन्य प्राणधारियोंको सर्वत्र राजा, चोर, शत्रु, स्वजन पशु, पक्षी, याचकगण, काल एवं अपनेसे भय रहता है ॥ ३२ ॥ अतएव विद्वान् पुरुषको शोक, मोह, भय, क्रोध, अनुराग, कायरता एवं श्रम आदिके मूलरूप धन और प्राणकी स्पृहा त्याग करना उचित है ॥ ३३ ॥ राजन् ! इस लोकमें मधुमक्षिका और अजगर हमारे उत्तम गुरु हैं । हम उनकी वृत्तिकी पर्यालोचना करके ही इस वैराग्य और सन्तोषको प्राप्त हुए हैं ॥ ३४ ॥ मधु (शहद) की भाँति कष्टसे संचित धनको, धनीके प्राण नष्ट करके, अन्य लोग हर ले जायँगे, यह जान कर हमने मधुमक्षिकासे सब कामनाओंसे विरक्त होनेकी शिक्षा ली है ॥ ३५ ॥ अजगरसे शिक्षा पा कर मैं निश्चेष्ट और जो कुछ मिलता है उसीमें सन्तुष्ट रहता हूँ । यदि कदाचित् कुछ न मिले तो अजगरके समान धैर्य धारण कर स्थिरभावसे समय व्यतीत करता हूँ ॥ ३६ ॥ कभी थोड़ा भोजन करता हूँ, कभी बहुत भोजन करता हूँ, कभी सुस्वादु अन्न खाता हूँ, कभी रूखा सूखा स्वादरहित अन्न खाता हूँ, कभी बहुत गुणोंसे युक्त और कभी गुणरहित अन्न भोजन करता हूँ ॥ ३७ ॥ कभी किसीका श्रद्धासे ला कर दिया हुआ और कभी किसीका अपमानपूर्वक दिया हुआ अन्न खा लेता हूँ । किसी दिन भोजन करनेके उपरान्त फिर दुबारा भोजन करता हूँ और कभी दिनको या रातको स्वयं प्राप्त अन्न खा लेता हूँ ॥ ३८ ॥ रेशमी वस्त्र, दुकूल, मृगचर्म, कोपीन, बल्कल, या और कुछ, जो मिल जाता है उसीको पहर लेता हूँ । जो प्रारब्धसे मिलता है उसीके भोगसे सदा सन्तुष्ट रहता हूँ ॥ ३९ ॥ कभी पृथ्वी पर, तृण पत्ते पत्थर अथवा राखके ढेर पर और कभी दूसरेकी इच्छासे सुंदर महलमें अच्छे पलँग पर शयन करता हूँ ॥ ४० ॥ कभी स्नान करके चंदन आदि सुगंध लगा कर सुन्दर वस्त्र और मनोहर माला धारण कर, रथ हाथी अथवा घोड़े पर चढ़ कर विचरता हूँ और कभी पागलोंकी भाँति नंगे हो कर भ्रमण करता हूँ ॥ ४१ ॥ राजन् ! भेदभाववाले व्यक्तिकी मैं निन्दा नहीं करता और न प्रशंसा ही करता हूँ । सभीके कल्याणकी और महात्मा विष्णुमें सायुज्य मुक्तिकी अथवा तन्मय हो जानेकी कामना करता हूँ ॥ ४२ ॥ भेदज्ञान-जनक मनकी वृत्तिमें विकल्पको एवं अर्थ-भ्रमका हेतु जो मन है उसमें मनकी वृत्तिको और मनको अहंकारमें लीन करके, अहंकारको मायामें लीन कर

दे ॥ ४३ ॥ फिर सत्यदर्शी मुनि मायाको आत्माके अनुभवमें लीन करके निरीह हो कर निवृत्त हो एवं स्वानुभवरूप आत्मामें अवस्थित रहे ॥ ४४ ॥ राजन्! तुम भगवान्के प्रिय हो, इसी लिये मैंने अतिगोपनीय अपना वृत्तान्त तुमसे वर्णन किया। यह ज्ञान मन्ददृष्टिसे लोक और शास्त्रसे विभिन्न है, किन्तु तत्त्वदृष्टिसे नहीं ॥ ४५ ॥

नारद उवाच—धर्मं पारमहंस्यं वै मुनेः श्रुत्वासुरेश्वरः ॥
पूजयित्वा ततः प्रीत आमन्त्र्य प्रययौ गृहम् ॥ ४६ ॥

नारदजी बोले। असुरेश्वर प्रह्लादने अजगर-मुनिसे उल्लिखित परमहंसोंका धर्म सुन कर उनकी पूजा की। उसके बाद प्रसन्नतापूर्वक मुनिसे आज्ञा ले कर अपने भवनको गये ॥ ४६ ॥

इति श्रीभागवते सप्तमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दश अध्याय।

गृहस्थका उत्कृष्टधर्म एवं देशकाल आदिके भेदसे अन्य विशेष २ धर्मोंका वर्णन।

युधिष्ठिर उवाच—गृहस्थ एतां पदवीं विधिना येन चाञ्जसा ॥
याति देवऋषे ब्रूहि मादृशो गृहमूढधीः ॥ १ ॥

युधिष्ठिरजी बोले। हे देवर्षि नारदजी! इस पदवीको मेरे समान गृहस्थ, जिसकी बुद्धि गृहादिकमें आसक्त होनेके कारण मूढ़ हो रही है, जिस प्रकार अनायास ही प्राप्त हो सके वह उपाय कहिये ॥ १ ॥ **नारदजी बोले**। राजन्! गृहस्थ व्यक्ति कृष्णार्पणपूर्वक यथायोग्य कर्म करता हुआ समयानुसार महर्षिगणकी उपासना करे एवं सदा अमृतस्वरूप भगवान्के अवतारोंकी कथाओंको एकाग्र चित्तसे श्रद्धापूर्वक सुने; शान्त और जितेन्द्रिय लोगोंका संग करे ॥ २ ॥ ३ ॥ जैसे स्वप्नमें देखे हुए स्त्री पुत्र आदि, सो कर जागने पर, आप ही आप छूट जाते हैं, वैसे ही शान्त सज्जनोंके संगसे देह और स्त्री-पुत्रादि पर जो स्नेह है उसे छोड़ दे, क्योंकि जैसे स्वप्नके स्त्री-पुत्रादि उसको छोड़ देते हैं वैसे ये स्त्री-पुत्रादि भी अवश्य एक दिन छोड़ देंगे या छूट जायँगे ॥४॥ किन्तु प्रयोजन भर विषयभोग करे, सत् असत्का विवेक रक्खे एवं अन्तःकरणसे देह, गेहमें विरक्त रह कर बाहर अनुरक्तोंकी भाँति आचरण करता हुआ मनुष्यशरीरसे पुरुषार्थको सिद्ध करे ॥ ५ ॥ किसी विषय पर आग्रह न रक्खे; उसके ज्ञातिगण, पिता, माता, भ्राता, पुत्र, सुहृद् एवं अन्यान्य व्यक्ति जो इच्छा करें उसका अनुमोदन करे, किन्तु किसी पर ममता न रक्खे ॥ ६ ॥ चतुर मनुष्य वृष्टि

आदिसे उत्पन्न अन्नरूप धन, मिट्टी खोदनेसे पृथ्वीमें मिले हुए धन, दैव-योगसे एवं अकस्मात् मिले हुए धनका स्वयं रक्षणावेक्षण करे और उसीसे पूर्वोक्त संपूर्ण कार्य सम्पन्न करे ॥ ७ ॥ दैवसंयोगसे यदि अधिक लाभ हो तो उसमें अभिमान न करे, क्योंकि जितने धन आदिसे उदर-पूर्त्ति हो उतने ही पर प्राणियोंका स्वत्व है (बाकी तो सब यहीं पड़ा रह जाता है)। जो व्यक्ति उससे अधिक द्रव्यको अपना समझता है वह चोर और दण्डनीय है ॥ ८ ॥ अतएव मृग, ऊँट, गधा, बानर, मूसा, साँप, पक्षी, मक्षिका इत्यादि जो कोई प्राणी गृहमें अथवा खेतमें घुस कर अन्न आदि खा ले तो उसे रोकना न चाहिये, वरन् उसको अपने पुत्रके तुल्य स्नेहकी दृष्टिसे देखना चाहिये; क्योंकि यथार्थमें देखा जाय तो पुत्रादिमें और उक्त प्राणियोंमें अन्तर ही क्या है? ॥ ९ ॥ गृहस्थ भी त्रिवर्गके उपार्जनमें अत्यन्त कष्ट न उठावे; देश-कालके अनुसार जो दैवयोगसे प्राप्त हो उसीको भोग करे ॥ १० ॥ कुत्ता, पतित एवं चाण्डाल पर्यन्तको अपने भोगकी वस्तु बाँट दे। अपनी एकमात्र स्त्रीको अतिथि-सेवामें नियुक्त करनेसे यदि अपनी सेवामें व्याघात हो तो भी उसको अतिथि-सेवामें नियुक्त रक्खे ॥ ११ ॥ जिस स्त्रीके लिये लोग अपने प्राण तक त्याग देते हैं एवं पिता, गुरु आदिके भी मारने को उद्यत हो जाते हैं उस भार्यामें भी जो व्यक्ति स्वत्वाभिमान नहीं रखते वे अजेय ईश्वरको भी जीत लेते हैं ॥ १२ ॥ यह देह अन्तमें कृमि, विष्ठा या भस्म हो जाता है, अतएव कहाँ यह तुच्छ देह! कहाँ इस देहमें जिसके संगसे रति होती है वह स्त्री! और कहाँ आकाशवासी वा आकाशव्यापी आत्मा (जीव)!—इस प्रकार तत्त्वविचार करनेसे देह और भार्या हेय पदार्थ जान पड़ते हैं और फिर इनमें आसक्ति नहीं होती ॥ १३ ॥ राजन्! गृहस्थ व्यक्ति दैवके द्वारा प्राप्त धनसे पञ्चयज्ञका निर्वाह करे और पञ्चयज्ञ करनेसे जो बचे उसीसे अपनी जीविकाका निर्वाह करे। जो पुरुष इस पंचयज्ञसे बचे हुए अन्नमें भी स्वत्वाभिमान त्याग देते हैं वे ही प्राज्ञ हैं, वे ही निवृत्तिमार्गका अवलम्बन करनेवाले हैं एवं वे ही महापुरुषोंकी पदवीको प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ अपनी वृत्तिके द्वारा उपार्जित धनसे देव, ऋषि, मनुष्य, भूत, पितृगण आदिकी एवं अपनी नित्य पूजा करनेसे भिन्न २ रूपसे अन्तर्यामीका पूजन होता है ॥ १५ ॥ जब निज अधिकार आदिक सब यज्ञकी सामग्रीका संग्रह हो तब गृहस्थ मनुष्य वैतानिक विधिके अनुसार अग्निहोत्र आदि यज्ञोंका अनुष्ठान करे ॥ १६ ॥ सब यज्ञोंके भाग भोग करनेवाले हरि, ब्राह्मणके मुखमें अर्पण किये हुए अन्न आदिसे जितना तृप्त होते हैं उतनी तृप्ति उनको अग्निमुखमें हवन किये हुए हव्यसे नहीं होती ॥ १७ ॥ अतएव ब्राह्मण, देवता, मनुष्य आदिमें एवं पशुआदिमें कामनापूर्वक यथायोग्य क्षेत्रज्ञ आत्माका

यजन करे ॥ १८ ॥ धनी ब्राह्मण अपने विभवके अनुसार भाद्रमासमें पिता माता और उनके बन्धुवर्गका अपरपक्षीय श्राद्ध करे ॥ १९ ॥ इस प्रकार अयनद्वय, विषुवद्वय, व्यतीपात, त्र्यहस्पर्श, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, द्वादशीतिथि, श्रवण नक्षत्र, अक्षयतृतीया, कार्तिकशुक्ला नवमी, हेमन्त और शिशिरऋतुके अन्तर्गत चार महीनोंकी चार अष्टका, माघमासकी शुक्ला सप्तमी आदिमें—मघा चैत्रादि नक्षत्र मास और मघानक्षत्रयुक्त पूर्णिमामें एवं जिन २ नक्षत्रोंसे चैत्रादि महीनोंका नामकरण होता है वे सब नक्षत्र, जब सम्पूर्णचन्द्रयुक्त पूर्णिमा अथवा किञ्चित्-न्यून-चन्द्रयुक्त अनुमति तिथिके साथ मिलित हों—उस समय, जब द्वादशीतिथिमें अनुराधा, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ वा उत्तराभाद्रपद नक्षत्रका योग हो अथवा शेषोक्त तीन नक्षत्र जब एकादशी तिथिको हों—उन २ दिनोंमें, और जन्मनक्षत्र या श्रवणनक्षत्रके योगवाले दिनमें श्राद्ध करना योग्य है ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ ये सब उक्त समय केवल श्राद्धके लियेही प्रशस्त नहींहैं, बरन् इन दिनोंमें किये हुए सभी पुण्यकार्य अक्षय होते हैं। इन सब समयोंमें यथाशक्ति सम्पूर्ण श्रेयस्कर पुण्यकार्य करने चाहिये; इन सब अवसरोंमें धर्मकर्म करनेसे परमायुकी सफलता होती है ॥ २४ ॥ इन अवसरों पर कल्याणार्थ स्नान, दान, जप, हवन, व्रत, देव-ब्राह्मणकी पूजा आदि जो सब मंगलकारी कार्य किये जाते हैं एवं पितर, देवता, मनुष्य और अन्यान्य प्राणियोंको जो दिया जाता है सो सब अक्षय फल-दायक है। हे नृप! स्त्री, पुत्र, कन्याके एवं अपने संस्कारके समय और प्रेत-(मृतव्यक्ति)के दाह आदि कृत्योंके समय व क्षयाहमें एवं अन्यान्य आभ्युदयिक कर्मोंके अवसर पर श्रेयस्कर कर्म करना उचित है ॥ २५ ॥ २६ ॥ इसके बाद जो जो देश धर्मकर्म करनेसे कल्याणकारी हैं उनका वर्णन करते हैं। चराचरमय भगवान्के स्वरूप सत्पात्र जहाँ हैं वही देश परमपवित्र है ॥ २७ ॥ जहाँ तप, विद्या और दया आदि उत्तम गुणोंसे विभूषित ब्राह्मण वास करते हैं एवं जहाँ जहाँ भगवान् हरिकी प्रतिमा हैं वे सब देश मंगलप्रद हैं। जहाँ २ पुराणोंमें प्रसिद्ध गंगाआदि पवित्र नदियाँ, पुष्कर आदि सरोवर एवं सिद्धजनोंकी निवास-भूमि क्षेत्र विद्यमान हैं वे सब स्थान—और कुरुक्षेत्र, गया, प्रयाग, पुलहमुनिका आश्रम, नैमिषारण्य, फल्गु नदी, सेतुबन्ध, प्रभासतीर्थ, कुशस्थली, वाराणसी, मधुपुरी, पम्पासरोवर, विन्दुसरोवर, नारायणाश्रम, नन्दानदी, सीतारामके आश्रमादिक जहाँ हैं वे स्थान—महेन्द्र, मलयआदि सब कुलाचल और जिन स्थानोंमें हरिभगवान्की प्रतिमा अधिष्ठित हैं वे सभी देश परमपवित्र हैं। जिस पुरुषकी सब प्रकारके कल्याणकी कामना हो वह निरन्तर इन सब स्थानोंका

---

१ फाल्गुन-मुख्यचान्द्रकी कृष्णाष्टमीमें अष्टकाश्राद्ध काम्य होता है और शेष तीन अष्टका नित्य हैं। इसी लिये गोभिल गृह्यसूत्रमें तीन ही अष्टका कथित हैं।

सेवन करे, क्योंकि इन सब स्थानोंमें पुण्यकर्म्म करनेसे पुरुषोंको सहस्रगुना अधिक फल होता है ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे राजन्! पात्रके जाननेवाले श्रेष्ठलोग पात्र-नामसे चराचररूपी हरिका ही निर्देश करते हैं; इसी कारण तुम्हारे राजसूय यज्ञमें देव, ऋषि, तप, योग आदिसे सिद्ध मुनिगण एवं ब्रह्माके पूज्य पुत्रोंके उपस्थित रहते भी हरि ही सर्वसम्मतिसे अग्रपूजाके पात्र निश्चित हुए। हरि ही इस असंख्य-जीव-पूर्ण ब्रह्माण्डरूप प्रकाण्ड वृक्षका मूल हैं, अतएव हरिकी पूजासे सब जीवोंको और अपने आत्माको परम तृप्ति होती है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ राजन्! मनुष्य, पशु, पक्षी, ऋषि और देवतारूप सब शरीर इन्हीं भगवान् की रचना हैं एवं यह स्वयं उन पुरों (शरीरों)में जीवरूपसे शयन करते हैं; इसीसे इनका नाम पुरुष कह कर विख्यात है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे राजन्! इन सब शरीरोंमें हरि भगवान् तारतम्यभाव (अर्थात् पूर्व २ से उत्तरोत्तर अधिक—इस भाव)से अवस्थित हैं; अतएव पुरुष ही पात्र हैं। उनमें जिसको जितना अधिक ज्ञान है वह उतना ही उत्कृष्ट पात्र है ॥ ३८ ॥ राजन्! पुरुषोंको परस्पर परस्परकी अवज्ञा करनेमें प्रवृत्त देख कर पण्डितोंने त्रेतायुगमें पूजा करनेके लिये प्रतिमाकी सृष्टि की । तभीसे बहुतसे व्यक्ति श्रद्धापूर्वक प्रतिमाओंमें हरिका पूजन करते आते हैं। किन्तु जिन लोगोंने परस्पर द्वेष नहीं छोड़ा है, उनके प्रतिमा-पूजनसे कोई फल नहीं है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे राजेन्द्र! पुरुषोंमें भी जो ब्राह्मण तप, विद्या एवं सन्तोषसे युक्त हो कर हृदय में हरिकी मूर्ति धारण करते हैं—पण्डितोंके मतमें वे ही अत्युत्तम पात्र हैं ॥ ४१ ॥

नन्वस्य ब्राह्मणा राजन्कृष्णस्य जगदात्मनः ॥
पुनन्तः पादरजसा त्रिलोकीं दैवतं महत् ॥ ४२ ॥

राजन्! और कहाँ तक कहें; अपने चरणोंकी रजसे त्रिलोकीको पवित्र करनेवाले ब्राह्मणगण जगदात्मा और अन्तर्यामी कृष्णके भी इष्टदेव हैं ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते सप्तमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदश अध्याय ।

मोक्षके लक्षणका वर्णन ।

नारद उवाच—कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठा नृपापरे ॥
स्वाध्यायेऽन्ये प्रवचने ये केचिज्ज्ञानयोगयोः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं। हे राजन्! ब्राह्मणोंमें कोई २ कर्मनिष्ठ हैं, कोई तपोनिष्ठ हैं, कोई स्वाध्यायमें तत्पर हैं, अन्य कुछएक प्रवचन-चतुर हैं, और

कुलएककी ज्ञान और योगमें निष्ठा है ॥ १ ॥ जिनको दानके अनन्त फलकी इच्छा हो उन्हे उचित है कि ज्ञाननिष्ठको हव्य (देवतोंका अन्न) और कव्य (पितरोंका अन्न) दें। यदि संयोगवश वैसा ब्राह्मण न मिले तो ज्ञानके अनुसार न्यूनाधिककी विवेचना करके अन्य ब्राह्मणोंको भी हव्य—कव्य दिया जा सक्ता है ॥ २ ॥ श्राद्धमें देवतोंके उद्देशसे दो और पितरोंके उद्देशसे तीन ब्राह्मण अथवा दोनोके उद्देशसे एक २ ब्राह्मणको भोजन करावे। अत्यन्त समृद्धिशाली होने पर भी श्राद्धमें बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन न कराना चाहिये* ॥ ३ ॥ राजन्! स्वजनोंके अनुरोधसे बहुतसे ब्राह्मणोंको निमन्त्रण कर श्राद्धमें भोजन करानेसे देश-कालके अनुरूप श्रद्धा, द्रव्य, पात्र एवं पूजन—ये सब बातें सुन्दररूपसे नहीं सम्पन्न हो सक्तीं ॥ ४ ॥ फलतः उपयुक्त देश-काल प्राप्त होने पर वनके नीवारादि अन्न अथवा न्यायोपार्जित यत्किञ्चित् अन्न, भगवान् हरिको अर्पण करके श्रद्धापूर्वक यथाविधि यदि सत्पात्रको खिलाया जाय तो वह भी अक्षय एवं अभिलाषाके अनुसार फल देनेवाला होता है ॥ ५ ॥ राजन्! देवता, ऋषि, पितृगण, सब प्राणी एवं आत्मा और आत्मीय लोगोंको यथायोग्य अन्न बाँट कर इन सबमें ईश्वरकी भावना करे ॥ ६ ॥ राजन्! श्राद्धमें मत्स्यका या अन्य मांसका व्यवहार न करे, एवं धर्मतत्त्वके जाननेवाले दयालु सज्जनके लिये मांसभोजन करना निषिद्ध है। क्योंकि आत्मारूप ईश्वरको नीवारादि वनके अन्नसे जैसी परम प्रीति होती है वैसी पशुहिंसासे नहीं होती ॥ ७ ॥ श्रेष्ठ धर्मकी इच्छावाले लोगोंको मन, वाणी और कायासे तीनो प्रकारकी जीवहिंसा त्याग करना उचित है, इससे बढ़ कर परमधर्म और नहीं है ॥ ८ ॥ अतएव प्रधान २ ज्ञानीलोग यज्ञके लिये ज्ञानके द्वारा दीप्त आत्मसंयमरूप अग्निमें कर्ममय यज्ञोंकी आहुति देते हैं ॥ ९ ॥ जो व्यक्ति पशुआदिकी सामग्रीसे यज्ञ करता है उसे देख कर सब प्राणी भय पाते हैं। वे प्राणी सोचते हैं कि "यह व्यक्ति आत्मतत्त्वसे अनभिज्ञ है—केवल मनकी तृप्तिमें तत्पर है अतएव इसमें दया नहीं है, निस्सन्देह यह हमारा वध करेगा" ॥१०॥ इस कारण सन्तुष्ट रह कर दैवयोगसे प्राप्त नीवारादिसे ही प्रतिदिन नित्य नैमित्तिक क्रियाओंका निर्वाह करनाही धर्मज्ञ व्यक्तिके लिये उचित और श्रेयस्कर है ॥ ११ ॥ धर्मज्ञ व्यक्ति—विधर्म, परधर्म धर्माभास उपधर्म और छलधर्म इन पाँच अधर्मकी शाखाओंको भी अधर्मके समान त्याग करे ॥१२॥ महाराज! धर्म जान कर करने पर भी जिससे अपने धर्ममें बाधा हो वह विधर्म है। अन्यके उपदेश किये हुए अन्यके धर्मको परधर्म कहते हैं। पाखंडाचार अथवा दम्भको उपधर्म कहते हैं। पुरुषगण अपने

---

* इस समय कुशमय ब्राह्मण (कुशवटु) स्थापन करनेकी रीति है। पहले श्राद्धीय पात्रके स्थान पर शास्त्रोक्तगुणसम्पन्न मूर्तिमान् ब्राह्मण बैठते थे। यह निषेध-विधि उसी देव-पितृब्राह्मणके लिये है।

मनसे धर्म कह कर जिसका अनुष्ठान करते हैं वह धर्माभास है; वह आश्रमोंके धर्मसे पृथक् है । अन्य प्रकारका अर्थ करके जिस धर्मकी व्याख्या की जाय वह छलधर्म है । राजन्! स्वभावविहित धर्म किस व्यक्तिके लिये शान्तिदायक नहीं होता? अतएव अपने धर्मका अनुष्ठान करे एवं अधिक धर्म करनेकी इच्छासे भी पराये धर्मका आचरण न करे । निर्धन व्यक्ति, धर्मके लिये अथवा शरीरयात्राके निर्वाहके लिये धनोपार्जनमें ही न लिप्त रहे । जो व्यक्ति धन पानेकी चेष्टामें लिप्त नहीं है उसका अजगरके समान आपसेही निर्वाह होता रहता है । (यथायोग्य धनोपार्जनकी चेष्टा नहीं निषिद्ध है, जितना प्रयोजन हो उससे अधिक धनोपार्जनकी चिन्ता ही वर्जित है) ॥१३॥१४॥१५॥ जो व्यक्ति सन्तुष्ट और आत्माराम है उसके अंतःकरणमें निश्चेष्ट होनेसे जैसा सुख होता है वैसा कामनाओंके लोभसे धनोपार्जनकी चेष्टामें इधर उधर दौड़नेसे नहीं होता । जैसे जो व्यक्ति जूता पहने हुए है उसका कंकड़ और काँटे आदिसे कुछ अनिष्ट नहीं होता वैसे ही महासन्तुष्ट व्यक्तिके लिये भी सभी ओर मङ्गल है ॥१६॥१७॥ राजन्! सन्तुष्ट व्यक्ति केवल जलपान करके भी जीवन धारण कर सक्ता है, किन्तु जो व्यक्ति इन्द्रियोंके वशीभूत है वह कुत्तेकी भाँति चारो ओर लाव लाव करता हुआ घूमता है । इन्द्रियोंकी चपलताके कारण असन्तुष्ट ब्राह्मणके तेज, विद्या, तप, यश एवं ज्ञान आदि सद्गुण विनष्ट हो जाते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ क्षुधा और तृष्णासे लोग कामभोगका अन्त पा सक्ते हैं और हिंसा करके क्रोधका भी अन्त पा सक्ते हैं किन्तु दशो दिशाएँ जीत कर और सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलका भोग करके भी लोभका अन्त नहीं पा सक्ते । राजन्! बहुत जाननेवाले और संशय निवृत्त करनेवाले बहुतसे पण्डित सभापति (नेता) हो कर भी असन्तोषके कारण अधःपातको प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ अतएव संकल्प त्याग कर कामनाको जीते और कामना त्याग कर क्रोधको दूर करे तथा अर्थ (धन) में अनर्थ देख कर लोभको जीते एवं तत्त्वानुसंधानसे मृत्युआदिके भयको त्याग करे ॥ २२ ॥ आत्मानात्मके विवेकसे शोक और मोहको छोड़, महात्मालोगोंकी सेवासे दंभको दूर करे, मौनावलम्बनसे योगके विघ्न जो लोकवार्ता आदि हैं उनको त्याग करे एवं कामआदि विषयोंकी चेष्टाको त्याग करके हिंसा का दमन करे ॥ २३ ॥ जिन प्राणियोंसे भयकी संभावना है उनका हित करके उनसे होनेवाले दुःखको दूर करे, दैवके द्वारा प्राप्त जो वृथा मानसिक पीड़ा आदि दुःख हैं उनको समाधिसे दूर करे और आध्यात्मिक क्लेशोंको योगबलसे दूर करे एवं निद्राको सात्त्विक आहार और सात्विक व्यवहार से दूर करे ॥ २४ ॥ सतोगुणसे रजोगुण और तमोगुण को नष्ट करे। एवं सतोगुणको उपशम (शान्ति) के द्वारा वशमें करे । राजन्! गुरुमें सुदृढ़ भक्ति करनेसे मनुष्य इन सबको अनायास ही वशमें कर सक्ता है ॥२५॥

ज्ञानमय दीपक दिखानेवाला गुरु साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप है। जो व्यक्ति ऐसे गुरुको मनुष्यभावसे देखता है उसका सब शास्त्र पढ़ना और सुनना हाथीके स्नानके समान व्यर्थ है ॥२६॥ हे युधिष्ठिर! पूर्वोक्त प्रकारका गुरु साक्षात् श्रीकृष्ण भगवान्‌का स्वरूप है एवं प्रकृति-पुरुषका ईश्वर है। योगेश्वरगण भी ऐसे ही गुरुके चरणोंकी खोज करते हैं। जो लोग गुरुको मनुष्यभावसे देखते हैं सो उनका भ्रम है ॥२७॥ राजन्! वेदमें इष्टापूर्तादि जितनी विधियाँ हैं उन सबका उद्देश्य छः (पाँच ज्ञानेन्द्रिय और छठे मन) इंद्रियोंका दमन ही है। किन्तु उक्त विधियाँ ऐसी हो कर भी यदि योगसाधनमें असमर्थ हों तो उनका करना व्यर्थ श्रममात्र है ॥ २८ ॥ जैसे कृषी (खेती) आदि विषय, योगका फल जो मोक्ष है उसके साधन नहीं हैं वरन् संसारके कारण हैं; वैसे ही बाह्य विषयोंमें प्रवृत्त असत् व्यक्तिके लिये वेदविहित इष्टापूर्तादि कर्म मोक्षसाधक न होकर संसार-प्रवर्तक ही होते हैं ॥ २९ ॥ जो व्यक्ति चित्तके विजयमें लगे हुए हैं वे संग और गृहादि त्याग कर संन्यास ग्रहण करें, अकेले निर्जन में वास करें एवं भिक्षासे प्राप्त परिमित आहार करें ॥ ३० ॥ समतल और पवित्र स्थानमें आसन लगाकर, सीधे होकर, जिसमें कष्ट न हो उस भाँति स्थिर भावसे बैठ कर प्रणव (ओं)का उच्चारण करें ॥ ३१ ॥ पूरक, कुंभक और रेचक इन त्रिविध प्राणायामोंसे प्राण और अपान वायुको रोक कर स्थिर करें एवं अपनी नासिकाके अग्रभागमें दृष्टिको स्थिर करके मनसे सब कामनाओंको दूर करें ॥ ३२ ॥ उसके बाद कामवशीभूत भ्रमणशील मन जहाँ २ से चलायमान हो वहां २ से उसको रोक कर क्रमशः हृदयमें स्थिर करके अपने वशमें करें ॥ ३३ ॥ हे राजन्! जो लोग निरन्तर इस प्रकार अभ्यास करते हैं, उनका चित्त, थोड़े ही समयमें काष्ठहीन अग्निकी भाँति निर्वाण अर्थात् शान्तिको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ जो मन, कामना आदिसे क्षोभको नहीं प्राप्त होता वह फिर चलायमान नहीं होता; क्योंकि ब्रह्मसुखके प्राप्त होनेसे उसकी प्रवृत्तियाँ प्रशान्त हो जाती हैं। परन्तु जो गृहाश्रम धर्म आदि त्रिवर्गका आश्रय है उस गृहाश्रमसे निकल कर (अर्थात् संन्यास लेकर) जो व्यक्ति फिर उसमें प्रवेश करता है वह वान्ताशी (उगले हुएको फिर निगलनेवाला) एवं अत्यन्त निर्लज्ज है। संन्यास लेने पर गृहस्थाश्रमी होना असम्भव है, ऐसा न समझना, क्योंकि यह मन बड़ा ही चंचल है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जो असाधु कच्चे योगी नाश होनेवाले या विष्ठा, कृमि अथवा भस्म (क्योंकि अन्तमें ये ही तीन गतियाँ होती हैं) होनेवाले शरीरको आत्मा समझते हैं वेही इसकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३७ ॥ राजन्! गृहस्थ व्यक्तिका कर्मत्याग, ब्रह्मचारीका व्रत-त्याग और तपस्वी अर्थात् वानप्रस्थका ग्राममें वास एवं भिक्षु अर्थात् संन्यासीकी इन्द्रियलोलुपता—आश्रमोंकी विडम्बनामात्र है। उक्त प्रकारके आश्रमधारी महाअधम हैं। वे ईश्वरकी मायासे

मूढ़ हो रहे हैं अतएव उपेक्षापूर्वक उन पर दया करनी चाहिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ जो व्यक्ति परब्रह्मका ज्ञान रखते हैं, उस ब्रह्मज्ञानसे उनकी सम्पूर्ण वासनाएँ दूर हो जाती हैं; तब वे किस अभिलाषासे और किस कारणसे इन्द्रियलोलुप हो कर शरीर-पोषण करेंगे ? ॥ ४० ॥ पण्डितगण कहते हैं कि यह शरीर रथ है, इन्द्रियाँ अश्व हैं, इन्द्रियोंका स्वामी मन रश्मि अर्थात् लगाम है, शब्द आदि विषय गन्तव्य स्थान हैं, बुद्धि सारथी है एवं यह चित्त ईश्वरका बनाया हुआ उसका बड़ा भारी बंधन है ॥ ४१ ॥ ऐसेही प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान एवं नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय-ये दश प्रकारके प्राण उस रथके अक्ष हैं, धर्म और अधर्म दोनो पहिये हैं एवं अहंकारसहित वर्तमान जीव रथी है। प्रणव (ओं) इस रथीका धनुष है, शुद्धजीव बाण है और परब्रह्म उसका लक्ष्य (निशाना) है ॥ ४२ ॥ राजन् ! राग, द्वेष, लोभ, मोह, शोक, भय, मद, मान, अपमान, असूया, माया, हिंसा, मात्सर्य्य (डाह), अभिनिवेश (आसक्ति), असावधानता, क्षुधा और निद्रा; ये सब एवं अन्यान्य सब विषय जीवके शत्रु हैं। ये कहीं राजस और तामस भावके होते हैं, और कहीं सात्त्विक भावके होते हैं। परन्तु सात्त्विक भावके होने पर भी समाधि-युक्त यतिके लिये परोपकारादि प्रवृत्ति भी शत्रुस्वरूप है; अतएव इन सबको जीतना आवश्यक कर्त्तव्य है ॥४३॥४४॥ जीवरूप रथी, इस मनुष्यदेहरूप रथके अश्व आदिको अपने वशमें रख सकने पर, परम श्रेष्ठ महात्मा लोगोंके चरणोंकी सेवारूप सान पर धरे हुए तीक्ष्ण ज्ञानरूप खड्ग धारण करके, अच्युत भगवान्‌की सहायतासे, उक्त शत्रुओंको वशमें लावे एवं उद्वेगरहित भावसे आत्मानन्दमें सन्तुष्ट रहे—और तदनन्तर इन रथ आदि पर उपेक्षाकी दृष्टि करे ॥ ४५ ॥ नहीं तो असावधान रहने पर इन्द्रियरूप अश्वगण और बुद्धिरूप सारथी उसको कुमार्गमें ले जाकर विषय नामक विषम दस्युओं (लुटेरों) के दलमें डाल देते हैं एवं वे दस्यु, अश्व और सारथीसहित उस रथी (जीव)को गुरुतर मृत्युभयसे युक्त अन्धकारमय संसारकूपमें छोड़देते हैं ॥ ४६ ॥ प्रवृत्तिसम्बन्धी और निवृत्तिसम्बन्धी दोनो कर्म वेदोक्त हैं। प्रवृत्तिसम्बन्धी कर्मोंसे वारम्वार जन्म-मरण होता है और निवृत्तिसंबंधी कर्मोंसे मोक्षलाभ होता है ॥ ४७ ॥ राजन् ! श्येनयागादि, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशुयाग, वैश्वदेव और बलि; ये सामग्रीपूर्ण काम्य कर्म हैं। ये अतीव आसक्तियुक्त एवं अशान्तिदायक हैं ॥ ४८ ॥ इन सब प्रवृत्तिमार्गसम्बधी कर्मोंकी "इष्ट" संज्ञा है और देवालय, उपवन, कूप एवं जलशालाका निर्माण-इन कर्मों की "पूर्त" संज्ञाहै ॥४९॥ राजन् ! चरु-पुरोडाश आदिका परिणाम, धूमदेवता, रात्रिदेवता, कृष्णपक्षदेवता, दक्षिणायनदेवता, चन्द्रलोक, अदर्शन, ओषधि, लता, अन्न एवं शुक्र-ये पुनर्जन्म के कारण हैं; इनकी पितृयान संज्ञा है । अर्थात् यज्ञादिके फलसे एक प्रकारका देह होता है; तदनन्तर उस देहके द्वारा धूम-

देवताके निकटसे चन्द्रलोकपर्यन्त भोग और फिर क्रमशः अवरोहण होता है। फलतः चन्द्रलोकमें भोगका अन्त होने पर पहले देह विनाशको प्राप्त हो कर अदृश्य हो जाता है, तदनन्तर क्रमशः वृष्टि आदिके द्वारा ओषधि प्रभृति प्रत्येकके सान्निध्य को प्राप्त होकर इस पृथ्वी पर फिर उसकी उत्पत्ति होती है। उसके बाद निषेकसे लेकर श्मशान पर्यन्तके संस्कारों द्वारा संस्कृत होने पर वह द्विजनामको प्राप्त होता है। परन्तु हे राजन्! निवृत्तिमार्गमें तत्पर पुरुष, यज्ञ और क्रिया-कलापको इन्द्रियगणमें, इन्द्रियगणको सङ्कल्पस्वरूप मनमें, वैकारिक मनको वाक्यमें, वाक्यको वर्णसमूहमें, वर्णसमूहको स्वरत्रयमय ओंकारमें, ओंकारको बिन्दुमें, बिन्दुको नादमें, नादको प्राणवायुमें एवं प्राण-वायुको ब्रह्ममें लीन कर दे। इस प्रकार निवृत्तिमार्गसम्बन्धी कर्मोंमें निरत पुरुष यथाक्रम अग्नि, सूर्य, दिन, पूर्वाह्ण, शुक्लपक्ष, पूर्णिमा और उत्तरायणके अभिमानी देवगणके समीप जा कर क्रमशः ब्रह्माके निकट गमन करते हैं। इस प्रकारसे भोगके अन्तमें ब्रह्मलोकको प्राप्त पुरुषकी पहले स्थूल उपाधि होती है; उसके बाद उस स्थूलको सूक्ष्ममें लीन करने पर सूक्ष्म तैजस उपाधि होती है। फिर सूक्ष्म उपाधिको कारणमें लीन करनेसे कारणोपाधि प्राप्त होती है। उसके बाद सर्वत्र साक्षीरूपसे अन्वय-सम्बन्धवश उस कारणको साक्षीस्वरूपमें लीन करनेसे तुरीय अवस्था प्राप्त होती है। अन्तमें उस साक्षीपनका लय होनेसे शुद्ध आत्माका स्वरूप (ब्रह्मभाव) प्राप्त होता है। राजन्! इस मार्गको पण्डित लोग देवयान कहते हैं। प्रवृत्तिविषयक कर्म करनेवाले पुरुष क्रमशः उक्त लोकोंको प्राप्त होकर फिर लौटते हैं; किन्तु आत्माका यजन करनेवाले शान्त एवं आत्मा (ब्रह्म)में स्थित पुरुष फिर नहीं लौटते ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ पितृयान और देवयान नाम उक्त दोनो मार्ग वेदनिर्मित हैं। जो व्यक्ति शास्त्ररूप नेत्र द्वारा देख कर इन मार्गोंको जानते हैं वे देहधारी होने पर भी मायामें नहीं मोहित होते ॥ ५६ ॥ क्योंकि देहआदिके आदिमें कारणरूपसे और अन्तमें अवधिरूपसे जो सत् वस्तु वर्तमान रहती है-जो भोग्य भोक्ता और उच्च नीच एवं प्रकाश और अप्रकाशस्वरूप है—सो सब यह ज्ञानी जीव ही है। इससे भिन्न कोई भी वस्तु नहीं है जिससे इसको मोह हो ॥ ५७ ॥ जैसे प्रतिबिंब आदि आभास युक्तिविरुद्ध और सर्वतोभावसे बाधित होने पर भी वस्तुरूपसे कल्पित होते हैं वैसे ही इन्द्रियसमूहात्मक देह 'अर्थ'रूपसे कल्पित है। किन्तु वास्तवमें प्रतिबिंबके समान दुर्घट है, अतएव 'अर्थ' नहीं है ॥ ५८ ॥ पृथ्वी आदि पञ्चभूतोंकी छाया (ऐक्यबुद्धिका आलम्बनस्वरूप) जो यह देहादिका आरम्भ, संघात वा रूपान्तर है, इसमें कुछ भी नहीं है। क्योंकि अवयवसे यह अत्यन्त पृथक् नहीं है एवं किसीके साथ अन्वित भी नहीं रहता; सुतराम् इसको मिथ्या

पदार्थ ही जानना ॥ ५९ ॥ राजन्! देहादि जैसे मिथ्या हैं वैसे ही उनके कारणस्वरूप पृथ्वीआदि पञ्चभूत भी मिथ्या हैं, क्योंकि पञ्चमहाभूत अवयवी हैं, सुतराम् सूक्ष्म अवयवके बिना उनका अस्तित्व असिद्ध है। अतएव उक्त प्रकारसे अवयवीके असत् होने पर अवयव भी असत् (मिथ्या) सिद्ध हैं ॥ ६० ॥ अविद्याका विकल्प रहनेके कारण पूर्व्व-पूर्व्व आरोपके सादृश्यसे 'यह वही है' इस प्रकारका भ्रम हो सक्ता है, किन्तु जब तक अविद्याकी निवृत्ति नहीं होती तभी तक उक्त प्रकारका भ्रम होता है। स्वप्नमें जैसे कभी २ जागरण और निद्राका स्वप्न होता है–शास्त्रकृत विधि-निषेध भी वैसा ही है ॥ ६१ ॥ अतएव मननशील योगी–भावाद्वैत, क्रियाद्वैत और द्रव्याद्वैतकी आलोचना करके आत्मतत्त्वके अनुभव द्वारा जाग्रत् आदि तीनो अवस्थाओंको निवृत्त करते हैं ॥ ६२ ॥ यथार्थमें भेद नहीं है, इसी लिये वस्त्र और सूत्रकी भाँति सब कार्य्य और कारणको एक वस्तु विचारनेका नाम "भावाद्वैत" है ॥ ६३ ॥ और मन, वाक्य एवं कार्यद्वारा साक्षात् परब्रह्ममें सब कर्मोंके समर्पणका नाम "क्रियाद्वैत" है ॥ ६४ ॥ आत्मा पुत्र, स्त्री एवं अन्यान्य देहधारियोंके अभेदकी आलोचनासे अर्थ और कामनाओंके ऐक्य-दर्शनका नाम "द्रव्याद्वैत" है ॥ ६५ ॥ राजन्! जिस व्यक्तिको, जो द्रव्य, जिस उपायकेद्वारा, जहाँसे, जिससे लेना निषिद्ध नहीं है वह आपत्तिकालको छोड़ कर सर्वदा उसी द्रव्यसे सम्पूर्ण कर्म करे। अन्य प्रकारके अन्यायोपार्जित द्रव्यसे कार्य्य करनेकी चेष्टा न करे ॥ ६६ ॥ इन सब कर्मोंसे एवं अन्यान्य वेदविहित कर्मोंमें तत्पर पुरुष गृहस्थाश्रममें रह कर भी भगवान्का भक्त हो सक्ता है एवं उनकी गतिको प्राप्त हो सक्ता है ॥६७॥ हे राजन्! तुम जैसे भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे बहुत सी दुस्तर आपत्तियोंसे उबर गये एवं जिस प्रकार उनके चरणकमलकी सेवाके प्रतापसे सब दिशाएँ जीत कर तुमने बहुतसे बड़े बड़े यज्ञ किये वैसे ही उन्ही आत्मस्वरूप जनतारण हरिका आश्रय ग्रहण कर संसारके पार हो जाओ ॥ ६८ ॥ राजन्! महात्मा जनोंकी अवज्ञा करनेसे श्रीकृष्णसेवा-व्रत भ्रष्ट हो जाता है एवं उनकी कृपा होनेसे ही सिद्ध होता है। मेरे पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनो, उसीसे तुमको इस बातकी सचाई विदित हो जायगी। पहले गत कल्पमें मैं उपवर्हण नाम गंधर्व था, सब गन्धर्व मुझे मानते थे ॥६९॥ सुन्दरता, माधुर्य, सुकुमारता, सौगन्ध्य आदिसे संयुक्त होनेके कारण मुझको देख कर सभी प्रसन्न होते थे। सभी स्त्रियाँ मुझसे प्रेम रखती थीं। मैं सदा मद पी कर मतवाला रहता था और बड़ा ही लम्पट था ॥ ७० ॥ एक समय विश्वस्रष्टागणने देवगणके यज्ञमें हरिगाथा गानेके लिये गंधर्व और अप्सराओंको बुलाया ॥ ७१ ॥ इस बुलावेमें स्त्रीगणसहित मैं भी उन्मत्तभावसे गान करता हुआ वहाँ गया। विश्वस्रष्टागणने मेरी यह ढिठाई देख कर अपने तेजके

प्रभावसे मुझको यह शाप दिया कि–"तूने इस समय हम लोगोंकी अवहेला की है, इस कारण शीघ्र ही श्रीहत हो कर शूद्रयोनिको प्राप्त हो" ॥ ७२ ॥ उस कारण मैंने दासीके गर्भमें जन्म पाया, परन्तु ब्रह्मज्ञानी मुनिगणकी सेवा और सङ्ग करनेके कारण, दासीके गर्भमें जन्म लेने पर भी, उसके बाद दूसरे जन्ममें, मैं ब्रह्माजीका पुत्र हुआ हूँ ॥ ७३ ॥ हे राजन्! मैंने गृहस्थका यह पापनाशक धर्म्म तुमसे वर्णन किया। इस धर्मका अनुष्ठान करनेसे गृहस्थ भी निश्चय ही संन्यासियोंकी गतिको पा सक्ता है ॥ ७४ ॥ हे राजन्! मनुष्योंमें तुम लोग बड़े ही भाग्यशाली हो; क्योंकि लोकपावन मुनिगण तुम्हारे भवनमें आते हैं! एवं तुम्हारे भवनमें मनुष्यचिन्हधारी साक्षात् परब्रह्म गूढ़रूपसे अवस्थित हैं। अहा! महात्मा लोगोंके भी खोजनेकी वस्तु जो कैवल्य-निर्वाणके सुखका अनुभव है सो इन्ही परम ब्रह्मका रूप है। यह साक्षात् ब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारे प्रिय, सुहृद्, मामाके लड़के, पूज्य, विधि बतानेवाले एवं गुरु हैं। तुम्हारे समान और कौन भाग्यशाली है? ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ राजन्! मैं क्या हूँ, साक्षात् शिव और ब्रह्मादि देवगणभी अपनी २ बुद्धिके द्वारा निश्चित-रूपसे इनके रूपका वर्णन नहीं कर सक्ते। यह भक्तोंके अधीन भक्तवत्सल भगवान्–मौन, भक्ति एवं शान्तिके द्वारा पूजित हो कर हम पर प्रसन्न हों ॥ ७७ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजा युधिष्ठिर देवर्षिके कहे हुए इन वाक्योंको सुन कर बहुत ही प्रसन्न हुए एवं उन्होने प्रेमसे विह्वल हो कर श्रीकृष्णका पूजन किया ॥ ७८ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरसे विदा हो कर उनकी अनुमति लेकर श्रीनारदजी वहाँसे गये। श्रीकृष्णजी परब्रह्म हैं–यह नारदके मुखसे सुन कर युधिष्ठिरको बहुतही विस्मय हुआ ॥ ७९ ॥

इति दाक्षायणीनां ते पृथग्वंशाः प्रकीर्तिताः ॥
देवासुरमनुष्याद्या लोका यत्र चराचराः ॥ ८० ॥

हे परीक्षित्! दक्षकी कन्याओंके अलग २ वंश हमने तुमको सुना दिये; देव, असुर, मनुष्यआदि चराचर जीव सब इन्हीं वंशोंके अन्तर्गत हैं ॥ ८० ॥

इति श्रीभागवते सप्तमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

समाप्तोयं सप्तमस्कन्धः।



शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

अष्टमस्कन्धः ।



राजा बलि और वामन भगवान्‌का विराट् रूप ।

॥ श्रीः ॥

शुकोक्तिसुधासागरः।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

अष्टमस्कन्धः ।



प्रथम अध्याय ।

मन्वन्तरवर्णन ।

राजोवाच—स्वायंभुवस्येह गुरो वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः ॥
यत्र विश्वसृजां सर्गो मनूनन्यान्वदस्व नः ॥
(यत्र धर्माश्च विविधाश्चातुर्वर्ण्याश्रिताः शुभाः) ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने श्रीशुकदेवजीसे प्रश्न किया कि हे ब्रह्मन्! जिसमें मरीचि आदि विश्वस्रष्टा लोगोंके पुत्र-पौत्रादि उत्पन्न हुए वह स्वायम्भुव मनुका वंश मैंने आपके मुखसे विस्तारसहित सुना । अब कृपा करके अन्य २ मनुओंका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ पण्डितगण, मन्वन्तरोंमें भगवान् हरिके जिन सब जन्म और कर्मोंका कीर्तन करते हैं, आप उन सबका वर्णन कीजिये; हम सुनना चाहते हैं ॥ २ ॥ हे गुरुवर! विश्वके कर्ता हरिने, बीते हुए, आनेवाले और वर्तमान मन्वन्तरोंमें जो कर्म किये हैं, करेंगे और करते हैं, उन्हे भी अनुग्रह करके कहिये ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा । हे राजन्! इस कल्पमें स्वायम्भुव आदि छः

मनु बीत गये । उनमें आदिम मनुके वंशका वर्णन हम कर चुके; इस वंशमें देवता आदिकी उत्पत्ति हुई ॥४॥ भगवान्‌ने इन आदिम स्वायम्भुव मनुकी आकूति और देवहूति नाम दोनो कन्याओंके गर्भसे, भिन्न २ समयोंमें, धर्म और ज्ञानका उपदेश करनेके लिये, कपिलदेव और यज्ञ नामसे अवतार लिया है ॥५॥ भगवान् कपिलदेवकी कथा पहले वर्णन कर चुके हैं। अब भगवान् यज्ञदेवकी कथा वर्णन करते हैं ॥ ६ ॥ शतरूपाके पति समर्थ स्वायम्भुव मनु कामभोगसे विरक्त होकर तप करनेके लिये पत्नीसहित वनको गये अर्थात् वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया ॥ ७ ॥ उन्होने सुनन्दा नदीके तट पर एक पैरसे पृथ्वी पर खड़े रह कर सौ वर्ष तक घोर दुश्चर तप किया। तप करनेके समय निम्नलिखित वाक्योंसे वह ईश्वरकी स्तुति करते थे ॥ ८ ॥ "जिससे यह विश्व चैतन्य लाभ करता है, किन्तु विश्व जिसको चैतन्यदान नहीं कर सक्ता; यह विश्व जब सुषुप्ति अवस्थामें होता है तब जो जागता रहता है एवं ये सब जीव जिसको नहीं जान पाते, किन्तु वह सब जीवोंको भली भाँति जानता है; उस ईश्वरको हमारा प्रणाम है ॥९॥ यह विश्व एवं इस विश्वमें अधिष्ठित प्राणियोंका समूह, सभी उस ईश्वरके चैतन्यसे व्याप्त हैं; वह ईश्वर सबमें अवस्थित है। अतएव हे मनुष्यवृन्द! उस ईश्वरने जो कुछ दिया है उसीसे सब विषयोंका भोग करो, अन्य किसीके धन पर मन न चलाओ ॥१०॥ वह ईश्वर सबको देखता है एवं ये सब लोग उसे देखनेमें अशक्त हैं। जिस ईश्वरका चाक्षुष-ज्ञान कभी नहीं नष्ट होता उस सब प्राणियोंके आश्रयस्वरूप, संग-रहित, सुरवरका पूजन करो ॥ ११ ॥ जिसका आदि, अन्त, मध्य नहीं है—जिसका कोई आत्मीय अथवा पर नहीं है—जिसका आभ्यंतर और बाह्य नहीं है—किन्तु विश्वके आदि, अन्त, मध्य आदि जिससे प्रवृत्त होते हैं वही सत्यस्वरूप पूर्ण ब्रह्म है ॥१२॥ उस विश्वमूर्ति ईश्वरके अनन्त नाम हैं। वह जन्मरहित, स्वयंप्रकाशमान, निर्विकार, सत्यस्वरूप हो कर भी माया नाम अपनी शक्तिके द्वारा इस विश्व-ब्रह्माण्डकी सृष्टि, पालन और संहार आदि क्रियाओंका सम्पादन करता है, किन्तु इधर नित्यसिद्ध विद्याके द्वारा उसी मायाको निरस्त कर क्रियाहीन अवस्थामें अवस्थित है ॥ १३ ॥ इसी दृष्टान्तको देख कर ऋषिगण भी मुक्तिकी वासनासे पहले कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, क्योंकि प्रायः चेष्टा करनेसे ही फिर निश्चेष्ट भाव प्राप्त होता है ॥१४॥ आत्मलाभसे ही परितृप्त भगवान् कार्यमें प्रवृत्त होकर भी कभी उसमें लिप्त नहीं होते, अतएव जो भगवद्भक्त भगवान्‌का अनुकरण करते हैं वे कर्म करने पर भी कर्मोंमें लिप्त नहीं होते ॥ १५ ॥ सब धर्मोंके विधाता भगवान् मानुषा-वताररूप आत्ममार्गमें अवस्थित हो कर मनुष्योंको शिक्षा देनेके लिये ही कार्य करते हैं। वह परम ज्ञानी, परिपूर्ण और एकमात्र प्रभु हैं, अतएव उनको अहंकार और शुभकी आकांक्षा नहीं है एवं वह अन्य किसीके द्वारा कार्य करनेके

लिये प्रेरित नहीं होते। मैं उन्हीके शरणागत हूँ" ॥१६॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! मनु भगवान् समाधिस्थ हो कर इस मंत्रोपनिषद्का उच्चारण करते थे। यह देख कर क्षुधासे व्याकुल असुर और राक्षसगण उनको अवश जान कर भक्षण करनेके लिये उनकी ओर दौड़े ॥ १७ ॥ उन दुष्टोंके इस दुष्ट विचारको देख कर यज्ञनामक सर्वव्यापक हरिने अपने पुत्र "याम"नामक देवगणके साथ उन दैत्योंका संहार किया एवं वह स्वयं इन्द्रासन पर बैठ कर त्रिलोकीका पालन करने लगे ॥ १८ ॥ द्वितीय मनुका नाम स्वारोचिष था। वह अग्निदेवके पुत्र थे। इन मनुके सुषेण और रोचिष्मान् आदि पुत्र हुए ॥ १९ ॥ स्वारोचिष मन्वन्तरमें रोचन नाम इन्द्र, तुषित आदि देवता एवं ऊर्जस्तम्भ आदि ब्रह्मवादी सप्तर्षि विद्यमान थे ॥ २० ॥ इस मन्वन्तरमें वेदशिरानाम एक ऋषि थे, उनकी स्त्रीका नाम तुषिता था। तुषिताके गर्भमें वेदशिराके वीर्यसे भगवान्ने जन्म ग्रहण किया और "विभु" नामसे विख्यात हुए ॥ २१ ॥ विभुदेवने बालब्रह्मचर्य ग्रहण किया; उस समय अट्ठासी हजार ऋषियोंने उनसे ब्रह्मचर्य व्रतकी शिक्षा ली ॥ २२ ॥ तृतीय मनुका नाम उत्तम था। वह प्रियव्रतके पुत्र थे। पवन, सृंजय, यज्ञहोत्र आदि उनके पुत्र हुए। 'उत्तम' मन्वन्तरमें वशिष्ठके पुत्र 'प्रमद' आदि सप्तऋषि और सत्य, वेद, श्रुत व भद्र नाम देवता एवं सत्यजित् नाम इन्द्र वर्तमान थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ भगवान् पुरुषोत्तमने उत्तम मन्वन्तरकी धर्मभार्या सूनृताके गर्भमें सत्यव्रतगणसहित जन्म लिया और सत्यसेन नामसे विख्यात हुए ॥ २५ ॥ सत्यसेन भगवान् सत्यजित्के सखा थे। सत्यसेनदेवने मिथ्याव्रतधारी, दुःशील दुष्ट यक्ष राक्षसोंका एवं प्राणियोंको सतानेवाले अन्य प्राणियोंका संहार किया ॥ २६ ॥ चौथे मनुका नाम तामस था, यह उत्तमके भाई थे। इनके पृथु, ख्याति, नर और केतु आदि दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २७ ॥ तामस मन्वन्तरमें सत्यक हरि और वीर नाम देवता, त्रिशिख नाम इन्द्र एवं ज्योतिर्द्धामा आदि सप्तऋषि विद्यमान थे ॥२८॥ जब युगधर्मसे कालवश संपूर्ण वेद लुप्तप्राय हो गये थे तब विधृतिके जिन २ पुत्रोंने अपने तेजसे वेदोंको धारण किया वे तामस मन्वन्तरमें वैधृति नाम देवता हुए ॥ २९ ॥ तामस मन्वन्तरमें भगवान्ने हरिमेधाकी पत्नी हरिणीके गर्भमें जन्म लिया और हरिनामसे विख्यात हुए। हरिभगवान्ने ग्राहके मुखसे गजेन्द्रका उद्धार किया है ॥ ३० ॥ राजा परीक्षित् बोले। हे वेदव्यासजीके पुत्र! श्रीहरिने ग्राहके मुखसे जिस प्रकार गजको उबारा, हम वह कथा आपके श्रीमुखसे सुना चाहते हैं ॥ ३१ ॥ जिन २ कथाओंमें उत्तमश्लोक हरिके गुणोंका गान होता है वे सब कथाएँ पवित्र, धन्य, मङ्गलमय एवं स्वस्त्ययनस्वरूप हैं ॥ ३२ ॥

सूत उवाच—परीक्षितैवं स तु बादरायणिः
प्रायोपविष्टेन कथासु चोदितः ॥
उवाच विप्राः प्रतिनन्द्य पार्थिवं
मुदा मुनीनां सदसि स्म शृण्वताम् ॥ ३३ ॥

श्रीसूतजी शौनकादिक ऋषियोंसे कहते हैं कि हे विप्रगण! अनशन व्रत धारण कर बैठे हुए परीक्षित्‌जीने जब यों हरिकथा कहनेके लिये प्रेरणा की तब वेदव्यासनन्दन महात्मा शुकदेवजी राजाकी प्रशंसा करके, सुननेके लिये उत्सुक मुनिमण्डलीके आगे यों वर्णन करने लगे ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय ।

गजेन्द्रकी कथा ।

श्रीशुक उवाच—आसीद्गिरिवरो राजँस्त्रिकूट इति विश्रुतः ॥
क्षीरोदेनावृतः श्रीमान्योजनायुतमुच्छ्रितः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे । हे राजन्! त्रिकूट नाम एक बहुत प्रसिद्ध सुन्दर पर्वत है, उसको चारो ओरसे क्षीरसागर घेरे हुए है, त्रिकूटाचल अयुत योजन ऊँचा है और उतना ही चारोओर फैला है । उसके सोने, चाँदी और लोहेके तीन शिखरोंसे दिशाएँ और समुद्र प्रकाशमान है ॥ १ ॥ २ ॥ अन्यान्य सब शिखर भी विविध रत्न और धातुओंके रागसे रंजित हैं एवं असंख्य वृक्ष, लता और झाड़ियोंसे ढके हुए हैं । पर्वतोंसे निकले हुए झरनोंकी मधुर ध्वनिसे दिग्दिगन्त प्रतिध्वनित हो रहे हैं ॥३॥ क्षीरसागरकी तरंगें चारो ओरसे आकर उसके चरणोंको धोती हैं । उस पर्वतने अपने हरितवर्ण मरकत पाषाणकी प्रभासे वहाँकी भूमिको श्यामवर्ण बना रक्खा है ॥ ४ ॥ उसकी कंदराओंमें सिद्ध, चारण, गंधर्व, विद्याधर, महानाग, किन्नर एवं अप्सराओंके झुंड सदा विहार किया करते हैं ॥ ५ ॥ उन लोगोंकी मधुर संगीतकी ध्वनि सदा कंदराओंमें गूँजती रहती है, सिंहगण उसे अन्य सिंहका शब्द समझ कर नहीं सह सक्के और दर्पसहित उसी प्रतिध्वनिको लक्ष्य कर गंभीर गर्जन करते हैं ॥ ६ ॥ झुंडके झुंड अनेक वन्य (जंगली) जन्तु शिखरों पर विचरते हुए पर्वतकी शोभाको बढ़ाते हैं । पर्वतके शिखरों पर जो देवगणके बाग हैं उनमें मीठी २ बोली बोलनेवाले विविध पक्षी कलोल करते हुए अपनी विचित्र

बोलियाँ बोलते हैं ॥ ७ ॥ स्वच्छ जलवाली नदियाँ और सरोवरोंके किनारों पर लगे हुए बालूके ढेर स्थान स्थान पर मणियोंके ढेरके समान चमकते हैं। देव-वधुओंके स्नानसे वहाँके जल और वायु सुगंधित हो रहे हैं ॥ ८ ॥ उस पर्वत पर महात्मा वरुणदेवका ऋतुमान् नाम बाग है। उस उपवनमें नित्य फूलने फलनेवाले दिव्य वृक्ष चारो ओर सुशोभित हैं। वहाँ सब देवतोंकी स्त्रियाँ क्रीड़ा किया करती हैं। मंदार, पारिजात, पाटल, अशोक, चंपा, आम, प्रियाल, कटहल, आम्र, आम्रातक, क्रमुक, नारिकेल, खजूर, अनार, मधूक, शाल, ताल, तमाल, असन, अर्जुन, अरिष्ट, उदुम्बर, प्लक्ष, वट, किंशुक, चन्दन, पिचुमंद, कोविदार, सरल, देवदारु, दाख, ईख, कदली, जामुन, बेर, अक्ष, हरीतकी, आमलकी, बेल, कैथा और जंबीर आदि वृक्ष व लताएँ सब त्रिकूटके विशाल शरीरको चारो ओरसे घेरे हुए हैं। वहाँ एक बड़ा भारी सरोवर है, उसमें कनककमल शोभायमान हैं एवं कुमुद, उत्पल और शतपत्र आदि (कमलविशेष) उसकी सुन्दरता बढ़ा रहे हैं। मदमत्त भ्रमर और कलकंठ पक्षिगणके मधुर स्वरसे वह परिपूर्ण हो रहा है ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ हंस, कारण्डव, चक्रवाक, सारस आदिके झुण्ड उसमें कलोलें करते हैं। जलकुक्कुट, कोयष्टि और दात्यूह पक्षिगण वहाँ बैठ कर शब्द करते हैं ॥ १६ ॥ मत्स्य, कच्छप आदिके इधर उधर चलनेसे कमलवृक्ष हिलते हैं और उनसे गिरा हुआ पद्मपुष्पोंका पराग जलमें मिल कर जलको सुगंधित बनाता है एवं किनारे पर लगे हुए कदंब, वेतस, नल (नर्कुल), नीप, बञ्जुल, कुंद, कुरवक, अशोक, शिरीष, कुटज, इंगुदी, स्वर्णयूथी (सुनहरीजूही), नाग, पुन्नाग, जाती, मल्लिका, शतपत्र, माधवी और जालक आदि वृक्ष उसको चारो ओरसे घेरे हुए उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। इनके सिवा सब ऋतुओंमें फूलनेवाले अन्यान्य वृक्ष उसको और भी मनोहर बना रहे हैं॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ एक दिन उस त्रिकूट पर्वत पर उसी पर्वतके वनमें रहनेवाला एक गजराज अपनी हथनियोंसहित विचरता हुआ, कंटकयुक्त वृक्ष और कीचक बाँस व बेंतकी बड़ी २ झाड़ी एवं वनस्पतियोंको तोड़ने लगा ॥ २० ॥ उसकी गंध पाते ही सिंह, साधारण हाथी, व्याघ्र, गैंड़े आदि सब भयानक हिंस्र जीव, महासर्प एवं गोरे और काले शरभ तथा चमरी गऊ-भयभीत हो कर इधर उधर भागने लगते हैं ॥ २१ ॥ किन्तु वृक, वराह, महिष, भालू, शल्य, गोपुच्छ, कुत्ते, वानर और शश आदि छोटे २ जीव उसकी दया पर अपना जीवन निर्भर करके इधर उधर निर्भय हो कर विचरते रहते हैं ॥ २२ ॥ बड़े २ हाथी, जिनके मद बह रहा है, उनको और हथनियोंको साथ लिये हुए वह गजराज घामकी गर्मीसे उस समय बहुत ही व्याकुल हुआ। इतनेमें दूरसे ही उक्त सरोवरके जलसे मिला हुआ पद्मपरागपूर्ण शीतलवायु उसके अंगोंमें आ कर लगा,

जिससे अपने पर्वततुल्य विशाल शरीरको हिलाता हुआ वह प्यासा गजराज दलवलसहित उसी सरोवरके तट पर आ कर उपस्थित हुआ। मद पान करनेके लिये भ्रमरोंके झुंडके झुंड उसको चारो ओरसे घेरे हुए थे ॥२३॥ राजन्! गजेन्द्र इस प्रकार जलके समीप आ कर सरोवरके भीतर घुस पड़ा एवं सूँड़से पद्मपराग मिला हुआ निर्मल अमृततुल्य जल पी कर और शरीर पर डाल कर स्वस्थ हुआ। उसके बाद गृहस्थ मनुष्योंके समान सूँड़से हथनी और छोटे २ बालकोंको जल पिलाने व स्नान कराने लगा। वह गजपति मदके उन्मादमें विह्वल और दैव (होनी) की मायामें मुग्ध था, अतएव उसके ऐसा करनेसे किसी जलजन्तुको कष्ट होता है, या नहीं-इसका विचार उसे नहीं रहा ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ उस सरोवरमें एक महाबली ग्राह रहता था। उस ग्राहने होनहारकी प्रेरणासे क्रोधपूर्वक गजेन्द्रका पैर पकड़ लिया। महाबली गजराज भी सहसा ऐसी विपत्तिके आ पड़ने पर यथासाध्य अपना पैर छुड़ानेकी चेष्टा करने लगा। बलवान् ग्राह भी जलके भीतर गजराजको खींचने लगा ॥ २७ ॥ ग्राहके प्रचण्ड आक्रमणसे अपने झुंडके अधिपति गजराजको कातर होते देख कर दुःखितचित्त हथनियाँ कातर हो कर दीनभावसे केवल चीत्कार करने लगीं और अन्यान्य हाथी सब सूँड़में सूँड़ मिला कर गजराजको उबारनेकी चेष्टा करने लगे, परन्तु किसी प्रकार वे गजको ग्राहके मुखसे न छुड़ा सके ॥ २८ ॥ बलशाली गज और ग्राह परस्पर एक एकको जलके बाहर और जलके भीतर खींचते हुए युद्ध करते रहे। यह युद्ध एक हजार वर्ष तक होता रहा। इतने समयमें किसीकी भी मृत्यु नहीं हुई और न कोई हारा। यह देख कर देवतोंको भी विस्मय हुआ ॥ २९ ॥ क्रमशः इतने बहुत समय तक ग्राहसे युद्ध करनेमें यूथपति गजराजकी उत्साहशक्ति और इन्द्रियोंका बल व शरीर क्षीण हो चले एवं जलचर ग्राहका उत्साह, इन्द्रियोंका बल व शरीर वृद्धिको प्राप्त हुए ॥ ३० ॥ देहधारी गजराज प्राणसंकटमें पड़ कर अपनेको उससे छुड़ानेमें न समर्थ हुआ एवं इससे उसे बड़ी भारी चिन्ता हुई। चिन्ता करते २ उसको इस प्रकारकी बुद्धि प्राप्त हुई कि-"मैं अवसन्न (शिथिल) हो पड़ा हूँ; जब मेरी जातिवाले ये सब हाथी मुझको उबार नहीं सक्ते और मैं भी अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ हूँ तब हथनियाँ कैसे मेरी रक्षा कर सक्ती हैं? इस ग्राहने मुझको जो पकड़ा है सो अवश्य विधाताका ही पाश है। जो हो, जो परमपुरुष ब्रह्मादि देवतोंका भी परम आश्रय है, मैं उसीकी शरणमें जाता हूँ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम् ॥
भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ॥२३॥

ईश्वर ही सबसे बढ़ कर बली हैं । प्रचण्ड वेगसे दौड़ रहे कालरूप कराल सर्पके भयसे भीत और विपत्तिमें पड़े हुए व्यक्तिकी जो रक्षा करते हैं एवं जिनके भयसे मृत्यु अपने कार्यमें प्रवृत्त है, मैं उन ईश्वरके ही शरणागत हूँ" ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय ।

गजेन्द्रमोक्ष ।

श्रीशुक उवाच—एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि ॥
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । गजराजने अपनी बुद्धिसे इस भाँतिका स्थिर निश्चय करके हृदयमें मनको एकाग्र किया और पूर्वजन्ममें सीखे हुए जपने योग्य निम्नलिखित श्रेष्ठ मंत्रोंका जप करने लगा ॥ १ ॥ गजेन्द्र बोला । प्रकृति-पुरुष-स्वरूप जो भगवान् सब शरीरोंमें कारणरूपसे प्रवेश किये हुए हैं और अतएव इस शरीरने जिनसे चैतन्यलाभ किया है एवं जो परमेश्वर हैं, मैं केवल उन्हीका ध्यान करता हूँ ॥ २ ॥ जिनमें यह विश्व अधिष्ठित है और जिनसे उत्पन्न है एवं जिनके द्वारा इसकी सृष्टि हुई है, जो स्वयं विश्वस्वरूप हैं एवं कार्य और कारण दोनोसे भिन्न हैं, उन्ही स्वयंभूके चरणोंके शरणागत हूँ ॥ ३ ॥ जिनकी मायाद्वारा यह विश्व (जिनमें) कभी प्रकाशित होता है और कभी प्रलयकालमें विलीन हो जाता है, जो साक्षीरूपसे कार्य और कारण दोनोको देखते हैं एवं प्रकाशक चक्षुआदि इन्द्रियोंके भी प्रकाशक होनेसे जो स्वयंप्रकाशमात्र हैं वह इस प्राण-संकटसे मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥ काल पा कर सब लोक और लोकोंके कारण लोक-पालगण संपूर्णरूपसे विनष्ट हो जाते हैं, उस समय घोर अनन्त अंधकार ही शेष रहता है,—उस अंधकारके पारमें जो अपार ईश्वर विराजमान रहते हैं उनके मैं शरण हूँ ॥ ५ ॥ देवगण और ऋषिगण भी उनके स्वरूपको नहीं जान पाते, तब अन्य प्राणी कैसे जान सक्ते हैं? अथवा विविध आकृतियोंको ग्रहण करनेवाले उनके रूपका वर्णन करनेमें समर्थ हो सक्ते हैं? नटोंके समान जिनका चरित्र नहीं जाना जाता वह ईश्वर इस प्राणसंकटसे मेरी रक्षा करें ॥ ६ ॥ साधु, सब प्राणियोंके सुहृद्, आत्मदर्शी, निःसंग मुनिगण जिनके मंगलप्रद पद देखनेकी लालसासे वनोंमें वास कर ब्रह्मचर्य्य आदि अलौकिक व्रत धारण करते हैं वही ईश्वर मुझ अगतिकी गति हैं ॥ ७ ॥ जो जन्म, कर्म्म, नाम और रूपसे रहित, निर्गुण और निर्दोष हैं, तथापि विश्वकी उत्पत्ति और विनाशके लिये अपनी मायाके द्वारा समय समय पर जन्मादि स्वीकार करते हैं,

जो परमेश्वर हैं, जो ब्रह्म हैं, जो अनन्त शक्तिशाली हैं, जो अद्भुत कर्म करनेवाले और कार्यानुसार बहुतसे रूप धरनेवाले हैं उनको नमस्कार है ॥ ८ ॥ ९ ॥ जो सबके प्रकाशक एवं स्वयंप्रकाशमान हैं, जो परमात्मा अर्थात् जीवके नियन्ता हैं, अतएव वाणी, मन और चित्तसे परे हैं उनको नमस्कार है ॥ १० ॥ जो निर्गुण और विशुद्ध संन्यासके द्वारा प्रत्यक्ष स्वरूपसे प्राप्त हो सक्ते हैं एवं जो मोक्षसम्बन्धी आनन्दानुभवके स्वरूप हैं उनको नमस्कार है। जो शान्त, घोर, मूढ़ सत्वादि धर्मका अनुसरण करनेवाले हैं, जो निर्विशेष हैं, जो समतारूप सौम्य हैं, जो ज्ञानघन हैं उनको नमस्कार है ॥ ११ ॥ १२ ॥ भगवन्! आप क्षेत्रज्ञ, सबके अध्यक्ष और सबके स्वामी हैं। आप सबके आदिमें अवस्थित रहते हैं, अतएव आप आत्माका मूल और प्रकृतिकी प्रकृति (अर्थात् उत्पत्तिका कारण)है, आपको नमस्कार है ॥१३॥ आप सब इन्द्रियोंके देखनेवाले साक्षी हैं; सम्पूर्ण विषयोंमें आपके सत्स्वरूपका आभास विद्यमान है, अतएव असत् अहंकार-प्रपंच, प्रतिबिंबके द्वारा जैसे बिंबकी सूचना होती है वैसे ही आपकी सूचना देते हैं; सब इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ भी आपका ज्ञान कराती हैं। आपको नमस्कार है ॥ १४ ॥ आप सबके कारण हैं, आपका कारण कोई नहीं है, आप अद्भुत कारण हैं। जैसे सब नदियाँ सागरमें आकर ठहरती हैं वैसे ही सब शास्त्र और वेदोंका आधार आप ही हैं। आप मोक्षस्वरूप और साधुलोगोंका आश्रय हैं। आपको नमस्कार है ॥ १५ ॥ आप ज्ञानाग्निरूप हैं, आप मायाके गुणरूप काष्ठोंमें छिपे हुए हैं। आपका मन गुणोंके कार्योंसे विमुख है। जिन्होने आत्मतत्त्वकी चिन्ताके द्वारा विधि-निषेधरूप शास्त्रका परित्याग कर दिया है, उनके हृदयमें आप आप ही आप प्रकट होते हैं- आपको नमस्कार है ॥ १६ ॥ प्रभो! आप मुक्त हैं, अतएव आप ही मुझ सरीखे शरणागत पशुओंको बन्धनपाशसे छुड़ानेमें समर्थ हैं। आपकी करुणा अपार है; अधिक क्या कहें, आप कृपा करनेमें सदा तत्पर रहते हैं। आप सब देहधारियोंके मनमें अन्तर्यामीरूपसे वास करके ज्ञानस्वरूपसे प्रकाश पाते हैं; किन्तु देहधारीगण आपकी शेष सीमाका निर्देश नहीं कर सक्ते। आप सब प्राणियोंके शासक हैं; आपको नमस्कार है। आप सबके अन्तर्य्यामी हैं, तथापि जो लोग देह, पुत्र, भवन, धन और भृत्यादिमें आसक्त हैं वे आपको नहीं पा सक्ते; क्योंकि आप मायाके गुणोंसे दूर हैं। जो लोग देहादिकी आसक्तिको छोड़ चुके हैं वे ही आपके ध्यानमें मग्न रहते हैं। ज्ञान ही आपका रूप है, आप भगवान् हैं, आपको प्रणाम है ॥ १७ ॥ १८ ॥ लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके लाभकी अभिलाषासे आपकी उपासना करके अपने २ अभीष्ट और अन्यान्य मङ्गल एवं अक्षय शरीरको भी पाते हैं। आपकी दया असीम है। आप मुझको इस संकटसे छुड़ाइये ॥ १९ ॥ आपके अनन्य भक्तजन, जीवन्मुक्त सर्वज्ञ महात्मा

जनोंकी सेवा (संग) में परमानन्द-सुखका संभोग करते हुए केवल आपके ही अद्भुत मङ्गलमय चरित्र गाते रहते हैं और अन्य कोई कामना नहीं करते ॥ २० ॥ आप अक्षर, परमेश्वर, अव्यक्त, आध्यात्मिक योगके द्वारा मिलने योग्य, सूक्ष्मरूप पदार्थोंकी भाँति इन्द्रियोंसे परे, अनन्त, आदिपुरुष एवं परिपूर्ण परब्रह्म हैं; आपको नमस्कार है ॥ २१ ॥ आपके बहुत ही सूक्ष्म अंश द्वारा नाम और रूपके भेदसे ब्रह्माआदि देवगणकी और चारो वेदोंकी तथा चराचर लोककी सृष्टि हुई है ॥ २२ ॥ जैसे अग्निसे तेज और सूर्यमण्डलसे किरणें निकलती हैं और फिर वह तेज और किरणें अग्नि और सूर्यमें ही लीन हो जाती हैं वैसे ही बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शरीरोंका प्रवाह जिनसे प्रकट होता और जिनमें लीन हो जाता है वह देव नहीं हैं, असुर नहीं हैं, मनुष्य नहीं हैं, पशु नहीं हैं, पक्षी नहीं हैं, स्त्री, पुरुष और नपुंसक नहीं हैं, लिंग(चिन्ह)हीन कोई प्राणिविशेष भी नहीं हैं, गुण नहीं हैं, कार्य नहीं हैं, सत् और असत् भी नहीं है; किन्तु 'यह नहीं हैं' 'वह भी नहीं हैं' इस भाँति सब वस्तुओंका निषेध करनेसे अन्तमें अवधिस्वरूप जो कुछ अवशिष्ट रहता है, वही वह हैं; उन्ही शेषविहीन ब्रह्मकी जय हो ॥२३॥२४॥ इस लोकसे वह भगवान् मुझे शीघ्र ही मुक्त करें। मैं प्राण बचनेकी इच्छा नहीं करता, क्योंकि यह गजशरीर बाहर और भीतर अज्ञानरूप अंधकारसे आच्छन्न है, इसके रहनेसे कोई प्रयोजन नहीं है। अज्ञान, जो कि आत्मतत्वके प्रकाशको ढकनेवाला आवरण है, सो मोक्षके समय भी पूर्णरूपसे नहीं नष्ट होता। उसी अज्ञानसे मुक्त होनेकी मेरी आकांक्षा है ॥ २५ ॥ जिन्होने इच्छा करके विश्वकी सृष्टि की है, विश्व जिनका स्वरूप है, तथापि जो विश्वसे विभिन्न हैं, विश्व ही जिनकी संपत्ति है एवं जो विश्वके आत्मा हैं उन्ही परमपदपर ब्रह्मको प्रणाम है ॥ २६ ॥ भागवत धर्मके संसर्गसे जिनके सब कर्मबीज जल गये हैं वे सब योगि-जन, योगसे शुद्ध हो गये अपने हृदयमें जिन योगेश्वरका दर्शन करते हैं उनको नमस्कार है ॥ २७ ॥ आपकी तीनो शक्तियोंका रागादिरूप वेग असह्य है। आप बाहरी दृष्टिसे इन्द्रियगुण-रूप प्रतीत होते हैं। आप शरणागत व्यक्तियोंका पालन करते हैं, आपकी शक्ति अनन्त है। जिन्होने इन्द्रियोंको अपने वशमें नहीं कर पाया वे आपके मार्गको नहीं पाते। हे भगवन्! आपको प्रणाम है ॥ २८ ॥ जो अहं-बुद्धि-रूपिणी अपनी मायामें समाच्छन्न रहनेके कारण लोगोंके ज्ञानसे अतीत हो रहे हैं उन असीम महिमावाले ईश्वरके चरणोंकी शरण मैंने ग्रहण की है ॥ २९ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। राजन्! गजेन्द्रने इस प्रकार ईश्वरकी किसी विशेष मूर्तिकी स्तुति न करके परमतत्त्वकी स्तुति की। ब्रह्माआदि देवगणको, उसी ईश्वरका अंश होने पर भी, अपनी २ मूर्तिके भेदका अभिमान है, इसीसे वे गजको उबारनेके लिये न आये, तब सब प्राणियोंके आत्मा,

सर्वदेवमय हरि वहीं पर प्रकट हुए। चक्र हाथमें लिये विश्वपति नारायणजी गजेन्द्रको इस प्रकार संकटमें पड़ा हुआ जानकर और उसके आर्तस्वर व स्तुतिको सुन कर उसी समय वेदमय गरुड़की पीठ पर चढ़ कर उसके निकट आ पहुँचे। सब देवता पीछे २ भगवान्‌की स्तुति करते हुए आये॥ ३०॥ ३१॥ जलके भीतर बड़ा बली ग्राह खींच रहा था, उससे शिथिलशरीर गजराजको बड़ा भारी कष्ट हो रहा था। इसी समय आकाशमें गरुड़के ऊपर स्थित नारायणको देख कर सूँड़से उपहारस्वरूप एक कमलका फूल ऊपरको उठाकर अति कष्टसे आर्त स्वरमें उसने कहा-"हे नारायण! हे सबके गुरु! आपको नमस्कार है"॥ ३२॥

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार॥
ग्राहाद्विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं संपश्यतां हरिरमूमुचदुच्छ्रियाणाम्

गजेन्द्रको पीड़ित देख कर विष्णु भगवान् तत्क्षण गरुड़की पीठसे फाँद पड़े एवं करुणावरुणालय दीनबन्धुने दयापूर्वक ग्राहसहित गजको सरोवरसे बाहर निकाल लिया और चक्रसे ग्राहका शिर काट डाला। हरिने इस प्रकार देवगणके सामने २ गजेन्द्रको संकटसे मुक्त कर दिया॥ ३३॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

चतुर्थ अध्याय।

गजेन्द्रका स्वर्गगमन।

श्रीशुक उवाच–तदा देवर्षिगन्धर्वा ब्रह्मेशानपुरोगमाः॥
मुमुचुः कुसुमासारं शंसन्तः कर्म तद्धरेः॥ १॥

शुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! ब्रह्मा और शिव आदिक देवगण एवं ऋषि व गंधर्वगण हरिके इस अद्भुत कर्म्मकी प्रशंसा करते हुए ऊपरसे फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ १॥ स्वर्गमें नगाड़े बजने लगे, गंधर्वगण गाने और अप्सराओंके झुंड नाचने लगे एवं ऋषि, चारण और सिद्धगण नारायण भगवान्‌की स्तुति करने लगे॥ २॥ हे राजन्! यह ग्राह, जिसने गजको पकड़ा था, पूर्वजन्ममें हूहू नाम श्रेष्ठ गंधर्व था; पीछे देवल ऋषिके शापसे ग्राह हो गया। इस समय भगवान्‌की कृपासे शापमुक्त होते ही उसने ग्राहका शरीर त्याग दिया और आश्चर्य्यदायक सुंदर स्वरूप पा कर, जिनके गुण और कथाएँ कीर्तन करने योग्य हैं उन पुण्यश्लोक, अव्यय, नारायणको शिर झुका कर प्रणाम किया एवं भगवान्‌का गुण गान करते २ निष्पाप हो कर ईश्वरकी प्रदक्षिणा की और प्रणाम करके सबके देखते अपने लोकको गया॥ ३॥ ४॥ ५॥ इधर गजेन्द्र

भी भगवान्के हाथका स्पर्श होनेके कारण अज्ञानसे मुक्त हो कर भगवान्के समान पीताम्बर धारण किये दिव्य चतुर्भुजरूप हो गया ॥ ६ ॥ गजेन्द्र पूर्व जन्ममें इन्द्रद्युम्न नाम पाण्ड्यदेशका राजा था। उस समय द्रविडदेशनिवासियोंमें वह श्रेष्ठ गिना जाता था और सर्वदा विष्णु भगवान्के व्रतोंमें तत्पर रहा करता था ॥ ७ ॥ आत्मज्ञानी इन्द्रद्युम्न, राज्यभोग त्याग कर कुलाचल पर एक आश्रममें जटा धारण किये तपस्वीके वेषसे भगवान्के भजनमें लगा रहता था। एक दिन उपासनाके समय स्नान करके मौन-व्रत धारण किये इन्द्रद्युम्न राजा भगवान्का ध्यान कर रहा था, इसी समय महायशस्वी अगस्त्य मुनि शिष्योंको साथ लिये इच्छानुसार विचरते हुए उसी स्थान पर उपस्थित हुए। इन्द्रद्युम्न राजा ईश्वरके ध्यानमें मग्न था, इस कारण वह मौनव्रत धारण किये बैठा रहा, उसने अगस्त्य मुनिका न तो पूजन किया और न "आइये बैठिये" कह कर वाणीसे ही सत्कार किया। यह देख कर मुनिको बहुत ही कोप हुआ ॥ ८ ॥ ९ ॥ मुनिने कुपित हो कर शाप दिया कि—"यह दुष्ट असाधु और अशिक्षित है, इसीसे आज इसने इस प्रकार ब्राह्मणजातिका निरादर किया। जड़ हाथीके समान मदमत्त हो कर बैठा है, इस कारण यह गजकी योनि पा कर अज्ञानमें निमग्न हो" ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! भगवान् अगस्त्य यों शाप दे कर शिष्यगणसहित चले गये। राजर्षि इन्द्रद्युम्न भी, इस घटनाका मूलकारण दैव ही है—ऐसा विचार करते २ गजयोनिको प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ गजयोनिमें आत्मस्मृति विनष्ट हो जाती है, किन्तु राजा इन्द्रद्युम्न हरिकी आराधनाके प्रभावसे गज हो कर भी अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तको नहीं भूले ॥ १२ ॥ पद्मनाभ, गरुड़वाहन, भगवान्ने गजेन्द्रको यों संकटसे छुड़ा कर अपना पार्षद कर लिया एवं उसको साथ ले कर अपने लोकको प्रस्थान किया। गंधर्व, सिद्ध और देवगण हरिकी अद्भुत कीर्तिका गान करते हुए पीछे २ अपने २ लोकोंको गये ॥ १३ ॥ महाराज! हमने तुमसे गजेन्द्रमोक्षरूप यह भगवान् हरिका माहात्म्य वर्णन किया है। जो लोग हरिके इस प्रभावको सुनते हैं उनको इस लोकमें यश और अन्तमें स्वर्ग प्राप्त होता है; कलिकलुष और दुःस्वप्न उनके निकट भी नहीं आते। अतएव मङ्गलकी कामना करनेवाले द्विजातियोंको प्रातःकाल उठ पवित्र हो कर दुःस्वप्नकी शान्तिके लिये इसका पाठ करना योग्य है ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! सर्वव्यापक भगवान् नारायणने प्रसन्न हो कर सब प्राणियोंके आगे गजेन्द्रसे यह बात कही थी कि "जो लोग पिछली रातको जाग कर सावधानतासहित प्रयत हो कर मैं, तुम, यह सरोवर वन पर्वत और कन्दरा, ये बेंत—कीचक बाँस और वेणुकी झाड़ियाँ, ये देववृक्ष शिव-ब्रह्मा और मेरे निवासका स्थान शिखर, मेरी परमप्रिय आवासभूमि

क्षीरसागर, तेजोमय श्वेतद्वीप, श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, कौमोदकी गदा, सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शंख, पक्षिराज गरुड़, मेरी सूक्ष्मकला शेषनाग, मेरे हृदयमें वास करनेवाली लक्ष्मी देवी, ब्रह्माजी, देवर्षि नारद, शिवजी, प्रह्लाद, मेरे मत्स्य-कूर्म्म-वराह आदि अवतारोंके किये हुए सब पवित्र कार्य्य, सूर्य्य, चन्द्रमा, अग्नि, ओंकार, सत्य, गऊ, ब्राह्मण, भक्तिलक्षणयुक्त धर्म्म, धर्म-चन्द्र-कश्यपआदिकी स्त्री–दक्षकी कन्याएँ, गंगा, सरस्वती, नंदा, कालिंदी, ऐरावत हाथी, ध्रुव, सप्त ब्रह्मऋषि एवं अन्यान्य पवित्र यशवाले महात्मा मनुष्य आदि मेरे विविध रूपोंका स्मरण करते हैं वे सब प्रकारके पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। हे गजेन्द्र! जो लोग पिछले पहर ब्राह्म मुहूर्तमें उठ कर पूर्वोक्त मेरी मूर्तियोंमें मेरी स्तुति करते हैं और तुम्हारे कहे हुए स्तोत्रका पाठ करते हैं उनको मैं अन्त समयमें सुमति और सद्गति देता हूँ" ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

श्रीशुक उवाच–इत्यादिश्य हृषीकेशः प्रध्माय जलजोत्तमम् ॥
हर्षयन्विबुधानीकमारुरोह खगाधिपम् ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन्! हृषीकेश भगवान् यों कह कर पाञ्चजन्य शंखकी ध्वनिसे देववृन्दको आनन्दित करते हुए वैकुंठलोक जानेके लिये गरुड़जीकी पीठ पर आरूढ़ हुए ॥ २५ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय।

ब्रह्माकृत भगवान्‌की स्तुति।

श्रीशुक उवाच–राजन्नुदितमेतत्ते हरेः कर्माघनाशनम् ॥
गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं त्वन्तरं शृणु ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! यह गजेन्द्रमोक्ष नामक पापनाशक हरिका चरित्र हमने तुमको सुनाया। अब रैवत मन्वन्तरकी कथा सुनो ॥ १ ॥ पञ्चम मनुका नाम रैवत था, वह तामस मनुके सहोदर भाई थे। अर्जुन, बलि, विंध्य आदि उनके कई पुत्र हुए ॥ २ ॥ रैवत मन्वन्तरमें विभु नाम इन्द्र, भूतरय आदि देवता एवं हिरण्यरोमा, ऊर्ध्वबाहु आदि सप्तर्षि थे ॥ ३ ॥ स्वयं भगवान् नारायणने इस मन्वन्तरमें शुभ्रके वीर्यसे उनकी स्त्री विकुण्ठाके गर्भमें वैकुण्ठवासी देवगण-सहित अपने अंश द्वारा वैकुण्ठ नामसे अवतार लिया ॥ ४ ॥ लक्ष्मी देवीका

प्रिय करनेके लिये, उन्हीकी प्रार्थनासे, वैकुण्ठ भगवान्ने वैकुण्ठलोक निर्मित किया, उस वैकुण्ठ लोकको सभी लोग सादर प्रणाम करते हैं ॥ ५ ॥ इन वैकुण्ठ भगवान्के माहात्म्य एवं परम अभ्युदयशाली गुणोंका हमने बहुत ही साधारण वर्णन किया है, क्योंकि जो कोई पृथ्वीके रेणुओंकी गणना कर चुका है वही कदाचित् विष्णुके अनन्त गुणोंका वर्णन कर सक्ता है ॥ ६ ॥ छठे मनुका नाम चाक्षुप है, यह चक्षुके पुत्र हैं । पुरु, पुरुष, सुद्युम्न आदि इनके पुत्र हुए ॥ ७ ॥ चाक्षुप मन्वन्तरमें मन्त्रद्रुम नाम इन्द्र आप्यादि देवगण एवं हविष्मान् और वीरक आदि सप्तऋषि विद्यमान थे ॥ ८ ॥ इस मन्वन्तरमें जगत्पति नारायण भगवान् वैराजकी भार्य्या देवसम्भूतिके गर्भमें अजितनामधारी हो कर अपने अंशसे प्रकट हुए ॥ ९ ॥ अजित भगवान्ने जलके भीतर अपने ही दूसरे कच्छप-रूपकी पीठ पर घूम रहे मन्दराचलको धारण करके क्षीरसागरको मथा और देवगणको अमृत पान कराया ॥ १० ॥ **राजा परीक्षित्ने** पूछा कि ब्रह्मन्! भगवान्ने जिसके लिये, जिस कारण, और जैसे क्षीरसागरको मथा एवं कच्छप अवतार ले कर पीठ पर मंदराचल धारण किया, जिस प्रकार देवगणने अमृत पीनेके लिये पाया एवं इस व्यापारमें जो २ घटनाएँ हुईं, आप कृपापूर्वक सब वर्णन कीजिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ मेरा अन्तःकरण बहुत दिनसे सांसारिक त्रिविध तापोंसे तप रहा था, इसी कारण भक्तवत्सल भगवान्की परम अद्भुत महिमा जो आप कहते हैं उससे मेरा मन तृप्त नहीं होता, बरन् और भी सुननेकी इच्छा प्रबल होती है ॥ १३ ॥ **सूतजी** अट्ठासी हजार शौनकादि ऋषियोंसे कहते हैं कि हे द्विजगण! राजा परीक्षित्के यों प्रश्न करने पर श्रीमहर्षि शुकदेवजी हरिके चरित्रोंकी प्रशंसा करके यों कहनेलगे ॥ १४ ॥ **श्रीशुकदेवजी बोले ।** राजन्! असुरगण जब युद्धमें तीक्ष्ण अस्त्र शस्त्रोंके प्रहारसे देवगणका विनाश करने लगे और अनेकानेक देवता युद्धभूमिमें गिर कर फिर न उठे एवं दुर्वासाऋषिके *शापसे इन्द्रसहित तीनो लोक श्रीविहीन हो गये और सब यज्ञादिकार्य एकदम बंद हो गये तब इन्द्र और वरुण आदि लोकपाल मिल कर यह संकट टालनेके लिये उपाय सोचने लगे, परन्तु कोई भी उपाय न ठीक कर सके । अन्तको सब देवगण सुमेरुके शिखर पर ब्रह्माजीकी सभामें गये और ब्रह्माजीको प्रणाम करके सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ इन्द्र आदिको निःसत्व,

*इसकी कथा यों है कि एक समय दुर्वासाजी वैकुंठसे आ रहे थे, राहमें ऐरावत पर चढ़े इन्द्र मिले । मुनिने त्रिलोकाधिपति जान कर विष्णुके प्रसादकी माला इन्द्रको दी, इन्द्रने श्रीमदके कारण वह माला ऐरावतके मस्तक पर डाल दी। ऐरावतने वह माला सूँढमें ले कर पैरोंसे कुचल डाली । यह देख दुर्वासाने इन्द्रको शाप दिया कि तू शीघ्र ही श्रीभ्रष्ट हो जायगा।

प्रभाहीन और तीनो लोकोंको अत्यन्त दुर्दशाग्रस्त एवं असुरोंको इसके विपरीत सवल और हृष्टपुष्ट सन्तुष्ट देख कर ब्रह्माजी एकाग्र चित्तसे परमपुरुष परमेश्वरका ध्यान करते २ प्रसन्नमुख हो कर देवगणसे यों कहनेलगे ॥ १९ ॥ २० ॥ " मैं, शिव, तुम लोग, असुरगण और मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष एवं स्वेदज जन्तु आदि सव जीव जिनके अवतारकी अंश-कलासे उत्पन्न हुए हैं, आओ, हम सब उन्हींके शरणागत हों ॥ २१ ॥ जिनकी दृष्टिमें न कोई मारने योग्य है, न कोई रक्षणीय है, न कोई उपेक्षाके योग्य है और न कोई आदरका पात्र है-सभी समान हैं, तथापि जो समयानुसार सृष्टि, स्थिति और संहारके लिये क्रमशः सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुणको स्वीकार करते हैं, वह इस समय शरीरधारियोंके कल्याणके लिये सत्त्वगुण ग्रहण किये हुए हैं; यह उनका विश्वपालनका समय है, अतएव चलो हम उनकी शरणमें चलें। जगद्गुरु भगवान् अपने जन जो हमलोग हैं उनका कल्याण करेंगे। हमलोग उनको प्रिय हैं" ॥२२॥२३॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे शत्रुमदन! देवगणसे यों कह कर उनको अपने साथ लिये हुए ब्रह्माजी तमोगुणके अपर पारमें अवस्थित क्षीरसागरको गये। वहाँ पहुच कर एकाग्रमन हो वैदिक वचनोंके द्वारा अदृष्टस्वरूप अथच श्रुतपूर्व्व परमपुरुषकी स्तुति करने लगे ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले। "हे देव! आप सबसे श्रेष्ठ हैं आपको हम नमस्कार करते हैं। आप आदिपुरुष, अनन्त, विकाररहित, सत्यस्वरूप सबके अन्तर्यामी, उपाधिहीन, अचिन्त्य और वाणीके द्वारा अगम्य विषय हैं, आपका वेग मनसे भी अधिक है। वाणी आपका निर्देश नहीं कर सक्ती, आपको प्रणाम है ॥ २६ ॥ अहो जो मन, प्राण, बुद्धि और अहंकारसे अभिज्ञ हैं, जो इन्द्रिय और विषयरूपसे प्रकाश पाते हैं तथापि स्वप्न देखनेवालेके समान अज्ञानरहित हैं, जिनका कोई देह नहीं है, जो अक्षर और आकाशकी भाँति सर्वत्र व्याप्त हैं (क्योंकि जीवका पक्ष ग्रहण करनेवाली अविद्या और उसको निवृत्त करनेवाली विद्याका उनसे संसर्ग नहीं हैं) जो तीनो युगोंमें प्रकट होते रहते हैं, हम उन परब्रह्मकी शरण हैं ॥ २७ ॥ यह जीवका देह, चक्रकी भाँति, मायाके द्वारा घूमा करता है। यह मनोमय है एवं दश इन्द्रिय और पाँच प्राण इसके आरे हैं। इसका वेग बहुत ही सत्वर है। तीनो गुण इसकी नाभि हैं। इसकी गति बिजलीकी भाँति चञ्चल है। आठ प्रकृतियाँ नेमिके समान इसके आवरण हैं। जो परमात्मा इस चक्रका अक्ष (केन्द्र) हैं, हम उन्ही सत्यस्वरूपके शरणागत हैं ॥ २८ ॥ जो जीवके पास ही अवस्थिति करते हैं, अथच ज्ञानही जिनका एकमात्र स्वरूप है, जो प्रकृतिसे परे एवं अदृश्य हैं, जो अव्यक्त हैं, जिनका अन्त नहीं है-पार नहीं हैं, धीर योगीजन योगरूप साधनोंसे जिनकी उपासना करते रहते हैं, जिनकी मायामें मोहित लोग आत्माका स्वरूप जाननेमें नहीं समर्थ होते, जिनकी उसी मायाके पार कोई

नहीं जा सक्ता, उस मायाके गुण और वही माया जिनके वशमें है, जो परम ईश्वर हैं एवं सर्वत्र समभावसे विचरण करते हैं, हम उन्हीको नमस्कार करते हैं ॥२९॥३०॥ ये सब ऋषिगण एवं सब देवता और हम लोग, उन्हीके परमप्रिय रूपसे अर्थात् सत्त्वगुणसे उत्पन्न हुए हैं-अतएव उनकी सूक्ष्म गति (शक्ति) हमारे भीतर और बाहर बराबर प्रकाश पा रही है; तथापि, जब हम लोग उस सूक्ष्म गतिको नहीं जान पाते तब असुरादिक अन्यान्य जीवगण कैसे जान पावेंगे? उनकी तो रजोगुण और तमोगुणसे सृष्टि हुई है। जिस पर चतुर्विध प्राणी सब निवास करते हैं उस पृथ्वी-मण्डलकी जिन्होने सृष्टि की है एवं यह पृथ्वी ही जिनके दोनो चरण है—वह विराट्-रूप, महापुरुष, महाविभूतिशाली ब्रह्म हम लोगों पर प्रसन्न हों ॥३१॥३२॥ लोक एवं लोकपालगण जिस जलसे उत्पन्न हैं एवं वृद्धिको प्राप्त होते और जीवित रहते हैं, वही उदारशक्तिशाली सलिल जिनका रेतस् (वीर्य) है वह महाऐश्वर्य-सम्पन्न परमात्मा हम पर प्रसन्न हों ॥ ३३ ॥ जो चन्द्र, देवगणका अन्न है, बल है और परमायु है एवं सब वृक्षों (औषधियों) का ईश्वर और प्रजागणका जन्मदाता है—वही चन्द्र जिनका मन है—वह महाविभूतिशाली ईश्वर हम लोगों पर प्रसन्न हों ॥ ३४ ॥ क्रियाकाण्डके लिये जिस अग्निका जन्म हुआ है और जिस अग्निसे वेदरूप धन उत्पन्न हुआ है एवं जो अग्नि जीवके उदरमें रह कर अन्नको पचाता है, वह अग्नि जिनका मुख है, वही महाविभूतिशाली महेश हम लोगों पर प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥ देवयान अर्थात् अर्चिःआदि देवमार्गके अधिष्ठाता देवता वेदमय ब्रह्मकी उपासनाका स्थान मुक्तिका द्वार एवं अमृत और मृत्युरूप सूर्य जिनका लोचन हैं, वही महाविभूतिशाली परमेश्वर हम लोगों पर प्रसन्न हों ॥ ३६ ॥ जो वायु, चराचर जगत्का प्राण, बल, उत्साह और विक्रम है एवं हम लोग भृत्यकी भाँति जिस सम्राट्स्वरूप वायुके अनुगत रहते हैं, वह वायु जिनके प्राणसे समुत्पन्न हुआ है, वही महाऐश्वर्यशाली, प्रभु हम पर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ जिनके श्रोत्रसे दश दिशा, हृदयसे देहगत छिद्रसमूह एवं नाभिसे दश प्राण, इन्द्रिय, मन, और देहका आश्रय आकाश उत्पन्न हुआ है, वही महाविभूति-शाली विभु हम लोगों पर प्रसन्न हों ॥ ३८ ॥ जिनके बलसे महेन्द्र, प्रसन्नतासे देवगण, क्रोधसे महेश, बुद्धिसे ब्रह्मा, देहगत सम्पूर्ण छिद्रोंसे वेद और ऋषिगण एवं मेढ्र इन्द्रियसे प्रजापति उत्पन्न हुए हैं, वही महाविभूतिशाली भगवान् हरि हम लोगों पर प्रसन्न हों ॥ ३९ ॥ जिनके वक्षःस्थलसे लक्ष्मीदेवी, छायासे पितृगण, स्तनसे धर्म, पीठसे अधर्म, शिरसे स्वर्ग और विहारसे अप्सराओंके वृन्द उत्पन्न हुए हैं वही महाविभूतिशाली महेश्वर हम लोगों पर प्रसन्न हों ॥४०॥ जिनके मुखसे ब्राह्मण और परम गुह्य वेद, दोनो बाहुओंसे क्षत्रिय और बल, दोनो ऊरुओंसे वैश्य और निपुणता एवं पैरोंसे सेवावृत्ति और शूद्र उत्पन्न हुए हैं

वह महाविभूतिशाली परमेश्वर हम लोगों पर प्रसन्न हों ॥ ४१ ॥ जिनके अधरसे लोभ, ऊपरके ओष्ठसे प्रीति, नासिकासे कान्ति, स्पर्शसे पाशविक काम, दोनो भ्रुकुटियोंसे यमराज, और पलकोंके खुलने मुँदनेसे काल उत्पन्न हुआ है, वह महाविभूतिशाली परमेश्वर हम लोगों पर प्रसन्न हों ॥ ४२ ॥ पण्डितलोग ही पञ्चभूत, काल, कर्म, गुण और अनित्य संसार आदि सबका निराकरण कर सक्ते हैं, अतएव ये सब विषय दुर्विभाव्य अर्थात् साधारण जनोंके बुद्धिगम्य नहीं हैं। ज्ञानी लोग इन उक्त विषयोंको जिनकी अहितकारिणी माया कह कर निर्देश करते हैं वही महाविभूतिशाली हरि हम लोगों पर प्रसन्न हों ॥ ४३ ॥ भगवान् प्रशान्त शक्तिमय हैं। स्वाराज्यके लाभसे उनका आत्मा परिपूर्ण है और वह दर्शनादि इन्द्रियवृत्तियोंके द्वारा मायाके गुणोंमें आसक्त नहीं होते; उनकी सब लीलाएँ वायुके समान हैं। हम उन ब्रह्मको प्रणाम करते हैं ॥ ४४ ॥ हे भगवन्! जिसको हम अपनी इन्द्रियोंसे प्राप्त हो सकें ऐसी अपनी मूर्ति, और मुसकानसे मनोहर मुखारविन्द, हम शरणागत और दर्शनाभिलाषी अनुगत भक्तोंको शीघ्र ही दिखलाइये ॥ ४५ ॥ प्रभो! हम लोग जिन २ कामोंके करनेमें असमर्थ हैं उन सब कामोंको, आप स्वयं समय २ पर अपनी इच्छाके अनुसार पूर्ण करते हैं ॥ ४६ ॥ विषयोंमें आसक्त शरीरधारी लोग जिन कर्मोंको करते हैं उनमें कष्ट अधिक है किन्तु फल साधारण ही है और कभी २ उनसे कुछ फल ही नहीं होता। किन्तु जो कर्म आपको अर्पण कर दिये जाते हैं वे उक्त कर्मोंकी भाँति कभी नहीं निष्फल जाते ॥ ४७ ॥ कर्म चाहे स्वल्पही हो, पर ईश्वरको अर्पण करनेसे उसीसे श्रम सफल हो जाता है, क्योंकि ईश्वर ही पुरुषका परमप्रिय आत्मा और हितकारी हैं ॥ ४८ ॥ जैसे वृक्षके मूलमें जल डालनेसे उसके स्कन्ध और शाखाएँ भी सिंच जाती हैं वैसे ही विष्णुकी आराधना करनेसे सब प्राणियोंकी और आत्माकी भी आराधना हो जाती है ॥ ४९ ॥

नमस्तुभ्यमनन्ताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे ॥
निर्गुणाय गुणेशाय सत्त्वस्थाय च सांप्रतम् ॥ ५० ॥

हे भगवन्! आप अनन्त हैं; आपके स्वभाव और कर्मोंका निर्णय तर्कोंके द्वारा नहीं हो सक्ता। आप निर्गुण अथच सगुण ईश्वर हैं। आज कल आपकी स्थिति सत्त्वगुणमें ही है। हम सब लोग आपको प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय ।

अमृत निकालनेके लिये देवता और दैत्योंका उद्योग ।

श्रीशुक उवाच-एवं स्तुतः सुरगणैर्भगवान्हरिरीश्वरः ॥
तेषामाविरभूद्राजन्सहस्रार्कोदयद्युतिः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। देवगणके इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् हरि उनके आगे प्रकट हुए। सहस्र सूर्यका एक साथ उदय होने पर जैसा प्रकाश हो वैसा ही प्रकाश हरिके शरीरकी कान्तिमें था ॥ १ ॥ उस तेजसे अकस्मात् देवगणके नेत्र चकाचौंध गये। देवगण आकाश, दिशा, पृथ्वी, यहाँ तक कि अपनेको भी कुछ काल तक न देख सके, तब ईश्वरको देखना कैसे संभव था ? ॥२॥ तदनन्तर ब्रह्मा और महेश्वरने उनकी मरकततुल्य श्यामल और स्वच्छ कान्ति देख पाई। उस श्यामल शरीरमें दोनो नेत्र पद्मगर्भकी सी अरुण प्रभाका विस्तार कर रहे थे ॥३॥ तपाये हुए सुवर्णके सदृश पीतवर्ण रेशमी वस्त्रसे उनके सुप्रसन्न सुन्दर सब अंग आवृत (ढके हुए) थे। उनका मुख और दोनो भ्रुकुटियाँ अत्यन्त रमणीक और मनोहर थीं ॥ ४ ॥ मस्तकमें उत्तम मणिमय किरीट मुकुट, दोनो कानोंमें मकराकृत कुण्डल एवं दोनो भुजाओंमें केयूर शोभायमान थे। मनोहर दोनो कपोलों पर कुण्डलोंकी झलक अपूर्व बहार देती थी, जिससे मनोहर मुखारविन्दकी अद्भुत शोभा थी ॥ ५ ॥ काञ्ची, वलय, हार और नूपुर आदि आभूषण शरीरमें शोभित थे एवं कौस्तुभमणिसे कण्ठकी दीप्ति विशेषरूपसे वृद्धिको प्राप्त थी। वनमालाविभूषित लक्ष्मीदेवी हृदयमें विराजमान थीं एवं सुदर्शन आदिक सब अस्त्र शस्त्र मूर्तिमान् हो कर भगवान्के स्वरूपकी सेवामें उपस्थित थे। ऐसी मनोहर मूर्तिको देख कर ब्रह्माजी और शंकरदेवने देवगणसहित साष्टांग प्रणाम किया और परम पुरुषकी इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ "हे भगवन्! यह श्रीमूर्त्तिका आविर्भावमात्र है, वास्तवमें आप निर्गुण हैं, अतएव आपका जन्म, स्थिति और विनाश नहीं है। इसी लिये पण्डितगण आपको मुक्तिसुखका सागर बतलाते हैं। तथापि आप सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, वास्तवमें आपकी मूर्तियोंकी संख्या नहीं है। आपके प्रभावकी भावना करना भी दुःसाध्य है। आपको नमस्कार है ॥ ८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! हे विधाता! जिन लोगोंको मङ्गलकी अभिलाषा हो उनको योग्य है कि तांत्रिक और वैदिक योग द्वारा आपके इस रूपकी पूजा करें। सब विश्व इसी मूर्त्तिमें विद्यमान है, अतएव हमलोग इस रूपमें अपनेको और तीनो लोकोंको देखते हैं ॥ ९ ॥ आप स्वाधीन हैं; अतीत, वर्तमान और भविष्यत् सभी आपमें अधिष्ठित है । मृत्तिका जैसे घटआदि कार्योंका आदि मध्य और अन्त है वैसे ही आप भी इस जगत्का

आदि, मध्य और अन्त हैं, क्यों कि आप पर (माया) से भी परे हैं ॥ १० ॥ आप निजवशवर्त्तिनी माया द्वारा निर्मित विश्वके अभ्यन्तरमें प्रविष्ट हैं। तत्त्वज्ञानी शास्त्रज्ञ यतिलोग गुणोंके परिणाममें भी मन द्वारा आपके निर्गुण रूपका दर्शन करते हैं ॥ ११ ॥ जैसे काष्ठमें अग्नि, गऊमें घृत, पृथ्वीमें जल और अन्न एवं पुरुषार्थ(उद्यम)में जीविका निहित है एवं जिस भाँति मनुष्यगण विशेष २ उपायोंके द्वारा काष्ठादिसे अग्निआदिको पाते हैं, पण्डितगण कहते हैं कि वैसे ही आप भी मायाके सब गुणोंमें वर्त्तमान हैं; बुद्धिरूप उपायके द्वारा चतुर और पण्डितलोग आपको गुणगणमें ही पाते हैं ॥ १२ ॥ हे नाथ! हे पद्मनाभ! आप हम लोगोंकी चिरवाञ्छित वस्तु हैं। योगसे ही आप तक पहुँच होती है। आपको अपने नयनगोचर होते देख कर हम लोग उसी प्रकार शान्ति और आनन्दको प्राप्त हुए हैं जैसे दावानलकी ज्वालाओंसे सन्तप्त गजगण गंगाजीके शीतल जलको देख कर सुस्थ हों ॥ १३ ॥ सब लोकपालों सहित हम लोग जिस कामनासे आपके चरणोंकी शरणमें आये हैं उसे आप इस समय पूर्ण कीजिये। आप बाहर और भीतर, सबके साक्षी हैं; आपको क्या अपनी अभिलाषा जताएँ? ॥ १४ ॥ (ब्रह्माजी कहते हैं कि) मैं, शिवजी, देवगण और दक्ष आदि प्रजापतिगण सब-जिस प्रकार अग्निसे चिनगारियाँ निकलती हैं, उस प्रकार-आपसे ही अलग २ प्रकाश पाते हैं, अतएव हमलोग अपने मङ्गलका कुछ भी ज्ञान नहीं रखते; अब आप ही उस उपायका अवलम्बन करिये-जिससे देवता और ब्राह्मण आदिका कल्याण हो" ॥ १५ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! ब्रह्माआदि देवगण इस प्रकार स्तुति करके इन्द्रिय-संयमपूर्वक शिर पर अञ्जली बाँधे खड़े रहे। अन्तर्यामी परमेश्वर हरि उनके हृदयके भावको भली भाँति जान कर मेघके समान गंभीर स्वरसे बोले ॥ १६ ॥ भगवान् नारायणने अकेले ही सुरकार्य सम्पादनमें समर्थ हो कर भी समुद्रमथन आदि लीला करनेकी इच्छा करके कहा कि "हे ब्रह्माजी! हे शम्भुदेव! हे देवगण! हे गन्धर्वगण! जिस उपायसे तुम्हारा हित होगा, सो मैं बताता हूँ, सब लोग सावधान हो कर सुनो ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ इस समय शुक्राचार्यके अनुकूल होनेसे दैत्यगणकी जय हुई है। जितने दिन तक तुम्हारी वृद्धिका समय न आवे तब तक जा कर दानव और दैत्योंसे सन्धि (मेल) कर लो, क्योंकि यह समय उनके अनुकूल है, इस समय युद्ध करके तुम जय नहीं पा सकोगे ॥ १९ ॥ कार्यकी सिद्धि कठिन देख पड़े तो अपना प्रयोजन निकालनेके लिये, जैसे मूषकने सर्पसे सन्धि कर ली थी* वैसेही

* एक मूसा दैवयोगसे एक पेटीमें बंद हो गया, वह पेटी एक मदारीकी थी, उसमें एक साँप भी था। साँपने अपना मतलब निकालनेको मूसेसे कहा-भाई! पेटी काट डालो, हम तुम दोनो निकल चलें। पहले मूसेने न माना और कहा तुम मुझे खाकर निकल

शत्रुसे सन्धि कर लेनी चाहिये ॥ २० ॥ अतएव दैत्य और दानवोंसे मेल करके शीघ्र ही अमृत निकालनेका प्रयत्न करो । अमृतके पीनेसे मृत्युग्रस्त प्राणी भी अमर हो सक्ता है ॥ २१ ॥ उसका उपाय यह है कि क्षीरसागरमें सब तृण लता औषध और वनस्पति डालो और मंदराचलको मथानी एवं वासुकिनागको रस्सी बनाओ । इस प्रकार मेरी सहायतासे दैत्योंके साथ मिल कर एकाग्रचित्त होकर सागरको मथो । उसका फल अर्थात् अमृत तुमको मिलेगा और दैत्योंको केवल श्रम ही होगा ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे देवगण ! इस समय असुरगण जो इच्छा करें उसमें तुम सहमत हो जाना । देखो सन्धिसे जिस प्रकार कार्य सिद्ध होता है वैसा युद्ध करनेसे नहीं होता ॥ २४ ॥ सागरसे पहले कालकूट विष निकलेगा, उससे भय न करना एवं और और जो रत्न निकलेंगे उनमें लोभ या अभिलाषा अथवा अभिलाषा न पूर्ण होने पर कोप न करना" ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे राजन् ! स्वच्छन्दगामी पुरुषोत्तम भगवान् ईश्वर इस प्रकार आज्ञा दे कर देवगणके आगे ही अन्तर्द्धान होगये ॥ २६ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा और भगवान् शंकर उन हरि भगवान्को प्रणाम करके अपने २ लोकको गये एवं इन्द्रादि देवगण प्रणाम करके राजा वलिके निकट सन्धिकी इच्छासे आये ॥ २७ ॥ देवगण युद्धकी तैयारी करके नहीं आये, तथापि उनको देखते ही वलिकी सेनाके योद्धालोग क्षोभके साथ संग्रामके लिये उद्यत हुए । किन्तु यशस्वी वलिने उनको रोक दिया, क्योंकि वह (वलि) सन्धि और विग्रहके अवसरको भली भाँति समझते थे ॥ २८॥ राजा विरोचनके पुत्र त्रिलोकविजयी महाराज वलि बैठे थे, चारो ओर बड़े २ असुरनायक उनकी रक्षाके लिये सेवामें खड़े थे । उस समय वलिकी बड़ी ही शोभा थी ॥ २९॥ देवगण क्रमशः उनके पास आ कर उपस्थित हुए । भगवान् पुरुषोत्तमने जिस प्रकार कहनेके लिये उपदेश किया था, महा बुद्धिमान् इन्द्रने उसी प्रकार मधुरवाणीसे सान्त्वनापूर्वक उन सब बातोंको कहा ॥ ३० ॥ इन्द्रकी "अमृत निकालनेकी" सलाह, वलि शम्बर अरिष्टनेमि आदि सभामें बैठे हुए प्रधान असुरोंको और त्रिपुर-निवासी दानवोंको भी भली जान पड़ी ॥ ३१ ॥ हे शत्रुदमन ! असुर और सुरगण परस्पर मेल करके मित्रभावसे अमृत निकालनेके लिये उद्यत हुए ॥ ३२ ॥ परिघके समान विशाल और बलिष्ठ वाहुओंसे बलपूर्वक मंदराचलको पृथ्वीसे उखाड़ कर बलदर्पित और समर्थ देवता और दानवगण सिंहनाद करते हुए क्षीरसागरकी ओर चले ॥ ३३ ॥ किन्तु बहुत दूर तक बोझा ले चलनेसे इन्द्र और वलि आदि सब देव और दानव थक गये । पर्वत मार्गमें ही गिर पड़ा । कनकमय मन्दराचलके राहमें गिर पड़नेसे

जाओगे, पर अन्तको सर्पके कहने पर विश्वास करके धोखा खाया । पेटी जब मूसेने काट डाली तब सर्पने उसे खा लिया और उसी छेदसे निकल गया । उसी प्रकार मतलब निकालनेके लिये राजनीतिमें निपुण लोग अवसर पा कर शत्रुसे सन्धि भी कर लेते हैं ।

उसके नीचे पड़ कर अनेक देवता और दानव चूर्ण हो गये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ गरुड़-वाहन भगवान् विष्णु उन लोगोंके बाहु, कंधे आदि अंग भग्न हुए देख कर और उनको हतोत्साह जान कर गरुड़ पर चढ़े हुए उसी स्थान पर प्रकट हुए एवं पर्वतके गिरनेसे जिन देवता तथा दानवोंके शरीर चूर्ण हो गये थे उनको फिर अपने कृपाकटाक्षसे जीवित कर दिया। उनके अंग फिर वैसे ही सम्पूर्ण हो गये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ तदनन्तर नारायणने उस पर्वतको लीलापूर्वक एक हाथसे उठा कर गरुड़की पीठ पर धर लिया और सुरासुरगणसहित क्षीरसागरकी ओर चले ॥ ३८ ॥

अवरोप्य गिरिं स्कन्धात्सुपर्णः पततां वरः ॥
ययौ जलान्त उत्सृज्य हरिणा स विसर्जितः ॥ ३९ ॥

गरुड़जीने वहाँ पहुँच मन्दराचलको पीठसे उतार कर सागरके किनारे धर दिया और आप हरिकी आज्ञाके अनुसार चल दिये ॥ ३९ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय ।

समुद्रके मथनेसे कालकूटकी उत्पत्ति ।

श्रीशुकउवाच—ते नागराजमामन्त्र्य फलभागेन वासुकिम् ॥
परिवीय गिरौ तस्मिन्नेत्रमब्धिं मुदान्विताः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! "सागर मथनेसे जो अमृत निकलेगा उसमेंसे कुछ तुमको भी देंगे"—यों कह कर देवता और दानवोंने नागराज वासुकिको मथानीकी रस्सी बननेके लिये उत्साहित किया। फिर उसी वासुकिको रस्सी बना कर सब लोग प्रसन्न और एकाग्र हो कर मन्दराचल द्वारा समुद्र मथनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १ ॥ पहले हरिने और उसके बाद सब देवतोंने वासुकिके मुखको पकड़ा। किन्तु दैत्यलोग महापुरुषके इस कर्ममें सहमत न हुए। उन्होने कहा "हम वेदपाठी हैं, हमने सब शास्त्रोंकी शिक्षा पाई है, जन्म और कर्मोंके द्वारा हम सर्वत्र प्रसिद्ध हैं, अतएव हमलोग सर्पकी पूछ न पकड़ेंगे, क्योंकि वह अमंगल अंग है" ॥ २ ॥ ३ ॥ यह कह कर जब दैत्यलोग चुपके खड़े रहे तब उनका कथन सुन कर मुसकाते हुए देवगणसहित हरि भगवान् सर्पके मुखको छोड़ कर दूसरी ओर चले आये और पूछको पकड़ा ॥ ४ ॥ इस प्रकार स्थान-विभाग हो जाने पर कश्यपपुत्र दानवगण और देवगण, परम यत्नके साथ, अमृतके लिये सागरको मथने लगे ॥ ५ ॥ हे पाण्डुनन्दन! सागरको सब लोग मथने लगे,

किन्तु मन्दरपर्वत जिस पर नीचे टिके ऐसा कोई आधार न था, इस कारण बड़े २ बली देवता और दानवोंके रोकने पर भी वह बड़ा भारी पर्वत जलके भीतर धसने लगा ॥ ६ ॥ प्रबल दैवने इस प्रकार चेष्टा विफल कर दी, यह देख कर देवता और दैत्योंके मन खिन्न हो गये एवं मुख फीके पड़ गये ॥ ७ ॥ किन्तु ईश्वर हरिका वीर्य अनन्त है, उनकी अभिसन्धि (इरादा) अव्यर्थ है। विघ्नेश्वर गणेशकी पहले पूजा नहीं की गई, अतएव विघ्नेशविरचित यह विघ्न देख कर भगवान्‌ने अति अद्भुत कच्छप शरीर धारण कर जलके भीतर अपनी पीठ पर पर्वतको रोक लिया ॥ ८ ॥ मंदराचलको ऊपर उठा हुआ देख कर देवता और दानव फिर प्रसन्न चित्तसे समुद्रको मथने लगे। कच्छपरूप भगवान्‌ने एक द्वीपके समान लाख योजन चौड़ी अपनी पीठ पर उस पर्वतको धर लिया ॥९॥ हे राजन्! देवता और दैत्यगण अपनी बली वाहुओंसे पर्वतको घुमा रहे थे। उस पर्वतके घूमनेके घिस्सेसे आदिकच्छप हरिको वैसे ही सुखका अनुभव होता था जैसे कोई पीठ खुजलाता हो ॥ १० ॥ तदनन्तर हरि भगवान्‌ने असुराकारसे असुरोंके शरीरोंमें और देवाकारसे देवगणके शरीरोंमें प्रवेश करके उन लोगोंके बल और वीर्यको बढ़ाया। अलक्ष्यभावसे वासुकि नागके भी अभ्यन्तरमें प्रवेश करके हरिने उसकी शक्तिको बढ़ाया एवं सहस्र वाहुओंसे मन्दराचलको धारण किये उसके ऊपर विराजमान हुए; उस समय आकाशमण्डलमें जान पड़ा कि पर्वतराजपर दूसरा विशाल पर्वत शोभा पा रहा है। ब्रह्मा, इन्द्र और शङ्कर आदि सब देवगण स्तुति करते हुए उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ ऊपर, नीचे, पर्वतमें, वासुकिनागमें और देवता व दानवोंमें हरिने प्रवेश किया; जिससे देवासुरगण अधिक बलशाली हो कर इस तेजसे समुद्रको मथने लगे कि समुद्रजलके भीतर रहनेवाले मगर, ग्राह आदि हिंस्र जन्तुगण व्याकुल हो उठे ॥ १३ ॥ मथते २ नागराज वासुकिके नेत्रोंसे और मुखोंकी हजारों कठोर श्वासाओंसे विषैले धूम्रसे युक्त अग्निकी ज्वालाएँ निकलने लगीं; उनकी झारसे पौलोम, कालेय एवं इल्वल आदि असुरगण दावानलसे जले हुए साँखूके वृक्षोंकी भाँति प्रभाहीन हो गये ॥ १४ ॥ नागके श्वासानलकी लपकसे देवगणकी भी प्रभा मलिन हो गई और वस्त्र, माला, कञ्चुक तथा मुखमण्डल धूम्रवर्ण हो गये। किन्तु उसी समय ईश्वरकी इच्छाके वशवर्त्ती मेघमण्डल भगवद्भक्त देवगणकी ओर शीतलजलकी फुहारें छोड़ने लगे एवं सागरतरंगसंगमसे सुशीतल वायु चलने लगा। उक्त प्रकारकी हरिकृपासे देवगणको उस विषैले धूम्रसे वैसा कष्ट नहीं हुआ जैसा असुरोंको हुआ ॥ १५ ॥ हे राजन्! इस प्रकार बड़े २ प्रधान देवता और दैत्योंके मथने पर भी समुद्रसे जब अमृत न निकला तब अजित भगवान् देवता और दैत्योंको हटा कर स्वयं समुद्रको मथने लगे। उस समय जयशील

और जगत्को अभय देनेवाले बाहुओंसे सर्पके दोनो छोर पकड़ कर मन्दराचलकी मथानी द्वारा समुद्रको मथ रहे भगवान्की अपूर्व शोभा हुई। वह दूसरे पर्वतके तुल्य विराजमान हुए। भगवान्के मेघतुल्य श्याम शरीर पर पीताम्बरकी ऐसी शोभा हुई जैसे मेघके चारो ओर कनककी रेखा हो। कानोंमें हिल रहे कुण्डल बिजलीके समान चमकने लगे। शिर पर घुँघवारी अलकोंका और हृदयमें मणिमालाका हिलना बहुत ही सोहावना जान पड़ने लगा। अरुणवर्ण नेत्र और भी मनोहर हो गये ॥ १६ ॥ १७ ॥ इस प्रकार जब स्वयं अजित भगवान् समुद्रको मथनेलगे तब उसके भीतर रहनेवाले मीन, मकर, सर्प, और कच्छप आदि जीव व्याकुल व चञ्चल हो पड़े। सबसे पहले सागरसे हलाहल नाम बहुत ही तीव्र विष निकला ॥ १८ ॥ वह भयङ्कर दारुण विष उग्र वेगसे ऊपर, नीचे और चारो ओर फैलने लगा एवं सब लोकोंको असह्य हो उठा। सब प्रजा और प्रजापति लोग उससे अपनी रक्षा न देख कर भयभीत हो मृत्युञ्जय सदाशिवकी शरण गये; क्योंकि सिवा शिवके उनको कोई अपना रक्षक न देख पड़ा ॥ १९ ॥ उन लोगोंने कैलास पर्वत पर पहुँच कर देखा कि त्रिलोकीकी उत्पत्तिका कारण, देवदेव, चण्डीनाथ भवानीसहित पर्वतके शिखर पर बैठे हुए मुनियोंके कल्याणके लिये उनके मनोमत तप कर रहे हैं। देख कर सबने स्तुति करते हुए प्रणाम किया ॥ २० ॥ प्रजापतिगणने कहा। हे देवदेव! हे महादेव! हे प्राणियोंके आत्मा! हे भूतभावन! हम आपकी शरणमें आये हैं। इस त्रिलोकीको भस्म करनेवाले विषसे हमारी रक्षा करो ॥ २१ ॥ आप सब प्राणियोंको बंधन और मुक्तिके देनेवाले हैं, गुरु हैं, दीन पीड़ित प्राणियोंका दुःख हरनेवाले हैं। इसीसे ज्ञानीजन आपका पूजन करते हैं ॥ २२ ॥ हे विभो! हे परमतेजस्वी! आपका ज्ञान स्वतःसिद्ध है। आप अपनी गुणमयी शक्ति, जो इस जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेकी इच्छा है, उससे ब्रह्मा, विष्णु, शिव इत्यादि भिन्न२ नाम धारण करते हैं ॥ २३ ॥ आप परम गोपनीय ब्रह्म हैं; आपसे ही देवता, पशु, पक्षी आदि सब पदार्थ प्रकाश पाते रहते हैं। आप जगदीश्वर और आत्मा हैं। आप अनेक शक्तियों द्वारा चराचर जगत्के रूपमें परिणत हो कर प्रकाश पाते हैं। वेदकी उत्पत्ति आपसे है। आप जगत्का आत्मा (अहंकार) और आदि (महत्तत्व) हैं। आपके गुण प्राण, इन्द्रिय और द्रव्योंके कारण हैं अर्थात् आप (अहंकाररूप) राजस, तामस और सात्त्विक–त्रिविध हैं। स्वभावस्वरूप भी आप ही हैं। सङ्कल्प-काल-सत्य-ऋतस्वरूप धर्म आप हैं। त्रिगुणात्मक प्रधानतत्त्व अथवा त्रिवृत् प्रणवका आश्रयस्थल आप ही हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ हे लोकप्रभव! सर्वदेवमय अग्नि आपका मुख है, पृथ्वी आपके चरणकमल है, काल आपकी गति है, सब दिशाएँ आपके कान हैं, वरुण आपकी रसना हैं,

आकाश आपकी नाभि है, वायु आपकी श्वासा है, सूर्य आपका नेत्र हैं एवं जल आपका शुक्र (वीर्य) है। आपका आत्मा, उत्कृष्ट और अपकृष्ट जीवात्मासमष्टिका आश्रय है। चंद्रमा आपका मन है, स्वर्ग आपका मस्तक है ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे वेदत्रयीस्वरूप! समुद्रसमूह आपकी कुक्षि हैं, सब पर्वत आपकी अस्थियाँ हैं, सब औषधियाँ और लताएँ आपकी रोमराजी हैं। साक्षात् सब वेद (सातो गायत्री आदि छंद) आपकी सात धातुएँ हैं एवं धर्म आपका हृदय है ॥ २८ ॥ हे ईश्वर! पाँचो उपनिषद् अर्थात् तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव और ईशान ये पाँच मन्त्र आपके मुख हैं। इन मुखोंसे अड़तीस (३८) मन्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है; साक्षात् ज्योतिःस्वरूप प्रसिद्ध शिवनामक परम आत्मतत्त्व ही आपकी अवस्थिति है ॥ २९ ॥ अधर्मकी जिन दंभ लोभ आदि तरंगोंसे जगत्का ध्वंस होता है वे सब आपकी छाया हैं एवं सत्त्व, रजः, तम आपके तीन नेत्र हैं। आप शास्त्रकर्त्ता हैं, सांख्यशास्त्र आपका आत्मा है, वेद आपकी पवित्र दृष्टि हैं ॥ ३० ॥ हे गिरिश! आपकी परमज्योतिको सब लोकपाल, ब्रह्मा, विष्णु या सुरेन्द्र, कोई भी नहीं जान पाते, क्योंकि उसमें सत्त्व, रज और तम नहीं हैं—वह निर्गुण (देहहीन) ब्रह्म है ॥ ३१ ॥ आप कामदेव, दक्षयज्ञ, त्रिपुर और कालकूटविष आदि अनेक हिंस्र और व्यक्तियोंका संहार करनेवाले हैं (यहाँ पर शिवके द्वारा कालकूटका संहार अवश्य होनहार जान कर देवगणने सिद्धकामकी भाँति उसका निर्देश किया है)। यह कालकूट विष पान कर लेना कुछ आपकी प्रशंसा जतानेवाला महान् कार्य नहीं है, क्योंकि आपकी ही रचना यह विश्व, प्रलयकालमें, आपके ही नयनसे निकले अग्निकी ज्वालाओंमें किस प्रकार जल जाता है-इसकी आपको खबर भी नहीं होती। विश्वको मङ्गलका उपदेश करनेवाले साधुगण आपके चरणकमलोंका ध्यान करते रहते हैं, तो भी आप स्वयं तपमें तत्पर हैं। अतएव जो लोग आपको भगवती पार्वतीके पास वास करते और श्मशानभूमियोंमें भ्रमण करते देख कर कामी, क्रूर और हिंसाशील समझते हैं वे निर्लज्ज आपकी लीलाओंको जाननेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ३२ ॥ ३३॥ आप सदसत्स्वरूप, श्रेष्ठ एवं अतीव महान् हैं। ब्रह्माआदि देवगण भी आपके स्वरूपको नहीं जान पाते, तब आपकी स्तुति ही कैसे कर सक्ते हैं? । हमलोग आपकी आधुनिक सृष्टि अर्थात् ब्रह्माआदिके पुत्रोंके भी पुत्रोंसे उत्पन्न हैं, अतएव भला कैसे आपकी स्तुति करनेमें समर्थ हो सक्ते हैं। तथापि जितनी शक्ति थी उसीके अनुसार आपके गुणोंका वर्णन हमने किया ॥ ३४ ॥ हे महेश्वर! हमने इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ आपका और कोई रूप नहीं देखा। हम इसीके दर्शनसे कृतकृत्य हो गये। आपकी लीला जानी नहीं जाती, केवल लोक-रक्षाके लिये ही आपका यह रूप प्रकाशमान होता रहता है" ॥ ३५ ॥ श्रीशुक-देवजी कहते हैं। सब प्राणियोंके हितचिन्तक भगवान् शंकर प्रजागणकी यह

विपत्ति देख करुणाके कारण समधिक व्यथित हो कर अपनी प्रियतमा सतीसे कहने लगे ॥ ३६ ॥ **महादेवजीने कहा ।** भवानी देवी! इधर देखो, क्षीरोदमथनसे उत्पन्न कालकूट विषसे प्रजागणको कैसा संकट आ पड़ा है । ये लोग प्राणोंकी रक्षाके लिये बहुत ही व्याकुल हो रहे हैं, इनको निर्भय करना हमारा कर्त्तव्य है, पीड़ित-की पीड़ा हरनेसे ही समर्थ होनेकी सफलता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इसी लिये साधु लोग जीवनको क्षणभंगुर जानकर प्राणियोंकी रक्षा करते हैं । सब प्राणी दैवकी मायामें मोहित हो कर परस्पर परस्परकी हिंसा करनेमें तत्पर होते हैं ॥ ३९ ॥ जो लोग उन पर कृपा प्रकट करते हैं उन पर सर्वमय हरि प्रसन्न होते हैं । भगवान् हरिके सन्तुष्ट होने पर चराचरजगत्सहित मैं सन्तुष्ट होता हूँ । अतएव मैं इस विषको पिये लेता हूँ, मेरी प्रजाओंका कल्याण हो ॥ ४० ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं ।** इस प्रकार भगवती भवानीसे कह कर विश्वभावन भगवान् महेश्वर वह हलाहल विष पान करनेमें प्रवृत्त हुए । पार्वती देवी शंकरका प्रभाव जानती थीं, इस लिये उन्होने भी शंकरकी इच्छाका अनुमोदन कर दिया ॥ ४१ ॥ भूत-भावन महादेवने करुणावश उस सर्वतोव्याप्त हलाहलको हथेलीमें लेकर पी लिया ॥ ४२ ॥ जलके दोष उस विषने महादेवजी पर भी अपना प्रभाव दिखाया, जिससे नीलकण्ठके कण्ठमें नीलिमा आ गई; किन्तु वह नीलवर्ण परोपकारी शंभुके लिये आभूषण हो गया ॥४३॥ जो साधु परोपकारी जन हैं वे लोगोंका दुःख नहीं देख सक्ते । दूसरेके दुःखमें हृदयसे सच्ची सहानुभूति करना ही सर्वमय पुरुषकी सबसे प्रधान आराधना है ॥ ४४ ॥ दयामय देवदेव शम्भुके इस उदार कर्मका वृत्तान्त सुन कर देवी पार्वती, प्रजागण, ब्रह्मा, और विष्णुदेव उनकी प्रशंसा करने लगे ॥४५॥

प्रस्कन्नं पिबतः प्राणैर्यत्किंचिज्जगृहुः स्म तत् ॥
वृश्चिकाहिविषौषध्यो दन्दशूकाश्च येऽपरे ॥ ४६ ॥

महादेवजीने जिस समय विष पान किया उस समय जो कुछ विष उनकी अँगुलियोंकी संधियोंसे गिर पड़ा उसको सर्प, बीछू आदि काटनेवाले विषैले जन्तुओंने एवं विषौषधियोंने बाँट लिया ॥ ४६ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय ।

भगवान्‌का मोहिनी अवतार ।

श्रीशुकउवाच—पीते गरे वृषाङ्केण प्रीतास्तेऽमरदानवाः ॥
ममन्थुस्तरसा सिन्धुं हविर्धानी ततोऽभवत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! वृषभवाहन शंकरने जब विष पान कर लिया तब फिर देवता और दानवगण प्रसन्न हो कर बलपूर्वक सागरको मथने लगे। तब सागरसे कामधेनु प्रकट हुई ॥ १ ॥ ब्रह्मवादी ऋषिगणने ब्रह्मलोकके मार्ग तक पहुँचानेवाले यज्ञीय पवित्र घृतके लिये उस अग्निहोत्री धेनुको ले लिया ॥ २ ॥ उसके बाद चंद्रमाके समान उज्ज्वल उच्चैःश्रवा नाम घोड़ा उत्पन्न हुआ। बलिने वह अश्व पानेके लिये अभिलाषा प्रकट की, किन्तु इन्द्रने ईश्वरकी शिक्षाके अनुसार चित्त नहीं चलाया ॥ ३ ॥ फिर समुद्रसे ऐरावत नाम गजराज निकला। चन्द्रतुल्य श्वेतवर्ण ऐरावतके शिखरसमान चार दन्त, भगवान् भवानीपतिके कैलास पर्वतकी शोभाको फीका कर रहे थे। महाराज! तदनन्तर ऐरावत आदिक आठ दिग्गज और उनकी अभ्रमु आदि आठ हथनियाँ प्रकट हुईं। अन्तमें महोदधिसे पद्मराग (कौस्तुभ) नाम मणि उत्पन्न हुआ। हरि भगवान्‌ने उस मणिको अलंकारकी भाँति वक्षःस्थलमें धारण करनेकी इच्छा की ॥ ४ ॥ ५ ॥ उसके बाद स्वर्गलोकका आभूषण कल्पवृक्ष उत्पन्न हुआ। राजन्! पृथ्वी पर आप जैसे याचकोंकी कामना पूरी करते हैं वैसे ही स्वर्गमें कल्पवृक्ष भी निरन्तर प्रार्थिगणकी प्रार्थना सफल करता है ॥ ६ ॥ फिर कण्ठमें पदक धारण किये, सुन्दर वस्त्र पहने अप्सराएँ प्रकट हुईं। मनोहर गति, और विभ्रमपूर्ण चितवनसे उन्होने स्वर्गवासियोंके चित्तोंको अपने हाथमें कर लिया ॥७॥ अन्तमें अंगोंकी प्रभासे दिशाओंके मण्डलको प्रकाशित करती हुई हरिपरायणा साक्षात् लक्ष्मी देवी—सुदामापर्वतके शिखरसे बिजलीके समान—जलतलसे प्रकट हुईं ॥ ८ ॥ उनके रूप, उदारता, यौवन, वर्ण और महिमामें सभीके चित्त मोहित हो गये, अतएव सभी देवता, दैत्य और मनुष्योंकी यह इच्छा हुई कि 'लक्ष्मीदेवी हमको प्राप्त हों' ॥ ९ ॥ देवराज इन्द्रने उनको एक अद्भुत आसन भेंट किया एवं श्रेष्ठ नदियोंने स्त्रीरूप धारणकरके सुवर्णके कलशोंमें अपना २ पवित्र जल लाकर अर्पण किया। ऐसे ही पृथ्वीने, अभिषेकमें जिनकी आवश्यकता होती है वे सब औषधियाँ लाकर भेंट कीं। गउओंने पञ्चगव्य और वसन्तने चैत्र और वैशाखके फल फूल भेंट किये ॥ १० ॥ ११ ॥ तदनन्तर ऋषिगणने यथाविधि लक्ष्मी देवीका अभिषेककार्य सम्पन्न किया। गन्धर्वगण मङ्गलगान करने लगे और नटियाँ (अप्सराएँ) नाचने गाने लगीं ॥ १२ ॥ एवं सम्पूर्ण मेघगण, मृदङ्ग, पणव, मुरज, गोमुख, आनक,

शंख, वेणु और वीणा आदि गंभीर शब्दवाले अनेक प्रकारके बाजे बजाने लगे ॥ १३ ॥ चारो दिग्गज सुवर्णके कलशोंसे पद्महस्ता लक्ष्मी देवीका अभिषेक करने लगे और ब्राह्मणगण वैदिक मंत्र पढ़ने लगे ॥ १४ ॥ समुद्रने एक जोड़ा रेशमी पीताम्बर लक्ष्मीजीको दिया। वरुणदेवने मधुमदमत्तमधुकरमण्डलीमण्डित एक वैजयन्ती माला और प्रजापति विश्वकर्माने अनेक आभूषण, सरस्वतीने हार, ब्रह्माजीने पद्म एवं नागगणने दो कनककुण्डल भेंट किये ॥१५॥१६॥ देवी लक्ष्मी, तदनन्तर माङ्गलिक वेश-भूषा समाप्त करके कोमल कमलतुल्य हाथोंमें एक फूलोंकी माला, जिस पर भँवर गुंजार कर रहे थे, लिये हुए इधर उधर भ्रमण करने लगीं। देवीके श्रवणस्थित कुण्डल कपोलों पर डोलनेसे परम मनोहर देख पड़ने लगे, लज्जायुक्त हास्यसे उनका मुखमण्डल परम सुन्दर हो गया ॥ १७ ॥ उनके कुङ्कुमरञ्जित कुचयुगल परस्पर समान थे, मध्यमें कुछ भी अवकाश न था; चरणोंमें नूपुरोंका महामनोहर शब्द हो रहा था। देवी लक्ष्मी कमलवासिनी स्वर्णलताकी भाँति शोभित हो कर इधर उधर भ्रमण करनेलगीं, उससे जान पड़ाकि मानो वह अपने नित्यसद्गुणयुक्त नित्य-आश्रयका अनुसन्धान कर रही है। किन्तु गन्धर्व, सिद्ध, असुर, यक्ष, चारण एवं त्रिलोकवासी अन्यान्य जीवोंमें, कहीं भी, लक्ष्मी देवीको अपने अनुरूप आश्रय न देख पड़ा ॥१८॥१९॥ लक्ष्मीने देखा, जहाँ दुर्वासा आदिमें तप है तो वे क्रोधको नहीं जीत सके हैं। कहीं बृहस्पति, शुक्र आदिमें ज्ञान है तो वह संगरहित नहीं हैं। कोई ब्रह्मा, सोम आदिक महान् (बड़े) हैं तो कामको नहीं जीत सके हैं। इन्द्र आदि दूसरे (विष्णुआदि त्रिदेव) का मुख देखनेवाले हैं, इस लिये वे स्वयं ईश्वर नहीं हैं॥ २० ॥ कहीं परशुराम आदिमें धर्म है तो प्राणियोंसे सौहार्दका व्यवहार नहीं है। कहीं शिवि आदि नरपतियोंमें आत्मत्याग है, पर वह मुक्तिका कारण नहीं हो सक्ता। कहीं सहस्रबाहु अर्जुन आदिमें वीर्य है, पर वह कालके वेगमें ठहरनेवाला नहीं है। कोई सनकादिक गुण-संगवर्जित हैं तो वे वर न होंगे, क्योंकि सदैव समाधि-निष्ठ रहते हैं ॥ २१ ॥ कोई मार्कण्डेय ऋषि आदि चिरजीवी हैं तो उनमें शील और मङ्गलका अभाव है। कहीं हिरण्यकशिपु आदिमें वह भी है तो यह नहीं विदित है कि कब तक वे जीवित रहेंगे। जहाँ श्रीशिवमें ऊपर कही हुई दोनो बातें हैं तो वह देखनेमें अमङ्गल हैं और जो कोई (श्रीनारायण देव) सब प्रकार निर्दोष और मङ्गलरूप है वह आकांक्षा नहीं रखता ॥ २२ ॥ भगवती लक्ष्मीने यों विचार कर मुकुन्दको ही वरभावसे वरण किया अर्थात् हरिको ही अपना वर चुना। लक्ष्मीने देखा कि हरि भगवान् नित्यसद्गुणशाली हैं, वह दूसरेकी अपेक्षा नहीं रखते। प्राकृतिक गुणगण उनके समीप जानेका भी साहस नहीं करते, अतएव वह सर्वोत्तम हैं। वह यद्यपि निरपेक्ष हैं तथापि अणिमा आदि

गुणसमूह उनको अपना आश्रय बनाये हुए हैं ॥२३॥ जो हो, लक्ष्मीने नारायणके गलेमें वह कोमल कमलकलित जयमाला डाल दी, जिसकी सुगन्धमें मतवारे भ्रमर आसपास गुंजार करते रहते हैं। जयमाला पहनानेके बाद लक्ष्मीजी मौनभाव धारण करके लज्जापूर्ण मन्द मुसकानसे विभासित एवं विकसित नयनों द्वारा हरिके वक्षःस्थलमें स्थान बना कर अवस्थित हुईं ॥ २४ ॥ त्रिलोकीके परम पिता नारायणने अपने वक्षःस्थलको विशिष्टविभवशालिनी जगज्जननी लक्ष्मी देवीके निवासका स्थान बना दिया। नारायणके हृदयमें स्थिरभावसे अवस्थित लक्ष्मीदेवीने करुणापूर्ण कटाक्षसे प्रजा और प्रजापतिगणसहित तीनो लोकोंको परिवर्द्धित किया॥ २५ ॥ उस समय स्त्रीगणसहित देवानुचरगण नाचने और गाने लगे और उसके साथ ही शंख, तूर्य्य और मृदंग आदि बाजोंके शब्द अलग २ सुनाई पड़ने लगे ॥ २६ ॥ ब्रह्मा, रुद्र और अंगिरा आदिक सम्पूर्ण विश्वस्रष्टागण फूलोंकी वर्षा करते हुए विष्णुप्रतिपादक यथार्थ मंत्रोंसे विष्णु भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥ देवगण एवं प्रजापतिगण, लक्ष्मीके कृपाकटाक्षद्वारा शीलआदि सद्गुणोंसे सम्पन्न हो कर परम शान्तिसुखको प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ लक्ष्मी द्वारा उपेक्षित होनेके कारण दैत्य और दानवगण, बल उद्योगसे हीन, निर्लज्ज एवं लोभी हो गये ॥२९॥ राजन्! तदनन्तर समुद्रसे एक कमलनयनी वारुणी नाम कन्या निकली, हरिकी अनुमति पा कर दैत्योंने उसको ले लिया ॥ ३० ॥ महाराज! उसके बाद कश्यपके पुत्र (देव-दानवगण) फिर अमृतकी अभिलाषासे समुद्रको मथने लगे । अबकी बार एक परम अद्भुत पुरुष, अमृतभरा कलश हाथमें लिये, प्रकट हुए । उनकी दोनो भुजा लम्बी, चौड़ी और मोटी, ग्रीवा शंखके तुल्य, वर्ण श्यामल, युवा अवस्था एवं वक्षःस्थल विशाल था। नेत्र अरुण थे और गलेमें माला व सब अंगोंमें आभूषण शोभायमान थे। वह पीताम्बर व उज्वल मणिमय कुण्डल धारण किये हुए थे। उनके केशोंके प्रान्तभाग चिकने, श्यामल और घूँघरवाले थे । उनका रूप स्त्रियोंके मनको लुभानेवाला और पराक्रम सिंहके समान था। कलाइयोंमें मणिवलय (कड़े) धारण किये हुए वह साक्षात् विष्णुके अंशांशावतार वैद्यशिरोमणि धन्वन्तरिजी थे। वह आयुर्वेदके प्रथम आचार्य्य हैं एवं उनको यज्ञोंमें भाग भी दिया जाता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ धन्वन्तरिके हाथमें अमृतसे पूर्ण कलश देख कर, सब वस्तुओंमें सबके पहले लेनेकी इच्छा प्रकट करनेवाले असुरगण बलपूर्वक झपट कर उसे छीन ले गये ॥ ३५ ॥ यह देख कर देवगण बहुत ही खिन्न हो हरि भगवान्‌के शरणागत हुए । भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले भगवान्‌ने इस प्रकार देवगणकी दीन दशा देख कर कहा कि-"तुम लोग खेद न करो। मैं अपनी मायाके बलसे तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध किये देता हूँ"।

हे राजन्! उधर लोभपरायण दैत्यगण, पहले अमृत पीनेके लिये "मैं पहले" "तुम नहीं, मैं पहले"—यों कहते हुए परस्पर क्रोधपूर्वक लड़ने लगे ॥३६॥३७॥३८॥ उनमें जो दुर्बल थे वे कहने लगे कि "देवगणने भी समान परिश्रम किया है। अतएव सब यज्ञके समान उनका भी इसमें अंश है, सो उनको मिलना चाहिये, यही सनातन धर्म्म है"। हे राजन्! दुर्बल दानवगण, मात्सर्य्यपूर्ण हो कर जिन सब प्रबल दैत्योंने अमृतका कलश छीन लिया था उनको यों वारंवार कह कर रोकने लगे ॥३९॥ ४० ॥ इसी अवसरमें सब उपायोंके जाननेवाले ईश्वर हरिने अनिर्व्वचनीय एवं परम अद्भुत स्त्रीका स्वरूप धारण किया ॥ ४१ ॥ उस रूपका वर्ण नीलकमलके समान श्याम और दर्शनीय था, सभी अंग सुंदर सुडौल थे, दोनो कान समान और आभूषणोंसे भूषित थे, दोनो कपोल मनोहर एवं नासिका उन्नत थी ॥ ४२ ॥ नवयौवनसे दोनो स्तनोंका वृत्त (घेरा) अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त था एवं पीन और उन्नत स्तनोंके भारसे उदर कृश हो गया था। मुखके सुगंधमें आसक्त भ्रमर आसपास गुंजार कर रहे थे, जिससे उस मोहिनी मूर्तिके दोनो नेत्र, चंचल हो कर उद्विग्नताका भाव प्रकट कर रहे थे ॥ ४३ ॥ मनोहर केशपाश (वेणीके जूड़े)में फूली हुई मल्लिकाकी माला लिपटी हुई थी। कमनीय कण्ठमें अनेक आभूषण चलनेसे हिल रहे थे। विचित्र वाहुओंमें वलयादि विभूषण विभूषित थे ॥ ४४ ॥ निर्मल श्वेत वस्त्रसे वेष्टित नवलनितम्बरूप द्वीपमें काञ्चनकाञ्चीकी लड़ें शोभा पा रही थीं, चलनेसे दोनो चरणोंमें नूपुरकी सोहावनी ध्वनि होती जाती थी ॥ ४५ ॥

सव्रीडस्मितविक्षिप्तभ्रूविलासावलोकनैः ॥
दैत्ययूथपचेतःसु काममुद्दीपयन्मुहुः ॥ ४६ ॥

वह मोहिनीमूर्ति लज्जापूर्ण मधुर मुसकानके साथ भ्रुकुटीरूप धनुषको विचलित करके मोहनेवाली दृष्टिसे वारम्वार दैत्यपतियोंके अन्तःकरणोंको कामके वाणोंसे बेधने लगी ॥ ४६ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय।

अमृत बाँटना।

श्रीशुक उवाच—तेऽन्योन्यतोऽसुराः पात्रं हरन्तस्त्यक्तसौहृदाः।
क्षिपन्तो दस्युधर्माण आयान्तीं ददृशुः स्त्रियम् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! दानवगण सुहृद्भाव त्याग कर एवं दस्युधर्म्म ग्रहण करके आपसमें अमृतके पात्रकी छीनाझपटी कर रहे

थे। इसी अवसरमें पूर्वोक्त उसी जगन्मोहिनी मूर्तिको अपनी ओर आते देख वे दानवगण एकदम मंत्रमुग्धसे हो कर विचारने लगे कि—"अहो! इस स्त्रीका कैसा उत्तम रूप है! कैसी कान्ति है! कैसी नवीन अवस्था है!"। यों सोचते हुए कामातुर दैत्य लोग उस मोहिनीमूर्तिके निकट जा कर यों पूछने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ "हे कमलनयनी! तुमकौन हो? कहाँसे आ रही हो? तुम्हारा उद्देश्य ही क्या है? हे वामोरु! तुम किसकी भार्य्या हो? सत्य बताओ। तुम हमारे मनको मानो मथे डालती हो ॥ ३ ॥ हमें जान पड़ता है कि मनुष्यकी कौन कहे, देवता, दानव, सिद्ध, गन्धर्व, चारण एवं लोकपालगण भी, निश्चय ही तुम्हारे शरीरको नहीं छू सके हैं ॥ ४ ॥ हे सुन्दर भ्रुकुटीवाली सुन्दरी! करुणावरुणालय विधाताने क्या प्राणियोंके चित्त और इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेके लिये ही तुमको यहाँ भेजा है? अथवा तुम आप ही अपनी इच्छाके अनुसार आई हो? निश्चय ही जान पड़ता है तुमको विधाता ने भेजा है ॥५॥ हे भामिनि! हम सब आत्मीयजन एक वस्तु(अमृत)के लिये स्पर्धा करते हुए एक एकके शत्रु हो रहे हैं। हम सब कश्यपऋषिके पुत्र हैं, सुतरां भाई भाई हैं। सभीने समान परिश्रम किया है। इस समय तुम इस प्रकार न्यायानुमोदित रीतिसे वह वस्तु हम सब लोगोंमें बाँट दो जिससे हमारा आपसका सब झगड़ा निबट जाय और कल्याण हो" ॥ ६ ॥ ७ ॥ इस प्रकार दैत्यगणके निवेदन करने पर मायामोहिनीरूप हरिने हँसते हुए मनोहर कुटिल कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे देख कर दानवोंसे कहा कि—"हे कश्यपऋषिके पुत्रो! तुम मुझ पुंश्चली स्त्रीका क्यों इतना अनुसरण करते हो? पण्डित लोग कभी ऐसी स्त्रियोंका विश्वास नहीं करते ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे दानवो! कुत्ते और कुलटा स्त्रियाँ नित्य नवीनकी खोज करती हैं, अतएव उनकी मित्रता अनित्य कही गई है" ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! मोहिनीजीके इन व्यर्थ वाक्योंसे दैत्यगणको और भी उन पर विश्वास हो गया। तब उन्होंने हृदयके भावको गंभीर मुसकानसे प्रकट करते हुए अमृतका कलश मोहिनीजीके हाथमें दे दिया ॥ ११ ॥ हरिने अमृतका पात्र हाथमें ले कर कुछ मुसकान मिली हुई वाणीसे यों कहा—देखो, मैं जो कुछ करूँ, वह भला हो या बुरा, किन्तु तुमको अंगीकार करना होगा; कहो तो हम तुमको अमृत बाँटना आरम्भ करें ॥ १२ ॥ प्रधान २ असुरगणने मोहिनीजीका कहना स्वीकार करते हुए कहा—'अच्छा, ऐसा ही होगा'। इसका कारण यही था कि वे दानव मोहिनीजीको विष्णु न जान कर एक साधारण स्त्री समझे हुए थे ॥ १३ ॥ तदनन्तर असुरोंने उपवास करके स्नान और फिर अग्निमें हवन किया। उसके बाद ब्राह्मणोंके स्वस्त्ययनपाठ करने पर वे सब दानव, गऊ और ब्राह्मणोंको नमस्कार करके अपनी २ इच्छाके अनुसार नवीन या पुराने वस्त्र पहन कर

पूर्वमुख हो कुशासनों पर बैठे ॥१४॥ १५॥ हे राजेन्द्र! धूप-गन्धसे सुगन्धित एवं माला व दीपकोंसे सुशोभित शाला (भवन) में देवता और दानवगण जब पूर्वमुख हो कर बैठे तब उसी कुंभस्तनी, मदविह्वलाक्षी, करभोरू मोहिनीमूर्तिने अमृतका कलश हाथमें ले कर, मनोहर दुकूलसे घिरे हुए श्रोणीतटके भारसे मंद मंद चरण धरते हुए एवं कनककलित नूपुरोंके मधुर शब्दसे मानो गान करते २ उस भवनमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ १७ ॥ लक्ष्मीकी सहचरी, परम देवता मोहिनीजीके कानोंमें कनककलित कुण्डलोंकी अपूर्व शोभा थी एवं उनके कान, नासिका, कपोल और मुख आदि अंग अद्भुत सुन्दर थे; उनकी मुसकानयुक्त दृष्टि विश्वविमोहिनी थी। उनकी स्तनपट्टिका (कञ्चुकी या छोटा कपड़ा) के किनारे वारम्वार खुल २ जाते थे, जिनको देख कर देवता और दानव मोहित हो गये ॥१८॥ तब मोहिनीरूप हरिने विचारा कि सर्पोंको दूध पिलानेके समान असुरोंको अमृत देना भी योग्य नहीं है; क्योंकि सर्प और दुष्ट असुर स्वाभाविक क्रूर होते हैं। ऐसा विचार करके अच्युत भगवान्‌ने असुरोंको अमृतका भाग नहीं दिया ॥१९॥ जगत्पति हरिने देवता और दानवोंकी अलग २ दो पंक्तियाँ बिठलाईं और देवतोंको देवतोंकी पंक्तिमें व असुरोंको असुरोंकी पंक्तिमें बिठलाया॥ २० ॥ फिर मोहिनीजी, कलश हाथमें लेकर दैत्योंकी ओर मुख करके मीठे २ वचनोंसे उनको भुलाती हुई पिछले पैरोंसे देवतोंकी पंक्तिमें आ पहुचीं और उनको अजर अमर कर देनेवाला अमृत पिलाने लगीं॥२१॥ राजन्! असुरगण अपनी प्रतिज्ञाका पालन करते हुए चुपचाप बैठे रहे, क्यों कि वे यह स्वीकार कर चुके थे कि "तुम भला या बुरा चाहे जो करोगी, हम उसमें हस्ताक्षेप नहीं करेंगे"। दूसरे निन्दनीय होनेके कारण स्त्रीके साथ झगड़ा करना उनको अभीष्ट न था। तीसरे वे मोहिनीजी पर तन मनसे अनुरक्त और आसक्त थे और उनको (मोहिनीजी पर) स्नेह भी अधिक हो गया था। उसी स्नेहके नष्ट होने और मोहिनीजीके चिढ़ जानेके भयसे असुरोंने, रोकना कैसा, कोई रूढ़ वचन भी नहीं कहा॥ २२॥ २३॥ हे राजन्! राक्षस राहु, देवतोंके चिन्ह धारण करके देवतोंकी सभामें छिपा बैठा था। जैसे भगवान्‌ने राहुको अमृत दिया वैसे ही पास बैठे हुए चन्द्र और सूर्य्यने भगवान्‌को सूचित कर दिया कि यह देवता नहीं है, असुर राहु है। हरिने यह सूचना पाते ही तीक्ष्ण धारावाले सुदर्शन चक्रसे अमृत पीतेमें ही चटपट राहुका शिर काट डाला। अमृत कण्ठसे नीचे नहीं आया था, इस लिये कबंध कट कर गिर गया और शिर अमर हो गया। ब्रह्माजीने सूर्य्य आदिके समान उसको भी 'ग्रह' कर दिया। वैरभाव धारण किये राहुग्रह, अब भी प्रत्येक पर्वमें ग्रसनेकी इच्छासे सूर्य्य और चन्द्रमाकी ओर दौड़ता है ॥ २४॥ २५॥ २६॥ महाराज! जब सब देवगणने सम्पूर्ण अमृत पी लिया तब लोकोंकी रक्षा करनेवाले भगवान् हरिने दैत्योंके आगे ही अपना

रूप धारण कर लिया और वह मोहिनीरूप त्याग दिया ॥ २७ ॥ देश, काल, हेतु प्रयोजन, कर्म्म और मति आदि सामग्री यद्यपि देवता और दानव, दोनोकी एक ही थी तथापि फलमें भेद हुआ। अर्थात् हरिके चरणकमलका आश्रय लेनेके कारण देवगणने सहजमें ही फलस्वरूप अमृत पीनेको पाया और हरिसे विमुख होनेके कारण दैत्यगण उससे वंचित रहे ॥ २८ ॥

यद्युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभिर्देहा-
त्मजादिषु नृभिस्तदसत्पृथक्त्वात् ॥
तैरेव सद्भवति यत्क्रियतेऽपृथक्त्वा-
त्सर्वस्य तद्भवति मूलनिषेचनं यत् ॥ २९ ॥

मनुष्यगण ईश्वरसे भिन्न मान कर जो कुछ तन, मन, धन कर्म्म और वचनसे स्त्री, पुत्र शरीर आदिके लिये करते हैं सो सब भेदभावयुक्त होनेके कारण व्यर्थ है और उन्हीं तन, मन, धन और वचनों द्वारा ईश्वरके उद्देशसे स्त्री, पुत्र, शरीरआदिके लिये जो किया जाता है सो सब अभेदभावयुक्त होनेके कारण महाफलदायक होता है, क्योंकि ईश्वर सबका मूल है। जैसे मूलमें जल छोड़नेसे वृक्षकी सब शाखा प्रशाखा हरी हो जाती हैं किन्तु शाखाओंमें जल सींचनेसे प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और वृक्ष सूख जानेसे सींचना भी व्यर्थ हो जाता है ॥ २९ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय।

देवासुरसंग्राम।

श्रीशुक उवाच—इति दानवदैतेया नाविन्दन्नमृतं नृप ॥
युक्ताः कर्मणि यत्ताश्च वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! दैत्य और दानव दोनोने ही कार्यमें प्रयत्न किया, किन्तु हरिसे विमुख होनेके कारण उन्होने अमृत नहीं पाया ॥ १ ॥ हरिने युक्तिपूर्वक दानवोंसे अमृत ले लिया और देवगणको पिलाया एवं सबके सामने ही गरुड़की पीठ पर चढ़ कर वैकुण्ठलोकको चले गये ॥२॥ इधर शत्रुओंकी ऐसी बढ़ती देख कर दानवगण उसको न सह सके और अपने २ अस्त्र शस्त्र ले कर देवतोंकी ओर युद्ध करनेके लिये झपटे ॥ ३ ॥ अमृतपान करके हरिचरणानुगत देवगणका बल बढ़ गया था, अतएव अस्त्र शस्त्र लेकर वे भी दैत्योंसे युद्ध करनेके लिये उद्यत हो गये ॥ ४ ॥ सागरके तट पर देवता और दैत्योंका देवासुर नाम घोर

महासंग्राम ठन गया, जिसके सुननेसे भी रोमाञ्च होता है ॥ ५ ॥ इस समरमें परम कुपित शत्रुगण परस्पर भिड़ कर वाण, खड्ग आदि अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे प्रहार करने लगे। उस समय शंख, तूर्य्य, मृदङ्ग, भेरी और डमरू एवं हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंका महाभीपण तुमुल कोलाहल होने लगा ॥ ६ ॥ ७ ॥ रणभूमिमें रथीसे रथी, पैदलसे पैदल, घोड़ोंसे घोड़े और हाथियोंसे हाथी भिड़ गये ॥ ८ ॥ दोनो सेनाओंके योद्धा लोग ऊँट, हाथी, गर्दभ, गौरमृग, भालू, व्याघ्र, सिंह, गिद्ध, कंक, वक, श्येन, भास, तिमिंगिल, शरभ, महिप, गैंड़ा, गऊ, बैल, गवय, अरुण, शृगाल, मूषक, कृकलास, खर्गोश, मनुष्य, छाग, कृष्णसार, हंस, शूकर एवं अन्यान्य प्रकारके विकट आकारवाले जलचर और स्थलचर पशु पक्षियों पर चढ़ युद्धभूमिमें प्रवेश कर एक एकके सामने आये ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ शूर वीर देवता और दानवोंकी सेनाके दोनो दल दो विशाल सागरोंके समान देख पड़ने लगे। अनेक प्रकारकी पताका और चित्रविचित्र ध्वजा एवं धवल विमल छत्र, उनके महामूल्य हीरकखचित दण्ड, मयूरपुच्छविनिर्मित व्यजन और चामर, वायुके चलनेसे हिल रहे पगड़ियोंके पेंच और उन पर लगी हुई कलगियाँ एवं उत्तरीय पट, सूर्यकी किरणोंका प्रकाश पड़नेसे चमक रहे उज्वल और निर्मल शक्ति, कवच, आभूपण आदि एवं योद्धा लोगोंकी श्रेणियाँ उन महासागररूप उमड़ रहे दोनो दलोंमें मकर, ग्राह आदि हिंस्र जलजन्तुओंके समान देख पड़ते थे ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ राजन्! मय दानवने सम्पूर्ण आश्चर्यमय वस्तुओंसे पूर्ण एक वैहायस नाम कामनाके अनुसार गमन करनेवाला अप्रतर्क्य और अचिन्तनीय रथ बनाया था। उसमें यह गुण था कि वह कभी दृष्टिगोचर होता था और कभी अदृश्य हो जाता था। इस समय युद्धकी सब सामग्री उस पर धरी थीं एवं विरोचनके पुत्र राजा वलि स्वयं दैत्यसेनाके सेनापति बन कर रणभूमिमें उसी रथके शिखर पर बैठे थे और उनके दोनो ओर चँवर हो रहे थे, शिर पर छत्र लगा हुआ था। उस समय राजा वलि, उदयाचलको जा रहे तारापति चन्द्रमाके समान शोभायमान हुए ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ जिनके हाथोंसे देवगणकी अनेक बार हार हुई है वे नमुचि, शम्बर, वाणासुर, विप्रचित्ति, अयोमुख, द्विमूर्द्धा, कालनाभ, प्रहेति, हेति, इल्वल, शकुनि, भूतसन्तापन, वज्रदंष्ट्र, विरोचन, हयग्रीव, शंकुशिरा, कपिल, मेघदुन्दुभि, तारक, शत्रुजित्, शुंभ, निशुंभ, जंभ, उत्कल, अरिष्टासुर, अरिष्टनेमि, त्रिपुरके स्वामी मयासुर एवं पौलोम, कालेय, निवातकवच आदि अन्यान्य असुरसेनापतिगणने रथों पर चढ़ कर वलिको चारो ओरसे घेर लिया। ये सब दानव अमृतमें भाग न पानेके कारण केवल क्लेशके ही भागी हुए अतएव इन्होने दारुण क्रोध करके सिंहनाद करते हुए गंभीर शब्द करनेवाले अपने २ शंख बजा कर युद्धमें उत्साह प्रकट

किया। उधर शत्रुओंका ऐसा उत्साह और दर्प देख कर इन्द्रको बहुत ही कोप हुआ। जैसे झरते हुए झरनोंसे युक्त उदयाचल पर सूर्यनारायण आरोहण करते हैं वैसे ही स्वयंप्रकाशयुक्त पुरन्दर भी मदस्रावी दिग्गज ऐरावत पर चढ़ कर आकाशमें अवस्थित हुए ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५॥ पवन, अग्नि, वरुण आदि लोकपाल देवगण अनेक प्रकारके वाहनों पर चढ़ कर चित्रविचित्र ध्वजा और पताका एवं अस्त्र-शस्त्रोंसे सज्जित होकर अपने २ अनुचरगण सहित देवराजको चारो ओरसे घेर कर अवस्थित हुए ॥ २६ ॥ पूर्वोक्त देवदानवगण, एक एकके निकट पहुँच कर, एक एकका नाम ले ले कर बुलाते हुए, वचनोंसे एक एकका तिरस्कार करके द्वन्द्वयुद्ध करने लगे ॥ २७ ॥ देवराज इन्द्रसे राजा वलि, कार्तिकेयसे तारकासुर, वरुणसे हेति, मित्रसे प्रहेति, यमराजसे कालनाभ, विश्वकर्मासे मयासुर, त्वष्टासे शम्बर, सवितासे विरोचन, अपराजितसे नमुचि, अश्विनीकुमारसे वृषपर्वा, सूर्यदेवसे वाण आदि वलिके सौ पुत्र, चन्द्रमाके साथ राहु, वायुके साथ पुलोमा, वेगवती देवी भद्रकालीसे शुंभ व निशुंभ, वृषाकपिसे जंभासुर, विभावसुसे महिषासुर, ब्रह्माके पुत्रोंसे इल्वल और वातापी, कामदेवसे दुर्मर्ष, मातृगणसे उत्कल, वृहस्पतिजीसे शुक्राचार्य, शनिसे नरकासुर, मरुद्गणसे निवातकवच नामक दानवगण, वसुगणसे कालकेय नामक असुरगण, विश्वेदेवगणसे पौलोम नामक दैत्यगण एवं रुद्रगणसे क्रोधवश नामक दानवगण द्वन्द्व-युद्ध करने लगे ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ असुर और देवेन्द्रगण इस प्रकार द्वन्द्व-युद्धमें प्रवृत्त हो कर जयकी इच्छासे एक एक पर तीक्ष्ण वाण, खड्ग और तोमर आदि शस्त्रोंसे प्रहार करने लगे एवं भुशुंडी, चक्र, गदा, ऋष्टि, पट्टिश, शक्ति, उल्मुक, प्रास, परश्वध, निस्त्रिंश, भल्ल, परिघ, मुद्गर और भिन्दिपाल आदि अस्त्र शस्त्रोंसे एक एकका शिर काटने लगे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंके एवं अन्यान्य वाहन और उन पर चढ़नेवालोंमें किसीके वाहु, किसीकी जंघा, किसीकी ग्रीवा और किसीके पैर कट गये। इस भाँति अनेक प्रकारोंसे खण्डित हो कर वे गिरने लगे एवं उनके ध्वजा, धनुष, कवच और आभूषण सब अंगोंसे च्युत हो पड़े ॥ ३७ ॥ हे राजन्! देवता और दानवोंके पादप्रहारसे एवं रथचक्रोंके आघातसे परिमर्दित होनेके कारण रणभूमिसे प्रचण्ड धूल उड़ी, जिसने सब दिशाओंको और सूर्य्यसहित आकाश-मण्डलको छा लिया;- किन्तु थोड़ी ही देरमें युद्धभूमि रुधिरकी नदियोंसे भर गई और सब धूल जहाँ की तहाँ वैठ गई ॥ ३८ ॥ अगणित योद्धा लोगोंके कटे हुए शिरोंसे युद्धभूमि छा गई। उन शिरोंसे कुण्डल गिर पड़े हैं, उस मृत अवस्थामें भी वैसे ही उनके नेत्र क्रोधसे लाल हैं और दाँतोंके नीचे अधर दवे हुए हैं। बड़ी २ विशाल भुजाएँ कट कर गिर पड़ी हैं—उनमें अस्त्र शस्त्र वैसे ही दवे हुए

हैं, एवं हाथीकी सूँड़के समान अगणित जंघाएँ कटी हुई पड़ी हैं। इन सबसे युक्त रणभूमिने बहुत ही विकट रूप धारण किया ॥ ३९ ॥ रणभूमिमें असंख्य कबंध (मुंडहीन रुंड) उत्थित हुए, वे पृथ्वी पर कट कर गिरे हुए अपने शिरोंके नेत्रोंसे देखते हुए हाथोंमें अस्त्र शस्त्र ले ले कर योद्धा लोगोंके ऊपर प्रहार करनेके लिये इधर उधर दौड़ने लगे ॥ ४० ॥ इधर राजा वलिने महेन्द्र पर दश वाण मारे और ऐरावतके तीन वाण तथा चारो साधारण महावत, जो चारो ओर ऐरावतके पैरोंकी रक्षा कर रहे थे—उनके एक एक वाण और प्रधान महावतके एक वाण मारा ॥ ४१ ॥ किन्तु वे वाण पास भी न आने पाये, बीचमें ही महापराक्रमी इन्द्रने उतने ही भल्लनामक तीक्ष्ण वाणोंसे लीलापूर्वक हँसते २ शीघ्रताके साथ उनको काट डाला ॥ ४२ ॥ इन्द्रके इस प्रशंसनीय कर्म्मको देख कर राजा वलिको डाह हुआ और उन्होने एक प्रचण्ड शक्ति इन्द्र पर चलानेके लिये हाथमें ली, किन्तु चलाने भी न पाये, इन्द्रने महाउल्कासदृश प्रज्वलित वह शक्ति उनके हाथमें ही काट डाली ॥ ४३ ॥ तदनन्तर असुरराजने कुपित हो कर एक एक करके शूल, प्रास, तोमर और ऋष्टि आदि शस्त्र हाथमें लिये; परन्तु जो २ शस्त्र इन्द्र पर चलानेके लिये वलिने उठाया उसीको प्रतापी पुरन्दरने फुर्तीके साथ काट डाला ॥ ४४ ॥ तब असुर वलिने आकाशमें अन्तर्हित होकर अनेक आसुरी मायाएँ प्रकट कीं। राजन्! पहले देवसेनाके ऊपर एक बड़ा भारी पर्वत प्रकट हुआ और उससे असंख्य वृक्ष दावानलके द्वारा जल २ कर देवदल पर गिरने लगे एवं नुकीली शिलाएँ गिर २ कर देवसेनाको विनष्ट करने लगीं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ उसके वाद महासर्प, वृश्चिक और काटनेवाले अन्यान्य विपैले जीव एवं सिंह, व्याघ्र व वराह प्रकट हुए। वड़े २ हाथी और पूर्वोक्त सर्पादिक जीव, शत्रुसेना अर्थात् देवदलको नष्ट और पीड़ित करने लगे ॥ ४७ ॥ हे नरनाथ! उसके अनन्तर "मारो २ काटो २" कहते हुए शूल हाथमें लिये वस्त्रविहीन विकट राक्षस और राक्षसियाँ इधर उधर दौड़ते हुए देवदलमें देख पड़े। आकाशमण्डलमें भीमनाद करते हुए घोर मेघोंका मण्डल देवदल पर अंगारोंकी वर्षा करता हुआ प्रचण्ड वेगसे इधर उधर फिरने लगा। वायुके आघातसे उन मेघोंमें कभी २ बड़ा घोर शब्द होता था ॥ ४८ ॥ ॥ ४९ ॥ उसके वाद दानवराज वलिने प्रचण्ड अग्नि प्रकट किया। वह पावक देखते ही देखते प्रलयानलके समान प्रज्वलित हो उठा एवं वायुके द्वारा संचालित हो कर देवसेनाको भस्म करने लगा। प्रचण्ड वायुके झोंकोंसे उठ रहे चंचल तरंगोंके आवर्तोंसे भीषण समुद्र देख पड़ा कि मानो उमड़ कर पृथ्वीको जलमग्न कर देगा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ जिनकी गति और स्थिति नहीं देख पड़ती उन महामायावी असुरोंने इस प्रकार युद्धभूमिमें बहुत सी विकट और भयावनी मायाएँ प्रकट कीं,

जिनको देख कर सुरसेनाके योद्धा लोग बहुत ही खिन्न हुए ॥ ५२ ॥ हे राजन्! इन्द्रादि देवगण किसी प्रकार उन मायाओंका कुछ प्रतीकार नहीं कर सके। तब उन्होने विश्वपालक भगवान् हरिका ध्यान किया। ध्यान करते ही उसी स्थान पर नारायण प्रकट हुए ॥ ५३ ॥ सबने देखा कि पीताम्बरसे सुशोभित, चतुर्भुज, कमललोचन हरि, गरुड़की पीठ पर सुकोमल पादपद्मपल्लव धरे हुए हैं, भुजाओंमें शंख, चक्र आदि आठ अस्त्र शोभित हैं एवं हृदयआदि अंगोंमें लक्ष्मी देवी और कौस्तुभमणि, कनककलित किरीट मुकुट व कुण्डलकी अपूर्व दीप्ति देख पड़ती है ॥ ५४ ॥ महाराज! जिस प्रकार जागने पर स्वप्नावस्था दूर हो जाती है वैसे ही पूजनीय हरिके उस युद्धभूमिमें प्रकट होने पर उनकी महामहिमासे असुरोंकी कूटमंत्रमय सब मायाएँ सहसा निरस्त हो गईं। सो ठीक ही है; हरिका स्मरण करनेसे सब प्रकारकी विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं ॥ ५५ ॥ समरभूमिमें गरुड़वाहन हरिको देख कर सिंह पर चढ़े हुए कालनेमि दानवने कराल त्रिशूल घुमा कर गरुड़के ऊपर चलाया। वह त्रिशूल गरुड़के शिर पर गिरने भी नहीं पाया और हरिने लीलापूर्वक उसको हाथ पर रोक लिया एवं उसीसे सिंहसहित कालनेमिको नष्ट कर दिया ॥ ५६ ॥

माली सुमाल्यतिबलौ युधि पेततुर्य-
चक्रेण कृत्तशिरसावथ माल्यवांस्तम् ॥
आहत्य तिग्मगदयाहनदण्डजेन्द्रं
तावच्छिरोऽच्छिनदरेर्नदतोऽरिणाद्यः ॥ ५७ ॥

भगवान्के चक्रप्रहारसे माली और सुमाली नाम दोनो दानवोंके शिर कट गये और वे दोनो प्राणहीन हो कर पृथ्वीपर गिर पड़े। उसके बाद माल्यवान् नाम असुरने हरिके निकट आ कर गरुड़ पर कठिन गदा चलाई और सिंहनाद करने लगा; वैसे ही आदिपुरुष नारायणने सुदर्शन चक्रसे उसका भी शिर काट डाला ॥ ५७ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय ।

देवासुरसंग्रामकी समाप्ति ।

श्रीशुक उवाच—अथो सुराः प्रत्युपलब्धचेतसः
परस्य पुंसः परयाऽनुकम्पया ॥
जघ्नुर्भृशं शक्रसमीरणादय-
स्तांस्तान्रणे यैरभिसंहताः पुरा ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले । हे राजन्! महेन्द्र और पवन आदि देवगण परमपुरुषकी परम दयासे सचेत हुए एवं पहले जिन्हो (दानवों) ने रणभूमिमें इन पर प्रहार किये थे उन पर ये भी द्विगुण उत्साहसे प्रहार करने लगे ॥ १ ॥ इन्द्रने क्रोध करके विरोचनके पुत्र वलिके ऊपर चलानेको जब वज्र उठाया तब प्रजागण हाहाकार करने लगे । वज्रधारी इन्द्रने रणभूमिमें अपने सामने अवस्थित, सुशिक्षित, मनस्वी वलिसे यों तिरस्कारके वाक्य कहे ॥ २ ॥ ३ ॥ "रे मूढ़ दैत्य! हम लोग सब मायाओंके अधीश्वर हैं, तू नटोंकी भाँति इन तुच्छ मायाओंसे हमें जीतना चाहता है? जैसे नट लोग दृष्टि बाँध कर बालकोंका धन ठग लेते हैं ॥ ४ ॥ जो लोग मायाके द्वारा स्वर्ग पर आरोहण करनेकी या स्वर्गको नाँघ कर मुक्तिलाभ करनेकी कामना करते हैं मैं उन दस्युवृत्ति निर्बोध पुरुषोंको उनके पूर्वपदसे भी नीचे गिरा देता हूँ ॥ ५ ॥ तू दुष्ट, मायावी और मूढ़ है; इस शतपर्व (सौ खंड) वाले वज्रसे तेरा शिर काटता हूँ । इस समय जातिवाले असुरों सहित तू अपनी रक्षा कर" ॥ ६ ॥ यह इन्द्रका कथन सुन कर राजा वलिने उत्तर दिया कि "हे इन्द्र! इतना गर्व क्यों करते हो? लोग कालके द्वारा प्रेरित हो कर संग्राममें प्रवृत्त होते हैं । कीर्त्ति, जय या पराजय व मृत्युको क्रमशः सब ही लड़नेवाले पाते हैं ॥ ७ ॥ इसी लिये विज्ञ वीरगण जगत्को कालके अधीन मानते हैं, अतएव उनको जय या पराजयमें आनन्द या शोक कुछ भी नहीं होता । तुम इस विषयसे अनभिज्ञ हो ॥ ८ ॥ तुम्हारे ये कटु वाक्य मर्मभेदी हैं, तथापि मैं इनके कहनेका बुरा नहीं मानता । इसका कारण यही है कि तुम लोग अपने ही पराक्रमको जय और पराजयका कारण माने हुए हो, अतएव साधुजनोंके आगे शोचनीय हो ॥९॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** कि वीरोंका दर्प दूर करनेवाले वलिने यों आक्षेपपूर्ण वचनोंसे पहले प्रहार करके फिर कान तक तान कर कई एक नाराच वाण भी इन्द्रके ऊपर चलाये ॥ १० ॥ स्पष्टवादी शत्रुके प्रहारोंको इन्द्र न सह सके और अङ्कुशाहत हाथीके समान झुँझला कर वलि पर शत्रुमर्दन अव्यर्थ वज्र चलाया । [illegible] लगते ही, पक्ष कटने पर जैसे कोई पर्वतराज गिर पड़े उस भाँति राजा वलि

विमानके सहित आकाशसे पृथ्वीतल पर गिर पड़े ॥ ११ ॥ १२ ॥ महाराज! वलिका सखा और हितकारी एक जंभ नाम दानव था, उसने अपने प्रियसखा वलिको जब इस प्रकार गिरते देखा तब मरे हुए मित्रका बदला लेनेके लिये वह सिंहवाहन महाबली असुर आगे बढ़ा और गदा ले कर ऐरावत हाथीके कंधे पर मारी और फिर इन्द्र पर चलाई ॥ १३ ॥ १४ ॥ गदाके प्रहारसे गजराज बहुत ही विह्वल हो कर दोनो जानुओंसे पृथ्वी पर बैठ गया । तब मातलि सारथी एक रथ ले आया; जिसमें हजार घोड़े जुते हुए थे। इन्द्रदेव हाथीसे उतर कर उस रथ पर आरूढ़ हुए ॥ १५ ॥ १६ ॥ जंभ दानवने मातलि सारथीके उस कर्मकी प्रशंसा करके मुसकाते हुए प्रज्वलित अग्निके समान त्रिशूल मातलि पर चलाया ॥ १७ ॥ उस त्रिशूलके लगनेकी दुस्सह वेदनाको धैर्य और दृढ़ताके साथ मातलिने सह लिया । उधर इन्द्रने कुपित हो कर वज्रसे जम्भका मस्तक काट डाला ॥ १८ ॥ नारदऋषिके मुखसे जंभकी मृत्युका सम्वाद पा कर नमुचि, वल और पाक नामक उसकी ज्ञातिवाले शीघ्रताके साथ युद्धभूमिमें आये और इन्द्रको कठोर वाक्य कहते हुए, मेघमाला जैसे पर्वतोंपर जल वरसाती है वैसे ही, देवराज पर वाणोंकी वर्षा करने लगे । ॥ १९ ॥ २० ॥ क्षिप्रहस्त बल दानवने इन्द्रके हजारो घोड़ोंको एकसाथ एक २ वाणसे मारा । पाक दानवने केवल एक वार ही संधान और मोचन करके सौ वाणोंसे सांगोपांग रथको और सारथी मातलिको एकसाथ ही अलग २ आहत किया । यह कर्म युद्धभूमिमें सबको ही अद्भुत जान पड़ा ॥ २१ ॥ २२ ॥ नमुचि दानवने भी युद्धभूमिमें स्वर्णपुंखयुक्त पन्द्रह सौ सुतीक्ष्ण वाण इन्द्र पर मार कर जलपरिपूर्ण जलदजालके समान गंभीर सिंहनाद किया ॥ २३ ॥ जैसे वर्षाकालकी घोर घनघटाएँ सूर्यको चारो ओरसे छिपा लेती हैं वैसे ही असुरगणने चारो ओरसे वाणोंकी वर्षा करके रथ और सारथी सहित सुरनायक इन्द्रको घेर लिया और आच्छन्न कर दिया ॥ २४ ॥ शत्रुसेनाके मध्यवर्ती देवगण और देवानुचरगण देवराजके न देख पड़ने पर बहुत ही विह्वल हो गये और नायकविहीन हो कर उन वाणिज्य करनेवाले वणिग्जनोंके समान हाहाकार करनेलगे, जिनका जहाज बीच समुद्रमें टूट गया हो । शत्रुपक्षके द्वारा निर्जित देवगण इधर यों व्याकुल हो रहे थे, उधर देखते ही देखते सहस्रलोचन इन्द्रदेवने ध्वजा व अश्वयुक्त रथ और सारथी सहित उस वाणपिंजरसे बाहर निकल कर, जैसे सूर्यदेव रात्रिके अन्तमें प्रकट हो कर अपने तेजसे दश दिशा आकाश और पृथ्वीको प्रफुल्लित व प्रकाशित करते हैं, उस प्रकार तीनो लोकोंको सुस्थिर और प्रसन्न बनाया ॥ २५ ॥ २६ ॥ अपनी सेनाको शत्रुदलके द्वारा पीड़ित होते देख कर इन्द्रने बहुत ही कोप किया और शत्रुका संहार करनेके लिये वज्र हाथमें लिया ॥ २७ ॥ इन्द्रने उसी आठ धारावाले सुदृढ़ और तीक्ष्ण वज्रसे अन्य असुरोंके सामने ही बल और

पाक नाम दोनो असुरोंके शिर काट डाले; यह देख कर अन्य असुरोंके हृदयोंमें भी भयका सञ्चार हुआ ॥ २८ ॥ बल और पाकका विनाश देख कर नमुचि दैत्य असह्य शोक और कोपके आवेशसे उन्मत्त सा हो गया एवं इन्द्रको मारनेके लिये प्राणपणसे चेष्टा करने लगा ॥ २९ ॥ नमुचि दैत्य दारुण क्रोधके कारण पाषाण-सदृश सुकठिन स्वर्णभूषणविभूषित घंटायुक्त त्रिशूल हाथमें लेकर "अब तू मरा" यों कहता हुआ झपटा और पास पहुँच कर घोर सिंहनाद करते हुए वही शूल इन्द्र पर चलाया ॥ ३० ॥ महावेगशाली वह शूल आकाशमार्ग हो कर आ रहा था, राहमें ही प्रतापी इन्द्रने बाणोंसे उसको हजारों टुकड़े कर डाले। फिर कुपित पुरन्दरने नमुचिकी ग्रीवा पर, उसका शिर काटनेके विचारसे, सुतीक्ष्ण वज्र चलाया, किन्तु कैसे आश्चर्यकी बात हुई कि उस बलपूर्वक इन्द्रके द्वारा चलाये गये वज्रकी चोटसे शिर कटना कैसा, थोड़ीसी त्वचा (खाल) भी न भिन्न हुई! इससे बढ़ कर आश्चर्य क्या हो सक्ता है कि जिसने प्रचण्ड दानव वृत्रासुरका शिर काट डाला, आज उसी वज्रका यों नमुचिकी त्वचासे अपमान हुआ!! ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ तब शत्रु नमुचिसे इन्द्रको बहुत ही भय हुआ। नमुचिके अंगमें वज्रको विफल होते देख कर देवराज इन्द्र यों अपने मनमें विचारने लगे कि "दैवयोगसे लोगोंकी बुद्धिको चक्करमें डालनेवाली यह कैसी अद्भुत घटना हुई? ॥ ३३ ॥ जब पूर्व-समयमें दुर्दान्त पर्वतगण सपक्ष थे और वे ऊपर उड़ कर देशों पर गिरते व उनका संहार करते थे तब मैंने प्रजाको नष्ट होते देख कर इसी वज्रसे उन पर्वतोंके पक्ष काटे हैं और इसी वज्रसे वृत्रासुरका शिर काटा है। इस वज्रको विश्वकर्माने तपस्याके सारांश (दधीचि ऋषिके अस्थिपंजर) से बनाया है। इसी वज्रने उन अनेकानेक अन्यान्य महावीरोंका विनाश किया है जिनकी त्वचा-तक अन्य सुतीक्ष्ण अस्त्रोंसे नहीं कटी। किन्तु आज यह वही अप्रतिहत वज्र, इस क्षुद्र असुर पर विफल गया! अब मैं इसे नहीं धारण करूँगा, यह एक सामान्य दण्डके समान ही है, ब्रह्मतेज होने पर भी प्रयोजन सिद्ध करनेको समर्थ नहीं हुआ, इस लिये इसका धारण करना व्यर्थ ही है" ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इन्द्रदेव इस प्रकार विषाद कर रहे थे, उसी समय विना शरीरके आकाशवाणी हुई कि "यह दानव सूखे या गीले पदार्थसे नहीं मर सक्ता; हे इन्द्र! मैंने इसको वर दिया है कि 'तेरी सूखे या गीले किसी पदार्थसे मृत्यु न होगी'-इस लिये तुम इसके मारनेका कोई और उपाय निकालो" ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इस प्रकारकी दैववाणी सुनने पर इन्द्रने चित्तसंयमपूर्वक विचार करके देखा कि जलका फेना न सूखा ही है और न गीला। बस, इन्द्रने उसी समय समुद्रसे जलका फेना ले कर उसीसे नमुचि दानवका शिर काट डाला। मुनिगण फूलोंकी वर्षा करते हुए देवराजकी स्तुति करने लगे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ विश्वावसु और परावसु नाम दोनो श्रेष्ठ गन्धर्व

उनका गुणगान करने लगे, स्वर्गमें देवतोंने नगाड़े बजाये और अप्सराएँ आनन्दसे नृत्य करने लगीं ॥ ४१ ॥ सिंहगण जैसे मृगोंके झुंडको मार भगाते हैं वैसे ही वायु, अग्नि और वरुण आदि अन्यान्य देवगण भी सुतीक्ष्ण अस्त्रोंके प्रहारसे अपने २ प्रतिद्वन्द्वी असुरोंका संहार करने लगे। देवता और दानवोंका यों क्षय होते देख कर ब्रह्माजीने देवर्षि नारदको युद्ध निवृत्त करनेके लिये भेजा ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ नारदजीने आ कर देवगणसे कहा कि-"देवगण! नारायणके बाहुबलका आश्रय ले कर तुम लोगोंने अमृत पाया और कमलाके कृपाकटाक्षपातसे तुम्हारे बल, वीर्य और वैभवकी वृद्धि हुई है, अतएव अब युद्ध बंद करो" ॥ ४४ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! मुनिके वाक्योंको सब देवतोंने सादर स्वीकार किया अर्थात् क्रोधके वेगको शान्त करके, अनुचरगणकी की हुई स्तुतियाँ सुनते हुए स्वर्गधामको गये ॥ ४५ ॥ जो दानव युद्धभूमिमें बच रहे थे वे मुनि नारदकी आज्ञाके अनुसार जीवहीन बलिके शरीरको ले कर अस्ताचल (शुक्राचार्यके आश्रम) को गये। वहाँ शुक्राचार्यने जिन दानवोंके अंग और रुंड मुंड नष्ट नहीं हुए थे उनको अपनी सञ्जीविनी नाम विद्यासे फिर सजीव कर दिया ॥४६॥४७॥

बलिश्चोशनसा स्पृष्टः प्रत्यापन्नेन्द्रियस्मृतिः ॥
पराजितोऽपि नाखिद्यल्लोकतत्त्वविचक्षणः ॥४८॥

शुक्रका हाथ लगते ही बलिने जीवित हो कर फिर संज्ञालाभ किया। यद्यपि बलिकी पराजय हुई तथापि लौकिक तत्त्वसे भली भाँति अभिज्ञ होनेके कारण वह थोड़ा भी खिन्न या उदास नहीं हुए ॥ ४८ ॥

इति श्रीभागवते अष्टमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय।

मोहिनीरूप देख कर महेशका मोहित होना।

श्रीबादरायणिरुवाच—वृषध्वजो निशम्येदं योषिद्रूपेण दानवान् ॥
मोहयित्वा सुरगणान्हरिः सोममपाययत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! 'नारायणने मोहिनीरूप धारण कर दैत्योंको मोहित किया और देवगणको अमृत पान कराया'—यह वृत्तान्त सुन कर महादेवजी नन्दीश्वरकी पीठ पर प्रियतमा पार्वतीसहित आरूढ़ हुए एवं भूतगणको साथ ले कर जहाँ मधुसूदन हरि निवास करते हैं वहाँ (वैकुण्ठ लोकमें) उनके दर्शन करनेकी कामनासे गये ॥ १ ॥ २ ॥ भगवान्‌ने आदरपूर्वक शिव और गौरीकी अभ्यर्थना की। महादेवजी भी विष्णुके प्रति सम्मान दिखा कर सुन्दर

आसन पर सुखपूर्वक बैठे और थोड़ी देर तक विश्राम करनेके बाद मन्द मुसकानके साथ हरिसे यों कहने लगे ॥ ३ ॥ श्री महादेवजी बोले। हेदेवदेव, जगत्‌भरमें व्याप्त, जगन्मय, जगदीश! आप सब पदार्थोंके आत्मा कारण और ईश्वर हैं। जिन सत्स्वरूप चिन्मय ब्रह्मसे इस विश्वका आदि अन्त और मध्य प्रतीत होता है, किन्तु जो स्वयं आदि अन्त और मध्यसे रहित हैं, जो दृश्य भी हैं और द्रष्टा भी हैं, जो भोज्यवस्तु भी हैं और भोग करनेवाले भी हैं, आप वही सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ विषयसुखसे विरक्त हो कर निर्वाणमय मङ्गलकी कामनावाले मुनिगण इस लोक और परलोककी आसक्तिको त्याग कर आपके ही चरणकमलोंका पूजन करते हैं ॥ ६ ॥ आप पूर्ण, सुखस्वरूप, नित्य, आनन्दमय, निर्गुण, निर्विकार और शोकशून्य ब्रह्म हैं। आपसे विभिन्न कुछ भी नहीं है, तथापि आप सबसे अलग (निर्लिप्त) हैं; विश्वकी सृष्टि स्थिति और ध्वंसका कारण एवं आत्माके नियन्ता हैं। सम्पूर्ण विश्व आपका मुखापेक्षी है, किन्तु आप निरपेक्ष हैं ॥ ७ ॥ जैसे एक सुवर्ण, कुण्डल आदि अलंकारोंके रूपमें परिणत हो कर अनेक हो जाता है, वैसे ही परमकारणस्वरूप आप भी कार्य और कारणके रूपमें परिणत हो कर विभिन्न जान पड़ते हैं, किन्तु स्वर्णके सदृश आपमें भी वास्तविक विभिन्नता नहीं है। आप उपाधिरहित हैं; किन्तु आपका सम्बन्ध गुणोंसे है, इसी लिये अज्ञ पुरुष आपमें भेदभावना या भेदकी कल्पना करते हैं ॥ ८ ॥ कोई (वेदान्ती लोग) ब्रह्म कह कर, कोई (सांख्यमतावलम्बी) प्रकृति और पुरुषसे भिन्न परमपुरुष परमेश्वर कह कर, कोई (मीमांसावाले) धर्म्म कह कर, कोई (पञ्चरात्रमतावलंवी) नवशक्तियुक्त परम पुरुष कह कर और कोई (पतञ्जलिमतवादी) स्वाधीन अविनाशी महापुरुष कह कर आपका ही निर्देश करते हैं ॥ ९ ॥ ब्रह्मा और मरीचिआदि ऋषिगण एवं मैं—सब सत्त्वगुणके द्वारा उत्पन्न हुए हैं; तथापि आपकी दुरन्त मायामें चित्त मोहित रहनेके कारण आपके रचे विश्वका भी तत्त्व नहीं जानते (आपका तत्त्व जाननेकी बात तो सुदूरपराहत है)। जब उत्तम सृष्टिमें उपजे हुए हम लोग जाननेमें असमर्थ हैं तब दैत्य मनुष्यआदि जीवगण, जो रजोगुण व तमोगुणसे उत्पन्न हैं, कैसे जान सक्ते हैं? उनकी प्रवृत्ति तो सदा राजसी व तामसी ही रहती है ॥१०॥ आप, प्राणियोंकी चेष्टा, इस विश्वकी उत्पत्ति स्थिति और विनाश एवं संसार, बन्धन व मोक्ष, सब जानते हैं। वायु जैसे चर और अचर शरीरसमूहोंमें एवं आकाश(शून्य)में व्याप्त है, वैसे ही आप भी आत्मस्वरूपसे सम्पूर्ण चराचर जगत्‌में व्याप्त हो रहे हैं; आप ज्ञानस्वरूप हैं, सुतरां सबके आत्मा हैं ॥ ११ ॥ गुणगणमें रमण करते हुए आप जिन २ रूपोंसे समय २ पर जगत्‌में अवतीर्ण हुए हैं उन सब अवतारोंको मैंने देखा है; अतएव आपने अभी जो

स्त्रीशरीर धारण किया है वह भी देखनेकी इच्छा करता हूँ ॥ १२ ॥ आपने जिस रूपसे दैत्यदलको मोहित करके देवतोंको अमृतपान कराया है वही मोहिनी-स्वरूप देखनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ; वह रूप देखनेके लिये मुझको बड़ा ही कौतूहल है ॥ १३ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** शंकर भगवान्‌की यह प्रार्थना सुन कर मंदमुसकानसे हृदयका गंभीर भाव प्रकट करते हुए भगवान् नारायणने कहा ॥ १४ ॥ "भगवन्! अमृतका कलश दानवगण छीन ले गये तब मैंने देखा कि स्त्रीरूप धारण करनेसे देवगणका 'अमृतलाभ'रूप कार्य्य सिद्ध होगा। अतएव दानवोंके हृदयमें कौतूहल उत्पन्न करनेके लिये ही मैंने मोहिनीरूप धारण किया था। हे देवदेव! आप उसको देखना चाहते हैं, अतएव मैं आपको वह रूप दिखाऊँगा। वह रूप कामोद्दीपन करनेवाला है, अतएव कामी जनोंके लिये बड़े ही आदरकी वस्तु है ॥ १५ ॥ १६ ॥ **शुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! इतना कह कर देखते ही देखते भगवान् हरि वहाँसे अदृश्य हो गये। पार्वतीदेवीसहित महेश्वर शंकर चकितभावसे इधर उधर देखने लगे। क्षण भरके बाद महेश्वरने देख पाया कि विचित्र फूल, फल व रक्तवर्ण नवपल्लवआदि-से सुशोभित उपवनमें एक परम सुन्दरी कामिनी गेंद उछाल २ कर क्रीड़ा कर रही है। उसके दुकूल द्वारा आवृत नितम्बोंमें सुवर्णकी मेखला (कर्धनी) पड़ी है ॥ १७ ॥ १८ ॥ गेंद उछालने और रोकनेमें उस ललनाका लवंगलतातुल्य ललित सुकुमार शरीर हिलता है और उससे उसके पीन पयोधर कम्पायमान हो कर देखनेवालेके चित्तको चञ्चल करते हैं। दोनो स्तन, उत्तम माला और ऊरुओंके भारसे पग २ पर उसकी क्षीण कटि मानो टूटने चाहती है। वह सुन्दरी इसी भाँति चलते २ एक स्थानसे अन्यस्थानपर्यन्त प्रबालसदृश अरुण चरणोंको ले जाती है ॥ १९ ॥ गेंद अनेक ओर भ्रमण करता है, अतएव उस सुन्दरीके कमनीय नयनतारा उसके पीछे २ चञ्चल भावसे भ्रमण करते हैं। सुन्दर दोनो कानोंमें कनकके कुण्डल शोभा पाते हैं और उनकी झलक पड़नेसे गोल २ अनमोल सुडौल कपोलोंकी कान्ति और भी अधिक मनोहर देख पड़ती है। दोनो कमनीय कपोल और बिखरी हुई अलकोंसे मञ्जुल मुखमण्डल अलंकृत हो रहा है ॥ २० ॥ उसका दुकूल और वेणी शिथिल हो पड़ी है, उनको मनोहर बाएँ हाथसे सँभालती हुई मोहिनी, दूसरे हाथसे गेंदको उछाल कर व रोक कर अपनी मायासे जगत्‌को मोहित कर रही है ॥ २१ ॥ वह विनोदमें तत्पर मोहिनी, लज्जायुक्त मृदुल मंद मुसकानके साथ कुटिल कटाक्षवाण छोड़ रही है। देवदेव महादेव उसके उन्हीं कटाक्षोंकी विषम चोट खा कर हतबुद्धि हो गये। शिवजी एकटक उसी कामिनीकी ओर देखने लगे और वह भी इनकी ओर कटाक्षपात करने लगी; उससे वृषभवाहन नीलकण्ठजी ऐसे विह्वल हो गये कि उनको अपनी, पास ही उपस्थित गौरीकी एवं प्रमथगणकी भी सुधि नहीं रही ॥ २२ ॥ एक बार उस कामिनीकी थपकीसे वह

गेंद दूर चला गया और वह उसको रोकनेके लिये दौड़ी; इसी अवसरमें वायुने काञ्चनकी काञ्चीसहित उसका सूक्ष्म वस्त्र उड़ा दिया। महेश्वर देव एकटक उसी ओर ताक रहे थे, इस कारण यह व्यापार उन्होने देखा ॥ २३ ॥ रुचिर अपांग (नेत्रके प्रान्तभाग) वाली उस मनोरम और दर्शनीय सुन्दरीने तिर्छी चितवनसे देख कर महेश्वरका ज्ञान हर लिया और भगवान् भवानीपतिका चित्त उस पर अत्यन्त आसक्त हो गया। दारुण कामदेवके वाणोंसे पीड़ित शंकर, भवानीके आगे भी, लज्जा त्याग कर मोहिनीकी ओर दौड़े ॥ २४ ॥ २५ ॥ उस समय वस्त्र उड़ जानेसे कामिनी नग्न थी, अतएव शिवको अपनी ओर आते देख कर अत्यन्त लज्जित हुई, तथापि हँसते २ वृक्षोंकी आड़में हो कर भागी ॥ २६ ॥ भगवान् शंकरकी इन्द्रियाँ उन्मत्त हो उठीं एवं वह कामदेवके वशीभूत हो कर गजराज जैसे हथनीके पीछे दौड़े उस भाँति उस सर्वांगसुन्दरी नारीके पीछे पीछे दौड़ते चले ॥ २७ ॥ बहुत वेगसे अनुगमन करके अन्तको उसके पास पहुँच गये। शिवजीने उस स्त्रीकी इच्छा न होने पर भी पीछेसे वेणी पकड़ कर रोक लिया और दोनो वाहुओंसे वलपूर्वक हृदयसे लगा लिया ॥ २८ ॥ हाथी जैसे हथनीका आलिंगन करे उस प्रकार शिवने मोहिनीको हृदयसे लगा लिया। मोहिनी अपनेको छुड़ानेके लिये बल करने लगी और उसकी वेणी इस बलप्रयोगमें खुल गई ॥ २९ ॥ महाराज! तदनन्तर देवदेव शंकरके दोनो हाथोंके बीचसे अपनेको छुड़ा कर वह नारायणनिर्मिता विशालनितम्बवती माया (मोहिनी) फिर भागी ॥ ३० ॥ कामदेवने पूर्ववैरका स्मरण करके ही मानो शिवजीको इस समय परास्त किया! महादेवजी भी कामके वशीभूत हो कर विचित्र कीर्तिवाले भगवान्के मायामय मोहिनीरूपके पीछे २ दौड़ने लगे ॥ ३१ ॥ अनुगमन करते २ ऋतुमती हथनीके अनुगामी हाथीकी भाँति, अमोघवीर्य महादेवका वीर्य स्खलित होने लगा ॥ ३२ ॥ राजन्! महात्मा रुद्रका वीर्य जहाँ २ पृथ्वी पर गिरा वे ही स्थान सोने और चाँदीके आकर (खनियाँ) हो गये ॥ ३३ ॥ नदी, सरोवर, पर्वत, वन, उपवन एवं जिन २ स्थानोंमें ऋषिगण वास करते थे उन सभी स्थानोंमें मोहिनीका पीछा करते हुए महादेवजी गये ॥ ३४ ॥ वीर्य स्खलित होने पर शिवजीको स्मरण हुआ कि ईश्वरकी मायाने उनको जड़ बना दिया है; उसी समय उनका मोह निवृत्त होगया ॥३५॥ शिवजी, जगत्के आत्मा और अविज्ञेयवीर्य नारायणकी महिमा जानते थे, अतएव उनकी मायाके निकट परास्त होना उनको कुछ विचित्र न जान पड़ा। महाराज! महादेवजी लज्जित वा अप्रतिभ नहीं हुए; यह देख कर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक नारायणने (अपनी पुरुष-आकृति फिर प्रकट करके) यों कहा कि ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ "हे देवश्रेष्ठ! आप मेरी स्त्रीरूपधारिणी मायामें अपनी इच्छासे ही मोहित हुए। यह बड़े ही सौभाग्यका विषय है कि इस समय आप प्रकृतिस्थ हो कर स्थिरचित्त हो गये हैं। आपके सिवा और कौन

व्यक्ति, एक बार वशीभूत हो कर, फिर अनेक हाव भाव प्रकट करनेवाली और अजितेन्द्रिय पुरुषोंके द्वारा अपरिहार्य्य मेरी प्रबल मायाको एकदम छोड़ कर प्रकृतिस्थ और सुस्थिर हो सक्ता है? अबसे वह माया, सृष्टि आदिका सूक्ष्म कारण जो कालस्वरूप मैं हूँ उसके साथ रजःप्रभृति अंशोंसे सम्मिलित हो कर अर्थात् मेरे ही अधीन हो कर और कभी आपको न परास्त कर सकेगी" ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन्! श्रीवत्स-विभूषित भगवान्के द्वारा इस प्रकार प्रशंसा और सत्कार पा कर शिवजीने उनकी प्रदक्षिणा की एवं उमा व पार्षदगण सहित अपने स्थानको प्रस्थान किया ॥ ४१ ॥ हे भारत! तदनन्तर महादेवजी, अपने अंशसे उत्पन्न उस मायाके विषय-में मुख्य २ ऋषियोंके आगे प्रीतिपूर्वक पार्वती देवीसे यों कहने लगे ॥ ४२ ॥ कि—"हे प्रिये! जन्मरहित परमदेव परमपुरुषकी माया तुमने देखी! मैं सब मायाओंका अधीश्वर हो कर भी इस प्रबल मायामें मोहित होगया; अतएव जिनका चित्त व इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं वे उसके वशीभूत हों तो कौन सी आश्चर्यकी बात है! ॥ ४३ ॥ मैं जब सहस्र वर्ष तक योग करके समाधिसे निवृत्त हुआ था तब तुमने जिन परमपुरुषके विषयमें प्रश्न किया था, यह नारायण वही साक्षात् परम पुरुष हैं। काल अथवा वेद, इन भगवान्की महिमाका निर्णय नहीं कर सक्ते" ॥४४॥ श्रीशुकदेवजीने कहा । हे वत्स! जिन शार्ङ्गधनुपधारी हरिने समुद्र मथनेके समय महान् मन्दर पर्वतको पीठ पर धारण किया, उनका बलविक्रम मैंने तुम्हारे निकट वर्णन किया ॥ ४५ ॥ जो लोग वारंवार इसको पढ़ते और सुनते हैं उनका उद्यम कभी विफल नहीं होता, क्यों कि उत्तमश्लोक भगवान्के गुणोंका कीर्तन संपूर्ण सांसारिक क्लेशोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ४६ ॥

असदविषयमङ्घ्रिं भावगम्यं प्रपन्ना-
नमृतममरवर्यानाशयत्सिन्धुमथ्यम् ॥
कपटयुवतिवेषो मोहयन्यः सुरारीं-
स्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि ॥ ४७ ॥

असज्जन जिसको नहीं पा सक्ते, केवल भक्तिसे ही जो मिल सक्ती है—उसी हरिचरणनौकाका आश्रय देवगणने लिया था। इसी कारण भगवान्ने सुन्दर मोहिनीवेष धारण करके दानवदलको मोहित किया और देवगणको समुद्रम-थनसे प्राप्त अमृत पिलाया। मैं उन्ही भक्तवत्सल भगवान्को भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। वह जगदीश्वर अपने आश्रित जनोंकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं ॥ ४७ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय ।

वैवस्वत आदि मन्वन्तरोंके विवरणका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच—मनुर्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः ॥
सप्तमो वर्तमानो यस्तदपत्यानि मे शृणु ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले । हे राजन्! सूर्यदेवके पुत्र श्राद्धदेव नाम सातवें मनु इस समय वर्तमान हैं । उनके सन्तानोंका विवरण मुझसे सुनो ॥ १ ॥ इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट, कारूष, पृषध्र और वसुमान्-ये दश वैवस्वत (श्राद्धदेव) मनुके पुत्र हुए ॥ २ ॥ ३ ॥ वैवस्वत मन्वन्तरमें आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, अश्विनीकुमार एवं ऋभुगण नामक देवता हैं और इनके स्वामी पुरन्दर नामक इन्द्र हैं ॥ ४ ॥ कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज; ये सप्तऋषि हैं ॥ ५ ॥ इस मन्वन्तरमें भी कश्यपके वीर्यसे अदितिके गर्भसे भगवान्का वामन अवतार हुआ है । वामनजी अदितिके सब पुत्रोंमें छोटे हैं ॥ ६ ॥ मैंने संक्षेपसे ये सातो मन्वन्तर तुमसे कहे हैं; अब आगे होनेवाले सात मन्वन्तरोंका विवरण सुनो । इन सब मन्वन्तरोंमें विष्णुकी शक्ति व्याप्त है ॥ ७ ॥ सूर्यकी संज्ञा और छाया नाम दो स्त्रियाँ थीं, दोनो ही विश्वकर्माकी कन्या थीं; इनका वृत्तान्त हम तुमसे कह चुके हैं ॥ ८ ॥ कोई २ सूर्यकी एक और (तीसरी) बड़वा नाम भार्या बतलाते हैं, किन्तु मेरे मतमें संज्ञाने ही बड़वा (घोड़ी) का रूप धारण किया था, इस कारण उसीका नामान्तर बड़वा है । संज्ञाके यमराज, श्राद्धदेव मनु और यमुना नाम कन्या हुई । अब दूसरी स्त्री छायाके जितने सन्तान हुए सो सुनो ॥९॥ छायाके सावर्णि नाम मनु, शनैश्चर और तपती नाम कन्या हुई । तपतीका विवाह राजा सम्वरणके साथ हुआ । बड़वाके अश्विनी-कुमार नाम दो पुत्र हुए । राजन्! इसके बाद आठवें मन्वन्तरमें सावर्णि नाम मनु होंगे । उनके निर्मोक और विरजस्क आदि पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें सुतपा, विरज, अमृतप्रभ नाम देवगण और उनके स्वामी इन्द्रका पद विरोचनके पुत्र राजा बलिको प्राप्त होगा । बलिराजा तीन पग पृथ्वी माँग रहे हरिको सम्पूर्ण त्रिलोकी दे कर प्रसन्न करेंगे और सप्तम मन्वन्तरमें मिले हुए इन्द्रपदको त्याग कर भगवान्के प्रसादसे पीछे सिद्धकाम हो जायँगे ॥ ९ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ पहले परीक्षा करनेके लिये भगवान् वामनने बलिको बँधवा दिया, किन्तु उनकी धर्मनिष्ठा देख कर फिर प्रसन्न हुए और उनको सुतल लोकमें भेज दिया । अब राजा बलि वहाँ इन्द्रके समान वैभवसे वास करते हैं । वह लोक स्वर्गसे भी अधिक शोभायुक्त और ऐश्वर्यपूर्ण है ॥ १४ ॥ इस अष्टम मन्वन्तरमें गालव, दीप्तिमान्, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, ऋष्यशृंग

और हमारे पिता भगवान् बादरायण वेदव्यास, ये सप्तऋषि होंगे; जो कि इस समय अपने २ आश्रमोंमें तप कर रहे हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ राजन्! इसी सावर्णि मन्वन्तरमें देवगुह्यके वीर्य द्वारा सरस्वतीके गर्भमें सार्वभौम नाम हरिका अवतार होगा। ईश्वरका अंश परम प्रतापी सार्वभौमजी बलपूर्वक पुरन्दरसे स्वर्गका राज्य लेकर राजा बलिको देंगे ॥ १७ ॥ नवम मनु दक्षसावर्णि होंगे। वह वरुणके पुत्र होंगे। उनके श्रुतकेतु और दीप्तकेतु आदिक पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें पार और मरीचिगर्भ आदिक देवता एवं अद्भुत नाम इन्द्र तथा द्युतिमान् आदि सप्तऋषि होंगे ॥ १८ ॥ १९ ॥ इस मन्वन्तरमें आयुष्मान्के वीर्य द्वारा अम्बुधाराके गर्भसे ऋषभ नाम परम प्रसिद्ध नारायणका अवतार होगा। भगवान् ऋषभजी अपने बाहुबलसे अद्भुतनाम इन्द्रको सर्वसमृद्धिसम्पन्न त्रिभुवनके राज्यका भोग करावेंगे ॥ २० ॥ दशम मनु उपश्लोकके पुत्र ब्रह्मसावर्णि होंगे। उनके पुत्र भूरिषेण आदि होंगे। इस मन्वन्तरमें हविष्मान्, सुकृत, सत्य, जय और मूर्ति आदि सप्तऋषि और सुवासन, अविरुद्ध आदि देवगण एवं उनके स्वामी शंभुनाम इन्द्र होंगे। इस मन्वन्तरमें भी विश्वस्रष्टागणके गृहमें विषूचीके गर्भसे विष्वक्सेन नाम भगवान्का अंशांशावतार होगा। विष्वक्सेनसे और शंभु इन्द्रसे परस्पर मित्रता होगी ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ ग्यारहवें मनु आत्मज्ञानी धर्मसावर्णि होंगे, उनके सत्यधर्म्म आदि दश पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें विहंगम, कालगम और निर्वाणरुचिनामक देवगण और उनके स्वामी वैधृत नाम इन्द्र एवं अरुण आदिक सप्तऋषि होंगे। आर्य्यकके वीर्यसे वैधृताके गर्भमें धर्म्मसेतु नाम हरिका अंशावतार होगा। धर्म्मसेतु हरि धर्म्मकी मर्यादा सहित त्रिलोकीका पालन करेंगे ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ बारहवें मनु रुद्रसावर्णि होंगे। देववान्, उपदेव और देवश्रेष्ठ आदि उनके पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें ऋतधामा इन्द्र, हरित् आदि देवगण एवं तपस्वी आग्नीध्रक आदि सप्तऋषि होंगे। सत्यसह विप्रकी सूनृता नाम स्त्रीके गर्भसे स्वधामा नाम नारायणका अंशावतार होगा। स्वधामा देवके जन्मसे यह मन्वन्तर बहुत ही प्रसिद्ध होगा ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ ३० ॥ तेरहवें देवसावर्णि नाम मनु होंगे। देवसावर्णिके चित्रसेन और विचित्र आदि पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें सुकर्मा और सुत्रामा नाम देवगण एवं उनके स्वामी दिवस्पति नाम इन्द्र तथा निर्मोक व तत्त्वदर्शी आदि सप्तऋषि होंगे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इस मन्वन्तरमें योगेश्वर देवहोत्रके वीर्य द्वारा बृहतीके गर्भसे अमूर्ति नाम हरिका अंशावतार होगा, जिसके द्वारा उस समयके दिवस्पति नाम इन्द्रकी सब कामनाएँ सिद्ध होंगी ॥ ३३ ॥ चौदहवें मनुका नाम इन्द्रसावर्णि होगा। उरु, गंभीर और ब्रध्न आदि इनके पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें पवित्र और चाक्षुष आदिक देवगण और उनके स्वामी शुचि नाम इन्द्र एवं अग्निबाहु,

शुचि, शुद्ध और मागध आदि सप्तऋषि होंगे। इस मन्वन्तरमें सत्रायणके वीर्य द्वारा विनताके गर्भसे बृहद्भानु नाम हरिका अवतार होगा। बृहद्भानु देव महाराजोंके से महा उद्यम करेंगे (अर्थात् विशेपरूपसे नीतिनियम करेंगे) ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

चतुर्दशमनूनां च कथां यः कीर्तयेन्नरः ॥
शृणुयाद्वापि राजेन्द्र तस्य विष्णुः प्रसीदति ॥ ३७ ॥

हे महाराज ! ये भूत, भविष्य और वर्तमान चौदहो मनु हमने तुमसे वर्णन किये। ये चौदह मनु सहस्र युग पर्यन्त भोग करेंगे। सहस्र युग हो जाने पर एक कल्प पूर्ण होगा ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दश अध्याय।

मनु आदिके कर्मोंका भिन्न भिन्न विवरण ।

राजोवाच–मन्वन्तरेषु भगवन्यथा मन्वादयस्त्विमे ॥
यस्मिन्कर्मणि ये येन नियुक्तास्तद्वदस्व मे ॥ १ ॥

राजा परीक्षित् बोले। भगवन्! पूर्वोक्त मनु, और इन्द्र आदि सब, भिन्न २ मन्वन्तरमें, जो, जिस प्रकार, जिसके द्वारा, जिस कार्यमें प्रवृत्त होता है सो सब हमसे आप वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ **श्रीशुकदेवजी बोले**। राजन्! मनुगण, मनुपुत्रगण, सप्तर्षिगण, इन्द्रगण और देवगण–सब उसी परमपुरुष नारायणके आज्ञाकारी अनुगत हैं। जिन यज्ञ आदि ईश्वरके अवतारोंका पहले वर्णन कर चुके हैं वे समय २ पर प्रकट हो कर मनुगणको जगत्का कार्य निबाहनेमें प्रोत्साहित करते हैं और उनकी प्रेरणा व आज्ञाके अनुसार मनुगण जगत्का रक्षणावेक्षण करते हैं। चार युगके अन्तमें काल पाकर जब श्रुतियोंका लोप हो जाता है तब सप्तर्पिगण अपने तपोवलसे फिर उनको प्राप्त कर प्रकट करते हैं। उन श्रुतियोंसे ही सनातनधर्म्म आज तक चला आता है, लुप्त नहीं हुआ। मनुगण, नारायणकी आज्ञाके अनुसार अपने २ समयमें पृथ्वीमण्डल पर यथाशक्य पूर्ण अखण्ड धर्म्मका प्रचार करते रहते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ मनुके सब पुत्र एवं स्वर्ग और पृथ्वी प्रभृतिके कर्म्मलिप्त अधिवासियों सहित यज्ञभोजी देवगण पुत्रपौत्रादिक्रमसे युगान्तपर्यन्त प्रजापालन करते रहते हैं ॥ ६ ॥ देवराज इन्द्र भगवान्के दिये हुए त्रिभुवनके ऐश्वर्यका भोग करते हुए त्रिभुवनका पालन और यथासमय वर्षा करते हैं ॥ ७ ॥ हरि भगवान् प्रत्येक युगमें

सनकादि सिद्ध-रूप धारण करके ज्ञानका और याज्ञवल्क्यादि ऋषिरूपसे कर्मका एवं दत्तात्रेय आदि योगेश्वररूपसे योगका उपदेश करते रहते हैं ॥ ८ ॥ भगवान् मरीचि आदिके रूपसे सृष्टि करते हैं, राजाके रूपसे दस्युगणका वध करते हैं एवं कालके रूपसे शीत उष्ण आदि विविध गुण धारण करके सम्पूर्ण संसारका संहार कर देते हैं ॥ ९ ॥ नाम-रूप-मयी मायाके द्वारा विमोहित ये मनुष्यगण अनेक शास्त्रोंसे उनकी स्तुति अर्थात् निरूपण करते हैं, किन्तु देख नहीं पाते ॥ १० ॥

एतत्कल्पविकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् ॥
यत्र मन्वन्तराण्याहुश्चतुर्दश पुराविदः ॥ ११ ॥

राजन्! कल्प और विकल्पका यह परिमाण हमने तुमसे कहा । पुरावृत्त जाननेवाले जन इतने ही समयमें चौदह मन्वन्तरोंका निर्देश करते हैं (अर्थात् एक कल्पमें चौदह विकल्प होते हैं) ॥ ११ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पंचदश अध्याय ।

वलिका स्वर्गविजय ।

राजोवाच—वलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद्धरिरयाचत ॥
भूत्वेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबन्ध तम् ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा । ब्रह्मन्! हरिने परमेश्वर हो कर भी किस लिये दीन जनोंकी भाँति राजा वलिसे तीन पग पृथ्वी माँगी? और फिर माँगी हुई पृथ्वी पा कर भी किस लिये राजा वलिको बँधवाया? ॥ १ ॥ यह वृत्तान्त हम जानना चाहते हैं। पूर्ण ब्रह्म ईश्वरकी भिक्षा और निर्दोष वलिका बन्धन, इन दोनो अद्भुत विषयोंके जाननेके लिये हमको बड़ा ही कौतूहल है ॥ २ ॥ **श्री शुकदेवजीने कहा ।** इन्द्रने राजा वलिको मार कर उनकी राज्यलक्ष्मी हर ली, किन्तु शुक्राचार्यके अनुग्रहसे दैत्यपतिने फिर जीवनलाभ किया । तदनन्तर परम उदार राजा वलि, भृगुकुलके शिष्य हो कर, धनदानपूर्वक, मन वाणी और शरीरसे उन (शुक्रादि भृगुवंशियों) की उपासना करने लगे ॥ ३ ॥ महाप्रभाव भृगुवंशीय ब्राह्मणगणने स्वर्गजयाभिलाषी वलिका विधिपूर्वक महाभिषेक किया और उनके द्वारा विश्वजित् नाम महायज्ञका अनुष्ठान कराया ॥ ४ ॥ उस यज्ञमें हव्यकी आहुति देने पर अग्निकुण्डसे सुवर्णमण्डित एक रथ, इन्द्रके अश्वोंके समान हरिद्वर्ण कई एक घोड़े, सिंहके चिह्नसे युक्त ध्वजा, काञ्चनालं-

कृत धनुष, अक्षय वाणपूर्ण दो तूणीर एवं दिव्य कवच प्रकट हुआ। वलिने यह सब युद्धकी सामग्री पाई, तब उनके पितामह प्रह्लादने उनको एक ऐसी माला—जिसके फूल कभी मलीन नहीं होते, और शुक्राचार्य्यने एक शंख दिया ॥ ५ ॥ ६ ॥ ब्राह्मणोंने दैत्यपतिको इस प्रकार तपोबलसञ्चित युद्धसज्जासे सज्जित करके स्वस्त्ययन पाठ किया, तब वलिने उनको प्रणाम किया और प्रदक्षिणा की, तदनन्तर अपने पितामह प्रह्लादको सादरसम्भाषणसहित प्रणाम किया ॥ ७ ॥ फिर महारथी वलिने गलेमें माला धारण करके भृगुप्रदत्त दिव्य रथ पर आरूढ़ हो कवच धारण किया एवं धनुष, खड्ग और तूणीर ग्रहण किये ॥ ८ ॥ सुवर्णके अंगद उनकी भुजाओंमें शोभा पाने लगे एवं मकराकृत कुण्डलोंकी कान्ति कपोलों पर पड़ कर सोहावनी हो गई। इस प्रकार रथ पर आरूढ़ दैत्यराज वलि, कुण्डमें स्थित प्रज्वलित अग्निके समान शोभायमान हुए ॥ ९ ॥ आयु, बल एवं ऐश्वर्य्यमें उन्हीके समकक्ष दैत्ययूथपतिगणने वलिको चारो ओरसे घेर लिया। वे मानो दृष्टिसे आकाशमण्डलको पान कर डालेंगे और दिशाओंको भस्म कर देंगे—ऐसा प्रतीत होने लगा। इस प्रकार दैत्ययूथपपरिवृत महावली राजा वलिने वहुत सी दैत्यसेना साथ ले कर स्वर्ग और पृथ्वीको कम्पायमान करते हुए सुसमृद्ध इन्द्रपुरीकी ओर यात्रा की ॥ १० ॥ ११ ॥ नन्दन आदि सुन्दर उपवनोंसे इन्द्रपुरीकी शोभा वहुत ही रमणीय जान पड़ती है। उन सव उपवनोंमें लगे हुए दिव्य वृक्षोंकी शाखाएँ प्रवाल, फल और फूलोंके भारसे झुकी रहती हैं। उन डालोंमें बैठे हुए पक्षियोंके जोड़े मधुर कलरव करते हैं और भ्रमरगण गुंजार करते हुए इधर उधर भ्रमण करते हैं। वहाँ हंस, सारस, चक्रवाक और कारण्डव आदि पक्षियोंके झुंडोंसे सुशोभित अनेकानेक सरोवर हैं; सुरसेविता अप्सराएँ उनके स्वच्छ जलमें केलि किया करती हैं। आकाशगंगा इन्द्रपुरीको परिखा(खाई)के रूपसे चारो ओर घेरे हुए हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ सुवर्णका प्राकार (चहारदीवारी) इन्द्रपुरीके चारो ओर बना हुआ है। उस प्राकार पर अतीव उन्नत युद्ध करनेके स्थान बने हुए हैं। पुरद्वारोंके कपाट सुवर्णमय हैं एवं गोपुर सव स्फटिकनिर्मित हैं। राजमार्गोंका उत्तमरूपसे विभाग किया हुआ है। वह इन्द्रपुरी विश्वकर्म्माकी बनाई हुई है। उसमें अनेकानेक उपवेशनस्थान (सभा), प्राङ्गण, उपमार्ग (छोटी गलियाँ), कोटि २ विमान, चतुष्पथ (चौराहे) एवं हीरे और विद्रुमकी बनी हुई वेदियाँ शोभा पाती हैं। वहाँकी स्त्रियोंका यौवन और सुकुमारता चिरकाल तक समभावसे रहती है; वे स्त्रियाँ निर्म्मल वस्त्र धारण किये हुए अग्निके समान प्रभापूर्ण रहती हैं। उन रूपवती स्त्रियोंकी अवस्था सोलह सत्रह वर्षकी रहती है ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ वहाँके मार्गोंमें सुरललनाओंके केशपाशोंसे गिरे हुए सुगन्धित माल्यपुष्पोंकी

सुगंधसे युक्त वायु मृदुमंदभावसे डोला करता है ॥ १८ ॥ स्वर्णमय गवाक्षों (झरोखों)से पाण्डुरवर्ण, अगुरुगंधयुक्त धूमजाल निकल कर सब मार्गोंको छा लेता है। सुरसुन्दरियाँ उन्ही सुगंधित मार्गोंसे अभिसार-यात्रा करती हैं ॥ १९ ॥ वह इन्द्रपुरी—मुक्तामण्डित चन्द्रातप (चँदोवे), मणिमय और स्वर्णमय ध्वजदण्ड एवं विविध पताका आदिसे सुशोभित बहुविध विमानोंके अग्रभागोंसे व्याप्त हो रही है। मयूर, कपोत (कबूतर) एवं भ्रमरगण पुरीमें मनोहर शब्द करते हैं। विमानवासी देवगणकी कामिनियाँ मधुर रवसे गान करके पुरीके मङ्गलका सम्पादन करती हैं। मृदङ्ग, शंख, पटह और दुंदुभीके शब्दसे और तालयुक्त वीणा, मुरज, एवं वंशीकी ध्वनिसे तथा गंधर्वगणके नाचने, गाने और बजानेसे—इन्द्रपुरी, बहुत ही मनको रमानेवाली रहती है। उसकी अपूर्व प्रभाके आगे साक्षात् प्रभाकी अधिष्ठात्री देवताको भी हार माननी पड़ती है। वहाँ अधर्म्मी, दुष्ट, प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले (अर्थात् प्राणियोंसे द्रोह करनेवाले), शठ, मानी, और लोभी नहीं जा सक्ते। उक्त दोषोंसे रहित लोग ही वहाँ जाते हैं। दैत्यसेनाके अधिपति राजा बलिने देवगणकी राजधानी(अमरावती)को चारो ओरसे घेर लिया और उसके बहिर्भागमें अवस्थित हो कर शुक्राचार्यका दिया हुआ गंभीरनादकारी महाशंख बजाया; जिसका शब्द सुन कर देवाङ्गनाओंके हृदयोंमें यकायक भयका सञ्चार हुआ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ राजन्! राजा बलिके इस परम उद्यमको जान कर देवगणसहित पुरन्दर इन्द्रने अपने गुरु बृहस्पतिके निकट जा कर कहा कि-"हे भगवन्! हमारे पूर्ववैरी बलिका अबकी बार बड़ा भारी उद्यम देख पड़ता है। जान पड़ता है इसके प्रचण्ड तेजको हम नहीं सह सक्ते (अर्थात् सामना नहीं कर सक्ते)। गुरुवर! किस कारणसे इसका तेज इस प्रकार वृद्धिको प्राप्त हुआ है? ॥ २४ ॥ २५ ॥ मैं अनुमान करता हूँ कि इस समय कोई भी इस दैत्यका सामना नहीं कर सक्ता और न इसके महान् उद्यमको ही विफल कर सक्ता है। यह दैत्य प्रलयकालके अग्निके समान प्रचण्ड और असह्य हो रहा है। मानो मुखसे इस विश्वको पी जायगा, जिह्वासे दश दिशाओंको चाट जायगा एवं नेत्रोंसे त्रिलोकीको भस्म कर देगा। जिस कारण मेरा शत्रु ऐसा दुर्द्धर्ष हो उठा है एवं जिस प्रकार इसके इन्द्रियबल, देहबल, पराक्रम और परम-उद्यमकी वृद्धि हुई है सो आप मुझसे वर्णन कीजिये"। ॥ २६ ॥२७॥ श्रीबृहस्पतिजीने कहा। "हे पुरन्दर! जिस कारणसे तुम्हारे वैरीका प्रताप बढ़ा है सो मैं भली भाँति जानता हूँ। ब्रह्मवादी भृगुवंशीय शुक्र आदि मुनिगणकी कृपा और स्नेहसे इसके तेजकी इतनी उन्नति हुई है ॥ २८ ॥ हरि भगवान्के सिवा तुम या तुम्हारे समान प्रभावशाली अन्य व्यक्ति, कोई भी, इस समय महाबली बलिको परास्त नहीं कर सक्ता। ब्रह्मतेजसे इसके बलकी वृद्धि हुई है;

अतएव कोई भी इसको नहीं जीत सक्ता। लोग जैसे कराल कालके सामने नहीं ठहर सक्के वैसे ही वलिके आगे भी ठहरना अशक्य है ॥ २९ ॥ इस समय युक्ति यही है कि तुम सब अपने निलय स्वर्गको छोड़ कर अलक्ष्य-भावसे छिप कर रहो और शत्रुकी अवनतिके समयकी प्रतीक्षा करो ॥ ३० ॥ इस समय इसका विक्रम वृद्धि पर है और ब्राह्मणोंकी कृपासे और भी वढ़ेगा; किन्तु जिनकी कृपासे और अनुकूल होनेसे इसकी उन्नति हुई है-अन्तमें उन्ही ब्राह्मणोंका कहा न माननेसे इसका वंश-सहित विनाश (राज्यनाश) होगा" ॥ २१ ॥ कार्यदर्शी गुरुने सुमन्त्रणापूर्वक इस प्रकार कर्त्तव्य स्थिर करके सत्परामर्श (उत्तम सलाह) दिया। तब कामरूपी देवगण उसे मान कर स्वर्गको छोड़ अदृश्य हो गये ॥ ३२ ॥ जब देवगणसहित इन्द्र पुरी छोड़ कर चले गये तब राजा वलिने देवशून्य पुरी पर अधिकार कर लिया एवं त्रिभुवनको अपने वशमें करके उसका शासन करने लगे ॥ ३३ ॥ शिष्यवत्सल भृगुगणने विश्वविजयी और वशम्वद वलिसे एक सौ अश्वमेध यज्ञ कराये। महाउदार वलि सौ अश्वमेधके प्रभावसे दश दिशाओंमें कीर्त्ति फैला कर नक्षत्रपति चन्द्रमाके समान शोभाको प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

बुभुजे च श्रियं स्वृद्धां द्विजदेवोपलम्भिताम् ॥
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामनाः ॥ ३६ ॥

वह अपनेको कृतकृत्य मान कर बाहुबलसञ्चित तथा ब्राह्मणोंके प्रसादसे प्राप्त राज्यविभवका भोग करने लगे ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडश अध्याय।

अदितिको कश्यपकृत पयोव्रतका उपदेश।

श्रीशुक उवाच—एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमाताऽदितिस्तदा ॥
हृते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्यतप्यदनाथवत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! जब देवगण इस प्रकार अलक्ष्य-भावसे इधर उधर रहने लगे और स्वर्गका राज्य दैत्यगणने छीन लिया तब देवी अदिति अनाथोंकी भाँति विलाप करने लगीं ॥ १ ॥ इसी अवसरमें उनके पति प्रजापति कश्यपजी, वहुत दिनके वाद समाधि त्यागने पर उनके उत्सव और आनन्दसे शून्य आश्रम (भवन) में आये ॥ २ ॥ स्त्रीके द्वारा भली भाँति सम्मानित और यथाविधि पूजित कश्यप ऋषि आसन पर बैठे और अदितिको उदासीन व मलीन-

मुखी देख कर कहने लगे कि "हे भद्रे! लोकमें धर्म, ब्राह्मण या मृत्युके वशवर्त्ती लोगोंके लिये कोई अशुभ घटना तो नहीं हुई? हे सती गृहिणी! गृहस्थ लोग योगी न हो कर भी जिस गृहाश्रममें रह कर स्वधर्माचरणके द्वारा योगके फल (मुक्ति) को पाते हैं उस गृहाश्रममें धर्म, अर्थ एवं कामका तो कोई अमङ्गल नहीं हुआ? ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ अथवा तुम कुटुम्बके कार्यमें लगी रहीं और किसी दिन कोई अतिथि द्वार पर आकर बिना पूजा पाये विमुख तो नहीं लौट गया? ॥ ६ ॥ जिन घरोंमें जलसे भी अतिथिगणका सत्कार नहीं होता और वे वैसे ही लौट जाते हैं उन घरोंको निश्चय ही शृगालबिवरतुल्य अमङ्गल और विफल कहना चाहिये ॥ ७ ॥ हे भद्रे! मैं प्रवासमें था, अतएव तुम्हारा मन उद्विग्न रहता होगा; इसी कारण तुम किसी दिन यथासमय अग्निहोत्र करना तो नहीं भूल गईं? ॥ ८ ॥ गृहस्थ लोग अग्निहोत्र करके सब कामना पूर्ण करनेवाले लोकोंको प्राप्त होते हैं; ब्राह्मण और अग्नि, ये दोनो सर्वव्यापक विष्णुके मुख हैं ॥ ९ ॥ हे उदारमनवाली प्रिये! तुम्हारे पुत्रगण तो कुशलसे हैं? अनेक चिन्ह देख कर मुझे जान पड़ता है कि तुम्हारा अन्तःकरण स्वस्थ नहीं है" ॥ १० ॥ अदितिने कहा। ब्रह्मन्! गो, ब्राह्मण, धर्म एवं सम्पूर्ण लोकोंका मङ्गल है। मेरा यह गृह भी धर्म, अर्थ और कामको भली भाँति सम्पन्न करता है। मैं आपका ध्यान किया करती हूँ, उसीसे अग्नि, अतिथिगण, भृत्य, भिक्षुक एवं जो लोग बलिके प्रार्थी हैं वे सब तृप्त हो जाते हैं और सन्तुष्ट रहते हैं। आप प्रजापति स्वयं मुझको उपदेश करके धर्मकी ओर प्रेरणा करते हैं; भला मेरी कौन अभिलाषा अपूर्ण रहेगी?। हे मरीचिनन्दन! सात्विक, राजस और तामस प्रकृतिके सब प्रजागण आपके ही मन और शरीरसे उत्पन्न हुए हैं, अतएव आपकी दृष्टिमें देवता आदि सब ही सन्तान समान हैं; तथापि आप ऐसे सामर्थ्यशाली लोग भक्तों पर अधिक स्नेह रखते हैं। हे नाथ! अतएव मैं आपको परम भक्तिसे भजती हूँ, कृपा करके जिस प्रकार मेरा कल्याण हो वह उपाय कीजिये। हे सुव्रत! मेरी सौतके पुत्र दैत्योंने मेरे पुत्रोंका राज्य और रहनेका स्थान (स्वर्ग) छीन लिया है। आप पुत्रों सहित मेरी रक्षा कीजिये। शत्रुगणने मुझे पुत्रों सहित निर्व्वासित कर दिया है; मैं दुःखके सागरमें मग्न हो रही हूँ। प्रबल दैत्यगणने मेरा ऐश्वर्य्य, श्री, यश और अधिकार हर लिया है। मेरे पुत्र जिससे फिर ऐश्वर्य्य आदि पा सकें, वही कल्याणकारी उपाय आप अपनी बुद्धिसे सोचिये" ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! अदितिके इस प्रकार प्रार्थना करने पर प्रजापति कश्यपजीने कुछ विस्मित होकर कहा कि—"विष्णुमायाकी कैसी असीम शक्ति है! यह जगत् स्नेहपाशमें जकड़ा हुआ है! आत्मासे भिन्न भौतिक देह कहाँ, और प्रकृतिसे भिन्न आत्मा कहाँ!। हे भद्रे! कौन किसके पति, पुत्र आदिक हैं?

इन सब सम्बन्धोंका कारण केवल मोह ही है ॥ १८ ॥ १९ ॥ तुम आदिपुरुष भगवान् जनार्दनकी उपासना करो। वह अन्तर्य्यामी और जगद्गुरु हैं। वह श्रीहरि ही तुम्हारा मङ्गल करेंगे। वह दीन जनों पर कृपा करते हैं। भगवान्की सेवा कभी निष्फल नहीं जाती। उसके सिवा और किसी कर्म्ममें कुछ फल नहीं है" ॥ २० ॥ २१ ॥ अदितिने पूछा। "हे ब्रह्मन्! मैं किस प्रकार उन जगद्गुरुकी उपासना करूँ? जिससे वह मेरी इच्छा पूर्ण करें, सो उपाय बतलाइये। मैं पुत्रों सहित घोर कष्टमें पड़ी हुई हूँ। जिस विधिसे उपासना करनेमें वह सत्यप्रतिज्ञ देव हम पर शीघ्र प्रसन्न हों सो बतलाइये" ॥ २२ ॥ २३ ॥ कश्यपने कहा—हे देवी! जब प्रजा उत्पन्न करनेकी मेरी इच्छा हुई थी तब मैंने यही प्रश्न ब्रह्माजीसे किया था। ब्रह्माजीने जो हरिको सन्तुष्ट करनेवाला व्रत मुझे बतलाया था वही मैं इस समय तुमको बतलाता हूँ ॥२४॥ फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षके पहले बारह दिनोंमें पयोव्रत (केवल दूध आहार करनेका नियम) धारण करके भक्तिपूर्वक कमललोचन भगवान्का पूजन करे ॥ २५ ॥ यदि मिले तो चतुर्दशीयुक्त अमावास्याके दिन वराहकी खोदी हुई मृत्तिका शरीरमें लगा कर नदीके जलमें स्नान करे एवं धारामें खड़े होकर इस मन्त्रका उच्चारण करे-'हे देवी! आवासस्थानकी इच्छासे आदिवराहजी तुमको रसातलसे जलके ऊपर लाये हैं; तुमको नमस्कार है। मेरे सब पापोंको दूर करो'। व्रत करनेवालेको चाहिये कि वह नित्य नैमित्तिक क्रिया सम्पन्न करके एकाग्रचित्तसे प्रतिमामें, हवनकी वेदीमें, सूर्य्यमें, जलमें, अग्निमें अथवा गुरुमें देवदेव हरिका पूजन करे ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ २८ ॥ पूजाके समय निम्नलिखित नव मंत्रोंसे भगवान्का आवाहन आदिक करे। वे नव मन्त्र ये हैं—(१) 'भगवन्! आप आराध्यदेव, महापुरुष और साक्षी हैं; आप सब प्राणियोंका आवासस्थान हैं एवं सबके अन्तःकरणमें प्रकाशमान हैं;–आपको नमस्कार है'। (२) 'आप अव्यक्त सूक्ष्म, चौबीसो तत्त्वोंके प्रधान पुरुष और सांख्ययोगके प्रचारक हैं, आपको प्रणाम है' (३) 'आप यज्ञफलके दाता हैं। आप यज्ञरूप हैं; आपके दो मस्तक, तीन चरण, चार शृंग एवं सात हाथ हैं। त्रयीविद्या आपका आत्मा है, आपको प्रणाम है'। (४) 'आप रुद्र और शिव (मङ्गलस्वरूप) हैं, शक्तिमान् हैं, सब विद्याओंके और भूतगणके अधिपति हैं, आपको प्रणाम है'। (५-६) 'आप सूत्ररूपी प्राण, जगत्के आत्मा एवं योगके कारण हैं, योगैश्वर्य्य आपका शरीर है, आपको प्रणाम है। आप आदिदेव, सबके साक्षीस्वरूप, ऋषिवेषधारी नर-नारायण हरि हैं, आपको नमस्कार है'। (७) 'आप केशव हैं, आपके शरीरका वर्ण मरकतमणिके तुल्य श्याम है, आप लक्ष्मीका आश्रय हैं, आपका वस्त्र मनोहर पीतवर्ण है, आपको प्रणाम है'। (८) 'हे वरेण्य! वरदानियोंमें श्रेष्ठ! आप पूजनीय हैं।

पण्डितगण मङ्गललाभके लिये आपके चरणरेणुकी उपासना करते हैं'। (९) 'अहो! देवगण और लक्ष्मीदेवी उन्हीं चरणकमलोंकी सुवासके लोभसे आपको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टामें लगी रहती हैं। हे वासुदेव! आप हम पर प्रसन्न होइये' ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे साध्वी! इन नव मंत्रोंसे आवाहनपूर्वक श्रद्धासहित पाद्य अर्घ्यआदिसे भगवान्का पूजन करे ॥ ३८ ॥ चन्दन-माल्य आदिसे पूजन करके विभुको दुग्धसे स्नान करावे। फिर द्वादशाक्षर मंत्र पढ़ते हुए वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, पाद्य आदिसे पूजा करे। सम्पत्ति हो, तो दूध और चाँवलकी खीरका नैवेद्य लगावे और उसमें घी व मिठाई मिला कर हरिको निवेदन करनेके उपरान्त द्वादशाक्षर मन्त्रसे अग्निमें उसीकी आहुति छोड़े। नैवेद्यका अन्न भगवद्भक्त जनको खिलावे या आप ही भोजन करे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ पूजाके बाद आचमन कराकर पानका बीड़ा अर्पण करे, एक सौ आठ बार "द्वादशाक्षर" मन्त्रका जप करके भगवान्की स्तुति, प्रदक्षिणा और दण्डवत् प्रणाम करे ॥ ४२ ॥ अन्तमें निर्म्माल्यको शिरसे लगाकर विसर्जन करे एवं दोसे अधिक ब्राह्मणोंको पायस खिलावे और उनकी आज्ञा ले कर बन्धुबान्धवगणसहित शेष अंश आप भोजन करे। फिर ब्रह्मचारी रह कर वह रात्रि बितावे। सबेरा होने पर यथोक्त विधिके अनुसार स्नान करके पवित्र और एकाग्र चित्तसे स्नान कराकर भगवान्का पूजन करे। जितने दिन तक व्रत पूर्ण न हो तब तक दूधसे हरिको स्नान कराकर और स्वयं दूधका ही आहार करते हुए विष्णुकी पूजामें श्रद्धापूर्वक तत्पर रह कर इस महाव्रतका अनुष्ठान करे। हे देवी! पहले जैसे कह आये हैं उसी रीतिसे नियमानुसार अग्निमें हवन करे और ब्राह्मणोंको भोजन करावे। इस प्रकार भगवान्की आराधना, हवन और पूजा करके एवं ब्राह्मणभोजन कराकर बारह दिन अर्थात् प्रतिपदासे ले कर द्वादशी तक यह पयोव्रत करना चाहिये। इन बारह दिनों तक ब्रह्मचर्य्यसे रहे, शय्या त्यागकर पृथ्वीमें शयन करे और त्रिकाल स्नान करे। असत् वार्तालाप एवं उत्कृष्ट या अपकृष्ट, सब प्रकारके भोग इसमें वर्जित हैं। हिंसा त्याग कर वासुदेवपरायण हो कर त्रयोदशीके दिन पञ्चामृतसे विधि जाननेवाले ब्राह्मणोंके द्वारा शास्त्रोक्त विधिसे विष्णुदेवको स्नान करावे। वित्तके अनुसार पूजा करनी चाहिये; पूजामें वित्तशाठ्य करना निषिद्ध है। दूधमें चरु (खीर) पका कर विष्णुको अर्पण करे एवं एकाग्रमन हो कर पूर्वोक्त मंत्रसे परमपुरुषका पूजन करे। जिससे भगवान्की तुष्टि हो ऐसा गुणयुक्त भोग भेंट करे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ज्ञानसम्पन्न आचार्य्यको और ऋत्विक् लोगोंको वस्त्र, धेनु बहुमूल्य अलंकार आदि देकर सन्तुष्ट करे। प्रिये! उनकी आराधना ही हरिकी आराधना है ॥ ५३ ॥ और जो ब्राह्मण वहाँ आये

हों उनको भी यथाशक्ति उत्तम भोजन करावे ॥ ५४ ॥ गुरु और ऋत्विक् जनोंको यथायोग्य दक्षिणा दे, शेप आये हुए चाण्डालपर्य्यन्त सब लोगोंको अन्न आदि दे कर सन्तुष्ट करे ॥ ५५ ॥ दीन, अंध, दरिद्र आदि सबको विष्णुकी प्रीतिके लिये भोजन कराकर आप भी बंधुगण-सहित भोजन करे ॥ ५६ ॥ व्रतकालमें बारह दिन तक नित्यप्रति नृत्य, गीत, वाद्य, स्तुति, स्वस्तिवाचन एवं हरिकथा आदिसे भगवान्‌की आराधना करे ॥ ५७ ॥ इसीका नाम 'पयोव्रत' है; इसके द्वारा परमपुरुपकी परम आराधना होती है। मैंने पितामह ब्रह्मासे इसको सुना था, वही इस समय तुम्हारे आगे वर्णन किया ॥ ५८ ॥ तुम इस व्रतको उत्तम रूपसे करके भजनीय अव्यय विष्णुको एकाग्रचित्त हो कर शुद्धभावसे भजो ॥ ५९ ॥ यह व्रत सब यज्ञों और व्रतोंके समान है, यही सब प्रकारकी तपस्याओंका सारांश है, यही महादान है; क्योंकि इसके करनेसे ईश्वर प्रसन्न होते हैं। हे भद्रे! जिससे हरिभगवान् प्रसन्न हों वही सफल और यथार्थ यम, नियम, तप, दान, व्रत और यज्ञ है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

तस्मादेतद्व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धया चर ॥
भगवान्परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति ॥ ६२ ॥

अतएव हे सती! तुम मनको वश करके श्रद्धापूर्वक इस व्रतको करो। निश्चय ही इससे प्रसन्न होकर भगवान् हरि शीघ्र ही तुमको वाञ्छित वर देंगे॥ ६२ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे षोड़शोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदश अध्याय ।

अदितिके गर्भसे वामनरूप भगवान्‌का जन्मग्रहण ।

श्रीशुक उवाच–इत्युक्ता साऽदिती राजन्स्वभर्त्रा कश्यपेन वै ॥
अन्वतिष्ठद्व्रतमिदं द्वादशाहमतन्द्रिता ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! देवी अदितिने अपने स्वामी महर्षिकश्यपके निकट ऐसा उपदेश पा कर आलस्य छोड़ बारह दिन तक पयोव्रत करनेका नियम ग्रहण किया ॥ १ ॥ देवी अदिति अपनी बुद्धिको सारथी बना कर, उसके द्वारा इन्द्रियरूप दुष्ट अश्वोंको वशमें ला कर, एकाग्र मनसे भगवान्‌का ध्यान करने लगीं एवं सर्वव्यापक भगवान् वासुदेवमें एकाग्रबुद्धिसहित मन लगाकर यथाविधि नित्यप्रति पयोव्रत करनेमें प्रवृत्त हुईं ॥ २ ॥ ३ ॥ हे राजन्! अदितिके इस प्रकार व्रत करनेसे प्रसन्न हो कर पीताम्बरधारी चतुर्भुज हरि भगवान्‌ने शंख, चक्र, गदा पद्म धारण किये हुए मनोहर रूपसे उनको दर्शन

दिया ॥ ४ ॥ आँखोंके आगे भगवान्‌को प्रकट हुए देख कर देवी अदिति सम्भ्रम-सहित सहसा उठ खड़ी हुईं और प्रेमके कारण विह्वल हो कर धरणीमें सादर साष्टांग प्रणाम किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर उठ कर अञ्जलि बाँध कर स्तुति करनेकी इच्छासे खड़ी हुईं, किन्तु स्तुति करनेकी शक्ति उनमें नहीं रही! उनके दोनो नयन आनन्दके आँसुओंसे भर गये, देह भरमें रोमाञ्च हो आया और नारायणके देखनेसे उत्पन्न महा आनन्दके कारण शरीर काँपने लगा ॥ ६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! नयनोंसे मानो पान कर लेंगी, देवी अदिति इस प्रकार थोड़ी देर तक हरि भगवान्‌को एकटक निहारती रहीं; उसके उपरान्त प्रेमपूर्ण गद्गद वाक्योंसे धीरे २ लक्ष्मीपति, जगत्पति, यज्ञपतिकी स्तुति करने लगीं ॥ ७ ॥ अदितिने कहा—हे यज्ञेश्वर! हे यज्ञपुरुष! आपके चरणोंसे जगत्‌को पवित्र करनेवाला तीर्थ (गंगा) उत्पन्न हुआ है और आपकी कीर्ति भी तीर्थतुल्य पतित पातकी पुरुषोंको पवित्र करनेवाली है। हे आद्य! आपका नाम सुननेसे ही मनुष्योंका मङ्गल होता है; हमारा मङ्गल कीजिये। हे भगवन्! आपका नाम दीनबन्धु है। शरणागतलोगोंके पापोंकी राशियोंका नाश करनेके लिये ही आपका आविर्भाव होता है ॥ ८ ॥ आप महान् हैं, विश्व आपका स्वरूप है। विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार आपसे ही होता है। आप अपनी इच्छाके अनुसार मायाके गुणोंको ग्रहण करते हैं, किन्तु अपने रूपको नहीं छोड़ते.। जो पूर्ण ज्ञान नित्य वृद्धिको प्राप्त हो रहा है उसके द्वारा आप मायारूप अंधकारको अपनेसे दूर हटाये रखते हैं—आपको नमस्कार है ॥ ९ ॥ हे अनन्त! आपके सन्तुष्ट होने पर ब्रह्माकी ऐसी सुदीर्घ परमायु, वाञ्छनीय सुन्दर शरीर, अतुल ऐश्वर्य्य, स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल एवं योगकी अणिमा आदि सिद्धियाँ और केवल ब्रह्मज्ञान आदि सब कामनाएँ प्राप्त हो सक्ती हैं। तब शत्रुजय आदि साधारण कामनाओंका पूर्ण होना कौन बड़ी बात है? ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! अदितिके इस प्रकार स्तुति करने पर कमलनयन अन्तर्य्यामी हरिने कहा कि "हे देवजननी! मैं तुम्हारी चिरकालकी कामनाको भली भाँति जानता हूँ। देवशत्रु असुरोंने बलपूर्वक सौभाग्यलक्ष्मी हर कर तुम्हारे सन्तानोंको स्वर्गधामसे निकाल दिया है ॥ ११ ॥ १२ ॥ तुम्हारी यही कामना है कि तुम्हारे पुत्रगण युद्धमें उन दुर्द्धर्ष दैत्योंको जीत कर फिर विजयलक्ष्मी लाभ करें एवं तुम उनके साथ एकत्र वास करो ॥ १३ ॥ तुम्हारे पुत्रगण दैत्योंका वध करें और उन मरे हुए दैत्योंकी विधवा नारियाँ दुःखित होकर विलाप करें—यही तुम देखना चाहती हो ॥ १४ ॥ तुम्हारे पुत्रगण वृद्धिको प्राप्त हो दैत्योंके हाथसे विजयलक्ष्मी छीन कर स्वर्गधाममें विहार करें—यही तुम देखना चाहती हो ॥ १५ ॥ किन्तु हे देवी! मेरी समझमें इस समय वे दैत्यगण किसी प्रकार किसीके द्वारा परास्त नहीं हो सक्ते।

समर्थ ब्राह्मणगण उनके सहायक और रक्षक हैं, इस कारण पराक्रमके द्वारा जय और मङ्गल पानेकी आशा वृथा है ॥ १६ ॥ तथापि हे देवी! तुम्हारे व्रत करनेसे मैं सन्तुष्ट हुआ हूँ, अतएव तुम्हारे मङ्गलका कोई उपाय अवश्य निकालूँगा। मेरी पूजा कभी व्यर्थ नहीं जाती; श्रद्धाके अनुरूप उसका फल अवश्य होता है ॥ १७ ॥ तुमने पुत्रोंकी रक्षाके लिये पयोव्रत द्वारा यथाविधि मेरा पूजन किया है और गुणगानपूर्वक स्तुति की है। अतएव मैं कश्यपजीके तपोवीर्य्यसे अपने अंश द्वारा तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हारे पुत्रोंकी रक्षा करूँगा ॥ १८ ॥ हे भद्रे! तुम इस समय अपने निष्पाप पतिके पास जा कर उनको भजो। भजनकालमें यह भावना करना कि मानो मैं इसी रूपसे कश्यपजीमें अवस्थित हूँ ॥ १९ ॥ इस वृत्तान्तको पूछने पर भी किसी दूसरेसे न कहना। देवतोंका रहस्य (एवं और सब भारी काम) जितना ही गुप्त रहते हैं उतना ही उत्तमरूपसे उनकी सिद्धि होती है" ॥ २० ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। हे राजन्! भगवान् इतना कह कर वहीं पर अदृश्य हो गये। अदितिदेवी अपने गर्भमें प्रभु हरिके परम दुर्लभ जन्मके लाभसे परम कृतार्थ हो कर दृढ़ भक्तिसे पतिकी सेवा करने लगीं। जिनकी दृष्टि कभी व्यर्थ नहीं होती ऐसे उनके स्वामी कश्यपजीने समाधि-योगसे जाना कि उनमें हरि भगवान्के अंशने प्रवेश किया है। जैसे सर्वत्र समान वायु काष्ठसंघर्षणके द्वारा वनदाहक अग्निको उत्पन्न करता है वैसे ही प्रजापति कश्यपने मनको स्थिर करके बहुकाल तक कठोर तपसे जिस वीर्यका सञ्चय किया था उसको अदितिके गर्भमें स्थापित किया। सनातन भगवान् अदितिके गर्भमें अधिष्ठान करके अवस्थित हैं-यह जान कर हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्माजी इस प्रकार गुप्त नामोंसे हरिकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ **ब्रह्माजीने कहा**—हे उरुगाय! हे भगवन्! आपकी जय हो, आपको प्रणाम है। आप ब्रह्मण्यदेव हैं, आपको नमस्कार है। हे त्रियुग! आपको नमस्कार है—नमस्कार है ॥ २५ ॥ पूर्वजन्ममें इन्हीं अदितिका नाम पृश्नि था, आप इनके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। वेद सब आपके गर्भमें अवस्थिति करते हैं। हे विधाता! तीनो लोक आपका नाभिस्थल हैं, आप त्रिलोकीके ऊपर अवस्थित हैं। आपका नाम शिपिविष्ट है, अर्थात् आप सब यज्ञपशुओंमें अन्तर्य्यामीरूपसे प्रविष्ट हैं। आप विष्णु अर्थात् यज्ञपुरुष हैं; आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ आप इस त्रिभुवनके आदि, अन्त और मध्य हैं; पण्डितगण आपको अनन्तशक्तिशाली पुरुष कहते हैं। जैसे घोर गंभीर तरङ्ग जलपतित तृण आदिको खींचता है वैसे ही कालस्वरूप आप इस विश्वको प्रलयकालमें अपनी ओर लीन करनेके लिये खींचते हैं ॥ २७ ॥

त्वं वै प्रजानां स्थिरजङ्गमानां प्रजापतीनामसि संभविष्णुः ॥
दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु ॥ २८ ॥

आपसे ही सम्पूर्ण चराचर प्रजा एवं प्रजापतियोंकी उत्पत्ति होती है। हे देव! जलमें डूब रहे व्यक्तिके लिये जैसे नौका आश्रय है वैसे ही स्वर्गसे भ्रष्ट देवगणका आप ही एकमात्र आश्रय हैं! ॥ २८ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादश अध्याय।

वलिके यज्ञमें वामनरूप हरिका गमन।

श्रीशुक उवाच—इत्थं विरिञ्चिस्तुतकर्मवीर्यः
प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम् ॥
चतुर्भुजः शङ्खगदाब्जचक्रः
पिशङ्गवासा नलिनायतेक्षणः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! ब्रह्माजीने इस प्रकार भगवान्‌के कर्म्म और प्रभावोंका कीर्तन करते हुए स्तुति की। तदनन्तर जन्म-मृत्युरहित, चतुर्भुज, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारी, पीतवासा, कमललोचन परम पुरुषने अदितिके गर्भसे जन्म लिया। भगवान्‌का वर्ण श्याम और स्वच्छ था, मुखकमल मकराकृतकुण्डलोंकी कान्तिसे शोभायमान था; वलय, अङ्गद, किरीट, काञ्चीदाम, सुन्दर नूपुर आदि अलंकार श्रीअङ्गोंमें शोभायमान थे। हृदयमें श्रीवत्स और कौस्तुभमणिकी अपूर्व शोभा थी। जिस पर मदमाते मधुकरोंके झुंड गुंजार कर रहे थे ऐसी वनमाला कण्ठमें विराजमान थी। भगवान्‌के तेजसे कश्यपजीके भवनका अंधकार दूर हो गया ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ भगवान्‌के जन्मके समय सब दिशाएँ और सरोवर प्रसन्न (निर्मल) हो गये; सब चराचर जगत्‌को प्रसन्नता प्राप्त हुई। सब ऋतुओंने अपने २ गुण धारण किये एवं स्वर्ग, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, देवगण, धेनुगण, द्विजगण और पर्वतगण—सभी परम प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ भगवान्‌ने भाद्रपदमासकी शुक्ल द्वादशीके दिन, श्रवणनक्षत्रके प्रथम चरण और अभिजित् मुहूर्तमें जन्मग्रहण किया। इस दिन चन्द्रमा श्रवणनक्षत्रमें अवस्थित थे। अश्विनीआदि नक्षत्र एवं बृहस्पति, शुक्रआदि ग्रहगण भी अनुकूल एवं शुभफलसूचक थे ॥ ५ ॥ पण्डितजन कहते हैं कि द्वादशीके दिन ठीक दोपहर (मध्यान्ह) में हरिका जन्म हुआ। वह द्वादशी विजय-द्वादशी नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ६ ॥ वामनदेवका जन्म होते ही शंख, दुंदुभी, भेरी, मृदङ्ग, पणव, आनक और अन्यान्य तुरी आदि बाजोंका

तुमुल कोलाहल होने लगा ॥ ७ ॥ प्रसन्नचित्त अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, गन्धर्वगण गाने लगे एवं मुनिगण स्तुति करने लगे। मनुष्य, पितृगण, देव, अग्नि, सिद्ध, किम्पुरुष, विद्याधर, चारण, किन्नर, पिशाच, यक्ष, राक्षस, सुपर्ण, भुजंगम एवं देवानुचरगण गाते और नृत्य करते हुए आकाशसे दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ देवी अदिति, योगमाया द्वारा शरीर धारण कर हरिको अपने गर्भसे जन्म ग्रहण करते देख विस्मित और सन्तुष्ट हुईं। कश्यप प्रजापतिने भी विस्मित होकर जय-शब्दका उच्चारण किया ॥ ११ ॥ अव्यक्त ज्ञानस्वरूप भगवान्‌की चेष्टाएँ अत्यन्त अद्भुत हैं। उन्होने जिस प्रभा, आयुध और आभूषणोंके द्वारा स्पष्ट प्रकाशमान देहको धारण कर जन्म लिया था उसी देहसे देखते ही देखते नटोंकी भाँति वामनस्वरूप ब्राह्मणकुमार बन गये ॥ १२ ॥ महर्षिगण वह ब्राह्मणकुमारकी वामनमूर्ति देख कर बहुत ही प्रसन्न हुए एवं कश्यपजीके साथ उनके सब जातकर्म्म करने लगे ॥ १३ ॥ जब वामन भगवान्‌का यज्ञोपवीत होने लगा उस समय सूर्य्य भगवान्‌ने स्वयं सावित्री(गायत्री)का उपदेश किया; बृहस्पतिजीने यज्ञसूत्र (जनेऊ) और कश्यपजीने मेखला पहनाई ॥ १४ ॥ उन वामनस्वरूप जगत्पतिको वसुंधरा पृथ्वीने कृष्णाजिन, वनस्पति सोमने दण्ड, माता (अदिति) ने कौपीन वस्त्र, स्वर्गने छत्र, ब्रह्माने कमण्डलु, सप्तर्षिगणने कुश (पवित्री) एवं सरस्वतीने अक्ष(रुद्राक्ष)माला दी ॥ १५ ॥ १६ ॥ इस प्रकार यज्ञोपवीत पड़ जाने पर धनपति कुबेरने उनको भिक्षाके लिये पात्र दिया और साक्षात् भगवती अम्बिका देवीने भिक्षा दी ॥ १७ ॥ वह सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणकुमार वामनजी इस प्रकार ब्राह्मणोचित सब सामग्री पा कर अपने ब्रह्मतेजसे उस ब्रह्मर्षिगणशोभित सभामें सबसे बढ़ कर शोभायमान हुए अर्थात् उनके तेजके आगे सब सभासदोंका तेजःपुञ्ज फीका सा हो गया। तदनन्तर उन्होने पूर्वस्थापित यज्ञोपवीत-कर्म्मसम्बन्धी प्रज्वलित अग्निके चारो ओर सम्मार्जन तथा कुशकण्डिका कर्म्म एवं देवपूजन करके उसमें समिध-हवन किया ॥ १८ ॥ १९ ॥ इसी समयमें वामनजीने सुना कि भृगुवंशीय ब्राह्मणगण महाबली बलि राजासे अश्वमेधनाम महायज्ञ करा रहे हैं। यह सुनते ही वामनजी उस ओर चले। सम्पूर्ण जगत्‌का बल और शक्ति उन्हीमें स्थित है, अतएव चलते समय उनके हरएक पग पर पृथ्वीतल कंपायमान होने लगा ॥ २० ॥ राजन्! नर्म्मदा नदीके उत्तर-तट पर भृगुकच्छ नाम क्षेत्रमें राजा बलिको उनके पुरोहितगण अश्वमेध नाम श्रेष्ठ यज्ञ करा रहे थे। उसी स्थानमें भगवान् जा कर पहुँचे। वामनजीको देख कर ब्राह्मणोंने जाना कि निकट ही मानो सूर्य्यदेवका उदय हुआ है ॥ २१ ॥ सब पुरोहित, यजमान बलि एवं सदस्यगण वामनजीके तेजसे प्रभाहीन हो गये एवं विचारने लगे कि क्या सूर्य्यनारायणजी यज्ञ देखनेकी इच्छासे आ रहे हैं? या अग्निदेव आ रहे हैं?

अथवा साक्षात् ब्रह्माके पुत्र सनत्कुमार महर्षि आ रहे हैं? ॥ २२ ॥ शिष्यसहित भृगुगण, वामनजीके सम्बन्धमें इस प्रकार मन ही मन तर्क-वितर्क कर ही रहे थे कि इतनेमें दण्ड, छत्र एवं जलपूर्ण कमण्डलु हाथमें लिये भगवान् वामनजीने अश्वमेध यज्ञके मण्डपमें प्रवेश किया ॥ २३ ॥ मायावामनरूपधारी हरिकी कमरमें मुञ्जनिर्मित मेखला पड़ी हुई थी, कृष्णाजिनमय उत्तरीय यज्ञोपवीतके समान बाएँ कंधे पर पड़ा था, मस्तकमें जटाजूटकी अपूर्व शोभा थी, शरीर बहुत ही छोटा था। उनको देखते ही उनके तेजसे परास्त भृगुगणने अग्नि और शिष्य-गण तथा राजा बलिसहित सम्भ्रमके साथ उठ कर उनकी अभ्यर्थना की ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥ यजमान बलिने दर्शनीय मनोहर रूपके अनुरूप अनूप अंगोंसे शोभित वामनजीके दर्शनसे अत्यन्त आनन्दित होकर उनको आसन दिया एवं स्वागत-प्रश्नपूर्वक वन्दना करके पैर धोये और मुक्तसंग मनोरमरूप भगवान्का पूजन किया ॥ २७ ॥ धर्म्मज्ञ बलिने कुल भरके पातक दूर करनेवाले भगवान्के चरणोदकको शिर पर धारण किया। हे राजन्! वह चरणोदक सामान्य नहीं है। चन्द्रशेखर देवदेव महादेव उसको परमभक्ति और श्रद्धासे शिर पर धारण किये हुए हैं! वह चरणोदक परम मङ्गलमय है ॥२८॥ राजा बलिने कहा। हे ब्रह्मन्! आपको प्रणाम है। आप यहाँ तक सुखपूर्वक आये हैं न? आनेमें कोई कष्ट तो नहीं हुआ? आज्ञा कीजिये—हम आपकी कौन कामना पूर्ण करें? हे प्रभो! जान पड़ता है आप सब ब्रह्मर्षियोंका एकत्रित तप हैं, यहाँ मूर्तिमान् हो कर आये हैं। ॥ २९ ॥ आपके चरण यहाँ आनेसे आज हमारे सब पितर तृप्त हो गये, आज हमारा कुल पवित्र हुआ, आज यह यज्ञ भलीभाँति सम्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ हे विप्रनन्दन! आज हमारा अग्नियोंमें यथाविधि हवन करना सार्थक (सफल) हुआ। आपके चरणोदकसे हमारे सब पातक नष्ट हो गये एवं आपके इन छोटे २ चरणोंसे आज यह भूमि भी पवित्र हो गई! ॥ ३१ ॥

यद्यद्बटो वाञ्छसि तत्प्रतीच्छ मे त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये ॥
गां काञ्चनं गुणवद्धाम मृष्टं तथान्नपेयमुत वा विप्रकन्याम् ॥
ग्रामान्समृद्धाँस्तुरगान्गजान्वा रथाँस्तथार्हत्तम संप्रतीच्छ ॥ ३२ ॥

हे बटु ब्राह्मण! आपको जो २ अभिलाषा हो सो मुझसे लीजिये। मैं अनुमान से कहता हूँ कि आप कुछ माँगने ही आये हैं। भूमि, सुवर्ण, उत्तम रहनेका स्थान, मिष्टान्न, गुण-रूपवती कन्या, विभवसम्पन्न ग्राम, अश्व, गज या रथ, इनमें आप जो लेना चाहते हों, कहिये। मैं आपको वही दूँगा। आप मुझसे मनचाही वस्तु लीजिये ॥ ३२ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंश अध्याय।

वामनजीका बलिसे तीन पग पृथ्वी माँगना।

श्रीशुक उवाच–इति वैरोचनेर्वाक्यं धर्मयुक्तंससूनृतम् ॥
निशम्य भगवान्प्रीतः प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। हे राजन्! बलिके ये धर्म्मसङ्गत सत्य वाक्य सुन कर भगवान् प्रसन्न हुए एवं उनकी प्रशंसा करते हुए यों कहने लगे ॥ १ ॥ **वामनजीने कहा।** हे नरदेव! पारलौकिक धर्म्ममें तुम्हारे कुलवृद्ध शान्त पितामह प्रह्लादजी और ये भार्गव ब्राह्मणगण निदर्शन (नमूना) हैं, अतएव तुमने जो ये सत्य वाक्य कहे सो धर्म्मयुक्त, यशस्कर एवं तुम्हारे कुलके उचित ही हैं ॥ २ ॥ इस कुलमें किसी ऐसे निःसत्त्व या कृपण पुरुषने नहीं जन्म लिया जिसने ब्राह्मणको दान देना स्वीकार न किया हो, अथवा पहले 'देंगे' कह कर फिर न दिया हो ॥ ३ ॥ तुम्हारे कुलमें उत्पन्न पुरुष, दानके समय, अथवा युद्धके समय, किसी युद्ध अथवा धनआदिके प्रार्थीके प्रार्थना करने पर, उसके देनेसे विमुख नहीं हुए। तुम्हारे वंशमें सब ही उदार हुए हैं। देखो तुम्हारे बाबा प्रह्लाद, जगत्में निर्मल कीर्तिकी कान्ति फैला कर आकाशमण्डलमें चन्द्रमाके समान शोभायमान हैं ॥ ४ ॥ तुम्हारे वंशमें हिरण्याक्षने जन्म लिया था। जो अकेले गदा हाथमें लिये विश्व भरमें दिग्विजयके लिये घूम आया, पर कोई भी ऐसा वीर उसको न मिला जो युद्धमें सामना कर सक्ता ॥ ५ ॥ विष्णु जब पृथ्वीका उद्धार कर रहे थे उस समय हिरण्याक्ष उनके पास गया। नारायणने बड़े ही कष्टसे उसको जीता, तथापि उसके महापराक्रमका स्मरण करते हुए अपनेको विजयी मान कर प्रसन्न नहीं हुए ॥ ६ ॥ हिरण्याक्षका भाई बली हिरण्यकशिपु अपने सहोदर भाईके वधका वृत्तान्त सुन कर अत्यन्त क्रोध करके भ्रातृहन्ता विष्णुको मारनेके लिये वैकुण्ठको चला ॥ ७ ॥ उस शूल हाथमें लिये दैत्यको कराल कालके समान आते हुए देख कर महामायावी और समयके जाननेवाले विष्णुने विचारा कि "मैं जहाँ २ जाऊँगा वहाँ २ प्राणियोंकी मृत्युके समान यह भयानक असुर जायगा, सहजमें पीछा न छोड़ेगा; अतएव मैं इसके हृदयमें प्रवेश कर जाऊँ तो यह मुझे बाहर न देख पा कर अवश्य ही इस विचारको छोड़ देगा" ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऐसा निश्चय करके विष्णुने दौड़ कर आ रहे शत्रुके हृदयमें नासिकाके छिद्रसे सूक्ष्म देह धर कर प्रवेश किया। मारे भयके विष्णुका चित्त बहुत ही उद्विग्न हो रहा था, इस लिये यों छिप कर उन्होने प्राण बचाये ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपुने जब विष्णुको न देख पाया तो उनके भवनके चारो ओर घूम कर घोर सिंहनाद किया। कुपित दैत्यराज विष्णुकी खोजमें पृथ्वी, स्वर्गलोक, दश दिशा,

आकाशमण्डल और सातो समुद्रोंमें घूमा, किन्तु कहीं भी, अपने ही हृदयमें छिपे नारायणको उस वीरने न देख पाया ॥ ११ ॥ तब दैत्यपतिने कहा कि "मैंने यह सब जगत् खोज डाला; अतएव जान पड़ता है कि मेरे भाईको मारनेवाला विष्णु निश्चय ही उस लोकको चला गया है जहाँ जा कर फिर मनुष्यगण नहीं लौटते" ॥ १२ ॥ महाराज! यहाँ देहधारियोंकी शत्रुता मृत्यु-पर्य्यन्त ऐसी ही प्रबल रहती है; क्योंकि क्रोधकी उत्पत्ति अज्ञानसे और वृद्धि अहङ्कारसे ही होती है ॥ १३ ॥ प्रह्लादके पुत्र विरोचन, जो तुम्हारे पिता थे, उनके समान कोई ब्राह्मणोंका भक्त ही न होगा। उन्होने यह जान कर भी कि ये मेरे वैरी देवगण ब्राह्मणवेष धारण करके आये हैं, उन छद्मवेशधारी वैरी देवतोंको, याचना करने पर, अपनी परमायु दे डाली! इससे बढ़ कर ब्राह्मणभक्ति और उदारता और क्या हो सक्ती है? ॥१४॥ गृहस्थ ब्राह्मणगण और प्राचीन वीरगण एवं अन्यान्य यशस्वी व्यक्ति जिन सब धर्म्मोंका अनुष्ठान कर गये हैं उन्ही धर्मोंको तुम भी कर रहे हो ॥ १५ ॥ अतएव हे दैत्येन्द्र! हम तुमसे अपने पैरोंकी नापसे तीन पग पृथ्वी माँगते हैं। यद्यपि तुम वरदानियोंमें श्रेष्ठ हो और सब कुछदे सक्ते हो पर हम तुमसे यह थोड़ी सी पृथ्वी ही चाहते हैं ॥ १६ ॥ तुम उदार दाता और जगत्के ईश्वर हो सही, किन्तु हमारी तुमसे और कुछ प्रार्थना नहीं है; क्योंकि विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जितना आवश्यक हो उतना ही दान ले अथवा याचना करे। ऐसा करनेसे वह दोषभागी नहीं होता ॥ १७॥ वामनजीके ये वचन सुन कर राजा बलिने कहा—"हे विप्रतनय! आपकी बातें तो वृद्धोंकी ऐसी हैं, किन्तु आप अभी बालक हैं, अतएव आपकी मति मूर्ख मनुष्योंकी ऐसी है। आपको अपने स्वार्थका भली भाँति बोध नहीं है ॥ १८ ॥ मैं त्रिलोकीका अधीश्वर हूँ; चाहूँ तो एक द्वीप पृथ्वी दान कर सक्ता हूँ। किन्तु आप ऐसे ही अबोध हैं कि वाक्यालापसे मुझको सन्तुष्ट करके तीन पग (वह भी अपने पैरोंकी नापसे) सामान्य पृथ्वी माँगते हैं! ॥ १९ ॥ पुरुष मेरे पास पहुँच कर और मुझे प्रसन्न कर फिर दूसरेसे याचना नहीं करता, अर्थात् मैं उसको पूर्णकाम कर देता हूँ। अतएव हे बटु वामन! जिससे तुम्हारी जीविका सुखपूर्वक चल सके उतनी पृथ्वी मुझसे माँग लो" ॥ २० ॥ श्रीभगवान्ने कहा। राजन्! त्रिलोकीमें जितनी प्रियतम अभीष्ट वस्तुएँ हैं वे सब अजितेन्द्रिय मनुष्यको नहीं तृप्त कर सक्तीं ॥ २१ ॥ जो व्यक्ति तीन पग पृथ्वीसे सन्तुष्ट नहीं हुआ, उसकी अभिलाषा नवखंडयुक्त एक द्वीपके लाभसे भी नहीं पूर्ण हो सक्ती; क्योंकि वह फिर सातो द्वीप पृथ्वी पानेकी कामना करेगा ॥ २२ ॥ हमने ऐसा भी सुना है कि सातो द्वीप पृथ्वीके पति वैन्य, गद आदि नरपतिगण सम्पूर्ण अर्थ-काम-भोग करके भी विषयभोगकी तृष्णाका पार

नहीं पा सके ॥ २३ ॥ सन्तुष्ट व्यक्ति यदृच्छा-प्राप्त वस्तुका ही भोग करके सुखसे रहता है, किन्तु अजितेन्द्रिय लोलुप व्यक्ति त्रिलोकीके वैभवको पा कर भी नहीं सुखी होता ॥ २४ ॥ पण्डितजन कहते हैं कि अर्थकामनामें असन्तोष ही पुरुषके संसारबन्धनका कारण है । यदृच्छाप्राप्त वस्तुमें सन्तुष्ट रहनेसे मनुष्य मुक्त हो जाता है ॥ २५ ॥ जो कुछ विना यत्नके प्राप्त हो उसीमें सन्तुष्ट ब्राह्मणका ब्रह्मतेज बढ़ता है । असन्तोषी ब्राह्मणका तेज जलमें गिरे हुए अग्निके समान बुझ जाता है ॥ २६ ॥ हे वरदानियोंमें श्रेष्ठ ! इस कारण हम तुमसे केवल तीन पग पृथ्वी ही माँगते हैं । इतनी पृथ्वी पानेसे ही हम अपनेको कृतकृत्य समझेंगे । प्रयोजन भरका धन ही सुखदायक होता है, अधिक धन होनेसे अनेक प्रकारके क्लेश उठाने पड़ते हैं ॥ २७ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । वामनरूप हरिकी ये बातें सुन कर हँसते हुए वलिने कहा "अच्छा जो आपकी इच्छा हो वही लीजिये" । महात्मा वलिने यों कह कर वामनजीको पृथ्वी देनेके लिये हाथमें जलका पात्र लिया ॥ २८ ॥ किन्तु सर्वज्ञ दैत्यगुरु शुक्राचार्य्यजी विष्णु भगवान्‌के उद्देश्यको जान कर, विष्णुको भूमिदान करने पर उद्यत अपने शिष्य वलिसे यों कहने लगे ॥ २९ ॥ हे वलि ! इनको साधारण ब्राह्मणकुमार न समझो; यह साक्षात् अविनाशी विष्णु हैं । देवगणका कार्य्य सिद्ध करनेके लिये कश्यपके वीर्य्य द्वारा अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ३० ॥ तुम अपने ऊपर आनेवाली महाविपत्तिको नहीं जानते; इसीसे तुमने इनको पृथ्वी देना स्वीकार कर लिया है । मैं भली भाँति समझता हूँ कि दैत्यगणके लिये महा घोर विपत्ति उपस्थित हुई है ! मैं इस तुम्हारे कर्म्मको अच्छा नहीं समझता ॥ ३१ ॥ तुमने यह क्या कर-डाला ! यह मायावामनरूपी विष्णु तुम्हारा स्थान, ऐश्वर्य्य, श्री, तेज, यश और विद्या आदि सर्वस्व छीनकर इन्द्रको दे देंगे ॥ ३२ ॥ सम्पूर्ण विश्व इनका विराट्‌-शरीर है, यह तीन पगमें तीनो लोक नाप लेंगे। अपना सर्वस्व तो विष्णुको दे दोगे, तुम्हारे पास निर्वाहके लिये क्या रह जायगा ? यह तुम्हारी मूढ़ता नहीं तो क्या है ? ॥ ३३ ॥ इन वामनरूप विष्णुके एक चरणमें पृथ्वी और दूसरेमें स्वर्ग तथा विशाल विराट् शरीरमें आकाश आ जायगा । अब तुम ही बताओ, तीसरा चरण कहाँ जायगा ? ॥ ३४ ॥ तुमने 'देंगे' कह कर दान करना अंगीकार कर लिया है, किन्तु उस समय तुम्हारे पास देनेके लिये और कुछ भी नहीं रह जायगा । सुतरां स्वीकृत वस्तुको देनेमें असमर्थ होनेके कारण तुम अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सकोगे, प्रतिज्ञाभंग होने पर निश्चय ही तुम्हे नरकमें जाना होगा ॥ ३५ ॥ जिस पुरुषके निर्वाहके लिये कोई वृत्ति है वही दान, यज्ञ, तप आदि सम्पूर्ण सत्कर्म्म कर सक्ता है । जिस दानसे धनोपार्जनके द्वार और वृत्तिका नाश हो जाय, पण्डितजन उस दानकी प्रशंसा नहीं करते ॥ ३६ ॥ पुरुषको चाहिये कि वह अपनी सम्पत्तिके

पाँच विभाग करके उन्हे धर्म्म, यश, अर्थ, काम और स्वजनके लिये खर्च करे। ऐसा करनेसे इस लोक और परलोक, दोनो लोकोंमें सुख मिलता है ॥ ३७ ॥ हे असुरश्रेष्ठ! इस सम्बन्धमें बह्वृच श्रुतिमें जो कहा है सो हमसे सुनो। 'हाँ देंगे' इस स्वीकार-वाक्यको श्रुतिमें 'सत्य' कहा है। उसके उपरान्त 'नहीं,-नहीं देंगे' इस अस्वीकार-वाक्यको 'मिथ्या' कहा है ॥३८॥ देहरूप वृक्षके फूल फल 'सत्य' है; क्योंकि यह श्रुतिका वाक्य है। तब देखो वृक्षके न रहनेसे फूल फल अवश्य ही नष्ट हो जायँगे; इसलिये काया रख कर धर्म्म करना चाहिये। देखो, बिना मिथ्याके देहकी रक्षा नहीं हो सक्ती, क्योंकि मिथ्या ही देहरूप वृक्षकी जड़ है। जिस प्रकार मूलके उखड़ जानेसे वृक्ष गिर पड़ता और सूख जाता है उसी प्रकार जो व्यक्ति मिथ्याको एकदम तज देता है उसका शरीर शीघ्र ही शीर्ण जीर्ण हो कर निश्चय नष्ट हो जाता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ("सब समय सत्य बोलनेसे निर्वाह नहीं हो सक्ता"—यह स्पष्ट करनेके लिये सत्यके दोप और मिथ्याके गुण कहते हैं)—जिस वस्तुके लिये 'ओं' (हाँ देंगे) यह कहा जाय उसमें फिर अधिकार नहीं रहता* अतएव 'हाँ देंगे' यह शब्द अपूर्ण अर्थात् पूर्ण स्वीकारसूचक नहीं है और दूरार्थवाची अर्थात् दाताके अर्थको ले कर दूर गमन करनेवाला है (क्योंकि समस्त सम्पत्ति दान करने पर भी याचककी आशा नहीं पूर्ण की जा सक्ती)॥४१॥ भिक्षुक जो कुछ प्रार्थना करे वह सब देना जो कोई स्वीकार करता है वह स्वयं नहीं भोग करने पाता; अतएव 'नहीं देंगे', यही वाक्य पूर्ण है † क्योंकि वह अन्यके विषयको अपनी ओर आकृष्ट करता है। किन्तु 'नहीं है—नहीं देंगे' यह मिथ्या वाक्य सर्वदा न कहना चाहिये; क्योंकि जो सर्वदा यही बात कहते हैं वे अकीर्तिभागी एवं जीवन रहते भी मुर्दोंके तुल्य होते हैं ॥ ४२ ॥

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे ॥
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥ ४३ ॥

स्त्रीको प्रोत्साहन द्वारा वश करते समय हास परिहासमें, विवाहके समय वरके गुणकीर्तन करनेमें, अपनी जीविकाकी वृत्ति नष्ट होती हो तो उसकी रक्षाके लिये, प्राणों पर सङ्कट आ पड़ा हो उस समय प्राण बचानेके लिये, गऊ ब्राह्मणका हित होता हो तो उसमें एवं किसीके सत्य कहनेसे प्राण जाते हों तो उसकी

* श्रुतिमें यही कहा है, यथा—"पराग्वा एतद्रिक्तमक्षरं यदेतदोमिति"।

† जैसा श्रुतिमें कहा है—"अथैतत्पूर्णमभ्यात्म्यं यन्नेति स यत् पूर्वन्नेति ब्रूयाद्वापि चास्य का कीर्तिर्जायेत सा एवं तत्रैव हन्यादिति"।

रक्षाके लिये झूठ बोलना पाप नहीं है ‡। इन अवसरोंके सिवा झूठ बोलना दोषावह है। इस कारण हे वलि! अपनी जीविकाकी वृत्ति बचानेके लिये तुम स्वीकृत दानमें 'नहीं' कर सक्ते हो—अभी कुशल है! ॥ ४३ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंश अध्याय।

विष्णुका विश्वमय विराट् रूप।

श्रीशुक उवाच—बलिरेवं गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः॥
तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम्॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। हे राजन्! गृहपति वलिने कुलगुरु शुक्राचार्य्यके वाक्य सुन कर क्षण भर चुप रह कर विचार करनेके उपरान्त गुरुवरसे यों कहा ॥१॥ आपका कहना सत्य है कि जिससे कभी अर्थ, काम, यश और वृत्तिमें वाधा न हो वही गृहस्थोंका यथार्थ धर्म्म है ॥ २ ॥ किन्तु मैं प्रह्लादजीका पौत्र हूँ; 'दूँगा' कह कर दानकरना अंगीकार कर चुका हूँ। इस समय धनके लोभसे सामान्य वञ्चक मनुष्यकी भाँति कैसे ब्राह्मणसे कहूँ कि 'नहीं दूँगा'? ॥ ३ ॥ मिथ्या बोलनेसे बढ़ कर और अधर्म्म नहीं है। पृथ्वी कहती है कि मैं सबको अपने ऊपर धारण कर सक्ती हूँ, पर मिथ्यावादीका भार मुझको असह्य है! ॥ ४ ॥ गुरुवर! ब्राह्मणसे वञ्चना करनेसे मैं जितना डरता हूँ उतना मुझे नरक, दरिद्रता, स्थानच्युति अथवा मृत्युसे भी भय नहीं है ॥ ५ ॥ पुरुष जब परलोकको यात्रा करता है तब इस लोककी पृथ्वी आदिक सब वस्तुएँ अवश्य ही उसे छोड़ कर यहीं रह जाती हैं। उनसे यदि ब्राह्मणको प्रसन्न किया जा सके तो इससे बढ़ कर उनकी सफलता और क्या हो सक्ती है? इसके अतिरिक्त वह दान ही किस कामका, जिससे ब्राह्मणकी तुष्टि न हो? इस लिये जो वस्तु जितनी ब्राह्मण माँगे वह वस्तु उतनी ही देना योग्य है (अर्थात् ब्राह्मण जितना माँगे उससे कम देनेमें ब्राह्मणको सन्तोष न हुआ तो वह दानही व्यर्थ है) ॥ ६ ॥ दधीचि और शिवि आदि साधुगण अपने दुस्त्यज प्राण देकर भी प्राणियोंका हितसाधन कर गये हैं, तब इस साधारण पृथ्वीके त्याग करनेमें काहेकी द्विविधा है? ॥ ७ ॥ युद्धमें जो कभी

---

‡ यहाँ याज्ञवल्क्यजीने अपनी स्मृतिमें कहा है; यथा—"वर्णिनां हि वधो यत्र तत्र साक्ष्यनृतं वदेत् ॥" और श्रुति भी इस विषयमें यों कहती है कि—"तस्मात्काल एव दद्यात्काले न दद्यात्तत्सत्त्यानृते मिथुनीकरोति।"

विमुख नहीं हुए ऐसे बड़े २ जो दैत्यपति इस पृथ्वीका भोग कर गये हैं उनके भोग आदिको कराल कालने नष्ट कर दिया, किन्तु वे लोग पृथ्वीमें जो यश छोड़ गये हैं वह अब भी अक्षय-रूपसे बना हुआ है ॥ ८ ॥ हे विप्रर्षिवर! प्रतियोद्धाकी प्रार्थनाके अनुसार युद्धमें देहत्याग करनेवाले वीर पुरुष सुलभ हैं—बहुत पाये जाते हैं; किन्तु सत्पात्रके उपस्थित होने पर उसको श्रद्धापूर्वक उसका माँगा हुआ धन देनेवाले दानवीर पुरुष बहुत ही दुर्लभ हैं ॥ ९ ॥ सामान्य याचककी अभिलाषा पूर्ण करके दरिद्र हो जाना जब दयाशील दाता मनुष्यके लिये गौरव बढ़ानेवाली बात है तब इन सरीखे ब्रह्मज्ञ ब्राह्मणको दान करके दरिद्र हो जानेके लिये क्या कहना है? इस लिये यह ब्राह्मणकुमार जो माँगते हैं, मैं वही इनको दूँगा ॥ १० ॥ आप लोग वेदविहित विधिके अनुसार यज्ञ आदिसे जिनका पूजन करते हैं, यह यदि वही वरदानी विष्णु हैं और शत्रु ही हैं, तथापि मैं इनको इनकी माँगी हुई पृथ्वी अवश्य दूँगा ॥ ११ ॥ मैं निर्दोष हूँ; चाहे यह अधर्म्मपूर्वक मुझको बाँधें तो भी मैं भीरु ब्राह्मणरूपधारी और शत्रु इन विष्णुकी हिंसा न करूँगा ॥ १२ ॥ यह उत्तमश्लोक विष्णु यदि अपने यशको कलंकित करना न चाहेंगे तो युद्धमें मुझको मार कर यह पृथ्वी लेंगे अथवा मेरे द्वारा निहत हो कर युद्धभूमिमें शयन करेंगे ॥ १३ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! शिष्यने इस प्रकार अश्रद्धा करके आज्ञाका पालन नहीं किया, तब गुरु शुक्राचार्य्यने दैवके द्वारा प्रेरित होकर सत्यप्रतिज्ञ असुरश्रेष्ठ बलिको शाप देते हुए इस प्रकार कहा कि "तू अज्ञ है, किन्तु अपनेको निश्चयके साथ पण्डित मान कर अभिमान करता है। तूने उपेक्षा करके हमारी आज्ञाका उल्लंघन और हमारा निरादर किया। अतएव तू शीघ्र ही श्रीभ्रष्ट हो जायगा" ॥ १४ ॥ १५ ॥ निजगुरुके यों शाप देने पर भी महाउदार राजा बलि सत्यसे नहीं डिगे एवं पूजन करके जल हाथमें ले कर वामनजीको पृथ्वीदान कर दिया ॥ १६ ॥ उस समय मुक्ताभरण और पुष्पमालासे विभूषित बलिकी भार्य्या रानी विन्ध्यावलिने वामनजीके चरण धोनेके लिये जलपूर्ण सुवर्णका कलश ला कर बलिको दिया ॥ १७ ॥ यजमान बलिने हर्षपूर्वक स्वयं वामनजीके सुन्दर चरणारविन्द धोये एवं उस विश्वपावन जलको शिर पर धारण किया ॥ १८ ॥ उस समय स्वर्गमें देवता, गन्धर्व्व, विद्याधर, सिद्ध और चारणगण—सभी आनन्दित हो कर बलिके इस महान् उदार कार्य्यकी प्रशंसा करते हुए फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ १९ ॥ स्वर्गमें वारम्वार सहस्र २ दुंदुभी बजने लगीं एवं—"इस उदार बलिने बहुत ही दुष्कर कर्म्म किया, जो जान बूझ कर अपने शत्रु विष्णुको त्रिभुवनका दान कर-दिया" यह कहते हुए गन्धर्व्व, किन्नर और किम्पुरुषगण सुस्वरसे बलिकी कीर्तनीय कीर्तिका कीर्तन करने लगे ॥ २० ॥ देखते ही देखते हरिका वह वामनरूप

आश्चर्य्य बढ़ानेवाले ढंगसे बढ़ने लगा । भगवान्का विराट् शरीर त्रिगुणात्मक है; अतएव पृथ्वी, आकाश, दिशा, सात स्वर्ग, अतल आदि सातो विवर, सब समुद्र, पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता और ऋषिगण सभी उस विराट् शरीरके अन्तर्गत देख पड़ने लगे ॥ २१ ॥ राजा वलिने तथा उनके ऋत्विक् आचार्य्य और सदस्यगणने हरिके महाविभूतिशाली उस त्रिगुणात्मक शरीरमें पञ्चतत्त्व, इन्द्रियगण, इन्द्रियोंके विषय, चित्त और जीवसमूहसे युक्त इस गुणमय विश्वको देख पाया ॥ २२ ॥ इन्द्रसेन अर्थात् राजा वलिने उन परम पुरुष विश्वमूर्ति हरिके पदतलमें रसातल, दोनो चरणोंमें पृथ्वी, दोनो जंघाओंमें पर्वतसमूह, दोनो जानुओंमें पक्षिगण, दोनो ऊरुओंमें मरुद्गण, वसनमें सन्ध्याकाल, गुह्यमें प्रजापतिगण, जघनस्थलमें असुरगणसहित आप (राजा वलि), नाभिमें आकाशमण्डल, कुक्षिमें सातो सागर, वक्षःस्थलमें नक्षत्रनिचय, हृदयमें धर्म्म, स्तनद्वयमें ऋत और सत्य, मनमें चन्द्रमा, उरःस्थलमें पद्म हाथमें लिये लक्ष्मीदेवी, कण्ठमें सामवेद और शब्द, चारो भुजाओंमें इन्द्रादिक सब देवता, दोनो कानोंमें दश दिशा, मस्तकमें स्वर्ग, केशोंमें मेघमण्डली, नासिकामें वायु, नेत्रोंमें सूर्य्य, मुखमें अग्नि, वाक्यमें सब वेद, रसनामें वरुण, दोनो भ्रुकुटियोंके मध्यमें निषेध और विधि, पलकोंमें दिन और रात्रि, ललाटमें क्रोध, अधर में लोभ, स्पर्शमें काम, शुक्रमें जल, पृष्ठमें अधर्म्म, पादन्यासमें यज्ञ, छायामें मृत्यु, हँसीमें माया, रोमसमूहमें सब ओषधियाँ, नाड़ियोंमें सब नदी, नखोंमें शिलासमूह, बुद्धिमें ब्रह्मा, इन्द्रियोंमें देवगण और ऋषिगण एवं अंगोंमें स्थावर-जंगम प्राणीमात्रको देखा ॥२३॥२४॥२५॥२६॥२७॥२८॥२९॥ हे महाराज! सर्वव्यापक विश्वरूप वामनजीके शरीरमें इस प्रकार सम्पूर्ण त्रिभुवन देख कर असुरगण बहुत ही विस्मित हुए । उस समय असह्यतेजयुक्त सुदर्शन चक्र, मेघकी भाँति गम्भीरशब्दपूर्ण शृंगनिर्मित (शार्ङ्ग) धनुष, वेगयुक्त कौमोदकी गदा, विद्याधर नामक शतचन्द्र-शोभित असि, अक्षय वाणपूर्ण दोनो तूणीर एवं सुनन्द आदि श्रेष्ठ पार्षदगण मूर्तिमान् हो कर हरिकी सेवामें उपस्थित हुए और स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उस समय दीप्तिमान् किरीट मुकुट, अङ्गद, मकराकृत कुण्डल, रत्नश्रेष्ठ श्रीवत्स, मेखला, पीतवस्त्र एवं भ्रमरसेवित वनमाला धारण किये हुए अतुलविक्रम हरिकी अपूर्व्व शोभा हुई ॥ ३२ ॥ भगवान्ने एक चरणसे वलिकी पृथ्वी नाप ली, आकाशमण्डल शरीरमें और दिशाएँ बाहुओंमें आ गईं ॥ ३३ ॥

पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि ॥
उरुक्रमस्याङ्घ्रिरुपर्युपर्यथो महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥३४॥

उसके उपरान्त दूसरा चरण फैलाने पर उसमें स्वर्ग आदि ऊपरके लोक आ गये (वे भी पूर्ण नहीं हुए! क्योंकि भगवान्‌का दूसरा पैर सातो ऊपरके लोक नाँघता हुआ सत्यलोक तक पहुँच गया और बलिका राज्य स्वर्ग ही तक था), किन्तु तीसरे चरणके लिये कुछ भी न बचा। दूसरा ही चरण क्रमशः महर्लोक जनलोक और तपोलोकको नाँघता हुआ सत्यलोककी सीमा तक पहुँच गया ३४॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंश अध्याय ।

विष्णुकेद्वारा बलिका बन्धन ।

श्रीशुक उवाच—सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेन्दुभि-
र्हतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात् ॥
मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः
सनन्दनाद्या नरदेव योगिनः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! भगवान् वामनजीके चरणको सत्यलोकमें उपस्थित होते देख कर मरीचि आदि ऋषिश्रेष्ठ और बालब्रह्मचारी सनन्दन आदि योगीजनों सहित भगवान् ब्रह्मा हरिचरणके निकट आये। हरि-पद-नखरूप चन्द्रकी आभासे ब्रह्मलोक और मुनिगणसहित स्वयं ब्रह्माजीकी कान्ति फीकी पड़ गई ॥ १ ॥ वेद, उपवेद, नियम, यम, इतिहास, तर्क, वेदाङ्ग (ब्राह्मण, निरुक्त, शिक्षा आदि), पुराण एवं सम्पूर्ण संहिता आदिने मूर्तिमान् हो कर वहाँ आकर वामनजीके पवित्र चरणको प्रणाम किया। योगरूप वायुके संयोगसे उज्वल ज्ञानरूप अग्निके द्वारा जिनके कर्म्मफल भस्म हो गये हैं और विष्णुके स्मरणके प्रभावसे जो उस कर्म्मसंसर्गविहीन ब्रह्मलोकको गये हैं उन्होने भी निकट आ कर वामनजीके चरणको प्रणाम किया। तदनन्तर ब्रह्माजीने, जिनके नाभिकमलसे स्वयं आप उत्पन्न हुए हैं उन भगवान्‌के ऊपरके उन्नत चरणको जलसे धो कर उसका पूजन किया और फिर भक्तिपूर्वक हरिकी स्तुति करने लगे— ॥२॥३॥४॥ वह विधाताके कमण्डलुका जल, जिससे ब्रह्माजीने वामनजीके चरणको स्नान कराया—हरिचरणके स्पर्शसे परम पवित्र हो कर स्वर्गकी नदी आकाशगंगा हो गया। वह गंगाजल अब तक हरिकी पवित्र कीर्त्तिके समान आकाशसे पृथ्वीमें गिर कर त्रिभुवनको पवित्र कर रहा है ॥ ५ ॥ विष्णु भगवान्‌ने क्रमशः विशाल शरीरको छोटा करके वही पहलेकी भाँति वामनरूप धारण कर लिया। तब ब्रह्मा आदि लोकपालगणने अनुचरों सहित आ कर, अपने स्वामी वामनजीकी,

शीतल जल, सुन्दर माला, गन्धित चन्दन और कर्पूरादि अनुलेपन, सुगंधपूर्ण धूप दीप, खील, अक्षत, फल, अंकुर आदिसे पूजा और स्तुति की एवं भगवान्‌के वीर्य्य और माहात्म्यका उल्लेख करके जयजयकार करने लगे। देवगण अनेक प्रकारके बाजे बजा कर नृत्य और गान करने लगे; स्वर्गमें शंख और दुन्दुभियोंका शब्द होने लगा ॥ ६ ॥ ७ ॥ ऋक्षराज जाम्बवान् भेरी (ढोल) बजाते हुए मनके समान वेगसे पृथ्वीमण्डल भरमें वामनजीके विजयमहोत्सवकी घोषणा कर आये ॥ ८ ॥ यज्ञकी दीक्षा लिये हुए अपने स्वामी बलिकी सम्पूर्ण पृथ्वी (सर्वस्व) वामनजीके द्वारा तीन पग भूमि माँगनेके छलसे हरी गई देख कर असुरगण महा क्रोधसे कहने लगे—"यह ब्राह्मण बालक नहीं है; यह तो महामायावी विष्णु है। देवगणका काम बनानेके लिये ब्राह्मणके वेषमें छिप कर आया है। इस वैरी विष्णुने बटु ब्राह्मणके रूपसे भिक्षुक बन कर हमारे स्वामीका सर्वस्व हर लिया। हमारे प्रभु सदा सत्य ही बोलते हैं, कभी मिथ्या बोलनेका विचार भी नहीं करते। विशेष करके इस समय यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करनेके कारण इन्होने दण्ड-त्याग कर दिया है। इसके सिवा यह ब्राह्मणोंके भक्त और दयाशील हैं। अतएव इनकी आज्ञा विना पाये भी इस वामनरूपी शत्रुको मारना हमारा धर्म्म है; इससे स्वामीकी यथेष्ट सेवा होगी"। यह कह कर बलिके सेवक असुरोंने वामनजीको मारनेके लिये शस्त्र उठाये ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ जब बलिकी इच्छा न होने पर भी वे महाबली दैत्य, कुपित हो कर, शूल पट्टिश आदि शस्त्र लिये हुए मारनेके लिये भगवान् वामनकी ओर बढ़े तब उन आ रहे दैत्यसेनापतियोंको दस २ हजार हाथीके बलवाले नंद, सुनंद, जय, विजय, प्रबल, बल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन, पक्षिराज गरुड़, जयन्त, श्रुतदेव, पुष्पदन्त और सात्वत आदि हरिके प्रधान पार्षदोंने रोका और हँसते हुए शस्त्र ले लेकर दैत्यसेनाका संहार करने लगे ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ भगवान्‌के पार्षदों द्वारा अपने कुपित अनुचरोंका विनाश होते देख कर महात्मा बलिने अपने गुरु शुक्राचार्य्यके दिये हुए शापको स्मरण कर उन्हे युद्ध करनेसे रोका ॥ १८ ॥ बलिने कहा—हे विप्रचित्ति, राहु और नेमि आदिक वीर दैत्यो! मेरा कथन सुनो। इस समय न लड़ो, युद्धसे निवृत्त हो जाओ। यह समय हमारे अनुकूल नहीं है ॥ १९ ॥ यह साक्षात् ईश्वरका स्वरूप काल सब प्राणियोंको सुखी और दुःखी बनानेमें समर्थ है; इसको पौरुषके द्वारा टालना असंभव है ॥ २० ॥ उसी कालके अनुकूल होनेसे पहले हमारा उदय हुआ था और देवतोंकी अवनति हुई थी ॥ २१ ॥ बल (सेना), उत्तम मन्त्री, बुद्धि, दुर्ग, उत्तम सलाह, औषध अथवा साम आदि राजनैतिक उपायोंसे, किसी प्रकार, कोई भी 'काल'को नहीं जीत (टाल) सक्ता ॥ २२ ॥ पहले तुमने कई बार इन हरिके अनुचरोंको मार भगाया

है, पर इस समय दैवके अनुकूल होनेसे वे ही ये हम लोगोंको युद्धमें हरा कर जयनाद कर रहे हैं ॥ २३ ॥ यदि हम पर दैव प्रसन्न होगा तो फिर हम लोग इनको जीत लेंगे । इस लिये तुम लोग तब तक अपने अनुकूल समयके आनेकी प्रतीक्षा करो ॥ २४ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । हे राजन्! अपने स्वामी वलिके वाक्य सुन कर विष्णुपार्षदोंके द्वारा ताड़ित दैत्यदलपतिगण रसातलको चले गये ॥ २५ ॥ तदनन्तर पक्षिराज गरुड़ने हरि भगवान्‌के अभिप्रायको जान कर यज्ञीय सोमलतापानके दिन वरुणके पाशोंसे महात्मा वलिको बाँध लिया ॥ २६ ॥ विष्णुजीकी इच्छाके अनुसार गरुड़ द्वारा वलिके बाँधे जाने पर आकाश पृथ्वी और दश दिशाओंमें महा हाहाकार होने लगा ॥ २७ ॥ श्रीसे भ्रष्ट होने पर भी प्रतिज्ञामें स्थिर एवं वरुणके पाशोंमें बँधे हुए महायशस्वी महात्मा वलिसे भगवान् वामनने कहा—हे असुरवर! तुमने मुझको तीन पग पृथ्वीका दान दिया था; मैंने दो ही पगमें तुम्हारी सब पृथ्वी नाप ली—अब तीसरे चरणके लिये स्थान बतलाओ ॥२८॥२९॥ यह सूर्य्य जहाँ तक तपते हैं, जहाँ तक नक्षत्रगणसहित चन्द्रमा अपनी प्रभा फैलाये हैं एवं जितनी दूर तक मेघ जलकी वर्षा करते हैं, वहाँतक तुम्हारी यह पृथ्वी है ॥ ३० ॥ तुम्हारे आगे ही मैंने एक पगसे सब भूलोक, शरीरसे आकाश और सब दिशाएँ एवं दूसरे पगसे तुम्हारा स्वर्गलोक नाप लिया ॥ ३१ ॥ इस प्रकार मैंने तुम्हारा सर्वस्व हर लिया तथापि, तुम अपनी दी हुई तीन पग पृथ्वी न पूरी कर सके। अतएव तुम्हारा नरकमें वास होना उचित है। तुम्हारे गुरु शुक्राचार्य्य भी तुम्हारे नरकनिवासका अनुमोदन कर चुके हैं ॥३२॥ जो ब्राह्मणके निकट (कुछ देनेकी) प्रतिज्ञा करके फिर उसको पूर्ण नहीं कर सक्ता, उसकी वासना (इच्छा) विफल हो जाती है। स्वर्ग तो उससे दूर ही रहता है। अतएव उसका अधःपतन होता है ॥ ३३ ॥

विप्रलब्धो ददामीति त्वयाहं चाढ्यमानिना ॥
तद्व्यलीकफलं भुङ्क्ष्व निरयं कतिचित्समाः ॥ ३४ ॥

तुमने अपनेको धनी मान कर "देता हूँ" कह कर मुझसे छल किया। इस प्रतारणा एवं मिथ्या बोलनेका फल यही है कि तुम कुछ दिन नरक-भोग करो ॥ ३४ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंश अध्याय ।

हरिका वलि पर प्रसन्न होकर 'उनका द्वारपाल होना' स्वीकार करना ।

श्रीशुक उवाच—एवं विप्रकृतो राजन्बलिर्भगवताऽसुरः ॥
भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवं वचः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे राजन्! भगवान्‌ने इस प्रकार, निग्रह करके वलिको सत्यसे डिगाना चाहा (अर्थात् कठिन परीक्षा ली), किन्तु दैत्यपतिका चित्त किसी प्रकार विचलित नहीं हुआ ॥ १ ॥ वलिने निर्भय भावसे यों कहा कि हे हरि! हे पुण्यश्लोक! हे देवश्रेष्ठ! मैंने जो कहा है उसे आप मिथ्या समझते हैं। किन्तु मैं अपने वचनको झूठा न होने दूँगा, सत्य कर दिखाऊँगा । मेरा कथन वञ्चनामय नहीं है। आप अपना तीसरा चरण मेरे शिर पर स्थापित कीजिये ॥२॥ मैं अपनी अकीर्तिसे वहुत डरता हूँ। मुझको नरकसे, पाशके बंधनसे, दुःखसे, धनकष्टसे अथवा आपके किये हुए इस निग्रहसे उतना भय नहीं है ॥३॥ योग्यतम व्यक्ति जो दण्ड देते हैं वह मेरी समझमें मंगलकारी होनेके कारण परम अभीष्ट है; क्योंकि (अंधस्नेहके कारण) माता, पिता, भाई अथवा और सुहृद्गण वैसे हित-कारी दण्डका विधान नहीं कर सक्ते। आप देखनेमें असुरोंके शत्रु हैं, किन्तु यथार्थमें (हम लोगोंके) परम हितकारी गुरु हैं । हम लोग राज्यलक्ष्मी और प्रभुताके मदसे अंध हो रहे थे, आपने राज्यलक्ष्मी व प्रभुतासे भ्रष्ट करके हमारे मदको दूर कर दिया; जिससे फिर हमारे ज्ञानरूप नेत्र उघर गये ॥ ४ ॥ ५ ॥ योगीलोग जिस सिद्धिको प्राप्त होते हैं उसी सिद्धिको अनेकानेक असुरोंने आपसे घोर शत्रुता करके पाया है ॥ ६ ॥ इस समय उन्हीं वड़े २ कार्योंको सिद्ध करने-वाले परमगुरु आपने वरुणपाशमें बाँध कर मेरा निग्रह किया है ॥ ७ ॥ किन्तु हे भगवन्! हे प्रभो! यह आपका दिया हुआ दण्ड, निग्रह (दण्ड) नहीं, परम अनुग्रह है । मैं अकिञ्चन किसी प्रकार आपके इस असाधारण अनु-ग्रहका पात्र नहीं हूँ। जान पड़ता है आपने अपने परम भक्त एवं प्रीतिपात्र प्रह्लादका पौत्र जान कर ही मुझ पर यह अनुग्रह किया है। मेरे उन पितामहकी प्रशंसा चारो ओर सर्वत्र प्रकट है। उनका पिता (हिरण्यकशिपु) आपका घोर शत्रु था, यद्यपि पिताने आपसे शत्रुभाव रखनेके लिये वारम्वार विवश किया, तथापि महात्मा प्रह्लादजीने आपका ही आश्रय लिया। उनका यह दृढ़ विचार था कि— "देहसे क्या प्रयोजन है? क्यों कि आयु शेष होने पर देह अवश्य ही साथ छोड़ देगा। स्वजनोंको ले कर ही क्या प्रयोजन है? वे नाममात्रके स्वजन हैं—वास्तवमें तो दस्यु (ठग) हैं, क्यों कि अनेक मिससे धनका अपहरण करते रहते हैं । स्त्रीसे ही क्या प्रयोजन निकल सक्ता है? क्यों कि वही तो अनर्थमय संसारका

मूलकारण है । गृहसे ही क्या लाभ है? जिसमें वृथा आयुका व्यय होता है"। मेरे पितामहने ऐसा स्थिर निश्चय करके आपके चरणोंकी शरण ली थी। हे सत्तम! यद्यपि आप उनके वैरी और जातिका संहार करनेवाले थे, तथापि उन अगाधबोध दानवकुलतिलकने बंधनरूप स्वजनोंसे भीत होकर आपके ही अकुतोभय चरणोंका आश्रय लिया। प्रभो! आपके इन चरणोंके आश्रित होनेसे फिर कोई पतित वा भ्रष्ट नहीं होता। आप यद्यपि मेरे भी शत्रु हैं; किन्तु दैवने अकस्मात् मेरी सम्पत्ति हर कर मुझे आपके निकट उपस्थित कर दिया है। इससे मेरा मङ्गल ही हुआ। क्योंकि सम्पत्तिमें बुद्धि जड़ हो जाती है और पुरुष यह नहीं समझ सक्ता कि इस जीवनका कोई भरोसा नहीं है; सब समय शिर पर मृत्यु सवार है ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे कुरुश्रेष्ठ! बलि इस प्रकार कह ही रहे थे कि महात्मा प्रह्लादजी वहाँ आ कर उपस्थित हुए; उनके आनेसे जान पड़ा—मानो पृथ्वी पर पूर्ण चन्द्रका उदय हो गया ॥ १२ ॥ श्रीयुक्त प्रह्लादजीका वर्ण श्याम और नयन कमलपत्रके तुल्य विशाल, शरीर उन्नत एवं भुजा जानुपर्यन्त लंबी थीं। वह पीताम्बर धारण किये थे। देवेन्द्रका दर्प हरनेवाले बलिने सौभाग्यशाली व्यक्तियोंमें श्रेष्ठ अपने पितामह प्रह्लादजीको देख केवल शिर झुका कर प्रणाम करके ही उनका सत्कार किया; क्योंकि हाथ पैर बँधे रहनेके कारण पहलेकी भाँति अनेक सामग्रियोंसे पूजन करना असंभव था। बलिके दोनो नेत्रोंमें आँसू भर आये और उन्होने लज्जित होकर शिर नीचा कर लिया ॥ १३ ॥ १४ ॥ साधुजनोंके स्वामी हरि बलिके निकट बैठे हुए हैं—सुनन्द और नन्द आदि अनुचरगण उनकी सेवामें उपस्थित हैं-यह देख कर महात्मा प्रह्लादने जाना कि, 'पौत्र पर भगवान्का अनुग्रह हुआ है'। इससे प्रह्लादजीके शरीरमें रोमाञ्च हो आया, नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आये। प्रह्लादजीने हरिके निकट जा कर पृथ्वीमें शिर धरके प्रणाम किया और कहा—"हे भगवन्! आपने ही इस (बलि) को समृद्धिसम्पन्न इन्द्रपद दिया था और इस समय आपने ही वह हर लिया। मेरी समझमें इस पर आपने परम अनुग्रह किया जो राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट कर दिया ॥ १५ ॥ १६ ॥ लक्ष्मी पा कर मनुष्य अपनेको भूल जाता है। जिस लक्ष्मीसे विद्वान् एवं संयत व्यक्ति भी मोहित होजाते हैं उस लक्ष्मीके रहते कौन व्यक्ति यथार्थ रूपसे आत्माका तत्त्व जान सक्ता है? आपने इस पर दया की। आप जगदीश्वर नारायण हैं, आप सब लोकोंके साक्षी हैं,आपको नमस्कार है" ॥ १७ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! ब्रह्माजी, अञ्जलि बाँध कर खड़े हुए महात्मा प्रह्लादके सामने ही हरिसे कुछ निवेदन किया चाहते थे, इतनेमें बलिकी पत्नी विन्ध्यावलि हरिके निकट कुछ कहनेके लिये आई, अतएव उसके सम्मानार्थ

कुछ कालके लिये चुप हो गये । साध्वी बिन्ध्यावलिने पतिको पाशमें बँधा हुआ देख कर भीत-भावसे उपेन्द्र(वामनजी)को प्रणाम किया एवं अञ्जलि बाँध कर मुख नीचा करके कहा कि—"हे ईश्वर! आपने क्रीड़ा करनेके लिये इस त्रिभुवनकी रचना की है; आपको भूल कर जो इस जगत्के कर्त्ता होनेका अभिमान करते हैं वे दुर्बुद्धि हैं। आप ही इस त्रिभुवनके कर्त्ता, पालक और संहारकारी हैं। आपके ही द्वारा जिन पर केवल कर्तृवादमात्रका आरोपण है वे आपको क्या दे सक्ते हैं? जो लोग अपना स्वामित्व प्रकट करके सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके प्रभु जो आप हैं उनको कोई वस्तु अर्पण करते हैं वे कुबुद्धि और निर्लज्ज हैं" ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ **श्रीब्रह्माजीने कहा ।** हे भूतनाथ! हे देवदेव! हे जगन्मय! आपने बलिका सर्वस्व हर लिया है; अब इसको छोड़ दीजिये । यह महात्मा बलि निग्रहके योग्य नहीं है ॥ २१ ॥ बलिने उदारताके साथ आपको अपनी सब पृथ्वी दे दी । सुकृत्यके द्वारा जिन सब लोकोंको प्राप्त किया था, उनको भी, इसने अर्पण कर दिया । इसके सिवा अपना शरीर और सर्व्वस्व भी इसने अमलिन मनसे आपकी भेंट कर दिया है ॥ २२ ॥ जिन आपके चरणोंमें सरल भावसे जलमात्र चढ़ाने एवं दूर्वांकुरसे केवल पूजन करनेसे लोगोंको सर्वोत्तम गति मिलती है उन चरणोंमें इसने अकुण्ठित चित्तसे त्रिभुवन अर्पण कर दिया है; भला कैसे इसे निग्रहका कष्ट भोगना उचित है? ॥ २३ ॥ **श्रीभगवान्ने कहा ।** ब्रह्माजी! मैं जिस पर कृपा करता हूँ उसका धन और विभव पहले हर लेता हूँ । क्यों कि मनुष्य धन, सम्पत्ति और ऐश्वर्य्यके मदसे मतवाला होकर सब प्राणियोंका और मेरा निरादर करता है ॥ २४ ॥ जीवात्मा अपने कर्म्मोंसे पराधीन होकर कृमि-कीट आदि अनेक योनियोंमें भ्रमण करता हुआ जब कभी मनुष्ययोनिको प्राप्त होता है तब यदि जन्म, कर्म्म, यौवन, रूप, विद्या, ऐश्वर्य्य या धन आदिके कारण गर्वित न हो तो जानना चाहिये कि उस पर मेरा अनुग्रह हुआ है ॥ २५ ॥ २६ ॥ ऊपर लिखे हुए अभिमान उत्पन्न करनेवाले जन्म आदि अभिमानरूप अनम्रताका निमित्त-कारण हैं एवं वे ही सम्पूर्ण मङ्गलोंमें बाधा डालनेवाले हैं। किन्तु जो लोग मेरे भक्त हैं उनको उनमें मोह नहीं होता ॥ २७ ॥ यह राजा बलि दैत्य और दानवोंमें श्रेष्ठ एवं उनकी कीर्तिको बढ़ानेवाला है। इसने मेरी दुर्जय मायाको जीत लिया; क्योंकि इतना कष्ट पाने पर भी मोहित न हो कर अपने वचन पर स्थिर रहा ॥ २८ ॥ धनसे हीन और स्थानसे च्युत हो गया, आक्षेपके वचन सुने, शत्रुके द्वारा बाँधा गया, जातिवालोंने त्याग कर दिया, अनेक यातनाओंका भोग किया, गुरुके तिरस्कार और अभिशापको सहा, तथापि इस सत्यव्रत बलिने सत्य धर्म्मको नहीं छोड़ा । मैंने बढ़ावा देते हुए छलपूर्वक इसके आगे जिस धर्म्मका वर्णन किया उसको भी इसने नहीं ग्रहण किया;

अतएव यह अत्यन्त भक्त और सत्यवादी है ॥ २९ ॥ ३० ॥ मैं इस पर परम प्रसन्न हूँ, इस लिये जो स्थान देवगणको भी दुर्लभ है वह इसको देता हूँ। यह सावर्णि मन्वन्तरमें इन्द्र होगा; मैं इसकी सब भाँति सहायता करूँगा। जब तक सावर्णि मन्वन्तरका आरम्भ न हो तब तक यह विश्वकर्म्मा द्वारा निर्मित सुतल लोकमें वास करे। उस लोकमें रहनेवालोंको मेरी कृपादृष्टिसे आधि (मानसी चिन्ता), व्याधि, भ्रान्ति, तन्द्रा, पराभव एवं कोई भौतिक उत्पात होनेकी संभावना नहीं रहती ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तदनन्तर वामनजीने वलिसे कहा कि हे महाभाग इन्द्रसेन! तुम अपनी जातिवाले असुरों सहित सुतल लोकको जाओ; तुम्हारा मङ्गल हो। अधिक क्या, लोकपालगण भी तुमको परास्त न कर सकेंगे। वह सुतल लोक ऐसा रमणीय और समृद्धिसम्पन्न है कि देवगण वहाँ रहनेकी अभिलाषा करते हैं। जो दैत्यगण तुम्हारी आज्ञाके विरुद्ध काम करेंगे उनको मेरा सुदर्शन चक्र नष्ट करेगा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ मैं तुम्हारे अनुचरगण सहित तुम्हारी, सब प्रकार सब संकटोंसे सब समय रक्षा करूँगा। तुम मुझको वहाँ अपने द्वार पर इसी रूपसे नित्य निकट देख पाओगे ॥ ३५ ॥

तत्र दानवदैत्यानां सङ्गात्ते भाव आसुरः ॥
दृष्ट्वा मदनुभावं वै सद्यः कुण्ठो विनङ्क्ष्यति ॥ ३६ ॥

दानव और दैत्योंके संसर्गसे उत्पन्न तुम्हारा आसुरस्वभाव, उस स्थानमें मेरा प्रभाव अवलोकन करनेसे उसी समय कुण्ठित हो कर नष्ट हो जायगा ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंश अध्याय ।

वलिका सुतललोकको जाना ।

श्रीशुक उवाच—इत्युक्तवन्तं पुरुषं पुरातनं
महानुभावोऽखिलसाधुसंमतः ॥
बद्धाञ्जलिर्बाष्पकलाकुलेक्षणो
भक्त्युद्गलो गद्गदया गिराब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! यह कह रहे पुराणपुरुष भगवान्से, साधुजनों द्वारा प्रशंसा पाने योग्य आनन्दाश्रुपूर्णनयन महानुभाव वलिने भक्तिभावसे व्यग्र हो कर हाथ जोड़के गद्गद वाणीसे यों कहा ॥ १ ॥ "अहो! आपको प्रणाम करनेकी कैसी अपार महिमा है! जिसके लिये केवल उद्यम (चेष्टा)

करनेसे ही आपके शरणागत भक्तोंकी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। आपकी जिस दयाको पहले बड़े २ लोकपाल देवगणने नहीं पाया, आज केवल प्रणामकी चेष्टा करनेसे ही मुझ सरीखे निकृष्ट असुरने उस दयाको प्राप्त कर लिया। धन्य आपकी दीनदयालुता!" ॥ २ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** इतना कह कर ब्रह्मा और शिवसहित हरिको प्रणाम करके बन्धनसे मुक्त राजा बलि आनन्दपूर्वक असुरगणसहित सुतल लोकको चले गये ॥ ३ ॥ हरिने इस प्रकार इन्द्रको स्वर्गका राज्य फिर लौटा दिया एवं अदितिकी इच्छा पूर्ण करके उपेन्द्ररूपसे त्रिभुवनका शासन किया ॥ ४ ॥ भगवान्‌का प्रसाद प्राप्त कर वंशधर पौत्र बलि बन्धनसे मुक्त हो गये--यह देख कर भक्तचूड़ामणि प्रह्लादने भक्तिपूर्वक भगवान्‌से कहा ॥ ५ ॥ हे मधुसूदन! सम्पूर्ण विश्व जिनके आगे शिर झुकाता है वे भी आपकी वन्दना करते हैं। आप विश्ववन्दनीय हो कर भी हम असुरोंके दुर्गरक्षक हुए, इस प्रसादको, औरोंकी कौन कहे—ब्रह्मा, महेश्वर अथवा साक्षात् लक्ष्मी देवीने भी नहीं पाया ॥ ६ ॥ हे भक्तवत्सल! ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवगण जिनके चरण-कमलमधुका पान करके महाविभूतियोंका भोग करते हैं उन्हीं आपके कृपाकटाक्षके पात्र हम क्रूर योनिमें उत्पन्न दुराचार असुर हुए, यह हमारे लिये कम सौभाग्यकी बात नहीं है ॥ ७ ॥ आप सर्वज्ञ हैं; आपने ही अपरिमेय योगमायाकी लीला द्वारा इस जगत्‌की सृष्टि की है, अतएव आप सबके आत्मा और समदर्शी हैं। कल्पवृक्षकी भाँति भेदभावहीन हो कर सब लोगोंकी सब कामनाएँ पूर्ण करते हैं। तथापि आप सर्वदा भक्तोंका पक्ष लेते हैं। समदर्शी होने पर भी आपका यह विषम-स्वभाव अति विचित्र है! ॥ ८ ॥ **भगवान्‌ने कहा।** वत्स प्रह्लाद, तुम सुतल लोकको जाओ; तुम्हारा कल्याण हो। वहाँ अपने पौत्रसहित आनन्दसे रहो और जातिवालोंको सुखी करो ॥९॥ वहाँ तुम मुझे सदा गदा हाथमें लिये सब समय द्वार पर स्थित देख पाओगे; मेरे दर्शनसे उत्पन्न आनन्दसे तुम्हारा अज्ञानमय कर्म्मबन्धन छूट जायगा ॥ १० ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! सम्पूर्ण असुरसेनाके स्वामी विमलबुद्धि प्रह्लादने अपने पौत्र सहित अंजलि बाँध "जो आज्ञा" कह कर भगवान्‌की आज्ञाको शिर पर धारण किया एवं प्रदक्षिणा और प्रणाम करके उनकी अनुमति ले कर सुतल लोकको चले गये ॥ ११ ॥ १२ ॥ राजन्! दैत्यगुरु शुक्राचार्य्यजी ब्रह्मज्ञानी ऋषियोंकी सभामें ऋत्विजगणके बीच हरिके निकट ही बैठे थे। प्रह्लादसहित बलिके चले जाने पर वामनजीने उनसे कहा कि हे महर्षिवर! यज्ञ करनेवाले शिष्यके यज्ञमें जो कुछ कर्म्म रह गया हो उसे अब आप पूर्ण कर दीजिये। क्योंकि जो कर्म्म असम्पूर्ण रह जाता है उसकी पूर्ति ब्राह्मणोंके देखनेसे ही हो जाती है ॥ १३ ॥१४॥ **शुक्राचार्य्यजीने कहा।** भगवन्! आप यज्ञके स्वामी यज्ञपुरुष साक्षात् ईश्वर हैं।

जिसने अपना सर्व्वस्व अर्पण करके आपका पूजन किया उसका कर्म्म कैसे असम्पूर्ण रह सक्ता है? स्वरादिकी विच्युति, क्रमकी विपरीतता और देश, काल, पात्र एवं दक्षिणा आदि सामग्रीकी सब असम्पूर्णता आपके गुणानुवादके कीर्त्तनसे ही मिट जाती है। तथापि, हे ईश! आप कहते हैं, इस लिये मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हूँ; क्योंकि आपकी आज्ञाका पालन करना ही पुरुषोंके लिये परम-मङ्गलदायक कर्त्तव्य है ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। विप्रर्षिगणसहित शुक्राचार्य्यने इस प्रकार हरिकी आज्ञा ग्रहण करके बलिके यज्ञके अवशिष्ट अंशकी पूर्ति कर दी ॥ १८ ॥ महाराज! वामनरूपी हरिने बलिके निकट इस प्रकार पृथ्वी माँग कर अपने भाई इन्द्रको शत्रुओं द्वारा हरा गया स्वर्गका राज्य लौटा दिया ॥ १९ ॥ प्रजापतियोंके पति ब्रह्मा, महादेव, देवगण, ऋषिगण, पितृगण, मनुगण, एवं दक्ष, भृगु, अंगिरा आदि प्रजापतिगण और सनत्कुमारजी—इन सबने मिल कर कश्यप और अदितिकी प्रसन्नता एवं सब प्राणियोंके मङ्गलके लिये वामनजीको सब लोक और लोकपालोंका स्वामी बना दिया। उक्त ब्रह्मा आदि देवगणने सब प्राणियोंकी समृद्धि बढ़ानेके लिये पालन-कार्य्यमें निपट निपुण उपेन्द्रजीको वेद, देवगण, धर्म्म, कीर्ति, लक्ष्मी, मङ्गल, व्रत, स्वर्ग और मोक्षके पालन-कार्य्यमें नियुक्त किया। उस समय सब प्राणियोंको बड़ा ही आनन्द हुआ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ उसके बाद लोकपालगणसहित इन्द्रदेव ब्रह्माजीकी अनुमतिसे वामनजीको विमान पर चढ़ा कर आगे करके स्वर्ग धामको लेगये ॥ २४ ॥ महेन्द्रको त्रिभुवनका राज्य मिल गया और वह उपेन्द्र-जीके बाहुबलकी सहायतासे भली भाँति त्रिलोकीका शासन करने लगे। इन्द्रकी सब चिन्ता और भय जाता रहा। वह उत्तम ऐश्वर्य्य-सम्पत्तिके अधीश्वर हो कर आनन्दसे समय व्यतीत करने लगे ॥ २५ ॥ महाराज! ब्रह्मा, शिव, सनत्कुमार, भृगु आदि मुनिगण, पितृगण, सिद्धगण और वैमानिकगण आदि सम्पूर्ण प्राणी, मार्गमें हरिकी परम अद्भुत कीर्तिका कीर्तन एवं अदिति देवीके भाग्यकी प्रशंसा करते हुए अपने २ स्थानको गये ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे कुलनन्दन! मैंने यह सब वामन अवतारकी कथा तुम्हारे आगे वर्णन की, इसके सुननेसे सब पातक दूर हो जाते हैं ॥ २८ ॥ जो मनुष्य, विक्रमशील भगवान्‌की सम्पूर्ण अपार महिमाओंका उल्लेख करनेकी अभिलाषा करता है वह कदाचित् पृथ्वी भरके धूलि-कणोंकी गणना भी कर सक्ता है! क्योंकि मन्त्रदर्शी ऋषिगणने स्पष्टरूपसे कहा है कि जो वर्त्तमान हैं या जो आगे होंगे, उनमें, कोई भी मनुष्य, पूर्ण-पुरुषकी महिमाका पार नहीं पा सक्ता † ॥ २९ ॥ जो कोई अद्भुत कर्म्म करनेवाले हरिके इस अवतारका विचित्र चरित्र सुनता है वह परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

† तथाच मन्त्रः "न ते विष्णोर्ज्जायमानो न जातो देवमहिम्नः परमन्तमाप।"

क्रियमाणे कर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ मानुषे ॥
यत्र यत्रानुकीर्त्येत तत्तेषां सुकृतं विदुः ॥ ३१ ॥

देवता, पितर वा मनुष्य-सम्बन्धी कर्म्म करनेके समय यदि इस चरित्रका कीर्त्तन किया जाय तो उन कर्म्मोंकी भली भाँति पूर्त्ति हो जाती है ॥ ३१ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंश अध्याय।

मत्स्य-अवतारका वर्णन।

राजोवाच—भगवन् श्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मणः ॥
अवतारकथामाद्यां मायामत्स्यविडम्बनम् ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा। हे ब्रह्मन्! हमारी इच्छा है कि आप विचित्र कर्म्म करनेवाले भगवान्के मायामय मत्स्य अवतारकी आदि-कथा हमको सुनाइये ॥ १ ॥ मत्स्य-योनि तामस होनेके कारण दुस्सह है और लोग उससे घृणा करते हैं। तब साक्षात् ईश्वरने कर्म्मपराधीन साधारण जीवकी भाँति किस लिये ऐसी घृणित मत्स्ययोनिमें अवतार लिया? सो आप कृपा करके ठीक २ कहिये। पवित्र कीर्त्तिवाले भगवान्का चरित्र सभी लोगोंके मनको आनन्दित करता है ॥ २ ॥ ३ ॥ **श्रीसूतजी** अट्ठासी हजार शौनकादि ऋषियोंसे कहते हैं कि विष्णुभक्त परीक्षित् राजाके यों प्रश्न करने पर शुकदेवजीने इस प्रकार मत्स्यावतारके सम्पूर्ण चरित्रको वर्णन करना आरंभ किया ॥४॥ **श्रीशुकदेवजी बोले।** राजन्! गऊ, ब्राह्मण, देवता, साधु, धर्म्म, वेद एवं अर्थ (देवता आदिके प्रयोजन) की रक्षा करनेके लिये ईश्वर हरि समय २ पर अवतार लेते रहते हैं ॥ ५ ॥ वह ईश्वर, बुद्धिके गुणोंके संयोगसे वायुकी भाँति सम्पूर्ण उत्कृष्ट और निकृष्ट रूपों (शरीरों)के नियन्ता-रूपसे भ्रमण करते रहते हैं तथापि स्वयं उत्कृष्ट या निकृष्ट नहीं होते; क्योंकि वह निर्विकार और निर्गुण हैं ॥ ६ ॥ राजन्! जो कल्प बीत गया उसके अन्तमें इसी निमित्तसे नैमित्तिक प्रलय हुआ एवं भू आदि तीनो लोक समुद्रके जलमें निमग्न हो गये ॥ ७ ॥ ब्रह्माजीने कालवश निद्रित हो कर शयन किया। अचेत ब्रह्माजीके मुखसे निकल कर निकट ही पड़े हुए वेदोंको महाबली हयग्रीव नाम दैत्य हर ले गया ॥ ८ ॥ भगवान् विष्णुने उस दैत्यके इस दुष्कर भयङ्कर कर्म्मको जान कर (उसे मार कर वेदोंका उद्धार करनेके लिये) उसी समय मत्स्यरूप धारण किया ॥ ९ ॥ उस समय सत्यव्रत नाम एक महात्मा

नारायणपरायण राजऋषि जलके भीतर बैठे हुए तप कर रहे थे ॥ १० ॥ वही सत्यव्रत राजर्षि इस कल्पमें विवस्वान् अर्थात् सूर्य्यके पुत्र होकर श्राद्धदेव (इनका दूसरा नाम वैवस्वत भी है) नामसे विख्यात हुए; जिनको हरिने सातवें मनुका पद दिया है ॥ ११ ॥ राजर्षि सत्यव्रत एक दिन कृतमाला नदीके जलमें तर्पण कर रहे थे। इतनेमें उनकी अञ्जलिके जलमें एक छोटी सी मछली चली आई ॥ १२ ॥ राजन्! द्राविड़ेश्वर राजा सत्यव्रतने उस मछलीको अंजलीके जल सहित नदीके जलमें फेंक दिया ॥ १३ ॥ उस मछलीने परम दयालु राजासे कातर हो कर दीन स्वरसे कहा कि "हे दीनवत्सल! मैं निबल हूँ। मैं अपनी जातिका ही संहार करनेवाले मगर ग्राह आदि अन्य सबल जल-जन्तुओंसे डरती हूँ। मुझ भयभीत शरणागत जीवको आप इस अगाध जलमें कैसे कठोर हृदयवाले मनुष्योंकी भाँति फेंके देते हैं?"। हे कुरुकुलतिलक! सत्यव्रत पर ही कृपा करनेके लिये नारायणने मत्स्यशरीर धारण किया था, किन्तु सत्यव्रतको यह कुछ विदित न था, इस लिये उन्होने मछलीके दीन वाक्यों पर दया करके उसकी रक्षा करना विचारा। दयालु राजा उस छोटी सी मछलीको जलपूर्ण कमण्डलुमें डाल कर अपने आश्रमको ले चले ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ वह छोटी सी मछली एक ही रातमें इतना बढ़ गई कि उसका उस छोटे लोटेमें रहना कठिन हो गया। तब उसने राजासे कहा कि हे नरवर! मैं इस कमण्डलुमें सुखपूर्वक नहीं वास कर सक्ती; जिसमें मैं सुखसे रह सकूँ ऐसा कोई बड़ा स्थान मुझको दीजिये ॥ १७ ॥ १८ ॥ राजा सत्यव्रतने उस मछलीको कमण्डलुसे निकाल कर मटकेके जलमें डाल दिया। दो घड़ीमें ही वह मछली तीन हाथ बढ़ गई ॥ १९ ॥ फिर उसने राजासे कहा कि महाराज! इस स्थानमें मैं सुखसे नहीं रह सक्ती। इससे भी बड़ा कोई स्थान मुझको दीजिये, क्योंकि मैं आपकी शरणमें आई हूँ ॥ २० ॥ महाराज! सत्यव्रतने उस मीनको मटकेसे निकाल कर सरोवरमें छोड़ दिया। कुछ ही कालमें वह मीन बहुत ही बढ़ कर महामत्स्य हो गया ॥ २१ ॥ उस मीनने फिर राजासे कहा कि महाराज! मैं जलमें रहनेवाला जन्तु हूँ, मुझे इस सरोवरमें कष्ट होता है, क्योंकि यह छोटा है। अब मुझे किसी ऐसे जलाशयमें छोड़िये जिसका जल चुके नहीं (अर्थात् बहता हो), क्योंकि आपने मेरी रक्षाका भार लिया है ॥ २२ ॥ सत्यव्रतने उस मीनके यों कहने पर उसे ले कर एक एक करके सब जलाशयोंमें छोड़ा, किन्तु उस अद्भुत मीनने अपने विशाल शरीरसे सबको ही परिपूर्ण कर दिया। जब किसी भी नदी आदि जलाशयमें उस महामत्स्यका निर्वाह न देख पड़ा तब अन्तको राजाने उसे सागरमें डालना चाहा। किन्तु जब सत्यव्रत उसको समुद्रमें छोड़ने लगे तो उसने फिर कहा कि हे वीर! मुझसे अधिक बलवाले मगर आदि जलके जीव मुझको खा-

जायँगे; अतएव इस सागरके जलमें मुझे आप न छोड़िये—आपको ऐसा करना उचित नहीं है ॥ २३ ॥ २४ ॥ इस प्रकार मधुर वाक्य कह कर उस मत्स्यने राजाको मोहित कर दिया। तब राजा सत्यव्रतने उस महामत्स्यसे कहा कि आप कौन हैं, मत्स्यरूपसे हमको मोहित कर रहे हैं। हमने आपके समान वीर्य्यवान् जलचर जीव न कभी देखा है और न सुना है। आपने एक ही दिनमें सौ योजनके सरोवरको अपने वृद्धिशील विशाल शरीरसे व्याप्त कर लिया! आप निश्चय ही साक्षात् नारायण हरि हैं। प्राणियोंका मङ्गल करनेके लिये आपने यह जलचररूप धारण किया है। हे पुरुषश्रेष्ठ! आपको प्रणाम है। विभो! आप सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले ईश्वर हैं और मेरे समान विपद्ग्रस्त शरणागत भक्तोंके मुख्य आश्रय और आत्मा हैं। लीला करनेके लिये आपके जो २ अवतार होते हैं उन सबसे सम्पूर्ण प्राणियोंका मङ्गल होता है। भगवन्! आपने जिस उद्देश्यसे यह मत्स्यरूप धारण किया है सो मैं जानना चाहता हूँ। हे कमलनयन! आप सबके बन्धु और प्रिय आत्मा हैं। देहादि मिथ्या वस्तुओंमें वृथा अभिमान रखनेवाले साधारण जनोंके चरणोंकी सेवाके समान आपके चरणोंकी सेवा विफल नहीं जाती। आपने यह अपना अद्भुत शरीर प्रकट करके हमको विस्मयमें डाल दिया है ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ ३० ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** महाराज! यों कह रहे राजा सत्यव्रतसे, युगके अन्तसमयमें प्रलय सागरके बीच क्रीड़ा करनेके लिये मत्स्यरूप धारण किये हुए भक्तजनोंके प्रिय जगदीश्वरने अपना उद्देश्य यों प्रकट किया ॥ ३१ ॥ **श्रीभगवान्ने कहा।** हे शत्रुतापन! आजके सातवें दिन भूः, भुवः आदि तीनो लोक प्रलयसागरके जलमें डूब कर नष्ट हो जायँगे ॥ ३२ ॥ तीनो लोक प्रलयके जल में जब डूबेंगे उस समय मेरी प्रेरणासे एक बड़ी भारी नाव तुम्हारे पास आकर उपस्थित होगी (यह नाव और कुछ नहीं पृथ्वी ही होगी, जो जनहीन हो कर उमड़े हुए प्रलयसागरके जलमें तैरती रहेगी) ॥ ३३ ॥ तुम सब औषधि और सब प्रकारके बीज एवं सब प्रकारके प्राणियोंको ले कर सप्तर्षिगण (जो पहलेहीसे उस पर बैठे होंगे) सहित उसी बड़ी नाव पर चढ़ कर सुस्थिर चित्तसे उस अन्धकारमय प्रलयसागरमें विचरते रहना। ऋषियोंके ब्रह्मतेजके प्रकाशसे तुम्हें उस घोर अंधकारमें कुछ भी कष्ट न होगा ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ जब प्रचण्ड वायुके झोंकोंसे वह नाव निराधार होनेके कारण हिलने डुलने अर्थात् झोंके खाने लगेगी उस समय मैं इसी रूपसे तुम्हारे निकट आ कर उपस्थित होऊँगा। तब तुम महासर्प वासुकीके द्वारा मेरे विशाल शृंगमें उस नावको बाँध देना ॥ ३६ ॥ मैं, ऋषिगण और तुम्हारे सहित उस नावको, जब तक ब्रह्माकी रात्रिका अन्त न होगा तब तक खींचता हुआ प्रलय-

सागरमें विचरता रहूँगा ॥ ३७ ॥ 'परब्रह्म'नामक जो मेरी महिमा है– उसको तुम्हारे पूछने पर मैं तुम्हारे हृदयमें प्रकट करूँगा और मेरे अनुग्रहसे तुमको उसका ज्ञान होगा ॥ ३८ ॥ राजासे इतना कह कर भगवान् उसी सागरके जलमें अदृश्य हो गये । नारायण भगवान् जितने दिनके बाद प्रलय होना कह गये थे, राजा सत्यव्रत, पूर्वमुख कुशोंका आसन डालकर, उस पर पूर्वोत्तर कोणकी ओर मुख करके मत्स्यरूपी हरिके चरणोंका हृदयमें ध्यान करते हुए, उतने दिन तक प्रलयकी प्रतीक्षा करते रहे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ सातवें दिन राजाने देखा कि घोर घनघटा घिर आई और मूशलधार जलकी वर्षा होने लगी । समुद्रने अपनी मर्य्यादा छोड़ दी और उमड़ कर चारो ओरसे पृथ्वीको डबोने लगा ॥ ४१ ॥ उस समय भगवान्की आज्ञाका स्मरण कर रहे राजाने देखा कि उनके निकट एक नाव आकर उपस्थित हुई । राजा सब औषधि और लता ले कर सप्तर्षिगणसहित उस नाव पर सवार हुए * ॥ ४२ ॥ तब सप्तर्षिगणने प्रसन्न हो कर सत्यव्रतसे कहा कि हे राजन्! इस समय केशव भगवान्का ध्यान करो, वही इस संकटसे रक्षा करके हमारा कल्याण करेंगे ॥ ४३ ॥ तदनन्तर राजाके ध्यान करने पर उसी महासागरमें सुवर्णमय-मत्स्य-शरीरधारी भगवान् प्रकट हुए। उनके शिर पर एक विशाल शृंग (सींग) था और उनका शरीर दश हजार योजन लंबा और चौड़ा था ॥ ४४ ॥ प्रसन्नचित्त राजाने नारायणकी आज्ञाके अनुसार वासुकि नागके शरीरसे मत्स्यरूप भगवान्के सींगमें उस नावको बाँध दिया और मधुसूदन ईश्वरकी इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥ राजाने कहा कि अनादि अविद्यामें जिनका आत्मज्ञान आच्छन्न हो रहा है, सुतरां जो लोग, अविद्या ही जिसका मूल कारण है उस संसारसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंके लाभकी चेष्टामें आतुर हो रहे हैं वे इस संसारमें जिसकी कृपासे जिसको प्राप्त होते हैं वही साक्षात् मुक्तिदाता आप परम गुरु हो कर हमारे हृदयकी अज्ञानरूप गाँठको छिन्न कीजिये ॥ ४६ ॥ ये सब अज्ञ जीव अपने पूर्वज कर्मोंमें आबद्ध हो कर सुख पानेकी कामनासे कर्म्म करनेमें तत्पर होते हैं, किन्तु वास्तवमें सब कर्म दुःखदायक हैं, क्योंकि उनसे संसारकी निवृत्ति नहीं होती । जिस भगवान्की सेवा करनेके फलसे उक्त अज्ञ जीव मिथ्या सुखकी अभिलाषाको छोड़ देते हैं वही परम गुरु ईश्वर हमारे हृदयकी मोहमय ग्रंथिका छेदन करें ॥ ४७ ॥ चाँदी जैसे अग्निके स्पर्शसे मल त्याग कर अपना स्वच्छ वर्ण पाती है वैसे ही जिसकी सेवा करके जीवात्मा मलस्वरूप अज्ञान त्याग कर अपने रूपको प्राप्त

* यह प्रलय किसी प्रकारका वास्तविक प्रलय न था, किन्तु भगवान्ने अपनी मायासे यह प्रलय सत्यव्रतको ही दिखाया, जैसा कि नरनारायणरूप भगवान्ने मार्कण्डेय ऋषिको प्रलय दिखाया था ।

होता है वही ईश्वर आप हमारे गुरु हों; क्योंकि आप गुरुओंके भी परम गुरु हैं ॥ ४८ ॥ अन्यान्य देवता और गुरुजन सब एकत्रित हो कर भी जिसकी कृपाके दसहजारवें (सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म) अंशके समान भी कृपा नहीं कर सक्ते, आप वही ईश्वर हैं; मैं आपकी शरण हूँ ॥ ४९ ॥ अंधेको राह दिखानेवाला अंधा होने पर जैसे दोनो किसी न किसी गढ़ेमें गिर कर कष्ट उठाते हैं वैसे ही अज्ञ व्यक्तिका अज्ञ गुरु होने पर दोनोको कष्ट होता है अर्थात् दोनो भवकूपमें गिरते हैं । किन्तु आपका ज्ञान सूर्य्यके प्रकाशके समान स्वयंप्रकाशमान है; सुतरां आप सब इन्द्रियोंके प्रकाशक (चैतन्यदाता) हैं, हम आत्माकी गति (तत्त्व) जाननेके लिये उत्सुक हैं, अतएव आपको ही अपना यथार्थ गुरु मान कर प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥ मनुष्य, मनुष्यको जिस असत् मतिका उपदेश करते हैं वह दूषित है, उससे उपकारके बदले अपकार ही होता है; क्यों कि शिष्य उस मतिसे घोर अन्धकार(मोह)को प्राप्त होता है । किन्तु आप अमोघ अक्षय ज्ञानका उपदेश करनेवाले गुरु हैं; लोग उस ज्ञानको पाकर निश्चय ही अपने सच्चिदानन्द पदको पा सक्ते हैं ॥ ५१ ॥ आप सब लोगोंके प्रिय, मित्र, ईश्वर, आत्मा, गुरु, ज्ञान एवं वांछित सिद्धि हैं । आप सबके हृदयमें ही निवास करते हैं तथापि वे आपको नहीं जान पाते, क्योंकि उनकी बुद्धि अन्य ओर (विषयोंमें) लगी रहनेके कारण अंध हो रही है और विषयवासनाने उनके हृदयोंमें अपनी जड़ जमा रक्खी है ॥ ५२ ॥ हे देव ! मैं ज्ञानलाभके लिये इस प्रकार सब देवतोंमें श्रेष्ठ और वरणीय ईश्वर जो आप हैं उनके चरणोंकी शरणमें आया हूँ । भगवन् ! परमार्थप्रकाशक अपने वाक्योंसे मेरे हृदयमें उत्पन्न जो अहंकार आदि गाँठें हैं उनको काट दीजिये और हमारा स्वरूप (ब्रह्म) हमको बताइये ॥ ५३ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं ।** राजर्षि सत्यव्रतके इस प्रकार कहने पर आदिपुरुष भगवान्ने प्रलयसागरमें महामत्स्यरूपसे विहार करते हुए उनको परमतत्त्वका उपदेश दिया । भगवान्ने सांख्ययोग और क्रियासे युक्त दिव्य पुराणसंहिता (सम्पूर्ण मत्स्यपुराण) की व्याख्या एवं आत्मज्ञानका भी अनेक प्रकारसे उपदेश किया ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ सप्तर्षिगणसहित राजा सत्यव्रतने उस नाव पर बैठे २ भगवान्के मुखसे निःसंशय आत्मतत्त्व एवं सनातन वेदोंको सुना ॥ ५६ ॥ तदनन्तर बीते हुए प्रलयके अन्तमें निद्रासे उठे हुए ब्रह्माको, मत्स्यरूपधारी दानवोंके शत्रु हरिने हयग्रीव दानवका संहार करके नष्ट हुए वेद फिर लौटा कर दिये ॥ ५७ ॥ राजा सत्यव्रत, विष्णुकी कृपासे ज्ञान और विज्ञानसे सम्पन्न हो कर इस वर्त्तमान कल्पमें वैवस्वत नाम सातवें मनु हुए ॥ ५८ ॥ जो कोई मनुष्य, राजर्षि सत्यव्रत और मायामय मीनरूपधारी विष्णुका महाआश्चर्य्यपूर्ण सम्वाद (और कथा) सुनता है वह सब पातकोंसे मुक्त हो जाता

है ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य नित्य हरिके इस मत्स्यावतारका पवित्र और विचित्र चरित्र पढ़ता है उसकी सब अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं और अन्तमें उसको परम गति प्राप्त होती है ॥ ६० ॥

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः
श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा ॥
दितिजमकथयद्यो ब्रह्म सत्यव्रतानां
तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥ ६१ ॥

ब्रह्माके अचेत हो कर शयन करने पर जब हयग्रीव दानव उनके मुखसे वेदोंको चुराकर चला गया, तब जिन्होने उसे मार कर वेदोंका उद्धार किया एवं अपने परम भक्त राजा सत्यव्रत और सप्त ऋषियोंको सनातन वेदोंका उपदेश किया उन्ही सम्पूर्ण जगत्के कारणस्वरूप मायामय मत्स्यरूपधारी भगवान् हरिको हम प्रणाम करते हैं ॥ ६१ ॥

इति श्रीभागवतेऽष्टमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

समाप्तोऽयमष्टमस्कन्धः ।





शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

नवमस्कन्धः ।





कपिलदेवजी और राजकुमार अंशुमान् ।

॥ श्रीः ॥

शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

नवमस्कन्धः ।



प्रथम अध्याय ।

सुद्युम्नराजाको स्त्रीयोनिप्राप्ति ।

राजोवाच—मन्वन्तराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे ॥
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च ॥ १ ॥

राजा परीक्षित् बोले कि भगवन्! आपने सब मन्वन्तर और उन मन्वन्तरोंमें अनन्त पराक्रमवाले हरिके किये हुए चरित्र कहे और मैंने सुने ॥ १ ॥ जो द्रविड़देशके राजा राजऋषि सत्यव्रत नाम थे, जिन्होने बीते हुए कल्पके अन्तमें ईश्वरकी सेवा करके मत्स्यावतारके मुखसे ज्ञान प्राप्त किया था ॥ २ ॥ वही सूर्यके पुत्र वैवस्वत मनु हुए। उनका और उनके इक्ष्वाकु आदि पुत्रोंका वर्णन भी मैंने आपसे सुना ॥ ३ ॥ हे महाभाग! इस समय उन इक्ष्वाकु आदि मनुके पुत्रोंका अलग २ वंश और वंशधर राजाओंके चरित्र हमसे कहिये। हे ब्रह्मन्! हम ऐसे उत्तम चरित्र सुननेमें ऊबते नहीं हैं, बरन् यदि नित्य हुआ करें

तो उनके सुननेकी हमें वैसी ही श्रद्धा बनी रहेगी ॥ ४ ॥ मनुके वंशमें जो राजा हो गये हैं और जो होंगे एवं जो इस समय वर्तमान हैं उन पवित्र कीर्तिवाले राजाओंके चरित्र हमसे कहिये ॥ ५ ॥ **सूतजी** शौनक आदि ऋषियोंसे कहते हैं कि इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी लोगोंकी सभामें परीक्षित् राजाके प्रश्न करने पर परमहंसधर्मके जाननेवाले श्रीशुक भगवान् बोले ॥ ६ ॥ हे राजन्! मनुके वंशको सुनिये। इसको यदि कोई विस्तारसे वर्णन किया चाहे तो सौ वर्षमें भी नहीं कह सक्ता ॥ ७ ॥ चराचर प्राणियोंके आत्मा जो परमपुरुष नारायण हैं वही कल्पके अन्तमें थे, और जो यह विश्व देख पड़ता है सो कुछ भी न था ॥ ८ ॥ उन नारायण भगवान्की नाभिसे सुवर्णका एक कमल उत्पन्न हुआ। उस कमलसे चार मुखवाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, जिनको स्वयम्भू कहते हैं ॥ ९ ॥ उन ब्रह्माजीके मनसे मरीचि ऋषि उत्पन्न हुए, मरीचिके कश्यप हुए। उनकी स्त्री, दक्ष प्रजापतिकी कन्या अदितिमें विवस्वान् (सूर्य) उत्पन्न हुए ॥ १० ॥ सूर्यके संज्ञा नाम स्त्रीमें श्राद्धदेव नाम मनु हुए, उन्होने अपनी श्रद्धा नाम स्त्रीमें दस पुत्र उत्पन्न किये ॥ ११ ॥ उन दसोंके नाम ये हैं-इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूपक, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि ॥ १२ ॥ पहले जब मनुके कोई पुत्र न था तब वशिष्ट भगवान्ने पुत्र होनेके लिये राजासे मित्रावरुण देवका यज्ञ कराया ॥ १३ ॥ उस यज्ञमें श्रद्धा नाम मनुकी स्त्री, जो यज्ञकी दीक्षामें केवल दूध ही पीकर रहती थी, वह होता (होम करनेवाले ऋषि) के पास आकर प्रणाम करके प्रार्थना करने लगी कि महाराज! ऐसी कृपा कीजिये जिसमें मेरे कन्या उत्पन्न हो ॥ १४ ॥ अध्वर्युने होतासे जब हवनकी आहुति छोड़नेको कहा तब उसने रानीकी प्रार्थनाके अनुसार एकाग्र चित्तसे "कन्या उत्पन्न हो" ऐसा ध्यान करके "वषट् वौषट्" आदि वैदिक शब्द, जो हवन करतेमें कहे जाते हैं, उनका उच्चारण करके आहुति छोड़ी ॥ १५ ॥ हवन करनेवाले ब्राह्मणके इस व्यतिक्रमसे इला नाम कन्या उत्पन्न हुई। उसको देख कर मनुजी कुछ प्रसन्न नहीं हुए, क्योंकि उन्होने तो पुत्रके लिये यज्ञ किया था। मनुजी गुरुसे बोले कि ॥ १६ ॥ ब्रह्मन्! यह क्या हुआ? आप लोग वेदके जाननेवाले शुद्ध ब्राह्मण हैं, आपके कर्मका यह उलटा फल हुआ! बड़े कष्टकी बात है! यों मंत्रका अन्यथा होना अयोग्य है! ऐसा तो न होना चाहिये! ॥ १७ ॥ भगवन्! आप लोग अमोघ मंत्रोंके जाननेवाले और सुयोग्य हैं, तपसे आपके अन्तःकरणका मल दूर हो गया है। तब यह संकल्पके विपरीत फल कैसे हुआ? देवपूजा कैसे विफल हुई? ॥ १८ ॥ राजाके ये वचन सुन कर भगवान् वशिष्ठने ध्यान किया और हवन करनेवालेके किये हुए व्यतिक्रमको जान कर मनु महाराजसे बोले ॥ १९ ॥ राजन्! आपके संकल्पके विरुद्ध फल प्राप्त होनेका कारण यह है कि हवन करने

वाले ब्राह्मणने कन्याकी कामना करके आहुति छोड़ी है, इसमें हमारा या मंत्रका कोई दोष नहीं है। तथापि हम अपने ब्रह्मतेजसे आपकी कामना पूर्ण करेंगे, यह कन्या-ही सुन्दर राजकुमार होगी ॥ २० ॥ महायशस्वी वशिष्ठजी इस प्रकार निश्चय कर इला कन्याके पुरुष होजानेके लिये आदिपुरुष ईश्वरकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ भगवान् हरि ईश्वरने सन्तुष्ट हो कर वशिष्ठकी इच्छाके अनुसार वर दिया। वह इला कन्या पुरुष हो गई और उसका नाम सुद्युम्न हुआ ॥ २२ ॥ हे महाराज! वह वीर सुद्युम्न एक दिन सिंधु देशके घोड़े पर चढ़ कर, सुंदर धनुष और परम अद्भुत वाण ले कुछ मंत्रियों और अनुचरोंके साथ उत्तर दिशामें शिकार खेलने गये ॥ २३ ॥ २४ ॥ सुमेरु पर्वतकी तरहटीमें एक वन है, जहाँ पर भगवान् शिव पार्वतीजीके साथ रमण किया करते हैं, उसी वनमें राजकुमार सुद्युम्नने प्रवेश किया ॥२५॥ उस वनमें प्रवेश करते ही शत्रुसेनाका संहार करनेवाले सुद्युम्नने देखा कि वह स्वयं स्त्री हो गये हैं, उनका घोड़ा भी घोड़ी हो गया है ॥ २६ ॥ इसी भाँति जितने लोग सुद्युम्नके साथ थे, सब अपने २ रूपका बदलना देख कर मनमें उदास हो गये और विस्मित हो कर एक २ को देखने लगे ॥२७॥ **राजा परीक्षित् बोले।** भगवन्! वह स्थान ऐसा क्यों था कि वहाँ जाने पर पुरुष स्त्री हो जाते थे? किसीने उस स्थानको ऐसा बना डाला था, या उस स्थानमें यह बात स्वाभाविक थी? कृपा कर इस मेरे प्रश्नका उत्तर दीजिये, मुझको इसके सुननेकी बड़ी उत्कण्ठा है ॥ २८ ॥ **श्रीशुकजी बोले** कि एक समय अपने तेजसे दिशाओंका अंधकार दूर करते हुए सप्त ऋषि लोग शिवजीका दर्शन करने इसी वनमें गये ॥ २९ ॥ उस समय अम्बिका देवी नग्न थीं, सो यकायक उन ऋषियोंको आये हुए देख बहुत ही लज्जित हुईं और शीघ्रता-पूर्वक शंकरकी गोदसे उठ कर वस्त्र पहन लिये ॥ ३० ॥ ऋषिगण भी दूरसे ही शिवशिवाको रमण करते हुए देख कर लौट पड़े और उधरसे ही नरनारायणके आश्रमको चले गये ॥ ३१ ॥ उस समय भगवान् शिवने प्रियाका प्रिय करनेके लिये कहा कि आजसे जो कोई पुरुष इस वनमें प्रवेश करेगा वह स्त्री हो जायगा ॥ ३२ ॥ राजन्! तबसे लोग उस वनमें नहीं जाते। इस शिवके आदे-शको सुद्युम्न नहीं जानते थे। सुद्युम्न स्त्रीके रूपसे स्त्रीशरीरधारी सेवकों सहित इधरसे उधर घूमने लगे ॥ ३३ ॥ उसी वनके पास चन्द्रके पुत्र बुधका आश्रम था, जिसमें बुध तप करते थे। वह स्त्री (सुद्युम्न) अपने साथकी स्त्रियोंसहित बुधके आश्रमके पास टहल रही थी। उसको देख कर बुध मोहित हो गये ॥ ३४ ॥ और वह स्त्री भी बुध पर आसक्त हो गई। बुध और वह स्त्री अर्थात् सुद्युम्न मिल कर उसी आश्रममें रहने लगे ॥ ३५ ॥ हमने सुना है कि इस प्रकार स्त्री हो गये मनुवंशी राजकुमार सुद्युम्नने एक समय अपने कुलके आचार्य्य

वशिष्ठजीका स्मरण किया ॥ ३६ ॥ वशिष्ठजी आये और सुद्युम्नकी यह दशा देख कर उन्हे बहुत ही दया आई । तब वह सुद्युम्नको पुरुष बनानेके लिये शिव भगवान्की आराधना करने लगे ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! शिवजी प्रसन्न हुए, और वशिष्ठकी भी इच्छा पूरी हो और अपना वचन भी न मिथ्या हो, इस विचारसे यों कहने लगे कि ॥ ३८ ॥ भगवन् ! आपके कहनेसे सुद्युम्नके लिये मैं यह व्यवस्था किये देता हूँ कि एक महीने तक यह स्त्री रहे और एक महीने पुरुष रह कर पृथ्वीका पालन करे ॥ ३९ ॥ अपने आचार्य वशिष्ठजीकी कृपासे शिवजीकी की हुई व्यवस्थाके अनुसार सुद्युम्न राजा पृथ्वीका पालन करने लगे । किन्तु उनकी प्रजाको यह व्यवस्था भली न लगी ॥४०॥ राजा सुद्युम्नके उत्कल, गय और विमल नाम तीन पुत्र हुए, ये तीनो दक्षिण देशके राजा और परम धर्मात्मा हुए ॥४१॥

ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः ॥
पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम् ॥ ४२ ॥

जब सुद्युम्न राजा वृद्ध हुए, तब अपने बड़े पुत्र पुरूरवा (जो स्त्रीकी दशामें बुधसे उत्पन्न हुए थे) को सब राज्य देकर आप वनको चले गये ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय ।

करूषक आदि मनुके पाँच पुत्रोंके वंशका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच—**एवं गतेऽथ सुद्युम्ने मनुर्वैवस्वतः सुते ॥**
पुत्रकामस्तपस्तेपे यमुनायां शतं समाः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले । इस प्रकार जब सुद्युम्नजी पुरूरवाको राज्य देकर तप करने वनको गये तब पुत्रकी इच्छासे वैवस्वतजी मनुने सौ वर्ष तक यमुनाके किनारे तप किया ॥ १ ॥ तिसके बाद मनुने पुत्रके लिये हरि भगवान्का पूजन किया । तब उनके उन्हीके समान इक्ष्वाकु आदि दश पुत्र हुए ॥ २ ॥ इन दश पुत्रोंमें पृषध्र नाम जो मनुके पुत्र थे उनको गुरुने गायोंकी रक्षाके काममें लगाया । वह रात्रिके समय गोशालामें तर्वार हाथमें ले वीर आसनसे बैठ कर गायोंकी रक्षा किया करते थे ॥ ३ ॥ एक दिन रात्रिको पानी बरस रहा था, उसी समय एक सिंह गोशालाके भीतर घुस आया, उसे देख कर सोई हुई गायें उठ कर भयके मारे इधर उधर बाड़ेमें भागने लगीं ॥ ४ ॥ सिंहने एक गायको पकड़ लिया, और वह भयभीत होकर चिल्लाने लगी । उसका शब्द सुन कर पृषध्रजी तर्वार ले

सिंहको मारनेके लिये दौड़े। रात्रि अँधेरी थी, मेघ घिरे रहनेके कारण तारागण भी छिपे हुए थे। सिंहके धोखे इन्होने गायका शिर काट डाला ॥ ५ ॥ ६ ॥ किन्तु इनके प्रहारसे सिंहके भी कान काट गये और खड्गकी नोक लगनेसे घाव हो गया। तब वह भयभीत सिंह वहाँसे प्राण लेकर भागा। राहमें उसके घावसे रुधिर गिरता गया ॥ ७ ॥ पराई सेनाका नाश करनेवाले पृषध्रने जाना था कि मैंने सिंहको मारा, परंतु रात बीतने पर सबेरे देखा कि सिंह नहीं मरा, गाय मरी है। यह देख कर उन्हे बड़ा ही दुःख हुआ ॥ ८ ॥ यद्यपि धोखेसे पृषध्रने गोवध किया था किन्तु कुलके आचार्य वशिष्ठजीने शाप दिया कि तू क्षत्रिय नहीं रहा, इस कर्मसे शूद्र हो गया ॥ ९ ॥ इस प्रकार गुरुने शाप दिया, उसको पृषध्रने हाथ जोड़कर स्वीकार किया और उसी समयसे मुनियोंके समान ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लिया (बालब्रह्मचारी हो गये, विवाह नहीं किया)॥ १० ॥ सबके आत्मा, शुद्ध, परमपुरुष भगवान् हरिमें भक्ति करके तन्मय हो गये। सब प्राणियोंके मित्र और समदर्शी होकर ॥ ११ ॥ सब विषयोंका संग त्याग दिया, मनको शान्त किया, इन्द्रियोंको अपने वशमें किया। जो मिलता उसीको खा लेते, उसीमें निर्वाह करते, कुछ संचय नहीं करते, इस प्रकार मनको आत्मामें लगा कर एकाग्रभावसे ब्रह्मज्ञानमें सन्तुष्ट रह कर इस पृथ्वीमें जड़, अंधे और बहरोंके समान विचरने लगे ॥ १२ ॥ १३ ॥ मुनि-अवस्थाको प्राप्त पृषध्रजी जीवन्मुक्त हो गये, वह केवल कर्मफल भोगके लिये शरीर धारण किये हुए थे, सो एक दिन यों हीं घूमते २ एक वनमें गये, वहाँ दावानल लगाथा, उसी अग्निमें शरीर भस्म होगया और वह परब्रह्ममें लीन हो गये ॥ १४ ॥ सबसे छोटे मनुके पुत्रका नाम कवि था, उनको बालपनसे ही विषयोंसे वैराग्य था। इस लिये वह भाइयोंको,राज्यको त्याग कर वनको चले गये और चित्तमें स्वयं प्रकाशमान ईश्वरका ध्यान करते हुए त्रिलोकीमें विचरने लगे। उनकी सदा किशोर अवस्था रहती है ॥ १५॥ मनुके पुत्र करूषसे ब्रह्मभक्त और भक्तों पर प्रेम करनेवाले उत्तरापथके राजा कारूष नाम क्षत्रिय (जाति) हुए ॥ १६ ॥ मनुके धृष्टनाम पुत्रसे धार्ष्टर्य नाम क्षत्रिय हुए, वे अपने कर्मोंके द्वारा क्षत्रियसे ब्राह्मण हो गये। मनुके पुत्र नृगके सुमतिनाम पुत्र हुआ। सुमतिके भूतज्योति और उनके वसुनाम पुत्र हुआ॥ १७॥ वसुके प्रतीक हुए, प्रतीकके ओघवान् हुए, ओघवान्के पुत्रका भी नाम ओघवान् हुआ और एक कन्या हुई उसका नाम ओघवती हुआ; जिसके साथ सुदर्शनने ब्याह किया ॥ १८ ॥ मनुके पुत्र नरिष्यन्तके चित्रसेन हुए, उनके ऋक्ष और ऋक्षके मीढ्वान्, उनके कूर्च, कूर्चके इंद्रसेन, उनके वीतिहोत्र, उनके सत्यश्रवा, उनके उग्रश्रवा और उनके देवदत्त हुए ॥ १९ ॥ २० ॥ देवदत्तके अग्निवेश्य नामसे साक्षात् भगवान् अग्नि उत्पन्न हुए, उनको कानीन और महाऋषि जातूकर्ण्य भी

कहते हैं ॥ २१ ॥ अग्निवेश्यके वंशधर सब ब्राह्मण हो गये । हमने यह नरिष्यन्तका वंश कहा, अब दिष्टका वंश सुनो ॥ २२ ॥ दिष्टके पुत्र नाभाग हुए, आगे जिन नाभागकी कथा कहेंगे वह दूसरे हैं । दिष्टके पुत्र नाभाग अपने कर्मसे वैश्य हो गये । इनके पुत्र भलंदन हुए, भलंदनके वत्सप्रीति हुए ॥ २३ ॥ वत्सप्रीतिके प्रांशु और प्रांशुके प्रमति हुए । प्रमतिके पुत्र खनित्र और उनके चाक्षुप एवं चाक्षुपके विविंशति हुए ॥ २४ ॥ विविंशतिके रंभ नाम पुत्र हुआ । रंभके परम धर्मात्मा खनिनेत्र हुए और उनके करंधम नाम राजा हुए ॥ २५ ॥ करंधमके पुत्र अवीक्षित् हुए । उनके चक्रवर्त्ती महाराज मरुत् हुए । मरुत्को महायोगी अंगिरा ऋपिके पुत्रने महायज्ञ कराया ॥ २६ ॥ जैसा मरुत् राजाका यज्ञ हुआ वैसा यज्ञ आज तक किसीका नहीं हुआ, उनके यज्ञमें पात्रआदि सब सामग्री सुवर्णकी थी ॥ २७ ॥ इन्द्रको इतना सोमरस पिलाया गया कि वे बहुत प्रसन्न हुए और ब्राह्मणोंको इतना दान और दक्षिणा दी कि वे उसे ले न जासके। उनके यज्ञमें साक्षात् मरुत्गण भोजन परोसनेवाले थे और विश्वेदेवा सभासद थे ॥ २८ ॥ मरुत्के दम नाम पुत्र हुआ । दमके राज्यवर्धन और उनके सुधृति नाम राजा हुए। सुधृतिके नर और नरके पुत्र केवल तथा केवलके धुंधुमान् नाम पुत्र हुआ। धुंधुमान्के वेगवान् और वेगवान्के बुध एवं बुधके राजा तृणविंदु हुए ॥ २९ ॥ ३० ॥ यह बड़े ही गुणी और रूपवान् थे, अतएव इन पर अलंबुषा नाम अप्सरा मोहित हो गई । उस अप्सराके गर्भसे तृणविंदुके कई पुत्र और इडविडा नाम कन्या हुई ॥ ३१ ॥ इडविडाने विश्रवा ऋषिको अपना पति बनाया । विश्रवा ऋपिने अपने परम पूज्य योगेश्वर पितासे परम विद्या प्राप्त करके राजकुमारी इडविडाके गर्भसे निधिनाथ कुवेरको उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥ राजा तृणविंदुके विशाल, शून्यबंधु एवं धूम्रकेतु ये तीन पुत्र हुए। उनमें विशालके वंश हुआ, उन्हीं विशालने अपने नामसे वैशाली नाम नगरी बसाई ॥ ३३ ॥ विशालके हेमचन्द्र नाम पुत्र हुआ । हेमचंद्रके धूम्राक्ष और धूम्राक्षके संयम नाम पुत्र हुआ। संयमके कृशाश्व और देवाश्व नाम दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३४ ॥ कृशाश्वके सोमदत्त हुए, उन्होने अनेक अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञपुरुष भगवान्की आराधना की और अन्तमें योगेश्वरोंकी गतिको प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥

सौमदत्तिस्तु सुमतिस्तत्सुतो जनमेजयः ॥
एते वैशालभूपालास्तृणविन्दोर्यशोधराः ॥ ३६ ॥

सोमदत्तके पुत्रका नाम सुमति हुआ, सुमतिके जनमेजय नाम पुत्र हुआ। हे राजन् ! ये सब राजा नरपति विशालके वंशमें उत्पन्न हुए, जिन्होने अपने पूर्वज महाराज तृणविंदुके यशको अपने कर्मोंसे उज्वल किया ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय ।

मनुके पुत्र शर्यातिके वंशका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच—शर्यातिर्मानवो राजा ब्रह्मिष्ठः स बभूव ह ॥
यो वा अङ्गिरसां सत्रे द्वितीयमह ऊचिवान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले । मनुके पुत्र शर्याति नाम राजा वेदका अर्थ जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हुए । इन्होने अङ्गिरावंशज ऋषियोंके यज्ञमें दूसरे दिनका कर्म्म बताया ॥१॥ शर्यातिके सुकन्या नाम एक कमलनयनी कन्या थी । राजा शर्याति उसको साथ ले कर घूमते २ वनमें च्यवन ऋषिके आश्रममें पहुँचे ॥ २ ॥ सुकन्या अपनी सखियों सहित वनमें घूमती हुई वृक्षोंकी बहार देख रही थी । इतनेमें बल्मीकि (बाँबी) के छेदमें उसने दो जुगनुओंकी सी चमक देखी ॥ ३ ॥ दैवसंयोगवश लड़कपनके मारे सुकन्याने उस चमकती हुई वस्तुमें काँटा भोंक दिया, काँटा लगतेही उसमेंसे बहुत सा रुधिर बहा ॥ ४ ॥ सुकन्या तो वहाँसे भयभीत हो कर अपने डेरेमें चली आई । इधर सब सैनिकोंका और सामन्तोंका बड़ा बुरा हाल हुआ, सबका मलमूत्र बंद हो गया । राजऋषि शर्याति यह देख कर बहुत ही विस्मित हुए और अपने आदमियोंसे कहने लगे ॥ ५ ॥ भाई! यहाँ भगवान् भार्गव (च्यवन) ऋषिका आश्रम है, तुम लोगोंमेंसे किसीने उनका कोई अपराध तो नहीं किया है? मुझको विदित होता है कि किसीने अवश्य उनके आश्रममें जाकर कोई उत्पात किया है ॥ ६ ॥ यह सुनकर सुकन्याने डरते २ अपने पितासे कहा कि पिता! मैंने इतना अवश्य किया है कि दो चमकती हुई वस्तुओंको बिना जाने बूझे काँटेसे फोड़ दिया ॥ ७ ॥ यह सुन कर राजा शर्याति बहुत ही घबड़ाये और कन्याको साथ ले च्यवनजीके आश्रममें गये । जहाँ च्यवनजी तप करते २ बाँबियोंमें छिप गये थे वहाँ जाकर धीरे २ मुनिको प्रसन्न करने एवं कन्याका अपराध क्षमा कराने लगे ॥ ८ ॥ तिसके बाद मुनिके अभिप्रायको जान कर राजाने अपनी कन्या उन्हे अर्पण कर दी । सब सेनाका कष्ट वैसे ही नष्ट हो गया और स्वस्थ हो कर राजा शर्याति अपने पुरको लौटे ॥ ९ ॥ सुकन्याको बड़े ही क्रोधी च्यवन ऋषि पति मिले । किन्तु चतुर सुकन्या सदा सावधानीसहित सेवा करके उनको सन्तुष्ट रखती थी ॥ १० ॥ कुछ कालमें एक समय अश्विनीकुमार च्यवनजीके आश्रममें आये, च्यवनजीने उनका पूजन किया और कहा कि हे स्वर्गके वैद्यो! तुम मुझे ऐसी अवस्था और ऐसा रूप दो जिसको देख कर स्त्रियाँ मोहित हो जाँय—तुम ऐसा कर सक्ते हो । इसके पलटेमें मैं भी कुछ उपकार करूँगा । इन्द्रने यज्ञमें तुम्हारा भाग बंद कर दिया है, किन्तु मैं अपने तपोबलसे इन्द्रके आगे यज्ञमें तुमको भाग दिलाऊँगा ॥ ११ ॥ १२ ॥ यह

सुनकर दोनो देव प्रसन्न हो बोले कि अच्छी बात है और उसी समय एक सिद्ध-सरोवर प्रकट करके कहा कि आप इस सिद्धोंके बनाये सरोवरमें गोता लगाइये ॥ १३ ॥ अश्विनीकुमारने यों कहकर, बुढ़ापेसे जिनके अंग शिथिल हो गये हैं, नसें निकल आई हैं और शरीरमें झुर्री पड़ गई हैं उन महावृद्ध च्यवन ऋषिको हाथ पकड़ कर उस सरोवरमें अपने साथ स्नान कराया ॥ १४ ॥ उस सरोवरसे तीन परम सुंदर पुरुष निकले। तीनोका एक सा सुंदर स्वरूप था, जिसे देख कर स्त्रियाँ मोहित होजायँ। तीनो कमलकी माला और सुन्दर वस्त्र एवं कुण्डल धारण कियेथे ॥ १५ ॥ सूर्यके समान तेजस्वी उन तीनो एकही रूपके पुरुषोंको देख कर सुकन्या अपने पतिको न पहचान सकी। तब अश्विनीकुमारोंकी प्रार्थना की कि मेरे पतिको कृपा करके अलग कर दीजिये ॥ १६ ॥ सुकन्याके पतिव्रतधर्मसे दोनो देव बहुत ही सन्तुष्ट हुए और च्यवनजीको अलग कर एवं उनसे आज्ञा लेकर अपने विमानमें बैठ स्वर्गको गये ॥ १७ ॥ इसी अवसरमें राजा शर्यातिने यज्ञ करनेकी इच्छा की सो च्यवनजीके आश्रमको गये। वहाँ देखा कि अपनी कन्याके पास उन बूढ़े ब्राह्मणकी जगह एक सूर्यके समान तेजस्वी युवा पुरुष बैठा है॥ १८ ॥ सुकन्याने उठ कर प्रणाम किया, परन्तु मारे खेदके राजाने आशीर्वाद नहीं दिया और कहने लगे कि ॥१९॥ तूने यह क्या किया? जिन महामुनिकी तीनो लोक वंदना करते हैं उनको बूढ़ा जान कर धोखा देकर इस पथिक जारको ग्रहण किया ॥ २० ॥ हे असती! तू कुलकामिनी है और यह कर्म कुलमें कलंक लगानेवाला है! हा, तेरी यह असत् बुद्धि कैसे हुई कि लोकलज्जा त्याग पराये पुरुषको अंगीकार कर अपने पिता और पतिके कुलको नरकमें गिरा रही है! ॥ २१ ॥ पिताके ये कठोर वचन सुन कर सुकन्या मुसकाई, क्योंकि उसको विदित था कि मेरे पिता इस घटनाका हाल कुछ भी नहीं जानते। सुकन्याने मनोहर हँसी हँस कर कहा कि हे पितः! यह आपके दामाद वही च्यवन ऋषि हैं ॥ २२ ॥ इसके पीछे जिस प्रकार अश्विनीकुमारकी कृपासे च्यवनजीको सुन्दर रूप और जवानी मिली, सो सब वृत्तान्त कह सुनाया। यह चरित्र सुन कर शर्यातिजीने बहुत विस्मित और प्रसन्न होकर कन्याको गलेसे लगा लिया ॥ २३ ॥ तिसके बाद शर्यातिजी च्यवनजीको लेकर अपने पुरको गये और उनके यज्ञमें च्यवनजी आचार्य हुए। च्यवनजीने प्रतिज्ञाके अनुसार अपने तपोबलसे अश्विनीकुमारको भाग दिया ॥ २४ ॥ तब अपनी आज्ञाका उल्लंघन करते देख इन्द्रको बड़ा क्रोध आया। उसी समय च्यवनजीको मारनेके लिये इन्द्रने बज्र उठाया। किन्तु महामुनिने अपने प्रभावसे वज्रसहित इन्द्रकी भुजाको रोक दिया ॥ २५ ॥ सब देवतोंने यद्यपि पहले वैद्य कह कर अश्विनीकुमारको देवसमाजसे बाहर कर दिया था और इन्द्रकी आज्ञासे उन्हे सोम-

रसका पात्र न मिलता था, परन्तु उस समयसे सब देवतोंने अश्विनीकुमारका भी भाग स्वीकार कर लिया ॥ २६ ॥ शर्यातिजीके उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिषेण ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें आनर्तके राजा रैवत हुए ॥ २७ ॥ उन्होने समुद्रके भीतर कुशस्थली नाम पुरी बनवाई और उसमें रह कर आनर्त आदि देशोंका शासन एवं शत्रुओंका दमन करने लगे ॥ २८ ॥ उनके सौ पुत्र हुए, जिनमें बड़े पुत्रका नाम ककुद्मी हुआ। ककुद्मीके रेवती नाम एक कन्या हुई। उस कन्याको लेकर उसके योग्य वरका पता पूछनेके लिये महाराज ककुद्मी ब्रह्मलोकको गये। पर वहाँ गंधर्वगण गाना गा रहे थे, इस कारण ककुद्मीको पूछनेका अवसर न मिला, वह क्षण भर ठहर गये ॥ २९ ॥ ३० ॥ गाना समाप्त होने पर उन्होने ब्रह्माजीको प्रणाम कर अपना प्रयोजन कहा। सुन कर ब्रह्माजी हँसे और बोले कि राजन्! तुम्हारे समयके राजा लोग कालके कराल गालमें पड़ कर नष्ट हो गये, इस समय उनके पुत्र पौत्र और नातियोंकेभी वंशका पता नहीं है; क्योंकि तुमको पृथ्वी छोड़े सत्ताईस चौजुगी बीत गईं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ अच्छा जाओ, इस समय पृथ्वी पर विष्णुभगवान्‌के अंशावतार महाबलवान् बलभद्रजी हैं; उन पुरुष-रत्नको यह अपना कन्यारत्न अर्पण करो ॥ ३३ ॥ इस समय श्रीविष्णु भगवान् पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अपने अंशसे पृथ्वी पर अवतरे हैं, जिनके नामको सुनना और कीर्तन करना मनुष्यको पवित्र कर देता है ॥ ३४ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर राजाने प्रणाम किया और अपनी उस पुरीमें आये, जिसको यक्षोंके भयसे भाइयोंने छोड़ दियाथा और इधर उधर भाग गये थे ॥ ३५ ॥

सुतां दत्त्वानवद्याङ्गीं बलाय बलशालिने ॥
बदर्याख्यं गतो राजा तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥ ३६ ॥

तदनन्तर नरपाल बलशाली बलभद्रजीको अपनी कन्या व्याह कर आप श्रीबद्रिकाश्रममें तप करनेके लिये चले गये ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय ।

नाभाग व अंबरीष राजाका वृत्तान्त ।

श्रीशुक उवाच—नाभागो नभगापत्यं यतन्तं भ्रातरः कविम् ॥
यविष्ठं व्यभजन्दायं ब्रह्मचारिणमागतम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले। मनुके पुत्र नभगके पुत्र नाभाग हुए। नाभाग बहुत दिनोंतक गुरुकुलमें रहे, इधर और भाइयोंने यह जान कर कि नाभाग बालब्रह्मचारी

होंगे, गृहस्थ न होंगे—अपना २ हिस्सा बाँट लिया और नाभागके लिये कुछ भी न रक्खा। जब नाभाग गुरुकुलसे लौट कर आये और अपना हिस्सा माँगा तब बड़े भाइयोंने पिताको ही छोटे भाईके हिस्सेमें दिया ॥ १ ॥ नाभागने कहा कि भाइयो! मेरे हिस्सेमें क्या दिया है? भाइयोंने कहा कि तुम्हारे पिताही तुम्हारे हिस्सेमें दिये गये। नाभागने पितासे आकर कहा कि हे पिता! मेरे बड़े भाइयोंने आपको मेरे लिये बाँट दिया है। पिताने कहा कि पुत्र! इस पर तुम विश्वास न करो, उन्होने तुमसे छल किया है, मैं कोई भोग करनेकी वस्तु नहीं हूँ ॥ २ ॥ मैं तुमको तुम्हारे जीवनका उपाय बताता हूँ। हे विद्वन्! अंगिरस मुनिगण यज्ञ कर रहे हैं, किन्तु बुद्धिमान् होने पर भी हर छठवें दिन कर्तव्यकर्ममें कर्तव्यमूढ हो जाते हैं, क्योंकि वे उस दिनके कर्मकी पूर्णता जिन सूक्तोंसे होती है उन्हे नहीं जानते ॥ ३ ॥ आज छठा दिन है। तुम वहाँ जाकर उनको वैश्वदेवसंबंधी दो सूक्त (जिन्हें मैं बताता हूँ) बताओ। कर्म समाप्त होने पर वे स्वर्गको चले जायँगे और जो कुछ यज्ञकी सामग्री बच रहेगी वह सब (संपदा) तुमको देजायँगे। हे राजन्! इस भाँति पिताके कहने पर नाभागने (पितासे सूक्त पढ़ कर) वैसाही किया एवं वे ऋषि भी यज्ञके अन्तमें स्वर्ग जाते समय यज्ञकी बची सामग्री राजकुमारको देगये ॥ ४ ॥ ५ ॥ किन्तु नाभागने जब उस सामग्रीको लेना चाहा उस समय एक काले शरीरवाले पुरुषने उत्तर दिशासे आकर कहा कि "यह सब यज्ञका बचा हुआ धन मेरा है" ॥ ६ ॥ तब नाभागने कहा कि "ऋषियोंने यह सामग्री मुझको दी है"। उस पुरुषने कहा "अच्छा तुम्हारे पितासे ही हमारा तुम्हारा प्रश्न हो कि यह धन किसे मिलना चाहिये?"। नाभागने अपने पितासे जाकर पूछा ॥ ७ ॥ नाभागसे उनके पिताने कहा कि पुत्र! "जो कुछ कि यज्ञकी बची सामग्री है वह रुद्रका भाग है"—ऋषियोंने दक्षके यज्ञमें ऐसा नियम कर दिया है। अत एव यद्यपि ऋषिगण तुमको वह सब वस्तु देगये हैं तथापि उसके अधिकारी रुद्र ही हैं। और यज्ञके उच्छिष्टकी क्या बात है, यज्ञकी सब सामग्रीके स्वामी वही हैं ॥ ८ ॥ नाभाग लौट कर रुद्रके पास आये और प्रणाम करके बोले कि "यह सब बची हुई सामग्री आप (रुद्र)की ही है। अतः अपना अपराध क्षमा करानेके लिये मैं आपको प्रणाम करता हूँ" ॥ ९ ॥ रुद्रने कहा कि तुम्हारे पिताने धर्म नहीं छोड़ा और तुमने आकर सत्य २ कह दिया। तुम वेदमंत्रोंके जाननेवाले हो, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, तुमको ब्रह्मरूप सनातन ज्ञानका उपदेश करता हूँ ॥ १० ॥ और यह यज्ञका बचा हुआ धन भी मैं तुमको देता हूँ, इसे ग्रहण करो। यों कह कर भक्तवत्सल भगवान् रुद्र अन्तर्द्धान हो गये ॥ ११ ॥ रुद्र और नाभागके संवादको जो कोई साँझ सबेरे एकाग्र हो कर स्मरण करता है वह मंत्रका ज्ञाता कवि होता है और आत्मा-

की गतिको जानता है ॥ १२ ॥ इन नाभागके पुत्र महाराज अंबरीपजी हुए। यह बड़े ही भगवान्के भक्त और प्रतापी थे। ब्राह्मणका शाप, जो कभी कहीं पर निष्फल नहीं हुआ, वह भी इनका कुछ नहीं बना सका ॥ १३॥ **राजा परीक्षित् बोले।** भगवन्! उन बुद्धिमान् राजऋषि अंबरीपका चरित्र सुननेकी मुझे बड़ी इच्छा है, क्योंकि अटल ब्रह्मदण्ड भी उनके आगे हार मान गया! ॥ १४ ॥ **श्रीशुकदेवजी बोले।** महाभाग राजा अंबरीपजी, जो पुरुषोंको बहुत दुर्लभ है वह सातो द्वीप पृथ्वीका राज्य, अतुल ऐश्वर्य और कभी न चुकनेवाली संपदा आदि पाकर भी उन्हे स्वप्नकी संपदाके समान मिथ्या मानते थे। इसका कारण यही था कि संपदा चार दिनकी चाँदनी है, सदा नहीं बनी रहती, यह बात वह जानते थे। उनको यह भी विदित था कि संपदाके मिलनेसे अथवा नष्ट होनेसे पुरुपको मोह होता है और बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है ॥ १५ ॥ १६ ॥ वासुदेव भगवान्में और उनके परमभक्त साधुलोगोंमें राजा अंबरीपको दृढ़ भक्ति थी; जिस भक्तिके होनेसे यह विश्व मिट्टीके समान तुच्छ जान पड़ता है ॥ १७ ॥ उन्होने अपने मनको कृष्ण भगवान्के चरणकमलोंमें और वाणीको वैकुंठवासी हरिके गुणानुवाद गानेमें, हाथोंको हरिमंदिरके धोने बहारने और साफ करनेमें एवं कानोंको अच्युत भगवान्की सत्कथाओंके सुननेमें लगाया ॥ १८ ॥ नेत्रोंको हरिकी मूर्ति और मंदिरोंके दर्शनमें, अंगोंको भगवद्भक्त साधुओंके अंगोंके स्पर्श करनेमें, नासिकाको हरिके चरणकमलोंमें चढ़ी हुई तुलसीकी सुगंध सूँघनेमें एवं जिह्वाको हरिके नैवेद्यका स्वाद लेनेमें लगाया ॥ १९ ॥ पैरोंको हरिके पवित्रस्थानों(तीर्थों)में जानेमें लगाया। शिरको हरिकी वंदनामें लगाया। राजा अंबरीप जो कुछ भोग करते थे उसे हरिका प्रसाद जान कर ग्रहण करते थे, विपयीजनोंकी भाँति विषयभोगमें लिप्त न थे। हरि भगवान्के भक्तोंमें भक्ति हो, इस लिये सब प्रकारके विपयोंको प्रथम हरिभक्तोंको अर्पण करके पीछेसे आप ग्रहण करते थे ॥ २० ॥ राजा अंबरीप "वह ईश्वर आत्मारूपसे सबमें है" इस भावसे अपने किये हुए कर्मोंको यज्ञपुरुष भगवान्को अर्पण करते हुए भगवद्भक्त ब्राह्मणोंकी बताई हुई रीतिसे न्याय और धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करनेलगे ॥ २१ ॥ मरुप्रदेशमें, जहाँ सरस्वती नदीकी धारा उलटी बहती है उसी स्थान पर, राजा अंबरीपने वशिष्ट असित गौतम आदि महर्षियोंके द्वारा अनेक अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञपुरुप भगवान्का पूजन किया। उन यज्ञोंमें बहुत सी दक्षिणा दी और अनेक कृत्योंमें बहुत सा धन खर्च किया ॥ २२ ॥ राजाके यज्ञमें सुंदर वस्त्र आभूषण धारण किये हुए 'सदस्य' और 'ऋत्विज' लोग विसयपूर्वक यज्ञको देखते थे, जिसमें उनकी पलक नहीं लगती थी। इस कारण वे वास्तवमें देवता* जान पड़ते थे॥ २३ ॥

* देवतोंकी निमिप अर्थात् पलक नहीं लगती इससे उनका नाम "अनिमिप" है।

राजाकी कौन कहे, राजाके अधीन अथवा नगरवासी लोगोंने भी, जो स्वर्ग देवतोंको प्रिय है उसकी चाह नहीं की, केवल हरिके पवित्र चरित्रोंके सुनने और गानेमें मन लगाये रहे ॥ २४ ॥ जो लोग मुकुंद भगवान्‌को हृदयमें देखते हैं उनको, उस परमानंदके आगे, स्वर्गादिक लोकोंके भोग, जो सिद्धजनोंको भी दुर्लभ हैं, तुच्छ मालूम पड़ते हैं। अतएव उनकी रुचि उक्त स्वर्गादि लोकोंमें नहीं होती ॥ २५ ॥ इस प्रकारके भक्तियोग और तपस्यायुक्त अपने धर्मसे हरिको प्रसन्न करते हुए राजा अम्बरीषने धीरे २ सब कामनाओंको त्याग दिया ॥ २६ ॥ घर, स्त्री, पुत्र, बंधु, उत्तम हाथी, रथ, उत्तम घोड़े, अनन्त रत्न, वस्त्र, आभूषण, शस्त्र अस्त्र और अक्षय कोष (खजाने) आदि वस्तुएँ राजा अंबरीषकी दृष्टिमें मिथ्या और तुच्छ जँच गईं ॥ २७ ॥ भगवान् हरिने राजा अंबरीषकी दृढ़ और शुद्ध भक्तिसे प्रसन्न हो कर, दुष्टोंका नाश करनेवाला अपना सुदर्शन चक्र, राजाके द्वार पर इस लिये रख दिया कि वह हर प्रकारकी आपत्तिसे राजाकी रक्षा करे ॥२८॥ रानी भी अपने पतिके समान भगवान्‌की पूर्ण भक्त थीं। राजाने रानीसहित एक समय कृष्णभगवान्‌की प्रीतिके लिये एक वर्षकी एकादशियोंके व्रतका नियम लिया ॥ २९ ॥ राजाने नियम समाप्त होने पर कार्तिकके महीनेमें तीन दिन निर्जल व्रत किया। यमुना नदीमें स्नान करके मथुरा तीर्थमें हरि भगवान्‌का पूजन किया ॥ ३० ॥ महाभिषेक (यज्ञके अन्तका स्नान) की विधिके अनुसार सब सामग्रीसे हरिपूजन किया। अर्थात् पहले आप स्नान किया फिर हरिभगवान्‌को स्नान कराया, वस्त्र और आभूषण पहना कर एकाग्रमन हो चन्दन और माला आदिसे पूजन किया। फिर भक्तिभावसे निष्काम ब्राह्मणोंकी पूजा की ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ फिर जिनके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े हैं, पीठ पर सुंदर झूल पड़ी हैं, जो दुधार सूधी और देखनेमें सुंदर व जवान हैं, ऐसी बछड़े सहित, ६० करोड़ गायोंको सब सामान सहित संकल्प करके सुपात्र ब्राह्मणोंके घर भेज दिया। और ब्राह्मणोंको सुंदर स्वादयुक्त अन्न भोजन कराया ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणलोगोंने सन्तुष्ट हो कर सफल आशीर्वाद दिये और पारण करनेकी आज्ञा दी। राजा पारण करनेके लिये जा रहे थे कि इतनेमें भगवान् दुर्वासाऋषि आकर उनके अतिथि* हुए ॥ ३५ ॥ राजा अंबरीषने आदरसहित उठ कर दुर्वासाजीको प्रणाम किया, आसन दिया और पूजन किया, फिर चरणों पर गिर कर भोजन करनेकी प्रार्थना की ॥ ३६॥ दुर्वासाजीने राजाकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और मध्यान्हका नित्यकर्म (संध्या, स्नान, तर्पण, बलिवैश्वदेव आदि) करनेके लिये यमुनानदीके तट पर गये। वहाँ जा कर नदीके पवित्र जलमें स्नान किया

* जो भोजनके समय अथवा दोपहरके समय अपने यहाँ कहींसे आवे वह अतिथि (मेहमान) है।

और ईश्वरका ध्यान करने लगे ॥ ३७ ॥ इधर द्वादशी एक ही घड़ी बाकी थी, धर्मज्ञ राजाने देखा कि शास्त्रमें लिखा है-द्वादशीमें यदि पारण न किया जाय तो एकादशीका व्रत निष्फल हो जाता है । अब राजाको धर्मसंकट पड़ा । यदि पारण नहीं करते तो व्रत निष्फल होता है और जो अतिथिको बिना भोजन कराये पारण करते हैं तो पाप होता है । तब राजाने ब्राह्मणोंसे पूछा कि "क्या करना चाहिये? ब्राह्मणको बिना भोजन कराये भोजन करनेसे और द्वादशीमें पारण न करनेसे, दोनो तरह दोष है, ऐसा उपाय बताइये जिसमें बात भी न बिगड़े और अधर्म भी न हो । वेदमें* लिखा है कि जलका पीना भोजन भी है और भोजन भी नहीं है । इस लिये यदि आप आज्ञा दें तो मैं हरिके चरणोदकको पीकर पारण कर लूँ" ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! यों कहकर ब्राह्मणोंकी आज्ञाके अनुसार मनमें हरिका ध्यान करते हुए राजाने जल पीकर पारण कर लिया और महामुनि दुर्वासाके आनेकी राह देखने लगे ॥ ४१ ॥ उधर दुर्वासा ऋषि आवश्यक कर्मसे छुट्टी कर यमुनाके किनारेसे लौटे और राजाके पास आये । राजाने भोजन करनेकी प्रार्थना की । दुर्वासाने अपने तपोबलके कारण ध्यान करके जान लिया कि राजा अंबरीष पारण कर चुके हैं ॥ ४२ ॥ एक तो दुर्वासाजी क्रोधी ही थे, दूसरे भूख लगी, तीसरे क्रोध और भी अधिक हो गया जिससे शरीर कापने लगा व ओंठ फरकने लगे । तब हाथ बाँधे हुए आगे खड़े राजाको यों कहने लगे ॥ ४३ ॥ अहो ! इस लक्ष्मीके मदसे अंधे अधम राजाकी ढिठाई और धर्मका निरादर करना तो देखो ! यह विष्णुका अभक्त है और अपनेको ईश (समर्थ) मानता है ॥ ४४ ॥ देखो न ! मैं इसके यहाँ अतिथि आया और इसने मुझे न्यौता भी दिया, किन्तु मुझे बिना भोजन कराये आप भोजन कर लिया । देख, इसका फल मैं तुझे अभी दिखाता हूँ ॥ ४५ ॥ यों कहते २ दुर्वासाने मारे क्रोधके अपने शिरसे एक जटा उखाड़ ली । वह जटा दुर्वासाके प्रभावसे कालाग्निके समान प्रचंड एक कृत्या (पिशाची वा चुड़ैल) बन गई । वह कृत्या तर्वार हाथमें लिये अपने पैरोंकी धमकसे पृथ्वीको कंपायमान करती हुई राजाकी ओर झपटी । पर राजा जैसेके तैसे खड़े रहे, न पीछे हटे और न डरे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ किन्तु पहलेसे ही जिसको सेवककी रक्षाके लिये हरिने भेज दिया था उस सुदर्शन चक्रने अपने महाप्रचंड तेजसे उस भयानक कृत्याको भस्म कर दिया; जैसे कुपित सर्पको दावानल भस्म कर देता है ॥ ४८ ॥ उस कृत्याको ही जला कर सुदर्शन चक्र नहीं शान्त हुआ, बरन् दुर्वासाकी भी खबर ली। दुर्वासाने देखा कि अपना परिश्रम निष्फल हो गया और उलटे प्राणों पर आ पड़ी, तब तो प्राण बचानेके लिये भागे ॥ ४९ ॥ उनके पीछे भगवान्‌का चक्र भी जैसे सर्पके पीछे

---

* श्रुतिमें लिखा है—"अपोऽश्नाति नैवाशितं नचैवाशितमिति" ।

प्रचंड दावानलकी लपट चले वैसे चला। मुनिजी इस प्रकार चक्रको अपना पीछा करते देख कर प्राण बचानेकी इच्छासे सुमेरुकी कंदरामें गये, पर वहाँ भी पीछा न छूटा ॥ ५० ॥ तब दशो दिशा, आकाश, पृथ्वीमण्डल, सातो पाताल, सातो समुद्र, तीनो लोक, एवं लोकपालोंके पास, सब स्थानोंमें मुनि भागे २ फिरे, किन्तु जहाँ जाकर देखा वहाँ असह्य तेजवाला सुदर्शन चक्र पीछे आता देख पड़ा॥ ५१ ॥ जब कोई भी बचानेवाला नहीं मिला तब रक्षा करनेवालेको ढूँढते हुए भयभीत दुर्वासा ऋषि भगवान् ब्रह्माके पास गये और बोले कि हे भगवन्! इस हरिके चक्रसे मेरी रक्षा करो ॥ ५२ ॥ ब्रह्माजी बोले। जब दो परार्द्ध (ब्रह्माकी अवस्थाके पहले पचास वर्षको पूर्वार्ध और पिछले पचास वर्षको परार्ध कहते हैं) बीत जाते हैं और भगवान्‌की सृष्टिरूप क्रीड़ा(खेल)का अन्त हो जाता है एवं कालरूप भगवान् अपने रचे हुए विश्वको नष्ट करना चाहते हैं तब उनके केवल भौंह टेढ़ी करने पर यह मेरा लोक तीनो लोक और चौदह भुवनसहित नष्ट हो जाता है ॥ ५३ ॥ मैं, शिव, दक्ष और भृगु आदि प्रजापति, प्राणियोंके स्वामी व देवगणके स्वामी हम लोग लोकके हितके लिये जिनकी दी हुई आज्ञाको शिर पर धारण करते हैं उन हरिके भक्तसे द्रोह करनेवालेकी कौन रक्षा कर सक्ता है? ॥५४॥ इस प्रकार जब ब्रह्माने "नाहीं" कर दी तब विष्णुके चक्र द्वारा पीड़ित दुर्वासाजी कैलासपर्वत पर शिवजीकी शरणमें गये ॥५५॥ किन्तु शिवजीने भी कहा कि हे तात! अनन्त जीवोंकी रचना और नाश जिनके द्वारा होता है वे हम ऐसे हजारों शिव और ब्रह्मा, जिनमें विश्वका कार्य करते रहते हैं,ऐसे अनन्त ब्रह्माण्ड,समय पाकर जिससे उत्पन्न होते हैं, और जिसमें लीन होजाते हैं, उस परमेश्वर पर हमारी प्रभुता न चलेगी ॥५६॥ मैं, सनत्कुमार, नारद, भगवान् ब्रह्मा, कपिल, अपांतरतम ऋषि, देवल, धर्म, आसुरि ॥५७॥ और मरीचि आदि सर्वज्ञ सिद्धेश्वर लोग मायामें मोहित रह कर जिसकी मायाको नहीं जानते ॥ ५८ ॥ उसी विश्वेश्वरका यह अस्त्र है, हम लोग भी इसके तेजको नहीं सह सक्ते। हाँ, तुम उन्ही हरिकी शरणमें जाओ, वही तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥ ५९ ॥ दुर्वासाजी वहाँसे भी निराश होकर वैकुंठ धामको गये, जहाँ लक्ष्मीदेवीसहित श्रीविष्णु भगवान् रहते हैं ॥ ६० ॥ दुर्वासाजी हरिके चरणों पर गिर कर कहने लगे कि हे भगवन्! मैंने आपका परम प्रताप विना जाने आपके भक्तोंका अपराध किया है। हे ईश! उसअपराधसे मुझे छुड़ाओ। यद्यपि मैंने घोर अपराध किया है तथापि आपसे मुझको ऐसी ही आशा है; क्योंकि आपका नाम लेनेसे नरकके जीव भी घोर नरकके कष्टसे छूट जाते हैं ॥६१॥ ॥६२॥ श्रीविष्णु भगवान् बोले। हे ब्राह्मण! भक्तजन मुझे बहुत ही प्यारे हैं, मेरे हृदय पर उनका पूर्ण अधिकार है, मैं भक्तोंके अधीन हूँ—स्वतन्त्र नहीं हूँ ॥ ६३ ॥ जिन्होने मुझको ही अपनी परम गति मान कर सबको त्याग दिया है उन अपने

परम भक्त शुद्ध साधुओंके आगे मैं अपनेको और अपनी प्यारी लक्ष्मीको भी तुच्छ समझता हूँ ॥ ६४ ॥ जो लोग स्त्री घर, पुत्र, कुटुम्ब, सबसे बढ़ कर प्यारे प्राण और धनकी लालसा त्याग कर मेरी शरणमें आये हैं उनको भला मैं कैसे छोड़ सक्ता हूँ ? ॥ ६५ जिनका हृदय मुझमें लगा है वे समदर्शी साधुजन अपनी शुद्ध भक्तिसे मुझको वैसे अपने वशमें कर लेते हैं जैसे पतिव्रता स्त्री अपने सज्जन पतिको वश कर लेती है ॥ ६६ ॥ मेरी सेवा करने पर उनको चार प्रकारकी मुक्ति* भी प्राप्त होती है पर वे मेरी सेवाको ही माँगते हैं, उसीमें उनकी इच्छा पूर्ण रहती है । वे काल पाकर नष्ट हो जानेवाले स्वर्गादिलोकोंकी कौन कहे, मुक्ति भी नहीं चाहते ! ॥ ६७ ॥ साधु जन मेरा हृदय हैं और मैं साधु जनोंका हृदय हूँ, वे लोग मेरे सिवा और किसीको नहीं जानते और न मैं उनके सिवा किसीको जानता हूँ ॥ ६८ ॥ हे ब्राह्मण ! किन्तु मैं एक उपाय तुमको बताये देता हूँ, उसको सुनो । यह अपराध तुमने ही किया है । इस लिये उन्ही राजाके पास जाकर अपराध क्षमा कराओ ॥ ६९ ॥ साधु लोगों पर जो अपने तेजका प्रयोग करते हैं सो उससे उन्हीका बुरा होता है, साधुओंका कुछ नहीं बिगड़ता । यद्यपि ब्राह्मणोंके पास तप और विद्या ये दो वस्तुएँ ऐसी हैं जिनसे उनका अमंगल नहीं हो सक्ता; किन्तु उग्र वा ढीठ ब्राह्मणके लिये इनका फल उलटा होता है ॥ ७० ॥

ब्रह्मंस्तद्गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम् ॥
क्षमापय महाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति ॥ ७१ ॥

ब्रह्मन् ! इस कारण तुम नाभागके पुत्र राजा अंबरीषके पास जाओ । तुम्हारा कल्याण हो । जाकर महाभाग अंबरीषसे अपने अपराधके लिये क्षमा माँगो, तब तुमको शान्ति मिलेगी ॥ ७१ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय ।

दुर्वासाके प्राणोंकी रक्षा ।

श्रीशुक उवाच—एवं भगवतादिष्टो दुर्वासाश्चक्रतापितः ॥
अम्बरीषमुपावृत्य तत्पादौ दुःखितोऽग्रहीत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीबोले । हे राजन् ! चक्रकी अग्निसे पीड़ित दुर्वासा ऋषि, भगवान्की यह आज्ञा पाकर सीधे अंबरीष राजाके पास आये और दुःखित होकर उनके

* सायुज्य (हरिमें लीन हो जाना), सारूप्य (हरिका ऐसा रूप मिलना), सामीप्य (हरिके पास रहना), सार्ष्टि (हरिका सा ऐश्वर्य मिलना); ये चार प्रकारकी मुक्तियाँ हैं ।

पैरों पर गिर पड़े ॥ १ ॥ ब्राह्मणने पैर छुए, इस कारण राजा अंवरीष लज्जित हुए। दुर्वासाका दुःख देख कर उनको बड़ी ही कृपा (तरस) आई । तब दुर्वासाका दुःख दूर करनेके लिये इस प्रकार विष्णुके चक्रकी स्तुति करने लगे ॥ २ ॥ **राजा बोले** कि भगवन् सुदर्शन चक्र ! तुम अग्नि, सूर्य, नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्र, जल, पृथ्वी, आकाश, वायु, पञ्चतन्मात्रा, और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ हो ॥३॥ हे सुदर्शन ! आपको प्रणाम है । हे सहस्र धारावाले ! हे अच्युत भगवान्‌के प्रिय अस्त्र ! सब अस्त्रोंका संहार करनेवाले ! हे पृथ्वीके ईश्वर ! ऐसा करो जिसमें इन ब्राह्मण देवको शान्ति मिले ॥ ४ ॥ तुम साक्षात् धर्म हो, तुम हितकी वाणी और सत्य वचन हो, तुम सब यज्ञोंके ग्रहण करनेवाले यज्ञपुरुष हो, तुम सर्वव्यापक और लोकपाल हो, तुम परमेश्वरका परमतेज (सामर्थ्य) हो ॥ ५ ॥ हे सुनाभ ! तुम संपूर्ण धर्मोंके रक्षक और अधर्मी असुरोंके लिये संहार करनेवाले धूम्रकेतु (अग्नि) हो, तुमको प्रणाम है । तुम तीनो लोकोंकी रक्षा करनेवाले, विशुद्ध तेजस्वरूप, मनके समान वेगवाले एवं अद्भुत कर्म करनेवाले हो—मैं तुम्हारी स्तुति और विनय करता हूँ ॥ ६ ॥ हे सुदर्शन ! तुम्हारे धर्ममय तेजके प्रकाशसे महात्मा लोगोंके हृदयका अँधेरा मिटता है और दृष्टि प्रकाशित होती है । हे सब प्राणियोंके स्वामी ! तुम्हारी महिमा अपार है । सत् और असत् एवं उत्तम और निकृष्ट, जो कुछ संसारमें है, वह आपकाही रूप है ॥७॥ हे अजित ! जब तुमको भगवान् चलाते हैं और तुम दैत्य और दानवोंकी सेनामें प्रवेश करते हो तब रणक्षेत्रमें उन लोगोंके बाहु, उदर, जानु, शिरको वारम्वार काटते हुए अधिक शोभायमान होते हो ॥ ८ ॥ हे जगत्‌की रक्षा करनेवाले ! तुम सर्वसह हो; भगवान् गदाधरने दुष्ट लोगोंका दमन करनेके लिये तुमको नियुक्त किया है, अतएव हमारे कुलके सौभाग्यके लिये इन संकटमें पड़े हुए ब्राह्मणकी रक्षा करो—हम पर यही आपकी बड़ी भारी कृपा होगी ॥ ९ ॥ हे सुदर्शन ! यदि हमने कुछ दान किया है, यदि यज्ञ आदि शुभ कर्म किये हैं, और भली भाँति अपने धर्मका पालन किया है, एवं यदि ब्राह्मण हमारे कुलके इष्टदेव हैं तो इन ऋषिवरका संकट दूर हो ॥१०॥ यदि सब प्राणियोंके आत्मा और संपूर्ण गुणोंके आश्रयरूप भगवान् हम पर प्रसन्न हैं तो इन ब्राह्मणका कष्ट दूर हो ॥ ११ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** इस प्रकार राजाके प्रार्थना करने पर सुदर्शन चक्रने अपना तेज शान्त कर लिया; जिससे दुर्वासाजी जले जाते थे ॥ १२ ॥ सुदर्शनके शान्त होने पर दुर्वासाजीका चित्त स्वस्थ हुआ । तब अस्त्रके भयसे छूट कर राजा अंवरीपको आशीर्वाद देते हुए दुर्वासाजी यों बड़ाई करने लगे ॥ १३ ॥ **दुर्वासाजी बोले ।** अहो ! मैंने आज भगवान्‌के भक्तोंका अद्भुत महत्त्व (बड़प्पन) देखा । मैंने आपका अपराध किया था, किन्तु आपने मेरे प्राणोंकी रक्षा की ॥ १४ ॥ सच है, जिन

महापुरुष साधुओंने भक्तवत्सल भगवान्‌को भक्तिभावसे अपने वशमें कर लिया है उनके लिये कुछ भी ऐसा नहीं है जिसे वे सहजमें न कर सकें अथवा सहजमें न त्याग सकें ॥ १५ ॥ जिन हरिका केवल नामका सुननेसे मनुष्य निर्मल हो जाता है उन पवित्रपाद भगवान्‌के दासोंको कौन सी बात नहीं प्राप्त है? ॥ १६ ॥ हे राजन्! तुम बड़े दयालु हो, तुमने मुझ पर अनुग्रह किया, जो मेरे अपराध पर ध्यान न देकर मेरे प्राण बचा लिये ॥ १७ ॥ शुकदेवजी कहते हैं कि अब तक राजाने भोजन नहीं किया था, दुर्वासाजीके आनेकी राह देख रहे थे। इस समय ऋषिके चरणों पर गिर कर और उन्हे प्रसन्न करके भोजन कराया ॥ १८ ॥ सादर लाये गये और संपूर्ण अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले आतिथ्य (भोजन आदि) को ऋषिने स्वीकार किया और भोजन करनेके बाद तृप्त हो कर राजासे आदर-सहित कहा कि अब आप भी भोजन कीजिये ॥ १९ ॥ आपने मुझ पर बहुतही अनुग्रह किया। आप भगवान्‌के भक्त हैं, आपके दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप और आत्माको तुष्ट करनेवाले आतिथ्यसे मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ ॥ २० ॥ आपके इस पवित्र कर्मको स्वर्गकी स्त्रियाँ अपने २ घरोंमें वारम्वार गावेंगी और आपकी परम पवित्र कीर्तिका कीर्तन पृथ्वीमंडलभरमें होगा ॥ २१ ॥ श्रीशुक-देवजी कहते हैं कि इस प्रकार प्रसन्नचित्त दुर्वासाजी राजासे वार्तालाप करके और अनुमति लेकर आकाशमार्गसे ब्रह्मलोकको गये; जहाँ कुतार्किक लोग नहीं जाते, वेही लोग जाते हैं जिन्होने सब कर्म निष्काम होकर किये हैं ॥ २२ ॥ मुनिके भाग कर जाने और लौट कर आनेमें एक साल वीत गया, तब तक राजाने अन्नभोजन नहीं किया, केवल जल पीकर रहे और मुनिके आनेकी राह देखते रहे ॥ २३ ॥ दुर्वासाजी भोजन करके चले गये, तब अंबरीषने ब्राह्मणोंके भोज-नसे बचा हुआ अति पवित्र अन्न भोजन किया और ऋषिके प्राणों पर संकट आना और फिर उस संकटसे छूटना एवं अपनेमें धैर्य आदि शक्तियोंका होना इत्यादि बातोंको उसी ईश्वरका प्रभाव माना ॥ २४ ॥ अनेक गुणोंसे युक्त राजा अंबरीषजी इस प्रकार अनेक प्रकारके कर्मों द्वारा (अर्थात् सब कर्म कृष्णार्पण करके) आत्मारूप परब्रह्म वासुदेवमें भक्तिको दृढ़ करने लगे; इस कारण ब्रह्मलोकसे लेकर जितने सांसारिक सुखभोग हैं सब उन्हे नरकके समान दुःख-दायी जान पड़ने लगे ॥ २५ ॥ कुछ दिन बाद धीर वीर राजा अंबरीषने अपने ही समान सुशील पुत्रोंको राज्य सौंप दिया। और आप, सब मायाके गुणोंसे मनको हटाकर आत्मास्वरूप ब्रह्ममें लगा कर वनको चले गये ॥ २६ ॥

इत्येतत्पुण्यमाख्यानमम्बरीषस्य भूपतेः ॥
संकीर्तयन्ननुध्यायन्भक्तो भगवतो भवेत् ॥ २७ ॥

यह राजा अंबरीषकी कथा परम पवित्र है, जो कोई इसको मन लगा कर पढ़ता या सुनता है वह अवश्य भगवान्‌का भक्त होता है ॥ २७ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय ।

अम्बरीषके वंशका विवरण ।

श्रीशुक उवाच–विरूपः केतुमान् शम्भुरम्बरीषसुतास्त्रयः ।
विरूपात्पृषदश्वोऽभूत्तत्पुत्रस्तु रथीतरः ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले । राजन् ! राजा अम्बरीषके विरूप, केतुमान् और शंभु नाम तीन पुत्र हुए । विरूपके पृषदश्व हुए और उनके रथीतर हुए ॥ १ ॥ रथीतरके कोई पुत्र न था । जब रथीतरने वंशके लिये अंगिरा ऋषिसे प्रार्थना की तब उन्होने रथीतरकी स्त्रीमें ब्रह्मतेजसे युक्त पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ ये पुत्र रथीतरके क्षेत्र (रानी) में उत्पन्न हुए इसलिये रथीतरगोत्रवाले और अंगिराके वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण 'आंगिरस' कहलाये । ये लोग क्षेत्रज ब्राह्मण होनेके कारण अन्यान्य २ रथीतरके वंशवाले क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ माने गये ॥३॥ अब मनुके इक्ष्वाकु नाम पुत्रके वंशका वर्णन करते हैं । एक समय मनुने छींका तो उनकी नासिकासे एक बालक उत्पन्न हुआ, उसका नाम इक्ष्वाकु हुआ । इक्ष्वाकुके सौ पुत्र हुए, उनमें विकुक्षि, निमि और दण्डक ये तीन पुत्र बड़े हुए ॥ ४ ॥ इनमेंसे आर्यावर्त्त (विंध्याचल और हिमालयके बीचकी भूमि) के अग्रभागमें पचीस और पीछेके भागमें पचीस राजा हुए । और आर्यावर्तमें तीन बड़े लड़के एवं अन्य २ विभागोंमें और २ लड़के राजा हुए ॥ ५ ॥ एक समय राजा इक्ष्वाकुके घर अष्टका[1] श्राद्ध था । राजाने अपने पुत्र विकुक्षिको बुलाकर कहा कि पुत्र ! वनमें जाकर पवित्र मांस (पिण्ड देनेके लिये) ले आओ, देर न करना ॥ ६ ॥ "बहुत अच्छा" कहकर विकुक्षि नाम राजकुमार वनको गये और वहाँ यज्ञके योग्य पवित्र मृगोंको मारा । भूखे और थके वीर विकुक्षिको श्राद्धका स्मरण नहीं रहा, मारे भूखके एक खरगोश अग्निमें भूनकर खागये ॥ ७ ॥ बाकी मांस लाकर पिताको दिया । श्राद्धके समय जब उनके गुरु सर्वज्ञ वशिष्ठजी मांस पर मंत्र पढ़ कर शुद्ध करनेवाला जल छोड़ने लगे तब इक्ष्वाकुसे कहा कि यह मांस जूठा होनेके कारण श्राद्धके कामका नहीं है ॥८॥ गुरुके बतानेसे इक्ष्वाकुको मालूम हुआ कि उनके पुत्रने मांस जूठा कर डाला

---

१ अष्टका पितृदैवत्ये; अष्टिकाऽन्या ॥ सि० कौ० स्त्रीप्रत्यय ।

है। तब इक्ष्वाकुने सदाचारका उल्लंघन करनेवाले पुत्रको क्रोधित होकर अपने देशसे निकाल दिया ॥ ९ ॥ उसी समयसे इक्ष्वाकुको वैराग्य होगया। तब वह वशिष्ठजीसे योगविद्या सीख कर उसी योगके अभ्याससे देहान्तके बाद परब्रह्ममें लीन होगये ॥ १० ॥ पिताका शरीर छुटने पर विकुक्षि ही बड़े होनेके कारण राजा हुए। विकुक्षि फिर देशमें आकर पृथ्वीमण्डलका राज्य करने लगे। शश-(खरगोश)के खा लेनेसे इनका नाम 'शशाद' पड़ गया, इन्होने अपने राज्यके समयमें भगवान्के प्रसन्न होनेके लिये अनेक यज्ञ किये ॥ ११ ॥ विकुक्षिके पुरंजय नाम पुत्र हुआ। पुरंजयके इन्द्रवाह और ककुत्स्थ ये दो नाम और भी हुए। जिन कर्मोंसे पुरंजयके दो नाम और पड़े, उनको भी सुनो ॥ १२ ॥ पूर्वसमयमें देवतों और दैत्योंकी एक बहुत ही घोर लड़ाई हुई, जिसके देखनेसे मालूम पड़ता था कि विश्व भरका संहार हो जायगा। दैत्योंसे देवता लोग हार गये तब उन्होने पुरंजयसे सहायता माँगी ॥१३॥ पुरंजयने कहा, जो इन्द्र मेरा वाहन (बैल) बनें तो उन पर चढ़ कर मैं दैत्योंको मारूँगा। देवतोंके देवता सर्वव्यापक विष्णु भगवान्के कहनेसे इन्द्रने स्वीकार कर लिया और बड़ा भारी बैल बन गये ॥१४॥ तब कवच पहन कर, दिव्य धनुष और पैने बाणोंको लेकर युद्ध करनेके लिये पुरंजय तैयार हुए, देवतागण उनकी स्तुति करने लगे। राजा पुरंजय देवतोंके राजा इन्द्रके ककुद् (बैलकी पीठपर जो मांस उठा होता है) पर बैठे ॥ १५ ॥ उनके शरीरमें विष्णु भगवान्के तेजका अंश आगया। परमपुरुष परमात्माके तेजसे युक्त होनेके कारण राजा दुर्जय हो गये। बस, उसी समय देवगणसहित पुरंजयने पश्चिम दिशामें जाकर दैत्योंके पुरको घेर लिया ॥ १६॥ पुरंजयसे दैत्योंने बड़ा ही रोमहर्षण संग्राम किया, किन्तु जितने दैत्य पुरंजयके सामने आये उनको वीर राजाने अपने पैने बाणोंसे यमलोक भेज दिया ॥१७॥ प्रलय कालकी आगके समान संहार करनेवाले पुरंजयके बाणोंकी चोटको दैत्यलोग न सह सके। उसी समय युद्ध छोड़ कर अपने लोक(पाताल)को भाग गये ॥ १८ ॥ राजऋषि पुरंजयने दैत्योंका पुर, धन और दैत्योंकी सम्पदा जीत कर इन्द्रको सौंप दिया। दैत्योंका पुर जीतनेसे 'पुरंजय' और इन्द्रको बाहन बनानेसे 'इन्द्रबाह' एवं इन्द्रके ककुद पर बैठनेसे 'ककुत्स्थ'; ये तीन नाम हुए ॥ १९ ॥ पुरंजयके पुत्रका नाम अनेना हुआ। अनेनाके पुत्रका नाम पृथु हुआ। पृथुके पुत्रका नाम विश्वगंधि हुआ और विश्वगंधिके पुत्रका नाम युवनाश्व हुआ ॥ २० ॥ युवनाश्वके पुत्रका नाम श्रावस्त हुआ, जिन्होने श्रावस्ती पुरी बसाई। श्रावस्तके पुत्रका नाम बृहदश्व हुआ और बृहदश्वके पुत्रका नाम कुवलयाश्व हुआ ॥ २१ ॥ बली कुवलयाश्वने उत्तंककी प्रसन्नताके लिये इक्कीस हजार पुत्रों सहित धुंधु नाम असुरको मारा ॥ २२ ॥ इस लिये उनका नाम धुंधुमार भी पड़ा। धुंधु दैत्यके मुखकी अग्निसे कुवलयाश्वके सब पुत्र जल गये, केवल दृढ़ाश्व,

कपिलाश्व और भद्राश्व, ये तीन पुत्र बचे। हे भारत! दृढ़ाश्वके हर्यश्व नाम पुत्र हुआ। हर्यश्वके पुत्रका नाम निकुंभ हुआ, निकुंभके पुत्रका नाम बहुलाश्व हुआ। बहुलाश्वके पुत्र कृशाश्व हुए। कृशाश्वके पुत्र सेनजित् हुए। सेनजित्के पुत्र युवनाश्व हुए। युवनाश्वके सौ रानियाँ थीं, पर कोई कन्या या पुत्र न था। इस लिये बहुत दुःखित हो युवनाश्वजी रानियों सहित वनको गये। वहाँ इन्होने पुत्रके लिये ऋषियोंसे प्रार्थना की। दयालु ऋषियोंने एकाग्र होकर राजासे इन्द्रका यज्ञ कराया ॥२३॥२४॥ ॥२५॥ २६ ॥ एकदिन रातको राजा युवनाश्व बड़े प्यासे हुए। युवनाश्वने यज्ञमंडपमें जाकर देखा तो सब ब्राह्मण सो रहे थे। वहाँ एक कलशमें रानीके पीनेके लिये मंत्रसे अभिमंत्रित जल धरा हुआ था—राजा आप ही उसे उठा कर पी गये ॥२७॥ राजन्! ब्राह्मणलोगोंने सवेरे उठकर देखा कि कलश खाली है; तब राजासे पूछा कि यह किसका काम है? इस कलशमें जो पुंसवनका जल था उसे किसने पीलिया? ॥ २८ ॥ जब राजाके कहनेसे ब्राह्मणोंने जाना कि स्वयं राजाने जल पीलिया है तो यह जान कर कि "ईश्वरकी इच्छा ही ऐसी थी" सब ब्राह्मणोंने ईश्वरको प्रणाम किया और कहा कि अहो! दैव बड़ा ही प्रबल है! ॥ २९ ॥ उसके बाद नौ महीने बीतने पर युवनाश्वकी दाहिनी कोखको फाड़ कर एक चक्रवर्ती महाप्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ बालकको रोते देख कर ब्राह्मण लोग बोले कि यह बालक बहुत रो रहा है, किसका दुग्ध पीकर जिये? वैसे ही इन्द्रने कहा कि कुछ चिन्ताकी बात नहीं है, मैं इसका पालन करूँगा। यह कह कर इन्द्रने अपने अँगूठेके पासवाली अंगुली बालकके मुखमें देदी और कहा पुत्र! मत रोओ ॥३१॥ राजा युवनाश्व भी ब्राह्मणोंकी और देवतोंकी कृपासे नहीं मरे। किन्तु अपने राज्यमें लौट कर नहीं आये, वनमें ही तपस्या करके सिद्ध हो गये ॥ ३२ ॥ उस राजकुमारका नाम मांधाता हुआ। मांधाता बड़े ही प्रतापी हुए। उनसे रावण आदि बड़े २ बली अनार्य दस्यु डरते और घबड़ाते थे। इस लिये इन्द्रने मांधाताका त्रसद्दस्यु नाम भी रक्खा ॥३३॥ युवनाश्वके पुत्र मांधाता चक्रवर्ती राजा हुए। इन्होने सातो द्वीप पृथ्वीको जीता और उसका शासन किया। यह भी हरि भगवान्का अंशावतार थे ॥३४॥ आत्मज्ञानी होकर भी महाराज मांधाताने बड़ी २ दक्षिणावाले यज्ञोंसे सर्वव्यापक इंद्रियोंसे परे देवदेव यज्ञपुरुषकी आराधना की ॥ ३५ ॥ द्रव्य (सामग्री), मंत्र, विधि, यज्ञ, यजमान, ऋत्विज (यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण), धर्म, देश और काल; ये सब उसी यज्ञपुरुषके रूप हैं ॥३६॥ जहाँसे सूर्यका उदय होता है और जहाँ पर अस्त होता है, उस सब पृथ्वीमें महाराज मांधाताका राज्य था ॥ ३७ ॥ मांधाताका विवाह शशबिंदु राजाकी कन्या इंदुमतीसे हुआ। इन्दुमतीके गर्भसे महाराज मांधाताके तीन पुत्र हुए। १ पुरुकुत्स २ अम्बरीष* और

* यह दूसरे अंबरीष हैं। पहले जिन अंबरीषका चरित्र कह आये हैं वह इनसे भिन्न हैं।

३ योगी मुचुकुन्द ॥ ३८ ॥ धर्मात्मा मांधाताके पचास कन्याएँ भी हुईं। मुचुकुंद आदि राजकुमारोंकी उन पचास बहनोंने सौभरि नाम ऋषिको अपना पति बनाया ॥३९॥ सौभरि ऋषि यमुनाजलके भीतर गोता लगाये हुए बड़ा कठिन तप (ब्रह्मका ध्यान) कर रहे थे। जलके भीतर बड़े भारी मच्छको मछलियोंसे भोगविलास करते देख इनका भी चित्त कामके वशमें हो गया। इन्होने विवाहके विचारसे मांधाताके निकट जाकर एक राजकुमारी माँगी ॥ ४० ॥ राजाने चतुरता करके कहा कि महामुनिजी! कन्याओंका स्वयम्वर करदिया जायगा, जो कन्या आपके गलेमें जयमाल डाल दे उसे आप लेलीजिये। मुनिने मनमें विचारा कि "राजाने मुझको देखा यह बुड्ढा है, बाल पक गये हैं, झुर्रियाँ पड़ गई हैं, सिर हिलता है, कौन स्त्री इसे स्वीकार करेगी?। ऐसाही समझ कर मुझसे स्वयंवरका बहाना कर दिया है ॥ ४१ ॥ खैर, मैं अपने योगवलसे ऐसा सुंदर नवयुवक बन जाऊँगा कि मनुष्य राजकुमारिओंकी कौन कहे, देवतोंकी भी स्त्रियाँ देख कर मोहित हो जायँगी। समर्थ ऋषीश्वरने ऐसा निश्चय किया और स्वयंवरके लिये परमसुंदर रूप धरकर अन्तःपुरमें गये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ मुनिके रूपपर पचासो राजकुमारियाँ रीझ गईं। बहनापेका स्नेह भूल कर सब कन्याएँ मुनिके लिये परस्पर झगड़ा करने लगीं कि "यह हमारे योग्य वर हैं, तुम इनके योग्य नहीं हो" ॥ ४४ ॥ सौभरि मुनिने पचासो राजकुमारियोंसे विवाह किया। उसी समय अपने तपोबलसे सुंदर भवन बना दिये। उन घरोंमें सब सामान अनमोल था। अनेक उपवन लगे हुए थे। जिनमें निर्मल जलवाले सरोवर शोभायमान थे। फूलोंकी सुगंधसे युक्त बाग मनको हरनेवाले थे ॥ ४५ ॥ बड़ी २ बारहदरियाँ बनी थीं। उनमें बहुमूल्य पलँग, आसन, वस्त्र, गहने और स्नान करनेके लिये जल, उबटनेका मसाला, फूलोंके हार आदि भोगविलासकी सामग्रियाँ उपस्थित थीं। सुंदर गहने पहने और वस्त्र धारण किये हुए दास दासी सेवाके लिये उपस्थित थे। कहीं पक्षी बोल रहे थे, कहीं भँवर गुंजार कर रहे थे और कहीं बन्दीजन महामुनि सौभरिका यश गा रहे थे। ऐसे भवनोंमें बहुत दिन तक सौभरिजीने सांसारिक विषयोंका भोग किया ॥ ४६ ॥ महामुनि सौभरिकी गृहस्थीके विभवको देखकर सातो द्वीप पृथ्वीके पति महाराज मांधाताका भी अहंकार जाता रहा। सौभरिजीकी गृहस्थीका विभव चक्रवर्त्ती राजाके विभवसे बढ़कर था ॥ ४७ ॥ इस प्रकार गृहस्थाश्रममें आसक्त होकर सौभरि ऋषि अनेक प्रकारके सांसारिक सुखों(विषयभोग)का अनुभव करने लगे। किन्तु घीके बूँद पड़नेसे जैसे आग नहीं बुझती, वरन् और भी बढ़ती है, वैसे ही विषयभोगकी इच्छा न घटी, वरन् दिन दूना रात चौगुना चाव चढ़ने लगा ॥ ४८ ॥ एक समय बह्वृचाचार्य सौभरि ऋषि बैठे हुए थे। अकस्मात् इनके हृदयमें यह विचार उत्पन्न

हुआ कि मछली और मच्छके भोगविलासको देख कर मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई, जिससे इतने दिनका किया हुआ तप नष्ट होगया; सब श्रम विफल ही गया ॥ ४९ ॥ सौभरि मुनि यों पश्चात्ताप करने लगे कि हाय! मैं तपस्वी, साधु और सदाचारी था; मेरे सर्वनाशको देखो। जलके भीतर मछलीके संगसे मेरा बहुत दिनका तप नष्ट होगया ॥ ५० ॥ जिसे मोक्षकी इच्छा हो उस पुरुषको उचित है कि मैथुनमें तत्पर जीवोंका संग भूल कर भी न करे। सदा ऐसा यत्न करे जिसमें इन्द्रियाँ सांसारिक विषयोंकी ओर चलायमान न हों; निर्जन स्थानमें अकेले रह कर अनन्त ईश्वरमें मनको लगावे। यदि संग करना हो तो ईश्वरके सच्चे भक्त साधु महात्माओंका ही संग करे ॥ ५१ ॥ मैं अकेले जलमें तप कर रहा था, वहाँ मछली मच्छके संगसे मुझे विवाह करनेकी इच्छा हुई, पचास स्त्रियोंसे बिवाह किया, उनमें पचास हजार पुत्र और कन्या उत्पन्न हुए। तब भी इस लोक व परलोकसे संबंध रखनेवाले मनोरथोंका अन्त नहीं मिलता। मायाके गुणोंमें मेरी बुद्धि भ्रष्ट होगई, जिससे मुझको संसारके विषयोंका भोग करना ही जीवनका उद्देश्य मालूम पड़ने लगा ॥ ५२ ॥ हे राजन्! इस प्रकार गृहस्थ आश्रममें रहते२ सौभरिजीको वैराग्य होगया। तब वह वानप्रस्थ हो कर तप करनेके लिये वनको गये। सौभरिजीकी पतिव्रता स्त्रियाँ भी उनके साथ वनको गईं ॥ ५३ ॥ आत्मज्ञानी सौभरि मुनिने, जिससे परमेश्वरका शुद्ध ज्ञान हो ऐसा तीव्र तप करके, शरीरस्थित तीनो अग्नियों सहित आत्माको परमात्मामें लीन कर दिया ॥ ५४ ॥

ताः स्वपत्युर्महाराज निरीक्ष्याध्यात्मिकीं गतिम् ॥
अन्वीयुस्तत्प्रभावेण अग्निं शान्तमिवार्चिषः ॥ ५५ ॥

अपने पतिको इस प्रकार परब्रह्ममें लीन हुआ देख कर, जैसे अग्निके बुझ जाने पर उसकी लपटें भी उसीके साथ बुझ जाती हैं वैसे ही सब रानियाँ भी मुनिके प्रभावसे सती होगईं ॥ ५५ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय।

राजा हरिश्चन्द्रका वृत्तान्त।

श्रीशुक उवाच—**मांधातुः पुत्रप्रवरो योऽम्बरीषः प्रकीर्तितः ॥**
पितामहेन प्रवृतो यौवनाश्वश्च तत्सुतः ॥
हारीतस्तस्य पुत्रोऽभून्मांधातृप्रवरा इमे ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले। मांधाताके सबमें श्रेष्ठ और बड़े पुत्र अंबरीषजी थे।

उनको उनके बाबा युवनाश्वने अपना पुत्र बनाया था। अंबरीपके पुत्रका भी नाम युवनाश्व हुआ। युवनाश्वके पुत्रका नाम हारीत हुआ। अंबरीप, युवनाश्व और हारीत; ये तीनो मांधाताके गोत्रके "प्रवर" हैं ॥ १ ॥ अब इसी वंशमें उत्पन्न राजा पुरुकुत्सके वंशका वर्णन करते हैं। रसातलमें रहनेवाले नागोंने पुरुकुत्ससे अपनी बहन नर्मदाका विवाह कर दिया। नागोंके कहनेसे नर्मदा पुरुकुत्सको रसातलमें लेगई ॥ २ ॥ विष्णुके अंश राजा पुरुकुत्सने नागों पर अत्याचार करनेवाले दुष्ट गंधर्वोंको मारा। नागोंने प्रसन्न होकर वर दिया कि-"जो कोई इस चरित्रको पढ़े या सुनेगा उसे नागोंसे भय न होगा" ॥ ३ ॥ पुरुकुत्सके त्रसद्दस्यु और त्रसद्दस्युके अनरण्य हुए। अनरण्यके हर्य्यश्व, हर्य्यश्वके अरुण और अरुणके त्रिवन्धन हुए ॥ ४ ॥ त्रिबंधनके सत्यव्रत हुए। इनका नाम त्रिशंकु भी है। यह गुरुके शापसे चांडाल हो गये थे, किन्तु विश्वामित्रजीने अपने तपोबलसे इनको शरीरसहित स्वर्गको भेज दिया। स्वर्गसे देवतोंने त्रिशंकुको नीचे ढकेल दिया, त्रिशंकुने वहींसे विश्वामित्रको पुकारा, विश्वामित्रने अपने प्रभावसे गिरने नहीं दिया, आकाशमें ही रोक दिया। त्रिशंकुका मुख नीचे और पैर ऊपर हैं, और अब भी वह स्वर्गके पास देख पड़ते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ त्रिशंकुके पुत्र हरिश्चन्द्र हुए; जिनके लिये बहुत वर्षतक विश्वामित्र और वशिष्ठ ऋषि पक्षीका रूप धर कर लड़े हैं* ॥ ७ ॥ हरिश्चंद्रके कोई पुत्र न था, इस कारण यह बहुत ही उदास रहते थे। देवऋषि नारदके उपदेशसे वरुणकी शरणमें जाकर राजाने यों प्रार्थना की कि "हे देव! हमारे एक पुत्र उत्पन्न हो, ऐसा वर दीजिये ॥८॥ हे प्रभो! जो हमारे वीर पुत्र उत्पन्न होगा तो हम उसी पुत्रको यज्ञपशु बना कर आपका यज्ञ करेंगे"। वरुणने कहा-"तथास्तु"। वरुणके वर देनेसे हरिश्चन्द्रके रोहित नाम पुत्र हुआ ॥ ९ ॥ पुत्र उत्पन्न होने पर वरुणने आकर कहा कि राजन्! अब आपके पुत्र हुआ है, प्रतिज्ञाके अनुसार मेरा यज्ञ करो। तब राजाने कहा कि अभी पशु अपवित्र है, जब दस दिनका होने पर पवित्र होगा तब आपकी पूजा करूँगा ॥ १० ॥ दस दिनके बाद फिर वरुणने आकर कहा कि अब यज्ञ करो। राजाने फिर बहाना किया कि दाँत निकलने पर पशु शुद्ध होगा ॥ ११ ॥ जब बालकके दाँत निकल आये तब फिर वरुणने आकर यज्ञ करनेके लिये कहा कि

---

* इसकी कथा यों है कि विश्वामित्रने राजसूय यज्ञकी दक्षिणाके बहाने हरिश्चन्द्रका सर्वस्व हर लिया और यहाँतक कि भंगीके हाथ बेचा। सूर्यवंशी राजाओंके कुलगुरु वशिष्ठजीको अपने शिष्यकी दुर्दशा देख कर बहुत क्रोध आया, इस लिये उन्होने विश्वामित्रको शाप दिया कि तुम आड़ी (पक्षिविशेष) पक्षी होजाओ। विश्वामित्रने भी वशिष्ठको शाप दिया कि तुम बगला हो जाओ। परस्पर शापसे दोनो मुनि पक्षी हो गये, और कई हजार वर्षतक दोनोमें युद्ध होता रहा।

अब पशुके दाँत निकल आये हैं, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। राजाने कहा कि प्रभो! कुछ दिन और क्षमा करो, एक बार दाँत गिर जाने पर पशु शुद्ध होगा ॥ १२ ॥ पशुके दाँत गिरने पर फिर वरुणने आकर कहा कि अब तो दाँत भी गिर गये, अपना कहा पूरा करो। राजाने कहा कि देवदेव! अबकी बार दाँत निकलने पर पशु शुद्ध होगा। फिर दाँत निकलने पर वरुणने आकर कहा कि अब मेरा पूजन करो। फिर हरिश्चन्द्रने बहाना किया कि जब पशु कवच पहन कर संग्राम कर सके तब पवित्र होगा ॥ १३ ॥ १४ ॥ पुत्रके सुदृढ़ प्रेम और स्नेहके कारण राजा हरिश्चन्द्र इस प्रकार बहाना करके वरुणको टालने लगे। किन्तु राजा जिस जिस समयकी अवधि करने लगे उस २ अवधिके पूरे होने पर वरुणजी आकर प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये राजाको घेरने लगे ॥ १५ ॥ इसी समयमें किसी भाँति रोहित कुमारको पिताका अभिप्राय मालूम होगया; तब वह प्राण बचानेके लिये धनुष बाण लेकर शिकारके बहाने वनको भाग गये ॥ १६ ॥ इधर वरुणने हरिश्चन्द्रका छल जान कर क्रोध किया, जिससे हरिश्चन्द्रके जलंधर रोग हो गया। रोहितने पिताके पेटमें जलंधर रोग होनेका समाचार पाकर अपनी राजधानीमें आनेका विचार किया। किन्तु इन्द्र एक मनुष्यके रूपसे रोहितको मिले और "पृथ्वीमें घूमना पुण्य है, क्योंकि अनेक तीर्थ और पवित्र क्षेत्रोंमें रहनेसे मनुष्यका मंगल होता है" यह कह कर उन्हे वहींसे लौटा दिया। फिर कई वर्ष तक राजकुमार रोहित वनमें रहे ॥ १७ ॥ १८ ॥ इसी भाँति दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें वर्षमें जब २ रोहितने पिताके पास जानेका विचार किया तब २ इन्द्रने बूढ़े ब्राह्मणके रूपसे राहमें मिल कर ऐसा ही उपदेश दिया, जिससे रोहित राहसे लौट २ गये ॥ १९ ॥ छठे वर्ष फिर वनोंमें विचरते हुए रोहितने पिताके पास जानेकी इच्छासे यात्रा की। राहमें रोहितने अजीगर्त नाम ऋषिसे उनके मँझले पुत्र "शुनःशेफ"को मोल ले लिया ॥ २० ॥ और अपनी जगह पर दूसरे पशु शुनःशेफको लाकर पिताको दिया एवं पिताको प्रणाम किया। वरुणने कृपा की, राजाका जलंधर रोग जाता रहा। तब महायशस्वी राजा हरिश्चन्द्रने वरुण आदि देवतोंकी प्रसन्नताके लिये अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार 'पुरुषमेध' (जिसमें पुरुषका बलिदान होता है) यज्ञ किया ॥ २१ ॥ इस यज्ञमें विश्वामित्रजी 'होता' और आत्मज्ञानी यमदग्नि मुनि 'अध्वर्यु' व महामुनि वशिष्टजी 'ब्रह्मा' एवं अपास्य मुनि 'उद्गाता' हुए ॥ २२ ॥ इन्द्रने प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्रको एक सोनेका बना हुआ दिव्य रथ दिया। शुनःशेफके वृत्तान्तको आगे विस्तारसे कहेंगे ॥ २३ ॥ हे राजन्! विश्वामित्रने रानीसहित राजा हरिश्चन्द्रके सत्यकी परीक्षा ली, किन्तु उनके सत्य, सामर्थ्य और धैर्यको देख कर उन्हे विस्मित और प्रसन्न होना पड़ा। विश्वामित्रने प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्रको विशुद्ध ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया

॥ २४ ॥ राजाने मनको पृथ्वीमें, पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें, वायुको आकाशमें, आकाशको अहंकारमें एवं अहंकारको महत्तत्वमें मिला दिया अर्थात् लीन कर दिया ॥ २५ ॥

हित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाणसुखसंविदा ॥
अनिर्देश्याप्रतर्क्येण तस्थौ विध्वस्तबन्धनः ॥ २६ ॥

विषय वासनाओंको त्याग कर आत्माका रूप (ज्ञान) विचारने लगे । आत्माके रूप (ज्ञान) से अज्ञानको नष्ट कर दिया। यह अज्ञान ही आत्माका आवरण (माया) है । अन्तमें परमानन्दके अनुभवसे ज्ञानको भी त्याग कर सब प्रकारके बंधनोंसे छूट कर उस ब्रह्मरूपको प्राप्त हो गये जो अनिर्देश्य और अतर्क्य है ॥ २६ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय ।

राजा सगरके वंशका विवरण ।

श्रीशुक उवाच—हरितो रोहितसुतश्चम्पस्तस्माद्विनिर्मिता ॥
चम्पापुरी सुदेवोऽतो विजयो यस्य चात्मजः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहितके पुत्रका नाम हरित हुआ। हरितके पुत्रका नाम चंप हुआ, जिसने चंपा पुरी वसाई । चंपके पुत्र सुदेव हुए, सुदेवके पुत्र विजय हुए, विजयके पुत्र भीरुक हुए। भीरुकके वृक और वृकके वाहुक हुए । वाहुक राजा अपने शत्रुओंसे युद्धमें हार गये । राज्य छिन जानेसे राजा वाहुक अपनी रानियों सहित वनको चले गये ॥ १ ॥ २ ॥ वृद्ध राजा वाहुकका वनमें देहान्त होगया । बड़ी रानी राजाके साथ सती होनेको उद्यत हुईं, किन्तु महर्षि और्व (जिनके आश्रममें जाकर राजा वाहुक रहे थे) जानते थे कि रानी गर्भवती हैं, इस लिये उन्होने रानीको सती होनेसे रोक दिया ॥ ३ ॥ रानीकी और सौतोंने रानीको गर्भवती जान कर मारे डाहके भोजनके अन्नमें मिला कर विष देदिया । महामुनि और्वके प्रतापसे गर्भ नष्ट नहीं हुआ, विषसहित एक प्रतापशाली वालक उत्पन्न हुआ। वही वालक महायशस्वी राजा सगर हुए ॥ ४ ॥ राजा सगर चक्रवर्ती सम्राट् हुए । राजा सगरके पुत्रोंने सागर खोदा है । राजा सगरने अपने गुरुके कहनेसे तालजंघ, यवन, शक, हैहय, वर्वर आदि जातिवाले शत्रुओंको प्राणसे नहीं मारा, किन्तु उनके वेपको बिगाड़ दिया ।

किसीका शिर मुड़वा दिया, किसीके गलमुच्छें और दाढ़ी रखादी, किसीके शिरके आधे बाल मुड़वा दिये और किसीको आज्ञा दी कि सदा अपने बाल खोले रहें ॥५॥६॥ किसीको अकच्छ रहनेकी और किसीको नग्न रहनेकी आज्ञा दी । राजा सगरने औौर्व ऋषिके बताये हुए मार्गसे अश्वमेध यज्ञ करके सर्ववेदमय और सर्वदेवमय, परमात्मा, परमेश्वर, भगवान् हरिकी आराधना की । दिग्विजय करनेके लिये सगरने अपना घोड़ा छोड़ा, अश्वमेध यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये उसे इन्द्र हर ले गये ॥ ७ ॥ ८ ॥ पिताकी आज्ञासे रानी सुमतिके साठ हजार अभिमानी लड़के यज्ञका घोड़ा खोजनेके लिये चले । पृथ्वी पर पता न लगनेके कारण वे राजकुमार चारो दिशाओंसे पृथ्वीको खोदने लगे ॥ ९ ॥ पूर्व और उत्तरके कोनेमें खोदते खोदते कपिल मुनिके पास खड़ा हुआ घोड़ा देख पड़ा । कपिलजी आँखें मूँदे हुए समाधिमें बैठे थे । उन्हीको चोर जान कर सब राजकुमार कहने लगे कि "देखो यह घोड़ेका चोर आँखें मूँदे हुए बैठा है, इस पापीको मारो मारो" । यह कहते हुए शस्त्र उठा कर साठ हजार राजकुमार कपिल मुनिकी ओर दौड़े, तब तो कोलाहलके कारण मुनिकी आँखें खुल गईं ॥ १० ॥ ११ ॥ इन्द्रकी मायासे राजकुमार मोहित हो गये, इस कारण उन्होने महात्मा कपिल देवका अपमान किया । इसका फल भी वैसे ही मिल गया; क्योंकि जितने राजकुमार थे सब उसी समय अपने २ शरीरकी अग्निसे जल कर राखका ढेर हो गये ॥ १२ ॥ कोई २ कहते हैं कि "कपिल मुनिके कोपकी अग्निसे सगरके पुत्र जल गये"—किन्तु यह बात सत्य नहीं है । क्योंकि भगवान् कपिलदेवजी विष्णुका अवतार साक्षात् शुद्ध सतोगुणमय शान्तमूर्ति हैं । तीनो लोकको पवित्र करनेवाले उनके मनमें तमोगुणकी प्रवृत्ति (क्रोधका उदय) कैसे संभव है? भला आकाशमें पृथ्वीकी रज होना कैसे संभव है? ॥ १३ ॥ जिन कपिल मुनिने सांख्ययोगरूपी सुदृढ़ नाव चलाई है-जिस नाव पर चढ़ कर मोक्षकी इच्छावाले लोग अपार संसारसागरके पार पहुँच जाते हैं, उन परमात्माके स्वरूप सर्वज्ञ महामुनिके मनमें शत्रु मित्र आदिकी भेदबुद्धि कहाँ स्थान पा सक्ती है? ॥ १४ ॥ सगर राजाके केशिनी नाम रानीमें एक असमंजस नाम पुत्र हुआ था । असमंजसके अंशुमान् नाम एक सुशील पुत्र था । वह अपने बाबा सगरका बड़ा ही शुभचिन्तक था ॥ १५ ॥ असमंजस लड़कपनमें बड़े ही ऊधमी थे। यह पहले जन्मके योगी थे, किन्तु संगसे भ्रष्ट हो गये थे, इसीसे इनको पूर्वजन्मका सब वृत्तान्त याद था ॥ १६ ॥ इस लिये यह अधिक ऊधम करते थे, जिसमें पिता ऊब कर निकाल दें । असमंजस ऐसे २ ऊधम करने लगे जो प्रजाको और जातिवालोंको असह्य हो उठे । खेलते हुए लड़कोंको पकड़ कर सरयू नदीमें बोर देते थे । इस ऊधमसे सब लोग बहुत घबड़ा गये ॥ १७ ॥ पिताने कई बार

समझाया, पर असमंजसने इस कुचरित्रको न छोड़ा, तब राजा सगरने पुत्रका स्नेह त्याग कर असमंजसको देशसे निकाल दिया। जाते समय योगी असमंजसने उन बालकोंको, जिन्हे बोर दिया था, अपने योगबलसे जिलाकर दिखा दिया और देशसे निकल गये ॥ १८ ॥ अयोध्याके रहनेवाले लोग मरे हुए पुत्रोंको जीते जागते घर आते देख बहुत ही विस्मित हुए और यह हाल सुन कर राजा सगरको भी पुत्रके निकाल देनेका बड़ाही पछतावा हुआ ॥ १९ ॥ सगरने अपने पोते अंशुमान्‌को घोड़ेका पता लगानेके लिये भेजा । अंशुमान् भी अपने पिताके भाइयोंकी बनाई हुई राहसे कपिलजीके पास पहुँचे और मुनिके पासही यज्ञका घोड़ा भी देखा ॥ २० ॥ वहाँ पर बैठे हुए महामुनि कपिल भगवान्‌को देख अंशुमान् शिर झुकाकर हाथ जोड़ एकाग्रमन हो स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ **अंशुमान् बोले** । हे ईश ! हम ऐसे अज्ञ पुरुषोंकी कौन कहे—साक्षात् देवदेव ब्रह्माजी भी समाधि और युक्तियोंसे आपको न देख सक्ते हैं और न जान सक्ते हैं । तब हम तो उन ब्रह्माजीके मन, शरीर और बुद्धिसे रची हुई अनेक प्रकारकी सृष्टियोंमें एक क्षुद्र जीव हैं । आप ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ परमेश्वर हैं ॥ २२ ॥ हे देव ! जितने देहधारी जीव हैं उनके आत्मामें आप भली भाँति स्थित हैं तथापि वे आपको नहीं जान पाते—केवल आपके गुणों(शक्तियों)को ही देख पाते हैं । अथवा आपके गुण भी उनको नहीं देख पड़ते, केवल 'तम'को ही देख पाते हैं; क्योंकि त्रिगुणात्मिका बुद्धि ही उनकी प्रधान शक्ति है और आपकी मायासे मोहित होनेके कारण वे आन्तरिक ज्ञानसे शून्य हैं, उनको केवल बाह्य विषयोंका ही ज्ञान है ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! आपकी मूर्त्ति शुद्ध सतोगुणमयी, शान्त है । इसी कारण जिन लोगोंके हृदयमें मायागुणजनित भेदभाव और मोह नहीं है वे सनकादिक मुनिगण ही आपका ध्यान और भावना कर सक्ते हैं । मैं मूढ़ हूँ, कैसे आपका विचार या भावना कर सक्ता हूँ अथवा जान सक्ता हूँ ? ॥ २४ ॥ हे शान्तरूप ! मैं आपको केवल नमस्कार करता हूँ । आप पुराणपुरुष हैं, जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और नाश आदि मायाके गुण आपके कार्य हैं और ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि देवता आपके रूप हैं । आपको न पाप है और न पुण्य है । आपका नाम या रूप नहीं है । संसारी जीवोंको ज्ञानका उपदेश देनेके लिये आपने शरीर धारण किया है ॥२५॥ काम, लोभ, ईर्ष्या, मोहमें जिनके चित्त भ्रान्त हो रहे हैं वे लोग आपकी ही मायासे बने हुए लोकोंको परम आनंद देनेवाली सार वस्तु मान कर गृह आदिमें आसक्त रहते हैं ॥ २६ ॥ किन्तु हे भगवन् ! हे सर्वव्यापक ! आपकी कृपासे, आपका मङ्गलमय दर्शन होनेसे आज हमारा कामना, कर्म और इन्द्रियोंका आश्रयरूप सुदृढ़ मोह-पाश कट गया ॥ २७ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । हे राजन् ! इस प्रकार अंशुमान्‌ने कपिलजीकी स्तुति

की और प्रभावका वर्णन किया, तब अनुग्रह प्रकट करते हुए कपिलदेवजी बोले ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् कपिलदेवजीने कहा कि "पुत्र! यह तुम्हारे बाबाके यज्ञका घोड़ा खड़ा है, इसे लेजाओ। और ये तुम्हारे साठ हजार चाचा जले हुए पड़े हैं। गंगाजलका स्पर्श हुए बिना इनकी सद्गति नहीं होगी" ॥ २९ ॥ तदनन्तर अंशुमान्ने शिर झुका कर मुनिको प्रणाम किया और प्रदक्षिणा की। प्रतापी अंशुमान् इस प्रकार कपिलदेवको प्रसन्न करके घोड़ा लेकर यज्ञमण्डपमें आये। राजा सगरने वही यज्ञपशु पाकर यज्ञको पूरा किया ॥ ३० ॥

राज्यमंशुमति न्यस्य निःस्पृहो मुक्तबन्धनः ॥
और्वोपदिष्टमार्गेण लेभे गतिमनुत्तमाम् ॥ ३१ ॥

फिर समयानुसार राजा सगरको संसारसे वैराग्य होगया, तब वह सब राजकाज अंशुमान्को सौंप कर महामुनि और्वके उपदेशानुसार बन्धनमुक्त हो उत्तम गतिको प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय।

राजा भगीरथका तप करके पृथ्वी पर गंगाको लाना।

श्रीशुक उवाच—**अंशुमांश्च तपस्तेपे गङ्गानयनकाम्यया ॥**
कालं महान्तं नाशक्नोत्ततः कालेन संस्थितः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। गंगाको पृथ्वी पर लानेकी कामनासे बहुत दिनों तक अंशुमान्ने (अपने पुत्रको राज्य देकर) तप किया, किन्तु कामना नहीं पूरी हुई, बीचमें ही शरीर छूट गया ॥१॥ उनके पुत्र दिलीप भी उन्हीकी भाँति गंगाको न लासके, बीचमें ही कालके गालमें लय हो गये। दिलीपके पुत्र भगीरथने गंगाको लानेकी इच्छासे बड़ा ही घोर तप किया ॥ २ ॥ तब गंगाजीने प्रकट होकर भगीरथसे कहा कि पुत्र! मैं प्रसन्न होकर तुमको वर देने आई हूँ। राजन्! भगीरथने यह सुनके नम्रतापूर्वक अपनी अभिलाषा प्रकट की ॥ ३ ॥ तब गंगा देवीने कहा कि राजन्! जब मैं आकाशसे पृथ्वी पर गिरूँगी तब मेरे वेगको कौन रोकेगा? क्योंकि यदि कोई मेरे वेगको रोकनेवाला न होगा तो मैं पृथ्वीको भेद कर रसातल चली जाऊँगी ॥ ४ ॥ किन्तु मैं पृथ्वी पर न जाऊँगी, क्योंकि जितने पापी हैं वे अपने २ पातकको मुझमें आकर धोवेंगे, उस पापियोंके अपार पाप-पंकको मैं कहाँ धोऊँगी? इसका यत्न कोई सोचिये ॥ ५ ॥ भगीरथजी

बोले । माता ! त्रिभुवन-पावन संन्यासी, ब्रह्मज्ञानी शान्तरूप साधुजन तुममें आकर स्नान करेंगे, उनके अंगसंगसे तुम्हारी शुद्धि होगी । क्योंकि उनके हृदयमें पापनाशन भगवान् हरि वास करते हैं ॥ ६ ॥ आपके वेगको सब देहधारियोंके आत्मा साक्षात् रुद्र भगवान् धारण करेंगे । जैसे कपड़ा और डोरे परस्पर ओतप्रोत होते हैं वैसेही यह विश्व उन्ही शंकर देवमें ओतप्रोत है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! गंगासे यों कह कर भगीरथजी फिर तप करने लगे, थोड़े ही समयमें शिव भगवान् भी उन पर प्रसन्न हुए ॥८॥ और राजाकी प्रार्थनाको स्वीकार करके सब लोकोंके हितचिन्तक शिवभगवान्ने हरि-चरण-स्पर्शसे पवित्र जलवाली गंगाके वेगको सावधान होकर शिर पर धारण किया ॥९॥ राजऋषि भगीरथ जहाँ अपने पूर्वजोंके शरीर भस्म हुए पड़े थे वहाँ त्रिभुवन पावनी गंगाको ले चले ॥१०॥ वायुके तुल्य वेगवाले रथ पर बैठ कर भगीरथजी चले और उनके पीछे अनेक देशोंको पवित्र करती हुई गंगाजी चलीं । सगर राजाके पुत्रोंके शरीरोंके भस्मको गंगाजीने जाकर बहा दिया ॥११॥ हे राजन् ! राजा सगरके पुत्र ब्राह्मणका अपमान करनेसे भस्म हुए थे, तथापि केवल देहके भस्म द्वारा गंगाजलका स्पर्श करनेसे स्वर्गको गये ! ॥ १२ ॥ जब सगरके पुत्र जले हुए शरीरद्वारा गंगाजलका स्पर्श करके तर गये, तब जो लोग श्रद्धापूर्वक नियम धारण करके साक्षात् देवी भागीरथीमें स्नान करेंगे- उनके तरनेमें क्या संदेह है ? ॥ १३ ॥ यह गंगादेवीका माहात्म्य जो यहाँ कहा गया सो कुछ बड़े आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि जिन अनन्त भगवान्के चरणोंमें श्रद्धापूर्वक मन लगा कर विषयवासनारहित मुनिगण शीघ्र ही दुस्त्यज देह-संबंधको त्याग कर मुक्त हो जाते हैं उन्हीसे आवागमन छुड़ानेवाली गंगाजी उत्पन्न हुई हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ भगीरथके श्रुत नाम पुत्र हुआ, श्रुतके नाभ और नाभके सिंधुद्वीप हुए । सिंधुद्वीपके अयुतायु और अयुतायुके ऋतुपर्ण हुए । ऋतुपर्णसे राजा नलसे बड़ी मित्रता थी, ऋतुपर्णने नलसे अश्वविद्या सीखी और नलको पाँसा खेलनेकी विद्या बताई । ऋतुपर्णके सर्वकाम नाम पुत्र हुआ ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ सर्वकामके पुत्र सुदास हुए । सुदासके पुत्र सौदास हुए, जिनकी स्त्रीका नाम मदयन्ती था । इनको कल्माषपाद और मित्रसह भी कहते हैं । वशिष्ठमुनिके शापसे इनको राक्षस होना पड़ा । अपने ही कर्मके फलसे यह अपने वीर्य द्वारा पुत्र नहीं उत्पन्न करसके ॥ १८ ॥ **राजा परीक्षित्** श्रीशुकदेवजीसे बोले कि ब्रह्मन् ! वशिष्ठजीने गुरू होकर राजा सौदासको क्यों शाप दिया ? यह हमारी सुननेकी इच्छा है, यदि कोई गुप्त बात न हो तो कहिये ॥ १९ ॥ **श्रीशुकदेवजी बोले** । राजा सौदास एक समय शिकार खेल रहे थे, वनमें दो राक्षस मृगका रूप धरे घूम रहे थे । राजाने एकको मारडाला । दूसरा भाग कर बच गया और रसोंइयेके वेषसे राजभवनमें छिप कर रहने लगा । वह राक्षस सदा अपने भाईका

बदला लेनेके लिये अवसर देखता था ॥ २० ॥ एक दिन राजाके घरमें वशिष्ठजी भोजन करने आये। उस पापी असुरने मनुष्यका मांस पकाकर राजाके गुरु वशिष्ठजीके आगे परोस दिया ॥ २१ ॥ वशिष्ठजीने अपने आगे अभक्ष्य मनुष्यमांस देख कर बड़ा ही क्रोध किया और राजाको शाप दिया कि "अरे! तूने यह राक्षसोंका भोजन मेरे आगे भेजा, इस लिये तू नरमांसाहारी राक्षस होजा" ॥ २२ ॥ किन्तु जब वशिष्ठजीको मालूम हुआ कि यह कार्य दुष्ट राक्षसका है तब कहा कि राजन्! तुमको केवल बारह वर्ष तक मेरा शाप भोगना होगा। जब वशिष्ठजीने शाप दिया तब अपनेको निर्दोष देख कर गुरुके अन्याय पर राजाको क्रोध आगया और उन्होने गुरुको शाप देनेके लिये जल हाथमें लिया ॥२३॥ किन्तु रानी मदयन्तीने हाथ पकड़ कर राजाको शापदेनेसे रोका। राजाने सोचा कि दिशा, आकाश, पृथ्वी आदि सब स्थानोंमें जीव रहते हैं, जहाँ यह शापका तीक्ष्ण जल छोड़ूँगा वहीं जीव-हत्या होगी। यह सोच कर वह जल अपने ही पैरों पर छोड़ लिया ॥ २४ ॥ जलके पड़ते ही दोनो पैर झुलस कर काले पड़ गये—इसीसे राजा सौदासका कल्माषपाद नाम पड़ा। गुरुके शापसे राजा सौदास राक्षस होकर वनोंमें विचरने लगे। एक स्थान पर एक वनवासी पक्षियोंका जोड़ा विहार कर रहाथा ॥ २५ ॥ वे दोनो वास्तवमें पक्षी न थे, एक मुनि अपनी स्त्रीसहित पक्षीके रूपमें विहार कर रहे थे। राजा थे भूखे, इन्होने पक्षीरूपधारी ब्राह्मणको पकड़ लिया। ब्राह्मणकी स्त्रीका रतिसे जी नहीं भराथा। वह दीन स्वरसे विनय करती हुई राजासे बोली कि "हे राजन्! आप राक्षस नहीं हैं; आप इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न महापराक्रमी महारथी राजा हैं। हे वीर! आप रानी मदयन्तीके पति राजा सौदास हैं, आपको ऐसा अधर्म करना योग्य नहीं है। यह मेरा पति ब्राह्मण है, कृपा कर इसे न मारो, मेरे कहनेसे मुझे देदो। मेरी इच्छा अभी पूर्ण नहीं हुई है, क्योंकि मैं पुत्र चाहती हूँ ॥ २६ ॥ २७ ॥ राजन्! इस मनुष्यशरीरसे मनुष्यके सब पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। अतएव किसीको मारना उसकी सब कामनाओंको नष्ट करना है! ॥ २८ ॥ फिर यह ब्राह्मण तप, शील, गुण और विद्यासे युक्त हैं एवं सब प्राणियोंके हृदयमें आत्मारूपसे स्थित होकर गुणोंके संबंधसे छिपे हुए (अप्रकट) महापुरुष परब्रह्मकी आराधना करना चाहते हैं ॥ २९ ॥ हे धर्मज्ञ! आप राजर्षियोंमें श्रेष्ठ हैं; आपके हाथोंसे किसी प्रकार इनका वध न होना चाहिये! कहीं पिताके हाथसे पुत्रकी भी हिंसा होती है? ॥ ३० ॥ राजन्! मन, वाणी और कर्म द्वारा सब प्राणियोंसे मित्रभाव रखनेको ही विद्या और विवेकसे युक्त बड़े लोग 'शील' कहते हैं। आपकी सब साधुजन बड़ाई करते हैं। गो-वधके तुल्य इस निर्दोष वेदपाठी श्रोत्रिय ब्राह्मणके वधको आप कैसे अच्छा समझते हैं? ॥ ३१ ॥ विना इस पतिके एक क्षणभर मैं नहीं जीवित रह सक्ती। यदि आप इस ब्राह्म-

णको नहीं छोड़ते तो पहले मुझे भक्षण करो, क्योंकि बिना इसके मैं मृतकतुल्य हो जाऊँगी ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणकी स्त्री अनाथकी तरह करुणाजनक स्वरसे इस प्रकार विलाप करती रही, किन्तु उस पर कुछ ध्यान न करके, व्याघ्र जैसे पशुको खा जाता है उस प्रकार शाप-मोहित राजा सौदास उस ब्राह्मणको खागये ॥ ३३ ॥ गर्भाधान द्वारा अभिलाषा पूर्ण करने लिये उद्यत अपने स्वामीको राक्षसने भक्षण कर लिया—यह देख कर उस ब्राह्मणीको कोप आगया। तब उसने अपनी अवस्था पर शोक करते हुए इस प्रकार राजाको शाप दिया ॥ ३४ ॥ रे पापरूप! मेरे पतिको रति करते समय तूने भक्षण कर लिया, इस लिये रे विवेकहीन! तू भी जब अपनी रानीके पास गर्भाधानके लिये रति करने जायगा तब तुरन्त मर जायगा ॥ ३५ ॥ पतिपरायणा वह ब्राह्मणी इस प्रकार राजा मित्रसहको शाप देकर, अग्नि प्रज्वलित कर, उसी अग्निमें पतिकी हड्डियोंके साथ जलकर पतिकी गतिको प्राप्त हुई ॥ ३६ ॥ बारह वर्षके बाद जब शापका अन्त हुआ तब राजा सौदास अपने घर आये। एक दिन रानीके पास रति करने गये। रानीको ब्राह्मणीके शापका वृत्तान्त विदित था, इस लिये उसने राजाको रोक दिया ॥ ३७ ॥ तबसे राजाने स्त्री-संभोगके सुखको त्याग दिया; इसी अपने कर्मके दोषसे राजा सन्तानरहित रहे। कुछ दिन बाद राजाकी आज्ञासे वशिष्ठजीने रानी मदयन्तीमें गर्भाधान किया ॥ ३८ ॥ रानी सात वर्ष तक गर्भ धारण किये रही—प्रसव न हुआ। जब वशिष्ठजीने अश्म (पत्थर) द्वारा गर्भमें प्रहार किया तब पुत्र उत्पन्न हुआ। इसीसे उसका नाम अश्मक हुआ ॥ ३९ ॥ अश्मकके मूलक नाम पुत्र हुआ। मूलककी रक्षा स्त्रियोंने की* इस लिये उनका 'नारीकवच' नाम पड़ा और क्षत्रियहीन पृथ्वी पर क्षत्रियोंका मूल होनेके कारण मूलक कहलाये ॥ ४० ॥ मूलकके दशरथ, दशरथके ऐडविडि ऐडविडिके राजा विश्वसह उत्पन्न हुए। विश्वसहके खट्वांग नाम चक्रवर्त्ती पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ४१ ॥ महाराज खट्वांगको युद्धमें जीतना बड़ा ही कठिन कार्य्य था। उन्होने देवगणके प्रार्थना करने पर युद्धमें देवशत्रु दानवोंका संहार किया। इससे देवगणने प्रसन्न होकर उनको वर देना चाहा। तब राजाने कहा-पहले यह बताओ कि मेरी आयु कितनी बाकी है? जब देवगणके मुखसे उनको विदित हुआ कि केवल एक मूहूर्त्त (दो घड़ी) आयु बाकी है तब उन्होने देवगणके दिये विमान पर चढ़, अपने पुरमें आकर परमेश्वरमें मन लगाया। उस अन्त समय उनका यह दृढ़ विचार था कि—"कुलदेवता जो पूज्य ब्राह्मणकुल है उसकी अपेक्षा मुझको मेरे प्राण, पुत्र, धन—सम्पत्ति,

* परशुरामजीने इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन करदिया, ढूंढ़ढ़ कर क्षत्रियोंको मारा। उस समय स्त्रियोंने इस बालकको अपने वस्त्रोंमें छिपाकर बचाया था, जिसमें क्षत्रियजाति निर्वंश न होजाय। उस समय पृथ्वी पर केवल मूलकने ही क्षत्रियकुलकी जड़ जमाई।

पृथ्वी, राज्य एवं स्त्री भी अधिक प्रिय नहीं है। मेरी मति अति अल्प अधर्म्मसे भी कभी दूषित न हो, मैं विश्वमें उत्तम कीर्तिवाले विष्णु ईश्वरके सिवा और कोई वस्तु न देखूँ अर्थात् सबमें, सब जगह उसी एक ईश्वरको व्याप्त देखूँ। यद्यपि त्रिभुवनके ईश्वर देवगण प्रसन्न हो कर मुझे मनचाहे वर देते हैं, किन्तु मेरा मन विश्वनाथ ईश्वरमें लगा हुआ है, इस कारण मैं उनको नहीं चाहता। औरोंकी कौन कहे—इन्द्रियोंके वशीभूत जिनकी बुद्धि है वे देवगण भी अपने हृदयमें ही नित्य अवस्थित उस प्रिय आत्मारूप ईश्वरको नहीं देख पाते! बस, परमेश्वरकी माया द्वारा निर्म्मित और गन्धर्वनगरके समान मिथ्या इस गुण-समूहमें स्वभावसिद्ध जो आत्मा(मन)की आसक्ति है उसको ईश्वरकी चिन्तासे निरस्त करके उसी अनादि ईश्वरके चरणोंका आश्रय लेना श्रेय है"। हे राजन् खट्वांग राजाने ईश्वरमें लगी हुई बुद्धिसे ऐसा निश्चय करके अज्ञान त्याग कर दिया एवं आत्मस्वरूपमें अवस्थित हुए ॥४२॥४३॥४४॥४५॥४६॥४७॥४८॥

यत्तद्ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम् ॥
भगवान्वासुदेवेति यं गृणन्ति हि सात्वताः ॥ ४९ ॥

महाराज! जो सूक्ष्म और अशून्य होने पर भी शून्यवत् कल्पित परब्रह्म हैं—जिनको भक्तजन वासुदेव कहते हैं वही जीवात्माका यथार्थ स्वरूप हैं ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे नवमोध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय।

श्रीरामचंद्रजीके चरित्रका वर्णन।

श्रीशुक उवाच—खट्वाङ्गाद्दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात्पृथुश्रवाः ॥
अजस्ततो महाराजस्तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! खट्वांग राजाके पुत्र दीर्घबाहु हुए। उनके महायशस्वी रघु उत्पन्न हुए। रघुके पुत्र अज हुए। अजके महाराज दशरथ हुए। साक्षात् भगवान् ब्रह्ममय हरिने देवगणकी प्रार्थनासे राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—इन चार नामोंसे चार अंशोंमें विभक्त हो कर राजा दशरथके यहाँ जन्म लिया। राजन्! तत्त्वदर्शी वाल्मीकि आदि महात्मा ऋषियोंने विस्तारसे रामचरित्रका वर्णन किया है और तुमने भी कई बार उसको सुना है, तथापि मैं संक्षेपसे कहता हूँ—श्रवण करो ॥१॥२॥३॥ जिन्होने पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिये राज्य त्याग कर, परम प्रिया सीताके कोमल करस्पर्शको भी जो न सह सक्ते थे उन महा सुकुमार चरणोंसे दुरन्त दुर्गम वनवीथियोंमें

विचरण किया—वानरेन्द्र हनुमान् एवं अनुज लक्ष्मण, पैर दबा कर जिनके मार्ग चलनेके श्रमको दूर करते थे—शूर्पणखाको विरूप करनेसे रावणने जब सीताको हरा तब उस प्रिया-वियोगके कारण उत्पन्न हुए कोपसे कुटिल जिनकी भ्रुकुटी देख कर समुद्र भयभीत हुआ—और जो उस समुद्रमें सेतु बाँध कर दुष्टरूपी वनके जलानेको दावानलरूप हुए, वही कोशलेश श्रीरामचन्द्र हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रने विश्वामित्र मुनिके यज्ञमें लक्ष्मणके सामने ही मारीच आदि प्रधान २ निशाचरोंका दमन और संहार किया ॥ ५ ॥ उन्होने सीतास्वयंवरके यज्ञमण्डपमें—जहाँ सब पृथ्वीभरके शूरवीर राजालोग बैठे थे,—बालक गजराजके समान लीलापूर्वक, तीन सौ वाहक जिसे वहाँ तक लाये उस शिवके महान् धनुषको बाएँ हाथमें ले कर, उस पर प्रत्यंचा चढ़ा कर और खींच कर इक्षुदण्डकी भाँति बीचसे तोड़ डाला ॥ ६ ॥ पहले अपने वक्षःस्थलमें स्थान दे कर जिनको सम्मान दिया एवं जिनका शील, गुण, अवस्था और अङ्गसौष्ठव अपने अनुरूप था उन्हीं लक्ष्मीका अवतार सीतादेवीको धनुषभंगके पणमें प्राप्त कर श्रीरामचन्द्र अयोध्याको आ रहे थे; मार्गमें इसी अवसर पर वह परशुरामजी, जिन्होने इक्कीस वार इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य कर दिया, मिले। कोशलेश रामचन्द्रने उन भार्गवके चिरसञ्चित गर्वको क्षणमात्रमें चूर्ण कर दिया ॥७॥ राजन्! कुछ दिन बाद श्रीरामचन्द्रका युवराजकी गद्दी पर अभिषेक होना निश्चित हुआ और उसका आयोजन होने लगा । किसी समय राजा दशरथने प्रसन्न हो कर छोटी रानी कैकेयीसे दो मनमाने वर देनेकी प्रतिज्ञा की थी । अतएव दुष्टा मंथरा दासीके बहँकानेसे रामचन्द्रके राज्याभिषेकके समय कैकेयीने वेही दोनो वर माँगे, अर्थात् भरत युवराज बनाये जायँ और रामचन्द्र चौदह वर्षके लिये वन भेजे जायँ । उस समय, पिता यद्यपि स्त्रीजित थे, तथापि उनको सत्यके पाशमें बँधा हुआ जान कर रामचन्द्रजीने वह आज्ञा शिर आँखों पर ग्रहण की एवं योगी पुरुष जैसे दुस्त्यज प्राणोंको त्याग देतेहैं वैसे ही उन्होने राज्यलक्ष्मी, प्रणयी, सुहृद् और भवन त्याग कर स्त्रीसहित वनको गमन किया ॥ ८ ॥ दण्डकारण्यमें पापबुद्धिसे आई रावणकी बहन शूर्पणखा राक्षसीको, नाक कान काट कर विरूप कर दिया और खर, दूषण, त्रिशिराकी अध्यक्षतामें युद्ध करनेको आयेहुए चौदह सहस्र राक्षसोंका संहार किया एवं शत्रुलोगोंको असह्य धनुष लिये कष्ट सहतेहुए वनवास करने लगे ॥ ९ ॥ महाराज! शूर्पणखाके मुखसे सीताके रूपकी प्रशंसा सुन कर रावणके हृदयमें कामाग्नि प्रज्वलित हो उठी और उसने सीताहरणके कुविचारसे मारीच राक्षसको रामचन्द्रके आश्रममें भेजा । मारीच, अद्भुत मृगका रूप धरकर रामके आश्रममें आया और रामचंद्रको आश्रमसे दूर लेगया; उस समय रामचन्द्रने वैसे ही, जिस प्रकार रुद्रने दक्षका वध किया था, बाणके

प्रहारसे दुष्ट मारीचको मार डाला ॥ १० ॥ इधर राक्षसाधम रावण, रामलक्ष्मणकी अनुपस्थितिमें भेंड़ियेके समान वैदेहीको हर ले गया और रामचन्द्रजी मनुष्योंकी भाँति "स्त्रीसंग करनेवालोंको ऐसा दुःख होता है" यह जगत्को जतानेके लिये प्रियाके विरहसे विलाप करते हुए दीनोंकी भाँति भाईके साथ सीताकी खोजमें वन २ विचरने लगे ॥ ११ ॥ सीताकी खोजमें इधर उधर भ्रमण करते २ श्रीरामचन्द्रने देखा कि उनके लिये रावणसे संग्राम करके युद्धमें मरे हुए जटायुका शास्त्रोक्त अन्तिम सत्कार नहीं हुआ, अतएव उन्होने अपने पुत्रकी भाँति अपने हाथों जटायुके शवको जलाया और फिर आगे बढ़ कर कबन्धका वध किया । तदनन्तर बानरोंसे मित्रता करके बालीको मारा एवं उन्ही बानरोंके द्वारा सीताजीका पता पाया । तब रामचंद्रजी लक्ष्मणजीके साथ बानरोंकी सेना सहित लंकापुरी पर चढ़ाई करके समुद्रके तट पर पहुँचे। ब्रह्मा और शिव जिनके चरणों पर शिर झुकाते हैं वह विष्णु ही साक्षात् मनुष्यावतार श्रीरामचन्द्रजी थे ॥ १२ ॥ समुद्रतट पर रामचन्द्र तीन दिन तक उपवास किये पड़े रहे, पर नदीशने राह न दी, तब उन्होने समुद्र पर कोप किया। श्रीरामचन्द्रके कोपकुटिलकटाक्षसे सागरका हृदय चञ्चल हो उठा, उसके भीतर रहनेवाले ग्राह मगर आदि जीवजन्तु क्षोभको प्राप्त हुए, समुद्रने भयसे अपना तरङ्गगर्जन बंद कर दिया और मूर्तिमान् हो कर शिर पर पूजाकी सामग्री और भेंटके लिये रत्न लिये हुए यों कहा कि हे जगदीश्वर! जड़मति होनेके कारण मैं आपको जान नहीं सका। आप महा तेजस्वी, निर्विकार, आदिपुरुष हैं। जिनके वशवर्ती सत्त्वगुणसे देवगण और रजोगुणसे सम्पूर्ण प्रजापतिगण एवं तमोगुणसे सब भूतपति उत्पन्न हुए हैं, आप वही गुणेश्वर हैं। प्रभो! अपनी इच्छाके अनुसार उस पार जाइये। विश्रवाकी विष्ठाके तुल्य (कुपुत्र) एवं त्रैलोक्यको क्लेश देनेवाले दुरात्मा रावणका वध और अपनी प्रियाका उद्धार करिये। हे वीर! यश फैलानेके लिये मेरे ऊपर सेतुकी रचना कराइये; दिग्विजयी राजा लोग उस सेतुके निकट आकर आपके पवित्र यशका गान करेंगे ॥१३॥१४॥१५॥ हे राजन्! सागरके ये वचन सुन कर रामचन्द्रने अनेक वृक्ष और पर्वतोंके शिखरोंसे उस पर सेतु बँधवाया । उन शिखरोंको जब वानरलोग लाने लगे तब उन पर लगे हुए वृक्षोंकी शाखाएँ वेगसे चलनेके कारण हिलने लगीं। सेतुबन्धन होजाने पर विभीषणकी सलाहके अनुसार सुग्रीव, नील हनुमान् आदि सेनापतियों सहित श्रीरामचन्द्रने लंकापुरीमें प्रवेश किया । सीताका पता लगानेके लिये जब हनुमान् आये थे तब उन्होने पहले ही उस लंकापुरीको भस्म कर दिया था ॥ १६ ॥ बानरसेनाने लंकाको चारोंओरसे घेर लिया और उसके क्रीड़ाभवन, धान्यागार, कोष, द्वार, पुरद्वार, सभा, वलभी, कपोतपालिका

(कबूतरोंके रहनेका स्थान), वेदी, पताका, स्वर्णकलश, चतुष्पथ आदिको तोड़फोड़ कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया; जिससे हाथीकी मँझाई हुई उन्मथित नदीकी ऐसी लंकाकी दुर्दशा होगई ॥ १७ ॥ राक्षसराज रावणने शत्रुदलका यह उत्पात देख कर निकुंभ, कुंभ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, सुरान्तक, नरान्तक, प्रहस्त, अतिकाय और विकम्पन आदि सम्पूर्ण अनुचरोंको एवं इन्द्रजित् और कुंभकर्णको एक २ करके युद्ध करनेके लिये भेजा ॥ १८ ॥ असि, शूल, धनुष, प्रास, ऋष्टि, शक्ति, वाण, तोमर, खड्ग आदि अनेक शस्त्र लिये हुए अत्यन्त दुर्द्धर्ष राक्षसोंकी सेनाके विरुद्ध श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान्, गन्धमादन, नील, अंगद, जाम्बवान्, पनस आदि सेनापतियों सहित युद्धयात्रा की ॥ १९ ॥ राजन्! रघुपतिके सेनापतियोंने सीताहरण करनेसे जिसका मंगल विनष्ट होगया है उस मन्दभाग्य रावणकी हाथी, पैदल, घोड़े और रथोंसे युक्त चतुरङ्गिणी सेना-पर आक्रमण करके वृक्ष, शिला, गदा और वाणोंके प्रहारसे उसे नष्ट करना आरंभ किया ॥ २० ॥ राक्षसराज रावण अपनी सेनाका विनाश होते देख पुष्पक विमान पर चढ़कर रामचन्द्रसे युद्ध करनेके लिये आया एवं इन्द्रके सारथी मातलिके लाये हुए प्रभायुक्त दिव्य रथ पर आरूढ़ होकर शोभायमान श्रीरामचन्द्र पर अत्यन्त तीक्ष्ण क्षुरप्र वाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २१ ॥ तब रामचन्द्रने उससे कहा कि अरे राक्षसोंकी विष्ठा अर्थात् राक्षसोंमें महा अधम! तू बड़ा ही असज्जन है; कुत्ता जैसे घरमें घुसकर घरवालेकी अनुपस्थितिमें कोई वस्तु चुरा ले जाता है वैसे ही हमारे वहाँ न रहने पर आश्रमसे हमारी स्त्रीको हर लाया है। तू अत्यन्त निर्लज्ज है, कालके समान अलंघ्यवीर्य्य मैं इस समय तेरे निन्दित कर्म्मका फल तुझको देता हूँ ॥ २२ ॥ इस प्रकार भर्त्सना करके रामचन्द्रने धनुष पर चढ़ाये हुए वाणको रावणके ऊपर छोड़ा। उस वज्रतुल्य वाणने रावणके हृदयमें प्रवेश किया। दशमुख रावण दशो मुखोंसे रुधिर उगलता हुआ–जिसका पुण्य क्षीण होगया हो उस सुकृती मनुष्यके समान विमान परसे प्राणहीन होकर गिर पड़ा। उस समय राक्षसोंके दलमें महा हाहाकार मचगया ॥ २३ ॥ तब हजारों राक्षसियाँ लंकासे निकल कर मंदोदरी नाम रावणकी स्त्रीके साथ विलाप करती हुई युद्धभूमिमें आईं ॥ २४ ॥ एवं राम और लक्ष्मणके वाणोंसे जिनके प्राण निकल गये हैं उन अपने २ बंधुओंसे लिपट २ कर आप ही अपने हाथों छाती और शिर पीटती हुई ऊँचे और दीन स्वरसे विलाप करने लगीं ॥ २५ ॥ सब राक्षसियाँ कहने लगीं कि हे नाथ! हाय, तुम्हारे मरनेसे हम मार गईं। हे लोकोंको रुलानेवाले रावण! तुम्हारे न रहनेसे लंकापुरी शत्रुओंके द्वारा पीड़ित हो रहीहै; अब यह किसकी शरणमें जाय? ॥ २६ ॥ हे महाभाग! कामवश हो कर सीताके तेज और प्रभावको तुम नहीं जान सके, इसीसे तुम्हारी आज

यह दशा हुई ॥ २७ ॥ हे कुलनन्दन! तुमने लंकाको और हमको विधवा कर दिया, शरीरको गिद्धोंका भक्ष्य बना दिया और स्वयं अपने लिये नरकभोग कमाया ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । श्रीरामचन्द्रजीके अनुमोदनसे विभीषणने पितृयज्ञकी विधिके अनुसार जातिवालोंके सम्पूर्ण मृतकसंस्कार किये ॥ २९ ॥ तदनन्तर अशोकवाटिकामें अशोकवृक्षके नीचे अपने विरहसे व्यथित, क्षीण और दीन प्रिय भार्या सीताको देखकर रामचन्द्रको दया आई और स्वामीको देख कर सीताको असीम आनन्द हुआ एवं उसी आनन्दके उल्लाससे उनका मुखकमल प्रफुल्लित हो उठा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रने विभीषणको राक्षसगणका स्वामी बना कर लंकाका राज्य एवं एक कल्पकी आयु दी । फिर रामचन्द्रजी लक्ष्मण व सुग्रीव द्वारा सीताजीको पुष्पक विमान पर चढ़ा कर आप भी उसी पर सवार हुए । इस प्रकार चौदह वर्षके वनवासका व्रत समाप्त करके राक्षसराज विभीषणको भी साथ ले श्रीरामचन्द्रने अयोध्यापुरीको यात्रा की । ऊपरसे लोकपालोंने इतनी पुष्पवर्षा की कि उनसे रामचन्द्रका शरीर ढँक गया । उस समय ब्रह्मा आदि देवगण परम आनन्दसे उनके पवित्र चरित्र गाते हुए अपने २ लोकको गये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ रामचन्द्रने पुरीको आते हुए राहमें सुना कि भाई भरत अयोध्यासे बाहर नन्दिग्राममें वास करते हैं और शिर पर जटा रखाये, बल्कल धारण किये केवल पृथ्वी पर शयन करते हैं एवं केवल प्राणधारणके विचारसे गोमूत्रपक्व यवान्नमात्र भोजन करते हैं । यह सुन कर महादयालु रामचन्द्रजीको बड़ा ही सन्ताप हुआ ॥ ३४ ॥ रामचन्द्रके आनेका संदेश पा कर भरतजी उनको लिवा कर लानेके लिये उनकी पादुका शिर पर धर कर पुरवासी, अमात्य एवं पुरोहितगणसहित नन्दिग्रामसे चले । मार्गमें गाने बजानेकी ध्वनि होने लगी, वेदपाठी ब्राह्मणगण ऊँचे स्वरसे वेदमंत्र पढ़ते हुए चले । सोनेके अक्षरोंसे जिनमें मङ्गलमय वचन लिखे हैं ऐसी पताका (झंडे), सुवर्ण जटित–विचित्र ध्वजाओंसे विभूषित–उत्तम घोड़ोंसे युक्त सुवर्णपरिच्छदसम्पन्न रथ, सुवर्णमय कवच धारण किये योद्धाओंकी पंक्तियाँ और बहुतसे पैदल भृत्यगण भरतजीके साथ चले। महात्मा भरत, राजाओंके योग्य छत्र, चँवर और बहुमूल्य अनेक प्रकारके रत्नआदि भेंट करनेके लिये ले कर चले एवं श्रीरामचन्द्रसे भेंट होते ही उन सब राजचिन्होंको अर्पण करके बड़े भाईके पैरों पर गिर कर प्रणाम किया ॥३५॥३६॥३७॥३८॥ प्रेमके आँसुओंकी धारासे भरतजीके नेत्र भर आये एवं हृदय उमड़ आया। उन्होने पहले अंजलि बाँध कर बड़े भाईके आगे उनकी दोनो पादुकाएँ धर दीं, फिर अश्रुपूर्ण नेत्रोंके जलसे भगवान्को भिगोते हुए बहुत देर तक दोनो बाहुओंसे उनको हृदयमें लगाये रहे ॥ ३९ ॥ तदनन्तर रामचन्द्र, लक्ष्मण व

सीताने पूजनीय ब्राह्मण और कुलके बड़े बूढ़ोंको प्रणाम किया। फिर प्रजागणने राम, सीता और लक्ष्मणको प्रणाम किया ॥ ४० ॥ उत्तर-कोशल-देशके वासी लोग बहुत दिनोंके पीछे अपने स्वामीको आये हुए देख कर परम आनन्दित हुए एवं अपने २ उत्तरीय वस्त्रोंको हिलाते हुए नृत्य करके फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४१ ॥ भरतजीने रामचन्द्रकी चरणपादुकाएँ, विभीषण और सुग्रीवने उत्तम चामर, पवनतनय हनुमान्‌ने श्वेत छत्र एवं सीताने तीर्थोंके जलसे पूर्ण कमण्डलु धारण किया ॥ ४२ ॥ हे नरवर! धनुष और तूणीरको शत्रुघ्न, खड्गको अङ्गद, सुवर्णकी ढालको ऋक्षराज जाम्बवान् लेकर श्रीरामचन्द्र महाराजके साथ पीछे पीछे चले ॥ ४३ ॥ नारीगण और बंदीजन मिल कर रामचन्द्रकी प्रशंसा व स्तुति करने लगे। उस समय पुष्पक विमान पर सवार रामचन्द्रजी ग्रहगणयुक्त पूर्ण चन्द्रके समान शोभायमान हुए ॥ ४४ ॥ तदनन्तर भाइयों द्वारा अभिनन्दित श्रीरामचन्द्रने उत्सवपूर्ण राजपुरीमें प्रवेश किया। राजभवनमें प्रवेश करके अपनेसे छोटे और वयस्य लोगों द्वारा पूजित व अभिनन्दित वन्दित रामचन्द्रने कुशलप्रश्न, आलिंगन आदिसे उनका यथोचित सत्कार करके माता, विमाता, गुरुजन व गुरुपत्नियोंका पूजन व प्रणाम किया तथा उन्होने भी श्रीरामचन्द्रको शुभ आशीर्व्वाद दिये। ऐसे ही लक्ष्मणजी व वैदेहीने भी सबसे यथोचित व्यवहार किया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ प्राण पाने पर जैसे शरीर उठ खड़ा होता है वैसे ही अपने २ पुत्रोंको आये हुए देख कर उनकी माताएँ सहसा उठ खड़ी हुई एवं अपने २ पुत्रोंको गोदमें ले कर आनन्दके आँसुओंसे उनको स्नान कराती हुई अपने हृदयका शोक सन्ताप मिटाने लगीं ॥ ४७ ॥ तदनन्तर वशिष्ठ मुनिने रामचन्द्रकी जटा उतरवा कर कुलवृद्ध लोगोंके साथ मिलकर चारो सागर आदिके पवित्र जलोंसे इन्द्रके समान उनका राज्याभिषेक किया ॥ ४८ ॥ श्रीरामचन्द्रने इस प्रकार शिरसे स्नान करके सुन्दर वस्त्र धारण किये फिर पुष्पमाला और उत्तम अलंकार पहन कर उत्तम२ वस्त्र और आभूषणोंसे आभूषित भाई व जनकनन्दिनीसहित विराजमान हुए ॥ ४९ ॥ प्रथम भरतजीने श्रीरामचन्द्रको प्रणाम करके प्रसन्न किया और उन्होने राज्यासन ग्रहण किया। श्रीरामचन्द्र राजा होने पर अपने धर्म्ममें निरत एवं वर्ण व आश्रमोंके गुणोंसे युक्त प्रजापुंजका पिताके समान पालन करने लगे। प्रजागण भी उनको पिताके समान मान कर उन पर हृदयसे भक्ति करने लगे। सब प्राणियोंको सुख देनेवाले राजधर्म्ममें भली भाँति निपुण श्रीरामचन्द्रके राजा होने पर त्रेतायुगमें भी सत्ययुगके समान उत्तम समय हो गया। हे भरतश्रेष्ठ! नदी, नद, समुद्र, पर्वत, वन, द्वीप, और खंड—सभी प्रजाको चितचाही वस्तु दे कर प्रसन्न करने लगे। भगवान् रामचन्द्रके राज्यमें आधि, व्याधि, बुढ़ापा, शोक, दुःख,

भय, ग्लानि अथवा क्लान्ति किसी प्रकारका कष्ट नहीं रहा । यहाँतक कि विना इच्छा किये या अकालमें ही किसीकी मृत्यु भी नहीं हुई। श्रीरामचन्द्रजी— पवित्र और एकपत्नीव्रतधारी हो कर, राजर्षि लोग जिसका आचरण करते थे उस गृहस्थधर्मका, सबको उपदेश देनेके लिये, आचरण करने लगे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

प्रेम्णाऽनुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती ॥
धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीताहरन्मनः ॥ ५६ ॥

भावको जाननेवाली सीतादेवी, विनयावनत भाव, प्रणय, अनुसरण, सुशीलता, भय एवं लज्जाद्वारा अपने स्वामीको सदैव प्रसन्न रखती थीं ॥ ५६ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय ।

श्रीरामचन्द्रका यज्ञादि करना ।

श्रीशुक उवाच—भगवानात्मनात्मानं राम उत्तमकल्पकैः ।
सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान्मखैः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा । हे राजन्! तदनन्तर सर्वदेवमय परमदेव भगवान् रामचन्द्रने आचार्यकी बताई विधिसे याग यज्ञों द्वारा अपना ही पूजन किया ॥ १ ॥ यज्ञके अन्तमें 'होता'को पूर्वदिशा, 'ब्रह्मा'को दक्षिण-दिशा, 'अध्वर्य्यु'को पश्चिमदिशा एवम् 'उद्गाता'को उत्तरदिशा दक्षिणामें दी ॥ २ ॥ इन दिशाओंके बीचमें जो पृथ्वी शेप रही उसे ब्राह्मणको ही देने योग्य समझ कर निःस्पृह रामचन्द्रने आचार्य्यको देदिया ॥ ३ ॥ इस प्रकार सर्वस्व दान करनेसे श्रीरामचन्द्र और जानकीके पास केवल पहननेके वस्त्र और आभूपण रहगये । उस समय ब्रह्मण्यदेव श्रीरामचन्द्रका ऐसा वात्सल्यभाव और उदारता देख कर ब्राह्मणगण बहुत ही सन्तुष्ट हुए और दी हुई सम्पूर्ण पृथ्वी फिर श्रीरामचन्द्रको लौटा कर यों कहने लगे कि "हे भगवन्! हे भुवनेश्वर! जब आपने हमारे हृदयमें प्रवेश करके अपने तेजसे हमारे हृदयके अज्ञान-तिमिरको हरलिया तब आपने हमको क्या नहीं दिया? हम सब कुछ पा गये ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे राम! आप ब्रह्मण्यदेव हैं, आपकी सर्वज्ञ बुद्धि किसी भी विपयमें कुण्ठित नहीं है, आपको प्रणाम है। आप यशस्वी महात्मा जनोंमें

अग्रगण्य हैं । मुनिगण भी अपने २ चित्तमें आपके चरणोंका ध्यान करते हैं" ॥७॥ तदनन्तर किसी समय रामचन्द्रजीने 'मेरे प्रति पुरवासी लोगोंके क्या विचार हैं' यह जाननेके विचारसे रात्रिको छिप कर अलक्षितभावसे पुरीमें भ्रमण करते २ एक स्थान पर सुना कि एक मनुष्य अपनी स्त्रीसे कह रहा है कि मैं तेरा भरण पोषण न करूँगा, क्योंकि तू दुष्टा असती (व्यभिचारिणी) है। रात्रिको परपुरुषके घर रही थी। रामचन्द्र स्त्रीके लोभी हैं, इसी लिये उन्होने सीताको ग्रहण कर लिया, मैं राम नहीं हूँ, मैं तुझे त्याग दूँगा ॥ ८ ॥ ९ ॥ यह सुनते ही श्रीरामचन्द्रने, अवाध्य अज्ञानी ओछे नीच लोगोंके अपवादसे कीर्त्तिमें कलंक न आ जाय, इस लिये सीताजीको त्याग दिया। पतिपरित्यक्ता सीतादेवी उस समय गर्भवती होने पर भी वाल्मीकि मुनिके आश्रममें छोड़ दी गईं और वहीं रहने लगीं। समय पर सीताजीके गर्भसे दो यमज पुत्र उत्पन्न हुए और उनका नाम 'कुश' व 'लव' रक्खा गया । वाल्मीकिजीने स्वयं उनके जातकर्म्म आदि संस्कार किये ॥ १० ॥ ११ ॥ इधर अयोध्यामें लक्ष्मणजीके अङ्गद और चित्रकेतु नाम दो पुत्र हुए। ऐसे ही भरतके तक्ष और पुष्कल एवं शत्रुघ्नके सुवाहु और श्रुतसेन नाम दो २ पुत्र उत्पन्न हुए। भरतजीने दिग्विजय-की यात्रामें महावली कोटि २ गन्धर्वोंको मार कर उनका सब धन ला कर महाराज रामचन्द्रकी सेवामें अर्पण कर दिया। शत्रुघ्नने भी मधुके पुत्र लवण नाम राक्षसको मार कर मधुवनमें मथुरापुरी बसाई ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ पति द्वारा वनमें छोड़ दी गई सीताजीने जिन दो पुत्रोंको उत्पन्न किया उनको कुछ दिन बाद वाल्मीकिजीके हाथमें सौंप कर, आप पतिके सामने ही उनके चरणोंका स्मरण करते २ भूविवरमें प्रवेश कर गईं ॥ १५ ॥ इस घटनासे उत्पन्न शोकको अपनी वुद्धिके बलसे रोकनेके लिये रामचन्द्रने वहुत चेष्टा की, तथापि प्रियाके प्रशंसनीय गुणोंके स्मरणसे स्वयं ईश्वर हो कर भी सम्पूर्णरूपसे शोक त्याग न कर सके ॥ १६ ॥ स्त्रीपुरुषकी आसक्ति (सम्बंध) सभी जगह ऐसी ही भयप्रद देख पड़ती है। जब कि ईश्वरोंके लिये भी स्त्रीवन्धन ऐसा भयावह है तव जिनका चित्त गृहमें ही लिप्त है उन विषयी पुरुषोंके लिये तो कुछ कहना ही नहीं है ॥१७॥ उसके बाद प्रभु रामचन्द्रने ब्रह्मचर्य्य धारण करके तेरह हजार वर्ष तक अखण्डित अग्निहोत्र किया। तदनन्तर दण्डकारण्यके काँटे कंकड़ आदि जिनमें गड़े थे उन कल्याणकारी चरणोंको अपने भक्तोंके हृदयोंमें स्थापित कर आप परमधामको प्राप्त हुए। राजन्! यद्यपि समुद्रमें सेतुबंधन और विचित्रशक्तिशाली अस्त्रशस्त्रोंसे राक्षसवध इत्यादि रामचन्द्रके कार्य्योंको कविगण अद्भुत कह कर वर्णन कर गये हैं तथापि वे बातें श्रीरामचन्द्रका यश या स्तुतिवाद नहीं हैं। क्योंकि जिनसे अधिक या जिनके बराबर प्रभावशाली और शक्तिशाली कोई भी नहीं है उनको शत्रुवध

करनेमें क्या कभी वानरोंकी सहायताकी आवश्यकता हो सक्ती है? भगवान्‌ने देवगणकी प्रार्थनासे उनका कार्य्य सिद्ध करनेके लिये यह मनुष्यावतार लिया था ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ जिनकी पापनाशिनी और दिग्गजोंसे आवरणवस्त्र की उपमाको प्राप्त दिगन्तव्यापिनी निर्म्मल कीर्त्तिका कीर्त्तन अब भी ऋषिगणके द्वारा बड़े २ राजोंकी सभाओंमें होता हैं एवं देवगण और राजा लोग अपने किरीट मुकुटोंसे जिनके चरणोंकी सेवा करते हैं उन्ही रघुपतिके हम शरणागत हैं ॥ २१॥ जिन कोशलदेशवासियोंने रामचन्द्रका स्पर्श अथवा दर्शन किया या उनके अनुगत हुए वे उस स्थानको गये जहाँ बड़े २ सिद्ध और योगी जाते हैं ॥ २२ ॥ हे राजन्! जो पुरुष इस रामचन्द्रके चरित्रको सुनेगा वह क्रमशः शान्त हो कर कर्म्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा ॥ २३ ॥ **राजा परीक्षित् बोले** । भगवन्! भगवान् रामचन्द्रके स्वयं कैसे आचरण थे? और अपने ही अंश तीनो भाइयोंसे उनका कैसा व्यवहार था? एवं साक्षात् परमेश्वरस्वरूप श्रीरामचन्द्रके प्रति वे भाई, प्रजापुञ्ज और सब पुरवासी कैसा व्यवहार करते थे? ॥ २४ ॥ **श्रीशुकदेवजी बोले** । त्रिभुवनके स्वामी रामचन्द्रने राज्यसिंहासन पर बैठनेके बाद भाइयोंको दिग्विजय करनेका आदेश दिया एवं जातिवालोंसे आत्मीयता प्रकट करते हुए, सहचरगणसहित स्वयं नगरीका रक्षणावेक्षण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २५ ॥ रामचन्द्रके राज्याभिषेकके समयसे सदैव अयोध्यापुरीके मार्ग निरन्तर सुगंधित जल और हाथियोंके मदजलसे सिंचे रहते थे; जान पड़ता था अपने यथार्थ स्वामीको प्राप्त हो कर यह पृथ्वी समृद्धिपूर्णभावसे मत्त हो रही है—वहाँके निवासी ऐसे सम्पत्तिशाली थे ॥ २६ ॥ वहाँके प्रासाद, गोपुर, सभा, चैत्यभवन, देवायतन आदि स्थानोंमें धरे हुए जलपूर्ण सुवर्ण-कलश शोभायमान रहते थे, पताकाएँ फहराया करती थीं ॥ २७ ॥ स्थान २ पर सुपारीके गुच्छे, केलेके गुच्छे, चित्रविचित्र वस्त्र, शीशा (दर्पण), फूलमाला आदिसे सजे हुए मङ्गलमय कृत्रिम तोरणों (बनावटी द्वारों) की रचना देख पड़ती थी ॥ २८ ॥ जहाँ २ श्रीरामचन्द्रजी जाते थे वहाँ २ पुरवासी लोग अनेक प्रकारकी भेंट लेकर उपस्थित होते और कहते थे कि "हे देव! पहले आपने ही वाराह अवतार लेकर इस पृथ्वीका उद्धार किया है; इसका पालन कीजिये" ॥ २९ ॥ राज्यमें रहनेवाले प्रजागण अपने स्वामीके आनेकी खबर पाते ही उनके देखनेके लिये स्त्री पुरुष सब महलों पर चढ़ कर एकटक कमललोचन रघुवरको निहारा करते थे एवं उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करते थे। रामचन्द्रके पूर्वपुरुष महाराजोंने प्रथम जिस राजभवनका भोग किया था उसमें श्रीरामचन्द्रने प्रवेश किया। वह अनन्त अखिल रत्नादिके कोषोंसे परिपूर्ण एवं बहुतसे बहुमूल्य सामानसे सजा हुआ था। उस भवनकी देहली विद्रुमकी, खंभे वैदूर्य्यके, अत्यन्त स्वच्छ

फर्श मरकतमणिका एवं दीवारें बिल्लौरकी थीं । वह विचित्र भवन, विचित्रपुष्प-माला, उत्तम पट्टिका (पर्दे और खंभे आदिमें लपेटनेकी पट्टियाँ), वस्त्र, रत्नोंके प्रकाश (चमक), यथास्थान पर शोभायमान प्रकाशपूर्ण मोतियोंके गुच्छे और कमनीय भोगसामग्री एवं धूप दीपके सुगंधसे अलंकृत था । वहाँ पुष्पभूषिता, अलंकारोंको भी अपने रूपसे अलंकृत करनेवाली देवीतुल्य स्त्रियाँ और देवतुल्य पुरुष वास करते थे । आत्माराम (परमहंस) लोगोंमें अग्रगण्य भगवान् रामचन्द्र उसी भवनमें अपनी प्रणयिनी प्रियाके साथ क्रीड़ा करते थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

बुभुजे च यथाकालं कामान्धर्ममपीडयन् ॥
वर्षपूगान्बहून्नृणामभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः ॥ ३६ ॥

उन्होने अपने धर्म्मका पालन करते हुए कई हजार वर्षों तक अभिलषित भोगोंका उपभोग किया । सब प्रजागण निरन्तर उनके चरणोंका ध्यान किया करते थे ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय ।

कुशके वंशका विवरण ।

श्रीशुक उवाच—कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभः ॥
पुण्डरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वाभवत्ततः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज! श्रीरामके पुत्र कुशके पुत्रका नाम अतिथि हुआ । अतिथिके पुत्र निषध हुए । निषधके नभ, नभके पुण्डरीक, उनके क्षेमधन्वा, उनके देवानीक, उनके अनीह, अनीहके पारियात्र, उनके बल-स्थल, उनके सूर्य्यका अंशावतार वज्रनाभ हुए ॥ १ ॥ २ ॥ वज्रनाभके पुत्र खगण, उनके विधृति, और उनके हिरण्यनाभ हुए; हिरण्यनाभ योगाचार्य्य जैमिनि मुनिके शिष्य थे। महर्षि याज्ञवल्क्यने इन्ही महोदयके निकट उस अध्यात्मविद्याका अभ्यास किया था जिससे सर्वोत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त होती है और हृदयकी ग्रन्थि अर्थात् अज्ञानजनित भ्रम दूर हो जाता है ॥ ३ ॥ ४ ॥ हिरण्यनाभके पुत्र पुष्य, पुष्यके पुत्र ध्रुवसन्धि, उनके सुदर्शन, उनके अग्निवर्ण, उनके शीघ्र और उनके मरु हुए । मरु, योगासिद्ध हो कर कलापग्राममें इस समय अवस्थित हैं । वह कलियुगके अन्तमें सूर्य्य-वंशका लोप होते देख, पुत्र उत्पन्न करके उसे चलावेंगे । मरुके पुत्र प्रसुश्रुत,

उनके संधि, संधिके पुत्र अमर्षण, उनके महस्वान्, उनके विश्वबाहु, उनके प्रसेनजित्, उनके तक्षक और उनके बृहद्बल हुए । बृहद्बल, महाभारतके युद्धमें तुम्हारे पिता अभिमन्युके हाथों मारे गये ॥५॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ इक्ष्वाकुवंशमें इतने तो नरपति हो चुके हैं और अब जो आगे होंगे उनके नाम सुनो। बृहद्बलके पुत्रका नाम बृहद्रण है। बृहद्रणके बड़ेही कर्म्मनिष्ठ वत्सवृद्ध होंगे । वत्सवृद्धके प्रतिव्योम, उनके भानु और भानुके सेनापति दिवाक होंगे ॥ ९ ॥ १० ॥ दिवाकके पुत्र सहदेव, उनके बृहदश्व, उनके भानुमान्, उनके प्रतीकाश्व, उनके सुप्रतीक, उनके मरुदेव, उनके सुनक्षत्र, उनके पुष्कर, उनके अन्तरिक्ष, उनके सुतपा, उनके अमित्रजित्, उनके बृहद्राज और उनके वर्हि होंगे । वर्हिके कृतञ्जय, उनके रणञ्जय और उनके सञ्जय होंगे । सञ्जयके शाक्य, उनके शुद्धोद, उनके लांगल, उनके प्रसेनजित् उनके क्षुद्रक, उनके सुमित्र होंगे। यह बृहद्बलका भविष्यवंश है ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति ॥
यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ १६ ॥

कलियुगमें सुमित्रसे इक्ष्वाकुवंशका अन्त हो जायगा ॥ १६ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय ।

इक्ष्वाकुपुत्र निमिके वंशका विवरण ।

श्रीशुक उवाच—निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् ॥
आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग्वृतोऽस्मि भोः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । इक्ष्वाकुके पुत्र निमि हुए । निमिने यज्ञका आरम्भ करके ऋत्विजका वरण वशिष्ठजीको दिया । मुनिने कहा राजन्! इन्द्रदेव पहले ही मुझे अपने यज्ञमें ऋत्विजका वरण दे चुके हैं; इस लिये बिना इन्द्रका यज्ञ समाप्त हुए मैं तुम्हारे यज्ञका वरण अंगीकार नहीं करसक्ता । जबतक इन्द्रका यज्ञ समाप्त न हो तब तक प्रतीक्षा करिये । यह सुन कर राजा निमि चुप रह गये और वशिष्ठजीभी इन्द्रके यहाँ गये ॥ १ ॥ २ ॥ जितेन्द्रिय निमिने 'इस जीवनका कोई विश्वास नहीं है' यह समझ कर गुरु वशिष्ठके आनेके पहले ही अन्य ऋत्विजके द्वारा यज्ञका आरम्भ कर दिया ॥ ३ ॥ उधर वशिष्ठजी इन्द्रके यज्ञको समाप्त करके आये और शिष्यके अन्याय आचरणको देख कर

यह शाप दिया कि पण्डिताभिमानी निमिका शरीर शीघ्रही छूट जाय ॥ ४ ॥ कुलगुरुका यह अधर्म्माचरण देख कर निमिने भी उनको शाप दिया कि आपने लोभके वश हो कर धर्म्मकी ओर ध्यान नहीं किया; अतएव आपका भी शरीर छूट जाय ॥ ५ ॥ इतना कहते २ अध्यात्मज्ञानी निमिका शरीर छूट गया और साथ ही वशिष्ठ ऋषिका भी शरीर छूट गया। वशिष्टजीने मित्रावरुणके वीर्य्य-द्वारा उर्व्वशी अप्सराके गर्भसे फिर जन्म लिया ॥ ६ ॥ इधर निमिके ऋत्विज ऋषियोंने गंधवस्तुओंमें निमिका शरीर रख कर उस यज्ञको समाप्त किया। एवं उस यज्ञमें आये हुए देवगणसे कहा कि 'आप लोग यदि सन्तुष्ट और समर्थ हैं तो यह निमिका शरीर सजीव हो उठे'। देवतोंने 'तथास्तु' कहा; किन्तु निमिके जीवात्माने कहा कि "अब मैं देहबन्धन नहीं चाहता ॥ ७ ॥ ८ ॥ हरिसेवक मुनि लोग शरीरवियोगके भयसे कातर हो कर कदापि देहका सम्बन्ध नहीं चाहते, केवल मुक्तिके लिये हरिके चरणारविन्दोंका भजन करते रहते हैं ॥ ९ ॥ मनुष्यदेह, दुःख, शोक और भयका आधारस्थान है, मैं इसको फिर ग्रहण करना नहीं चाहता; क्योंकि इस शरीरको वैसेही सर्वत्र मृत्युका भय है जैसे जलमें रहनेसे मछलियोंको" ॥ १० ॥ यह सुन कर देवगणने कहा—"हे विदेह! अच्छा तो तुम अपनी इच्छाके अनुसार बिना देहके सब देहधारियोंके नेत्रोंमें वास करो"। पलकोंके खुलने और मुँदनेसे अध्यात्मसंस्थित निमि लक्षित होते हैं ॥ ११ ॥ परन्तु उसके बाद महर्षियोंने देखा कि विना राजाके प्रजाको सर्वदा भयकी संभावना है। अतएव सबने राजवंश चलानेकी कामनासे निमिके शरीरको काष्ठ द्वारा मथा; तब निमिके मृत शरीरसे एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥१२॥ उसके इस प्रकार उत्पन्न होनेसे उसका नाम 'जनक' पड़ा। पिताकी विदेह अवस्थामें उत्पन्न होनेसे 'वैदेह' और मथनेसे उत्पन्न होनेके कारण 'मिथिल' भी उनको कहतेहैं। उन्होने मिथिलापुरीको बसाया ॥ १३ ॥ उन जनकके पुत्र उदावसु, उनके नन्दिवर्द्धन, उनके सुकेतु और उनके देवरात हुए ॥ १४ ॥ देवरातके पुत्र बृहद्रथ, उनके महावीर्य्य, उनके सुधृति, उनके धृष्टकेतु, उनके हर्य्यश्व, उनके मरु, उनके प्रतीप, उनके कृतरथ, उनके देवमीढ़, उनके विश्रुत, उनके महाधृति, उनके कृतिरात, उनके महारोमा, उनके स्वर्णरोमा, उनके ह्रस्वरोमा और उनके सीरध्वज हुए। सीरध्वज नाम जनक यज्ञके लिये सुवर्णके हलसे पृथ्वी-को शुद्ध कर रहे थे, उस समय सीर अर्थात् हलके अग्रभागसे सीताका जन्म हुआ अर्थात् सीताजी प्रकट हुईं। इसप्रकार 'सीर' उनकी कीर्तिका सूचक हुआ—इसीसे उनका नाम सीरध्वज पड़ा ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ सीरध्वजके पुत्र कुश-ध्वज, उनके धर्म्मध्वज और उनके कृतध्वज एवं मितध्वज नाम दो पुत्र हुए ॥१९॥ कृतध्वजके केशिध्वज और मितध्वजके खाण्डिक्य हुए। केशिध्वज आत्मविद्यामें

निपुण थे ॥ २० ॥ कर्म्मकाण्डका तत्त्व जाननेवाले खाण्डिक्य केशिध्वजके भयसे भाग गये। केशिध्वजके पुत्र भानुमान्, उनके शतद्युम्न, उनके शुचि और शुचिके सनद्वाज हुए। सनद्वाजके पुत्र ऊर्जकेतु, उनके पुरजित्, उनके अरिष्टनेमि, उनके शतायु, उनके सुपार्श्व, उनके चित्ररथ, उनके क्षेमाधि, उनके समरथ, उनके सत्यरथ, उनके अग्निका अवतार उपगुप्त हुए ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ उपगुप्तके पुत्र वस्वनन्त, उनके युयुधान, उनके सुभाषण, उनके श्रुत, उनके जय, उनके विजय, उनके ऋत, उनके शुनक, उनके वीतहव्य, उनके धृति, उनके बहुलाश्व, उनके कृति हुए। कृति महात्मा और जितेन्द्रिय थे ॥ २५ ॥ २६ ॥

एते वै मैथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः ॥
योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥ २७ ॥

हे राजन्! ये सब मिथिलाके राजालोग आत्मविद्यामें भलीभाँति निपुण और योगेश्वर लोगोंके प्रसादसे घरमें रहकर भी सुख दुःख आदि द्वन्द्वधर्म्मोंसे मुक्त हुए ॥ २७ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दश अध्याय।

सोमवंशका विवरण।

श्रीशुक उवाच—**अथातः श्रूयतां राजन्वंशः सोमस्य पावनः ॥**
यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! अब परमपावन सोमवंशका वर्णन सुनिये; जिसमें पवित्र कीर्तिवाले ऐल आदि राजोंके चरित्रका वर्णन किया जायगा ॥ १ ॥ हे नरवर! सहस्र शिरवाले परम पुरुष नारायणके नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। ब्रह्माके पुत्र अत्रि हुए। अत्रिजी गुणोंमें पिताके समान थे ॥ २ ॥ अत्रिके नेत्रोंसे अमृतमय सोम(चन्द्रमा)का जन्म हुआ। भगवान् ब्रह्माने सोमको सब ब्राह्मण, औषध और तारागणका राजा बनाया ॥ ३ ॥ सोमने त्रिभुवनको जीतकर राजसूय नाम महायज्ञ किया। बलगर्वित चन्द्रने उस यज्ञमें आई हुई त्रिभुवनसुंदरी गुरुपत्नी ताराको बलपूर्वक घरमें रख लिया ॥ ४ ॥ देवगुरु बृहस्पतिने अनेक बार अपनी स्त्री लौटा देनेके लिये चन्द्रमाको प्रार्थनापूर्वक समझाया, किन्तु मदमत्त चन्द्रने एक भी न मानी और गुरुको उनकी स्त्री लौटा कर न दी, इस लिये देवता और दानवोंमें बड़ा भारी संग्राम हुआ ॥ ५ ॥ बृहस्पति और

शुक्राचार्यमें परस्पर शत्रुता चली आती है, इसी लिये शुक्रने अपने शिष्य दैत्यों-सहित चन्द्रमाका पक्ष लिया । इधर भूतगणसहित भगवान् शंकरने अपने गुरुके पुत्र बृहस्पतिका पक्ष लिया ॥ ६ ॥ देवगणसहित इन्द्र भी अपने गुरुकी ओरसे युद्धमें सम्मिलित हुए । उस ताराके लिये हुए युद्धमें अनेकानेक देवता और दैत्योंका विनाश हुआ ॥ ७ ॥ कुछ दिन युद्ध होनेके बाद ब्रह्मपुत्र अंगिरा (बृहस्पतिके पिता)ने ब्रह्माजीसे जा कर यह सब वृत्तान्त कहा । ब्रह्माजीने आकर चन्द्रमाको बहुत डाँटा; तब सोमने ताराको देदिया । बृहस्पतिने अपनी स्त्रीको गर्भवती जान कर उससे कहा कि "अरी दुष्टबुद्धिवाली तारा ! तूने मेरे क्षेत्रमें अन्य पुरुषका बीज धारण किया है! शीघ्र उसे त्याग कर– त्याग कर । हे असती ! तू स्त्रीजाति है और मैं भी सन्तानार्थी हूँ; इसीसे तुझको शाप देकर भस्म नहीं करूँगा" ॥ ८ ॥ ९ ॥ उसी समय ताराने लज्जित हो कर उस गर्भसे एक सुवर्णके समान कान्तिवाला बालक उत्पन्न किया । उस परमसुन्दर कुमार पर बृहस्पति और सोम, दोनोका मन चलायमान हुआ–दोनोने ही उसको लेना चाहा ॥ १० ॥ "हमारा यह बालक है; तुम्हारा नहीं है"–यों कह कर दोनो जने उस बालकके लिये विवाद करने लगे । तब सब ऋषि और देवतोंने तारासे पूछा कि यह बालक किसका है? किन्तु ताराने लज्जाके कारण कुछ उत्तर न दिया ॥ ११ ॥ तब लोकलज्जासे कुपित उस कुमारने स्वयं मातासे कहा–हे असत् आचरण करने-वाली ! वृथा लज्जा करनेसे क्या लाभ है? उत्तर क्यों नहीं देती? शीघ्र मुझसे अपना दोष बतला । तदनन्तर ब्रह्माजीने एकान्तमें ले जा कर सान्त्वनाके साथ तारासे पूछा । तब ताराने धीरेसे कहा कि यह पुत्र चन्द्रमाका है । उसी समय उस कुमारको चन्द्रमा ले गये ॥ १२ ॥ १३ ॥ राजन् ! लोकपति विधाताने उस बालककी बहुत ही गंभीर बुद्धि देख कर उसका नाम 'बुध' रक्खा । नक्षत्रपति चन्द्रमा उस कुमारको पा कर बहुत आनन्दित हुए । हम पहले ही कह आये हैं कि बुधके वीर्यसे इलाके गर्भमें सुप्रसिद्ध पुरूरवाका जन्म हुआ । इन्द्रकी सभामें देवर्षि नारदके मुखसे पुरूरवाके रूप, गुण, उदारता, सुशीलता, धन और पराक्रमका वृत्तान्त सुन कर विख्यात अप्सरा उर्वशी मोहित होगई और काम-बाणसे पीड़ित हो कर पुरूरवाके पास स्वयं आई । मित्रावरुणके शापसे उर्वशी मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हुई थी; सो जब पुरुषश्रेष्ठ पुरूरवाको कामके समान कमनीय सुन कर अधीर-भावसे उनके पास स्वयं आकर उपस्थित हुई तब उसे देख कर पुरूरवाके नेत्रकमल भी आनन्दके उल्लाससे प्रफुल्लित हो उठे । पुलकित-शरीर राजाने सुमधुर-स्वरसे कहा कि हे सुन्दरी ! आनेमें कोई क्लेश तो नहीं हुआ? बैठो; कहो, मैं क्या तुम्हारा सम्मान करूँ? मेरे साथ चिरकाल तक सुखसे विहार करो ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥१९॥ उर्वशीने कहा–हे नरवर !

तुम पर किस सुन्दरीका मन न मोहित हो जायगा ? नेत्र न लग जायँगे ? तुम्हारे मनोरम वक्षःस्थलको पाकर विहारकी इच्छा इतनी प्रबल होती है कि किसीका मन उससे हट नहीं सक्ता ॥ २० ॥ हे मानद ! ये दोनो मेष (भेंड़े) तुम्हारे पास मेरी धरोहरकी भाँति रहेंगे और मैं तुम्हारे साथ विहार करूँगी; क्योंकि जो पुरुष सुरूप और प्रशंसनीय होता है उसी पर स्त्रियोंकी स्वाभाविक रति होती है ॥ २१ ॥ किन्तु हे वीर ! मैं केवल नवीन घृतका ही आहार करूँगी और रतिकालके सिवा कभी तुमको नग्न न देखूँगी । महामना पुरूरवा उसके रूप पर मोहित होगये थे, इस लिये जो२ उर्वशीने कहा, सो सब उन्होने स्वीकार कर लिया ॥२२॥ और कहने लगे कि सुन्दरी ! तुम्हारे अद्भुत रूप व हावभावको देखकर मनुष्यमात्र मोहित होते होंगे । तुम स्वर्गवासिनी देवी स्वयं आकर उपस्थित हुई हो; भला कौन पुरुष तुम्हारी सेवा न करेगा ? ॥ २३ ॥ पुरुषश्रेष्ठ पुरूरवा, उर्वशीके साथ, देवगण जहाँ क्रीड़ा करते हैं उन चैत्ररथ आदि देववनोंमें विहार करने लगे और उर्वशी भी भली भाँति उनके मनको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा करने लगी ॥ २४ ॥ उर्वशीके अंगोंमें पद्मपरागकी ऐसी उत्तम सुगंध निकला करती थी । राजा पुरूरवाने उसके साथ विहार करते हुए उसके मुखके सुवाससे आनन्द पाकर बहुत दिन आमोद-प्रमोदमें बिताये ॥ २५ ॥ इधर देवराज इन्द्रने उर्वशीको न देख पाकर 'मेरी सभा विना उर्वशीके शोभा नहीं पाती' यह कह कर उर्वशीके लानेके लिये गन्धर्वोंको आज्ञा दी ॥ २६ ॥ आधीरातको गाढ़ अन्धकार जगत्‌में फैला हुआ था; उस समय गंधर्वलोग मनुष्यलोकमें आये और पुरूरवाके पास जो दो भेंड़ें उर्वशीकी धरोहर रक्खी थीं उन्हे अलक्षितभावसे हर ले गये ॥२७॥ उन दोनो भेंड़ोंको उर्वशी पुत्रके समान प्यार करती थी । जब गंधर्वगण ले चले तब उन्होने आर्त्तनाद किया । वह आर्त्तनाद सुन कर विलाप करते हुए उर्वशीने कहा कि हाय ! मैं इस निन्दित स्वामीके हाथमें पड़ कर मारी गई । यह नपुंसक अपनेको वीर कह कर अभिमान करता है । इस पर विश्वास करके मैं तो नष्ट हो गई, मेरे पुत्रोंको चोर चुरा ले गये ! अहो, यह राजा दिनको तो पुरुष है पर रातको भयके मारे स्त्रियोंके समान चुपके पड़ा सो रहा है ॥ २८ ॥ २९ ॥ ये उर्वशीके वचन वीर पुरूरवाके हृदयमें वाणके समान बिंध गये और वह हाथी जैसे अंकुशके प्रहारसे उत्तेजित हो उठता है वैसे बिना वस्त्रके नंगे ही क्रोधाकुल हो कर खड्ग हाथमें लिये रातको भेंड़ लेजानेवाले गंधर्वोंके पीछे दौड़े ॥ ३० ॥ यह देख कर गंधर्वोंने भेंड़ोंको वहीं छोड़ कर मायासे वारम्वार विजलीका प्रकाश किया । राजा भेंड़ लेकर लौटे, उस अवसरमें बिजलीकी चमकसे राजाको नग्न देख कर, प्रतिज्ञाभंग होनेके कारण, उर्वशी अपने लोकको चली गई ॥ ३१ ॥ राजा पुरूरवा भी लौटने पर शय्यामें अपनी प्रियाको न देख कर

बहुत ही उदास हुए। उनका चित्त उर्वशीमें ही धरा हुआ था। इस लिये उसके वियोगसे कातर और शोकाकुल राजा पुरूरवा उन्मत्तोंकी भाँति उसकी खोज करते हुए पृथ्वीमण्डलमें भ्रमण करने लगे ॥ ३२ ॥ कुछ दिन बाद सरस्वतीके तट पर कुरुक्षेत्रमें राजाने अपनी पाँच सखियों सहित स्नान कर रही उस उर्वशीको देखा। तब प्रसन्न हो कर उन्होने कहा कि अहो प्रिये! ठहरो ठहरो; ओ निठुर हृदयवाली सुन्दरी! मुझे विना सुखी किये योंही छोड़ कर चले जाना तुमको उचित नहीं है। आओ, एकत्र बैठ कर कुछ बातें तो करलें ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे देवी! तुम्हारे मिलनेकी आशा मेरे इस सुन्दर शरीरको यहाँ तक खींच लाई है। यदि तुम इसे अंगीकार नहीं करतीं तो यह शरीर यहीं गिर कर गिद्ध और भेंड़ियोंका भोजन बन जायगा ॥ ३५ ॥ उर्वशीने कहा—राजन्! मरो नहीं। तुम पुरुष हो, धैर्य धारण करो; ये सब भेंड़िये आदि हिंस्र जन्तु मृततुल्य तुम्हारे अचेत शरीरको कहीं खा न जायँ। राजन्! स्त्रियोंकी मित्रता कभी स्थिर नहीं रहती; उनका हृदय भेंड़ियोंके समान स्वार्थ और छलसे पूर्ण रहता है ॥ ३६ ॥ स्त्रियाँ स्वभावतः कठोर होती हैं, उनमें क्षान्तिका लेश नहीं होता; वे क्रूर होती हैं। स्त्रियाँ अपना प्रिय सिद्ध करनेके लिये अधर्म्ममें भी साहस कर उठाती हैं एवं थोड़ी सी बातके लिये भी विश्वस्त पति या भाईकी हत्या कर डालती हैं ॥ ३७ ॥ जो कि हमारे समान पुंश्चली (स्वतन्त्र कुलटा) हैं, मनमाना आचरण करती हैं, उनमें तो स्नेहका लेश भी नहीं होता; वे सदा नये २ पुरुषोंकी खोज किया करती हैं ॥ ३८ ॥ स्वामी! तुम वर्षभरके बाद एक रात्रिभर मेरे साथ सुख-भोग और विहार करोगे एवं मेरे गर्भसे तुम्हारे अन्यान्य पुत्र भी उत्पन्न होंगे ॥ ३९ ॥ हे राजन्! इस वचनसे उसको गर्भवती जान कर राजा पुरूरवा अपने पुरको चले गये। एक वर्ष पूर्ण होने पर पुरूरवा फिर वहीं आकर उपस्थित हुए और उर्वशीको वीर पुत्रकी माता (इस अवसरमें उर्वशीके पुत्र उत्पन्न हो चुका था) देख कर बहुत प्रसन्न हुए एवं रातभर वहाँ उर्वशीके साथ विहार करते रहे ॥ ४० ॥ जाते समय राजाको विरहातुर और दीन देख कर उर्वशीने कहा कि आप गन्धर्वोंसे प्रार्थना करिये; सेवासे संतुष्ट गंधर्वगण आपको अवश्य मुझे दे डालेंगे ॥ ४१ ॥ हे राजन्! उर्वशीके बतानेके अनुसार राजा पुरूरवा गंधर्वोंकी सेवा और स्तुति करने लगे। गंधर्वोंने सन्तुष्ट हो कर राजाको एक अग्निस्थाली दी। कामांध राजा उस अग्निस्थालीको ही उर्वशी जान कर उसे लिये वनमें भ्रमण करने लगे ॥ ४२ ॥ बादको राजाने जाना कि यह उर्वशी नहीं है। तब उस अग्निस्थालीको वनमें रख कर पुरूरवा अपने पुरमें आये और रात्रिको नित्य यही चिन्ता करने लगे कि किस प्रकार वह उर्वशी मिलेगी? । तब त्रेतायुगके आरम्भकालमें स्वर्गलोककी प्राप्ति जिन कर्म्मोंसे होती है उनका बोध करानेवाली वेदत्रयीका प्रादुर्भाव पुरूरवाके

हृदयमें हुआ ॥ ४३ ॥ राजा पुरूरवा जहाँ अग्निस्थाली रख आये थे उस स्थानमें फिर गये; वहाँ जा कर देखा कि जिसके मूलमें अग्निस्थाली रख आये थे उस शमीवृक्षके गर्भमें एक अश्वत्थ(पीपल)का वृक्ष उत्पन्न हुआ है। इसमें अग्नि है–यह जान कर उर्वशीलोक (स्वर्ग) पानेकी कामनासे पुरूरवाने उस अश्वत्थकी दो अरणी (वे लकड़ियाँ, जिनको परस्पर घिस कर यज्ञके लिये अग्नि निकाला जाता है) बनाईं ॥ ४४ ॥ और मंत्रानुसार नीचेकी अरणिको उर्वशीका रूप तथा ऊपरकी अरणिको अपना रूप एवं दोनो अरणियोंके मध्यमें स्थित काष्ठखंडको पुत्ररूप मान कर अरणि-मंथन करने लगे* ॥ ४५ ॥ उस अरणिमंथनसे जातवेदा अग्नि उत्पन्न हुए। वह अग्नि, त्रयीविद्याविहित आधान संस्कारसे 'आहवनीय' आदि तीन रूपोंको प्राप्त हुए। तब राजाने उस त्रिवृत् अग्निको पुत्र कल्पित करके उसीके द्वारा उर्वशीलोककी कामनासे सर्व्ववेदमय सर्व्वेदस्वरूप यज्ञपुरुष भगवान्का यजन किया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे राजन्! पहले सत्ययुगमें सब प्रकारके शब्दोंका बीज प्रणव (ओं) ही एकमात्र वेद था; नारायण ही एकमात्र देवता थे; अग्नि (लौकिक अग्नि) भी एक ही थे एवं मानव-वर्ण (हंसनामक) भी एक ही था ॥ ४८ ॥

पुरूरवस एवासीत्त्रयी त्रेतामुखे नृप ॥
अग्निना प्रजया राजा लोकं गान्धर्वमेयिवान् ॥ ४९ ॥

महाराज! त्रेतायुगके आदिमें पुरूरवासे ही तीन वेद प्रकट हुए। यह राजा अग्निरूप प्रजाद्वारा गन्धर्व्वलोकको प्राप्त हुए ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदश अध्याय ।

परशुरामके हाथों कार्तवीर्य्य अर्जुनका वध ।

श्रीशुक उवाच–**ऐलस्य चोर्वशीगर्भात्षडासन्नात्मजा नृप ॥**
आयुः श्रुतायुः सत्यायू रयोऽथ विजयो जयः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! उर्वशीके गर्भसे पुरूरवाके आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय नाम छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ श्रुतायुके पुत्र वसुमान् हुए। सत्यायुके पुत्र श्रुतञ्जय हुए। रयके एक नाम पुत्र हुए। जयके पुत्र अमित और विजयके पुत्र भीम हुए । भीमके पुत्र काञ्चन और उनके

* तथा च मन्त्रः 'उर्वश्यामुरसि पुरूरवा' इति ।

होत्रक हुए। होत्रकके पुत्र जन्हु हुए, जिन्होने गंगाको एक गण्डूप(चुल्लू) में रख कर पी लिया ॥ २ ॥ ३ ॥ जन्हुराजर्षिके पुत्र पूरु, उनके बलाक, उनके अज, उनके कुश, उनके कुशाम्बु, मूर्त्तज, वसु एवं कुशनाभ नाम चार पुत्र हुए। कुशाम्बुके वीर्यसे राजर्षि गाधिका जन्म हुआ ॥ ४ ॥ गाधिके एक सत्यवती नाम सुन्दरी कन्या हुई। द्विजवर ऋचीकने गाधिके निकट जा कर उनकी कन्यासे बिवाह करनेकी इच्छा प्रकट की। गाधिने वृद्ध ऋषिको कन्याके योग्य पात्र वर न समझ कर कहा कि हे मुनिवर! जिनका रंग चन्द्रमाके तुल्य और एक कान श्याम हो, ऐसे एक हजार घोड़े कन्याका शुल्क (मूल्य) दीजिये; क्योंकि हम कुशिकवंशमें उत्पन्न हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ इस बातको सुनकर ऋचीकजी राजाका अभिप्राय समझ गये और उसी समय वरुणजीके पाससे वैसे ही एक हजार घोड़े लाकर राजाको देदिये एवं सत्यवतीसे विवाह किया। कुछ दिन बाद स्त्री और सास दोनोने ऋचीकजीसे पुत्र होनेके लिये प्रार्थना की। ऋचीकजीने अपनी स्त्रीके लिये ब्रह्ममंत्रसे और सासके लिये क्षात्रमंत्रसे अभिमंत्रित चरु (खीर) पकाया एवं आप तबतक स्नान करनेके लिये गये ॥ ७ ॥ ८ ॥ अपने चरुसे कन्याके चरुको श्रेष्ठ समझ कर ऋचीककी सासने अपनी कन्यासे उसका चरु माँग लिया। सत्यवतीने भी माताको अपना चरु देदिया और आप माताका चरु खागई ॥ ९ ॥ मुनि जब लौट कर आये और यह वृत्तान्त जाना, तब अपनी स्त्रीसे कहा कि तुमने बहुत ही बुरा किया; चरु बदल जानेके कारण तुम्हारा पुत्र घोर क्षत्रियप्रकृतिका उग्र और भाई श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी होगा ॥ १० ॥ यह सुन सत्यवतीने डर कर पतिको विनयपूर्वक प्रसन्न किया और कहा 'स्वामिन्! ऐसा न हो'। भार्गव ऋचीकने कहा–'अच्छा तुम्हारा पुत्र तो ऐसा न होगा, किन्तु पौत्र होगा'। तदनन्तर सत्यवतीके जमदग्नि ऋषि हुए ॥ ११ ॥ और सत्यवती शरीर छूटने पर लोकपावनी महापवित्र कौशिकी नाम नदी हो गई। जमदग्निका विवाह रेणुकी कन्या रेणुकाके साथ हुआ ॥ १२ ॥ जमदग्निके रेणुकाके गर्भसे वसुमान् आदि पुत्र हुए। उनमें सबसे छोटे परशुरामजी हुए। उन्होने हैहय वंशका विनाश किया एवं उनको पण्डितजन विष्णुभगवान्का अंशावतार कहते हैं। उन्होने इस पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियजातिसे शून्य कर दिया ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ पहले क्षत्रिय राजा लोग बड़े ही अभिमानी, वेदविरुद्ध स्वेच्छाचार करनेवाले, रजोगुण और तमोगुणसे दूषित स्वभाववाले हो कर अब्रह्मण्य हो गये थे, अतएव थोड़ा ही अपराध करने पर परशुरामजीने उनको ऐसा घोर प्राणदण्ड दिया ॥ १५ ॥ **राजा परीक्षित्‌ने कहा।** ब्रह्मन्! अजितेन्द्रिय क्षत्रियोंने परशुरामजीका ऐसा कौन अपराध किया जिससे परशुरामजीके हाथों क्षत्रियजातिका वारम्वार संहार हुआ ॥ १६ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।**

हैहयवंशीय क्षत्रियोंके अधिपति क्षत्रियश्रेष्ठ कार्त्तवीर्य्य अर्जुन राजाने सेवा करके नारायणके अंशावतार भगवान् दत्तात्रेयको प्रसन्न किया; उनकी कृपासे उनको हजार भुजाएँ प्राप्त हुईं और वह शत्रुओंके लिये दुर्द्धर्ष हो गये। अव्याहत इन्द्रियसामर्थ्य, सम्पत्ति, प्रभाव, वीर्य्य, बल और योगेश्वरपद भी उनको प्राप्त हुआ एवं जिसमें अणिमा आदि गुण (सिद्धियाँ)विराजमान हैं वह ऐश्वर्य भी मिला। वह सर्वत्र विचरण करते थे; पवनके समान उनकी गति कहीं नहीं रुकी ॥१७॥१८॥१९॥ एक समय वैजयन्ती माला धारण किये हुए मदमत्त सहस्रबाहु अर्जुनने बहुत सी श्रेष्ठ रूपवाली स्त्रियों सहित नर्म्मदा नदीके जलमें जलकेलि करते २ अपनी हजार बाहुओंसे नदीके प्रवाहको रोक दिया ॥ २० ॥ उधर दिग्विजयके लिये निकले हुए रावणने माहिष्मती पुरीके पास नर्मदा नदीके किनारे डेरा डाला था और वहाँ वह शिवपूजन कर रहा था। जलप्रवाह रुकनेके कारण पीछेको लौटा और उससे रावणका डेरा व पूजाकी सामग्री बह गई। वीरमानी रावण अर्जुनके इस आचरणको न सह सका और उसने तुरन्त अर्जुन पर आक्रमण किया ॥ २१ ॥ अर्जुनने स्त्रियोंके आगे ही अपराधी रावणको लीलापूर्वक वानरके समान पकड़ कर बहुत दिन तक अपनी पुरीमें बंदी बना कर रक्खा और फिर आप ही दया करके छोड़ दिया ॥ २२ ॥ वही सहस्रबाहु अर्जुन एक समय आखेट (शिकार) करनेके लिये वनमें घूमते घूमते जमदग्नि ऋषिके आश्रममें आये ॥२३॥ तपोधन जमदग्निजीने राजा अर्जुनको आदरपूर्वक ठहराया और अपनी कामधेनु द्वारा सम्पादित विविध सामग्रियोंसे अमात्य, सेना और अश्वादिवाहनसहित अर्जुनका पूजन व अतिथिसत्कार किया ॥ २४ ॥ अपने राज्यैश्वर्य्यसे बढ़ कर उस कामधेनु-सम्पादित सामग्रीको देख कर अर्जुनके मनमें यह अभिलाषा हुई कि 'मैं इस धेनुको अपने पुर ले जाऊँ; अतएव उनको मुनिके किये हुए सत्कारसे सन्तोष न हुआ ॥ २५ ॥ जब माँगनेसे न मिली, तब अर्जुनने अहंकारपूर्वक अपने अनुचरोंको आज्ञा दी कि 'तुमलोग इस गऊको बलपूर्वक ले चलो'। अनुचरगण स्वामीकी आज्ञा पाकर सहित बछड़ेके विलाप कर रही कामधेनुको बलपूर्वक माहिष्मती पुरीको लेचले ॥ २६ ॥ अर्जुनके चले जाने पर जमदग्नितनय परशुरामजी आश्रममें आये। अर्जुनके इस दौरात्म्यको सुन कर वह चोट खाये हुए सर्पके समान घोर कोप करके सिंह जैसे यूथपति गजराजका पीछा करता है उस प्रकार परशु, धनुष, अक्षय तूणीर और अभेद्य कवच धारण करके दौड़े ॥२७॥२८॥ पुरीमें प्रवेश कर रहे कार्त्तवीर्य्य अर्जुनने देखा कि कृष्णाजिनधारी भार्गवश्रेष्ठ परशुरामजी परशु, बाण आदि आयुधोंसहित धनुष हाथमें लिये महा वेगसे आरहे हैं एवं इधर उधर बिखरी हुई उनकी जटाएँ सूर्य्यकी किरणोंके समान प्रकाशमान हैं ॥२९॥ परशुरामजीसे युद्ध करनेके लिये गदा, असि, बाण, ऋष्टि, शतघ्नी और शक्ति आदि अस्त्र-शस्त्रयुक्त सत्रह अक्षौ-

हिणी चतुरङ्गिणी (हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे युक्त) सेना सहस्रवाहुने भेजी; किन्तु भगवान् परशुरामने अकेले ही उसका संहार कर डाला ॥ ३० ॥ मन और वायुके समान वेगसे शत्रुसेनाका नाश करनेवाले परशुरामजी जहाँ २ परशुका प्रहार करने लगे वहाँ २ राशि २ शत्रुसैनिक वाहु ऊरू और मस्तक आदि अंगोंसे विहीन, प्राणहीन हो कर गिरने लगे एवं उनके अश्व व सारथी भी निहत होने लगे ॥ ३१ ॥ हैहयपति अर्जुनने देखा कि रणभूमिमें रुधिरकी कीचड़ होगई और परशुरामके परशु व वाणोंके प्रहारसे अपने सैनिकोंके कवच, ध्वजा, धनुष, वाण एवं शरीर छिन्नभिन्न होगये एवं प्रायः सभी सेना युद्धमें नष्ट होगई तव वह कुपित हो कर स्वयं युद्ध करनेके लिये आये ॥ ३२ ॥ अर्जुनने परशुरामको लक्ष्य करके अपनी सहस्र भुजाओंमें एकसाथ पाँच सौ धनुप ले, उन पर पाँच सौ सुतीक्ष्ण वाण चढ़ाये, किन्तु अस्त्रधारियोंमें अग्रगण्य परशुरामने केवल एक धनुप पर अनेक वाण चढ़ाकर उनसे एकसाथ अर्जुनके पाँच सौ धनुप काट डाले ॥ ३३ ॥ तदनन्तर महीपति अर्जुन, अपनी भुजाओंमें अनेक पर्वतशिखर और वृक्ष लेकर महावेगसे युद्धभूमिमें परशुरामजीकी ओर चले; किन्तु परशुरामजीने कठोर धारावाले कुठारसे सर्पफणसदृश उठे हुए सहस्रवाहुके सहस्र वाहुओंको काट कर गिरिशिखरसदृश उसके शिरको भी काट डाला। राजन्! पिताके मरने पर अर्जुनके दश हजार पुत्र भयके मारे प्राण लेकर भाग गये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ शत्रु-वीरनाशन परशुरामजी, हवनसामग्री देनेवाली अपनी कामधेनुको उसके वत्स सहित लेकर आश्रममें आये एवं हैहयार्जुनके कारण क्लेशको प्राप्त वह गऊ पिताके आगे लाकर खड़ी कर दी ॥ ३६ ॥ परशुरामजीने पिता और भाइयोंके आगे सहस्रवाहुवधरूप अपने कर्म्मका वर्णन किया। उसे सुनकर जमदग्नि ऋपिने कहा राम! राम! हे महाबाहो! तुमने यह घोर पाप किया जो सर्वदेवमय राजाका वध किया। हे तात! हम ब्राह्मणगण एक क्षमागुणके कारण ही जगत्के पूज्य हो रहे हैं। इस क्षमागुणसे ही ब्रह्माजी जगद्गुरु हो कर परमेष्ठीपदको प्राप्त हुए हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वत्स! क्षमासे ही सूर्य्यकी प्रभाके तुल्य ब्रह्मतेज शोभाको प्राप्त है एवं क्षमाशील पुरुषों पर ही भगवान् ईश्वर हरि शीघ्र सन्तुष्ट होते हैं॥४०॥

राज्ञो मूर्धावसिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद्गुरुः ॥
तीर्थसंसेवया चांहो जह्यङ्गाच्युतचेतनः ॥ ४१ ॥

पुत्र! राज्यासनपर जिसका शिरसे अभिषेक हुआ है उस क्षत्रिय राजाका वध ब्रह्महत्यासे भी गुरुतर है! अतएव तुम भगवान्में मन लगा कर तीर्थयात्रा करके इस पापका प्रायश्चित्त करो ॥ ४१ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडश अध्याय ।

विश्वामित्रके वंशका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच–पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनन्दन ॥
संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वाश्रममाव्रजत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे कुरुकुलनन्दन! पिताके उपदेशसे परशुरामजी 'जो आज्ञा' कह कर तीर्थयात्राके लिये गये और एक वर्ष तीर्थपर्य्यटन करके अपने आश्रमको लौट आये ॥ १ ॥ एक समय जमदग्नि मुनिकी पत्नी रेणुका गंगातट पर गईं, वहाँ देखा कि पद्ममालाधारी चित्ररथ नाम गन्धर्वराज अप्सराओंके साथ जलकेलि कर रहा है ॥ २ ॥ रेणुका वहाँ मुनिके पूजनके लिये गंगाजल लेने गई थीं, गन्धर्वराज पर कुछ आसक्त हो कर वहीं खड़ी रहीं। 'मुनिके हवनकी बेला बीती जाती है'-इसका उनको कुछ ध्यान न रहा ॥ ३ ॥ जब रेणुकाको ज्ञात हुआ कि विलम्ब होगया और मुनिके अग्निहोत्रका समय बीत गया तब शापके भयसे काँपती हुई आश्रमको आईं और जलपूर्ण कलश पतिके आगे रख, हाथ जोड़ कर खड़ी हुईं ॥ ४ ॥ समाधिद्वारा पत्नीके मानसिक व्यभिचारका वृत्तान्त जान कर क्रोधसे काँप रहे मुनिवरने पुत्रोंसे कहा कि 'पुत्रो! इस दुष्टा पापिनीको मार डालो' । किन्तु माताको मारनेका साहस किसी पुत्रको न हुआ ॥ ५ ॥ तब पिताकी आज्ञा पा कर परशुरामजीने सहित भाइयोंके माताका शिर काट डाला; क्योंकि वह पिताकी समाधि और तपस्याका प्रभाव भली भाँति जानते थे ॥ ६ ॥ प्रसन्न होकर जमदग्निने परशुरामको वर देना चाहा। परशुरामने कहा-"यदि आप सन्तुष्ट हैं तो यही वर दीजिये कि मेरे मरे हुए भाई और माता फिर जी उठें और उनको यह स्मरण न रहे कि हमको परशुरामने मारा था" ॥ ७ ॥ राजन्! वर देते ही जैसे कोई सो कर उठे वैसे ही परशुरामकी माता और भाई कुशलपूर्वक सजीव होकर उठ खड़े हुए। पिताके तपोबलको भली भाँति जाननेसे ही परशुरामने सुहृद्गणका वध किया ॥ ८ ॥ राजन्! अर्जुन राजाके दश हजार पुत्र (जो कि भाग गये थे) अपने पिताका बदला लेनेकी इच्छासे एक घड़ी भी सुख न पाते थे। परशुरामसे न जीत सकनेके कारण प्रकट रूपसे बदला लेनेमें तो असमर्थ थे, अतएव छिप कर अवसर देखने लगे ॥ ९ ॥ एक समय परशुरामजी भाइयों सहित वनको गये, यह अवसर पाकर वे अर्जुनके पुत्र बदला चुकानेको मुनिके आश्रममें आये ॥ १० ॥ अग्निहोत्रशालामें बैठेहुए हरिके ध्यानमें लीन परशुरामके पिताको देख कर उसी क्षण उन पापियोंने उनका शिर काट लिया ॥ ११ ॥ परशुरामकी माताने दीनतासहित बहुत कुछ प्रार्थना की, पर उन निठुर क्षत्रियाधमोंने उस पर कुछ ध्यान नहीं

दिया और बलपूर्वक जमदग्निका शिर काट कर चले गये ॥१२॥ रेणुका दुःख और शोकसे आकुल हो कर छाती पीटती हुई ऊँचे स्वरसे "हे राम! हे राम! हे पुत्र!! हे पुत्र!!!" कह कर पुकारने लगीं ॥ १३ ॥ माताका आर्त्तनाद सुनते ही सब भाइयों सहित परशुरामजी शीघ्र आश्रममें आये और आकर देखा कि पिता मरे पड़े हुए हैं ॥ १४ ॥ परशुरामजी दुःख, क्रोध, अधैर्य एवं पीड़ाके आवेगसे विमोहित हो पड़े । "हा तात! हा साधो! हा धर्मिष्ठ! हमको यहाँ छोड़ कर आप स्वर्ग चले गये!"—इस प्रकार अनेक भाँति विलाप करके परशुरामजीने पिताके मृत देहको भाइयोंकी देखरेखमें छोड़ दिया एवं सुतीक्ष्ण परशु लेकर क्षत्रिय वंशका विनाश करनेके विचारसे चले ॥ १५ ॥ १६ ॥ महाराज! परशुरामजी उन ब्रह्महत्त्या करनेवाले अधम क्षत्रियोंकी श्रीहत माहिष्मती पुरीको गये एवं वहाँ अर्जुनके पुत्रोंके कटे हुए शिरोंके ढेरसे एक पर्वत सा बना दिया ॥१७॥ परशुरामजीने उनके रुधिरसे एक बड़ी भारी भयानक नदी बहादी । वह नदी ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाले लोगोंके हृदयमें देखते ही भय उत्पन्न करनेवाली है । क्षत्रियकुलके अन्यायी होने पर 'पितृवध'को कारण करके परशुरामने इक्कीस बार पृथ्वीमण्डलको क्षत्रियविहीन कर दिया । परशुरामने इसी प्रकार मारेहुए क्षत्रियोंके रुधिरसे स्यमन्तपञ्चक स्थानमें नव रुधिरकुण्ड बनादिये ॥ १८ ॥ १९ ॥ परशुरामने मरे हुए पिताके देहमें उनका कटा हुआ शिर जोड़, उनको कुशासन पर बिठा कर, अनेक यज्ञोंसे सर्वदेवमय परमात्माका पूजन किया ॥२०॥ अन्तमें होताको पूर्वदिशा, ब्रह्माको दक्षिण दिशा, अध्वर्य्युको पश्चिम दिशा, उद्गाताको उत्तर दिशा, अन्यान्य ऋत्विक्गणको अवान्तर (उप) दिशा, कश्यप ऋषिको बीचकी पृथ्वी एवं उपद्रष्टाको आर्य्यावर्त्तदेश दक्षिणामें देकर उसके उपरान्त अपरापर सदस्योंको भी यथायोग्य भूमि और धन दक्षिणामें दिया ॥२१॥२२॥ तदनन्तर महानदी सरस्वतीमें यज्ञान्तका अवभृथ स्नान कर सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त परशुरामजी मेघमुक्त सूर्य्यके समान विराजमान हुए ॥ २३ ॥ परशुराम द्वारा पूजित जमदग्न्यजी चेतनामय अपने शरीरको पाकर सप्तर्षिमण्डलमें सातवें ऋषि हुए ॥ २४ ॥ महाराज! कमलनयन भगवान् जमदग्नितनय परशुराम भी आनेवाले मन्वन्तरमें वेदके प्रवर्त्तक अर्थात् सप्तर्षियोंमें एक ऋषि होंगे ॥ २५ ॥ वह इस समय न्यस्तदण्ड और प्रशान्तचित्त होकर महेन्द्राचल पर तप कर रहे हैं । सिद्ध, चारण और गन्धर्वगण निरन्तर उनके विचित्र चरित्रको गाया करते हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार भगवान् विश्वके आत्मा ईश्वर हरिने भृगुवंशमें अवतार लेकर बहुत बार दुष्ट क्षत्रियोंका संहार करके पृथ्वीका भारी भार उतारा ॥ २७ ॥ राजन्! राजा गाधिके प्रज्वलित अग्निके तुल्य तेजस्वी विश्वामित्रजी उत्पन्न हुए; जिन्होने तपके प्रभावसे क्षत्रियत्त्व छोड़ कर ब्राह्मणत्व प्राप्त किया ॥ २८ ॥ विश्वामित्रके एक सौ पुत्र हुए । उनमें यद्यपि केवल मध्यम पुत्रका नाम मधुच्छन्दस

था, तथापि वे सबही मधुच्छन्दस नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ २९ ॥ महातपस्वी विश्वामित्रने भृगुवंशीय अजीगर्त्त ऋषिके पुत्र शुनःशेफको देवरात नाम देकर अपना पुत्र बनाया एवं अन्यान्य पुत्रोंसे कहा कि 'तुम सब इनको अपना बड़ा भाई मानो' ॥ ३० ॥ हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहितके हाथ यज्ञमें बलि देनेके लिये बेंचे गये पुरुष-पशु शुनःशेफने विश्वामित्रके बताये दो मंत्रोंसे हरिश्चन्द्रके यज्ञमें प्रजापति आदि देवतोंकी स्तुति की एवं उससे उनके प्राण बच गये। अतएव वह भृगुवंशमें उत्पन्न होने पर भी देवयजनमें देवगणके द्वारा रात अर्थात् प्रदत्त होनेके कारण देवरात नामको प्राप्त हो गाधिवंशमें सम्मिलित हुए ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ जो मधुच्छंदस नाम विश्वामित्रके पचास ज्येष्ठ पुत्र थे उन्होने शुनःशेफको ज्येष्ठ बनाना अच्छा न समझ पिताकी आज्ञा अंगीकार नहीं की, अतएव विश्वामित्रने कुपित होकर उनको यह शाप दिया कि-"तुम अत्यन्त दुर्जन हो, तुम आजके दिनसे ब्राह्मणत्वसे पतित होकर म्लेच्छ हो जाओ" ॥ ३३ ॥ तदनन्तर मँझले पुत्र मधुच्छंदसने अपने पचास छोटे भाइयों सहित पिताके पास जा कर कहा कि 'आप हमारे पिता हैं; हमको कनिष्ठ या ज्येष्ठ, जो कुछ बनाइये वह हमको स्वीकृत है' ॥ ३४ ॥ यों कह कर उन सबने मन्त्रज्ञ शुनःशेफको अपना बड़ा भाई बनाकर कहा कि 'हम सब तुम्हारे छोटे भाई हैं'। विश्वामित्रने प्रसन्न होकर इन सब पुत्रोंसे कहा कि हे पुत्रो! तुम लोगोंने मेरा मान रख कर मुझे यथार्थ पुत्रवाला बनाया, इस लिये तुम भी ऐसे ही सुशील पुत्रोंके पिता होओगे। हे कुशिकगण! यह देवरात तुम्हारे (कौशिक) गोत्रमें ही गिने जायँगे, क्योंकि इनको मैंने अपना पुत्र बनाया है; अतएव तुम इनके अनुगत रहो। इन सौ पुत्रोंके सिवा विश्वामित्रके और भी अष्टक, हारीत, जय, क्रतुमान् आदिक पुत्र हुए। ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

एवं कौशिकगोत्रं तु विश्वामित्रैः पृथग्विधम् ॥
प्रवरान्तरमापन्नं तद्धि चैवं विकल्पितम् ॥ ३७ ॥

इस प्रकार विश्वामित्रके पुत्रोंसे कौशिक गोत्रके कई भेद होगये। देवरातसे कौशिकगोत्र दूसरे प्रवरको प्राप्त होगया, जिसका विकल्प-बिवरण सुना चुके ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदश अध्याय ।

क्षत्रवृद्ध आदि राजोंके वंशका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच—यः पुरूरवसः पुत्र आयुस्तस्याभवन्सुताः ॥
नहुषः क्षत्रवृद्धश्च रजी रम्भश्च वीर्यवान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे राजन्! पुरूरवाके पुत्र आयुके नहुप, क्षत्रवृद्ध, रजि, पराक्रमी रंभ और अनेना नाम पाँच पुत्र हुए । उनमें प्रथम क्षत्रवृद्धका वंश सुनो । क्षत्रवृद्धके पुत्र सुहोत्र हुए । सुहोत्रके काश्य, कुश और गृत्समद नाम तीन पुत्र हुए । गृत्समदके पुत्र शुनक हुए और शुनकके बह्वृचगणमें श्रेष्ठ शौनकजी उत्पन्न हुए ॥१॥२॥३॥ काश्यपके पुत्र काशि, काशिके राष्ट्र, राष्ट्रके दीर्घतमा और उनके धन्वन्तरिजी हुए । धन्वन्तरिजी हरिका अंशावतार हैं; उन्होने आयुर्वेदका आविष्कार किया एवं उनका स्मरण करतेही सब रोग दूर हो जाते हैं । धन्वन्तरिजीको यज्ञमें भाग मिलता है ॥ ४ ॥ धन्वन्तरिके पुत्र केतुमान्, उनके भीमरथ, उनके दिवोदास, उनके द्युमान्, उनके प्रतर्दन हुए ॥ ५ ॥ प्रतर्दनके ही शत्रुजित्, वत्स, ऋतध्वज और कुबलयाश्व इत्यादि नामान्तर हैं । प्रतर्दनके अलर्क आदि अनेक सन्तान हुए । प्रतापी अलर्कने छाँछठ हजार (६६०००) वर्ष तक युवा रहकर राज्यभोग किया । महाराज! सिवा अलर्कके किसी युवक राजाने इतने दिनों तक राज्य नहीं किया ॥ ६ ॥ ७ ॥ अलर्कके पुत्र सन्तति, उनके सुनीत उनके निकेतन, उनके धर्म्मकेतु, उनके सत्यकेतु, उनके धृष्टकेतु, उनके राजा सुकुमार, उनके वीतिहोत्र, उनके भर्ग और भर्गके भार्गभूमि हुए ॥८॥९॥ महाराज! ये सब राजा काशिवंशीय हैं; इनका जन्म क्षत्रवृद्धके वंशमें हुआ । रंभके पुत्र रभस, उनके गंभीर, उनके अक्रिय, उनके ब्रह्मवित् हुए । अब अनेनाका वंश सुनो । अनेनाके पुत्र शुद्ध, उनके शुचि, उनके धर्म्मप्रवर्त्तक त्रिककुप्, उनके शान्त रजि हुए। आत्मज्ञानी होनेके कारण शान्त रजि कृतकृत्य थे।रजिके महाबलशाली पाँच सौ पुत्र थे ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ एक समय राजा रजिने देवगणकी प्रार्थनासे दानवोंको मार कर इन्द्रको स्वर्गपुरीका राज्य फेर दिया । महेन्द्रने प्रह्लाद आदि शत्रुओंके भयसे रजिके चरणों पर गिर कर स्वर्गपुरीसहित आत्मसमर्प्पण कर दिया । परन्तु रजिकी मृत्यु होने पर देवराज इन्द्रने जब रजिके पुत्रोंसे स्वर्ग माँगा तब उन्होने स्वर्ग लौटा देना स्वीकार नहीं किया और स्वयं स्वर्गके स्वामी बनकर यज्ञभाग तक लेनेलगे । अतएव देवगुरु बृहस्पतिने रजिके पुत्रोंकी बुद्धि भ्रष्ट करनेके लिये अभिचारकी विधिसे हवन किया । उससे शीघ्र ही वे नीतिमार्गसे हट कर कुमार्ग पर चलनेलगे एवं इन्द्रने सहजमें उनका विनाश कर दिया; उनमेंसे एक भी नहीं बचा । क्षत्रवृद्धके पौत्र कुशके पुत्र प्रति हुए । प्रतिके पुत्र संजय, उनके

जय, उनके कृत, उनके हर्य्यवन, उनके सहदेव, उनके हीन, उनके जयसेन ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

संस्कृतिस्तस्य च जयः क्षत्रधर्मा महारथः ॥
क्षत्रवृद्धान्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात ॥ १८ ॥

उनके संकृति, उनके क्षत्रियधर्म्मनिष्ठ महारथी जय हुए। ये सब राजालोग क्षत्रवृद्धके वंशमें हुए; अब नहुषके वंशका वृत्तान्त सुनो ॥ १८ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादश अध्याय।

ययातिके वंशका विवरण।

श्रीशुक उवाच—यतिर्ययातिः संयातिरायतिर्वियतिः कृतिः ॥
षडिमे नहुषस्यासन्निन्द्रियाणीव देहिनः ॥ १

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! शरीरधारियोंकी छः इन्द्रियोंके समान नहुष राजाके यति, ययाति, शर्य्याति, आयति, बियति, और कृति नाम छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ सबसे बड़े पुत्र यति राज्यका परिणाम भली भाँति जानते थे, इस लिये पिता यद्यपि उनको राज्य देते रहे तथापि उन्होने उसको स्वीकार नहीं किया। यतिको निश्चय था कि राज्य पाने पर पुरुष अपनेको भूल जाता है ॥ २ ॥ जब नहुषने इन्द्राणीके निकट धृष्टता प्रकट की और अगस्त्य आदि ब्राह्मणोंके शापसे अजगर हो कर स्वर्गसे भ्रष्ट होगये तब ययाति ही राजा हुए ॥ ३ ॥ ययातिने चारो छोटे भाइयोंको चारो दिशाओंका राज्य दिया और आप शुक्राचार्य्य व वृषपर्व्वाकी कन्याओंके साथ बिवाह करके समग्र पृथ्वीमण्डलका शासन करनेलगे ॥४॥ **राजा परीक्षित्‌ने पूछा-ब्रह्मन्!** भगवान् शुक्राचार्य्य ब्रह्मर्षि हैं और नहुषके पुत्र ययाति क्षत्रिय थे; तब ब्राह्मणी और क्षत्रियका दूषित प्रतिलोम बिवाह कैसे सर्वसम्मत हुआ? ॥ ५ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।** एक समय दानवराज वृषपर्व्वाकी कन्या शर्म्मिष्ठा गुरु शुक्राचार्य्यकी कन्या देवयानीके साथ पुरवाटिकामें विचर रही थी। उस बागमें अनेक वृक्ष फूल, फल, पल्लव आदिसे भरेपुरे थे। जहाँ कमलके वृक्षों पर भौंरे गुंजन कर रहे थे उन पद्मपरागपूरित सरसियों (नहरों) के किनारे शर्म्मिष्ठा बागकी शोभा निहारती हुई घूम रही थी। फिर सब कमलनयनी स्त्रियाँ अपने २ वस्त्र किनारे उतार कर नग्न हो वहाँ जलकेलि करती हुई आनन्दसे एक एक पर परस्पर जल फेंकनेलगीं ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ इसी समय अकस्मात् देवी पार्वतीसहित नन्दी पर सवार देवदेव शंकर उधरसे निकले,

उनको देखते ही सब कन्याएँ अत्यन्त लज्जित होकर जल्दीसे वस्त्र पहननेके लिये व्यग्र हो किनारे निकल आईं । व्यग्रताके कारण बिना जाने धोखेसे अपने समझ कर शर्मिष्ठाने गुरुपुत्रीके कपड़े पहन लिये । यह देख देवयानीने कुपित होकर कहा कि अहो! इस दासीका अन्याय कार्य्य तो देखो! जैसे कुतिया यज्ञकी आहुतिके घृतमें मुख डाल दे वैसे ही इस दासीने हमारे पहने वस्त्र आप पहन लिये । जिन्होने तपोवलसे जगत्की सृष्टि की है, जो परम पुरुषके मुखसे उत्पन्न होनेके कारण सबमें श्रेष्ठ हैं, जो ब्रह्मरूप वेदके जाननेवाले हैं, जिन्होने मङ्गलमय वैदिकमार्ग दिखलाया है एवं सब लोकपाल, देवपतिगण और स्वयं भगवान् विश्वात्मा विश्वपावन श्रीनिवास विष्णु जिनकी वन्दना और उपासना करते हैं वे ब्राह्मणमात्र पूज्य हैं; तिस पर हम परमपूज्य भृगुवंशमें उत्पन्न हैं । इसका पिता असुर हमारा शिष्य है, इस दुष्टाकी स्पर्धा तो देखो, शूद्रजाति जैसे वेद धारण करे उस प्रकार इसने हमारे पहननेके वस्त्र पहन लिये ॥ ९ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ गुरुपुत्री देवयानीके इस प्रकार तिरस्कार करने पर शर्मिष्ठाको भी कोप आ गया और वह चोट खाई हुई नागिनीकी भाँति वारम्वार साँस लेती हुई कोपके आवेगसे आप ही आप दाँतोंसे ओंठ चवाकर बोली कि अरी भिक्षुकी! अपने आचरण पर ध्यान न रख कर तू बड़ीही स्पर्धा करनेलगी है! क्या जूठन खानेवाले काकके समान अन्नके लिये हमारे द्वार पर तू नहीं पड़ी रहती है? ॥ १५ ॥ १६ ॥ इस प्रकार क्रोधके मारे बहुतसे कठोर वाक्य कहकर शर्मिष्ठाने गुरुकन्याको नग्न अवस्थामें ही कूपके भीतर ढकेल दिया ॥ १७ ॥ शर्मिष्ठा अपने घर चलीगई; उधर ययाति राजा आखेट (शिकार) करते हुए दैवयोगसे प्यासे होकर उसी कूपके निकट आये, जिसमें देवयानी पड़ी हुई थी । देवयानीको कूपमें देखकर दयालु राजाने अपना दुपट्टा पहननेके लिये दिया और हाथ पकड़ कर ऊपर निकाल लिया ॥ १८ ॥ १९ ॥ देवयानीने उस कूप (गढ़े) से बाहर निकल कर वीर ययातिसे ये प्रेमपूर्ण वचन कहे कि हे परपुरंजय महाराज! आपने मेरा हाथ पकड़ा, इस लिये मैं आपकी पाणिग्रहण की हुई भार्य्या होचुकी; मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि जिस हाथको आपने पकड़ा उसे दूसरा कोई न पकड़े । हे वीर! मैं कूपमें पड़ी हुई थी, अचानक आप यहाँ आपड़े, इससे यह हमारा आपका सम्बन्ध ईश्वरकी प्रेरणासे हुआ है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह सम्बन्ध मनुष्यकृत नहीं है ॥ २० ॥ २१ ॥ हे महाबाहो! पहले मैंने बृहस्पतिके पुत्रको (मैं उसको पति बनाना चाहती थी पर उसने गुरुपुत्री समझ कर स्वीकार नहीं किया इस लिये) शाप दिया (कि तूने जो मृतसंजीवनी विद्या मेरे पितासे पढ़ी है वह सब तुझको भूलजाय) तब उसने भी शाप दिया कि तुम्हारा विवाह भी ब्राह्मणके साथ न होगा । अतएव मेरा पति ब्राह्मण नहीं हो

सक्ता ॥ २२ ॥ राजा ययाति यद्यपि शास्त्रविहित न होनेके कारण इस विवाहमें असम्मत थे, तथापि इसे दैवघटनासे उपस्थित समझ कर एवं देवयानीकी अपने ऊपर आसक्ति देख कर उनको स्वीकार ही करना पड़ा ॥ २३ ॥ स्वीकार करके राजा ययाति अपने पुरको चलेगये, तब देवयानी वहाँसे रोतीहुई पिताके पास आई और जो कुछ शर्म्मिष्ठाने कहा व किया था सब आद्योपान्त कह सुनाया ॥ २४ ॥ सुनकर भगवान् शुक्राचार्य्य बहुत ही दुःखित हुए एवं पुरोहिती वृत्तिकी निन्दा और उंच्छ वृत्तिकी प्रशंसा करते हुए कन्यासहित वृषपर्व्वाके पुरसे चल दिये ॥ २५ ॥ यह वृत्तान्त जब वृषपर्वाको विदित हुआ तो उसने विचारा कि 'शुक्राचार्य्यजी कदाचित् असुरोंका पक्ष छोड़ कर देवतोंकी ओर मिल जायँगे एवं दैत्यलोगोंकी देवतोंसे पराजय होगी'। यह जान कर वृषपर्वा राहमें ही जाकर शुक्राचार्य्यके पैरों पर गिर पड़ा और अनेक विनीत वाक्योंसे प्रसन्न करने लगा ॥ २६ ॥ भगवान् शुक्रका क्रोध अधिकसे अधिक घड़ी दो घड़ी ठहरता है; उनका क्रोध शान्त होगया और उन्होने कहा—"मुझे नहीं, मेरी कन्याको प्रसन्न करो; यह जो कहे उसे पूर्ण करो—मैं लौटा चलता हूँ, किन्तु इसको किसी प्रकार छोड़ नहीं सक्ता" ॥ २७ ॥ जब वृषपर्वाने स्वीकार कर लिया तब देवयानीने कहा कि विवाहके उपरान्त मैं जहाँ जाऊँ वहाँ तुम्हारी कन्या शर्म्मिष्ठा भी सखीगणसहित मेरे साथ जाय और मेरे पास मेरी दासी होकर रहे ॥ २८ ॥ वृषपर्वाने 'आचार्य्यके चले जानेसे हमारी जाति पर संकट आ जायगा एवं उनके यहाँ रहनेसे बड़े २ काम सिद्ध होंगे' यह समझ कर देवयानीको सखीगणसहित अपनी कन्या दे डाली। पिता द्वारा दी गई शर्म्मिष्ठा अपनी सहस्र सखियों सहित देवयानीकी दासी होकर सेवा करने लगी ॥ २९ ॥ शुक्राचार्य्यने शर्मिष्ठासहित देवयानीका दान करते समय ययातिसे कहा कि राजन्! शर्म्मिष्ठासे कभी स्त्रीका ऐसा व्यवहार न करना अर्थात् वह तुम्हारी शय्या पर शयन न करे—दासी होकर रहे ॥३०॥ महाराज! देवयानीने स्वामीके सहवाससे कई परमसुन्दर पुत्र उत्पन्न किये, तब शर्मिष्ठाने भी ऋतुकालमें एकान्तमें सखीपति ययातिके निकट जा कर पुत्र उत्पन्न करनेके लिये प्रार्थना की ॥ ३१ ॥ 'राजकुमारी शर्म्मिष्ठा पुत्र उत्पन्न करनेके लिये ऋतुकालमें प्रार्थना करती है और उसको अस्वीकार करना अन्याय व अधर्म्म भी है'—यह विचार कर धर्म्मज्ञ राजाने, यद्यपि शुक्राचार्य्यका निषेध उनको भूला न था, तथापि दैवसंयोगवश, शर्म्मिष्ठासे समागम स्वीकार कर लिया ॥ ३२ ॥ ययातिसे देवयानीके यदु और तुर्वसु नाम दो पुत्र और शर्म्मिष्ठाके द्रुह्यु, अनु और पूरु नाम तीन पुत्र हुए ॥ ३३ ॥ महाराज! देवयानी अपने पतिके वीर्य्यसे असुरतनयाके गर्भ रहनेका वृत्तान्त जान कर मान करके कोपसे अपने पिता शुक्राचार्य्यके घर चली गई ॥ ३४ ॥ ययाति राजा निपट कामी थे, अतएव

प्रियाको कुपित देख, अनुनय विनय करते हुए पीछे लगे प्रसन्न करनेकी इच्छासे शुक्राचार्य्यके भवन तक गये, किन्तु पैरोंपर गिर कर भी प्रियाको प्रसन्न न कर सके ॥ ३५ ॥ सब वृत्तान्त सुनकर शुक्रजीने क्रोध करके राजासे कहा कि–'अरे स्त्रीकामुक! तू झूठा पुरुष है। रे मंद! मनुष्यको कुरूप बनानेवाली वृद्धावस्थाके आक्रमणसे तू अभी वृद्ध होजा' ॥ ३६ ॥ ययातिने कहा, ब्रह्मन्! आपकी कन्याके साथ विहार करके मैं अभी तृप्त नहीं हुआ हूँ। तब शुक्राचार्य्यने शान्त होकर पीछेसे कहा कि यदि कोई स्वीकार करे तो तुम उसकी जवानीके साथ, जितने समयके लिये चाहो, अपनी वृद्धावस्था बदल सक्ते हो ॥ ३७ ॥ इस प्रकार अवस्था बदलनेकी व्यवस्था पाकर ययातिने अपने बड़े पुत्र यदुसे कहा कि हेतात यदु! तुम अपनी जवानी कुछ कालके लिये मुझको देडालो और मेरा बुढ़ापा लेलो। हे वत्स! तुम्हारे नानाके शापसे मैं अकालमें ही वृद्ध होगया हूँ, किन्तु विषयभोगसे मुझे अभी तृप्ति नहीं हुई है; इसी लिये तुम्हारी जवानी लेकर कुछ दिन विषयभोग करना चाहता हूँ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ यदुने कहा कि पिता! आप मध्यसमय (अर्धवयस) होने पर वृद्ध हुए हैं, मैं आपकी वृद्धावस्थाको धारण न कर सकूँगा; क्योंकि मनुष्य विना सांसारिक सुखभोग किये उनसे विरक्त नहीं हो सक्ता। हे महाराज! इसी प्रकार अनित्य जवानीको नित्य माननेवाले एवं अपने पुत्रधर्म्मसे अनजान अन्यान्य तुर्वसु, द्रुह्य, अनु आदि पुत्रोंने भी अस्वीकारसूचक उत्तर दे दिया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ तव अवस्थामें छोटे किन्तु गुणोंमें वड़े पूरु नाम पुत्रसे ययाति राजाने कहा कि पुत्र! बड़े भाइयोंके समान मेरी प्रार्थनाको अस्वीकार करना तुम्हे उचित नहीं है ॥ ४२॥ पूरुने कहा, हे नरनाथ! जिसकी कृपासे परमपदका लाभ हो सक्ता है और जिसके शरीरसे जन्म हुआ है, इस लोकमें कौन पुरुष उस पिताके उपकारका बदला चुका सक्ता है? जो कोई पुत्र पिताके विचार (इच्छा) को, विना कहे, आपसे ही पूर्ण करता है वह उत्तम है, और आज्ञा देने पर काम करनेवाला पुत्र मध्यम है, तथा अश्रद्धासे पिताकी आज्ञा पालनेवाला पुत्र अधम है। किन्तु जो आज्ञा पाकर भी उसे पूर्ण नहीं करता वह पुत्र कहलाने योग्य ही नहीं है; उसे पिताकी विष्ठा कहना चाहिये ॥ ४३ ॥ ॥ ४४ ॥ यों कहकर पूरुने प्रसन्न चित्तसे पिताकी वृद्धावस्था लेली और ययाति भी पुत्रकी जवानीसे यथोचित विषयभोग करनेलगे ॥ ४५ ॥ महाराज! सातो द्वीप पृथ्वीके एक अधिपति राजा ययाति भली भाँति पुत्रके समान प्रजापालन करते हुए मनमाने विषयोंके भोगमें प्रवृत्त हुए। पुत्रकी जवानी प्राप्त करनेसे उनकी सब इन्द्रियाँ प्रबल और अव्याहत होगईं ॥ ४६ ॥ देवयानी भी मन, वाणी, काया और अनेक उपभोगकी सामग्रियोंसे एकान्तसमागममें अपने प्रिय पतिको सर्वदा प्रसन्न रखती थीं। ययाति राजाने वहुत २ दक्षिणा देकर अनेकानेक

यज्ञोंसे सर्वदेवमय, सर्ववेदस्वरूप, यज्ञपुरुष भगवान् हरिका पूजन किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ आकाशमें मेघमालाके समान, जिनमें यह जगत् विरचित होकर स्वप्न माया अथवा कल्पनाकी भाँति कभी प्रकट और कभी लीन हो जाता है उन अन्तर्य्यामी परमसूक्ष्म भगवान्‌को हृदयमें बसा कर, उन्हीके उद्देश्यसे, किसी प्रकारके मङ्गलकी कामना न रख कर वह यज्ञ करनेलगे ॥ ४९ ॥ ५० ॥

एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैर्मनःसुखम् ॥
विदधानोऽपि नातृप्यत्सार्वभौमः कदिन्द्रियैः ॥ ५१ ॥

सार्वभौम सम्राट् राजा ययाति इस प्रकार मन आदि छः इन्द्रियोंकेद्वारा निरन्तर विषयभोग करके भी तृप्तिलाभ नहीं कर सके ॥ ५१ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंश अध्याय ।

ययातिका विरक्त होकर मुक्त होना ।

श्रीशुक उवाच–**स इत्थमाचरन्कामान्स्त्रैणोपह्नवमात्मनः ॥**
वुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । इस प्रकार स्त्रीके वश होकर विषयभोग करते२ ययातिको अपने सर्व्वनाशका ज्ञान हुआ, तब उन्होने निर्वेदयुक्त होकर प्रियासे अपनेही चरित्रका रूपक रचकर यह इतिहास कहा ॥ १ ॥ राजा ययातिने कहा—हे भृगुकी पुत्री ! मैं एक इतिहास तुमसे कहता हूँ, उसको सुनो । इस इतिहासमें मेरे ही समान कामी पुरुषके आचरणका वर्णन है; वनवासी धीर मुनिगण ऐसे आचरणवाले अज्ञ विषयी जनोंके लिये शोक करते हैं ॥ २ ॥ वनमें अपनी अभीष्ट वस्तुको खोजते हुए एक वकरेने निजदोषसे कूपमें पड़ी हुई एक बकरीको देखा । वह बकरा बड़ा ही कामी था—उसने वकरीको बाहर निकालनेकी इच्छा करके सींगोंसे मिट्टी खोद कर गढ़ेसे बाहर निकलनेका मार्ग बना दिया । उस सुन्दरी वकरीने बाहर आकर उसी बकरे पर अपनी अभिलाषा प्रकट की । वकरीने जब उस बकरेको अपना पति बनाया तब अन्यान्य अनेकानेक बकरियाँ भी उसे श्मश्रुकेशयुक्त एवं स्थूल शरीरवाला देख, मैथुनाभिज्ञ और बहुल वीर्य्यवाला समझ कर उस पर आसक्त होगईं । वह अकेला बकरा अपनी ओर अनेक वकरियोंकी आसक्ति बढ़ाता हुआ कामग्रह-ग्रस्त होकर उनके साथ विहार करने लगा । उसको 'मैं कौन और क्या हूँ?' यह भी बोध न रहा

॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ किन्तु कूपसे निकाली हुई बकरीने जब बकरेको अन्य बकरियोंके साथ विहार और प्रीति करते देखा तो उसे यह असह्य हो गया। वह उस मित्रवेषधारी–वास्तवमें शत्रु और क्षणभरके तुच्छ विषयसुखकी कामनावाले एवं इन्द्रियसुखका सेवन करनेवाले बकरेको छोड़ कर दुःखित हो अपने पालनेवाले स्वामीके निकट गई ॥ ७ ॥ ८ ॥ स्त्रीजित वह बकरा भी दुःखित होकर इड़विड़ शब्द (अपनी बोली) से अनुनय विनय करता हुआ उसके पीछे गया, तथापि राहमें प्रसन्न कर लौटा नहीं सका ॥ ९ ॥ उस बकरीके मालिक ब्राह्मणने क्रोध करके बकरेके लम्बायमान दोनो वृषणोंको काट डाला; किन्तु फिर शान्त होकर उपाय जाननेवाले उसी ब्राह्मणने प्रयोजनसिद्धिके लिये उन कटे हुए वृषणोंको फिर योजित कर दिया ॥ १० ॥ हे भद्रे! इस उपायसे फिर रतिशक्तियुक्त होकर बकरेने उस कूपमें मिली हुई बकरीके साथ विषयभोगमें बहुत काल बिताया; किन्तु विषयभोगसे अब भी उसको तृप्ति नहीं होती ॥ ११ ॥ हे सुभ्रु! उस बकरेकी भाँति मैं भी तुम्हारे प्रणयमें आबद्ध होकर दीन अवस्थाको प्राप्त हूँ–तुम्हारी मायामें मोहित होजानेके कारण मुझे आत्मज्ञान नहीं रहा। पृथ्वीमें जितने अन्न, भोजनके पदार्थ, सुवर्ण, पशु, एवं स्त्री हैं उन सबसे भी कामासक्त पुरुषके चित्तको सन्तोष या तृप्ति नहीं हो सक्ती। विषयोंकी कामना उनके भोग करनेसे कभी शान्त नहीं होती, बरन् घी छोड़नेसे अग्नि जैसे प्रज्वलित हो उठता है वैसे ही उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ जब पुरुष, राग द्वेष आदि विषम भाव छोड़ कर सब प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखता है तब उसे चारो ओर सुख ही देख पड़ता है ॥ १५ ॥ जिसको त्याग करना दुर्बुद्धि लोगोंके लिये दुःसाध्य है एवं शरीर जीर्ण होने पर भी जो जीर्ण नहीं होती उस दुःखमयी तृष्णाका त्याग, यदि सुखी रहनेकी इच्छा है तो, पहले ही करदेना चाहिये ॥ १६ ॥ अपनी माता, कन्या या बहनके साथ भी एकान्तमें एक आसन पर न रहना चाहिये; क्योंकि ये इन्द्रियाँ बड़ी ही प्रबल हैं–बड़े २ विद्वानोंके चित्तको चलायमान कर देती हैं। मुझे नित्यप्रति निरन्तर विषयभोग करते एक हजार वर्ष पूरे होगये तथापि मनकी तृष्णा नहीं बुझी–और बढ़ती ही जाती है ॥ १७ ॥ १८ ॥ अतएव इस अनिष्टकारिणी तृष्णाको त्याग कर अब परब्रह्ममें मन लगाऊँगा एवं सुख दुःख आदि द्वन्द्वधर्म्मोंसे रहित और निरभिमान होकर मृगगणके साथ वनमें विचरूँगा ॥ १९ ॥ प्रिये! जो पुरुष देखे या सुने पदार्थों(विषयों)को संसारबन्धन व आत्मनाशका कारण जान कर न उनका चिन्तन करता है और न उनका भोग करता है और उनको असत् समझता है वही विद्वान् आत्मदर्शी है ॥ २० ॥ महाराज! राजा ययातिने अपनी पत्नीसे यों कहकर अपने छोटे पुत्र पूरुको उसकी जवानी देदी और विषयभोगकी

स्पृहासे शून्य होकर अपना बुढ़ापा उससे फेर लिया ॥ २१ ॥ उन्होने पूर्वदिशाका द्रुह्युको, दक्षिणदिशाका यदुको, पश्चिमदिशाका तुर्वसुको और उत्तर दिशाका अनुको अधीश्वर बनाया एवं सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलके शासनका भार क्षत्रियोत्तम अपने प्रियतम छोटे पुत्र पूरुको दिया। राजा ययाति इस प्रकार बड़े पुत्रोंको छोटे पुत्र पूरुके अधीन राजा बनाकर आप तप करनेके लिये वनको चलेगये ॥ २२ ॥ २३ ॥ राजन्! ययातिने बहुत वर्षों तक शब्दादि विषयोंको श्रवण आदि इन्द्रियोंके द्वारा सुखपूर्वक भोग किया; किन्तु इस प्रकार वैराग्य उत्पन्न होते ही—दोनो पंख निकलने पर पक्षीका बच्चा जैसे मोह त्याग कर अपना झोंझ छोड़ कर उड़ जाता है उसी प्रकार क्षणभरमें इन्द्रियसुखकी लालसा छोड़ कर वनको चलेगये ॥ २४ ॥ सम्पूर्ण संग त्याग करनेसे आत्मानुभवके द्वारा उनकी त्रिगुणात्मक उपाधि दूर होगई। इस प्रकार प्रसिद्ध राजा ययातिने भागवती गति अर्थात् निर्म्मल परब्रह्म वासुदेवमें सायुज्य मुक्ति पाई। स्त्री-पुरुषके स्नेहमें निर्वेद होनेके कारण परिहासछलसे जो रूपकमय इतिहास राजा ययातिने कहा उसे सुनकर देवयानीको ज्ञान हुआ कि राजाने स्वयं विरक्त होकर उनको भी विरक्त बनमुक्तिमार्गमें प्रवृत्त होनेके लिये उत्साहित किया है ॥ २५ ॥ २६ ॥ शुक्रकी कन्या देवयानीने जाना कि प्रपा(जलशाला)में दम भर ठहरनेवाले मनुष्योंके संयोगके समान इन ईश्वराधीन सुहृद्गणोंका सहवास भी अस्थायी और ईश्वरकी अद्भुत मायाकी रचना है। देवयानीने सब दृश्योंको स्वप्नके सदृश मिथ्या जान सबका संग छोड़ कर कृष्णमें मन लगाया और इस उपाधिरूप शरीरको त्याग कर दिया ॥ २७ ॥ २८ ॥

नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥
सर्वभूताधिवासाय शान्ताय बृहते नमः ॥ २९ ॥

श्रीशुकदेवजी भक्तिसे पुलकित होकर ईश्वरको प्रणाम करते हैं कि हे भगवन्! आप विधाता हैं, वासुदेव हैं, सबप्राणियोंकी निवासभूमि (आधार) हैं, परमशान्त हैं, अति बृहत् हैं;आपको नमस्कार हैं ॥ २९ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंश अध्याय।

पूरुके वंशका विवरण।

श्रीशुक उवाच—पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत ॥
यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंशाश्च जज्ञिरे ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! अब पूरुके वंशका वर्णन करता हूँ, सुनिये।

इस वंशमें तुम्हारा जन्म हुआ है । अनेक राजर्षि और ब्रह्मर्षि पूरुके वंशमें उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ पूरुके पुत्र जनमेजय, उनके प्रचिन्वान्, उनके प्रवीर, उनके मनस्यु, उनके चारुपद, उनके सुद्यु, उनके बहुगव, उनके संयाति, उनके अहंयाति, उनके रौद्राश्व और रौद्राश्वके घृताची अप्सराके गर्भसे ऋतेयु, कुक्षेयु, स्थंडिलेयु, कृतेयु, जलेयु, संततेयु, धर्म्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु और सबसे छोटे वनेयु नाम दश पुत्र उत्पन्न हुए । महाराज ! जैसे दशो इन्द्रियाँ जगत्के आत्मा प्राणके वशमें रहती हैं वैसेही ये दशो पुत्र रौद्राश्वके वशवर्त्ती थे ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ऋतेयुके पुत्र रन्तिभार हुए। रन्तिभारके सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथ नाम तीन पुत्र हुए। अप्रतिरथके पुत्र कण्व और कण्वके मेधातिथि हुए। मेधातिथिसे प्रस्कण्व आदि ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति हुई । रन्तिभारके ज्येष्ठ पुत्रका नाम सुमति था; उनके पुत्र रैभ्य हुए। रैभ्यके पुत्र दुष्यन्त हुए । राजा दुष्यन्त एक समय मृगया (शिकार) करनेके लिये वनमें प्रवेश कर महर्षि कण्वके आश्रममें पहुँच गये । वहाँ पर अपने शरीरकी अलौकिक प्रभासे लक्ष्मीके समान आश्रमको प्रकाशित कर रही एक सुन्दरी रमणी बैठी थी । देवमायाके तुल्य उस युवतीको देखते ही राजा मोहित हो गये, उनका सब मार्गश्रम दूर हो गया और आनन्दकी सीमा न रही । फिर कुछ एक प्रधान योद्धा लोगोंके साथ उस सुन्दरीके निकट जाकर राजाने वार्तालाप किया । कामपीड़ित राजाने हँसते २ मधुर वचनोंमें पूछा कि हे कमलनयनी ! तुम कौन हो ? हे हृदयहारिणी ! तुम किसकी कन्या हो ? तुम निर्जन वनमें अकेले बैठी हुई क्या कर रही हो ? हे सुमध्यमे ! निश्चय तुम किसी क्षत्रिय राजाकी कन्या हो । पूरुवंशमें उत्पन्न राजोंका मन कभी अकर्मकी ओर नहीं झुकता। और मेरा अन्तःकरण तुममें अनुरक्त हो गया है, अतएव तुम ब्राह्मणकन्या नहीं हो ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ शकुन्तला (अर्थात् उसी कन्या)ने कहा--महाराज ! मैं विश्वामित्र ऋषिकी कन्या हूँ—मेरी माता मेनका अप्सरा है । उत्पन्न होतेही मेनका मुझे इसी वनमें छोड़ कर स्वर्गको चली गई थी-इस विषयका अधिक वृत्तान्त महर्षि कण्वजी जानते हैं । हे वीर ! हम आपका क्या सत्कार करें ? हे कमललोचन ! यह आसन लीजिये और हमारी दी हुई सादर पूजाको अंगीकार कीजिये । यहाँ हम मुनियोंके आश्रममें नीवारतण्डुल उपस्थित हैं, भोजन कीजिये और इच्छा हो तो कुछ देर ठहरिये ॥ १३ ॥ १४ ॥ दुष्यन्तने कहा । हे सुभ्रु ! तुम कुशिक वंशमें उत्पन्न हुई हो-तुम्हारा यह आचरण योग्यही है; क्योंकि राजकन्याएँ अपने योग्य वरको पाकर स्वयं वरण करलेती हैं । शकुन्तलाके स्वीकार करनेपर देश, काल और विधिके जाननेवाले राजाने गांधर्व्वविधिसे विवाह कर लिया । अमोघवीर्य्य राजा दुष्यन्तने शकुन्तलाके गर्भाधान करके दूसरे दिन अपने पुरको यात्रा की । यथासमय शकुन्तलाके भी

उस गर्भसे एक महापराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। महर्षि कण्वने वनमें ही उसके सब जातकर्म्म आदि संस्कार किये। राजन्! वह बालक सिंहोंको सहजमें पकड़कर उनके साथ खेलता था ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ प्रमोदमदमाती शकुन्तला भगवान् हरिके अंशकी कलासे उत्पन्न उस अत्यन्त पराक्रमी पुत्रको लेकर वनसे पतिके निकट आई, किन्तु दुर्वासा ऋषिके शापवश राजा दुष्यन्तने पुत्रसहित शकुन्तलाको नहीं पहचाना; अतएव उनको अंगीकार नहीं किया। तब एक आकाशवाणी हुई कि "हे दुष्यन्त! माता तो धौंकनीके समान आधारमात्र है, पुत्र तो पिताका ही होता है, क्योंकि वेदमें लिखा है अपना ही आत्मा पुत्ररूपसे पुनर्जन्म लेता है। इस कारण अपने पुत्रको अंगीकार करके पालन करो, शकुन्तलाका भी अपमान न करना। हे नरदेव! जो कोई वीर्य्याधान करता है उसीका उद्धार पुत्र करता है। तुमने ही वीर्य्याधान किया है-यह शकुन्तलाका कहना है;" इस देववाणीको सभी लोगोंने सुना ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ राजा दुष्यन्तने पुत्रसहित शकुन्तलाको स्वीकार किया। दुष्यन्तका अन्त होनेपर उनके वीर कुमार महायशस्वी भरतजी सम्राट् हुए। महाराज भरत, हरि भगवान्‌का अंशावतार थे; उनकी महिमा महीमण्डलमें सर्वत्र सुन पड़ती है। उनके दाहिने हाथमें चक्र और दोनो पैरोंमें पद्मकोपके चमत्कारमय चिन्ह थे। अधिराज विभु भरतने महाअभिषेक होजानेके बाद गंगातट पर क्रमशः पचपन अश्वमेध यज्ञ किये और ममतासुत भरद्वाजको अपना पुरोधा बना कर अठहत्तर अश्वमेध यज्ञके घोड़े बाँध दिये और उन यज्ञोंके अन्तमें ब्राह्मणोंको दक्षिणामें मनमाना धन दिया। महाराज! उत्तम श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त देशमें भरतके यज्ञीय अग्निका स्थापन हुआ था। उस काष्ठचयन कर्ममें लाखों ब्राह्मणोंको इतनी गायें भरतने दीं कि प्रत्येक ब्राह्मणके भागमें तेरह हजार चौरासी आईं। भरतने इसी प्रकार लगातार तीन हजार तीन सौ अश्वमेध यज्ञ किये जिससे अन्य राजोंके विस्मयकी सीमा नहीं रही। राजा भरत देवतोंके वैभवका भी अतिक्रमण कर गये, क्योंकि वह परमेश्वर हरिको प्राप्त होगये। उन्होने यज्ञसम्बन्धी मष्णार नाम कर्ममें सुवर्णाभरणभूपित श्वेत दाँतवाले मृगजातिके (भद्र, मद्र, मृग आदि दश २ के हाथियोंकी जातियाँ हैं) चौदह नियुत (दसलाखका एक नियुत होता है) गजराज दिये। जैसे हाथ फैला कर कोई स्वर्गको नहीं पा सक्ता वैसे ही राजा भरतके सुदुष्कर कर्म्मोंका करना, जो राजा हो गये हैं, जो हैं और जो होंगे, उन सबके लिये कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव है। उन्होने अश्वमेध यज्ञोंके उपलक्ष्यमें दिग्विजय करते समय किरात, हूण, यवन, पौण्ड्र, कङ्क, खश, शक एवं अन्यान्य जातियोंके म्लेच्छप्राय अब्रह्मण्य अनार्य्य राजोंका विनाश किया। पहले जो प्रवल दानव, देवतोंको जीत कर विजित देवांगनाओंको छीन कर रसातलमें जाकर रहने

लगे थे उनको भी मारकर महात्मा भरतने देवतोंको उनकी स्त्रियाँ देदीं ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ राजन्! महाराज भरतके शासन कालमें स्वर्ग और पृथ्वीसे प्रजागणको चितचाही वस्तुएँ प्राप्त होती थीं। भरतजीकी आज्ञा पृथ्वीमण्डल भरका शासन करती थी; उन्होने सत्ताईस हजार वर्ष तक ऐसा ही साम्राज्यशासन किया। कुछ दिन राज्यभोग करनेके उपरान्त सम्राट् भरतजी लोकपालोंसे अधिक ऐश्वर्य्य, अधिराज—सम्पत्ति, दुर्द्धर्ष सेना और अपने परम प्रिय प्राण तकको अस्थायी जान कर विषयोंसे विरक्त होगये। उनके विदर्भराजकुमारी तीन अनूप और अनुरूप पत्नियाँ थीं। उनमें एक रानीके एक पुत्र हुआ, उसको देख कर भरतने कहा कि 'यह कुमार मेरे अनुरूप नहीं है'। उस समयसे उनके जितने कुमार हुए सबको उन रानियोंने "राजा इसे देख कर कदाचित् कहदें कि 'यह भी हमारे अनुरूप नहीं है' और व्यभिचारिणी समझ कर हमको त्याग करदें"—इस आशंकासे मार २ डाला। इस प्रकार वंशका विनाश होते देख कर अपने अनुरूप पुत्र होनेके लिये महाराज भरतने मरुत्सोम नाम महायज्ञका अनुष्टान किया। उस यज्ञमें मरुत् नामक देवगणने प्रसन्न होकर भरद्वाज नाम पुत्र उनको दिया। एक समय देवगुरु बृहस्पतिजी कामातुर होकर अपने भाईकी गर्भवती पत्नीसे मैथुन करनेमें प्रवृत्त हुए, गर्भस्थित बालकने निवारण किया तब बृहस्पतिने उसको शाप देकर वीर्य्य-त्याग कर दिया। 'पीछेसे स्वामी व्यभिचारिणी कह कर त्याग न करदे,—इस भयसे बृहस्पतिकी भ्रातृपत्नी ममताने जब उस बृहस्पतिके वीर्य्यसे उत्पन्न कुमारको त्याग करनेकी इच्छा की। तब उस नवजात कुमारके नामका निरूपण करते हुए देवगणने यह श्लोक कहा "कि—'हे मूढ़े! इस दूसरे (एकके क्षेत्रमें दूसरेके वीर्य्यसे उत्पन्न) पुत्रका पालन कर, 'और 'हे बृहस्पति! तुम इस 'द्वाज' पुत्रका भरण करो'—ऐसा कह कर माता (ममता) और पिता (बृहस्पति) दोनो चले गये अतएव इस बालकका नाम 'भरद्वाज' है"। महाराज! देवतोंके ऐसा कहनेपर भी बृहस्पतिके भाई उतथ्यने उस व्यभिचारजनित बालकको वितथ अर्थात् व्यर्थ (क्योंकि व्यभिचारसे उत्पन्न पुत्रका पिण्डदान उस पुरुषको नहीं मिलता जिसके क्षेत्रमें वह उत्पन्न हुआहो) जान कर वहीं छोड़ दिया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम् ॥
व्यसृजन्मरुतोबिभ्रन्दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ॥ ३९ ॥

मरुद्गणने उस कुमारका पालन किया और जिस समय भरत राजाका वंश वितथ (व्यर्थ या विनष्ट) हो रहा था तब उनको देदिया ॥ ३९ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंश अध्याय ।

रन्तिदेव और अजमीढ़ आदि राजोंकी कीर्तिका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच–वितथस्य सुतो मन्युर्बृहत्क्षत्रो जयस्ततः ॥
महावीर्यो नरो गर्गः संकृतिस्तु नरात्मजः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा । राजन्! (भरतवंशके वितथ अर्थात् निष्फल होनेका उपक्रम होते देख कर मरुद्गणने भरद्वाजको दिया, इस लिये उनका नाम 'वितथ' होगया । ब्राह्मण होने पर भी भरद्वाजजी भरतके दत्तक पुत्र हुए) वितथके पुत्र मन्यु हुए । मन्युके बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य्य, नर एवं गर्ग नाम पाँच पुत्र उत्पन्न हुए । नरके पुत्र संकृति हुए और संकृतिके गुरु और रन्तिदेव नाम दो पुत्र हुए । महाराज ! रन्तिदेवकी महिमा स्वर्ग और पृथ्वी—दोनो लोकोंमें गाई जाती है । वह अपने धनको सर्वदा बाँटा करते थे । वह स्वयं भूखे रहने पर भी पायेहुए अन्न या धनको उसी समय अर्थियोंको देडालते थे । राजा रन्तिदेव सम्पूर्ण सम्पत्तिका दान करडालनेसे निर्द्धन होकर परिवारसहित भूखोंके मारे अवसन्न (शिथिल) होपड़े । अड़तालीस दिन तक भोजनकी कौन कहै जल भी पीनेको नहीं मिला । सब परिवार अन्नके अभावसे कष्ट पाने लगा और भूख व प्यासके वेगसे निर्बल राजाका शरीर काँपने लगा । उन्चासवें दिन प्रातः–काल घी पड़ी खीर, हलवा और जल राजाको मिला । राजा भोजन करना ही चाहते थे कि एक ब्राह्मण अतिथि आगया । सर्वत्र हरिको देखनेवाले राजाने आदरसे श्रद्धापूर्वक वह मिला हुआ अन्न ब्राह्मणको बाँट दिया और भोजन करके ब्राह्मण चला गया । उसके बाद बचा हुआ अन्न परिवारको बाँट कर राजा खाने जाते थे कि एक शूद्र आकर उनका अतिथि हुआ । रन्तिदेवने भगवान् हरिका स्मरण करते हुए बचा हुआ अन्न उसको भी बाँट दिया ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ ७ ॥ भोजन करके वह शूद्र अतिथि चला गया तब बहुतसे कुत्ते साथ में लिये एक और व्यक्ति अतिथि होकर उपस्थित हुआ और उसने कहा—राजन्! मेरे ये कुत्ते और मैं भूखा हूँ—भोजन दीजिये ॥ ८ ॥ राजाने उसका भी सम्मान किया और समादरपूर्वक बचाहुआ अन्न कुत्तों सहित उस अतिथिको देकर प्रणाम किया ॥ ९ ॥ एक मनुष्यकी प्यास जिससे बुझ सके–इतना जल केवल बच रहा था; उसीको राजा पीना चाहते थे कि अकस्मात् एक चाण्डाल वहाँ आया और उसने दीन स्वरसे प्रार्थना की कि महाराज ! मैं बहुत ही श्रमित हूँ, मुझ अपवित्र नीचको पीनेके लिये थोड़ा सा जल दीजिये ॥ १० ॥ उस व्यक्तिके

ऐसे कृपण वाक्य सुन कर और उसको थकाहुआ जान कर रन्तिदेवको बड़ी ही दया आई और उन्होने ये अमृतमय वचन कहे कि मैं परमेश्वरके निकट अणिमा आदि आठ सिद्धियोंसे युक्त गति अथवा मुक्तिकी कामना नहीं करता; मेरी यही प्रार्थना है कि मैं ही सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें स्थित होकर दुःख भोग करूँ, जिससे उन सबका दुःख दूर हो जाय । इस व्यक्तिके प्राण जल विना निकल रहे हैं; यह जीवनकी रक्षाके लिये दीन होकर मुझसे जल माँग रहा है । इसको यह जल देनेसे मेरी भूख, प्यास, श्रान्ति, चक्कर आना, दीनता, क्लान्ति, शोक, विषाद और मोह आदि सब ही निवृत्त हो जायँगे । यह कह कर स्वाभाविक दयालु राजा रन्तिदेवने स्वयं प्यासके मारे मृतप्राय रहकर भी उस चांडालको वह जल देदिया । फलकी कामना करनेवालोंको फलदाता त्रिभुवननाथ ब्रह्मा विष्णु और महेश ही महाराज रन्तिदेवके धैर्य्यकी परीक्षा लेनेको मायाके द्वारा क्रमशः ब्राह्मणादिरूप धरकर आये थे । तदनन्तर राजाका धैर्य्य देख कर तीनो देव परम सन्तुष्ट हुए और उन्होंने अपना २ यथार्थ रूप धारण कर लिया ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ महाराज रन्तिदेवने उन देवोंको देख कर प्रणाम किया और कोई भी वर नहीं माँगा । क्योंकि उन्होंने संग और स्पृहा त्याग कर मनको केवल भगवान् वासुदेवमें लगा रक्खा था । रन्तिदेव नरपतिने अन्य किसी (ब्रह्मा आदि) से कुछ न माँग कर चित्तको ईश्वरमें लगा दिया, इस कारण तन्मय अवस्था पाजानेसे यह गुणमयी माया उनके निकट स्वप्नके समान अन्तर्हित होगई । रन्तिदेवके परिवारके सब जन उनके संगके प्रभावसे नारायणपरायण होकर योगियोंकी गतिको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ गर्गके पुत्र शिनि हुए । शिनिके पुत्र गार्ग्य हुए । गार्ग्यजी क्षत्रियकुलमें जन्म पाकर भी कर्म करके ब्राह्मण हो गये । महावीर्य्य गार्ग्यके पुत्र दुरितक्षय, उनके त्रय्यारुणि, कवि और पुष्करारुणि नाम तीन पुत्र हुए । ये तीनो कर्म्म करके ब्राह्मण होगये । बृहत्क्षत्रके पुत्र हस्ती हुए, जिन्होने हस्तिनापुर बसाया । हस्तीके अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ नाम तीन पुत्र हुए । अजमीढके वंशमें प्रियमेधा आदि ब्राह्मणोंका जन्म हुआ । अजमीढके बृहदिषु नाम एक क्षत्रिय पुत्र भी हुआ । बृहदिषुके पुत्र बृहद्धनु, उनके बृहत्काय, उनके जयद्रथ, उनके विषद, उनके श्येनजित् हुए । श्येनजित्के रुचिराश्व, दृढहनु, काश्य और वत्स नाम चार पुत्र हुए । रुचिराश्वके पुत्र पार और पारके पुत्र पृथुसेन हुए । पारके नीप नाम एक पुत्र और भी था । नीपके एक सौ पुत्र हुए । महात्मा नीपके वीर्य्य द्वारा मेरी (शुकदेवकी) कन्या कृत्वीके गर्भमें महायोगी ब्रह्मदत्तका जन्म हुआ । ब्रह्मदत्त योगीश्वरने अपनी

भार्य्या सरस्वती देवीके गर्भसे विष्वक्सेनको उत्पन्न किया। विष्वक्सेनने योगी जैगीषव्यके उपदेशसे योगशास्त्रका प्रणयन किया। विश्वक्सेनके पुत्र उदक्सेन और उनके भल्लाट हुए। इतने राजा बृहदिपुवंशीय हुए ॥१९॥२०॥२१॥२२॥ द्विमीढके पुत्र यवीनर, उनके कृतिमान्, उनके सत्यधृति, उनके दृढनेमि, उनके सुपार्श्व, उनके सुमति, उनके सन्नतिमान्, उनके कृती हुए। कृतीने हिरण्यनाभके निकट योगशिक्षा पाकर प्राच्यसामकी छः संहिताओंको विभाजित करके अपने शिष्योंको उनका अध्ययन कराया। कृतीके उग्रायुध, उनके क्षेम्य, उनके सुवीर, उनके रिपुंजय, उनके वहुरथ हुए। पुरुमीढ़के कोई सन्तान नहीं हुआ। अजमीढ़की एक नलिनी नाम भार्य्या थी, उसके गर्भसे नील नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ। नीलके शान्ति, उनके सुशान्ति, उनके पुरुज, उनके अर्क उनके भर्म्याश्व हुए। भर्म्याश्वके मुद्गल, यवीनर, बृहद्विश्व, काम्पिल्य एवं सञ्जय नाम पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। भर्म्याश्वने एक समय कहा कि—"ये मेरे पाँचो पुत्र पाँचो विषयोंकी रक्षा करनेको भली भाँति समर्थ हैं"। इसी कारण तदुपरान्त उनकी पञ्चाल संज्ञा होगई। मुद्गलसे मौद्गल्यगोत्रीय ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति हुई। भर्म्याश्वतनय मुद्गलके और भी दो यमज सन्तान हुए। पुत्रका नाम दिवोदास और कन्याका नाम अहल्या हुआ। अहल्याके गर्भसे गौतम ऋषिके वीर्य्य द्वारा महात्मा शतानन्दका जन्म हुआ। शतानन्दके पुत्र सत्यधृति हुए; वह धनुर्वेदके वड़े भारी पण्डित थे। सत्यधृतिके पुत्र शरद्वान् हुए। उर्वशी अप्सराको देख कर कामातुर राजा शरद्वान्का वीर्य्य शरस्तम्ब (पतावरके झुंड) में गिर पड़ा; उससे यमज सन्तान हुए। राजा शंतनु मृगया (शिकार) करते हुए अचानक उधरसे आ निकले और वहाँसे उन दोनो वालकोंको कृपापूर्वक लेआये ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥३१॥३२॥३३॥३४॥३५॥

कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्यभवत्कृपी ॥ ३६ ॥

वालकका नाम कृप (कृपाचार्य्य) और कन्याका नाम कृपी हुआ। कृपीका विवाह महारथी द्रोणाचार्य्य के साथ हुआ ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंश अध्याय ।

जरासंध, युधिष्ठिर और दुर्य्योधन आदिका विवरण ।

श्रीशुक उवाच—मित्रेयुश्च दिवोदासाच्च्यवनस्तु ततो नृप ॥
सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जन्तुजन्मकृत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले । हे राजन्! दिवोदासके पुत्र मित्रायु, उनके च्यवन, उनके सुदास, उनके सहदेव, उनके सोमक हुए ॥१॥ सोमकके सौ पुत्र हुए; उनमें बड़ेका नाम जंतु और सबसे छोटेका नाम पृषत् हुआ । पृषत्के सर्वसम्पत्तिसम्पन्न राजा द्रुपद उत्पन्न हुए। द्रुपदके द्रौपदी नाम कन्या और धृष्टद्युम्न आदि पुत्र उत्पन्न हुए। धृष्टद्युम्नके पुत्र धृष्टकेतु हुए। इतने ये भर्म्याश्ववंशके पाञ्चालसंज्ञक राजा हुए । अजमीढके ऋक्ष नाम एक पुत्र और था। ऋक्षके पुत्र सम्वरण हुए। सम्वरणका विवाह सूर्य्यकी कन्या तपतीके साथ हुआ, और उसके गर्भसे कुरुक्षेत्रपति महाराज कुरु उत्पन्न हुए । कुरुके परीक्षित् ,सुधनु, जन्हु और निषध नाम चार पुत्र हुए । सुधनुके पुत्र सुहोत्र, उनके कृती हुए । कृतीके पुत्र उपरिचर वसु हुए। वसुके बृहद्रथ, कुशाम्ब, मत्स्य, प्रत्यग्र एवं चेदिप आदि पुत्र हुए। ये सब चेदिदेशके राजा हुए ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ बृहद्रथके पुत्र कुशाग्र, उनके पुत्र ऋषभ, उनके पुत्र सत्यहित, और उनके पुत्र जन्हु हुए ॥ ७ ॥ महाराज! बृहद्रथकी दूसरी रानीके एक मरा पुत्र हुआ—उसके शरीरके बीचसे अलग २ दो खंड थे। रानीने मृत पुत्रको बाहर महलके फिकवा दिया। उधरसे आरही जरा राक्षसीने लीलापूर्वक उन दोनो खंडोंको जोड़ दिया और कहा कि "जीवित हो, जीवित हो" । वह बालक जी उठा और उसका नाम जरासन्ध हुआ । जरासंधके पुत्र सहदेव हुए । सहदेवके पुत्र सोमापि, उनके श्रुतश्रवा हुए। कुरुके पुत्र परीक्षित्के कोई पुत्र नहीं हुआ और जन्हुके पुत्र सुरथ हुए। सुरथके पुत्र विदूरथ, उनके सार्वभौम, उनके जयसेन, उनके राधिक, उनके अयुतायु, उनके अक्रोधन, उनके देवातिथि, उनके ऋष्य, उनके दिलीप और उनके प्रतीप हुए। प्रतीपके देवापि, शन्तनु और वाल्हीक नाम तीन पुत्र हुए। उनमें ज्येष्ठ देवापि पिताका राज्य छोड़कर वनको चले गये; मँझले पुत्र शन्तनुजी राजा हुए। पूर्वजन्ममें शन्तनुका नाम महाभिष था । शन्तनुजी जिस वृद्धके शरीरमें हाथ लगा देते वह जवान होजाता और उसे परम शान्ति प्राप्त होती, इसी कर्मसे उनका नाम शन्तनु पड़ा। एक समय शन्तनुके राज्यमें बारह वर्ष तक वर्षा नहीं हुई। तब राजाने घबड़ाकर ब्राह्मणोंसे अनावृष्टिका कारण पूछा। ब्राह्मणोंने कहा—महाराज!

बड़े भाईके रहते राज्यभोग करनेके कारण आप 'परिवेत्ता' हो गये हैं। पुरराष्ट्रकी भलाईके लिये आप शीघ्र बड़े भाईको लाकर उनके हाथमें राज्यशासन देदीजिये ॥८॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥१५॥ ब्राह्मणोंके यों कहने पर शन्तनुने बड़े भाईसे राजा होनेके लिये अनुरोध किया। किन्तु इससे पहले ही शन्तनुके मंत्रीने कुछ ब्राह्मणोंको उनके बड़े भाई देवापिके पास भेज दिया था। उन ब्राह्मणोंके स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये कहे गये पाखण्डमतपोषक वाक्योंसे मोहित एवं वेदमार्गसे भ्रष्ट देवापि वेदकी निंदा करने लगे। वेदकी निंदा करनेके कारण पतित होजानेसे देवापि राज्यपद पानेके अधिकारी नहीं रहे। अतएव उसके बाद शन्तनुके राज्य करनेमें कोई दोष नहीं रहा और समय पर वर्षा होने लगी। तबसे योगी देवापि योगावलम्बन किये कलापग्राममें अवस्थित हैं। कलियुगमें जब चन्द्रवंशका विनाश होने लगेगा तब सत्ययुगके प्रारंभकालमें वह बिवाह करके चन्द्रवंशका नाश न होने देंगे। बाल्हीकके पुत्र सोमदत्त हुए और उनके भूरि, भूरिश्रवा एवं शल नाम तीन पुत्र हुए। शन्तनुके गंगादेवीके गर्भसे आत्मज्ञानी भीष्मपितामहका जन्म हुआ। महात्मा भीष्मजी सब प्रकारके धर्मोंके ज्ञाता, श्रेष्ठ, महाभागवत, विद्वान् एवं वीरजनोंमें अग्रणी थे—उन्होने संग्राम करके परशुरामजीको भी प्रसन्न कर दिया था। शन्तनुके दासकन्या सत्यवतीके गर्भसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य्य नाम दो पुत्र और भी हुए। चित्राङ्गदको चित्राङ्गद नाम गन्धर्वने युद्धमें मारडाला। उपरिचर वसुके वीर्य्य द्वारा मत्स्यगर्भसे उत्पन्न एवं मल्लाहोंके यहाँ पली हुई सत्यवतीके गर्भसे (कुमारी दशामें ही) पराशर ऋषिके वीर्य्यसे भगवान् हरिका अंशावतार महर्षि वेदव्यासजी उत्पन्न हुए, जिन्होने वेदके विभाग किये। मैं उनका पुत्र हूँ एवं मैंने उनसे यह भागवत शास्त्र पढ़ा है। मुझमें पिताके समान सभी गुण थे, अतएव भगवान् व्यासजीने अपने शिष्य पैल आदिको न देकर परमगुप्त यह भागवतशास्त्र मुझकोही पढ़ाया। उपर्युक्त विचित्रवीर्य्यने काशिराजकी अम्बा और अम्बालिका नाम दो कन्याओंसे विवाह किया। इन दोनो कन्याओंको भीष्मजी स्वयम्वरसे बलपूर्वक हरलाये थे। दोनो स्त्रियोंमें अत्यन्त आसक्त होनेके कारण कुछ ही कालमें विचित्रवीर्य्यको दुस्साध्य यक्ष्मा रोग हो गया, जिससे वह अकालमें ही कालके गालमें चले गये। विचित्रवीर्य्यके सहोदर भाई भगवान् वेदव्यासने माताके नियोग(आज्ञा)से विचित्रवीर्य्यके क्षेत्र (रानियों)में धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर नाम तीन पुत्र उत्पन्न कर दिये। राजन्! धृतराष्ट्रके वीर्य्य द्वारा गान्धारीके गर्भसे दुर्य्योधन आदि एक सौ पुत्र और दुःशला नाम कन्या उत्पन्न हुई ॥ १६ ॥ १७॥ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ पाण्डु शापके कारण मैथुनव्यापारसे वञ्चित रहे। उनकी पत्नी कुन्तीके धर्म्म, इन्द्र और वायुके

अंशसे युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम नाम तीन महारथी पुत्र उत्पन्न हुए एवं पाण्डुकी दूसरी रानी माद्रीके अश्विनीकुमारके अंशसे नकुल और सहदेव नाम दो परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुए। इन्हीं पाँचो पाण्डवोंकी पत्नी द्रौपदीजी हुईं। युधिष्ठिरादि पाँचो पाण्डवोंके द्रौपदीके गर्भसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। वे तुम्हारे पूर्वज पितर हैं। उनके नाम ये हैं—युधिष्ठिरसे प्रतिविंध्य, भीमसे श्रुतसेन, अर्जुनसे श्रुतकीर्त्ति, नकुलसे शतानीक एवं सहदेवसे श्रुतकर्म्माका जन्म हुआ। महाराज! पाण्डवोंके द्रौपदीके सिवा और भी स्त्रियाँ थीं और उनमें कुछ पुत्र भी उत्पन्न हुए। युधिष्ठिरके पौरवीके गर्भसे देवक हुए, भीमसेनके हिडिम्बा राक्षसीके गर्भसे घटोत्कच और कालीके गर्भसे सर्वगत उत्पन्न हुए, सहदेवके पर्वतकन्या विजयाके गर्भसे सुहोत्र हुए, नकुलके करेणुमतीके गर्भसे नरमित्र उत्पन्न हुए एवं अर्जुनके उलूपीके गर्भसे इरावान् और मणिपुरके राजाकी कन्याके गर्भसे बभ्रुवाहन एवं सुभद्राके गर्भसे परम प्रतापी तुम्हारे पिता अभिमन्यु उत्पन्न हुए। बभ्रुवाहनके नानाने इस प्रतिज्ञा पर अपनी कन्या अर्जुनको दी थी कि उसका पुत्र हम लेलेंगे, इस लिये बभ्रुवाहन अपने नानाके ही वंशमें रहे। अभिमन्यु, सब कर्णादि अतिरथ वीरोंको नीचा दिखानेवाले महावीर योद्धा थे। अभिमन्युके उत्तराके गर्भसे तुम्हारा जन्म हुआ। राजन्! अश्वत्थामा द्वारा प्रेरित ब्रह्मास्त्रके तेजसे कुरुवंशका विनाशही हो चुका था—गर्भमेंही तुम्हारे प्राणोंका अन्त हो चुका था—उस समय कृष्णचन्द्रके प्रभावसे ही जीवनसहित तुम यमके मुखसे मुक्त हुए ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे तात! तुम्हारे इस समय जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन एवं पराक्रमी उग्रसेन नाम चार पुत्र हैं ॥ ३५ ॥ तक्षकके विषसे तुम्हारे शरीरपातका वृत्तान्त जान कर जनमेजय कोपके आवेशसे सर्प्पयज्ञका अनुष्ठान करके यज्ञकुंडमें अनेक सर्पोंका हवन करेंगे ॥ ३६ ॥ फिर जनमेजय दिग्विजय करके अश्वमेध यज्ञ एवं कलषके पुत्र तुर नाम ऋषिको आचार्य्य बना कर अन्यान्य अनेक महायज्ञ करेंगे ॥ ३७ ॥ जनमेजयके पुत्र शतानीक होंगे। वह याज्ञवल्क्य योगेश्वरके निकट वेदपाठ करके क्रियाज्ञान और शौनक ऋषिसे आत्मज्ञान एवं कृपाचार्य्यसे अस्त्रज्ञान प्राप्त करेंगे ॥ ३८ ॥ शतानीकके पुत्र सहस्रानीक उनके अश्वमेधज, उनके असीमकृष्ण, उनके नेमिचक्र होंगे ॥ ३९ ॥ हस्तिनापुर जब यमुनामें डूंब जायगा तब वह कौशाम्बी नगरीमें सुखसे वास करेंगे। नेमिचक्रके पुत्र उप्त, उनके चित्ररथ, उनके शुचिरथ, उनके वृष्टिमान्, उनके सुषेण, उनके महीपति, उनके सुनीथ, उनके नृचक्षु, उनके सुखीनल, उनके पारिप्लव, उनके सुनय, उनकें मेधावी, उनके नृपञ्जय, उनके दूर्व, उनके तिमि, उनके बृहद्रथ, उनके सुदास, उनके शतानीक, उनके दुर्दमन,

उनके महीनर, उनके दण्डपाणि, उनके निमि और निमिके क्षेमक उत्पन्न होंगे। ब्राह्मण और क्षत्रियोंको उत्पन्न करनेवाला और देवर्षियों द्वारा आदरको प्राप्त यह वंश कलियुगमें क्षेमक राजा तक चलेगा। हे महाराज! मगधवंशमें जो राजा आगे होंगे उनका विवरण सुनिये। जरासन्धतनय सहदेवके पुत्र मार्जारि, उनके श्रुतश्रवा, उनके अयुतायु, उनके निरमित्र, उनके सुनक्षत्र, उनके बृहत्सेन, उनके कर्म्मजित्, उनके श्रुतञ्जय, उनके विप्र, उनके शुचि, उनके क्षेम, उनके सुव्रत, उनके धर्मसूत्र, उनके सम, उनके द्युमत्सेन, उनके सुमति, उनके सुबल ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजिद्यद्रिपुंजयः ॥
बार्हद्रथाश्च भूपाला भाव्याः साहस्रवत्सरम् ॥ ४९ ॥

उनके सुनीथ, उनके सत्यजित्, उनके विश्वजित् और उनके रिपुंजय होंगे। बृहद्रथवंशीय राजागण कलियुगमें सहस्रवर्ष पर्य्यन्त रहेंगे—फिर इस वंशका लोप हो जायगा ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंश अध्याय।

अनु, द्रुह्यु, तुर्वसु व यदुके वंशोंका विवरण।

श्रीशुक उवाच—अनोः सभानरश्चक्षुः परेक्षुश्च त्रयः सुताः ॥
सभानरात्कालनरः सृञ्जयस्तत्सुतस्ततः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! अनुके सभानर, चक्षु और परेक्षु नाम तीन पुत्र हुए। सभानरके कालनर, उनके सृंजय, उनके जनमेजय, उनके महाशील, उनके महामना और उनके उशीनर तथा तितिक्षु नाम दो पुत्र हुए ॥ १ ॥ २ ॥ उशीनरके शिवि, वन, शमि, और दक्ष नाम चार पुत्र हुए। शिविके वृषदर्भ, सुवीर, मद्र और केकय नाम चार पुत्र हुए। तितिक्षुके पुत्र उशद्रथ हुए, उशद्रथके हेम, उनके सुतपा, उनके बलि उत्पन्न हुए। बलिके क्षेत्र(रानी)में दीर्घतमा ऋषिके वीर्यसे अंग, वंग, कलिंग, शुम्भ, पुंड्र, उड्र संज्ञक नरपतिगण उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ उन्होने पूर्वभारतमें अपने २ नामसे छः राज्य स्थापित किये। अंगके पुत्र खलपान, उनके दिविरथ, उनके धर्म्मरथ और उनके चित्ररथ हुए। चित्ररथके कोई सन्तान नहीं हुआ। चित्ररथका दूसरा नाम रोमपाद था। रोमपादसे और कोशलेश दशरथसे सखाभाव

था। दशरथने सखाको अपुत्र देख अपनी शान्ता नाम कन्या उनको दे डाली। हरिणीतनय ऋष्यशृंग मुनिने शान्तासे विवाह किया। ऋष्यशृंगमुनि संसारसे बिल्कुल अपरिचित थे; एक समय रोमपाद राजाके देशमें कुछ काल तक इन्द्रने जल नहीं बरसाया, तब राजाकी आज्ञासे वेश्याएँ तपोवनमें जाकर गीत, वाद्य, नाट्य इत्यादि कौतुकोंसे एवं अपने विभ्रमविलास, आलिंगन और वार्त्तालाप आदिसे ऋष्यशृंगको मोहितकर अपने साथ रोमपादके राज्यमें ले आईं। ऋष्यशृंगके आतेही जलकी वर्षा हुई। तदनन्तर ऋष्यशृंगजीने निःसन्तान राजा रोमपादको इन्द्रयाग कराकर पुत्र प्रदान किया एवं महाराजा दशरथने भी इन्हींकी सहायतासे यज्ञ करके राम, लक्ष्मण आदि चार पुत्र पाये। रोमपादके पुत्र चतुरंग, उनके पृथुलाक्ष, और उनके बृहद्रथ, बृहत्कर्म्मा एवं बृहद्भानुनाम तीन पुत्र उत्पन्न हुए। बृहद्रथके पुत्र बृहन्मना, उनके जयद्रथ, उनके विजय हुए। विजयके सम्भूति नाम भार्यामें धृति उत्पन्न हुए। धृतिके पुत्र धृतव्रत, उनके सत्कर्म्मा, उनके अधिरथ हुए। अधिरथने ही गंगामें संदूकके भीतर बंद-बहे जा रहे कर्णको पाया और स्वयं अपुत्र होनेके कारण कर्णको अपना (ईश्वरप्रदत्त) पुत्र मान लिया। कर्ण वास्तवमें कुन्तीके पुत्र हैं; (कुन्तीने कन्या-अवस्थामें ही दुर्वासाके मंत्रकी परीक्षाके लिये सूर्यका आवाहन किया। अमोघवीर्य सूर्य्यके अंश द्वारा कुन्तीके कानसे कर्णका जन्म हुआ, किन्तु कुन्तीने कलंकके डरसे कर्णको सन्दूकमें बंदकर गंगामें बहादिया) कर्णके पुत्र वृषकेतु हुए। द्रुह्युके पुत्र बभ्रु, उनके सेतु उनके आरब्ध, उनके गान्धार, उनके धर्म्म, उनके धृत, उनके दुर्मद, और उनके प्रचेता हुए। प्रचेताके सौ पुत्र हुए। वे सब उत्तर दिशामें म्लेच्छोंके अधिपति हुए। तुर्वसुके पुत्र वह्नि, उनके भर्ग, उनके भानुमान्, उनके त्रिभानु, उनके उदारस्वभाववाले करन्धम, और उनके मरुत्त हुए। मरुत्तके कोई पुत्र नहीं हुआ, इसलिये उन्होने पूरुवंशीय दुष्यन्तको गोद ले लिया, किन्तु राज्यकी अभिलाषासे दुष्यन्त फिर पूरुवंशमें मिलगये। हे नरवर, अब इसके बाद ययातिके बड़े पुत्र यदुका परमपवित्र एवं मानवमण्डलीके सब प्रकारके कलुष मिटानेवाला वंश कहताहूँ। इस यादववंशमें भगवान् परमात्मा मनुष्यरूपसे अवतीर्ण हुए हैं। इसका विवरण सुननेसे मनुष्योंके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। यदुके सहस्रजित्, क्रोष्टा, अनल एवं रिपु नाम चार पुत्र हुए। सहस्रजित्के पुत्र शतजित् और उनके महाहय, रेणुहय एवं हैहय नाम तीन पुत्र हुए। हैहयके पुत्र धर्म, उनके नेत्र, उनके कुन्ति, उनके सोहञ्जि, उनके महिष्मान्, और उनके भद्रसेन हुए ॥ ६ ॥७॥८॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥१५॥ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ भद्रसेनके दुर्म्मद और धनक नाम दो पुत्र हुए। धनकके कृतवीर्य्य, कृताग्नि, कृतवर्म्मा और कृतौजा नाम चार पुत्र हुए। कृतवीर्य्यके पुत्र सप्तद्वीपपति सहस्रबाहु अर्जुन हुए। इन अर्जुनने भगवान्के अंशावतार परमहंस दत्तात्रेयजीसे योगविद्या पाई थी। अन्य कोई राजा—

यज्ञ, दान, तप, योग, वेदाध्ययन, शौर्य्य, वीर्य्य और दया आदिमें महात्मा अर्जुनकी समता नहीं कर सक्ता। इन अव्याहतपराक्रमयुक्त अर्जुनने पचासी हजार वर्षपर्यन्त निरन्तर छहों इन्द्रियोंके विषयसुखका उपभोग किया; तथापि भण्डार और कोष अक्षय ही बना रहा। अर्जुनके एक सहस्र पुत्र थे, उनमें परशुरामसे संग्राम करके सब मरगये; केवल जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु एवं ऊर्जित ये पाँच बचे। जयध्वजके पुत्र तालजंघ हुए और तालजंघके सौ पुत्र हुए। ये सब तालजंघनामक क्षत्रिय महाराजा सगरके हाथों मारे गये। तालजंघके सौ पुत्रोंमें बड़ेका नाम वीतिहोत्र था। मधुके पुत्रका नाम वृष्णि था। मधुके पुत्र एक सौ थे, उनमें वृष्णि सबसे बड़े थे। राजन्! यदु, मधु एवं वृष्णिके नामसे इस वंशमें यादव, माधव और वार्ष्णेय नाम कई अवान्तरभेद होगये। यदुके पुत्र क्रोष्टाके पुत्र वृजिनवान् हुए, उनके स्वहित, उनके विशद्गु, उनके चित्ररथ, उनके महायोगी महाभाग शशविन्दु हुए। महाराज शशविन्दु श्रेष्ठ चतुर्दश रत्नोंके* स्वामी एवं अपराजित राजचक्रवर्ती थे॥२३॥२४॥२५॥२६॥२७॥२८॥२९॥३०॥३१॥ शशविन्दुके दस हजार रानियाँ थीं–प्रत्येक पत्नीमें एक २ लक्ष सन्तान उत्पन्न होनेसे उनके सब सौ करोड़ सन्तान हुए। उन सब पुत्रोंमें पृथुश्रवा, पृथुकीर्ति, पुण्ययशा इत्यादि छः प्रधान पुत्र थे। पृथुश्रवाके पुत्र धर्म, उनके उशना हुए। उशनाने सौ अश्वमेध किये। उशनाके पुत्र रुचक और उनके पुरुजित्, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु एवं ज्यामघ नाम पाँच पुत्र हुए। ज्यामघके कोई पुत्र न था, तथापि उन्होने अपनी भार्य्या शैब्याके भयसे दूसरा विवाह नहीं किया। वह एक समय शत्रुके भवनसे भोज्या नाम एक कन्या हरलाये। उस कन्याको स्वामीके रथ पर देखकर शैब्याने कुपित होकर पतिसे कहा कि "यह कौन है? किसको रथ पर बिठाके लाये हो?"। ज्यामघने भयके मारे स्त्रीसे कहा कि "यह तुम्हारे पुत्रकी स्त्री होगी"। शैब्याने विस्मित होकर कहा– "मैं तो वंध्या (बाँझ) हूँ, मेरे कोई सौत भी नहीं है; तब यह मेरे पुत्रकी वधू कैसे होगी?"। ज्यामघने कहा–"रानी! तुम जो पुत्र उत्पन्न करोगी उसकी यह स्त्री होगी" ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ६६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अन्वमोदन्त तद्विश्वेदेवाः पितर एव च ॥
शैब्या गर्भमधात्काले कुमारं सुषुवे शुभम् ॥
स विदर्भ इति प्रोक्त उपयेमे स्नुषां सतीम् ॥३९॥

---

* मार्कण्डेयपुराणमें महाराजोंके ये १४ रत्न कहेहैं- १ गजरत्न, २ वाजिरत्न, ३ रथरत्न, ४ स्त्रीरत्न, ५ निधिरत्न, ६ माल्यरत्न, ७ वस्त्ररत्न, ८ द्रुमरत्न ९ शक्तिरत्न, १० पाशरत्न, ११ मणिरत्न, १२ छत्ररत्न, १३ चामररत्न और १४ विमानरत्न।

महाराज! विश्वेदेवा और पितृगण राजाके इस वाक्य पर आनन्दित हुए। तदनन्तर शैब्याके गर्भ रहा एवं यथोचित समय पर उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस कुमारका नाम विदर्भ हुआ और विदर्भके साथ उसी भोज्याका विवाह हुआ ॥३९॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंश अध्याय।

विदर्भके पुत्रोंके वंशका वर्णन।

श्रीशुक उवाच–तस्यां विदर्भोऽजनयत्पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ ॥
तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनन्दनम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। महाराज! विदर्भके उसी पत्नीके गर्भसे कुश, क्रथ तथा विदर्भकुलनन्दन रोमपाद उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ रोमपादके पुत्र बभ्रु, उनके कृति, उनके उशिक, उनके चेदि और उनसे चैद्य आदि राजा उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ क्रथके पुत्र कुन्ति, उनके वृष्णि, उनके निर्वृति, उनके दशार्ह और उनके व्योम हुए ॥ ३ ॥ व्योमके जीमूत, उनके विकृति, उनके भीमरथ, उनके नवरथ, उनके दशरथ ॥ ४ ॥ उनके शकुनि, उनके करंभि, उनके देवरात, उनके देवक्षत्र, उनके मधु, उनके कुरुवश ॥ ५ ॥ उनके अनु, उनके पुरुहोत्र, उनके आयु और उनके सात्त्वत हुए। हे आर्य्य! सात्त्वतके भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अन्धक एवं महाभोज नाम सात पुत्र हुए। भजमानके एक स्त्रीमें निम्लोचि, किंकण एवं धृष्टि और दूसरी स्त्रीमें शतजित्, सहस्त्रजित् और अयुतजित् ये छः पुत्र हुए ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ देवावृधके पुत्र बभ्रु हुए। इन पिता और पुत्रके प्रसंगमें कविगणने ये दो श्लोक कहे हैं। यथा—"हम जैसा इनको दूरसे सुनते हैं वैसा ही निकट जाकर देखपाते हैं। बभ्रुजी मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं और देवावृध देवतोंके समान हैं। उन्नासी (७९) हजार मनुष्य बभ्रु और देवावृधके उपदेशसे मुक्त होगये"। सात्त्वतके पुत्र महाभोज अत्यन्त धर्म्मात्मा थे। उनके वंशमें भोजवंशीय यादव हुए। हे परन्तप! सात्वततनय वृष्णिके दो पुत्र थे— सुमित्र और युधाजित्। युधाजित्के शिनि और अनमित्र हुए। अनमित्रके पुत्र निघ्न हुए। और निघ्नके सत्राजित् प्रसेन हुए। हे राजन्! अनमित्रके शिनि नाम एक और पुत्र थे, उनके पुत्र सत्यक हुए। सत्यकके पुत्र युयुधान (सात्यकि) हुए; उनके जय, उनके कुणि, उनके युगंधर हुए। अनमित्रके वृष्णि नाम और एक पुत्र थे; उनके पुत्र श्वफल्क हुए। उनके गान्दिनीके गर्भसे अक्रूरजी और आसंग, सारमेय, मृदुर,

मृदुरि, गिरि, धर्म्मवृद्ध, सुकर्म्मा, क्षत्रोपेक्ष, अरिमर्द्दन, शत्रुघ्न, गंधमाद एवं प्रतिबाहु नाम बारह पुत्र हुए। इनके सुचारा नाम एक बहन भी थी। अक्रूरके देववान् और उपदेव नाम दो पुत्र हुए। चित्ररथके पृथु, विदूरथ आदि बहुतसे पुत्र हुए। ये सब वृष्णिवंशीय हैं। अन्धकके कुकुर, भजमान, शुचि, कम्बल और बर्हिष ये चार पुत्र हुए। कुकुरके पुत्र वह्नि, उनके विलोमा, उनके कपोतरोमा, और उनके अणु हुए। अणुसे और तुम्बुरु गन्धर्वसे मित्रता थी। अणुके पुत्र अंधक, उनके दुन्दुभि, उनके अविद्य, उनके पुनर्वसु, उनके आहुक नाम पुत्र और आहुकी नाम कन्या हुई। आहुकके देवक और उग्रसेन नाम दो पुत्र हुए। देवकके देववान्, उपदेव सुदेव एवं देववर्द्धन हुए। राजन्, इनके धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी नाम सात बहनें थी। इन सातोंका विवाह वसुदेवसे हुआ। उग्रसेनके कंस, सुनाम, न्यग्रोध, कङ्क, शङ्कु, सुहू, राष्ट्रपाल, धृष्टि एवं तुष्टिमान् नाम नौ पुत्र और कंसा, कंसवती, कङ्का, शूरभू, राष्ट्रपालिका नाम पाँच कन्याएँ हुईं। इनका बिवाह वसुदेवके भाई देवभाग आदिके साथ हुआ ॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥ ॥१४॥१५॥१६॥१७॥१८॥१९॥२०॥२१॥२२॥२३॥२४॥२५॥ चित्ररथके पुत्र विदूरथके पुत्र शूर हुए। शूरके पुत्र भजमान, उनके शिनि, उनके भोज, उनके हृदीक और उनके देवबाहु, शतधनु और कृतवर्म्मा नाम तीन पुत्र हुए। देवमीढ़के पुत्र शूर हुए। शूरके मारिषा नाम पत्नीमें वसुदेव, देवभाग, देवश्रवा, आनक, सृञ्जय, श्यामक, कङ्क, शमीक, वत्सक और वृक नाम दश पुण्यात्मा पुत्र उत्पन्न हुए। वसुदेवके जन्मके समय स्वर्गमें देवतोंने प्रसन्न होकर दुन्दुभी और ढोल बजाये, इसी कारण हरिके प्रादुर्भावका आधार जो वसुदेवजी हैं उनका नाम आनकदुन्दुभि पड़ा। वसुदेव आदिके पृथा श्रुतदेवा, श्रुतकीर्त्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी नाम पाँच बहनें भी थीं। शूरने अपने सखा कुन्ति राजाको पुत्रहीन देखकर अपनी कन्या पृथा उनको दे डाली, अतएव पृथाका दूसरा नाम कुन्ती है। कुन्तीने दुर्वासाऋषिको प्रसन्न करके उनसे 'देवहूति' नाम विद्या (जिस विद्यासे मनुष्य हरएक देवताको अपने निकट बुला सक्ता है) प्राप्त की। तदनन्तर कुन्तीने उस विद्याकी परीक्षाके लिये पवित्रतापूर्वक सूर्य्यदेवका आवाहन किया। परन्तु सूर्य्यदेवको उसी समय आकर उपस्थित हुआ देख कुन्तीको बहुत ही विस्मय हुआ। उन्होने विनयपूर्वक निवेदन किया कि हे देव! मैंने केवल परीक्षाके लिये ही इस विद्याका प्रयोग किया था, इस समय आप गमन कीजिये और मेरे अपराधको क्षमा कीजिये। सूर्य्यदेवने कहा—देवतोंका दर्शन व्यर्थ नहीं जाता—मैं तुममें गर्भाधान करूँगा, किन्तु तुम्हारी योनि दूपित न होगी अर्थात् तुम कन्या ही बनी रहोगी। यों कहके गर्भाधान कर सूर्य्यदेव चले गये। उसी क्षण दूसरे सूर्य्यके समान तेजस्वी बालक कुन्तीके कानसे उत्पन्न

हुआ। कुन्तीने लोकापवादके भयसे उस पुत्रको नदीकी धारामें छुड़वा दिया। महाराज! तुम्हारे प्रपितामह सत्यविक्रम महाराज पाण्डुसे कुन्तीजीका विवाह हुआ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ श्रुतदेवाका विवाह करूषवंशीय वृद्धशर्म्मासे हुआ। उनके सनकादिके शापसे दानवयोनिको प्राप्त विजय नाम विष्णुपार्षदने दन्तवक्र नामसे जन्म लिया। केकयवंशीय धृष्टकेतु राजाके साथ श्रुतकीर्त्तिका विवाह हुआ; उनके सन्तर्दन आदि पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। जयसेनके साथ राजाधिदेवीका विवाह हुआ; उनके विंद और अनुविंद नाम दो पुत्र उत्पन्न हुए। चेदिराज दमघोषने श्रुतश्रवासे विवाह किया; उनके पुत्रका नाम शिशुपाल हुआ। शिशुपालकी उत्पत्ति कह चुके हैं। वसुदेवके भाइयोंका वंश सुनिये—देवभागके कंसाके गर्भसे चित्रकेतु और बृहद्बल, देवश्रवाके कंसवतीके गर्भसे सुवीर और इषुमान्, कंकके कङ्काके गर्भसे बक सत्यजित् और पुरजित्, सृंजयके राष्ट्रपालीके गर्भसे वृष एवं दुर्म्मर्षण आदिक, श्यामकके शूरभूमिके गर्भसे हरिकेश और हिरण्याक्ष, वत्सकके मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे वृक आदिक, वृकके दूर्वाक्षीके गर्भसे तक्ष और पुष्करमाल आदिक, शमीकके सुदामिनीके गर्भसे सुमित्र अर्जुनपाल आदिक एवं आनकके कर्णिकाके गर्भसे ऋतधामा और जय उत्पन्न हुए। वसुदेवके पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला, देवकी आदि अनेक स्त्रियाँ थीं। उनमें रोहिणीके गर्भसे बलदेव, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव, कृत आदि पुत्र—पौरवीके गर्भसे सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्म्मद, भद्र और भूत आदिक बारह पुत्र–मदिराके गर्भसे नन्द, उपनन्द, कृतक एवं शूर आदि पुत्र–भद्राके गर्भसे केशी नाम एक प्रतापी पुत्र–रोचनाके गर्भसे हस्त, हेमाङ्गद आदिक–इलाके गर्भसे उरुवल्क आदि यादवश्रेष्ठ पुत्र–धृतदेवाके गर्भसे विपृष्ठ–शान्तिदेवाके गर्भसे श्रुत प्रतिश्रुत आदिक–उपदेवाके गर्भसे राजन्य, कल्य, वर्ष आदिक दश पुत्र–श्रीदेवाके गर्भसे वसु, हंस, सुवंश आदि छः पुत्र एवं देवरक्षिताके गर्भसे गद आदि नौ पुत्र उत्पन्न हुए। जैसे साक्षात् धर्म्मने आठो वसुओंको उत्पन्न किया वैसे ही वसुदेवने सहदेवाके गर्भसे प्रवर, श्रुतमुख्य आदि आठ श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न किये। देवकीके भी गर्भसे वसुदेवके ये आठ पुत्र हुए–कीर्तिमान्, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, संतर्दन, भद्र, शेषावतार संकर्षण एवं हे राजन्, आठवें साक्षात् स्वयं हरि। देवकीके सुभद्रा नाम एक कन्या भी हुई, जो तुम्हारी पितामही थीं। महाराज! जब २ धर्मका क्षय और अधर्म्मकी वृद्धि होती है उसी समय भगवान् हरिका कोई न कोई अवतार होता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ महाराज, नहीं तो जो मायाके नियन्ता, सङ्गविहीन,

सबके साक्षी एवं सर्वत्र हैं उन परमेश्वरके जन्म अथवा कर्म्मका कारण सिवा मायाविनोदके और क्या हो सक्ता है ? उनकी मायामयी लीलायें जीवके लिये अनुग्रहस्वरूप हैं, क्योंकि वे लीलायें ही जगत्की सृष्टि, पालन और संहारका निदान कारण हैं–उनके द्वारा सृष्टिआदिकी निवृत्ति होनेसे वे जीवके लिये मोक्षका कारण हो जाती हैं। राजन् ! अनेकानेक अक्षौहिणी सेनाके स्वामी, नृपतिचिह्नधारी असुरगणके आक्रमण द्वारा भारी बोझेसे पीड़ित पृथ्वीका भारी भार दूर करनेके लिये भगवान्का यह अवतार हुआ है। जिन कर्म्मोंकी कल्पना देवगण मनमें भी नहीं कर सक्ते उन दुष्कर और अचिन्त्य कर्मोंको भगवान् कृष्णचन्द्रने संकर्षणजीके साथ लीलापूर्वक किया है। महाराज ! भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, वह संकल्पमात्रसे ही पृथ्वीका भार उतारनेके लिये समर्थ थे, तथापि भगवान्ने कलियुगमें जो भक्तजन होंगे उन पर अनुग्रह प्रकाशित करते हुए अवतार लेकर दुःख, शोक, तमोगुण आदिको मिटानेवाला अपना पवित्र यश पृथ्वीमण्डलमें विस्तृत किया। यह हरिका यश साधु पुरुषोंके लिये श्रवणामृत एवं श्रेष्ठतीर्थस्वरूप है; एक बार केवल श्रोत्ररूप अंजलिद्वारा यह यशसुधा पीनेसे मनुष्य कर्म्मवासनाओंके त्याग करनेमें सर्वथा समर्थ होजाता है। अतएव भोज, वृष्णि, अंधक, मधु, शूरसेन, दशार्ह, कुरु, सृञ्जय और पाण्डुवंशके सभी मनुष्य भगवान्के चरित्रोंकी प्रशंसा करते आये हैं। भगवान् कृष्णचन्द्रने अपने स्नेहपूर्ण मुसकानसे युक्त कृपाकटाक्ष, उदार वचन, विक्रम–लीला और सर्वाङ्गसुन्दर मूर्त्तिके द्वारा मनुष्य-लोकमात्रको आनन्दित किया। मकराकृत कुण्डलोंसे दोनो कान और अमोल कपोलोंकी कैसी मनोहर छवि थी ! विलासपूर्ण हास्य उस श्रीमुखमें सदैव विराजमान रहता था और उससे वदनारविंद सदैव उत्सवपूर्ण रहता था। उस मुख-कमलको नेत्रोंसे देख कर स्त्री और पुरुषोंको तृप्ति ही न होती थी। भगवान्के भुवनमोहन रूपको देख कर सब नर नारी अत्यन्त प्रसन्न होते थे एवं उस समय पलक लगना भी उनको असह्य होजाता था ! वे पलक लगनेका दोष देकर राजा निमि (क्योंकि वह मनुष्योंकी पलकोंमें रहते हैं) को कोसते थे। राजन् ! श्रीकृष्णचन्द्र पहले अपने चतुर्भुज रूपसे प्रकट हुए, तदनन्तर मनुष्यरूप होकर पिताके बंदीगृहसे व्रजको गये। वहाँ शत्रु दानवोंका संहार करके व्रजवासियोंका प्रयोजन सिद्ध किया और उसके बाद बहुतसे बिवाह करके एक २ स्त्रीमें सौ २ पुत्र उत्पन्न किये एवं लोकसमाजमें वेदमार्गका प्रचार व विस्तार करतेहुए अनेकानेक यज्ञोंसे अपना ही पूजनकिया ॥५७॥५८॥५९॥६०॥६१॥६२॥ ॥६३॥६४॥६५॥६६॥

पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन्कुरूणा-
मन्तःसमुत्थकलिना युधि भूपचम्वः ॥
दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य
प्रोच्योद्धवाय च परं समगात्स्वधाम ॥ ६७ ॥

कौरवोंमें उठे हुए गृहविवादको कारण बनाकर, अपनी दृष्टिसे, युद्धभूमिमें युद्ध करने आये हुए राजोंकी आयु और सेनाका क्षय करते हुए पृथ्वीके महाभारको उतार कर एवं अर्जुनकी विजयघोषणा कराकर और उद्धवको तत्त्वज्ञानका उपदेश देकर श्रीकृष्णरूप श्रीनारायण अपने परम धामको चले गये ॥ ६७ ॥

इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

समाप्तोऽयं नवमस्कन्धः ।



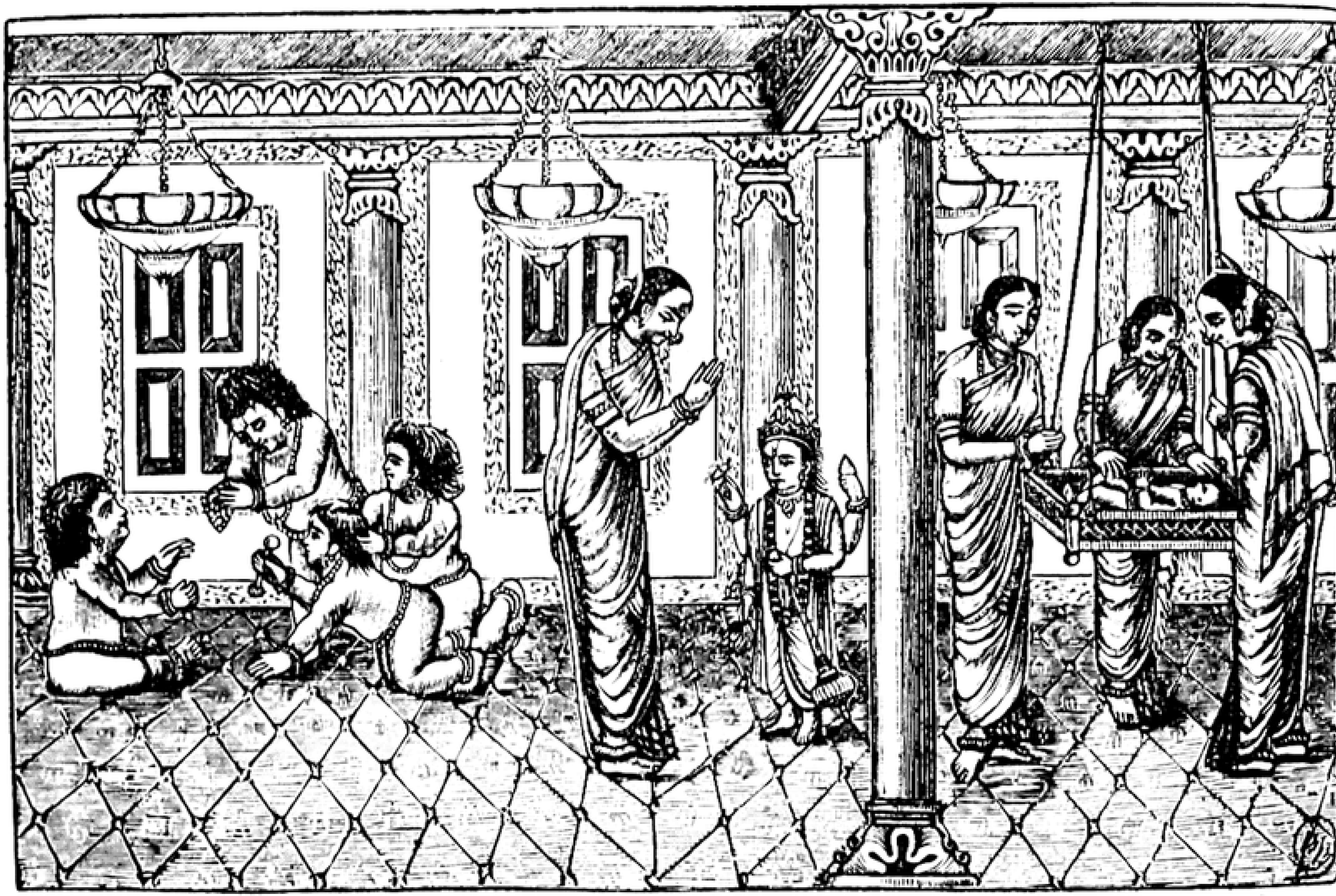


शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

दशमस्कन्ध–पूर्वार्धः ।



कृष्णजन्म, बाललीला।

॥ श्रीः ॥

शुकोक्तिसुधासागरः।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

दशमस्कन्ध–पूर्वार्धः ।



प्रथम अध्याय ।

कंसके हाथों देवकीके छः बालकोंका वध ।

राजोवाच–कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ॥
राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥

राजा परीक्षत्ने कहा । हे मुनिश्रेष्ठ ! आपने विस्तारपूर्वक चन्द्रवंश और सूर्य्यवंशका वर्णन किया; दोनो वंशोंमें उत्पन्न राजोंके परम पवित्र विचित्र चरित्र भी सुनाये ॥ १ ॥ धर्मात्मा यदुका वंश भी कहा, अब उसी यदुवंशमें अंशसे उत्पन्न विष्णु भगवान्के चरित्र हमको सुनाइये ॥ २ ॥ प्राणियोंका पालन करनेवाले भगवान्नें यदुवंशमें अवतार लेकर जो जो अद्भुत कर्म्म किये हैं उन सबको विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ जीवन्मुक्त लोग भी उन पवित्र यशवाले हरिके गुणोंका कीर्त्तन करते रहते हैं। मोक्षकी कामनावाले व्यक्तियोंके लिये हरिगुणगानही मुक्तिपानेका एक मात्र उपाय है, क्योंकि वह भवरूप व्याधिकी औषध है और कान व मनका रमणीय विषय है। जड़ अथवा अज्ञानीके सिवा औ

कान पुरुष उसके सुननेमें विरक्त (उदासीन) होगा ? ॥ ४ ॥ अहा ! वह कृष्णचन्द्र हमारे कुल पर बड़ीही कृपा करते थे । देखिये, कारवोंकी सेना सागरके समान अगम्य और अपार थी; क्योंकि समरमें अमरगणको भी जीतनेवाले भीष्मपितामह आदि बड़े २ महारथी योद्धा उसमें तिमिंगिल (एक बड़ी भारी भयानक मछली, जो महा सागरमें रहती है)के समान थे, जिनसे बचना बहुत ही कठिन था। किन्तु हमारे पितामह पाँचो पाण्डव कृष्णचरणरूप नौकाके आश्रयसे गायके खुरके गढ़ेके समान सहजमें उसके पार पहुँच गये ॥ ५ ॥ और देखिये, भारतके बाद कौरव और पाण्डवोंके वंशका अंकुर एक मैं ही बच रहा था, किन्तु जब मैं माताके गर्भमें ही था उस समय मेरे मारनेके लिये अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्र चलाया। उस अस्त्रसे मेरा शरीर नष्ट ही होचुकाथा, किन्तु वैसे ही मेरी माताको शरणमें आये देख कृपालु कृष्णचन्द्रने गर्भमें प्रवेश करके सुदर्शन चक्र द्वारा मेरी रक्षा की ॥ ६ ॥ वह कृष्णचन्द्र सब देहधारियोंके भीतर आत्मारूपसे और बाहर कालरूपसे अवस्थित हैं; वह विषयी जनोंको कालरूपसे मृत्यु(जन्ममरणका बन्धन) और आत्मज्ञानियोंको आत्मारूपसे अमृत अर्थात् मुक्ति देते हैं। ब्रह्मन् ! उन मायामनुष्यरूप हरिकी लीलाएँ मुझको सुनाइये॥७॥भगवन् ! आपने पहले संकर्षणजीको, जिनका एक नाम राम भी है, रोहिणीका पुत्र बता कर फिर देवकीके आठ पुत्रोंमें भी गिनाया है । बिना दूसरा शरीर धारण किये रोहिणीके पुत्र संकर्षणजी देवकीके गर्भमें कैसे आसक्ते हैं ? ॥ ८ ॥ इसके सिवा यह भी बताइये कि भगवान् कृष्णचन्द्र पिताके घरसे व्रजको क्यों गये ? यदि कहो कंसके भयसे— तो उनको भय कैसा ? और भक्तवत्सल भगवान् जातिभाइयों सहित कहाँ पर रहे ? ॥९॥ व्रजमें रहकर कृष्णचन्द्रने क्या २ चरित्र किये और मथुरामें क्या २ किया? अपने मामा कंसको क्यों मारा ? क्योंकि माताके भाईकी हत्त्या महा अनुचित है ॥१०॥ मनुष्य देह धारण कर यादवों सहित यदुपुरीमें कितने दिन रहे और उनके रानियाँ कितनी थीं ? ॥११॥ हे मुनिवर, ये सब बातें व और सब कृष्णके चरित्र विस्तारपूर्वक कहिये; क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं । मुझे कृष्णकी लीलाओं पर बड़ी ही श्रद्धा है ॥१२॥ आप मेरे भूखे प्यासे होनेकी चिन्ता तनिक भी न कीजिये । यद्यपि भूख और प्यासको सहना बहुत ही कठिन काम है, तथापि मुझको कुछ भी भूख और प्यासकी पीड़ा नहीं है । मैंने जलतक त्याग कर दिया है, किन्तु आपके मुखकमलसे निकले हुए हरिकथारूप अमृतके पान करनेसे मुझे कुछ भी कष्ट नहीं है ॥ १३ ॥ सूतजी शौनकादिक ऋषियोंसे कहते हैं कि हे शौनक ! राजाके ये अति उत्तम प्रश्न सुन कर भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ भगवान् शुकदेवने पहले परीक्षित्की बड़ाई की और फिर कलियुगके दोषोंको दूर करनेवाला कृष्णचरित्र यों कहने लगे ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले । हे राजर्षियोंमें श्रेष्ठ ! तुमने अन्त समय अपनी

बुद्धिसे बहुत ही अच्छा विचार किया जो कृष्णचन्द्रकी कथा(चर्चा)में दृढ़ताके साथ चित्त लगाया ॥ १५ ॥ भगवान्‌के चरित्रोंका जिससे सम्बन्ध हो वह प्रश्न—पूछनेवाले, उत्तर देनेवाले और सुननेवाले पुरुषोंको गंगाजलके समान पवित्र कर देता है ॥ १६ ॥ अब अपने प्रश्नोंका उत्तर सुनिये । असंख्य दैत्यगण राजोंके यहाँ उत्पन्न हुए एवं राजा बन कर अभिमानके साथ मनमाना अधर्म्म और अत्याचार करने लगे । उन लाखों असुरोंके अन्यायके भारसे पृथ्वी जब बहुत ही पीड़ित हुई तब गायके रूपसे, दुःख और कष्टके कारण आँखोंमें आँसू भरे हुए एवं खेदके कारण दीनस्वरसे विलाप करती हुई ब्रह्माजीकी शरणमें गई । ब्रह्माजीके पास जाकर पृथ्वीने सब अपने कष्टका वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १७ ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीने पृथ्वीके मुखसे सब वृत्तान्त सुना और उसी समय उसको साथ लेकर शिव आदि देवगण सहित क्षीरसागरके किनारे गये ॥ १९ ॥ वहाँ जाकर पुरुषसूक्तके मन्त्रोंसे जगत्‌के स्वामी, देवतोंके देवता, मंगलरूप परमपुरुषकी एकाग्रमन हो स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने समाधि लगाई अर्थात् ईश्वरका ध्यान करने लगे, तब उनको अपने ही हृदयाकाशमें एक अलौकिकवाणी सुन पड़ी । उस समय ब्रह्माजीने देवतोंसे कहा कि हे देवगण ! मैंने जो हृदयमें ईश्वरकी आज्ञा सुनी है उसे सुनो और उसीके अनुसार शीघ्रही सब कार्य्य करो;—कुछ भी विलम्ब न हो ॥ २१ ॥ परमेश्वरको पहलेसे ही पृथ्वीके भारका वृत्तान्त विदित है । जब तक परमात्मा परमेश्वर अपनी कालरूप शक्तिसे पृथ्वीका भार उतारते हुए भूलोकमें विहार करें तबतक तुम लोग यदुवंशमें जन्म लेकर पृथ्वीमें रहो ॥ २२ ॥ वसुदेवके भवनमें परमपुरुष साक्षात् विष्णु भगवान् जन्म लेंगे; उनका प्रिय करनेके लिये सब देवतोंकी स्त्रियाँ भी पृथ्वीमें जन्म लें ॥ २३ ॥ वासुदेवकी कला, सहस्रमुख और स्वप्रकाशपूर्ण शेषजी भी हरिका प्रिय करनेके लिये पहले ही अवतार लेंगे ॥ २४ ॥ सम्पूर्ण विश्वको मोहित करनेवाली भगवती विष्णुमाया भी प्रभुकी आज्ञाके अनुसार देवकार्य्य सिद्ध करनेके लिये पृथ्वी पर अपने अंशावतारसे प्रकट होंगी ॥ २५ ॥ शुकदेवजी कहते हैं । प्रजापतियोंके स्वामी ब्रह्माजी देवगणको यों आज्ञा देकर और पृथ्वीको धीरज बँधा कर परमधाम(सत्यलोक)को गये ॥ २६ ॥ अब इधर पृथ्वीपरका हाल सुनिये । यादवपति राजा शूरसेनने मथुरा पुरीमें रह कर शूरसेन देश और मथुरा प्रदेशका शासन किया ॥ २७ ॥ इसी कारण तबसे मथुरा पुरी ही यदुवंशी राजोंकी राजधानी होगई । मथुरा पुरीमें नित्य हरि भगवान् विद्यमान रहते हैं ॥ २८ ॥ एक समय मथुरा पुरीमें शूरवंशी वसुदेवजी विवाह करके अपने घर जानेके लिये नवविवाहिता देवकी सहित रथ पर सवार हुए ॥ २९ ॥ बहुतसे सुवर्णमण्डित रथों सहित उग्रसेनका पुत्र कंस कुछ दूर पहुँचानेके लिये वसुदेवके साथ होलिया । उसने अपनी बहन देवकीकी प्रसन्नताके-

लिये उनके रथको स्वयं सारथी बन कर हाँकनेकी इच्छासे घोड़ोंकी लगाम थामली ॥ ३० ॥ कन्यावत्सल महाराज देवकने बिदाके समय अपनी कन्या देवकीको यौतुक(दहेज)में सोनेकी मालाओंसे सुशोभित चार सौ हाथी, सजे हुए पन्द्रह हजार घोड़े, अठारह सौ रथ एवं विविध भूषणोंसे विभूषित दो सौ सुकुमारी दासियाँ दीं। वर और वधूके बिदा होते समय दुन्दुभि, शंख, तूर्य्य और मृदंग आदि मंगलकारी बाजे बजने लगे ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ रथको कंस हाँक रहा था, इसी समय मार्गमें कंसके प्रति आकाशवाणी हुई कि "अरे मूर्ख! जिसका तू रथ हाँक रहा है उसी देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न बालक तुझको मारेगा" ॥ ३४ ॥ भोजकुलका कलंक, पापरूप दुष्ट कंस, यह आकाशवाणी सुनते ही बहनके स्नेहको भूल गया और उसने मारनेके लिये देवकीके केश पकड़कर खड्ग निकाल लिया ॥ ३५ ॥ वसुदेवने जब देखा कि निर्लज्ज कंस कसाइयोंका ऐसा निन्दित निठुर कर्म्म करनेपर उतारू है तब वह मीठे वचन कहकर उसे यों समझाने लगे ॥ ३६ ॥ वसुदेवजी बोले । कंस! तुम्हारे गुणोंकी और वीरताकी बड़े २ वीर लोग बड़ाई करते हैं; तुमने भोजवंशका यश बढ़ाया है। तुम ऐसे शूरशिरोमणि होकर अपनी बहनका वध करना चाहते हो! तुमको ऐसा नीच निन्दित कर्म नहीं सोहता। देखो तो सही, एक तो स्त्री-जाति, दूसरे बहन, तिसपर विवाहका उत्सव! ॥ ३७ ॥ हे वीर! जो कहो 'इसके आठवें बालकसे मेरी मृत्यु होगी, इससे इसे ही मार कर झगड़ा मिटाये देता हूँ' तो याद रक्खो मृत्युकी कोई औषध नहीं है! जिसने जन्म लिया है उसे स्मरण रखना चाहिये कि देहके साथ ही मृत्यु भी पैदा होती है, आज हो अथवा सौ वर्षके बाद हो—प्राणियोंकी मृत्यु अवश्य होगी ॥ ३८ ॥ यदि इस देहके छूटनेपर दूसरा देह न मिले तो भी इसकी रक्षाके लिये ऐसा घोर कर्म्म करना ठीक है, किंतु ऐसा नहीं है। एक शरीरके छूटने पर इस जीवको कर्म्मका फल भोगनेके लिये बिवश होकर दूसरे शरीरमें जाना पड़ता है। यह जीव जब मनके द्वारा दूसरे शरीरको ग्रहण करलेता है तब पहला शरीर छूटता है ॥ ३९ ॥ जैसे तृणजलूका (एक प्रकारका कीड़ा) जब किसी तृण आदिको पकड़ लेता है तब पहलेके तृणको छोड़ता है या मनुष्य जब एक पैर आगे जमालेता है तब पिछला पैर उठाता है वैसे ही जीवकी भी कर्म्मानुसार गति है ॥४०॥ जाग्रत् अवस्थामें देखने या सुननेका संस्कार मनमें उत्पन्न होनेसे निविष्टचित्त होकर उस देखे या सुने विषयका ध्यान करते २ पुरुष जैसे स्वप्नमें जाग्रत् अवस्थाके उस देखे सुने विषयके अनुरूप देखने सुननेके विषयोंको देखता है—वैसे ही जीव भी कर्मवश स्मृतिरहित दूसरे शरीरको पाकर पूर्वशरीरको छोड़ता है ॥ ४१ ॥ देहकी पञ्चत्वप्राप्तिके समय विविधविकारमय मन, फलोंकी ओर कर्म्मोंके द्वारा

प्रेरित होकर, मायाके द्वारा अनेक शरीरोंके रूपमें रचित पञ्चभूतोंमें जिस २ रूपको प्राप्त होता है उस २ रूपमें यह देही (जीव) जन्म लेता है ॥ ४२ ॥ चन्द्रादि ज्योतिर्मय पदार्थ जैसे तैल-घृत-जल आदि पार्थिव पदार्थोंमें प्रतिविंबित होने पर वायुके द्वारा काँपते हुए प्रतीत होते हैं, वैसे ही जीव भी अविद्यारचित गुणोंके अनुगत होकर उन्हीमें आसक्तिके कारण विमुग्ध होजाता है ॥ ४३ ॥ इस लिये ऐसे गुणोंसे युक्त पुरुषको यदि अपने मंगलकी इच्छा हो तो किसीसे भी द्रोह न करे, क्योंकि जो कोई दूसरेसे द्रोह करते हैं उनको भी औरोंसे भय होता है एवं परलोकमें यमयातनाका भी भय है ॥ ४४ ॥ देखो यह तुम्हारी छोटी बहन बालिका है, दीन है, कातर है-भयसे काठकी पुतलीकी भाँति अचेत हो रही है। तुम दीनवत्सल हो, इस कल्याणरूपिणीको मारना तुम्हारे योग्य काम नहीं है ॥४५॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! कंस बड़ा ही निठुर राक्षस स्वभावका मनुष्य था, अतएव वसुदेवके मित्रता दिखलानेसे और साम व भेदके वाक्योंसे उसका विचार नहीं बदला ॥ ४६ ॥ वसुदेवजी उसके इस हठको जान कर चिन्ता करने लगे कि कैसे देवकीके प्राणोंकी रक्षा की जाय?। वसुदेवजीने चिन्ता करके यह कर्त्तव्य स्थिर किया ॥ ४७ ॥ "बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि अपनी बुद्धि और बलके अनुसार यथाशक्ति मृत्युको टाले और यदि ऐसा करनेसे भी मृत्यु न टले तो उसमें मनुष्यका कोई अपराध नहीं है ॥ ४८ ॥ मैं इस मृत्युस्वरूप कंसको अपने होनहार पुत्र देदेनेकी प्रतिज्ञा करके इस दीन अबलाके प्राण बचाऊँ; बस इस समय मेरा यही कर्त्तव्य है। फिर जब मेरे पुत्र होंगे उस समय जो होना होगा सो होगा—इस समय तो देवकीके प्राण बच जायँगे। हो सक्ता है कि मेरे पुत्र उत्पन्न होनेके पहले ही कंसकी मृत्यु होजाय। अथवा यदि कंस न भी मरे तो मेरे पुत्र भी तो (देववाणीके अनुसार) इसके विनाशका कारण हो सक्ते हैं। क्या नहीं होसक्ता?—विधाताकी गतिको कौन जान सक्ता है? पुत्र देनेकी प्रतिज्ञासे इस समय तो आई हुई मृत्यु लौट जायगी। यदि फिर देवकीकी मृत्यु आवेगी तो मेरा कौन दोष है? ॥४९॥५०॥ अग्नि और काष्टके संयोग और वियोगका सिवा अदृष्ट (दैव) के जैसे और कोई कारण नहीं देखा जाता वैसे ही प्राणी और शरीरके संयोग और वियोगका कारण भी वही अदृष्ट है; अतएव यह विषय हमलोगोंके लिये अचिन्त्य है" ॥५१॥ अपने ज्ञानके अनुसार यों निश्चय करके वसुदेवजीने पहले खूब सम्मान दिखाते हुए कंसकी प्रशंसा की ॥ ५२ ॥ फिर यद्यपि हृदय धड़क रहा था तथापि विश्वास दिलानेके लिये प्रसन्नमुख होकर हँसते २ निर्लज्ज नृशंस कंससे यों कहा ॥ ५३ ॥ **वसुदेवजीने कहा** कि हे सौम्य! आकाशवाणीके कथनानुसार देवकीसे तुमको कोई भय नहीं है; भय केवल इसके पुत्रोंसे है, इस लिये मैं इसके सब पुत्र तुमको दे-

दूँगा ॥ ५४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि वसुदेवके इस कथनको युक्तियुक्त समझकर कंसने मान लिया और बहनके वधसे निवृत्त हुआ । वसुदेव भी प्रसन्न होकर हँसते २ अपने घरको गये ॥ ५५ ॥ समय पाकर सर्वदेवमयी देवकीके प्रत्येक वर्षमें एक २ करके आठ पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ ५६ ॥ वसुदेवने झूठसे डर कर कष्ट सहकर भी कीर्तिमान् नाम पहला पुत्रको लेजाकर कंसके हाथमें देदिया । सच है, सत्य प्रतिज्ञावाले साधुगण सत्यकी रक्षाके लिये कौन कष्ट नहीं सह सक्ते ? विद्वान् लोग किस वस्तुकी अपेक्षा करते हैं ? निन्दित नीच जन, कौन ऐसा अकार्य है जिसे नहीं कर सक्ते ? और धीर हरिभक्तजन किस वस्तुका त्याग नहीं कर सक्ते ? ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ राजन् ! वसुदेवका ऐसा साधुत्व और सत्यमें निष्ठा देखकर कंसने संतुष्ट हो हँसते हुए कहा कि आप इस पुत्रको लेजाइये; इससे मुझे कोई भय नहीं है, आठवें पुत्रसे ही मेरी मृत्यु विहित है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ वसुदेव "बहुत अच्छा" कह कर पुत्रको ले घरको चले गये; किन्तु कंसके इस वाक्य पर उनको विश्वास नहीं हुआ । क्योंकि उनको विदित था कि कंस असत् है और उसका मन उसके वशमें नहीं है ॥६१॥ इधर नारदने आकर कंससे कहा कि व्रजवासी नन्द आदिक गोप, उनकी स्त्री गोपियाँ, वसुदेव आदि सब वृष्णिवंशी यादव और उनकी देवकी आदि स्त्रियाँ एवं वसुदेव व नंदके कुलके सब जाति, वन्धु और सुहृद्गण तथा तुम्हारे अनुगत यादवादि अनुचरगण सब देवतुल्य तुम्हारे शत्रु हैं। नारदजीने यह भी बताया कि पृथ्वीके भारस्वरूप असुरोंका संहार करनेके लिये देवतोंके द्वारा यह उद्योग हो रहा है ॥६२॥६३॥६४॥ यह कह कर नारदके चले जाने पर "यादवगण देवता हैं एवं विष्णु मुझे मारनेके लिये देवकीके गर्भसे उत्पन्न होंगे" यह जानकर कंसने उसी समय लोहेकी जंजीर व बेड़ियोंसे वसुदेव व देवकीके हाथ पैर जकड़कर उनको अपने घरमें बन्दी कर रक्खा । देवकीके जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसे विष्णु जानकर कंसने उसी समय मार डाला ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ पृथ्वी पर देखा जाता है कि प्रायः सब लोभी और शरीरके सुखको ही सर्वस्व माननेवाले क्रूर राजालोग अपनी भोगवासना चरितार्थ करनेके लिये माता, पिता, भ्राता और वन्धुओंका भी वध कर डालते हैं ॥ ६७ ॥ पूर्वजन्ममें कंस, कालनेमि नाम असुर था—उसको विष्णुने मारा था, यह इस जन्ममें भी कंसको याद था; इसी लिये वह यादवोंसे विरोध करने लगा ॥ ६८ ॥

उग्रसेनं च पितरं यदुभोजान्धकाधिपम् ॥
स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान्महाबलः ॥ ६९ ॥

यदु भोज और अंधक आदि यादवोंके अधिपति अपने पिता महाराज उग्रसेनको वंदी करके महाबली कंस शूरसेन देशका मनमाना निष्कण्टक राज्य भोग करने लगा ॥ ६९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय ।

देवकीके गर्भसे भगवान्‌का जन्म ।

श्रीशुक उवाच—प्रलम्बबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः ॥
मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे राजन् ! बलदर्पित कंस, जरासंधकी सहायता पाकर प्रलंब, बक, चाणूर, तृणावर्त्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशी, धेनुक, बाणासुर, भौमासुर एवं अन्यान्य राजवेषधारी असुरों सहित यादवोंका नाश करने लगा। उसके दारुण अत्याचारसे पीड़ित यादवगण—कुरु, पाञ्चाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह एवं कोशल आदि राज्योंमें भाग गये ॥१॥२॥३॥ केवल कुछ अक्रूर आदि ज्ञातिगण उसके चित्तकी अनुवृत्ति करते हुए मथुरापुरीमें रह कर उसकी सेवा करते रहे ॥ ४ ॥ क्रमशः कंसने जब देवकीके छः बालक मारडाले तब हर्ष और शोक, दोनोको देनेवाला सातवाँ गर्भ देवकीके रहा । इस गर्भमें विष्णुका अंश अनन्त(शेष)जी आये, दुष्ट कंसके ऐसे घोर अत्याचार करनेपर विश्वात्मा भगवान्‌ने जाना कि मैं ही जिनका नाथ (रक्षक) हूँ उन यदुवंशियोंको कंससे बड़ा ही भय उपस्थित है । तव विष्णु भगवान्‌ने योगमायाको आज्ञा दी कि हे देवि ! हे भद्रे ! गोप और गोकुलसे शोभित व्रजको जाओ। वहाँ नन्दके गोकुलमें वसुदेवकी स्त्री रोहिणी रहती हैं । वसुदेवकी और २ स्त्रियाँ भी कंसके भयसे इधर उधर अलक्षितभावसे रहती हैं । अनन्त नाम मेरा अंश इस समय देवकीके गर्भमें है, तुम उस गर्भको खींच कर रोहिणीके उदरमें स्थापित करो । हे शुभे ! तदनन्तर मैं पूर्णरूपसे देवकीके गर्भ द्वारा जन्म लूँगा एवं तुम भी उसी समय नन्दकी स्त्री यशोदाके गर्भसे जन्म लेओगी । मनुष्यगण, सब कामना व वरोंकी अधीश्वरी एवं देनेवाली जान कर अनेक प्रकारके उपहार तथा बलिसे तुम्हारी पूजा करेंगे । पृथ्वीमें तुम्हारे दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा, अम्बिका इत्यादि अनेकों नाम होंगे । गर्भके संकर्षणसे उस गर्भसे उत्पन्न बालकका नाम 'संकर्षण' होगा । इसके सिवा सब लोगोंका मनोरंजन करनेके कारण 'राम' एवं महाबली

होनेके कारण 'बलभद्र' नाम भी होंगे ॥५॥६॥७॥८॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥ भगवान्की यह आज्ञा पाकर भगवतीने कहा कि "बहुत अच्छा, ऐसा ही करूँगी" और भगवान्की प्रदक्षिणा करके पृथ्वी पर आकर उन्होने वैसा ही किया ॥ १४॥ योगमायाजी जब देवकीके गर्भको लेजाकर रोहिणीके उदरमें स्थापित कर आईं तब पुरवासी लोग 'हाय! देवकीका गर्भ नष्ट होगया' यों कह कर विलाप करने लगे; किन्तु वे उसका विशेष वृत्तान्त कुछ भी न जानसके ॥ १५ ॥ इधर भक्तोंका भय हरनेवाले विश्वात्मा भगवान्ने पूर्णरूपसे वसुदेवके अन्तःकरणमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ वसुदेवजी अन्तःकरणमें ईश्वरका तेज धारण करने पर सूर्य्यके समान प्रकाशमान हुए एवं सब प्राणियोंके लिये दुरासद व दुर्द्धर्ष हो उठे ॥ १७ ॥ तदनन्तर, पूर्वदिशा जैसे पूर्ण चन्द्रको धारण करे वैसे ही शुद्ध मनवाली दीप्तिशालिनी देवकीने सर्वव्यापी एवं अपनेमें पहलेसे ही स्थित अच्युतके अंशको गर्भमें वसुदेवके वीर्य्यरूपसे धारण किया ॥ १८ ॥ जिनमें सब जगत् वास करता है उन विष्णुका आवास होने पर देवी देवकी स्वयमेव आनन्दित हुईं, किन्तु सब जगत्को नहीं आनन्दित करसकीं, क्योंकि जैसे घटादिके भीतर दीपशिखा या ज्ञानवञ्चक मनुष्यके अन्तरमें हितकारिणी विद्या निरुद्ध हो वैसे ही वह कंसके भवनमें निरुद्ध थीं ॥ १९ ॥ एक दिन कंसने अजित हरिको गर्भमें धारण किये उन्हीं सुन्दर मुसकानवाली देवकीको अपने तेजसे भवनभरका अंधकार हरते देख कर कहा "निश्चय जान पड़ता है कि मेरे प्राणोंका शत्रु हरि इसके गर्भमें आया है, क्योंकि मैंने पहले कभी अपने घरमें देवकीका ऐसा दुर्द्धर्ष तेज नहीं देखा। इस समय इस हरिका नाश करनेके लिये मुझे कौन सा उपाय शीघ्र ही करना चाहिये? पुरुष लोग स्वार्थपर होकर भी कभी स्त्रीवधसे अपने विक्रमको दूषित नहीं करते। देवकीको मारनेसे स्त्रीवध भगिनीवध और गर्भिणीके वधका पातक लगेगा; जिससे क्रमशः यश, श्री और आयुका क्षय होता है ॥ २० ॥ २१ ॥ जो व्यक्ति केवल हिंसाव्रतसे जीवन धारण करता है वह जीते ही मरेके तुल्य है। वह पापी जितने दिन जीता रहता है तब तक जगत्में उसकी निन्दा होती है और मरनेपर निश्चय ही नरकको जाता है" ॥ २२ ॥ प्रभावशाली कंस, इसी घोर चिन्ताके कारण, चाहता तो देवकीको मार डालता तथापि इस कुकर्म्मसे निवृत्त हुआ एवं हरिसे वैर बाँधकर उनके जन्मकी राह देखने लगा ॥ २३ ॥ दिन रात घड़ीभरके लिये उसको शान्ति न थी; बैठते, उठते खाते, पीते, घूमते और सोते में, सब समय हृषीकेश विष्णुके ही ध्यानमें मग्न रहता था; यहाँतक कि वह जगत्को विष्णुमय देखने लगा ॥ २४ ॥ हे राजन्! उसी समय नारदादि मुनि एवं अनुचर देवगण सहित ब्रह्मा और शिवजी, देवकीके निकट आये और रम्य वचनोंसे सब कामना पूर्ण करनेवाले हरिकी यों स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥

"भगवन्! आप सत्य-व्रत हैं; सत्य ही आपका संकल्प है; सत्य ही आपके मिलनेका प्रधान साधन है। आप तीनो कालमें सत्य हैं, सत्यके कारण और सत्यमें अवस्थित हैं, एवं आप सत्यके भी सत्य अर्थात् पारमार्थिक पदके भी अन्तमें अवशिष्ट रहते हैं। आप ऋत और सत्यके नेता अर्थात् प्रवर्त्तक हैं या ऋत और सत्य आपके नेत्र हैं। अतएव आप सत्यमय हैं। हम आपके शरणागत हैं ॥ २६ ॥ यह देहआदिका प्रपञ्च वृक्षरूप है। एक प्रकृति ही इसका आश्रय है; सुख और दुःख दो फल हैं; सत्व-रज-तम ये तीनो गुण, मूल हैं; धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार रस हैं; पाँचो ज्ञानेन्द्रिय ज्ञान (जानने) के पाँच प्रकार हैं; शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा और प्यास ये छः स्वभाव हैं; रस, रुधिर, मांस, मेदा, मज्जा, अस्थि और शुक्र ये सात त्वचा (आवरण) हैं; पाँच इन्द्रिय व मन, बुद्धि और अहंकार ये आठ विटप (शाखा) हैं; कान आदि नव द्वार नव छिद्र हैं एवं दश प्राण पत्र (पत्ते) हैं। जीवात्मा और परमात्मा ये दो पक्षी इसमें वास करते हैं ॥ २७ ॥ एक आप ही इस कार्य्यरूप वृक्षकी उत्पत्ति और लयका स्थान तथा पालनकर्त्ता हैं। जिनका ज्ञान आपकी मायासे ढँका हुआ है वे आपको अनेक वस्तुओंमें अनेक रूपसे देखते हैं, किन्तु विद्वान् लोग आपको एकरूप ही देखते हैं ॥ २८ ॥ हे भगवन्! ज्ञानस्वरूप आप सब चराचर जगत्के कल्याणके लिये वारम्वार सत्त्वगुणमय विविध रूप धारण करते हैं। उन आपके अवतारोंसे धर्म्मात्मालोगोंको सुख मिलता है और खलदलका दलन होता है ॥ २९ ॥ हे कमललोचन! आप निर्मल सत्त्वगुणका धाम हैं। निर्म्मल सत्त्वनिष्ट विवेकीजन समाधियोगसे आपमें लगाये हुए चित्तके द्वारा महत्सेवित और बहुमत जो नौकारूप आपके चरण हैं उनका आश्रय लेकर इस अपार संसारसागरको गो-पदके गढ़ेके जलके तुल्य तुच्छ जानते हैं ॥ ३० ॥ हे प्रकाशस्वरूप! भक्तगण पर आप कृपा करते हैं। सब प्राणियों पर प्रेम रखनेवाले भक्तजन स्वयं तो इस, भक्तिहीन लोगोंके लिये भयानक, दुस्तर भवसागरके पार चले ही गये किन्तु और लोग भी जिससे सहजमें ही भवसागरके पार जासकें—इस लिये आपके नौकारूप चरणकमलोंको यहीं छोड़ गये हैं अर्थात् भक्तिमार्ग चला गये हैं ॥ ३१ ॥ आपके भक्तोंसे भिन्न अन्यान्य लोग, जो अपनेको मुक्त मान कर अभिमान करते हैं, वे अनेक कष्ट उठा कर जिस श्रेष्ठ पदको पाते हैं उससे अन्ततः उनको पतित होना पड़ता है, क्योंकि आपमें भक्ति न होनेके कारण उनकी बुद्धि भली भाँति शुद्ध नहीं होती; अतएव आपके श्रीचरणोंकी अवहेला करनेके कारण उनको पूर्णतया मुक्ति नहीं मिलती और वीचमें ही अनेक विघ्नोंके होनेसे भ्रष्ट होजाते हैं ॥ ३२ ॥ हे केशव! किन्तु जो लोग आपके भक्त हैं वे आपमें ही अनन्य-भावसे प्रेम करते हैं—उनकी ऐसी गति नहीं होती। आप उनके रक्षक बनते हैं, अतएव

वे सम्पूर्ण विघ्नोंके शिर पर पैर धरते हुए निर्भय भावसे विचरते हैं ॥३३॥ प्रभो ! आप लोकपालनके लिये कर्म्मफलदायिनी सत्त्वमयी अपनी मूर्त्ति लोकमें प्रकट करते रहते हैं। लोग उसी मूर्तिमें वेद, क्रिया, योग, तप और समाधिके द्वारा आपका पूजन करनेको समर्थ होते हैं। यदि आप अपनी मूर्ति न प्रकट करते तो पूजाके अभावसे कर्मफलकी सिद्धि न होती ॥ ३४ ॥ हे विधाता ! यदि सत्त्व आपका शरीर न होता तो अज्ञान व भेदका नाश करनेवाले विज्ञानकी उत्पत्ति न होती; क्योंकि सब गुणोंमें जो प्रकाश लक्षित होता है उसके द्वारा आपका केवल अनुमान ही किया जासक्ता है—साक्षात्कार नहीं होता। 'आप गुणोंके साक्षी हैं, बुद्धिमें आरूढ़ एवं प्रमाता होनेके कारण आपके प्रकाशसे बाह्यगुण (बुद्धिआदि)का प्रकाश होता है'—इस प्रकार आपका अनुमान ही किया जासक्ता है, किन्तु इन्द्रियोंके अगोचर होनेके कारण आपका साक्षात् असंभव है ॥ ३५ ॥ देव ! आप गुण–कर्मादिके साक्षी हैं एवं मन और वाक्यके द्वारा केवल आपकी गतिका अनुमानमात्र होसक्ता है। अतएव नाम, रूप, गुण, कर्म या जन्मके द्वारा आपका निरूपण नहीं किया जासक्ता, क्योंकि आप(सगुण रूप)के नाम–रूपादि अनन्त व अतर्क्य हैं, मन और वाणीसे उनकी इयत्ता नहीं की जासक्ती। तथापि भक्त लोग उपासना आदि क्रियाओंमें हृदयके भीतर आपको देखपाते हैं ॥ ३६ ॥ जो लोग आपके मङ्गलमय नाम व रूपोंका कीर्तन या श्रवण करते हैं, औरोंको सुनाते हैं और स्वयं ध्यान करते हैं एवं आपके दोनो चरणकमलोंकी सेवामें मनको लगा रखते हैं वे फिर संसारमें नहीं आते ॥ ३७ ॥ अहो, कैसे आनन्दकी बात है ! हे सर्वशक्तिसम्पन्न ईश्वर ! आपके जन्मसे ही, आपका चरण जो पृथ्वी है उसका भार दूर होगया। अहो, कैसे मङ्गलकी बात है कि आप कृपा करके अपने श्रीचरणोंके ध्वजा, वज्र, अंकुश आदि पवित्र चिन्होंसे पृथ्वीको सुशोभित व पवित्र एवं स्वर्ग लोक(देवगण)को अनुगृहीत करेंगे और हम आपकी लीला देखेंगे ॥ ३८ ॥ हे ईश ! आप जन्म मरणसे रहित हैं, अतएव आपके जन्मका कारण सिवा क्रीड़ाकौतुकके और कुछ भी नहीं जान पड़ता। हे नित्यमुक्त ! 'आपके जन्मका अन्य कोई कारण नहीं है'—इसके लिये क्या कहना है, क्योंकि आपका अंशमात्र जो जीवात्मा है उसके भी वास्तवमें जन्म आदि कुछ नहीं हैं; प्राणीगण केवल अविद्याके कारण जीवके जन्म व मरणको मानते हैं ॥ ३९ ॥ हे यदुश्रेष्ठ ! आपने पहले समय २ पर जैसे मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, वाराह, नृसिंह, हंस, क्षत्रिय और ब्राह्मणोंमें अवतार ले २ कर त्रिभुवनकी और हमारी रक्षा की है वैसे ही इस समय भी पृथ्वीका भारी भार हरिये। हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ ४० ॥ हे देवी देवकीजी ! भाग्यवश परमपुरुष श्रीहरि हमलोगोंके मंगलके लिये तुम्हारे गर्भमें आये हैं। अब

तुम कंसका भय न करो, वह शीघ्र ही मरनेवाला है; तुम्हारे यह पुत्ररूप हरि यादवोंकी रक्षा करेंगे" ॥ ४१ ॥

श्रीशुक उवाच–इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा ॥
ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥ ४२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। जिनका रूप (तत्त्व) सबसे परे है उन परम पुरुषकी बुद्धिके अनुसार यथार्थरूपसे इस प्रकार स्तुति करके देवता लोग ब्रह्मा और शिवको आगे कर स्वर्गलोकको लौट गये ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय।

श्रीकृष्णचन्द्रका जन्म।

श्रीशुक उवाच–अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः ॥
यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्रके जन्मके उपयुक्त सब गुणोंसे युक्त अत्यन्त रमणीय समय आकर उपस्थित हुआ। भगवान्‌के जन्मनक्षत्र अर्थात् रोहिणी नक्षत्रका उदय हुआ और अश्विनी आदि सब नक्षत्र एवं ग्रहगण उत्तम स्थानोंमें शान्तरूपसे परममंगलकी सूचना देतेहुए स्थित हुए ॥ १ ॥ उस समय सब दिशाएँ निर्मल होगईं और आकाशमें तारागण स्वच्छ कान्तिसे युक्त होकर प्रकाशित हुए। पृथ्वीमंडलके बीच पुर, ग्राम, व्रज और आकर आदि स्थानोंमें अनेक मंगलमय सगुन देख पड़ने लगे ॥ २ ॥ नदियोंके जल निर्मल होगये, फूले हुए कमलोंसे सरोवरोंकी शोभा बढ़गई। बागोंके बीच वृक्षोंमें कलियोंके गुच्छे खिलगये और उनकी शाखाओं पर बैठे पक्षीगण आनन्दपूर्वक मधुर स्वरसे गाने लगे ॥ ३ ॥ सुखदायक, शीतल, मंद सुगंध वायु डोलने लगा। ब्राह्मणोंके यहाँ अग्निहोत्रके अग्नि जो शान्त होगये थे सो प्रज्वलित हो उठे ॥ ४ ॥ असुरद्रोही साधुजनोंके मन आप ही आप प्रसन्न हो उठे। विष्णु भगवान्‌के जन्मसमयको अत्यन्त निकट देख कर स्वर्गमें देवगण दुंदुभी बजाने लगे ॥ ५ ॥ किन्नर और गंधर्व गान करने लगे, सिद्ध और चारणगण परमात्माकी स्तुति करने लगे एवं विद्याधरी और अप्सराएँ आनन्दके मारे नृत्य करने लगीं ॥ ६ ॥ मुनिगण और देवगण प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे। उसी घोर अंधकारमय (भादौंके कृष्ण

पक्षकी अष्टमीकी रात्रिको) अर्धरात्रिके समय हरिने जन्म लिया। उस समय सागरके साथ ही मेघ भी मंद २ गर्जने लगे। पूर्वदिशामें पूर्ण चन्द्रमाका जैसे उदय हो वैसे ही देवी देवकीके गर्भसे सबके अन्तर्य्यामी हरि प्रकट हुए ॥७॥८॥ वसुदेवने देखा कि वह बालक बहुत ही अद्भुत है। नेत्र कमलके पत्तेके समान विशाल हैं, चार भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा आदि आयुध शोभित हैं, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिन्ह विराजमान है, गलेमें कौस्तुभमणिकी अपूर्व कान्ति है, पानीभरे बादलके समान श्यामशरीरमें पीतांबर शोभायमान है ॥ ९ ॥ अनन्त अलकोंकी अवली पर महामूल्यके वैडूर्य्यमणिजटित किरीट मुकुट व कुण्डलोंकी प्रभा पड़नेसे उसकी अद्भुत शोभा है। अति उत्तम मेखला, अङ्गद और कंकण आदि अलंकारोंसे शरीर अत्यन्त मनोहर हो रहा है ॥ १० ॥ विस्मययुक्त वसुदेवके नेत्रकमल प्रफुल्लित हो उठे। हरिको पुत्ररूपसे अपने यहाँ प्रकट हुए देखकर वसुदेवके आनन्दकी सीमा नहीं रही और उन्होने कृष्णावतारके आनन्दसे संभ्रमयुक्त होकर मनसे ब्राह्मणोंको दस हजार गऊ देनेका संकल्प किया; क्योंकि वह उस समय बंदी थे, अतएव प्रत्यक्षरूपसे गोदान असंभव था ॥ ११ ॥ भगवान्के अंगोंकी प्रभासे उस सूतिकाभवनका अंधकार दूर होगया। वसुदेवने जाना कि साक्षात् हरिने जन्म लिया है, तब उनके मनसे कंसका भय जाता रहा, क्योंकि वह हरिके प्रभावको भली भाँति जानते थे। तदनन्तर महात्मा वसुदेवजी शिर झुकाकर, हाथ जोड़कर शुद्ध बुद्धिसे परमपुरुषकी स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥

वसुदेवने कहा। "अहो! मैंने आपको जाना। आप प्रकृतिसे परे साक्षात् परमपुरुष हैं। अहो मेरा कैसा सौभाग्य है जो आज मैं आपको साक्षात् देख रहा हूँ! भगवन्! केवल अर्थात् अखंड अनुभव और आनंद ही आपका स्वरूप है। आप सबकी बुद्धियोंके साक्षी अर्थात् अन्तर्य्यामी हैं ॥१३॥ आपने अपनी मायाके द्वारा इस त्रिगुणमय विश्वकी सृष्टि की है; यद्यपि वास्तवमें आप इस विश्वमें अनुप्रविष्ट नहीं हैं तथापि प्रविष्ट ऐसे लक्षित होते हैं ॥ १४ ॥ जैसे, महत्तत्त्व आदि सब तत्त्व इन्द्रियआदि सोलह विकारोंके साथ मिलकर ब्रह्माण्डको उत्पन्न करते हैं; वे पृथक् २ रह कर किसी विशिष्ट कार्य्यका सम्पादन नहीं कर सक्ते। ब्रह्माण्डरचनाके बाद वे तत्त्व उसके भीतर प्रविष्टसे जान पड़ते हैं, किन्तु वास्तवमें देखिये तो उनका उसमें पश्चात् प्रविष्ट होना संभव नहीं है; क्योंकि वे सब तत्त्व पहलेसे ही कारणरूपसे उसमें विद्यमान हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ वैसे, रूपादिज्ञानके द्वारा जिनके स्वरूपका अनुमान करना होता है उन सब विषयोंमें आपके वर्तमान रहने परभी, उनके द्वारा आपका साक्षात्कार नहीं होता। आप सर्वस्वरूप सर्वात्मा सर्वव्यापक और परमार्थ वस्तु हैं, अतएव अपरिच्छिन्न हैं, सुतरां कोई आवरण न होनेके कारण आपमें भीतर बाहरका भेद ही नहीं है, आप सर्वत्र समान भावसे स्थित हैं; तब

प्रवेश आदि कैसा? हे भगवन्! अन्तर्य्यामी होनेके कारण जब ब्रह्मांडमें प्रवेश ही मुख्य नहीं है तब देवकीके गर्भमें प्रवेश कैसे संभव हो सक्ता है? अतएव आप केवल अनुभवानन्दरूप हैं। मेरे अहोभाग्य हैं जो मुझे आपके तत्त्वका ज्ञान प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ जो व्यक्ति आत्माके दृश्यगुण देहादिको आत्मासे अलग पृथक् रूपसे वर्त्तमान वस्तु जानता है वह मूर्ख है, क्योंकि उसमें भेदज्ञान है। विचारपूर्वक देखनेसे देहादिक, सिवा वाक्यारंभके अन्य कुछ भी नहीं प्रतीत होते; अतएव वास्तविक कह कर जिसका स्वीकार कभी नहीं हो सक्ता उसको वास्तविक (सत्) माननेके कारण वह व्यक्ति मूढ़ है ॥ १८ ॥ प्रभो! तत्त्वज्ञानी लोग कहते हैं कि आपसे ही इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन व संहार (लय) होता है तथापि आप निर्गुण और निर्विकार हैं; अतएव अनीह (चेष्टाशून्य) हैं। यदि कहो कि चेष्टाशून्य होनेपर उत्पत्ति आदि कर्मोंका कर्तृत्व कैसे सिद्ध हो सक्ता है? तो आप ईश्वर एवं ब्रह्म हैं, अतएव आपमें इन दोनो लोकविरुद्ध बातोंके होने पर भी वास्तवमें कुछ भी विरोध नहीं है, केवल विरोधाभासमात्र है। आप तीनो गुणोंका आश्रयस्थल हैं अतएव गुणकृत सृष्टि आदि कर्मोंका आपमें आरोप होता है ॥ १९ ॥ आप अपनी माया द्वारा त्रिभुवनके पालनके लिये सात्विक शुक्ल वर्ण और सृष्टिके लिये रजोगुण संवर्द्धित रक्त वर्ण एवं ध्वंसके लिये तामस कृष्ण वर्णको स्वीकार करते रहते हैं ॥ २० ॥ हे जगदीश्वर! हे विभो! इस समय आपने त्रिभुवनकी रक्षाके लिये कृष्ण वर्णसे हमारे भवनमें अवतार लिया है। नाममात्रके राजा जो कोटि २ असुरसेनापति हैं उनके नायकत्वमें परिचालित असंख्य असुरसेनाका संहार ही आपके इस अवतारका प्रधान उद्देश्य है। साधुओंकी रक्षाके लिये आप ऐसी असुरसेनाओंका शीघ्र ही संहार करेंगे ॥ २१ ॥ हे सुरेश्वर! इस असभ्य दुष्ट असुर कंसने हमारे घरमें आपके उत्पन्न होनेकी खबर सुन कर आपके अग्रज भाइयोंको निठुराईके साथ मार डाला है। पहरेदार लोगोंसे आपके जन्मका समाचार पाते ही वह अभी शस्त्र लेकर आता ही होगा" ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। तदनन्तर सुंदरी देवकी, बालकमें महापुरुष हरिके सब लक्षण देख कर बहुत ही विस्मित हुई और फिर कंसके भयसे बालरूप हरिकी यों स्तुति करनेलगीं ॥ २३ ॥ देवकीने कहा। "वेदमें जिस रूप (वस्तु) को सब विश्वका आदिकारण अथ च अनादि बताया है एवं जो अव्यक्त, बृहत्, चेतन, निर्गुण, निर्विकार, सत्तामात्र, विरोधविहीन और निरीह कहा गया है आप वही आत्मतत्त्वके अथवा बुद्धिआदि आत्मासे संबंध रखनेवाली इन्द्रियोंके प्रकाशक साक्षात् विष्णु हैं ॥ २४ ॥ जब ब्रह्माकी आयुके दोनो परार्द्ध वीत जाते हैं और महाप्रलयमें सब जगत् नष्ट हो जाता है अर्थात् सब चराचर जगत् पृथ्वी आदि महाभूतोंमें और महाभूत महत्तत्त्वमें एवं महत्तत्त्व भी कालके वेगसे प्रकृति

(माया) में लीन हो जाता है तब एक आप ही अवशिष्ट रह जाते हैं। उस समय अशेषात्मक प्रधान (प्रकृति) में आपकी प्रज्ञा होती है, आप चिन्तन करते रहते हैं कि 'यह प्रधान तत्त्व मुझमें लीन है, फिर इसको यों प्रकट करना होगा' ॥२५॥ हे प्रकृतिके प्रवर्तक ! निमेषसे लेकर वर्ष तक जो यह द्विपरार्द्धरूप महान् काल है, इसमें अनेक प्रकारसे विश्वका परिवर्तन होता है; यही विश्वपरिवर्तन आपकी चेष्टा (लीला) है । आप क्षेम एवं अभयका स्थान हैं, मैं आपके शरणमें आई हूँ ॥२६॥ मृत्युरूप विषधर सर्पके भयसे भीत होकर भागता हुआ मनुष्य किसी निर्भय लोकको नहीं पाता; आज किसी अनिर्वचनीय भाग्यके उदय होनेसे अकस्मात् आपके अभयमय चरणोंको पाकर सुखकी नींद सोवेगा, क्योंकि अब मृत्यु स्वयं इससे भागेगी ॥ २७ ॥ अब आप इस घोर उग्रसेनसुत कंससे डरे हुए जो हम लोग हैं उनकी रक्षा करो, क्योंकि आप अपने जनोंका भय मिटानेवाले भक्तवत्सल हैं। एक प्रार्थना और भी है कि आप इस अपने ध्यानगम्य दिव्यरूपको चर्मचक्षुवाले लोगोंके आगे न प्रकट कीजिये; क्योंकि इस दिव्यरूपके दर्शन दिव्य दृष्टिसे ही हो सक्ते हैं ॥ २८ ॥ हे मधुसूदन ! यह पापरूप कंस जिसमें यह न जान सके कि मेरे गर्भसे आपका जन्म हुआ है—ऐसा कोई उपाय कीजिये । यद्यपि आप अभयमय हैं, कंसके द्वारा आपका कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सक्ता, तौ भी आपके लिये मुझे कंससे भय हो रहा है; क्योंकि मैं स्त्री हूँ, मेरा चित्त स्वाभाविक अधीर है ॥ २९ ॥ हे विश्वरूप ! अब आप शंख, चक्र, गदा और पद्मकी शोभासे युक्त इस अपने अलौकिक चतुर्भुज रूपको छोड़कर लौकिक रूप धारण कर लीजिये ॥ ३० ॥ प्रलयके अन्तमें जब आप अपने विशाल विराट् शरीरमें ब्रह्माण्डको लीन कर लेते हैं तब सब विश्व उसीमें समा जाता है । किसी वस्तुके लिये अवकाशकी कमी नहीं रहती । वही आप मेरे गर्भमें उत्पन्न हुए—इस पर अज्ञानी मनुष्योंको विश्वास न होगा; बरन् उनके आगे यह विडम्बना(उपहास)का विषय होगा । अतएव आप अब इस अद्भुत रूपको छिपा लीजिये" ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा । हे सती देवकी ! पूर्वजन्ममें स्वायंभुव मन्वन्तरके बीच तुम्हारा नाम पृश्नि था और यह निष्पाप वसुदेवजी सुतपा नाम प्रजापति थे । ब्रह्माजीने तुम दोनोको प्रजा-सृष्टि करनेकी आज्ञा दी, उसीके अनुसार इन्द्रियोंको वशमें करके तुम दोनोने घोर तप किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वर्षा, वायु, घाम, जाड़ा, गर्मी, आदि सब कालके गुणोंको सहते हुए प्राणायामके द्वारा मनकी मलिनता मिटाकर तुम तपमें निरत थे । केवल वायु या सूखे पत्तोंका आहार करते थे । मुझसे चितचाहा फल पानेकी इच्छा करके इस प्रकार शान्त चित्तसे तुम दोनो पति–पत्नीने मेरी आराधना की । इस प्रकार मुझमें ही तन्मय होकर परम दुष्कर तीव्र तप करते तुमको दिव्य बारह हजार वर्ष बीत गये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

हे पापरहिते ! तप, श्रद्धा और भक्ति सहित नित्य ध्यान करनेसे वरदानियोंका राजा मैं प्रसन्न होकर इसी रूपसे तुम्हारी कामना पूरी करनेके लिये तुम्हारे आगे प्रकट हुआ। मैंने कहा–वर माँगो, तब तुमने मेरे ही समान गुण–शीलयुक्त पुत्र माँगा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तुम दोनो स्त्री-पुरुषोंने विषयभोग किया न था और पुत्र-हीन भी थे, अतएव मेरी मायासे मोहित होकर मुझसे मुक्ति न माँग सके ॥३९॥ वर देकर मेरे चले जाने पर, मेरे सदृश पुत्र पानेका वर पानेसे सफल-मनोरथ होकर तुम दोनो विषयभोग करने लगे ॥ ४० ॥ शील, उदारता और अन्यान्य गुणोंमें अपने समान किसीको किसी लोकमें न देखकर मैं आप ही पृश्निगर्भ नामसे तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुआ ॥ ४१ ॥ फिर दूसरे जन्ममें तुम अदिति और कश्यप हुए और मैं भी उपेंद्रनामसे तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुआ। वामन होनेके कारण 'वामन' नाम पड़ा ॥ ४२ ॥ तुम्हारा यह तृतीय जन्म है, इसमें भी वही मैं उसी रूपसे तुम्हारे भवनमें पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ हूँ। हे सती ! यह वृत्तान्त सब मैंने तुमसे सत्य ही कहा है। पहले भी मैं तुम्हारे यहाँ इसी रूपसे उत्पन्न हुआ था, यह याद दिलानेके लिये मैंने पहले तुमको चतुर्भुजरूप दिखाया है। यदि यह अलौकिक रूप न दिखाकर साधारण मनुष्यरूपसे मैं जन्म लेता तो तुम मुझको कभी न पहचान सक्ते ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ पुत्रभावसे या ब्रह्मभावसे सदा मेरा ध्यान और मुझ पर स्नेह करनेके कारण तुमको उत्तम गति प्राप्त होगी ॥४५॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। इतना कह कर भगवान् चुप हो रहे एवं अपनी मायाके बलसे उसी समय माता व पिताके आगे ही साधारण बालक बन गये ॥ ४६ ॥ तब वसुदेवजी भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार बालरूप हरिको लेकर सूतिकागृहसे बाहर निकलनेका उद्योग करने लगे। उधर उसी समय जन्मरहित योगमायाजी नंदरानीके गर्भसे गोकुलमें उत्पन्न हुईं ॥४७॥ उन्ही योगमायाके प्रभावसे द्वारपाल और पुरवासीगणकी सब इन्द्रियाँ अचेत होगईं और वे सब घोरनिद्राके वश होगये। यद्यपि बंदीगृहके द्वार और किंवाड़ोंमें लोहेकी जंजीरें पड़ी थीं और ताले लगे थे—जिससे बाहर निकलना कठिन था, तथापि वसुदेवजी कृष्णचंद्रको गोदमें लेकर बाहर जानेके लिये जैसे ही वहाँ पहुँचे वैसे ही सूर्य्यके उदयमें जैसे अंधकार मिट जाता है उस प्रकार सब द्वार आप ही आप खुलगये। उस समय मेघवृंद मंद २ ध्वनिके साथ जलकी फुहारें बरसा रहे थे, अतएव शेषजी जल रोकनेके लिये वसुदेवके पीछे २ कृष्णचंद्र पर अपने हजारो फनोंकी छाया करके चले; किन्तु वसुदेवजी न जान सके ॥४८॥४९॥ निरन्तर जलकी वर्षा होनेके कारण उस समय यमुना बड़े ही वेगसे बहरही थीं, अथाह जलमें असंख्य तरंगें उठरही थीं-जिनसे जलमें फेना छा रहा था एवं अनेक भयानक भँवर पड़ रहे थे। किन्तु सागरने जैसे श्रीरामचन्द्रको उस पार जानेके लिये मार्ग देदिया था वैसे ही यमुनाने भी थाह

होकर वसुदेवजीको उस पार जानेकें लिये राह देदी ॥ ५० ॥ वसुदेवजी श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर नंदके व्रजमें पहुँचे। जाकर देखा कि सब गोप और गोपियाँ निद्रामें अचेत हुए पड़े सो रहे हैं। वसुदेवने कृष्णचन्द्रको यशोदाके पलँगपर सुलादिया और यशोदाकी कन्याको लेकर घरको लौटे ॥ ५१ ॥ बंदीगृहमें आकर वसुदेवने उस कन्याको देवकीकी सेज पर लिटा दिया और अपने पैरोंमें फिर पहलेकी भाँति वेड़ियाँ डाललीं। फिर आप ही आप सब द्वार पहलेकी भाँति बंद होगये ॥ ५२ ॥

यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत।
न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयापगतस्मृतिः ॥ ५३ ॥

उधर नंदरानी यशोदाको यह तो जान पड़ा कि मेरे कुछ सन्तान हुआ, किन्तु यह न जान सकीं कि पुत्र हुआ या कन्या; क्योंकि श्रम और निद्राके कारण उनको इतना चेत न था ॥ ५३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय।

असुरोंका कुपरामर्श।

श्रीशुक उवाच—बहिरन्तः पुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ॥
ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। हे राजन्! वसुदेवके लौट आने पर बाहरके और भीतरके द्वार और पुरके फाटक फिर पहलेके समान बंद होगये। तदनन्तर बालकके रोनेका शब्द सुन कर द्वारपालगण जागे और देवकीके पुत्र उत्पन्न हुआ जान कर जल्दीसे दौड़ते हुए कंसके पास गये। उनके मुखसे देवकीके आठवाँ पुत्र होनेका समाचार पाते ही कंस घबड़ा कर उठ बैठा। कंस यही राह देख रहा था कि कब देवकीके आठवाँ पुत्र होगा? यही उसको बड़ी भारी चिन्ता और घबराहट थी। कंस खबर पाते ही नंगे सिर, बाल खुले, पैर कहीं धरे और पड़े कहीं—इस प्रकार विह्वल भावसे दौड़ता हुआ चला और सूतिकागृहमें एकदम घुस पड़ा ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ३ ॥ इस दशासे निठुर भाईको आते देख, देवकीने दुखी होकर दीन भावसे कहा कि "हे कल्याण! यह कन्या तुम्हारी भान्जी है इसका वध करना तुमको योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ भाई! दैवकी दी हुई दुर्मतिसे तुमने अग्निके तुल्य तेजस्वी मेरे कई पुत्र मारडाले हैं, अब यह एक कन्या मुझे माँगसे देडालो ॥ ५ ॥ हे समर्थ! मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ, पुत्रोंके मारेजानेसे दीन दुखी होरही हूँ।

यह कन्या मेरी अन्तिम प्रजा है; मुझ अभागिनीको यह कन्या देना तुम्हारा कर्त्तव्य है" ॥ ६ ॥ कन्याको गोदमें छिपा कर अत्यन्त दीन भावसे रोते हुए देवकीने बहुत कुछ प्रार्थना की, किन्तु दुष्ट कंसने एक नहीं सुनी और डाँट कर देवकीके हाथसे कन्याको छीन लिया ॥ ७ ॥ स्वार्थवश होकर स्नेहको भूले हुए कंसने तत्कालकी उपजी हुई कन्याको दोनो पैर पकड़ कर एक शिलाके ऊपर पटका ॥ ८ ॥ किन्तु वह कन्या उसके हाथसे छूट कर शीघ्रताके साथ आकाशको चली गई। वह विष्णुकी अनुजा देवी योगमाया आकाशमें जाकर दिव्यायुध-धारिणी अष्टभुजा मूर्त्तिसे विराजमान हुई ॥ ९ ॥ कंसने देखा कि वह देवी दिव्य माला, वस्त्र, चंदन और आभूषण धारण किये हैं एवं हाथोंमें धनुष, शूल, बाण, ढाल, खड्ग, शंख, चक्र व गदा लिये हैं ॥ १० ॥ सिद्ध, चारण, गंधर्व, अप्सरा, किन्नर और नाग इत्यादि अनेक प्रकारकी पूजनसामग्रियाँ हाथमें लिये उनकी स्तुति कर रहे हैं। देवीने कंससे कहा कि "हे मंद! मेरे मारनेसे तुझे क्या लाभ होगा? क्योंकि तेरा पूर्वशत्रु (विष्णु) और मारनेवाला कहीं और ही उत्पन्न हो चुका है! अतएव वृथाके लिये अन्यान्य निर्दोष बालकोंका वध न कर" ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ भगवती योगमाया कंससे यों कह कर अन्तर्हित हो गई और वाराणसी आदि अनेक स्थानोंमें अनेक नामोंसे प्रसिद्ध होकर अवस्थित हुई ॥ १३ ॥ देवीके वचन सुनकर कंसको बड़ा विस्मय हुआ। उसी समय कंसने देवकी और वसुदेवको वंदीगृहसे बाहर कर विनयपूर्वक यों कहा कि "हे भगिनी! और हे भगिनीपति! तुम हमारे आत्मीय हो; किन्तु राक्षसोंके समान मुझ पापीने तुम्हारे बहुत पुत्र मारडाले ॥ १४ ॥ १५ ॥ हाय! मैंने करुणा और जातिवाले व सुहृदोंका स्नेह छोड़ दिया। मैं दुष्ट मरने पर किन लोकोंमें पापका फल भोगनेके लिये जाऊँगा! मैं ब्रह्मघातीके समान जीतेही मरेके तुल्य हूँ ॥१६॥ आज मैंने जाना कि केवल मनुष्य ही नहीं बरन् देवता भी झूठ बोलते हैं! जिनके कहने पर विश्वास करके मुझ पापीने अपनी बहनके पुत्रोंकी हत्या की ॥ १७ ॥ हे महाभागो! तुम दोनो पुत्रोंके लिये शोक न करो। उन्होने जैसे कर्म किये थे वैसा ही फल उनको भोगना पड़ा। सब प्राणी दैवके वशवर्ती हैं, अतएव वे सर्वदा एकत्र नहीं रह सक्ते ॥ १८ ॥ जैसे मिट्टीसे घटआदि उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं पर मिट्टी वैसी ही बनी रहती है, उसी प्रकार देहादिकी उत्पत्ति और नाश होता है; परन्तु आत्मा अविकृत ही रहता है ॥ १९ ॥ जो लोग यथार्थ रूपसे इस तत्त्वको नहीं जानते उन्हीको देहादि असत् पदार्थोंमें आत्मबुद्धि होती है और इसी भ्रान्तबुद्धिसे भेद-ज्ञान उत्पन्न होता है। भेद-ज्ञानसे ही पुत्रादि शरीरके साथ संयोग व वियोग समझ पड़ता है, अतएव ज्ञानका उदय हुए बिना संसारचक्रकी निवृत्ति नहीं होती ॥ २० ॥ अतएव हे भद्रे! यद्यपि मैंने तुम्हारे

पुत्रोंका वध किया है तथापि तुम उनके लिये दुःख न करो। कोई भी प्राणी स्वाधीन नहीं है, सभीको अपना २ कर्म्मभोग करना होता है ॥ २१ ॥ 'मैं मारनेवाला हूँ' या 'मैं मारा गया'—इस प्रकारका बोध आत्माके प्रति जितने दिन देहाभिमानी अज्ञ व्यक्तिको रहता है तबतक वह देहका नाश होनेसे आत्मनाश समझ कर स्वयं दूसरेका वैरी बनता है और दूसरेको अपना वैरी बनाता है ॥ २२ ॥ तुम दोनो साधुशील एवं बन्धुवत्सल हो, मेरी दुष्टताको क्षमा करो"। यों कह कर कंस नेत्रोंसे आँसू बहाते २ वसुदेव और देवकीके पैरों पर गिर पड़ा ॥ २३ ॥ कन्यारूपिणी योगमायाके वचनों पर विश्वास कर प्रिय वचनोंसे अपना सुहृद्भाव प्रकट करते हुए कंसने देवकी और वसुदेवको बन्धनमुक्त कर दिया ॥ २४ ॥ भाईको इस प्रकार अपने किये पर पछताते देख कर देवकीने अपने हृदयसे कोपको दूर कर दिया और वसुदेवजी हँस कर कंससे कहने लगे कि "महाभाग! देहधारियोंके विषयमें जो कुछ तुमने कहा सो सब यथार्थ है। अविद्यासे ही अहंबुद्धि उत्पन्न होती है। उसी अहंबुद्धिसे 'यह अपना है और यह पराया है' इस प्रकारका भेद भाव होता है ॥ २५ ॥ २६ ॥ इसी प्रकारके भेदभावयुक्त लोग देहाभिमानके कारण शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह एवं मदसे परिपूर्ण होकर परस्पर एक एकके शरीरको नष्ट करते हैं, किन्तु सबका अन्तर्य्यामी जगदीश्वर जो उनके सब कर्मोंको देखता है उसको एक बार भी नहीं विचारते; बरन् 'मैंने मारा और मैं मारागया' ऐसा मानते हैं ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। प्रसन्न होकर शुद्ध भावसे देवकी व वसुदेवके यों कहने पर उनकी आज्ञा लेकर कंस अपने भवनको गया ॥ २८ ॥ वह रात्रि बीतने पर कंसने अपने मन्त्रियोंको बुलाया और जो कुछ योगमायाने कहा था सो उनसे कहा ॥ २९ ॥ स्वामी कंसके वाक्य सुन कर मूर्ख एवं स्वाभाविक देवद्रोही दानवगण देवतों पर कुपित होकर कहने लगे कि "हे भोजराज! यदि ऐसा है तो हम अभी संपूर्ण पुर, ग्राम और व्रज आदिमें जाकर दश दिनके और इससे कम अवस्थाके बालकोंका विनाश करते हैं॥३०॥३१॥ अनेक उद्योग करके भी देवगण आपका क्या कर सक्ते हैं? वे तो समरसे डरनेवाले कायर हैं! नित्य आपके धनुषकी प्रत्यञ्चाका शब्द सुनते ही घवड़ा उठते हैं ॥३२॥ युद्धमें जब आप वाणवर्षासे उनको घायल करते हैं तब आपके द्वारा मारे जाने पर वे अपने २ प्राण लेकर युद्धभूमिसे इधर उधर भागने लगते हैं ॥ ३३ ॥ और कोई २ शस्त्र फेंक देते हैं तथा कच्छ व शिखा खोल कर दीन भावसे हाथ जोड़े 'हम भयभीत हैं' यों कह कर आपसे दयाकी प्रार्थना करते हैं ॥३४॥ आप भी उनको शस्त्र अस्त्र भूले हुए, रथहीन, भयसे नम्रता दिखा रहे, अन्यमनस्क, युद्धसे विमुख, भग्नशरासन एवं युद्धभूमिसे भागते देख कर नहीं मारते ॥ ३५ ॥ जहाँ किसी प्रकारका

भय नहीं होता वहीं देवता लोग अपनी वीरताकी डींग मारा करते हैं, वे लोग युद्धभूमिके सिवा सर्वत्र अपने मुखसे अपनी प्रशंसा किया करते हैं । उनसे हमको कोई भय ही नहीं है । विष्णु सदा निर्जन स्थानमें वास करते हैं और शिव वनवासी तपस्वी हैं, अतएव ये कुछ नहीं करसक्के ॥ ३६ ॥ इन्द्रका पराक्रम अत्यन्त सामान्य है और ब्रह्मा वृद्ध तपस्वी हैं, इनसे तो कुछ भी खटका नहीं है । किन्तु यद्यपि प्राणपणसे चेष्टा करके भी देवता लोग हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सक्के—यह बात सत्य है, तथापि वे हमारे शत्रु हैं; अतएव हमारी समझमें उनकी उपेक्षा करना अनुचित और भूल है । अतएव उनका समूल संहार करनेके लिये हम अनुगत सेवकोंको आज्ञा दीजिये । देहमें उत्पन्न रोगकी पहले उपेक्षा करने पर जब उसकी जड़ जम जाती है तब जैसे वह मनुष्योंके लिये असाध्य हो जाता है एवं जैसे इन्द्रियोंकी उपेक्षा करनेसे फिर उनका दमन असाध्य हो उठता है वैसे ही उपेक्षा करनेके कारण बद्धमूल महान् शत्रुका नाश करना भी सुकठिन हो जाता है ॥३७॥३८॥ स्वामी ! देवतोंकी जड़ विष्णु हैं और विष्णुका वहीं वास है जहाँ कि सनातन धर्म है एवं वेद, ब्राह्मण, गो, तप, और दक्षिणायुक्त यज्ञ ही सनातन धर्मके मूल हैं । अतएव हे राजन् ! जैसे बनेगा वैसे हम लोग वेदपाठी तपस्वी यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणों और हव्य देनेवाली गायोंका वध करेंगे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ गो, वेद, तप, सत्य, दम, शम, श्रद्धा, दया, क्षमा और विविध यज्ञ ही विष्णुके रूप हैं ॥ ४१ ॥ विष्णु ही सब देवतोंके अध्यक्ष हैं । दानवद्रोही और अन्तर्य्यामी विष्णु ही ब्रह्मा, शिव आदि सब देवतोंका आदिकारण या मूल हैं । अतएव ऋषियोंकी हिंसा ही विष्णुके वधका उपाय है ॥ ४२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । शिर पर काल सवार होनेके कारण दुर्बुद्धि कंसने दुष्ट मंत्रियोंकी सलाहसे ब्रह्मवधको ही अपना हित (कल्याण) समझा, ॥ ४३ ॥ हत्याप्रिय एवं इच्छानुसार मायामयरूप धारण करनेवाले दैत्योंको साधुजनोंकी हिंसा करनेके लिये चारो ओर भेजकर कंस अपने भवनमें गया ॥४४॥ दुर्दान्त दानवोंकी प्रकृति रजोगुणपूर्ण थी एवं उनके चित्त तमोगुणसे आच्छन्न थे अतएव शीघ्र ही मरनेवाले वे दानवलोग साधुलोगोंसे द्वेष करने लगे ॥ ४५ ॥

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ॥
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥ ४६ ॥

महाराज ! बड़े जनोंका अनादर करनेवालोंकी आयु, श्री, यश, धर्म्म, स्वर्गादिलोक, मंगल और सब प्रकारके श्रेय शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ४६ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय।

मथुरामें नंद व वसुदेवकी भेंट।

श्रीशुक उवाच—नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः॥
आहूय विप्रान्दैवज्ञान्स्नातः शुचिरलंकृतः॥ १॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! अपने यहाँ पुत्रका जन्म जानकर उदारचित्त नन्दने आनन्दित होकर वेदपाठी ब्राह्मणोंको बुलाया और स्वयं स्नान करके पवित्र हो कर नवीन वस्त्र व आभूषण पहने॥ १॥ एवं ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्त्ययनपाठ, पुत्रका यथाविधि जातकर्मसंस्कार तथा पितर व देवतोंका पूजन कराया॥ २॥ नन्दने ब्राह्मणोंको दो नियुत (२० लाख) भलीभाँति अलंकृत धेनुएँ व अनेक रत्न तथा सुवर्णमण्डित वस्त्रोंसे ढँके हुए सात तिल-पर्वत* दिये॥ ३॥ काल(समय)से भूमिआदि, स्नानसे देहादि, शौचसे अपवित्र हुई वस्तु, संस्कारसे गर्भादि, तपसे इन्द्रियादि, पूजापाठसे ब्राह्मणादि, दानसे द्रव्यादि, संतोषसे मन और आत्मज्ञान या विद्यासे आत्माकी शुद्धि होती है॥ ४॥ उस आनन्दके दिन नंदके व्रजमें मंगलमय वाणियोंसे ब्राह्मण, सूत[1], मागध[2], बंदीजन[3] स्वतिवाचन करते हुए आशीर्वाद देने लगे। गायक लोग गानेलगे और चारो ओर भेरी व दुंदुभी आदि मांगलिक बाजे बजने लगे॥ ५॥ सम्पूर्ण व्रजमंडल, विचित्रध्वजा, पताका, माला और रंगविरंगे वस्त्रोंसे सजे हुए बनावटी द्वारोंसे सुशोभित हुआ॥६॥ गऊ, बैल व बछड़े सब तेल व हल्दीसे रञ्जित एवं चित्र विचित्र गेरूआदि धातु, मयूरोंके पर, माला, वस्त्र तथा सोनेकी जंजीरोंसे विभूषित किये गये॥७॥ बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण, जामा और पगड़ियाँ पहन कर अनेक भेंटकी वस्तुएँ हाथमें लिये गोपलोग नंदके भवनमें आने लगे॥ ८॥ यशोदाके पुत्र हुआ, यह सुन कर सब गोपियाँ परम आनन्दित हुईं और वस्त्र, अलंकार तथा अंजन आदिसे अपनेको विभूषित करने लगीं॥ ९॥ विशाल नितम्बवाली गोपियोंके मुखकमल नवकुंकुमरूप परागसे सुशोभित हुए, वे अनेक प्रकारकी भेंटकी सामग्रियाँ लेकर शीघ्रतापूर्वक झपटती हुई नन्दके भवनको चलीं। चलतेमें उनके पीन पयोधर हिलते थे॥ १०॥ गोपियाँ चित्र विचित्र वस्त्र धारण किये

---

* इतना बड़ा तिलोंका ढेर तिलपर्वत कहलाता है जिसके दोनो ओर दो मनुष्य खड़े हो कर एक एकको न देखपावें।

१ वे लोग जो पौराणिक होते हैं। २ वे लोग जो वंशका बखान करते हैं। ३ वे लोग जो समयानुकूल उक्तियोंसे प्रशंसा करते हैं, जिनको भाट कहते हैं। यथा—"सूताः पौराणिकाः प्रोक्ता मागधा वंशशंसकाः। बन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्तावसदृशोक्तयः॥"

थीं, कानोंमें मणि कुण्डल हिल रहे थे, कण्ठमें पदक (हमेल) पड़े हुए थे। सुवर्णके विविध रत्नजटित आभूषण पहने सब गोपियाँ नंदभवनको जाती थीं, राहमें उनके केशपाशोंसे सुगंधित पुष्पोंकी वर्षा सी होती जाती थी, हाथोंमें कंकण सुशोभित हो रहे थे एवं चलनेमें हिलरहे कुंडल, कुचमण्डल और हार एक अपूर्व ही शोभा दिखा रहे थे ॥ ११ ॥ नंदभवनमें पहुँच कर वे गोपियाँ "चिरञ्जीव" कह कर कृष्णचन्द्रको शुभ आशीर्वाद देती थीं एवं परस्पर हल्दी-तेल मिला हुआ जल छिड़क कर आनन्द प्रकट करती थीं ॥ १२ ॥ जगत्के स्वामी अनन्त श्रीकृष्णजी जब नंदके व्रजमें आये तो उस महान् उत्सवके समय वहाँ भाँति २ के मंगलमय बाजे बजने लगे ॥ १३ ॥ प्रसन्नचित्त गोपगण परस्पर एक एक पर दही, दूध, घी, जल आदि बर्साते हुए नवनीत (माखन) लेपने और फेंकने लगे ॥ १४ ॥ महा उदार नंदने उनको प्रसादस्वरूप अनेक प्रकारके वस्त्र, अलंकार और गायें दीं। सूत, मागध, बन्दीजन आदि जो २ गुणीजन वहाँ आये उनको मुहमाँगी वस्तुएँ नंदसे मिलीं; नंदजीने उन सबको भली भाँति सन्तुष्ट करके उनका सत्कार किया । उदारचित्त नंदने विष्णुकी प्रसन्नता और अपने पुत्रके कल्याणकी कामनासे आये हुए सब लोगोंको अनेक प्रकारके सत्कारोंसे सन्तुष्ट किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ नंदगोपके द्वारा अभिनंदिता महाभागा रोहिणीने भी दिव्य वस्त्र, आभूषण, माला और कण्ठके आभूषणोंसे विभूषित हो, सबका सत्कार किया ॥ १७ ॥ उसी दिनसे रमापति हरिके रहनेके कारण नंदका व्रज सब प्रकारकी समृद्धियोंसे सम्पन्न होकर लक्ष्मीजीके विहारका स्थान बन गया; वहाँ लक्ष्मीजीके सब गुण प्रत्यक्ष देख पड़ने लगे ॥ १८ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! तदनन्तर कुछ गोपोंको गोकुलकी रक्षा और देखरेखका भार देकर कंसको वार्षिक कर (सालाना मालगुजारी) देनेके लिये नन्दजी मथुरापुरीको गये ॥ १९ ॥ वसुदेवने जब जाना कि भाईके समान हितकारी मित्र नन्दजी आये हैं और राजा कंसको वार्षिक कर देचुके हैं तब उनके डेरे पर मिलनेके लिये गये ॥ २० ॥ नंदजी अपने परम मित्रको देख कर जैसे प्राण पाकर शरीर उठ-खड़ा हो वैसे सहसा आसनसे उठ खड़े हुए और प्रियतम वसुदेवको हाथ फैला कर प्रसन्नतापूर्वक प्रेमसे विह्वल हो गलेसे लगा लिया ॥ २१ ॥ नंदने आदर-पूर्वक वसुदेवका पूजन किया। हे महाराज ! जब वसुदेवजी सुखपूर्वक बैठे तब कुशलप्रश्नके बाद अपने पुत्रोंमें मन लगारहनेके कारण यों कहने लगे ॥ २२ ॥ वसुदेवजीने कहा—भाई ! तुम वृद्ध हो गये थे, अब तक तुम्हारे कोई पुत्र या कन्या नहीं थी, और सन्तान होनेकी आशा भी जाती रही थी। इस समय तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हुआ, यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है! ॥ २३ ॥ यह भी बड़े भाग्यकी बात है कि इस संसारचक्रमें हम तुम दोनो मित्र फिर मिले; क्योंकि प्रिय मित्रका दर्शन बहुत ही दुर्लभ है । मानो हमारा

तुम्हारा फिरसे जन्म हुआ ॥ २४ ॥ जैसे जलके प्रवाहमें बहरहे तृणोंका एकत्र रहना असम्भव है वैसे ही भिन्न २ कर्म करनेवाले प्रिय आत्मीय सुहृद् जनोंका सदा एकत्र रहना भी कठिन ही नहीं बरन् असंभव है ॥ २५ ॥ तुम बंधु-बांधवों सहित जिस विशाल वनमें वास करते हो उसमें किसी प्रकारकी बाधा तो नहीं है? वहाँ निर्वाहयोग्य जल, तृण और वृक्ष लता आदि हैं? ॥ २६ ॥ हमारा एक पुत्र अपनी माता सहित आपके व्रजमें रहता है, भाई! वह आपको ही अपना पिता जानता है, क्योंकि यशोदा और आपने ही उसका लालन पालन किया है। वह तो सुखसे है? ॥ २७ ॥ जिस त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) से आत्मीय जनोंको सुख मिले वही त्रिवर्ग पुरुषके लिये शास्त्र-विहित है। किन्तु यदि उससे अपनेको ही सुख मिला और परिवारको क्लेश हुआ वह त्रिवर्ग शास्त्रोक्त प्रयोजनको नहीं सिद्ध कर सक्ता ॥ २८ ॥ **नंदजीने कहा** । अहो! देवकीके गर्भसे उत्पन्न तुम्हारे कई पुत्र दुष्ट कंसने मार डाले। सबसे छोटी एक कन्या बची थी वह भी स्वर्गको चली गई! ॥ २९ ॥ इसमें कोई सन्देह नहीं कि सब जनोंके लिये पुत्र आदिका सुख मिलना भाग्य पर निर्भर है एवं भाग्य ही सब लोगोंका सर्वस्व है। जो लोग भाग्यको ही सुख और दुःखका कारण जानते हैं उनको दुःख आ पड़ने पर या सुख मिलनेमें मोह नहीं होता ॥ ३० ॥ **वसुदेवजीने कहा**। मित्र! तुम राजा कंसको वार्षिक कर दे चुके एवं हमसे भी भेंट कर चुके; अब तुम्हारा यहाँ बहुत दिन ठहरना अच्छा नहीं है, क्योंकि गोकुलमें अनेक उत्पात हो रहे हैं ॥ ३१ ॥

श्रीशुक उवाच—**इति नन्दादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः ॥**
अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥ ३२ ॥

वसुदेवके यों कहने पर उसी समय छकड़े जुतवा कर नंद आदि गोप उन पर सवार हुए और वसुदेवसे विदा होकर गोकुलकी ओर चले ॥ ३२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय ।

पूतना-वध ।

श्रीशुक उवाच—**नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन् ॥**
हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशङ्कितः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज! महात्मा वसुदेवके वचन मिथ्या नहीं होते—यह विचारते हुए नंदजी मार्गमें उत्पात होनेकी आशंकासे भयभीत

होकर हृदयसे हरिके शरणागत हुए ॥ १ ॥ वास्तवमें कंसकी भेजी हुई कामचारिणी बालघातिनी घोर स्वभाववाली पूतना राक्षसी उस समय पुर, ग्राम, व्रज आदिमें जाकर बालकोंको मार रही थी ॥ २ ॥ किन्तु हे राजन्! जहाँके रहनेवाले लोग अपने नित्यके कर्मोंमें भक्तपति भगवान्‌का कीर्त्तन और उनके गुणोंका श्रवण नहीं करते वहीं ऐसी राक्षसियोंका प्रवेश हो सक्ता है ॥ ३ ॥ वह आकाशगामिनी राक्षसी पूतना घूमती हुई नन्दके गोकुलमें भी पहुँची और इच्छानुसार जहाँ जिस रूपसे चाहे चली जाय—इस शक्तिके होनेके कारण मायाबलसे सुन्दर युवतीका रूप धर कर गोकुलके भीतर घुसी ॥ ४ ॥ उसने परम सुन्दर रूप धारण किया। उसकी वेणीमें मल्लिकाके फूल गुँथे हुए थे, विशाल नितंब थे, पीन पयोधरोंमें क्षीण कटि देख ही न पड़ती थी, सुंदर वस्त्र पहने थी, हिल रहे कानोंके कुण्डलोंकी झलकसे शोभायमान अलकोंसे उसके मुखकी अपूर्व शोभा थी ॥ ५ ॥ मनोहर मुसकान और कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे वह व्रजवासियोंके चित्तको चुराए लेती थी। गोपियोंने हाथमें कमलका फूल लिये उसे देख कर समझा कि यह साक्षात् लक्ष्मीजी अपने स्वामी विष्णु(कृष्ण)को देखनेके लिये आई हैं ॥ ६ ॥ राजन्! स्त्रीरूपधारिणी पूतना बालकोंके लिये ग्रहस्वरूप भयदायिनी थी। वह मारनेके लिये बालकोंको खोजती हुई इच्छापूर्वक नंदके घरमें घुस कर इधर उधर घूमने लगी। घूमते २ उसने शय्या पर बालवेष कृष्णचन्द्रको देखा। राक्षसी यह न जानसकी कि यह बालक दुष्टोंके लिये कालरूप है एवं भस्ममें छिपे हुए अग्निके समान अपने असीम तेजको छिपाये हुए है, अतएव कृष्णको देख कर भयभीत नहीं हुई ॥ ७ ॥ चराचर जगत्के अन्तर्य्यामी कृष्णचन्द्र समझ गये कि यह साधारण स्त्री नहीं है, वरन् मायासे स्त्रीरूप धरे हुए बालघातिनी बालग्रह पूतना है; अतएव उसे मारनेकी इच्छासे उन्होने दोनो आँखें बंद कर लीं (क्योंकि भगवान्‌के आगे कोई माया नहीं ठहरसक्ती और पूतनाकी माया मिटजाने एवं राक्षसी देह प्रकट होनेसे काम बिगड़जाता)। जैसे कोई व्यक्ति भ्रमसे रस्सी समझ कर सो रहे कालरूप काले साँपको उठाले वैसे ही उस पूतनाने अपने अन्तक अनन्त कृष्णचंद्रको साधारण बालक जान कर गोदमें उठा लिया ॥ ८ ॥ जैसे सुतीक्ष्ण तर्वार मखमली म्यानमें छिपी होनेसे भली जान पड़े वैसे ही भीतर घोरभाव होने पर भी प्रकटमें अत्यन्त स्नेहपूर्ण माताका ऐसा पूतनाका व्यवहार देख कर यशोदा और रोहिणीने भी उसे न रोका। देखनेमें सुंदर युवतीरूपधारिणी पूतना कोई भद्रमहिला जान पड़ती थी, उसकी प्रभा भी वैसी ही थी। अतएव यशोदा व रोहिणी चुपचाप खड़ी देखती रहीं, कुछ भी न कहसकीं ॥ ९ ॥ उस घोरा पूतनाने कृष्णको गोदमें लेकर दुर्जर विषलिप्त, जीवननाशक स्तन उनके मुखमें दिया। भगवान् हरिने

कुपित हो कर उस स्तनको भलीभाँति दोनो हाथोंसे पकड़ लिया और दूधके साथ उसके प्राण भी खींचने लगे ॥ १० ॥ सब मर्मस्थलोंमें घोर वेदना होनेसे



वह राक्षसी "बस, बस, छोड़दे, छोड़दे" यों वारम्वार आर्त्त स्वरसे कहने लगी। किन्तु कृष्णचन्द्र कब छोड़नेवाले थे? उसके सब अंगोंसे पसीना निकलने लगा और आँखें बाहर निकल पड़ीं। अन्तको अचेत हो कर पृथ्वी पर गिरपड़ी एवं अत्यन्त यातना होनेके कारण बार २ हाथ पैर पटकने व रोने लगी ॥११॥ उसके अत्यन्त वेगशाली घोर गम्भीर चीत्कार-शब्दसे पर्वतगणसहित पृथ्वी और ग्रहगणसहित आकाश कम्पायमान हो उठा; रसातल और दिशाओंसे प्रतिध्वनि होने लगी एवं वज्रपातकी आशंकासे अनेक लोग पृथ्वी पर गिर गये ॥१२॥ मर्मस्थलमें यों तीव्र वेदना होनेसे उस राक्षसीके प्राण निकल गये और वह अन्तसमय अपना राक्षसी रूप प्रकट करके केश, दोनो पैर और भुजा फैलाकर, इन्द्रका वज्र लगनेसे निहत वृत्रासुरके समान, गोष्टमें गिर पड़ी ॥ १३ ॥ महाराज! मर कर गिरते समय भी उसके लंबे चौड़े शरीरने छः कोसतकके वृक्ष आदिको चूर्ण कर डाला। लोगोंके लिये यह एक बड़े ही विस्मयकी बात हुई ॥ १४ ॥ उसकी तीक्ष्ण दंष्ट्राएँ हलके समान लंबी चौड़ी थीं, नासिकाके छिद्र पर्वतकी कंदरा जानपड़ते थे, कुच विशाल शिला या छोटे पर्वतके समान थे, रूप बड़ा ही रौद्र था और अरुण वर्णवाले बाल इधर उधर बिखरे हुए थे ॥१५॥ नेत्र अंधकूपके तुल्य गंभीर थे, दोनो जंघाएँ ऊँचे नदीतटके समान होनेके कारण अत्यन्त भयानक थीं, भुजा, ऊरू और

चरण बँधे हुए सेतु(पुल)के तुल्य देख पड़ते थे एवं उदर सूखे हुए सरोवरके समान गहरा था॥१६॥उसके चीत्कारशब्दसे गिरपड़नेके कारण पहले जिनके हृदय, कान और मस्तक फट चुके थे वे गोप-गोपीगण पूतनाके ऐसे भयानक रूपको देख कर बहुत ही भयभीत हुए॥ १७ ॥ बालकको उस राक्षसीके वक्षःस्थल पर निर्भयतापूर्वक खेलते हुए देख कर गोपियाँ जल्दीसे घबड़ाहटके साथ वहाँ आईं और उसको उठा लिया॥ १८ ॥ तदनन्तर यशोदा, रोहिणी आदि सब गोपियाँ गोपुच्छ घुमा कर एवं अन्यान्य ढंगोंसे भलीभाँति बालकके सब अंगोंकी रक्षा करने लगीं ॥ १९ ॥ पहले गोमूत्रसे स्नान कराया, फिर सब अंगोंमें गोरज लगाई और ललाट आदि बारहो अङ्गोंकी केशवादि द्वादश नामोंसे रक्षा की ॥२०॥ गोपियोंने हाथ पैर धोकर आचमन किया और अपने शरीरमें "अज" आदि एकादश बीजमंत्रोंसे अंगन्यास व करन्यास करके बालकके भी शरीरमें इस प्रकार बीजन्यास किया ॥ २१ ॥ "तुम्हारे दोनो चरणोंकी अज, जानुओंकी मणिमान्, ऊरुओंकी यज्ञदेव, कटितटकी अच्युत, उदरकी हयग्रीव, हृदयकी केशव, वक्षःस्थलकी ईश, कण्ठकी सूर्यनारायण, बाहुओंकी विष्णु, मुखकी उरुक्रम भगवान् और मस्तक की ईश्वर रक्षा करें ॥ २२ ॥ चक्रधारी मुरारि तुम्हारे आगे, गदाधारी हरि पीछे, धनुषधारी मधुसूदन व असिधारी अज दाहिने बाएँ, शंखधारी विष्णु चारो कोनोंमें, उपेन्द्रजी ऊपर, तार्क्ष्यजी नीचे एवं हलधर पुरुष चारो ओर अवस्थित हो कर तुम्हारी रक्षा करें॥२३॥ [यों बाहरी अङ्गोंकी रक्षा कर भीतरी अर्थात् अन्तःकरण की रक्षा करने लगीं] तुम्हारी सब इन्द्रियोंकी हृषीकेशजी, दशविध प्राणोंकी नारायणजी, चित्तकी श्वेतद्वीपपति देव, मनकी योगेश्वर भगवान्, बुद्धिकी पृश्निगर्भजी एवं आत्माकी परमात्मा भगवान् रक्षा करें । खेलनेमें गोविंद, सोनेमें माधव, जानेमें वैकुण्ठदेव, बैठनेमें श्रीपति एवं भोजन करते समय सब ग्रहोंको भय देनेवाले यज्ञपुरुष देव तुम्हारी रक्षा करें । डाकिनी राक्षसी और कूष्माण्ड आदि सब बालग्रह, भूतगण, प्रेतगण, पिशाचगण, यक्ष, राक्षस, विनायकगण, कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, और पूतना आदि मातृकागण, देह व प्राणका नाश करनेवाले अपस्मार, उन्माद आदि भयानक रोग और दुःस्वप्नजनित सम्पूर्ण महाउत्पात एवं वृद्धग्रह व बालग्रह इत्यादि सब विष्णुनामके कीर्तनसे भीत हों और नष्ट हो जायँ" ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ राजन्! स्नेहसे जिनका मन कृष्णमें आसक्त है उन गोपियोंने यों मंगलरक्षा की और तदनन्तर यशोदाने पुत्रको गोदमें लेकर दूध पिलाया एवं दूध पिला कर शय्यापर सुला दिया ॥३०॥ इसी समय नंद आदि गोपगण मथुरासे व्रजको लौटे आरहे थे; वे मार्गमें पूतनाके घोर शरीरको देख कर बहुत ही अचंभेमें आये और कहने लगे—"वसुदेवजी निश्चय ही किसी ऋषि या योगेश्वरका अवतार हैं, क्योंकि जो उन्होने उत्पातकी

बात बताई थी उसीके लक्षण यहाँ देख पड़ते हैं" ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इधर व्रजमें स्थित गोपोंने कुल्हाड़ियोंसे पूतनाके कलेवरके अनेक टुकड़े कर डाले और गोकुलसे दूर ले जाकर लकड़ियों पर धर कर उनको जला दिया ॥ ३३ ॥ जलते समय उस शरीरसे जो धूम निकला उसमें अगुरुकी सी सुगंधि थी, क्योंकि कृष्णभगवान्ने स्तनपान किया, इस लिये पापिनी पूतनाके पाप सब नष्ट हो गये और शरीर पवित्र हो गया ॥ ३४ ॥ जब नरशिशुघातिनी, मांस खानेवाली राक्षसी पूतना मारनेकी इच्छासे भी दूध पिला कर उत्तम गतिको प्राप्त हुई तब जिन कृष्णकी माताओंने (यहाँ पर बहुत माताकी उक्ति इस लिये है कि जब ब्रह्माजी ग्वालबाल और बछड़े ले गये तब भगवान्ही बछड़े और ग्वालबाल होगये, उस समय सभी गोपियोंने दुग्धपान कराया) श्रद्धा और भक्तिसे परमात्मा कृष्णचन्द्रको स्नेहपूर्वक चितचाही वस्तुएँ दीं उनकी सद्गतिके लिये क्या कहना है ! ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जो भक्तोंके हृदयमें निरन्तर विराजमान रहते हैं, लोकवन्दित देवगण जिनकी वन्दना करते हैं उन्ही चरण-कमलोंको जिसके हृदय पर धर कर श्रीकृष्णचन्द्रने दुग्धपान किया वह पूतना राक्षसी होकर भी जब माताकी गति अर्थात् स्वर्गको प्राप्त हुई तब मुक्तिदाता देवकीनन्दन कृष्णने जिन गऊ और मातृतुल्य गोपियोंके पुत्रस्नेहकी अधिकतासे आप ही आप निकल रहे दूधको पिया, उनके उत्तम गति पानेमें क्या सन्देह है ? ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ महाराज ! वे सब गोपियाँ सदा कृष्णचन्द्रको पुत्रकी दृष्टिसे देखती रहीं, अतएव अज्ञानकृत संसारपाशमें उनका बँधना किसी प्रकार संभव नहीं है ॥ ४० ॥ जो सब व्रजवासी गोप नंदके साथ मथुरा गये थे वे चिताधूमके गन्धको सूँघ कर "यह क्या है ? कहाँसे ऐसी सुवास आती है ?" यों कहते हुए व्रजके भीतर आये एवं वहाँ अन्य गोपोंके मुखसे "पूतना आई और मर गई एवं उसके हाथों बालकका कुछ अमंगल नहीं हुआ"—यह सब वृत्तान्त सुन कर बहुत ही विस्मित हुए ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! उदार मनवाले नंदजीने प्रवाससे आकर पुत्रको गोदमें लेलिया और प्रेमपूर्वक उसका माथा सूँघ कर बहुत ही आनन्दित हुए ॥ ४३ ॥

य एतत्पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ॥
शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम् ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य 'पूतना–मोक्ष'नामक यह कृष्णचन्द्रकी प्रथम बाललीला श्रद्धापूर्वक सुनता है उसकी कृष्णभगवान्में अटल भक्ति होती है ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय ।

शकट-भंजन और तृणावर्त्तवध ।

राजोवाच—येन येनावतारेण भगवान्हरिरीश्वरः ॥
करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने कहा—ब्रह्मन्! हे प्रभो! भगवान् ईश्वर हरि जिस २ अवतारको लेकर जो २ कर्म करते हैं वे सब चरित्र हमारे कानोंको सुख देनेवाले और मनको प्रसन्न करनेवाले हैं ॥ १ ॥ उन सब चरित्रोंको सुननेसे पुरुषके मनका मैल और अनेक प्रकारकी तृष्णा (कामना) दूर हो जाती है एवं बहुत ही शीघ्र अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, हरिमें भक्ति होती है तथा हरिभक्त जनोंके साथ मित्रता होती है । यदि उचित समझिये तो अनुग्रह करके उन्हीं मनोहर हरिचरित्रोंका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ कृष्णचन्द्रने मनुष्य लोकमें आकर मनुष्योंकी भाँति बाल्यावस्थामें और भी जो कुछ अद्भुत लीलाएँ की हैं--अनुग्रह करके उनको भी सुनाइये ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा । हे राजन्! एक दिन बालकके अंगपरिवर्त्तन तथा जन्मदिनके उपलक्ष्यमें नंदके यहाँ महोत्सवमय अभिषेककृत्य हुआ । उस महोत्सवमें व्रजकी सब गोपियाँ आईं, उनके साथ मिलकर नंदरानी यशोदाने बालकका अभिषेक कराया, गाना बजाना हुआ, ब्राह्मणोंने स्वस्त्ययन मंत्र पढ़े । पुत्रका स्नान आदि जब हो चुका एवं भाँति २ के भोजन कर वस्त्र माला व मनमानी गऊ आदि दक्षिणामें पाकर सन्तुष्ट व पूजित ब्राह्मणगण स्वस्त्ययनपाठ कर चुके तब श्रीकृष्णचन्द्रको निद्रित देख यशोदाने पालनेमें लिटा दिया ॥ ४ ॥ ५ ॥ उदार हृदयवाली यशोदाका मन 'औत्था-निक' उत्सवमें उत्सुक था, वह आये हुए व्रजवासी जनोंके आदर सत्कारमें व्यग्र थीं, इसी कारण उन्होने कृष्णचन्द्रका रोना न सुन पाया । इधर दूधके लिये रोते रोते कृष्णचन्द्रने दोनो पैर ऊपरको उछाले ॥ ६ ॥ पालनेमें कृष्णजी लेटे थे और ऊपर शकट (छकड़ा) धरा था । कृष्णके नवपल्लवसम कोमल छोटे २ पैरोंके प्रहारसे वह छकड़ा उलट पड़ा और उसमें धरे हुए दही, दूध आदि अनेक रसोंसे भरे हुए काँसे आदिके विविध बर्तन गिर कर चूर २ हो गये एवं छकड़ेके भी चक्र, अक्ष और कूबर आदि अंग टूट फूट गये ॥ ७ ॥ उत्सवमें आई हुई गोपियों सहित यशोदा, नंद और अन्यान्य गोपगण इस अद्भुत व्यापारको देख विस्मयसे व्याकुल हो कर कहने लगे कि—"यह क्या है! छकड़ा आप ही आप कैसे उलट पड़ा ?" ॥ ८ ॥ गोप और गोपियाँ छकड़ा उलटनेका कोई कारण न निश्चित कर सके । तब वहीं खेल रहे बालकोंने कहा कि "इसी

(कृष्ण) ने रोते २ पैर उछाल कर छकड़ा गिरा दिया है-इसमें कुछ भी संशय नहीं है" ॥ ९ ॥ किन्तु गोप गोपियोंने 'लड़कोंकी बात' कह कर उस पर विश्वास नहीं किया, क्योंकि उन्हे बालकके अप्रमेय बलका ज्ञान न था ॥ १० ॥ यशोदाने इस घटनाको ग्रहजनित उत्पात समझ कर रोते हुए बालकको गोदमें उठालिया और ब्राह्मणोंसे स्वस्त्ययनमंत्रपाठपूर्वक शान्ति कराकर कृष्णचन्द्रको पय पान कराया ॥ ११ ॥ गोपोंने नवीन कपड़े पहना कर कृष्णको वेदीमें बिठलाया और ब्राह्मणोंने भी फिर बलिदानसहित हवन करके दधि अक्षतसे टीका करके कुशजलसे कृष्णका मार्जन किया ॥ १२ ॥ महाराज! "असूया (गुणोंमें दोष निकालना), झूठ, ईर्षा, दम्भ, हिंसा और अभिमान जिनके हृदयमें छू भी नहीं गया उन सत्यशील ब्राह्मणोंके दिये आशीर्वाद कभी नहीं विफल होते" ॥ १३ ॥ यह समझ कर नंद गोपने अपनी गोदमें बालकको लेकर ब्राह्मणोंके द्वारा साम, ऋक् और यजुःके मंत्रोंसे संस्कृत एवं पवित्र औषधियुक्त जलसे उसका अभिषेक कराया। फिर स्वस्त्ययनपाठ और हवन हो जाने पर पुत्रके अभ्युदयकी कामनासे ब्राह्मणोंको सुस्वादु उत्तम अन्न और सर्वगुणसम्पन्न धेनुएँ, वस्त्र, माला व रत्नोंके हार दिये। ब्राह्मणलोगोंने भी सफल सत्य आशीर्वाद दिये ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ यह बात स्पष्ट है कि वेदके जाननेवाले ज्ञानी ब्राह्मणलोग जो असीस देते हैं उसका निष्फल होना त्रिकालमें असम्भव है ॥१७॥ हे महाराज! एक दिन साध्वी यशोदा पुत्रको गोदमें लिये दूध पिला रही थीं, इतनेमें उनको कृष्णजी एक पर्वत-शिखरके समान भारी जान पड़े, जिससे वह पुत्रको गोदमें लिये न रहसकीं ॥ १८ ॥ अन्तको भारसे पीड़ित हो कर यशोदाने पुत्रको गोदसे उतार कर पृथ्वी पर बैठा दिया। यशोदाको इस नई बात पर बड़ा ही विस्मय हुआ। तदनन्तर परमेश्वरका ध्यान करती हुई यशोदाजी घरके अन्य कामोंमें लगगईं ॥ १९ ॥ इसी अवसरमें कंसका भेजा हुआ सेवक तृणावर्त्त नाम असुर आँधी बवंडरके रूपसे व्रजमण्डलमें आया और पृथ्वी पर बैठे कृष्णको उठा लेगया ॥ २० ॥ दशो दिशाओंसे उस आँधीरूप असुरके घोर शब्दकी प्रतिध्वनि होने लगी, धूलसे व्रजमंडल छा गया और लोगोंके नेत्र बंद हो गये ॥ २१ ॥ दो घड़ी तक सारा व्रज धूल और अन्धकारसे आवृत रहा। उस समय खोज करने पर यशोदाजीने पुत्रको, जहाँ बैठा गई थीं वहाँ पर, नहीं पाया ॥ २२ ॥ उस समय आँधीरूप तृणावर्त्तकी चलाई हुई कंकड़ियोंके छर्रोंसे सब लोग उद्विग्न हो गये । अंधकारके मारे सब मोहित हो गये, कोई अपने या परायेको नहीं देख सक्ता था ॥ २३ ॥ प्रचण्ड बवण्डरके कारण यों धूलकी वर्षा होने पर अबला माता यशोदा पुत्रको इधर उधर खोजने लगीं, किन्तु कहीं भी उसका पता न पाकर, जिस गऊका बछड़ा मर गया हो उसके समान पश्चात्तापपूर्वक शोच करती हुई पृथ्वी पर गिर कर अत्यन्त

दीन स्वरसे विलाप करने लगीं ॥ २४ ॥ तदनन्तर धूल उड़ना बंद हुआ । अन्य गोपियाँ यशोदाके रोनेका शब्द सुन कर वहाँ आईं और कृष्णके खोजानेका वृत्तान्त जान कर बहुत ही दुःखित हुईं, उनकी आँखोंमें आँसू भर आये एवं वे भी नंद-कुमारको न पाकर विलाप करने लगीं ॥ २५ ॥ वायुरूप तृणावर्त्त कृष्णको लेकर ऊपर आकाशको चला गया, अतएव पृथ्वी पर उसका वेग शान्त हो गया । किन्तु कृष्णने अपने शरीरको इतना भारी कर दिया कि वह उनको लेकर आगे न चल सका ॥ २६ ॥ कृष्ण ऐसे भारी हो गये कि असुरको एक बड़ा भारी पर्वत जान पड़ने लगे । कृष्णने दोनो हाथोंसे उसका गला पकड़ लिया था । उस दैत्यने कण्ठपाश छुड़ानेकी बहुत कुछ चेष्टा की, परन्तु कृष्ण तो अद्भुत बालक थे, उनके हाथोंसे वह अपनेको न मुक्त कर सका ॥ २७ ॥ गला दबनेके कारण दैत्य निश्चेष्ट (बेदम) हो गया, उसकी आँखें बाहर निकल पड़ीं और मरते समय अस्पष्ट शब्द करता हुआ प्राणहीन होकर सहित कृष्णके आकाशसे व्रजमें गिरा ॥ २८ ॥ सब स्त्रियाँ कृष्णके न मिलनेसे व्याकुल हो विलाप कर रही थीं, उन्होने देखा कि वह भयानक राक्षस, रुद्रके बाणसे भग्न हो कर पृथ्वी पर गिरे हुए त्रिपुरके समान आकाशसे एक शिलाके ऊपर गिरा और उसके सब अंग चूर २ हो गये ॥ २९ ॥ कृष्णजी उसकी छाती पर थे । गोपियोंने दौड़ कर कृष्णको उठा लिया और वहाँसे लाकर यशोदाजीको दे दिया । दुष्ट राक्षस बालकको आकाश पर ले गया, किन्तु वहाँसे गिर कर आपही मर गया, बालकके चोट भी न आई । इस प्रकार मृत्युके मुखसे बालकका बचना देख कर सबको विस्मय हुआ ॥ ३० ॥ बालकको ऐसी सुरक्षित अवस्थामें पाकर गोपियाँ और नन्द आदि गोपगण बहुत ही हर्षित हो कर कहने लगे, "अहो आश्चर्य्य है ! कैसी अद्भुत बात है ! इस असुरने बालकको मारना चाहा था, किन्तु बालकका बाल भी न बाँका हुआ, वह फिर कुशल क्षेमसे हमको मिला और यह दुष्ट हिंसाशील अपने पापोंसे आप ही मरगया । सच है-साधुलोग सबको समान मानते हैं, अतएव आई हुई भयानक विपत्तियोंसे सदा बचे रहते हैं, अर्थात् ईश्वर उनकी रक्षा करता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हमने कौन तप या विष्णुकी पूजा की थी अथवा पूर्त्त [सरोवर आदि खुदवाना] इष्ट [अग्निहोत्र, पंचयज्ञ आदि] आदिक अच्छे कर्म किये थे या दान किया था या जीवोंसे मैत्री (परोपकार) की थी ? जिसके कारण इस बालकने मृत्यु-मुखमें पड़ कर भी भाग्यवश फिर निकट आकर हम स्वजनोंको आनन्दित किया" ॥ ३३ ॥ बृहद्वन अर्थात् गोकुलमें वारम्वार ऐसी अद्भुत घटना होते देख कर नंदजीको बड़ा ही आश्चर्य्य हुआ एवं वसुदेवके वचनोंको यथार्थ देख कर वह वारम्वार विचारने लगे कि "वसुदेवने बहुत ही ठीक कहा था" ॥ ३४ ॥ एक दिन नंदरानी

यशोदा स्नेहपूर्वक बालकको गोदमें लिये दूध पिला रही थीं। भलीभाँति पय पान कर चुकने पर दुलराते हुए यशोदाने पुत्रके मनोहर मुसकानयुक्त मुखका चुम्बन किया। इसी समय कृष्णने जम्हाई ली। जम्हाते हुए कृष्णके मुखमें यशोदाने देखा—आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, दशदिशा, सूर्य्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, सातो महासागर, सातो द्वीप, सब पर्वत, नदियाँ, वनवृंद एवं सम्पूर्ण चराचर प्राणी विराजमान हैं॥ ३५॥ ३६॥

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन्संजातवेपथुः॥
संमील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत्सुविस्मिता॥ ३७॥

महाराज! पुत्रके मुखमें अकस्मात् यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड देख कर यशोदाका हृदय आश्चर्य्यकी अधिकतासे धड़कने लगा। मृगनयनी नन्दरानीने अपने दोनो नेत्र बंद कर लिये और ईश्वरका स्मरण करने लगीं॥ ३७॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अष्टम अध्याय।

महर्षि गर्गका आगमन और उनके द्वारा कृष्ण-बलदेवका नामकरण।

श्रीशुक उवाच—**गर्गः पुरोहितो राजन्यदूनां सुमहातपाः॥**
व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः॥ १॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! यादवोंके कुलपूज्य पुरोहित महातपस्वी गर्गाचार्य्यजी वसुदेवके भेजनेसे नंदके व्रजको गये॥१॥उनको देख कर नंदजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने उठ कर हाथ जोड़ विष्णुबुद्धिसे प्रणाम करके मुनिका पूजन किया। इस प्रकार अतिथिसत्कार करनेके बाद सुखपूर्वक बैठे हुए मुनिको अपनी मनोहर मधुर वाणीसे प्रसन्न करते हुए नंदजीने कहा कि हे ब्रह्मन् आप पूर्ण हैं अर्थात् आपको कोई कामना नहीं है, हम आपकी क्या सेवा करें? ॥ २॥ ३॥ आप ऐसे महात्मा जनोंका विचरना स्वार्थके लिये नहीं है, वरन् जो लोग गृहस्थ हैं, जिनका चित्त गृहस्थाश्रममें आसक्त होनेके कारण दीन हो रहा है उनके कल्याणके लिये है॥ ४॥ इन्द्रियोंसे अतीत ज्ञान, जिसे ज्योतिःशास्त्र कहते हैं और जिसके अभ्याससे अन्य लोग भी पूर्वजन्म व वर्त्तमान जन्मका शुभाशुभ फल जानते हैं उसकी रचना आपने की है॥ ५॥ भगवन्! आप ज्योतिषियों व ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, अतएव इन मेरे बालकोंके नामकरण आदि संस्कार आप ही करिये। यदि कहिये कि हम तो तुम्हारे गुरु नहीं हैं तो ब्रह्मन्! जन्मसे ही ब्राह्मण

सबका गुरु है ॥ ६ ॥ **गर्गजीने कहा।** नंदजी! पृथ्वीमें सर्वत्र यह प्रसिद्ध है कि मैं यादवोंका आचार्य्य हूँ। यदि मैं तुम्हारे पुत्रोंका संस्कार करूँगा तो संभव है कि कंस तुम्हारे पुत्रको देवकीका पुत्र मानले। इसके और भी कारण हैं। एक तो कंस आप ही पापबुद्धिवाला है, दूसरे उसे यह भी मालूम है कि तुम्हारी और वसुदेवकी गहरी मित्रता है, तीसरे उसे यह भी निश्चय है कि देवकीका आठवाँ गर्भ स्त्री नहीं होसक्ता। इन कारणोंसे और देवकी-की कन्याके कथनसे एवं मेरे संस्कार करनेसे यदि शंका करके कंस तुम्हारे पुत्रोंका वध कर डाले तो यह बड़ा ही अन्याय होगा ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ **नंदजीने कहा।** भगवन्! इसी एकान्त स्थान गोव्रजमें अलक्षित-भावसे स्वस्ति-वाचनमात्र करके मेरे पुत्रोंके आवश्यक द्विजाति-संस्कार कर दीजिये। दूसरोंकी कौन कहे, मेरे जातिभाई भी इस वृत्तान्तको न जान सकेंगे ॥ १० ॥ **श्रीशुक-देवजी कहते हैं।** गर्गजी तो इस लिये आये ही थे, अतएव नन्दके यों प्रार्थना करने पर छिपकर एकान्त स्थानमें उन्होने इस प्रकार दोनो बालकोंका नामकरण किया ॥ ११ ॥ **गर्गजीने कहा।** यह रोहिणीका पुत्र, अपने गुणोंसे सुहृद् जनोंको रमावेगा–इस कारण इसका नाम 'राम' होगा। और बलकी अधिकतासे लोग इसे बलभद्र भी कहेंगे एवं यादवोंमें अभिन्नभाव होनेके कारण इसका संकर्षण नाम भी होगा॥१२॥और इस दूसरे बालकके गत तीन युगोंमें शुक्ल, रक्त और पीत ये तीन वर्णके तीन अवतार हो चुके हैं, इस युगमें यह कृष्णवर्ण अवतार हुआ है, अतएव इसका नाम कृष्ण होगा। तुम्हारा यह पुत्र पहले कभी वसुदेवके यहाँ उत्पन्न हो चुका है, इस कारण विद्वान् लोग इस श्रीमान् बालकको वासुदेव भी कहेंगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे महाभाग! तुम्हारे इस पुत्रके गुण कर्म्मके अनुरूप बहुत से रूप और नाम हैं। उनको मैं ही जानता हूँ–अन्य साधारण लोग नहीं जानते ॥ १५ ॥ यह बालक तुम्हारा कल्याण करेगा। इसके द्वारा गोप और गोगणको आनन्द होगा। तुम लोग इसकी सहायतासे सहजमें ही अनेक संक-टोंके पार लगजाओगे ॥ १६ ॥ हे व्रजराज! पहले इसने अराजकसमयमें दस्यु-जनों द्वारा पीड़ित साधुओंकी रक्षा की है और इसकी सहायतासे वृद्धिको प्राप्त साधुओंने दस्युजनोंका दमन किया है ॥ १७ ॥ जो महाभाग्यशाली पुरुष इस बालकमें प्रेम करेंगे उनके शत्रु उनको कभी न सता सकेंगे, जैसे देवतोंको दैत्य-लोग ॥ १८ ॥ हे नंद! यह तुम्हारा पुत्र गुण, लक्ष्मी, कीर्ति और प्रभावमें नारायणके तुल्य है। इससे सावधान रह कर तुम इसकी रक्षा करो ॥ १९ ॥ इस प्रकार आज्ञा देकर गर्गजी अपने घरको चले गये। नंदजी भी अपनेको पूर्णकाम मान कर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ २० ॥ थोड़ा ही समय बीतने पर कृष्ण और बलभद्र दोनो भाई गोकुलमें घुटनोंके बल इधर उधर घूम कर

खेलने लगे ॥ २१ ॥ दोनो भाई पैरोंको घिसला कर गोवरकी कीचसे परिपूर्ण गोव्रजमें वारम्वार चलते थे। चलनेमें कमर और पैरके बजनेवाले आभूषण वजते थे; उनके रुचिर शब्दको सुन कर दोनो भाई बहुत ही प्रसन्न होते थे। दोनो भाई उधर उधर आते जाते हुए लोगोंके पीछे २ दो चार पग जाकर भोलेपन और भयभीत भावको प्रकट करते हुए माताओंके पास भाग आते थे ॥ २२ ॥ दोनो माताओंके स्तनोंसे स्नेहकी अधिकताके कारण आप ही आप दुग्ध निकलने लगता था और वे कीचड़ व अंगरागसे जिनका शरीर भला मालूम पड़ता है उन पुत्रोंको गोदमें उठा कर गलेसे लगा लेतीथीं एवं उनको दुग्ध पिलाती थीं। दुग्ध पीते समय भोली मुसकान और छोटी २ दँतियोंसे शोभित बालकोंके मुखारविन्दोंको देख कर माताओंको अपार आनन्द होता था ॥ २३ ॥ जब दोनो बालक और बड़े हुए तब वे व्रजके भीतर क्रीड़ा करने लगे। और उनकी बाललीलाओंको गोपियाँ उत्सुकताके साथ देखने लगीं। कृष्ण और बलराम बछड़ोंकी पूँछ पकड़ लेते थे, बछड़े उनको खींचते हुए इधर उधर चलते थे, यह देख कर सब गोपियाँ बहुत ही प्रसन्न होकर हँसती थीं। इन लीलाओंको देखनेके लिये गोपियाँ अपने २ घर और घरके काम काज छोड़ कर नंदरानीके यहाँ बैठी रहती थीं ॥ २४ ॥ खेलमें तत्पर अत्यन्त चञ्चल अपने बालकोंको बल, अग्नि, काटनेवाले जीव, तर्वार, पक्षी, कंटक आदिसे बचानेके लिये यशोदा और रोहिणी घरके कामकाज भी न कर सक्ती थीं और पुत्रोंकी क्रीड़ा देख कर गृहस्थीके परम सुखका अनुभव करती थीं ॥ २५ ॥ हे महाराज! थोड़े ही समयमें कृष्ण और बलदेव दोनो भाई गोकुलमें खड़े होकर चलने लगे ॥ २६ ॥ तब भगवान् कृष्णचन्द्रजी अपने वयस्य ग्वालबालोंके साथ सहित बलदेवके व्रजनारियोंको आनन्दित करते हुए क्रीड़ा करने लगे ॥ २७ ॥ गोपियाँ कृष्णकी बालसुलभ सुहावनी चपलता देखकर नंदके घर आईं और यशोदाजीको सुनाकर यों कहने लगीं ॥ २८ ॥ "यह कान्हा बड़ी ढिठाई करता है। कभी हमारे घरोंमें घुस कर असमयमें ही बछड़ोंको खोल देता है, यदि बको झको तो हँसने लगता है। फिर चोरीकी चातुरीके ढंगोंसे चुरा कर मीठे दही और दूधको खाता है, आप ही नहीं खाता बरन् बंदरोंको भी खिलाता है, यदि भाँड़ेमें बहुत सा दही दूध नहीं मिलता तो उसे फोड़ डालता है। यदि कुछ भी न मिला तो खीझ कर पलँग पर सोरहे छोटे २ बालकोंको चुटकी काटके रुलाकर चला जाता है ॥ २९ ॥ इसकी चोरीकी चातुरी भी निराले ढंगकी है। जिन छींकोंपर धरे वर्तनों तक हाथ नहीं पहुँचता वहाँ यह उपाय करता है कि पीढ़े और ओखली रखता है, और उन पर खड़े होनेसे भी जब नहीं हाथ पहुँचता तो नीचेसे वर्तनोंमें छेद कर देता है। छेद करनेका ढंग भी इसको खूब मालूम है। देखते

ही जान जाता है कि इस छींकेके वर्तनमें दही दूध धरा है। जब गोपियाँ घरके कामकाजमें व्यग्र होती हैं तब अवसर पाकर भीतर घुस जाता है और ऐसे ही उत्पात करता है। यदि कोठरीके भीतर अँधेरेमें छिपाकर दही दूध धरो तो भी वह नहीं बचता, क्योंकि इसके शरीरके आभूषणोंमें मणि आदि रत्न जड़े हैं, जिनके प्रकाशमें सहज ही दही दूधके छिपाकर धरे माठोंको देख लेता है ॥ ३० ॥ इस प्रकार ढिठाई करता है और कुछ कहनेसे उल्टे हमको ही डाँटता है एवं लीपे पोते हुए घरोंमें मल मूत्र कर जाता है । हे यशोदाजी! इस प्रकार हमारे यहाँ चोरी और दंगा करता है, किन्तु इस समय तुम्हारे पास बड़ा ही सीधा साधु बना हुआ बैठा है"। भययुक्त नयनोंसे सुशोभित कृष्णचन्द्रके श्रीमुखको देखती हुई गोपियोंने जब यों कहा तो सुन कर यशोदाजी भी हँस पड़ीं और कृष्णचन्द्रको डाँटनेके लिये उनकी इच्छा नहीं हुई ॥ ३१ ॥ एक समय बलभद्र आदि ग्वालबालोंने खेलते २ माता यशोदाके पास जाकर कहा कि आज कृष्णने मट्टी खाई है ॥ ३२ ॥ यशोदाने कृष्णका हाथ पकड़ लिया और पुत्रके हितके लिये डाँट कर यों कहने लगीं। उस समय भयसे पूर्ण कृष्णजीके चंचल चितवन युक्त नयन बहुतही मनोहर देख पड़ते थे ॥ ३३ ॥ **यशोदाने कहा** । क्योंरे ढीठ! तूने निरालेमें मट्टी क्यों खाई? देख तेरे साथी लड़के और तेरा बड़ा भाई साक्षी दे रहे हैं ॥ ३४ ॥ **कृष्णने कहा** । मैया! मैंने मट्टी नहीं खाई, ये सब मुझे झूठ लगाते हैं। और यदि इनके कहनेको तू सच मानती है तो अपने आगे ही मेरा मुख देखले ॥ ३५ ॥ **यशोदाने कहा** । यदि तू सच कहता है तो मुख फैला। यह कहने पर क्रीड़ा करनेके लिये मनुष्यबालकका रूप धारण किये हुए अखंडित ऐश्वर्य्यशाली ईश्वरने अपना मुख फैला दिया ॥ ३६ ॥ चलनेवाले और न चलने वाले सब जीव, आकाश, दशो दिशा, पर्वत-द्वीप-समुद्रयुक्त भूगोल, वायु, अग्नि, चंद्र, तारागण, ज्योतिश्चक्र, जल-तेज-वायु-आकाश आदि पञ्चतत्त्व, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता, इन्द्रियाँ, मन, शब्दादि विषय, तीनो मायाके गुण और जीव, काल, स्वभाव, कर्म्म, आशय आदि चराचर शरीरोंके विचित्र भेद एवं सहित अपने सम्पूर्ण व्रजको अपने पुत्रके विस्तृत मुखमें देखकर यशोदाजीको बड़ी भारी शंका हुई ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ यशोदाजी आप ही आप मनमें शङ्का करने लगीं कि "यह क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ? या यह हरि देवकी माया है? या मेरी ही बुद्धिको मोह (भ्रम) हो गया है? अथवा इस मेरे पुत्रका ही कोई अचिन्त्य निजका ऐश्वर्य्य (प्रताप) है? ॥ ४० ॥ जो चित्त, मन, कर्म्म और वाणीसे परे है, जो तर्क द्वारा नहीं पाया जासका, यह जगत् जिसके आश्रयमें है, जिस इंद्रियाधिष्ठाता और बुद्धिस्फुरण करनेवालेके द्वारा इस जगत्की प्रतीति होती है उस अत्यन्त अचिन्तनीय पद (ईश्वर) को मैं

प्रणाम करती हूँ ॥ ४१ ॥ "मैं हूँ, मेरे यह पति हैं, मेरा यह पुत्र है, मेरे गोपी, गोप तथा गोधन हैं, मैं व्रजराजके सर्वस्वकी स्वामिनी हूँ"—जिसकी मायासे इस प्रकारकी कुमति मुझको घेरे हुए है उसी ईश्वरके मैं शरणागत हूँ ॥ ४२ ॥ इस प्रकार यशोदाको तत्त्वज्ञान हुआ देख समर्थ ईश्वर कृष्णचन्द्रने फिर अपनी पुत्रस्नेहरूप प्रबल माया फैला दी ॥ ४३ ॥ तुरन्त ही यशोदाको वह ज्ञान भूल गया, पुत्रस्नेह हृदयमें उमड़ आया, उन्होने पुत्रको गोदमें उठा लिया और पहलेकी भाँति कृष्णचन्द्रको दुलराने लगीं ॥ ४४ ॥ अहो, ईश्वरकी माया कैसी प्रबल है! त्रयी, उपनिषद्, सांख्य, योग आदि शास्त्र और भक्तगण इन्द्रादि देवरूप, ब्रह्म, पुरुष, परमात्मा तथा भगवान् कह कर जिनके माहात्म्यको गाते हैं उनको यशोदाने अपना पुत्र माना ॥ ४५ ॥ **राजा परीक्षित्ने** श्रीशुकदेवजीसे कहा। भगवन्! नन्द गोपने कौन ऐसा सुकृत किया था? और महाभागा यशोदाने ही कौन ऐसा महाफलदायी पुण्य कर्म्म किया था जिससे हरिभगवान्ने उनका दूध पिया? ॥ ४६ ॥ जिन पर प्रसन्न होकर हरिने अवतार लिया वे पिता माता वसुदेव देवकी भी हरिकी अद्भुत बाललीलाको देखकर न नेत्र सफल कर सके। हरिकी लीला त्रैलोक्यके पाप मिटानेवाली है, उसको कवि लोग अब तक श्रद्धाभक्तिपूर्वक गाते हैं। तब जिन्होने उस लीलाको साक्षात् देखा उनके भाग्यका क्या कहना है! ॥ ४७ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।** ब्रह्माकी आज्ञासे द्रोण नाम वसु देवताने धरा नाम अपनी स्त्री सहित पृथ्वी पर अवतार लिया। उस समय द्रोणने ब्रह्मासे कहा कि भगवन्! हम पृथ्वीमें जन्म लेंगे, किन्तु कृपा करके यह वर दीजिये कि देवदेव विश्वनायक हरिमें हमारी अचल भक्ति हो, जिससे लोग सहजमें ही दुर्गतिसे छूट जाते हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ब्रह्माने कहा—ऐसाही होगा। वही महायशस्वी द्रोण वसु पृथ्वीपर नंद गोप हुए और उनकी स्त्री धरा यशोदा हुईं ॥ ५० ॥ इसी कारण दोनो स्त्री-पुरुषोंकी पुत्ररूपसे उत्पन्न हरिमें अत्यन्त भक्ति (प्रेम) हुई। अन्यान्य गोपी और गोप भी हरिसे प्रेम करते थे ॥ ५१ ॥

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः ॥
सहरामो वसँश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥ ५२ ॥

अन्तर्य्यामी कृष्ण भगवान् ब्रह्माके वाक्यको सत्य करनेके लिये सहित बलदेवजीके व्रजमें रह कर अपनी लीलाओंसे व्रजवासियोंको प्रसन्न करने लगे ॥ ५२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय।

कृष्णका उलूखलबन्धन।

श्रीशुक उवाच–एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी ॥
कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। एक दिन घरकी दासियाँ और २ कामोंमें लगी हुई थीं इससे नन्दरानी यशोदा आप ही दही मथने लगीं ॥ १ ॥ जो २ कृष्णकी बाललीलाएँ कही जाचुकी हैं उनको याद कर २ के दही मथते समय यशोदाजी गानेलगीं ॥ २ ॥ यशोदाजी कटिबंधनयुक्त रेशमीवस्त्र कमरमें पहने हुए थीं। मथतेमें उनके दोनो स्तन हिलते जाते थे और उनमें पुत्रस्नेहके कारण दूध भर आयाथा। रस्सीके बार २ खींचनेसे थकेहुए दोनो बाहुओंमें कंकण और कानोंमें कुण्डल हिलते जाते थे, मुखमें पसीना निकल आया था और चोटीसे गुँथी हुई मालतीकी माला खुल२ कर गिर रही थीं ॥ ३ ॥ यशोदाजी इस दशासे दही मथ रही थीं, उस समय दूध पीनेकी इच्छा करके कृष्णचन्द्र आये और माताको प्रसन्न करते हुए मथानी पकड़कर उन्होने दही मथनेसे रोका ॥ ४ ॥ यशोदाने पुत्रको गोदमें लेलिया और स्नेहपूर्ण मुसकानसे युक्त मनोहर (पुत्रका) मुख देखती हुई, स्नेहके कारण जिससे आप ही आप दूध निकल रहा है वह स्तन उनके मुखमें देकर दूध पिलाने लगीं। इतनेमें चूल्हे पर चढ़ा हुआ दूध उफनाने लगा, अतएव यशोदाने कृष्णको वैसे ही छोड़ दिया और आप दूध उतारनेके लिये जल्दीसे गईं,* कृष्णचन्द्र उस समय भी तृप्त नहीं हुए थे, इसीसे उनको क्रोध आगया। कुपित कृष्णने फरक रहे अरुण ओंठ दाँतोंसे दबा कर पास ही पड़े हुए लोढ़ेसे दहीका माठ फोड़डाला और झूठमूठ रोते हुए वहाँसे चलदिये एवं भीतर जाकर एकान्तमें धरा हुआ मक्खन खाने लगे ॥ ५ ॥ ६ ॥ यशोदाजी तपे हुए दूधके कढ़ावको उतार कर पूर्वस्थानमें आईं तो देखा दहीका भाँड़ा फूटा पड़ा है और कृष्णजी वहाँ पर नहीं हैं; अतएव 'यह काम कृष्णने ही किया है'–यह जान कर हँसने लगीं ॥७॥ यशोदाने घूम कर घरमें देखा तो कृष्णजी उलूखल (ओखली) उलटा कर उस पर चढ़े हुए छींके परका माखन मनमाना आप खाते हैं और बानरोंको लुटा रहे हैं एवं चोरी करनेके कारण चारो ओर चकित दृष्टिसे देखते जाते हैं। यह देख कर यशोदाजी दबे पैरों पीछेसे पुत्रके पास पहुँच गईं, फिर कर कृष्णने देखा–छड़ी लिये पकड़नेके लिये माता आ पहुँची है। तब जैसे कोई भयभीत हो

*दूधका आगमें गिरना पुत्रके लिये अनिष्ट मानागया है, इसीसे यशोदाने कृष्णको छोडदिया और दौड़ कर पहले दूधको उतारा।

वैसे उलूखलसे उतर कर नन्दनन्दन भागे । योगियोंका मन, तपके द्वारा तदाकार में परिणत होकर भी जिनको नहीं पाता उन्ही कृष्णके पीछे पकड़नेकी इच्छासे यशोदाजी दौड़ीं ॥ ८ ॥ ९ ॥ विचलित विशाल नितम्बोंके भारसे यशोदाजी बहुत दूर न दौड़ सकीं । वेगसे दौड़नेमें हिल रहे शिथिल केशो-बन्ध (जूड़े) से खिसक २ कर अगणित फूल पीछे गिरने लगे और वह कृष्णके पीछे दौड़ने लगीं । थोड़ी ही दूर जाकर यशोदाने कृष्णको पकड़ लिया ॥ १० ॥ यशोदाने देखा, अपराध करनेके कारण भीत हो कर कृष्णजी रोरहे हैं, हाथोंसे दोनो आँखें मलते जाते हैं–जिससे मुख भरमें अंजनकी स्याही फैलगई है । दोनो नेत्र भयसे विह्वल हो रहे हैं । यशोदाने कृष्णके दोनो हाथ पकड़ लिये और छड़ी दिखा कर धमकाती डराती हुई डाँटने लगीं ॥ ११ ॥ पुत्रको अधिक डरा हुआ देख पुत्रवत्सला यशोदाने हाथसे छड़ी फेंक दी और उन्हें बाँधनेके लिये उद्यत हुईं, क्योंकि वह श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको नहीं जानती थीं । जिनका भीतर या बाहर अथवा पूर्व या पर नहीं है और जो स्वयं जगत्का पूर्व और पर हैं एवं जगत्के भीतर तथा बाहर विद्यमान और जगन्मय हैं उन बालवेष अव्यक्त अधोक्षज भगवान्को अपना पुत्र मानकर, यशोदाजी, साधारण नरशिशुके समान रस्सीसे उलूखलमें बाँधने लगीं ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ यशोदाजी अपने अपराधी बालकको जिस रस्सीसे बाँध रही थीं वह गाँठ देतेमें दो अंगुल छोटी पड़गई तब और रस्सी लाईं ॥ १५ ॥ वह रस्सी भी जब दो अंगुल छोटी पड़ी तब यशोदाने और एक रस्सी लाकर उसमें जोड़ी । वह भी दो अंगुल छोटी पड़ी, उससे भी कृष्ण न बँधसके । इसी प्रकार अपने घरकी और अन्यान्य गोपियोंके यहाँकी भी सब रस्सियाँ ला २ कर यशोदाने जोड़ीं, पर किसी भाँति कृष्णको न बाँध सकीं। यह देख कर स्वयं यशोदाको विस्मय और लज्जा हुई एवं और २ गोपियाँ भी बहुत ही विस्मित हुईं ॥१६॥१७॥ बाँधनेके लिये अधिक प्रयास करनेके कारण यशोदाका शरीर पसीनेसे तर होगया, वेणीके सब फूल खिसक २ कर गिर गये और केश बिखर गये । माताको थका देख कृष्णचन्द्रको दया आई और वह आप ही बँध गये ॥ १८ ॥ महाराज! हरि भगवान् सदैव आत्मवश अर्थात् स्वतन्त्र ही हैं और ब्रह्मादि ईश्वरोंको लेकर सब सांसारिक चराचर पदार्थ उन्हींके अधीन हैं; तथापि इस घटनासे "मैं भक्तोंके वशमें हूँ" यह कृष्णचन्द्रने दिखा दिया ॥ १९ ॥ मुक्तिदाता कृष्णके इस प्रसादको कभी ब्रह्मा शिव या हृदयवासिनी लक्ष्मीने भी नहीं पाया, पर यशोदाजीने प्राप्त कर लिया ॥ २० ॥ गोपिकानन्दन श्रीकृष्णचन्द्रको भक्तगण जैसे सहजमें पा जाते हैं वैसी सुगमतासे आत्मज्ञानी ज्ञानीजन नहीं पा सक्ते ॥ २१ ॥ कृष्णको ओखलीमें बाँध कर यशोदाजी घरके कामकाज करनेमें लग गईं । इधर कृष्णकी दृष्टि नन्दभवनके द्वार पर अवस्थित अतिप्राचीन यमलार्जुन वृक्षों पर पड़ी । ये दोनो वृक्ष पूर्व जन्ममें यक्षपति कुबेरके पुत्र थे ॥ २२ ॥

पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् ॥
नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ ॥ २३ ॥

मदमत्त होनेके कारण नारदके दिये हुए शापसे ये अत्यन्तसुन्दर मणिकूबर, नलग्रीव नाम कुबेरतनय वृक्ष हो गये थे ॥ २३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय ।

यमलार्जुन-भञ्जन ।

राजोवाच-कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् ॥
यत्तद्विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने कहा । ब्रह्मन् ! दोनो कुवेरके पुत्रोंने किस कारण शाप पाया ? और भगवद्भक्त, शान्तस्वभाव देवऋषि नारदको ही कैसे निन्दनीय क्रोध हुआ ? ॥ १ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । महाराज ! कुवेरके दोनो पुत्र रुद्रके अनुचर थे, इस कारण उनको वड़ा ही गर्व था । वे मदपान कर मतवाले हो कैलाश पर्वतके रमणीय उपवन और मंदाकिनी(स्वर्गकी गंगा)के तट पर घूमा करते थे ॥ २ ॥ वारुणी मदिराके मदसे सदैव उनके नेत्र लाल रहते थे । एक समय ऐसीही दशामें झूमते हुए दोनो कुबेरके पुत्र फूले हुए उद्यानमें विचर रहे थे, उनके साथ स्त्रियाँ भी थीं, जो मनोहर स्वरसे गाती जाती थीं ॥ ३ ॥ दोनो कुवेरतनय यों विचरते हुए जलकेलि करनेकी इच्छासे कमलावलीमण्डित गंगाजलमें घुस पड़े और जैसे गजराज हथनियोंके साथ क्रीड़ा करे वैसे ही उन सुरसुंदरियोंके साथ जलविहार करने लगे ॥ ४ ॥ उधर अकस्मात् घूमते हुए देवऋषि नारदजी वहाँ पहुँचे । उनकी दशा देख कर नारदजी जान गये कि ये दोनो मतवाले हो रहे हैं ॥ ५ ॥ क्योंकि नारदजीको देख शापके भयसे स्त्रियोंने तो वाहर आकर जल्दीसे लज्जित हो अपने २ वस्त्र पहन लिये, परन्तु वे दोनो वैसे ही नंगे खड़े रहे ॥ ६ ॥ नारदजीने देखा, यक्षराज कुवेरके पुत्र मदिरा पीकर मत्त हो रहे हैं और श्रीमदसे भी अंधे हो रहे हैं । तव उन पर (वास्तवमें) अनुग्रह करके शाप देते हुए नारदजी वोले ॥ ७ ॥ **नारदजीने कहा**-अहो ! ऐश्वर्य्यके मदमें स्त्रीसंग, द्यूतक्रीड़ा (जुएँका खेल) और मदिरापानकी ही अधिकता होती है; इसी लिये ऐश्वर्य्यमदसे विषयासक्त पुरुषकी बुद्धि बिल्कुल ही भ्रष्ट हो जाती है । सत्कुलमद, विद्यामद आदि अनेक मदोंमें या राजस

कार्य्य हास्य आदिमें इतना मोह नहीं होता ॥ ८ ॥ ऐश्वर्य्यमद होने पर ही अजितात्मा, अविचारशील निठुर जन, इस एक दिन अवश्य नष्ट होनेवाले शरीरको जरामरणहीन सा मान कर पशुहत्या करते हैं ॥ ९ ॥ यह नाशशील शरीर नरदेव या भूदेव कहला कर भी अन्तको कृमिरूप, विष्ठारूप या भस्मरूप हो जाता है । तब जो कोई इस शरीरके लिये प्राणियोंसे द्रोह करता है वह शायद सच्चे स्वार्थ (अपने कर्त्तव्य) को नहीं जानता ॥ १० ॥ इस शरीर पर—अन्नदाता, पिता, माता, मातामह, बलवान्, मोल लेनेवाले, कुत्ता या अग्नि—इनमेंसे किसका स्वत्व है–सो नहीं जानाजाता ॥ ११ ॥ यह शरीर अव्यक्त वस्तुसे उत्पन्न होकर अन्तको उसीमें लीन हो जायगा । जब यह शरीर ऐसी साधारण वस्तु है तब असत् पुरुषके सिवा कौन विद्वान् इसे आत्मा मानकर इसके लिये प्राणियोंकी हिंसा करेगा ? ॥ १२ ॥ जो असत् पुरुष लक्ष्मीके मदसे अंधा हो रहा है उसको दिव्य दृष्टि देनेवाली दरिद्रता ही परम अंजन है । क्योंकि जब वह दरिद्र होता है तो अपने साथ तुलना करके सभीको अपनेसे श्रेष्ठ मानता है ॥ १३ ॥ जिसके अंगमें कभी काँटा लगा है और उसकी व्यथाका अनुभव हो चुका है वह दूसरेकी व्यथाको मुखमलिनता आदि चिन्होंसे अपनी ही व्यथाके समान मानता है और नहीं चाहता कि किसीको ऐसी व्यथा हो; पर जिसके कभी काँटा नहीं लगा वह दूसरेकी व्यथाका अनुभव नहीं कर सक्ता, अतएव दूसरेका दुःख दूर होनेमें सहायता भी नहीं करता ॥१४॥ दरिद्र पुरुषके मनमें "मैं हूँ" "मेरा है" इस प्रकारका अहंभाव नहीं रहता, वह सब प्रकारके मदोंसे विमुक्त रहता है । उसे अनायास जो कष्ट मिलता है वही उसका परम तप है ॥ १५ ॥ अन्नहीन दरिद्र पुरुषका शरीर क्षुधा सहनेसे निर्बल और क्षीण हो जाता है, इन्द्रियोंकी भी प्रबलता जाती रहती है; जिससे हिंसाकी प्रवृत्ति भी निवृत्त हो जाती है ॥ १६ ॥ समदर्शी साधुगण दरिद्रोंसे ही मिलते हैं । उन साधुओंके संगसे सब प्रकारकी तृष्णा त्याग कर दरिद्र पुरुष शीघ्र ही शुद्ध हो जाते हैं ॥ १७ ॥ समदर्शी एवं मुकुंद भगवान्‌के चरणोंकी चाह रखनेवाले साधुजन, धनगर्वित एवं असत्‌का आश्रय लेनेवाले असाधुओंसे क्यों मिलें ? वे तो साधुजनोंकी दृष्टिमें उपेक्षणीय हैं ॥ १८ ॥ अतएव मैं इन मदमत्त, ऐश्वर्य्यके गर्वसे अंधे, स्त्रीजित, अजितात्मा यक्षोंके अज्ञानकृत अहंकारको नष्ट कर दूँगा ॥ १९ ॥ ये लोकपाल कुबेरके पुत्र हैं, किन्तु अज्ञानमें इतता निमग्न हो रहे हैं एवं दुष्ट मदसे ऐसे अंधे हो रहे हैं कि इनको अपने नंगे होनेका भी ध्यान नहीं है ॥ २० ॥ इस लिये इनको स्थावर (जड़) योनि मिलनी चाहिये, जिसमें फिर कभी ऐसे मदांध न हों । किन्तु मेरे अनुग्रह और प्रसादसे जड़ योनिमें भी इनकी स्मरणशक्ति न नष्ट होगी अर्थात् इस जन्मकी याद बनी रहेगी ॥ २१ ॥ एक सौ दिव्य वर्ष वीतने पर हरि भगवान्‌के

दर्शनको पावेंगे और हरिभक्ति प्राप्त करके फिर इसी स्वर्ग लोकमें आजायँगे ॥२२॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** इतना कह कर देवर्षि नारदजी नारायण भगवान्के आश्रमको चले गये एवं नारदके शापसे नलकूबर और मणिग्रीव नाम दोनो कुवेरपुत्र यमलार्जुन वृक्ष हो गये ॥ २३ ॥ भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ नारदजीके वचनोंको सत्य करनेके लिये भगवान् कृष्णचन्द्रजी, जहाँ यमलार्जुनवृक्ष थे वहाँ पर धीरे २ पहुँचे ॥२४॥ "देवर्षि नारद मेरे प्रियतम भक्त हैं, ये यमलार्जुन वृक्ष भी कुवेरके पुत्र हैं; अतएव महात्मा नारदने जो कुछ भविष्यवाणी कही है उसे मैं पूर्ण करूँगा" ॥ २५ ॥ यह विचार कर भगवान् कृष्णचन्द्र उन दोनो वृक्षोंके बीचसे हो कर दूसरी ओर निकले, उलूखल बेंड़ा हो कर अड़गया। तब वालरूप दामोदरने उलूखलसहित रस्सीको वलपूर्वक अपनी ओर खींचा। हरिके विक्रमसे दोनो महा प्राचीन वृक्ष जड़से उखड़ कर महाप्रचंड शब्द करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े और उनके पत्ते, शाखा, प्रशाखा आदि सब अंग वेगसे हिल गये ॥ २६ ॥ २७ ॥ महाराज! दोनो वृक्षोंके गिर पड़ने पर उनसे अग्निके समान तेजस्वी दो सिद्धपुरुष निकले, उनकी विमल कान्तिसे सब दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं। उन निर्मल कुवेरके पुत्रोंने सम्पूर्ण जगत्के स्वामी कृष्णचन्द्रको शिर झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर यों कहा ॥ २८ ॥ "हे कृष्ण! हे कृष्ण! आप महायोगी हैं। आप बालक नहीं हैं, वरन् आदिम पुरुष परब्रह्म हैं। ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणलोग, इस विश्वको आपका व्यक्त व अव्यक्त (स्थूल व सूक्ष्म) रूप जानते हैं ॥ २९ ॥ एक आप ही सब प्राणियोंके देह, प्राण, आत्मा और इन्द्रियोंके ईश्वर हैं। आप ही अव्यय, ईश्वर, भगवान्, विष्णु हैं। काल आपकी लीलामात्र है। आप ही महत्तत्त्व (कार्य्यस्वरूप) हैं। आप ही त्रिगुणमयी सूक्ष्म प्रकृति (शक्तिस्वरूप) हैं, आप ही पुरुष (जीवात्मा) हैं, क्योंकि वह आपका ही अंश है। आपही सव क्षेत्रज्ञ जीवोंके अध्यक्ष-अन्तर्य्यामी ब्रह्मस्वरूप हैं ॥ ३० ॥ ३१॥ हे विभो! आप द्रष्टा हैं, इसी लिये दृश्यभावको प्राप्त एवं प्रकृतिके रूपान्तर इंद्रियादि आप तक नहीं पहुँच सक्ते। सब जीवोंकी उत्पत्तिके पहलेसे ही आपकी सत्ता वर्त्तमान है; अतएव देहादिसे युक्त कौन जीव आपको जान सक्ता है! ॥ ३२ ॥ आप भगवान् वासुदेव, विधाता और ब्रह्म हैं, आपको नमस्कार है। आपसे ही प्रकाशित गुणसमूह आपके तत्त्वको आच्छन्न किये हुए हैं-आपको प्रणाम है ॥ ३३ ॥ आप यद्यपि शरीररहित हैं तथापि अवतार लेते हैं और अलौकिक तथा अत्यन्त आतिशय्ययुक्त अनुपम वीर्य्य देख कर देहधारियोंमें आपका अवतार जाना जाता है ॥ ३४ ॥ सो इस समय संसारको उन्नत और निर्भय करनेके लिये सबके स्वामी और सब प्रकारकी कामना पूर्ण करनेवाले आपका यह पूर्णावतार हुआ है ॥ ३५ ॥ हे परमकल्याणरूप! हे परममङ्गलमय! आपको प्रणाम है। आप शान्तस्वरूप,

वासुदेव और यदुपति हैं—आपको वारम्वार प्रणाम है ॥ ३६ ॥ हे भूमन्! हम आपके दासानुदास हैं। ऋषिके अनुग्रहसे हमको आपके दुर्लभ दर्शन प्राप्त हुए हैं ॥३७॥ भगवन्! हमारी वाणी आपके गुणानुवाद गानेमें लगी रहे, हमारे कान आपकी कथा सुना करें। हमारे हाथ आपकी सेवामें और चित्त आपके चरणारविन्दोंके चिन्तनमें तथा शिर आपकी निवासभूमि जो सम्पूर्ण जगत् है उसको प्रणाम करनेमें एवं दृष्टि आपकी मूर्ति जो साधुजन हैं उनके दर्शनमें लगी रहे ॥ ३८ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। राजन्! रस्सीसे ओखलीमें बँधे हुए गोकुलेश्वर कृष्णभगवान्, इस प्रकार स्तुति करनेवाले दोनो यक्षोंसे हँस कर कहने लगे कि "मुझे पहले ही से विदित था कि तुम दोनो ऐश्वर्य्यके मदसे अंधे हो रहे थे, तब देवर्षि नारदने अनुग्रह करते हुए शाप दिया, जिससे तुम्हें वृक्ष होना पड़ा ॥ ३९ ॥ ४० ॥ जैसे सूर्यका दर्शन करने पर आँखें खुल जाती हैं—वैसे ही अपने धर्म्म पर चलनेवाले आत्मज्ञानी और मुझमें दृढ़तापूर्वक मन लगानेवाले सज्जनोंका साक्षात् होने पर कोई बंधन नहीं रहता और ज्ञानके नेत्र खुल जाते हैं ॥ ४१ ॥ इस लिये अब हे नलकूबर और मणिग्रीव! तुम दोनो अपने घरको जाओ। तुम्हारा मन मुझमें मग्न रहेगा, तुम्हारी भक्ति मुझमें हुई है, अवश्य ही सब लोग जिसकी कामना करते हैं वह मोक्षरूप परमपदार्थ तुम पागये ॥ ४२ ॥

श्रीशुक उवाच—**इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥**
बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥ ४३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। इस प्रकार भगवान्‌के कहने पर दोनो यक्षोंने उलूखलमें बँधे हुए कृष्णकी परिक्रमा की और वारम्वार प्रणाम किया तथा उनसे बिदा हो कर उत्तर दिशाको चले गये ॥ ४३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय।

वत्सासुर और बकासुरका वध।

श्रीशुक उवाच—**गोपा नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् ॥**
तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशङ्किताः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। हे कुरुकुलतिलक! दोनो वृक्षोंके गिरनेसे ऐसा घोर शब्द हुआ कि नन्दादिक गोप सब "क्या वज्र गिरा!"—यह आशंका करके वहाँ पर आ पहुँचे ॥ १ ॥ उन्होने आकर देखा कि दोनो महावृक्ष जड़से उखड़े

पृथ्वीपर पड़े हुए हैं। यद्यपि ओखली अड़ाकर वृक्षको गिरानेवाले कृष्णचन्द्र रस्सीसे ओखलीमें बँधे हुए सामने ही खड़े थे, तथापि वे लोग—"यह न निश्चय करसके कि किसने वृक्षोंको गिरा दिया। सब लोग—"यह किसका काम है? कैसे ये पुराने वृक्ष उखड़ गिरे? कैसे अचरजकी बात है!" इत्यादि कहते हुए उत्पातके खटकेसे घबड़ाकर इधर उधर दौड़कर उसका कारण खोजने लगे। वहाँ जो लड़के खेल रहे थे उन्होने कहा कि "इसी कान्हाने वृक्षोंके बीचमें ओखली डालकर जोर लगाया सो ये वृक्ष गिर पड़े। इन वृक्षोंके नीचेसे दो दिव्य पुरुष भी निकले थे" ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ किन्तु गोपोंने लड़कोंके कहने पर विश्वास नहीं किया और कहा कि इतना छोटा बालक इन वृक्षोंको नहीं गिरा सक्ता; कुछ लोगोंको संदेह भी हुआ कि कदाचित् ऐसा ही हो ॥५॥ नंदने अपने पुत्रको देखा कि रस्सीसे बँधे हुए उलूखलको घसीटते हुए आरहे हैं। यह देख कर नंदजी हँसे और कृष्णको ओखलीके बंधनसे छुड़ा दिया ॥ ६ ॥ इसी प्रकार श्रीकृष्णजी बाललीलाएँ करने लगे। कभी गोपियाँ ताली बजा कर नाचनेके लिये प्रोत्साहित करतीं तो भगवान् साधारण बालकोंके समान नाचने लगतेथे और कभी भोले भावसे गोपियोंके वश होकर ऊँचे स्वरसे गातेथे। यों ही कठपुतलीकी भाँति कृष्णचन्द्रजी गोपियोंका कहा करतेथे ॥ ७ ॥ कभी गोपियोंके कहनेसे—जैसे उठालानेकी सामर्थ्य नहीं है–ऐसा भाव प्रकट करते हुए पीठ (पीढ़ा) या खड़ाऊँ उठाते अथवा अपने आत्मीयोंको प्रसन्न करते हुए हाथ फैला कर नृत्य करते ॥ ८ ॥ अपनी यथार्थ महिमा जाननेवाले लोगोंको "मैं अपने भक्तोंके वशमें हूँ"—यह दिखाते हुए श्रीकृष्णचन्द्रजी इसी प्रकार अपनी बाललीलाओंसे व्रजवासियोंको प्रसन्न करने लगे ॥ ९ ॥ महाराज! एक दिन एक फल बेंचनेवाली नंदके द्वार पर आकर कहने लगी कि—"फल लेओ फल"। यह सुन कर सब फल देनेवाले श्रीकृष्ण भगवान् हाथोंमें अन्न लेकर फल लेनेके लिये उसके पास गये। राहमें हरिके हाथोंसे अन्न गिरता गया। उस फल बेंचनेवालीने भगवान्के दोनो हाथ फलोंसे पूर्ण कर दिये और वैसे ही उसकी टोकरी भी रत्नोंसे पूर्ण होगई ॥ १० ॥ ११ ॥ यमलार्जुन उखाड़नेके बाद एक दिन कृष्णचन्द्र यमुनाके किनारे खेल रहे थे। उसी समय रोहिणीजी उनको घर आनेके लिये पुकारने लगीं। किन्तु खेलनेमें तत्पर दोनो पुत्र जब उनका पुकारना सुन कर भी न आये तब पुत्रवत्सला रोहिणीने यशोदाको पुत्रोंको बुलानेके लिये भेजा। उसदिन कृष्ण भगवान् बलदाऊ सहित बहुत दिन चढ़े तक खेलते रहे–यह देख यशोदाजी स्वयं उन्हे बुलानेके लिये चलीं। पुत्रस्नेहसे उनके स्तनोंमें दूध भर आया। यशोदाजी ऊँचे स्वरसे यों कह कर कृष्णको बुलाने लगीं कि "हे कृष्ण! हे कमलनयन पुत्र! आओ, दूध पियो, बहुत खेल चुके, अब भूख लगी होगी, खेलते २

थक गये हो । हे बलदाऊ ! अपने छोटे भाई कृष्णको साथ लेकर शीघ्र आओ । तुम दोनोने बहुत सबेरे कलेवा किया था, अब तुम्हारे भोजन करनेका समय बीतचला है, आओ आओ, भोजन करो । व्रजपति नन्दजी चौके पर बैठे तुम्हारे आनेकी राह देख रहे हैं । आओ हमको प्रसन्न करो और ये तुम्हारे साथी बालक अपने २ घर जावें । वत्स कृष्ण ! तुम्हारे अंगोंमें धूल भर गई है, आओ स्नान करो । आज तुम्हारे जन्मनक्षत्रका दिन है, स्नान आदिसे पवित्र होकर ब्राह्मणोंको गोदान करो । अपने साथियोंको देखो । उनकी माताओंने स्नान कराकर उनको उत्तम २ कपड़े और गहने पहनाये हैं । तुम भी स्नान करके अच्छे २ वस्त्र व आभूषणोंसे भूषित होकर भोजन करनेके उपरान्त फिर आकर खेलना" । इस भाँति स्नेहमयी माता यशोदाजी, ब्रह्मादिवन्दित कृष्णचन्द्रको पुत्रभावसे हाथ पकड़कर सहित बलदाऊके घर ले गईं और सब मांगलिक कृत्य, देवपूजन आदि करके तथा पुत्रोंको भोजन करा कर अत्यन्त आनन्दित हुईं ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ महाराज ! व्रजमें नित्य नवीन उत्पात होते देख नन्द आदि बूढ़े २ सब गोप एकत्रित हुए और विचार करने लगे कि "गोकुलमें किसी प्रकारका अमंगल न हो–इस लिये हम लोगोंको क्या करना चाहिये ?" ॥ २१ ॥ उस सभामें उपनन्द नाम एक ज्ञान और अवस्थामें वृद्ध गोप थे, वह देश, काल और कार्य्यका तत्त्व भली भाँति समझते थे और बलदेव तथा कृष्णके परम हितकारी थे ॥ २२ ॥ उपनन्दने कहा कि "यदि गोकुलका हित चाहते हैं तो हम लोगोंको यहाँसे उठजाना चाहिये, क्योंकि यहाँ नित्य नवीन उत्पात होते हैं; जिनसे बालकोंको बड़ा ही भय है ॥२३॥ देखो, बालक कृष्ण किसी तरह बालघ्नी राक्षसी(पूतना)के हाथोंसे बचगया, और निश्चय ही यह हरिकी कृपा थी जो इसके ऊपर छकड़ा नहीं गिरा । फिर चक्रवात(बवंडर)रूपधारी राक्षस आकाशमें ले गया, किन्तु उस विपत्तिसे भी बचगया, देवतोंने बड़ी रक्षा की, क्योंकि वह दैत्य सहित इस बालकके एक भारी शिलाके ऊपर गिरा था ॥ २४ ॥ २५ ॥ दोनो वृक्षोंके बीचमें दब कर जो बालक कृष्ण नहीं मरा–इसमें भी अच्युत भगवान्‌ने ही रक्षा की–ऐसा समझना चाहिये ॥ २६ ॥ अतएव जब तक और कोई ऐसा ही उत्पातरूपी अरिष्ट व्रज पर न आवे तब तक पहलेही बालकोंको ले कर सब गोपों सहित हम व्रजको छोड़ देंगे और अन्यत्र जाकर निवास करेंगे ॥ २७ ॥ यहाँसे थोड़ी ही दूर पर वृंदावननाम एक पवित्र वन है, वहाँ पर्वत है, घास और तृण बहुत हैं, अनेक लताएँ भी हैं । वहाँ नवीन २ हरे भरे छोटे २ वन हैं, उनमें पशुगण सुखपूर्वक चरेंगे; गऊ, गोपी और गोपगण भी सुखसे रहेंगे ॥ २८ ॥ सो यदि आपलोगोंको रुचे तो चलो हम सब अभी चलें । विलंबकी आवश्यकता नहीं है, गऊ बछड़ोंको आगे करो और

अपने २ छकड़े जोत लो" ॥ २९ ॥ यह सुन कर सब गोपलोग एकमत हो कर उपनन्दकी प्रशंसा करने लगे और उसी समय अपने २ छकड़े जोत कर उन पर अपनी २ सामग्री रख कर वृन्दावनकी ओर चलदिये । राजन् ! गोपोंने अपना २ सामान छकड़ों पर लादा और बूढ़े बालक व स्त्रियोंको भी उन पर बिठलाया एवं आप धनुष बाण आदि अस्त्र शस्त्र ले गऊ बछड़ोंको आगे कर सींग और तूर्य्य (तुरही) बजाते कुलपुरोहितों सहित चल दिये ॥३०॥३१॥३२॥ गोपियाँ सब रथों पर चढ़ कर प्रसन्नतापूर्वक कृष्णकी बाललीलाओंको गाती हुई उनके साथ चलीं । उनके कमनीय कुचमण्डल कुङ्कुमरागसे रञ्जित थे, कानोंमें कनककुण्डल डोलते जाते थे और अंगोंमें चित्र विचित्र वस्त्र सुशोभित थे एवं गलेमें कंठा, पँचलड़ी, हमेल आदि आभूषणोंकी शोभा देखने ही योग्य थी ॥ ३३ ॥ यशोदा और रोहिणी भी एक छकड़े पर कृष्ण और बलदाऊ सहित विराजमान थीं और बड़े चावसे पुत्रोंकी बाललीलाएँ सुनती जाती थीं ॥ ३४ ॥ महाराज ! सभी ऋतुओंमें सुख देनेवाले वृंदावनमें पहुँच कर गोपोंने अपने २ छकड़े अर्धचन्द्राकारसे खड़े कर दिये और वहीं गोप गोपियोंके बसनेका स्थान बनाया । राजन् ! बलदाऊ और कृष्ण दोनो भाई वृन्दावन और यमुना नदीके रमणीय किनारे देख कर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ३५ ॥३६॥ राजन् ! बलदाऊ और कृष्णचन्द्र इसी प्रकार अपनी बाललीलाओं और मधुर वाक्योंसे व्रजवासियोंको आनन्द देते हुए कुछ कालमें वत्सपाल हो गये अर्थात् बछड़ोंको चराने ले जाने लगे ॥ ३७ ॥ कृष्ण और बलदाऊ अनेक प्रकारके वस्त्र आभूषणोंसे विभूषित हो कर व्रजभूमिके निकट ही ग्वालबालोंके साथ बछड़े चराते हुए भाँति २ के खेल खेलने लगे ॥ ३८ ॥ कभी बाँसुरी बजाते और कभी क्षेपण यंत्र (गोफ)में रख कर आँवले आदिके फल फेंकते, और कभी पैरोंमें घुँघरू बाँधे उनको बजाते थे । कभी कंवल उढ़ा कर ग्वाल बालोंको बैल बनाते और आप भी बैल बनते तथा बैलोंके समान नाद करके परस्पर युद्ध करतेथे । कभी साधारण बालकोंके समान पक्षियों व पशुओंकी बोलीकी नकल करते थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ एक दिन कृष्ण और बलदाऊ वयस्य बालकोंसहित यमुना किनारे अपने २ बछड़ोंको चरा रहे थे । इसी समय उनको मारनेके विचारसे एक दैत्य आया ॥ ४१ ॥ हरिने देखा कि वह दुष्ट दैत्य बछड़ेके रूपसे बछड़ोंके झुंडमें आकर मिल गया । भगवान्ने बलदेवको इशारेसे दिखा दिया और जैसे कुछ जानते ही नहीं, इस भाँति धीरे २ उसके पास पहुँच गये । पीछेसे जाकर भगवान्ने सहित पूँछके उसके पिछले दोनो पैर पकड़ लिये और कई बार शून्यमें घुमाकर एक कैथेके वृक्ष पर दे मारा, जिससे कि उसके प्राण निकल गये । उसके भारी शरीरके आघातसे कई कैथेके वृक्ष भी टूटकर गिर पड़े और वह भी गिर पड़ा ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ यह देख सब ग्वालबाल विस्मित हो 'वाह वाह' कहकर कृष्णकी प्रशंसा करने लगे

और देवता लोग प्रसन्न हो कर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४४ ॥ सब लोकोंका पालन करनेवाले कृष्ण और बलदाऊ वत्सपाल हो कर नित्य प्रातःकाल कलेवा ले कर वनमें जाने और वहाँ बछड़ोंको चराने लगे ॥ ४५ ॥ एक दिन सब ग्वालवाल जलाशयके निकट जा कर अपने २ बछड़ोंको जल पिलाने लगे । उन्होने बछड़ोंको जल पिला कर आप भी जलपान किया ॥ ४६ ॥ उसी समय उन्होने देखा कि वहाँ पर एक बड़ा भारी जीव बैठा हुआ है, जैसे वज्रके प्रहारसे फटकर किसी पर्वतका शिखर गिर पड़ा हो । उसे देख कर सब ग्वालबाल बहुत ही भयभीत हुए ॥ ४७ ॥ वह जीव बकासुर नाम महादैत्य था, जो बगलेका रूप धरकर आया था । उस तीक्ष्ण चोंचवाले महाबली असुरने सहसा आकर कृष्णचन्द्रको निगल लिया ॥४८॥ बकासुरके द्वारा कृष्णको निगला गया देख, बलदाऊ आदि ग्वालवाल, प्राणके बिना इन्द्रियोंके समान, अचेत हो गये ॥४९॥ बकासुरके कंठमें जाकर कृष्णचन्द्रजी अग्निके समान उसके तालूको जलाने लगे, तब ग्वालबालरूप जगत्के गुरु और पिता कृष्णको उसी समय उसने उगल दिया और कृष्णको अक्षत शरीर देख कुपित हो फिर चोंच उठाकर मारने दौड़ा ॥ ५० ॥ इस प्रकार आते हुए कंसके सखा बकासुरकी चोंचको सज्जनोंके स्वामी कृष्णने दोनो हाथोंसे पकड़ लिया और देवगणको प्रसन्न करते हुए सब बालकोंके सामने ही लीलापूर्वक तृणके समान बीचसे फाड़ डाला ॥ ५१ ॥ उस समय बकासुरको मारनेवाले कृष्ण पर देवता लोग नंदनवनके मल्लिकादिक पुष्पोंकी वर्षा करने लगे और नगाड़े शंख आदि बजाते हुए स्तुति करने लगे । यह देख कर सब ग्वालबालोंको बड़ा ही विस्मय हुआ ॥५२॥ कृष्णजी जब बकासुरके मुखसे छूट कर पास आये तब प्राणोंके आने पर इन्द्रियाँ जैसे सचेत हो जाती हैं वैसे सब बलदाऊ आदि बालक प्रसन्न हो कर उनसे गले मिले । फिर सब लोग अपने २ बछड़े ले व्रजमें आये और वहाँ आकर सब चरित्र कह सुनाया ॥ ५३ ॥ बकासुरवधका वृत्तान्त सुन कर गोप व गोपियोंको बड़ा ही विस्मय हुआ और वे अत्यन्त प्रेम व आदरसे, जैसे कोई मरकर जिये और उसके इष्टमित्र उसको बड़ी चाह और आग्रहके साथ देखें वैसे उत्सुकतापूर्वक एकटक कृष्णचन्द्रको देखने लगे ॥ ५४ ॥ सब नन्दादि गोप कहने लगे कि "अहो इस बालककी बहुत सी मौतें आ आ कर टल गईं ! किन्तु उन्हीं मारनेकी इच्छासे आये लोगोंका अनिष्ट हुआ; क्यों कि उन्होने और का बुरा चेता था ॥ ५५ ॥ अहो, बड़े २ घोर दुष्ट दानवादि इसे मारनेकी इच्छासे आ कर स्वयं ही आगमें पतंगके समान नष्ट हो जाते हैं ॥ ५६ ॥ अहो, ब्रह्मज्ञानी ऋषियोंके वचन कभी असत्य नहीं होते, महर्षि गर्ग जैसा कह गयेथे वैसा ही सब होते देख पड़ता है" ॥ ५७ ॥ इसी प्रकार नन्दआदि गोपगण आनन्दपूर्वक कृष्ण बलदाऊके चरित्रोंकी चर्चा करके संसारकी वेदनासे विमुक्त रह कर सुखसे जीवन व्यतीत करने लगे ॥ ५८ ॥

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ५९ ॥

इसी भाँति व्रजमें 'निलायन' 'सेतुबन्ध' और 'मर्कटोत्प्लवन' आदि लड़कोंके खेल खेलते २ कृष्ण और बलदेवजीकी कुमारअवस्था बीतगई ॥ ५९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय ।

अघासुर–वध ।

श्रीशुक उवाच–क्वचिद्वनाशाय मनो दधद्व्रजा-
त्प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ॥
प्रबोधयन् शृङ्गरवेण चारुणा
विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । एक दिन कृष्णने विचार किया कि आज वनमें ही चल कर कलेवा करेंगे । उस दिन कृष्णजी सवेरे ही उठे और अपने सुंदर सींगके शब्दसे साथी ग्वालबालोंको जगा कर बछड़े आगे करके वनको चले ॥ १ ॥ उनके साथ ही हजारों सनेही बालक हाथोंमें छींके, बेंत, सींग और वंशी आदि ले ले कर अपने सहस्राधिक बछड़ोंको आगे करके प्रसन्नतापूर्वक वनको चले ॥ २ ॥ उन्होने कृष्णचन्द्रके असंख्य बछड़ोंमें अपने बछड़े मिला कर उनको चरनेके लिये छोड़ दिया और जहाँ तहाँ अनेक प्रकारके खेल खेलने लगे ॥ ३ ॥ यद्यपि वे सब बालक काँच, मुक्ता, मणि और सोनेके आभूषणोंसे विभूषित थे तथापि अनेक फल, नव पल्लव, गुच्छे, फूल, मयूरपुच्छ, घुँघची एवं गेरू आदि विविध धातुओंसे उन्होने अपने शरीरोंको अलंकृत किया ॥४॥ एक दूसरेका छींका पीछेसे उतार लेताथा, यदि वह जान जाता था कि अमुकने छींका ले लिया है तब दूसरा बालक और दूर पर दूसरे बालकके पास छींका पहुँचा देताथा, वहाँके बालक और भी दूर तक उस छींकेको पहुँचा देतेथे एवं पीछेसे हँसते हुए उसी बालकको उसका छींका लौटा देतेथे ॥५॥ वनकी शोभा देखते २ जब कृष्णजी दूर निकल जाते तो सब बालक "मैं पहले छू लूँगा–मैं पहले छू लूँगा" यों कह कर कृष्णको छूनेके लिये दौड़ते और इसी प्रकार आनन्द मनाते थे॥६॥ कोई वंशी, और कोई सींग बजाता था, कोई बालक भ्रमरके साथ आप भी उसीके समान गुनगुनाता था, कोई बालक कोकिलाओंके साथ उन्हीका ऐसा शब्द करके प्रसन्न होता था ॥ ७ ॥ कोई बालक ऊपर उड़

रहे पक्षीकी छायाके साथ दौड़ता और कोई हंसोंके साथ उनकी गतिका अनुकरण करता चलता, कोई बगलोंके पास उन्हीके समान बैठता, कोई २ मयूरोंके साथ उन्हीके समान नाचता ॥ ८ ॥ कोई वानरोंके बच्चोंकी पूँछ पकड़ कर खींचता और कोई उनके साथ वृक्षों पर चढ़ता एवं कोई वानरोंके ही समान मुख बना कर उनको घुड़कता तथा कोई उनके साथ एक शाखासे दूसरी शाखा पर चला जाता ॥ ९ ॥ कोई झरनोंमें स्नान करता, कोई मेंढ़कके समान उछल २ कर चलता, कोई अपनेही प्रतिबिंबको हँसता और कोई अपने ही शब्दकी प्रतिध्वनि पर आक्रोश करता था ॥ १० ॥ हे राजन्! जो भगवान् हरि विद्वान् लोगोंकी दृष्टिमें स्वयंप्रकाशमान परमसुखस्वरूप, भक्तजनोंकी दृष्टिमें आत्मप्रसाद परम देवतारूप एवं मायामूढ़ व्यक्तियोंकी दृष्टिमें मनुष्यबालरूप प्रतीयमान हैं उनके साथ ग्वालबाल लोग इस भाँति विहार करने लगे; अवश्य ही उन्होने पूर्वजन्ममें अमित पुण्य किये होंगे ॥ ११ ॥ जितेन्द्रिय योगीजन बहुत जन्मों तक अनेक प्रकारके कष्ट सहकर जिनके चरणोंकी धूलि भी नहीं पाते वह परमात्मा जिनकी आँखोंके आगे रहे और साथ खेले उन व्रजवासी ग्वालबालोंके सौभाग्यका क्या कहना है? ॥ १२ ॥ महाराज! एक समय सब ग्वालबाल यों ही सुखपूर्वक वनमें विहार कर रहे थे, इसी अवसर पर 'अघ'नाम एक भयंकर असुर वहाँ आकर उपस्थित हुआ, मानो वह उनके आनन्दयुक्त खेलको न देखसका। अघासुर बड़ा ही दुर्दान्त था। देवगण अमृत पीकर यद्यपि अमर होगये हैं तथापि अघासुरकी ओरसे अपने प्राणोंका खटका उनको बना ही रहता था और वे अघासुरके विनाशकी प्रतीक्षा किया ही करते थे! ॥ १३ ॥ कंसने अघासुरको व्रजमें भेजा था और वह पूतना तथा बकासुरका छोटा भाई था। उसने कृष्ण आदि बालकोंको देख कर यों निश्चय किया कि यही मेरे सहोदर भाई और बहनको मारनेवाला वैरी है। मैं आज इसे सहित दलबलके मारूँगा ॥ १४ ॥ इन सबको मार कर जब मैं अपने परलोकगत सुहृदोंको तिलाञ्जलि दूँगा तब व्रजवासियोंको मरा हुआ ही जानना होगा। सभी प्राणियोंके प्राण उनके पुत्र और कन्या होते हैं, अत एव ये ही उनके प्राण हैं। तब प्राण न रहनेसे शरीरको नष्ट ही समझना चाहिये—उसके लिये कोई चिन्ता नहीं है ॥ १५ ॥ ऐसा विचार कर वह दुष्ट दानव बालकोंको निगल लेनेकी इच्छासे अद्भुत अजगरके रूपसे राहमें लेट गया। उसका शरीर योजन भर चौड़ा था और मुख पर्वतकी कन्दराके समान फैला हुआ था ॥ १६ ॥ उसका अधर पृथ्वीसे और ओष्ठ अंतरिक्षसे मिला हुआ था। दोनो चौहें कंदरा ऐसी थीं, दाढ़ें शैलशृंग सदृश ऊँची थीं। मुखके भीतर अंधकार ही अंधकार था, जिह्वा एक लाल सड़क जान पड़ती थी, श्वासा दावानलकी झपटके समान कठोर और नेत्र जलते हुए दावानलके तुल्य थे

॥ १७ ॥ उसको देख कर बालकोंको भ्रम हुआ कि यह भी कोई वृंदावनकी शोभा है और वे हँसी करते हुए उस यथार्थ अजगरके मुखकी अजगरके मुखके साथ तुलना करके यों कहने लगे ॥ १८ ॥ "अहो मित्रो ! कहो हमारे आगे यह एक प्राणी ऐसा जान पड़ता है या नहीं ? यह हमें निगलनेके लिये मुख फैलाये साँपका मुख सा जान पड़ता है या नहीं ? ॥ १९ ॥ देखो सूर्य्यकी किरणें पड़नेसे लाल २ मेघजाल इसके ऊपरका ओंठ और उनकी परछाहीं पड़नेसे लाल होगई भूमि नीचेका ओंठ जान पड़ता है ॥ २० ॥ बाईं और दाहिनी ओर दो गिरि-गुहाएँ उसकी चौहें जान पड़ती हैं और पर्वतोंके शिखर दाढ़ोंके समान दिखाई पड़ते हैं ॥ २१ ॥ यह विशाल मार्ग जान पड़ता है कि इसकी जीभ है और इन शैलशिखरोंके बीचका अंधकार मुखका भीतरी शून्यभाग जान पड़ता है ॥ २२ ॥ दावानलसे मिला हुआ आ रहा प्रचण्ड पवन इसकी श्वासा जान पड़ता है और दावानलमें जले हुए जीवोंकी दुर्गन्ध जान पड़ती है कि इस सर्पदेहके अन्तर्गत आमिषकी गन्ध है ॥ २३ ॥ यह क्या वास्तवमें सर्प है और हमको निगल लेगा ? यदि हम इसके भीतर जायँगे और यह हमें निगल भी लेगा तो हमारा कुछ भी अनिष्ट न होगा और यह भी बकासुरके समान कन्हैयाके हाथों मारा जायगा"–यों कहते हुए सब बालकोंने फिर कर पीछे आ रहे कृष्णचन्द्रके सुन्दर मुखकी ओर देखा और कृष्णके देखते ही देखते ताली बजाते हँसते हुए अघासुरके मुखके भीतर घुस गये ॥ २४ ॥ बालकोंने यथार्थ बात बिना जाने इस प्रकार आपसमें कहा, उनके कथनको भगवान् कृष्णने सुना और सोचा कि यथार्थ ही सर्परूपधारी असुरकी ये मूढ़ बालक सर्पके साथ तुलना करते हैं; किन्तु नहीं जानते कि यह सचमुचही सर्प है। यों सोचकर सब प्राणियोंके हृदयोंमें स्थित कृष्णचन्द्रने चाहा कि उनको सर्पके मुखमें जानेसे रोकें ॥ २५ ॥ परन्तु तब तक वे सहित बछड़ोंके उसके मुखमें चले ही गये। तो भी अघासुरने मुख बंद करके उनको नहीं निगला, क्योंकि वह अपने भाई और बहनका वध करनेवाले वैरी कृष्णके आनेकी राह देख रहा था ॥ २६ ॥ सबको अभयदान करनेवाले कृष्णने देखा कि वे दीन बालक, जिनका सिवा अपने और कोई स्वामी (रक्षक) नहीं है, अपने हाथसे निकल कर मृत्युरूप सर्पके उदराग्निका चारा बन चुके हैं, अतएव उन पर प्रभुको बड़ी ही दया आई और साथ ही भाग्यकी विचित्र लीला पर विस्मय भी हुआ ॥ २७ ॥ भगवान् सोचने लगे कि अब इस अवसर पर क्या करना चाहिये ? इस दुष्ट असुरके प्राण न बचें और ये सज्जन बालक बचजायँ–ये दोनो बातें कैसे सिद्ध होंगी ? तदनन्तर कर्त्तव्य ठीक करके सर्वज्ञ कृष्णचन्द्र आप भी उस सर्पके मुखमें घुसे ॥ २८ ॥ उस समय बादलोंकी ओटसे देख रहे देवगण भयसे हाहाकार करने लगे और इधर उधर मायारूपधारी राक्षसगण जो कि

अघासुर और कंसके बान्धव थे—यह देख कर बहुत ही आनन्दित हुए ॥ २९ ॥ अव्यय कृष्णचन्द्रसहित बालक और बछड़ोंको निगल कर अघासुरने चाहा कि चूर्ण कर डालूँ, उसी समय देवगणका हाहाकार सुन कर भगवान् हरिने एकदम उस असुरके गलेमें अपने शरीरको बढ़ा दिया ॥ ३० ॥ तब असुरका कंठ रुँध गया, श्वासाका आना जाना बंद हो गया, नेत्र बाहर निकल पड़े और वह व्याकुल होकर छटपटाने लगा। शीघ्र ही शरीरके भीतर रुका हुआ प्राणवायु उसके ब्रह्माण्डको फोड़ कर बाहर निकल गया ॥ ३१ ॥ इस प्रकार उस दुष्टके मरने पर कृष्णचन्द्रने अमृतवर्षिणी दृष्टिसे, मरे हुए बछड़े और बालकोंको फिर जीवित कर दिया और सहित उनके अघासुरके मुखसे बाहर निकले ॥ ३२ ॥ उस महासर्पके मुखसे निकली हुई अद्भुत महाज्योति अपनी प्रभासे दशो दिशाओंको प्रकाशित करती हुई आकाशमें स्थित रही और कृष्णचन्द्र जब सर्पशरीरके बाहर निकले तब सब देवतोंके सामने ही उन्हींमें लीन होगई ॥ ३३ ॥ देवगणने स्वर्गसे फूलोंकी वर्षा की, अप्सराएँ नाचने लगीं, गन्धर्वगण गाने और विद्याधर लोग बाजे बजाने लगे एवं ब्राह्मण(ऋषि)गण स्तुति करने लगे तथा भक्तगण जयध्वनि करते हुए अपने कार्य्यसाधक हरिकी पूजा करने लगे ॥ ३४ ॥ उस समय अनेक प्रकारके उत्सवों सहित अद्भुत स्तुति, सुंदर बाजे, गीत और जयजयकारकी माङ्गलिक ध्वनिको सुन कर भगवान् ब्रह्माजी अपने लोकसे वहाँ पर आये और ईश्वरकी महिमा देख कर बहुत ही विस्मित हुए ॥ ३५ ॥ महाराज! वह अजगररूप अघासुरके शरीरका चमड़ा वृंदावनमें वैसे ही सूख गया। बहुत समय तक ग्वालबालोंने उस बिलरूपी शरीरमें घुस कर (कभी २) क्रीड़ाएँ कीं ॥ ३६ ॥ हरिने पाँच वर्षकी अवस्थामें यह अद्भुत कर्म्म किया था, अर्थात् अघासुररूपी मृत्युके मुखसे बछड़ों सहित ग्वालबालोंकी रक्षा की थी और उस दुष्ट दानवको मुक्ति दी थी; किन्तु विस्मित ग्वालबालोंने छठे वर्ष अर्थात् एक साल बाद सब वृत्तान्त व्रजमें कहा कि "आज ही यह सब चरित्र हुआ है" ॥ ३७ ॥ किन्तु मायामनुष्यरूप हरिके लिये यह कुछ विस्मयकी बात नहीं है। श्रीकृष्णचन्द्रजी चराचर जगत्में श्रेष्ठ और उसके हर्त्ता कर्त्ता विधाता हैं। देखो, अघासुर भी हरिके स्पर्शसे सारूप्य मुक्ति पागया। अघासुर ऐसे दुष्टोंको ऐसी मुक्ति बहुत ही दुर्लभ है ॥३८॥ जिनकी श्रीमूर्त्तिकी केवल मनोमयी प्रतिकृतिको अन्तःकरणमें बलात् स्थापित करके प्रह्लाद आदि परमभक्तगण भागवती गतिको प्राप्त हुए उन्ही नित्य आत्मसुखानुभवके द्वारा मायाको निरस्त करनेवाले भगवान्ने स्वयं उस असुरके अन्तरमें प्रवेश किया, तब वह कैसे न मुक्त हो? ॥ ३९ ॥ सूतजी कहते हैं। हे द्विजगण! यदुवंशियोंके कुलदेव द्वारा प्रदत्त (रक्षित) राजा परीक्षित्जीने अपने जीवनदाता हरिके इस विचित्र चरित्रको सुन कर शुक-

देवजीसे फिर इसी पवित्र चरित्रके विषयमें प्रश्न किया। क्योंकि हरिचरित सुननेमें उनका मन भली भाँति लगा हुआ था ॥ ४० ॥ राजा परीक्षित्ने कहा। ब्रह्मन्! भला जो काम साल भर पहले होगया है, उसे, उसी समयका कैसे कोई कह सक्ता या मान सक्ता है? हरिने जो काम पाँच वर्षकी अवस्थामें किया उसे उनके साथी ग्वालबालोंने छः वर्षकी अवस्थामें उसी दिनका किया हुआ कैसे बताया? हे महायोगी! हमारे इस परमकौतूहलको निवृत्त करो। निश्चय ही यह उन्ही हरिकी माया होगी, अन्यथा ऐसा होना संभव नहीं है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ गुरुवर! हम अधम क्षत्रिय होकर भी परम धन्य हैं, जो वारम्वार आपके मुखारविंदसे निकले हुए पवित्र हरिकथारूप अमृतको पीते हैं ॥ ४३ ॥

सूत उवाच—इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणि-
स्तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः ॥
कृच्छ्रात्पुनर्लब्धवहिर्दृशिः शनैः
प्रत्याह तं भागवोत्तमोत्तमः ॥ ४४ ॥

सूतजी कहते हैं। हे भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ शौनकजी! राजा परीक्षित्ने हरिविषयक प्रश्न करके अनन्त हरिका स्मरण करादिया। अनन्त हरिके स्मरणसे शुकदेवजीकी इन्द्रियाँ हरिमें तन्मय होगई। उन्होने अति कष्टसे इन्द्रियोंको धीरे २ उधरसे हटाया और महाश्रेष्ठ भगवद्भक्त राजाके प्रश्नका यों उत्तर देने लगे ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय।

ब्रह्माको मोह और उसका नाश।

श्रीशुक उवाच—साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ॥
यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। हे महाभाग! हे भागवतश्रेष्ठ! तुमने यह बहुत ही उत्तम प्रश्न किया। तुम हरिकथारूप अमृतको वार २ पीकर भी तृप्त नहीं होते, किन्तु नवीन २ प्रश्नोंसे उसे नवीन बनाते हो ॥ १ ॥ सार ग्रहण करनेवाले साधुओंका स्वभाव ही यह होता है कि वे अपने वाक्य, कान, और अन्तःकरणको हरिचर्चामें ही लगा देते हैं। जैसे स्त्रैण(विषयी)लोगोंमें सदा स्त्रियोंकी ही कथाएँ हुआ

करती हैं वैसे ही उनकी मण्डलीमें नवीन २ हरिकी कथाएँ होती हैं ॥ २ ॥ हे राजन्! सावधान होकर सुनो, गुप्त विषय भी मैं तुमसे कहता हूँ। क्योंकि गुरुजन अपने स्नेही शिष्यसे परम गुप्त बात भी नहीं छिपाते ॥ ३ ॥ पूर्वोक्त प्रकारसे मृत्युरूपी अघासुरके मुखसे बछड़े और बालकोंकी रक्षा करनेके उपरान्त हरि उनको नदीके किनारे पर लाये और वहाँ उनसे कहा कि—"साथियो! यह यमुनातट बहुतही रमणीय है, यहाँ हमारे खेलनेकी सभी सामग्रियाँ हैं, यहाँकी बालू भी बहुत ही कोमल और स्वच्छ है। अत्यन्त कोमल और प्रफुल्लित कमलोंकी सुबाससे खिंचे हुए भौंरे और अनेक पक्षी यहाँ आते हैं और जल पर मधुर शब्द करते हैं; जिसकी प्रतिध्वनि किनारेके वृक्षोंमें व्याप्त हो रही है ॥ ४ ॥ ५ ॥ आओ, हम सब यहीं बैठ कर भोजन करें, क्योंकि दिन बहुत चढ़ गया है, भूख भी लगी है। बछड़ोंको छोड़ दो, वे पास ही पानी पी कर धीरे २ घास चरें ॥६॥ 'ऐसाही सही' कह कर ग्वालबालोंने बछड़ोंको घासमें छोड़दिया और आप अपने२ छींके खोल कर आनन्दपूर्वक भगवान्के साथ भोजन करने लगे ॥ ७ ॥ प्रफुल्लनयन सब ग्वालवाल वनमें कृष्णको चारो ओरसे घेर कर उन्हीकी ओर मुख कर मण्डली बना कर बैठे, उस समय कृष्ण तो कमलकुसुमकी कर्णिका और वे सब पत्तोंके समान शोभायमान हुए ॥८॥ कोई फूलों पर, कोई पत्तों पर, कोई पल्लवों पर, कोई अंकुरों पर, कोई फलों पर, कोई छींकों पर, कोई छालों पर और कोई शिलाओं पर धर कर भोजन करने लगे ॥ ९ ॥ सभी बालक परस्पर अपनी २ भिन्न २ भोजनरुचि दिखाते हुए हँसते हँसाते भगवान्के साथ भोजन करने लगे एवं कृष्णभगवान् यज्ञभागके लेनेवाले हो कर भी लड़कोंकी भाँति बालकेलि करने लगे ॥ १० ॥ कमरमें बँधे हुए पटमें वेणु खोंसे, बाईं बगलमें सींग दबाये, दाहिनी बगलमें बेंत दबाये, बाएँ हाथमें माखन भातका कौर लिये एवं अँगुलियोंकी संधियोंमें खेलनेकी गोली दबाये श्रीकृष्णचन्द्रजी बालकोंके बीचमें कर्णिकाकी भाँति अवस्थित हो कर स्वयं हँसीके वचनोंसे हँसते और साथियोंको हँसाते भोजन कर रहे थे, एवं इस लीलाको सब स्वर्गवासी जन विस्मयपूर्वक देख रहे थे ॥ ११ ॥ महाराज! वत्सपाल ग्वालबालगण इस भाँति अच्युतके साथ तन्मय हो कर भोजन कर रहे थे, इसी अवसरमें सब बछड़े हरे २ तृणके लोभसे दूरतक चले गये और वनके भीतर धीरे२ घुस पड़े ॥१२॥ बछड़ोंको आगे बढ़ गया देख बालकोंको भय हुआ, तब विश्वके भयको भी भय देनेवाले कृष्णजीने कहा कि मित्रो, तुम भोजन करना न बंद करो, मैं अभी बछड़ोंको लौटाए लाता हूँ ॥ १३ ॥ यों कह कर हाथमें वैसे ही भोजनका कौर लिये कृष्णचन्द्र अपने और अपने मित्रोंके बछड़ों की खोजमें पर्वत, कन्दरा, कुंज और अन्यान्य अगम्य स्थानोंमें भ्रमण करने लगे ॥ १४ ॥ पद्मयोनि ब्रह्मा पहलेसे ही आकाशमें खड़े

खड़े अघासुरमोक्षसे ले कर अबतक सब लीला देख बहुतही विस्मित हुए थे। इस समय मोहवश मायाबालकरूप हरिकी महिमा देखनेकी इच्छासे ब्रह्माजी पहले तो बछड़ोंको हर ले गये और फिर हरिके चले जाने पर ग्वालबालोंको भी उठा ले गये और उनको अपने लोकमें अचेत अवस्थामें रख आये॥ १५॥ इधर कृष्णचन्द्रने बछड़ोंका पता न लगने पर उसी पुलिन पर लौटके आ कर देखा कि ग्वालबाल भी नहीं हैं। कृष्ण भगवान् फिर दोनोको ही ढूँढ़ने लगे, किन्तु वनमें कहीं पर बछड़े और बालकोंको न पाकर सर्वज्ञ हरि तुरन्त समझ गये कि यह सब ब्रह्माका काम है॥ १६॥ १७॥ तब उन ग्वालबाल व बछड़ोंकी माताओंको सन्तुष्ट रखने एवं ब्रह्माको छकानेके लिये विश्वकी रचना करनेवाले ईश्वर आप ही (उतने) बछड़े और ग्वालबाल बनगये। भगवान्ने इस अभिप्रायसे ऐसा किया कि यदि मैं बछड़ोंको ब्रह्मलोकसे लाये देता हूँ तो ब्रह्माको मोह न होगा और जो स्वयं बछड़ों व ग्वालबालोंका रूप नहीं धारण करता हूँ तो उनकी माताएँ शोकाकुल हो जायँगी। इसी लिये हरिने स्वयं उतने ही रूप धारण किये॥ १८॥ जिस बछड़े और बालकका जैसा शरीर, जैसे हाथ-पैर, जैसी लकड़ी, जैसा सींग, बाँसुरी और छींका था, जैसे वस्त्र और आभूषण थे, जैसा शील, गुण, नाम, आकृति और अवस्था आदि था एवं जिसका जैसा आहार विहार आदि था वैसे ही प्रकट होकर सर्वस्वरूप हरिने "सब जगत् विष्णुमय है" इस वाक्यको सार्थक कर दिखाया॥ १९॥ भगवान्ने इस भाँति आप ही सर्वरूप होकर व्रजमें प्रवेश किया। कृष्णचन्द्र आप ही वत्सपालरूपसे वत्सरूप अपनेको घेर कर आप अपने ही साथ विहार करते व्रजमें आये॥ २०॥ जिस २ घरके जो बछड़े थे उन्हे उन्हीं ग्वालबालोंके रूपसे साथ लिये भगवान्ने अलग २ घरोंमें प्रवेश किया और उन बछड़ोंको उनके स्थानों पर बाँध दिया॥ २१॥ उस दिन उन ग्वालबालों और बछड़ोंकी माताएँ बाँसुरीका शब्द सुनते ही जल्दीसे उठीं और अपने २ पुत्रोंको प्रेमसे गोदमें लेकर परब्रह्मभावनासे स्नेहके कारण आप ही आप बह रहे सुधामधुर दुग्धको पिलाया॥२२॥ राजन्! जिस समय जो क्रीड़ा करनेका नियम था, उसीके अनुसार, इस भाँति कृष्णचन्द्रजी संध्यासमय वनसे आकर अपनी मनोहर लीलाओंसे माताओंको नित्य आनन्दित करने लगे एवं वे भी अंग दबाकर, नहलाकर, उबटना लगाकर, उत्तम वस्त्र व आभूषण पहनाकर, तिलक लगा कर, भोजन कराकर एवं भाँति २ से रक्षा कर नित्य पुत्ररूप हरिका लालन पालन करने लगीं॥ २३॥ इधर गायें भी जब वत्सरूप हरिको गोष्ठ (बँधनेके स्थान)में देखतीं तो हुंकार शब्दसे (अपने २ बछड़ोंको) बुला कर बार बार उन्हे चाटती हुई स्तनोंसे बह रहे दूधको पिला कर प्रसन्न होती थीं॥२४॥ पहले भी श्रीकृष्ण पर गऊ और गोपियोंको माताका

ऐसा स्नेह था, किन्तु इस समय वह अत्यन्त अधिक होगया। ऐसे ही हरिका भी उन पर पहले पुत्रका सा भाव था, किन्तु अब और भी अधिक हो गया; अर्थात् अब मायाममता होगई ॥ २५ ॥ पहले भी व्रजवासियोंको कृष्ण पर परम स्नेह था, किन्तु अब वह अपूर्वभावसे अपने २ पुत्रों पर नित्यप्रति धीरे २ एक वर्षमें असीमरूपसे बढ़ गया ॥ २६ ॥ इस प्रकार वत्सपाल श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं वत्स और वत्सपाल रूप होकर आप ही अपना पालन करते हुए वनमें और गोष्ठमें क्रीड़ा करने लगे ॥ २७ ॥ राजन्! एक वर्ष पूरा होनेमें पाँच या छः दिन शेष थे, इसी अवसरमें एक दिन श्रीकृष्णचन्द्रजी बलदाऊसहित बछड़े चरानेके लिये वनको गये। उस समय बहुत दूर पर गोवर्द्धन पर्वतके शिखरमें सब गायें चर रही थीं। उन गायोंने वहाँसे देखा कि व्रजके निकट ही उनके बछड़े चर रहे हैं। बछड़ोंको देखते ही स्नेहसे वे गायें आपेसे बाहर होगईं और हुँकारी भरती हुई दौड़ पड़ीं। चरानेवाले गोपोंने लाख २ रोकनेकी चेष्टा की, पर सब व्यर्थ हुआ। दुर्गम मार्गसे कूदती फाँदती पैर जोड़ कर गर्दन, कान, पूँछ और मुख उठाये गायें आईं। इतने वेगसे चलीं कि जान पड़ता था उनके दो ही पैर हैं। उनके स्तनोंसे दूध बह रहा था ॥२८॥२९॥ ॥ ३० ॥ यद्यपि उनके और छोटे बच्चे भी थे तौ भी दौड़कर अपने बड़े बछड़ोंके पास आईं और मानो उनको लील जायँगी, इस भाँति स्नेहसे अंग चाटती हुई गोवर्धनके नीचे आकर दूध पिलाने लगीं ॥ ३१ ॥ चरानेवाले गोपोंने उनको रोकनेकी बहुत कुछ चेष्टा की, पर न रोक सके, इस कारण वे कुपित और लज्जित हुए। पर्वतके ऊपरसे दुर्गम मार्ग हो कर आनेसे वे अत्यन्त थक गये। परन्तु वे बछड़ोंके पास अपने २ पुत्रोंको देख कर स्नेहसे गद्गद होगये, सारा क्रोध जाता रहा। प्रेमरससे हृदय परिपूर्ण हो जानेके कारण उन्होने अपने २ बालकोंको गोदमें उठा लिया और उनके मस्तक सूँघ कर वे बहुतही प्रसन्न हुए ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वे बड़े बूढ़े गोप, पुत्रोंको गलेसे लगाकर बड़े कष्टसे स्नेहकी उमंग को रोक सके। उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू निकलने लगे ॥ ३४ ॥ बलदेवने देखा कि जिन्होने दूध पीना छोड़ दिया है उन सन्तानों पर गऊ और गोपोंकी प्रतिक्षण इतनी अधिक उत्कंठा और अनुराग है। यह देख कर, उसका कारण नहीं जानते थे, इस लिये विचारने लगे—कि "यह कैसा आश्चर्य्य व्यापार है! पहले कृष्णचन्द्र पर व्रजवासियोंका जैसा अपूर्व स्नेह बढ़ता जाता था वैसा ही अब अपने अपने पुत्रों पर क्यों बढ़ रहा है? मेरे मनमें भी क्यों उन पर इतना अधिक स्नेह उत्पन्न हो रहा है? यह क्या माया है? माया है तो किसकी है? यह क्या किसी देवता, मनुष्य या राक्षस की माया है? निश्चय जान पड़ता है कि यह मेरे प्रभुकी ही माया है, क्योंकि इस मायासे मुझको भी मोह हो

रहा है" ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ यदुनन्दन बलदेवने यों विचार अपने ज्ञाननेत्र खोल कर देखा तो सभी बछड़े और उनकी रक्षा करनेवाले बालक कृष्णरूप हैं ॥ ३८ ॥ तब बलदेवने कृष्णचन्द्रसे कहा कि भाई कृष्ण! मैं पहले जानता था कि ये सब बछड़े और वत्सपाल ग्वालबाल ऋषियोंके और देवतोंके अंश हैं, किन्तु इस समय तो वे कोई भी नहीं देख पड़ते, सब तुम ही तुम हो। यद्यपि सब सामग्री भिन्न २ है, तथापि अन्तरमें तुम ही एक हो! कृपा कर बताओ कि तुमने इतने भिन्न २ रूप क्यों धारण किये? । इस प्रकार पूछने पर भगवान्ने बलदेवको संक्षेपसे सब वृत्तान्त बता दिया और वह भी जान गये ॥ ३९ ॥ राजन्! इसी प्रकार उन मायारचित वत्स और वत्सपालोंके साथ कृष्णचन्द्रको क्रीड़ा करते २ एक वर्ष बीत गया, किन्तु वह समय ब्रह्माकी आयुकी एक त्रुटि (बहुत ही थोड़ा समय) मात्र था। ब्रह्माने एक त्रुटि बीतने पर फिर आ कर देखा कि कृष्णभगवान् पहलेकी भाँति अपने साथी ग्वालबालोंके साथ क्रीड़ा करते हुए बछड़े चरा रहे हैं ॥ ४० ॥ यह देख कर ब्रह्मा बहुत चकराये और अपने मनमें तर्क-वितर्क करने लगे कि जितने गोकुलके बालक और बछड़े हैं उन सबको मैं मायाकी निद्रामें अचेत कर आया हूँ और वे अभी तक नहीं उठ सके हैं। तब मेरी मायामें मोहित बालक व बछड़ोंके सिवा और बालक व बछड़े ये कहाँके हैं, जो विष्णुके साथ एक वर्षसे क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ ४१ ॥४२॥ बार २ इस भाँति तर्क-वितर्क करके भी ब्रह्माजी ठीक २ न जान सके कि वास्तवमें कौन बालक बछड़े मिथ्या हैं और कौन यथार्थ हैं? ॥ ४३ ॥ इस भाँति विश्वंभरको मोहित करनेवाले मोहशून्य विष्णुको मोहित करनेके लिये आये हुए ब्रह्माजी अपनी मायामें आप ही मोहित हो पड़े ॥ ४४ ॥ जैसे कुहिरेका अंधकार अँधेरी रातमें उससे अलग आवरण नहीं कर सक्ता, किन्तु आपही उसमें लीन हो जाता है, एवं जैसे जुगनू दिनमें आप अलग प्रकाश नहीं कर सक्ता, किन्तु अपना प्रकाश भी गँवा देता है, वैसे ही जो कोई महत् लोगों पर मायाका प्रयोग करता है तो उसकी तुच्छ माया उलटे उसीके सामर्थ्यको नष्ट कर देती है ॥ ४५ ॥ इधर इतने ही में ब्रह्मा चकराये हुए थे कि उनको एक और भी अद्भुत घटना देख पड़ी। ब्रह्माने देखा कि उनके देखते देखते सब बछड़े और उनके रक्षक ग्वालबाल कृष्णरूप हो गये। सबका वर्ण पानीभरे मेघके तुल्य श्याम हो गया। सभी पीताम्बर पहने, चतुर्भुज, शंख-चक्र-गदा व कमल भुजाओंमें लिये, किरीट-कुंडल-हार-वन-माला आदि आभूषणोंसे सुशोभित हैं ॥४६॥ ४७ ॥ ४८ ॥ सबके अंगोंमें श्रीवत्स, अंगद, नवरत्न, कंकण, नूपुर, कटक, करधनी, अँगूठी आदि गहने शोभायमान हैं। बहुत पुण्य करनेवाले भक्तजनोंकी चढ़ाई हुई कोमल तुलसीदलकी मालाओंसे शिरसे पैर तक सभीके शरीर शोभित हैं ॥ ४९ ॥ चाँदनीकी भाँति उज्वल हास्य

एवं अरुणवर्ण कटाक्ष-दृष्टिके द्वारा सभी जैसे सतोगुण व रजोगुणके द्वारा भक्तोंके मनोरथोंके स्रष्टा और पालक हो कर प्रकाश पा रहे हैं ॥ ५० ॥ ब्रह्मासे लेकर तृण तक सब चराचर जगत्के जीव मूर्त्तिमान् हो कर नृत्य गीत आदि अनेक पूजनकी सामग्रियोंसे सबकी अलग २ सेवा उपासना कर रहे हैं ॥ ५१ ॥ सभी अणिमा आदि आठो सिद्धियों, अजा(माया)आदि विभूतियों और महत्तत्त्व आदि चौबीस तत्त्वोंसे व्याप्त हैं ॥ ५२ ॥ भगवान्की महिमासे जिनकी महिमा (स्वतन्त्रता) ध्वस्त हो गई है वे अणिमा आदि सिद्धियोंके सहकारी, काल, स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म्म और गुण आदि मूर्त्तिमान् हो कर उन सबकी उपासनामें लगे हुए हैं ॥ ५३ ॥ सभी सत्यज्ञानरूप, अनन्तमूर्त्ति, विजातीय-भेदशून्य एवं सर्वदा एकरूप हैं, अतएव आत्मज्ञान ही जिनके नेत्र हैं वे योगीजन भी उन ज्ञान-नेत्रोंसे इन सब मूर्त्तियोंके महामाहात्म्यको नहीं देख सक्ते ॥ ५४ ॥ हे राजन्! ब्रह्माजीको एकसाथ वे सब बछड़े और वत्सपालक बालक उसी ब्रह्मका स्वरूप देख पड़े जिस परब्रह्मकी ज्योतिसे यह सब चराचर विश्व प्रकाशित हो रहा है ॥ ५५ ॥ यह देख कर उत्पन्न हुए विस्मयमें मग्न होनेके कारण ब्रह्माजीको शरीरकी सुधि न रही और वह हंसकी पीठ पर लुढ़क गये । उन सब ब्रह्ममूर्त्तियोंके तेजसे ब्रह्माकी ग्यारहो इन्द्रियाँ निस्तब्ध (निश्चेष्ट) होगईं और वह विस्मयसे अवाक् हो गये । जान पड़ा मानो व्रजकी अधिष्ठात्री देवताके निकट एक चतुर्मुखी सोनेकी प्रतिमा धरी हुई है ॥ ५६ ॥ जो वाणीके अधीश्वर, तर्कके अगोचर, असाधारणमहिमा-शाली, स्वप्रकाश, सुखस्वरूप, जन्मरहित और प्रकृतिके परे हैं एवं "वह नहीं है, वह नहीं है"–इस प्रकारसे असत् का निरास करती हुई श्रुतियोंके द्वारा जो स्वयं प्रकाशमान हैं वही ब्रह्माजी "यह क्या है!"–इन आश्चर्य्यसूचक वचनोंको कहते हुए ज्ञानशून्य हो पड़े और फिर उन ब्रह्ममूर्त्तियोंकी ओर दृष्टि न डाल सके । यह जान कर परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्रने शीघ्र ही अपनी अद्भुतमायाका पर्दा ब्रह्माकी दृष्टिके आगेसे हटा लिया ॥ ५७ ॥ तब ब्रह्माको बाह्यज्ञान हुआ, और मृतव्यक्तिके समान वह कुछ सचेत हो कर उठे एवं अत्यन्त कष्टसे दोनो नयन उघार कर उन्होने अपने सहित इस जगत्को देख पाया ॥ ५८ ॥ आँखें खोल कर चारो ओर दृष्टि डालने पर ब्रह्माजीने सामने देखा कि खाने पीनेकी सब सामग्री (सुन्दर जल, फल) और तृण आदिसे सुशोभित एवं मनोहर और रम्य वस्तुओंसे परिपूर्ण वृन्दावन सुशोभित है ॥ ५९ ॥ जिन पशु-पक्षियोंमें स्वाभाविक अनिवार्य्य वैर देखा जाता है वे भी वहाँ वैर छोड़ कर मित्रभावसे एकत्र वास करते हैं । वह अच्युतकी विहारभूमि होनेके कारण काम, क्रोध, लोभ आदि संसारके तापोंसे रहित है ॥ ६० ॥ ब्रह्माजीने देखा कि उसी श्रीवृन्दावनमें अद्वितीय, परमपुरुष, अनन्त, अगाधबोध, एक ब्रह्म गोपबालकरूपी नाट्य-वेषसे हाथमें भोजनका

कौर लिये पहलेकी ही भाँति वनमें इधर उधर खोये हुए बछड़े और बालकोंको खोज रहे हैं ॥ ६१ ॥ यह देख कर तुरन्त ब्रह्माजी अपने वाहन हंससे उतर पड़े और पृथ्वी पर कनकदण्डके समान गिर कर चारो मुकुटोंके अग्रभागसे ईश्वरके चरणोंको सुशोभित करते हुए प्रणाम करके आनन्दके आँसुओंसे प्रभुका पाद-प्रक्षालन करने लगे ॥ ६२ ॥ पहले देखी हुई हरिकी अतर्क्य महिमाका बार २ स्मरण करते हुए ब्रह्माजीने बार २ उठ कर हरिके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ६३ ॥

शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकंधरः ॥
कृताञ्जलिः प्रश्रयवान्समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥ ६४ ॥

फिर धीरे २ खड़े हुए और दोनो नेत्रोंके आँसू हाथोंसे पोंछे। उसके बाद भक्तिपूर्वक कृष्णचन्द्रकी ओर निहार कर शिर झुकाये, हाथ जोड़े विनीत भावसे सावधानतासहित इस प्रकार गद्गद वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ ६४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दश अध्याय ।

ब्रह्मस्तुति ।



ब्रह्मोवाच—नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदंबराय ।
गुंजावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ॥
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु—
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपांगजाय ॥ १ ॥

ब्रह्माजीने कहा। हे स्तुति करने योग्य! मैं आपकी प्रसन्नताके लिये प्रणाम करके स्तुति करता हूँ। आपके नीलनीरदतुल्य श्याम शरीरमें पीतपट बिजलीके समान शोभा पारहा है। घुँघचीके बने कानोंके आभूषण एवं मयूर-पुच्छके मुकुटसे आपका मुखमंडल दर्शनीय हो रहा है। गलेमें वनमालाकी बहार बड़ी ही मनोहर है। भोजनसामग्रीके कौर, बेंत, सींग और वंशी आदि चिन्ह आपके शोभन शरीरमें अपूर्व शोभा पारहे हैं। हे गोपनन्दन! आपके चरण बड़े ही सुकुमार हैं॥ १॥ हे देव! आपने यह शरीर भक्तोंकी अभिलाषा और भावनाके अनुसार ग्रहण किया है; इस शरीरसे हम पर भी अनुग्रह प्रकट होता है। यद्यपि अपने सुलभ होनेके लिये आपने यह शरीर प्रकट किया है, किन्तु यह पञ्चतत्त्वमय नहीं, बरन् अचिन्त्य शुद्ध सत्वमय है; अतएव वश किये हुए मनके द्वारा भी कोई इसके माहात्म्यको नहीं जानसक्ता। प्रभो! जब इस सगुणरूपकी महिमा मन और बुद्धिसे परे है, तब आपके साक्षात् आत्मसुखानुभव(निर्गुण) स्वरूपकी महिमा कौन जान सक्ता है? ॥ २॥ हे हरि! आपकी महिमा ऐसी दुर्बोध होने पर भी, संसारसे मुक्ति पानेकी संभावनाका अभाव नहीं देख पड़ता, क्योंकि जो लोग ज्ञानोपार्जनके लिये श्रम न करके अपने ही स्थानमें बैठ कर साधुजनोंके मुखसे निकली हुई आपकी पवित्र कथा कानोंसे सुनते तथा देह, मन और वाणीसे उसीका आदर करते हुए जीवन बिताते हैं, वे भक्तजन, हे अजित, त्रिलोकीमें सहज ही आपको जीतलेते हैं॥३॥ हे विभो! जो लोग कल्याणकारिणी आपकी भक्तिको छोड़ कर केवल ज्ञानके लिये क्लेश सहते हैं उनके हाथ वह क्लेश ही लगता है और कुछ भी नहीं। जैसे मोटे (फफ्फस) धान कूटने वालोंको सिवा भूसी और थकावटके और कुछ भी नहीं मिलता॥४॥ हे सर्वव्यापक! हे अच्युत! पहले यहाँ बहुतसे तपस्वी योगी होकर भी जब ज्ञानलाभ न करसके तब सब लौकिक एवं पारलौकिक चेष्टाएँ आपके ही अर्पण कर आपकी ही कथाओंको दिन-रात सुनने लगे, जिससे उनके अन्तःकरणमें आपकी भक्ति उत्पन्न हुई, उसी भक्तियोगसे वे आत्माको जानसके एवं अन्तको आपकी उत्तम गतिको प्राप्त हुए। इस कारण भक्तिके ही द्वारा ज्ञानलाभ होता है—विना भक्ति आत्मज्ञान कभी नहीं होसक्ता॥ ५॥ हे व्यापक! क्या सगुण और क्या निर्गुण—दोनो ही रूपसे आपको जानना बहुत कठिन है; तौ भी जिन्होने इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर अन्तःकरणमें एकाग्र कर रक्खा है, वे किसी विशेष आकारसे रहित, विषयोंसे परे, स्वप्रकाश होनेके कारण स्फूर्त्तिशाली एवं आत्माके आकारको प्राप्त जो आपका नारायण-नाम निर्गुण रूप है उसकी महिमाको स्वानुभव अर्थात् अन्तः-करणके भीतर साक्षात्कारसे कुछ २ जान सक्ते हैं॥ ६॥ किन्तु जो सुनिपुण लोग अनेक जन्मजन्मान्तरोंमें पृथ्वीके परमाणु, आकाशके हिमकण (बूँद) और गगन-

मण्डलमें स्थित नक्षत्र आदिकी किरणोंके परमाणुओंको गिनसक्ते हों वे भी इस विश्वके मङ्गलके लिये प्रकट जो सगुणरूप आप हैं उनके गुणगणकी गणना किसी प्रकार नहीं कर सक्ते ॥ ७ ॥ इसीसे जो कोई आपके अनुग्रहकी प्रतीक्षा करता हुआ अपने किये कर्मोंके फलोंका भोग करते अन्तःकरण, वाणी, और देहसे आपको नित्य नमस्कार करता है और यों ही अपना जीवन विताता है उसीको मुक्तिपदका अधिकार मिलता है; अर्थात् जैसे विना जीवित रहे पैतृक सम्पत्तिमें अधिकार नहीं रहता वैसे ही भक्तजीवनके सिवा मुक्ति पानेका भी और उपाय नहीं है ॥ ८ ॥ महाराज! यों स्तुति करके क्षमा पानेके लिये अपने अपराधका उल्लेख करते हुए ब्रह्माने कहा—हे ईश्वर! मेरी दुष्टता तो देखिये, आप अनन्त, आदिपुरुष, परमात्मा एवं बड़े २ मायावियोंको भी मोहित करनेवाले हैं, किन्तु मैं ऐसा ही मूढ़ हूँ कि आप पर भी अपनी माया फैला कर अपना ऐश्वर्य्य दिखानेको उद्यत हुआ! अहो! अग्निसे निकली हुई चिनगारी जैसे अग्निके निकट कुछ भी नहीं है वैसे ही मैं भी आपके ही अंशका अंश होनेके कारण आपके निकट कुछ भी नहीं हूँ ॥ ९ ॥ भगवन्, क्षमा कीजिये। मैं रजोगुणसे उत्पन्न हूँ, अतएव अज्ञ हूँ। मैं आपसे अलग अपनेको जगत्का ईश्वर मान बैठा था, क्योंकि इसी मिथ्या गर्वसे मेरे नेत्र अंधे हो रहेथे। हे ईश्वर! अब मुझको अपना किंकर जानकर क्षमा और अनुग्रह कीजिये ॥ १० ॥ मेरे निजके परिमाणसे सात वित्तेका यह प्रकृति-अहंकार-आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वीसे रचित ब्रह्माण्ड यद्यपि मेरा शरीर है, तथापि आपके रोमच्छिद्र, ऐसे ही असंख्य ब्रह्माण्डरूप परमाणुओंके आने जानेके झरोखे हैं। अतएव, मैं आपकी महिमा जान सकूँ—यह क्या कभी किसी प्रकार संभव हो सक्ता है? ॥ ११ ॥ गर्भमें पड़ा हुआ बालक जो पैर उछालता है तो उसको माता बालकका अपराध नहीं मानती। हे अनन्त, वैसे ही मैं भी आपके उदरमें स्थित हूँ। क्योंकि स्थूल व सूक्ष्म और कार्य्य व कारणके नामसे कहे गये इन सब पदार्थोंमें कुछ भी ऐसा नहीं है जो आपके उदरसे बाहर हो ॥ १२ ॥ प्रलयके समय परस्पर मिले हुए समुद्रोंके जलमें शयन किये हुए नारायणकी नाभिसे उत्पन्न कमलके द्वारा ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई—यह वेदवाक्य मिथ्या नहीं है ॥ १३ ॥ आप सब देहधारियोंके आत्मा एवं सब लोकोंके साक्षी हैं—तब भी क्या आपके नारायण होनेमें कोई संदेह है? हे अधीश! नरसे उत्पन्न चौबीस तत्त्व एवं जल जिनका अयन स्थान है, इसी लिये जो नारायण नामसे प्रसिद्ध हैं, वह भी आपकी ही मूर्ति हैं। हे देव! 'आपका जगदाश्रय शरीर जलमें अवस्थित था'—यह बात यदि हे अचिन्त्य ऐश्वर्य्यवाले प्रभो! सत्य है तो उसी समय कमलनालके मार्गसे जलमें प्रवेश करके मैंने दिव्य सौ वर्ष तक खोजते रहने पर भी आपको क्यों नहीं देखपाया एवं अन्तःकरणमें भी

आप मुझे क्यों नहीं देख पड़े? और फिर उसी समय तप करनेके बाद ही मेरे दृष्टिगोचर क्यों हुए? ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे मायानाशन! यह सब विश्वप्रपंच बाहर स्पष्टरूपसे प्रकाशमान है, तो भी अपने उदरमें माताको यह विश्व दिखाकर इसी मायामय लीलाके लिये लिये हुए अवतारमें आपने अपनी अद्भुत माया दिखा दी। अर्थात् यह दिखा दिया कि यह विश्व मेरी ही मायाकी रचना है ॥ १६ ॥ जब सहित आपके, यह विश्व, आपके उदरमें जैसा प्रकाशित होता है वैसा ही बाहर भी प्रकाशित है तब मायाके सिवा और क्या है? ॥ १७ ॥ इसी समय आपने मुझे दिखा दिया कि आपके सिवा सब विश्व माया है। आप पहले एक थे, फिर सब बछड़े और व्रजबालकरूप बनगये। फिर मैंने देखा कि सभी मूर्त्तियाँ चतुर्भुज रूपसे अवस्थित हैं एवं मैं सब तत्त्वोंसहित उन सबकी उपासना कर रहा हूँ। फिर वे रूप एक २ ब्रह्माण्डके रूपसे देख पड़े। किन्तु अब अन्तको आप वही अपरिमित, अद्वितीय केवल ब्रह्मरूपसे विराजमान हैं ॥ १८ ॥ ब्रह्मन्! आप ही अपनी प्रकृतिमें स्थित विकाररहित आत्मा हैं। जो लोग आपके स्वरूपको नहीं जानते उनके लिये आप ही अपनी माया फैला कर प्रकाश पाते हैं; जैसे—सृष्टिके आदिमें मैं और पालनमें आप (विष्णु) एवं अन्तमें त्रिलोचन शिव॥१९॥ हे प्रभो! आप विधाता और ईश्वर हैं। आप जन्मरहित हैं; तथापि देवता मनुष्य पशु पक्षी एवं जलचर आदि जीवोंमें जो आपके अवतार होते हैं, सो केवल असाधु दुष्ट दुर्मद लोगोंके दमन और साधुओं पर अनुग्रह करनेके लिये ॥ २० ॥ हे भूमन्! आप ऐश्वर्य्यशाली, परमात्मा और योगेश्वर हैं। इस त्रिलोकीमें कौन व्यक्ति, कहाँ, किस समय, किस प्रकार आपकी लीलाओंको जान सक्ता है? आप योगमाया फैलाकर उसीमें अद्भुत क्रीड़ा करते हैं ॥ २१ ॥ अतएव यह असत्-स्वरूप, स्वप्नसदृश, निरस्तज्ञान, अनेक घोर दुःखोंका आगार विश्व, नित्य सुखरूप एवं बोधरूप जो आप हैं उनमें आपकी ही मायाके द्वारा उत्पन्न होकर लीन हो जाता है एवं सत् ऐसा जान पड़ता है ॥२२॥ एक आप ही सत्य हैं, क्योंकि आत्मा पुरुष एवं सृष्टिआदि कार्य्योंके पूर्व वर्तमान रहनेके कारण आदिपुरुष हैं। आप नित्य हैं, अनन्त और अद्वितीय होनेके कारण परिपूर्ण हैं। आपका सुख सदा एक सा है, आपका क्षय नहीं है—विनाश नहीं है। आप स्वयंज्योतिःस्वरूप, निर्मल एवं उपाधिसे मुक्त हैं ॥२३॥ जो लोग आपको इस प्रकारका और सब आत्मोंका आत्मा अर्थात् परमात्मा देखते और जानते हैं वे सूर्य्यरूपी गुरुसे पाये हुए ज्ञाननेत्रसे संसाररूप मिथ्या-सागरके पार हो जाते हैं ॥२४॥ जैसे अज्ञान रहने पर कोई व्यक्ति रस्सीको साँप समझता है, परन्तु ज्ञान हो जाने पर उसका वह भ्रम जाता रहता है, वैसे ही जो लोग आत्माको ही आत्मा (परमात्मा) नहीं जानते उन्हीकी दृष्टिमें उसी अज्ञानसे यह भ्रमरूप मिथ्या विश्वप्रपञ्च प्रकट होता है, किन्तु ज्ञान होने पर

वह लीन हो जाता है ॥ २५ ॥ संसारके द्वारा 'बन्धन' और 'मोक्ष'—इन दोनो नामोंका मूल अज्ञान है, क्योंकि सत्य एवं प्राज्ञभावसे इन दोनोमें कुछ विशेष नहीं है। विचार करके देखो—सूर्य्यमें जैसे दिन या रात्रि नहीं है वैसे ही शुद्ध चैतन्य ब्रह्ममें बन्धन या मोक्ष नहीं है ॥ २६ ॥ अहो, अज्ञजनोंकी अज्ञता देखो ! आप आत्मा हैं, सो आपको आत्मासे भिन्न (देहादि) एवं देहादिको आत्मा जान कर परमात्मा जो आप हैं उनको आत्मा (अन्तःकरण) से बाहर खोजते हैं ! ॥२७॥ हे अनन्त ! साधुजन जड़ पदार्थोंको त्याग करते हुए अपने देह (अन्तःकरणमय लिंगशरीर) में ही आत्मा (परमात्मा) की खोज करते हैं। यदि कहो, सत्के ज्ञानसे ही प्रयोजन है, असत्के अस्वीकारकी क्या आवश्यकता हैं ? तो बिना अस्वीकारके स्वीकार नहीं हो सक्ता। जैसे निकट सर्प नहीं है, तथापि सर्पका अस्वीकार बिना किये क्या कोई उस रस्सीको रस्सी जान सक्ता है, जिसमें कि सर्पका भ्रम होता रहा हो ? ॥२८॥ भगवन् ! ज्ञानके द्वारा मुक्ति मिल सक्ती है, तथापि हे देव ! जो लोग आपके चरणकमलोंके प्रसादका लेश पा कर भी अनुगृहीत हुए हैं वे भक्त ही आपकी महिमाके तत्त्वको जान सक्ते हैं; उनके सिवा और कोई भी असत्का त्याग और सत्का ग्रहण करते हुए चिरकाल तक विचार करके भी नहीं जाननेको समर्थ हो सक्ता॥ २९॥ इस लिये हे नाथ ! इसी जन्ममें अथवा पशुपक्षी आदिके बीच किसी और ही जन्ममें आपके भक्तोंका किंकर होकर आपके चरणोंकी सेवा कर सकूँ—यही आपसे मेरी प्रार्थना है। मैं इसमें ही अपने अहोभाग्य समझूँगा ॥ ३० ॥ अहो व्रजकी गौवें और स्त्रियाँ परम धन्य हैं। क्योंकि हे विभो ! आपने वत्स और बालकके रूपसे उनका दुग्धरूप अमृत पिया है। आप वही हैं, जिनको अवतक सम्पूर्ण यज्ञ भी नहीं तृप्त करसके ! ॥ ३१ ॥ अहो, नन्द आदि व्रजवासी गोपोंके धन्य भाग्य हैं—धन्य भाग्य हैं ! क्योंकि परमानन्दस्वरूप, पूर्ण, सनातन ब्रह्म आप उनके आत्मीय (सगे स्वजन) हैं ! ॥ ३२ ॥ हे अच्युत ! अहंकारके अधिष्ठाता शिवजी और ग्यारह इन्द्रियोंके अधिष्ठाता इन्द्र आदि एवं मैं, हम सब इन व्रजवासियोंके इन्द्रियरूप पान-पात्रों द्वारा, जन्महीन जो आप हैं उनके चरणारविंदमकरन्दके आसवको निरन्तर पीते हैं; इसीसे हम जानते हैं कि हमारे परम सौभाग्यका उदय हुआ है ! ॥ ३३ ॥ इस पृथ्वी पर, उसमें भी वृन्दावन, उसमें भी गोकुलमें जन्म होना ही परम सौभाग्य है; क्योंकि गोकुलमें जन्म होनेसे किसी न किसी गोकुलवासीके चरणोंकी रज शिरमें पड़ ही जायगी। प्रभो ! गोकुलवासी क्यों इतने धन्य हैं ? इसका कारण यही है कि सम्पूर्ण वेद आज तक जिनके चरणरजकी खोजमें हैं वही आप इन व्रजवासियोंके जीवनसर्वस्व हैं ॥३४॥ देव ! आपके भक्तोंके वेषका अनुकरणमात्र करके जब पूतना और वकासुर, अघासुर आदि दुष्ट दानवगण आत्मीयजनों

सहित आपको प्राप्त हुए, तब आप इन अनन्यप्रेमी व्रजवासियोंको सर्वफलस्वरूप अपनेसे बढ़ कर और कौन सा फल देंगे? हमारा चित्त वारम्वार विचार करके भी इसका कुछ निश्चय नहीं करपाता और मोहको प्राप्त होता है। क्योंकि व्रजवासियोंके भवन, धन, बंधु, प्रियजन, पुत्र, प्राण और अभिलाषाओंका एकमात्र उद्देश्य आप ही हैं । तब यदि आप इनको भी वही फल देंगे जो असुरोंको दिया है तो इनकी श्रेष्ठता क्या रहेगी? ॥ ३५ ॥ हे कृष्ण! लोग जब तक पूर्णतया आपके जन नहीं होते तभी तक उनको राग आदि चोरोंका खटका रहता है, उनके लिये घर कारागार होता है, मोह बेड़ी सा बना रहता है ॥ ३६ ॥ हे विभो! आप प्रपंचहीन होकर भी पृथ्वीतलमें विपन्न जनोंको आनन्द देनेके लिये प्रपंचका अनुसरण करते हैं, अर्थात् अवतार लेते हैं ॥ ३७ ॥ प्रभो! जो लोग जानते हैं वे ही आपके विभवको जानें। आपका विभव मेरे काया, मन और वाणीका विषय नहीं है—और बहुत मैं क्या कहूँ? ॥ ३८ ॥ कृष्ण! मुझको आज्ञा दीजिये और मेरे अपराधको अनुग्रहपूर्वक क्षमा कीजिये । आप सब देखते हैं, इस लिये सब कुछ जानते हैं। आप ही सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, अतएव ममताका घर जो यह जगत् व शरीर है सो मैं आपके अर्पण करता हूँ ॥ २९ ॥ हे कृष्ण! आप वृष्णिकुलकमलको प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य्य हैं। आप पृथ्वी, देवता, द्विज और पशुरूप सागरकी वृद्धि करनेवाले चन्द्रमा हैं। आप पाखण्डधर्म्मरूप रात्रिके अंधकारको मिटानेवाले हैं । आप पृथ्वीनिवासी राक्षसोंका संहार करनेवाले और सूर्य आदि पूज्य देवतोंके भी परम पूज्य हैं, अथवा सूर्य्यरूपसे सबके पूज्य हैं। जब तक यह कल्प रहेगा तबतकके लिये मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ४० ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** महाराज! इस प्रकार जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्माजी महापुरुषकी स्तुति और तीन बार प्रदक्षिणा व प्रणाम करके अपने लोकको चले गये ॥ ४१ ॥ तदनन्तर भगवान् कृष्णचन्द्रजी आत्मयोनि ब्रह्मासे अनुमति लेकर ब्रह्माके द्वारा पहलेसे ही पहुँचा दिये गये वत्सोंको यमुनातट पर लाये। भगवान्के साथी बालक भी पहलेसे ही वहाँ ब्रह्माके द्वारा पहुँचा दिये गये थे—उनसे आकर भगवान् मिले ॥ ४२ ॥ यद्यपि प्राणेश्वर कृष्णके वियोगमें एक वर्ष बीत गया था, तथापि उन बालकोंको कृष्णकी मायामें मोहित रहनेके कारण उतना समय आधे क्षणके समान जान पड़ा ॥ ४३ ॥ जिनकी मायामें मोहित होकर यह सब जगत् आत्मा तकको भूला हुआ है, उन्हीकी मायासे इस संसारमें जिनका चित्त मोहित हो रहा है वे क्या क्या नहीं भूलसक्ते? ॥ ४४ ॥ बालकगण कृष्णको आते देख कर उत्सुक होकर कहने लगे कि—"मित्र! तुम तो बहुत ही शीघ्र आये! हमने अभी तक तुम्हारे बिना एक भी कौर नहीं खाया। आओजी अब भोजन करो" ॥ ४५ ॥ कृष्णभगवान्ने हँसते हुए जा कर भोजन किया और फिर

वहाँसे वह अजगर (अघासुर) के शरीरका ढाँचा बालकोंको दिखाते हुए व्रजको लौटे ॥ ४६ ॥ मयूरपुच्छ, पुष्प और नवीन धातुओंसे चित्रित अंगवाले श्रीकृष्ण-चन्द्रने ऊँचे स्वरसे सींग और बाँसुरी बजाकर आनन्दपूर्वक आदरसे बछड़ोंको एकत्र किया और अपने व्रजको गये। वास्तवमें उस मोहिनी मूर्त्तिको देखनेके लिये व्रजवालाओंके नेत्र उत्सुक रहते थे; नन्दनन्दनका दर्शन उनके लिये परम उत्सव था ॥ ४७ ॥ बालकोंने व्रजमें आकर कहा—"आज इन नन्द और यशोदाके पुत्र कृष्णने एक महा सर्पको मार कर हमारे प्राणोंकी रक्षा की" ॥ ४८ ॥ राजा परीक्षित्‌ने कहा। ब्रह्मन्! पराये पुत्र कृष्ण पर व्रजवासियोंको अपने भी पुत्रोंसे बढ़ कर इतना अधिक प्रेम क्यों था? मैं यह सुनना चाहता हूँ, कहिये ॥ ४९ ॥ श्री शुकदेवजीने कहा। राजन्! सभी प्राणियोंको अपना आत्मा (जीव) सबसे बढ़ कर प्रिय होता है। उस आत्माके ही प्रिय होनेके कारण और और पुत्र, धन, भवन आदि वस्तुएँ प्रिय होती हैं ॥ ५० ॥ इसी कारण हे राजेन्द्र! अपने २ आत्मा पर शरीरधारियोंको जैसा स्नेह होता है वैसा ममतावलम्बी धन, पुत्र और गृह आदि पर नहीं होता ॥ ५१ ॥ हे क्षत्रियश्रेष्ठ! जो लोग देहको ही आत्मा मानते हैं उनको भी देह जैसा प्रिय होता है वैसे देहका अनुसरण करने-वाले पुत्र आदि नहीं प्यारे होते ॥ ५२ ॥ इसके सिवा यह देह ममताका घर अवश्य है, किन्तु आत्माके समान प्यारा नहीं है। क्योंकि देखो, जब देह जरासे जर्जर हो जाता है तब भी जीवनकी आशा प्रबल ही रहती है, वह नहीं कम होती ॥ ५३ ॥ अतएव सब देहियोंको अपना आत्मा ही प्रियतम है, यह सब चराचर जगत् आत्माके ही लिये प्रिय है ॥ ५४ ॥ सो हे राजन्! आप श्रीकृष्णचन्द्रको सब आत्मों(जीवों)का आत्मा (परमात्मा) समझिये। वह जगत्‌के हितके लिये अवतार लेकर मायाके द्वारा साधारण देहधारी ऐसे प्रतीत होते थे ॥ ५५ ॥ जो लोग श्रीकृष्णचन्द्रको सब जगत्‌का कारण जानते हैं उनकी दृष्टिमें यह सब चराचर जगत् कृष्णमय है, उनसे भिन्न कुछ नहीं है ॥ ५६ ॥ सब वस्तुओंके परमार्थ कारणमें अवस्थित कृष्णचन्द्र उस परमार्थ कारणके भी कारण हैं; तब कौन वस्तु उनसे भिन्न हो सक्ती है? ॥ ५७ ॥ सब श्रेष्ठ महात्माजन कृष्णके नौकारूप चरणकमलोंका पूजन करते हैं; जो लोग उस चरणकमल-नौकाका आश्रय लिये हुए हैं उनके लिये यह अपार संसारसागर गऊके पैरके गढ़ेके समान है। वे परमपद वैकुंठको उन्हीं चरणोंके सहारे जा सक्ते हैं; विपत्तिके भंडार इस संसाररूप कारागारमें फिर उनको नहीं आना पड़ता ॥ ५८ ॥ राजन्! आपने जो हमसे पूछा था कि "हरिने पाँच वर्षकी अवस्थामें जो काम किया उसको छठे वर्षमें बालकोंने व्रजमें जाकर आजका ही कर्म्म कैसे कहा?"—सो उसका सब वृत्तान्त हमने तुमसे कह सुनाया ॥ ५९ ॥ जो कोई, हरिका बंधुओंके साथ वनविहार,

अघासुरको मारना, घास पर बैठ कर भोजन करना, शुद्ध सत्त्वमय अनेकों वत्स और वत्सपालोंके रूप धारण करना एवं ब्रह्माकी की हुई स्तुति इत्यादिको पढ़ता या सुनता है उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं ॥ ६० ॥

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥
निलायनैः सेतुबंधैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ६१ ॥

हे महीपाल ! इसी प्रकार व्रजमें बलदाऊ और श्रीकृष्णचन्द्रने सेतु बाँधना-लुकीलुकव्वल-बालकोंके साथ कूदना फाँदना आदि खेल खेलते हुए कुमार अवस्था बिता दी ॥ ६१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदश अध्याय ।

धेनुकासुर वध ।

श्रीशुक उवाच—ततश्च पौगंडवयःश्रितौ व्रजे ।
बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ॥
गाश्चारयन्तौ सखिभिःसमं पदै-
र्वृंदावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥ १ ॥

five years.

श्रीशुकदेवजीने कहा । महाराज! बलदाऊ और श्रीकृष्णचन्द्रजी पाँच वर्षके पूरे हो कर छठे वर्षके आरंभमें व्रजके बीच पशुपाल बननेके योग्य हुए। सखा ग्वालबालों सहित गौवें चराते हुए कृष्ण और बलदाऊजी अपने श्रीचरणोंसे वृन्दावनको अत्यन्त पवित्र एवं सुशोभित करने लगे ॥ १ ॥ एक दिन विहार करनेकी इच्छासे वंशी बजाते २, अपना यश गा रहे ग्वालबाल और बछड़ोंको आगे करके बलरामसहित श्रीकृष्णचन्द्रने पशुओंको जिसमें सब भाँतिका सुपास है उस पुष्पपरिपूर्ण वृन्दावनमें प्रवेश किया ॥ २ ॥ वह वन मधुर वाणीवाले भ्रमर और अन्यान्य पक्षी तथा मृगगणसे सुशोभित एवं महात्मा सज्जनोंके अन्तःकरणके समान स्वच्छ जलवाले सरोवरोंसे शोभायमान था और कमल-सुगन्धयुक्त वायु वहाँ डोल रही थी। यह देखकर भगवान्ने वहीं क्रीड़ा करनेका विचार किया ॥ ३ ॥ वनमें फल व फूलोंके भारी भारसे झुके हुए वृक्षोंको तरुण पल्लवोंकी अरुण कान्तिसे सुशोभित शाखाओंकी शिखाओंसे अपने चरणारविन्दोंको छूते हुए देख कर श्रीकृष्णचन्द्रजी हँसते हुए आनन्दपूर्वक अपने बड़े भाई बल-

भद्रजीसे कहने लगे ॥ ४ ॥ "हे देवश्रेष्ठ ! अहो, देखिये, ये सब वृक्ष अपने पूर्वजन्मके पाप, जिनके फलसे अबकी वृक्षकी योनि मिली है, उनको विनष्ट करनेकी कामना हृदयमें रख कर फूल और फलोंकी भेंट आगे किये अपने शाखा-शिखारूप शिरोंसे आपके देववृंदवंदित चरणोंमें प्रणाम कर रहे हैं ॥ ५ ॥ हे आदिपुरुष ! ये सब भ्रमर आपका त्रिलोकपावन मनोहर सुयश गाते हुए साथ ही साथ जा रहे हैं। हे अनन्त ! निश्चय ही ये आपके भक्त सेवक ऋषिगण हैं। आप वनमें गूढ़ भावसे (अपने तेजको छिपाये हुए) विचर रहे हैं तौ भी ये आपको नहीं छोड़ते; सो ठीक ही है—क्योंकि आप इनके आत्मदेव हैं ॥ ६ ॥ हे पूज्य ! ये सब वनवासी जीव धन्य हैं। देखिये ये सब मयूर आपको घरमें आये देख कर आनन्दके मारे नृत्य कर रहे हैं और ये हरिणियाँ अपने प्रेमपूर्ण कटाक्षोंसे गोपियोंके समान आपको प्रसन्न कर रही हैं एवं कोकिलाएँ अपनी मधुर वाणीसे आदर सत्कार कर रही हैं। सत्य है, साधुओंका स्वभाव ही ऐसा होता है ॥ ७ ॥ आज यहाँके पृथ्वी, तृण और लतागुल्म सब आपके चरणोंका स्पर्श करके और वृक्ष व लताएँ करकमलोंके सुकोमल नखों द्वारा छिन्न भिन्न होकर एवं नदी पर्वत पक्षी और मृगगण करुणाकटाक्ष लाभ कर तथा सब गोपियाँ—जिसके पानेकी लक्ष्मीजी लालसा रखती हैं उस वक्षःस्थलको पाकर धन्य हैं! ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन् ! श्रीमान् श्रीपति यों बड़े भाईसे हास्य करते हुए और ग्वालबालोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक वृन्दावनमें गोवर्द्धन व यमुनाके किनारे पशुओंको चराते हुए रमण करने लगे ॥ ९ ॥ कभी श्रीकृष्णजी मदांध-भौंरोंके साथ आप भी गाने लगते और संकर्षणके साथ फूलमालाएँ पहने हुए अपनी लीलाएँ गारहे सखोंका मधुर मनोहर गान सुनते ॥ १० ॥ कभी ग्वालबालोंको हँसाते व आप भी हँसते हुए हंसोंके साथ उन्हीका ऐसा शब्द करते और कभी मोरोंके साथ नाचते ॥ ११ ॥ कभी गऊ और गोपोंके मन हरनेवाली मेघकी ऐसी गंभीर वाणीसे दूर पर चर रहे पशुओंको उनका नाम ले ले कर प्रीतिपूर्वक पास बुलाते ॥ १२ ॥ कभी चकोर, बक, चक्रवाक, भारद्वाज और मोर आदि पक्षियोंकी ऐसी बोली बोलते और कभी जैसे पशुगण, व्याघ्र और सिंहसे डर कर भागते हैं वैसे ही व्याघ्र आदिकी कृत्रिम कल्पना करके भीतभाव दिखा कर भागतेथे ॥ १३ ॥ जब यों खेलते २ थक जाते तो बड़े भाई बलदाऊको किसी सखाकी गोदमें सुला कर आपही पैर दबा कर उनकी थकन दूर करते हुए सेवा करतेथे ॥ १४ ॥ कभी दोनो भाई हाथसे हाथ मिला कर खड़े हो जाते और नाचते, गाते, ताल ठोंकते व कुश्ती लड़ रहे अपने साथी ग्वालबालोंकी बहुत कुछ प्रशंसा करतेथे ॥ १५ ॥ कभी थक जाने पर किसी सघन वृक्षके नीचे नवपल्लवोंके कोमल पलँग पर किसी सखाकी गोदमें शिर धर कर शयन करतेथे

॥ १६ ॥ कोई पापहीन पुण्यात्मा बालक महात्मा कृष्णके चरण दबाते और कोई बयार करतेथे ॥ १७ ॥ कोई २ स्नेहके मारे आनन्दसे परिपूर्ण होकर मन्द मृदु स्वरसे कृष्णके मनको भानेवाले गीत गाने लगतेथे ॥ १८ ॥ साक्षात् लक्ष्मीजी जिनके चरणोंकी सेवा करती हैं वही ईश्वर अपने रूप(तत्त्व)-को छिपा कर निजमायाकल्पित साधारण बालकके रूपसे उसी रूपके स्वभावका अनुसरण करते हुए गोपबालकोंके साथ इसी प्रकार नित्य नई २ बाललीलाएँ करने लगे । भगवान्का ईश्वरत्व तब भी अलौकिक लीलाओंमें झलकता ही रहताथा ॥ १९ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । एक दिन यों ही भगवान् विहार कर रहेथे, इतनेमें कृष्ण—बलदाऊके सखा गोपाल श्रीदामा और सुबल स्तोककृष्ण आदि अन्यान्य बालकगण भगवान्के निकट आकर प्रेमपूर्वक यों कहने लगे कि हे महाबाहो बलभद्रजी! और हे दुष्टदमन श्रीकृष्णचन्द्रजी! यहाँसे थोड़ी ही दूर पर एक बड़ा भारी तालवन है । मित्र! वहाँ बहुत ही स्वादिष्ट अनेकों तालफल गिरते हैं एवं बहुतसे आप ही टूटकर गिरे पड़े हैं, किन्तु दुष्ट धेनुकासुरके कारण उनको कोई नहीं पा सक्ता ॥२०॥२१॥२२॥ हे राम! हे कृष्ण! वह गर्दभरूपी असुर स्वयं बड़ा पराक्रमी है और उसीके समान बलवाले अनेकों गर्दभरूप असुर उसके साथ हैं ॥ २३ ॥ उसने वहाँ गये हुए अनेकों मनुष्योंको खा डाला है, इस कारण हे शत्रुदमन! वहाँ कोई पशु या पक्षी भी नहीं जाता ॥ २४ ॥ हमने इन सुगंधित फलोंको आज तक कभी नहीं खाया, ये देखो चारो ओर उन्हीं फलोंकी महक फैली हुई है ॥ २५ ॥ हे कृष्ण! उस महकने हमारे मनको लुभा लिया है । हमें उन फलोंके पानेकी उत्कट उत्कंठा है । यदि रुचे तो हे बलदाऊजी! आप वहाँ चलिये और वे फल हमको भोजनके लिये दीजिये ॥ २६ ॥ मित्रोंकी यह प्रार्थना सुनकर उनका प्रिय करनेके लिये हँसते हुए प्रभु कृष्णचन्द्र और बलदाऊजी ग्वालबालों सहित तालवनकी ओर चले ॥ २७ ॥ बलदेवजीने वनमें घुस कर हाथीके समान बड़े ही वेगसे तालके वृक्षोंको हिलाया, जिससे असंख्य पके हुए फल पृथ्वीपर टपक पड़े ॥ २८ ॥ गिरते हुए फलोंका शब्द सुन कर वह गर्दभासुर पर्वतों सहित पृथ्वीको हिलाता हुआ प्रभुकी ओर दौड़ा ॥ २९ ॥ वह बली असुर झपट कर बलदाऊके पास आया । उस दुष्टने पिछले दोनो पैर बलदाऊकी छाती पर मारे और ऊँचे स्वरसे गर्दभनाद करके हट गया ॥ ३० ॥ फिर उस गधेने कुपित हो, सामने आकर बलदाऊ पर पिछली दुलत्ती चलाई ॥ ३१ ॥ अबकी बलभद्रने एक हाथसे उसके दोनो पैरोंके मोजे पकड़ लिये और कई बार शून्यमें घुमा कर एक बड़े भारी तालतरुकी जड़ पर दे मारा । घुमातेमें ही उसके प्राण निकल गये ॥३२॥ धेनुकासुरके शरीरके आघातसे वह बड़ी २ डालोंवाला महाताल हिल गया और टूट कर दूसरे वृक्ष पर

उसे भी तोड़ता और हिलाता हुआ गिर पड़ा। इसी प्रकार एककी टक्करसे दूसरा वृक्ष, दूसरेकी टक्करसे तीसरा वृक्ष टूट गया ॥ ३३ ॥ क्रीड़ापूर्वक बलदेवजीके हाथों पटके गये गर्दभके शरीर द्वारा हताहत सब तालतरु, जैसे बड़ी भारी आँधी आवे, वैसे कम्पायमान हुए ॥ ३४ ॥ किन्तु हे अंग! जगदीश्वर अनन्त भगवान्के लिये यह बात कुछ आश्चर्य नहीं है । उन्हीं भगवान्में यह विश्व सूतमें कपड़ेके समान ओतप्रोत है ॥ ३५ ॥ वहाँ और जो उस असुरके बंधुबांधव गर्दभरूप असुर रहते थे वे भी अपने बांधवके मर जानेसे अत्यन्त क्रोध कर बदला लेनेके लिये दोनो भाइयोंकी ओर झपटे ॥ ३६ ॥ हे नृप! झपट कर आये हुए उन राक्षसोंकी दोनो पिछली टाँगें पकड़ कर जैसे लड़के खेल करते हैं वैसे ही दोनो भाई उन्ही तालवृक्षों पर पटकने लगे ॥ ३७ ॥ वह वनभूमि असंख्य असुरोंके मृत शरीर और टूटे हुए तालवृक्षोंसे व्याप्त होनेके कारण मेघमालाओंसे आवृत गगनमण्डलके समान देख पड़ने लगी ॥ ३८ ॥ कृष्ण बलरामके इस अद्भुत कर्मको देख कर सब देवगण बाजे बजाने, फूल बरसाने और स्तुति सुनाने लगे ॥ ३९ ॥ तबसे वह तालवन निर्भय स्थान हो गया, लोग बेखटके वहाँ जाकर तालके फल खाने लगे, पशुगण तृण चरने लगे; क्योंकि कंटक धेनुकासुर मारा गया ॥ ४० ॥ जिनका श्रवण व कीर्त्तन पवित्र व पुण्यरूप है, वह कमलनयन श्रीकृष्णजी साँझके समय साथी ग्वालबालोंके मुखसे अपनी बड़ाई सुनते हुए बड़े भाई सहित व्रजको आये ॥ ४१ ॥ दर्शनकी लालसासे उत्सुक गोपियोंने दिनभरके बाद व्रजमें आरहे नन्दनन्दनको देखा कि घुँघरारी अलकोंपर गोरज पड़ी हुई है, केशपाशमें वनके विचित्र फूल और मोरके पंख खुँसे हुए अपूर्व शोभा पारहे हैं, कमनीय कटाक्षयुक्त दृष्टि और मनोहर हँसीसे मुखमंडलकी अपार शोभा हो रही है । वह स्वयं वंशी बजा रहे हैं और साथी ग्वालबाल पीछे २ साथ ही साथ उनकी कीर्त्तनीय कीर्त्तिका कीर्त्तन करते आ रहे हैं ॥ ४२ ॥ गोपियोंने दिनमें कृष्णके बिछोहसे उपजे हुए तापको नेत्ररूप पात्रसे मुकुन्दमुखसुधा पी कर दूर कर दिया। कृष्ण चन्द्रने भी उनके लजीले, हँसी और विनयसे पूर्ण कटाक्षोंके द्वारा की हुई पूजा (सादर सत्कार) ग्रहण करते व्रजके भीतर प्रवेश किया ॥ ४३ ॥ घर पहुँचने पर पुत्रवत्सला यशोदा और रोहिणीने अपने पुत्रोंको यथासमय इच्छानुसार गोदमें लेकर प्रसन्न किया और परम आशीर्वाद दिये ॥ ४४ ॥ बलदाऊ और श्रीकृष्णने उबटना लगा कर, स्नान करके राहकी थकावटको दूर किया, सुन्दर वस्त्र पहने, दिव्यमाला और सुगंधियोंसे सुशोभित हुए। फिर माताके परोसे स्वादिष्ट अन्नको आदरसहित खा कर उत्तम सेज पर सुखपूर्वक सो गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ राजन्! इसी प्रकार वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णचन्द्र एक दिन बिना

वलदाऊके अकेले ही ग्वालवालों सहित गौवें चरानेको कालिन्दीके तट पर चले गये ॥ ४७ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! वहाँ घामकी तपनसे गौवें और गोप बहुत ही प्यासे हुए । निकट शुद्ध जल न पाकर उन्होने नागके विषसे दूषित कालीदहके जलको पी लिया । उस विषैले जलका स्पर्श करते ही होनहारसे मोहित गौवोंसहित वे गोप मरकर किनारे ही पर गिरपड़े ॥४८॥४९॥ योगेश्वरोंके ईश्वर कृष्णने अपने सेवकोंको मरा हुआ देख कर अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे उनको उसी समय सजीव कर दिया ॥ ५० ॥ स्मरणशक्तिके फिर आजाने पर, वे सब किनारे पर उठ खड़े हुए और मारे विस्मयके एक एकका मुख निहारने लगे ॥ ५१ ॥

अन्वमंसत तद्राजन् गोविन्दानुग्रहेक्षितम् ॥
पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥ ५२ ॥

अन्तमें उन्होने निश्चय किया कि हम लोग विष पीकर मरगये थे, हमारे फिर जी उठनेका कारण करुणानिधान कृष्णकी कृपादृष्टि ही है ॥५२॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडश अध्याय ।

कालियदमन ।

श्रीशुक उवाच—विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः ॥
तस्या विशुद्धिमन्विच्छन्सर्पं तमुदवासयत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा । राजन्! सर्वशक्तिमान् भगवान्ने काले सर्पके विषसे यमुनाके जलको दूषित हुआ देख कर उसको शुद्ध कर देनेका विचार किया और नागको वहाँसे निकाल दिया ॥१॥ **राजा परीक्षित्ने पूछा** । भगवन्! उस अगाध जलके भीतर भगवान्ने कैसे सर्पके दर्पका दमन किया? और वह सर्प ही जलचर जीव न होने पर भी अनेक युगों तक जलके भीतर कैसे रहा? ॥ २ ॥ ब्रह्मन्! सर्वव्यापी और अपनी इच्छाके अनुसार सर्वत्र स्वच्छंदरूपसे अवस्थित भगवान् कृष्णने गोपरूपसे जो २ उदार लीलाएँ की हैं वे सब सुधाके समान मधुर हैं, उनको वारम्वार सुन कर भी कोई नहीं तृप्त हो सक्ता ॥ ३ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा** । राजन्! कालिन्दीके भीतर एक भारी कुण्ड था—उसीमें कालियानाग रहा करता था । विषकी प्रचण्ड झारसे उस कुण्डका जल खौल २ कर ऊपर उछलता रहता था, जिससे उसके ऊपरसे आकाशमें चलनेवाले पक्षी भी मर कर गिर पड़ते थे ॥ ४ ॥ विषजलकण मिले हुए वायुके स्पर्शसे ही किनारे परके चर और अचर

जीव मर जाते थे ॥ ५ ॥ दुष्टोंका दमन करनेके लिये ही जिनका अवतार हुआ है उन कृष्णचन्द्रने देखा कि प्रचण्ड विषका बड़ा ही वेग है, और उसके कारण नदीका जल दूषित हो गया है। बस, उसी समय कृष्णचन्द्रजी एक बड़े ऊँचे किनारे पर लगे हुए कदम्बके वृक्ष पर चढ़ गये और वस्त्रसहित कधनीको कमरमें कसकर ताल ठोंक कर उस विषैले जलमें फाँद पड़े ॥ ६ ॥ पुरुषश्रेष्ठके फाँदनेके वेगसे उस कुण्डके जलमें अद्भुत हलचल मच गई। सर्पपरिवार क्षोभको प्राप्त हुआ, उसके अमित विष उगलनेसे जल ऊपरको उछलने लगा। विषकलुषित भयंकर तरंगोंकी थपेड़ोंसे कुण्डका जल चारो ओर चार सौ हाथ पृथ्वी पर फैल गया। किन्तु यह सब अनन्तबलशाली कृष्णचन्द्रके लिये कोई बड़ी बात नहीं है ॥७॥ महाराज! महागजके समान विक्रमशाली कृष्णचन्द्र उसी कुंडके जलमें क्रीड़ा करने लगे, उनके भुजदण्डोंसे टकराकर जल चक्कर खाने लगा और उसमें बड़ा शब्द होने लगा। वह शब्द सुन कर कालिया नागने जाना कि मेरे भवन पर किसी शत्रुने चढ़ाई की है। यह बात उस चक्षुःश्रवा (आंखोंसे सुननेवाले [सर्पोंके कान नहीं होते] सर्प) से न सही गई। कालिया तुरन्त बाहर निकल कर कृष्णके निकट आया ॥ ८ ॥ उसने देखा कि दर्शनीय, अति सुकुमार, घनश्याम, श्रीवत्स व पीताम्बर पहने, मुसकानसे मनोहर मुखमंडलसे चित्तको चुरा रहे, कमलकोशके तुल्य लाल २ चरणवाले श्रीकृष्णचन्द्र निर्भय होकर जलक्रीड़ा कर रहे हैं। क्रोधांध सर्पने कृष्णके शरीरको अपने शरीरके बंधनसे जकड़ लिया और मर्मस्थलोंमें काटने लगा ॥ ९ ॥ गोपगणको तो सबसे बढ़ कर कृष्णही प्यारे थे। उन्होने अपना शरीर, अपने सगे, सब प्रयोजन, स्त्री और अभिलाषाएँ—सब कृष्णार्पण कर दिया था। वे प्यारे कृष्ण को सर्पके शरीरमें लिपटे होनेसे निश्चेष्ट देख कर अत्यन्त कातर हो पड़े एवं दुःख पश्चात्ताप तथा भयसे संज्ञाशून्य होकर पृथ्वी-तल पर गिर पड़े ॥ १० ॥ गऊ, बछिया, बछड़े और बैल सब अत्यन्त दुःखित होकर दीन शब्दसे शोक प्रकट करते और भीतभावसे कृष्णकी ओर एकटक निहारते हुए जैसेके तैसे खड़े रहगये। उनके नेत्रोंसे जल बहने लगा, जान पड़ा जैसे मारे दुःखके वे रोरहे हैं ॥ ११ ॥ इधर व्रजके भीतर पृथ्वी, आकाश और शरीरमें त्रिविध उत्पात होने लगे, जो कि व्रजवासियोंको किसी बहुत शीघ्र आनेवाले भयकी सूचना देने लगे ॥ १२ ॥ उन उत्पातोंको देख कर नंद आदि गोपगण भयके मारे बहुतही घबड़ागये। उनको मालूम हुआ कि आज कृष्णचन्द्र बिना बलदेवके अकेले ही वनमें गऊ चराने गये हैं। वे कृष्णके प्रभावको नहीं जानते थे, इस कारण उन्होने उन अशकुनोंको देख कर समझा कि कृष्ण अब इस संसारमें नहीं हैं। कृष्णमें ही उनके प्राण धरे रहते थे और मन लगा रहता था—इस लिये दुःख, शोक और भयसे आतुर एवं दीन सब बालक बूढ़े, जवान

व्रजवासी नर नारी कृष्णको देखनेकी लालसासे उनको खोजते हुए गोकुलसे निकले ॥१३॥१४॥१५॥ मधुवंशमें उत्पन्न भगवान् बलभद्रजी उनको यों आतुर होते देख हँस कर चुप हो रहे और कुछ भी नहीं कहा, क्योंकि वह तो छोटे भाई कृष्णके प्रभावको भली भाँति जानते थे ॥ १६ ॥ महाराज! प्यारे कृष्णको खोज रहे गोप गोपीगण ध्वजा वज्र अंकुश आदि कृष्णके चरणोंके चिन्होंसे उनके जानेका मार्ग जान कर यमुना तटपर पहुँचे ॥ १७ ॥ महाराज ! जैसे योगी-जन वेदमार्गमें विशेष २ उपाधियोंको त्यागकर परम तत्त्वकी खोज करते हैं, वैसे ही गोप गोपीगण, गौवें जिस राहमें गई थीं उस राहमें, अन्यान्य लोगोंके पैरोंकी पाँतिमें, और २ चरणचिन्होंको छोड़कर, केवल पद्म, यव, अंकुश, वज्र और ध्वजा आदि चिन्होंसे युक्त भगवान्के चरणचिन्होंको देखते शीघ्रताके साथ चले ॥ १८ ॥ दूरसे ही दहके भीतर कृष्णको सर्पके शरीरसे जकड़े हुए और गोपालोंको जलाशयके किनारे अचेत अवस्थामें पड़े हुए एवं चारोओर पशुओंको चिल्लाते हुए देखकर सभी दारुण दुःखके कारण मूर्च्छित हो गिर पड़े ॥ १९ ॥ गोपियाँ, जिनके मनमें हरिका अत्यन्त अनुराग था, अपने प्यारे कृष्णको सर्पके शरीरसे लिपटे हुए देखकर, उनके सुहृद्भाव, हास्य, मनोहर दृष्टि और मधुर वाक्योंको स्मरण करके घोर दुःखसे सन्तप्त हुईं; उनको प्रिय कृष्णके बिना त्रिलोकी शून्य देख पड़ने लगी ॥२०॥ कृष्णकी माता यशोदा पुत्रकी यह दशा देखकर अत्यन्त कातर हो दीनस्वरसे विलाप करने लगीं और पुत्रके पास जानेको कुंडकेभीतर घुसने लगीं। किन्तु सब गोपियोंने, जिनको यशोदाके समान ही व्यथा थी, रोती हुई यशोदाको रोकलिया। वे उनको सँभालकर, सब व्रजवासियोंको परम प्यारी कृष्णकी लीलाएँ कह कर आँसू बहाती हुई, मृतकके समान, कृष्णकीही ओर टकटकी बाँधे निहारने लगीं॥२१॥ कृष्ण ही जिनके प्राण हैं वे नन्द आदि सब गोप शोकसे विह्वल होकर कुंडमें घुसनेके लिये जब उद्यत हुए तब कृष्णका प्रभाव जाननेवाले बलभद्रजीने उनको रोका ॥ २२ ॥ कृष्णभगवान् केवल मनुष्यस्वभावका अनुकरणमात्रकर रहे थे। किन्तु उन्होने जब देखा कि मुझे इस दशामें देखकर, मेरे लिये, जिनकी मेरे सिवा और कोई गति नहीं है वे स्त्री और बालकोंसमेत सब व्रजवासी अत्यंत दुःखित हो रहे हैं, तब क्षण भर सर्पके बंधनमें रहकर तत्क्षण अलग होगये ॥ २३ ॥ भगवान्का शरीर बहुत स्थूल होजानेके कारण सर्पका शरीर और फण व्यथित होने लगे वह कृष्णको अपने बंधनमें न रख सका। तब उसने कृष्णको छोड़ दिया और अत्यन्त क्रोधसे अपने सब भयंकर फण उठा कर फुफकारें छोड़ता हुआ चोट करनेका अवसर पानेकी इच्छासे हरिकी ओर निहारने लगा। उस समय साँसके साथ उसकी नासिकाके छिद्रोंसे विष निकल रहाथा। उसके नेत्र भट्ठीके समान जल रहे थे एवं मुखोंसे आगकी लपकें निकलती जाती थीं ॥२४॥ वह सर्प

अपनी दो शिखावाली जिह्वाओंसे चौहें चाटता हुआ कराल विषाग्निकी चिनगारियोंकी वृष्टिसे कृष्णके ऊपर पूर्ण दृष्टि डालने लगा । इधर कृष्ण भी गरुडके समान निर्भय भावसे उसके चारो ओर चक्कर लगाने लगे, उधर सर्प भी चोट करनेका अवसर देखता हुआ साथ ही साथ घूमने लगा ॥ २५ ॥ इस प्रकार चक्कर लगानेमें ही उस सर्पकी शक्ति क्षीण होगई और शिथिल हो जानेके कारण कंधे ऊँचे हो गये, तब सब कलाओंके आदिगुरु कृष्णचंद्र उसका फणमण्डल नवाकर उचक कर ऊपर चढ़ गये और नृत्य करने लगे । उस समय नागके शिरोंकी आभासे भगवान्के चरणारविन्दोंकी कान्ति और भी अरुण होगई ॥ २६ ॥ भगवान्को नृत्य करनेके



लिये उद्यत देखकर गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, चारण और अप्सराओंके झुंड प्रसन्नतापूर्वक मृदंग, पणव, आनक आदि बाजे बजाकर गाने लगे एवं फूलोंकी वर्षा करते हुए प्रणामपूर्वक सहसा हरिके निकट आकर उपस्थित हुए ॥ २७ ॥ महाराज ! कालियनागके एक सौ शिर थे । वह जिस शिरको उठाता था उसीको दुष्टदमनकारी कृष्णचंद्र अपने चरणोंकी चोटसे नीचा कर देते थे । उस नागकी शक्ति और आयु क्षीण हो गई, चक्कर आने लगा, मुखों और नासिकाओंसे घोर विषके साथ रुधिर बहने लगा और वह एकदम अचेत (बेदम) होगया ॥२८॥ वह सर्प क्रोधसे जोर २ साँसें लेरहा और नेत्रोंसे विष उगल रहा था । वह जो शिर उठाता उसीको नृत्य कर रहे कृष्णचन्द्र चरणोंकी ठोकरोंसे शिथिल कर देते थे । देवगण फूलोंकी वर्षा करते जाते थे ॥ २९ ॥ राजन्! कृष्णके विचित्र ताण्डवनृत्यसे सर्पके सब फण व्यथित होगये, अंग चूर २ होगये और मुखोंसे बहुत सा रुधिर बहने

लगा। तब वह नाग मनमें चराचरके गुरु, पुराणपुरुष, नारायणका स्मरण करता हुआ उनके शरणागत हुआ ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिनके उदरमें स्थित है उन नन्द-नन्दनके भारी भारसे सर्प शिथिल होगया एवं उनकी एँड़ियोंकी ठोकरसे उसके छत्र ऐसे फण चूर २ हो गये। यह देखकर उसकी स्त्री नागिनियाँ, जिनके घवड़ाहट और भयके कारण केश खुलगये हैं, अंगोंसे वस्त्र हटगये हैं परन्तु उनकी उनको कुछ भी खबर नहीं है, अत्यन्त दुःखित होकर आदिपुरुषके निकट आईं ॥ ३१ ॥ अतिविह्वल चित्तवाली उन साध्वी नागिनियोंने अपने बालकोंको आगे करके चरणोंमें गिरकर जगदीश्वरको प्रणाम किया एवं अपराधी पतिको छुड़ानेके लिये आश्रयदाता हरिका आश्रय लिया ॥३२॥ **नागकी स्त्रियाँ** कहने लगीं कि "भगवन्, आपने इस अपराधीको दण्ड दिया सो बहुत ही उत्तम और उचित किया, क्योंकि दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये ही आपने अवतार लिया है। तथापि आप समदर्शी हैं; सन्तान और शत्रु, दोनो ही आपकी दृष्टिमें समान हैं। आपका दंड देना, अपराधीके लिये हितकारी होता है, क्योंकि आप उसकी भलाईके लिये ही उसको दंड देते हैं ॥ ३३ ॥ हमारी समझमें आपने दण्ड नहीं दिया, बरन् अनुग्रह-ही किया, क्योंकि आपके दंड देनेसे दुष्टोंके पापोंका प्रायश्चित्त हो जाता है। इस नागका भी पातक स्पष्ट देख पड़ता है, नहीं तो इसे सर्पकी अधम योनि क्यों मिलती? अतएव आपका क्रोध भी इसके लिये मंगलकारी अनुग्रह है ॥ ३४ ॥ भगवन्! किन्तु इसने पूर्वजन्ममें स्वयं अभिमानहीन हो दूसरेका सम्मान करते हुए कौन ऐसा भारी तप किया है, अथवा सब प्राणियोंपर दया करना, जो कि मुख्य धर्म है, उसे किया है? जिससे सब जीवोंके जीवात्मा आप इस पर प्रसन्न हुए! ॥३५॥ आपके जिस चरणरजके पानेकी अभिलाषासे स्त्री होकर भी लक्ष्मीने सब कामनाओंको छोड़ कठोरव्रतधारणपूर्वक बहुत समय तक तप किया। उसी लक्ष्मीवांच्छित आपके चरणरेणुको इस अधम सर्पने आज किस महापुण्यके बलसे शिर पर धारण किया? सो हमारी समझमें नहीं आता ॥ ३६ ॥ देव! जो जीव आपके चरणोंकी रज पा जाते हैं वे फिर स्वर्ग, चक्रवर्ती राज्य, पृथ्वीके आधिपत्य, ब्रह्मपद, योगकी सिद्धि या मुक्तिकी भी कामना नहीं करते ॥ ३७ ॥ संसारचक्रमें भ्रमण कर रहा जीव, जिस चरणरेणुके लाभकी अभिलाषा करनेसे ही सब विभवोंका पात्र बनता है एवं प्रेमके सिवा और उपायोंसे जिसका मिलना एक प्रकार असम्भव है, अहो, हे नाथ, यह नागेन्द्र तमोगुणी और क्रोधी दुष्ट जीव होने पर भी उसी चरणरजको प्राप्त हुआ! इस लिये इसको धन्य कहना चाहिये ॥ ३८ ॥ आप भगवान् अन्तर्यामी रूपसे सबके शरीरोंमें विराजमान हैं, तथापि उनसे आच्छन्न नहीं हैं, क्योंकि आदिकारण हैं। सुतराम् इस विश्वके पहले भी आप थे, अतएव आप आकाश आदि पञ्चतत्त्वोंके आश्रयरूप हैं।

आप कारणातीत हैं, आपको प्रणाम है ॥३९॥ आप ज्ञान और विज्ञानकी खानि हैं, क्योंकि प्रकृतिके प्रवर्त्तक हैं, विकारहीन हैं, निर्गुण हैं और अनन्तशक्तिशाली ब्रह्म हैं ॥ ४० ॥ आप काल हैं, कालशक्तिका आश्रय और कालके सब अंगोंके साक्षी हैं, अतएव विश्वरूप हैं विश्वके साक्षी, कर्ता और कारण हैं ॥४१॥ पञ्चभूत, पंचतन्मात्रा, इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त–ये सब आपके रूप हैं। त्रिगुणमय अभिमानके द्वारा आप अपने अंशरूप आत्माके अनुभवको छिपाये हुए हैं ॥ ४२ ॥ आप अनन्त होनेके कारण सूक्ष्म हैं। आप कूटस्थ (मायाकी ओटमें स्थित) और सर्वज्ञ हैं। अनेक मतमतान्तरोंके वाद विवाद आपहीमें टकराकर रह जाते हैं। शब्द और अर्थ आपकी शक्तियाँ हैं। आपको प्रणाम है ॥४३॥ आप सब प्रमाणोंका मूलकारण हैं, अर्थात् चक्षु आदि इन्द्रियोंके भी नेत्ररूप हैं, अतएव कवि हैं, अर्थात् स्वयं उनके ज्ञानकी अपेक्षा नहीं रखते। इसीसे शास्त्र(वेद) प्रकट करनेवाले हैं । आप प्रवृत्त और निवृत्त एवं अन्तिम तत्त्व हैं। आपको वारम्वार प्रणाम है ॥ ४४ ॥ हे हरि ! आप शुद्ध सत्त्वके तत्त्वसे प्रकाशमान श्रीकृष्ण, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं, आपको प्रणाम है ॥ ४५ ॥ आप गुणमय अन्तःकरणोंके प्रकाशक हैं। आप गुणोंसे अपनेको आवृत करके अनेक रूपोंसे प्रकाशित होरहे हैं। अन्तःकरणोंकी वृत्तियोंसे आपका अनुमान होता है। आप सब अन्तःकरणोंके साक्षी, अतएव स्वगोचर हैं ॥ ४६ ॥ आपकी महिमा अतर्क्य है और आप अनुमानके द्वारा सब कारणोंके अथवा सब कार्य्योंकी उत्पत्तिके प्रकाशका कारण सिद्ध हैं। आप सब इन्द्रियोंके परिचालक किन्तु आत्माराम हैं। आत्मामें रमण करना ही आपका स्वभाव है, आपको प्रणाम है ॥ ४७ ॥ आप पर (सूक्ष्म) और अवर (स्थूल) गतियोंके ज्ञाता हैं । आप सबके अध्यक्ष हैं। यह विश्व आपमें नहीं है, अर्थात् आप ही इसके निषेधकी अवधि हैं, तथापि विश्वरूप हैं । विश्वके साक्षी और विश्वका कारण हैं॥ ४८ ॥ विभो! आप चेष्टारहित होकर भी कालशक्तिको धारण कर अपने ही गुणगण द्वारा इस विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार करते हैं । आप संस्काररूपसे वर्तमान सब विशेष २ स्वभावोंको बुद्धिशक्तिसे जगाते हुए क्रीड़ा करते हैं, आपकी लीलाएँ अमोघ हैं ॥ ४९ ॥ त्रिलोकमें जितने शान्त, अशान्त, या विज्ञ और मूढ़ योनियोंमें उत्पन्न जीवसमूह हैं वे सब आपकी ही क्रीड़ाकी सामग्री हैं । तथापि हमको जान पड़ता है कि इस समय आपको शान्त जन ही प्रिय हैं, क्योंकि आप साधुओंके धर्म्मकी रक्षाके लिये ही चेष्टा कर रहे हैं। सुतराम् शान्तजनोंकी रक्षा करनेके लिये ही आपका यह अवतार हुआ है ॥ ५० ॥ आप जगत्के स्वामी हैं, अपने भृत्यका यह पहला अपराध आप क्षमा करदें। हे शान्तरूप! यह नाग मूढ़ है, आपके रूपको नहीं जानता। इसको क्षमा करना ही योग्य है ॥५१॥ भगवन्!

प्रसन्न होइये। सर्पके प्राण निकलने चाहते हैं। हम इसकी स्त्रियाँ हैं, इसके मरनेसे हमारी अत्यन्त दुर्दशा होगी। हमारे स्वामीको प्राणदान करिये ॥ ५२ ॥ भगवन्! हम आपकी दासी हैं, हमको आज्ञा दीजिये–हम क्या सेवा करें? क्योंकि श्रद्धापूर्वक आपकी आज्ञा (वेदकी आज्ञा) पूर्ण करनेसे सब प्रकारके भय जाते रहते हैं" ॥५३॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** महाराज! नागनारियोंकी यह भावभरी स्तुति सुन कर भगवान्ने सर्पको छोड़ दिया। उसके फण टूट फूट गयेथे और वह पैर की ठोकरोंसे अचेत हो रहा था ॥ ५४ ॥ तब कालिया नागको कुछ २ चेत हुआ और इन्द्रियोंकी जड़ता जाती रही। प्राणलाभके बाद अतिकष्टसे लंबी साँसें लेता हुआ नाग अंजली बाँध कर हरिसे यों कातर वचन कहने लगा–"नाथ! जन्मसे ही हमारा स्वभाव दुष्ट होता है, क्योंकि हम तमोगुणी होनेके कारण बड़े ही क्रोधी होते हैं। कोई अपने स्वभावको कदापि सहजमें नहीं छोड़ सक्ता, अतएव स्वभाव असत्ग्रहके समान अनिवार्य्य है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे विधाता! अपने इस विश्वकी सृष्टि की है। अनेक गुणोंसे इस विश्वकी सृष्टि हुई है। अतएव इसमें स्वभाव, वीर्य्य, बल, योनि, बीज, चित्त और आकार भी विचित्र हैं ॥ ५७ ॥ भगवन्! उस विश्वमें हम सर्प जातिके प्राणी हैं; हम आपकी दुस्त्यज मायाको कैसे त्याग सक्ते हैं? हे सर्वज्ञ जगदीश्वर! आप ही चाहें तो अपनी मायासे मुक्त कर सक्ते हैं। अनुग्रह अथवा दण्ड, इनमें जो हमारे लिये भला समझिये सो करिये" ॥५८॥५९॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! भगवान् यह सुन कर कहने लगे–"सर्प! तू यहाँ नहीं रहने पावेगा; अपने परिवार, पुत्र और स्त्रियोंको साथ लेकर सागरको चला जा। अब विलम्ब न कर ॥ ६० ॥ गऊ या ब्राह्मण, इस नदीका जल पियें; तेरे यहाँ रहनेसे वे नहीं आसक्ते। इस मेरी "नागदमनलीला"को सबेरे और संध्याको जो स्मरण या कीर्तन करता है उसको तुम्हारी जातिसे भय नहीं होता। जो लोग मेरी विहारभूमिके अन्तर्गत इस सरोवरके जलमें देवतोंका तर्पण करते हैं तथा व्रत और ध्यान करके मेरा पूजन करते हैं वे सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। तू इस ह्रदको छोड़ कर रमणक द्वीपको चला जा। मेरा वाहन गरुड़ अब तेरा कुछ अनिष्ट न कर सकेंगे। अब तेरे माथे पर मेरे चरणोंके चिन्ह बनगये हैं, इस लिये गरुड़से तुझको भय नहीं है। **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! अद्भुत कर्म्म करनेवाले श्रीकृष्णने यों कहकर छोड़ दिया, तब नाग और नागिनियोंने प्रसन्नतापूर्वक दिव्य वस्त्र, मणि, महामूल्यके अलंकार, दिव्यगन्ध और अनुलेपन एवं श्रेष्ठ कमलमालाओंसे उनका पूजन किया। कालियाने गरुड़ध्वज जगन्नाथको पूजापूर्वक प्रसन्न किया एवं अन्तमें आज्ञा लेकर आनन्दसे प्रदक्षिणा और प्रणाम किया। तदनन्तर वह स्त्री, पुत्र और बन्धुवर्गको लेकर समुद्रके मध्यमें बने हुए रमणकद्वीपको चला गया ॥६१॥ ॥६२॥६३॥६४॥६५॥६६॥

तदैव सामृतजला यमुना निर्विषाभवत् ॥
अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥ ६७ ॥

क्रीड़ामानवरूपी कृष्णचन्द्रके अनुग्रहसे, तबसे कालिंदीका जल विषविहीन होकर अमृतके तुल्य स्वादिष्ट होगया ॥ ६७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदश अध्याय ।

दावानलसे बचाना ।

राजोवाच-नागालयं रमणकं कस्मात्तत्याज कालियः ॥
कृतं किंवा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम् ॥ १ ॥

राजापरीक्षित्‌ने पूछा कि भगवन्! कालिया नागने नागोंके रहनेके स्थान रमणक द्वीपको क्यों छोड़ दिया? और फिर अकेले कालियाने ही गरुड़का क्या अपराध किया था? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन्! पहले सर्पोंने गरुड़के हाथों अपना संहार होते देख कर यह निश्चय किया कि वारी २ से महीने २ एक २ घरसे एक २ सर्प गरुड़के लिये किसी वृक्षके पास निर्दिष्ट स्थान पर धर दिया जाय ॥ २ ॥ उसीके अनुसार अपने २ परिवारकी रक्षाके लिये सब नाग पर्व २ पर गरुड़को एक एक अपने हिस्सेका नाग देने लगे ॥ ३ ॥ किन्तु विषवीर्य्यके घमण्डसे चूर कालियानागने गरुड़को अपनेसे हीन समझकर अपना हिस्सा नहीं दिया । इतना ही नहीं, बरन् औरोंकी दी हुई बलिको भी आप ही खागया ॥ ४ ॥ यह सुनकर भगवान्‌के प्रिय पार्षद महात्मा गरुड़को महा क्रोध हुआ और वह कालियाको मारनेके लिये उद्यत हुए ॥ ५ ॥ गरुड़को अपनी ओर महा वेगसे आते हुए देख कर, दाँत और विष ही जिसके शस्त्र हैं, वह कराल जिह्वावाला नाग, उग्र लोचनोंसे विष उगलता हुआ अपने फण उठाकर युद्ध करनेके लिये उनके सामने आया एवं जिह्वा व दाँतोंसे उनको काटने लगा ॥ ६ ॥ मधुसूदनके वाहन, प्रचण्ड वेगवाले, भीमविक्रमशाली गरुड़ने स्वर्णसदृश प्रभा-वाले वाम पक्षसे सर्पको आहत किया ॥ ७ ॥ गरुड़के पंखकी चोटसे कालिया अ-त्यन्त विह्वल होकर कालिंदीके (इसी) दहमें भाग कर चला आया । गंभीर होनेके कारण हरएक वहाँ नहीं जा सक्ता और गरुड़ भी वहाँ नहीं जा सक्तेथे ॥८॥ इसका कारण यह था कि एक समय गरुड़जीने वहाँ जाकर सौभरि ऋषिके रोकने पर भी भूखके मारे एक भारी मच्छको बलात् खा लिया ॥ ९ ॥ उस मच्छके मरनेसे

मछलियोंको दुःखित और व्याकुल देखकर मुनिको दया आई। तब उन्होने वहाँके जीवोंके कल्याणके लिये उस स्थानको निर्भय बनाते हुए कहा कि "आजसे यहाँ प्रवेश करके यदि गरुड़ किसी मछली या जीवको खा जायगा तो उसी समय उसके प्राण निकल जायँगे। यह मैं सत्य कहता हूँ" ॥१०॥११॥ इस बातको कालियानागके सिवा और कोई नाग न जानता था। इसी लिये गरुड़के भयसे वह वहाँ जाकर रहा और इस समय कृष्णचन्द्रने उसको वहाँसे निकाल दिया ॥ १२ ॥ राजन्! इधर श्रीकृष्णचन्द्रजी दिव्य माला, गन्ध, दिव्य वस्त्र, महामणि एवं सुवर्णके आभूषणोंसे विभूषित होकर उस कुंडसे बाहर निकले ॥ १३ ॥ उनको पाकर, चेतन (प्राण) पानेपर इन्द्रियोंकी तरह, सब गोप सचेत हो हो कर उठ खड़े हुए एवं आनन्दपूर्ण मनसे प्रसन्नतापूर्वक लपक २ कर सबने उनको गलेसे लगाया ॥ १४ ॥ हे कौरव! यशोदा, रोहिणी, नंद, अन्यान्य गोप और गोपियाँ—कृष्णसे मिलकर सचेत और प्रसन्न हुए। यहाँ तक कि पर्वतके सूखे वृक्ष, पशु, गौवें, बैल, बछड़े आदि भी परम प्रसन्न हो उठे। कृष्णके प्रभावको जाननेवाले बलदेवजी उनको गले लगाकर हँसने लगे। सबके मनकी कामना पूर्ण हुई ॥१५॥ ॥१६॥ सपत्नीक गोपगुरु ब्राह्मणोंने नन्दजीके पास आकर कहा कि "नन्दरायजी, आप बड़े भाग्यशाली हैं! इसीसे कालिया नागके सामने जाकर भी आपका पुत्र कुशलक्षेमसे आगया। इसके लिये आप ब्राह्मणोंको धन दीजिये"। तब प्रसन्नचित्त हो कर नन्दने गौवें और सुवर्ण दिया ॥ १७ ॥ १८ ॥ महाभाग्यवती यशोदाजीने नष्ट होकर फिर मिले हुए पुत्रको छातीसे लगाकर गोदमें बैठाया और वारम्वार स्नेहके आँसू वरसाने लगीं ॥ १९ ॥ सब व्रजवासीगण भूख प्यास और थकावटसे शिथिल हो रहे थे, इसलिये उस रातको वहीं कालिंदीके किनारे गौवों सहित बस रहे ॥ २० ॥ आधी रातको रेंड़के वनसे आप ही आप दावानल प्रकट हुआ। चारो ओरसे व्रजवासियोंको घेरे हुए वह अग्नि क्रमशः बढ़ने लगा। व्रजवासी घबड़ा कर उठ खड़े हुए। सबने देखा कि अब इससे बचना कठिनतर है, तब वे माया-मनुष्यरूप कृष्णचन्द्रके शरणागत हुए ॥ २१ ॥ २२ ॥ सबने हाथ जोड़ कर कहा कि हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महायोगीश्वर! हे महाभाग अमित-विक्रमशाली बलदेवजी! देखो यह घोर अग्नि, हम आपके जनोंको भस्म करना चाहता है ॥२३॥ हे प्रभो! हम आपके सुहृद्जन हैं। कृपा करके इस सुदुस्तर कालानलसे हमारी रक्षा करो। हम मरनेसे नहीं डरते, किन्तु आपके अकुतोभय चरणोंका वियोग हमको असह्य है ॥२४॥

इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः ॥
तमग्निमपिबत्तीव्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ॥ २५ ॥

अपने जनोंको इस प्रकार व्याकुल होते देखकर जगदीश्वर अनन्तशक्तिशाली कृष्णचन्द्र उस तीव्र अग्निको पी गये ॥ २५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादश अध्याय ।

प्रलम्बासुर वध ।

श्रीशुक उवाच—अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः ॥
अनुगीयमानो न्यविशद्व्रजं गोकुलमण्डितम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले । हे राजन्! तदनन्तर श्रीकृष्णजीने आत्मीय और स्वजनोंसहित हर्षित गोपों और गोपियोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए गौवोंसे शोभित व्रजमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ गोपालन जिस मायाका छलमात्र है—उसी मायाके द्वारा बलदेव और श्रीकृष्णजी व्रजमें नित्य नई लीलाएँ करते हुए विहार करने लगे । इसी अवसरमें ग्रीष्मऋतु आगई । यद्यपि ग्रीष्मऋतु प्राणियोंको बहुत प्रिय नहीं होती तो भी साक्षात् भगवान् जिसमें बलदेवसहित वास और विहार करते हैं उस वृन्दावनके गुणोंसे वहाँ पर वसन्त ऐसा जान पड़ता था ॥२॥३॥ उस ग्रीष्मऋतुमें भी वृन्दावन झरनोंके शब्द और झिल्लियोंकी झनकारसे पूर्ण था, और झरनोंसे उड़े हुए जलके कणोंसे हरे भरे वृक्षवृन्द निरन्तर सजीव देख पड़ते थे, अर्थात् ग्रीष्मके तापसे मुरझाते न थे ॥ ४ ॥ जिस स्थानमें तृण या घास नहीं थी वहाँ भी ग्रीष्मके सूर्य्य और अग्निका ताप व्रजवासियोंको नहीं सताता था, क्योंकि नदी, सरोवर और झरनोंके सुशीतल जलकण एवं पद्म और उत्पल आदि कमलोंके सुगन्धित परागसे परिपूर्ण सुन्दर मन्द पवन उनको शीतल करता रहता था ॥ ५ ॥ अथाह जल जिनमें भरा हुआ है उन नदियोंकी तरंगें किनारोंसे टकराकर वहाँकी कीचको बहा ले जाती थीं । सूर्य्यकी किरणें, विषके तुल्य तीव्र होकर भी वहाँकी पृथ्वीके रस(तरी)को नहीं हर सकीं और न हरियालीको ही सुखा सकीं ॥ ६ ॥ रमणीय वृन्दावनके सब वृक्ष चित्र विचित्र फूलोंसे मनोहर हो रहेथे, उनके पास और उन पर विचित्र मृग और पक्षी शब्द करते और मोर तथा भौंरे गाते एवं कोकिला और सारसोंके सरस स्वर सुन पड़ते थे ॥ ७ ॥ वहाँ विहार करनेकी इच्छा करके, भगवान् कृष्णने बलदेवसहित गोपगणके साथ गोवृंदको आगे कर बाँसुरी बजाते हुए उस वनमें प्रवेश किया ॥ ८ ॥ प्रवाल, मोरोंके पंख, फूलोंके गुच्छे और माला एवं भाँति २ की धातुओंसे अपनेको विभूपित करके, बलदेव और श्रीकृष्णचन्द्र, गोपबालकोंके साथ नाचने,

कुश्ती लड़ने एवं अनेक प्रकारकी क्रीड़ाएँ करने लगे ॥ ९ ॥ कृष्णके नाचते समय कोई बालक गाने, कोई ताली और कोई सींग बजाने लगा और कोई प्रशंसा करने लगा ॥ १० ॥ महाराज! नट जैसे नटकी उपासना करें वैसे ही गोपरूपमें छिपे हुए देवगण कृष्ण और बलदेवकी पूजा व प्रशंसा करते थे ॥ ११ ॥ महाराज! छोटे २ काकपक्ष (पट्टे) रखाये हुए कृष्ण और बलदेव, समय २ पर घूमते, फाँदते, उचकते, ताल ठोंकते, रेलमरेला करते आपसमें मल्लयुद्ध(कुश्ती)का अभ्यास करते हुए विहार करते थे। कभी और गोपोंके नाचने पर, आप दोनो भाई बाजे बजाते और "वाह २" कहकर उनकी बड़ाई करते थे ॥१२॥१३॥ कभी बेल, आमला और कुंभ वृक्षके फलोंको उछालकर खींच २ के मारकर खेलते। कभी फलबुझौवल, कभी लुकीलुकौवल, कभी आँखमूँदी-धप आदि खेल खेलते एवं कभी पशुओं और पक्षियोंकी चेष्टाओंका अनुकरण करके प्रसन्न होते थे ॥१४॥ कभी मेंढकके समान कूद २ कर चलतेथे, कभी हँसते हुए परस्पर बालकोंके बाहुओंकी डोली बना कर उस पर झूलते, कभी परस्पर हँसी करते, कभी राजाकी नकल करते थे ॥ १५ ॥ इस प्रकारके अनेक लौकिक प्राचीन खेल खेलते हुए श्रीकृष्णचन्द्र साथियोंसहित वनके बीच नदी, पर्वत, कन्दरा, कुंज, सरोवर और बागोंमें विचर रहे थे ॥ १६ ॥ इधर तो बलदेव और श्रीकृष्णजी गोपोंके साथ गौवोंको चराते हुए प्रीतिपूर्वक खेलमें लगे हुए थे, उधर प्रलम्ब नाम असुर, कृष्ण-बलरामको हर ले जानेके लिये गोपरूपसे वनमें आया ॥ १७ ॥ सबके अन्तर्य्यामी हरि सब जानगये, उन्होने उसको मारनेके विचारसे अपने दलमें प्रसन्नतापूर्वक मिलजाने दिया ॥ १८ ॥ तब खेलनेमें निपुण कृष्णने सबको पास बुला कर कहा-"मित्रो! आओ हम सब अवस्था और बलके अनुसार दो दल बनाकर परस्पर क्रीड़ा करें" ॥ १९ ॥ कृष्णका कहना मान कर उन गोपोंमेंसे कुछने श्रीकृष्णको और कुछने बलरामको अपना नायक बनाया और खेलने लगे ॥२०॥ इसमें एक दलवाले दूसरे दलवालोंको पीठ पर चढ़ाकर किसी निर्दिष्ट स्थान तक ले जाते थे; उसमें जीतनेवाले चढ़ते थे और हारनेवाले उनको लादते थे ॥२१॥ इस प्रकार खेलते हुए गोपगण गौवें चराते कृष्णको आगे किये भाण्डीरक नाम वटके निकट गये ॥ २२ ॥ जब बलदाऊके दलवाले श्रीदामा आदि गोपगण खेलमें जीत गये तब श्रीकृष्णके पक्षवाले गोप, उनको अपनी पीठ पर लादकर निर्दिष्ट स्थान पर ले चले ॥ २३ ॥ हारे हुए श्रीकृष्णने श्रीदामाको, भद्रसेनने वृषभको और प्रलम्ब असुरने बलदेवजीको लादा ॥ २४ ॥ कृष्णको अपनेसे अधिक एवं अपनेको बहुत देर तक बलदेवका बोझा सँभालनेमें असमर्थ जान कर वह दैत्य कृष्णकी दृष्टि बचा कर वेगसे बलदेवको ले चला और निर्दिष्ट स्थानसे आगे निकल गया ॥ २५ ॥ उस दैत्यका शरीर पानी-भरे मेघके समान काला था और

उसके सब अंगोंमें सुवर्णके आभूषण चमक रहेथे । पर्वतराजके समान जिनका भार है उन बलरामको ले जाते समय वह दानवदामिनीमण्डलीमण्डित चन्द्रमाधारी गतिशील श्यामवर्ण मेघके तुल्य जान पड़ता था ॥ २६ ॥ उसका शरीर आकाशमार्गमें बड़े वेगसे जा रहा था, उसके दोनो नेत्रोंसे आगकी चिनगारियाँ निकल रही थीं, उसकी भयानक भ्रुकुटीयुक्त कुटिल दृष्टि बहुतही रौद्र थी । उसके केश जलते हुए अग्निकी शिखाके समान ताम्रवर्ण थे, मुखमण्डल किरीट और कुण्डलोंकी झलकसे प्रकाशित था । उस दैत्यने बनावटी मनुष्यरूप छोड़कर जब अपना असली शरीर प्रकट किया तब उसके इस अद्भुत रूपको देख कर पहले तो बलदेवजी कुछ विस्मित और भीत होगये ॥२७॥ किन्तु तत्क्षण ही अपनी महिमाको स्मरण करके निर्भय बलभद्रने दृढ़ मुष्टिसे, जैसे इन्द्रदेव किसी पर्वत पर वेगसे वज्र मारें वैसे ही गोपदलसे अलग करके अपनेको ले जारहे उस दैत्यके शिर पर कुपित होकर प्रहार किया ॥ २८ ॥ महाराज! मुष्टि लगते ही उसका शिर फटगया, मुखसे रुधिर गिरने लगा, स्मृतिशक्ति नष्ट होगई । वह मरतेसमय इन्द्रके वज्र द्वारा आहत पर्वतकी भाँति एक बार भैरव रव करके गिरपड़ा ॥२९॥ बलशाली बलदेवजीने प्रलम्बासुरका वध किया, यह देख कर गोपोंको बड़ा विस्मय हुआ और वे वारम्वार उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३० ॥ कोई २ महाबली और प्रशंसाके योग्य पात्र बलदेवको आशीर्वाद देने लगे। जैसे कोई मरकर मिला हो वैसी ही उत्सुकताके साथ वे लोग बलदेवजीसे गले मिलने लगे ॥ ३१ ॥

पापे प्रलम्बे निहते देवाः परमनिर्वृताः ॥
अभ्यवर्षन्बलं माल्यैः शशंसुः साधुसाध्विति ॥ ३२ ॥

पापी प्रलम्बासुरके मरनेसे देवगणको परम आनन्द हुआ और वे बलदेवके ऊपर फूलोंकी वर्षा करते हुए "वाह वाह" कहकर वारम्वार उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंश अध्याय ।

पशु और गोपोंकी दावानलसे रक्षा।

श्रीशुक उवाच—क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः ॥
स्वैरं चरन्त्यो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा । एक दिन सब गोप क्रीड़ामें आसक्त हो रहेथे । इसी अवसरमें उनके पशु, किसी रोकनेवालेके न होनेसे इच्छानुसार विचरते

हुए तृणके लोभसे दूर निकल कर अगम्य तृणपूर्ण स्थानको चले गये ॥ १ ॥ बकरी, गऊ और भैंसें एक वनसे दूसरे वनमें जा कर तृण चरने लगीं। अकस्मात् वहाँ निकट ही दावानल लग गया। उस दावानलके तापसे तपे हुए प्यासे पशुगण चीत्कार करते हुए भागे और अन्तको मूँजके वनमें घुसगये ॥ २ ॥ इधर कृष्ण बलदेव आदि गोपगण, पशुओंको न देखकर पछताते हुए उनकी खोज करने लगे, किन्तु उन्होने उनको न देख पाया ॥ ३ ॥ पशुही गोपोंकी जीविका थे। उस जीविकाको नष्ट होते देख गोपगण अचेतसे होगये एवं पशुओंके खुर और दाँतोंसे कटे हुए तृणों और पृथ्वी पर बने हुए खुरोंके चिन्होंसे उनके जानेकी राह पहचानते हुए आगे चले ॥ ४ ॥ अन्तको मूँजके वनमें राह भटके हुए चिल्ला रहे अपने गोधनको देखपाया। प्यासे और थके हुए गोपगण अपने गोधनको पाकर वहाँसे लौटे ॥ ५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने मेघसदृश गंभीर वाणीसे नाम ले २ कर बुलाया, तब अपने २ नामको सुन कर गौवें प्रसन्न हुईं और उन्होने उत्तरसूचक प्रतिध्वनि भी की ॥ ६ ॥ इसी अवसरमें वनवासियोंको नष्ट करनेवाला भयानक दावानल प्रकट हुआ और प्रचंड वायुकी सहायतासे घड़ी २ भर पर घोर रूप धारण कर रही लपटोंसे आसपासके स्थावर (वृक्षआदि) और जंगम (पशुपक्षी–मनुष्यआदि) जीवोंको भस्म करता हुआ इच्छानुसार फैलने लगा ॥ ७ ॥ उस दावानलको अपने निकट ही आगया देख कर गौवें और गोपगण भयके मारे व्याकुल हो गये और सब प्राणी जैसे मृत्युके भयसे आर्त होकर शरणागत होते हैं वैसे ही वे कातर गोपगण बलदेव और कृष्णके पास आकर कहने लगे कि ॥ ८ ॥ "हे कृष्ण! हे बलभद्र! आपका वीर्य्य महान् और विक्रम अमित है। हम लोग इससमय दावानलसे भयभीत हो रहे हैं। कृपाकर इससे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ९ ॥ हे कृष्ण! यह बात निश्चित है कि आप जिनके बांधव हैं या आपके जो बांधव (जन) हैं उनको किसी प्रकारका क्लेश नहीं होना चाहिये। हे सर्वधर्मज्ञ! हम तो आपको ही अपना नाथ समझे हैं और आप ही हमारी परम गति हैं" ॥ १० ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि राजन्!** भगवान् हरिने बंधुओंके कातर वचन सुन कर कहा–"डरना नहीं, आँखें बंद कर लो" ॥ ११ ॥ आज्ञाके अनुसार उन्होने जब नेत्र बंद कर लिये तब योगेश्वर भगवान् कृष्णचन्द्रने उस अग्निको पी लिया। इस प्रकार अग्निको शान्त कर हरिने अपने जनोंकी रक्षा की ॥ १२ ॥ तदनन्तर गोपोंने आँख खोल कर देखा तो अपनेको भांडीर वटके निकट पाया। इस प्रकार अपनेको गौवेंसहित दावानलसे विमुक्त देख कर वे बहुत ही विस्मित हुए ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णके उस अनिर्वचनीय योग-वीर्य्य और योगमायाके अद्भुत प्रभाव एवं अपनेको दावानलसे छुड़ानेके मांगलिक कार्यपर विचार कर गोपोंने जाना कि कृष्ण कोई देवता हैं ॥ १४ ॥

सायंकालको बलदेवसहित श्रीकृष्णजी, गौवें लौटा कर बलदेवजीके साथ वंशी वजाते हुए और पीछे २ आ रहे गोपोंके मुखसे अपनी बड़ाई सुनते हुए व्रजको लौटे ॥ १५ ॥

गोपीनां परमानन्द आसीद्गोविन्ददर्शने ॥
क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत् ॥ १६ ॥

गोविन्दको देख कर गोपियाँ परम आनन्दको प्राप्त हुईं । गोपियोंको कृष्ण-वियोगके अवसर पर एक क्षण सौ युगके समान जान पड़ता था ॥ १६ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंश अध्याय ।

वर्षा और शरदृतुका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच–तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः ॥
गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलम्बवधमेव च ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । गोपोंने व्रजमें आ कर कृष्णके हाथों दावानलसे अपनी रक्षा और बलभद्रके हाथों प्रलंबासुरका मारा जाना, ये दोनो अद्भुत कर्म गोपियोंसे कहे ॥ १ ॥ गोपियाँ और वृद्ध गोपगण यह वृत्तान्त सुन कर बहुत ही विस्मित हुए । उन्होने समझा कि ये कृष्ण और बलदेव कोई श्रेष्ठ देवता हैं, जो व्रजमें प्रकट हुए हैं ॥२ ॥ महाराज! कुछ दिन बाद, प्रायः सब प्राणियोंकी उत्पत्ति जिसमें होती है उस वर्षाऋतुका आविर्भाव हुआ । घनघटाओंसे आकाशको भी क्षोभ हुआ और इन्द्रधनुके घेरोंसे उसकी अपूर्व शोभा हुई ॥ ३ ॥ वर्षाके आरंभमें अत्यन्त नील मेघोंसे ढँका हुआ और विजलीके शब्दोंसे परिपूर्ण आकाश, जिसकी ज्योति स्पष्ट नहीं है उस सगुण ब्रह्मके समान देख पड़ने लगा ॥ ४ ॥ जैसे राजा, सदैव अपनी प्रजासे ‘ कर ’ ले कर समय पड़ने पर उसी प्रजाके लिये उस धनको खर्च करता है वैसे ही आठ महीने तक सूर्य्यदेवने पृथ्वीसे जो जलरूप धन खींचा था वही वर्षाऋतु आने पर अपनी किरणोंसे छोड़ने(बरसाने)लगे ॥५॥ जैसे दयाशील लोग सन्तप्त जनको देख कर दयाके मारे उसकी तृप्ति (शान्ति)के लिये अपना जीवन तक दे देते हैं वैसे ही प्रचण्ड वायुद्वारा संचालित एवं दामिनी-दाममंडित महामेघमंडल, ग्रीष्मकी गर्मीसे तपे हुए विश्वकी तृप्तिके लिये जीवन-रूप जलकी वर्षा करने लगा ॥ ६ ॥ जैसे किसी कामनाके लिये तप करनेसे किसी तपस्वीका शरीर, दुर्बल हो कर–फिर वह कामना पूरी होने पर हृष्ट पुष्ट हो जाय

वैसे ही ग्रीष्मऋतुमें कृश होगई पृथ्वी, वर्षाका जल पा कर हरी भरी होगई ॥७॥ सायंकालमें घोर अंधकारके कारण केवल जुगनुओंकी ज्योति देख पड़ने लगी और चन्द्रआदि ग्रहोंका प्रकाश छिप गया, जैसे कलियुगमें पापके प्रतापसे पाखण्डपथ इधर उधर प्रकाशित होंगे और वेदमार्ग लुप्तप्राय हो जाय गा ॥ ८ ॥ जैसे नित्य-कर्म समाप्त होने पर आचार्य्यके शब्दको सुन कर पीछे २ शिष्य लोग भी स्वाध्याय पाठ करने लगते हैं वैसे ही मेघनादको सुन कर मेंढक भी अपना शब्द करने लगे ॥९॥ जो पहले जलके विना सूख रही थीं वे छोटी२ नदियाँ, इन्द्रियोंके वशवर्ती पुरुषके देह धन और सम्पत्तिके समान कुमार्गमें जाने लगीं ॥ १० ॥ यह पृथ्वी, कहीं हरी घासके कारण हरी हो कर, कहीं बीरबहूटियोंसे लाल हो कर और कहीं छत्ररूप छत्राक(धरतीका फूल)की छाया धारण करके राजोंकी सेना-सम्पत्तिके समान शोभित हुई ॥ ११ ॥ सब खेत अपनी नवसस्य-संपत्तिसे किसानोंको आनन्द एवं "सुकाल और अकाल दैवके अधीन है"–इस बातको न जाननेवाले धनी महाजनों(अन्नके व्यापारियों)को सन्ताप देने लगे ॥ १२ ॥ लोग हरिकी सेवा करके जैसे सौंदर्य्य पाते हैं वैसे ही सब जल और स्थलके रहनेवाले जीवोंने नवीन जलके सेवनसे मनोहर रूपको पाया ॥ १३ ॥ वायुके संगसे चंचल हुई तरंगोंसे पूर्ण समुद्र, नदियोंसे मिल कर, कच्चे योगीके विषय-वासना पूर्ण और भोगसङ्गत चित्तके समान क्षोभको प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ जिनका चित्त भगवान्में लगा हुआ है वे अनेक संकटोंके आ पड़ने पर जैसे व्यथित नहीं होते वैसे ही पर्वतसमूह, वर्षाके बड़े २ बूँदोंकी चोटें खा कर भी विचलित नहीं हुए ॥ १५ ॥ बढ़ी हुई घाससे ढँके हुए सब संस्कारविहीनमार्ग संदिग्ध हो गये, जैसे बहुत समयसे जिनका अभ्यास (पठन पाठन) ब्राह्मणोंके द्वारा नहीं हुआ वे मंत्र नष्टप्राय और संदिग्ध हो जाते हैं ॥ १६ ॥ गुणी पुरुषों पर भी जैसे कुलटाओंका प्रेम स्थिर नहीं रहता, वैसे ही चंचल बिजलियाँ भी लोकोंका उपकार करनेवाले मेघोंके निकट स्थिर हो कर रहती नहीं देख पड़तीं ॥ १७ ॥ गुणसमष्टिमय इस प्रपञ्चमें जैसे निर्गुण पुरुष विराजमान है वैसे ही घनगर्जनसे पूर्ण आकाशमें गुण-(प्रत्यञ्चा) हीन इन्द्रका धनुष सुशोभित हुआ ॥ १८ ॥ जैसे जीवात्मा अपने ही चैतन्यसे प्रकाशित जो अहंकार है उससे आच्छन्न होनेके कारण भली भाँति प्रकाशित नहीं होता वैसे ही चन्द्रमा भी अपनी ही कान्तिसे प्रकाशित मेघोंसे आच्छन्न होनेके कारण भली भाँति प्रकाशित नहीं होता था ॥ १९ ॥ गृहमें रहते २ जिनका अन्तःकरण सांसारिक तापोंसे तप गया है वे विरक्त पुरुष जैसे अपने घरमें हरिभक्तके आगमनसे सन्तुष्ट होते हैं वैसे ही मयूरवृन्द मेघोंके आगमनसे प्रसन्न हो कर नृत्य आदिके द्वारा हृदयकी प्रसन्नता प्रकट करने लगे ॥ २० ॥ घोर तपके श्रमसे कर्शित ऋषि लोग जैसे अनुष्ठानके पीछे तपके द्वारा प्राप्त भोगोंका

उपभोग करके नाना भाँतिके नवीन शरीर धारण करते रहते हैं वैसे ही ग्रीष्मके घोर घाममें तपे मुरझाये और सूखे हुए सब वृक्ष भी जड़से जल पान करके भाँति २ के रूपोंसे सुशोभित हुए ॥ २१ ॥ यद्यपि गृहस्थाश्रममें भयानक कर्मोंका अभाव नहीं है तौ भी जैसे अधिकतर दुराशय नीच व्यक्ति उसीमें रहना अच्छा समझते हैं, वैसे ही यद्यपि वर्षामें सरोवरोंके किनारे कीचड़, कंकड़ और काँटोंकी अधिकता होती है तौ भी चक्रवाक (चकई चकवा) पक्षी वहीं रहने लगे ॥२२॥ जैसे कलियुगमें पाखंडियोंके नष्ट तर्कोंसे वेदमार्ग नष्टभ्रष्ट हो जायँगे वैसे ही इन्द्रके बरसने पर जलके वेगसे सेतु (पुल) टूट गये ॥ २३ ॥ जैसे नरपतिगण, पूजनीय पुरोहित ब्राह्मणोंकी प्रेरणासे समय २ पर प्रजाकी अनेक कामनाएँ पूरी करते हैं वैसे ही मेघगण, वायुसंचालित हो कर प्राणियोंके लिये अमृत(जल)की वर्षा करने लगे ॥ २४ ॥ वर्षाऋतुमें सब वन, उपवन और निकुञ्ज नवसम्पत्तिसे सुशोभित हो उठे और जहाँ तहाँ खजूर व जामुनके वृक्ष पके हुए फलोंसे लद गये । तब श्रीकृष्णजी, बलभद्रसहित गऊ और गोपालोंको साथ ले कर क्रीड़ा करनेके लिये वहीं (वृंदावनमें) गये ॥ २५ ॥ दूध भरे थनोंके भारसे मंद २ चलनेवाली गौवें, भगवान् जब उनको नाम ले ले कर पुकारते तब परम प्रीतिसे जल्दी २ पैर धरती हुई प्रभुके पास जाती थीं । चलते समय उनके थनोंसे दूध निकलता जाता था ॥ २६ ॥ भगवान्ने देखा कि सब वनवासी आनन्दित देख पड़ते हैं, फूले हुए वृक्षोंसे मधुमय पराग(रज)की वर्षा हो रही है, घटाएँ घिरी हुई हैं, पर्वत पर जलकी धाराएँ गिर रही हैं, उनके सोहावने शब्दसे पर्वतकी कंदराएँ गूँज रही हैं ॥२७॥ श्रीकृष्णजी जल बरसते समय कभी किसी सघन वृक्षके तले, कभी किसी कंदराके भीतर बैठ कर बलभद्र और सखागण साथ कन्दमूलफलभोजन और अनेक क्रीड़ाएँ करते थे, एवं कभी जलके किनारे शिला पर बैठ कर घरसे आये हुए दही और भातको खाकर बहुत ही प्रसन्न होते थे॥२८॥२९॥ वनमें अपने दूध भरे स्तनोंके भारसे चलनेमें थकी हुई गौवें, बैल और बछड़े सब भलीभाँति तृप्त हो कर नई घास पर बैठे हुए आँखे मूँदे सुखसे पागुर कर रहे हैं ॥ ३० ॥ इस प्रकार अपने पशुओंको सुखी और मस्त देख कर एवं वर्षाकालके सब जीवोंको सुखी बनानेवाली अपूर्व वनकी शोभा निहार कर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने अपनी शक्तिके द्वारा समृद्धिसम्पन्न वर्षाके सुहावनेपनको हृदयसे सराहा ॥ ३१ ॥ इस क्रीडाकौतुकमें आसक्त श्रीकृष्ण बलदेवने व्रजमें विहार करते हुए वर्षाऋतुको बिता दिया । वर्षा बीतने पर शरद् ऋतुका आविर्भाव हुआ । तब आकाशमें मेघोंका नाम भी नहीं रहा, जल विमल और वायुका वेग भी शान्त होगया ॥ ३२ ॥ फिर जैसे योगाभ्यास करनेसे भ्रष्ट योगियोंके चित्त शुद्ध हो जाते हैं वैसेही कमल उपजानेवाली शरद्के फिर आनेसे

सरोवरोंके जल निर्मल और स्थिर हो गये ॥ ३३ ॥ जैसे श्रीकृष्णकी भक्ति हरएक आश्रममें स्थित व्यक्तिके अमंगलको हरलेती है वैसेही शरद्ने आकाशके मेघोंको, वर्षा अधिक होनेके कारण प्राणियोंके एक स्थान पर रहनेको, पृथ्वीकी कीचड़को और जलके मलको हर लिया ॥ ३४ ॥ जैसे पापोंसे मुक्त मुनिजन सब वासनाएँ छोड़ कर शान्त रूपसे शोभा पाते हैं वैसेही मेघवृंद अपना सर्वस्व (जल) देकर शुद्ध (श्वेत) रूपसे सुशोभित हुए ॥ ३५ ॥ जैसे ज्ञानी लोग समयानुसार ज्ञानरूप अमृत (उपदेशके द्वारा) देते हैं और नहीं भी देते, वैसेही पर्वतसमूह (झरनों द्वारा) कहीं निर्मल जल देते हैं और कहीं नहीं भी देते ॥ ३६ ॥ जैसे मूढ़ परिवारी मनुष्य, अपनी आयुका नित्य क्षीण होना नहीं जानते, वैसे ही थोड़े जलमें रहनेवाले जलजीव जलके नित्य घटनेको नहीं जानते ॥ ३७ ॥ दीन, दरिद्र, इन्द्रियपरवश कुटुम्बी पुरुषके समान थोड़े जलमें रहनेवाले जीवोंको शरद् कालके सूर्यतापकी तपन व्यथित करने लगी ॥ ३८ ॥ जैसे धीर जन, आत्मासे भिन्न जो देह आदि हैं उनमें अहंभावरूप ममताको धीरे २ छोड़ देते हैं वैसे ही भूमि अपनी कीचड़को और लताएँ अपनी कचाईको धीरे २ छोड़ने लगीं ॥ ३९ ॥ जैसे संपूर्णरूपसे कर्मनिवृत्ति होने पर मुनिलोग वेदपाठ छोड़ समाधिस्थ और शान्त हो जाते हैं वैसेही शरद् ऋतुके आने पर समुद्रका जल निश्चल और शब्दहीन हो गया ॥ ४० ॥ इन्द्रियोंके द्वारा नष्ट होरहे प्राण (शक्ति) को जैसे योगी लोग इन्द्रियमार्गोंको रोक कर सुरक्षित रखते हैं वैसे ही किसान लोगोंने इधर उधर बहे जारहे जलको मेड़ बाँध कर खेतोंमें ही रोक लिया ॥ ४१ ॥ जैसे विद्या (ज्ञान) से देहाभिमान और गोपालके दर्शनसे गोपियोंका विरहताप मिट जाता है वैसे ही चन्द्रमाकी शीतल किरणोंके स्पर्शसे, शरद् ऋतुके सूर्य्यकी प्रचण्ड तपनसे तपे हुए लोगोंका ताप शान्त हो जाता था ॥ ४२ ॥ जैसे सत्वगुणावलंबी चित्त, सब वेदके मार्गोंको या वेदके अर्थोंको दिखला कर शोभा पाता है वैसे ही शरद् ऋतुमें मेघविहीन आकाश रात्रिके समय तारागणको प्रकाशित कर शोभायमान हुआ ॥ ४३ ॥ जैसे पृथ्वीमण्डलमें वृष्णिमण्डलके बीच यदुपति कृष्णचन्द्रकी शोभा हो वैसे ही तारामण्डलमण्डित होनेसे आकाशमें अखण्डमण्डल चन्द्रमा शोभायमान हुआ ॥ ४४ ॥ कृष्णमें ही जिनके प्राण रहते हैं वे गोपियाँ जैसे चित्तके द्वारा प्राणप्यारे कृष्णसे मिल कर विरहसन्तापको दूर करती हैं वैसेही कुसुमित वनोंसे आरहे समशीतोष्ण पवनका सेवन करनेसे सबके हृदय शीतल होने लगे। अथवा उस वायुके सेवनसे सबके हृदय तापहीन होते थे, किन्तु गोपियोंके हृदयमें, श्रीकृष्णके विरहानलकी तपन घटनेके बदले और भी बढ़ती थी ॥ ४५ ॥ जो कर्म केवल ईश्वरकी आराधनाके लिये निष्काम भावसे किये जाते हैं उनके फल बलपूर्वक उनका अनुसरण करते हैं,

जिससे वे कर्म आपही भोग-गर्भ (सब भोगोंके उपजानेवाले) हो जाते हैं। वैसेही शरद् ऋतुमें स्वामियोंके बलपूर्वक अनुगमनसे गऊ, चिड़ियाँ, हरिणियाँ और स्त्रियाँ अपनी इच्छा न रहने पर भी गर्भिणी होगईं ॥ ४६ ॥ राजन्! जैसे राजाको देख कर सब लोग निर्भय होकर प्रसन्न होते हैं किन्तु चोर लोग संकुचित और अप्रसन्न रहते हैं, वैसे सूर्य्यके उदयमें कुमुद (कोकावेली) के सिवा सब कमल फूल उठे ॥ ४७ ॥ गाँवों और नगरोंमें नवान्नभोजनके उपलक्ष्यमें किये गये अनेक वैदिक उत्सवों और इन्द्रियोंकी तुष्टिके लिये अनेक लौकिक महा उत्सवोंसे एवं हरिकी दोनो कलाओं (कृष्ण और बलदेव)से, पके हुए अन्नसे परिपूर्ण पृथ्वीकी बड़ीही शोभा हुई ॥ ४८ ॥

वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान्प्रपेदिरे ॥
वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान्काल आगते ॥ ४९ ॥

जैसे मंत्र आदिके प्रभावसे योगसिद्ध सिद्धलोग जबतक आयु पूर्ण नहीं होती तबतक उसी शरीरमें रह कर समय आने पर योगसिद्धियोंके द्वारा मिलनेवाले अपने २ देव, गंधर्व आदि शरीरोंको पाते हैं वैसे ही चौमासेके कारण किसी एकही स्थानमें चार महीने रुके हुए वणिक्जन (बनिज करनेवाले), राजा, तपस्वी और यात्रीजन यात्रा करके अपने २ काममें लगगये ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंश अध्याय ।

गोपिकागीत ।

श्रीशुक उवाच—इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना ॥
न्यविशद्वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! शरद् ऋतुके आनेसे वनके जलाशयोंका जल स्वच्छ होगया एवं वायु भी कमलमंडित सरोवरोंके संसर्गसे सुगंधित होकर डोलने लगा। भगवान्ने ऐसे समय गोप और गौवोंको साथ लेकर विहार करनेके लिये वृन्दावनमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ फूले हुए वृक्षोंकी पाँतियों पर मतवारे भौंरे और पक्षीगण बैठेहुए मधुर कलरव कर रहे हैं और उनके उस शब्दसे वनके सरोवर नदियाँ और सब पर्वत प्रतिध्वनित हो रहेहैं। मधुसूदन, उस वनमें प्रवेश करके गोपगण और बलभद्रके साथ गौवें चरातेहुए मधुर स्वरसे वंशी बजाने लगे ॥ २ ॥ कृष्णकी बाँसुरीका शब्द सुनकर गोपियोंके मनमें

उत्पन्न हुए कामदेवने अपना अधिकार कर लिया। उनमें कोई २ गोपी कृष्णके पीछे सखियोंसे उनके गुणोंका वर्णन करने लगीं ॥ ३ ॥ किन्तु वर्णन करते समय उनके चरित्रोंका स्मरण हो आया, तब कामदेवके प्रबलवेगसे चित्त चञ्चल होनेके कारण कुछ देर तक वे कुछ भी न कहसकीं ॥ ४ ॥ वे सोचने लगीं कि "मोर-पंखोंका मुकुट पहने, कानोंमें कनेरके फूल धारण किये, सुवर्णके समान सुवर्ण पीत-पट और वैजयन्ती मालासे सुशोभित कृष्णचन्द्रने बाँसुरीमें अधरसुधा पूर्ण करते हुए उसके छिद्रोंमें अँगुली धरकर स्वर निकालते हुए अपने चरणोंके विहारकी भूमि वृंदावनमें गोपगणके साथ उनके मुखोंसे गाईगई अपनी कीर्ति सुनतेहुए नटवर वेषसे प्रवेश किया होगा" ॥ ५ ॥ हे राजन्! सब प्राणियोंके लिये मनोहर मुरलीके स्वरको सुनकर सब व्रजबालाएँ परस्पर इस प्रकार प्यारे कृष्णका वर्णन कर अपने मनको बहलाने लगीं ॥ ६ ॥ **गोपियाँ** कहने लगीं । "हे सखियो! इस समय व्रजके स्वामी दोनो भाई कृष्ण और बलदेवने साथी गोपगणके साथ वनमें प्रवेश किया है। बाँसुरी बजाते समय अनुरागपूर्ण कटाक्षोंसे मनोहर उनका मुखारविन्द जिन्होने देखा होगा उनको नेत्रोंका परम या चरम फल मिल गया! क्योंकि हमारी समझमें इससे बढ़कर नेत्र होनेका कोई फल नहीं हो सक्ता" ॥७॥ यह सुनकर दूसरी गोपीने कहा कि "अहो! इन गोपोंने कौन बड़ा भारी सुकृत किया है! जो कृष्ण और बलदेव समय २ पर इनकी सभाओंमें नील और पीतवस्त्र पहन कर विचित्र वेषसे इनकी शोभा बढ़ाते हैं एवं उनके नीलवसन और पीतपट पर आमकी मंजरी, मयूरोंके पंख, कमलके फूल और पद्मकी मालाएँ एक अनिर्वच-नीय छवि दिखलातीहैं। जैसे रंगभूमिमें दो श्रेष्ठ नट गा रहे हों वैसे ही गोपोंकी सभामें दोनो भाई बाँसुरी बजाते और गाते देख पड़ते हैं" ॥ ८ ॥ किसी अन्य गोपीने कहा कि "गोपियो! इस वंशीने कौन ऐसा पुण्य कियाहै? देखो, दामोदरके अधरोंकी सुधा, जिसके पीनेका अधिकार केवल हम गोपियोंको है, उसको रसमात्र अवशिष्ट रखकर स्वयं स्वतन्त्रताके साथ अकेले ही पिये जाती है। जिनके जलसे इस वंशीका शरीर पुष्ट हुआ है वे नदियाँ इसका यह अपूर्व सौभाग्य देख कर प्रसन्न हो रही हैं और उन नदियोंके बीच फूलेहुए कमलोंकी श्रेणी देखकर जान पड़ता है कि हर्षके मारे उनके शरीरमें रोमांच हो आया है। वंशमें हरिसेवक संतानरत्न उत्पन्न होने पर उसे देखकर कुलके बूढ़े लोग; जैसे आनन्दके आँसू बहाते हैं वैसे ही वंशीके ऐसे अपूर्व सौभाग्यको देखकर उसके वंशके सब पुराने वृक्ष मधुधारारूप आँसू बरसा रहे हैं" ॥ ९ ॥ किसी गोपीने कहा—"सखी! देखो देखो, श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंके संसर्गसे यह श्रीवृन्दावन कैसी शोभा पाता है! गोविंदकी वंशीके स्वरसे मस्त मोर नाच रहेहैं और उस आनन्दमय नृत्यको अन्य सब प्राणी पर्वतके शिखरों और वृक्षों पर, सब चेष्टाएँ

छोड़े एकाग्र मनसे देख रहे हैं। सच बात तो यह है कि यह वृन्दावन पृथ्वीकी अनुपम कीर्त्तिको फैलानेवाला है (अर्थात् स्वर्गसे भी बढ़कर हो रहा है)" ॥१०॥ अन्य गोपीने कहा–"सखियो! हरिणियाँ यद्यपि पशुयोनिमें उत्पन्न हुई हैं तौ भी धन्य हैं! क्योंकि वंशीरव सुनती हुई अपने २ स्वामियोंके साथ विचित्रवेषधारी प्यारे नन्दनन्दनको सादर प्रेमकटाक्षपूर्ण दृष्टिवृष्टिकी भेंट समर्पित करती हैं"॥११॥ अन्यगोपीने कहा–"गोपियो! जिनके रूपको देखकर और शीलस्वभावको सुनकर सबही स्त्रियोंको आनन्द होता है, उन कृष्णचन्द्रको देखकर और उनकी बजाई बाँसुरीसे निकले विचित्र गीतोंको सुनकर विमानों पर अपने पतियोंके साथ बैठीहुई सुरसुन्दरियाँ कामदेवके वेगसे अधीर हो मोहको प्राप्त हुईं, उनकी वेणीयोंके बन्धन शिथिल होगये, उनसे फूल गिरने लगे एवं अंगोंसे वस्त्र हटगये, पर उनको इसकी कुछ भी सुधि नहीं हुई" ॥ १२ ॥ किसीने कहा कि "कान उठाकर श्रीकृष्णके मुखसे निकलेहुए गीतरूप अमृतको पीरही गौवें, नेत्रोंके द्वारा उनकी मनोहर मूर्त्तिको हृदयमें स्थापित कर आँखोंमें आनन्दके आँसू भरे हुए चुपचाप खड़ी रहती हैं। उनके बछड़े, जिनसे आपही आप दूध बह रहा है उन स्तनों और घासके कौरोंको मुहमें दबायेहुए चित्रके लिखेसे हरिकी ओर टकटकी लगाये उनके मधुर गानको सुनते रहते हैं ॥ १३ ॥ सखियो! इस वनके सब पक्षीगण मुनियोंके तुल्य हैं, क्योंकि ये नवपल्लवमण्डित वृक्षोंकी शाखाओं पर बैठकर चुपचाप एकाग्र भावसे कृष्णको निहारते और उनकी बाँसुरीके मधुर गीतको सुनते हैं ॥१४॥ सचेतनोंकी कौन कहे, मुकुंदका गान सुनकर अचेतन नदियाँ भी भँवर पड़नेके मिससे कामके उच्छ्वासको प्रकट करती हैं । कामकी अधिकतासे उनका वेग रुक गया है अर्थात् शिथिल होगया है और वे आलिंगनके लिये उठीहुई तरंगरूप बाहुओंसे कमल कुसुमरूप भेंट लेकर हरिके चरणकमलोंको छूती हैं ॥ १५ ॥ घोर घामके समय वनमें बलदेव और अन्यान्य गोपोंके साथ अपने सखा श्रीकृष्णको गौवें चराते देख कर यह घनश्याम प्रेमपूर्वक शिर पर आ कर छाया करता है और कुसुमके समान सूक्ष्म फुहारोंकी वर्षा करता है ॥ १६ ॥ ये भीलोंकी स्त्रियाँ भी धन्य हैं, इनका जन्म सफल हो गया; क्यों कि जिस कुंकुमको गोपियाँ अपने स्तनोंमें लगाती हैं वह श्रीकृष्णके चरणकमलोंके रागमें मिल कर वनकी घासमें लग जाता है, और उस कुंकुमरागको श्रीकृष्णके दर्शनसे उत्पन्न कामकी पीड़ा मिटानेके लिये भीलोंकी ललनाएँ अपने आननों और कुचोंमें लगा कर कामकी बाधा मिटाती हुई हृदयको शीतल करती हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ सखियो! हर्षकी बात है कि यह गोवर्द्धन पर्वत हरिके दासोंमें श्रेष्ठ है, क्यों कि कृष्ण, बलभद्रके दर्शन पानेसे आनन्दित हो कर, यह, जल, सुन्दर हरी २ घास, कन्दरा, कन्दमूल और फलोंसे गऊ और गोपगणसहित दोनो भाइयोंका सादर सत्कार

करता है ॥ १९ ॥ सखियो! देखो कैसे आश्चर्यकी बात है कि उदार वंशीध्वनि और सुंदरपदयुक्त गान करते हुए गोपगणसहित कृष्ण और बलदेव गौवोंको अपने साथ एक वनसे दूसरे वनको ले जाते हैं, उस समय राहमें उनकी मनोहर झाँकी देख कर चलनेवाले जीव तो चित्रके लिखेसे हो जाते हैं और गौवोंकी गिरैयाँ तथा फंदे बँधनेसे जिनमें चिन्ह बन गये हैं वे स्थावर वृक्षआदि हरिके हाथोंके स्पर्शसे उत्पन्न हुए आनन्दसे पुलकित हो उठते हैं" ॥ २० ॥

एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः ॥
वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥ २१ ॥

इस प्रकार आपसमें वृंदाविपिनविहारी हरिकी की हुई लीलाओंका वर्णन करते २ गोपियाँ धीरे २ तन्मय होगईं अर्थात् उनको अपनी, अपने शरीरकी और इस लोककी कुछ भी सुधिबुधि नहीं रही ॥ २१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंश अध्याय।

चीरहरणलीला।

श्रीशुक उवाच—हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः ॥
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हेमन्तऋतुके पहले महीने (अगहन) में नन्दके व्रजमें रहनेवाली गोपकुमारियोंने हविष्यान्न भोजन करके कात्यायनीदेवीके पूजन और व्रतका नियम लिया ॥ १ ॥ राजन्! सब गोपकुमारियाँ सबेरे अरुणोदयके समय यमुनाके जलमें स्नान करके जलके निकट देवीकी बालूकी मूर्ति बना कर सुगन्धित चन्दन, माला, भाँति २ के नैवेद्य, धूप, दीप, पान एवं अन्यान्य सामग्रियोंसे पूजन करती और हाथ जोड़ कर प्रार्थना करती थीं कि "हे कात्यायनी! हे महामाया! हे महायोगिनी! हे अधीश्वरी! हे देवी! नन्दगोपके पुत्रको कृपा कर हमारा पति बनाओ, हम आपको प्रणाम करती हैं" ॥ २ ॥ ३ ॥४॥ इस प्रकार उक्त मंत्रको जपती हुई कुमारियोंने कृष्णमें चित्त लगा कर 'कृष्ण ही हमारे पति हों' इस उद्देश्यसे एक महीने तक व्रत करके भद्रकालीका पूजन किया। वे नित्य सबेरे उठ कर एक एकको नाम ले २ कर जगाती थीं और एक एकके गलेमें हाथ डाले झुंड बाँध कर यमुनातट पर जाते समय राहमें ऊँचे स्वरसे कृष्णकी लीलाएँ गाती थीं ॥५॥ ६ ॥ एक दिन सब व्रजबालाएँ यमुनाके किनारे आईं और

अन्य दिनोंकी भाँति किनारे पर सब कपड़े उतार कर जलके भीतर स्नान करनेके लिये घुसीं। उन्होने जलके भीतर कृष्णकी गुणावली गातेहुए भली भाँति प्रसन्नतापूर्वक जलविहार किया ॥ ७ ॥ योगीश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, उनके उद्देश्यको जान कर उन्हे कर्मका फल देनेके लिये अपने साथी गोपोंके साथ उसी स्थान पर पहुँचे एवं उनके वस्त्रोंको ले कर पासहीके एक कदम्ब पर चढ़ गये। हँसते हुए बालकोंके साथ हँस रहे श्रीकृष्णचन्द्रने हँसी करते हुए कहा कि "ललनाओ! तुम यहाँ पर आ कर अपने २ वस्त्र ले जाओ, डरो नहीं । मैं तुमसे सत्य ही कह रहा हूँ, हँसी नहीं करता, क्यों कि तुम व्रत करनेके कारण निर्बल और शिथिल हो रही हो। मैंने आज तक झूठ नहीं बोला, इस बातको ये सब मेरे साथी गोपगण भली भाँति जानते हैं। सुन्दरियो! एक एक करके या साथ ही आ कर तुम अपने वस्त्र ले लो" ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ भगवान्को यों हँसी करते हुए देख कर गोपियाँ प्रेमसे विह्वल होगईं और लज्जाके साथ सबने एक एककी ओर देखा। गोपियोंके मुख पर हँसी झलकने लगी और वे सब अपनी २ जगह पर खड़ी रहीं—बाहर नहीं निकलीं ॥ १२ ॥ भगवान्को यों कहते देख हास्यके वचनोंसे जिनका मन मोहित होगया है वे गले २ भर ठंढे पानीमें खड़ी काँप रही गोपियाँ कृष्णचन्द्रसे यों कहने लगीं ॥१३॥ गोपियोंने हका—"हे कृष्ण! तुम अनीति न करो। तुम नन्दनन्दन हो, हम तुमको भली भाँति जानती हैं। तुम व्रजमें सबसे अधिक शिष्ट हो, सब तुम्हारी बड़ाई करते हैं, इसीसे हमारे हृदयमें भी तुम्हारा प्रेम है। हम जाड़ेसे जड हो कर काँप रही हैं, अतएव हमारे वस्त्र हमको दो" ॥ १४ ॥ उनमेंसे कुछ गोपियोंने कहा कि—"हे श्यामसुंदर! हम तुम्हारी दासियाँ हैं, तुम्हारी आज्ञा पालन करनेवाली हैं। इस लिये हे धर्मज्ञ! अब कृपा कर हमारे वस्त्र हमको दो"। कुछ अधिक वयसकी गोपियोंने रूखी हो कर कहा कि "यदि तुम हमको हमारे वस्त्र न दोगे तो हम अभी राजा(कंस अथवा नंद)से जाकर कहेंगी" ॥१५॥ श्रीभगवान्ने कहा। "सुन्दरियो! यदि तुम मेरी दासी हो, और मेरा कहा करनेमें तुमको 'नाहीं' नहीं है तो मैं तुमको आज्ञा देता हूँ कि यहाँ आकर अपने वस्त्र ले जाओ" ॥ १६ ॥ गोपियोंने जब देखा कि यों वस्त्र नहीं मिलेंगे तब शीतके कारण काँप रही कामिनियाँ असह्य शीतसे हार कर हाथोंसे गुप्त अंगको छिपाये हुए यमुनाजलसे बाहर निकलीं ॥ १७ ॥ उनके शुद्ध भावसे प्रसन्न भगवान्ने सब वस्त्र कंधे पर धर लिये और प्रीतिपूर्वक मुसकाते हुए दयादृष्टिसे देख कर कहा कि—॥ १८ ॥ "सखियो! तुमने निपट नंगी हो कर व्रतमें जलके भीतर जा कर स्नान किया सो बड़ा ही अनुचित किया, क्योंकि इस कर्मसे जलके देवता वरुण एवं अन्य देवोंका निरादर हुआ । अब इस अपराधको क्षमा करानेके लिये माथेमें अंजलि बाँध कर झुक कर प्रणाम करो और फिर अपने २

वस्त्र ले कर पहनो" ॥ १९ ॥ नंगे हो कर नहानेमें भगवान्‌ने इस प्रकार दोषारोप



किया, तब कुमारिकाओंने समझा कि "यथार्थ ही हमारा व्रत दूषित होगया;" अतएव हरिकी आज्ञाके अनुसार व्रतके निर्विघ्न पूर्ण होनेकी कामनासे उन्होने उसी प्रकार उस व्रत तथा अन्य सब कर्मोंके साक्षी एवं फल देनेवाले कृष्णको पापोंसे मुक्त करनेवाला जान कर प्रणाम किया ॥२०॥ देवकीके पुत्र भगवान् कृष्ण उनको उसी प्रकार प्रणाम करते देख कर परम सन्तुष्ट हुए और दयामयने दया करके उनको उनके वस्त्र दे दिये ॥ २१ ॥ महाराज! कृष्णचन्द्रने गोपियोंके, साथ छलकी बातें कीं, उनको लज्जा छोड़ने पर बिवश किया, उपहासकी बातें कीं, वस्त्र हर लिये और कठपुतलीकी भाँति भाँति २ के नाच नचाये तौ भी उन व्रजबालाओंके मनमें मैल नहीं आया और न उन्होने बुरा माना, बरन् अपने प्रियतमके उतनी देरके संगसे परम प्रसन्न हुईं ॥ २२ ॥ राजन्! अपने २ वस्त्र पहन कर गोपियाँ घर जानेको उद्यत हुईं, परन्तु प्रियके परमप्रिय समागममें वशीभूत उनका चित्त कृष्णने हरलिया था, इसलिये आगे न बढ़सकीं, वहीं पर खड़ी होकर लजीली दृष्टिसे कृष्णकी ओर निहारने लगीं ॥ २३ ॥ "उन्होने अपने ही चरणोंके स्पर्शकी कामनासे कष्ट उठा कर महीने भर यह व्रत किया है"—यह समझ कर श्रीकृष्णचन्द्रने उनसे कहा कि—"हे सब साध्वी सुन्दरियो! मैं तुम्हारे संक-

रूपको जानता हूँ, तुमने मुझको ही प्रसन्न करनेके लिये यह व्रत किया है। मैं भी तुम्हारे मनोरथका अनुमोदन करता हूँ, इस लिये तुम्हारी कामना अवश्य ही पूर्ण होगी। देखो, जिनका मन मुझमें लगा है उनकी कामनाएँ अन्य कामनाओंके समान संसारका कारण नहीं होतीं। भुने हुए या पके हुए अन्नके बीजोंमें फिर अंकुर नहीं निकलते ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ सुन्दरियो! तुम्हारा व्रत सिद्ध (सफल) होगया, अब तुम व्रजको जाओ। तुम मेरे साथ इन शरद् ऋतुकी रमणीय रात्रियोंमें रमण करोगी; क्योंकि हे सतियो! तुमने इसी कामनासे आर्य्यादेवीका व्रत और पूजन किया है" ॥ २७ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! इस प्रकार भगवान्के कहनेसे उन कुमारियोंने अपनेको कृतार्थ माना, क्योंकि उनकी इच्छा पूर्ण होगई। वे कृष्णके चरणोंका ध्यान करती हुई बड़े कष्टसे लौट कर व्रजको गईं ॥ २८ ॥ तदनन्तर देवकीनन्दन कृष्णचन्द्रजी बड़े भाईके साथ गोपगण सहित गौवोंको चराते हुए वृन्दावनसे दूर निकल गये ॥ २९ ॥ राहमें हेमन्तके घोर घामको स्वयं सहकर अपने शिर पर छत्रके समान छाया किये हुए वृक्षोंको देख कर भगवान्ने अपने साथी गोपोंसे कहा—"हे स्तोक, कृष्ण, अंशु, श्रीदामा, सुबल, अर्जुन, विशाल, ऋषभ, तेजस्वी, देवप्रस्थ और वरूथप आदि मित्रो! इन सब महाभाग्यशाली वृक्षोंको देखो। इनका जीवन केवल दूसरोंके उपकारके लिये ही है। स्वयं वायु, वर्षा, घाम और पाला सहकर उनसे हमारी रक्षा करते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ अहो! इन्हीका जन्म धन्य है, जिससे और२ प्राणियोंका काम निकलता है। जैसे दयालु मनुष्यके पास जाकर याचक लोग विमुख नहीं लौटते वैसे ही इनके निकटसे कोई भी प्राणी विमुख नहीं जाता ॥ ३३ ॥ ये अपने पत्ते, फूल, फल, छाया, जड़, छाल, लकड़ी, गंध, गोंद, राख, कोयला, अंकुर और नवपल्लव आदिसे सब प्राणियोंके काम आते हैं ॥ ३४ ॥ देहधारियोंमें उन्हीका जन्म सफल है जो प्राण (शरीर), सम्पत्ति, बुद्धि और वाणीसे सदैव सब प्राणियोंकी भलाई करते हैं" ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्-नवपल्लवोंके गुच्छे, फल, फूल और पत्तोंके भारसे जिनकी डालियाँ झुक रही हैं उन परोपकारी वृक्षोंकी बड़ाई करते हुए उन्हीके नीचे २ चल कर यमुनाके किनारे पहुँचे ॥ ३६ ॥ महाराज! वहाँ पहुँच कर गोपोंने यमुनाका मधुर निर्मल शीतल जल गौवोंको पिलाया और आप भी जी भरकर पिया ॥ ३७ ॥

तस्या उपवने कामं चारयन्तः पशून्नृप ॥
कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन् ॥ ३८ ॥

यमुनाके आस पास वनमें गौवें चराते २ गोपोंको भूख लगी, तब वे कृष्ण और बलदेवजीके पास आकर यों कहने लगे ॥ ३८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंश अध्याय।

कृष्णकी आज्ञासे गोपोंका ब्राह्मणोंके यज्ञमें जाकर खानेके लिये अन्न माँगना।

गोपा ऊचुः—राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण॥
एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथ॥ १॥

गोपगणने कहा। हे महाशक्तिशाली बलभद्र! हे दुष्टदमन कृष्णचन्द्र! हमको बड़ी भूख लगी है। कृपा कर यह भूखकी ज्वाला शान्त करिये, हमको बड़ा कष्ट मिल रहा है॥ १॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! गोपोंने जब यों आ कर प्रार्थना की तब देवकीतनय कृष्णचन्द्रने अपनी परमभक्त जो ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ हैं उन पर अनुग्रह करते हुए यह कहा कि॥ २॥ "यहाँ वेदपाठी ब्राह्मण लोग स्वर्गकामनासे आङ्गिरस—नाम यज्ञ कर रहे हैं। तुम यज्ञ-मण्डपमें जा कर भगवान् आर्य्य(बड़े भाई बलभद्र)का और मेरा नाम ले कर अन्न माँगो"॥ ३॥ ४॥ भगवान्की आज्ञा पा कर उन गोपोंने यज्ञमण्डपमें जा कर वैसे ही अन्न माँगा। उन्होने दण्डवत् प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर कहा कि "ब्राह्मण महाशयो! आपका कल्याण हो, सुनिये, आपके निकट कृष्णचन्द्र और बलदेवकी आज्ञासे हम सब गोप आये हैं। वे दोनो भाई यहाँसे थोड़ी ही दूर पर गौवें चराते २ आये हैं। यहाँ आकर भूखे हुए हैं, इस लिये आपसे भोजन माँगते हैं; क्यों कि आप धर्मज्ञ ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ हैं। यदि आप लोगोंको श्रद्धा हो तो हम अर्थियोंको भोजनके लिये अन्न दो॥ ५॥ ६॥ ७॥ यदि कहो कि यज्ञका अन्न देनेसे उच्छिष्ट हो जायगा तो हे सज्जनो! यज्ञमें दीक्षाके अनन्तर अग्नीषोमीय बलिदानके पहले तक किसीको देने या खिलानेसे अन्न दूषित हो जाता है, किन्तु उसके पीछे तथा सौत्रामण्यदीक्षा एवं अन्यान्य दीक्षाओंमें (भी) खिलाने या देनेसे अन्न उच्छिष्ट नहीं होता"॥८॥ महाराज! गोपोंके इस प्रकार कहने पर भी उन ब्राह्मणोंने भगवान्की आज्ञा सुन कर भी जैसे नहीं सुनी। कैसे सुनते? वे तो तुच्छ स्वर्गसुखकी कामनासे बड़े २ कर्मों (यज्ञादि)में लिप्त रह कर अपनेको वृद्ध और बुद्धिमान् मान बैठे थे; परन्तु वास्तवमें अज्ञ थे॥ ९॥ मन्दमति ब्राह्मणोंका चित्त संसारमें फँसा हुआ था, इसीसे उन्होने साक्षात् परब्रह्म भगवान् अधोक्षज (इन्द्रियोंके संचालक स्वामी)को एक साधारण मनुष्य समझा! देश, काल, भाँति २ की सामग्रियाँ, मंत्र, तंत्र, ऋत्विक्, सम्पूर्ण अग्नि, पूजनीय अधिष्टाता देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म्म इत्यादि सब उन्ही कृष्णरूप विष्णुके रूप हैं॥ १०॥ ११॥ हे शत्रुदमन! जब ब्राह्मणोंने 'हाँ' या 'ना' कुछ भी उत्तर नहीं दिया तब निराश हो कर सब गोप लौट आये और उन्होने आ कर सब वृत्तान्त कृष्ण और बलभद्रसे कहा॥ १२॥ सुन कर जगत्के स्वामी भगवान्

कृष्णचन्द्रने गोपोंको संसारकी गति दिखाते हुए कहा कि ॥ १३ ॥ "तुम याचना विफल होनेसे निराश न हो कर उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंसे जा कर कहो कि मैं अपने भाई सहित यहाँ निकट ही आया हूँ। मुझे आया हुआ जान कर वे तुमको अवश्य अन्न देंगी, उनको मुझ पर भक्ति है, उनका मन मुझमें ही रहता है" ॥ १४ ॥ भगवान्के कहनेसे गोप लोग फिर (यज्ञमण्डपमें जा कर) पत्नीशालामें पहुँचे और उन्होने सुन्दर शृंगार किये अलंकार पहने बैठी हुई ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंसे प्रणामके पश्चात् विनयपूर्वक यों कहा ॥ १५ ॥ "हे ब्राह्मणवधुओ! तुमको हम प्रणाम करते हैं। हम तुमसे कुछ कहने आये हैं, सो कृपापूर्वक सुन लो। यहाँसे थोड़ीही दूर पर कृष्ण और बलभद्र गौवें चरा रहे हैं। उन्होने ही हमको तुम्हारे पास भेजा है। उनको और हम लोगोंको भूख लगी है, सो भोजन करनेके लिये तुम अन्न दो" ॥ १६ ॥ १७ ॥ नित्य कृष्णके गुणोंको सुननेसे ब्राह्मणियोंके हृदयमें उनके दर्शनकी बड़ी लालसा थी। आज उनको पासही आया हुआ सुन कर सबको दर्शनोंकी चटापटी पड़ी ॥ १८ ॥ पति, पिता, भाई और बंधुओंके रोकने पर भी वे सब स्त्रियाँ नहीं रुकीं और नदियाँ सागरकी ओर जैसे वेगसे जाती हैं वैसेही चार प्रकार (भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य) के भोजन वर्तनोंमें ले कर परम प्रिय कृष्णसे मिलनेके लिये चलीं; क्यों कि उनका चित्त हरिके चरित्र सुन कर उन पर मोहित होगया था। यमुनाके किनारे जा कर उन्होने देखा कि अशोक-वृक्षोंके नवपल्लवोंसे सुशोभित यमुनाके उपवन (निकुञ्ज) में गोपगण और बड़े भाई बलभद्रके साथ श्रीकृष्णचन्द्र विचर रहे हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ उनका वर्ण श्याम है, श्याम शरीर पर सुवर्णवर्ण पीतपट ऐसा जान पड़ता है मानो श्याम घनघटामें इन्द्रके धनुषका मण्डल शोभायमान है। गलेमें वनमाला पड़ी है। मोरके पंख, धातुओंके रंग और नवपल्लवोंसे सुसज्जित विचित्र नटवरवेष देखने ही योग्य है। एक सखाके कंधे पर दाहिना हाथ धरे हुए बाएँ हाथसे कमलका फूल घुमा रहे हैं। कानोंमें कमलके फूल, कपोलों पर काली २ अलकें और प्रफुल्ल मुखकमलमें हँसीकी अपूर्व शोभा है ॥ २२ ॥ नित्य वारम्वार सुने हुए जिन प्यारे कृष्णके गुण कानोंमें गूँज रहे थे और मन तन्मय हो रहा था उनको सामने पाकर ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने नेत्रोंके द्वारसे हृदयोंमें बिठा लिया। सुषुप्तिके साक्षी प्राज्ञ (पुरुष) में मिल कर अर्थात् लीन हो कर जैसे अहंवृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं वैसेही उनके हृदय शान्त होगये और सब ताप मिट गया ॥ २३ ॥ "वे स्त्रियाँ एकदम सब आशाएँ छोड़ कर दर्शनके लिये आई हैं"-यह भगवान्से छिपा नहीं था, क्योंकि वही सब बुद्धियोंके सत्य साक्षी हैं। तथापि उनकी परीक्षा लेते हुए कृष्णने मुसका कर कहा कि—॥ २४ ॥ "आओ, महाभागाओ! भले आईं; कहो हम तुम्हारा क्या सत्कार करें? यदि तुम केवल मुझे ही देखने आई

हो तो तुमने बहुत ही अच्छा और उचित किया ॥ २५ ॥ विवेकी लोग विवेक द्वारा सच्चे स्वार्थको भली भाँति जानते हैं, इसीसे वे मुझ प्रीतिपात्र आत्मा पर निष्काम सुदृढ़ साक्षात् भक्ति करते हैं ॥ २६ ॥ जीवात्मासे बढ़ कर कोई भी नहीं प्यारा होता । प्राण, बुद्धि, मन, जातिवाले, शरीर, स्त्री, पुत्र और सम्पत्ति, सभी उस जीवके लिये प्रिय होते हैं ॥ २७ ॥ तुम मेरे दर्शन पाकर कृतार्थ होगईं, अब यज्ञशालाको लौट जाओ । यद्यपि अब तुमको यज्ञादिकी आवश्यकता नहीं है, तथापि तुम्हारे स्वामी सब गृहस्थ ब्राह्मण तुम्हारे साथ मिल कर अपना यज्ञ पूरा करेंगे" ॥२८॥ **द्विजपत्नियोंने कहा** । "हे विभो ! आपको ऐसे निठुर वचन कहना उचित नहीं है । आप वेदके कथनको सत्य कीजिये । हम सब अपने बंधु-ओंको छोड़ कर आपकी अवज्ञापूर्वक भी दी हुई तुलसीकी मालाको केशोंमें सादर धारण करने अर्थात् दासी होनेके लिये चरणकमलोंकी शरणमें आई हैं ॥ २९ ॥ औरोंकी जाने दीजिये, हमारे पति, पिता, माता, भाई, पुत्र, बन्धु और सुहृत् गण भी हमें अंगीकार न करेंगे ! हे शत्रुदमन ! हमारी आपके सिवा और कोई गति नहीं है। इसीसे हम आपके चरणोंकी शरणमें आई हैं–हमें स्वीकार कीजिये" ॥ ३० ॥ **श्रीभगवान्‌ने कहा** । तुम घरको जाओ, तुम्हारे पति, पिता, भाई, पुत्र आदि कोई भी तुम पर दोषारोप न करेंगे, बरन् बड़े प्रेमसे तुम्हारा आदर करेंगे। क्यों कि जो लोग मुझसे मिलचुके हैं उनका आदर देवता भी करते हैं ॥३१॥ यदि कहो कि हमको तो आपके अंगसंगकी इच्छा है, उसके बिना हम कैसे लौट जाँय? सो अंगसंगसे ही मनुष्योंमें प्रीति या अनुराग नहीं होता । इस लिये अपने घरमें ही रह कर मुझमें मन लगाओ; शीघ्र ही मुझको पाओगी। मेरे नाम सुनने, गुणकीर्तन और ध्यान करनेसे जैसा मुझमें दृढ़ प्रेम होगा वैसा पास रहनेसे कभी नहीं हो सक्ता–इस लिये तुम घरको लौट जाओ " ॥ ३२ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । भगवान्‌के यों कहने पर वे ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ लौट कर फिर यज्ञशालाको गईं । ब्राह्मणोंने भी उनसे कुछ नहीं कहा, बरन् सादर स्वीकार करके उनके साथ यज्ञको पूर्ण किया । सच है, जिस पर हरि कृपा करते हैं उस पर सभी अनुकूल हो जाते हैं ! ॥ ३३ ॥ एक स्त्रीको उसके पतिने पकड़ रक्खा था, इस लिये वह कृष्णचन्द्रके दर्शन करने न जा सकी । तब उसने जैसा हरिका रूप सुना था वैसेही ध्यान करते हुए कर्मोंके अनुगामी शरीरको छोड़ दिया और सबसे पहले हरिसे जा मिली ॥३४॥ इधर प्रभु भगवान् गोविन्दने वह स्त्रियोंका लाया हुआ चार प्रकारका स्वादिष्ट अन्न गोपोंको खिलाया और आप भी भोजन किया ॥ ३५ ॥ लीला करनेके लिये मायामानवरूप भगवान्, इस प्रकार मनुष्योंका अनुकरण करके अपने रूप वचन और लीलाओंसे गऊ गोप और गोपियोंको रमाते हुए स्वयं रमण करते थे ॥ ३६ ॥ उधर उन ब्राह्मणोंको ज्ञान हुआ, तब वे "हमने मनुष्यतनुधारी दोनो

जगदीश्वरोंकी प्रार्थना न सुन कर बड़ा ही अपराध किया!"–यों सोच कर पछताने लगे ॥३७॥ वे ब्राह्मण, भगवान् श्रीकृष्णमें स्त्रियोंकी ऐसी अपूर्व भक्ति देख कर और अपनेको उस भक्तिसे रहित पा कर पश्चात्तापपूर्वक आप ही आप अपना तिरस्कार करते हुए कहने लगे कि–"हमारे तीन जन्मों (एक गर्भसे जन्म, दूसरा गायत्रीसंस्कारका जन्म, तीसरा यज्ञदीक्षाका जन्म)को, ब्रह्मचर्य्य व्रतको, बहुत जाननेको, उत्तम कुलको यज्ञादि कर्मोंमें निपुण होनेको बार बार लाख बार धिक्कार है! क्यों कि हम हरिसे विमुख हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ इसमें कोई संदेह नहीं कि भगवान्की माया बड़े २ योगियोंको भी मोहित कर देती है । अहह! हम लोगोंके गुरू ब्राह्मण कहलाते हैं! सो अपने ही प्रयोजन(हरिकी भक्ति)में चूक गये! ॥ ४० ॥ अहो! स्त्रियोंको देखो, उनको जगद्गुरु कृष्णमें कैसी सुदृढ़ भक्ति है! जिससे उन्होने गृहस्थीकी ममता, जो कठिन मृत्युपाश है, उसे तोड़ डाला! ॥४१॥ देखो, हमारी भाँति इनका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ । न गुरुकुलमें इन्होंने शिक्षा पाई, न तप किया, न आत्मतत्त्वकी खोज की । न ये शौच करती हैं और न संध्यावन्दन आदि शुभ कर्म्म ही करती हैं ॥४२॥ तौ भी योगेश्वरोंके ईश्वर पवित्र यशवाले श्रीकृष्णमें इनकी दृढ़ भक्ति है और हमारे सब संस्कार हुए, तथा ऊपर कही हुई सब बातें भी हममें हैं, किन्तु हाय हाय, ईश्वरकी भक्ति नहीं है! शोक! ॥४३॥ अवश्य ही हम मिथ्या स्वार्थमें भूल कर गृहस्थीके सुखमें लिप्त हो रहे थे, यह जान कर सज्जनोंके इष्टदेव हरिने गोपोंके वाक्योंसे हमको सचेत कर दिया ॥ ४४ ॥ नहीं तो पूर्णकाम एवं मोक्ष आदि दुर्लभ 'वर' देनेवाले ईश्वरको हमसे अन्न माँगनेकी क्या आवश्यकता थी । अवश्य ही अन्न माँगनेका केवल मिस (बहाना) था ॥ ४५ ॥ लक्ष्मी, अपनी चंचलता त्याग कर, चरणकमलोंके स्पर्शकी अभिलाषासे, औरोंको छोड़, जिनको वारम्वार भजती है उन लक्ष्मीपतिका किसीसे कुछ माँगना अवश्यही लोगोंको मोहित किये बिना नहीं रहसक्ता ॥ ४६ ॥ देश, काल, भिन्न २ सामग्रियाँ, मंत्र, तंत्र, ऋत्विक्, तीनो (यज्ञसम्बन्धी) अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म जिनके रूप हैं उन्ही साक्षात् योगीश्वरोंके ईश्वर भगवान् विष्णुने यदुवंशमें जन्म लिया है, यह सुन कर भी हम मूढ़ उनको न पहचान सके! ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ अहो, तथापि हम अपनेको परम धन्य मानते हैं; क्योंकि हमारे घरोंमें ऐसी अनन्यभक्त स्त्रियाँ हैं जिनका मन निश्चल होकर हरिमें बस रहा है ॥ ४९ ॥ जिनकी बुद्धि कदापि कुण्ठित नहीं होती और जिनकी मायामें बुद्धिके मोहित होनेसे हम कर्ममार्गमें भ्रम रहे हैं उन भगवान् कृष्णको हमारा प्रणाम है ॥ ५० ॥ वह आदि पुरुष हैं, उनकी मायामें आत्माके मोहित होनेसे हम उनके प्रभावको नहीं जान सके । इसी कारण यह अपराध हमसे बन पड़ा है । उन जगदीश्वरको हम सेवकोंका यह अपराध क्षमा कर देना उचित है ॥ ५१ ॥

इति स्वाघमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः ॥
दिदृक्षवोऽप्यच्युतयोः कंसाद्भीता न चाचलन् ॥ ५२ ॥

हे राजन् ! कृष्ण-तिरस्काररूप अपने अपराधको स्मरण करके उन ब्राह्मणोंने इस प्रकार बहुत पश्चात्ताप किया । यद्यपि कृष्णके दर्शन करनेकी उनको बड़ी लालसा थी तथापि वे कंसके भयसे न जासके ॥ ५२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कंधे पूर्वार्धे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंश अध्याय ।

इन्द्रयज्ञभङ्ग ।

श्रीशुक उवाच—**भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः ॥
अपश्यन्निवसन्गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ॥ १ ॥**

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज ! वे ब्राह्मण कंसके भयसे अपने २ आश्रमोंमें ही रहकर भगवान्‌की आराधना करने लगे । इधर भगवान्‌ने बलभद्र सहित व्रजमें रहते हुए एक समय देखा कि गोपलोग इन्द्र-यज्ञ करनेका उद्योग कर रहे हैं ॥ १ ॥ भगवान् तो सबके आत्मा अन्तर्यामी हैं, वह सबके मनकी जाननेवाले सर्वज्ञ हैं, अतएव उनसे कुछ छिपा नहीं है, वह सब जानतेथे; तथापि विनयपूर्वक नम्र होकर उन्होने नन्दआदि बूढ़े गोपोंसे पूछा कि— ॥२॥ ‘‘पिता ! बताओ तो सही, आपलोग काहेकी सामग्री एकत्र कर रहे हैं। यह यज्ञ कौन करेगा? किस देवताके लिये यह यज्ञ किया जायगा और इसका फल क्या होगा? ॥ ३ ॥ यह सब मुझसे कहिये, मैं सुननेके लिये उत्सुक होरहाहूँ । सबको अपने समान देखनेके कारण जिनको अपने पराएका ज्ञान नहीं है एवं भेदभाव न होनेके कारण जिनका कोई शत्रु या उदासीन (अर्थात् न शत्रु और न मित्र) नहीं है, सब मित्रही मित्र हैं, उनके लिये कोई भी ऐसी बात नहीं है जो किसीसे छिपाने योग्य हो । इसके सिवा यदि भेदभाव भी हो, तौ भी उदासीनको ही शत्रुके समान छोड़ना आवश्यक है । सुहृद्गण तो आत्मीय होते हैं, उन हितचिन्तक सुहृदोंसे हरएक काममें अवश्य सम्मति लेनी चाहिये ॥४॥५॥ सब मनुष्य दो प्रकारके कर्म करते हैं, ज्ञात और अज्ञात । जिनका फलाफल और तत्त्व पहले जान लिया जाता है वे कर्म ज्ञात हैं और जो विना विचारे किये जाते हैं वे अज्ञात हैं । ज्ञात कर्म भलीभाँति सिद्ध होते हैं और अज्ञातकर्म वैसे सुसिद्ध नहीं होते ॥ ६ ॥ आपका यह यज्ञ शास्त्रोक्त है, या आपलोग लौकिक रीतिके अनुसार इसे करते हैं? सो मुझसे समझाकर कहो” ॥७॥ नन्दने कहा । “पुत्र, भगवान् इन्द्र वर्षा करने

वाले हैं। मेघ उनकी प्रिय मूर्त्ति हैं। वे मेघ प्राणियोंको प्रसन्न करनेवाला जलरूप जीवन देते (बरसते) हैं ॥ ८ ॥ उन मेघोंके स्वामी इन्द्र जो वर्षा करते हैं उस वर्षाके जलसे उत्पन्न पदार्थों (अन्नादि)के द्वारा हमलोग यह यज्ञ करके उन (इन्द्र) का पूजन करते हैं ॥ ९ ॥ यज्ञ करनेके पीछे जो अन्न बच रहता है उससे धर्म अर्थ और कामकी सिद्धि करते हुए मनुष्य अपने जीवनकी रक्षा करते हैं। लोगोंकी वृत्तियों और व्यवसायोंकी आशा वर्षा ही पर निर्भर है, क्योंकि बिना वर्षाके खेती होना असम्भव है; जोकि सबका मूलकारण है ॥ १० ॥ यह हमारी रीति बहुत कालसे चलीआती है। जो कोई काम, द्वेष, भय या लोभके वश होकर इस धर्मको छोड़देता है उसका मंगल कभी नहीं होता" ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! नन्दआदि गोपोंके कथनको सुनकर कृष्णने इन्द्र पर व्रजवासियोंके हृदयमें कोप उपजाते हुए पितासे कहा कि—"पिता! सब प्राणी अपने २ कर्मके अनुसार जन्मते और मरते हैं एवं कर्मानुसार ही सुख, दुःख, भय और मङ्गल पाते रहते हैं ॥१२॥१३॥ इसके सिवा यदि कोई ईश्वर है भी, जो स्वयं कर्मोंमें न लिप्त रहकर औरोंको उनके कर्मोंका फल देनेवाला है, तो वह कर्मकरनेवालेकाही ईश्वर है, उसीको कर्मानुसार फल देगा। किन्तु जो कोई कर्म ही नहीं करता उसके लिये क्या करसक्ता है? ॥ १४ ॥ इसलिये जीवोंको जब अपने कर्मोंका ही अनुसरण करना पड़ता है तब उनको इन्द्रसे क्या प्रयोजन है? पूर्वसंस्कारके अनुसार मनुष्योंके भाग्यमें जो है उसको वह इन्द्र कभी अन्यथा नहीं कर सक्ते ॥ १५ ॥ सब मनुष्य स्वभावके ही वशवर्ती हैं, स्वभावका ही अनुगमन करते हैं। ये सब देवता, असुर और मनुष्य स्वभावके वशमें हैं, स्वभावहीके अनुसार चलते हैं ॥ १६ ॥ यह जीव, कर्मोंहीके आधीन होकर उत्तम और अधम शरीरोंको पाता और अपने कर्मोंका फल भोगता है तथा यथासमय उन शरीरोंको छोड़ देता है। कर्मोंहीके अधीन रहकर ये जीव परस्पर एकके साथ एक शत्रुता, मित्रता या उदासीनताका व्यवहार करते हैं। इसलिये कर्म ही सबका गुरु और ईश्वर है ॥ १७ ॥ जब स्वभाव-सिद्ध कर्म ही सब फलोंका कारण है तब कर्म ही केवल पूजनीय है। इस लिये प्राणियोंको चाहिये कि स्वभावके अनुसार अपने कर्मका पालन करें और उसीका पूजन करें। जिसके द्वारा सुखपूर्वक जीविकानिर्वाह हो वही प्राणियोंका इष्टदेव है ॥ १८ ॥ जैसे परपुरुषगामिनी कुलटा स्त्री, उपपति(पर पुरुष)से सुख नहीं पा सक्ती वैसे ही जो लोग जिसकी कृपासे जीविकानिर्वाह करते हैं उसे छोड़ कर दूसरेको भजते हैं उनका उससे अपने मंगलकी आशा करना भूल है ॥ १९ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको चाहिये कि वे क्रमशः 'वेदाध्ययन,' 'पृथ्वीपालन,' 'वार्त्ता' और द्विजोंकी सेवासे अपनी २ जीविका चलावें ॥२०॥ वैश्योंकी 'वार्ता'वृत्तिके चार भेद हैं—१ खेती,

२ बनिज, ३ गऊ पालना और ४ ब्याज चलाना। उनमें हम लोग गऊ पालनेवालने हैं, यही हमारी जीविका है ॥२१॥ सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण—इन्ही तीनो गुणोंसे सृष्टिकी उत्पत्ति, रक्षा और संहार होता है। यह चराचर जगत् ब्रह्माण्ड, रजोगुणकी प्रेरणासे परस्पर उत्पन्न होता है ॥ २२ ॥ ये मेघ भी रजोगुणकी प्रेरणासे सर्वत्र जलकी वर्षा करते हैं। जलसे अन्न उपजता है और उसी अन्नसे सबका पालन होता है। इसमें महेन्द्र क्या कर सक्ते हैं? इसके सिवा हमारे पुर, जनपद, गाँव या घर कुछ भी नहीं है–हम वनवासी हैं। इसलिये इस यज्ञमें गऊ, ब्राह्मण और गोवर्द्धन गिरिका ही पूजन करना योग्य है। आप लोगोंने इन्द्रयज्ञके लिये जो सामग्री एकत्र की है उससे गिरिराजका पूजन करिये ॥२३॥ ॥ २४ ॥ २५ ॥ इससे पायस, पुआ, पूरी, हलवा, भाँति भाँति के पकवान और मिठाई बनाओ, सब गौवोंका दूध दुह कर एकत्र करो ॥ २६ ॥ भली भाँति वेद-पाठी ब्राह्मणोंके द्वारा होम करा कर अग्नियोंको तृप्त करो और ब्राह्मणोंको भाँति २ के अन्न खिला कर, गोदान करके, दक्षिणाएँ देकर प्रसन्न करो ॥ २७ ॥ श्वपच और चाण्डाल और पतित पातकियोंको भी यथायोग्य अन्न देकर तृप्त और सन्तुष्ट करो। गौवोंको हरी २ घास और उत्तम अन्न खिलाओ, फिर गिरिराजका भोग लगाओ ॥ २८ ॥ तदनन्तर भोजन करके उत्तम वस्त्र और आभूषण धारण कर सुगंधित चन्दन लगाओ और गऊ, ब्राह्मण, अग्नि व पर्वतकी प्रदक्षिणा करो ॥ २९ ॥ पिता, मेरी सम्मति तो यही है, रुचे तो इसीके अनुसार सब काम करिये। यह यज्ञ, गौवोंको, ब्राह्मणोंको, गिरिराजको और मुझको प्रिय है" ॥ ३० ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। कालरूप भगवान्‌ने इन्द्रका मद मिटानेकी इच्छासे जो कहा उसको सुनकर नन्दआदि गोपोंने भी बहुत बड़ाई करते हुए प्रसन्नतापूर्वक मान लिया ॥ ३१ ॥ भगवान्‌के कथनानुसार उन्होने यज्ञका आरंभ किया। पहले स्वस्त्ययनपाठ कराकर सादर सब सामग्री ब्राह्मणोंको दी, फिर गौवोंको हरी २ घास और और २ अच्छा चारा दिया। तदनन्तर गोधनको आगे कर सब लोग गिरिराजकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ भली भाँति श्रृंगार किये हुए गोपियाँ भी बैलोंके छकड़ों पर चढ़ कर श्रीकृष्णकी लीलाओंको गाती हुई गिरिराजकी प्रदक्षिणा करने लगीं। ब्राह्मणगण भी प्रसन्न होकर शुभ और अमोघ आशीर्वाद देने लगे ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णजी भी गोपोंको विश्वास दिलानेके लिये गिरिराजके ऊपर दूसरे विशालरूपसे प्रकट हुए और "मैंही गिरिराज हूँ" कहकर सब सामग्री दोनो हाथोंसे खाने लगे ॥ ३५ ॥ उस समय कृष्णचन्द्रने व्रजवासियोंके साथ स्वयं अपने दूसरे शरीरको प्रणाम किया और गोपोंसे कहने लगे कि "अहो, देखो गिरिराजने साक्षात् प्रकट होकर हमपर दया दिखाई है। यह जब चाहे जैसा रूप धर सक्ते हैं। वनमें रहनेवाले जो प्राणी इनका निरादर

करते हैं, इनके कोपसे उनका विनाश हो जाता है । हम सब आओ अपने और सम्पूर्ण व्रजके कल्याणके लिये इनको प्रणाम करें" ॥३६॥३७॥

इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रणोदिताः ॥
तथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः ॥ ३८ ॥

श्रीकृष्णकी आज्ञाके अनुसार इसप्रकार यथाविधि गऊ, ब्राह्मण और पर्वतका पूजन करके सब गोप कृष्णचन्द्रके साथ व्रजको लौट गये ॥ ३८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंश अध्याय ।

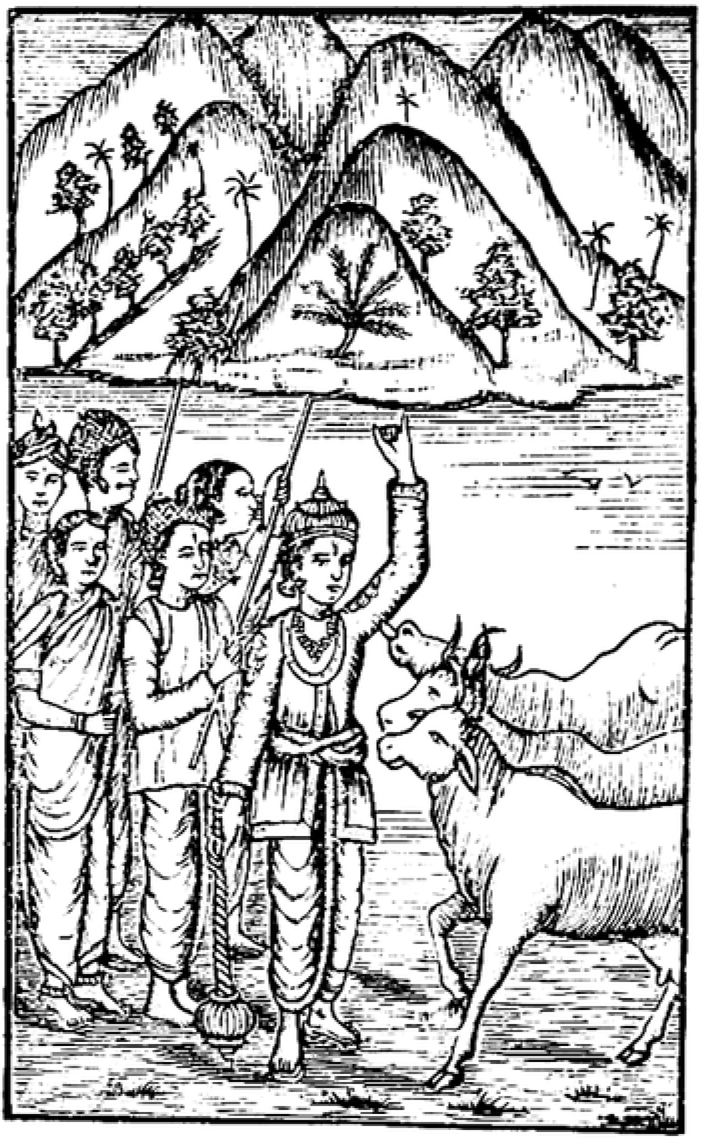
गोवर्द्धन–धारण ।

श्रीशुक उवाच–इन्द्रस्तदात्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप ॥
गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप सः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज! इन्द्रने अपने यज्ञका न होना और उसी सामग्रीसे गिरिराजकी पूजा होना जानकर कृष्णके वशवर्त्ती नन्द आदि गोपों पर कोप किया ॥ १ ॥ उसी समय अपनेको ईश्वर माननेवाले कुपित इन्द्रने प्रलय करनेवाले संवर्तकनाम मेघोंके मण्डलको व्रजपर चढ़ाई करनेके लिये भेजा । इन्द्रने उनसे कहा–"अहो! वनमें रहनेवाले गोपोंके धन–ऐश्वर्य्यसे उत्पन्न गर्वका माहात्म्य तो देखो! उन्होने एक साधारण मनुष्य कृष्णके बल पर भूल कर देवहेलन कर डाला! जैसे कोई २ मंदमति जन आत्मज्ञान-विद्याको छोड़ कर अन्य नाममात्रकी नावके समान पार लगानेको असमर्थ जो कर्ममय यज्ञ हैं उनके द्वारा अपार संसार सागरके पार जाना चाहे वैसे ही गोपोंने आज वाचाल, बालक, अविनीत, पण्डिताभिमानी, अज्ञ मनुष्य कृष्णके सहारे मेरे विरुद्ध होकर मेरा अप्रिय किया है ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ये गोप लक्ष्मीके मदसे मत्त होरहे हैं, उस पर कृष्णने और भी इनको बढ़ावा दे रक्खा है । हे मेघो! शीघ्र व्रजको जाओ और इनके ऐश्वर्यमदको दूर करो एवं पशुओंका संहार कर डालो ॥ ६ ॥ मैं भी अभी नन्दव्रजका नाश करनेके लिये महापराक्रमी उन्चास मरुद्गणसहित ऐरावत गजराज पर चढ़ कर वहाँ आता हूँ" ॥ ७ ॥ जिनके बन्धन छूट गये हैं वे मेघ इस प्रकार इन्द्रकी आज्ञा पाकर बड़े वेगसे व्रजमें जाकर घोर वर्षा करनेलगे, जिससे नंदका गोकुल भर पीड़ित और व्याकुल हो उठा ॥ ८ ॥ वारम्वार बिजलियाँ चमकने लगीं और भयानक बिजलियोंकी

कड़क हृदयोंको दहलाने लगी। तीव्र वायुके झकोरोंसे इतस्ततः संचालित मेघ-समूह शिलाओं(ओलों)की वर्षा करने लगे ॥ ९ ॥ वे मेघ, निरन्तर हाथीकी सूँड़के समान स्थूल जलधाराएँ बरसाने लगे। देखतेही देखते पृथ्वी जलराशिसे परिपूर्ण हो गई। उस समय कहीं भी ऊँचा नीचा नहीं जान पड़ताथा, क्योंकि पृथ्वी जलमय हो रही थी ॥१०॥ महा प्रचण्ड आँधी और वर्षाके मारे पशुगण काँपने लगे। तब शीतसे पीड़ित गोप और गोपियाँ श्रीकृष्णकी शरणमें आईं ॥ ११ ॥ बालकोंको छातियोंमें छिपाए अपने शिरोंको शिलाओंकी बौछारसे बचाते और काँपते हुए वर्षासे पीड़ित गोपगोपीगण, श्रीकृष्णके चरणोंकी शरणमें आकर कहने लगे कि-"हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाभाग! हे प्रभो, आप ही इस गोकुलके नाथ हैं। हे भक्तवत्सल! अब कुपित इन्द्रसे हमारी रक्षा करो" ॥ १२ ॥ १३ ॥ सारे गोकुलको शिलाओंकी अत्यन्त वर्षासे पीड़ित तथा अचेत देख कर भगवान्‌ने समझ लिया कि यह सब कुपित इन्द्रकीही करतूत है ॥१४॥ भगवान्‌ने कहा कि "हमने इन्द्रका यज्ञ नहीं किया इसी लिये वह रुष्ट होकर आज प्रचण्ड आँधीके झोंके, शिलाओंकी बौछार और बिना ऋतुकी घोर वर्षासे व्रजको नष्ट करदेनेपर उद्यत हैं ॥ १५ ॥ अस्तु, मैं अभी योगबलसे इसका प्रतीकार करता हूँ। ये इन्द्रादि देवगण, मोहवश अपने स्वतन्त्र ईश्वर होनेका घमंड रखते हैं। मैं अभी इनके ऐश्वर्य्यगर्वरूप मोहको मिटाये देताहूँ ॥ १६ ॥ जो कि सद्भावसे युक्त देवता हैं उनको "हम ईश्वर हैं"-यह अभिमान कभी नहीं होसक्ता। मेरे द्वारा मानभंग होना असत्‌जनोंके लिये हितकारी होता है, क्योंकि फिर वे शान्त होजाते हैं और उनका भ्रम मिट जाता है ॥ १७ ॥ इस व्रजका मैंही स्वामी हूँ, ये सब व्रजवासी मेरी शरणमें आये हैं, मैं इनको अपना परिवार समझता हूँ। इसलिये मैंने निश्चय करलिया है कि अपने योगबलसे इन सबकी रक्षा करूँगा" ॥ १८ ॥ यों कहकर कृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको ऊपर उठा लिया; जैसे कोई बालक खेलते २ धरतीके फूलको धरतीसे उखाड़ ले ॥१९॥ यों गोवर्द्धनको उठाकर भगवान्‌ने गोपोंसे कहा कि "हे पिता! हे माता! हे व्रजवासियो! इस गिरिराजके गढ़ेमें आपलोग अपने गोधनसहित सुखसे आकर बैठो ॥ २० ॥ आप लोग डरना नहीं कि मेरे हाथसे गिरिराज गिरपड़ेगा। अब इस घोर वर्षा और प्रचण्ड आँधीसे भी तुमको रत्ती भर भय नहीं है, क्योंकि उस विपत्तिसे बचानेहीके लिये मैंने यह यत्न किया है" ॥२१॥ इस प्रकार कृष्णके मधुर वचनोंसे आश्वासित सब व्रजवासी लोग गोधन, भृत्य, पुरोहित आदिके साथ सुखसे उस गिरिगर्त्तमें आगये। सबने अपनी २ सामग्री (सामान-असबाब) भी छकड़ोंमें भरकर वहीं रख ली। किसीके लिये स्थानका सङ्कोच नहीं हुआ ॥२२॥ श्रीकृष्णको न तो भूख थी, न प्यास थी, न किसीप्रकारकी व्यथा थी, न सुखकी इच्छा थी, न विश्राम

की अपेक्षा थी। इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र सात दिन तक बराबर गोवर्द्धन पर्वतको उसी



हाथपर उठाये रहे, एक पग भी इधर उधर नहीं हटे। सब गोपियाँ और गोपलोग अचरजभरी दृष्टिसे कृष्णकी ही ओर एकटक निहारते रहे ॥ २३ ॥ कृष्णके इस अद्भुत योगबलको देख कर इन्द्र भी अत्यन्त विस्मित हुए। इन्द्रका संकल्प भ्रष्टहो गया, तब उन्होने अभिमानहीन होकर अपने मेघोंको वर्षा करनेसे निवृत्त किया॥२४॥ उसी समय आकाशमें एक भी मेघ नहीं रहा, प्रचण्ड आँधी और वर्षा रुकगई एवं सूर्य्य निकल आये। यह देखकर गिरिवरधारीने कहा कि "हे गोपगण! अब कुछ भय नहीं है,आँधी और वर्षा-का चिन्ह भी नहीं रहा, सब चढ़ी हुई नदियोंका जल उतर गया। तुम अपनी २ धन-सम्पत्ति, स्त्री और बालक लेकर बाहर निकलो" ॥ २५ ॥ ॥२६॥तब स्त्री, बालक और बूढ़ों सहित सब गोप लोग, अपने २ गोधनको आगे किये छकड़ोंपर सामग्री लादकर धीरे २ गिरिगर्त्तसे बाहर निकले ॥ २७ ॥ प्रभु भगवान्‌ने भी सबके सामने ही गिरिराजको पहलेकी भाँति लीलापूर्वक उसी स्थानपर स्थापित करदिया ॥ २८ ॥ प्रेमसे पूर्ण सब व्रजवासी कृष्णके निकट आये और जिसको जिस प्रकार उचित था उसने आलिंगन (गलेलगाना) आदिसे उसी प्रकार उनका सत्कार किया। गोपियोंने भी आनन्दसे स्नेहपूर्वक दही, अक्षत और जलके छीटोंसे कृष्णका पूजन किया और मांगलिक आशीर्वाद दिये। स्नेहसे विह्वल नंद, यशोदा, रोहिणी और महाबलशाली बलभद्रने कृष्णको गलेसे लगालिया

और शुभ आशीर्वाद दिये ॥ २९ ॥ ३० ॥ स्वर्गमें देवता, साध्य, सिद्ध, गंधर्व, और चारणलोग स्तुति करते हुए भगवान् पर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३१ ॥ स्वर्गमें देवगण, शंख और दुंदुभी आदि बाजे बजाने लगे और हे महाराज! तुम्बुरु आदि श्रेष्ठ गंधर्वगण हरिगुणगान करने लगे ॥ ३२ ॥

ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो राजन्स गोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः॥
तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका गायन्त्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः॥३३॥

महाराज! तदनन्तर अपने भक्त अनुरक्त गोपगणसे घिरे हुए बलभद्रसहित श्रीकृष्णजी व्रजमें गये। इसी प्रकार समय २ पर किये गये मनोहर कृष्णके चरित्रोंको आनन्दपूर्वक गाती हुई गोपियाँ भी उनके साथही साथ गईं ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंश अध्याय।

नन्दसे गोपोंकी बातचीत।

श्रीशुक उवाच—एवंविधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते ॥
अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। महाराज! गोप लोग कृष्णके पराक्रमको जानते नहीं थे, अतएव इस प्रकार कृष्णके अनेक अद्भुत चरित्र देख कर उनको बड़ा विस्मय हुआ और वे एकत्र होकर कहने लगे ॥१॥ गोपोंने कहा। "इस बालक कृष्णके सभी कर्म बड़े अद्भुत हैं! हम ग्रामीण गोपोंके यहाँ इसका जन्म कैसे हो सक्ता है? कर्म देखनेसे इसका गोपजातिमें जन्म लेना इसके लिये अयोग्य प्रतीत होता है ॥ २ ॥ जैसे गजराज किसी कमलको खेलते २ उखाड़ कर ऊपर उठाले वैसे ही यह सात वर्षका बालक लीलापूर्वक गिरिराजको एक हाथसे उठाकर सात दिन तक कैसे लिये खड़ा रहा? ॥३॥ काल, जैसे जीवकी आयुको हरलेता है वैसेही इसने बाल्यावस्थामेंही आँख मूँद कर महाबलशालिनी पूतनाके प्राण दूधके साथही कैसे खींच लिये? ॥४॥ फिर जब यह तीन महीनेका था उस समय छकड़ेके नीचे सोरहाथा। इसने रोते २ दोनो पैर ऊपरको उछाले, तब इसके कोमल पैरोंकी ठोकरसे उतना भारी छकड़ा कैसे उलट कर चूर २ हो गया? ॥५॥ फिर यह एक वर्षकी अवस्था होने पर एक दिन बैठा हुआथा—उसी समय तृणावर्त्त दैत्य इसे उठा कर आकाशको लेचला। किन्तु मार्गहीमें इसने उसका गला दोनो हाथोंसे पकड़ कर दबाया, जिसकी व्यथासे व्याकुल होकर वह मरगया—यह भी इसने अद्भुत

कर्म किया! ॥ ६ ॥ एक दिन माखनचोरीमें इसको माताने उलूखलसे बाँधदिया। इसने द्वारपर जाकर यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें उलूखल डाल कर बाहुओंके झिटकेसे उन प्राचीन वृक्षोंको कैसे गिरा दिया? ॥ ७ ॥ इसने वनमें बलभद्र और अन्यान्य बालकोंके साथ बछड़े चराते २ बकासुरको अपने मारनेके लिये उद्यत देखा और चट चोंचसे फाड़ कर उस शत्रुको यमपुर भेजदिया! क्या यह साधारण बालकका काम है? ॥ ८ ॥ एक दिन वत्सासुर मारनेकी इच्छासे आया और वत्सरूप धर कर बछड़ोंके झुंडमें मिलगया। इसने लीलापूर्वक उसको पकड़ कर कैथेके वृक्षों-पर पटक दिया और कैथेके अनेक फल पृथ्वीमें गिरा दिये! ॥ ९ ॥ इसने बल-देवके साथ एक दिन गर्दभासुरको और उसके सजातीय असुरोंको मार कर पके हुए फलोंसे पूर्ण तालवनको निर्भय स्थान बनादिया! ॥ १० ॥ बलशाली बलभद्रके हाथों उग्र प्रलम्बासुरका बध कराकर इसने व्रजके पशु और गोपोंको वनमें लगे हुए भयानक दावानलसे बचा लिया! ॥ ११ ॥ अत्यन्त तीक्ष्ण विषवाले सर्पको दर्पहीन और अपने अधीन कर इसने बलपूर्वक उस कुंडसे निकाल दिया और यमुनाजलको विषशून्य बनाकर पीने योग्य कर दिया! ॥ १२ ॥ नन्दजी! इसके सिवा आपके बालक पर हम सब व्रजवासियोंका ऐसा अटल अनुराग क्यों है? और इसको भी हमलोगों पर स्वाभाविक स्नेह क्यों है? ॥ १३ ॥ हे व्रजराज! कहाँ सात वर्षका बालक और कहाँ महापर्वतको उठाना और लिये खड़े रहना!! यही देख कर हमको 'कदाचित् यह बालक तुम्हारा पुत्र नहीं है'—ऐसा सन्देह हो रहा है" ॥१४॥ नन्दने कहा—"गोपगण! इस बालकके लिये जो कुछ गर्गाचा-र्यजी मुझसे कह गये हैं सो मैं तुमसे कहताहूँ—सुनो। तुम्हारे सब संदेह दूर हो जायँगे ॥१५॥ यह बालक हरएक युगमें शरीर धारण करता है। इसके शुक्ल रक्त और पीत ये तीन वर्ण क्रमशः होचुके हैं। इस समय कृष्ण वर्णसे इसका अवतार हुआ है ॥ १६ ॥ इस तुम्हारे पुत्रने पहले कभी वसुदेवके यहाँ जन्मलिया है—इसीकारण इसको विद्वान् लोग 'श्रीमान् वासुदेव' कहते हैं ॥ १७ ॥ तुम्हारे पुत्रके गुण और कर्म्मोंके अनुसार बहुतसे नाम और रूप हैं। उन को मैं जानता हूँ—और लोग नहीं जानते ॥ १८ ॥ यह गोधन और गोकुलवासियोंको आनन्द और इससे सब प्रकार तुम्हारा कल्याण होगा। इसकी सहायतासे तुम्हारा सब विपत्ति-योंसे छुटकारा होगा ॥ १९ ॥ हे व्रजराज! पहले जिस समय दस्युजन साधुओंको सतातेथे, कोई राजा या रक्षा करनेवाला न था, उस समय इसने सबकी रक्षा की है—इसीके अनुग्रहसे प्रजाने समृद्ध हो कर दस्युगणका दमन किया ॥२०॥ जो भाग्य-शाली लोग इससे प्रेम करते हैं वे शत्रुओंसे परास्त नहीं होते, जैसे विष्णु जिनके पक्षमें हैं वे देवगण, दैत्योंसे परास्त नहीं होते ॥ २१ ॥ हे नन्द! इस कारण यह तुम्हारा बालक, गुणोंमें, श्रीमें, कीर्त्तिमें और प्रभावमें नारायणके

समान है । इसके अद्भुत चरित्र देख कर विस्मय न करना ॥ २२ ॥ यों मुझसे कह कर गर्गजी अपने आश्रमको चलेगये । तबसे मैं क्लेशसे छुड़ानेवाले कृष्णको नारायणका अंश मानता हूँ" ॥ २३ ॥ नन्दके मुखसे गर्गजीके वाक्योंको सुनकर सब व्रजवासी प्रसन्न हुए, उनका सब सन्देह व विस्मय जाता रहा और वे कृष्ण-चन्द्र व नन्दकी प्रशंसा करने लगे ॥ २४ ॥

देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मपर्षानिलैः
सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वाऽनुकम्प्युत्स्मयन् ॥
उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलीन्ध्रं यथा
बिभ्रद्गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित्प्रीयान्न इन्द्रो गवाम् ॥ २५ ॥

यज्ञभंग होनेसे कुपित इन्द्र जब व्रज पर घोर वर्षा करने लगे और वज्रपात, शिलाओंकी बौछार व प्रचण्ड आँधीसे सब व्रजवासी नारी-नर सहित बालक, वृद्ध तथा गऊ आदि पशुओंके अवसन्न हो पड़े, तब बालक जैसे खेलते २ धरतीके फूलको उखाड़ लेता है वैसेही जिन्होने करुणावश हो कर लीलापूर्वक हँसते २ गोवर्द्धन पर्वतको एक हाथसे उठालिया एवं आप ही जिसके एक रक्षक हैं उस व्रजको बचालिया वही इन्द्रका घमंड घटानेवाले घनश्याम गोविन्द हमपर प्रसन्न हों ॥ २५ ॥

इति श्रीभागवते पूर्वार्धे दशमस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंश अध्याय ।

कृष्णका अभिषेक ।

श्रीशुक उवाच—गोवर्धने धृते शैल आसाराद्रक्षिते व्रजे ॥
गोलोकादाव्रजत्कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन् ! श्रीकृष्णजीने गोवर्द्धन पहाड़ उठा कर व्रजको बचालिया, तब गोलोकसे आई हुई सुरभी (गऊ)को लेकर इन्द्रदेव एकान्तमें कृष्णके पास आये । इन्द्रने कृष्णकी अवहेला की थी, इसी अपराधसे वह लज्जित हो रहे थे । अतुलिततेजधारी कृष्णका अपूर्व प्रभाव देख सुनकर इन्द्रको विस्मित होना पड़ा और उनके मनसे यह घमंड जाता रहा कि "मैं ही त्रिलोकीका ईश्वर हूँ" । इन्द्रने आते ही सूर्य्यके समान प्रकाशमान अपना किरीट मुकुट कृष्णके चरणों पर धर दिया और हाथ जोड़कर कहा कि—॥१॥२॥३॥ "भगवन् ! आपका स्वरूप विशुद्ध-सत्त्वमय, शान्त, सर्वदा एकरूप, अतएव पूर्णज्ञानसे युक्त अर्थात्

सर्वज्ञ है–उसमें रजोगुण या तमोगुणका लेश भी नहीं है। मायाका प्रपञ्च यह संसार आपमें नहीं है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति अज्ञानसे है और आप ज्ञानमय हैं–अज्ञानसे परे हैं ॥ ४ ॥ अतएव हे ईश्वर! जो लोभ आदि भाव अज्ञान और शरीरके सम्बन्धसे उत्पन्न हैं तथा अन्य शरीर मिलनेके कारण हैं एवं अज्ञानके चिन्ह हैं वे आपमें कैसे रह सक्ते हैं? तथापि आप समय २ पर धर्म्मकी रक्षा और दुष्टोंका दमन करनेके लिये दण्ड देते रहते हैं ॥५॥ आप जगत्के पिता, गुरु, अधीश्वर एवं दुर्निवार्य्य काल हैं। आप लोकोंके हितके लिये अपनी ही इच्छासे अनेक शरीर धारण कर, जो मेरे समान मूढ़जन अपनेहीको जगत्का ईश्वर मानते हैं उनके मिथ्या घमंडको दण्डद्वारा मिटाते हुए, क्रीड़ाकरते हैं ॥६॥ जो मेरे ऐसे अज्ञ लोग अपनेको जगदीश मानकर अभिमानसे परिपूर्ण होते हैं वे भयके समय भी आपको निर्भय देख कर तुरन्त ही मदहीन हो जाते हैं और आर्य्यमार्गको गहते हैं आर्थात् आपको भजते हैं। अतएव आपकी चेष्टाही दुष्टोंके लिये दंडरूप है ॥ ७ ॥ मैं ऐश्वर्य्यके मदसे उन्मत्त हो रहाथा—आपके प्रभावको भलीभाँति नहीं जानताथा, इसी कारण यह अपराध मुझसे हुआ। हे नाथ! मुझ मूढ़मतिके अपराधको क्षमा करिये। ईश्वर! मेरी फिर ऐसी कुमति कभी न हो ॥ ८ ॥ हे अधोक्षज! हे देव! जो स्वयं पृथ्वीके लिये भार हैं और अनेक भूभारोंकी उत्पत्तिके साधनोंका कारण हो रहे हैं उन्ही असुरसेनापतियोंके संहारके लिये और जो लोग आपके चरण-सेवक हैं उनके मङ्गलके लिये आपका यह मनुष्यावतार हुआ है ॥ ९ ॥ आप अन्तर्य्यामी हैं और सर्वत्र बसनेके कारण अखंड हैं। हे यादवोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र! आपको प्रणाम है ॥ १० ॥ आप विशुद्ध ज्ञान-मूर्त्ति हैं, अपनी इच्छासे देहधारण करते हैं। ये सब चराचर जीव आपके रूप हैं, इनका कारण आपही हैं–इसी लिये सर्वभूतमय हैं। आपको प्रणाम है ॥ ११ ॥ मुझको अभिमान था, इसी लिये मेरा क्रोध भी अति प्रचण्ड था। अतएव अपने यज्ञका विनाश देखकर मैंने जलकी वर्षा और उग्र वायुसे व्रज विनष्ट करनेकी चेष्टा की थी ॥ १२ ॥ ईश्वर! आपने मेरा मद दूर करदिया, सो बड़ाही अनुग्रह किया। उद्यम व्यर्थ होनेसे मुझे अपनी शक्तिकी अपूर्णता विदित होगई। अब मैं, ईश्वर, गुरु और आत्मा जो आप हैं उनकी शरणमें आयाहूँ" ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! इस प्रकार जब इन्द्र स्तुति कर चुके तब मेघके समान गंभीर वाणीसे भगवान्ने हँसते हुए कहा ॥ १४ ॥ श्रीभगवान्ने कहा। "इन्द्र! तुम ऐश्वर्य्यके मदसे अत्यन्त मत्त हो गये थे। तुम मेरा स्मरण करो, इसी लिये मैंने अनुग्रह करते हुए तुम्हारे यज्ञको रोक दिया ॥ १५ ॥ ऐश्वर्य्य और श्रीके मदसे जो अंधा हो रहा है वह मुझ दण्डपाणि ईश्वरको नहीं देख पाता। ऐसे मदान्धोंमेंसे जिस पर मैं अनुग्रह करना चाहताहूँ उसकी सम्पत्ति हर

लेता हूँ, तब उसके ज्ञाननेत्र खुलजाते हैं ॥ १६ ॥ इन्द्र! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम अपने लोकको जाओ और मेरी आज्ञाका पालन करते हुए अभिमानहीन होकर अपना कार्य्य करो" ॥ १७ ॥ इसके बाद उदार चित्तवाली सुरभीने अपने सन्तानों सहित आकर गोपरूपी कृष्ण ईश्वरको प्रणाम किया ॥ १८ ॥ सुरभीने कहा। "हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महायोगी! हे विश्वरूप और विश्वको उत्पन्न करनेवाले लोकनाथ अच्युत! आपने इन्द्रके क्रोधसे हो रहे संहारसे हमारी रक्षा करके हमको सनाथ किया ॥ १९ ॥ आपही हमारे परमदेव हैं, अतएव हे जगन्नाथ! गऊ, ब्राह्मण, देवता और साधुजनोंके मंगलके लिये आपही हमारे इन्द्र होइये ॥ २० ॥ ब्रह्माजीकी आज्ञासे हम अपना इंद्र बनाकर आपका अभिषेक करेंगी। हे विश्वरूप! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये आपका यह अवतार हुआ है" ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! यों कहकर सुरभीने अपने दुग्धसे पहले कृष्णचन्द्रका अभिषेक किया। तदनन्तर देवमाता अदिति आदिकी आज्ञासे इन्द्रने भी देवगणके साथ ऐरावतके लाये हुए आकाशगंगाके पवित्र जलसे दाशार्ह कृष्णका अभिषेक किया और "गोविन्द" नाम रक्खा ॥ २२ ॥ २३ ॥ तुम्बुरु, नारद आदि गन्धर्व्व और विद्याधर, सिद्ध, चारण आदि वहाँ आकर त्रिलोकपापहारी हरिका यश गाने आगे और अप्सराएँ प्रसन्न हो कर नृत्य करने लगीं ॥ २४ ॥ प्रधान २ देवगण स्तुति करते हुए हरिके ऊपर स्वर्गीय अद्भुत फूलोंकी वर्षा करने लगे। तीनो लोकोंको परम आनन्द हुआ। गौवोंके स्तनोंसे उमंगके कारण आपही आप बह रहे दूधसे पृथ्वी भीगगई ॥२५॥ नदियोंमें जलके स्थान पर भाँति २ के रस (दुग्ध आदि) बहने लगे। वृक्षोंके कोटरोंसे मधु बहने लगा। विना जोते बोये सब औषधियाँ जिनमें होती हैं उन पर्वतोंने गर्भगत मणियोंको प्रकटरूपसे धारण किया ॥ २६ ॥ हे कुरुनन्दन! कृष्णाभिषेक होने पर, जिनमें स्वाभाविक परस्पर वैर होता है वे क्रूर जीव भी वैरविहीन हो गये ॥२७॥

इति गोगोकुलपतिं गोविन्दमभिषिच्य सः॥
अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम्॥ २८॥

इस प्रकार गोगण और गोकुलके स्वामी गोविन्दका अभिषेक करके उनकी आज्ञा पाकर देवर्षियोंके साथ पुरन्दर इन्द्र अपने स्वर्गलोकको गये ॥ २८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंश अध्याय ।

वरुणालयसे नन्दको छुड़ालाना ।

श्रीशुक उवाच—एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ॥
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजीने कहा । महाराज ! गोपराज नंदने एकादशीके दिन उपवास किया और जनार्दनकी पूजा की एवं द्वादशीके दिन बहुत ही थोड़ी द्वादशी होनेके कारण (द्वादशीमें ही पारणा करना चाहिये—इस लिये) अरुणोदयके पहले ही आसुरी वेलाका ख्याल न करके स्नान करनेके लिये यमुनाजलमें प्रवेश किया । इसी लिये एक वरुणका किंकर जलचारी असुर नंदको वरुणके निकट लेगया ॥१॥२॥ इधर साथ आये हुए गोपगण नंदको जलके बाहर निकलते न देख कर "हे कृष्ण ! ! हे बलभद्र ! ! !" कह कर ऊँचे स्वरसे चीत्कार करने लगे । पिताको वरुण लेगये; यह सुन कर कृष्णचन्द्रने डरे हुए गोपोंको "डरो नहीं—मैं उनको अभी लाता हूँ" कह कर धैर्य्य दिया । उसी समय कृष्णचन्द्र वरुणके पास गये । हृषीकेश हरिको आये देख कर लोकपाल वरुणने परमप्रसन्नतापूर्वक महा समारोहसे उनका पूजन किया ॥३॥४॥ **वरुणजीने कहा** । "प्रभो ! आज मेरा जन्म लेना सफल हुआ, आज वास्तवमें मुझको महासम्पत्ति (अथवा मनोरथ) मिलगई । भगवन् ! आपके चरणोंकी सेवा करनेवाले जन मोक्षपदको पाते हैं । अतएव आज मुझको भी संसार से मुक्ति मिलगई ॥ ५ ॥ ईश ! आपका ऐश्वर्य्य निरतिशय अर्थात् सर्वोत्कृष्ट है । आप पूर्णरूप, परमात्मा हैं । भ्रम उपजानेके लिये लोकसृष्टिकी कल्पना करनेवाली माया आपमें नहीं सुन पड़ती, अर्थात् आपके निकट अविद्यमान सी रहती है । आपको प्रणाम है ॥ ६ ॥ कार्य्याकार्यसे अनभिज्ञ महामूढ़ मेरा भृत्य, विना जाने इन आपके पिताको यहाँ ले आया है—अतएव हे प्रभो ! उसके अपराधको क्षमा करिये ॥ ७ ॥ हे पितृवत्सल गोविंद ! आपके पिता यह हैं, इनको ले जाइये । हे सर्वज्ञ कृष्ण ! मैं भी आपका दास हूँ, मुझ पर भी अनुग्रह करिये ॥८॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । इस प्रकार नम्रताके व्यवहारसे वरुणने ईश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् कृष्णचन्द्रको प्रसन्न किया । तदनन्तर कृष्णचन्द्र भी अपने बंधुओंको आनन्दित करते हुए पिताको साथ लेकर वरुणलोकसे व्रजमें आये ॥ ९ ॥ गोपराज नन्द, वरुणके अदृष्टपूर्व ऐश्वर्य्यको और वरुणके किये हुए कृष्णके प्रति सत्कार, पूजन तथा व्यवहारको देख कर बहुतही विस्मित हुए । नंदने व्रजमें आकर गोपोंसे सब वृत्तान्त कहा ॥ १० ॥ गोपोंने जाना कि कृष्णचन्द्र ईश्वर हैं । यह जान कर वे लोग मनहीमन इस लिये उत्सुक हुए कि "भगवान् कभी हमको भी अपनी सूक्ष्मगति तक पहुँचावेंगे ?" सर्वज्ञ भगवान् आत्मीय गोपोंका यह संकल्प जान गये । तब कृपापूर्वक

उनका उक्त संकल्प सिद्ध करनेके लिये भगवान्‌ने विचारा कि–"इस लोकमें अविद्या कामना और कर्मोंके द्वारा यह जीव, उत्तम और अधम गतियोंमें घूमते रहनेके कारण अपनी गति(तत्त्व)को नहीं जान सक्ता" ॥११॥१२॥१३॥ यों विचार कर करुणावरुणालय हरि, गोपोंको मायासे परे जो अपना वैकुंठलोक है, वहाँ लेगये ॥ १४ ॥ फिर, कोई बाधक न होनेसे जो सत्य है, ज्ञानरूप है, अनन्त है स्वयं प्रकाशमान है, नित्य है, और जिसको गुणसम्बन्ध त्यागने पर एकाग्रचित्त मुनि-जन देख पाते हैं, पहले वही अपना निर्गुण ब्रह्मरूप दिखाया ॥ १५ ॥ ब्रह्महृदमें जा कर वे लोग उसीमें मग्न होगये, तब कृष्णचन्द्रने उनको उससे बाहर किया अर्थात् जैसे समाधिसे जगाया। फिर सगुण ब्रह्म (विष्णु) का लोक उन गोपोंने देखा, जिसको यमुनाके भीतर अक्रूरने भी देखा था ॥ १६ ॥

नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः ॥
कृष्णं च तत्र च्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥ १७ ॥

गोपोंने देखा, वहाँ कृष्णचन्द्र विराजमान हैं और वेद उनकी स्तुति कर रहे हैं। गोपोंको यह देखकर परमानन्द प्राप्त हुआ और वे बहुतही विस्मित हुए ॥ १७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

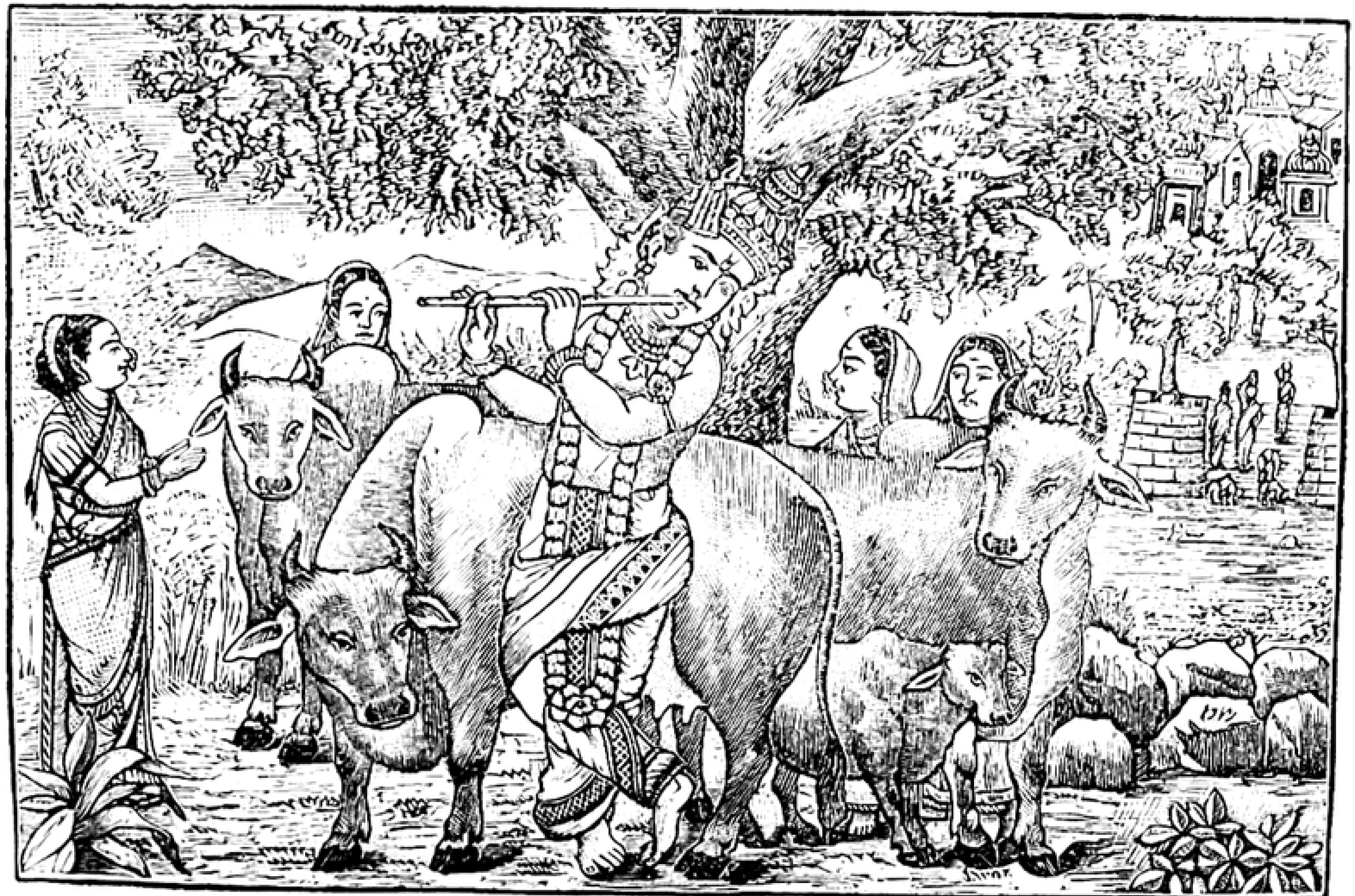
एकोनत्रिंश अध्याय।

रासविहारका आरम्भ।

श्रीशुक उवाच–भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ॥
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। महाराज! भगवान्‌ने गोपकुमारियोंसे यमुनातट पर कहा था कि "आनेवाली शरद् ऋतुकी रातोंमें मैं तुम्हारी कामना पूरी करूँगा"। वे शरद् ऋतुकी सुशोभित रमणीय रात्रियाँ आगईं और फूली हुई मल्लिकाके कुसुम अपनी सुवाससे मनको मोहने लगे। यह देखकर भगवान्‌ने भी योगमायाको अंगीकार करके विहार करनेकी इच्छा की ॥१॥ नायक जैसे बहुत दिन पर बाहरसे घर आकर कुंकुमराग अपनी प्रियाके मुखमें लगाता और उसके तापको हरता है वैसे ही पूर्ण चन्द्रमा अपनी सुखशान्तिमय किरणोंके द्वारा लालिमासे पूर्वदिशाका मुखरञ्जन करते हुए आकाशमें समुदित हुआ। लोगोंके हृदयकमल सूर्य्यके तापसे मुरझा गयेथे सो अब चन्द्रमाके शीतल प्रकाशसे प्रफुल्लित हो उठे ॥ २ ॥ लक्ष्मी देवीके मुखमण्डलके तुल्य शोभाधाम एवं नवीन कुंकुमरागके सदृश अरुण-वर्ण चन्द्रमा पूर्णमण्डलसे आकाशमें प्रकाशमान है और उसकी कोमल किरणोंसे

वृंदावन रंजित होरहा है-यह देख कर श्रीकृष्णचन्द्रजी, बाँसुरी बजाकर व्रजबालाओंके मनोंको हरनेवाले मधुर गीत गाने लगे ॥ ३ ॥ कृष्णने जिनके मनोंको हर लिया है वे व्रजनारियाँ वह कामोद्दीपक गान सुनते ही जहाँ कान्त हैं वहाँ झटपट झपटती हुई चल दीं । वेगसे चलनेके कारण उनके हिलते हुए कुण्डल मुखमण्डलकी छवि बढ़ाते जातेथे । सब स्त्रियाँ अपनी २ ओर चलदीं-मारे उतावलीके किसीने किसीको नहीं बुलाया ॥ ४ ॥ कोई गोपी दूध दुह रही थी; कृष्णकी तान कानमें पड़तेही वह उत्सुकताके कारण दुहना छोड़कर चलपड़ी । कोई चूल्हे पर चढ़ाहुआ दूध बिना उतारे, कोई गेहूँका संयाव (लप्सी या हलवा) चूल्हे ही पर छोड़ कर चल दी ॥ ५ ॥ कोई २ रसोईमें परिवारके लोगोंको भोजन करा रहीथीं, कोई बालकोंको दूध पिला रही थीं, कोई पतियोंकी सेवा कर रहीथीं, कोई भोजन कर रही थीं-वे सब अपना २ काम छोड़ कर कृष्णके पास चलीं ॥ ६ ॥ कोई उबटना लगा रही थीं, कोई चन्दन और अंगराग लगा रही थीं, कोई अंजनसे नयनरंजन कर रही थीं-सब अपना २ शृंगार अपूर्ण ही छोड़ कर जैसे तैसे उलटे सीधे वस्त्र और आभूषण पहन कर कृष्णके पास चलीं ॥ ७ ॥ उनको उनके पिता, पति, भाई और बंधुओंने लाख २ रोका, परन्तु उनके मनोंको तो गोविन्दने हर लियाथा-इस कारण कोई भी न लौटानेसे लौटीं ॥८॥ कुछ गोपियाँ घरोंके भीतर ही रह गईं, बाहर न निकल सकीं, तब उन्होने, आँख मूँद कर जिनका ध्यान नित्य हरघड़ी किया करती थीं उन्ही कृष्णमें मनको लगादिया ॥ ९ ॥ प्यारे कृष्णके दुस्सह विरहके तीव्र तापमें उनके सब अशुभ भस्म हो गये और ध्यानमें प्राप्त कृष्णकी भेंटके परमानन्दसे सब शुभ भी क्षीण हो गये, सुतराम् यद्यपि उन्होने 'जार'बुद्धिसे कृष्णमें मन लगाया, तथापि उक्त रीतिसे सुख दुःख भोगकर वे कर्म्मबन्धनसे मुक्त हो गुणमय शरीर छोड़ कर परमात्मा कृष्णमें लीन हो गईं ॥१०॥ ११ ॥ **राजा परीक्षित्‌ने** कहा ब्रह्मन्! गोपियाँ तो कृष्णको अपना कान्त मानती थीं, उनको कृष्णमें ब्रह्मभाव नहीं था । तब उनको कैसे संसार (जन्म मरण) से मुक्ति मिल गई? क्योंकि उनकी बुद्धि तो मायाके गुणोंमें आसक्त थी ॥ १२ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा** । राजन्! मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ कि "हरिसे शत्रुता करके भी शिशुपाल मुक्त होगया," तब हृषीकेश कृष्णकी प्रिया गोपियोंके मुक्त होनेमें क्या विचित्रता है? ॥ १३ ॥ राजन्! भगवान् कृष्णचन्द्र यद्यपि अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण और गुणोंके नियन्ता हैं, तथापि अपने अनुचरोंके मंगलके लिये समय २ पर सगुणरूपसे प्रकट होते रहते हैं ॥ १४ ॥ कामसे, क्रोधसे, भयसे, स्नेहसे, किसी सम्बन्धसे या भक्तिसे-किसी भी प्रकार जिनका चित्त अच्युतमें लवलीन है वे अवश्य तन्मय हो जाते हैं ॥ १५ ॥ राजन्! योगेश्वरोंके ईश्वर, अजन्मा, भगवान् कृष्णके विषयमें तुमको ऐसा सन्देह न करना



रासविहारके लिये कृष्णकेपास गोपियोंका आना.

चाहिये । कृष्णकी कृपासे जड़ जीव भी तर जाते हैं ॥ १६ ॥ महाराज, भगवान्‌ने देखा कि व्रजनारियाँ अपने पास आकर खड़ी हुई हैं । तब उनको वाक्‌चातुरीसे मोहित करते हुए बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ हरिने कहा ॥ १७ ॥ कि–"महाभागाओ! भले आईं । कहो–हम तुम्हारा क्या प्रिय करें? व्रजमें तो सब कुशल है? इस समय तुम्हारे आनेका कारण क्या है? सो हमसे कहो ॥ १८ ॥ देखो, यह रात्रि बड़ीही घोर है, इसमें भयंकर जीव वनमें विचर रहे हैं । इस लिये हे सुन्दरियो! मेरी सम्मति है कि तुम व्रजको लौट जाओ । तुम्हारा यहाँ ठहरना उचित नहीं है ॥१९॥ तुम्हारे माता, पिता, पुत्र, भाई और पति, तुमको न देख कर इधर उधर खोज रहे होंगे । बन्धुओंको वृथा घबड़ाहटमें न डालो ॥ २० ॥ यदि तुम वनकी शोभा देखने आई हो तो तुमने चन्द्रमाकी किरणोंसे उज्वल एवं फूलोंसे परिपूर्ण वृन्दावन देखलिया और यमुनाजलके संयोगसे शीतल पवनकी मंदगतिसे हिल रहे वृक्षोंके नवपल्लवोंकी शोभा भी भली भाँति निहार ली । बस हे सतियो! देर न करो, शीघ्र व्रज जाकर अपने २ पतियोंकी सेवा करो । तुम्हारे बालक और बछड़े चिल्ला २ कर रो रहे होंगे, उनको जाकर दूध पिलाओ और गौवोंको दुहो ॥ २१ ॥ २२ ॥ अथवा तुम मुझमें मन लगा रहनेके कारण मुझको देखने आई हो तो यह उचित ही है, इसमें कोई दोष नहीं है, क्योंकि मुझसे सभी प्राणियोंको प्रसन्नता प्राप्त होती है ॥ २३ ॥ गोपियो! निष्कपट हो कर अपने स्वामी और स्वामीके बंधुओंकी सेवा करना एवं सन्तानोंका पालन करना ही स्त्रियोंका परम धर्म्म है ॥२४॥ जिन स्त्रियोंको उत्तम गति पानेकी इच्छा हो, उनको चाहिये कि स्वामी बुरे स्वभाववाला, अभागा, वृद्ध, जड़ (बौरा) या दरिद्र हो—किन्तु उसे न छोड़ें । हाँ, यदि उसको हत्या लगी हो–तब उससे अलग रहना उचित है ॥ २५ ॥ जारसेवा कुलकामिनियोंके लिये निंदाका कारण है । यह निन्दित कर्म करनेसे स्त्रियाँ स्वर्गलोक नहीं पातीं, उनकी निन्दा और अकीर्त्ति होती है। इसमें बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं और सदैव भय बना रहता है । कहाँ तक कहैं–यह बड़ा ही तुच्छ कार्य है ॥२६॥ इसके सिवा मेरे चरित्र कहने और सुननेसे, मेरे दर्शन और ध्यानसे जैसी मुझमें प्रीति होती है वैसी पास रहनेसे नहीं होसक्ती । इसलिये तुम सब अपने घरोंको लौट जाओ" ॥ २७ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । राजन्! इस प्रकार गोविन्दके अप्रिय वचन सुन कर गोपियोंको बड़ा ही विषाद हुआ, सब उमंग और अभिलाषाएँ जाती रहीं और अपार चिन्ताने उनके चित्तोंको चञ्चल कर दिया ॥ २८ ॥ शोकके कारण बार २ लंबी और गरम साँसें ले रही गोपियोंके अधरबिंब सूख गये । दुःखके भारी भारसे दबी हुई गोपियाँ मुख नीचा किये पैरके अँगूठोंसे पृथ्वी खोदती हुई चुपचाप जैसी की तैसी खड़ी रह गईं । काजल मिलजानेके कारण काले हो गये आँसुओंके बूँद उनके कुचों पर गिरने लगे, जिनसे कुचोंपर लगा हुआ कुंकुमकलित

अङ्गराग छूट २ कर बहने लगा ॥ २९ ॥ वे प्यारे कृष्णहीके लिये सब काम छोड़कर दौड़ी आई थीं, किन्तु उनको प्रियतमके मुखसे इस प्रकार अप्रिय वचन सुननेको मिले- इससे गोपियोंको बड़ाही क्षोभ हुआ। उस समय रोनेके कारण फूलगये नेत्रकमलोंके आँसुओंको हथोरियोंसे पोंछ कर किंचित् प्रणय-कोपके आवेशसे गद्गद होगई वाणीसे अनुरक्त व्रजबालाएँ यों कहने लगीं ॥ ३० ॥ गोपियोंने कहा-"विभो! आपको ऐसे निठुर वचन कहना नहीं उचित है। हम सब छोड़ कर सेवा करनेकी अभिलाषासे आपके चरणकमलोंकी शरणमें आई हैं। हे स्वतन्त्र! तुम हमको न त्यागो। जैसे आदिपुरुष नारायण देव मुमुक्षु (मोक्षकी इच्छा रखनेवाले) लोगोंको भजते हैं वैसेही तुम हम भक्तोंको भजो ॥ ३१ ॥ प्रियतम! आप धर्मज्ञ हैं। आपने जो कहा कि 'पति, पुत्र और बंधुओंकी सेवा करनाही स्त्रियोंका परम धर्म्म है'—सो हम यह मानती हैं। इसी उपदेशके अनुसार उपदेश देनेवाले ईश्वर जो आप हैं उनकी सेवाहीसे पतिपुत्रादिकी सेवा सिद्ध हो जायगी, क्योंकि आपही शरीरधारियोंके परमप्रिय, बन्धु, आत्मा हैं (अर्थात् बिना आपके पति, पुत्रादि किसी कामके नहीं होते-उन पर उस मृत दशामें प्रेम नहीं रहता) ॥ ३२ ॥ प्यारे! शास्त्रज्ञ चतुर लोग आपही पर प्रेम करते हैं, क्योंकि आपही नित्यप्रिय आत्मा हैं। नाथ! पति, सुत आदि क्या सुख दे सक्ते हैं? वे तो दुःख देनेवाले हैं। अतएव हे परमेश्वर! हम पर प्रसन्न होइये। हे कमलनयन! अनेक दिनोंसे जो हमारी आशा लगी हुई है उसको नष्ट न करिये ॥ ३३ ॥ हे सुखदायक नायक! जो हमारा चित्त इतने दिनोंसे घरमें लगा था उसको आपने हर लिया है, इसलिये अब घरमें चित्त नहीं लगता। हाथ भी घरके काममें नहीं चलते और पैर भी आपके चरणोंके पाससे एक पग नहीं हटते। प्रियवर! हम व्रजको कैसे लौट कर जायँ और वहाँ जाकर क्या करें? ॥ ३४ ॥ हे कृष्ण! मंद मुसकानयुक्त चितवन और मधुर मनोहर गीतसे हमारे हृदयमें मदनानलकी ज्वालाएँ उठ रही हैं, उनके तापको अपने अधरसुधाकी धारासे सींच कर शीतल करिये। नहीं तो हे मित्र! हमारा शरीर विरहकी अग्निसे भस्म हो जायगा और हम ध्यानके द्वारा आपकी पदपदवीको पहुँचेंगी ॥ ३५ ॥ हे कमललोचन! तुम्हारे चरणकमल कमलाको आनन्द देनेवाले हैं। हे वनवासियोंके प्रिय! जबसे हमने उन चरणोंका स्पर्श पाया है तबसे हमारा चित्त आपहीमें रम रहा है। अब हमसे किसी औरके निकट नहीं ठहरा जाता ॥ ३६ ॥ जिसके कृपाकटाक्षके लिये अन्यान्य देवगण अभिलाषा रखते और अनेक यत्न करते हैं वह लक्ष्मी आपके हृदयमें स्थान पाकर भी तुलसीके साथ आपके भक्तसेवित चरणरजके पानेकी लालसा रखती हैं। नाथ! हम भी लक्ष्मीके समान उसी रजके पानेकी इच्छासे चरणोंकी शरणमें आई हैं ॥ ३७ ॥ हे संकटहरण! पापनाशन! हम सब

छोड़ कर आपकी उपासना करनेकी आशासे चरणोंके निकट आई हैं—हम पर प्रसन्न होइये। हे पुरुषभूषण! आपकी सुन्दर मुसकान और मनोहर दृष्टिसे हमारे हृदयमें कामकी आग जग उठी है एवं उसके तापसे हमारा आत्मा तप रहा है—कृपापूर्वक हमको अपनी दासी बनाइये॥ ३८॥ प्रियतम! कुंडलकान्तिसे मनोहर कपोल, अधर-सुधा एवं अलकावलीसे सुशोभित आपका मुखकमल और सबको अभय देनेवाले दोनो बाहुदंड एवं लक्ष्मी जिसमें रुचिपूर्वक रमण करती है वह वक्षःस्थल निहार कर हम आपकी दासी हो चुकी हैं॥ ३९॥ प्यारे कृष्ण! त्रिलोकीमें कौन ऐसी स्त्री है जो तुम्हारे सुधामय पदोंसे युक्त बाँसुरीके गानको सुन कर एवं त्रिलोकसुन्दर इस रूपको देख कर मोहित न होगी और उसका मन अपने धर्म (पतिव्रत) से डिग न जायगा? तुम्हारे इस त्रिलोकमोहन रूपको देख कर और बाँसुरीकी धुनि सुन कर पक्षी, पशु, मृग, गऊ और वृक्षोंके भी आनन्दसे रोम खड़े हो जाते हैं! ॥ ४०॥ जैसे आदिपुरुष नारायण देवगणकी रक्षा करते हैं, वैसे ही आप व्रजवासियोंकी आर्त्ति (पीड़ा) हरनेके लिये व्रजमें प्रकट हुए हैं, यह निश्चित बात है। हे दीनबंधो! इस लिये आप हम दासियोंके तपे हुए स्तनों और शिरों पर अपना करकमल धरिये" ॥ ४१॥ श्रीशुकदेवजीने कहा। हे राजन्! इस प्रकार उनकी अनख-भरी कातर उक्ति सुन कर योगेश्वरोंके ईश्वर एवं आत्मामें ही रमनेवाले श्रीकृष्णजी दयापूर्वक हँसे और उनकी इच्छाके अनुसार विहार करने लगे॥ ४२॥ उदार चरित्रवाले कृष्णचन्द्रके दशनों-की पाँति हँसते समय कुन्दकलीकी आवलीकी भाँति जान पड़ती थी। प्रियकी प्रेमभरी चितवनसे जिनके मुखकमल प्रफुल्लित हो उठे हैं उन गोपियोंके बीच, तारागणके बीच पूर्ण चन्द्रमाके समान, श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभा हुई॥ ४३॥ वैज-यन्ती माला पहने हुए श्रीकृष्णचन्द्र उन असंख्य वनिताओंके झुंडमें कभी आप गाते और कभी उनका गाना सुनते हुए इधर उधर घूमकर वनको सुशोभित करने लगे॥४४॥ उस समय यमुनाके तट पर पूर्ण चन्द्रमाकी चाँदनी फैली हुईथी—चाँ-दनीके प्रकाशसे शीतल और स्वच्छ बालू चमक रही थी। कुमुदके फूलोंकी सुवाससे परिपूर्ण शीतल और मन्द वायु डोल रही थी। उसी मनोहर यमुनातटमें जा कर बाहु फैलाना, लिपटाना, गले लगाना, कर-अलक-जंघा-नीवी और स्तनोंको छूना, हँसी मसखरी, नखच्छद देना, क्रीड़ा, कटाक्ष, और मन्द मुसकान इत्यादिसे का-मोद्दीपन करते हुए श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंके साथ रमण करने लगे॥ ४५॥४६॥ जिनका चित्त कहीं भी आसक्त नहीं है उन भगवान् महात्मा कृष्णचन्द्रसे इस प्रकार मान पाकर गोपियोंके मनमें 'मान'का उदय हुआ—उन्होने समझा कि सुघराई, रूप, गुण और भाग्यमें हमसे बढ़कर कोई भी स्त्री संसारमें नहीं है॥ ४७॥

तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ॥
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४८ ॥

उनके सौभाग्यके मद और अभिमानको देख कर उसे मिटाने और उन पर अनुग्रह करनेके लिये भगवान् कृष्णचन्द्र वहीं अन्तर्हित (गायब) हो गये ॥४८॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंश अध्याय।

गोपियोंका श्रीकृष्णकी खोजमें इधर उधर घूमना।

श्रीशुक उवाच—अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः ॥
अतप्यँस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! झुंडके स्वामी गजराजको न देख कर हथनियाँ जैसे व्याकुल होती हैं वैसेही अकस्मात् कृष्णचन्द्रके छिपजाने पर उनको न देखकर गोपियोंकी दशा हुई ॥ १॥ भगवान्की गति, अनुराग, हँसी, विभ्रमयुक्त चंचल दृष्टि, मनरमानेवाली वातचीत, विलास और विभ्रममें गोपियोंके चित्त बस रहेथे—अतएव वे तन्मय होरही थीं। उस समय सब गोपियाँ मिलकर कृष्णचन्द्रकी गतिआदि क्रीड़ाओंका अनुकरण करने लगीं ॥ २ ॥ प्रियकी गति, मुसकान, चितवन और बोलचाल आदिमें जिनकी सुरति लगी हुई है एवं तन्मय होनेके कारण कृष्णहीके तुल्य जिनके लीलाविलास हैं वे गोपियाँ "मैंही कृष्ण हूँ" इस प्रकार परस्पर कहने लगीं ॥ ३ ॥ तदनन्तर सब गोपियाँ मिल कर ऊँचे स्वरसे प्रियके गुणोंको गाती हुई उनकी खोजमें उन्मत्तों (पागलों) की भाँति वन २ में घूमने लगीं एवं जो आकाशकी भाँति प्राणियोंके भीतर और बाहर अवस्थित हैं उन्ही परमपुरुषका पता वनस्पतियोंसे इस प्रकार पूछने लगीं ॥ ४ ॥ "हे पीपल! हे पकरिया! हे गूलर! प्रेम और हँसीसे पूर्ण कटाक्षोंके द्वारा हमारा चित्त हर कर नन्दनन्दन चले गये हैं —तुमने क्या उनको देखा है? ॥ ५ ॥ हे कुरवक—अशोक—नाग—पुन्नाग—चम्पक आदि वृक्षवृन्द! जिनकी मंद मुसकान मानिनी महिलाओंके मानका मर्दन करनेवाली है वही बलभद्रके भाई कृष्ण चन्द्र क्या इधरसे गये हैं? ॥ ६ ॥ हे कल्याणी तुलसी! हे गोविन्दके चरणोंको प्यार करनेवाली! अलिकुलमण्डित तुम्हारी माला पहने हुए तुम्हारे प्यारे कृष्ण इधरसे तो नहीं गये? क्या तुमने उनको इधर जाते देखा है? ॥ ७ ॥ हे मालती! हे मल्लिका! हे जाहीजूही! अपने हाथोंके स्पर्शसे तुमको

प्रसन्न करते हुए क्या माधव इस राहसे गये हैं? ॥ ८ ॥ हे रसाल! हे प्रियाल! हे पनस! हे असन! हे कोविदार! हे जामुन! हे मदार! हे विल्व! हे वकुल! हे आम्र! हे कदम्ब! हे नीप! हे पराये उपकारके लिये उत्पन्न यमुनातीरवासी अन्यान्य सब वृक्षो! क्या तुमने कृष्णको जाते देखा है? कृपा कर कृष्णका पता हमको बताओ, क्योंकि उनके विना हमारा चित्त शून्य होरहा है! ॥ ९ ॥ अहा पृथ्वी! तूने क्या तप किया है? केशवके चरण-स्पर्शसे तू आनन्दित हुई है, इसीसे जान पड़ता है वृक्षोंकी आवलियों द्वारा शरीरका रोमांच प्रकट कर रही है। तुझको यह आनन्द कृष्णके चरणस्पर्शसे हुआ है या त्रिविक्रम (वामनावतार) के चरणलाभसे? अथवा उससे भी पहले वाराह अवतारके शरीरस्पर्शसे ॥ १० ॥ हे हरिणपत्नियो! हमारे अच्युत अङ्ग-अत्यङ्गके द्वारा तुम्हारे नयनोंको तृप्त करते हुए प्रियासहित क्या इस स्थानमें आये हैं? क्योंकि हे सखियो! इस स्थान पर कुलपति कृष्णके गलेमें पड़ी कुन्दकुसुममालाकी गंध, किसी प्रियाको गले लगानेके कारण, उसके कुचकुंकुमकी सुवाससे मिली हुई आ रही है ॥ ११ ॥ हे तरुवृन्द! तुलसीकी गंधसे अंध (मोहित) भौंरोंकी भीरसे घिरे हुए कमलनयन श्रीकृष्ण-चन्द्र, एक हाथमें कमल लिये और दूसरा हाथ किसी प्रियाके कंधे पर धरे, प्रणय-पूर्ण दृष्टिसे तुम्हारे प्रणामका अभिनन्दन करते हुए क्या घूमते २ इधर आये हैं? ॥ १२ ॥ सखियो! इन वनस्पतियोंकी भुजाओंसे लिपटी हुई लताओंसे तो प्यारेका पता पूछो, जान पड़ता है अवश्य ही कृष्णके नखोंका स्पर्श इनको मिला है, क्योंकि इनके अंग पुलकित हो रहे हैं" ॥ १३ ॥ राजन्! श्रीकृष्णकी खोजमें अत्यन्त व्याकुल एवं श्रीकृष्णमय हो रही गोपियाँ, इस प्रकार उन्मत्तोंके ऐसे वाक्य बकते २ अन्तमें प्रियतमकी की हुई विविध क्रीड़ाओंका अनुकरण करने लगीं ॥ १४ ॥ एक गोपी कृष्ण बनी और एक गोपी पूतना बन कर उसको दूध पिलाने लगी। एक गोपी छकड़ा बनी और एक गोपीने कृष्ण बन कर पैरकी ठोकरसे उसको गिरा दिया ॥१५॥ एक गोपी बालक कृष्ण बनी और दूसरी तृणावर्त्त असुर बन कर उसको उड़ा ले गई। कोई गोपी कृष्णके समान रेंग २ कर चलने लगी और वैसेही बज रहे पैरके घुँघरुओंके शब्दको घूम २ कर सुनने लगी ॥ १६ ॥ दो गोपियाँ कृष्ण और वलदेव बनीं और कुछ गोपियाँ गोपबालक बन कर उनके साथ क्रीड़ा करनेलगीं। एकने अघासुर बनी हुईको और एकने बकासुरका अनुकरण करनेवालीको (झूठमूठ) मार डाला ॥ १७ ॥ एक गोपी कृष्ण बन गऊ बनी हुई गोपियोंको कृष्णके समान वंशी बजा कर बुलाने लगी, और कुछ गोपियाँ 'वाहवाह' कह कर उसकी बड़ाई करने लगीं ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णमें जिसका मन लगा हुआ है ऐसी एक गोपी किसी दूसरी गोपीके कंधे पर हाथ धरके चलती हुई, अन्य गोपियोंसे कहने लगी कि "मैं कृष्ण हूँ—देखो मेरी कैसी मनोहर

चाल है !" ॥ १९ ॥ "मैं तुम्हारी रक्षा करता हूँ । वायु और वर्षासे मत डरो-मैं रक्षाका उपाय करता हूँ" यों कह कर किसी गोपीने एक हाथसे अपने वस्त्रोंका बना हुआ गोवर्द्धन पर्वत उठा लिया ॥२०॥ एक गोपी दूसरी गोपीके शिर पर पैर धर कर कहने लगी-"अरे दुष्ट सर्प ! तू यहाँसे चला जा, दुष्टोंको दण्ड देनेहीके लिये मेरा अवतार हुआ है" ॥ २१ ॥ एक गोपी कहने लगी कि "हे गोपगण ! देखो यह भयानक दावानल वनको भस्म करता चला आरहा है-तुम अपनी २ आँखें बंद कर लो, मैं अनायास ही इस संकटसे तुमको बचालूँगा" ॥ २२ ॥ एक मृगनयनी क्षीण अंगवाली गोपी दूसरी गोपीके द्वारा मालारचित उलूखलमें बाँधी गई, तब वह भयभीत व्यक्तिकी भाँति मुख छिपा कर भयका अभिनय करने लगी ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे फिर वृन्दावनके वृक्ष और लताओंसे कृष्णका पता पूछती हुई गोपियोंने वनभूमिमें परमपुरुष कृष्णके चरणचिन्ह देख पाये ॥ २४ ॥ चरणचिन्होंको देख कर गोपियाँ कहने लगीं कि-"ध्वजा, पद्म, वज्र, अंकुश आदिकी रेखाओंसे अवश्य जान पड़ता है कि ये चरणचिन्ह महात्मा नन्द-नन्दनके हैं" ॥ २५ ॥ महाराज ! गोपियाँ उक्त चरणचिन्होंसे कृष्णका पता लगाती हुई कुछ दूर आगे गईं । वहाँ उनको कृष्ण भगवान्‌के चरणचिन्होंके पास २ किसी और स्त्रीके भी चरणचिन्ह मिले । उन चरणचिन्होंको देख गोपियाँ बहुत व्याकुल हुईं और कहने लगीं कि-"ये किस कामिनीके चरणचिन्ह हैं ! अवश्य ही जैसे गजवधू गजराजके साथ चलती है वैसे ही वह गजगामिनी कृष्णके कंधे पर भुजा धर कर उनके साथ ही साथ गई है ॥ २६ ॥ २७ ॥ निश्चय इसने भगवान् ईश्वर हरिको आराधना करके भली भाँति सन्तुष्ट किया है । कृष्णकी प्रसन्नता इसीसे जान पड़ती है कि हम सबको वनमें छोड़ कर उसको अपने साथ एकान्तमें ले गये हैं ॥ २८ ॥ सखियो ! ये कृष्णके चरणोंकी रेणुएँ परम पवित्र और धन्य हैं । देखो, ब्रह्मा, महेश और लक्ष्मी देवी पाप-नाशके लिये इनको शिर पर स्थान देते हैं । आओ, हम सब भी इनको शिर पर धरें-ऐसा करनेसे अवश्य ही हमको कृष्णचन्द्र मिल जायँगे ॥ २९ ॥ इस कामिनीके चरणचिन्होंसे हमको बड़ाही क्षोभ होता है, क्योंकि यह हम सबसे अलग ले जाकर अकेले ही प्रियकी अधरसुधा-का पान कर रही होगी" ॥ ३० ॥ कुछ दूर आगे जाने पर जब वे चरणचिन्ह न देख पड़े, तब गोपियाँ कहने लगीं कि-"सखियो ! देखो, यहाँ उस कामिनीके चरणचिन्ह नहीं देख पड़ते । जान पड़ता है-वनभूमिके कठोर कंकड़, काँटे आदिसे प्रियाके चरण दुखते देख कर उसको कृष्णने कंधे पर चढ़ा लिया है ! ॥ ३१ ॥ गोपियो ! देखो-देखो, यहाँ पर जान पड़ता है कि कामी श्रीकृष्ण प्रियाके भारसे थक गये हैं-इसीसे उनके चरण पृथ्वीमें अधिक गड़ गये हैं ! यहाँ पर प्रियतमने प्रियाको उतार कर उसका श्रृंगार करनेके लिये फूल बीने हैं । देखो, यहाँ दोनोके चरणोंका

अगला हिस्सा ही पृथ्वी पर बना हुआ है। अवश्य यहाँ बैठ कर कामी कृष्णने उस कामिनीके केश सँवारे हैं और इस प्रकार उकरूँ बैठ कर फूलोंसे उसकी वेणी गूँदी है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! श्रीकृष्ण भगवान् पूर्ण-काम और आत्माराम अर्थात् आत्मामें ही रमनेवाले हैं, उनको स्त्रियोंके विभ्रम–विलास वशीभूत नहीं कर सक्के। तथापि कामी पुरुषोंकी दीनताका चित्र और स्त्रियोंका दौरात्म्य दिखानेके लिये उस प्रियाको एकान्तमें ले जा कर उन्होने रमण किया ॥ ३४ ॥ अस्तु, वे सब गोपियाँ इसी प्रकार परस्पर चरण आदिके चिन्ह दिखलाती हुई बेसुध होकर वनमें इधर उधर घूमने लगीं। इधर श्रीकृष्णजी सब स्त्रियोंको छोड़ कर जिस गोपीको अपने साथ एकान्तमें ले गये थे उसने सोचा कि—"गोपियाँ इन प्रियतम पर परम अनुराग करती हैं, तब भी उनको छोड़ कर इन्होने मेरा मान किया है"। यह विचार कर उसने समझा कि मैं सब स्त्रियोंमें श्रेष्ठ हूँ। तब उस प्रेमगर्विताने वनमें कृष्णसे कहा कि—"मैं तो अब आगे चल नहीं सक्ती-जहाँ चलो वहाँ मुझको कंधे पर बिठा कर लेचलो" ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ यह सुन कर कृष्णने प्रियासे कहा कि-"अच्छा मेरे कंधे पर चढ़ो"। जैसे वह स्त्री चढ़नेके लिये उद्यत हुई वैसेही भगवान् वहाँसे भी अन्त-र्हित (गायब) होगये। तब वह कामिनी पछता कर विलाप करने लगी कि—"हाय नाथ! हा प्रियतम! हा रमण! हा महाबाहो! कहाँ गये? हे मित्र! मैं आपकी दीन दासी हूँ, मेरे पास आओ" ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ महाराज! इधर सब गोपियोंने कृष्णको खोजते २ एक स्थान पर देखा कि प्यारेके वियोगदुःखसे व्याकुल उनकी वह सखी खड़ी रो रही है ॥ ४० ॥ उसके मुखसे माधवसे मान पानेका एवं अपनी ही भूलके कारण अपमानित होनेका वृत्तान्त सुन कर गोपि-योंको बड़ा ही विस्मय हुआ ॥ ४१ ॥ तदनन्तर जब तक चाँदनी वनमें फैली रही तब तक गोपियोंने घूम २ कर कृष्णका पता लगाया; जब अंधकार होगया तब सब लौट पड़ीं ॥ ४२ ॥ घूम कर कोई गोपी घरको नहीं गई। जातीं क्या, वे तो श्रीकृष्णहीकी बातचीत और लीलाओंका अनुकरण करते २ तन्मय होगई थीं—किसीको घरका ध्यान भी न था। सब मिल कर एक स्थान पर बैठ गईं और हरिगुण गाने लगीं ॥ ४३ ॥

पुनः पुलिनमागत्य कालिन्द्याः कृष्णभावनाः ॥
समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकाङ्क्षिताः ॥ ४४ ॥

कृष्णहीकी भावना करती हुई गोपियाँ कृष्णके आनेकी चाहसे यमुना-तट पर इस प्रकार गाती हुई प्रार्थना करने लगीं ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंश अध्याय।

गोपिकागीत।

गोप्य ऊचुः-जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ॥
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥

गोपियोंने कहा। "हे कान्त! आपके जन्मसे हमारे व्रजमण्डलको विचित्र वैभव और चमत्कार प्राप्त हुआ है और लक्ष्मी भी निरन्तर वास करके इसको सुशोभित कर रही हैं। किन्तु हे प्रियतम! देखो जिनके जीवन-प्राण आपही हैं वे आपकी अभागिनी दासियाँ आपके विरहमें निपट कातर होकर इस स्थानमें चारो ओर आपकोही खोज रही हैं। हमारे प्राण आपहीमें धरे हुए हैं। अतएव आप दर्शन दीजिये ॥ १ ॥ हे रमण! हे अभीष्टप्रद! तुम्हारे नेत्रोंने शरद् ऋतुके सुन्दर कमलोंके भीतरी भागकी शोभा हर ली है। हम आपकी विना मोलकी दासी हैं। आप आँखोंसे ओट होकर मनोहर आँखोंकी चोटसे हमको मारगये हो—क्या यह स्त्रीवध नहीं है—क्या यह कर्म आपके योग्य है? अतएव दर्शन देकर हमको जीवनदान करिये ॥ २ ॥ हे श्रेष्ठ! आपने वारम्वार विषजल-जनित मृत्युसे, अघासुरसे, वर्षाके उत्पातसे-आँधी और वज्रपातसे, वत्सासुरसे, मयासुरके पुत्र व्योमासुरसे—एवं अन्यान्य सब भयानक संकटोंसे हमारी रक्षा की है—तब इस समय भी क्यों नहीं इस कष्टसे मुक्त करते? ॥ ३ ॥ आप केवल यशोदाको अथवा गोपियोंको ही आनन्द देनेवाले नहीं हैं, किन्तु सभीके प्रिय अन्तर्य्यामी परमात्मा हैं। मित्र, विश्वकी रक्षाके लिये जब ब्रह्माने प्रार्थना की, तब आप यदुवंशमें प्रकट हुए हैं। हम तुम्हारी अनुरक्त दासियाँ हैं, अतएव हमारी कामना पूरी करिये ॥ ४ ॥ हे यदुकुलतिलक, जो लोग संसारके भयसे तुम्हारे चरणोंकी शरण लेते हैं, तुम्हारे करकमल अभयदान करके उनकी अभिलाषाओंको पूर्ण करते हैं। प्रियतम जिनसे लक्ष्मीका हाथ पकड़ा है वेही करकमल हमारे शिर पर धरो ॥५॥ हे व्रजवासियोंकी व्यथा हरनेवाले! हे वीर! आपकी मनोहर मन्द मुसकान भक्तोंके गर्वको दूर करनेवाली है। हे मित्र! हम आपकी दासियाँ हैं, कृपा करके हमें अंगीकार करो। अपना सुन्दर मुखारविन्द हमको दिखाओ ॥ ६ ॥ पशुओंके पीछे वनमें विचरनेवाले आपके चरणारविन्द प्रणत प्राणियोंके पापोंका नाश करते हैं। हे प्रियवर! वेही लक्ष्मीसेवित और शेषनागके शिरों पर शोभायमान चरणकमल हमारे कुचों पर स्थापित करके कामकी अग्नि बुझाइये ॥ ७ ॥ हे कमललोचन!

हम तुम्हारी दासियाँ तुम्हारे मधुर पदमय एवं पंडितोंके हृदयोंको हरनेवाले वचनों पर मोहित होरही हैं—अपने अधरोंकी सुधा पिला कर हमको जीवनदान करो ॥ ८ ॥ नाथ ! जो लोग, तप्त जनोंको जीवन देनेवाली, कवियोंके द्वारा प्रशंसित, पापनाशिनी, सुननेसेही मंगल करनेवाली, कामना और कर्मोंको निर्मूल करनेवाली, शान्तिमय, आपकी अमृतमयी कथा विस्तारपूर्वक कहते हैं उन्होने पूर्वजन्ममें बहुत से दान पुण्य किये हैं ॥ ९ ॥ हे कपटी प्रिय ! तुम्हारा वह ध्यान करतेही मंगल करनेवाला प्रेमपूर्ण देखना और विहार करना एवं एकान्तकी हृदय हरनेवाली बातें तथा क्रीड़ाएँ इस समय हमारे चित्तको चञ्चल (व्याकुल) कर रही हैं ॥ १० ॥ हे कान्त ! हे नाथ ! जब आप व्रजसे पशुओंको चराते हुए वनको जाते हैं तब "आपके कमलसम कोमल और सुन्दर चरण कंकड़ घास और काँटे इत्यादि कठिन वस्तुओंसे व्यथित होते होंगे"—इस चिन्तासे हमारा मन व्याकुल हो उठते हैं ॥ ११ ॥ हे वीर ! दिनके अन्तमें आप जब गौवोंको साथ ले कर व्रजको लौटते हैं तब रजोरञ्जित अलकोंसे घिरा हुआ अपना मनोहर मुखारविन्द दिखा कर हमारे हृदयोंमें कामको जगाते जाते हैं ॥ १२ ॥ हे रमण ! हे आर्तिभंजन ! तुम्हारे चरणारविन्द प्रणत जनोंकी कामनाएँ पूरी करते हैं, उनकी लक्ष्मीजी सदा सेवा करती हैं, वे पृथ्वीके आभूषण हो रहे हैं, आपत्तिमें उनका ध्यान करनेसे कल्याण होता है । प्रियतम ! वेही मंगलमय सुशीतल चरण हमारे स्तनों पर स्थापित करो ॥ १३ ॥ हे वीर ! सुरतको बढ़ाने वाला, शोकनाशन एवं बज रही बाँसुरी द्वारा भलीभाँति चुम्बित अपना अधरामृत हमको पिलाओ । वह अधरामृत मिलनेसे सार्व्वभौम सुखकी इच्छा भी तुच्छ जँचती है ॥ १४ ॥ दिनको जब आप वृन्दावनमें विचरते रहते हैं तब आपको विना देखे आधा क्षण भी हमारे लिये एक युगके समान अपार हो जाता है । जब आप वनसे लौटते हैं तब कुटिलकुन्तलशोभित आपका श्रीमुख निहार कर हमको जो सुख होता है सो कहा नहीं जासक्ता । हम उस समय पलक बनानेवाले जड़ ब्रह्माको कठोर वाक्योंसे तिरस्कार करने लगती हैं । पलक जितनी देरमें झपकती है उतना अन्तर भी हमको असह्य है ॥ १५ ॥ हे गीतगतिज्ञ ! हम ऊँचे स्वरमें गाये गये तुम्हारे मधुर गानकी तान कानमें पड़ते ही पति, पुत्र, बन्धु, बान्धव और भाइयोंके कहे पर ध्यान न देकर तुम्हारे निकट इस वनमें आईं—किन्तु हे कपटी तुम्हारे सिवा ऐसा निठुर कौन होगा कि इस प्रकार अपनेही लिये घरबार छोड़ कर आई हुई स्त्रियोंको रात्रिके समय वनमें छोड़ कर चल दे ? ॥ १६ ॥ तुम्हारी कामोद्दीपन करनेवाली एकान्तकी सङ्केत-क्रीड़ाएँ, मंद मुसकानसे मनोहर मुखमण्डल, प्रेमपूर्ण कटाक्ष एवं लक्ष्मीके रहनेका स्थान वक्षःस्थल देख कर मिलनेकी अत्यन्त उत्कण्ठा वारम्वार हमारे मनको मोहित कर रही है ॥ १७ ॥ हे मित्र ! व्रज–वन-

वासी लोगोंके दुःख दूर करनेके लिये तुम्हारा त्रिलोक-हितकारी अवतार हुआ है। तुमसे मिलनेके लिये हमारा चित्त व्याकुल हो रहा है। प्यारे! जिससे तुम्हारे जनोंका हृदयताप शान्त हो वही औषध कृपणता छोड़ कर हमको दीजिये ॥१८॥

यत्ते सुजात चरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ॥
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वि-
त्कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥

हे प्रिय! तुम्ही हमारे जीवनसर्वस्व हो। कहीं चोट न लग जाय—इस भयसे हम जिन चरणकमलोंको अपने कठोर स्तनों पर धीरेसे धरती हैं उन्ही सुकोमल चरणोंसे आप वनमें घूम रहे हैं—छोटे २ कंकड़ पत्थर उनमें गड़कर व्यथा पहुँचाते होंगे—यह चिन्ता हमारे चित्तको व्याकुल कर रही है" ॥ १९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंश अध्याय।

श्रीकृष्णका प्रकट होकर गोपियोंको समझाना।

श्रीशुक उवाच—इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ॥
रुरुदुः सुस्वरं राजन्कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। महाराज! गोपियाँ, श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसासे इस प्रकार गाती हुई ऊँचे स्वरसे विचित्र प्रलाप कर रही थीं ॥ १ ॥ इसी अवसरमें साक्षात् मन्मथके भी मनको मथनेवाले नन्दनन्दन उनके आगेही प्रकट हुए। भगवान्‌के श्याम शरीर पर पीताम्बर और मालाकी अपूर्व शोभा थी—उनका मुखकमल मंद मुसकानसे महा मनोहर देख पड़ता था ॥ २ ॥ कृष्ण प्यारेको सामने देखकर गोपियोंके नेत्रकमल आनन्दके कारण प्रफुल्लित हो उठे। जैसे प्राण आ जाने पर मृतक शरीर उठ खड़े हों वैसेही सब गोपियाँ उठ खड़ी हुईं ॥ ३ ॥ किसी गोपीने आनन्दसे कृष्णका कमलकोमल हाथ अपने हाथमें लेलिया। किसीने चन्दनचर्चित भगवान्‌की भुजा अपने कंधे पर रख ली ॥ ४ ॥ किसी गोपीने कृष्णका जूठा पान (खानेके लिये) अंजलीमें लेलिया। किसी विरहाग्निमें तपी हुई गोपीने हृदय शीतल करनेकी कामनासे कृष्णका चरणकमल अपनी छाती पर रख लिया ॥ ५ ॥ प्रणयकोपसे विह्वल एक कामिनी ओंठ चबाती हुई धनुष सी भौंहें तान कर प्रियवर पर बाण ऐसे कुटिल

कटाक्ष छोड़ने लगी ॥ ६ ॥ कोई कामिनी चौगुने चावसे टकटकी लगा कर कृष्णका मुखकमल निहारने लगी— किन्तु कृष्ण चरणोंके दर्शनसे साधुओंको जैसे कभी तृप्ति नहीं होती वैसेही वारम्वार निहारनेसे भी उसका जी नहीं भरा ॥ ७ ॥ किसी गोपीने नयनोंकी राहसे कृष्णको हृदयमें लेजाकर दोनो नेत्र बंद कर लिये, उसके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वह योगियोंकी भाँति कृष्णका ध्यान करती हुई परमानन्दमें मग्न हो गई ॥ ८ ॥ जैसे मुमुक्षु लोग ईश्वरको पाकर संसारके तापोंसे छूट जाते हैं वैसेही केशवदर्शनके परमानन्दको पाकर गोपियाँ विरहके तापसे मुक्त होगई ॥ ९ ॥ राजन्! शोकशून्य गोपियोंके बीचमें भगवान् अच्युतकी ऐसी शोभा हुई जैसे परमपुरुष परमात्मा अपनी सत्वादि शक्तियोंमें शोभायमान होता है ॥ १० ॥ मदनमोहन भगवान् उन सब गोपियोंके साथ सुखदायक यमुना तट पर जाकर विहार करने लगे । वहाँ खिलरही कुंद और मंदारकी कलियोंके संसर्गसे सुगंधित वायु चल रही थी और उस वायुके साथही साथ मधुमत्त मधुप इधर उधर डोल रहे थे ॥ ११ ॥ शरद् ऋतुके स्वच्छ चन्द्रमाकी शान्त किरणोंसे वहाँ रात्रिका अंधकार न था, जिससे वहाँ जाकर ठहरनेसे सुख मिलता था । यमुनाकी चंचल तरंगोंने वहाँ कोमल बालू फैला रक्खी थी ॥१२॥ हरिदर्शनके परमानन्दसे जिनके हृदयकी तपन मिट गई है वे गोपियाँ मनोरथके अन्तको पहुँच गईं, अर्थात् तव उनको कोई कामना ही नहीं रही । जैसे श्रुतियाँ कर्मकाण्डमें परमेश्वरको न देख पाकर कर्मोंका अनुगमन करती हुई पहले अपूर्णकामा सी रहती हैं और फिर ज्ञानकांडमें परमेश्वरको पाकर परमानन्दसे पूर्णकामा हो कर कामनाके अनुवंधको छोड़ देती हैं वैसेही श्रीकृष्णके दर्शनसे गोपियोंको भी कोई कामना नहीं रही । उन्होने अपने वन्धु अथवा अन्तर्यामी कृष्णके बैठनेके लिये अपने २ दुपट्टोंसे एक सुन्दर आसन बनाया ॥ १३ ॥ योगीश्वरोंके हृदयोंमें जिनका आसन रहता है वही भगवान् श्रीकृष्ण आज गोपियोंकी सभामें उनके रुचिसे रचे हुए आसन पर विराजमान हुए । मानों त्रैलोक्यमें जितनी शोभा है सव कृष्णके श्याम शरीरमें अवस्थित होकर अपनेको शोभायमान कररही थी ॥ १४ ॥ मंद मुसकानके मिलनेसे मनोहर लीलाविलासमय कटाक्षोंसे परिपूर्ण बंक भौंहसे कुछ २ कोप जताती हुई और गोदमें धरे हुए कामोद्दीपक प्रियतमके हाथ और पैरोंको धीरे २ दवा कर सम्मान-सूचना देती हुई गोपियोंने भगवान् कृष्णसे कहा कि—"श्रीकृष्णचन्द्र! एक लोग ऐसे होते हैं जो भजनेवालोंको भजते हैं और एक लोग ऐसे होते हैं जो न भजनेवालोंको भी भजते हैं। इनके सिवा एक ऐसे होते हैं जो भजनेवाले और न भजनेवाले दोनोंको नहीं भजते। इसका कारण क्या है—सो कृपा कर हमसे कहिये" ॥ १५ ॥ १६ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—सखियो! तुम्हारा कहना ठीक है।

देखो—जो अपना २ प्रयोजन सिद्ध करनाही अपना अभीष्ट रखते हैं वेही भजनेकी अपेक्षा करते हैं अर्थात् भजनेवालेको भजते हैं, किन्तु यह मित्रता सच्ची नहीं है । क्योंकि इसमें धर्म्म नहीं है—स्वार्थ है; बिना स्वार्थके ऐसी मित्रता नहीं होती ॥१७॥ हे सुंदरियो ! किन्तु जो लोग न भजनेवालोंको भी भजते हैं वे पिता माताके समान दो भाँतिके हैं । एक दयावान् और दूसरे स्नेहशील । इसमें दयावानोंको शुद्धधर्म और स्नेहशीलोंको सौहृदसुख प्राप्त होता है ॥१८॥ जो लोग भजनेवालोंको ही नहीं भजते तब न भजनेवालोंकी कौन कहे—उनके चार भेद हैं । एक 'आत्माराम होते हैं । जिनको परमहंस कहते हैं । दूसरे होते हैं 'आप्तकाम'—अर्थात् पूर्णकाम होनेके कारण उनको विषय देख कर भी भोग करनेकी इच्छा नहीं होती । तीसरे 'कृतघ्न' (एहसानफरामोश) होते हैं और चौथे 'गुरुद्रोही' कहलाते हैं ॥ १९ ॥ किंतु हे सखियो ! मैं यद्यपि भजनेवालोंको भी नहीं भजता, तथापि इन चारोमें नहीं हूँ, बरन् महादयालु और परम सुहृत् हूँ । मैं उनको नहीं भजता इस लिये वे निरन्तर सब समय मेरा ही ध्यान किया करते हैं । देखो जैसे कोई निर्द्धन पुरुष धन पा कर फिरसे गँवा दे तो उसका मन सब समय उसी धनमें लगा रहता है, हे गोपियो ! वैसेही तुमने भी मेरे लिये धर्म्मका न ध्यान करके सब बन्धु बान्धवोंको छोड़ कर मेरा भजन किया । तुम्हारा ध्यान मेरी ओर अटल हो जाय, केवल इसी लिये मैं छिप गया था । सच पूछो तो छिपे हुए तुमको भज रहा था । तुम्हारी कोई दशा मुझसे छिपी नहीं है, मैं तो तुम्हारे पास ही था । इस लिये प्रियतमाओ ! तुम अपने प्रिय पर कोप न करो ॥ २० ॥ २१ ॥

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ॥
या माऽभजन्दुर्जरगेहशृङ्खला संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥२२॥

तुमने दृढ़तर गृहशृंखला तोड़ डाली और मुझसे आकर मिलीं । यह तुम्हारा मिलना अनिन्दित है । मैं देवतोंकी इतनी आयुमें भी तुम्हारे इस साधुकृत्यका बदला नहीं चुका सक्ता । प्रत्युपकार करके मैं उद्धार नहीं पासक्ता । आशा करता हूँ कि तुम अपनी सुशीलता और उदारतासे ही मुझे ऋणसे मुक्त करोगी ॥ २२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंश अध्याय ।

रासनृत्य ।

श्रीशुक उवाच—इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः ॥
जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन् ! भगवान्के मधुर मनोहर वाक्योंसे कोमल

चित्तवाली गोपियोंका प्रणयकोप शान्त हो गया। हरिके अंगसंगसे गोपियोंकी अभिलाषा पूरी हो गई और विरहताप मिट गया ॥ १ ॥ तब गोविंदने रासक्रीड़ाका आरंभ किया। प्रियतमकी आज्ञाको माननेवाली श्रेष्ठ स्त्री गोपियाँ—प्रसन्नतापूर्वक परस्पर हाथसे हाथ मिलाये मंडल बाँध कर खड़ी हुईं। उस गोपीमण्डलमें योगेश्वर कृष्णकी बड़ीही शोभा हुई, क्योंकि दो दो गोपियोंके बीच एक एक कृष्णकी मूर्त्ति थी। इस प्रकार गलवाहीं डाल कर कृष्णचन्द्रने रास—उत्सवका आरम्भ किया। हरिकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे हर एक गोपी यही जानती थी कि मेरे ही पास प्यारे कृष्ण हैं। इतनेहीमें रासक्रीड़ा देखनेके लिये जिनके मन अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहे हैं वे देवगण अपनी २ स्त्रियोंसहित आकाशमें आपहुँचे। थोड़ी ही देरमें आकाशमण्डलमें विमान ही विमान देख पड़ने लगे। उस समय आकाशमें देवतालोग नगाड़े बजा कर फूलोंकी वर्षा करने लगे और गंधर्वगण अपनी स्त्रियोंसहित भगवान्का निर्मल यश गाने लगे। रासमंडलमें अपने प्रियके साथ नृत्यमें निरत नारियोंके वलय, नूपुर और किंकिणियोंका महाशब्द होने लगा। जैसे स्वर्णवर्ण मणियोंके बीचमें नीलमणिकी शोभा हो, वैसेही भगवान् देवकीनन्दन उन गोपियोंके बीचमें अत्यन्त शोभायमान हुए। नाचते समय गोपियोंके विचित्र चरणविन्यास दर्शनीय थे। वे भाँति २ हाथ मटका कर भाव बताती थीं, उनकी सुकुमार कमर नाचतेमें लोचसे लचक २ जाती थी। जब वे मुसकाती हुई भौंह नचाकर नाचती थीं तब बहुतही भली जान पड़ती थीं। उनके वस्त्र (दुपट्टे) उड़ २ जाते थे, जिससे हिल रहे कमनीय कुच खुल पड़ते थे। हिल रहे कुण्डलोंकी झलक कपोलों पर पड़नेसे बहुत सुहावनी लगती थी। नाचकी थकावटसे उनके मुखमण्डलों पर पसीनेके बूँद निकल आये और वेणी व नीवी की गाँठें शिथिल हो गईं। इस प्रकार घनश्यामके साथ नाचती और गाती हुई व्रजबालाएँ, मेघमण्डलमें बिजलियोंके समान शोभायमान हुईं। कृष्णके अंगसंगसे परमानन्दको प्राप्त गोपियाँ ऊँचे स्वरसे भाँति २ के राग अलापती हुई गाने लगीं। उनके गानेकी तानसे सम्पूर्ण विश्व गूँज उठा। कोई गोपी मुकुन्दके साथ गारही थी, उसने श्रीकृष्ण जिस स्वरमें गारहे थे उससे भी ऊँचे स्वरमें अलापना आरम्भ किया। इससे प्रसन्न होकर कृष्णचन्द्रने उसकी प्रशंसा की कि "वाह वाह!"। दूसरी गोपी उसीको ध्रुवतालमें और भी ऊँचे स्वरसे गाने लगी—उस गोपीकी कृष्णने पहलीसे भी अधिक प्रशंसा की। किसी रासनृत्यमें थकी हुई गोपीके कंकण और वेणीमें गुँधे हुए मल्लिकाकुसुम शिथिल होकर गिरने लगे, वह पासही खड़े हुए कृष्णके कन्धे पर हाथ धर कर विश्राम करने लगी ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ एक गोपी अपने कन्धे पर धरे हुए चंदनचर्चित एवं कमलकी ऐसी सुगन्धवाले कृष्णके बाहुको प्रेमपूर्वक सूँघ कर चूमने लगी—

आनन्दके कारण उसके शरीरमें रोमाञ्च हो आया ॥ ११ ॥ एक गोपीने नाचतेमें हिलरहे कुंडलकी झलकसे सुशोभित अपने कोमल कपोलको कृष्णके कपोलसे मिलाया। कृष्णने उसके मुखमें अपनी जूठी बीड़ी (पानकी गिलौरी) दे दी ॥१२॥ एक गोपी नाचरही थी, और उसके पैरोंके नूपुर व कमरकी मेखलासे मधुर ध्वनि होरही थी, नाचते २ जब वह थक गई तो उसने पासही खड़े हुए कृष्णके मंगलमय करकमलको अपने हृदय पर धर लिया ॥१३॥ एकान्तमें लक्ष्मीके एकान्त वल्लभ अच्युत कान्तको पाकर गोपियाँ गलबाहीं डाल कर गाती हुई सुखपूर्वक इसी प्रकार विविध विहार करने लगीं ॥ १४ ॥ सुवाससे मत्त हो रहे भौंरेही जिसमें गवैये हैं उस राससभामें कृष्ण सहित सब गोपियाँ बलय, नूपुर, किंकिणी और अन्यान्य बाजोंके शब्दके साथ नृत्य करती थीं। उस समय कानोंमें स्थित कमल-कुसुम, अलकावलीसे अलंकृत कपोल और पसीनेके बूँदोंसे उनके मुखमण्डलोंकी अपूर्व शोभा हुई एवं उनके बिखर रहे चञ्चल केशोंसें गुँधी हुई फूलोंकी मालाएँ खिसक २ कर पृथ्वी पर गिरने लगीं ॥ १५ ॥ महाराज! जैसे कोई बालक अपनेही प्रतिबिंबके साथ खेले वैसेही भगवान् लक्ष्मीपति स्नेहपूर्ण कटाक्ष, उदार विलास एवं मंद मुसकानसे मन हरते हुए हाथसे हाथ मिला कर व लिपटा कर व्रजबालाओंके साथ रमण करने लगे ॥ १६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! हरिके अंगसंगसे गोपियोंको परमानन्द प्राप्त हुआ, वे परमानन्दमें मग्न हो गईं। उनके अंगोंसे फूलोंकी मालाएँ और आभूषण गिरते जाते थे, पर सँभाले कौन?



उनको तो अपने शरीरकी भी सुधिबुधि न थी। बाल अलग बिखर रहे थे, वस्त्र अलग उड़े जाते थे, कञ्चुकी अलग खुली पड़ती थी—किन्तु उनको पहलेकी भाँति

सँभालनेकी सामर्थ्यही गोपियोंमें न थी ॥ १७ ॥ कृष्णकी क्रीड़ा देख कर आकाशमें स्थित देवतोंकी स्त्रियाँ भी कामसे पीड़ित होकर मोहको प्राप्त हुई एवं तारागणसहित चन्द्रमा भी विस्मित हो कर जहाँके तहाँ सब लीला देखते रहे । इससे रात बड़ी भारी (छः महीनेकी) हो गई और उसमें गोपियोंने सुखपूर्वक विहार किया ॥ १८ ॥ यद्यपि भगवान् कृष्ण आत्मामें रमनेवाले निःस्पृह हैं, तथापि लीलापूर्वक जितनी गोपियाँ थीं उतनेही रूप धर कर वह उनके साथ रमने लगे ॥१९॥ राजन् ! अत्यन्त विहार करनेसे थक गई गोपियोंके मुखकमलोंमें जब पसीना आगया तब उसको करुणानिधान कृष्णने प्रेमपूर्वक अपने कल्याणमय करकमलसे पोंछ दिया ॥ २० ॥ प्रियतमके नखस्पर्शसे प्रमुदित गोपियाँ— प्रभावशाली सुवर्णके कुंडल और उन कुण्डलोंकी कान्तिसे अलंकृत कपोलोंकी शोभासे अत्यन्त मनोहर मंद मुसकान और चाह-भरी चितवनसे पुरुषश्रेष्ठ कृष्णको रिझाती व सम्मानित करती हुई उन्हीके पवित्र चरित्र गाने लगीं ॥ २१ ॥ फिर जैसे थका हुआ गजराज थकन मिटानेके लिये सेतु तोड़ता हुआ जलमें घुस कर हथनियोंके साथ क्रीड़ा करे वैसेही लोक और वेदकी मर्य्यादाका अतिक्रमण करनेवाले कृष्णचन्द्रने भी थकावट दूर करनेके लिये गजगामिनी गोपियोंके साथ जलकेलि करनेकी इच्छासे यमुनाके भीतर प्रवेश किया । अंगसंगमें मली गई एवं गोपिकाओंके कुचकुंकुमसे रंजित वन-माला पर कुंज छोड़ कर गूँजरहे भ्रमरपुंज गन्धर्वोंके समान गान करते हुए भगवान्के पीछे २ चले ॥ २२ ॥ राजन् ! जलके भीतर सब गोपियाँ, मंदमुसकानके साथ प्रेमपूर्वक निहारती हुई कृष्णके ऊपर चारो ओरसे जलकी बौछार करने लगीं एवं विमानों पर बैठे हुए देवगण फूलोंकी वर्षासे भगवान्का सत्कार करने लगे। कृष्णचन्द्रने स्वयं आत्माराम होकर भी गजराजके समान लीलापूर्वक इस प्रकार जलविहार किया ॥२३॥ तदनन्तर भौंरोंकी भीरसे घिरे हुए गोपीमण्डलमण्डित कृष्णचन्द्र जलसे निकल कर, जहाँ जल और स्थलमें उत्पन्न होनेवाले फूलोंकी सुवासको लिये हुए शीतल पवन डोल रहा है उस यमुना-किनारेके निकुंजमें, हथनियोंके झुंडको साथ लिये मदमाते गजराजके समान विचरने लगे ॥ २४ ॥ महाराज ! इस प्रकार सत्यसंकल्प कृष्णने प्रणयिनी गोपियोंके साथ, चन्द्रमाकी किरणोंसे सुशोभित एवं काव्योंमें जो सब शरद्ऋतुसम्बन्धी रसकी बातें कही गई हैं उनसे परिपूर्ण रात्रियोंमें भली भाँति रमण किया । इतना होने पर भी भगवान्ने वीर्य्यपात नहीं होने दिया—क्योंकि वह जितेन्द्रिय योगी थे, साधारण विषयी पुरुषोंकी भाँति कामके वशीभूत न थे ॥ २५ ॥ राजा परीक्षित्ने कहा । ब्रह्मन् ! धर्मकी स्थापना और अधर्म्मके मिटानेहीके लिये पृथ्वी पर जगदीश्वरका यह अंशावतार हुआ है ॥ २६ ॥ धर्मकी मर्य्यादाओंको बनानेवाले, रक्षक और उपदेशक हो कर उन्होने यह परनारी-

गमनरूप विरुद्ध आचरण (अधर्म्म) क्यों किया ? आप्तकाम अर्थात् भोगभावना-रहित, पूर्णकाम यदुपतिने यह निन्दित कर्म्म किस अभिप्रायसे किया ? हे सुव्रत ! हमको यह बड़ा भारी संशय है । कृपा करके इस संदेहको दूर करिये । **श्रीशुकदेवजीने कहा ।** महाराज ! ईश्वर (समर्थ) लोगोंका किसी २ स्थल पर धर्मके व्यतिक्रममें भी साहस देखा जाता है । इसका कारण यही है कि तेजस्वी लोग अकार्य्य करनेसे भी दूषित नहीं होते । देखो अग्निमें जो शुद्ध या अशुद्ध पड़ता है उसको वह भस्म कर देता है, तथापि उसके कारण दूषित नहीं होता । किन्तु जो अनीश्वर है वह ईश्वरोंके ऐसे विपरीत आचरणके अनुकरणका कभी मनमें संकल्प भी न करे । यदि वह मूर्खतासे करता है तो उसका विनाश हो जाता है । शिवने कालकूट विष पी लिया परन्तु उनका कुछ नहीं बिगड़ा; किन्तु यदि कोई असमर्थ व्यक्ति उनका अनुकरण करके विष पान करे तो अवश्य ही मरजायगा । ईश्वरोंके वचन सत्य हैं, अर्थात् उनके अनुसार चलना चाहिये । ईश्वरोंके कोई २ आचरण भी अनुकरण करने योग्य हैं—किन्तु सब नहीं । इस लिये ईश्वरोंके वचनोंको मानना एवं उचित आचरणोंका अनुकरण करनाही बुद्धिमानोंका कर्त्तव्य है । हे प्रभो ! जो लोग देहाभिमानसे शून्य हैं एवं जिनको पुण्यकर्मसे मंगलकी कामना या पापकर्मसे अमंगलकी आशा नहीं हैं, अर्थात् पूर्व-सञ्चित कर्मोंको फलभोगद्वारा क्षीण करना ही जिनके देहधारणका अभीष्ट है उन आत्माराम योगियोंके लिये जब कार्य्याकार्यका कोई विधि-निषेध नहीं है तब जो तिर्य्यक् (पशुपक्षी-कीट आदि), मनुष्य और देवता आदि जीवोंके ईश्वर एवं सब ऐश्वर्य्योंके अधिपति सर्वशक्तिमान् साक्षात् परमेश्वर हैं उनको सुकृत और दुष्कृतकी संभावना कहाँ और कैसे हो सक्ती है ? ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ जिनके पदपद्मपरागके सेवनसे तृप्त भक्तजन और योगके प्रभावसे कर्मबंधनमुक्त ज्ञानी मुनिजन स्वच्छंद हो कर विचरते हैं—अर्थात् आवागमनसे मुक्त हो जाते हैं उन अपनीही इच्छासे शरीर धारण करनेवाले ईश्वरको पाप या पुण्यका बंधन कैसे हो सक्ता है ? ॥ ३४ ॥ जो पर-मात्मा गोपियोंके, गोपियोंके पतियोंके एवं सब देहधारियोंके अन्तःकरणमें विराज-मान हैं वही बुद्धि आदिके साक्षी कृष्णचन्द्र लीला करनेके लिये मनुष्यशरीर धारण कर पृथ्वीमें अवतरे हैं । भगवान्ने प्राणियों पर अनुग्रह करनेके लिये मनुष्यशरीर धारण किया है, क्योंकि नररूप हरिकी लीलाएँ सुन कर प्राणियोंको दृढ़ ईश्वरभक्ति होती है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ महाराज ! भगवान्की मायामें मोहित रहनेके कारण व्रजवासियोंने जाना कि हमारी स्त्रियाँ हमारे ही पास हैं । इस कारण उनके मनमें कृष्णकी ओरसे किसी प्रकारका मैल नहीं आया ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जब वह रात्रि वीतगई और ब्राह्म मुहूर्त आ पहुँचा, अर्थात् दो घड़ी रात्रि रह गई, तब इच्छा न होने पर भी कृष्णकी आज्ञासे कृष्णकी प्यारी गोपियाँ अपने २ घरोंको गईं ॥३८॥

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः ॥
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ ३९ ॥

जो कोई व्रजबालाओंके साथ की हुई इस रासलीलाको श्रद्धापूर्वक पढ़ते या सुनते हैं वे धीरजन शीघ्र ही भगवान्‌की श्रेष्ठ भक्ति पाते हैं एवं कामरूप मानसिक रोगसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ३९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंश अध्याय ।

सुदर्शनमोचन और शंखचूडयक्षवध ।

श्रीशुक उवाच–एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः ॥
अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज ! एक समय देवयात्राके अवसर पर सब गोप लोग बड़ेही चावसे, बैल जिनमें नहे हुए हैं उन छकड़ों पर चढ़ कर अंबिकावनको गये ॥ १ ॥ वहाँ सरस्वती नदीमें स्नान करके उन लोगोंने अनेक सामग्रियोंसे भक्तिपूर्वक देवदेव महादेव और भगवती अम्बिका देवीका पूजन किया ॥ २ ॥ 'परमेश्वर हम पर प्रसन्न हों'—इस कामनासे उन लोगोंने ब्राह्मणोंको गऊ, वस्त्र, सुवर्ण और अनेक मधुर अन्न दिये ॥ ३ ॥ फिर व्रतके कारण केवल जलपान करके महाभाग नंद सुनंद आदि गोपगण उस रातको वहीं सरस्वतीके किनारे रह गये ॥ ४ ॥ रातके समय वनमें एक बहुत भूखा बड़ा भारी अजगर घूमता हुआ वहाँ आया और उसने सो रहे नंदका पैर लील लिया ॥ ५ ॥ जब अजगरने पकड़ लिया तब भयभीत नंदने चिल्लाकर कहा कि—"हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे पुत्र ! यह महासर्प मुझको लीले लेता है । मुझको इस संकटसे बचाओ" ॥ ६ ॥ नंदकी चिल्लाहट सुन कर सब गोप सहसा उठ बैठे और उन्होने देखा कि नंदको सर्पने ग्रस लिया है । तब घबड़ाये हुए गोपगण जलती हुई लकड़ियोंसे सर्पको दागने लगे, जिसमें वह नन्दको छोड़ दे ॥ ७ ॥ जलती हुई लकड़ियोंसे दगने पर भी सर्पने नंदको नहीं छोड़ा, तब यदुनाथ कृष्णने आकर पैरसे उस सर्पको छूदिया ॥ ८ ॥ श्रीमान् भगवान्‌के चरणस्पर्शसे उसके सब अशुभ नष्ट हो गये और वह तुरन्तही

सर्पयोनिसे छूट कर परमसुन्दर विद्याधर हो गया ॥ ९ ॥ उसके शरीरमें सुवर्णकी ऐसी कान्ति थी, कंठमें सोनेकी माला पड़ी हुई थी। उसने चरणोंमें गिर कर श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर नम्रताके साथ खड़ा हो गया। तब भगवान्‌ने उससे पूछा कि "तुम कौन हो, तुम्हारा रूप परम अद्भुत है और तुम्हारे शरीरकी शोभाका अद्भुत चमत्कार देख पड़ता है। किस कर्मसे विवश हो कर तुमको यह सर्पका निन्दित शरीर प्राप्त हुआ था—सो उचित समझो तो कहो" ॥ १० ॥ ११ ॥ सर्पने कहा। "नाथ मैं एक विद्याधर हूँ—मेरा नाम सुदर्शन है। मेरी शोभा, स्वरूप और संपत्ति अमित थी। मैं विमान पर बैठा हुआ इच्छानुसार चारो ओर भ्रमण किया करता था। मुझको अपने रूपका बड़ा घमंड था, इसीसे एक दिन राहमें अंगिराके वंशके कुरूप मुनियोंको देख कर मैं हँस दिया। इसीसे कुपित होकर उन्होने शाप दिया। भगवन्! यह मेरा दोषही इस निन्दित योनिके मिलनेका कारण है ॥ १२ ॥ १३ ॥ किन्तु मैं समझता हूँ कि उन दयालु ऋषियोंने शाप नहीं दिया, वरन् अनुग्रहही किया। उन्हींकी कृपासे आज मुझको आप जो तीनो लोकोंके गुरु हैं उनके दुर्लभ चरणोंका स्पर्श प्राप्त हुआ और तुरन्तही मेरे सब पाप नष्ट हो गये ॥ १४ ॥ हे दुःखनाशन! हे प्रपन्नभयभंजन! आपके चरणोंका स्पर्श पातेही मैं शापसे छूट गया। अब आज्ञा दीजिये—मैं अपने लोकको जाऊँ ॥ १५ ॥ आप महायोगी, महापुरुष और सज्जनोंके स्वामी हैं। हे जगदीश्वरोंके भी ईश्वर! हे देव! अब कृपा करके मुझको आज्ञा दीजिये ॥ १६ ॥ आपकी महिमा अपरम्पार है, अहो आपके दर्शन पाते ही मैं अमोघ ब्रह्मदण्डसे मुक्त हो गया। किन्तु इसमें कोई आश्चर्य्य नहीं है। केवल आपके नामका ऐसा प्रभाव है कि नाम कीर्त्तन करनेवाला सुननेवालों सहित उसी समय पवित्र हो जाता है। तब मुझे तो साक्षात् आपके चरणोंका स्पर्श प्राप्त हुआ है—मेरी मुक्ति होना क्या आश्चर्य्य है" ॥ १७ ॥ इस प्रकार कृष्णकी परिक्रमा और प्रणाम करके एवं जानेकी आज्ञा लेकर विद्याधर सुदर्शन अपने लोक (स्वर्ग) को गया और कृष्णकी कृपासे नंदजी भी कष्टसे छूट गये ॥ १८ ॥ कृष्णके ऐसे अपूर्व प्रभावको देख कर व्रजवासियोंको बड़ाही विस्मय हुआ। गोपगण प्रातःकाल अपना नियम समाप्त करके हरिके उक्त चरित्रको आदरपूर्वक कहते हुए लौट कर व्रजको आये ॥ १९ ॥ एक दिन अद्भुत पराक्रमवाले बलभद्र और श्रीकृष्णजी वनमें रात्रिके समय व्रजबालाओंके साथ विहार करने लगे। दोनो भाई सुन्दर आभूषण, वस्त्र, अंगराग और मालाओंसे सुशोभित हुए, और जिनका प्रेम अटल अचल है वे गोपियाँ मधुर स्वरसे उन्हींके गुण गाने लगीं ॥ २० ॥ २१ ॥ उस समय रात्रिका पहला ही पहर था, तारागणसहित पूर्ण चन्द्रमा आकाशमें प्रकाशमान था एवं मल्लिकाकी सुवासमें मतवाले मधुपगण इधर उधर कुमुदकुसुमोंके

सुगंधित संसर्गसे पवनके साथ डोल रहे थे । दोनो भाइयोंने रास रच कर उस मनोहर रात्रिको सम्मानित किया ॥ २२ ॥ कृष्ण-बलदेव दोनो भाई उस समय एकसाथही स्वरमंडलमूर्च्छनायुक्त मधुर राग अलापने लगे । वह गान सुननेवालोंके कान और मनको तृप्त करनेवाला था ॥ २३ ॥ वह महामनोहर गीत सुन कर गोपियोंको अपने शरीरकी भी सुधि बुधि नहीं रही । उनके वस्त्र गिर पड़नेसे अंग खुल गये, केश बिखर गये और केशोंमें गुँधे हुए फूलोंकी मालाएँ शिथिल होकर खिसक पड़ीं ॥ २४ ॥ जैसे कोई मतवाला हो उस भाँति अपनी इच्छाके अनुसार कृष्ण और बलदेव क्रीड़ा करते हुए गारहे थे—इसी अवसर पर उधरसे कुबेरजीका किंकर शंखचूड़ नाम यक्ष वहाँ आया ॥ २५ ॥ वह निडर यक्ष, कृष्ण-बलदेव जिनके रक्षक हैं उन चिल्लाती हुई गोपियोंको लेकर कृष्ण-बलदेवके सामने ही उत्तर दिशाको चला । जैसे गौवें बाघको पास देख कर चिल्लाती हैं वैसेही "हे कृष्ण। हे बलभद्र !!" कह कर गोपियाँ चिल्लाने लगीं। अपनी प्रियाओंकी यह दशा देख कर दोनो भाई उस दुष्ट यक्षके पीछे झपटे ॥ २६ ॥ २७ ॥ दोनो भाई "डरो नहीं-डरो नहीं"—कह कर निर्भय करते हुए शालके वृक्ष उखाड़ कर वेगसे यक्षको पकड़नेके लिये दौड़े और शीघ्र ही भाग रहे दुष्ट यक्षके निकट पहुँच गये ॥ २८ ॥ उसने जब देखा कि काल और मृत्युके समान दोनो भाई पास पहुँच गये तब वह मूढ़ बहुत घबड़ाया और स्त्रियोंको वहीं छोड़ अपने प्राण लेकर भागा ॥ २९ ॥ भगवान् कृष्णने तब भी उसका पीछा नहीं छोड़ा, क्योंकि वह उसके शिरमें छिपे हुए चूड़ामणिको लेना चाहते थे । बलदेवजी तो वहीं खड़े होकर स्त्रियोंकी रक्षा करने लगे और कृष्णजी जहाँ २ वह दुष्ट भाग कर गया वहाँ २ उसके पीछे पहुँचे ॥ ३० ॥ थोड़ीही दूर पर जाकर कृष्णने उस दुरात्माको पकड़ लिया । घूँसेके प्रहारसे उसका शिर फट गया और प्राण निकल गये । भगवान्‌ने उसके शिरसे चूड़ामणि निकाल लिया ॥ ३१ ॥

शङ्खचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम् ॥
अग्रजायाददत्प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषिताम् ॥ ३२ ॥

इस प्रकार शंखचूड़को मार कर और प्रभावशाली मणि लेकर कृष्णचन्द्र लौटे और आकर प्रसन्नतापूर्वक गोपियोंके आगे ही वह चूड़ामणि बड़े भाई बलभद्रको देदिया ॥ ३२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंश अध्याय।

कृष्णके वियोगमें व्याकुल गोपियोंका कृष्णचन्द्रकी चर्चामें मन वहलाना।

श्रीशुक उवाच—गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः॥
कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान्॥१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! गोपियोंकी रात्रि तो कृष्णके साथ विहार करनेमें सुखसे बीतती थी परन्तु दिनको जब प्यारे कृष्ण गौवें चरानेके लिये वनको जाते तब उन्हींमें गोपियोंका मन लगा रहता और वे इस प्रकार कृष्णकी लीलाएँ गाकर कष्टसे उतना समय व्यतीत करती थीं॥ १॥ गोपियाँ परस्पर कहतीं कि—“सखियो! वाम वाहु पर वाम कपोल धरे हुए कृष्ण जब अधर पर धरी हुई वंशीको सातो स्वरोंके सात छेदों पर कोमल अँगुलियाँ धरते और हटाते हुए भौंह नचा कर बजाते हैं तब उस वंशीकी मनोहर ध्वनिको सुन कर अपने पतियोंके साथ विमानों पर बैठी हुई सिद्धोंकी स्त्रियाँ परम विस्मयको प्राप्त होती हैं एवं हृदयमें कामके वाण लगनेसे लज्जापूर्वक मोहित हो जाती हैं। उनको इतना भी देहाध्यास नहीं रहता कि कमरसे खिसक कर गिरनेवाले वस्त्रको सम्हालें॥ २॥ ३॥ सुन्दरियो! एक और विचित्र वात सुनो। जिनके वक्षःस्थलमें मनोहर मुसकानकी झलक हारके समान शोभायमान होती है एवं चंचला लक्ष्मी स्थिर दामिनीके समान विराजमान है वह आर्त्तवन्धु कृष्णचन्द्र जब वंशी बजाते हैं तब उस विचित्र वंशीकी ध्वनिने जिनके हृदय हर लिये हैं वे झुंडके झुंड व्रज—वनवासी गऊ, मृग, वैल आदि पशु, चारो ओर घासके कौरको वैसेही मुखमें दवाए, कान उठाए—जैसे सोरहेहों इस प्रकार आँखें बंद किये, चित्रलिखितसे खड़े रह जाते हैं॥ ४॥ ५॥ सखियो! मयूरोंके पंख, गेरू आदि चित्र विचित्र धातु एवं नवपल्लवोंसे नटवर वेष बनाये कृष्णचन्द्र जब बलभद्र एवं अन्यान्य गोपोंके साथ वनमें खड़े होकर गौवोंको अपने निकट बुलाते हैं तब वायु द्वारा लाये गये उनके चरणरजके लाभकी लालसासे नदियोंकी भी गति रुकजाती है। अवश्य ही उन नदियोंने भी हमारे ही समान थोड़ा पुण्य किया है, क्योंकि प्रेमवश उनकी तरंगरूप भुजाएँ केवल एक दो बार डोलती हैं और फिर जल निश्चल हो जाती हैं अर्थात् उनकी इच्छा सफल नहीं होती॥ ६॥ ७॥ सखियो! अनुचर गोपगण (या देवगण) जिनके विचित्र वीर्य्यका वर्णन करते हैं वह आदिपुरुष नारायणके समान अचल लक्ष्मीसम्पन्न विपिनविहारी व्रजचन्द्र जब पर्वतके शिखरों पर चररही गौवोंको वंशी बजा कर बुलाते हैं तब फूल और फलोंके भारसे जिनकी शाखाएँ झुकरही हैं वे वनके वृक्ष—लता आदि वनस्पतिसमूह प्रेमसे पुलकितशरीर होकर मधुधाराओंकी वर्षासे

मानो अपनेमें आत्मारूप विष्णुकी व्यापकता सूचित करते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ देखनेयोग्य सुंदर तिलक लगाये कृष्णचन्द्र जिस समय वनमालाके मध्यमें स्थित दिव्य गंधवाली तुलसीके मधुर मधुमें मत्त मधुपमंडलीके गुंजनका आदर करते हुए वंशीको अधर पर धर कर बजाते हैं उस समय, मनोहर गीतने जिनके चित्त चुरा लिये हैं वे सरोवरवासी सारस, हंस आदि अनेक पक्षी निकट आकर एकाग्रचित्तसे नेत्र मूँद कर चुपचाप योगियोंके समान ध्यान लगाकर हरिकी उपासना करते हैं ॥१०॥११॥ हे गोपियो, फूलोंकी मालाओंसे रचे गये कर्णभूषणोंसे जिनके मुखमंडलकी अपूर्व शोभा हो रही है वह कृष्णचन्द्र जिस समय प्रसन्नतापूर्वक जगत्को प्रसन्न करते हुए बलभद्रके साथ पर्वतके शिखरों पर खड़े होकर वंशी बजाते हैं उस समय महान् जो कृष्ण हैं उनके अतिक्रमणसे जिसका चित्त शंकित हो रहा है वह मेघ वंशी-ध्वनिके पीछे मन्द२ गर्जता है (अर्थात् कृष्णचन्द्र कुपित न हों इस लिये वंशीध्वनिसे अधिक शब्द नहीं करता) और अपने सुहृद् (कृष्णचन्द्र मेघसदृश श्याम शरीर हैं और मेघके समान विश्वके तापको हरनेवाले भी हैं इसी लिये उनको मेघका सुहृद् कहा है) व्रजराज पर फूलोंकी वर्षा करता हुआ छत्रके समान छाया करता है ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे यशोदाजी ! गोपोंकी विविध क्रीड़ाओंमें निपुण तुम्हारे पुत्र कृष्णचन्द्र जिस समय स्वयं सीखी हुई निषाद, ऋषभ आदि अनेक स्वरजातियोंको अधरबिंब पर धरी बाँसुरी बजा कर अलापते हैं उस समय हे सती नन्दरानी ! इन्द्र, महादेव, ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवगण ह्रस्व, मध्यम और दीर्घ भेदोंके उतार चढ़ावमें अलापे हुए गीतको शिर झुका कर कान लगा कर एकाग्र चित्तसे सुनते हैं एवं सर्वज्ञ हो कर भी उस गीतके तत्त्वको निश्चितरूपसे न जान सकनेके कारण मोहको प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ सखियो ! श्रीकृष्णचन्द्र जब ध्वजा, वज्र, कमल अंकुश आदि विचित्र चिन्होंसे युक्त अपने श्रीचरणोंके द्वारा व्रजभूमिकी गोखुरप्रहारजनित व्यथा मिटाते हुए गजराजकी ऐसी चालसे बाँसुरी बजाते चलते हैं उस समय उनकी लीलाविलासपूर्ण चितवन हमारे हृदयमें कामको जगा देती है, हम कामदेवके वेगसे वृक्षोंके समान जड़ दशाको प्राप्त हो जाती हैं और मोहके कारण खुले हुए वस्त्र या वेणी बाँधना भी भूल जाती हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ गौवें गिननेके लिये मणियोंकी माला एवं प्रियगंधवाली तुलसीकी माला पहने हुए कृष्णचन्द्र जब अपने प्रणयी सखाके कंधे पर भुजा धर कर वनसे लौटते समय गौवोंकी गिनती करते हुए वंशी बजाते हैं उस समय बज रही वंशीके शब्दसे जिनके चित्त छले गये हैं वे मृगोंकी स्त्रियाँ दौड़ती हुई गुणसागर नटनागर कृष्णके निकट आती हैं और हम गोपियोंके समान घरद्वार छोड़ कर उन्हींके पास खड़ी रहती हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे यशोदाजी ! हे शुद्धचरित्रवाली व्रजरानी ! कुंदमाला पहने और कौतुक उपजानेवाला वेष बनाये तुम्हारे

पुत्र नन्दनन्दन कृष्ण, जिस समय गोप और गौवोंको साथ लेकर उनके बीचमें यमुनातट पर प्रणयी जनोंको आनन्द देते हुए विहार करते हैं, उस समय मलय पर्वतमें उत्पन्न चन्दनके समान जिसका स्पर्श शीतल है वह सुगंधित पवन उनका सम्मान करता हुआ अनुकूल हो कर मंद २ डोलता है एवं वंदीजनोंकी भाँति स्तुतिपाठ करते हुए गंधर्व आदि उपदेवगण बाजे बजाते, गाते, और फूलोंकी वर्षा करते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ सखियो! कृष्ण प्यारे हम व्रजवासियोंके और गौवों-के परम हितकारी हैं; उन्होने गौवोंकी और हमारी रक्षाके लिये गोवर्द्धन पर्वत उठा लिया और उसे सात दिन तक वैसेही लिये खड़े रहे । अब दिन बीत गया, जान पड़ता है कि सब गोधन एकत्र करके हम सुहृद् जनोंकी कामना पूर्ण करनेके लिये प्यारे कृष्ण आ रहे हैं, वह सुनो—गोपगण पीछे २ उनकी अपूर्व कीर्त्तिका कीर्त्तन करते आ रहे हैं और वंशीकी मधुर ध्वनि भी सुन पड़ती है। अवश्यही ब्रह्माआदि देवगण मार्गमें चरणवन्दना करते जाते हैं, इसीसे अब तक हमको प्यारेका दर्शन नहीं मिला। सखियो! वह देखो, गौवोंके खुरोंसे उड़ी हुई धूलिसे धूसरित मालाको पहने देवकीके पुत्र गोकुलचन्द्र आगये! अहो यद्यपि यह इस समय वनविहारसे थके हुए आ रहे हैं तौभी इस समयकी मनोहर छविसे नेत्रोंको अत्यन्त आनंद दे रहे हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ वनमालीकी आँखें इस समय मदके कारण कुछ चढ़ी हुई हैं, दोनो कपोल कनककुंडलोंकी कान्तिसे सुशोभित हो रहे हैं अतएव पके हुए बेरके फलके समान मुखमण्डल पीतवर्ण हो रहा है। प्यारे कृष्ण अपने सुहृद्जनोंको कृपादृष्टिसे सम्मानित करते हुए गजराजकी ऐसी चालसे आ रहे हैं। देखो देखो, व्रजवासी और गौवोंके दुरन्त दिन-तापको दूर करते हुए प्रसन्नवदन यदुपति सायंकालमें चन्द्रमाके समान हमारे समीपही आ रहे हैं" ॥ २४ ॥ २५ ॥

श्रीशुक उवाच—एवं व्रजस्त्रियो राजन्कृष्णलीलानुगायतीः ॥
रेमिरेऽहःसु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥ २६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! इस प्रकार कृष्णही जिनके जीवन-सर्वस्व हैं और उन्हींमें जिनके मन आसक्त हो रहे हैं वे महाभाग्यशालिनी गोपियाँ उन्ही प्रियतमके चरित्र गाती और चर्चा करती हुई दिनको बिताती थीं ॥ २६ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंश अध्याय ।

अरिष्टासुरका वध और कंसका अक्रूरको व्रज जानेके लिये आज्ञा देना ।

श्रीशुक उवाच–अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः ॥
महीं महाककुत्कायः कम्पयन्खुरविक्षताम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज! इसी अवसरमें अरिष्टनाम असुर बैलके रूपसे, खुरप्रहारसे पृथ्वीको खोदता और कम्पित करता हुआ व्रजमें आया । उसका ककुद् और शरीर बहुतही ऊँचा और लम्बा चौड़ा था ॥ १ ॥ वह विकट शब्द करता हुआ वारंवार धरतीको खोदता और पूँछ उठा कर सींगोंसे दीवारोंको तोड़ता एवं बीच २ में थोड़ा २ मलत्याग करता जाता था । वह दोनो नेत्र फैलाये भयानक रूपसे गर्ज रहा था । राजन्! उसके कठोर शब्दको सुन कर गौवें और गोपियाँ बहुतही डरीं और अकालमेंही उनके गर्भ गिर पड़े और बह गये । उसका ककुद् इतना ऊँचा था कि उस पर मेघसमूह पर्वतके धोखे ठहर जाते थे । अत्यन्त तीक्ष्ण सींग उठाये उस असुरको व्रजमें आते देख कर गोपी और गोप बहुतही डरे । सब पशु व्रज छोड़ कर इधर उधर भागे । गोकुलवासी लोग–"हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महायोगिन्! इस वृषभासुरसे हमारी रक्षा करो"—यों कहते हुए गोविंदकी शरणमें आये । भगवान्ने देखा कि सब गोकुल भय और घबड़ाहटके कारण प्राणोंकी रक्षाके लिये इधर उधर भाग रहा है । कृष्णचन्द्रने "डरो नहीं" इस अभयवाणीसे उनको आश्वास दिया और वृषभासुरको ललकारकर कहा कि—"रे कायर! हे महादुष्ट! इन गोपों और पशुओंको क्यों वृथा डरा रहा है? तुझ ऐसे दुष्ट दुरात्मा लोगोंके बलदर्पको दूर करनेवाला मैं खड़ा हूँ"। यों कह कर दीनार्त्तिहारी अच्युतने ताल ठोंक कर अपनी सखाके कंधे पर धरी हुई भुजा असुरके आगे फैला दी । यह देख कर असुरको बड़ाही कोप हुआ । इस प्रकार हरि द्वारा कोपित असुर, क्रोधके कारण खुराघातसे पृथ्वीको खोदता कृष्णकी ओर बढ़ा । वह इस वेगसे पूँछ उठा कर झपटा कि मेघ चक्कर खागये । वह असुर आगे सींग किये लाल २ आँखें फैलाये कृष्ण पर वक्र दृष्टि डालता हुआ इन्द्रके हाथसे छूटे वज्रके समान वेगसे चला ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ॥७॥८॥९॥१०॥ जैसे कोई गजराज अपनेसे भिड़नेवाले किसी दूसरे गजको पीछे हटा दे वैसे ही कृष्णचन्द्रने सींग पकड़ कर उस असुरको अट्ठारह पग पीछे रेल दिया ॥ ११ ॥ भगवान्ने पीछे हटा दिया, किन्तु वह फिर शीघ्रही सँभल गया । उसके शरीरसे पसीना बहने लगा तौ भी वह बड़ी २ साँसें छोड़ता हुआ कोपाकुल होकर फिर कृष्ण पर झपटा ॥ १२ ॥ भगवान्ने सामने आरहे बैलके सींग पकड़ लिये और पैरोंके आक्रमणसे उसको पृथ्वी पर गिरा दिया; फिर जैसे

कोई गीले वस्त्रको निचोड़े इस प्रकार उसके शरीरको मरोड़ डाला एवं सींग उखाड़ लिये और उसीके प्रहारसे उसे मारडाला ॥ १३ ॥ अरिष्टासुर गिर पड़ा, मुखसे रुधिर बहने लगा, मल-मूत्र निकल पड़ा, आँखोंकी पुतली घूम गई। इस प्रकार बार २ पैर पटक कर बड़े कष्टसे वह दैत्य यमलोकको गया। यह देख कर देवगण फूलोंकी वर्षा करते हुए हरिकी स्तुति करने लगे ॥ १४ ॥ इस प्रकार गोपियोंके नयनोंके आनन्द नन्दनन्दन कृष्णचन्द्र, गोपोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए वृषभासुरको मारकर बलरामके साथ व्रजमें आये ॥ १५ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** महाराज! अद्भुत कर्म करनेवाले कृष्णचन्द्रने जब अरिष्टासुरको मारडाला तब भगवान्‌की इच्छा जान कर एक दिन दिव्य दृष्टिवाले देवऋषि भगवान् नारदजीने कंसके यहाँ जा कर उससे कहा कि "देवकीके आठवें गर्भसे कन्या नहीं हुई—वह कन्या यशोदाकी थी, कृष्ण और बलभद्र दोनो देवकी और रोहिणीके पुत्र हैं। वसुदेवने तुम्हारे भयसे अपने मित्र नंदके यहाँ धरोहरके समान उनको रख छोड़ा है—उन्हीं दोनोने तुम्हारे अनुचरोंको मारा है"। यह वृत्तान्त सुनतेही कोपके कारण कंसकी सब इन्द्रियाँ विचलित हो उठीं। उसने वसुदेवको मारनेके लिये एक तीक्ष्ण तर्वार उठा ली, किन्तु नारदजीके समझानेसे मान गया। कंसको नारदके बतानेसे विदित हुआ कि वसुदेव उसकी कुछ हानि नहीं कर सक्ते, वसुदेवके दोनो पुत्रही काल हैं। इस कारण कंसने वसुदेवको मारा नहीं, किन्तु देवकीसहित लोहेकी जंजीरोंमें बाँध कर बंदीगृहमें डाल दिया। जब देवऋषि चले गये तब कंसने केशी नाम असुरको बुलाया और उससे कहा कि तुम व्रजमें जा कर कृष्ण और बलभद्र-को मार डालो ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ तदनन्तर भोजराजने मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल आदि मल्लोंको और महावत तथा अन्यान्य मंत्रियोंको बुलाकर कहा—"हे चाणूर, मुष्टिक आदि वीरवरो! सुनो वसुदेवके पुत्र कृष्ण और बलदेव नंदके व्रजमें रहते हैं, नारदसे मुझको विदित हुआ है कि उन्हींके हाथों मेरी मृत्यु बदी है। मैं उनको यहाँ बुलाऊँगा, तुम अपने दावपेंचकी चतुराईसे उनको मार डालना। भाँति २ के मञ्च और अखाड़े बनाओ और सजाओ; पुर और जनपदोंके रहनेवाले लोग उन मंचों पर बैठ कर इस स्वैरसंयुग (दंगल)को देखेंगे। महावत! तुम भी उस दिन रंगद्वार पर कुवलयापीड़ हाथीके ऊपर रहना और यथाशक्ति उन दोनो मेरे शत्रुओंको मार डालना, हाथीसे बच कर जाने न पावें! चतुर्दशीके दिन विधिपूर्वक धनुपयज्ञका आरंभ हो और वरदानी भूतनाथकी पूजामें असंख्य पशुओंका बलिदान किया जाय" ॥२४॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥ स्वार्थ साधनेमें सिद्धहस्त कंसने महावत और मल्लोंको यों आज्ञा देकर यदुश्रेष्ठ अक्रूरको अपने पास बुलाया और हाथमें हाथ लेकर कहा कि—"हे

अक्रूरजी! तुम मेरे परम मित्र हो, यादवोंमें तुमसे बढ़ कर मेरा आदरपात्र और हितू कोई नहीं है, अतएव आज तुमको मेरा एक काम करना होगा ॥ २७ ॥२८॥ जैसे सर्वशक्तिशाली इन्द्रने विष्णुके आश्रयसे सब अपने काम सिद्ध किये वैसे ही मैं भी अपना काम साधनेके लिये तुम्हारा आश्रय लेता हूँ ॥ २९ ॥ तात! हे सौम्य! तुम यहाँसे नंदके व्रजमें जाओ, वहाँ वसुदेवके दो पुत्र रहते हैं, उनको वहुत शीघ्र रथ पर ले आओ–विलम्ब न करो ॥ ३० ॥ विष्णुका जिनको आश्रय है उन देवोंने इन दोनो बालकोंको मेरे मारनेके लिये सिर्जा है । यह निश्चित बात है, नंद-आदिक गोप भाँति २ की भेंटें लेकर आवें; उन्हींके साथ तुम कृष्ण बलभद्रको ले आओ । मैं यहाँ आने पर उन दोनोको कालतुल्य हाथीसे मरवा डालूँगा । कदाचित् वे हाथीसे किसी प्रकार बच गये तो मेरे वज्रके समान कठिन और फुर्त्तीले मल्ल उनको जीता न छोडेंगे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उनके मरने पर शोकाकुल वसुदेव आदि उनके बंधुओं और अन्यान्य भोज-वृष्णि-दाशार्हवंशज उनके मित्रोंको सहजमें ही मार डालूँगा ॥ ३३ ॥ फिर बूढ़े होने पर भी जिसको राज्य करनेकी लालसा है उस अपने पिता उग्रसेन और चाचा देवकको एवं और २ जो अपने शत्रु हैं उनको भी मार डालूँगा ॥ ३४ ॥ मित्र! तव यह पृथ्वी निजसम्पत्ति हो जायगी । ससुर जरासंध, प्रिय मित्र द्विविद वानर, शंबरासुर, नरकासुर, बाणासुर आदि जो मेरे हितकारी हैं उनकी सहायतासे देवपक्षवाले राजोंको मार कर मैं पृथ्वीका निष्कंटक राज्य करूँगा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ यह जान कर तुम शीघ्रही कृष्ण और बलदेव दोनो बालकोंको धनुपयज्ञ और मथुरा पुरीकी शोभा देखनेके मिससे ले आओ" ॥ ३७ ॥ अक्रूरने कहा । "राजन्! आपने जो विचार करके ठीक किया सो बहुत अच्छा है, अपना अमंगल मिटाना मनुष्यका कर्त्तव्य है । किन्तु उसका सिद्ध हो जाना या न सिद्ध होना अपने अधीन नहीं है; फल देनेवाला दैव ही है ॥ ३८ ॥ लोगोंकी उच्च अभिलाषाएँ यद्यपि दैवके प्रतिबंधक होनेसे प्रायः पूरी नहीं होतीं तथापि वे वैसी कामनाएँ करके आनन्द भी पाते हैं और दुःखित भी होते हैं । जो हो, मैं आपकी आज्ञा अवश्य पालन करूँगा" ॥ ३९ ॥

श्रीशुक उवाच–एवमादिश्य चाक्रूरं मन्त्रिणश्च विसृज्य सः ।
प्रविवेश गृहं कंसस्तथाक्रूरः स्वमालयम् ॥ ४० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन्! इस प्रकार अक्रूरको आज्ञा देकर कंसने मंत्रियोंको विदा किया और भवनमें गया । इधर अक्रूरजी भी अपने घरको गये ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कंधे पूर्वार्धे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंश अध्याय।

केशी और व्योमासुरका वध।

श्रीशुक उवाच—केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं महाहयो निर्जरयन्मनोजवः
सटावधूताभ्रविमानसंकुलं कुर्वन्नभो हेषितभीषिताखिलः॥१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! इधर कंसका भेजा हुआ केशी नाम असुर घोड़ेका रूप धर मनके समान वेगसे दौड़ता हुआ व्रजमें आया। उसके खुर जहाँ पड़ते थे वहाँ पृथ्वी खुद जाती थी। उसकी गर्दनके बालोंकी थपेड़से आकाशमें मेघ और विमानवृंद परस्पर टकराते थे। उसका भयंकर शब्द सुन कर सम्पूर्ण विश्व भयसे व्याकुल होगया॥ १॥ भगवान्‌ने देखा कि वह दैत्य अपने शब्दसे गोकुलको भयाकुल करता हुआ युद्ध करनेके लिये मुझ (कृष्ण) को खोज रहा है और उसकी पूँछके बालोंसे टकराये मेघ इधर उधर विथर जाते हैं। उसी समय भगवान्‌ने सामने आकर उसको युद्धके लिये ललकारा। कृष्णचन्द्रको देख कर वह भी सिंहके समान गर्जा॥ २॥ तदनन्तर प्रचण्डवेगशाली अतएव दुरतिक्रम और दुर्दमनीय वह केशी दैत्य, मुख फैला कर—मानों आकाशको पी जायगा, इस भाँति झपटा और अत्यन्त कुपित होकर पीछेकी दुलत्ती कमलनयन कृष्ण पर चलाई॥ ३॥ किन्तु कृष्ण भगवान् लीलापूर्वक उसके पादप्रहारको वचा गये। फिर उस दैत्यने वैसे ही दुलत्ती चलाई, तब प्रभुने उसके पिछले दोनो पैर पकड़ लिये एवं गरुड़ जैसे साँपको झिटक दे उसी भाँति घुमा कर चार सौ हाथ पर फेंक दिया और वहीं खड़े रहे॥ ४॥ उस दैत्यको जब चेत हुआ तब फिर मुख फैला कर क्रोधपूर्वक वेगसे हरिकी ओर चला। भगवान्‌ने भी हँसते हुए अपना हाथ उस दैत्यके मुखमें देदिया। जैसे बाँवीमें साँप चला जाय वैसे ही वह बाहु केशीके मुखमें चला गया॥ ५॥ भगवान्‌की भुजा छू जातेही उसके सब दाँत गिर पड़े, मानों किसी तपे लोहेसे गिरा दिये गये। महात्मा कृष्णचन्द्रका बाहु भी उस दैत्यके शरीरमें जाकर उपेक्षित रोगके समान क्रमशः बढ़ने लगा॥ ६॥ बढ़ रहे कृष्णके बाहुसे उसकी श्वासा रुक गई—तब ऊब कर वह गिर पड़ा और पैर पटकने लगा, आँखें निकल पड़ीं, पसीना बह चला एवं मलके साथही प्राण निकल गये। उस दैत्यका शरीर पकी हुई ककड़ीके समान खिल गया। भगवान्‌ने उसके मृत शरीरसे अपना हाथ खींच लिया। भगवान्‌को कुछ विस्मय नहीं हुआ—उन्होने सहजमें ही शत्रुको मारडाला। किन्तु देवगण बहुत विस्मित हुए और फूलोंकी वर्षा व स्तुति करने लगे॥ ७॥ ८॥ इसी अवसरमें भागवतश्रेष्ठ देवर्षि नारदजी एकान्तमें सर्वशक्तिमान् कृष्णसे मिले और हे राजन्! उन्होने कहा कि "हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे अपरिच्छिन्नस्वरूप योगेश्वर!

हे जगदीश्वर! आप वासुदेव हैं, सबका आश्रय हैं, सात्त्विक जनोंमें श्रेष्ठ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ लकड़ियोंमें अग्निके समान आप सब प्राणियोंके अभ्यन्तरमें निरन्तर सम्बन्ध रखनेवाले आत्माके रूपसे अवस्थित हैं तथापि गूढ़ हैं क्योंकि आप गुहाशय (बुद्धिका भी आश्रय) एवं साक्षी हैं अतएव अदृश्य हैं। आप महापुरुष हैं, इसी कारण जिनकी बुद्धि मायासे ढँकी हुई है वे लोग आपको नहीं जानसक्ते। प्रभो! आप सबके ईश्वर अर्थात् परमेश्वर हैं। आप स्वतन्त्र, सत्यसंकल्प परमेश्वर हैं। आपने पहले मायाके द्वारा तीन गुणोंकी सृष्टि की। उन्हीं गुणोंसे आप विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते हैं। वह शुद्ध सत्त्वरूप आप रजोमय नृपरूपधारी दानव, दैत्य, असुर व राक्षसोंके विनाश और साधुओंकी रक्षाके लिये पृथ्वी पर प्रकट हुए हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ अहोभाग्य! जिसके प्रचंड शब्दसे डर कर देवतोंने स्वर्गका रहना छोड़ दिया उसी केशी दैत्यको आपने लीलापूर्वक मारडाला ॥ १४ ॥ मैं शीघ्र ही देखूँगा कि आप परसों चाणूर, मुष्टिक आदि मल्लोंको, कुवलयापीड़ हाथी एवं कंसको भी मारियेगा ॥ १५ ॥ उसके पीछे शंखासुर, कालयवन, मुर दानव, नरकासुर आदिका मरना, पारिजातहरण, इन्द्रकी हार, वीर्य्य ही मूल्य देकर वीरकन्याओंसे विवाह करना और हे जगदीश्वर! द्वारकापुरीमें राजा नृगका शापसे छूटना, सत्यभामा और जाम्बवती सहित स्यमंतकमणि पाना, महाकालपुरसे ब्राह्मणको उसका मरा हुआ पुत्र लादेना, पौण्ड्रक राजाका वध, काशीपुरीका जलना एवं महायज्ञमें दंतवक्र और शिशुपालका वध इत्यादि आपके चरित्र देखूँगा ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ और भी जो चरित्र आप द्वारकामें रह कर करियेगा उनको मैं देखूँगा। उन पवित्र चरित्रोंको कविलोग पृथ्वी पर गावेंगे ॥ २० ॥ फिर कालरूप आप पृथ्वीका भार उतारनेकी इच्छासे महाभारत संग्राममें अर्जुनके सारथी बन कर असंख्य अक्षौहिणी सेनाओंका संहार करेंगे— सो भी मैं देखूँगा ॥ २१ ॥ हे हरि! केवल ज्ञान ही आपकी प्रधान मूर्ति है। अतएव अपने रूपके यथोचित समावेशसे ही आपको सब 'अर्थ' सम्पूर्णरूपसे प्राप्त हैं। आपकी वाञ्छा अमोघ है। आप अपने तेजके द्वारा नित्य गुणप्रवाहको निवृत्त कर देते हैं। मैं आपके चरणोंकी शरणमें हूँ ॥२२॥ आप ईश्वर एवं स्वतन्त्र हैं, अपनी मायाके द्वारा अशेष विशेष—कल्पनाओंका निर्माण करते हैं। आपने क्रीड़ा करनेके लिये मनुष्यशरीर धारण किया है। आप यदु वृष्णि और सात्त्वत वंशके यादवोंमें धुरन्धर हैं" ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! श्रीकृष्णके दर्शनसे परमानन्दित भागवतश्रेष्ठ मुनि नारदजीने यों स्तुति की और फिर प्रणाम किया एवं आज्ञा पाकर चले गये ॥ २४ ॥ व्रजको सुख देनेवाले भगवान् गोविंद भी युद्धमें केशीको मारकर प्रसन्नचित्त पशुपालोंके साथ पशु-पालनमें प्रवृत्त हुए

॥ २५ ॥ एकदिन सब गोप लोग पर्वतके शिखरों पर पशुओंको चराते २ परस्पर चोर और पशुपाल बन कर "निलायन" नाम खेल खेलने लगे ॥ २६ ॥ राजन्! उनमें कुछ चोर, कुछ भेंड़ और कुछ चरवाहे बने। जो चोर बने थे वे निधड़क पशु बने हुए बालकोंको चुरा कर लेगये ॥ २७ ॥ मयासुरका पुत्र महामायावी व्योमासुर गोपरूप धर कर बालकोंमें मिल गया और पशु बने हुए बहुतसे बालकोंको लेगया ॥ २८ ॥ वह महा असुर जिन २ बालकोंको ले जाता उनको एक पर्वतकी कंदरामें डाल देता और शिलासे उसका द्वार बंद कर आता था। इस प्रकार वहाँ चार ही पाँच बालक बचे, और सबको वह असुर लेगया ॥२९॥ सज्जनोंकी रक्षा करनेवाले कृष्णचन्द्र जान गये कि यह काम उसी गोपरूपधारी असुरका है। जब वह फिर बालकोंको लेचला तब भगवान्ने झपट कर जैसे बली सिंह वृक (भेंड़िये) को दबा बैठै वैसे उसको दबालिया ॥ ३० ॥ उस समय उस बली दैत्यने अपना बड़े भारी पर्वतके समान शरीर प्रकट किया और छूटनेका बहुत प्रयत्न करने पर भी न छूटसका। भगवान्की पकड़से वह दैत्य बहुतही व्याकुल हुआ ॥ ३१ ॥ अच्युतने दोनो हाथोंसे पकड़ कर उस दैत्यको पृथ्वी पर गिरादिया और पशुओंकी ऐसी मारसे मार डाला ॥ ३२ ॥

गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान्निःसार्य कृच्छ्रतः ॥
स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार दुष्ट दैत्यको मारनेके उपरान्त भगवान्ने शिला हटा कर उस कंदराका द्वार खोलदिया और वे गोप कष्टसे छूटे। तदनन्तर गोपगण और देवगणके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए कृष्णचन्द्र व्रजमें गये ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंश अध्याय।

अक्रूरकी व्रजयात्रा।

श्रीशुक उवाच–अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः ॥
उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! इधर देवऋषि नारदजी कंस–वध आदि भविष्य कार्य्योंकी सूचना देकर चले गये और कृष्णचन्द्र मथुरा जानेके लिये उद्यत हुए। उधर महामति अक्रूरजी भी वह रात मथुरामें बस कर प्रातःकाल रथ पर चढ़ कर नंदजीके गोकुलको चले ॥ १ ॥ राहमें जाते समय अक्रूरजीके हृदयमें कमलनयन भगवान्की परम भक्तिका उदय हुआ, तब वह भक्तिभावसे पूर्ण हो कर

आप ही आप विचारने लगे कि "मैंने कौन पुण्य या तप किया है अथवा सत्पात्रको दान दिया है जो आज केशवको देखूँगा ॥ २ ॥ ३ ॥ किन्तु जैसे शूद्रवंशज विषयासक्त पुरुषके लिये वेदोंका पढ़ना दुर्लभ है वैसे ही मेरी समझमें मुझे दर्शन मिलना दुर्लभ है ॥४॥ अथवा ऐसा विचारना भूल है । यद्यपि मैं अधम हूँ तथापि अच्युतके दर्शन मुझे प्राप्त ही होंगे । जैसे नदीमें बह रहे तृणोंमें कोई तृण किनारे लग जाते हैं वैसेही कालके प्रवाहमें कर्मवश बह रहे जीवोंमें कोई जीव भी कभी पार पहुँच जाते हैं । अतएव कृष्णदर्शन मिलना और उसके द्वारा संसारके पार पहुँच जाना मेरे लिये असंभव भी नहीं है ॥५॥ निश्चय ही आज मेरे सब पाप नष्ट हो गये और जन्म सफल हुआ, क्योंकि व्रजमें जा कर, मैं, जिनका योगीजन ध्यान करते हैं उन कृष्णके चरणारविंदोंमें प्रणाम करूँगा ॥ ६ ॥ अहो ! दुष्ट कंसने मुझ पर परम अनुग्रह किया । कंसका भेजा हुआ मैं, पृथ्वी पर जिनका अवतार हुआ है उन श्रीहरिके चरणकमलोंको देखूँगा । अम्बरीष आदि पूर्वज महोदयगण, इन्हीं चरणोंके नखमण्डलके प्रकाशकी सहायतासे दुरत्यय अंधकारमय संसारके पार पहुँच गये हैं ॥ ७ ॥ देवदेव महादेव, ब्रह्मा आदि देवगण, लक्ष्मीदेवी, मुनि और भक्तगण सदा जिनकी पूजा करते हैं एवं गौवें चरानेके लिये अनुचरोंके साथ वनमें विचरते समय जो गोपिकाओंके कुचकुंकुमसे रंजित होते हैं उन श्रीचरणोंको मैं देखूँगा—मेरे अहोभाग्य हैं ! ॥ ८ ॥ सुन्दर कपोल, नासिका, मन्द मुसकान, कृपादृष्टि, अरुण कमलतुल्य लोचन एवं घूँघरवाली अलकोंसे सुशोभित मुकुन्दके मनोहर मुखको अवश्य मैं देखूँगा, क्योंकि मृगगण दाहिनी ओर आते जाते देख पड़ते हैं ॥ ९ ॥ अपनी ही इच्छासें पृथ्वीका भार उतारनेके लिये मनुष्यशरीर धारण करनेवाले कृष्णचन्द्रका त्रिभुवनसुन्दर महामनोहर वह श्याम शरीर आज क्या मैं अवश्य ही देखूँगा ? यदि दर्शन होंगे तो अवश्यही मेरे नेत्र कृतार्थ होजायँगे ॥१०॥ जो केवल दृष्टिके द्वारा कार्य्य और कारणके कर्ता हैं तथापि अहंकारसे शून्य हैं, जो अज्ञानजनित भेदभाव जिसका कारण है उस भ्रमको अपने तेजके द्वारा दूर किये हुए हैं, किन्तु वही भेद–भ्रम देखनेकी इच्छासे स्ववशवर्त्तिनी मायाके द्वारा प्राण, इन्द्रिय और बुद्धिसहित अपनेहीमें रचे हुए जीवोंके साथ वृंदावनके केलिकुंजोंमें और गोपियोंके भवनोंमें लीलापूर्वक केलि करते हुए अशक्त संसारी जनोंकी भाँति प्रतीत होते हैं, जिनके गुण, कर्म्म और जन्मकी कथाएँ सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाली हैं तथा जगत्को जीवित, शोभित और पवित्र करती हैं एवं साधुलोग उन गुण–कर्मादिसे शून्य अथच अन्य अलंकारोंसे युक्त कथाओंको वस्त्रालंकारयुक्त शवशरीरके समान समझते हैं, जो निजरचित वर्णाश्रम धर्मके पालक श्रेष्ठ देवगणोंको सुखदेनेवाले हैं, जिनके सम्पूर्ण मङ्गलमय यशको देवगण गाते हैं–वही ईश्वर यादव वंशमें उत्पन्न

होकर अपने पवित्र यशको फैलाते हुए इस समय व्रजमें विराजमान हैं ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ १३ ॥ उनका रूप त्रिभुवनसुन्दर है। जिनके नेत्र हैं वे लोग उसको देख कर परमानन्द पाते हैं। महात्मा लोगोंकी एकमात्र गति और गुरु कृष्णका वही मनोहर रूप, जो लक्ष्मीकी अभिलाषाका एकमात्र आश्रय है, आज मैं देखूँगा, क्योंकि सवेरेसे मुझे अच्छे २ सगुन दिखाई देरहे हैं ॥ १४ ॥ वह श्रीमूर्तिधारी हरि जब मुझे देख पड़ेंगे तब उसी समय मैं रथसे उतर पडूँगा एवं योगीलोग निजलाभके लिये प्रधानपुरुष कृष्ण बलभद्रके जिन चरणारविन्दोंको केवल बुद्धि (भावना) के द्वारा हृदयमें स्थापित करते हैं उनको मैं साक्षात् पाकर प्रणाम करूँगा और फिर कृष्ण बलदेवके सखा जो गोपगण हैं उनको भी प्रणाम करूँगा ॥ १५ ॥ जब मैं प्रभुके चरणों पर गिर पडूँगा तब वेगशाली कालसर्पके भयसे घबड़ा कर शरण चाहनेवाले प्राणियोंको अभयदायक अपना करकमल क्या वह मेरे शिर पर धरेंगे? ॥ १६ ॥ उस करकमलमें पूजनसामग्री देनेसे राजा बलि और इन्द्रदेव त्रिलोकीके इन्द्र हुए हैं और प्रभुने उसी कमलकी ऐसी उत्तम गंधसे युक्त करकमलके स्पर्शसे व्रजबालाओंका विहारश्रम दूर किया हैं। अतएव वह करकमल मोक्षकी इच्छा रखनेवालोंको मुक्तिदायक, सकाम जनोंको अभ्युदयदायक एवं भक्तजनोंको परमानन्ददायक है ॥ १७ ॥ यद्यपि कंसका भेजा हुआ मैं उसका दूत होकर जा रहा हूँ, तथापि कमलनयन कृष्ण मुझको शत्रु नहीं समझेंगे, क्योंकि वह सर्वज्ञ अन्तर्य्यामी हैं। केवल मेरेही मनकी क्यों, बरन् सम्पूर्ण जगत्के भीतर और बाहरकी चेष्टाको वह अपने योगबलसे ज्ञानदृष्टिके द्वारा देखते रहते हैं ॥ १८ ॥ मैं जब उनके चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़ कर खड़ा होऊँगा तब वह क्या मन्द मुसका कर मेरी ओर दयादृष्टिसे देखेंगे? यदि ऐसा होगा तो तत्क्षण मेरे सब पाप नष्ट हो जायँगे और मैं निःशंक होकर परमानन्द पाऊँगा ॥ १९ ॥ मैं उनका परममित्र और ज्ञाति हूँ, उनके सिवा मेरा कोई इष्टदेव नहीं है। यदि कृष्णचन्द्र अपने विशाल बाहुओंके द्वारा मुझे हृदयसे लगावेंगे तो मेरा आत्मा पवित्र हो जायगा और इस शरीरके कर्म्मबन्धन शिथिल हो जायँगे ॥ २० ॥ इस प्रकार अंगसंगका सुख पाकर जब मैं हाथ जोड़ कर प्रणत होऊँगा तब यदि महायशस्वी हरि "अक्रूर!" कह कर मुझसे वार्तालाप करेंगे तो मेरा जन्मही सफल होजायगा। जो लोग पूजनीय हरिके आदरपात्र नहीं हैं उनके जन्मको धिक्कार है! ॥ २१ ॥ नारायणकी दृष्टिमें न कोई प्रिय है, न अति प्रिय है, न शत्रु है और न कोई उपेक्षणीय ही है। तथापि कल्पवृक्ष जैसे निकट आनेवालेकी अभिलाषाएँ पूरी करता है वैसेही जो जिस भावसे भजता है उसको उसी भावसे वह भी भजते हैं॥२२॥मैं जब शिर झुकाए हाथ जोड़ कर खड़ा होऊँगा तब परम सुहृद् बलदाऊजी हाथ पकड़ कर मुझे घरके भीतर ले चलेंगे और भोजनान्त-सत्कार

करके अपने पिता, माता आदि बन्धुओंकी कुशलक्षेम पूछेंगे कि उनके साथ कंस कैसा व्यवहार करता है?" ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। श्वफल्कके पुत्र अक्रूरजी मार्ग भर यों ही कृष्णकी चिन्तामें मग्न रहे। इधर अक्रूरजीका रथ गोकुलके पास पहुँचा, उधर सूर्य्यदेव भी अस्ताचल पर चले गये ॥ २४ ॥ जिनके चरणरजको लोकपाल लोग आदरसहित शिर पर चढ़ाते हैं उन श्रीकृष्णके परमपवित्र पृथ्वीके आभूषण एवं पद्म, यव, अंकुश आदि अपूर्व रेखाओंसे पहचाने गये चरण-चिन्ह जैसे ही अक्रूरने देखे वैसे ही दर्शनके आनन्दकी उमंगसे झपट कर रथसे उतर पड़े और "अहो! यह प्रभुके चरणोंकी धूल है!" कहते हुए वहाँ लोटने लगे। प्रेमके प्रभावसे अक्रूरके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और आँखोंमें आनन्दके आँसू आगये ॥ २५ ॥ २६ ॥ देह धारण करनेकी सफलता इतनेही में है कि निर्दम्भ, निर्भय और विगतशोक हो कर अक्रूरके समान निःस्वार्थ स्वाभाविक भक्तिसे आनन्दपूर्वक दर्शन, श्रवण, संदेश आदिके द्वारा हरिको भजै ॥ २७ ॥ अक्रूरने व्रज पहुँच कर खरिक (जहाँ गऊ दुही जाती हैं) में देखा कि पीताम्बर और नीलाम्बर पहने कृष्ण और बलदेव दोनो भाई विराजमान हैं। उनके नयन शरत्कालके कमल से सुशोभन हैं ॥ २८ ॥ किशोर अवस्था है, श्याम और श्वेत वर्ण है, बड़ी २ विशाल भुजाएँ हैं। दोनो भाई कमलानिलय और त्रिभुवनसुन्दर हैं, उनका विक्रम विचित्र बालगजराजसे भी बढ़ कर है और सुन्दर मुख महामनोहर है ॥ २९ ॥ महात्मा दोनो भाई, ध्वजा, वज्र, अंकुश, कमल आदि चिन्होंसे माहात्म्य सूचित करनेवाले चरणोंके चिन्होंसे व्रजको सुशोभित कर रहे हैं। उनकी चितवनसे अनुग्रह और मुसकानसे प्रसन्नता प्रकट होती है ॥ ३० ॥ उनकी क्रीड़ाएँ उदार और मनोमोहिनी हैं, वे गलेमें मणिमाला और वनमाला पहने, अंगोंमें पवित्र अंगराग लगाये, विमल वस्त्रोंसे विभूषित हैं ॥ ३१ ॥ अक्रूरने देखा कि प्रधानपुरुष, आदिपुरुष, जगत्के कारण जगदीश्वरके अंशसे पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतीर्ण कृष्ण बलदेव दोनो भाई, अपने तेजसे दिशाओंके अन्धकारको दूर करते हुए सुवर्णविभूषित नीलमणि और चाँदीके पर्वत ऐसे विराजमान हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ कृष्ण और बलरामको देखते ही अक्रूरजी शीघ्रतापूर्वक रथसे उतर पड़े। स्नेहसे विह्वल अक्रूरने चरणोंमें गिर कर दण्डवत् प्रणाम किया ॥३४॥ हरिदर्शनजनित परमानन्दसे उत्पन्न आँसू उनके नेत्रोंमें भर आये, शरीर पुलकित हो उठा और उत्कंठासे कंठावरोध हो गया। थोड़ी देर तक वह अपना परिचय भी न देसके ॥ ३५ ॥ किन्तु प्रणतवत्सल भगवान्ने अक्रूरका अभिप्राय स्वयं ही जान लिया एवं प्रसन्नतापूर्वक चक्रांकित बाहुओंसे उनको खींच कर गलेसे लगालिया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर नम्रतापूर्वक हाथ जोड़े खड़े हुए अक्रूरको महामनस्वी बलभद्रजी हाथ पकड़ कर भाई (कृष्ण) सहित घर लेगये ॥ ३७ ॥ घर ले जा-

कर बलदेवजीने स्वागत—सत्कारके बाद बैठनेके लिये श्रेष्ठ आसन दिया, विधिपूर्वक पहले पैर धोकर मधुपर्क (शर्बत) आदि दिया ॥ ३८ ॥ विभुने अतिथि अक्रूरको एक सब गुणोंसे युक्त गऊ दी। फिर अक्रूरने कुछ काल तक विश्राम किया और प्रभुने पास बैठ कर आदरपूर्वक व्यजन (पंखा) डुलाया। तदनन्तर बलभद्रने अनेक गुणोंसे युक्त पवित्र अन्न लाकर श्रद्धापूर्वक अक्रूरको भोजन कराया ॥ ३९ ॥ जब वह भोजन कर चुके तब श्रेष्ठ धर्मके जाननेवाले बलभद्रने मुखवास (पान इलायची आदि), सुगंध और सुगंधित फूलोंकी माला देकर उनको परमप्रसन्न किया ॥ ४० ॥ इस प्रकार सत्कार हो जाने पर नन्दजीने अक्रूरसे पूछा कि "हे दाशार्ह अक्रूरजी! निर्दय क्रूर कंस जीवित है, अतएव कसाईके घर पली हुई भेंड़ोंके समान तुम लोगोंको हर घड़ी अपने प्राणोंका खटका लगा रहता होगा। तुम पर कैसी बीतती है? कंस खल है, वह सब प्रकार अपने शरीरके पालन पोषणकी ही चेष्टामें तत्पर रहनेवाला है। जिसने अपनी बिलख रही बहनके आगे ही उसके पुत्रोंको मार डाला उसकी प्रजाकी कुशल पूछना ही हमारी समझमें व्यर्थ है। उसकी प्रजाको तो जीवन भी दुर्लभ होगा" ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

इत्थं सूनृतया वाचा नन्देन सुसभाजितः ॥
अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥ ४३ ॥

इस प्रकार सत्कारपूर्वक मधुर वाणीसे नंदने अक्रूरसे कुशलप्रश्न किया। कृष्ण-बलदाऊके सत्कार और शुश्रूषासे अक्रूरका मार्गश्रम दूर होगया और वह स्वस्थ हुए ॥ ४३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्त्वारिंश अध्याय।

अक्रूरका कृष्ण बलदेवको लेकर मथुराको लौटना।

श्रीशुक उवाच—**सुखोपविष्टः पर्यङ्के रामकृष्णोरुमानितः ॥**
लेभे मनोरथान्सर्वान्पथि यान्स चकार ह ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। महाराज! अक्रूरने आते समय राहमें जो २ मनोरथ किये थे उनको श्रीकृष्ण बलदेवने भली भाँति सत्कार करके पूर्ण कर दिया। अक्रूरजी सुखपूर्वक पलँग पर बैठे ॥ १ ॥ लक्ष्मीपति भगवान्के प्रसन्न होने पर कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो न मिलसके। तथापि हे राजन्! हरिभक्त लोग कोई भी कामना नहीं करते ॥ २ ॥ सायन्तन भोजनके उपरान्त देवकीनन्दन

कृष्णचन्द्र अक्रूरके पास आकर बैठे एवं "बंधुओंसे कंस कैसा व्यवहार करता है और अब वह क्या करना चाहता है?" सो भी इस प्रकार अक्रूरसे पूछा ॥ ३ ॥

श्रीभगवान्ने कहा। "हे तात! भले आये, आपका कल्याण हो। आपके यहाँ तो सब कुशल है? आपके सुहृद्जन, जातिवाले और बंधुगण तो सुख पूर्वक सुस्थशरीर हैं? ॥ ४ ॥ अथवा यदुकुलको रोगके समान पीड़ा पहुँचानेवाले हमारे मामा कंसका जब अभ्युदय है तब तुम्हारी, तुम्हारे आत्मीयोंकी और प्रजागणकी कुशलही क्या पूछना है? ॥ ५ ॥ अहो! मेरेही कारण माता पिताको अनेक कष्ट मिलते हैं। मेरेही कारण उनके पुत्र मारे गये और वे स्वयं वन्दी बने! ॥ ६ ॥ हे सौम्य! अहो भाग्य हैं जो आज स्वजनदर्शन प्राप्त हुआ; मेरी भी यही अभिलाषा थी। हे तात! अब आप अपने आनेका कारण कहिये" ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! इस प्रकार भगवान्के पूछने पर मधुवंशीय अक्रूरने सभी बातें कह सुनाईं। अक्रूरने कहा-"कंस, यादवोंसे घोर वैर बाँधे है, अभी वसुदेवजीको मारडालनेके लिये उद्यत हुआ था, नारदजी उससे कह गये हैं कि आप (कृष्ण) वसुदेवके पुत्र हैं"। इसी प्रकार 'कंसका संदेसा और दुरभिसन्धि एवं इसी लिये दूत बन कर अपना आना' आदि सब वृत्तान्त अक्रूरजीने कह दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ शत्रुसेनाका संहार करनेवाले कृष्ण और बलदेवजी, अक्रूरके वचन सुन कर हँसे एवं अपने पिताको कंसकी आज्ञा सुना दी ॥ १० ॥ नंदने भी उसी समय व्रजके रक्षक अधिकारीके द्वारा गोपमंडलीमें यह घोषणा करवादी कि "सब गोरस और भाँति २ की भेंटें लेकर अपने २ छकड़े सुसज्जित करो। सवेरे राजा कंसको धनुर्यज्ञरूप पर्वमें गोरस और भेंटें देनेके लिये चलना होगा। पर्वोत्सव देखनेके लिये सब ग्रामवासी लोग भी वहाँ जाते हैं"। यह घोर घोषणा सुन कर गोपियाँ वहुत ही व्यथित हुईं कि कृष्ण बलदेवको लेजानेके लिये व्रजमें अक्रूर आये हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ उस व्यथासे उत्पन्न हृदय-तापकी गर्म श्वासाओंसे कुछ गोपियोंके मुखकमल मुरझा गये। कुछ गोपियाँ ऐसी शिथिल हो गईं कि उनको दुपट्टे और कंगनोंके गिरने तथा वेणीके खुलनेका भी चेत न रहा ॥ १४ ॥ कुछ गोपियाँ कृष्णके ध्यानमें ऐसी लवलीन होगईं कि उनकी इन्द्रियाँ निश्चेष्ट होगईं और मुक्त व्यक्तियोंकी भाँति उनको देहाध्यास भी नहीं रहा ॥१५॥ और कुछ गोपियाँ कृष्णके अनुरागपूर्ण, हास्ययुक्त, हृदयहारी मधुरपदवाले वाक्योंको स्मरणकर मोहित होगईं ॥ १६ ॥ गोविन्दकी सुललित गति, चेष्टा, स्नेहपूर्ण हँसी और दृष्टि, शोक दूर करनेवाले नर्मवाक्य और उदारचरित्र आदिको स्मरण करनेसे उनको जब यह चेत हुआ कि उन्हीका वियोग होता है तब अच्युतमें ही जिनका चित्त लगा हुआ है वे गोपियाँ बहुत ही दुःखित और भयभीत हुईं एवं एकत्र होकर यों विलाप

करती हुई आँसू बहाने लगीं ॥१७॥१८॥ गोपियाँ कहने लगीं। "अहो विधाता! तू बड़ाही निठुर है, तुझमें नेक दया नहीं है। तू देहधारियोंको पहले प्रेमकी डोरमें बाँध कर, उनकी इच्छा पूरी नहीं होनेपाती और वृथा वियोग करादेता है। लड़कोंके खेलके समान तेरे भी काम मूर्खतापूर्ण हैं ॥१९॥ जो तू पहले, काली २ अलकोंसे आवृत, सुन्दर नासिका और कपोलोंसे सुशोभित एवं शोक मिटानेवाली मंद मुसकानसे मनोहर मुकुंदका मुखारविन्द दिखा कर अब आँखोंकी ओट किये देता है सो अच्छा नहीं है; यह तेरा कर्म्म निन्दनीय है ॥२०॥ अरे क्रूर विधाता! तू ही अक्रूर नाम धर कर, जिनसे हम कृष्णके अंगमें एकही स्थान पर तेरी सम्पूर्ण सृष्टिकी सुन्दरता निहारती थीं उन अपनेही दिये हुए नेत्रोंको मूर्खोंकी भाँति हरने आया है ॥ २१ ॥ किन्तु हमारी समझमें श्रीकृष्ण तो ऐसे निठुर नहीं है कि क्षण भरमें स्नेह छोड़ दें, वह हमको अपनेही लिये व्याकुल होते क्या देख सकेंगे? हम तो उनके मंदहाससे मोहित हो, उनके लिये घर, पिता, पति, पुत्र, परिवार छोड़ कर सेवामें गई थीं, क्या वह हमारी ओर न निहारेंगे? कृष्ण प्यारेको नित्य नई वस्तु प्रिय लगती है, इस लिये संभव है कि हमको छोड़ कर वह कदाचित् चलें भी तो हम उनको रोक लेंगी" ॥ २२ ॥ दूसरी गोपी ईर्षापूर्वक कहने लगी कि "आज निश्चय ही मथुराकी स्त्रियोंके लिये सुप्रभात होगा, उनकी सब कामनाएँ पूरी हो जायँगी, क्यों कि जब नन्दनन्दन पुरीमें प्रवेश करेंगे तो वे कटाक्षकी कोरोंसे सूचित उनकी सुधामय मुसकानको नेत्रोंके द्वारा जी भर कर पियेंगी ॥२३॥ उन पुरनारियोंके मधुर वाक्य उनके हृदयको हरलेंगे और वह उनके लज्जा और मुसकानसे सुललित हाव-भावोंमें फँस जायँगे तब पराधीन और धीर होने पर भी हम गँवारी नारियोंके निकट किस लिये लौट कर आवेंगे ॥ २४॥ आज दाशार्ह, भोज, अंधक, वृष्णिवंशज यादवोंके नेत्रोंको परम आनन्द प्राप्त होगा, क्यों कि वे राहमें श्रीपति गुणागार देवकीके पुत्र कृष्णको देखेंगे ॥ २५ ॥ अहो! ऐसे करुणाहीनका नाम "अक्रूर" न होना चाहिये। यह बड़ा ही दारुण है, क्योंकि दुःखित जनोंको आश्वास दिये बिनाही प्राणोंसे प्यारे कृष्णको इतनी दूर ले जानेके लिये उद्यत है ॥ २६ ॥ पाषाण ऐसा जिसका हृदय कठोर है वह अक्रूर रथ पर चढ़ रहा है, साथही ये दुष्ट गोप भी छकड़े जोतनेकी जल्दी मचा रहे हैं, और वृद्ध लोग भी इनको नहीं रोकते। दैव भी इस समय हमसे प्रतिकूल है, यदि दैव अनुकूल होता तो अवश्य ही इनमें कोई एक मर जाता या वज्रपात होता अथवा कोई न कोई विघ्न अवश्य हो जाता ॥ २७ ॥ चलो सब मिल कर कृष्णको जाने न दें, कुलके बड़े बूढ़े हमारा क्या कर लेंगे। हम आधे पलके लिये भी कृष्णका संग नहीं छोड़ सक्तीं। दुर्दैववश आज उन्हीका वियोग हो रहा है। हमारा चित्त अत्यन्त दुःखी हो रहा है। अर्थात् जब हम मृत्युसे भी नहीं भटकतीं तब बड़े बूढ़ोंका क्या डर है?

॥ २८ ॥ राससभामें जिनकी सानुराग मनोहर बातचीत, लीलाललित कटाक्षविक्षेप और आलिंगनमें उतनी बड़ी रात क्षण ऐसी बीत गई और कुछ जान न पड़ी उन कृष्णके बिना हे गोपियो! अपार विरहदुःखको हम कैसे सहेंगी? ॥ २९ ॥ सन्ध्याके समय गौवोंके खुरोंसे उड़ कर पड़ी हुई धूलसे भरी अलकावली और मालाओंसे सुशोभित जो कृष्णचन्द्र, गोपगणके साथ वंशी बजाते और हास्यसे मनोहर कटाक्षवाली दृष्टिके द्वारा सुधावृष्टि करते हुए व्रजमें प्रवेश करके हमारे चित्तको चुराते हैं उनके बिना हम कैसे जीवित रह सक्ती हैं? अतएव साहस करके रोकना ही उचित है" ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! श्रीकृष्णमें जिनका चित्त आसक्त है वे गोपियाँ विरहकी चिन्तासे अत्यन्त कातर हो, लोकलाज छोड़ कर ऊँचे स्वरसे गोविंद! दामोदर!! माधव!!! कह कर विलाप करने लगीं ॥३१॥ गोपियाँ विलाप कर ही रही थीं इतनेमें प्रातःकाल हो गया। अक्रूरने भी सन्ध्यावन्दन करके रथ हाँक दिया ॥ ३२ ॥ नंद आदि गोप भी उनके साथही उपहार और गोरसपूर्ण असंख्य कलश छकड़ों पर लाद कर चले ॥ ३३ ॥ दुःखित गोपियाँ उस स्थान पर गईं और प्रियतम कृष्णकी प्रेमपूर्ण चितवनसे कुछ आश्वासित होकर संदेशकी प्रत्याशामें खड़ी रहीं ॥ ३४ ॥ गोपियोंको इस प्रकार दुःखित देख कर कृष्णने कहला भेजा कि "दुःखित न होना, मैं शीघ्रही आऊँगा"। कृष्णके प्रेमपूर्ण वाक्योंसे गोपियोंको कुछ धैर्य्य हुआ ॥ ३५ ॥ कृष्णके साथही जिनका आत्मा चला गया है वे गोपियाँ, जब तक रथकी ध्वजा और पहियोंसे उड़ी धूर देख पड़ी तब तक उसी ठौर पर उधरही निहारती हुई चित्रलिखी सी खड़ी रहीं ॥ ३६ ॥ जब श्रीकृष्णके लौटनेकी आशा नहीं रही तब वे अपने २ घरको लौट गईं और प्रियतमके प्रिय चरित्र गा कर शोकको शान्त करती हुई विरहके दिन बिताने लगीं ॥ ३७ ॥ कृष्ण भगवान् भी बलदेव और अक्रूरके साथ वायुके तुल्य वेगवाले रथसे पापनाशिनी यमुनाके किनारे पहुँच गये ॥ ३८ ॥ वहाँ दोनो भाइयोंने स्नान किया और मोती ऐसा निर्मल और मीठा पानी पीकर वृक्षोंकी छायामें खड़े हुए रथ पर जा कर बैठे ॥३९॥ अक्रूरने दोनो भाइयोंको रथ पर बैठा दिया। फिर वह उनसे आज्ञा लेकर यमुनाके किनारे आये और विधिवत् स्नान किया ॥४०॥ अक्रूरजी जलमें घुस कर सनातन ब्रह्म (गायत्री) का जप करने लगे। जप करते २ उन्होने देखा कि कृष्ण और बलदेव दोनो भाई वहाँ अवस्थित हैं ॥ ४१ ॥ "वे वसुदेवके पुत्र तो रथ पर बैठे हैं, यहाँ कैसे आये? यदि यहाँ हैं तो रथ पर न होंगे"—यों विचार कर अक्रूरने जलसे शिर बाहर निकाला। रथ पर देखा तो दोनो भाई पहलेकी भाँति बैठे हुए हैं। "तो क्या मैंने जो उनको जलमें देखा सो भ्रम था?"—यह विचार कर अक्रूरजीने फिर जलमें गोता लगाया ॥ ४२॥४३॥ फिर उन्होने जलके भीतर देखा कि

अनन्तदेव विराजमान हैं, सिद्ध, सर्प और असुरगण शिर झुकाये हुए उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ४४ ॥ अनन्तदेवके हजार शिर हैं, हजार फणोंमें हजार मुकुट और कमलनालतुल्य श्वेतशरीरमें नीलाम्बर सुशोभित है। सहस्रशिखरयुक्त कैलासके समान अनन्तदेवका विशाल कलेवर देख पड़ता है ॥ ४५ ॥ उन शेषजीकी गोदमें एक पीताम्बरधारी, घनसदृश श्याम शरीरवाले चतुर्भुज पुरुषकी शान्त मूर्त्ति विराजमान है। उसके नेत्र कमलके पत्तेके समान अरुण और विशाल हैं ॥ ४६ ॥ उसका प्रसन्न मुख परम सुन्दर है, हास्ययुक्त चितवन महामनोहर है, नासिका और भौंहें ऊँची और सुडौल हैं, कनककुण्डलोंसे कानोंकी अपूर्व शोभा हो रही है, सुन्दर गोल कपोल और अरुण अधर देखनेही योग्य हैं ॥ ४७ ॥ भुजाएँ मोटी और लंबी हैं, दोनो कन्धे ऊँचे हैं, वक्षःस्थलमें लक्ष्मीदेवी विराजमान हैं। कंठ शंखके समान सुन्दर है, नाभि गंभीर है, उदर त्रिवलीसे युक्त है और उसका आकार पीपलके पत्तेके समान है ॥ ४८ ॥ कटितट और श्रोणी (नितम्बप्रदेश) विशाल हैं, दोनो उरू हाथीकी सूँड़के समान हैं, दोनो जानु सुंदर और दोनो जंघा मनोहर हैं ॥ ४९ ॥ दोनो चरणकमल किञ्चित् उन्नत, गुल्फ नवदलसदृश अंगुली और अँगूठे एवं अरुणवर्ण नखसमूहोंकी किरण-कान्तिसे शोभित हैं ॥ ५० ॥ अंगोंमें अमूल्य मणिमण्डित किरीट, कटक, अंगद, कटिसूत्र, ब्रह्मसूत्र, हार, नूपुर और कुण्डल आदि अनेक आभूपण शोभायमान हैं ॥ ५१ ॥ चारो भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म और वक्षःस्थलमें श्रीवत्स व प्रभाशाली कौस्तुभ एवं कंठमें वनमाला विराजमान है। निर्म्मल चित्तवाले सुनन्द, नन्द, सनक आदि पार्पदगण, ब्रह्मा, रुद्र आदि सुरेश्वर, मरीचि आदि ऋपिगण एवं प्रह्लाद, नारद और वसु आदि श्रेष्ठ भक्तजन भिन्न २ भावके वाक्योंसे स्तुति कर रहे हैं। श्री, पुष्टि, वाणी, कान्ति, कीर्त्ति, तुष्टि, इला, ऊर्ज्जा, विद्या और अविद्या, शक्ति एवं माया सेवा कर रही हैं ॥ ५२ ॥५३॥५४॥ ५५ ॥ हे भरतनन्दन! बहुत देर तक अक्रूरजी यह अपूर्व दृश्य देखते रहे। परम प्रीतिसे उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया, नेत्रोंमें आँसू भर आये, एवं भक्तिभावसे हृदय गद्गद हो गया ॥ ५६ ॥

गिरा गद्गदयास्तौषीत्सत्त्वमालम्ब्य सात्वतः ॥
प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥ ५७ ॥

तब अक्रूरजी सत्वावलम्बनपूर्वक सावधान होकर हाथ जोड़के धीरे २ गद्गद वाणीसे परमपुरुपकी स्तुति करने लगे ॥ ५७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

चत्त्वारिंश अध्याय ।

अक्रूरकृत कृष्णकी स्तुति ।

अक्रूर उवाच–नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं
नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ॥
यन्नाभिजातादरविन्दकोशा-
द्ब्रह्माविरासीद्यत एष लोकः ॥ १ ॥

अक्रूरने कहा । "हे कृष्णचन्द्र ! आपको मैं प्रणाम करता हूँ । आप बालक नहीं, बरन् आदिपुरुप हैं । आप सब कारणोंके कारण, अव्यय, नारायण हैं । आपकी नाभिमें उपजे हुए कमलसे इस संसारकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, महत्तत्त्व, प्रकृति और पुरुप, मन, इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके विषय और अधिष्ठाता देवता; ये सब जगत्के कारण आपहीके अंगोंसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥ ये माया आदि तत्त्वसमूह प्रत्यक्ष देख पड़नेके कारण जड़ हैं, अतएव आत्मारूप जो आप हैं उनके स्वरूप (तत्त्व) को नहीं जान सक्के । ब्रह्मा भी मायाके गुणोंसे आवृत होनेके कारण आपके निर्गुण-रूपको नहीं जानते ॥ ३ ॥ योगी साधुगण आपको अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवका साक्षी, उनका अन्तर्य्यामी और नियन्ता जान कर आपहीकी आराधना करते हैं ॥ ४ ॥ ऐसे ही कोई २ कर्मकाण्डनिरत द्विजगण वेदविद्याके द्वारा आपकी उपासना करते हैं । वे कर्म्मयोगीजन इन्द्रादि अनेक रूप और नामोंसे अनेक महायज्ञोंके द्वारा आपहीका यजन करते हैं ॥ ५ ॥ ऐसे ही जो ज्ञानी लोग कर्म्मोंसे निवृत्त, अतएव शान्त हैं वे ज्ञानयज्ञ (समाधि) के द्वारा ज्ञानरूप जो आप हैं उन्हींका पूजन और भजन करते हैं ॥ ६ ॥ जिनका आत्मा शुद्ध हो गया है वे वैष्णवजन भी आपकी कही हुई पञ्चरात्र आदि विविध विधियोंसे एकाग्रमन और तन्मय होकर, इष्टदेव जो आप हैं उन्हींको वासुदेव, संकर्षण आदि बहु मूर्त्तिवाला मान कर अथवा एकमूर्त्ति नारायण मान कर भजते हैं ॥ ७ ॥ भगवन् ! ऐसे ही शैव लोग भी शिवरूप जो आप हैं उन्हींकी, शिवोक्त विधिके अनुसार शैव, पाशुपत आदि सम्प्रदायभेदसे भली भाँति उपासना करते हैं ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! जो लोग अनेक देवताओंके भिन्न २ भक्त है उनकी बुद्धि यद्यपि अन्यासक्त है, तथापि वे आपहीका पूजन करते हैं, क्योंकि आप सर्वदेवमय परमेश्वर हैं । प्रभो ! जैसे पर्वतोंसे निकली हुई नदियाँ, वर्षाकालमें जलपरिपूर्णा होकर चारो ओरसे आकर सागरमें ही प्रवेश करती हैं वैसेही अन्तमें सब मतोंका केन्द्र आपही हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ क्योंकि सत्त्व, रज और तम, ये आपकी मायाके गुण हैं;

उन्ही मायाके गुणोंमें मायासे उत्पन्न ब्रह्मादि–तृणपर्य्यन्त सब जीव ओतप्रोत हैं ॥ ११ ॥ किन्तु आप सर्वरूप और अन्तर्यामी अर्थात् सब बुद्धियोंके साक्षी हैं, अतएव आपकी बुद्धि निर्लिप्त है। देव, मनुष्य, पशु पक्षी आदि अपने २ शरीरका अभिमान रखनेवाले सब जीवोंमें आपकी अविद्यामयी मायाके गुणोंका प्रवाह पूर्णरूपसे प्रवृत्त है, परन्तु आप उस मायाके गुणोंसे परे हैं ॥ १२ ॥ अग्नि आपका मुख है, पृथ्वी आपके चरण है, सूर्य आपके नेत्र हैं, आकाश आपकी नाभि है, सब दिशाएँ आपके कान हैं, स्वर्गलोक आपका मस्तक है, सुरेन्द्र आपके बाहु हैं, सब समुद्र आपकी कुक्षियाँ (कोखें) हैं, वायु आपके प्राण और बल है, वृक्ष और ओषधियाँ आपके केश हैं, पर्वतगण आपकी अस्थियाँ और नख हैं, रात्रि और दिन आपकी पलकोंका उघरना और बंद होना हैं, सब प्रजापति आपकी गुप्त इन्द्रिय हैं और वृष्टि आपका वीर्य्य है। आप अविनाशी मनोमय(मनसे ही जानने योग्य) पुरुष हैं। ये असंख्य जीवोंसे पूर्ण सब लोक और लोकपालगण आपके विश्वमय विराट् शरीरमें विरचित हैं। जैसे जलके भीतर जलमें उत्पन्न असंख्य सूक्ष्म २ जीवोंके समूह बसते हैं अथवा गूलरके फलमें अगणित छोटे २ जीव उपजते और रहते हैं वैसे ही अनेक विश्व-ब्रह्माण्ड आपके रोम २ में हैं; आपको प्रणाम है ॥१३॥१४॥१५॥ आप क्रीड़ा करनेके लिये पृथ्वी पर जिन २ रूपोंसे प्रकट होते हैं उनसे लोगोंका कल्याण होता है। उन आपके अवतारोंसे लोगोंके दुःख दूर हो जाते हैं और वे प्रसन्न हो कर आपके पवित्र यशको गाते हैं ॥ १६ ॥ आपने कारणवश मत्स्यरूप धरा, प्रलयसागरमें विचरते रहे, आपको प्रणाम है। आपने हयग्रीवरूप धर कर मधु और कैटभ नाम दानवोंको मारा, आपको प्रणाम है ॥ १७ ॥ आपने महाविशाल कच्छप-रूपसे पीठ पर मन्दराचलको धर लिया, आपको प्रणाम है। आपने शूकररूप धर कर लीलापूर्वक रसातलसे पृथ्वीका उद्धार किया, आपको प्रणाम है १८ ॥ हे साधुजनोंके भयको दूर करनेवाले! आपने अद्भुत नृसिंहरूप धर कर भक्त प्रह्लादको बचाया, आपको प्रणाम है। आपने वामन अवतार लेकर तीन पगसे त्रिभुवनको नाप लिया, आपको प्रणाम है ॥१९॥ घमंडी क्षत्रियोंके वनको काटनेवाले हे भृगुपति परशुरामजी! आपको प्रणाम है। रावणका संहार करनेवाले हे रघुवर! आपको प्रणाम है ॥ २० ॥ हे वासुदेव हे संकर्षण! हे प्रद्युम्न! हे अनिरुद्ध! हे यदुनाथ! आपको प्रणाम है ॥ २१ ॥ हे दैत्य दानवोंको मोहित करनेवाले शुद्ध बुद्धरूप, आपको प्रणाम है। हे म्लेच्छप्राय कलियुगी क्षत्रिय राजोंका संहार करनेवाले कल्किदेव! आपको प्रणाम है ॥ २२ ॥ भगवन्! ये सब लोग आपकी मायामें मोहित हो रहे हैं; इसी कारण "मैं हूँ, मेरा है" ऐसा असत् आग्रह करके कर्ममार्गमें भ्रमण कर रहे हैं ॥ २३ ॥ प्रभो! मैं मूढ़ भी, स्वप्नके समान मिथ्या जो देह, पुत्र, दारा, घर, धन और अन्यान्य

स्वजन आदि हैं उनको सत्य मान कर वृथा भटक रहा हूँ ॥ २४ ॥ अज्ञानांध होनेके कारण, मैं, उक्त अनित्य, अनात्म पदार्थोंको नित्य आत्मा जान कर दुःखको सुख मान रहा हूँ। प्रभो! मैं मूढ़ सुख-दुःखादि द्वंद्व विषयोंमें रम रहा हूँ, अतएव आत्माके परमप्रिय परमात्मा जो आप हैं उनको नहीं जानता ॥ २५ ॥ जलहीसे उत्पन्न तृण आदिसे ढँके हुए जलको छोड़ कर जैसे कोई अज्ञ पुरुष, मृगतृष्णाके निकट पानी पानेकी आशासे जाय वैसे अपनी ही मायासे ढँके हुए जो आप हैं उनको छोड़ कर मैं मूढ़ सुखकी आशासे देह आदिके लालन-पालनमें तत्पर हो रहा हूँ ॥२६॥ भगवन्! विषय-वासनाओंसे मेरी बुद्धि दीन हो रही है, अतएव काम्य कर्मों और कामनाओंसे चञ्चल एवं बलवान् इन्द्रियोंके द्वारा इधर उधर चलायमान मनका दमन करनेमें मैं असमर्थ हूँ ॥२७॥ हे भगवन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे अन्तर्यामी! आपके चरणकमल असज्जन लोगोंको परम दुर्लभ हैं, तथापि मुझ अधमको आपके चरण मिलजाना, मेरी समझमें आपहीकी कृपाका फल है। हे पद्मनाभ! जब जीवके संसारका 'अन्त' निकट आ जाता है तभी साधुसेवा अर्थात् सत्संगके द्वारा उसकी बुद्धि आपकी ओर झुकती है। यदि आपकी कृपा नहीं होती तो साधुसेवा (सत्सङ्ग) में रुचि नहीं होती और आपमें भी मन नहीं लगता, अतएव मुक्ति भी नहीं होती ॥ २८ ॥ भगवन्! विज्ञान आपका वैभव है, आपही सब प्रकारके ज्ञानोंका मूल कारण हैं। आप परिपूर्ण ब्रह्म हैं, आपकी शक्ति अनन्त है। आप काल, कर्म, स्वभाव आदिके नियन्ता हैं; आपको प्रणाम है ॥२९॥

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ॥
हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥ ३० ॥

आप चित्तके अधिष्ठाता वासुदेव और सब प्राणियोंका आश्रय जो अहंकार है उसके अधिष्ठाता संकर्षण हैं। आप हृषीकेश एवं बुद्धि और मनके अधिष्ठाता प्रद्युम्न व अनिरुद्ध हैं। प्रभो! मुझ शरणागतकी रक्षा करो" ॥ ३० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चत्त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्त्वारिंश अध्याय।

श्रीकृष्णका मथुरापुरीमें प्रवेश।

श्रीशुक उवाच—स्तुवतस्तस्य भगवान्दर्शयित्वा जले वपुः ॥
भूयः समाहरत्कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! कृष्णचन्द्रने इस प्रकार स्तुति कर रहे अक्रूरको जलके भीतर अपना अपूर्व रूप दिखा कर फिर छिपा लिया, जैसे नट अपनी

कला दिखा कर उसे अन्तर्हित (गायब) कर देता है ॥ १ ॥ अक्रूरजी भी जलमें भगवान्‌को न देख कर जलसे बाहर निकले और जल्दीसे सब सन्ध्यावन्दनादि आवश्यक कृत्य करके रथ पर आये। अक्रूरने जो कुछ जलमें देखा उससे उनको बहुत विस्मय हुआ ॥ २ ॥ हृषीकेश भगवान् कृष्णने अक्रूरसे पूछा कि "अक्रूर! तुमने पृथ्वीमें आकाशमें या जलमें कुछ अद्भुत बात देखी है क्या? हमको तुम्हारे मुखमण्डल पर कुछ विस्मयके चिन्ह देख पडते हैं, इसीसे ऐसा अनुमान होता है ॥ ३ ॥ **अक्रूरने कहा।** भगवन्! पृथ्वी, आकाश और जलमें जो कुछ अद्भुत है सो सब आपमें विराजमान है, क्योंकि आप विश्वरूप हैं। मैंने जब आपको विशेषरूपसे प्रत्यक्ष देख लिया तब कौन सी अद्भुत वस्तु नहीं देखी? ॥४॥ परमेश्वर! पृथ्वी, आकाश और जलकी सब अद्भुत बातें आपमें हैं। आपके सिवा पृथ्वी आदिमें और कौन अद्भुत है? जो मैंने देखा है ॥ ५ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** महाराज! यों कह कर अक्रूरने रथ हाँक दिया और सायंकाल होते २ कृष्ण बलदेवको मथुराके निकट पहुँचा दिया ॥ ६ ॥ राहमें जाते समय कृष्ण बलदेव जिस गाँवके पास पहुँचे वहाँके रहनेवाले लोग निकट आकर उनके अनूप रूपको एकटक निहारते ही रहे। दोनो भाइयोंका मनोहर वेष देखकर वे लोग परम प्रसन्न हुए ॥ ७ ॥ नन्दआदि व्रजवासी गोपगण पहले ही मथुरा पहुँच चुके थे। नगरके उपवनमें ठहरकर वे लोग कृष्ण बलदेवके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे ॥ ८ ॥ भगवान् जगदीश्वर कृष्णचन्द्र भी उन लोगोंसे आकर मिले। तदनन्तर कृष्णचन्द्रने विनीत अक्रूरका हाथ अपने हाथमें लेकर हँसते हुए कहा कि—"तात! तुम रथ लेकर पहले नगरमें चलो और अपने घरमें विश्राम करो। हम यहीं कुछ काल तक ठहरेंगे और फिर पुरीकी शोभा देखेंगे" ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ **अक्रूरजीने कहा।** "प्रभो! आपको यहाँ छोड़कर अकेले मैं पुरीमें न जासकूँगा। हे भक्तवत्सल! मैं आपका भक्त हूँ, मुझको न छोड़िये। नाथ! आओ चलो। हे अधोक्षज! हे सुहृत्तम! बलदाऊ और सुहृद्गण गोपोंके साथ चल कर हमारे घरको सनाथ करिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ भगवन्! अपने चरणोंके रजसे हम गृहस्थोंके घर पवित्र करिये। आपके चरण-जल (गंगा)से अग्निगणसहित पितृगण और देवगण तृप्त हो जाते हैं ॥ १३ ॥ ईश! इन्हीं परम दुर्लभ चरणोंको धोनेसे महात्मा बलिको पवित्र यश, अतुल ऐश्वर्य और अनन्य भक्तोंकी गति मिली है ॥१४॥ कहाँतक आपके चरणोदककी महिमा कहें—साक्षात् शिवदेव भी उसको सादर शिरपर धरे हैं! ब्रह्मदंडदग्ध महाराज सगरके साठ हजार पुत्र उसी चरणोदकके प्रतापसे स्वर्गलोकको गये हैं ॥ १५ ॥ हे देवदेव! हे जगदीश्वर! आपकी चर्चा करने और सुननेसे पुण्य होता है। हे यदुपुंगव! हे उत्तमश्लोक! हे नारायण! आपको प्रणाम है" ॥ १६ ॥ **श्रीकृष्णचन्द्रने कहा।** "चाचा! मैं बलदाऊके साथ अवश्य आपके घर आऊँगा और यदुवंशसे वैर करनेवाले कंसको मार कर

सुहृद् जनोंको प्रसन्न करूँगा" ॥ १७ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । भगवान्‌के वचन सुन कर अक्रूरजी कुछ उदास होगये । अक्रूरजीने वहाँसे कंसके पास आकर कृष्ण बलदेवके ले आनेका समाचार सुनाया और फिर अपने घरको गये ॥ १८ ॥ इधर श्रीकृष्णजी मथुरा पुरी देखनेके लिये गोपगणको साथ लेकर बलदाऊके साथ चले ॥ १९ ॥ भगवान्‌ने देखा कि पुरीके द्वार स्फटिक मणिके बने हुए हैं । बड़े २ फाटक हैं, जिनमें सुवर्णके कपाट शोभा बढ़ा रहे हैं । धान्यागार और शालाएँ ताँबे और पीतलसे मण्डित हैं । पुरीके चारो ओर एक विशाल और गहरी खाई बनी है । अतएव शत्रुके लिये इस पुरी पर आक्रमण करना महाकठिन काम है । स्थान २ पर रमणीय उद्यान और उपवन पुरीकी शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ २० ॥ सुवर्ण मण्डित चौराहे, धनी जनोंके महल और महलोंके अन्तर्गत छोटे २ उपवन (चमन), एकरूप शिल्पजीवियोंके सभाभवन और अन्यान्य भवन (इमारतें) चारो ओरसे पुरीको सुशोभित कर रहे हैं । बलभी (सहंची), वेदी, झरोखे एवं कुट्टिम (फ़र्श) आदि स्थानोंमें हीरा, बिल्लौर, नीलम, विद्रुम (मूँगा), वैडूर्य्य, मरकत (पन्ना) मुक्ता आदि रत्न जड़े हुए जगमगा रहे हैं । ठौर २ बैठे हुए कबूतर और मोर पक्षी बोल रहे हैं । राजमार्ग, हाट–बाट, गली कूचे, चबूतरे और द्वारोंके आगेवाले सहनोंमें छिड़काव किया गया है और सर्वत्र माला, अंकुर, खीलें और अक्षत बिथरे पड़े हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ सब भवनोंके द्वार, दधि-चन्दनचर्चित जलभरे कलश, फूल, पल्लव, दीपमाला, फले हुए केलेके वृक्ष और सुपारीके वृक्ष, ध्वजा और छोटी २ झंडियोंसे भलीभाँति सजे हुए हैं ॥२३॥ राजन्! इस प्रकार पुरीकी शोभा निहारते हुए गोपगणसहित कृष्ण बलदेवने राजमार्गसे पुरीमें प्रवेश किया । पुरनारियाँ कृष्ण बलदेवके आनेका समाचार पातेही उनको देखनेके लिये उत्सुक होकर जल्दी २ अपने महलों पर चढ़ गईं । जल्दीके कारण कोई उलटे कपड़े और गहने पहन कर चलदीं । कोई कुण्डल आदि आभूषण, जो दो २ पहने जाते हैं, एकही एक पहन कर चलदीं । किसीने एकही कपोलमें केसरसे पत्ररचना की थी, किसीने एकही पैरमें नूपुर पहना था, किसीने एकही नेत्रमें अंजन लगाया था, वे सब कृष्णदर्शनकी उतावलीमें वैसेही उठ खड़ी हुईं ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ कोई भोजन कर रही थीं, उन्होने हाथका कौर थालीमें छोड़ दिया और कृष्णको देखनेके लिये निकल आईं । कोई सखियोंसे उबटना लगवारही थीं, वे बिना स्नान किये वैसेही चलीं । कोई सो रही थीं, वे कोलाहल सुन कर जाग पड़ीं और वैसेही कृष्णको देखने चलीं । कोई अपने बालकोंको दूध पिला रही थीं, वे दूधपीते बालकोंको वैसेही छोड़ कर चल खड़ी हुईं ॥ २६ ॥ महाराज! मत्त गजेन्द्रके तुल्य जिनका विक्रम है उन कमललोचन कृष्णने प्रगल्भ लीलाविलाससे पूर्ण हँसी और कटाक्षोंसे एवं लक्ष्मीको आनन्द देनेवाले अपने

मनोहर श्यामशरीरसे पुरनारियोंको नयनानन्द देकर उनके हृदय हर लिये ॥२७॥ हे शत्रुदमन! कृष्णचन्द्रकी कथाएँ वारम्वार सुननेसे पुरनारियोंके चित्त उनको देखनेके लिये आतुर हो रहे थे। आज पुरनारियोंके सौभाग्यका उदय हुआ, उन्होने कृष्णचन्द्रको देख कर अपने नेत्रोंको कृतार्थ किया। कृष्णचन्द्रने भी दया-दृष्टिसे देख कर और मनोहर मुसकानरूप सुधा पिला कर उनका यथोचित आदर और सत्कार किया। नेत्रमार्गसे मनमें पहुँचे हुए कृष्णकी आनन्दमयी मूर्त्तिको हृदयसे लगा कर पुरनारियाँ भी अनन्त विरहव्यथासे मुक्त हो गईं; परमानन्द प्राप्त होनेसे उनके शरीरोंमें रोमांच हो आया॥ २८ ॥ प्रसन्नताके कारण जिनके मुखकमल प्रफुल्लित हो रहे हैं वे महलों पर चढ़ी हुई स्त्रियाँ कृष्ण बल-देव पर फूल बरसाने लगीं ॥ २९ ॥ ब्राह्मणादि द्विजातियोंने भी ठौर २ पर दही, अक्षत, जल, माला, चन्दन आदि सामग्रियोंसे दोनो भाइयोंका प्रसन्नतापूर्वक पूजन किया ॥ ३० ॥ पुरनारियाँ आपसमें कहने लगीं कि—"अहो! गोपियोंने पूर्वजन्ममें कौन महातप किया था जो मनुष्यमात्रको आनन्द देनेवाली इन दोनो मनोहर मूर्तियोंको हर घड़ी देखती रहती हैं" ॥ ३१ ॥ जिधरसे कृष्ण जा रहे थे उधरहीसे एक धोबी आ रहा था,वह कपड़े धोता था और उनको रँगता भी था। उसे देख कर भगवान्‌ने धोये हुए अति उत्तम वस्त्र उससे माँगे ॥ ३२ ॥ कृष्णने कहा—"अरे रजक ! हमारे अंगोंमें जो ठीक हों वे वस्त्र हमको दे। ये तेरे पासके कपड़े हमारे ही पहनने योग्य हैं। हमको वस्त्र देनेसे अवश्य तेरा कल्याण होगा; इसमें कोई संशय नहीं है" ॥ ३३ ॥ वह रजक राजा कंसके कपड़े धोता था—इसलिये उसको बड़ाही दर्प (घमंड) था। पूर्णकाम, परब्रह्म भगवान् कृष्णके यों याचना करनेसे अत्यन्त कुपित होकर उसने तिरस्कार करते हुए कहा कि "तुम पर्वत और वनोंमें फिरनेवाले गँवार लोग सदा ऐसेही कपड़े तो पहनते हो ? अब तुम इतना बढ़ चले कि राजा कंसके कपड़े लेना चा-हते हो। अरे मूर्खो ! यदि जीवित रहना चाहते हो तो शीघ्र यहाँसे भाग जाओ, ऐसे २ उन्मत लोगोंको राजकर्मचारीगण बाँधते हैं, मारते हैं और उनका सर्वस्व लूट लेते हैं" ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इस प्रकार छोटे मुहसे बढ़ २ कर बातें कर रहे रजकके मुण्डको, भगवान् देवकीसुतने किंचित् कोपसे एक तमाचा मारकर धड़से अलग कर दिया ॥३७॥ उस रजकके अनुजीवी अन्य रजकलोग, रेशमी कपड़ोंकी गठरियाँ वहीं राहमें छोड़ प्राण लेकर भागे; तब अच्युतने उन वस्त्रोंको लेलिया ॥ ३८ ॥ कृष्ण और बलभद्रने उनमेंसे आप मनमाने कपड़े पहने। फिर सब गोपोंने इच्छानुसार वस्त्र लेलिये। जो कपड़े बचे उनको वहीं पृथ्वीमें छोड़कर कृष्णचन्द्र आगे बढ़े ॥ ३९ ॥ आगे एक दर्जी मिला, वह कृष्णचन्द्र व बलदाऊके अनूप रूपको देखकर परम प्रसन्न हुआ। अतएव उसने छोटे बड़े कपड़ोंको काँट छाँट-कर ठीक कर दिया और वस्त्रनिर्मित विविध रंगके आभूषणों (गजरे आदि)से

दोनो भाइयोंके वेषको बनादिया ॥ ४० ॥ रंगबिरंगे वेषमें विराजमान कृष्ण बलदेव ऐसे सुशोभित हुए जैसे पर्वके दिन विचित्रधातुचित्रित श्वेत और श्याम दो बाल-गजराज शोभित हों ॥ ४१ ॥ भगवान्‌ने प्रसन्न होकर उस दर्जीको पर-लोकमें सारूप्य मुक्ति (अर्थात् अपना ऐसा रूप) और इस लोकमें परम लक्ष्मी, बल, ऐश्वर्य, स्मरणशक्ति और इन्द्रियोंकी अशिथिलता आदि अनेक दुर्लभ वर देकर वहाँसे प्रस्थान किया ॥ ४२ ॥ वहाँसे दोनो भाई अपने भक्त सुदामा मालीके घर गये। वह दोनो भाइयोंको देखकर उठ खड़ा हुआ। उसने पृथ्वीमें गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया और आसन देकर पाद्य, अर्घ्य, माला, ताम्बूल, चन्दन आदि साम-ग्रीसे गोपगणसहित कृष्ण बलदेवका पूजन किया ॥४३॥४४॥ सुदामा मालीने कहा। प्रभो! आज यहाँ आपके श्रीचरण आनेसे मेरा जन्म सफल होगया और कुलभी पवित्र होगया। पितृगण, ऋषिगण और देवगण सन्तुष्ट होगये, अर्थात् मैं उनके ऋणोंसे मुक्त हो गया ॥ ४५ ॥ आप अवश्यही जगत्का परम कारण परब्रह्म हैं। संसारके अभ्युदय और मंगलके लिये ही दो अंशोंसे पृथ्वी पर आपका यह अवतार हुआ है ॥ ४६ ॥ यद्यपि आप भजनेवालोंको ही भजते हैं तथापि समदर्शी हैं, आपकी दृष्टिमें किसी प्रकारका भेदभाव नहीं है। क्योंकि आप तो जगत् भरके आत्मा और हितकारी हैं; साधारणतः आपकी दृष्टिमें सब प्राणी समान हैं ॥ ४७ ॥ मैं तो आपका चरणसेवक हूँ। हे प्रभो! आज्ञा करिये, मैं क्या सेवा करूँ? यदि आपकी आज्ञा पाने और पालनेका अवसर प्राप्त हो तो आपकी 'परम कृपा' समझना चाहिये ॥ ४८ ॥ हे राजेन्द्र! प्रसन्नचित्त सुदामाने इस प्रकार निवेदन करके दोनो भाइयोंकी इच्छाके अनुसार प्रशंसनीय फूलोंकी मालाएँ बना-कर उनको पहनाईं ॥ ४९ ॥ अपने साथी गोपगणसहित कृष्ण बलदेव दोनो भाई उन मालाओंसे विभूषित होकर परम प्रसन्न हुए। वरदानी दोनो भाइयोंने प्रणत प्रपन्न और प्रसन्न सुदामाको मनोभिलषित 'वर' देनेकी इच्छा प्रकट की ॥५०॥ उस मालीने यही माँगा कि सर्वस्वरूप जगदीश्वर जो आप हैं उनमें मेरी अचल भक्ति हो, आपके भक्तोंसे मित्रता रहे और सब प्राणियोंके लिये मेरे हृदयमें परम दया हो ॥५१॥

इति तस्मै वरं दत्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीम् ॥
बलमायुर्यशः कान्तिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥ ५२ ॥

राजन्! मालीने जो माँगा सो तो मिला ही, किन्तु जो न माँगा था वह प्रबल बल, दीर्घ आयु, वंश बढ़ानेवाली स्थिर लक्ष्मी, यश और कान्ति आदि अनेक 'वर' भी उसको कृष्णकी कृपासे प्राप्त हुए। तदनन्तर बलदाऊके साथ कृष्णचन्द्रजी वहाँसे आगे चले ॥ ५२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्त्वारिंश अध्याय।

कुब्जाका सीधा होना, धनुषभंग और बुरे स्वप्न देख कर कंसका घबड़ाना।

श्रीशुक उवाच—अथ व्रजन्राजपथेन माधवः
स्त्रियं गृहीताङ्गविलेपभाजनाम्॥
विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां
पप्रच्छ यान्तीं प्रहसन्रसप्रदः॥ १॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! तदनन्तर रसिकवर माधव राजमार्ग होकर आगे चले। आगे चल कर उन्होने देखा कि एक सुन्दर मुखवाली युवती जा रही है, सुंदरी होने पर भी वह स्त्री कुब्जा (कुबड़ी) थी। श्रीकृष्णचन्द्रने हँस कर उससे पूछा कि "हे वरोरु! हे सुंदरी! तुम कौन हो? यह अनुलेपन तुम किसके लिये लिये जारही हो? यदि अच्छा समझो तो हमसे ठीक २ बताओ। हमारी इच्छा है कि यह उत्तम अनुलेपन तुम हमको देओ। ऐसा करनेसे बहुत शीघ्र तुम्हारा कल्याण होगा" ॥१॥२॥ कुब्जाने कहा। "हे सुन्दरश्रेष्ठ! मैं तीन जगहसे कुबड़ी हूँ, इस लिये मेरा नाम त्रिवक्रा है। मै कंसकी दासी हूँ। राजाके अंगोंमें और मस्तकमें चन्दनआदि अनुलेपन लगाना मेरा काम है। मैं अपना काम करनेमें बहुत ही निपुण हूँ, इस कारण राजा मेरा बड़ा आदर करते हैं और मेरे प्रस्तुत किये हुए अंगलेपन पर उनकी परम प्रीति है। आप पुरुषरत्न हैं—आपके सिवा और कौन इस अनुलेपनके योग्य है?" ॥३॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! कृष्ण बलदेवके रूप, सुकुमारता, मधुरता, रसिकता, हँसी, बातचीत, चितवन आदिसे चित्त मोहित होनेके कारण उस कुब्जाने दोनो भाइयोंको वह अनुलेपन दिया॥ ४॥ पीत आदि वर्णवाले अंगरागोंसे अनुरंजित हो कर दोनो भाई परम शोभायमान हुए। वे अंगराग दोनो भाइयोंके अंगोंमें अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुए॥ ५॥ तब प्रसन्न होकर अपने दर्शनका फल दिखानेके लिये भगवान्ने तीन जगहसे टेढ़ी एवं सुंदर मुखवाली कुब्जाको सीधा करना चाहा॥ ६॥ भगवान्ने अपने दोनो पैरोंसे कुब्जाके दोनो पैरोंको आगेसे दबाया एवं दो अँगुलियाँ उसकी ठोढ़ीमें लगाकर एक झिटका दिया। अच्युतके झिटकेसे उसका शरीर सीधा होगया और सब अंग समान होगये। तब भगवान्के दर्शनसे वह कुब्जा, शीघ्रही एक वृहत् नितम्ब और पीन पयोधरोंसे सुशोभित परम सुन्दर श्रेष्ट स्त्री बनगई॥ ७॥ ८॥ उस समय मन्मथने उस उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न सुन्दरीके मनको मथ डाला, तब दुपट्टेका छोर पकड़कर वह अच्युतसे कहने

लगी कि "हे वीर ! आओ, घर चलें । तुमको यहाँ छोड़कर अकेले घर नहीं जासक्ती । क्योंकि तुमने मेरे मनको मोहित कर लिया है । हे पुरुषश्रेष्ठ ! मुझ दासी पर प्रसन्न होइये" ॥ ९ ॥१०॥ इस प्रकार उस स्त्रीके प्रार्थनावाक्य सुनकर बलदेवके आगे ही अपने साथी गोपोंकी ओर निहारते हुए कृष्णचन्द्रने हँसकर कहा कि "हे सुभ्रु ! मैं अपना कार्य सिद्ध करके हृदयके तापको शान्त करनेवाले तुम्हारे घर अवश्य आऊँगा । हे सुन्दरी ! हम ऐसे अविवाहित पथिकोंके लिये तुम परम आश्रय हो" ॥ ११ ॥ १२ ॥ इस प्रकार मधुर वाणीसे उस स्त्रीको विदा करके श्रीकृष्णचन्द्र राजमार्गमें आगे चले । वणिक्पथ (बाजार)में वणिक् लोग दोनो भाइयोंके रूप पर मोहित होगये । उन्होने अनेक भेंटें, तांबूल, माला, सुगन्ध आदि देकर उनका सत्कार किया ॥ १३ ॥ राहमें जिन २ रमणियोंने दोनो भाइ-योंको देखा उन २ के मन कामके वेगसे चंचल होगये । उनकी वेणियाँ शिथिल होकर खुलगईं और वस्त्र व कंगन खिसक २ कर गिरपड़े । किन्तु वे चित्र-लिखित सी खड़ी दोनो मनोहर मूर्तियोंको निहारती रहीं । उनको अपने शरीरकी भी सुधि बुधि नहीं रही ॥ १४ ॥ तदनन्तर पुरवासियोंसे धनुषभवन पूछते हुए कृष्णचन्द्र आगे चले । धनुषभवनमें प्रवेश करके कृष्ण-चन्द्रने देखा कि वहाँ एक बड़ा भारी इन्द्रधनुष ऐसा अद्भुत धनुष धरा हुआ है । बहुत से सिपाही उस परमसमृद्धिसम्पन्न, पूजनीय धनुषकी रक्षा कर रहे हैं । वे रक्षक रोकते ही रहे, किन्तु कृष्णचन्द्रने नहीं माना और लीलापूर्वक उस धनुषको उठा लिया । जैसे महाविक्रमशाली मदमत्त गजराज ईखके दो खंड कर डाले वैसेही भगवान्ने, सब लोगोंके आगे, जितनी देरमें पलक लगती है उतनेही समयमें, लीलापूर्वक उस धनुषको खींच कर बीचसे तोड़ डाला ॥१५॥ ॥ १६ ॥१७॥ धनुषके टूटनेका प्रचण्ड शब्द सारे आकाशमें, अन्तरिक्षमें और दशो दिशाओंमें गूँजगया । उस भयानक शब्दको सुन कर कंसका हृदय भयके मारे काँप उठा ॥ १८ ॥ उस धनुषकी रक्षाके लिये जो कंसके अनुचर आततायी दानवगण वहाँ उपस्थित थे वे कुपित हो कर कृष्णको पकड़नेकी इच्छासे "पकड़ लो, मारो" कहते हुए दौड़े ॥ १९ ॥ उनको दुष्ट अभिप्रायसे अपनी ओर आते देख कर कृष्ण बलदेव भी कुपित हुए और टूटे हुए धनुषके दोनो टुकड़े लेकर उनको मारने लगे ॥ २० ॥ उन रक्षकोंके मरने और धनुषके टूटनेका समाचार पाकर कंसने दोनो भाइयों पर आक्रमण करनेके लिये और बहुत सेना भेजी । उस सेनाका संहार करके दोनो भाई धनुषभवनसे बाहर निकले और प्रसन्न-तापूर्वक इधर उधर घूम कर पुरीका वैभव और शोभा निहारने लगे ॥ २१ ॥ दोनो भाइयोंके धनुषभंगरूप अद्भुत पराक्रमको, तेजको, धृष्टताको और रूपको

देख कर पुरवासियोंने समझा कि ये दोनो सुरवर हैं॥ २२॥ इस प्रकार कृष्ण बलराम दोनो भाई गोपोंके साथ इच्छानुसार विचरते रहे। इतनेमें सूर्य्यदेव अस्त हो गये और गोपगणसहित दोनो भाई पुरीसे लौट कर अपने डेरेमें आये॥ २३॥ श्रीकृष्णकी यात्राके समय विरहातुरा गोपियोंने मथुरावासियोंके सौभाग्यके सम्बन्धमें जो कहा था सो सब सत्यही हुआ, क्योंकि ब्रह्माआदि बड़े २ देवता केवल कृपा—कटाक्षके लिये जिस लक्ष्मीकी उपासना करते हैं वही लक्ष्मी जिनको अनन्य-भावसे भजती है उन पुरुषभूषणके मनोहर श्याम शरीरकी शोभाको उन्होने देखा॥ २४॥ राजन्! कृष्ण बलदेवने हाथ पैर धोकर स्वादिष्ट खीर खाई और फिर शयन करके सुखपूर्वक रात भर सोये, क्योंकि उनको कंसका विचार विदित था और उसके लिये कुछ चिन्ता भी न थी॥ २५॥ कंसने जब सुना कि कृष्ण बलदेवने लीलापूर्वक महाधनुष तोड़ डाला और धनुपरक्ष-कोंको एवं अपनी भेजी हुई सेनाको भी मारडाला तब उसके भय और चिन्ताकी सीमा नहीं रही। दुर्मति कंसको चिन्ताके कारण रात भर नींद नहीं आई। उसको सोतेमें और जागतेमें भी मृत्युकी सूचना देनेवाले अनेक असगुन देख पड़े॥ २६॥ २७॥ कंसने जागतेमें देखा कि जल आदिकमें शरीरका प्रतिबिंब है, परन्तु उसमें शिर नहीं देख पड़ता। बीचमें अँगुली आदिकी कोई आड़ न होने पर भी दीपक, सूर्य, चन्द्रमा आदिकी (एककी जगह) दो ज्योतियाँ कंसको देख पड़ने लगीं॥ २८॥ कंसको अपनी परछाहींमें छिद्रोंकी प्रतीति होने लगी। कानोंमें अँगुली लगानेसे जो प्राणोंका 'घर्घर' शब्द सुन पड़ता है वह भी उसे न सुन पड़ा। कंसको सब वृक्ष सुवर्णमय दिखाई देने लगे। धूल, कीचड़ आदिमें कंसको अपने चरणोंके चिन्ह नहीं देख पड़े॥ २९॥ सोतेमें कंसने स्वप्न देखा कि मानो वह प्रेतोंसे लिपटा हुआ है, शिरसे पैर तक तेलसे तर है, गधे पर नंगा सवार है, विप खारहा है॥ ३०॥ इस प्रकार सोतेमें और जागतेमें अनेक प्रकारके अशुभसूचक अशकुन देखनेसे कंसको बड़ी चिन्ता हुई; दारुण दुर्भा-वना और मरणभयसे उसको रात भर नींद नहीं आई॥ ३१॥ हे कुरुकुल-भूपण! रात बीत गई, सवेरा हुआ, सूर्य्यनारायण जलसे ऊपरको उठे। कंसने उठ कर मल्लक्रीड़ारूप महाउत्सवका आरंभ करनेके लिये कर्मचारियोंको आज्ञा दी॥ ३२॥ सेवक लोगोंने रंगभूमिको भली भाँति सुसज्जित किया, तूर्य और भेरी आदि बाजे बजने लगे और पताका, झंडी, फूलोंसे बनाये गये बनावटी तोरण (प्रवेशद्वार) और पुष्पमालाओंसे सब मंच अलंकृत हुए। उन मंचोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सब पुरवासी लोग, जनपदवासी लोग, सम्भ्रान्त राजा लोग यथा-योग्य अपने अपने आसन पर बैठे॥ ३३॥ ३४॥ कंसने अपने लिये सबसे अलग एक बड़ा ऊँचा राजमंच बनवाया था। उसी मंचमें राजा कंस, अन्यान्य

सामन्तराजोंकी मण्डलीके बीचमें, मंत्रियोंसहित आकर बैठा। उस समय भी उसका हृदय भय और घवड़ाहटके कारण धड़क रहा था ॥३५॥ नगाड़े बज रहे थे और उस शब्दमें बीच २ मल्लोंके ताल ठोंकनेका शब्द सुन पडता था। इसी अवसरमें अपने २ गुरुओंके साथ, घमंडसे भरे हुए और सुंदर वस्त्र व आभूषणोंसे अलंकृत मल्ललोगोंने रंगभूमिमें प्रवेश किया। चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल आदि प्रधान २ मल्ल लोग बीच अखाड़ेमें आकर बैठे और मनोहर दुंदुभियोंके शब्दको सुन कर प्रसन्न होने लगे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

नन्दगोपादयो गोपा भोजराजसमाहुताः ॥
निवेदितोपायनास्ते एकस्मिन्मञ्च आविशन् ॥ ३८ ॥

इतनेमें नंदगोप आदिक सब गोप भी आये। उन्होने सब भेंट कंसको दीं और कंसने भी उनका भली भाँति आदर सत्कार किया। तब वे भी एक मंच पर जाकर बैठे ॥ ३८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंश अध्याय।

मल्लक्रीड़ाका उद्योग।

श्रीशुक उवाच-अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परंतप ॥
मल्लदुन्दुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे परन्तप! तदनन्तर कृष्ण बलदेव दोनो भाई मल्लोंके ताल ठोंकनेका और दुंदुभियोंका महा शब्द सुन कर देखनेके लिये मल्लोंकी रंगभूमिको चले। उन्होने पहले ही दिन निश्चय कर लिया था कि "हमने धनुषभंग आदि अपूर्व कार्योंसे अपनी शक्ति और ऐश्वर्य्यका परिचय दिया, तथापि दुरात्मा कंस हमारे माता-पिताको बन्धनमुक्त नहीं करता, वरन् हमें भी मारनेका प्राणपणसे प्रयत्न कर रहा है। अतएव मामा होने पर भी मारने योग्य है। उसका वध करनेमें हमको कोई दोषी नहीं कह सक्ता" ॥ १ ॥ रंगद्वार पर आकर कृष्णने देखा कि महावतकी प्रेरणासे कालरूप कुवलयापीड़ गजराज रंगभूमिके भीतर जानेकी राह रोककर खड़ा होगया ॥ २ ॥ तब दुपट्टेको कमरमें लपेट कर और बिखरी हुई घूँघरवाली अलकोंको समेट कर नीरदनादतुल्य वाणीसे महावतको संबोधन करके कृष्णचन्द्रने कहा कि "अरे महावत! राहसे हट जा, हमको भीतर जाने दे, देर न कर; नहीं तो इसी

समय तुझको और इस हाथीको यमलोक पहुँचाता हूँ" ॥ ३ ॥ ४ ॥ यों जब भगवान्ने डाँट कर कहा तब महावत बहुतही कुपित हुआ। उसने अंकुशके प्रहारसे काल अन्तक और यमके समान भयानक गजराजको कोपित करके कृष्णकी ओर बढ़ाया। गजराजने झपट कर कृष्णको सूँढ़में लपेट लिया। किन्तु भगवान् सूँढ़के वेठनसे छूट कर अलग हुए और एक घूँसा मार कर उसीके पैरोंमें छिपगये ॥५॥६॥ इधर उधर कृष्णको न देख कर कुवलयापीड़ क्रोधसे लाल हो गया। यद्यपि कृष्णचन्द्र उसकी आँखोंके आगे न थे तथापि सूँघ कर उसने उनको ढूँढ़ लिया और फिर सूँढ़से लपेटना चाहा। किन्तु भगवान् बलपूर्वक अपनेको छुड़ा कर अलग हो गये ॥ ७ ॥ महाबलशाली कृष्णचन्द्रजी, जैसे गरुड़जी लीलापूर्वक किसी महानागको घसीट ले जायँ वैसेही, पीछेसे पूँछ पकड़ कर उस हाथीको सौ हाथ तक घसीट ले गये ॥ ८ ॥ पूँछ पकड़े हुए कृष्णको पकड़ने लिये जब हाथी दाहिनी ओर घूमता था तब श्रीकृष्णजी उसे बाईं ओर घसीट कर घुमा देते थे और जब बाईं ओर घूमता था तब दाहिनी ओर घसीट कर घुमा देते थे। इसी प्रकार जैसे कोई लड़का बछड़ेके साथ खेले वैसेही कृष्णचन्द्र थोड़ी देर तक उस हाथीके साथ खेलते रहे ॥ ९ ॥ फिर भगवान्ने सामने आकर हाथीके एक थप्पड़ मारा। वह भी कृष्णचन्द्रको पकड़नेके लिये कुपित हो कर दौड़ा। वह हाथी समझता था कि अब मैंने पकड़ लिया—अब मैंने पकड़ लिया। इसी प्रकार पग पग पर पकड़नेकी आशासे दौड़ रहे हाथीको भगवान्ने बहुत थकाया और छकाया। इस दौड़में हाथी एक बार गिर भी पड़ा॥१०॥ इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए कृष्णचन्द्र एक बार जान कर पृथ्वीमें गिरपड़े और फिर सहसा उठ कर छिप गये। कुपित हाथीने कृष्णको गिरा हुआ जान कर अपने दोनो दाँत पृथ्वी पर दे मारे, परन्तु कृष्णचंद्र तो पृथ्वी पर थे ही नहीं, इस कारण उलटे हाथीहीके चोट लगी ॥११॥ अपना पराक्रम विफल हुआ देख कर कुवलयापीड़ बहुत ही कुपित हुआ। ऊपरसे महावतोंने भी उसको अंकुशके प्रहारसे आगे बढ़ाया। तब वह हाथी क्रोधसे विह्वल होकर कृष्णके पीछे झपटा ॥१२॥ जब वह हाथी झपट कर कृष्णके ऊपर आया तब उन्होने हाथसे सूँढ़ पकड़ कर झिटका दिया, जिससे कुवलयापीड़ पृथ्वी पर गिर पड़ा॥१३॥ गिरे हुए हाथीको पैरसे दबा कर सिंहके समान भगवान्ने लीलापूर्वक दोनो दाँत उखाड़ लिये और उन्हींके प्रहारसे कुवलयापीड़को व महावतोंको प्राणहीन कर दिया ॥ १४ ॥ गजदन्तोंको लिये हुए कृष्ण और बलदेवजीने अपने साथी गोपोंके साथ रंगभूमिमें प्रवेश किया। भगवान् कृष्णचन्द्र हाथमें हाथीका दाँत लिये हुए थे और उस दाँतका एक सिरा कंधे पर धरा हुआ था, शरीरमें रुधिरकी और गजमदकी छींटें पड़ी हुई थीं, मुखारविंदमें पसीना निकल आया था। उस समय भगवान्की अपूर्व शोभा निहारनेही योग्य थी ॥ १५ ॥ १६ ॥ रंगभूमिमें बलदेवसहित श्रीकृष्णजी,

मल्लोंको वज्र ऐसे, मनुष्योंको पुरुषश्रेष्ठ, स्त्रियोंको साक्षात् कामदेव, गोपगणको स्वजन, दुष्ट राजोंको शासन करनेवाले, अपने माता-पिताको बालक, कंसको साक्षात् मृत्यु, अज्ञानियोंको जड़रूप, योगियोंको परम तत्त्व-परब्रह्म और यादवोंको परम देवतारूप देख पड़े ॥ १७ ॥ महाराज ! कुवलयापीड़को निहत देख कर दुष्ट कंसने जाना कि ये दोनो बालक परम दुर्जेय हैं। दोनो भाइयोंको देख कर, धैर्य्यशाली होने पर भी, कंस प्राणभयसे बहुत ही घबड़ा गया ॥ १८ ॥ आभूषण, माला और सुंदर वस्त्रोंसे अलंकृत, विचित्रवेषधारी महाबाहु दोनो भाई, उत्तमवेषविभूषित दो नटवरोंके समान अपनी प्रभाके प्रभावसे देखनेवालोंके नयनों व मनोंको अपनी ओर खींचते हुए रंगभूमिमें विराजमान हुए ॥ १९ ॥ राजन् ! उन दोनो पुरुषश्रेष्ठोंको देख कर मंचस्थित नगरवासी एवं राष्ट्रवासी लोगोंके नेत्रकमल और मुखारविंद आनन्दके वेगसे प्रफुल्लित हो उठे । वे नेत्रोंसे वारम्वार दोनो भाइयोंके मुखारविन्दोंको देख कर भी तृप्त नहीं हुए और एकटक उन्हींकी ओर निहारने लगे ॥ २० ॥ देखनेसे जान पड़ता था कि दर्शकलोग मानो दोनो भाइयोंको नेत्रोंसे पी लेंगे, जिह्वासे चाटलेंगे, नासिकासे सूँघ लेंगे और दोनो बाहुओंसे लिपटा लेंगे ॥ २१ ॥ कृष्ण–बलदेवके रूप, गुण, माधुर्य्य और धृष्टताने मानो उनको स्मरण करा दिया, इस प्रकार, वे लोग, जैसा सुना था और देखा वैसा ही परस्पर दोनो भाइयोंके विषयमें वार्तालाप करने लगे ॥ २२ ॥ वे लोग कहने लगे कि "ये दोनो बालक साक्षात् नारायण भगवान्के अंशसे पृथ्वी पर वसुदेवके घरमें उत्पन्न हुए हैं ॥ २३ ॥ यह (कृष्ण) देवकीके पुत्र हैं, इनको वसुदेवजीने गोकुल पहुँचा दिया । यह नन्दके ही घरमें अब तक गुप्तरूपसे रह कर इतने बड़े हुए हैं ॥ २४ ॥ इन्हींके हाथसे पूतना, तृणावर्त्त, यमलार्जुन, धेनुक, केशी, शंखचूड़ यक्ष एवं ऐसेही अन्यान्य अघासुर आदि दानवोंका संहार हुआ है ॥ २५ ॥ इन्होने ही ग्वालबालोंसहित गौवोंकी दावानलसे रक्षा की है, कालियानागका दमन किया है और इन्द्रके मदका मर्दन किया है ॥ २६ ॥ यही सात दिन तक एकही हाथ पर गोवर्द्धन पर्वत उठाये खड़े रहे हैं और इन्होने ही आँधी, वर्षा व वज्रपातसे गोकुलकी रक्षा की है ॥ २७ ॥ इनके नित्य प्रसन्न मुखको और मनोहर मंद मुसकान व चित्तचोर चितवनको देख कर गोपियोंको परम आनन्द प्राप्त होता है एवं वे अनायास ही अनेक तापोंसे मुक्त हो जाती हैं ॥ २८ ॥ विद्वान् लोगोंका कथन है कि 'बहुविख्यात यदुवंश इन्हींके बाहुबलसे सुरक्षित रह कर लक्ष्मी, यश और महत्त्वसे अलंकृत होगा' ॥ २९ ॥ और यह दूसरे इनके बड़े भाई कमलनयन श्रीबलभद्र हैं । इन्होने प्रलंबासुरको और वत्सासुर, बकासुर आदिको मारा है" ॥ ३० ॥ इस प्रकार दर्शक लोग आपसमें कह रहे थे और नगाड़े बज रहे थे । इसी अवसरमें चाणूरने कृष्ण और

बलदेवसे कहा कि "हे नन्दनन्दन! हे बलभद्र! तुम पराक्रमी माने जाते हो। हमारे राजा कंसने सुना है कि तुम मल्लयुद्धमें भी बहुत ही निपुण हो। इसीसे मल्लयुद्ध देखनेके लिये महाराजने तुमको यहाँ बुलाया है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ कर्म, मन और वाणीसे राजाका प्रिय करनेसे प्रजाका मंगल होता है एवं अन्यथा करनेसे अशुभ होता है ॥ ३३ ॥ और यह भी सब लोग जानते हैं कि गोपलोग नित्य प्रसन्नतापूर्वक वनमें मल्लक्रीड़ा करते हुए पशुओंको चराते हैं ॥ ३४ ॥ इस कारण अपनी भलाईके लिये, आओ, हम तुम दोनो राजाकी इच्छा पूरी करें। हमारे इस कामसे सभी जीव प्रसन्न होंगे, क्योंकि शास्त्रोंमें राजाको 'सर्वजीवमय' लिखा है" ॥ ३५ ॥ यह तो कृष्ण चाहते ही थे, अतएव चाणूरके वाक्य सुन कर उन्होने पहले उसकी प्रशंसा की और फिर इस प्रकार देश-कालके अनुसार उचित उत्तर दिया ॥३६॥ कृष्णचन्द्रने कहा। "हम इन भोजपति कंसकी वनेचर प्रजा हैं, अतएव इनको सब प्रकार प्रसन्न करना ही हमारा कर्त्तव्य है। राजाकी इस आज्ञाको हम परम अनुग्रह समझते हैं ॥ ३७ ॥ किन्तु हे मल्ल! हम बालक हैं, अतएव अपने समान बलवाले बालकोंसे लड़ कर राजाको प्रसन्न करेंगे। इस प्रकार उचित रीतिसे मल्लयुद्ध होना चाहिये जिससे सभामें बैठे हुए दर्शक लोगोंको अधर्म्मभागी न बनना पड़े" ॥ ३८ ॥ चाणूरने कहा। "अजी तुम और महाबली बलभद्र, दोनो भाई, बालक या किशोर नहीं हो। तुमने अभी २ सहस्र हाथियोंका जिसके बल था उस गजराजको लीलापूर्वक मार डाला है ॥ ३९ ॥

तस्माद्भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नाऽनयोऽत्र वै ॥
मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥ ४० ॥

तुम दोनो भाई महाबली हो। इस लिये हे वृष्णिवंशावतंस! तुम मुझसे युद्ध करो और बलभद्र मुष्टिकसे युद्ध करें। इसमें कुछ अन्याय नहीं होगा" ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रिचत्त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्त्वारिंश अध्याय।

कंसवध।

श्रीशुक उवाच—एवं चर्चितसंकल्पो भगवान्मधुसूदनः ॥
आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! इस प्रकार निश्चय करके भगवान् कृष्णचन्द्र चाणूरसे और रोहिणीनन्दन बलभद्रजी मुष्टिकसे भिड़ गये ॥ १ ॥

हाथोंसे हाथ और पैरोंसे पैर बाँध कर जीतनेकी इच्छासे परस्पर बलपूर्वक एक एकको अपनी ओर खींचने लगे ॥ २ ॥ कृष्ण–बलभद्र और दोनो मल्ल, कलाइ-योंसे कलाइयों पर, जानुओंसे जानुओं पर, शिरसे शिर पर, वक्षःस्थलसे वक्षः-स्थल पर परस्पर प्रहार करने लगे ॥ ३ ॥ परिभ्रामण (चारो ओर घुमाना), विक्षेप (रेलना), परिरंभ (लिपटना), अवपातन (गिराना), उत्सर्पण (छूट कर सामने आना), अपसर्पण (पीछे हटना) द्वारा परस्पर बचते हुए जयकी इच्छासे वे लोग उत्थापन (नीचेवालेको उठानेका प्रयत्न), उन्नयन (हाथोंसे ऊपर उठालेना), संचालन और स्थापन (हाथ पैर समेट कर नीचे बैठाना) आदि पेंचोंसे परस्पर बल प्रकट करते हुए युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥ ५ ॥ इस युद्धमें एकको सबल और एकको निर्बल देख कर अपने २ घरों पर खड़ी हुई पुरनारियाँ दयार्द्रचित्ता होकर परस्पर कहने लगीं कि "यह युद्ध अयुक्त है, क्योंकि दोनो योद्धा बराबरके नहीं हैं । बालकोंसे महाबली मल्लोंको लड़ते देख कर राजाको चाहिये था कि यह युद्ध न होने देते, किन्तु वह उलटे इस अन्यायका अनुमोदन कर रहे हैं, या यों कहो कि उन्हींकी इच्छासे यह युद्ध हो रहा है । राजसभामें बैठे हुए दर्शकों और सभासदोंको भी महा अधर्म्मभागी होना पड़ेगा, क्योंकि वे सबल और निबलका युद्ध देख रहे हैं और कुछ कहते नहीं हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ देखो न ! कहाँ वज्रसदृश सुदृढ़ अंगवाले पर्वत ऐसे ये मल्ल ! और कहाँ अति सुकुमार अंगवाले अप्राप्तयौवन ये किशोर बालक ! ॥ ८ ॥ इस समाजको अवश्य ही अधर्म्मका घोर फल भोगना पड़ेगा । क्योंकि ये स्वयं भी इस अन्यायका अनुमोदन कर रहे हैं । इनकी यदि इस अधर्म्ममें अनुमति न थी तो इनको यहाँसे उठ जाना चाहिये था । क्योंकि शास्त्रमें लिखा है 'जहाँ अधर्म्म होता हो वहाँ कभी न ठहरना चाहिये' ॥ ९ ॥ सभामें जो लोग ज्ञानी होकर भी उचित बात नहीं कहते या अनुचित बात कहते हैं अथवा 'हम नहीं जानते' कह कर पीछा छुड़ाते हैं वे दोषभागी होते हैं। अतएव इस बातके जाननेवाले विद्वान् लोगोंको चाहिये कि ऐसी अन्याय–सभामें न जावें ॥ १० ॥ देखो, शत्रुके चारो ओर फिर रहे कृष्णका मुखकमल, श्रमस्वेदके बूँदोंसे जलबिंदुविभूषित कमलकोष ऐसा सुशोभित हो रहा है" ॥ ११ ॥ दूसरी पुरनारी कहने लगी कि "इतना व्याकुल क्यों होती हो ? क्या तुम नहीं देखतीं कि कोपावेशपूर्ण बलभद्रके दोनो नेत्र लाल हो रहे हैं ! देखो, मुष्टिक पर कुपित बलभद्रका मुखमंडल आवेशयुक्त हास्यसे कैसा सुशोभित हो रहा है ?" ॥ १२ ॥ और २ पुरनारियाँ कहने लगीं कि "अहो, सखियो ! व्रजवीथियाँ धन्य हैं ! क्योंकि लक्ष्मीदेवी शिव जिनके और चरणोंका पूजन करते हैं वे ही पुराणपुरुष मायामानवशरीरधारी ये कृष्णचन्द्रजी विचित्र

वनमाला धारण किये वंशी बजाते बलभद्र और ग्वालबालोंके साथ गौवें चराते अपनी क्रीड़ाओंसे उनको पवित्र और पूजनीय बनाते हैं ॥ १३ ॥ गोपियोंने कौन तप किया है जो ईश्वरके इस दुर्लभ अनूप रूपको नित्य अभिनव भावसे देखकर अपने नेत्रोंको सफल करती हैं। यह रूप अद्भुत सुन्दर सुषमाका आगार है। इसके समान अथवा इससे अधिक रूप ही नहीं है। यह रूप स्वयंसिद्ध है, अलंकारोंसे इसकी उत्पत्ति नहीं हुई है। यह रूप यश और लक्ष्मी (शोभा) का एकमात्र आश्रय हैं ॥ १४ ॥ सखियो! सब व्रजबालाएँ धन्य हैं! क्योंकि गऊ दुहतेमें, दही मथतेमें, लीपतेमें, झूलतेमें, रोते हुए लड़कोंको चुप करतेमें, झाड़ू देतेमें, चौका लगातेमें एवं विश्राम समयमें सर्वदा सभी समय इनकी पवित्र कीर्त्तिका कीर्त्तन किया करती हैं। उनका चित्त इन्हीं महाबलशाली कृष्ण पर अनुरक्त और आसक्त है, अतएव कीर्ति-कीर्त्तन करतेमें उमँगे हुए आनन्दके आँसुओंसे कंठावरोध होजानेके कारण उनका स्वर गद्गद होजाता है। उनकी सब कामनाएँ इनकी कृपासे पूरी होती हैं ॥ १५ ॥ यह कृष्णचन्द्र सवेरे गौवों और गोपोंके साथ वंशी बजाते हुए व्रजसे वनको जाते हैं और सायंकालको लौटकर व्रजमें आते हैं। उस समय इनकी वंशीकी ध्वनि कानमें पड़ते ही जो व्रजबालाएँ जल्दीसे निकल कर राहमें कृपाकटाक्षयुक्त इनके मुखारविन्दको देखती हैं उन्होने अवश्यही पूर्वजन्ममें बहुत पुण्य किये हैं'' ॥ १६ ॥ हे भरतश्रेष्ठ, स्त्रियाँ इस प्रकार परस्पर कह रही थीं, इसी अवसरमें योगेश्वरोंके ईश्वर हरिने शत्रुको मारनेका विचार किया ॥ १७ ॥ भयविह्वल पुरनारियोंके पूर्वोक्त वाक्य सुन २ कर कृष्ण बलदेवके पिता माता (वसुदेव-देवकी) पुत्र-स्नेहके कारण शोकातुर होकर चिन्ता करने लगे। क्योंकि उनको अपने पुत्रका बल भलीभाँति विदित न था ॥ १८ ॥ भाँति २ के दाव पेंच करते हुए कृष्ण और चाणूर जैसे युद्ध करने लगे वैसे ही बलदेव और मुष्टिक भी परस्पर युद्धमें प्रवृत्त हुए ॥ १९ ॥ भगवान्‌के कठिन—वज्रपाततुल्य कठोर अंगोंकी चोटोंसे चाणूरके अंग चूर चूर (शिथिल) हो गये और वह वारम्वार चोट खाकर व्यथित होने लगा ॥ २० ॥ एक बार घूसे तानकर चाणूरने महाक्रोधपूर्वक बाजके समान झपटकर भगवान् वासुदेवके वक्षःस्थल पर चोट चलाई ॥२१॥ किन्तु जैसे भालेकी चोटसे हाथी नहीं विचलित होता वैसे ही उस प्रहारसे कृष्णचन्द्र भी नहीं विचलित हुए। भगवान्‌ने चाणूरको, दोनो हाथ पकड़ कर, कई बार ऊपर घुमाया और फिर पृथ्वीपर पटक दिया। घुमाते में ही जिसके प्राण निकल गये उस चाणूरका मृत शरीर, केश-वेशभूषा, माला, वस्त्र आदिके अस्तव्यस्त होनेके कारण इन्द्रकी ध्वजाके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसी प्रकार मुष्टिकने बलभद्रके हृदयमें दो घूसे मारे। महाबली बलभद्रजीने भी एक तमाचा तानकर मारा। तमाचा लगनेसे व्यथित मुष्टिकका शरीर काँप गया, मुखसे रुधिर

गिरने लगा, और उसका मृत शरीर आँधीके वेगसे उखड़े हुए महावृक्षके समान पृथ्वी पर गिरपड़ा ॥ २४ ॥ २५ ॥ तदनन्तर कूट नाम मल्ल आया, उसको श्रेष्ठ योद्धा बलभद्रने, जैसे कोई बालक क्रीड़ा करे वैसे अवज्ञापूर्वक बाएँ हाथके घूसेसे प्राणविहीन कर दिया ॥ २६ ॥ उधर उसी समय शल और तोशल नाम मल्लोंके शिर कृष्णके चरणोंकी ठोकरसे फट गये और दोनोके प्राण निकल गये ॥ २७ ॥ जब चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल आदि प्रधान २ मल्ल मारे गये तब बचे हुए सब मल्ल अपने २ प्राण लेकर खिसक गये ॥ २८ ॥ जब कोई युद्ध करनेवाला न रहा तब चरणोंमें रत्नजटित नूपुर धारण किये हुए प्रसन्नचित्त कृष्ण और बलदेव अपने साथी ग्वालबालोंको अखाड़ेमें घसीटकर मल्लक्रीड़ा और नृत्य आदि करने लगे ॥ २९ ॥ कंसको छोड़कर और सब देखनेवाले साधु-जन तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणगण, कृष्ण–बलदेवके इस प्रशंसनीय कर्म्मसे प्रसन्न होकर "वाह वाह" करने लगे ॥३०॥ जब श्रेष्ठ मल्ल मारे गये और जो बचे वे भाग गये तब कंसने नगाड़ोंका बजना बंद कराकर कहा कि "अरे इन दुष्ट चरित्रवाले वसुदेवके पुत्रोंको पुरसे शीघ्र निकालकर गोपोंका सर्वस्व लूट लो और दुर्मति नन्दको बंदी बनाओ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ महादुष्ट विचारवाले परम दुष्ट वसुदेवको और उग्रसेनको भी उसके अनुगामियोंसहित इसी समय मार डालो क्योंकि वह मेरा पिता होकर भी मेरे शत्रुओंसे मिला हुआ है" ॥ ३३ ॥ जब कंस इस प्रकार अहंकारके कारण कुवाक्य बकने लगा तब अच्युत कृष्ण बहुत ही कुपित हुए और लघिमा नाम योगसिद्धिके सहारे वेगपूर्वक उचक कर उस ऊँचे मंचपर पहुँच गये,



जिस पर कंस बैठा था ॥३४॥ कंस भी मनस्वी (शूर) था, इस कारण अपने मृत्यु कृष्णको निकट देख कर तर्वार कि ढाल लिये आसनसे सहसा उठ खड़ा हुआ ॥३५॥ एवं बाजके समान चोट करनेका अवसर ढूंढ़ता हुआ, बाएँ और दाहिने भाँति २ के पैंतरे बदले लगा। किन्तु जिनका तेज उग्र होनेके कारण असह्य है उन कृष्णचन्द्रने किरीट मुकुट गिराकर, जैसे गरुड़जी कुपितकाले नागको बलपूर्वक पकड़ लेते हैं वैसे ही कंसके केश पकड़ लिये और उतने ऊँचे मंचसे उसको नीचे रंगभूभि पर ढकेल दिया। उसके ऊपर स्वयं पद्मनाभ, विश्वमय एवं स्वतन्त्र कृष्णचन्द्र भी फाँद पड़े ॥३६॥३७॥ कृष्णचन्द्रने कंसके मरे हुए हाथी ऐसे शरीरको सबके सामने ही पृथ्वीपर घसीटा। महाराज ! उस समय बहुतसे लोग ऊँचे स्वरसे हाहाकार करने लगे ॥ ३८ ॥ कंसका चित्त सदा कृष्णकी चिन्तासे उद्विग्न रहा करता था। वह खाते, पीते, उठते, बैठते, चलते, फिरते, सोते, जागते सब समय चक्रधारी नारायणको कल्पनासे अपनी आँखोंके आगे ही पाता था। अन्त समय भी साक्षात् कृष्णचन्द्रने अपने हाथोंसे मारा; इस लिये उसको वही दुर्लभ कृष्णरूप प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ राजन् ! अंक और न्यग्रोध आदि उसके आठ छोटे भाई थे; वे भी अत्यन्त कुपित होकर भाईका बदला चुकानेके लिये कृष्ण और बलदेवके सामने दौड़कर आये ॥ ४० ॥ किन्तु रोहिणीतनय बलभद्रने बीचमें ही, सिंह जैसे पशुओंको मार डालता है वैसे एक बेलन उठाकर उन सब वेगसे आ रहे और मारनेको उद्यत असुरोंको मार डाला ॥ ४१ ॥ उस समय आकाशमें नगाड़े बजने लगे और ब्रह्मा, रुद्र आदि देवगण प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा और स्तुति करने लगे एवं अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥४२॥ महाराज ! कंस और कंसके भाइयोंकी स्त्रियाँ— अपने २ पतियोंके मरणसे शोकाकुल होकर रोती तथा शिर व छाती पीटती हुई वहाँपर आईं ॥ ४३ ॥ वीरशय्या पर सो रहे स्वामियोंके शरीरोंसे लिपटी हुई शोकसे विह्वल स्त्रियाँ आँसू बहाती हुई ऊँचे स्वरसे इस प्रकार विलाप करने लगीं ॥ ४४ ॥ "हा नाथ ! हा प्रिय ! हा धर्मज्ञ ! हे करुणानिधे ! हे अनाथवत्सल ! तुम्हारे मरनेसे गृह और पुत्रगणसहित हम भी मरगईं ! ॥ ४५ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम स्वामीके बिना यह पुरी भी हमारे समान उत्सवमंगलहीना विधवा होगई और अब पहलेकी सी इसकी शोभा भी नहीं रही ॥ ४६ ॥ हे स्वामी ! तुमने निरपराध लोगोंसे घोर द्रोह किया, इसीसे तुम्हारी यह दशा हुई। सच है प्राणियोंके अनिष्टकी चेष्टा करनेवाला कौन कुशलसे रह सक्ता है ? ॥ ४७ ॥ सब प्राणी इन्हीं कृष्णसे उत्पन्न होकर इन्हींमें लीन हो जाते हैं। इनकी जो अवज्ञा करता है उसको कभी सुख नहीं मिलता" ॥४८॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज ! तदनन्तर लोकभावन भगवान्ने कंसकी स्त्रियोंको समझा बुझाकर आश्वस्त किया और फिर उन्हीके द्वारा उनके मरे हुए पतियोंके अन्तिम संस्कार कराये ॥ ४९ ॥

कृष्ण बलदेवजी माता-पिताके पास गये और बंधनसे मुक्त करके चरण छूकर दंडवत् प्रणाम किया ॥ ५० ॥

देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ ॥
कृतसंवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ ॥ ५१ ॥

उस समय वसुदेव देवकीको ज्ञान हुआ, उन्होने जाना कि हमारे दोनो पुत्र वास्तवमें जगदीश्वर हैं। अतएव उन्होने उनको सशंक होकर हृदयसे नहीं लगाया, किन्तु हाथ जोड़े खड़े रहे ॥ ५१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंश अध्याय ।

कृष्ण बलदेवका विद्याध्ययन ।

श्रीशुक उवाच—पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः ॥
माभूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने जाना कि सांसारिक सुखका पूर्ण अनुभव होनेके पहलेही हमारे माता पिता हमको ईश्वर जानगये हैं। किन्तु हमारे प्रसन्न होने पर ऐसा ज्ञान इनको मिलना असम्भव या दुर्लभ नहीं है, वरन् हमको पुत्र समझ कर ये जो प्रेमसुख भोग रहे हैं वही दुर्लभ है। अतएव इनको अभी हमारे प्रति ईश्वरभावकी आवश्यकता नहीं है। यह विचार कर भगवान्ने पितामाताकी ज्ञानदृष्टि पर जगत्भरको मोहित करनेवाली अपनी माया-का पर्दा डाल दिया ॥ १ ॥ बड़े भाईसहित यादवश्रेष्ठ कृष्णने पिता माताके पास नम्र भावसे जाकर "हे पिता! हे माता!" आदि विनीत वाक्योंसे आदरपूर्वक उनको प्रसन्न किया ॥ २ ॥ भगवान्ने कहा। हे पिता! हम आपके पुत्र हैं। निरन्तर प्रबल इच्छा रहने पर भी, आप हमारे लड़कपनकी, पौगंड अवस्थाकी और किशोर अवस्थाकी क्रीड़ाओंको देख कर सुखी न बन सके ॥ ३ ॥ हम ही अभागे हैं, क्योंकि दैववश हम आपके निकट नहीं रह सके। पितृगृहमें रह कर बालक जो पिता-माताके प्यार और दुलारका उत्तम आनन्द भोग करते हैं वह आनन्द भोगना हमारे भाग्यमें नहीं था ॥ ४ ॥ सम्पूर्ण फलों (धर्म अर्थ काम मोक्ष) को दिलानेवाला साधनस्वरूप यह नरशरीर जिनसे उत्पन्न हुआ और जिनके द्वारा पाला पोषा गया उन मातापिताके ऋणसे सौ वर्षकी अवस्था भर सेवा करने पर भी मनुष्यका उद्धार नहीं होता ॥ ५ ॥ जो माता पिताके समर्थ

पुत्र हैं वे यदि धन अथवा अपने शरीरसे उनकी सेवा नहीं करते तो मरने पर यमराजके दूत उन कुपुत्रोंको उन्हींका मांस खिलाते हैं॥ ६ ॥ समर्थ व्यक्ति, यदि वृद्ध पिता, माता, साध्वी भार्य्या, शिशु सन्तान, ब्राह्मण और शरणागतका भरण पोषण नहीं करता तो वह जीते ही मरेके तुल्य है॥ ७ ॥ हमारे इतने दिन व्यर्थ बीते, हम सेवा-समर्थ हो कर भी कंसके भयसे नित्य उद्विग्न रहनेके कारण आपकी सेवा नहीं करसके॥ ८ ॥ अतएव हे पिता! हे माता! हम आपसे क्षमा की प्रार्थना करते हैं। हम पराधीन रहनेके कारण आपकी सेवा नहीं कर सके। दुष्ट कंसने बुरे विचारसे हमको वारम्वार अनेक कष्ट पहुँचाये, परन्तु आपकी कृपासे सब अच्छा ही हुआ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे महाराज! मायामनुष्य विश्वरूप हरिके इन वाक्योंको सुन कर वसुदेव और देवकी मोहित हो गये, अर्थात् वे फिर कृष्ण बलदेवको अपने पुत्र समझ सुखसे गद्गद हो गये। देवकी वसुदेवने पुत्रोंको गोदमें लेकर गलेसे लगा लिया। परमानन्दसे उनके शरीर पुलकित हो उठे और आनन्दके आँसुओंसे कंठ रुँध गये। स्नेहपाशमें बँधे हुए एवं मोहित वसुदेव देवकी आँसुओंकी धाराओंसे दोनो भाइयोंको भिगोने लगे। उस समय वे कुछ भी न कह सके॥ १० ॥ ११ ॥ इस प्रकार माता पिताको आश्वास देकर भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी बड़े भाई सहित अपने नाना उग्रसेनके पास गये और उनको बंधनसे मुक्त करके सम्पूर्ण यादवोंका राजा बनानेके उपरान्त कहने लगे कि "महाराज! हम आपकी प्रजा हैं। हमको आज्ञा दीजिये-हम उसको पूर्ण करें। हमारे पूर्वज यदुके वंशको उनके पिताका शाप है, इस लिये हम यादवलोग राजाके आसन पर नहीं बैठ सक्ते। अतएव हमारी प्रार्थनासे आप निष्कंटक राज्य करिये। मुझ भृत्यके निकट रहते हुए, अन्य राजोंकी कौन बात है, देवगण भी शिर झुका कर आपकी पूजा करेंगे" ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ राजन्! विश्वकर्ता कृष्णचन्द्रके सजातीय और सम्बन्धी यदु, वृष्णि, अंधक, मधु, दाशार्ह और कुकुर आदि वंशोंमें उत्पन्न यादवगण, कंसके भयसे दूर देशोंमें भाग गये थे और दुःसह प्रवासकष्ट भोग रहे थे;-भगवान् कृष्णचन्द्रने उनको सादर सत्कारपूर्वक मथुरामें बुलालिया और धन आदि देकर सन्तुष्ट किया। उन लोगोंने फिर आकर अपने २ घर बसाये॥ १५ ॥ १६ ॥ श्रीकृष्ण-बलरामके बाहुबलसे सुरक्षित यादव लोग, सिद्धजनोंकी भाँति पूर्ण मनोरथ और विगतसन्ताप हो कर, नित्यप्रति मुकुंदके सदय हास और कृपाकटाक्षोंसे सुशोभित, नित्यप्रसन्न, श्रीसम्पन्न मुखारविन्दको देखते हुए अपने २ भवनमें सुखपूर्वक निवास करने लगे॥ १७ ॥ १८ ॥ वहाँके बूढ़े भी युवकोंके समान उत्साही, महाबली और तेजस्वी देख पड़ते थे। क्योंकि वे नित्य नयनोंसे मुकुंदमुखामृत पान करते थे ॥ १९ ॥ हे राजेन्द्र! तदनन्तर भगवान् कृष्ण और बलभद्रजी नन्दजीके निकट उपस्थित हुए और

मिलकर कहने लगे कि "पिताजी! आप और माता यशोदाने स्नेहपूर्वक अपने सन्तानसे भी अधिक हमको माना और हमारा लालन पालन किया। पिता-माताको अपने शरीरसे भी बढ़ कर पुत्रों पर प्रेम और ममता होती है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥२०॥२१॥ जिनको पालनेमें असमर्थ बंधुओंने तज दिया है एवं जो अपना भरण पोषण आप नहीं कर सक्ते उन बालकोंको अपने पुत्रके समान पालने वालेही उनके सच्चे माता पिता हैं ॥ २२ ॥ पिता! अब आप व्रजको जाइये। हम कुछ दिन स्वजनोंको सुखी करके अपने विरहसे दुःखित और सनेही सुहृद् जन जो आपलोग हैं उनको देखनेके लिये अवश्य आवेंगे" ॥२३॥ भगवान् अच्युतने इस प्रकार व्रजवासियोंको और नन्दको समझाया और अनेक वस्त्र, आभूषण एवं पात्र आदि उपहार देकर सादर सत्कारसहित उनका पूजन किया ॥ २४ ॥ कृष्ण–बलरामके वाक्य सुन कर स्नेहसे विह्वल नंदजीने दोनो भाइयोंको गलेसे लगालिया। नंदजीके नेत्रोंमें आँसू भर आये। बड़े कष्टसे धीरज धरके गोपगणसहित नन्दजी बिदा हुए और व्रजको चले ॥ २५ ॥ राजन्! तदनन्तर वसुदेवने अपने पुरोहित गर्गाचार्य्य एवं अन्यान्य श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके द्वारा दोनो पुत्रोंका यथाविधि यज्ञोपवीत संस्कार कराया ॥ २६ ॥ वसुदेवने उन ब्राह्मणोंको अलंकारोंसे भलीभाँति भूषित किया, एवं पूजन करके, जिनके गलेमें स्वर्णमाला और पीठ पर रेशमी झूलें शोभा दे रही हैं ऐसी भली भाँति विभूषित गौवें और उनके बछड़े देकर सन्तुष्ट किया ॥ २७ ॥ कृष्ण बलदेवके जन्मदिनमें महामति वसुदेवने जितनी गौवें दी थीं उनको कंसने अधर्मपूर्वक हरलिया था; उस दिन वे गौवें भी उन्होने ब्राह्मणोंको दीं ॥ २८ ॥ गर्गऋषिके द्वारा यज्ञोपवीत संस्कार हो जानेपर द्विजपद पाकर सुव्रत कृष्ण–बलदेवने ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण किया ॥ २९ ॥ कृष्ण–बलदेव जगदीश्वर और सब विद्याओंके प्रकट करनेवाले, अतएव सर्वज्ञ होकर भी मनुष्य-लीलाओंसे अपने स्वयंसिद्ध ज्ञानको छिपाये हुए थे ॥ ३० ॥ लोकाचारके अनुसार "गुरुकुल"में रहने की इच्छासे दोनो भाई अवन्तिपुरनिवासी काश्यपगोत्रज सांदीपिनि नाम मुनिके निकट गये ॥३१॥ वहाँ इन्द्रियदमनपूर्वक दोनो भाई पढ़ने लगे; वे पढ़नेके सिवा अपनेसे नीचेकी श्रेणीवाले विद्यार्थियोंको पढ़ाते भी थे। यों दोनो भाई वशवर्त्ती और श्रद्धायुक्त होकर परम भक्तिसे इष्टदेव ईश्वरके समान गुरुकी सेवा करने लगे ॥ ३२ ॥ उनके शुद्ध भाव और सेवासे प्रसन्न होकर गुरुने सांगोपांग वेद और उपनिषद् उनको पढ़ाये ॥ ३३ ॥ कृष्ण बलदेवने उनसे मंत्र व देवताके ज्ञानसहित धनुर्वेद, विविध धर्म्म, भिन्न २ नीति, आन्वीक्षिकी (तर्क) विद्या और छः प्रकार(संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधभाव और आश्रय) की राजनीतिकी शिक्षा भी पाई ॥ ३४ ॥ महाराज ! उन पुरुषश्रेष्ठ दोनो भाइयोंने एक वार गुरुके मुखसे सुनकर सब विद्याएँ सीख लीं। सब विद्याओंके चलानेवाले

जगदीश्वरोंके लिये यह कुछ आश्चर्य नहीं है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार संयत होकर उन्होने चौंसठ दिन और रातमें चौंसठो कला विद्या सीख ली। पढ़ना समाप्त होने पर अन्तमें उन्होने गुरुसे गुरुदक्षिणा माँगनेके लिये प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ सांदीपनि मुनिका एक पुत्र पहले प्रभासक्षेत्रके बीच महासागरमें डूबगया था। इस समय कृष्ण-बलदेवकी अद्भुत महिमा और अलौकिक बुद्धि देखकर स्त्रीके परामर्शानुसार उन्होने वही मराहुआ पुत्र गुरुदक्षिणामें माँगा ॥ ३७ ॥ "तथास्तु" कह कर अनन्त-पराक्रमशाली महारथी दोनो भाई रथपर चढ़कर प्रभास क्षेत्रमें आये और समुद्रके किनारे जाकर एक क्षण भर ठहरे थे कि उनके आगमनको जानकर पूजा लिये हुए समुद्र, पुरुषरूपसे उनकी सेवामें उपस्थित हुआ ॥ ३८ ॥ **भगवान्ने** समुद्रसे कहा कि "तुम यहाँ जिसको अपनी महातरंगोंमें बहा ले गये हो उस हमारे गुरुपुत्रको शीघ्र लाओ" ॥३९॥ **समुद्रने कहा।** "देव ! मैं उस बालकको नहीं हर ले गया। हे कृष्ण ! मेरे जलमें एक शंखरूपधारी पञ्चजन नाम महादैत्य रहता है—अवश्य वही उस बालकको ले गया होगा"। यह सुनतेही भगवान् जलके भीतर गये और उस पञ्चजन दैत्यको मार डाला। परन्तु उस दैत्यके पेटमें भी बालक नहीं देख पड़ा। तब भगवान् उस दैत्यके अंगका पांचजन्य नाम शंख लेकर रथ पर आये और बड़े भाईके साथ यमराजकी प्रिय संयमनी पुरीको गये। वहाँ जाकर भगवान्ने अपना शंख बजाया। शंखका प्रचण्ड शब्द सुनकर प्रजागणके संहारकारी और शासक यमराज बाहर आये। उन्होने बड़ेही समारोहसे भक्तिपूर्वक भगवान्की पूजा की। फिर नम्र होकर सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें रहनेवाले लीलामानुषरूप विष्णु जो कृष्णचन्द्र हैं उनसे यमराजने कहा—"प्रभो! हम आपकी क्या सेवा करें?" ॥४०॥४१॥४२॥४३॥४४॥ महाराज! **भगवान्ने** कहा। "अपने कर्म्मोंसे विवश होकर यहाँ आये हुए हमारे गुरुपुत्रको हमारी आज्ञाके अनुसार लेआओ" ॥४५॥ "जो आज्ञा" कह कर यमराज उसी समय गये और उनके गुरुपुत्रको उसीसमय ले आये। कृष्ण-बलदेव भी उस बालकको लेकर गुरुके निकट आये और गुरुको उनका पुत्र देकर कहने लगे कि "और क्या आप चाहते हैं?" ॥ ४६ ॥ **गुरुने कहा।** "पुत्रो ! तुम भली भाँति मुझको गुरुदक्षिणा दे चुके। जो लोग तुम्हारे समान शक्तिमान्के गुरु हैं उनकी कोई भी अभिलाषा अपूर्ण नहीं रहसक्ती ॥ ४७ ॥ हे दोनो वीरवरो ! तुम अब घर जाओ। लोकोंको पवित्र करनेवाला तुम्हारा यश चारो ओर तीनो लोकोंमें फैल जायगा। स्वाध्यायपाठ न करने पर भी कभी तुमको तुम्हारा पढ़ा हुआ न भूलेगा" ॥ ४८ ॥ राजन् ! इस प्रकार गुरुकी आज्ञा पाकर दोनो भाई वायुवेगशाली एवं मेघतुल्य शब्दवाले रथ पर चढ़ कर अपने पुरमें आये ॥ ४९ ॥

समनन्दन्प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ॥
अपश्यन्त्यो बह्वहानि नष्टलब्धधना इव ॥ ५० ॥

बहुत दिनों पर कृष्ण–बलदेवके दर्शन पाकर सब प्रजागण इस प्रकार आनंदित हुए जैसे किसीको खोया हुआ धन मिल जाय ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंश अध्याय ।

उद्धवकी व्रजयात्रा ।

श्रीशुक उवाच–वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा ॥
शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। महराज श्रीकृष्णके प्रियसखा, और साक्षात् बृहस्पतिजीके शिष्य महामतिमान् उद्धवजी वृष्णिवंशीय यादवोंके माननी मंत्री थे ॥ १ ॥ शरणागतदुःखहारी हरिने एक समय एकान्तमें उन्ही एकान्त अनुरक्त भक्त प्रियतम उद्धवका हाथ आदरपूर्वक अपने हाथमें लेकर उनसे कहा ॥ २ ॥ "हे सौम्य उद्धव! तुम शीघ्र व्रज जाकर हमारे माता पिताको प्रसन्न करो और मेरा संदेश सुना कर मेरे वियोगका रोग (मानसिक ताप) जो गोपियोंको सता रहा है उसे शान्त करो ॥ ३ ॥ उनका मन मुझमें ही रहता है, मैं उनका जीवन प्राण हूँ, उन्होने मेरे लिये पति पुत्र और परिवारको तज दिया है एवं प्रिय–प्रियतम आत्मा जो मैं हूँ उसे मनके द्वारा पाचुकी हैं। जो लोग मेरी चाहमें ऐहिक और पारलौकिक सुख और उनके मिलनेकी इच्छा छोड़ देते हैं उन अनन्य भक्तोंको मैं भी भजता हूँ, अर्थात् सदा सुखी बनाता हूँ ॥४॥ हे उद्धव! मैं गोपियोंको सबसे अधिक प्रिय हूँ। मैं इतनी दूर चला आया हूँ। अतएव सब समय मेराही स्मरण करनेके कारण विरहजनित उत्कण्ठासे विह्वल होकर गोकुलकी स्त्रियाँ मोहित हो जाती हैं ॥ ५ ॥ गोकुलसे मथुरा आते समय मैं "शीघ्रही आऊँगा" कहकर आश्वास दे आया था, उसी आशासे किसी प्रकार बड़े कष्टसे वे प्राण धारण किये हुए हैं। इसका कारण यही है कि उनका आत्मा मुझमें रहता है। यदि ऐसा न होता, उनका आत्मा उनके शरीरमें होता तो अवश्य ही अब तक विरहकी आगमें भस्म हो जाता" ॥ ६ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! यह सुन कर उद्धवजी बहुत प्रसन्न हुए और आदरसहित स्वामीका सन्देश लेकर रथ पर चढ़ कर नन्दके गोकुलको चले ॥ ७ ॥ सूर्य्य अस्त होनेके समय उद्धवजी नंदके व्रज पहुँच गये।

उस समय गौवें वनसे व्रजको आरही थीं, उनके खुरोंसे उड़ी हुई धूलमें उद्धवका रथ छिप सा गया॥८॥ उद्धवने देखा कि ऋतुमती गौवोंके लिये लड़ रहे मत्त साँड़ शब्द कर रहे हैं। दुग्धभारसे दबी हुई गौवें अपने बछड़ोंके निकट वेगसे दौड़ी जा रही हैं एवं स्वच्छस्वरूप श्वेतवर्ण बछड़े इधर उधर कूद फाँद कर व्रजकी शोभा बढ़ा रहे हैं। गोदोहन और बाँसुरीका मिला हुआ मधुर शब्द बहुत ही सोहावना जान पड़ता है ॥ ९ ॥ १० ॥ अलंकार पहने हुए सुन्दर गोपियाँ इधर उधर कृष्ण–बलदेवकी लीलाएँ गारही हैं। जहाँ तहाँ गोपगण कृष्ण–बलदेवकी चर्चा करते देख पड़ते हैं ॥११॥ गोपोंके घरोंमें अग्नि, सूर्य्य, अतिथि, गऊ, ब्राह्मण, पितर और देवतोंका पूजन हो रहा है। उन घरोंके द्वारों पर शोभित धूप, दीप, माला, इत्यादिसे व्रज बहुतही रमणीय जान पड़ता है ॥ १२ ॥ व्रजके चारो ओर मनको मोहित करनेवाला कुसुमित कानन है। उसमें भाँति २ के पक्षी और भौंरे अपनी विचित्र बोलियोंसे लोगोंको वहाँ बुला रहे हैं, चारो ओर हंस कारण्डव आदि पक्षी सुखसे विचर रहे हैं और खिले हुए कमलपुष्प उसकी शोभाको बढ़ाते हुए सुवर्णमें सुगंधके समान जान पड़ते हैं ॥ १३ ॥ राजन्! श्रीकृष्णके प्रिय सेवक उद्धवको देख कर नन्दजीके आनन्दकी सीमा नहीं रही; उन्होने जल्दीसे उठ कर उद्धवको गलेसे लगालिया और साक्षात् कृष्ण समझ कर उनका पूजन किया ॥ १४ ॥ जब उद्धवजी श्रेष्ठ अन्न भोजन कर सुखपूर्वक बिछौने पर बैठे और पैर दबा कर उनकी थकन मिटाई गई तब नंदजीने पास आकर उनसे पूछा कि–"हे महाभाग! हमारे परम मित्र वसुदेवजी बंधनसे मुक्त होकर सुहृद्गण और पुत्रोंसहित कुशलसे हैं? ॥ १५ ॥ १६ ॥ बड़ी बात, जो पापी कंस अपने भाइयों और भृत्योंसहित अपने ही पापोंसे आप मारा गया। वह बड़ा ही दुष्ट था क्योंकि धर्मात्मा और साधुस्वभाव यादवोंसे सदा शत्रुता रखता था ॥ १७ ॥ भला, कृष्णचन्द्र, हमारी, सुहृद्गणकी, सखाजनोंकी, गोपोंकी, स्वयं जिसके स्वामी हैं उन गौवोंकी, वृन्दावन या गोवर्द्धन पर्वतकी कभी याद करते हैं? ॥ १८ ॥ क्या स्वजनोंको देखनेके लिये एक बार गोविन्द यहाँ आवेंगे? सुन्दर नासिका और कृपापूर्ण कटाक्षोंसे सुशोभित उनका उनका मनोहर हास्यमण्डित मुख हम लोग कभी देखेंगे? ॥ १९ ॥ महात्मा श्रीकृष्णने दावानलसे, प्रचण्ड वायु और वर्षासे, वृषासुरसे, सर्पसे एवं अन्यान्य अनिवार्य मौतोंसे समय २ पर हमारी रक्षा की है ॥ २० ॥ उद्धव! कृष्णकी विविध लीलाओंकी, तिर्छी चितवन और हास विलास तथा बातचीतकी याद आजाने पर हम कोई कार्य्य नहीं करसक्ते—हमारे सब अंग शिथिल होजाते हैं ॥ २१ ॥ केवल अंग ही नहीं शिथिल होजाते वरन् उनके चरणचिन्होंसे अलंकृत नदी, पर्वत, वनप्रदेश और केलिकुज देखनेसे हमारा मन तन्मय हो जाता है ॥ २२ ॥ महा-

मुनि गर्गके गूढ़ वाक्योंके अनुसार मैं कृष्ण-बलदेव दोनोको श्रेष्ठ देवता समझता हूँ—अवश्यही देवतोंका कोई महाकार्य्य सिद्ध करनेके लिये पृथ्वी पर उनका अवतार हुआ है ॥ २३ ॥ क्योंकि दस हजार हाथियोंका बल धारण करनेवाले कंसको, महाबली मल्लोंको, भयानक गजराजको इस प्रकार लीलापूर्वक उन्होने मार डाला जैसे सिंह पशुओंको ॥ २४ ॥ जैसे मदमत्त गजराज किसी छोटी सी छड़ीको तोड़ डाले वैसे ही कृष्णने तीन ताल ऊँचा महाकठिन धनुप तोड़ डाला और एक हाथसे सात दिनों तक गोवर्द्धन पर्वतको उठाये रहे ॥ २५ ॥ प्रलंबासुर, धेनुकासुर, अरिष्टासुर, तृणावर्त्त, वकासुर आदि दैत्य, जिन्होने सब देवता और दैत्योंको परास्त कर दिया था, उनको कृष्णने लीलापूर्वक मार डाला" ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! कृष्णके अनुरागका रंग जिनके चित्त पर चढ़ा हुआ है वह नंदजी, इस प्रकार वारम्वार कृष्णका स्मरण करनेके कारण होनेवाले प्रेमके पसारसे विह्वल होकर उत्कंठाकी अधिकतासे चुप होगये ॥ २७ ॥ पुत्रके कहे जा रहे चरित्र सुनकर यशोदाके नेत्रोंमें आँसू भर आये और स्नेहके वेगमें उनके स्तनोंसे आपही आप दुग्ध निकलने लगा। नन्द-यशोदाका भगवान् कृष्णमें ऐसा अनुराग देखकर उद्धवजी परम प्रसन्न हुए और नन्दजीसे यों कहने लगे ॥ २८ ॥ २९ ॥ "हे व्रजराज! तुम दोनो स्त्री-पुरुष, सब देहधारियोंमें श्रेष्ठ और परमप्रशंसनीय हो, क्योंकि जगद्गुरु नारायणमें तुम्हारी ऐसी इष्टबुद्धि है ॥ ३० ॥ कृष्ण और बलभद्र दोनो, इस विश्वके निमित्त कारण और उपादान कारण हैं। ये सब तत्त्वोंमें अनुप्रविष्ट रह कर उन तत्त्वोंसे विरचित विभेदभावके और जीवके नियन्ता ईश्वर हैं। ये पुराणपुरुष अर्थात् अनादि हैं ॥३१॥ महात्मा नंदजी! अन्त समय क्षणभर भी जिनमें विशुद्ध मन लगानेसे सब कर्म्मवासनाएँ भस्म हो जाती हैं, स्वरूप-साक्षात्कार होता है और शुद्धसत्त्व-मूर्ति हो जानेसे परम गति प्राप्त होती है ॥ ३२ ॥ वही विश्वहेतु, विश्वात्मा होने पर भी प्रयोजनवश मायामय मनुष्यरूपसे अवतीर्ण नारायण जो महात्मा कृष्ण हैं उनमें तुम्हारी ऐसी अनन्य भक्ति है, अतएव तुम धन्य हो! तुम कृतकृत्य हो गये ॥ ३३ ॥ कृष्णचन्द्रने कहा है कि 'हम शीघ्र ही व्रजमें आवेंगे और माता पिताको उनकी इच्छा पूर्ण करके प्रसन्न करेंगे' ॥ ३४ ॥ यादवोंके शत्रु कंसको रंगभूमिमें मारनेके उपरान्त सबके आगे आपके निकट आकर जो उन्होने कहा था उसे वे अवश्य पूरा करेंगे ॥३५॥ हे महाभाग नन्दजी! और महाभागा यशोदाजी! तुम खेद न करो, शीघ्र ही अपने निकट कृष्णचन्द्रको देखोगे; क्योंकि वह लकड़ियोंमें अग्निके समान सब प्राणियोंके हृदयाभ्यन्तरमें विराजमान हैं ॥ ३६ ॥ उनको अभिमान नहीं है, अतएव उनको कोई अत्यन्त प्रिय या अप्रिय नहीं है। वह समदर्शी हैं, इस कारण उनकी दृष्टिमें उत्तम, अधम या असम कोई नहीं है ॥ ३७ ॥ उनके माता, पिता, स्त्री पुत्र आदि नहीं हैं, और न कोई

अपना है, न पराया है। वह शरीररहित अजन्मा हैं। वह अकर्म्मा हैं। किन्तु जन्म-कर्म्महीन होकर भी वह अपनी क्रीड़ाओंसे साधुजनोंके कष्ट मिटानेके लिये सत्, असत् और मिश्र अर्थात् सात्त्विक, राजस, तामस अथवा देव, मत्स्य, नृसिंह आदि योनियोंमें प्रकट होते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ उनको क्रीड़ा करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह निर्गुण हैं। तथापि क्रीड़ा करनेके लिये मायाके सत्व, रज, तम, इन तीनो गुणोंको भजते हैं और उन्ही गुणोंसे इस विश्वकी उत्पत्ति पालन और संहार करते हैं ॥ ४० ॥ जैसे वेगसे चक्कर लगानेमें (अथवा रेलपर चलते समय) दृष्टिदोषसे पृथ्वी भी घूमती हुई (अथवा चलती हुई) जान पड़ती है, परन्तु वास्तवमें वह नहीं घूमती, वैसे वास्तवमें चित्त ही कर्त्ता होने पर भी, उस चित्तमें आत्माका अध्यास अर्थात् अहंबुद्धि होनेके कारण अज्ञानवश आत्मा ही कर्त्ता जान पड़ता है ॥ ४१ ॥ भगवान् हरि केवल तुम्हारे ही पुत्र नहीं हैं, बरन् सबके पुत्र, आत्मा, पिता, माता, स्वामी आदि सब कुछ हैं ॥ ४२ ॥ ऐसी कोई देखी, सुनी, वर्त्तमान, भविष्य, स्थावर, जंगम बड़ी या छोटी वस्तु नहीं है, जो अच्युतसे भिन्न हो। वास्तवमें अच्युतके सिवा "वस्तु" कहने योग्य कुछ भी नहीं है; वही परमार्थस्वरूप परमात्मा हैं" ॥ ४३ ॥ राजन्! इस प्रकार कृष्णके प्रिय अनुचर उद्धव और नंदमें बातचीत होते २ रात बीत गई। दो घड़ी रात रहे सब गोपियाँ उठीं और अपने २ घरोंमें दीपक जलाकर झाड़ू चौका आदि घरके काम करने लगीं। भवनकी सफाई करनेके उपरान्त सबने दही मथना आरंभ किया ॥ ४४ ॥ दही मथते समय उनके अरुणवर्ण कुंकुममंडित कपोलों पर हिल रहे कनककृत कुंडलोंकी झलक बहुत ही मनोहर जान पड़ती थी, उनके काञ्ची आदि आभूषणोंमें जड़ी हुई मणियोंकी कान्ति दीपकोंकी आभा पड़नेसे दूनी होगई। कंकण-मालाओंसे अलंकृत भुजाओंसे मथानी सहित रस्सी पकड़कर दही मथते समय उनके हिलते हुए नितम्ब, स्तन, हार और कुंडल, शोभाका एक विचित्र दृश्य हो रहे थे ॥ ४५ ॥ दही मथतेमें व्रजबालाएँ ऊँचे स्वरसे कमलनयन कृष्णकी कथाएँ गाने लगीं। दही मथनेके शब्दसे मिला हुआ वह महाशब्द आकाश तक पहुँचकर सुननेवालोंके अमंगलको मिटाता हुआ दिशाओंमें चारो ओर फैल गया ॥ ४६ ॥ कुछ देर बाद भगवान् सूर्य्यका उदय होनेपर व्रजवासी लोग नंदके द्वार पर सुवर्णमय रथ खड़ा हुआ देखकर परस्पर कहने लगे कि—"यह रथ किसका है?" ॥ ४७ ॥ गोपियाँ उस रथको देखकर कहने लगीं कि "कंसका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये जो आकर कमललोचन कृष्णको मथुरा लेगया वही क्रूर अक्रूर क्या फिर आया है? ॥ ४८ ॥

किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रीतस्य निष्कृतिम् ॥
इति स्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात्कृताह्निकः ॥ ४९ ॥

"अब क्यों आया है? क्या अब हमारे कृष्णरूप प्राणसे रहित शरीरोंके मांससे अपने मरे हुए स्वामी(कंस)को पिंडदानकर प्रसन्न करेगा?" । इस प्रकार स्त्रियाँ कह रहीथीं, इतनेमें उद्धवजी यमुनातटसे स्नान-संध्या आदि आन्हिक कर्म्म करके नंदके घर आते देख पड़े ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कंधे पूर्वार्धे षट्चत्त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्त्वारिंश अध्याय ।

भ्रमरगीत और उद्धवका मथुरागमन ।

श्रीशुक उवाच—तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः
प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम् ॥
पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसन्-
मुखारविन्दं मणिमृष्टकुण्डलम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन्! नवीन कमलदलके समान विशाल नेत्र-वाले, पीताम्बरधारी, गलेमें कमलकी माला और वनमाला धारण किये, मणिजटित कुंडलोंसे मण्डित मुखारविंदसे सुशोभित, कृष्णके अनुचर आजानुबाहु उद्धवको देख कर सब गोपियाँ बहुत ही विस्मित हुईं और कहने लगीं कि "यह परम सुंदर स्वरूपवाला पुरुष कौन है? कहाँसे आया है? किसका दूत है? इसकी वेषभूषा तो कृष्णके सदृश है!" जिनके चित्त जाननेके लिये उत्सुक हो रहे हैं उन गोपियोंने यों कह कर उत्तमश्लोक कृष्णके चरणसेवक उद्धवको चारो ओरसे घेर लिया ॥ १ ॥ २ ॥ जब गोपियोंने जाना कि उद्धवजी प्यारे कृष्णका संदेश लेकर आये हैं तब विनयावनत होकर लज्जापूर्ण हास्य, कटाक्ष और मधुर वचनोंसे उन्होने उनका सत्कार किया। फिर एकान्तमें उद्धवजीको सुन्दर आसन पर बैठा कर गोपियोंने स्वागत और कुशलप्रश्नके उपरान्त कहा—"हम जानती हैं कि तुम यदुपतिके सेवक हो। पिता माताको प्रसन्न करनेके लिये ही तुम्हारे स्वामीने तुमको भेजा है; इसीसे तुम यहाँ आये हो ॥ ३ ॥ ४ ॥ नहीं तो इस व्रजमें कोई भी वस्तु हमको ऐसी नहीं देख पड़ती, जिसकी कभी उन महापुरुषको याद आती हो। उन्होने माता-पिताका स्मरण किया हो तो ठीक ही है, क्योंकि मुनिलोग भी बंधु-ओंके स्नेहानुबन्धको सहजमें नहीं छोड़ सक्ते ॥ ५ ॥ बंधुओंके सिवा अन्य लोगोंसे जो मित्रता की जाती है सो किसी न किसी प्रयोजनसे की जाती है। जब तक कार्य्य नहीं सिद्ध होता तभी तक मित्रताका अनुकरणमात्र किया जाता है, कार्य्य निकल जाने पर इस मैत्रीका अन्त हो जाता है। स्त्रियोंसे पुरुषोंकी मित्रता और

भ्रमरोंका फूलों पर अनुराग, ऐसी ही स्वार्थमैत्रीका उदाहरण है ॥ ६ ॥ संसारमें प्रायः ऐसी ही स्वार्थमैत्री देखी जाती है। देखो, जब मनुष्य निर्धन हो जाता है तब वेश्या उसको छोड़ देती है– बात भी नहीं करती; रक्षा करनेमें असमर्थ राजाको प्रजागण छोड़ देते हैं; विद्या पढ़ लेने पर शिष्यलोग अपने आचार्य्य (गुरु) को छोड़ देते हैं; दक्षिणा पा जाने पर ऋत्विक् लोग यजमानको छोड़ जाते हैं; फल चुक जाने पर पक्षीलोग वृक्षको छोड़ देते हैं; अतिथि लोग भोजन करनेके उपरान्त उस घरको छोड़ कर अपनी राह लेते हैं; जब वन जलने लगता है तब मृगगण उसे छोड़ कर भाग जाते हैं; ऐसेही जारलोग भोग करके अतृप्त एवं अनुरक्त स्त्रियोंको छोड़ देते हैं" ॥७॥८॥ जिनके मन, वाणी और काया कृष्णमय हो रहे हैं वे गोपियाँ, कृष्णके दूत उद्धवके मिलने पर सम्पूर्ण लौकिक व्यवहारोंको छोड़ कर कृष्णके ध्यानमें मग्न होगईं। प्यारे कृष्णने लड़कपनमें और किशोर अवस्थामें जो २ कर्म्म किये थे उनको याद कर २ के गोपियाँ गाने लगीं। कुछ गोपियाँ लोकलाजको छोड़ रोती हुई उद्धवसे कृष्णकी चर्चा करने लगीं। प्रियके समागमकी चिन्ता कर रही एक गोपी किसी भौंरेको अपने निकट "गुन २" करते देख कर उसे कृष्णका भेजा हुआ दूत मान कर उससे यों कहने लगी ॥९॥१०॥११॥ गोपीने कहा। "हे धूर्त्तके बन्धु मधुकर! तुम हमारे चरणोंको न छुओ; तुम्हारे श्मश्रुओंमें, सौतके कुचमण्डलमें विहार करनेवाली मालामें लिप्त कुंकुम लगा हुआ है। मधुपति कृष्णही, यादवोंकी सभामें उपहास करानेवाले इस प्रसादको धारण करें, हम इस प्रसादको नहीं चाहतीं। तुम्हारी और कृष्णकी बंधुता ठीक ही है। क्योंकि जैसे तुम सुमनों (फूलों)को रस लेकर छोड़ जाते हो वैसे ही एक बार मोहिनीमय अधरसुधा पिला कर वह भी चटपट हमको छोड़ चले गये। हमको आश्चर्य्य है कि इतनी चंचल लक्ष्मी कैसे उनके चरणकमलोंका सेवन करती है? कदाचित् कृष्णके 'उत्तमश्लोक' (महायशस्वी) इस नामने उसके हृदयको हर लिया है। किन्तु हम लक्ष्मीके समान अविवेकिनी नहीं हैं" ॥१२॥१३॥ भ्रमरको बार २ निकट आकर गुंजन करते देख 'हमारा प्रसाद पानेकी आशासे यह बार २ कृष्णका यश गाता है'–ऐसा मानकर गोपियोंने कहा किः—"हे मधुकर! तुम क्यों हमारे निकट बार २ आकर कृष्णकी कीर्त्ति गाते हो? हम अनेक बार उनके शील स्वभावका अनुभव प्राप्त कर चुकी हैं, वह हमारे लिये नवीन नहीं हैं, पूर्वपरिचित पुराने हैं। तुमको यदि कृष्णकी कीर्त्ति गाकर कुछ लाभ उठाना है तो अर्जुनके मित्र कृष्णकी वर्त्तमान सखी जो मथुरापुरीकी स्त्रियाँ हैं उनके आगे जाकर गाओ। वे कृष्णकी प्यारी हैं, कृष्णने हृदयसे लगकर उनके मानसिक तापको शान्त किया है, अतएव वेही प्रसन्न हो कर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगी ॥ १४ ॥ यदि कहो कि 'ऐसा न कहो, तुम्हारी यादमें मदनविह्वल होकर तुमको प्रसन्न करनेके

लिये उन्होने मुझको भेजा है,' तो हमको इस पर विश्वास नहीं हो सक्ता। क्योंकि स्वर्गमें, पृथ्वीमें या पातालमें कौन ऐसी स्त्री है जो उनको दुर्लभ हो? वह अत्यन्त धूर्त्त हैं, उनकी कपटपूर्ण मनोहर मंद मुसकान और भौंह के विचित्र विलासमें कौन स्त्री न मोहित हो जायगी? साक्षात् लक्ष्मी उनके चरणरजकी उपासना करती हैं, तब हम क्या हैं? किन्तु जो कोई दुःखी जनों पर दया करते हैं उन्हीके लिये 'उत्तमश्लोक' शब्दका व्यवहार किया जा सक्ता है" ॥ १५ ॥ चरणोंके निकट आकर उसको गुन २ करते देख कर 'यह क्षमा चाहता है'-ऐसा मान कर गोपियोंने कहा—"हे मधुकर! हमारे पैरों पर धरे हुए अपने शिरको हटाओ। तुम दूतपनेमें और मनानेमें बहुत ही चतुर देख पड़ते हो; जान पड़ता है तुमने मुकुंदसे यह शिक्षा पाई हैं, किन्तु हम तुमको भलीभाँति जानती हैं, हमसे तुम्हारी चतुराई नहीं चलेगी। ऐसा न कहना कि 'कृष्णका अपराधही क्या है?'। देखो, उनके लिये हमने अपने पुत्र, पति एवं इस लोक और परलोकको तज दिया, किन्तु वह ऐसे अकृतज्ञ और अव्यवस्थित चित्त हैं कि हमको छोड़ कर चले गये। तब उन पर क्या फिर विश्वास किया जा सक्ता है? ॥ १६ ॥ वह बड़ेही क्रूर हैं; उन्होने रामावतारमें व्याधकी भाँति वानरराज बालीको एक बाणसे मारडाला। वास्तवमें वह व्याधसे भी बढ़ कर क्रूर हैं। क्योंकि व्याध तो मांसके लिये जीवोंको मारता है, परंतु उन्होने वृथाही बालीको मारा। इसके सिवा स्त्रीके वशवर्त्ती होकर उन्होने रावणकी भगिनी स्त्रीजाति शूर्पणखाके नाक कान काट कर उसको विरूप बनादिया। ऐसेही वामनअवतारमें राजा बलिकी दी हुई बलि (भेंट पूजा) लेकर फिर उसको बँधवाकर स्वर्गसे निकाल रसातलको भेजदिया। अतएव बस, हमें उन काले कृष्णकी मित्रताकी चाह नहीं हैं। यदि कहो कि 'फिर तुम क्यों उनकी कथा कहा करती हो?' तो हे मधुकर! उनकी चर्चा छोड़ना महा कठिन है—सहज नहीं है ॥ १७ ॥ देखो, कण भर भी, सुननेमें अमृतसमान मधुर उनका चरित्र कानमें पड़तेही धीर व्यक्तियोंके अन्तःकरणमें राग आदि द्वन्द्वधर्म्म नहीं रहते और वे विनष्ट हो अपने दुःखित कुटुंबको छोड़ कर विरक्त (भोगवासनाविहीन) बन जाते हैं एवं भिक्षावृत्ति ग्रहण करके पक्षियोंकी भाँति बिना घरद्वारके हो कर केवल अपनेही पेटको पालते इधर उधर मारे २ फिरते हैं। उन हरिकी कथाको ऐसी सर्वनाशिनी जानकर भी किसी प्रकार हम नहीं छोड़ सक्तीं; इसीसे कहती हैं उनकी कथा दुस्त्यज है ॥ १८ ॥ जैसे अबोध मृगी, व्याधके कपटपूर्ण मधुर गान पर विश्वास कर व्यथाको प्राप्त होती है वैसे ही हम भी कुटिल कृष्णकी बातों पर विश्वास कर वारम्वार उनके नखस्पर्शसे उत्पन्न तीक्ष्ण मदनव्यथाको सहरही हैं। अतएव हे दूत! उनकी बातें छोड़कर और बातें करो" ॥ १९ ॥ भौंरेको थोड़ी दूर जाकर फिर आते हुए देख गोपियाँ कहने लगीं कि—"हे प्रियके सखा! प्यारे कृष्णने

क्या तुमको फिर भेजा है? अहो! प्रियके दूत होनेसे तुम भी हमारे माननीय हो, तुम्हारी क्या इच्छा है? हमसे माँगो। जिनका संग दुस्त्यज है उन कृष्णके पास क्या तुम हमको ले चलना चाहते हो? किन्तु लक्ष्मीनाम नववधू सदा उनके निकट उनके हृदयमें वास करती है, अतएव हम वहाँ कहाँ रह सक्ती हैं? ॥ २० ॥ हे सौम्य! आर्य्यपुत्र कृष्ण महाराज क्या गुरुकुलसे लौटकर मथुरापुरीमें विराजमान हैं? अवश्य ही वह कभी २ अपने पिता, घर, बन्धु और गोपोंका स्मरण करते होंगे; किन्तु क्या कभी हम दासियोंका भी नाम लेते हैं? अहो! अगरु और चंदनसे अनुलिप्त सुगंधित अपनी भुजाको वह कब हमारे शिरपर धरेंगे?" ॥ २१ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! श्रीकृष्णके दर्शनकी जिनको बड़ी लालसा है उन गोपियोंके वचन सुनकर प्रिय कृष्णके संदेशसे आश्वास देते हुए उद्धवजी उनसे यों बोले ॥ २२ ॥ **उद्धवने कहा।** "अहो, गोपियो! तुम कृतार्थ होगई हो, तुम संसारमें परम पूजनीया हो; क्योंकि तुम्हारा मन भगवान् वासुदेवमें यों दृढ़-रूपसे लगा हुआ है ॥ २३ ॥ दान, व्रत, तप, होम, जप, वेदाध्ययन, इन्द्रिय-दमन एवं अन्यान्य अनेक माङ्गलिक अनुष्ठानोंसे कृष्णकी भक्ति सिद्ध होती है। किन्तु तुमने अपने सौभाग्यसे सहजमें वही मुनियोंको भी दुर्लभ अत्यन्त श्रेष्ठ हरिभक्ति पाई है ॥ २४ ॥ तुम परम भाग्यशालिनी हो। तुमने पुत्र, पति, देह, स्वजन और गृहआदि सब छोड़कर परमपुरुष कृष्णमें मन लगाया है ॥ २५ ॥ तुमको कृष्ण भगवान्की परम भक्ति प्राप्त हुई है। हे महाभागाओ! तुमने तन्मय-भाव पर अधिकार कर लिया है। मैंने व्रजमें आकर तुम्हारे इस अपूर्व भगवत्प्रेमका सुख पाया। तुम्हारे प्रियके विरहने यह अपूर्व प्रेम दिखा कर मुझ पर बड़ा ही अनुग्रह किया ॥ २६ ॥ २७ ॥ देखो, मैं स्वामीका गुप्त कार्य्य सिद्ध करनेके लिये उन्हीं तुम्हारे प्रियका दिया हुआ संदेश लेकर आया हूँ—तुम सब एकाग्र होकर सुनो ॥ २८ ॥ **श्रीभगवान्ने** कहा है कि—प्रियागण! मेरा वियोग तुमको कभी नहीं होसक्ता—मैं देहधारियोंका आत्मा होनेके कारण सदा तुम्हारे पास हूँ। जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, ये पाँचो महातत्त्व सब तत्त्वोंमें अवस्थित हैं वैसे ही मैं मन, प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय और गुणोंका आश्रयस्वरूप हूँ। मैं पंचतत्त्व, इन्द्रिय और त्रिगुण-स्वरूपिणी अपनी मायाके प्रभावसे अपनेही द्वारा अपनेको अपनेमें उत्पन्न करता, पालता और लीन करता हूँ ॥ २९ ॥ ३० ॥ आत्मा, ज्ञानमय होनेके कारण अज्ञानमयी मायासे भिन्न है, अतएव मायाके गुणोंसे उसका संबंध नहीं है। आत्मा शुद्ध है। वह आत्मा सुषुप्ति, स्वप्न, जागृति नामक मानसिक वृत्तियोंके द्वारा ही, विश्वरूप हो, तैजस रूपसे और प्राज्ञ रूपसे प्रतीत होता है—स्वयं नहीं ॥ ३१ ॥ जैसे सोकर उठा हुआ व्यक्ति—देखे हुए मिथ्या स्वप्नका ही चिन्तन करता है वैसे ही जिसके द्वारा इन्द्रियोंके विषयोंका

चिन्तवन किया जाता है एवं जिसके द्वारा इन्द्रियोंकी उपलब्धि होती है, आलस्य छोड़ कर, उस मनका दमन करना ही कर्त्तव्य है ॥३२॥ जैसे नदियाँ सागरमें ही चारो ओरसे आकर मिलती हैं वैसे ही वेद, मनीषी व्यक्तियोंके अष्टांगयोग, आत्मानात्मविवेक, संन्यास, स्वधर्म्म, इन्द्रियदमन और सत्य आदिका, मार्गविभेद होने पर भी, यही एक तात्पर्य्य है जो ऊपर कहा गया है—इस सिद्धान्तमें सब आकर मिल जाते हैं ॥ ३३ ॥ तुम्हारे नयनोंका तारा मैं तुमसे इतनी दूर इस लिये हूँ कि तुम सदैव मेरे ही ध्यानमें लवलीन रहो—तुम्हारा मन सब समय मेरेही निकट रहे ॥ ३४ ॥ प्रियतमके दूर रहने पर स्त्रियोंका चित्त हर घड़ी उसीमें लगा रहता है, किन्तु प्रियतम यदि आँखोंके आगे पास रहता है तो वह बात नहीं होती ॥ ३५ ॥ इस प्रकार तुम सब वासनाओंसे शून्य शुद्ध मनको मुझमें लगा कर नित्य मेरा ध्यान करनेसे शीघ्रही मुझे पाओगी ॥ ३६ ॥ गोपिकागण! मैंने जब रात्रिके समय रासक्रीड़ा की थी तब गुरुजनोंके रोकनेसे जो गोपियाँ नहीं आसकीं वे इसी प्रकार मेरे चरित्रोंका स्मरण कर विशुद्धरूप हो मुझको प्राप्त हुई हैं ॥ ३७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! व्रजबालाएँ इस प्रकार उद्धवके मुखसे प्रियतमकी आज्ञा सुन कर परम प्रसन्न हुईं और उनको भगवान्का संदेश सुननेसे शुद्ध ज्ञान प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ गोपियाँ उद्धवजीसे कहने लगीं। "हे सौम्य! बड़ी बात, यादवोंको दुःख देनेवाला शत्रु कंस अनुचरगणसहित कृष्णके हाथों मारा गया। और आनन्दकी बात है कि सब कामनाएँ जिनकी पूर्ण होचुकी हैं उन अनुरक्त भक्त यादवोंके साथ इस समय यदुपति कृष्णचन्द्र कुशलसे हैं ॥३९॥ श्रीकृष्णचन्द्र हमसे जैसी प्रीति करते थे वैसी ही प्रीति, पुरनारियोंके स्नेहपूर्ण लज्जायुक्त हास्य और उदारता व श्रद्धासे मनोहर कटाक्षों द्वारा पूजित होकर, उनसे भी करते हैं?—या नहीं? ॥ ४० ॥ कृष्णचन्द्र स्वयं रतिचतुर हैं और पुरनारियोंके प्रिय भी हैं, तब वह उनके वचन और विभ्रमोंसे पूजित होकर कैसे न उन पर अनुरक्त होंगे? ॥ ४१ ॥ अस्तु, हमको इस चिन्तासे क्या प्रयोजन है? भला वह प्यारे कृष्णचन्द्र उन पुरनारियोंकी सभामें बातचीत करते समय प्रसंग आपड़ने पर हम गँवारियोंका भी कभी स्मरण करते हैं? ॥ ४२ ॥ जब वृन्दावनमें कुमुद, कुंद आदिके फूल फूले हुए थे, चंद्रमाकी चाँदनी चाँदनी सी बिछी हुई थी, तब जिन रात्रियोंमें रासमण्डल बना कर हम प्रियाओंके साथ उन्होने विहार कियाथा,-विहारके समय उनके और हमारे चरणोंके नूपर बजते थे और हम सब उन्हीकी मनोहर कथाएँ गाती थीं, भला कृष्णचन्द्र क्या कभी उन रात्रियोंका भी स्मरण करते हैं? ॥ ४३ ॥ हम सब सदैव उनके शोकसे आकुल रहती हैं। इन्द्रदेव जैसे अमृतरूप जलकी वर्षासे घाममें मुरझाये हुए वनको हराभरा बनाते हैं वैसेही कृष्णचन्द्र कभी यहाँ आकर अपना हाथ

हमारे शरीर पर फेर कर हमारे सन्तापको दूर करेंगे?" ॥ ४४ ॥ यह सुनकर एक और सखी कहने लगी,। "नहीं सखी! श्रीकृष्णने शत्रुको मार कर राज्य पाया है एवं राजकुमारियोंसे ब्याह करके अब सब बंधुओंके साथ सुखपूर्वक मथुरामें निवास करते हैं, वह भला यहाँ क्यों आवेंगे?" ॥ ४५ ॥ यह सुन एक और सखीने कहा— "सखी! तुम समझती नहीं हो, श्रीकृष्णचन्द्र परम धीर और लक्ष्मीके पति हैं, स्वयमेव पूर्णमनोरथ एवं परिपूर्ण हैं। उनका कौन मनोरथ है जिसको वनमें रहने वाली हम गँवारी नारी पूरा कर सकेंगी? एवं राजकुमारी अथवा और स्त्रियाँही उनकी कौन कामना पूर्ण कर सक्ती हैं? ॥४६॥ कामचारिणी (वेश्या) पिंगला भी कह गई है कि 'निराशा (किसी की आशा न करना) ही परम सुख है'। हम यह जान कर भी कृष्णकी दुरत्यय आशाको नहीं छोड़ सक्तीं ॥ ४७ ॥ जिन उत्तम श्लोककी इच्छा न होने पर भी लक्ष्मी एक घड़ी भी अंगसंग नहीं छोड़ती उन कृष्णचन्द्रकी एकान्तवार्त्ताको कौन छोड़ सक्ता है? ॥ ४८ ॥ इन नदी, पर्वत और वनप्रदेशोंमें बलभद्रके साथ गौवें चराते हुए कृष्णचन्द्रने क्रीड़ाएँ की हैं और वंशी बजाई है। अहो! श्रीनन्दनन्दन श्रीकृष्णके श्रीनिकेतन चरणोंके चिन्होंसे सुशोभित ये पर्वत, नदी, वन और वंशीरव व गौवें आँखोंके आगे आकर वारम्वार उन्हीं कृष्णचन्द्रका स्मरण करा देते हैं, इसी कारण वह कृष्ण प्यारे हमको नहीं भूलते ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हे उद्धव! श्रीकृष्णकी ललितगति, उदार हास्य, लीलाएँ, चितवन एवं मधुर वचन आदिने हमारे चित्तको हरलिया है, अतएव हम उनको कैसे भूल सक्ती हैं? ॥ ५१ ॥ हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे आर्त्तिनाशन! हे गोविन्द! यह आपका गोकुल दुःखके सागरमें मग्न होरहा है, शीघ्र इसको उबारो" ॥५२॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। राजन्! श्रीकृष्णका संदेश सुननेसे गोपियोंका विरहताप शान्त हो गया। उन्होने श्रीकृष्ण भगवान्को इन्द्रियोंका साक्षी परमात्मा जान कर उद्धवका भली भाँति पूजन और सादर सत्कार किया ॥ ५३ ॥ उद्धवने कई महीने तक गोपियोंका शोक नाश करते हुए व्रजमें वास किया। उद्धवजी जितने दिन गोकुलमें रहे उतने दिनों तक कृष्णकी लीलाएँ और कथाएँ कह कर व्रजवासियोंको सुखी बनाते रहे ॥ ५४ ॥ जितने दिनोंतक उद्धवजी नन्दके व्रजमें रहे उतने दिन व्रजवासियोंको कृष्णचन्द्रकी चर्चामें एक क्षण के समान जान पड़े ॥ ५५ ॥ हरिके दास उद्धवजीने नद, नदी, पर्वत, वन, कंदरा और फूले हुए वनोंकी शोभा निहारते हुए एवं व्रजवासियोंको, कृष्णकी कथाएँ कह कर, कृष्णका स्मरण कराते हुए कुछ दिनोंतक सुखपूर्वक गोकुलमें निवास किया ॥५६॥ गोपियोंके श्रीकृष्णमें परम आसक्त चित्तोंकी ऐसी विरहजनित विह्वलता देख कर उद्धवजी अत्यन्त आनन्दित हुए और उनको प्रणाम करके कहने लगे कि—"इस पृथ्वीमण्डलमें इन गोपियोंने ही अपने जन्मको सफल किया है, वास्तवमें इन्हीका जन्म सफल

है; क्योंकि इनको सबके आत्मा भगवान् पर परम प्रेम है। इनका यह प्रेम साधारण नहीं है, वरन् वह गूढ़ प्रेम है जिसे पानेके लिये हम चरणसेवक भक्तजन और ज्ञानीजन अनेक प्रयत्न करते रहते हैं। जिनको हरिकी कथाओंमें अनन्य अनुराग है उनको ब्राह्मणोंके तीन प्रकारके (एक जन्म, दूसरा गायत्रीशिक्षा और तीसरा यज्ञ-दीक्षा) जन्मोंकी क्या आवश्यकता है? भगवद्भक्त कोई जाति भी हो वह सर्वोत्तम और पूजनीय है ॥५७॥५८॥ देखो, कहाँ व्यभिचारके दोपसे दूषित वनवासिनी गँवारी नारियाँ! और कहाँ परमात्मा कृष्णमें ऐसा असाधारण प्रेमका होना! किन्तु अहो! अज्ञ व्यक्ति भी यदि ईश्वरका भजन करे तो वह उसका परम कल्याण करते हैं, जैसे बिना जाने भी अमृत पीनेसे मंगल ही होता है ॥ ५९ ॥ रास-उत्सवमें इनके गलेमें बाहें डाल कर कृष्णचन्द्रने इनको सुखी बनाया—अतएव ये धन्य हैं। भगवान्का यह सुखद प्रसाद सिवा इनके, औरोंकी कौन कहे—कमलकी ऐसी कान्ति और गंध जिनके शरीरमें है उन स्वर्गकी स्त्रियोंको और निपट अनुरक्त होकर वक्षःस्थलमें वास करनेवाली लक्ष्मीको भी नहीं प्राप्त हुआ है ॥ ६० ॥ इन गोपियोंने दुस्त्यज स्वजनोंको और आर्य्यधर्मको छोड़ कर वेदोंमें जिसकी खोज होती है उस मुकुन्दपदपदवीको प्राप्त किया है। ये अत्यन्त धन्य हैं। मेरी इच्छा है कि मैं उस जन्ममें—इनके चरणोंकी रज जिन पर पड़ती है उन वृंदावनकी लता औपधि और झाड़ियोंमेंसे कोई न कोई अवश्य होऊँ ॥ ६१ ॥ जिनकी सेवा लक्ष्मीजी करती हैं एवं ब्रह्मादिक और पूर्णमनोरथ मुनिगण अपने हृदयमें स्थापित कर ध्यान व पूजन करते हैं उन्हीं कृष्णके कमनीय चरणकमलोंको रास-नृत्यके समय अपने कुचकलशों पर धर कर इन्होने अपने हृदयकी तपन बुझाई है ॥ ६२ ॥ अतएव मैं इन सब नंदव्रजकी सुंदरियोंके चरणरजकी वारम्वार वंदना करता हूँ। इनके गाए हुए हरिकथामंडित गीत सब त्रिभुवनको पवित्र करने वाले हैं—अत एव ये परम धन्य हैं" ॥ ६३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! इस प्रकार कई महीने रह कर उद्धवजीने मथुरा जानेका विचार किया। एक दिन उद्धवजी यशोदा, नंद, गोपगण और गोपियोंसे विदा होकर मथुरा जानेके लिये रथ पर सवार हुए ॥ ६४ ॥ इसी समय अनेक प्रकारके उपायन (भेंट-नजर) हाथोंमें लिये नंद आदि सब गोप उद्धवजीके निकट उपस्थित हुए। अनुरागके कारण आँखोंमें आँसू भरे हुए गोपगण उद्धवसे कहने लगे कि—"हमारी यही कामना है कि हमारा मन सब प्रकारसे पूर्णतया कृष्णके चरणारविंदोंमें लगा रहे और हमारी वाणी सदा उनके नामोंका कीर्त्तन किया करे एवं हमारी काया उनको प्रणाम आदि करनेमें तथा उनकी सेवा करनेमें लगी रहे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ कर्म्मोंके कारण भ्रमण करते २ ईश्वरकी इच्छासे कोई भी योनि हमको मिले, किन्तु हमारी मति कृष्णमेंही लगी रहे। हमने जो कुछ

मंगलकारी कार्य्य किये हैं और दान दिये हैं, उन सबके बदलेमें हम यही माँगते हैं कि ईश्वरस्वरूप कृष्णकी अनन्य भक्ति हमको प्राप्त हो" ॥ ६७ ॥ राजन्! गोपोंने कृष्णहीके समान मान करके भक्तिपूर्वक इस प्रकार उद्धवका पूजन किया और उद्धवजीने कृष्ण जिसके रक्षक हैं उस मथुरा पुरीको प्रस्थान किया ॥ ६८ ॥

कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम् ॥
वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात् ॥ ६९ ॥

मथुरामें पहुँच कर उद्धवजी कृष्णके पास आये और उनको प्रणाम किया। फिर व्रजवासियोंकी अनन्य भक्तिका वर्णन करते हुए उद्धवजीने नंदके दिये हुए उपायन कृष्ण-बलदेव और राजा उग्रसेनको दिये ॥ ६९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्त्वारिंश अध्याय।

अक्रूरका हस्तिनापुरको जाना।

श्रीशुक उवाच–अथ विज्ञाय भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥
सैरन्ध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन्गृहं ययौ ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! सबके मनकी जाननेवाले सर्वज्ञ अन्तर्य्यामी हरिने जाना कि कुब्जा मेरे कारण कामकी पीड़ा सह रही है। यह जान कर उसका प्रिय करनेकी इच्छासे कृष्णचन्द्र एक दिन उसके घर गये ॥ १ ॥ कुब्जाका भवन महामूल्यवाली गृहसामग्री और कामोद्दीपन करनेवाली सामग्रीसे परिपूर्ण था। मोतियोंकी झालरें, पताका, चन्द्रातप (चँदोवा), शय्या और अनेक आसन उस भवनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ २ ॥ सुंदर गंधवाले धूप, दीप, माला और केसर, कस्तूरी, कपूर, चंदन, अगुरु, पुष्पसार आदि गंधद्रव्य वहाँ जानेसे मनको प्रसन्न कर देते थे। कामशास्त्रके अनुकूल अनेक रंगके विचित्र चित्र वहाँ की शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ३ ॥ अच्युतको अपने घरमें आते देख कर शीघ्रताके साथ कुब्जा आसनसे उठ खड़ी हुई एवं सखियोंके साथ आगे बढ़ कर प्रियतमको लिवालाई। कुब्जाने यथाविधि आसन आदि देकर कृष्णचन्द्र और उद्धवका पूजन किया ॥ ४ ॥ हरिभक्त उद्धवजी केवल हाथसे आसनको छूकर पृथ्वी पर बैठ गये। कृष्णभगवान् भी लोकाचारका अनुसरण करते हुए सब सुखकी सामग्रियोंसे परिपूर्ण महामूल्य पलँग पर विराजमान हुए ॥ ५ ॥ कुब्जाभी स्नान, लेपन, दुकूल, भूषण, माला, गंध, तांबूल, सुधासम आसव आदि

सोलह सिंगारोंसे शरीरकी वेषभूषा बना कर सलज्जलीलायुक्त मुसकानसे मनोहर विभ्रमपूर्ण कटाक्षोंसे चित्तको चञ्चल करती हुई कृष्णके निकट आई ॥ ६ ॥ कृष्ण भगवान्‌ने दोनो हाथ पकड़ कर नवसंगमकी लाजसे कुछ शंकित सुंदरी कुब्जाको पास बुला कर पलँग पर लिटा लिया और अनुलेपन देनेके लेशमात्र पुण्यका फल देते हुए उसके साथ विहार करने लगे ॥ ७ ॥ उसने अनन्त भगवान्‌के चरण-कमलोंको सूँघ कर और कामाग्निसे तपे हुए कुचों पर व वक्षःस्थल पर रख कर एवं आनन्दमूर्त्ति कान्त कृष्णको दोनो बाहुओंसे लिपटा कर चिरसंचित तापको शान्त किया ॥ ८ ॥ अहो! उस अभागिनी कुब्जाने अनुलेपन देकर मोक्ष देनेवाले दुर्लभ ईश्वरको पाकर यह माँगा कि "हे प्रियतम! यहाँ कुछ दिन रह कर मेरे साथ विहार करो। हे कमलनयन! मुझसे आपका संग नहीं छोड़ा जाता" ॥९॥१०॥ मान देनेवाले जगदीश्वर कृष्णचन्द्र उसको मुहमाँगा वर देकर और अलंकार आदिके दानसे सम्मानित कर उद्धवके साथ अपने समृद्धिसम्पन्न घरको गये ॥ ११ ॥ महाराज! जगत्‌के ईश्वर दुराराध्य हरिको आराधनासे प्रसन्न करके उनसे अति तुच्छ विषयसुखको जो माँगता है वह महा मंदमति है ॥ १२ ॥ इसके बाद प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र, अक्रूरको प्रसन्न करनेके लिये और हस्तिनापुर भेजनेके लिये उद्धव और बलभद्रके साथ उनके घर गये ॥ १३ ॥ पुरुषोंमें श्रेष्ठ अपने बांधवोंको दूर-हीसे आते देख कर अक्रूरजी उठ खड़े हुए और आगे जा कर आनन्दसे अभिनन्दनपूर्वक उनको हृदयसे लगालिया ॥ १४ ॥ कृष्ण-बलभद्रको अक्रूरने प्रणाम किया और उन्होने भी लोकाचारके अनुसार अक्रूरजीको प्रणाम किया। फिर अक्रूरजीने सुंदर आसन देकर उनका विधिपूर्वक पूजन किया ॥ १५ ॥ अक्रूरने उनका पवित्र चरणोदक शिर पर धारण किया और पूजनसामग्री, दिव्य वस्त्र, सुगन्धित माला, उत्तम आभूषण और पान-इलायची आदिसे भली भाँति सत्कार किया ॥ १६ ॥ फिर विनीत और नम्र अक्रूरजी दण्डवत् प्रणाम करनेके उपरान्त कृष्ण बलभद्रके चरणोंको गोदमें रख कर दबाते हुए यों कहने लगे ॥ १७ ॥ अक्रूरने कहा। "बड़ीबात जो पापी कंस अपने अनुचरों सहित आपके हाथों मारागया एवं आपने अपने कुलको दुरन्त कष्टसे उबार कर उन्नत और समृद्ध बनाया ॥१८॥ आप दोनो प्रधानपुरुष, जगत्‌के कारण और जगन्मय हैं। आपसे विभिन्न और कोई कारण या कार्य्य नहीं है ॥ १९ ॥ ब्रह्मन्! रजोगुण आदि अपनी ही शक्तियों द्वारा स्वयंसृष्ट इस विश्वमें, कारण होनेके कारण अनुप्रविष्ट न हो कर भी आप अनुप्रविष्टसे प्रतीत होते हैं एवं श्रुत, प्रत्यक्ष व गोचर की भाँति एक हो कर भी अनेक प्रतीत होते हैं ॥ २० ॥ भगवन्! जैसे अपनेही रूपान्तरकी अभिव्यक्तिके स्थान जो चराचर प्राणी हैं उनमें पृथ्वी आदि सब कारण अनेक रूपोंसे प्रकाशित होते हैं वैसे ही आप, निरवच्छिन्न आत्मा और स्वतन्त्र होकर भी, स्वयं

जिनका निमित्तकारण हैं उन भूत-भौतिकादि पदार्थोंमें अनेक प्रतीत होते हैं ॥२१॥ रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण; ये आपकी शक्तियाँ हैं। आप इन्ही शक्तियोंसे इस जगत्की सृष्टि, पालन और नाश करके भी उन गुणोंमें या गुणोंके कर्म्मोंमें लिप्त नहीं होते, क्योंकि आप ज्ञानस्वरूप हैं, बंधनका कारण जो अविद्या है वह आपमें नहीं है ॥ २२ ॥ विचारके द्वारा देहादि उपाधियोंकी यथार्थताका स्थापन नहीं किया जासक्ता; अतएव जीवात्मामें जन्म या जन्मजनित भेद साक्षात्स्वरूपसे नहीं सिद्ध हो सक्ता। इस कारण आप बंधन और मोक्ष दोनोसे रहित हैं–हमारा अज्ञानही आपमें बंधन और मोक्षकी कल्पना करता है ॥ २३ ॥ आपने जगत्के मंगलके लिये यह पुरातन वेदमार्ग प्रकट किया है। इस सनातनमार्गको जब २ असत् लोगोंके कल्पित पाखंडमार्गसे बाधा पहुँचती है तब २ आप धर्ममार्गकी रक्षाके लिये सतोगुणका अवलंबन कर अवतार लते हैं ॥ २४ ॥ हे सर्वव्यापक! वही आप इस समय असुरोंके अंशोंसे उत्पन्न दुष्ट राजालोगोंकी सैकड़ों अक्षौहिणी सेनाका संहार कर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये वसुदेवके यहाँ प्रकट हो यदुवंशका यश फैलारहे हैं ॥ २५ ॥ हे ईश्वर! सब वेद, पितृगण, भूतगण, मनुष्यगण और देवगण जिनकी मूर्त्ति हैं एवं जिनका चरणोदक त्रिभुवनको पवित्र करता है वही अधोक्षज जगद्गुरु आप मेरे भवनमें पधारे हैं, आपके चरणोंने मेरे भवनको परम पवित्र और धन्य बना दिया–इसमें कोई संदेह नहीं। आपके आगमनसे आज मैं कृतार्थ हो गया ॥ २६ ॥ नाथ! आप भक्तवत्सल हैं, आपके वाक्य सत्य हैं। आप कृतज्ञ और सबके सुहृद् हैं। आप घटते बढ़ते नहीं हैं, सदा एक से रहते हैं। जो आपके सुहृद् भक्तजन आपका भजन करते हैं, आप सब प्रकार उनकी सब अभिलाषाएँ पूरी करते हैं। इतना ही नहीं वरन् आप अपनेको भी उन्हे दे डालते हैं। भला कौन बुद्धिमान् और पण्डित ऐसा होगा जो आपको छोड़ कर किसी और की शरणमें जायगा? ॥ २७ ॥ योगेश्वर और बड़े २ देवता भी आपके स्वरूपको नहीं जान पाते। वही आप आज हमारी आँखोंके आगे विराजमान हैं–यह हमारा परम सौभाग्य है। हे जनार्दन! आपकी पुत्र, स्त्री, धन, स्वजन, गृह और देहरूपिणी माया प्राणियोंको मोहित करती है। कृपापूर्वक उस दुरन्त मायासे मुझको मुक्त कीजिये" ॥२८॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** महाराज! भक्त अक्रूरने इस प्रकार पूजनपूर्वक स्तुति की, तब भगवान् कृष्णचन्द्र अपने वाक्योंसे मोहित करते हुए मुसकाकर कहने लगे कि "हे तात! तुम हमारे गुरु, पितृव्य एवं सब समय प्रशंसनीय हितैषी बन्धु हो। हम आपके कृपापात्र सन्तान हैं। आपका कर्तव्य है कि आप हमारा पालन, पोषण और रक्षा करें ॥२९॥३०॥ जिन मनुष्यों-को मंगललाभकी इच्छा हो उनको उचित है कि आप ऐसे पूजनीय महाभाग साधुओंकी सेवा करें। आप ऐसे साधुजन देवतोंसे भी बढ़कर हैं, क्योंकि देवतालोग

अपना कार्य्य सिद्ध करनेमें तत्पर देखे जाते हैं, किन्तु आप ऐसे साधुजन सदा परोपकारमें निरत रहते हैं ॥ ३१ ॥ जलमय तीर्थ अवश्य तीर्थ हैं, और मट्टी व शिलाके बने हुए देवता भी अवश्य देवता हैं। किन्तु साधुलोग उनसे भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे चिरकाल तक सेवा करनेसे पवित्र करते हैं, परन्तु साधुओंके दर्शनसे ही शरीर और मन शुद्ध हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ तात! हमारे सब आत्मीय स्वजनोंमें आप श्रेष्ठ हैं। अतएव आप पाण्डवोंके कल्याणके लिये और कुशल क्षेम जाननेके लिये हस्तिनापुरको जाइये ॥३३॥ हमने सुना है कि बालक पाण्डवोंके पिता पाण्डुका देहान्त हो गया है, अतएव वे मातासहित अत्यन्त दुःखमें पड़कर पीड़ित हो रहे हैं। अब उनके चाचा राजा धृतराष्ट्रने उनको लाकर अपने पुरमें बसाया है ॥ ३४ ॥ किन्तु अम्बिकाके तनय दीनवुद्धि अंध राजा धृतराष्ट्र अपने कुपुत्रोंके कहने पर चलते हैं, इस लिये अवश्य वह अपने पुत्र और भतीजोंसे एक सा बर्ताव न करते होंगे ॥ ३५ ॥ तुम जाकर वहाँ उनका वृत्तान्त विदित करो कि वे (पाण्डव) सुखसे रहते हैं या उनको कष्ट मिलता है। तुम्हारे मुखसे वहाँका हाल जान कर मैं उचित उपाय करूँगा, जिससे स्वजनों (पाण्डवों)का कल्याण होगा" ॥ ३६ ॥

इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान्हरिरीश्वरः ॥
संकर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥ ३७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! इस प्रकार अक्रूरको आज्ञा देकर श्री कृष्णजी बलभद्र और उद्धवके साथ अपने भवनको गये ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाश अध्याय।

अक्रूरका हस्तिनापुर जाना।

श्रीशुक उवाच—स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेन्द्रयशोऽङ्कितम् ॥
दर्दश तत्राम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! पुरुवंशी श्रेष्ठ राजोंकी कीर्तिसे व्याप्त हस्तिनापुरमें जाकर अक्रूरने धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, कुन्ती, बाल्हीक, सोमदत्त, द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य्य, कर्ण, दुर्य्योधन, अश्वत्थामा, पाण्डवगण एवं अन्यान्य सुहृद् और बंधुओंसे भेंट की ॥१॥२॥ अक्रूरजी यथोचित रीतिसे जब बंधुबांधओंसे मिल चुके तब उन्होने अक्रूरसे और अक्रूरने उनसे परस्पर सब बंधुओंकी

कुशल पूछी। इस प्रकार अक्रूरजीने सबको प्रसन्न किया और स्वयं आनन्दित हुए ॥३॥ महाराज! अक्रूरजीने दुर्बुद्धि राजाके आचरण जाननेके लिये कुछ दिन हस्तिनापुरमें वास किया। अक्रूरने देखा कि राजा धृतराष्ट्रके सब पुत्र दुष्ट हैं और वे अपने दुष्ट मंत्री कर्ण आदिकी इच्छाके अनुसार सब कार्य्य करते हैं ॥ ४ ॥ कुन्ती और विदुरने पाण्डवोंके तेज, शस्त्रचलानेकी निपुणता, बल, वीर्य्य, विनय आदि सद्‌गुण एवं उन पर प्रजागणके अनुरागका सम्पूर्ण वृत्तान्त अक्रूरको बताया। और यह भी बताया कि 'दुष्ट धृतराष्ट्रके पुत्र पाण्डवोंके बल और गुणोंकी उन्नतिको नहीं देख सक्के' ॥ ५ ॥ पाण्डवोंको मारनेके लिये दुष्ट दुर्योधन आदिने विषदान आदि जो दुराचरण किये थे उनका भी कुन्ती और विदुरने वर्णन किया ॥ ६ ॥ कुन्तीजी आये हुए भाई अक्रूरके पास आईं और अपने जन्मभवन (मायके)का स्मरण करके आँखोंमें आँसू भर कर कहने लगीं कि "हे सौम्य! हमारे माता, पिता, भाई, भगिनी, भतीजे, कुलकी स्त्रियाँ और सखियाँ क्या कभी हमारा स्मरण करते हैं? ॥ ७ ॥ ८ ॥ शरणागतरक्षक, भक्तवत्सल हमारे भतीजे भगवान् कृष्ण और कमलनयन बलभद्रजी क्या कभी अपनी बुआके पुत्रोंका स्मरण करते हैं? ॥ ९ ॥ भेंड़ियोंके बीच हरिणीके समान मैं शत्रुओंके बीच वास करती हुई शोकसे आकुल होरही हूँ। क्या कृष्णचन्द्र कभी यहाँ आकर मुझको और बिना पिताके मेरे बालकोंको अपने मधुर बचनोंसे धैर्य्य देंगे? ॥ १० ॥ हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महायोगी! हे विश्वमय! हे विश्वपालक! हे गोविन्द! मैं अपने असमर्थ बालकों सहित निरन्तर कष्ट भोग रही हूँ। भगवन्! मैं अत्यन्त पीड़ित हो रही हूँ। मैं आपकी शरणमें आई हूँ—मेरी रक्षा करो ॥ ११ ॥ ईश्वर! मोक्षदनेवाले आपके चरणकमलोंके सिवा मृत्यु और संसारके भयसे शंकित मनुष्योंके लिये और कोई बचावका स्थान मुझको नहीं देख पड़ता ॥ १२ ॥ धर्म्मात्मा, अपरिच्छिन्न, जीवके सखा, अणिमादिगुणयुक्त, ज्ञानस्वरूप, श्रीकृष्णको प्रणाम है। हे प्रभो! मैं आपकी शरणमें आई हूँ" ॥ १३ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** महाराज! आपकी प्रपितामही कुन्ती स्वजनोंका और श्रीपति जगदीश्वर कृष्णका स्मरण कर इस प्रकार दुःखित हो रोने लगीं ॥ १४ ॥ दुःख और सुखको समान समझनेवाले अक्रूर और महायशस्वी विदुरने कुन्तीके पुत्रोंके जन्मदाता इन्द्र आदिकी कथा कह कर कुन्तीको समझाया और आश्वास दिया ॥ १५ ॥ अक्रूरजी चलते समय पुत्रवत्सल एवं भतीजोंसे विषम व्यवहार करनेवाले राजा धृतराष्ट्रके पास गये। उस समय सभामें सभी जातिवाले, वंशवाले एवं सुहृद्गण उपस्थित थे। जो कुछ मित्रभावसे कृष्ण बलभद्र आदि बंधुओंने धृतराष्ट्रसे कहनेके लिये सँदेसा दिया था सो सबके सामने अक्रूरजी इस प्रकार कहने लगे ॥ १६ ॥ **अक्रूरजीने कहा**

"हे विचित्रवीर्य्यके पुत्र महाराज! कुरुवंशकी कीर्तिको बढ़ानेवाले बड़े भाई पाण्डुका देहान्त हो जानेसे आप इस समय राज्यासन पर बैठे हैं ॥ १७ ॥ आप यदि आत्मीय स्वजनोंको समदृष्टिसे देखते हुए, धर्म्मसे पृथ्वीका पालन करेंगे और अपने सत् चरित्र व सुशीलसे प्रजाको प्रसन्न रक्खेंगे तो आपका कल्याण होगा और जगत्में सुकीर्ति फैलेगी। यदि इसके विपरीत चलेंगे तो यहाँ निन्दा होगी और मरने पर नरकोंकी घोर यातनाएँ भोगना होगा। इस कारण आप अपने पुत्रोंको और पाण्डवोंको समदृष्टिसे देखिये ॥ १८ ॥ १९ ॥ राजन्! यहाँ किसीके साथ किसीको चिरकाल तक नहीं रहना है। स्त्री–पुत्र आदिकी कौन कहे–अपना प्यारा शरीर भी साथ नहीं जाता ॥२०॥ यह जीव अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही यहाँसे जाता है एवं अकेला ही अपने किये पाप या पुण्यका फल भोगता है ॥ २१ ॥ जलमें रहनेवाले मत्स्य आदि जीवोंके प्रिय जलको जैसे और लोग ले जाते हैं वैसेही मूढ़ व्यक्तिके अधर्म्म संचित धनको स्त्री–पुत्र–बंधुनामधारी और ही लोग उड़ाते हैं ॥ २२ ॥ यह मूर्ख जीव, अपना समझकर, अधर्म्मपूर्वक जिनका पोषण करता है वे शरीर, पुत्र और सम्पत्ति आदि, उसकी इच्छा भलीभाँति पूर्ण नहीं होने पाती और बीचमें ही उसको छोड़ देते हैं। तब अपने धर्मसे विमुख और अपने उचित प्रयोजनको न जाननेवाला, अपूर्णमनोरथ जीव, किये हुए पापोंका फल भोगनेके लिये नरकमें जाता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे राजन्! हे प्रभो! अतएव इस लोकको स्वप्न, माया अथवा मनोरथके समान अनित्य समझ कर अपने आपही मनका दमन करो एवं शान्त और समदर्शी बनो" ॥ २५ ॥ यह सुन कर धृतराष्ट्रने कहा। "हे अक्रूर! आपके ये वचन मंगलमय हैं, जैसे मनुष्य अमृतको पाकर तृप्त नहीं होता वैसे ही मुझे भी इन वचनोंसे तृप्ति नही होती, अर्थात् जी चाहता है कि सुना ही करूँ ॥ २६ ॥ हे सौम्य! तथापि मेरा हृदय पुत्रानुरागसे ऐसा विषम और चञ्चल हो रहा है कि सौदामिनी बिजलीकी भाँति तुम्हारे ये सुंदर वचन उसमें नहीं ठहरते ॥ २७ ॥ जो ईश्वर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यदुकुलमें अवतरे हैं उन कृष्णचन्द्रके विधानको कौन पुरुष अन्यथा कर सक्ता है? ॥ २८ ॥ जिसके मार्ग अचिन्त्य हैं उस अपनी माया द्वारा जो विश्वकी रचना करके विश्वके भीतर प्रवेशपूर्वक कर्म और कर्म्मफलोंका विभाग कर देते हैं उन परमेश्वरको प्रणाम है। उनकी दुर्बोध क्रीड़ा ही इस संसारका कारण है; वही कालरूपसे इस संसारचक्रके संचालक हैं" ॥ २९ ॥ ३० ॥

शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम् ॥
पाण्डवान्प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! यदुवंशी अक्रूरजी राजा धृतराष्ट्रके उक्त अभिप्रायको जान कर सुहृद्गणसे आज्ञा ले, मथुरापुरीको लौटे। अक्रूरजीने पुरीमें आकर कृष्ण व बलदेवसे धृतराष्ट्रका वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ३१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इति दशमस्कंधपूर्वार्द्धं समाप्तम् ।

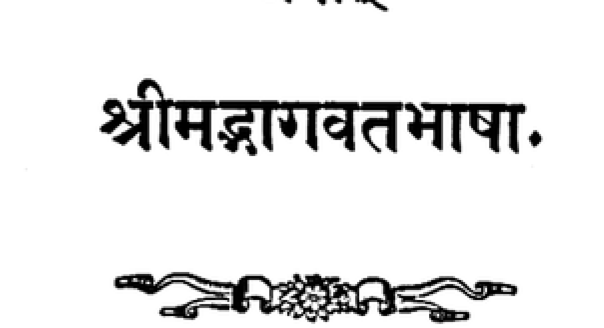


शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

दशमस्कन्ध—उत्तरार्धः ।



६२



रुक्मिणीहरण ।



रुक्मिणीपरिणय ।



॥ श्रीः ॥

शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

दशमस्कन्ध—उत्तरार्धः ।



पञ्चाशत्तम अध्याय ।

द्वारकादुर्गकी रचना ।

श्रीशुक उवाच—अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ ॥
मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स पितुर्गृहान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! अस्ति और प्राप्ति नाम कंसकी दोनो रानियाँ स्वामीके मरने पर दुःखसे आतुर होकर अपने पिता जरासंधके घर गईं ॥ १ ॥ उन दुःखित रानियोंने अपने पिता मगध देशके राजा जरासंधसे अपने विधवा होनेका कारण कहा ॥ २ ॥ यह अप्रिय सम्वाद सुनते ही राजा जरासंधको पहले शोक और पीछे अत्यन्त क्रोध हुआ। उसने पृथ्वीको यादवोंसे शून्य करनेके लिये बड़ा उद्योग किया ॥ ३ ॥ जरासंधने तेईस अक्षौहिणी सेना एकत्र कर यादवोंकी राजधानी मथुराको चारो ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥ कृष्णभगवान्‌ने देखा कि उमड़ते हुए सागरके समान शत्रुसेनाने अपने पुरको घेर लिया और यह देखकर सब स्वजन भयाकुल हो रहे हैं ॥ ५ ॥ तब किसी कारणसे मायामानव-

रूपधारी वृन्दावनविहारीने देश–काल–गुणके अनुरूप अपने अवतारके प्रयोजन पर विचार करके यह निश्चय किया कि–"मगधराज जरासंधकी लाई हुई राजोंकी इस पदाति, अश्व, गज और रथ आदिसे सुशोभित कई अक्षौहिणी सेनाने मेरे नगर पर आक्रमण किया है; यही पृथ्वीका संचित भार है। मैं इस सेनाका संहार करके जरासंधको छोड़ दूँगा, क्योंकि यह फिर जाकर सेनाका संचय करेगा। साधुओंकी रक्षा, असाधुओंका संहार और पृथ्वीका भार उतारना ही मेरे अवतारका प्रयोजन है। कभी २ मुझको पृथ्वी पर प्रकट होना पड़ता है। धर्म्मकी रक्षा और अधर्म्मका उच्छेद करनेके लिये मेरे अन्यान्य अवतार भी होते हैं" ॥६॥७॥८॥९॥१०॥ सूतजी अट्ठाईस हजार शौनकादिक ऋषियोंसे कहते हैं कि कृष्ण भगवान् यों विचार कर ही रहे थे कि इसी अवसरमें आकाशसे सूर्य्यके समान किरणमालामंडित दो रथ आपही आप पृथ्वी पर उतरते देखपड़े। रथोंमें दो सारथी बैठे हुए थे एवं विचित्र ध्वजा–पताका और दिव्य सनातन अस्त्र शस्त्र उस रथकी शोभा बढ़ा रहे थे। उन रथोंको देखकर कृष्णचन्द्रने संकर्षण भगवान्से कहा कि "हे आर्य्य! देखो, आपही जिनकी रक्षा करनेवाले हैं वे यादव आज विपत्तिमें पड़े हैं। दादा! यह आपका रथ और प्रिय शस्त्र आगये हैं। रथ पर चढ़ कर इस शत्रुसेनाका संहार करिये और आत्मीयोंको इस घोर विपत्तिसे उबारिये। हे ईश! साधुओंको सुखी रखनेके लिये ही हमारा अवतार हुआ है। यह तेईस अक्षौहिणीसेनारूप पृथ्वीका भार नष्ट करिये"। इस प्रकार मंत्रणा कर कृष्ण बलभद्रने कवच धारण किया और अस्त्रशस्त्रपूर्ण रथों पर चढ़ कर थोड़ी सी सेना साथ ले पुरसे बाहर निकले। दारुक जिनका सारथी है उन कृष्णने बाहर आकर अपना शंख बजाया। उस शंखनादने शत्रुसेनाके हृदय हिला दिये। जरासंधने जब कृष्ण बलभद्रको देखा तो पास आकर कहने लगा कि "रे पुरुषाधम कृष्ण! तू बालक है, तुझसे लड़ते मुझे लज्जा आती है। इस कारण यद्यपि तू मेरे बंधु (कंस) का घातक है तथापि मैं तुझसे नहीं लडूँगा। तू अपनेको बालक होनेके कारण सुरक्षित समझ, अन्यथा तेरा बचना असम्भव था। बलभद्र! तेरी यदि युद्ध करनेकी इच्छा हो तो धैर्य्यसहित युद्ध कर। तू या मेरे बाणोंसे छिन्नभिन्न शरीरको छोड़ कर स्वर्गको जा अथवा मुझको मार कर जय प्राप्त कर" ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ १९ ॥ श्रीकृष्ण भगवान्ने कहा। "अरे मंद! शूर लोग अपने मुखसे अपनी बड़ाई नहीं करते, किन्तु अपना पौरुष दिखलाते हैं। मगधराज! तू मरनेवाला है—इस लिये हम तेरे असत्प्रलापका बुरा नहीं मानते" ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि राजन्! वायु जैसे मेघमालासे सूर्य्यको और धूलसे अग्निको ढाँक लेता है वैसे ही मगधराज जरासंधने सामने होकर अपनी प्रचण्ड सेनाके प्रवाहसे सैनिक, रथ, ध्वजा, अश्व और सारथी सहित कृष्ण–बलभद्रको आच्छन्न कर लिया ॥ २१ ॥ पुरनारियाँ नगरीकी अँटारी, महल और गोपुरों पर

चढ़ी हुई युद्धको देख रही थीं। वे स्त्रियाँ, गरुड़ और ताड़के चिन्ह जिनमें हैं उन कृष्ण-बलभद्रके रथोंको रणभूमिमें न देख कर शोक और सन्तापकी व्यथासे अचेत हो २ गईं ॥२२॥ भगवान्‌ने शत्रुसेनारूप विशाल मेघमालासे हो रही अनन्त वाणोंकी वर्षासे अपनी सेनाको विचलित होते देख, सींगका बना हुआ (शार्ङ्ग) श्रेष्ठ धनुष हाथमें लिया और उस परसे तीक्ष्ण वाण बरसा कर पदाति, रथ, अश्व और गजोंका विनाश करना आरंभ किया। भगवान्‌को तर्कससे वाण निकालते, धनुषको चढ़ाते, डोरीको खींचते और वाणको छोड़तेमें कुछ भी देर न लगती थी—अंगारचक्रके समान धनुषका मण्डल देख पड़ता था ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ हाथियोंके मस्तक फटगये और वे रणभूमि पर मर २ कर गिरने लगे, अनेकानेक घोड़ोंके शिर धड़से अलग हो गये और वाण लगनेसे वे गिर कर मरने लगे और घोड़े, सारथी, रथी एवं ध्वजाओंसे शून्य रथ, वाणोंकी चोटोंसे चूर होने लगे। पदातिसेनाके भुजा, ऊरू, कंधे आदि अंग सब छिन्न-भिन्न होगये ॥ २५ ॥ महामनस्वी अपरिमित तेजस्वी बलभद्र देवने मूशलसे मदमत्त शत्रुओंको मार कर घोड़े हाथी और मनुष्योंके कटे हुए अंगोंसे बह रहे रक्तकी सैकड़ों नदियाँ बहा दीं। वे नदियाँ भीरु जनोंको भय देनेवाली और शूरवीरोंको उत्साहित व प्रसन्न करनेवाली थीं। उन नदियोंमें बह रहे कटे हुए हाथ सर्प जान पड़ते थे। खोपड़ियाँ कछुओंकी श्रेणी जान पड़ती थीं। मरे हुए हाथियोंके शरीर छोटे २ टापू जान पड़ते थे। घोंड़ोके रुंडमुंड ग्राह से जान पड़ते थे और कटे हुए पैर एवं भुजाएँ मानो मच्छ और मछलियाँ थीं। उन नदियोंको, नरकेशोंकी सेवार, धनुपोंकी तरंगें, अस्त्रोंके गुल्म, ढालोंके भयंकर आवर्त्त (चक्कर) एवं उत्तम २ आभूषण व मणिगणकी कंकड़ियाँ बहुत भयानक बनारही थीं ॥२६॥२७॥२८॥ हे राजन्! सागरसदृश दुर्गम भयानक और अथाह उस जरासंधकी लाई हुई सेनाको क्षणभरमें कृष्ण-बलभद्रने विनष्ट कर डाला। यह अद्भुत कार्य्य उन जगदीश्वरोंके लिये एक साधारण क्रीड़ामात्र है ॥ २९ ॥ जो अनन्तगुणपूर्ण भगवान् अपनी लीला (माया) के द्वारा इस सृष्टिकी सृष्टि, पालन और नाश करते हैं उनके लिये असाधुओंका दमन करना कुछ विचित्र बात नहीं है। तथापि उन्होने मनुष्यचरित्रका अनुकरण किया, इस कारण उनके ऐसे अलौकिक पवित्र चरित्रोंका वर्णन किया जाता है ॥ ३० ॥ जरासंधकी सब सेनाका क्षय हो गया- रथ भी टूट गया-केवल प्राण रह गये, उस समय महाबली मगधराजको बलभद्रजीने लपक कर पकड़ लिया, जैसे कोई सिंह किसी गजको पकड़ले ॥ ३१ ॥ यद्यपि जरासंधने अनेक राजोंको मार डाला था, उसको मार डालनाही योग्य था, तथापि वारुण और मानुष पाशोंसे बाँध कर जब बलभद्रजीने उसको मारना चाहा तब कृष्णने उनको रोक लिया, क्योंकि

कृष्णचन्द्रको जरासंधसे अभी और काम कराना था ॥ ३२ ॥ वीरसमाजमें माननीय जरासंधको जगदीश्वरोंने छोड़ दिया और वह लज्जाके कारण तपका संकल्प करके किसी पवित्रस्थानको चला; किन्तु राहमें उसके साथी राजोंने समझा बुझाकर, धर्मवाक्योंकी शिक्षा सुना कर और लौकिक नीतिका वर्णन करके उसको रोक लिया। राजोंने कहा कि "आप भाग्यवश यादवोंसे अबकी हार गये हैं-इस लिये शोक या लज्जाके वश न हो कर फिर प्रयत्न करिये" ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ राजन्! सब सेना नष्ट हो गई और कृष्ण बलदेवने उपेक्षापूर्वक छोड़ दिया, अतएव जरासंध उदास हो कर अपने मगध देशको लौट गया ॥ ३५ ॥ इधर मुकुंदने भी शत्रुसेनासागरके पार पहुँच कर, जिनका सब भय दूर होगया है उन प्रसन्नचित्त मथुरावासियोंके साथ, पुरीमें प्रवेश किया। कृष्णने अमृतवर्षिणी दृष्टिसे अपनी सेनाको देखा, उसी समय सब सेना सजीव हो गई, किसीके शरीरमें मानो एक भी घाव नहीं लगा था। उस समय "साधु-साधु" कह कर अनुमोदन करते हुए देवगण दोनो भाइयोंके ऊपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा करने लगे। राजन्! जिस समय कृष्ण-बलभद्रने पुरीमें प्रवेश किया उस समय सूत, मागध और वंदीजन जयगान करते हुए आगे २ चले। शंख, दुंदुभी, भेरी, तूर्य्य, वीणा, वेणु, मृदंग आदि अनेकानेक बाजे बजने लगे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ नगरीके सब मार्गोंमें चंदनके जलका छिड़काव हुआ था, ध्वजा और पताकाएँ शोभा बढ़ा रही थीं, स्थान २ पर ब्राह्मणलोग पवित्र वेदपाठ कर रहे थे, कौतुकके लिये बंदनवार बँधे हुए थे और कृत्रिम फूलोंसे सजे हुए फाटक बहुत ही मनोहर जान पड़ते थे ॥ ३९ ॥ पुरप्रवेशके समय सब पुरनारियाँ प्रभुके ऊपर माला, दही मिले अक्षत, दूबके अंकुर और फूल फेंकती हुई प्रीतिप्रफुल्ल नयनकमलोंसे स्नेहपूर्वक उनको निहारने लगीं ॥ ४० ॥ रणभूमिमें जो शत्रुओंकी अनन्त सम्पत्ति और आभूषण मिले सो सब लाकर कृष्णचन्द्रने उग्रसेनजीके आगे रख दिया ॥ ४१ ॥ राजन्! हारने पर भी मगधराजका उत्साह नहीं नष्ट हुआ। इसी प्रकार उसने तेईस २ अक्षौहिणी सेना संग्रह कर, सत्रह बार, कृष्ण-बलदेव जिनके रक्षक हैं उन यादवोंसे युद्ध किया ॥ ४२ ॥ किन्तु कृष्णभगवान्‌के तेजसे यादवोंने हर बार उसकी सब सेनाका संहारके उसको पहलेकी भाँति वारम्वार छोड़ २ दिया ॥ ४३ ॥ जरासंध अट्ठारहवीं बार यादवों पर आक्रमण करनेही वाला था, इसी बीचमें नारदकी प्रेरणासे युद्ध करनेके लिये आया हुआ कालयवन युद्धभूमिमें देख पड़ा। उसने पृथ्वीमण्डल पर फिर कर कहीं अपनी समताका बली योद्धा नहीं पाया। इस समय नारदके मुखसे यादवोंको समकक्ष सुन कर तीन करोड़ यवनोंसे उसने मथुराको घेर लिया ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ उसको देख कर बलभद्र जिनके सहायक हैं उन कृष्णचन्द्रने विचार किया कि—"अहो! दोनो ओरसे

यादवोंके लिये महा विपत्ति उपस्थित है । इस समय इस महाबली यवनने आकर हमको घेर लिया है; उधर जरासंध भी कल या परसों आकर पहुँच जायगा ॥४६॥ ॥ ४७ ॥ कालयवनसे युद्ध करते समय यदि बली जरासंध आजायगा तो हमारे बंधुओंको मार डालेगा अथवा पकड़कर अपने पुरको ले जायगा । इससे हम ऐसे दुर्गकी रचना करावेंगे, जहाँ कोई मनुष्य कठिनतासे जा सकेगा; उसी दुर्गमें स्वजनोंको रखकर यवनका विनाश (मुचुकुन्द द्वारा) करावेंगे" ॥४८॥४९॥ इस प्रकार विचार करके भगवान्‌ने विश्वकर्म्मासे समुद्रके भीतर बारह योजनका संपूर्ण विचित्र (द्वारका) नगर एक ही रातमें बनवाया ॥ ५० ॥ उस नगरमें विश्वकर्म्मा का विज्ञान और शिल्पनिपुणता (कारीगरी) झलकती है । उसमें वास्तुगृह बनानेके लिये स्थान छोड़कर राजमार्ग, छोटी २ गलियाँ और आँगन (सहन) बने हुए हैं ॥ ५१ ॥ देवलोकके वृक्ष और लताओंसे सुशोभित बड़े २ उद्यान और विचित्र उपवन उस नगरकी शोभाको बढ़ा रहे हैं । आकाशको रहे ऊँचे २ महलोंके सुवर्णमण्डित शिखर और स्फटिकमणिसे परिपूर्ण अटारियाँ और गोपुर देखनेही योग्य हैं ॥ ५२ ॥ हेमकलशोंसे अलंकृत, चाँदी-पीतल-लोहा आदि धातुओंसे संकलित अश्वशालाएँ और अन्नशालाएँ जहाँ तहाँ बनी हुई हैं। सुवर्णमण्डित भवन बने हुए हैं, उन भवनोंके शिखर रत्नमय हैं और पृथ्वी (फर्श) मरकत मणिकी बनी हुई है ॥ ५३ ॥ वास्तुभवन और वलभियाँ उन भवनोंकी शोभा बढ़ा रही हैं । चारो वर्णके लोग वहाँ रहते हैं । नगरके बीचमें कृष्णचन्द्रके और उनके परिवारके महल बने हुए हैं ॥ ५४ ॥ राजन्! इन्द्रने हरिके पास कल्पवृक्ष और अपनी सुधर्म्मा सभा भेज दी । उस सभामें बैठनेवाले पुरुषोंको भूख-प्यास-शोक-मोह-वृद्धता आदि मनुष्य-धर्म्म नहीं पीड़ा पहुँचाते ॥ ५५ ॥ वरुणने मनके समान वेगवाले श्वेतवर्ण घोड़े भेजे, जिनका एक २ कान श्यामवर्ण था । निधिपति कुबेरने आठो निधियाँ एवं और २ लोकपालोंने अपनी २ विभूतियाँ ईश्वरके नगरमें भेज दीं । राजन्! भगवान्‌ने अपना २ अधिकार साधनेके लिये अन्यान्य सिद्धजनोंको जो २ सिद्धियाँ दी थीं, उन्होने, पृथ्वीमें अवतीर्ण उन्ही भगवान्‌को वे २ सिद्धियाँ कुछ कालके लिये लौटा दीं । भगवान् हरि श्रीकृष्णने अपने योगबलसे आत्मीय जनोंको उसी द्वारका नगरमें पहुँचा दिया और कालयवन या उसके सैनिक, कोई भी नहीं जानसके ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमन्त्रितः ॥
निर्जगाम पुरद्वारात्पद्ममाली निरायुधः ॥ ५८ ॥

कृष्णचन्द्रजी सबको द्वारका भेजकर और बलभद्रसे यह कहकर कि 'तुम यहीं रहकर प्रजाकी रक्षा करो-मैं यवनको मार कर अभी आता हूँ' मथुरापुरीमें लौट

आये। तदनन्तर केवल कमलकी माला पहने कमलनयन कृष्णचन्द्र पुरके द्वारसे बाहर निकले। उस समय भगवान्‌के पास कोई शस्त्र नहीं था ॥ ५८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपंचाशत्तम अध्याय।

मुचुकुंदकी दृष्टिसे कालयवनका विनाश।

श्रीशुक उवाच—तं विलोक्य विनिष्क्रान्तमुज्जिहानमिवोडुपम् ॥
दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! जैसे पूर्व दिशामें पूर्ण चन्द्र प्रकट हो वैसे कृष्णचन्द्र पुरद्वारसे बाहर निकल कर शोभायमान हुए। परम सुंदर हरिके श्याम शरीर पर पीतपट और वक्षःस्थलमें श्रीवत्स एवं गलेमें दीप्तिशाली कौस्तुभमणि शोभायमान थी। उनकी चारो भुजाएँ विशाल और स्थूल एवं आँखें नवीन रक्तकमलके समान थीं। उनका सदैव शान्त मुखमण्डल आनन्दसे परिपूर्ण था। उनके सुन्दर कपोल महामनोहर रूपसे सुशोभित थे। मंद मुसकानसे मुखारविंदकी अपूर्व शोभा थी और उस शोभाको हिल रहे मकराकृत कुंडल और भी बढ़ाते थे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ भगवान्‌को देख कर यवनने विचारा कि "नारदने जो चिन्ह बताये थे वे सब इसमें देख पड़ते हैं। इसके हृदयमें श्रीवत्सका चिन्ह है, चार भुजा हैं, कमलके समान विशाल नेत्र हैं, गलेमें वनमाला पड़ी है, रूप अत्यन्त सुंदर है। अतएव अवश्य यही वासुदेव कृष्ण है, और कोई नहीं है। इस समय यह पैदल है और इसके पास कोई शस्त्र नहीं है, इस कारण मैं भी बिना कोई शस्त्र लिये पैदल ही इससे युद्ध करूँगा" ॥४॥५॥ यह निश्चय करके यवनने पीछेसे दौड़कर, योगीजन भी जिनको नहीं पकड़ पाते उन कृष्णको पकड़ना चाहा। यवनराज, अब पकड़ लिया, अब पकड़ लिया, ऐसा समझकर बार २ हाथ लपकाता हुआ बहुत दूर कृष्णके पीछे चला गया। कृष्णचन्द्र उसको यों दौड़ाते हुए एक पर्वतकी कंदरामें घुस गये ॥ ६ ॥ ७ ॥ जिसका अशुभ नष्ट नहीं हुआ वह कालयवन "हे कृष्ण! तू यदुवंशमें उत्पन्न हुआ है, तुझे भागना उचित नहीं है" यों आक्षेप करता हुआ कृष्णके पीछे गया; किन्तु कृष्णको नहीं पासका ॥ ८ ॥ इस प्रकार कालयवनने वारम्वार क्रोध उपजानेवाले आक्षेपपूर्ण वाक्य कहे, किन्तु कृष्णचन्द्र नहीं ठहरे और पर्वतकी कंदरामें घुस गये। कृष्णके पीछे कालयवन भी कंदरामें घुसा। उसने कंदरामें जा कर देखा एक पुरुष सो रहा है। वह पुरुष कोई और था, कृष्णचन्द्र नहीं थे, किन्तु कालयवनने यह समझा कि यह कृष्ण ही

मुझको इतनी दूर यहाँ लाकर जैसे कुछ जानता ही नहीं, इस प्रकार ढोंग साध कर प्राण बचानेके लिये सो रहा है। अतएव उसने उस सो रहे पुरुषके कस कर एक लात मारी ॥९॥१०॥ बहुत कालसे सो रहा वह पुरुष लात खाकर उठबैठा। उसने धीरे २ नेत्र खोल कर चारो ओर देखा। पास ही खड़े हुए कालयवन पर जैसे ही उसकी दृष्टि पड़ी वैसे ही क्षणभरमें अपने ही शरीरसे उत्पन्न अग्निमें यवनराज भस्म होगया॥११॥१२॥ **राजा परीक्षित्‌ने कहा।** ब्रह्मन्! जिसकी दृष्टि पड़तेही यवनराज भस्म हो गया वह पुरुष कौन था? किसका पुत्र था? उसमें तेज और पराक्रम कितना था? उस कंदरामें जा कर क्यों सोया था? ॥१३॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।** महाराज! वह इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न महाराज मांधाताके पुत्र महाब्रह्मण्य और सत्यवादी राजा मुचुकुंद थे ॥ १४ ॥ एक समय प्रबल असुरोंने देवतोंको हरा दिया, तब असुरोंसे डरे हुए इन्द्र आदि देवतोंने अपनी रक्षा करनेके लिये राजा मुचुकुंदसे आकर प्रार्थना की। राजाने जाकर बहुत काल तक स्वर्गलोककी और इन्द्र आदि देवतोंकी रक्षा की ॥ १५ ॥ तदनन्तर शिवके पुत्र कार्त्तिकेयको अपना रक्षक पाकर सब देवतोंने राजा मुचुकुंदसे कहा कि–"राजन्! अब आप हमारी रक्षाके कष्टसे निवृत्त होइये। हे वीर! आप मनुष्यलोक और निष्कण्टक राज्य छोड़ कर हमारी रक्षामें प्रवृत्त हुए एवं सब प्रकारके सांसारिक भोगोंसे वंचित रहे ॥ १६ ॥ १७ ॥ आपके पुत्र, रानियाँ, जातिवाले, अमात्य, मन्त्री एवं समकालीन प्रजागण इस समय पृथ्वी पर नहीं हैं, उनको कालने नष्ट कर दिया ॥ १८ ॥ महाराज! काल बड़ा बली है, उसीको भगवान्, ईश्वर और अव्यय कहते हैं। क्रीड़ा करते हुए पशुपाल जैसे पशुओंका संचालन करता है वैसे ही वह काल प्रजागणका संचालन करता है ॥ १९ ॥ महाराज! आपका कल्याण हो, मुक्तिको छोड़कर और जो कुछ आपकी अभिलाषा हो सो निःसंकोच हो कर हमसे माँगो। मोक्ष देनेकी शक्ति केवल भगवान् अव्यय नारायणमें ही है" ॥२०॥ राजाने जब देवतोंसे निद्रा माँगी तब देवतोंने कहा कि "जाओ तुम जाकर शयन करो, तुमको सोतेमें जो कोई जाकर जगावेगा वह तुम्हारी दृष्टि पड़तेही उसी क्षण भस्म हो जायगा" ॥२१॥ इस प्रकार देवतोंके कहने पर महायशस्वी मुचुकुंद उनको प्रणाम कर कंदरामें देवदत्त निद्रासे अचेत होकर सोगये ॥२२ ॥ राजन्! इस प्रकार मुचुकुंदकी दृष्टिसे जब कालयवन भस्म होगया, तब यादवश्रेष्ठ बुद्धिमान् भगवान् मुचुकुंदके सामने आये ॥२३॥ मुचुकुंदने देखा कि भगवान्‌का शरीर जल भरे मेघके समान श्यामवर्ण है, उस शरीर पर रेशमी पीतपट शोभायमान है, वक्षःस्थलमें श्रीवत्स और कंठमें दीप्तिशाली कौस्तुभमणि शोभाको बढ़ा रही है ॥ २४ ॥ चतुर्भुज भगवान् वैजयन्ती मालासे सुशोभित हैं। प्रसन्न मुख महामनोहर है और कानोंमें मक-

राकृत कुण्डलोंकी अपूर्व शोभा है ॥ २५ ॥ वह सुन्दर स्वरूप मनुष्य लोगोंके लिये एक दर्शनीय वस्तु है। भगवान्‌की अनुरागसूचक मंद मुसकानसे मनोहर दृष्टि भवभयहारिणी है । उनकी अवस्था किशोर है एवं विक्रम मत्त मृगराजके समान उदार है ॥ २६ ॥ तेजके कारण दुर्द्धर्ष श्रीकृष्णके तेजसे धर्षित और शंकित महाबुद्धि राजाने धीरे २ यों पूछा । **मुचुकुंदने कहा** । आप कौन हैं? इस असंख्य कण्टकाकुल वनमध्यस्थ गिरिकंदरामें आकर पद्मपत्रतुल्य सुकुमार चरणोंसे इधर उधर क्यों विचर रहे हैं? ॥२७॥२८॥ आप सब तेजस्वी पुरुषोंका एकत्रीकृत तेजःपुंज हैं? अथवा साक्षात् भगवान् अग्नि हैं? आप सूर्य्यदेव हैं? चन्द्रमा हैं? या महेंद्र हैं? या कोई लोकपाल अथवा देवता हैं? ॥ २९ ॥ मेरी समझमें आप सब देवतोंके देवता जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं उनमेंसे पुरुषोत्तम नारायण देव हैं; क्योंकि दीपक जैसे अपनी प्रभासे अंधकारको दूर करता है वैसे ही आप अपने तेजसे इस कंदराके अन्धकारको नष्ट कर रहे हैं॥ ३० ॥ हे नरश्रेष्ठ! हम सुनना चाहते हैं, इस लिये यदि आपकी इच्छा हो तो अपने यथार्थ जन्म, कर्म और गोत्रका वर्णन करिये ॥ ३१ ॥ हे पुरुषसिंह! हम इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न प्रसिद्ध क्षत्रिय हैं । हे प्रभो! मैं युवनाश्वका पोता और मान्धाताका पुत्र मुचुकुन्द हूँ ॥ ३२ ॥ मैं बहुत दिन तक देवलोकमें जागता रहा, इस लिये निद्रासे अचेत होकर इस निर्जन कन्दरामें इच्छानुसार शयन कर रहा था । अभी किसीने आकर मुझको जगा दिया ॥ ३३ ॥ हे शत्रुशमन! वह पापी अपने ही पापसे आप भस्म होगया। उसके बाद श्रीमान् जो आप हैं उनको मैंने देखा ॥ ३४ ॥ आपके असह्य तेजके आगे मेरा तेज फीका पड़ गया है, मुझमें इतनी शक्ति नहीं है कि मैं देर तक आपकी ओर देख सकूँ। हे महाभाग! आप अवश्य ही सब देहधारियोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण उनके माननीय हैं ॥ ३५ ॥ भूतभावन भगवान्‌से जब राजाने यों पूछा तब वह मंद २ मुसकाते हुए मेघके समान गंभीर वाणीसे बोले ॥ ३६ ॥ **श्रीभगवान्‌ने कहा** । राजन्! मेरे हजार २ जन्म, कर्म्म और नाम हैं; उनका अन्त नहीं है । यहाँ तक कि मैं स्वयं उनकी गणना नहीं कर सक्ता ॥ ३७ ॥ कोई व्यक्ति बहुतसे जन्मोंमें पृथ्वीके रजोंको भलेही गिन ले, किन्तु मेरे जन्म, कर्म्म और नामोंकी गणना नहीं कर सक्ता ॥ ३८ ॥ राजन्! श्रेष्ठ ऋषिगण भी मेरे त्रिकालसिद्ध जन्म, कर्म्म और नामोंका वर्णन करते हुए अब तक उनके अन्तको नहीं पाते ॥ ३९ ॥ महाराज! तथापि मैं अपने वर्त्तमान जन्म, नाम और कर्म्म तुमसे कहताहूँ—सुनो । पहले कमलयोनि ब्रह्माने धर्म्मकी रक्षा और पृथ्वीके भाररूप असुरोंका संहार करनेके लिये मुझसे प्रार्थना की । तब मैंने यदुकुलके बीच वसुदेवके घरमें जन्म लिया है। मैं वसुदेवका पुत्र हूँ, इस लिये मुझको लोग वासुदेव कहते हैं । मैंने कालनेमिके अवतार कंसको प्रलंब आदि देवद्रोही दानवों

सहित मारा है। हे राजन्! इस यवनको भी तुम्हारी तीक्ष्ण दृष्टि द्वारा मैंने ही नष्ट किया है। मैं तुम पर अनुग्रह करनेके लिये ही विशेष कर इस कंदरामें आया हूँ। मैं भक्तवत्सल हूँ, तुमने पहले बहुत समय तक मेरी अत्यन्त आराधना की थी ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे राजर्षे! जो तुम्हारी इच्छा हो वह वर मुझसे माँगो, मैं तुम्हारी सब कामना पूर्ण करनेके लिये प्रस्तुत हूँ। जो पुरुष मेरी शरणमें आता है वह फिर अपूर्णकाम नहीं रहता; अर्थात् मुझे पाजाने पर कोई अभिलाषा अपूर्ण नहीं रहती" ॥४३॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! भगवान्के ये वचन सुन कर राजा मुचुकुंद बहुत प्रसन्न हुए। वृद्ध गर्गने राजासे किसी समय कहा था कि—'अट्ठाईसवें युगमें, द्वापरके अन्तमें यदुवंशके बीच भगवान्का अवतार होगा'। इस समय गर्गकी भविष्यद्वाणीका स्मरण होआनेसे राजाने जाना कि यह वही देव-देव नारायण हैं। तदनन्तर राजा मुचुकुंद, भगवान्को प्रणाम करके इस प्रकार स्तुति करने लगे। **राजाने कहा।** "हे ईश! नरनारीरूप ये सब सांसारिक प्राणी आपकी मायामें मोहित होनेके कारण परमार्थसुखस्वरूप जो आप हैं उनको नहीं देख पाते। अतएव आपका भजन भी नहीं करते। परस्पर एक एकसे वंचित ये प्राणी, सुखके लिये दुःखकी उत्पत्तिका स्थान जो गृह है उसमें आसक्त हो रहते हैं। हे निष्पाप! इस कर्म्मभूमिमें, किसी प्रकार, दुर्लभ जो सांगोपांग मनुष्य शरीर है उसे पा कर, लोगोंके मनमें विषयसुखोंकी ही इच्छा प्रबल होती रहती है। पशुगण जैसे तृणके लोभसे तृणोंसे ढँके हुए अंधकूपमें गिरते हैं वैसेही मायामोहित मनुष्य भी गृहरूप अंधकूपमें गिरते हैं और आपके चरणकमलको नहीं भजते। हे अजित! मैं पृथ्वीपति था, राज्यसम्पत्तिके कारण मुझको 'मैं राजा हूँ' यह गर्व्व था। मैं देहको ही आत्मा माने था, इसी कारण अब तक दुरन्तचिन्तापूर्वक पुत्र, स्त्री, कोष, पृथ्वी आदिमें मेरा मन आसक्त था। मेरी समझमें मेरा इतना समय व्यर्थ ही बीता। घट और भित्तिके सदृश नाशशील इस शरीर पर 'मैं नरदेव हूँ' ऐसा अभिमान करके अत्यन्त गर्वपूर्वक चतुरंगिणी सेना (हाथी, घोड़े, रथ, पैदल) को साथ लिये पृथ्वीपर विचरा करता था। मुझे उस समय आपका ध्यान भी न था। अतएव मेरा इतना समय व्यर्थ ही गया। भूखा सर्प जैसे चौंह चाटता हुआ आचनक आकर असावधान मूसेको दबोच लेता है वैसेही अप्रमत्त अन्तकस्वरूप आप, 'ये ये कर्त्तव्य कर्म सब पूरे करने होंगे'—इस प्रकारकी चिन्तामें व्यग्र और विषयवासनाओंमें तन्मय एवं दिन २ बढ़ रही तृष्णासे परिपूर्ण-हृदय व्यक्तिको सहसा आकर ग्रस लेते हैं। कल जो कलेवर 'राजा' इस नामसे गर्व्वित हो सुवर्णमण्डित रथ, या गज पर चढ़ कर भ्रमण करता था वही कलेवर आज दुरत्यय कालस्वरूप जो आप हैं उनके द्वारा कृमि, विष्ठा या भस्म, इन तीन अवस्थाओंमेंसे किसी एक अवस्थाको प्राप्त हो जाता है

॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हे ईश्वर! जो पुरुष, दूर २ तक सब दिशाओंके राजोंको जीत कर सबसे ऊँचे सिंहासन पर सभामें बैठ अपने समकक्ष राजों द्वारा पूजित होता है वह भी तुच्छ विषयसुखके लिये क्रीड़ामृगके समान ही एक कामिनीके घरसे दूसरी कामिनीके घर जाता और भाँति २ के नाच नाचता है ॥ ५१ ॥ भगवन्! 'आज मैंने इसे त्याग कर दिया, किन्तु दूसरे जन्ममें फिर ऐसाही चक्रवर्त्ती होऊँ'-यह विचार कर, मनुष्य, विषयसुखसे निवृत्त हो उसी भोगकी इच्छासे तपमें अत्यन्तनिष्ठापूर्वक यज्ञादि कर्म करता है। ऐसा करनेसे उसकी विषयभोगतृष्णा निरन्तर बढ़ती ही रहती है, घटती नहीं, अतएव उसे सच्चा सुख (संसारसे मुक्ति) नहीं मिलता ॥ ५२ ॥ हे अच्युत! जब कभी आपके अनुग्रहसे मनुष्यके संसार(आवागमन) का अन्त निकट आजाता है तब उसे साधुओंका संग प्राप्त होता है। साधुसंग होते ही साधुओंकी एकमात्र गति और उत्कृष्ट तथा अपकृष्ट प्राणियोंके ईश्वर जो आप हैं उनकी भक्तिका उदय उसके हृदयमें होता है और तब वह कुछ कालमें सिद्ध हो कर संसारसे मुक्त हो जाता है ॥ ५३ ॥ हे ईश्वर! तप करनेके लिये वनमें जानेकी अभिलाषावाले विवेकी चक्रवर्ती लोग आपसे जो 'राज्यादिका मायामोह छूटना' माँगते हैं वही राज्यानुरागसे मुक्ति मुझको अकस्मात् स्वयं ही प्राप्त हो गई; मैं इसे आपहीकी कृपा मानता हूँ ॥ ५४ ॥ हे विभो! निरभिमान पुरुष केवल आपके चरणोंकी सेवाको ही आपसे माँगते हैं; सो मैं भी यही वर आपसे माँगताहूँ और कोई भी कामना मुझे नहीं है। हे हरे! मुक्ति देनेवाले जो आप हैं उनको आराधना द्वारा प्रसन्न करके कौन विवेकी पुरुष, जिससे आत्माका बन्धन हो ऐसा वर माँगेगा? ॥ ५५ ॥ हे आर्य्य! हे ईश! इस कारण मैं रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण नामक मायाके गुणोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सम्पूर्ण वरों (मङ्गलों) को छोड़ कर निरंजन, निर्गुण, अद्वय, श्रेष्ठ और विज्ञानमय परमपुरुष जो आप हैं उनके चरणोंकी शरणमें आया हूँ ॥ ५६ ॥ हे परमात्मा! इस संसारमें मैं अपरिमित समयसे कर्मोंके फलोंको भोगता हुआ पीड़ित हो रहा हूँ, बहुत कालसे उन कर्मफलरूप विषयवासनाओंसे सन्तप्त हो रहा हूँ, तथापि मेरे छः शत्रुओं (पाँच ज्ञानेन्द्रिय और छठा मन) की तृष्णा नहीं बुझती। इस प्रकार किसी प्रकार कहीं भी शान्ति न पाकर मैंने आपके सत्य, भयशून्य और शोकहीन चरणोंको अपना आश्रय बनाया है। ईश्वर! आपत्तिने मुझको घेर लिया है, मेरी रक्षा करो" ॥ ५७ ॥ भगवानूने कहा। "हे सार्व्वभौम महाराज! आपकी बुद्धि निर्म्मल और उच्च श्रेणीकी है, क्योंकि मैंने कई प्रकारसे आपको वरदानका लोभ दिखाया, तथापि विषयभोगकी ओर आपकी बुद्धि नहीं झुकी-अटल बनी रही ॥ ५८ ॥ आप सत्य जानना-मैंने आपको भटकानेके लिये यह वरदानका लोभ नहीं दिखाया था-किन्तु मैं आपकी परीक्षा ले रहा

था। मेरे जो एकान्त भक्त हैं उनकी शुद्ध बुद्धि कभी विषयभोगके लिये विचलित नहीं होती, चाहे वे विषयभोग उनके आगे भी उपस्थित कर दिये जाँय ॥ ५९ ॥ किन्तु हे राजन्! देखा जाता है कि जो निष्काम भक्त नहीं हैं उनका मन, प्राणायाम आदिके द्वारा मुझमें अभिनिविष्ट होने पर भी, विषयवासना क्षीण न होनेसे, कभी २ विषयोंकी ओर चलायमान हो जाता है ॥ ६० ॥ राजन्! आप मुझमें मन लगा कर इच्छानुसार जहाँ चाहे पृथ्वीपर्य्यटन करो। मुझ पर आपकी ऐसी ही अटल भक्ति बनी रहेगी। क्षत्रियधर्मके अनुसार आपने मृगया (शिकार) आदि अवसरों पर अनेकानेक प्राणियोंका वध किया है, सो अब मेरे आश्रित हो एकाग्र मनसे तप करके उस पापको नष्ट करो ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

जन्मन्यनन्तरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तमः ॥
भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥ ६३ ॥

राजन्! इस शरीरके छूटने पर तुम सब प्राणियोंके परम मित्र एक विप्रवर होगे और फिर केवलस्वरूप जो मैं हूँ उसको प्राप्त हो जाओगे ॥ ६३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तम अध्याय।

श्रीकृष्णके पास रुक्मिणीजीका दूतके द्वारा संदेश भेजना।

श्रीशुक उवाच—इत्थं सोऽनुगृहीतोऽङ्ग कृष्णेनेक्ष्वाकुनन्दनः ॥
तं परिक्रम्य संनम्य निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! इक्ष्वाकु-नन्दन मुचुकुन्दजीने भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार अनुग्रह पाकर उनको प्रदक्षिणापूर्वक प्रणाम किया और फिर वहाँसे चल कर कंदराके बाहर आये ॥ १ ॥ मुचुकुंदने बाहर आकर देखा कि सब मनुष्य, पशु, लता और वृक्ष क्षुद्रकलेवर होगये हैं। मुचुकुंदने इन लक्षणोंसे जान लिया कि अब कलियुग आगया, इस लिये वह उत्तर दिशाको चल दिये ॥ २ ॥ इस प्रकार राजा मुचुकुंद तपमें श्रद्धायुक्त, धीर, निःसंग और निःसंशय हो, कृष्णमें मन लगा कर गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे। वहाँ पर बद्रिकाश्रम नाम भगवान्का पवित्र धाम है, वहाँ भगवान् नर-नारायणका आश्रम है। राजा मुचुकुंद उसी आश्रममें गये। वहाँ सब द्वंद्व धर्मोंको दृढताके साथ सहते हुए शान्त भावसे तपके द्वारा हरिकी आराधना करने लगे ॥ ३ ॥४॥ राजन्! इधर यवनके मरने पर भगवान् कृष्णचन्द्र फिर मथुरामें आये एवं बची हुई यवनसेनाका संहार किया। कृष्णचन्द्रजी यवनोंकी लूटी हुई सम्पत्तिको मनुष्य, बैल आदि पर

लदाये हुए द्वारकापुरीको जानेके लिये उद्यत थे, इसी अवसर पर तेईस अक्षौहिणी सेना साथ लिये जरासन्ध फिर आ पहुँचा। भगवान् कृष्ण और बलभद्रजी दोनो भाई बड़े वेगसे आरही शत्रुसेनाको देख मनुष्योंके समान (जैसे कोई डर कर प्राण बचानेके लिये भागे उस प्रकार) वहाँसे भागे। यद्यपि भगवान् निर्भय हैं, तथापि जैसे कोई बहुत ही डर गया हो वैसे बहुत सा धन छोड़ कर पद्मपल्लव-तुल्य कोमल चरणारविन्दोंसे कई योजन तक भागते चले गये ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ महाबली मगधराज ईश्वरकी शक्तिको जानता न था, अतएव उनको भागते देख, रथ पर चढ़, सेनाको साथ ले, उनको पकड़नेके लिये पीछे चला ॥ ९ ॥ बहुत दूर दौड़नेके कारण विश्राम करनेके लिये दोनो भाई बहुत ऊँचे प्रवर्षण नाम पर्वत पर चढ़ गये। उस पर्वत पर भगवान् इन्द्र नित्य वर्षा करते हैं—इसीसे उसका नाम प्रवर्षण है ॥ १० ॥ जरासंधने बहुत देर तक उनके उतरनेकी अपेक्षा की, जब वे नहीं उतरे तो उनको पर्वतमें छिपा हुआ जान कर बहुत ढूँढा, परन्तु पता न लगा। उस समय जरासंधने पर्वतके चारो ओर लकड़ियाँ चुनवा कर उनमें आग लगा दी ॥ ११ ॥ जब उस पर उस अग्निसे वृक्ष जलने लगे तब कृष्ण बलभद्र दोनो भाई ग्यारह योजन ऊँचे पर्वतसे नीचे पृथ्वी पर फाँद पड़े ॥ १२ ॥ अपने अनुचरों सहित जरासंधने शत्रुको नहीं देख पाया और कृष्ण व बलदेव इस प्रकार अपनी द्वारकापुरीमें पहुँच गये; वह द्वारकापुरी समुद्रके भीतर थी—पुरीको चारो ओरसे खाईंकी भाँति समुद्र घेरे हुए था ॥ १३ ॥ जरासंधने समझा कि कृष्ण बलदेव दोनो भाई जल गये, [किन्तु यह मिथ्या था] अतएव वह सब सेना साथ लेकर प्रसन्नचित्त हो अपने राज्य मगधदेशको लौट गया ॥ १४ ॥ महाराज! "आनर्त्त देशके राजा श्रीमान् रैवतने ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार अपनी कन्या रेवतीका विवाह बलभद्रके साथ कर दिया" यह हम तुमसे पहलेही कह चुके हैं। अब कृष्णचंद्रके विवाहोंकी कथा सुनो। हे कुरुश्रेष्ठ! भगवान् गोविन्दने भी विदर्भनरेश भीष्मककी कन्या लक्ष्मीका अंशावतार श्रीरुक्मिणीजीसे विवाह किया। जैसे गरुड़जी देवतोंको हटा कर सुधा ले आये थे वैसेही स्वयम्वरमें सब लोगोंके आगे भगवान् भी शिशुपालके पक्षमें आये हुए शाल्व आदि राजोंका दर्प चूर्ण कर रुक्मिणीजीको हर लाये ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ राजा परीक्षित्ने शुकदेवजीसे कहा कि ब्रह्मन्! भगवान्ने राक्षस-विधिके अनुसार भीष्मककी कन्या चारुवदना रुक्मिणीसे विवाह किया, यह मैंने सुना। अब महातेजस्वी कृष्णचन्द्र जिस प्रकार शाल्व, जरासंध आदि राजोंके शिर पर पैर धर कर रुक्मिणीको हर लेगये, सो सब कथा विस्तारपूर्वक सुननेकी मेरी इच्छा है ॥ १८ ॥ १९ ॥ भगवन्! कृष्णचन्द्रकी कथाएँ पवित्र हैं। उनको सुननेसे पुण्य होता है। मधुर होनेके कारण वे कानोंको भली लगती हैं। उनको वारम्वार

सुनिये, चाहे जब सुनिये, वे नित्य नई जान पड़ेंगी । भला उन कथाओंके सुननेमें कौन ऊबेगा? कौन तृप्त हो जायगा? ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा । राजन्! महाबली और महातेजस्वी भीष्मक नाम विदर्भ देशके नरेश थे । उनके पाँच पुत्र और एक सुमुखी कन्या थी ॥ २१ ॥ रुक्मी सब पुत्रोंमें बड़ा था और रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश व रुक्ममाली उसके छोटे भाई थे, और सुशीला रुक्मिणी इनकी छोटी बहन थी ॥ २२ ॥ रुक्मिणीने घरमें आनेवाले लोगोंके मुखसे कृष्णचन्द्रके रूप, वीर्य्य, गुण और शोभा व सम्पत्तिकी प्रशंसा सुन कर मनमें निश्चय कर लिया कि श्रीकृष्ण ही मेरे योग्य पति हैं ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णने भी बुद्धि, लक्षण, उदारता, रूप, शील एवं गुणोंकी खानि रुक्मिणीको अपने योग्य जान कर उनसे विवाह करनेका दृढ़ विचार कर लिया ॥ २४ ॥ राजन्! रुक्मिणीके पिता, माता और बंधुओंकी भी यही इच्छा थी कि रुक्मिणीका विवाह कृष्णसे हो । वे कृष्णके साथ रुक्मिणीका विवाह पक्का करना चाहते थे, किन्तु कृष्णसे द्रोह करनेवाले रुक्मीने नहीं माना और इस विचारको पलट कर शिशुपालके साथ रुक्मिणीका विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की, एवं रुक्मिणीके साथ शिशुपालका सम्बन्ध पक्का भी कर लिया ॥ २५ ॥ मृगनयनी विदर्भराजकुमारी रुक्मिणी यह समाचार पाकर बहुत ही दुःखित और उदास हुईं एवं कुछ देर सोच कर उन्होने किसी विश्वस्त वृद्ध ब्राह्मणको पत्री देकर शीघ्र श्रीकृष्णचन्द्रके पास भेजा ॥ २६ ॥ वह-ब्राह्मण महाशय द्वारकापुरीमें पहुँच कर कृष्णचन्द्रके द्वार पर उपस्थित हुए । द्वार-पाल उनको भीतर लेगया । भीतर जाकर विप्रदेवने देखा कि भगवान् आदि-पुरुष सुवर्णके सिंहासन पर बैठे हुए हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्मण्यदेव कृष्णचन्द्रने जैसे ही उन ब्राह्मण महोदयको देखा वैसे ही सिंहासनसे उतर कर अपने हाथसे उनको आसन दिया और आदरपूर्वक बैठाया एवं देवता लोग जैसे उनकी पूजा करते हैं वैसे ही उन्होने विप्रदेवका पूजन किया ॥२८॥ तदनन्तर विप्रदेवने भोजन करके थोड़ी देर तक विश्राम किया । थोड़ी देर बाद सज्जनोंकी एकमात्र गति श्रीकृष्णजी ब्राह्मणके पास आये । भगवान् कृष्णचन्द्रने अपने सुकुमार करकमलोंसे ब्राह्मणके पैर दबाते २ धीर भावसे कहा कि "हे द्विजश्रेष्ठ! आपका मन सदा सन्तुष्ट रहता है? और वृद्धसम्मत सदाचार एवं धर्म्मका निर्वाह भी आप यथारीति करते रहते हैं? ॥ २९ ॥ ३० ॥ मैं आपसे सबसे पहले ये ही प्रश्न इस लिये करता हूँ कि यदि ब्राह्मण सब प्रकार सन्तुष्ट रह कर अपने धर्म्मसे भ्रष्ट न हो—अर्थात् अपने धर्म्मको न छोड़े और इसी प्रकार सनातन धर्म्मको पालन करते हुए अपने जीवनको बिता सके तो वह धर्म्म ही उसकी सब कामनाओंको पूर्ण करता है ॥ ३१ ॥ जो कोई वारम्वार अभिलषित पदार्थ पाकर भी असन्तुष्ट रहता है वह

इन्द्रपदवी भी पाकर सुखको या शान्तिको नहीं पासक्ता, क्योंकि उसके मनमें सन्तोषकी शीतल छाया नहीं है। और जो लोग सन्तुष्ट हैं वे अकिञ्चन होने पर भी सुखसे अपने जीवनको बिताते हैं। जो लोग स्वलाभ (आत्माके लाभ या स्वतः प्राप्त भोगों) में सन्तुष्ट रहते हैं, साधु (परोपकारी) हैं, सब प्राणियोंके परम बन्धु हैं, अहंकारशून्य और शान्त हैं— उन सब ब्राह्मणोंको शिर झुका कर मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ब्रह्मन्! आप सब कुशलपूर्वक अपने राजाके राज्यमें वास करते हैं? जिस राजाके राज्यमें सब प्रजाका भली भाँति पालन होता है और प्रजागण सुखपूर्वक रहते हैं वही राजा मुझको प्रिय है ॥३४॥ आप जिस कार्य्यके लिये जहाँसे समुद्रके पार इस दुर्गमें आये हैं सो यदि छिपाने योग्य न हो तो मुझसे कहिये। मैं आपका क्या कार्य्य सम्पन्न करूँ?" ॥ ३५ ॥ लीला करनेके लिये मायामानवशरीरधारी परमेश्वरने जब इस प्रकार प्रश्न किया तब विप्रदेवने, जिस लिये वह इतनी दूर आये थे, सो सब कह सुनाया। रुक्मिणीने एकान्तमें बैठ कर जो पत्रिका कृष्णचन्द्रको देनेके लिये लिखी थी, ब्राह्मणने लिफाफेसे निकाल कर, वह प्रेमका चिन्ह कृष्णचन्द्रको दिखाया एवं श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञाके अनुसार आप ही वह पत्रिका पढ़ने लगे ॥ ३६ ॥ **श्रीरुक्मिणीजी कहती हैं** कि हे अच्युत! हे त्रिभुवनसुन्दर! जो कानोंके द्वारा हृदयमें प्रवेश करके सुननेवालोंके अङ्गतापको शान्त करते हैं वे आपके सब गुण, और जो नेत्र रखनेवाले लोगोंकी दृष्टिका परम मुख्य लाभ वा फल है उस आपके रूपकी प्रशंसा सुन कर मेरा चित्त आप पर ऐसा आसक्त होगया है कि लोक-लज्जाका बंधन भी उसको नहीं रोक सक्ता ॥ ३७ ॥ हे मुकुन्द! कुल, शील, रूप, विद्या, अवस्था, द्रव्य–सम्पत्ति और प्रभावमें आप ही अपने तुल्य हैं। हे नर-श्रेष्ठ! आप मनुष्योंके मनको रमानेवाले हैं। हे पुरुषसिंह! विवाह-समय उपस्थित होने पर कौन कुलवती, गुणवती और बुद्धिमती कामिनी आपको अपना पति बनानेके लिये अभिलाषा न करेगी? ॥ ३८ ॥ विभो! इसी कारण मैंने आपको अपना पति मनसे मान लिया है एवं आपके हाथमें आत्मसमर्पण कर दिया है। अतएव आप यहाँ आकर अवश्य मुझको अपनी धर्म्मपत्नी बनाइये। हे कमल-नयन! सियार कहीं सिंहके भागको हर ले जासक्ता है? सो मैं भी चाहती हूँ कि शिशुपाल शीघ्र आकर, वीरवर जो आप हैं उनके भागको अर्थात् मुझको, लेजाना कैसा, हाथ भी न लगा सके ॥ ३९ ॥ यदि पूर्त्त (कुँआ आदि खुदवाना), इष्ट (अग्निहोत्रादि), दान, नियम, व्रत एवं देवता, ब्राह्मण और गुरुओंके पूजन आदिके द्वारा भगवान् परमेश्वरकी मैंने कुछ आराधना की है तो कृष्ण भग-वान् आकर मेरा पाणिग्रहण करें और दमघोषनन्दन (शिशुपाल) आदि अन्य राजा लोग मेरे हाथको हाथ न लगा सकें ॥ ४० ॥ हे अजित! परसों विवाहका दिन है; अतएव आप पहले ही गुप्तभावसे आजाइये। फिर पीछेसे आये हुए

यादवसेनापतियोंको साथ ले शिशुपाल और जरासंधकी सेनाको नष्ट भ्रष्ट करते हुए, बलपूर्वक, वीर्य्यरूप मूल्य देकर, राक्षसी विधिके अनुसार, मुझसे विवाह करिये—यही मेरी प्रार्थना है ॥ ४१ ॥ यदि आप कहिये कि तुम तो अन्तःपुरमें रहती हो, तुम्हारे बंधुओं (रुक्मी आदि) की हत्या बिना किये मैं कैसे तुम्हारे साथ विवाह कर सक्ता हूँ या तुमको हर लेजासक्ता हूँ? तो मैं आपको उसका एक उपाय बताती हूँ। हमारे कुलमें एक रीति सनातनसे चली आती है कि विवाहके पहले दिन कन्या कुलदेवी भवानीकी पूजा करनेके लिये बाहर मंदिरमें जाती है ॥ ४२ ॥ हे कमललोचन! उमापति शम्भुके समान महान् लोग, अपने अन्तःकरणका अज्ञान मेटनेके लिये जिस आपके चरणरजसे स्नान करनेकी प्रार्थना करते रहते हैं, मैं यदि उसी प्रसादको नहीं पासकी, तो निश्चय जानियेगा विवाह नहीं करूँगी और व्रतके द्वारा शरीरको दुर्बल बना कर प्राणत्याग कर दूँगी। सौ जन्मोंमें तो आपका प्रसाद प्राप्त होगा" ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण उवाच–इत्येते गुह्यसंदेशा यदुदेव मयाहृताः ॥
विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥ ४४ ॥

ब्राह्मणने कहा। हे यदुदेव! यह रुक्मिणीका गुप्त संदेश मैं आपके पास लाया हूँ; इस विषयमें जो करना चाहिये उस पर विचार कीजिये और शीघ्र ही उसे कार्यरूपमें परिणत कीजिये ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तम अध्याय।

रुक्मिणी–हरण।

श्रीशुक उवाच–वैदर्भ्याः स तु संदेशं निशम्य यदुनन्दनः ॥
प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं। राजन्! रुक्मिणीका संदेश सुन कर यदुनन्दन कृष्णचन्द्र, प्रेमपूर्वक ब्राह्मणका हाथ अपने हाथमें लेकर मंद २ मुसकाते हुए यों कहने लगे ॥१॥ श्रीभगवान्ने कहा। "भगवन्! जैसे रुक्मिणीका चित्त मुझमें आसक्त है वैसे ही मेरा भी मन उनमें लगा हुआ है। मुझे तो रातको नींद नहीं आती। यह भी मुझे विदित है कि रुक्मीने द्वेषभावसे मेरे विवाहको रोक दिया है और शिशुपालको बुलाया है ॥२॥ किन्तु मैंने भी निश्चय कर लिया है कि युद्धमें अधम क्षत्रियोंकी सेनाको मथ कर उसके बीचसे, काष्ठके भीतरसे अग्नि-शिखाके समान, उस

अपनेको एकान्तभावसे भजनेवाली अनिन्दिताङ्गी राजकुमारीको ले आऊँगा" ॥३॥ हे भरतनंदन! परसों रात्रिको रुक्मिणीका विवाह होगा, यह जान कर मधुसूदनने सारथी से कहा कि हे दारुक! शीघ्र रथको जोतो ॥ ४ ॥ दारुक भी उसी क्षण शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नाम चार घोड़े जोत कर रथ ले आया और हाथ जोड़ कर आगे खड़ा होगया ॥५॥ पहले कृष्णचन्द्र रथ पर चढ़े और फिर ब्राह्मणको चढ़ा लिया एवं द्रुतगामी घोड़ोंकी गतिके अनुसार एक ही रात्रिमें आनर्त्त देशसे विदर्भ देशमें पहुँच गये ॥ ६ ॥ इधर कुण्डिन देशके राजा भीष्मक, पुत्र-स्नेहके वशवर्त्ती हो कर शिशुपालको अपनी कन्या देनेके लिये उद्यत हो, विवाहके पहले जो कर्म्म किये जाते हैं उन्हे करानेलगे ॥ ७ ॥ नगरमें राजपथ, क्षुद्रपथ और चत्त्वर इत्त्यादि स्थान झाड़े वहारे गये और उनमें छिड़काव किया गया। अनेक रंगकी ध्वजा, पताका और तोरणोंसे नगर भलीभाँति सुसज्जित किया गया ॥ ८ ॥ नगरवासी नर और नारियोंने सुन्दर निर्मल वस्त्र पहने, चंदन लगाया, मालाएँ पहनीं, और आभूषणोंसे आभूषित हो कर परम शोभायमान हुए। श्रीसम्पन्न सब भवन, अगुरु और धूपके धूमसे सुवासित किये गये ॥ ९ ॥ राजन्! राजा भीष्मकने यथाविधि पितृगण और देवगणका पूजन किया, ब्राह्मणोंको भोजन कराया एवं उन ब्राह्मणोंके मुखसे नियमानुसार मङ्गलपाठ कराया ॥ १० ॥ सुन्दर दाँतोंवाली कन्या रुक्मिणीने भलीभाँति स्नान किया, तब उनके विवाह-सम्बन्धी सब मंगलकृत्त्य किये गये। फिर रुक्मिणीजीको नवीन अमूल्य विमल वस्त्र और महामूल्य उत्तम अलंकार पहनाये गये ॥११॥ सब श्रेष्ठ २ ब्राह्मणोंने ऋक्, यजुः और सामवेदकी ऋचाएँ पढ़ कर कन्याके रक्षाबन्धन किया। फिर अथर्ववेदके ज्ञाता पुरोहितने ग्रहशान्तिके लिये हवन किया ॥ १२ ॥ विधि जाननेवालोंमें श्रेष्ठ राजा भीष्मकने उस समय सुवर्ण, चाँदी, वस्त्र, तिल गुड़ और बहुत सी गौवें ब्राह्मणोंको दीं ॥ १३ ॥ इसी प्रकार चेदि देशके नरेश दमघोषने भी मंत्रज्ञ ब्राह्मणोंके द्वारा पुत्रके अभ्युदयके लिये सब समयोचित कृत्त्य कराये ॥ १४ ॥ तदनन्तर मद जिनके बह रहा है उन हाथियोंके झुंड, स्वर्णमालामंडित रथोंके दल एवं पैदल व अश्वसमूहसे सुशोभित सेनाको साथ लिये शिशुपालका पिता दमघोष कुंडिन-पुरमें आ पहुँचा ॥ १५ ॥ विदर्भ देशके राजा भीष्मकने आनंदपूर्वक अगवानी करके सबको, पहलेहीसे ठीक किये हुए एक घरमें जनवासा देकर, ठहराया और पूजन किया। दमघोषके साथ शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र, विदूरथ और पौंड्रक (मिथ्यावासुदेव) आदि अन्यान्य हजारों शिशुपालके मित्र एवं कृष्ण-बलभद्रसे द्वेष रखनेवाले राजा लोग, यह निश्चय करके कि "कृष्णचन्द्र यदि बलराम आदि यादवोंको साथ ले कर आवें और रुक्मिणीको हर ले जाना चाहें तो हम लोग मिल कर उनसे युद्ध करेंगे" वाहनों सहित सब सेना ले कर वहाँ आये ॥ १६ ॥

॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ भगवान् बलभद्रजी इस प्रकार शत्रुपक्षके राजोंका उद्यम (तैयारी) और श्रीकृष्णजी अकेले ही रुक्मिणीको हरनेके लिये गये हैं, यह जान कर, कलहकी शंकासे, भाईके स्नेहवश, गज, अश्व, रथ और पैदलोंसे परिपूर्ण बहुतसी चतुरंगिणी सेना साथ लेकर शीघ्रताके साथ कुण्डिनपुरको गये ॥२०॥२१॥ इधर सर्व्वाङ्गसुन्दरी भीष्मककन्या रुक्मिणीजी हरिके आनेके लिये बहुत ही उत्सुक हुईं। सूर्योदय होने पर था, परन्तु तब तक ब्राह्मण लौट कर नहीं आये, यह देख कर रुक्मिणीजी इस प्रकार चिन्ता करने लगीं कि "अहो! रात बीत गई, सबेरे मुझ मन्दभागिनीके विवाहका दिन है; किन्तु कमललोचन कृष्ण अभी तक नहीं आये, इसका कुछ कारण मुझको नहीं जान पड़ता। मेरा संदेश ले जानेवाला ब्राह्मण भी अब तक नहीं फिरा। अनिन्दितात्मा कृष्णचन्द्रने क्या मुझमें कोई निन्दनीय बात देखी है? इसी लिये क्या मेरे पाणिग्रहणका उद्योग करके नहीं आते? अथवा भगवान् विधाता और महेश्वर मुझ अभागिनीके प्रतिकूल हैं? गिरितनया सती रुद्राणी गौरी देवी भी क्या मेरे अनुकूल नहीं हैं?" गोविन्दने जिनके चित्तको हर लिया है वह समयको जाननेवाली बाला रुक्मिणीजी, आँसू जिनमें भरे हैं उन नेत्रोंको मूँद कर संकटमोचन हरिका ध्यान करनेलगीं। राजन्! इस प्रकार नववधू होनेवाली रुक्मिणीजी गोविन्दके आनेकी प्रतीक्षा कर ही रही थीं कि उनकी बाईं ऊरू, भुजा और नेत्र आदि अंग भावी प्रिय की सूचना देते हुए फड़क उठे। तदनन्तर कृष्णके पास भेजे हुए वही ब्राह्मण महाशय कृष्णकी अनुमतिसे रुक्मिणीके पास अन्तःपुरमें आये। अन्तःपुरमें आ कर उन्होने राजकुमारी रुक्मिणीसे साक्षात् किया ॥ २२ ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ सती, लक्षणोंको जाननेवाली राजकुमारीने उनका प्रफुल्लित मुख और देहका आकार अव्यग्र देख कर जान लिया कि कार्य्य सिद्ध होगया। तब मंद मुसकाती हुई रुक्मिणीने विप्रदेवसे पूछा कि कहिये, क्या समाचार हैं? विप्रदेवने रुक्मिणीसे कहा कि कृष्णचन्द्र मेरे साथ कुंडिनपुरमें आगये हैं, और उन्होने तुमको हर ले जानेके लिये प्रण भी किया है। कृष्णचन्द्र आ गये हैं, यह समाचार पाकर रुक्मिणीजीको अपार आनन्द हुआ; उन्होने उस समय इस उपकारके बदलेमें देने योग्य कोई वस्तु न देख कर केवल प्रणामसे विप्रदेवको प्रसन्न किया, और प्रणामके उपरान्त बहुत सा धन भी उनको दिया। विदर्भराज भीष्मकने जब सुना कि हमारी कन्याके विवाहका उत्सव देखनेके लिये कृष्ण और बलदेव आये हैं तब उनको बहुत ही आनन्द हुआ। वह पूजाकी सामग्री लेकर उनकी अभ्यर्थना करनेके लिये चले; आगे २ नगाड़े और ढोल बजते जाते थे। आगेसे जा कर भीष्मकने कृष्ण बलदेवकी अगवानी ली एवं मधुपर्क, निर्म्मल वस्त्र और प्रार्थनीय सामग्री आदि दे कर सत्कारपूर्वक उनका

पूजन किया। महामति राजाने, सैन्य व अनुचरगणसहित आये हुए उन दोनो यदुवीरोंके रहनेके लिये एक स्थान दिया और भली भाँति यथाविधि उनका आतिथ्य सत्कार (पहुनाई) किया। राजाने इस प्रकार अपने यहाँ विवाहके निमन्त्रणमें आये सब राजोंका, उनके बल, वित्त, अवस्था, वीर्य्य आदिके अनुसार, सब प्रकार चितचाही, मुहमाँगी वस्तुएँ देकर, सत्कार और पूजन किया। कृष्णचंद्र आये हैं, यह सुन कर विदर्भपुरमें रहनेवाले लोग उनके निकट आये और नेत्ररूप अंजलियोंसे उनके मुखकमलकी सुधाको पीनेलगे। सब लोग कहने लगे कि रुक्मिणी इन्हींकी स्त्री होने योग्य है, उसके योग्य अनिन्दितात्मा कृष्णचन्द्रही एक वर हैं, हमारी समझमें और कामिनी इनकी स्त्री होने योग्य नहीं है। हमने यदि कुछ भी सुकृत किया हो तो त्रिलोकके विधाता अच्युत भगवान् ऐसा कुछ करें कि यही मनमोहन कृष्ण रुक्मिणीका पाणिग्रहण करें ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इधर प्रेमके आँसू बहाते हुए पुरवासी लोग इस प्रकार कह रहे थे, उधर इसी अवसरमें सैनिकोंके बीचमें घिरी हुई कन्या रुक्मिणीजी सुरक्षित हो कर पैदलही अन्तःपुरसे भवानीके पादपद्म देखनेके लिये मंदिरको चलीं। उस समय रुक्मिणीजी मौनव्रत धारण किये सखीगण और माता आदि बड़ी बूढ़ी स्त्रियोंके साथ मनमें भली भाँति मुकुन्द भगवान्‌के चरणकमलोंका ध्यान करती हुई जा रही थीं। चारो ओरसे कवचधारी, खुले हुए शस्त्र हाथमें लिये बड़े २ वीर राजभट घेरे हुए उनकी रक्षा कर रहे थे। रुक्मिणीजी जब अम्बिकाके मन्दिरको चलीं तब मृदंग, शंख, पणव, तूर्य्य, भेरी आदि मांगलिक बाजे बजने लगे। हजारों वारवधू अनेक प्रकारके उपहार और भेंटें लिये और भली भाँति विभूषित ब्राह्मणियाँ हाथोंमें माला, चन्दन, वस्त्र, आभूषण आदि लिये राजपुत्रीके साथ चलीं। गानेवाले और बाजे बजानेवाले लोग गाते बजाते हुए एवं सूत, मागध, बंदीजन प्रशंसा करते हुए नववधूको चारो ओरसे घेर कर चले। देवभवनमें पहुँच कर राजपुत्रीने अपने हाथ और पैर धोये एवं आचमन करके पवित्र होकर शान्त भावसे मंदिरमें प्रवेश कर अम्बिकाके निकट गईं। विधिको जाननेवाली वृद्धा ब्राह्मणियोंने रुक्मिणीसे शिवसहित शिवकी धर्म्मपत्नी भवानीको प्रणाम कराया। रुक्मिणीने अम्बिकाको प्रणाम करके कहा कि—"हे अम्बिका देवी! अपने सन्तान गणेशादिसे युक्त जो कल्याणकारिणी आप हैं उनको मैं प्रणाम करती हूँ। श्रीकृष्ण भगवान् मेरे पति हों—इस मेरी कामनाका आप अनुमोदन करिये"। कुमारीने जल, चंदन, अक्षत, धूप, वस्त्र, माला, आभूषण और दीपक आदि पूजाकी सामग्रियोंसे शिव-शिवाका पूजन किया। सधवा ब्राह्मणियोंने भी उक्त सामग्रीसे एवं, नमकीन पुए, मीठे पुए, पान, कण्ठसूत्र, फल, ईख आदिसे देवी और महादेवका

पूजन किया। तदनन्तर उन वृद्धा स्त्रियोंने देवीका चढ़ा हुआ प्रसाद देकर रुक्मिणीजीको अमोघ आशीर्व्वाद दिये। रुक्मिणीने देवीजीको और उन स्त्रियोंको प्रणाम किया। इस प्रकार प्रसाद व आशीर्वाद लेकर रुक्मिणीजीने मौन–व्रतको त्याग किया और रत्नजटित अँगूठीसे सुशोभित हाथसे दासीका हाथ पकड़ कर अंबिकाके भवनसे बाहर निकलीं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ रुक्मिणीजी देवमायाके समान बड़े २ धीर वीर व्यक्तियोंको अपने रूपसे मोहित करनेवाली थीं। उनकी परम सुन्दर कमर अत्यन्त सूक्ष्म थी, उनका मुखकमल अमल कुंडलोंकी झलक पड़नेसे अपूर्व शोभासे युक्त था। उनकी सोलह वर्षकी युवा अवस्था जितेन्द्रियोंके भी चित्तको डिगा देनेवाली थी। नितंबों पर रत्नजटित सुवर्णकी करधनी पड़ी हुई थी। उभर रहे कुच दुपट्टेमें झलक रहे थे, अलकें खुली थीं और वह शंकायुक्त चञ्चल दृष्टिसे इधर उधर देखती जाती थीं। उनकी मंद मुसकान महा मनोहर थी। बिंब (कुँदरू) फलके सदृश अधरकी अरुण द्युतिसे उनके कुन्दकलिका से उज्ज्वल दशन लाल देख पड़ते थे। वह कलहंसके समान मंदगतिसे पैदल जा रही थीं। उस समय उनके चरण, शोभायुक्त शब्दायमान नूपुरोंकी आभासे अत्यन्त सुन्दर जान पड़ते थे। देवी रुक्मिणीकी ऐसी अपूर्व छवि निहार कर, उद्दीपित कामकी पीड़ासे, रक्षा करनेके लिये आये अनेक युद्धोंमें जय पाये हुए यशस्वी वीर योद्धागण मोहित हो पड़े। रुक्मिणीने अश्व, रथ, गज आदि पर चढ़े हुए उन राजा लोगोंके चित्त अपनी उदार हँसी और लजीली चितवनसे चुरा लिये। वे लोग ऐसे मोहित हो कर एकटक रुक्मिणीकी ओर देखने लगे कि उनके हाथोंसे अस्त्र-शस्त्र गिर पड़े और उन्होने नहीं जाना। चलनेके मिससे हरिको अपनी शोभा दिखला रही रुक्मिणीकी छवि देख, सब साथके वीर योद्धा अचेत हो २ कर पृथ्वीपर गिरने लगे। कृष्णचन्द्रके आनेकी राह देखती हुई रुक्मिणीजी धीरे २ चंचल कमलकोपतुल्य चरणोंको धीरे २ उठा कर रखती हुई जा रही थीं। इसी अवसरमें भगवती रुक्मिणीने बाएँ हाथसे बिखरी हुई अलकोंको सँवारकर (मुख परसे हटाकर) साथ आये हुए राजोंकी ओर लज्जापूर्ण कटाक्षपात करते हुए देख दिया। उसी समय राजकुमारीको एक ओरसे आते हुए कृष्णचन्द्र भी देख पड़े। महाराज! राजकुमारी रथ पर चढ़ना चाहती थीं, इतनेहीमें माधव कृष्णचन्द्र बरावर आगये और शत्रुओंके आगे ही गरुड़चिन्हयुक्त रथ पर फुर्त्तीसे रुक्मिणीको चढ़ा कर चल दिये। जिन क्षत्रियोंने पीछा भी करना चाहा उनको कृष्णने वहीं ठंढा कर दिया। भगवान् कृष्णचन्द्र, जैसे सियारोंके बीचसे सिंह अपने भागको वलपूर्व्वक ले जाता है उस प्रकार बलभद्र आदि यादवोंके साथ आ कर रुक्मिणीजीको हर लेगये और रक्षा करनेवाले राजा लोग मुह ताकते ही रह गये, उनसे कुछ करते न बन पड़ा ॥५१॥५२॥५३॥५४॥५५॥५६॥

तं मानिनः स्वाभिभवं यशःक्षयं परे जरासंधवशा न सेहिरे ॥
अहो धिगस्मान्यश आत्तधन्वनां गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ५७

उस समय जरासंध आदि मानी राजालोग इस अपनी पराजय और यशके क्षयको न सहसके एवं आक्रोशपूर्व्वक कहने लगे कि हम लोगोंको धिक्कार है! जैसे मृगगण सिंहोंके भागको उनके सामनेसे ले जायँ वैसे ही आज गोपगण धनुषधारियोंके आगे आ कर हमारे यशको कन्याके साथ हर लेगये!! ॥ ५७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशत्तम अध्याय।

रुक्मिणीका विवाह।

श्रीशुक उवाच—इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः ॥
स्वैः स्वैर्बलैः पराक्रान्ता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! सब राजालोग इस प्रकारके वचन कहते हुए अत्यन्त क्रोधपूर्वक कवच धारण कर अपने २ वाहनों पर सवार हुए एवं अपनी २ सेना साथ लेकर धनुष हाथमें ले कृष्णचन्द्रके पीछे चले ॥ १ ॥ उनको अपनी ओर आते देख यादवसेनाके यूथप योद्धा लोग पलट कर खड़े हो, अपने २ धनुष चढ़ा कर प्रत्यञ्चाका शब्द करने लगे ॥ २ ॥ घोड़े और हाथियोंकी पीठों पर बैठे हुए अस्त्र शस्त्र चलानेमें चतुर राजा लोग, मेघ जैसे पर्वतों पर बड़े २ बूँदोंसे जलकी वर्षा करते हैं वैसे ही यादवोंकी सेना पर निरन्तर वाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३ ॥ अपने स्वामीकी सेनाको वाणवर्षामें छिपते देख कर सुन्दर कमरवाली राजकुमारीने लज्जापूर्व्वक भयसे विह्वल हो रहे नेत्र उठा कर कृष्णचन्द्रकी ओर देखा ॥ ४ ॥ रुक्मिणीकी दशा देख कर भगवान् हँसे और कहने लगे कि "हे सुन्दर नयनवाली सुन्दरी! भय न करो। इसी समय तुम्हारी सेना (यादवलोग) शत्रुओंकी सेनाका संहार करेगी—इसमें कोई सन्देह नहीं है" ॥ ५ ॥ इधर गद, सङ्कर्षण आदि वीर यादवगण अपने शत्रुओंके विक्रमको न सह सके, अतएव शत्रुसेनाके घोड़े हाथी और रथों पर नाराच वाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ६ ॥ उस समय रथ, अश्व और हाथियों पर बैठे हुए योद्धा लोगोंके करोड़ों कुण्डल, किरीट (कलँगी) और पगड़ियोंसे शोभित शिर एवं खड्ग, गदा व धनुष युक्त हाथ, कलाइयाँ, ऊरू तथा पैर कट २ कर युद्धभूमिमें गिरने लगे। ऐसे ही घोड़े, खच्चर, हाथी, ऊँट, गधे और पैदलोंके भी शिर कट २ कर पृथ्वी पर

गिरनेलगे ॥ ७ ॥ ८ ॥ जयकी इच्छा रखनेवाले यादवगण जब इस प्रकार सामन्तों सहित शत्रुसेनाका संहार करनेलगे तब जरासंध आदि राजालोग विमुख हो कर युद्धभूमिसे भागे ॥ ९ ॥ जिसकी स्त्री छिन गई हो उस पुरुषके समान शोकसे कातर होनेके कारण जिसका मुख सूख रहा है उस प्रभा और प्रभावसे हीन, उत्साहशून्य, हतबुद्धि शिशुपालके निकट आ कर समरसे भागे हुए उक्त जरासंध आदि राजालोग यों कहकर समझाने लगे कि हे पुरुषसिंह! तुम क्यों इतना उदास होते हो? इस उदासीको छोड़ो। राजन्! देखा जाता है कि प्राणियोंको कोई प्रिय या अप्रिय विषय स्थायी रूपसे नहीं प्राप्त होता। कभी अपने चित्तकी प्रिय बात होती है और कभी अपनी इच्छाके विरुद्ध अप्रिय बात होती है, यह चक्र चलता ही रहता है ॥ १० ॥ ११ ॥ जैसे नचानेवाले(जादूगर)की इच्छाके अनुसार कठपुतली नाचती है वैसे ही यह देहधारी जीव ईशके वशमें रह कर सुख और दुःखकी चेष्टा (पुण्य, पाप) करता है एवं सुख और दुःख पाता है। जरासन्ध कहता है, देखो मैं तेईस २ अक्षौहिणी सेना लेकर कृष्णसे युद्ध करनेके लिये सत्रह वार गया और वरावर हारता रहा। अन्तमें अट्ठारहवीं वार मैंने उसको भगा दिया और विजयको प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ १३ ॥ तथापि देखो, मैं न कभी अपनी हार पर शोक करता हूँ और न अपनी जीत पर हर्ष मनाता हूँ; मैं जानता हूँ कि दैवके द्वारा प्रेरित वहुत ही प्रबल एवं अटल 'काल' इस जगत्को भलाई बुराई और सुख-दुःख देता है ॥ १४ ॥ इस समय भी श्रेष्ठ वीरोंमें श्रेष्ठ हम लोग, कृष्ण जिनका पालन करनेवाला है उन थोड़े से यादवोंसे हार गये ॥ १५ ॥ किन्तु इसका शोच व्यर्थ है। यह समय हमारे शत्रुओंके अनुकूल है, इस लिये उन्होने हमको जीत लिया; जब समय हमारे अनुकूल होगा तव हम उनको जीतलेंगे ॥ १६ ॥ मित्रगणके इस प्रकार आश्वास देने पर शिशुपाल अनुचरोंसहित अपने पुरको लौट गया और मरनेसे बचे हुए राजा लोग भी अपने २ नगरोंको चले गये ॥ १७ ॥ राजन्! श्रीकृष्णद्रोही बलवान् रुक्मी अपनी वहनके हर लेजानेका समाचार पाकर उसको नहीं सह सका। उसने उसी समय अत्यन्त कुपित होकर कवच पहना और धनुष हाथमें लिया एवं सब राजोंके आगे प्रतिज्ञा की कि "समरमें कृष्णको विना मारे और विना रुक्मिणीको लौटा कर लाये मैं कुंडिनपुरमें नहीं प्रवेश करूँगा-यह मैं आप लोगोंसे सत्य कहता हूँ" ॥१८॥१९॥२०॥ यों प्रतिज्ञा करके रुक्मीने रथमें चढ़ कर सारथीसे कहा कि जिधर कृष्ण है उधर ही घोड़ोंको हाँक कर रथ लेचल, उससे मैं युद्ध करूँगा। अत्यन्त दुर्बुद्धि गोपाल जिस अपने वलके घमंडसे वलपूर्व्वक मेरी वहनको हर लेगया है, आज मैं इन तीक्ष्ण वाणोंसे उसके उस घमंडको मिटाऊँगा ॥२१॥२२॥ ईश्वरकी महिमा और शक्तिको न जाननेवाला कुबुद्धि रुक्मी इस प्रकार

बकता हुआ अकेले अपना रथ दौड़वा कर कृष्णके निकट पहुँचा और कोपपूर्वक "खड़ा रह, खड़ा रह" कहने लगा। फिर रुक्मीने धनुष चढ़ा कर कृष्णके तीन वाण मारे और कहा कि—"रे यदुकुलदूषण! क्षण भर ठहर जा; कौआ जैसे घृतको ले भागे उस भाँति मेरी बहनको चुरा कर कहाँ लिये भागा जाता है? हे मंद! तू बड़ा मायावी है, आज मैं तेरे घमंडको मिटा दूँगा। तू कपटयुद्धमें बड़ा निपुण है। कन्या देकर, अपने प्राण लेकर भाग जा, नहीं तो अभी मेरे वाणोंके प्रहारसे प्राणहीन होकर शीघ्र ही पृथ्वी पर सोवेगा"। रुक्मीके दुर्वचन सुन-कर कृष्णचन्द्र मुसकाये और उन्होने रुक्मीका धनुष काटकर छः वाण उसके शरीरमें मारे। कृष्णचन्द्रने आठ वाणोंसे उसके रथके चारो घोड़े मारडाले और दो वाणोंसे सारथीको मारडाला एवं तीन वाणोंसे ध्वजा काट डाली। रुक्मीने दूसरा धनुष लेकर कृष्णचन्द्रके पाँच वाण मारे। उन बहुतसे वाणोंका प्रहार सह कर कृष्णचन्द्रने दूसरा भी धनुष काट डाला। रुक्मीने और धनुष लिया, कृष्ण भगवा-न्ने वह भी काट डाला॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ परिघ, पट्टिश, त्रिशूल, ढाल–तर्वार, शक्ति और तोमर आदि जो २ शस्त्र रुक्मीने हाथमें लिया उसको कृष्णचन्द्रने फुर्तीसे काट डाला॥२९॥ तब रुक्मी खड्ग हाथमें लेकर मार-नेकी इच्छासे रथसे पृथ्वी पर फाँद पड़ा और जैसे जलनेके लिये पावक पर पतङ्ग आक्रमण करता है वैसे कृष्णकी ओर झपटा॥ ३०॥ कृष्णचन्द्रने उसके खड्ग और ढालको बीचमें ही तिल २ करके काट डाला। फिर कृष्णचन्द्रने रुक्मीको पकड़ लिया और तीक्ष्ण तर्वार लेकर उसको मारनेके लिये उद्यत हुए॥ ३१ ॥ अपने भाईके वधका उद्योग देख कर सती रुक्मिणीजी भयसे विह्वल हो पतिके पैरों पर गिर पड़ीं और इस प्रकार दीन वचन कहने लगीं कि हे योगेश्वर! आपकी शक्ति या स्वरूप अप्रमेय है। हे देवदेव हे जगत्के स्वामी! हे कल्याणरूप! हे महाबाहो! मेरे भाईका वध करना आपको उचित नहीं है॥३२॥३३॥ श्रीशुक-देवजी कहते हैं कि राजन्! उस समय भयके कारण रुक्मिणीजीके शरीरमें कँपकँपी सी चढ़ी थी और शोकके वेगसे मुख सूख रहा था एवं आँसुओंसे गला रुँध गया था। कातरताके कारण उनके गलेसे सुवर्णकी माला गिरपड़ी। इस दशासे जब रुक्मिणीने पैर पकड़ कर प्रार्थना की तब दयासिन्धु कृष्णचन्द्र उसके वधसे निवृत्त हुए, किन्तु योंही नहीं छोड़ दिया। कृष्णने दुर्वचन कहनेवाले अपकारी रुक्मीको दुपट्टेसे रथके पीछे बाँध दिया और उसकी दाढ़ी, मूछ और शिरके केश स्थान २ पर थोड़े २ छोड़ कर सब उड़ादिये। इधर कृष्णने रुक्मीको इस प्रकार विरूप कर दिया, उधर श्रेष्ठ वीर यादवगण, हाथी जैसे नलिनीवनको रौंद कर उसका सत्यानाश कर दें वैसे ही उद्धत शत्रुसेनादलको दलमल कर गरजने लगे॥ ३४ ॥ ३५ ॥ यादवलोग शत्रुसेनाको नष्ट करके निकट आये, और उन्होने वहाँ आकर हतप्राय

(अधमरे) रुक्मीको पूर्वोक्त दशामें देखा। दयालु विभु बलदेवजीको दया आगई, उन्होने रुक्मीको बंधनसे खोल दिया और कृष्णसे कहा कि कृष्ण! यह तुमने बुरा किया, अपने बन्धुकी दाढ़ी मूछ मूड़कर उसको विरूप बनाना हम लोगोंके लिये निन्दाकी बात है, यह वधके समान दण्ड है। हे साध्वी रुक्मिणी! भाईका रूप बिगाड़नेकी बात सोचकर तुम हम पर रोष न करना। कोई किसीको सुख या दुःख नहीं पहुँचा सक्ता, क्योंकि सब लोग अपने २ कर्म्मोंका फल पाते हैं। कृष्ण! बन्धुने चाहे मार डालने योग्य कोई अपराध किया हो तो भी उसका वध करना उचित नहीं है। उसको छोड़ ही देना चाहिये। क्योंकि वह अपने दोषसे आप ही मर जाता है, तब मरेको क्या मारना?। हे रुक्मिणी! प्रजापतिने क्षत्रियोंके लिये ऐसा ही धर्म्म नियत किया है, इसके अनुसार भाई भाईको भी मार डालताहै। यह अति उग्र धर्म्म है, तथापि हमारा इसमें अपराध नहीं है ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ जो लोग ऐश्वर्य्यमदमें अंधे हो रहे हैं वे राज्य, लक्ष्मी, भूमि, धन, तेज, मान वा अन्य कारणोंसे मानी लोगोंका तिरस्कार (या तिरस्कारकी चेष्टा) करते हैं ॥ ४१ ॥ तुम्हारे जो भाई, सर्वदा सब प्राणियोंका अप्रिय-अनिष्ट किया करते हैं, तुम अज्ञ व्यक्तियोंकी भाँति उन्हीके मंगलकी कामना करती रहती हो; सुतराम् तुम्हारी यह बुद्धि विषम है, क्योंकि वही उन लोगोंके लिये अमङ्गल है ॥ ४२ ॥ "यह मित्र है, यह शत्रु है, यह उदासीन है" इस प्रकारका मोह देहात्मवादी (देहहीको आत्मा माननेवाले) लोगोंके आत्माको ईश्वरकी मायाके कारण रहता है। सब देहधारियोंका आत्मा एकमात्र विशुद्ध है। सब मूढ़ व्यक्ति जलमें चन्द्र और घटादि पदार्थोंमें आकाशकी भाँति उस एक आत्माके विषयमें अनेक-कल्पना करते हैं। यह देह, आदि और अन्तसे युक्त है। अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवात्मक यह (लिंग) शरीर आत्मामें अविद्याके द्वारा कल्पित है। यही (लिंग) शरीर देहधारी जीवको जन्म-मरणके चक्रमें डालता है ॥४३॥४४॥४५॥ जैसे सूर्य्यसे चक्षु इन्द्रिय और रूपका प्रकाश होता है वैसे ही आत्मासे उक्त अधिभूत आदिका प्रकाश होता है। अतएव अधिभूत आदिक असत् हैं, सुतराम् उनके साथ आत्माका न संयोग है और न वियोग है ॥ ४६ ॥ जन्म-आदि, देहके ही विकार (रूपान्तर) हैं, आत्माके कभी नहीं। जैसे चन्द्रमाका स्वयं जन्म (उदय) मरण (अस्त होना) नहीं है, उसकी कलाएँ ही प्रकाशित और नष्ट होती हैं, वैसे ही आत्माके भी जन्मादि नहीं हैं; आत्माका मरण अमावास्याकी भाँति है ॥ ४७ ॥ जैसे निद्रित व्यक्ति मिथ्या विषयोंमें भोक्ता, भोग्य और भोगका अनुभव करता है वैसेही अज्ञव्यक्ति संसार-भोग करते हैं ॥ ४८ ॥ इस कारण हे शुचिस्मिते! आत्माको कष्ट और मोहमें फँसानेवाले इस अज्ञानजनित शोकको उक्त तत्त्वज्ञानसे दूर करके, तुम स्वस्थ हो कर धैर्य्य धारण करो ॥ ४९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि राजन्! क्षीणअंगवाली सुन्दरी रुक्मिणीने भगवान् बलरामके इस प्रकार प्रबोध देने पर वैमनस्यको छोड़दिया और शुद्ध बुद्धिसे मनको स्थिर किया ॥ ५० ॥ कृष्णके हाथों रुक्मीका बल और प्रभाव नष्ट हो गया, उसके केवल प्राण बच गये और मनोरथ नहीं पूर्ण हुआ। उसको भगवान्ने छोड़ दिया, तब उसने वहाँसे चलकर, रहनेके लिये, राहमें एक भोजकट नाम बड़ा भारी पुर बसाया। उसने युद्धमें जाते समय क्रोधसे प्रतिज्ञा की थी कि "मैं दुर्बुद्धि कृष्णको बिना मारे और बिना अपनी छोटी बहनको लौटाकर लाये कुंडिनपुरमें नहीं आऊँगा," उसी प्रतिज्ञाको पालता हुआ वह नवीन बसाये हुए भोजकटमें निवास करने लगा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! भगवान् कृष्ण, राजोंको इस प्रकार जीतकर रुक्मिणीजीको द्वारकापुरीमें लेगये और वहाँ उन्होने राजकुमारीके साथ विधिपूर्व्वक विवाह किया ॥ ५३ ॥ राजन्! उस समय यदुपति कृष्णके अनन्यप्रेमी यादवोंके घरोंमें महामहोत्सव होने लगे ॥ ५४ ॥ सुमार्जित मणिमय कुण्डल धारण किये हुए महा आनन्दित नरनारीगण, विचित्र बैवाहिक वस्त्र धारण किये हुए वर और वधूको देनेके लिये, अनेक प्रकारके बहुमूल्य उपहारकी सामग्रियाँ लाये ॥ ५५ ॥ उठायेगये इन्द्रध्वज (बड़े २ झंडे, जो उत्सवोंके अवसर पर ही खड़े किये जाते हैं), विचित्र माला, वस्त्र और रत्नोंसे रचित कृत्रिम तोरण आदिसे यदुपुरी सुसज्जित की गई। हर एक द्वार पर धरे हुए खील, दूबके अंकुर, फूल और पल्लव आदि माङ्गलिक द्रव्य एवं पूर्ण कलश, अगुरु, धूप व दीप इत्यादिसे पुरीकी अत्यन्त शोभा हुई ॥ ५६ ॥ निमन्त्रणमें आये हुए प्रिय इष्ट मित्र राजा लोगोंके हाथियोंके मदसे ही यदुपुरीके मार्गोंमें छिड़काव सा होगया। प्रत्येक द्वार पर खड़े किये गये सुपारीके गुच्छोंसे युक्त केलेके वृक्षोंसे पुरीकी शोभा चौगुनी होगई ॥ ५७ ॥ पुरीमें कुरु, संजय, कैकय, विदर्भ, यदु और कुन्ति आदि वंशोंके लोग उत्सुकताके कारण चारो ओर दौड़ २ कर अपने इष्ट, मित्र, बन्धुओंसे मिलते और परस्पर प्रसन्न होते थे॥५८॥ इधर उधर गाये जारहे रुक्मिणीहरणके वृत्तान्तको सुन कर राजालोग और राजकुमारियाँ व राजकुमार अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ५९ ॥

द्वारकायामभूद्राजन्महामोदः पुरौकसाम् ॥
रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ॥ ६०

राजन्! द्वारकामें श्रीकृष्णको, लक्ष्मीका अवतार जो रुक्मिणी हैं उनसे मिलते देख कर पुरवासियोंको परम आनन्द हुआ ॥ ६० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तम अध्याय।

प्रद्युम्नका जन्म व शम्बरासुरका वध।

श्रीशुक उवाच—कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग्रुद्रमन्युना॥
देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत॥ १॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! वासुदेव जिसके अधिष्ठाता हैं उस चित्तमें उत्पन्न होनेके कारण वासुदेवका अंश कामदेव, पहले रुद्रके कोपानलमें जल गये थे, उन्होने फिर देह पानेके लिये उन्हीं वासुदेवका आश्रय लिया॥ १॥ वही कामदेव श्रीकृष्णके वीर्य्य द्वारा रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न होकर "प्रद्युम्न" इस नामसे विख्यात हुए। प्रद्युम्नजी किसी बातमें अपने पिता कृष्णसे कम नहीं थे॥ २॥ कामरूपी शम्बर दैत्य प्रद्युम्नको अपना पूर्वशत्रु (कामदेव) जान कर बाल्यकालमें—दाँत भी न निकले थे—उसी समय सूतिकागृहसे उठा लेगया और उनको सागरमें फेंक कर अपने घर चला गया॥ ३॥ एक बलवान् मत्स्यने बालक प्रद्युम्नको निगल लिया। वह मत्स्य भी और मत्स्योंके साथ मछली पकड़नेवालोंके जालमें फँस गया॥ ४॥ धीमर लोग उस बड़े मत्स्यको राजाके योग्य भेंट समझ कर शंबरके निकट लेगये। शम्बरासुरके रसोंइये लोग भोजनागारमें उस बहुत बड़े विचित्र मत्स्यको लेगये। उन्होने वहाँ ले जा कर शस्त्रसे उस मत्स्यका पेट फाड़ा॥ ५॥ उस मत्स्यके उदरमें एक बहुत ही सुन्दर नरबालकको पा कर उन रसोंइयोंने आश्चर्य्य किया और फिर उस बालकको ले जा कर मायावती को दिया। मायावती भी उस बालकको देख कर चकित और शंकित हुई कि मछलीके पेटसे मनुष्यका बालक कैसे उत्पन्न हो सक्ता है? अथवा मछलीके निगल लेने पर उसके पेटमें कैसे जीता रह सक्ता है? इसी अवसरमें महर्षि नारदने जाकर उस बालकका तत्त्व, अर्थात् उसके विषयमें जानने योग्य सब बातें, उसकी उत्पत्ति और सागरमें गिर कर मछलीके पेटमें जाना आदि सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजन्! वह तो कामदेवकी पतिव्रता पत्नी रति थी; शिवके कोपानलमें जले हुए पतिके फिर देह धारण करनेकी प्रतीक्षा कर रही थी। शम्बरासुरने उसको अपने यहाँ रसोंई करने व उसकी देखरेख रखनेके लिये रक्खा था। रतिने जब जाना कि वह बालक और कोई नहीं साक्षात् उसीके पति कामदेव हैं, तब वह परम प्रेमसे उनका पालन पोषण और रक्षा करने लगी। थोड़े ही समयमें श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नजी जवान हुए। प्रद्युम्नजीका रूप ऐसा सुन्दर था कि उसे देखनेवाली स्त्रियाँ मनको अपने वशमें नहीं रखसक्ती थीं। देवी रति सुरतिको उद्दीस करनेवाले सलज्ज भावसे मंद २ मुसकाती हुई उन्नत

बंक भ्रुकुटीके द्वारा कुटिल कटाक्षपातसे उन कमलदलसदृश विशाल लोचनवाले, आजानुबाहु, नरलोकसुन्दर स्वामीको रिझाती हुई प्रीतिपूर्व्वक उनके निकट रहने लगी। यह भाव देख कर भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नने रतिसे कहा कि "माता! तुम्हारी बुद्धिमें यह विपरीत भाव कैसा देख पड़ता है? तुम माताका भाव छोड़ कर पत्नीके भावसे मेरे पास रहती हो; इसका क्या कारण है?" ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ रतिने कहा। "प्रभो! तुम नारायणके पुत्र हो। यह दुष्ट शम्बरासुर तुमको तुम्हारे घरसे उठा लाया था। मैं तुम्हारी पूर्व्व जन्मकी धर्म्मपत्नी रति हूँ और तुम कामदेव हो ॥ १२ ॥ इस शम्बरासुरने तुम्हारे दाँत भी नहीं निकलने पाये थे उसी अवस्थामें तुमको समुद्रमें फेंक दिया था। प्रभो! तदनन्तर एक मत्स्य तुमको समुद्रमें निगल गया, और उसी मत्स्यके उदरसे तुम यहाँ निकले ॥ १३ ॥ अब तुम इस दुर्द्धर्ष, दुर्ज्जय और अनेकों माया जाननेवाले अपने शत्रु शंबरासुरको इस समय मोहन आदि मायाओंसे नष्ट करो। पुत्रके खोजानेसे तुम्हारी माता, जिसका बछड़ा खोगया हो उस गऊके समान, पुत्रस्नेहसे आकुल, कातर और दुःखित होकर कुररी (एकप्रकारका पक्षी जो आकाशमें कतार बाँध कर "कों २" करता हुआ चलता है) की भाँति शोकसे विलाप किया करती है" ॥ १४ ॥ १५ ॥ यों कह कर मायावतीने महात्मा प्रद्युम्नको सब मायाओंको मिटानेवाली महामाया नाम विद्या बतलाई ॥ १६ ॥ उक्त महाविद्या पाकर प्रद्युम्नजी शम्बरासुरके निकट गये और असह्य कटु वचन कह कर उसका तिरस्कार करने लगे; जिसमें वह कुपित हो कर युद्ध करनेके लिये उद्यत हो ॥१७॥ पादप्रहारसे कुपित सर्पकी भाँति शम्बरासुर उन कटुवाक्योंको न सह सका, उसके नेत्र क्रोधके आवेशसे लाल हो गये एवं तत्क्षण वह गदा हाथमें लेकर घरसे बाहर निकल आया। शम्बरासुरने बलपूर्वक वेगसे कई बार घुमा कर वह गदा महात्मा प्रद्युम्नके ऊपर चलाई और जैसे आकाशमें बिजलियोंकी परस्पर टक्कर होनेसे घोर शब्द हो उस प्रकार गर्जने लगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ किन्तु अपने ऊपर आ रही शत्रुकी गदाको भगवान् प्रद्युम्नने अपनी गदा पर रोक लिया और फिर क्रोधपूर्वक सिंहनाद करते हुए अपनी घोर गदा शत्रुके ऊपर चलाई ॥ २० ॥ शम्बरासुरने देखा कि सम्मुखयुद्धमें मैं पार नहीं पाऊँ गा, इस कारण वह असुर मय दानवकी अपूर्व्व आसुरी मायाका आश्रय लेकर अदृश्य हो गया एवं आकाशमें खड़े हो अदृश्य भावसे कृष्णतनय प्रद्युम्नजी पर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा ॥२१॥ महारथी रुक्मिणीनन्दनने जब देखा कि दुष्ट दैत्य अन्तरिक्षसे छिपे २ पत्थरोंकी वर्षा करके पीड़ा पहुँचाता है तब उसी मायावतीकी बताई हुई सब मायाओंको मिटानेवाली सत्त्वगुणमयी महाविद्याका प्रयोग किया ॥ २२ ॥ तदनन्तर उस दैत्यने यक्ष, गन्धर्व्व, पिशाच और राक्षसोंकी सैकड़ों मायाएँ प्रकट कीं, परन्तु उनको महामति प्रद्युम्नने उसी

क्षण नष्ट कर दिया ॥ २३ ॥ अन्तमें प्रद्युम्नजीने एक तीक्ष्ण तर्वार लेकर उससे शम्बरासुरका किरीटविभूषित, कुण्डलमण्डित, अरुणवर्ण दाढ़ी मोछोंसे युक्त मस्तक बलपूर्व्वक धड़से अलग कर दिया ॥ २४ ॥ उस समय देवगण उनके ऊपर राशि २ फूलोंकी वर्षा करते हुए स्तुति करने लगे । मायावती आकाशमें चलनेकी शक्ति रखती थी; वह अपने पति प्रद्युम्नको पीठ पर चढ़ा कर आकाशमार्गसे द्वारका पुरीको लेगई ॥ २५ ॥ राजन्! दामिनीयुक्त श्याम मेघके समान शोभायमान प्रद्युम्नने पत्नीसहित अन्तःपुरमें प्रवेश किया ॥ २६ ॥ प्रद्युम्नजीका शरीर श्यामवर्ण था, उस शरीर पर पीतपटकी अपूर्व्व शोभा थी । आजानुबाहु प्रद्युम्नके नयन अरुण-वर्ण, हास्य परमसुन्दर, मुखमण्डल महामनोहर कमलके तुल्य था; उस पर भ्रमर-तुल्य काली अलकें बिखरी हुई थीं । स्त्रियोंने समझा कि कृष्णचन्द्र आरहे हैं, अत-एव लज्जित हो कर इधर उधर छिप गईं ॥२७॥२८॥ क्रमशः कुछ विलक्षणता देख कर स्त्रियोंने जाना कि यह कृष्ण नहीं हैं, कोई और है । तब सब स्त्रियाँ आनन्द-पूर्वक स्त्रीरत्नयुक्त प्रद्युम्नजीके निकट आ कर आश्चर्य्यके साथ उनको देखने लगीं ॥ २९ ॥ उस समय प्रद्युम्नको देखनेसे असितापांगी विदर्भनरेशकी कन्या रुक्मिणीको अपने खोएहुए पुत्रका स्मरण हो आया। स्नेहके कारण रुक्मिणीके स्तनोंसे आपहीआप दुग्ध निकलने लगा ॥ ३० ॥ रुक्मिणीजी अपने मनमें कहने लगीं कि—"यह पुरुषश्रेष्ठ कौन है? यह कमललोचन किसका पुत्र है ? किस कामिनीने इसको अपने गर्भमें रक्खा है? इस पुरुषके साथ यह श्रेष्ठ स्त्री कौन है? मेरा जो पुत्र सूतिकागृहसे नष्ट होगयाथा, जिसका पता अबतक नहीं लगा है, वह भी यदि कहीं जीता जागता होगा तो उसकी अवस्था और रूप भी ऐसा ही होगा । यह पुरुष-श्रेष्ठ आकार, अंगगठन, गति, स्वर, हँसी और चितवन आदि बातोंमें मेरे स्वामीके समान है । इसका क्या कारण है ? क्या यह वही बालक है जो मेरे गर्भसे उत्पन्न हुआ था? क्यों कि यह मुझे बहुतही प्रिय जान पड़ता है और शुभसम्वादकी सूचना देती हुई मेरी बाईं भुजा भी फड़क रही है"। रुक्मिणीजी इसी प्रकार अपने मनमें तर्कवितर्क कर रही थीं कि इतनेमें उत्तमश्लोक भगवान् देवकीनन्दन देवकी और वसुदेवके साथ वहाँ पर उपस्थित हुए ॥३१॥३२॥३३॥३४॥३५॥ यद्यपि भगवान् जनार्दनको सब वृत्तान्त विदित था तथापि वह चुपचाप खड़े रहे । इतनेमें नारदजीने सब वृत्तान्त कह सुनाया कि इनको शंबर दैत्य हर ले गया था और अब यह उस शत्रुको मार कर आये हैं, यह तुम्हारे ही पुत्र प्रद्युम्न हैं ॥ ३६ ॥ यह महाआश्चर्य्यमय वृत्तान्त सुनने पर सब अन्तःपुरकी स्त्रियाँ, जैसे कोई मराहुआ बन्धु फिर जीवित हो कर आ मिले उस प्रकार प्रद्युम्नको पा कर परम प्रसन्न हुईं ॥ ३७ ॥ देवकी, वसुदेव, कृष्ण, बलदेव और सब स्त्रियोंसहित रुक्मिणीने नववधूयुक्त प्रद्युम्नको गलेसे लगाया और परमानन्दित हुए ॥ ३८ ॥ खोए हुए

प्रद्युम्नको फिर आये हुए सुन कर सब द्वारकावासी लोग कहने लगे कि "अहो! बड़े भाग्यकी बात है कि खोया हुआ बालक, जिसके जीवित रहनेमें भी सन्देह था, आपही आगया" ॥ ३९ ॥

यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावा-
स्तन्मातरो यदभजन् हृदिरूढभावाः ॥
चित्रं न तत्खलु रमास्पदबिम्बबिम्बे
कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ॥ ४० ॥

हम पहले ही कह चुके हैं प्रद्युम्नका रूप व आकार कृष्णके समान था, वह कृष्णका प्रतिबिंब जान पड़ते थे। इसी कारण उनकी माताएँ भी उनको आत्मीय और भर्ताके भावसे मन-ही-मन अनुरक्त हो कर भजती थीं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्यों कि जिसके स्मरणसे ही क्षोभ होता है उसी कामका अवतार प्रद्युम्नजी आँखोंके आगे हर घड़ी रहते थे। जब माताओंकी यह दशा थी तब अन्य कामिनियोंके लिये क्या कहना है! ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तम अध्याय।

स्यमन्तकहरण।

श्रीशुक उवाच—सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः ॥
स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! सत्राजित् नाम यादवने पहले कृष्णको अपराध लगाया। किन्तु फिर वह अपराध क्षमा करानेके लिये स्यमन्तकमणिसहित अपनी कन्या सत्यभामा उनको व्याह दी ॥ १ ॥ राजा परीक्षित्ने पूछा कि भगवन्! सत्राजित् ने श्रीकृष्णका क्या अपराध किया था? और उन्होने दिव्य स्यमन्तकमणि कैसे और किससे पाई थी? एवं उन्होने हरिको अपनी कन्या किस लिये दी? यह सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक हमसे कहिये ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! सत्राजित् यादव सूर्य्यदेवके परमभक्त और सखा थे। सूर्य्यदेवने सन्तुष्ट और प्रसन्न हो कर उनको स्यमन्तक नाम दिव्य मणि दी। उस मणिको कंठमें पहने हुए सत्राजित् द्वारकापुरीमें आये। उस मणिके तेजसे सत्राजित् दूसरे सूर्य्य जान पड़ते थे। उस तेजके कारण कोई पुरवासी न पहचान सका कि यह सत्राजित् हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ दूरसे देखने पर सब लोगोंकी आँखें चौंधिया

गई । तब वे लोग चौसर खेल रहे भगवान् कृष्णके पास आकर सूर्य्यनारायणको आते जान कर शंकित भावसे कहने लगे कि "हे नारायण! हे शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले दामोदर! कमलनयन! गोविन्द! यदुनन्दन! आपको प्रणाम है ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे जगन्नाथ! यह सूर्य्यनारायण अपनी तीक्ष्ण किरणोंसे हमारे नेत्रोंमें चकाचौंध उत्पन्न करते हुए आपको देखनेके लिये आरहे हैं ॥ ७ ॥ हे प्रभो! आप यदुवंशमें छिपे हुए हैं—यह जान कर सूर्य्य देव आपको देखने आरहे हैं । भगवन्! सब देवगण सदा आपके मिलनेके मार्गकी खोजमें रहते हैं, परन्तु पाते नहीं हैं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन्! उन अजान लोगोंकी ये बातें सुन कर कमलनयन भगवान्ने हँस कर कहा कि—"यह सूर्य्यदेव नहीं है, सत्राजित् नाम यादव है; यह प्रकाश उनके कंठमें पड़ी हुई मणिका है"। सत्राजित्ने अपने श्रीसम्पन्न भवनमें प्रवेश करके ब्राह्मणोंके द्वारा मङ्गलाचरण कराके देवालयमें मणिको धर दिया ॥ ९ ॥ १० ॥ वह मणि प्रतिदिन आठ भार सुवर्ण देती थी । उसमें एक गुण यह भी था कि जहाँ धर कर उसकी पूजा की जाती थी उस देशमें दुःखके कारण जो दुर्भिक्ष, अकालमृत्यु, अमङ्गल, सर्पभय, आधि व्याधि, अशुभ और महामारी आदि अरिष्ट हैं उनकी वाधा नहीं होती थी ॥११॥ देवकीनन्दनने एक समय वह मणि उग्रसेनके लिये माँगी, किन्तु धन-लोभी सत्राजित्ने कृष्णके महत्त्वका ध्यान न करके देनेसे नाहीं कर दी । राजन्! तदनन्तर एक दिन सत्राजित्का भाई प्रसेन उस महातेजस्वी मणिको पहने हुए घोड़े पर चढ़ कर वनमें मृगया (शिकार) करनेके लिये गया । वनमें एक सिंहने घोड़े सहित प्रसेनको मार कर मणि छीन ली । वह सिंह पर्वतकी कंदरामें प्रवेश कर रहा था उसी समय उसको जाम्बवान् नाम ऋक्षराज मिल गये । जाम्बवान्ने मणि लेनेकी इच्छासे उस सिंहको मार डाला और अपने विलमें जाकर वह मणि अपनी कन्याको खेलनेके लिये देदी । इधर सत्राजित् अपने भाईका पता न पाकर अत्यन्त विचलित हुए और सन्तापपूर्वक कहने लगे कि "मेरा भाई गलेमें मणि पहन कर वनको गयाथा, अवश्य ही मणि लेनेके लिये कृष्णने उसको मरवा डाला होगा"। बात कहीं मुखसे निकलने पर छिपती है? यह बात एक कानसे दूसरे कानमें पहुँची, और सब लोग इस प्रकार परस्पर कानाफूसी करने लगे ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ भगवान् कृष्णने जब यह सुना तब नगरवासियोंको साथ ले, अपना कलंक मिटानेके लिये प्रसेनको ढूँढने चले ॥ १७ ॥ वनमें इधर उधर खोज करने पर उन्होने सिंहके द्वारा मारे गये प्रसेन और उसके घोड़ेको एवं तदनन्तर ऋक्षराजके द्वारा निहत उस सिंहको भी देखा ॥ १८ ॥ वहाँ पर अपार अन्धकारसे आवृत ऋक्षराजका भयानक विल भी उनको मिला । भगवान् कृष्णचन्द्र सब लोगोंको विलके बाहर ठहराकर अकेले ही उसके भीतर

गये ॥ १९॥ भगवान्‌ने देखा कि एक बालिका उस मणिको लिये खेलरही है। भगवान् वह मणि लेनेके विचारसे वहाँ उस कन्याके पास खड़े होगये। अपूर्व मनुष्य कृष्णचन्द्रको देख कर उस बालिकाकी धाय डरकर चिल्लाउठी। धायकी चिल्लाहट सुन कर बलवानोंमें श्रेष्ठ जाम्बवान् वहाँ दौड़ कर आये एवं क्रोधपूर्वक अपने प्रभु कृष्णचन्द्रसे भिड़ गये। दोनोको जयकी इच्छा थी, इस कारण मांसके लिये जैसे दो 'बाज' लड़ते हैं वैसेही दोनो सुभट अस्त्र, शस्त्र, पत्थर, वृक्ष, बाहु, मुष्टि इत्यादिसे अतिघोर द्वन्द्वयुद्ध करने लगे। क्रोधके आवेशसे अपने स्वामी कृष्णकी यथार्थ शक्ति और प्रभावको न पहचाननेके कारण जाम्बवान्‌ने उनको एक साधारण मनुष्य समझा एवं इस प्रकार युद्ध किया। अट्ठाईस दिनोंतक निरन्तर दिन और रात बराबर वज्रप्रहारके सदृश कठोर घूसों से दोनोने परस्पर युद्ध किया॥२०॥ ॥२१॥२२॥२३॥२४॥ अन्तमें कृष्णने कठोर घूसोंकी चोटने जाम्बवान् के सुदृढ़ अंग-बन्धनोंको ढीला कर दिया; उनके शरीरसे पसीना बहने लगा। तब अत्यन्त विस्मित हो कर जाम्बवान्‌ने भगवान्‌से कहा कि—"मैंने अब जाना, आप पुराणपुरुष परमेश्वर सबके स्वामी, सर्वशक्तिमान् श्रीविष्णु भगवान् हैं। सब प्राणियोंके प्राण, इन्द्रिय–बल, मानसिक बल और शारीरिक बल आप ही हैं। जो लोग विश्वकी सृष्टि करते हैं, आप उन प्रजापतियोंको उत्पन्न करनेवाले हैं। सृष्टिमें जितने पदार्थ देख पड़ते हैं उनका उपादान-कारण भी आप ही हैं, सुतराम् आप पुराणपुरुष हैं। जो लोग सृष्टिका संहार करते हैं उनके ईश्वर महाप्रबल "काल" आपही हैं। आप सब आत्माओंके आत्मा अर्थात् परमात्मा हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ प्रभो! आपहीके किञ्चित् उद्दीप्त कोप-कृत-कटाक्ष-पातसे सागरके भीतर रहनेवाले मगर, तिमिंगिल आदि जीव जन्तु क्षोभसे चंचल हो उठे थे और सागरने उसी समय आपको पार जानेके लिये मार्ग दिया था, तथापि अपने यशको चिरकाल तक स्थिर रखनेके लिये आपने सेतुरचना कराई और उस पार जाकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे राक्षसराज रावणके शिर काट गिराये एवं अपने यशके प्रकाशसे लंकाको उज्ज्वल कर दिया" ॥ २८ ॥ इस प्रकार ऋक्षराजके हृदयमें जब ज्ञानका उदय हुआ तब देवकीनन्दन कमलनयन अच्युतने अपना मंगलमय हाथ फेरकर परम-भक्त ऋक्षराजकी सब थकन और शिथिलता दूर कर दी और फिर परम कृपा-पूर्वक मेघके सदृश गंभीर स्वरसे कहा कि—"हे ऋक्षराज! मणिके लिये मैं इस तुम्हारे बिलमें आया हूँ; इस मणिसे मैं अपने मिथ्या कलंकको मिटाऊँगा"। भगवान्‌के ये वचन सुन कर जाम्बवान् बहुत सन्तुष्ट हुए एवं पूजाके लिये उप-हारमें मणिसहित वह अपनी जाम्बवती नाम कन्या कृष्णचन्द्रको अर्पण कर दी ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इधर बिलके बाहर ठहरे हुए नगरवासी लोगोंने कृष्णकी आज्ञाके अनुसार बारह दिन तक उनके निकलनेकी राह देखी। जब बारह दिनमें कृष्णचन्द्र नहीं बाहर निकले तब तेरहवें दिन दुःखित और निराश

हो कर सब नगरवासी लोग द्वारकापुरीको लौट गये। देवकी देवी, रुक्मिणी, वसुदेव, सुहृद्गण और अन्यान्य सजातीय लोग यह सम्वाद पा कर कि 'कृष्णचन्द्र बिलसे बाहर नहीं निकले–उसीमें रह गये' अत्यन्त शोकाकुल और दुःखित हुए ॥ २३ ॥ २४ ॥ सब द्वारकावासी लोग सत्राजित्को भला-बुरा कहते हुए 'श्रीकृष्ण फिर हमसे आकर मिलें'–इस कामनासे चन्द्रभागा नाम महामाया दुर्गा देवीकी आराधना करने लगे ॥ ३५ ॥ पूजा समाप्त होने पर इधर दुर्गादेवीने अमोघ आशीर्वाद दिया और उधर उस आशीर्व्वादको सत्य करते हुए कृष्णचन्द्र कार्य्य सिद्ध करके पत्नी जाम्ववतीको साथ लिये द्वारका पुरीमें आगये। भगवान्ने आकर अपने इष्ट-मित्र और बंधु-बान्धवोंको आनन्दित कर दिया ॥ ३६ ॥ यमलोकसे लौटे हुए मृत व्यक्तिके समान कृष्णको आये देख कर एवं उनके कंठमें स्यमन्तकमणि तथा साथमें एक सुंदरी स्त्री देख कर सब पुरवासी लोग अत्यन्त प्रसन्न हो कर महाउत्सव करने लगे ॥३७॥ तदनन्तर भगवान्ने सभामें सब राजा लोगोंके आगे सत्राजित्को बुलाया एवं जिस प्रकार मणि मिली थी सो सब कह कर उनको मणि देदी ॥ ३८ ॥ सत्राजित्ने लज्जित हो कर वह मणि लेली और वहाँसे शिर नीचा किये हुए अपने अपराधके लिये पश्चात्ताप करते २ अपने भवनको गये। वह उस अपराधकी चिन्तासे व्याकुल हो उठे एवं बलवान्के साथ झगड़ा ठाननेके कारण बहुतही घबड़ाये। सत्राजित् सोचने लगे कि "किस प्रकार मैं इस अपने अपराधको मिटाऊँ? कैसे अच्युत भगवान्को प्रसन्न करूँ? क्या करनेसे मेरा मंगल होगा? क्या करनेसे लोग मुझे अविचारी, कृपण, मन्दमति, धनलोलुप न कहें? मेरी कन्या स्त्रीरत्न है, मैं उस स्त्रीरत्नके साथ यह मणिरत्न देकर कृष्णको प्रसन्न करूँ–यही एक उपयुक्त उपाय है। इसके सिवा और उपायसे इस अपराधका प्रायश्चित्त न होगा" ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ मनमें इस प्रकार निश्चय करके सत्राजित्ने आपहीसे श्रीकृष्णको अपनी कल्याणरूपिणी कन्या और वह मणि देदी। भगवान्ने विधिपूर्वक सत्राजित्की कन्या सत्यभामासे विवाह किया ॥ ४३ ॥ सत्यभामाजी उत्तम शील, रूप, उदारता आदि गुणोंसे विभूषित थीं। अनेक राजोंने सत्राजित्से उनके लिये प्रार्थना की थी ॥ ४४ ॥

भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप ॥
तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥ ४५ ॥

भगवान्ने सत्राजित्से कहा कि–"हम मणि नहीं लेंगे। आप सूर्य्यके भक्त हैं, इस लिये यह सूर्य्यका प्रसाद आपहीके पास रहना चाहिये। हम केवल इसका फल (अर्थात् सुवर्ण) लेंगे" ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तम अध्याय ।

स्यमन्तकोपाख्यान ।

श्रीशुक उवाच–विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दो दग्धानाकर्ण्य पाण्डवान् ॥
कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा । राजन् ! गोविंदको यद्यपि यह विदित था कि विदुरकी सहायतासे पाण्डवगण लाक्षाभवनसे सुखपूर्वक बाहर निकल गये वे लाक्षाभवनमें जले नहीं, तथापि पाण्डव लोग माता कुन्तीके साथ मानो वास्तवमें लाक्षाभवनके भीतर जल गये–इस प्रकार उक्त समाचारको सुन कर कुलोचित और लोकोचित व्यवहारकी पूर्त्तिके लिये वह बलभद्रके साथ कुरुदेशको गये ॥१॥ वहाँ भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य्य, विदुर और गान्धारीसे मिल कर समान दुःख प्रकट करते हुए कृष्ण–बलभद्रने कहा कि "हाय ! कैसे कष्टकी बात है !" । राजन् ! इधर कृष्णचन्द्रके हस्तिनापुर जानेसे सुअवसर पाकर अक्रूर और कृतवर्म्माने शतधन्वासे कहा कि "देखो ! सत्राजित्ने पहले हमलोगोंसे अपनी कन्याके देनेका प्रण किया था और फिर वही कन्या कृष्णचन्द्रको देदी । अब उससे वह श्रेष्ठ मणि क्यों नहीं लेते ? जहाँ सत्राजित्का भाई प्रसेन गया है वहीं (यमलोकमें) सत्राजित्को भी पहुँचाना चाहिये–हमारी तो यही सम्मति है" ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ ४ ॥ जिसका जीवन क्षीण हो गया है उस पापाचारी, महादुष्ट शतधन्वाने अक्रूर और कृतवर्म्माके कहनेमें आकर लोभवश सत्राजित्के घर जाकर सोतेहीमें उनको मार डाला ॥ ५ ॥ पशुको मारनेके अनन्तर जैसे कसाई चला जाता है वैसेही निर्दय शतधन्वा सत्राजित्को मार कर और उत्तम मणि लेकर चला गया । अन्तःपुरकी स्त्रियाँ अनाथोंकी भाँति उच्च स्वरसे चिल्लाती और रोती रहीं, परन्तु उनके रोने या चिल्लाने पर उस निठुरने ध्यान नहीं दिया । सत्यभामाजी अपने पिताको निहत देख कर "हाय पिता" कहती हुई विलाप करने लगी । तदनन्तर उन्होने मृत पिताके शरीरको तेलसे भरी नावमें रख दिया और आप सन्ताप करती हुई हस्तिनापुरको गईं । वहाँ जाकर सत्यभामाने श्रीकृष्णचन्द्रसे पिताकी हत्याका सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ कृष्ण और बलदेव दोनो भाई, ईश्वर होने पर भी मनुष्यचरित्रका अनुकरण करके "हमलोगोंके लिये महाकष्ट उपस्थित हुआ" कह कर आँसू गिराते हुए विलाप करने लगे ॥ ९ ॥ तदनन्तर भगवान् कृष्णचंद्र भाई और स्त्रीके साथ द्वारकापुरीको लौट आये और शतधन्वाको मारने व उससे मणि लेनेके लिये उद्यत हुए ॥१०॥ दुराचारी शतधन्वाने जब जाना कि कृष्णचन्द्र मुझे मारनेके लिये उद्यत हैं तब वह भयभीत हो प्राण बचानेके लिये कृतवर्म्माके पास जाकर

उनसे सहायता माँगनेलगा । कृतवर्म्माने कहा—"भाई ! कृष्ण और बलभद्र साक्षात् ईश्वर हैं, मैं उनका सामना नहीं कर सक्ता । भला कौन व्यक्ति उनके विरुद्ध कार्य्य करके कुशलसे रह सक्ता है? जब राजा कंस ऐसा बली योद्धा उनसे द्रोह करनेके कारण अनुचरसहित राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो प्राण भी गँवा बैठा एवं जरासंध ऐसा सुभट सत्रह बार युद्धमें हारकर विरथ हो युद्धके विचारसे निवृत्त होगया, तब उन कृष्ण बलभद्रका अप्रिय करनेवाला कौन सुखी रह सक्ता है?" ॥११॥१२॥ ॥१३॥ जब इस प्रकार कृतवर्म्माने सहायता देनेसे नाहीं कर दी तब शतधन्वाने अक्रूरके पास जाकर उनसे सहायता माँगी । अक्रूरने भी कहा कि "उन ईश्वरके अवतार दोनो भाइयोंके बल और शक्तिको जानकर भी कौन उनके विरुद्ध काम करेगा? जो लीलापूर्वक इस विश्वको उत्पन्न करते हैं, पालन करते हैं एवं अन्तसमय इसका संहार करते हैं, बड़े २ प्रजापति जिनकी मायामें मोहित रहनेके कारण, चेष्टा तकको नहीं जान सक्ते, जिन्होने सात वर्षकी अवस्थामें—बालक जैसे धर्त्तीके फूलको खेलते २ उखाड़ ले वैसेही एक हाथसे गोवर्द्धनगिरिको उठालिया उन भगवान्, अद्भुतकर्म्म करनेवाले, अनन्त, आदिभूत, कूटस्थ, आत्मा, कृष्णचन्द्रको प्रणाम है" ॥ १४ ॥ ॥१५॥१६॥१७॥ जब अक्रूरसे भी सहायता नहीं मिली तब शतधन्वाने स्यमन्तक मणि तो अक्रूरजीको देदी और आप सौ योजन तक चलनेवाले घोड़ेपर चढ़कर वहाँसे भागा ॥ १८ ॥ कृष्णचन्द्र और बलभद्र भी गरुड़चिन्हयुक्त ध्वजावाले रथपर चढ़ कर महावेगशाली घोड़ों द्वारा गुरुद्रोही शतधन्वाके पीछे चले । मिथिलापुरीके उपवनमें पहुँच कर शतधन्वाका घोड़ा गिर पड़ा । तब शतधन्वाने घोड़ेको वहीं छोड़ दिया और आप भयके मारे पैदलही भागा; किन्तु कृष्णचन्द्रने भी कुपित होकर उसका पीछा किया । पैदल जा रहे कृष्णचन्द्रने पैदल भाग रहे शत्रुको थोड़ीही दूरपर पकड़ लिया और तीक्ष्ण धारावाले चक्रसे उसका शिर काट लिया एवं उसके वस्त्रोंमें वह मणि खोजने लगे । श्रीकृष्णचन्द्रने जब शतधन्वाके पास मणि नहीं पाई तब बड़े भाईके पास आकर कहा कि "हम ने व्यर्थही शतधन्वाको मारा, उसके पास मणि नहीं है" । बलभद्रने कहा । "शतधन्वाने वह मणि अवश्यही किसी अन्य व्यक्तिके पास रख दी है । तुम उस व्यक्तिका पता लगाओ—नगरमें जाओ, मैं अपने प्रियतमभक्त विदेहराज जनकसे मिलना चाहताहूँ" । यह कह कर यदुनंदन बलभद्रजी मिथिलापुरीको चलेगये ॥१९॥२०॥२१॥२२॥२३॥ ॥२४॥ मिथिलानरेशने पूजनीय बलभद्रको आते देख, सहसा उठकर प्रसन्नतापूर्वक पूजनकी सामग्रियोंसे विधिपूर्वक पूजन किया ॥ २५ ॥ बलभद्रजी कई वर्षों तक मिथिलापुरीमें सुखसे रहे । उक्त घटनाके कुछ दिन बाद धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन मिथिलापुरीमें गया और वहाँ उसने महात्मा जनकके द्वारा आदरसहित पूजित हो कर बलभद्रसे गदायुद्ध सीखा ॥ २६ ॥ इधर प्रियाका प्रिय करनेवाले प्रभु

कृष्णने द्वारकापुरीमें आकर शतधन्वाके वध और उसके पास मणि न मिलनेका वृत्तान्त अपनी प्रिया सत्यभामासे कहा एवं सुहृद्‌जनोंको साथ लेकर अपने निहत बंधु सत्राजित्का पारलौकिक कृत्य सम्पन्न किया। अक्रूर और कृतवर्म्माने जब सुना कि शतधन्वा मारागया तब दोनो भयभीत होकर द्वारकासे परदेशको चल दिये। क्योंकि इन्होनेही सत्राजित्को मारने व मणि लेनेकी सम्मति शतधन्वाको दीथी ॥२७॥२८॥२९॥ महाराज! जब अक्रूरजी चलेगये तब द्वारकावासी लोग सदैव शारीरिक, मानसिक, दैविक और भौतिक आदि भाँति २ के सन्ताप और चिन्ताओंसे पीड़ित रहने लगे ॥ ३० ॥ पूर्वोक्त श्रीकृष्णके माहात्म्यको भूल जानेवाले कुछ लोग अक्रूरके प्रवासको द्वारकावासियोंके इस कष्टका कारण कहते हैं। किन्तु यह उनका कथन युक्तिसङ्गत नहीं जान पड़ता, क्योंकि श्रेष्ठ मुनिगण जिन हरिमें (अन्तःकरणात्मक लिंगशरीरसे) निवास करते हैं अर्थात् लीन रहते हैं, मग्न रहते हैं, वह हरि जहाँ रहें वहाँ ऐसे अनिष्टोंका संघटन असम्भव है। "एक समय राज्यमें बहुत दिनों तक इन्द्रकृत वर्षाके न होने पर काशिराजने अपनी कन्या गांदिनी अक्रूरके पिता श्वफल्कको व्याह दी थी, तब काशीमें वर्षा हुई, और सुकाल हुआ। अक्रूरजी उन्हीं श्वफल्कके पुत्र हैं, अतएव उनका भी प्रभाव पिताके समान है। अक्रूरजी जिस स्थानमें रहते हैं वहाँ इन्द्रदेव भली भाँति जलकी वर्षा करते हैं और महामारी एवं अन्यान्य कष्टकारी उत्पात नहीं होते"—इस प्रकार वृद्ध लोगोंके मुखसे सुनकर भगवान्ने विचारा कि "इन उत्पातोंका कारण यहाँ अक्रूरका न रहना नहीं, बरन् मणिका न रहना है"। तदनन्तर अन्तर्यामी कृष्णचंद्रने अक्रूरको द्वारकापुरीमें सादर बुलवाया एवं यथाविधि सत्कार करके मनोहर मधुर वार्त्तालाप करते हुए मंद २ मुसकाकर कहा कि–"हे दानपति अक्रूर! शतधन्वा मणि तुमको देगया है और वह तुम्हारे पास है, यह मैं पहलेहीसे निश्चितरूपसे जानता हूँ। अक्रूरजी! सत्राजित्के कोई पुत्र नहीं है, इसलिये उनकी कन्याका पुत्रही मणिका यथार्थ उत्तराधिकारी है। क्योंकि जो कोई जिसको शेष ऋण (पितृऋण)से छुड़ा सके और जल-पिण्ड पहुँचा सके वही शास्त्रकी सम्मतिसे उसकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी हो सक्ता है। किन्तु उस मणिको अपने पास रखना अन्य किसीके लिये दुष्कर और कठिन काम है, अतएव वह मणि तुम्हारेही पास रहनी चाहिये; क्योंकि तुम सच्चरित्र हो। किन्तु मणिके न मिलनेकी वात पर हमारे वड़े भाईको भी कुछ अविश्वास सा है, इस लिये तुम सब बंधुओंके आगे एक बार वह मणि निकाल कर दिखादो। यदि तुम कहो कि मेरे पास मणि नहीं है, तो हमको सब विदित है, तुम्हारा यह कहना वृथा होगा। हमको विदित है कि इधर तुमने सुवर्णकी वेदियाँ (उसी मणिके सुवर्णसे) बनवा कर कईएक यज्ञ किये हैं"। इस प्रकार प्रभुके प्रबोध देने पर श्वफल्कपुत्र अक्रूरका भय जातारहा; उन्होने वस्त्रके भीतर

लपेटीहुई सूर्य्यके समान चमकदार वह स्यमन्तक मणि निकाल कर कृष्णके कर-कमलमें देदी । प्रभुने जातिवाले बांधवोंको वह मणि दिखाकर अपनेको लगे हुए मणिकी चोरीके कलंकको मिटादिया और फिर अपने कथनानुसार वह मणि अक्रूरको लौटा दी ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥३८॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

यस्त्वेतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वी-
र्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च ॥
आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद्वा
दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम् ॥ ४२ ॥

जो कोई भगवान् ईश्वरके विचित्र पुण्यचरित्रोंसे युक्त इस अरिष्टनिवारिणी मंगलकारिणी पतिततारिणी कथाको पढ़ता, सुनता अथवा सुमिरता है वह दुष्कीर्त्ति और पापपुंजसे मुक्त हो कर शान्तिलाभ करता है ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तराऽर्धे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तम अध्याय ।

कृष्णचन्द्रके विविधविवाह ।

श्रीशुक उवाच–एकदा पाण्डवान्द्रष्टुं प्रतीतान्पुरुषोत्तमः ॥
इन्द्रप्रस्थं गतः श्रीमान्युयुधानादिभिर्वृतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन् ! एक समय श्रीमान् पुरुषोत्तम कृष्ण-चन्द्रजी सात्यकी आदि अपने आत्मीयोंको साथ लेकर पाण्डवोंको देखनेके लिये हस्तिनापुर गये ॥ १ ॥ प्राणोंके लौट आने पर इन्द्रियाँ जैसे तुरन्त सचेष्ट हो अपने २ कर्म्म करने लगतीं हैं वैसे ही वीर पाण्डवगण मुक्तिदाता सब जगत्के स्वामी कृष्णचन्द्रको आते देख अपने २ आसनसे उठ खड़े हुए । उन्होने अच्युतको गले लगा लिया; भगवान्‌के अङ्गस्पर्शसे पाण्डवोंके पाप सब विनष्ट होगये । पाण्डवगण,–भगवान्‌के अनुरागपूर्ण, हास्ययुक्त मनोहर मुखको देख कर परम आनन्दित हुए । भगवान् कृष्णने युधिष्ठिर और भीमसेनके चरण छुए और अर्जुनको गलेसे लगा लिया एवं नकुल व सहदेवने भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया । तदनन्तर भगवान् कृष्णचन्द्र एक परम सुन्दर आसन पर विराजमान हुए; तब नवविवाहिता अनिन्दिता द्रौपदीजीने लज्जापूर्वक धीरे २ कृष्णचन्द्रके निकट आकर उनको प्रणाम किया ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ इस प्रकार सात्यकी

और पाण्डवोंके द्वारा पूजित व नमस्कृत होकर कृष्णचन्द्रजी आसन पर जब बैठे तब और २ लोग भी कृष्णचन्द्रसे यथायोग्य सत्कार व पूजन पाकर आसनों पर बैठे ॥ ६ ॥ तदनन्तर कुन्ती देवीने कृष्णके निकट जाकर उनको प्रणाम किया— स्नेहके कारण उनके दोनो नेत्र प्रेमके आँसुओंसे परिपूर्ण हो गये। कुन्तीने गद्गद होकर कृष्णको हृदयसे लगा लिया एवं तदनन्तर उनसे अपने बंधु बांधवोंकी कुशल पूछने लगीं। भगवान्ने भी यथोचित उत्तर देकर अपनी बुआ कुन्तीसे उनकी और उनकी वधूकी कुशल पूछी। भगवान् भक्तोंका क्लेश मिटानेहीके लिये पृथ्वी पर प्रकट होते हैं—यह विचार कर प्रेमकी उमंगसे उमड़े हुए आँसुओंसे जिनका कंठ रुँध गया है एवं आँखोंमें प्रेमके आँसू भरे हुए हैं वह कुन्तीजी पहले पाये हुए अनेक कष्टोंका स्मरण करती हुई कृष्णसे कहने लगीं कि "हे यदुनंदन कृष्ण! तुमने जब अपने सुहृद् जो हम हैं उनका स्मरण करके मेरे भाई अक्रूरको यहाँ कुशलवृत्तान्त जाननेके लिये भेजा था, तभीसे हम सकुशल हैं एवं तभी तुमने हमको सनाथ कर दिया था। तुम विश्व भरके बन्धु और आत्मा हो, अतएव तुमको "अपना है—पराया है"—इस प्रकारका भ्रम नहीं है। तथापि जो कोई तुम्हारा निरन्तर स्मरण करते हैं—तुम उनके सब क्लेशोंको और मानसिक चिन्ताओंको मिटादेते हो" ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ युधिष्ठिरने कहा। "स्वामी! न मालूम हम लोगोंने कौन ऐसा पुण्य किया है जो योगी जनोंको भी दुर्लभ जो आप हैं उन्होने अपना दर्शन देकर हम मंद-मतियोंको कृतार्थ किया" ॥ ११ ॥ भगवान् कृष्णचन्द्र इस प्रकार युधिष्ठिरकेद्वारा पूजित और अभ्यर्थित होकर वर्षाऋतुके कई महीने तक हस्तिनापुरवासियोंके नयनोंको आनन्द देते हुए सुखपूर्वक वहाँ रहे ॥ १२ ॥ एक दिन शत्रुदलदलन वीरवर अर्जुनजीने अपना गाण्डीव धनुष और अक्षय-वाण-पूर्ण दोनो तर्कस लिये और उत्तम अभेद्य कवच पहना एवं कपिके चिन्हसे सुशोभित ध्वजावाले रथ पर भगवान् कृष्णचन्द्र सहित सवार होकर मृगया करनेकी इच्छासे, अनेकों सर्प सिंह आदि हिंसक जीव जहाँ अधिक तर रहते हैं उस घोर वनको गये ॥ १३ ॥ १४ ॥ वहाँ अर्जुनने तीक्ष्ण वाणोंसे अनेकानेक व्याघ्र, शूकर, भैंसे, रुरु, चौगड़े, शरभ, गवय, गैंड़े, हरिण और स्याही आदि जीवोंका वध किया। अनुचरगण उन निहत, यज्ञके योग्य पशुओंको राजा युधिष्ठिरके समीप लेगये। इधर कृष्णचन्द्र और अर्जुन—दोनो मृगया करते २ थक गये और प्यासे हुए तब जल पीनेकी इच्छासे निकटवर्तिनी यमुना नदीके किनारे पर गये ॥ १५ ॥ १६ ॥ वहाँ जाकर दोनो वीरोंने यमुनाके निर्मल जलमें हाथ पैर धोये और जलपान किया। कृष्ण और अर्जुनने यमुनाके किनारे एक परम सुंदरी कन्याको देखा। तब कृष्णचन्द्रके भेजनेसे अर्जुनजी उस सुन्दर मुख, सुन्दर दाँत और सुन्दर मुखवाली

कन्यारत्नके पास गये और बोले कि "हे सुन्दर श्रोणीवाली सुन्दरी! तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो? किस विचारसे इस स्थान पर विचरती हो? हे कामिनी! जान पड़ता है अभी तुम्हारा बिवाह नहीं हुआ और तुम अपने सदृश वरकी खोजमें हो" ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ कालिंदी अर्थात् उसी स्त्रीने कहा कि "हे पुरुषश्रेष्ठ! मैं भगवान् सूर्य्यकी कन्या हूँ और श्रेष्ठतम वरदानी विष्णु भगवान् मेरे पति हों—इस कामनासे यहाँ कठोर तप कर रही हूँ ॥ २० ॥ हे वीर! श्रीपतिके सिवा और किसीको मैं अपना पति बनाना नहीं चाहती। अनाथोंके नाथ वह मुकुंद भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों। मेरा नाम कालिंदी है, पिताने इस यमुनाके जलमें मेरे लिये एक भवन बनवा दिया है। जबतक अच्युत भगवान् प्रसन्न होकर मुझको दर्शन न देंगे तवतक मैं उसी सुरक्षित भवनमें रह कर तप करूँगी" ॥२१॥२२॥ वासुदेव भगवान् पहलेहीसे इस वृत्तान्तको जानते थे, इस समय अर्जुनके मुखसे सब वृत्तान्त सुन कर उस कन्याके निकट गये और उसे रथ पर बिठाकर युधिष्ठिरजीके निकट आये। महाराज! तदनन्तर अर्जुनके अनुरोधसे कृष्णचन्द्रने विश्वकर्म्मा द्वारा एक विचित्र नगर बनवादिया। वास्तवमें उस नगरकी रचना परम अद्भुत थी ॥ २३ ॥ २४ ॥ अपने सुहृद् पाण्डवोंकी प्रीतिके लिये भगवान् कृष्णचन्द्र और भी कुछ दिन उनके यहाँ रहे। इसी अवसरमें अर्जुनने अग्निको इन्द्रका खांडव वन जलानेकी आज्ञा दी। इन्द्रसे और अर्जुनसे युद्ध हुआ, उस समय कृष्णचन्द्र अर्जुनकी सहायता करनेके लिये उनके सारथी बने ॥ २५ ॥ अग्निने प्रसन्न होकर अर्जुनको विचित्र धनुप, श्वेतध्वजायुक्त रथ, दो अक्षय तर्कस एवं बड़े २ अस्त्रधारियोंके प्रहारोंसे भी न टूटनेवाला दिव्य कवच दिया। खांडव वनमें उस समय मयासुर भी था, उसको अर्जुनके कहनेसे अग्निने छोड़ दिया। मयासुरसे इसी कारण अर्जुनकी मित्रता हो गई। मयासुरने अपने मित्र अर्जुनको उपहारमें एक सुन्दर और विचित्र सभा बना दी। उसी सभामें प्रवेश करने पर दुर्य्योधनको स्थलमें जलका और जलमें स्थलका भ्रम होगया ॥२६॥२७॥ राजन्! तदनन्तर वर्षाके अन्तमें श्रीकृष्णचन्द्रजी पाण्डव आदि अपने बंधु बांधवोंसे मिलकर—पूछ कर—विदा हो कर सात्यकी आदि यादवोंके साथ द्वारकापुरीको लौट आये ॥ २८ ॥ कृष्णचन्द्रने पुरीमें आकर पुण्यऋतु और पुण्यनक्षत्रयुक्त लग्नके परम मंगलमय समयमें कालिन्दीके साथ बिवाह किया ॥ २९ ॥ महाराज! विंद और अनुविंद नाम अवन्तीनरेश दोनो भाई दुर्य्योधनके वशवर्त्ती और आज्ञाकारी थे। उनकी बहनका नाम मित्रविंदा था। मित्रविंदाने स्वयंवरके अवसर पर कृष्णचन्द्रके कंठमें जयमाल डालनेका विचार किया, किन्तु कृष्णसे द्रोह करनेवाले दोनो भाइयोंने उसे ऐसा करनेसे रोका। मित्रविंदा, कृष्णकी बुआ राजाधिदेवीकी कन्या थी। कृष्णचन्द्र, उसी समय सब

राजा लोगोंको परास्त करके बलपूर्वक उनके आगे ही मित्रविंदाको हरकर घर ले आये ॥३०॥३१॥ राजन्! ऐसे ही कोशल देशके नरेश अयोध्याधिपति अत्यन्त धार्म्मिक नग्नजित्के परम कान्तिमती सत्या नाम कन्या थी। पिताके नामके अनुसार उसका दूसरा नाम नाग्नजिती भी था ॥ ३२ ॥ तीक्ष्ण सींगोंवाले, सुदुर्धर्ष, वीर-गणके गंधको भी न सह सकनेवाले महादुष्ट सात बैलोंको एक ही रस्सीमें न नाथ सकनेके कारण राजालोग उस कन्यासे विवाह नहीं कर सके ॥ ३३ ॥ यह समाचार सुन कर यदुपति कृष्णचन्द्र अनेक अनीकिनी सेना साथ ले कोशलदेशको गये। कोशलनरेशने प्रसन्न हो, आसनसे उठकर भगवान्को उत्तम आसन और अर्घ्य दिया। इस प्रकार भगवान्का पूजन और आतिथ्य सत्कार करके अयोध्याधिपति नग्नजित् परमानन्दको प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अपने मनमाने इच्छानुरूप वरको आपहीसे आये देख कर नरेन्द्रकन्या सत्या मनही मन उन्हींको अपना पति मान कर कहने लगीं कि "यदि मैं आज तक अपने व्रतका पालन करती रही हूँ तो अग्निदेवके अमोघ आशीर्वादसे यह श्यामसुन्दर ही मेरे पति हों" ॥ ३६ ॥ नारायणका पूजन करके राजा नग्नजित्ने कहा कि "हे नारायण! हे जगन्नाथ! आप आत्मानन्दमें मग्न, अतएव सब प्रकार पूर्ण हैं; मैं क्षुद्र व्यक्ति आपका कौन कार्य्य करनेको समर्थ हूँ? लक्ष्मी, ब्रह्मा, शिव और अन्यान्य लोकपालगण जिनके चरणकमलोंके रजको अपने शिर पर सादर स्थान देते हैं, जो उचित समय पर अपने बनाये हुए धर्म्मसेतुकी रक्षाके लिये लीलाललाम देह धारण करते हैं उन आपको हम क्या करके सन्तुष्ट कर सक्ते हैं?" ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे कुरुनन्दन! भगवान् कृष्णचन्द्र आसन पर सुखपूर्वक बैठ कर मेघके समान गंभीर वाणीसे मुसकाते हुए कहने लगे कि "हे राजन्! कवियोंने अपने धर्म्मका पालन करनेवाले क्षत्रियके लिये 'कुछ माँगना' निन्दित कहा है; तथापि आपसे सुहृद्भाव होनेकी लालसासे हम आपकी कन्या माँगते हैं। किन्तु हम कन्याका मूल्यस्वरूप कुछ धन नहीं देंगे" ॥ ३९ ॥ ४० ॥ **राजाने कहा।** "हे नाथ! आप सम्पूर्ण गुणोंका एकमात्र आधार हैं एवं आपके शरीरमें अनिंदिता कमला नित्य निरन्तर निवास करती हैं। अतएव हे प्रभो! आपसे अधिक उत्तम एवं प्रार्थनीय और कौन कन्याका वर मिल सक्ता है? ॥ ४१ ॥ किन्तु हे यदुश्रेष्ठ! कन्याके योग्य वर पानेके लिये अर्थात् प्रार्थना करनेवाले पुरुषोंके पराक्रम व बलकी परीक्षाके लिये मैंने पहलेसे एक प्रण कर रक्खा है ॥ ४२ ॥ हे वीर! ये सात बैल दुर्द्दान्त हैं, इनको अब तक कोई वीर अपने वशमें नहीं कर सका। इन्होने अनेक क्षत्रियोंके कुमारोंका अंगभंग करके उनको हतोत्साह कर दिया है ॥ ४३ ॥ हे यदुनन्दन! हे लक्ष्मीनाथ! यदि ये आपके द्वारा परास्त हों तो आप ही इस कन्याके अभिमत वर

होंगे" ॥ ४४ ॥ राजन्! इस प्रकार राजाका प्रण सुन कर वासुदेवने दुपट्टेको कस कर कमरसे बाँध लिया और सात भिन्न २ रूप धर कर लीलापूर्वक उन दुष्ट बैलोंको पकड़ कर रस्सियोंमें नाथ लिया। भगवान्ने इस प्रकार जिनका घमंड चूर हो गया है और वेग नष्ट हो गया है उन लीलापूर्वक नाथे गये बैलोंको लड़का जैसे लकड़ीके बैलोंको खींचे वैसे घसीटा ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ यह देख कर राजा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने विस्मयपूर्वक आनन्दसे अपनी कन्याका हाथ भगवान् कृष्णचन्द्रको पकड़ा दिया। प्रभुने भी अपने सदृश भार्य्या नाग्नजितीसे विधिपूर्वक बिवाह किया ॥ ४७ ॥ राजा नग्नजित्की रानियाँ भी यह देख कर कि कन्याको श्रीकृष्ण ऐसे प्रिय पति प्राप्त हुए, परम आनन्दको प्राप्त हुईं, आनन्दसे उनके शरीरोंमें रोमांच हो आया। इस बिवाहके अवसर पर राजभवनमें और पुरीमें बड़ा ही उत्सव हुआ ॥ ४८ ॥ शंख, भेरी, ढोल आदि मांगलिक बाजे बजने लगे। स्त्रियाँ गाने लगीं और ब्राह्मणगण अमोघ आशीर्वाद देने लगे। विविध वस्त्र और माला आदिसे अलंकृत नरनारीगण वर और वधूको आशीर्वाद देकर प्रसन्नता प्रकट करने लगे। राजाने कंठमें पदक पहने हुए सुन्दर वेशवाली तीन हजार सुन्दरी युवती दासियाँ, भली भाँति सजी हुई दस हजार गौवें, नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, करोड़ घोड़े एवं नौ पद्म दास यौतुकमें दिये। परम आनन्दमें मग्न कोशलनरेशने कन्या और दमादको रथ पर चढ़ाकर बिदा किया और स्नेहवश रक्षाके लिये बहुत सी सेना साथ करदी। कोशलनरेश इस प्रकार कन्या व दमादको बिदा कर अपने पुरको लौट गये और सुखपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इधर जिन राजोंके घमंडको यादवोंने और नग्नजित्के बैलोंने भग्न कर डाला था उन्होने जब सुना कि कृष्णचन्द्र उसी कन्याको ब्याह कर लिये जाते हैं तब वे ईर्ष्यावश सहन न कर सके। उन्होने राहमें आकर कृष्णचन्द्रको घेर लिया और इन पर बाणोंकी वर्षा करने लगे। कृष्णचन्द्रके साथ उनके प्रिय सखा गांडीवधनुपधारी अर्जुन भी थे। उन्होने अपने बंधु कृष्णकी प्रीतिके लिये धनुष चढ़ा कर बाणोंकी वर्षासे विपक्षीय राजा लोगोंको यों भगा दिया जैसे सिंह छोटे २ मृगोंको भगा देता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ देवकीके पुत्र यदुश्रेष्ठ भगवान्ने वैवाहिक सामग्री (यौतुक) सहित, सत्याके साथ द्वारका पुरीमें प्रवेश किया। इस प्रकार भगवान् कृष्ण द्वारका पुरीमें रह कर विहार करने लगे ॥ ५५ ॥ इस विवाहके उपरान्त कृष्णचन्द्रने अपनी बुआ श्रुतकीर्त्तिकी कन्या केकयदेशजा भद्रासे विवाह किया। भद्राके भाई सन्तर्द्दन आदिने स्वयं सादर बुलाकर कृष्णको अपनी बहन ब्याह दी ॥ ५६ ॥ इस विवाहके उपरान्त जैसे गरुड़ अकेले ही अमृत हर लाये थे वैसे ही कृष्णचन्द्र अकेले जाकर मद्रदेशके राजाकी कन्या सुन्दर लक्षणवाली सुलक्षणाको स्वयम्वरसे हर लाये ॥ ५७ ॥

अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन्सहस्रशः ॥
भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥ ५८ ॥

राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्णके हजारों स्त्रियाँ हुईं। वह भूमिनन्दन नरकासुरको मार कर उसके अन्तःपुरसे परम सुंदरी सोलह हजार एक सौ कन्याएँ हर लाये ॥ ५८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्ठितम अध्याय।

भौमासुरवध।

राजोवाच—**यथा हतो भगवता भौमो येन च ताः स्त्रियः ॥**
निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १ ॥

राजाने कहा। ब्रह्मन्! भौमासुरने इतनी कन्याओंको क्यों अपने अन्तःपुरमें बंद कर रक्खा था एवं भगवान् कृष्णने उस असुरको क्यों और कैसे मारा? यह सब विष्णु भगवान्के विक्रमका विषय आप हमसे कहिये ॥ १ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।** महाराज! भौमासुरने इन्द्रकी माता अदितिके कुण्डल और इन्द्रका छत्र (यद्यपि वह छत्र वरुणका था, परन्तु उसके छिन जानेसे इन्द्रका ही अपमान हुआ, क्योंकि इन्द्र सब लोकपालोंमें प्रधान हैं) बलपूर्वक छीन लिया एवं भूमिवंशज मंदरशिखरनामक महामणि जो इन्द्रके पास थी वह भी लेली। तब इन्द्रने कृष्णचन्द्रसे आकर भौमासुरकी दुष्टताका सब वृत्तान्त कहा। श्रीकृष्ण भगवान् उसी समय अपनी भार्य्या सत्यभामाको साथ ले, गरुड़ पर चढ़ कर भौमासुरके प्रागुज्योतिपनाम पुरको गये। वह नगर बड़ा ही दुर्गम था। क्योंकि वह गिरिदुर्ग और शस्त्रदुर्गसे सुदृढ़ था एवं पर्वतों और शस्त्रोंके आवरणोंके बाद जल, अग्नि और वायुके आवरणोंसे सुरक्षित था। इस प्रकार वह नगर चारो ओरसे सुरक्षित और घिरा हुआ था। इसके सिवा मुर दैत्यके दश सहस्र अत्यंत प्रचंड पाशों द्वारा चारो ओरसे घिरा हुआ था। तात्पर्य्य यह कि उसके भीतर तक पहुँचना शत्रुके लिये कठिन ही नहीं, वरन् एक प्रकारसे असंभव ही था। किन्तु गदाधर कृष्णने पहुँचतेही गदाके प्रहारसे पहाड़ोंके आवरणको तोड़ डाला, बाणोंके प्रयोगसे शस्त्रोंके आवरणोंको नष्ट कर दिया, चक्रसे अग्नि, जल और वायुके आवरणोंको एवं खड्गसे मुर दैत्यके पाशोंको नष्ट किया तथा तदनन्तर प्रचण्ड शंखनादसे यन्त्रोंको तथा गुरु गदाके आघातसे शत्रुपक्षवाले साहसी वीरोंके हृदयोंके साथ

ही पुरके प्राकार (चहारदीवारी)को तोड़ डाला । उस समय पाँच शिरवाले मुर दैत्यके कानमें पाञ्चजन्यकी प्रलयकालीन वज्रपातके समान घोर ध्वनिने प्रवेश किया। वह दैत्य जलके भीतर पड़ा सो रहा था, सो शंखका शब्द सुनते ही उठ बैठा। वह दैत्य प्रलयकालके सूर्य्य और अग्निके समान उग्र मूर्ति धरकर, त्रिशूल हाथमें ले, सर्प जैसे गरुड़ पर चोट करनेको झपटे वैसे ही पाँचो मुख फैलाकर मानो तीनो लोकोंको लील लेगा यों कृष्णकी ओर वेगसे चला । उसने वह त्रिशूल बड़े वेगसे गरुड़के ऊपर मारा एवं पाँचो मुखोंसे भयानक शब्द किया । वह शब्द आकाश-मण्डल, स्वर्गलोक और दशो दिशाओंमें भर गया, अर्थात् उस शब्दसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्याप्त होगया ॥२॥३॥४॥५॥६॥७॥ भगवान्ने जब वह त्रिशूल गरुड़की ओर आते देखा तब शस्त्रकौशलप्रयोगपूर्वक दो बाणोंसे उसके तीन खंड कर डाले और फिर दैत्यके फैले हुए मुखोंमें कई तीक्ष्ण बाण मारे । बाणोंकी चोटसे व्याकुल और कुपित दैत्यने भी कृष्णचन्द्र पर गदाका प्रहार किया । गदाको अपनी ओर आते देख गदके अग्रज कृष्णने अपनी गदाके प्रहारसे उसके टुकड़े २ कर डाले । तब निःशस्त्र होने पर वह दैत्य दोनो हाथ उठाकर कृष्णकी ओर झपटा । तब अजित भगवान्ने लीलापूर्वक सुदर्शन चक्रसे उसके पाँचो शिर काट डाले । मुरके शिर कट गये और प्राण निकल गये तब वह इन्द्रके तेजसे जिसके शिखर कट गये हों उस पर्वतके समान जलके भीतर गिर पड़ा । ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान् और वरुण नाम मुर दैत्यके सातो पुत्र पिताके वधसे आतुर होकर भौमासुरकी आज्ञासे बदला लेनेके लिये उत्साह करके चले एवं पीठ नाम एक असुरको सेनापति बनाकर युद्ध भूमिमें आये । वे खड्ग, बाण, गदा, शक्ति, ऋष्टि, शूल आदि शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे । तब अमोघवीर्य्य भगवान् कृष्णने उक्त शस्त्रोंको अपने बाणोंसे तिल २ करके काटडाला एवं शिर, कंधे, भुजा, चरण और कवच जिनके कट गये हैं उन मुरके पुत्रोंको पीठनाम सेनापति सहित यमपुरको भेज दिया । पृथ्वीका पुत्र भौमासुर इस प्रकार अच्युतके चक्र और बाणोंसे अपनी सेना व सेनापतियोंको परास्त होते देख अत्यन्त कोप करके समुद्रसम्भव, मदमत्त हाथीपर चढ़कर युद्ध करनेके लिये निकला । उसके साथ बहुतसे समुद्रसंभव हाथी थे, जिनके गण्डस्थलसे निरन्तर मदकी धारा बह रही थी । तदनन्तर सूर्य्यके ऊपर विद्युत्युक्त मेघके समान गरुड़की पीठपर सत्यभामासहित विराजमान कृष्णको देखकर नरकासुरने उन पर एक शतघ्नी चलाई । योद्धा लोग भी अस्त्र और शस्त्र चलाकर संग्राम करने लगे । भगवान् कृष्णने उसी क्षण विचित्रपत्रयुक्त सुतीक्ष्ण बाणोंसे भौमासुरकी सेनाके घोड़े और हाथियोंका विनाश किया एवं पैदल व रथी लोगोंके बाहु, ऊरु, कंधे व शिर आदि अंग तथा शरीरोंको छिन्न भिन्न कर दिया ॥८॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥१५॥१६॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! योद्धा लोगोंने जो अस्त्र

शस्त्र कृष्ण पर चलाये वे पास भी नहीं आने पाये, बीचहीमें कृष्णचन्द्रने तीन २ तीक्ष्ण बाणोंसे एक २ अस्त्र और शस्त्रके कई २ टुकड़े कर डाले ॥ १७ ॥ कृष्णचन्द्रको अपनी पीठ पर चढ़ाये हुए पक्षिराज गरुड़ भी अपने दोनो विशाल परोंकी थपेड़से मदमत्त मातंगदलको दलित करने लगे । गरुड़के प्रचण्ड तुण्ड (चोंच), पक्ष और नखोंके प्रहारसे पीड़ित हाथियोंका झुंड युद्धभूमिमें न टिकसका और युद्धसे विमुख होकर नगरकी ओर भागा । अब नरकासुर अकेला ही रह गया । गरुड़ने दैत्य सेनाको भगा दिया—यह देखकर नरकासुरने गरुड़के ऊपर एक अमोघ शक्ति चलाई । किन्तु गरुडके अंगमें जब इन्द्रका वज्र भी विफल होगया तब वह शक्ति क्या थी? जैसे फूलोंकी माला खींचकर मारनेसे गजराजको कुछ व्यथा नहीं होती और वह वैसे ही खड़ा रहता है वैसे ही गरुड़जी भी जहाँके तहाँ खड़े रहे ॥१८॥१९॥ ॥ २० ॥ तब भौमासुरने कृष्णको मारनेके अभिप्रायसे त्रिशूल हाथमें लिया, परन्तु उसकी इच्छा सफल नहीं हुई । क्योंकि त्रिशूल फेंकनेके पहले ही कृष्णने हाथी पर सवार नरकासुरका शिर तीक्ष्ण धारावाले सुदर्शन चक्रसे काट डाला । कुंडल और किरीट मुकुटसे सुशोभित नरकासुरका कान्तिमान् शिर कट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा । यह देखकर दैत्यलोग हाहाकार करने लगे और ऋषिगण व देवतागण जय २ और साधु २ कह कर प्रसन्नता प्रकट करते हुए मुकुंद पर फूलोंकी वर्षा व उनकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ भौमासुरके मरने पर पृथ्वीने वैजयन्ती माला व वनमाला, तपाये हुए सुवर्णके बने हुए रत्नमण्डित चमचमाते हुए कुण्डल, वरुणका छत्र एवं मंदरशिखर नाम महामणि लाकर कृष्ण भगवान्को देदी और फिर हाथ जोड़, नम्रतापूर्वक भक्तिपूर्ण अंतःकरणसे उन्ही देवदेव संसारके स्वामी श्यामसुन्दरकी इस प्रकार स्तुति करने लगी ॥२३॥२४॥ **पृथ्वीने कहा ।** "हे देवदेव ! हे ईश्वर ! हे शंख, चक्र और गदा धारण करने वाले ! हे परमात्मा ! आप निराकार निर्गुण होकर भी भक्तोंकी इच्छाके अनुसार शरीर धारण करते हैं । आपको प्रणाम है ॥२५॥ हे अन्तर्य्यामी ! हे कमलनाभ ! हे कमललोचन ! आपको प्रणाम है । आपके चरण कमलतुल्य कोमल हैं और आपके वक्षःस्थलमें कमलके फूलोंकी माला शोभायमान है ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! हे वासुदेव ! हे विष्णु ! हे बीजस्वरूप आदिपुरुष ! हे पूर्णज्ञानमय ! आपको प्रणाम है ॥ २७ ॥ आप ब्रह्म अर्थात् बृहत् हैं, आपकी शक्ति अनन्त है; अतएव जन्मरहित होकर भी आप जगत्के जन्मदाता परम पिता हैं । आप उत्कृष्ट और निकृष्ट—सब प्रकारके प्राणियोंके आत्मा अर्थात् परमात्मा हैं, हे अन्तर्य्यामी ! आपको प्रणाम है ॥ २८ ॥ प्रभो ! आप विश्वकी सृष्टिकी इच्छासे उत्कट रजोगुणको, जगत्को पालनेकी इच्छासे सतोगुणको एवं संसारके संहारकी इच्छासे तमोगुणको समय २ पर भजते हैं, तथापि मायामें लिप्त नहीं होते । अर्थात् उक्त तीनो गुणोंसे आच्छन्न नहीं होते । हे जगत्पति ! काल, प्रकृति

और पुरुष–सब आप ही हैं ॥२९॥ भगवन् ! आप अद्वितीय हैं, अर्थात् आपसे भिन्न और कुछ नहीं है । 'पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, इन्द्रिय एवं इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता;–इन्हींसे चराचर जगत्का संगठन होता है'–आपमें लोगोंको इस प्रकारका भ्रम होता है (अर्थात् वास्तवमें आपहीसे इस जगत्की रचना होती है, क्योंकि उक्त पृथ्वी आदि उपादानोंकी सृष्टि आप हीसे होती है)॥३०॥ हे शरणागत जनोंके दुःखोंको दूरकरनेवाले ! यह भौमासुरका पुत्र भगदत्त भयभीत होकर आपके चरणोंकी शरणमें आया है–इसकी रक्षा करिये और अपना कलिकलुषनाशन करकमल इसके शिरपर धरिये" ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन् ! प्रणत होकर भूमिने जब इस प्रकार विनीतवचनोंसे स्तुति और प्रार्थना की तब भगवान् कृष्णचन्द्रने प्रसन्न हो कर भगदत्तको अभयदान करके सम्पूर्ण समृद्धि-सम्पन्न भौमासुरके भवनमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ राजन् ! महापराक्रमी भौमासुर राजा लोगोंकी सोलह हजार एक सौ कन्याएँ बलपूर्वक हर लाया था। श्रीकृष्णने अन्तःपुरमें जाकर उन सब कन्याओंको देखा ॥ ३३ ॥ वे सब स्त्रियाँ नरवर कृष्णको अन्तःपुरमें देखते ही मोहित होगईं एवं मनही मन उनको ईश्वरका भेजा हुआ अपना अभीष्ट पति मानकर इस प्रकार विधातासे प्रार्थना करने लगीं कि "हे विधाता ! यही कृष्णचन्द्र हमारे वर हों, हमारी इस इच्छाको आप स्वीकृत करिये"। विधातासे यों सबने अलग २ प्रार्थना की और अनुरागपूर्वक अपने २ हृदयमें श्रीकृष्णकी मनोहर मूर्त्ति स्थापित कर ली अर्थात् अपना २ हृदय कृष्णको अर्पण कर दिया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ कृष्णचन्द्रने उन सब स्त्रियोंको पालकियोंपर बिठाकर द्वारकापुरीको भेज दिया । उनके साथ ही महाकोष, रथ, अश्व, अतुल ऐश्वर्य्य और वेगगामी ऐरावतके वंशमें उत्पन्न, चार दाँतवाले, शुक्ल वर्ण चौंसठ गजराज भी द्वारकापुरीको भेजे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ तदनन्तर भगवान् कृष्णचन्द्र अपनी प्रिया सत्यभामाके साथ उधरहीसे इन्द्रलोकको गये। महेन्द्र और इन्द्राणीने उनका आदर सत्कार व पूजन किया। भगवान्ने अदितिको उनके कुण्डल दिये और द्वारकापुरीको प्रस्थान किया। लौटते समय सत्यभामाके अनुरोधसे भगवान्ने कल्पवृक्षको उखाड़कर गरुड़की पीठ पर रखलिया । उस समय इन्द्र आदि देवगण युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए, तब कृष्णचन्द्रने उनको परास्त किया और कल्पवृक्ष लेकर द्वारका पुरीको प्रस्थान किया। कृष्णचन्द्रने कल्पवृक्ष लाकर सत्यभामाके भवनकी बगियामें लगा दिया; उससे भगवनके उपवनकी और भी शोभा अधिक होगई । कल्पवृक्षके आसवरूप गन्धके लोलुप स्वर्गलोकके भ्रमरगण कल्पवृक्षके पीछे २ स्वर्गलोकसे आकर द्वारकापुरीमें रहने लगे। श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन् ! अहो देवतोंकी प्रकृति कैसी तामसी है! जिन इन्द्रने अपने प्रयोजनके लिये कृष्णचन्द्रके चरणोंमें अपना किरीट मुकुट रख दिया वही इन्द्र प्रयोजन सिद्ध

हो जाने पर उन्ही अपने सहायक स्वामी कृष्णसे उसी समय युद्ध करनेके लिये उद्यत होगये ॥३८॥३९॥४०॥४१॥ तदनन्तर भगवान् कृष्णचन्द्रने एक ही दिन एक ही मुहूर्त्तमें उन सोहल हजार एक सौ स्त्रियोंसे भिन्न २ भवनोंमें उतने ही रूप धर कर बिवाह किया ॥ ४२ ॥ उन रानियोंके भवन ऐसे समृद्धिसम्पन्न थे कि उनके समान वा अधिक कोई भवन तीनो लोकोंमें नहीं होगा । जिनके कर्म्म अचिन्त्य हैं वह अपने ही आनन्दसे परिपूर्ण श्रीकृष्णचन्द्र, उन भवनोंमें निरन्तर निवास करके गृहस्थ धर्म्मका आचरण करनेवाले साधारण व्यक्तिके समान जैसे कोई कामी-विषयी पुरुषहो वैसे अपनी सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंसे रमण करने लगे ॥ ४३ ॥ जिनकी पदवीको ब्रह्मा आदि भी भली भाँति नहीं जानते उन्ही लक्ष्मीपतिको पतिरूपसे पाकर वे सुन्दरियाँ अनुरागपूर्ण हँसी, चितवन एवं लज्जायुक्त नवसंगमकी बातचीत आदिके द्वारा प्रसन्न करती हुई आनन्दपूर्वक नित्य निरन्तर भजने लगीं ॥ ४४ ॥

प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौच–
ताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ॥
केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यै
र्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स दास्यम् ॥ ४५ ॥

राजन् ! सेवामें सैकड़ों दासियोंके उपस्थित रहने पर भी वे रानियाँ आपही श्रीकृष्णचन्द्रके आते समय उठकर आदरपूर्वक उनको भीतर लातीं, सुंदर आसनपर बिठलातीं, पैर धोतीं, पान देतीं, पैर दबातीं, पंखा डुलातीं और चंदन-माला आदिसे आभूषित करतीं, केशोंका संस्कार करतीं, स्नान करातीं एवं अनेक प्रकारके उपहार देकर सेवा करतीं थी ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

षष्ठितम अध्याय ।

श्रीकृष्ण व रुक्मिणीका वार्त्तालाप ।

श्रीशुक उवाच–कर्हिचित्सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम् ॥
पतिं पर्यचरद्भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन् ! एक समय जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीजीके भवनमें शय्या पर सुखसे बैठे हुए थे और रुक्मिणीजी सखियों सहित पंखा डुलाती हुई अपने पतिकी सेवा कर रही थीं ॥ १ ॥ जो ईश्वर लीलापूर्वक

इस विश्वको उत्पन्न करके पालन और संहार करते हैं वही जन्मरहित होकर भी अपनी बनाई हुई धर्म्ममर्य्यादाकी रक्षाके लिये यदुकुलमें उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ राजन् ! वह रुक्मिणीका भवन अत्यन्त समृद्धिसम्पन्न था । उसमें मोतियोंकी झालरें जिनमें टँकी हैं ऐसे चंद्रातप (चँदोवे) तने हुए थे, ठौर २ पर मणिमय दीपक जल रहे थे, शोभाके लिये अनेक प्रकारके फूलोंके गुच्छे और मल्लिकाकी मालाएँ सजाई हुई थीं—जिनमें सुगंधके लोभसे भ्रमरपुंज बैठे हुए गुंजारव करते थे । सुंदर चाँदनी और उपवनमें लगे हुए कल्पवृक्षके फूलोंकी महक झरोखोंकी राहसे जाकर उस भवनके भीतर रहनेवालोंके हृदयको प्रफुल्लित और मनको प्रसन्न करती थी एवं अगुरुकी धूपका धुआँ उस भवनको आमोदित किये हुए था ॥ ३ ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ राजन् ! राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी उसी भवनमें पलँगके ऊपर दूधके फेनेके समान उज्ज्वल बिछौनों पर सुखसे बैठे हुए अपने पति जगत्पतिकी सेवा करने लगीं । देवी रुक्मिणी रत्नदण्डयुक्त बालव्यजन सखीके हाथसे लेकर आप डुलाने लगीं ॥ ६ ॥ ७ ॥ रुक्मिणीजी मणिमय नूपुरोंको चरणोंकी थपकसे बजाती हुई कृष्णचन्द्रकी सेवामें तत्पर थीं । उनकी कलाइयोंमें रत्नमणिमय कंकण, अँगुलियोंमें बहुमूल्य नग जिनमें जड़े हैं ऐसी अँगूठियाँ और हाथमें श्वेतव्यजन (पंखा) शोभायमान था । अञ्चलमें छिपे हुए उन्नत कुचोंमें लगे हुए कुङ्कुमकी प्रभासे अरुणवर्ण हारकी कान्ति और नितम्बों पर विराजमान अमूल्य काञ्ची (कर्धनी—तागड़ी) से रुक्मिणीजीकी अपूर्व्व शोभा देख पड़ती थी ॥ ८ ॥ रुक्मिणीजी साक्षात् लक्ष्मीका रूप थीं, उनका रूप मायामानवदेहधारी श्रीकृष्णके अनुरूप था; अलकजाल, दोनो कुण्डलोंकी झलक एवं पदक आदि आभूषणोंसे विभूषित कण्ठकी चारो ओर फैल रही कान्तिसे सुशोभित उनके आननचन्द्रसे मुसकानमय अमृतकी वर्षा हो रही थी । ऐसी अनन्यगति रुक्मिणीजीकी ओर देखकर प्रसन्नतापूर्वक मन्द २ मुसकाते हुए कृष्णचन्द्रने कहा—"हे राजकुमारी ! लोकपालोंके समान वैभवशाली महानुभाव धनवान्, श्रीमान् एवं रूप, उदारता और बल द्वारा समृद्ध राजा लोग तुमसे विवाह करना चाहते थे । मदनमत्त शिशुपाल तुमसे ब्याह करनेके लिये दलबल सहित आचुका था; तुम्हारे भाई और पिताने भी तुम्हारा बिवाह शिशुपालके साथ करनेका निश्चय कर लिया था । तथापि सब प्रकार अपने योग्य उक्त राजकुमारोंको छोड़ कर तुमने, जो किसी बातमें अपने समान नहीं हैं उन हम ऐसोंको अपना पति क्यों बनाया ? ॥ ९ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ हे सुभ्रु ! हम राजा लोगोंके भयसे समुद्रकी शरणमें आकर बसे हैं, क्योंकि हमने अपनेसे बली लोगोंसे वैर बाँध रक्खा है । फिर हम राज्यासनके अधिकारी भी नहीं हैं ॥ १२ ॥ जिनका आचरण दुर्बोध है और जो स्त्रियोंके वशवर्त्ती नहीं हैं उन पुरुषोंकी पदवीका अनुसरण करनेवाली स्त्रियाँ प्रायः कष्ट

पाती और दुःख उठाती हैं ॥ १३ ॥ हे सुमध्यमे! हम लोग निष्किञ्चन हैं और निष्किञ्चन जनही हमसे स्नेह करते हैं। अतएव समृद्धिसम्पन्न लोग प्रायः हमको नहीं भजते ॥ १४ ॥ जो लोग धन, जन्म, ऐश्वर्य्य, आकार और अवस्थामें अपने समान हों उन्हींसे मित्रता और विवाह करना सोहता है। उत्तम और अधमके साथ मित्रता और बिवाह होना कभी भला नहीं है ॥ १५ ॥ हे विदर्भराजकुमारी! तुम दूरदर्शिनी नहीं हो, इसी कारण पूर्वोक्त नीतिको बिना जाने तुमने मुझ ऐसे गुणहीन नरको भिक्षुकोंके (नारदके) मुखसे प्रशंसा सुनकर अपना पति ठीक कर लिया, वास्तवमें तुम ठग गईं ॥ १६ ॥ अस्तु अब भी तुम जिसके संगसे इस लोक और परलोकमें सुख पा सको ऐसे किसी अपने योग्य श्रेष्ठ क्षत्रियको ढूँढ लो ॥ १७ ॥ हे सुन्दर ऊरूवाली सुन्दरी! शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र आदि राजा लोग और तुम्हारा बड़ा भाई रुक्मी भी हमसे वैरभाव रखता है। वीर्य्यके मदसे अंधे हो रहे उक्त घमंडी राजोंका गर्व खर्व करनेके लियेही मैं तुमको हर लाया था। क्योंकि असत् जनोंके तेजको मिटाना हमारा कर्त्तव्य है ॥ १८ ॥ १९ ॥ राजकुमारी! तुम निश्चय जानो कि हम उदासीन हैं। हमको स्त्री, पुत्र और धन आदिकी कामना नहीं है, क्योंकि हम देह और गेह दोनोंके विषयोंमें निर्लिप्त हैं, आत्मलाभसे ही पूर्ण हैं। अतएव दीपादिककी ज्योतिके समान क्रियासे रहित केवल साक्षीमात्र हैं" ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! रुक्मिणीसे कृष्णचन्द्र कभी अलग न होते थे, सब समय उनके निकट बने रहते थे; इसी कारण उन्होने समझा कि कृष्णचन्द्र मुझको ही सबसे बढ़ कर मानते हैं। अतएव रुक्मिणीका दर्प दूर करनेके लिये इतना कह कर भगवान् चुप हो रहे ॥ २१ ॥ तीनो लोकके ईश्वर अपने प्यारे पतिके मुखसे ऐसे अप्रिय वचन, जैसे पहले कभी और नहीं सुने थे, सुनकर देवी रुक्मिणी बहुत ही भयभीत हुईं और उनका हृदय धड़कने लगा। वह अत्यन्त चिन्तित होकर अपने सुडौल नखोंकी प्रभासे और भी अरुण हो रहे चरणसे पृथ्वीको खोदती हुई मुख नीचा करके रोने लगीं। काजलमें मिल कर काले हो गये आँसुओंसे उनके पीन पयोधर भीग गये। दारुण मानसिक वेदनासे उनका कंठ रुँध गया, वह कुछ भी न कहसकीं। अत्यन्त दुःख, भय और शोकसे वह अचेत होगईं, हाथोंके कंकण शिथिल होकर खिसक गये और पंखा अलग गिर पड़ा। चिन्तासे चञ्चल शरीर भी, चेतनाशून्य होकर आँधीके झटकेसे जैसे कोई केलेका वृक्ष उखड़ कर गिर पड़े वैसे पृथ्वीतलपर गिर पड़ा और बाल खुल कर बिखर गये। रुक्मिणीजी हँसीकी गंभीरता न जानती थीं, इसी कारण उनकी यह दशा हुई। तब प्रियाके सुदृढ़ प्रेमको देख कर दयानिधान भगवान्‌को दया आगई, उसी समय उन्होने चतुर्भुज हो, झटपट पलँगसे उतर दो हाथोंसे रुक्मिणीको उठा लिया

और दो करकमलोंसे उनके बिखरे हुए केश सँवार कर आँसू पोंछे ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ महाराज ! समझानेमें चतुर, साधुओंकी एकमात्र गति प्रभु देवकी नन्दनने, हँसीकी गंभीरता न जाननेके कारण चिन्तित और दीन होरही एवं ऐसे गूढ़ उपहासके अयोग्य जो अनन्य प्रेम करनेवाली सती रुक्मिणीजी हैं उनको कृपापूर्वक हृदयसे लगा लिया और उनके अश्रुविकल नेत्र एवं शोकशुष्क पीन पयोधरोंको वस्त्रसे पोंछ कर यों समझाना आरंभ किया ॥ २७ ॥ २८ ॥ **भगवान्ने कहा** । "हे वैदर्भी ! तुम मेरे ऊपर रोष न करना। मुझे भली भाँति विदित है कि तुम मेरे सिवा किसी अन्य पुरुषको जानती भी नहीं । हे सुन्दरी ! तुम्हारे मुखसे प्रणय-कोपको प्रकट करनेवाली बातें सुनने एवं प्रणयकोपके कारण फरक रहे तुम्हारे अधर, कुटिल कटाक्षोंसे सुशोभित अरुण अपाङ्ग तथा भ्रूभंगके रंगसे मनोहर मुख देखनेके लिये ही मैंने यह हँसी की थी। हे भीरु भामिनी ! गृहस्थ लोगोंको गृहस्थाश्रममें यही परम लाभ है कि वे अपनी प्रियाके साथ हँसी दिल्लगीमें समयको व्यतीत करते हुए मनको बहलाते हैं" ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । महाराज ! भगवान्ने जब इस प्रकार समझाया और कहा कि मैंने तुमसे हँसी की थी, तब विदर्भनन्दिनीको धैर्य्य हुआ और उनके हृदयसे प्रियके त्याग करनेका भय जाता रहा ॥ ३२ ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! तब रुक्मिणी देवी लज्जायुक्त मंदमुसकानके साथ सुन्दर स्नेहपूर्ण कुटिल कटाक्षोंसे पुरुषश्रेष्ठ कृष्णके ऐश्वर्य्ययुक्त मुखको देखती हुई इस प्रकार कहने लगीं ॥ ३३ ॥ **श्रीरुक्मिणीजीने कहा** । "हे कमलनयन ! आपने जो कहा कि 'मैं तुम्हारे सदृश न था, तुमने क्यों मेरे साथ विवाह किया—' इत्यादि । सो सत्य ही है, मैं आपके योग्य नहीं हूँ । कहाँ आप ब्रह्मादि तीनो देवोंके अथवा तीनो गुणोंके अधीश्वर अर्थात् नियन्ता एवं दिव्य शक्तिसम्पन्न भगवान् ! और कहाँ मैं गुणमयी प्रकृति ! मैं आपके समान कहाँ हो सक्ती हूँ । अज्ञ अर्थात् सकाम लोग ही मेरे चरणोंकी सेवा करते हैं ॥ ३४ ॥ हे विशालविक्रम ! आपका यह कथन भी सत्य है कि 'हम राजोंसे डर कर समुद्रकी शरणमें बसे हैं' । क्योंकि शब्दादि गुणही राजमान होनेके कारण 'राजा' हैं, उनके भयसे ही मानो समुद्रतुल्य अगाध अर्थात् विषयोंसे अपरिच्छिन्न शुद्ध भक्तोंके हृदयस्थलमें आप शयन करते हैं, अर्थात् निश्चलभावसे प्रकाशमान हैं । आप निरवच्छिन्न ज्ञानमय परमात्मा हैं, आपका यह कहना भी ठीक ही है कि 'हमने बलवानोंसे वैर बाँध रक्खा है, और हमको राज्यकी इच्छा वा अधिकार नहीं है' इत्यादि । क्योंकि जिनकी प्रबल इन्द्रियाँ बाहरी विषयोंमें लिप्त हैं उनसे अथवा प्रबल कुत्सित इन्द्रियोंसे ही आपको विद्वेष है अर्थात् उनकी प्रतीति आपको नहीं है । हे नाथ ! राजपद घोर अज्ञानरूप है, इसको पाकर मनुष्य कर्त्तव्याकर्त्त-

व्यके विवेकसे विहीन अन्धा सा होजाता है। उस राजपदको जब आपके सेवकलोगोंने छोड़ दिया अर्थात् उसकी इच्छा नहीं करते तब आपके लिये कहना ही क्या है॥३५॥ भगवन्! आपने अपने विषयमें और जो २ बातें कहीं हैं सो सब उचित और सत्य हैं। यथा, आपके चरणकमल मकरन्दका सेवन करनेवाले मुनिजनोंके ही आचरण दुर्बोध हैं, पशु समान अज्ञानी-विषयी मनुष्योंकी समझमें नहीं आते। जब आपका अनुसरण करनेवालोंका ही चरित्र अलौकिक एवं अचिन्त्य है तब हे भूमन्! स्वयं साक्षात् ईश्वर जो आप हैं उनके चरित्रका दुर्बोध वा अलौकिक होना कुछ आश्चर्य नहीं है॥३६॥ हे स्वामी! जिन ब्रह्मादिकोंकी और सब लोग पूजा करते हैं वे भी आदरसहित आपका पूजन करते हैं; अतएव आप निष्किञ्चन नहीं हैं। किन्तु आप एक प्रकारसे निष्किञ्चन ही हैं। क्योंकि आपसे भिन्न कुछ भी नहीं है। आप अन्तक हैं, ऐश्वर्य्यके मदमें अंधे हो रहे, अतएव केवल अपने शरीरके लालन पालनमें निरत लोग आपको नहीं जानते। आप सब पूजनीय जनोंमें श्रेष्ठ हैं, ब्रह्मादिक जगत्पूज्य देवता भी इष्टदेव मानकर आपको भजते हैं एवं वे ही आपको भी प्रिय हैं॥३७॥ अच्छी बुद्धिवाले लोग जिसके मिलनेकी अभिलाषासे सब वस्तुओंका त्याग कर देते हैं, आप वही सम्पूर्णपुरुषार्थमयफलस्वरूप परमात्मा हैं। भगवन्! पूर्वोक्त अच्छी बुद्धिवाले ब्रह्मादिसे ही आपका सेव्य-सेवकसम्बन्ध समुचित है। स्त्री-पुरुषरूप हमारा सम्बन्ध आपके योग्य नहीं है, क्योंकि इस सम्बन्धमें आसक्तिके कारण प्राप्त हुए सुख, दुःखोंसे हमलोग आकुल हैं॥३८॥ संन्यस्त मुनिगण ही आपके प्रभावको जानते और कहते हैं; 'आप जगत्के आत्मा और आत्मज्ञानके देनेवाले हैं'—यह जानकर ही ब्रह्मादिकोंको छोड़ मैंने आपको अपना पति बनाया है। आपकी भ्रुकुटियोंके बीचसे उत्पन्न जो काल है उसके वेगसे जिनके मंगल और वैभवका विनाश हो सक्ता है उन ब्रह्मादि देवतोंको पति बनाना मैंने उचित एवं उत्तम नहीं समझा॥३९॥ हे गदाग्रज गदाधर! सिंह जैसे अपने गर्जनशब्दसे पशुपालकोंको भगाकर अपना आहार ले आता है वैसे ही आप शार्ङ्ग धनुषके नादसे राजोंको भगाकर अपना अंश अर्थात् भाग जो मैं हूँ उसको हर ले आये। वही आप उन्ही राजोंके भयसे समुद्रकी शरणमें आकर बसे हैं—इस अभिप्रायके आपके वचन ठीक नहीं जान पड़ते॥४०॥ हे कमलनयन! अङ्ग, पृथु, भरत, ययाति और गय आदि महीशमौलिमुकुटमणि महाराजोंने भजनकी अभिलाषासे चक्रवर्त्ती राज्य छोड़ दिया और आपकी पदवी पानेके लिये वनमें जाकर तपमें निरत हुए। क्या उनको किसी प्रकारका कष्ट मिला? अथवा वे आपकी पदवीको नहीं प्राप्त हुए? नहीं २, वे सब कष्टोंके पार हो आपकी चरणपदवी पाकर परमानन्दमें लीन होगये हैं॥४१॥ भगवन्! आप सब गुणोंकी खान हैं। आपके पादारविन्दोंका मकरन्द–गन्ध साधुओंके

द्वारा वर्णित है और लक्ष्मी निरन्तर उसका सेवन करती हैं एवं भक्तजन उससे मोक्षको प्राप्त होते हैं। उसी चरणकमलमकरंदकी सुवासको सूँघकर, अपने प्रयोजनको विवेककी शुद्ध दृष्टिसे देखनेवाली कौन कामिनी फिर किसी मरणशील एवं सर्वदा कालके भयसे शंकित अन्य पुरुषका आश्रय लेगी ? ॥ ४२ ॥ आप जगत्के अधीश्वर आत्मा हैं—इस लोक और परलोकमें सब अभिलाषाएँ पूरी करनेवाले हैं; यह जान कर अपने अनुरूप जो आप हैं—उनको मैंने अपना पति बनाया। मेरी यही प्रार्थना है कि मैं देवता, पशु-पक्षी आदिकी, चाहे जिस योनिमें कर्म्मानुसार भ्रमण करूँ, सर्वत्र आपहीके चरणोंकी शरणमें रहूँ। नाथ! जो लोग आपको भजते हैं, आप समदर्शी व निःस्पृह होकर भी उनको भजते हैं एवं आपके भजनद्वारा असत्य संसारसे मुक्ति मिलती है ॥ ४३ ॥ हे अच्युत! हे शत्रुनाशन! स्त्रियोंके गृहोंमें जो गधेके समान भार वहन करते हैं और बैलके समान नित्य गृहस्थीके व्यापारोंमें जुते रह कर क्लेश भोगते हैं, कुत्तेके समान जिनका निरादर होता है, बिलावके समान जो दीन बने रह कर सेवकोंके समान स्त्रीआदिकी सेवामें लगे रहते हैं वे आपके बताये हुए(शिशुपालआदि)नरपतिगण उसी स्त्रीके पति हों जिसके कानोंमें कभी आपकी उन पवित्र कथाओंने प्रवेश नहीं किया जिनको ब्रह्मा, शिव आदिकी सभाओंमें आदर मिलता है ॥ ४४ ॥ स्वामी! जिसने आपके चरणारविन्दमकरंदकी सुगन्धको नहीं सूँघा वही मूढ़ स्त्री, ऊपर त्वचा, श्मश्रु, रोम, नख और केशोंसे आवृत एवं भीतर मांस, अस्थि, रक्त, कृमि, विष्ठा, कफ, पित्त और वातसे परिपूर्ण जीवन्मृत पुरुषको कान्तभावसे भजेगी ॥ ४५ ॥ हे कमलनयन! आप आत्मरत हो, मुझ पर भी आपकी अत्यन्त अधिक दृष्टि नहीं है, तथापि मेरी यही प्रार्थना है कि आपके चरणोंमें मेरा मन लगा रहे। आप इस जगत्की बढ़तीके लिये उत्कृष्ट रजोगुणको स्वीकार करते हुए जो मुझ पर दृष्टि डालते हैं उसीको मैं आपका परम अनुग्रह मानती हूँ ॥ ४६ ॥ हे मधुसूदन! आपने जो कहा कि 'किसी अन्य अपने अनुरूप श्रेष्ठ क्षत्रियको ढूँढ लो'—सो आपका कथन मिथ्या नहीं है। क्योंकि जगत्में कोई २ स्त्रियाँ स्वामीके रहते भी अन्य पुरुष पर आसक्त हो जाती हैं—जैसे काशिराजकी कन्या शाल्वपर अनुरक्त और आसक्त होगई ॥ ४७ ॥ पुंश्चली स्त्रियोंका मन विवाह हो जाने पर भी नवीन २ पुरुषों पर आसक्त होता रहता है। किन्तु चतुर बुद्धिमान् लोगोंको चाहिये कि वे ऐसी असती स्त्रियोंसे कभी विवाह न करें, क्योंकि ऐसी स्त्रियाँ दोनो कुलोंको कलंकित करती हैं, जिससे पुरुषकी भी इस लोकमें अकीर्त्ति और उस लोकमें दुर्गति होती है" ॥ ४८ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा। हे साध्वी! हे राजकुमारी! तुम्हारे मुखसे ऐसे ही वचन सुननेके लिये मैंने हँसी की थी। तुमने मेरे वाक्योंका यथार्थ अर्थ किया है ॥ ४९ ॥ हे कल्याणी! तुम्हारा चित्त मुझमें

अत्यन्त अनुरक्त है, अतएव मुक्ति और निर्व्वाणके लिये तुम जिन २ वरोंको मुझसे माँगती हो वे सब तुमको सब समय प्राप्त हैं ॥ ५० ॥ हे पापरहित सुन्दरी! मैंने कुछ कठोर वाक्य कह कर तुमको कुपित करना चाहा, किन्तु तुम्हारे मनमें मेरा प्रेम वैसा ही बना रहा; इससे मुझको भली भाँति विदित होगया कि तुम्हारा हृदय पति-प्रेमसे परिपूर्ण है और तुम पातिव्रत्य धर्म्मको भली भाँति जानती हो ॥ ५१ ॥ मैं मोक्षका अधीश्वर अर्थात् देनेवाला हूँ; जो कामी नर या नारी तप और व्रत करके स्त्री-पुरुषोंके विषयभोगसुखकी कामनासे मेरा भजन करते हैं वे अवश्य ही मेरी मायामें मोहित हो रहे हैं ॥ ५२ ॥ हे मानिनी! मुक्ति और सब सम्पत्तियाँ मुझमें अवस्थित हैं और मैं सब सम्पत्तियोंका अधीश्वर हूँ। जो लोग मुझको पाकर मुझसे सम्पत्ति माँगते हैं वे अवश्य ही अभागे हैं। जो विषय नरकमें अर्थात् अत्यन्त निकृष्ट योनियोंमें भी मिलते हैं उनकी इच्छा रखनेवाले विषयी लोगोंको उन निकृष्ट योनियोंका संगम ही भला जान पड़ता है ॥ ५३ ॥ अतएव हे गृहेश्वरी! यह अत्यन्त हर्ष और मंगलकी बात है कि तुमने आज तक निष्काम भावसे मेरी सेवा की है। अन्य स्त्री ऐसी सेवा कभी नहीं कर सक्ती। विशेष करके जिनकी बुद्धि दूषित है, अतएव जो केवल शरीरके लालन पालनमें ही तत्पर हैं उन छलछंद करनेवाली स्त्रियोंके लिये तो यह अत्यन्त दुष्कर कर्म्म है ॥ ५४ ॥ हे मानिनी! मुझको गृहस्थाश्रममें तुम ऐसी प्रणयपूर्ण गृहिणी और नहीं देख पड़ती। तुमने मेरी प्रशंसा सुन कर विवाहके समय आये हुए राजों पर दृष्टि न करके अत्यन्त गुप्त रीतिसे ब्राह्मण देवताको मेरे निकट भेजा ॥ ५५ ॥ तुम्हारे भाईको मैंने विरूप बना दिया और द्यूतक्रीड़ामें बलदेवने उसको मार ही डाला परन्तु तुमने मेरे वियोगके भयसे उस असह्य घोर दुःखको सह लिया और कुछ भी नहीं कहा। इन्हीं बातोंसे तुमने मुझको जीत लिया है ॥ ५६ ॥ तुमने मुझको ही पति बनानेका दृढ़ निश्चय करके अपने प्रणकी सूचना देनेके लिये मेरे पास दूतको भेजा, और जब मेरे आनेमें विलम्ब हुआ तब सब जगत् शून्य देख तुमने विचार किया कि यह शरीर और किसीके योग्य नहीं है, इसका न रहनाही अच्छा है। मैं तुम्हारे प्रेमका बदला चुकानेमें असमर्थ हूँ-जो तुमने किया सो तुम्हारे ही योग्य है। मैं केवल तुमको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करता रहूँगा" ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

तथान्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव ॥
आस्थितो गृहमेधीयान्धर्मांल्लोकगुरुर्हरिः ॥ ५९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! इसी प्रकार आत्माराम जगदीश्वर कृष्णचन्द्र मनुष्योंका अनुकरण करके एकान्तकी बातचीत आदिके द्वारा रमा (रुक्मिणी) को

रमाते हुए स्वयं विभु तथा जगत्के गुरु होकर भी गृहस्थोंके समान अन्यान्य रानियोंके भवनोंमें रह कर गृहस्थधर्म्मका पालन करने लगे ॥ ५९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकषष्टितम अध्याय।

रुक्मीका वध।

श्रीशुक उवाच—एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दश दशाबलाः ॥
अजीजनन्ननवमान्पितुः सर्वात्मसंपदा ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! श्रीकृष्णकी पूर्वोक्त रानियोंमें हर एकने दस २ पुत्र उत्पन्न किये। वे सब पुत्र किसी बातमें अपने पितासे कम नहीं थे ॥ १ ॥ भगवान् कृष्णचन्द्र आत्माराम हैं—इस बातको रानियाँ नहीं जानती थीं। इसी कारण श्रीकृष्णको अपने २ घरमें निरन्तर निवास करते देख कर हर एक स्त्री समझती थी कि "श्रीकृष्णचन्द्र मुझको ही सबसे अधिक चाहते हैं," किन्तु वे रानियाँ स्वयं परिपूर्ण भगवान्के सुन्दर मुखकमल, विशाल भुजा और नेत्र, प्रेमयुक्त हँसी, रसीली चितवन एवं मनोहर वार्त्तालापमें आप ही मोहित होजानेके कारण उनके मनको अपने लीलायुक्त हाव-भावसे वशीभूत नहीं कर सकीं ॥ २ ॥ ३ ॥ वे एकसे एक सुन्दरी सोलह सहस्र रानियाँ गूढ़ हास्ययुक्त कटाक्षोंके द्वारा सूचित 'भाव'से मनोहर, कमानके समान भ्रूमण्डलके द्वारा चलाये जानेवाले सुरत-मंत्र-पटु कामके बाणों व अन्यान्य उपायोंसे भी ईश्वरकी इन्द्रियोंको अपने वशमें नहीं कर सकीं ॥ ४ ॥ राजन्! ब्रह्मा आदि देवता भी जिनकी पदवीको नहीं जानपाते उन रमापतिको, पतिके रूपमें, निरन्तर बढ़ रहे आनन्दके साथ अनुराग पूर्ण हँसी, चितवन, नवसंगमकी उत्सुकता आदि विविध हाव भाव व विभ्रमोंसे भज कर उन रानियोंने अपने २ जन्मको सफल किया। हर एक रानीके घरमें सैकड़ों दासियाँ थीं, तथापि (स्वामीके) आते समय प्रत्युद्गमन, आसनसमर्पण, चरण प्रक्षालन, उत्तम सामग्रियोंसे पूजन तथा चंदनमाला व अन्यान्य सुगंध वस्तु देना, उबटना लगाना, शिर मलना, स्नान कराना, पान देना, पैर दबाना, शयन कराना—इत्यादि कर्म्मोंसे प्रभुकी सदा सेवकाई करती थीं ॥ ५ ॥ ६ ॥ राजन्! अब दस पुत्र उत्पन्न करनेवाली कृष्णकी रानियोंमें जिन आठ पटरानियोंका पहले वर्णन किया गया है उनके पुत्र प्रद्युम्न आदिका विवरण सुनिये ॥ ७ ॥ रुक्मिणीके गर्भसे प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, वीर्य्यशाली चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु और चारु नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए। ये

सब किसी बातमें पितासे न्यून न थे। ऐसेही सत्यभामाके गर्भसे भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चंद्रभानु, बृहद्भानु, रतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभानु नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए। जाम्बवतीके गर्भसे साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविण, क्रतु नाम सब बातोंमें पिताके समान दस पुत्र उत्पन्न हुए। नाग्नजितीके गर्भसे वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान्, वृष, आम, शंकु, वसु और श्रीमान् कुन्ति नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए। कालिन्दीके गर्भसे शुक, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और सोमक नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए। माद्रीके गर्भसे प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्द्धग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजित नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए। मित्रविन्दाके गर्भसे वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्द्धन, अन्नाद, महांशु, पावन, वन्हि और क्षुधि नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए। भद्राके गर्भसे संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित्, जय, सुभद्र, राम, आयु और सत्य नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ राजन्! भोजकट नगरमें रहनेवाले रुक्मिणीके बड़े भाई रुक्मीकी कन्या रुक्मवतीके साथ प्रद्युम्नका बिवाह हुआ। प्रद्युम्नके अनिरुद्धजी हुए ॥ १८ ॥ महाराज! पूर्वोक्त आठ पटरानियोंके तथा अन्यान्य सोलह हजार एक सौ रानियोंके गर्भसे उत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्रोंके भी करोड़ों पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १९ ॥ राजा परीक्षित्ने पूछा कि "ब्रह्मन्! रुक्मीने अपने शत्रुके पुत्रको अपनी कन्या कैसे दी? वह तो कृष्णका कट्टर शत्रु था। कृष्णने अपमानपूर्वक जीत कर उसको छोड़ दिया था, अतएव वह कृष्णको मारनेके ताकमें रहता था। शत्रुने शत्रुके साथ बिवाहसम्बन्ध कैसे किया, सो मुझसे कृपा पूर्वक कहिये। योगी लोग भूत, भविष्य, वर्त्तमान, अतीन्द्रिय (जिसमें इन्द्रियोंकी गम्य न हो) दूरस्थ और परोक्षकी सभी बातें भली भाँति देख पाते हैं"। श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! यद्यपि श्रीकृष्णके हाथों हुए अपने अपमानके ध्यानसे रुक्मी मनमें शत्रुता ही रखता रहा, तथापि बहनको प्रसन्न रखनेके लिये उसने भांजेको अपनी कन्या ब्याह दी। प्रद्युम्नजी साक्षात् कामदेवका अवतार थे; इस कारण स्वयम्वरमें रुक्मवतीने मोहित होकर उन्हींके गलेमें जयमाल डाल दी। उस समय प्रद्युम्नजी अकेले ही युद्धमें सब एकत्रित हुए राजोंको जीत कर रुक्मवतीको हरलाये। राजन्! कृतवर्म्माके महाबली पुत्रसे विशाल नेत्रवाली परम सुन्दरी चारुमती नाम कन्याका बिवाह हुआ। हरिसे यद्यपि रुक्मीकी सुदृढ़ शत्रुता थी और वह यह भी जानता था कि ऐसा विवाह धर्म्मसङ्गत नहीं है, तथापि स्नेहपाशमें बँध कर भगिनीका प्रिय करनेके लिये उसने अपने नाती अनिरुद्धको अपनी रोचना नाम पोती ब्याह दी। राजन् इसी अनिरुद्धके बिवाहके उत्सवमें रुक्मिणी, बलभद्र, केशव एवं प्रद्युम्न आदि सब भोजकट नगरको गये। वहाँ जब बिवाह हो गया तब कालिं-

गनरेश आदि घमंडी दुष्ट राजोंने रुक्मीसे कहा कि–"आज बलदेवको बुला कर चौंसर खेलो और पाँसोंसे उनको जीतो । राजन्! बलभद्र चौंसर खेलनेमें चतुर नहीं हैं तथापि उनको चौंसर खेलनेकी बड़ी चाह रहती है" ॥ २० ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ रुक्मी इसमें सहमत हो गया। उसी समय बलदेवजी बुलाये गये और रुक्मी उनके साथ खेलने बैठा । बलभद्रने क्रमशः सौका, सहस्रका और फिर दश सहस्र मोहरोंका दाँव लगाया, उनको बराबर रुक्मी ही जीतता रहा । जब दश सहस्रका दाँव रुक्मीने जीता तब कलिंगनरेश ठट्ठा मार कर हँसा । बलदेवजी कलिंगनरेशकी अपमानसूचक हँसीको न सहसके और मन ही मन कुपित हुए । तदनन्तर रुक्मीने एक लाख मोहरोंका दाँव लगाया, उसे बलदेवने जीत लिया । किन्तु रुक्मीने कहा–"मैं जीता"। रुक्मीने सरासर छल किया, परन्तु बलदेवजीने कुछ समझ कर टाल दिया । फिर पर्वकालमें क्षोभको प्राप्त समुद्रके समान बढ़ रहे क्रोधके वेगको रोक कर बलदेवजीने दश कोटि मोहरोंका दाँव लगाया । उसको भी यथार्थमें बलदेवने जीता, परन्तु फिर रुक्मीने छलपूर्वक कहा कि नहींजी! यह दाँव मैंने जीता है, ये पास बैठे लोग ही कह दें कि किसने यह दाँव जीता" । इसी समय आकाशवाणी हुई–"धर्म्मकी बात यह है कि इस दाँवको बलदेवजीही जीते हैं, बलदेवजी सत्य कहते हैं, रुक्मी झूठा है" । किन्तु काल जिसके शिर पर सवार था उस रुक्मीने दुष्ट राजोंकी प्रेरणासे आकाशवाणीको भी न माना और ठट्ठा मार कर हँसते हुए बलदेवसे कहा कि–"तुम लोग गऊ चरानेवाले, वनवासी अहीर चौंसर खेलना क्या जानो । राजा लोगही पाँसे और बाणोंसे खेलते रहते हैं, तुम्हारे ऐसे लोग नहीं खेल सक्ते" ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ॥३२॥३३॥३४॥३५॥ रुक्मीने जब इस प्रकार तिरस्कार किया और राजा लोगोंने हँस लिया तब बलदेवजी क्रोधके वेगसे सब सम्बन्ध और स्नेह भूल गये। कुपित बलभद्रने द्वारका परिघ (बेलन)को उठा कर रुक्मीके शिर दे मारा । उसी समय उस राजोंसे भरी मङ्गलसभामें रुक्मीका शिर चूर्ण होगया और प्राण निकल गये । जो कलिंगराज दाँत निकाल कर हँसा था वह रुक्मीका वध देख, प्राणलेकर भागा। किन्तु दस पग भी भाग कर न गया होगा कि उसको बलदेवजीने दौड़ कर पकड़ लिया और कुपित होकर सब दाँत गिरा दिये, क्योंकि वह खिलखिला कर हँसा था । और भी रुक्मीके साथी राजा लोग कोरे नहीं बचे; बलभद्रजीके बेलनकी चोटसे, बाहु, ऊरु, शिर आदि उनके अंग टूट फूट गये और शरीर रुधिरसे भीग गये एवं वे भयके मारे अपने २ प्राण लेकर भागे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ॥ ३८॥ अपने साले रुक्मीके मरनेका समाचार पाकर कृष्णचन्द्रने भला या बुरा कुछ नहीं कहा । क्योंकि भला कहनेसे रुक्मिणी और बुरा कहनेसे बलभद्रजी बुरा मानते ॥ ३९ ॥

ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया वरं रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीम् ॥
रामादयो भोजकटाद्दशार्हाः सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥४०॥

तदनन्तरं बलदेव आदि कृष्णके आश्रित यादव लोगोंने बिवाहकी शेष रीतियाँ पूरी कीं और वर अनिरुद्धको नवविवाहिता स्त्रीसहित रथ पर बिठा कर भोजकट नगरसे द्वारकापुरीको गये ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितम अध्याय।

बाणासुरके घरमें अनिरुद्धका पकड़ा जाना।

राजोवाच–बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः ॥
तत्र युद्धमभूद्घोरं हरिशंकरयोर्महत् ॥
एतत्सर्वं महायोगिन्समाख्यातुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने कहा। भगवन्! जिस प्रकार यदुश्रेष्ठ अनिरुद्धका बिवाह बाणासुरकी कन्या ऊषाके साथ हुआ और उस बिवाहमें जिस प्रकार कृष्णचन्द्र और शङ्करसे भयङ्कर युद्ध हुआ–हे महायोगी! सो सब वृत्तान्त आप हमसे कृपा कर कहिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! राजा बलिके एक सौ पुत्रोंमें बाणासुर सबसे बड़ा था। जिन्होने वामनरूप हरिको तीनो लोकोंका राज्य दे डाला, बाणासुर उन्हीं महात्मा बलिका पुत्र था। बाणासुरको शिव भगवान्‌का इष्ट था। वह मान्य, वदान्य (उदार), बुद्धिमान्, सत्यवादी, दृढ़व्रत और सुशील था। वह शोणितपुरमें राज्य करता था और शंभुके प्रसादसे सब देवता-लोग सेवक ऐसे उसके आज्ञाकारी थे। शंभुके प्रसादसे बाणासुरके सहस्र भुजाएँ हो गई थीं। जब शंभु ताण्डवनृत्य करते थे तब वह बाजा बजाकर उनको प्रसन्न करता था। शरणागतपालक, भक्तवत्सल, सब प्राणियोंके ईश्वर भगवान् शंकरने सन्तुष्ट हो कर उससे वर माँगनेके लिये कहा। तब बाणासुरने यह वर माँगा कि आप सदैव पास रह कर मेरे पुरकी रक्षा करिये ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ बाणासुरको अपने वीर्य्यका बड़ा घमंड हो गया। उसने अपने निकटवर्ती शिवके चरण-कमलोंपर सूर्य्यके समान चमकीला किरीट मुकुट धर कर कहा कि "हे महादेव! आप सब लोगोंके गुरु और ईश्वर हैं। जिन पुरुषोंकी कामना पूर्ण नहीं हुई उनकी कामनाएँ आपकी कृपासे पूर्ण हो जाती हैं; आप कल्पवृक्षके समान कामना पूर्ण करनेवाले दानी हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥ ७ ॥ भगवन्!

आपके दिये हुए ये हजार हाथ मुझको बोझसे लगते हैं, क्योंकि मुझे आपके सिवा तीनो लोकमें कोई अपने समान पुरुष नहीं मिलता, जिससे मैं युद्ध करूँ। मेरे हाथोंमें बहुत खुजली उठी, तब मैं वह खुजली मिटानेके लिये दिग्गजोंसे युद्ध करने गया। हे आदिदेव! मैं राहमें बाहुओंसे पर्वतोंको चूर्ण करता हुआ चला, यह देख भयभीत हो कर वे दिग्गज भी भाग गये" ॥ ८ ॥ ९ ॥ बाणासुरके ये गर्व भरे वचन सुन कर भगवान्‌को क्रोध आगया। शंभुने एक झंडी देकर कहा कि "इसको ले जाकर तू अपने घरमें बाँध दे, जिस दिन आप-ही-आप यह झंडी टूट कर गिर पड़ेगी, उसदिन हे मूढ़! मेरे ही समान योद्धा तुझसे युद्ध करने आवेगा" ॥ १० ॥ यह सुन कर मन्दमति बाणासुर बहुत प्रसन्न होता हुआ अपने घरको गया और हे नृप! भगवान् शंकरके बताये हुए अपने वीर्य्यविनाशन दिनके आनेकी प्रतीक्षा करने लगा ॥ ११ ॥ बाणासुरके एक ऊषा नाम कन्या थी। परमसुन्दरी ऊषाने प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धको कभी देखा या सुना न था। एक दिन स्वप्नमें ऊषाने अनिरुद्धको देखा और उन पर आसक्त होगई। यकायक अनिरुद्धको न देख कर "मित्र! कहाँ गये?" कहती हुई जाग पड़ी। उस समय ऊषा प्रियवियोगसे विह्वल हो रही थी। ऊषाकी सब सखियाँ वहाँ उपस्थित थीं–उनको देखकर ऊषा बहुतही लज्जित हुई ॥ १२ ॥ १३ ॥ बाणासुरका एक कुंभाण्ड नाम मंत्री था, उसकी कन्या चित्रलेखा ऊषाकी प्रिय सखियोंमें थी। उसने विस्मित होकर ऊषासे पूछा कि–"हे सुन्दर भौंहवाली! तुम किसकी खोज करती हो? तुम्हारा मनोरथ क्या है? हे राजपुत्री! अभीतक तो तुम्हारा किसीके साथ विवाह नहीं हुआ" ॥ १४ ॥ १५ ॥ ऊषाने कहा–"सखी! मैंने स्वप्नमें एक परमसुन्दर पुरुषको देखा है, उसका वर्ण श्याम था, भुजाएँ विशाल थीं, दोनो नेत्र कमल ऐसे थे। वह पीताम्बर पहने हुए था। सखी! वास्तवमें उसका रूप स्त्रियोंके हृदयमें बस जानेवाला था। मैं उसी कान्तको खोज रही हूँ, वह अपना अधरमधु पिला कर, मेरी इच्छा पूर्ण नहीं होने पाई और मुझको दुःखके सागरमें डाल कर, न जानें कहाँ चला गया" ॥ १६ ॥ १७ ॥ चित्रलेखाने कहा। "मैं तुम्हारा दुःख अभी दूर कर दूँगी। तुम्हारा चितचोर तीन लोकमें जहाँ होगा वहाँसे उसको ले आऊँगी बता देना तुम्हारा काम है" ॥ १८ ॥ यह कह कर चित्रलेखाने उसी समय क्रमशः देवता, गन्धर्व्व, सिद्ध, चारण, नाग, दैत्य, विद्याधर और यक्षोंके चित्र लिखे। तदनन्तर मनुष्योंके चित्र लिखे ॥ १९ ॥ मनुष्योंमें वृष्णिवंशी यादवोंको लिखा, यादवोंमें शूरसेनका, फिर वसुदेवका चित्र लिखा। फिर कृष्ण, बलदेव और प्रद्युम्नके चित्र लिखे। प्रद्युम्नको देख ऊषा लज्जित हो कर सकुची ॥ २० ॥ तदनन्तर सखीने जब अनिरुद्धका चित्र बनाया तब उनको देख कर ऊषाने लज्जासे मुख नीचा किये हुए मुसकाकर कहा कि–"यही

वह हैं" ॥ २१ ॥ चित्रलेखाने योगविद्याके प्रभावसे जाना कि यह कृष्णके पौत्र अनिरुद्ध हैं। उसी समय चित्रलेखा आकाशमार्गके द्वारा कृष्णके बाहुबलसे सुरक्षित द्वारका पुरीको गई ॥ २२ ॥ वहाँ पलँग पर पड़े हुए अनिरुद्धजी सो रहे थे। उसी समय चित्रलेखा योगबलसे अनिरुद्धका पलँग उठा कर शोणितपुरमें ले आई और अपनी सखीको उसके प्रियसे मिला दिया ॥ २३ ॥ परम सुन्दर अनिरुद्धको देखते ही ऊषाका मुखकमल प्रफुल्लित होगया। जहाँ पुरुषोंकी दृष्टि भी नहीं पड़सक्ती उस अन्तःपुरमें, तबसे ऊषा अनिरुद्धके साथ रमण करने लगी ॥ २४ ॥ सुन्दर वस्त्र, माला, चन्दन, धूप, दीप, आसन आदि सामग्री और भोजन एवं मधुर वचन तथा अन्यान्य प्रकारकी सेवासे ऊषाने इस प्रकार चित्तको वश कर लिया कि अनिरुद्धजी कन्याके अन्तःपुरमें छिप कर बहुत समय तक रहे। नित्य बढ़ रहे ऊषाके स्नेहमें अनिरुद्धजी ऐसे मग्न होगये कि उनको यह भी न जान पड़ा कि कितना समय बीत गया ॥ २५ ॥ २६ ॥ यदुवीरने भोग किया, ऊषाकी देह फफक उठी, कुमार व्रत नष्ट होगया। वह यौवनका उभार छिपाए नहीं छिप सक्ता। एक दिन ऊषा ऊपरसे झाँकी, लक्षण देख कर द्वारपालोंने शंकित हो बाणासुरसे जाकर कहा कि–"राजन्! हमें जान पड़ता है कि आपकी अविवाहिता कन्याके आचरण बिगड़े हुए हैं; जिनसे पिताके कुलको कलंक लगता है। प्रभो! हम हर घड़ी सावधानतासे उस घरकी रखवाली किया करते हैं। कोई पुरुष राजकुमारीको देख भी नहीं पाता, तब भी न जानें किस प्रकार यह अनर्थ हुआ? कुछ हमारी समझमें नहीं आता" ॥ २७ ॥ २८ ॥ कन्याको किसीने दूषित कर दिया–यह सुन कर बाणासुर बहुतही व्यथित हुआ और उसी समय जल्दीसे कन्याके भवनमें गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि यदुश्रेष्ठ त्रिभुवन-सुन्दर साक्षात् कामदेवके पुत्र अनिरुद्धजी बैठे हुए हैं। उनके श्याम शरीर पर पीताम्बरकी अपूर्व शोभा है। नेत्र कमलदल ऐसे विशाल हैं, भुजाएँ लंबी २ हैं। कुंडल और अलककी झलक तथा मंदमुसकान व मनोहर चितवनसे मुख-मण्डलकी अपूर्व शोभा होरही है। प्रियाके स्तन–कुंकुमसे अनुरंजित मल्लिकाकी माला कंधों पर पड़ी हुई है। ऐसे अनिरुद्धको सामने बैठी हुई स्नेहयुक्त अपनी प्रियासे चौसर खेलते देख कर बाणासुरको बड़ा ही विस्मय हुआ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥ अस्त्र, शस्त्र ताने हुए बहुतसे भटोंके साथ बाणासुरको भवनमें आते देख कर अनिरुद्धजी भी द्वार पर लगा हुआ बेलन उठा कर, जैसे कालदण्ड लेकर संहारकी इच्छासे यमराज खड़े हों उस प्रकार खड़े हो गये ॥ ३२ ॥ वे सब भट चारो ओरसे पकड़नेके लिये जब उद्यत हुए तब वह, शूकरयूथपति जैसे कुत्तोंके झुंडको मारभगाता है वैसेही उनका विनाश करने लगे। उन सैनिकोंके शिर, ऊरू, भुजा आदि अंग टूट फूट गये और वे मार न सह सकनेके कारण उस घरसे बाहर निकल कर इधर उधर भागने लगे ॥ ३३ ॥

तं नागपाशैर्बलिनन्दनो बली घ्नन्तं स्वसैन्यं कुपितो बबन्ध ह ॥
ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौदिषीत् ॥३४

तब महाबली बलिके पुत्र बाणासुरने कुपित होकर अपनी सेनाका संहार कर रहे अनिरुद्धको नागपाशमें बाँध लिया । अपने प्रियको बंदी होते देख ऊषा शोक और विषादसे विह्वल हो आँसू बहाती हुई रोने लगी ॥ ३४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितम अध्याय ।

बाणासुरसे व कृष्णचन्द्रसे युद्ध होना और युद्धमें कृष्णचन्द्रकी विजय ।

श्रीशुक उवाच—अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बन्धूनां च भारत ॥
चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे भरतनन्दन ! इधर अनिरुद्धको न देख कर उनके बन्धु बान्धवोंको बड़ा ही शोक हुआ । इसी प्रकार वर्षाके चार महीने बीत गये और अनिरुद्धका पता नहीं लगा ॥ १ ॥ चार महीने बाद एक दिन नारदजीने जाकर सब वृत्तान्त सुनाया कि अनिरुद्धने क्रुद्ध हो बाणासुरसे युद्ध किया और अन्तमें उसके बंदी हुए । यह सम्वाद पाकर, कृष्णही जिनके इष्टदेव हैं वे यादव लोग उसी समय अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित हो युद्धका सामान करके शोणितपुरको चलदिये ॥२॥ प्रद्युम्न, सात्यकी, गद, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द और भद्र आदि श्रेष्ठ यादवोंने कृष्ण बलदेवके साथ बारह अक्षौहिणी सेनासे बाणासुरके पुरको चारो ओरसे जाकर घेर लिया ॥ ३ ॥ ४ ॥ जब यादवोंकी सेना नगरके बाग, प्राकार, अँटारी एवँ गोपुर आदिको तोड़ने फोड़ने लगी तब कुपित हो उतनी ही सेना ले बाणासुर भी युद्ध करनेके लिये निकल पड़ा । बाणकी ओरसे भक्तवत्सल भगवान् शंभु स्वयं नन्दी पर सवार हो अपने पार्षदों और पुत्रोंसहित युद्ध करनेके लिये आये ॥ ५ ॥ ६ ॥ उस समय कृष्ण और शिवसे, प्रद्युम्न और शिवके पुत्र कार्तिकेयसे, कुंभांड व कूपकर्ण और बलभद्रजीसे, बाणासुरके पुत्र और साम्बसे एवं बाणासुर और सात्यकीसे महाघोर युद्ध हुआ; जिसके सुननेसे भी रोम खड़े हो जाते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ब्रह्मादिक देवनायक, मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व अप्सरा, यक्ष आदि सब झुंडके झुंड देव—उपदेवगण युद्ध देखनेके लिये विमानों पर बैठ २ कर आये ॥ ९ ॥ कृष्णचन्द्रने शार्ङ्गधनुपसे छूटे हुए तीक्ष्ण नोकवाले बाणोंकी वर्षा करके शंकरके भूत, प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, वेताल, विनायक, प्रेतगण, मातृगण, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस आदि अनुचरोंको मार

भगाया ॥ १० ॥ ११ ॥ शिवजीने भाँति २ के अनेकों दिव्य अस्त्र कृष्णचन्द्र पर चलाये और कृष्णचन्द्रने भी कुछ विस्मय न करके लीलापूर्वक अपने अस्त्रोंसे उन अस्त्रोंको विफल कर दिया ॥ १२ ॥ कृष्णचन्द्रने ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रसे, वायव्यको पार्वतसे, आग्नेयको पर्जन्यास्त्रसे और पाशुपत अस्त्रको नारायणास्त्रसे शान्त किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर कृष्णचन्द्रने शिव पर मोहन अस्त्र चलाया, जिससे मोहित हो कर शिवजी जम्हाई लेने लगे। उस समय भगवान् वासुदेव तवार, गदा, बाण आदिसे वाणासुरकी सेनाका संहार करने लगे ॥ १४ ॥ प्रद्युम्नके बाणोंकी वर्षासे कार्तिकेयके शरीरसे रुधिर बहने लगा एवं पीड़ित मयूर उनको लेकर रणभूमिसे टल गया ॥ १५ ॥ कुंभांड और कूपकर्ण, दोनो राक्षस बलभद्रके मूशलकी चोटसे मूर्च्छित हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े; तब उनकी सेना बिना किसी रक्षकके विकल हो कर भागी ॥ १६ ॥ रथ पर सवार बाणासुर, अपनी सेनाको भागते देख, अत्यन्त कुपित हो, सात्यकीसे युद्ध करना छोड़, कृष्णचन्द्रकी ओर चला ॥ १७ ॥ रणदुर्मद बाणासुरने एक साथ पाँच सौ धनुषोंकी प्रत्यञ्चाएँ खींच कर एक २ धनुष पर दो २ बाण चढ़ाये ॥ १८ ॥ किन्तु हरि भगवान्ने, वाणासुर बाण-वर्षा करने भी न पाया—पहले ही उसके सब धनुषोंको काट डाला और फिर उसके सारथी, घोड़े और रथको नष्ट करके शंख बजाया ॥ १९ ॥ पुत्रके प्राणों पर संकट देख कर वाणासुरकी माता कोटरा बाल खोल नंगी हो बाहर निकल आई और पुत्रके प्राणोंकी रक्षा करनेके लिये आकर कृष्णके आगे खड़ी हो गई ॥ २० ॥ भगवान्ने मुख फेर लिया—क्योंकि नंगी स्त्रीको देखना नीतिविरुद्ध बात है। इसी अवसरमें वाणासुर और रथ व धनुष लेनेके लिये पुरमें चला गया, क्योंकि उसका रथ और धनुष कृष्णके बाणोंसे कट गया था ॥२१॥ इधर जब सब भूतगण भाग गये तब शिवने तीन शिर और तीन पैरवाले ज्वरको छोड़ा। वह ज्वर दशो दिशाओंको अपने तेजसे जलाता हुआ कृष्णचन्द्रकी ओर चला। तब नारायण देवने उसको देख कर अपने ज्वर अर्थात् शीतज्वर (जूड़ी) को छोड़ा ॥ २२ ॥ महेश्वर और विष्णुके दोनो ज्वर परस्पर युद्ध करनेलगे। महाबली विष्णुके ज्वरसे पीड़ित हो कर चिल्लाता हुआ शंकरका ज्वर अन्यत्र कहीं अपनी रक्षा न देख, भयभीत हो, हाथ जोड़ कर इस प्रकार भगवान्की स्तुति करता हुआ शरणकी प्रार्थना करने लगा ॥ २३ ॥ २४ ॥

ज्वरने कहा—"आप अनन्तशक्तिशाली ईश्वर हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप सर्व्वात्मा, निरवच्छिन्न, विज्ञानमात्र और ब्रह्मा आदिके भी ईश्वर हैं। आप विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति व संहारका कारण हैं। कर्म्मरहित होनेके कारण वेदोंके द्वारा जिसका ज्ञान होता है वह ब्रह्म भी आप ही हैं—आपको प्रणाम है। आप शान्तिमय हैं ॥ २५ ॥ काल, दैव, कर्म्म, जीव, स्वभाव, सूक्ष्म पञ्चतत्त्व,

प्राण, अहंकार, ग्यारह इन्द्रियाँ, पञ्चमहाभूत, देह एवं देहके बीजका उगना व बढ़ना–ये सब आपहीकी माया हैं; किन्तु आपमें इनका सद्भाव नहीं है। मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मेरी रक्षा करो ॥ २६ ॥ आप लीला करनेहीके लिये मत्स्य, कूर्म्म आदि योनियोंमें अवतार ले देवगण, साधुगणकी और सनातन लोकमर्यादाओंकी रक्षा एवं हिंसा करनेवाले उन्मार्गगामी दैत्य आदिका संहार करते हैं। आपका यह अवतार पृथ्वीका भार उतारनेके लियेही हुआ है ॥ २७ ॥ आपके शान्त और उग्र अत्यन्त भयानक दुस्सह तेजसे मैं तप रहा हूँ। देही लोग आशामें फँसे रह कर जबतक आपके चरणकमलोंकी सेवा नहीं करते तभी तक उनको सब प्रकारके तापोंकी पीड़ा रहती है। यही जान कर मैं आपके चरणोंकी शरणमें आया हूँ" ॥ २८ ॥ भगवान्ने कहा। "हे त्रिशिरा ज्वर! मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ; अब तुझको मेरे ज्वरसे कुछ भय नहीं है। आजसे जो व्यक्ति हमारे सम्वादको सुनेंगे उनको तेरा भय नहीं रहेगा" ॥ २९ ॥ इस प्रकार जब कृष्णचन्द्रने कहा तब प्रणाम करके शिवका ज्वर चला गया। इधर बाणासुर भी दूसरे रथपर चढ़ कर युद्ध करनेके लिये जनार्दनके सामने आया ॥३०॥ तब बाणासुर कुपित हो कर हजारों हाथोंसे कृष्णचन्द्र पर अनेक शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३१ ॥ जब बाणासुर अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा तब भगवान् तीक्ष्ण धारा जिसकी है उस सुदर्शन चक्रसे जैसे कोई बड़े वृक्षकी शाखाओंको काटे उस प्रकार बाणासुरकी भुजाओंको काटना आरम्भ किया ॥३२॥ चक्रधर भगवान्को बाणासुरकी भुजाएँ काटते देख भक्तोंपर दया करनेवाले भगवान् शंकर उनके निकट आकर यों कहनेलगे ॥ ३३ ॥ श्रीशंकरने कहा। भगवन्! आप वेदोंमें छिपे हुए परमज्योतिःस्वरूप परब्रह्म हैं। जिनका मन निर्मल है वे साधुगण केवल आकाशके समान सर्वव्यापक भावसे आपको सर्वत्र देख पाते हैं ॥ ३४ ॥ आकाश आपकी नाभि है, अग्नि आपका मुख है, जल आपका वीर्य्य है, स्वर्ग आपका मस्तक है, दिशाएँ आपके कान हैं, पृथ्वी आपके चरण है, चन्द्रमा आपका मन है, सूर्य्य आपका नेत्र है, अहङ्कार-रूप मैं आपका आत्मा हूँ, समुद्र आपका उदर है, इन्द्र आपकी भुजा हैं ॥ ३५ ॥ औषधियाँ आपके रोम हैं, मेघ आपके केश हैं, ब्रह्मा आपकी बुद्धि हैं, प्रजापति तुम्हारी लिंगेन्द्रिय हैं एवं धर्म्म आपका हृदय है। ऐसे आपके त्रिलोकमय विराट्-रूपकी कल्पना की जाती है ॥ ३६ ॥ हे अकुंठित तेजवाले नाथ! आपका यह अवतार धर्म्मकी रक्षा और संसारके मङ्गलके लिये हुआ है। आप हम सब प्रजा-पतियोंके रक्षक हैं–हम लोग आपहीकी कृपा और सहायतासे समग्र ब्रह्माण्डका पालन करते हैं ॥ ३७ ॥ आप स्वप्रकाश, शुद्द, तुरीय, आदिपुरुष, एकमात्र हैं। आपही सब जगत्का मुख्य कारण हैं, आपका कोई कारण नहीं है। आप

अद्वितीय ईश्वर हैं। तथापि सब विषयोंको प्रकट करनेके लिये अपनी मायाके योगसे प्रत्येक शरीरमें भिन्न २ प्रतीत होते हैं॥ ३८॥ जैसे सूर्य्य, अपनी छायासे आच्छन्न होकर भी उस छायाको और रूपोंको प्रकाशित करते हैं, वैसे ही हे भगवन्! स्वप्रकाश आप मायाके गुणोंसे आच्छन्न होकर भी उन गुणोंको और गुणी अर्थात् जीवोंको प्रकाशित करते हैं। अर्थात् आप सर्वसाक्षी हैं। आपको संसारका बन्धन नहीं होसक्ता॥ ३९॥ भगवन्! आपकी मायाने जिनकी बुद्धिको मोहित कर रक्खा है वे जीव-पुत्र, स्त्री और गृह आदिमें आसक्त रह कर दुःखसागरमें गोते खाते रहते हैं, कभी नीचे चले जाते हैं और कभी ऊपर आजाते हैं अर्थात् कभी निकृष्ट योनियोंमें और कभी उत्कृष्ट योनियोंमें जन्म पाते हैं-परन्तु इस आवागमनसे नहीं मुक्त होते॥ ४०॥ भगवन्! भाग्यवश इस मनुष्यदेहको पा कर भी जो अजितेन्द्रिय व्यक्ति आपके चरणकमलोंका आदर (भजन) नहीं करता वह अपनेको ठगनेवाला है, अतएव शोचनीय है॥ ४१॥ यह इन्द्रिय सुख-देखनेमें सुख जान पड़ता है परन्तु वास्तवमें महादुःखरूप है। इसी इन्द्रिय-सुखके लिये जो कोई प्रिय, ईश्वर, आत्मा जो आप हैं उनके भजनसे विमुख रहता है वह अमृतको छोड़ कर विष-भोजन करता है॥ ४२॥ ईश! मैं, ब्रह्मा आदिक देवगण और निर्मल अन्तःकरणवाले मुनिगण सब—प्रियतम आत्मारूप परमेश्वर जो आप हैं उनके सब प्रकार अर्थात् मन, वाणी और कायासे शरणागत हैं॥ ४३॥ हे देव! जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और ध्वंसके कारण, शान्त-रूप,-अतएव कर्म्मरहित और सबके सुहृद्, आत्मा व दैव, तथा चराचर जगत्के व संपूर्ण आत्माओंके आधारस्थान-अतएव अनन्य जो एक मात्र आप हैं उनका भजन हम संसारसे मुक्त होनेके लिये करते हैं॥ ४४॥ हे देव! यह बाणासुर मेरा परम प्रिय अनुचर है। मैंने इसको अभय वर दिया है। मुझे पूर्ण आशा है कि दैत्यराज बलि पर आपने जैसे अनुग्रह किया है वैसेही इस दास पर भी करेंगे। यही मेरी प्रार्थना है"॥ ४५॥ श्रीकृष्णचन्द्रने कहा। "भगवन्! आपका कथन हमको स्वीकृत है। आप जिसमें प्रसन्न हों वही हम करेंगे। आपने इसको अभय वर दिया सो उत्तम किया—मैंभी कहता हूँ कि यह अबसे अभय होगया॥ ४६॥ यों भी मैं इस असुरका वध न करता, क्योंकि यह बलिका पुत्र है। मैं प्रह्लादको वर देचुका हूँ कि 'किसी तुम्हारे वंशजको मैं नहीं मारूँगा' ॥ ४७॥ केवल इसका गर्व खर्व करनेके लिये मैंने इसके बाहुओंको काटडाला है और पृथ्वीका भार जो इसकी बहुत सी सेना थी उसका संहार किया॥ ४८॥ इसकी चार भुजा बच रही हैं-ये सदा बनी रहेंगी। यह बाणासुर अजर अमर रहेगा और आपके पार्षदोंमें प्रधान माना जायगा—इसको किसीसे भय न होगा"॥ ४९॥ इस प्रकार कृष्णचन्द्रसे अभय वर पाकर बाणासुरने चरणों पर

गिर, दण्डवत् प्रणाम किया एवं अनिरुद्धको वधूसहित रथ पर बिठा कर सेवामें उपस्थित किया ॥ ५० ॥ सुन्दर वस्त्र व अलङ्कारोंसे सुशोभित सपत्नीक अनिरुद्धको आगे करके शंकरसे जानेकी अनुमति लेकर कृष्णचन्द्रने द्वारकापुरीको प्रस्थान किया । एक अक्षौहिणी सेना भी बाणासुरने अपनी ओरसे साथ कर दी ॥ ५१ ॥ इधर यह सुसमाचार सुनते ही द्वारका पुरी सुसज्जित की गई । प्रत्येक प्रासादमें मनोहर ध्वजाएँ फहराने लगीं । सब राहें और चौराहे सजाये गये । बंदनवार बाँधे गये–विविध विचित्र वस्त्र व फूलोंसे बनाये गये फाटकोंकी शोभा देखने ही योग्य हुई । भगवान् कृष्णचन्द्रने इस प्रकार सुसज्जित और सुशोभित नगरीमें वर और वधू सहित प्रवेश किया । पुरवासी, बंधुवर्ग और द्विजातियोंने आगे बढ़ कर अभ्यर्थना की एवं उस समय शंख, ढोल, नगाड़े आदि मांगलिक बाजे चारो ओर बजने लगे ॥ ५२ ॥

य एवं कृष्णविजयं शंकरेण च संयुगम् ॥
संस्मरेत्प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात्पराजयः ॥ ५३ ॥

राजन् ! जो कोई प्रातःकाल उठ कर कृष्णके साथ शंकरके युद्ध व कृष्णके विजयकी यह कथा पढ़ते या सुनते हैं वे कभी नहीं हारते ॥ ५३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कंधे उत्तरार्धे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितम अध्याय ।

नृग राजाकी कथा ।

श्रीशुक उवाच–एकदोपवनं राजञ्जग्मुर्यदुकुमारकाः ॥
विहर्तुं साम्बप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन् ! एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न, चारु, भानु और गद आदि सब यदुकुमार मिलकर खेलनेके लिये उपवनको गये ॥ १ ॥ वहाँ बहुत समय तक खेलनेके उपरान्त सब प्यासे हुए । जलकी खोजमें वे लोग एक कुँएके पास पहुँचे वह, कुआँ सूखा हुआ था । सबने झाँक कर देखा तो जलके बदले उसमें एक बड़ा भारी विचित्र जीव देख पड़ा ॥ २ ॥ पहाड़ ऐसे बृहत् गिरगिटको उसमें देख सबको बड़ा विसमय हुआ । तब वे लोग कृपापूर्वक उस गिरगिटको ऊपर निकालनेकी चेष्टा करनेलगे ॥ ३ ॥ उन्होने चमड़ेके और सूतके बड़े २ रस्सोंसे बाँध कर उसको खींचा परन्तु उसको ऊपर न लासके । तब उन्होंने उत्सुकताके साथ कृष्णचन्द्रसे आ कर सब वृत्तान्त कहा ॥ ४ ॥ कमललोचन विश्वभावन भगवान्ने आ कर उसको देखा और जैसेही उसके

शरीरमें हाथ लगाया वैसेही उत्तम श्लोक कृष्णचन्द्रका हाथ लगतेही गिरगिटके शरीरको छोड़ कर वह एक सुन्दर पुरुष होगया। वह अद्भुत अलंकार और मालाओंसे विभूषित, सुवर्णवर्ण देवरूप होगया। यद्यपि भगवान् मुकुंद सर्वज्ञ हैं तथापि सबके यह जाननेके लिये कि 'इसको यह अधम योनि किस कुकर्मसे मिली'–उससे कृष्णचन्द्रने पूछा कि "हे महाभाग! सुन्दर रूपधारी तुम कौन हो? तुम तो कोई श्रेष्ठदेवता जान पड़ते हो। हे सुभद्र! कौन कर्मसे तुम्हारी यह दुर्दशा हुई थी तुम तो इस दशाके योग्य नहीं जान पड़ते हो, यदि यह सब हमसे कहना उचित समझो तो कहो। हम सुनना चाहते हैं।" ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज! आनन्दमूर्त्ति श्रीकृष्णने जब इस प्रकार पूछा तब दिव्यरूपधारी राजा नृगने सूर्य्यके समान चमकीले किरीट मुकुटसे माधवके चरणारविन्दोंमें प्रणाम करके कहा कि "हे प्रभो! मैं इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न राजर्षियोंमें श्रेष्ठ नृग नाम राजा हूँ। दानी लोगोंकी गिनतीमें कदाचित् मेरा नाम भी आपने सुना होगा। नाथ! आप सब प्राणियोंके अन्तर्य्यामी अर्थात् बुद्धिके साक्षी हैं, आपको क्या नहीं विदित है। कालद्वारा आपकी दिव्य ज्ञान-दृष्टि अप्रतिहत है। तथापि आपकी आज्ञाके अनुसार मैं अपना पूर्ववृत्तान्त करता हूँ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ पृथ्वीमें जितने रजकण हैं, आकाशमें जितने नक्षत्र हैं एवं वर्षामें जितने बूँद गिरते हैं उतनी ही दुधार, तरुणी, सुशीला, सुरूपा, अच्छे गुणवाली, कपिला, जिनके सींग सुवर्णसे और खुर चाँदीसे मढ़े हुए हैं ऐसी वस्त्र–माल्य आदिसे अलंकृत, बछड़ेवाली, न्यायपूर्वक एकत्र की गई सुन्दर गौवें मैंने गुणशीलसम्पन्न, बहुकुटुम्बी, सदाचारनिरत, तपस्वी, वेदपाठी, उदारप्रकृति, सब शास्त्र पढ़ानेवाले श्रुतिकथित कर्म्म करनेवाले श्रेष्ठ और तरुण ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दी हैं ॥१२॥ १३ ॥१४॥ मैंने ब्राह्मणोंको गऊ सुवर्ण, भवन, घोड़े, हाथी, दासीयुक्त कन्याएँ, तिल, चाँदी, शय्या, वस्त्र, रत्न, परिच्छद और रथ आदि अनेकों बार दिये हैं, यज्ञ किये हैं, कुँए बावली– तालाब आदि बनवाये हैं ॥ १५ ॥ एक समय किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणकी एक गऊ मेरे दान करनेकी गौवोंके झुंडमें आकर मिल गई और किसीने नहीं जाना। मैंने विना जाने वह गऊ दूसरे ब्राह्मणको दे डाली। वह ब्राह्मण उस गऊको लिये जारहाथा, राहमें गऊके पूर्व स्वामी ब्राह्मणने उसको देख कर कहा "यह गऊ तो मेरी है, तूने कहाँसे पाई?"। दूसरे ब्राह्मणने कहा–"नहीं, तू झूठ कहता है–यह गऊ मेरी है, मुझको अभी राजा नृगने दी है"। इस प्रकार झगड़ते हुए दोनो ब्राह्मण अपना २ कार्य्य सिद्ध करनेके लिये मेरे पास वह गऊ लेकर आये और उन्होने कहा कि–"राजा! तुम देनेवाले हो या हरनेवाले?"। उनके वचन सुन कर मैं बहुत व्याकुल हुआ। धर्मसङ्कट देख कर मैंने दोनो ब्राह्मणोंसे विनयपूर्वक

कहा कि-"आपमेंसे कोई एक लाख उत्तम गौवें लेकर यह गऊ दे दीजिये। मैं सेवक हूँ, मुझसे विना जाने यह अपराध हो गया है; आप मुझ पर अनुग्रह करें। मैं इस अपराधसे नरक जाऊँगा, आप उस नरकसे मुझको बचाइये"। भगवन्! "मैं आपका दान नहीं लेना चाहता" कह कर गऊको छोड़ दूसरा स्वामी चला गया और पहला स्वामी भी "मैं दस लाख गौवें भी इसके बदलेमें न लूँगा" कह कर चला गया। इसी अवसरमें यमराजके दूत आकर मुझको यमराजके पास लेगये। हे देव-देव! हे जगन्नाथ! यमराजने वहाँ मुझसे पूछा कि-"राजन्! तुम पहले अपना पुण्य भोगोगे या पाप? धर्मानुष्ठान और दान करके तुमने जिन उज्वल लोकोंको प्राप्त किया है वे अनन्त हैं, क्योंकि तुम्हारे दान और धर्मकी सीमा नहीं है"। मैंने कहा कि-"हे देव! मैं पहले अपने पापकर्मका ही फल भोगना चाहता हूँ"। प्रभो! यह सुन कर यमराजने कहा-"अच्छा तो गिरो"। यमराजके यों कहते ही मैंने देखा कि मैं गिरगिट होकर नीचे गिर रहा हूँ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ २४ ॥ केशव! मैं ब्राह्मणोंका भक्त, दानी और आपका सेवक था, इसी कारण गिरगिटकी योनिमें भी मुझको पूर्वजन्मका वृत्तान्त नहीं भूला। मुझे आपके दर्शनकी बड़ी लालसा थी। किन्तु मुझको बड़ा ही आश्चर्य्य होता है कि आपने किस प्रकार साक्षात् होकर मुझको दर्शन दिये। क्योंकि आप परमात्मा हैं, इन्द्रियोंमें इतनी शक्ति नहीं कि आपको जान सकें, अतएव बड़े २ योगी लोग भी उपनिषद्रूप नेत्रोंके द्वारा निर्म्मल अपने हृदयमें केवल आपका ध्यान कर सक्के हैं-आपके साक्षात् दर्शन उनको भी नहीं होते। संसारबन्धनसे छूटनेके दिन जिनके निकट आ जाते हैं उन्हीको आपके दर्शन होते हैं। मैं भव-दुःखसे अंधा हो रहा था। अब आपके दर्शन होनेसे अवश्य ही मैं संसारसे मुक्त होगया। हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे गोविन्द! हे पुरुपोत्तम! हे नारायण! हे हृपीकेश! हे पुण्यश्लोक! हे अच्युत! हे अव्यय! हे कृष्ण! आप आज्ञा दीजिये, मैं देवलोकको जाऊँ। मेरी यही प्रार्थना है कि मैं चाहे जिस स्थानमें रहूँ, मेरा चित्त आपके ही चरणकमलोंमें लगा रहे। आपहीसे सब विश्वकी सृष्टि होती है, तथापि आपमें विकारका लेश भी नहीं है; क्योंकि वह माया आपहीकी शक्ति है, जिससे सृष्टि होती है। आप सब प्राणियोंका आधार हैं, आनन्दस्वरूप हैं एवं इष्टापूर्त्त आदि कर्मोंका फल देनेवाले हैं-आपको प्रणाम है" ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। यों कह कर राजा नृगने चरणों पर शिर रख भगवान्को प्रणाम किया और परिक्रमा की एवं भगवान्से आज्ञा ले सबके सामने श्रेष्ठ विमान पर चढ़ कर दिव्य लोकको गये ॥ ३० ॥ तब ब्रह्मण्यदेव धर्मात्मा देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने राजोंको शिक्षा देते हुए अपने बान्धवों और बन्धुओंसे कहा कि "अहो! बहुत थोड़ेसे भी थोड़ा ब्राह्मणका धन खाकर अग्निके समान तेजस्वी पुरुप भी उसको नहीं पचा सक्के; तब अपनेको ईश्वर (समर्थ)

माननेवाले राजोंके लिये क्या कहना है? उनको तो सदा ब्राह्मणके धनसे बचना चाहिये। मैं हलाहल विषको विष नहीं मानता, क्योंकि उससे बचनेके लिये उपाय है। मेरी समझमें ब्राह्मणका धन ही विष है, जिससे बचनेका उपाय, पृथ्वी पर क्या-तीनो लोकोंमें नहीं है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ फिर विष तो केवल खानेवालेहीके प्राण लेता है और अग्नि भी जलसे शान्त होजाता है, परन्तु ब्राह्मणरूप काष्ठसे उत्पन्न ब्रह्म-स्व-रूप अग्नि मूलसहित सम्पूर्ण वंशको भस्म कर देता है॥३४॥यदि इच्छापूर्वक ब्राह्मणकी अनुमति न प्राप्त हो और उसकी सम्पत्तिका अन्यायसे भोग करे तो उस पुरुषकी तीन पीढ़ियाँ (बाप, दादा, परदादा) नरकको जाती हैं और जो कोई बलपूर्वक ब्राह्मणकी सम्पत्तिको छीन कर खाता पीता और उड़ाता है उसकी दस जो पहले होगई हैं और दस जो आगे होंगी, बीस पीढ़ियाँ उसके साथ नरकमें पड़कर कष्ट भोग करती हैं। जो लोग ब्राह्मणकी सम्पत्ति पर दाँत लगाते हैं वे मानो स्वयं नरक जानेकी अभिलाषा करते हैं। विप्रसम्पत्तिको हरनेवाले अज्ञ राजोंको नहीं सूझता कि हम अपने हाथों राजलक्ष्मीको ढकेलकर अपनेको नरकमें गिरा रहे हैं। उदार, कुटुम्बी ब्राह्मणोंकी सम्पत्ति या वृत्ति छिन जानेपर वे रोते हैं; उनके आँसुओंके जलसे जितने पृथ्वीके रज-कण भीगते हैं उतने ही वर्षों तक उनकी सम्पत्ति या वृत्तिके हरनेवाले राजा और राजकर्म्मचारी लोग अपने २ परिवार सहित घोर कुम्भीपाक नरकमें गर्मतेलमें पकाये जाते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ जो कोई अपनी या पराई दी हुई ब्राह्मणकी सम्पत्ति या वृत्तिको हर लेता है वह साठ हजार वर्ष विष्ठामें कीड़ा होता है ॥ ३९ ॥ मैं यही चाहता हूँ कि मैं कभी जाने या बिनाजाने ब्राह्मणके धनका अपहरण न करूँ। जो दुष्ट राजालोग ब्राह्मणकी सम्पत्ति लेना चाहते हैं वे अल्पायु, राज्यसे भ्रष्ट, पराजित होते व व्याकुल रहते हैं॥४०॥ अतएव हे वन्धु-वावन्धगण! ब्राह्मण यदि अपराध भी करे तो उसका अप्रिय या अनिष्ट न करना। ब्राह्मण चाहे मारे या गालियाँ दे, तो भी तुम उससे द्रोह न करके प्रणाम ही करना। जैसे मैं सब समय ध्यान रख कर ब्राह्मण-वन्दना करता हूँ वैसे ही तुम लोग भी नम्रतापूर्वक प्रणाम किया करो। जो कोई ऐसा न करेगा उसको मैं कड़ा दंड दूँगा। ब्राह्मणका धन, हरनेवालेको नरकमें गिराता है, इसका प्रमाण तुमने प्रत्यक्ष ही देखा है कि बिना जाने ब्राह्मणकी सम्पत्ति हरनेके लिये महादानी धर्म्मात्मा नृगको गिरगिटकी योनिमें जाना पड़ा" ॥४१॥४२॥४३॥

एवं विश्राव्य भगवान्मुकुन्दो द्वारकौकसः ॥
पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमन्दिरम् ॥ ४४ ॥

सब लोकोंको पवित्र करनेवाले भगवान् कृष्ण द्वारकावासियोंको यों उपदेश सुनाकर अपने मन्दिरमें चलेगये ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे चतुःषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्ठितम अध्याय ।

बलभद्रका रास-विलास ।

श्रीशुक उवाच–बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान्रथमास्थितः ॥
सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे कुरुश्रेष्ठ! एकदिन भगवान् बलभद्रका मन अपने सुहृद् जनोंको देखनेके लिये उत्कंठित हो आया और वह उसी समय रथपर चढ़ कर नन्दके गोकुलको गये ॥ १ ॥ गोकुलमें पहुँचते ही चिरकालसे उत्कण्ठित गोप और गोपियोंने बलभद्रजीको हृदयसे लगा लिया । तदनन्तर बलभद्रजीने प्रणाम किया और उन्होने भी शुभ आशीर्वाद देकर इनका अभिनन्दन किया ॥ २ ॥ नन्द यशोदाने कहा-"हे दाशार्ह! हे जगदीश्वर! आप अपने अनुजसहित चिरकाल तक हमारी रक्षा करो"। यों कह कर उन्होने बलभद्रजीको गोदमें लेलिया और आनन्दके आँसुओंसे बहुत देर तक उनको भिगोते रहे ॥ ३ ॥ जो गोप अवस्थामें बड़े थे उनको बलभद्रजीने स्वयं प्रणाम किया और जो अवस्थामें छोटे थे उन्होने इनको प्रणाम किया। इसी प्रकार अवस्था, मित्रता और सम्बन्धके अनुसार हँस कर और हाथ मिला कर बलभद्रजी सब गोपोंसे मिले और बोले । जब बलदेवजी प्रेमपूर्ण गद्गद वचन कह कर सब प्रकारकी कुशल पूछ चुके तब कमललोचन श्रीकृष्णके पीछे जिन्होने सब विषय छोड़ दिये हैं वे गोपगण उनसे कहने लगे कि "हे राम! हमारे सब बन्धु बान्धव कुशलसे हैं? तुम दोनो भाई अब स्त्री, पुत्र वाले हुए हो, भला क्या अब कभी हमाराभी स्मरण करते हो? बड़ी बात जो दुष्ट कंसको तुमने मारा और अपने बान्धवोंको कष्टसे छुड़ाया और अब सब शत्रुओंको हरा कर एक दुर्भेद्य दुर्गमें रहते हो" ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ गोपियाँ बलभद्रको देख कर बहुत प्रसन्न हुईं और हँसती हुई पूछने लगीं कि—"नागरी स्त्रियोंके प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण सुखपूर्वक क्षेमकुशलसे हैं? वह क्या कभी पिता माता और बन्धु-बान्धवोंका स्मरण करते हैं? वह महापुरुष क्या कभी हमारी सेवाकी चर्चा करते है? हे यदुनन्दन! हे प्रभो! हमने उनके लिये, जिनको छोड़ना सहज नहीं है उन माता, पिता, भ्राता, पति और बहनोंको छोड़ दिया, तथापि वह एकदम सब मित्रता और प्रेमके बंधनको तोड़ हमको छोड़ मुह मोड़ कर चले गये! यदि कहो कि तुमने जाते समय उनको रोक क्यों न लिया? तो जाते समय वह जो कह गये थे कि 'हम शीघ्रही लौट आवेंगे' उस पर हम स्त्रियाँ कैसे न विश्वास करतीं?"। और एक गोपीने कहा कि "नगरकी स्त्रियाँ तो बड़ीही चतुरा होती हैं, वे कैसे अव्यवस्थितचित्त कृतघ्न कृष्णके वचनों पर विश्वास करती हैं? अथवा

कृष्णकी बातें बहुतही मनोहर और मधुर होती हैं, अतएव पुरनारियाँ भी उनके सुन्दर मन्दमुसकानसे सुशोभित कटाक्षोंमें मोहित हो जाती होंगी, उनका चित्त कामकी उमंगसे चंचल हो जाता होगा–इससे वे उनके वचनों पर विश्वास कर लेती होंगी"। अन्य एक गोपीने कहा। "हे गोपियो! उनकी बातोंसे हमको क्या प्रयोजन है? और और बातें करो। यदि हमारे विना वह सुखसे समय विताते हैं तो हम भी उनके बिना समय विता सक्ती हैं" ॥९॥१०॥११॥१२॥१३ ॥ १४ ॥ यों कह कर सब गोपियाँ श्रीकृष्णकी हँसी, बातचीत, सुंदर चितवन, चाल और प्रेमालिङ्गन आदिको स्मरण करती हुई विलाप करने लगीं ॥ १५ ॥ तब अनेक प्रकारके अनुनय करनेमें चतुर भगवान् बलभद्रने श्रीकृष्णके मनोहर संदेश सुना कर उन गोपियोंको समझाया ॥ १६ ॥ भगवान् रोहिणीनन्दन रात्रिके समय गोपियोंसे विहार करते हुए चैत्र और वैशाख दो महीने तक वहाँ रहे। बलभद्रने उन गोपियोंके साथ पूर्ण चन्द्रमाकी किरणोंसे समुज्वल एवं कुमुदगंधसे मनोहर यमुनाके उपवनमें विहार किया ॥ १७ ॥ १८ ॥ उस समय वरुणजीकी भेजी हुई वारुणी (मदिरा) वृक्षकोटरसे बह कर अपने सुवाससे उस वन भरको सुगंधित करने लगी ॥ १९ ॥ वायुके द्वारा उस वारुणीकी सुवास बलभद्र तक पहुँची, उस गंधको सूँघ कर बलभद्रजीने स्त्रियों सहित वहाँ जाकर वारुणी मदिराको पिया ॥ २० ॥ इस प्रकार मदसे जिनके नेत्र विह्वल हो रहे हैं वह उन्मत्त बलदेवजी वनमें विचरने लगे और स्त्रियाँ उनके पवित्र गुण गाने लगीं ॥२१॥ भगवान् बलभद्रके कंठमें माला तथा वैजयन्तीमाला और एक कानमें एक कुंडल एवं मुसकानसे मंजुल मुखमण्डलमें पसीनेके बूँद सुशोभित हो रहे थे। उस समय ईश्वर बलभद्रने जलविहार करनेकी इच्छासे यमुनाको अपने निकट बुलाया। किन्तु यमुना वहाँ नहीं आई। यह देख कर बलभद्रजीने जाना कि "मुझे मतवाला जान कर यमुनाने मेरी आज्ञाका अनादर किया है," अतएव कोपपूर्वक उन्होने हलसे यमुनाको अपनी ओर खींचते हुए कहा कि–"पापिनी! मैंने तुझको बुलाया, किन्तु तूने मेरा अनादर किया और यहाँ नहीं आई। तूने अपने मनका काम किया, अतएव मैं अपने हलसे खींच कर मूशलसे तेरे सैकड़ों टुकड़े कर डालूँगा" ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ राजन्! इस प्रकार बलभद्रजीने डाँटा, तब भयभीत व चकित हो कर यमुना उनके पैरों पर गिर कर कहने लगीं कि "हे राम! हे महाबाहो! मैं आपके विक्रमको नहीं जानती थी। हे विश्वनाथ! आप अपने एक अंशसे इस पृथ्वीको धारण किये हुए हैं। हे भगवन्! मैं आपकी अपार महिमाको नहीं जानती। हे विश्वात्मा! हे भक्तवत्सल! मैं शरणागत हूँ, मुझे छोड़ दीजिये—मेरी रक्षा कीजिये" ॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ इस प्रकार अधीनतापूर्वक प्रार्थना करने पर भगवान् बलभद्रने यमुनाको छोड़ दिया; और हथनियोंके साथ जैसे गजराज क्रीड़ा करे

उस प्रकार गोपियोंके साथ यमुना जलमें घुस कर जलविहार करना आरंभ किया ॥ २८ ॥ इच्छापूर्वक जलविहार करनेके उपरान्त भगवान् जब जलसे बाहर निकले तब लक्ष्मी देवीने उनको नीलाम्बर और उत्तरीय वस्त्र तथा महामूल्य अलंकार व मङ्गलमयी एक माला दी॥ २९ ॥ तब बलभद्रजी उत्तम नीलाम्बर धारण करके एवं सुवर्णकी माला पहन कर व चंदन लगा कर इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान सुशोभित हुए॥ ३० ॥ हे राजन्! जहाँ पर बलभद्रजीने यमुनाको हलसे खींचा था वहाँ अब भी अनन्तवीर्य्य बलदेवके बलको बताती हुई यमुना टेढ़ी देख पड़ती है ॥ ३१ ॥

एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे ॥
रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥ ३२ ॥

हे तात ! इस प्रकार व्रजवनिताओंके माधुर्यविलासके द्वारा आकृष्ट-हृदय होकर बलदेवजीने उनके साथ रमण किया और रासविलासमें दो महीनेकी रात्रियाँ एक रात्रिके समान बीत गईं ॥ ३२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

षट्षष्ठितम अध्याय।

मिथ्या-वासुदेव और काशिराजका वध।

श्रीशुक उवाच—नन्दव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप ॥
वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। हे राजन्! बलदेवजी तो नन्दके व्रजको गये। इधर कुछ दिनके उपरान्त करूष देशके अधिपति अज्ञानसे अंधे हो रहे पौण्ड्रकने "मैंही वासुदेव हूँ" ऐसा निश्चय करके भगवान् श्रीकृष्णके निकट एक दूत भेजा ॥ १ ॥ अज्ञ लोगोंने "आप ही भगवान् जगत्पति वासुदेव पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए हैं" इस प्रकार कह कर पौण्ड्रकको बहँकाया। अतएव करूपराजने अपनेको अच्युतका अवतार मान लिया एवं खेलके समय बालकों द्वारा कल्पित राजाकी भाँति उस अज्ञ मन्दबुद्धिने द्वारकामें अव्यक्तगति नारायणके निकट अपना दूत भी भेज दिया ॥२॥३॥ द्वारका जा कर दूत कृष्णकी सभामें उपस्थित हुआ एवं वहाँ पर बैठे हुए कमलनयन प्रभु श्रीकृष्णसे उस दूतने इस प्रकार पौण्ड्रकका संदेश सुनाया कि—"करूषराजने कहा है कि मैं ही एकमात्र वासुदेव हूँ, और कोई वासुदेव नहीं है; जीवोंपर दया करके मैंने अवतार लिया है। तुम मिथ्या

'वासुदेव' नामको छोड़ दो । हे यादव! तुमने मूढ़तावश जो मेरे चिन्ह धारण किये हैं उन सबको त्याग कर मेरी शरणमें शीघ्र आ क्षमा माँगो, नहीं तो मेरे साथ युद्ध करो" ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! उग्रसेन आदि सभासद् लोग जो वहाँ उपस्थित थे वे अल्पबुद्धि पौण्ड्रककी यह मिथ्या आत्मश्लाघा सुन कर ऊँचे स्वरसे हँसनेलगे। भगवान्‌ने भी हँसकर दूतसे कहा कि उससे कह देना कि "रे मूढ़! जिन लोगोंकी सहायताके बल और घमंड पर तू इस प्रकार मिथ्या आत्मश्लाघा करता है उनपर और तुझ पर अपने सुदर्शन आदि चिन्ह मैं आकर छोड़ूँगा। तू जिस मुखसे अपनी झूठी बड़ाई करता है उस मुखको छिपा कर जब समरभूमिमें शयन करेगा तब कंक, गृध्र और वक आदि सब पक्षी तुझको घेर कर बैठेंगे और कुत्ते तेरी शरणमें आवेंगे" ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णके कहे हुए तिरस्कारसूचक वचन जैसेके तैसे दूतने जा कर अपने स्वामीसे कह दिये। श्रीकृष्णजी भी इधर रथपर चढ़कर काशीको चले। महारथी पौण्ड्रक अपने पुरमें था, वह भी इस प्रकार समर करनेके लिये श्रीकृष्णका उद्योग देख कर दो अक्षौहिणी सेना ले शीघ्र पुरसे बाहर निकला ॥ १० ॥ ११ ॥ राजन्! उसका मित्र काशिराज भी एक अक्षौहिणी सेना लेकर सहायताके लिये उसके साथ आया। इस प्रकार तीन अक्षौहिणी सेना सहित समरभूमिमें खड़े हुए पौण्ड्रकको भगवान्‌ने देखा कि वह भी अपनेही समान शंख, श्रेष्ठ खड्ग, गदा, शार्ङ्ग धनुष और श्रीवत्स आदि चिन्ह धारण किये हुए है। गलेमें कौस्तुभ व वनमालासे विभूषित है। पीताम्वर और उत्तरीय वस्त्र एवं अमूल्य चूड़ाभरण धारण किये हुए अपने ही समान (बनावटी) वेषसें, रंगभूमिमें नटके समान, युद्धभूमिमें गरुड़की ध्वजावाले रथ पर अवस्थित पौण्ड्रकको देख कर भगवान् बहुत ही हँसे। कानोंमें मकराकृत कुंडल धारण किये हुए शत्रुकी सेना हरिके ऊपर शूल, गदा, परिघ, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, तोमर, खड्ग, पट्टिश और वाणोंकी वर्षा करने लगी। युगान्तके समय प्रचण्ड होकर अग्नि जैसे प्रजागणको भिन्न२ रूपसे पीड़ित करता है वैसे ही श्रीकृष्णचन्द्रने गदा, खड्ग, चक्र और वाणसमूहसे पौण्ड्रक और काशिराजकी चतुरंगिणी सेनाको अलग २ पीड़ित करना आरम्भ किया। कृष्णचक्रके प्रहारसे जिनके खंड२ होगये हैं उन रथ, घोड़े, हाथी और पैदलोंसे व्याप्त वह समरभूमि साहसी वीर पुरुषोंको प्रसन्न और उत्साहित करती हुई प्रलयकालमें रुद्रकी अति भयानक क्रीड़ाभूमि मसानके समान जान पड़ने लगी। तदनन्तर वासुदेवने सामने आकर मिथ्यावासुदेवसे कहा कि हे पौण्ड्रक! तूने दूतके द्वारा जिन सब अस्त्र-शस्त्रोंके छोड़नेके लिये मुझसे कहला भेजा था उन सब अस्त्र-शस्त्रोंको मैं इस समय तेरे ऊपर छोड़ता हूँ। साथ ही यदि युद्ध करना न चाहूँगा तो तेरे मिथ्या नामको भी छोड़कर तेरी

शरणमें आ जाऊँगा। इस प्रकार आक्षेपपूर्ण वचन सुना कर भगवान्‌ने इन्द्र जैसे वज्रसे पर्वतको भेदते हैं वैसे वाणवर्षासे पौण्ड्रकके रथको काट कर सुदर्शन चक्रसे उसके शिरको भी काट डाला। साथ ही एक वाणसे उसके सहायक काशिराजका भी शिर काट कर वायुसंचालित कमलपत्रके समान काशीपुरीमें पहुँचा दिया ॥१२॥१३॥१४॥१५॥१६॥१७॥१८॥१९॥२०॥२१॥२२॥ इस प्रकार गर्वित पौण्ड्रकको उसके सहायक सखासहित मार कर श्रीकृष्णचन्द्रने राहमें सिद्धगणके मुखसे अपनी अमृतमय कथाएँ सुनते हुए लौट कर द्वारकापुरीमें प्रवेश किया ॥ २३ ॥ राजन्! पौण्ड्रक शत्रुतावश सब समय भगवान्‌का ध्यान किया करता था, अतएव उसके सब कर्म्मबन्धन शिथिल होगये थे। बस, इसी कारण सर्वदा हरिके रूपका ध्यान करनेसे मरनेके उपरान्त वह तन्मय होगया ॥ २४ ॥ इधर काशी पुरीमें राजद्वार पर काशिराजका कुण्डलमण्डित कटा हुआ शिर देख कर "यह क्या है? किसका शिर है?" इस प्रकार कहते सब पुरवासी लोग आन्दोलन करने लगे ॥२५॥ तदनन्तर जब सबने जाना कि यह काशीपतिका शिर है तब रानियाँ, राजकुमार और बन्धुबान्धवगण एवं प्रजागण "हाय, हम मरगये! हाय, राजन्! हाय, नाथ! हाय, नाथ!" कह कर विलाप करने लगे ॥ २६ ॥ तदनन्तर काशिराजका पुत्र सुदक्षिण जब पिताकी अन्त्येष्टि क्रिया कर चुका तब उसने प्रतिज्ञा की कि "मैं जब अपने पिताके मारनेवालेको मार कर वदला लेलूँगा तभी पिताके ऋणसे मुक्त होऊँगा"। यह निश्चय करके वह उपाध्यायके साथ परम समाधि लगा कर महेश्वरकी आराधना करने लगा ॥ २७ ॥ भगवान् शंकरने उसकी आराधनासे प्रसन्न व मुग्ध हो प्रकट होकर कहा कि– "जो इच्छा हो, वह वर माँग"। उसने यही वर माँगा कि "जिसने मेरे पिताको मारा है उसके वधका उपाय बताइये" ॥ २८ ॥ शंकरने कहा कि "तुम ब्राह्मणोंके साथ यज्ञके देव दक्षिणाग्निकी भली भाँति उपासना करो। ऐसा करनेसे प्रमथगणपरिवृत वह अग्नि हिंसाकार्य्य(मारण)में नियुक्त होकर तुम्हारे संकल्पको सिद्ध करेगा। परन्तु स्मरण रहे कि जो कोई ब्राह्मणोंका भक्त होगा उस पर उसका विक्रम नहीं काम देगा, अर्थात् विफल हो जायगा" ॥२९॥३०॥ काशिराजके पुत्र सुदक्षिणने महादेवकी यह आज्ञा पाकर नियमधारणपूर्वक श्रीकृष्णके ऊपर उक्त विधिके अनुसार अभिचारविधिका अनुष्ठान किया। ऐसा करने पर कुण्डसे वही अति भयानक रूपधारी दक्षिणाग्नि मूर्तिमान् होकर प्रकट हुआ। उसकी शिखा व श्मश्रुके केश तपेहुए ताँबेके समान अरुणवर्ण थे, दोनो नेत्रोंसे चिनगारियाँ निकल रही थीं एवं दाढ़ें व प्रचण्ड भौहें उसके मुखमंडलको महाभयानक बनाये हुए थीं। वह अग्नि अपनी जीभसे चौहोंको वारम्वार चाटता हुआ, ताड़ ऐसे लंबे पैरोंसे पृथ्वीको कँपाता हुआ, अपने तेजसे दशो दिशाओंको जलाता हुआ

प्रमथगणको साथ लिये द्वारकाकी ओर दौड़ा । वह प्रज्वलित मूर्तिमान् अग्नि नग्नवेष था । अभिचारक्रियाके लिये उत्पन्न उस भयंकर अग्निको आते देख कर वनको जलता देख जैसे पशुपालक लोग भयसे प्राण लेकर भागते हैं वैसे ही डरकर द्वारकावासी लोग प्राण बचानेके लिये इधर उधर भागने लगे । भगवान् उससमय सभामें बैठेहुए चौंसर खेल रहे थे । सब भयसे आतुर पुरवासी लोग भगवान्‌के पास जा कर दीन भावसे पुकार कर कहने लगे कि—"हे त्रिलोकीके ईश्वर! यह घोर अग्नि पुरको जला रहा है, इससे हमारी रक्षा करो" । सब प्राणियोंके अन्तर्य्यामी श्रीकृष्णचन्द्रने प्रजागणको आकुल और अपने आत्मीयोंको भयभीत देख कर हँसते हुए कहा कि—"डरो नहीं, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा"। सब जगत्‌के भीतर और बाहरके साक्षी भगवान् जान गये कि यह "माहेश्वरी कृत्या" है, अतएव उसका विनाश करने के लिये उन्होने अपने पास ही उपस्थित सुदर्शन चक्रको आज्ञा दी ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ भगवान्‌का श्रेष्ठ अस्त्र सुदर्शन, उस समय करोड़ सूर्य्यके समान प्रज्वलित हो प्रलयकालीन अग्निके समान भयंकर रूप धारण कर उस अग्निके आगे आया। सुदर्शनके प्रचण्ड तेजसे आकाश, अन्तरिक्ष और दशो दिशाएँ व्याप्त और प्रकाशित होगईं ॥ ३९ ॥ सुदर्शन चक्रके तेजसे पीड़ित वह कृत्यानल प्रतिहत हो कर लौट पड़ा। चक्रपाणिके चक्रके तेजसे जिसका तेज नष्ट हो गया उस कृत्यारूप अग्निने वहाँसे लौट वाराणसी पुरीमें आकर सुदक्षिणको ऋत्विजों सहित तत्क्षण ही भस्म कर डाला। अपने किये अभिचारसे वह दुष्ट आप ही नष्ट हो गया। विष्णुके चक्र सुदर्शनने भी उस अग्निका पीछा नहीं छोड़ा और उसके पीछे पुरीमें प्रवेश करके अट्टालिका, सभामण्डप, हाट, बाट, गोपुर अट्टालक, कोष्ठसमूह, कोषशाला, हस्तिशाला, अश्वशाला और अन्नशाला आदिसे सुशोभित वाराणसीपुरीको भस्म कर दिया। सहजमें ही लीलापूर्वक ये सब दुष्कर कर्म्म करके सुदर्शनचक्र लौट कर कृष्णके निकट आ गया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

य एवं श्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम् ॥
समाहितो वा शृणुयात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४३ ॥

राजन्! जो मनुष्य सावधानतासहित मन लगा कर उत्तमश्लोक हरिके इस अद्भुत विक्रम—व्यापारको सुनता या सुनाता है वह सब पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ४३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षट्षष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्ठितम अध्याय ।

द्विविद वानरका वध ।

राजोवाच—भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः ॥
अनन्तस्याप्रमेयस्य यदन्यत्कृतवान्प्रभुः ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने कहा । हे ब्रह्मन्! अद्भुत कर्म्म करनेवाले, अनन्त, अप्रमेय, प्रभु बलभद्रजीने जो और कर्म्म किये हों उन उनके विक्रमोंको मैं सुनना चाहता हूँ । श्रीशुकदेवजीने कहा । राजन्! सुग्रीवका मंत्री और मैंदका भाई वीर्य्यवान् द्विविद नाम एक वानर भौमासुरका परम मित्र था ॥१॥२॥ भौमासुरको जब कृष्णचन्द्रने मार डाला तब मरे हुए मित्रका बदला चुकानेकी इच्छासे राष्ट्रविप्लव करनेकी अभिलाषासे वह वानर द्वारकामें आकर घोर उत्पात करने लगा । कभी वह आग लगा कर आसपासके पुर, ग्राम, व्रज और आकरोंको भस्म कर देता, कभी पर्वत उठा कर देशोंके ऊपर छोड़ देता, जिससे वे देश नष्ट होजाते । इस प्रकार जहाँ दुष्टदमनकारी कृष्णचन्द्र निवास करते थे उन आनर्त्त देशके पुरोंको वह विनष्ट करने लगा । वह उत्पाती वानर समुद्र में घुस कर जलको उलचकर किनारेकी ओर फेकता, जिससे किनारेकी बस्तियाँ बह जातीं । वह दश हजार हाथियोंके समान बली दुष्ट द्विविद कभी श्रेष्ट ऋषियोंके आश्रमोंमें जा कर वहाँके वृक्षोंको उखाड़२ कर फेक देता और मलमूत्रके द्वारा हवनकी अग्निको बुझाकर कुंडोंको दूषित कर देता । जैसे भ्रमर और २ कीड़ोंको पकड़ कर ले जाता है और अपने रहने के बिलमें बंद कर देता है वैसे ही घमंडी वानर भी स्त्री पुरुषोंको पकड़ कर ले जाता और कंदरामें डाल कर पत्थरसे उसका द्वार बंद कर देता ॥३॥४॥५॥६॥७॥ इसी प्रकार अनेक देशोंको उजाड़ता और कुलनारियोंको दूषित करता वह वानर इधर उधर विचरता रहता था । एक दिन सुललित संगीतका मधुर स्वर सुन कर वह वानर रैवतक पर्वत पर चढ़ गया । वहाँ जा कर उसने देखा कि भगवान् यदुपति बलभद्रजी विराजमान हैं, उनके गलेमें वनमाला पड़ीहुई है एवं सब अंग देखनेमें परम सुंदर हैं । वह सुन्दर रमणियोंकी मण्डलीके बीचमें बैठे हुए वारुणी मदिरा पान कर रहे हैं । उनके नेत्र मदके कारण विह्वल हो रहे हैं । उनका विशाल शरीर देखनेसे जान पड़ता है कि कोई मदमत्त गजराज हथनियोंके साथ विहार कर रहा है । इस प्रकार स्त्रियोंके साथ मदिरापान और गान कर रहे बलभद्रको देख वह दुष्ट वानर एक वृक्ष पर चढ़ गया और उसकी शाखाओंको वेगसे हिलाता हुआ अपनी गुप्त इन्द्रिय दिखा कर किलकिला शब्द करने लगा । स्त्रियाँ स्वाभाविक

चञ्चल और हास्यप्रिय होती हैं, अतएव वे (बलभद्रकी स्त्रियाँ) वानरकी यह ढिठाई देख कर हँसने लगीं। वह दुष्ट वानर बलभद्रजीके आगे ही फिर अपनी गुप्त इन्द्रिय दिखा कर भौंह मटकाकर मुख बना कर वारम्वार उन स्त्रियोंको चिढ़ाने लगा। तब श्रेष्ठ वीर बलदेवने कुपित हो एक पत्थरका बड़ा भारी टुकड़ा उठा कर उसके खींच मारा। वह वानर उस शिलाप्रहारको बचा गया और बलभद्रके आगे धरे हुए मदिराके पात्रको फुर्तीसे लेकर दूर भाग गया और दूरसे हँस२ कर बलदेवजीके हृदयमें कोप उपजाने लगा। इतना ही तिरस्कार करके वह दुष्ट नहीं शान्त हुआ। उसने मदिराके पात्रको पटक कर फोड़ डाला और फिर स्त्रियोंके कपड़े खींच २ कर फाड़ता हुआ अनेक नीच व्यवहारोंसे बलभद्रके कोपको बढ़ाने लगा। उस मदोद्धत दुष्टके इस प्रकार अविनीत और नीच व्यवहारको देख कर तथा यह जान कर कि इसी दुष्टने यहाँके अनेकों देशों व पुरोंको उजाड़ कर दिया है, भगवान् बलभद्र क्रोधसे विह्वल होगये। वह उसी समय उसको मारनेके लिये हल और मूशल लेकर उठ खड़े हुए॥८॥९॥१०॥११॥ ॥१२॥१३॥१४॥१५॥१६॥ महाबली द्विविद भी युद्धके लिये उद्यत हुआ। उसने एक बड़ा भारी शालका वृक्ष उखाड़ लिया और निकट आकर बलभद्रजीके मस्तक पर बड़े वेगसे प्रहार किया॥ १७॥ संकर्षण देव पर्वतके समान अटल भावसे उसी स्थान पर खड़े रहे, जब वह वृक्ष शिरके ऊपर आया तो उसको उन्होने एक हाथसे पकड़ लिया और दूसरे हाथसे वानर पर मूशलका प्रहार किया। मूशलके प्रहारसे उस वानरका शिर फट गया और रुधिरकी धारा बहने लगी। उस समय जैसे किसी पर्वतसे पानीमें घुलकर गेरूकी धारा बहचले वैसे ही उस वानरकी शोभा हुई। उस प्रहारको न मान कर फिर दारुण क्रोध करके उस वानरने एक पत्र-शून्य वृक्षका ठूँठ उखाड़ कर बलभद्रके शिर पर बड़े वेगसे खींच मारा। किन्तु कुपित हो बलभद्रजीने बीचमें ही उस वृक्षके सैकड़ों टुकड़े कर डाले। वानरने और भी कुपित हो और एक वृक्ष बलभद्र पर चलाया। भगवान्‌ने उसके भी सैकड़ों टुकड़े कर डाले। इस प्रकार जब युद्ध करनेमें वारम्वार उद्यम वृथा गया तब वह वानर मारे क्रोधके आपेसे बाहर हो गया। यहाँतक कि उसने उस वन भरके वृक्ष उखाड़२ कर बलभद्रजी पर चलाये, जिससे कि वह वन एक प्रकार वृक्षोंसे शून्य होगया। जब वृक्ष चुक गये और कुछ भी न हुआ तब वह वानर अत्यन्त कुपित हो बलभद्रके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा। किन्तु उन शिलाओंको भी यदुनायकने अपने मूशलके प्रहारसे चूर२ कर डाला॥१८॥ ॥१९॥२०॥२१॥२२॥२३॥ अन्तको ताड़ ऐसे लंबे दोनो हाथोंसे घूसा बाँध कर वह वानर दौड़ा और रोहिणीनन्दनके निकट आकर उनके वक्षःस्थल पर उसने घूँसे मारे। भगवान् बलभद्रने कुपित हो हल मूशलको धर दिया और दोनो हाथोंसे

क्रोधपूर्वक कंठ और बाहुके बीचमें पकड़ कर उस वानरको पीड़ा पहुँचाई। मर्म-स्थलमें पीड़ित होने पर उस वानरके मुखसे रुधिर गिरने लगा और वह तुरन्त प्राण-हीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥२४॥२५॥ हे कुरुश्रेष्ठ! जैसे आँधीकी थपेड़से समुद्रके भीतर जा रही नाव हिलने लगती है वैसे ही उस वानरका शरीर जब गिरा तो उसके धमाकेसे कंदराओं, शिखरों और वृक्षोंसहित वह पर्वत हिल गया ॥ २६ ॥ उस समय आकाशसे देवता, सिद्ध और मुनीन्द्रगण फूलोंकी वर्षा करते हुए "जयजय, नमोनमः, साधु साधु" कह कर प्रसन्नता प्रकट करने लगे ॥ २७ ॥

एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् ॥
संस्तूयमानो भगवाञ्जनैः स्वपुरमाविशत् ॥ २८ ॥

इस प्रकार जगत्को सतानेवाले और उथल-पथल मचानेवाले दुष्ट द्विविदको मार कर अपने परिजनोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए भगवान् बलभद्रने पुरमें प्रवेश किया ॥ २८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सप्तषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्ठितम अध्याय ।

बलदेवविजय ।

श्रीशुक उवाच–दुर्योधनसुतां राजन् लक्ष्मणां समितिंजयः ॥
स्वयंवरस्थामहरत्साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! दुर्य्योधनके एक कन्या थी, उसका नाम था लक्ष्मणा। उसका स्वयम्वर रचा गया। शत्रुओंको जीतनेवाले जाम्बवतीके पुत्र वीर सांब अकेले ही स्वयम्वरमें पहुँचे और उस कन्याको हर कर द्वारकाको चले ॥ १ ॥ यह देख सब कौरवगण कुपित होकर कहने लगे कि "यह बालक बड़ाही ढीठ है। देखो न! कन्याकी इच्छा न होने पर भी हम सबको तृणसम तुच्छ मान कर बलपूर्वक उसे हर ले गया। इस लिये यही उचित है कि इस ढीठ बालकको पकड़ कर बंदी बना लो, वृष्णि (यादव) लोग हमारा क्या कर लेंगे? वे तो हमारे ही प्रसादसे राज्यभोग कर रहे हैं, हमने ही उनको राज्य दिया है, वे तो स्वयं राज्यके अधिकारी नहीं हैं। और पुत्रका पकड़ा जाना सुन कर यदि यादव लोग चढ़ाई करके आवेंगे तो यहाँ उनका घमंड चूर हो जायगा और वे प्राणायामादि उपायोंसे जिनका दमन किया गया है उन इन्द्रियोंके

समान शान्त हो जायँगे" ॥२॥३॥४॥ कुरुवृद्ध भीष्म पितामहने भी इसका अनुमोदन किया, बस—फिर क्या था; भीष्मपितामहको आगे करके कर्ण, शल्य, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु और दुर्य्योधन आदि कई चुने हुए महारथी योद्धा पकड़नेके लिये सांबके पीछे चले। महारथी अनुचरों सहित धृतराष्ट्रके पुत्रोंको पीछा करते देख क्षत्रियश्रेष्ठ साम्ब निर्भय भावसे सुन्दर धनुष लेकर अकेले ही सिंहके समान युद्ध करनेके लिये खड़े होगये ॥५॥६॥ साम्बको पकड़नेकी इच्छासे "ठहर ठहर" कहते हुए कुपित कौरवगण निकट आगये और धनुष चढ़ा कर वाणोंकी वर्षा करने लगे। कर्ण उन सबमें अगुआ था ॥ ७ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! जब कौरवोंने इस प्रकार आक्रमण किया तब जैसे सिंहको क्षुद्र मृग घेर लें और वह उनको कुछ न समझे वैसे ही बालक और अकेले होने पर भी सांब घबड़ाये नहीं। वह उनके आक्रमणको न सह कर क्रोधपूर्वक सुंदर धनुष चढ़ा कर युद्ध करने लगे। साम्वने कर्ण आदि छः महारथियोंको उतने ही वाणोंसे अलग २ घायल किया। उन महारथी शत्रुओंने भी सांबके इस कर्म्मकी प्रशंसा की। महाराज! कौरवोंने भी कृष्णपुत्र सांबका रथ काट डाला। चार जनोंने सांबके चारो घोड़ोंको और एकने सारथीको मार डाला एवं एकने धनुपको काट डाला। इस प्रकार कौरवोंने युद्धभूमिमें अकेले सांबको बड़े कष्टसे रथहीन करके बाँध लिया। जय पाकर कुमार सांबको कन्यासहित पकड़ आनन्द मनाते हुए कौरव लोग अपने पुरको लौट गये। नारदने जाकर यह सब वृत्तान्त द्वारकापुरीमें कहा। सुन कर वीर यादवोंको बड़ा क्रोध हो आया एवं वे उग्रसेनकी आज्ञा पाकर कौरवोंसे युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए। परन्तु बलभद्रजीकी यह इच्छा न थी कि कौरवों और यादवोंमें परस्पर युद्ध हो; इस लिये कलिकलुषनाशन बलभद्रने कुपित और युद्धके लिये उद्यत यादवोंको समझा बुझाकर शान्त किया और आप मेल करानेकी इच्छासे ग्रहोंसहित चन्द्रमाके समान सूर्य्यसम प्रकाशमान रथ पर चढ़ कर कुलके बड़े बूढे लोगों और ब्राह्मणोंको साथ लेकर हस्तिनापुरकी ओर चले ॥८॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥१५॥ हस्तिनापुर पहुँचकर बलभद्रजी पुरके बाहर उपवनमें ही ठहरे और धृतराष्ट्रका अभिप्राय जाननेके लिये उद्धवजीको कौरवोंकी सभामें भेजा ॥१६॥ उद्धवने भी सभामें जाकर यथोचित रीतिसे धृतराष्ट्र, भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य्य, बाल्हीक और दुर्य्योधन आदिको प्रणाम करके कहा कि "बलभद्रजी आये हैं" ॥१७॥ वे अपने प्रियतम सुहृद् बलभद्रजीका आना सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने पहले उद्धवका पूजन और सत्कार किया एवं फिर मांगलिक पूजनसामग्री लेकर बलदेवजीके पास चले। सब लोग विधिपूर्वक बलभद्रजीसे मिले, फिर गोदान और अर्घ्यदान कर, जो लोग बलभद्रजीके प्रभावको जानते थे

उन्होने शिर झुका उनको प्रणाम किया। तदनन्तर परस्पर कुशल-प्रश्नके उपरान्त जब सब सुखसे बैटे तब बलभद्रजीने धीर भावसे कहा कि "राजाधिराज प्रभु उग्रसेनने जो आज्ञा तुमको दी है उसको चित्त लगाकर सुनो और शीघ्र ही उसे पालन करो। उन्होने कहा है कि तुम कई जनोंने जो अधर्म्मपूर्वक एक धर्मयुद्ध करनेवाले बालकको पकड़कर बंदी बनाया है उसको हम लोग इस लिये सहे लेते हैं कि जिसमें हम बंधुओंमें मेल बना रहे और युद्ध न हो। अतएव इसीसमय तुम उस बालकको हमें दे दो" ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ प्रभाव, उत्साह और बलके उल्लेखसे युक्त एवं अपनी शक्तिकी समताकी सूचना देनेवाले बलभद्रके वचन सुनकर कौरवगण अत्यन्त कुपित हुए और कहने लगे कि– "अहो! यह बड़े आश्चर्य्यकी बात है! दुरत्यय कालचक्रकी गतिके प्रभावसे आज चरणपादुकाएँ मुकुटके स्थान शिर पर चढ़ना चाहती हैं। कुन्तीके विवाह द्वारा इन यादवोंके साथ हमारा योनिसम्बन्धमात्र है, इसी सम्बन्धके कारण ये लोग हमारे बराबर बैठने उठने और साथ भोजन करने लगे। अब ये इतने मूढ़ होगये हैं कि हमारे ही दियेहुए राज्यासनको पाकर हमारी समता करने लगे!! हमलोग कुछ ध्यान नहीं देते, अतएव ये लोग स्वतन्त्रतापूर्वक राजोंके समान चामर व्यजन, शंख, श्वेत छत्र, किरीट, मुकुट, उत्तम आसन एवं शय्याआदि राजभोग्य सामग्रियोंका उपभोग करते हैं। अहो! हमारे ही अनुग्रहसे सुखसमृद्धिसम्पन्न होकर ये यादवगण आज हमको ही आज्ञा दे रहे हैं! अतएव जैसे सर्प दूध पिलानेवालेहीको काटता है उसी प्रकार उपकार करनेवालों ही पर चोट करनेवाले यादवोंकी यह ढिठाई क्षमा करने योग्य नहीं है। अभी इनसे उक्त राजचिन्ह छीन लेने चाहिये! भीष्म, द्रोण आदि कौरव यदि न चाहें तो इन्द्रकी भी सामर्थ्य नहीं है कि वह किसी वस्तुको अपने पास बलपूर्वक रख सकें। सिंहके भागको कहीं सियार या साधारण भेंड़ा पचा सक्ता है?" ॥ २३ ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे कुरुश्रेष्ठ! जन्म, बन्धु, लक्ष्मी आदिके प्रबल मदोंसे अपनेको भूले हुए अर्थात् मदान्ध, असभ्य कौरवगण यों कटु वचन कहकर नगरमें चले गये। भगवान् बलभद्रजी कौरवोंके ऐसे दुष्ट व्यवहारको देखकर और कटु वाक्योंको सुनकर अत्यन्त कुपित हुए। क्रोधके कारण उनका रूप ऐसा रौद्र होगया कि कोई उनकी ओर भली भाँति नेत्र उठाकर देखनेका साहस नहीं कर सका। भगवान् बलभद्र क्रोधके आवेशमें वारम्वार उच्च स्वरसे हँस कर आप ही आप कहने लगे–"यह बात बहुत ही ठीक है कि अनेक प्रकारके मदोंसे अंधे हो रहे दुष्ट लोग शान्तिकी इच्छा नहीं करते; जैसे पशुगण डंडेकी चोटसे ही सीधी राह पर आते हैं वैसे ही दण्डके द्वारा वे शांत किये जा सक्ते हैं। अहो! मैं तो इनकी भलाईके लिये कुपित कृष्णको और युद्धके लिये

उद्यत यादवोंको रोककर और किसी प्रकार समझा बुझाकर यहाँ मेलके लिये आया था, किन्तु ये मतिमन्द लड़ाई में निरत और दुष्ट हैं अतएव गर्वपूर्वक इन्होने मेरा तिरस्कार किया और कटु वचन कहे। इन्द्र आदि श्रेष्ठ लोकपाल-गण भी जिनकी आज्ञाको शिर आँखों पर लेते हैं वह वृष्णि और अन्धक यादवोंके अधीश्वर उग्रसेन इन दुष्टोंकी दृष्टिमें विभु (आज्ञा देनेवाले) पदके योग्य नहीं हैं! जो सुधर्म्मा सभामें विराजमान हैं, जिन्होने कल्पवृक्ष लाकर अपने भवनके उपवन में लगाया है वह कृष्णचन्द्र अधिपतिके आसनके योग्य नहीं है! अखिलेश्वरी साक्षात् लक्ष्मी नित्य-निरन्तर जिनके चरणकमलोंका सेवन करती है वह लक्ष्मीपति राज्यभोग्य सामग्रीका भोग करने योग्य नहीं हैं! तीर्थस्वरूप योगीजन तीर्थ मान कर जिसकी उपासना करते हैं उस हरिचरणकमल-रजको लोकपालगण अपने उत्तम मुकुटमण्डित मस्तकों पर सादर स्थान देते हैं। मैं, ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी आदि सब उन्ही ईश्वर कृष्णचन्द्रकी अंश कला हैं और उन्हीके चरणोंकी सेवामें तत्पर रहते हैं। उन कृष्णके राज्यासन कहाँ है? ठीक है यादवगण कौरवोंके दिये राज्यासनका भोग करनेवाले हैं और यह भी ठीक ही है कि हमलोग चरणपादुकाएँ हैं एवं कौरवलोग शिर हैं। अहो! मतवालोंकी भाँति ऐश्वर्य्यके मदमें चूर इन घमंडी कौरवोंकी बे-सिर-पैरकी रूखी बातोंको स्वयं शासक होकर भी कौन सहसक्ता है?"। तदनन्तर "आज मैं पृथ्वीको कौरवोंसे सूनी कर दूँगा"—ऐसा कह कर दारुण क्रोधसे मानो तीनो लोकोंको भस्म कर देंगे, इस भाँति हल हाथमें लिये भगवान् बलभद्र उठ खड़े हुए और गंगामें गिरा देनेके लिये हस्तिनापुरको हलके अग्रभागसे गंगाकी ओर घसीटा ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ हलके द्वारा खींचे गये नगरको नावके समान घूम कर गंगामें गिरते देख सब कौरवगण भयसे व्याकुल हो उठे एवं प्राण बचानेकी इच्छासे अपने कुटुम्ब-परिवारसहित लक्ष्मणा और साम्बको आगे करके हाथ जोड़े नम्र भावसे उन्ही प्रभु बलभद्रकी शरणमें आये और कहनेलगे कि हे राम! हे राम! हे सम्पूर्ण जगत्के आधार! हम आपके प्रभावको नहीं जानते। हे अधीश्वर! हम महामूढ़ और कुमति हैं, आप हमारे अपराधोंको क्षमा करिये। आपको ऐसा ही उचित है। आप इस सृष्टिकी सृष्टि, पालन और ध्वंसका एकमात्र कारण हैं। आप निराश्रय हैं। आप जिस समय क्रीड़ा करनेमें प्रवृत्त होते हैं उस समय ये सब लोग आपकी क्रीड़ाकी सामग्रीके समान उत्पन्न होते हैं। हे सहस्र मस्तकवाले अनन्त! आप ही अनन्त लीलाओंके लिये इस पृथ्वीमण्डलको अपने एक मस्तक पर धरे हुए हैं। अन्तसमय जो अपनेमें विश्वको लीन करके अकेले अवशिष्ट रहते और अनन्त-शय्या पर शयन करते हैं वह शेषशायी नारायण भी आप ही हैं।

आप जगत्‌की स्थिति और पालनमें तत्पर होकर सत्त्वगुणको ग्रहण किये हुए हैं । शत्रुताके कारण आप किसीसे द्वेष या मात्सर्य्य नहीं रखते, वरन् कभी २ जगत्‌को शिक्षा देनेके लिये ही आप कुपित होते हैं । हे सर्व्वभूत-स्वरूप! हे सर्व्वशक्तिधर! हे अव्यय! हे विश्वकर्म्मा! आपको प्रणाम है । हम सब लोग आपकी शरणमें आये हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन्! जिनका नगर हिल उठा उन विपन्न भीतचित्त, शरणागत कौरवोंने जब इस प्रकार नम्र वचनोंसे प्रसन्न किया तब भगवान् बलभद्रने उनको अभयदान किया ॥ ४९ ॥ तदनन्तर दुहितावत्सल दुर्य्योधनने साठ वर्षकी अवस्थावाले बारह सौ प्राचीन गजराज, दस हजार घोड़े, स्वर्णनिर्मित-सूर्य्यकिरणयुक्त छः हजार रथ एवं स्वर्णपदकभूषित ग्रीवावाली एक हजार दासियाँ यौतुकमें कन्या और वरको दीं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ यह सब सामग्री लेकर यादवश्रेष्ठ भगवान् पुत्र और वधूको आगे करके सुहृद्‌गणके द्वारा अभिनन्दित हो पुरीको लौटे ॥ ५२ ॥ तदनन्तर अपनी पुरीमें आकर हलधरजी अनुरक्तचित्त बन्धु-बान्धवोंसे मिले और कौरवोंने जैसा व्यवहार पहले और पीछे किया सो सब वृत्तान्त उनसे भरी सभामें कह सुनाया ॥ ५३ ॥

अद्यापि च पुरं ह्येतत्सूचयद्रामविक्रमम् ॥
समुन्नतं दक्षिणतो गङ्गायामनु दृश्यते ॥ ५४ ॥

राजन्! हस्तिनापुर नगर दक्षिण भागमें गंगाकी ओर उन्नत है और अभी तक बलभद्रजीके विक्रमको जगत्‌में प्रकट कर रहा है ॥ ५४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितम अध्याय ।

मायाविभववर्णन ।

श्रीशुक उवाच–नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहं च योषिताम् ॥
कृष्णेनैकेन बह्वीनां तद्दिदृक्षुः स नारदः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज! नारदने सुना कि नरकासुरको मार कर भगवान् कृष्णचन्द्रने उसकी बंदिनी सोलह हजार एक सौ कन्याओंसे विवाह किया है । यह सुनकर नारदको बड़ा विस्मय हुआ और वह इस विचित्र व्यापारको देखनेकी इच्छासे द्वारकापुरीमें आये । नारदजी मन-ही-मन विचारने

लगे कि "अहो यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है! एक श्रीकृष्णने एकही शरीर से भिन्न२ महलोंमें सोलह हजार एक सौ स्त्रियोंसे विवाह किया!"। नारदने आकर देखा कि द्वारकाके फूलेहुए उपवन और बागोंमें पक्षी और भौंरे मनोहर मधुर बोलियाँ बोल रहे हैं एवं सब सरोवर फूलेहुए इन्दीवर, पद्म, कल्हार, कुमुद और उत्पल आदि भाँति२ के कमलोंसे व्याप्त हो रहे हैं। हंस और सारसोंके झुंड उन सरोवरोंके किनारे बैठे हुए ऊँचे स्वरमें तानें मार रहे हैं। वह पुरी स्फटिक और चाँदीके बनेहुए लाखों नवीन महलोंमें जड़ीहुई महामरकत मणियोंकी चमकसे प्रकाशित होरही है एवं रत्नजटित पर्य्यङ्क उनमें अपूर्व भावसे शोभायमान हैं। परस्पर बँटेहुए राजपथ, क्षुद्रपथ, चत्वर, आपण (बाजार) अन्न आदिकी शालाएँ एवं अनेकानेक देवालयोंसे वह नगरी बहुत ही भली और मनोहर जान पड़ती है। उसके मार्ग, आपणमार्ग, देहली आदि स्थानोंमें सुगंधित जलसे छिड़काव किया गया है। पुरीमें प्रायः सर्वत्र वायुसे लहरा रही पताकाएँ और ध्वजाएँ घोर घामको रोककर अपनी छाया फैला रही हैं॥१॥२॥३॥ ॥४॥५॥६॥ नगरीके भीतर हरिके श्रीसम्पन्न एवं सर्व्वलोकपालपूजित अन्तःपुरकी रचनामें विश्वकर्म्माने अपना विशेष कौशल (कारीगरी) झलकाया है। वह विशाल अन्तःपुर कृष्णकी स्त्रियोंके सोलह हजार महलोंसे सुशोभित है। उसी अन्तःपुरमें पहुँच कर देवऋषि नारदने एक बड़ेभारी महलमें प्रवेश किया। नारदने देखा कि वैडूर्य्यके फलकों पर विद्रुमके बहुतसे बड़े२ खंभे उस महलमें स्थापित हैं। दीवारें सब इन्द्रनीलमणिकी बनीहुई चमक रही हैं। जहाँ तहाँ विश्वकर्म्माके बनायेहुए मोतियोंकी झालरोंसे युक्त उत्तम चँदोवे तनेहुए हैं। उत्तम मणियोंकी मालाओंसे विभूषित हाथीदाँतके पलँग पड़े हुए हैं, जिनमें उत्तम रत्न जड़े हुए शोभाको बढ़ा रहे हैं। सुन्दर वस्त्र धारण किये, कंठमें सुवर्णके आभूषण पहने दासियाँ और सुंदरवस्त्र पहने, मणिकुण्डलधारी, जामा व पगड़ीसे सुशोभित दास लोग अपने२ स्थान पर खड़े हुए उस भवनको सुशोभित कर रहे हैं। बहुत से रत्नदीपक अपने स्वच्छ प्रकाशसे भवनके अंधकारको दूर कर रहे हैं। महाराज! वहाँ सुलग रहे अगुरुके धुँएको देख मेघके भ्रमसे विचित्र बलभियोंमें बैठे हुए मोर प्रसन्नता प्रकट करनेवाली आनन्द ध्वनिके साथ नाचने लगते हैं। नारदने उस भवनमें यदुपति कृष्णको देखा कि बैठेहुए हैं और समान-गुण-रूप-अवस्था तथा सुन्दर वेषवाली दासियोंसे घिरी हुई श्रीमती रुक्मिणी देवी सुवर्णदण्डयुक्त चामर हाथमें लिये उनकी सेवा कर रही हैं। सम्पूर्ण धार्म्मिकोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण नारदजीको देखते ही सहसा रुक्मिणीके पलँगसे उठ बैठे और हाथ जोड़ किरीटमण्डित मस्तक रख कर ऋषिके चरणोंमें प्रणाम किया एवं उनको अपने आसन पर बिठलाया। राजन्! भगवान् कृष्णके चरणोंका धोवन (गंगा) सब

तीर्थोंसे बढ़कर अथवा सर्वतीर्थमय है एवं वह कृष्णचन्द्र स्वयं सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र श्रेष्ठ गुरु हैं, तथापि उन्होने नारदजीके चरणोंको भक्तिसे धोकर उस जलको अपने सब अंगों पर एवं शिर पर डाल लिया। वह भगवान् सत्य-सत्यही साधुजनोंके स्वामी हैं। उनका 'ब्रह्मण्यदेव' यह नाम गुणकृत है, वास्तवमें वही इस नामके योग्य हैं। पुरातन ऋषि नरके सखा नारायण श्रीकृष्णचन्द्रने देवर्षि-श्रेष्ठ नारदकी पूजा करके विधिपूर्वक कहेगये, परिमित, अमृततुल्य मधुर "भले आप आये, बड़े भाग्यसे आपके दर्शन हुए" इत्यादि वचनोंसे प्रिय सम्भाषण किया। तदनन्तर फिर कृष्णचन्द्रने कहा कि "प्रभो! आपका क्या कार्य्य करना होगा, मुझको आज्ञा दीजिये" ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ १६ ॥ नारदने कहा–"हे विभो! हे सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी! सब लोगोंसे मित्रभाव एवं दुष्टोंका दमन करना, ये दोनो बातें आपमें हैं, सो कुछ आश्चर्य्य नहीं है। हे महायशस्वी! हम भलीभाँति जानते हैं कि जगत्की स्थिति और रक्षाके ही लिये आपका यह स्वेच्छावतार होता है ॥ १७ ॥ भगवन्! अपने जनोंके लिये मुक्तिमय आपके चरणकमलोंको अगाध बोधवाले ब्रह्मादिक भी हृदयमें धर कर ध्याते हैं, क्योंकि ये चरण संसाररूप कूपमें पड़े हुए लोगोंके लिये कूपसे निकालनेवाला एकमात्र अवलम्ब हैं। आज इनके साक्षात् दर्शन पाकर मैं कृतकृत्य होगया; मैं सदैव इन्हीं चरणोंका ध्यान करता हुआ विचरता रहता हूँ। भगवन्! ऐसी कृपा करो जिसमें आपका ध्यान बना रहे" ॥१८॥ हे अंग! योगेश्वरोंके ईश्वर कृष्णचन्द्रकी योगमाया देखनेके लिये नारदजी उस महलसे निकल कर दूसरे महलमें गये ॥१९॥ वहाँ भी जाकर नारदने देखा कि श्रीकृष्ण भगवान् अपनी प्रिया और उद्धवके साथ चौंसर खेल रहे हैं। भगवान्ने उठकर मुनिको बैठनेके लिये आसन दिया, पूजन किया और जैसे नारदसे भेंट ही नहीं हुई इस प्रकार कहा कि "मुनिवर! आप कब आये? आप तो स्वयं परिपूर्ण हैं, हमारे समान अपूर्ण व्यक्ति आपका कौन सा अभीष्ट पूरा कर सक्ते हैं? हे ब्रह्मन्! तथापि आज्ञा करिये, हम उसे पालन करके अपने जन्मको सफल करें"। नारदजी मारे विसयके कुछ भी न कहसके और चुपचाप उठकर तीसरे महलमें गये ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ २२ ॥ वहाँ भी नारदने देखा कि भगवान् अपने पुत्रों और पौत्रोंको खेला रहे हैं। और महलमें जाकर नारदने देखा कि भगवान् स्नान करनेके लिये जा रहे हैं ॥ २३ ॥ इसी प्रकार नारदने अनेक महलोंमें जाकर देखा और सर्वत्र भगवान्को भिन्न २ अवस्थामें पाया। कहीं आहवनीय आदि अग्नियोंमें हवन एवं पञ्च-महायज्ञ करते, कहीं ब्राह्मणोंको भोजन कराकर बचे हुए अन्नसे भोजन करते, कहीं सन्ध्योपासनमें मौनभावसे गायत्रीका जप करते, कहीं ढाल तर्वार हाथमें लिये खड्ग-विद्याका अभ्यास करते, कहीं घोड़ेकी पीठ पर, कहीं

हाथीकी पीठ पर विचरते हुए देखा । कहीं देखा कि भगवान् सो रहे हैं और बन्दीजन स्तुति करके जगा रहे हैं । कहीं देखा कि उद्धव आदि मंत्रियोंसे बैठे हुए सलाह कर रहे हैं । कहीं देखा कि सुन्दर स्त्रियोंके बीचमें घिरे हुए उनके साथ जलविहार कर रहे हैं । कहीं देखा कि सुन्दर और भली भाँति अलंकृत असंख्य गौवें ब्राह्मणोंको दे रहे हैं । किसी महलमें इतिहास, पुराण आदि मंगल कथाएँ सुनते हुए पाया । कहीं देखा कि प्रियाके साथ हँसी दिल्लगी करते हुए उनको प्रसन्न कर रहे हैं । कहीं २ क्रमशः धर्म्म, अर्थ, कामका सेवन और साधन करते देखा । कहीं देखा कि प्रकृतिसे परे पुरातनपुरुष कृष्णचन्द्र अपने ध्यानमें निविष्टचित्त हैं । कहीं देखा कि अभिलाषपूरण, भोगप्रदान और पूजा करके बड़े बूढ़े गुरुजनोंकी सेवा कर रहे हैं । कहीं देखा कि कुछ राजोंके साथ युद्ध करनेकी और कुछ राजोंके साथ सन्धि करनेकी सलाह कर रहे हैं । कहीं देखा कि बलरामके साथ बैठे हुए साधुजनोंकी भलाई और मंगल सोच रहे हैं । कहीं देखा कि शुभ समयमें अपने पुत्र और पुत्रियोंका, यथायोग्य गुण, रूप, विभवमें समान पात्री और पात्रोंसे विवाह कर रहे हैं । कहीं देखा कि कन्या और दामादोंको बिदा कर रहे हैं और कहीं देखा कि उनको बुला रहे हैं और ऐसे समयमें महा उत्सव हो रहा है एवं योगेश्वर कृष्णके पुत्र पौत्रादिके महा उत्सवोंको देख कर सब दर्शक लोग विस्मित हो रहे हैं । कहीं समृद्धिसम्पन्न अनेक यज्ञोंसे अपने अंश देवतोंका पूजन कर रहे हैं । कहीं कूप, आराम और देवालय आदिकी प्रतिष्ठा करके इष्टा-पूर्त्त आदि कर्मोंका अनुष्ठान कर रहे हैं । कहीं श्रेष्ठ यादवोंके साथ सिन्धुदेशके घोड़े पर चढ़कर शिकार खेलने जा रहे हैं, कहीं यज्ञके योग्य पशुओंको मारकर लिये आ रहे हैं । कहीं अव्यक्तस्वरूप योगेश्वर कृष्णचन्द्र विशेष २ भावोंका संभोग करनेके लिये अन्तःपुरके महलोंमें स्त्रियोंके बीच विराजमान हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इस प्रकार नारदजी मानुषी लीला कर रहे केशवकी योगमायाको देख मंद मुसकानके साथ उनसे कहनेलगे कि "हे प्रभो! आपकी योगमायाके विभवको बड़े २ योगेश्वर भी नहीं देख पाते, किन्तु मैं आपके चरणोंका सेवक हूँ—ऐसी मुझको प्रतीति होती है, अतएव मैं जानसका हूँ । हे देव! जो सब लोक आपके यशसे उज्ज्वल हो रहे हैं वहाँ मैं जाना चाहता हूँ, मुझको आज्ञा दीजिये । मैं आपकी भुवनपावनी लीलाओंको गाता हुआ विचरण करता रहता हूँ" । **श्रीभगवान्ने कहा** । "ब्रह्मन्! मैं धर्मका कहनेवाला करनेवाला और अनुमोदन करनेवाला हूँ । सब लोगोंको धर्मकी शिक्षा देनेके लिये ही इस रूपसे मैं अवस्थित हूँ, मेरी योगमाया देखकर तुमको मोहित न होना चाहिये" । **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । राजन्! नारदने एकमात्र कृष्णचन्द्रको ही सब भव-

नोंमें गृहस्थोंको पवित्र करनेवाले धर्मोंका आचरण करते देखा। अनन्तवीर्यशाली कृष्णकी योगमायाके महाविभवको वारम्वार देख कर नारदको बड़ा विस्मय और कौतुक हुआ। श्रीकृष्णने श्रद्धायुक्त चित्तसे इस प्रकार धर्म अर्थ कामके द्वारा भली भाँति ऋषिका पूजन किया और वह उन्हीं कृष्णचन्द्रका स्मरण करते हुए वहाँसे चलदिये। राजन्! सम्पूर्ण जगत्के मंगलके लिये मायाशक्ति-धारी उन्हीं नारायणने मनुष्यपदवीका अनुकरण करते हुए सोलह हजार श्रेष्ठ कामिनियोंके भवनोंमें उनके लज्जापूर्ण सौहार्द, कटाक्ष और हासविलासका संभोग करते हुए इसी प्रकार विहार किया ॥ ३७-४४ ॥

यानीह विश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुः कर्माण्यनन्यविषयाणि हरिश्चकार।
यस्त्वङ्ग गायति शृणोत्यनुमोदते वा भक्तिर्भवेद्भगवति ह्यपवर्गमार्गे ४५

विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति व प्रलयके कारणरूप हरिने जो इस पृथ्वीमें असाधारण व अलौकिक कर्म किये हैं उन कर्मोंको जो लोग गाते, सुनते अथवा उनका अनुमोदन करते हैं उनको मुक्तिदायक भगवान्की भक्ति मिलती है ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सप्ततितम अध्याय।

श्रीकृष्णके पास जरासंधके सताये राजोंके भेजे दूतका आना।

श्रीशुक उवाच—**अथोषस्युपवृत्तायां कुकुटान्कूजतोऽशपन् ॥**
गृहीतकण्ठ्यः पतिभिर्माधव्यो विरहातुराः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! एक समय सबेरेके समय कुक्कुट (मुर्गे) शब्द कर रहे थे। श्रीहरि इतने समय तक स्त्रियोंके गलेमें हाथ डाले हुए सो रहे थे। इस समय कृष्णचंद्रकी स्त्रियाँ प्रिय पतिके वियोगके भयसे कातर होकर विरहके कारण उन कुक्कुटोंको भला-बुरा कहने लगीं। उस प्रभातसमयमें भ्रमरसमूह कल्पवृक्षके सुगंधको ले जानेवाले वायुके साथ गान करने लगे एवं सब पक्षीगण जाग २ कर वंदीगण की भाँति श्रीकृष्णको जगानेके लिये मानो ऊँचे स्वरसे मधुर बोलियाँ बोलने लगे। उन पक्षियोंका शब्द अत्यन्त सुन्दर, मधुर होने पर भी, प्रियकी दोनो बाहुओंके भीतर पड़ीहुई रुक्मिणी आदि रानियोंको आलिंगन-वियोगकी घबराहटसे मुहूर्त्त भरके लिये भी असह्य था। ब्राह्म मुहूर्त्तमें उठ कर हाथ पैर धोकर आचमन करके माधवने सब इन्द्रियोंको प्रसन्न और मनको स्वस्थ किया। तदनन्तर उपाधिशून्य, आत्मसंस्थित, अव्यय, अखंड, अज्ञान-निर्मुक्त

होनेके कारण साक्षात् ज्योतिःस्वरूप एवं जगत्की उत्पत्ति व नाशका कारण जो अपनी शक्तियाँ हैं उनके द्वारा जिनकी सत्ता लखी जाती है वह श्रीकृष्णचन्द्र ब्रह्मनामक सदानन्दमय अपने ही रूपके ध्यानमें मग्न हुए। साधुश्रेष्ठ श्रीकृष्णने निर्मल जलमें स्नान करके वस्त्र और उत्तरीय धारण किया एवं यथाविधि सन्ध्योपासनादि नित्य-कर्म्म और अग्निमें हवन करके मौनभावसे अवस्थित हो गायत्रीका जप करने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ तदनन्तर सूर्य्योदय होने पर उठ कर हरिने सूर्य्य-देवको प्रणाम किया। फिर उन्होने अपने ही अंश जो देवता, ऋषि, पितर, बड़े-बूढ़े और ब्राह्मण हैं उनकी पूजा की। तदनन्तर भली भाँति अलंकृत ब्राह्मणोंको पट्टवस्त्र, मृगचर्म्म और तिलसहित तेरह अधिक चौरासी हजार गौवें दीं; जिनके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े हुए थे, मोतीकी मालाएँ गलेमें पड़ी थीं, सुन्दर झूलें पीठ पर पड़ी थीं। ऐसी दुधार, एक बारकी ब्याई, सुशीला, सवत्सा गौवें देकर माधवने अपनी विभूति जो गऊ, ब्राह्मण, देवता, वृद्ध, गुरु और सम्पूर्ण प्राणी हैं उनको नमस्कार किया और कपिला गऊ आदि मांगलिक पदार्थोंका स्पर्श किया। फिर मनुष्यलोकके लिये आभूषणस्वरूप भगवान्ने अपनेको वस्त्र, आभूषण, दिव्य माला और चंदन आदिसे विभूषित किया एवं घृत, दर्पण, वृष, द्विज और देवतोंके दर्शनके उपरान्त सब वर्णके पुरवासी और अन्तःपुरचारी लोगोंको उनकी चितचाही वस्तुएँ दीं। इस प्रकार अपनी प्रजाको सन्तुष्ट करके स्वयं भी आनन्दित हुए। तदनन्तर पहले चन्दन, पान आदि देकर ब्राह्मणोंका सत्कार किया और फिर मित्र, आत्मीय और रानियोंसे मिल कर उनको सन्तुष्ट किया ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ इसी अवसर पर सारथी, सुग्रीव आदि श्रेष्ठ अश्वोंसे युक्त रथ लेकर आया और प्रणाम करके सामने खड़ा हो गया। सूर्य्यनारायण जैसे उदयाचल पर आरूढ़ होते हैं वैसे ही भगवान् कृष्णचन्द्र सारथीका हाथ पकड़ कर सात्यकी और उद्धवके साथ रथ पर सवार हुए। अन्तःपुरकी कामिनियाँ उस समयकी छविको लज्जापूर्ण प्रेम दृष्टिसे देखने लगीं, भगवान् उनके लिये क्षण भर वहाँ ठहर गये। बड़े ही कष्टसे वे स्त्रियाँ हटीं और भगवान् भी अपनी मधुर हँसीसे उनके मनको हरते हुए अन्तःपुरसे बाहर निकले। इस प्रकार सब भवनोंसे भिन्न २ रूपधारी भगवान् बाहर निकले और फिर एकरूप हो कर सब यादवोंसे सुशोभित सुधर्मा सभामें जाकर विराजमान हुए। राजन्! जिन लोगोंने काम, क्रोध आदि बड़े वली छः शत्रुओंको जीत लिया है वे ही सुधर्मा सभामें प्रवेश कर सक्ते हैं। यदुश्रेष्ठ विभु कृष्णचन्द्र उसी पवित्र सभामें प्रवेश करके तारागणसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान अपने तेजसे उस स्थानको प्रकाशमय करते हुए पुरुषसिंह यादवोंके बीचमें शोभायमान हुए। राजन्! वहाँ हँसी करनेवाले विदूषकगण अनेक रसीली बातें कह कर और नाट्याचार्य्य व नर्त-

कियाँ अपने २ कलाकौशलसे प्रसन्न करते हुए भगवान्‌की उपासना करने लगे। सूत, मागध और बंदीगण प्रशंसा करते हुए मृदंग, वीणा, मुरज, वेणु, करताल और शंख आदि बाजे बजा कर नृत्य-गानके द्वारा कृष्णचंद्रको सन्तुष्ट करने लगे। वहाँ बैठेहुए कुछएक सभाचतुर, वाक्‌पटु ब्राह्मणगण वेदमंत्रोंकी व्याख्या करने एवं पूर्वकालके पवित्र यशवाले राजोंकी कथाएँ कहने लगे ॥ १४ ॥ ॥१५॥१६॥१७॥१८॥१९॥२०॥२१॥ राजन्! इसी समयमें उस स्थान पर एक ब्राह्मण, जो पहले कभी नहीं आया था, वहाँ आया। भगवान्‌के पास उसके आनेकी सूचना दी गई, तदनन्तर प्रभुकी आज्ञाके अनुसार द्वारपाल उसको सभामें ले आया। ब्राह्मणने आकर परमेश्वर भगवान्‌को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और फिर जरासंधके सताये राजोंका सँदेसा इस प्रकार कहने लगा कि– “हे नाथ! जरासंधने दिग्विजय किया था, उस समय जो राजा लोग उसके आगे 'नत' नहीं हुए उनको पकड़ कर उस दुर्वृत्त मगधराजने अपने गिरिव्रज नामक दुर्भेद्य दुर्गमें बलपूर्वक कैद कर रक्खा है। वे राजे बीस हज़ार हैं। उन राजोंने कहा है कि “हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे प्रपन्नभयभंजन! हम लोग भेद-भाववाले हैं, भवभयसे भीत होकर आपकी शरणमें आये हैं। लोग, सकाम और निषिद्ध कर्मोंमें निरत होकर आपके बताये हुए आपके पूजनरूप कुशलकारी कर्म करनेमें असावधान रहते हैं, उनको जो बलवान् पुरातनपुरुष तत्क्षण अचानक आकर धर दबोचता है और उनकी जीवनाशाको मिटा देता है वही काल-स्वरूप आप हैं; आपको हम प्रणाम करते हैं। आप जगदीश्वर हैं, साधुओंकी रक्षा और दुष्टोंका दमन करनेहीके लिये आपने पृथ्वीतल पर अवतार लिया है। हे ईश्वर, अन्य कोई आपकी आज्ञाका उल्लंघन करता है अथवा लोग अपने २ कर्मोंका फल भोगते हैं, सो हम नहीं जानते (अर्थात् जरासंध आपकी इच्छा-के विरुद्ध हमको सता रहा है अथवा हमलोग अपने कर्मोंका फल भोग रहे हैं सो हमको नहीं विदित है)। राजसुख विषयसाध्य और परतन्त्र होनेके कारण स्वप्नके सदृश है। हमलोग निरन्तर भयसमन्वित मृतकतुल्य शरीरसे भारस्वरूप उसका वहन करते हैं। निष्काम लोग आपसे जो स्वतःसिद्ध सुख पाते हैं उस सुखको आपकी माया में भूलकर छोड़ देनेके कारण ही हमलोग सम्पूर्ण कष्टोंसे पीड़ित हो रहे हैं। आपके चरणकमल प्रणत जनोंके शोक-सन्तापको हरनेवाले हैं। इस मगधराजके दस हजार हाथियोंके इतना बल है। सिंहसदृश पराक्रमी यह निठुर राजा हमको मेषपालकके समान अपने दुर्भेद्य दुर्गमें बंद किये हुए हैं। भगवन्! आपसे हमारी यही प्रार्थना है कि आप इस जरासंधरूप कर्म्मबन्धनसे हमको छुड़ाइये। हे उद्यत सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले! जरासंधने आपसे अठारह बार संग्राम किया है। सत्रह बार वह आपसे हारा, एवं केवल एकबार

अनन्तवीर्यशाली होकर भी मनुष्यचरित्रका अनुकरण करनेवाले जो आप हैं उनको अपनी समझमें जीत कर बड़े ही घमंडके साथ आपके जन जो हमलोग हैं उनको पीड़ित कर रहा है। हे अजित ! इस विषयमें आप जो कर्त्तव्य समझें सो करें'। इस प्रकार मगधराजके वंदी राजोंने आपके दर्शनकी अभिलाषा करके आपके चरणकमलोंका आश्रय लिया है। आप दीनजनोंका मङ्गल करिये।'' राजदूतके ये वचन पूर्ण भी नहीं हुए थे, उसी समय परमतेजस्वी, पिंगलवर्ण जटाजूटधारी देवर्षि नारदजी सूर्य्यके समान आकाशमार्गसे सभामें आकर उपस्थित हुए। सब लोकेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मुनिको देखते ही सभ्यगण और अनुचरगण सहित उठकर आनन्दपूर्वक उनको प्रणाम किया एवं पूजाके उपरान्त जब नारदजी आसन पर सुखपूर्वक बैठे तब विधिपूर्वक श्रद्धापूर्ण व्यवहारसे उनको सन्तुष्ट करके भगवान्ने इस प्रकार मधुर वचन कहे। **भगवान्ने** कहा मुनिवर! इस समय तीनो लोक निर्भय हैं न? किसीको किसीसे किसी प्रकारका भय तो नहीं है? आप सब लोकोंमें विचरते रहते हैं। हमको आपका दर्शन हुआ सो हम अपने लिये परम लाभ समझते हैं। ईश्वर के बनाये हुए इन सब लोकोंमें कुछ भी ऐसा नहीं है जो आपका जाना हुआ न हो। अतएव मैं आपसे यह जानना चाहताहूँ कि इस समय पाण्डव क्या कर रहे हैं?। **नारदजीने** कहा कि विभो! हे भूमन्! आप साक्षात् ब्रह्म हैं तथापि जिसका प्रकाश प्रच्छन्न है उस अग्निके समान अपनी शक्तियोंके द्वारा अन्तर्यामीरूपसे सब प्राणियोंमें वर्तमान रहकर अपनी दुरन्त मायासे सबको मोह-में डाले हुए हैं, जिससे वे अपनेहीमें स्थित आपको नहीं देख पाते। मैंने आपकी मायाको बहुत बार देखा है, इसलिये आपके ऐसे प्रश्नसे मुझको कुछ विस्मय नहीं है। यह जगत् वास्तवमें अविद्यमान अर्थात् असत् है, तथापि, आपकी मायाके द्वारा विद्यमान, अर्थात् सत् प्रतीत होता है। आप अपनी मायाके द्वारा इसकी सृष्टि और संहार करते हैं। अतएव आपकी चेष्टाको कौन जान सक्ता है? मैं आपको केवल प्रणाम करता हूँ; क्योंकि आपका स्वरूप अचिन्त्य है। अनर्थप्रवर्तक शरीर-के बन्धनसे संसारमें प्रवृत्त, और इसी कारण मुक्तिके विषयमें अज्ञ, जीवके लिये आपने अपने अनेक लीलावतारोंके द्वारा ज्ञान उपजानेवाला अपना सुयश संसारमें फैलाया है। मैं आपकी शरणमें आया हूँ! भगवन्! आप ब्रह्म हैं, किन्तु इस-समय मनुष्यचरित्रका अनुकरण कर रहे हैं, अतएव मैं आपकी बुआके लड़के और भक्त पाण्डवोंके राजकाजका समाचार सुनाता हूँ। पाण्डुके पुत्र राजा युधि-ष्ठिर आपको सन्तुष्ट करनेके लिये श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ करेंगे। आप इस सुकार्य्यका अनुमोदन करिये। उस श्रेष्ठ यज्ञमें बड़े २ देवता और यशस्वी राजालोग भी आपके दर्शनकी कामना करके आवेंगे। भगवन्! जब महानीच चांडाल भी,

अखंड ब्रह्मरूप जो आप हैं उनके नाम और कर्म्मोंको सुनकर, कहकर और स्मरण कर पवित्र होजाते हैं, तब जो लोग साक्षात् आपका दर्शन व स्पर्श करके धन्य हो चुके हैं उनके लिये क्या कहना है । आपका यश दशो दिशाओंमें, स्वर्गमें, मनुष्यलोकमें, पातालमें व्याप्त हो रहा है एवं आपके चरणोंका धोवन गंगा, भोगवती और मन्दाकिनी नामसे स्वर्गलोक, मनुष्यलोक और पाताल लोकको पवित्र कर रही हैं" । श्री शुकदेवजी कहते हैं । महाराज ! नारद के वाक्यमें जरासन्धविजयकी बात गुप्तरूपसे रहने पर भी सर्वसाधारण सभासद नहीं समझसके, अतएव उसे स्पष्ट करनेके लिये इस भावसे भगवान् वाक्य-कौशलपूर्वक अपने भृत्य उद्धवसे बोले, मानो वह यह निश्चय नहीं करसके कि क्या करना चाहिये । भगवान्ने कहा "हे उद्धव ! तुम हमारे प्रिय बन्धु और श्रेष्ठ मन्त्री हो, क्योंकि तुम बुद्धिमान् चतुर और प्रत्येक कर्त्तव्य के तत्त्वको भली भाँति जानते हो । अतएव हम तुमको अपने दिव्य नेत्र समझते हैं । तुम्हारे वाक्य पर मैं श्रद्धा करताहूँ, अतएव अब प्रथम क्या करना चाहिये सो कहो" ॥२२–४६॥

इत्युपामन्त्रितो भर्त्रा सर्वज्ञेनापि मुग्धवत् ॥
निदेशं शिरसाधाय उद्धवः प्रत्यभापत ॥ ४७ ॥

सर्वज्ञ होकर भी अजानकी भाँति स्वामीने कर्तव्य पूछा; उद्धवने भी स्वामी-की आज्ञा शिरोधार्य्य समझकर यों उत्तर दिया ॥४७॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितम अध्याय ।

श्रीकृष्णका हस्तिनापुर जाना ।

श्रीशुक उवाच–इत्युदीरितमाकर्ण्य देवर्षेरुद्धवोऽब्रवीत् ॥
सभ्यानां मतमाज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे राजन् ! कृष्णके पूर्वोक्त वाक्य सुन कर एवं देवर्षि नारद, सभ्यगण और श्रीकृष्णके मनके भावको समझ कर उद्धवने कहा कि देव ! आपकी बुआके लड़के राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं, इस लिये आपको वहाँ जाना चाहिये और शरणागत राजोंकी रक्षा करना भी कर्त्तव्य है । मेरी समझमें देवर्षिकी इच्छानुसार आप पहले हस्तिनापुर चलिये । क्योंकि हे विभो ! राजा युधिष्ठिर सब दिशाओंको जीत लेंगे तभी राजसूय यज्ञ होगा । उसी दिग्विजयमें जरासंध भी जीता जायगा, इससे दोनो काम बन जायँगे । ऐसा करनेसे हमारा

महत् उद्देश्य भी सिद्ध हो जायगा और राजालोग भी बन्धनसे छूट कर आपके सुयशको फैलावेंगे। राजसूय यज्ञ भी पूर्ण होगा और शरणागतोंकी रक्षा भी हो जायगी। स्वामी! जरासंधके दस हजार हाथियोंके इतना बल है। समान बली भीमसेनके सिवा और २ बलवान् योद्धा भी उसका सामना नहीं कर सक्ते। वह द्वन्द्वयुद्धमें हराया जा सक्ता है, अन्यथा सैकड़ों अक्षौहिणी सेनासे भी कभी नहीं जीता जा सक्ता। वह कभी ब्राह्मणको विमुख नहीं फेरता। भीमसेन ब्राह्मणके वेषसे जा कर उससे द्वन्द्वयुद्ध करनेकी प्रार्थना करेंगे और आपके आगे द्वन्द्वयुद्धमें उसको मारेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। आप अरूप कालस्वरूप हैं, जैसे वास्तवमें आप ही जगत्की सृष्टि और संहार करते हैं और ब्रह्मा व शिव सृष्टि और प्रलयके निमित्तमात्र हैं वैसेही जरासन्धके वधमें, सबकाम करनेवाले आप ही हैं, भीमसेन तो केवल निमित्तमात्र हैं। जैसे गोपियोंको चन्द्रचूड़ यक्षसे, गजराजको ग्राहसे, जानकीको रावणसे और वसुदेवको कंससे आपने छुड़ाया है और उन्होने निजमोक्षरूप आपकी लीलाको गाया है, एवं जैसे मुनिगण और हमलोग आपके चरणोंकी शरणमें रह कर सर्वदा मोक्षगान करते हैं वैसे ही जब वे सब जरासंधके बंदी राजा लोग कारागारसे छुटकारा पावेंगे तब उनकी रानियाँ अपने २ पतियोंके छुटकारेकी लीलाको अपने २ घरमें आनन्दसे गावेंगी। कृष्णचन्द्र! जरासंधके वधसे अनेक प्रयोजन सिद्ध होंगे; राजोंके पुण्यके फलसे इस यज्ञका आप भी अनुमोदन करें ॥१॥२॥ ॥३॥४॥५॥६॥७॥८॥९॥१०॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! देवर्षि नारद, श्रीकृष्ण एवं सब यादवोंने उद्धवके इस प्रकार युक्तियुक्त और सब प्रकार मंगलकारी वाक्योंका आदर किया। तब सब प्रकार समर्थ भगवान् देवकीनन्दनने बड़े-बूढ़े गुरुजनोंको हस्तिनापुर चलनेकी सूचना देकर दारुक, जैत्र आदि अनुचरोंको चलनेकी आज्ञा दी। फिर शत्रुनाशन बलदेवकी आज्ञा लेकर भगवान्‌ने पहले रानियोंको अपने २ पुत्र और अन्यान्य सामग्री सहित आगे करके आप सारथीके द्वारा लायेगये गरुड़ध्वज रथ पर चढ़ कर हस्तिनापुरको प्रस्थान किया। रथी, हाथी, सवार, पैदल और घोड़ेसवार लोगोंकी भयानक चतुरंगिणी सेना भी भगवान्‌के साथ चली। मृदंग, भेरी, ढोल, शंख, और गोमुख आदि बाजोंका शब्द आकाशमें गूँजने लगा। श्रीकृष्ण भगवान् द्वारकापुरीसे बाहर निकले। पतिव्रता रानियाँ उत्तम वस्त्र, आभूषण, चन्दन और माला आदिसे सुशोभित होकर अपने २ पुत्रोंको लिये नरयान, अश्वयान और सुवर्णकी पालकियोंमें चढ़कर अपने पति गोविन्दके पीछे २ चलीं। चारो ओरसे ढाल-तर्वार लिये सिपाही लोग उनकी रक्षाके लिये नियुक्त थे। भली भाँति अलंकृत अनुचरोंकी स्त्रियाँ और वारवनिताएँ खस और फूस व सिर्की आदिके कृत्रिम भवन तथा कम्बल और वस्त्रादि गृह-सामग्रीको बैल गाड़ियों पर रखकर चलीं। इस प्रकार कृष्णचन्द्रके साथ मनुष्य, ऊँट, बैल, भैंसे, गर्दभ, खच्चर, छकड़े और

हथनी आदिसे व्याप्त सेना दूर २ तक चारो ओरकी पृथ्वीको ढँकती हुई चली। तुमुल कोलाहलसे व्याप्त वह सेना, बड़े २ विशाल ध्वजपट, छत्र, चामर, उत्तम अस्त्र–शस्त्र, किरीट मुकुट, अन्यान्य आभूषण और सुवर्णमंडित रथों पर, दिनके समय चमकीली सूर्य्यकी किरणें पड़नेसे, तिमिंगिल और तरंगोंसे क्षोभको प्राप्त महासागरके समान सुशोभित हुई। तदनन्तर देवर्षि नारद श्रीकृष्णके द्वारा पूजित एवं श्रीकृष्णके दर्शनसे प्रसन्न हो, उनके उक्त गमनोद्योगको देख, प्रणाम करके हृदयमें उन्ही इष्टदेवका ध्यान करते हुए वहाँसे विमानमार्ग अर्थात् आकाशमें चले गये॥ ११॥ १२॥ १३॥ १४॥ १५॥ १६॥ १७॥ १८॥ तदनन्तर जरासंधपीड़ित राजोंके भेजे दूतको भगवान्‌ने मधुर वचनोंसे सन्तुष्ट करते हुए कहा कि "दूत! तुम राजोंसे कहना कि डरो नहीं, तुम्हारा मङ्गल हो, मैं शीघ्र ही दुष्ट जरासंधको मारूँगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है"। यह सुनकर दूत वहाँसे राजों के पास गया और जो कुछ कृष्णचन्द्रने कहाथा सो सब उसने उनसे कहा। राजा लोग भी अपने छूटनेके लिये निपट उत्सुक होकर कृष्णचन्द्रके आनेकी प्रतीक्षा करने लगे। हरि भगवान् भी आनर्त्त, सौवीर, मरुदेश और कुरुक्षेत्रको नाँघकर गिरि, नगर, ग्राम, व्रज और आकर आदिकी शोभा निहारते हुए दृषद्वती और सरस्वती नदियोंके उस पार उतरे, और फिर पाञ्चाल व मत्स्य देश होकर हस्तिनापुरमें पहुँच गये। मनुष्योंके लिये जिनका दर्शन दुर्लभ है उन्ही श्रीकृष्णके आगमनका सुसमाचार पाकर युधिष्ठिरजी परम प्रसन्न हुए और उसी समय उपाध्याय और बन्धुवर्ग सहित कृष्णचन्द्रको आगेसे लेनेके लिये पुरीके बाहर निकले। जैसे इन्द्रियाँ प्राणसे मिलें उस प्रकार पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरजी गीत वाद्य आदि मंगल शब्द एवं वारम्वार होरही वेदध्वनि सहित आदरपूर्वक कृष्ण भगवान्‌के निकट आये। श्रीकृष्णको देखतेही युधिष्ठिर के हृदयमें स्नेहसागर उमड़ आया। बहुत दिनोंके बाद अपने परम प्यारे कृष्णचन्द्रको देखकर और वारम्वार गलेसे लगाकर युधिष्ठिरजी परम प्रसन्न हुए। लक्ष्मी जिसमें स्थिरभावसे रहती है उस सर्वमङ्गलमय हरिके पवित्र शरीरके आलिंगनसे राजा युधिष्ठिरके सब अशुभ नष्ट होगये एवं दोनो नेत्र आनन्दके आँसुओंसे परिपूर्ण हो आये और परमानन्दके कारण सब शरीरके रोम खड़े होगये। राजा युधिष्ठिर थोड़ी देरके लिये सब लोकव्यवहार भूलकर परमानन्दमें मग्न होगये। भीमसेनने भी मामाके पुत्र कृष्णको हँसकर हृदयसे लगालिया और नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहाये एवं नकुल, सहदेव तथा अर्जुन भी सुहृत्तम अच्युतसे मिलकर परम प्रसन्न हुए और आनन्दके आँसुओंसे कृष्णचन्द्रके अंगोंको भिगोने लगे॥ १९॥ २०॥ २१॥ २२॥ २३॥ २४॥ ॥ २५॥ २६॥ २७॥ अर्जुन, कृष्णचन्द्रसे मिले और नकुल व सहदेवने मिलकर

कृष्णचन्द्रको प्रणाम किया एवं कृष्णचन्द्रने भी मिलकर युधिष्ठिर व भीमको प्रणाम किया। फिर कृष्णचन्द्रने ब्राह्मण और बड़े-बूढ़े लोगोंको यथायोग्य प्रणाम करके मान्य कुरु, केकय और संजय देशोंके नरपतियोंका सम्मान किया। ब्राह्मण गण, वेदपाठके द्वारा एवं सूत, मागध, बन्दीजन और उपासकगण मृदंग, वीणा, शंख, पटह, पणव और वेणु आदि बाजे बजाकर नृत्य–गीतादिकेद्वारा कमललोचन कृष्णको सन्तुष्ट करने लगे। जिनके नाम और गुणोंके कीर्त्तनसे शरीर और मन पवित्र होता है उनके शिरोमणि भगवान्ने बन्धुओंके बीचमें सब दर्शकोंके मुखसे अपनी सुख्याति सुनते हुए उस भलीभाँति अलंकृत इन्द्रप्रस्थमें प्रवेश किया। छिड़काव करनेकी कोई आवश्यकता नहीं हुई, पुरीके सब मार्गोंमें गज-राजोंके मदजलसे आप-ही-आप छिड़काव सा होगया। विचित्र ध्वजा, कनकतोरण, पूर्ण कलश आदि मांगलिक चिन्होंसे सुशोभित हस्तिनापुरकी कृष्णचन्द्रके आनेसे और भी शोभा बढ़गई। स्थान२ पर नवीन वस्त्र, अलङ्कार और फूलमाला पहने तथा चन्दन लगाये विशुद्धचित्त स्त्री और पुरुषोंके झुंड कृष्ण–दर्शनके लिये उत्सुक देख पड़ने लगे। इस प्रकार कृष्णचन्द्र राजमार्गसे होकर राजभवनके निकट पहुँच गये। कृष्णचन्द्रने कुरुराजके निवासभवनको देखा। वहाँ प्रत्येक गृहमें श्रेणीबद्ध रत्नदीपक जल रहे हैं और यथोचित स्थानों पर पूजाकी सामग्रियाँ सजाई हुई रक्खी हैं। भवनके झरोखों और जालियोंसे सुगन्धित धूपका धुआँ निकलकर आनेवालोंके चित्तको प्रसन्न कर रहा है एवं भवनके ऊपरी भागमें पताकाएँ फहरा रही हैं। ऊपरी खंडमें सुवर्ण–कलशमण्डित, रत्नजटित अनेक रजतरचित गृहोंसे वह राजभवन एक बड़े विमानके समान शोभायमान होरहा है। दर्शनीय रूपवाले श्रीकृष्णके आनेका समाचार सुनते ही सब पुरकी सुन्दरियाँ, उत्सुकता-के कारण शिथिल होगये केशबन्धन और नीवीको फिरसे बाँधती हुई अपने २ घरके कामों को और शय्या पर पड़े हुए पति व पुत्रोंको वैसे ही छोड़कर यदुपतिको देखनेके लिये राजमार्गमें अपने २ घरके कोठों पर आने लगीं। हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे परिपूर्ण राजमार्गमें जा रहे स्त्रीमण्डलीमण्डित कृष्णचन्द्रको देखकर भवनों पर चढ़ी हुई स्त्रियाँ उन पर फूलोंकी वर्षा करती हुई मन-ही-मन (कृष्णसे) मिलकर परम प्रसन्न हुईं। राजन्! पुरनारियोंने विस्मयपूर्ण दृष्टिके द्वारा हरिका स्वागत किया और चन्द्रमाके चारो ओर अवस्थित तारासमूहके समान प्रिय पति कृष्णचन्द्रके निकट विराजमान रुक्मिणी आदि रानियोंको देखकर परस्पर एक एकसे कहने लगीं कि अहो! इन स्त्रियोंने कौन ऐसा पुण्य-कर्म किया है जो उदार हास्य, लीलाविलास एवं मनोहर दृष्टिके द्वारा यह पुरुषश्रेष्ठ कृष्णचन्द्र नित्य इनको आनन्दित करते रहते हैं? ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ मुख्य २ श्रेणीके पुरवासियोंने ठौर २ पर माङ्गलिक सामग्रियोंसे

कृष्णका पूजन-सत्कार किया। इस प्रकार प्रीतिसे जिनके नयनारविंद प्रफुल्लित हो रहे हैं वे अन्तःपुरनिवासी जन अत्यन्त प्रीतिपूर्वक कृष्णचन्द्रको घेरकर राजमन्दिरके भीतर लेगये। कुन्तीजी, अपने भतीजे त्रिभुवनेश्वर कृष्णको देखकर परम प्रसन्न हुई एवं पुत्रवधू सहित पलँग परसे उठकर उन्होने कृष्णचन्द्रको हृदयसे लगालिया। देवदेवेश मुकुंदको आदरसहित घरमें लाकर राजा युधिष्ठिर ऐसे आनन्दमें मग्न होगये कि उनको पूजाका क्रम भी भूलगया। राजन्! श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी बुआ कुन्ती एवं गुरुपत्नियोंको प्रणाम किया एवं कृष्णचन्द्रकी छोटी बहन सुभद्रा व द्रौपदीने उनको प्रणाम किया। द्रौपदीने सासके उपदेशके अनुसार रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती, कालिंदी, मित्रविन्दा, शैब्या और नाग्नजिती आदि सब कृष्णचन्द्रकी रानियोंका सादर सत्कार किया और उनके साथ जो अन्यान्य स्त्रियाँ आई थीं उनका भी वस्त्र, माला और अलंकार आदि देकर सत्कार किया। इसी प्रकार धर्म्मराज युधिष्ठिरजी, सेना, मंत्रीगण और रानियोंसहित जनार्दन कृष्णचन्द्रको नित्य नवीन सुखभोगके द्वारा सन्तुष्ट करने लगे। राजा युधिष्ठिरकी प्रसन्नताके लिये श्रीकृष्णचन्द्र कई महीने तक हस्तिनापुरमें रहे और अर्जुनके साथ रथ पर चढ़ कर अनेक स्थानोंका निरीक्षण किया ॥ ३६-४४ ॥

तर्पयित्वा खाण्डवेन वह्निं फाल्गुनसंयुतः ॥
मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभा कृता ॥ ४५ ॥

कृष्णचन्द्रने उसी समयमें अर्जुनके द्वारा अग्निको जलानेके लिये खाण्डव नाम इन्द्रका वन दिलाकर प्रसन्न किया और मयासुरको अग्निमें जलनेसे बचाया। मयासुरने भी बदलेमें महाराज युधिष्ठिरको एक विचित्र और दिव्य सभा बना दी ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितम अध्याय।

जरासंधका वध।

श्रीशुक उवाच—एकदा तु सभामध्य आस्थितो मुनिभिर्वृतः ॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्च युधिष्ठिरः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! एक समय राजा युधिष्ठिरजी मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, भाई, आचार्य्य, कुलके बड़े-बूढ़े, सम्बन्धी और बान्धवगणके साथ सभामें बैठे हुए थे। राजा युधिष्ठिर सबके आगे श्रीकृष्णसे कहने लगे कि

हे कृष्ण! हे गोविन्द! सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूय यज्ञके द्वारा आपकी पवित्र विभूति जो देवगण हैं उनका पूजन करनेके लिये मैंने विचार किया है। प्रभो! अब उस विचारको पूर्ण करना आपके हाथ है। हे कमलनाभ! हे ईश्वर! जो पवित्र अन्तः-करणवाले लोग निरन्तर आपके चरणोंकी शरणमें रहते हैं—आपके चरणोंका ध्यान करते हैं अथवा अमंगल-नाशके लिये शुद्ध भावसे आपके पवित्र नामोंका कीर्तन करते हैं वे ही संसारके बंधनसे छूट कर सुखी होते हैं एवं अन्यान्य मंगल भी (कामना करनेसे) उनको प्राप्त होते हैं। किन्तु आपकी कृपाके विना चक्रवर्त्तियोंको भी संसारसे मुक्ति अथवा अन्यान्य सम्पूर्ण मङ्गल नहीं प्राप्त होते। अतएव हे देव! मैं चाहता हूँ कि ये सब उपस्थित लोग आपके चरणारविन्दोंकी सेवाकी महिमा देखें। हे विभो! कुरु और सृंजय वंशके लोगोंमें जो लोग आपको भजते हैं और जो नहीं भजते—उन दोनोकी स्थिति आप संसारको दिखलाइये। भगवन्! आप उपाधिहीन और सबके प्रिय आत्मा हैं, सुतराम् समदर्शी और आत्माराम हैं, अतएव आपमें 'यह अपना है और यह पराया है' इस प्रकारकी भेद-भावना नहीं है। तथापि जो लोग आपके सेवक हैं उन पर आप कल्पवृक्षके समान प्रसन्न होते हैं। जो व्यक्ति जैसी आपकी सेवा करता है उसको आप भी उसीके अनुरूप फल देते हैं—इसमें कभी विपर्य्यय नहीं होता ॥१॥२॥३॥४॥५॥६॥ श्रीभगवान्ने कहा। हे राजन्! हे शत्रुदलदलन! आपका विचार अत्यन्त उत्तम है, राजसूय यज्ञ करनेसे आपकी विमल कीर्ति दिग्दिगन्तमें व्याप्त हो जायगी। महाराज! ऋषिगण, पितृगण, देवगण, आपके बन्धुगण एवं मैं—सब चाहते हैं कि यह महायज्ञ करिये। अतएव सब राजोंको जीत कर और समग्र पृथ्वीमण्डलको अपने वशमें करके आप इस महायज्ञके अनुष्ठानका आरंभ करिये। इसी समय यज्ञके योग्य समग्र उत्तम सामग्री एकत्रित करनेके लिये आज्ञा दीजिये। राजन्! आपके ये चारो भाई लोकपालोंके अंशसे उत्पन्न हैं; ये सब राजोंको जीत लेंगे। राजन्! अजितेन्द्रिय लोगोंके लिये मैं अजेय हूँ। आप जितेन्द्रिय हैं, इस कारण आपने मुझको अपने वशमें कर लिया है। आप निश्चिन्त रहिये, राजोंकी कौन कहे—देवतालोग भी मेरे भक्तको, प्रभाव, यश, लक्ष्मी अथवा सैन्य आदि सामग्रीसे नहीं हरा सक्के" ॥७॥ ॥८॥९॥१०॥११॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! भगवान्के मुखसे ऐसे मधुर वाक्य सुनकर प्रसन्नताके कारण युधिष्ठिरका मुखकमल प्रफुल्लित होउठा। उन्होने विष्णुके तेजसे परिवर्द्धित अपने भाइयोंको इस प्रकार दिग्विजयके कार्य्यमें नियुक्त किया। सृंजय देशके नरपतियों सहित सहदेवको दक्षिण दिशा जीतनेके लिये, मत्स्य देशके नरपतियों सहित नकुलको पश्चिम दिशा जीतनेके लिये, केकय देशके नरेशों सहित अर्जुनको उत्तर दिशा जीतनेके लिये एवं मद्रदेशके नरेशों सहित पराक्रमी भीमसेनको पूर्वदिशा जीतनेके लिये युधिष्ठिरजीने आज्ञा दी। राजन्! उक्त वीर

पाण्डव चारो दिशाओंके राजोंको बलपूर्वक वशमें करके बहुत सा धन लेकर महाराज युधिष्ठिरके निकट आगये। एक जरासंधको छोड़ कर सभी राजे परास्त हो गये–यह सुन कर राजा युधिष्ठिर बहुत ही चिन्तित हुए। तब भगवान्‌ने उसी उपायका प्रस्ताव किया, जिसे उद्धवने यदुसभामें बताया था। राजन्! तदनन्तर उसी प्रस्तावके अनुसार भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्रजी ब्राह्मणके वेपसे जरासंधकी राजधानी गिरिव्रजको गये ॥१२॥१३॥१४॥१५॥१६॥ अतिथिकी बेलामें ये तीनो ब्राह्मणवेप-धारी क्षत्रिय गृहस्थ जरासंधके घर पर पहुँचे और इन्होने ब्रह्मण्य मगधराजसे इस प्रकार प्रार्थना की कि "हे राजन्! हम प्रार्थी अतिथि हैं, आपके पास बहुत दूरसे आये हैं। इस लिये जो कुछ हम माँगें सो आप दीजिये। आपका कल्याण हो। क्षमा-शील व्यक्तियोंके लिये कुछ भी असह्य नहीं है, असत् जनोंके लिये कुछ भी ऐसा नहीं है जिसे वे न कर सक्ते हों, दानी लोगोंके लिये कुछ भी ऐसा नहीं है जिसे वे न दे सक्ते हों और समदर्शियोंके लिये कोई भी पर (गैर) नहीं है। जो कोई स्वयं समर्थ होकर भी इस अनित्य शरीरसे सज्जनोंके द्वारा गाने-योग्य अविनाशी यशका संचय नहीं करता वह निन्दनीय एवं शोचनीय है। देखिये, हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, मुद्गल, महाराज शिबि, राजा बलि, व्याध, कपोत पक्षी एवं अन्यान्य अनेक उदार-हृदय लोग अपने अनित्य शरीरसे नित्य लोकको प्राप्त हुए हैं"[1] ॥ १७ ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ श्री **शुकदेवजी कहते हैं**। महाराज! स्वर, आकार और कलाइयोंमें पड़े हुए धनुपकी डोरीके चिन्हों (घट्टों) से जरासंधने जान लिया कि ये ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय हैं। जरासंधको यह भी जान पड़ा कि मैंने इनको

---

१ हरिश्चन्द्र विश्वामित्रसे उऋण होनेके लिये रानी और राजकुमारको बेंचकर स्वयं चांडाल बने और सत्यका पालन किया–इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र अयोध्यावासी लोगों सहित स्वर्गको गये। रन्तिदेव अड़तालीस दिनों तक सहित कुटुंबके भूखे प्यासे पड़े रहे और उनचासवें दिन मिला हुआ अन्न-जल भी अतिथियोंको देकर ब्रह्मलोकको गये। उंच्छवृत्तिवाले मुद्गल ऋपि छः महीने तक सकुटुम्ब अन्नके विना भूखे रहे और अन्न पाने पर फिर भी आप नहीं खाया, अतिथिको देदिया और उसीके फलसे ब्रह्मलोकको गये। राजा शिबिने शरणागत कपोतकी रक्षाके लिये अपना मांस काटकर बाजको दिया और अन्तमें स्वर्गको गये। बलिने जान-बूझकर अपना सर्वस्व वामनरूप विष्णुको देदिया और भगवान्‌के प्रिय हुए। कपोतने अपने अतिथि व्याधको कबूतरी सहित अपना मांस खानेको दिया और आप विमान पर बैठकर तत्क्षण स्वर्गको सिधारा। व्याध भी उनके धार्मिक भावको देखकर विरक्त होगया और उसीसमय वनमें लगीहुई दावानलमें जलकर पापहीन हो स्वर्गको गया, इत्यादि। ये कथाएँ और २ पुराणोंमें विस्तारसे कही गई हैं।

कहीं देखा है। मगधराज जरासंध मनमें सोचने लगा कि अवश्य ही ये लोग क्षत्रिय हैं और मेरे पास ब्राह्मणका वेप बनाकर आये हैं। किन्तु ये ब्राह्मण बनके आये हैं, इस लिये मैं माँगने पर इनको अपना परम प्रिय और दुस्त्यज आत्मा भी देदूँगा—नहीं न करूँगा। इन्द्रका राज्य, जिसे बलिने बलपूर्वक ले लिया था, फिर इन्द्रको देनेके लिये, वामनरूप धर ब्राह्मणवेषसे विष्णु राजा बलिके पास गये और छलपूर्वक बलिको राज्यैश्वर्य्यसे भ्रष्ट कर दिया, तथापि बलिकी विमल कीर्त्ति तीनो लोकोंमें अब तक गाई जाती है। दैत्यराज बलिने जान लिया था कि यह वामनरूपी विष्णु छल करने आये हैं और शुक्राचार्य्यने भी कहा था कि यह छली विष्णु हैं, इनको पृथ्वी न देना, तथापि उन्होने ब्राह्मणरूपी विष्णुको नहीं लौटाया और पृथ्वी दी। यह देह एक-न-एक दिन अवश्य नष्ट होजायगा; तब क्षत्रिय यदि अपने अनित्य शरीरसे ब्राह्मणका काम बना कर महायश पानेकी चेष्टा न करे तो उसका जीवन ही वृथा है" ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ उदारहृदय जरासंधने यों विचार कर श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनसे कहा कि "हे ब्राह्मणो! जो तुम्हारी इच्छा हो सो माँगो। तुम यदि मेरा शिर भी माँगोगे तो मैं अपने हाथसे काटकर तुमको देदूँगा" ॥ २७ ॥ जरासंधके उदार वचन सुन कर भगवान् कृष्णचन्द्रने कहा कि "हे राजेन्द्र! हम ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय हैं। हम तुम्हारे पास युद्धयात्राके लिये आये हैं—और कुछ नहीं माँगना चाहते। यदि इच्छा हो तो हम तीनोमें चाहे जिससे द्वन्द्व युद्ध करो। यह कुन्तीके पुत्र भीमसेन हैं, यह इनके भाई अर्जुन हैं और मैं इनके मामाका लड़का और तुम्हारा शत्रु कृष्ण हूँ" ॥ २८ ॥ २९ ॥ मगधराज जरासंध कृष्णके वचन सुन कर ऊँचे स्वरसे हँसा और फिर कुछ कुपित होकर कहने लगा कि "अरे मन्दमति क्षत्रियो! यदि तुम युद्ध करना चाहते हो तो मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। किन्तु कृष्ण! तू कायर और भगोड़ा है, युद्ध-भूमिसे घबड़ा कर भाग जाता है; तू अपनी मथुरा पुरी छोड़, समुद्रकी शरणमें जाकर बसा है, तुझसे मैं नहीं युद्ध करूँगा। यह अर्जुन भी मुझसे अवस्थामें छोटा है और मेरे समान बल भी इसमें नहीं है, इसका शरीर भी मेरे तुल्य नहीं है; अतएव यह मुझसे युद्ध भी नहीं कर सक्ता। हाँ, भीमसेन बल आदिमें मेरे समान है, इसके साथ मैं युद्ध करूँगा" ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इतना कह कर राजा जरासन्धने एक बड़ी भारी गदा भीमसेनको दी और वैसी ही एक गदा आप लेकर पुरसे बाहर निकला ॥ ३३ ॥ तदनन्तर समस्थल पर वे दोनो रणदुर्मद वीर भिड़ कर वज्र ऐसी कठिन गदाओंसे परस्पर प्रहार करने लगे। बाईं और दाहिनी ओर भाँति २ के पैंतरे बदलते हुए दोनो वीरोंका वह युद्ध रंगभूमिमें उतरे हुए दो नटवरोंके युद्धके समान सुशोभित हुआ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ उस समय

परस्पर गदाओंके घात-प्रतिघातसे दो वज्रोंके टकरानेका ऐसा घोर कठोर चटचटा-शब्द होने लगा, जैसे दो हाथी लड़ें और उनके दाँतोंकी टक्करोंका शब्द हो वैसेही गदाओंका शब्द सुन पड़ता था॥३६॥तदनन्तर बड़े वेगसे चलाई जारही दोनो गदाएँ दोनो वीरोंके कन्धे, कटि, हाथ, ऊरू और जत्रु आदि सुकठिन अंगोंकी वारम्वार चोट खाकर उसी प्रकार चूर्ण होगईं जिस प्रकार क्रोधाकुल होकर युद्ध कर रहे दो गज-राजोंके शुण्डादण्डमें पड़ कर मंदारके वृक्षकी शाखाएँ चूर २ हो जायँ ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जब दोनो गदाएँ चूर होगईं तब दोनो वीर पुरुष और भी कोप करके वज्रके समान कठोर मुष्टियों (घूसों) से परस्पर प्रहार करने लगे । दो गजराजोंके समान युद्ध कर रहे उन वीरोंके मुष्टिप्रहारसे वज्रपातसदृश कठोर शब्द होने लगा ॥ ३८ ॥ राजन्! शिक्षा, बल और ओजमें समान दोनो वीर इस प्रकार समानभावसे सत्ताईस दिनों तक लड़ते रहे । सत्ताईस दिनों तक कोई भी कम नहीं पड़ा और किसीका वेग नहीं घटा । ये लोग दिनको युद्ध करते थे और रात्रिको पास ही पास सोते थे । एक दिन रातको भीमसेनने मामाके पुत्र कृष्णसे कहा कि "माधव! मैं जरासंधको युद्धमें नहीं जीत सक्ता" । भगवान् कृष्णचन्द्र जानते थे कि जरासंध मराहुआ उत्पन्न हुआथा, उसके शरीरके दो टुकड़े अलग२ थे और उन टुकड़ोंको एकमें जोड़ कर जरा राक्षसीने जीवित कर दिया था । अमोघदर्शन कृष्णने हाथ फेर भीमसेनको युद्ध-श्रम-रहित करके अपने तेजसे शक्तिशाली बना दिया । सवेरे जब फिर युद्ध होने लगा तब शत्रुके वधका उपाय विचार



कर, भीमसेनके सामने ही, उनको दिखा कर कृष्णचन्द्रने एक तिनका उठा लिया

हाथमें एक शाखाको लेकर उसको बीचसे फाड़ डाला। भगवान्के इस संकेतको महाबली वीरवर भीमसेन समझ गये। भीमसेनने उसी समय शत्रुको पृथ्वी पर पटक दिया और जिस प्रकार कोई गजराज किसी महावृक्षकी शाखाको सूँढ़से पकड़ कर फाड़ डाले उस प्रकार एक पैरसे एक पैर दबा कर दोनो हाथोंसे दूसरा पैर पकड़ जरासंधके शरीरको बीचसे फाड़ डाला। जरासंधका शरीर गुदासे फट कर दो खंड होगया। एक २ चरण, वृषण, कटि, स्तन, कन्धे, बाहु, नेत्र, भौंह और कान आदिसे युक्त जरासंधके शरीरके दोनो टुकड़े अलग २ देख कर सब दर्शकोंको बड़ा ही विस्मय हुआ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ मगधराजकी मृत्यु देख कर पुरवासी लोगोंमें हाहाकार मच गया। अच्युत और अर्जुनने गलेसे लगा कर भीमसेनका सत्कार किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

सहदेवं तत्तनयं भगवान्भूतभावनः ॥
अभ्यषिञ्चदमेयात्मा मगधानां पतिं प्रभुः ॥
मोचयामास राजन्यान्संरुद्धा मागधेन ये ॥ ४९ ॥

तदनन्तर भूतभावन अमोघरूप प्रभु भगवान्ने जरासन्धके पुत्र सहदेवको मगधराज्यके सिंहासन पर बिठा कर उन जरासंधके बंदी राजोंको कारागारसे मुक्त किया ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितम अध्याय।

राजोंका कैदसे छूटना।

श्रीशुक उवाच—अयुते द्वे शतान्यष्टौ लीलया युधि निर्जिताः ॥
ते निर्गता गिरिद्रोण्यां मलिना मलवाससः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन् जरासंधने २० हजार ८ सौ राजोंको युद्धमें जीतकर गिरिव्रजमें कैद कर रक्खाथा। बहुत काल तक कैद रहने और क्लेश सहनेसे जिनके शरीर शिथिल होगये हैं, मुख सूख गये हैं, ऐसे भूख प्याससे पीड़ित मलिनमुख और मैले कपड़े पहने राजोंने कारागारसे छुटकारा पाकर घनश्याम कृष्णचन्द्रको देखा। राजोंने देखा कि वह पीत पट पहने हुए हैं, उनके हृदयमें श्रीवत्सका चिन्ह है, बड़ी २ चार भुजाएँ शोभायमान हैं, दोनो नेत्र कमलपुष्पके भीतरी भागके समान अरुणवर्ण हैं,

मुखमण्डल सुन्दर और प्रसन्न है, कानोंमें मकराकृत कुण्डल हैं और करकमलमें कमलका चिन्ह है। भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म विराजमान हैं और अंगोंमें किरीट मुकुट, हार, कटिसूत्र, कटक, अंगद आदि आभूषणोंकी निराली शोभा है। उनके वक्षःस्थलमें वनमाला पड़ी है और कंठमें पड़ीहुई कौस्तुभ मणि अपनी प्रभासे दर्शकोंकी आँखोंमें चकाचौंध उत्पन्न कर रही है। कृष्णभगवान्‌के ऐसे अनूप रूपको देखकर राजोंको जो परमानन्द प्राप्त हुआ उसीसे उनका कारागारवासका सब कष्ट और जन्मजन्मान्तरके समग्र पाप नष्ट होगये। जान पड़ताथा कि वे नेत्रोंके द्वारा कृष्णके सुधामय रूपको पी लेंगे, जिह्वासे चाट लेंगे और नासिकासे सूँघ लेंगे एवं भुजाओंसे लिपटा लेंगे। इस प्रकार प्रेमसे परिपूर्ण नरपतियोंने चरणों पर शिर रखकर हरिको प्रणाम किया और तदनन्तर हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे ॥ १–७ ॥ राजालोग कहने लगे। हे देवदेवेश! हे अव्यय! आपको प्रणाम है। हे कृष्ण! हम आपके शरणागत भक्तजन हैं। हम अब राज्यभोग नहीं चाहते, क्योंकि हमारे हृदयमें वैराग्यका उदय हो आया है। बस, हमारी यही प्रार्थना है कि घोर संसारसे हमारा उद्धार करिये। हे नाथ! हे मधुसूदन! इस मगधराजके लिये हमारे हृदयमें अणुमात्र भी वैरभाव नहीं है। जो राजालोग राज्यसे भ्रष्ट हों उन्हे, ऐसा होना, अपने ऊपर आपकी परम कृपा समझना चाहिये ॥८॥९॥ जो राजा हैं वे राज्य और ऐश्वर्यके मदसे कुपथगामी होनेके कारण कल्याणको नहीं प्राप्त होते। वे आपकी मायामें मोहित होनेके कारण अनित्य सम्पत्तिको नित्य मान कर गर्वित होते हैं ॥ १० ॥ जैसे बालकगण मृगतृष्णाको जलाशय समझते हैं वैसे ही सब अविवेकी• लोग वैकारिक मायाको सत् वस्तु समझते हैं ॥ ११ ॥ पहले ऐश्वर्यके गर्व्वसे हमारी बुद्धिको भी भ्रम हो गया था; पृथ्वी जीतनेकी इच्छासे हमलोग परस्पर स्पर्धा रखतेथे एवं अत्यंत दुर्मद होकर परस्पर निर्दयताका व्यवहार करनेमें भी नहीं सकुचते थे। कालरूप आप सदा शिर पर खड़े हैं, इसका ध्यान भी हमको न था और हम अपनी प्रजाको पीड़ा पहुँचाते थे। हे श्रीकृष्ण! वे ही हम अत्यन्त प्रबल व वेगशाली कालके दुरन्त वीर्य्य द्वारा आपकी कृपाके कारण राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट और गर्वविहीन हो कर आपके चरणकमलोंको स्मरण कर रहे हैं। अब हमको राज्यकी कामना नहीं है ॥ १२ ॥ १३ ॥ सब रोगोंकी जन्मभूमि इस अनित्य शरीरके द्वारा जिस राज्यका भोग किया जाता है उस मृगतृष्णातुल्य राज्यकी चाह हमको नहीं है। और केवल कानोंको रुचनेवाले (और वास्तवमें कुछ नहीं) कर्मफलस्वरूप स्वर्गादि लोकोंकी भी अभिलाषा हमको नहीं है ॥ १४ ॥ अतएव आप हमको वह उपाय बताइये जिससे संसारमें वारम्वार जन्म लेने पर भी हम आपके चरणकमलोंको न भूलें ॥ १५ ॥ श्रीकृष्ण, वासुदेव, हरि, परमात्मा, प्रणतार्तिहारी,

गोविन्दको हम वारम्वार प्रणाम करते हैं ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे वत्स! शरणागतपालक दयालु भगवान्ने बन्धनसे मुक्त राजोंके विनीत वचन सुन कर कहा कि "हे नरपतिगण! तुम्हारी इच्छाके अनुसार आजसे अवश्य ही मुझ अखिलेश्वर आत्माकी दृढ़ भक्ति तुमको प्राप्त होगी। तुम्हारा संकल्प अत्यन्त उत्तम है और तुमने जो कुछ कहा सो सम्पूर्ण सत्य है। मैं देखता हूँ कि सौभाग्य-मदका बढ़ना ही मनुष्योंकी उन्मत्तताका कारण है। कार्त्तवीर्य्य, नहुष, वेन, रावण, नरकासुर एवं अन्यान्य प्रतापशाली देवता दैत्य और राजा लोग ऐश्वर्य्यके गर्वसे अंधे हो कर अपने २पदसे भ्रष्ट हुए हैं। तुम लोग मनमें निश्चय कर लो कि उपजने-वाली देह आदि सब वस्तुओंका एक दिन अवश्य अन्त होगा। इस प्रकारका ज्ञान प्राप्तकर मेरा पूजन करो और सावधानतासे धर्म्मपूर्वक प्रजापालन करो ॥ १७-२१ ॥ केवल वंशवृद्धिके लिये गृहस्थाश्रममें रहकर स्त्री आदिका उपभोग करो और सुख, दुःख एवं शुभ, अशुभ—जो कुछ प्राप्त हो उसीमें सन्तुष्ट रहो। मुझमें मन लगाकर सांसारिक सुख भोग करो। इस प्रकार देहादि-भोगकी सामग्रियोंके मिलने या न मिलने में समान भावसे अनासक्त रहकर एवं आत्मानंदमें मग्न और व्रतपालनमें तत्पर रहकर सब प्रकारसे मुझमें ही मनको लगाओ। ऐसा करनेसे परब्रह्मस्वरूप जो मैं हूँ उसको अन्तसमय प्राप्त होगे ॥२२॥ ॥२३॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन्! भुवनेश्वर भगवान् कृष्णचन्द्रने राजोंको इस प्रकार कर्त्तव्यका उपदेश करके उनको अभ्यङ्गपूर्वक स्नान करानेके लिये असंख्य दास दासियोंको आज्ञा दी ॥ २४ ॥ हे भारत! जब वे भलीभाँति स्नान करके उत्तम वस्त्र पहन चुके तब श्रीहरिकी आज्ञाके अनुसार जरासंधके पुत्र सहदेवने उनको उत्तम भोजन कराये और राजोंके योग्य श्रेष्ठ वस्त्र, भूषण, माला और चन्दन आदिसे उनका पूजन व सत्कार किया ॥ २५ ॥२६॥ मुकुंदकी कृपाके कारण बंधनसे छूटे हुए राजालोग इस प्रकार स्नान और पूजन व सत्कार होने पर रत्नजटित कुण्डलोंको पहनकर, वर्षाकाल बीतने पर ग्रहगण जैसे स्वच्छ रूपसे प्रकाशित होते हैं उस प्रकार शोभायमान हुए । इस प्रकार पूजन होजानेपर भगवान्ने विविध मधुर वचनोंसे उन मणि-सुवर्ण-भूषित राजोंको प्रसन्न किया एवं उत्तम रथ और घोड़ोंपर चढ़ाकर जो जिस देशका था उसको उस देशमें भेज दिया ॥ २७ ॥ २८ ॥ वे राजे, अत्यन्त महात्मा और दयालु कृष्णकी कृपासे इस प्रकार बन्धनमुक्त होकर उन्ही जगत्पति का ध्यान एवं उनके मनोहर चरित्रोंका कीर्तन करतेहुए परम आनन्दसे अपने २ देशको गये ॥ २९ ॥ अपने २ राज्यमें पहुँचकर उन्होने प्रजावृन्दके आगे महापुरुष कृष्णके जरासंधवध-रूप चरित्रको श्रद्धापूर्वक कहा और भगवान्की आज्ञाके अनुसार प्रजापालन और ईश्वरभजनमें सावधान होकर दुष्टोंका दमन करने लगे ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी

कहते हैं। राजन्! भगवान् केशव, इसप्रकार भीमसेनके द्वारा जरासंधका वध कराकर और सहदेवके द्वारा पूजित होकर कुन्तीके दोनो पुत्रों सहित गिरिव्रजसे हस्तिनापुरकी ओर चले ॥ ३१ ॥ इस प्रकार शत्रुको मारकर विजय प्राप्त करनेवाले तीनो वीरवरोंने हस्तिनापुरके निकट पहुँचकर अपने बन्धुओंको सुखी और शत्रुओंको दुःखित करते हुए विजय प्रसन्नता-सूचक शंखनाद किया ॥ ३२ ॥ उस शंखनादको सुनकर हस्तिनापुरवासी समझ गये कि जरासंध मारागया और राजा युधिष्ठिरका मनोरथ पूर्ण हुआ ॥ ३३ ॥ तदनन्तर भीमसेन, अर्जुन और जनार्दनने जाकर राजा युधिष्ठिरको प्रणाम किया और अपने द्वारा किये गये जरासंधके वधका वृत्तान्त कहा ॥ ३४ ॥

निशम्य धर्मराजस्तत्केशवेनानुकम्पितम् ॥
आनन्दाश्रुकलां मुञ्चन्प्रेम्णा नोवाच किंचन ॥ ३५ ॥

केशवकी कृपाका वर्णन सुनकर राजा युधिष्ठिर प्रेमसे गद्गद हो आनन्दके आँसू बहाने लगे। गंभीर आनन्दके उच्छ्वाससे उनका कंठ रुँधगया और वह कुछ न कहसके ॥ ३५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितम अध्याय ।

शिशुपाल-वध ।

श्रीशुक उवाच—एवं युधिष्ठिरो राजा जरासन्धवधं विभोः ॥
कृष्णस्य चानुभावं तं श्रुत्वा प्रीतस्तमब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! राजा युधिष्ठिर, जरासंधके वध और श्रीकृष्णके प्रभावको सुन कर प्रसन्नतापूर्वक कृष्णचन्द्रसे कहने लगे कि हे ब्रह्मन्! त्रैलोक्यके गुरु सनकादिक ऋषिगण एवं सम्पूर्ण लोक व लोकपालगण आपकी दुर्लभ आज्ञाको पाकर सादर शिर पर धारण करते हैं। हे कमलनयन! हे ईश्वर! हे भूमन्! वही भगवान् आप, दीन हो कर भी अपनेको ईश अथवा समर्थ माननेवाले जो हमलोग हैं उनकी आज्ञाका पालन करते हैं, यह अत्यन्त विडम्बनाका विषय है। आप एक, अद्वितीय, ब्रह्म परमात्मा हैं; सूर्य्यके तेजके समान किसी भी कर्म्मसे आपकी महिमा घटती-बढ़ती नहीं। हे माधव! हे अजित! अज्ञानी पशुओंकी तरह, आपके भक्तजन, शरीर आदि विषयोंमें "मेरा-तुम्हारा" अथवा "मैं-तुम" इस प्रकारकी भेदभावना नहीं रखते । अतएव आपके लिये क्या कहना है?" ॥ १-५ ॥ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने यों कहकर श्रीकृष्णके द्वारा

अनुमोदित हो, यज्ञ करने योग्य समयमें यज्ञ कराने योग्य ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंको ऋत्विज आदि पदोंका 'वरण' दिया ॥ ६ ॥ राजन्! द्वैपायन, भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वशिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित, विश्वामित्र, वामदेव, जैमिनि, सुमति, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्व्वा, कश्यप, धौम्य, भार्गव, परशुराम, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्दस, वीरसेन, अकृतव्रण और अन्यान्य ऋषिगण एवं द्रोणाचार्य्य, भीष्म पितामह, कृपाचार्य्य, पुत्रों सहित धृतराष्ट्र, महामति विदुर तथा ब्राह्मणगण, क्षत्रियगण, वैश्यगण, शूद्रगण तथा अपनी २ प्रजा व अनुचरगणसहित निमन्त्रित सब राजालोग यज्ञ देखनेके लिये आकर उपस्थित हुए। तदनन्तर सब ब्राह्मणोंने सुवर्णके हलसे शोध कर यज्ञभूमि प्रस्तुत की एवं वेदविधिके अनुसार राजा युधिष्ठिरको यज्ञकी दीक्षा दी। पहले लोकपाल वरुणके राजसूय यज्ञमें जिस प्रकार यज्ञसम्बन्धी पात्र आदि सब सामग्री सुवर्णकी बनाई गई थी उसी प्रकार युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भी सब सामग्री सुवर्णकी प्रस्तुत की गई ॥ ७–१२ ॥ निमन्त्रण पाकर इन्द्रादि लोकपालगण, अपने गणों-सहित शङ्कर, ब्रह्माजी, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, सम्पूर्ण महासर्प, मुनिगण, यक्षगण, राक्षसगण, पक्षीगण, किन्नरगण, चारणगण और रानियों व राजकुमारों-सहित सब देशोंके राजालोग वहाँ आये और कृष्णके भक्त पाण्डुतनय युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञको देख कर विशेष विस्मित नहीं हुए और उन्होने यज्ञको सुसम्पन्न माना। देवतोंके तुल्य तेजस्वी ब्राह्मणोंने, जिस प्रकार देवतोंने वरुणको यज्ञ कराया था उसी प्रकार विधिपूर्वक महाराज युधिष्ठिरको यज्ञ कराया। यज्ञके उपरान्त सोमाभिषवके दिन राजा युधिष्ठिरने एकाग्रचित्त होकर महाभाग याजकों और सदस्योंकी विधिपूर्वक पूजा की। उस सभामें सबसे पहले पूजा पानेके योग्य अनेक महानुभाव उपस्थित थे,—यह देख कर सदस्यलोग इस विषय पर विचार करने लगे कि पहले किसका पूजन किया जाय। बहुत देर हुई और पूर्वोक्त विषयका कुछ निर्णय न हुआ, तब जरासंधके पुत्र सहदेवने कहा कि— "आप लोग विचार क्या कर रहे हैं? यदुगणके अधिपति भगवान् अच्युत कृष्ण-चन्द्रजी सबसे प्रथम पूजने योग्य हैं। देश, काल और पात्र एवं संपूर्ण देवता यही हैं, इनकी पूजा करनेसे सब सुसम्पन्न होगा। यह सब विश्वके आत्मा हैं, सम्पूर्ण यज्ञ इन्हीका स्वरूप हैं। यही अग्नि हैं, यही आहुति हैं और यही सम्पूर्ण मन्त्र हैं। यही ज्ञान और योगकी चरम सीमा हैं। यह केशव एक अद्वितीय हैं, यह सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त हैं। हे सभ्यगण! यह अनाश्रय, अजन्मा हैं। यह स्वयं इस जगत्की सृष्टि पालन और संहार करते हैं। ये सब लोग इन्हीकी कृपा-दृष्टिसे इस लोकमें विविध कर्म्म करते हुए मङ्गलमय धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्राप्त होते हैं; अर्थात् सम्पूर्ण कर्म्म और उन कर्म्मोंके फल इन्हीके अधीन हैं।

अतएव सबसे पहले महात्मा कृष्णचन्द्रका पूजन उत्तम रीतिसे करो। ऐसा करनेसे सब प्राणियोंका और आत्माका भी पूजन हो जायगा। यदि इच्छा हो कि हमारा किया हुआ दान और पूजन अक्षय व अनन्त हो तो सब प्राणियोंके आत्मा-स्वरूप, भेदभावरहित, शान्त और पूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन करो" ॥१३–२४॥ श्रीकृष्णके प्रभावको भली भाँति जाननेवाले सहदेव इतना कहकर चुप होगये और सहदेवके सर्वसम्मत श्रेष्ठ वचन सुनकर सब साधुजन 'वाह २' कह कर वारम्वार उनकी प्रशंसा करनेलगे। राजा युधिष्ठिरने साधुओंके मुखसे साधुवाद सुन कर और सब सभासदोंके हृदयका भाव समझकर प्रेमानन्दसे विह्वल हो हृषीकेश कृष्णचन्द्रका पूजन किया। हरिके चरणोंको धोकर भार्य्या, अनुज, अमात्य, और सम्पूर्ण कुटुम्ब सहित राजाने परम श्रद्धा, भक्ति और आनन्द सहित उस लोकपावन चरणोदकको अपने शिर पर डाला। रेशमी पीतपट एवं अमूल्य आभूषण आदिसे कृष्णकी पूजा करते २ आनन्द और प्रेमके वेगसे राजा युधिष्ठिरके नयन आँसुओंसे पूर्ण होगये और कुछ समय तक वह कृष्णचन्द्रके मनोहर रूपको भली भाँति देख नहीं सके। श्रीकृष्णका इस प्रकार पूजन होते देख कर सभामें स्थित सब लोग प्रसन्न होकर जयजयकार करते हुए हाथ जोड़ कर हरिको प्रणाम करने लगे। उस समय कृष्णचन्द्रके ऊपर चारो ओरसे फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ २५–२९ ॥ राजन्! श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन होते देखकर दमघोषतनय शिशुपाल अत्यन्त कुपित हुआ; श्री-हरिके ऐसे सम्मानको वह देख नहीं सका। शिशुपाल क्रोधके कारण अपने आस-नसे उठ खड़ा हुआ और हाथ उठाकर क्रोधपूर्वक निर्भयचित्तसे इस प्रकार भरी सभामें भगवान्को सुनाकर कठोर और कटु वचन कहने लगा ॥ ३० ॥ शिशु-पालने कहा। सब करनेमें समर्थ, काल दुरत्यय है—इस जनश्रुतिकी सचाई यहाँ साक्षात् देखपड़ी। एक बालकके कहनेसे बड़े २ बूढ़ोंकी भी बुद्धिको मोह होगया! ॥ ३१ ॥ हे सम्पूर्ण सदस्यगण! आप लोग 'पात्र' जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हैं। "श्रीकृष्ण ही सबसे पहले पूजने योग्य है"—इस बालसुलभ वाक्यको आप यथार्थ न मानना ॥ ३२ ॥ तप, विद्या, व्रत और ज्ञानके द्वारा जिनके सब पातक नष्ट होगये हैं और अज्ञान मिटगया है, जो ब्रह्मनिष्ठ हैं, श्रेष्ठ लोकपाल गण भी जिनका पूजन करते हैं उन सभापति महर्षियोंके आगे यह कुलकलंक गोपाल कैसे पूजनके योग्य हो सक्ता है? देवतोंके भाग पुरोडाशको कहीं अधम काक पा सक्ता है? ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यह कृष्ण, वर्ण आश्रम और कुलसे हीन है, सब धर्मोंसे वहिष्कृत है, स्वेच्छाचारी और गुणशून्य है। यह कैसे पूजनीय हो सक्ता है? ॥ ३५ ॥ ययातिके शापसे श्रीभ्रष्ट, साधु-परित्यक्त एवं वृथा पान-निरत इनका कुल कैसे पूजनीय हो सक्ता है? ॥ ३६ ॥ ये ब्रह्मर्षि-सेवित देशोंको छोड़ कर समुद्रके मध्यस्थित दुर्गमें जाकर बसे हैं और दस्युगणके समान

प्रजापीड़न करते हैं ॥ ३७ ॥ जिसका मंगल नष्ट हो गया है उस शिशुपालने इस प्रकारके अनेक कटु वचन कहे, परन्तु जैसे शृगालके शब्द पर सिंह ध्यान नहीं देता उस प्रकार कृष्णचन्द्रजी चुपचाप सब सुनते रहे और कुछ भी नहीं बोले ॥ ३८ ॥ सभासदगण उस असह्य (भगवान्‌की) निन्दाको न सुनसके और क्रोधपूर्वक शिशुपालको गालियाँ देते हुए हाथोंसे कान बंद करके वहाँसे उठ कर चल दिये ॥ ३९ ॥ जो व्यक्ति भगवान् या भगवान्‌के भक्तकी निन्दाको बैठे सुना करता है और (उस दुष्ट निन्दकको दण्ड देनेमें असमर्थ होनेपर) वहाँसे उठकर चला नहीं जाता उसका सब पुण्य नष्ट हो जाता है और वह नरकको जाता है ॥ ४० ॥ शिशुपालके मुखसे भगवान्‌की निन्दा सुन कर चारो पाण्डव और मत्स्य, सञ्जय, व केकय देशके राजालोग कुपित हो, अस्त्र शस्त्र ले शिशुपालको मारनेके लिये उठ खड़े हुए ॥ ४१ ॥ हे भरतनन्दन ! उनको इस प्रकार आक्रमण करनेके लिये उद्यत देखकर शिशुपाल रत्ती भर नहीं घबड़ाया। श्रीकृष्णकी ओरसे मारनेके लिये उद्यत राजोंको डाँटकर शिशुपालने भी अपनी ढाल और तर्वार उठा ली ॥ ४२ ॥ तब अपनी ओरसे लड़नेके लिये उद्यत पाण्डवों और राजोंको भगवान्‌ने रोक दिया और स्वयं कुपित हो अपनी ओर प्रहार करनेके लिये आ रहे शत्रु (शिशुपालका) का शिर तीक्ष्ण धारावाले सुदर्शन चक्रसे सबके देखते २ धड़से अलग कर दिया ॥ ४३ ॥ शिशुपालके मरने पर सभामें बड़ाभारी कोलाहल मचगया। उस समय शिशुपालके साथी सब नरपति अपने २ प्राण लेकर सभासे भाग गये ॥४४॥ राजन् ! जैसे कोई तारा आकाशसे गिर कर मार्गमें लीन हो जाता है वैसे ही शिशुपालके शरीरसे ज्योति निकल कर सबके आगे वासुदेवमें लीन होगई ॥ ४५॥ तीन जन्म तक वैरभावसे क्रोधपूर्वक दिन-रात कृष्णके ध्यानमें मग्न रहनेके कारण शिशुपालने श्रीहरिसे सारूप्य मुक्ति पाई। राजन् ! ध्यान ही ध्येय वस्तुके समान रूपके पानेका कारण है ॥ ४६ ॥ तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने सदस्यों और ऋत्विजोंको मुह-माँगी मन-भाई दक्षिणा देकर और पूजा करके सन्तुष्ट किया एवं तदुपरान्त अवभृथ स्नान किया। इस प्रकार राजसूय यज्ञ करके राजा युधिष्ठिर पृथ्वीमण्डलके एकसम्राट् हुए ॥ ४७ ॥ योगेश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरके यज्ञको भली भाँति पूर्ण कराकर बान्धवोंकी प्रार्थना पूर्ण करते हुए कई महीने तक हस्तिनापुरमें रहे ॥ ४८ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र, तदनन्तर राजा युधिष्ठिरकी इच्छा न होने पर भी उनसे विदा होकर मंत्रियों, अनुचरों और रानियों सहित द्वारका पुरीको गये ॥ ४९ ॥ राजन् ! सनकादिकोंके शापसे वैकुंठवासी हरिसेवक जय और विजयके वारम्वार पृथ्वी पर जन्म पानेका वृत्तान्त मैं तुमसे विस्तारपूर्वक पहिले कह चुका हूँ ॥५०॥ राजसूय यज्ञके अन्तमें अवभृथ स्नान करके, राजा युधिष्ठिर ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंके बीच सुरसमाजमें

सुरराजके समान शोभायमान हुए ॥५१॥ राजा युधिष्ठिरके द्वारा किये गये पूजन और सत्कारसे सन्तुष्ट सम्पूर्ण देवता, मनुष्य और आकाशचारी लोग प्रसन्नतापूर्वक कृष्णकी और यज्ञकी बड़ाई करते अपने २ लोकको गये ॥ ५२ ॥ उस यज्ञको देखकर यदि कोई प्रसन्न न था तो वह कुरु-कुल-कलंक साक्षात् कलिका अवतार पापी दुर्य्योधन था, क्योंकि पाण्डुपुत्रकी वह परम वृद्धिको प्राप्त राज्यलक्ष्मी दुर्य्योधनके लिये निपट असह्य थी ॥ ५३ ॥

य इदं कीर्तयेद्विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम् ॥
राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥

जो कोई श्रीविष्णुके इन शिशुपालवध आर नृपमोचन आदि चरित्रोंको एवं युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञके पवित्र उपाख्यानको मन लगाकर पढ़ता या सुनता है वह सब पापोंसे मुक्त होकर सुखी होता है ॥ ५४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितम अध्याय।

दुर्योधनका अपमान।

राजोवाच—अजातशत्रोस्तं दृष्ट्वा राजसूयमहोदयम् ॥
सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन्नृदेवा ये समागताः ॥ १ ॥

राजापरीक्षित्‌ने कहा। हे ब्रह्मन्! अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरके यज्ञका वैभव देखनेके लिये जो सब देवता, ऋषि और राजा आदि आये वे तो सब प्रसन्न हुए, परन्तु दुर्य्योधन अप्रसन्न रहा—इसका क्या कारण है? ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले। राजन्! तुम्हारे पितामह महात्मा युधिष्ठिरके यज्ञमें प्रेमवश सब बान्धवोंने भिन्न २ सेवाके कार्य्य अपने २ हाथमें लिये थे। भीमसेन पाकशालाके और दुर्य्योधन धनके अध्यक्ष थे। सहदेव सब आये हुए लोगोंका स्वागत करते थे और नकुल सब सामग्रीका संचय करते थे। अर्जुन अभ्यागत साधुओंकी सेवा करते थे और श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं उनके पैर धोते थे। द्रौपदीजी सबको भोजन देती थीं और महा उदार कर्णने दानका भार लिया था। हे राजेन्द्र! इसी प्रकार सात्यकी, विकर्ण, हार्दिक्य और विदुर आदिक और भूरिश्रवा आदि बाल्हीकके पुत्र एवं सन्तर्दन आदिक सब बान्धव राजा युधिष्ठिरकी प्रसन्नताके लिये भिन्न २ कार्योंमें लगे हुए थे ॥ ३-७ ॥ ऋत्विक्, सदस्य एवं बहुत से ऋषिगण और श्रेष्ठ बन्धुगणका, भली भाँति मीठे वचन अलंकार आदि सामग्री एवं दक्षिणासे सत्कार व पूजन कियागया। तदनंतर शिशु-

पालने शरीर छोड़कर यदुपतिके चरणोंमें स्थान पाया। उसके बाद राजा युधिष्ठिर अवभृथ स्नान करनेके लिये गंगातट पर गये। स्नान-सम्बन्धी महान् उत्सवमें मृदंग, शंख, पणव, ढोल, गोमुख, वीणा आदि अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे। वारवनिताएँ आनन्दपूर्वक नृत्य करने लगीं और झुंडके झुंड गवैये लोग गान करने लगे। उनके वेणु, वीणा और करतालकी ध्वनि आकाशमण्डलमें गूँज उठी। सुवर्णकी मालाएँ पहने यदु, सृंजय, काम्बोज, कुरु, केकय और कोशल आदि वंशोंके नरेश, यजमान राजा युधिष्ठिरको आगे करके विविध वर्णवाली ध्वजा और पताकाओंसे सुशोभित एवं गज, अश्व, रथ और पैदलोंसे भली भाँति अलंकृत चतुरंगिणी सेनासे पृथ्वीको कँपाते हुए बाहर निकले। सदस्य, ऋत्विक् एवं अन्यान्य श्रेष्ठ ब्राह्मण भी पवित्र वेदध्वनि करते हुए आगे २ चले। उस समय देवर्षि, पितृगण और गन्धर्वगण फूलोंकी वर्षा करते हुए स्तुति करने लगे। स्त्रियों और पुरुषोंके झुंड चंदन, माला और श्रेष्ठ वस्त्र व आभूषणोंसे विभूषित होकर अनेक रंगके जलोंसे परस्पर भिगोते और गुलाल, केसर आदि मलते हुए क्रीडा करने लगे। वेश्याएँ और पुरुषगण तैल, गोरस, सुगंधित जल, हल्दी एवं गाढ़े कुंकुमको एक एक पर छिड़कते और लगाते हुए क्रीड़ा करने लगे॥ ८–१५॥ यह उत्सव देखनेके लिये परम सुन्दरी देवतोंकी स्त्रियाँ श्रेष्ठ विमानों पर बैठ आकाश-मार्गमें आकर उपस्थित हुईं। इधर राजालोगोंकी रानियाँ भी रथ आदि यानों पर सवार होकर बाहर निकलीं। चारो ओरसे रक्षक सिपाही अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर उन सवारियोंके साथ चले। उन सब रानियोंने गंगातट पर पहुँचकर सखियों सहित जलमें प्रवेश किया। तब सखियाँ उनको जलके भीतर जलसे भिगोने लगीं। उस समय लज्जापूर्ण हँसीसे उन रानियोंके मुखकमल मानो खिल उठे। वे रानियाँ अपनी २ दासियोंके द्वारा अपने २ देवरों और सखियोंको जलसे भिगोने लगीं। उनके भीगे हुए वस्त्र शरीरमें चिपक गये और कुच, ऊरू एवं मध्य-भागआदि अंग प्रकट हो पड़े। जलविहारकी उत्सुकताके कारण उनकी चोटियाँ खुलगईं और मालाएँ अपने स्थानसे खिसक गईं। इस भावसे उनके मनोहर विहारको देखकर कामी पुरुषोंके चित्त चञ्चल हो उठे। उत्तम घोड़े जिसमें जुते हुए हैं ऐसे रत्नमाला विभूषित रथ पर सवार सपत्नीक राजा युधिष्ठिर, उस समय क्रियासमूह-सहित साक्षात् श्रेष्ठ यज्ञ राजसूयके समान सुशोभित हुए। तब ऋत्विक् लोगोंने पत्नीसंयाज एवं यज्ञान्त-स्नानसंबंधी सम्पूर्ण कर्मोंके पूर्ण होने पर आचमन करा कर द्रौपदीसहित राजा युधिष्ठिरको विधिपूर्वक गंगामें स्नान कराया। उस समय स्वर्गमें देवगण और पृथ्वीमें मनुष्यगण नगाड़े बजाने लगे एवं देवतागण, ऋषिगण, पितृगण और मनुष्यगण फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ १६–२०॥ फिर उसी स्थानपर आये हुए चारो वर्ण और चारो आश्रमोंके लोगोंने स्नान

किया। राजन्! उस समय स्नान करनेसे तत्क्षण लोगोंके सब प्रकारके महा पातक नष्ट हो जाते हैं। स्नान करके राजा युधिष्ठिरने नवीन रेशमी वस्त्र और अमूल्य उत्तम आभूषण पहने एवं वस्त्र व आभूषणोंसे ऋत्विजों व सदस्योंका पूजन किया। नारायणके भक्त राजा युधिष्ठिरने इसी प्रकार बन्धु, जातिवाले, निमन्त्रित नरपतिगण, सुहृद्गण एवं अन्यान्य सब लोगोंका सत्कार और पूजन किया। सब लोग देवतोंके समान कान्तियुक्त हो, मणिमय कुण्डल, पगड़ी, वस्त्र और महामूल्य हार पहन कर परम शोभायमान और प्रसन्न हुए। स्त्रियोंके मुखमण्डल भी कुण्डलोंकी झलकसे अपूर्व-शोभायुक्त देख पड़ते थे। वे स्त्रियाँ सुवर्णकी काञ्ची पहने हुए देवी सी जान पड़ती थीं। तदनन्तर सुशील ऋत्विक्वृन्द, ब्रह्मवादी सदस्यगण एवं ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, राजगण, देवर्षि, पितृगण, भूतगण, अनुचरवृंदसहित लोकपालगण और अन्यान्य जो लोग यज्ञ देखने आये थे वे सब, भली भाँति पूजा और सत्कारसे संतुष्ट हो, राजासे अनुमति लेकर आनन्दपूर्वक अपने २ भवनको गये। जैसे अमृत पीनेसे मनुष्योंका जी नहीं भरसक्ता वैसे ही वे सब लोग भगवद्भक्त राजर्षि युधिष्ठिरके यज्ञकी वारम्वार प्रशंसा करके भी नहीं तृप्त हुए; राह भर प्रशंसा करते ही रहे। तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने सुहृद्, सम्बन्धी, बान्धव एवं श्रीकृष्णचन्द्रको भी प्रेमपूर्वक विदा किया। उस समय वह वियोगके कष्टको न सहसकनेके कारण विह्वल होगये और उनका हृदय भर आया। राजन्! भगवान् कृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरको अपने वियोगके कष्टसे विह्वल देख कर और उनके कातर वचन सुन कर दयापूर्वक आप कुछ दिनके लिये और ठहर गये और वीर साम्ब आदि यादवोंको द्वारका जानेके लिये आज्ञा दी। स्वामीकी आज्ञाके अनुसार यादवगण द्वारकापुरीको गये। धर्मावतार राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्णकी कृपा और संपूर्ण सहायतासे इस प्रकार मनोरथ-महासागरके पार पहुँचकर निश्चिन्त होगये ॥ २१—३० ॥ राजन्! इधर अच्युतके भक्त राजा युधिष्ठिरके ऐश्वर्य्यको देख और राजसूय यज्ञकी प्रशंसा सुन कर दुर्य्योधनको बड़ा ही सन्ताप हुआ। जिस मयासुर-रचित अन्तःपुरकी सभामें दैत्येन्द्र, सुरेन्द्र और नरेन्द्रोंके सम्पूर्ण विभव सुशोभित थे और जहाँ अपने पतियोंके निकट उपस्थित द्रौपदीजी उनकी सेवा करती थीं उसको देख कर राजा दुर्योधनका हृदय दुस्सह डाहकी अग्निसे जलने लगा। उस अन्तःपुरमें श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियाँ भी रहती थीं। श्रोणीभारसे मंद २ गमन करनेवाली उन रानियोंके नूपुर आदि चरण-स्थित अलंकारोंकी झनकारसे वह भवन और भी शोभायमान था। उन रानियोंके कटितट अत्यन्त मनोहर थे। कुचमण्डलमें लगे हुए कुंकुमके लगवेसे ललाई लिये हुए उनके वक्षःस्थलमें विराजमान हार, उनकी सुन्दरताको बढ़ा रहे थे। उनके प्रफुल्लित कमलतुल्य मुखमण्डलोंमें हिल रही अलकोंकी और कनककलित

कुण्डलोंकी अपूर्व शोभा देख पड़ती थी ॥ ३१–३४ ॥ राजन्! उस मयासुरकी बनाई सभामें एक समय सम्राट् राजा युधिष्ठिर अपने नेत्र-स्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र, बन्धुगण और भाइयों सहित साम्राज्यलक्ष्मीसे सुसम्पन्न होकर साक्षात् इन्द्रके समान सुन्दर सुवर्णके सिंहासन पर बैठे हुए थे और वंदीजन उनकी स्तुति कर रहे थे। इसी अवसरमें माला और किरीट मुकुट एवं खड्ग आदिसे सुशोभित महामानी दुर्य्योधनने भाइयों सहित उस सभामें प्रवेश किया। राहमें द्वारपाल आदिको डाँटता और झिड़कता हुआ दुर्य्योधन सभामें पहुँचा तो उसे मयासुरकी मायामयी रचनामें ऐसा मोह हो गया कि जहाँ सूखा था वहाँ तो जलके भ्रमसे उसने कपड़े समेट लिये और जलमें स्थलके भ्रमसे गिर पड़ा। राजन्! दुर्य्योधनकी यह दशा देख कर, युधिष्ठिरके रोकने पर भी, श्रीकृष्णका संकेत (इशारा) पाकर, भीमसेन, द्रौपदी आदि स्त्रियाँ एवं अन्यान्य उपस्थित राजा लोग ऊँचे स्वरसे हँसने लगे। दुर्य्योधन लज्जित हो गया और आन्तरिक क्रोधसे जल उठा एवं शिर झुका कर चुपचाप वैसे ही अपने भवनको लौट गया। यह अनर्थ देख कर सब सज्जन हाहाकार करने लगे और युधिष्ठिर भी कुछ उदास हो गये। किन्तु भगवान् कृष्णचन्द्रने भला या बुरा कुछ भी नहीं कहा। कृष्णचन्द्र पृथ्वीका भार उतारना चाहते थे, उनकी ही इच्छासे दुर्य्योधनको ऐसा भ्रम हुआ ॥ ३५–३९ ॥

एतत्तेऽभिहितं राजन्यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥
सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥ ४० ॥

राजन्! तुमने जो पूछा कि युधिष्ठिरके यज्ञमें सब लोग प्रसन्न हुए और दुर्य्योधन क्यों अप्रसन्न रहा?—सो दुर्य्योधनकी अप्रसन्नताका यह वृत्तान्त मैंने तुमको सुना दिया ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितम अध्याय।

शाल्वके साथ युद्धका आरम्भ।

श्रीशुक उवाच—अथान्यदपि कृष्णस्य शृणु कर्माद्भुतं नृप ॥
क्रीडानरशरीरस्य यथा सौभपतिर्हतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! सौभ नाम विमानका स्वामी शाल्व जैसे मारा गया—सो क्रीड़ा करनेके लिये नरतनुधारी कृष्णचन्द्रका एक और अद्भुत कर्म्म सुनो। रुक्मिणीके बिवाहमें शिशुपालका मित्र शाल्व जरासन्ध आदि राजोंके

समान युद्धमें यादवोंसे हार गया था। उस समय शाल्वने अपने साथी सब राजोंके सन्मुख प्रतिज्ञापूर्वक कहा था कि "मैं अपने पौरुषसे यादव वंशका विनाश करूँगा, तुम लोग देखोगे कि पृथ्वी पर एक भी यादव जीवित न बचेगा"। मूढ़ राजा शाल्व इस प्रकार प्रतिज्ञा करके वहाँसे चल दिया और नित्य एक मुट्ठी राख एक बार फाँक कर देवदेव प्रभु पशुपतिकी आराधना करने लगा। इस प्रकार घोर तप करते जब एक वर्ष बीत गया तब भगवान् आशुतोष महादेव प्रसन्न होकर प्रकट हुए और शरणागत शाल्वसे बोले कि 'वर माँग'। शाल्वने शंकरसे एक ऐसा विमान माँगा जो यादवोंको डरानेवाला हो और जिसको देवगण भी न तोड़ सकें। भगवान् शंकर उसकी इच्छाके अनुसार 'तथास्तु' कह कर अपने लोकको चले गये। परपुरंजय शिवकी आज्ञासे मय दानवने शाल्वको एक दुर्भेद्य लौहमय सौभ-नामक विमान बना दिया। उस अन्धकारमय, दुष्प्राप्य, कामचारी विमानको पाकर यादवोंके किये वैरको स्मरण करता हुआ शाल्व, बदला लेनेकी इच्छासे उसी क्षण द्वारकापुरीको गया। शाल्वके साथ सेना भी बहुत थी। उसने आकर चारो ओरसे द्वारका पुरीको घेर लिया। उसकी सेना पुरीके उपवन, उद्यान आदिको उजाड़ने एवं गोपुर, द्वार, प्रासाद, अट्टालिका और तोलिका आदि स्थानोंको तोड़ने लगी। विमानसे पुरीके ऊपर अस्त्र–शस्त्र, शिला, वृक्ष, बड़े २ पत्थर और भयंकर सर्प तथा वज्र गिरने लगे। प्रचण्ड आँधी चलने लगी और उड़ी हुई धूलसे दशो दिशाओंमें अन्धकार छागया ॥ १–११ ॥ राजन्! पूर्वसमय जैसे त्रिपुरवासी दानवोंने पृथ्वीवासियोंको पीड़ित किया था उसी प्रकार विमानस्थित शाल्वके द्वारा पीड़ित श्रीकृष्णकी द्वारका पुरीके निवासीजन अत्यन्त पीड़ित हुए। अपनी प्रजाको इस प्रकार पीड़ित और व्याकुल देख कर महारथी वीर प्रद्युम्न भगवान्‌ने "डरना नहीं" कह कर सबको धैर्य्य दिया और आप रथ पर चढ़ कर शत्रुदमन करनेके लिये उद्यत हुए। प्रद्युम्नजीके साथ सात्यकी, चारुदेष्ण, साम्ब, अक्रूर, भाइयों सहित हार्दिक्य, भानुविन्द, गद, शुक, सारण एवं अन्यान्य महाधनुर्धारी यूथपतियोंके भी यूथपति सुभट यादवगण, अभेद्य कवच पहन कर रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंसे अलंकृत अपरिमित चतुरंगिणी सेना साथ ले, युद्ध करनेके लिये पुरसे बाहर निकले। तदनन्तर देवतोंसे और दानवोंसे अमृतके लिये जैसे घोर देवासुर संग्राम हुआ था उसी प्रकार शाल्वकी सेना और यादवोंसे महा भयानक युद्ध होने लगा। राजन्! उस महाभयानक युद्धकी कथा सुननेसे भी रोमाञ्च हो आता है। महाराज! सूर्य्य देव जैसे रात्रिके घोर अन्धकारको दूर कर देते हैं उसी प्रकार रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने सौभपति शाल्वकी प्रसिद्ध मायाओंको दिव्य अस्त्रोंसे क्षण भरमें नष्ट कर दिया। प्रद्युम्नने पचीस लौहमुख, स्वर्णपुङ्ख, सन्नतपर्व सुतीक्ष्ण बाण मार कर शाल्वके

सेनापतिको घायल करडाला। फिर सौ बाण शाल्वके, एक २ बाण सब सैनिकोंके, दस २ बाण सब सेनानायकोंके एवं तीन २ बाण सब वाहनोंके मार कर उनको घायल किया। महात्मा प्रद्युम्नके इस महा अद्भुत कर्मको देख कर शत्रु और मित्र सभी उनकी प्रशंसा करने लगे। शाल्वका मयरचित मायामय विमान कभी बहुरूप और कभी एकरूप होजाता था। कभी देख पड़ता था और कभी अदृश्य हो जाता था। यादवगण उसकी गतिको नहीं देख पाते थे। शाल्वका विमान कभी पृथ्वी पर, कभी आकाशमें, कभी समुद्रके जल पर और कभी पर्वतके शिखर पर अलातचक्रके समान घूमने लगा ॥१२–२२॥ शाल्व और उसके सैनिकों सहित सौभ विमान जहाँ २ देख पड़ता था वहीं २ उस पर यदुयूथपति प्रद्युम्नजी बाणोंकी वर्षा करते थे। अग्नि और सूर्य्यके समान जिनका स्पर्श कष्टकारी है ऐसे विषधर सर्पके सदृश दुस्सह शत्रुपक्षके बाणोंसे, सेनासहित शाल्वका विमान छिन्न भिन्न होने लगा और बाणोंकी चोटसे शाल्वको मूर्च्छा आगई। दोनो लोकोंमें जय पानेकी इच्छा रखनेवाले यादव-भट भी शाल्वके सेनानायकोंके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षासे पीड़ित होकर भी रणभूमिमें डँटे रहे। शाल्वके द्युमान् नाम मन्त्रीको पहले प्रद्युम्नने मूर्च्छित कर दिया था, इस समय उसकी मूर्च्छा जाती रही और उस बलीने प्रद्युम्नके निकट आकर उनके ऊपर वज्रलौहनिर्मित गदा चलाकर सिंहनाद किया। द्युमान्‌की गदाके प्रहारसे प्रद्युम्नका वक्षःस्थल विदीर्ण हो गया और वह अचेत होकर रथ पर गिर पड़े। कृष्णके सारथी दारुकका पुत्र अरिंदम प्रद्युम्नका सारथी था–वह सारथी और रथीके धर्मोंको भली भाँति जानता था; अतएव मूर्च्छित प्रद्युम्नको रणभूमिसे हटा कर अन्यत्र सुरक्षित स्थानमें लेगया। मुहूर्त्त भरमें सचेत हो प्रद्युम्नजीने अपने रथको युद्धभूमिमें न देख कर सारथीसे कहा–"अरे सारथी! तू मुझको युद्धभूमिसे हटा कर यहाँ लेआया, यह तूने अच्छा नहीं किया। छिः! छिः! मैं मूर्च्छित अवस्थामें सारथीके कारण रणभूमिसे हट आया–यह बहुत ही अयोग्य हुआ। मेरे सिवा यदुवंशके और किसी योद्धाका रणभूमिसे भागना नहीं सुना जाता। धर्मयुद्धसे भाग कर पिता कृष्णचन्द्र और चाचा बलभद्रको मैं कैसे मुख दिखाऊँगा? और उनसे क्या कहूँगा? उनसे मैं इस अपने अयोग्य कार्य्यका वर्णन कैसे करूँगा? मेरे भाइयोंकी स्त्रियाँ मुझको हँसेंगी और कहेंगी कि 'हे वीर! युद्धमें शत्रुने तुम्हारे वीर्य्यको कैसे नष्ट कर दिया? कहो तो सही'। यों हँस कर जब वे मेरे कायरपनका वर्णन करेंगी तो मैं उनको क्या उत्तर दूँगा?"। अपने स्वामीके ऐसे वचन सुन कर सारथीने कहा कि–"हे आयुष्मन्! हे विभो! सारथीका धर्म है कि वह विपत्तिमें पड़े हुए रथीकी रक्षा करे और रथीका धर्म है कि वह विपत्तिमें पड़े हुए सारथीकी रक्षा करे। इसी धर्मके अनुसार मैंने ऐसा किया ॥ २३–३२ ॥

एतद्विदित्वा तु भवान्मयापोवाहितो रणात् ॥
उपसृष्टः परेणेति मूर्छितो गदया हतः ॥ ३३ ॥

शत्रुकी गदाके प्रहारसे आप पीड़ित होकर अचेत हो गये थे, इसीसे मैं आपको युद्धभूमिसे हटा लाया" ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितम अध्याय।

शाल्ववध।

श्रीशुक उवाच—स उपस्पृश्य सलिलं दंशितो धृतकार्मुकः ॥
नय मां द्युमतः पार्श्वं वीरस्येत्याह सारथिम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! प्रद्युम्नने जल लेकर मुख धोया और उत्तम अभेद्य कवच पहन, धनुष हाथमें ले, सारथीसे कहा कि 'मुझको वीर द्युमान्के निकट शीघ्र लेचल'। द्युमान् प्रद्युम्नकी सेनाको पीड़ित करके पीछे हटा रहा था, इसी अवसर पर वीर प्रद्युम्न वहाँ पहुँच गये और उन्होने उसके हृदयमें आठ नाराच बाण मार कर चार नाराचोंसे उसके घोड़ोंको और एक नाराचसे सारथीको मार डाला। तदनन्तर वीर प्रद्युम्नने एक नाराचसे उसके धनुषको और एक नाराचसे ध्वजाको काट कर एक नाराचसे उसका शिर धड़से अलग कर दिया। इधर गद, साम्ब, सात्यकी आदि वीर यादव सौभपति शाल्वकी सेनाका संहार करने लगे। सौभ-विमानके ऊपरसे लड़ रहे सैनिकोंके शिर कट २ कर समुद्रके जलमें गिरने लगे। राजन्! परस्पर एक एकको मार रहे यादवों और शाल्वके सैनिकोंका उत्कट युद्ध सात दिन और सात रात तक बराबर इसी प्रकार होता रहा। यह तो हम कह ही चुके हैं कि धर्मराजके निमन्त्रणको पाकर श्रीकृष्णचन्द्र हस्तिनापुरको गये। राजसूय यज्ञ समाप्त हो गया और शिशुपाल भी मारा गया। तदनन्तर अत्यन्त भयानक, अशुभसूचक असगुन होते देख सर्वज्ञ अन्तर्य्यामी कृष्णचन्द्र, बड़े बूढ़े कुरुवंशी, मुनिगण, कुन्ती, और पाण्डवोंसे मिल कर तथा उनसे आज्ञा लेकर द्वारका पुरीको चले। मार्गमें भगवान् मन-ही-मन विचारने लगे कि "मैं बलराम-सहित हस्तिनापुरमें था, अवश्य ही शिशुपालके मित्र राजालोग यह अवसर पाकर द्वारकापुरीमें जाकर किसी-न-किसी प्रकारका उत्पात कर रहे हैं" ॥ १–६ ॥ भगवान्ने द्वारका पुरीमें पहुँच कर देखा कि वास्तवमें उनकी आशंका ठीक थी। पूर्वोक्त प्रकारसे अपने सुभटोंका विनाश होते देख कर कृष्णचन्द्रने

बलभद्रजीको पुरकी रक्षाके लिये नियुक्त कर सामने ही सौभ-विमानसहित शाल्व राजाको देख दारुक सारथीसे कहा कि–"हे सूत! इस दुष्ट शाल्वके निकट शीघ्र मेरे रथको ले चल; यह सौभपति अत्यन्त मायावी है, तथापि तुम तनिक भी डरना या घबड़ाना नहीं" ॥ ७–१० ॥ भगवान्के वचन सुन दारुक सँभलकर बैठगया और रथको हाँकने लगा। शत्रु और मित्र पक्षके सबलोगोंने गरुड़युक्त ध्वजाको देख कर जाना कि श्रीकृष्णचन्द्र आगये ॥ ११ ॥ उस समय शाल्वकी सेना हतप्राय होचुकी थी और वह शिथिल भी हो चला था। उसने युद्धस्थलमें कृष्णको आते देख दारुकके ऊपर एक महा भयानक शब्द करनेवाली शक्ति चलाई ॥ १२ ॥ वह प्रचण्ड शक्ति किसी बड़े भारी उल्कापिण्डके समान दशो दिशाओंको अपने तेजसे प्रकाशित करती हुई बड़े वेगसे आकाशमार्ग हो कर दारुककी ओर चली, किन्तु पास आने भी नहीं पाई और भगवान्ने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसके सैकड़ों खंड कर डाले ॥ १३ ॥ फिर भगवान् कृष्णचन्द्रने शाल्वके हृदयमें सोलह बाण मार कर, सूर्य्य जैसे अपनी किरणोंसे आकाशके अन्धकारको छिन्न-भिन्न कर डालते हैं उस प्रकार अपने असंख्य बाणोंसे आकाशमें घूम रहे सौभ विमानको छिन्न-भिन्न कर डाला॥ १४॥ तब शाल्वने शार्ङ्ग-धनुष-धारी कृष्णके शार्ङ्ग-धनुषयुक्त वाम बाहुमें कई बाण मारे और भगवान्के हाथसे छूट कर शार्ङ्ग धनुष गिर पड़ा। हे राजन्! यह एक बहुत ही अद्भुत बात हुई। यह देख कर सब दर्शक लोग हाहाकार करने लगे। शाल्व भी सिंहनाद करता हुआ जनार्दनसे कहने लगा कि–"अरे मूढ़! हमारे सामने तू हमारे मित्र और भाई शिशुपालकी स्त्रीको हर लाया एवं उस हमारे असावधान मित्रको सभामें तूने मार डाला। तू अपनेको समझता है कि मैं किसीसे हारनेवाला नहीं हूँ। यदि थोड़ी देर मेरे सामने ठहरनेका साहस करेगा तो मैं अभी तुझको अपने तीक्ष्णबाणोंसे उस लोकको भेजदूँगा जहाँसे कोई फिर लौट कर नहीं आता" ॥ १५–१८ ॥ भगवान्ने कहा। "रे मंद! तू वृथा अपनी बड़ाई हाँक रहा है, अपने पास ही अवस्थित अन्तकको नहीं देखता। वीर पुरुष अपना पराक्रम दिखलाते हैं-तेरी तरह वृथा बकबक नहीं करते" ॥ १९ ॥ इतना कह कर भगवान्ने क्रोधपूर्वक महा-भयानक वेगवाली गदासे शाल्व पर प्रहार किया। उस गदाके प्रहारसे शाल्व काँप उठा और उसके मुखसे रुधिर बहने लगा। जब गदाके प्रहारकी व्यथा कुछ निवृत्त हुई, तब शाल्व देखते ही देखते अदृश्य हो गया। घड़ी भरके बाद एक पुरुष कृष्णके समीप आया और प्रणाम करके रोते २ कहने लगा कि "ब्रह्मन्! देवी देवकीने मुझको आपके निकट भेजा है और कहा है कि हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाबाहु! हे पितृवत्सल! जैसे कोई हत्यारा वधिक किसी पशुको बाँध कर लेजाय उस प्रकार शाल्व आपके पिता वसुदेवको

बाँध कर ले गया है"। इस विप्रिय समाचारको सुन कर मनुष्यस्वभावका अनुकरण करके दयालु श्रीकृष्णचन्द्र स्नेहसे विवश हो साधारण मनुष्यके समान कहने लगे कि "सब देवता और दैत्य भी मिल कर जिनको नहीं जीत सके उन पुर-रक्षामें सावधान आर्य्य बलभद्रको जीत कर क्षुद्र शाल्व कैसे मेरे पिताको पकड़ ले गया? अथवा ऐसा भी हो सक्ता है, क्योंकि दैव बड़ा बलवान् है"। श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार कही रहे थे कि सौभराज शाल्व सामने प्रकट हुआ और वसुदेवके ऐसे आकारवाले एक व्यक्तिको दिखा कर श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगा कि "देख, यही तुझको उत्पन्न करनेवाला तेरा पिता है, जिसके लिये तू इस पृथ्वी पर जीवित है। हे मूढ़! मैं तेरे ही आगे इसको मारता हूँ—यदि शक्ति हो तो इसकी रक्षा कर"। यों झिड़क कर मायावी शाल्वने उस वसुदेवके अनुरूप व्यक्तिका शिर खड्गसे काट डाला और उस शिरको लेकर अपने विमान पर चला गया ॥ २०–२७ ॥ श्रीकृष्णभगवान्का ज्ञान स्वतःसिद्ध और पूर्ण है, तथापि स्वजनस्नेहके कारण मुहूर्त्त भर मनुष्य-स्वभावका अनुकरण कर वह शोक करने लगे। किन्तु महानुभाव कृष्णने बहुत शीघ्र जान लिया कि वह वास्तवमें शाल्वकी फैलाई हुई आसुरी मायाका प्रपञ्च है। अच्युतने क्षणभरमें देखा कि स्वप्न-प्रपंचके समान न वहाँ देवकीका दूत है और न पिताका शरीर है एवं शत्रु शाल्व अपने सौभ विमान पर बैठा हुआ आकाशमें उपस्थित है। यह देख कर भगवान् शाल्वको मारनेके लिये उद्यत हुए ॥ २८ ॥ २९ ॥ हे राजेन्द्र! पूर्वापरका विचार न करनेवाले कुछ ऋषियोंका ऐसा कथन है। ऐसा माननेसे उन्हीके पूर्वोक्त वाक्योंमें विरोध होता है—इसका ध्यान वे नहीं करते। देवगण जिनकी स्तुति करते हैं ऐसे अखंड ज्ञानविज्ञानसे पूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रमें अज्ञ जनोंके शोक, मोह, स्नेह, भय आदि धर्मोंका होना निपट असंभव है। साधुजन, जिनके चरणोंकी सेवासे बढ़े हुए आत्मज्ञानके द्वारा अनादि अज्ञान(मैं दुबलाहूँ, मैं दुःखी हूँ इत्यादि मिथ्या भावना)रूप ग्रहको मिटा कर अपने अनन्त ईश्वर—पदको प्राप्त होते हैं, उन साधुओंकी एकमात्र गति ईश्वर कृष्णचन्द्रको कैसे मोह होसक्ता है? अतएव उक्त मुनियोंका मत कुछ भी न होनेके कारण निपट अग्राह्य है। महाराज! शाल्व, बलपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा। अमोघ पराक्रमवाले कृष्णचन्द्रने शत्रुके शस्त्रोंको मार्गमें ही काट २ कर निष्फल कर दिया और अनेक सुतीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुको घायल करके उसके कवच, धनुष और शिरकी रक्षा करनेवाले लोहेके टोपको काट डाला। तदनन्तर भगवान्की गदाके प्रहारसे शाल्वका सौभ विमान चूर्ण होकर समुद्रके जलमें गिर पड़ा। तब शाल्व उस विमानको छोड़ कर पृथ्वी पर खड़ा होगया और गदा उठा कर वेगसे कृष्णचन्द्रकी ओर झपटा। श्रीकृष्णने अपने सामने दौड़ कर आरहे शाल्वके गदायुक्त बाहुको

एक भल्ल वाणसे काट डाला एवं उसको मारनेके लिये प्रलयकालीन सूर्य्यके समान प्रकाशमान अद्भुत सुदर्शन चक्र हाथमें लेकर सूर्य्यसहित उदयाचलके समान सुशोभित हुए। राजन्! इन्द्रने वज्रसे जैसे वृत्रासुरका शिर काटा था वैसेही हरिने उस चक्रसे महामायावी शाल्वका किरीट मुकुट और कुण्डलोंसे सुशोभित शिर उसी क्षण धड़से अलग कर दिया। यह देख कर शाल्वके सब साथी हाहाकार करने लगे॥ ३०-३६॥

तस्मिन्निपतिते पापे सौभे च गदया हते॥
नेदुर्दुन्दुभयो राजन्दिवि देवगणेरिताः॥
सखीनामपचितिं कुर्वन्दन्तवक्रो रुषाऽभ्यगात्॥ ३७॥

राजन्! वह पापी मारागया और सौभ विमान गदाके आघातसे चूर्ण होगया—यह देख कर स्वर्गवासी देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए और नगाड़े बजाते हुए कृष्णचन्द्र पर कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा करने लगे। इधर दन्तवक्र अपने मित्र शिशुपाल और शाल्वके मरनेका समाचार पाकर उनका बदला चुकाने और उनके ऋणसे उऋण होनेके लिये कुपित होकर द्वारका पुरीको चला॥ ३७॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७७॥

अष्टसप्ततितम अध्याय।

तीर्थयात्रामें बलदेवजीके हाथसे सूतका वध।

श्रीशुक उवाच—शिशुपालस्य शाल्वस्य पौण्ड्रकस्यापि दुर्मतिः॥
परलोकगतानां च कुर्वन्पारोक्ष्यसौहृदम्॥ १॥

श्रीशुकदेवजीने कहा है। हे राजन्! महाबली दुर्मति दन्तवक्र, परलोकगत अपने मित्र शिशुपाल, शाल्व एवं पौण्ड्रककी भी मित्रताका बदला चुकानेके लिये क्रोध करके अकेले ही पैदल झपटता हुआ कृष्णके समीप आया। उसकी गतिके वेगसे पग-पग पर पृथ्वी कम्पायमान होती थी। उसको इस प्रकार गदा तान कर अपनी ओर आते देख, श्रीकृष्णजी शीघ्र रथसे फाँद कर पृथ्वी पर खड़े हो गये एवं जैसे सीमा सागरके वेगको रोकती है वैसे ही झपट कर आरहे शत्रुकी गतिको वहीं पर रोक लिया। महामदान्ध कारूषपति दन्तवक्रने गदा तान कर मुकुन्दसे कहा कि "बड़ी बात! बड़ी बात! जो इस समय मैं तुझको पागया। कृष्ण! तू मेरे मामाका पुत्र और मेरे मित्रोंको मारनेवाला है एवं इस समय मुझ-

को भी मारनेके लिये उद्यत है। अतएव रे मंद! मैं इस वज्र ऐसी गदासे आज तुझको मारूँगा। हे अज्ञ! मित्रवत्सल मैं अपनेही शरीरमें उत्पन्न रोगके समान अहितकारी तुझ बन्धुरूप शत्रुको मार कर अपने परलोकगत मित्रोंका ऋण चुकाऊँगा"। जैसे अंकुशके प्रहारसे गजराजको पीड़ा पहुँचाई जाती है उस प्रकार उक्त रूखे वाक्योंसे कृष्णको पीड़ित करके दुष्ट दन्तवक्रने अपनी गदा उनके मस्तकमें मारी एवं प्रहार करके सिंहके समान गर्जने लगा। युद्धस्थलमें गदाकी चोट खाकर भी यदुश्रेष्ठ कृष्णचन्द्र तनिक नहीं विचलित हुए। कृष्णचन्द्रने भी अपनी कौमोदकी गदा शत्रुके वक्षःस्थलमें मारी। उस प्रचण्ड गदाकी चोटसे दन्तवक्रका हृदय फट गया और मुखसे रुधिर गिरने लगा। उसके केश अस्तव्यस्त हो गये, हाथ-पैर फैल गये और उसका शरीर प्राणशून्य हो कर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ १-९ ॥ हे राजन्! जैसे शिशुपालके शरीरसे निकली हुई ज्योति कृष्णके चरणोंमें लीन हो गई थी वैसे ही दन्तवक्रके शरीरसे भी अत्यन्त सूक्ष्म ज्योति निकल कर सब देखनेवालोंके सामने कृष्णचन्द्रमें लीन हो गई। दन्तवक्रका भाई विदूरथ भाईके शोकसे पीड़ित होकर कृष्णको मारनेकी अभिलाषासे ढाल तवार लेकर बड़ी २ साँसें लेता दौड़ा हुआ आया। महाराज! श्रीकृष्णने तीक्ष्ण धारावाले चक्रसे, उस झपट कर आरहे विदूरथका भी किरीट-कुण्डल-युक्त शिर काट डाला। इस प्रकार सौभविमानसहित शाल्व और अनुजसहित दन्तवक्र आदि दुर्जय वीरोंको नष्ट करके, यादवोंसे घिरे हुए कृष्णचन्द्रने भली भाँति सजाई गई अपनी द्वारका पुरीमें प्रवेश किया। उस समय देवता और मनुष्यगण उनकी स्तुति करने लगे। मुनिगण, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, महानाग, अप्सरोंके झुंड, पितृगण, यक्ष, किन्नर और चारणगण उनके प्रशंसनीय चरित्रको गाने लगे एवं देवगण उनके ऊपर परम आनन्दसे फूलोंकी वर्षा करने लगे। हे राजेन्द्र! योगेश्वरोंके भी ईश्वर जगदीश्वर भगवान् कृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक इन दुर्जय और महाबली वीरोंको परास्त किया—यह कुछ आश्चर्य नहीं है। किन्तु कुछ पशुओंके समान अज्ञानसे अंधे लोग कहते हैं कि वही कृष्णचन्द्र जरासंधसे हार गये थे ॥१०-१६॥ राजन्! एक समय बलभद्रजीने सुना कि कौरवों और पाण्डवोंमें परस्पर युद्ध होनेका उद्योग हो रहा है। यह जान कर भगवान् अनन्त तीर्थयात्राके बहानेसे टल कर प्रभासक्षेत्रको चल गये। दुर्य्योधन उनका शिष्य था एवं पाण्डव भी अपने बन्धु थे, अतएव उन्होने किसी ओरसे युद्धमें सम्मिलित होना उचित नहीं समझा। बलभद्रजीने प्रभासमें जाकर स्नान किया और देव, ऋषि, पितर तथा मनुष्योंको तृप्त व सन्तुष्ट किया। वहाँसे वह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसहित विपरीतवाहिनी सरस्वतीके तट पर गये। वहाँसे क्रमशः पृथूदक, बिन्दुसरोवर, त्रितकूप, सुदर्शन नद, विशाला नदी, ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ, पूर्ववाहिनी सरस्वती

एवं यमुना व गंगाके परवर्ती सब तीर्थोंमें होते हुए नैमिषारण्य क्षेत्रमें पहुँचे। सुदीर्घ समयके लिये दीक्षा लेकर महायज्ञमें प्रवृत्त मुनियोंने बलभद्रजीको देख उठ कर विधिपूर्वक उनका अभिनन्दन और प्रणाम करके उचित रीतिसे पूजन किया ॥ १७—२१ ॥ ब्राह्मणगण-सहित भली भाँति पूजित बलभद्रजीने मुनियोंके दिये आसन पर बैठ कर देखा कि महर्षि वेदव्यासके शिष्य रोमहर्षण व्यासासन पर बैठे हुए हैं। रोमहर्षणका जन्म सूतजातिमें हुआ था। बलभद्रजीने देखा कि वह उनको देख कर न खड़े हुए, न प्रणाम किया, न हाथ जोड़े। ब्राह्मणोंसे भी ऊँचे आसन पर इस प्रकार ढिठाईके साथ बैठे हुए सूतको देख कर बलभद्रजीको अपार क्रोध हुआ। कुपित होकर बलभद्रने कहा—"यह व्यक्ति प्रतिलोमज होकर भी इन सब धर्मपालक ब्राह्मणोंसे और हमसे ऊँचे आसन पर कैसे बैठा हुआ है? यह दुर्मति मारडालने योग्य है। यह भगवान् वेदव्यासका शिष्य है, इसने उनसे अनेक इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्र पढ़े हैं, तो भी इसमें शिष्टाचार और विनयका लेशमात्र नहीं है। यह अपनेको पण्डित मान कर वृथा घमंडमें चूर हो रहा है। यह आत्मदमन नहीं करसका, अतएव नटोंके समान इसका बहुत पढ़ना गुण नहीं समझा जासक्ता, वह सब निष्फल है; क्योंकि यह शास्त्रोक्त मार्ग पर स्वयं नहीं चलता। जो लोग केवल धर्मके चिन्होंको धारण करते हैं, परन्तु धर्मका पालन नहीं करते वे अधिक पापी हैं। धर्मका ध्वंस करनेवाले ऐसे लोगोंको मारनेके लिये ही मेरा अवतार हुआ है" ॥२२-२७॥ राजन्! भगवान् बलभद्र दुष्टोंके भी वध करनेका विचार छोड़ चुके थे, तथापि होनी तो टाले नहीं टलती! उन्होने पूर्वोक्त वाक्य कह कर हाथमें स्थित कुशके अग्रभागसे सूतका वध करडाला। यह देख कर मुनिगण हाहाकार करते हुए अत्यन्त खिन्न हो संकर्षण देवसे बोले—"प्रभो! आपने अधर्म्म किया। हे यदुनन्दन! जब तक हमारा यह यज्ञका अनुष्ठान समाप्त न हो तब तकके लिये हमने इन सूतको ब्रह्मासन एवं शारीरिक कष्टसे रहित आयु भी दी थी। आपने अजानकी भाँति इनका वध करके ब्रह्मवधके समान पाप कर डाला। भगवन्! आप योगेश्वर हैं, वेद भी आपको अपने नियमके अनुकूल चलने पर बाध्य नहीं कर सक्ते। तथापि हे लोकपावन! यदि आप अन्यके द्वारा प्रेरित न होकर, अन्य लोगोंको शिक्षा देनेके लिये स्वयं इस ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करें तो बहुत उत्तम होगा" ॥ २८-३२ ॥ **श्रीभगवान् बलभद्रने कहा।** "मैं लोगों पर अनुग्रह करनेके लिये, अर्थात् उनको शिक्षा देनेके लिये इस हत्याका प्रायश्चित्त करूँगा। मुख्य पक्षमें प्रायश्चित्तके जो कुछ नियम हों उन्हे आप बतावें। हे मुनिवरो! इस सूतके लिये दीर्घ आयु, बल और इन्द्रियोंका शिथिल न होना आदि जो कुछ आप चाहें सो मैं अपनी योगमायाके बलसे सिद्ध कर दूँ" ॥ ३३ ॥३४॥

ऋषियोंने कहा। "हे राम! हम यह चाहते हैं कि जिसमें आपका अस्त्र और विक्रम तथा मृत्युका पराक्रम वृथा न हो एवं हमारे वाक्य भी असत्य न हों वैसा ही आप करिये" ॥ ३५ ॥ बलभद्रजीने कहा। "वेदमें कहा है कि जीव आप ही पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है। अतएव इसका पुत्र उग्रश्रवा नाम सूत इसके आसन पर बैठ कर आप लोगोंको पुराण आदि धर्म्मग्रन्थ सुनावेगा एवं आप लोगोंके कथनानुसार बहुत आयु, बल एवं इन्द्रियसम्बन्धी स्वस्थता भी उसको प्राप्त होगी ॥ ३६ ॥ हे श्रेष्ठ मुनिगण! अब आप लोगोंकी और क्या कामना है, कहिये, मैं उसे पूर्ण करूँ। हे ज्ञानियो! और मेरे अज्ञानकृत ब्रह्मवधका प्रायश्चित्त क्या है, उसे भी विचार करके बतलाइये" ॥ ३७ ॥ ऋषियोंने कहा। "हे देव! इल्वलका पुत्र बल्वल नाम एक घोर दानव प्रत्येक पर्वमें आकर हमारे यज्ञको दूषित करता है ॥ ३८ ॥ नाथ! वह दानव पीब, रुधिर, विष्ठा, मूत्र, मदिरा और मांस आदि अशुद्ध पदार्थोंकी वर्षा करके हमारे यज्ञमें विघ्न करता है। उसको आप मारिये। यही आप मानो हमारी परम सेवा करेंगे ॥ ३९ ॥

ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः ॥
चरित्वा द्वादशान्मासाँस्तीर्थस्नायी विशुध्यसे ॥ ४० ॥

भगवन्! तदनन्तर आप बारह महीने तक काम–क्रोध आदिसे रहित हो, कष्ट सहते हुए भारतवर्षमें घूम कर तीर्थोंमें स्नान–दान आदि करिये; यही आपके लिये ब्रह्मवधका प्रायश्चित्त होगा ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितम अध्याय।

बलदेवजीकी तीर्थयात्रा।

श्रीशुक उवाच–ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचण्डः पांशुवर्षणः ॥
भीमो वायुरभूद्राजन्पूयगन्धस्तु सर्वशः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! तदनन्तर पर्व–समयमें धूलकी वर्षा करती हुई भयानक प्रचण्ड आँधी चलने लगी और चारो ओर घोर दुर्गन्ध उठी। उसके उपरान्त यज्ञशालामें पीब आदि अपवित्र पदार्थोंकी वर्षा होने लगी और थोड़ी देरमें वही भयंकर बल्वल दानव त्रिशूल हाथमें लिये देख पड़ा ॥ १ ॥ २ ॥ उस दानवका सुदीर्घ शरीर अञ्जनराशिके समान अत्यन्त काला था, उसकी शिखा और श्मश्रुके बाल तपे हुए ताँबेके तुल्य लाल २ थे, टेढ़ी २ भौहोंसे भयानक

उसका मुख बड़ी २ दाढ़ोंसे और भी कराल हो रहा था ॥ ३ ॥ उसको देख कर बलरामने अपने शत्रुदलदलन मूशलको और दैत्यदलदमन हलको याद किया। याद करते ही वे दोनो शस्त्र तुरन्त आकर उपस्थित हुए ॥४॥ बलभद्रने क्रोध करके उस ब्राह्मणविरोधी आकाशचारी दैत्यको हलसे अपने समीप खींच कर उसके शिर पर मूशल मारा। मूशलके प्रहारसे उसका मस्तक चूर्ण होगया और वह मुखसे रुधिर उगलता हुआ आर्त्त नाद करके प्राणहीन हो वज्राहत, धातुप्रवाहसे अरुणवर्ण पर्वतके समान पृथ्वी पर गिर पड़ा॥५॥६॥यह देख कर वे सब महाभाग ऋषिगण परम प्रसन्न हो बलभद्रकी स्तुति व प्रशंसा करते हुए उनको अमोघ आशीर्वाद देने लगे। देवतोंने जैसे वृत्रासुरवधके उपरान्त इन्द्रका अभिषेक किया था उसी प्रकार ऋषियोंने दानववधके उपरान्त बलभद्रका अभिषेक किया ॥ ७ ॥ एवं उनको कभी न मुरझानेवाले कमलके फूलोंकी बनी हुई, लक्ष्मीकी निवासभूमि वैजयन्ती माला दी, तथा दिव्य वस्त्र, उत्तरीय और सब दिव्य आभूषण दिये ॥ ८॥ तदनन्तर ऋषियोंसे आज्ञा लेकर बलभद्रजीने ब्राह्मणोंसहित कौशिकी नदीमें जाकर स्नान किया। वहाँसे चलकर उस सरोवरमें गये जहाँसे सरयू नदी निकली है ॥ ९ ॥ अनुलोमक्रमसे सरयूमें स्नान कर प्रयागराजमें पहुँचे। वहाँ स्नान तथा देवता आदिका तर्पण करके पुलह ऋषिके आश्रमको गये। वहाँसे क्रमशः गोमती, गण्डकी, विपाशा नदी और शोण नदमें स्नान करते हुए गया क्षेत्रमें पहुँचे। गयामें पितृपूजन व पिण्डदान करके गङ्गासागर–सङ्गमको गये। वहाँ स्नान आदि करके महेन्द्राचलको गये। वहाँ परशुरामको देख कर व प्रणाम कर सप्तगोदावरी, वेणा, पंपा, भीमरथी आदि तीर्थोंमें होते हुए शिवके निवासस्थान श्रीशैल पर्वत पर गये। वहाँ शिवके और स्कन्ददेवके दर्शन करके द्राविड़ देशमें अवस्थित वेंकट पर्वतको गये। प्रभु बलभद्र वहाँसे कामकोष्टी, काञ्चीपुरी, श्रेष्ठ नदी कावेरी होते हुए श्रीरङ्ग नाम महापवित्र स्थानमें पहुँचे; जहाँ हरिभगवान् नित्य निवास करते हैं। फिर वहाँसे हरिके क्षेत्र ऋषभ पर्वत और दक्षिण–मथुराको देखते हुए महापातकनाशन सेतुबन्ध तीर्थको गये। वहाँ पर हलायुध बलभद्रने ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दस हजार गौवें दीं। वहाँसे कृतमाला और ताम्रपर्णी नदीमें स्नान करते हुए मलय पर्वतको गये। बलभद्रजी, वहाँ बैठे हुए अगस्त्य मुनिको अभिवादन व नमस्कार करके और उनसे आशीर्वाद व जानेकी अनुमति लेकर दक्षिणसमुद्रको गये और वहाँ कन्या नाम दुर्गा देवीके दर्शन किये॥१०–१७॥ हे राजेन्द्र! वहाँसे फाल्गुण नाम पवित्र क्षेत्रमें पहुँच कर, जहाँ विष्णु भगवान् नित्य निवास करते हैं उस पंचाप्सरसनाम परम पवित्र उत्तम सरोवरमें स्नान किया और ब्राह्मणोंको दस हजार गौवें दीं॥१८॥ वहाँसे भगवान् बलभद्रजी केरल, त्रिगर्त्त आदि देशोंमें होते हुए गोकर्ण नाम शिवके क्षेत्रमें पहुँचे; जहाँ शङ्करदेव सदा निवास करते हैं ॥१९॥

द्वीपनिवासिनी आर्य्या देवीके दर्शन करते हुए बलभद्रजी सूर्य्यारक क्षेत्रको गये और वहाँसे तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या नाम नदियोंमें स्नान करते हुए दण्डकारण्य होकर माहिष्मती पुरीके पास बह रही नर्म्मदा नदीके तट पर पहुँचे। वहाँसे मनुतीर्थमें स्नान करते हुए फिर लौट कर प्रभास क्षेत्रमें आये ॥ २० ॥ २१ ॥ प्रभास क्षेत्रमें ब्राह्मण लोगोंके मुखसे कौरव-पाण्डवोंके युद्धमें सब क्षत्रिय वीरोंके विनाशकी चर्चा सुन कर भगवान् बलभद्रने जाना कि पृथ्वीका भार उतर गया ॥२२॥ उस समय भीमसेन और दुर्य्योधन, दोनो वीर युद्धभूमिमें गदायुद्ध कर रहे थे। यदुनन्दन बलभद्र उनके युद्धको रोकनेकी इच्छासे उस स्थान पर गये ॥ २३ ॥ उनको देख कर युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, अर्ज्जुन एवं श्रीकृष्णने प्रणाम किया एवं 'यह क्या कहनेके लिये यहाँ आये हैं'—यह सोच कर वे सब चुपचाप उनके मुखको निहारने लगे ॥ २४ ॥ बलभद्रजीने देखा कि भीमसेन और दुर्य्योधन, दोनो वीर गदा हाथमें लिये विजयकी इच्छासे भाँति २ के पैंतरे बदल रहे हैं ॥ २५ ॥ यह देख कर बलदेवने उनसे कहा कि "हे राजन्! और हे भीमसेन! तुम दोनो बल और वीरतामें समान हो। मेरी समझमें एक (दुर्य्योधन) शिक्षा (दावपेंच) में अधिक हैं और एक (भीमसेन) बल (दम) में अधिक है। तुम दोनो वीर्य्यमें समान हो, अतएव इस युद्धमें एककी जीत या एककी हार नहीं दिखाई देती। बस, तुम यह समझ कर इस निष्फल युद्धको रोक दो" ॥२६॥२७॥ राजन्! भीमसेन और दुर्य्योधनमें चिरकालसे शत्रुता चली आरही थी, परस्पर कहे हुए कटुवचनों और किये हुए अपकारोंको स्मरण करके वे दोनो एक एकके प्राण लेने पर उतारू थे; अतएव उन्होने बलभद्रजीके यथार्थ वचनों पर ध्यान नहीं दिया और लड़ते ही रहे ॥ २८ ॥ तब 'अदृष्ट बड़ा ही प्रबल है'—यह समझ कर बलभद्रजी वहाँसे चलदिये। बलराम भगवान् वहाँसे द्वारका पुरीको गये और सजायतीय बन्धु उग्रसेन आदिसे मिल कर उनको प्रसन्न किया। प्रभु बलदेव द्वारकाधामसे चल कर फिर नैमिषारण्य क्षेत्रको गये। सम्पूर्ण प्रकारकी भेद-भावना छोड़ कर शान्तस्वरूप हो रहे यज्ञके अंगस्वरूप बलभद्रजीको उस पुण्यभूमिमें ऋषियोंने आनन्दपूर्वक विधिसहित अनेक यज्ञ कराये ॥२९॥३०॥ भगवान् बलभद्रने भी उनको विशुद्ध ब्रह्मज्ञानका उपदेश किया, जिससे वे मुनिगण इस विश्वको आत्मामें एवं आत्माको विश्वमात्रमें अवस्थित जान कर कृतार्थ हुए ॥३१॥ बलभद्रजीने जातिवाले, बन्धु, और सम्पूर्ण सुहृद् जनोंके साथ अपनी पत्नियों सहित यज्ञके अन्तमें अवभृथ स्नान किया एवं सुन्दर वस्त्र व उत्तम माला पहन कर चाँदनी सहित पूर्ण चन्द्रमाके समान शोभायमान हुए ॥ ३२ ॥ हे राजन्! मायामानवरूप, महाबली, अप्रमेय, अनन्त बलदेवजीने इस प्रकारके अनेकानेक पवित्र कर्म्म किये हैं ॥ ३३ ॥

योऽनुसरेत रामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः ॥
सायंप्रातरनन्तस्य विष्णोः स दयितो भवेत् ॥ ३४ ॥

जो कोई प्रातःकाल और सन्ध्याके समय अद्भुत कर्म्म करनेवाले अनन्त बलरामके सब कार्य्योंको स्मरण करते हैं उन पर विष्णु भगवान् परम प्रसन्न होते हैं ॥३४॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

अशीतितम अध्याय।

सुदामाचरित्र।

राजोवाच—भगवन्यानि चान्यानि मुकुन्दस्य महात्मनः ॥
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामहे प्रभो ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने कहा। हे भगवन्! हे प्रभो! महात्मा, अनन्तवीर्य्यशाली मुकुन्दके और २ सब चरित्र भी मैं सुनना चाहता हूँ। ब्रह्मन्! उत्तमश्लोक भगवान्‌की सत्कथाओंको एक बार सुन कर कौन सार-असारके विवेकसे युक्त पुरुष फिर उनके सुननेकी इच्छा न करेगा? अवश्य ही अभिलाषाके बाण उसके हृदयको उन कथाओंके सुननेके लिये वारम्वार उत्कण्ठित करेंगे ॥ १ ॥ २ ॥ भगवन्! जिससे हरिके गुणोंका वर्णन किया जाय वही वाणी सफल है। जिनसे हरिकी सेवा और टहल की जाय वे ही हाथ सफल हैं। जिससे हरिको चराचर जगत्‌में व्याप्त समझ कर उनका मनन किया जाय वही मन सफल है। जिनसे हरिकी पतितपावनी पवित्र कथाएँ सुनी जायँ वे ही कान सफल हैं ॥३॥ जिससे हरिके चर और अचर—दोनो रूपोंको प्रणाम किया जाय वही मस्तक सफल है। जिनसे हरिके चर और अचर—दोनो रूपोंका दर्शन किया जाय वे ही नेत्र सफल हैं और जिनसे विष्णुके एवं उनके भक्तोंके चरणोदकका सेवन किया जाय वे ही अङ्ग सफल हैं ॥४॥ श्री सूतजी शौनक आदि ऋषियोंसे कहते हैं कि विष्णुदत्त राजा परीक्षित्‌के यों पूछने पर वेदव्यासतनय श्रीशुकदेवजी वासुदेव भगवान्‌में मन लगा कर बोले ॥ ५ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।** हे राजेन्द्र! वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ एक ब्राह्मण कृष्णचन्द्रके लड़कपनके सखा थे। वह, इन्द्रियोंसे जिनका भोग किया जाता है उन विषयोंसे विरक्त, शान्त और जितेन्द्रिय थे। वह ब्राह्मण गृहस्थ थे। जो कुछ आपहीसे मिल जाता था उसीमें निर्व्वाह करते थे। वह स्वयं एक महामलीन फटे हुए वस्त्रका टुकड़ा पहने रहते थे और उनकी पतिव्रता स्त्री भी पतिके समान वैसा ही वस्त्र पहने रहती थी। नित्य भोजन न मिलनेके कारण

उनकी स्त्री भी उनके साथ भूखके असह्य कष्टको सहती थी। पति, सब भोगकी सामग्रियोंको नहीं लासक्ता था, यहाँतक कि आवश्यक वस्त्र और भोजनका भी प्रबन्ध न करता था, अतएव वह पतिव्रता स्त्री सर्वदा अत्यन्त दुःख सह कर जीवनके दिन बिताती थी। भूखसे जिसका मुख सूख रहा है उस पतिव्रताने एक दिन डरसे काँपते २ पतिके निकट जाकर कहा कि "मैंने सुना है साक्षात् लक्ष्मीपति, ब्राह्मणहितकारी, शरणागतपालक, यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आपके सखा हैं। हे महाभाग! वह साधुओंकी परम गति हैं, आप उनके निकट जाइये। आप कुटुम्बी हैं, दरिद्र होनेके कारण कष्ट पा रहे हैं, यह देख कर वह आपको अवश्य ही बहुत सा धन देंगे। वह भोज-वृष्णि-अन्धकवंशी यादवोंके स्वामी इस समय द्वारका पुरीमें रहते हैं। नाथ! वह जगद्गुरु अपने चरणकमलोंको स्मरण करनेवालेको अपना शरीर भी दे डालनेमें संकोच नहीं करनेवाले हैं; तब अपने परम भक्त जो आप हैं उनको उनसे धन मिलनेमें क्या सन्देह है? प्रभो! यद्यपि आपको धनकी रत्ती भर चाह नहीं है, तथापि बिना धनके गृहस्थीका निर्वाह होना कठिन है; इस लिये मेरी समझमें आपका उनके पास जाना उचित और आवश्यक है"। इस प्रकार स्त्रीके वारम्वार प्रार्थना करने पर उन दरिद्र ब्राह्मणने भी सोचा कि वहाँ जानेमें और कुछ मिले या न मिले, परन्तु परम लाभ यही होगा कि श्रीकृष्णचन्द्रके दुर्लभ दर्शन अवश्य प्राप्त होंगे। यह सोच कर विप्रवर सुदामाने कृष्णके निकट जानेका निश्चय कर लिया और फिर स्त्रीसे कहा कि "हे कल्याणि! यदि कुछ कृष्णचन्द्रको भेंट देने योग्य सामग्री घरमें हो तो लाओ, जिसको लेकर मैं प्रभुके निकट जाऊँ"। घरमें तो कुछ था नहीं, अतएव सुदामाकी स्त्री परोससे चार मुट्ठी चाँवल माँग लाई और उनको एक मैले और फटे कपड़ेके टुकड़ेमें बाँध कर कृष्णको भेंट देनेके लिये पतिको दिया। उस चाँवलोंकी पुटकिया-को लेकर विप्रवर द्वारकापुरीको चले। "कृष्णभगवान्के दर्शन मुझको किस प्रकार प्राप्त होंगे?"—राहमें यही सोचते हुए सुदामाजी द्वारका पुरीमें पहुँचे ॥ ६–१५ ॥
हे राजेन्द्र! सुदामा ब्राह्मण तीन रक्षक सैनिकोंकी चौकियों और ड्योढ़ि-योंको बे रोक-टोक नाँघ कर भगवान्के अन्तःपुरमें पहुँचे। तदनन्तर जिनमें बिना आज्ञा वृष्णि और अन्धकवंशी यादव भी नहीं जासक्ते उन भगवान् कृष्णचन्द्रकी सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके महलोंमेंसे एक महलमें सुदामाजीने प्रवेश किया। वहाँ पहुँचतेही सुदामाजी ऐसे प्रसन्न हुए मानो उनको ब्रह्मानन्द प्राप्त हो गया। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र उस महलमें प्रियाके पलँग पर लेटे हुए थे, सो विप्रवर सुदामाको दूरहीसे आते देख कर उठ बैठे और प्रसन्नता-पूर्वक आगे बढ़, दोनो हाथ फैला कर प्रिय सखा सुदामाको हृदयसे लगा लिया। प्रिय सखा ब्राह्मणके अंगसंगसे भगवान्को परम प्रसन्नता प्राप्त हुई और आनन्दके

कारण उनके नेत्रकमलोंसे प्रेमके आँसू बहने लगे। राजन्! तदनन्तर अच्युतने प्रिय बन्धु सुदामाको आदरसहित लेजा कर अपने पलँग पर बैठाया एवं आप ही पूजनकी सामग्री लाकर, अपने हाथसे उनके चरणोंको धोकर, उस जलको, स्वयं त्रिलोकपावन हो कर भी, अपने शिर पर धारण किया। फिर प्रिय मित्रके शरीरमें दिव्यगन्धयुक्त चन्दन, अगुरु और कुङ्कुम लगाया एवं सुगन्धित धूप, दीप, इत्यादिसे पूजन करके दिव्य भोजन कराये और तदनन्तर पान और एक दुधार गऊ देकर कुशल पूछी। ब्राह्मण सुदामाका शरीर अत्यन्त मलीन और क्षीण था, देह भरमें ठौर २ नसें देख पड़ती थीं और वह एक फटा और मैला वस्त्र पहने थे। राजन्! साक्षात् लक्ष्मीका अवतार रुक्मिणी देवी सखियों सहित रत्नदण्डयुक्त व्यजन हाथमें लिये उन्ही दरिद्रवेष ब्राह्मणकी सेवा करने लगीं। पुण्यकीर्त्ति श्रीकृष्णचन्द्रको अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक एक दरिद्र भिक्षुककी पूजा करते देख अन्तःपुरमें रहनेवाले सब लोग अत्यन्त विस्मित हो कर परस्पर कहने लगे कि "अहो! लक्ष्मीहीन, जनसमाजमें मान न पानेवाले इस अधम, अवधूत, भिक्षुकने कौन ऐसा पुण्य किया है जो तीनो लोकोंके गुरु साक्षात् लक्ष्मीपतिने पलँग पर बैठी हुई लक्ष्मीको छोड़, बड़े भाईके समान आदरसहित गलेसे लगा कर इसका पूजन और सत्कार किया!" ॥ १६–२६ ॥

हे राजन्! फिर भगवान् कृष्णचन्द्र ब्राह्मण सुदामाका हाथ हाथमें लेकर उस समयकी मनोहर बातें करने लगे जिस समय दोनो जने गुरुके यहाँ रह कर एक साथ विद्याध्ययन करते थे। भगवान्ने कहा—"हे धर्मज्ञ विप्रवर! गुरुदक्षिणा देनेके उपरान्त गुरुके घरसे लौट कर तुमने अपने योग्य स्त्रीसे विवाह किया या नहीं? मुझे विदित है कि सांसारिक भोगोंमें तुम्हारी रुचि नहीं हैं, अतएव तुम धनके उपार्जनकी चेष्टा भी नहीं करते। मित्र! इस संसारमें कुछ लोग ऐसे भी हैं जो विषयभोगमें आसक्त न हो ईश्वरकी मायाके द्वारा रचित विषय-वासनाओंको तज देते हैं और जैसे मैं केवल अन्य लोगोंको मार्ग दिखानेके लिये (ईश्वर होकर भी) कर्म्म करता हूँ उस प्रकार कर्म करते हैं। ब्रह्मन्! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जहाँ रह कर, गुरुसे सब जानने योग्य विषयोंको पढ़ कर, अज्ञानरूप अंधकारको नाँघ कर, ज्ञानके प्रकाशमें पहुँचते हैं उस गुरुकुलमें हम और तुम साथ ही रहे हैं। भला कभी उस समयको स्मरण करते हो? मित्र! जिसके वीर्यसे जन्म होता है वह पिता प्रथम गुरु है और उससे श्रेष्ठ दूसरा गुरु वह है जो यज्ञोपवीत-संस्कारमें गायत्रीका उपदेश करके वेद पढ़ाता है और वेदविहित वर्णाश्रमसम्बन्धी सत्कर्मोंकी शिक्षा देता है तथा सब वर्ण और आश्रमवाले व्यक्तियोंका सबसे अधिक माननीय तीसरा गुरु मैं हूँ; अन्तःकरणमें अवस्थित मैं सबको विशुद्ध ज्ञानका उपदेश करता हूँ। ब्रह्मन्! इस पृथ्वी पर चारो वर्ण और चारो आश्रमके लोगोंमें वे ही स्वार्थ समझनेमें प्रवीण हैं जो मुझ गुरुके

उपदेश द्वारा सहजमें सुखपूर्वक अपार संसारसागरके पार पहुँच जाते हैं। मैं, जितना गुरुकी सेवा करनेसे सन्तुष्ट होता हूँ उतना किसी भी वर्णाश्रमधर्म्मके पालनसे नहीं सन्तुष्ट होता ॥ २७-३४ ॥ मित्र! वह घटना तो तुमको न भूली होगी? जव हम तुम गुरुके यहाँ रह कर एक-साथ विद्या पढ़ते थे। एक दिन हम और तुम गुरुपत्नीकी आज्ञासे लकड़ी लेनेके लिये महावनको गये। उस समय वर्षाऋतु नहीं थी, परन्तु अकस्मात् प्रचण्ड आँधी चलने लगी, मेघोंने आकाशमण्डलको घेर लिया एवं बड़े वेगसे जल वरसने लगा। बीच २ में बार २ होरही विजलीकी घोर कठोर कड़कड़ाहट मनमें भय उत्पन्न करने लगी ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इतनेमें सूर्य्य भी अस्त होगये और दशो दिशाओंमें महा अन्धकार छागया। जहाँ पृथ्वी नीची थी वहाँ जल भर गया, जिससे ऊँचा नीचा कुछ भी न जान पड़ता था। उस समय राह चलना अत्यन्त कठिन था। प्रचंड वायुके झोंके और जलकी बौछारसे हमको अत्यन्त कष्ट होने लगा। हमको यह नहीं जान पड़ता था कि हम किस दिशाको जारहे हैं। हम और तुम शिर पर लकड़ीके गट्ठे धरे, एक एकका हाथ पकड़े, उस जलपूर्ण वनमें रात भर इधरसे उधर भटकते और क्लेश सहते रहे। सूर्योदय होनेमें कुछ ही देर थी, उस समय हमको ढूँढते २ हमारे आचार्य्य गुरु सान्दीपिनिजी वनमें पहुँचे और हमको इस प्रकार वनमें भटकते और कष्ट सहते देख कर दयापूर्वक कहने लगे—"अहो! पुत्रो! यह आत्मा ही सब प्राणियोंको परम प्रिय होता है। तुम उस प्रिय आत्माको तुच्छ और मुझको श्रेष्ठ समझ कर मेरे लिये ऐसे घोर कष्ट और दुःखको सह रहे हो! शुद्ध भावसे सर्वार्थसाधक शरीर तक अर्पण करदेनेसे बढ़ कर और क्या गुरुकी सेवा होसक्ती है? सत्-शिष्य इससे बढ़ कर गुरुकी सेवा नहीं कर सक्ते। हे मेरे प्रिय शिष्यो! मैं तुम्हारे इस कार्य्यसे तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हारे सब मनोरथ मेरे आशीर्वादसे पूर्ण हों और जो तुमने वेद आदि शास्त्र मुझसे पढ़े हैं उनका सारांश (ज्ञान) इस लोक और परलोकमें भी कभी तुमको विस्मृत न हो" ॥ ३७-४२ ॥ ब्रह्मन्! इस प्रकार गुरुकुलमें रहनेके समय उस हमारे विद्यार्थी-जीवनमें जो अनेक घटनाएँ हुई हैं उनको कदाचित् आप न भूले होंगे? मित्र! गुरुकी कृपासे ही मनुष्य शान्तिको प्राप्त होकर पूर्णमनोरथ होते हैं" ॥ ४३ ॥ भगवान्के मधुर मनोहर वचन सुन कर सुदामाने कहा—"हे देवदेव! हे जगद्गुरो! आप सत्यसंकल्प हैं; भाग्यवश गुरुकुलमें आपके सहवासको प्राप्त होकर मैं कृतार्थ हुआ। नाथ! आपकी कृपासे मुझको कोई कामना नहीं है; सब सुसम्पन्न है॥४४॥

यस्य च्छन्दोमयं ब्रह्म देह आवपनं विभोः ॥
श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यन्तविडम्बनम् ॥ ४५ ॥

प्रभो ! सम्पूर्ण मङ्गलोंकी उत्पत्तिका आकर वेदमय ब्रह्म आपकी मूर्ति है । स्वामिन् ! आपका गुरुकुलमें रह कर विद्या पढ़ना अत्यन्त विड़म्बनाकी बात अथवा लोकाचरणमात्र है" ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कंधे उत्तरार्धे अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

एकाशीतितम अध्याय ।

सुदामाको महाऐश्वर्य्य मिलना ।

श्रीशुक उवाच–स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन्हरिः ॥
सर्वभूतमनोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे राजन् ! विप्रवर सुदामासे इस प्रकार बातें करके सब प्राणियोंके अन्तर्य्यामी सर्वज्ञ हरिने मंद २ मुसका कर फिर उनसे यों कहा । ब्राह्मणहितकारी, साधुओंकी एकमात्र गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने प्रिय मित्रकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देख कर हँसते हुए कहा कि "ब्रह्मन् ! तुम घरसे मेरे लिये क्या उपायन (भेंटकी सामग्री) लाये हो ? भक्तोंकी प्रेमपूर्वक लाई गई अणुमात्र उपहारकी सामग्रीको मैं बहुत मानता हूँ; क्यों कि मैं प्रेमका भूखा हूँ । किन्तु अभक्तके द्वारा अर्पित बहुत सी सामग्री भी मुझको सन्तुष्ट नहीं कर सक्ती । मित्र ! अवकाशके अनुसार शुद्धचित्त हो भक्तिपूर्वक अर्पित पत्र, पुष्प, फल और जलको भी मैं स्वीकृत करता हूँ और सन्तुष्ट होता हूँ" । राजन् ! भगवान्के इस प्रकार कहने पर भी ब्राह्मण सुदामा साक्षात् लक्ष्मीके पतिको लज्जाके मारे वह थोड़ेसे चाँवलोंकी पुटकी न देसके । सुदामाने शिर झुका लिया और चाँवलोंकी पुटकी न दी, तब सब प्राणियोंके अन्तर्य्यामी हरि, अपने निकट ब्राह्मणके आनेका कारण समझ कर विचारने लगे कि यह मेरे निष्काम भक्त और प्रिय सखा हैं, इन्होने लक्ष्मीकी कामनासे अर्थात् धनकी अभिलाषासे कभी पहले मेरा भजन नहीं किया; किन्तु इस समय अपनी पतिव्रता प्रियाकी प्रार्थनासे मेरे पास आये हैं । अतएव मैं इनको वह सम्पत्ति दूँ जो देवतोंको भी दुर्लभ है" । यों विचार कृष्णचन्द्रने "यह क्या है ?" कह कर जल्दीसे ब्राह्मणकी बगलमें दबी हुई वह चाँवलोंकी पुटकी, जिसको सुदामाने लज्जाके मारे वस्त्रसे छिपा लिया था, पकड़ कर खींच ली और "हे मित्र ! यही तो मुझको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाली भेंटकी सामग्री हे । ये चाँवल मुझको और सम्पूर्ण जगत्को (क्यों कि मैं विश्वव्यापक हूँ) तृप्त करदेंगे"—यों कहते हुए एक मुट्ठी चाँवल फाँक कर और मुट्ठी भरी । तब पास ही बैठी हुई हरिके चरणकमलोंकी

किङ्करी, अनन्याश्रया लक्ष्मी रुक्मिणीने परब्रह्म यदुनन्दनका हाथ पकड़ लिया और कहा कि "हे विश्वरूप! बस कीजिये। आपकी इतनी ही प्रसन्नता, मनुष्योंकी आत्यन्तिक श्रीवृद्धिके लिये यथेष्ट है (अर्थात् मेरे कृपाकटाक्षसे लोगोंको मिलनेवाली इस लोक और परलोककी सब प्रकारकी सम्पत्ति अथवा ऐश्वर्य्य, इस ब्राह्मणको इतने ही चाँवलोंसे प्राप्त हो गया; अबकी और चाँवल फाँक कर क्या मुझे भी दे डालोगे?)" ॥ १–११ ॥ राजन्! भोजन आदिके उपरान्त सुदामाजीने वह रात्रि अच्युतके ही मन्दिरमें सुखपूर्वक विताई। वहाँ सुदामाजीको ऐसा सुख मिला कि वह अपनेको स्वर्गमें बैठा हुआ समझने लगे ॥ १२ ॥ प्रातःकाल होने पर सुदामाजी अपने घरको चले। विश्वपिता, स्वानन्दपूर्ण श्रीकृष्णजी कुछ दूर तक साथ २ गये और प्रणाम तथा विनीत वचनोंसे प्रसन्न करके प्रिय मित्रको विदा किया ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने आपसे कुछ भी धन नहीं दिया और सुदामाजीने भी उनसे नहीं माँगा। सुदामाजीको महात्मा कृष्णचन्द्रके दर्शन पाकर परम आनन्द हुआ और साथही अपनी कृपणता (धनकी लालसा) पर बड़ी लज्जा लगी ॥ १४ ॥ घर जाते समय राहमें ब्राह्मण सुदामा मन-ही-मन कहने लगे कि "अहो! मैंने ब्रह्मण्यदेव भगवान्‌की ब्राह्मणभक्ति भली भाँति देखी। देखो, उनके वक्षःस्थलमें साक्षात् लक्ष्मी निवास करती हैं, तथापि उन्होने मुझ महादरिद्रको हृदयसे लगा लिया। कहाँ मैं नीच दरिद्र! और कहाँ लक्ष्मीके पति श्रीकृष्णचन्द्र! तथापि मुझे ब्राह्मण समझ कर उन्होने गलेसे लगा लिया और जैसे बड़े भाईका आदर किया जाता है उस प्रकार अपनी प्रियाके पलँग पर ले जाकर बैठाया और मेरी राह चलनेकी थकावट दूर करनेके लिये राजरानी साक्षात् लक्ष्मीका अवतार रुक्मिणीजी चँवर डुलाने लगीं। जैसे भक्तिपूर्वक इष्टदेवका पूजन किया जाता है वैसे विप्रदेव हरिने अपने हाथसे मेरा पूजन किया और पैर दबाये, परम सेवा की! ॥ १५—१८ ॥ उन हरिके चरणोंकी सेवा, मनुष्योंको स्वर्ग, अपवर्ग, ऐहलौकिक महासम्पत्ति एवं सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाली है। तथापि अवश्यही 'यह निर्धन ब्राह्मण धन पानेसे अत्यन्त प्रमत्त हो कर मुझको भूलजायगा'—ऐसा विचार कर परम कृपालु प्रभुने मुझको यथेष्ट धन नहीं दिया" ॥ १९ ॥ २० ॥ राजन्! ब्राह्मण सुदामा यों विचारते हुए अपने भवनके निकट पहुँच गये। सुदामाने वहाँ पहुँच कर देखा कि जहाँ इनकी टूटी सी झोपड़ी थी उस स्थान पर सूर्य्य, अग्नि और चन्द्रमाके समान प्रभायुक्त बड़े २ ऊँचे महल बने हुए हैं। महलोंके आस-पास विचित्र उद्यान और उपवन उनकी शोभाको बढ़ा रहे हैं। उन उपवनोंमें वृक्षोंकी शाखाओं पर बैठे हुए भाँति भाँतिके अनेक पक्षी, सुखपूर्वक कलोल करते हुए मधुर बोलियोंसे मनको मोहित कर रहे

हैं। नीचे सुन्दर सरोवरोंमें, जिनमें स्वच्छ जल लहरा रहा है, कुमद, कल्हार, उत्पल, पद्म आदि भाँति २ के कमलकुसुम फूल रहे हैं। सुन्दर वस्त्र और अमूल्य भूषण पहने हुए मृगनयनी स्त्रियाँ और पुरुष महलोंकी शोभाको बढ़ा रहे हैं। यह देख कर सुदामाजी आश्चर्य्यके मारे अवाक् रह गये। "यह क्या? यह किसका भवन है? यदि यह मेरे रहनेका स्थान है तो इस प्रकार इसकी दशाका परिवर्त्तन कैसे हो गया? मेरी तो टूटी सी छोटी सी एक झोपड़ी थी; यह ऐसा समृद्धि-सम्पन्न महल कैसे बन गया?"—इस प्रकार सुदामाजी अपने मनमें तर्क-वितर्क करने लगे। इतनेमें देव-देवियोंके समान प्रभासम्पन्न सुदामापुरवासी नर-नारियोंने आनन्दसहित गाते बजाते हुए वहाँ आकर आदरपूर्वक सुदामाजीको लिया और कहा कि "आप सोच विचार-क्या कर रहे हैं? यह आपहीकी पुरी है, आइये, चलिये" ॥ २१–२४ ॥ पतिके आनेका समाचार पाकर सुदामाकी स्त्रीको अत्यन्त आनन्द हुआ। वह अत्यन्त आदरके साथ पतिको लेनेके लिये शीघ्रता-सहित घरसे बाहर निकली। सुन्दर आभूषण और वस्त्र पहने हुए सुदामाकी स्त्री साक्षात् लक्ष्मी जान पड़ती थी। पतिको देख कर प्रेमकी उत्कण्ठाके कारण उस पति-व्रताके दोनो नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहने लगे। सुदामाकी स्त्रीने नेत्र मूँद कर मन-ही-मन प्रणाम करके पतिको हृदयसे लगा लिया। कंठमें सुवर्णपदक आदि पहने हुए सुन्दरी दासियोंके बीचमें, पत्नीको, विमान पर स्थित देवीके समान सुशोभित देख कर सुदामाजी बहुतही विस्मित हुए। फिर उन्होंने महेन्द्र—भवनकी भाँति अनेक मणिमय स्तंभोंकी पाँतिसे सुशोभित और अलौकिक समृद्धिसम्पन्न अपने भवनमें धर्मपत्नीके साथ आनन्दपूर्वक प्रवेश किया ॥ २५–२८ ॥ सुदामाने भवनमें प्रवेश करके देखा कि वहाँ हाथीदाँतके बड़े २ पलँग पड़े हैं, पलँगोंके सब सामान सुवर्णके बने हुए हैं और उन पर सुकोमल बिछौने बिछे हैं; जो दुग्धके फेन ऐसे उज्ज्वल हैं। जिनकी सुवर्णकी डंडियाँ हैं ऐसे चामर और व्यजन रक्खे हुए हैं। कोमल आस्तरणोंसे आच्छादित सुवर्णके आसन (चौकी और कुर्सियाँ) बैठनेके लिये रक्खे हुए हैं। मोतियोंकी झालरोंसे सुशोभित कान्तिमान् वितान तने हुए हैं। स्वच्छ स्फटिकनिर्मित और महामरकत-मणिमय कुड्योंमें धरे हुए रत्नदीप सुशोभित हैं और ठौर २ पर उपस्थित परमसुन्दरी दासियाँ, अपने रूप और अलङ्कारोंकी कान्तिसे उस भवनकी शोभाको और भी बढ़ा रही हैं ॥२९॥३०॥३१॥ अपने भवनमें इस प्रकारके वैभवों-की वृद्धि देख, एकाग्रतापूर्वक उस अकस्मात् प्राप्त वैभवके मिलनेका कारण सोचते हुए सुदामाजी आप-ही-आप अपने मनमें कहने लगे कि "अवश्य यह महा ऐश्वर्य्यशाली यदुपतिका प्रसाद है। मुझ महाहतभाग्य, आजन्मदरिद्रको उनके कृपाकटाक्षके सिवा इस अतुल सम्पत्तिके मिलनेका और कोई कारण नहीं देख पड़ता।

मेघके समान कामवर्षासे याचकोंको तृप्त कर देनेवाले मेरे सखा लक्ष्मीपति यदुपति याचकको विना बताये ही गुप्त रीतिसे बहुत कुछ देकर पूर्णमनोरथ कर देते हैं। वह भक्तोंके दिये हुए अति तुच्छ उपहारको भी अत्यन्त अधिक मानते और अपने अत्यन्त अधिक दानको भी स्वल्प ही समझते हैं। देखो, मैं एक मुट्ठी चाँवल भेंटके लिये लेगया था, महात्मा यदुपतिने उन थोड़ेसे चाँवलोंको प्रीतिपूर्वक आदरसहित लेकर यह अतुल सम्पत्ति मुझको दी। मेरी वारम्वार यही प्रार्थना है कि वारम्वार जन्मजन्मान्तरमें वही मेरे सुहृद् (प्रेमपात्र), सखा (हितका उपदेश करनेवाले) और मित्र (उपकारकर्त्ता) हों और मैं उनका अनन्यसेवक रहूँ। मैं इस सम्पत्तिको नहीं चाहता; मुझको प्रत्येक जन्ममें उन्हीं सर्वगुणसम्पन्न, महानुभावकी विशुद्ध भक्ति और उनके भक्तोंका लोकपावन श्रेष्ठ संग प्राप्त हो। स्वयं विवेकसम्पन्न अजन्मा भगवान्, धनके गर्व्वसे धनवानोंका अधःपात होना देख कर, अविवेकी होनेके कारण अदूरदर्शी अपने जनको विविध सम्पत्ति और राज्य आदि वैभव नहीं देते" ॥ ३२–३७ ॥ श्रीमान् सुदामा ब्राह्मण, इस प्रकार निश्चय करके अनासक्त-भावसे स्त्री-सहित ईश्वरदत्त विषयोंका भोग करते हुए ईश्वरके भजनमें मनको लगा कर भोगके द्वारा धीरे २ विषयोंके त्यागका अभ्यास करने लगे ॥३८॥ हे राजन्! उन देवदेव यज्ञपति प्रभु हरिके, प्रभु और इष्टदेव ब्राह्मण हैं; अतएव ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है ॥ ३९ ॥ महाराज! भगवान्के सखा सुदामा ब्राह्मणने अपने भक्तोंके अधीन, अजित, भगवान् कृष्णचन्द्रके दुर्लभ दर्शन पाकर उन्हीके ध्यानसे अहं-भावको मिटा दिया एवं थोड़े ही समयमें ब्रह्मज्ञानियोंकी गति उसी विशुद्ध धाम(ब्रह्मपद)को प्राप्त हुए ॥ ४० ॥

एतद्ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः ॥
लब्धभावो भगवति कर्मबन्धाद्विमुच्यते ॥ ४१ ॥

राजन्! जो कोई मनुष्य, ब्रह्मण्यदेव भगवान्के इस ब्राह्मण-भक्ति-युक्त परम पवित्र चरित्रको श्रद्धापूर्वक सुनता है वह भगवद्भक्तिको प्राप्त हो कर शीघ्र ही कर्म्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ ४१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितम अध्याय।

कुरुक्षेत्रयात्रा।

श्रीशुक उवाच—अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः॥
सूर्योपरागः सुमहानासीत्कल्पक्षये यथा॥ १॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! श्रीकृष्ण और बलभद्र सुखपूर्वक द्वारका पुरीमें रह कर प्रजाका पालन करने लगे। इसी अवसरमें एक समय, जैसा कल्पके अन्तमें सूर्य्यका सर्वग्रास होजाता है वैसाही पूर्ण-सूर्य्यग्रहण आकर पड़ा॥ १॥ सब लोगोंको उस सूर्य्यग्रहणका वृत्तान्त (ज्योतिषकी गणनाके द्वारा) पहलेहीसे विदित होगया, अतएव अनेकानेक मनुष्य, अनेकानेक देशोंसे पुण्यसञ्चयके द्वारा कल्याणप्राप्तिकी कामनासे उस दुर्लभ पवित्र पर्वमें स्नान दान आदि सत्कर्म करनेके लिये कुरुक्षेत्रमें अवस्थित स्यमन्त-पञ्चक नाम तीर्थको गये॥२॥ हे राजन्! श्रेष्ठ योद्धा वीरवर परशुरामजीने पृथ्वीको एक प्रकार क्षत्रियोंसे शून्य करके राजोंके रुधिर-प्रवाहसे जिन पाँच महा-सरोवरोंको भर दिया था उन्हीका नाम स्यमन्तपञ्चक पड़ा। भगवान् ईश्वरावतार परशुरामने स्वयं कर्मबन्धनसे मुक्त होकर भी लोकशिक्षाके प्रयोजनसे साधारण मनुष्योंकी भाँति राजहत्याका प्रायश्चित्त करनेके लिये उस पवित्र स्थानमें महायज्ञके द्वारा विष्णुभगवान्की आराधना की थी॥ ३॥४॥ हे भारत! उस बड़ी भारी तीर्थयात्रामें प्रायः सब भारतवासी स्त्री-पुरुष कुरुक्षेत्रको गये। महाराज! अक्रूर, वसुदेव, उग्रसेन आदि (वृष्णि आदि वंशोंके) यादवलोग भी अपने पापोंके नाशकी कामनासे कुरुक्षेत्रको चले। राजन्! गद, प्रद्युम्न, साम्ब, सुचन्द्र, शुक, सारण, सेनापति कृतवर्म्मा और भगवान् अनिरुद्धजी रक्षा करनेके लिये द्वारकामें ही रहे। राजन्! विद्याधरोंके समान प्रभाशाली सैनिक मनुष्योंको साथ लिये, विमान ऐसे रथों पर, चंचल जलकी लहरोंके समान वेगपूर्वक चलनेवाले घोड़ों पर और मदमत्त गर्जनकारी गजराजों पर चढ़े दिव्य पुष्पमाला, सुवर्णमाला, वस्त्र, कवच आदिसे अलंकृत, महातेजस्वी, सपत्नीक यादवगण, मार्गमें परम प्रभापूर्ण देवतोंके समान जान पड़ते थे॥ ५॥ ६॥ ७॥ ॥ ८॥ उन महाभाग्यशाली यादवोंने कुरुक्षेत्रमें पहुँच कर सूर्य्यग्रहणके समय स्यमन्तपञ्चकमें स्नान किया और ब्राह्मणोंको विधिवत् पूजनके उपरान्त वस्त्र, सुवर्णकी माला तथा सुवर्णकी मालाओंसे अलंकृत दुधार गौवें दीं एवं उस दिन निर्जल–निराहार व्रत किया। सूर्य्यको ग्रहणसे मुक्त देख कर फिर यादवोंने स्यमन्त-पञ्चकमें विधिपूर्वक स्नान किया और 'श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें हमारी अटल भक्ति हो' यह कामना करके सुन्दर स्वादिष्ट अन्न खिला कर ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया

॥ ९ ॥ १० ॥ फिर श्रीकृष्णको ही अपना इष्टदेव माननेवाले यादवोंने उनसे आज्ञा लेकर आप भी भोजन किया और सुशीतल घनी छाँहवाले वृक्षोंके नीचे इच्छानुसार अपना २ डेरा डाला ॥ ११ ॥ राजन्! उस अवसर पर वहाँ मत्स्य, उशीनर, कोशल, विदर्भ, कुरु, सृञ्जय, कम्बोज, केकय, मद्र, कुन्ति, आनर्त और केरल देशके—श्रीकृष्णके सुहृद् और सम्बन्धी नरेश एवं और २ अनेकों कृष्णके अनुगत नरनाथगण आये थे। कृष्णके परम सुहृद् नन्द आदि गोपगण और कृष्णके देखनेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित गोपियाँ भी वहाँ आई थीं। ये सब लोग कृष्णचन्द्रके दर्शन पाकर परम प्रसन्न हुए और कृष्णचन्द्रने भी इनसे मिल कर प्रसन्नता प्रकट की। सब परस्पर एक एकके प्रीतिपात्र और सुहृद् थे, अतएव परस्पर दर्शनके द्वारा उत्पन्न आनन्दके वेगसे उनके मुखकमल खिल उठे। वे, परस्पर एक एकके गले लग कर, नयनोंसे आनन्दके आँसू बहाते हुए असीम अनिर्वचनीय आनन्दका अनुभव करने लगे। सब स्त्रियाँ, मिल कर, परस्पर सौजन्यजन्य मंद हास्यसे सुशोभित प्रेमपूर्ण दृष्टि डालती हुई और परस्पर कुंकुममण्डित कुचमण्डलोंसे कुंकुमम ण्डित कुचमण्डलोंको मलती हुई बाँहें पसार कर एक एकको गले लगाने और आनन्दके आँसू बहाने लगीं। तदनन्तर बड़े बूढ़ोंको प्रणाम करने और छोटोंके द्वारा स्वयं वन्दित होनेके उपरान्त, परस्पर स्वागतसहित कुशलप्रश्न करके सब लोग कृष्णचन्द्रकी चर्चा करने लगे। भाई, भौजाई, भतीजे, भगिनियाँ, भगिनियोंके पुत्र, पिता—माता और कृष्णचन्द्रको देख कर एवं उनसे वार्तालाप करके देवी कुन्ती परम प्रसन्न हुईं और उनका सब शोक शान्त होगया ॥ १२—१८ ॥ कुन्तीजीने अपने भाई वसुदेवसे कहा कि "हे आर्य्य भाई! मैं अपनेको कृतार्थ नहीं समझती, क्योंकि आप लोग ऐसे श्रेष्ठ सत्त्वभाववाले होकर विपत्कालमें भी कभी हमारी खबर तक नहीं लेते। दैव जिसके प्रतिकूल होता है उसको सुहृद्, सजातीय, पुत्र, पिता-माता और भाई आदि स्वजन भी भूल जाते हैं" ॥ १९ ॥ २० ॥ वसुदेवने कहा। "हे अंब! हमको दोष देना वृथा है। बहन! मनुष्य दैवके हाथके खिलौने हैं। मनुष्य ईश्वराधीन है, ईश्वरके वशवर्ती होकर सब काम करता है। या यों कहो कि ईश्वर जो कराता है, वही मनुष्य करता है ॥२१॥ कंसके द्वारा अत्यन्त सताये जाने पर हम लोग इधर उधर चारो ओर भाग गये थे। बहन! फिर उसी कालरूप ईश्वरने हम सबको इस स्थान पर एकत्र कर दिया अर्थात् मिला दिया है" ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! सबलोग वसुदेव और उग्रसेन आदि यादवोंके द्वारा पूजित होकर सत्कारसे परम प्रसन्न हुए और कृष्णके दर्शनसे प्राप्त परम आनन्दके कारण उनके शरीरोंमें रोमाञ्च हो आया। हे राजेन्द्र! भीष्म द्रोण, धृतराष्ट्र, पुत्रों सहित देवी गान्धारी, सपत्नीक पाण्डवगण, कुन्ती, सञ्जय, विदुर,

कृपाचार्य, राजा कुन्ति, भोज, विराट, भीष्मक, नरश्रेष्ठ नग्नजित्, पुरजित्, द्रुपद, शैब्य, धृष्टकेतु, काशिराज, दमघोष, विशालाक्ष, मिथिलापति, मद्रपति, केकयनरेश, युधामन्यु, सुशर्म्मा और पुत्रसहित वाल्हीक आदि एवं युधिष्ठिरके अनुगत अन्यान्य राजा लोग, सपत्नीक श्रीकृष्णके श्रीनिकेतन शरीरकी शोभा और वैभवको देख कर बहुतही विस्मित हुए ॥ २३–२७ ॥ कृष्ण-बलभद्रने आदर-सत्कारसहित विधिपूर्वक उक्त सज्जन स्वजनोंकी पूजा की एवं वे लोग परम प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर, कृष्णके स्वजन जो यादव लोग हैं उनकी इस प्रकार प्रशंसा करने लगे कि "अहो! हे भोजपति उग्रसेनजी! पृथ्वीतलवासी मनुष्यमात्रमें आप लोगोंका ही जन्म सफल है क्योंकि बड़े २ योगियोंको भी जिनके दर्शन दुर्लभ हैं उन्हीं कृष्णचन्द्रको आप लोग सदैव वारम्वार देखते रहते हो। श्रुतियों द्वारा की गई जिनकी कीर्तिकी स्तुति और जिनके चरणकमलोंके प्रक्षालनका जल गंगा एवं जिनके शास्त्ररूप वाक्य इस विश्वको भली भाँति सम्पूर्ण रूपसे पवित्र कर रहे हैं एवं जिनके चरणकमलोंकी महिमाके प्रभावसे, यह पृथ्वी, कालवश शक्ति(प्रभाव)के क्षीण होने पर भी, हम लोगोंको सब वाञ्छित पदार्थ दे रही है वही साक्षात् श्रीविष्णु स्वयं मायामानवरूपसे तुम्हारे साथ दैहिक और वैवाहिक सम्बन्धमें बँध कर तुमको कृतार्थ कर रहे हैं। तुम नित्य उनको देखते हो साथ बैठते, उठते, खाते, पीते, सोते, चलते और बातचीत करते हो। आवागमनके मूलकारण गृहमें रह कर भी तुमलोग कृष्णकी कृपासे स्वर्ग (भोग) और अपवर्ग (मोक्ष) दोनोको पाकर पूर्णकाम हो रहे हो" ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** वसुदेव आदि यादवोंके आनेकी खबर पाकर गोपगणसहित व्रजपति नन्दजी, श्रीकृष्ण–वसुदेव आदि प्रेमपात्र इष्ट, मित्र, स्वजनोंसे मिलनेके लिये उत्सुक होकर छकड़ों पर उपहारकी अनेकानेक सामग्रियाँ लाद कर वसुदेवके डेरेको गये। नन्दको देख कर बहुत दिनोंसे देखनेके लिये उत्कण्ठित यादवलोग परम प्रसन्न हुए। प्रिय प्राणोंको पाकर जैसे शरीर उठ खड़ा हो उस प्रकार यादवगण शीघ्रतासे उठ खड़े हुए और सबसे मिलने–भेंटने लगे। कंसके द्वारा प्राप्त अपने क्लेशोंको और नन्दके द्वारा किये गये अपने पुत्रोंकी रक्षा–रूप परम उपकारको याद करते हुए वसुदेवजी नन्दजीको गलेसे लगा कर अत्यन्त आनन्द व प्रेमसे विह्वल हो गये ॥३२॥३३॥ ॥ ३४ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! कृष्ण और बलभद्रजी, पिता–माता (नन्द यशोदा) के गले लग कर और प्रणाम करके मुखसे कुछ भी न कह सके; प्रेमकी उमंगसे आँसू भर आये और उन आँसुओंसे कण्ठावरोध होगया। महाभागा यशोदाने पुत्रोंको गोदमें बिठा लिया और दोनो हाथोंसे हृदयसे लगा कर चिरविरह-तापसे तपे हुए हृदयको शीतल किया। यशोदाके सब शोक मिट गये। इसके

उपरान्त देवी रोहिणी और देवकीजी व्रजरानीसे मिल–भेंट कर उनकी की हुई मित्रताको याद करती हुई गद्गद स्वरसे कहने लगीं कि–"हे व्रजकी स्वामिनी! तुम्हारे किये हुए मित्रता और स्नेहके व्यवहारको कौन स्त्री भूल सक्ती है? इन्द्रके तुल्य ऐश्वर्य्यको पाकर भी तुम्हारे व्यवहार और उपकारका बदला नहीं चुकाया जासक्ता। ये दोनो बालक तुमको ही अपना पिता और माता समझते थे। जैसे पलकें दोनो नेत्रोंकी सब प्रकार रक्षा करती हैं, वैसेही अपने पुत्रसे भी बढ़ कर स्नेहसे, तुमने, इन अपने पिता-माताके द्वारा तुमको सौंपे गये बालकोंका भली भाँति पालन और पोषण किया। तुम साधुजन हो; साधुजनोंको, यह अपना है यह पराया है, ऐसा भेदभाव नहीं होता। तुमने प्रीतिपूर्वक इनकी रक्षा की और ये अकुतोभय रहकर इस अभ्युदयको प्राप्त हुए–इतने बड़े हुए" ॥ ३५–३९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! बहुत दिनोंके बाद गोपियोंको श्रीकृष्णके दर्शन प्राप्त हुए। गोपियाँ, अपने एकमात्र अभीष्ट कृष्णके दर्शनमें पलकोंको विघ्न डालते देख, उन पलकोंके बनानेवाले ब्रह्माको दोष देती हुई बुरा–भला कहने लगीं, क्योंकि उनको उस समय पलकका झपकना भी असह्य कष्टदायक जान पड़ता था। गोपियाँ, बहुत दिनोंके बाद दुर्लभ कृष्णचन्द्रको नेत्रमार्गसे हृदयमें बिठला कर, इस प्रकार मनके द्वारा मिल कर, प्रियके प्रेममें मग्न और गद्गद हो गईं। ऐसी दशाको प्राप्त गोपियोंसे, एकान्तमें मिल कर–हृदयसे लगा कर कृष्णचन्द्रने कुशल पूछी और मन्द २ मुसका कर मधुर स्वरसे कहा कि "हे सब सखियो! भला कभी हमको याद करती हो? हम अपने बन्धु-बान्धवोंका कार्य्य सिद्ध करने लिये तुमको छोड़ कर चले आये और हमको, शत्रुओंके नाशकी चेष्टामें तत्पर रहनेके कारण, बहुत समय बीत गया, हम फिर तुमसे मिल नहीं सके। इस कारण तुम हमको अकृतज्ञ तो नहीं समझतीं? अकृतज्ञ या निठुर जान कर मुझसे घृणा तो नहीं करती हो? निश्चय जानो कि वह अचिन्त्य सर्वशक्तिमान् भगवान् ही, सब प्राणियोंके परस्पर संयोग और वियोगका एकमात्र कारण है, मनुष्य अपनी इच्छासे कुछ नहीं कर सक्ता। देखो, जैसे वायु ही–मेघ, तृण, रुई, धूलिकण इत्यादिके संयोग और वियोगका कारण है वैसे ही सृष्टिकर्त्ता (कालरूप) ईश्वर भी, सब प्राणियोंको कभी एकत्र कर देता है और कभी उनमें परस्पर वियोग करा देता है। सुन्दरियो! प्राणीमात्रको मेरे भजनभावसे ही मुक्ति मिल सक्ती है। बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमको मेरा दुर्लभ परमप्रेम प्राप्त हुआ है, इसी प्रेमके प्रतापसे तुम मुझ (आत्मस्वरूप) को पाओगी। हे स्त्रियो! जैसे आकाश, जल, वायु, तेज और पृथ्वी, ये पञ्चतत्त्व भौतिक पदार्थोंके आदि, अन्त, मध्यमें और भीतर बाहर वर्त्तमान हैं, वैसे ही मैं भी सब प्राणियोंके आदि, अन्त, मध्यमें और भीतर, बाहर वर्तमान हूँ। इस प्रकार भौतिकत्वके अविशेषसे चतु-

विध भूतसमूह, अपने कारण जो तत्त्व हैं उनमें (कार्य्यरूपसे) वर्त्तमान हैं (भोक्ता आत्मामें नहीं हैं) और आत्मा उनमें भोक्ताके रूपसे स्थित है (इस प्रकार उनमें आत्माकी व्याप्ति है, कारणस्वरूपसे नहीं है)। ऐसा समझ कर भौतिकरूप भोग्य पदार्थ भूतोंको और उनके भोक्ता आत्माको मुझ परिपूर्ण, आधाररूप परमात्मामें प्रकाशमान देखो" ॥४०–४७॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! इस प्रकार कृष्णके श्रीमुखसे श्रेष्ठ आत्मज्ञानकी शिक्षा मिलने पर, परम प्रेमपात्र कृष्णके निरन्तर ध्यान द्वारा वासनामय लिंगशरीररूप उपाधिसे मुक्त गोपियाँ, ब्रह्मस्वरूप कृष्णचन्द्रमें तन्मय होकर कहने लगीं कि— ॥ ४८ ॥

आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः॥
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
गेहंजुषामपि मनस्युदियात्सदा नः॥ ४९ ॥

'हे पद्मनाभ!' यद्यपि हम गृहस्थीके जालमें जकड़ी हैं तथापि यही माँगती हैं कि अगाधबोध योगीजन अपने हृदयमें जिनका ध्यान करते हैं एवं जो संसाररूप कूपमें पड़े हुए व्यक्तिके लिये ऊपर पहुँचानेवाला अवलम्ब हैं उन आपके लोक-पावन चरणोंको हम गृहमें रह कर भी न भूलें आपके चरणकमल सदैव हमारे हृदयमें रह कर, अपने प्रकाशसे अज्ञानकृत अन्धकारको दूर करते रहें ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितम अध्याय।

श्रीकृष्णकी रानियोंका द्रौपदीसे अपने २ विवाहका वृत्तान्त कहना।

श्रीशुक उवाच—तथानुगृह्य भगवान्गोपीनां स गुरुर्गतिः॥
युधिष्ठिरमथापृच्छत्सर्वांश्च सुहृदोऽव्ययम्॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! प्राणीमात्रके गुरू और गति भगवान् कृष्णने उक्त प्रकारके उपदेशसे गोपियों पर अनुग्रह की और फिर युधिष्ठिर आदि सब बन्धुओंसे मिलकर कुशल पूछी ॥ १ ॥ इसप्रकार भली भाँति सत्कार करके लोकनाथके कुशल पूछने पर, श्रीहरिके पतितपावन चरणोंके दर्शनसे जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं ऐसे युधिष्ठिर आदि समग्र बन्धु–बान्धवगणने परम प्रसन्न होकर कहा कि "हे प्रभो! आपके चरणकमलोंका रस, देहधारियोंके देहदायक

अज्ञानको नष्ट कर देता है। वह महत्जनोंके मनसे मुखके द्वारा निकलता है। जिन्होने कभी कानोंके द्वारा उस रसको पिया है उनके अमङ्गल कहीं रह सक्ते हैं? हम आप भक्तवत्सल भगवान्‌को भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं। अपनेमें स्वयंकृत जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीनो अवस्थाएँ, आपके तेजसे आपही आपसे दूर रहती हैं; अतएव आप सर्व्वानन्दमय सच्चिदानन्दघन हैं। आप अखंड अर्थात् पूर्ण हैं, क्योंकि आपकी शक्ति कभी कहीं भी कुंठित नहीं हो सक्ती। काल पाकर लुप्त हो गये वेदोंकी रक्षा करनेको योग-मायाका अवलम्बन कर आप अरूप होकर भी अनेक रूप धरते हैं। आपही परमहंस जनोंकी एकमात्र गति हैं" ॥ २–४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! इधर युधिष्ठिर आदि सम्पूर्ण इष्ट मित्र बान्धवगण इस प्रकार उत्तमश्लोकशिखामणि भगवान्‌की स्तुति कर रहे थे, उधर यादवोंकी और कौरवोंकी स्त्रियाँ मिल कर, तीनो लोकोंमे जिनका गान होता है उन हरिचरित्रोंकी चर्चा करने लगीं। यादवों और कौरवोंकी स्त्रियोंका वह सम्वाद मैं तुमसे कहता हूँ–सुनो ॥ ५ ॥ द्रौपदीजीने कृष्णचन्द्रकी स्त्रियोंसे पूछा कि—"हे रुक्मिणी, भद्रा, जाम्बवती, सत्या, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रविन्दा, रोहिणी, लक्ष्मणा एवं अन्यान्य सब कृष्णचन्द्रकी प्रिय पत्नियो! स्वयं भगवान् कृष्णने मायामानवशरीरसे मनुष्योंका अनुकरण करते हुए, जिस प्रकार तुम्हारे साथ विवाह किया, सो कहो–मैं सुनना चाहती हूँ" ॥ ६ ॥ ७ ॥

रुक्मिणीजीने कहा। "बहन द्रौपदीजी! शिशुपालके साथ मेरा व्याह करानेके लिये जरासन्ध आदि राजा लोगोंने धनुष धारण किया, किन्तु श्रीकृष्णचन्द्र, उन दुर्जय भट नरपतियोंके शिर पर पैर रख कर, जैसे सियारोंके झुंडसे वीर सिंह अपने भागको ले आता है वैसे ही मुझको हर लाये। उन्हीं श्रीनिवासके चरणपंकज मेरे पूजनीय हैं" ॥ ८ ॥ **सत्यभामाने कहा**—"भाई प्रसेनके मरनेसे मेरे पिताको बड़ा ही सन्ताप हुआ। श्रीकृष्णचन्द्र, अपने मणिकी चोरीके कलंकको मिटानेके लिये वनमें जाकर जाम्बवान् नाम ऋक्षराजको युद्धमें परास्त करके खोई हुई मणिको उनसे ले आये। यह देख कर अपने किये अपराधके कारण भयभीत और चिन्तित मेरे पिताने, यद्यपि मैं अन्य किसीको वाग्दत्ता हो चुकी थी, तथापि, उस अमूल्यमणिसहित मुझे कृष्णचन्द्रको अर्पण कर दिया" ॥ ९ ॥

जाम्बवतीने कहा—"श्रीकृष्णचन्द्रको न पहचाननेके कारण पहले तो मेरे पिता जाम्बवान्‌ने उनसे सत्ताईस दिनों तक घोर युद्ध किया, परन्तु पीछेसे उनके असीम पराक्रमको देख कर जान गये कि यह मेरे स्वामी ईश्वर सीतापति हैं। तब चरणों पर गिर कर पिताने पूजोपहारस्वरूप मणिसहित मुझे कृष्णचन्द्रको अर्पण कर दिया। इस प्रकार प्रभुकी दासी होनेका सौभाग्य मुझको प्राप्त हुआ" ॥ १० ॥ **कालिन्दीने कहा**—"अपने सखा अर्जुनके द्वारा मुझको अपने चरण-

कमलके स्पर्शकी आशासे तप करनेमें तत्पर जान कर, भगवान् कृष्णचन्द्र, मेरे निकट गये और वहाँसे लाकर पाणिग्रहण किया। मैं उनके भवनको बहारनेवाली एक दासी हूँ" ॥ ११ ॥ भद्राने कहा—"श्रीनिवास श्रीकृष्ण स्वयं मेरे स्वयंवरमें गये और कुत्तोंके झुंडके बीचसे सिंह जैसे अपने भागको लेकर चला आता है वैसे विपक्ष राजोंको और विघ्न डालनेके लिये उद्यत मेरे भाइयोंको जीतकर उनके बीचसे मुझको ले आये। मेरी यही अभिलाषा है कि मैं सदैव जन्मजन्मान्तरमें इसी प्रकार उनके चरणोंकी दासी हुआ करूँ" ॥ १२ ॥ सत्याने कहा—"मेरे पिताने राजोंके बलकी परीक्षा करनेके लिये सात तीक्ष्ण सींगोंवाले हृष्ट, पुष्ट, बलिष्ठ बैल पाल कर उनको नाथनेवाले कुमारके साथ मुझे ब्याहनेकी प्रतिज्ञा कर रक्खी थी। भगवान् कृष्णचन्द्रने जाकर, जैसे कोई बालक बकरियोंको वशमें करले वैसेही उन वीरोंके घमंडको मिटानेवाले बली बैलोंको सहजही बलपूर्वक नाथ दिया एवं इस प्रकार वीर्यरूप मूल्य देकर और मार्गमें मेरे लिये लड़नेवाले राजोंको परास्त करके चतुरंगिणी सेना तथा दासीगणसहित मुझको ब्याहलाये। मैं यही चाहती हूँ कि चिरकाल तक उनकी दासी रहूँ" ॥१३॥१४॥ मित्रविन्दाने कहा—"द्रौपदीजी! मेरे चित्तको श्रीकृष्ण पर अनुरक्त जान कर, पिताने आपही मातुलपुत्र श्रीकृष्णचन्द्रको बुलाकर उनके साथ प्रीतिपूर्वक मेरा विवाह कर दिया और यौतुकमें एक अक्षौहिणी सेना, दासियाँ एवं बहुत सा धन दिया। कर्मवश संसारके बीच अनेक योनियोंमें यह जीव घूमता रहता है; इस कारण मिलनेवाले प्रत्येक जन्ममें, मैं, ऐसेही हरिचरणोंके मङ्गलकारी स्पर्शको पाऊँ—मेरी यही अभिलाषा है" ॥ १५ ॥ १६ ॥ लक्ष्मणाने कहा—हे रानी! श्रीनारदके मुखसे हरिके जन्मकर्मविषयक चरित्रोंको वारम्वार सुननेके कारण मेरा भी मन, अपने पानेकी लालसा रखनेवाले बड़े २ लोकपालोंको छोड़कर कृष्णके चरणकमलोंका भ्रमर बन गया। हे साध्वी! भलीभाँति देख भाल कर और सोच समझ कर देवी लक्ष्मीने जिनको अपना पति बनाया है उनकी दासी होनेके लिये मेरा चित्त अत्यन्त उत्सुक हुआ। मेरे पिता बृहत्सेन मुझको बहुत चाहते थे, अतएव मेरे अभिमतको जान कर, उसके सिद्ध होनेके लिये उन्होने एक उपाय किया। रानी! जैसे तुम्हारे स्वयम्वरमें 'अर्जुनही तुम्हारे पति हों' इस विचारसे मत्स्यरचना की गई थी, वैसीही मत्स्यरचना मेरे स्वयम्वरमें भी की गई। परन्तु मेरे स्वयम्वरमें इतना विशेष था कि जिस खंभे पर मत्स्य था उसके नीचे एक कलशमें जल भरा रक्खा था। उस कलशके जलमें मत्स्यका प्रतिबिम्ब देख पड़ता था, अतएव दृष्टिको नीचे करके ऊपर मत्स्यको बेधना था। यह एक प्रकार असंभव कार्य्य कृष्णचन्द्रके सिवा अवश्य ही और सबकी शक्तिसे बाहर था। मेरे स्वयम्वरके वृत्तान्तको सुन कर सब प्रकारकी अस्त्रशस्त्र-विद्याके तत्त्वको

भली भाँति जाननेवाले हजारों राजकुमार अपने २ आचार्य्योंके साथ दूर २ से मेरे पिताके नगरमें आने लगे। वीर्य्य और अवस्थाके अनुसार मेरे पिताने सबका यथोचित सत्कार और पूजन किया। नियत समय पर मेरे पानेकी लालसासे सब राजकुमारोंने सभास्थलमें आकर लक्ष्यभेदके लिये रक्खे हुए धनुष और वाणको क्रमशः हाथमें लिया। किसीने धनुष उठा लिया, परन्तु उस पर डोरी न चढ़ा सकनेके कारण वैसे ही रख दिया, कोई किनारे तक डोरीको ले गये परन्तु धनुषके खिँचावको सँभाल न सके और उस धनुषके ही आघातसे पृथ्वी पर गिरकर अचेत हो गये। इसी प्रकार मगध, अम्बष्ठ और चेदि देशके नरेश तथा अन्यान्य सब वीर एवं भीम, कर्ण और दुर्य्योधन भी धनुष पर डोरी चढ़ा कर मत्स्यकी स्थितिको न जान सके, अतएव धनुष रख कर बैठ गये। तब तुम्हारे पति वीरवर अर्जुनने जलमें मत्स्यकी छाया देख, मत्स्यकी स्थितिको जानकर सावधानतासे वाण चलाया, परन्तु वाण उस मत्स्यको काट न सका, केवल स्पर्श करता हुआ लौट आया। इस प्रकार जब सब क्षत्रियगण लक्ष्यभेदमें असमर्थ हुए और सब मानियोंके मान भग्न हो गये, तब भगवान् कृष्णचन्द्रने उठ कर धनुष और वाण हाथमें लिया एवं लीलापूर्वक धनुषको तानकर उसमें वाण चढ़ा-कर केवल एक वार जलमें मत्स्यके प्रतिबिंबको देखा और अभिजित् मुहूर्त्तमें वाणसे मत्स्यको काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया। उस समय स्वर्गमें नगाड़े बजने लगे, देवतालोग परम प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे। तब श्रेष्ठ रेशमी नवीन वस्त्र और सुवर्णकी उज्ज्वल माला आदि अलंकारोंसे अलंकृत हो कर, हाथमें जयमाला लिये, नूपुरोंकी मधुर ध्वनि करती हुई, मैं, अन्तःपुरसे निकलकर स्वयम्वरकी सभामें गई। मेरी वेणीमें गूँथी गई सुगंधित फूलोंकी माला और मुखमण्डलमें लज्जापूर्ण मंद हँसी, अमल कपोलों पर पड़ रही रत्नकुण्डलोंकी झलक, देखनेवालोंके चित्तको चञ्चल कर रही थी। मैंने मुख उठाकर एक वार चारो ओर देखा और हास्ययुक्त स्नेहपूर्ण अतृप्त दृष्टिसे अपने प्रेमपात्र हरिको देखकर उनके गलेमें जयमाला डाल दी ॥ १७—२९ ॥ उसी समय मृदङ्ग, पटह, शंख, भेरी, ढोल आदि बाजे बजने लगे, नट और नर्त्तकी और गानेवाले नाचने और गाने बजाने लगे। द्रौपदीजी! जब मैंने इस प्रकार कृष्ण भगवान्‌को अपना स्वामी बनाया तब कामपीड़ित बड़े २ राजयूथपति स्पर्द्धावश मुझे बलपूर्वक लेजानेका उद्योग करने लगे। तब कवचधारी कृष्णने रथ पर मुझको बिठालिया और चतुर्भुज हो कर दो भुजाओंसे मुझको सँभाला एवं दो भुजाओंसे शार्ङ्ग धनुष लेकर उन राजोंको ललकारा। दारुक सारथी, काञ्चनभूपित रथको उन राजोंके बीचसे लेकर निकला। जैसे मृगोंके बीचसे मृगराज सिंह निकलता है वैसे ही कृष्णचन्द्र राजोंके बीचसे निकल गये और वे ताकते ही रह गये। रथ निकल जाने पर भी कुछ

राजोंने पीछा किया और कुत्ते जैसे सिंहको रोकना चाहें उस प्रकार कुछ नरपतियोंने आगे बढ़ कर–धनुष चढ़ा कर रोकना चाहा। उनमेंसे कुछ तो शार्ङ्ग धनुषसे छूटे हुए बाणोंके प्रहारसे सदाके लिये युद्धभूमिमें सोगये और कुछके बाहु-पैर आदि अंग कट–फट गये और वे युद्धभूमिसे अपने प्राण ले २ कर भागे ॥ ३०—३५ ॥ तदुपरान्त जैसे सूर्य्यनारायण अस्ताचलमें पहुँचते हैं उस प्रकार कृष्णचन्द्रनेभी, विविध वर्णकी ध्वजा, पताका और कृत्रिम पुष्प–पटनिर्मित द्वारों (फाटकों) से भली भाँति सजीगई और स्वर्गवासी तथा पृथ्वीवासी लोगोंके द्वारा प्रशंसाको प्राप्त अपनी द्वारका नगरीमें प्रवेश किया। मेरे बिवाहमें मेरे पिताने आये हुए सुहृद्, सम्बन्धी और बन्धु–बान्धवोंको महामूल्य वस्त्र, अलङ्कार, शय्या, आसन और अन्यान्य सामग्रियोंसे सन्तुष्ट किया एवं सब प्रकार परिपूर्ण भगवान् कृष्णको, भक्तिसहित यौतुकस्वरूप अनेकों दासियाँ, सब प्रकारकी सम्पत्ति और सेना, हाथी, घोड़े एवं महामूल्य अस्त्र–शस्त्र दिये। रानी! इस प्रकार सबके संगको छोड़ कर अर्थात् एकान्त अनुरागसे एवं अपने धर्म्मका पालन करनेसे हम सब, आत्माराम पूर्णकाम–घनश्यामकी साक्षात् गृहदासी हुई हैं" ॥ ३६—३९ ॥ अन्य सोलह सहस्र एक सौ रानियोंने कहा—"रानी! कृष्णचन्द्रने दलबलसहित भौमासुरको मार कर जब जाना कि भौमासुर दुष्टने दिग्विजयमें अनेकानेक राजोंको जीत कर उनकी कन्याओंको बलपूर्वक लाकर विवाह करनेके लिये अन्तःपुरमें बंद कर रक्खा है, तब अन्तःपुरमें जाकर हमको उस कष्टसे छुड़ाया एवं स्वयं पूर्णकाम होकर भी, संसारसे छुड़ानेवाले अपने चरण-कमलोंको पानेकी लालसा रखनेवाली हम सब कामिनियोंको अपने चरणोंकी दासी बना लिया। रानी! हमको पृथ्वीमण्डलमात्रके साम्राज्य, इन्द्रके पद, भौज्यपद, अणिमादि सिद्धि, ब्रह्माके पद, मोक्ष और हरिके पद वैकुण्ठकी भी कामना नहीं है। हम केवल यही चाहती हैं कि इसी प्रकार सदा गदाधरके कमलाकुचकुंकुम-गन्धयुक्त चरणोंकी रजको मस्तकमें लगाती रहें। नदीतट पर गौवें चराते समय व्रजवनितावृंद, वनके तृणनिचय और गोपगण, जिसको पाकर कृतार्थ हुए, हम उसी महात्मा कृष्णचन्द्रके कमला-कुच कुङ्कुम-गन्धयुक्त चरणोंकी रजको मस्तकमें लगा कर कृतार्थ होती रहें ॥ ४०–४२ ॥

व्रजस्त्रियो यद्वाञ्छन्ति पुलिन्द्यस्तृणवीरुधः ॥
गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥ ४३ ॥

नदीतटपर गौवें चराते समय उत्कण्ठित व्रजवनिताएँ, वनके तृणनिचय और साथी गोपगण जिसको पाकर कृतार्थ हुए—हम, महात्मा कृष्णचन्द्रके उसी चरण-स्पर्शकी कामना करती हैं" ॥ ४३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितम अध्याय।

वसुदेवके यज्ञके महा उत्सवकी कथाका वर्णन।

श्रीशुक उवाच—श्रुत्वा पृथा सुबलपुत्र्यथ याज्ञसेनी
माधव्यथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्यः॥
कृष्णेऽखिलात्मनि हरौ प्रणयानुबन्धं
सर्वा विसिस्म्युरलमश्रुकलाकुलाक्ष्यः॥ १॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा एवं अन्यान्य राजा लोगोंकी स्त्रियोंको और कृष्णको अनन्य भावसे भजनेवाली गोपियोंको भी कृष्णपत्नियोंका कृष्णके प्रति ऐसा अपूर्व अनुराग देख-सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ; उनके नेत्रकमल आनन्दके आँसुओंसे पूर्ण होगये॥ १॥ इस प्रकार स्त्रियाँ स्त्रियोंसे और पुरुष पुरुषोंसे मिलकर वार्तालाप कर रहे थे—इसी अवसर पर भगवान् कृष्ण और बलभद्रको देखनेके लिये द्वैपायन वेदव्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज, गौतम, परशुराम, शिष्यगणसहित भगवान् वशिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति, द्वित, त्रित, एकत, ब्रह्माके पुत्र सनकादिक, अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य एवं वामदेव आदि श्रेष्ठ २ महर्षिगण वहाँ आकर उपस्थित हुए। पहलेसे बैठे हुए राजालोग, यादवलोग, पाण्डव कौरव और श्रीकृष्ण व बलरामजी, उन विश्ववंदित ऋषियोंको आते देखकर उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर प्रणाम किया। सबने उन ऋषियोंका यथायोग्य आदर और सत्कार किया और कृष्ण व बलभद्रने कुशल पूछकर स्वागत करके पाद्य, अर्घ्य, माला चन्दन और धूप-दीप आदिसे पूजन किया। इसके उपरान्त जब सब ऋषिगण अपने २ आसनों पर सुखसे बैठे तब धर्मरक्षक भगवान् उनसे यों कहने लगे और उस सभामें बैठे हुए सब लोग चुपचाप कृष्णके कथनको सुनने लगे॥ २-८॥ भगवान्ने कहा। "अहो! आज हमारा जन्म सफल हुआ; आज देवतोंको भी दुर्लभ आपके दर्शनोंको पाकर हमारा जीवन सफल होगया। केवल प्रतिमाको ही देवरूपसे देखनेवाले भेदभावपूर्ण, स्वल्प अर्थात् तुच्छ तपमें तत्पर मनुष्योंको आप ऐसे योगीश्वरोंके दर्शन, स्पर्श, पूजन, प्रणाम, चरण-सेवन आदि और आपसे बातचीत करनेका सौभाग्य प्राप्त होना अत्यन्त कठिन ही नहीं, वरन् एक प्रकारसे असंभव सा है। वास्तवमें जलमय तीर्थ और मट्टी व पत्थरकी बनी प्रतिमाएँ तीर्थ या देवता नहीं हैं। और यदि उनको तीर्थ या देवता मान भी लें तो वे बहुत समय तक सेवा करने पर कहीं पवित्र करते हैं, परन्तु साधुओंके दर्शनसे ही शरीर और आत्मा शुद्ध हो जाता

है; अतएव सच्चे तीर्थ और देवता साधुलोग ही हैं। भेदभावनासे उपासित अग्नि, सूर्य, चन्द्र, तारागण, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु एवं वाक्य और मन आदिक अज्ञानको नहीं मिटासक्ते; किन्तु मुहूर्त भर भी साधुसेवा या सत्सङ्ग करनेसे तत्क्षण सब अज्ञान मिट जाता है। जो लोग साधुओंको आत्मा, आत्मीय, देवता और तीर्थ न समझकर बात, पित्त, श्लेष्मा इन तीन धातुओंसे रचित अर्थात् इन प्रकृतियोंसे परिपूर्ण स्वप्नसमान शरीरको आत्मा और भार्य्या आदिको आत्मीय तथा पार्थिव पदार्थोंसे निर्मित प्रतिमाओंको देवता एवं जलपूर्ण स्थानोंको तीर्थ समझते हैं वे पूरे बोझ ढोनेवाले गधे हैं, उनसे बढ़कर कोई बे-समझ नहीं है, उनको तनिक भी विवेक नहीं है" ॥९-१३॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन् जिनकी बुद्धि किसी विषयमें, कहीं कुण्ठित नहीं है उन महापुरुष कृष्णके मुखसे ऐसे गूढ़ और अपूर्व वाक्य सुन कर कुछ देर तक तो वे ऋषिगण कुछ भी न कहसके; साधारण लोगोंके समान अपनेको भी धर्मके नियमोंको पालनेके लिये बिवश सा जतानेवाले भगवान्‌के इन वाक्योंका अर्थ लगानेमें या यों कहो कि समझनेमें उन महाज्ञानी महामुनियोंकी सूक्ष्म बुद्धि भी चकित सी होगई! थोड़ी देरतक विचार करने पर ऋषियोंने जाना कि भगवान् स्वयं परमेश्वर, धर्मके बनानेवाले होकर भी औरोंको धर्मका उपदेश करनेके लिये ऐसा कह रहे हैं। तब हँस कर ऋषियोंने जगद्‌गुरु कृष्णचन्द्रसे कहा कि-"हमलोग परमार्थके जाननेवाले अर्थात् तत्त्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, और जिन्होने विश्वकी सृष्टि की है उन प्रजापतियोंके भी अधीश्वर हैं, तथापि जिसकी मायामें मोहित हो रहे हैं वही परमेश्वर आप मायामानवरूपमें छिपे हुए साधारण मनुष्योंके ऐसे आचरण कर रहे हैं। अहो! भगवन्! आपकी चेष्टा अचिन्त्य है, आप क्या करते हैं या क्या करना चाहते हैं, सो कोई नहीं समझ सक्ता। प्रभो! अपनेही विकार जो घड़ा, सकोरा, दीपक, कुल्हड़ आदि हैं उनके द्वारा अनेक नाम और रूपोंको प्राप्त (किन्तु वास्तवमें एकही) पृथ्वीके समान आप भी स्वयं एकमात्र और अकर्म्मा होने पर भी अनेक प्रकारसे इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और प्रलय करते रहते हैं किन्तु तब भी निर्लिप्त अर्थात् संसारके बन्धनसे मुक्त हैं। आप परिपूर्ण परमेश्वर हैं, आपके जन्म, कर्म केवल अनुकरणमात्र हैं। अपने जनोंकी रक्षाके साथ ही दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये ही आप सर्वदा समय २ पर शुद्धसत्त्वमूर्तिसे प्रकट हुआ करते हैं। आप ही सनातन वर्णाश्रमधर्मके चलानेवाले परम पुरुष हैं, अतएव अपनी लीलाओंसे उस वर्णाश्रमधर्ममय वेदमार्गका पालन किया करते हैं। तप, स्वाध्याय और संयमके द्वारा जिसमें कार्य्य, कारण और उन दोनोसे परे सच्चिदानन्दघन ब्रह्मकी उपलब्धि होती है वही वेदनामक शब्दब्रह्म आपका शुद्ध हृदय अर्थात् अन्तरङ्गरूप है। ब्रह्मन्! इस कारण आप शास्त्रयोनि अर्थात् सब शास्त्रोंकी उत्प-

त्तिका आधार कहलाते हैं और इसीसे अपने सत्धाम अर्थात् उपलब्धिका स्थान जो ब्राह्मणगण हैं उनका इतना आदर सत्कार और पूजन करते हैं। आप ब्रह्मभक्त लोगोंमें अग्रगण्य ब्रह्मण्यदेव और परममङ्गलमय अर्थात् सब कल्याणोंकी अन्तिम अवधि एवं सज्जनोंकी एकमात्र गति हैं; अतएव आज आपसे मिलनेसे हमारी विद्या, तपस्या, दृष्टि (ज्ञानदृष्टि व साधारण दृष्टि) और जन्म, सब सफल हो गया। अपनी ही योगमायासे जिनकी महिमा ढँकी हुई है, जिनकी मेधा (बुद्धि या ज्ञान) अकुण्ठित है, पासही रहनेवाले राजालोग और यादवलोग भी मायारूप यवनिकामें छिपेहुए होनेके कारण जिनके यथार्थ रूपको नहीं जानते उन्ही काल-स्वरूप (सृष्टि आदिके कारण) ईश्वर (नियन्ता) कृष्णचन्द्रको प्रणाम है। ब्रह्मन्! जैसे निद्रित होकर स्वप्न देख रहा पुरुष, स्वप्नमें दिखाई देनेवाले विषयोंको सत्य मानता हुआ, उस समय मन और इन्द्रियोंके द्वारा, स्वप्नदृष्ट अपने राजा रंक या सिंह, व्याघ्र आदि रूपोंको सत्य समझता है, और वास्तवमें जो उसका नाम या रूप है उसको भूल जाता है, वैसेही मायामें मोहित ये सब जीव, मायाके प्रभा-वसे विवेक अर्थात् अपने रूपकी स्मृति अस्त होजानेके कारण आपको नहीं जान-पाते। स्वप्नदृष्ट पदार्थोंके समान अनित्य विषयोंमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति या रुचि-होना ही माया है। भगवन्! आज हमको आपके उन्ही पापपुंजविनाशन चरण-कमलोंके देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिनको सुनिपुण योगीजन चिर-कालके योगाभ्याससे विशुद्ध होरहे हृदयमें स्थापित करके भजते हैं और जिनसे पतितपावनी गंगा निकली हैं। नाथ! हमको अनुग्रह करके अपने चरणोंकी भक्ति दीजिये। क्योंकि निरन्तर बढ़ रही आपके चरणोंकी भक्तिसे जिनका वासनामय जीवकोष अर्थात् लिङ्गशरीर नष्ट होगया है वे निष्काम भक्त-जन ही आपकी गतिको पाते हैं" ॥ १४–२६ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! इसप्रकार स्तुति और प्रार्थना करनेके उपरान्त श्रीकृष्ण, धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरसे अनुमति लेकर सब ऋषिलोग अपने २ आश्रमको जानेके लिये उद्यत हुए। ऋषियोंको जानेके लिये उद्यत देखकर महायशस्वी वसुदेवजी उठकर उनके निकट गये और विनयपूर्वक प्रणाम करनेके उपरान्त पैर पकड़ कर कहने लगे कि–"हे महात्मा ऋषिगण! श्रुतियोंमें कहा है कि वेदपाठी ब्राह्मणमें सब देवता रहते हैं, इस कारण आपलोग सर्व-देवमय हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे महर्षियो! आप लोग कृपा करके ऐसा कोई कर्म बताइये जिसके करनेसे कर्मोंका क्षय हो (अर्थात् मोक्ष मिले)। इस विषयको सुनने और जाननेके लिये मैं बहुत ही उत्सुक हो रहा हूँ" ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ २९ ॥ श्रीकृष्णको छोड़कर अपनेसे इस प्रकारका प्रश्न करते वसुदेवको देखकर मुनियोंको विस्मय हुआ। तब नारदजीने कहा कि–"हे महानुभाव महर्षि-

गण ! वसुदेवजी जो कृष्णभगवान्को बालक समझकर अपने कल्याणकी बात हमसे पूछते हैं सो कुछ आश्चर्य नहीं है । निकटकी उत्तम वस्तुका भी लोग उतना आदर नहीं करते । देखो गंगाके निकट रहनेवाले लोग, शुद्धिकी कामनासे, गंगाको छोड़कर दूरदेशके जलाशय अर्थात् तीर्थमें स्नान करने जाते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इस विश्वकी सृष्टि, पालन और संहारसे या कालके प्रभावसे अथवा आपही या दूसरेके द्वारा या गुण आदिसे, किसी प्रकारसे इन परमेश्वररूप कृष्णका ज्ञान खंडित वा नष्ट नहीं होता, सर्वदा अखंड, एकरूप रहता है, किन्तु जैसे, लोग, सूर्य्यके ही कार्य्य जो हिम, उपराग (ग्रहण), मेघ आदि हैं उनसे सूर्य्यको आच्छन्न (छिपा हुआ या ढँकाहुआ) समझते हैं, वैसेही ज्ञानहीन साधारण लोग, अप्रतिहत ज्ञानसम्पन्न अद्वितीय ईश्वरको, उसीके कार्य्य जो क्लेश (क्रोध, काम आदि), कर्म, कर्मोंके (सुख-दुःखरूप) फल, गुणप्रवाह और प्राण आदि हैं उनसे आवृत समझते हैं (अर्थात् अविवेकवश जो ये कृष्णके सम्बन्धी वसुदेव आदि, साक्षात् परमेश्वर कृष्णको अपनेही समान साधारण मनुष्य समझते हैं सो कोई विसयकी बात नहीं है, यह मायाकृत मोहकी महिमा है)" ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तदनन्तर उन मुनियोंने सब राजोंके सुनते हुए कृष्ण, बलभद्रके आगे वसुदेवजीसे कहा कि-"हे महाभाग ! कर्मक्षय करनेवाला यही एक साधुजनोंका बताया हुआ उत्तम कर्म है कि निष्काम होकर श्रद्धापूर्वक सब यज्ञोंके ईश्वर यज्ञपुरुष भगवान् विष्णुकी विविध यज्ञोंसे आराधना करे । कर्मबन्धनसे छुड़ानेवाला यही एक सर्वोपरि उत्तम उपाय है । शास्त्ररूप आँखोंसे देखनेवाले पण्डितोंने विचार करके यही एक चित्तको शान्ति और आत्माको आनन्द देनेवाला, मोक्षका सुगम उपाय और परम धर्म बतलाया है । गृहस्थ द्विजातिके लिये यही मार्ग मङ्गलकारी है कि वह शुद्धचित्तसे श्रद्धापूर्वक अर्थात् निष्काम होकर परम पुरुषका पूजन और भजन करे। हे वसुदेव! ज्ञानीको चाहिये कि यज्ञ और दानसे धनसम्पत्तिकी इच्छाको, गृहस्थाश्रमके भोगोंसे स्त्री-पुत्र आदिकी इच्छाको एवं कालके अनुसन्धानसे स्वर्गादि लोकोंके पानेकी इच्छाको छोड़ दे ॥ ३४-३८ ॥ सम्पूर्ण धीर लोगोंने पहले गृहस्थाश्रममें रहकर पूर्वोक्त रीतिसे विषयवासनाओंको छोड़ दिया और फिर तपोवनमें जाकर तप किया है। यही सनातन प्रथा है। वसुदेवजी ! जन्मसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ये तीनो वर्ण, देवता ऋषि और पितृगणके ऋणी होते हैं । जो द्विजाति—वेदाध्ययन, पुत्रोत्पादन और यज्ञके द्वारा इन तीनो ऋणोंको बिना चुकाये मोक्षकी चेष्टा करता है वह पतित होता है । हे महाभाग ! आप पुत्र उत्पन्न करके पितरोंके ऋणसे और वेदाध्ययन या ब्रह्मचर्य करके ऋषियोंके ऋणसे मुक्त हो चुके हैं; अब यज्ञके द्वारा देवतोंके ऋणसे मुक्त होकर गृहाश्रमको छोड़िये । हे वसुदेव! इसमें कोई सन्देह नहीं कि आपने

परम भक्तिसे जगदीश्वर हरिकी आराधना की है, जिसके कारण साक्षात् भगवान् आपके पुत्र हुए हैं। अर्थात् यह क्रम तो जिनका चित्त शुद्ध नहीं हुआ उनके लिये है, और आप तो कृतार्थ हो चुके हैं, तथापि लोकाचारके लिये आपको यज्ञ-करना चाहिये" ॥ ३९—४१ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । महाराज ! महा-मनस्वी वसुदेवने मुनियोंके कथनको सुन कर चरणों पर शिर रखकर उनको प्रणाम किया और इस प्रकार प्रसन्न करके यज्ञकी इच्छा प्रकट करते हुए ऋत्विक् बननेके लिये उनसे प्रार्थना की। धर्मपूर्वक किये गये वसुदेवके वरणको उन मुनियोंने स्वीकृत किया और उसी उत्तम क्षेत्रमें धार्मिक वसुदेवको यज्ञकी दीक्षा देकर उत्तम सामग्रीसे सम्पन्न यज्ञका आरम्भ कराया। राजन्! वसुदेवजीने इस प्रकार यज्ञकी दीक्षा ली। उस समय यादव लोग और अन्यान्य राजालोग स्नान किये सुन्दर वस्त्र, कमलोंकी माला और अनेक अमूल्य अलंकार पहने यज्ञमण्डपमें आकर उपस्थित हुए। कंठस्थित सुवर्णनिर्मित पदक आदि आभूषणोंसे सुशोभित और सुन्दर वस्त्र पहने एवं हाथमें पूजाकी सामग्री लिये उनकी रानियाँ भी यज्ञ देखनेके यज्ञमण्डपमें आईं ॥ ४२—४५ ॥ उस समय मृदङ्ग, पटह, शंख, भेरी और ढोल आदि बाजे बजने लगे, नटलोग अपनी कलाएँ दिखाने लगे, वेश्याएँ नाचने लगीं, सूत-मागध-बंदीजन स्तुति करने लगे और कोमल-मधुर कंठ-वाली गन्धर्वोंकी स्त्रियाँ अपने पतियोंसहित गाने–बजाने लगीं। तदनन्तर वसुदे-वजीने अट्ठारह पत्नियों सहित देहमें उबटना लगवाया, और ऋत्विजोंने उनको विधिपर्वक मंत्र पढ़कर पवित्र जलसे स्नान कराया। उस समय दुकूल, वलय, हार, कुण्डल, नूपुर आदि पहने, भली भाँति शृंगार किये अट्ठारहो पत्नियोंसहित यज्ञकी दीक्षा लेकर कृष्णाजिनपर बैठे हुए वसुदेवजी, तारागणके बीचमें विराजमान पूर्ण चन्द्रमाके समान सुशोभित हुए। महाराज! वसुदेवके यज्ञमें नवीन रेशमी पीताम्बर पहने हुए सदस्यगणसहित ऋत्विक्गण, इन्द्रके यज्ञके ऋत्विजोंके समान अपने २ आसनपर विराजमान हुए। उस यज्ञमण्डपमें अपने इष्ट, मित्र, बन्धु बान्धव एवं सपत्नीक पुत्र और पौत्रोंसे परिवृत कृष्णचन्द्र तथा बलभद्रजी—अपनी विभूतियोंसे परिवृत जीवात्मा और परमात्माके समान शोभायमान हुए। ऋत्विजोंने वसुदेवसे प्रत्येक यज्ञमें अग्निहोत्र आदि लक्षणोंसे युक्त ज्योतिष्टोम, दर्श, पौर्णमास आदि प्राकृत और शौर्यसत्र आदि वैकृत यज्ञ-विधिसे द्रव्य (पुरोडाश आदि), ज्ञान (मंत्र) और कर्मोंके ईश्वर विष्णुका पूजन कराया ॥ ४६—५१ ॥ तदनन्तर वसुदेवजीने उचित समय पर वेदोक्त विधिके अनुसार ब्राह्मणोंका पूजन किया और उनको दक्षिणामें गऊ, भूमि, सुन्दरी कन्या, वस्त्र, अलंकार और महामूल्य रत्न आदि धन देकर सन्तुष्ट किया। उन महर्षियोंने यज्ञके अन्तमें पत्नीसंयाज और अवभृथ स्नानके

सम्पूर्ण कर्त्तव्य कर्मोंको पूर्ण करके यजमानसहित स्यमन्तपञ्चक नाम परशुरामके बनाये पवित्र सरोवरोंमें स्नान किया। इस प्रकार स्नान करके सुन्दर वस्त्र और अलंकारोंसे अलंकृत वसुदेवजीने सूत, मागध, बंदीजनोंको अनेक वस्त्र, अलंकार और सुन्दरी स्त्रियाँ देकर एवं दीन, अंधे, भूखे, नंगे मनुष्योंसे लेकर कुत्तों तकको अन्न, वस्त्र आदि देकर तृप्त और सन्तुष्ट किया। फिर वसुदेवने हाथी, घोड़ा, रथ आदि सामग्री देकर प्रेमपूर्ण वार्तालाप करके स्त्री-पुत्र-सहित बन्धुबान्धवोंको प्रसन्न किया और अपने इष्ट मित्र संबंधी विदर्भ, कोशल, कुरु, काशी, केकय और सृंजय आदि देशोंके नरेशोंको, सदस्य और ऋत्विजोंको एवं देवता, मनुष्य, भूतगण, पितृगण तथा चारण आदिको विधिपूर्वक पूजन करके सन्तुष्ट किया। ये सब लोग कृष्णसे आज्ञा लेकर यज्ञकी प्रशंसा करते हुए अपने २ घरको गये। वसुदेवके द्वारा भली भाँति पूजित धृतराष्ट्र, विदुर, पाँचो पाण्डव, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य्य, कुन्ती, नारद, भगवान् वेदव्यास और अन्यान्य सुहृद्, सम्बन्धी एवं बान्धवगण भी अपने बन्धु यादवोंसे मिल भेंट कर स्नेहवश बन्धुवियोगसे व्याकुल और खिन्न होकर अपने २ देशको चले। और २ लोग भी सब चले गये। किन्तु बन्धुवत्सल नन्दजी, श्रीकृष्ण, बलभद्र, उग्रसेन और वसुदेव आदि सुहृद्जनोंके आदरसहित पूजनको स्वीकृत करके उनके अनुरोधसे उनकी प्रसन्नताके लिये गोप-गोपियोंसहित कुछ समय तक वहीं टिके रहे ॥ ५२—५९ ॥ शीघ्र ही मनोरथरूप महासागरके पार पहुँचकर बन्धुगणसहित वसुदेवजीने प्रसन्नतापूर्वक हाथ पकड़कर नंदजीसे कहा कि—"भाई! ईश्वरकृत स्नेहरूपी पाशसे छूटना मनुष्योंके लिये अत्यन्त कठिन है। वीरलोग बलसे और योगी लोग ज्ञानसे भी इस सुदृढ़ स्नेहबंधनको नहीं काट पाते। नन्दजी! आप परोपकारी साधुजनोंमें अग्रगण्य हैं और हम अत्यन्त अकृतज्ञ हैं। आपने जो हमारे साथ मित्रताका अनुपम व्यवहार किया है उसका बदला यद्यपि हम नहीं दे सके तथापि वह निष्फल न होगा (अर्थात् उसका बदला आपको ईश्वरसे मिलेगा)। भाई! पहले हम असमर्थ होनेके कारण आपको प्रसन्न नहीं कर सके और इस समय भी सौभाग्यके मदसे विवेकरूप दृष्टिके नष्ट होनेके कारण आँखोंके आगे अवस्थित होनेपर भी आप ऐसे उपकार करनेवाले साधुओंको नहीं देख पाते। हे व्रजराज! हमतो यही कहते हैं जिस राज्यलक्ष्मीके होनेसे मदान्ध होकर, लोग अपने बन्धु, बान्धव और स्वजनोंको भी भूल जाते हैं वह राज्यलक्ष्मी, मङ्गलकी कामना करनेवाले पुरुषको कभी न प्राप्त हो" ॥६०—६४॥ यों कहते २ नन्दजीकी मित्रता अर्थात् उपकारका स्मरण हो आनेसे वसुदेवजीका शरीर शिथिल हो गया और वह प्रेमसे विह्वल हो आँखोंमें आँसू भर कर रोने लगे। नंदजी, अपने मित्र वसुदेव और कृष्ण—बलदेवकी प्रसन्नताके लिये तीन

महीने तक वहाँ रहे। यद्यपि नंदजी, जानेके लिये 'आज कल' करतेही रहे, परन्तु जाने नहीं पाये। यादवोंने तीन महीने तक अपने यहाँ रख कर नन्दजीका बहुत सत्कार किया। नन्दजीकी सब कामनाओंको कृष्ण, बलदेव और वसुदेवने पूर्ण किया और फिर महामूल्य आभूषण, रेशमी वस्त्र एवं अन्यान्य अमूल्य सामग्रियाँ देकर और रक्षाके लिये बहुत सी सेना साथ करके उनको विदा किया। अपने वन्धु-बान्धव गऊ गोप और गोपियोंसहित नन्दजी, कृष्ण बलभद्र उग्रसेन उद्धव और वसुदेव आदिसे मिल कर और अनुमति लेकर व्रजको चले ॥६५–६८॥ हे राजन्! नन्दजी, गोपगण और गोपियाँ, कृष्णचन्द्रके चरणोंमें समर्पित मनको नहीं फेरसके, अतएव मनको वहीं छोड़ कर अत्यन्त कष्टसे व्रजको गये ॥६९॥ इस प्रकार वन्धु-बान्धवोंको विदा करनेके उपरान्त, श्रीकृष्णही जिनके इष्टदवे हैं उन यादवोंने देखा कि वर्षा ऋतु आगई, अतएव वे भी द्वारका पुरीको चले ॥ ७० ॥

जनेभ्यः कथयांचक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम् ॥
यदासीत्तीर्थयात्रायां सुहृत्संदर्शनादिकम् ॥ ७१ ॥

द्वारकामें पहुँचकर यादवोंने, जिस प्रकार कुरुक्षेत्रमें नंद आदि सुहृद् जनोंसे भेट हुई और वसुदेवजीके महा यज्ञका उत्सव हुआ, सो सब वृत्तान्त द्वारकावासियोंके आगे विस्तारपूर्वक कहा ॥ ७१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितम अध्याय।

श्रीकृष्ण और बलदेवकी कृपासे वसुदेवको ब्रह्मज्ञान और देवकीको मरेहुए छः पुत्र मिलनेकी कथा।

श्रीबादरायणिरुवाच—अथैकदात्मजौ प्राप्तौ कृतपादाभिवन्दनौ ॥
वसुदेवोऽभिनन्द्याह प्रीत्या संकर्षणाच्युतौ ॥१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! कुरुक्षेत्रमें मुनियोंके मुखसे अपने पुत्र कृष्ण-बलदेवके अप्रतिम प्रभावका विवरण सुनकर वसुदेवजीको विश्वास होगया कि ये साक्षात् ईश्वर सर्वशक्तिमान् हरि ही हैं। एक समय दोनो भाइयोंने पिता वसुदेवके निकट आकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। वसुदेवजीने भी प्रेमपूर्वक आशीर्वाद देकर अभिनन्दन किया। इस प्रकार लोकाचार हो चुकनेपर वसुदेवने कृष्ण और बलरामसे कहा कि—"हे कृष्ण! हे महायोगी कृष्ण! हे सनातन संकर्षण! मैं आप दोनोको इस विश्वका कारण जो प्रधान और पुरुष हैं उनका भी

कारण अर्थात् साक्षात् ईश्वर समझता हूँ । जहाँ, जिसके द्वारा, जहाँसे, जिसके लिये, जिसके प्रति, जैसे, जब, जो जो होता है सो सब, प्रधान और पुरुषके ईश्वर साक्षात् भगवान् आपही हैं ॥ १–४ ॥ हे अधोक्षज ! हे भगवन् ! आप अपने द्वारा उत्पन्न इस विविधविध विश्वमें चैतन्य आत्मरूपसे प्रवेश करके प्राण (क्रियाशक्ति) और जीव (ज्ञानशक्ति) रूपसे इसका धारण अर्थात् पालन और पोषण भी करते हैं ॥ ५ ॥ प्राण (क्रियाशक्ति) आदिक विश्वके कारणोंमें जो कुछ कार्य्यकारिणी शक्ति देखी जाती है वह ईश्वरकी ही है, वे केवल निमित्तमात्र हैं, क्योंकि परतन्त्र और परस्पर विसदृशभावसे युक्त हैं । जैसे लक्ष्य बेधनेकीशक्ति वाण चलानेवालेकी है, वाणकी नहीं है; वाण तो केवल निमित्तमात्र है; वैसेही प्राण आदिमें केवल चेष्टामात्र है; उनमें जो कार्य्य करनेकी शक्ति है सो चैतन्यरूप ईश्वरकी है ॥ ६ ॥ हे ईश्वर ! चन्द्रमामें कान्ति, अग्निमें तेज, सूर्य्यमें ज्योति, नक्षत्रोंमें प्रभा, बिजलियोंमें सत्ता (स्फुरणमात्रसे अस्तित्व) सब वास्तवमें आपही हैं । पर्वतोंमें स्थिरता भी आपही हैं । पृथ्वी, पृथ्वीमें धारण करनेकी शक्ति और गंधगुण; जल, जलमें तृप्त करने और जीवित रखनेकी शक्ति और रसगुण; वायु, वायुमें चेष्टा, गति, इन्द्रियबल, मनोबल, और देहबल; सब आपही हैं ॥७॥ ८ ॥ दिशाओंका अवकाश, दिशाएँ, आकाश, आकाशका गुण शब्द, नाद, ओंकार, वर्ण और जिससे सब पदार्थोंके नामोंका निरूपण होता है वह वर्णपदात्मक वैखरी नामक स्थान या कोष भी आपही हैं ॥ ९ ॥ इन्द्रियोंमें विषयप्रकाशनशक्ति, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतोंमें अधिष्ठानशक्ति, बुद्धिमें अध्यवसायशक्ति और जीवमें प्रतिसंधानशक्ति या स्मरणशक्ति आप ही हैं ॥ १० ॥ पञ्चतत्त्वोंमें उनका कारण तामस अहंकार, इन्द्रियोंमें उनका कारण राजस अहंकार, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतोंमें उनका कारण सात्त्विक अहंकार और जीवोंमें उनके आवागमनका कारण प्रकृति आपही हैं ॥ ११ ॥ जैसे मृत्तिका-सुवर्ण आदि द्रव्योंके अनित्य विकार या रूपान्तर घट-कुण्डल आदिमें उनके कारणरूप वे मृत्तिका सुवर्ण आदि द्रव्य नित्य हैं वैसेही उक्त सब नश्वर भावोंमें आपही एक अविनश्वर नित्य पदार्थ हैं ॥ १२ ॥ सत्त्व, रज, तम नामक मायाके तीनो गुण और उनकी वृत्तियाँ अर्थात् महत्तत्त्व आदिक परिणाम–ये सब साक्षात् परब्रह्म जो आप हैं उनमें योगमायाके द्वारा कल्पित हैं ॥ १३ ॥ अतएव वास्तवमें उक्त सब भावविकार आपमें नहीं हैं । जब ये सब भाव आपमें विशेष रूपसे कल्पित होते हैं तब आपमें केवल उनकी प्रतीति होती है और आप कारण-रूपसे उनका अनुसरण करते हैं । अन्य समयमें निर्विकल्परूपसे केवल आपही अवशिष्ट रहते हैं ॥ १४ ॥ इस गुणप्रवाहरूप संसारमें सर्वरूप आपकी सूक्ष्म अर्थात् निष्प्रपञ्च गतिको न जाननेके कारण देहाभिमानपूर्वक कर्म करते हुए

जीव, वारम्वार जन्म और मरणको प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥ हे ईश्वर! दैवसंयोगसे दुर्लभ मनुष्यजन्म पाकर—उसमें भी शरीरकी आरोग्यता और इन्द्रियोंकी स्वस्थता या कार्यक्षमता पाकर—जो कोई मुक्तिरूप सर्वोपरि स्वार्थके साधनेमें असावधानता या भूल करता है वह आपकी मायामें मोहित रह कर वृथा ही अपनी आयुको गँवा देता है ॥ १६ ॥ आपहीने इस सम्पूर्ण जगत्को देहमें एवं देहसे सम्बंध रखनेवाले स्त्री, पुत्र-पौत्रादिमें "मैं हूँ, यह मेरा है"—इस प्रकारके स्नेहमय मायापाशसे जकड़ रक्खा है ॥ १७ ॥ आप दोनो महानुभाव वास्तवमें मेरे पुत्र नहीं हैं, वरन् साक्षात् प्रकृति और पुरुषके नियन्ता परमेश्वर हैं। पृथ्वीके लिये भार हो रहे दुष्ट क्षत्रियोंका संहार करनेको आपने पृथ्वी पर अवतार लिया है। हे आर्त्तजनोंके बन्धु! इस समय, मैं, शरणागतजनोंको संसारके भयसे मुक्त करनेवाले आपके चरणकमलोंकी शरणमें आया हूँ। अब तक जो मैंने इन्द्रियभोग्य विषयोंमें लोलुप रह कर असत् शरीरको सत् आत्मा समझा और साक्षात् परमेश्वर जो आप हैं उनको अपना पुत्र समझा सो मायाकृत मोहमात्र था। आपहीने प्रत्येक युगमें सूतिकागृहमें मुझसे कहा है कि—"मैं अजन्मा ईश्वर होकर भी निजनिर्मित सनातन धर्म्मकी रक्षाके लिये तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ"। आप आकाशके समान अनेक शरीरोंको लेते और त्याग देते हैं, तथापि निर्लिप्त रहते हैं। हे उरुगाय! हे सर्वगत! आपकी विभूतिरूपिणी मायाको कौन जान सक्ता है?" ॥ १८-२० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! इस प्रकार पिताके तत्त्वज्ञानमय कथनको सुनकर यादवशिरोमणि भगवान् कृष्णने विनययुक्त हो, नम्रतापूर्वक हँसते हुए मधुर वाणीसे कहा कि—"हे पिता! आपने हमारे उद्देशसे जो यह भली भाँति तत्त्वोंका निरूपण किया उसको हम भी युक्तियुक्त मानते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे यदुनायक! मैं, आप लोग, आर्य्य बलदेव, ये द्वारकावासी लोग, यहाँतक कि सम्पूर्ण सचराचर जगत्, सब ब्रह्मस्वरूप है। जिज्ञासु व्यक्तिको चाहिये कि वह इसी प्रकार व्यापकरूपसे ब्रह्मका विचार करे ॥ २३ ॥ एकमात्र, स्वयं ज्योतिःस्वरूप, नित्य, अनन्य और निर्गुण ब्रह्म अपनेहीसे प्रकट गुणसमूहके द्वारा गुणकृत उपाधिस्वरूप तत्त्वोंमें अनेकरूप प्रतीत होता है ॥ २४ ॥ जैसे एकरूप आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—उपाधिके अनुसार निजकर्तृककृत घट आदि पदार्थोंमें आविर्भाव, तिरोभाव, अल्पता, बहुलता और अनेकताको प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकट, नष्ट, अल्प, बहुल और अनेक प्रतीत होते हैं वैसेही ब्रह्मके विषयमें भी जानना चाहिये" ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! भगवान्के उक्त वाक्योंको सुन कर वसुदेवके चित्तसे भेदभावना दूर हो गई और वह परम प्रसन्नता और शान्तिको प्राप्त हुए ॥ २६ ॥ हे गुरुश्रेष्ठ! कृष्ण-बलरामने गुरुको गुरुदक्षिणामें उनका

मराहुआ पुत्र परलोकसे लादिया; यह वृत्तान्त सुन कर देवी देवकीको बड़ा ही विस्मय हुआ। उस समय कंसके हाथों मारे गये अपने बालकोंका स्मरण होआनेसे स्नेहवश देवकीको बड़ाही दुःख हुआ और वह व्याकुलताके कारण रोती हुई कृष्ण-बलरामके निकट जाकर इस प्रकार दीन वाणीसे कहने लगीं कि— "हे अप्रमेयप्रभावसम्पन्न बलराम! और हे योगेश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्ण! मैं जानती हूँ कि आप ब्रह्मा आदि विश्वस्रष्टा देवतोंके भी ईश्वर आदिपुरुष हैं। हे आद्य! कालवश सत्त्व-बलसे हीन होकर शास्त्र विहित मर्य्यादाका उल्लंघन करनेवाले, अतएव पृथ्वीके लिये भार हो रहे राजोंका संहार करनेके लिये आपने मेरे गर्भसे जन्म लिया है। मैंने सुना है कि आपने अपने गुरुको गुरुदक्षिणामें उनका मरा हुआ पुत्र यमलोकसे लादिया है। सो हे योगेश्वरोंके ईश्वर! यह सुन कर मुझको भी वैसी ही अभिलाषा हुई है—उसको आप पूर्ण करो, अर्थात् जिन मेरे पुत्रोंको कंसने मारडाला था उनको आप योगबलसे लाकर मुझे दिखा दो; मैं उनको देखना चाहती हूँ" ॥ २७–३३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा। हे महाराज! इस प्रकार माताकी आज्ञा पाकर कृष्ण और बलदेव दोनो भाई योगमायाके बलसे उसी समय सुतल लोकको गये ॥३४॥ विश्वमात्रके और विशेष कर अपने पूजनीय इष्टदेव आत्मस्वरूप कृष्ण-बलरामको अपने लोकमें देखकर राजा बलिको अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ—उस अनुपम आनन्दसे दैत्यराजका हृदय गद्गद होगया। झटपट अपने पुत्र-पौत्रोंसहित आसनसे उठ कर राजा बलिने प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक बैठनेके लिये सुन्दर उत्तम आसन लाकर दिये। जब महात्मा दोनो भाई उन आसनों पर सुखपूर्वक बैठे तब बलिने भक्तिपूर्वक उनके चरणकमल धोकर उस चरणोदकको, जो ब्रह्मासे लेकर सम्पूर्ण चराचर जगत्को गंगाके नामसे पवित्र कर रहा है, परिवारसहित अपने शिरपर छिड़का, और फिर महामूल्य वस्त्र, आभूषण, चन्दन, माला, धूप, दीप सुधासम मधुर अन्न, ताम्बूल और धन रत्न आदि महासामग्रियोंसे एवं अपने वंश, विभव और शरीरसहित आत्माके समर्पणसे उनका पूजन किया ॥ ३५–३७ ॥ इस प्रकार विधिपूर्वक पूजन करनेके उपरान्त राजा बलि प्रभुके चरणकमलोंको गोदमें रख कर दबाने लगे। उस समय आनन्दके वेगसे बलिके शरीरमें रोमाञ्च हो आया, नेत्रोंसे आँसू बहने लगे और चित्त प्रेमसे विह्वल होगया। इसके उपरान्त दैत्यराजने गद्गद वाणीसे कहा—"महान् अनन्तको प्रणाम है, विधाता कृष्णको प्रणाम है, सांख्य दर्शन और योगदर्शनका आविष्कार और प्रचार करनेवाले ब्रह्मस्वरूप परमात्माको प्रणाम है ॥३८॥३९॥ हे भगवन्! हम राजसी–तामसी प्रकृतिके जीव (असुर) हैं, किन्तु आपने आपहीसे आकर दर्शन दिया,—अतएव हमारी समझमें यद्यपि अज्ञानान्ध प्राणियोंके लिये आपका दर्शन दुष्प्राप्य और अत्यन्त दुर्लभ है, तथापि जिन पर आप अनुग्रह

करते हैं उनके लिये सुलभ है ॥ ४० ॥ दैत्य, दानव, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, प्रमथ नायक आदि सम्पूर्ण राजसी और तामसी प्रकृतिके प्राणी,-विशुद्ध सत्त्वके धाम साक्षात् शास्त्रस्वरूप आपसे शत्रुता बाँधनेवाले हैं; हम और अन्यान्य असुर भी वैसे ही हैं । किन्तु गोपियाँ काम-भक्तिसे और कोई २ दैत्य प्रचण्ड वैरभावसे जैसे आपको प्राप्त हुए हैं वैसे सत्त्वशील और नगीची देवतालोग भी आपको नहीं पासक्ते ! इसीसे कहते हैं कि आपकी लीला अपरम्पार है ॥ ४१—४३ ॥ हे योगेश्वरोंके भी ईश्वर ! जब योगेश्वर लोग भी आपकी योगमायाके स्वरूप और विशेपको पूर्णतया नहीं जान पाते तब हम क्या हैं ? । अतएव हे दीनबन्धो ! हम पर प्रसन्न होकर ऐसी कृपा करिये कि निरपेक्ष मुनिगणके एकमात्र आश्रय जो आपके चरणकमल हैं उन्हीके भजनमें हम तत्पर रहें । आपके चरणोंकी सेवा ही सार-वस्तु है और गृहादिक विपय अन्धकूपके समान हैं । हमारी यही प्रार्थना है कि उक्त अन्धकारमय अन्धकूपसे निकल कर विश्वकी रक्षा करनेवाले जो आप हैं उनके चरणकमलोंमें हमारी प्रवृत्ति हो और हम सबके संगको छोड़ कर अथवा संसार भरके मित्र आपके भक्त महात्मा सज्जनोंके संगमें शान्तिको पाकर विचरण करें । हे सब जीवोंके ईश्वर ! हे प्रभो ! हमको आज्ञा देकर निष्पाप करिये । आपकी आज्ञाका श्रद्धापूर्वक पालन करनेसे लोग विधि-निपेधके अनुशासनसे मुक्त हो जाते हैं" ॥४४-४६॥ भगवान्ने कहा—"हे दैत्यराज! पहले स्वायम्भुव मन्वन्तरमें ऊर्णाके गर्भसे मरीचि ऋपिके छः पुत्र हुए थे । ब्रह्माजीको अपनी कन्या पर अनुरक्त देखकर वे देवसदृश ऋपि पुत्र हँसे थे । इसी पापसे वे उसी क्षण आसुरी योनिको प्राप्त हुए, अर्थात् उनको हिरण्यकशिपुके वीर्य्यसे जन्म लेना पड़ा । उस जन्मके बाद योगमायाके द्वारा लाये जाकर वे देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए और उनको दुष्ट कंसने मार डाला । देवी देवकी प्रवल पुत्रस्नेहके कारण उनके लिये शोच कर रही हैं और उनको देखना चाहती हैं । वेही बालक ये तुम्हारे पास वर्त्तमान हैं, मैं माताका शोक दूर करनेके लिये इनको लेजाऊँगा । तदनन्तर वे शापसे मुक्त और विगतताप होकर फिर देवलोकको चले जाँयगे । ये स्मर, उद्गीथ, परिष्वङ्ग, पतङ्ग, क्षुद्रभृत् और घृणि नामक ऋपिकुमार, मेरी कृपासे उत्तम गति (मोक्ष) को प्राप्त होंगे" ॥ ४७—५१ ॥ यों कह कर, राजा बलिके द्वारा भली भाँति पूजित कृष्ण-बलराम, उन बालकोंको लेकर द्वारकापुरीमें उपस्थित हुए । कृष्ण-बलभद्र द्वारा लाये गये पुत्रोंको देखते ही पुत्रस्नेहके कारण देवकीके स्तनोंसे आप-ही-आप दुग्ध बहने लगा । देवकीने प्रेमपूर्वक पुत्रोंको हृद-यसे लगा लिया और गोदमें लेकर वारम्वार मस्तक सूँघने लगीं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ संसारचक्रको चलानेवाली भगवान् विष्णुकी मायामें मोहित देवकीजी पुत्रस्प-

र्शके कारण दुग्धपरिपूर्ण स्तन मुखमें देकर प्रीतिपूर्वक उन बालकोंको दुग्ध पिलाने लगीं ॥ ५४ ॥ कृष्ण भगवान्के पीनेसे बचा हुआ अमृतमय देवी देवकीका दुग्ध पीनेसे और नारायणरूप कृष्णके अङ्गस्पर्शसे उन बालकोंके शुद्ध अन्तःकरणमें आत्मज्ञानका उदय हुआ और वे सबके सामने ही गोविन्द, बलदेव, देवकी एवं वसुदेवको प्रणाम करके आकाशमार्गसे देवलोकको चले गये ॥५५॥५६॥ हे राजन्! इस प्रकार मरेहुए पुत्रोंका आना और जाना देखकर देवकीको अत्यन्त आश्चर्य हुआ और उन्होने समझ लिया कि यह सब योगेश्वरोंके ईश्वर कृष्णकी माया है ॥ ५७ ॥ हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ महाराज! अनन्तवीर्य्य परमात्मा श्रीकृष्णके ऐसे २ अनेकानेक अद्भुत कर्म्म हैं—जिनका अन्तही नहीं है ॥ ५८ ॥

सूत उवाच—य इदमनुशृणोति श्रावयेद्वा मुरारे-
श्चरितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः ॥
जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं
भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम ॥ ५९ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं । हे शौनकजी! पूजनीय व्यासतनय शुकदेवके द्वारा वर्णित, जगत्के पातकोंको नष्ट करनेवाला और भगवद्भक्तोंके लिये सुखदायी कर्णाभरणस्वरूप यह अमृतकीर्तिसम्पन्न मुरारिका अद्भुत चरित्र हैं। इसको जो लोग मन लगाकर सम्पूर्ण रूपसे प्रत्येक समय सुनते या सुनाते हैं उनका चित्त दृढ़रूपसे भगवान्में लग जाता है और वे अवश्य ही मंगलमय हरिधामको जाते हैं ॥ ५९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

षडशीतितम अध्याय ।

सुभद्राहरण और भगवान्की मिथिलायात्राका वर्णन ।

राजोवाच—ब्रह्मन्वेदितुमिच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः ॥
यथोपयेमे विजयो या ममासीत्पितामही ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा । ब्रह्मन्! हमारी दादी सुभद्रा देवी, जो कृष्ण—बलभद्रकी बहन थीं, उनके साथ महातेजस्वी अर्जुनजीका विवाह किस प्रकार हुआ? मैं यह कथा सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा । राजन्! एक समय महापराक्रमी अर्जुन तीर्थयात्रा करनेके लिये निकले। प्रभास क्षेत्रमें पहुँच

कर अर्जुनने सुना कि—'बलभद्रजी मेरे मामाकी लड़की अर्थात् अपनी बहन सुभद्राका बिवाह दुर्य्योधनसे करेंगे, किन्तु कृष्ण आदिकी यह इच्छा नहीं है'। अर्जुनने चाहा कि सुभद्रासे मैं विवाह करूँ। यह विचार कर त्रिदण्डधारण-पूर्वक संन्यासीके वेषसे—गुप्तरूपसे अर्जुनजी द्वारका पुरीको गये ॥ २ ॥ ३ ॥ अर्जुनजी स्वार्थ सिद्ध करनेके विचारसे चौमासे भर द्वारका पुरीमें रहे। पुरवासी-जन और स्वयं बलभद्रजी भी न पहचान सके कि यह अर्जुन हैं, अतएव उन्होने त्रिदण्डी यती जान कर इनका बहुत सत्कार और पूजन किया॥ ४ ॥ एक दिन बलभद्रजी निमन्त्रण देकर भोजन करानेके लिये अर्जुनको घर लेगये। बलभद्र-जीने श्रद्धासे भिक्षा दी और अर्जुनजी भोजन करने लगे। वहाँ पर सुशीला और वीर पुरुषोंके मनको हरनेवाली कन्या (सुभद्रा) को देख कर अर्जुनका चित्त चंचल हो उठा और प्रसन्नताके कारण नेत्रकमल खिल उठे ॥ ५ ॥ ६ ॥ स्त्रियोंके मनको हरनेवाले अर्जुनको देख कर सुभद्राका भी मन वशमें नहीं रहा । वह सुकुमारी कुमारी मंद मुसकानसे सरस और लज्जापूर्ण कटाक्षोंसे अर्जुनको देखने लगी। सुभद्राने अपना हृदय अर्जुनको देदिया और एकटक उनकी वीर और मनोहर मूर्त्तिको निरन्तर निहारती रही ॥ ७ ॥ उस दिनसे वह मोहिनी मूर्त्ति अर्जुनके हृदयमें बस गई और प्रबल कामदेव अपने बाणोंकी चोटसे चित्तको अस्थिर करने लगा। इस प्रकार कामपीड़ासे व्याकुल अर्जुन, उस कन्याको ले भा-गनेका अवसर देखने लगे ॥ ८ ॥ इसी अवसरमें एक दिन बड़ी भारी देवयात्रामें रथ पर चढ़ीहुई सुभद्रा द्वारकाके अन्तःपुरके दुर्गसे निकल कर देवदर्शनके लिये चलीं। इस सुअवसरमें कृष्णचन्द्र, वसुदेव, और देवकीकी इच्छाके अनुसार महारथी अर्जुनजी राहसे सुभद्राको हरले गये। जो रक्षक सुभट शूर बाधा देनेके लिये उद्यत हुए उनको रथ पर स्थित अर्जुनने धनुष चढ़ा कर असह्य बाणोंकी वर्षासे भगा दिया। आत्मीय यादवलोग चिल्लाते ही रहे, और अर्जुनजी, जैसे अपने भागको सिंह ले जाता है वैसे सुभद्राको लेगये ॥ ९ ॥ १० ॥ यह वृत्तान्त सुन कर, पर्वके दिन महासागरके समान, बलभद्रजी अत्यन्त कुपित और क्षुभित हुए, किन्तु कृष्णचन्द्रने पैर पकड़ कर तथा अन्यान्य बन्धुओंने विनय और प्रार्थना करके शान्त कर दिया ॥ ११ ॥ तब बलभद्रजीने प्रसन्न होकर पीछेसे वर–वधूके लिये यौतुकस्वरूप महामूल्य गृहसामग्री, हाथी, रथ, घोड़े, रत्नालंकार, दासी और दास भेज दिये ॥ १२ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा**। हे महाराज! श्रुतदेव नाम एक विप्रवर श्रीकृष्णचन्द्रके अनन्य उपासक भक्त थे । वह शान्त चतुर विवेकी सन्तुष्ट ब्राह्मण केवल कृष्णभक्तिके सिवा और कोई प्रयोजन न रखते थे, ॥ १३ ॥ वह विदेह देशके अन्तर्गत मिथिला नाम पुरीमें रहते थे । श्रुतदेवजी गृहस्थ होकर भी जो कुछ आपहीसे मिल जाता था उसीसे सब काम निबाहते

थे। उनको जीवनरक्षामात्रके लिये आवश्यक अन्नादि नित्य मिल जाता था–इससे अधिक नहीं मिलता था। वह उतनेहीमें सन्तोष करके यथोचित रीतिसे अपने धर्मका पालन करते थे॥ १४॥ १५॥ राजन्! उस समय मैथिलवंशज बहुलाश्व नाम नरेश उस राज्यके शासक थे। वह निपट निरभिमान राजा भी श्रुतदेवके समान अत्यन्त भगवद्भक्त और कृष्णचन्द्रके प्रेमपात्र थे॥ १६॥ उन दोनो भक्तों पर प्रसन्न होकर अनुग्रह करनेके लिये प्रभु भगवान् कृष्णचन्द्र दारुक सारथीके लाये हुए दिव्य रथ पर चढ़ कर मिथिला पुरीको चले॥ १७॥ भगवान्के साथ नारद, वामदेव, अत्रि, वेदव्यास, परशुराम, असित, अरुणि, बृहस्पति, मैं, कण्व, मैत्रेय और च्यवन आदिक ऋषि लोग भी चले॥ १८॥ राजन्! ग्रहमण्डलीमण्डित सूर्य्यके समान भगवान् जिस २ देशमें पहुँचे वहाँ २ के पुरवासी और जनपदवासी लोग अर्घ्य आदि पूजनकी सामग्री हाथमें लिये उनके आगे आकर उपस्थित हुए॥ १९॥ महाराज! आनर्त्त, मरु, कुरुजाङ्गल, कङ्क, मत्स्य, पाञ्चाल, कुन्ति, मधु, केकय, कोशल और अर्ण एवं अन्यान्य मार्गमें पड़नेवाले देशोंके रहनेवाले नर-नारीगणने, उदार हँसी और स्नेहपूर्ण दृष्टिसे मनोहर हरिके मुखारविन्दको निरन्तर निहार कर अपने नेत्रोंको सफल किया। त्रिलोकगुरुके दर्शनसे उन नर-नारियोंका अज्ञान नष्ट होगया और उन्हे दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई। श्रीकृष्णचन्द्र उन नरनारियोंको अभय और तत्त्वज्ञानका दान करते और उनके मुखसे दिग्दिगन्तको उज्ज्वल करनेवाला अशुभनाशक अपना सुयश सुनते हुए क्रमशः विदेहनगरमें पहुँच गये॥ २०॥ २१॥ मिथिला प्रान्तके पुरवासी और जनपदवासी जन अच्युतके आगमनका समाचार पाकर आनन्दपूर्वक पूजनकी सामग्री हाथमें लिये उनकी अभ्यर्थना करनेको अग्रसर हुए। उत्तमश्लोकके दर्शनसे उनके मुख और अन्तःकरण प्रफुल्लित हो गये। उन लोगोंने श्रीकृष्णको और जिनके नाम पहलेसे सुन रक्खे थे उन महर्षियोंको आदर सहित शिर झुका हाथ जोड़ कर प्रणाम किया॥ २२॥ २३॥ 'हमपर अनुग्रह करनेके लिये जगद्गुरु कृष्णचन्द्र यहाँ आये हैं'–यह समझ कर मिथिलानरेश और श्रुतदेवने एकसाथ ही चरणों पर शिर रख, हाथ जोड़, यादवपति कृष्ण प्रभुसे प्रार्थना की कि 'आप ब्राह्मणश्रेष्ठ ऋषियों सहित हमारे आतिथ्य (मेहमानी) को स्वीकृत करके कृतार्थ कीजिये'। भक्तवत्सलने दोनो भक्तोंके आतिथ्यको स्वीकृत किया और दोनोकी प्रसन्नताके लिये दो रूप धर कर दोनोके घर गये। परन्तु श्रुतदेवने जाना कि भगवान् हमारेही यहाँ आये हैं और राजाने जाना कि भगवान् हमारेही यहाँ आये हैं॥ २४–२६॥ राजन्! मिथिलानरेशने दूरसे आनेके कारण थके हुए मुनियोंको और भगवान्को बैठनेके लिये उत्तम आसन दिये। उन आसनों पर ब्राह्मणगण और भगवान् जब सुखपूर्वक बैठे तब

महामनस्वी नरेशने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर पैर धोकर उस त्रिलोकपावन चरणोदकको अपने और कुटुम्ब भरके शिर पर छिड़का। आनन्द भक्तिसे राजाका हृदय गद्गद होआया और नेत्र आँसुओंके जलसे परिपूर्ण होगये। फिर राजाने भक्तिपूर्वक चन्दन, माला, वस्त्र, आभूषण, धूप, दीप, अर्घ्य और गोदानसे सबकी विधिपूर्वक पूजा की ॥ २७-२९ ॥ तदनन्तर अन्न, जल और ताम्बूल आदिसे सबको तृप्त और सन्तुष्ट करके भगवान्के दुर्लभ चरणकमलोंको गोदमें लेकर दबाते हुए मिथिलानरेशने प्रसन्नतापूर्वक मधुर वाणीसे धीर स्वरसे कहा कि " हे विभो ! हे नाथ ! आप स्वयं प्रकाशमान हैं। सब जीवोंके चेतनदाता आत्मा और साक्षी अर्थात् प्रकाशक भी आप ही हैं। सदा अपने चरणकमलोंको भजनेवाले हमलोगोंको आज आपने दर्शन दिया। आपका कथन है कि 'मुझको अनन्त (बंधु), श्रीलक्ष्मी (स्त्री) और ब्रह्मा (पुत्र) भी एकान्त भक्तोंसे बढ़कर प्यारे नहीं हैं'। इस अपने वाक्यको सार्थक करनेके लिये ही आज आपने हमको दर्शन दिया है ॥ ३०—३२ ॥ भगवन् ! आप निष्किञ्चन, शान्त मुनियोंको आत्मज्ञानके देनेवाले हैं। यह जानकर भी कौन चतुर व्यक्ति आपके चरणकमलोंके भजनसे विमुख रहेगा ? ॥३३॥ आपने इस पृथ्वी पर संसारी मनुष्योंके बीच यदुवंशमें अवतार लेकर तीनो लोकोंके पापोंको नष्ट करनेवाला सुयश इसलिये फैलाया है कि लोग उसे कहकर और सुनकर संसारसे मुक्त हों ॥ ३४ ॥ भगवन् ! आप अकुण्ठित अनुभवसे पूर्ण, शान्त, तपस्वी, नारायण ऋषि हैं—आपको प्रणाम है ॥ ३५ ॥ हे सर्वव्यापक ! आप इन महर्षियों सहित कुछ कालतक हमारे घरमें रहकर अपने चरणोंकी पवित्र रजसे इस निमिकुलको पवित्र कीजिये" ॥ ३६ ॥ राजाकी प्रार्थनाको स्वीकृत करके लोकभावन भगवान् मिथिलापुरवासियोंके कल्याणके लिये कुछ काल तक वहाँ ठहरे ॥ ३७ ॥ राजन् ! जनकके समान श्रुतदेव ब्राह्मणने भी मुनियों सहित अच्युतको आये देख उठकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और भक्तिजनित आनन्दमें मग्न हो नाचने लगे; उनको उस समय शरीरकी और वस्त्र आदिके गिरनेकी भी सुध-बुध नहीं रही ॥ ३८ ॥ उन्होने तृण, काष्ठ और कुशके आसन लाकर सबको बैठाया और प्रणाम स्वागत-प्रश्न करके भार्यासहित आनन्द पूर्वक सबके पैर धोये ॥ ३९ ॥ हे महाभाग ! श्रुतदेवके सब मनोरथ पूर्ण होगये। उन्होने हर्षित होकर उस पवित्र चरणोदकसे सपरिवार स्वयं स्नान किया और घरभरमें छिड़ककर उस भूमिको पवित्र किया ॥ ४० ॥ फिर अनायास मिली हुई फल, उशीर, सुवासित मधुर पत्ते, सुगन्धित मृत्तिका, तुलसीदल, कुश, कमल कुसुम और शान्ति देनेवाले सात्विक अन्न आदि सामग्रियोंसे पूजा करके वह अपने मनमें विचारने लगे कि "अहो ! मैं तो गृहरूप अन्धकूपमें पड़ा हुआ एक अधम व्यक्ति हूँ; जिन

चरणोंकी रजमें सब तीर्थ हैं और जो साक्षात् हरिके निवासका स्थान हैं, उन, इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका और साक्षात् विष्णु कृष्णचन्द्रका संगम मुझको कैसे प्राप्त हुआ!" ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ महाराज ! तदनन्तर श्रीकृष्णजी जब सब ब्राह्मणों सहित सुखपूर्वक आसन पर बैठे, तब स्त्री, पुत्र और स्वजनमण्डलीके साथ कृष्णचन्द्रके निकट बैठ उनके चरणोंको दबाते हुए श्रुतदेवने कहा कि–"हे परमपुरुष ! आप आज ही मुझको नहीं मिले हैं; जब अपनी शक्तियोंके द्वारा इस जगत्की सृष्टि करके निज सत्ता(चैतन्य)के द्वारा इसके अभ्यन्तरमें आपने प्रवेश किया था तभीसे आप मुझसे मिले हुए हैं। किन्तु जैसे निद्रित पुरुष, आत्ममाया अपनी अविद्याके द्वारा मनसे ही केवल स्वप्नकल्पित लोकसृष्टि करके उसमें प्रवेश करता हुआ अवभासमान होता है वैसेही आप भी केवल अभी दृष्टिगोचर हुए हैं ॥ ४३–४५ ॥ जो सब निर्म्मल अन्तःकरणवाले पुरुष, निरन्तर आपके गुण और कर्मोंको सुनते और गाते हैं—आपकी पूजा और वन्दना करते हैं—आपसे चित्तद्वारा मिलते रहते हैं—उन्हीके हृदयके भीतर आप प्रकट होते हैं; किन्तु मेरे तो नेत्रोंके आगे उपस्थित हैं, इस कारण मेरा अहोभाग्य है ॥४६॥ जिन लोगोंका चित्त सकाम कर्मोंमें अनुरक्त है उनके लिये आप हृदयमें रह कर भी अत्यन्त दूर हैं, और जो लोग निरभिमान हैं—जिनके अन्तःकरण आपके भजन, श्रवण और कीर्त्तनसे पवित्र हो गये हैं उनके लिये आप अत्यन्त निकट और सुलभ हैं ॥ ४७॥ भगवन्! आप अध्यात्मज्ञानियोंके विचारमें परमात्मा अर्थात् मोक्षदाता हैं और देहाभिमानी जीवोंके लिये अप्रकाशमान हैं, अतएव अपनी मायाके आवरणसे उनकी ज्ञानदृष्टिको ढँक कर जन्ममरणके भ्रमजालमें डालनेवाले हैं, सुतराम् सकारण (महत्तत्त्व आदिक कार्य्य) और अकारण (प्रकृति), दोनो प्रकारकी उपाधियोंको नियन्तारूपसे प्राप्त हैं। आप स्वयं उक्त उपाधियोंसे आवृत नहीं हैं और उक्त उपाधियोंके वशवर्त्ती जीवकी दृष्टिको अपनी वशवर्त्तिनी मायाके आवरणसे ढँके हुए हैं। हे अलुप्त ऐश्वर्य्यसे सम्पन्न ! हे परमात्मा ! आपको प्रणाम है ॥ ४८ ॥ हे देव ! हम आपके भृत्य हैं, कृपापूर्वक आज्ञा दीजिये कि हम आपकी क्या सेवा करें ? भगवन् ! जबतक आपके दर्शन नहीं मिलते तभी तक लोगोंको सांसारिक क्लेश भोगने पड़ते हैं" ॥ ४९ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन् ! मुनिके यथार्थ कथनको सुन कर प्रणत जनोंकी आर्त्तिको हरनेवाले भगवान् उनका हाथ पकड़ कर प्रसन्नतापूर्वक हँस कर बोले कि—"ब्रह्मन् ! त्रिभुवनको अपने चरणोंकी रजसे पवित्र करते हुए विचरनेवाले ये सब मुनिगण मेरे साथ तुम पर अनुग्रह करनेके लिये तुम्हारे भवनमें पधारे हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ देखो–देवता, पुण्यक्षेत्र, और तीर्थ—कुछ काल तक दर्शन, स्पर्श और सेवा करनेसे धीरे २ पवित्र करते हैं, किन्तु साधु–ब्राह्मणोंको एक बार देखने और प्रणाम करनेसे ही

तत्क्षण शरीर और मन शुद्ध हो जाते हैं ॥ ५२ ॥ ब्राह्मण, जन्मसेही सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ और पूजनीय है और यदि वह तप, विद्या, सन्तोषसे युक्त तथा मेरी उपासना करनेवाला हो तो फिर उसके लिये क्या कहना है? ॥ ५३ ॥ ब्राह्मण मेरी ही मूर्ति है; मुझको यह चतुर्भुज रूप भी ब्राह्मणसे बढ़ कर प्रिय नहीं है । जितना मैं ब्राह्मणरूपकी सेवासे सन्तुष्ट होता हूँ उतना इस रूपकी पूजा और सेवासे नहीं सन्तुष्ट होता; क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेदमय है और मैं सर्व देवमय हूँ ॥ ५४ ॥ ब्राह्मण, मुझको सर्वत्र व्यापक जानता और महत्तत्त्व, पञ्चतत्त्व आदि सहित सम्पूर्ण चराचर जगत्में मेरी ही भावना करता है एवं सबको मेरा ही स्वरूप मानता है ॥ ५५ ॥ मतिमन्द (नासमझ) लोग ऐसा न जान कर (अर्थात् ब्राह्मणोंको भी अपनेही समान साधारण मनुष्यमात्र समझ कर) ब्राह्मणोंको दोषदृष्टिसे देखते और उनका अनादर करते हैं; किन्तु जो लोग बुद्धिमान् हैं वे ब्राह्मणोंको मुझ आत्माका श्रेष्ठ रूप मानते और अपना गुरु व पूज्य समझ कर उनका आदर करते हैं ॥ ५६ ॥ इस लिये हे विप्रवर! इन सब ब्रह्मर्षियोंको मेरा ही स्वरूप समझो और श्रद्धापूर्वक इनका पूजन करो । इनकी पूजा करनेसे साक्षत् मेरी पूजा होगी और मैं प्रसन्न होऊँगा। अन्यथा और रूपोंमें बड़ी सामग्रियोंसे पूजा करने पर भी मैं पूर्णरूपसे नहीं सन्तुष्ट होता'' ॥५७॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । इस प्रकार प्रभुकी आज्ञा पाकर मैथिल ब्राह्मण श्रुतदेवजी, कृष्णसहित सम्पूर्ण ब्रह्मर्षियोंकी एकभावसे आराधना करके अन्तसमय सद्गतिको प्राप्त हुए ॥ ५८ ॥

एवं स्वभक्तयो राजन्भगवान् भक्तवत्सलः ॥
उषित्वादिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात् ॥ ५९ ॥

राजन्! भक्तवत्सल भगवान् दोनो भक्तोंको इस प्रकार श्रुतिसम्मत ब्रह्मपरतारूप मुक्तिका मार्ग बता कर द्वारकाको लौट गये ॥ ५९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितम अध्याय ।

वेदस्तुति ।

परीक्षिदुवाच–ब्रह्मन्ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः ॥
कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात्सदसतः परे ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा । हे ब्रह्मन्! जिसका प्रत्यक्षरूपसे निरूपण नहीं किया जा सक्ता और जो निर्गुण एवं सत् (कारण) असत् (कार्य्य), दोनोसे

परे है—उस परब्रह्मके रूप (तत्त्व)का वर्णन या निरूपण, सगुण श्रुतियाँ किस प्रकार करती हैं? ॥ १ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।** हे राजन्! ईश्वरने धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धिके लिये लोगोंके (उक्त चतुर्वर्गके साधनस्वरूप) बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंकी सृष्टि की है ॥ २ ॥ पूर्वजोंके भी पूर्वज ब्रह्मा आदि आचार्योंने बुद्धि आदिके द्वारा इन परब्रह्मपरायण उपनिषद् वाक्योंका धारण (मनन) किया है (अर्थात् शिष्टपरम्परासे आरही इन श्रुतियोंमें सन्देह न करना चाहिये); जो कोई तर्क वितर्क न करके आदरसे मन लगा कर इन सनातन सत्य श्रुतियोंको पढ़ता, सुनता और भावार्थका मनन करता है वह अकिञ्चन अर्थात् देहादिक उपाधियोंसे मुक्त होकर क्षेमस्वरूप परम पदको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ मैं इसी विषयकी एक गाथा (इतिहास) तुमको सुनाता हूँ; जिसे नारदजीके पूछने पर स्वयं भगवान् ऋषिवेषधारी नारायणने कहा है। इस कथाप्रसङ्गमें ब्रह्मतत्त्वकी मीमांसा हुई है ॥ ४ ॥ एक समय भगवान्के प्रिय नारदजी अनेक लोकोंमें विचरते हुए सनातन ऋषि नारायणके दर्शनोंकी इच्छासे बदरिकाश्रमको गये ॥ ५ ॥ भगवान् नारायण, भारतवासी लोगोंके शुभ और स्वस्तिके लिये उस स्थानमें कल्पके आरम्भसे धर्मपालनपूर्वक शान्त स्वभावसे ज्ञान चर्चा करते हुए तप कर रहे हैं ॥ ६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! नारदजीने वहाँ पहुँचकर कलापग्रामनिवासी योगी ऋषियोंकी मण्डलीमें बैठे हुए भगवान् नारायणको प्रणाम किया और उनसे यही प्रश्न किया ॥ ७ ॥ नारायणजीभी सब ऋषियोंके आगे नारदजीसे उनके प्रश्नका उत्तर देते हुए, जनलोकनिवासी महर्षियोंमें जो पहले ब्रह्मविषयकी मीमांसा हुई थी उसे इस प्रकार कहने लगे ॥ ८ ॥ **नारायणने कहा।** हे नारद! पहले एक समय जनलोकमें वहाँके निवासी ब्रह्माके मानस पुत्र मुनियोंने ब्रह्मसत्रका* आरंभ किया। यद्यपि तुम भी जनलोकवासी हो, परन्तु उस समय तुम मेरी ही अनिरुद्धनामक मूर्त्तिके दर्शन करने श्वेतद्वीपको गयेथे; अतएव वहाँ उपस्थित न थे। उस ब्रह्मसत्रमें श्रुतियोंके अनुसार ब्रह्मके विचारका आरम्भ होनेपर यही प्रश्न उपस्थित हुआ, जो तुम मुझसे पूछ रहे हो। वहाँ पर उपस्थित सब महानुभावोंने शास्त्रके ज्ञानमें, तपमें और स्वभावमें समान एवं मित्र, शत्रु और उदासीन व्यक्तियोंमें समदर्शी होकर भी एकको वक्ता बनाकर सुननेकी इच्छासे यही प्रश्न किया ॥ ९-११ ॥ तब सनन्दन नाम महर्षिने इस प्रकार उक्त प्रश्नका उत्तर दिया। **सनन्दनजीने कहा।** कि जैसे

---

* विद्या—ज्ञान आदिमें समान योग्यता रखनेवाले लोग जिसमें एकको यजमान बनाकर और सब ऋत्विक् व सदस्य बनकर कर्म करते हैं उस यज्ञको कर्मसत्र कहते हैं, और वैसेही सब बातोंमें समान योग्यता रखनेवाले व्यक्ति जिसमें एकको वक्ता बनाकर और अन्य सब श्रोता बनकर ब्रह्मका विचार करते हैं उसका नाम ब्रह्मसत्र है।

अनुगत वन्दीजन निद्रित चक्रवर्त्ती राजाको प्रातःकाल आकर उसके सुयशसे पूर्ण पराक्रमोंका वर्णन करते हुए जगाते हैं वैसे ही प्रलयसमयमें निजरचित इस सम्पूर्ण विश्वको निज शक्तियों सहित अपनेमें लीन करके योगनिद्रा द्वारा निद्रित अर्थात् निश्चेष्ट परमेश्वरको श्रुतियाँ उसका प्रतिपादन करनेवाले वाक्योंसे इस प्रकार जगाने लगीं ॥ १२॥१३ ॥ ईश्वरप्रतिपादिका श्रुतियोंने यों कहा कि "हे अजित ! हे अच्युत ! जय जय अर्थात् उत्कर्ष प्रकट करो । हे प्रभो ! स्थावर और जंगम जीवोंकी अविद्यारूपिणी मायाको दूर करो । क्योंकि आपका स्वरूप सब ऐश्वर्य्योंका आधार है एवं अविद्या भी जीवोंको मोहित करनेहीके लिये गुण ग्रहण किये अवस्थित है । अतएव परप्रतारिणी स्वेच्छाचारिणी इस मायाको विनष्ट करनाही आपका आवश्यक 'कर्त्तव्य' है । हे प्रभो ! आप सबके अन्तर्यामी हैं, सकल जीवोंकी सब शक्तियोंके उद्बोधक हैं; आपके सिवा इस मोहमयी अविद्याको कौन मिटा सक्ता है ? स्वामिन् ! इस तत्त्वको हम (श्रुतियाँ) अवगत हैं ! वेदोंमें ही आपके मायामय सृष्टि आदिके समय रक्खे गये सगुण रूप और सत्यज्ञानानन्दमय अखण्ड नित्य निर्गुण रूपका प्रतिपादन है ॥ १४ ॥ वेदमें इन्द्र, अग्नि आदि देवतोंका भी प्रतिपादन किया गया है सही, किन्तु वे इन्द्र आदिके प्रतिपादक वेदमंत्र इन्द्र आदिको भी आपका ही रूप मानते हैं । जैसे घटकी उत्पत्ति और लय मृतिकामें ही है, अतएव मृत्तिका ही घटकी शेष अवस्था है और इसी कारण घट मृत्तिकासे भिन्न नहीं है, ऐसा समझा जाता है, वैसेही अविकारी ब्रह्म जो आप हैं उन्हींसे सब(इन्द्र, अग्नि आदि)की उत्पत्ति और लय होता है; अतएव इनकी शेष अवस्था आप ही हैं; और इसी कारण इन्द्र आदि भी आपसे भिन्न नहीं हैं । इसी लिये वेदमन्त्र और ऋषियोंने कायिक, वाचिक और मानसिक, सब प्रकारके कर्मोंका मुख्य लक्ष्य आपहीको बताया है । कहनेका तात्पर्य यह है कि जैसे यह एक स्थिर सिद्धान्त है कि सब भूचर प्राणी पत्थर, ईंट, काष्ठ आदि जिस पर पैरका भार देकर खड़े हो सकें सो सब पृथ्वी है वैसेही यहभी अखण्डनीय सिद्धान्त है कि वेदका प्रत्येक मंत्र और प्रत्येक पद आपका ही प्रतिपादन करता है ॥ १५ ॥ हे तीनो गुणोंके ईश्वर ! आपही परमार्थ हैं, यह निश्चय करके बिवेकी लोग जब सब लोगोंके पापपुंजको नष्ट करनेवाली आपकी अमृतमयी कथाके सागरमें केवल गोता लगा कर पाप–तापसे मुक्त हो जाते हैं तब हे परम ! जो लोग आत्मतत्त्वके ज्ञान द्वारा राग, द्वेपादि अन्तःकरणके धर्म और जरा, मरण, यौवन आदि कालके धर्म्मोंसे मुक्त होकर अखण्ड आनन्दानुभवस्वरूप जो आपका रूप है उसको भजते हैं उनके पाप–तापसे मुक्त होनेमें क्या सन्देह है ? ॥ १६ ॥ आपमें भक्ति होनेसेही मनुष्यजन्मकी सफलता होती है, नहीं तो जो आपसे विमुख हैं वे लोहारकी

धौकनीके समान वृथा साँस लेते (जीते) हैं । आपहीके अनुग्रहसे महत्तत्त्व एवं अहंकार आदिक, समष्टि–व्यष्टिरूप शरीरोंको उत्पन्न करते हैं, आप अन्नमय आदि पाँच कोषोंमें मिल कर अन्नमय आदि पञ्चकोपसे प्रतीत होते हैं, आपही अन्नमय आदि पञ्चकोपका मूल हैं, तथापि स्थूल और सूक्ष्म–दोनो प्रकारके पञ्च-कोषोंसे अतिरिक्त हैं, केवल उनके साक्षीमात्र हैं। आपही इन पञ्चकोपोंकी अन्तिम अवस्था हैं, अतएव सत्य हैं। इस कारण देह–अन्तःकरण आदिमें ओतप्रोत भावसे अवस्थित जो आप हैं उनसे विमुख होने पर, मुक्तिकी कौन कहे, तुच्छ विषयसुख (भोग) भी नहीं मिल सक्ता ॥ १७ ॥ ऋषिकृत सम्प्रदाय मार्गोंमें कूर्प-दृक् (स्थूलदृष्टि) सम्प्रदायवाले मणिपूरकस्थ स्थूल ब्रह्मकी उपासना करते हैं और आरुणि सम्प्रदायवाले बहुनाड़ीसङ्कुल हृदयस्थलमें सूक्ष्म परब्रह्मकी उपासना करते हैं। हे अनन्त ! आपकी उपलब्धि (प्राप्ति)का स्थल ज्योतिर्म्मय श्रेष्ठ सुपु-म्णा नाम नाड़ी है; जो कि हृदयसे उठ कर मस्तकको गई है । उस नाड़ीमें प्राप्त होकर यह जीव फिर संसारमें नहीं पड़ता* ॥ १८ ॥ हे भगवन् ! आप अपनेहीसे उत्पन्न देह आदि विविध विचित्र स्थानोंका कारण है, अतएव पहलेहीसे उन सबसे आपका अलक्ष्य संबन्ध है; सुतराम् उनमें आपके प्रकृत प्रवेशकी सम्भावना न होने पर भी आप प्रविष्ट ऐसे प्रतीत होकर, स्वरूपतः विशेषशून्य अग्नि जैसे इंधनके आकारके अनुसार विशेष २ रूपसे प्रकाशित होता है वैसे ही आप भी न्यूनाधिक भावसे प्रकाशमान होते रहते हैं । निर्मलबुद्धियुक्त, इसी कारण ऐहिक और पारलौकिक कर्मफलकी वासनासे शून्य विवेकीजन, उक्त सम्पूर्ण देहादिको मिथ्या मानते हुए, उनमें अवस्थित निर्विशेष, सन्मात्र, भगवत्स्व-रूपको ही सत्य समझ कर प्राप्त होते हैं॥१९॥ अपने कर्मोंसे उपार्जित इन मनुष्यादि शरीरोंमें वर्त्तमान कार्य और कारण(स्थूल और सूक्ष्म शरीर)के आवरण से मुक्त पुरुष(आत्मा)को ही, पण्डित लोग, सर्वशक्तिमान् जो आप हैं उनका अंश मानते हैं। पृथ्वीमण्डलके सम्पूर्ण पण्डित (सदसद्विवेकी) लोग, इसी प्रकार मनुष्यतत्त्वको विचारपूर्वक अवगत होकर विश्वासपूर्वक संसारसे मुक्त करनेवाले आपके चरणोंको भजते हैं और उन्हीको सम्पूर्ण सांसारिक कर्मोंके अर्पणका एक-मात्र स्थान समझते हैं ॥ २० ॥ हे ईश्वर ! जिसका जानना सहज नहीं है उस आत्मतत्त्वको प्रकट करनेहीके लिये आप मनुष्यरूपसे अवतीर्ण हुए हैं। आपके पवित्र चरित्ररूप सुधासागरमें गोता लगा कर जो लोग श्रमशून्य हो गये हैं और आपके कमलसम श्रीचरणोंमें हंसके समान रमनेवाले भक्तोंमें अग्रगण्य

---

* श्रुति कहती है—शार्कराक्षा उपासते हृदयं ब्रह्मेत्यारुणयो ब्रह्म हैव ता इत ऊर्द्ध्वे-नोदसर्प्पत्तच्छिरो श्रयते ।

साधुओंके संगमें जिन्होने गृहको छोड़ दिया है वे थोड़ेसे निष्किञ्चन पुरुष, मुक्तिकी भी कामना न कर, भक्तिमय परमानन्दमें ही मग्न रहते हैं ॥२१॥ स्वामिन् ! आपकी सेवाके उपयुक्त यह मनुष्य शरीर ही आत्मा, बन्धु और प्रिय-जनके समान आचरण करनेवाला, अर्थात् स्वाधीन है, किन्तु हाय ! हाय ! देहधारी जन इस साधनस्वरूप देहको पाकर भी, अनुग्रहकारी हितकारी और परम प्रिय आत्मा जो आप हैं उनको इस शरीरसे सखाभाव द्वारा न भजकर, इस असत् शरीर(और शरीरसम्बन्धी परिवार)के ही लालन-पालनमें व्यग्र रहते, अतएव आत्मघात करते हुए संसारचक्रमें घूमा करते हैं ! कैसे खेद और शोककी बात है !! ॥ २२ ॥ मुनि लोग प्राण और मनको वशमें करनेके उपरान्त इन्द्रिय-संयमपूर्वक दृढ़ योगके द्वारा हृदयमें जिस तत्त्वका ध्यान करते हैं, उसी तत्वको आपके स्मरणके प्रभावसे, आपसे शत्रुता रखनेवाले लोग भी प्राप्त हुए हैं। आपके भुजगेन्द्रभोगसम विशाल बाहुओंमें कामके आवेशसे जिनका चित्त निविष्ट होगया है वे परिच्छिन्न (अविद्यासे आच्छन्न) दृष्टिवाली स्त्रियाँ (गोपिका आदि) एवं आपके श्रीचरणकमलसुधारससे छके हुए समदर्शी हम लोग, दोनो ही आपके निकट समान हैं ॥ २३ ॥ अहो ! पीछेसे जिनकी उत्पत्ति और विनाश होता है उनमेंसे कौन ऐसा है जो सृष्टिके भी पूर्ववर्त्ती जो आप हैं उनका साक्षात् निरूपण कर सके अथवा साक्षात् अवगत हो सके ? अर्थात् अनुभवयुक्त अनुमानसे ही सब आपका निरूपण करते हैं। आदिऋषि ब्रह्मा भी आपहीसे उत्पन्न हैं और आध्यात्मिक, आधिदैविक, दोनो प्रकारके देवता भी ब्रह्माके बाद आपहीसे उत्पन्न हुए हैं; आप प्रलयकालमें जब त्रैलोक्यको अपनेमें लीन करके शयन करते हैं तब सत् अर्थात् स्थूल (आकाशादि) और असत् अर्थात् सूक्ष्म (महत्तत्त्वादि) एवं (स्थूल-सूक्ष्मकृत) दोनो प्रकारके शरीर नहीं रहते, कालकृत वैषम्य और इन्द्रियादिक नहीं रहते, और शास्त्र भी नहीं रहता ॥ २४ ॥ असत् पदार्थ जगत्की उत्पत्तिका निरूपण करनेवाले, सत् आत्माके ब्रह्मत्त्वकी उत्पत्तिका निरूपण करनेवाले, 'स्वरूपतः विद्यमान इक्कीस प्रकारके दुःखोंका दूर होनाही मुक्ति है'- ऐसा कहनेवाले, आत्माको जगत्से और कार्य्य व कारणसे भिन्न माननेवाले, और कर्म्मफलहीको सत्य माननेवाले, क्रमशः वैशेषिक, पातञ्जलि, सांख्य, न्याय और मीमांसा नामक दर्शनशास्त्रोंके उक्त उपदेश आपमें भ्रमकृत आरोपमात्र हैं। आपके रूपका ज्ञान न होनेसेही पुरुषके त्रिगुणात्मक भेद प्रतीत होते हैं। और आप तो सबसे परे अखण्डज्ञानरूप हैं। ब्रह्मज्ञानही आपका रूप है, इस लिये कभी आपमें उस ज्ञानका अभाव नहीं है ॥ २५ ॥ मानसिक विलासमात्र यह त्रिगुणात्मक जड़-जीवका प्रपञ्च, वास्तवमें असत्य होने पर भी, आपमें अधिष्ठित होनेके कारण, आपकी सत्यतासे सत्य सा प्रतीत होता है। आत्म-

तत्त्वके जाननेवाले लोग, 'यह प्रपंच भी आत्मासे भिन्न नहीं है'–, ऐसा समझकर आत्मस्वरूपसे ही इसको सत्य मानते हैं। जब कि आत्मा, निजरचित इस जगत्में कारणरूपसे प्रविष्ट है तब इसको आत्मस्वरूप समझना युक्तियुक्तही है। देखो, सुवर्ण पानेकी इच्छा रखनेवाला व्यक्ति यदि सुवर्णके विकार कुण्डल आदिको पा जाता है तो सुवर्ण ही समझकर ले लेता है, छोड़ता नहीं है ॥ २६ ॥ सब प्राणियोंका आवास समझ कर जो लोग आपकी सेवा करते हैं, हे ईश्वर! वे मृत्युको तुच्छातितुच्छ समझ उसके शिर पर पैर रखकर चले जाते हैं। और जो लोग आपके भक्त नहीं हैं वे चाहे महामहान् पण्डित क्यों न हों, उनको आप पशुओंकी भाँति वाणीके प्रपंचकी रस्सीमें बाँधकर इधर उधर भटकाते हैं। आपके प्रेमीजन अपनेको और औरोंको भी पवित्र और कृतार्थ करते हैं; केवल ज्ञानी आदिक और लोग वैसा नहीं कर सक्ते ॥ २७ ॥ आपके कोई इन्द्रिय नहीं है, तथापि आप सम्पूर्ण इन्द्रियशक्तिके प्रवर्त्तक हैं; क्योंकि आप निरपेक्ष भावसे स्वयं प्रकाशमान हैं। प्रजासे कर लेनेवाले छोटे २ मण्डलाधिपति नरपति लोग जैसे एक महाराजाधिराज चक्रवर्त्तीको कर देते हैं वैसेही अविद्याश्रित इन्द्रादि देवगण और ब्रह्मादि प्रजापतिगण भी आपको पूजोपहार देते हुए आपहीके भयसे आपहीके दिये हुए अपने २ अधिकारके अनुसार कर्तव्यपालन करते रहते हैं ॥ २८ ॥ हे नित्ययुक्त! आप मायासे दूर हैं। उस मायाकी ओर निहार कर जब आप क्रीड़ा करना चाहते हैं तब इन स्थावर-जंगमरूप सम्पूर्ण जीवोंका आविर्भाव होता है। उक्त प्रकारसे जो आप मायाको देखते हैं उसीसे जीवके बन्धनस्वरूप कर्म्म अथवा वासनामय लिंगशरीरकी उत्पत्ति होती है। कर्म्म अथवा लिङ्गशरीरका यदि आविर्भाव न होता तो जीवसृष्टिमें ऐसा वैषम्य होना असम्भव था; क्योंकि आप तो करुणावरुणालय, आकाशकी भाँति सबके लिये समान और निर्लेप एवं वाक्य व मनके अगोचर हैं? आपके न कोई आत्मीय है और न कोई अनात्मीय (गैर) है ॥ २९ ॥ हे नित्य! यदि अन्यमतानुसार जीवात्मागण वास्तवमें अनन्त हैं एवं नित्यस्वरूप हैं तो वे सभी समान हैं, अतएव उनमें शास्य- शासक भाव न होना चाहिये, सुतराम् आप भी उनके नियन्ता नहीं होसक्ते, ऐसा कहना पड़ेगा। किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है? आप सब जीवोंके नियन्ता हैं। क्योंकि जिससे जीवमात्रका जन्म है वही जीवमात्रका अपरित्याज्य कारण है और वही जीवमात्रका नियन्ता है। वह कौन है सो तो हम (श्रुतियाँ) ठीक बता नहीं सक्तीं, किन्तु इतना अवश्य कह सक्ती हैं कि वह सर्वत्र विद्यमान है, ज्ञानी होनेका अभिमान रखनेवाले लोगोंको अज्ञात है। उसके अज्ञात होनेका एक कारण यह भी है कि सभी ज्ञात वस्तुओंमें एक-न-एक दोष अवश्य रहता है, किन्तु वह संपूर्ण निर्दोष है ॥ ३० ॥ वास्तवमें प्रकृति या पुरुषकी

अथवा दोनोकी जीवरूपसे उत्पत्ति नहीं होती । क्योंकि वेदमें प्रकृति और पुरुष, दोनोको अज अर्थात् जन्मरहित बताया है; इसके सिवा युक्तिसे भी यही सिद्ध होता है । प्रकृति और पुरुषके परस्पर सम्बन्धविशेषसे ही प्राणादिविशिष्ट जीवकी उत्पत्ति होती है । देखो, केवल जल या केवल वायुसे 'बुल्ला' (पानीका बुल्ला) नहीं उपजता, जब जल और वायु, दोनोका संयोग होता हे तभी बुल्लेकी उत्पत्ति होती है । हे परम ! जीवका वास्तविक जन्म नहीं होता, अतएव नाना नाम और रूपोंसे युक्त जीव, आपमें ही लीन हो जाता है । कुसुमोंसे रस खींचनेवाली मधुमक्षिका(ममाखी)के सञ्चित मधु(शहद)में जैसे कुसुमरस विशेषरूपसे उपलब्ध नहीं होता—एकरूप हो जाता है, वैसेही सुषुप्ति और प्रलयके समय आपमें जीवका लय होता है; और तत्वज्ञान हो जाने पर जो आपमें जीवका लय होता है वह समुद्रमें नदियोंके मिलनेके समान है ॥ ३१ ॥ आपकी मायासे चलाये गये इस संसारचक्रमें सभी जीव चक्कर खारहे हैं–यह देख कर विवेकी जन, इससे छुड़ानेवाले जो आप हैं उन्हीकी अत्यन्त अनुवृत्ति अर्थात् भक्ति करते हैं । आपकी भक्ति प्राप्त होने पर फिर संसार(आवागमन)का भय नहीं रहता । क्योंकि कालस्वरूप आपकी सम्वत्सररूप भ्रुकुटी अभक्तजनोंके ही हृदयमें भयका सञ्चार करती रहती है ॥ ३२ ॥ यह अत्यन्त चञ्चल चित्तरूप घोड़ा, इन्द्रियों और प्राणोंको वशमें करलेने पर भी, नहीं वशीभूत होता । जो कोई गुरु (यथार्थ गुरु ईश्वर)के चरणोंकी शरणमें न जाकर अन्य उपायसे चित्तको वशमें करना चाहते हैं, वे, किंकर्त्तव्यविमूढ़ और लक्ष्यभ्रष्ट होकर, समुद्रके भीतर डगमगा रही बिना मल्लाहकी नाव पर चढ़ेहुए वणिक्वृन्द(सौदागरोंके झुंड)के समान, बहुत विघ्नोंसे पूर्ण अवस्थामें पड़कर संसारसमुद्रमें गोते खाते हैं ॥ ३३ ॥ आपके सेवक जो सज्जन हैं वे सदैव सर्व्वानन्दमय साक्षात् परमात्मा जो आप हें उन्हीके पानेका प्रयत्न किया करते हैं, फिर वे स्वजन, पुत्र, देह, पत्नी, धन, घर, पृथ्वी, प्राण और यान (सवारी) आदि तुच्छ वस्तुओंकी ओर भूल-कर भी नहीं दृष्टि डालते । इस सत्य सिद्धान्तको न जाननेके कारण स्त्रीसंगके सुखमेंही अपनेको धन्य माननेवाले असावधान पुरुषोंको, स्वभावतः नश्वर और सारशून्य इस संसारमें कोई भी सुखी नहीं कर सक्ता ॥ ३४ ॥ जिनके हृदयमें आपके चरणकमल निरन्तर वर्त्तमान रहते हैं, जिनके चरणोदकसे बड़े २ पापोंके पहाड़ बह जाते हैं वे निरहंकार ऋषिगण भी भगवद्भक्तोंमें अग्रगण्य गुरुओंके तीर्थरूप आश्रमोंमें अथवा (सत्संगकी लालसासे) पुण्य तीर्थक्षेत्रोंमें जाकर रहते हैं और विवेक, धैर्य्य, क्षमा, शान्ति आदि अन्तःसारके मिटानेवाले गृहों(स्त्री-पुत्रादि परिवार)को छोड़ देते हैं । उनके लिये तो कुछ कहना ही नहीं है, किन्तु नित्यानन्दमय परमात्मारूप आप तक एक बार भी जिनका मन पहुँच गया है वेभी

फिर पापपूर्ण गृहमें नहीं आसक्त होते ॥ ३५ ॥ यह जगत् सत्(ब्रह्म)से उत्पन्न है, अतएव यह भी सत् है—इस प्रकारकी व्याप्ति तर्कविरुद्ध है; क्योंकि इससे ब्रह्म और जगत्के कार्य्य-कारण प्रसङ्गमें परस्पर भेदभावकी सिद्धि होती है। यदि कोई कहे कि "इस व्याप्तिसे अभेदसिद्धि हमारा अभीष्ट नहीं है, किन्तु 'कार्य्य और कारणमें भेद नहीं रहता'—यही हम दिखाना चाहते हैं," तोभी हम कह सक्ती हैं कि इस स्थलमें 'व्यभिचार' है। सुतराम् 'व्याप्ति' रह नहीं सक्ती [पुत्र, पितासे उत्पन्न होकर भी उससे भिन्न है (वैसेही ईश्वरसे उत्पन्न होकर भी यह विश्वका प्रपञ्च उससे भिन्न है), इसीको 'व्यभिचार' कहते हैं; [यदि कोई कहे कि "ब्रह्म केवल निमित्त कारणही नहीं है [जो व्यभिचार(पिता—पुत्रन्याय)से व्याप्तिका निषेध करते हो], उपादानकारण भी तो वही है; उपादानकारणसे (घटकुण्डलादिवत्) कार्य्य कभी भिन्न नहीं होता", तो इसका उत्तर यह है कि इसमें भी 'वाधा' है। मान लो, रस्सीमें साँपका भ्रम हुआ; सुतराम् सर्पका उपादानकारण वह रस्सी ही ठहरी, जो कि सत् है, तब क्या सर्प भी सत् है? सर्प तो सत् नहीं है। यदि फिर भी कोई कहे कि "वहाँ पर तो सर्पका उपादान केवल रस्सी ही नहीं, किन्तु अज्ञानयुक्त रस्सी है, अतएव सर्पमें सत्यता कैसे हो सक्ती है?," तो हम कहती हैं कि विश्वका उपादान सत् भी अविद्यायुक्त है, सुतराम् भ्रमकृत सर्पके सदृश यह विश्व भी मिथ्या सिद्ध होता है। हाँ, यह अवश्य है कि वास्तवमें न होनेपर भी, हम लोग, केवल अन्धपरम्पराक्रमसे प्रचलित व्यवहारको निवाहनेवाले संस्कार-जनित भ्रम(माया)से ही ईश्वरका जगत्से सम्बन्ध मानते हैं। हे भगवन्! आपकी वेदरूप वाणी, गौणी लक्षणा आदि वृत्तियोंसे, जिनको केवल कर्मकाण्डमें ही श्रद्धा है उनको भ्रममें डालती है—मोहित करती है (अर्थात् वेदोक्त यज्ञादि कर्मोंके स्वर्गआदिक फल भी नित्य नहीं हैं। वेदमें जहाँ पर कर्मफलको नित्य कहा है वहाँ पर वास्तवमें वेदका अभिप्राय यह नहीं है कि कर्मफल नित्य हैं। वहाँ पर लक्षणाके द्वारा यह मानना चाहिये कि ये फल प्रशस्त (उत्तम) हैं। ऐसा न समझकर जो कर्म्मफलको नित्य मान बैठते हैं वे कर्म्मफलमें आसक्त लोग भ्रममें पड़े हुए हैं ॥ ३६ ॥ यह विश्व, सृष्टिके पहले नहीं था और प्रलय हो जाने पर नहीं रहेगा; इसीसे निश्चय होता है कि मध्यावस्थामें यह विश्व, अद्वितीय जो आप हैं, उनमें प्रकट रहता है। किन्तु वास्तवमें, आपमें विश्वकी मध्यस्थिति भी मिथ्या है। इसी कारण वेदमें इस विश्वकी उपमा, मृत्तिका सुवर्ण आदिके विकार जो घट कुण्डल आदि हैं, उनसे दीगई है (अर्थात् जैसे केवल नाममात्रको घट आदिकी सत्ता है वैसेही नाममात्रको जगत्की भी सत्ता है। मनोरथके सदृश वासनामय मनके विलासमात्र इस विश्वको जो लोग सत्य समझते हैं, वे मूढ़ हैं) ॥ ३७ ॥ यह जीव, मायाके प्रभावसे अविद्याका अवलम्ब लेता हुआ, जड़ देह,

इन्द्रिय आदिको आत्मस्वरूप मानकर, देह इन्द्रिय आदिके सारूप्यको प्राप्त होता है, इसीसे इसका स्वाभाविक आनन्द-रूप आवृत रहता है और यह संसारचक्रमें चक्कर लगाया करता है। वही जीवस्वरूप आप, (जब अपने अपरिमेय ऐश्वर्य्यको अपनेमें देखते हैं, अपने नित्यप्राप्त परिपूर्ण ऐश्वर्य्यको विचारते हैं तब) सर्प अपनी केंचलीको जैसे छोड़ देता है वैसेही अपनी मायाको छोड़ देते हैं। माया आपहीका गुण या शक्ति है, परन्तु आपको उसकी अपेक्षा नहीं है। हे अपरिमित ऐश्वर्य्यसे सम्पन्न! अणिमा आदि अष्ट सिद्धियोंका ऐश्वर्य्य भी जिसको शिर झुकाता है उस परम ऐश्वर्य्यमें आप विराजमान हैं ॥ ३८ ॥ हे भगवन्! जितेन्द्रिय जन भी यदि हृदयस्थित विषयवासनाको दूर नहीं कर सके तो उन कच्चे योगियोंके लिये, हृदयमें रहने पर भी आप वैसेही अप्राप्य हैं जैसे गलेमें पड़ीहुई मणिमाला भूल जाने पर ढूँढे नहीं मिलती। उन टट्टीकी ओटमें शिकार करनेवाले, अर्थात् तपस्वीवेषसे विषयसुखमें लिप्त योगियोंको दोनो प्रकारसे दुःख ही मिलता है। इस लोकमें तो धनसञ्चय आदिमें क्लेशही मिलता है और 'कहीं भण्डा न फूट जाय'-यह खटका लगा रहनेसे सुख (चैन) नहीं मिलता, और परलोकमेंभी आपका स्वरूप न पाने और अपने धर्मका त्याग कर देनेके कारण आपके दिये दण्डके अनुसार नरक भोग करना पड़ता है ॥ ३९ ॥ हे छहों ऐश्वर्य्य-गुणोंसे सम्पन्न! जिन्होने आपको जान पाया है, वे, आपके सिरजे हुए शुभाशुभ कर्म्मोंके फलको अपना सुख या दुःख नहीं समझते और देहाभिमानी लोगोंके लिये कल्पित विधि-निषेधवाचक वाक्योंका भी अनुगमन नहीं करते। क्योंकि सत् सम्प्रदायके अनुसार, आप, निरन्तर मनुष्योंके कानोंमें पहुँचकरही उनको मुक्ति देते हैं। अतएव वे भी विधि-निषेधसे मुक्त हैं ॥ ४० ॥ आप अनन्त हैं, अतएव ब्रह्मादिक लोकपाल भी आपका अन्त नहीं पाते। यही नहीं, किन्तु आप भी आकाशके समान अपना अन्त नहीं पासक्ते। हे देव! सप्तावरणवेष्ठित ये सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी, आकाशमें वायु द्वारा धूलिकणके समान, आपमें कालचक्रके द्वारा संचालित होकर एकसाथ ही भ्रमण किया करते हैं। आपमेंही समाप्त श्रुतियाँ, असत् (जो वह सत् ब्रह्म नहीं है) का त्याग करती हुई, अपनी अवधि जो आप हैं उन्हीमें प्रतिफलित होती हैं अर्थात् प्रतिपादन करती हैं" ॥ ४१ ॥ श्रीनारायण कहते हैं। हे नारद! इस प्रकार आत्मानुशासनको सुनकर, आत्माकी गतिको अवगत होकर, सिद्धावस्थाको प्राप्त ब्रह्माके पुत्रोंने सनन्दनका पूजन किया। आकाशमें विचरनेवाले ब्रह्माके ज्येष्ठ पुत्र सनकादिकोंने यह सम्पूर्ण वेद शास्त्र और पुराणोंको मथ कर उनके रहस्यका सारांश (तात्पर्य्य) निकाला है। हे नारद! तुम श्रद्धापूर्वक सात्त्विक दृढ भक्तोंकी सब कामनाओंको या वासनाओंको जीर्ण करनेवाले इस आत्मानुशासन पर ध्यान धर, अकुतोभय हो, सर्वत्र विचरो

॥ ४२–४४ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं ।** हे राजन् ! नैष्ठिक ब्रह्मचारी देवर्षि नारदजीने गुरु नारायणसे प्राप्त आत्मानुशासन को श्रद्धापूर्वक हृदयमें स्थापित कर आत्मज्ञानसे कृतार्थ होकर कहा कि, "सम्पूर्ण प्राणियोंको संसारपाशसे छुड़ानेके लिये अंशकलाधारी निर्मलकीर्त्तिसम्पन्न साक्षात् परब्रह्म नारायणको मैं प्रणाम करता हूँ" । आद्य देवर्षि नारदजी, इस प्रकार नारायणरूप कृष्ण और उनके महात्मा शिष्योंको प्रणाम करके मेरे पिता वेदव्यासजीके आश्रमको गये । मेरे पिताने यथोचित पूजन और सत्कारके उपरान्त बैठनेके लिये आसन दिया । नारदजीने भी नारायणजीके मुखसे सुना हुआ यह आत्मतत्त्व मेरे पिताको सुनाया ॥ ४५–४८ ॥ हे राजन् ! 'अनिर्देश्य निर्गुण परब्रह्ममें मन कैसे पहुँच सक्ता हैं' इस आपके प्रश्नका उत्तर मैंने भली भाँति समझकर कह दिया ॥ ४९ ॥

योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो
यः सृष्ट्वेदमनु प्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः ॥
यं संपद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा
तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम् ॥ ५० ॥

जो इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संसारका मूल कारण है; जो इस अपनी सृष्टिमें जीव (चेतन) रूपसे अनुप्रविष्ट है; जो प्रकृति और पुरुषका उपादान कारण है; जो भोगभवनके समान ब्रह्माण्डको रचकर इसका शासन करता है; जिसके चरणकमलोंको पाकर जीव—इस मोहमयी अविद्याके बन्धनसे मुक्त हो जाता है; उस कैवल्ययोनि अर्थात् अप्रच्युत स्वरूपके अवस्थानसे मायाका तिरस्कार करनेवाले अभयवरदाता हरिका ही निरन्तर ध्यान करना चाहिये । हे राजन् ! जैसे निद्रित प्राणी, किसीको और अपने(शरीर)को भी नहीं देखता वैसेही जो लोग उस ईश्वरको प्राप्त हो गये हैं अर्थात् तन्मय हो गये हैं वे जीवन्मुक्त पुरुष, ब्रह्मसे भिन्न इस जगत्को और अपने(शरीर)को भी नहीं देखते । हाँ, अन्य लोगोंकी दृष्टिमें संस्कार जन्य शरीरसे उनकासम्बन्ध अवश्य रहता है ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितम अध्याय।

शम्भु-मोचन।

राजोवाच—देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम्॥
प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम्॥ १॥

राजा परीक्षितने कहा। ब्रह्मन्! देखा जाता है कि देवता, दैत्य और मनुष्योंमें जो कोई भोगाभिलाषशून्य शंभुको भजते हैं वेही धनी और भोगसम्पन्न हैं और जो कोई सब भोगोंके भवनरूप साक्षात् लक्ष्मीपति विष्णुको भजते हैं वे प्रायः अकिञ्चन हैं। इस विरुद्ध फल मिलनेका कारण क्या है? हमको यह बड़ा सन्देह है। विरुद्धशील प्रभुओंके भक्तोंकी ऐसी विरुद्ध गतिका क्या कारण है, सो हम जानना चाहते हैं॥ १॥ २॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।** राजन्! शिवदेव, निरन्तर शक्तियुक्त गुणमय और त्रिलिंग अर्थात् वैकारिक तैजस और तामस भेदसे त्रिविध अहंकारके अधिष्ठाता हैं; उन्हीसे दश इन्द्रिय, पाँच तत्त्व और मन, ये सोलह विकार उत्पन्न हुए हैं। अतएव विकारोपाधियुक्त शिवको भजनेसे उपाधिके अनुरूप विभूतियोंका रूप (भोगादि धनादि) मिलता है। और हरि भगवान् साक्षात् निर्गुण अर्थात् प्रकृतिसे परे परम पुरुष हैं, वह सर्वदर्शी और सबके अन्तर्य्यामी हैं। उनको भजनेसे निर्गुणत्व प्राप्त होता है॥ ३-५॥ राजन्! अश्वमेध यज्ञ समाप्त होजाने पर तुम्हारे पितामह युधिष्ठिरने भागवत धर्मोंको सुनते समय अच्युत कृष्णसे यही प्रश्न किया था। मनुष्योंको आवागमनके भ्रमजालसे छुड़ानेके लिये यदुकुलमें प्रकट होनेवाले, छः ऐश्वर्य्य गुणोंसे सम्पन्न प्रभु कृष्णचन्द्रने प्रसन्न होकर उसका उत्तर यों दिया था॥ ६॥ ७॥ **भगवान्ने कहा।** "हे युधिष्ठिर! मैं जिस पर अनुग्रह करनेवाला होता हूँ उसको क्रमशः निर्धन कर देता हूँ। दुःख पर दुःख पाते देखकर उसके स्वजन उसको आपही छोड़ देते हैं। तदनन्तर बार २ धन पानेकी चेष्टा विफल होनेसे, वह विरक्त होजाता है और फिर मेरे भक्तोंसे मित्रता करता है, अर्थात् उनकी मण्डलीसे मेल बढ़ाता है। उस समय मैं उस पर विशेष अनुग्रह करके उसके चित्तमें अपना अनुराग प्रकट करता हूँ। इस प्रकार मेरी भक्ति पाकर वह धीर व्यक्ति, परम सूक्ष्म ज्ञानमात्र सत् अमृत ब्रह्मको अपनाही स्वरूप जानकर संसारसे मुक्त हो जाता है। इसीसे लोग मुझ दुराराध्यको छोड़कर, थोड़ेही कालमें प्रसन्न हो कर कामभोग देनेवाले (मेरेही गुणकृत रूप), सुलभ, अन्यान्य वरदानी देवतोंकी उपासना करते हैं। उन आशुतोष देवतोंसे राज्य लक्ष्मी आदि विभवोंको पाकर वे उद्धत मत्त और प्रमत्त हो उठते हैं और

अन्तमें उन देवतोंको भी भूल कर उनकी अवज्ञा (तिरस्कार) करते हैं" ॥८-११॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।** हे राजन्! ब्रह्मा विष्णु और महेश, तीनो देव, शाप और प्रसादके अधीश्वर हैं। उनमें ब्रह्मा और शिव, शाप भी देते हैं और अनुग्रह भी करते हैं। परन्तु शान्तरूप भगवान् विष्णु वैसे नहीं हैं, वह भजनेवाले और न भजनेवाले, दोनो पर कृपा करनेवाले हैं। यहाँ पर इसी विषय पर पुरा तत्ववेत्ता विद्वानोंका कहा हुआ एक इतिहास हम तुमको सुनाते हैं। जिस प्रकार वृकासुरको वर देकर शिव देव संकटमें पड़े, सो हम कहते हैं, सुनो॥ १२॥ १३॥ शकुनि नाम असुरका पुत्र दुर्मति वृकासुर, तप करनेके विचारसे जारहाथा, राहमें उसको नारद मुनि मिले। असुरने प्रणाम करके नारदसे पूछा कि, "ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन तीनमें कौन देव आशुतोष अर्थात् शीघ्र प्रसन्न होनेवाला है?" ॥ १४ ॥ नारदने कहा, "तुम दवदेव महादेवकी आराधना करो तो तुम्हारा मनोरथ शीघ्रही सफल होगा। वह थोड़ेही दोषसे कुपित और थोड़ेही गुणसे प्रसन्न होते हैं। देखो, शंकरने शीघ्र प्रसन्न हो कर बन्दीके समान स्तुति करनेवाले वाणासुर और रावणको वाञ्छित वर देदिया और अन्तको आपही संकटमें पड़े (रावणने कैलाश पर्वत उठालेना चाहा और वाणासुरके पुरका पहरेदार बनना पड़ा)" ॥ १५ ॥ १६ ॥ देवर्षि नारदके बतानेके अनुसार वृकासुरने केदारतीर्थमें जाकर अग्निमें अपने शरीरके माँसकी आहुति देकर शिवकी आराधना करना आरम्भ किया। सात दिन तक इस प्रकार आराधना करने पर भी जब शंकरके दर्शन न मिले तब वह दैत्य बहुतही खिन्न होकर केदार तीर्थमें स्नान करनेके उपरान्त खड्ग लेकर आहुतिके लिये अपना शिर काटने को उद्यत हुआ। उसी समय परम कृपालु शंकरजी साक्षात् मूर्तिमान् अग्निके समान (जैसे काष्ठसे अग्नि प्रकट होता है उस प्रकार) प्रतिमासे प्रकट हुए और हाथ पकड़ कर दैत्यको अपना शिर काटनेसे निवृत्त किया। भगवान् शंकरके सुधामय मङ्गलमय करकमलका स्पर्श पातेही वृकासुर प्रसन्नता व आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठा, अर्थात् उसका छिन्न भिन्न शरीर फिर सांगोपांग पुष्ट और बलिष्ठ होगया ॥ १७-१९ ॥ राजन्! शिवदेवने उससे कहा कि "बस, बस जो तेरी इच्छा है उसे पूर्ण करनेके लिये मैं प्रकट हुआ हूँ। मैं शरणागत मनुष्यों पर सदा सन्तुष्ट रहता हूँ। अहो वृथा आत्माको क्लेश न दे"॥२०॥ यह सुन कर उस पापी असुरने महादेवसे सब प्राणियोंको भय देनेवाला यह वर माँगा कि 'मैं जिसके शिर पर अपना हाथ रख दूँ वह तत्क्षण भस्म हो जावे' ॥ २१ ॥ भगवान् रुद्रने उसके मनोरथको सुन कर उदास भावसे जैसे कोई सर्पको अमृत पिलादे वैसेही 'तथास्तु' कह दिया। वह असुर अपनी प्रकृतिके अनुसार शम्भु पर ही उनके दिये वरकी परीक्षा करनेके लिये उद्यत हुआ। उस दैत्यको अपनेही शिर पर हाथ रखनेके लिये अपनी ओर बढ़ते देख कर

शंकर बहुत घबड़ाये, और अपनी चूक पर पश्चात्ताप करते हुए, भयभीत हो, प्राण लेकर वहाँसे भागे। वेगपूर्वक उत्तर दिशासे भाग कर दशोदिशा, स्वर्गलोक, सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल आदिमें, जहाँ २ शिव गये वहाँ २ पीछे २ वृकासुरभी दौड़ता हुआ पहुँचा ॥ २२–२४ ॥ सब सुरेश्वरगण उक्त सङ्कटके प्रतीकारका उपाय न जाननेके कारण चुपचाप खड़े २ शिवकी दुर्दशा देखते रहे, तब अन्यत्र रक्षा न देखकर भगवान् शंभु उस परमधाम वैकुण्ठ लोकमें पहुँचे जहाँ न्यस्तदण्ड (संन्यासी), शान्त, भावुक जनों की एकमात्र परमगति साक्षात् भगवान् नारायण निवास करते हैं और जहाँ पहुँचकर यह जीव फिर संसारमें नहीं आता। आर्त्तिभञ्जन हरिने हरको इस प्रकार संकटमें पड़ा हुआ देखकर आश्वास दिया और योगमाया द्वारा बौने ब्रह्मचारीका रूप धरकर दानवके सम्मुख देख पड़े। मेखला, कृष्णाजिन, कुशपुंज, दण्ड, कमण्डलु और अक्षमाला आदिसे सुशोभित, साक्षात् प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी विप्रवेष हरिको सामने आते देखकर दानवने अत्यन्त नम्रतासे प्रणाम किया ॥ २५–२८ ॥ भगवान्‌ने कहा, "हे शकुनिके पुत्र! यह स्पष्ट जान पड़ता है कि बहुत दूर चलनेकी थकावटसे तुम शिथिल हो रहे हो। क्षणभर यहाँ ठहर कर विश्राम करलो, क्यों कि इस आत्मा(शरीर)से ही सब पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं; इस कारण इसको कष्ट देना उचित नहीं है। हे पुरुषसिंह! तुम किस कामके लिये दौड़ते हुए जा रहे हो? यदि कहने योग्य हो तो हमसे कहो। लोगोंके सभी काम दूसरेकी सहायतासे सहजमें सिद्ध हो सक्ते हैं, अतएव हमसे अपना प्रयोजन कहो; सम्भव है, हमभी तुम्हारी सहायता कर सकें" ॥ २९ ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! भगवान्‌के इन सुधासम मधुर वचनोंको सुननेसे असुरकी सब थकन मिटगई और उसने सब वृत्तान्त आदिसे अन्त तक कह सुनाया ॥ ३१ ॥ तब भगवान्‌ने कहा कि, "यदि ऐसा है तो भाई हम शिवकी बातका विश्वास नहीं करते। वह दक्ष प्रजापतिके शापसे पिशाचप्रवृत्तिको प्राप्त हुए हैं। जो प्रेत व पिशाचोंके अधिपति हैं, जिनकी बुद्धि विष खानेसे, भंग पीनेसे नष्ट भ्रष्ट होगई है उन शिवको हे दानवेन्द्र! यदि तुम जगद्गुरु मानते हो और उनके ऊपर श्रद्धा रखते हो तो शीघ्र अपने ही मस्तक पर हाथ रखकर परीक्षा क्यों नहीं करलेते? यदि हमारे विश्वासके अनुसार शम्भुका कथन (वर) मिथ्या निकले तो मिथ्या बोलनेवाले, प्रतारक शम्भुको वह दण्ड देना जो उन्हे कभी न भूले और फिर इस प्रकार वह कभी किसीसे मिथ्या बोलनेका साहस न करें" ॥ ३२–३४ ॥ भगवान्‌के ऐसे मधुर, कोमल, विचित्र और मोह उपजानेवाले वाक्योंसे दानवेन्द्रकी बुद्धि भ्रष्ट होगई और उसने अपनेही ऊपर अपनी दुर्मतिका दुरुपयोग किया, अर्थात् अपनेही शिरपर हाथ रख लिया ॥ ३५ ॥ शिरपर हाथ रखते ही वज्राहत व्यक्तिके समान वह पापी असुर तत्क्षण प्राणहीन होकर पृथ्वी पर

गिरपड़ा । आकाशमें स्थित ऋषिगण, पितृगण, गन्धर्व्वगण आदि आकाशचारी और देवता लोग "जय जय !, नमो नमः !, साधु साधु" कहते हुए फूलोंकी वर्षा करने लगे । इस प्रकार हरिके बहँकानेसे वह महापापी असुर मरा और शंकर संकटसे छूटे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ सङ्कटमुक्त महादेवके निकट आकर पुरुषोत्तम हरिने कहा कि, "अहो ! हे देवदेव महादेव ! वह पापी असुर अपनेही पापसे नष्ट होगया । हे ईश्वर ! महत् लोगोंका अपराध करके क्या कोई व्यक्ति कुशल मङ्गलसे रह सक्ता है ? आप विश्वनाथ, साक्षात् जगत्के गुरु हैं, आपका अपराधी असुर कैसे बच सक्ता था ?" ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

य एवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः
परस्य साक्षात्परमात्मनो हरेः ॥
गिरित्रमोक्षं कथयेच्छृणोति वा
विमुच्यते संसृतिभिस्तथाऽरिभिः ॥ ४० ॥

राजन् ! वाणी और मनके अगोचर अर्थात् अतर्क्य और अचिन्त्य शक्तिके सागरस्वरूप साक्षात् परमात्मा हरिके इस शम्भुमोचन चरित्रको जो कोई श्रद्धापूर्वक पढ़ता या सुनता है वह भी शंभुके समान शत्रुकृत संकटसे और संसारपाशसे छूटकर परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितम अध्याय ।

भृगुकृत त्रिदेवपरीक्षा ।

श्रीशुक उवाच—सरस्वत्यास्तटे राजन्नृषयः सत्रमासत ॥
वितर्कः समभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा । हे राजन् ! एक समय सरस्वती नदीके तट पर यज्ञ कर रहे ऋषियोंकी मण्डलीमें यह तर्क उपस्थित हुआ कि "ब्रह्मा विष्णु और महेश-इन तीनो देवोंमें कौन महान् या श्रेष्ठ है ?" ॥ १ ॥ हे नृप ! उन ऋषियोंने उक्त विषयकी परीक्षा करनेके लिये ब्रह्माके पुत्र महर्षि भृगुको भेजा । महात्मा भृगु पहले ब्रह्मलोकमें गये ॥ २ ॥ ब्रह्माके सत्त्व(महत्त्व)की

परीक्षा करनेके लिये भृगुने न उनको प्रणाम किया और न स्तुति की। यह देख कर कमलासन ब्रह्मा अपने तेजसे अत्यन्त प्रज्वलित होकर भृगु पर कुपित हुए ॥ ३ ॥ किन्तु फिर प्रभु स्वयम्भू ब्रह्माने पुत्र पर उपजे हुए क्रोधको, जैसे कोई तेजतत्त्वसे ही उत्पन्न जलसे अग्निको शान्त करे वैसे ही स्वयं (अपने विवेकसे) शान्त किया ॥ ४ ॥ तब भृगु वहाँसे चल कर कैलाश पर्वत पर पहुँचे। देवदेव महेश्वर आनन्दसहित भाईसे मिलनेके लिये उठे, परन्तु भृगुने "तुम कुमार्गगामी अर्थात् ठीक राह पर न चलनेवाले हो, मैं तुमसे मिलना नहीं चाहता" यह कह कर शंकरका तिरस्कार किया। इससे अत्यन्त कुपित हो, लाल आँखें करके शिवने भृगुको मारनेके लिये त्रिशूल उठाया ॥ ५ ॥ ६ ॥ तब देवी पार्वतीने पैरों पर गिर कर विनयपूर्वक पतिको समझा कर शान्त किया। तब वहाँसे चल कर महर्षि भृगु वैकुण्ठ लोकमें पहुँचे। जनार्दन भगवान् दिव्य पर्यङ्क पर लक्ष्मीकी गोदमें शिर धरे हुए शयन कर रहे थे। भृगुने जाते ही लक्ष्मीपतिकी छातीमें एक लात मारी। साधुजनोंकी गति भगवान् उसी क्षण उठ कर लक्ष्मीसहित पलँगसे उतर पड़े और शिर झुका कर प्रणाम करके मधुर वाणीसे बोले—"ब्रह्मन्! आपको आनेमें कोई कष्ट तो नहीं हुआ? इस आसनमें क्षणभर बैठकर विश्राम कर लीजिये। हे प्रभो! हमने आपके आगमनको नहीं जाना, इसीसे यह अपराध हुआ, क्षमा करिये। हे भगवन्! ये आपके चरण अत्यन्त कोमल हैं, मेरे कठिन वक्षःस्थलकी चोटसे कष्ट हुआ होगा"। यों कहकर भृगुके पैरोंको अपने हाथसे सहलाते हुए हरिने फिर कहा कि, "हे भगवन्! सम्पूर्ण तीर्थोंको भी पवित्र करनेवाले अपने चरणोदकसे मुझको और मुझमें स्थित लोकपालगणसहित समस्त लोकोंको पवित्र करिये। भगवन्! शोभाका एकमात्र आश्रय यह आपके चरणका चिन्ह मुझको प्राप्त हुआ, इससे मेरे सब पातक नष्ट हो गये। इसको मैं आभूषणके समान हृदयमें रक्खूँगा। अब लक्ष्मी निश्चल हो कर मेरे हृदयमें रहेगी" ॥ ७–११ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! ब्रह्मण्यदेवके ऐसे गंभीर वचन सुन कर भृगु मुनि अत्यन्त तृप्त और सुखित हुए एवं अवाक् रहगये, कुछ भी न बोल सके। भक्ति और प्रेमसे भृगुजीका हृदय भर आया एवं नेत्रोंसे आनन्दके आँसू गिरने लगे ॥ १२ ॥ राजन्! वैकुण्ठ लोकसे लौटकर भृगुजी अपने यज्ञ-स्थलमें आये और ब्रह्मवादी मुनियोंके आगे, जो कुछ जहाँ हुआ था उसका आदिसे अन्त तक पूर्ण वर्णन किया ॥ १३ ॥ सुनकर सब मुनियोंको विस्मय हुआ और उनका सन्देह निवृत्त हो गया। सब महर्षिगण शान्ति और अभयकी साक्षात् मूर्त्ति विष्णु भगवान्को सर्वोत्तम, सर्वोपरि मानकर कहने लगे कि, "जो साक्षात् धर्म-

स्वरूप हैं; जिनसे चार प्रकारके* वैराग्यसे सम्पन्न ज्ञान, आठ प्रकारका ऐश्वर्य्य और आत्माको निर्मल करनेवाला यश प्राप्त होता है; जो शान्त, न्यस्तपण (संन्यस्त), समदर्शी, अकिञ्चन, परोपकारी मुनियोंकी एकमात्र गति हैं; सत्त्व जिनकी प्रिय मूर्त्ति है और ब्राह्मण जिनके इष्टदेव हैं; निपुणबुद्धिवाले, निष्काम, शान्तस्वभाव महात्मा लोग जिनको भजते हैं, वही भगवान् नारायण, सर्वोत्तम देव हैं। यद्यपि (उन्हीकी) गुणमयी मायासे उत्पन्न सुर, असुर और राक्षस (अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश)—तीनो उन्हीकी आकृति अर्थात् मूर्तियाँ हैं, तथापि (उनका) सत्त्वमय (सुर अथवा विष्णु) रूपही सब पुरुषार्थ, अर्थात् परमार्थका हेतु है" ॥ १४–१८ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! स्वयं सर्वज्ञ होकर भी अन्य साधारण मनुष्योंका सन्देह मिटानेके लिये इस प्रकार निश्चय (सिद्धान्त) करके, वे सरस्वतीतटवासी महर्षि, परमपुरुषके पादपद्मको भजते हुए भगवद्गति अर्थात् परम पदको प्राप्त हुए ॥ १९ ॥ **सूतजी कहते हैं।** हे शौनकजी! मुनितनय श्रीशुकदेवजीके मुखकमलसे निकले हुए, अमृततुल्य, भवभयभञ्जन इस परम पुरुषके प्रशंसनीय यशको, जो कोई संसारपथिक प्राणी, कानोंके द्वारा वारम्वार पीता है उसको फिर संसारमें भटकनेका कष्ट नहीं उठाना पड़ता, अर्थात् वह आवागमनसे मुक्त हो जाता है ॥ २० ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।** हे भारतकुलतिलक! द्वारका पुरीमें एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ और पृथ्वीमें गिरते ही मर गया ॥ २१ ॥ वह ब्राह्मण उस मृत पुत्रके शरीरको राजद्वार पर लेकर आया और वहाँ उसे रख कर अत्यन्त दुःखपूर्वक कातर स्वरसे रोता हुआ कहने लगा कि "ब्राह्मणद्रोही, शठबुद्धि, लोभी, विषयासक्त, क्षत्रियाधम राजाके ही कर्म्मदोषसे मेरा बालक मर गया। जब राजा हिंसामें रमनेवाला, दुष्टचरित्र और अजितेन्द्रिय होता है तभी प्रजाको दारिद्र्य, भाँति २ के दुःख और कष्टोंसे पीड़ित होना पड़ता है"। यों कह कर मृत पुत्रको राजद्वार पर रख कर वह ब्राह्मण अपने घरको चला गया। इसी प्रकार

---

* यतमान (विषयोंको पूर्ण रीतिसे न त्याग सकने पर भी उनके मिलनेका आग्रह छोड़ देना), पहले प्रकारका वैराग्य है। व्यतिरेक (किसी २ विषयको छोड़ देना, जैसे विना नोनकी भी दाल खा लेना), दूसरे प्रकारका वैराग्य है। एकेन्द्रिय (प्रवृत्ति रहने पर भी मनमें विषयोंके अनुरागकी शिथिलता होनेके कारण केवल बाह्य इन्द्रियोंसेही विषयसेवन करना), तीसरे प्रकारका वैराग्य है और वशीकृत (उसका भी अभाव अर्थात् बाह्य इन्द्रियोंसे भी विषयसेवनमें उदासीनता) चौथे प्रकारका पूर्ण वैराग्य है। यथा—

वैराग्यमाद्यं यतमानसंज्ञं क्वचिद्विरागो व्यतिरेकसंज्ञम्।
एकेन्द्रियाख्य हृदि रागसौक्ष्म्यं तस्याप्यभावस्तु वशीकृताख्यम्॥

क्रमशः उस ब्राह्मणका दूसरा, तीसरा और चौथा पुत्र भी उत्पन्न होते ही मर गया । उनको भी वह ब्राह्मण, राजद्वार पर, पूर्वोक्त वाक्य कह कर, पहलेकी भाँति रख आया ॥ २२-२५ ॥ राजन् ! इसी प्रकार उत्पन्न होतेही मरनेवाले नवम बालकको लेकर ब्राह्मण राजद्वारमें गया और वेही पूर्वोक्त वाक्य कह कर विलाप करने लगा । इस समय वीर अर्जुन, कृष्णचन्द्रके पास बैठेथे । वह ब्राह्मणके विलापको सुनकर बाहर आये और ब्राह्मणसे बोले कि "हे विप्रदेव ! आप क्यों वृथा विलाप कर रहे हैं ? आपके निवासके इस स्थानमें वीर पराक्रमीकी कौन कहे, केवल धनुष धारण करनेवाला भी कोई क्षत्रिय नहीं देख पड़ता, जो आपके इन बालकोंको मृत्युसे बचावे । ये तो ब्राह्मण लोग यहाँ पर मिलकर यज्ञ कर रहे हैं। जिनके जीवित रहते राज्यमें ब्राह्मण लोग धन, पत्नी, पुत्र आदिके वियोगसे शोकाकुल होते हैं वे क्षत्रिय नहीं हैं—उनको केवल पेट पालने और विषयभोग करनेके लिये क्षत्रियवेषधारी नट समझना चाहिये । भगवन् ! पुत्रशोकसे आप स्त्री, पुरुष, दोनो अत्यन्त दीन और व्याकुल हो रहे हैं । आप विश्वास करिये, मैं अबकी बार आपके पुत्रकी रक्षा करूँगा । यदि मैं अपनी इस प्रतिज्ञाका पालन न कर सकूँगा तो उसी समय अपने (प्रतिज्ञा न पाल सकनेके) पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये अग्निमें जल जाऊँगा" ॥ २६-२९ ॥ यह सुनकर ब्राह्मणने कहा, "भगवान् संकर्षण, भगवान् वासुदेव, धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न और जिनका सामना करनेवाला कोई योद्धा नहीं है वह भगवान् अनिरुद्ध, जिसकी रक्षा नहीं कर सक्के उसको तुम कैसे बचा सक्के हो ? जो कर्म्म जगदीश्वरोंके लिये भी दुष्कर है उसको तुम मूर्खतावश करना चाहते हो । अतएव हमको तुम्हारी प्रतिज्ञा पर विश्वास नहीं होता" ॥ ३० ॥ ३१ ॥ राजन् ! तब फिर अर्जुनने घमंडके साथ कहा कि "हे ब्रह्मन् ! मैं संकर्षण, कृष्ण, प्रद्युम्न या अनिरुद्ध नहीं हूँ ! मैं अर्जुन हूँ ! जिसका गाण्डीव धनुष है ॥ ३२ ॥ ब्रह्मन् ! मैंने जिस पराक्रमसे युद्धमें साक्षात् शिवको भी प्रसन्न कर दिया है उसका, इस प्रकार अश्रद्धा प्रकट करके, आप अनादर न करिये । हे प्रभो ! मैं युद्धमें मृत्युको भी जीतकर आपके बालकको ले आऊँगा" ॥ ३३ ॥ हे शत्रुदमन ! अर्जुनने यों कह कर उस ब्राह्मणको विश्वास दिलाया और वह अर्जुनके पराक्रमको सुनकर प्रसन्नचित्त हो अपने घरको गया ॥ ३४ ॥ जब विप्रपत्नीके बालक जननेका समय आगया तब वह ब्राह्मण घबड़ाहटके कारण दौड़ता हुआ अर्जुनके पास आया और कहने लगा, "हे पार्थ ! अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मृत्युसे मेरी सन्तानकी रक्षा करो, रक्षा करो" ॥ ३५ ॥ अर्जुन भी प्रतिज्ञाके अनुसार ब्राह्मणके साथ उसके घर गये । वहाँ जाकर अर्जुनने हाथ पैर धोकर पवित्र जलसे आचमन किया और फिर महेश्वरको प्रणाम कर, गाण्डीव धनुष चढ़ा कर, अपने वशवर्त्ती दिव्य अस्त्रोंको स्मरण कर अनेक

अस्त्रयुक्त वाणोंसे सूतिका गृहको ढँक दिया। ऊर्ध्वमुख अधोमुख और आड़े तिर्छे वाणोंसे अर्जुनने उस सूतिकागृहको वाणनिर्मित पिंजड़ा सा बना दिया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ यथासमय विप्रपत्नीके बालक उत्पन्न हुआ और वारम्वार रोता हुआ उसी क्षण आकाशमार्गमें जाकर अदृश्य हो गया। और बार तो बालकका मृत शरीर रह जाता था, परन्तु अबकी शरीरसहित बालक अदृश्य हो गया ॥ ३८ ॥ तब वह ब्राह्मण, कृष्णके निकट (जहाँ अर्जुन भी थे) जाकर इस प्रकार अर्जुनकी निन्दा करता हुआ कहने लगा कि, "अहो! मेरी मूर्खता तो देखो कि मैंने एक नपुंसकके आत्मप्रशंसापूर्ण कथन पर विश्वास कर लिया। मैंने तो पहले ही कहा था कि कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध आदि जिसकी रक्षा नहीं करसक्के उसकी और कोई कैसे रक्षा कर सक्ता है? मिथ्यावादी और वृथा ही अपने मुखसे अपने पराक्रम और धनुषकी प्रशंसा करनेवाले अर्जुनको एवं उसके धनुषको धिक्कार है" ॥ ३९–४१ ॥ ब्राह्मणको यों कहकर तिरस्कार करते देख, पराक्रमी अर्जुन, उसी समय योगविद्याके बलसे संयमनी पुरीको गये; जहाँ भगवान् यमराज रहते हैं ॥ ४२ ॥ वहाँ ब्राह्मणके पुत्रको न देख कर शस्त्रधारी अर्जुन क्रमशः इन्द्र, अग्नि, निर्ऋति, चन्द्र, वायु, वरुण आदि लोकपालोंके पुरोंमें तथा अतल आदि सातो रसातल और स्वर्गके ऊपर महर्लोक आदि सातो लोकोंमें एवं अन्यान्य स्थानोंमें भी गये; परन्तु उनको कहीं भी ब्राह्मणका पुत्र न मिला। तब प्रतिज्ञा पूर्ण न होते देख कर अर्जुनने चिता लगाकर अग्निमें जलनेका विचार किया। उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने आकर अर्जुनको रोका और कहा कि "मित्र! तुम क्यों अग्निमें जलने जाते हो? आपही अपनेको असमर्थ समझकर अपना अनादर न करो। चलो, मैं तुम्हे ब्राह्मणके सब पुत्रोंको दिखाऊँगा। इस कार्य्यसे मनुष्यलोकमें हमारी अक्षय कीर्त्ति स्थापित होगी" ॥ ४३–४५ ॥ हे राजन्! सर्वशक्तिमान् कृष्णचन्द्र यों कह कर, अर्जुनसहित अपने दिव्य रथ पर चढ़कर पश्चिम दिशाको चले। सात २ पर्वतोंसे युक्त सात द्वीप और समुद्रोंको नाँघकर लोकालोक पर्वतके उस पार महा अन्धकारमय मार्गमें पहुँचने पर शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नाम घोड़े इधर उधर भटकने लगे। यह देखकर महा योगेश्वरोंके भी ईश्वरने सहस्र सूर्यके समान तेजधारी अपना सुदर्शन चक्र आगे कर दिया ॥ ४६–४९ ॥ जैसे धनुषसे छूटकर अप्रतिहतगति रामवाण शत्रुसेनामें प्रवेश करे वैसेही मनके समान शीघ्रगामी वह चक्र अपने महा तेजसे आकाश तक छाये हुए घोर अन्धकारको हटाता हुआ आगे २ चला ॥ ५० ॥ चक्रके दिखाये हुए मार्गसे उस घोर अंधकारके पार पहुँचकर अर्जुनने देखा कि अगणित अपार सूर्य्योंकी ऐसी अपार ज्योति चारो ओर फैली हुई है। उस श्रेष्ठ ज्योतिःस्वरूप ब्रह्मतेजकी ओर अर्जुनकी दृष्टि नहीं ठहरसकी और उन्होने प्रका-

शसे प्रतिहत दोनो नेत्र बंद कर लिये ॥ ५१ ॥ तदनन्तर अर्जुन और कृष्णचन्द्रने रथके द्वारा आकाशमार्ग (स्थल मार्ग) से उतर कर, बड़े वेगसे चल रहे प्रचण्ड-वायुके झोंकोंसे जिसमें बड़ी २ भय उत्पन्न करनेवाली ऊँची लहरें उठ रही हैं उस अपार जल (समुद्र) में प्रवेश करनेके उपरान्त देखा कि एक परम प्रकाश-सम्पन्न अति उत्तम अद्भुत भवन बना हुआ है । उस भवनमें, अत्यन्त चमकीली मणियाँ जिनमें जड़ीहुई हैं ऐसे हजारों सुवर्णके खंभे सुशोभित हैं ॥ ५२ ॥ भवनके भीतर भीमरूप, श्वेत पर्वतके समान अद्भुत अनन्त शेषनाग विराजमान हैं । उनके मस्तकोंमें स्थित महा मणियोंकी प्रभासे उज्वल सहस्र फण फैले हुए हैं और दो हजार भयानक नेत्र हैं एवं कण्ठ और जिह्वाओंका वर्ण नीला है ॥ ५३ ॥ और देखा कि शेषजीके शरीरकी शय्या पर सर्वव्यापक, महानुभाव, श्रेष्ठ पुरुषोंमेंभी श्रेष्ठ साक्षात् नारायण भगवान् सुखपूर्वक लेटे हुए हैं । उनके जलभरे मेघके समान श्याम शरीर पर बिजलीके समान पीतपट शोभायमान है । उनका मुखमण्डल प्रसन्न है और नेत्र कमल-दलके सदृश विशाल, अरुण और दर्शनीय हैं ॥ ५४ ॥ उनके महामणियोंके गुच्छोंसे सुशोभित सहस्र २ किरीट मुकुट और कुण्डलोंकी अपरिमित प्रभा चारो ओर फैलीहुई है । सुन्दर, विशाल जानुओं तक लंबी और मोटी २ आठ भुजाएँ हैं और वक्षःस्थलमें श्रीवत्स तथा लक्ष्मी एवं कण्ठमें कौस्तुभमणि व वनमालाकी अपूर्व शोभा हो रही है ॥ ५५ ॥ सुनन्द, नन्द आदि पार्षद्गण और मूर्त्तिमान् चक्र आदि आयुध एवं मूर्तिमती पुष्टि, श्री, कीर्त्ति, अजा (माया) तथा अणिमा आदि सम्पूर्ण सिद्धियाँ; इत्यादि सब वैभव, ब्रह्माआदि परमेष्ठी देवोंके भी स्वामी परमेश्वरकी सेवामें साक्षात् उपस्थित हैं ॥ ५६ ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुनने देखते ही सादर शिर झुका कर उन आत्मा (अपनेही पूर्णरूप) अच्युतको प्रणाम किया । तब ब्रह्मा आदिके भी ईश्वर सर्वव्यापक प्रभुने हाथ जोड़े खड़े हुए (अपनेही अंश) कृष्ण और अर्जुनसे मन्द २ मुसका कर प्रसन्नता प्रकट करते हुए इस प्रकार गंभीर वाणीसे कहा कि "हे नर और नारायण ! तुम्हे देखनेकी इच्छासे मैंने ही ब्राह्मणके बालकोंको यहाँ मँगा लिया है । सनातन धर्म्मकी रक्षाके लिये तुम दोनो मेरेही अंशसे पृथ्वीतल पर प्रकट हुए हो । पृथ्वीके लिये भार हो रहे राजवेषधारी असुरोंका संहार करके* तुम शीघ्र मेरे निकट आजाओ ॥५७॥५८॥ हे नर, नारायण ! तुम श्रेष्ठ और पूर्णकाम हो, तथापि मर्य्यादापालनके लिये तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम धर्म्मका आचरण करो; जिसमें तुम्हारे आचरणसे अन्य

---

* यह घटना महाभारतसे पहलेकी है । यहाँ पर कृष्णके महत्त्ववर्णनके प्रसङ्गमें कही गई है ।

साधारण जन धर्म्मकी शिक्षा पावें" ॥ ५९ ॥ हे राजन्! परमेष्ठी परमेश्वरकी इस आज्ञाको स्वीकार करते हुए 'बहुत अच्छा' कह कर श्रीकृष्ण और अर्जुनने प्रणाम किया और फिर प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणके बालकोंको लेकर जिस राहसे गये थे उसी राहसे द्वारका पुरीको लौटे। द्वारकामें आकर अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार ब्राह्मणको उसके सब बालक देदिये। जैसे थे वैसेही अपने पुत्रोंको पाकर ब्राह्मण अत्यन्त विस्मित और प्रसन्न हुआ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ विष्णु भगवान्के पूर्वोक्त परम धाम अथवा प्रभावको देख कर अर्जुनको बड़ाही विस्मय हुआ और उन्होने समझ लिया कि पुरुषोंमें जो कुछ पौरुष है सो सब कृष्णचन्द्रकी कृपामात्र है ॥ ६२ ॥ हे राजन्! कृष्णचन्द्रने इस प्रकारके महत्त्वसूचक अनेकानेक कार्य्य करते हुए पृथ्वीतल पर सम्पूर्ण सांसारिक विषयभोगोंका उपभोग किया और विधिपूर्वक महत्तम यज्ञ भी किये ॥ ६३ ॥ भगवान् कृष्ण अपनी श्रेष्ठता अर्थात् ऐश्वर्य्यके अनुसार उचित समय पर इन्द्रके समान, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारो वर्णके प्रजागणकी सब कामनाएँ पूर्ण करते रहे ॥ ६४ ॥

हत्वा नृपानधर्मिष्ठान्घातयित्वार्जुनादिभिः ॥
अञ्जसा वर्तयामास धर्मं धर्मसुतादिभिः ॥ ६५ ॥

कृष्णचन्द्रने अपने हाथसे और अर्जुन आदिके द्वारा अधर्म्मी राजोंका संहार करते हुए युधिष्ठिर आदिके द्वारा फिरसे सनातन सत्य धर्म्मको स्थापित किया ॥ ६५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

नवतितम अध्याय।

संक्षेपसे कृष्णचन्द्रके लीलाविहारका वर्णन और द्वारकापुरीकी सम्पत्तिसमृद्धिका निदर्शन।

श्रीशुक उवाच—सुखं स्वपुर्यां निवसन्द्वारकायां श्रियःपतिः ॥
सर्वसंपत्समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुङ्गवैः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! सब प्रकारकी सम्पत्तिसे सुशोभित और वीर यादवोंसे परिपूर्ण अपनी द्वारकापुरीमें साक्षात् लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्र सुखपूर्वक अवस्थित थे ॥ १ ॥ दामिनीदामसम कान्तिसम्पन्ना, उत्तम वेषवाली, नवयौवनसे परिपूर्ण सुन्दरी कामिनियाँ, द्वारकापुरीके ऊँचे २ महलोंमें आनन्दपूर्वक कंदुकक्रीड़ा करतीथीं। जिनके मस्तकसे मदजल बहरहा है ऐसे

हाथियोंके झुंडोंसे, भली भाँति अलंकृत वीरवेपधारी योद्धा लोगोंसे, सुवर्ण मण्डित रथों और अश्ववृन्दोंसे द्वारकापुरीके बड़े २ चौड़े मार्ग सब समय परिपूर्ण रहते थे। वह पुरी अनेक उद्यान और उपवनोंसे अत्यन्त सुशोभित थी। उपवनोंमें फूले हुए वृक्षोंकी डालियों पर बैठे हुए पक्षीगण और मत्त मधुकरोंके झुंड अपने मनोहर गानसे वहाँके निवासियोंको प्रसन्न करते थे ॥ २–४ ॥ सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियोंके एकमात्र वल्लभ (अत्यन्त प्रिय) श्रीपति श्रीकृष्णचन्द्र, इस प्रकार सुसज्जित और सुसम्पन्न द्वारकापुरीमें निवास करते हुए महावैभवपूर्ण उन ललनाओंके सोलह हजार भवनोंमें अलग २ उतने ही रूप रख कर रमण करते थे ॥ ५ ॥ भगवान् कृष्णचन्द्र कभी फूले हुए उत्पल, कल्हार, कुमुद और पद्म आदि भाँति २ के कमलोंके मकरन्दसे सुवासित सरोवरोंके स्वच्छ जलमें घुस कर भ्रमरोंके मधुर गानको सुनते हुए उन रानियोंके साथ विहार करते थे ॥ ६ ॥ ७ ॥ उस समय किनारेके वृक्षोंकी डालियों पर बैठे हुए पक्षियोंके झुंड विचित्र बोलियाँ बोलते थे। गन्धर्व लोग मृदङ्ग, पणव, ढोलक आदि विविध बाजे वजाते और सूत, मागध, बन्दीजन गुण गाते थे। सब स्त्रियाँ हँसती हुई पिचकारियोंसे प्रियतम कृष्णको भिगोती थीं और कृष्णचन्द्र भी उनको पिचकारीसे भिगोते हुए यक्षिणीसमूहके साथ यक्षराजके समान जलविहार करते थे। इस प्रकार जलविहार करतेमें स्त्रियोंके वस्त्र हट जाते थे और कुचकलश खुल पड़ते थे, शिथिल वेणियोंसे फूल झड़ते जाते थे। स्त्रियाँ, जब पिचकारी छीननेके लिये कृष्णसे लिपट जाती थीं तव कामोद्दीपनकी सूचना देनेवाली लज्जायुक्त मुसकानकी प्रभासे उनके मुखमण्डल दमकने लगते थे ॥ ८–१० ॥ स्त्रियाँ कृष्णचन्द्रको भिगोती थीं और कृष्णचन्द्र उनको भिगोते थे। स्त्रियोंके स्तनोंसे, लिपटनेके कारण, छूटे हुए कुंकुमके द्वारा सुवासित पुष्पमालाएँ कृष्णके कण्ठसे टूट २ कर गिर जाती थीं और क्रीड़ाकी आसक्तिसे घूँघरवाली अलकोंका बंधन शिथिल होनेके कारण मुखमण्डल पर छूटी हुई अलकें लहराने लगती थीं। उस समय हथनियोंके साथ क्रीड़ा कर रहे गजराजके समान कृष्णचन्द्रकी शोभा होती थी ॥ ११ ॥ कृष्णचन्द्र और उनकी पत्नियाँ, क्रीड़ाके उपरान्त, नट नर्तकी गवैये वजैये आदि याचकोंको अलंकार वस्त्र आदि देकर प्रसन्न करते थे ॥१२॥ कृष्णकी चाल, बातचीत, हँसी, चितवन, क्रीड़ा, आलिंगन आदिसे स्त्रियाँ ऐसी मोहित हो रही थीं कि उनकी आँखोंमें हृदयमें और मुखमें एकमात्र कृष्ण बस गये थे–वे सब भूल कर तन्मय हो गई थीं और कभी २ इस प्रकार पागलोंके समान मेघ आदि जड़वस्तुओंसे प्रिय-प्रेमपूर्ण वाक्य कहने लगती थीं ॥ १३॥१४ ॥ कभी कुररी (उन चिड़ियोंको कहते हैं जो प्रायः वर्षाकालमें आकाशमें काँव २ करती हुई कतार बाँधकर उड़ती हैं) को देखकर कोई रानी कहने

लगती कि, "हे कुररी! इस समय रातको कृष्णचन्द्र सुखपूर्वक सो रहे हैं और तू विलाप करके उनके सोनेमें विघ्न कर रही है! तू क्यों नहीं सो रहती? क्या तुझे नींद नहीं आती? सखी! क्या हमारे ही समान कमलनयन कृष्णके हास्यपूर्ण उदारलीलाविलासयुक्त कटाक्षरूप बाणोंसे तेरा भी हृदय भली भाँति बिंध-गया है?" ॥ १५ ॥ कभी कोई रानी चक्रवाक पक्षीकी स्त्रीको अर्द्धरात्रिके समय भी जागते देखकर कहने लगती कि, "हे चक्रवाकी! तू पतिके वियोगसे व्याकुल होकर इस समय भी पलक नहीं लगाती और दीन स्वरसे विलाप कर रही है। अथवा क्या तू भी हमारे ही समान कृष्णकी दासी हो गई है और अच्युतकी चरणसेवित मालाको अपनी वेणीमें रखनेके लिये रो रही है?" ॥ १६ ॥ कभी कोई रानी मेघको गर्जता हुआ देखकर कहने लगती कि, "हे मेघ! तुम सर्वदा शब्द किया करते हो; तुमको कभी नींद नही आती, इसीसे जागते रहते हो। अथवा जैसे हमारे कुचकुंकुमादि चिन्होंको हर कर मुकुन्दने हमारी यह दशा कर दी है वैसेही तुम्हारी बिजलीके समान प्रभाशाली कौस्तुभ आदि चिन्होंको लेकर तुम्हे भी इस दुरत्यय दशाको पहुँचाया है?" ॥ १७ ॥ कभी कोई रानी चन्द्रमाको देखकर कहने लगती कि, "हे चन्द्र! तुमको प्रबल क्षयरोगने ग्रस लिया है, इस कारण क्षीण होते चले जाते हो और अपनी क्षीण किरणोंसे घोर अन्धकारको भली भाँति दूर नहीं कर सक्ते। अथवा हमारे ही समान केवल मुकुन्दके मधुर वचनोंका ध्यान रहनेसे प्रतिदिन क्षीण होते जाते हो? तुम कुछ उत्तर नहीं देते, अतएव हमको ऐसाही लक्षित होता है" ॥ १८ ॥ कभी कोई कामपीड़ित रानी मलयानिलसे कहने लगती कि, "हे मलयपवन! हमने तेरा क्या अप्रिय किया है जो तू गोविन्दके कटाक्षोंसे घायल हो रहे हमारे हृदयमें कामोद्दीपन करके और भी हमें व्यथित कर रहा है" ॥ १९ ॥ कभी कोई रानी श्याम घनको देख कर कहने लगती कि, "हे श्रीयुत श्यामघन! तुम अवश्यही यादवपतिके प्रीतिपात्र हो। तुम भी हमारे ही समान श्रीवत्सधारी प्रिय सखा कृष्णका ध्यान करते हो। तुम उनके प्रेममें मग्न हो रहे हो और अत्यन्त उत्कण्ठासे तुम्हारा हृदय भरा हुआ है। इसी कारण वारम्वार प्रियतमका स्मरण करते हुए रह २ कर आँसुओंकी धाराएँ (जलकी बूँदें) बहारहे हो। अजी! उनके प्रसंगमें ऐसेही दुःख झेलने पड़ते हैं!" ॥ २० ॥ कभी कोई रानी कोकिलका कूजन सुनकर कहने लगती कि—"हे कोकिल! तुम इस मृतसंजीविनी वाणीसे प्रियम्वद श्रीकृ-ष्णके समान सुललित वचन बोल रहे हो। हे कमनीयकण्ठ! कहो, हम तुम्हारी कौन प्रिय कामना पूरी करें?" ॥ २१ ॥ कभी कोई रानी निश्चल पर्वतको देख कर कहने लगती कि—"हे भूधर! तुम बड़ेही उदारमति अर्थात् गंभीर हो, न कुछ बोलते हो, और न डोलते हो; जान पड़तां है कि किसी गुरुतर विषयकी चिन्तामें

मग्न हो रहे हो । हमें जान पड़ता है कि हमारे ही समान वसुदेवनन्दनके चरण-कमलोंके पानेको कामनाही तुम्हारा चिन्तनीय विषय है" ॥ २२ ॥ कभी कोई रानी सागरमें मिलनेवाली नदियोंसे कहने लगती कि—"हे समुद्रकी पत्नियो! तुम्हारे सब गंभीर जलपूर्ण स्थल सूख गये हैं और कमलकुसुमसञ्चित शोभा नष्टप्राय हो गई है । तुम अत्यन्त क्षीण हो गई हो तथापि यह कठोर समुद्र मेघ-द्वारा अमृतकी वर्षा करके तुमको प्रसन्न और सुसम्पन्न नहीं करता । जैसी हमारी वैसी ही तुम्हारी भी दशा है, जैसे हम अपने परमप्रिय स्वामी यदुपतिके प्रणयावलोकनको न पाकर—उसीके ध्यानसे अत्यन्त क्षीण हो रही हैं और हमारा हृदय (चिन्तासे) शुष्क होगया है वैसेही तुम्हारी भी दशा शोचनीय है" ॥२३॥ कभी कोई रानी राजहंसको देख कर कहने लगती कि—"हे हंस! भले आये, आओ, सुखपूर्वक बैठो और दुग्धपान करो । हे वंशावतंस! हम जानती हैं कि तुम प्रियतमके भेजे हुए दूत हो, हमारे पास उनका संदेश लेकर आये हो । अच्छा, यदुपतिका समाचार हमसे कहो । श्रीकृष्णचन्द्र सुखपूर्वक कुशलसे हैं? वह अस्थिरसौहृद कृष्ण, क्या कभी हमारा भी स्मरण करते हैं? एकान्तमें बैठ कर जो प्रेमालाप हमसे करते थे, उसका भी कभी स्मरण करते हैं? हे कपटीके दूत! यदि कहो कि उन्होने स्मरण करके तुमको बुलाया है, तो हम क्यों अपनी सौत लक्ष्मीके निकट अवस्थित कृष्णके पास जावें? अतएव उनसे जाकर कहो कि वह चाहें तो हमको धोखा देकर जिससे रमण कर रहे हैं उस लक्ष्मीको छोड़ कर अकेले हमारे पास चले आवें । यदि कहो कि लक्ष्मीके तो वह एक-मात्र प्रेमपात्र हैं, वह उनको कैसे छोड़ेगी? तो क्या हम सब स्त्रियोंमें लक्ष्मी ही ऐसी है?—हम भी तो उन्हीको अपना जीवनसर्वस्व समझती हैं" ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे राजन्! योगेश्वरोंके ईश्वर कृष्णचन्द्र पर ऐसा अनन्य भाव और ऐसी आसक्ति होनेके कारण पूर्वोक्त सब स्त्रियाँ सहजमें ही उस सद्गतिको प्राप्त हुई, जो बड़े २ ऋषि और मुनियोंको भी दुर्लभ है ॥ २५ ॥ किसीके मुखसे वारम्वार या एक बार भी जिनके गुण सुनलेने पर स्त्रियोंका चित्त बिवश होजाता है उन कृष्णको प्रतिक्षण देखने सुननेवाली स्त्रियाँ यदि इस प्रकार अपनेको भूल कर उन्हीके अपार प्रेमसागरमें मग्न होगई तो कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है ॥ २६ ॥ हे नरेश! जिन्होने पतिभावसे प्रेमपूर्वक चरणसेवा आदिके द्वारा साक्षात् जगद्गुरुको सन्तुष्ट किया उन स्त्रियोंका तप वर्णनातीत है ॥ २७ ॥ साधुजनोंकी एकमात्र गति कृष्णचन्द्रने इस प्रकार वेदविहित धर्मका आचरण करके अन्यजनोंके लिये धर्म्म, अर्थ, काम सहित गृहस्थाश्रमका मार्ग स्पष्ट कर दिया ॥ २८ ॥ राजन्! गृहस्थोंको अपने आचरणोंसे उनके श्रेष्ठ धर्म्मकी शिक्षा देनेवाले कृष्णचन्द्रके सब मिला कर सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ थीं—यह

हम पहलेही कह आये हैं ॥ २९ ॥ इन स्त्रीरत्नोंमें रुक्मिणी आदि आठ पटरानी और उनके पुत्रोंका पूर्ण विवरण भी आपको सुना चुके हैं ॥ ३० ॥ अमोघरति कृष्ण-चन्द्रने अपनी सब स्त्रियोंमें प्रत्येकके दस २ पुत्र उत्पन्न किये* ॥ ३१ ॥ उन सब पराक्रमी पुत्रोंमें प्रद्युम्न, अनिरुद्ध (पौत्र अथवा कोई इसी नामका पुत्र), दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, भानुवृन्द, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रबर्हि, वरूथ, कवि और न्यग्रोध–ये अठारह महायशस्वी महारथी थे। हे राजेन्द्र! इन कृष्णके अठारह पुत्रोंमें भी सब बातोंमें पिताके अनुरूप रुक्मिणी-तनय प्रद्युम्नजी श्रेष्ठ थे ॥ ३२–३५ ॥ महारथी प्रद्युम्नने रुक्मीकी कन्यासे व्याह किया, उसके गर्भसे प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धका जन्म हुआ। दस हजार हाथीका बल रखनेवाले अनिरुद्धने पुत्री–पुत्र होकर भी रुक्मीकी पौत्रीसे बिवाह किया, उसके गर्भसे अनिरुद्धतनय वज्रका जन्म हुआ। मौषलयुद्धमें केवल यही वज्र बचे ओर सब यादवोंका विनाश हो गया। वज्रके प्रतिबाहु, उनके सुबाहु, उनके उपसेन और उनके भद्रसेन हुए ॥ ३६–३८ ॥ राजन्! इस यदुकुलमें कभी कोई धनहीन, अल्पायु, अल्पवीर्य्य, अल्पसन्तान या ब्राह्मणविरोधी नहीं उत्पन्न हुआ ॥ ३९ ॥ यदुवंशमें उत्पन्न प्रसिद्ध यशस्वी पुरुषोंकी गिनती सौ हजार वर्षोंमें भी नहीं की जा सक्ती! सुना जाता है कि यदुबालकोंको शिक्षा देनेवाले गुरु केवल तीन करोड़ एक सौ अट्ठासी पण्डित विद्वान् थे! तब महात्मा यादवोंकी गिनती कौन कर सक्ता है? राजा उग्रसेनकी सभामें सर्वदा अयुतलक्ष अयुत (अर्थात् असंख्य) महावीर यादवलोग उपस्थित रहते थे। राजन्! असंख्य दारुण दैत्य, देवासुर संग्राममें मरकर मनुष्यलोकमें, राजवंशमें उत्पन्न हुए थे और महामदान्ध होकर प्रजाको पीड़ा पहुँचाते थे। उनका दमन करनेके लिये साक्षात् हरिकी आज्ञासे सब देवगण यदुवंशमें उत्पन्न हुए थे। राजन्! यादवोंमें एक सौ एक कुल थे। उन यादवोंकी प्रभुताका प्रमाण साक्षात् हरि हुए हैं, जिनके अनुगत होनेसे यादवोंका ऐसा अपूर्व अभ्युदय हुआ ॥ ४०–४५ ॥ कृष्णको अपना सर्वस्व समझनेवाले यादव, सर्वदा ऐसे तन्मय रहते थे कि शयन, उप-वेशन, भ्रमण, वार्त्तालाप, क्रीड़ा, स्नान और भोजन आदिके समय भी अपनेको भूले रहते थे ॥ ४६ ॥ महाराज! जिनके यदुकुलमें प्रकट कीर्त्तिरूप तीर्थने उन्हीके चरणोदकरूप गंगातीर्थको नीचे कर दिया और जिनके शत्रु और मित्र, दोनोको एक–समान सारूप्य मुक्ति मिली एवं जिनका नाम, कहने तथा सुननेसे भी सब अमंगलोंको दूर करता है और जिन्होने आर्य्यऋषिकुलमें गोत्र–धर्म्मकी स्थापना की है उन परम कारुणीक, परम पराक्रमी एवं कालचक्रधारी कृष्णके

* इस हिसावसे सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके एक लाख साठ हजार अस्सी पुत्र होते हैं।

द्वारा इस पृथ्वीके अनन्त भारका संहार होना, कोई विचित्र व्यापार नहीं है। देखो, जिस लक्ष्मीके लिये और २ (ब्रह्मादिक) लोग अनेक प्रयत्न करते हैं वही दुर्लभा और परिपूर्णा लक्ष्मी, अपनी अपेक्षा न रखनेवाले कृष्णचन्द्रको आपही अनन्य भावसे भजती है ॥ ४७ ॥ जो सब जीवोंका आश्रय हैं, जिन्होने कहनेमात्रको देवकीके गर्भसे जन्म लिया, जिन्होने सेवकसमान आज्ञाकारी बड़े २ यदुश्रेष्ठोंके साथ अपने बाहुबलसे अधर्म्मका संहार किया, जो चराचर जगत्के दुःखको दूर करनेवाले हैं, जिनके सुन्दर हास्यशोभित श्रीमुखको देख कर ब्रजबालाओंके हृदयमें कामोद्दीपन हुआ करता था, उन कृष्णचन्द्रकी जय हो ॥४८॥ जिनको परमेश्वरके चरणोंकी अनन्य भक्ति पानेकी इच्छा हो उनको चाहिये कि वे निजकृत धर्म्मकी रक्षा करनेके लिये मायामानवरूप यदुश्रेष्ठ हरिके जो नरतनुके अनुरूप लीलाविडम्बनमात्र एवं कर्म्मनाशन चरित्र हैं उनको मन लगा कर नित्य सुना करें ॥ ४९ ॥

मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुन्द-
श्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयैति ॥
तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं
ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ॥ ५० ॥

जिनके पानेके लिये राज्यसुखोंको तृणके समान छोड़कर बड़े २ महाराज तपोवनको गये हैं उन हरिकी वैसीही दृढ़ अनुवृत्तिको हरिकथाके कीर्तन, श्रवण और मनन द्वारा बढ़ाकर, मनुष्य, उस अकुतोभय अविनाशी ब्रह्मधामको जाता है जहाँ मृत्युकी प्रबल गति नहीं है ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कंधे उत्तरार्धे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

इति दशमस्कन्धः समाप्तः ।





शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

एकादशस्कन्धः ।



जनमेजयका यज्ञ ।



॥ श्रीः ॥

शुकोक्तिसुधासागरः।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

एकादशस्कन्धः ।



प्रथम अध्याय ।

यदुवंशको ऋषिशाप ।

श्रीबादरायणिरुवाच—कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः ॥
भुवोऽवतारयद्भारं जविष्ठं जनयन्कलिम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज ! बलभद्रसहित यादवपरिवृत कृष्णचन्द्रने हिंसापर्य्यवसित (जिसका परिणाम मारना और मर जाना हो) महाकलहका सूत्रपात करके, उसीसे होनेवाले घोर संग्राममें राजवेपधारी दुष्ट दैत्योंका विनाश किया और इस प्रकार पृथ्वीका भार उतारा ॥१॥ जिन्हे शत्रुता करनेवाले कौरवोंने कपटद्यूत, तिरस्कार, भरी सभामें केश पकड़ कर द्रौपदीको लेआना—इत्यादि अनेकानेक अत्याचारोंसे अत्यन्त कोपित कर रक्खा था उन पाण्डवोंको निमित्तमात्र बना कर, ईश्वर कृष्णचन्द्रने इधर उधरसे लड़नेके लिये आये हुए

राजोंको मार कर पृथ्वीका भार उतारा ॥ २ ॥ राजन्! इस प्रकार निजबाहुबलसे सुरक्षित अनुगृहीत पाण्डव और यादवोंके द्वारा, पृथ्वीके लिये भार होरहे राजोंको और उनकी असंख्य सेनाको मार कर, अप्रमेय कृष्णचन्द्रने विचारा कि "यद्यपि इन सेनासहित दुष्ट राजोंके विनाशसे पृथ्वी बहुत कुछ हलकी होगई है, परन्तु मैं समझताहूँ कि अभी पूर्णरूपसे सब भार नहीं उतरा, क्योंकि यह अविषह्य और प्रबल यादवकुल तो विद्यमान ही है ॥ ३ ॥ यह यादववंश मेरे आश्रित है एवं नित्य बढ़नेवाले हाथी, घोड़े, धनसम्पत्ति आदि वैभवोंसे सुसम्पन्न होकर उनके मदसे उद्दण्ड हो उठा है, अर्थात् किसीको नहीं दबता; अतएव मेरे परमधामगमनके उपरान्त अन्य कोई इसको नहीं दबा सकेगा—यह यथेच्छाचारसे संसारको पीड़ा पहुँचावेगा। अच्छा, बाँसके झुंडमें परस्परकी रगड़से उत्पन्न अग्नि, जैसे प्रज्वलित होकर उसको जड़मूलसे भस्म कर देता है, वैसेही मैं इस यदुकुलमें परस्पर कलह कराकर उसीकी आगसे इन सबका संहार कराऊँगा; और इस प्रकार पृथ्वी पर शान्ति स्थापन करनेके उपरान्त अपने वैकुण्ठ धामको जाऊँगा" ॥ ४ ॥ हे राजन्! इस प्रकार कर्तव्य स्थिर कर सत्यसङ्कल्प सर्वव्यापक ईश्वरने विप्रशापके मिससे अपने कुलका संहार किया ॥ ५ ॥ जिसकी अपूर्व सुन्दरताके आगे त्रिभुवनकी लुनाई और सुन्दरता तृण सी तुच्छ जँचती है उस भुवनमोहन रूपसे, देखनेवालोंके नयनोंको वश कर और अपने सुधासम मधुर महा मनोहर वचनोंसे, जिनको उनके सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है उनके चित्तको हर कर तथा अनेक स्थानोंमें अंकित अपने चरणचिन्होंसे, उन्हे देखनेवालोंकी गति शिथिल कर एवं 'इसके द्वारा अवश्य ही अनायास सब लोग अज्ञान-सागरके पार पहुँच जायँगे', इस अभिप्रायसे कविलोग सुन्दर छन्दोंमें जिसका भली भाँति कीर्तन करते हैं वह अपनी परम पवित्र कीर्त्ति पृथ्वी पर फैलाकर साक्षात् ईश्वर कृष्णचन्द्र परम धामको पधार गये ॥ ६ ॥ ७ ॥ **राजा परीक्षित्ने** पूछा कि हे भगवन्! यादवलोग तो ब्राह्मणोंके परम भक्त, दानी, उदार, नित्य वड़े बूढ़ोंकी उपासना करनेवाले और हर घड़ी कृष्णके ध्यानमें मग्न रहते थे, फिर उनको विप्रशाप क्यों और कैसे प्राप्त हुआ? हे द्विजवर! ब्राह्मणोंने क्या शाप दिया? उस शापका कारण क्या था? इसके सिवा यादवोंमें तो बड़ा ही एका था, फिर उनमें ऐसी सर्वसंहार करानेवाली फूट कैसे हुई? कृपापूर्वक इन मेरे संशयोंको मिटाइये ॥ ८ ॥ ९ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।** महाराज! मन लगाकर सुनिये। सब प्रकारकी सुन्दरतासे सम्पन्न होनेके कारण त्रिभुवनमोहन मनोहर रूप धारण करनेवाले और परम ऐश्वर्य्यसे पूर्णकाम एवं अपने मंगलकारी पवित्र

आचरणोंसे पृथ्वीतलमें उदार अर्थात् बहुफलदायिनी कीर्त्तिको फैलानेवाले कृष्णचन्द्रने गृहसुखभोगपूर्वक रमते हुए कुछ अवशिष्ट पृथ्वीके भारको उतारनेके लिये और कुछ समय तक द्वारका धाममें रहकर किसी बहानेसे यादववंशका विनाश करानेकी इच्छा की ॥ १० ॥ इसी अवसरमें वसुदेवके भवनमें उत्पन्न कालरूप कृष्णचन्द्रने, जिनके केवल कीर्तनसे जगत्के कलिमल मिट जाते हैं वे पुण्यदायक पवित्र मङ्गलमय और दोनो लोकोंमें सुख देनेवाले अनेकों पुण्य कर्म्म किये । विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वशिष्ट और नारद आदिक ऋषिगण, जो कृष्णचन्द्रको उक्त पुण्यकर्म्म कराने आये थे, कृष्णचन्द्रसे विदा होकर द्वारकाके समीप ही पिण्डारक नाम पवित्र तीर्थमें कुछ काल तक रह कर तप करनेके विचारसे गये ॥ ११ ॥ १२ ॥ राजन्! वहाँ यादवोंके सब ढीठ बालक खेल रहे थे, सो वे जाम्बवतीके पुत्र साम्बको स्त्रियोंके कपड़े पहना कर उन ऋषियोंके पास मसखरी करनेके लिये ले गये और बनावटी नम्रता दिखाते हुए ऋषियोंके चरण छूकर कहने लगे कि-"हे विप्रगण! यह श्यामलोचना सुन्दरी गर्भवती है, इसके प्रसवका समय निकट आगया है, परन्तु लज्जाके कारण अपने मुखसे आप लोगोंसे कुछ पूछ नहीं सक्ती, इस कारण हमलोगोंके द्वारा पूछती है कि मेरे पुत्र होगा या कन्या? सो कृपा करके बताइये कि इसके क्या होगा? आप लोग सब जानते हैं" ॥ १३-१५ ॥ हे राजन्! इस प्रकार बालकोंको मसखरी करते देख ऋषियोंको क्रोध आगया और उन्होने कुपित होकर कहा कि-"अरे मंदमति बालको! यह एक लोहेका मूशल जनेगी, जिससे तुम्हारे कुलका विनाश होगा" ॥ १६ ॥ यह घोर शाप सुन कर वे बालक बहुतही डरे । उन्होने साम्बका बनावटी पेट खोल कर देखा तो वास्तवमें एक लोहेका मूशल निकला । तब वे अत्यन्त चिन्तित होकर कहने लगे कि "हाय! हम अभागोंने यह क्या अनर्थ कर डाला! हमारे बड़े बूढ़े हमको क्या कहेंगे?" । इस प्रकारकी चिन्तासे विह्वल वे बालक उस मूशलको लेकर घरको गये ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ भय और चिन्तासे मुरझाये हुए मुख लटकाये उन बालकोंने यादवोंसे भरी सभामें लेजा कर वह मूशल रख दिया और राजा उग्रसेनसे सब वृत्तान्त कहा ॥ १९ ॥ हे राजन्! न टलनेवाले विप्रशापको सुन कर और उस मूशलको देख कर सब द्वारकावासी जन बहुत ही विस्मित और भयभीत हुए ॥ २० ॥ राजा उग्रसेनने सबकी सम्मतिसे उस मूशलको महीन २ चूर्ण करके समुद्रके जलमें फिकवा दिया । मूशलका एक छोटा सा टुकड़ा नहीं चूर्ण होसका, उसको वैसेही फिकवा दिया ॥ २१ ॥ उस छोटेसे टुकड़ेको तो एक मछली निगल गई और वह चूर्ण समुद्रकी तरंगोंसे बह कर किनारे लग गया । उसी चूर्णसे समुद्रके किनारे बहुतसे सेंठे उत्पन्न हो गये ॥ २२ ॥ मछली पकड़नेवालोंने समुद्रमें

जाल डाला, उसमें और मछलियोंके साथ वह मछली भी आगई, जिसने बचे हुए लोहेके टुकड़ेको निगल लिया था। मछलीका पेट फाड़नेसे वह लोहा निकला और एक बधिकने उस लोहेसे बाणकी दो गाँसी (जो बाणके आगे लगाई जाती है) बना लीं ॥ २३ ॥

भगवान् ज्ञातसर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा ॥
कर्तुं नैच्छद्विप्रशापं कालरूप्यन्वमोदत ॥ २४ ॥

सर्वज्ञ भगवान् सब जानते थे और विप्रशापको मेटनेमें समर्थ थे, तथापि उन्होने वैसा नहीं किया। क्योंकि यह सब तो उन्ही कालरूप कृष्णकी इच्छा या प्रेरणासे हुआ था ॥ २४ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय।

वसुदेव और नारदका सम्वाद।

श्रीशुक उवाच–गोविन्दभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह ॥
अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! हे कुरुकुलतिलक! नारद मुनि कृष्णचन्द्रकी उपासनाकी लालसासे प्रायः गोविन्दके बाहुबलसे सुरक्षित द्वारकाधाममें रहा करते थे ॥ १ ॥ सो ठीक ही है, जिसको सर्वदा और सर्वत्र मृत्युका भय है, ऐसा कौन इन्द्रियसम्पन्न अर्थात् देहधारी होगा जो विवेकी (समझदार) होकर भी हरिके अकुतोभय चरणकमलोंको न भजेगा? बड़े २ ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवता भी उन चरणोंकी उपासना करते हैं ॥ २ ॥ एक बार देवर्षि नारद वसुदेवके घर गये और पूजनके उपरान्त सुखपूर्वक आसन पर बैठे। तब वसुदेवजीने प्रणाम किया और कहा कि "हे भगवन्! जैसे पिता, माताका आगमन सन्तानके लिये सुख देनेवाला होता है अथवा भगवद्भक्त महात्मोंका आगमन दीन दुःखी जनोंके लिये कल्याणकारी होता है वैसेही आपका आगमन सब देहधारियोंके लिये मङ्गलकारी है; क्योंकि आप साक्षात् हरिकी मूर्ति अर्थात् कला हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ ब्रह्मन्! देवतोंके कामोंसे प्राणियोंको सुख और दुःख, दोनो मिलते हैं, परन्तु आप ऐसे अच्युतमय साधुओंके आचरणोंसे सर्वदा सुखही मिलता है ॥ ५ ॥ देवता लोग शरीरकी छायाके तुल्य कर्मानुसार फल देनेवाले हैं, अतएव जो जिस भावसे जिस प्रकार देवतोंको भजता है वे भी उसको वैसा ही फल देते

है । परन्तु दीनों पर दया करनेवाले साधु लोग निरपेक्ष-भावसे सब लोगोंका कल्याण करते हैं; चाहे कोई उनको भजे या न भजे ॥ ६ ॥ इस लिये यद्यपि आपके आगमनसे ही हम कृतार्थ होगये, तथापि हे ब्रह्मन् ! जिनको श्रद्धापूर्वक सुननेसे मनुष्य सब प्रकारके भयसे मुक्त होकर शान्ति पाता है उन भगवत्सम्बन्धी धर्मोंको हम आपके मुखसे सुनना चाहते हैं ॥ ७ ॥ मैंने पूर्वजन्ममें मोक्ष पानेके लिये नहीं, बरन् पुत्रके लिये मुक्तिदायक अनन्त हरिकी आराधना की ! अहो ! मुझे अवश्य ही ईश्वरकी मायाने मोहित कर लियाथा ॥ ८ ॥ हे सुव्रत ! अब आप कृपापूर्वक ऐसी शिक्षा दीजिये जिससे मैं इस अनेक प्रकारके दुःख और भयसे भरे हुए संसारसे सहजमें मुक्त होसकूँ" ॥९॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन् ! बुद्धिमान् वसुदेवने इस प्रकारका प्रश्न करके गुण वर्णनके लिये हरिका स्मरण कराया, अतएव अत्यन्त प्रसन्न होकर नारदजी बोले कि हे यादवश्रेष्ठ ! जो तुम जगत्को पवित्र करनेवाले भगवत्सम्बन्धी धर्म्म पूछ रहे हो सो यह तुम्हारा उद्योग या विचार बहुत ही उत्तम और प्रशंसनीय है ॥ १० ॥ ११ ॥ हे वसुदेव ! भागवत धर्म्मका श्रवण, पठन, चिन्तन, आदर और अनुमोदन करनेसे देवद्रोही और विश्वविरोधी भी शीघ्र ही पवित्र होजाते हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥१२॥ इस समय तुमने, जिनका श्रवण और कीर्तन करनेसे पुण्य होता है उन्हीं परम कल्याणकारी भगवान् नारायणका मुझे स्मरण कराया है । अतएव तुमने अपना ही नहीं, बरन् मेरा भी परम उपकार किया॥१३॥ मैं तुमको एक प्राचीन और प्रसिद्ध इतिहास सुनाता हूँ । उसमें ऋषभदेवके पुत्र महायोगी ऋषियोंके साथ महात्मा जनक राजाका सम्वाद है, जिसमें भागवत धर्मोंका पूर्ण रूपसे निर्णय हुआ है ॥१४॥ स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत नाम पुत्र हुए, प्रियव्रतके अग्नीध्र और अग्नीध्रके नाभि राजा हुए । नाभिके परम प्रसिद्ध ऋषभ देवजी उत्पन्न हुए । कहा जाता है कि मोक्षधर्मका उपदेश देनेके लिये साक्षात् वासुदेव हरिके अंशसे ऋषभ देवका अवतार हुआथा । परमहंस ऋषभ देवके सौ पुत्र हुए । वे सब ब्रह्मविद्याके पूर्ण ज्ञाता हुए । सबमें बड़े भरतजी नारायणके परम भक्तथे, यह अद्भुत भूखण्ड उन्हीके नामसे भारतवर्ष कहकर प्रसिद्ध हुआ है । सब प्रकारके ऐश्वर्य भोगनेके उपरान्त इस पृथ्वीमण्डलके शासनको छोड़ हरिकी आराधना करनेके लिये राजा भरत तपोवनको गये और क्रमशः तीन जन्म तक ईश्वरभजन कर परम पदको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे वसुदेव ! ऋषभजीके उक्त सौ पुत्रोंमें नव तो इस भारतवर्षके अन्तर्गत ब्रह्मावर्त्तआदि नव द्वीपों अर्थात् भूखण्डोंके राजा हुए और इक्यासी कर्म्मतन्त्रके प्रणेता (अपने कर्मोंसे) ब्राह्मण होगये ॥ १९ ॥ शेष नव पुत्र परमार्थका निरूपण करनेवाले, आत्मविद्याके अभ्यासमें श्रम करनेवाले, दिगम्बर, आत्मविद्याविचक्षण महाभाग मुनि अर्थात् परमहंस हुए ॥ २० ॥ उनके

नाम ये हैं—कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रविड, चमस और करभाजन ॥ २१ ॥ ये मुनिगण समग्र स्थूल और सूक्ष्म चराचर जगत्को अपनेसे अभिन्न जानकर, अतएव ब्रह्ममय देखतेहुए, पृथ्वीमें विचरते रहते हैं ॥ २२ ॥ इनकी अभीष्टगति अप्रतिहत है, अर्थात् चाहे जहाँ जा सक्ते हैं। अतएव ये जीवन्मुक्त मुनि अपनी इच्छाके अनुसार देवता, सिद्ध, साध्य, गन्धर्व्व, यक्ष, मनुष्य, किन्नर, नाग आदिके लोकोंमें और मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, द्विज, गऊ आदिके भवनोंमें घूमते रहते हैं ॥ २३ ॥ एक समय भारतवर्षमें ऋषिलोग महात्मा राजा जनकको विधिपूर्वक यज्ञ करा रहे थे, ये मुनिगण इच्छानुसार विचरते हुए वहाँ पहुँचे ॥ २४ ॥ हे राजन् ! इन सूर्य्यके समान तेजस्वी और महाभगवद्भक्त मुनियोंको देखतेही यजमान, मूर्तिमान् अग्नि और सब ब्राह्मण उठ खड़े हुए ॥ २५ ॥ राजा जनकने उन मुनियोंको नारायणपरायण जानकर अत्यन्त आनन्दसे आदरसहित विधिपूर्वक पूजन किया और वे सुखपूर्वक अपने २ आसन पर विराजमान हुए ॥ २६ ॥ तब राजा जनकने अत्यन्त प्रसन्न और विनयसे नम्र होकर ब्रह्माके पुत्र सनकादिकोंके समान अपनी प्रभासे प्रकाशमान उन नव ऋषियोंसे कहा—“मैं जानता हूँ कि आप लोग साक्षात् भगवान् मधुसूदनके पार्षद हैं। विष्णुके जन लोकोंको पवित्र करते हुए सर्वत्र घूमते रहते हैं ॥२७॥ ॥ २८ ॥ यह मनुष्यदेह अत्यन्त दुर्लभ और क्षणभंगुर है, इस शरीरमें विष्णुके प्रिय भक्तोंका दर्शन होना मेरी समझमें और भी दुर्लभ है ॥ २९ ॥ अतएव हे निष्पाप महात्मागण ! मैं आपसे सबसे बढ़कर कुशलकर्म पूछता हूँ; इस संसारमें, आधे क्षणके लिये भी, साधुसंग मिलना मनुष्योंके लिये निधिके समान है ॥ ३० ॥ हरि भगवान् जिस धर्म्मसे प्रसन्न होकर शरणागत व्यक्तिको आत्मसमर्पण करदेते हैं वही भागवत धर्म्म, यदि हमारे सुनने योग्य हो, तो आपलोग कृपा करके कहिये ॥ ३१ ॥ नारदजी कहते हैं। हे वसुदेव ! इसप्रकार राजाजनकके पूछने पर महामहात्मा मुनिगण पहले राजाकी बड़ाई कर फिर सदस्य और ऋत्विक्गणके आगे इस प्रकार उनसे कहने लगे ॥ ३२ ॥ कविने कहा—“हे राजन् ! मेरी समझमें इस संसारके बीच नित्य अच्युत हरिके चरणकमलोंकी उपासना करना ही अकुतोभय और परमार्थ है; क्योंकि असत् देहादिको आत्मा माननेके कारण जिनके चित्त उद्विग्न होरहे हैं उनका वह मृत्युभय इसीसे निवृत्त होजाता है ॥ ३३ ॥ राजन् ! भगवान्ने अज्ञ पुरुषोंके लिये भी अनायास ही आत्मतत्त्वके जाननेके जो उपाय अपने मुखसे कहे हैं वेही भागवत धर्म्म हैं ॥ ३४ ॥ उन भागवत धर्म्मोंमें प्रवृत्त होने पर किसी प्रकारके विघ्नका खटका नहीं होता। इस सीधे भागवतधर्म्म-मार्गमें आँख बन्दकर (अर्थात् अज्ञानावृत होने पर भी) मनुष्य दौड़ता हुआ जासक्ता है, कहीं पर पैर न फिसलेगा; गिरनेका खटका ही नहीं है ॥ ३५ ॥ इस मार्गमें चलनेवाले मनुष्यको

चाहिये कि मन, वाणी, काया, सम्पूर्ण इन्द्रिय, बुद्धि और अहंकारके द्वारा अनुगत स्वभावसे जीव जो २ कर्म करता है उन सबको परमेश्वर नारायणको अर्पण करता रहे ॥ ३६ ॥ भेदभावमयी मायासे ही भयकी उत्पत्ति है । जो लोग ईश्वरसे विमुख हैं वे ईश्वरकी मायामें मोहित रहते हैं, अतएव उनके हृदयमें भगवान्के रूपकी स्फूर्ति नहीं होती; जिससे देह को आत्मा माननेमें बुद्धि भ्रष्ट होजाती है और भयदायक भेदभाव उत्पन्न होता है । इस कारण पण्डितको चाहिये कि ईश्वरको ही गुरु, इष्टदेव और आत्मा मानकर दृढ़ व अनन्य भक्तिसे भजे ॥ ३७ ॥ द्वैतप्रपञ्च (भेद भावना) वास्तवमें असत् है, (उसका) ध्यान करनेवाले पुरुषका मन ही, मनोरथसे स्वप्नके सदृश, उसका प्रकाशक है । अतएव पण्डितको चाहिये कि पहले उस संकल्प-विकल्परूप कर्म्मवासनामय मनका दमन करके ईश्वरका भजन करे । मन दमन करलेने पर मनुष्य निर्भय होजाता है ॥ ३८ ॥ चक्रपाणि विष्णुके मङ्गलमय जन्म और कर्म्म, जो लोकसमाजमें गाये जाते हैं, उनको और उनके द्वारा रक्खे गये हरिके नामोंको, लज्जाहीन हो, और सबका संग छोड़, गाताहुआ स्वच्छन्दतासे घूमता रहे ॥३९॥ जो लोग ऐसे हैं वे जब अपने परम प्रिय हरिके गुण और नामोंका कीर्तन करते हैं तब बढ़े हुए प्रेमके रसमें उनका हृदय मग्न होजाता है । वे विवश होकर अर्थात् इस जगत्को भूलकर उन्मत्तोंकी भाँति कभी उच्च स्वरसे हँसते हैं, कभी रोने लगते हैं, कभी अत्यन्त उच्च स्वरसे हरिके नाम लेते हैं, कभी गाते हैं, और कभी नाचने लगते हैं ॥ ४० ॥ वे आकाश, जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, ज्योतिश्चक्र, चराचर प्राणी, दशो दिशा, वृक्ष आदिक, नदियाँ और समुद्र, यहाँतक कि सम्पूर्ण प्राणिमात्र, सबको विराट् पुरुष हरिका शरीर मानकर प्रणाम करते हैं; वे हरिसे भिन्न कुछ भी नहीं देखते ॥४१॥ जैसे भोजन करनेवाले पुरुषके हरेक कौर खाने पर एकसाथ ही सुख मिलता है, पेट भरता है और भूख मिटती है; वैसेही प्रत्येक पलमें हरिकीर्त्तनसे भक्तके भक्ति बढ़ती है, हृदयमें प्रेमपात्र भगवान्के रूपका उदय होता है और अन्य वस्तुओंमें विरक्ति होती है ॥ ४२ ॥ राजन् ! जो लोग इस प्रकार अनुवृत्तिपूर्वक हरिके चरणोंकी सेवा करते रहते हैं उनके हृदयमें भक्ति, विरक्ति और भगवान्के रूपकी स्फूर्ति होती है, और वे भागवत पुरुष उसके उपरान्त साक्षात् परम शान्तिको प्राप्त होते हैं" ॥ ४३ ॥ राजा जनकने कहा—अब आप लोग कृपा करके यह कहिये कि किस मनुष्यको भागवत कहना चाहिये ? और उसके धर्म्म, स्वभाव, आचरण, और उक्ति बताइये । तथा जिन चिन्होंसे वह भगवान्को प्रिय होताहै उन्हे कहिये ॥४४॥ हरि नामक मुनिने कहा—"जो कोई अपनेमें भगवान्की भावना रखकर सब प्राणियोंमें अपनेको और अपने भगवत्स्वरूप आत्मामें सब प्राणियोंको देखता है, वही उत्तम भागवत भक्त है ॥ ४५ ॥ और जो कोई ईश्वरसे प्रेम, ईश्वरके जनोंसे मित्रता, अज्ञानी जनों पर कृपा और द्वेप करनेवालोंके

प्रति उपेक्षा रखता है वह (भेदभावके रहनेसे) मध्यम है ॥ ४६ ॥ और जो कोई प्रतिमामें ही श्रद्धापूर्वक हरिकी पूजा- उपासना करता है, भगवद्भक्त या अन्य किसी वस्तुमें हरिकी भावना और आराधना नहीं करता, वह साधारण है ॥ ४७ ॥ जो कोई वासुदेवमें मन लगाकर इन्द्रियोंके द्वारा विषयभोग करते रहकर भी इस समग्र विश्वको विष्णुकी ही माया मानता हुआ किसीसे द्वेष नहीं रखता और न कोई कांक्षा करता है वही उत्तम भागवत है ॥ ४८ ॥ जो कोई हरिके स्मरणमें मग्न रहकर शरीर, प्राण, मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके क्रमशः सांसारिक धर्म्म जन्म–मरण, भूख, भय, तृष्णा और काम(भावों या धर्म्मों)से मोहित नहीं होता वही श्रेष्ठ भागवत भक्त है ॥ ४९ ॥ जिसके चित्तमें कर्मबीजरूप कामना नहीं उत्पन्न होती और जिसका एकमात्र अवलम्ब वासुदेवही हैं वही श्रेष्ठ भागवत है ॥ ५० ॥ जन्म, कर्म, वर्ण, आश्रम और जातिसे जिसको शरीरमें अहंभाव न हो वही हरिको प्रिय है ॥ ५१ ॥ जिसके हृदयमें धन और देहके लिये अपने परायेका भेदभाव न हो वह सब प्राणियोंको एक दृष्टिसे देखनेवाला और शान्त पुरुष ही श्रेष्ठ भागवत है ॥ ५२ ॥ ब्रह्माआदि देवगण जिन हरिचरणोंको नित्यप्रति ध्यान-पूर्वक खोजकर भी नहीं पाते उन्ही को सर्वोत्तम सारतत्त्व समझकर जो कोई त्रिभुवनका साम्राज्यविभव भी मिलने पर आधे लव(बहुत ही सूक्ष्म समय) और आधे पलके लिये भी नहीं विचलित होता अर्थात् हरिचरणसेवाको नहीं छोड़ता वही श्रेष्ठ भक्त है ॥५३॥ जैसे चन्द्रमाका उदय होनेपर सूर्य्यका ताप अपने प्रभावको नहीं फैला सक्ता वैसेही भगवान्‌के परमपराक्रमी चरणोंकी अङ्गुलियोंके नखमणियोंकी शीतलकान्तिसे सेवकोंके हृदयका सब ताप मिट जाता है और वह फिर अपना अधिकार नहीं फैलासक्ता ॥ ५४ ॥

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ॥
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥५५॥

विवश अवस्थामें अचानक जिनका पवित्र नाम मुखसे निकलनेसे सब पाप नष्ट होजातेहैं वही हरि प्रेमपाशमें बँधकर जिसके हृदयमें निरन्तर विराजते हैं वही श्रेष्ठ भागवत भक्त है ॥ ५५ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय ।

जनकके अन्य प्रश्नोंका उत्तर ।

राजोवाच-परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम् ॥
मायां वेदितुमिच्छामो भगवन्तो ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥

राजा जनकने कहा कि "हे ऋषिवरो ! परम पुरुष परमेश्वरकी माया बड़े २ मायावी लोगोंको भी मोहित करनेवाली है, मैं उसी माया को जानना चाहता हूँ । आप लोग कृपापूर्वक उसका वर्णन कीजिये । हे परमऐश्वर्य्यसम्पन्न महर्षियो ! हम मनुष्य संसारतापसे अत्यन्त तपरहे हैं; उसी तापकी एकमात्र औषध जो सुधामयी हरिकथा है उससे सुशोभित आपके मधुर वचन सुननेसे मेरा जी नहीं भरता" ॥ ॥ १ ॥ २ ॥ तब अन्तरिक्ष नामक मुनिने कहा कि "हे राजन् ! हे महाबाहो ! सर्वभूतमय सर्वव्यापक आदिपुरुषने अपने ही अंश जो सम्पूर्ण जीव हैं उनके विषयभोग और मुक्तिके लिये निजनिर्मित महाभूतोंसे (पञ्चतत्त्वोंसे) इन उत्कृष्ट और निकृष्ट प्राणियोंकी (अर्थात् शरीरोंकी) सृष्टि की है ॥ ३ ॥ इस प्रकार अपनेही द्वारा उत्पन्न किये गये पञ्चतत्त्वोंसे रचित सब प्राणियोंमें अन्तर्यामी-रूपसे प्रवेश करके, वह ईश्वर, मन रूपसे एक और इन्द्रियसमूह रूपसे अपने दश विभाग करके सब विषयोंका भोग करता है ॥ ४ ॥ वही (जीवरूप) प्रभु अपने ही द्वारा परिचालित गुणोंके द्वारा सब विषयोंका भोग करते हुए निजसृष्ट शरीरको आत्मा मानकर इसीमें आसक्त होता है ॥ ५ ॥ देहधारी जीव, सब इन्द्रियोंके द्वारा वासनाघटित कर्म्म करनेके कारण दुःखमय कर्म्मफल भोगताहुआ इस संसारमें एक योनिसे दूसरी योनिमें घूमता रहता है ॥ ६ ॥ यह पुरुष (जीव) अनेक अमङ्गलोंसे परिपूर्ण अर्थात् कष्टकारिणी कर्म्मगतियोंको पाकर अवशभावसे प्रलयकालपर्य्यन्त जन्म और मृत्युके दुःखोंको भोगता रहता है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! जब उपादानरूप पञ्चतत्वोंके नाशका समय निकट आजाता है तब अनादि और अनन्त 'काल', स्थूल-सूक्ष्मरूप कार्य्यको, अव्यक्त जो कारण है उसकी ओर (लीन करनेके लिये) खींचता है ॥ ८ ॥ महाराज ! इस प्रकार जब प्रलय होनेवाला होगा तब पहले पृथ्वी पर सौ वर्ष तक अत्यन्त भयानक अनावृष्टि होगी और प्रचण्ड सूर्य्य अपने तेजको अपरिमित करके अत्यन्त तापपूर्ण किरणोंसे तीनो लोकोंको तपावेंगे ॥ ९ ॥ उस समय पाताल-तलमें अवस्थित अनन्त शेषनागके मुखसे आग निकलने लगेगी और क्रमशः चलरही प्रचण्ड आँधीसे ऊपरको बढ़कर चारो ओर फैलेगी; जिससे सातो पातालों सहित ये तीनो लोक भस्म हो जावँगे ॥ १० ॥ फिर संवर्त्तक नाम प्रलयकालके मेघ हाथीकी सूँढके समान मोटी धाराओंसे सौ वर्ष तक निरन्तर पानीकी वर्षा करेंगे और यह ब्रह्माण्डरूप स्थूल विराट् शरीर

जलमें लीन होजायगा ॥ ११ ॥ तब उपाधि लय होनेसे वैराज (विराट् शरीरका अधिष्ठाता) पुरुष विना ईंधनकी आगके समान सूक्ष्म कारण 'अव्यक्त'में लीन हो जायगा ॥ १२ ॥ पृथ्वीके गंधगुणको वायु हरलेगा, तब पृथ्वी जलरूप होजायगी और वह जल उसी वायुके द्वारा रसगुणके न रहनेसे तेजरूप होजायगा ॥ १३ ॥ तेज भी अन्धकारके प्रभावसे रूपगुण न रहने पर वायुमें, और वायु भी अवकाशके द्वारा स्पर्शगुण न रहनेसे अपने कारण आकाशमें लीन होजावेगा ॥ १४ ॥ तदनन्तर आकाश भी कालरूप ईश्वरके द्वारा अपने गुण शब्दका नाश होने पर तामस अहंकारमें लीन होजायगा । हे नरनाथ ! इन्द्रियों सहित बुद्धि राजस अहंकारमें, और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतों सहित मन सात्त्विक अहंकारमें एवं त्रिविध अहंकार अपने गुणों सहित महत्तत्त्वमें लीन होजावेगा । महत्तत्व भी अव्यक्त प्रकृतिमें लीन होजावेगा ॥ १५ ॥ महाराज, हमने आपके प्रश्नके अनुसार भगवान्की सृष्टि–स्थिति–संहार करनेवाली त्रिगुणमयी मायाका वर्णन करदिया । अब कहो, और क्या सुनना चाहतेहो ?'' ॥ १६ ॥ राजा जनकने कहा "हे महर्षिगण ! जो लोग अन्तःकरणको वशमें नहीं करसक्ते उनके लिये अत्यन्त दुस्तर इस ईश्वरकी मायासे स्थूल बुद्धिके लोग भी जिस उपायसे अनायास ही मुक्त होसकें उसी उपायको कृपापूर्वक वर्णन कीजिये'' ॥ १७ ॥ तब प्रबुद्ध नाम मुनिने कहा—"हे नरेश ! मनुष्य लोग स्त्री–पुरुष–सम्बन्धके बन्धनमें बँधकर दुःख दूर होने और सुख मिलनेके लिये कर्म्म करते हैं, परन्तु फल उल्टा होता है । देखो, नित्य पीड़ा पहुँचानेवाला और आत्माके अधःपतनका कारण होने पर भी कष्टसे मिलनेवाला धन एवं गृह, पुत्र, बन्धु और पशु आदि सभी चञ्चल अर्थात् अनित्य हैं । अतएव अनर्थकारी इन धन आदिको पा लेनेसे भी क्या प्रसन्नता प्राप्त होसक्ती है ? ॥ १८ ॥ १९ ॥ ऐसा जानकर समझना चाहिये कि ये सब स्वर्गादिक लोक भी कर्मनिर्मित हैं, अतएव कर्मोंके समान अनित्य हैं । इसके सिवा मण्डलाधिपति राजा लोगोंको जैसे समानके प्रति लागडाँट और प्रधान (श्रेष्ठ)के प्रति ईर्षा (डाह) होती है एवं ध्वंसकी शंकासे भय लगा रहता है वैसे ही सब (अज्ञानी) लोगोंको समानके प्रति स्पर्धा और श्रेष्ठके प्रति ईर्षा एवं ध्वंसकी शंकासे भय बना रहता है ॥ २० ॥ जिस पुरुषको अपने परम मंगलके जाननेकी इच्छा हो उसे चाहिये कि शब्दब्रह्म(वेद)के पारगामी और परब्रह्ममें मग्न शान्तशील (परमहंस) गुरुकी शरण ले ॥ २१ ॥ गुरुको ही आत्मा और इष्टदेव समझकर निष्कपट भावसे सेवा करे और परमात्मा एवं आत्मप्रद हरि जिनसे प्रसन्न होते हैं उन सब भागवत धर्मोंको सीखे ॥ २२ ॥ सब विषयोंसे मनको हटाकर एकाग्र होना, साधुओंका संग करना, यथोचित रूपसे सब प्राणियोंसे दया मित्रता और विनयका व्यवहार करना, शौचसे रहना, अपने धर्म्मको पालनकरना,

क्षमा, वृथा बातचीत न करना, स्वाध्याय, सरलताका व्यवहार, ब्रह्मचर्य्य, अहिंसाव्रत, सुख–दुःख आदि विपरीत धर्म्मोंको समान भावसे भोगना, सर्वत्र सब जीवोंमें ईश्वरको देखना और उनको अपनाही रूप जानना, एकान्तमें रहना, गृह आदिमें स्वत्वाभिमान न रखना, पवित्र वस्त्र पहिनना, जो कुछ मिले उसीमें सन्तोष करना, हरिचर्चापूर्ण शास्त्रोंमें श्रद्धा करना, अन्य शास्त्रोंकी निन्दा न करना, मन वाणी और कर्मोंका संयम, सत्य बोलना, शम और दमका अभ्यास करना, अद्भुत कर्म्म करनेवाले हरिके जन्म कर्म्म और गुणोंका कीर्त्तन, श्रवण और ध्यान करना, हरिकी प्रसन्नताके लियेही सब कर्म्म करना, योग दान तप जप आत्माको प्रसन्न करनेवाले सदाचार एवं स्त्री, गृह, पुत्र और शरीरको भी परमेश्वरके अर्पण करदेना—क्रमशः इन सब बातोंकी शिक्षा, गुरुके निकट रहकर, प्राप्त करनी चाहिये ॥ २३–२८ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् ही जिनके आत्मा और नाथ हैं उन मनुष्योंसे मित्रता, स्थावर और जङ्गम जीव एवं मनुष्य, विशेष कर साधुजन, उनमें भी भगवद्भक्त जनोंकी पूजा, कहने और सुनने वालोंको पवित्र करनेवाले भगवान्के यशका कीर्त्तन, परस्पर प्रेम, परस्पर तुष्टि, और परस्पर सब देहधारियोंके आत्माके दुःखकी निवृत्ति जिससे हो, सो सब सीखे ॥२९॥३०॥ पाप-पुंज-पावक हरिका स्वयं स्मरण करे और औरोंको भी स्मरण करावे एवं उस समय साधनस्वरूप भक्तिसे उत्पन्न प्रेमभक्तिसे आनन्दित हो; तब शरीरमें रोमाञ्च होगा ॥ ३१ ॥ अच्युतकी चिन्तामें तन्मय होकर कभी रोवे, कभी हँसे, कभी नाचे, कभी गावे और कभी आनन्दपूर्वक अलौकिक (उन्मत्तोंके ऐसे) वचन कहने लगे एवं कभी हरिकी लीलाओंका अभिनय अर्थात् अनुशीलन करे । इस प्रकार परमेश्वरको पाकर परम सुखसे चुपचाप उसीमें मग्न होरहे ॥ ३२ ॥ हे महात्मा जनक ! इसप्रकार पूर्वोक्त भागवत धर्मोंको सीखते २, उनसे उत्पन्न भक्तिसे नारायणपरायण होकर, स्थूलबुद्धि मनुष्य भी अनायास ही बलपूर्वक इस दुस्तर मायासे मुक्त हो सक्ता है" ॥ ३३ ॥ राजानिमि (जनक) ने कहा–"हे ऋषिगण ! आप लोग ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, अतएव अब यह बतलाइये कि नारायण नामक परब्रह्म परमात्मामें किस उपायसे किस प्रकार निष्ठा होती है ?" ॥ ३४ ॥ पिप्पलायनने कहा– " हे नृप, जो इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और संहारका कारण हैं, परन्तु स्वयं कारणशून्य हैं; जो स्वप्न, जागरण और सुषुप्ति संज्ञक आन्तरिक दशाओंमें एवं समाधि आदि बाह्य दशाओंमें सत् रूपसे वर्त्तमान हैं; देह, इन्द्रिय, प्राण और मन आदि जिनसे सचेत होकर अपने २ कार्य्यमें प्रवृत्त होते हैं; वही परमतत्व नारायण हैं ॥ ३५ ॥ जैसे चिनगारियाँ अग्निको प्रकाशित नहीं करसक्तीं, या जला नहीं सक्तीं, वैसेही मन, वाक्य, चक्षु, बुद्धि, प्राण और सब इन्द्रियाँ उनके ग्रहण में असमर्थ हैं, अर्थात् वहाँ तक पहुँच न होनेके कारण

निरूपण नहीं करसक्तीं। शब्द भी (वेद भी) अपने मूल अर्थात् प्रमाण–उस सत् ईश्वरका साक्षात् निरूपण नहीं करसक्ता, केवल अपने अर्थसे उसके अस्तित्वको प्रमाणित करता है। क्योंकि वह ब्रह्म, जिसका यह बोध कराता है, उस असत्का निषेध अथवा अन्तिम अवधि है। उस ब्रह्मके विना असत्के निषेधकी सिद्धि नहीं होसक्ती, क्योंकि सब वस्तुओंका निषेध ससीम है, परन्तु ब्रह्म असीम है (कहनेका तात्पर्य्य यह है कि वेद भी "यह वस्तु ब्रह्म नहीं है, यह वस्तु ब्रह्म नहीं है" यों कहकर उसी–वाणी मनसे अतीत ब्रह्मको परम सीमा बताताहुआ उसका प्रतिपादन करता है, परन्तु साक्षात् निरूपण नहीं कर सक्ता कि 'यह ब्रह्म है') ॥ ३६ ॥ सब कार्य्य और कारण उसी ब्रह्मरूपमें प्रकाशित होते हैं, क्योंकि विविधशक्तिशाली ब्रह्म ही इन दोनोका कारण है। सृष्टिके पहले जो एकमात्र अवशिष्ट अचिन्त्य ब्रह्म 'प्रधान' नामसे कथित होता है वही सत्त्व, रज, तम–इन तीन गुणोंकी सृष्टि करके त्रिगुणात्मक होता है, और फिर क्रियाशक्तिके कारण 'सूत्र' और ज्ञानशक्तिके कारण 'महत्तत्त्व' नामसे प्रसिद्ध होता है। उसीको फिर अहंभावनामय 'अहंकार' कहते हैं। अन्तमें वही इन्द्रियाधिष्ठाता देवता, इन्द्रियसमूह, इन्द्रियविषयसमूह और विषयसुखके रूपसे प्रकट देखपड़ता है। इस कारण वही महाशक्तिशाली ब्रह्म, कार्य्य और कारण–दोनोका मूलकारण है ॥ ३७ ॥ वह परमात्मा जन्म मरण, और क्षय व वृद्धिसे रहित हैं, क्योंकि जन्म मरण आदिसे युक्त सब वस्तुओंका साक्षी है एवं सर्वत्र निरन्तर अविनाशी रूपसे विद्यमान और ज्ञानमात्र हैं। जैसे एक ही प्राण, एक होने पर भी इन्द्रियबलसे विकल्पको प्राप्त हैं अर्थात् अनेक–कल्पनाविशिष्ट है वैसे ही वह ज्ञानरूप निर्विकार साक्षीरूप ब्रह्म एकमात्र 'सत्' होने पर भी अज्ञानसे 'विविध' कल्पित है ॥ ३८ ॥ जैसे प्राण, विशेष २ रूपोंसे अण्डज, जरायुज, स्वेदज और उद्भिज योनियोंमें जीवका अनुसरण करता हुआ निर्विकार ही रहता है वैसे ही आत्मा भी साक्षीरूप निर्विकार हैं। और भी देखो, जब सुषुप्त अवस्थामें इन्द्रियगणसहित अहंभाव लीन होजाता है और स्थूल-उपाधिका कारण आश्रयरूप लिंगशरीर भी नहीं रहजाता तब निर्विकार साक्षी आत्मा ही अवशिष्ट रहता है, इसीसे उसका निर्विकार (साक्षी) होना सिद्ध है। यदि कहो कि 'अहंकार पर्य्यन्तका लय हो जानेपर तो शून्य ही रह जाता है, अतएव तब साक्षी आत्माके रहनेका क्या प्रमाण है ?' तो उसका उत्तर यह है कि जगने पर जो मनुष्यको स्वप्नमें देखे हुए विषयोंका स्मरण रहता है वही उस आत्माकी साक्षीरूपसे अवस्थितिका प्रमाण है* (अर्थात् उस समय भी देखनेवाले अर्थात् साक्षी आत्माकी दृष्टि अर्थात् ज्ञानका लोप नहीं होता) ॥ ३९ ॥ तदनन्तर पुरुष, जब सब विषयोंकी वासना छोड़कर केवल हरिचर-

* श्रुतिभी कहती है–यद्द्वैतं न पश्यति, पश्यन्वैतं न पश्यति ।

णोंके पानेकी इच्छासे बढ़ीहुई विशुद्ध भक्तिके द्वारा, गुणकर्मसम्भूत चित्तके सम्पूर्ण मलोंको नष्ट करलेता है तब निर्मल नेत्रोंसे जैसे सूर्य्यमण्डल स्पष्ट देख पड़ता है वैसेही विशुद्ध चित्तसे साक्षात् आत्मतत्त्वको देख पाता है" ॥४०॥ राजा निमिने कहा–"हे महर्षिगण! पुरुष, जिसके द्वारा विशुद्ध होकर, इस लोकमें शीघ्रही सब कर्मोंको छोड़कर उस निवृत्तिसे उत्पन्न परम ज्ञानको पाता है वह 'कर्मयोग' भी कृपाकरके कहिये। इसके सिवा मैंने पहले अपने पिता इक्ष्वाकुके सामने ब्रह्माके पुत्र सर्वज्ञ सनकादिकोंसे यही विषय पूछा था, परन्तु उन्होने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इसका भी कारण बतलाइये" ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तब आविर्होत्र नाम मुनिने कहा–" हे नरेश! कर्म, अकर्म और विकर्म (अर्थात् विहित कर्मका न करना)–ये सब वेदवाक्य हैं, पुरुषवाक्य नहीं हैं, वेद भी ईश्वरसंभूत है, इस लिये विवेकी पुरुष उसके कर्म-काण्डमें मोहित होते हैं (तात्पर्य्य यह है कि पुरुषवाक्यमें तो वक्ताके अभिप्रायसे उसका अर्थ जानाजासक्ता है, किन्तु जो अपौरुषेय है उसमें केवल वाक्यके पूर्वापर-से ही तात्पर्य निकालना पड़ता है और यह दुष्कर है–इसी कारण सनकादिकोंने तुमसे उस समय कुछ नहीं कहाथा) ॥ ४३ ॥ वेदका तात्पर्य दुर्ज्ञेय है, क्योंकि उसमें सब परोक्षवाद है (यथार्थ तात्पर्य छिपानेके लिये अन्य प्रकारसे वक्तव्य विषयका वर्णन करना परोक्षवाद है)। जैसे बालकको अनेक प्रकारकी प्रिय बातोंसे बहलाकर कड़ुई औषध पिलाई जाती है वैसे ही वेद भी बालकसदृश अज्ञा-नियोंको परोक्षवादसे स्वर्गादि फल दिखाकर कर्मोंसे मुक्तिके लिये यज्ञादिकर्म करनेका उपदेश करता है, अर्थात् प्रकटमें जो 'स्वर्गादि फल मिलेंगे' ऐसा कहकर वेद यज्ञादिकर्म करनेका उपदेश करता है उसका यथार्थ तात्पर्य कर्मकी निवृत्तिही है ॥ ४४ ॥ यदि कोई कहे कि 'कर्मत्याग ही यदि पुरुषार्थ है तो पहलेहीसे कर्मत्याग करना योग्य है,' तो ऐसा समझना भूल है, जब तक जितेन्द्रिय होकर कर्मत्यागका अधिकारी न हो ले तबतक वेदविहित कर्म न छोड़ने चाहिये। जो अजितेन्द्रिय अज्ञ व्यक्ति स्वयं वेदविहित कर्म नहीं करता वह कर्तव्य न करनेके कारण होनेवाले अधर्मसे वारंवार जन्म और मरणको प्राप्त होता है; इस प्रकार मृत्यु-पाशमें बँधा ही रहता है ॥ ४५ ॥ मनुष्यको चाहिये कि निर्लिप्त होकर ईश्वरार्पण करता हुआ वर्णाश्रमानुसार वेदविहित कर्म्मोंको करे, इसीसे नैष्कर्म्यसिद्धि मिलती है। यह स्वर्गादि लोकोंके मिलनेकी फलश्रुति केवल रुचि दिलानेके लिये है ॥ ४६ ॥ जो कोई जीवात्माके अहङ्काररूप बन्धनको शीघ्र काटनेकी अभिलाषा रखता हो उसे उचित है कि वेदोक्त विधिके अनुसार तन्त्रोक्त विधिसे केशवकी पूजा करे ॥ ४७ ॥ सेवासे गुरुकी अनुग्रह प्राप्तकर उसकी बताई हुई पूजाप्रणालीके अनुसार अपनी इच्छाके अनुरूप हरिमूर्तिकी कल्पना करके उसमें भक्तिपूर्वक महापुरुषकी पूजा करे ॥ ४८ ॥ शरीर और अन्तःकरणको शुद्ध करनेके उपरान्त

प्रतिमाके आगे बैठकर प्राणायाम और भूतशुद्धि आदिसे शरीरके भीतरी भागकी शुद्धि एवं रक्षा करे और फिर इस प्रकार प्रतिमामें हरिकी पूजा करे ॥ ४९ ॥ प्रतिमा आदिमें अथवा अपने हृदयमेंही, जो पूजनसामग्री मिल सके उससे पूजा करे । पूजासे पहले पुष्पआदिको, उनके जीवजन्तु निकालकर, पृथ्वीको बहारकर और छिड़ककर, अन्तःकरणको एकाग्रकर और प्रतिमाको जलसे धोकर पूजनके योग्य करे ॥५०॥ फिर पाद्य, अर्घ्यआदिके पात्रोंको यथास्थान रखकर हृदयमें चिन्तित हरिकी श्रीमूर्तिमें भावना करके अङ्गन्यास करन्यास आदि 'न्यास' करनेके उपरान्त मूलमन्त्रसे पूजाकरे ॥ ५१ ॥ पार्षदगण सहित साङ्गोपाङ्ग हरिमूर्त्तिको स्थापितकर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय जल, स्नान, वस्त्र, आभूषण, चन्दन आदि सुगन्ध, माला, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, और नैवेद्य आदिसे उन २ सामग्रियोंके चढ़ानेके मन्त्र पढ़ताहुआ पूजन करे । इस प्रकार विधिपूर्वक षोड़शोपचारसे हरिकी पूजा करनेके उपरान्त स्तुति, प्रदक्षिणा और प्रणाम करे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अपनेको तन्मय विचारता हुआ हरिकी मूर्त्तिका पूजन करे और फिर सत्कारपूर्वक निर्माल्यको मस्तकसे लगाकर उस पूजित मूर्तिको यथास्थान रख दे । इस प्रकार विसर्जन करनेके उपरान्त पूजाको समाप्त करे ॥ ५४ ॥

एवमग्न्यर्कतोयादावतिथौ हृदये च यः ॥
यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यते हि सः ॥ ५५ ॥

हे नरनाथ ! जो कोई इस प्रकार तन्त्रोक्त कर्म्मयोगके अनुसार, प्रतिमामें, अग्निमें, सूर्यमें, जलआदिमें अथवा अपने हृदयमें ही आत्मारूप ईश्वर हरिकी पूजा करता रहता है वह शीघ्र ही कर्म्मबन्धनसे मुक्त होजाताहै ॥ ५५ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय ।

नारायणके अवतारोंका वर्णन ।

राजोवाच—यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छन्दजन्मभिः ॥
चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥

राजा जनकने कहा । ब्रह्मर्षिगण! भगवान् हरिने पृथ्वीतल पर जिस २ अवतारमें जो २ कर्म्म किये हैं, कर रहे हैं और करेंगे, वे सब मुझसे कहिये ॥ १ ॥ द्रविड़ नाम मुनिने कहा "हे नरेश! जो व्यक्ति अनन्त हरिके सम्पूर्ण अनन्त कर्मोंकी गिनती करना चाहता है वह अत्यन्त अदूरदर्शी और बालकोंकी ऐसी बुद्धि

रखता है । बहुकालमें किसी प्रकार चाहे पृथ्वीके रजकण गिने भी जासक्के हों परन्तु सर्वशक्तिधाम भगवान्के गुण–कर्म्मोंकी गणना नहीं की जासक्ती ॥ २ ॥ अपने उत्पन्न किये पंचतत्त्वोंसे इस ब्रह्माण्डरूप विराट्शरीर पुरकी रचना करके अपने अंश चेतनरूप जीवात्माके द्वारा उसमें प्रवेश करनेसे आदिदेव नारायणको 'पुरुष' कहते हैं ॥ ३ ॥ यह त्रिभुवन स्थान उनका विराट् शरीर है । उनकी इन्द्रियोंसे देहधारियोंकी ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्म्मेन्द्रियाँ, उनके स्वरूप सत्त्वसे देहधारियोंका स्वयंसिद्ध ज्ञान और उनके प्राणसे देहधारियोंकी देहशक्ति, इन्द्रिय-शक्ति और क्रियाशक्तिकी उत्पत्ति हुई है । वही सत्त्व, रज, तमसे सृष्टि, स्थिति और प्रलय कार्य्योंके आदिकर्त्ता हैं ॥ ४ ॥ पहले उन्हींके रजोगुणसे सृष्टि कार्य्यके लिये ब्रह्मा और सतोगुणसे पालन कार्य्यके लिये यज्ञपति और द्विजधर्म्मकी मर्य्यादारूप विष्णु एवं तमोगुणसे संहार कार्य्यके लिये रुद्र उत्पन्न हुए हैं । जिनसे प्रजागणकी सृष्टि, पालन और संहार सर्वदा इसी प्रकार होता रहता है वही आदिपुरुष नारायण हैं ॥ ५ ॥ दक्ष प्रजापतिकी कन्या और धर्म्मकी पत्नी 'मूर्त्ति'के गर्भसे शान्तशील श्रेष्ठ ऋषि हरिके अंशावतार नर और नारायणने जन्म लिया । उन्होने कर्म्मत्यागरूप धर्म्मका उपदेश और स्वयं आचरण भी किया । वे इस समय भी बद्रिकाश्रममें विद्यमान हैं, प्रधान २ ऋषिगण उनके चरणकमलोंकी सेवा करते हुए ज्ञानका अभ्यास करते हैं ॥ ६ ॥ उनके उग्र तपको देख कर इन्द्रको शंका हुई । इन्द्रने विचारा कि 'ये तपोबलसे मेरा पद लेना चाहते हैं' । इस आशंकासे इन्द्रने उनके तपमें विघ्न करनेके लिये अप्सरा, वसन्त आदि अनुचरों सहित कामदेवको भेजा । उनकी महिमाके महत्त्वको न जाननेके कारण काम-देव अपने अनुचरों सहित बद्रिकाश्रमको गया और अप्सरागण, वसन्त एवं मन्द वायुकी सहायता लेकर कामिनीकटाक्षरूप बाणोंसे बेधता हुआ उन्हे विचलित करनेकी चेष्टा करने लगा ॥ ७ ॥ गर्वरहित, विस्मयशून्य और शान्तिमूर्त्ति आदिदेव नारायणने इन्द्रके अपराधको जान कर भी कोप नहीं किया और शापके भयसे काँपरहे कामदेव आदिकोंसे इस प्रकार हँस कर कहा कि–"हे शक्तिशाली मदन! हे वसन्तपवन! और हे सुरसुन्दरीवृन्द! डरो नहीं, हमारे आतिथ्य सत्कारको स्वीकृत करो। मेरे आतिथ्यका स्वीकार किये बिना इस आश्रमको शून्य न कर जाना" ॥ ८ ॥ हे राजन्! इस प्रकार कह कर अभय देनेवाले दयालु नारायणके आगे लज्जासे शिर झुका कर देवगण कहने लगे कि "हे विभो! आप मायासे अतीत, अतएव विकारविहीन हैं। आत्मामें रमनेवाले आत्मज्ञानी लोग आपके चरणकमलोंमें शिर झुकाते हैं। इस कारण इस प्रकार विचलित न होकर उलटे अपराधियों पर दया दिखाना आपके लिये कुछ विचित्र नहीं है ॥ ९ ॥ हे नाथ! जो लोग आपके चरणोंकी सेवामें तत्पर हैं उन्हे पराये उत्कर्षके न देख

सकने वाले ईर्षापरवश देवतोंके किये अनेक विघ्नोंका सामना करना पड़ता है, क्योंकि वे देवधाम—स्वर्गको नाँघ कर आपके परमपदको जाते हैं। और जो लोग आपसे विमुख हो, कर्म्मकाण्डमें ही लिप्त रह कर इन्द्रआदि देवतोंको भाग-बलि देनेवाले हैं उन्हे देवकृत विघ्नोंका सामना नहीं करना पड़ता। तथापि आप स्वयं जिनकी रक्षा करने वाले हैं वे भक्तजन लक्ष्यभ्रष्ट नहीं होते और सब विघ्न बाधाओंके शिर पर पैर रख कर आपतक पहुँच जाते हैं ॥१०॥ और जो लोग हमारे उपासक हैं उनमें तो कोई २ अपार सागरके समान भूख, प्यास, जाड़ा, गर्मी, वर्षा, वायुके कष्टोंको सह कर और रसास्वाद आदि विशेष २ इन्द्रियोंके विशेष २ भोगोंकी प्रवृत्तियोंको जीत कर भी, व्यर्थ क्रोध, जो गऊके पैरके गढ़ेके समान तुच्छ है, उसे न जीत सकनेसे बीचहीमें डूबजाते हैं और दुष्कर तपको छोड़ देते हैं, अर्थात् निष्फल कर देते हैं" ॥ ११ ॥ देवगणके इस प्रकार स्तुति करनेके उपरान्त विभु नारायणने कन्दर्प आदिका दर्प दूर करनेके लिये, सेवा करने वाली अद्भुतरूप-सम्पन्ना भली भाँति श्रृंगार किये अनेकानेक श्रेष्ठ सुन्दरी स्त्रियाँ, अपने आश्रममें, उनको दिखलाईं ॥ १२ ॥ साक्षात् लक्ष्मीके समान रूपवती रमणियोंको देख कर वे सब इन्द्रके अनुचर, बहुतही विस्मित हुए और उनके शरीरकी सुगन्धसे मोहित होगये। उन स्त्रियोंके रूपके महत्त्वको देख कर इन्द्रके अनुचरोंकी श्री (कान्ति) फीकी पड़ गई ॥ १३ ॥ तब देवतोंके देवता जो ब्रह्मादिक हैं उनके भी ईश्वर भगवान् नारायणने उन नम्रतापूर्वक खड़े हुए इन्द्रके अनुचरोंसे हँस कर कहा कि "इनमेंसे किसी एक अपने अनुरूप रूपवती स्त्रीको लेजाओ, वह स्वर्ग लोकका आभूषण होगी" ॥ १४ ॥ 'बहुत अच्छा' कह कर नारायणकी आज्ञाके अनुसार उन इन्द्रके अनुचरोंने अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशीको अपने आगे करलिया और प्रभुको प्रणाम करके स्वर्ग लोकको गये। स्वर्गमें जाकर प्रणाम करनेके उपरान्त उन्होने देवसभामें बैठेहुए अपने स्वामी इन्द्रके आगे आद्योपान्त सब वृत्तान्त सुनाया और नारायणके प्रभावका वर्णन किया। नारायण भगवान्‌के विचित्र योगबलकी महिमा सुन कर इन्द्रको विस्मय और (अपराधके ध्यानसे) भय हुआ ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे नरेश! इसके सिवा अच्युतने हंसरूपसे आत्मज्ञानका वर्णन किया है। दत्तात्रेय, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, हमारे पिता भगवान् ऋषभ देव—ये सब निष्काम धर्मका प्रचार करनेवाले परम हंस भगवान् विष्णुके ही अंशावतार हैं। जगत्‌के हितके लिये इन रूपोंसे भगवान् प्रकट हुए हैं। मधु दैत्यके मारने वाले हरिने हयग्रीव अवतार लेकर दानव द्वारा हरेगये वेदोंका उद्धार किया है ॥ १७ ॥ प्रलय कालमें मत्स्य अवतार लेकर मनु, पृथ्वी और समग्र औषधियोंको विपत्तिसे बचाया है। कच्छप अवतारमें अमृत-प्राप्तिके लिये समुद्र मथते समय नीचे चले जारहे

मन्दराचलको पीठ पर रख कर ऊपरको उभारा है। वाराह अवतारमें रसातलसे पृथ्वीको ऊपर लाते समय दितिके पुत्र हिरण्याक्षका वध किया है और (हरि अवतारमें) ग्राह द्वारा ग्रसे गए आर्त्त गजराजको संकटसे छुड़ाया है ॥ १८ ॥ वालखिल्य ऋषिगण एक समय कश्यप मुनिके लिये लकड़ियाँ लेने गयेथे सो बीचमें गऊके पैरके गढ़ेमें पड़ कर गोतेखाने लगे (क्योंकि वे अँगूठेकी पोरके बराबर ऊँचे हैं), उनकी यह दशा देख कर इन्द्रको हँसी आई। उस समय उद्धारके लिये स्तुति कर रहे उन ऋषियोंको भगवान्‌ने उवारा है। वृत्रासुरके वधसे लगी हुई ब्रह्महत्याके कष्टसे इन्द्रका उद्धार किया है। असुरभवनमें बन्दी भावसे बंद की गई अनाथ देव-नारियोंको विपत्तिसे छुड़ाया है और सज्जनोंको निर्भय करनेके लिये नृसिंह अवतार लेकर असुरेन्द्र हिरण्यकशिपुका वधकिया है ॥ १९ ॥ एवं सब मन्वन्तरोंमें विविध अवतार लेकर तीनो लोकोंकी रक्षा की है। देवासुरसंग्राममें प्रकट होकर देवतोंकी ओरसे दैत्यपतियोंका विनाश किया है। वामन अवतारमें बलिसे तीन पग पृथ्वी माँगनेके मिससे त्रिलोक-राज्य लेकर इन्द्रको दिया और देवतोंको सुखी किया है ॥२०॥ भृगुकुलमें, हैहय वंशको भस्म करनेके लिये पावकरूप परशुराम अवतार लेकर इक्कीस वार पृथ्वीको क्षत्रिय-शून्य कर दिया है! श्रीरामचन्द्ररूपसे प्रकट होकर समुद्रमें सेतु बाँधा और लंकासहित सपरिवार रावणको मारा है। जिन सीतापतिकी कीर्त्ति लोगोंके पापपुंज नष्ट करती हुई त्रिभुवनमें व्याप्त है; उन रामरूप हरिकी जयहो ॥ २१ ॥ वही अजन्मा श्रीहरि इस समय पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यादववंशमें उत्पन्न हुए हैं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन अद्भुत कर्म्मोंको करेंगे जिन्हें देवगण भी नहीं कर सक्ते। आगे बुद्ध अवतार लेकर यज्ञके अधिकारसे रहित शूद्रप्राय लोगोंको अहिंसावादसे मोहित करेंगे और फिर कलियुगके अन्तमें पिशाचतुल्य निष्ठुर कुकर्म्मी शूद्र पृथ्वीपतियोंको कल्की अवतार लेकर विनष्ट करेंगे ॥ २२ ॥

एवंविधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः ॥
भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज ॥ २३ ॥

हे महावाहो!, महायशस्वी विश्वनाथ हरिके ऐसेही ऐसे अनेकों अवतार और चरित्र हैं, जिनकी गणना नहीं होसक्ती। ये मुख्य २ अवतार और चरित्र कहेगये हैं ॥ २३ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय ।

भगवान्‌की भक्तिसे विमुख लोगोंकी गति और पूजाविधिका वर्णन ।

राजोवाच—भगवन्तं हरिं प्रायो न भजन्त्यात्मवित्तमाः ॥
तेषामशान्तकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनाम् ॥ १ ॥

राजाजनकने कहा—हे आत्मज्ञानियोमें श्रेष्ठ ऋषिगण ! प्रायः अनेक लोग ऐसे देखेजाते हैं जिनका चित्त वशमें नहीं है, विषयवासना शान्त नहीं हुई है और वे भगवान् हरिके भजनसे विमुख हैं। उन लोगोंकी अन्तमें क्या गति होती है ? ॥ १ ॥ चमस नाम मुनिने कहा—“हे नरवर ! भगवान् आदिपुरुषके मुखसे सतोगुण द्वारा ब्राह्मणवर्ण, भुजाओंसे सतोगुणमिलित रजोगुण द्वारा क्षत्रियवर्ण, ऊरुओंसे रजोगुणमिलित तमोगुण द्वारा वैश्यवर्ण, और पैरोंसे केवल तमोगुण द्वारा शूद्रवर्णकी उत्पत्ति हुई है ॥२॥ इन वर्णोंमें उत्पन्न जो कोई व्यक्ति अपनी उत्पत्तिके स्थान (परमपिता) आदिपुरुष ईश्वरको नहीं भजता अथवा अनादर करता है वह गुरुद्रोहके कारण स्थानसे भ्रष्ट होकर दुर्गतिको प्राप्त होता है, उसका अधःपतन अनिवार्य्य है ॥ ३ ॥ हाँ, जो लोग अज्ञतावश हरिकथा और हरिकीर्त्तनसे विमुख—दूरवर्ती हैं वे और मूढ शूद्रगण एवं स्त्रियाँ ये दयाके पात्र हैं—इन पर आप ऐसे ज्ञानी भगवद्भक्तोंको दया करनी चाहिये ॥४॥ बहुतसे ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य ऐसे हैं जो जन्म, यज्ञोपवीत आदि संस्कार और वेदाध्ययन आदिसे हरिचरणोंके भजनका उत्तम अधिकार पाकर भी वेदके अर्थवादयुक्त कर्म्मकाण्डमें मोहको प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ कर्तव्य कर्म्ममें अचतुर, घमण्डी, मूढ़ होने पर भी अपनेको पण्डित माननेवाले वे अज्ञजन वेदके श्रवणमधुर फलवादयुक्त वचनोंमें मोहित होकर “हम यज्ञ करके स्वर्ग लोकको जायँगे, वहाँ अप्सराओंके साथ विहार करेंगे” इत्यादि प्रिय वाक्य कहकर प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥ रजोगुणकी अधिकतासे उनके (जादू टोना, मारण, मोहन आदि) संकल्प घोर होते हैं । वे कामी, सर्पोंके समान क्रोधी, दंभपूर्ण, अभिमानी और पापी जन अच्युतके प्रियभक्त निष्काम लोगोंको हँसते हैं ॥ ७ ॥ वे स्त्रीसेवक व्यक्ति, मैथुन ही जिसका मुख्य सुख है, उस गृहस्थाश्रममें रहकर इस प्रकारके मनोरथ किया करते हैं कि ‘आज मैंने यह पाया है, कल इसके लिये चेष्टा करूँगा, यह मेरे है, अब इसके लिये चेष्टा करनी चाहिये’ । वे अन्नदान और दक्षिणासे रहित यजन करते हैं और उसमें केवल पेट पालनेके लिये या जिह्वाके स्वादके लिये बलिके बहाने पशुहिंसा करते हैं। हिंसाके महापातकका क्या घोरफल मिलेगा—इसका ध्यान नहीं करते ॥ ८ ॥ वे दुष्ट जन इस जन्ममें प्राप्त सम्पत्ति, ऐश्वर्य, कुल, कुटुम्ब, विद्या, बल, रूप, गुण, दान, कर्म्म आदिके मदसे अंधे होजाते हैं (अर्थात् उनकी बुद्धि भ्रष्ट

होजाती है) और ईश्वर तथा ईश्वर हरिके प्यारे भक्तोंका अनादर करतेहैं ॥ ९ ॥ वेद पुकार २ कर कह रहा है कि वह परमप्रिय इष्टदेव ईश्वर आत्मारूपसे सब देहधारियोंमें आकाशके समान अवस्थित है, तथापि वे मूढ़ व्यक्ति वेदके इस कथनको नहीं सुनते और सर्वत्र व्याप्त ईश्वरको नहीं देखते । इसका कारण यही है कि वे मनोरथ द्वारा कल्पित सांसारिक विषयोंकी वार्ताके कहने सुननेमें लिप्त रहते हैं ॥ १० ॥ जगत्में साधारणतः स्त्रीसंग, मद्यपान और मांसभोजनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति या रुचि देखी जाती है । इन कार्य्योंके लिये वेदमें विशेष विधि नहीं है कि ये काम करनेही चाहिये, इनका करना न करना हरेक व्यक्तिकी इच्छा और विवेकपर निर्भर है । हाँ, विशेष २ समय पर (विवाहमें स्त्रीसंगकी, यज्ञमें मांसभोजनकी और सुराग्राह नामक यज्ञकार्य्यमें मद्यपानकी) इन कार्य्योंके करनेकी वेदमें व्यवस्था अवश्य दी गई है, किन्तु उसका तात्पर्य यही है कि जिनकी इन कर्मोंमें रुचि है वे इन्हे नित्य न करके विशेष २ समय पर करलिया करें, जो लोग इन कर्मोंमें रुचि नहीं रखते उनके लिये उक्त व्यवस्था नहीं है । वस्तुतः इन सब कर्मोंसे विमुख होनेहीमें परम श्रेय है, और यही उक्त व्यवस्था देनेवाले वेद वाक्योंका इष्ट है ॥११॥ इस लोक और परलोकका ज्ञान, जिससे निर्व्वाणरूप परम शान्ति मिलती है उस परमज्ञानको उत्पन्न करनेवाला परमधर्म्म (ईश्वरकी आराधना, दीनोंकी सहायता आदि) ही धनका एकमात्र फल है । किन्तु हाय ! उपर कहे हुए क्रमसे परमात्मा तक पहुँचादेनेवाले उसी धनको पाकर, मूढ़ लोग देह गेह आदिके सुखमें (ऐश, आराम, वेश्यागमन, मद्यपान, मांसभोजन आदिमें) उसका दुरुपयोग करते हुए उलटे अपनी हानि करते हैं—अपने हाथों अर्थ(धन)को अनर्थकारी बनाते हैं, और शिरपर खड़े हुए किसी प्रकार न टलनेवाले मृत्युको नहीं देखते ! ! ॥ १२ ॥ वेदमें जहाँ स्त्रीसङ्ग, मद्यपान, मांसभोजनकी (विशेष २ समय पर) व्यवस्था दी गई है उसका भाव ही और है । सुराग्राह कर्ममें मदिराको सूँघ लेनाही यथेष्ट है—पीना नहीं उचित है । इसी प्रकार यज्ञमें देवताके उद्देशसे पशुवध करना विहित है—किन्तु हिंसा अभीष्ट नहीं है; उसके मांसको केवल जिह्वापर रखलेना चाहिये—पेटभर खानेकी अनुमति नहीं है । वैसेही इन्द्रियसुखके लिये रतिका विधान नहीं है, वरन् सन्तान उत्पन्न करना ही अभीष्ट है । किन्तु मनोरथवादी अजितेन्द्रिय विषयी लोग इस अपने विशुद्ध धर्मको नहीं समझते ॥ १३ ॥ वेदके इस यथार्थ तात्पर्य्यको न जाननेवाले, घमण्डी, अपने पण्डित होनेका अभिमान रखनेवाले जो असाधु लोग 'इन कर्मोंसे अवश्य हमारा मनोरथ पूर्ण होगा'—इस मिथ्याविश्वाससे निःशंक होकर पशु हिंसा करते हैं वे जब मरते हैं तब जिनकी उन्होने हत्या की है वे पशु वैसे ही उनके मांसको नोच २ कर खाते हैं ॥ १४ ॥ अवश्य नष्ट होनेवाले अपने देह और अवश्य छूटनेवाले धन-

परिवार आदिमें ममता बाँधकर जो लोग, दूसरोंके शरीरमें आत्मा रूपसे स्थित अपने आत्मा ईश्वर हरिसे द्रोह करते हैं वे आत्मद्रोही अवश्य नरकमें गिरते हैं ॥ १५ ॥ (जो लोग निपट अज्ञ हैं वे तत्त्वज्ञ साधुओंकी कृपासे तर जाते हैं और जो लोग तत्त्वज्ञ हैं उनके तरनेमें कोई सन्देह ही नहीं है, किन्तु पूर्वोक्त प्रकारके कर्ममूढ़ लोग, जो न अत्यन्त अज्ञ हैं और न पूर्ण तत्त्वज्ञ हैं, अवश्य ही लक्ष्यभ्रष्ट होकर नरकमें गिरते हैं । यथा- जो निपट मूढ नहीं हैं, त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम)-को ही मुख्य पुरुषार्थ या परमार्थ माने हुए हैं, मोक्षदायक कैवल्य (तत्त्व) ज्ञान तक नहीं पहुँचे हैं, अतएव शान्तिके सुखको नहीं पासके हैं, अथवा क्षणभरका भी जिसका भरोसा नहीं है उस शरीरको ही सब कुछ समझकर उसीके सुखकी कामनासे कर्मकाण्डमें निरत हैं, इसी कारण स्वयं (अपने हाथों) अपने आत्माका सर्वनाश करनेवाले हैं, वे आत्मघाती, अशान्त और अज्ञानको ज्ञान माननेवाले लोग दुःख और कष्ट ही पाते हैं । प्रबल काल, उनके (पूर्ण अथवा अपूर्ण ही) तुच्छ मनोरथोंको नष्ट कर देता है और वे कृतकृत्य न होकर कहींके नहीं रहते ! ॥१६॥१७॥ वासुदेवसे विमुख उक्त प्रकारके लोग, इच्छा न होने पर भी, कालसे विवश होकर, अत्यन्त परिश्रमसे प्राप्त देह, गेह, पुत्र, परिवार, इष्टमित्र, सम्पत्ति आदिको यहीं छोड़कर नरकगामी होते हैं ॥ १८ ॥ राजा जनकने कहा—"हे महानुभावगण ! अब आप अनुग्रहपूर्वक यह बतलाइये कि भक्तजन किस समय, किस आकार, किस वर्ण और किस नामसे एवं किस विधिसे भक्तवत्सल भगवान्‌की पूजा करते हैं ?" ॥१९॥ करभाजन नामक मुनिने कहा—"हे नरनाथ ! सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, इन चारो युगोंमें भिन्न २ वर्ण, भिन्न २ नाम, भिन्न २ आकार और भिन्न २ विधियोंसे भगवान् नारायणकी पूजा की जाती है ॥२०॥ सत्ययुगमें शुक्लवर्ण, चतुर्भुज, जटाधारी, एवं वल्कल, कृष्णाजिन, उपवीत, अक्षमाला, दण्ड और कमण्डलुसे सुशोभित भगवान् नारायण देवको, उस समयके शान्तस्वभाव, वैररहित, सबसे मित्रता करनेवाले, समदर्शी मनुष्यगण, तप(ध्यान), शम, दम आदि (सात्विक विधि)के द्वारा हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त और परमात्मा आदि नामोंसे भजते और पूजते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ त्रेतायुगमें रक्तवर्ण, चतुर्भुज, त्रिमेखला (त्रिविध दीक्षा) धारी, सुवर्णके सदृश चमकीले वर्णके केशोंसे सुशोभित, वेदत्रयीरूप और स्रुक्, स्रुवा आदि चिन्होंसे युक्त, सर्व्वदेवमय, यज्ञपुरुष, परमदेव हरिको उस समयके धर्म्मनिष्ठ, ब्रह्मवादी मनुष्यगण त्रिवेदविहित कर्म्म (यज्ञादि)के द्वारा विष्णु, यज्ञ, पृश्निपुत्र, सर्वदेव, उरुक्रम (परम पराक्रमी), वृषाकपि (कामवर्षाकारी और क्लेशोंको भयवश कम्पित करनेवाले), जयन्त (सर्वदा जयशाली), उरुगाय (जगत् भरमें जिनके अनन्त गुण गाये जाते हैं) आदि नामोंसे भजते

और पूजते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे नृप! द्वापर युगमें श्यामवर्ण, पीताम्बर-भूषित, हाथोंमें शंख, पद्म आर चक्रादि आयुध लिये, श्रीवत्स (वक्षःस्थलके दक्षिणभागमें रोमावलीका दक्षिणावर्त्त चिन्ह) कौस्तुभ आदि तथा करचरण-स्थित पद्मादिरेखा आदि महाविभवसूचक लक्षणों एवं छत्र, चामर आदि महाराजोंके उपलक्षणोंसे युक्त आदिपुरुषको उस समयके परमतत्त्व परमेश्वरके जिज्ञासु (जाननेकी इच्छा रखनेवाले) जन वेदोक्त और तन्त्रोक्त विधिके द्वारा भजते और पूजते हैं। एवं "हे वासुदेव! हे सङ्कर्षण! हे प्रद्युम्न! हे अनिरुद्ध! हे छः प्रकारके परम ऐश्वर्य्यसे सम्पन्न! आपको प्रणाम है। हे नारायण ऋषि! हे महात्मा नर! हे विश्वेश्वर! हे विश्वरूप! हे सर्वव्यापक! हे सर्वरूप! आपको प्रणाम है" कहते हैं। हे राजन्! अब कलियुगमें जिस प्रकार अनेक तन्त्रोक्त विधियोंसे हरिकी पूजा होती है, वह भी सुनो ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ कलियुगमें विवेकी लोग कृष्णवर्ण, कृष्णकान्तियुक्त और अंग-उपांग, अस्त्र-शस्त्र तथा पार्षदोंसे युक्त कृष्ण भगवान्को कीर्त्तनमय यज्ञोंसे भजते और पूजते हैं ॥ ३२ ॥ एव इस प्रकार स्तुति करते हैं कि—"हे प्रणतपालक! हे महापुरुष! सर्वदा चिन्तनीय, मायाकृत पराभव (मोह)को हरनेवाले, अभीष्ट पूर्ण करनेवाले, गंगा आदि लोकपावन तीर्थोंकी उत्पत्तिका स्थान—अतएव परमपावन, शरणमें आये हुए भक्तोंकी रक्षा कर आर्त्ति हरनेवाले एवं भवसागरकी तरणी (नौका) जो आपके चरणारविन्द हैं उन्हे हम प्रणाम करते हैं। हे मर्य्यादापुरुषोत्तम! आप अत्यन्त धर्म्मनिष्ठ हैं। पूजनीय पिताके वचनको सत्य करनेके लिये महादुस्त्यज सुरवाञ्छित राज्यलक्ष्मीको छोड़कर प्रीतिपूर्वक वन-गमन करनेवाले और वहाँ प्रियाके अभिलषित (पसंद) मायामय कनकमृगका पीछा करनेवाले जो आप हैं उनके चरणारविन्दोंको हम प्रणाम करते हैं" ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे नृप! इस प्रकार भिन्न २ युगके लोग भिन्न २ युगमें उस २ युगके अनुरूप नामोंसे उस २ युगकी मूर्त्तिमें सब श्रेयोंके ईश्वर हरिको भजते और पूजते हैं ॥ ३५ ॥ हे नरनाथ! गुणके जाननेवाले गुणग्राहक गुणी श्रेष्ठजन सब युगोंकी अपेक्षा कलियुगको ही आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। क्योंकि इसमें केवल कीर्त्तन और मननसे सहजहीमें सब पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं; यह बात और युगोंमें नहीं है ॥ ३६ ॥ संसारके बीच जन्म मरणके चक्रमें पड़कर कष्ट पारहे मनुष्योंके लिये इस कलियुगमें हरिकीर्त्तनसे बढ़कर और लाभ नहीं है, क्योंकि इससे संसारका बन्धन छूट जाता है और परमशान्ति मिलती है ॥ ३७ ॥ हे राजन्! कलियुग, कर्म्मयुग है। इसीसे अन्य तीन युगोंके लोग कलियुगमें जन्म होनेकी कामना करते हैं। हे नृप! इस कलियुगके बीच किसी २ प्रदेशमें नारायणपरायण लोग जन्म लेंगे, अधिक-तर द्रविड़ देशमें बहुतसे भगवद्भक्तजन उत्पन्न होंगे। द्रविड़ देशमें ताम्रपर्णी,

कृतमाला, पयस्विनी, कावेरी और महापवित्र प्रतीची आदि नदियाँ बहती हैं! हे नरेश! जो लोग उनके पवित्र जलका स्पर्शमात्र करते हैं उनका हृदय शुद्ध हो जाता है और वे सज्जन भगवान् वासुदेवके दृढ़ भक्त होते हैं॥ ३८॥ ३९॥४०॥ राजन्! भेदभावनाहीन होकर जो बुद्धिमान् व्यक्ति, मन वाणी और कायासे शरणागतपालक हरिके चरणोंकी शरणमें रहता है वह देव, ऋषि, पितृगण, कुटुम्ब या अन्यान्य मनुष्योंका ऋणी या किङ्कर कभी नहीं है॥ ४१॥ अन्य विषयोंकी चिन्ता छोड़ कर अपने चरणकमलोंकी सेवा करनेवाले प्रिय भक्तसे यदि भूलेसे असावधानतावश कभी कोई निषिद्ध कर्म्म हो भी जाता है तो परमेश्वर हरि उसके हृदयमें प्रकट होकर उस कर्म्मके दोषको मिटा देते हैं" ॥४२॥ नारदजी वसुदेवसे कहते हैं कि उपाध्यायसहित महात्मा जनक राजा इस प्रकार भागवत धर्म सुनकर परम प्रसन्न हुए और उन्होने ऋषभके पुत्र जयन्तीसुत नव मुनियोंकी पूजा की॥ ४३॥ उक्त भागवत धर्मोंको सुनकर परम प्रसन्न उपाध्यायसहित महात्मा राजा जनकने उन जयन्तीके गर्भसे उत्पन्न ऋषभदेवके पुत्र सिद्ध मुनियोंकी पूजा की और वे सबके आगेसे अदृश्य होगये। राजा जनक भी मुनियोंके कहे भागवत धर्मोंका पालन करते हुए उत्तम गतिको प्राप्त हुए॥ ४४॥ हे महाभाग वसुदेव! तुमभी श्रद्धापूर्वक संसारका संग छोड़कर उक्त भागवत धर्मके परम मङ्गलमय मार्गमें चलनेसे परम पद पाओगे॥ ४५॥ यह हमने शास्त्रोक्त प्रक्रिया कह दी, किन्तु तुम तो यों ही कृतार्थ हो। तुम दोनो स्त्री पुरुष धन्य हो; साक्षात् ईश्वर हरि भगवान् तुम्हारे पुत्र होकर तुमको कृतकृत्य कर चुके हैं, क्योंकि तुम्हारी निर्मल कीर्त्ति जगत् भरमें व्याप रही है॥ ४६॥ तुम्हारा पुत्रस्नेहमय हृदय पुत्ररूप हरिके दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप एवं एकत्र सोने, बैठने और भोजन करनेसे पहले ही पवित्र होचुका है॥४७॥ जब शिशुपाल, पौण्ड्रक, और शाल्व आदि नरपति गण वैरभावसे खाते, पीते, सोते, उठते, बैठते समय हर घड़ी हरिकी चाल, चितवन आदि चेष्टाओंका चिन्तन कर मुक्त होगये, तब जिनका चित्त हरिमें एकान्त अनुरक्त होरहा है उन विरक्त भक्तोंके मुक्त होनेमें क्या सन्देह है!॥ ४८॥ सबके हृदयमें स्थित ईश्वर श्रीकृष्णको तुम केवल पुत्र न समझो; यह मायामय मानवरूपमें अपने ऐश्वर्यको छिपाये हुए अव्यय परमपुरुष हैं! पृथ्वीके लिये भार होरहे राजवेषधारी असुरोंका संहार और साधु भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये इन्होने अवतार लिया है। परम शान्ति मुक्तिके लिये जगत्में इनका सुयश फैला हुआ है॥४९॥५०॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! महाभाग्यशाली वसुदेव और भाग्यवती देवी देवकी यह सुनकर अत्यन्त विस्मित हुए, उनके हृदयसे ममता मोह दूर होगया॥ ५१॥

इतिहासमिमं पुण्यं धारयेद्यः समाहितः ॥
स विधूयेह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५२ ॥

जो कोई एकाग्र होकर इस पवित्र इतिहासका अनुशीलन करता है वह अलौकिक मोहसे रहित होकर ब्रह्ममय मुक्तिपद पाता है ॥ ५२ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय ।

भगवान् कृष्ण और उद्धवका सम्वाद ॥

श्रीशुक उवाच–अथ ब्रह्मात्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात् ॥
भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज ! एकसमय अपने पुत्रों सहित ब्रह्माजी, देवगण, प्रजापति लोग, भगवान् भूतभावन ईश्वर शंकर और उनके भूतगणकी मण्डली, मरुद्गणसहित भगवान् इन्द्रदेव, बारहो सूर्य्य, आठो वसु, अश्विनीकुमार, ऋभुगण, आङ्गिरस गण, ग्यारहो रुद्र, विश्वेदेवा, साध्यगण, सिद्धगण, गन्धर्व, अप्सरा और विद्याधरगण, नागगण, यक्षगण, ऋषिगण, पितृगण, किन्नरगण और चारण लोग– सब भगवान् कृष्णके उस नरलोकमनोरञ्जन परम सुन्दर शरीरको देखनेके लिये द्वारका पुरीमें आये, जिससे उन्होने त्रिलोकमलहारी अपना सुयश जगत्में फैलाया है । सम्पूर्ण समृद्धियोंसे सम्पन्न हो भली भाँति शोभित होरही द्वारका पुरीके ऊपर आकाशमार्गमें विमानोंपर बैठे हुए उक्त देवगण अतृप्त दृष्टिसे अद्भुतरूपधारी कृष्णचन्द्रकी छवि निहारते हुए धन्य होकर स्वर्ग लोकके बागोंके विचित्र फूलोंकी लड़ियां बर्साने लगे । देवतोंने इतनी पुष्पवर्षा की कि कृष्णचन्द्र फूलोंसे ढक गये । तदनन्तर वे लोग इसप्रकार विचित्र पदों और भावोंसे ललित वाक्यावली द्वारा जगदीश्वरकी स्तुति करने लगे ॥१॥२॥३॥४॥५॥६॥ देवगणने कहा । "हे नाथ ! कर्ममय दृढ़ पाशोंसे छूटनेकी इच्छासे भक्त ऋषिगण निरन्तर हृदयमें जिनका ध्यान करते हैं उन्हीं आपके चरणकमलोंको बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण, मन और वाणीसे हमलोग प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥ हे अजित ! आप सगुण भाव धारणकर त्रिगुणमयी मायाके द्वारा अपनेमें इस अचिन्त्य विश्वप्रपञ्चकी सृष्टि, पालन और संहार किया करते हैं, किन्तु इन गुणमय मायाके कर्मोंमें लेशमात्र भी लिप्त नहीं हैं, क्योंकि आपमें काम, क्रोध, आदि सांसारिक दोष नहीं हैं, आप निश्रेष्ट हैं, क्योंकि अनावृत आत्मानन्दमें मग्न–इसीसे निरपेक्ष हैं ॥८॥ हे पूज्य ! हे श्रेष्ठ ! जैसे आपका सुयश

सुननेपर परिपुष्ट श्रद्धा(भक्ति)से विवेकी जनोंका हृदय निर्मल होजाता है वैसे विद्यासे, शास्त्र सुननेसे, वेदाध्ययनसे, दानकरनेसे अथवा जप- तपसे उन लोगोंका हृदय, जिनका मन विषयवासनासे मलिन होरहा है, कभी नहीं शुद्ध होसक्ता ॥ ९ ॥ हे ईश्वर ! विवेकी मुनि लोग मुक्तिकी कामनासे स्वर्गलाभके लोभको छोड़कर वैकुण्ठधाम और सदृश-ऐश्वर्य्य लेनेके लिये प्रेमसे निर्मल हो रहे हृदयमें स्थापित कर वासुदेव आदि मूर्तियोंमें जिनका त्रिकालपूजन करते हैं, और संयतहस्त याज्ञिक जन यज्ञीय अग्निमें वेदविहित विधिके अनुसार आहुति देकर जिनका ध्यान करते हैं, एवं आत्ममायाके जिज्ञासु योगी लोग अध्यात्मयोगका अभ्यास बढ़ाकर जिनका ध्यान किया करते हैं, और परम भागवत लोग सर्वत्र सर्वतोभावसे जिनकी आराधना करते हैं, उन आपके चरणकमलोंका भजन और कीर्त्तन हमारी दूषित वासनाओंको अग्निके समान भस्म करता रहे ॥ १० ॥ ११ ॥ किन्तु प्रेमी भक्तजन इन सबसे बढ़कर कृतकृत्य हैं। देखिये, ज्ञानमय वेदशास्त्रके सारग्राही भ्रमर भक्तोंके द्वारा प्रशंसित कीर्त्तिमयी वनमालाको परम पूजा मानकर आदरसहित आप सर्वांगमें शोभायमान किये हैं। जो सौभाग्य सर्वाङ्गव्यापिनी वनमालाको श्रद्धाके कारण प्राप्त है वह सौभाग्य न पासकनेके कारण, उसको, एक अंगमें रहनेवाली अनपेक्षित लक्ष्मी अपनी सौत समझ कर, उससे स्पर्धा रखती है। हम प्रार्थना करते हैं कि आपके वे साधुवन्दित चरणकमल अग्निके समान हमारी दूषित वासनाओंको भस्म करते रहें ॥ १२ ॥ हे व्यापक ! हे परमेश्वर ! आपके जो चरणकमल, बलि-बन्धनके समय, तीन धारा होकर गिरनेवाली त्रिपथगामिनी गंगाकी पताकासे युक्त त्रिभुवनव्यापी पराक्रमपताकादण्डके समान शोभायमान हुए थे, जिनसे सुरसेनाको अभय और असुरसेनाको भय प्राप्त हुआथा, जो साधु जनोंके ऊर्द्धगमन और असाधु जनोंकी अधोगतिका निमित्त हैं, उन्हीको हम भजते हैं। उनके प्रतापसे हमारे अन्तःकरणकी दूषित वासनाएँ दूर होती रहें ॥ १३ ॥ आप प्रकृति और पुरुषसे परे कालरूप परमेश्वर हैं। काम-क्रोधके होनेसे होनेवाले युद्ध आदिमें परस्पर पीड़ित ब्रह्मा आदि सब देहधारी लोग, रस्सीमें नथे हुए बैलोंके समान, आपके वशमें हैं; अर्थात् जैसा आप कराते हैं वैसा ही करनेके लिये बिवश हैं। आपके सर्वशक्तिमान् चरणकमल हमारा कल्याण करें ॥ १४ ॥ आप इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण (आधार) हैं, एवं प्रकृति, पुरुष और महत्तत्त्वके नियन्ता कह कर प्रसिद्ध हैं। त्रिनाभि(तीनो चौमासे)युक्त सम्वत्सर ही जिसका रूप है, वह सब पदार्थोंको नष्ट करनेमें प्रवृत्त, गम्भीर(अनिवार्य्य)गतिवाला प्रबल काल आपहीकी मूर्ति है, इसी लिये आपको पुरुषोत्तम कहते हैं ॥१५॥ हे अमोघवीर्य ! यह पुरुष आपहीसे शक्ति (चेतन) पाकर इस विश्वको प्रकट करनेवाले 'गर्भ'-

के सदृश महत्तत्वको प्रकृति या मायासे मिलकर धारण करता है और वह महत्तत्व गुणमयी मायाका अनुसरण करता हुआ बाहरी सातो आवरणों सहित इस सुवर्ण-वर्ण ब्रह्माण्डकी सृष्टि करता है ॥ १६ ॥ अतएव आप चराचर जगत् भरके अधीश्वर हैं; क्योंकि, हे हृषीकेश! मायासे प्रकाशित इन्द्रियोंकी वृत्तियों द्वारा निकट लाये गये सब विषयोंका भोग करते हुए भी आप निर्लिप्त ही रहते हैं! किन्तु और सब लोग या योगी जन, त्यागे हुए भी विषयभोगसे भयभीत रहते हैं; अन्य यावत् जीव विषयवासनामात्रसे बन्धनको प्राप्त होते हैं, और आप भोग करके भी निर्लिप्त ही रहते हैं। इसीसे आप सर्वोपरि हैं ॥ १७ ॥ मन्दहासविलासपूर्ण कटाक्ष–दृष्टिके द्वारा भाव–प्रकाश करती हुई सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियाँ भी सुरत–मंत्रकी सूचनासे, मनोहर भ्रूभंग और कामके बाणोंके समान मनको मोहनेवाली केलिकलाओंसे, आपके अन्तःकरणको आसक्त नहीं करसकीं। आपके निर्लिप्त होनेका यह प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥ १८ ॥ भवदीय-कथामय अमृत–जलसे परिपूर्ण कीर्त्ति–नदी और पादप्रक्षालनके जलसे उत्पन्न गंगानदी—ये दोनो परम तीर्थ त्रिलोकीके पापपुंजको धोनेवाले हैं। अपने २ वर्ण और आश्रमके धर्म्मको पालनेवाले विवेकी लोग, आन्तरिक मल धोनेके लिये, कानोंसे आपकी कीर्त्तिकी नदीमें मग्न रहते हैं और शरीरकी पवित्रताके लिये, गंगामें गोता लगाते हैं" ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! आकाशमें स्थित देवमण्डलीमण्डित शङ्करसहित भगवान् ब्रह्मा इस प्रकार स्तुति करनेके उपरान्त प्रणाम करके साक्षात् हरि कृष्णचन्द्रसे कहनेलगे कि "हे सर्व-व्यापक प्रभो! पहले हम लोगोंने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये प्रार्थना की थी। इस समय हमारी प्रार्थनाके अनुसार आपके द्वारा सब काम पूरे हो चुके हैं। आप सत्यसंकल्प साधु सज्जनोंमें सनातनधर्म्मको स्थापित कर चुके और सब लोकोंके पापोंको हरनेवाली निर्म्मल कीर्ति भी दिग्दिगन्तमें फैलाचुके एवं इस सर्वोत्तम रूपसे यदुकुलमें प्रकट होकर जगत्के मङ्गलके लिये परमपराक्रमपूर्ण अनेक अलौकिक कार्य्य भी कर चुके। हे ईश्वर! आपके उन चरित्रोंके श्रवण और कीर्त्तनसे कलियुगमें सब साधु मनुष्य अनायास ही अज्ञानसे मुक्त होसकेंगे। हे पुरुषोत्तम! हे विभो! आपको यदुवंशमें प्रकट हुए एकसौ पचीस वर्ष बीत चुके हैं। हे सर्वाधार! यह यदुवंश भी विप्रशापसे इस समय नष्टप्राय होगया है, हमारी समझमें अब कोई आपके करनेका देव–कार्य्य नहीं रहगया है। अतएव यदि उचित समझिये तो अपने परमधाममें चल कर हम बैकुण्ठसेवक लोकपालों और सब लोकोंकी रक्षा करिये"॥२०–२७॥ श्रीभगवान्‌ने कहा। "हे देवेश! आपने जो कहा, सो ठीक है। मैं पहलेही ऐसा विचार कर चुका हूँ। मैं आप लोगोंके सब कार्य्य पूर्ण कर चुका और पृथ्वीका भार भी उतार चुका। शौर्य्य, वीर्य्य, श्री आदिसे उद्धत होकर

जगत्को ग्रसनेके लिये उद्यत यादवकुलको, जैसे बढ़रहे सागरको 'सीमा' रोक रखती है वैसेही, मैंने रोक दिया है। यदि इस मदोन्मत्त यादव वंशका विनाश बिना किये मैं परम धामको चलदूँगा तो अवश्यही यह सागरकी भाँति उमड़ कर लोकोंका नाश कर देगा। हे निष्पाप प्रजापति! अब विप्रशापसे शीघ्रही वंशका विनाश होनेवाला है। इसका अन्त हो जाने पर मैं शीघ्रही वैकुण्ठगमन करूँगा'' ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! देवमण्डलीसहित देवदेव स्वयम्भू ब्रह्माजी जगदीश्वरके कथनको सुन कर प्रणाम करके अपने लोकको गये ॥ ३२ ॥ तदनन्तर द्वारका पुरीमें अशुभसूचक महा उत्पात होते देख, अपने निकट आये हुए यदुकुलके बड़े बूढ़े लोगोंसे भगवान्ने कहा कि ''हे आर्य्यगण! इस नगरीमें चारो ओर ये घोर उत्पात होते देखपड़ते हैं और हमारे कुलको ब्राह्मणोंका दुरत्यय शाप भी हो चुका है। इस लिये मेरी समझमें तो यह आता है कि यदि प्राणोंकी रक्षा करनी है तो हम लोगोंको यहाँ रहना उचित नहीं है। आओ, अभी, बिना बिलम्ब किये परम पवित्र प्रभास तीर्थको चलें। दक्षके शापसे होनेवाले क्षय रोगसे क्षीण होरहे चन्द्रमाकी रोगपीड़ा, जिसमें स्नान करनेसे तुरन्त नष्ट होगई और फिर कलाएँ बढ़नेलगीं उसी महामहिमा—सम्पन्न प्रभास तीर्थमें जाकर हम लोग स्नान करेंगे, देव—पितृतर्पण करेंगे और अनेकगुणयुक्त सुस्वादु उत्तम अन्न ब्राह्मणोंको खिलावेंगे। जैसे उत्तम खेतमें बीज बोनेसे बहुफल—प्राप्ति होती है वैसेही वहाँ सत्पात्र ब्राह्मणोंको श्रद्धासहित अनेक महादान देनेसे महाफल मिलेगा और जैसे नौका द्वारा अपार महासागरके पार पहुँच जाते हैं वैसेही हमलोग आनेवाले संकट और कष्टोंके पार पहुँच जायँगे'' ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे कुरुकुलतिलक! इसप्रकार भगवान्की आज्ञा पाकर सब यादव प्रभास तीर्थको जानेका निश्चय कर अपने २ रथ आदि यानों (सवारियों) को जोतने लगे ॥ ३९ ॥ भगवान्के वचन सुनकर और सबको प्रभास क्षेत्रकी यात्राके लिये उद्यत देखकर एवं घोर अरिष्टसूचक उत्पातोंको निहारकर सदैव कृष्णके अनुगत सेवक उद्धवजी एकान्तमें जगदीश्वरोंके भी ईश्वर प्रभु कृष्णके पास पहुँचे और चरणोंमें शिर नवाकर हाथ जोड़कर कहनेलगे कि— ''हे देवदेवेश! हे योगेश्वर! आपकी चर्चा करने और सुननेसे पुण्य होता है। आप इस वंशका विनाश करनेके उपरान्त इस लोकको अवश्य छोड़ जायँगे। हे ईश्वर! आपने समर्थ होकर भी विप्रशापको व्यर्थ नहीं किया—इसीसे मैं ऐसा निश्चय करता हूँ ॥४०–४२॥ हे केशव! मैं आधे क्षणके लिये भी आपके चरणकमलोंसे अलग रहनेका साहस नहीं करसक्ता! इस लिये हे नाथ! मुझको भी अपने साथही अपने धामको ले चलिये ॥४३॥ हे कृष्ण! मनुष्योंके लिये परममङ्गलरूप और सुननेमें

अमृततुल्य मधुर आपके लीलाललित चरित्रोंका अपूर्व स्वाद जिसको मिलगया है वह अन्य सब कामनाओंको छोड़ देता है; तब सोते, बैठते, घूमते, घरमें रहते, नहाते, खेळते, खातेमें, अर्थात् सभी समय, सेवामें रहनेवाले हम अनन्य भक्त, अपने प्रिय आत्मा आपको कैसे छोड़ सक्ते हैं? ॥४४॥४५॥ आपके जूठे वस्त्र, आभूषण, चन्दन माला आदिसे विभूषित और आपकी जूठन खानेवाले हम दास अवश्य ही आपकी दुस्तर मायाको तर जायँगे। दिगम्बर, ऊर्द्ध्वरेता, श्रमण, शान्त, शुद्ध, संन्यासी, परमहंस मुनिलोग महाकष्टसे कहीं आपकी मायाके मोहसे मुक्त होते हैं, किन्तु हम हे महायोगीश्वर! इस संसारके बीच कर्मकी गतियोंमें भ्रमतेहुए भी आपके भक्तोंके संगमें आपकी चर्चा करते हुए और आपके इस मायामानवरूपकी चाल, चितवन, मुसकान, हँसी, बातचीत और कर्मोंका स्वयं स्मरण करते और औरोंको कराते हुए दुस्तर अन्धकाररूप मायाके पार पहुँच जायँगे" ॥४६॥४७॥४८॥४९॥

श्रीशुक उवाच–एवं विज्ञापितो राजन्भगवान्देवकीसुतः ॥
एकान्तिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ॥ ५० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे नरनाथ, इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् देवकीनन्दन कृष्णचन्द्र अपने एकाग्रचित्त प्रिय भृत्य उद्धवसे बोले॥ ५० ॥

इतिश्री भागवते एकादशस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय।

अवधूतका इतिहास।

श्रीभगवानुवाच–यदात्थ मां महाभाग तच्चिकीर्षितमेव मे ॥
ब्रह्मा भवो लोकपालः स्वर्वासं मेऽभिकाङ्क्षिणः ॥१॥

भगवान्ने कहा। हे महाभाग! तुम्हारा अनुमान ठीक है; मैं वही करना चाहताहूँ। ब्रह्मा, शंकर और सब लोकपालगण आदि मुझसे परमपदगमनकी प्रार्थना करचुके हैं ॥१॥ जिस लिये ब्रह्माकी प्रार्थनासे मैंने पृथ्वी पर अंशावतार लिया था वह सब देवकार्य पूर्णतया संपन्न कर चुका हूँ ॥ २ ॥ विप्रशापसे पहलेही भस्म होचुका यह यादववंश भी परस्परके युद्धमें नष्ट होजायगा और आजके सातवें दिन मुझसे हीन इस द्वारका नगरीको सागर अपने जलमें मग्न कर देगा ॥ ३ ॥ हे साधु उद्धव! मेरे छोड़तेही यह मनुष्य लोक मङ्गलहीन होजायगा और शीघ्रही इस पर कलिकालका प्रभाव फैल जायगा ॥ ४ ॥ हे भद्र! मेरे परमधामगमनके उपरान्त तुम इस कलिदूपित पृथ्वीतल पर न बसना। कलियुगमें सब लोगोंकी अधर्ममें

अधिक रुचि होगी । तुम सब स्वजन और बन्धु- बान्धवोंके स्नेहको छोड़कर पूर्णतया मुझमें मन लगाओ और फिर समदर्शी होकर सुखपूर्वक पृथ्वी पर इच्छानुसार घूमो; उस दशामें तुम्हारे ऊपर कलिकालका प्रभाव नहीं पड़सकेगा ॥५॥६॥ जो कुछ मन, वाणी, नेत्र और कान आदिके सांसारिक विषय हैं वे मनोमय मायाके असत् प्रपञ्च हैं—ऐसा समझो ॥ ७ ॥ व्यग्रचित्त पुरुपका भेदभावरूप भ्रम ही गुणदोपभागी है । गुणदोषबुद्धिसे पुरुपको कर्म, अकर्म, विकर्मरूप त्रिविध भ्रम होता है। इस लिये इन्द्रियवृत्तिसहित चित्तको एकाग्र कर इस जगत्को अपनेमें और अपनेको मुझ परमात्मामें देखो ॥ ८ ॥ ९ ॥ जब तुम ज्ञान (वेदके तात्पर्यका निश्चय) और विज्ञान (वेदके अर्थका अनुभव) से भलीभाँति युक्त होकर सब देहधारियोंके आत्मा बन जाओगे, अर्थात् लीन अवस्थामें ब्रह्मानन्दके अनुभवसे सन्तुष्ट रहोगे, तब कोई भी विघ्न—बाधा न डाल सकेगा ॥ १० ॥ इस प्रकार जो गुण—दोषबुद्धि अथवा भेदभावसे हीन होचुके हैं, अर्थात् परमहंस हैं, वे बालकोंकी भाँति पूर्वसंस्कारवश कर्म करते हैं; विशेप बुद्धिसे बुरा विचारकर किसी कर्मसे निवृत्त नहीं होते; और वैसेही भला समझकर किसी कर्मके करनेमें प्रवृत्त नहीं होते । ऐसे विधि और निपेधसे अतीत परमहंस लोग बालकके समान समदर्शी और शान्त होते हैं; वे सब प्राणियोंके हितकारी और ज्ञान-विज्ञानके निश्चयसे सम्पन्न होकर इस समग्र जगत्में मेरे रूपसे अपनेको देखते हैं, अतएव उन्हे फिर किसी विपत्तिका सामना नहीं करना पड़ता ॥११॥१२॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा** । हे नृप ! महाभागवत भक्त उद्धवजी भगवान्से उक्त आदेश पाकर तत्त्व जाननेकी कामनासे फिर प्रणाम करके अच्युतसे बोले कि हे योगका फल देनेवाले ईश्वर ! हे योगका आधार ! हे योगरूप ! हे योगके परमफल ! अथवा योगकी उत्पत्तिका स्थान ! आपने मोक्षके लिये मुझको इस संन्यासरूप कर्मत्यागका उपदेश दिया । किन्तु हे सर्वमय ! मैं समझता हूँ कि जिनका मन विपयोंमें आसक्त है उन अजितेंद्रिय पुरुपोंके लिये यह वासना—त्याग दुप्कर है; विशेपकर सबके आत्मा जो आप हैं उनकी भक्ति जिनमें नहीं है, वैसे पुरुषोंके लिये तो यह त्याग अतीव दुप्कर है ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे नाथ ! मैं भी, मूढ़ मतिमन्द मनुष्य हूँ, आपकी मायासे कल्पित शरीर और उसके साथी पुत्र आदिमें 'मैं हूँ—मेरा है'—इस ममतासे मेरा हृदय आसक्त हो रहा है। अतएव, जिससे मैं क्रमशः योगसाधन करताहुआ शनैः २ आपके उपदेशानुसार चल सकूँ ऐसी सुगम रीतिसे विस्तारपूर्वक समझाकर संन्यास सिखाइये । मैं आपका अनुगत भृत्य और इसी कारण प्रीतिपात्र जन हूँ ॥ १६ ॥ हे ईश्वर ! आप स्वयंप्रकाशमान सत्य आत्मा हैं । आपके सिवा आत्मज्ञानकी सम्यक् शिक्षा देने-

वाला दूसरा कोई देवतोंमें भी नहीं देख पड़ता । ये ब्रह्मासे लेकर सभी देहधारी लोग आपकी मायामें मोहित हो रहे हैं और इसी कारण बाह्य विषयोंको परम लाभ मान कर उन्हीके पानेका प्रयास करते हैं ॥१७॥ इस कारण भाँति २ के अनन्त दुःखोंकी ज्वालाओंसे जल रहा और अतएव संसारसे विरक्त मैं, परमात्मा, परमानन्दमय, अनन्तपार, सर्व्वज्ञ, ईश्वर, अविनाशी, वैकुण्ठधाममें रहनेवाले और नर(जीव)के सखा साक्षात् नारायण (परमात्मा) जो आप हैं उनकी शरणमें आया हूँ ॥ १८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा । लोकतत्त्वका मनन करनेवाले विचारशील बिवेकी मनुष्य प्रायः अपने आप आत्माको विषयवासनाओंसे निवृत्त करके उसका उद्धार करते हैं । पशुआदिके शरीरमें (भी) और विशेष कर मनुष्यशरीरमें हित और अहित जाननेके लिये जीवका गुरु आत्मा ही है, क्योंकि यह आत्मा ही प्रत्यक्ष और अनुमान(अनुभव)से मुक्तिफलको पाता या भोगता है ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ सत् और असत्का विवेक रखनेवाले सांख्ययोगमें निपुण धीर पुरुषगण सब शक्तियोंसे परिवर्द्धित पुरुष(जीव)रूपसे मुझको भिन्न २ प्रकाश्य वस्तुओंमें देखते हैं । एक चरण, दो चरण, तीन चरण, चार चरण अनेक चरण और चरणहीन अनेकानेक पूर्व सृष्ट शरीरोंमें सबसे बढ़ कर मनुष्य शरीरही मुझे प्यारा है । मैं अन्य देहधारियोंके निकट अज्ञेय हूँ, तथापि सावधान विवेकी मनुष्यगण सब जड़तत्त्वोंके प्रवर्त्तक चैतन्यरूप एवं इसी शरीरमें निगूढ़ मुझ अचिन्त्य आत्माको प्रत्यक्ष गुण और चिन्होंके द्वारा अनुमानपूर्वक प्रत्यक्ष खोजते, भजते और पूजते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ हम तुमको इस प्रसङ्गमें एक पुरातन इतिहास सुनाते हैं, जिसमें महातेजस्वी यदुका एक महात्माअवधूतसे सम्वाद वर्णित है ॥२४॥ धर्म्मके ज्ञाता राजा यदुने एक समय एक स्थान पर निर्भयभावसे विचर रहे एक सत्-असत्का विवेक रखनेवाले युवा अवधूत (दत्तात्रेयजी) को देख कर उनसे पूछा कि—"हे ब्रह्मन्! हे अवधूत! जिससे आप विद्वान् हो कर भी इस प्रकार एक छोटे बालककी भाँति कर्म्मासक्तिसे शून्य रह कर विचरते फिरते हैं वह निर्म्मल बुद्धि आपको कहाँसे और कैसे मिली है? प्रायः देखा जाता है कि मनुष्यलोग आयु, यश और मङ्गलकी कामनासे ही धर्म्म, अर्थ, काम और आत्मविचारमें प्रवृत्त होते हैं । किन्तु मैं देखता हूँ कि आप समर्थ, पण्डित, निपुण, सौभाग्यशाली और मित भाषण करनेवाले हो कर भी जड़, उन्मत्त एवं पिशाचग्रस्त मनुष्योंकी भाँति निष्कर्म्मा और निस्पृह हैं । सब लोग कामना और लोभरूप दावानलकी ज्वालाओंसे जल रहे हैं; परन्तु आप उस अग्निसे बचे हुए हैं; गंगाजलके भीतर अवस्थित गजके समान आप विषयतापमुक्त, शान्त हैं । आप स्त्रीपुत्रादिरहित अकेले और इसी कारण विषयभोगरहित हैं । आपके इस आत्मामें परमानन्दलाभका कारण क्या है?— सो कृपापूर्वक कहिये' ॥ २५-३० ॥ श्रीभगवान् उद्धवसे कहते हैं कि

इस प्रकार प्रशंसापूर्वक सादर प्रश्न करने पर वह महाभाग महात्मा ब्राह्मण, ब्रह्मण्य सुबुद्धि और विनयसे नम्र राजा यदुसे बोले कि–"हे राजन्! मैंने अपनी बुद्धिसे आपही शिक्षा लेकर अनेक गुरु किये हैं। मैंने जिनको गुरु माना है उन्होने मुझे प्रत्यक्ष उपदेश नहीं दिया है, किन्तु मैंने ही उनके व्यवहारसे अपनी बुद्धिके अनुसार हेय और उपादेयकी शिक्षा ली है। जिनसे विवेकबुद्धि पाकर मुक्त अवस्थाका सुख भोगता हुआ मैं इस प्रकार विचरता हूँ, वे मेरे गुरु ये हैं–सुनो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कपोत (कबूतर) अजगर, सागर, पतङ्ग, *मधुकर, गज, मधुहारी, हरिण मीन, पिङ्गला वेश्या, कुरर पक्षी, बालक, कुमारी कन्या, बाण बनानेवाला, सर्प, ऊर्णनाभ (मकड़ा) और पेशस्कृत् (तितली)। हे नरनाथ! इन्ही चौबीस गुरुओंके व्यवहार या आचरणोंसे मैंने अपने ग्राह्य और अग्राह्य विषयोंको सीखा है ॥३३॥३४॥३५॥ हे नहुष राजाके पुत्र पुरुषसिंह महाराज यदु! इन गुरुओंमें मैंने जिससे जो सीखा है सो सब क्रमशः कहताहूँ, मन लगा कर सुनो ॥ ३६ ॥ मैंने पृथ्वीसे क्षमा और स्थिरता सीखी है। जैसे पृथ्वीको लोग खोदते हैं, उस पर थूकते हैं–मल-मूत्र त्याग करते हैं परन्तु वह तनिक भी विचलित न हो कर उन्हे अपनी गोदमें रखती है, वैसे साधु, बिवेकी पुरुषको चाहिये कि उन दुष्ट अपकारी लोगोंको दैवके अनुगत समझ कर सब उपद्रवोंको सहता रहे, और अपनी स्थिति (मार्ग) से विचलित न होकर उनसे पृथ्वीके समान क्षमाका बर्त्ताव करे। (पर्वतरूप और वृक्षरूप पृथ्वीसे जो सीखा है सो सुनो) मैंने पर्वतोंसे परोपकारवृत्ति सीखी है। पर्वत जैसे वृक्ष, तृण, झरने और फल फूल आदिके द्वारा सर्वथा अपने जीवनकी सब चेष्टाओंको परोपकारमें लगा देते हैं, वैसेही साधुको चाहिये कि अपने शरीर और मनकी सब चेष्टाओंको तथा जीवनको और लोगोंके लिये अर्पण कर दे। मैंने वृक्षोंसे यह सीखा है कि जैसे वृक्षको लोग काटते हैं, जलाते हैं, उखाड़ डालते हैं, परन्तु वह बुरा न मान कर उन पीड़ा देनेवालोंको अपने पत्ते, गोंद, छाल, जड़, फूल, फल, लकड़ी, कोयला और राख तकसे लाभ पहुँचाता है, वैसेही साधुको चाहिये कि बुराई करनेवालों सतानेवालोंकी भी भलाई करे और समझे कि ये पराधीन हैं, इनका इसमें कोई दोष नहीं है; मैं अपने कर्म्मोंके अनुसार इनके द्वारा सताया जा रहा हूँ ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ मैंने वायुसे जो सीखा है, सो सुनो,

---

* मधुको फूलोंसे निकालनेके कारण भ्रमरका नाम मधुकर है। किन्तु मधुको बनाने और जमा करनेके कारण मधुमक्षिकाको भी मधुकर कहते हैं। यहाँ मधुकर शब्द भ्रमर और मधुमक्षिका दोनोंका बोधक है।

(वायु दो प्रकारका होता है एक शरीरके भीतरका प्राणवायु और दूसरा बाहरी वायु) जैसे प्राण वायु केवल आहारमात्र की अपेक्षा रख कर रूप–रस आदि इन्द्रियोंके विषयोंकी अपेक्षा नहीं रखता, वैसेही मुनिको चाहिये कि जिसमें ज्ञान न नष्ट हो और वाणी व मन व्यग्र न हो इस लिये मित आहारमात्र करे और उसीमें सन्तुष्ट रहे; इन्द्रियप्रीतिके लिये रूप आदि विषयोंमें आसक्त न हो। जैसे बाह्य वायु गंध आदि गुणों और शीत उष्ण आदि धर्म्मोंसे युक्त (प्रतीत) हो कर भी वास्तवमें निर्लिप्त ही रहता है, वैसे ही आत्मज्ञानी योगी अहं-भावनाके कारण विविध शारीरिक धर्म्मोंसे युक्त प्रतीत हो कर भी अपने(आत्मा)को शरीरके गुण और दोषोंसे अतीत समझे और पूर्वसंस्कारवश विषयभोग करता हुआ भी निर्लिप्त रहे। जैसे वायु विविध गन्धोंका आश्रय होकर भी वास्तवमें उनसे अलग रहता है, वैसे ही उक्त प्रकारके आत्मज्ञानको प्राप्त योगी भी, संसारके बीच पार्थिव शरीरोंमें प्रविष्ट और उन शरीरोंके गुणोंका अवलम्ब होकर भी अपनेको शरीर और शरीरके गुणोंसे भिन्न ब्रह्मरूप समझनेसे निर्लिप्त ही रहता है ॥३९–४१॥ हे राजन्! मैंने आन्तरिक तथा बाह्य आकाशसे जो सीखा है, सो सुनो। आन्तरिक आकाश जैसे घट आदिके भीतर हो कर भी अखण्ड, निर्लिप्त और समन्वयरूपसे व्यापक है, वैसे ही योगीको भी चाहिये कि देहके भीतर स्थित हो कर भी अपने (आत्मा) को ब्रह्मरूप और इसी कारण अखण्ड, एवं स्थावर–जङ्गमादि सब शरीरोंमें समन्वयरूपसे व्याप्त व विस्तृत, तथापि निर्लिप्त देखे। इस प्रकार योगीको विचारना चाहिये कि बाह्य आकाश जैसे वायुसञ्चालित मेघ और रज आदिसे अलग रहता है वैसेही आत्मा भी कालकृत तेज-जल-अन्न-मय शरीरोंसे अलग है ॥४२॥४३॥ मैंने जलसे जो शिक्षा पाई है सो सुनो। योगीको चाहिये कि जलके समान निर्म्मल, स्वाभाविक स्निग्ध (मिलनसार) मधुर और तीर्थतुल्य हो कर दर्शन, स्पर्श और कीर्त्तनसे दर्शन, स्पर्श और कीर्त्तन करनेवालोंको पवित्र करता रहे ॥ ४४ ॥ मैंने अग्निसे जो सीखा है सो सुनो। योगीको चाहिये कि अग्निके समान तेजस्वी (अत्यन्त ज्ञानी), तप (ईश्वरचिन्तन) से दुरन्त दीप्तिशाली और दुर्द्धर्ष (किसी मनोविकारसे विचलित न होनेवाला) हो कर जो कुछ प्राप्त हो उसे पेटके पात्रमें रख ले, अर्थात् आहारसे अधिक सञ्चय न करे एवं सर्वभक्षी होकर भी निर्मल रहे। जितेन्द्रिय मुनिको उचित है कि अग्निके समान कभी प्रच्छन्न रहे और कभी व्यक्त होकर मङ्गलकी अभिलाषासे उपासना करनेवालोंके भूत और भविष्य पातकोंको भस्म करता रहे, एवं अग्नि जैसे दूसरेके देनेसे हव्यकी आहुति लेता है, किन्तु स्वयं उसके लिये कुछ उद्योग नहीं करता, वैसे ही अनायास जो प्राप्त हो वही भोजन करे। योगीको विचारना चाहिये कि अग्नि जैसे भाँति २ के काष्ठोंके भीतर रहकर उपाधिके अनुरूप प्रतीत होताहै वैसेही आत्मा-

भी अपनी मायासे विरचित इस विविध विश्वमें प्रवेश कर ऊँची, नीची योनि अथवा वर्णकी उपाधियोंके अनुरूप वैसा ही प्रतीत होता है ॥ ४५-४७ ॥ मैंने चन्द्रमासे जो सीखा है सो सुनो। जैसे अव्यक्तगति कालके द्वारा चन्द्रमाकी कलाएँ घटती बढती रहती हैं, चन्द्रमण्डल नहीं घटता बढ़ता, वैसे ही योगीको विचारना चाहिये कि जन्मसे लेकर श्मशानमें जाने तककी सब कालकृत अवस्थाएँ देहकी हैं, आत्माकी नहीं हैं। जैसे अग्निकी शिखाएँ ही उत्पन्न और नष्ट होती हैं, अग्निकी उत्पत्ति या नाश नहीं होता, वैसेही जलप्रवाहके तुल्य अप्रतिहत-वेगसम्पन्न कालकी गतिसे नित्य प्रति शरीरही उपजते और नष्ट होते हैं, आत्मा न उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ मैंने सूर्यसे जो सीखा है, सो सुनो। सूर्य जैसे किरणोंके द्वारा पृथ्वीसे जलको खींचता है और समयानुसार वर्षा करता है वैसे योगीको चाहिये कि इन्द्रियोंके द्वारा विषय-ग्रहण करता हुआ समय पर आगत अर्थी जनको वेही विषय देकर सन्तुष्ट करे, किन्तु सूर्यके समान निर्लिप्त रहे अर्थात् 'मैं भोगनेवाला या भोग करानेवाला हूँ'-ऐसी भावना न करे। योगीको विचारना चाहिये कि जैसे एकमात्र सूर्यमण्डल जलपात्ररूप उपाधिके भेदसे भिन्न २ रूपोंमें अनेक प्रतीत होता है, वैसेही स्थूल बुद्धिके लोग, स्वरूपतः एक आत्माको शरीरादि उपाधियोंके भेदसे भिन्न २ रूपोंमें अनेक देखते हैं ॥ ५० ॥ ॥ ५१ ॥ मैंने कपोत (कबूतर)से जो शिक्षा पाई है सो सुनो। योगीको किसीके प्रति अति स्नेह न करना चाहिये और न किसीके प्रसंगमें आसक्त होना चाहिये। यदि अत्यन्त स्नेह या प्रसंग करता है तो दीनबुद्धि कपोतके समान सन्तापको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ हे राजन्! एक वनवासी कपोत वृक्ष पर झोंझ लगाकर उसीमें अपनी स्त्रीके साथ कई वर्ष तक रहाकिया ॥ ५३ ॥ गृहस्थ कबूतर और कबूतरीको परस्पर अत्यन्त स्नेह था। दोनोंकी बुद्धि और हृदय एक था। दोनो सर्वदा अंगसे अंग और दृष्टिसे दृष्टि मिलाये रहतेथे ॥ ५४ ॥ दोनो बेखटके उस विशालवनमें एकसाथ सोते, उठते, बैठते, खाते, पीते, खेलते, घूमते, टहलते और बातचीत करतेथे ॥ ५५ ॥ सबप्रकार प्रसन्न रखनेवाली और इसी कारण एकमात्र प्रेमपात्र वह कबूतरी जो २ कामना करती थी उसे वह अजितेंद्रिय कामी कबूतर कष्ट उठाकर भी पूर्ण करता था ॥ ५६ ॥ इसी अवसरमें कबूतरीके पहलेपहल गर्भ रहा और समय पाकर उसने स्वामीके निकट झोंझमें कईएक अण्डे दिये ॥ ५७ ॥ नारायण हरिकी अचिन्त्य शक्तियोंके द्वारा कुछ कालमें वे अण्डे फूटकर सब अंगोंसे सम्पन्न छोटे २ बच्चे बनगये। उन बच्चोंके अंग और रोमपुंज अत्यन्त कोमल थे ॥ ५८ ॥ वे पुत्रवत्सल दोनो स्त्री पुरुष उन बच्चोंकी मधुर बोली और कलकूजितको सुनकर प्रसन्न होते हुए उन्हे पालने लगे ॥ ५९ ॥ दोनो पिता माता हृष्ट-पुष्ट बच्चोंके कोमल पंखोंके सुखदायक स्पर्शसे महा आनन्दित होतेथे और उनके कलरवको सुनकर, भोले २ मुखको और प्रत्युद्गमनको देखकर सुखी

होतेथे ॥ ६० ॥ इस प्रकार हरिकी मायासे परस्पर स्नेहके सुदृढ बन्धनमें बद्ध हृदयसे वे दोनो दीनबुद्धि कबूतर—कबूतरी विमोहित भावसे बच्चोंका पालन करने लगे ॥६१॥ एक दिन आहार खोजनेके लिये झोंझमें बच्चोंको अकेला छोड़ वे कुटुम्बी दोनो पक्षी वनमें इधर उधर दूर २ बहुत देर तक घूमते रहे। इसी बीचमें एक चिड़ीमार घूमता हुआ उधर आ निकला और कबूरके बच्चोंको वहाँ विचरते देख कर जाल डालकर बैठगया। इधर बच्चे जालमें फँसे और उधर पुत्रोंके पालनमें सदा उत्सुक रहनेवाले वे दोनो कबूतर-कबूतरी चारा लेकर आगये ॥६२॥६३॥६४॥ बच्चे माता पिताको देखकर और भी चिल्लाने लगे, कबूतरी भी अत्यन्त दुःखित होकर चिल्लातीहुई बच्चोंके पास दौड़गई। इसप्रकार पुत्रस्नेहमें जकड़ीहुई और ईश्वरकी मायाके मोहमें बेसुध वह कबूतरी आपहीसे उस जालमें जाकर फँसगई ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ प्राणसे प्यारे पुत्र पकड़े गये और जीवनप्राण सी स्त्री भी फँस गई, यह देखकर अत्यन्त दुःखित कबूतर उससमय यों पश्चात्ताप और विलाप करने लगा कि "अहो मैं अत्यन्त अभागी और मन्दमति हूँ, मेरी इस दुर्गतिको तो कोई देखे कि मैं अभी तृप्त नहीं हुआथा, कृतार्थ भी नहीं हुआथा, और धर्म अर्थ तथा कामना-ओंका साधनस्वरूप मेरा बनाहुआ घर बिगड़ गया ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ मेरी स्त्री ऐसी अनुरूप और अनुकूल थी कि एकमात्र मुझ पतिको ही अपना इष्टदेव मानती थी। विधिकी कठिनाईसे वह भी इस शून्य घरमें मुझे अकेला छोड़कर अपने साधु पुत्रों-के साथ स्वर्गको जारही है ॥६९॥ पुत्र और स्त्रीके वियोगसे व्याकुल और दीन मैं अब शून्य घरमें कैसे इस दुःखमय जीवनको बिताऊँगा" ॥ ७० ॥ मूर्ख और दुःखित वह कबूतर जालमें फँसकर सामनेही मृत्युपाशमें छूटनेके लिये छटपटाते हुए परिवारकी दुर्दशा देखकर भी नहीं चेता और आप भी जालमें फँसगया ॥७१॥ वह क्रूर चिड़ीमार उस सपरिवार कबूतरके जोड़ेको पाकर एवं अपनेको कृतार्थ समझकर बहुतही प्रसन्न हुआ और सबको लेगया ॥ ७२ ॥ जो व्यक्ति इस प्रकार गृहस्थ, अशान्तहृदय और कुटुम्बके पालनपोषणमें अत्यन्त आसक्त हैं वे उस कबूतरके समान दुःखित होकर शरीरके द्वारा कष्ट पाते हैं ॥ ७३ ॥

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ॥
गृहेषु खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥ ७४ ॥

यह मनुष्यजन्म खुला हुआ मुक्तिका द्वार है, इसको पाकर भी जो कोई उक्त पक्षीकी भाँति आसक्त होता है, वह मूढ़ है, उसको शास्त्रमें 'आरूढ़च्युत' कहते हैं ॥ ७४ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय ।

पिङ्गला वेश्याकी कथा ।

ब्राह्मण उवाच—सुखमैन्द्रियकं राजन्स्वर्गे नरक एव च ॥
देहिनां यद्यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद्बुधः ॥ १ ॥

दत्तात्रेयने कहा । राजन्, मैंने अजगरसे जो सीखा है, सो सुनो । जैसे दुःख स्वयं प्राप्त होता है वैसेही इन्द्रियजनित विषयसुख भी स्वर्ग और नरकमें समान भावसे प्राणियोंको प्राप्त होता है । इस लिये समझनेवाले विद्वान्को उसकी इच्छा न करनी चाहिये ॥ १ ॥ खानेका पदार्थ सरस हो या नीरस हो, बहुत हो या थोड़ा हो, जो कुछ आपहीसे मिलजाय उसे अजगर की भाँति उदासीन भावसे खालेना चाहिये ॥ २ ॥ यदि खानेको आपहीसे न मिले तो 'दैवही देनेवाला है' ऐसा समझ कर धैर्य्य-धारण पूर्वक अजगरकी भाँति निराहार और निरुद्यम रह कर बहुकाल तक पड़ा रहे ॥ ३ ॥ इन्द्रियबल, मनोबल और दैहिक बलसे सम्पन्न होने पर भी चेष्टाहीन शरीरसे पड़ा रहे । अपने स्वार्थ अर्थात् परमार्थमें दृष्टि रख कर इन्द्रिययुक्त हो कर भी कोई चेष्टा या उद्योग न करे ॥ ४ ॥ मैंने सागरसे जो सीखा है, सो सुनो । जिसका प्रवाह रुका हुआ है उस सागरकी भाँति मुनिको प्रशान्त, गंभीर, दुरवगाह्य, अनतिक्रमणीय, अनन्तपार और अक्षोभ्य होकर रहना चाहिये । सागर जैसे वर्षाऋतुमें बढ़ीहुई नदियोंके जलको पा कर भी अपनी मर्य्यादाको नहीं छोड़ता और ग्रीष्मऋतुमें नदियोंके सूख जाने पर भी नहीं सूखता, या घटता, वैसेही नारायणपरायण योगीको भी चाहिये कि समृद्ध कामनाओंको पाकर न प्रसन्न हो और कामनाओंके न मिलने पर न शोक करे ॥ ५ ॥ ६ ॥ मैंने पतङ्गसे जो सीखा है, सो सुनो । जो लोग इन्द्रियोंके वशमें हैं वे देवमायारूपिणी स्त्रीको देख कर उसके हाव-भावमें प्रलोभित हो उसी प्रकार नष्ट-भ्रष्ट (अर्थात् अन्धकारमयी अधोगतिको प्राप्त) होते हैं जैसे अग्निमें गिर कर पतङ्गकी दुर्गति होती है ॥७॥ स्त्री, स्वर्णालङ्कार और वस्त्रादि मायाकल्पित वस्तुओंमें उपभोगबुद्धिसे जिसका चित्त प्रलोभित हो रहा है वह मूर्ख नष्टदृष्टि पतङ्गकी भाँति नष्ट हो कर कष्ट पाता है ॥ ८ ॥ भ्रमरसे जो मैंने सीखा है, सो सुनो । शरीरकी शक्ति शिथिल न हो—इस लिये मुनिको उतना ही आवश्यक मित आहार करना चाहिये । मधुकरकी भाँति थोड़ा २ अन्न कई एक घरोंसे लेकर खाना चाहिये । एक ही गृहस्थके यहाँसे भिक्षा करके उसे सताना न चाहिये (दूसरे ऐसा करनेसे अपनी भी बड़ी भारी हानि है, क्योंकि जैसे विशिष्ट गंधके लोभसे एकही कमलमें रहनेवाला भ्रमर सूर्य्यास्त होते समय कमलके सम्पुटमें फँस कर प्राण दे देता है, वैसेही मुनि भी

स्वादके लोभसे एकही घरमें आश्रय लेनेसे उसके सांसर्गिक मोहमें फँस कर नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है) जैसे मधुकर सब फूलोंसे सारांशमात्र ले लेता है वैसेही चतुर मनुष्यको, छोटे या बड़े सभी शास्त्रोंसे सारांशमात्र ले-लेना चाहिये ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ दूसरे प्रकारके मधुकर अर्थात् मधुमक्षिकासे जो मैंने सीखा है, सो सुनो। जो कुछ भिक्षामें मिले उसे सायंकाल या दूसरे दिनके लिये न रख छोड़े। हाथ और पेटकोही पात्र बनावे। मधुमक्षिकाकी भाँति संचय न करे। जो कोई भिक्षुक सायंकाल या दूसरे दिनके लिये संचय करता है वह मधुमक्षिकाकी भाँति संचित द्रव्यसहित नष्ट होता है ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे राजन् ! मैंने गजसे जो शिक्षा पाई है, सो सुनो। भिक्षुकको पैरसे भी, लकड़ीकी भी स्त्रीका स्पर्श न करना चाहिये। और जो कोई करता है वह उसी प्रकार पतित होजाता है, जैसे हथनीके अङ्गसङ्गके लिये हाथी गड़ेमें गिरता और फसता है* ॥१३॥ प्राज्ञ पुरुषको चाहिये कि कभी भूलेसे भी स्त्रीके निकट न गमन करे, क्योंकि वह उसकी साक्षात् मौत है ! जो कोई स्त्रीसङ्ग करता है उसे उससे सबल लोग उसी प्रकार मारते हैं जैसे हथनीके लिये निर्बल हाथीको सबल हाथी मारते हैं ॥ १४ ॥ मैंने मधुहारीसे जो सीखा है, सो सुनो। जैसे मधुहारी (कंजड़) मक्षिकाओंके सञ्चित मधुका पता लगाकर उसे हर ले जाता है और आप खाता है तथा उससे लेकर और लोग खाते हैं, वैसेही कृपण लोगोंके दुःखसञ्चित, दानभोगविवर्जित धनको, पता पा कर, और लोग उड़ा ले जाते हैं, और वह हाथ मलकर रहजाता है। इससे मैंने यह तात्पर्य्य निकाला है कि जो लोग धनका दान या भोग नहीं करते उनके धनको दूसरेही लोग भोगते हैं ॥ १५ ॥ मधुहारी जैसे सञ्चय करनेवाली मक्षिकाओंके आगेही मधुको खाता है वैसेही यती (यति) भी अत्यन्तकष्टसे उपार्जित और अनेक मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिये सञ्चित गृहस्थोंके धनको उनके आगेही भोगता है, उसके लिये उद्योग अनावश्यक है ॥ १६ ॥ मैंने हरिणसे जो सीखा है सो सुनो। वनवासी यती कभी ग्राम्य गीतोंको न सुने। देखो, व्याधके मधुर गीतमें मोहित होकर हरिण उसके जालमें फस कर परवश हो जाता है ॥ १७ ॥ हरिणीपुत्र ऋष्यशृंग मुनि स्त्रियोंके ग्राम्य गीत गाने बजाने और नाचनेको देख कर उनके वशवर्त्ती बने एवं उनके हाथकी पुतली हो गये ॥ १८ ॥ मैंने मीनसे जो सीखा है, सो सुनो। जैसे मीन चंचल जिह्वाके वश होकर मांसके टुकड़ेमें छिपेहुए लोहेके काँटेमें बिध कर प्राण गँवा देता है, वैसेही रसके स्वादमें मोहित मंदमति मनुष्य

---

* हाथी पकड़नेवाले लोग पहले एक बाड़ेमें हथनीको बाँध देते हैं और उसके भीतर जानेकी एकही राह रखते हैं, उस राहमें बडाभारी गड़ा खोदकर उसे घासफूससे पाट देतेहैं। हथनीको देखकर कामान्ध हाथी, वहाँ जाकर गड़ेमें गिरकर फसजाता है।

दुर्दमनीय जिह्वाके कारण मृत्युको प्राप्त होता है । इस लिये सबसे पहले जिह्वाको वशमें करना चाहिये ॥ १९ ॥ विद्वान् विवेकी लोग रसनाके सिवा अन्य सब इन्द्रियोंको शीघ्र वशमें कर सक्ते हैं । निराहार रहनेसे और भी रसना प्रबल होती है और भोजन करने पर रसकी आसक्तिसे और इन्द्रियाँ भी चलायमान होती हैं । इसीसे चाहिये कि केवल शरीरधारणके प्रयोजनसे स्वादकी आसक्तिको छोड़कर, जो कुछ मिलजाय, वही खाकर सन्तुष्ट रहे । अन्य इन्द्रियोंको जीत लेने-पर भी जब तक जिह्वा नहीं जीती जाती तब तक कोई जितेन्द्रिय नहीं कहा जा-सक्ता । रसनाको वशमें कर लेनेसे सब इन्द्रियाँ सहजमें जीती जासक्ती हैं ॥२०॥ ॥ २१ ॥ विदेह राजा जनकके नगरमें पहले एक पिंगला नाम वेश्या रहती थी । हे नृपनन्दन! उससे जो कुछ मैंने सीखा है सो सुनो ॥ २२ ॥ वह वेश्या एक दिन किसी नगरनिवासीको अपने शयनगृहमें लानेके लिये भली भाँति सुन्दर शृङ्गार करके सायङ्कालके समय घरके बाहर द्वार पर आकर खड़ी हुई ॥ २३ ॥ हे पुरुष-श्रेष्ठ! वह धनकी लालसा रखनेवाली वेश्या जिस मनुष्यको राहमें आता हुआ देखती थी उसीको धन देकर रति करनेवाला धनी नागर समझती थी, किन्तु जब वह पुरुष निकटसे निकल कर चला जाता था तब वह संकेतोपजीविनी वेश्या विचारती थी कि 'और कोई बहुत धन देनेवाला धनी पुरुष मेरे पास आता होगा' ॥ २४ ॥ २५ ॥ इसी प्रकारकी दुराशा करके वह सोई नहीं और उसी द्वारके सहारे वहीं पर खड़ी रही । वह कभी हताश हो कर भीतर चली जाती थी और कभी फिर आशा करके बाहर आती थी । इसी प्रकार आधी रात बीतगई, और कोई भी न आया ॥ २६ ॥ धनकी आशासे यों खड़े २ उसका मुख सूखने लगा और चित्तमें बड़ाही दुःख होनेलगा । इस अवस्थामें धनकी चिन्ता करते २ उसके हृदयमें परम सुखदायक निर्वेद उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ इस प्रकार चित्तमें निर्वेद उपजने पर उस वेश्याने जो कुछ कहा सो मैं वैसा ही तुमको सुनाये देता हूँ—सुनो । हे राजन्! पुरुषके सुदृढ़ आशापाशको काटनेवाला खड्ग एकमात्र वैराग्य ही है । जिसके हृदयमें वैराग्य नहीं उत्पन्न हुआ उसके लिये देहबन्धन काटनेका कोई और उपाय ही नहीं है ॥ २८ ॥ २९ ॥ पिङ्गलाने कहा—"अहो! मुझको कुछ भी विवेक नहीं है, मेरा चित्त तनिक भी मेरे वशमें नहीं है । मेरे मोहके पसारको तो देखो, मेरी बुद्धि अत्यन्त मन्द है, क्योंकि मैं अत्यन्त तुच्छ असमर्थ लोगोंको कान्त मान कर उनसे काम्य वस्तु पानेकी कामना करती हूँ ॥ ३० ॥ मैं बड़ी ही बेसमझ हूँ! अपने हृदयके भीतरही रमनेवाले, अतएव समीपही वर्त्तमान और नित्य रति तथा धन देनेवाले इस परम पुरुष(आत्मारूप परमेश्वर)को छोड़कर कामना पूर्ण करनेमें असमर्थ और दुःख, शोक, भय, चिन्ता, मोह आदि देनेवाले तुच्छ पुरुषोंका भजन कर

रही हूँ ! ॥ ३१॥ अहो, मैंने अबतक अत्यन्त निन्दित वेश्यावृत्तिसे अपने आत्माको व्यर्थ सन्तप्त किया ! हाय-हाय ! मैं इस अर्थलुब्ध, अनुशोचनीय और धन देनेवालेके हाथ बिकनेवाले शरीरके द्वारा लम्पट कामी पुरुषोंसे रति और धन पानेकी इच्छा करतीथी ! ॥३२॥ यह शरीर एक मल-मूत्रसे भराहुआ घर है । सीधे, तिर्छे बाँस और थूनीके स्थान पर हड्डियाँ लगी हुई हैं। यह त्वचा, रोम और नखोंसे आवृत है । इसके नव द्वारोंसे मलविकार बहा करता है, मेरे सिवा और कौन नासमझ स्त्री होगी जो इसको कान्त समझकर सेवैगी ! इस विदेहनगरीमें मैंही एक ऐसी मूढ़ बुद्धिवाली हूँ जो इन आत्मारूपसे हृदयमें स्थित आत्मप्रद अच्युतको छोड़कर और मनुष्योंसे काम-कामना करती हूँ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यह शरीरधारियोंके प्रिय सुहृत् आत्मा हैं । आत्मसमर्पणसे इन्हे मोल लेकर या इन्हींके हाथों बिककर लक्ष्मीके समान इनसे रमण करूँगी ॥ ३५ ॥ आदि–अन्तवाली अनित्य कामनाएँ और उन्हे देनेवाले नश्वर मनुष्य, अथवा कालके भयसे भीत देवगण अपनी पत्नियों (या उपासकों)का कितना प्रिय साधन कर सक्ते हैं ? या करते हैं ? ॥ ३६ ॥ मुझ दुराशामें मोहित होरही वेश्याके हृदयमें ऐसे सुखदायक वैराग्यके उपजनेसे निश्चय होता है कि भगवान् विष्णु अवश्यही किसी पूर्व-पुण्यसे प्रसन्न हुए हैं ॥३७॥ यदि मैं वास्तवमें मंद भाग्यवाली होती तो कभी इतने क्लेश मुझको न मिलते । इन्ही क्लेशोंहीसे मुझको आज वह वैराग्य प्राप्त हुआ है, जिससे गृह आदि बन्धनोंको काटकर मनुष्यगण परम सुख या शान्ति पाते हैं ॥ ३८ ॥ अब मैं श्रीविष्णुके इस उपकार (वैराग्य) को सादर शिर पर लेकर विषयसंगत दुराशाको छोड़कर उसी अधीश्वरकी शरणमें जाती हूँ ॥ ३९ ॥ इस अनायास मिले हुए वैराग्य पर श्रद्धा स्थापन करके जो कुछ मिलेगा उसीसे जीविकानिर्वाह करूँगी और इस प्रकार सन्तोषपूर्वक अपने आत्माको रमण मानकर इसीके साथ सुखसे विहार करूँगी ॥ ४० ॥ संसारकूपमें पतित और विषयोंकी प्रबल वासनासे नष्टदृष्टि एवं कालसर्पके मुखमें अवस्थित इस आत्माकी रक्षा (सिवा परमात्माके) और कौन करसक्ता है ? ॥ ४१ ॥ जब इस जगत्को कालसर्पकवलित देखकर यह आत्मा सावधान होता है और इस लोक तथा परलोकके सब प्रकारके भोगोंसे विरक्त होजाता है तब आपही अपनी रक्षा करता है" ॥ ४२ ॥ अवधूत ब्राह्मणने कहा–हे राजन् ! पिङ्गला वेश्याने इस प्रकार निश्चय कर किसी नागरके आनेकी और उससे धन पानेकी दुराशा छोड़ परम शान्ति पाई और अपनी शय्या पर जाकर सुखसे सोई ॥ ४३ ॥

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ॥
यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला ॥ ४४ ॥

आशा ही परम दुःख है और निराशा (वैराग्य) ही परम सुख है। क्योंकि देखो, कान्तकी आशा छोड़ देने पर पिंगला सुखसे सोसकी ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय।

अवधूतके सम्वादकी समाप्ति।

ब्राह्मण उवाच–परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम् ॥
अनन्तं सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिंचनः ॥ १ ॥

अवधूत ब्राह्मणने कहा। मैंने कुरर पक्षीसे जो सीखा है, सो सुनो। मनुष्योंको जो २ वस्तु अत्यन्त प्यारी है उस २ वस्तुकी आसक्ति या सञ्चय ही दुःखका मूल कारण है। इस सत्य सिद्धान्तको जाननेवाला अकिञ्चन पुरुष अनन्त सुखको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ मांसयुक्त कुररपक्षीको अन्य निरामिष सबल पक्षी मांसके लिये मारते हैं। उस मांसको छोड़कर वह सुखसे रहताहै ॥२॥ मैंने बालकसे जो सीखा है, सो सुनो। मेरे निकट मान या अपमान कुछ भी नहीं है, पुत्र-परिवारसंपन्न गृहस्थ लोगोंकी मुझे कोई चिन्ता नहीं। मैं बालककी भाँति आपही अपने साथ क्रीड़ा करता हूँ और आपही आप अपनेमें मग्न रहता हूँ। इस प्रकार परम प्रसन्नतापूर्वक संसारमें विचरता हूँ ॥ ३ ॥ एक तो भोलाभाला, निरुद्यम बालक और दूसरा मायासे अतीत अर्थात् ईश्वरको प्राप्त ज्ञानी पुरुष–ये ही दोनो निश्चिन्त और परमानन्दमें मग्न रहते हैं ॥४॥ मैंने कुमारीसे जो सीखा है, सुनो। एक कुमारी कन्याके 'वरण'के लिये कुछ लोग उसके घरमें आये। उस समय कन्याके पिता, माता, बन्धु आदि सब कहीं कामसे गये थे, इस कारण उसने आपही आगत लोगोंकी अभ्यर्थना की ॥५॥ तदनन्तर अतिथियोंको भोजन बना कर खिलानेके लिये वह कन्या एकान्तमें बैठ कर धान कूटने लगी। हे राजन्! धान कूटते समय उसके हाथकी चूड़ियोंमें बड़ा शब्द होने लगा। तब दरिद्रतासूचक उस शब्दको लज्जाजनक जान कर उस बुद्धिमती कन्याने एक २ करके सब चूड़ियाँ तोड़ डालीं; केवल दो २ चूड़ियाँ दोनो हाथोंमें रख छोड़ीं ॥६॥७॥ फिर भी धान कूटने पर शब्द होता ही रहा, वह दोष नहीं मिटा। तब उस कन्याने एक २ चूड़ी और तोड़ कर एकही एक रहने दी, जिससे शब्द होना बंद होगया ॥८॥ हे शत्रुदमन! लोकतत्त्व जाननेकी इच्छासे पृथ्वीपर्य्यटन करते २ मैंने उस कुमारीकी बुद्धिसे यह शिक्षा पाई है कि बहुत लोगोंका एकत्र रहना या दो जनोंका एकत्र रहना कलह और अनिष्टका मूल कारण है। इस कारण उस कुमारीके कंकण (चूड़ी) के समान सबसे अलग अकेले ही रहना चाहिये। क्योंकि

फिर किसी प्रकारकी खटपटका खटका नहीं होता ॥९॥१०॥ मैंने वाण बनानेवालेसे चित्तको एकाग्र करना सीखा है। आसन और श्वासको वशमें कर वैराग्यसे वशीभूत और अभ्यासयोगसे स्थिर मनको निरालस्यभावसे अपने लक्ष्य (परमात्मा)में लगाना चाहिये ॥११॥ यह संकल्प-विकल्पात्मक मन उस परमानन्दरूप भगवान्में स्थित हो कर धीरे २ विषयवासनामय मैलको छोड़कर निर्मल होता है और फिर शान्तिस्वरूप सतोगुणके बढ़नेसे जब रजोगुण-तमोगुणका नाश हो जाता है तब इन्धनहीन अग्निके समान निर्गुण निश्चेष्ट निर्वाण पदको प्राप्त होता है (इसी अवस्थाको समाधि कहते हैं) ॥ १२ ॥ जैसे वाणको सीधा कर बनानेमें दत्तचित्त एक वाण बनानेवाला, बाजेगाजे और धूमधामके साथ निकटहीसे निकल गई राजाकी सवारीको नहीं जान सका, वैसेही चित्तको एकाग्र कर लेने पर अर्थात् परमात्मामें लगा देने पर बाहर और भीतर किसी वस्तु या विषयका ज्ञान नहीं रहता; यहाँतक कि इस अवस्थामें ईश्वरसे भिन्न अपना अस्तित्व भी भूल जाता है ॥ १३ ॥ मैंने सर्पसे जो सीखा है, सो सुनो। मुनिको चाहिये कि सर्पकी भाँति अकेले विचरण करे, अपने रहनेका स्थान न नियत करे, सावधान रहे, गुहा आदिमें पड़ रहे, आचारोंसे अलक्षित और असहाय एवं अल्पभाषी होकर इच्छानुसार घूमता रहे ॥१४॥ यह शरीर अनित्य है, इस लिये निष्फल गृहका आरम्भही मनुष्यके अत्यन्त दुःखका कारण है। सर्पको देखो, दूसरेके बनाये घर (विल)में घुस कर सुखसे रहता है, या वृद्धिको प्राप्त होता है ॥१५॥ मैंने ऊर्णनाभिसे जो सीखा है, सो सुनो। एकमात्र नारायण देव, इस विश्वको, कल्पके आदिमें, पहले अपनी मायासे प्रकट करते हैं और फिर प्रलयकाल आनेपर अपनी कालशक्तिके द्वारा सब शक्तियोंको अपनेमें लीन कर, आत्माधार और सर्वाधार रूपसे एक-अद्वितीय अवशिष्ट रहते हैं, अपनी श्रेष्ठ शक्ति कालके द्वारा जब सत्त्व आदि शक्तियाँ क्रमशः अपने २ कारणमें लीन होती हुई अन्तमें परम कारण अपनेमें लीन हो जाती हैं तब प्रधान और पुरुषके नियन्ता भगवान् नारायण ब्रह्मादिक और अन्यान्य मुक्त जीवोंके भी प्राप्य अर्थात् लयका स्थान होकर, अपने परमानन्दमय कैवल्यमोक्षरूपसे स्थित होते हैं। भगवान्की यही विशुद्ध स्थिति कैवल्यमोक्ष कह कर वेदोंमें प्रतिपादित हुई है। हे कामक्रोधादि शत्रुओंका दमन करनेमें समर्थ महाराज! वह निरुपाधि, निर्विषय, स्वप्रकाश, परमानन्द, मोक्षरूप परमेश्वर अखण्ड आत्मानुभवरूप कालके द्वारा त्रिगुणमयी अपनी मायाको सचेष्ट करके उससे पहले सृष्टिके सूत्रस्वरूप महत्तत्त्वको प्रकट करते हैं ॥ १६-१९ ॥ महत्तत्त्वहीसे तीनो गुणोंकी व्यक्ति होती है, अर्थात् विविध विश्वकी सृष्टि करनेवाला त्रिविध अहंकार प्रकट होता है। सूत्रस्वरूप महत्तत्त्वहीमें यह विश्व ओतप्रोत है। अध्यात्मप्राणवायुरूप महत्तत्त्वहीसे पुरुष (जीवात्मा) संसारमें प्रवृत्त

होता है ॥ २० ॥ जैसे ऊर्णनाभि हृदयसे मुखके द्वारा जाला फैलाकर फिर उसे लील लेता है, वैसेही परमेश्वर इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं ॥ २१ ॥ मैंने पेशस्कृत्से जो सीखा है, सो सुनो। देहधारी जीव जहाँ २, जिस २ में, स्नेह द्वेष या भयसे सम्पूर्ण रूपसे मनको लगाता है—अन्तसमय उसीके रूपको पाता है ॥२२॥ पेशस्कृत् एक कीड़ेको लेजाकर अपने रहनेके बिलमें अपने आगे बन्दी बना कर रखता है और वह कीड़ा भयसे सब समय उसीका ध्यान करते २ उसी शरीरसे वही (पेशस्कृत्) हो जाता है। इसी प्रकार ईश्वरचिन्तन करनेवाले भक्तजन भी सारूप्य मोक्षको पाते हैं ॥ २३ ॥ हे राजन्! इस प्रकार इन सब गुरुओंसे ये बातें मैंने सीखी हैं। हे समर्थ! अब मैंने अपने शरीरसे जो सीखा है सो कहता हूँ—सुनो ॥ २४ ॥ यह शरीर भी मेरा गुरु है, क्योंकि इसीसे विवेक और वैराग्य मुझे मिला है। निरन्तर मानसिक चिन्ता ही जिसका मुख्य फल है वह उत्पत्ति और विनाश ही इसका धर्म है, इस कारण इसीसे यह सत्य तत्त्व मैंने पाया है कि सभी सांसारिक विषय इसी शरीरके समान अनित्य हैं और इसी विवेकसे मुझे वैराग्य हुआ है; मैं इसीके द्वारा यथार्थ तत्त्वोंका विचार या अनुसन्धान करता हूँ। तथापि इसको पराया (कुत्ते, सियारों आदिका भक्ष्य) समझकर निःसङ्ग, निर्लिप्त भावसे विचरता रहता हूँ ॥ २५ ॥ जिस शरीरको भोग सुख पहुँचानेके लिये कष्टसे धनसञ्चय करनेवाला यह पुरुष—स्त्री, पुत्र, अर्थ, पशु, भृत्य, गृह और आत्मीय लोगोंको एकत्र कर उनके पालन पोषणकी चिन्तामें लिप्त रहता है वह देह अन्तसमय छोड़ देता है। देह छूट जाने पर भी दुःखका अन्त नहीं होता, क्योंकि यह देह वृक्षके समान नष्ट होनेसे पहले अन्य देहके कर्मरूप बीजको बोजाता है ॥ २६ ॥ जैसे अनेक सपत्नियाँ अपने एकमात्र स्वामीको अपनी २ ओर घसीट कर शिथिल कर डालती हैं, वैसे ही इस पुरुषको रसना, तृषा, शिश्न, त्वचा, उदर, कान, नासिका, चंचल नेत्र और कर्मशक्ति आदिक इन्द्रियाँ अपनी २ ओर खींचती हैं ॥ २७ ॥ अपनी शक्ति मायाके द्वारा वृक्ष, सरीसृप, पशु, पक्षी, मच्छड़ आदि काटनेवाले जन्तु और मत्स्य आदि अनेक शरीरोंको उत्पन्न कर और सन्तुष्ट न होकर भगवान् नारायण देवने ब्रह्मदर्शनदायिनी बुद्धिसे सम्पन्न मनुष्यशरीरको उत्पन्न किया और इससे परम प्रसन्न हुए। इस लिये मनुष्य शरीर सबसे श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥ यद्यपि यह नरतनु अनित्य है, तथापि दुर्लभ है, बहुत जन्मोंके उपरान्त बड़े पुण्योंसे कहीं मिलता है। यह पुरुषार्थ (मुक्ति) का साधन है । जिसके लिये सदैव मृत्युका मुख निकट है ऐसे क्षणभंगुर नरतनुको पाकर, उसके छूटनेके पहलेही शीघ्र मुक्ति मिलनेके लिये प्रयत्न करना ही विवेकी व्यक्तिका कर्त्तव्य है। विषयभोग तो पशु आदि सभी योनियोंमें मिलते हैं, उनके लिये प्रयत्न करनेमें इस अलभ्य

अवसरको गँवा देना महामूर्खता है। मनुष्यशरीरका मुख्य और श्रेष्ठ फल ब्रह्मज्ञान या मुक्ति ही है ॥२९॥ इस प्रकार वैराग्यसम्पन्न मैं अहङ्कार और सङ्गको छोड आत्मनिष्ठ होकर विज्ञानदीपकके प्रकाशमें सुखपूर्वक पृथ्वीपर्यटन करता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि एक ही गुरुसे सुस्थिर और सुपुष्ट ज्ञान नहीं प्राप्त होता; क्योंकि यद्यपि ब्रह्म एक अद्वितीय है, तथापि ऋषिलोग अपनी २ बुद्धिके अनुसार भिन्न २ रीति और भावसे उसका निरूपण या वर्णन करते हैं ॥ ३० ॥ ॥ ३१॥ श्रीभगवान् कहते हैं। हे उद्धव! गंभीरबुद्धि ब्राह्मण इस प्रकार यदुको ज्ञानोपदेश कर चुप होरहे। यदुने सादर पूजन करके उनको प्रणाम किया और वह प्रसन्नतापूर्वक यदुसे विदा होकर इच्छानुसार चलदिये ॥ ३२ ॥

अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः ॥
सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह ॥ ३३ ॥

हमारे पूर्वजोंके भी पूर्वज राजा यदु इस प्रकार अवधूतके उपदेशको सुनकर उसी समयसे संगहीन और समदर्शी होकर ईश्वरकी आराधनामें लगगये ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय।

उद्धवके और प्रश्न ।

श्रीभगवानुवाच—मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः ॥
वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ॥ १ ॥

श्रीभगवान्ने कहा। हे उद्धव! मेरे कहे हुए अपने २ धर्म्ममें अवस्थित और मेरे आश्रित हो कर निष्काम चित्तसे अपने वर्ण आश्रम और कुलके सदाचारका भली भाँति पालन करना चाहिये ॥ १ ॥ अपने धर्म्मके अनुशीलन और अनुसरणसे चित्तको विशुद्ध करके देखना चाहिये कि विषयासक्त मनुष्य सब विषयोंको यथार्थ तत्त्व या नित्य-सत् समझ कर जो २ कर्म्म करते हैं उनसे विपरीत ही फल होता है, अर्थात् सुखके बदले दुःखही मिलता है ॥ २ ॥ निद्रित व्यक्तिका स्वप्नावस्थामें विषयदर्शन या चिन्ताकारीका मनोरथ जैसे नानारूप होनेके कारण निष्फल होता है वैसेही विषयोंमें इन्द्रियजनित आत्मबुद्धि भी भेदपरायण होनेके कारण विफल है ॥ ३ ॥ पूर्णरूपसे मेरे आश्रित हो कर निवृत्तिके लिये केवल नित्य-नैमित्तिक कर्म्म करने चाहिये और प्रवृत्तिप्रवर्त्तक काम्य कर्म न करने चाहिये। जिस समय पूर्ण रूपसे आत्माके विचारमें प्रवृत्त हो उस समय नित्य

नैमित्तिक कर्म्मोंकी भी विशेष आस्था त्याग देनी चाहिये ॥ ४ ॥ मत्परायण मनुष्य अहिंसा आदि संयमोंका सादर सेवन करे और यथाशक्ति शौच आदि नियमोंका भी पालन करे । किन्तु यम, नियमकी अपेक्षा अधिक आदरसे भली भाँति मुझे जाननेवाले, शान्त, साक्षात् मेरे ही रूप गुरुकी उपासना करे ॥ ५ ॥ अभिमान, मत्सर, आलस्य और ममताको छोड़ कर दृढ़ प्रेम और श्रद्धासे गुरुकी सेवा करनी चाहिये । तत्त्वजिज्ञासु शिष्यको असूया, व्यग्रता और व्यर्थ वार्तालाप छोड़ कर गुरूकी सेवामें उपस्थित रहना चाहिये ॥ ६ ॥ अपने प्रयोजन (परमसुखरूप आत्मा)को सर्वत्र समान देखता हुआ अर्थात् सर्वत्र समदर्शी होकर और अतएव स्त्री, पुत्र, देह, गेह, पृथ्वी, स्वजन, धन आदिमें उदासीन—ममताहीन होकर केवल गुरुकी सेवा करनी चाहिये ॥ ७ ॥ जैसे दाहक और प्रकाशक अग्नि दाह्य और प्रकाश्य काष्ठसे भिन्न पदार्थ है, वैसे ही साक्षीमात्र स्वप्रकाश आत्मा भी स्थूल और सूक्ष्म, दोनो प्रकारके शरीरसे पृथक् है ॥ ८ ॥ जैसे ध्वंस, जन्म, सूक्ष्मत्त्व, महत्त्व और अनेकत्त्व .आदिक गुण वास्तवमें अग्निके नहीं हैं, काष्ठसे संश्लिष्ट होनेके कारण काष्ठके उक्त गुणोंको अग्नि धारण करता है, वैसेही आत्मा भी देहके जन्म–मरणादि गुणोंको धारण करता है, किन्तु वास्तवमें वे गुण आत्माके नहीं हैं–शरीरके हैं ॥ ९ ॥ ईश्वरके गुणसमूह द्वारा यह पुरुषका देह विरचित है । इसी देहके निबन्धसे जीवका जन्म–मरण होता रहता है । यह माया मोहमय जीवका देहबन्धन आत्मज्ञानसे छिन्न होता है । अतएव कार्य्य-कारणसमूह(शरीर)में अवस्थित केवल परम आत्माको विचारके द्वारा भली भाँति जान कर क्रमशः असत् देहादिमें होनेवाली वस्तु-बुद्धिको त्याग देना चाहिये ॥ १० ॥ ११ ॥ आचार्य्य नीचेका काष्ठ है और शिष्य ऊपरका काष्ठ है एवं उपदेश मध्यस्थ मथन काष्ठ है । इन तीनो काष्ठोंकी रगड़से उत्पन्न विद्या(आत्मज्ञान)रूप अग्नि परम सुख-(मोक्ष)दायक है ॥ १२ ॥ अति निपुण शिष्यको प्राप्त वही विद्यारूप अत्यन्त विशुद्ध बुद्धि, गुणसम्भूत माया (अहंभाव) को निवृत्त कर एवं संसारके कारण गुणोंको भस्म कर निरिन्धन अग्निके समान आप भी शान्त हो जाती है ॥ १३ ॥ हे उद्धव ! यदि (जैमिनि आदि मुनियोंके मतानुसार) कर्म-कर्त्ता और सुख-दुःख भोगी जीवात्माको अनेक मानते हो; यदि स्वर्गादि लोक, काल, कर्मबोधक शास्त्र और आत्मा (शरीर) की नित्यता स्वीकार करते हो; यदि सम्पूर्ण भोग्य पदार्थोंकी स्थितिको धारावाहिकरूपसे नित्य मानते हो और यदि समझते हो कि उन २ घटपटादि आकृतियोंके भेदसे बुद्धि उत्पन्न होती है और भेदभावको प्राप्त होती है, अतएव अनित्य होनेके कारण नाशको प्राप्त होती है—तो, ऐसा होनेपरभी, देह-सम्बन्ध और सम्वत्सरादि कालके अवयवोंसे सम्पूर्ण देहधारियोंकी जन्मआदि अवस्थाओंका होना सिद्ध होता है एवं सम्पूर्ण कर्म्मोंके कर्त्ता और सुख दुःखोंके

भोक्ता जीवकी पराधीनता लक्षित होती है, तब ऐसे अस्वतन्त्रके भजनेसे कौन पुरुषार्थ सिद्ध होसक्ता है? ॥ १४—१७ ॥ अतएव पण्डित देहधारियोंकोभी सम्यक् ज्ञानके बिना कुछ सुख नहीं है, वैसेही मूढ़ लोगोंको भी कुछ दुःख नहीं है। तात्पर्य्य यह है कि जो लोग सम्यक् प्रकारसे कर्म करना जानते हैं वे ही यथार्थ सुखी हैं और जो नहीं जानते वे विद्वान् होने पर भी मूढ़ोंके समान दुःखी हैं, क्योंकि मृत्युका भय उनको लगा रहता है। इस कारण 'हम कर्मकुशल होनेके कारण सुखी हैं'—ऐसा कर्मवादियोंका अहंकार व्यर्थ है ॥ १८ ॥ वे यदि सुखकी प्राप्ति और दुःखके नाशको जानते भी हैं, तथापि साक्षात् मृत्युके प्रभावके प्रतिबन्धक उपायको नहीं जानसक्ते ॥ १९ ॥ जिस प्रकार, जिसको वधिक वध करनेके लिये वध्यस्थानमें लिये जा रहा है उसे कोई भी सुखभोग सुखी नहीं करसक्ता उसी प्रकार निकट ही मृत्युके उपस्थित रहने पर पुरुपको कौन विपयभोग या पुरुपार्थ सुखी कर सक्ता है? ॥ २० ॥ दृष्ट सुखभोगकी भाँति श्रुत सुख (स्वर्गादि लोक) भी स्पर्द्धा, असूया, नाश और नित्य क्षयके द्वारा दूषित है एवं उसका सुख भी विघ्नबहुल है; अतएव बहुविघ्नपूर्ण खेतीके समान निष्फल है, अर्थात् अनित्य है ॥ २१ ॥ भली भाँति अनुष्ठित धर्म्म कर्म यदि विघ्नोंसे अविहत रह कर पूर्ण होता है तो उससे मिलनेवाले स्थानमें जिस प्रकार जीव जाता है—सो सुनो ॥ २२ ॥ यज्ञ करनेवाले कर्म्मकाण्डी लोग इस लोकमें यज्ञोंके द्वारा देवतोंका यजन कर स्वर्ग लोकको जाते हैं और वहाँ देवतोंके समान अपने पुण्यसे उपार्जित दिव्य सुख भोग करते हैं॥ २३ ॥ मनोहरवेपधारणपूर्वक निज पुण्यके द्वारा सर्वभोगसम्पन्न शुभ्र विमान पर चढ़ कर अप्सराओंके साथ विहार करते हैं और गन्धर्व्वगण गुणगान करते हैं ॥ २४ ॥ देवतोंकी क्रीड़ाके स्थान नन्दन आदि उपवनोंमें जाकर किंकिणीजालमालामण्डित और इच्छानुसार गमन करनेवाले विमान पर बैठे हुए सुखपूर्वक स्वर्गकी सुन्दरियोंके साथ विहार करते रहते हैं और एक दिन अवश्य होनेवाले पतनको नहीं जानते ॥ २५ ॥ हे उद्धव! जब तक पुण्य समाप्त नहीं होता, तभी तक वे इस प्रकार आनन्दपूर्वक स्वर्गमें सुखभोग करते हैं। जब पुण्य क्षीण हो जाता है, तब इच्छा न होने पर भी, कालचालित होकर, वे अधःपतित होते हैं ॥ २६ ॥ यदि जीव, असत् व्यक्तियोंके संगमें पड़ कर अधर्मनिरत, अजितेन्द्रिय, नीचाशय, लोभी, लम्पट और प्राणिहिंसामें निरत रह कर विधिविहीन पशुवध करता हुआ प्रेत भूत आदिका यजन करता है तो वह अवश्यही बिवश हो नरकयातना भोगनेके उपरान्त घोर अज्ञान अर्थात् जड़ योनियोंमें प्रवेश करता है ॥२७॥२८॥ कर्म्मोंका उत्तरकाल दुःखदायक है। इस दुर्लभ नरदेहके द्वारा उन कर्म्मोंको करके उन्हींके द्वारा यह जीव फिर शरीरको पाता है। अतएव मर्त्यधर्मयुक्त जीवोंको उन

कर्म्मोंसे क्या सुख हो सक्ता है? ॥ २९ ॥ केवल साधारण मनुष्योंहीको नहीं, बरन् लोक, कल्पजीवी लोकपाल एवं द्विपरार्द्धपरिमित-परमायुसम्पन्न ब्रह्माको भी मुझ कालरूपसे विनाशका भय है ॥ ३० ॥ गुणोंसे कर्म्मोंकी और मुख्य गुण प्रकृतिसे गुणोंकी सृष्टि होती है एवं यह जीव उन गुणोंमें अहं-भाव करनेके कारण कर्म्मफलोंको भोगता है। अर्थात् वास्तवमें जीवात्मा कर्त्ता या भोक्ता नहीं है ॥ ३१ ॥ जब तक गुणोंकी विषमता (अहंकारादि) रहती है तब तक आत्माका अनेकत्त्व (भेदभाव) रहता है, और जब तक अनेकत्त्व रहता है तब तक परतन्त्रता रहती है ॥ ३२ ॥ और जब तक पराधीनता रहती है, तब तक ईश्वररूप कालसे भय लगा रहता है। अतएव जो लोग विषय-भोग और कर्म्मके सेवक हैं वे शोकाकुल होकर मोहित होते हैं ॥३३॥ हे उद्धव! माया क्षोभ (सृष्टि) होने पर काल, आत्मा, आगम, स्वभाव और धर्म इत्यादि अनेक नामोंसे मेरा ही निरूपण किया जाता है ॥ ३४ ॥ उद्धवने कहा। हे विभो! गुणोंसे सम्बन्ध रहने पर भी देहधारी जीव, देहके कर्म्म और उन कर्म्मोंके फल सुख-दुःख आदिसे मुक्त कैसे रहता है? और यदि आकाशके समान अनावृत होनेके कारण उसका गुणोंसे सम्बन्ध नहीं है तो फिर वह गुणोंमें कैसे बँधता है? कृपा कर मेरे इस संशयको निवृत्त करिये ॥ ३५ ॥ वद्ध और मुक्त व्यक्तियोंका व्यवहार और विहारका क्रम क्या है? उनके लक्षण क्या हैं? वे क्या खाते पीते हैं? क्या छोड़ देते हैं? कैसे सोते, बैठते, चलते और रहते हैं ॥ ३६ ॥

एतदच्युत मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर ॥
नित्यमुक्तो नित्यबद्ध एक एवेति मे भ्रमः ॥ ३७ ॥

हे प्रश्नको समझ कर उसका यथार्थ उत्तर देनेवालेमें श्रेष्ठ! मेरे इन प्रश्नोंका उत्तर दे कर इस भ्रमको निवृत्त करिये कि 'क्या एक ही आत्मा नित्यबद्ध और नित्यमुक्त है?' ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय ।

वद्ध और मुक्तके लक्षण ।

श्रीभगवानुवाच—बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ॥
गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम् ॥१॥

श्रीभगवान्ने कहा। हे उद्धव! मेरे उपाधिरूप सत्त्वादिगुणोंके कारण आत्माके बन्धन और मोक्षकी व्याख्या होती है, वास्तवमें आत्मारूप मैं मायामूलक बन्धन

और मोक्ष, दोनो से अतीत हूँ । मैंने ऐसा ही निर्णय किया है ॥ १ ॥ शोक, मोह, सुख, दुःख और देहकी उत्पत्ति आदि सब कार्य्य मायाके हैं । इस कारण स्वप्नकी भाँति उक्तधर्मयुक्त संसार (आवागमन) भी बुद्धिविकारमात्र होनेके कारण अवास्तविक है ॥ २ ॥ हे उद्धव ! निश्चय जानो कि देहधारियोंके बन्धन और मोक्षका कारणरूप विद्या और अविद्या ये दोनो मेरी मायासे रचित मेरी ही आद्या शक्तियाँ है ॥ ३ ॥ हे महामते ! मेरे अंशस्वरूप एकही जीवको अविद्यासे अनादि बन्धन और विद्यासे मोक्ष प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ हे उद्धव ! अब एकही धर्मी (शरीर) में स्थित अथच विरुद्धधर्मसम्पन्न (शोक और आनन्दसे परिपूर्ण) बद्ध और मुक्त, दोनोकी विलक्षणता तुम्हारे आगे कहता हूँ ॥ ५ ॥ ये दोनो पक्षी (जीव और ईश्वर) एकही वृक्ष (देह) में इच्छानुसार नीड़निर्माण कर अवस्थित हैं । ये दोनोही सदृश (चित्स्वरूप) और सखा (अवियुक्त और एकमत) हैं, इनमेंसे एक (जीव) पिप्पलान्न अर्थात् वृक्षके फलों (सुखदुःखादि कर्मफलों) को खाता है और दूसरा (परमात्मा) निरन्न (केवल साक्षीमात्र) रहने पर भी बलमें (अपने आनन्दमें तृप्त रहकर, ज्ञानरूप बलमें) अधिक है ॥ ६ ॥ जो निराहार है वह विवेकी अपनेको और अपनेसे भिन्न (माया) को जानता है, और जो पिप्पलान्न खाता है वह वैसा नहीं है। जो अविद्यायुक्त है वह नित्यबद्ध है, और जो विद्यायुक्त है वह नित्यमुक्त है ॥ ७ ॥ स्वप्नावस्थासे उत्थित व्यक्तिके समान विवेकी आत्मा देहस्थ होनेपर भी देहस्थ नहीं है, क्योंकि देहजनित सुखदुःखादिसे अतीत है, और दूसरा अविवेकी स्वप्न देखनेवाले व्यक्तिके समान (वास्तवमें) देहस्थ न होकरभी देहस्थ है, क्योंकि देहाभिमानी होकर देहजनित सुख दुःखोंको भोगता है ॥ ८ ॥ अतएव निर्विकार विवेकीको चाहिये कि 'इन्द्रियाँ अपने विषयोंको और गुण अपने गुणोंको ग्रहण करते हैं'—ऐसा समझकर 'मैं यह करताहूँ'—इस प्रकारकी अहंभावना न करे ॥ ९ ॥ जो अविद्वान्—अविवेकी है वह इन्द्रियग्राह्य विषयोंद्वारा इस दैवाधीन शरीरमें ममता स्थापितकर, 'मैं करताहूँ'—इस भावनाके कारण बन्धनको प्राप्त होता है ॥१०॥ विवेकी जन इस प्रकार विरक्त रहकर शयन, उपवेशन, पर्यटन, स्नान, दर्शन, स्पर्श, भोजन, श्रवण और घ्राण आदि विषयविशेषोंको तत्तद्विषयग्राहिणी इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण करता हुआ भी उक्त विषयोंमें आसक्त नहीं होता—प्रकृतिमें अवस्थित रहकर भी आकाश, सूर्य और अग्निके समान निर्लिप्त रहता है और वैराग्याभ्याससे तीक्ष्ण हुई तथा विवेकबुद्धिको बढ़ानेवाली निर्मल दृष्टिके द्वारा सब संशयों(मायामोह)को छिन्न कर सोकर जागे हुए व्यक्तिके समान देहादिके प्रपञ्चसे निवृत्त होता है ॥ ११—१३ ॥ जिसके प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिके सब आचरण सङ्कल्पशून्य होते हैं वह पूर्वसंस्कारवश शरीरमें स्थित होकर देहके धर्मोंसे मुक्त है ॥ १४ ॥ शरीरको यदि हिंसक लोग

कुछ पीड़ा पहुँचाते हैं तब जो दुःखित नहीं होता, और यदि कोई व्यक्ति आदर पूजा करता है तब जो सुखी नहीं होता, वही विकारशून्य व्यक्ति विवेकी है ॥१५॥ समदर्शी और गुणदोषभावनारहित मुनिको चाहिये कि प्रियकारी या अप्रियकारी, प्रियवादी या अप्रियवादीकी न स्तुति करे—न निन्दा करे ॥ १६ ॥ किसी उद्देश्यसे कुछ भला या बुरा कर्म न करे, न कुछ भला या बुरा कहे और न कुछ भला या बुरा ध्यावे । आत्माराम होकर उक्त वृत्तिका अवलम्बनकर जड़ोंकी भाँति विचरै ॥१७॥ वेदपारगामी होकर भी जो कोई ध्यान आदि उपायोंसे परब्रह्ममें चित्तको नहीं लगाता तो बहुत कालकी व्याई गऊको पालनेवाले पुरुषकीभाँति केवल परिश्रम ही उसके हाथ लगता है ॥ १८ ॥ हे उद्धव! दूध देनेमें असमर्थ गऊ, असती स्त्री, पराधीन शरीर, असत् पुत्र, सुपात्रको न दियागया धन और मुझसे शून्य वाक्यकी रक्षा करनेका प्रयासी पुरुष दुःखके उपरान्त दुःख पाता है, अर्थात् उसे कभी सुख नहीं मिलता ॥ १९ ॥ संसारसृष्टि-स्थिति-संहार-सम्पन्न मेरे पावन कर्म और लीलावतारकृत जगत्प्रिय मेरे कर्म, जिसमें नहीं हैं वह वाणी निष्फल है; ऐसी व्यर्थ वाणीसे बिवेकी लोगोंको दूर रहना चाहिये ॥ २० ॥ इस प्रकार तत्त्वविचारके द्वारा भेद भ्रमको मनसे निकाल कर विशुद्ध चित्तको मुझ सर्वव्यापीमें लगावे और निवृत्त—निश्चेष्ट होरहे ॥ २१ ॥ यदि इस प्रकार मनको निश्चल कर मुझमें लगानेमें असमर्थ हो, तो निरपेक्षभावसे मेरे उद्देश्यसे सब कर्मोंको करे, अर्थात् मेरी ही आराधनाके विचारसे कर्मोंको करे ॥ २२ ॥ हे उद्धव! वह श्रद्धापूर्वक लोकपावनी, मङ्गलमयी मेरी कथाओंका पठन, श्रवण, गान और स्मरण करे एवं वारम्वार मेरे जन्मकर्मोंका अभिनय करता हुआ मेरे ही उद्देश्यसे अर्थात् निष्काम होकर धर्म, अर्थ, काम आदिका अनुष्ठान करे । ऐसा करनेसे वह मेरे आश्रित व्यक्ति मुझ सनातन ईश्वरमें निश्चल भक्तिको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ सत्सङ्गसे प्राप्त मेरी भक्तिसे जो मुझे भजता है वह साधुओंके दिखाए मेरे पदको अवश्य अनायास ही अन्त—समय पाता है ॥२५॥ उद्धवने कहा । हे उत्तमश्लोक प्रभो! आपके मतमें साधु किसको कहना चाहिये, अर्थात् साधुके लक्षण क्या हैं? और साधुजन जिसका आदर करते हैं उस आपमें उपयुक्त भक्तिके लक्षण क्या हैं? ॥ २६ ॥ हे पुरुषाध्यक्ष! हे लोकाध्यक्ष! हे जगत्के प्रभो! मैं प्रणत और अनुरक्त भक्त एवं शरणागत हूँ, कृपाकर यह वर्णन कीजिये ॥ २७ ॥ आप आकाशके सदृश सङ्गहीन और प्रकृतिसे परे पुरुष परब्रह्म हैं । हे भगवन्! अपनी इच्छाके अनुसार आप इस परिमेय शरीरसे पृथ्वी पर प्रकट हुए हैं ॥ २८ ॥ भगवान्‌ने कहा। हे उद्धव! जो सब देहधारियों पर कृपा करता है, सबसे सहानुभूति रखता है, हिंसा और द्रोहसे विमुख है, क्षमाशील है, सत्यव्रत है, काम-क्रोध आदि दोषोंसे शून्य है, समदर्शी है, सबके उपकारकी चेष्टा करता है, जिसका चित्त कामनाओंसे

अभिभूत नहीं है, जो जितेन्द्रिय है, कोमलहृदय है, सदाचारी है, सङ्गहीन अर्थात् उदासीन है, अकिञ्चन है, निरीह अथवा निरपेक्ष है, मित भोजन करनेवाला है, शान्त (जितचित्त) है, स्थिर (अपने धर्ममें निरत) है, एकमात्र मेरे ही आश्रित है, मुनि (मननशील) सावधान है, निर्विकार है, धीर (विपत्तिमें भी अदीन) है, देहके छः धर्मों (भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्यु) को जीत चुका है, मानकी इच्छा नहीं रखता, औरोंका मान करता है, औरोंको ज्ञानोपदेश करनेमें प्रवीण है, सरल है, कारुणीक और सम्यक्ज्ञानसम्पन्न है—वही श्रेष्ठ साधु है, अर्थात् मेरे मतमें श्रेष्ठ साधुके ये लक्षण हैं ॥ २९–३१ ॥ जो वेदोक्त गुण, दोष दोनोको जान कर वेदरूपसे मेरे आदिष्ट अपने वर्णाश्रम कर्मोंको छोड़ कर (भक्तिही पर दृढ़ विश्वास कर) मेरी आराधना करते हैं वे भी मेरे मतमें श्रेष्ठ साधु हैं ॥ ३२ ॥ मैं जो, जितना, और जैसा हूँ सो वारम्वार जान कर अर्थात् इसी का मनन करते हुए जो लोग अनन्य भावसे मुझे भजते हैं वे मेरे मतमें अत्यन्त श्रेष्ठ (साधु) हैं। हे उद्धव! प्रतिमा आदि मेरे चिन्हों और मेरे भक्तोंके दर्शन, स्पर्श, पूजन, परिचर्य्या, स्तुति और मनोहर गुण कर्मोंके कीर्त्तनमें तत्पर रहना; मेरी कथा सुननेमें श्रद्धा और मेरा ध्यान करना; जो कुछ मिले सो मेरे अर्पण कर देना और दास्यभावसे आत्मसमर्प्पण कर देना; मेरे जन्मों और कर्मोंको कहना-सुनना और मत्सम्बन्धी पर्वदिनमें उत्सव करना; सम्प्रदायके अनुसार मेरे मन्दिरमें गाना, बजाना, नाचना और भक्तोंकी गोष्ठीमें उत्सव मनाना; सब वार्षिक पर्वोंमें मेरे स्थानोंमें जाकर पुष्पादिसे मेरा पूजन करना और वैदिक या तान्त्रिक अथवा दोनो दीक्षा लेना; मेरे "व्रत" रखना और मेरी प्रतिमाकी प्रतिष्ठामें श्रद्धा; उद्यान, उपवन, क्रीड़ागृह, पुर और मन्दिर आदिके निर्माणमें शक्तिके अनुसार अकेले ही या और लोगोंको सम्मिलित कर प्रयत्न करना; मेरे मन्दिरमें मार्जन, लेपन, छिड़काव, मण्डलावर्त्तन आदि करके दासकी भाँति निष्कपटभावसे मेरी सेवा करना; अभिमान और दंभसे दूर रहना; और किये हुए धर्म कर्मको किसीके आगे न कहना; येही सब भक्तिके लक्षण हैं। इसी भक्तिसे मुझमें मन मिल जाता है ॥ ३३–४० ॥ इसके अतिरिक्त मुझे अर्पित दीपक या निवेदित वस्तुको अपने व्यवहारमें न लाना भी भक्तके लिये आवश्यक है। जो २ वस्तु उत्तम होनेके कारण लोगोंको अत्यन्त प्रिय और अभिलषित हो, तथा जो २ वस्तु अपनेको बहुत प्रिय और रुचती हो—सो २ सब मेरे अर्पण करना चाहिये; ऐसा करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है। हे भद्र! सूर्य्य, अग्नि, विप्र, गऊ, वैष्णव, अपना हृदय, वायु, जल, पृथ्वी, आत्मा और सब प्राणी, इनमें मेरी पूजा करनी चाहिये। वेदविद्या के द्वारा सूर्य्यमें, घृतहवन द्वारा अग्निमें, आतिथ्य–सेवा द्वारा ब्राह्मणमें, तृण जल आदिके द्वारा गऊमें, मित्रोंके समान सम्मान द्वारा वैष्णवोंमें, ध्यानके

द्वारा अपने हृदयमें, प्राणबुद्धिके द्वारा वायुमें, जलआदि सामग्रियोंसे जलमें, गोपनीय मन्त्रन्यासके द्वारा पृथ्वीमें, अनेक भोगोंके द्वारा आत्मामें और समदृष्टिके द्वारा सब प्राणियोंमें, क्षेत्रज्ञ आत्मारूप मेरी पूजा करनी चाहिये । समाधिके द्वारा शंख-चक्र-गदा-पद्म-धारी शान्तरूप मुझ चतुर्भुजका ध्यान करते हुए उक्त स्थानोंमें श्रद्धापूर्वक एकाग्रचित्त होकर मेरी पूजा करना उचित है । जो कोई एकाग्र हो मुझे सर्वत्र व्याप्त देख कर इस प्रकार भजता है उसे मेरी दृढ़ भक्ति अवश्य प्राप्त होती है और साधुसेवासे मेरा सम्यक् ज्ञान मिलता है ॥ ४१-४८ ॥ हे उद्धव! सत्सङ्गजनित भक्तियोगके अतिरिक्त संसार-पार होनेका और कोई उत्तम (सहज) उपाय नहीं है; क्योंकि मैं साधुजनोंका एकमात्र श्रेष्ठ 'आश्रय' हूँ ॥ ४९ ॥

अथैतत्परमं गुह्यं शृण्वतो यदुनन्दन ॥
सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत्सखा ॥ ५० ॥

हे यदुनन्दन! तुम श्रद्धापूर्वक इस परम गुप्त विषयको सुनना चाहते हो और मेरे एकान्त अनुगत, सुहृद् और सखा हो, अतएव अत्यन्त गोप्य होने पर भी मैं यह (वर्णनीय) विषय तुम्हारे आगे कहता हूँ ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय ।

साधुसंगकी महिमा और कर्म्मानुष्ठान व कर्म्मत्यागकी विधिका वर्णन ।

श्रीभगवानुवाच—न राधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ॥
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा । हे उद्धव! हे मित्र! सर्वसङ्गनिवारक सत्सङ्गद्वारा जिस प्रकार पूर्णरूपसे मैं वशीभूत होता हूँ उस प्रकार योगाभ्यास, तत्त्वविवेक, अहिंसादि सदाचारधर्म, वेदाध्ययन, तपस्या, संन्यास, अग्निहोत्र, कुआँ-बावली खुदवाना और बाग लगवाना, दानदक्षिणा, व्रत, यज्ञ, गोपनीय मन्त्रजप, तीर्थयात्रा, नियम और यम आदिक अन्यान्य सब साधनोंसे नहीं होता ॥१॥२॥ भिन्न २ युगोंमें दैत्य, राक्षस, पक्षी, मृग, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, यक्ष, विद्याधर और मनुष्योंमें राजसी-तामसी प्रकृतिके वैश्य-शूद्र-स्त्री एवं अन्त्यज आदि जातियोंके अनेकों जन, केवल सत्संगके प्रभावसे मेरे परमपदको प्राप्त हुए हैं। वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मयासुर, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, गज, जटायु, तुलाधार वैश्य, व्याध, कुब्जा, व्रजकी गोपियाँ और यज्ञ कर-

नेमें तत्पर माथुर ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ एवं ऐसेही अन्यान्य अनेक जन, केवल सत्संगके प्रभावसे अनायास ही मेरे दुर्लभपदको प्राप्त हुए हैं। देखो, गोपिका, यमलार्जुन, गोगण, कालीनाग एवं व्रजके अन्यान्य मृग, पक्षी और जड़ तृण, तरु, लता गुल्म आदि सब, केवल सत्सङ्गसे प्राप्त मेरे भक्तिभावसे अनायास ही मुझे पाकर कृतार्थ हुए हैं। उक्त अज्ञानी और जड़ोंमेंसे किसीने वेद नहीं पढ़े, महा महात्मामुनियोंकी उपासना नहीं की, कोई व्रत नहीं रक्खा और तप भी नहीं किया। हे उद्धव! इसीसे कहते हैं कि योग, ज्ञान, दान, व्रत, तप, यज्ञ, व्याख्या, स्वाध्याय आदिके द्वारा यत्न करने पर भी मैं दुर्लभ हूँ; केवल भक्ति और सत्संगही ऐसा साधन है जिससे मैं सुलभ हूँ ॥ ३—९ ॥ गोपियोंको मुझ पर ऐसा अनन्य प्रेम था कि जब अक्रूर जा कर बलभद्रसहित मुझे मथुराको ले आये उस समय अत्यन्त दृढ़ प्रेमके द्वारा मुझमें जिनका चित्त अनुरक्त था उन गोपियोंको मेरे वियोगसे अत्यन्त दुस्सह दुःख हुआ और उनको समग्र जगत् सुखसे शून्य दिखाई देने लगा ॥ १० ॥ वृंदावनमें गौवें चरानेवाले मुझ प्रियतमके साथ रह कर जिन रात्रियोंको उन्होने एक क्षणके समान बिता दिया था वेही रात्रियाँ मेरे वियोगमें उन्हे 'कल्प'के समान जान पड़ती थीं ॥ ११ ॥ हे उद्धव! जैसे मुनिलोग समाधिके समय अपने नाम और रूप(अस्तित्व)को भूल कर तन्मय हो जाते हैं, वैसेही आसक्तिवश मुझमें मन लगानेके कारण पति-पुत्र आदि स्वजन, शरीर, इस लोक और परलोकको भूल कर गोपिकाएँ भी, नदियाँ जैसे समुद्रमें मिल जातीहैं वैसे, मुझमें लीन होगई थीं ॥ १२ ॥ इस प्रकार केवल मेरी कामनासे, रमण और जार समझ कर, उन सैकड़ों-हजारों गोपियोंने मुझे भजा, उन्हे मेरे रूप (ब्रह्मत्व) का कुछ भी ज्ञान न था, तथापि सत्सङ्गके प्रभावसे, परब्रह्मरूपहीसे मैं उनको प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ इस कारण, हे उद्धव! तुम श्रुति, स्मृति, प्रवृत्ति, निवृत्ति, श्रोतव्य और श्रुत—सब छोड़ कर, सब शरीरधारियोंके आत्मारूप एकमात्र मुझको भक्तिपूर्वक अपना आश्रय अथवा अवलम्ब बनाओ। मेरी शरणमें आनेसे तुम अकुतोभय हो जाओगे ॥ १४ ॥ १५ ॥ उद्धवने कहा। हे योगेश्वरोंके ईश्वर! मेरे मनको भ्रमानेवाला मेरा संशय आपके इस कथनको सुन करभी अभी भलीभाँति निवृत्त नहीं हुआ। कृपा कर पूर्णतया समझा कर उसे दूर करिये ॥ १६ ॥ श्रीभगवान्ने कहा। चक्रसमूहके मध्यमें जिसका प्रकाश होताहै वही अपरोक्ष परमेश्वर (जीव), नादसम्पन्न प्राणसहित गुहा (आधारचक्र) में प्रविष्ट हो, मनोमय सूक्ष्मरूपको प्राप्त होकर अर्थात् पश्यन्तीसे मध्यमा और उससे मणिपूरक चक्रमें होता हुआ विशुद्धि चक्रमें पहुँच कर, मात्रा, स्वर और वर्णरूपसे अत्यन्त स्थूल (वेदशाखात्मक) होता है ॥ १७ ॥ जैसे आकाशमें ऊष्मारूपसे—अव्यक्तभावसे स्थित अग्नि, काष्ठमें

बलपूर्वक मथने पर वायुकी सहायता पाकर अणुरूपसे उत्पन्न (व्यक्त) होता और फिर घृत पाकर बढ़ता है वैसेही इस वाणीरूपसे मेरी (शब्दब्रह्मकी) अभिव्यक्ति होती है ॥ १८ ॥ इसी प्रकार वचन, कर्म्म, गति, विसर्जन, घ्राण, रसास्वाद, दर्शन, स्पर्श, श्रवण, संकल्प, विज्ञान, स्वभाव और सतोगुण, रजोगुण, तमोगुणके विकार अर्थात् इन्द्रियादि त्रिविध प्रपञ्च—ये मेरी अभिव्यक्ति हैं ॥ १९ ॥ यह परमेश्वर (मैं) आदिमें अव्यक्त एवं एकमात्र था, और फिर बीज जैसे खेतको पाकर बढ़ता है वैसेही शक्तियोंके विभक्त होने पर बहुधा प्रतीत होता है। यह त्रिगुणाश्रय और पद्मयोनि, अर्थात् ब्रह्माण्डरूप पद्मका कारण है ॥ २० ॥ पटमें सूत्रोंकी भाँति समग्र विश्व इसमें ओतप्रोतभावसे व्याप्त है । यही प्रवृत्तिशील, सनातन संसारतरु है। भुक्ति इसका पुष्प है और मुक्ति इसका फल है ॥ २१ ॥ पुण्य और पाप—ये दो इसके बीज हैं, अपरिमित वासनाएँ इसकी जड़ें हैं, तीनो गुण इसके प्रकाण्ड हैं, पञ्चभूत इसके स्कंध हैं, शब्दादि पाँच विषय इससे उत्पन्न रस हैं, ग्यारह इन्द्रियाँ इसकी शाखाएँ हैं, जीवात्मा और परमात्मा—ये दोनो पक्षी नीड़निर्म्माण कर इसमें अवस्थित हैं, वात—पित्त—श्लेष्मा—ये तीन इसके बल्कल हैं, सुख और दुःख ये दो इसके परिपक्व फल हैं। इस प्रकारका यह वृक्ष सूर्य्यमण्डल तक व्याप्त है ॥ २२ ॥ कामी गृहस्थलोग इसके दुःखरूप फलको खाते हैं, और वनवासी परमहंसलोग इसके सुखरूप फलको पाते हैं। जो कोई पूज्य गुरुकी सहायतासे एकमात्र निर्गुण परमात्माको इस प्रकार सगुणरूपसे बहुरूप जानता है वही वेदके यथार्थ तत्त्वको जानता है ॥ २३ ॥

एवं गुरूपासनयैकभक्त्या विद्याकुठारेण शितेन धीरः ॥
विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः संपद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥२४॥

हे उद्धव! इस कारण तुम अनन्यभक्तिपूर्वक गुरुकी उपासनासे प्राप्त भक्तियोगके द्वारा तीक्ष्ण किये गये विद्यारूप कुठारसे सावधानतासहित जीवोपाधि लिङ्गशरीरको काटनेके उपरान्त परमात्मामें लीन होकर विद्यारूप अस्त्रको भी त्याग दो ॥ २४ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय ।

हंसोपाख्यान ।

श्रीभगवानुवाच—सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः ॥
सत्त्वेनान्यतमौ हन्यात्सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥ १ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा । उद्धव! सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण—ये गुण बुद्धिके हैं, आत्माके नहीं हैं; सतोगुणके द्वारा अन्य दो गुणोंको जीत कर सत्वकी वृत्तियोंको सत्वही (शान्ति)से जीतना चाहिये ॥ १ ॥ सत्वके बढ़नेसे पुरुषको मेरी भक्तिरूप धर्म प्राप्त होता है । सात्विक वस्तुओंके सेवनसे सत्वकी वृद्धि होती है और उससे धर्ममें (मेरी भक्तिमें) प्रवृत्ति होती है । सत्वकी वृद्धिसे उत्पन्न परमोत्तम धर्म के द्वारा रजोगुण-तमोगुणकी वासनाएँ विनष्ट होती हैं। इन दोनो गुणोंके मिटने पर इन्हीसे होनेवाला अधर्म भी शीघ्रही नष्ट हो जाता है ॥२॥३॥ शास्त्र, जल, परिजन, देश, काल, कर्म, जन्म (दीक्षारूप), ध्यान, मन्त्र और संस्कार, ये दस गुणोंकी वृद्धिके कारण हैं ॥ ४ ॥ इनमेंसे वृद्ध अनुभवी लोग जिनकी प्रशंसा करते हैं वे ही सात्विक हैं, और जिनकी निन्दा करते हैं वे ही तामस हैं, और जिनकी न प्रशंसा ही करते हैं और न निन्दा ही करते हैं वे ही राजस हैं ॥ ५ ॥ सत्ववृद्धिके लिये सात्विक शास्त्रादिका सेवन करना चाहिये । उसीसे धर्म होता है और गुणनाशपर्यन्त ज्ञान होता है ॥ ६ ॥ बाँसोंकी परस्परकी रगड़से उत्पन्न अग्नि जैसे अपनी ज्वालाओंसे बाँसोंके वनको भस्म कर शान्त होता है, वैसेही गुणसमष्टिसम्भूत शरीर भी अपनेसे उत्पन्न ज्ञान या विद्यासे अपने 'कारण' अविद्याको भस्म कर निवृत्त होता है ॥ ७ ॥ **उद्धवने कहा** । हे कृष्ण! प्रायः सभी मनुष्य जानते हैं कि सब सांसारिक विषय आपदाओंका आकर हैं, तथापि क्यों कुत्ते, गधे और बकरोंकी भाँति उनके भोगमें प्रवृत्त होते हैं? ॥ ८ ॥ **श्रीभगवान्‌ने कहा** । हे उद्धव! अविवेकी व्यक्तिके हृदयमें जो 'मैं' यह अन्यथाबुद्धि उत्पन्न होती है उसीके द्वारा सत्त्वप्रधान मन घोर रजोगुणमें लिप्त होता है ॥ ९ ॥ दुर्मति (अविवेकी) के रजोयुक्त मनसे संकल्प-विकल्पकी उत्पत्ति होती है और संकल्प-विकल्प होने पर विषय-चिन्तनके कारण प्रबल वासना होती है ॥ १० ॥ तब रजोगुणके वेगसे विमोहित अजितेन्द्रिय पुरुष विषयवासनासे विवश होकर, अन्तमें दुःखदायक जान कर भी, कर्मोंको करता है ॥ ११ ॥ रजोगुण, तमोगुणमें बुद्धिके बहँकने पर भी विवेकी लोग सावधानतापूर्वक दोषदृष्टिके द्वारा वारम्वार मनको रोकते हुए, उनमें आसक्त नहीं होते ॥ १२ ॥ सावधान और आलस्यरहित रह कर यथासमय श्वासा और

आसनको स्थिर कर धीरे २ मनको मुझमें लगा कर योगसाधनमें प्रवृत्त होना चाहिये ॥ १३ ॥ मेरे शिष्य सनकादिकोंने इसीको 'योग' कहा है कि 'मनको सब विषयोंसे हटा कर पूर्णरूपसे साक्षात् मुझमें स्थापित करे' ॥ १४ ॥ **उद्धवने कहा** । हे केशव ! आपने जिस समय जिस रूपसे सनकादिकोंको इस योगका उपदेश किया सो सब सुन कर जाननेकी मुझे बड़ी अभिलाषा है ॥ १५ ॥ **श्रीभगवान्‌ने कहा** । हे उद्धव ! ब्रह्माके मानसपुत्र सनकादिकोंने एक समय पितासे योगका परम सूक्ष्म परम तत्त्व पूछा । उन्होने कहा कि 'हे प्रभो ! स्वभावतः चित्त सब विषयोंमें और सब विषय चित्तमें प्रविष्ट होते हैं। इस कारण सब विषयोंको छोड़ कर मोक्षकी इच्छा रखनेवाला पुरुष चित्त और विषयोंको परस्पर अलग कैसे कर सक्ता है ?' । भूतभावन स्वयम्भू ब्रह्मा, पुत्रोंके इसप्रकार पूछने पर, बुद्धिके कर्मोंमें विक्षिप्त होनेके कारण, बहुत सोचने परभी इस प्रश्नके बीज या कारणको न जानसके । तब उक्त प्रश्नका अभिप्राय या उत्तर जाननेकी अभिलाषासे देव ब्रह्माने मेरा ध्यान किया और मैं उस समय हंसरूपसे उनके निकट उपस्थित हुआ ॥१६–१९॥ मुझको देख कर ब्रह्मासहित सनकादिक मुनि उठ खड़े हुए और ब्रह्माको आगे कर मेरे निकट पहुँच कर प्रणाम करनेके उपरान्त पूछा कि–'तुम कौन हो ?' ॥२०॥ हे उद्धव ! तत्त्वजिज्ञासु मुनियोंके इस प्रकार पूछने पर मैंने उस समय उनसे जो कहा, सो सुनो ॥ २१॥ मैंने कहा कि–"हे विप्रगण ! तुम्हारा यह प्रश्न यदि आत्माके सम्बन्धमें है तो जब परमात्मारूप सत्पदार्थ एकही है, तब तुम्हारा यह प्रश्न व्यर्थ है । अतएव उस निर्विशेष आत्मामें किस जाति-गुण-रूप-विशेषके आश्रयसे उत्तर दें ? और यदि तुम्हारा यह प्रश्न पञ्चभूतसमष्टि–शरीरके सम्बन्धमें है, तो उस दशामें भी, जब सब पञ्चतत्त्व वास्तवमें अभिन्न हैं तब 'तुम कौन हो ?'–यह तुम्हारा प्रश्न केवल वाणीका विलासमात्र है । तत्त्वविचारके द्वारा तुमको जानना चाहिये कि मन, वाक्य, दृष्टि एवं अन्यान्य इन्द्रियोंके ग्राह्य विषय सब मैंही हूँ । हे पुत्रगण ! यह सत्य है कि चित्त विषयोंमें और विषय चित्तमें परस्पर संश्लिष्ट हैं । सम्पूर्ण विषय और चित्त ही मेरे अंशरूप जीवकी उपाधि या आवरण हैं । वारम्वार विषयसेवन करनेसे चित्त विषयमय होजाता है और वासनारूपसे विषयोंकी उत्पत्ति चित्तहीसे होती है । मेरे सारूप्यको प्राप्त होकर इन दोनोको त्याग देना चाहिये । जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति–ये स्वाभाविक नहीं, किन्तु गुणकृत बुद्धिकी वृत्तियाँ या अवस्थाएँ हैं । वक्ष्यमाण क्रमानुसार जीव इनसे विलक्षण, अर्थात् इन अवस्थाओंसे रहित ही निश्चित है; क्योंकि इनका साक्षी है । बुद्धिबन्धनही आत्मामें इन वृत्तियोंको संक्रान्त करनेवाला है; अतएव मुझ 'तुरीय'–रूपमें अवस्थित होकर इस बुद्धिबन्धनको त्याग देना चाहिये । उस समय गुणगण (विषयवासना) और चित्तका विश्लेष होजायगा । उक्त प्रकारका

अहंकारकृत बन्धन आत्माके लिये जन्ममरणरूप अनर्थकी जड़ है—ऐसा समझ कर निर्वेदपूर्वक तुरीयरूप मुझ परमात्मामें अवस्थित हो अहंज्ञानको त्यागना चाहिये । व्यक्तिके द्वारा जब तक जीवकी भेदभावना निवृत्त नहीं होती तब तक वह अज्ञ जीव स्वप्नमें 'जागरण'की भाँति जागने पर भी निद्रित ही रहता है । स्वप्न देखनेवाले व्यक्तिकी भाँति 'आत्मासे भिन्न कोई पदार्थ नहीं है'–इस समझसे, इसके लिये देहादि पदार्थोंकी वर्णाश्रमादि गतियाँ, स्वर्गादिक फलरूप हेतु और कर्म्म एवं तत्कृत भेदभाव, सब मिथ्या हो जाते हैं । जो जाग्रत् अवस्थामें बाहर सब इन्द्रियोंके द्वारा क्षणभंगुर विषयोंको भोगता है एवं स्वप्नावस्थामें हृदयके भीतर वासनारूप—तदनुरूप विषयोंको अनुभवके द्वारा भोगता है और सुषुप्ति अवस्थामें सम्पूर्ण विषयभोगसे शून्य रहता है वह चेतन आत्मा एक है; वह स्मृति-सम्पन्न, तीनो अवस्थाओंका साक्षी, अतएव उनसे अतीत और सब इन्द्रियोंका ईश्वर (नियन्ता) है ॥ २२—३२ ॥ मन (बुद्धि) की उक्त तीनो अवस्थाएँ मेरे मायाके गुणों द्वारा मुझमें कल्पित हैं–ऐसा विचारते हुए, इस आत्मतत्त्वका निश्चय कर तुम लोग अनुमान और सदुक्तियोंसे तीक्ष्ण किये गये ज्ञानरूप खड्गके द्वारा सम्पूर्ण संशयोंके आश्रयरूप अहंकारको छिन्न कर हृदयमें अवस्थित मुझ आत्माको भजते रहो ॥ ३३ ॥ मनके द्वारा प्रकाशित, दृश्यमान, नश्वर, अलातचक्रतुल्य अत्यन्त अस्थिर इस विश्वप्रपञ्चको विभ्रमस्वरूप देखो । एक 'विज्ञान' बहुधा भासित होता है, अतएव गुणपरिणामसम्भूत त्रिविध विकल्प ही माया-स्वप्न है ॥ ३४ ॥ दृश्य विश्वसे दृष्टि हटा कर, तृष्णाको शान्त कर और निरीह (मन, वाणी, कायाके व्यापारोंसे रहित) हो कर निजसुख(परमानन्द)-के अनुभव में मग्न रहो । यद्यपि कभी २ (आहारादिमें) विश्वप्रपञ्च देख भी पड़ेगा, तथापि अवस्तु समझ कर पूर्व ही परित्यक्त होनेके कारण, फिर भ्रमका उत्पादक नहीं हो सकेगा; शरीरपातपर्यन्त स्मृति (विवेक) रहेगी ॥ ३५ ॥ आत्मतत्त्व जाननेका उपादान यह नश्वर शरीर चाहे उपविष्ट हो, चाहे उत्थित हो, चाहे पूर्वसंस्कारवश स्थानभ्रष्ट हो और चाहे प्रतिनिवृत्तही हो, किन्तु जैसे मदिराके मदसे अंधा हो रहा मनुष्य अपने वस्त्रके गिरने–पड़नेकी सुधि नहीं रखता वैसेही सिद्ध व्यक्ति शरीरकी भी सुधि नहीं रखते ॥ ३६ ॥ दैवाधीन शरीर भी, अपने कारणरूप प्रारब्ध अदृष्ट(पूर्वसञ्चित कर्म)की स्थिति तक प्राण और इन्द्रियोंसे सम्पन्न अर्थात् जीवित रहता है । जो समाधियोगमें अधिरूढ़ और परमार्थ वस्तुको जान गया है वह फिर स्वप्नतुल्य उस सप्रपञ्च शरीरमें आसक्त नहीं होता ॥ ३७ ॥ हे विप्रगण! मैंने सांख्य और योगका रहस्य यह तुमसे कह दिया । मैं साक्षात् विष्णु हूँ, तुमको 'धर्म' बतानेके लिये यहाँ आया हूँ ॥ ३८ ॥ हे श्रेष्ठ विप्रगण! मैं योग, सांख्यज्ञान, सत्य(निश्चत धर्म), ऋत (अनुष्ठीयमान

धर्म), तेज, श्री, कीर्ति और दमकी परम गति या परमार्थ हूँ ॥ ३९ ॥ समता और असंग आदि सब नित्य गुण, मुझ निर्गुण निरपेक्ष सुहृद् और प्रिय आत्माको निरन्तर भजते हैं" ॥ ४० ॥ श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं। हे उद्धव! मेरे वचनोंसे सनकादिकोंका सब सन्देह दूर होगया, उन्होने अत्यन्त भक्तिसे मेरी पूजा और स्तुति की ॥ ४१ ॥

तैरहं पूजितः सम्यक् संस्तुतः परमर्षिभिः ॥
प्रत्येयाय स्वकं धाम पश्यतः परमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥

उन श्रेष्ठ ऋषियोंके द्वारा भली भाँति पूजित और स्तुत हो कर मैं ब्रह्माके देखते-देखते अदृश्य हो कर अपने धामको लौट गया ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दश अध्याय।

साधनविधिसहित ध्यानयोगवर्णन।

उद्धव उवाच—वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः ॥
तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥ १ ॥

उद्धवने कहा। हे कृष्ण! ब्रह्मवादी ऋषिगण मुक्तिके अनेक साधन बताते हैं; उनमेंसे कौन साधन प्रधान हैं? या वे सभी अपने २ ढंगके एक हैं? ॥ १ ॥ हे स्वामी! आपने अनपेक्षित अर्थात् निष्काम भक्तियोगको उत्तम बताया है; क्योंकि मन उससे सब संगोंको छोड़, एकाग्रभावसे आपमें लगता है ॥ २ ॥ भगवान्ने कहा। हे उद्धव! जिसमें मेरे वचन उक्त हैं वह वेदवाणी काल-क्रमसे प्रलयके समय लुप्त होगई थी। सृष्टिके आदिमें फिर मैंने वही वेदवाणी ब्रह्माके हृदयाकाशमें प्रकाशित की। जिसके द्वारा भली भाँति मुझमें मन लगता है वही विशुद्ध धर्म्म उस वेदमें वर्णित है। ब्रह्माने अपने ज्येष्ठ पुत्र मनुको और मनुने अपने छोटे भाई भृगु, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु—इन सात महर्षि प्रजापतियोंको उस वेदका उपदेश किया। इन अपने जनक महर्षियोंसे इनके पुत्र सम्पूर्ण देवता, दानव, यक्ष, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, किंदेव, किन्नर, नाग, राक्षस और किम्पुरुष आदिने वेदविद्या प्राप्त की। इन लोगोंकी वासनाएँ राजसी, तामसी और सात्त्विकी होनेके कारण भिन्न २ प्रकारकी हैं। त्रिगुणात्मक वासनाओंके अनुसार भूत (देवासुरमनुष्यादि) और भूतपति भी भिन्न भिन्न प्रकृतिके हैं। प्रकृतिके अनुसार वे वेदकी भिन्न २ व्याख्या

करते हैं। प्रकृतिकी विभिन्नताके कारण सबकी बुद्धियाँ भी भिन्न २ प्रकारकी हैं; परम्परागत उपदेशके अनुसार कुछ लोगोंकी समझ भिन्न प्रकारकी है और कुछ लोगोंकी बुद्धि पाखण्डपूर्ण अर्थात् वेदविरुद्ध भी है ॥ ३-८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! मेरी मायासे मोहितमति लोगोंमें कामना और रुचिके अनुसार श्रेयके विषयमें मतभेद है । कोई धर्म्म (सदाचार) को, कोई यशको, कोई इष्टकामको, कोई सत्य शम दम आदिको, कोई ऐश्वर्य्यको, कोई दान और भोगको, कोई यज्ञ तप दान व्रत यम नियम आदिको स्वार्थ अर्थात् परमार्थ कहते हैं ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ किन्तु इनके कर्म्मकल्पित सब लोक अवश्यही उत्पत्ति-विनाशशील, परिणाममें नीरस, मोहपर्य्यवसित, क्षुद्र, मन्द और शोकपूर्ण हैं ॥ ११ ॥ हे सभ्य! मुझमें आत्माको अर्पित करनेवाले लोगोंको सब विषयोंकी अपेक्षा छोड़ कर आत्मारूप मुझसे जो नित्य सुख प्राप्त होता है वह सुख, विषयासक्तचित्त व्यक्तियोंको कहाँ मिल सक्ता है? अकिञ्चन, जितेन्द्रिय, शान्त, समदर्शी और मेरी प्राप्तिसे सन्तुष्टचित्त व्यक्तिके लिये दशो दिशाएँ सुखसे पूर्ण हैं। जिसने आत्माको मुझमें अर्पित कर दिया है वह मुझे छोड़ कर ब्रह्मपद, इन्द्रपद, चक्रवर्त्तीका पद, पाताल आदि बिवरोंका आधिपत्य, योगकी सिद्धियाँ अथवा मोक्ष, कुछ भी नहीं चाहता॥ १२—१४ ॥ हे उद्धव! मुझे ब्रह्मा, सङ्कर्षण, लक्ष्मी एवं अपनी मूर्त्ति भी वैसी प्रिय नहीं है जैसे तुम ऐसे अनन्यभक्त प्रिय हैं। मैं अपने अन्तर्वर्त्ती ब्रह्माण्डोंको चरणरजसे पवित्र करनेके लिये निरपेक्ष, मुनि, शान्त, द्रोहशून्य, समदर्शी व्यक्तिका अनुगमन करता रहता हूँ ॥ १५ ॥ १६ ॥ निष्किञ्चन, मुझमें अनुरक्तचित्त, शान्त, निरभिमान, अशेषजीववत्सल, निष्काम मेरे अनन्य भक्त लोग जिस सुखको भोगते हैं उसे वेही जानते हैं, अन्य कोई नहीं जान सक्ता; क्योंकि जो लोग कुछ भी नहीं चाहते वेही उस परमानन्दको पाते हैं ॥१७॥ मेरे अजितेन्द्रिय भक्त भी, विषयोंकी ओर चित्तके चलायमान होने पर भी, क्षमताशालिनी भक्तिके प्रभावसे प्रायः विषयोंमें आसक्त नहीं होते ॥ १८ ॥ जैसे अत्यन्त प्रज्वलित अग्नि काष्ठोंके ढेरको भस्म कर देता है वैसेही मेरी भक्ति सब पातकोंके पुंजको भस्म कर देती है। हे उद्धव! मेरी दृढ़ भक्तिके समान योग, विज्ञान, वेदाध्ययन, तप और दान आदि साधनोंसे मैं नहीं मिल सक्ता। साधुजनोंका प्रिय आत्मा मैं श्रद्धासम्पन्न भक्तिसे ही सुलभ हूँ । मेरी भक्ति चाण्डाल आदि अन्त्यजोंको भी जातीयदोष(नीचता)से पवित्र कर देती है। निश्चय जानो कि सत्य-दयायुक्त धर्म या तपसम्पन्न ज्ञान, मेरी भक्तिसे शून्य जीवको पूर्णतया पवित्र नहीं कर सक्ते ॥ १९-२२ ॥ बिना रोमाञ्च हुए, बिना प्रेमसे हृदय गद्गद हुए, विना नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहे कैसे भक्तिका ज्ञान हो सक्ता है? बिना भक्तिके चित्त ही कैसे शुद्ध हो सक्ता है? ॥२३॥ मेरी भक्तिसे

जिसकी वाणी और हृदय गद्गद हो जाता है, जो वारम्वार ऊँचे स्वरसे नाम ले कर मुझे पुकारता है, कभी रोता है, कभी हँसता है और कभी लज्जा छोड़ कर नाचता है—उच्च स्वरसे मेरे गुण गाता है वह मेरा पूर्ण भक्त त्रिलोकपावन है। जैसे अग्निमें तपनेसे सुवर्ण मैलको त्याग कर अपने रूपको प्राप्त होता हे वैसेही मेरे भक्तियोगसे आत्मा भी कर्मवासना छोड़ कर अपने रूप अर्थात् मेरे रूपको प्राप्त होता है ॥२४॥२५॥ अंजनरंजित चक्षुकी भाँति आत्मा मेरी पुण्य कथाओंके श्रवण और कीर्त्तनके द्वारा जैसे २ निर्मल होता जाता है वैसे २ सूक्ष्मवस्तु (ब्रह्मतत्त्व)को देख पाता है ॥ २६ ॥ हे उद्धव! जो कोई विषयचिन्ता किया करता है उसका चित्त विषयकर्मोंमें आसक्त होता है और जो कोई निरन्तर मेरा स्मरण किया करता है उसका चित्त पूर्णरूपसे मुझमेंही लीन हो जाता है ॥ २७ ॥ अतएव स्वप्न और मनोरथके समान मिथ्या विषय-चिन्ताको छोड़ कर मेरी भक्तिसे पूर्ण मनको मुझमेंही लगाओ ॥ २८ ॥ विवेकी व्यक्तिको चाहिये कि स्त्री और स्त्रीसंगनिरत व्यक्तियोंके संगको दूरहीसे छोड़ कर भयशून्य निर्जन स्थानमें बैठ कर सावधानतासहित मेरा ही ध्यान करे । स्त्रीसंग और स्त्रीसंग करनेवालोंके संगसे जैसा क्लेश और बन्धन होता है वैसा अन्य संगसे नहीं होता ॥२९॥३०॥ उद्धवने कहा । हे कमलनयन! मुमुक्षु व्यक्तिको जिस प्रकार जिस रूपसे आपका ध्यान करना चाहिये सो आप कृपा कर मुझसे कहिये ॥३१॥ श्रीभगवान्ने कहा । हे उद्धव! सम आसनमें सीधा हो कर सुखपूर्वक बैठ कर दोनो हाथोंको उत्तान भावसे गोदीमें तर-ऊपर रखना चाहिये । फिर दृष्टिको नासिकाके अग्रभागमें स्थापित कर जितेन्द्रिय हो कर पूरक, कुम्भक और रेचक क्रमके द्वारा प्राणवायुके मार्गको शुद्ध करना चाहिये । इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे खींच कर विपरीत क्रम (रेचक, पूरक, कुम्भक, क्रमसे अथवा वामनाड़ीसे पूरित वायुको दक्षिण नाड़ीसे और दक्षिण नाड़ीसे पूरित वायुको वामनाड़ीसे छोड़ कर)से धीरे २ प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये ॥३२॥३३॥ अविच्छिन्न घंटानादके सदृश, हृदयमें अवस्थित, मृणालसूत्रतुल्य ॐकारको प्राणवायुके द्वारा ऊपर ले जा कर, वहाँ उसके मस्तकमें विन्दु स्थापन करना चाहिये, अर्थात् उसे स्थिर करना चाहिये । इस प्रकार ॐकारसंयुक्त प्राणायामका त्रिकाल दस २ बार करके अभ्यास करना चाहिये । ऐसा करनेसे योगी एकही महीनेमें प्राणवायुको जीत सक्ता है ॥३४॥३५॥ प्राणवायुको वश करनेके उपरान्त योगीको चाहिये कि अधोमुख, ऊर्ध्वनाल अंतःस्थ हृत्पद्मको ऊर्ध्वमुख, प्रफुल्लित, अष्टदल एवं कर्णिकायुक्त ध्यावै ॥३६॥ उस पद्मकी कर्णिकाओंमें उत्तरोत्तर सूर्य्य, चन्द्र और अग्निकी भावना करे । अग्निके मध्यमें आगे कहे अनुसार मेरे रूपका ध्यान करे—यही मंगलरूप ध्यानकी विधि है । हृदयपद्ममें देखे कि अनुरूप अवयवोंसे सम्पन्न, प्रशान्त,

सुमुख, विशाल और मनोहर चार भुजाओंसे सुशोभित मैं विराजमान हूँ । ग्रीवा अत्यन्त रमणीय और सुन्दर है, कपोल परम सुन्दर हैं, मुखमण्डल मनोहर मंद मुसकानसे सुशोभित है, दोनो कानोंमें मकराकृत कुंडल विराजमान हैं, श्याम शरीर पर सुवर्णवर्ण पीतपट शोभायमान हे, श्रीनिकेतन वक्षःस्थलमें श्रीवत्स चिन्ह हे । हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म, हृदयमें वनमाला और कौस्तुभ, चरणोंमें नूपुर, शिरमें कान्तिशाली किरीट मुकुट, और २ अंगोंमें कटक, अंगद, कटिसूत्र आदि अलंकार सुशोभित हैं । ऐसी मेरी सर्वांगसुन्दर मनोहर मूर्तिका मुख और नयन प्रसन्नताको प्रकट कर रहे हैं । सब अंगोंमें मन (क्रमशः) स्थापित कर मेरे इस सुकुमार रूपका ध्यान करना चाहिये ॥३७-४१॥ हे उद्धव! विवेकी व्यक्तिको चाहिये कि इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे मनके द्वारा खींच कर बुद्धिरूप सारथीकी सहायतासे उस मनको पूर्णतया मुझमें लगावे। सर्वव्यापक चञ्चल मनको खींच कर एक २ अंगमें दृढ़रूपसे स्थापित करना चाहिये; एकसाथ ही सब अंगोंमें मनको न लगाना चाहिये । सुन्दर हास्यशोभित मुखमें ही सबसे पहले मनको लगाना चाहिये । जब मेरे उक्त रूपमें भली भाँति मन स्थित हो जाय तब उससे भी हटा कर सबके कारण आकाश(शून्य)में मनको लगाना चाहिये । तदनन्तर उसे भी छोड़ कर शुद्ध ब्रह्मस्वरूप मुझको आश्रय बना कर ध्याता और ध्येय—इस अलगावको भी चित्तसे दूर कर देना चाहिये; अर्थात् 'अहंब्रह्म' यह भावना करनी चाहिये । इस प्रकार चित्तके वश होने पर, जैसे ज्योतिमें ज्योतिको संयुक्त देखते हैं वैसे ही अपनेमें मुझको और सर्वमय मुझमें अपनेको देखे ॥ ४२-४५ ॥

ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः ॥
संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार सुदृढ़ ध्यानके द्वारा मुझमें निविष्टचित्त योगीके लिये फिर पदार्थ, ज्ञान और क्रियाका भ्रम (भेद) शीघ्रही निवृत्त हो जाता है ॥ ४६ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदश अध्याय ।

अणिमादि अष्टसिद्धिवर्णन ।

श्रीभगवानुवाच—जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ॥
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ॥ १ ॥

श्रीभगवान्ने कहा । हे उद्धव! जितेन्द्रिय, जितप्राण, स्थिरचित्त और मुझमें धृतचित्त योगीके निकट सब सिद्धियाँ आकर उपस्थित होती हैं ॥ १ ॥

उद्धवने कहा। हे अच्युत! किस धारणासे किस प्रकारकी कौन सिद्धि होती है? योगियोंकी कितनी सिद्धियाँ हैं? सो आप कहिये। आप ही योगियोंको सिद्धि देनेवाले हैं ॥ २ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा। हे उद्धव! धारणायोगके पारगामी जनोंने अट्ठारह सिद्धियाँ कही हैं। उनमें आठ प्रधान हैं, उनका स्वभावतः मैं ही आश्रय हूँ। अवशिष्ट दस सिद्धियाँ सत्त्वगुणके उत्कर्षसे प्राप्त होती हैं, इस लिये सामान्य हैं ॥ ३ ॥ अणिमा, महिमा और लघिमा-ये तीन सिद्धियाँ देहसे सम्बन्ध रखती हैं। प्राप्ति नाम सिद्धिका सम्बन्ध सब प्राणियोंके इन्द्रियों और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतोंसे है। श्रुत और दृष्ट विषयोंमें भोग–दर्शन–सामर्थ्य-ही प्राकाम्य नाम सिद्धि है। शक्तियोंका इच्छानुसार प्रेरणही ईशिता नाम सिद्धि है। विविध विषयभोगोंमें अनासक्ति ही वशिता नाम सिद्धि है। जिसके द्वारा सब वाञ्छित विषयोंकी सीमा प्राप्त हो वही आठवीं कामावसायिता नाम सिद्धि है। हे सौम्य! ये प्रधान आठ सिद्धियाँ मेरी स्वाभाविक सिद्धियाँ हैं। मुझे प्राप्त होने पर योगीको ये सिद्धियाँ मिलती हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ इस शरीरमें भूख-प्यासका न होना, दूरकी बात सुनना एवं दूरकी घटना देखना, मनकी सी द्रुतगति, अभिलषित रूप-लाभ, दूसरे शरीरमें प्रवेश कर जाना, स्वेच्छामृत्यु, देवरूपसे अप्सराओंके साथ क्रीड़ा करना, संकल्पसिद्धि, अप्रतिहत आज्ञा और गति, ये दस सामान्य सिद्धियाँ, सत्त्वके उत्कर्षसे होती हैं। इनके अतिरिक्त त्रिकालज्ञता, शीतोष्णादिक द्वंद्व धर्म्मोंसे अभिभूत न होना, पराये मनकी बात जानलेना एवं अग्नि, सूर्य्य, जल और विष आदिको बाँध देना एवं वशमें कर लेना—ये योगकी उद्देश्यजनित पाँच क्षुद्र सिद्धियाँ है। अब योगकी जिस धारणासे जो सिद्धि होती है सो मुझसे सुनो ॥ ६–९ ॥ भूतसूक्ष्मोपाधिक मुझमें तन्मात्रभूत सूक्ष्माकार मनकी धारणा करनेसे भूतसूक्ष्मके उपासक योगीको 'अणिमा' सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १० ॥ महत्तत्त्वोपाधिक मुझमें महत्तत्त्वाकार मनकी धारणा करनेसे 'महिमा' सिद्धि प्राप्त होती है। आकाशादि महाभूत स्वरूप मुझमें पृथक् २ मनकी धारणा करनेसे योगीको पृथक् २ उपासित भूतकी 'महिमा' प्राप्त होती है ॥ ११ ॥ सब तत्त्वोंके परमाणुस्वरूप मुझमें चित्तकी धारणा करनेसे योगीको कालसूक्ष्मात्मक 'लघिमा' नाम सिद्धि मिलती है ॥ १२ ॥ वैकारिक अहंकाररूप मुझमें एकाग्र चित्तकी धारणासे मुझमें अभिनिविष्टचित्त व्यक्तिको इन्द्रियाधिष्ठाता देवतारूपसे सर्वेन्द्रियसम्बन्धरूप 'प्राप्ति' नाम सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १३ ॥ अव्यक्तजन्मा सूत्रस्वरूप मुझ महत्‌में जो कोई चित्त लगाता है वह मेरी सर्वोत्कृष्ट 'प्राकाश्य' सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ जो कोई त्रिगुणात्मिका मायाके नियन्ता कालमूर्त्ति मुझ विष्णु (व्यापक)में चित्त लगाता है वह जीव और जीवकी उपाधि(शरीर)की प्रेरणारूप 'ईशिता' नाम सिद्धिको

प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ भगवत् शब्दसे निरूपित नारायण नामक मुझ 'तुरीय'-में जो मन लगाता है वह योगी मेरे धर्मसे सम्पन्न होकर 'वशिता' नाम सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ जो योगी निर्गुण ब्रह्मरूप मुझमें विशुद्ध चित्तको स्थापित करता है वह परमानन्दमयी 'कामावसायिता' नाम सिद्धिको प्राप्त होता है । इस सिद्धिके मिलने पर सब कामनाओंका अन्त हो जाता है ॥ १७ ॥ हे उद्धव! सत्त्वमूर्त्ति, धर्म्ममय, श्वेतद्वीपवासी मुझमें चित्त स्थापित करनेसे, मनुष्य, क्षुधा–तृष्णा–शोक–मोह–जरा–मरण–शून्य होकर शुद्धरूप हो जाता है ॥ १८ ॥ आकाशात्मा समष्टिरूप प्राणमय मुझमें मनके द्वारा नादकी भावना करनेसे यह जीव विविध प्राणियोंके (दूरवर्त्ती होने पर भी) उसी आकाशमें अभिव्यक्त वाक्योंको सुनता है ॥ १९ ॥ चक्षुको सूर्य्यमें और सूर्य्यको चक्षुमें संलग्न कर उस उभय-सम्बन्धके मध्यमें मन-ही-मन मेरा चिन्तन करनेसे मनुष्यको दूरहीसे सब विश्व देख पड़ता है ॥ २० ॥ मनके द्वारा प्राणवायुसहित शरीरको मुझमें स्थापित करने पर उस धारणाके प्रभावसे जहाँ मन जाता है वहीं शरीर उपस्थित होता है, अर्थात् मनोजव सिद्धि मिलती है ॥ २१ ॥ सर्वरूप मुझमें मन लगानेसे, मेरे योगबल-रूप आश्रयके प्रभावसे योगी जिस रूपको चाहता है वही रूप धर सक्ता है ॥ २२ ॥ सब शरीरोंमें मुझ आत्मारूपका चिन्तन करनेसे योगीको परकाय-प्रवेश नाम सिद्धि प्राप्त होती है । उस अवस्थामें योगी अपने शरीरको छोड़ कर प्राणवायुरूपसे भ्रमरकी भाँति परकायामें प्रवेश कर सक्ता है ॥ २३ ॥ एँड़ीसे गुह्य द्वारको दबा कर प्राणोपाधिक आत्माको क्रमशः हृदय, वक्षःस्थल, कण्ठ और मस्तकमें ले जाकर ब्रह्मरन्ध्रसे निकाल कर योगी ब्रह्ममें लीन हो सक्ता है । इस सिद्धिको स्वच्छन्दमृत्यु कहते हैं । इसी क्रमसे शरीर त्याग कर योगी पर-कायामें भी प्रवेश करता है ॥ २४ ॥ देवतोंकी विहारभूमिमें जाकर क्रीड़ा करनेकी इच्छा हो, तो योगीको चाहिये कि शुद्धसत्त्वरूप मेरी मूर्त्तिका मनमें ध्यान करे । ऐसा करनेसे सत्त्वांशरूपिणी सुरसुन्दरियाँ विमान लेकर निकट उपस्थित होती हैं ॥ २५ ॥ मुझ सत्यसंकल्प सर्वशक्तिमान्‌में मन लगानेसे योगी भी सत्यसंकल्प हो सक्ता है । मुझ सर्वनियन्ता, स्वाधीनमें मन लगानेसे मेरेही समान योगीकी भी आज्ञा कहीं नहीं निष्फल होती । मेरी भक्तिसे चित्त शुद्ध होजाने पर धारणायोगमें प्रवीण योगीको तीनो कालका ज्ञान प्राप्त होता है और पराये मनकी बात भी ज्ञात होती है । वह योगी इस सिद्धिके प्रभावसे जन्म–मरणका हाल भी बता सक्ता है ॥ २६–२८ ॥ जैसे जल जल-जन्तुओंका घातक नहीं है उसी प्रकार मेरे योग(ध्यान)द्वारा युक्तचित्त योगीका भी शरीर अग्नि आदिसे नष्ट नहीं होता । इस दशामें योगी द्वंद्वसहन भी कर सक्ता है ॥ २९ ॥ जो कोई श्रीवत्स, ध्वजा, अस्त्र, अलंकार, छत्र, व्यजन आदिसे युक्त

मेरे अवतारोंके ध्यानमें मनको लीन करता है वह अपराजित होता है और अग्नि आदिको अपने वशमें रख सक्ता है ॥ ३० ॥ मेरे उपासक योगीके निकट पूर्वोक्त धारणाओंके समय उक्त सब सिद्धियाँ उपस्थित होती हैं ॥ ३१ ॥ इन्द्रिय, प्राणवायु, चित्तको वशीभूत कर मुझ तुरीयरूप नारायणकी भावनामें मग्नमन दान्त मुनिको कोई भी सिद्धि दुर्लभ नहीं है ॥ ३२ ॥ किन्तु ये सब सिद्धियाँ उत्तम योगाभ्यासमें निरत मत्परायण योगीके लिये विघ्नस्वरूप कही गई हैं। इन्हे व्यर्थ कालक्षेपका कारण समझ कर इनकी कामना न करनी चाहिये। हे उद्धव ! जन्म, औषधि, तप, मन्त्र आदिसे सिद्ध होनेवाली सब सिद्धियाँ योगीको योगसे मिल सक्ती हैं, किन्तु योगकी गति (सालोक्य, सारूप्य आदि चार प्रकारकी मुक्ति) अन्य उपायोंसे नहीं मिल सक्ती । इस कारण योगीको चाहिये कि इन सिद्धियोंमें न फँस कर अपने मुख्य उद्देश्यको सिद्ध करनेके लिये अहैतुकी धारणा करता रहे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ मैं सब सिद्धियोंका और मोक्ष एवं मोक्षके साधन विज्ञानयुक्त ज्ञान, योग, धर्म्म और धर्म्मका उपदेश करनेवाले ब्रह्मवादियोंकाभी हेतु, पति और प्रभु हूँ ॥ ३५ ॥

अहमात्मान्तरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् ॥
यथा भूतानि भूतेषु बहिरन्तः स्वयं तथा ॥ ३६ ॥

मैं आवरणशून्य, सब देहधारियोंमें व्याप्त, अन्तर्य्यामी आत्मा हूँ। जैसे पाँचो तत्त्व सब प्राणियोंके भीतर और बाहर अवस्थित हैं वैसेही मैं भी सबके भीतर और बाहर व्यापक हूँ ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडश अध्याय ।

महाविभूतिवर्णन ।

उद्धव उवाच—त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यन्तमपावृतम् ॥
सर्वेषामपि भावानां त्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥ १ ॥

उद्धवने कहा ! हे नाथ! आप साक्षात् परब्रह्म, अनादि, अनन्त, स्वाधीन हैं। सब पदार्थोंका पालन, स्थिति, नाश और उद्भव आपहीसे होता है ॥ १ ॥ आप सब उच्च, नीच मतोंमें अवस्थित होने पर भी अकृतपुण्य असदाचारी लोगोंके लिये दुर्ज्ञेय हैं । वेदके तात्पर्यको भली भाँति जाननेवाले ब्राह्मण ही यथार्थ रूपसे आपकी उपासना करते हैं ॥ २ ॥ भगवन्! श्रेष्ठ ऋषिगण भक्ति-

पूर्वक जिन २ भावोंमें आपकी उपासना कर पूर्ण सिद्धिको प्राप्त होते हैं वह प्रणाली आप कृपा कर मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ हे भूतभावन! आप सब प्राणियोंके अन्तर्यामी हैं। आप गूढ़ रूपसे सब प्राणियोंमें अवस्थित हैं, आप सबको देखते हैं, तथापि आपकी मायासे मोहित हो रहे प्राणी आपको नहीं देख पाते ॥ ४ ॥ हे महाविभूतिसम्पन्न! स्वर्ग पृथ्वी पाताल एवं दश दिशाओंमें आपकी विशेष शक्तिसे युक्त जो २ विभूतियाँ हैं उन्हे मुझे बताइये । गंगातीर्थ की उत्पत्तिके स्थान आपके चरणारविन्दोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा। हे उद्धव! हे प्रश्नवित् लोगोंमें श्रेष्ठ! कुरुक्षेत्रके बीच युद्धभूमिमें शत्रुता करनेवाले जातिभाइयोंसे युद्ध करनेके समय अर्जुनने भी मुझसे यही प्रश्न किया था ॥ ६ ॥ 'मैं मारूँगा—ये मरेंगे'—इस प्रकारकी लौकिक बुद्धिके कारण राज्यके लिये ज्ञातिवधको निन्दित मान कर अर्जुन जब युद्धके विचारसे निवृत्त हो गये तब मैंने उनको युक्तिपूर्ण वाक्योंसे समझाया और युद्ध करनेके लिये उद्यत किया। उस समय युद्धभूमिमें पुरुषसिंह अर्जुनने भी तुम्हारे समान यही प्रश्न मुझसे किया था ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे उद्धव! मैं इन सब प्राणियोंका आत्मा, सुहृद् और ईश्वर हूँ। ये सब प्राणी मैं ही हूँ, और इनकी सृष्टि, स्थिति एवं ध्वंसका कारण हूँ ॥ ९ ॥ गमनशील व्यक्ति और वस्तुओंमें मैं गति हूँ । हे सौम्य! वशकर्त्ता प्रेरकों और गुणोंमें मैं काल और प्रकृति हूँ। गुणी व्यक्तियोंमें मैं औत्पत्तिक गुण हूँ ॥ १० ॥ गुणसम्पन्न वस्तुओंमें मैं सूत्र (सृष्टिका प्रथम कार्य्य) हूँ । महान् वस्तुओंमें मैं महत्तत्त्व हूँ। सूक्ष्मवस्तुओंमें मैं जीव हूँ । दुर्जयोंमें मैं मन हूँ ॥ ११ ॥ वेदोंमें मैं हिरण्यगर्भ हूँ। मंत्रोंमें मैं त्रिवृत् प्रणव हूँ । अक्षरोंमें मैं अकार हूँ। छन्दोंमें मैं गायत्री हूँ ॥ १२ ॥ सब देवतोंमें इन्द्र, वसुओंमें अग्नि नाम वसु, आदित्योंमें विष्णु नाम आदित्य और रुद्रोंमें नीललोहित नाम रुद्र मैं हूँ ॥ १३ ॥ महर्षियोंमें भृगु, राजर्षियोंमें मनु, देवर्षियोंमें नारद और धेनुओंमें कामधेनु मैं हूँ ॥ १४ ॥ सिद्धेश्वरोंमें कपिलदेव, पक्षिवृन्दमें गरुड़, प्रजापतियोंमें दक्ष और पितृगणमें अर्य्यमा मैं हूँ ॥ १५ ॥ हे उद्धव! दैत्योंमें असुरपति प्रल्हाद, नक्षत्र और औषधियोंमें सोम एवं यक्ष-राक्षसोंमें धनेश (कुवेर) मैं हूँ ॥ १६ ॥ गजराजोंमें ऐरावत, जलवासियोंमें जलजन्तुओंके प्रभु वरुण, प्रतापशाली और दीप्तिशाली वस्तुओंमें सूर्य्य एवं मनुष्योंमें राजा मैं हूँ ॥ १७ ॥ घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा, धातुओंमें सुवर्ण, दण्डधारी जनोंमें यम और सर्प्पोंमें वासुकि मैं हूँ ॥ १८ ॥ नागराजोंमें अनन्त (शेषनाग), शृंग-दंष्ट्राधारी पशुओंमें मृगराज (सिंह), आश्रमोंमें सन्यास और हे निष्पाप! वर्णोंमें ब्राह्मण मैं हूँ ॥ १९ ॥ तीर्थ और नदियोंमें गंगा, स्थिरोदक जलाशयोंमें समुद्र, आयुधोंमें धनुष और धनुषधारियोंमें त्रिपुरारि (शिव) मैं हूँ ॥ २० ॥ निवासस्थानोंमें सुमेरु, दुर्गम-

स्थानोंमें हिमालय, वनस्पतियोंमें अश्वत्थ और औषधियोंमें 'यव' मैं हूँ ॥ २१ ॥ पुरोहितोंमें बसिष्ठ, ब्रह्मिष्ठों(वेदज्ञों)में बृहस्पति, सेनापतियोंमें कार्त्तिकेय एवं अग्रगण्य व्यक्तियोंमें भगवान् ब्रह्मा मैं हूँ ॥ २२ ॥ यज्ञोंमें ब्रह्मयज्ञ और व्रतोंमें अहिंसा मैं हूँ। शोधक वस्तुओंमें सर्वथा शुद्ध वायु, अग्नि, सूर्य्य, जल, वाक्य और आत्मा मैं हूँ ॥ २३ ॥ योगोंमें समाधियोग, जय-साधनोंमें नीति, कौशलोंमें आन्वीक्षिकी (आत्मानात्मविवेक) विद्या और ख्यातिवादीगणमें दुरन्त विकल्प मैं हूँ ॥ २४ ॥ स्त्रियोंमें मनु-पत्नी शतरूपा, पुरुषोंमें स्वायम्भुव मनु, मुनियोंमें नारायण और ब्रह्मचारियोंमें सनत्कुमार मैं हूँ ॥ २५ ॥ धर्म्मोंमें सब प्राणियोंको अभय-दान, अभय स्थानोंमें अन्तर्निष्ठा, गुह्य पदार्थोंमें प्रिय वचन और मौन मैं हूँ। मिथुनोंमें अज (ब्रह्मा) मैं हूँ। अपने कर्त्तव्यमें सावधानोंमें सम्वत्सर, ऋतुओंमें वसन्त, महीनोंमें मार्गशीर्ष (अगहन) और नक्षत्रोंमें अभिजित् मैं हूँ ॥ २६ ॥ २७ ॥ युगोंमें सत्ययुग, विवेकियोंमें देवल और असित मुनि, वेद-विभागकर्त्ता व्यासोंमें द्वैपायन और कवियोंमें सहृदय शुक्राचार्य्य मैं हूँ ॥ २८ ॥ भगवानोंमें* वासुदेव, वैष्णवोंमें तुम (उद्धव), किम्पुरुषोंमें हनुमान् और विद्याधरोंमें सुदर्शन नाम विद्याधर मैं हूँ ॥ २९ ॥ रत्नोंमें पद्मराग, सुन्दरोंमें पद्मकोष, दर्भजातियों (काश, दूर्बा आदि तृणजातियों)में कुश, और हविमात्रमें गोघृत मैं हूँ ॥ ३० ॥ व्यवसाय करनेवालोंमें लक्ष्मी (धन-सम्पत्ति), धूर्त्तोंमें छल-विद्या, क्षमाशील व्यक्तियोंमें क्षमा या सहनशीलता और सत्त्वशाली लोगोंमें सत्त्व मैं हूँ ॥ ३१ ॥ बलवानोंमें इन्द्रियबल, देहबल मैं हूँ। वैष्णव भक्तोंमें भक्तिकृत निष्काम कर्म मैं हूँ। सात्वत भक्तोंकी पूज्य नव मूर्त्तियोंमें † श्रेष्ठ आदिमूर्त्ति (वासुदेव) मैं हूँ ॥ ३२ ॥ गन्धर्व्वोंमें विश्वावसु और अप्सराओंमें पूर्वचित्ति मैं हूँ। पर्वतोंमें स्थिरता मैं हूँ। पृथ्वीमें अविकृत गंध (गुण) और जलमें मधुर रस (गुण) मैं हूँ। सूर्य्य, चन्द्र और तारागणोंमें प्रभा मैं हूँ। आकाशमें परम नाद (गुण) मैं हूँ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ब्राह्मण-भक्तोंमें राजा वलि और वीरोंमें कुन्तीपुत्र अर्जुन मैं हूँ। प्राणियोंमें उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय मैं हूँ ॥ ३५ ॥ गति, वाक्य, उत्सर्ग, ग्रहण, आनन्द एवं स्पर्श, दर्शन, आस्वादन, सुनना और सूँघना—ये इंद्रियोंके कर्म मैं हूँ; अर्थात् हरएक इन्द्रियमें अपने विषयके ग्रह-

---

* उत्पत्ति, लय, प्राणियोंकी अगति, गति, विद्या और अविद्या जाननेवालेको भगवान् कहते हैं। यथा—

उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामगतिं गतिम्। वेत्तिविद्यामविद्याञ्च स वाच्योभगवानिति ॥

† वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, वाराह, नृसिंह और ब्रह्मा, ये नव मूर्त्तियाँ हैं।

णकी शक्ति मैं हूँ ॥ ३६ ॥ पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और ज्योति–ये पञ्चतत्त्व में ही हूँ । अहंकार, महत्तत्त्व, जीव, प्रकृति, सत्त्व, रज, तम एवं ब्रह्म; सब मैं ही हूँ । इन सबका परिगणन, लक्षणके द्वारा ज्ञान एवं फल-स्वरूप तत्त्व-निश्चय भी मैं ही हूँ । जीव ईश्वर, गुण गुणी, सर्वव्यापक सर्वरूप, सब मैंही हूँ । मुझसे भिन्न कहीं भी कोई भी भाव नहीं है, अर्थात् मैं ही सब कुछ हूँ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ काल-क्रमसे कभी मैं पृथ्वीके परमाणुओंको गिन सक्ता हूँ, परन्तु अपनी अनन्त विभूति-योंको नहीं गिन सक्ता । मैं करोड़ों ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करनेवाला हूँ (जब मेरे उत्पन्न किये ब्रह्माण्डोंकी गणना नहीं होसक्ती, तब उन ब्रह्माण्डोंमें स्थित अपार विभूतियोंकी गणना कैसे होसक्ती है ?) ॥ ३९ ॥ जिस २ में तेज, श्री, कीर्त्ति, ऐश्वर्य्य, सौभाग्य, सुन्दरता, बल, क्षमा और विज्ञान आदि श्रेष्ट गुण हैं, वही २ मेरी विभूति (अंश) हे ॥ ४० ॥ हे उद्धव ! मैंने तुमसे बहुत ही संक्षेपमें अपनी विभूतियाँ कही हैं । किन्तु ये परमार्थ-वस्तु नहीं हैं, अतएव इनमें अत्यन्त अभिनिवेश न करना चाहिये । इनसे केवल मेरा बोध होता है । ये मनोविकार और वाक्यकल्पना-मात्र हैं ॥ ४१ ॥ वाणी, मन, प्राण-वायु और इन्द्रियोंको जीत कर आत्माको परमात्मामें लीन करो । ऐसा करनेसे फिर तुम्हें संसारमार्गेमें न घूमना पड़ेगा ॥ ४२ ॥ जो यती योगी बुद्धि द्वारा वाणी और मनको भली भाँति संयत नहीं करता उसका व्रत, तप और ज्ञान, कच्चे घड़ेके पानीके समान नष्ट होजाता है ॥ ४३ ॥

तस्मान्मनोवचः प्राणान्नियच्छेन्मत्परायणः ॥
मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ॥ ४४ ॥

इस लिये मत्परायण मुनिको चाहिये कि मेरी भक्तिसे युक्त विशुद्ध बुद्धिके द्वारा वाणी, मन और प्राणों(प्राणवायुसहित इन्द्रियों)को भली भाँति वशमें करे । ऐसा करनेसे निर्वाण-पदको पाकर कृतकृत्य होजाता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदश अध्याय ।

वर्णाश्रमधर्म्म-वर्णन ।

उद्धव उवाच–यस्त्वयाभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ॥
वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि ॥ १ ॥

उद्धवने कहा । हे प्रभो ! वर्णाश्रमाचारी और वर्णाश्रमाचारहीन, सब मनुष्य

जिस आपकी भक्तिरूप अपने धर्म्मसे आपको पाते हैं उसे आप पहले बता चुके हैं। अब, हे कमललोचन! जिस प्रकारसे उस स्व-धर्म्मका अनुष्ठान करनेसे मनुष्योंको आपके प्रति भक्ति होती है, सो मुझसे कहिये ॥ १ ॥ २ ॥ हे महाबाहो! हे प्रभो! हे माधव! पूर्वसमयमें आपने हंसरूपसे ब्रह्माको जिस परमसुखरूप धर्म्मका उपदेश किया था वह आपका अनुशासनरूप धर्म्म, चिरकाल व्यतीत होजानेसे, हे शत्रुदमन! अब पृथ्वीतल पर प्रायः प्रचलित नहीं है, अर्थात् लुप्तप्राय होगया है। हे अच्युत! केवल पृथ्वी पर ही नहीं, बरन् जहाँ आपकी वेदादिक कलाएँ साक्षात् विद्यमान हैं उस ब्रह्माकी सभामें भी आपके सिवा दूसरा कोई उस धर्म्मका कहनेवाला, करनेवाला और रक्षक नहीं है ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे मधुसूदन देव! परम धर्म्मके वक्ता, कर्त्ता और रक्षक आप जब पृथ्वीतलको छोड़ जायँगे तब कौन उस नष्टप्राय धर्म्मको बतावेगा? अतएव हे सर्वधर्म्मज्ञ! हे प्रभो! तुम्हारे प्रति भक्ति करना ही जिसका लक्षण है उस धर्म्मका पालन, मनुष्योंमें, जिसको जिस प्रकार करना चाहिये सो कृपा करके मुझसे कहिये ॥ ५-७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! अपने अनन्य सेवकके इस प्रकार पूछने पर भगवान् हरि अत्यन्त प्रसन्न होकर मनुष्योंके हितके लिये सनातन धर्म कहने लगे ॥ ८ ॥ **भगवान्ने कहा।** "हे उद्धव! यह तुम्हारा प्रश्न धर्मको बढ़ानेवाला है। वर्णाश्रमाचारी मनुष्योंको इससे परमश्रेय-रूप मुक्ति मिलेगी। जो धर्म तुम पूछते हो, सो मैं कहता हूँ—सुनो ॥ ९ ॥ पहले सत्ययुगमें मनुष्योंमें ब्राह्मणादि चार वर्ण नहीं थे, केवल हंस नाम एक ही वर्ण था। उस समय जन्मसे ही, मेरी उपासनामें तत्पर रहनेके कारण लोग कृतकृत्य होतेथे, इसीसे सत्ययुगको कृतयुग भी कहते हैं। तब ॐकार ही एक-मात्र वेद था, और सत्य—तप आदि चार चरणवाला वृषरूपधारी मैं ही धर्म था, एवं उस समयके तप-तत्पर पाप-शून्य मनुष्य लोग मन-सहित इन्द्रियोंको एकाग्र कर विशुद्धरूप मुझ हंसकी उपासना अर्थात् ध्यान करते थे ॥ १० ॥ ११ ॥ हे महाभाग! त्रेतायुगके आरंभमें मेरे हृदयसे प्राण द्वारा वेदत्रयी (ऋक्, यजुः और साम) उत्पन्न हुई। उस वेदत्रयीरूप विद्यासे तीन (होता, अध्वर्यु और उद्गाता)-रूपवाला यज्ञपुरुष मैं प्रकट हुआ। विराट् पुरुषके मुखसे ब्राह्मण, बाहुओंसे क्षत्रिय, ऊरुओंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए। अलग २ अपने धर्मका पालन ही इन चारो वर्णोंका लक्षण अर्थात् बोधक है ॥ १२ ॥ १३ ॥ मुझ विराट् पुरुषकी जंघाओंसे गृहस्थाश्रम, हृदयसे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, वक्षःस्थलसे वाणप्रस्थ और मस्तकसे संन्यास—ये चारो आश्रम प्रकट हुए हैं ॥१४॥ इन चारो वर्ण और चारो आश्रमोंके लोगोंकी प्रकृतियाँ भी जन्मस्थानकी उत्तमता और नीचताके अनुसार अपेक्षाकृत उत्तम और नीच हुई हैं ॥ १५ ॥ शम (वासनाशमन),

दम (इन्द्रियदमन), तप (तत्वकी आलोचना), शौच, सन्तोष, क्षमा, सरलता, मेरी भक्ति, दया और सत्यव्यवहार, ये ब्राह्मण वर्णके स्वभाव हैं ॥ १६ ॥ तेज (प्रताप) बल, धैर्य, शूरता, सहनशीलता, उदारता, उद्यम, दृढ़ता, ब्रह्मण्यता और ऐश्वर्य, ये क्षत्रिय वर्णके स्वभाव हैं ॥ १७ ॥ आस्तिकता, दानमें निष्ठा, दम्भ न करना, तन मन धनसे ब्राह्मणोंकी सेवा करना, धनसञ्चयसे कभी तृप्त न होना, ये वैश्यवर्णके स्वभाव हैं ॥ १८ ॥ निष्कपट भावसे गऊ, देवता और द्विजवर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य) की सेवा करना और जो उसमें मिले उसीमें सन्तुष्ट रहना, ये शूद्रवर्णके स्वभाव हैं ॥ १९ ॥ अशौच, मिथ्या बोलना, चोरी करना, नास्तिकता, अकारण कलह करना, काम, क्रोध और तृष्णा या लोभ, ये चाण्डाल श्वपच आदि अन्त्यज वर्णसङ्कर जातियोंके स्वभाव हैं ॥ २० ॥ अहिंसा, सत्य, क्रोध न करना, काम और लोभके वश न होना, चोरी न करना, प्राणियोंका प्रिय और हित करनेकी चेष्टामें लगे रहना, ये सब वर्णोंके साधारण (एवं अवश्य कर्त्तव्य) धर्म हैं ॥ २१ ॥ (अब आश्रमोंमें पहले ब्रह्मचारीके धर्म कहते हैं) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णके बालकोंको चाहिये कि गर्भाधान, जातकर्म आदि संस्कारोंके उपरान्त, क्रमशः यज्ञोपवीत संस्कार नाम दूसरा जन्म होने पर, जितेन्द्रिय और नम्र होकर गुरुकुलमें वास करें । यथासमय गुरुके बुलाने पर निकट जाकर उससे वेदाध्ययन करें और मनमें मननपूर्वक वेदके अर्थको विचारें ॥ २२ ॥ ऐसे विद्यार्थी ब्रह्मचारीको चाहिये कि मौञ्जी, मेखला, कृष्णाजिन, दण्ड, रुद्राक्षकी जपमाला, ब्रह्मसूत्र और कमण्डलुको धारण करे । शिर न मलनेके कारण स्वयं होगई जटाओंको धारण करे । दन्तधावन न करे, पहननेके वस्त्र न धुलावे, रंगीन आसन पर न बैठे, कुशधारण करे ॥ २३ ॥ स्नान, भोजन, हवन, जप और मल-मूत्र-त्यागके समय मौन रहे । नखोंको न काटे और कच्छ व उपस्थके ऊपरके भी रोम न बनावे—वैसेही बढ़े रहने दे ॥ २४ ॥ ब्रह्मचारीको भूल कर भी कभी वीर्य्यपात न करना चाहिये । यदि स्वप्नावस्थामें असावधानतावश कभी आप-ही-आप वीर्यपात हो भी जाय तो जलमें स्नान करके प्राणायामपूर्वक गायत्रीजप करना चाहिये ॥ २५ ॥ पवित्र और एकाग्र होकर प्रातःकाल और सायंकाल, दोनो सन्ध्याओंमें, मौनावलम्बनपूर्वक गायत्री जपता हुआ अग्नि, सूर्य्य, आचार्य्य, गऊ, ब्राह्मण, गुरु, बड़े-बूढ़े और देवतोंकी उपासना एवं सन्ध्यावन्दन करे ॥ २६ ॥ आचार्य्यको साक्षात् मेरा रूप समझे । साधारण मनुष्य मान कर गुरुकी उपेक्षा या अपमान न करे और न उसकी किसी बात या व्यवहारका बुरामाने । क्यों कि गुरु सर्व्वदेवमय है ॥ २७ ॥ सायंकाल और प्रातःकाल जो कुछ भिक्षा मिले एवं और भी जो कुछ मिले सो लाकर गुरुके आगे धर दे और गुरुके भोजन कर चुकने पर गुरुकी

आज्ञा पाकर संयत भावसे उसमेंसे आप भी भोजन करे ॥ २८ ॥ नम्रतापूर्वक हाथ जोड़े हुए निकट ही रह कर सब समय गुरुकी सेवा करे। गुरु चले तो आप पीछे २ चले, गुरु सोवे तो आप पासही लेटे और गुरु लेटे तो आप पास बैठ कर पैर दबाता रहे ॥२९॥ जब तक पढ़ना समाप्त न हो तब तक अस्खलित ब्रह्मचर्य्य व्रतको पालता हुआ इस प्रकार भोग-त्यागपूर्व्वक गुरुकुलमें रहे ॥३०॥ यदि महर्लोक, जनलोक, तपलोक अथवा जहाँ सब वेद मूर्त्तिमान् होकर रहते हैं उस ब्रह्मलोकमें जानेकी इच्छा हो तो वृहद्व्रत(नैष्ठिक ब्रह्मचर्य्य)–धारण पूर्वक शरीरको गुरुके अर्पण कर दे, अर्थात् जब तक जीवित रहे तब तक गुरुकी सेवामें रह कर अधिक अध्ययन करे और ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करे ॥ ३१ ॥ उस ब्रह्मतेज-सम्पन्न निष्पाप बालब्रह्मचारीको चाहिये कि अग्नि, गुरु, अपने आत्मा और सब प्राणियोंमें मुझ परमेश्वरकी उपासना करे और भेदभावनाको छोड़ दे ॥ ३२ ॥ गृहस्थाश्रममें न जानेवाले ब्रह्मचारीको उचित है कि स्त्रियोंको न देखे, न उनका स्पर्श करे, न उनसे बातचीत करे और न हँसी मसखरी करे, न एकान्तमें एकत्रित स्त्रीपुरुषोंको देखे ॥ ३३ ॥ हे कुरुनन्दन! शौच, आचमन, स्नान, सन्ध्योपासन, सरलता, तीर्थ सेवा, जप (मेरा पूजन और ध्यान) एवं अभक्ष्य पदार्थ न खाना, तथा जिनसे बात न करना चाहिये और जिनको छूना न चाहिये उनसे न मिलना, न बोलना और न उनको छूना, सब प्राणियोंमें मुझे देखना और मन, वाणी, कायाका संयम,—ये धर्म्म सभी आश्रमोंके हैं; विशेष कर ब्रह्मचारीको अवश्य इनका पालन करना चाहिये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करनेवाला ब्राह्मण (या क्षत्रिय और वैश्य) प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी होता है। ऐसे निष्काम नैष्ठिक ब्रह्मचारीकी कर्म्म-वासनाएँ तीव्र तपसे भस्म हो जाती हैं और अन्तमें वह मेरा भक्त होकर मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ यदि आवश्यक विद्या पढ़ चुकने पर गृहस्थाश्रममें जानेकी इच्छा हो, तो वेदके तात्पर्य्यको यथार्थ जान लेने पर, गुरुको दक्षिणा देकर और गुरुकी आज्ञा लेकर स्नान आदि करे, अर्थात् समावर्त्तन-संस्कार-पूर्वक ब्रह्मचर्यको समाप्त करे ॥ ३७ ॥ यदि सकाम हो, तो ब्रह्मचर्य्यके उपरान्त गृहस्थ बने और यदि अन्तःकरण शुद्ध होनेके कारण निष्काम हो तो वाणप्रस्थ होकर वनमें बसै। यदि शुद्धचित्त, विरक्त ब्राह्मण चाहे, तो ब्रह्मचर्य्य छोड़ कर संन्यास ले सक्ता है। यदि मेरा भक्त हो, तो उसके लिये अवश्य आश्रमी होनेका कोई विशेष नियम नहीं है; किन्तु यदि मेरा अनन्य भक्त न हो, तो उसे अवश्य किसी-न-किसी आश्रमका अवलम्ब लेना चाहिये। किसी आश्रममें न रहनेसे, अथवा पहले वाणप्रस्थ फिर गृहस्थ, या पहले गृहस्थ फिर ब्रह्मचर्य्य—इस प्रकार विपरीत आचरणसे भ्रष्ट होजाता है—कहींका नहीं रहता ॥ ३८ ॥ जो गृहस्थ होना चाहे उसे उचित है

कि ब्रह्मचर्य्य समाप्त करके अपने समान रूप, गुण और विद्या वाली, निष्कलंक कुलकी, उत्तम लक्षणोंसे युक्त, अवस्थामें छोटी और अपने ही वर्णकी कन्यासे विवाह करे। तदनन्तर कामवश अन्य वर्णकी कन्यासे भी विवाह कर सक्ता है* ॥ ३९ ॥ यज्ञ करना, दान देना और पढ़ना ये तीनो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके लिये आवश्यक और साधारण धर्म हैं। और दान लेना, पढ़ाना और यज्ञकराना ये तीन धर्म (वृत्तियाँ) केवल ब्राह्मणहीके लिये विहित हैं ॥ ४० ॥ किन्तु दान लेनेसे तप, तेज और यश क्षीण होता है और पढ़ाने व यज्ञ करानेमें दीनता दिखाना पड़ता है—यह दोष है। इस लिये ब्राह्मणको उचित है कि जहाँ तक हो सके दान लेनेकी वृत्ति न करे, केवल पढ़ाने और यज्ञ करानेकी वृत्तिसे जीविकाका निर्वाह करे और यदि हो सके तो इन दोनो वृत्तियोंको भी छोड़ कर शिलोंच्छवृत्ति (खेत काट लेने पर जो अन्नके कण पड़े रह जाते हैं उनको बीन लाकर या बाजार उठ जाने पर जो अन्न बिखरा हुआ पड़ा रह जाता है उसे बीन-लाकर—उस)से जीविकानिर्वाह करे ॥ ४१ ॥ यह अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणशरीर क्षुद्र सांसारिक सुखके लिये नहीं है। इससे इस लोकमें कष्ट उठा कर तप करना चाहिये, क्यों कि ऐसा करनेसे परलोकमें अनन्त सुख मिलता है । जो ब्राह्मण-शरीर पाकर ऐसा नहीं करता वह अपने ब्राह्मण-जन्मको वृथा नष्ट कर देता है ! ॥४२॥ इस प्रकार जो ब्राह्मण शिलोंच्छवृत्तिमें सन्तुष्टचित्त होकर निष्काम महत् धर्म (अतिथिसेवा आदि सनातन सदाचार)का सेवन करता हुआ सर्व्वतोभावसे मुझे आत्मसमर्प्पण कर देता है वह अनासक्तभावसे गृहस्थाश्रमहीमें रह कर मेरे भजनसे परमशान्तिको—मोक्षके अधिकार अथवा योग्यताको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ जो कोई मेरे भक्त ब्राह्मण(अथवा अन्य किसी)को धन, भोजन, वस्त्र आदिकी सहायता करके दारिद्य आदि कष्टोंसे उबारते हैं, उनको, जैसे समुद्रमें डूब रहे व्यक्तिको नौका उबार लेती है वैसे ही मैं आनेवाली आपत्तियोंसे शीघ्र ही उबार लेता हूँ ॥ ४४ ॥ धीर अर्थात् विवेकी राजाको चाहिये कि जैसे गजपति अन्य गजोंको (दलदलमें फस जाने आदि अनेक) आपत्तियों या कष्टोंसे उबारता है और अपना उद्धार आप ही अपनी शक्तिसे करता है वैसेही दारिद्य, अन्न-कष्ट आदि सङ्कटोंमें पिताकी भाँति सहानुभूतिसहित सब प्रजाकी सहायता करे (यह राजाका मुख्य धर्म है, क्योंकि प्रजारंजनसे ही राजा कहलाता है) और सब

* ब्राह्मण, चारो वर्णोंकी कन्या ले सक्ता है; क्षत्रिय, ब्राह्मणको छोड़ कर शेष तीनो वर्णोंकी कन्या ले सक्ता है; वैश्य, अपने वर्णकी और शूद्रकी कन्या ले सक्ता है, एवं शूद्र अपने ही वर्णकी कन्यासे विवाह कर सक्ता है। किन्तु कलियुगमें द्विजोंके लिये ऐसा करना निषिद्ध है, अन्य युगोंमें कर सक्ते हैं।

समय अपनी बुद्धि और शक्तिसे अपनी रक्षा करता रहे, अर्थात् विपत्तियोंसे और अधर्मसे एवं असावधानतासे बचता रहे ॥ ४५ ॥ ऐसा नरपति इस लोकमें सब अशुभोंसे रहित होकर अन्त समय सूर्य्यसदृश प्रकाशमान विमान पर बैठ कर स्वर्गलोकको जाता है, और वहाँ इन्द्रके साथ उन्हींके समान ऐश्वर्य्य-सुखको भोगता है ॥ ४६ ॥ हे उद्धव! ब्राह्मण यदि दारिद्र्यसे पीड़ित हो, तो वह वैश्य वृत्तिसे अर्थात् बेचने योग्य वस्तुओंके व्यापारसे आपत्कालको बितावे (उस समय भी मदिरा और लवणादिका बेचना निषिद्ध है), अथवा खड्गधारणपूर्वक क्षत्रिय-वृत्तिसे निर्व्वाह करे, किन्तु श्व-वृत्ति अर्थात् नीच-सेवा न करे; श्ववृत्ति सर्वथा निषिद्ध है ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार क्षत्रिय यदि दारिद्र्यसे पीड़ित हो, तो वह वैश्य-वृत्तिसे या मृगया(शिकार)के द्वारा अथवा ब्राह्मणके समान विद्या पढ़ा कर आपत्कालको बितावे, परन्तु अपनेसे नीचकी सेवा कभी न करे ॥ ४८ ॥ ऐसे ही दारिद्र्यसे पीड़ित वैश्यको चाहिये कि शूद्रोंकी (सेवा) वृत्तिसे, और दारिद्र्यसे पीड़ित शूद्रको चाहिये कि प्रतिलोम, अर्थात् उच्च वर्णकी स्त्रीमें नीचवर्ण पुरुषसे उत्पन्न 'कारु' (धुनिये) आदिकी चटाई आदि बुननेकी वृत्तिसे निर्वाह करे। चारो वर्णोंके लिये केवल आपत्कालमें इन क्रमशः नीच वृत्तियोंकी व्यवस्था की गई है; आपत्काल निकल जाने पर किसी वर्णको अधम वृत्तिसे जीविका-निर्वाहकी इच्छा न करनी चाहिये ॥ ४९ ॥ गृहस्थ मनुष्यको चाहिये कि यथाशक्ति वेदाध्ययन, स्वधा (पितृयज्ञ), स्वाहा (देवयज्ञ), बलिवैश्वदेव और अन्नदान करता हुआ नित्य देवता, पितर, ऋषि और सब प्राणियोंको मेरा ही रूप समझ कर पूजे ॥५०॥ स्वयं प्राप्त और अपनी विहित वृत्तिके द्वारा उपार्जित धनसे न्याय-पूर्वक अपने द्वारा जिनका भरण पोषण होता है उन लोगोंको पीड़ा न पहुँचा कर यज्ञ आदि धर्म कर्म करे ॥ ५१ ॥ अपने कुटुम्बकी चिन्तामें ही आसक्त न रहे और कुटुम्बी हो कर भी ईश्वरके भजनको न भूले; ईश्वर पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास करे। विद्वान्को चाहिये कि प्रत्यक्ष संसारके प्रपञ्चकी भाँति अप्रत्यक्ष स्वर्ग आदिको भी अनित्य समझे ॥ ५२ ॥ जैसे पथिक लोग जलशालामें जल पीनेके लिये आकर घड़ी भर के लिये मिल जाते हैं और पानी पीकर अपनी २ राह लेते हैं, वैसे ही इस संसारमें पुत्र, स्त्री, स्वजन और बन्धु-बान्धवोंका समागम समझना चाहिये। निद्राके साथ जैसे स्वप्न देख पड़ता है और नींद उचटने पर नहीं देख पड़ता, वैसे ही प्रत्येक शरीर मिलने और छूटने पर स्त्री-पुत्रादिका समागम और वियोग होता है ॥ ५३ ॥ ऐसा समझ कर साधक योगीको चाहिये कि गृहस्थाश्रममें अतिथिकी भाँति ममता और अहंकारसे हीन होकर रहे और लिप्त न हो ॥ ५४ ॥ मेरी भक्ति करता हुआ अपने धर्म अर्थात् कर्त्तव्यके पालनसे मेरी आराधनामें तत्पर रह कर चाहे गृहस्थाश्रममें ही रहे और चाहे वुढ़ा-

पेके पहले ही वाणप्रस्थ होकर वनको चला जाय, अथवा पुत्र हो, तो संन्यास-ग्रहण करे ॥ ५५ ॥ किन्तु जिसकी बुद्धि घरमें—परिवारमें आसक्त है, जो पुत्रोंके लिये या धनके लिये व्याकुल है, जो स्त्रीसङ्गमें लिप्त और मन्दमति है वह मूढ मनुष्य 'मैं हूँ—मेरा है'—इस भ्रमजालमें पड़ कर अनेक जन्म तक जन्म-मरणके कठिन कष्ट भोगता रहता है ॥ ५६ ॥

एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयो मूढधीरयम् ॥
अतृप्तस्ताननुध्यायन्मृतोऽन्धं विशते तमः ॥ ५८ ॥

जो कोई इस प्रकार गृहस्थीकी और परिवारकी चिन्तामें चूर रहता है कि "अहो! मेरे मा बाप बूढ़े हैं! स्त्रीके छोटे २ बालक हैं! ये दीन लड़की लड़के मेरे बिना अनाथ होकर कैसे जियेंगे? मेरे वियोगसे इनको महा दुःख होगा," वह मंदमति मूढ़ गृहस्थ कभी तृप्त नहीं होता, और ऐसे ही सोचता २ एक दिन मर जाता है और फिर तामसी नीच योनिमें जन्म लेता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादश अध्याय ।

संन्यासधर्म्म-निरूपण ।

श्रीभगवानुवाच—वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा ॥
वन एव वसेच्छान्तस्तृतीयं भागमायुषः ॥ १ ॥

भगवान्ने कहा। हे उद्धव! जो गृहस्थ वाणप्रस्थ होना चाहे वह पत्नीको समर्थ पुत्रोंके हाथमें सौंप कर, अथवा अपने साथही रख कर, शान्त चित्तसे आयुके तीसरे भागको वनवासमें बितावे ॥ १ ॥ वहाँ विशुद्ध कन्दमूल और वनके फल खाकर रहे और वस्त्रके स्थान पर वल्कलधारण करे। या तृण, पत्ते अथवा मृगचर्म्मसे कपड़ेका काम निकाले ॥ २ ॥ सिरके बाल, दाढ़ी, मूछ, शरीरके रोम और नख बढ़ाता रहे। मैल न छुड़ावे, दन्तधावन न करे। तीनो काल जलमें घुस कर शिरसे स्नान करे और पृथ्वी पर सोवे। ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्नि तापे, वर्षाऋतुमें खुले मैदानमें रहें और जाड़े भर गले तक पानीमें बैठे। इस प्रकार घोर तप करना चाहिये ॥ ३ ॥ ४ ॥ अग्निमें पके हुए अथवा समय पाकर पके हुए फल आदिको खाना चाहिये। ओखलीमें या पत्थलसे कूट कर कंद-मूल आदि खाना चाहिये, अथवा दाँत पुष्ट हों, तो उन्हीसे चबा लेना चाहिये ॥ ५ ॥ अपने खाने-पीनेकी सब सामग्री अपने ही हाथों खोज लाना चाहिये।

देश, काल और शक्तिको विशेष रूपसे जाननेवाले मुनिको चाहिये कि कालान्तरमें लाये हुए पदार्थको कालान्तरमें दूसरेसे न ले । तात्पर्य यह है कि नित्यप्रति खानेभरको ताजे कन्द-मूल-फल लाना चाहिये; बासी खाना मना है ॥ ६ ॥ समयानुसार मिले हुए वनके फलोंसे ही देवता और पितरोंके लिये चरु, पुरोडाश आदि निकालने चाहिये । किन्तु वेदविहित पशु-बलिसे मेरा यजन करना वाणप्रस्थके लिये मना है ॥ ७ ॥ हाँ, वेदवादी ऋषियोंकी आज्ञानुसार पहलेहीकी भाँति चातुर्मास्य, दर्श पौर्णमास और अग्निहोत्रका करना उसके लिये आवश्यक है ॥ ८ ॥ इस प्रकार घोर तप करनेके कारण मांस सूख जानेसे जिसके शरीरमें शिराजाल (नसोंका जाल) केवल रह जाता है वह मुनि यदि शुद्ध अन्तःकरणसे अर्थात् निष्काम होकर भक्तिपूर्वक मुझे भजता है तो यहीं मुक्त होजाता है, और यदि बहुत सी विघ्न-बाधाएँ होती हैं अर्थात् विषय-वासनाएँ निर्मूल नहीं होतीं, तो भी मुझ तपोमयकी आराधनाके बलसे महर्लोक आदि ऋषियोंके लोकोंको जाता है, और फिर समयानुसार वहाँसे मुझमें मिल जाता है ॥ ९ ॥ जो कोई इतने कष्टसे किये गये इस मोक्षफलदायक तपको अत्यन्त तुच्छ (ब्रह्मलोकसे लेकर स्वर्ग तक सब अनित्य होनेके कारण तुच्छ ही हैं) उद्देश्यमें लगावे तो उससे बढ़ कर और कौन मूर्ख होगा ? ॥ १० ॥ जिसे वैराग्य न हो वह, जब जराजर्जर होनेके कारण शिर और शरीर हिलने लगे और नियमपालनकी शक्ति न रहे तब अग्नियोंको अपनेमें आरोपित करके मुझमें मन लगाए हुए अग्निमें प्रवेश कर जाय, अथवा उसी आरोपित अग्निको (शरीरसे) प्रकट कर शरीरको जला दे ॥ ११ ॥ और जो कोई धर्मके फलस्वरूप इन निरयसम असत् लोकोंको परिणाममें दुःखदायक देख कर भली भाँति विरक्त हो उठे उस वाणप्रस्थको चाहिये कि (७५ वर्षकी अवस्था हो चुकने पर) आहवनीय अग्नियोंको अपनेमें लीन कर संन्यास-ग्रहण करले ॥ १२ ॥ ऐसे विरक्त वाणप्रस्थको चाहिये कि पहले वेदके उपदेशानुसार अष्टका श्राद्ध और प्राजापत्य यज्ञसे मेरा पूजन यजन करे, फिर सर्वस्व ऋत्विक्को देकर अग्नियोंको अपनेमें स्थापित कर संन्यास आश्रममें गमन करे ॥ १३ ॥ 'यह हमको नाँघ कर ब्रह्मको प्राप्त होगा'—ऐसा सोच कर स्त्री आदिके रूपसे देवतालोग ब्राह्मणके संन्यास लेते समय विघ्न डालनेकी चेष्टा करते हैं; इस लिये सब विघ्नोंके हटानेमें सतर्क रह कर अवश्य संन्यास लेना उचित है ॥ १४ ॥ संन्यासीको केवल एक लँगोटी पहनना चाहिये, और यदि ऊपरसे कुछ ओढ़ना चाहे तो केवल उतना ही वस्त्र ओढ़े जिससे नीचेका शरीर ढका रहे । संन्यासीको आपत्कालके अतिरिक्त सर्वदा केवल दण्ड कमण्डलु पास रखना चाहिये, और कुछ भी नहीं । क्योंकि वह संन्यास लेते समय सर्वत्याग कर चुकता है ॥ १५ ॥ पहले जीव जन्तुओंको देख कर तब पृथ्वी पर पैर रखना चाहिये

और वस्त्रमें छान कर जल पीना चाहिये । सत्य वाक्य कहना चाहिये और भली भाँति विचार कर काम करना चाहिये ॥ १६ ॥ मौनरूप वाणीका दण्ड अर्थात् दमन और अनीहा(काम्यकर्म्मत्याग)रूप शरीरका दण्ड एवं प्राणायामरूप मनका दण्ड—ये तीनो दण्ड होनेसे ही वह त्रिदण्डी कहलाता है । हे उद्धव ! दिखा-वेके लिये केवल बाँसके तीन दण्ड लिये रहनेसे यति नहीं होता ॥ १७ ॥ संन्या-सीको चारो वर्णोंमें भिक्षा करनेका अधिकार है, किन्तु पतित हत्यारे और जातिच्युत लोगोंके यहाँ भिक्षा करना निषिद्ध है । संन्यासीको सवेरे बस्तीके बीच जाकर अनिश्चित सात घरोंमें भिक्षा माँगना, और उनमें जो कुछ मिले उत-नेहीमें सन्तुष्ट रहना चाहिये ॥ १८ ॥ भिक्षा कर चुकने पर गाँवके बाहर एका-न्तमें किसी जलाशयके किनारे जाकर, पहले उस स्थानको जल छिड़क कर पवित्र करना चाहिये, और फिर अपने हाथ पैर धोकर कुल्ला करके चुपचाप सब अन्न खा लेना चाहिये, अर्थात् और समयके लिये बचा कर न रखना चाहिये । भोजन करनेके अवसर पर यदि कोई आकर भोजन माँगे तो उसे बाँट कर भोजन करना उचित है ॥ १९ ॥ संन्यासीको एक स्थान पर न रहना चाहिये । सङ्गहीन, जिते-न्द्रिय, आत्माराम, आत्मलीन, धीर और समदर्शी होकर अकेले इच्छानुसार पृथ्वीपर्यटन करते रहना चाहिये ॥ २० ॥ संन्यासी मुनिको चाहिये कि निर्जन व निर्भय स्थानमें बैठ कर मेरी विशुद्ध भक्तिसे निर्मल हो रहे हृदयमें मुझे अपने (आत्मा) से अभिन्न देखे और विचारे ॥ २१ ॥ संन्यासीको सर्वदा ज्ञाननिष्ठ रह कर इस प्रकार आत्माके बन्धन और मोक्षका विचार रखना चाहिये कि इन्द्रियोंके चञ्चल होनेहीसे आत्माका बन्धन है और इन्द्रियोंके वशमें होनेहीसे मोक्ष है ॥ २२ ॥ इस लिये मुनिको, मेरी भक्तिके द्वारा मन-सहित छः इन्द्रियरूप शत्रुओंको जीत कर, इच्छानुसार विचरना चाहिये । सब क्षुद्र कामनाओंसे विरक्त होकर आत्मचिन्तनमें परमानन्दका अनुभव करना चाहिये ॥ २३ ॥ भिक्षाके लिये केवल नगर, ग्राम, व्रज और यात्री जनोंके बीच जाना चाहिये, और फिर पृथ्वी म-ण्डलके पवित्र देश, पर्वत, नदी, वन और आश्रमोंमें घूमना चाहिये ॥ २४ ॥ संन्यासीको प्रायः वाणप्रस्थ लोगोंके ही आश्रमोंमें भिक्षा माँगनी चाहिये, क्यों कि उनके शिलोंच्छ वृत्तिसे प्राप्त अन्नके खानेसे अन्तःकरण शुद्ध रहता है और फिर शीघ्र ही माया-मोह मिटनेके कारण वह जीवन्मुक्त सिद्ध होजाता है ॥ २५ ॥ (यदि कोई कहे कि मिष्टान्न आदि छोड़ कर रूखे-सूखे शिलोंच्छ-वृत्ति-संचित अन्नके खानेमें प्रवृत्ति क्यों होने लगी ? तो इसीके लिये कहते हैं कि—) ये जो संसारके विषय-सुख देख पड़ते हैं सो सब अनित्य हैं, इस कारण इनको तुच्छ समझना चाहिये और परलोकके लिये जो विहित काम्य कर्म हैं उनसे निवृत्त होना एवं अनन्य-भावसे मुझे भजना चाहिये ॥ २६ ॥ अन्तःकरण, वाणी और प्राणसहित इस

ममताके घर जगत्को, अहंकारके घर शरीरको और शरीरसम्बन्धी परिवार तथा सुखको, आत्मामें मायामात्र, अतएव स्वप्नके समान मिथ्या, समझ कर छोड़ दे। फिर स्वस्थ अर्थात् मुझ आत्मारूप ईश्वरके ध्यानमें मग्न होकर उक्त संसार-प्रपंचकी चिन्ता भी न करे ॥ २७ ॥ मोक्षकी इच्छासे जिसकी निष्ठा ज्ञानसञ्चयमें हो अथवा मोक्षके लिये भी निरपेक्ष रह कर जो मेरी भक्ति करता हो, दोनो प्रकारके साधकोंको चाहिये चिन्हसहित आश्रमोंको त्याग दें और वेदविहित विधि-निषेधके बन्धनसे छूट कर निरपेक्ष भावसे शारीरिक कर्म करते रहें ॥२८॥ अर्थात् विवेकी हो कर भी बालकोंकी भाँति खेलें और निपुण होकर भी जड़ोंकी भाँति घूमें। विद्वान् होकर भी उन्मत्तोंकी सी बातें करें और वेदके भावार्थको भली भाँति जानने और मानने परभी गऊ आदि पशुओंकी भाँति आचारका विचार न करें ॥ २९ ॥ कर्मकाण्ड आदि वेदवादमें निरत न हों, पाखण्ड अर्थात् श्रुति-स्मृतिके विरुद्ध कार्य न करें, केवल तर्कमें ही न लगे रहें और बे प्रयोजन वादविवाद न करें एवं वादविवादमें किसीका पक्ष भी न लें ॥ ३० ॥ धीर पुरुषको लोगोंसे उद्विग्न न होना चाहिये और अन्य लोगोंको उद्विग्न भी न करना चाहिये। कोई कटु वचन कहे तो सुन लेना चाहिये और किसीका अनादर या अपमान न करना चाहिये ॥ ३१॥ पशुओंकी भाँति इस शरीरके लिये किसीसे वैर न करना चाहिये। समझना चाहिये कि वही एक परमात्मा सब प्राणियोंमें और अपनेमें भी अवस्थित है। जैसे एक ही चन्द्रमाके प्रतिबिम्ब अनेक जलपात्रोंमें देख पड़ते हैं, वैसेही सब प्राणियोंका आत्मा वही एक परमात्मा है ॥ ३२ ॥ किसी २ समय आहार न मिलनेसे विषाद न करना चाहिये और आहार मिलने पर प्रसन्न न होना चाहिये, क्योंकि दोनो ही बातें दैवके अधीन हैं। और यदि आहारके बिना शरीर अशक्त होता देख पड़े तो केवल आहार (पेट भरने)के लिये चेष्टा भी करनी चाहिये, अर्थात् भिक्षासे पेट भरना चाहिये। क्योंकि प्राण रहेंगे अथवा शरीर शिथिल न होगा तभी तो वह तत्त्वका विचार कर सकेगा और तत्त्व जाननेसे मुक्ति मिलेगी ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ परमहंस मुनिको अच्छा बुरा जैसा अन्न मिले वैसा खा लेना, जैसा कपड़ा मिले वैसा पहन लेना और जैसी शय्या (या पृथ्वी) सोनेको मिले उस पर पड़ रहना चाहिये ॥ ३५ ॥ ज्ञाननिष्ठ पुरुप विहित-विधिके बन्धनमें न रह कर मुझ ईश्वरकी भाँति लीलापूर्वक शौच, आचमन, स्नान आदि अन्यान्य कर्म करता रहे ॥ ३६ ॥ ऐसोंके भेद-भाव नहीं रहता, जो होता है वह भी तत्त्वज्ञानसे मिट जाता है। जब तक पूर्वसंस्कार-वश स्थूल शरीर रहता है तब तक कभी २ कुछ २ भेदभाव भासित भी होता है, परन्तु देह छूटने पर वह मुझमें मिल जाता है। (यहाँ तक तो, विरक्त तत्त्वज्ञानीके लिये संन्यास धर्म कहे; अब, विरक्त जिज्ञासुके लिये क्या कर्त्तव्य है?-

सो कहते हैं) जो बुद्धिमान् पुरुष दुःखदायक परिणाम वाले अनित्य विषयोंसे विरक्त होगया है, किन्तु भागवत धर्मको नहीं जानता, उसे चाहिये कि किसी ज्ञानी मुनिको गुरु मान कर उसका आश्रय ले। जब तक ब्रह्मज्ञान न हो, तब तक मेरी ही भावना रख कर आदरपूर्वक भक्ति और श्रद्धासे गुरुकी सेवा करे। कभी गुरुकी किसी बातका बुरा न माने ॥ ३७–३९ ॥ जिसने काम-क्रोध-रूप छः शत्रुओंके दलको नहीं शान्त किया और प्रचण्ड इन्द्रियरूप घोड़े जिसके बुद्धिरूप सारथीको इधर उधर घसीटते फिरते हैं, जिसके हृदयमें ज्ञान विज्ञानका लेश नहीं है ऐसा जो मनुष्य केवल जीविकाके लिये दण्ड कमण्डलु लेकर संन्यासीके वेषसे पेट पालता फिरता है वह धर्मघातक है। उसका मनोरथ पूर्ण नहीं होता। वह देवतोंको, अपनेको और अपनेमें स्थित मुझको ठगता है, इसीसे वह अशुद्धहृदय दम्भी दोनो लोकोंसे भ्रष्ट होजाता है, कहींका नहीं रहता ॥४०॥ ॥ ४१ ॥ शान्ति और अहिंसा संन्यासीका मुख्य धर्म है, ईश्वरचिन्तन और तप वाणप्रस्थका मुख्य धर्म है, प्राणियोंका पालन और पूजन गृहस्थका मुख्य धर्म है और गुरुकी सेवा करना ब्रह्मचारीका परम धर्म है ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्य (वीर्यको रोकना, इन्द्रियोंके वेगको सँभालना), तप (मेरा ध्यान), शौच, सन्तोष, सब प्राणियोंसे प्रेम और ऋतु–समयमें वंश बढ़ानेके विचारसे स्त्रीसङ्ग करना, ये गृहस्थके लिये भी आवश्यक धर्म हैं। मेरी उपासना करना या मुझे भजना–प्राणिमात्रका धर्म है ॥ ४३ ॥ अनन्य भावसे इस प्रकार अपने धर्मके द्वारा जो कोई मुझे भजता है और सर्वत्र सबमें मुझे देखता है वह शीघ्रही मेरी विशुद्ध भक्तिरूप मुक्ति-शक्तिको प्राप्त होकर कृतार्थ हो जाता है ॥ ४४ ॥ हे उद्धव! सुदृढ भक्तिके द्वारा वह सब लोकोंके महान् ईश्वर और सबकी उत्पत्ति स्थिति और नाशके आदिकारण मुझ वैकुण्ठवासी ब्रह्ममें मिल जाता है। इस प्रकार स्वधर्मपालनसे जिसका सत्त्व अर्थात् आत्मा शुद्ध होगया है और जो मेरी गतिको जान गया है वह ज्ञान–विज्ञान–सम्पन्न विरक्त पुरुष मुझको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ ॥४६॥ वर्णाश्रमाचारी लोगोंका यही धर्म है, यही आचार है, यही लक्षण है। साधारणतः इसका पालन करनेसे पितृलोक प्राप्त होते हैं, और मेरी अनन्य भक्तिके साथ इन्हीके करनेसे परम मुक्ति मिलती है ॥ ४७ ॥

एतत्तेऽभिहितं साधो भवान्पृच्छति यच्च माम् ॥
यथा स्वधर्मसंयुक्तो भक्तो मां समियात्परम् ॥ ४८ ॥

साधु उद्धव! जिस प्रकार स्वधर्मसंयुक्त मेरा भक्त मुझ परमेश्वरको प्राप्त होता है सो सब यह मैंने तुम्हारे प्रश्नके अनुसार तुमको सुना दिया ॥ ४८ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे ऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंश अध्याय।

गुण-दोषकी व्यवस्थाके लिये यम आदिका निर्णय।

श्रीभगवानुवाच—यो विद्याश्रुतसंपन्न आत्मवान्नानुमानिकः॥
मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत्॥ १॥

श्रीभगवान्ने कहा। हे उद्धव! जो व्यक्ति अनुभवपर्यन्त शास्त्रसे सम्पन्न होकर आत्मतत्त्वको पा गया है, अतएव केवल अनुमानकृत परोक्ष-ज्ञान-शाली नहीं है, वह, "यह द्वैत प्रपञ्च और इस द्वैतकी निवृत्तिका साधन मुझमें माया मात्र है"—ऐसा जान कर ज्ञानको और ज्ञानके साधनको मुझमें स्थापित करे॥ १॥ मैं ही ज्ञानीका अभिमत और अपेक्षित स्वार्थ, उस स्वार्थका हेतु अर्थात् साधन, स्वर्ग (अभ्युदय) और अपवर्ग अर्थात् मुक्ति हूँ। मेरे सिवा उसको और कुछ भी प्रिय नहीं है॥२॥ ज्ञान और विज्ञानसे भली भाँति सिद्ध पुरुष मेरे श्रेष्ठ पदको जानते हैं। ज्ञानी लोग मुझे अत्यन्त प्रिय हैं, क्यों कि वे ज्ञानके द्वारा मुझे हृदयमें रखते हैं॥ ३॥ पूर्ण ज्ञानके लेशमात्रसे जैसी शुद्धि होती है वैसी संपूर्ण शुद्धि, तप तीर्थसेवा जप दान एवं अन्यान्य पवित्र कर्म्मोंसे नहीं होती। इस कारण हे उद्धव, जितना तुममें ज्ञान हो उसीके अनुसार मुझ अपने आत्माको जान कर, ज्ञानविज्ञानसे सम्पन्न तुम, भक्तिभावसे केवल मुझको भजो और सब तजो॥ ४॥ ५॥ मुनि लोग सब यज्ञोंके पति मुझ आत्माकी, ज्ञान-विज्ञान-मय यज्ञके द्वारा, आत्मामें आराधना कर पूर्णसिद्धिस्वरूप मुझ ब्रह्मको प्राप्त हुए हैं॥ ६॥ हे उद्धव! आध्यात्मिक आदि तीन प्रकारके विकारोंकी समष्टि शरीर जो 'तुम'में आश्रित है सो मायामात्र मिथ्या है। क्योंकि केवल मध्यमेंही उपस्थित रहता है, आदि और अन्तमें नहीं होता। अतएव ये जन्मादिक धर्म शरीरके हैं, तुम्हारे नहीं हैं, क्योंकि तुम तो उसका अधिष्ठानमात्र हो। असत् वस्तुके आदि, अन्तमें जो होता है, वही मध्यमें भी होता है, इस न्यायसे तुम निर्व्विकार ब्रह्म हो॥ ७॥ **उद्धवने कहा**—हे विश्वमूर्ति! यह ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न सनातन विशुद्ध ज्ञान मुझे स्पष्ट करके समझाइये, जिसमें निश्चित हो जाय। और हे विश्वेश्वर! ब्रह्मादि महत् लोग जिसे खोजते रहते हैं वह निज-भक्ति-योग भी कृपा करके कहिये॥ ८॥ हे ईश्वर! घोर संसारमार्गमें जो व्यक्ति त्रिविध तापसे व्यथित, पीड़ित और सन्तप्त हो रहा है उसके लिये शान्ति देनेवाला, सिवा आपके चरणरूप अमृतकी वर्षा-करनेवाले छत्रके, और कोई मुझे नहीं देख पड़ता॥९॥ हे महानुभाव! संसाररूप अन्धकूपमें पड़े और कालसर्पके डसे एवं क्षुद्र सुखोंकी भारी तृष्णासे पीड़ित इस जन पर परम अनुग्रह करके इसका उद्धार करिये और मोक्षबोधक वाक्य-सुधाकी वर्षासे शान्ति दीजिये॥ १०॥ **श्रीभगवान्ने कहा।** हे उद्धव! राजा युधि-

छिरने भी पहले श्रेष्ठ धार्मिक भीष्म पितामहसे हम सब लोगोंके आगे यही पूछा था ॥ ११ ॥ भारतयुद्ध निवृत्त होने पर बन्धुविनाशसे व्याकुल युधिष्ठिरने शरशय्याशायी भीष्मके निकट और २ बहुतसे धर्म सुन चुकने पर इसी प्रकार मोक्षसाधक धर्मोंको पूछा था ॥ १२ ॥ भीष्मके मुखसे विद्वानोंकी भरी सभामें कहे और सुने गये वे ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, श्रद्धा और भक्तिसे परिवर्द्धित मोक्ष धर्म मैं तुमसे कहता हूँ ॥ १३ ॥ जिससे ब्रह्मादि-स्थावरपर्यन्त सब प्राणियोंमें प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, अहंकार, पाँच तन्मात्रा, मन-सहित ग्यारह इन्द्रियाँ, पाँच तत्त्व और तीनो गुण-ये अट्ठइसो तत्त्व प्रत्यक्ष अनुगत जान पड़ें एवं इन तत्त्वोंमें एक आत्मतत्त्वका अनुभव किया जाय वही मुझ सत् ब्रह्मका निश्चित 'ज्ञान' है ॥ १४ ॥ और जब जिससे एकके अनुगत अनेक भावोंको न देख कर केवल उसी एक परम कारण "ब्रह्म"को देखता है वही "विज्ञान" है । त्रिगुणात्मक सब सावयव भावोंकी स्थिति,उत्पत्ति और नाशके विचारने पर जो आदि,अन्त और मध्यमें परम्पराक्रमसे एक कार्यसे दूसरे कार्यमें अनुगत देख पड़े और उन कार्योंके प्रलयमें अवशिष्ट रह जाय वही "ब्रह्म" सत् है ॥ १५ ॥ १६ ॥ वेद, प्रत्यक्ष, अनुभवी महान् लोगोंका 'यह है'-ऐसा मत, और अनुमान—ये चार प्रमाण हैं। पुरुष इन प्रमाणोंसे सबमें अनुगत सत्य आत्मतत्त्वके बोधको प्राप्त होकर विकल्पसे विरक्त होता है ॥ १७ ॥ सब कर्म विकारयुक्त अर्थात् नश्वर हैं, अतएव उन्हीं कर्मोंके ब्रह्मलोकपर्यन्त सब फल भी परमश्रेय नहीं हैं, क्योंकि अनित्य हैं । ब्रह्मलोकपर्यन्त सब लोकोंके अदृष्ट सुखको भी दृष्ट सुखकी भाँति क्षणभंगुर और इसीसे दुःखरूप देखना हर एक विवेकीका कर्तव्य है ॥ १८ ॥ हे निष्पाप! मैं तुमसे पहले ही भक्तियोग कह चुका हूँ, परन्तु फिर प्रीतिपूर्वक श्रद्धासे तुम उसे सुनना चाहते हो, इस लिये अब मैं फिर अपनी भक्तिके कारणरूप साधनको विशेष रूपसे कहता हूँ ॥ १९ ॥ मेरी मुक्तिदायिनी सुधासमान मधुर कथा सुननेमें श्रद्धा, मेरी कीर्त्तिका कीर्त्तन, मेरी पूजामें पूर्ण निष्ठा, प्रशंसास्तोत्रोंसे मेरी स्तुति, आदरसहित मेरी सेवा, दण्डप्रणाम तथा मेरे भक्तोंकी विशेष रूपसे पूजा करना एवं सब प्राणियोंमें मुझे देखना, सब साधारण कार्य भी मेरे उद्देशसे करना, साधारण बातचीतमें भी मेरे गुणोंहीकी चर्चा करते रहना, सर्वतोभावसे मुझमें मन लगाना, सब कामनाओंको छोड़ देना, मेरे लिये अन्य 'मेरे भजनके विरोधी' प्रयोजन भोग और सुखोंको तजना एवं मेरी ही प्रसन्नताके लिये वेदविहित कर्म, यज्ञ, दान, होम, जप, तप और व्रत करना-येही धर्मकर्म मेरी प्रेमरूपिणी भक्तिके साधन हैं। हे उद्धव! आत्मसमर्पणपूर्वक उक्त धर्मोंसे मेरी आराधना करनेमें मनुष्योंको मेरी प्रेमरूपिणी भक्ति प्राप्त होती है और वे पूर्णकाम हो जाते हैं ॥ २०-२४ ॥ जब इस प्रकार शान्त और सत्त्वपूर्ण चित्त आ-

त्मामें अर्पित होता है तब स्वयं धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ एवं जब वही चित्त विकल्पवासनामें लिप्त होकर इन्द्रियोंके पीछे इधर उधर विषयोंमें दौड़ता रहता है तब अधिक मलीन और असत् निष्ठासे दूषित होता है; यही धर्मका विपर्यय अर्थात् अधर्म है ॥ २६ ॥ जिससे मेरी भक्ति हो वही 'धर्म' है । सबमें एकमात्र आत्माको देखना 'ज्ञान' है । विषयोंके संगको छोड़ देना 'वैराग्य' है और अणिमा आदि सिद्धियोंको 'ऐश्वर्य' समझना चाहिये ॥ २७ ॥ उद्धवने कहा । हे शत्रुनाशन ! यम कै प्रकारके होते हैं? और नियम कौन २ हैं ? हे कृष्ण ! हे प्रभो ! शम, दम, धैर्य और तितिक्षा किसको कहते हैं ? ॥ २८ ॥ दान, तप और शूरता किसे कहते हैं ? सत्य एवं ऋत किसे कहते हैं ? त्याग क्या है ? इष्ट अर्थात् प्रशंसनीय उत्तम धन कौन है ? यज्ञ और दक्षिणा किसे कहते हैं ? ॥ २९ ॥ हे श्रीयुक्त केशव ! पुरुषका बल क्या है ? भग अर्थात् श्रेष्ठ ऐश्वर्य क्या है ? लाभ क्या है ? परम विद्या, ह्री (लज्जा) और श्री क्या है ? सुख और दुःख क्या है ? ॥ ३० ॥ पण्डित कौन है ? मूर्ख कौन है ? मार्ग क्या है ? कुमार्ग क्या है ? स्वर्ग क्या है ? नरक क्या है ? बंधु कौन है ? गृह क्या है ? ॥ ३१ ॥ आढ्य अर्थात् सम्पन्न कौन है ? दरिद्र कौन है ? कृपण अर्थात् शोचनीय कौन है ? ईश्वर अर्थात् स्वतन्त्र या समर्थ कौन है ? हे सज्जनोंके स्वामी ! मेरे इन प्रश्नोंकी व्याख्या करिये और इन शम आदिके विपरीत अशम आदिके लक्षण भी बताइये ॥ ३२ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे उद्धव ! प्रवृत्ति और निवृत्ति-दोनो मार्गोंको ग्रहण करनेवाले लोगोंके लिये बारह यम और बारह नियम कहे गये हैं । जैसे अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना और दूसरेकी वस्तु पर चित्त भी न चलाना), असंग, ह्री (बुरे कर्ममें लज्जा या घृणा) असञ्चय, आस्तिक्य (धर्ममें विश्वास), ब्रह्मचर्य, मौन (वृथा बात न करना), स्थिरता (धैर्य), क्षमा और भय (अर्थात् अधर्मसे डरना)-ये बारह यम हैं । शौच, (भीतर हृदयकी शुद्धि और बाहर शरीरकी शुद्धि), जप, तप, हवन, श्रद्धा (धर्ममें निष्ठा या आदर), अतिथिसेवा, मेरी पूजा, तीर्थपर्यटन, परोपकार, सन्तोष, और आचार्य (गुरु) की सेवा—ये बारह नियम हैं । हे तात ! इनका पालन करनेसे मनुष्योंको वाञ्छित फल प्राप्त होते हैं ॥ ३३-३५ ॥ केवल शान्ति नहीं, बरन् मुझमें बुद्धिकी निष्ठा ही शम है । चोर आदि दुष्टोंका दमन नहीं, बरन् इन्द्रियोंका संयम ही दम है । भार आदि सहना नहीं, बरन् प्राप्त दुःखका सहना ही तितिक्षा है । उद्विग्न न होना ही नहीं, बरन् जिह्वा और उपस्थ इन्द्रियको रोकना या वशमें रखना ही धैर्य है ॥ ३६ ॥ किसीको धन देना ही नहीं, बरन् प्राणियोंको पीड़ा न पहुँचाना ही परम दान है । पंचाग्नि तापना आदि ही नहीं, बरन् भोगकामनाका त्याग ही परम-

तप है। विक्रम दिखाना नहीं, बरन् स्वभाव अर्थात् वासनाको रोकना ही शूरता है। यथार्थ बोलनाही नहीं, बरन् सत् ब्रह्मकी आलोचना या समदृष्टि ही सत्य है ॥ ३७ ॥ प्रिय और मीठी वाणीको विवेकी प्रवीण लोगोंने ऋत बताया है। केवल स्नान आदिही नहीं, बरन् कर्मोंमें आसक्त न होना ही शौच है। कर्मोंका त्याग अर्थात् संन्यास ही त्याग है ॥ ३८ ॥ सम्पत्ति नहीं, बरन् धर्मही मनुष्योंका इष्ट अर्थात् प्रशंसनीय धन है। कर्मबुद्धिसे देवयजन करना नहीं, बरन् मेरी आराधनाके उद्देशसे यज्ञ करना ही यज्ञ है; क्योंकि साक्षात् मैं परमेश्वर ही यज्ञ-पुरुष हूँ। धन आदि देना नहीं, बरन् ज्ञानशिक्षा ही दक्षिणा है; क्योंकि ज्ञानसेही यज्ञरूप विष्णु मैं मिलता हूँ। शारीरिक बल नहीं, बरन् दुर्दमनीय मनका दमन करनेवाला प्राणायाम ही परम बल है ॥ ३९ ॥ लौकिक ऐश्वर्य नहीं, बरन् मेरा छः प्रकारका अलौकिक ऐश्वर्य ही भग (या भाग्य) है। पुत्र आदि मिलना नहीं, बरन् मेरी भक्ति मिलना ही परम लाभ है। पुस्तक पढ़ कर प्राप्त ज्ञान ही नहीं, बरन् आत्मा व परमात्मामें भेदभाव भासित करानेवाली मायाको समझना और जानना अर्थात् आत्मज्ञान ही विद्या है। केवल लज्जा ही नहीं, बरन् न करने योग्य कामोंमें हेय बुद्धि होनाही ह्री है ॥ ४० ॥ किरीट-कुण्डल आदि आभूषणोंको नहीं, बरन् निरपेक्षता आदि गुणोंको श्री (शोभा) कहते हैं। ऐश्वर्यभोग नहीं, बरन् सुख और दुःख दोनोका अनुसन्धान न करनाही परम सुख है। लौकिक पुत्रवियोगादि नहीं, बरन् विषयसुखकी अपेक्षा ही परम दुःख है। पढ़ा लिखा नहीं, बरन् आत्माके बन्धन और मोक्ष-दोनोको जाननेवाला ही पण्डित है। अपढ़ नहीं, बरन् देह-गेहादि पदार्थोंमें "मैं हूँ-मेरा है"-ऐसी बुद्धि रखनेवाला ही मूर्ख है। मुझ तक पहुँचानेवाला निवृत्तिमार्गही श्रेष्ठ मार्ग है। चित्तको व्यस्त करनेवाला प्रवृत्तिमार्गही कुमार्ग है। इन्द्रलोक नहीं, बरन् चित्तमें सत्त्वगुणका उदय होना ही स्वर्ग है। रौरव, कुँभीपाक आदि नहीं, बरन् तमोगुणकी वृद्धिही नरक है। हे सखा उद्धव ! भाई आदि नहीं बरन् गुरुही बन्धु है, और वह जगद्गुरु मैं हूँ। मनुष्यशरीर ही गृह है और धनाढ्य नहीं, बरन् गुणाढ्यही आढ्य है ॥ ४१-४३ ॥ निर्धन नहीं, बरन् असन्तुष्ट ही दरिद्र है। दीन दुःखी नहीं, बरन् अजितेन्द्रिय ही कृपण अर्थात् शोचनीय है। राजा आदि नहीं, बरन् मायाके विकारोंमें निर्लिप्त या अनासक्त पुरुषही ईश्वर (समर्थ या स्वतंत्र) है और मायाके विकारोंमें आसक्त पुरुषही परतन्त्र है ॥ ४४ ॥

एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः ॥
किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः ॥
गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ॥ ४५ ॥

हे उद्धव ! मैंने तुम्हारे इन सब प्रश्नोंका निरूपण भली भाँति कर दिया। इन शम आदिके उक्त लक्षणोंके विपरीत लक्षणोंसे अशम आदि विपरीत भावोंको समझना। गुण और दोषके लक्षणोंको और अधिक बतानेकी आवश्यकता नहीं है, इतनेहीमें समझ लेना कि गुण–दोषका देखनाही दोष है और गुणदोष–दृष्टिका त्यागही गुण है ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंश अध्याय ।

भक्तियोग, ज्ञानयोग और क्रियायोग ।

उद्धव उवाच–विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमो हीश्वरस्य ते ॥
अवेक्षतेऽरविन्दाक्ष गुणं दोषं च कर्मणाम् ॥ १ ॥

उद्धवने कहा । हे कमललोचन ! वेद आपकी आज्ञा है, वह वेद भी विधि-निषेध-बोधक है और करने योग्य तथा न करने योग्य कर्मोंके गुण(पुण्य)और दोष(पाप)को देखता या बताता है ॥१॥ उत्तमाधम भावसे वर्णों और आश्रमोंका भेद भी गुण और दोषके अनुरूप है । प्रतिलोम नीच (वर्णके पुरुषसे उच्च वर्णकी स्त्रीमें उत्पन्न सूत आदि) और अनुलोम (उत्तम वर्णके पुरुषसे नीच वर्णकी स्त्रीमें उत्पन्न रजपूत आदि) जातियाँ भी गुण-दोष की अपेक्षा करती हैं । द्रव्य, देश, काल और अवस्थाएँ भी गुण दोषके अनुसार उत्तम या अधम होती हैं । ऐसेही स्वर्ग और नरकभी गुण-दोषकी अपेक्षा करते हैं ॥ २ ॥ गुण-दोष-भेदयुक्त दृष्टिके विना विधि-निषेधरूप आपका वाक्य वेद कैसे सम्भवपर होसक्ता है ! और विना गुणका ग्रहण और दोषका त्याग किये मनुष्योंकी मुक्ति ही कैसे होसक्ती है ? ॥ ॥ ३ ॥ आपका वचन वेदही पितृगण, देवता और मनुष्योंका श्रेष्ठ चक्षु है। अनुपलब्ध विषय जो स्वर्ग, अपवर्ग आदि हैं उनकी उपलब्धि वेदहीसे होती है। साध्य विषय और उनके साधन भी वेदरूप नेत्रसे देखे जाते हैं ॥४॥ स्वयं नहीं, किन्तु आपकी आज्ञा वेदसेही गुण-दोष दिखानेवाली भेददृष्टि प्राप्त होती है और आपही भेददृष्टिको दोष बताकर उसका निराकरण कररहेहैं । इससे मुझे भ्रम होता है, कृपापूर्वक इस मेरे भ्रमको दूर करिये ॥ ५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा । हे उद्धव ! मनुष्योंके लिये मोक्ष प्राप्त करनेके तीन योग अर्थात् उपाय मैंने कहे हैं–ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग । इनके सिवा मोक्ष मिलनेका चौथा उपाय और कहीं नहीं है ॥ ६ ॥ कर्मोंके फलोंको दुःखरूप जान कर उनसे विरक्त और इसी कारण कर्मोंका त्याग करनेवाले निष्काम जनोंके लिये ज्ञानयोग सिद्धिदायक है । और

जो लोग कर्मोंके फलोंको सुखरूप समझ कर उनसे विरक्त नहीं हुए हैं, और इसी कारण सकाम हैं, उन लोगोंके लिये कर्मयोग सिद्धिदायक है ॥ ७ ॥ इनके अतिरिक्त, अकस्मात् किसी भाग्यके उदयसे जिसे मेरी कथा आदिके कहने, सुननेमें श्रद्धा हो जाती है और जो कर्मोंके फलोंमें न अत्यन्त आसक्त है, न अत्यन्त विरक्त हैं, उस उदासीन जनके लिये भक्तियोग सिद्धिदायक है ॥ ८ ॥ जब तक कर्मफलके प्रति विरक्ति न हो, अथवा जब तक मेरी कथा कहने-सुननेकी श्रद्धा न उत्पन्न हो, तब तक कर्मोंको अवश्य करना चाहिये ॥९॥ हे उद्धव! यदि फलकी अभिलाषा न कर स्वधर्मपालनपूर्वक समग्र यज्ञोंके द्वारा मेरा यजन करता रहे और निषिद्ध कर्म न करे तो न स्वर्गको जाता है और न नरकको जाता है। ऐसा स्वधर्ममें स्थित और निषिद्धत्यागी पवित्रहृदय पुरुष इसी लोक (मनुष्य-शरीर) में रह कर विशुद्ध आत्मज्ञानको अथवा किसी भाग्योदयसे मेरी भक्तिको पाता है ॥१०॥११॥ नरक (अधमयोनि) में पड़ेहुए लोगोंके समान स्वर्गवासी देवगण भी यह मनुष्यशरीर पानेकी अभिलाषा करते हैं, क्योंकि यही शरीर ज्ञान और भक्तिका साधक है; स्वर्गलोक या नरकके शरीरोंसे ज्ञान और भक्तिका साधन नहीं हो सक्ता ॥ १२ ॥ विवेकी व्यक्तिको चाहिये कि नरकगतिके समान स्वर्गगतिकी भी कामना न करे, और न फिर इस मनुष्य शरीरहीकी कामना करे, क्योंकि शरीरमें आसक्त हो कर फिर स्वार्थसाधनमें असावधान हो जाता है ॥ १३ ॥ यह जान कर एवं इस शरीरको, परमार्थका साधन होने पर भी, अनित्य समझ कर अनासक्त भावसे मृत्युसे पहलेही मुक्तिका प्रयत्न करना चाहिये ॥ १४ ॥ जैसे अनासक्त पक्षी यमसदृश निर्दय पुरुषोंको अपने निवासस्थानका आधार वृक्ष काटते देख उसे छोड़ अवश्यही क्षेमको प्राप्त होता है वैसेही दिन और रात्रियोंको अपनी आयु क्षीण करते देख भयकम्पितहृदय पुरुष आसक्ति छोड़ कर, परमेश्वरको जान कर, निश्चेष्ट हो कर परम शान्तिको पाता है ॥१५॥१६॥ सब फलोंका मूल, अभागोंके लिये सुदुर्लभ और भाग्यमानोंके लिये सुलभ, परमपटु, गुरुरूप-कर्णधारविशिष्ट एवं मुझ अनुकूल वायुरूप सहायकके द्वारा संचालित इस नौकारूप मनुष्य-शरीरको पा कर भी जो कोई संसारसागरके पार जानेका प्रयत्न न कर भोग विलासमें लिप्त रहे वह आत्मघाती है ॥ १७ ॥ जब कर्मोंके आरम्भमें निर्वेद हो और कर्मफलोंमें विरक्ति हो तब योगीको चाहिये कि इन्द्रियसंयमपूर्वक आत्माके अभ्याससे स्थिर हुए मनको मुझ परमात्मामें लगावे ॥ १८ ॥ धारणाके समय यदि मन शीघ्रतापूर्वक विषयोंमें भ्रमता हुआ चंचल होने लगे तो आलस्यहीन हो कर अर्थात् आसक्तिसे बच कर मनोभिलषित विषयभोगके द्वारा किंचित् किंचित् वासनाओंको पूर्ण करता हुआ क्रमशः मनको वश करे अर्थात् लक्ष्यमें लगावे। मनकी गतिकी उपेक्षा न करे, किन्तु प्राणवायु और इन्द्रियोंको जीतकर सत्त्वसम्पन्न बुद्धिसे

धीरे २ अभ्यासपूर्वक मनको एकाग्र कर लक्ष्यमें लगावे ॥ १९॥२० ॥ जैसे सवार नवीन घोड़ेको वश करते समय कुछ दूर तक उसे इच्छानुसार जानेदेता है और फिर क्रमशः लगाम कसकर अपने वशमें करलेता है एवं चाहे जहाँ ले जाता है वैसेही किंचित् अनुसरणके द्वारा क्रमशः मनको अपने वशमें लाना चाहिये । इस प्रकार मनको एकाग्र करना ही परमयोग है ॥ २१ ॥ इस भाँति एकाग्र किये हुए मनको, पूर्णतया निश्चलभावसे ईश्वरमें लगानेके लिये, जब तक निश्चल न हो तब तक तत्त्वविवेकके द्वारा महत्तत्त्वसे लेकर देहपर्यंत सब भावोंके अनुलोम क्रमसे भव (उत्पत्ति) और प्रतिलोम क्रमसे लयका चिन्तन या मनन करना चाहिये । इस क्रमसे क्रमशः मन निश्चल होजाता है ॥ २२ ॥ इस प्रकार निर्वेद और वैराग्य होने पर गुरुके बताये हुए आत्मतत्त्वको आलोचनाके द्वारा जानकर उसी चिन्तित (गुरुके) उपदेशका वारम्वार अनुचिन्तन अर्थात् मनन करनेसे मनुष्यका मन दौरात्म्य (देहादिके अभिमानसे उत्पन्न चंचलता) को छोड़कर निश्चल–शान्त हो जाता है ॥ २३ ॥ मनुष्यको चाहिये कि यम आदिक योगके मार्गोंसे या आन्वीक्षिकी(वेदान्त)विद्यासे अथवा मेरे पूजन और उपासनासे शुद्ध हुए चित्तके द्वारा परमेश्वरका चिन्तन करे । इन तीन मार्गोंके सिवा अन्य किसी मार्गमें मनको न बहँकाना चाहिये ॥ २४ ॥ यदि असावधानतावश कोई निन्दित निषिद्ध काम बन पड़े तो योगीको योग ही (ज्ञानाभ्यास अथवा नामकीर्तन आदिही)से उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये–कृच्छ्र, चान्द्रायण व्रतआदि अन्य प्रायश्चित्त कर्म कभी न करने चाहिये, क्योंकि अपने २ अधिकारकी निष्ठा ही गुण है (और तद्विरुद्ध निष्ठा ही दोष है) । वेदमें साधारण अर्थात् कर्म्माधिकारी लोगोंके उद्देश्यसे संग छुड़ाने अर्थात् कर्मप्रवृत्तिकी निवृत्तिहीके लिये गुण-दोषका निरूपण कर स्वाभाविक अशुद्ध (मलिन)कर्मोंको संकुचित किया है । अर्थात् वेदमें गुण-दोष या कर्त्तव्याकर्त्तव्यके निरूपणका तात्पर्य्य यही है कि इसके द्वारा स्वभावतः मलिन या प्रवृत्तिनिष्ठ सर्वसाधारण जन क्रमशः राजस–तामस कर्मोंको छोड़ कर हृदयशोधक सात्त्विक कर्म करते हुए अन्तको सब प्रकारके कर्मोंसे निवृत्त हों, क्योंकि एकाएक सब कर्मोंसे निवृत्ति नहीं हो सक्ती । इसी कारण स्वाभाविक प्रवृत्तिहीन योगीके लिये वेदविहित प्रायश्चित्तादि विधिका बंधन नहीं है ॥२५॥२६॥ मेरी कथा-वार्तामें जिसको श्रद्धा होगई है और सब कर्मोंमें निर्वेद होगया है वह सब भोगोंको दुःखदायक जान कर भी, यदि छोड़नेमें असमर्थ हो, तो दृढ़ निश्चय और श्रद्धासे पूर्ण हो कर सब कर्मोंका भोग करता हुआ भी उनमें अनासक्त रहे और दुःखदायक मान कर उनको निन्दित या तुच्छ जानता हुआ प्रसन्न मनसे मेरा भजन करे । इस प्रकार सब कर्मोंसे विरक्त होकर पूर्वोक्त भक्तियोगसे निरन्तर भजनेवालेके हृदयमें

में विराजमान होता हूँ और क्रमशः उसके हृदयकी सब कामवासनाएँ नष्ट होजाती हैं। मुझ सर्वात्माका साक्षात्कार होनेसे उसके हृदयकी वासनामयी ग्रंथि छिन्न होजाती है और सब संशय निवृत्त एवं सब कर्म निर्बीज होजाते हैं ॥ २७–३० ॥ इस लिये मेरी भक्तिसे युक्त और मुझमें आत्माको युक्त करनेवाले योगीके लिये ज्ञान और वैराग्य प्रायः श्रेयके साधन नहीं होते ॥३१॥ कर्मकाण्ड, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान एवं अन्यान्य श्रेयके साधनों द्वारा जो २ सिद्ध होता है वह सब मेरे भक्तको भक्तियोगसे अनायास ही मिलजाता है, और यदि वह चाहे तो स्वर्ग, अपवर्ग और मेरे वैकुण्ठ धामको अवश्य ही पा सक्ता है ॥३२॥३३॥ किन्तु मुझमें अनन्य प्रेम रखनेवाले विवेकी साधु भक्त जन मेरे देने पर भी अपुनर्भव कैवल्य मोक्षकी भी कभी कामना नहीं करते ॥ ३४ ॥ निरपेक्षता अर्थात् कामनात्याग ही महान् उत्कृष्ट निःश्रेयस फल और उसका साधन कहा गया है। इस लिये जो कामनाशून्य और निरपेक्ष है उसीको मेरी अनन्य भक्ति प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥ बुद्धिरूप प्रकृतिसे अतीत होकर परमपार परमेश्वरको प्राप्त मेरे अनन्य भक्त और इसीसे रागद्वेषादिरहित–समदर्शी साधुजनोंको गुणदोष-जनित पुण्य पाप नहीं होते ॥ ३६ ॥

एवमेतन्मयादिष्टाननुतिष्ठन्ति मत्पथः ॥
क्षेमं विन्दन्ति मत्स्थानं यद्ब्रह्म परमं विदुः ॥ ३७ ॥

हे उद्धव ! जो लोग मेरे कहेहुए इन मेरे पानेके मार्गों पर चलते हैं वे काल-मायादिसे रहित अकुतोभय क्षेममय मेरे परमपदको प्राप्त होते हैं और परब्रह्मको जानपाते हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंश अध्याय ।

सकाम लोगोंके लिये द्रव्य देशआदिके गुण दोषोंका वर्णन ।

श्रीभगवानुवाच—य एतान्मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् ॥
क्षुद्रान्कामाँश्चलैः प्राणैर्जुषन्तः संसरन्ति ते ॥ १ ॥

श्रीभगवान्ने कहा। हे उद्धव ! जो लोग मेरे पानेके इन कर्म, ज्ञान और भक्ति नामक तीनो मार्गोंको छोड़कर चंचल प्राणों या इन्द्रियोंके द्वारा क्षुद्र विषयोंका सेवन करते हैं वे वारम्वार अनेक योनियोंमें जन्मते मरते रहते हैं ॥ १ ॥ अपने २ अधिकारकी निष्ठाही गुण है और विपर्य्यय ही दोष है। गुण और दोषका यह निश्चित

निर्णय है॥२॥ हे उद्धव, विशेषरूपसे अन्तःकरणको शोधनेके लिये अर्थात् "यह योग्य है या अयोग्य ?"–इस प्रकारके संशयके द्वारा स्वाभाविक विषयप्रवृत्ति रोकनेके लिये वस्तुओंके एकसमान होने पर भी उनमें धर्म्माधर्मके निमित्त शुद्धि और अशुद्धि–लोकव्यवहारके लिये गुण और दोष एवं जीविकाके लिये शुभ और अशुभकी कल्पना की गई है। धर्मधुरन्धर अर्थात् ज्ञान अथवा भक्तिके अनधिकारी कर्मासक्त लोगोंके लिये मैंने ही मनुआदि भिन्न २ रूपोंसे यह आचार दिखलाया है ॥३॥४॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश–ये पञ्चमहाभूत, ब्रह्मासे लेकर सामान्य स्थावरपर्य्यन्त सब प्राणियोंके शरीरोंकी धातुएँ या आरम्भक (उपादान) हैं ॥५॥ हे उद्धव ! इन सब प्राणियोंकी स्वार्थसिद्धि (प्रवृत्तिनियमके द्वारा धर्मआदि पुरुषार्थोंकी सिद्धि)के लिये एकही उपादानसे गठित देहोंमें विविध नामों और रूपों (वर्णाश्रमादि)की कल्पना की गई है ॥६॥ हे सत्तम ! कर्म्मोंको संकुचित करनेके लिये मैंने देश, काल आदि भावों और वस्तुओंमें गुण-दोषका विधान किया है ॥ ॥ ७ ॥ देशोंमें कृष्णसारमृगहीन और उससे भी अधिक अब्रह्मण्य देश अपवित्र हैं, और सब पवित्र हैं। कृष्णसार मृगके द्वारा श्रेष्ठ होने पर भी सत्पात्रविहीन कीकट देश और असंस्कृत म्लेच्छबहुल अङ्ग-वङ्ग-कलिङ्गादि देश एवं ऊसर भूमि अपवित्र है ॥ ८ ॥ द्रव्यसङ्गवश अथवा स्वभावतः कर्मयोग्य काल गुणवान् है और जिसमें कर्म नहीं किये जाते वह काल कर्म करनेके अयोग्य होनेके कारण दूषित अर्थात् अशुद्ध है ॥ ९ ॥ द्रव्य, वचन, संस्कार, काल और महत्त्व–अल्पत्वके परिमाणसे पदार्थोंकी शुद्धि या अशुद्धि होती है । जैसे पात्र आदि, जलसे शुद्ध और मूत्रसे अशुद्ध होते हैं, ब्राह्मणोंके वचनानुसार बहुत से पदार्थोंकी शुद्धि या अशुद्धि मानी जाती है, फूलआदि जल छिड़कनेसे शुद्ध और सूँघ लेनेसे अशुद्ध होजाते हैं, दशाह आदिसे नवोदकादिकी शुद्धि होती है और बासी होजानेसे अन्न अशुद्ध होजाता है, बड़े तालाब शुद्ध समझे जाते हैं और छोटी गढ़ैया आदि (म्लेच्छ और अन्त्यजोंके स्नान आदिसे) अशुद्ध समझी जाती हैं। ये क्रमशः द्रव्य, वचन आदिके द्वारा पदार्थोंकी शुद्धि और अशुद्धिके उदाहरण हैं ॥ १० ॥ शक्ति और अशक्तिके अनुसार भी शुद्धि या अशुद्धि होती है । जैसे चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहणके समय अशक्त लोगोंके अन्नादि पदार्थ सूतकसे अशुद्ध नहीं होते और समर्थ लोगोंके लिये अशुद्ध होते हैं। ज्ञानके अनुसार भी शुद्धि या अशुद्धि होती है । समृद्धिके अनुसार भी शुद्धि या अशुद्धि होती है। जैसे धनाढ्य लोगोंके लिये जीर्ण मलीन वस्त्र अशुद्ध हैं और वे ही दरिद्र लोगोंके लिये शुद्ध हैं। देश और दशाके अनुसार ही ये द्रव्य व वचनआदिक निमित्त, वस्तुओंकी अशुद्धिके द्वारा आत्माको पापभागी करते हैं । अर्थात् निर्भय देश और नीरोग–तरुण अवस्थामें उक्त नैमित्तिक अशुद्धिके द्वारा आत्माको पाप लगता है; संकटपूर्ण

देश और अशक्त अवस्थामें पाप नहीं होता* ॥ ११ ॥ धान्य, काष्ठ, हड्डी (हाथीदाँत आदि), सूत, रस (घी, तेलआदि) तैजस (सुवर्ण आदि) चर्म (कृष्णाजिन आदि) और सम्पूर्ण पार्थिव पदार्थोंकी शुद्धि काल, वायु, अग्नि, मट्टी और जलसे होती है। काल वायु आदि एकसाथ और अलग २ भी-दोनो भाँति इन वस्तुओंके शोधक हैं ॥ १२ ॥ यदि पीठ, पात्र, वस्त्र आदिमें कोई अशुद्ध पदार्थ लिप्त हो जाय तो छीलनेसे खार-खटाईके पानीसे और छाँटनेसे जब उस अशुद्ध वस्तुका लेप और गन्ध मिट जाय और पीठ, पात्र, वस्त्रादि पदार्थ पूर्वरूपको प्राप्त होजायँ तब उनको शुद्ध समझना चाहिये ॥ १३ ॥ स्नान, दान, तप, अवस्था, शक्ति, संस्कार, कर्म (सन्ध्योपासन, दीक्षा आदि) और मेरे स्मरणसे शरीरसहित आत्माका शौच (पवित्रता) होता है, अर्थात् इन कर्मोंसे देहाभिमानयुक्त कर्त्ताको विहित कर्म करनेकी योग्यता प्राप्त होती है। इस प्रकार शुद्ध हो कर द्विज वर्णोंको हर एक विहित कर्म करना चाहिये ॥ १४ ॥ गुरुके मुखसे सुनना और भली भाँति भाव समझना ही मन्त्रकी शुद्धि है। मेरे अर्पण कर देनाही कर्मकी शुद्धि है। इस प्रकारसे देश, काल, पदार्थ, कर्त्ता, मन्त्र और कर्म-इन छःकी शुद्धिसे धर्म और अशुद्धिसे अधर्म होता है ॥ १५ ॥ कहीं २ विधिके बलसे दोष भी गुण माना जाता है और कहीं २ गुण भी दोष हो जाता है। ऐसे २ स्थलों पर गुण-दोपका नियामक शास्त्र ही अधिकारके अनुसार गुणदोष-भेदका बाधक है। जैसे मदिरा पीना उच्च वर्णके लिये पातक है, परन्तु जो पहलेहीसे जाति या कर्मसे पतित है उसके लिये पुनः पातक (भ्रष्ट करनेवाला) नहीं हो सक्ता। यहाँ पतितोंके लिये दोष भी गुण है। ऐसेही 'संग,' जो अन्य आश्रमोंके लिये दोप कहा गया है, वही गृहस्थाश्रमीका औत्पत्तिक (पैदायशी) होनेके कारण उसके लिये गुण है; वेदमें उसके लिये ऋतुकालका स्त्रीगमन आवश्यक कहा गया है। हे उद्धव! जैसे पृथ्वी पर लेटेहुए मनुष्यको नीचे गिरनेका भय नहीं होता वैसेही पतित भी पातक करनेसे और अधःपतित नहीं हो सक्ते ॥१६॥१७॥ कर्माधिकारियोंकी क्रमोन्नति और अन्तमें निवृत्तिके अभिप्रायसे वेदमें यह गुण-दोषकी व्यवस्था की गई है। इस कारण अधिकारकी क्रमोन्नतिके अनुसार जिस २ से निवृत्त (विरक्त) होता जाय उस २ को छोड़ते जाना चाहिये। इस प्रकार प्रवृत्तिसे क्रमशः निवृत्ति ही मनुष्यके शोक, मोह और भयको नष्ट कर परम मङ्गल देनेवाला श्रेष्ठ धर्म है। जब तक ज्ञान या भक्ति न उत्पन्न हो तब तक गुणदोषबुद्धि आवश्यक है; और जब क्रमशः ज्ञान या भक्तिका अधिकारी हो जाय तब गुणदोष-

---

* स्मृति भी कहती है-देशं कालं तथात्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम्। उपपत्तिमवस्थाञ्च ज्ञात्वा शौचं प्रकल्पयेत् ॥

बुद्धि और कर्म दोनोको छोड़ देना चाहिये। किन्तु वेदके निगूढ़ भावको न समझ कर जो लोग वेदको प्रवृत्तिपर मानते हैं वे विषयोंमें गुण बिवेचना करनेसे उनमें आसक्त हो पड़ते हैं। विषयासक्तिसे पानेकी इच्छा प्रबल होती है। विषयलाभके लोभकी प्रवलतासे मनुष्योंमें परस्पर कलह होती है। कलहसे दुर्विषह क्रोध उत्पन्न होता है, और क्रोध होने पर विवेक नष्ट हो जाता है। अविवेकके आवरणसे पुरुपकी चेतना (अर्थात् कार्य-अकार्यका स्मरण) शीघ्र ही आच्छन्न हो जाती है। हे साधु उद्धव! चेतनाशून्य जीव असत्तुल्य और स्वार्थसे भ्रष्ट हो कर मूर्च्छित (किंकर्त्तव्यविमूढ़) और मृतप्राय होजाता है। जो विषय-चिन्तामें लिप्त रह कर आत्मा और परमात्माके जाननेका प्रयत्न नहीं करता वह इह–सर्वस्ववादी विमूढ़ व्यक्ति वृक्षोंके तुल्य जड़ जीव है और धौंकनीके समान श्वास लेते रहने पर भी मृततुल्य व्यर्थ है। अर्थात् वह कुछ भी स्वार्थसाधन नहीं करता, इस लिये उसका जीवन वृथा है ॥१८–२२॥ वेदकी फलश्रुति केवल विषयासक्त लोगोंको मोक्ष–धर्ममें रुचि दिलानेके लिये है। वेद कहता है कि यह कर्म करनेसे स्वर्ग मिलेगा, यह कहनेसे वेदका अभिप्राय यह नहीं है कि स्वर्गलाभ पुरुषार्थ या श्रेय है। वेदका ऐसा कहना वैसा ही है जैसे कोई पिता लड़केसे कहे कि यह नीमका काढ़ा पी लो तो तुमको मिठाई मिलेगी। बालकोंके समान अपना श्रेय न जाननेवाले विषयासक्त बहिर्मुख लोगोंको श्रेयमें रुचि उपजानेके लिये अर्थात् निवृत्तिमार्गमें लानेके लिये ही वेदकी फलश्रुति है ॥ २३ ॥ हे उद्धव! आत्माके लिये अनर्थकारी सम्पूर्ण विषय, शरीर और पुत्रादि स्वजनोंमें मनुष्योंका मन उत्पत्तिहीसे आसक्त होता है। अतएव वे परम सुखको नहीं जानते और न स्वतः जाननेकी चेष्टा करते हैं एवं 'वेद जो बतलाता है वही श्रेय है'–ऐसा विश्वास रखते हैं। इस प्रकार काम्यकर्मानुसार देवादि योनियोंमें जा कर, भोगके द्वारा पुण्य क्षीण होने पर, वृक्षादि योनियोंमें जानेवाले संसारमार्गमें घूम रहे अज्ञ लोगोंको, विज्ञ वेद भला फिर कैसे उन्हीं विषयोंके साधनमें प्रवृत्त कर सक्ता है? तात्पर्य यह है कि वेद निवृत्तिपर है, जो लोग वेदके निगूढ़ तात्पर्यको न समझ कर उसे प्रवृत्तिपर मानते हैं वे भ्रान्त हैं ॥२४॥२५॥ वेदके पूर्वोक्त अभिप्रायको न जाननेवाले कर्मकाण्डी लोग अवान्तर फल दिखाकर रुचि उपजानेवाली वेदकी फलश्रुतिमें मोहित होनेके कारण कुबुद्धि हैं। वेदके यथार्थ भावको जाननेवाले वेदान्ती लोग उनके समान फलश्रुतिमें मोहित नहीं होते ॥ २६ ॥ उक्त कामी, कृपण और लोभी लोग फूलों (स्वर्गादि अवान्तर फलों) को ही फल (परम पुरुषार्थ) समझते हैं। अग्निसाध्य (यज्ञादि) कर्म्मोंमें अभिनिविष्ट रहनेके कारण उनका विवेक लुप्त होजाता है। अन्तसमय धूममार्ग होकर पितृलोकको जानेवाले वे अपने लोक (परमात्मा) को

नहीं जानते । हे उद्धव ! कर्म्मवादी और शारीरिक सुखको ही परमार्थ मानकर उसीमें तत्पर और सन्तुष्ट एवं मोहान्धकारमें नष्टदृष्टि (नष्टविवेक) लोग हृदयमें ही स्थित विश्वोत्पादक विश्वरूप मुझ अन्तर्यामी परमात्माको नहीं जानते ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ वे विषयी पुरुष मेरे पूर्वोक्त गूढ़ मतको न जानकर वृथा पशुओंकी हिंसा करते हैं; वेही पशु उनके मरने पर दूसरे जन्ममें उनको मारते हैं ॥ २९ ॥ 'यदि हिंसामें अर्थात् मांसभक्षण अथवा यज्ञफलरूप स्वर्गादि लोकोंमें अनुराग हो तो यज्ञमें ही हिंसा करनी चाहिये'—यह वेदवाक्य परिसंख्यामात्र है—प्रेरणा नहीं है। किन्तु इस यथार्थ भावको न समझकर और कर्मोंको हेय न जानकर हिंसामें रमनेवाले खल लोग अपने इन्द्रियसुखकी इच्छासे पशुवलिके द्वारा देवतागण, पितृगण और भूतपतियोंका यजन करते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जैसे कोई व्यापारी बनिया दुस्तर समुद्रको नाँघकर बहुत धन कमानेकी इच्छासे मूलधनको भी हाथसे गँवाकर कहींका नहीं रहता, वैसे ही उक्त अज्ञ लोग, स्वप्नतुल्य अनित्य और केवल श्रवणप्रिय स्वर्गादि परलोकमें अनेक प्रकारके सुखोंकी कल्पना करके, उनके लिये, धर्मादि चतुर्वर्गरूप पुरुषार्थोंको भी गँवा देतेहैं और फिर कहींके नहीं रहते; इस कारण वे अत्यन्त मन्दमति हैं ॥३२॥ रजःसत्व-तमोनिष्ट लोग भेदभावनायुक्त होकर रजः-सत्व-तमःसेवी इन्द्रादि देवोंकी उपासना करते हैं; मेरी यथावत् पूजा नहीं करते ॥ ३३ ॥ "इस लोकमें यज्ञादिके द्वारा देवतोंकी आराधना कर स्वर्गलोकको जायँगे और वहाँ अप्सराओंके साथ अमृत पीकर सुखसे विहार करेंगे ! फिर पुण्य क्षीण होने पर इस लोकमें उच्च कुलमें जन्म लेकर महागृहस्थ होंगे"—इस प्रकारके सुननेमें मनोहर वाक्योंमें जिनका चित्त मोहित होरहा है उन देहाभिमानी—अतएव अत्यन्त विषयलोलुप लोगोंको मेरी वार्ता भी नहीं रुचती ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ वेदके तीनो (कर्मकाण्ड ब्रह्मकाण्ड और देवताकाण्ड) काण्ड ब्रह्म और आत्माकी एकता सिद्ध करते हैं; अतएव वास्तवमें निवृत्तिपर हैं। वेदके मन्त्र (या मन्त्रद्रष्टा ऋषिगण) सब अतीन्द्रिय (ब्रह्म) विषयका प्रतिपादन करते हैं; क्योंकि परोक्षप्रतिपादन मुझे भी प्रिय है। ज्ञानके अधिकारी श्रद्धावान् शुद्ध अन्तःकरणके लोग जिसमें इसे जान सकें, किन्तु जो अधिकारी नहीं हैं वे अयोग्य लोग इसको साध न सकेंगे और वृथा कर्मत्याग करनेके कारण उभयतोभ्रष्ट होजायँगे, अतएव वे न जान सकें, यही मेरा अभीष्ट है, और इसी कारण वेदमें गूढ़ उपदेश है ॥ ३६ ॥ सूक्ष्म और स्थूल भेदसे द्विविध यह शब्द-ब्रह्म अत्यन्त दुर्बोध है । इसके स्वरूप और अर्थको ठीक २ जानना अत्यन्त कठिन है । प्राणमय (परा नाड़ी) इन्द्रियमय (पश्यन्ती नाड़ी) मनोमय (मध्यमा नाड़ी) सूक्ष्म शब्दब्रह्म समुद्रके समान अनन्तपार, गंभीर और दुरवगाह्य

है * ॥ ३७ ॥ वह मुझ व्यापक और अनन्तशक्ति ब्रह्मके द्वारा अधिष्ठित या परिवर्द्धित होकर कमलनालमें सूक्ष्म तन्तुओंके समान प्राणियोंमें नादरूपसे लक्षित होता है ॥ ३८ ॥ जैसे ऊर्णनाभि (मकड़ा) मुखसे जालेको उगलता है वैसेही प्राणरूपसे वेदमूर्ति, स्वयं अमृतमय, प्राणोपाधि हिरण्यगर्भरूप भगवान्, नादरूप उपादानसे सम्पन्न होकर, स्पर्शादिवर्ण—सङ्कल्पकारी अतएव निमित्तरूप मनके द्वारा हृदयाकाशसे, जिसका अन्त और पार नहीं है उस बृहतीका सृजन और संहार करते हैं। इस बृहतीके मार्ग अनेक हैं; अतएव विविधवर्णमयी है। यह बृहती (वाणी) वक्षःस्थल और कण्ठादिके सम्बन्धसे व्यञ्जित स्पर्श (कवर्गादि पंचवर्ग) वर्ण, स्वर (अकारादि) वर्ण, ऊष्म (श, ष, स, ह) वर्ण और अन्तःस्थ (य, र, ल, व) वर्णोंसे विभूषित है और विविध विचित्र (लौकिक—वैदिक) भाषाओंके द्वारा विस्तृत है एवं उत्तरोत्तर चार २ अक्षरोंसे परिवर्द्धित छन्दोंके द्वारा चिह्नित है ३९-४१ वेदराशिमयी बृहतीमें गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिच्छन्दस्, अत्युष्णिक्, अतिजगती और अतिविराट् इत्यादि छन्द विद्यमान हैं ॥४२॥ वह बृहती कर्मकाण्डमें विधिवाक्योंसे क्या विधान करती है, देवता काण्डमें मन्त्रवाक्योंसे क्या प्रकाशित करती है, और ज्ञानकाण्डमें किसका आश्रय लेकर तर्क करती है, सो सब उसका यथार्थ भाव इस लोकमें मेरे सिवा और कोई नहीं जानता। वह बृहती यज्ञरूपसे मेराही विधान करती है, देवता रूपसे मुझेही प्रकाशित करती है और मुझीको वादीके तर्कित अर्थ—रूपसे कह कर प्रतिवादीके दूसरे प्रकारके तर्कसे निरस्त करती है ॥ ४३ ॥

एतावान्सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम् ॥
मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिध्य प्रसीदति ॥ ४४ ॥

बृहती या वेद, परमात्मारूप मुझको आश्रय बना कर 'सब भेद मायामात्र है' —यह प्रतिपादित करता है और सबका निषेध कर अन्तमें आप भी निवृत्त हो जाता है। यही सम्पूर्ण वेदका तात्पर्य है ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

---

* श्रुति कहती है—चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेंगयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥

अर्थात् शब्दब्रह्मके परा पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी, ये चार पद हैं। इन्हे आत्मज्ञानी मनीषी ब्राह्मण ही जानते हैं। इनमेंसे तीन तो शरीरके भीतर निहित रहकर स्वरूपको प्रकाशित करते हैं और चौथे वैखरीनामक भागको लोग बाहर व्यक्त करते हैं, अर्थात् बोलते हैं। उसे भी केवल बोलते हैं—तत्त्वतः जानते नहीं हैं।

द्वाविंश अध्याय ।

तत्त्वकेसम्बन्धमें अनेक भिन्न २ मतोंका विरोध मिटाना ।

उद्धव उवाच—कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो ॥
नवैकादशपञ्चत्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥ १ ॥

उद्धवने कहा । हे देवेश ! हे प्रभो ! ऋषियोंने कै प्रकारसे तत्त्वगणना की है ? सुनते हैं कि आपने अट्ठाइस तत्त्व कहे हैं । किन्तु और ऋषिगण कोई छब्बीस, कोई पचीस, कोई सात, कोई नव, कोई छः, कोई चार, कोई ग्यारह, कोई सत्रह कोई सोलह, और कोई तेरह तत्त्व बताते हैं । हे नित्यरूप ! ऋषिलोग जिस अभिप्रायसे तत्त्वोंकी भिन्न २ संख्या करते हैं, सो आप मुझसे कहिये ॥ १–४ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा । सब तत्त्व सब तत्त्वोंके अन्तर्गत हैं, इस लिये ब्राह्मणोंकी की हुई सब तत्त्वसंख्या ठीक हैं । इसके सिवा आत्माकी अपार मायाका आश्रय लेकर संख्याएँ करनेवालोंके लिये दुर्घट क्या है ? 'तुम जैसा कहते हो वैसा नहीं है, मैं जैसा कहता हूँ वैसा है'—इस प्रकार मायाका आश्रय लेकर विवाद करनेवालोंके लिये विवादका हेतु जो मेरी सत्त्व आदि शक्तियाँ हैं, सो दुरत्यय हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ इन्हींके क्षोभसे वादी लोगोंके विवादका आश्रय 'विकल्प' उत्पन्न हुआ है । शम-दम प्राप्त होने पर विकल्प लीन होजाता है और उसके साथही विवाद भी शान्त होजाता है ॥ ७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! सब तत्त्व परस्पर अनुप्रविष्ट हैं, अतएव वक्ताकी बिवक्षाके अनुसार कार्य-कारण भावसे तत्त्वोंकी अधिक और अल्प संख्या, दोनो ही ठीक हैं ॥ ८ ॥ कारणतत्त्वमें या कार्यतत्त्वमें क्रमशः और २ तत्त्व प्रविष्ट देख पड़ते हैं । इस कारण तत्त्वोंकी कार्य-कारणता और न्यूनाधिकता जिनको अभीप्सित है उन वादी जनोंमें जो जितनी संख्या करता है सो सब युक्तियुक्त होसक्ती है—अतएव ग्राह्य है ॥ ९ ॥ १० ॥ अनादि अविद्यासे आवृत पुरुषको आपहीसे आत्मज्ञान होना असम्भव है; अतएव अन्य तत्त्वज्ञ व्यक्तिको अवश्य ही उसे ज्ञानोपदेश करना होगा । इस प्रकार आत्माका ज्ञान देनेवाले परमात्माको आत्मासे अलग मान कर छब्बीस तत्त्व कहना अयोग्य नहीं है ॥ ११ ॥ किन्तु इस विषयमें पुरुष और ईश्वरमें अणुमात्र भी विलक्षणता नहीं है, क्योंकि दोनोही चिद्रूप हैं (इस कारण उनमें भेदकल्पना व्यर्थ है। इस लिये पचीस तत्त्व कहना भी ठीक है) । ज्ञान प्रकृतिहीका गुण हैं और गुणोंकी समता ही प्रकृति है । सृष्टि, स्थिति, प्रलयके कारणस्वरूप रजः सत्त्व और तमः—तीनो प्रकृतिहीके गुण हैं—आत्माके नहीं हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ इस संसारमें ज्ञान ही सतोगुण है, कर्म ही रजोगुण है और अज्ञान ही तमोगुण है । गुणोंका क्षोभ ही काल है और स्वभाव ही महत्तत्त्व है ॥ १४ ॥ पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार और पृथ्वी, जल, वायु, तेज,

आकाश–ये मुख्य नव तत्त्व मैंने कहे हैं ॥ १५ ॥ कर्ण, त्वचा, नेत्र, नासिका और रसना–ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं; वाक्, हस्त, उपस्थ, पायु और पाद ये पाँच कर्मेन्द्रिय हैं; मन उभयात्मक है ॥ १६ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं और गति, उक्ति, मैथुन, मलत्याग एवं शिल्प—ये कर्मेन्द्रियोंके विषय हैं ॥ १७ ॥ कार्यकारणरूपिणी प्रकृति सृष्टिके आदिमें सत्त्वादि गुणोंके द्वारा विशेष २ अवस्थाओंको ग्रहण करती है। यह अव्यक्त पुरुष प्रकृतिकी उन अवस्थाओंका साक्षी है ॥ १८ ॥ महत् आदि सब कारणतत्त्व विकारको प्राप्त होते समय पुरुषके देखनेसे शक्तिमान् होकर परस्पर मिलनेके उपरान्त प्रकृतिके आश्रयसे एक अण्डकी सृष्टि करते हैं ॥ १९ ॥ सात ही कारणतत्व माननेवाले मतके अनुसार पञ्चतत्त्व जीव और इन छःका आश्रय सातवाँ परमात्मा समझना चाहिये। कारणरूपसे प्रकृति, पञ्चतत्त्वोंके अन्तर्गत हैं और देह, इन्द्रिय तथा प्राण इन्हीसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २० ॥ छः कारणतत्व कहनेवालोंके मतमें पञ्चतत्त्व और छठा परम पुरुष है। ईश्वर अपनेसे उत्पन्न उक्त तत्त्वों सहित विश्वकी सृष्टि करके उसमें प्रविष्ट हैं ॥ २१ ॥ चार कारण तत्त्व कहनेवालोंके मतमें तेज, जल, पृथ्वी और आत्मा ये चार मूलतत्त्व हैं, इन्ही चार तत्त्वोंसे अन्यान्य तत्त्वोंकी उत्पत्ति कहकर वे सब तत्त्वोंको इन्हींके अन्तर्गत स्वीकार करते हैं ॥ २२ ॥ सप्तदशगणनामें पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, मन और आत्मा—ये सत्रह तत्त्व मानते हैं ॥२३॥ वैसे सोलह तत्त्व बतानेवाले, मनको आत्मासे अभिन्न मानते हैं। तेरह तत्त्व कहनेवाले पञ्चतत्व, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, आत्मा और परमात्मा एवं मन–ये तेरह तत्व मानते हैं ॥ २४ ॥ इस प्रकार ऋषियोंने कई प्रकारसे तत्त्वोंकी संख्या की है। युक्तियुक्त होनेके कारण सभी न्याय्य हैं। पण्डित विद्वानोंको क्या नहीं सोहता? अर्थात् सभी सोहता है ॥ २५ ॥ **उद्धवने कहा।** हे कृष्ण! पुरुष और प्रकृति यदि स्वभावसे भिन्न हैं तो परस्पर एकसे भिन्न दूसरेकी प्रतीति क्यों नहीं होती? प्रकृति पुरुषमें और पुरुष प्रकृतिमें अभिन्न रूपसे अवस्थित जान पड़ते हैं। हे कमलनयन! हे सर्वज्ञ! मेरे इस महान् संशयको युक्तियुक्त वचनोंसे निवृत्त करिये। इसमें कोई संशय नहीं है कि आपहीकी कृपासे जीवोंको ज्ञान प्राप्त होता है और आपहीकी मायारूप शक्तिसे मोह होता है। अतएव आपही अपनी मायाकी गतिको भली भाँति जानते हैं, और कोई नहीं जानसक्ता ॥२६–२८॥ **श्री भगवान्ने कहा।** हे नरवर उद्धव! प्रकृति और पुरुषमें बड़ा भारी भेद है! यह सर्ग (गुणसमष्टिरूप देह) गुण–क्षोभकृत होनेके कारण वैकारिक अर्थात् विकारसम्पन्न है ॥ २९ ॥ हे मित्र! मेरी अनेकरूपिणी गुणमयी माया गुणगणके द्वारा विविध भेद और भेदभावोंको उपजाती है। विविधविकारसम्पन्न होने पर भी स्थूलरूपसे यह कारणसृष्टि तीन प्रकारकी है, अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव ॥ ३० ॥ जैसे, चक्षु इन्द्रिय अध्यात्म है, रूप

अधिभूत है, और चक्षुगोलकमें प्रविष्ट सूर्य्यका अंश अधिदेव हैं । चक्षु, रूप और चक्षुगोलकमें प्रविष्ट सूर्य्यका अंश–ये तीनो परस्परसापेक्ष भावसे प्रकाशित होते हैं; किन्तु आकाशमें जो स्वयं सूर्य्यदेव हैं वह निरपेक्ष भावसे स्वयंप्रकाशित हैं । अतएव इन अध्यात्म आदिका कारण, एकमात्र आत्मा (प्रकाशक होनेके कारण) अभिन्न होने पर भी (स्वप्रकाश होनेके कारण) सबसे भिन्न है । वह अपने स्वयंसिद्ध प्रकाशसे उक्त परस्पर प्रकाशकोंका भी प्रकाशक है, इसीसे उसके प्रकाशका स्वतःसिद्ध होना सिद्ध होता है । इसी प्रकार चक्षु, रूप और सूर्य्यांशकी भाँति त्वचा, स्पर्श, वायु; श्रवण, शब्द, दिशा; रसना, रस, वरुण; नासिका, गन्ध, अश्विनीकुमार; चित्त, चेतयितव्य, वासुदेव; मन, मन्तव्य, चन्द्र; बुद्धि, बोद्धव्य, ब्रह्म; और अहंकार, अहंकर्त्तव्य, रुद्र; ये अध्यात्म, अधिभूत, अधिदेव हैं । गुणोंको क्षोभित करनेवाले कालरूप परमेश्वरको निमित्त करके प्रकृतिसम्भूत महत्तत्त्वसे विकाररूप जो अहंकार उत्पन्न होता है वह वैकारिक, तामस और राजस भेदसे त्रिविध है । वही मोहमय विकार (उपाधि) का हेतु है–और नहीं है–इसप्रकारके भेदसे घटित विवाद भी आत्माके अज्ञानसे उत्पन्न है । भेदभाव निरर्थक होने पर भी, अपने रूप मुझसे जिनका मन विमुख है उन पुरुषोंके हृदयमें बनाही रहता है, कभी किसी प्रकार निवृत्त नहीं होता ॥ ३१–३४ ॥ उद्धवने कहा । प्रभो ! हे गोविन्द ! जिनका मन आपसे विमुखहै वे निजकृत कर्मोंके द्वारा जिस प्रकार उत्तम और अधम शरीरोंका ग्रहण और परित्याग करते हैं सो कृपापूर्वक मुझसे कहिये । जिनका आत्मा अज्ञानसे आवृत है वे लोग इस विषयको विचार भी नहीं सक्ते । इस संसारमें बिवेकी जन बहुतही थोड़े हैं; क्योंकि प्रायः सभी मायामें मोहित हो रहे हैं ॥३५॥३६॥ श्रीभगवान्‌ने कहा । हे उद्धव ! मनुष्योंका कर्ममय मन पाँचो ज्ञानेन्द्रियोंके साथ इस लोकसे अन्य लोकमें और वहाँसे अन्य लोकमें–इसी प्रकार एक लोकसे दूसरे लोकमें जाता है; अहंकारके कारण आत्मा भी उसका अनुसरण करता है ॥ ३७ ॥ (इस लोकके) देखे हुए और (स्वर्गादि लोकोंके) वेदमें सुनेहुए विषयोंका ध्यान करता हुआ यह कर्मतंत्र मन ध्यायमान विषयोंमें आविर्भूत और पूर्व विषयोंमें लीन होता है; साथही स्मृति (पूर्वापरविचार)भी नष्ट होजाती है ॥ ३८ ॥ कर्मानुसार प्राप्त देवादि देहोंमें अत्यन्त अभिनिवेशसे मन पूर्वदेहको भूल जाता है; वही किसी कारणसे (यातनादेहके अभिनिवेशमें शोकादिसे अथवा देवादि देहोंमेंसे किसीके अभिनिवेशमें हर्ष, अमर्ष आदिसे) देहकी अत्यन्त विस्मृति ही जीवकी मृत्यु है । देहकी भाँति जीव नष्ट नहीं होता ॥ ३९ ॥ हे उदार ! अभिन्न–भाव द्वारा देहको आत्मारूपसे स्वीकृत करना अर्थात् देहाभिमान ही जीवका जन्म है । देहकी भाँति आत्मा उत्पन्न नहीं होता । जीवका जन्म और मरण क्रमशः मनोरथ और स्वप्नके समान है ॥ ४० ॥

ठीक इसी प्रकार स्वप्न और मनोरथ भी हैं। स्वप्न आदिमें भी यह पूर्वसिद्ध अपनेको, उसी समय उत्पन्न सा देखता या मानता है; पूर्व अस्तित्वको भूल जाता है ॥ ४१ ॥ जैसे जीव स्वप्नमें बहुरूपदर्शनसे बहुरूप भासित होता है वैसे ही इन्द्रियोंके अयन मनकी सृष्टि (कल्पना)से ये तीनो प्रकार (अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत अथवा उत्तमता, मध्यमता, नीचता) आत्मामें असत्‌रूपसे ही प्रकाशित होते हैं। आत्माही बाहरी और आन्तरिक भेदका हेतु है ॥ ४२ ॥ अलक्ष्यवेग कालके द्वारा नित्य ही शरीरोंकी उत्पत्ति और नाश (अवस्थान्तर) होता है; परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण अविवेकियोंको लक्षित नहीं होता ॥ ४३ ॥ जैसे कालक्रमसे परिमाणके द्वारा ज्योतियोंकी, और गति आदिसे जलकी, एवं परिपक्वता आदिसे वृक्षफलकी अवस्था पलटती रहती है, परन्तु उन विशेष २ अवस्थाओंको सब कोई नहीं देख पाते, वैसे ही कालके द्वारा शरीरोंकी अवस्था और बयस बदलती रहती है ॥ ४४ ॥ तथापि जैसे "यह वही दीपक है," "यह वही जल है"—ऐसा कहते और मानते हैं वैसेही अविवेकी लोग "यह वही शरीर है"—ऐसा कहते और समझते हैं। किन्तु उनका ऐसा कहना और समझना भ्रान्तिमात्र है ॥ ४५ ॥ आत्मा अजर, अमर है; निजकर्मके द्वारा यह जन्मता या मरता नहीं, किन्तु भ्रान्तिवश अपनेमें जन्म-मरणका आरोप करता है। जैसे महाभूतरूप अग्नि कल्पान्त पर्यन्त अवस्थित रहने पर भी काष्ठके संयोगसे जन्म—और वियोगसे नाशको प्राप्त होता है वैसेही अज और अमर होने पर भी यह आत्मा भ्रान्तिवश शरीरसंयोगसे जात और शरीरके वियोगसे मृतकी भाँति प्रतीत होता है। गर्भमें प्रवेश, गर्भमें वृद्धि, जन्म, बाल्य, कौमार, यौवन, मध्यवयस, जरा एवं मृत्यु—ये नव अवस्थाएँ शरीरकी हैं, किन्तु प्राकृतिक अविवेकके कारण शरीरकी इन मनोरथमयी उच्च-नीच अवस्थाओंको गुणसंग द्वारा जीव स्वयं स्वीकार करता है। कहीं कोई पुरुष (ईश्वरकी कृपासे विवेक प्राप्त कर) त्याग भी देता है ॥४६—४८॥ पिताको पुत्रके जन्मसे और पुत्रको पिताके मरणसे अपने शरीरके जन्म—मरणका अनुमान करना चाहिये, और समझना चाहिये कि उत्पत्ति विनाशशाली शरीरोंका साक्षी आत्मा जन्म-मरणसे रहित है ॥ ४९ ॥ बीज और विपाकसे वृक्षादिक उद्भिजोंके जन्म मरणको जाननेवाला द्रष्टा जैसे उनसे भिन्न है वैसे ही शरीरकी उत्पत्ति और नाशको जाननेवाला द्रष्टा आत्मा उससे भिन्न है ॥ ५० ॥ इस प्रकारके विवेकसे विहीन पुरुष, आत्माको वास्तवमें प्रकृतिसे भिन्न न विचारनेके कारण देहाभिमानमें मोहित होकर आवागमनरूप संसारको प्राप्त होता है ॥५१॥ अविवेकसे मूढ़ जीव सतोगुणके संसर्गसे ऋषि और देव एवं रजोगुणके संसर्गसे नर और असुर तथा तमोगुणके संसर्गसे भूत और पशु-पक्षी प्रभृति योनियोंमें कर्मानुसार भ्रमण करता रहता है ॥ ५२ ॥ जैसे नाचते गाते

हुए लोगोंको देखकर मनुष्य मन-ही-मन उनका अनुकरण करते हैं वैसेही जीव अनीह होने पर भी बुद्धिके गुणों(विषयों)को देखकर उनके द्वारा अनुकरण करनेके लिये विवश होता है । जैसे जल हिलनेसे उसमें प्रतिबिम्बित किनारेके वृक्ष भी हिलतेहुए जान पड़ते हैं या चक्षुके चकरानेसे पृथ्वी भी घूमतीहुई देख पड़ती है वैसेही मनःकृत आत्माका संसार (आवागमन) है; एवं जैसे कामनासक्तचित्त व्यक्तिका कल्पित विषयानुभव और स्वप्नदृष्ट विषयोंका अनुभव मिथ्या हैं वैसेही विषयभोग मनकी कल्पनामात्र है; अतएव मिथ्या है ॥ ५३–५५ ॥ इसी कारण विषयोंके न विद्यमान होने पर भी उन सांसारिक विषयोंका ध्यान करते रहनेके कारण आत्माके जन्म-मरणकी निवृत्ति नहीं होती ! जैसे वास्तवमें कोई विपत्ति न होने पर भी ध्यानके अनुसार स्वप्नमें अनर्थका अनुभव होता है वैसेही स्थूल शरीर न रहने पर भी लिंग शरीरके द्वारा विषयचिन्ता करते रहनेके कारण आत्माका संसार नहीं निवृत्त होता ॥ ५६ ॥ इस कारण हे उद्धव ! भ्रान्त इन्द्रियों द्वारा विषयभोग न करो । विकल्प-जनित भ्रमको आत्माके अविवेकहीसे अवभासित समझो या देखो ॥ ५७ ॥ असाधु जन तिरस्कार या अपमान करें, या हँसें, या ईर्षा करें, या ताड़ना दें, या बाँधें, या पकड़ रक्खें, या जीविकाके उपायको बंद करदें, या ऊपर मूतें, इसी भाँति अनेक प्रकारके और २ कष्ट पहुँचाकर चलायमान करें, तथापि मोक्षकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको विचलित न होना चाहिये। इस प्रकार कष्टोंमें पड़कर भी परमेश्वरके ध्यानमें लवलीन रहकर विवेकके द्वारा आत्माको उबारना चाहिये ॥५८॥ ॥ ५९ ॥ उद्धवने कहा । हे वक्ता लोगोंमें श्रेष्ठ ! आपका यह उपदेश कि 'असज्जन चाहे जितना कष्ट पहुँचावें परन्तु अपनी स्थितिसे विचलित न हो' अत्यन्त दुर्ज्ञेय और दुष्कर है । मैं जिसमें सहजमें समझ सकूँ, उस रीतिसे फिर इसे कहिये ॥६०॥

विदुषामपि विश्वात्मन्प्रकृतिर्हि बलीयसी ॥
ऋते त्वद्धर्मनिरतान् शान्ताँस्ते चरणालयान् ॥ ६१ ॥

हे विश्वरूप ! आपके धर्म्ममें निरत, आपके चरणोंके आश्रित, शान्तचित्त साधुओंके सिवा ज्ञानी विवेकी जन भी मेरी समझमें इस असज्जनकृत अपने अपमानको नहीं सहसक्ते, क्योंकि मानव प्रकृति बड़ी ही प्रबल है ॥ ६१ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंश अध्याय ।

तिरस्कार सहनेके उपाय बतानेके प्रसंगमें एक अवधूतकी कथा ।

बादरायणीरुवाच—स एवमाशंसित उद्धवेन
भागवतमुख्येन दाशार्हमुख्यः ॥
स भाजयन्भृत्यवचो मुकुन्द-
स्तमाबभाषे श्रवणीयवीर्यः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे राजन्! श्रेष्ठ वैष्णव उद्धवके इस प्रकार पूछने पर श्रवणीयचरित्र यादवश्रेष्ठ कृष्णचन्द्र अपने भृत्यके प्रश्नकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि हे बृहस्पतिके शिष्य उद्धव! ऐसे साधु इस संसारमें बहुत ही विरले हैं जो दुर्जनोंकी दुरुक्तियोंसे विचलित मनको शान्त रख सक्ते हैं । सदैव मर्मस्थलमें व्यथा न पहुँचानेवाले अन्य बाणोंके लगनेसे मनुष्यके वैसी व्यथा नहीं होती, जैसी सदा हृदयमें खटकनेवाले दुर्जन–दुरुक्तिरूप बाणोंसे पीड़ा होती है ॥१–३॥ हे उद्धव! इस विषयमें एक महापवित्र प्राचीन-कथित इतिहास मैं कहता हूँ, उसे एकाग्र होकर सुनो ॥ ४ ॥ दुर्जनोंके द्वारा सताये गये एक भिक्षुकने धैर्य धारण कर उसको अपने कर्मोंका फल समझ कर जो कुछ कहा है वह इस इतिहासमें वर्णित है ॥ ५ ॥ मालव देशमें एक धनाढ्य ब्राह्मण रहता था । वाणिज्यवृत्तिसे उसने बहुत धन जोड़ा था । वह बहुत ही क्रोधी, कामी और लोभी होनेके सिवा कृपण भी बड़ा था । जातिवाले और अतिथियोंका आदर और सत्कार तो दूर रहा, कभी सीधे बोलता भी न था । धर्म और कामसे हीन भवनमें रहनेवाला वह ब्राह्मण अपने शरीरको भी सामयिक भोग–सुखसे वञ्चित रखता था ॥६॥७॥ उस दुःशील और कृपणके पुत्र और अन्यान्य बान्धवगण सदा बुरा चेततेथे एवं स्त्री, कन्या तथा नौकर–चाकर जलनके मारे उसका कहा नहीं करते थे । इस प्रकार यक्षके समान दान-भोग-रहित धनकी रखवाली करनेवाले, धर्म्म-काम-शून्य और इसी कारण दोनो लोकोंसे भ्रष्ट उस ब्राह्मण पर पञ्चयज्ञभागी देवतोंने भी क्रोध किया ॥८॥९॥ आत्मीय पोष्यवर्ग और कर्त्तव्यका अनादर करनेके कारण पुण्यपथ (धर्म्म) से भ्रष्ट उस ब्राह्मणका वह बहुत परिश्रम और प्रयाससे प्राप्त सञ्चित सब धन धीरे २ नष्ट होनेलगा । कुछ जातिवाले, कुछ चोरलोग, कुछ और २ मनुष्य, कुछ राजा, कुछ दैव और कुछ कालने उस ब्राह्मणका धन हरलिया ॥ १० ॥ ११ ॥ इस प्रकार सब धन नष्ट हो जाने पर धर्म-काम-विवर्जित एवं स्वजनोंके द्वारा उपेक्षित अपमानित उस ब्राह्मणको बड़ी चिन्ता हुई ॥ १२ ॥ बहुत काल तक वह ब्राह्मण सन्ताप और खेदसे

हतबुद्धि होकर चिन्ता करता रहा, उसकी आँखोंमें आँसू भरआये । इस प्रकार पश्चात्ताप करते २ एकाएक उसके चित्तमें महानिर्वेद उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ वैराग्य हो जाने पर वह ब्राह्मण आप-ही-आप कहने लगा कि अहो ! कैसे कष्टकी बात है ! मैं वृथा ही इतने दिनों तक आत्माको सन्ताप पहुँचाता रहा । मैंने वृथाही धनसंचयके प्रयासमें पड़कर अपने जन्मको नष्ट कर दिया । धर्म-भोग-शून्य शरीर भी मेरा वृथा हो गया ॥ १४ ॥ कदर्य कृपणोंको कभी धनसे सुख नहीं मिलता । इस लोकमें तो धनकी रक्षा और बढ़ाने की चिन्तामें पड़े रहनेसे उनके शरीरको क्लेशही पहुँचता है और मरने पर (शक्ति होने पर भी धर्म न करनेके कारण) नरकमें गिरना होता है ॥ १५ ॥ जैसे तनिक सा कुष्ट सर्वाङ्गसुन्दर रूपको बिगाड़ देता है वैसेही थोड़ा सा भी लोभ यशस्वी जनोंके यशको और गुणी-जनोंके प्रशंसनीय गुणोंको दूषित या कलंकित कर देता है ॥ १६ ॥ प्राज्ञ पुरुषको चाहिये कि धनलाभके लोभसे या स्नेह, क्रोध, मत्सर, काम, भय आदिके वशीभूत होकर धर्मको कभी न छोड़े ॥ १७ ॥ जो कोई लोभमें पड़ कर धर्मको छोड़ देता है और धनसञ्चयमें तत्पर रहता है वह मानो सुवर्णराशिको छोड़ कर मुठ्ठी भर राख लेनेके लिये लपकता है ॥१८॥ जब तक गृहस्थके पास धन रहता है तभी तक माता, पिता, स्त्री, पुत्र, स्वजन और आत्मीय सुहृद्गण सभी साथ देते हैं; जब धन नहीं रहता तब सभी साथ छोड़ देते हैं—बात भी नहीं करते ॥ १९ ॥ अन्तसमय धन नहीं काम आता, उसे औरही लोग लेजाते हैं । किया गया धर्म ही एक ऐसा सहायक है जो मरने पर भी साथ जाता है ॥ २० ॥ जो मनुष्य धर्मका अनादर कर धनके लिये श्रम करता है वह उसी मृगके समान है जो प्यास लगने पर उसे शान्त करनेके लिये मृगमरीचिकाके पीछे दौड़ता है ॥ २१ ॥ उद्धव ! मनुष्योंको धनके सञ्चयमें और सञ्चित धनके उत्कर्ष-साधनमें प्रयास करना पड़ता है, फिर उसकी रखवाली करनेमें भी चिन्ता बनी रहती है कि कहीं कोई चुरा न ले जाय, फिर नाशका डर लगा रहता है एवं उपभोगमें बुद्धिभ्रम घटित होता है ॥ २२ ॥ चोरी, हिंसा, झूठ, दंभ (ठगी), काम, क्रोध, घमण्ड, मद, फूट, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा (लागडाँट) और (स्त्रीसंग, द्यूत, मद्य आदि) दुर्व्यसन इन पन्द्रह अनर्थोंकी जड़ अर्थ (धन)ही है । इस लिये मनुष्योंमेंसे जो अपनी भलाई चाहता हो उसे अनर्थमय अर्थसे दूरही रहना चाहिये ॥ २३ ॥ २४ ॥ इस धनके कारण भाई, स्त्री, पिता—माता, बन्धु—बान्धवगण आदि आत्मीय अलग फूट जाते हैं एवं दमड़ीकी कौड़ीके कारण 'एक प्राण—दो देह' कहाये जानेवाले अत्यन्त प्रिय मित्र भी चट शत्रु हो जाते हैं ॥२५॥ थोड़ेसे धनके लिये ये सब इष्टमित्र विचलित और कुपित होकर सहसा सब स्नेह भूल जाते हैं और परस्पर स्पर्द्धापूर्वक एक एकको छोड़ देते हैं और मार भी

डालते हैं ! ॥ २६ ॥ देवतोंके प्रार्थित मनुष्य शरीरको पाकर, और उसमें भी श्रेष्ठ ब्राह्मणवर्णमें जन्म लेकर जो कोई प्रमादवश उसे वृथाही नष्ट कर देते हैं और कुछ भी स्वार्थ नहीं साधते उनकी बुरी गति होती है ॥ २७ ॥ यह मनुष्य-शरीर स्वर्ग और मोक्षका द्वार है, इसे पाकर कौन समझदार मनुष्य अनर्थमय धनमें आसक्त होगा ? ॥ २८ ॥ जो धन होनेपर भी भागाधिकारी देव, ऋषि, पितर, अन्यान्य प्राणी, जातिवाले और बन्धु बान्धवोंको नहीं भाग देता और न आपही भोग करता है वह यक्षवृत्तिधारी कृपण मनुष्य अवश्य ही अधःपतित होता है ॥ २९ ॥ मेरी आयु व्यर्थ धन जोड़नेकी चेष्टामें बीत गई ! चतुर विवेकी लोग इसी धनसे दोनो लोक बनालेते हैं । अब मैं वृद्ध हो चुका, इस अवस्थामें शक्ति और धनसे हीन मैं क्या साध सक्ता हूँ ? ॥ ३० ॥ अहो ! जान बूझ कर भी यह सब संसार क्यों व्यर्थ धनसञ्चयकी चेष्टामें वारम्वार क्लेश भोगता है ? अवश्यही किसीकी मायामें यह जगत् मोहित हो रहा है ॥ ३१ ॥ मृत्युके मुखमें पड़े हुए मनुष्यका धनसे, कामनासे, जन्मदायक काम्य कर्मोंसे या धन और कामना देनेवाले देवतोंसे क्या हित हो सक्ता है ? ये कोई भी मृत्युभयभीत प्राणियोंको सुखी नहीं कर सक्ते ! ॥ ३२ ॥ अवश्यही सर्वदेवमय भगवान् हरि मुझ पर प्रसन्न हुए हैं, उन्हीके अनुग्रहसे मेरी यह दशा हुई है और मुझे संसारसागरके पार लगानेवाली नौकाके समान निर्वेद प्राप्त हुआ है ॥ ३३ ॥ सो मैं यदि कुछ आयु अवशिष्ट होगी तो उसमें सावधानतासहित धर्मादि साधता हुआ आत्मलाभमें सन्तुष्ट रह कर तपके द्वारा अपने शरीरको सुखा डालूँगा (या ज्ञान द्वारा ब्रह्ममें लीन कर दूँगा) ॥ ३४ ॥ मैं त्रिभुवनेश्वर देवतोंसे इस अपने विचारके अनुमोदनकी प्रार्थना करता हूँ । राजा खट्वांगने एकही मुहूर्त्त अवशिष्ट आयुमें ईश्वरको भज कर ब्रह्मलोक प्राप्त किया था, [तब मेरी आयुतो संभव है अभी उससे अधिकही होगी-इस लिये मैं भी अवश्य अपना जन्म सफल कर सकूँगा] ॥ ३५ ॥ **श्रीभगवान्‌ने कहा** । हे उद्धव ! उस मालवीय ब्राह्मणने मनमें यों निश्चय कर अहंकारादि हृदयग्रंथियोंको खोल कर ईश्वरमें मनको लगा दिया और शान्त, भिक्षुक, मुनि होकर मन, इन्द्रिय और प्राणवायुको जीत कर इस पृथ्वीपर विचरने लगा । वह अनासक्त भिक्षुक नगरों और गाँवोंमें अलक्षित भावसे भिक्षाके लिये जाता था । उस समय देखनेमें उन्मत्त से उस मलिन, वृद्ध, भिक्षुकको बहुत से मदान्ध दुष्ट लोग अनेक कटुवचन कहते हुए पीड़ित करने लगे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ कोई त्रिवेणु, कोई कमण्डलु, कोई भोजनपात्र, कोई पीठ, कोई अक्षसूत्र, कोई कन्था और कोई चीरखण्ड ले भागते थे । मुनिकी इन छीनी हुई वस्तुओंको दूरसे दिखा कर दे कर फिर लेलेते और खिझाते थे । नदीतट पर भिक्षालब्ध अन्नको खानेके लिये बैठने पर, कोई महानष्ट पापी उस अन्नमें मूत देता

था और कोई शिर पर थूक देता था ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ इतने उपद्रव पर भी जब वह साधु कुछ न बोलता था तब बलपूर्वक कुछ कहलानेके लिये उसे सताते थे; यदि वह इतने पर भी न बोलता तो मारते थे। कोई २ 'यह दुष्ट चोर है'—इत्यादि कुवाक्य कह कर डाँटते और धमकाते थे ॥ ४० ॥ कोई 'बाँधो, बाँधो' कह कर रस्सीसे उसे बाँधते थे और कोई इस प्रकार निरादरपूर्वक कुवाक्य कह कर निन्दा करते थे कि 'यह वंचक है, ठगनेके लिये इसने यह पाखण्ड रचा है। जब धन नहीं रहा और स्वजनोंने त्याग दिया तब इसने इस वृत्तिको ग्रहण किया है। अहो! यह बड़ा बली है, पर्वतके समान अविचल है, मौन रह कर दृढ निश्चय-पूर्वक बकतुल्य अपना प्रयोजन साधता है'। इस प्रकार कह कर कोई उसे हँसते थे, कोई उसके ऊपर अधोवायु छोड़ते थे, कोई तोता, मैना, आदि पक्षियोंकी भाँति पकड़ कर शृंखलामें जकड़ कर कोठरी आदिमें डाल कर बंद कर रखते थे ॥ ४१–४३ ॥ किन्तु वह विरक्त ब्राह्मण इस अपने दैविक, दैहिक, भौतिक त्रिविध दुःखको दैवके द्वारा प्राप्त और अवश्य भोक्तव्य जान कर चुपचाप सहता था और किसीको कुछ न कहता था ॥ ४४ ॥ हे उद्धव! इस प्रकार अनेक प्रकारके कष्ट पहुँचा कर अधम मनुष्योंने उसको धर्मसे च्युत करना चाहा, परन्तु वह सात्त्विक धैर्य्यधारणपूर्वक अपने धर्म्मसे तनिक भी नहीं विचलित हुआ। हे उद्धव! दुष्टों द्वारा सताये जाने पर वह भिक्षुक कहने लगा कि—"ये लोग, देवता, आत्मा, ग्रह, कर्म्म या काल—कोई भी मेरे सुख अथवा दुःखका कारण नहीं है। सुख या दुःखका कारण एकमात्र मनही माना गया है। इसी मनके द्वारा संसारचक्र चलता है। प्रबल मनसे ही गुणवृत्तियोंकी सृष्टि होती है और उन वृत्तियोंसे सात्त्विकादि त्रिविध कर्म्मोंका उदय होता है एवं उन शुक्ल, कृष्ण, लोहित (सात्त्विक, तामस, राजस) कर्मोंसे ही तदनुरूप गतियाँ होती हैं ॥ ४५–४७ ॥ यह आत्मा निरीह है, मेरे सखा जीवका नियन्ता और विद्याशक्ति-प्रधान है एवं इसी कारण अ-तिरोहित ज्ञानसे केवल देखनेवाला अर्थात् साक्षीमात्र है। किन्तु यह चेष्टा द्वारा संसार-प्रकाशक मनको आत्मरूपसे स्वीकृत कर गुणसङ्गवश विषयसेवन करनेके कारण बन्धनको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ दान, स्वधर्म्म, नियम, यम, वेदाध्ययन, सम्पूर्ण सत्कर्म और सत्व्रत आदिका अन्तिम फल मनका दमन है, अर्थात् बिना मनका दमन किये ये सब निष्फल हैं। मनको वशमें कर एकाग्र करना ही परम योग है ॥ ४९ ॥ जिसका मन शान्तिपूर्वक सावधान हो चुका है उसे दान आदि करके क्या करना है? जिसका मन असंयत और असावधानतावश विषयोंमें लीन हो रहा है उसका दान आदिसे क्या उपकार हो सक्ता है? ॥ ५० ॥ अन्यान्य देवगण भी मनके वशीभूत हैं, मन (सहजमें) किसीके वश नहीं होता। यह मनरूप देव बड़े २ बलवानोंसे भी बढ़ कर बली

है, अतएव योगी जनोंको भी सदा इससे भय बना रहता है। इसको जो वश कर सके वही देवदेव (सब इन्द्रियोंको जीतनेवाला) है ॥ ५१ ॥ यह दुर्जय शत्रु मर्मभेदी है, इसका वेग असह्य है । जो लोग इसे नहीं जीत सक्ते और मित्र, शत्रु, उदासीनकी कल्पना कर मनुष्योंसे वृथा कलह करते हैं वे अत्यन्त मूढ़ हैं ॥५२॥ केवल मनके द्वारा परिकल्पित इस शरीर पर अहंभाव स्थापित कर 'मैं हूँ, मेरा है'—इस प्रकारकी भेदभावनासे मोहित मनुष्यगण 'यह मैं हूँ, यह अन्य है' इस भ्रमके कारण दुरन्तपार संसारमें भ्रमते हैं ॥ ५३ ॥ मान लीजिये, यदि मनुष्यगण ही सुख दुःखका कारण हैं तो उसमें भौतिक शरीरके सिवा आत्माका कर्तृत्व नहीं हो सक्ता, अर्थात् सुख और दुःख आत्माके कर्म्म नहीं हो सक्ते; इस प्रकार भी यही सिद्ध होता है कि सुख या दुःख मिलने पर किसीके प्रति अनुराग या कोप न करना चाहिये । जब दोनो शरीरमें आत्मा एक ही है तब दुःख मिलने पर किस पर कोप किया जाय? यदि कहीं जिह्वा दाँत तले दब जाय तो उस वेदनाके लिये कोई किस पर कोप करेगा? ॥ ५४ ॥ यदि देवतोंको ही सुख, दुःखका कारण मान लें तो उसमें आत्माका क्या सम्पर्क है? वह तो विकाररूप देवतों (इन्द्रियाधिष्ठातादेवतों) हीमें सम्भव है । वे देवगण सब देहोंके लिये एक ही हैं, इस लिये इस मतमें भी दुःखके लिये कौन कोपपात्र हो सक्ता है? अपने एक अंगसे दूसरे अंगको चोट पहुँचने पर कौन पुरुष उस चोट पहुँचानेवाले अंगके अधिष्ठाता देवता पर कुपित होता है? ॥ ५५ ॥ यदि आत्मा ही सुख और दुःखका कारण है तो उसमें 'अन्य' कौन है?—जिसका दोष है वह तो अपना ही स्वभाव है । आत्मासे भिन्न कुछ है ही नहीं, यदि है तो मिथ्या है । जब सर्वत्र आत्मा एक ही है तब किस प्रकार किस पर कोप किया जाय? इस लिये न सुख है, न दुःख है; यह सब भ्रान्तिमात्र है ॥ ५६ ॥ यदि सूर्य्यादि नवग्रह ही सुख, दुःखका कारण हैं तो भी आत्माका क्या बनता बिगड़ता है? आत्मा तो जन्महीन है, जन्मसम्पन्न देहहीको उनके द्वारा सुख दुःख होना सम्भव है; दैवज्ञगण उन ग्रहों द्वारा देहहीके लिये सुख दुःखका होना बतलाते हैं । अतएव पुरुष किस पर क्रोध करेगा? वह (आत्मारूप) तो उस (शरीर) से भिन्न है ॥ ५७ ॥ यदि कर्म्म ही सुख दुःखका कारण है, तो भी आत्माका उससे क्या सम्बन्ध है। विकारिता या हितानुसन्धानसे ही कर्म्मका होना सम्भव है । किन्तु शरीर विकारी होने पर भी जड़ है, वह कर्म्म कर ही नहीं सक्ता, और आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वरूप है । इस कारण (मनके सिवा) देह या आत्मासे कर्म्मकी प्रवृत्ति होही नहीं सक्ती । सुख दुःखके मूल कर्म्म ही मिथ्या हैं । तब सुख दुःखके लिये किस पर कोप किया जाय? ॥ ५८ ॥ काल ही यदि सुख या दुःखका कारण है तो भी उसमें आत्माका क्या है? काल परमात्मारूप आत्माका ही अंश है, इस कारण

जैसे अग्निको अग्निका अंश जो ज्वाला है उससे ताप नहीं होता अथवा हिमसे हिमके अंश करका (ओले) समूहको शीतकष्ट नहीं होता वैसेही कालके द्वारा आत्माको भी सुख या दुःख नहीं हो सक्ता । अतएव किस लिये किस पर कोप किया जाय? ॥ ५९ ॥ अविद्यमान संसृतिका प्रकाशक अहंकार ही इस जीवात्माके सुख दुःख (के भ्रम) का कारण है, वास्तवमें प्रकृतिसे परे आत्माको किसीके द्वारा, कहीं, किसी प्रकार, सुख-दुःखादि द्वन्द्व असम्भव हैं । यों समझ कर जो 'प्रबुद्ध' हो गया है वह प्राणियोंसे नहीं डरता, अर्थात् अकुतोभय हो जाता है ॥ ६० ॥ सो मैं इसी पूर्वतम महर्षियों द्वारा आश्रित परमात्मनिष्ठाका आश्रय ले कर मुकुन्दचरणसेवा द्वारा दुरन्तपार संसारको तर जाऊँ गा" ॥ ६१ ॥ श्रीभगवान् कहते हैं । हे उद्धव! असाधुजनोंके पीड़न और तिरस्कारसे वह नष्टधन, गतभ्रम, विरक्त, मननशील, ज्ञानी भिक्षुक उक्त सिद्धान्तको स्थिर कर अपने धर्म्म-अपनी स्थितिसे नहीं विचलित हुआ और संन्यस्त हो यही (उक्त) गाथा गाता हुआ पृथ्वी पर विचरता रहा ॥ ६२ ॥ हे उद्धव! पुरुषको सुख या दुःख देनेवाला अन्य कोई नहीं है । मित्र, शत्रु, उदासीन एवं समग्र संसारकी कल्पना अवास्तविक और मनका भ्रममात्र है ॥ ६३ ॥ अतएव हे वत्स! मुझमें आसक्त बुद्धिके द्वारा युक्तिपूर्वक (अर्थात् भावना द्वारा मुझमें लगा कर) मनको वशमें करो; यही योगमात्रका सार-संग्रह है ॥ ६४ ॥

य एतां भिक्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः ॥
धारयन् श्रावयन् शृण्वन्द्वन्द्वैर्नैवाभिभूयते ॥ ६५ ॥

जो कोई ब्रह्मनिष्ठामय इस भिक्षुगीतको एकाग्रचित्त हो कर श्रद्धासहित सुनता सुनाता है और मनन करता है वह सुख दुःख आदि द्वन्द्व धर्मोंसे अभिभूत नहीं होता ॥ ६५ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंश अध्याय ।

सांख्ययोग ।

श्रीभगवानुवाच—अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनिश्चितम् ॥
यद्विज्ञाय पुमान्सद्यो जह्याद्वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ १ ॥

श्रीभगवान्ने कहा । हे उद्धव! कपिलदेव आदि प्राचीन आचार्य्यों द्वारा विशेषरूपसे निश्चित सांख्ययोग अब मैं तुमसे कहता हूँ। सांख्ययोगके द्वारा तत्क्षण

पुरुषका भेदभावजनित सुख-दुःखादि भ्रम दूर हो जाता है ॥ १ ॥ पहले प्रलय-कालमें यह सब दिखाई देनेवाला विश्वप्रपञ्च, विकल्पशून्य एकमात्र अद्वितीय ज्ञानरूप ब्रह्ममें लीन था। तदनन्तर सत्ययुगके आरम्भमें भी, जिस समय सब जन विवेकनिपुण थे, भेदभावकी स्फूर्ति न होनेके कारण उसी प्रकार ब्रह्ममात्र था ॥ २ ॥ तदनन्तर वह वाणी और मनसे अतीत, एकमात्र, अभिन्न, सत्यरूप ब्रह्म, माया और प्रकाशके रूपसे दो हुआ। उन दो अंशोंमें एक, जिसे प्रकृति भी कहते हैं, उभयात्मिका (कार्य्यकारणरूपिणी) है, और दूसरा अंश, जिसे पुरुष भी कहते हैं वह ज्ञान अर्थात् चेतन है ॥ ३ ॥ ४ ॥ पुरुषके अभिमतानुसार मेरे द्वारा क्षोभको प्राप्त प्रकृतिसे सत्व, रज और तम नाम तीन गुण प्रकट हुए ॥ ५ ॥ उन गुणोंसे सूत्र (क्रियाशक्ति) और सूत्रसंयुत महत्तत्व (ज्ञानशक्ति) प्रकट हुआ। सूत्रसहित महत्तत्त्वके विकृत होने पर उससे जीवके भ्रमका हेतु अहंकार उत्पन्न हुआ। वैकारिक, तैजस और तामस–भेदसे अहंकार तीन प्रकारका है। वह अहंकार, तन्मात्रा इन्द्रिय और मनका कारण होनेसे चेतनमय और अचेतनमय भी है ॥ ६ ॥ ७ ॥ तन्मात्रजनक तामस अहंकारसे पञ्चतत्त्व (पृथ्वी, तेज, जल, वायु, आकाश) उत्पन्न हुए। राजस (तैजस) अहंकारसे इन्द्रियोंका आविर्भाव हुआ और सात्विक (वैकारिक) अहंकारसे इन्द्रियोंके अधिष्ठाता ग्यारह देवतोंकी सृष्टि हुई ॥ ८ ॥ मेरे द्वारा प्रेरित होने पर परस्पर सम्मिलित होकर इन कारणोंने कार्यरूप, मेरा अधिष्ठान, उत्तम अण्ड उत्पन्न किया ॥९॥ उस जलस्थित अण्डमें नारायण नामक मैं स्थित हुआ और मेरी नाभिसे उत्पन्न विश्वमय कमलसे स्वयम्भू ब्रह्मा प्रकट हुए ॥ १० ॥ विश्वात्मा ब्रह्माने तप कर मेरे अनुग्रहसे रजोगुणके द्वारा लोकपालसहित भूः, भुवः, स्वः ये तीन लोक, और अतलादि सात तथा महर्लोक आदि सात—ये चौदह भुवन रचे ॥ ११ ॥ स्वर्गलोक देवतोंके रहनेके लिये है; भुवर्लोक (अन्तरिक्ष) भूतआदि उपदेवतोंके रहनेका स्थान है; भूर्लोक मनुष्यादिकोंके रहनेके लिये है। इन तीनो लोकोंसे ऊपरके सात लोकोंमें सिद्धजन रहते हैं और नीचेके सात पातालोंमें असुर, नागआदि रहते हैं। प्रभु ब्रह्माने इस प्रकार प्राणियोंके रहनेके लिये लोकरचना की है। त्रिगुणात्मक कर्मोंके अनुसार तीन लोकोंमें जीवकी गति होती है। योग, तप और संन्याससे महर्लोक जनलोक तपलोक और सत्यलोककी निर्मल गति प्राप्त होती है। भक्तियोगके द्वारा मेरी गति अर्थात् वैकुण्ठलोक प्राप्त होता है। मैंही कालरूप विधाता हूँ। मुझ कर्मफलदायक परमेश्वरके द्वारा यह कर्मयुक्त सम्पूर्ण जगत् सत्यलोकपर्यन्त उच्च और नीच गतियोंको प्राप्त होता रहता है। यही संसारचक्र है। अणु, बृहत् या सूक्ष्म, स्थूल—जो २ प्रसिद्ध पदार्थ हैं वे प्रकृति और पुरुष–दोनोसे संयुक्त हैं ॥ १२-१६ ॥

जो पदार्थ जिस पदार्थका आदि और अन्त है वही उसकी मध्यावस्था है, अतएव वही सत् है; विकार (कार्य) केवल व्यवहारमात्र है । सुवर्णके कंकण आदि कार्य और मृत्तिकाके सकोरे आदि कार्य—इस उक्तिके उदाहरण हैं ॥ १७ ॥ किसी वस्तुके उपादान कारणका भी अन्य उपादान कारण होनेसे वास्तवमें प्रथम उपादान कारण ही सत्य है । जिस समय जिसमें जिसका आदि और अन्त होता है उस समय जिसका आदि–अन्त होता है उसकी अपेक्षा पहलाही सत्य है । वेदमें ऐसाही कहा गया है ॥ १८ ॥ हे उद्धव! इस विश्वरूप कार्यका उपादान प्रकृति, अधिष्ठाता परम पुरुष एवं अभिव्यक्त करनेवाला काल—ये तीनो मेरेही रूप हैं। मैं शुद्ध ब्रह्म हूँ ॥ १९ ॥ ईश्वरकी दृष्टिकी स्थितिके अन्त पर्यन्त, जीवके कृत–कर्म–फल भोगनेके लिये, पितृ–पुत्र–परम्परापूर्वक धारावाहिकरूपसे यह सृष्टि प्रवृत्त रहती है ॥ २० ॥ मुझ कालरूपसे व्याप्त ब्रह्माण्ड विविध सृष्टि और लयोंकी लीलाभूमि है, अर्थात् सूक्ष्म रूपसे नित्य हर घड़ी इसमें सृष्टि और लयकी लीला हुआ करती है । प्रलयकाल आने पर चौदह भुवनसहित यह ब्रह्माण्ड पञ्चत्वरूप विभागके उपयुक्त होता है ॥ २१ ॥ उस समय शरीर, अन्नमें; अन्न, अंकुरमें; अंकुर, भूमिमें; भूमि, गंधमें; गंध, जलमें; जल, अपने गुण रसमें; रस, तेजमें; तेज, रूपमें; रूप, वायुमें; वायु, स्पर्शमें; स्पर्श, आकाशमें; तथा आकाश, शब्दमें लीन होजाता है । इन्द्रियाँ, अपने प्रवर्त्तक देवतोंमें और वे देवता अपने नियन्ता राजस अहंकाररूप मनमें लीन हो जाते हैं । मन, वैकारिक अहंकारमें लीन होजाता है । अवशिष्ट 'शब्द', पञ्चतत्त्वजनक तामस अहंकारमें लीन हो जाता है । समर्थ त्रिविध अहंकार, महत्तत्त्वमें और गुणसम्पन्न तत्त्वोंमें मुख्य सूत्रसहित महत्तत्त्व, अपने कारण जो गुण हैं उनमें लीन होजाता है । वे गुण, अव्यक्त प्रकृतिमें और प्रकृति, अव्यय कालमें लीन हो जाती है । काल, मायामय महापुरुषमें और वह पुरुष, मुझ अजन्मा आत्मामें लीन हो जाता है! उपाधिहीन एवं विश्वकी उत्पत्ति और लयमें अधिष्ठान और अवधिके रूपसे लक्षित होनेवाला आत्मा, आत्मा (परमात्मा) मेंही स्थित होता है, अर्थात् परिपूर्णस्वरूपसे विराजमान होता है ॥२२–२७॥ इस प्रकार विचारदृष्टिसे देखनेवालेके मनमें भेदजनित भ्रम कैसे उत्पन्न होसक्ता है? अथवा उत्पन्न होकर भी हृदयमें कैसे ठहर सक्ता है? सूर्योदय होने पर कहीं आकाशमण्डलमें अन्धकार रह सक्ता है? ॥ २८ ॥

एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशयग्रन्थिभेदनः ॥
प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परावरदृशा मया ॥ २९ ॥

मुझ सर्वज्ञने अनुलोम, प्रतिलोम (सृष्टि-संहार) क्रमसे यह संशयकी गाँठको खोलनेवाली सांख्यविधि तुमसे कही है ॥ २९ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कंधे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंश अध्याय ।

गुणवृत्तिनिरूपण ।

श्रीभगवानुवाच—गुणानामसम्मिश्राणां पुमान्येन यथा भवेत् ॥
तन्मे पुरुषवर्येदमुपधारय शंसतः ॥ १ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा । हे पुरुषश्रेष्ठ उद्धव ! भिन्न २ प्रकारके सत्त्वादि गुणोंमेंसे जिस गुणसे युक्त पुरुष जैसा होता है—सो मैं कहता हूँ, सुनो ॥ १ ॥ शम, दम, सहनशीलता, बिवेक, स्वधर्म्मपालनरूप तप, सत्य, दया, पूर्वापरका विचार, सन्तोष, उदारता, अनासक्ति, श्रद्धा (आस्तिकता), अनुचित काम करनेमें लज्जा, दीन दरिद्र दुःखी जनोंको अन्न-धन-वस्त्र देना, सरलता, नम्रता आदिक और आत्मरति—ये सतोगुणकी वृत्तियाँ हैं ॥ २ ॥ अभिलाषा, अभिलाषा सिद्ध करनेकी चेष्टा, मद, तृष्णा, गर्व, धन आदिके लिये देवप्रार्थना, भेदभाव, विषयभोग, सुखलालसा, मदजनित हरएकसे भिड़नेका उत्साह, अपनी बड़ाई चाहना, हर एकको हँसना, प्रभाव प्रकाश करना, बलपूर्वक उद्यम करना (न्यायपूर्वक उद्यम सात्त्विक वृत्तियोंके अन्तर्गत है)—ये रजोगुणकी वृत्तियाँ हैं ॥ ३ ॥ क्रोध, लोभ, झूठ, हिंसा, याचना, दंभ, श्रम, कलह, शोक, मोह, विषाद, आलस्य, आशा, भय, जड़ता—ये तमोगुणकी वृत्तियाँ हैं । क्रमशः अलग २ तीनो गुणोंकी वृत्तियाँ लगभग सब कह दी गईं । अब तीनो गुणोंके 'मेल' की मिश्रित वृत्ति कहते हैं, सुनो । 'मैं हूँ, मेरा है' इस प्रकारकी अहंबुद्धिमें तीनो वृत्तियोंका समान अधिकार (मैं शान्त हूँ, मैं कामी हूँ, मैं क्रोधी हूँ) देख पड़ता है, अतएव अहंबुद्धि तीनो गुणोंका सन्निपात या मेल है । अहंबुद्धिपूर्वक मन, द्रव्य (वस्तु) और इन्द्रियोंके सब व्यवहार सन्निपातकी वृत्तियाँ हैं । पुरुष जब धर्म्म, अर्थ और काममें निरत होता है वही सन्निपात धर्म्म है; क्योंकि ये सब त्रिगुणात्मक त्रिविध हैं । श्रद्धा, आसक्ति और धन—ये इस सन्निपातके त्रिविध त्रिगुणात्मक फल हैं ॥ ४–७ ॥ जिस समय पुरुषकी सकाम धर्म्ममें निष्ठा होती है, जब पुरुष गृहाश्रममें आसक्त रह कर अपने नित्य और नैमित्तिक धर्म्ममें लगा रहता है वही गुणसंसृष्टिका कार्य्य है; क्योंकि काम्यधर्म्म, गृहासक्ति और स्वधर्म्म—सब त्रिगुणात्मक हैं ॥ ८ ॥ (मिश्रित, अमिश्रित गुणवृत्तियाँ दिखा कर 'पुरुष, जिससे जैसा होता है' सो कहते हैं—)शमआदि गुणोंसे युक्त पुरुषको सात्विक और कामआदि व्यसनोंसे युक्त पुरुषको राजस एवं क्रोधआदि दोषोंसे युक्त पुरुषको तामस समझना चाहिये ॥९॥ सात्त्विकी प्रकृतिके स्त्री—पुरुष मुझे निरपेक्ष भावसे अपने कर्म्मोंको मेरी तुष्टिके लिये करताहुआ मुझे भजता है । राजसी प्रकृतिके स्त्री—पुरुष सकाम भावसे मेरा भजन पूजन करते हैं । तामसी प्रकृतिके स्त्री या पुरुष हिंसा (शत्रुमरणादि)की

वासनासे मेरा भजन पूजन करते हैं । सत्व, रज, तम–ये गुण जीवके हैं, मेरे नहीं हैं। जीवकी उपाधि जो चित्त है उसीमें ये प्रकट होते हैं; इन्हींमें आसक्त होकर जीव बन्धनको प्राप्त होता है। (मिश्र अमिश्र गुणकार्य्य दिखा कर अब प्रत्येक गुणकी वृद्धिके कार्य्य दिखाते हैं) जब प्रकाशक, स्वच्छ और शान्त सतोगुण बढ़ कर रजोगुण और तमोगुणको दबा लेता है तब पुरुषको ज्ञान होता है; वह धर्म्म करता है और सुख पाता है ॥ १०–१३ ॥ जब आसक्ति, भेद और प्रवृत्तिका प्रकाशक रजोगुण बढ़ कर अन्य दो गुणोंको दबा लेता है तब जीव कर्ममें प्रवृत्त होता है, यश और लक्ष्मीकी कामना करता है और दुःख पाता है ॥ १४ ॥ जब विवेकको मिटानेवाला, आवरणरूप, आलस्यमय तमोगुण बढ़ कर अन्य दो गुणोंको दबा लेता है तब पुरुष केवल आशा किया करता है, हिंसामें प्रवृत्त होता है, मोहित होता है और शोकपीड़ित होता है, अचेत रहता है ॥ १५ ॥ जब मनमें अत्यन्त शान्ति हो, इन्द्रियोंको तुष्टि हो, देह निर्भय हो और हृदय संगशून्य हो तब मेरी प्राप्तिके स्थानस्वरूप सत्त्वगुणका आविर्भाव समझना चाहिये ॥१६॥ जब क्रियाके द्वारा विकारको प्राप्त पुरुषका चित्त चंचल हो, बुद्धि और इन्द्रियोंको सन्तोष न हो और शरीर अस्वस्थ रहे एवं मन भ्रान्त हो तब इन लक्षणोंसे रजोगुणका आविर्भाव जानना चाहिये ॥ १७ ॥ जब चित्त, तिरोहित होते समय चिदाकाररूप 'परिणाम'के ग्रहणमें असमर्थ हो कर लयको प्राप्त हो, संकल्पात्मक मन भी लीन होजाय, ज्ञान न रहे, ग्लानि हो, तब इन लक्षणोंसे तमोगुणका आविर्भाव समझना चाहिये ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! सत्त्वगुणके अभ्युदयमें देवतोंका बल बढ़ता है, रजोगुणकी वृद्धिमें असुरोंका और तमोगुणकी वृद्धिमें राक्षसोंका बल बढ़ता है । निवृत्ति, प्रवृत्ति और मोह–स्वभावसम्पन्न इन्द्रियाँ ही क्रमशः देवता, असुर और राक्षस हैं ॥१९॥ सत्त्वसे जागरण, रजसे स्वप्न और तमसे सुषुप्ति अवस्था होती है। तुरीय अवस्था इन तीनोंमें विस्तृत है, अर्थात् निर्गुण, एकरूप, आत्मतत्त्व है ॥ २० ॥ वेदार्थानुष्ठानतत्पर ब्राह्मणजन सत्त्वके द्वारा क्रमशः ब्रह्मलोकपर्यन्त उच्चगतिको प्राप्त होते हैं। तमोगुणके द्वारा स्थावरपर्यन्त अधोगति होती है और रजोगुणके द्वारा मनुष्यशरीर ही मिलता है ॥ २१ ॥ सत्त्वमें लीन जीव स्वर्गको, रजोगुणमें लीन जीव नरलोकको और तमोगुणमें लीन जीव नरकको प्राप्त होता है। जीवन्मुक्त निर्गुण जन मुझको प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ मेरी प्रसन्नताके लिये या दासभावसे किया गया निजकर्म सात्त्विक है, फलसंकल्पसे कृत कर्म राजस है, हिंसाके उद्देश्यसे कृत कर्म तामस है ॥ २३ ॥ देहादिको असत् और आत्माको सत् जानना सात्त्विक ज्ञान है, 'मैं हूँ–मेरा है'–यह समझना राजस ज्ञान है, साधारण सांसारिक ज्ञान तामस है । और मुझमें अपनेको देखना निर्गुण ज्ञान है ॥ २४ ॥

वनमें वसना सात्त्विक है, ग्राम (बस्ती)में रहना राजस है, जहाँ जुआँ आदि कुकर्म हों उस स्थानमें रहना तामस है। और मुझमें अवस्थिति निर्गुण है ॥ २५ ॥ अनासक्त कर्त्ता सात्त्विक है, अनुरागमूढ़ कर्त्ता राजस है, अनुसन्धानशून्यकर्त्ता तामस है। निरहंकार, केवल मेरेही आश्रित कर्त्ता निर्गुण है। आत्मज्ञानकी श्रद्धा सात्त्विकी है, कर्मकी श्रद्धा राजसी है, अधर्मकी श्रद्धा तामसी है एवं मेरी सेवाकी श्रद्धा निर्गुण है ॥ २६ ॥ २७ ॥ पथ्य, पवित्र और अनायास प्राप्त आहार सात्त्विक है, इन्द्रियप्रिय आहार राजस है एवं पीड़ाकारी अशुद्ध आहार तामस है ॥ २८ ॥ आत्माका सुख सात्त्विक है, विषयसुख राजस है, मोह और दीनतासे प्राप्त सुखाभास तामस है एवं मुझसे प्राप्त सुख निर्गुण है ॥ २९ ॥ हे उद्धव! द्रव्य, देश, फल, ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, श्रद्धा, अवस्था, आकृति और निष्ठा–सभी त्रिगुणात्मक त्रिविध हैं। पुरुष और प्रकृतिके अधिष्ठित सब देखे, सुने और चिन्तित भाव (पदार्थ) त्रिगुणात्मक त्रिविध हैं ॥३०॥ ॥ ३१ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! गुण–कर्मबिवश पुरुषको इस त्रिविध संसारका बन्धन प्राप्त होता है। जिस जीवने इन चित्तजनित गुणोंको जीत लिया है और भक्तियोगपूर्वक मेरी निष्ठा प्राप्त कर ली है, वह मेरे भाव(मोक्ष)को प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ अतएव ज्ञान–विज्ञानके उपादान इस नर–शरीरको पाकर विचक्षण लोग गुणसंगको त्याग कर मुझे भजते हैं ॥ ३३ ॥ विद्वान् और मननशीलको सङ्ग और प्रमाद त्याग कर इन्द्रियजयपूर्वक मुझे भजना और सत्त्व–सेवा द्वारा रजोगुण और तमोगुणको जीतना चाहिये एवं शान्त–बुद्धि तथा निरपेक्ष भावसे उपशमात्मक सत्त्वके द्वारा शुद्ध सत्त्वगुणको भी जीतना चाहिये। इस प्रकार गुणोंसे मुक्त जीव अपनी उपाधि(लिङ्ग–शरीर)को छोड़ मुझे प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

संपद्यते गुणैर्मुक्तो जीवो जीवं विहाय माम् ॥
जीवो जीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसंभवैः ॥ ३६ ॥

लिङ्गशरीर और अन्तःकरणजनित गुणोंसे मुक्त जीव मुझ ब्रह्मकी प्राप्तिसे परिपूर्ण होकर विषयभोग या विषय–चिन्ता नहीं करता; अतएव फिर वह नहीं संसारमें आता ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंश अध्याय ।

ऐल-गीत-वर्णन ।

श्रीभगवानुवाच—मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः ॥
आनन्दं परमात्मानमात्मस्थं समुपैति माम् ॥ १ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा । हे उद्धव ! यह जीव मेरा स्वरूप जाननेके साधन-रूप इस नरतनुको पा कर भक्तिरूप मेरे धर्म्मका अवलम्ब लेनेसे अपनेमें अवस्थित परमानन्दमय मुझ आत्माको प्राप्त होता है। ज्ञाननिष्ठाके द्वारा गुणमय जीवोपाधिसे मुक्ति प्राप्त कर यह पुरुष अवस्तु-स्वरूप देख-पड़ रहे मायामात्र गुणोंमें वर्त्तमान होने पर भी गुण-बन्धनको नहीं प्राप्त होता ॥ १ ॥ २ ॥ केवल स्त्रीसंग और पेट पालनेमें निरत असत् जनोंका संग कभी भूल कर भी न करना चाहिये । ऐसे विषयी पुरुषके अनुगत पुरुष, जैसे अंधेके पीछे चलनेवाला अंधा गिरता है वैसे ही पतित होता है ॥ ३ ॥ राजचक्रवर्ती, महाकीर्तियुक्त महाराज पुरूरवाने उर्वशीविरहजनित मोहमें पड़ कर उसे फिर पानेके लिये शोक करते २ अन्तमें निर्वेदको प्राप्त हो कर जो कहा है सो मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ४ ॥ अपनेको छोड़ कर जा रही उर्वशीके पीछे उन्मत्तके समान नंगे २ विलाप करते हुए "हे निष्टुर कामिनी ! ठहर जा" कहते व्याकुल पुरूरवा दौड़े । तुच्छ काम सेवन करते अनेक वर्ष बीत गये, तब भी वह तृप्त नहीं हुए । उर्वशीने उनके चित्तको ऐसा मोहित कर लिया था कि उन्हे अनेक रात्रियोंका आना-जाना नहीं जान पड़ा ॥ ५-६ ॥ निर्वेद होने पर पुरूरवाने कहा कि—"अहो ! कामने मेरे चित्तको महामूढ़ कर दिया था, मुझे अपार मोहने घेर लिया था । उर्वशीका हाथ गलेमें पड़े रहनेसे मुझे यह भी न जान पड़ा कि मेरी आयुके कितने वर्ष बीत गये ! ॥ ७ ॥ बड़े खेदकी बात है, इस उर्वशीने मुझे ऐसा मोहित कर लिया कि असंख्य वर्ष-दिवस बीत गये; किन्तु मैंने नहीं जाना कि नित्य कब सूर्य्योदय होता था और कब सूर्य्य अस्त होते थे ! ॥ ८ ॥ अहो मेरे आत्माके महामोहको देखो कि राजशिरोमणि चक्रवर्ती हो कर मैंने अपनेको स्त्रीका क्रीड़ामृग बना डाला ॥ ९ ॥ राज्यसामग्री-सहित अपने ऐश्वर्यको तृणतुल्य त्याग कर नंगे २ उन्मत्तोंकी भांति रोता हुआ मैं उसके पीछे दौड़ा गया ॥ १० ॥ जो व्यक्ति पादप्रहार सह कर भी पीछा करने-वाले गधेके समान छोड़ कर जा रही स्त्रीके पीछे अनुनय करता जाय उसके प्रभाव, तेज और बल कहाँ हैं ? स्त्रियोंने जिसका मन हर लिया है उसकी विद्या, तप, संन्यास, एकान्तवास, वाक्यसंयम आदि सब निष्फल हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ मैं चक्रवर्त्तीपदको पा कर बैल और गधेके समान स्त्रीके वशमें हो गया । मैं

स्वार्थको नहीं जानता, मुझे धिक्कार है । मैं मूर्ख हो कर भी अपनेको पण्डित मानता हूँ ॥ १३ ॥ अनेक वर्ष तक उर्वशीके अधरामृतको पी कर भी मुझे तृप्ति नहीं हुई, वरन् घीकी आहुति पा कर जिस प्रकार अग्नि प्रचण्ड होता है उसी प्रकार और भी वारम्वार कामवृद्धि होती रही ॥ १४ ॥ आत्माराम जनोंके ईश्वर अधोक्षज भगवान् ईश्वरके सिवा और कौन कुलटाके द्वारा अपहृतचित्त मुझको मुक्त कर सक्ता है ? ॥ १५ ॥ मैं अत्यन्त अजितेन्द्रिय और कुमति हूँ; उर्वशीने वारम्वार उचित सत्य वचन कह कर मुझे समझाया, परन्तु फिर भी मेरे मनका महामोह नहीं जाता ॥ १६ ॥ उर्वशीने मेरा क्या अपकार किया? मुझीको रस्सीमें सर्पका भ्रम हो गया, मैं साक्षीरूप आत्माके रूपको अब तक नहीं जान सका। मैं अजितेन्द्रिय होनेके कारण स्वयं अपना अपराधी हूँ ॥ १७ ॥ कहाँ यह मलीन, दुर्गन्धिपूर्ण, अपवित्र शरीर ! और कहाँ सुमनसम्बन्धी सुकुमारता, सुवाससदृश सम्पूर्ण गुण ! अविद्यावश ऐसे शरीरमें ऐसे गुणोंका आरोप कर मैंने आप अपनेको नष्ट किया ॥ १८ ॥ नहीं जान पड़ता कि इस शरीर पर पिता माताका स्वत्त्व है, या भार्य्याका स्वत्त्व है, या स्वामीका स्वत्त्व है, या अग्निका स्वत्त्व है, या कुत्ते और गिद्धोंका स्वत्त्व है, या बन्धु-बान्धवोंका स्वत्त्व है ? ॥ १९ ॥ ऐसे क्षणभंगुर, तुच्छ और अपवित्र कलेवरमें 'अहो इस स्त्रीका कैसा सुन्दर मुख है ! नासिकाकी कैसी उत्तम गठन है ! कैसी मनोहर मन्द मुसकान है'—ऐसी भावना कर आसक्त होनेवालेसे बढ़ कर मूर्ख और कौन होगा ? ॥ २० ॥ त्वचा, मांस, रुधिर, स्नायु, मेदा, मज्जा और अस्थिके बने हुए इस विष्ठा-मूत्र-पीब आदि अपवित्र पदार्थोंसे परिपूर्ण शरीरमें रमनेवालोंमें और कीड़ोंमें कितना अन्तर है ? बिवेकी लोग यों विचार कर स्त्री और स्त्रीसंग करनेवालोंका संग कदापि न करें । विषय और इन्द्रियका संयोग होनेसे मन चलायमान होता है; अन्यथा नहीं होता ॥२१॥२२॥ विषयको देखे, और सुने विना मनमें वासनाका उदय नहीं होता । अतएव जो लोग इन्द्रियसंयम करते हैं उनका मन स्थिर और शान्त रहता है। इस कारण इन्द्रियोंके द्वारा भी स्त्री और स्त्रीसंगी पुरुषोंसे संसर्ग न रखना चाहिये। मुझ ऐसे अविवेकी जनोंकी कौन कहे, बड़े २ बिवेकी जनोंको भी मनसहित पाँचो ज्ञानेन्द्रियोंका विश्वास नहीं करना चाहिये कि 'हमने इनको वशमें कर लिया है' ॥२३॥२४॥ **श्रीभगवान्ने कहा** । हे उद्धव ! राजचक्रवर्त्ती पुरूरवा यों कहते हुए उर्वशीलोकको छोड़ अपनेमें आत्मारूपसे अवस्थित मुझको जान कर मुक्त हो गये । उनका सब मोह ज्ञानके द्वारा नष्ट हो गया ॥ २५ ॥ हे उद्धव ! इस लिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि कुसङ्गको त्याग कर सज्जनोंका सङ्ग करे । साधुजन हितोपदेशके द्वारा उसके मनकी आसक्तिको दूर कर देते हैं ॥ २६ ॥ निरपेक्ष भावसे मुझमें चित्त लगानेवाले, प्रशान्त, समदर्शी, ममताशून्य, अहं-

काररहित, निर्द्वन्द्व और अकिञ्चन जन ही यथार्थ साधु हैं ॥ २७ ॥ हे महाभाग! उन महाभाग्यशाली साधुजनोंमें सर्वदा हितकारिणी मेरी कथाओंकी चर्चा होती रहती है । उन कथाओंके सुननेसे सब प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं और हृदय निर्मल होता है ॥ २८ ॥ उन कथाओंको जो लोग श्रद्धापूर्वक कहते, सुनते और गाते हैं तथा अनुमोदन करते हैं उन्हे मेरी अनन्य भक्ति प्राप्त होती है ॥ २९ ॥ हे साधुप्रवर! मुझ अनन्तगुणशाली, आनन्दानुभवरूप ब्रह्ममें अनन्य भक्ति होने पर फिर और कौन वाञ्छनीय विषय अवशिष्ट रह जाता है? जैसे भगवान् अग्निका आश्रय लेनेसे शीत, अन्धकार और भय नहीं निकट आता वैसे ही सत्संग करनेवालेके निकट पाप, अज्ञान और संसारभय नहीं आता ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जैसे जलमें डूबने उतरानेवालेके लिये दृढ़ नौका परम आश्रय है वैसेही भवसागरमें नीचे ऊपर आने-जानेवाले जीवोंके लिये ब्रह्मज्ञ साधुगण एकमात्र अवलम्ब हैं ॥ ३२ ॥ जैसे अन्न प्राणियोंका प्राण है, जैसे मैं आर्तजनोंका आश्रय हूँ, जैसे धर्म्म परलोकमें साथ जानेवाला मनुष्योंका धन है, वैसेही साधुजन, संसार-पतनभीत पुरुषके रक्षक हैं ॥ ३३ ॥ हृदयके भीतर साधुजन ज्ञानरूप नेत्रोंको प्रकाशित करते हैं और सूर्य्य बाहरी नेत्रोंको प्रकाशित करते हैं । साधुगणही यथार्थ देवता और बान्धव हैं। साधुगणही आत्मा और मेरा रूप हैं ॥ ३४ ॥

वैतसेनस्ततोऽप्येवमुर्वश्यालोकनिस्पृहः ॥
मुक्तसङ्गो महीमेतामात्मारामश्चचार ह ॥ ३५ ॥

हे उद्धव! तदनन्तर महाराज पुरूरवा, इस प्रकार उर्वशी-लोककी लालसा छोड़ सङ्गत्यागपूर्वक आत्माराम हो कर इस पृथ्वीमें विचरते रहे और अन्तमें मुझको प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंश अध्याय ।

क्रियायोग वर्णन ।

उद्धव उवाच–क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो ॥
यस्मात्त्वां ये यथार्चन्ति सात्वताः सात्वतर्षभ ॥ १ ॥

उद्धवने कहा । हे सात्वतश्रेष्ठ प्रभो! भक्तजन जिसके द्वारा जिस प्रकार आपकी आराधना करते हैं वह क्रियायोग आप कृपा कर कहिये ॥ १ ॥ नारद, भगवान् व्यास, अङ्गिरा मुनिके पुत्र बृहस्पति आदि महर्षियोंने इस क्रियायोगको

वारम्वार मुक्तिका साधन बताया है ॥ २ ॥ आपके मुखारविन्दसे निकले हुए क्रिया योगको भगवान् ब्रह्माने अपने भृगु आदि पुत्रोंसे और भगवान् शंकरने पार्वतीसे कहा है ॥ ३ ॥ हे मानद ! यह क्रियायोग तीनो वर्ण और चारो आश्रमोंका सम्मत विषय है और मैं समझता हूँ कि स्त्री और शूद्रोंके लिये यही परमश्रेय है ॥ ४ ॥ हे कमलनयन ! हे विश्वेश्वरोंके भी ईश्वर ! मैं आपका अनुरक्त भक्त हूँ, मुझसे कृपापूर्वक यह कर्मबन्धनसे छुड़ानेवाला क्रियायोग कहिये ॥ ५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा । हे उद्धव ! कर्मकाण्ड असीम और अपार है, इसका अन्त नहीं है । अतएव आनुपूर्विक क्रमसे यथावत् संक्षेप वर्णन करता हूँ । वैदिक, तान्त्रिक और मिश्र ये तीन प्रकार मेरी 'पूजा'के हैं । इन तीनो विधियोंमेंसे चाहे जिस विधिसे मेरी पूजा करे, इसका पूजकको अधिकार है । अपने अधिकारके अनुसार यथासमय यज्ञोपवीत संस्कारके द्वारा द्विज-पदवी पाकर जव जिस प्रकार श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करना चाहिये सो मैं कहता हूँ, एकाग्र होकर सुनो ॥ ६-८॥ द्विज वर्णोंको चाहिये कि निष्कपट शुद्ध चित्तसे प्रतिमामें, पृथ्वीमें, अग्निमें, सूर्यमें, जलमें, हृदयमें, ब्राह्मणमें अपने परम गुरु मुझको सादर पूजें और भजें ॥ ९ ॥ दन्तधावनके उपरान्त अंगशुद्धिके लिये प्रथम स्नान करना चाहिये । स्नानमें मृद्ग्रहण आदिके समय वैदिक या तान्त्रिक मन्त्र पढ़ने चाहिये ॥ १० ॥ वेद-तन्त्रविहित संध्योपासन आदि नित्य-कर्मोंसहित मेरीही प्रसन्नताके लिये कर्मपावनी मेरी पूजा करनी चाहिये ॥ ११ ॥ मेरी आठ प्रकारकी प्रतिमा कही गई है-शिलाकी, काठकी, धातुकी, चन्दनादि-लेपकी, लिखी हुई, बालूकी, मणिकी और मनोमयी । प्रतिमा मेरा मन्दिर है; प्रतिमा चल और अचल दो प्रकारकी होती है । हे उद्धव ! स्थिर प्रतिमामें पूजा करनी हो तो आवाहन और विसर्जन करनेकी आवश्यकता नहीं है, अस्थिर प्रतिमामें चाहे करे और चाहे न करे; किन्तु बालुकामयी प्रतिमामें आवाहन तथा विसर्जन अवश्य कर्त्तव्य है । लेखमयी, लेपमयीमें केवल जल छिड़क देना चाहिये और अन्यत्र स्नान कराना चाहिये । निष्काम भक्तोंको चाहिये जो मिल सकें उन उत्तम सामग्रियोंसे भक्तिपूर्वक प्रतिमामें अथवा हृदयमेंही मेरी मानसी पूजा करें । इस प्रकार प्रतिमामें स्नान, चन्दन, आभूषणादिसे; वालुका-वेदीमें विशेष २ मंत्रोंके द्वारा प्रधानदेवताकी स्थापनासे; अग्निमें घृत-मिली हवन-सामग्रीसे; सूर्यमें नमस्कार, अर्घ्यदानसे एवं जलमें जल आदि (तर्पण) से मेरी पूजा करना आवश्यक है; अर्थात् इन २ प्रतिमाओंमें ये २ उपचार मुख्य हैं । भक्तका श्रद्धापूर्वक दिया हुआ थोड़ा सा जल भी मुझे प्रसन्न कर सक्ता है । बिना भक्ति अर्पित अपार अमूल्य सामग्री भी मुझे नहीं प्रसन्न कर सक्ती; तब विना भक्तिके अर्पित चन्दन, फूल, धूप, दीप, नैवेद्यकी तो कोई बातही नहीं है ॥ १२-१८ ॥ पवित्रतापूर्वक सब साम-

ग्रीका संग्रह कर कुशासन पर पूर्वमुख या उत्तरमुख बैठ कर, एवं यदि स्थिर प्रतिमा हो तो प्रतिमाके सम्मुख बैठ कर मेरा आराधन करना चाहिये । तदनन्तर गुरु आदिको प्रणाम कर, गुरुके उपदेशके अनुसार स्वयं अंगन्यास, करन्यास आदि न्यास कर प्रतिमामें मूलमंत्रन्यास करे और फिर निर्म्माल्य आदि हटा कर प्रतिमाका संस्कार करे । तदनन्तर कलश और प्रोक्षणीपात्रको यथावत् चन्दन पुष्पादिसे अलंकृत कर कर प्रोक्षणीपात्रके जलसे उस स्थानको, अपनेको और पूजाकी सामग्रीको शुद्ध कर एवं पाद्य अर्घ्य आचमनीयके तीन पात्रोंको प्रथम जल भर कर क्रमशः श्यामाक, दूब, विष्णुकान्ता आदिसे और गंध, पुष्प, अक्षत, यव, कुश, तिल, सरसों और दूबसे एवं जायफल, लवंग आदिसे सम्पन्न करना चाहिये । पूजकको चाहिये कि फिर उक्त तीनो पात्रोंको हृन्मंत्र, शिरोमंत्र और शिखामन्त्रसे अथवा केवल गायत्रीसे अभिमंत्रित करे ॥ १९–२२ ॥ प्राणवायु और शारीरिक अग्निके द्वारा संशोधित पिण्डमें, हृदयकमलमें नादरूप ओंकारके अन्तमें बिन्दुरूपसे सिद्ध लोग जिसकी भावना करते हैं उस मेरी सूक्ष्म और श्रेष्ठ जीवकला(नारायणमूर्त्ति)का ध्यान करना चाहिये ॥ २३ ॥ जैसे दीपककी प्रभासे गृह व्याप्त होजाता है उस प्रकार उस मूर्त्तिसे ध्यानके द्वारा हृदय व्याप्त होने पर तन्मय भावसे प्रथम मानसी पूजा कर प्रतिमामें आवाहनपूर्वक स्थापित करनेके उपरान्त साङ्गोपाङ्ग न्यास कर मेरा पूजन करना चाहिये ॥ २४ ॥ धर्मादिक और नव शक्तियोंके द्वारा मेरे आसनकी कल्पना कर और उसमें सूर्यादिमण्डलरूप कर्णिका और केसरोंसे प्रकाशमान अष्टदल कमलकी कल्पना कर वेद और तंत्रके द्वारा भोग और मोक्षके लिये पाद्य, आचमनीय, अर्घ्य आदि उपचार अर्पित करने चाहिये ॥ २५ ॥ २६ ॥ फिर सुदर्शन, पाञ्चजन्य, गदा, असि, वाण, धनुष, हल, मुशल, कौस्तुभ, माला और श्रीवत्सकी यथास्थान स्थापना तथा पूजा करे ॥ २७ ॥ तदनन्तर नन्द, सुनन्द, गरुड़, प्रचण्ड, चण्ड, महाबल, बल, कुमुद, कुमुदेक्षण, दुर्गा, विनायक, व्यास, विष्वक्सेन, गुरुगण और सुरगणको ईश्वरके सम्मुख यथास्थान स्थापित कर प्रोक्षण आदिसे पूजे ॥ २८ ॥ २९ ॥ शक्ति हो तो कपूर, कुंकुम, और अगुरुसे सुवासित जलसे मंत्रोच्चारणपूर्वक मुझे स्नान करावे । फिर स्वर्णघर्माआदि मंत्रसे, पुरुषसूक्त और सामगानसे, नीराजनपाठसे मेरी स्तुति करनी चाहिये । वस्त्र, उपवीत, अलङ्कार, पत्ररचना, माला, सुगन्ध लेपन आदि अलंकारोंसे यथोचित रीतिसे मेरा भक्त मुझे अलंकृत करे । पूजकको चाहिये कि श्रद्धापूर्वक पाद्य, आचमनीय, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप एवं अन्यान्य उपहारोंसे मुझे सन्तुष्ट करे । जैसा विभव हो तदनुसार गुड़, पायस, घृत, पूरी, पिष्टक, मोदक, जमाया हुआ दही, व्यञ्जन आदिका भोग लगाना चाहिये ॥ ३०–३४ ॥ शक्ति हो तो नित्य, नहीं तो एका-

दशी आदि पर्वोंके दिन अभिषेक, उबटना, शीशा दिखाना, दतून कराना, पञ्चामृतसे स्नान कराना, भाँति २ के नैवेद्य और गाना, बजाना आदि करना चाहिये ॥ ३५ ॥ गृह्यसूक्तमें उक्त विधिसे मेखला, गर्त्त और वेदीयुक्त कुण्डकी रचना कर उसमें चारो ओर अग्न्याधान कर हाथकी हवासे अग्निको प्रज्वलित कर एकत्र मेखलाकार करे ॥ ३६ ॥ फिर चारो ओर क्रमशः कुशविन्यास कर व्याहृतियोंके द्वारा यथाविधि समित्–हवन आदि अन्वाधान कर्म करे। तदनन्तर अग्निके उत्तर ओर हवनमें आवश्यक सामग्री धर कर, उसे प्रोक्षणीपात्रका जल छिड़क कर शुद्ध करे। तदनन्तर अग्निमें इस रूपसे मेरा ध्यान करे कि शरीरकी आभा तपाये हुए सुवर्णके सदृश है, चारो भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित हैं, शान्त आकृति है, पद्मपराग-वर्ण वस्त्र शरीर पर शोभायमान है, शरीरमें प्रकाशमान किरीट मुकुट, कटक, कटिसूत्र और श्रेष्ठ अंगदआदि अलङ्कार सुशोभित हैं। वक्षःस्थलमें श्रीवत्स, वनमाला और कौस्तुभ विराजमान हैं। इस प्रकार ध्यान और पूजा करनेके उपरान्त पहले घृतसिक्त सूखी लकड़ियोंके टुकड़ोंकी आहुति दे कर 'आर', 'वार' नामक दो घृताहुति छोड़ कर और तत्सम्बन्धी साकल्यकी आहुतियाँ डाल कर पुरुषसूक्त और मूलमंत्रके द्वारा घृत-मिली साकल्यसे प्रतिमंत्र आहुति देनी चाहिये। फिर विद्वान् पूजक पूजाक्रमके अनुसार विशेष २ मंत्रोंके द्वारा धर्म्मादिके उद्देश्यसे 'स्विष्टकृत्' हवन कर अग्नि-मध्यस्थ भगवान्की पूजाके उपरान्त प्रणाम कर पार्षदोंके उद्देशसे बलिप्रदान करे। फिर नारायणात्मक ब्रह्मका स्मरण कर मूलमंत्रको जपे। तदनन्तर आचमन करानेके उपरान्त विष्वक्सेनको नारायणका प्रसाद अर्पित करे (और पूजा समाप्त कर उस बचे हुए प्रसादको सादर ग्रहण करे)। फिर सुगन्धित मुखवास-सहित ताम्बूल आदिके बाद पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। मेरे गुण गावे, मेरी चर्चा करे, मेरे चरित्रोंका कीर्तन करे, मेरे नामोंका उच्चारण करे, मेरी कथा सुने और सुनावे, मेरी लीलाओंका अभिनय करे; इस प्रकार मुहूर्त भर तन्मय हो कर प्रार्थना करे। पुराणोक्त और सर्वसाधारणकृत विविध छोटे बड़े स्तोत्रोंसे स्तुति कर 'हे भगवन्! प्रसन्न होइये' कहता हुआ दण्डवत् प्रणाम करे। चरणों पर शिर धर कर अपने दोनो हाथोंसे प्रतिमाके दोनो चरण पकड़ कर कहे कि "हे ईश्वर! मैं शरणागत हूँ, संसारसागरके मृत्युरूप ग्राहसे भीत हूँ; मेरी रक्षा करिये" ॥ ३७–४६ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करनेके उपरान्त मेरे निर्माल्यको सादर मस्तकसे लगा कर यदि विसर्जन योग्य प्रतिमा हो तो प्रतिमामें स्थापित ज्योतिको हृदयकमलकी ज्योतिमें विसर्जनपूर्वक लीन करे ॥ ४७ ॥ जब जिस प्रतिमा आदिमें श्रद्धा हो तब उसीमें मेरी पूजा करे, क्योंकि सब प्राणियोंमें और आत्मामें सर्वव्यापक सर्वात्मा मैं अवस्थित हूँ ॥ ४८ ॥ हे उद्धव! पुरुष इस प्रकार वैदिक और

तांत्रिक क्रियायोगके मार्गों द्वारा पूजा कर मुझसे भोग और मोक्ष, दोनो प्रकारकी अभीष्ट-सिद्धि पाता है ॥ ४९ ॥ पूजकको चाहिये कि शक्ति हो तो दृढ़ मन्दिर बनवा कर उसमें मेरी प्रतिमाकी स्थापना करे। नित्य पूजा-यात्रा (विशेष पर्वके दिन बहुजन-समागम) और उत्सव (वसन्तादि)के बराबर होते रहनेके लिये फूलबाग क्षेत्र हाट ग्राम आदि देनेसे मेरे समान ऐश्वर्य मिलता है ॥५०॥५१॥ मूर्तिप्रतिष्ठा करनेसे चक्रवर्त्ती राज्य, मन्दिर बनवानेसे इन्द्रपद, पूजा करनेसे ब्रह्मलोक एवं उक्त तीनो काम करनेसे मेरी समता प्राप्त होती है ॥५२॥ हे उद्धव ! निष्काम भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे मैं मिलता हूँ। इस प्रकार जो कोई मेरी पूजा करता है उसे भक्तियोग प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ जो कोई अपनी या दूसरेकी दी हुई देववृत्ति या ब्राह्मणवृत्तिको हरलेता है वह एक लाख वर्ष तक विष्ठाका कीड़ा होकर रहता है ॥ ५४ ॥

कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च ॥
कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम् ॥ ५५ ॥

कर्त्ता सहकारी प्रेरक और अनुमोदन करनेवाला—ये चारो समान फलभागी हैं। अधिक कर्मका फल भी अधिक है ॥ ५५ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंश अध्याय।

परमार्थनिर्णय।

श्रीभगवानुवाच—परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत् ॥
विश्वमेकात्मकं पश्यन्प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १ ॥

श्रीभगवान्ने कहा। हे उद्धव! ज्ञानीको चाहिये कि प्रकृति और पुरुष दोनोसे विश्वको एकात्मक देखता हुआ किसीके भले बुरे स्वभाव या भले बुरे कर्मोंकी प्रशंसा अथवा निन्दा न करे ॥ १ ॥ जो कोई दूसरेके स्वभाव या कर्मोंकी प्रशंसा या निन्दा करता है वह असत् द्वैतके अभिनिवेश द्वारा शीघ्रही ज्ञाननिष्ठारूप स्वार्थसे भ्रष्ट हो जाता है ॥ २ ॥ राजस अहङ्कारका कार्य जो इन्द्रियाँ हैं उनके निद्राभिभूत होने पर जैसे देहस्थ जीव स्वप्नरूप माया अथवा चेतनाशून्य होकर सुषुप्तिरूप मृत्युको प्राप्त होता है वैसे ही द्वैत विषयमें अभिनिवेश करनेवाला पुरुष भी विक्षेप (चञ्चलता) और लयको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ द्वैत मिथ्या है, उसमें भला या बुरा क्या और कितना है ? जो केवल वाक्यके द्वारा कथित और

मनके द्वारा चिन्तित है वह सब मिथ्या है ॥ ४ ॥ जैसे प्रतिबिम्ब प्रतिध्वनि और भ्रम, अवस्तु होकर भी वस्तुबोधवश अनर्थका कारण होते हैं वैसे ही देहादि असत् पदार्थभी मृत्युपर्यन्त भयदायक हैं ॥ ५ ॥ यह प्रभु ईश्वर आत्माही इस विश्वरूपसे सृष्ट होता है और स्रष्टा रूपसे सृष्टि करता है, स्वयं पालित होता है और पालन करता है एवं स्वयं लीन होता है और लय करता है; अतएव आत्मासे भिन्न कोई भी भाव नहीं निरूपित है। आत्मामें यह (अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव) त्रिविध प्रतीति अमूलक अलीक है ॥६॥७॥ उक्त त्रिविध गुणमयी प्रतीति मायाकृत है। मेरी कही हुई ज्ञान-विज्ञान-निष्ठाको भली भाँति समझनेवाला प्रवीण पुरुष न किसीकी स्तुति करता है और न किसीकी निन्दा करता है; सूर्यके समान सर्वत्र समभावसे सदा विचरता है ॥ ८ ॥ प्रत्यक्ष अनुमान निगम (अप्रत्यक्ष) और अपने अनुभवके द्वारा आत्मासे भिन्न पदार्थको आदि-अन्त-युक्त अतएव असत् जानकर सङ्गत्यागपूर्वक इस लोकमें विचरा करे ॥९॥ उद्धवने कहा। हे ईश्वर! यह दृश्यमान संसार, यदि चेतन साक्षीस्वरूप आत्माको नहीं है और अचेतन दृश्यरूप देहको भी नहीं है, तो फिर इसकी उपलब्धि किसको होती है? आत्मा तो अविनाशी, निर्गुण, विशुद्ध, ज्योतिःस्वरूप, आवरणशून्य, अग्नितुल्य है और देह अचेतन काष्ठसदृश है; तब संसार किसको होता है? कृपा कर कहिये ॥ १० ॥ ११ ॥ **श्रीभगवान्ने कहा**। हे उद्धव! जब तक शरीर, इन्द्रिय और प्राणोंसे आत्माका सम्बन्ध रहता है तब तक यह संसार वास्तवमें असत् होने पर भी अविवेकीको सत्य सा प्रतीत होता है। जैसे स्वप्नावस्थामें अर्थ न होने पर भी अनर्थकी प्राप्ति होती है वैसेही सांसारिक विषयोंका ध्यान करनेवाले जीवका संसार, असत् होने पर भी, नहीं निवृत्त होता ॥ १२ ॥ १३ ॥ जैसे निद्रित व्यक्तिको स्वप्नसे अनेक अनर्थ जान पड़ते हैं, किन्तु जागने पर वह स्वप्न फिर मोह नहीं उत्पन्न कर सक्ता ॥१४॥ शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, स्पृहा, जन्म और मरण आदिक सब सांसारिक भाव देहाभिमानजनित हैं; शुद्ध आत्माके नहीं हैं ॥ १५ ॥ देह, इन्द्रिय, प्राण और मनसे संसृष्ट अभिमानशाली आत्मा ही अन्तःस्थ जीव है, अतएव गुण-कर्म-मूर्त्ति है; उसीको सूत्र और महत्तत्व आदि अनेक नामोंसे अभिहित करते हैं। वही कालके अनुगत होकर संसारको प्राप्त और संसारसे मुक्त होता है ॥१६॥ मुनिको चाहिये कि इस अमूलक होने पर भी बहुत रूपोंसे निरूपित मन, वाक्य, प्राण, शरीर और कर्म रूप उपाधिबन्धनको गुरुकी उपासनासे तीक्ष्ण ज्ञानरूप खड्गके द्वारा काटकर निष्काम-निरपेक्षभावसे पृथ्वीमण्डलमें विचरे ॥१७॥ 'इस विश्वके आदिमें जो प्रकाशक वस्तु थी वही अन्तमें भी रहेगी और मध्यमें भी केवल वही वर्त्तमान है'-वेद, स्वधर्म्म, प्रत्यक्ष, उपदेश और तर्कके द्वारा इस प्रकारका जो विवेक उत्पन्न होता है उसीको 'ज्ञान' कहते हैं। जैसे जो सुवर्ण सम्पूर्ण सुवर्णनिर्मित पदार्थोंके पूर्वमें था एवं अन्तमें भी

रहेगा, वह सुन्दररूपसे गठित और नाना नामोंसे व्यवहृत होनेपर भी अपने ही रूपमें अवस्थित रहता है वैसे ही मैं भी इस विश्वका हेतु हूँ,—इसके पूर्व और परमें समभावसे अवस्थित हूँ ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे उद्धव! अवस्थात्रयसम्पन्न मन, तीनो गुण एवं कार्य्य, कारण और कर्त्ता (अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत)—ये सब जिस शुद्ध निर्गुण ब्रह्मके साथ अन्वय-व्यतिरेक द्वारा सिद्ध होते हैं वही ब्रह्म सत् है ॥ २० ॥ जो कार्य्य और प्रकाश्य, पहले नहीं था, अन्तमें भी न रहेगा, वह मध्यमें भी नहीं है;—केवल नाममात्र है। क्योंकि जो २ अन्यसे उत्पन्न और प्रकाशित है सो सब वही उत्पादक और प्रकाशक है—यह मेरी धारणा है ॥ २१ ॥ यह वैकारिक प्रपञ्च पहले नहीं था, ब्रह्मकर्तृक रजोगुणके द्वारा सृष्ट और प्रकाशित हुआ है। ब्रह्म स्वतःसिद्ध और स्वप्रकाश है; अतएव ब्रह्म ही इन्द्रिय, तन्मात्रा, मन और पञ्चतत्त्व इत्यादि अनेक रूपोंसे प्रकाशमान है ॥ २२ ॥ हे उद्धव! इस प्रकार ब्रह्मविवेकके हेतु ब्रह्मको प्रत्यक्ष, अनुमान आदि उपायोंसे व्यक्त जानकर एवं निपुण गुरुसे प्राप्त अतन्निरसनके द्वारा देहाभिमानजनित भेदभावरूप आत्मसन्देहको नष्ट कर, विषयग्राहिणी इन्द्रियोंको विषयसंगसे निवृत्त करे और आत्मानन्दमें सन्तुष्ट रहे ॥ २३ ॥ यह पार्थिव शरीर आत्मा नहीं है और इन्द्रियसमूह, इन्द्रियाधिष्ठाता देवता, प्राण, वायु, जल, अग्नि, मन, बुद्धि, चित्त एवं अहङ्कार भी आत्मा नहीं हैं। कारणरूप अन्नमात्र आकाश, पृथ्वी, शब्दादि विषय एवं प्रकृति भी आत्मा नहीं हैं; क्योंकि जड़ हैं। जिसके निकट मेरा रूप भलीभाँति प्रकाशित हो गया है उसके लिये गुणमय इन्द्रियोंके समाहित होनेसे कोई गुण और इन्द्रियोंके चंचल होनेसे कोई दोष नहीं घटित हो सक्ता। मेघोंके आने जानेसे प्रकाशक सूर्य्यको क्या लाभ हानि है? ॥ २४ ॥ २५ ॥ जैसे आकाश—वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीके गुणोंमें अथवा आने-जानेवाली ऋतुओंके गुणोंमें नहीं लिप्त होता वैसे ही अहंकारसे अतीत अविनाशी आत्मा, संसारके हेतु जो सतोगुण, रजोगुण और तमोगुणके मल हैं उनमें नहीं लिप्त होता ॥२६॥ तथापि जब तक मेरे दृढ़ भक्तियोगके द्वारा पूर्णतया राग-रोषादि मनके मैल न मिट जायँ तब तक मायारचित गुणोंका सङ्ग न करना ही कर्त्तव्य है ॥ २७ ॥ जैसे पूर्णतया जिसकी चिकित्सा नहीं हुई वह रोग वारम्वार प्रकट हो कर मनुष्योंको विशेष पीड़ा पहुँचाता है वैसे ही मन भी पूर्णतया रागादि मल और रागादिजनित कर्म्मोंसे शून्य हुए बिना सर्वसंगासक्त कुयोगीको वारम्वार चलायमान करता है ॥ २८ ॥ जो कच्चे योगी देवप्रेरित नराकार विघ्नोंके द्वारा अपने मार्गसे स्खलित होते हैं वे जन्मान्तरमें प्राक्तन अभ्यासके कारण योगमें ही निरत होते हैं; कर्म्मकाण्डमें नहीं प्रवृत्त होते ॥ २९ ॥ यह अविद्वान् जीव किसी संस्कार आदिकी प्रेरणासे मृत्युपर्य्यन्त कर्म्म करता है और विकारको

प्राप्त होता है । किन्तु विद्वान् जीव शरीरमें अवस्थित होकर भी आत्मानन्द-सम्भोगके द्वारा तृष्णाशून्य होकर शरीर और शरीरसम्बन्धी विषयोंमें नहीं आसक्त होता ॥ ३० ॥ जिसकी बुद्धि आत्मामें अवस्थित है वह बैठे, चलते, सोते, मूत्र-त्याग करते, अन्न-भोजन करते और स्वभावसिद्ध दर्शन, श्रवण, स्पर्शादि करते शरीरको और शरीरके उक्त कर्म्मोंको, शरीरमें अवस्थित होकर भी, नहीं जानता ॥ ३१ ॥ विवेकी व्यक्ति, यद्यपि बहिर्मुख इन्द्रियोंके विषयोंको देखता है तथापि अनुमानके विरुद्ध आत्मासे भिन्न अन्य पदार्थोंको सत् नहीं मानता; जैसे निद्रित व्यक्ति जागने पर विलीयमान स्वप्नदृष्ट वस्तुको असत् जानता है ॥ ३२ ॥ हे उद्धव! पहले सब गुण और कर्मोंके द्वारा विविधरूप आत्मामें अभिन्न भावसे गृहीत देह-इन्द्रियादिरूप अज्ञान-कार्य्य ज्ञानोदय होने पर निवृत्त हो जाते हैं; आत्मा न गृहीत ही होता है और न व्यक्त ही होता है ॥ ३३ ॥ जैसे सूर्य्यका उदय,— मनुष्यदृष्टिके आवरणरूप अन्धकारको दूर कर देता है, किसी पदार्थकी सृष्टि नहीं करता वैसे ही साध्वी, निपुणा, आत्मविद्या पुरुषबुद्धिके अन्धकार (अज्ञान) को नष्ट कर देती है ॥ ३४ ॥ यह आत्मा—ज्योतिःस्वरूप, अज, अप्रमेय, समग्र-अनुभूतिस्वरूप है, अतएव महाअनुभूति एवं एक, अद्वितीय और अनिर्वचनीय है; इसीके द्वारा परिचालित होकर वाक्य और प्राण अपना २ कार्य्य करते हैं ॥ ३५ ॥ अभिन्न आत्मामें विकल्प-कल्पनाही मनका भ्रम है; क्योंकि निज-आत्मोपाधि मनके सिवा अन्य इसका अवलम्ब नहीं है ॥३६॥ 'नाम-रूपके द्वारा उपलक्षित यह पंचभूतात्मक द्वैत अबाधित है'—इस समझसे इस विषयमें अपनेको जो पण्डित मानते हैं उनको ही ऐसी प्रतीति होती है कि "वेदान्तमें जो यह कथित है कि 'द्वैत केवल नाममात्रको है' सो केवल अर्थवादमात्र है"। जो तत्त्वज्ञानी हैं उनको ऐसी प्रतीति नहीं होती, क्योंकि उनकी दृष्टिमें तो आत्माके सिवा सब असत् है ॥३७॥ योगाभ्यास करनेवाले अपक्वयोग योगीका शरीर—अभ्यन्तरसे उठनेवाले रोगादि उपद्रवोंके द्वारा विघ्नविहत होता है । उन विघ्नरूप आन्तरिक उपद्रवोंके दूर करनेकी यह विधि है ॥ ३८ ॥ कुछ उपद्रवोंको योगधारणाके द्वारा और कुछ उपद्रवोंको धारणायुक्त दृढ़ आसनके द्वारा एवं कुछ उपद्रवोंको तप, मन्त्र और औषधके द्वारा शान्त करना चाहिये ॥ ३९ ॥ कुछ उपद्रवोंको मेरे ध्यानसे, मेरे नामकीर्त्तन आदिसे और कुछ विघ्नोंको योगेश्वरोंकी उपासनासे क्रमशः शान्त करना चाहिये । इस प्रकार शुभ उपायोंसे अशुभकारी विघ्नोंका विनाश करना चाहिये ॥ ४० ॥ कुछ योगीजन पहले अनेक प्रकारके उपायोंसे इस शरीरको जरा-रोगादिरहित एवं युवावस्थामें स्थापित कर फिर विशेष २ सिद्धियोंके लिये योगधारणा करते हैं ॥४१॥ किन्तु प्राज्ञलोग इसका आदर नहीं करते, सिद्धियोंके लिये योगधारणाका प्रयास निरर्थक है; क्योंकि वनस्पतिके फलकी भाँति शरीरका नाश अवश्य होना

है, और उक्त सिद्धियाँ शरीरपर्य्यन्त हैं ॥ ४२ ॥ नित्य योगाभ्यास करते २ योगीका शरीर यदि जरा-रोगादिरहित हो जाय तो मत्परायण बुद्धिमान् योगीको चाहिये कि उक्त सिद्धियोंको ही पुरुषार्थ न समझे और मेरी प्राप्तिके लिये योगमें तत्पर रहे ॥ ४३ ॥

योगचर्यामिमां योगी विचरन्मध्यपाश्रयः ॥
नान्तरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः ॥ ४४ ॥

जो योगी मेरी शरण ले कर इस प्रकार योग करता है वह विघ्नोंसे भ्रष्ट नहीं होता और निःस्पृह होनेसे प्राप्त परमानन्दमें मग्न रहता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंश अध्याय ।

उद्धवका बद्रिकाश्रमगमन ।

उद्धव उवाच—सुदुस्तरामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः ॥
यथाञ्जसा पुमान्सिध्येत्तन्मे ब्रूह्यञ्जसाच्युत ॥ १ ॥

उद्धवने कहा । हे अच्युत ! जिसका चित्त वशमें नहीं है उसके लिये मेरी समझमें यह योगचर्य्या अत्यन्त दुष्कर है । अतएव लोग जिस प्रकार अनायासही सिद्धि प्राप्त कर सकें वह उपाय कृपाकर मुझसे कहिये ॥ १ ॥ हे कमलनयन ! प्रायः मनोनिवेशमें उद्यत योगीजन ध्येय वस्तुमें पूर्णतया मन न लगने पर चित्त-निग्रहमें असमर्थ और श्रान्त होकर विषादको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ हे अरविन्द-लोचन ! हे विश्वेश्वर ! इसी कारण जो लोग सार-असारके विचारमें चतुर हैं वे समस्त आनन्दपरिपूरक आपके चरणकमलोंको भजते हैं; वे आपकी मायामें मोहित नहीं होते, और इसी कारण अपनेको योग करनेवाला प्रवीण मानकर गर्व नहीं करते ॥ ३ ॥ हे अच्युत ! हे सबके हितचिन्तक एवं आत्मीय ! ऐसे अनन्य-शरण दासोंको आप अपने तुल्य कर लेते हैं,—अथवा आत्मसमर्पण करदेते हैं,—सो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है; ब्रह्मा आदि ईश्वरोंके सुन्दर मुकुट आपके चरणपीठमें लोटा करते हैं तथापि आपने वानरोंके साथ प्रीतिपूर्वक मित्रता की । ऐसे आप दयालु और भक्तवत्सल हैं ॥ ४ ॥ हे जगत्को चेतन देनेवाले ईश्वर ! हे आश्रित जनोंकी सब कामना पूर्ण करनेवाले ! हे प्रियतम ! बलि प्रल्हाद आदि भक्तोंके प्रति आपके किये हुए अनुग्रहको जानकर भी (अथवा अपनेमें अन्तर्य्यामी रूपसे अपने प्रति आपके किये उपकारको जानकर भी) कौन

व्यक्ति आपसे विमुख होसक्ता है ? कौन विवेकी व्यक्ति भोग या मोक्षके उद्देश्यसे आपको भजेगा ? आपके चरणकमलोंकी रजका सेवन करनेवाले हमलोगोंको किस बातकी कमी होसक्ती है ? इसलिये किसी कामनासे आपको भजना भी महामूर्खता है ॥ ५ ॥ हे ईश्वर ! आप बाहर गुरुरूप और हृदयके भीतर अन्तर्यामी रूपसे शरीरधारियोंकी विषयवासनाको दूर कर अपना रूप प्रकाशित करते हैं; अतएव ब्रह्माके बराबर आयुवाले—दीर्घजीवी ब्रह्मज्ञानी भी आपके किये उपकारका बदला नहीं चुकासक्ते ! आपके किये परम अनुग्रहरूप उपकारका स्मरण करनेसे उनको परम आनन्द प्राप्त होता है और वे उसीमें मग्न रहतेहैं ॥ ६ ॥ श्री शुकदेवजी कहते हैं । हे राजन् ! अनुरक्त भक्त उद्धवके इस प्रकार प्रार्थनापूर्वक प्रश्न करनेपर, जगत् जिनकी क्रीड़ाकी सामग्री है वह सत्त्व-रज-तम-नामक शक्तियोंके द्वारा त्रिमूर्तिधारी, ईश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्णचंद्र प्रेमपूर्ण मनोहर मुसकान सहित मधुरवाणीसे बोले कि हे उद्धव ! श्रद्धापूर्वक जिनका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य दुर्जय मृत्युको जीत लेता है उन अपने मङ्गलमय धर्म्मोंको मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ७ ॥ ८ ॥ बुद्धि और मनको मुझमें स्थापित करनेसे मेरेही धर्ममें जिसका आत्मा और मन निरत होगया है वह व्यक्ति धीरे २ मेरा स्मरण करताहुआ मेरेही उद्देश्यसे सब कर्म करे ॥ ९ ॥ मेरे भक्त साधुजन जहाँ रहतेहों उन पवित्र स्थानों (देशों) में रहकर देवता दैत्य या मनुष्योंमें जो मेरे अनन्य भक्त हों उन्हींके आचरणोंका अनुकरण करे ॥ १० ॥ पृथक् सत्रके द्वारा या प्रचलित पर्व, यात्रा आदिमें महान् उत्सव करावे । महाराजोंकी सी सामग्रीसे यथाशक्ति धन-व्ययकर नाच, गाना, बजाना आदि करना कराना चाहिये ॥ ११ ॥ निर्मल-चित्त होकर भीतर और बाहर आकाशके समान सर्वत्र व्याप्त आत्मारूप मुझको सब प्राणियोंमें और अपनेमें अवस्थित देखे ॥ १२ ॥ हे अतिप्राज्ञ ! इस प्रकार केवल ज्ञानके आश्रित होकर जो कोई सब प्राणियोंको मेरा रूप मानकर सादर पूजता है एवं ब्राह्मण और चाण्डाल, ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक दानदेनेवाले और ब्रह्म-स्वापहारी, सूर्य और एक सामान्य स्फुलिंग (चिनगारी), अक्रूर और क्रूर,—सबको समान दृष्टिसे देखता है वही पूर्ण पण्डित है ॥ १३ ॥ १४ ॥ जो पुरुष नित्य वारम्वार प्राणियोंमें मेरी भावना करता है उसके चित्तसे शीघ्रही स्पर्द्धा, असूया, तिरस्कार और अहङ्कार आदि (भेदभाव) दूर होजाते हैं ॥१५॥ अपनेको हँसनेवाले आत्मीयोंको, 'मैं उत्तम हूँ, यह नीच है'—इस प्रकारकी दैहिक दृष्टिको, एवं इस दृष्टिसे उत्पन्न होनेवाली लज्जाको त्यागकर कुत्ते, चाण्डाल, बैल और गधे तकको पृथ्वी पर गिरकर दण्ड प्रणाम करना चाहिये ॥ १६ ॥ जब तक 'सब प्राणियोंमें मेरी भावना' नहीं उत्पन्न होती तब तक उक्त प्रकारसे मन, वाणी और कायाके व्यवहारों द्वारा मेरी उपासना करनी चाहिये ॥ १७ ॥ सर्वत्र आत्मारूप

ईश्वरको देखनेके प्रभावसे उत्पन्न विद्याके प्रभावसे उसके लिये सब ब्रह्ममय होजाता है । इस प्रकार सर्वत्र ब्रह्मको देखनेके कारण सब प्रकारके संशयोंसे मुक्त होकर निश्चेष्ट होजाना चाहिये॥ १८॥ हे उद्धव! सब प्राणियोंमें मुझे देखकर मन, वाणी कायाके कर्मोंसे मेरी आराधना करना ही मेरे मतमें सब प्रकारके मेरे मिलनेके उपायोंसे श्रेष्ठ और सहज उपाय है ॥ १९ ॥ हे उद्धव! आरम्भके उपरान्त किसी प्रकारके विघ्न या विधि-विकलता आदिके द्वारा इस धर्म्मका अणुमात्र भी ध्वंस नहीं होता, क्योंकि मैंने ही पूर्णरूपसे इस निष्काम धर्म्मको निश्चित किया है ॥ २० ॥ हे सत्तम! भय, शोक आदिके कारण भागने और चिल्लानेके समान व्यर्थ लौकिक आयास भी यदि फलकामना विना मेरे अर्पण किया जाय तो वह भी अक्षय धर्म ही होता है ॥ २१ ॥ असत् एवं नश्वर मानव देहके द्वारा इसी जन्ममें मुझ सत्य और अविनाशीको प्राप्त कर लेनाही बुद्धिमानोंकी बुद्धि और चतुरों (पण्डितों)की चतुरता है ॥ २२ ॥ संक्षेप और विस्तारसे यह समग्र ब्रह्मवादका संग्रह मैंने तुमसे कह दिया। यह देवतोंके लिये भी दुर्गम है ॥ २३ ॥ हे उद्धव! विशेपरूपसे स्पष्ट युक्तियोंसे प्रतिपन्न यह ज्ञान मैंने वारम्वार तुमसे कहा है । इसको जान कर पुरुष संशयशून्य और मुक्त हो जाता है—इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २४ ॥ मेरे द्वारा भली भाँति विवेचनापूर्वक दिये गये उत्तरसे युक्त इस तुम्हारे प्रश्न (अर्थात् मेरे और तुम्हारे इस सम्वाद)-को जो कोई नित्य मननपूर्वक वारम्वार पढ़ता है वह भी वेदरहस्यरूप सनातन, सत्य, परब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ जो लोग यह ज्ञान मेरे भक्तोंको भली भाँति स्पष्ट कर समझाते हैं उन ब्रह्मज्ञानका उपदेश करनेवालोंको मैं प्रसन्नतापूर्वक आत्मसमर्पण कर देता हूँ ॥ २६ ॥ जो कोई इस परमपवित्र और औरोंको पवित्र करनेवाले उपाख्यान (कृष्ण-उद्धव-सम्वाद)को नित्यप्रति पढ़ता है वह ज्ञानदीपकके प्रकाश द्वारा मुझको देख पाता है ॥ २७ ॥ जो कोई एकाग्र होकर श्रद्धापूर्वक नित्य इसे सुनते हैं और मुझमें अनन्य भक्ति करते हैं वे कर्मबन्धनमें नहीं बँधते ॥ २८ ॥ हे मित्र उद्धव! तुमने भली भाँति इस ब्रह्मविषयक ज्ञानको समझ लिया? और तुम्हारा मोह और मनोविकार शोक भली भाँति मिट गया? ॥२९॥ देखो,—दांभिक, नास्तिक, वञ्चक, सुननेकी इच्छा न रखनेवाले और मेरी भक्तिसे विमुख एवं दुष्ट घमंडीको कभी इस ज्ञानका उपदेश न करना ॥ ३० ॥ उक्त दोषोंसे शून्य, ब्रह्मभक्त, सब प्राणियोंके हितचिन्तक अतएव प्रिय पवित्र साधु-(परोपकारी) को और भक्तिश्रद्धासम्पन्न शूद्र एवं स्त्रियोंको भी इस ज्ञानका उपदेश करना ॥ ३१ ॥ इसके जान लेने पर जिज्ञासुको जाननेके लिये और कुछ नहीं रह जाता । स्वादिष्ट सुधा पी लेने पर और कुछ पीनेको नहीं अवशिष्ट रहता ॥ ३२ ॥ हे उद्धव! तुम ऐसे अनन्य भक्तोंके लिये

ज्ञान, कर्म्म, योग, कृषि, राज्यैश्वर्य्यआदि साधनोंसे सिद्ध होनेवाले धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक चारो पदार्थ और अणिमा आदि सिद्धियाँ तथा ऐश्वर्य्य–सब कुछ मैं ही हूँ ॥ ३३ ॥ मनुष्य, जब सब कर्म्मोंको छोड़ कर मुझहीमें आत्माको अर्पित कर मेरे ही आराधनकी इच्छासे सब कुछ करता है तब जीवन्मुक्त हो कर मेरे सदृश ऐश्वर्य्यका अधिकारी होता है ॥ ३४ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! योगमार्गका पूर्ण उपदेश पानेके उपरान्त, इस प्रकारके उत्तम उत्तमश्लोक (कृष्ण)के वचन सुन कर उत्पन्न होनेवाले आनन्दसे उद्धवके नेत्रोंमें जल भर आया, प्रीतिके कारण कण्ठ रुँध गया। उन्होने स्तुति करनेकी इच्छासे हाथ जोड़े, परन्तु कुछ न कह सके; केवल हाथ जोड़ कर रह गये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर प्रणयवेगसे चंचल चित्तको धैर्य्य द्वारा थाम कर अपनेको प्रभुकी कृपासे कृतार्थ मानते हुए उद्धवने यदुश्रेष्ठके चरणोंमें शिर रख कर प्रणाम किया और कहा कि–हे अज जनक! हे सनातन! मेरे हृदयमें जो घोर मोहमय अन्धकार परिपूर्ण था वह आपके निकट आश्रय ग्रहण करनेसे नष्ट हो गया। सो ठीक ही है, सूर्य्यके समीप जानेवालेको कहीं अन्धकार या शीतका भय रह सक्ता है? ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ आपने अपनी मायाके द्वारा अपहृत ज्ञानदीपक फिर दिया, जिससे मैं अपने रूपको देख कर जान गया। कौन ऐसा कृतघ्न होगा जो आपके चरणोंकी शरण छोड़ कर अन्य किसीकी शरणमें जायगा? ॥ ३८ ॥ सृष्टि-वृद्धिके लिये अपनी मायाके द्वारा दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक और सात्त्वतवंशके प्रति निर्मित मेरे सुदृढ़ स्नेहपाशको आत्मज्ञानरूप पैने खड्गसे आपने काट दिया। हे महायोगेश्वर! आपको नमस्कार है। मुझ शरणागतको वह आज्ञा दीजिये जिसके द्वारा आपके चरणकमलोंमें अनन्त भक्ति प्राप्त हो ॥३९–४०॥ **श्रीभगवान्ने कहा।** हे उद्धव! मेरी आज्ञाके अनुसार तुम मेरे आश्रम बदरीनारायण क्षेत्रमें जाकर निवास करो। उस स्थानमें मेरे चरणकमलसे उत्पन्न अलकनन्दा गंगाके जलमें स्नानकर और गंगातटकी पवित्रशोभा निहार कर तुम परम पवित्र होजाओगे, तुम्हारे हृदयके मल (काम, क्रोधादि) नष्ट होजायँगे। वहाँ मुनिवृत्तिसे रहना, वल्कलवस्त्रविभूषित, वन्य मूलफलाहारी, सुखनिरपेक्ष रहकर शीतोष्णादि द्वन्द्व धर्मोंको सहना। इस प्रकार सुशील जितेन्द्रिय शान्त होकर एकाग्र बुद्धिसे ज्ञान विज्ञानका अनुशीलन करना। तुमने जो कुछ मुझसे शिक्षा पाई है उसे एकान्तमें बैठकर विचारना, इस प्रकार मेरे धर्म्ममें निरत होने पर तुम त्रिगुणमयी प्रवृत्ति-गतिको नाँघ कर परमगतिस्वरूप मुझे सहजमें पाओगे ॥ ४१–४४ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** महाराज! जिनके ज्ञानसे संसारपाश कट जाता है उन कृष्णके ये अन्तिम उपदेश पाकर उद्धवने उनकी प्रदक्षिणा की। यद्यपि उद्धवजी सुख-दुःख-दृष्टिशून्य होगयेथे तथापि चलनेके समय प्रेमपूर्णहृदय होकर प्रभुके चरणोंमें शिर धर

उन्हे आँसुओंसे भिगोने लगे ॥४५॥ दुस्त्यज स्नेहके पात्र प्रभुके वियोगसे अत्यन्त कातर उद्धवजी, उन्हे न छोड़ सकनेके कारण अत्यन्त आतुर होकर, बड़े कष्टसे धैर्यधारणपूर्वक, अनुग्रहचिन्ह-स्वरूप स्वामीकी दी हुई चरणपादुका शिर पर रखकर वारम्वार प्रणाम कर फिर २ कर देखतेहुए, वहाँसे चले ॥ ४६ ॥ महाभगवद्भक्त उद्धवजी, जगत्के प्रधानगुरु इष्टदेवकी मूर्तिको हृदयमंदिरमें स्थापित कर उनकी आज्ञाके अनुसार वद्रिकाश्रमको गये एवं वहाँ दुष्कर तप कर हरिके पदको प्राप्त हुए ॥ ४७ ॥ जो कोई श्रद्धासहित योगेश्वरसेवितचरण कृष्णचन्द्रकर्तृक अपने परमभक्त उद्धवके प्रति कथित इस आनन्दसमुद्ररूप भक्तिमार्गमें सम्मिलित ज्ञानसुधाका थोड़ा सा भी सेवन करता है वह मुक्त हो जाता है एवं उसके संगसे विश्व भर मुक्त हो सक्ता है ॥ ४८ ॥

भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद्वेदसारम् ॥
अमृतमुदधितश्चापाययद्भृत्यवर्गान्पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि

जैसे भ्रमर फूलोंसे साररूप मधुको निकाल लेता है वैसेही ज्ञान-विज्ञानसागरसे सारांशरूप यह जन्म, मरण, जरा, आधि, व्याधि आदिके भयको हरनेवाला अमृत निकाल कर भक्तवर्गोंको पिलानेवाले, वेदप्रकाशक, कृष्णनाम सनातन पुरुषोत्तमको हम प्रणाम करते हैं ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंश अध्याय ।

यदुवंशविनाश ।

राजोवाच—ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम् ॥
द्वारवत्यां किमकरोद्भगवान्भूतभावनः ॥ १ ॥

राजापरीक्षित्ने कहा । हे मुनिवर ! महाभागवत उद्धवके वनगमनके उपरान्त भूतभावन भगवान्ने द्वारकापुरीमें क्या किया ? अपने वंशको ब्रह्मशाप होनेपर यादवश्रेष्ठ कृष्णने सब इन्द्रियोंको परमप्रिय अपना शरीर किस प्रकार त्याग कर परमधामगमन किया ? ॥ १ ॥ २ ॥ जिसमें लगी हुई दृष्टिको स्त्रियाँ नहीं हटा सक्ती थीं, जो कर्णमार्गसे प्रवेश कर सज्जनोंके हृदयसे नहीं हटता, जिसकी अपूर्व शोभा वर्णन करते समय कवियोंकी वाणी उत्तेजित और उत्साहित होती है एवं कवियोंको मान मिलता है, जिसको युद्धभूमिमें अर्जुनके रथ पर अवस्थित देख संग्राममें मरनेवाले सुभटोंको सारूप्य-मुक्ति मिली, उस अपनी मनोहर तनुको

कृष्णचन्द्रने कैसे छोड़ा? सो कृपा कर कहिये ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा। महाराज! आकाश, स्वर्ग और पृथ्वीमें महान् उत्पात उठते देख सुधर्म्मा सभामें बैठे हुए यादवोंसे कृष्णचन्द्रने कहा कि—"हे यादवगण! देखो, द्वारकामें यमकेतु-रूप (मृत्युसूचक) ये अनेकानेक घोर उत्पात होने लगे हैं। अब हमको यहाँ मुहूर्त्त भर भी न ठहरना चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥ स्त्री, बालक और बूढ़ोंको शंखोद्धार नामक क्षेत्रमें भेज कर हम लोग प्रभास क्षेत्रको चलेंगे, जहाँ पश्चिमवाहिनी सरस्वती नदी है ॥ ६ ॥ वहाँ सरस्वतीमें स्नान कर पवित्रतापूर्वक उपवास कर एकाग्र चित्तसे स्नान, चन्दन आदि सामग्रियोंसे देवपूजन करेंगे ॥ ७ ॥ शान्ति स्वस्त्ययनवाचनके उपरान्त हम लोग वहाँ गऊ, पृथ्वी, सुवर्ण, वस्त्र, गज, रथ, अश्व, गृह आदि देकर महाभाग ब्राह्मणोंकी पूजा करेंगे ॥ ८ ॥ इसी उपायसे हमारे अरिष्टका नाश और मङ्गललाभ होगा। देवता, ब्राह्मण और गोगणकी पूजा करनेसे ही प्राणियोंके जन्मकी परम सफलता होती है" ॥ ९ ॥ हे राजन्! सब बड़े बूढ़े यादवोंने मधुसूदनके इस कथनका अनुमोदन किया और उसी समय नौकाके द्वारा समुद्र पार होकर रथों पर चढ़कर वे प्रभास क्षेत्रको चलदिये ॥ १० ॥ प्रभासमें पहुँच कर यदुदेव भगवान् कृष्णकी आज्ञाके अनुसार यादवोंने परम भक्तिसे सम्पूर्ण मङ्गल कृत्य किये ॥ ११ ॥ तदनन्तर प्रबल होनीसे बुद्धि भ्रष्ट होनेके कारण, जिसके मदसे उचित और अनुचितका विचार नहीं रहता उस सुरस मैरेयेक नाम मदिराको पिया ॥ १२ ॥ फिर कृष्णकी मायासे मूढ़ और महामद-पानसे मत्त होकर कर्तव्याकर्तव्यज्ञानशून्य वीर यादवोंमें परस्पर कहा-सुनी होनेलगी ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त सब महाक्रोधसे वधोद्यत होकर समुद्रके किनारे धनुष, वाण, खड्ग, भाले, गदा, तोमर, ऋष्टि आदि शस्त्र लेकर लड़ने लगे ॥ १४ ॥ फहरा रही पताकाओंसे युक्त रथ, हाथी, खच्चर, ऊँट, खर, बैल, भैंसे, मनुष्य आदिसे युक्त वे दुर्मद वीरगण, जैसे वनमें गजगण परस्पर दन्तप्रहार करतेहुए लड़ते हैं वैसेही परस्पर युद्ध करनेलगे ॥ १५ ॥ भावीवश परस्पर कुपित प्रद्युम्न और साम्ब, अक्रूर और भोज, अनिरुद्ध और सात्यकी, सुभद्र और संग्रामजित्, दारुण और गद एवं सुमित्र और सुरथ द्वंद्वयुद्ध करनेलगे ॥ १६ ॥ इनके अतिरिक्त निशठ, उल्मुक, सहस्रजित् और भानुआदिक सभी यादव मुकुन्दकी मायासे मोहित और मदिराके मदसे ज्ञानशून्य होकर परस्पर प्रहार करने लगे ॥ १७ ॥ हे राजन्! दाशार्ह, भोज, अन्धक, वृष्णि, सात्वत, मधु, अर्बुद, माथुर, शूरसेन, विसर्जन, कुकुर, कुन्ति आदि वंशोंके वीरगण परस्पर स्नेह त्यागकर मारने मरने लगे ॥ १८ ॥ विमोहित होकर पुत्रगण अपने बापोंसे, भाई भाइयोंसे, भागिनेय मातुलोंसे, भतीजे पितृव्योंसे, नाती मातामहोंसे, मित्र मित्रोंसे, सुहृद् सुहृदोंसे, सजातीयगण सजातीयगणसे युद्धकर एक एकका वध करने लगे ॥ १९ ॥ क्रमशः वाण चुक

गये और अन्यान्य अस्त्र शस्त्र भी टूटगये, तब उन्ही मूशलचूर्णसे उत्पन्न एरकाओंको समुद्रके किनारेसे उखाड़कर परस्पर प्रहार करनेलगे ॥ २० ॥ उन परिघसदृश वज्र-तुल्य एरकामुष्टियोंसे परस्पर प्रहार कररहे यादवोंको कृष्णचन्द्रने रोका तो वे कृष्णचन्द्र पर भी प्रहार करनेलगे ॥ २१ ॥ वे महामोहित यादवगण बलभद्रजी-को शत्रु मानकर उन पर भी प्रहार करने लगे । हे कुरुनन्दन ! तब कृष्ण-बल-भद्र भी अत्यन्त कुपित होकर उन्ही एरकामुष्टिरूप लौहदण्डोंको उठाकर उनसे सबका वध करतेहुए युद्धभूमिमें विचरने लगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ जैसे बाँसके वनमें परस्परकी रगड़से उत्पन्न प्रचण्ड अग्निसे सम्पूर्ण बाँसोंका वन भस्म होजाता है वैसेही स्पर्धाजनित क्रोधसे कृष्णमायामोहित ब्रह्मशापग्रस्त यादववंशका विनाश हो गया ॥ २४ ॥ इस प्रकार अपने सब कुलोंका अन्त हो जाने पर अन्तमें अवशिष्ट भगवान्‌ने विचारा कि–"हाँ अब पृथ्वीका भार निःशेष होगया" ॥२५॥ बलभद्रजीने समुद्रतट पर परमपुरुषचिन्तनरूप योगधारणाके द्वारा आत्माको आ-त्मामें लीनकर मनुष्यलोक (मनुष्य शरीर) को त्याग दिया ॥ २६ ॥ बलभद्रकी परम गतिको देखकर देवकीनन्दन भगवान् कृष्णचंद्रभी मौनावलम्बनपूर्वक पीपलकी जड़में पृथ्वी पर अवस्थित हुए एवं चतुर्भुज-रूप-धारणपूर्वक धूमरहित अग्निके समान प्रज्वलित अपनी प्रभाके द्वारा दिशाओंके अन्धकार को दूर कर दिया ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रीवत्सचिन्हशोभित, घनश्याम, तप्तकाञ्चनकान्तिसम्पन्न, रेशमी युगल पीतपटधारी हरिका नील अलकावलीसे सुशोभित मुखारविन्द मन्द मुसकानसे महामनोहर हो रहा था। दोनो विशाल नयन कमलतुल्य अभिराम थे, कानोंमें कान्तिशाली मकराकृत कुण्डलोंकी अपूर्व शोभा थी। शरीरमें यथा-स्थान कटिसूत्र, ब्रह्मसूत्र, किरीट मुकुट, कटक, अंगद, हार, नुपूर, मुद्रा और कौस्तुभ आदि अलङ्कार विराजमान थे। सर्वांगमें वनमालाकी शोभा देखने ही योग्य थी। उस समय भगवान्‌के शंखचक्रादि आयुध मूर्त्तिमान् हो कर सेवामें उपस्थित थे। भगवान् अरुणकमलसदृश अरुणवर्ण वाम चरणको दाहिनी जंघा पर धरेहुए प्रसन्न शान्त भावसे बैठे थे ॥ २९–३२ ॥ मूशलके बचे हुए लौहखंडको मछलीके पेटसे पाकर जरा नाम व्याधने उसीकी गाँसी बना कर एक वाण प्रस्तुत किया था। जरा व्याधने उस समय दूरसे भगवान्‌के मृगाकार चरणको मृग जानकर उसी वाणका लक्ष्य बनाया। किन्तु निकट आकर जब उसने चतुर्भुज महापुरुषको देखा तब किये हुए अपराधके भयसे असुरारि कृष्णके चरणोंमें गिर पड़ा और कहने लगा कि–"हे निष्पाप उत्तमश्लोक मधुसूदन! मैं महापापी हूँ, मैंने बिना जाने यह अपराध किया है, हे प्रभो! क्षमा करिये। जिनके स्मरणसे ही मनुष्योंके हृदयका अज्ञानरूप अन्धकार मिट जाता है वही साक्षात् विष्णु आप हैं। हे नाथ! मैंने महा अपराध किया है ॥३३–३६॥ हे वैकुण्ठ! मैं निरीह मृगोंको मांसके लोभसे मार-

नेवाला महापातकी हूँ। मुझे आप शीघ्रही मार डालिये, जिसमें मुझे फिर इस प्रकार महानुभाव जनोंका अपराध करनेका अवसर न प्राप्त हो ॥ ३७ ॥ आपके आत्मज ब्रह्मा रुद्र आदिक और अन्यान्य वेदके पूर्ण ज्ञाता ब्रह्मर्षि गण भी आपकी मायाके द्वारा दृष्टिके आवृत होनेसे आपकी स्वाधीन मायारचित गतिको नहीं जानपाते! तब हम तो महा नीच जाति हैं—हम कैसे आपकी इच्छा-गतिका निरूपण कर सक्ते हैं?" ॥ ३८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा। "हे व्याध! तू भय न कर, उठ। तेरा यह काम मेरीही इच्छासे हुआ है, अतएव इसमें तेरा कुछ अपराध नहीं है। मेरी आज्ञासे तू सुकृती जनोंके रहनेके स्थान स्वर्गलोकको जा" ॥ ३९ ॥ इच्छा-शरीरी कृष्णचन्द्रके इसप्रकार आज्ञा देने पर तीन वार प्रदक्षिणा और प्रणाम कर, उसी समय आगत विमान पर चढ़कर वह लुब्धक स्वर्गको सिधारा ॥ ४० ॥ महाराज! इधर दारुक सारथी कृष्णचन्द्रको खोजता हुआ उसी स्थानके निकट पहुँचा और तुलसीकी उत्तम गंधसे युक्त वायुकी झकोरोंसे कृष्णको निकटस्थ जानकर उसी ओर चला ॥ ४१ ॥ दारुकने आगे बढ़कर देखा कि दीप्तद्युतिसम्पन्न अपने स्वामी कृष्णचन्द्र पीपलके तले बैठे हुए हैं और मूर्तिमान् अस्त्र शस्त्र चारो ओर सेवामें उपस्थित हैं। देखतेही प्रेमसे उसका हृदय परिपूर्ण हो आया और नेत्रोंमें आँसू भर आये। दारुक उसी समय रथसे कूद कर स्वामीके चरणोंमें गिर पड़ा और कहने लगा—"हे प्रभो! आपके चरणारविन्दोंको न देख पानेके कारण मुझे कुछ नहीं सूझता, चारो ओर अन्धकारही अन्धकार जान पडता है। जैसे सूर्य्यास्त होने पर अँधेरी रातमें किसी दिशाका ज्ञान नहीं होता वैसेही मुझे नहीं जान पड़ता कि मैं कहाँ हूँ—किस दिशाको जारहा हूँ? हे नाथ! मेरे चित्तको चैन नहीं है" ॥४२॥ ॥४३॥ हे राजेन्द्र! सारथी इस प्रकार कहही रहा था कि सहसा वह गरुड़चिन्हित रथ देखते-ही-देखते अश्व-ध्वजा आदि सामग्री सहित आकाशमें जाकर अदृश्य हो गया ॥ ४४ ॥ रथके साथही विष्णुके दिव्य शस्त्र भी चलेगये। यह देखकर सारथीको बड़ाही विस्मय हुआ। जनार्दन कृष्णने सारथीसे कहा कि—"हे दारुक! तुम द्वारकामें जाकर परस्पर युद्धमें यदुवंशका विनाश सङ्कर्षणकी परमगति और मेरी दशा आदि वृत्तान्त बन्धुओंसे कहो। और कहना कि तुमलोग बन्धुगणसहित द्वारकापुरीमें न रहना, क्योंकि मेरी त्यागी हुई यदुपुरी समुद्रमें डूब जायगी। अपने २ परिवारको मेरे माता पिता सहित लेकर अर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थ (हस्तिनापुर) को चलेजाना। हे सारथी! मेरे धर्म्मका अवलम्बन कर ज्ञाननिष्ठ और निरपेक्ष भावसे इस विश्वप्रपञ्चको मेरी मायाकी रचना जानो; अन्तमें तुमको मुक्ति प्राप्त होगी" ॥ ४५–४९ ॥

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥
तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम् ॥५०॥

हे राजन्! भगवान्के कथनको सुनकर वारम्वार प्रदक्षिणा और स्वामीके चरणोंमें शिर धर प्रणाम करनेके उपरान्त उदास भावसे दारुक सारथी द्वारकापुरीको गया ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंश अध्याय ।

श्रीकृष्ण भगवान्का परमधामगमन ।

श्रीशुक उवाच–अथ तत्रागमद्ब्रह्मा भवान्या च समं भवः ॥
महेन्द्रप्रमुखा देवा मुनयः सप्रजेश्वराः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे राजन्! तदनन्तर ब्रह्मा, भवानी सहित भगवान् शंकर, देवगण, मुनिगण, प्रजापतिगण, पितृगण, सिद्ध, गन्धर्व्व, विद्याधर, महानाग, चारण, यक्ष, किन्नर, अप्सरागण एवं द्विजगण आदि सब प्राणी भगवान्की गति देखनेके लिये अत्यन्त उत्सुक होकर वासुदेवके जन्म-कर्म्म-सम्बन्धी गुण गाते हुए उस स्थानमें आकाश पर आकर उपस्थित हुए। उनके असंख्य विमानोंसे आकाशमंडल व्याप्त होगया और ये परम भक्तिपूर्वक हरि पर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ १–४ ॥ प्रभु भगवान्ने एकवार ब्रह्मा, इंद्र आदि अपनी विभूतियोंकी ओर देखकर आत्माको आत्मामें लगा कर नेत्रकमल वन्द करलिये ॥ ५ ॥ भगवान् योग-धारणा-जनित अग्निके द्वारा अपनी त्रिभुवनमोहिनी मूर्तिको भस्म किये विनाही अपने धामको सशरीर चलेगये। उससमय आकाशमें नगाड़े वजने लगे और पुष्पवर्षा होने लगी। हे राजन्! हरिके साथही सत्य, धर्म, धृति, कीर्त्ति और लक्ष्मी आदि भी पृथ्वीको छोड़कर चलेगये। अविज्ञेयगति कृष्णचन्द्रको अपने धाममें प्रवेश करते, ब्रह्माआदि आगत जनोंमेंसे किसीने देखा और किसीने नहीं देखा। इस कारण सवको वडाही विस्मय हुआ ॥ ६–८ ॥ जैसे आकाशमें मेघमण्डलको छोड़कर जारही विजलीकी गतिको मनुष्यगण नहीं देख पाते वैसेही कृष्णचन्द्रकी गति देवतोंको नहीं देख पड़ी ॥ ९ ॥ उस समय ब्रह्मा, रुद्र आदि सब हरिकी योगगतिको देखकर विस्मित भावसे प्रशंसा करते हुए अपने २ लोकको गये ॥ १० ॥ राजन्! नटलीलाके समान परमेश्वरके देहधारण और यादवादि शरीरधारियोंमें जन्मलेने व मरण आदि कार्य्योंको केवल मायाविडम्वनामात्र समझना। वह इस जगत्की सृष्टि कर और इसमें प्रवेशपूर्वक विहार कर अन्तमें इसे अपनेमें लीनकर अपनी महिमामें अवस्थित (निर्गुण, निश्चेष्ट)होते हैं ॥ ११ ॥ जो इसी नरतनुद्वारा यमलोकसे मरेहुए गुरुपुत्रको लेआये, जिन शरणागतरक्षकने

विकट ब्रह्मास्त्रसे तुमको बचालिया, जलने नहीं दिया, जिन्होने अन्तकके भी अन्तक शंकरको संग्राममें जीतलिया, जिनकी कृपासे दुराचारी व्याध स्वर्गको गया वह परमपुरुष कृष्णचन्द्र क्या अपनी रक्षा नहीं कर सक्ते थे? चाहते तो कालको टाल सक्तेथे, तथापि सर्वशक्तिमान् और विश्वकी उत्पत्ति स्थिति एवं प्रलयके एकमात्र हेतु कृष्णने 'इस मर्त्य शरीरका अब कुछ प्रयोजन नहीं है,' यों विचारकर आत्मनिष्ठ साधु जनोंको अपनी गति दिखानेके लिये इस लोकमें अपने लीलामानव शरीरको नहीं रक्खा ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे राजन्! जो कोई प्रातःकाल उठकर भक्तिपूर्वक इस कृष्णके परमधामगमनको एकाग्र चित्तसे पढ़ता है वह भी इसी सर्वोत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ महाराज! कृष्णवियोगसे विह्वल दारुक सारथी द्वारका पुरीमें आकर वसुदेव और उग्रसेनके चरणोंमें गिर पड़ा और नेत्रजलसे उनके चरणोंको भिगोते हुए यदुवंशमात्रके विनाशका वृत्तान्त कहा । इस कुसमाचारको सुनते ही सब लोग उद्विग्नतासहित दुरन्त शोकसे मूर्च्छित होगये । जिस स्थान पर सब सम्बन्धी बन्धु बान्धव मरेहुए पडे थे वहाँ कृष्णके वियोगसे विह्वल सब लोग छाती पीटते हाहाकार करते उपस्थित हुए । शोकसे अत्यन्त आकुल वसुदेव, उग्रसेन, देवकी और रोहिणीने कृष्ण और बलदेवको न देखकर उनके असह्य विरहसे आतुर हो कर उसी समय प्राण त्याग दिये ॥ १५–१८ ॥ हे राजन्! अपने पतियोंके शरीर लेकर सब स्त्रियाँ सती होगईं । बलभद्रजीकी स्त्रियाँ भी स्वामीके शरीरको लेकर प्रज्वलित चिता पर चढ़गईं । वसुदेवकी शेष स्त्रियाँ और प्रद्युम्न आदिकी स्त्रियाँ भी अपने २ पतियोंके शरीर लेकर भस्म होगईं । कृष्णकी रुक्मिणी आदि आठ पटरानियाँ कृष्णमें मन लगाकर चितामें भस्म होगईं ॥ १९ ॥ २० ॥ अपने परमप्रिय सखा कृष्णके विरहसे आतुर अर्जुनने कृष्णकी बताई हुई सत् उक्तियों (गीताकथित ज्ञान) से अपने चित्तको शान्त किया ॥ २१ ॥ तदनन्तर अर्जुनने सब निहत बन्धुओंका अन्तिम सत्कार किया, क्योंकि किसीके गोत्रमें कोई पिण्ड और जल देनेवाला नहीं बचा था ॥ २२ ॥ महाराज! भगवान्के श्रीसम्पन्न निवासमन्दिरको छोड़कर उसी समय हरिविहीन समग्र द्वारकापुरीको समुद्रने जलमग्न कर दिया ॥ २३ ॥ उस अपने निवासमन्दिरमें, स्मरण करनेसे समस्त अशुभोंको नष्ट करनेवाले सर्वमङ्गलनिलय भगवान् मधुसूदन सर्वदा अवस्थित रहते हैं ॥ २४ ॥ मरनेसे बचे हुए स्त्री, बालक और बूढ़ोंको लेकर अर्जुन इन्द्रप्रस्थको गये और वहाँका राजा वज्रको बनाया ॥ २५ ॥ तुम्हारे युधिष्ठिरादि पितामह अर्जुनके मुखसे सुहृद्वधका वृत्तान्त सुनकर तुमको वंशधर कर आप उस महापथको चलदिये, जिधर जाकर फिर कोई नहीं लौटता ॥ २६ ॥ जो कोई देवदेव साक्षात् विष्णु कृष्णचन्द्रके इन जन्म कर्मोंको श्रद्धापूर्वक कहता, सुनता है वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ २७ ॥ निष्काम भावसे या सकाम

भावसे एकाग्र होकर जो कोई इसे सुनता है वह महा पापी, दुराचारी होने पर भी सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है ॥ २८ ॥

इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतार-
वीर्याणि बालचरितानि च शंतमानि ॥
अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन्मनुष्यो
भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत ॥ २९ ॥

भगवान् हरिके इस परममङ्गलमय मनोहर अवतारकी कथा, विक्रम और बाललीलाओंका कीर्त्तन करनेसे मनुष्योंको परमहंसोंकी गति जो श्रीकृष्णचन्द्र हैं उनकी सुदृढ़ अनन्य भक्ति प्राप्त होती है और इस लोक और परलोकमें उनका कल्याण होता है ॥ २९ ॥

इति श्रीभागवते एकादशस्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

॥ इति एकादशस्कन्धः समाप्तः ॥





शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

द्वादशस्कन्धः ।



बालमुकुन्द.



॥ श्रीः ॥

शुकोक्तिसुधासागरः।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

द्वादशस्कन्धः ।



प्रथम अध्याय ।

भविष्य राजोंके वंशका वर्णन ।

राजोवाच–स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे ॥
कस्य वंशोऽभवत्पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित्‌ने पूछा कि हे मुनिवर! यदुवंशको विभूषित करनेवाले कृष्णचन्द्र जब अपने परमधामको चले गये तब पृथ्वी पर किस राजाके वंशने राज्य किया, सो मुझसे कहिये ॥ १॥ श्रीशुकदेवजीने कहा। हम पहले (नवमस्कंधमें) जरासंधके पुत्र सहदेवसे लेकर रिपुंजय-जिसका दूसरा नाम पुरंजय भी है–तक बीस भविष्य राजोंका वर्णन कर आये हैं। उस बृहद्रथ वंशके अन्तिम राजा पुरंजयका मंत्री शुनक अपने स्वामी पुरंजयको मारकर अपने पुत्र प्रद्योतको राजगद्दी पर बैठावेगा। प्रद्योतके पुत्रका नाम पालक होगा। पालकके विशाखयूप, उसके राजक और राजकके नन्दिवर्द्धन नाम पुत्र होगा । ये प्रद्योत-वंशीय पाँच

नरपति एक सौ अड़तीस वर्ष तक पृथ्वीका शासन करेंगे। इनके बाद शिशुनाग नाम राजा होगा। शिशुनागके काकवर्ण, उसके क्षेमधर्म्मा, उसके क्षेत्रज्ञ, उसके विधिसार, उसके अजातशत्रु, उसके दर्भक, उसके अजय, उसके नन्दिवर्द्धन और उसके महानन्दि नाम पुत्र होगा। हे कुरुश्रेष्ठ! ये शिशुनाग-वंशज दश नरपति कलियुगमें तीन सौ साठ वर्ष तक पृथ्वी पर राज्यशासन करेंगे। राजन्! महानन्दिके एक शूद्रा दासीके गर्भसे नन्द नाम महाबली पुत्र उत्पन्न होगा। महापद्म-परिमित धनका स्वामी होनेसे उसका दूसरा नाम महापद्म भी होगा। उसके समयसे फिर शूद्रतुल्य अनाचारी और अधर्म्मी राजा पृथ्वीके शासक होंगे। वह नन्द नाम नरपति क्षत्रियोंका विनाश करनेमें दूसरा परशुराम होगा। उसकी आज्ञा न माननेका साहस किसीको न होगा। वह पृथ्वी पर एकच्छत्र राज्य करेगा, अर्थात् चक्रवर्त्ती होगा। नन्दके सुमाल्य आदि आठ पुत्र होंगे। चाणक्य नाम कोई ब्राह्मण अपने ऊपर विश्वास करनेवाले विख्यात नन्द राजाको सहित आठ पुत्रोंके विनष्ट करके चंद्रगुप्तको राजा बनावेगा। इस प्रकार कलियुगमें नन्द वंशका अन्त होने पर मौर्य-वंशके राजा पृथ्वीके शासक होंगे। चन्द्रगुप्तके वारिसार, उसके अशोकवर्द्धन, उसके सुयशा, उसके संगत, उसके शालिशूक, उसके सोमशर्म्मा, उसके शतधन्वा, उसके बृहद्रथ और उसके दशरथ नाम पुत्र होगा। ये मौर्यवंशज दस नरपति कलियुगमें एक सौ सैंतीस वर्ष तक राज्य करेंगे। तदनन्तर बृहद्रथका सेनापति पुष्पमित्र अपने स्वामीको मारकर स्वयं राजा बन बैठेगा। वह शुंगवंशका पहला राजा होगा। पुष्पमित्रके अग्निमित्र, उसके सुज्येष्ठ, उसके वसुमित्र, भद्रक और पुलिन्द, पुलिन्दके उद्घोष, उसके वज्रमित्र, उसके भागवत और उसके देवभूति नाम पुत्र होगा। ये दश शुंगवंशज नरपति एक सौ बारह वर्ष तक राज्यशासन करेंगे। हे राजन्! तदनन्तर इस पृथ्वीका शासनभार स्वल्प गुणवाले कण्ववंशज राजोंके हाथमें जायगा ॥ २–१७ ॥ शुंगवंशका अन्तिम राजा देवभूति बड़ा कामी होगा। उसको मारकर उसका मंत्री कण्व स्वयं राजा बन बैठेगा। कण्वके महामति वसुदेव, उसके भूमित्र, उसके नारायण और उसके सुशर्मा नाम पुत्र होगा। कण्ववंशके ये चार नरपति तीन सौ पैंतालीस वर्ष तक कलियुगमें राज्य करेंगे। सुशर्माको मारकर उसका भृत्य अन्ध्रजातीय महादुष्ट वलिनामक एक प्रबल शूद्र कुछ काल तक स्वयं शासन करेगा। उसके बाद उसका भाई कृष्ण राज्य करेगा। कृष्णके श्रीशान्तकर्ण, उसके पौर्णमास, उसके लम्बोदर, उसके राजा चिविलक, उसके मेघस्वाति, उसके दृढ़मान, उसके अनिष्टकर्मा, उसके हालेय, उसके तलक, उसके पुरीषभेरु, उसके राजा सुनन्दन, उसके चकोर, उसके बटक, उसके शत्रुदमन, उसके शिवस्वाति, उसके गोमती, उसके मेदशिरा, उसके शिव, उसके स्कन्द, उसके यज्ञश्री, उसके विजय, उसके भाव्य, उसके चन्द्र, उसके विज्ञ और उसके

लोमधिनाम पुत्र होगा । ये तीस राजे चार सौ छप्पन्न वर्ष तक राज्यशासन करेंगे । तदनन्तर अवभूति नगरमें अत्यन्त लोभी सात आभीरसंज्ञक, दश गर्दभीसंज्ञक एवं सोलह कंकसंज्ञक नरेश होंगे । उनके बाद आठ यवन, चौदह तुरुष्क, दश गुरुण्ड और ग्यारह मौन जातिके नरपति होंगे ॥ १८–२८ ॥ इन मौनजातीय राजोंको छोड़ कर आभीरआदिक नरेश एक हजार निन्नानवे वर्ष तक पृथ्वीका भोग करेंगे और ग्यारह मौनजातीय नरपति तीन सौ वर्ष तक राज्यशासन करेंगे । जब मौनजातीय राजोंका अन्त होगा तब किलकिला नगरीमें पहले भूतनन्दि, फिर बंधिरि, फिर उसका भाई शिशुनन्दि, फिर उसका पुत्र प्रवीरक राज्य करेगा । ये नरपति एक सौ छः वर्ष तक भूमिका भोग करेंगे । उक्त भूतनन्दिआदि राजोंके बाह्लीकसंज्ञक तेरह पुत्र होंगे । तदनन्तर पुष्पमित्र नाम क्षत्रिय और उसका पुत्र दुर्मित्र पृथ्वीका भोग करेंगे । हे राजन् ! पूर्वोक्त बाह्लीकवंशमें उत्पन्न सात राजा अन्ध्र देशमें और सात राजा कोशल देशमें राज्य करेंगे । उन्हींमेंसे कुछ वैदूर-नरेश और कुछ नैषध-नरेश होंगे । महाराज ! ये सब नरेश एकही समयमें पृथ्वीके भिन्न २ प्रदेशोंका राज्य करेंगे । उसी समय मगध देशमें विश्वस्फूर्जि नाम राजा पूर्वोक्त पुरंजय राजाके समान प्रतापी और प्रसिद्ध होगा । वह नीच,–पुलिंद, यदु और मद्रदेशके ब्राह्मणादि उच्च वर्णोंको आचारभ्रष्ट करके म्लेच्छतुल्य कर डालेगा । महाबली दुर्मति विश्वस्फूर्जि राजा क्षत्रियोंको निकाल कर पद्मा-वती पुरीमें अधिकांश शूद्र प्रजा बसावेगा–ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य उसके राज्यमें बहुत कम रहने पावेंगे । वह हरिद्वारसे प्रयाग तक अपने बाहुबलसे पालित पृथ्वीका भोग करेगा । उस समयसे सुराष्ट्र, अवन्ती, आभीर, शूर, अर्बुद और मालव आदि देशोंके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यज्ञोपवीत संस्कारसे रहित हो कर शूद्रतुल्य हो जायँगे । वेदाचारविहीन शूद्र व्रात्य (यज्ञोपवीत संस्कारसे रहित और गायत्रीके अधिकारसे पतित द्विजवर्ण) और म्लेच्छ लोग सिन्धुतट, चन्द्रभागा नगरी, कौन्ती नगरी और काश्मीरदेश आदि पवित्र स्थानोंमें राज्य करेंगे । राजन् ! पूर्वोक्त ये म्लेच्छतुल्य सब राजा लोग एकही समयमें राज्यशासन करेंगे । ये सब अधर्मी, झूठ बोलनेवाले, थोड़ा देनेवाले, बहुत क्रोध करनेवाले, पराई स्त्री और पराये धनके हरनेमें तनिक भी संकोच न करनेवाले होंगे । इधर इनका उदय होगा और उधर ये अस्त हो जायँगे । ये स्त्री, बालक, गऊ और ब्राह्मणोंका वध कर डालेंगे–ऐसा करनेमें इनको कुछ भी शंका न होगी । इनमें बल थोड़ा होगा और इनकी आयु भी थोड़ी ही होगी । ये राजाका वेष धारण करनेवाले म्लेच्छ अत्यन्त कामी और अत्यन्त क्रोधी होंगे । गर्भाधान आदि संस्कारोंसे रहित और ईश्वरभजनादि नित्य क्रियाओंको न करनेवाले ये राजा लोग अपनी प्रजाको लूट खायँगे और सब प्रकार सतावेंगे ॥ २९–४३ ॥

तन्नाथास्ते जनपदास्तच्छीलाचारवादिनः ॥
अन्योन्यतो राजभिश्च क्षयं यास्यन्ति पीडिताः ॥ ४४॥

इनके वशवर्ती प्रजागण भी चरित्र और स्वभावमें इन्हीके तुल्य होकर पीड़ित होते २ क्रमशः क्षीण होकर नष्ट हो जायँगे ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय।

कलिधर्मनिरूपण।

श्रीशुक उवाच—ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया ॥
कालेन बलिना राजन्नंक्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतिः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! तदनन्तर प्रबल कालके प्रभावसे प्रतिदिन धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, बल और आयु आदि क्षीण होते जायँगे ॥ १ ॥ कलियुगमें धन होनेसेही मनुष्य कुलीन, आचारवान् और गुणी कहावेंगे एवं प्रबल मनुष्य जो कहे या करेगा वही न्याय और धर्म माना जायगा, अर्थात् बलही धर्म व न्यायकी व्यवस्थाका मूलकारण होगा ॥ २ ॥ बिवाहसम्बन्धमें रुचि ही मुख्य होगी—कुल और गोत्रका विचार नहीं किया जायगा। क्रय-विक्रय आदि व्यवहारोंमें ठगी रह जायगी। स्त्री और पुरुषकी श्रेष्ठता रतिकौशलसेही समझी जायगी। केवल जनेऊ ब्राह्मणत्वका चिन्ह रह जायगा ॥ ३ ॥ दिखावेके लिये दण्ड, कमण्डलु, मृगचर्म धारण करनेवाले ब्रह्मचारी, संन्यासी होंगे; वे ब्रह्मचारियों और संन्यासियोंके आचार कुछ भी न करेंगे। उनके अयथार्थ आचरणोंको न देख कर वेषको सब पूजेंगे। जो कोई न्यायालयमें कर्मचारियोंको धन न दे सकेगा उसीकी हार होगी। जो ढिठाईके साथ बहुत बोल सकेगा वही पण्डित कहावेगा ॥ ४ ॥ जो दरिद्र (गरीब) होगा वही असाधु (बदमाश) समझा जायगा और जो पाखण्डी होगा वही साधु समझा जायगा। केवल स्वीकारही बिवाह समझा जायगा। स्नानही अलंकार होगा ॥ ५ ॥ दूरका जलाशय तीर्थ कहावेगा। बाल रखाना सुन्दरताका साधन (सामान) समझा जायगा। अपना पेट भर लेनाही बड़ा भारी पुरुषार्थ समझा जायगा। जो ढिठाईसे बात कहेगा उसीकी बात सत्य समझी जायगी ॥ ६ ॥ अपने कुटुम्बका भरण पोषण कर सकनाही चतुरता समझी जायगी। यदि कोई कुछ धर्म-कार्य करेगा तो यश और प्रशंसाकी आशासे। इसी प्रकारके दूषित लोगोंसे पृथ्वीमण्डल परिपूर्ण होजायगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें जो प्रबल होगा वही राजा बन

बैठेगा। लोभी, निर्दय और ठग लुटेरोंके तुल्य राजालोग प्रजाके धन और स्त्रियोंको छीनेंगे तब प्रजागण पर्वतोंपर और वनोंमें जाकर बसेंगे। प्रजागण साग, मूल, फल, मांस, मधु, पुष्प, गुठली आदि खाकर जीवन धारण करेंगे। बारम्बार अनावृष्टि होनेके कारण अनेक अकाल पड़ेंगे, राजा लोग अपना कर लेनेमें बड़ी कठोरता दिखावेंगे। इन आपत्तियोंसे बहुतसे लोग मरेंगे। इसके सिवा शीत, वात, घाम, वर्षा और पालेसे, परस्परके झगड़ेसे, भूख-प्यास और अनेकानेक रोगोंसे एवं चिन्तासे अत्यन्त पीड़ित होकर बहुतसे लोग मरेंगे। कलियुगमें मनुष्य अधिकसे अधिक बीस या तीस वर्ष जियेंगे ॥ ७-११ ॥ जब कलियुगके दोषसे सब देहधारियोंके शरीर क्षीण होजायँगे, सब वर्ण और आश्रमोंके धर्म नष्ट होजायँगे, वेदविहित मार्ग मिट जायगा ॥ १२ ॥ धर्मके नामसे पाखण्डका अधिक प्रचार होगा, राजालोग लुटेरोंके समान हो जायँगे, लोग चोरी और व्यर्थ हत्या करेंगे, झूठ बोलेंगे, सब वर्ण शूद्रतुल्य होजायँगे, गौवें बकरियोंके समान होजायँगी, चारो आश्रम गृहस्थ हो जायँगे, अर्थात् गृहस्थोंके समान स्त्रीसंग आदि करेंगे, साले ससुर आदि बन्धु समझे जायँगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ औषधियाँ अपने गुणोंसे हीन होजायँगी, शमीवृक्षके समान वृक्ष छोटे होजायँगे, बिजलीके समान मेघ इधर देख पड़ेंगे उधर लुप्त होजायँगे, सब घर धर्मसे और मनुष्योंसे शून्य होजायँगे और लोग गधेके समान भार ढोनेवाले, रतिरत देख पड़ेंगे तब कलियुगके अन्तमें धर्मकी रक्षा करनेके लिये सत्वमय भगवान्का अंशावतार होगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ साधुओंको कर्मबन्धनसे मुक्त करनेके लिये और सनातन धर्मके उद्धारके लिये, सम्भलग्राममें रहनेवाले श्रेष्ठ महात्मा विष्णुयशा ब्राह्मणके घरमें चराचर जगत्के गुरु, सर्वव्यापक ईश्वर कल्कि नाम भगवान्का जन्म होगा ॥ १७ ॥ १८ ॥ अणिमा आदि आठो ऐश्वर्य और सत्य आदि गुणोंसे युक्त, दुष्टोंको दण्ड देनेवाले, अतुलप्रभासम्पन्न, विश्वपति कल्कि भगवान् स्वयं आकर उपस्थित शीघ्रगामी घोड़े पर चढ़ कर पृथ्वीमण्डलमें घूमेंगे और सुतीक्ष्ण तर्वारके प्रहार द्वारा राजोंके वेषसे प्रजाको लूटनेवाले करोड़ों दुष्टोंका संहार करेंगे। हे राजेन्द्र! इस प्रकार दस्युदलका संहार हो जाने पर वासुदेवके अंगमें लगेहुए चन्दनके सुगन्धसे युक्त वायुके स्पर्शसे पुरवासी और जनपदवासी लोगोंके मन पवित्र होजायँगे। सत्वमूर्त्ति भगवान् वासुदेव जब हृदयमें स्थित होंगे तब उन लोगोंके वंशकी वृद्धि होगी। धर्मपालक भगवान् कल्किनाम हरिके प्रकट होतेही सत्ययुगका आविर्भाव होगा और प्रजागणके सात्विकस्वभावसम्पन्न सन्तान उत्पन्न होंगे। महाराज! जब ऐसा योग आकर पड़ेगा कि चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति पुष्य-नक्षत्रयुक्त कर्कराशिमें एकसाथ आजायँगे तब सत्ययुगका आरम्भ होगा। हे राजन्! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार चन्द्रवंश और सूर्यवंशके

भूत, भविष्य और वर्त्तमान राजोंका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक मैंने तुमको सुन दिया। महाराज! तुम्हारे जन्मसे लेकर नन्द राजाके अभिषेक तकके समयका परिमाण एक हजार एक सौ पन्द्रह वर्ष है ॥ १९–२६ ॥ आकाशमण्डलके बीच उदयकालमें सप्तर्षियोंके मण्डलमें * जो पुलह और क्रतु नाम दो ऋषि प्रथम प्रकट होते देख पड़ते हैं उन दोनो ऋषियोंके मध्यमें रात्रिके समय दक्षिण ओरसे समदेशमें अवस्थित जो अश्विनी आदि नक्षत्रोंमेंसे एक नक्षत्र देखते हो उस नक्षत्रमें मनुष्योंकी वर्षगणनाके अनुसार सौ वर्ष तक सप्तर्षि गण रहते हैं। वे सप्तर्षि अब तुम्हारे समयमें मघा नक्षत्रमें अवस्थित हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ भगवान् कृष्णचन्द्र शुद्धसत्त्वात्मक शरीरसे जिस समय परम धामको गये उसी समयसे कलियुगने—जिसमें मनुष्य पापमें प्रवृत्त होते हैं—इस पृथ्वी पर पूर्णरीतिसे अपना अधिकार कर लिया ॥ २९ ॥ राजन्! यद्यपि कलियुगका प्रारम्भ पहलेहीसे होगया था तथापि जब तक लक्ष्मीपति कृष्णचन्द्रके पवित्र चरण इस पृथ्वी पर रहे तब तक कलियुग अपने पराक्रमको नहीं प्रकट कर सका ॥ ३० ॥ राजन्! जिस समय सप्तऋषि मघा नक्षत्रमें आये उस समय युगसन्धिके अतिरिक्त कलियुगके बारह सौ वर्ष बीत चुके थे ॥ ३१ ॥ जब सप्तऋषि मघासे पूर्वाषाढ़ नक्षत्रमें जायँगे उस समय नन्दराजाका राज्य होगा, उसी समयसे कलियुगका विक्रम बढ़ेगा ॥ ३२ ॥ प्राचीन विद्वानोंका कथन है कि जिस दिन कृष्ण भगवान् परम धामको गये उसी दिन पृथ्वी पर कलियुगका आगमन हुआ ॥ ३३ ॥ दिव्य सहस्र वर्ष तक पृथ्वी पर चौथा युग कलियुग रहेगा, उसके बाद फिर सत्ययुगका आरम्भ होगा। सत्ययुगके आने पर मनुष्योंके मन और आत्मा निर्मल एवं प्रसन्न होंगे ॥ ३४ ॥ वर्त्तमान युगकी, क्षत्रिय मानववंशकी जैसी अवस्था या स्थिति कही गई और व्याख्या की गई उसीके अनुसार या वैसीही हरएक युगमें पृथ्वी पर रहनेवाले ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रोंके वंशोंकी भी स्थिति जानना ॥ ३५ ॥ पूर्वोक्त महापुरुषोंका न अब राज्य है और न पुत्र—पौत्रादिक हैं। उनकी कीर्त्ति

---

* आकाशमण्डलके उत्तरभागमें ध्रुवनक्षत्रके निकटवर्त्ती स्थानमें पूर्वाग्र शकटाकार जो सात प्रधान नक्षत्र एकत्र देख पड़ते हैं वेही सप्तर्षि हैं। उस सप्तर्षिमण्डलमें कुछ ऊँची रेखाके अग्रभागमें जो नक्षत्र है वह मरीचि ऋषि हैं। उनके बाद झुके हुए कंधेके आकारके जो दो (एक छोटा और एक बड़ा) नक्षत्र हैं उनमें बड़ा नक्षत्र वशिष्ठ ऋषि हैं और छोटा नक्षत्र उनकी स्त्री अरुन्धती हैं। उनके बाद कुछ ऊँची रेखाके मूलमें अवस्थित नक्षत्र अङ्गिरा ऋषि हैं। उनके ईशान कोणमें अवस्थित जो चौकोर चार तारा देख पड़ते हैं वह अत्रि ऋषि हैं। उनके दक्षिण ओर पुलस्त्य ऋषि हैं, पुलस्त्यके पश्चिम ओर पुलह ऋषि और उनके उत्तर ओर क्रतु ऋषि हैं।

केवल पृथ्वी पर बनी हुई है । उनका शरीर नष्ट होगया, परन्तु नाम अमर है । वे नहीं रहे, परन्तु उनकी कथाएँ अबभी कही सुनी जाती हैं ॥ ३६ ॥ राजन्! शान्तनु राजाके भाई चन्द्रवंशी देवापि और इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न सूर्यवंशी राजा मरु–ये दोनो योगबलसे जीवित हैं। उक्त दोनो महायोगी कलापग्राममें योगाभ्यास करते हैं ॥ ३७ ॥ राजन्! ये दोनो राजा हरिकी शिक्षाके अनुसार कलियुगके अन्तमें आकर पहलेकी भाँति फिर चारो वर्ण और आश्रमोंके लुप्त होगये धर्मका प्रचार करेंगे एवं विनष्ट चन्द्रवंश और सूर्यवंशको स्थापित करेंगे ॥ ३८ ॥ राजन्! इसी क्रमसे पृथ्वी पर सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग–ये चारो युग आते जाते रहते हैं और प्रत्येक युगमें युग–धर्मके अनुसार प्राणियोंके कर्म होते हैं ॥ ३९ ॥ राजन्! जिन क्षत्रिय राजों एवं अन्यान्य वर्णके राजोंका मैंने तुम्हारे आगे वर्णन किया ये सब जीवन भर इस पृथ्वीको अपनी समझते रहे, परन्तु अन्तमें इसको छोड़ कर यमपुरको चले गये और यह इनमेंसे किसीकी भी नहीं हुई ॥ ४० ॥ जो शरीर राजा कहलाता है उसकी भी अन्तमें तीनही गतियाँ होंगी–कृमि, विष्ठा या भस्म । इस देहके सुखके अर्थ जो प्राणियोंसे द्रोह करता है वह वास्तवमें स्वार्थको नहीं जानता; क्योंकि प्राणियोंसे द्रोह करनेसे नरकमें जाना होता है ॥ ४१ ॥ पृथ्वीको अपनी पैतृक सम्पत्ति समझनेवाले अज्ञ राजा लोग यों सोचते हैं कि "हमारे पूर्वजोंने इस अखण्ड पृथ्वीका भोग किया है और इस समय हम भी इसका भोग कर रहे हैं एवं ऐसा कुछ उपाय करना चाहिये कि आगे भी यह हमारी पृथ्वी हमारे पुत्र, पौत्र और वंशजोंकी ही बनी रहे" ॥ ४२ ॥ राजन्! इस प्रकार अन्नजलमय शरीरको आत्मा और किसीकी भी न होनेवाली पृथ्वीको अपनी सम्पत्ति समझनेवाले ममत्वमूढ़ अज्ञानी जन शरीर और पृथ्वीको यहीं छोड़कर अदृश्य होगये हैं ॥ ४३ ॥

ये ये भूपतयो राजन्भुञ्जते भुवमोजसा ॥
कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च ॥ ४४ ॥

महाराज! जिन २ नरपतियोंने पराक्रमपूर्वक औरोंसे छीन कर पृथ्वीका भोग किया वे सब काल बलीके गालमें चले गये । अब कथाओंमें केवल उनके उपाख्यान सुने जाते हैं ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय ।

राज्यदोष, युगधर्म्म और कलियुगके दोषोंसे बचनेके उपायोंका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच—दृष्ट्वात्मनि जये व्यग्रान्नृपान्हसति भूरियम् ॥
अहो मां विजिगीषन्ति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे राजन्! यह पृथ्वी, राजोंको अपने जीतनेके लिये उद्योग करते देख कर हँसती है कि "अहो! ये मृत्युके खिलौने नरपतिगण मुझको जीतनेकी अभिलाषा करते हैं! ॥ १ ॥ ये विद्वान् हो कर भी जलफेन-तुल्य अस्थिर शरीरको समझते हैं कि सदा बना रहेगा । इनकी यह कामना व्यर्थ है ॥ २ ॥ ये अपने मनमें सोचते हैं कि 'हम प्रथम काम, क्रोध आदि छः शत्रुओंको जीत कर राजमन्त्रियोंको अपने वशमें कर लेंगे । फिर अमात्य, पुर-वासी और गज आदि अंगोंसे युक्त सेनाको अपने अधीन करके शत्रुओंको जीतेंगे । इस प्रकार क्रमशः स-सागरा पृथ्वीके अधीश्वर हो जायँगे;' परन्तु अपने शिर पर उपस्थित कालको नहीं देखते! ॥ ३ ॥ ४ ॥ कोई २ विक्रमी राजा सागर-पर्य्यन्त मुझको जीत कर भी सागरमें प्रवेश कर जाते हैं, अर्थात् नष्ट हो जाते हैं। किन्तु इन्द्रियदमनका यह फल कुछ भी नहीं है; इन्द्रियदमनका मुख्य और यथार्थ फल मोक्ष ही है ॥ ५ ॥ (हे कुरुश्रेष्ठ! पृथ्वी कहती है कि–) महात्मा मनु महाराज और उनके पुत्रगण मुझको छोड़ कर जैसे आये थे वैसे ही चले गये, सो ये मूढ़ नृपतिगण युद्ध करके मुझको जीतना चाहते हैं! ॥ ६ ॥ राज्यकी लालसासे मेरे लिये असत्प्रकृतिके पिता और पुत्र एवं भाई भाई परस्पर लड़ते झगड़ते हैं ॥ ७ ॥ मेरे ही लिये परस्पर लागडाँटके साथ, 'अरे मूढ! यह सब पृथ्वी मेरी ही है, तेरी कहाँसे आई'—यों कह कर मूढ़ मनुष्य मारते और मर जाते हैं ॥ ८ ॥ सर्वज्ञ, वीर और दिग्विजयी पृथु, पुरूरवा, गाधि, नहुष, भरत, सहस्रबाहु, अर्जुन, मांधाता, सगर, राम, खट्वाङ्ग, धुन्धुहा, रघु, तृणबिन्दु, ययाति, शर्याति, शन्तनु, गय, भगीरथ, कुवलयाश्व, ककुत्स्थ, नल आदि राजालोग एवं हिरण्यकशिपु, वृत्र, लोकरावण रावण, नमुचि, शम्बर, भौम, हिरण्याक्ष और तारक आदि दुर्मद दानवगण तथा और २ बहुतसे क्षत्रिय एवं दानवगण जो मेरे स्वामी हो गये हैं वे सब मुझको अपनी ही समझते रहे, परन्तु परमप्रबल कालके आगे उनमेंसे किसीकी नहीं चली । कालने सबके मनोरथ विफल कर दिये । सब मर गये, अब केवल उनकी कथाएँ रह गई हैं । जब वे कालसे हार गये और उनकी कामना नहीं पूर्ण हुई तब ये तुच्छ किस गिनतीमें हैं" ॥ ९–१३ ॥ श्रीशुक-देवजी कहते हें । हे राजन्! मैंने तीनो लोकमें अपने सुयशको फैलानेवाले–

इसी कारण मरने पर भी अमर हो रहे महत् व्यक्तियोंकी कथाएँ आपके आगे कहीं। इन कथाओंके पढ़ने सुननेसे जान पड़ता है कि सम्पूर्ण विषय असार हैं और इस ज्ञानके होने पर वैराग्य उत्पन्न होता है, किन्तु परमार्थकी प्राप्ति नहीं होती ॥ १४ ॥ कृष्णचन्द्रकी विशुद्ध (निष्काम) भक्ति ही यथार्थ परमार्थ है । यदि भक्तिरूप परमार्थ पानेकी लालसा हो तो चाहिये कि एकाग्र हो कर, शुद्ध चित्तसे हरिके अमङ्गलहारी पवित्र चरित्रोंको वारम्वार कहे एवं नित्य निरन्तर सज्जनोंके निकट बैठ कर सुने ॥ १५ ॥ राजाने कहा । भगवन्! हे मुनिवर! कलियुगके निरन्तर बढ़नेवाले दोषसमूह तो भक्तिके मार्गमें विघ्नस्वरूप हैं, अतएव आप कृपा करके ऐसा कोई उपाय बताइये जिससे साधक जन अपने मार्गसे कलियुगके दोषोंको हटा सकें ॥ १६ ॥ इसके अतिरिक्त युग, युगधर्म, प्रलय और कल्प तथा ईश्वरके रूप कालका परिमाण एवं महात्मा विष्णु(कृष्ण)की गति अर्थात् परमधामगमन भी कृपा करके मुझको सुनाइये ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन्! सत्ययुगमें उस समयके लोग सत्य, दया, तप और निरपेक्ष भावसे अभय दान—अर्थात् किसीको न सताना—इन चारो चरणोंसे पूर्ण धर्मका पालन करते हैं ॥ १८ ॥ सत्ययुगके लोग सन्तोषी, दयावान्, सबसे मित्रता रखनेवाले, शान्तशील, जितेन्द्रिय, सहनशील अर्थात् क्षमासम्पन्न, आत्माराम, समदर्शी और प्रायः योगाभ्यास करनेवाले होते हैं ॥ १९ ॥ त्रेतायुगमें धीरे २ धर्मका चौथाई भाग क्षीण हो जाता है। अर्थात् झूठ, हिंसा, असन्तोष और कलह—इन अधर्मके चरणोंकी वृद्धिसे क्रमशः धर्मके सत्य, दया, तप और अभयदान—ये चारो चरण चौथाई घट जाते हैं ॥२०॥ उस समयके लोगोंकी रुचि कर्मकाण्ड और जप, तपमें अधिक होती है । हिंसा और लम्पटताकी प्रवृत्ति लोगोंमें अधिक नहीं होती। धर्म्म-अर्थ-काम-निरत, वेदपाठी ब्राह्मणोंकी संख्या अधिक होती है॥ २१ ॥ हे राजन्! द्वापरमें पूर्वोक्त झूठ, हिंसा, असन्तोष और कलह—इन अधर्मके चरणोंकी वृद्धिसे धर्मके सत्य, दया, तप और अभयदान—इन चारो चरणोंका आधा भाग घट जाता है ॥२२॥ द्वापरके लोग यशस्वी, सुशील (उदार), स्वाध्यायनिरत, धनाढ्य, कुटुम्बी और प्रसन्न होते हैं एवं ब्राह्मण व क्षत्रियोंकी संख्या अधिक होती है ॥२३॥ कलियुगमें धर्मके चरणोंका चतुर्थांश शेष रहता है और प्रतिदिन बढ़ रहे अधर्मके चरणोंसे धीरे २ क्षीण होते २ अन्तको वह भी नष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥ कलियुगमें शूद्र और कैवर्त्त आदि अधम अन्त्यजोंकी ही संख्या अधिक होती है एवं कलियुगके लोग अत्यन्त लोभी, कुकर्मी, दयाशून्य, व्यर्थ झगड़नेवाले, अभागे और अत्यन्त तृष्णासे पूर्ण होंगे ॥ २५ ॥ राजन्! पुरुषमें सत्त्व, रजः और तम, ये गुण देखे जाते हैं। ये ही गुण कालकी प्रेरणासे आत्मामें प्रवर्तित होते हैं ॥ २६ ॥ जब मन, बुद्धि और इन्द्रियोंकी सत्त्वगुणमें अधिकताके साथ प्रवृत्ति होती है वही सत्ययुगका समय है। उस समय इसीसे लोगोंकी रुचि ज्ञान और तपमें होती है

॥ २७ ॥ और जब मन आदिकी प्रवृत्ति रजोगुणमें अधिक होती है वही त्रेतायुगका समय है । उस समय लोगोंकी रुचि सकाम कर्मोंमें होती है ॥ २८ ॥ ऐसे ही जब मन आदिकी प्रवृत्ति रजोगुणमिश्रित तमोगुणमें अधिक होती है वही द्वापर-युगका समय है । उस समय लोगोंमें लोभ, असन्तोष, अभिमान, दंभ, मत्सरका प्रचार और सकाम कर्मोंकी रुचि होती है ॥ २९ ॥ जब मन आदिकी प्रवृत्ति केवल तमोगुणमें अधिक होती है वही कलियुगका समय है । उस समय लोगोंमें छल, झूठ, आलस्य, निद्रा, हिंसा, दुःख, शोक, मोह, भय और दीनताकी वृद्धि और अधर्मकी रुचि होती है ॥ ३० ॥ कलियुगके प्रभावसे मनुष्य दूरदर्शी नहीं होंगे, अभागी और धनहीन होंगे, बहुत भोजन करेंगे, कामी होंगे, स्त्रियाँ असती (कुलटा) होंगी ॥ ३१ ॥ नगर लुटेरे और ठगोंसे परिपूर्ण होंगे, वेद पाखण्डसे दूषित हो जायँगे, राजा लोग अपनी प्रजाको पालनेके बदले लूट खायँगे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य खाने और मैथुन करनेमें तत्पर होंगे–अपने सनातन आचरणोंको छोड़ देंगे ॥ ३२ ॥ ब्रह्मचारी लोग शौचसे शून्य हो कर ब्रह्मचर्य्यके नियमोंका पालन न करेंगे । गृहस्थ कुटुम्बी लोग आप ही भिक्षा माँगेंगे । तपस्वी अर्थात् वानप्रस्थ वनमें न रह कर ग्राम और नगरोंमें रहेंगे । संन्यासी लोग धन जमा करेंगे ॥ ३३ ॥ स्त्रियोंके शरीर छोटे हो जायँगे । वे बहुत भोजन करेंगी । उनके बहुत सन्तान होंगे । वे सदैव अपने घरवाले पति आदिसे कटुवचन बोलेंगी; चोरी, छल आदिसे परिपूर्ण और लज्जासे शून्य होंगी और बड़े २ साहसके काम करेंगी ॥ ३४ ॥ वणिक्वृन्द नीच विचारवाले हो कर क्रय-विक्रयमें लोगोंको ठगेंगे । उच्च कुलके लोग बिना विपत्तिके भी भले लोगोंके न करने योग्य निन्दित जीविकाको उत्तम समझ कर करेंगे ॥ ३५ ॥ सब प्रकार उत्तम स्वामी, यदि धनहीन होगा तो सेवक उसे छोड देंगे और विपत्तिमें पड़े हुए पुराने और विश्वस्त सेवकको स्वामी लोग छोड़ देंगे । जो गऊ बूढ़ी हो जायगी और दूध न दे सकेगी उसको लोग छोड़ देंगे ॥ ३६ ॥ कलियुगमें लोग स्त्रीजित एवं स्त्रीकी सेवा करनेवाले होंगे । वे सुरतिसम्बन्धी सुहृद्भावको मुख्य समझेंगे, अतएव अपने पिता, भाई, सुहृद्गण और सजातीय इष्ट मित्रोंको छोड़ कर हर एक काममें साली और सालोंकी स्त्रियोंसे सलाह लेंगे ॥ ३७ ॥ तापसवेषधारी शूद्र उच्च जातियोंसे अपनी पूजा और सेवा करावेंगे एवं धर्मको कुछ भी न जाननेवाले लोग उत्तम आसन पर बैठ कर धर्मका उपदेश करेंगे ॥ ३८ ॥ राजन्! कलियुगमें अन्न न मिलनेके कारण लोगोंके चित्त सर्वदा चिन्तित रहेंगे। नित्य अकाल रहनेसे लोगोंको घोर अन्नकष्ट रहेगा । सब अनावृष्टिके भयसे व्याकुल रहेंगे । उस पर 'कर' देना ही पड़ेगा जिससे उनकी और भी दुर्दशा होगी । लोगोंको खाने पीनेको नहीं जुरेगा । इस प्रकार अन्न, वस्त्र, शय्या, स्नान, भूषण आदिसे रहित

प्रजागण पिशाच ऐसे भयानक देख पड़ेंगे–उनके शरीरोंमें केवल हड्डियाँ रह जायँगी ॥ ३९ ॥ ४० ॥ लोग दमड़ीकी कौड़ियोंके लिये मित्रता छोड़ कर झगड़ा करेंगे, यहाँ तक कि स्वजनोंको भी मार डालेंगे और कभी २ अपने परमप्रिय प्राण खो देंगे। मनुष्य ऐसी नीच प्रवृत्तिके हो जायँगे कि केवल अपना पेट पालने और स्त्री भोग करनेमें तत्पर रहेंगे एवं अपने अशक्त बूढ़े माता, पिता और पुत्र तथा कुलीनकी कन्या जो अपनी धर्मपत्नी होगी उसका भी भरणपोषण नहीं करेंगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥राजन्! कलियुगमें बहुत से मनुष्योंके मन पाखण्ड-विश्वाससे ऐसे दूषित और भ्रष्ट हो जायँगे कि वे, जिनके चरणकमलोंमें तीनो लोकोंके ईश्वर ब्रह्मादिक शिर झुकाते हैं उन सम्पूर्ण जगत्के परमगुरु भगवान् अच्युतकी पूजासे विमुख हो जायँगे!!! ॥ ४३ ॥ राजन्! मरतेसमय, आर्त्त अवस्थामें, रोगमें, गिरते-पड़ते आदि सब प्रकारके संकटोंकी दशामें विवश होने पर अचानक जिनका नाम मुखसे निकलनेमें उसी समय कर्मबन्धनसे मुक्त हो कर प्राणी उत्तम गतिको पाता है–कलिकालमें उन्ही ईश्वरकी पूजा बहुतसे लोग न करेंगे!!! ॥४४॥ हे राजन्! जिस समय पुरुषोत्तम भगवान् मनुष्यके चित्तमें विराजते हैं-प्रकट होते हैं–उसी समय उनके प्रतापसे सब कलिकलुष और द्रव्य, देश तथा आत्माके दोष दूर हो जाते हैं॥४५॥ हृदयकमलमें स्थित भगवान्का श्रवण, कीर्त्तन, चिन्तन पूजन वा आदर करनेसे एक जन्मकी कौन कहे, दश हजार जन्मके पातक तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं ॥ ४६ ॥ जैसे अग्नि सुवर्णके अन्य-धातुजनित मैलको मिटा कर उसे शुद्ध बना देता है वैसे ही चित्तमें प्रकट होते ही विष्णु भगवान् योगियोंकी अशुभ वासनाओंको मिटा देते हैं ॥ ४७ ॥ अनन्त भगवान्के ध्यानसे अन्तःकरण जैसा शुद्ध हो जाता है वैसा देवतोंकी उपासना, तप, प्राणायाम, मैत्री, तीर्थयात्रा, व्रत, दान और जप आदिसे नहीं होता ॥ ४८ ॥ अतएव हे राजन्! इस समय तुम तन, मन, वचनसे एकाग्र हो कर हृदयमें उन्ही केशवका ध्यान करो। जिसका अन्तसमय निकट आगया हो वह इस प्रकार एकाग्र हो कर हरिमें मन लगानेसे परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ मरनेके लिये प्रस्तुत लोग यदि इस प्रकार सर्वात्मा, सर्वाश्रय, भगवान् परमेश्वरका ध्यान करते हैं तो वह उनको सारूप्य मुक्ति देते हैं ॥ ५० ॥ राजन्! इस कलियुगमें सब दोषही दोष हैं, तथापि यह एक बड़ा श्रेष्ठ गुण है कि (कलियुगमें) केवल 'कृष्ण'के कीर्त्तनसे ही, मनुष्य,–कर्मबन्धनसे मुक्त होकर परमात्मामें लीन होजाता है ॥ ५१ ॥

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ॥
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥ ५२ ॥

राजन्! सत्ययुगमें निरन्तर विष्णुका ध्यान करनेसे, त्रेतामें यज्ञ द्वारा यजन करनेसे और द्वापरमें उपासना करनेसे जो गति (मुक्ति) प्राप्त होती है वही कलियुगमें केवल नामकीर्तनसे मिलती है—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ५२ ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय।

परमार्थनिर्णय।

श्रीशुक उवाच—कालस्ते परमाण्वादिर्द्विपरार्धावधिर्नृप ॥
कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार परमाणुसे लेकर द्विपरार्द्धपर्यन्त कालका परिमाण और युगोंका परिमाण भी * (तृतीयस्कन्धमें) हम कह चुके हैं। अब कल्प और प्रलयका वर्णन करते हैं—सो सुनो ॥ १ ॥ एक सहस्र सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग बीतने पर ब्रह्माका एक दिन पूर्ण होता है। उसी ब्रह्माके एक दिनको कल्प कहते हैं। एक कल्पमें चौदह मनु क्रमशः शासन करते हैं ॥ २ ॥ कल्पके उपरान्त उतनीही बड़ी ब्रह्माकी रात्रि होती है, जिसमें तीनो लोकोंका लय अर्थात् संहार होता है। यह नैमित्तिक प्रलय कहाता है। इस प्रलयमें भगवान् नारायण तीनो लोकोंको अपनी स्वयम्भू सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा नाम मूर्तिमें लीन करके शेषशय्या पर शयन करते हैं ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ इसी प्रकार जब परमेष्ठी ब्रह्माकी आयुके दोनो परार्ध अर्थात् सौ वर्ष बीत जाते हैं तब महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्चतत्त्व—ये सातो प्रकृतियाँ लयको प्राप्त होती हैं, अर्थात् कालके द्वारा विनाशका कारण उपस्थित होने पर महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्चतत्त्वके कार्यरूप इस ब्रह्माण्डबलयका प्रलय होता है। यही प्राकृतिक प्रलय है ॥ ५ ॥ ६ ॥ जब प्राकृतिक प्रलय होनेवाला होता है तब पृथ्वी पर सौ वर्ष तक मेघ जलकी वर्षा नहीं करते। वर्षा न होनेसे अन्न भी नहीं उत्पन्न होता। उस समय सामयिक उपद्रवसे पीड़ित मनुष्य, भूखसे व्याकुल होकर राक्षसोंके समान एक एकको खाजाते हैं। इस प्रकार धीरे २ सब पृथ्वीवासियोंका क्षय हो जाता है। प्रलयकालका सूर्य अपनी घोर किरणोंसे समुद्रके, (प्राणियोंके) शरीरके और पृथ्वीके रस (जलके अंश)को सोख लेता है एवं समय पर

---

* सत्ययुगका परिमाण १७२८००० वर्ष, त्रेतायुगका परिमाण १२९६००० वर्ष, द्वापरयुगका परिमाण ८६४००० वर्ष और कलियुगका परिमाण ४३२००० वर्ष हैं।

(वर्षाकालमें) छोड़ता नहीं है। इसके उपरान्त संकर्षण देवके मुखसे निकल कर प्रलयकालका अग्नि, वायुके बेगसे बढ़ता हुआ प्राणियोंसे शून्य पृथ्वीके पाताल आदि विवरोंको भस्म कर देता है ॥ ७–९ ॥ उस समय यह ब्रह्माण्ड ऊपर सूर्यकी किरणोंसे और नीचे अग्निकी ज्वालाओंसे जलता हुआ, जल रहे गोबरके पिण्डके समान देख पड़ता है ॥ १० ॥ फिर कुछ अधिक सौ वर्ष तक प्रलयकालकी घोर आँधी चलती है, जिससे आकाशमें धूल छा जाती है ॥११॥ राजन् ! फिर विविध वर्णके प्रलयकालीन मेघसमूह घोर शब्द करते हुए, सौ वर्ष तक हाथीकी सूँड़के समान स्थूल धाराओंसे बराबर जलकी वर्षा करते रहते हैं। तब पाताल आदि विवरोंके अन्तर्गत सम्पूर्ण विश्व–ब्रह्माण्ड, बढ़ रहे प्रलयकालके महासागरमें मग्न हो जाता है, अर्थात् सर्वत्र केवल जल देख पड़ता है। तब पृथ्वीका गंध गुण जलमें लीन होजाता है और पृथ्वी भी गंधरहित होकर जलमें मिल जाती है। फिर जलका रस गुण तेजमें लीन होजाता है और जल भी रसरहित होकर तेजमें मिल जाता है। फिर तेजका रूप गुण वायुमें लीन हो जाता है और तेज भी रूपरहित होकर वायुमें मिल जाता है। फिर वायुका स्पर्श गुण आकाशमें लीन होजाता है और स्पर्शरहित वायु भी आकाशमें मिल जाता है। फिर आकाशका शब्द गुण तामस अहंकारमें लीन होता है और अपने गुणके साथ ही आकाश भी उसीमें लीन होजाता है। इसी प्रकार हे कुरुश्रेष्ठ ! तैजस अहंकारमें दशो इन्द्रियाँ एवं वैकारिक अहंकारमें वृत्तिसमूहसहित इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता लयको प्राप्त होते हैं। फिर त्रिविध अहङ्कार महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्व सत्त्व आदि गुणोंमें लयको प्राप्त होता है। राजन् ! फिर कालकी प्रेरणासे प्रकृतिमें उसके सत्त्व आदि तीनो गुण लयको प्राप्त होते हैं। महाराज ! दिन रात्रि आदि कालके अवयवों-द्वारा प्रकृतिके परिणाम आदि भाव–विकार नहीं होते, अतएव उसका लय भी नहीं होता। वह प्रकृति, जिसको प्रधान या माया भी कहते हैं, अनादि और अनन्त है। वह अव्यक्त अर्थात् अस्तित्वके विकारोंसे रहित है, नित्य अर्थात् सर्वदा एकरूप है, अव्यय अर्थात् अपक्षय रहित है–क्योंकि कारण-रूप है। वह वाणी और मन, दोनोसे अतीत है। उसमें लोकरूप रचनाविशेष नहीं है। वह सत्त्व, रज, तम, प्राण, बुद्धि, सम्पूर्ण इन्द्रिय, इन्द्रियोंके देवता, स्वप्न, जागरण, सुषुप्ति, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य आदि सबसे परे और पृथक् है। वह घोर निद्रिततुल्य चेष्टारहित शून्यवत् अतर्क्य है। वही सबका मूल परमपद कह कर प्रसिद्ध है ॥ १२–२१ ॥ राजन् ! यही प्राकृतिक प्रलय है, जिसमें कालकी प्रेरणासे बिवश होकर पुरुष और प्रकृतिकी सब सत्त्व आदि शक्तियाँ उक्त प्रकारसे लयको प्राप्त होती हैं ॥ २२ ॥ [अब आत्यन्तिक प्रलय जिसको मोक्ष भी कहते हैं उसका वर्णन सुनो। आत्यन्तिक प्रलय ब्रह्मके ज्ञानसे होता है, उसमें

सब प्रपञ्च लयको प्राप्त होते हैं] राजन् ! बुद्धि, इन्द्रिय और पदार्थोंका आश्रय-ज्ञान, उनके रूपोंसे होता है। कारणकी अभिन्नतासे आदि-अन्तयुक्त दृश्य विषय, वस्तु अर्थात् सत् नहीं हैं। जैसे दीपक, चक्षु और रूप, तेजसे भिन्न अर्थात् स्वतन्त्र नहीं हैं वैसेही बुद्धि, इंद्रियावकाश और इन्द्रियाँ भी कारणस्वरूप सत्य ब्रह्मसे भिन्न नहीं हैं, क्योंकि वे कारणरूप ब्रह्मका कार्य हैं। (यदि शंका की जाय कि इस प्रकार कार्य कारणमें अभेदभाव माननेमें कार्यके असत् होने पर कारण भी असत् प्रतीत होता है, तो उसका समाधान यह है कि—) वह कारणस्वरूप सत्य ब्रह्म असत्स्वरूप कार्यसे बिल्कुल अलग है। अर्थात् ब्रह्म अपने प्रपञ्चसे अलग है, परन्तु प्रपञ्च उससे अलग नहीं है ॥ २३ ॥ २४ ॥ राजन् ! जागरण, स्वप्न और सुषुप्ति ये अवस्थाएँ वास्तवमें बुद्धिकी हैं–आत्माकी नहीं हैं। अतएव बुद्धिके असत् पदार्थ होनेसे उसकी अवस्थाएँ भी असत् हैं। (यदि कोई कहे कि 'ये अवस्थाएँ तो विश्व, तैजस और प्राज्ञ संज्ञाओंको प्राप्त आत्माकी हैं' तो उसका उत्तर देते हैं कि-) बुद्धिके साक्षीमात्र एक आत्माको विश्व, तैजस और प्राज्ञ मान कर उसमें अनेकत्वका आरोप, केवल मायाकृत मोहमात्र है ॥ २५ ॥ राजन् ! जैसे आकाशमें कभी मेघ होते हैं और कभी नहीं होते वैसे ही ब्रह्ममें यह विश्व है। आकाशके समान इस विश्वकी अवधि ब्रह्म सत् है, और मेघोंके समान उदय और अस्त होनेवाला यह विश्व असत् है। अथवा आदि और अन्तसे युक्त सावयव घट आदि पदार्थोंके समान यह विश्व असत् है और मृत्तिकाके समान अनादि अनन्त ब्रह्म सत् है ॥ २६ ॥ राजन् ! सब सावयव पदार्थोंके अवयव सत् कहे और माने गये हैं, क्यों कि अवयवीके बिना, उससे अलग अवयवोंकी प्रतीति होती है। जैसे वस्त्रके अवयव जो डोरे हैं वे वस्त्रसे अलग प्रतीत होतें हैं, परन्तु वस्त्र उनसे अलग नहीं प्रतीत होता। वैसे ही पटतन्तुन्यायसे अवयवरूप सत् ब्रह्म विश्वके प्रपञ्चसे, कारण हो कर भी, अलग प्रतीत होता है और अवयवीरूप असत् विश्व पटके समान उससे अभिन्न है ॥ २७ ॥ राजन् ! कार्य्य-कारणरूपसे जो कुछ परस्पर सापेक्ष सिद्ध हो वह सब भ्रम है और जिसका कुछ भी आदि अन्त है वह अवस्तु अर्थात् असत् है ॥ २८ ॥ प्रपञ्च, प्रकाशमान होने पर भी, साक्षी आत्माके बिना अणुमात्र भी निरूपणीय नहीं है और यदि आत्माके बिना निरूपित हो तो वह भी चिद्रूप आत्माके सदृश स्वयंप्रकाश होगा–आत्मवत् हो जायगा ॥ २९ ॥ राजन् ! सत्य एक ही होता है, सत्यकी अनेकता मिथ्या है। अज्ञ लोग मोहवश सत्यको जो अनेक समझते हैं सो केवल घटाकाश, गृहाकाशमें या घटके जल और सरोवरके जलमें अथवा आन्तरिक और बाह्यवायुमें क्रमशः एक ही आकाश, सूर्य्य और वायुको अनेक समझनेके समान उपाधिकृत भ्रान्तिमात्र है ॥ ३० ॥ जैसे व्यवहारके अनुसार सुनार भिन्न २ गठन और प्रकारसे सुवर्णके कुंडल, अँगूठी आदि

अनेक आभूषण बनाता है और लोग कुण्डल आदि रूपोंसे सुवर्णके अनेक नाम रख लेते हैं उसी प्रकार अहंभावयुक्त जन, लौकिक और वैदिक वाक्योंसे अधोक्षज भगवान्‌के विषयमें अनेक व्याख्या करते हैं ॥ ३१ ॥ राजन्! जैसे सूर्यसे उत्पन्न और सूर्यहीसे प्रकाशित मेघ, सूर्य्यका आवरण होते हैं और मेघोंकी प्रतिबन्धकतासे सूर्यहीका अंश जो चक्षु इन्द्रिय है वह अपने रूप सूर्य्यको नहीं देख पाती, वैसे ही ब्रह्मके कार्यसे उत्पन्न एवं ब्रह्मके द्वारा प्रकाशित अहंकार ब्रह्मका आवरण है और अहंकारकी प्रतिबन्धकतासे ब्रह्महीका अंश जो जीव है सो अपने रूप ब्रह्मको नहीं देख पाता। राजन्! जैसे सूर्यजनित मेघोंके हटजाने पर, चक्षु, अपने रूप सूर्य्यको देख पाती है वैसे ही जब जीवात्माकी उपाधि अहंकार, जिज्ञासा अर्थात् ब्रह्मज्ञानके अभ्याससे मिट जाता है तब यह जीवात्मा अपने रूप ब्रह्मको देख पाता और जानता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ जब इस प्रकार विवेकरूप अस्त्रकी सहायतासे मायामय अहंकाररूप आत्माके बन्धनको काट कर आत्मज्ञान प्राप्त किया जाता है, वही मोक्ष या आत्यन्तिक प्रलय है ॥ ३४ ॥ हे शत्रुदमन! कुछ सूक्ष्म बुद्धिवाले पण्डितोंका कथन है कि ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्य्यन्त सब प्राणियों की नित्य सृष्टि और नित्य प्रलय होता है। नित्य शारीरिक अवस्थाओंका पलटना ही नित्य प्रलय है। कालके प्रबल वेगशाली प्रवाहमें शीघ्रताके साथ बह रहे सब प्राणियोंकी प्रतिक्षण बदल रही अवस्थाएँ ही उनके शरीरोंके जन्म और लयका कारण हैं। राजन्! ईश्वरकी मूर्त्ति काल, अनादि और अनन्त है। उस कालके द्वारा होनेवाली अवस्थाएँ उसी प्रकार नहीं देख पड़तीं जिस प्रकार असीम आकाशमें घूम रहे नक्षत्र और तारागणकी गतिकी अवस्थाएँ नहीं देख पड़तीं ॥ ३५-३७ ॥ राजन्! मैंने इन नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यन्तिक और नित्य-चारों प्रलयोंका विवरण तुमको सुना दिया। महाराज! कालकी गति ऐसी ही है ॥ ३८ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! जगत्‌के विधाता, सब प्राणियोंके आश्रय-स्वरूप नारायणकी ये लीला-कथाएँ मैंने तुमको संक्षेप रीतिसे सुना दीं। निश्चय जानो कि स्वयं ब्रह्मा अपनी लम्बी चौड़ी पूर्ण आयुमें भी सम्पूर्ण रूपसे हरिके गुणोंका वर्णन नहीं कर सके ॥ ३९ ॥ विविध सांसारिक दुःखरूप दावानलकी ज्वालाओंसे जल रहा जो जीव शान्तिके लिये संसारसागरके पार जानेकी इच्छा रखता हो उसको चाहिये कि पुरुषोत्तम भगवान्‌की ललित लीला-कथाओंके सुधासम रसका निरन्तर सेवन करे ॥ ४० ॥ राजन्! पहले अविनाशी नारायण ऋषिने यह भागवतपुराणसंहिता-जो मैंने तुमको सुनाई,-देवर्षि नारदको सुनाई थी और देवर्षि नारदने मेरे पूज्य पिता और गुरु वेदव्याससे पूर्व समयमें कही थी ॥ ४१ ॥

एतां वक्ष्यत्यसौ सूत ऋषिभ्यो नैमिषालये ॥
दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ संपृष्टः शौनकादिभिः ॥ ४२ ॥

हे महाराज ! द्वैपायनव्यासने प्रसन्न होकर यह वेदमयी भागवतसंहिता मुझको बताई और इसी संहिताको नैमिषारण्यमें महायज्ञके बीच, सूत, अट्ठासी हजार शौनकादिक ऋषियोंको उनके पूछनेके अनुसार सुनावेंगे ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय ।

संक्षेपसे ब्रह्मज्ञानका उपदेश ।

श्रीशुक उवाच—अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान्हरिः ॥
यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्भवः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा । महाराज ! जिनके अनुग्रहसे ब्रह्मा और क्रोधसे रुद्र उत्पन्न हुये हैं उन विश्वव्यापक ब्रह्मस्वरूप भगवान् हरिका फिर मैं तुम्हारे आगे विशेष रूपसे वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ राजन् ! तुम 'मैं मरूँगा' इस अज्ञानी पशुओंकी ऐसी समझको छोड़ दो । ऐसा मृत्युभय अविवेकके कारण होता है । जैसे देह नष्ट होजाता है वैसे तुम नष्ट नहीं होगे, क्योंकि कोई समय ऐसा न था जब तुम न थे, अतएव तुम्हारा वर्त्तमान कालमें जन्म भी नहीं हुआ और न भविष्यमें तुम्हारा नाशही होगा । देह किसी समयमें नहीं होता, समय पाकर उत्पन्न होता है, अतएव समय पाकर नष्ट भी होजाता है ॥ २ ॥ तुम बीजांकुर-न्यायके अनुसार पुत्र—पौत्रादि रूपसे संसारमें रहकर भी नहीं रहोगे, क्योंकि देहसे देह उत्पन्न होता है; यह जीवात्मा नहीं उत्पन्न होता । अग्नि, जिस प्रकार काष्टमें रह कर भी उससे भिन्न है उसी प्रकार जीवभी शरीरमें रहता है, परन्तु उससे भिन्न है ॥ ३ ॥ जीव, स्वप्नावस्थामें अपने शिर आदि कटनेकी घटना स्वयं देखता है एवं जाग्रत् अवस्थामें देह आदिके पञ्चत्वको देखता है, सो वैसेही देहके धर्म जो जन्म—मरण हैं उनका अपने ऊपर आरोप करना जीवका अज्ञानकृत भ्रम-मात्र है, वास्तवमें यह जीव अज और अमर है ॥ ४ ॥ उपाधिरूप घटके टूट जाने पर जैसे घटाकाश महाकाशमें मिल कर पूर्ववत् आकाश बना रहता है वैसेही देहके मरने (तत्त्वज्ञानसे लीन होने) पर यह जीव फिर ब्रह्ममें लीन होता है ॥ ५ ॥ (तत्त्वज्ञानसे देह इस प्रकार लीन होता है—) आत्माका देहादिक उपाधियोंसे मायाकृत सम्बन्ध है । राजन् ! यह मन आत्माके देह, गुण और कर्मोंकी सृष्टि करता है और इस मनकी सृष्टि मायासे होती है । इस प्रकार स्वयं नहीं, किन्तु मायासम्बन्धिनी उपाधियोंके कारण जीवका आवागमन (गमनागमन) होता है ॥ ६ ॥ राजन् ! जैसे जब तैल, तैलाधार, बत्ती और

अग्निका संयोग होता है तब वह दीपक कहलाता है वैसेही जीवका, देह आदि उपाधियोंके संयोगसे तत्कृत जन्म होता है ॥ ७ ॥ यह जीवात्मा ज्योतिःस्वरूप है, सूक्ष्म और स्थूल–दोनो शरीरोंसे भिन्न है, आकाशके समान देह आदिका आधार है, विकाररहित है, अनन्त और उपमाशून्य है। जन्म, मरण–ये धर्म जीवात्माके नहीं, देहके ही हैं ॥ ८ ॥ हे महाराज! 'आत्मा, इस दृश्य शरीरसे अलग है'–इस 'समझ' या अनुभवसे युक्त शुद्ध बुद्धिके द्वारा आपही अपनेमें स्थित आत्माका विचार करते हुए, आप अपने चंचल मनको निश्चल करके हरिके चरणोंमें लगा दीजिये ॥ ९ ॥ ब्राह्मणके शापसे तक्षक सर्प आपके शरीरको डस कर विषकी अग्निसे भस्म कर देगा, परन्तु तुम जो मृत्युको भी मारनेके लिये समर्थ ईश्वर हो उनको मृत्युके सम्पूर्ण कारण(भी)नहीं मार सक्ते ॥ १० ॥ 'जो मैं हूँ वही ब्रह्म है (इस भावनासे जीवात्माको शोक आदिसेमुक्ति मिलती है) और ब्रह्म है सो मैंही हूँ (इस भावनासे ब्रह्मका साक्षात्कार होता है)'–इस विवेक दृष्टिको प्राप्तकर अपनेको निराकार ब्रह्ममें लीन कर दो ॥ ११ ॥ तब देखोगे कि पैरमें काटनेवाला विषधर तक्षक सर्प और पञ्चतत्त्वरचितशरीरसहित सम्पूर्ण विश्व भी तुमसे भिन्न नहीं है ॥ १२ ॥

एतत्ते कथितं तात यथात्मा पृष्टवान्नृप ॥
हरेर्विश्वात्मनश्चेष्टां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १३ ॥

वत्स! तुमने आत्मविषयक कथा सुननेकी इच्छा प्रकट की थी, सो मैंने तुमको सुना दी। अब कहो–और कौन विश्वस्वरूप हरिकी कथा सुननेकी इच्छा है?॥१३॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय।

वेदविभाग वर्णन।

सूत उवाच–एतन्निशम्य मुनिनाभिहितं परीक्षि-
द्व्यासात्मजेन निखिलात्मदृशा समेन ॥
तत्पादमूलमुपसृत्य नतेन मूर्ध्ना-
बद्धाञ्जलिस्तमिदमाह स विष्णुरातः ॥ १ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं कि हे ऋषियो! सब प्राणियोंमें अपनेको ही देखनेवाले, अतएव समदर्शी व्यासतनय श्रीशुकदेवजीसे यह भागवत पुराण सुन कर राजा

परीक्षित्‌ने निकट जा उनके चरणोंमें शिर रख दिया और हाथ जोड़ कर कहा कि–"प्रभो! मैं कृतार्थ हो गया। आपने मुझ पर परम कृपा की, जो करुणा करके मुझको अनादि अनन्त साक्षात् हरिकी कथा सुनाई और उनके मिलनेका उपाय बताया। संसारके तापमें तपे हुए मुझ ऐसे अज्ञ जनों पर आप ऐसे भगवद्भक्त साधु महात्माओंकी कृपाका होना, मेरी समझमें, कुछ बहुत विचित्र बात नहीं है। स्वामी! उत्तम श्लोक हरिके गुणवर्णनसे परिपूर्ण यह पुराणसंहिता मैंने आपके श्रीमुखसे सुनी। भगवन्! अब मुझको तक्षक आदि मृत्युके कारणोंसे तनिक भी भय नहीं है, क्योंकि मैं आपके बताये हुए अभयमय निर्वाणरूप ब्रह्मको पा गया हूँ। ब्रह्मन्! अब आज्ञा दीजिये–मैं मौनव्रत धारण कर सब विषयवासनाओंसे मुक्त एकाग्र चित्तको हरिमें लगा कर प्राणत्याग करना चाहता हूँ। भगवन्! ज्ञान और विज्ञानकी निष्ठासे मेरा पूर्वसंस्कारसहित अज्ञान मिट गया। आपने भगवान्‌का परममंगलमय परब्रह्मरूप परमपद मुझको दिखा दिया" ॥ १–७ ॥ श्रीसूतजी कहते हैं। हे ऋषियो! यों कह कर नरदेव परीक्षित्‌ने वेदव्यासके पुत्र भगवान् शुकदेवजीका पूजन किया और शुकदेवजी भी राजाको आज्ञा दे कर परमहंस और भिक्षुओंके साथ जिधर चित्त चाहा उधरको वहाँसे चल दिये ॥ ८ ॥ राजा परीक्षित्‌ने भी बुद्धिके द्वारा मनको साक्षी-स्वरूप आत्मामें लगा कर उस आत्माको परमात्माके ध्यानमें लीन कर दिया। उस समय उनका शरीर भी वायु न चलनेसे निश्चल वृक्षके समान स्थिर हो गया। इधर ब्रह्मज्ञानसे जिनके सब सन्देह दूर हो गये हैं वह मौन साधे, योगावस्थामें, गंगाके किनारे पूर्वमुख कुशासन पर उत्तर-मुख हो कर अवस्थित राजा परीक्षित् ब्रह्मके ध्यानमें लीन हो गये, उधर कुपित ऋषिकुमारका भेजा हुआ विषधर तक्षक नाग राजाको डँसने चला। राहमें तक्षकको कश्यपनाम एक ब्राह्मण मिले। तक्षकको पूछनेसे विदित हुआ कि वह विष-चिकित्सक हैं और अधिक धन पानेकी आशासे विषविनष्ट राजा परीक्षित्‌को पुनर्जीवित करने जा रहे हैं, और उनके विषसे भस्म हो गये बर्गदके वृक्षको फिर हरा कर देनेकी शक्ति उनके मंत्रमें देख कर निश्चय भी हो गया कि वह अवश्य राजाको जिला देंगे। तब तक्षकने बहुत सा धन दे कर उनको मार्गसे ही लौटा दिया और राजाके निकट तक जाने न दिया। फिर कामरूपी तक्षक ब्राह्मणके रूपसे राजाके निकट गया और आशीर्वादके फलमें गुप्तरूपसे रह कर राजाको डँस लिया। ब्रह्ममें लीन हो गये राजर्षि परीक्षित्‌का पञ्चतत्त्वमय शरीर विषकी आगसे उसी क्षण सब प्राणियोंके देखते २ भस्म हो गया। यह दृश्य देख कर पृथ्वी, स्वर्ग और आकाशमें रहनेवाले सब प्राणी हाहाकार करने लगे और सुर, असुर, मनुष्य आदि सभीको बड़ा विस्मय हुआ। राजर्षिके परम पद पाने पर परम प्रसन्न देवता लोग नगाड़े बजाने और धन्यवाद देते हुए राजाके ऊपर फूल बर्साने

लगे–अप्सराओंके झुंड नाचने और गन्धर्वगण गुण गाने लगे । तक्षकके डँसनेसे अपने पिताकी मृत्युका वृत्तान्त सुन कर जनमेजय दुःख और क्रोधसे अस्थिर हो उठे । परीक्षित्के पुत्र जनमेजयने हवनकुण्डमें सर्पोंकी आहुति देनेके लिये उसी समय ऋषियोंकी बताई विधिके अनुसार सर्पयज्ञका अनुष्ठान किया । सर्प-यज्ञमें मन्त्रशक्तिसे बिवश सर्पसमूह आप ही आ कर कुण्डमें गिरने और अग्निमें भस्म होने लगे । यह देख कर तक्षक बहुत घबड़ाया और प्राणभयसे इन्द्रकी शरणमें गया । जनमेजयने जब देखा कि अनेकानेक सर्प आये और भस्म हो २ गये परन्तु तक्षक, जिसके लिये यज्ञ रचा गया वही नहीं आया, तब ऋषियोंसे कहा कि "आप लोग अधम सर्प तक्षकको क्यों नहीं बुलाते ?" ॥ ९–१८ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि–"हे राजेन्द्र ! वह दुष्ट प्राण बचानेके लिये इन्द्रके सिंहासनमें जा कर लिपटा है । उस शरणागतकी रक्षा स्वयं इन्द्र कर रहे हैं; इसी कारण अब तक वह नहीं आया" ॥ १९ ॥ तब उदारबुद्धि राजा जनमेजयने फिर ऋत्विक् ऋषियोंसे कहा–"यदि ऐसा है तो आपलोग तक्षकके साथ इन्द्रको भी क्यों नहीं यज्ञकुण्डमें डाल कर भस्म कर देते ?" ॥ २० ॥ तब "हे तक्षक ! तू अपने रक्षक इन्द्रसहित शीघ्र अग्निकुण्डमें गिर पड़"–यों कह कर ब्राह्मणोंने इन्द्रसहित तक्षकका यज्ञमें आह्वान किया ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंके वचनोंसे इन्द्रका तक्षकयुक्त सिंहासन अपने स्थानसे चला और यह देख कर इन्द्र भी घबड़ाये । तक्षकसहित इन्द्रको ऊपरसे नीचे गिरते देख, इन्द्रके गुरु अंगिरातनय महर्षि बृहस्पतिने जनमेजयसे कहा कि–"राजन् ! यह तक्षक अमृत पीकर अमर हो चुका है, अत-एव मर नहीं सक्ता, और इन्द्रभी अजर अमर हैं । राजेन्द्र ! अपनेही कर्मवश लोगोंको जीवन–मरण आदि गतियाँ मिलती हैं । सब लोग अपने २ कर्मसे सुख या दुःख पाते हैं, कोई किसीको सुख या दुःखका देनेवाला नहीं है । किये हुए कर्मोंके अनुसारही सर्प, चोर, अग्नि, जल, भूख–प्यास और रोग आदि अनेकों बहानोंसे मनुष्यकी मौत होती है । राजन् ! अतएव अब आप इस हिंसाफल-दायक घोर यज्ञको समाप्त करिये । देखिये, कितने निरपराध जीवों (सर्पों)की हत्या होगई ! बस, यही समझ कर क्रोधको शान्त करो कि सब प्राणी अपने किये कर्मोंका फल भोगते हैं" ॥ २२–२७ ॥ सूतजी कहते हैं । हे ऋषियो ! राजा जनमेजयने बृहस्पतिके वचनोंको मान कर उनकी पूजा की और सर्पयज्ञको वहीं समाप्त कर दिया ॥ २८ ॥ हे महामहर्षिगण ! यही वह विष्णुकी दिग्विज-यिनी अप्रतर्क्य महामाया है । इसी मायामें मोहित जीवसमूह–जो उन्हीं परमात्मारूप विष्णुके अंश अर्थात् सूक्ष्मरूप हैं–मायाके तीनो गुणोंकी वृत्तियोंमें–काम, क्रोध, मद आदिमें फँस कर भौतिक शरीरोंको अपनाते हुए परस्पर बाध्य, बाधक बनते हैं ॥ २९ ॥ किन्तु जब आत्मजिज्ञासु पण्डित (सत् और असत्को

ठीक २ समझनेवाले) लोग आत्मतत्त्वके विचारमें तत्पर होते हैं तब यह दंभरूपिणी माया उनके निकट अकुतोभय भावसे नहीं ठहर सक्ती। इस आत्माका तत्त्व जानेनेसे उत्पन्न ब्रह्मानन्दमें मायाकृत अनेक विवाद नहीं हैं। संकल्प-विकल्पात्मक मन इसको पा नहीं सक्ता, केवल निश्चयात्मिका बुद्धिसे इसका अनुभव होता है॥ ३०॥ आत्मा और शरीरको सार्थक करनेवाला यही एक परमार्थ है, अतएव यह सृज्य (स्थूल शरीर व वासनामय सूक्ष्मशरीर), स्रष्टा (मन) और फल (संसार) एवं अहंकारात्मक जीवसे भी परे है। राजन्! यही आत्माका रूप अथवा ब्रह्मानन्द है। मुनि लोग अहंकार आदि मायाकी लहरोंसे निकल कर इसीमें रमते हैं॥ ३१॥ जब योगीजन, "यह सत् नहीं है, यह सत् नहीं है"—इस बिवेकसे देहादि असत् वस्तुओंको छोड़नेमें समर्थ होकर देहाभिमानसे शून्य होजाते हैं तब सबको छोड़ कर अनन्यभावसे—एकाग्रतासे इस अपने रूप अर्थात् ब्रह्मानन्दको पाकर इसीमें मिल जाते हैं॥ ३२॥ जिनमें देह गेहके लिये "मैं हूँ, दूसरा है" या "मेरा है, पराया है"—इस प्रकार अबिवेक-कृत भेदभाव या दुर्जनता नहीं है वे ही इस विष्णुके परम पदको पासक्ते और बता सक्ते हैं या बताते हैं॥ ३३॥ जिस जिज्ञासुको इस अद्भुत आनन्दके अनुभवकी अभिलाषा हो उसको उचित है कि कोई कठोर या कटु वचन कहै तो सुनकरभी सह ले, किसीका अपमान न करे और इस असत् शरीरके लिये किसीसे वैर न करे॥ ३४॥ जिन अकुण्ठबुद्धि महामेधावी गुरु भगवान् वेदव्यासके चरणोंकी कृपासे मुझको यह संहिता प्राप्त हुई उनको मैं वारम्वार प्रणाम करता हूँ॥ ३५॥ **शौनकजीने कहा।** हे सौम्य! वेदाचार्य व्यासजीके पैल आदि महात्मा शिष्योंने वेदोंके कितने विभाग किये—यह कथा हमको सुनाइये॥ ३६॥ **सूतजीने कहा।** ब्रह्मन्! समाधि अवस्थामें अवस्थित परमेष्ठी ब्रह्माके हृदयरूप आकाशमें एक शब्द प्रकट हुआ। उस शब्दको एकाग्रतापूर्वक कानमें अंगुली लगालेनेसे हमलोग भी सुन पाते हैं॥ ३७॥ ब्रह्मन्! उस नादकी उपासनासे आत्माके आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक मलको धोकर योगीजन आवागमनसे छूट जाते हैं॥ ३८॥ फिर उसी नादसे त्रिमात्रात्मक ओंकार प्रकट हुआ। ओंकारकी उत्पत्तिका स्थान अव्यक्त है। वह स्वराट् अर्थात् हृदयाकाशमें स्वयं प्रकाशमान और भगवान् परब्रह्म परमात्माका चिन्ह अर्थात् बोधक है। कानोंमें अंगुली दे लेनेसे शब्दग्राहिणी श्रोत्र इन्द्रियकी वृत्तिके रुक जानेपर भी जिसके द्वारा इस स्फोटस्वरूप अव्यक्त ओंकारकी उपलब्धि होती है वही अप्रतिहत ज्ञान परमात्मा है [इन्द्रियकी वृत्ति बंद होजाने पर जीव, उस इन्द्रियके विषयका अनुभव नहीं कर सक्ता, क्योंकि इन्द्रियोंकेही द्वारा जीवको (उन इन्द्रियोंके) विषयोंका ज्ञान अथवा अनुभव होता है] हृदयाकाशमें आत्मासे इस स्फोट-

स्वरूप ओंकारकी अभिव्यक्ति होती है और इसीसे वार्णोंका विकास और विस्तार होता है। यह स्वयं प्रकाशमान परमात्मा साक्षात् ब्रह्मका वाचक है। यह सब उपनिषद्, वेद और मंत्रोंका सनातन बीज है। हे भृगुश्रेष्ठ ! ओंकारसे गुण (सत्त्व, रजः, तमः), नाम (ऋक्, यजुः, साम), अर्थ (भूः, भुवः, स्वः) और वृत्तियों (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति)को धारण करनेवाले त्रिभावसम्पन्न अ-उ-म-ये तीन वर्ण अभिव्यक्त हुए ॥ ३९-४२ ॥ भगवान् ब्रह्माने इन्हीं तीन वर्णोंसे अन्तःस्थ, ऊष्म, स्वर, स्पर्शसंज्ञक ह्रस्व और दीर्घ अक्षरोंकी सृष्टि की ॥ ४३ ॥ फिर चतुर्मुख विभु ब्रह्माने 'चातुर्होत्र' कर्मके कहनेकी इच्छासे अपने चारो मुखोंसे व्याहृति ओंकारसहित चार वेदोंको प्रकट कर, उन्हे वेदके उच्चारणमें निपुण अपने पुत्र मरीचि आदि महर्षियोंको पढ़ाया। उन धर्मप्रचारक महर्षियोंने अपने पुत्रोंको वेही वेद पढ़ाये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ उन महर्षियोंके वंशज ऋषियोंने भी परम्पराक्रमसे ब्रह्मचर्यव्रतधारी अपने २ पुत्रों और शिष्योंको वेदाध्ययन कराया। इसी प्रकार अर्थात् पठन पाठनसे चारो युगोंमें वेद वर्त्तमान रहते हैं। द्वापरके आदिमें महर्षियों द्वारा वेदोंके विभाग किये गये। ऋषियोंने जब देखा कि सब प्राणी क्रमशः अल्पायु, प्रतिभाहीन और मन्दबुद्धि होते जाते हैं तब हृदयमें स्थित अच्युतकी आज्ञाके अनुसार वेदोंके कई विभाग कर दिये। (यह तो वेदविभागका साधारण क्रम कहा गया अब विशेष क्रम कहते हैं) हे ब्रह्मन् ! इस वैवस्वत मन्वन्तरमें भी इन्द्र, शिव ब्रह्मादिक लोकपालोंने सनातन धर्मकी रक्षा करनेके लिये जब जाकर प्रार्थना की तब त्रिभुवनपति भगवान्ने सत्त्वमय अंशसे सत्यवतीके गर्भमें स्थापित पराशर ऋषिके वीर्य द्वारा जन्म लिया और चार प्रकारसे वेदका विभाग करके वेदव्यास नामसे विख्यात हुए ॥ ४६-४९ ॥ ब्रह्मन् ! जैसे मणिकी खनिसे लोग मणियोंका संग्रह करते हैं वैसे ही व्यास भगवान्ने ऋक्, यजुः, साम और अथर्व-इन चार वेदोंसे वर्गविभागपूर्वक मन्त्रोंको चुन कर भिन्न २ वेदकी भिन्न २ चार संहिताएँ बनाईं ॥ ५० ॥ महामति व्यासदेवने चार शिष्योंको क्रमशः चारो संहिताएँ पढ़ाईं। व्यासजीने पैलनाम शिष्यको ऋग्वेदकी बह्वृक्नाम संहिता, वैशम्पायननाम शिष्यको यजुर्वेदकी निगद नाम संहिता, जैमिनिनाम शिष्यको सामवेदकी छन्दोगनाम संहिता और सुमन्तुनाम शिष्यको अथर्ववेदकी आंगिरसीनाम संहिता पढ़ाई ॥ ५१-५३ ॥ पैल ऋषिने दो भाग करके, अपनी संहिता, इन्द्रप्रमिति और वाष्कलनाम दो शिष्योंको पढ़ाई। हे भार्गव ! वाष्कलने अपनी संहिताके चार विभाग किये और बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर और अग्निमित्रनाम शिष्योंको क्रमशः एक २ विभागका अध्ययन कराया। आत्मज्ञानी इन्द्रप्रमितिने भी अपनी संहिता अपने पुत्र महामति पण्डित माण्डूकेय ऋषिको पढ़ाई। माण्डूकेयने अपनी संहिताके दो भाग किये और एक

भाग अपने शिष्य देवमित्रको एवं एक भाग अपने पुत्र शाकल्यऋषिको पढ़ाया । देवमित्रने अपनी संहिता सौभरिआदि शिष्योंको पढ़ाई । शाकल्यने अपनी संहिताके पाँच विभाग किये एवं वात्स्य, मुद्गल, शालीय, गोखल्य और शिशिरनाम पुत्रोंको क्रमशः एक २ भाग पढ़ाया । जातूकर्ण्यनाम एक शाकल्यऋषिके शिष्यभी थे—उन्होंने निरुक्त (वैदिकपदोंके अर्थकी व्याख्या)—सहित अपनी संहिताके चार विभाग किये और बलाक, पैल, जाबालि और विरजा नामक मुनियोंको क्रमशः एक २ भाग पढ़ाया । पूर्वोक्त बाष्कलमुनिके पुत्रने उक्त सम्पूर्ण बह्वृक् संहिताकी शाखाओंसे छाँट कर एक बालखिल्यनाम संहिता बनाई और बालायनि, भज्य एवं काशारनाम शिष्योंको पढ़ाई । शौनकजी! ऋग्वेदकी बह्वृक् नाम संहितासे उक्त ब्रह्मर्षियोंने इतनी शाखासंहिताएँ रचीं । इस ऋग्वेदके शाखाविभागको श्रद्धासे सुननेवाले लोग सब प्रकारके महापापोंसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ५४–६० ॥ भगवन्! अब यजुर्वेदकी शाखाओंका विभाग सुनिये । वैशम्पायन ऋषिके चरकनाम अध्वर्युपदधारी शिष्य हुए । उन्होंने गुरुके ब्रह्महत्यारूप पापको नष्ट करनेके लिये प्रायश्चित्तस्वरूप कठिन व्रत किया—इसीसे उनका नाम चरक पड़ा । वैशम्पायनके और एक शिष्य याज्ञवल्क्य ऋषि थे । उन्होंने घमंडके साथ गुरुसे कहा कि—"भगवन्! इन स्वल्पशक्तिशाली शिष्योंके इस व्रताचरणसे क्या फल होगा? मैं अपूर्व सुकठिन व्रत करके आपके पापको निःशेष कर दूँगा" ॥६१॥ ॥ ६२ ॥ याज्ञवल्क्यका यह कथन वैशम्पायनको अच्छा नहीं लगा, अतएव उन्होंने क्रोध करके कहा कि—"तुम अपने गुरुभाइयोंको तुच्छ कह कर ब्राह्मणोंका अपमान करते हो, इस लिये तुम मेरे निकटसे चले जाओ । मैं तुम ऐसे अभिमानीको अपना शिष्य बनाना नहीं चाहता । बस, तुमने जो कुछ मुझसे पढ़ा है वह शीघ्र मुझे लौटा दो" ॥ ६३ ॥ देवरातके पुत्र याज्ञवल्क्य भी उसी समय पढ़ेहुए यजुर्वेदके मन्त्रोंको वमनरूपसे उगल कर वहाँसे चल दिये । उन वमनरूपसे पड़े हुए यजुर्वेदके अत्यन्त मनोहर मन्त्रोंको देख कर अन्यान्य मुनियोंने लोलुपतावश तीतरपक्षीका रूप रख कर निगल लिया (ब्राह्मणरूपसे वमनको कैसे निगलते? इसी लिये उन्होंने तीतरका रूप रक्खा) वेही मंत्र यजुर्वेदकी अत्यन्त मनोहर तैत्तिरीय शाखाके नामसे प्रसिद्ध हैं । ब्रह्मन्! इसके उपरान्त गुरु वैशम्पायन भी जिनको न जानते हों ऐसे यजुर्वेदके अधिक मंत्रोंके पानेकी अभिलाषासे याज्ञवल्क्य ऋषि ईश्वरस्वरूप सूर्य्यदेवकी भली भाँति उपासना करते हुए इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ ६४–६५ ॥ याज्ञवल्क्यने कहा—"हे भगवन्! हे आदित्य! मैं आपको प्रणाम करता हूँ । आप एकाकी हो कर भी आत्मारूपसे, ब्रह्मासे ले कर तृणपर्य्यन्त चतुर्विध प्राणियोंका आवास जो यह विश्व-ब्रह्माण्ड है उसके भीतर और बाहर, आकाशके समान उपाधियोंसे अनावृत रह कर विराजमान हैं एवं

कालरूपसे, क्षण-लव-निमेष आदि अवयवोंसे सम्पन्न जो वर्षसमूह हैं उनके द्वारा जलको खींचते और बरसाते हुए इस संसारचक्रको चलाते और जगत्का पालन-पोषण करते हैं। हे देवश्रेष्ठ! हे सविता! नित्य तीनो सन्ध्याओंमें अर्थात् प्रातः-काल, मध्याह्न और सायंकालमें वेदविहित सन्ध्याकर्म करके जो लोग आपकी उपासना और स्तुति करते हैं उन अपने भक्तोंके दुष्कृत, दुःख और दुष्कृत व दुःखके बीजस्वरूप अज्ञानको आप नष्ट कर देते हैं। हे भास्कर! तीनो लोकोंमें तपनेवाले आपके इस तेजोमय मण्डलका हम ध्यान करते हैं। आप आत्मास्वरूप अन्तर्यामी हैं। निज-निकेतनस्वरूप स्थावर और जंगम जीवोंकी जड़ मन आदि इन्द्रियों और प्राणोंको आप ही अपने उदयसे अपने २ कार्य्यमें प्रवृत्त करते हैं। हे ईश! जब रात्रिके समय अत्यन्त कराल मुखवाला अन्धकाररूप अजगर सम्पूर्ण विश्वको ग्रस लेता है तब प्रातःकाल आप ही निद्रासे मृततुल्य अचेत दशामें पड़े हुए जीवोंको कृपादृष्टि द्वारा सचेत करके प्रतिदिन तीनो संध्याओंमें स्वधर्मस्वरूप आत्मोपासनाके कल्याणकारी कार्य्यमें प्रवृत्त करते रहते हैं; अतएव आप परम कृपालु हैं। भगवन्! आप राजाके समान अपने प्रकाशमय तेजसे असाधुजनोंके हृदयमें भयका संचार करते हुए चारो दिशाओंमें घूमते हैं। आप जिस २ दिशामें जाते हैं उस २ दिशाके दिक्पाल लोग, कमलकुसुमयुक्त जलसे पूर्ण अंजलियों द्वारा अर्घ्य देते हुए आपका पूजन करते हैं। भगवन्! मैं आपसे यजुर्वेदके ऐसे मंत्र पानेकी प्रार्थना करता हूँ जो अन्य ऋषियोंको अविदित अथवा यथावत् न ज्ञात हों। इसी कामनासे मैं, त्रिभुवनके गुरु ब्रह्मादिक भी जिनकी बन्दना करते हैं उन आपके चरणकमलोंको भजता हूँ" ॥ ६६–७२ ॥ श्रीसूतजी कहते हैं। हे शौनकजी! इस प्रकार उपासनापूर्वक स्तुति करनेसे प्रसन्न भगवान् सूर्यने अश्वरूपसे याज्ञवल्क्य ऋषिको उनकी प्रार्थनाके अनुसार वैसीही यजुर्वेदकी ऋचाएँ दीं जिनको उस समय तक अन्य मुनि लोग यथावत् नहीं जानते थे। अश्वरूप सूर्यके बाजस् (गर्दनके बाल अथवा वेग)से उत्पन्न होनेके कारण यजु-र्वेदकी वह शाखा बाजसनेयी नामसे प्रसिद्ध हुई। उन यजुर्वेदके अपरिमित मंत्रोंकी पन्द्रह शाखा या संहिता रचकर याज्ञवल्क्यजीने अपने कण्व, मध्यन्दिन आदि शिष्योंको उनका अध्ययन कराया ॥७३॥७४॥ हे भार्गव! अब सामवेदकी शाखा-ओंका विभाग कहते हैं। सामपाठी जैमिनि ऋषिने अपनी संहिताके दो भाग किये, उनमेंसे एक संहिता अपने पुत्र सुमन्तुको और दूसरी संहिता अपने पौत्र सुत्वान्को पढ़ाई ॥ ७५ ॥ हे द्विजवर! तदनन्तर जैमिनिके सुकर्मा नाम अत्यन्त मेधावी शिष्यने सामवेदरूप महावृक्षके एक सहस्र शाखाविभाग किये अर्थात् अवान्तर भेदसे एक सहस्र संहिताओंको रचा ॥ ७६ ॥ कोशलदेशीय हिरण्यनाभ, पौष्यञ्जि और एक अवन्ती नगरीका निवासी वेदपात्रोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण—इन तीन शिष्योंने

उन संहिताओंको सुकर्मासे पढ़ा ॥ ७७ ॥ पौष्यञ्जि, आवन्त्य और हिरण्यनाभके उत्तर देशीय पाँच सौ शिष्य हुए—उन्होंने क्रमशः पाँच सौ संहिताएँ उक्त तीनो ऋषियोंसे पढ़ीं । वे सामवेदके गानेमें निपुण पाँच सौ ब्राह्मण 'औदीच्य' नामसे प्रसिद्ध हुए । इन औदीच्योंमें कुछ (पूर्णदिशामें बसनेके कारण) प्राच्य भी कहे जाते हैं ॥ ७८ ॥ पौष्यञ्जिके लौगाक्षि, लाङ्गली, कुल्य, कुशीद और कुक्षि नाम पाँच शिष्य और भी थे; उनको पौष्यञ्जिने क्रमशः सामवेदकी शेष पाँच सौ संहिताएँ पढ़ाईं ॥ ७९ ॥

कृतो हिरण्यनाभस्य चतुर्विंशतिसंहिताः ॥
शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवन्त्य आत्मवान् ॥ ८० ॥

हिरण्यनाभके कृतनाभ शिष्यने अपनी संहिताकी चौबीस संहिताएँ रच कर अपने शिष्योंको पढ़ाईं । आत्मज्ञानी आवन्त्य ब्राह्मणने भी सामवेदकी शेष (बची हुई और और) शाखा संहिताएँ अपने अन्य शिष्योंको पढ़ाईं ॥ ८० ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय ।

पुराणलक्षणवर्णन ।

सूत उवाच—अथर्ववित्सुमन्तुश्च शिष्यमध्यापयत्स्वकाम् ॥
संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान् ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं । हे शौनकजी ! अथर्व वेदके अधिकारी सुमन्तुने भी अपनी संहिता कवन्ध नाम शिष्यको पढ़ाई । कवन्धने दो भाग करके वह संहिता पथ्य और वेददर्श नामक शिष्योंको पढ़ाई ॥ १ ॥ शौल्कायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष और पिप्पलायन ये वेददर्शके शिष्य हुए । वेददर्शने अपनी संहिताके चार विभाग किये और क्रमशः एक २ विभाग इन शिष्योंको पढ़ाया । पथ्यने भी तीन भाग करके अपनी संहिता कुमुद, शुनक और अथर्ववेत्ता जाजलिको पढ़ाई । आंगिरस शुनक ऋषिने अपनी संहिताके दो भाग किये और बभ्रु व सैंधवायनको उनका अध्ययन कराया । सावर्ण्य आदि कई और ऋषि सैन्धवायनके शिष्य हुए । इनके सिवा नक्षत्रकल्प और शान्तिकल्पके प्रणेता काश्यप और आंगिरस नक्षत्रकल्प एवं शान्तिकल्प नामक ऋषि भी अथर्ववेदके चतुर्थ और पञ्चम आचार्य माने जाते हैं। मुनिवर ! अब पौराणिकोंका विवरण सुनिये । वेदव्यासजीने छः पुराणसंहिता बना कर मेरे पिता रोमहर्षणको पढ़ाईं । फिर मेरे पितासे त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण,

वैशंपायन और हारीत—इन छः पौराणिकोंने एक २ संहिता पढ़ी और मैंने इन छहों ऋषियोंसे छहों संहिताएँ पढ़ीं । भार्गव ! मैं, काश्यप, सावर्णि और परशुरामके शिष्य अकृतव्रण—इन चारोने व्यासके शिष्य रोमहर्षण सूतसे एक २ करके चार मूलसंहिताएँ पढ़ीं ॥ २–७ ॥ ब्रह्मन् ! वेदशास्त्रके अनुसार ब्रह्मर्षियोंने पुराणके जो लक्षण कहे हैं उनको आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये ॥ ८ ॥ पुराणके विषयको भली भाँति जाननेवाले विद्वानोंका कथन है कि सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मनुओंके अन्तर, वंश, वंश्यानुचरित, संस्था, हेतु और अपाश्रय—इन दश विषयोंका वर्णन जिसमें हो उसको पुराण कहना चाहिये । कुछ लोगोंका मत है कि इन दसो विषयोंका जिसमें पृथक् २ निरूपण किया जाय वह महापुराण है और जिसमें पाँच विषय मुख्य रूपसे कहे गये हों एवं शेष पाँच विषयोंका वर्णन उन्हीं मुख्यरूपसे वर्णित पाँच विषयोंके अन्तर्गत हो वह पुराण है ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ब्रह्मन् ! उक्त सर्ग आदि विषयोंका विवरण इस प्रकार है । प्रकृतिके सत्त्व आदि तीनो गुण जब क्षोभको प्राप्त होते हैं तब उनसे महत्तत्त्व और महत्तत्त्वसे त्रिविध अहंकारकी उत्पत्ति होती है । अहंकारसे प्राणियोंकी सूक्ष्म इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके विषय और अधिष्ठाता देवता प्रकट होते हैं । इसी सूक्ष्म सृष्टि या कारण सृष्टिका नाम 'सर्ग' है ॥११॥ इन ईश्वरके द्वारा अनुगृहीत महत्तत्त्व आदिका कार्य जो वासनामय चराचर प्राणियोंके स्थूलशरीर हैं वे बीज-वृक्ष-न्यायसे अर्थात् जैसे बीजसे वृक्ष और वृक्षसे बीज उपजता है वैसेही परम्परा-पूर्वक उत्पन्न होते रहते हैं । इसी स्थूलसृष्टि या कार्यसृष्टिका नाम 'विसर्ग' है ॥ १२ ॥ इस संसारमें साधारणतः चर प्राणी चर प्राणियों (मछली आदि) और अचर प्राणियों (अन्न साग फल आदि) द्वारा अपना निर्वाह या जीवन धारण करते हैं और अचर प्राणी (वृक्ष आदि) स्वयं प्राप्त जल आदिसे जीवन धारण करते हैं । उसमें मनुष्योंने स्वभावसे, कामनासे या प्रेरणासे जो अपनी जीविका स्थिर की है उसीका नाम 'वृत्ति' है ॥ १३ ॥ अच्युत भगवान् हरेक युगमें पशु, पक्षी, मनुष्य ऋषि और देवताओंमें अवतार लेकर वेदविद्रोही दुष्टोंका दमन करनेके लिये लीला करते हैं उसीका नाम 'रक्षा' है ॥ १४ ॥ मनु, देवगण, मनुके पुत्र, इन्द्र सप्तऋषि और हरिके अंशावतार जिस नियत समयमें अपने २ अधिकारके अनुसार अपना २ कार्य करते रहते हैं उसीका नाम 'मन्वन्तर' है ॥ १५ ॥ ब्रह्मासे जिनकी विशुद्ध उत्पत्ति है उन मनु आदि राजोंके त्रैकालिक (भूत, भविष्य, वर्त्तमान) वंशका नाम 'वंश' है । और उन राजोंके तथा उन राजोंके वंशधरोंके चरित्र या वृत्तान्तका नाम 'वंश्यानुचरित' है ॥ १६ ॥ पण्डित लोगोंका कथन है कि स्वभाववश अथवा ईश्वरकी मायाके द्वारा इस विश्वका जो नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यन्तिक और नित्यभेदसे चार प्रकारका प्रलय होता है उसीका नाम

'संस्था' है ॥ १७ ॥ अज्ञानवश कर्म करनेवाला जीव इस विश्वकी सृष्टि आदिका कारण है, उसीका नाम 'हेतु' है। किन्तु जीवात्मामें चैतन्यकी प्रधानता माननेवाले उसको अनुशायी और उपाधिकी प्रधानता माननेवाले अव्याकृत कहते हैं ॥ १८ ॥ हे भार्गव! जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति नामक अवस्थाओंमें जो मायाकृत विश्व, तैजस, प्राज्ञ नामक जीवकी वृत्तियाँ हैं उनसे साक्षीस्वरूपसे सम्बन्ध रखनेवाला और समाधि नामक तुरीय अवस्थामें उनसे भिन्न जो ब्रह्म है उसीका नाम 'अपाश्रय' है [अर्थात् संसारकी प्रतीति और बाधाका क्रमशः अधिष्ठान और अवधि है] ॥ १९ ॥ जैसे घट आदिमें मृत्तिका आदि पदार्थ युक्त भी हैं और भिन्न भी हैं एवं घट आदिके नाम और रूपोंमें केवल नाम–रूपमात्रसे उनकी सत्ता है वैसेही देहकी गर्भाधानसे लेकर मृत्यु तक सब अवस्थाओंमें जो साक्षीस्वरूपसे युक्त होकर भी वास्तवमें उनसे भिन्न है वही उक्त 'अपाश्रय' या ब्रह्म है ॥ २० ॥ शौनकजी! जब चित्त स्वयं अथवा योगसे जाग्रत् आदि गुणमयी वृत्तियोंको छोड़-कर शुद्ध और शान्त बन जाता है तभी इस शुद्ध आत्माका अनुभव या ज्ञान प्राप्त होता है एवं उस समय अविद्याके दूर होजानेसे सब प्रकारकी चेष्टाएँ (वासनाएँ) निवृत्त होजाती हैं ॥ २१ ॥ पुरातत्त्ववेत्ता पण्डितोंने इन उक्त लक्षणोंसे जानने योग्य छोटे और बड़े पुराणोंकी संख्या 'अट्ठारह' बताई है ॥ २२ ॥ ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, लिंग, गरुड़, नारद, भागवत, अग्नि, स्कन्द, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, वामन, वाराह, मत्स्य, कूर्म और ब्रह्माण्ड–ये उन अट्ठारहो पुराणोंके नाम हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

ब्रह्मन्निदं समाख्यातं शाखाप्रणयनं मुनेः ॥
शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजोविवर्धनम् ॥ २५ ॥

ब्रह्मन्! व्यास मुनिके शिष्य, शिष्योंके शिष्य और उनके भी शिष्य–प्रशिष्योंने जिस प्रकार वेदोंकी शाखाओंका विभाग किया सो मैंने आपको सुना दिया। इस कथाके सुननेसे अवश्यही ब्रह्मतेज बढ़ता है ॥ २५ ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय।

मार्कण्डेयकृत नारायण स्तुति।

शौनक उवाच–सूत जीव चिरं साधो वद नो वदतां वर ॥
तमस्यपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः ॥ १ ॥

शौनकजीने सूतजीसे कहा। हे साधु सूत! चिरकाल तक जीते रहो, क्योंकि हे बहुज्ञ और वक्ता लोगोंमें श्रेष्ठ! तुम इस अज्ञानकृत आवागमनके

भ्रमजालमें भटक रहे मनुष्योंको उससे निकलनेकी राह दिखानेवाले हो ॥ १ ॥ हे सूत! लोग कहते हैं कि मृकण्डु ऋषिके पुत्र महात्मा मार्कण्डेयजीकी बड़ी आयु है और यह भी कहते हैं कि प्रलयरात्रि अर्थात् कल्पके अन्तमें भी—जब यह जगत् नहीं रहता, तब भी—वह बने रहे! भला यह कैसे हो सक्ता है? इसके सिवा भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ मार्कण्डेयजी इसी वर्त्तमान कल्पमें हमारे वंशमें उत्पन्न हुए हैं और उनकी उत्पत्तिके समयसे ले कर अब तक, नैमित्तिक या प्राकृतिक—किसी प्रकारका प्रलय नहीं हुआ है, तब वह किस प्रकारका प्रलय था जिससे वह बच रहे? और भी सुना जाता है कि मार्कण्डेयजीने अकेले ही प्रलयसागरके जलमें बहते २ एक स्थानमें बरगदके वृक्षपर एक पत्तेमें लेटे हुए एक अद्भुतरूप बालकको देखा था—यह भी एक कौतूहलकी बात है। तुम महायोगी और पुराणोंके विषयोंको भलीभाँति समझनेवाले हो, अतएव मार्कण्डेयजीकी कथा कह कर हमारे संशयोंको दूर करो" ॥ २–५ ॥ सूतजीने कहा। महर्षि शौनकजी! यह प्रश्न आपने बहुत ही अच्छा किया, क्योंकि इससे 'एक पंथ दो काम' होंगे। एक तो लोगोंका भ्रम मिट जायगा, दूसरे मार्कण्डेयकी कथाके प्रसंगमें कलिकलुपनाशिनी हरिचर्चा भी है ॥ ६ ॥ गर्भाधानसे ले कर यज्ञोपवीत तक सब संस्कार हो जाने पर पिताके निकट वेदाध्ययनके अधिकारी हो कर मार्कण्डेयजी गुरुकुलमें गये और वहाँ धर्मपूर्वक उन्होंने चारो वेद पढ़े। तप और स्वाध्यायपाठमें तत्पर रह कर मार्कण्डेयजी इन्द्रियदमनपूर्वक—शान्त स्वभावसे आजन्म ब्रह्मचारी बननेका विचार करके कठोर ब्रह्मचर्य्यव्रतका पालन करने लगे। जटाधारी, बल्कल पहने, दण्ड-कमण्डलु लिये, यज्ञोपवीत, अक्षसूत्र, मौंजी-मेखला, कृष्णाजिन, कुश आदिसे सुशोभित नैष्ठिक ब्रह्मचारी मार्कण्डेयजी धर्म्मकी वृद्धिके लिये प्रातःकाल और सायंकाल—दोनो सन्ध्याओंमें अग्नि, सूर्य्य, गुरु, ब्राह्मण और आत्मामें हरिकी पूजा और आराधना करने लगे। मार्कण्डेयजीने आवश्यक बातचीतके सिवा बहुत बोलना छोड़ दिया। वह प्रातःकाल और सायंकाल—दोनो समय भिक्षा माँग लाते और गुरुके आगे रख देते थे। यदि गुरु भोजन करनेकी आज्ञा देते तो वह एक बार भोजन कर लेते और नहीं तो निराहार ही रह जाते थे ॥७–१०॥ इस प्रकार तप और स्वाध्यायपाठमें तत्पर रह कर हृषीकेश हरिकी आराधना करते हुए मार्कण्डेयजीने हजारों—लाखों वर्ष बिता दिये, अर्थात् हरिकी आराधनाके प्रभावसे अत्यन्त दुर्जय मृत्युको भी जीत लिया ॥ ११ ॥ यह अद्भुत व्यापार देख कर ब्रह्मा, भृगु, भगवान् शंकर, दक्ष, ब्रह्माके अन्यान्य सब पुत्र, मनुष्यगण, पितृगण आदिक सम्पूर्ण प्राणियोंको बड़ाही विस्मय हुआ ॥ १२ ॥ हे शौनकजी! इस प्रकार तप, वेदपाठ और इन्द्रियसंयम द्वारा नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे महायोगी मार्कण्डेयका अन्तःकरण काम-क्रोध आदि क्लेशोंसे रहित हो गया और

वह शुद्ध हृदयसे एकाग्र हो कर अधोक्षज हरिका ध्यान करने लगे ॥ १३ ॥ इस प्रकार महायोगपूर्वक हरिमें चित्त लगाते महायोगी मार्कण्डेयने छः मन्वन्तर बिता दिये ! इस सातवें स्वायंभुव मन्वन्तरमें मार्कण्डेयजीके महायोगका वृत्तान्त जान कर पुरन्दरको यह शंका हुई कि 'यह मुनिवर इस घोर तपसे मेरे पदको न कहीं लेलें'। इस शंकासे इन्द्रने मार्कण्डेयके तपमें विघ्न डालनेके लिये उनके पास गन्धर्व, अप्सरा, वसन्त, मलयाचलकी शीतल-मंद-सुगंध वायु, रजोगुणके बच्चे लोभ और मद आदि अपने आज्ञाकारी अनुचरोंको भेजा एवं वे भी उसी समय मुनिके आश्रमको गये । मार्कण्डेयका आश्रम हिमाचलके निकट उत्तर ओर था । उस आश्रमके निकट पुष्पभद्रा नदी बहती थी और उसके तट पर चित्रानाम शिला पड़ी थी । मुनिके आश्रमका स्थान बड़ाही रमणीक और पवित्र था । पवित्र वृक्ष और लताएँ उस स्थानकी शोभाको बढ़ा रही थीं । वृक्षों पर पवित्र पक्षीगण बैठे हुए अपने मधुर शब्दोंसे आनेवालोंके मनको हरे लेते थे । पवित्र और स्वच्छ जलसे भरे हुए जलाशय भी सुशोभित थे । वहाँ मदमत्त भ्रमर अपना संगीत सुनाते हुए फिरते थे—कोकिलाएँ कलोल करती हुई बोलती थीं—प्रसन्नचित्त मयूरोंके झुण्ड पंख फैलाये हुए नटोंके समान नाचते थे और आनन्दसे मस्त हो रहे पक्षियोंके झुंड इधर उधर बेखटके विचरते थे ॥ १४–१९॥ वहाँ पहुँच कर शीतलजलकणपूर्ण और कुसुमसमूहसुवासित हो कर कामोद्दीपन करता हुआ मलयाचलका पवन डोलने लगा ॥ २० ॥ उस समय वसन्तऋतुने प्रकट हो कर वृक्षोंको फल और फूलोंसे सुशोभित कर दिया । फूलोंके गुच्छोंसे लदी हुई लताएँ और वृक्ष कामवश हो कर परस्पर लिपटने लगे । रात होते ही पूर्वदिशामें पूर्ण चन्द्रमा प्रकट हुआ। गन्धर्वगण गाने बजाने लगे और अप्सराएँ हाव-भावसहित नाचने लगीं । स्वर्गकी अप्सराओंके झुंडका स्वामी कामदेव भी धनुष पर वाण चढ़ाये चोट करनेके लिये उद्यत देख पड़ा ॥२१॥२२॥ काम आदि इन्द्रके अनुचरोंने देखा कि हवन करनेके उपरान्त नेत्र मूँदे ध्यानावस्थित मार्कण्डेयजी अपने आसन पर साक्षात् अग्निके समान विराजमान हैं—उनका तेज ऐसा तीव्र है कि आक्रमण करना तो दूर रहा, हर एकको निकट जानेका भी साहस नहीं हो सक्ता ॥ २३ ॥ अप्सराएँ उनके आगे नाचने लगीं और गन्धर्वगण मृदंग, वीणा, पणव आदि मनोहर बाजे बजा कर मधुर स्वरसे गाने लगे ॥ २४ ॥ उस समय अच्छा अवसर देख कर कामने धनुष पर पाँचो वाण चलानेके लिये चढ़ाये और वसन्त, लोभ, मद आदि इन्द्रके सेवक, मुनिके चित्तको चलायमान करनेकी चेष्टा करने लगे ॥ २५ ॥ गेंद उछालती हुई पुञ्जिकस्थली नाम परमसुन्दरी अप्सरा मुनिके आगे आगई । गेंदके पीछे चञ्चल दृष्टि डालती और दौड़ती हुई उस अप्सराकी पतली कमर पीन पयोधरोंके भारसे बार २ लचक जाती थी और शिथिल

वेणीसे खिसक २ कर फूलोंकी मालाएँ गिरती जाती थीं। उसके सूक्ष्म वस्त्र (दुपट्टे)को वायुने शरीर परसे हटा दिया और कटिबन्धन टूट जानेसे नीचेका वस्त्र भी कुछ नाभिके नीचे खिसक गया ॥ २६ ॥ २७ ॥ कामदेवने समझा कि बस अब क्या है—मुनिको जीत लिया। यह समझ कर कामदेवने बाण चलाया, परन्तु जैसे जिसके दैव प्रतिकूल है अथवा जो ईश्वरसे विमुख है उसके सब उद्यम निष्फल हो जाते हैं वैसे ही कामदेव आदि सबका उद्यम व्यर्थ ही हुआ ॥ २८ ॥ हे मुनिवर! इस प्रकार मुनिके साथ बुराई करनेवाले वे सब उनके असह्य तेजसे आप ही जलने लगे और जैसे सर्पको छेड़ कर बालक भागने लगें वैसे ही वहाँसे अपना ऐसा मुह ले कर चल दिये ॥ २९ ॥ ब्रह्मन्! इन्द्रके अनुचरोंने इस प्रकार आक्रमण किया तथापि महामुनिने तनिक भी अहंकार या कोप नहीं किया, सो यह वैसे महात्मोंके लिये कोई विचित्र बात नहीं है ॥ ३० ॥ अनुचरगणसहित मदनको प्रभाहीन मलीन देख कर और उनसे महर्षिके प्रभावको सुन कर इन्द्र बहुत ही विस्मित हुए ॥ ३१ ॥ हे शौनकजी! तप-स्वाध्याय-संयमपूर्वक इस प्रकार अपनेमें मन लगाये हुए मुनि पर अनुग्रह करनेके लिये नर-नारायणरूपी हरि भगवान् प्रकट हुए ॥ ३२ ॥ मार्कण्डेयजीने नेत्र खोल कर देखा कि साक्षात् भगवान्का अंश नर और नारायण ऋषि सामने उपस्थित हैं। उनके श्याम और गौर शरीर परममनोहर हैं। वे चतुर्भुज हैं और रुरुचर्म्म व वल्कल पहने हुए हैं। उनके कंधेमें नवगुणयुक्त यज्ञोपवीत पड़ा हुआ है। अंगुलियोंमें कुशनिर्मित पैंती, हाथोंमें कमण्डलु, वेणुनिर्मित सरल दण्ड, पद्माक्षकी माला, जन्तुमार्जनी और शिर पर पिङ्गलवर्ण विद्युत्सदृशकान्तिशाली जटाजूट सुशोभित हैं। उनके शरीर बलिष्ठ, तेजसम्पन्न और ऊँचे हैं और वे विशुद्ध वेदकी ऋचाओंका पाठ कर रहे हैं। जान पड़ता है कि वे साक्षात् तपकी मूर्त्तियाँ हैं। बड़े २ श्रेष्ठ देवतोंके भी पूजनीय उन ऋषियोंको देखते ही मार्कण्डेयजी आसनसे उठ खड़े हुए और सादर दण्ड प्रणाम किया। उनके दर्शनसे प्राप्त आनन्दसे मुनिकी इन्द्रियोंको, मनको और शरीरको अनिर्वचनीय सुख और शान्ति प्राप्त हुई—शरीरमें रोमाञ्च हो आया और आँखोंमें आनन्दके आँसू भर आनेसे वह भली भाँति उनको देख न सके। मुनिने उठ कर, हाथ जोड़, नम्रतापूर्वक, उत्सुकताके साथ मानो उनको हृदयसे लगा लेंगे—इस प्रकार गद्गद वाणीसे नर-नारायणरूप ईश्वरसे कहा 'नमो-नमः' ॥ ३३—३७ ॥ फिर मार्कण्डेयजीने भक्तिपूर्वक आसन ला कर उनको दिये और पैर धो कर अर्घ्य, चन्दन, धूप और माला आदि सामग्रियोंसे पूजा की। फिर अनुग्रहकारी पूज्यतम दोनो ऋषिश्रेष्ठ जब सुखपूर्वक आसनों पर बैठे तब मुनिने फिर प्रणाम करके कहा कि—"हे विभो! मैं मन्दमति आपकी महिमाका वर्णन या स्तुति क्या करूँ? ब्रह्मा, शिव आदिके, सब देहधारियोंके और मेरे भी प्राणोंके

प्रवर्त्तक या प्रेरक चैतन्यस्वरूप आप ही हैं एवं उन प्राणोंकी चेष्टासे ही वाणी आदिका स्फुरण होता है और मन व अन्यान्य इन्द्रियाँ भी अपने २ कार्य्यमें प्रवृत्त होती हैं। इस प्रकार यद्यपि कोई भी स्वतंत्र नहीं हैं तथापि काष्ठयंत्रके समान आपहीके द्वारा प्रवर्त्तित वाणी आदिसे जो कोई आपका भजन करते हैं उनके—पिता आदिके समान केवल शरीरहीके नहीं, बरन्—आत्माके बन्धु (हितकारी) आप हैं। आप बड़े ही कृपालु हैं ॥ ३८–४० ॥ भगवन्! वास्तवमें आप अजन्मा हैं, अतएव किसीके भी पुत्र नहीं हैं। आप तीनो लोकोंके क्षेम (पालन)के लिये, ताप (त्रिविध दुःख) मिटानेके लिये और मोक्ष देनेके लिये ही इन दोनो रूपोंसे पृथ्वी पर प्रकट हुए हैं। केवल अभी नहीं, बरन् सदैव जगत्की रक्षाके लिये आप समय २ पर मत्स्य आदि अनेक शरीर रखते रहते हैं। नाथ! जैसे ऊर्णनाभि अर्थात् मकड़ा जालेको उगल कर फैलाता है और जब तक जी चाहता है तब तक उसमें खेल कर फिर निगल जाता है वैसेही निरपेक्षभावसे आप भी इस विश्व-प्रपञ्चको उपजाते और पालनपूर्वक उसमें क्रीड़ा करते एवं फिर इच्छानुसार अपनेमें लीन कर लेते हैं ॥ ४१ ॥ आप ऐसे पालनकर्त्ता और चराचर जगत्के ईश्वर हैं। मैं आपके चरणकमलोंको भजता हूँ। क्योंकि जो लोग आपके चरणोंका आश्रय लेते हैं उन्हें कर्म, गुण, काल, पाप और ताप छू नहीं सक्ते। वेदज्ञ मुनि लोग इन्हीं चरणोंकी प्राप्तिके लिये निरन्तर इनकी पूजा, स्तुति, वन्दना और ध्यान करते रहते हैं ॥ ४२ ॥ मनुष्योंको सर्वत्र कालका भय है। मुक्ति देनेवाले आपके चरणोंकी शरणमें रहनेके सिवा उस भयके छूटनेका कोई और उपाय नहीं है। दो परार्द्धकी आयुवाले ब्रह्मा भी जब आपके स्वरूप कालसे अत्यन्त डरते हैं तब उनके उपजाये हुए साधारण प्राणियोंकी तो कोई बातही नहीं है ॥ ४३ ॥ आत्माके आवरण, निष्फल, तुच्छ, नश्वर एवं आत्माके सम्बन्धसे आत्मवत् सत् प्रतीयमान देह आदिके अनुराग अथवा अभिमानको छोड़ कर सत्य ज्ञानस्वरूप, जीवात्माके गुरु (नियन्ता) अतएव कारण (माया)से परे परमात्मा जो आप हैं उनके अकुतोभय सर्वमङ्गलमय चरणोंको मैं भजता हूँ; क्योंकि इनके भजनेसे आपसे सभी वाञ्छित फल प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥ ईश्वर! हे आत्माके बन्धु! आपकी मायाके सत्त्व रज और तम—ये तीनो गुण इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं। हे भगवन्! यद्यपि सात्त्विकी, राजसी, तामसी—ये मायाकृत तीनो प्रकारकी लीलामयी मूर्तियाँ आपहीकी हैं, तथापि मुक्ति देनेवाली सात्त्विकी मूर्ति ही है। अन्यान्य राजसी और तामसी मूर्त्तियोंके भजनेमें दुःख, मोह, भय आदिसे शान्तिके बदले और भी अशान्ति बढ़ती है ॥ ४५ ॥ इस कारण हे ईश! प्रवीण पण्डितजन—आपकी शुद्ध सत्त्वमयी इस नारायण नाम मूर्त्ति और आपके भक्तोंकी शुद्धसत्त्व-

मयी इस नरनाम मूर्तिको ही भजते और पूजते हैं। सात्वत भक्त जन ईश्वरके सत्त्व अंशकोही सर्वश्रेष्ठ रूप समझते हैं-रज और तमको नहीं। इसका कारण यही है कि सत्त्वके सेवनसे शान्तिधाम वैकुण्ठलोक मिलता है-जहाँ किसी प्रकारका भय नहीं है एवं अकुतोभय होनेसे आत्माको सुख प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥ स्वामिन्! आप वही अन्तर्यामी, शुद्धसत्त्वमय, व्यापक, विष्णुरूपी जगद्गुरु, परमदेव नरोत्तम, नारायण ऋषि, शुद्धस्वरूप, यतवाक् और वेदमार्गके प्रवर्त्तक हैं। हे भगवन्! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ४७ ॥ नाथ! जीवकी बुद्धि आपकी मायासे मोहित होरही है, इसी कारण उसका चित्त इन्द्रियोंके असत् विषयोंमें भटक रहा है; और यद्यपि आप नियन्तारूपसे उसकी इन्द्रियोंके अवकाशोंमें, प्राणोंमें, हृदयमें विद्यमान हैं तथापि वह आपको नहीं जानपाता। किन्तु वही पहले आपको न जाननेवाला जीव यदि आप जगद्गुरुके द्वारा प्रवर्त्तित वेदशास्त्रको देखता और विचारता है तो फिर साक्षात् आपको देख पाता है॥४८॥

यद्दर्शनं निगम आत्मरहःप्रकाशं
मुह्यन्ति यत्र कवयोऽजपरा यतन्तः ॥
तं सर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं
वन्दे महापुरुषमात्मनिगूढबोधम् ॥ ४९ ॥

आपका बोध देहादि समूहमें छिपा हुआ है एवं आपका स्वभाव सांख्य आदि सम्पूर्ण मतोंके भिन्न २ विषयोंके अनुरूप है। इसी कारण ब्रह्मा आदि विज्ञ विवेकी जन विशेष यत्न करके भी आपका तत्त्व नहीं समझते और मोहित होजाते हैं। आपका रहस्य केवल वेदसे ही जाना जासक्ता है। वेदके प्रकाशसे आपका गूढ़रूप देख पड़ता है। अत एव हे महापुरुष, महानुभाव! मैं आपको भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ" ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय ।

मार्कण्डेयको भगवान्‌की माया दिखाई देना ।

सूत उवाच-संस्तुतो भगवानित्थं मार्कण्डेयेन धीमता ॥
नारायणो नरसखः प्रीत आह भृगूद्वहम् ॥ १ ॥

श्रीसूतजीने कहा। हे शौनकजी! भार्गवश्रेष्ठ बुद्धिमान् मार्कण्डेयजी जब इस प्रकार स्तुति कर चुके तब नरसखा नारायण ऋषिने प्रसन्न होकर उनसे कह

कि–"हे ब्रह्मर्षिवर्य ! तप, स्वाध्याय, संयम, हमारी दृढ़ भक्ति और चित्तकी एकाग्रतासे तुम सिद्ध होगये । तुम्हारे इस नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रतको देख कर वरदानी लोगोंके भी स्वामी हम अत्यन्त प्रसन्न हैं; अतएव जो चाहो सो 'वर' हमसे माँगो" ॥ १–३ ॥ **मार्कण्डेयजीने कहा** । "हे देवतोंके देवता जो ब्रह्मा आदिक हैं उनके भी ईश्वर ! हे शरणागत आर्त्तजनोंके कष्टोंको नष्ट करनेवाले अच्युत ! आपके दर्शनसेही मेरी सब कामनाएँ पूर्ण होगईं, बस–अब मैं और कुछ नहीं चाहता ॥ ४ ॥ चिरकालके योगाभ्याससे शुद्ध मनमें जिनके चरणकमलोंके दर्शनको पाकर साधारण जन भी ब्रह्मपदको पाते हैं वही आप मेरे नेत्रोंके सन्मुख उपस्थित हैं । इससे बढ़ कर और क्या है जो मैं अब आपसे माँगूँ ॥ ५ ॥ तथापि हे कमलनयन ! हे पुण्ययशवालोंमें श्रेष्ठ ! जिसमें मोहित होकर सम्पूर्ण लोक और लोकपालगण सत्वस्तुमें भेदभावना करते हैं–आपकी उस अद्भुत मायाको मैं देखना चाहता हूँ" ॥ ६ ॥ **सूतजी कहते हैं** । हे मुनिवर ! यों कह कर मुनिने भली भाँति पूजा, वन्दना और स्तुति की। भगवान् ईश्वर नर-नारायण भी 'तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी'–कह कर मुसकाते हुए बद्रिकाश्रमको गये ॥ ७ ॥ मार्कण्डेय भी माया देखनेके समयकी प्रतीक्षा करते हुए उसी अपने आश्रममें रह कर अग्नि, सूर्य्य, चन्द्र, जल, पृथ्वी, वायु, आकाश और अपनेमें–सर्वत्र हरिकी भावना करके मानसिक पूजन सामग्रीसे (इन्हीं अग्नि आदिमें) प्रभुकी पूजा और आराधना करने लगे । कभी २ तो वह ऐसे प्रेममें विभोर और ध्यानमें मग्न हो जाते थे कि पूजाको भी भूल जाते थे ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मन् ! एक दिन इसी प्रकार संध्याके समय पुष्पभद्रा नदीके किनारे बैठे हुए भार्गवप्रवर मार्कण्डेयजी हरिकी उपासना कर रहे थे–इतनेमें अकस्मात् बड़े वेगसे प्रचण्ड आँधी चलने लगी और उस आँधीके थपेड़ोंसे प्रचण्ड शब्द होने लगा । आँधीके साथ ही चारो ओरसे घोर मेघोंने आकाश मण्डलको घेर लिया–बिजलियाँ कड़क २ कर चमकती हुई मनमें भय उत्पन्न करने लगीं और रथके धुरेके समान स्थूल बूंदोंसे मूशलधार पानी बरसने लगा ॥ १० ॥ ११ ॥ वैसे ही देख पड़ा कि मगर, घड़ियाल आदि भयानक जलजन्तुओंसे परिपूर्ण और उग्र गर्जन शब्दसे डरावते चारो समुद्र उमड़ कर चारो ओरसे पृथ्वीतलको बोरते हुए चले आ रहे हैं । उस समय वायुके वेगसे चंचल समुद्रजलमें बड़ी २ लहरें उठ कर आपसमें टकराने लगीं और बड़े २ गहरे महाभयानक भँवर पड़ने लगे ॥ १२ ॥ अपने सहित चारो प्रकार (स्वेदज, अण्डज, जरायुज, उद्भिज)के चराचर प्राणियोंसे परिपूर्ण सम्पूर्ण जगत्को–आकाशमण्डलको ढकलेनेवाले अमितजल, प्रचण्ड बिजली और घोर आँधीसे, इस प्रकार विशेषरूपसे शारीरिक और मानसिक क्लेशसे पीड़ित होते तथा पृथ्वीको प्रलयसागरके जलमें मग्न होते देख कर, ज्ञानी होने पर भी

मार्कण्डेयमुनि व्याकुल और बहुत ही भयभीत हुए ॥ १३ ॥ मुनिके देखते ही देखते उठ रही लहरोंसे भयानक और प्रचण्ड आँधीके थपेड़ोंसे क्षोभको प्राप्त उस महासागरने निरन्तर मूशलधार वर्षा कर रहे मेघोंके जलसे क्रमशः बढ़ कर द्वीप खण्ड और पर्वतसमूहसहित सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलको जलमग्न कर दिया ॥ १४ ॥ ब्रह्मन् ! धीरे २ पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, तारागण और दशो दिशाएँ अर्थात् तीनो लोक उस जलमें मग्न होगये; केवल वह महामुनिही बच रहे। मुनिकी जटाएँ फैल गईं और वह जड़ और अन्धेके समान उस जलमें इधर उधर बहने लगे। मुनिको एक तो भूख और प्याससे कष्ट होने लगा, दूसरे मगर और तिमिंगिल आदि जलजन्तु पीड़ित करने लगे। इस प्रकार प्रचण्ड लहरों और वायुके थपेड़ोंसे व्याकुल और परिश्रमसे शिथिल मार्कण्डेय मुनि अपार अन्धकारमें पड़ कर प्रलय-सागरके जलमें कभी नीचे जाकर और कभी ऊपर आकर भ्रमने लगे। उनको यह नहीं जान पड़ता था कि कौन दिशा किधर है या आकाश कहाँ है और पृथ्वी कहाँ है ॥ १५ ॥ १६ ॥ कभी वह डूब कर जलके नीचे बड़े गहरेमें चले जाते थे, कभी तरंगोंकी टक्करोंसे टकराते थे और कभी उनको लीलनेके लिये परस्पर लड़ रहे घोर जलजन्तुओंके पेटमें चले जाते थे ॥ १७ ॥ कभी शोक, कभी मोह, कभी भय, कभी दुःख, कभी (किनारे पहुँचनेकी आशासे) सुखको प्राप्त होते और कभी पीड़ासे मृतप्राय हो जाते थे ॥ १८ ॥ शौनकजी ! विष्णुकी मायासे आत्माके आवृत होनेके कारण मार्कण्डेयजी इसी प्रकार शत सहस्र अयुत (दस हज़ार लाख) वर्षतक अर्थात् अपरिमित समय तक उस महासागरके जलमें बहते हुए गोते खाते रहे ॥ १९ ॥ एक समय बहते २ मुनिने एक छोटा सा टापू और उस टापूमें एक छोटा सा फूला फला नवपल्लवशोभित बर्गदके वृक्षका पौधा देखा ॥२०॥ उस वृक्षकी पूर्व और उत्तरके कोनेकी अर्थात् ईशान कोणकी शाखामें पत्रपुट पर सोये हुए और अपनी कान्तिसे वहाँके अन्धकारको दूर कर रहे एक महामरकतमणि (पन्ना)के समान श्यामवर्ण परम सुन्दर बालकको देख कर मार्कण्डेयजी बहुतही विस्मित हुए। मार्कण्डेयजीने देखा कि उस बालकका मुखकमल श्रीसम्पन्न हैं, ग्रीवा शंखके समान है, वक्षःस्थल विशाल है, नासिका ऊँची और सुन्दर है, भ्रुकुटी कमान ऐसी मनोहर हैं, श्वासासे डोल रही बड़ी २ अलकें मुखमण्डलकी शोभाको और भी बढ़ारही हैं, दोनो कान शंखके भीतरी भागके समान वलयाकार हैं और उनमें दाड़िम (अनार)के फूल सुशोभित हैं, उज्ज्वल—मधुर मुसकानकी कान्ति विद्रुमतुल्य अधरकी कान्तिसे मिल कर ललाई लिये देख पड़ती हैं, दोनो अपाङ्ग (नेत्रोंकी कोरें) कमलकोषके तुल्य अरुण हैं, चितवन मनोहर है, पीपलके पत्तेके समान चिकने उदरमें गंभीर नाभि—श्वासा लेनेसे कम्पायमान त्रिबलीसे चञ्चल हो रही है। वह अद्भुत बालक सुन्दर अंगुलियुक्त दोनो हाथोंसे

कमलकोमल चरणके अँगूठेको मुखमें डाले हुए पीरहा है ॥ २१–२५ ॥ उस बालकको देखनेसे विप्रवरको परम आनन्द प्राप्त हुआ और सब थकन तथा पीड़ा मिट गई। मुनिका हृदयकमल और नयनकमल प्रसन्नतासे प्रफुल्लित हो उठे—शरीरमें रोमाञ्च होआया। बालकके अद्भुत भाव और रूपको देख कर मुनिवर शंकित हुए—तथापि 'तुम कौन हो?'—ऐसा प्रश्न करनेके विचारसे निकट जानेके लिये उसकी ओर आगेको बढ़े ॥ २६ ॥ पास पहुँचते ही भार्गव मुनि एकाएक बालककी श्वासाके साथ मच्छड़के समान उड़ कर उसके उदरमें चले गये। वहाँ जाकर मुनिने देखा कि प्रलयके पहले जैसा यह जगत् देख पड़ता था वैसाही उस बालकके पेटमें अवस्थित है। इससे मुनिके आश्चर्य्यकी सीमा नहीं रही और वह मोहित होकर कुछ निश्चय न कर सके कि वास्तवमें यह क्या है? ॥२७॥ आकाश, अन्तरिक्ष, तारागण, पर्वतवृन्द, सम्पूर्ण सागर, सब द्वीप, सब खण्ड, दशो दिशाएँ, देवगण, असुरगण, सब वन, सब देश, सब नदियाँ, नगरनिचय, आकरसमूह, व्रजसमूह, चारो आश्रम—चारो वर्ण और उनकी सब वृत्तियाँ, पाँचो-तत्त्व, सम्पूर्ण भौतिक पदार्थ, खेट (किसानोंके गाँव)—पुर—ग्राम आदि, युग—कल्प—आदि अनेक भेदोंसे भिन्न २ संज्ञाओंको प्राप्त सब प्रकारका काल एवं और जो २ लोकव्यवहारके कारणभूत अन्यान्य पदार्थ हैं—सो २ सभी उस बालकके उदरमें मुनिको देख पड़े। मुनिने देखा कि बालकके उदरमें सम्पूर्ण विश्व सत्य पदार्थ सा भासित होरहा है ॥ २८ ॥ २९ ॥ मुनिने वहाँ हिमालय पर्वत, पुष्पभद्रा नदी एवं जहाँ ऋषि श्रेष्ठ नर—नारायणके दर्शन प्राप्त हुए थे वह अपने आश्रमका स्थान भी देखा। इस प्रकार विश्वको देखते २ उस बालकके उदरसे श्वासाके साथ बाहर निकलकर फिर मार्कण्डेयजी उसी प्रलयसागरके जलमें गिर पड़े ॥ ३० ॥ उसी पृथ्वीके उच्च प्रदेशमें लगे हुए वटवृक्षकी शाखामें पत्रपुट पर शयन कर रहे और प्रेमपूर्ण निर्मल मुसकानसे मनोहर तिरछी चितवनसे अपनी ओर निहार रहे उन बालरूप मुकुन्दको देख कर और नयनमार्गसे हृदयमें बिठा कर सन्तुष्टचित्त हो आलिङ्गन करनेके विचारसे निकट जानेके लिये फिर जैसे मुनिवर उधर चले वैसेही योगेश्वरोंके अधीश्वर लीलाशरीरधारी अन्तर्यामी वही बालरूप साक्षात् नारायणदेव ऋषिके निकटसे अन्तर्हित होगये और ऋषिका उद्यम वैसेही विफल होगया जैसे ईश्वरविमुख व्यक्तिकी सब चेष्टाएँ व्यर्थ होती हैं ॥ ३१–३३ ॥

तमन्वथ वटो ब्रह्मन्सलिलं लोकसंप्लवः ॥
तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत्स्थितः ॥ ३४ ॥

ब्रह्मन्! बालमुकुन्दके अदृश्य होतेही उनके साथही वह वटवृक्ष, वह जलमय महासागर और वह लोकोंका प्रलय—सब क्षणभरमें अदृश्य होगया, और मुनिने अपनेको वैसेही पहलेकी भाँति अपने आश्रममें नदीतट पर बैठे हुए देखा ॥ ३४ ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय ।

शिवका प्रसन्न होकर मार्कण्डेयको वर देना ।

सूत उवाच—स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम् ॥
वैभवं योगमायायास्तमेव शरणं ययौ ॥ १ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं। हे शौनकजी! महर्षि मार्कण्डेयजी इस प्रकार योगमायाके वैभव अर्थात् प्रभावको देख कर समझे कि यह सब विश्व नारायणकी इसी (देखी हुई) माया द्वारा विरचित है, अत एव उन्हीं विष्णुके शरणागत होकर कहने लगे कि—"हे हरि! मैं, आर्त्तजनोंको अभय देनेवाले आपके चरणोंकी शरणमें आया हूँ—मुझ पर कृपा करो। आपके भजन विना आपकी ज्ञानवत् भासमान इस अज्ञानमयी मायामें अपनेको ज्ञानी माननेवाले देवगण भी मोहित होते हैं। इस योगमायाके प्रभावको मैं मन्दमति कैसे कह सक्ता हूँ" ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ सूतजी कहते हैं। इस प्रकार चित्तको एकाग्र करके मार्कण्डेयजी फिर पूर्ववत् हरिको भजने लगे। इसी अवसरमें एक दिन पार्वतीसहित नन्दी पर सवार भगवान् शंकर अपने अनुचरों सहित आकाशमार्गसे जारहे थे; उन्होने और पार्वतीने भी देखा कि महातेजस्वी मार्कण्डेयजी आश्रममें समाधि लगाये बैठे हैं। पार्वतीने ऋषि पर प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करसे कहा कि "भगवन्! देखिये जैसे वायुके रुक जाने पर महासागरका जल निश्चल हो जाता है और उसके भीतर रहनेवाले मत्स्य, मगर आदि जीव भी स्थिर हो रहते हैं वैसेही यह तपस्वी ब्राह्मण भी समाधि लगाये निश्चल होकर तप कर रहा है—इसका आत्मा, इन्द्रियाँ, शरीर और मन—सब निश्चल अर्थात् एकाग्र हो रहे हैं। अतएव आप दर्शन देकर इसके तपको सफल करिये, अर्थात् जो यह माँगे वह वाञ्छित वर दीजिये; क्योंकि आपही सब प्रकारकी सिद्धियों (फलों)के देनेवाले ईश्वर हैं" ॥ ३-५ ॥ शङ्करने पार्वतीसे कहा कि "हे उमा! यह ब्रह्मर्षिवर अविनाशी पुरुष नारायणकी अनन्य भक्तिको पाचुके हैं, अतएव इनको किसी फलकी—मोक्षकी भी अभिलाषा नहीं है। तथापि हे भवानी! हम इनसे अवश्य मिलेंगे और बातें करेंगे, क्योंकि प्राणियोंके लिये इस संसारमें साधुसंगम होना ही एकमात्र परम लाभ है" ॥ ६ ॥ ७ ॥ सब विद्याओंके प्रकाशक, सब देहधारियोंके ईश्वर, सब

भक्तोंकी एकमात्र गति भगवान् शङ्कर यों कह कर मार्कण्डेयके निकट गये ॥ ८ ॥ किन्तु मुनिके अन्तःकरणकी प्रवृत्ति, सब बाहरी विषयोंसे हट कर हृदयस्थित आत्मामें लीन हो रही थी—वह विश्वको और अपने शरीरको भी भूले हुए थे, अतएव उन्हे विश्वव्यापक साक्षात् भगवान् शिव और पार्वतीका आना नहीं विदित हुआ ॥ ९ ॥ भगवान् शिवने यह जान कर, वायु जैसे छिद्रमें घुस जाता है वैसेही योगमायाबलसे उनके हृदयमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ बिजलीके समान प्रभाशाली जटाजूटसे सुशोभित, त्रिलोचन, दशभुज, उन्नत, बालसूर्य्यसदृश, व्याघ्रचर्म ओढ़े और हाथोंमें त्रिशूल, धनुष, वाण, खड्ग, चर्म, अक्षमाला, डमरू, कपाल, परशु आदिक लिये शिवरूपको एकाएक हृदयमें स्थित देख कर मुनिका ध्यान बँट गया और समाधि खुल गई। उन्होने आँखें खोल कर देखा कि वास्तवमें पार्वतीसहित, गणपरिवृत त्रैलोक्यके गुरू महादेव उसी वेषसे सामनेही उपस्थित हैं। मार्कण्डेयजी उठ खड़े हुए और शिर नवाकर ईश्वरको प्रणाम किया। फिर स्वागत-सत्कारके उपरान्त आसन, पाद्य, अर्घ्य, चन्दन, माला, धूप और दीपक इत्यादिसे पार्षद्गणसहित शिव-शिवाका पूजन किया। पूजाके उपरान्त मुनिने हाथ जोड़ कर कहा कि "हे प्रभो! आप आत्मज्ञानमेंही सन्तुष्ट और इसीसे निष्काम निर्गुण और शान्त हैं, हम आपकी क्या सेवा कर सक्ते हैं? हे ईशान! आप तो स्वयं सब जगत्को वांछित वर देकर सुखी करनेवाले हैं। आप वास्तवमें सत्वमय हैं, परन्तु लीलाके लिये इस रजस्तमःप्रकाशिका मूर्त्तिमें विराजमान हो रहे हैं, इसीसे आपको घोर भी कहते हैं। आपको वारम्वार नमस्कार है" ॥११–१७॥ श्रीसूतजी कहते हैं। सज्जनोंकी एकमात्र गति भगवान् महादेव, इस प्रकार स्तुति करने पर अत्यन्त सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर हँसते हुए मार्कण्डेयजीसे बोले कि "हे मुनिवर! जो इच्छा हो सो हमसे माँगो। हम तीनो देव वरदानियोंमें श्रेष्ठ हैं। हमारा दर्शन निष्फल नहीं होता—उससे मनुष्योंको मुक्ति मिलती है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण—सदाचारी, गर्व-मत्सरआदि विकारोंसे रहित, निष्काम, सब प्राणियोंपर स्नेह रखनेवाले, हमारे अनन्यभक्त, शत्रुताहीन और समदर्शी हैं,—सम्पूर्णलोक और लोकपाल एवं मैं, ब्रह्म और साक्षात् ईश्वर स्वयं हरिभी उनकी उपासना, बन्दना और पूजा करते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ वे मुझमें, ब्रह्मामें, हरिमें, अपनेमें और सम्पूर्ण जगत्में तनिक भी भेदभावना नहीं रखते। अतएव पूर्वोक्त योग्यतासे श्रेष्ठ तुम ब्राह्मण, हमारे भी पूज्य हो ॥ २१ ॥ जलमय नदी-नदआदिक तीर्थ और शिलामय शालग्राम आदि देवता, वास्तवमें तीर्थ और देवता नहीं हैं। सच्चे तीर्थ और देवता आपही लोग हैं। क्योंकि वे तीर्थ और देवता बहुत काल तक सेवा करनेसे पवित्र करते हैं और आप लोगोंके दर्शनमात्रसे मन पवित्र होजाता है ॥ २२ ॥ हम अपनेही रूप ब्राह्मणोंको प्रणाम करते हैं, क्योंकि वे, चित्तको एकाग्र कर तप, स्वाध्याय अर्थात् आलोचना, अध्ययन द्वारा

संयमपूर्वक हमारे वेदमय रूपका आधार हो रहे हैं ॥ २३ ॥ बड़े २ पातकी और चाण्डाल आदि अन्त्यज भी केवल आप लोगोंके नाम सुनने और दर्शन करनेसेही शुद्ध हो जाते हैं । और जिन्हे आप लोगोंसे बातचीत करनेका सौभाग्य मिलता है वे तो कृतार्थही हो जाते हैं" ॥ २४ ॥ श्रीसूतजी कहते हैं। चन्द्रशेखर शिवके धर्मरहस्ययुक्त उक्त अमृत ऐसे वाक्योंको सुनकर मुनिको अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ । उनका जी नहीं भरा–सुननेकी इच्छा बनीही रही ॥२५॥ विष्णुकी मायामें चिरकाल तक भ्रमनेसे मार्कण्डेयजीको जो कुछ कष्ट हुआ था उसे शिवके अमृतमय वाक्योंने कानोंके द्वारसे हृदयमें पहुँचकर मिटा दिया। मार्कण्डेयजीने शङ्करसे कहा कि "अहो! 'स्वयं जगदीश्वर होकर भी शासनके योग्य जनोंको प्रणाम करना–उनकी स्तुति करना' यह आप ईश्वरोंकी चर्य्या (आचरण) हम ऐसे शरीरधारियोंके लिये अचिन्त्य है– हम इसे नहीं समझ सक्ते ॥ २६ ॥ २७ ॥ हमारी समझमें साधारण लोगोंको धर्मकी शिक्षा देनेके लिये वर्णाश्रम-धर्मके बनानेवाले आप लोग इस प्रकार धर्मका आचरण, अनुमोदन और क्रियमाण धर्मकी प्रशंसा करते रहते हैं ॥२८॥ जादूगरके विचित्र व्यापारोंके समान ये आपके नमन आदि व्यवहार मायामय आचरणमात्र हैं । हे मायाधीश! इन व्यवहारोंसे आपका प्रभाव कम नहीं होता ॥ २९ ॥ आप इच्छापूर्वक मनसे विश्वकी सृष्टि करके आत्मा(चेतन)रूपसे इसके भीतर प्रविष्ट हो कर स्वप्नदर्शी व्यक्तिके समान, कार्यकारी गुणोंके द्वारा कर्त्तारूपसे प्रतीत होते हैं । आप त्रिगुणात्मक, गुणोंके नियन्ता, एकमात्र, अद्वितीय, गुरु, ब्रह्ममूर्त्ति भगवान् हैं–आपको मैं प्रणाम करता हूँ । हे सर्वव्यापक ! आपको देखनेसे मेरी सब अभिलाषाएँ पूर्ण होगईं, अब मैं आपसे और कौन वर माँगूं ? आपके दर्शनसे लोगोंकी सब कामनाएँ पूर्ण और सफल हो जाती हैं ॥३०–३२॥ तथापि हे वरदानियोंमें श्रेष्ठ और काम-वर्षाकरनेवाले ईश ! मैं आपसे यही एक वर माँगता हूँ कि मुझको अच्युत भगवान्में, भगवद्भक्तोंमें और आपमें अचल भक्ति प्राप्त हो" ॥३३॥ मुनिके इस प्रकार वेदवाक्योंसे स्तुति और पूजा करनेके उपरान्त पार्वतीकी इच्छाके अनुसार भगवान् शङ्करने कहा कि "हे महर्षि ! अच्युत भगवान्की अटल भक्ति तो तुमको प्राप्तही है तथापि तुम्हारी प्रार्थनाके अनुसार मेरी कृपासे वह प्रतिदिन बढ़ती ही रहेगी । भगवद्भक्तोंमें और मुझमें भी तुम्हारी अचल भक्ति होगी । इसके अतिरिक्त तुम पूर्ण ब्रह्मवर्चस्वी अर्थात् बालब्रह्मचारी हो, अतएव कल्पके अन्त तक जीवित रहोगे । तुम अजर, अमर होगे । तुम्हारी कीर्ति और तुम्हारे पुण्यका कभी क्षय न होगा । तुमको तीनो कालका ज्ञान प्राप्त होगा । तुम आत्मज्ञानी, विरक्त और पुराण रचनेवाले आचार्य होगे" ॥ ३४–३६ ॥ सूतजीने कहा । हे शौनकजी ! मुनिको इस प्रकार वर देकर जगदीश्वर भगवान् भवानीपति त्रिलोचन, भवानीसे हरिमायादर्शनादि मुनिके अद्भुत चरित्र कहते हुए वहाँसे चलदिये ॥ ३७ ॥ हरि-

भक्तोंमें प्रधान वह भार्गवश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी भी इस प्रकार महायोगमहिमा पाकर, साक्षात् हरिमें तन्मय हो, तबसे इच्छानुसार विचरते रहते हैं ॥ ३८ ॥ शौनकजी! बुद्धिमान् मार्कण्डेय मुनिकी देखी हुई भगवान्‌की मायाका यह अद्भुत वैभव मैंने आप लोगोंको सुनादिया ॥ ३९ ॥ हे मुनिवर! प्राणियोंकी सृष्टि और लयका कारण जो भगवान्‌की माया है उसके तत्त्वको न जाननेवाले लोगोंका कथन है कि 'मार्कण्डेयजीने सात कल्पमें पूर्वोक्त प्रकारसे भगवान्‌की अनादिकालव्यापिनी माया देखी'। और जो लोग ज्ञाता हैं उनका कथन है कि 'मायाशिशुरूप हरिके उदरमें श्वासाके साथ सात बार भीतर जाकर और सात बार बाहर निकलकर केवल मार्कण्डेयनेही एक ही समयमें आकस्मिक सात कल्प (प्रलय) देखे' ॥ ४० ॥

य एवमेतद्भृगुवर्य वर्णितं रथाङ्गपाणेरनुभावभावितम् ॥
संश्रावयेत्संशृणुयादुतावुभौ तयोर्न कर्माशयसंसृतिर्भवेत् ॥४१॥

हे भृगुवर्य! जो कोई चक्रपाणि हरिके प्रभावसे पूर्ण इस उपाख्यानको सुनते हैं और जो सुनाते हैं, वे चित्तकृत कर्मजनित संसारबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं ॥४१॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय।

तत्वमय अंग-उपांग-युक्त महापुरुषके रूपका निरुपण।

शौनक उवाच—**अथेममर्थं पृच्छामो भवन्तं बहुवित्तमम् ॥**
समस्ततन्त्रराद्धान्ते भवान्भागवततत्त्ववित् ॥ १ ॥

शौनक ऋषिने कहा। हे भगवद्भक्तसूत! आपका कल्याण हो; आप सम्पूर्ण तन्त्रसिद्धान्तके तत्त्वको जाननेवाले और बहुज्ञ विद्वानोंमें श्रेष्ठ हैं। अतएव हम आपसे यह सुनना चाहते हैं कि श्रीपति नारायण तो चैतन्यघन ज्योतिःस्वरूप हैं, किन्तु तान्त्रिक उपासक लोग, उपासनाके समय उनके हाथ-पैर आदि अङ्ग, गरुड़ आदि उपाङ्ग, सुदर्शन आदि शस्त्र और कौस्तुभ आदि आभूषणोंकी कल्पना करते हैं। आप कृपा करके कहिये कि किन २ तत्त्वोंसे और कैसे हरिके अंग, उपांग आदिकी कल्पना की जाती है? हमको क्रियायोग जाननेकी भी इच्छा है, इसलिये जिस क्रिया-निपुणतासे मनुष्योंको मुक्ति मिलती है, उसका भी वर्णन करिये ॥१–३॥ **श्रीसूतजीने कहा।** मैं अपने गुरुदेवोंको प्रणाम करके विष्णुकी उन विभूतियोंको आपके आगे कहता हूँ जिन्हे ब्रह्मा आदि आचार्योंने वेदों और तन्त्रोंमें कहा है ॥ ४ ॥ प्रकृति, गुण, महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा—इन नव तत्त्वों और मनसहित ग्यारह इन्द्रिय तथा पञ्चतत्त्व—इन सोलह विकारोंसे विराट् पुरुष निर्मित

हैं; उसी चेतन–युक्त विराट् मूर्त्तिमें यह त्रिभुवन देख पड़ता है ॥५॥ विराट् पुरुषके दोनो पैर यह पृथ्वी है और स्वर्गलोक मस्तक है, आकाश नाभि है, सूर्य नेत्र हैं, वायु नासिका है, दिशाएँ कान हैं, प्रजापति गण मेढ़ू हैं, काल अपानवायु है, लोकपालगण भुजाएँ हैं, चन्द्रमा मन है, यमराज भौंहें हैं, लज्जा अधर है, लोभ ओष्ठ हैं, ज्योत्स्ना (चाँदनी) दशनावली है, भ्रम हास्य है, वृक्षवृन्द रोमपुंज हैं, मेघमण्डल केशसमूह है [इसी प्रकार अनुक्त अंगोंकी भी कल्पना करलेनी चाहिये]। यह भूर्लोकस्थित मनुष्यशरीर निजपरिमाणसे सात बित्ता भर लम्बा है वैसेही विराट् शरीर भी निजपरिमाणसे सात बित्तेका है । यही विराट् शरीरका रूप है ॥ ६–९ ॥ [यह विराट् पुरुषके अंगोंकी कल्पना है अब उपांग आदिकी जिस प्रकार जिन तत्त्वोंसे कल्पना की जाती है, सो कहते हैं] विशुद्ध जीव चैतन्यही साक्षात् कौस्तुभमणि है और उसकी व्याप्त होनेवाली प्रभाही साक्षात् श्रीवत्स है। इन दोनो मुख्य आभूषणों(चिन्हों)को भगवान् हृदयमें धारण किये हुए हैं ॥ १० ॥ त्रिगुणात्मिका मायाही विचित्र वनमाला हैं, वेदसमूहही पीताम्बर है, और त्रिमात्रायुक्त प्रणव(ओं)ही ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) है। सांख्यशास्त्र और योगशास्त्र ही दोनो मकराकृति कुण्डल हैं। सर्वलोकवन्दित ब्रह्मपद(ब्रह्मानन्द)ही किरीट मुकुट हैं । 'प्रधान'ही अनन्त (शेषनाग) नामक अधिष्ठान या आसन है। धर्म–ज्ञान आदि प्रवृत्तियोंसे युक्त सतोगुणही आसनके ऊपर बिछौनेके स्थानपर स्थित पद्म है। तेज, उत्साह और वलसे युक्त प्राणतत्त्व (वायु)ही गदा है। जलतत्त्व शंख है, तेजका तत्त्व सुदर्शन चक्र है। शरीरस्थित अवकाशरूप आकाशतत्त्वही असि (तर्वार) है और अज्ञानही ढाल है। साक्षात् 'काल'ही शार्ङ्गधनुष है और अनेक प्रकारके कर्मही अक्षय तर्कस हैं। विविध वासनामयी इन्द्रियाँही वाणपुञ्ज हैं। क्रियाशक्तियुक्त मनही रथ है और पञ्चतन्मात्राएँ (रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श)ही उस रथका बाहर अभिव्यक्त रूप है। वर, अभय आदि इष्टदेव विराट् पुरुषकी मुद्राएँ (भावरचनाएँ जिन्हे भावभंगि भी कहते हैं) हैं ॥ ११–१६ ॥ सूर्यमण्डलही पूजाका स्थान है। आत्माका संस्कार (अन्तःकरणकी शुद्धि)ही दीक्षा अर्थात् परम पुरुषकी पूजाका अधिकार है। अपने पापोंका क्षयही परम पुरुषकी पूजा है ॥ १७ ॥ 'भग' शब्दके अर्थस्वरूप ऐश्वर्य आदि छः अलौकिक गुणही भगवान्‌के हाथमें स्थित लीलाकमल हैं। धर्म और यशही दोनो चामर (चँवर) हैं एवं अकुतोभय वैकुण्ठ (मोक्ष) धामही छत्र है। हे द्विजवर ! ऋक्, यजुः और साम–ये तीनो वेदही यज्ञस्वरूप पुरुष अर्थात् विष्णु (क्योंकि श्रुति कहती है 'यज्ञो वै विष्णुः')का गरुड़ नाम वाहन हैं ॥१८॥१९॥ स्वस्वरूप–चित्‌रूप आत्मा (हरि)की कभी न नष्ट होनेवाली शक्तिही शोभा–सम्पत्तिमयी साक्षात् भगवती लक्ष्मी देवी हैं और पञ्चरात्र आदि तन्त्रशास्त्रही भगवान्‌के श्रेष्ठ पार्षद 'विष्वक्सेन' हैं। अणिमा आदिक आठो

गुण (सिद्धियाँ)ही आठ नन्द आदिक द्वारपाल हैं। इस परम पुरुषकी पूजा या उपासना मूर्त्तिव्यूहमें और अन्तःकरणमें भी की जाती है। मूर्त्तिव्यूहमें तो वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नामकी मूर्त्तियोंमें पूजा की जाती है और अन्तःकरणमें मन, अहंकार, बुद्धि, चित्त अथवा विषय, मन, वासना और ज्ञान आदि उपाधियोंसे उत्पन्न जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और मुक्तिसंज्ञक वृत्तियों (अवस्थाओं)में विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय–इन नामोंसे उपासना (ध्यान) की जाती है॥ २०–२२॥ साक्षात् हरि (परमात्मा) इन अंग, उपांग, आयुध और आभरणोंसे उपलक्षित (दोनो प्रकारकी) चतुर्व्यूह मूर्त्तियोंमें विराजमान हैं॥ २३॥ हे विप्रवर! यही विराट्‌रूप भगवान् विष्णु ज्ञानमय वेदका मूलकारण सबके साक्षी और अपनी महिमासे परिपूर्ण हैं। यही अपनी माया द्वारा इस जगत्‌की उत्पत्ति, रक्षा और संहार करते हुए ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन भिन्न २ नामोंको प्राप्त होते हैं। तत्पर लोग इनको अनावृत ज्ञानरूपसे अपनेही हृदयमें पाजाते हैं। यही सगुण उपासना और निर्गुण उपासना है। पहले सगुण उपासना करनेसे ब्रह्मज्ञान होता है; फिर जीवन्मुक्त अवस्थामें 'अहम्ब्रह्म–भावना'से निर्गुण उपासना की जाती है॥ २४॥ जो कोई प्रातःकाल उठ कर शौच करनेके उपरान्त शुद्धचित्त हो केवल इस प्रकार कह कर स्थिर चित्तसे ईश्वरका ध्यान करता है कि–"हे कृष्ण! हे अर्जुनके मित्र! हे वृष्णिवंशतिलक! हे विश्वद्रोही राजोंके वंशोंको जलानेवाले अग्नि! हे अमोघवीर्य! हे गोविन्द! गोपीगण, गोपगण और नारदआदि अनुगत भक्त आपकी तीर्थतुल्य जगत्पावनी, सोहावनी कीर्तिका कीर्तन और सुनना ही सब मङ्गलोंका आलय समझते हैं। हम सेवकोंकी रक्षा करो"–वह भी कुछ कालमें हृदयमें स्थित ब्रह्मका अनुभव कर सक्ता है॥२५॥२६॥ शौनकजीने सूतजीसे फिर पूछा कि हे सूतजी! आपने चतुर्मूर्त्ति नारायणका मूर्त्तिव्यूह तो सुनाया, अब विष्णुदत्त राजा परीक्षित्‌के पूछनेपर श्रीशुकदेवजीने जिसका वर्णन किया है वह, सूर्यरूप नारायणकी प्रत्येक मासमें तपनेवाली सहचरगणसहित बारह मूर्त्तियोंके नाम और कामका विवरण हम श्रद्धायुक्त सुननेवालोंको सुनाइये॥ २७॥ २८॥ सूतजीने कहा। सब देहधारियोंके आत्मा जो भगवान् विष्णु हैं उनकी अनादि मायासे निर्मित यह सूर्यमूर्ति–लोकव्यवहारके चक्रको चलाती हुई आकाशमण्डलमें विचरती रहती है। सम्पूर्ण जगत्‌के आत्मा (प्रकाशक) और आदिकर्ता सूर्यरूप नारायण वास्तवमें एकरूप हैं। तथापि, यही सम्पूर्ण वेदोक्त क्रियाओंका मूल (कारण)हैं–इसलिये ऋषियोंने भिन्न २ भावनाके अनुसार इनके उपाधिकृत अनेक नाम व रूपोंकी कल्पना कर ली है॥२९॥३०॥ देश, काल, क्रिया (अनुष्ठान) कर्ता (ब्राह्मण), करण (स्रुवा) कार्य यज्ञ आगम (मंत्र) द्रव्य (व्रीहि अर्थात् धान आदिक), और फल (स्वर्गलोक आदि); सूर्य नारायणकी ये मायाकल्पित नौ उपाधियाँ कही गई हैं॥३१॥ कालरूप भगवान् सूर्य, चैत्र आदि बारहो महीनोंमें

लोकयात्रानिर्वाहके लिये क्रमशः बारह मूर्तियोंसे प्रकाशमान होते हैं। उनके साथ बारह २ अप्सरा आदि अनुगत गणभी इस प्रकार रहते हैं ॥ ३२ ॥ चैत्रमें धातानाम सूर्यके साथ कृतस्थली अप्सरा, हेति राक्षस, वासुकि नाग, रथकृत् यक्ष, पुलस्त्य ऋषि और तुम्बुरु गन्धर्व रहता है। वैशाखमें अर्यमानाम सूर्यके साथ पुलह ऋषि, अथौजा यक्ष, पुञ्जिकस्थली अप्सरा, नारद गन्धर्व, प्रहेति राक्षस और कच्छनीर नाग रहता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ जेठमें मित्र नाम सूर्यके साथ अत्रिऋषि, पौरुषेय राक्षस, मेनका अप्सरा, तक्षक गन्धर्व, रथस्वन यक्ष और हाहा नाम गन्धर्व रहता है ॥३५॥ आषाढ़में वरुणनाम सूर्यके साथ वशिष्ठ ऋषि, रंभा अप्सरा, सहजन्य यक्ष, शुक्रनाम नाग, चित्रस्वन राक्षस और हूहू नाम गन्धर्व रहता है ॥ ३६ ॥ सावनमें इन्द्रनाम सूर्यके साथ विश्वावसु गंधर्व, श्रोता यक्ष, एलापत्र नाग, अंगिरा ऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा और वर्यनाम राक्षस रहता है ॥३७॥ भादोंमें विवस्वान् नाम सूर्यके साथ उग्रसेन गन्धर्व, व्याघ्रनाम राक्षस, भृगु ऋषि, अनुम्लोचा अप्सरा, आसारण यक्ष और शंखपाल नाग रहता है ॥ ३८ ॥ माघमें पूषा नाम सूर्यके साथ धनंजयनाग, वातनाम राक्षस, सुषेण गन्धर्व, घृताची अप्सरा, गौतम ऋषि और सुरुचिनाम यक्ष रहता है ॥ ३९ ॥ फाल्गुणमें पर्जन्य नाम सूर्यके साथ ऋतुनाम यक्ष, वर्चस् नाम राक्षस, भरद्वाज ऋषि, सेनजित् अप्सरा, ऐरावत नाम नाग और विश्वनाम गन्धर्व रहता है ॥ ४० ॥ अगहनमें अंशुनाम सूर्यके साथ कश्यपऋषि, तार्क्ष्य नाम यक्ष, ऋतसेन गन्धर्व, उर्वशी अप्सरा, विद्युत्शत्रु राक्षस और महाशंख नाग रहता है ॥ ४१ ॥ पौषमें भगनाम सूर्यके साथ स्फूर्जनाम राक्षस, अरिष्टनेमि गन्धर्व, अर्ण यक्ष, आयुनाम ऋषि, विप्रचित्ति अप्सरा और कर्कोटक नाग रहता है ॥ ४२ ॥ आश्विनमें त्वष्टानाम सूर्यके साथ जमदग्नि ऋषि, कम्बलाश्व नाग, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मापेत राक्षस, शतजित् यक्ष और धृतराष्ट्रनाम गन्धर्व रहता है ॥ ४३ ॥ कार्त्तिकमें विष्णुनाम सूर्यके साथ अश्वतरनाग, रंभा (दूसरी रंभा) अप्सरा, सूर्यवर्चस् गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि और मखापेत राक्षस रहता है ॥ ४४ ॥ हे मुनिवर ! जो कोई नित्य सवेरे और संध्यासमय भगवान् विष्णुरूप आदित्यकी इन विभूतियोंका स्मरण या कीर्त्तन करते हैं उनके पाप क्षीण होते रहते हैं। इस प्रकार गन्धर्व आदि छः अनुगतोंके साथ यह सूर्यनारायण, बारहो महीने त्रैलोक्यके चारो ओर विचरते हुए सब लोगोंको ऐहलौकिक और पारलौकिक शुभ बुद्धि देते रहते हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ऋषिगण ऋक्, यजुः और साम वेदके मन्त्रोंसे स्तुति करते हैं और गन्धर्वगण गुणगान करते हैं, अप्सराएँ आगे २ नृत्य करती चलती हैं, नागगण रथका दृढ़ बन्धन बनते हैं, यक्ष लोग रथयोजना करते हैं और बली राक्षसगण रथको पीछेसे ढकेलते चलते हैं ॥४७॥४८॥ ऐसे ही अँगूठेकी एक पोरके बराबर जिनके शरीर हैं वे साठ

हजार बालखिल्यनाम निष्पाप ऋषिगण सूर्यकी ओर मुख किये पिछले पैरों आगे २ स्तुति करते चलते हैं ॥ ४९ ॥

एवं ह्यनादिनिधनो भगवान्हरिरीश्वरः ॥
कल्पे कल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः ॥ ५० ॥

हे मुनिवर ! अनादि, अनन्त, भगवान् हरि ईश्वर–इसी प्रकार प्रत्येक कल्पमें अंशविभाग करके उन मूर्तियोंसे सब लोकोंका पालन करते हैं ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय ।

संक्षेपसे बारहो स्कन्धोंकी कथाओंका पुनः उल्लेख।

सूत उवाचः–नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ॥
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान्वक्ष्ये सनातनान् ॥ १ ॥

सूतजीने कहा । अब मैं महान् (हरिभक्तिस्वरूप) धर्मको और विधाता कृष्णभगवान्को तथा परमपूज्य ब्राह्मणोंको प्रणाम करके संक्षेपसे सनातन धर्मोंका वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ हे विप्रगण ! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार लोगोंके सुननेयोग्य यह अद्भुत सम्पूर्ण हरिचरित्र मैंने सुना दिया ॥ २ ॥ इस कथाप्रसंग (भागवत पुराण)में छः ऐश्वर्यगुणोंसे सम्पन्न, हृषीकेश, भक्तरक्षक, सब पापोंके हरनेवाले, साक्षात् नारायण हरिका स्वरूप बताया गया है ॥ ३ ॥ जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके मूलकारण गूढ़ परब्रह्मका स्वरूप दर्शाया गया है और ज्ञान–विज्ञानसम्पन्न ब्रह्मका उपाख्यान (व्याख्या)भी कहा गया है । भक्तियोगयुक्त वैराग्यकाभी भली भाँति वर्णन किया गया है । "(प्रथम स्कंधमें) परीक्षित्का उपाख्यान (जन्म आदि), नारदका उपाख्यान, विप्रके शापसे परीक्षित्का मरणाभिमुख हो गंगातट पर अन्न जल छोड़ कर बैठना और ब्रह्मर्षि शुकदेवके साथ उनका सम्वाद–इन विषयोंका वर्णन हुआ है ॥ ४–६ ॥ (द्वितीय स्कंधमें) योगाभ्यासपूर्वक अर्चि आदिलोकोंकी ऊर्ध्वगति, ब्रह्मा व नारदका सम्वाद, अवतारवर्णन और महत्तत्त्व आदिकी सृष्टि अर्थात् विराट्रूपका वर्णन पहलेही सुना चुके हैं ॥ ७ ॥ (तृतीयस्कन्धमें) विदुर व उद्धवका सम्वाद, फिर विदुर व मैत्रेयजीका सम्वाद, पुराणसंहिताविषयक प्रश्नोत्तर, प्रलय कालमें महापुरुषकी स्थिति, फिर प्राकृतिक सृष्टि, महत्तत्त्व आदिका सप्तविध सर्ग, फिर वैकारिक सर्ग अर्थात् विराट्र पुरुषरूप ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, फिर स्थूल और सूक्ष्म कालकी गतियाँ, नाभिपद्मसे ब्रह्माकी उत्पत्ति, प्रलयसागरसे पृथ्वीका उद्धार करते समय बाराहकृत

हिरण्याक्षका वध, स्वर्ग मर्त्य पाताल आदिकी सृष्टि, रुद्रसृष्टि और फिर अर्द्ध-नारीनररूप ब्रह्मासे स्वायंभुव मनु और स्त्रियोंकी आदिप्रकृति या आदर्शरूपा शतरूपा रानीकी उत्पत्ति, कर्दम प्रजापति और धर्मकी सन्तानोंका बिवरण, भगवान् महामुनि महामति कपिलदेवका अवतार और कपिल–देवहूतिसम्वाद–इन विषयोंका वर्णन किया गया है ॥८–१३ ॥ (चतुर्थस्कन्धमें) ब्रह्मासे मरीचि आदि नव (सृष्टि बढ़ानेवाले) ब्रह्मर्षियोंके वंशका विवरण, दक्षयज्ञविनाश, ध्रुवचरित्र, फिर पृथुचरित्र और राजा प्राचीनबर्हि व नारदका सम्वाद–ये विषय सुनाये गये हैं। हे विप्रगण! (पञ्चमस्कन्धमें) प्रियव्रतका उपाख्यान, राजा नाभिकी कथा, ऋषभचरित और राजा भरतका वृत्तान्त, द्वीप–समुद्र पर्वत–नदीयुक्त पृथ्वीमण्डलका वर्णन, ज्योतिश्चक्र, पाताल और नरकोंका विवरण–इन विषयोंका वर्णन किया गया है ॥१४–१६॥ (षष्ठस्कन्धमें) अजामिलोपाख्यान, प्रचेतागणसे दक्षका जन्म, दक्षकी कन्याओंसे देवता, असुर, मनुष्य, पशु, कीट, पतङ्ग, पक्षी, मृग आदिकी सृष्टि, वृत्रासुरका जन्म और वध, (सप्तम स्कन्धमें) दितिके दोनो पुत्रोंका निधन और तदन्तर्गत दैत्येश्वर महात्मा प्रह्लादका चरित्र (अष्टमस्कन्धमें) मन्वन्तरवर्णन गजेन्द्रमोक्ष, भिन्न २ मन्वन्तरोंमें होनेवाले जगत्पति हरिके मत्स्य, कूर्म, हयग्रीव, नृसिंह, वामन आदि अवतारोंका वर्णन, अमृतके लिये देवासुर महासंग्राम–इतने विषयोंका वर्णन किया गया है। (नवमस्कन्धमें) राजवंशबिवरण, इक्ष्वाकुका जन्म, इक्ष्वाकुके वंशमें महात्मा सुद्युम्नका जन्म, इलाका उपाख्यान, ताराका उपाख्यान, सूर्यवंशमें–शशाद, नृग, शर्याति, बुद्धिमान् ककुत्स्थ, खट्वाङ्ग, सौभरि और सगर व रामचन्द्र आदिके पापनाशक चरित्रों और वंशोंका बिवरण तथा भार्गवेन्द्र परशुरामकृत महीतलके क्षत्रियमात्रका सर्वसंहार–एवं चन्द्रवंशमें पुरूरवा, ययाति, नहुष, दुष्यन्तके पुत्र प्रतापी भरत, राजा निमि (का अंग त्याग और उनसे जनककुलकी उत्पत्ति), शन्तनु और उनके पुत्र भीष्मदेवका उपाख्यान, ययातिके ज्येष्ठ पुत्र यदुका वंश–जिसमें जगदीश्वर साक्षात् कृष्ण भगवान्ने जन्म लिया, उसका बिवरण–ये विषय वर्णित हुए हैं। (दशमस्कन्धमें) वसुदेवके घरमें कृष्णका जन्म और गोकुलमें रहना, असुरारि हरिकी अनेकानेक अद्भुत बाललीलाएँ, पूतनावध, शकट-भञ्जन, तृणावर्त्तवध, वकासुर और वत्सासुरका वध, अनुचरसहित धेनुकासुरका वध, प्रलम्बवध, चारो ओर फैलरहे दावानलसे गोपोंकी रक्षा, कालियनागदमन और नंदमोक्ष वर्णित है ॥ १७–३१ ॥ इसी प्रकार हरिकी प्रसन्नताके लिये व्रजवालिकाओंकी व्रतचर्या, यज्ञकारी ब्राह्मणोंका अपनी स्त्रियोंको हरिमिलनसे कृतार्थ देखकर अपनी भूलपर पछताना, गोवर्द्धनधारण, इन्द्रमानभंग, सुरभी-सहित इन्द्रका आना और गोविन्दका अभिषेक, रासक्रीडा, शङ्खचूड़वध,

अरिष्टासुर और केशीका वध, अक्रूरका आगमन, रामकृष्णकी यात्रा, व्रजवनिताओंका विलाप, मथुराकी सैर, धनुषभंग, कुवलयापीड़ और चाणूर मुष्टिक आदि मल्ल तथा कंसका वध और सान्दीपिनि गुरुके मृतपुत्रका पुनरानयन–ये कथाएँ कही गई हैं। हे द्विजगण! मथुरानिवासके समय बलभद्र और उद्धवके साथ कृष्णने जिन २ कर्मोंसे यादवोंको प्रसन्न किया, जरासन्धके द्वारा कई बार लाई गई सेनाका संहार, यवनेन्द्रको मुचुकुंदके नयनाग्निमें भस्म कराना, द्वारका बसाना, सुधर्म्मा सभा और कल्पवृक्षको स्वर्गलोकसे द्वारकामें लेआना, युद्धमें बाधा डालनेवाले शिशुपाल आदिको मथकर रुक्मिणीको हर ले जाना, बाणासुरयुद्धमें शिवको मोहित करना–बाणासुरके बाहुओंको काटडालना, भौमासुरको मारकर उसकी लाई हुई सोलह हजार एक सौ कन्याओंका एक साथ पाणि-ग्रहण करना, शिशुपाल-पौण्ड्रक-शाल्व-दुर्मति दन्तवक्रका वध, शंबरवध, द्विविदवध, पीठ–मुर और पञ्चजन नामक दैत्योंका वध, वाराणसीदहन और पांडवोंके द्वारा महाभारत रचाकर पृथ्वीका भार उतारना–ये विषय वर्णित हैं॥ ३२–४१॥ (एकादश स्कन्धमें) विप्रशापके बहानेसे यादव-वंशका परस्पर विनाश, उद्धवका और वासुदेवका अद्भुत सम्वाद-जिसमें संपूर्ण आत्मविद्याका उपदेश और धर्मका विचार किया गया है, फिर योगमायाबलसे कृष्णचन्द्रका सशरीर परमधाम गमन–इत्यादि विषयोंका वर्णन किया गया है॥ ४२॥ ४३॥ (द्वादशस्कन्धमें) युगलक्षण, युगस्थिति, कलिकृत मनुष्योंका आन्तरिक विप्लव, चतुर्विध प्रलय, त्रिविध उत्पत्ति, बुद्धिमान् राजा परीक्षित्का देहान्त, वेदशाखाविभाग, महामुनिमार्कण्डेयजीकी उत्तम कथा, महापुरुषका विन्यास (कल्पना) और जगत्के आत्मा सूर्यके द्वादश व्यूहोंका वर्णन किया गया है"॥ ४४॥ ४५॥ हे द्विजवरो! आपके पूछनेके अनुसार मैंने इन सब हरिके लीलामय अवतारोंके कर्मोंका कीर्तन किया है॥ ४६॥ निश्चय जानो कि गिरते, पड़ते, पीड़ित अवस्थामें, भूखे–प्यासे–सब प्रकारके संकटोंमें यदि कोई शुद्धचित्त हो, उच्च स्वरसे 'हरयेनमः' कह कर ईश्वरकी वंदना करता है वह तत्क्षण सब पातकोंसे मुक्त होजाता है॥ ४७॥ जो व्यक्ति हरिके सुयशयुक्त चरित्रोंको सुनता है एवं स्वयं भी हरिके नाम लेता है और चरित्र पढ़ता है उसके चित्तमें प्रवेश करके भगवान् अनन्त–हृदयस्थित वासना या मोहान्धकारको ऐसे दूर कर देते हैं जैसे अन्धकारको सूर्य अथवा मेघोंको प्रचण्ड वायु॥ ४८॥ जिस कथामें भगवान् अधोक्षजकी चर्चा नहीं है वह असत् और मिथ्या है। जिस कथामें हरिके गुणगणवर्णनका प्रसङ्ग है वही सत्य है, वही मंगलदायिनी और पुण्यमयी है॥ ४९॥ जो उत्तमश्लोक हरिके यशसे पूर्ण हो वही परमरमणीय और पल २ पर नित्य नवीन है, वही महान् उत्सव स्वरूप है, वही मनुष्योंके शोकसागरको सुखानेवाला है॥ ५०॥ विचित्र पदोंकी योजना और वाक्यविन्यासकी छटा

न वचनोंमें हरिके जगत्पावन यशकी चर्चा नहीं है वे उपन्यास,
वयसेवी मनुष्योंको ही रुचते हैं; हंससदृश ज्ञानीजन उनमें नहीं रमते।
हैं वही वस्तु निर्मल अन्तःकरणवाले साधुओंको अपनी ओर खींच
१ ॥ छन्दोभंग आदि अनेक दोष होने परभी अनन्त भगवान्‌के
हरिनामयुक्त वचनही सार्थक हैं, क्योंकि सम्पूर्ण समाजके पापको
हैं। साधुजन ऐसेही वचन कहते, सुनते और गाते हैं ॥ ५२ ॥ बिना
निरञ्जन (उपाधिको मिटानेवाला) और नैष्कर्म्य (ब्रह्मप्रकाशक)
ज्ञानभी नहीं सोहता (अर्थात् पूर्ण कल्याणकारी नहीं होसक्ता)।
कर्म क्यों न हो, यदि वह कृष्णार्पण नहीं किया गया तो कैसे सोह
है तो साधनकालमें और अन्तमें भी अभद्र अर्थात् दुःखमय है
श्रमाचारपालन, तप और वेदोक्त यज्ञादि कर्मोंमें श्रम करनेसे
ौर कीर्त्ति मिलती है, परन्तु परमपुरुषार्थरूप हरिके चरणकमलोंकी
हरिगुणानुवादके कीर्तन, श्रवण और मननसेही प्राप्त होती है ॥५४॥
सुदृढ़ भक्तिसे अशुभका क्षय, कल्याणकी प्राप्ति, अन्तःकरणकी
ामें प्रेम और ज्ञानविज्ञानसम्पन्न वैराग्यकी प्राप्ति होती है ॥ ५५ ॥
आप लोग बड़ेही भाग्यशाली और धन्य हैं, क्योंकि अपने अन्तःक-
आत्मा, सबके उपास्य देव, सर्वोपरि विराजमान, ईश्वर नारायण
ित करके निरन्तर भजते हैं ॥ ५६ ॥ आपहीकी कृपासे मैं भी धन्य
क जिसे मैंने पहले राजा परीक्षित्‌के प्रायोपवेशनके समय ऋषियोंकी
ात्मा लोगोंके बीच श्रीशुकदेवजीके मुखसे सुना था उस परमात्माके
न करनेके लिये आपही लोगोंने प्रेरणा की ॥ ५७ ॥ हे विप्रगण! यह
अमंगलोंको मिटानेवाला भगवन्माहात्म्य (भागवत पुराण) आपके
कहा ॥ ५८ ॥ जो कोई पहर भर अथवा क्षणभरही अनन्यचित्त होकर
ते हैं और जो कोई श्रद्धापूर्वक इसका एक श्लोक, आधा श्लोक, एक
धा पद भी सुनते हैं वे दोनो अपने आत्माको पवित्र करते हैं ॥ ५९ ॥
एकादशीको इसके सुननेसे आयुर्बलकी वृद्धि होती है। जो कोई
क यत्नसहित इस संहिताको पढ़ते हैं वे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होजाते
। पुष्कर, मथुरा, द्वारका आदि पुण्य तीर्थक्षेत्रोंमें उपवासपूर्वक यत्नसहित
ाका पाठ करनेसे संसारभय दूर होजाता है ॥ ६१ ॥ इस संहिताका
े सुननेवाले देवता, मुनि, सिद्ध, पितृगण, मनुष्य और राजा आदिक,
एँ पूरी [illegible] हैं ॥ ६२ ॥ इसका पाठ करनेवाले ब्राह्मणको चारो वेद
। इसके अतिरिक्त पयःकुल्या, घृतकुल्या, मधुकुल्या,
नदी बना कर) आदिके देनेका फल और भगवदुक्त
पाठसे प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ इस संहिताके

पाठ करनेसे ब्राह्मणको ब्रह्मज्ञान, क्षत्रियको ससागरा पृथ
सब ऋद्धि सिद्धि और निधियाँ तथा शूद्रको सब पातकों
अन्य शास्त्र पुराणोंमें प्रत्येक पदमें कलिकलुषनाशन सर्वे
नहीं है, किन्तु इस पुराणसंहिताके प्रत्येक कथाप्रसंगमें
भगवान्के सुयशपूर्ण नामोंका कीर्तन किया गया है, अत
स्वर्गपति इन्द्र, ब्रह्मा, शंकर आदि देवगणभी पूर्ण रीति
सक्ते उन अज, अनन्त, अच्युत, जगत्की सृष्टि स्थिति औ
सम्पन्न नारायणको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६७॥ उद्रेकको
हीमें उपरचित स्थावरजंगममय ब्रह्माण्डही जिसका अ
सनातन स्वरूप है उस भगवान् नारायण नाम ब्रह्मको

स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान
प्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्त
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं
तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं

अपनेही आनन्दमें परिपूर्ण अतएव अन्य वस्तु
भगवान् नारायणकी मनोहर लीलाओंने जिनके चित्त
है और जिन्होने भगवत्सम्बन्धिनी इस परमार्थप्रका
प्रकट किया है उन अशेषपापनाशन श्रीमान् वेदव्य
भगवान् श्रीशुकदेवको वारम्वार प्रणाम करता हूँ ॥

इति श्रीभागवते द्वादशस्कन्धे द्वादशो

त्रयोदश अध्याय

पुराणोंकी श्लोकसंख्या

सूत उवाच:—यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स
वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गाय
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा प
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा

सूतजीने कहा । हे शौनकजी ! ब्रह्मा, वरु
देवगण, दिव्य वचनोंसे जिसकी स्तुति करते हैं और
क्रम-उपनिषद्गणसहित वेदमंत्रोंसे जिसके गुणोंक

ध्यानावस्थामें तद्गत मनसे जिसको देखते हैं एवं सम्पूर्ण सुरासुरगण जिसके अन्तको नहीं पाते-उस परम इष्टदेवको प्रणाम है ॥ १ ॥ पीठ पर वेगपूर्वक घूम रहे मन्दराचलकी नुकीली शिलाओंकी रगड़से खुजली मिटनेके कारण मिलनेवाले सुखसे निद्रित से हो रहे कच्छपरूप भगवान्‌की वह निःश्वास वायु तुम्हारी रक्षा करे–जिसके संस्कारके लेशमात्र अनुवर्त्तन द्वारा संचालित सागरके जलकी लहरोंका क्षोभके मिससे निरन्तर गमनागमन अब भी नहीं रुकता ॥ २ ॥ अब मैं सब पुराणोंकी श्लोकसंख्या, इस भागवत पुराणका (मुख्य) विषय और बाँचने, ...योजन तथा दानविधि एवं दानका माहात्म्य—आप लोगोंके आगे ...निये ॥ ३ ॥ ब्रह्मपुराणमें दस हजार (१००००) पद्मपुराणमें पचपन हजार (५५०००), विष्णुपुराणमें तेईस हजार (२३०००), शिवपुराणमें चौबीस हजार (२४०००), श्रीमद् भागवत पुराणमें अट्ठारह हजार (१८०००), नारद पुराणमें पचीस हजार (२५०००), मार्कण्डेय पुराणमें नव हजार (९०००), अग्निपुराणमें चार सौ ऊपर पन्द्रह हजार (१५४००) भविष्यपुराणमें पाँच सौ ऊपर चौदह हजार (१४५००), ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें अट्ठारह हजार (१८०००), लिङ्गपुराणमें ग्यारह हजार (११०००), बाराह पुराणमें चौबीस हजार (२४०००), स्कन्द पुराणमें इक्यासी हजार एक सौ एक (८११०१), वामनपुराणमें दस हजार (१००००), कूर्मपुराणमें सत्रह हजार (१७०००), मत्स्य पुराणमें चौदह हजार (१४०००), गरुड़पुराणमें उन्नीस हजार (१९०००) औ... ...राणमें बारह हजार श्लोक हैं; *इस प्रकार उक्त सम्पूर्ण पुराणोंके श्लोकोंके ...ब मिलाकर चार लाख है–उसमें श्रीमद्भागवतके श्लोकोंकी संख्या अट्ठारह हजार है ॥४–९॥ सबसे प्रथम भगवान् नारायणने नाभिकमलमें अवस्थित भयभीत ब्रह्माको करुणापूर्वक इस भागवत संहिताका उपदेश किया था ॥ १० ॥ इसे पुराणके आदि, मध्य और अन्तमें–सर्वत्र वैराग्यवर्णनपूर्वक हरिलीलाकथामय अमृत बहरहा है, जिसे पीकर सज्जन और देवगण भी तृप्त, सन्तुष्ट आनदित और कृतार्थ होते हैं ॥११॥ सब वेदान्त (वेदोंके सिद्धान्त)का सारांशस्वरूप जो ब्रह्म और आत्माकी ऐक्यभावनारूप अद्वितीय वस्तु है–उसकी प्राप्तिसे मिलनेवाली मुक्ति ही इस पुराणका मुख्य विषय अथवा प्रयोजन है ॥ १२ ॥ भाद्रपद... माके दिन सुवर्णके सिंहासन पर धर जो कोई इस भागवत पुराण (की पुस्तक) का दान करता है उसको परमगति प्राप्त होती है ॥ १३ ॥ हे मुनिवर ! जब तक

...* नाम और श्लोकसंख्याका निरूपण सब पुराणोंमें एक सा नहीं है। शिव-
...२ पुराणमें वायु पुराणका उल्लेख किया गया है, किन्तु पुराण दोनों
विरोध, कल्पभेदकृत है; ऐसा माननीय है। अन्यान्य अपरिहार्य
ही समझना चाहिये ।

अमृतसागरसम यह भागवत कानों तक नहीं पहुँचती तभी तक सज्जनसमाजमें अन्यान्य पुराणोंकी चर्चाका आदर होता है ॥ १४ ॥ यह श्रीमद्भागवत पुराण—सब वेदान्तोंका सार तत्त्व है । जो व्यक्ति, इसके अमृतरसको पीकर तृप्त होगया है उसकी फिर अन्य किसी विषयमें प्रवृत्ति नहीं होती। जैसे नदियोंमें गंगा, देवतोंमें विष्णु और भगवद्भक्तोंमें महादेवजी श्रेष्ठ हैं, वैसे ही सम्पूर्ण पुराणोंमें यह भागवत पुराण श्रेष्ठ है। हे द्विजवरो ! सब पवित्र क्षेत्रोंमें जैसे श्रीकाशीधाम परम श्रेष्ठ है वैसेही सब पुराणोंमें यह श्रीमद्भागवत पुराण श्रेष्ठ है। यह भागवत पुराण निर्मल है, अतएव भगवद्भक्त वैष्णवोंको परम प्रिय है । इसमें, परमहंस जन जिसको पासक्ते हैं वह अद्वितीय विशुद्ध परम ज्ञान विशेषरूपसे बताया गया है एवं ज्ञान-वैराग्य-भक्ति सहित सब कर्मोंकी निवृत्तिका आविष्कार किया गया है। जो कोई भक्ति-श्रद्धासहित इसको पढ़ता, सुनता या विचारता है उसको मुक्ति मिलती है—इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥१५–१८॥ पूर्व-समय जिसने इस ज्ञानप्रदीप(भागवत)को ब्रह्माके निकट और फिर क्रमशः ब्रह्माके रूपसे नारदमुनिके निकट तथा नारद रूपसे निज अंशावतार वेदव्यास-के निकट एवं वेदव्यास रूपसे ब्रह्ममय योगीन्द्र श्रीशुकदेवजीके निकट और करु-णापूर्वक शुकदेवरूपसे राजापरीक्षित्‌के निकट प्रकट किया, उस विशुद्ध, निर्मल, शोकरहित, अमृतरूप (मोक्षस्वरूप) परम सत्य परमेश्वरका हम ध्यान करते हैं ॥ १९ ॥ जिन्होने मोक्षाभिलाषी ब्रह्माके निकट इस श्रेष्ठ पुराणको व्यक्त किया उन सर्वसाक्षी (अन्तर्यामी) भगवान् वासुदेवको नमस्कार है ॥२०॥

योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे ॥
संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत् ॥ २१ ॥

और जिन्होने सर्प और संसारसर्पद्वारा डँसे गये राजापरीक्षित्‌को यह दिव्य संहिता सुनाकर आवागमनके भ्रमजालसे मुक्त कर दिया उन ब्रह्ममें तन्मय होरहे जीवन्मुक्त योगिराज श्रीशुकदेवजीको भी प्रणाम है ॥ २१ ॥

इतिश्रीभागवते द्वादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

* समाप्तोऽयं द्वादशस्कंधः । *

इति श्रीमद्भागवतं समाप्तम् ॥

॥ ओंतत्सत् ॥